हिन्दी साहित्य कोश

भाग २

[नामवाची शब्दावली]

हिन्दी साहित्य कोश

भाग २

[नामवाची शब्दावली]
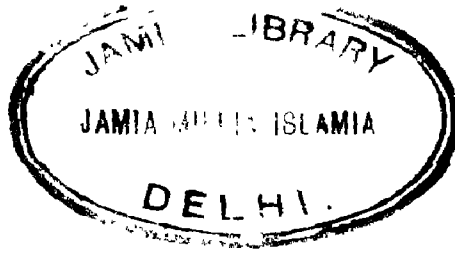
सम्पादक

धीरेन्द्र वर्मा (प्रधान)

व्रजेश्वर वर्मा

रामस्वरूप चतुर्वेदी

रघुवंश (संयोजक)

वाराणसी

ज्ञानमण्डल लिमिटेड

मूल्य बीस रुपये

प्रथम संस्करण, आश्विन संवत् २०२०

प्रकाशक—ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी–१.
मुद्रक—ओम्प्रकाश कपूर, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी (बनारस) ६१०९–१९

भूमिका

'हिन्दी साहित्य कोश' (जो अब द्वितीय संस्करणमें भाग १ के रूपमें प्रकाशित होने जा रहा है) के प्रकाशनके समय हम अनुभव कर रहे थे कि 'प्रस्तुत प्रयासमें हम कुछ अन्य अत्यन्त उपयोगी विषयोंको सम्मिलित नहीं कर सके', और उसी समय मनमें यह विचार भी था कि 'हिन्दी साहित्यके लेखकों, रचनाओं, प्रधान पात्रों तथा पौराणिक संदर्भों'का एक दूसरा भाग तैयार करनेपर ही यह कार्य पूर्ण हो सकेगा। 'हिन्दी साहित्य कोश' के प्रकाशनके साथ इस विचारको संकल्प रूप प्रदान करनेमें कई दिशाओंसे प्रेरणा प्राप्त हुई। हिन्दीके प्रतिष्ठित विद्वानों और लेखकों, हमारे पाठकों तथा सहयोगी लेखकोंने इस संकल्पको कार्य रूप देनेके लिए हमको प्रेरित तथा प्रोत्साहित किया। साथ ही हमारे प्रकाशक, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, विशेषकर उसके संचालक श्री सत्येन्द्रकुमार गुप्त तथा प्रकाशन-विभागके अध्यक्ष श्री देवनारायण द्विवेदीका भी प्रस्तुत कार्यको पूर्ण बनानेके लिए आग्रह रहा। वस्तुतः इस कार्यके सम्पन्न होनेमें प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूपसे इन सभीका हाथ रहा है; उनके श्रेयको स्वीकार करते हुए हम उनके प्रति कृतज्ञता प्रकाशित करना अपना कर्तव्य समझते हैं।

'हिन्दी साहित्य कोश' (अब भाग १)में सैद्धान्तिक, पारिभाषिक तथा विशिष्ट शब्दावलीको स्वीकार करनेमें हमारी एक दृष्टि थी। प्रस्तुत 'हिन्दी साहित्य कोश' (भाग २) मे साहित्यके अध्ययनमे प्रयुक्त होनेवाली नामवाची शब्दावलीको सम्मिलित करनेका प्रयत्न किया गया है। इस प्रकार निम्नलिखित वर्गोंकी शब्दावलीको एक साथ प्रस्तुत करनेमे भी एक दृष्टि रही है—

१. लेखक
२. प्रमुख कृतियाँ
३. प्रधान पात्र (रचनाओंके)
४. प्रमुख साहित्यिक संस्थाएँ
५. प्रमुख पत्र-पत्रिकाएँ
६. पौराणिक तथा ऐतिहासिक पात्र तथा कथा संदर्भ (हिन्दी साहित्यमे प्रयुक्त)

यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक है कि अनूदित रचनाओं तथा अनुवादकोंके नाम हमने कोशमें सम्मिलित नहीं किये हैं। लेखकों तथा कृतियोंके चुनावमें भी एक सीमा-रेखा निर्धारित करना आवश्यक था। हमने सन् १९१५ ई० तक जिनका जन्म हो चुका था, ऐसे लेखकों तथा उन्हींकी प्रमुख रचनाओंको, जिनका प्रकाशन सन् १९५० ई० तक हो चुका है, सम्प्रति कोशमें सम्मिलित किया है। लेखकोंकी टिप्पणियोंमें उनकी सभी रचनाओंकी चर्चा तथा विवेचन है। अगले संस्करणोंमें कालकी सीमा क्रमशः आगे बढ़ायी जा सकेगी। हिन्दी साहित्यके प्रस्तुत संदर्भको ध्यानमें रखते हुए कृती लेखकोंके साथ हमने हिन्दी भाषा तथा साहित्यके प्रतिष्ठित विद्वानो, प्राध्यापकों, प्रचारकों, सेवियों तथा विभिन्न विषयोंके हिन्दीके माध्यमसे लिखनेवाले विद्वानोंको भी प्रस्तुत कोशमें सम्मिलित किया है, यद्यपि हमारा मुख्य केन्द्र साहित्य तथा साहित्यकार ही हैं और अन्य लोगोंकी स्थिति सीमावर्ती ही समझी जानी चाहिये।

सामान्यतः लेखकों तथा कृतियोंपर प्रस्तुत की गयी टिप्पणियोंका एक सीमातक सानुपातिक विस्तार उनके सापेक्ष महत्त्व तथा उपलब्धिका संकेत दे सकता था। कार्य शुरू करते समय यह बात ध्यानमें थी। परन्तु इस सिद्धान्तका निर्वाह कई कारणोंसे नहीं किया जा सका। इनमें लेखकोंपर प्राप्त सामग्री, उनकी रचनाओंकी संख्या तथा सहयोगी लेखकोंकी शैलियोंकी विभिन्नता प्रमुख कारण माने जा

सकते हैं। इस स्थितिमें प्रस्तुत टिप्पणियोंके आकारसे लेखकोंके महत्त्व या मूल्यांकनका कोई भी निश्चित सम्बन्ध नहीं है, यह मानकर चलना चाहिये।

कई दृष्टियोंसे प्रस्तुत कार्य पिछले कार्यसे अधिक कठिन था। हिन्दी साहित्यके वादों, परम्पराओं तथा साहित्यिक युगोंके अध्ययनके विषयमें अपेक्षाकृत अधिक स्पष्टता है और व्यवस्था है। पारिभाषिक तथा विशिष्ट शब्दावलीके बारेमें भी अस्थिरताकी सम्भावना कम ही होती है। परन्तु हिन्दीके लेखकों तथा कृतियों-के बारेमें पर्याप्त अध्ययन और अनुशीलन हो चुकनेके बाद भी अभीतक स्पष्टता तथा स्थिरता नहीं है। यही नहीं कि प्राचीन तथा मध्य युगके लेखकोंके विषयमें हमारे पास बहुत कम प्रामाणिक सामग्री है, आधुनिक कालके लेखकोंके बारेमें भी स्थिति बहुत स्पष्ट नहीं है। तिथियों तथा जीवन-वृत्तके बारेमें अनिश्चित स्थिति है, रचनाओंका काल-क्रम आदि भी बहुत व्यवस्थित रूपसे प्राप्त नहीं है। वस्तुतः संदर्भ-ग्रन्थोंका निर्माण आधार-ग्रन्थों और शोध कार्योंपर आश्रित होता है। संदर्भ-ग्रन्थोंमें ऐसी अनेक गलतियों, भ्रमों तथा कमियोंके रह जानेकी सम्भावना रहती है, जो आधार-ग्रन्थोंमें चली आती हैं। ज्यों-ज्यों हिन्दी साहित्यमें लेखकों तथा रचनाओंके बारेमें स्थिर तथा प्रामाणिक मत बनते जायँगे, संदर्भ-ग्रन्थोंकी सामग्री भी अधिक स्थिर तथा प्रामाणिक हो सकेगी। फिर भी हम अपने सहयोगी लेखकोंके कृतज्ञ हैं, जिन्होंने अपने अध्यव-सायसे यथासाध्य प्रस्तुत सामग्रीको पूर्ण बनानेका प्रयत्न किया है।

हम अपने प्रकाशक, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, विशेषकर श्री देवनारायण द्विवेदीके विशेष आभारी हैं क्योंकि उन्होंने इस कार्यको पूरा करनेमें हमको हर प्रकारकी सुविधाएँ प्रदान कीं और सहयोग दिया। श्री वाचस्पति पाठकजीने इस कार्यमें निरंतर रुचि ली है, इस अवसरपर हम उनके इस सहज स्नेहका स्मरण करते हैं।

प्रस्तुत कार्यकी महत्ताके साथ ही हम उसकी त्रुटियोंके प्रति पूर्णतः सजग हैं। पर इस सम्बन्धमें हम यही कह सकते हैं कि भविष्यमें विद्वानोंके दिशा-निर्देशन तथा अपने लेखकोंके सहयोगसे यह कार्य अधिकाधिक पूर्ण और प्रामाणिक हो सकेगा। हम 'हिन्दी साहित्य कोश' (भाग २) हिन्दी जगत्‌के सम्मुख प्रस्तुत करते समय हर्षका अनुभव कर रहे हैं, क्योंकि हर अगला कदम आगे बढ़नेका प्रतीक होता है।

इलाहाबाद
२८ अगस्त, १९६३ ई०

सम्पादक

हिन्दी साहित्य कोश (भाग २) के लेखक

आ० प्र० दी०	**डॉ० आनन्दप्रकाश दीक्षित**, हिन्दी-विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
उ० कां० गो०, उ० का० गो०	**डॉ० उमाकान्त गोयल**, हिन्दी विभाग, विश्वविद्यालय, दिल्ली
उ० शं० शु०	**श्री उमाशंकर शुक्ल**, हिन्दी विभाग, विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
ओं०, ओ० प्र०	**डॉ० ओम्प्रकाश**, हिन्दी विभाग, विश्वविद्यालय, दिल्ली
कुँ० ना०	**श्री कुँवरनारायण**, ६ शाहनजफ रोड, लखनऊ
के० प्र० चौ०	**डॉ० केशनीप्रसाद चौरसिया**, हिन्दी विभाग, विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
कृ० दे० उ०	**डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय**, हिन्दी विभाग, राजकीय डिग्री कॉलेज, ज्ञानपुर
गं० प्र० पा०	**श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय**, साहित्यकार संसद, रसूलाबाद, इलाहाबाद
गो० ना० ति०	**श्री गोपीनाथ तिवारी**, हिन्दी विभाग, विश्वविद्यालय, गोरखपुर
ज० गु०	**डॉ० जगदीश गुप्त**, हिन्दी विभाग, विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
ज० प्र० श्री०	**डॉ० जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव**, हिन्दी विभाग, विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
ज० उ०	**श्री जनार्दन उपाध्याय**, वाराणसी
ज० रा० मि०	**डॉ० जयराम मिश्र**, हिन्दी विभाग, अग्रवाल डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद
ज्ञा० द०	**डॉ० ज्ञानवती दरबार**, १७, एलेन्बी रोड, नयी दिल्ली
टी० तो०, टी० सिं० तो०	**डॉ० टीकम सिंह तोमर**, हिन्दी विभाग, बलवन्त राजपूत कालेज, आगरा
त्रि० ना० दी०	**डॉ० त्रिलोकीनारायण दीक्षित**, हिन्दी विभाग, विश्वविद्यालय, लखनऊ
दे० द्वि०	**देवनारायण द्विवेदी**
दे० शं० अ०	**डॉ० देवीशंकर अवस्थी**, हिन्दी विभाग, विश्वविद्यालय, दिल्ली
न०	**डॉ० नगेन्द्र**, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, विश्वविद्यालय, दिल्ली
न० वि० श०	**श्री नलिनविलोचन शर्मा** (स्वर्गीय)
न० कि० रा०	**श्री नवलकिशोर राय**, 'आज' कार्यालय, वाराणसी
नि० ति०	**श्री नित्यानन्द तिवारी**, रिसर्च स्कालर, हिन्दी विभाग, विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
प० च०	**श्री परशुराम चतुर्वेदी**, वकील, बलिया
प्र० ना० ट०	**डॉ० प्रतापनारायण टण्डन**, हिन्दी विभाग, विश्वविद्यालय, लखनऊ
प्रे० ना० ट०	**डॉ० प्रेमनारायण टण्डन**, हिन्दी विभाग, विश्वविद्यालय, लखनऊ
प्रे० शं०	**डॉ० प्रेमशंकर**, हिन्दी विभाग, विश्वविद्यालय, सागर
ब० ना० श्री०	**डॉ० बदरीनारायण श्रीवास्तव**, हिन्दी विभाग, गवर्नमेण्ट डिग्री कालेज, ज्ञानपुर
ब० सिं०	**डॉ० बच्चन सिंह**, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
बा० कृ० रा०	**श्री बालकृष्ण राव**, ९ टैगोर टाउन, इलाहाबाद
भ० प्र० सिं०	**डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह**, हिन्दी विभाग, विश्वविद्यालय, गोरखपुर
भ० मि०	**डॉ० भगीरथ मिश्र**, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, विश्वविद्यालय, पूना
भो० ना० ति०	**डॉ० भोलानाथ तिवारी**, हिन्दी विभाग, किरोड़ीमल डिग्री कालेज, दिल्ली
मा० प्र० गुप्त	**डॉ० माताप्रसाद गुप्त**, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
मा० ब० जा०	**श्री माताबदल जायसवाल**, हिन्दी विभाग, विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
मो० अ०	**डॉ० मोहन अवस्थी**, हिन्दी विभाग, विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
यो० प्र० सिं०	**श्री योगेन्द्रप्रताप सिंह**, रिसर्च स्कालर, हिन्दी विभाग, विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
र० भ्र०	**डॉ० रवीन्द्र भ्रमर**, हिन्दी विभाग, विश्वविद्यालय, अलीगढ़
रा० कु०	**श्री राजेन्द्रकुमार**, हिन्दी विभाग, विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
रा० कु० व०	**डॉ० रामकुमार वर्मा**, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
रा० गु०	**डॉ० राकेश गुप्त**, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, गवर्नमेण्ट डिग्री कालेज, ज्ञानपुर
रा० चं० ति०	**डॉ० रामचन्द्र तिवारी**, हिन्दी विभाग, विश्वविद्यालय, गोरखपुर

रा० चं० वर्मा	**श्री रामचन्द्र वर्मा 'पद्मश्री'** शब्दलोक, लाजपतनगर, वाराणसी
रा० तो०, रा० सिं० तो०	**डॉ० रामसिंह तोमर,** अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, विश्वविद्यालय, शान्तिनिकेतन
रा० त्रि०	**श्री रामफेर त्रिपाठी,** रिसर्च स्कालर, विश्वविद्यालय, लखनऊ
रा० पू० ति०	**श्री रामपूजन तिवारी,** हिन्दी विभाग, विश्वविद्यालय, शान्तिनिकेतन
रा० र० भ०	**डॉ० रामरतन भटनागर,** हिन्दी विभाग, विश्वविद्यालय, सागर
ल० कां० व०	**श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा,** सरयू कुटीर, मधवापुर, इलाहाबाद
ल० ना० ला०	**डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल,** हिन्दी विभाग, सी० एम० पी० डिग्री कालेज, इलाहाबाद
ल० शं० व्या०	**श्री लक्ष्मीशंकर व्यास,** सहायक सम्पादक 'आज', वाराणसी
ल० सा० वा०	**डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय,** हिन्दी विभाग, विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
वि० ना० प्र०, वि० प्र०	**डॉ० विश्वनाथप्रसाद,** निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, दिल्ली
वि० प्र० मि०, वि० प्र०	**श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र,** अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, मगध विश्वविद्यालय, गया
वि० मि०	**डॉ० विश्वनाथ मिश्र,** सनातन धर्म कालेज, मुजफ्फरनगर
वि० मो० श०	**डॉ० विनयमोहन शर्मा,** अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र
वि० स्ना०	**डॉ० विजयेन्द्र स्नातक,** हिन्दी विभाग, विश्वविद्यालय, दिल्ली
ब्र० व०	**डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा,** निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी शिक्षण मण्डल, आगरा
श० ना० च०	**डॉ० शम्भूनाथ चतुर्वेदी,** हिन्दी विभाग, विश्वविद्यालय, लखनऊ
शं० ना० सिं०, श० ना० मि०	**डॉ० शम्भुनाथ सिंह,** वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी
शि० प्र० सिं०	**डॉ० शिवप्रसाद सिंह,** हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
शि० शे० मि०	**डॉ० शिवशेखर मिश्र,** संस्कृत विभाग, विश्वविद्यालय, लखनऊ
श्या० प०	**डॉ० श्याम परमार,** आकाशवाणी, इन्दौर
श्री० पं०	**श्री श्रीकृष्ण पन्त,** अच्युत ग्रन्थमाला कार्यालय, ललिताघाट, वाराणसी
श्री० रा० व०, श्री० रा०	**श्री श्रीराम वर्मा,** रिसर्च स्कालर, हिन्दी विभाग, विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
श्री० शु०	**श्री शंकर शुक्ल,** सहायक संपादक 'आज' वाराणसी
श्री० सिं० क्षे०	**श्री श्रीपाल सिंह 'क्षेम',** तिलकधारी डिग्री कालेज, जौनपुर
स० ना० त्रि०	**श्री सत्यनारायण त्रिपाठी,** हिन्दी विभाग, विश्वविद्यालय, गोरखपुर
स० व्र० सि०	**डॉ० सत्यव्रत सिन्हा,** हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद
स० शु०	**डॉ० सरला शुक्ल,** हिन्दी विभाग, विश्वविद्यालय, लखनऊ
ह० दे० बा०	**डॉ० हरदेव बाहरी,** हिन्दी विभाग, विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
ह० प्र० द्वि०	**डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी,** अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, चण्डीगढ विश्वविद्यालय, पंजाब
ह० मो०, ह० मो० श्री०	**श्री हरिमोहन श्रीवास्तव,** नेशनल डिफेंस अकादमी, हिन्दी विभाग, खड़गवासला, पूना

जिन टिप्पणियोंके साथ कोई संकेत नहीं है अथवा केवल सं० दिया गया है, वे सम्पादकीय हैं।

संकेत-सूची

संक्षिप्त रूप	ग्रंथ	लेखक तथा संस्थाएँ
क०	कवितावली	गोस्वामी तुलसीदास
क० कौ० भा०	कविता कौमुदी भाग	रामनरेश त्रिपाठी
खो० रि०	खोज रिपोर्ट	काशी नागरीप्रचारिणी सभा
खो० वि०	खोज विवरण	काशी नागरीप्रचारिणी सभा
गी०	गीतावली	गोस्वामी तुलसीदास
दि० भू०	दिग्विजयभूषण (भूमिका)	सं० भगवतीप्रसाद सिंह
दे० क०	देव और उनकी कविता	नगेन्द्र
ब्र० सा० ना०	ब्रजभाषा साहित्यमें नायिका भेद	प्रभुदयाल मीतल
मा०	मानस (रामचरित)	गोस्वामी तुलसीदास
मा० अ०	मानस अयोध्याकाण्ड	गोस्वामी तुलसीदास
मा० बा०	मानस बालकाण्ड	गोस्वामी तुलसीदास
मि० वि०	मिश्रबन्धु विनोद	मिश्रबन्धु
वि० (विनय प०)	विनय-पत्रिका	गोस्वामी तुलसीदास
रा० ह० खो० (रा० ह० ग० खो०)	राजस्थानी हस्तलिखित ग्रन्थोंकी खोज	काशी नागरीप्रचारिणी सभा
री० भू०	रीतिकाव्यकी भूमिका	नगेन्द्र
शि० स०	शिवसिंह सरोज	शिवसिंह सेंगर
सू० (सू० सा०, सूर०)	सूरसागर	सूरदास
हि० अ० सा०	हिन्दी अलंकार साहित्य	ओमप्रकाश
हि० का० इ० (हि० का० शा० इ०)	हिन्दी काव्यशास्त्रका इतिहास	भगीरथ मिश्र
हि० ना० उ० वि०	हिन्दी नाटक—उद्भव और विकास	दशरथ ओझा
हि० ना० सा० अ०	हिन्दी नाटक साहित्यका अध्ययन	सोमनाथ गुप्त
हि० भा० और सा० इ०	हिन्दी भाषा और साहित्यका इतिहास	अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
हि० सा०	हिन्दी साहित्य	स० धीरेन्द्र वर्मा, ब्रजेश्वर वर्मा
हि० सा० इ०	हिन्दी साहित्यका इतिहास	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
हि० सा० वृ० इ०	हिन्दी साहित्यका बृहत् इतिहास	काशी नागरीप्रचारिणी सभा
हि० ह० ग्रं० खो० वि०	हिन्दी हस्तलिखित ग्रन्थोंका खोज विवरण	काशी नागरीप्रचारिणी सभा

अन्य संकेत

अध्य०	अध्याय
अ०, अप्र०	अप्रकाशित
ई०	ईसवी सन्
ई० पू०	ईसवी पूर्व सन्
उदा०	उदाहरण
ख०	खण्ड
ग्र०	ग्रन्थावली
द० स्कं०	दशम स्कन्ध (श्रीमद्भागवत)
दे०	देखिये
ना० प्र० स०	नागरीप्रचारिणी सभा
पृ०	पृष्ठ
प्र०	प्रकाश
प्र० स०	प्रथम संस्करण
भा०	भाग
बि० रा० भा०	बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्
वि० सं० (वि०)	विक्रम संवत्
सं०	सम्पादक
हि०	हिजरी

कोशमें सामान्यतः ईसवी सन्‌का प्रयोग किया गया है।

●

हिन्दी साहित्य कोश

भाग २

अंगद–किष्किन्धाके राजा बालि तथा पंचकन्या ताराके पुत्र तथा सुग्रीवके भतीजे अंगद अपने दूत-कर्मके लिए प्रसिद्ध रहे हैं। वे रामके सेवक एवं सेनापतिके रूपमें भी विभिन्न स्थलोंपर स्मरण किये गये हैं। अंगद सम्बन्धी प्राचीन आख्यानकोंमें केवल वाल्मीकि रामायण ही प्रमाण है। यद्यपि वाल्मीकिके अंगदमें हनुमान्के समान बल, साहस, बुद्धि और विवेक है, परन्तु उनमें हनुमान् जैसी हृदयकी सरलता और पवित्रता नहीं है। सीता-शोधमें विफल होनेपर जब वानर प्राणदण्डकी सम्भावनामें भयभीत होकर विद्रोह करनेपर तत्पर दिखाई देते हैं, तब अंगद भी विचलित हो जाते हैं। यदि वे अन्ततोगत्वा कर्तव्य-पथपर दृढ़ रहते हैं तो इसका कारण हनुमान्के विरोधकी आशंका ही है। वाल्मीकिकृत अंगद-चरित्र ही परवर्ती राम-काव्योंके लिए आधार रहा है, यद्यपि अध्यात्म रामायणने उनके चरित्रमें धार्मिकताका किंचित् समावेश कर दिया है। अंगदके दूत-कर्मको लेकर बादमें अनेक काव्य और संवादोंकी रचना हुई। इस दृष्टिसे अंगदका चरित्र एक स्पष्ट-वक्ता, योद्धा, नीति-कुशल आदि रूपोंमें प्रकट हुआ है। 'हनुमन्नाटक'में स्पष्ट उल्लेख है कि वे अपने पिताके वधके प्रतीकारार्थ रावणका उसकी सभामें अपमान करते हैं। वे रावणको उत्तेजित करनेके लिए वचनोंका प्रयोग करते हैं जिससे कि राम-रावण युद्ध अशक्य न रह जाय। संस्कृत साहित्यके रामसम्बन्धी अनेकानेक काव्योंमें अंगदकी वीरता एवं राजनीति-पटुताकी प्रशंसा की गयी है। १३ वीं शतीके अंतमें सुभट्टकृत 'दूतांगद' नामक कृति उनके चरित्रपर विशेष प्रकाश डालती है।

१६ वीं शतीमें हिन्दीमें भी 'अंगद-पैज' नामक एक लघु काव्यके प्रणीत होनेका उल्लेख प्राप्त होता है। तुलसीकृत 'रामचरितमानस'में अंगदका चरित्र बालिके पुत्र, हनुमान्के सखा, रामके सेवक तथा वानरोंके सेनानायकके रूपमें प्राप्त होता है। तुलसीदासने आदि काव्यके अंगदके चरित्रकी कोई दुर्बलता अपने चरित्र-चित्रणमें नहीं रहने दी, अपितु उन्हें एक आदर्श भक्तके रूपमें प्रस्तुत किया है। इस दृष्टिसे वानरादिमें उनका स्थान हनुमान्के बाद ही आता है। लंकासे लौटनेके बाद अंगद अयोध्यामें ही रहकर राम-सेवामें आजीवन निरत रहनेकी इच्छा प्रकट करते हैं तथा रामकी स्वीकृति न पानेपर जब अपने देशको लौटने लगते हैं तब हनुमान्से प्रार्थना करते हैं कि वे रामको उनकी याद दिलाते रहें। सेवक और सखाके अतिरिक्त तुलसीदासने अंगदके पुत्र रूपका चित्रण करके अपनी मौलिकताका परिचय दिया है। अंगद-रावण संवादमें तुलसीदास अंगदकी नीतिज्ञतासे अधिक रावणके प्रति अपनी घृणासे प्रेरित होकर उसके तिरस्कारका चित्रण करनेमें प्रवृत्त हुए हैं। इसी कारण तुलसीके अंगदकी नीतिज्ञतापर कुछ लोग सन्देह करते हैं। रावणकी सभामें पैर रोपनेके प्रसंगको लेकर भी 'मानस'के प्रेमियोंमें प्रायः विवाद चलता है। परन्तु अंगदके वाक्चातुर्यका जो परिचय तुलसीने दिया है वह राजदरबारकी मर्यादाके विरुद्ध भले ही हो, अंगदके प्रत्युत्पन्नमतित्वका सुन्दर प्रमाण देता है। इस दिशामें केशवदासकी 'रामचन्द्रिका' अंगदकी कूटनीतिज्ञता एवं नीतिनिपुणताका प्रभावशाली उदाहरण प्रस्तुत करती है। आधुनिक युगमें हरिदयालुसिंहने 'रावण महाकाव्य'में अंगद-रावण-संवादको नवीन रूपमें समायोजित करनेका प्रयत्न किया है, किन्तु उसमें किसी विशिष्टताके दर्शन नहीं होते।

[सहायक ग्रन्थ—रामकथा : डॉ० कामिल बुल्के तथा तुलसीदास : डॉ० माताप्रसाद गुप्त, हिन्दी परिषद्, विश्वविद्यालय इलाहाबाद।] —यो० प्र० सिं०

अंग-दर्पण–सैयद गुलाम नबी बिलग्रामी (हरदोई), 'रसलीन' द्वारा रचित नख-शिख वर्णनका यह प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसमें कुल १८० दोहे हैं और इसका रचनाकाल १७३७ ई० माना जाता है। यद्यपि रसलीनने इसे 'ब्रजबानी सीखन रची' ऐसा घोषित किया है, पर भाषा तथा शैलीकी दृष्टिसे यह प्रौढ़ और सुकुमार रचना है। इसमें नायिकाके अंग-प्रत्यंगों, आभूषणों, भंगिमाओं तथा चेष्टाओं तकका वर्णन सौन्दर्यके साथ किया गया है। जिन दोहोंमें भावात्मक सौन्दर्य व्यंजित हुआ है, वे बहुत मार्मिक हैं। 'अमिय हलाहल'के प्रसिद्ध दोहेके अतिरिक्त—'मुख छबि निरखि चकोर अरु, तनपानिप लखि मीन। पद पंकज देखत भँवर, होत नयन रसलीन।'—में भी वही व्यंजना है। इसमें नख-शिखका वर्णन बहुत ही अच्छे ढंगसे किया गया है। सूक्तियोंके चमत्कारके लिए रसग्राही पाठकोंका यह प्रिय ग्रन्थ है। इसमें उपमा तथा उत्प्रेक्षाका आश्रय लेकर कविने उक्ति-वैचित्र्य और कल्पनाकी कला बड़े ही अच्छे ढंगसे प्रकट की है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० बृ० इ०, भाग ६; क० कौ०, प्र० भाग।] —सं०

अंगिरा–एक प्रसिद्ध वैदिक ऋषि (ऋग्वेद ८।८५।१-९ और ८।८५।५) जिनका स्थान मनु, ययाति तथा भृगु आदिके समकक्ष माना जाता है। इसके अतिरिक्त सप्त ऋषियों तथा दस प्रजापतियोंमें भी इनकी गणना की जाती है।

कालांतरमें इस नामके एक ज्योतिषी तथा स्मृतिकार भी हो गये हैं। नक्षत्रोंमें बृहस्पति तथा देवताओंमें पुरोहित यही हैं। 'अंगिरस्' भी उसी धातुसे निकला है जिससे 'अग्नि' और एकमतसे इनकी उत्पत्ति भी आग्नेयी (अग्निकी कन्या)के गर्भसे मानी जाती है। मतान्तरसे इनकी उत्पत्ति ब्रह्माके मुखसे मानी जाती है। स्मृति, श्रद्धा, स्वधा, सती तथा दक्षकी दो कन्याएँ इनकी पत्नियाँ मानी जाती हैं और हविष्यत् इनके पुत्र तथा वैदिक ऋचाएँ इनकी कन्याएँ मानी जाती हैं। उतथ्य, मार्कण्डेय इनके पुत्र कहे गये हैं। भागवतके अनुसार रथीतर नामक किसी निःसन्तान क्षत्रियकी पत्नीसे इन्होंने ब्रह्मणोपम पुत्र उत्पन्न किये थे। ऐसा प्रतीत होता है कि इस नामके अनेक व्यक्ति थे। किन्तु सम्भवतः नामकी एकताके कारण कालप्रवाहके साथ विभिन्न व्यक्तियोंकी अनेक कथाएँ इसके साथ जुड़ती गयीं। —रा० कु०

अंचल–दे० रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'।

अंजना–कुंजर नामक वानरीकी कन्या और केशरी नामक वानरकी पत्नी थी। अंजनाको मतान्तरसे गौतमकी पुत्री भी बताया जाता है। हनुमान् इन्हींके पुत्र-रत्न थे। हनुमान्की उत्पत्ति पवनसे बतायी जाती है। कहा जाता है कि किसी कारण-वश महादेवका वीर्यस्खलन हो गया। पवनने उसे उड़ाकर अंजनीके कानमें फूँक दिया और फलस्वरूप हनुमान्का जन्म हुआ। अंजनीका पुत्र होनेके कारण ही हनुमान्को 'अंजनीको नन्दन' (मानस, बा० ८) 'अंजनी कुमार' (मानस, बा० १५) आदि नामोंसे भी सम्बोधित किया जाता है। —ज० प्र० श्री०

अंजनी–दे० 'अंजना'।

अंजनी कुमार–दे० 'हनुमान्'।

अंदाल–प्रसिद्ध सन्त आलवारका जन्म विक्रम सं० ७७० में हुआ था। कहा जाता है कि वयस्क होनेपर ये भगवान्के लिए जो माला गूँथतीं उसे भगवान्को पहनानेसे पूर्व स्वयं पहनकर दर्पणके समक्ष खड़ी हो जातीं और भगवान्से पूछतीं, 'प्रभु, मेरे इस शृंगारको ग्रहण कर लोगे?' और यह सब कर लेनेके उपरान्त कृष्णको जूठी माला पहनाया करतीं। इन्होंने अपना विवाह श्रीरंगनाथके साथ बड़े धूमधामके साथ किया था। विवाहके बाद ये मतवाली होकर श्रीरंगनाथकी शय्यापर चढ गयीं। इनकी इस क्रियाके साथ मन्दिरमें सर्वत्र आलोक फैल गया। इनके शरीरसे भी बिजलीके समान एक ज्योति किरण फूटी तथा दूसरे ही पल अनेक दर्शकोंके देखते-देखते ये श्रीरंगनाथमें विलीन हो गयीं। इनके विवाहसे सम्बद्ध उत्सव अब भी प्रतिवर्ष दक्षिणके मन्दिरोंमें मनाया जाता है। अंदालकी भक्ति प्रसिद्ध भक्त मीराके समान कही जाती है। —ज० प्र० श्री०

अंधक–सहस्र सिर, सहस्रबाहु तथा दो सहस्र नेत्रोंवाले अन्धक दैत्यके पिताका नाम कश्यप और माताका नाम दिति था। मदोन्मत्त अन्धेकी भाँति चलनेके कारण इसका नाम अन्धक रखा गया था। इसे वरदान प्राप्त था कि शिव और विष्णुके अलावा कोई भी इसका वध न कर सकेगा। इसके अत्याचारसे त्रिलोक कंपित हो उठा। इसने स्वर्गकी उर्वशी, इंद्रावती आदि अप्सराओंका अपहरण कर लिया। नन्दन कानननसे जब यह पारिजात लेकर जा रहा था, उस समय शिवने इसका संहार किया। इसी कारण शिवको 'अन्धक-रिपु' कहा जाता है—'त्रिपुर मद भंगकर, मत्त गज चर्मधर, अन्धकोरग ग्रसन पन्नगारी' (विनय प० ४९)। मतान्तरसे अन्धक हिरण्याक्षका पुत्र था जो उसे शिवसे वरदान स्वरूप मिला था। इसकी उत्पत्ति पार्वतीके प्रस्वेदसे मानी जाती है। पार्वतीकी अवज्ञा करनेके कारण शिवसे इसका भीषण युद्ध हुआ। इसके रक्त-विन्दुओंसे नये अन्धकोंके उत्पन्न होनेपर शिवने इसके गिरे रक्तका पान करनेके लिए मातृका उत्पन्न की। मातृकाके तृप्त होनेपर नये अन्धकोंकी वृद्धि देख शिवने विष्णुकी युक्तिसे इसे पराभूत कर त्रिशूलपर लटका दिया। किन्तु इसने जब आकुल हो उनकी आराधना की तो शिवने इसे गणाधिपति बना दिया। —ज० प्र० श्री०

अंध तापस–दे० 'अंधमुनि'।

अंधमुनि–श्रवणकुमारके पिता अन्धमुनिके नामसे प्रसिद्ध हैं। एक बार राजा दशरथ सरयू तट स्थित एक वनमें मृगयाके लिए गये हुए थे। उसी समय श्रवणकुमार अपने अन्धे माता-पिताको एक स्थानपर बिठाकर पानी लेने गये। उनके घड़ा डुबोनेकी आवाजको किसी हिंस्र पशुके जल-पानकी कण्ठ ध्वनि समझकर राजा दशरथने शब्दवेधी बाण मारा। फलतः श्रवणकुमार आहत होकर कराहने लगे। दुर्घटना-स्थलपर श्रवणकुमारको पाकर महाराजको अत्यन्त खेद हुआ। वे मरणोन्मुख श्रवणकुमारके निर्देशानुसार उनके माता-पिताको पानी पिलाने गये। श्रवणके माता-पिताके आग्रहपर दशरथको सच बात बतानी पड़ी। परिणामस्वरूप अन्धे-अन्धीने पुत्र वियोगमें जल-ग्रहण करना अस्वीकार कर दिया तथा मरनेसे पूर्व दशरथको शाप दिया कि दशरथकी भी मृत्यु उन्हींके समान पुत्र-वियोगमे होगी—'बिधि बस बन मृगया फिरत दीन्ह अन्धमुनि साप' (प्र० १।२।३)। इस शापका स्मरण उन्हें अपनी मृत्युके पूर्व हुआ भी था—'तापस अन्ध साप सुधि आई। कौसिल्यहिं सब कथा सुनाई' (मा० अ०)। —ज० प्र० श्री०

'अंधेर नगरी' (र० का० १८८१ ई०)–भारतेन्दु हरिश्चन्द्र-कृत यह प्रहसन अत्यन्त प्रसिद्ध और लोक-प्रचलित है। उसमें छः अंक है। पहले अंकमें एक महन्त अपने दो शिष्यों, नारायणदास और गोबरधनदासमे-से दूसरेको भिक्षा माँगनेके सम्बन्धमें अधिक लोभ न करनेका उपदेश देता है। दूसरे अंकमें बाजारके विभिन्न व्यापारियोंके दृश्य हैं जिनकी माल बेचनेके लिए लगायी गयी आवाजोंमे व्यंग्यकी तीव्रता है। शिष्य बाजारमें हर एक चीज टके सेर पाता है और नगरी और राजाका नाम (अन्धेर नगरी—चौपट राजा) ज्ञातकर और मिठाई लेकर महन्तके पास वापस आता है। गोबरधनदाससे नगरीका हाल मालूमकर वह ऐसी नगरीमें रहना उचित न समझ तीसरे अंकमें वहाँसे चलनेके लिए अपने शिष्योंसे कहता है। किन्तु गोबरधनदास लोभके वशीभूत हो वहीं रह जाता है और महन्त तथा नारायण-दास चले जाते है। चौथे अंकमें पीनकमें बैठा राजा एक फरियादीकी बकरी मर जानेपर कल्लू बनिया, कारीगर, चूनेवाले, भिश्ती, कसाई और गड़रियाको छोड़कर अन्तमें

अपने कोतवालको ही फाँसीका दण्ड देता है क्योंकि अन्ततोगत्वा उसके सवारी निकालनेसे ही बकरी दबकर मर गयी थ । पाँचवें अंकमें कोतवालकी गर्दन पतली होनेके कारण गोबरधनदास पकड़ा जाता है ताकि उसकी मोटी गर्दन फाँसीके फन्देमें ठीक बैठे । अब उसे अपने गुरुकी बात याद आती है । छठे अंकमें जब वह फाँसीपर चढ़ाया जानेको है गुरुजी और नारायणदास आ जाते हैं । गुरुजी गोबरधनदासके कानमें कुछ कहते हैं और उसके बाद दोनोंमें फाँसीपर चढ़नेके लिए होड़ लग जाती है । इसी समय राजा, मन्त्री और कोतवाल आते हैं । गुरुजीके यह कहनेपर कि इस साइतमें जो मरेगा सीधा बैकुण्ठको जायगा, मन्त्री और कोतवालमें फाँसीपर चढ़नेके लिए प्रतिद्वन्द्विता उत्पन्न हो जाती है । किन्तु राजाके रहते बैकुण्ठ कौन जा सकता है, ऐसा कह राजा स्वयं फाँसीपर चढ़ जाता है । जिस राज्यमें विवेक-अविवेक का भेद न किया जाय वहाँकी प्रजा सुखी नहीं रह सकती, यह व्यक्त करना इस प्रहसनका उद्देश्य है । —ल० सा० वा०

अंबरीष–अयोध्याके सूर्यवंशी राजा अम्बरीष । ये इक्ष्वाकुवशकी २८ वीं पीढ़ीमें हुए थे । इन्हें कहीं प्रशुश्रकका पुत्र कहा गया है और कहीं नाभाग का । ये भगीरथके प्रपौत्र थे । ये अत्यन्त पराक्रमी तथा वीर थे । कहा जाता है कि इन्होंने १० लाख राजाओंको रणमें पराजित किया था । ये एक पहुँचे हुए विष्णु-भक्त भी थे । ये अपना समस्त राज्य-कार्य कर्मचारियोंके सरक्षणमें छोड़कर अधिकांश समय भगवत्-भजनमें बिताते थे । इनकी कन्याका नाम सुन्दरी था जो कि गुणोंकी दृष्टिसे भी सार्थक था । एक बार देवर्षि नारद तथा पर्वत सुन्दरीपर मोहित हो गए और उसे पानेकी चेष्टामें विष्णुके पास गये । नारदने पर्वतके लिए और पर्वतने नारदके लिए विष्णुसे प्रार्थनाकी कि वे उनका मुख बन्दरका-सा बना दें । विष्णुने दोनोंकी प्रर्थना स्वीकार कर दोनोंका मुख बन्दरका बना दिया । दोनों व्यक्तियोंकी आकृति बन्दरोंकी देख सुन्दरी भयभीत होकर पिताके पास गयी । जब अम्बरीषके साथ वापस आयी तो दोनोंके मध्य भगवान् विष्णुको भी बैठे पाया । सुन्दरीने वरमाला उनके गलेमें डाल दी और विष्णुकी प्रेरणासे अन्तर्धान हो गयी । दोनों ऋषियोंने क्रोधावेशमें अम्बरीषको शाप दिया कि वे स्वयं अन्धकारावृत होकर अपना शरीर तक न देख सकें । इसपर अम्बरीषके रक्षार्थ विष्णुका चक्र-सुदर्शन उपस्थित हुआ और अन्धकारका विनाश कर मुनियोंकी खबर लेनेको तत्पर हुआ । दोनों मुनि भागते-भागते विष्णुकी शरणमें गये, तब भगवान् द्वारा क्षमा किये जानेपर चक्र-सुदर्शनके आतंकसे मुक्त हुए । सच बात यह थी कि राधा (लक्ष्मी) सुन्दरीके रूपमें अम्बरीषके यहाँ अवतीर्ण हुई थीं और उन्होंने श्रीकृष्ण (विष्णु)को पति रूपमें पानेके लिए अपूर्व तपस्या की थी । इसी प्रकार एक बार द्वादशीके दिन अम्बरीष पारण करने जा रहे थे कि दुर्वासा ऋषि अपने शिष्यों समेत आ पहुँचे । अम्बरीषने भोजनके लिए उन्हें आमन्त्रित किया पर वे निमन्त्रण स्वीकार कर सन्ध्या-वंदनके लिए चले गये । वहाँ उन्होंने जान-बूझकर देर कर दी । द्वादशी केवल एक पल शेष रह गयी । द्वादशीमें पारण न करनेसे दोषका भागी होना पड़ता है । अतः अम्बरीषने विद्वान् ब्राह्मणोंकी सम्मति लेकर भगवान्का चरणामृत ग्रहण कर लिया । जब दुर्वासा आये तो वे इस अवज्ञाके लिए अम्बरीषपर बरस पड़े । भावावेशमें उन्होंने अपनी जटाका एक बाल तोड़कर पृथ्वीपर पटक दिया जो कृत्या राक्षसी बनकर राजाका विनाश करनेके लिए झपटी । ठीक उसी समय सुदर्शन-चक्र प्रकट हुआ । वह कृत्याका संहार कर दुर्वासाके पीछे दौड़ा । दुर्वासा भागते हुए क्रमशः ब्रह्मा, शिव और विष्णुकी शरणमें गये किन्तु उन्होंने उनकी रक्षा करनेमें अपनी अक्षमता व्यक्त की । फलस्वरूप वे अम्बरीषकी शरणमें आये । अम्बरीषकी प्रार्थनापर चक्र शान्त हुआ । राज तब तक प्रतीक्षा कर रहे थे, अतएव दुर्वासाने उनका आतिथ्य स्वीकार कर भोजन किया और उनकी प्रशंसा करते हुए वे अपने आश्रम लौटे । भरत जब रामको वापस लौटानेके लिए चित्रकूट गये थे, उस समय देवताओंको अम्बरीष और दुर्वासाकी कथाका स्मरण कर अत्यन्त निराशा हो रही थी—'सुधिकर अम्बरीष दुरवासा । भे सुर सुरपति निपट निरासा ॥' (मा० अ०) । यह कथा अत्यन्त प्रसिद्ध है । सूरदासने भी इसका उल्लेख 'दुरवासाको साप निवार्यो अम्बरीष पत राखी' ईश्वरकी भक्तवत्सलताके सन्दर्भमें किया है (सू० ५४९) । कबीरके बीजकमें भी इनका उल्लेख हुआ है (बीजक २५७।९२) । —ज० प्र० श्री०

अंबा–काशीराज इन्द्रद्युम्नकी तीन कन्याओंमें ज्येष्ठ कन्या अम्बा थी । भीष्मने अपने दो सौतेले छोटे भाइयों—विचित्रवीर्य और चित्रांगदके विवाहके लिए काशिराजकी पुत्रियोंका अपहरण किया था । भीष्मके पराक्रमके कारण वे उनपर मुग्ध थीं और उनसे विवाह करना चाहती थीं । किन्तु भीष्म आजीवन ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञा कर चुके थे, अतः यह विवाह सम्पन्न न हो सका । इस अपहरणकी घटनाके पूर्व इनका विवाह शाल्वके साथ होना निश्चित हो चुका था । परन्तु इस घटनाके कारण उन्होंने भी अम्बासे विवाह करना अस्वीकार कर दिया । प्रतिशोधकी भावनासे प्रेरित होकर अम्बाने कठिन तपस्याकी और शिवका वरदान प्राप्त कर आगामी जन्ममें शिखण्डीके रूपमें अवतीर्ण होकर अर्जुनके द्वारा भीष्मको जर्जर कराकर बदला लिया । भीष्म इस वास्तविकतासे अवगत थे । —ज० प्र० श्री०

अंबालिका–काशिराज इन्द्रद्युम्नकी कनिष्ठा कन्या अम्बालिका थीं । सत्यवतीके पुत्र विचित्रवीर्य इनके पति थे और पांडु इनके पुत्र । पांडुकी उत्पत्ति व्यासके द्वारा मानी जाती है । —ज० प्र० श्री०

अंबिका—१. सहिताओंमें अम्बिकाको रुद्रकी भगिनीके रूपमें सम्बोधित किया गया है तथा रुद्रके साथ बलिदानका अंश ग्रहण करनेके लिए आह्वान किया गया है । मैत्रायिणी संहितामें इन्हें रुद्रकी योनि (माता ? पत्नी ?) भी बताया गया है । इन्हें हेमन्तके प्रतीकके रूपमें वर्णित किया गया है । कालान्तरमें इन्हे क्रमशः दुर्गा और उमा मानकर पूजा गया—"गए सरस्वती तट इक दिन सिव-अम्बिका पूजन हेत" (सूर० पद २२९१) । दे० 'उमा', 'दुर्गा' ।

२. काशिराज इन्द्रद्युम्नकी मँझली कन्याका नाम भी अम्बिका था । भीष्मने उन्हें अपहरण कर विचित्रवीर्यसे

उनका विवाह करा दिया था। विचित्रवीर्यकी मृत्युके पश्चात् व्यासने उनसे नियोग किया जिनसे धृतराष्ट्रका जन्म हुआ। —ज० प्र० श्री०

अंबिकादत्त व्यास–भारतेन्दु हरिश्चन्द्रके समसामयिक हिन्दी सेवियोंमें (पण्डित) अम्बिकादत्त व्यास प्रसिद्ध हैं। ये भारतेन्दु मण्डलके सुप्रतिष्ठित कवि एवं लेखक रहे हैं। उन्नीसवीं शताब्दी ई० के उत्तरार्धके काशीके साहित्यकारोंमें इनका उल्लेख विशेष रूपसे किया जाता है। इनका जन्म सन् १८८४ ई० और मृत्यु सन् १९०० ई० में हुई।

अम्बिकादत्त व्यास कवित्त-सवैयाकी प्रचलित शैलीमें काव्य रचना करनेवाले ब्रजभाषाके सफल कवि थे। तत्कालीन काशी-कवि-समाजके सक्रिय सदस्यके रूपमें इन्होंने जो समस्या पूर्त्तियाँकी हैं वे बडी सरस बन पडी हैं। इनके कवि-रूपकी सबसे बडी देन इनका 'बिहारी-बिहार' नामक ग्रन्थ है। इसमें बिहारी-सतसईके दोहोंके आधारपर रचित इनकी कुण्डलियाँ संकलित हैं। बिहारीके दोहोंके मूल भावको पल्लवित करनेमें इन्हें बडी सफलता मिली है। अम्बिकादत्त व्यास अपने समयके नयी धाराके नवयुवक कवियोंसे भी प्रभावित हुए थे। इन्होंने खडी बोलीमें नये-नये विषयोंपर बहुत-सी फुटकर रचनाएँ की हैं। बँगला काव्यकी नयी धारासे प्रभावित होकर इन्होंने कुछ अतुकान्त काव्य-रचनाकी चेष्टा भी की थी, परन्तु इस कार्यमें इन्हें सफलता नहीं मिल पायी। इनकी पुरानी-नयी परिपाटीकी फुटकर रचनाएँ इनके समसामयिक पत्रों (पीयूष प्रवाह, समस्या-पूर्ति-प्रकाश)में प्रकाशित मिलती हैं। किसी स्वतन्त्र सकलनके विषयमें कुछ पता नहीं चलता। रामचन्द्र शुक्ल (आचार्य)ने इनकी एक 'पावस-पचासा' नामक पुस्तकका उल्लेख मात्र किया है।

अम्बिकादत्त व्यासने भारतेन्दुसे प्रभावित होकर कुछ नाटक लिखे थे। इनकी दो नाट्य-कृतियाँ उल्लेख्य रही हैं। पहली कृति 'ललिता' (नाटिका) ब्रजभाषामें है। यह भारतेन्दु कृत 'चन्द्रावली'की शैलीमें लिखी गयी है। इसकी विषय-भूमि कृष्ण-लीलामें सम्बद्ध है। दूसरी कृति 'गोसंकट' गोरक्षा आन्दोलन विषयक एकांकी नाटक है। इसकी कथावस्तुको ऐतिहासिक परिवेश दिया गया है और मुगलकालमें अकबर द्वारा गो-बध बन्द किये जानेकी बात कही गयी है। नाट्य-शिल्पकी दृष्टिसे इनकी ये कृतियाँ बहुत सफल नहीं हो पायी हैं। इनमें आधुनिकताका अभाव है।

अम्बिकादत्त व्यास अपने समयके प्रख्यात पण्डित और कुशल वक्ता रहे हैं। हिन्दी और संस्कृतपर इन्हें समान रूपसे अधिकार था। ये कट्टर सनातनधर्मी थे और अपने व्याख्यानों द्वारा सनातनधर्मका प्रचार किया करते थे। इन्होंने कुछ धार्मिक पुस्तकें भी लिखी हैं जिनमें 'अवतार-मीमांसा' प्रसिद्ध है। इन्होंने गद्य और पद्यपर भी सम्यक रूपसे विचार-विवेचन किया है। इनकी भाषा-शैली सदोष है। जगह-जगहपर पण्डिताऊ प्रयोग प्राप्त होते हैं। विरामादिक चिह्नोंके व्यवहारमें बडी अव्यवस्था मिलती है। विभक्तियोंके प्रयोग भी प्रायः अशुद्ध हैं। इनके गद्य-ग्रन्थोंमें 'गद्यकाव्य-मीमांसा' उल्लेखनीय है।

अम्बिकादत्त व्यासने सन् १८८४ ई० में काशीसे एक पत्र निकाला था। पहले यह 'वैष्णव-पत्रिका'के नामसे सनातन धर्मकी सेवामें संलग्न हुआ, बादमें 'पीयूष प्रवाह' नामसे साहित्य-सेवाके क्षेत्रमें अग्रसर हुआ। —र० भ०

अंबिकाप्रसाद वाजपेयी–जन्म कानपुरमें सन् १८८० के दिसम्बर मासमें हुआ। शिक्षा कानपुरमें हुई। आपने संस्कृत, उर्दू, अंग्रेजी एवं फारसी भाषाओंका अध्ययन किया। आप कलकत्तामें भी कुछ दिन रहे। सन् १९०० ई० में आपने इंट्रेंसकी परीक्षा पासकी।

प्रारम्भमें आपने तीन वर्ष बैंककी नौकरीकी। इसके बाद आपका वास्तविक जीवन प्रारम्भ हुआ। कलकत्तासे प्रकाशित 'हिन्दी बगवासी' तथा 'भारतमित्र' (१९११-१९) के आप संपादक रहे। इसके अतिरिक्त आपने १९२० से लेकर १९३० तक दस वर्ष तक 'स्वतन्त्र' (जो कलकत्तासे निकलता था) का संपादन किया।

सन् १९०४ से १९१९ तक आप व्याकरणपर विचार करते रहे। परिणाम-स्वरूप 'हिन्दी कौमुदी' नामक पुस्तक लिखी। आपका एक निबन्ध 'हिन्दीपर फारसीका प्रभाव' बहुत ही महत्त्वपूर्ण रहा है।

आपकी सेवाओं और विद्वत्ता तथा सम्पादन-कलासे प्रभावित होकर हिन्दी साहित्य सम्मेलनने काशीमें अपने बीसवें अखिल भारतीय अधिवेशनमें आपको अपना सभापति बनाकर आपको सम्मान दिया। उत्तर-प्रदेशीय विधान परिषद्में आपको मनोनीत सदस्य बनाया गया। —ह० दे० बा०

अंबिकाबन–इलावृत्त खण्डका एक स्थान विशेष, जहां जाने मात्रसे पुरुष स्त्री हो जाता था—"एक दिवस सो अखेटक गयो। जाइ अम्बिकाबन तिय भयो" (सूर० पद ४४६)। इस स्थानको अम्बाबन भी कहा गया है—'पुनि सुद्युम्न वसिष्ठ सो कह्यो। अम्बाबनमें तिय ह्वै गयो' (सूर० पद ४४६)। —ज० प्र० श्री०

अंशुमान्–सूर्यवंशमें उत्पन्न अशुमान असमंजसके पुत्र तथा सगरके पौत्र थे। ये अपने योग्य पिताके योग्य पुत्र थे। एक बार जब राजा सगरने अश्वमेध यज्ञ किया तो उनका अश्व इन्द्रने चुरा लिया। अश्वकी खोजमें जाने वाले राजा सगरके साठ सहस्र पुत्र कपिल मुनिके शापसे भस्म हो गये। अंततोगत्वा अंशुमानने पाताल लोकमें जाकर अश्वका पता लगाया तथा अपनी बुद्धि और व्यवहार-कुशलतासे कपिलको प्रसन्नकर अश्वको प्राप्त किया। इस प्रकार इन्होंने अपने पितामहके यज्ञको सफलतापूर्वक सम्पन्न कराया। इनके प्रार्थना करनेपर कपिलने इन्हें यह वरदान भी दिया कि उनके पौत्र भगीरथ द्वारा मर्त्यलोकमें गंगावतरण होनेपर सगरके मृत पुत्रोंको सद्गति मिलेगी। (दे० सू० सा० प० ४५३ तथा गंगावतरण : जगन्नाथदास रत्नाकर।) —ज० प्र० श्री०

अकंपन–रावणका एक अनुचर, एक प्रधान सेनानायक और रिश्तेमें उसका मामा था। सुमाली इसके पिता थे तथा केतुमाली इसकी माता। इसके अन्य दो भाई प्रहस्त और धूम्राक्ष थे। खर-दूषणकी मृत्युका समाचार सर्वप्रथम रावणको इसीने सुनाया था। रावण-पक्षका यह एक

पराक्रमी योद्धा था—"अनिप अकंपन अस अतिकाया। विचलित सेन कीन्हि इन माया॥" (मा० लं०) इसकी मृत्यु हनुमान्‌के हाथोंसे हुई थी—"वारिदनाथ अकंपन कुंभकरन-से कुंजर केहरि-बारो" (बा० १९)। —ज० प्र० श्री०

अकबर–प्रसिद्ध मुगल सम्राट् बाबरके पौत्र तथा हुमायूँके पुत्र जलालुद्दीन मुहम्मद अकबरका जन्म सन् १५४२ ई० में अमरकोटमें हुआ था। इनकी माता हमीदा बानू बेगम थीं। सन् १५५६ ई० में हुमायूँकी मृत्युके बाद पानीपतके मैदानमें हेमूके साथ इनका युद्ध हुआ जिसमें सेनापति बैरमखाँकी योग्यताके कारण इनकी विजय हुई। तबसे जीवन पर्यन्त इनका प्रभाव बढता ही गया और कालान्तरमे इन्होंने लगभग सारे भारतवर्षपर अधिकार कर लिया। ये पढ़े-लिखे न होनेपर भी अत्यन्त बुद्धिमान्, दूरदर्शी तथा सफल राजनीतिज्ञ थे। इनकी रानियोंमे जोधाबाईका नाम अत्यधिक प्रसिद्ध है। सलीम (जहाँगीर) इन्हीके पुत्र थे। मुराद और दानियाल इनके दो अन्यभाई थे जो अत्यधिक मद्यपानके कारण मर गये थे। अकबरकी मृत्यु सन् १६०५ई० में संग्रहणीसे हो गयी थी। अकबरको प्रायः 'मुगल सम्राट्' कहा गया है किन्तु वास्तवमें उनका वंश तैमूरका तुर्क वंश था। इनके पितामह बाबर स्वयं तैमूरके वंशज एक तुर्क थे (दे० 'हल्दीघाटी' : श्यामनारायण पाण्डेय)।

अकबरका काल हिन्दी साहित्यका महत्त्वपूर्ण युग माना जा सकता है। एक ओर इस कालमें सूर तथा तुलसी जैसे महत्त्वपूर्ण कवि विद्यमान थे, तो दूसरी ओर अकबरके दरबारमें नरहरि, गंग जैसे कवियों तथा तानसेन जैसे संगीतज्ञोंको प्रश्रय मिला था। अकबरने स्वय ब्रजभाषामे रचनाकी है, इसका भी साक्ष्य मिलता है। 'दिग्विजय भूषण'मे इनके तीन शृंगार सम्बन्धी छन्द मिलते हैं। ग्रियर्सनने यद्यपि 'अकबर राय' छापसे लिखे गये छन्दोंको तानसेन रचित माना है, पर मायाशंकर याज्ञिकने अकबरकी स्फुट रचनाओंका संकलन 'अकबर संग्रह' नाम से प्रकाशित कर इस धारणाको निर्मूल सिद्ध किया है। 'शिवसिंह सरोज'में अकबरके संकलित छन्द वस्तुतः 'दिग्विजय भूषण'से ही लिये गये हैं।

अकबर द्वारा रचित छन्दोंके आधारपर कहा जा सकता है कि कविका ब्रजभाषापर पूरा अधिकार है और उसकी कल्पना तथा उक्ति-वैचित्र्य रीतिकालीन उच्च कवियोंकी कोटिका है।

[सहायक ग्रन्थ—दि० भू० : भूमिका, शि० स०; अकबर संग्रह : स० मायाशंकर याज्ञिक।] —ज० प्र० श्री०

अकूती–स्वायंभुव मनु (पिता) तथा सतरूपा (माता) से उत्पन्न अकूती उनकी दूसरी लडकी थीं। इनके पति महर्षि रुचि थे। उत्तानपाद और प्रियव्रत इनके दो भाई थे। इनकी सन्तान यज्ञ और दक्षिणा मानी जाती हैं। ये पतिव्रता और हरिभक्तके रूपमे प्रसिद्ध है (दे० सूर० पद ३९३-३९४)। —ज० प्र० श्री०

अक्रूर–कृष्णकाव्यमें अक्रूर कंसके दूत, पुण्यात्मा, ब्रजवासी तथा मथुरावासी कृष्णकी कथाके संयोजक और कृष्ण भक्तके रूपमें चित्रित हुए हैं। अक्रूरके चरित्र और उससे सम्बन्धित कथाओंका मूलाधार भागवत (दशमस्कन्ध ३८। ३९।४०।५६।५७) में प्राप्त है। भागवतके अक्रूर कृष्णके शुभचिन्तक, संरक्षक, अभिभावक और अन्ततः भक्त हैं। लोक प्रसिद्धिके अनुसार वे यादववंशी तथा वसुदेवके भाई कहे जाते हैं। इनकी माताका नाम गांदिनी तथा पिताका नाम श्वफल्क था, अतएव इनके लिए 'सुफलक सुत' शब्दका भी प्रयोग हुआ है। अक्रूरकी पत्नीका नाम उग्रसेना था। कहा जाता है कि अनादृत होनेपर ये कृष्णकी राजसभामें रहने लगे थे। कंसके आदेशपर ये धनुषयज्ञके बहाने बलराम और कृष्णको मथुरा लानेके लिए गोकुल जाते हैं। मूलतः कृष्ण भक्त होनेके कारण ब्रजगमनपर कृष्णके रूप तथा अलौकिक व्यक्तित्वके चिंतन द्वारा अक्रूरकी भक्ति-भावना अभिव्यंजित होती है। कदाचित् अक्रूरके भक्ति-प्रवण व्यक्तित्वके ही कारण कृष्ण उनका आतिथ्य स्वीकार करते हैं। कृष्णके मथुरा एवं द्वारिका प्रवासमें अक्रूर उनके अनुगामी भक्त ही रहते है। धन्वासे प्राप्त स्यमंतक मणिके संरक्षणके कारण अक्रूरका विशेष महत्व बढ जाता है क्योंकि इस मणिके संरक्षकको विपुल धनराशिकी प्राप्तिकी प्रसिद्धि थी तथा इसके द्वारा अनावृष्टि आदिका नियंत्रण भी संभव था। एक बार किसी कारणवश अक्रूरके द्वारिका छोड़कर अन्यत्र चले जानेके कारण द्वारिकामें अनावृष्टि, दुर्भिक्ष, अकाल आदिका प्राबल्य हो उठा। कृष्णके निर्देशपर द्वारिकावासी अक्रूरको द्वारिका वापस लाये जिससे समस्त उपद्रव शान्त हो गये। यद्यपि ये मणिको छिपाकर रखते थे, परन्तु कृष्णके कहनेपर अक्रूरने उन्हे मणि दिखा दी।

सूरदासने भागवतमें प्राप्त कथाके परिवर्धित एवं विस्तृत रूपके माध्यमसे अक्रूरका चरित्र प्रस्तुत किया है (दे० सू० सा०, दशम स्कंध प० ३६२९-३६५१, ३६४५, ४८०९)। भागवतके अनुसार मथुरा जाते समय मार्गमें अक्रूर यमुना स्नान करते है तो इन्हें जलमें कृष्णके दर्शन होते है, किन्तु फिरकर देखनेपर कृष्ण रथमे उसी प्रकार बैठे हुए दिखाई देते हैं। इस घटनासे अक्रूर कुछ उद्विग्न हो जाते है। भागवतमे कृष्णके इस प्रकारके दर्शनका कोई कारण निर्दिष्ट नही हुआ है, किन्तु सूरने अक्रूरकी भक्ति-निष्ठताकी व्यंजना करते हुए अन्तर्द्वन्द्वमें फँसे भक्तके सन्देह निवारणार्थ आराध्य कृष्णका दर्शन कराया है। इसी प्रकार अक्रूरके श्यामवर्ण एवं रूपकी विशिष्ट कल्पना सूरकी मौलिक उद्भावना है जिसके कारण भ्रमरगीतके प्रसंगमें वे अकारण ही गोपियोंकी उपेक्षाके भागी बनते हैं।

वैष्णवदास, रसखानि, आनन्ददास, जयराम, सबलस्याम हितदास, कृष्णदास आदि द्वारा किये गये भागवत दशम-स्कन्धके भाषानुवादोंमें अक्रूरका चरित्र भागवतके ही आधारपर चित्रित हुआ है। सूरदासके समान किसी भी कविने उनके व्यक्तित्वमें भक्तिका रग उभारनेका यत्न नही किया।

रीतियुगमे अक्रूरका चरित्र कृष्णकथाकी संकुचित परिधि एवं सीमित दृष्टिकोणोंके कारण उपेक्षित-सा रहा। भ्रमरगीत एव गोपियोंकी विरहानुभूतिके सन्दर्भमें प्रसंगवश उनके उपेक्षाभागीके रूपमें स्फुट कवित्तोंके अन्तर्गत अक्रूरका नामोल्लेख मात्र हुआ है।

आधुनिक कृष्ण काव्योंमें केवल द्वारिकाप्रसाद मिश्र कृत

'कृष्णायन' (अवतरण, मथुरा द्वारिका काण्ड) के अतिरिक्त अयोध्यासिंह उपाध्यायके 'प्रिय प्रवास' (सर्ग २।३) तथा मैथिलीशरण गुप्त कृत 'द्वापर' (पृ० १२२-१३१) आदि काव्य-ग्रन्थोंमें कृष्णकथाके संकोचन एवं दृष्टिकोणगत परिवर्तनके कारण अक्रूरका चरित्र पूर्णताके साथ वर्णित न हो सका। अधिकतर वे ब्रजवासी तथा द्वारिकावासी कृष्णकी कथाके संयोजकके ही रूपमें वर्णित हुए हैं। वे बलराम और कृष्णको ब्रजसे मथुरा लानेके अपने क्रूर कर्मके लिए पश्चात्ताप करते हैं। इनके अतिरिक्त आधुनिक युगका बुद्धिवाद उनके भक्तिप्रवण व्यक्तित्वको प्रभावित करता हुआ दिखाई पड़ता है। कृष्णायन, प्रिय प्रवास, द्वापरमें अन्य पात्रोंके समान वे भी अपने परम्परागत रूपकी अपेक्षा प्रबुद्ध दिखाये गये हैं। —रा० कु०

अक्ष या अक्षयकुमार–यह रावण तथा मन्दोदरीका कनिष्ठ पुत्र था। हनुमान् लंकामें स्थित अशोक वाटिकामें जिस समय रक्षकोंको भगाकर फल खा रहे थे, उस समय रावणने अपार सुभटोंको साथ देकर उसे हनुमान्को अंकुशमें लानेके लिए भेजा था—"पुनि पठयउ तेहिं अछयकुमारा। चला संग ले सुभट अपारा॥" (मानस सुन्दरकाण्ड, दो० १८)। हनुमान्के द्वारा इसकी मृत्यु हुई थी—"सुनि सुत बध लकेस रिमाना।" (मानस सुन्दरकाण्ड, दो० १९)। —ज० प्र० श्री०

अक्षयवट–१. प्रयागमें गंगा-यमुनाके संगमपर स्थित बरगदके वृक्षको पुराणोंमें अक्षयवट कहा गया है। वर्तमान समयमें इलाहाबादमें अकबर द्वारा निर्मित किलेके अन्दर एलनबरा बैरकके पूर्वमें एक पुराने मन्दिरके निकट स्थित वट वृक्षको पौराणिक अक्षयवटका अवशेष कहा जाता है। चीनी यात्री ह्वेनसांगने इसका उल्लेख अपनी यात्राके सन्दर्भमें किया है। इसके दक्षिणकी ओर सम्राट् अशोक और समुद्रगुप्तका लेख-स्तम्भ है। अकबरके समयमें हिन्दू लोग इसी वृक्षसे गंगामें कूदकर आत्म-बलि देते थे। इस वृक्षके चारों ओर पक्की चुनाई है और जहाँ यह स्थित है वहाँ अत्यधिक अन्धकार रहता है। सीढ़ियोंसे उतरकर इसके दर्शनके लिए जाना होता है। पुराणोंके अनुसार इस वृक्षकी पूजा करनेसे अक्षय फल प्राप्त होता है। पुराणोंमें वर्णन है कि प्रलय होनेपर जब सम्पूर्ण सृष्टि जलमग्न हो जाती है, तब यह वृक्ष बच जाता है और भगवान् विष्णु इसके एक पत्तेपर लेटे अपना अंगूठा चूसते दिखाई देते हैं। सूरदासने कृष्णकी बाललीलाके वर्णनमें इसका सन्दर्भ दिया है—"चरन गहे अँगुठा मुख मेलत... बढ्यो वृच्छ वट सुर अकुलाने, गगन भयो उत्पात॥" (सूर० पद ८२)।

२. गयामें भी इसी प्रकारका एक अक्षयवट है। लोमश ऋषिके उपदेशानुसार पाण्डवोंने वनवास कालमें इस वृक्षका दर्शन किया था। तुलसीदासने 'रामचरितमानस'में इसके महत्त्वकी ओर संकेत किया है—"पूजहिं माधव पद जल जाता। परसि अखय बटु हरषहिं गाता।"—ज० प्र० श्री०

अक्षर-अनन्य–अक्षर-अनन्य सेनुहरा (दन्तिया)के राजा पृथ्वीचन्दके दीवान कहे जाते हैं। स्वतः आत्मोल्लेखोंमें उन्होंने अपनेको आरम्भसे साधु प्रवृत्तिका कहा है। हिन्दी-साहित्यके इतिहास-लेखकों द्वारा इनका जन्म सं० १७१० वि० (सन् १६५३ ई०) निर्दिष्ट किया गया है। इनके द्वारा लिखे गये अनेक ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं—'ज्ञानयोग', 'विज्ञानयोग', 'ध्यानयोग', 'विवेक-दीपिका', 'ब्रह्मज्ञान', 'अनन्य प्रकाश' आदि। इनके ग्रन्थ अद्वैत-वेदान्तके गूढ़-रहस्योंको सरल-भाषामें उद्घाटित करते हैं। यद्यपि इनकी गणना सन्त कवियोंमें की जाती है, किन्तु सन्तोंकी सम्पूर्ण प्रवृत्तियाँ इनमें नहीं मिलतीं। इनके ग्रन्थोंमें वैष्णव-धर्मके साधारण देवताओंके प्रति आस्था तो मिलती ही है, साथ-साथ कर्मकाण्डके प्रति सजगताके अनेक निर्देश प्राप्त होते हैं। इन्होंने सम्पूर्णतः दोहे, चौपाई एवं पद्धरि छन्दोंका प्रयोग किया है (दे० 'उत्तरी भारतकी सन्त-परम्परा': परशुराम चतुर्वेदी)। —यो० प्र० सिं०

अगस्त्य–एक ऋषि थे जिन्होंने ऋग्वेदकी कई ऋचाओंकी रचना की थी। उर्वशीके सौन्दर्यको देखकर मित्र और वरुणके स्खलनसे इनकी और वशिष्ठकी उत्पत्ति हुई थी। (ऋग्वेद ७।३३।१३)। भाष्यकार सायणके अनुसार इनकी उत्पत्ति घड़ेसे हुई थी इसीलिए इन्हे कुम्भज, कलसी-सुत, कुम्भसम्भव और घटोद्भव आदि भी कहा जाता है। माता-पिताके सन्दर्भमें इन्हे मैत्रा, वारुणि और और्वशीय भी कहा जाता है। जन्मके समय अगस्त्य एक अँगूठेके बराबर लम्बे थे, इसीलिए इन्हें मान भी कहा गया है। मतान्तरसे ये वसिष्ठके बहुत बादके हैं और प्रजापतियोंमें नहीं गिने जाते हैं। कहा जाता है कि एक बार विन्ध्याचलको इस बातकी ईर्ष्या हुई कि सुमेरुकी प्रदक्षिणा सभी करते हैं, उसकी कोई नहीं। अतः वह रुष्ट होकर इतना बढ़ा कि सूर्यका मार्ग अवरुद्ध हो गया। देवताओंके प्रार्थना करनेपर अगस्त्य विन्ध्यके पास गये। शापके भयसे वह उनके चरणोंपर गिर पड़ा और सेवाके लिए प्रार्थना करने लगा। अगस्त्य उसे यह कहकर कि जबतक वे वापिस नहीं लौटें, वह वहीं रहे, उज्जैन चले गये और लौटे ही नहीं। झुकनेके ही कारण विन्ध्य अपनी ऊँचाई खो बैठा। इनके अगस्त्य नाम पड़नेका कारण पर्वतका झुकना ही है। इसी चमत्कारके कारण इन्हें विन्ध्यकूट भी कहा जाता है। देवासुर संग्राममें जब दानव सागरमें जाकर छिप गये और सागरने इन्हें भी क्षुब्ध कर दिया था तो ये सागरको ही पी गये। एक बार सागर इनकी पूजाकी सामग्री बहा ले गया। अगस्त्यने क्रोधित होकर समस्त जल पी डाला। तत्पश्चात् देवताओंकी प्रार्थनापर लघुशंका द्वारा उसे मुक्त कर दिया। समुद्रके जलके खारे होनेका यही कारण बताया जाता है। सागरका जल पीने ही के कारण ये 'पीताब्धि' या 'समुद्र चुलुक्य' कहलाये। तदनन्तर इनकी गणना सप्त ऋषियोंमें होने लगी। पुराणोंकी मान्यताके अनुसार इन्हें पुलस्त्य ऋषिका पुत्र कहा गया है। ये ब्रह्म पुराणके कथावाचकोंमें भी कहे गये हैं। इन्होंने ओषधियोंपर भी लिखा है। महाभारतमें अगस्त्यकी पत्नीके सम्बन्धमें एक कथा आयी है। वस्तुतः ये विवाह नहीं करना चाहते थे किन्तु इन्होंने देखा कि उनके पितृव्य पुरुष एक गर्तमें अधोमुख लटक रहे हैं। अगस्त्यने कारण पूछा तो उन्होंने उत्तर दिया कि उनकी सद्गति अगस्त्यके वंशोत्पन्नसे ही सम्भव है। इससे अगस्त्यने इच्छा शक्तिसे एक सुन्दरीको उत्पन्न किया और उसे पुत्र कामनासे तपस्या करनेवाले

विदर्भ राजाको समर्पित कर दिया। इसी लोपामुद्रा नामक स्त्रीसे अगस्त्यने अपना विवाह किया जिससे इनके इदमवाहु मतान्तरसे कवि दृढस्युका जन्म हुआ। ये कुंजर पर्वतपर एक कुटीमें रहते थे जो विन्ध्यके दक्षिणमें बड़े रमणीय प्रदेशमें थी। ये दक्षिणके साधुओंमें सबसे प्रसिद्ध थे। इनका राक्षसोंपर इतना अधिकार था कि वे इनकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देख सकते थे।

रामकथामें अगस्त्यका माहात्म्य और भी बढ़ गया है। सुतीक्ष्ण मुनिने रामको अगस्त्याश्रमका मार्ग दिखाया था (रामायण ११।३७)। 'रामचरितमानस'मे भी राम और अगस्त्यके मिलनकी चर्चा पंचवटी पहुँचनेके पूर्व ही मिलती है। वहाँ भी सुतीक्ष्ण मुनिने अगस्त्यको रामके आगमनकी सूचना दी थी—"नाथ कौशलाधीस कुमारा। आये मिलन जगत आधारा। सुनत अगस्त तुरत उठि धाये"...आदि। अगस्त्यके जीवन चरित विषयक अनेक कथाओंसे उनके तेजस्वी एवं अलौकिक व्यक्तित्वकी व्यंजना होती है। —रा० कु०

अग्नि—ऋग्वेदके अनुसार अग्निका जन्म परमपुरुषके मुखसे माना गया है। इनकी गणना इन्द्र, वायु और सूर्यके साथ वैदिक त्रिदेवोंमें भी होती थी। कालान्तरमे इन्हें दक्षिण-पूर्व दिशाका पालक भी कहा गया। पुराणोंके आधारपर इन्हें आंगिरसका पुत्र और एक सप्तर्षि शाण्डिल्यका प्रपौत्र भी बताया गया। महाभारतके समय अजीर्ण होनेपर ओषधि रूपमे खाण्डव वनको ग्रहण करनेपर ये रोगमुक्त हो सके। नीरोग होनेपर इन्होंने अपने सहायक कृष्णको कौमोदकी गदा तथा एक शक्ति और अर्जुनको गाण्डीव धनुष प्रदान किया। विष्णुपुराणके अनुसार ये ब्रह्माके अभिमानी ज्येष्ठ पुत्र थे। इनकी पत्नीका नाम स्वाहा था जिसमे पावक, पवमान और सुचि पुत्र हुए और इनसे उनचास प्रपौत्र उत्पन्न हुए। इनके स्वरूपके विषयमें इनके श्यामवस्त्रधारी तथा चतुर्हस्त होनेका उल्लेख मिलता है। इनके रथ-चक्रोंमें सप्त-पवनकी स्थिति मानी जाती है। रथाश्वोंका वर्ण रक्तिम है। अजको भी इनका वाहन कहा गया है। रावणने अन्य देवताओंके साथ इन्हे भी अपने वशमें कर रखा था—'अगिनि काल जम सब अधिकारी' (मा० १।१८१। १०)। —ज० प्र० श्री०

अग्निबाहु—ये राजा प्रियव्रतके दसपुत्रोमे एक थे। इन्हें अपने पूर्वजन्मकी स्मृति थी। पूर्वजन्मके संस्कारोके प्रभावके कारण इन्होंने राज्यलक्ष्मीको ठुकराकर अपना सारा जीवन ईश्वरकी भक्तिमे व्यतीत किया। इनमें अद्भुत साहस तथा शारीरिक शक्ति थी। —ज० प्र० श्री०

अग्निमित्र—'प्रसाद'के अपूर्ण उपन्यास 'इरावती'का पात्र। मगधके दण्डनायक पुष्यमित्रका पुत्र। बाल्यकालसे ही इरावतीसे प्रेम करता है। अपनी माँके दाह-संस्कारके बाद अकेली बैठी इरावतीको वह सान्त्वना देता है, उसकी सहायता करनेका प्रण करता है। कुछ दिनोंके वियोगके उपरान्त महाकालके मन्दिरमें वह पुनः इरावतीसे मिलता है, बृहस्पति मित्रसे उसकी रक्षा करनेके लिए प्रस्तुत हो जाता है। अग्निमित्रका व्यक्तित्व तीन रूपोंमें हमारे सामने आता है। एक इरावतीके सच्चे प्रेमीके रूपमें, दूसरे पराक्रमी योद्धाके रूपमें और तीसरे बौद्ध-धर्मके निर्वाणका विरोध करनेवाले प्रवृत्तिमार्गीके रूपमें। इरावतीके प्रेमीके रूपमें वह निश्चय ही एक आदर्श कहा जा सकता है। इरावतीका प्रेम ही उसे महाकालके मंदिरकी ओर खींच लाता है। उसकी रक्षाके लिए वह सदैव प्रस्तुत रहता है। विहारसे नदीमें कूदनेवाली इराको बचानेके अपराधमें बन्दी होना, युद्धमें जानेसे पूर्व इरासे मिलनेका प्रयत्न करना, उसके प्रेमके लिए कालिन्दीके प्रणयका तिरस्कार करना और अन्तमें सेठ धनदत्तके यहाँ अवगुण्ठनवती इराके प्रति कलिंग-युवक (खारवेल) का आकर्षण देखकर कृपाणपर हाथ रखना आदि सभी बातें इराके प्रति उसके गहन प्रेमकी परिचायक है। कालिन्दीके प्रेमको वह तनिक भी प्रोत्साहन नहीं देता, कहता है "मै प्रणयके स्वाध्यायमें असफल विद्यार्थी हूँ।" अग्निमित्र प्रेमीके रूपमें दुर्बलता प्रदर्शित करनेपर भी वीर है, पराक्रमी है। सम्राट् बृहस्पतिमित्र द्वारा अपनी वीरतापर वह आँच नही आने देता। उनसे कहता है "सम्राट् इसकी परीक्षा ले लें। मनुष्य या व्याघ्र चाहे जिससे द्वन्द्व कराकर मेरा पुरुषार्थ देख लिया जाय।" सेठ धनदत्तकी रक्षाके लिए प्रस्तुत हो जाना भी उसकी वीरताका द्योतक है। उसकी वीरता या पराक्रमके सम्बन्धमें एक बात अवश्य खटकनेवाली है कि वह प्रणयमें असफल या निराश होकर युद्धके प्रति उदासीनता प्रकट करता है। संगीत सुननेकी लालसा और युद्धके प्रति उपेक्षा, उसके पराक्रमको हल्का बना देती हैं। उसका पराक्रम देशहित न होकर व्यक्तिगत लाभ या द्वेषपर आधारित है। अग्निमित्र प्रवृत्तिमार्गी है—बुद्धके निर्वाणकी अपेक्षा मानव जीवनकी उपयोगिताके प्रति उसे अधिक मोह है। इसी कारण भिक्षुओंके विहारोंके विनाशकी कामना वह करता है। —शं० ना० च०

अग्रअलि—दे० 'अग्रदास'।

अग्रदास—स्वामी अग्रदास 'भक्तमाल'के प्रसिद्ध लेखक स्वामी नारायणदास या नाभादासके गुरु थे। प्रियादासने आमेरके राजा मानसिंहका इनकी सेवामें उपस्थित होना कहा है। मानसिंह अकबरके समकालीन एवं उसके प्रिय दरबारी थे। अतः अग्रदासका समय सन् १५५६ ई० तथा उसके कुछ आगे तक माना जा सकता है। नाभादासने इनकी प्रशंसामे एक छप्पय लिखा है, जिसका आशय यह है—"अग्रदास सदाचारनिरत एवं भगवत्सेवानुरागी थे, इन्होने एक पुष्पवाटिका लगायी थी और इससे ये बड़ा अनुराग रखते थे, अपने हाथों ही उसकी देख-रेख करते थे; ये नित्य रामनाम जपा करते थे। ये पयोहारी कृष्णदासके शिष्य तथा रामके अनन्य भक्त थे।" प्रियादासने इस छप्पयकी टीका करते हुए लिखा है कि जब मानसिंह इनसे मिलने गये, तो उन्होंने नाभादासको इन्हें अपने आनेकी सूचना देनेको भेजा; नाभादासने इन्हें एक वृक्षके नीचे ध्यानस्थ पाया और वे स्वयं भावविह्वल होकर वहाँ जड हो गये। विलम्ब देख मानसिंह स्वयं बागमें गये और गुरु शिष्य दोनोंकी यह स्थिति देखकर आश्चर्यचकित हो गये। 'रसिक प्रकाश भक्तमाल'मे जीवारामने इन्हे रसिकोंका संगम तथा रसिक भावकी भक्तिका प्रचारक कहा है।

उनके अनुसार इनकी रचनाओंमें बाल्मीकि जैसी मधुरता थी। रैवासा (राजस्थान)में इन्होंने जानकीवल्लभकी रहस्योपासनाकी थी, इनको लोग जनकललीकी अग्रसहचरी कहा करते थे। प्रियके मिलनेके हेतु ही इन्होंने एक पुष्पवाटिका लगायी थी। इन्हें चन्द्रकला सखीका अवतार भी कहा जाता है। इन्होंने यथेच्छ ध्यान-रसका पान किया था। भक्तमालके टीकाकार श्री वासुदेवदासके अनुसार ये शीलके आचार्य थे। ज्ञानको मिटाकर माधुर्य-भाव इन्हींका चलाया हुआ है, ये बारहों महीने रास किया करते थे; भक्ति, रसिकता, दम्पति-विलास और रामसागरकी ये नौका थे। इन्होंने कील्हकी आज्ञासे ही रैवासेको अपना केन्द्र बनाया था। यहीं इन्होंने 'लली लाल'का मन्दिर बनवाया और अनेक कुंजोंकी रचनाकी। अनेक पाकशालाएँ भी इन्होंने बनवायीं। रासके लिए अनेक नाटक-मंडलियोंकी इन्होंने स्थापनाकी।

अग्रदासके प्रमुख शिष्य थे—जंगी, प्रयागदास, विनोदी, पूरनदास, बनवारीदास, नरसिंहदास, भगवानदास, दिवाकर, किशोर, जगतदास, जगन्नाथदास, सल्कधो, खेमदास खीची, धर्मदास, लघुऊधो। नाभा तो इनके प्रिय शिष्य थे ही। अग्रदासकी गुरु परम्परा यों है: रामानन्द-अनन्तानन्द-कृष्णदास पयोहारी-अग्रदास। इनके प्रमुख ग्रन्थ हैं—'ध्यानमंजरी या राम ध्यानमंजरी', 'कुण्डलिया या हितोपदेश उपखाणाँ बावनी', 'श्रृंगार रस सागर', 'अष्टयाम' (संस्कृतमें)। इनमें ध्यानमंजरीका प्रकाशन सन् १९२२ में वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई तथा सन् १९४० में मणिरामजीकी छावनी अयोध्यासे हुआ। अग्रग्रन्थावली प्रथम खडमे कुण्डलियाका प्रकाशन महात्मा राजकिशोरी शरणने अयोध्यासे सन् १९३५ ई० में किया। 'अष्टयाम'का प्रकाशन रामकृष्णदास उत्थ्रसवीने अयोध्यासे १९३६ ई० में किया। 'श्रृंगार रस सागर' अप्रकाशित एवं अप्राप्य ग्रन्थ है।

'अष्टयाम'में रामकी अष्टयामीयोपासनाका विस्तृत वर्णन है, 'कुण्डलिया'में नीति और उपदेशसे सम्बन्धित छन्द हैं। 'ध्यानमंजरी'में रामके ध्यानका वर्णन है।

अग्रदासका विशेष महत्त्व रामभक्तिमे माधुर्य भावके प्रवर्त्तकके रूपमें है। नाभादास इन्हींके शिष्य थे, जिन्होंने मध्ययुगके भक्तोंकी प्रमुख विशेषताओंपर बडे प्रामाणिक ढंगसे लिखा है। साम्प्रदायिक दृष्टिसे अग्रदास द्वारा स्थापित गादी वैष्णवोंकी अनेक शाखाओंका मूल स्थान मानी जाती है। अकेले रैवासासे ११ गादियाँ स्थापित हुई।

[सहायक ग्रन्थ—नाभादास भक्तमाल युगलप्रिया रसिक प्रकाश भक्तमाल।] —ब० ना० श्री०

अघासुर—कहा जाता है कि अघासुर बकासुर तथा पूतना का छोटा भाई था। इस राक्षसको कंसने कृष्णकी हत्या करनेके लिए गोकुल भेजा था। गोकुल पहुंचकर इसने कृष्णको समवयस्क गोपोंके साथ वन भोजनका समायोजन करते देखा। उसने सोचा कि जैसे कृष्णने उसके भाई-बहिनका संहार किया है, उसी प्रकार वह भी उन्हें मारकर प्रतिशोध ले। अतः वह एक योजनका अजगर बनकर मार्गमें लेट गया। गोप बालक उसके सम्बन्धमें अनेक प्रकारकी कल्पनाएँ करते हुए कृष्णके साथ उसके मुखमें प्रविष्ट हो गये। कृष्णने उसके मुखमें सीधे खड़े होकर अपनी शक्तिका प्रसार किया। फलस्वरूप अघासुरकी श्वास अवरुद्ध हो गयी तथा उसका ब्रह्म रन्ध्र फट गया और वह मर गया। उसके शरीरकी ज्योति निकलकर कृष्णमें आकर विलीन हो गयी। कृष्ण द्वारा अघासुरके वधके अनेक उल्लेख मिलते है—सूरसागरमें अघासुर वधकी कथा पद १०४९से १०५३ तक दी गयी है। —ज० प्र० श्री०

अचलसुता—(दे० पार्वती) "अचलसुता मन अचल बयारि कि डोलइ?"(पार्वतीमंगल, तुलसी०, ६५)—ज० प्र० श्री०

अज—दिलीपके पुत्र थे। मन्तातरसे इन्हें रघुका पुत्र भी कहा जाता है। ये अयोध्याके सूर्यवंशी राजा दशरथके पिता और रामके पितामह थे। इनकी पत्नीका नाम इंदुमती था जो विदर्भराजकी पुत्री थीं। इंदुमतीको ये स्वयंवरसे लाये थे। रघुवंशके अनुसार स्वयंकी यात्राके समय एक पागल हाथीने इन्हें बहुत परेशान किया। क्रोधमें आकर इन्होंने उस हाथीका वध कर डालनेका आदेश दे दिया। हाथीके मरते समय उसके शरीरसे एक गन्धर्व निकला। उस गन्धर्वने स्वयंवरमें विजयी होनेके लिए एक दिव्यास्त्र प्रदान किया जिससे ये इंदुमतीको प्राप्त करनेमें सफल हुए। —ज० प्र० श्री०

अजातशत्रु १—अजातशत्रु प्रसादकृत 'अजातशत्रु' नाटकका नायक मगध-सम्राट् बिम्बसार (ई० पू० ५४३-४९१)का पुत्र है। अजातशत्रुसम्बन्धी चर्चाके मुख्य आधार महावश, जातकग्रन्थ, जैन-सूत्र, थेरीगाथा, धम्मपद, अठ्ठकथा, विनयपिटक, मज्झिम निकाय आदि प्रसिद्ध बौद्ध ग्रन्थ हैं। इसे दर्शक और कुणीकके नामसे भी पुकारा गया है। उत्तरीय भारतमे यह इतिहास कालका प्रथम सम्राट् हुआ। अजातशत्रु कथाप्रसंग—गौतमबुद्धके निर्वाण (ई० पू० ४८३)से ८-९ वर्ष पूर्व इसका राज्याभिषेक हुआ। इसकी माता चल्हना (छलना) वैशालीके राजवंशकी थी। पिताके जीवनकालमे वह चम्पा (भागलपुर)का शासक था। अजातशत्रु ही नाटकके सम्पूर्ण कार्य व्यापारोंका मूल उद्गमस्थल एवं फलका उपभोक्ता है। नाटकमें उसका पदार्पण हिंसक मनोवृत्तियोंसे युक्त उच्छृंखल अविनीत युवक के रूपमें होता है। "क्यों रे लुब्धक! आज तू मृगशावक नहीं लाया! मेरा चित्रक अब किससे खेलेगा?" निरीह मृगशावकोंकी हत्यामें उसे विनोदपूर्ण सुखकी उपलब्धि होती है। लुब्धक द्वारा मृगशावक न लानेपर वह कठोरताके साथ दण्ड-विधानका भी आयोजन करता है। कैशोर्यकालीन इन दुर्गुणोंका विकास उसके भावी-जीवनमे होता है। शील और नम्रताका अजातशत्रुमें एकान्त अभाव है जिसके फलस्वरूप अपनी बडी माँ वासवी और अतिथिके रूपमे आई बडी बहिन पद्मावतीका भी अनादर करनेमे नहीं हिचकता। यहाँ तक कि वह अपने पूज्य पिताके प्रतिभी दुर्विनीत आचरण करनेमें नहीं चूकता। गौतमके द्वारा यह पूछे जानेपर कि क्या तुम मंत्रि-परिषद्की सहायतासे राज्य कार्य चला लोगे, बिना किसी शील-प्रदर्शनके झट बोल पड़ता है—"क्यों नहीं, पिताजी यदि आज्ञा दें।"

अनुश्रुति तो यहाँ तक है कि संघकी प्रधानताके लिए बुद्धके प्रतिस्पर्धी और चचेरे भाई देवदत्तके उकसानेसे अजातशत्रुने अपने पिताको बन्दी कर लिया और कारागारमें उसे मार डाला (भगवतशरण उपाध्यायः प्राचीन भारतका इतिहास, पृष्ठ १०५)। शासक बन जानेपर तो उसकी निरंकुशता और स्वेच्छाचारिता और भी अधिक बढ जाती है। काशीकी प्रजा इसीलिए ऐसे अत्याचारी राजाको कर देनेसे इनकार करती है क्योंकि वह अधर्मके बलसे पिताके जीतेजी सिंहासन छीनकर बैठ गया है। काशीकी प्रजा द्वारा राजकर न देनेपर अजातशत्रुका रोष राजन्यशीलताका अतिक्रमणकर प्रज्वलित हो उठता है : "मैं यह क्या सुन रहा हूँ। प्रजा भी ऐसा कहनेका साहस कर सकती है।··· 'राजकर मैं न दूँगा'—यह बात जिस जिह्वासे निकली, बातके साथ ही वह भी क्यों न निकाल ली गयी।" अजातशत्रुका नवीन रक्त राज्यश्रीको सदैव तलवारके दर्पणमें देखनेका अभिलाषी है। उसकी क्रूरता और दुर्विनीतिताके मूलमें लिच्छवी रक्तकी उष्णता है जो उसे संस्कारोंके रूपमें अपनी माता छलनासे प्राप्त हुई है। छलनाका स्पष्ट आदेश है कि जो राजा होगा, उसे भिखमंगोंका पाठ नहीं पढ़ाया जायगा। राजाका न्याय हिंसामूलक दण्डपर आधारित है। अजातशत्रुमें स्वावलम्बन एवं वैयक्तिक विवेकका अभाव है इसीलिए छलना एवं देवदत्त उसे अपनी व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाओंकी पूर्तिका माध्यम बनाते हैं। नाटकके नायकके नाते उसकी यह परमुखापेक्षिता उसके व्यक्तित्वका एक महान् दोष है।

इन संस्कारोचित एवं सहवासजनित दुर्बलताओंके होते हुए भी वह एक साहसी, कार्यकुशल एवं व्यवहारपटु शासक है। महामान्य परिषद्के सभ्यगणोंके साथ उसकी युक्तिपूर्ण बातचीत उसकी व्यवहारपटुताकी प्रतीक है। वह अपने प्रचण्ड पराक्रमसे प्रसेनजित्को पराजित करता है। आत्मसम्मानकी भावनासे परिचालित होकर वह बन्दी दशामें भी दधिकारायणके मुँह न लगकर सतेज स्वरोंमें कहता है : "मैं तुमको उत्तर नहीं देना चाहता। तुम्हारे महाराजसे मेरी प्रतिद्वन्द्विता है—उनके सेवकोंसे नहीं।" मल्लिकाके माधुर्यपूर्ण महामहिम व्यक्तित्वसे प्रभावित होकर अजातशत्रुमें सात्त्विक गुणोंका प्रादुर्भाव होता है। वह नतमस्तक होकर कहता है : "देवी आप कौन है? हृदय नम्र होकर अपने आप प्रणाम करनेको झुक रहा है।" मल्लिकाके प्रभावसे उसे प्रथमबार युद्धकी भयानकताकी प्रतीति होती है। यद्यपि उसकी यह भावुक करुणाशीलता देवदत्त, विरुद्धक और छलनाकी कूटचातुरी द्वारा उसे पुनः युद्धमें संलग्न कर देती है किन्तु स्थायी विवेकके जागनेपर वह अपने कलंकित अतीतपर पश्चात्ताप करता है और स्वीकार करता है कि "मुझे अच्छी शिक्षा नहीं मिली थी। मिला था केवल जंगलीपनकी स्वतन्त्रताका अभिमान।" अजातके जीवनका मधुरपक्ष अतीव हृदयग्राही है। कोशलकुमारी बाजिराके सौन्दर्य-दर्शन एवं प्रेमके प्रभावसे उसकी सारी कठोरता लुप्त हो जाती है और वह स्वीकार करता है कि "तुम्हारे उदार प्रेमने मेरे विद्रोही हृदयको विजितकर लिया।" वन्दी-गृहमें वासवीकी वात्सल्यजनितवाणी सुनकर उसकी विनम्रता क्षमाशीलताके रूपमें फूट पड़ती है : "कौन विमाता? नहीं तुम मेरी माँ हो। माँ, इतनी ठण्डी गोद तो मेरी माँ की भी नहीं है। आज मैंने जननीकी शीतलताका अनुभव किया।" पिता बन जानेपर उसे स्वयं पुत्र-प्रेमकी अनुभूति होती है और वह बिम्बसारके समक्ष अपनी उस भूलको स्वीकारकर क्षमा याचना करता है। इस प्रकार अन्तमें अजातशत्रु पूर्ण मनुष्यत्वकी प्राप्तकर सबका स्नेह भाजन बनता है और नाटकके भौतिक फल राज्य द्वारा पुत्रादिकी प्राप्तिकर आध्यात्मिक फल आत्मपरिष्कार एवं पूर्ण मनुष्यत्वको प्राप्तकर आदर्श नायककी कसौटीपर खरा उतरता है। —के० प्र० चौ०

अजातशत्रु २–जयशंकर प्रसाद कृत नाटक 'अजातशत्रु'का प्रकाशन १९२२ ई० में हुआ था। इसके पूर्व राज्यश्री, विशाख आदि प्रसादके जो नाटक प्रकाशित हुए थे, उनमें लेखकने आगे चलकर कुछ परिवर्तन किये थे। 'अजातशत्रु'के प्रथम और द्वितीय संस्करणमें अन्तर है। द्वितीय संस्करणमें वे पद्यांश हटा दिये गये जिनका प्रयोग पात्र कथोपकथनके बीच करते थे। 'अजातशत्रु'का कथानक बौद्धकालसे सम्बन्ध रखता है। समस्त कथा मगध, कोशल तथा कौशांबीके तीन प्रसिद्ध स्थानोंपर घटित होती है और तीन अंकोंमें विभक्त है। सम्राट् बिम्बसार जीवनके प्रति विरक्त भाव रखते है। उनपर बौद्ध धर्मकी छाया है। वे परिवारके पारस्परिक विद्वेषके कारण क्षुब्ध हैं और भगवान् बुद्धके आदेशसे सम्पूर्ण राज्य अजातशत्रुको सौंपकर विरक्त हो जाते हैं। मगधमें होनेवाली इस घटना प्रभाव कोशलपर पड़ता है। कोशलके राजा प्रसेनजित् और युवराज विरुद्धकमें अजितके राज्याभिषेकको लेकर विरोध उत्पन्न हो जाता है और विरुद्धक अपनी माता शक्तिमतीके के साथ पिताके विरुद्ध हो जाता है। कौशांबीकी घटना इस दृष्टिसे मनोरंजक है कि मागंधीका षड्यन्त्र इतना भीषण होता है कि उदयन और पद्मावतीके सम्बन्ध कुछ समयके लिए बिगड़ जाते हैं। नाटकमें अजातशत्रु और विरुद्धक एक ओर तथा उदयन और प्रसेनजित् उनके विरोधमें दिखाई देते हैं। नाटककी परिसमाप्तिमें बौद्धधर्मका स्पष्ट प्रभाव है, क्योंकि सभी व्यक्ति पश्चात्ताप प्रकट करते है। शान्त रसकी स्थापनाके साथ यह नाटक समाप्त होता है।

'अजातशत्रु'के शिल्पमें समीक्षक पाश्चात्य नाटकोंका प्रभाव पाते है। नाटकका आरम्भ एक विरोधकी स्थितिसे होता है। इस विरोध और विषमताके विकासके साथ कथा आगे बढ़ती है। यह विरोध दो रूपोंमें प्रकट है। सम्राट् बिम्बसारके मनमें जो पश्चात्ताप और विक्षोभ है वह उनके आन्तरिक द्वन्द्वको प्रकाशमें लाता है। राजनैतिक स्तरपर जो संघर्ष है वह बाह्य जगतसे सम्बन्ध रखता है। दोनों प्रकारके विरोध और संघर्ष बौद्ध धर्मकी छायामें शमन पाते है। नाटकमें समस्त चरित्रांकन दो पक्षोंमें विभक्त है—दैवी और आसुरी वृत्तियोंके पात्र। लेखकने संघर्षके लिए इनका उपयोग किया है। अजातशत्रुके नामपर नाटकका नामकरण इसी आधारपर है क्योंकि वह समस्त संघर्षमें प्रमुख भूमिकाका कार्य करता है। नायकत्वके रूपमें अजातशत्रु

आदर्श नहीं कहा जा सकता किन्तु नाटकका कथाचक्र उसके आस-पास परिक्रमा करता है। भगवान् बुद्ध 'अजातशत्रु'में एक विशिष्ट व्यक्तित्वके रूपमें आये हैं जो शान्त रसको प्रतिष्ठा करते हैं। —प्रे० शं०

अजामिल–कान्यकुब्ज ब्राह्मण था। कहा जाता है कि वह एक दिन लकड़ी लेने जंगल गया। वहाँ एक निम्नवर्गकी वेश्याको मधुपानसे उन्मत्त होकर एक शूद्रके साथ प्रेमालाप करते देखा। यह उस वेश्याके प्रति अनुरक्त हो गया और अन्ततः उसे अपने घर ले आया। वेश्याकी इच्छापूर्त्तिमें इसने अपनी सारी पैतृक सम्पत्ति नष्ट कर दी। उस वेश्याके कारण इसने अपनी परिणीता पत्नीका भी परित्याग कर दिया। पतित होकर यह शराबी, जुआडी, चोर और हिंसक हो गया। उस वेश्यासे इसके दस पुत्र उत्पन्न हुए। सबसे छोटे पुत्रका नाम नारायण रखा गया। इस बालकसे यह अत्यधिक स्नेह करता था। वेश्याके साथ अट्ठासी वर्ष व्यतीत करनेके बाद जब इसका अन्तिम समय आया तो इसने देखा कि तीन भयावह यमदूत हाथमें पाश लिए हुये उसके प्राण लेने आ पहुँचे। त्रस्त होकर वह अपने प्रिय पुत्र नारायणको पुकारने लगा। नारायण नामका इतना प्रभाव हुआ कि विष्णुके दूत उसे आकर स्वर्ग ले गये—'जौ सुत हित लिए नाम अजामिल के अघ अमित न दहते' (विनय पत्रिका ९७) आदि। इस प्रकार पुत्रका नारायण नाम मात्र अजामिलको मोक्ष दिलानेमें समर्थ हुआ—"नाम अजामिल ते खलकोटि अपार नदी भव बूडत काढ़े" (कवितावली २-५)। सूरसागरमें अजामिलकी कथा विस्तारसे दी गयी है (दे० सूर० पद ४१५)। —ज० प्र० श्री०

अजितकुमार सिंह–भगवतीचरण वर्मा कृत उपन्यास 'तीन वर्ष'का दूसरा मुख्य पात्र। प्रथम भागका वही वास्तविक नायक है। "वह जीवनको पहचानता था और पहचाननेके साथ ही उसे अपनाना भी जानता था।" रमेशको वह उच्च वर्गमें ही नहीं लाया, उसके मध्यवर्गीय थोथे आदर्शवादके प्रति सचेत भी करता रहा, पर इन चेतावनियोंको रमेश कभी ग्रहण नहीं कर सका और फिर उसे गहरे गर्तमें गिरना पड़ा। अजितके लिए प्रेमका अर्थ 'एक दूसरेसे हँसना-खेलना, एक दूसरेको अच्छी-तरह समझना' भर है, उसे वह नितान्त अस्थायी मानता है एवं इसी कारण प्रेमको गम्भीरतापूर्वक नहीं लेता। पर उसे लम्पट नहीं कहा जा सकता। वह अपने विचारोंको अत्यधिक निर्भीकता और स्पष्टतया रखनेमें हिचकता नहीं। प्रारम्भमें ऐसा भी लगता है कि पढ़नेमें उसकी दिलचस्पी नहीं है, रईसका वह लड़का केवल मौज करता है, पर शीघ्र ही यह सिद्ध हो गया कि "वह उतना बेवकूफ नहीं है, जितना इम्तिहानोंके नतीजोंने साबित करनेकी कोशिशकी है।" चाहनेपर वह प्रथम श्रेणी भी पा गया। विदेश घूमा, घाट-घाटका पानी पिए हुए यह नौजवान रईस वाक्पटु ही नहीं विचारक भी है तथा वैयक्तिक स्वाधीनता, स्त्रीके समानाधिकार आदिके सिद्धान्तोंसे तनिक भी अभिभूत नहीं। वह विचित्र विरोधोंका शिकार है। —दे० शं० अ०

'अज्ञेय'–सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन, जन्म, मा[र्च] १९११। मुख्यतः कवि और उपन्यासकार, यद्यपि साहित्[य] के अन्य क्षेत्रोंको भी उनकी महत्त्वपूर्ण देन है जिनमें कह[ा]नियाँ, यात्रा-साहित्य और आलोचना विशेष उल्लेखनी[य] हैं। बचपन अधिकांश लखनऊ, कश्मीर, बिहार और मद्रा[स] में बीता; शिक्षा मद्रास और लाहौरमें हुई। बी० एस्-सी[०] करके अँग्रेजी विषयमें एम० ए०की पढ़ाई करते सम[य] क्रान्तिकारी आन्दोलनके सिलसिलेमें फ़रार हुए और १९३[०] के अन्तमें पकड़े गये; चार वर्ष जेलमें और दो वर्ष नजरबन्[द] रहे; किसान आन्दोलनमें भाग लिया; 'सैनिक', 'विशाल भारत', 'बिजली', 'प्रतीक', 'वाक्' (अंग्रेजी त्रैमासिक) आदिका सम्पादन किया। कुछ वर्ष ऑल इण्डिया रेडियोमें रहे, तीन वर्ष सेनामें (१९४३-४६)। सन् १९५५-५६ में योरप और सन् १९५७-५८ में पूर्वेशिया गये।

'अज्ञेय' मुख्यतः अन्तर्मुखी कलाकार हैं: उनके जीवन का उनके साहित्यसे विशेष सम्बन्ध है। क्रान्तिकारी जीवन तथा जेलका अनुभव उनके उपन्यास 'शेखर एक जीवनी तथा कहानी संग्रह 'कोठरीकी बात'की आधार-प्रेरणा है वस्तुतः अज्ञेयका व्यक्तित्व उनके रचनाओंकी मूल शक्ति है—और शायद सीमा भी। अक्सर ऐसा लगता है कि यह व्यक्तित्व भोक्ता उतना नहीं जितना चिन्तक है: पाठकको जितना एक सुशिक्षित एवं सुसंस्कृत मस्तिष्कका अनुभव होता है उतना एक जीवनका नहीं। अधिकांश कृतियोंमें यदि मानसिक प्रतिक्रियाओंका एक विचारशील वेग आकर्षित करता है तो अक्सर परिस्थितियों और चरित्रोंका उथलापन निराश भी करता है।

१९४८ में अज्ञेयका 'हरी घासपर क्षण भर' काव्य-संकलन प्रकाशित हुआ। प्रौढ़ता और उपलब्धिकी दृष्टिसे यह संग्रह न केवल 'चिन्ता' (१९४१) और 'इत्यलम्' (१९४६) से बहुत आगे है, बल्कि आगामी संग्रहों 'बावरा अहेरी' १९५४, 'इन्द्र धनु रौंदे हुए ये' १९५७, तथा 'अरी ओ करुणा प्रभामय' १९५९ को देखते हुए कविकी सबसे सिद्ध कृति मानी जा सकती है—सिद्ध इस अर्थमें कि आगे चलकर उनकी टेकनीक और शैली परिमार्जित अवश्य हुई पर जैसी अचानक नवीनताका प्रभाव 'हरी घासपर क्षण भर'का पड़ा वैसा अन्य किसी संग्रहका नहीं। इस संग्रहमें कविकी भाषा, प्रतीक, शब्द, बिम्ब, लय, विचार आदि सम्बन्धी कई धारणाओंकी व्यावहारिक पुष्टि हुई जिनका आजकी कविताके सन्दर्भमें क्रान्तिकारी महत्त्व है। यहाँसे कविकी 'चिन्ता' और 'इत्यलम्'वाली कुछ छायावादी ढंगकी रूमानी रहस्यात्मकता एक नया मोड़ लेती है: "प्रत्येक स्वप्नदर्शीके आगे। गति से अलग नहीं पथ की यति कोई! अपनेसे बाहर आनेको छोड़ा। नहीं आवास दूसरा।" ('हरी घासपर क्षण भर') लेकिन 'बाहर आने' का अर्थ कविके लिए भीड़में अपनी विशिष्टताको खो देना नहीं; बल्कि उससे जीवनको समृद्ध करना है। "यह दीप अकेला स्नेह भरा। है गर्व भरा मदमाता, पर इसको भी पंक्तिको दे दो।"—'बावरा अहेरी' में जहाँ कवि समष्टिके प्रति दायित्व अनुभव करता है वहीं व्यक्तिकी प्रतिष्ठामें विश्वास भी व्यक्त हुआ है। कविका व्यक्तित्व उसकी सीमा नहीं

सुन्दर द्वारा श्रेष्ठतक पहुँचनेका साधन है। अज्ञेयके अनुसार "उच्च-कोटिका नैतिक-बोध और उच्चकोटिका सौन्दर्य बोध, कमसे कम कृतिकारमें प्रायः साथ चलते हैं। क्यों? इसलिए कि दोनों बोध, मूलतः बुद्धिके व्यापार हैं, मानवका विवेक ही दोनोंके मूल्योंका स्रोत है···" ('समालोचना और नैतिक मान' शीर्षक लेखसे)। "व्यक्तित्व कविके लिए निरी स्व-रति नहीं, वह विकसित मानव है जो जीवनको प्रतिष्ठा दे सकनेके योग्य हो—अन्यायों और कुरीतियोंके विरुद्ध आवाज उठा सके। वह अपनेको औरोंसे अलग नहीं मानता, 'मैं सेतु हूँ'। किन्तु शून्यसे शून्यतकका सतरंगी सेतु नहीं। वह सेतु जो मानवसे मानवका हाथ मिलनेसे बनता है"। ('इन्द्र धनु रौंदे हुए' से), लेकिन इस भावनाका निर्वाह कहाँतक लेखककी कृतियोंसे सम्भव हो सका है इसपर शंकाएँ उठती रही हैं। व्यक्ति तथा समष्टिके बीच वैसा सामंजस्य नहीं मिलता जैसा कवि घोषित करता है। कविताओंमें बराबर एक सूक्ष्म या स्पष्ट संघर्ष परिलक्षित होता है मानों कविका अन्तर्मन उस विषमताके प्रति सचेत है जिसका व्यक्ति—विशेषकर यदि वह एक मौलिक एव क्रान्तिकारी कलाकार है—तथा समष्टिके बीच बना रहना लाजिम है। ऐसी दशामें कविका झुकाव किधर होगा, स्पष्ट है, "अच्छी कुण्ठा-रहित इकाई। साँचे ढले समाजसे, अच्छा। अपना ठाठ फकीरी। मंगनीके सुख साजसे।" (अरी ओ करुणा प्रभामय)। यह सन्देह कि व्यक्तिकी विशिष्टता कविके लिए जनसाधारणकी इच्छासे अधिक महत्त्व रखती है, उनकी दृष्टिमें अक्षम्य हो सकता है जो जनरुचिके विकाससे अधिक जनरुचिमें आस्था रखते हैं। व्यक्तिवादी या समष्टिवादी या कोई 'वादी' होनेसे अधिक आवश्यक है विवेकशील और संवेदनशील होना जिसके बिना एक कला-कृतिका सही मूल्यांकन नहीं हो सकता। अज्ञेयकी—बल्कि आजकी अधिकांश कवितासे बिलकुल ही अप्रभावित रह जाना असम्भव नहीं, यदि पाठक आधुनिक जीवनके क्रान्तिकारी परिवर्तनोंके अनुरूप ही कलामें भी परिवर्तनको स्वीकार करनेके लिए तैयार नहीं। साधारणीकरणपर विचार करते हुए अज्ञेयने नयी काव्य-चेतनापर प्रकाश डाला है, "राग वही रहनेपर भी रागात्मक सम्बन्धोंकी प्रणालियाँ बदल गयी है;···जैसे बाह्य वास्तविकता बदलती है—वैसे-वैसे इससे हमारे रागात्मक सम्बन्ध जोड़नेकी प्रणालियाँ भी बदलती है—और अगर नहीं बदलतीं तो उस बाह्य वास्तविकतासे हमारा सम्बन्ध टूट जाता है। जो उससे रागात्मक सम्बन्ध जोड़नेमे असमर्थ हैं वे उसे केवल बाह्य वास्तविकता मानते है जब कि हम उससे वैसा सम्बन्ध स्थापित करके उसे आन्तरिक सत्य बना लेते है।" (भूमिका : 'दूसरा सप्तक')।

अज्ञेयकी प्रयोगात्मकता एवं नवीनताको लेकर काफी आलोचना होती रही है। 'छायावाद' नामकी ही तरह यह भी एक आलोचनात्मक धाँधली है कि अज्ञेय एक प्रबुद्ध कलाकारसे अधिक तथाकथित 'प्रयोगवाद'के प्रवर्तक और पोषकके रूपमे जाने जायँ जबकि वे स्वयं हिन्दी आलोचकों द्वारा जबरदस्ती उन्हींके वक्तव्योंसे गढ़े गये इस नामको भ्रामक मानते हैं। 'दूसरा सप्तक' (१९५१) अज्ञेय द्वारा सम्पादित सात नये कवियोंका द्वितीय संकलन है। पहला संकलन 'तार सप्तक' तथा तीसरा संकलन 'तीसरा सप्तक' नामसे क्रमशः १९४३ और १९५९ में प्रकाशित हुए। 'दूसरा सप्तक'की भूमिकामें वे लिखते हैं, "प्रयोगका कोई वाद नहीं है। हम वादी नहीं रहे, नहीं हैं। न प्रयोग अपने आपमें इष्ट या साध्य है। ठीक इसी तरह कविताका भी कोई वाद नहीं है; कविता भी अपने आपमें इष्ट या साध्य नहीं है। अतः हमें प्रयोगवादी कहना इतना ही सार्थक या निरर्थक है जितना हमें कवितावादी कहना।"

उपन्यास-क्षेत्रमे भी अज्ञेयकी देन काव्य-क्षेत्रसे कम महत्त्व नहीं रखती। प्रेमचन्द कालके आदर्शवादी उपन्यासोंके बाद आत्मकथात्मक शैलीमे लिखित 'शेखर'का व्यक्ति-प्रधान खुला विद्रोह हिन्दी साहित्यमें एक नया दिशा-संकेत था (व्यक्तिके विद्रोह-शक्तिकी गाथा जिसमें अपनी परिस्थितियोंको बदलनेकी सामर्थ्य होती है) जिसने पाठकों को विशेष आकर्षित किया। (दे० 'शेखर—एक जीवनी') लेकिन जब हम 'शेखर'को उसके ऐतिहासिक संदर्भसे अलग एक स्वतंत्र उपन्यासके रूपमे विचारते हैं तो कुछ हदतक उसके आयामको उन्हीं कारणोंसे सीमित भी पाते है जिन्होंने परिस्थिति विशेषमे 'शेखर' को ख्याति दी। १९५२ में प्रकाशित लेखकका दूसरा उपन्यास 'नदीके द्वीप' यद्यपि ऐतिहासिक दृष्टिसे उतना सार्थक नहीं जितना 'शेखर' किन्तु इस सत्यको फिर पुष्ट करता है कि हिन्दी साहित्यको अज्ञेयकी शायद सबसे मान्य देन उनकी अत्यन्त समर्थ भाषा है। जैसा उपयुक्त शब्द-शिल्प और वाक्योंका कुशल-विन्यास उनके गद्य और पद्यमें मिलता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है : नये विचारोंके अनुरूप ही अज्ञेय हिन्दीको एक नयी भाषा दे सके हैं। अज्ञेयकी प्रतिभा मुख्यतः कविताके योग्य है जो साहित्यकारसे सबसे कम तटस्थताकी माँग करती है। उनकी 'व्यक्ति' और 'व्यक्तित्व'के पक्षमे पूर्वग्रहको लेकर जो आलोचनाएँ होती रही है वे शायद इस दृष्टिसे सर्वथा निराधार नहीं कि उसे पचा सकना अक्सर पाठकसे अधिक उनकी अपनी रचनाओंके लिए कठिन हो जाता है। 'शेखर'की आत्मकथात्मक शैलीमें लेखकके व्यक्तित्वके लिए फिर भी गुंजाइश थी; 'नदीके द्वीप'में हम उसे न केवल एक बाधा वरन् ऐसी पृष्ठभूमि बन जाते देखते है जो चरित्रों ही नहीं सारे उपन्यास के विकासको कुण्ठित कर देती है। फिर भी 'नदीके द्वीप' एक अत्यन्त सतर्क एवं भावसम्पन्न कलाकारकी कृति है जिसका प्रमाण उपन्यासकी समग्रतासे अधिक उन तमाम छोटे-छोटे प्रसंगो और उक्तियोंमें मिलता है जिनका कथानक और चरित्रोंके बावजूद भी मूल्य है। अनेक आलोचनाओंके बावजूद इस सत्यकी अवहेलना नहीं की जा सकती कि अज्ञेय उन साहित्य निर्माताओंमेंसे हैं, जिन्होंने आधुनिक हिन्दी साहित्यको एक नया मान दिया। वास्तविक अर्थमे समूचे साहित्यको आधुनिक बनानेका श्रेय उन्हें दिया जा सकता है। अपने आपमें एक समर्थ कलाकार होनेके साथ-साथ वे हिन्दी साहित्यके संदर्भमें एक ऐतिहासिक व्यक्तित्व भी हैं।

प्रकाशित रचनाएँ : कविता—भग्नदूत १९३३,

चिन्ता १९४२, इत्यलम् १९४६, हरी घासपर क्षण भर १९४९, बावरा अहेरी १९५४, इन्द्रधनु रौंदे हुए ये १९५७, प्रिज़न डेज़ एण्ड अदर पोएम्स (अंग्रेजीमें) १९४६। **कहानियाँ**–विपथगा १९३७, परम्परा १९४४, कोठरीकी बात १९४५, शरणार्थी १९४८, जयदोल १९५१। **उपन्यास**—शेखर-एक जीवनी, प्रथम भाग १९४१, द्वितीय भाग १९४४, नदीके द्वीप, १९५२। **भ्रमण वृतान्त**—अरे यायावर रहेगा याद ? १९५३। **आलोचना**—त्रिशंकु, आत्मनेपद १९६०। **संपादित ग्रंथ**—आधुनिक हिन्दी साहित्य (निबन्ध संग्रह) १९४२, तार सप्तक (कविता संग्रह) १९४३, दूसरा सप्तक (कविता संग्रह) १९५१, तीसरा सप्तक (कविता संग्रह) १९५९, पुष्करिणी (कविता संग्रह) सम्पूर्ण १९५९, नये एकांकी १९५२, रूपांबरा १९६०।

[सहायक ग्रन्थ—'आत्मनेपद' : अज्ञेय; 'हिन्दी नवलेखन : रामस्वरूप चतुर्वेदी।] —कु० ना०

अटवीदेवी–पार्वती या भवानीका नामान्तर है। कहा जाता है कि एक बार भव मनुष्योंको ब्रह्मचर्यकी शिक्षा देनेके लिए अरण्य गये। भवानीने भवको बन जाते देख लिया और प्रत्येक वृक्षमें खेलती हुई वनमें घूमने लगीं। भवानीके रूपालोकसे एक सुन्दर देवता उत्पन्न हुए। अनन्तर भवानी और सुन्दर देवता दोनों अटवीवनमें आकर खेलने लगे। इस वनमें भवानी अटवीदेवीके नामसे अभिहित हुईं। पुराणमें इस वनका भवाटवी नामसे उल्लेख किया गया है। विलफोर्डके अनुसार अटवीवन अफ्रीकाकी नील नदीके तटपर स्थित था। यूनानियोंकी अरण्यदेवी डायनाका मन्दिर पहले इसी जगह था जिन्हें यूनानी बाटोई (Butoi) कहते थे। —ज० प्र० श्री०

अतिकाय–रावण इसका पिता था और राक्षसी धन्यमालिनी इसकी माता थी। स्थूलकाय होनेके कारण इसका नाम अतिकाय रखा गया था। इसने तप करके ब्रह्मासे अनेक दिव्यास्त्र प्राप्त किये थे। ब्रह्माने इसे यह भी वरदान दिया था कि इसे न देवता मार सकेंगे और न असुर। इसने बाणोंकी वर्षा कर इन्द्रका वज्रास्त्र और वरुणका पाश हस्तगत कर लिया था। जब रावणकी आज्ञा लेकर यह रामसे युद्ध करने पहुँचा तो इसके विशाल शरीरको देख वानर भयभीत होकर भागने लगे। रामने भी साश्चर्य विभीषणसे इसका परिचय पूछा। इसने लक्ष्मणके साथ युद्धमें अपूर्व निपुणता दिखाई। यह लक्ष्मणके अर्द्धचंद्रबाण (ब्रह्मास्त्र) द्वारा मारा गया था। पृथ्वीपर गिरनेपर इसके मुण्डने रामनामका उच्चारण किया था—"मेघनाद अतिकायभट, परे महोदर खेत" (प्र० ५।७।१)। "अनिप अकंपन अरु अतिकाया।" (मा० ६।४६।५)। —ज० प्र० श्री०

अत्रि–१. ब्रह्माके पुत्र थे जो उनके नेत्रोंसे उत्पन्न हुए थे। ये सोमके पिता थे जो इनके नेत्रसे आविर्भूत हुए थे। इन्होंने कर्दमकी पुत्री अनसूयासे विवाह किया था। इन दोनोंके पुत्र दत्तात्रेय थे। इन्होंने अलर्क, प्रह्लाद आदिको अन्वीक्षकीकी शिक्षा दी थी। भीष्म जब शर-शैय्यापर पड़े थे, उस समय ये उनसे मिलने गये थे। परीक्षित जब प्रायोपवेशका अभ्यास कर रहे थे, तो ये उन्हें देखने गये थे। पुत्रोत्पत्तिके लिए इन्होंने ऋक्ष पर्वतपर पत्नीके साथ तप किया था। इन्होंने त्रिमूर्तियोंकी प्रार्थना की थी जिनसे त्रिदेवोंके अंश रूपमें दत्त (विष्णु), दुर्वासा (शिव) और सोम (ब्रह्मा) उत्पन्न हुए थे। इन्होंने दो बार पृथुको घोड़े चुराकर भागते हुए इन्द्रको दिखाया था तथा हत्या करनेको कहा था। ये वैवस्वत युगके मुनि थे। मन्त्रकारके रूपमें इन्होंने उत्तानपाद को अपने पुत्रके रूपमें ग्रहण किया था। इनके ब्रह्मवादिनी नामकी एक कन्या थी। परशुराम जब ध्यानावस्थित रूपमें थे उस समय ये उनके पास गये थे। इन्होंने श्राद्ध द्वारा पितरोंकी आराधना की थी और सोमको राजयक्ष्मा रोगसे मुक्त किया था। ब्रह्माके द्वारा सृष्टिकी रचनाके लिए नियुक्त किये जानेपर इन्होंने 'अनुत्तम' तप किया था जब कि शिव इनसे मिले थे। सोमके राजसूय यज्ञमें इन्होंने होताका कार्य किया था। त्रिपुरके विनाशके लिए इन्होंने शिवकी आराधना की थी। वनवासके समय राम अत्रिके आश्रम भी गये थे–"अत्रिके आश्रम जब प्रभु गयऊ" आदि (मा० अ० २१४)।

२. वारुणि यज्ञमें अग्निकी लपटोंसे उत्पन्न हुए थे। इनके दस सुन्दर और पवित्र पत्नियाँ थीं। जो कि भद्राश्व और घृताची की कन्याएँ थीं। इनके दसों पुत्र अत्रेय और स्वस्त्यात्रेय नामसे प्रसिद्ध थे। —ज० प्र० श्री०

अथर्वण–१. इन्होंने कर्दमकी पुत्री शान्तिसे विवाह किया था। इन्होंने ही संसारमें यज्ञका प्रचार किया था। इनके पुत्र दध्यंच थे जिनका सिर घोड़ेका-सा था।

२. एक ब्राह्मण पुजारी थे जिन्हे युधिष्ठिरने अपने राजसूय यज्ञमे पौरोहित्यके लिए आमंत्रित किया था। —ज० प्र० श्री०

अदिति–दक्ष प्रजापतिकी कन्या और देवताओंकी माता थी। इन्हींसे द्वादश आदित्योका भी जन्म हुआ था। ये कश्यपकी पत्नी थी जिनसे विष्णुका वामन अवतार हुआ था। कश्यप अदिति की महान् तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान्ने उनसे वरदान माँगनेको कहा। इसपर इन्होंने विष्णुको ही पुत्र रूपमें पानेकी इच्छा व्यक्तकी। इस इच्छाको भगवान्ने तीन बार पूरा किया—"कस्यप अदिति महातप कीन्हा। तिन कहँ मै पूरब वर दीन्हाँ।" या रामावतारकी कौशल्या और कृष्णावतारकी देवकी अदितिकी प्रतिमूर्ति थीं। (दे० सूर० पद ६२२) नरकासुरका बध करनेपर कृष्णको जो दो कुण्डल प्राप्त हुए थे, कृष्णने उन्हे अदितिको दे दिया था। इंद्र और कृष्णके बीच पारिजात पुष्पको लेकर जो संघर्ष हुआ था, उसका निर्णय अदितिने किया था। —ज० प्र० श्री०

अधिरथ–अंगवंशमें उत्पन्न सत्कर्माके पुत्र थे। इनकी पत्नीका नाम राधा था। ये धृतराष्ट्रके सखा और सारथी थे। कर्णको पाल-पोसकर इन्होंने ही बड़ा किया था। कर्णके जन्म ग्रहण करते ही कुन्तीने उन्हे एक मजूषामें रखकर गंगामें प्रवाहित कर दिया। यह पेटी अधिरथ और राधा-को गंगामें जल-क्रीडा करते समय मिली। दम्पति निस्सन्तान थे, अतः कर्णका पुत्रकी भाँति भरण-पोषण किया (दे० 'कुन्ती और कर्ण' शीर्षक कविता : मैथिलीशरण गुप्त)। —ज० प्र० श्री०

अनंग–कामदेवका नामान्तर अनंग भी है। तारकासुरके अत्याचारोंसे देवता अत्यधिक भयभीत हो गये। देवताओंको त्रसित जानकर ब्रह्माने उन्हें बताया कि 'संभु सुक्र संभूत सुत' (मानस) कार्त्तिकेय ही उसे पराजित कर सकते हैं। महादेवजी उस समय सतीके दक्ष-यज्ञमें भस्म हो जानेके बाद, समाधिस्थ थे। उनकी तपस्याको भंगकर उमासे उनका विवाह सम्पन्न करानेपर ही कार्त्तिकेयकी उत्पत्ति सम्भव थी। अतः देवताओंकी प्रार्थनापर लोक कल्याणके लिए कामदेवने शिवपर तीक्ष्ण सुमनोंके शरसे प्रहार किया जिससे उनकी समाधि भंग हो गयी। इसपर क्षुब्ध शिवने कामदेवको तृतीय नेत्रसे जलाकर क्षारकर दिया। रतिके प्रार्थना करनेपर शिवने बताया कि 'अब तें रति तव नाथकर होइहि नाम अनंग'। हिन्दी साहित्यमें अनंग अथवा कामदेवके अनेकानेक सन्दर्भ प्राप्त होते हैं।—ज० प्र० श्री०

अनंग अराती (+अरि)–(दे० अनंग) कामदेवको भस्म करनेके कारण ही महादेवका नाम पड़ा–"सादर जपहु अनंग अराती" (मा० १।१०८।४) अथवा "गंग-जनक, अनंग-अरि-प्रिय कपट बटु बलिछरन" (वि० २१८)।—ज० प्र० श्री०

अनंत–शेषनागका नामान्तर अनन्त भी है। ये नागोंके तथा पातालके अधिपति थे। महाप्रलयके अन्तमें विष्णु इनके शरीरकी शय्यापर शयन करते हैं। इससे इन्हें अनन्त-शयन भी कहते हैं। कहा जाता है कि ये सहस्रफनवाले हैं और इन्हींपर ब्रह्माण्डकी स्थिति है। कहीं-कहीं शेष और वासुकि दो माने गये हैं। इनके पिताका नाम कश्यप और माताका नाम कद्रू था। अनन्तशीर्षा इनकी पत्नी थीं। अनन्तचतुर्दशीका पर्व इन्हींके उपलक्षमे मनाया जाता है। दशरथके पुत्र लक्ष्मण इन्हींके अवतार कहे जाते हैं–"सानुकूल कोसलपति रहहु अनन्त समेत" (मा० ६।१०७)। द्वापरके बलराम भी इन्हींके अवतार माने गये हैं। अन्य सन्दर्भोंके अतिरिक्त मध्ययुगीन-विशेषतः भक्ति साहित्यमें सहस्रजिह्वा अनन्तको भी अतिशयोक्तिके रूपमे प्रायः गुण-वर्णनसे असमर्थ कहा गया है। ब्रह्मके लिए भी अनन्त विशेषणका प्रयोग होता है। तुलसीने ब्रह्म रूप नामको अनन्त कहा है–"कह दुहु करजोरी अस्तुति तोरी केहि विधि करौं अनन्ता" (मा० १।१९२। छं० २)। —ज० प्र० श्री०

अनंतदेवी–प्रसादकृत नाटक 'स्कन्दगुप्त'की पात्र। अनन्तदेवी बूढ़े सम्राट् कुमारगुप्तकी छोटी रानी और पुरगुप्त-की माता है। वह बडी ही साहसशीला और महत्त्वाकांक्षा से प्रेरित होकर कार्य करनेवाली स्त्री है। वह सपत्नी पुत्र स्कन्दगुप्तके स्थानपर अपने कनिष्ठ पुत्र पुरगुप्तको राज-सिंहासनपर बैठाने एवं स्वयं महादेवी बननेके लोभसे महाबलाधिकृत भटार्कसे मिलकर षड्यंत्रकी योजना बनाती है। अपने उग्र स्वभाव एवं महत्त्वाकांक्षाके आवेशमें वह राज मर्यादाका भी अतिक्रमण कर जाती है। वह महादेवी देवकी को राजमाताके पदसे च्युत करनेके लिए सब कुछ करनेको तत्पर हो जाती है। उसका दृढ़ निश्चय है कि "अपनी नियतिका पथ मैं अपने पैरों चलूँगी।" असीम शक्ति और साहसके बलपर वह कहती है कि "जो चूहे के शब्दसे शंकित होते हैं, जो अपनी साँससे ही चौंक उठते हैं, उनके लिए उन्नतिका कंटकित मार्ग नहीं है।" अपने इस कथनकी पूर्तिके लिए वह साहस, कठोरता, कुटिलता एवं कौशल आदि सभी उचित-अनुचित उपायोंको प्रयुक्त करती है। वह 'विषय-विह्वल वृद्ध सम्राट्'को विलासिताके पंकमें डुबोकर अपने लिए अनुकूल वातावरण का निर्माणकर लेती है तथा पुरगुप्तको सिंहासनपर बैठानेके लिए क्रूरकर्मा प्रपंच बुद्धि और भटार्कको अपनाती है। भटार्कको महाबलाधिकृत बनवाकर उसे अपने कृतज्ञता-पाशमें बाँध लेती है। इन दोनोंके सहयोगसे अनन्तदेवी मगधमे 'पारसीक मदिरा'के स्थानपर रक्तकी धारा बहाती है। कुमार गुप्तकी रहस्यात्मक कौशलपूर्ण मृत्युमें अनन्त-देवीका हाथ है। इसी प्रकार महादेवी देवकीकी हत्याके आयोजनमें भी उसकी सक्रिय चेष्टा प्रतिभासित होती है। उसने आर्य जाति और गुप्त साम्राज्यकी सुरक्षा और शान्ति की चिन्ता न करके हूणोंसे उत्कोच लेकर उनके साथ षड्यन्त्र किया। नगरद्वारके रणक्षेत्रमें स्कन्दगुप्तकी हार अनन्तदेवी-की कुमन्त्रणाकी कलंककथा दुहराती है। अपने पुत्र पुरगुप्त-की निर्वीर्यता एवं भटार्ककी अस्थिरताके कारण अनन्तदेवीको अपनी लक्ष्य प्राप्तिमें पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं होती। अवसरके अनुकूल अपने अमर्यादित व्यक्तित्वको मोड़नेमें अनन्तदेवी अद्भुत क्षमता रखती है। भटार्कके समक्ष जो 'असहाय और अबला' है वही देवकीके समक्ष सिंहनीका-सा हिंस्र आचरण करती है तथा वन्दिनीके रूपमें स्कन्दगुप्तके समक्ष उपस्थित होनेपर बड़े वात्सल्यभावसे अपने मातृत्वके अधिकारकी उद्घोषणा करती है–"क्यों लज्जित करते हो स्कन्द! तुम भी तो मेरे पुत्र हो।" महादेवी देवकीकी हत्यामें विफल होनेपर स्कन्दगुप्तसे "फिर भी मैं तुम्हारे पिताकी पत्नी हूँ", कहकर अपनी रक्षा करती है। अनन्त-देवीके विषयमें भटार्कका यह कथन अक्षरशः सत्य सिद्ध होता है–"एक दुर्भेद्य नारी हृदयमें विश्व प्रहेलिकाका रहस्य बीज है। आह, कितनी साहसशीला स्त्री है! देखूँ, गुप्त साम्राज्यके भाग्यकी कुंजी यह किधर घुमाती है।" अनन्तदेवीमे कुटिलता एवं महत्त्वाकांक्षाके साथ-साथ विषय-लोलुपता और विलासिताकी मात्रा भी यथेष्ट है। वह प्रथम परिचयमें ही भटार्कके काम-पिपासाके संकेतोंकी सूचना देकर अपने प्रेम-पाशमें बाँधना चाहती है। भटार्क अनन्त-देवीकी कामासक्त निर्लज्जताकी ओर संकेत करते हुए अपने मनमे सोचता है–"इसकी आँखोंमें काम-पिपासाके संकेत अभी उबल रहे हैं। अतृप्तिकी चंचल प्रवंचना कपोलोंपर रक्त होकर दौड़ रही है। हृदयमे श्वासोंकी गरमी विलासका सन्देश वहन कर रही है।' इस प्रकार अनन्तदेवी निम्न स्वार्थोंसे प्रेरित होकर पतिकी हत्या, स्कन्दसे विरोध, देवकीके वधकी चेष्टा और साम्राज्यके विरुद्ध षड्यन्त्र करते हुए हूणोंको सहायता प्रदान करके भी अपने लक्ष्यकी प्राप्तिमे असफल रहती है। —के० प्र० चौ०

अनंतबंधु–लक्ष्मण अनन्तके अवतार हैं, अतः रामको अनन्तबन्धु कहा गया है–"सुनु हनुमन्त अनन्तबन्धु करुना सुभाव सीतल कोमल अति" (गी० ५।९)। दे० अनन्त। —ज० प्र० श्री०

अनन्य अलि–राधावल्लभ सम्प्रदायके अन्य कवियोंमें अनन्य अलि अपनी 'लीला स्वप्न प्रकास सुधी बात' शीर्षक गद्य

वार्ताके कारण पर्याप्त प्रसिद्ध है। स्वप्न प्रकाशके अन्तः साक्ष्यके आधारपर वे वैश्य जातिके प्रतीत होते हैं। उनके घरमें व्यापार वाणिज्यका काम होता था। उनके पिता भी राधावल्लभीय थे, अतः सेवा-पूजाका वातावरण पहलेसेही घरमें विद्यमान था। उनका जन्म संवत् १७४० (सन् १६८३)के आसपास हुआ, बीस वर्षकी आयुमें वैराग्य होनेपर घरबार छोड़कर वृन्दावन चले आये। रचनाकी शैली तथा भाषाके आधारपर वे बुन्देल खण्डके निवासी प्रतीत होते हैं। उनके लिखे हुए ८० ग्रन्थ बताये जाते हैं। 'अनन्य अलीकी वाणी' नामसे उनका संकलन हुआ है। ग्रन्थोंके आधारपर अनन्य अलिका रचना-काल संवत् सन् १७०२ से १७३३ तक है। अतः इसीके आस-पास उनका निधन मानना चाहिए।

अनन्य अलीका पूर्व नाम भगवानदास था। उन्होंने अपने तेरह स्वप्नोंका वर्णन गद्यमें किया है। उसीमें लिखा है कि राधाने प्रसन्न होकर मुझे नया नाम 'अनन्य अली' दिया। स्वप्न लिखनेमें प्रवृत्त होनेसे पहले उन्हें स्वयं संकोचका अनुभव हुआ। उन्होंने लिखा है—"ये सुपने लिखने उचित नाहीं है, ये मेरो हियो अति काचौ है, वस्तु परी पच्यौ नाहीं। तातैनिकसि पर्यो तातै लिखी है। और मोसों पतित कोऊ नाहीं, सकल ब्रह्मांडके पतितन कौ हौं महाराज हौं।"

अनन्य अलीकी वाणीका विपुल विस्तार है। उन्होंने सिद्धान्त नित्य विहार, वृन्दावन वर्णन, विविध लीला वर्णन, ऋतु वर्णन, नखशिख वर्णन, राधाकृष्ण रूपवर्णन आदि अनेक विषयोंपर रचनाकी हैं। सम्पूर्ण, रचना-का संकलन लगभग ६००० पदोंका है।

अनन्य अलीकी वाणीमें प्रसाद और माधुर्यका सुन्दर योग है। जातिसे वैश्य होनेके कारण वाणिज्य-व्यापारके अनेक रूपक उन्होंने बाँधे हैं। प्रत्येक ग्रन्थका शीर्षक उसके विषयके आधारपर दिया गया है। काव्य-रस की दृष्टिसे भी उनकी वाणी अत्यन्त समृद्ध है। लीलाएँ लिखनेमें उन्हें पूर्ण सफलता मिली है। 'स्वप्न प्रसंग'के गद्यको देखकर यह कहा जा सकता है कि तत्कालीन गद्य लेखकोंमें यह कृति अपना विशिष्ट स्थान रखती है।

[सहायक ग्रन्थ—राधावल्लभ सम्प्रदाय और सिद्धान्त ३९०—विजयेन्द्र स्नातक; गोस्वामी हितहरिवंश और उनका सम्प्रदाय—श्री ललिता चरण गोस्वामी।] —वि० स्ना०

अनल—लंकापतिके भाई विभीषणका मन्त्री था। —ज० प्र० श्री०

अनसूया—१. दक्ष प्रजापतिकी चौबीस कन्याओंमें एक अनुसूया भी थी। मतान्तरसे इन्हें कर्दम तथा देवहूतिकी कन्या भी बताया जाता है। ये अत्रि मुनिकी पत्नी थीं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश इनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर क्रमशः चन्द्रमा, दत्तात्रेय, दुर्वासाके रूपमें इनके पुत्र हुए थे। ये पतिव्रता पत्नीके रूपमें प्रसिद्ध हैं। तुलसीने अपने मानसमें सीतासे इनकी भेंटका वर्णन किया है—"अनुसूया के पद गहि सीता, मिली बहोरि सुसील विनीत।" (मा० ३।५।१)। इस भेंटके समय ये वृद्ध हो चुकी थीं। पोर शिथिल हो गये थे, त्वचापर झुर्रियाँ पड गयी थीं और केश श्वेत हो चुके थे। सीताको इन्होंने पातिव्रतका शिक्षाप्रद उपदेश दिया था—'अमित दान भर्ता बैदेही। अधम नारि जो सेव न तेही' आदि (मा० ३।५-६)। इसके अलावा इन्होंने सीताको कभी न मुरझानेवाली माला, थोड़ेसे अलंकार और चंदनका आलेप भेंट स्वरूप प्रदान किया था।

२. अभिज्ञान शाकुन्तलमें कालिदासने अनसूया नामकी महर्षि द्वारा पालित शकुन्तलाकी एक अंतरंग सखीका उल्लेख किया है। —ज० प्र० श्री०

अनामिका—निरालाका तीसरा तथा प्रौढ़तम काव्य संग्रह है जिसकी अधिकांश कविताएँ सन् १९३५ से ३८ के बीच लिखी गयी हैं। इस नामका एक और काव्य संग्रह १९२२ ई० में प्रकाशित हो चुका था। पर इस 'अनामिका' में पूर्व प्रकाशित अनामिकाका कोई अवशिष्ट चिह्न नहीं है। उस 'अनामिका' के सभी अच्छे गीत 'परिमल' में समाविष्ट कर लिये गये। इस अनामिकाका प्रकाशन सन् १९३८ ई० में हुआ।

सन् ३५ से ३८ के बीच लिखी गयी रचनाओंमें, जो अनामिकामें संगृहीत है, प्रयोगकी विविधता मिलती है। पर छन्दोंके विस्तृत प्रयोग, भाषाकी क्लिष्टता, व्यक्तिगत घटनाओंके सन्निवेश, दार्शनिक तथ्योंकी ओर अपेक्षाकृत झुकाव, संस्कृत गर्भ पदावली तथा रूपकके सफल निर्वाहकी चेष्टासे स्पष्ट हो जाता है कि कवि पांडित्य तथा कलात्मक प्रौढ़ताके समस्त उपदानोंको लेकर आगे बढ रहा है। इस समय इस तरहकी रचनाओंके अतिरिक्त कवि व्यंग्यात्मक कविताएँ भी लिख रहा था। यह कविकी एक ही मनोवृत्तिके दो पहलू हैं। एक ओर वह अपनी कलापूर्ण प्रौढ कृतियों द्वारा अपनी श्रेष्ठता सिद्ध कर रहा था और दूसरी ओर व्यंग्यात्मक रचनाओंसे विरोधियोंपर तीव्र कशाघातकर उनकी रूढ मान्यताओंकी हँसी उडा रहा था। 'प्रेयसी', 'रेखा', 'सरोजस्मृति', 'रामकी शक्तिपूजा'में उनके भाव और कलाके श्रेष्ठ स्थापत्यको देखा जा सकता है जब कि 'दान', 'वनबेला', 'सेवा-प्रारम्भ' आदि दूसरे प्रकारकी रचनाएँ हैं।

रामकी शक्ति पूजाके भाव तथा शैलीमें महाकाव्यात्मक औदात्य पाया जाता है। रावणके अव्यर्थ शरोंकी मारसे विकल वानरी सेनाको देखकर रामकी व्याकुल मनःस्थिति-का इसमें बहुत ही मनोवैज्ञानिक तथा प्रभावपूर्ण चित्रण किया गया है। यह एक अलंकृतिप्रधान रचना है, पर अलंकृतिका यह संभार वीररसके पोषकके रूपमें आया है। कविकी नवीन कल्पना तथा मनोवैज्ञानिकताके पुटने इसे पूर्णतया आधुनिकोंके अनुकूल बना दिया है। 'सरोजस्मृति' हिन्दीका सर्वश्रेष्ठ शोकगीत (एलेजी) है। इस अतिशय वैयक्तिक वस्तुकी अभिव्यंजनामें कविकी आत्यन्तिक निर्लिप्तता उसकी श्रेष्ठताका परिचायक है। अनुभूतिकी गहरी व्यंजनाकी दृष्टिसे भी यह बेजोड़ रचना है। बीच-बीचमें आयी हुई व्यंग्योक्तियाँ व्यथाके भारको और भी बढ़ा देती है। दान, वनबेला आदिमें कवि तथाकथित दानियों, नेताओं आदिका पर्दाफाश कर उनकी वास्तविकताको उद्घाटित कर देता है। —ब० सिं०

अनिरुद्ध—प्रद्युम्नके पुत्र तथा कृष्णके पौत्र अनिरुद्धका

विवाह कृष्णकी चचेरी बहिन सुभद्रासे हुआ था, किन्तु इनकी पत्नीके रूपमें उषाकी ख्याति है। वह शोणितपुरके राजा बाणासुरकी कन्या थी। पार्वतीके वरदानसे उषाने स्वप्नमें अनिरुद्धके दर्शन किये तथा उनपर रीझ गयी। उषाकी मनोदशा जानकर चित्रलेखाने अनेक राजकुमारोंके चित्रके साथ उनका भी चित्र निर्मित किया। उषाने हाव-भाव द्वारा चित्रलेखाके सामने प्रकट कर दिया कि अनिरुद्ध ही उसका प्रेम-पात्र है। चित्रलेखाने योग बलसे सुप्तावस्थामें उनका अपहरण किया और दोनोंका गान्धर्व-विवाह कराकर चार मास तक दोनोंको गुप्त स्थानमें रखा। बाणको सेवकों द्वारा जब यह रहस्य ज्ञात हुआ तो उसने अनिरुद्धको पकड़नेके लिए उन्हें भेजा किन्तु अनिरुद्धने उन सबको गदासे मार गिराया। इसपर बाणने उन्हें माया युद्धमें पराजित कर बन्दी कर लिया। यह समाचार मालूम होनेपर कृष्ण, बलराम तथा प्रद्युम्नने बाणको पराजित किया। बाणकी माता कोटराकी प्रार्थनापर कृष्णने बाणको जीवनदान दिया। इसपर बाणने विधिवत् उषा-अनिरुद्धका विवाह कर इन्हें विदा किया। सूरसागरमे उषा-अनिरुद्धकी कथा संक्षेपमें दी गयी है। (पद ४८१५-४८१६)। परन्तु इस कथाको लेकर अनेक प्रेमाख्यान रचे गये हैं। भारतीय साहित्यमें कदाचित् यह एक ही अनोखी प्रेम-कथा है जिसमें एक प्रेमिका स्त्री द्वारा पुरुषका हरण वर्णित है। —ज० प्र० श्री०

अनीस—केवल एक छन्द–"सुनिये विटप हम पुहुप तिहारे" के आधारपर अनीस कवि हिन्दीके चिर-परिचित कवि हो गये हैं। इस छन्दको 'दिग्विजय भूषण'में स्थान मिला है और 'शिवसिंह सरोज'में भी सम्भवतः वहीसे संकलित किया गया है। मिश्र-बन्धुओंके अनुसार दलपतराय वंशीधरके काव्य-शास्त्र ग्रन्थ 'अलंकार रत्नाकर'में अनीसके अनेक छन्द संगृहीत हैं। इस ग्रन्थकी रचना १७४१ ई० में हुई है, अतः इससे पूर्व ही अनीमका समय माना जा सकता है। परन्तु सरोजकारने किस आधारपर इस कविका उपस्थिति-काल १८५४ ई० माना है, कहना कठिन है।

[सहायक ग्रन्थ––दि० भू० (भूमिका); मि० वि०।]—सं०

अनूपलाल मंडल–जन्म सन् १८९७ में पूर्णिया जिलेके अन्तर्गत समेली ग्राममे हुआ। प्रारम्भमें इन्होने लोअर प्राइमरी स्कूलमें शिक्षण-कार्य किया। फिर सन् १९२८ में सेठिया कालेज, बीकानेरमें अध्यापन करने लगे। कुछ समय पश्चात् युगान्तर साहित्य मन्दिरके नामसे भागलपुरमें अपनी प्रकाशन संस्थाकी स्थापना की और वहींसे अपनी कृतियोंका प्रकाशन करने लगे। साहित्यके क्षेत्रमें इन्होने सन् १९२७ में अपनी सम्पादित पुस्तक 'रहिमन-सुधा'के साथ प्रवेश किया। सन् १९२९ में इनके प्रथम मौलिक सामाजिक उपन्यास 'निर्वासिता'का प्रकाशन हुआ। सन् १९४० में 'बहूरानी'के नामसे इनके 'मीमांसा' नामक उपन्यासका चलचित्र भी बना। इनकी पुस्तकोंमें 'अलंकार प्रवेशिका', 'रहिमन सुधा' (सम्पादित), 'पंचामृत' (सम्पादित) 'महर्षि रमण', 'योगी अरविन्द', उपनिषदोंकी कहानियाँ (२ भाग), उपदेशकी कहानियाँ (४ भाग), समाजशास्त्र (अनुवाद), भगवद्गीता (अनुवाद), केन्द्र और परिधि (उपन्यास) तथा रक्त और रंग (उपन्यास) आदि विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं। यह दो वर्षतक पांण्डीचेरीके अरविन्द आश्रम में साधकके रूपमें रहे, जिसकी आजीवन सदस्यता इन्होंने स्वीकार की है। सन् १९५१ से यह बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्के प्रकाशन अधिकारीके पदपर कार्य कर रहे हैं। बिहारके प्रमुख उपन्यासकारोंमें इनका नाम लिया जा सकता है।

[सहायक ग्रन्थ—बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटनाके षष्ठ वार्षिकोत्सवका विवरण।] —प्रे० ना० ट०

अनूपशर्मा—जन्म 'कविता-कौमुदी' भाग २ के अनुसार नवीनगर, जिला सीतापुरमें सन् १९०० ई० में हुआ। पिताका नाम पं० बदरीप्रसाद त्रिपाठी था। नवीनगर सीतापुर जिलेका वह भाग है जहाँ ब्रजभाषाके अनेक सिद्धहस्त कवि हो चुके हैं। ये एम० ए०, एल० टी० हैं और सीतामऊ हाईस्कूलमें प्रधानाध्यापक भी रहे। आकाशवाणी लखनऊके पंचायतघर-कार्यक्रममें कार्य करते रहे हैं। इधर इनके मनपर विक्षेपका कुछ प्रभाव आ गया है। स्वभावसे विनोदी व्यक्ति है।

'सिद्धार्थ' इनकी प्रथम प्रकाशित कृति है जो नाथूराम प्रेमी, बम्बई द्वारा सन् १९३७ में प्रकाशित हुई। यह १८ सर्गोंमें लिखित एवं संस्कृत वर्ण वृत्तोंमें विन्यस्त एक महाकाव्य है। 'सिद्धार्थ' ब्रजभाषाके एक परिमार्जित एवं सिद्धहस्त कविकी खडी बोलीकी रचना है, जिसमें संस्कृत के खरे तत्सम रूपोका बाहुल्य स्वाभाविक एवं कविके लिए मनोवैज्ञानिक था। 'हरिऔध'की भाँति ही इस काव्यमें भी भाषा प्रलम्ब, समास-युक्त, क्लिष्ट एवं इतिवृत्तात्मकता प्रधान है। सिद्धार्थके रंग-भवनका वर्णन विलास-सज्जासे पूर्ण है। गृह-त्यागका सर्ग करुणा-मय एवं सम्बोध प्राप्तिका प्रभात-वर्णन अन्तराह्लाद-पूर्ण है। प्रभातपर भगवान् बुद्धका सतोगुणी प्रभाव प्रतिबिम्बित किया गया है। ब्रजभाषाके पूर्व संस्कारके कारण संस्कृतके 'यदा'-'तदा' आदि अव्ययोंके साथ ब्रजभाषाके 'पे' 'के' ('कर' पूर्वकालिक रूपके स्थानपर) 'लोनी', 'विलोक' 'विहाय' आदि शब्द-रूप भी मुक्त भावसे प्रयुक्त हुए है। विशेषण और विशेष्योंके प्रयोगमे संस्कृतकी भाँति लिंग-साम्यकी प्रवृत्ति भी परिलक्षणीय है। अभिधात्मकताके आधिक्यके साथ भी यथास्थान रसात्मकता एवं वाक्चातुर्यका सुन्दर विधान संघटित हुआ है। 'फेरि मिलिबो' नामक सन् १९३८ में प्रकाशित ब्रजभाषा-प्रबन्ध-काव्य ७५ अध्यायोंमें श्रीमद्भागवतकी कृष्ण-राधा-पुनर्मिलनकी मर्ममयी घटनापर लिखा गया द्वितीय प्रकाशित ग्रन्थ है। नारदने ब्रजका सन्देश सुनाया। रुक्मिणीने प्रणय-प्राणा राधिकाके दर्शनकी लालसा व्यक्त की। नारद गोपियोंको लेकर कुरुक्षेत्र गये। कृष्णके साथ गयी रुक्मिणीने गोपि-शिरोमणि राधिकाकी साधना-मूर्तिके दर्शन कर अपने प्रेम-गर्वका संवरण किया। 'गद्य-पद्य-मयंचम्पूरित्यभिधीयते' ('काव्य-प्रकाश')के अनुसार इसे 'चम्पू'की श्रेणीमें गिना जायगा। शास्त्रानुसार सन्धियों, रीतियों एवं अलंकारोंका सजग प्रयोग हुआ है। पांचाली वृत्ति प्रधान है। प्रसाद एवं माधुर्य गुणोंकी प्रधानता और ओजका सर्वथा अभाव है। कृष्ण इसके

धीरोदात्त नायक हैं। 'राधिका' छन्दसे ग्रन्थका प्रारम्भ हुआ है पर 'रोला' छन्द ही सर्वातिशायी है। ब्रजभाषाके सीमित संस्कारोंके भीतर लिखी जाकर भी यह रचना शर्माजीकी नादमयी भाषा-शक्ति अनुप्रास-प्रियता तथा अभिव्यक्ति-कौशलकी सिद्धि है। अनेक छन्द ब्रजभाषाके पुराने प्रसिद्ध कवियोंके सुज्ञात छन्दोंके आदर्शपर लिखे जाकर भी कविके अभ्यास, चिर-संस्कार एवं बुद्धि-कौशलका प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। 'सुमनांजलि' कवित्त-छन्दोंमें लिखित एवं सन् १९३९ मे प्रकाशित स्फुट काव्य-रचना है। इन रचनाओंमें छायावादी प्रवृत्तियोंका प्रभाव स्पष्ट है। 'सुनाल' कुणाल-चरित्रपर रचित खंड-काव्य है। 'वर्धमान' शर्माजीकी प्रबन्धात्मक प्रतिभाका सर्वाधिक प्रमाण, सन् १९५१, जुलाईमे प्रकाशित और जिनाचार्य महावीर स्वामी (वर्धमान)के चरित्रको लेकर रचित एक शास्त्रीय महाप्रबंध कृति है। वर्णनात्मकता एवं इतिवृत्तके होते हुए भी प्रकृति-वर्णन, देश-काल-चित्रण एव रस-भावावेशकी दृष्टिसे कविको इस ग्रन्थमे सर्वाधिक सफलता मिली है। इस कृतिको 'सिद्धार्थ'का सुपरिष्कृत एवं सुष्ठु-विकसित प्रयास कहा जा सकता है। रस, वृत्ति, सन्धि, गुण आदिके शास्त्रीय विन्यासके साथ चमत्कारोत्पादनकी रुचि शर्माजीकी प्रतिभाकी अपनी विशेषता है। ये प्रधानतः 'द्विवेदी-युगीन' प्रसिद्ध कवि है; भाषा-शैलीमें 'हरिऔध'जीके सामयिक हैं। छायावादी स्फुट रचनाओंके आत्मनिष्ठ युगमें भी वस्तु-प्रधान प्रबन्ध-शैलीके विस्तारकोंमें इनका नाम अनुपेक्षणीय है। इन्हे 'फेरिमिलिबो'पर देव-पुरस्कार भी प्राप्त हो चुका है। 'सिद्ध-शिला' अप्रकाशित रचना है।

[सहायक ग्रन्थ—कविता-कौमुदी भाग २,—रामनरेश त्रिपाठी, हिन्दी-सेवी संसार, द्वि० सं०—प्रेमनारायण टण्डन, हिन्दीके महाकाव्य और महाकाव्यकार—प्रो० रामचरण महेन्द्र, बीसवी सदीके महाकाव्य—डा० प्रतिपालसिंह, मिश्रबन्धु-विनोद भाग ४—मिश्रबन्धु।] —श्री० सि० क्षे०

अनेकार्थमंजरी—दे० 'नन्ददास'।

अन्नपूर्णानंद—(जन्म : २१ सितम्बर १८९५ ई० और मृत्यु ४ दिसम्बर १९६२ ई०)। हिन्दीमें शिष्ट हास्य लिखनेवाले कलाकारोंमे अग्रणी। प्रमुखतः कहानियाँ लिखी है, जिनमें हास्यकी योजना भाषाके स्तर और परिस्थितियोंकी विडम्बनापर आधारित है। अधिकांश कहानियोमे काशी नगरके वातावरणको मूर्तिमान् किया गया है। लेखक स्वयं बराबर काशीमें ही रहे। कुछ दिनोंतक अपने बड़े भाई श्री सम्पूर्णानन्द (जो उत्तर-प्रदेशके मुख्यमन्त्री थे)के साथ लखनऊमें भी रहे। 'मनमयूर', 'मेरी हजामत', 'मंगल-मोद', 'मगन रहु चोला', 'महाकवि चच्चा', 'पं० विलासी मिश्र' आदि-आदि रचनाएँ प्रकाशित हुई थी। आप दानवीर श्री शिवप्रसाद गुप्तके निजी सचिव थे। गुप्तजीके साथ ही आपने संसारभ्रमण भी किया था। —सं०

अपर्णा—मैनामे उत्पन्न हिमालयकी ज्येष्ठ कन्याका नाम। उमा तथा पार्वतीके नामसे प्रसिद्ध शिवकी पत्नी। नारदके उपदेशानुसार शिवको वर रूपमें प्राप्त करनेके लिए इन्होंने दुस्साध्य तप किया, यहाँतक कि कालान्तरमें इन्होंने वृक्षोंकी कोपलोंका खाना भी त्याग दिया। तभीसे इनका नाम अपर्णा हुआ—"उमहि नाम तब भयउ अपरना" (मा० १।७४।४)। —ज० प्र० श्री०

अपाला—अत्रि मुनिकी पुत्री। इन्हे कुष्ठ रोग हो गया था। रोग-मुक्त होनेके लिए इन्होंने कठिन तप करके इन्द्रसे सोम प्राप्त किया था। इन्हें ब्रह्म-ज्ञान भी था। इनका एक सूक्त ऋग्वेदमे प्राप्त है। —ज० प्र० श्री०

अबूबक्र—इस्लाम धर्मके प्रथम खलीफा। इनके पिता अबूकोहाफा थे। अबूबक्रने मोहम्मद साहबको सर्वप्रथम पैगम्बर रूपमें स्वीकार किया। ये मोहम्मद साहबके साथ एक गढेमे रहते थे। वहाँ उन्हें एक सर्पने डँस लिया। पर कहा जाता है कि मोहम्मद साहबके थूक लगानेपर ठीक हो गये थे। गढेमे साथ रहनेके कारण इनको यारगार भी कहा जाता है। मोहम्मद साहबका इन्हे प्रथम यार (मित्र) भी कहा जाता है। मैथिलीशरण गुप्तकी काबा-कर्बला-नामक-रचनामें अबूबक्रका चरित्र आदर्शके धरातलपर चित्रित हुआ है। दे० (काबा-कर्बला, पृ० ४३। —रा० कु०

अभिजित—राजा नलके पुत्र थे। —ज० प्र० श्री०

अभिमन्यु—अर्जुनके पुत्र। कृष्णकी बहिन सुभद्रासे उत्पन्न हुए थे। इनकी पत्नीका नाम उत्तरा था जो विराटकी कन्या थी। मृत्युके समय इनकी अवस्था १६ वर्षकी थी। उत्तरा उस समय गर्भिणी थी। जिससे बादमे परीक्षित उत्पन्न हुए। महाभारतके युद्धमें आचार्य द्रोणने षड्यन्त्र द्वारा एक दिन अर्जुनको स्थानान्तरित कर चक्रव्यूह बनाकर युद्ध किया जिससे पाण्डव पक्षके भीम आदि जैसे महारथी घबरा गये। ऐसी संकटपूर्ण स्थितिमे इन्होंने युधिष्ठिरसे चक्रव्यूहको छिन्न-भिन्न करनेकी आज्ञा माँगी। व्यूह-भेदनकी विधि इन्होंने गर्भावस्थामें ही जान ली थी, क्योंकि अर्जुनने इसका उल्लेख सुभद्रासे किया था परन्तु इन्हे व्यूहसे बाहर निकलनेका उपाय ज्ञात न था। युधिष्ठिरकी अनुमति पाकर इन्होंने सफलतापूर्वक चक्रव्यूह तोडा; और लौटते समय कौरवपक्षके सप्तमहारथियोंके सामूहिक प्रयत्न द्वारा मारे गये। इनकी मृत्युके प्रतिशोधके लिए अर्जुनने जयद्रथ वधकी प्रतिज्ञा की थी। मैथिलीशरण गुप्तने 'जयद्रथ-वध' नामसे अभिमन्यु और उत्तराकी वीरता और करुणापूर्ण कथा काव्य-बद्धकी है। अभिमन्युकी कथाको लेकर कुछ नाटक भी रचे गये है। —ज० प्र० श्री०

अमरकांत—प्रेमचन्दके उपन्यास 'कर्मभूमि'का पात्र। 'कर्मभूमि'का अमरकान्त अच्छे विद्यार्थियोंमें-से था, किन्तु अधिक उच्च-शिक्षा प्राप्त न कर सका। सौतेली माँके कारण अपने पिता समरकान्तसे स्नेहपूर्ण सम्बन्ध नहीं रह जाता, दोनोकी रुचि अलग-अलग है। बचपनमे माताका देहान्त हो जानेके कारण वह मातृ-स्नेहसे वंचित रहा। विमाता मिली वह भी डाइन। पिता शत्रु हो जाता है। वह अपने घरको घर नही समझता। चिन्ताका भार उसपर सवार रहता है। पत्नी सुखदा भी ऐसी मिली जिसके साथ मानसिक सामंजस्य स्थापित न हो सका। अपनी सास रेणुकाके कारण उसके विचार रईसजादोंके-से हो जाते हैं। उसे कीर्ति-लाभका चस्का पड़ जाता है। धीरे-धीरे रेणुका

और सुखदाके स्नेहसे उसके हृदयकी जलन मिट जाती है। वह राष्ट्रीय भावोंसे पूर्ण है, किन्तु वह क्रान्तिकारी न होकर सुधारवादी है। साथ ही वह आदर्शवादी एवं सहिष्णु है। क्रियाशील, परिश्रमी और उदार होनेके साथ अमरकान्त सेवा-भावसे पूर्ण और वैधानिक रीतिसे स्वराज्य प्राप्त करनेका पक्षपाती है। व्यक्तिगत जीवनमें वह मानवतावादी है। सकीनाकी ओर वह आकृष्ट होता है, किन्तु मनोवैज्ञानिक कारणोंसे। अपने अतृप्त मानसिक जीवनके कारण ही वह मुन्नीकी ओर आकृष्ट होता है। अन्तमें वह सुखदाको अपनाकर सुखी होता है। —ल० सा० वा०

अमरनाथ झा–जन्म २५-२-१८९७ ई० को हुआ। मृत्यु १९५७ ई० में हुई। इनके पिता महामहोपाध्याय डाक्टर सर गंगानाथ झा, विद्यासागर, एम० ए०, डि० लिट्०, एल० एल० डी०, पी० एच० डी०, एफ० बी० ए० थे। आपने सन् १९०३ से १९०६ तक कर्नलगंज स्कूलमे पढ़ाई की। सन् १९१३ मे स्कूल लीविंग परीक्षामें प्रथम श्रेणीमे उत्तीर्ण और अंग्रेजी, संस्कृत एव हिन्दीमें विशेष योग्यता प्राप्त की। फिर १९१३ मे १९ तक आप म्योर सेण्ट्रल कालेज, प्रयागमे शिक्षा ग्रहण करते रहे। इन्ही दिनों १९१५ मे इण्टरमीडिएटमे विश्वविद्यालयमें चतुर्थ स्थान प्राप्त किया। फिर १९१७ मे बी० ए०की परीक्षामें एवं १९१९ में एम० ए०की परीक्षामें प्रथम स्थान प्राप्त किया। सन् १९१७ मे म्योर कालेजमे बीस वर्षकी अवस्थामें ही अंग्रेजीके प्रोफेसर हुए। सन् १९२९ मे विश्वविद्यालयमे अंग्रेजीके प्रोफेसर हुए। १९२१ मे प्रयाग म्युनिसिपैलिटीके सीनियर वाइसचेयरमैन हुए। उसी वर्ष पब्लिक लाइब्रेरीके मन्त्री हुए। आप पोयट्री सोसायटी, लदनके उप-सभापति रहे और रायल सोसाइटी आफ लिटरेचरके फेलो भी रहे। कितने ऐसोशियेसनोंके सभापति भी रहे। आप १९३८ से १९४७ तक प्रयाग विश्वविद्यालयके उप-कुलपति भी थे। १९४८ मे आप पब्लिक सर्विस कमीशनके चेयरमैन हुए।

आपकी रचनाएं निम्नांकित हैं—संस्कृत गद्यरत्नाकर (१९२०), दशकुमार चरितकी संस्कृत-टीका(१९१६), हिन्दी साहित्य संग्रह (१९२०), पद्मपराग (१९३५), शेक्सपीयर कामेडी (१९२९), लिटरेरी स्टोरीज (१९२९), एकेडमिक एड्रेसेज (१९४१), हेमलेट (१९२४), मर्चेण्ट आफ वेनिस (१९३०), सेलेक्शन्स फ्राम लार्ड मार्ले (१९१९), 'विचारधारा' तथा 'हाईस्कूल पोयट्री'। आप कई महत्वपूर्ण कार्योंके लिए विदेश भी गये। शिक्षा-जगतके आप एक स्तम्भ थे।

आप एक उच्चकोटिके शासक थे और साथ ही खिलाडी भी। शिक्षा-जगत्मे आपके कार्य अत्यन्त सराहनीय हैं। आपका अध्ययन विशाल था। संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी इन सभी भाषाओंके साहित्यसे बहुत प्रेम करते थे। 'विचारधारा' नामक हिन्दी पुस्तकमें आपकी आलोचनाओंसे इसका पता चलता है। आप बंगालीके भी अध्येता थे। आप संगीतप्रेमी थे, साथ ही चित्रकलासे भी आपको लगाव था। आपकी भावना सीमाबद्ध नही थी। आप आधुनिकतासे प्रभावित एक वैज्ञानिक विचारक थे। झा साहब नागरी प्रचारिणी सभाके अध्यक्ष रहे तथा हिन्दी साहित्यके बृहत् इतिहासके प्रधान सम्पादक थे। विभिन्न रूपोंमें की गयी आपकी हिन्दी सेवाएँ चिरस्मरणीय रहेंगी। —श्री० रा० व०

अमरपालसिंह, रायसाहब—प्रेमचन्दकृत 'गोदान'का पात्र। अमरपालसिंह गान्धी युगके उन जमींदारोंकी भाँति है जो दोनों रकाबोंपर पैर रखते थे। राष्ट्रीय आन्दोलनमें सहयोग प्रदान करनेके साथ वह हुक्कामोंसे मेल रखनेमें ही अपना कल्याण समझता है। साहित्य, संगीत, ड्रामा आदिमें वह रुचि प्रकट करता है। निस्स्वार्थ बननेकी चेष्टा करता है, जन-हितकी ओर संलग्न दिखाई पड़ता है और पुरानी मर्यादाका पालन करता है। सत्याग्रह-संग्राममें भी केवल लोकप्रियता हासिल करनेके लिए भाग लेता है। उसमें गुफावासी मनुष्य अभी जीवित हैं। किन्तु अन्तमें वह अन्तर्मुखी हो उठता है और उसके मनमें उच्च संस्कारोंका जन्म होता है। —ल० सा० वा०

अमरसिंह–राजस्थानके इतिहासमे अमरसिंह नामसे अनेक व्यक्तियोंका उल्लेख मिलता है—

१. जोधपुरके शासक मानसिंहके मन्त्री अमरसिंह थे।

२. मेवाड़के महाराणा अमरसिंह (सं० १७५५-१७६७)। इनके समयमें 'पृथ्वीराजरासो'की संवत् १७६० की प्रति लिपिबद्ध हुई थी।

३. चित्तौड़के महाराणा अमरसिंह प्रथम (सं० १६५३-१६७६) एक कवि थे। राजस्थानी साहित्यके दोहाकारोंमें इनका अच्छा स्थान है।

४. अमरसिंह (स० १६१०-१७९१)के प्रति एक प्रशस्ति काव्य 'राव अमरसिंहजी राव दूदा' प्राप्त है जिसके लेखक महाकवि केशवदास हैं।

५. अमरसिंह राठौर जिन्होंने बादशाहकी भरी सभामें बख्शी सलाबत खाँ को मारा था। इनके पिता गजसिंहने इन्हें इनकी स्वेच्छाचारी प्रवृत्तिके कारण देशनिकाला दे दिया था। अतः इनके छोटे भाई जयसिंह १२ वर्षकी अवस्थामे गद्दीपर बैठे थे। यही जयसिंह हिन्दीमें 'भाषा-भूषण' आदिके रचनाकार हुए हैं। अमरसिंहके शौर्य एवं पराक्रमी व्यक्तित्वकी अनेक कथाएँ प्रचलित हैं (दे० राजस्थानी भाषा और साहित्य)। —रा० कु०

अमरेश–तुलसीके समकालीन एक शृंगारिक कवि। शिवसिंहने इनका जन्मकाल १५७८ ई० माना है और इनकी कविताओंको 'कालिदास हजारा'में संकलित स्वीकार किया है। 'दिग्विजय भूषण'में भी इनके दो छन्द मिलते हैं जिनमें एक 'सरोज'मे भी संगृहीत है। इन उदाहृत छन्दोंसे ये रीतिकालीन कोमल कल्पनाके कवि जान पड़ते हैं।

[सहायक ग्रन्थ—शि० स०; दि० भू०(भूमिका)।]—स०

अमिताभ–गौतमबुद्धका नामान्तर। दे० 'बुद्ध'।

अमीर अली 'मीर'–जन्म १९३० वि०में सागरमें हुआ। पुलिस विभागमे कर्मचारी रहे। एक समस्यापूर्ति 'लोभ तें अमीके अहि चढ्यो जात चन्द पे' के माध्यमसे साहित्यिक जीवनका सूत्रपात्र हुआ। धीरे-धीरे इनके प्रोत्साहनसे देवरीमे, जहाँ ये अवकाश प्राप्त करके रहने लगे थे, मीर-

मण्डल-कवि-समाजकी स्थापना हुई। हिन्दू-मुस्लिम एकता और गौ-रक्षाके ये समर्थक थे। इसकी रचनाओंके विषय सामान्य जीवनसे सम्बद्ध हैं। खड़ी बोलीका स्वरूप भी वैसा ही सरल-सहज है। इनकी कुछ रचनाओंके नाम इस प्रकार हैं—'बूढेका ब्याह','नीति दर्पण'की भाषा-टीका तथा 'सदाचारी बालक'। १९३७ ई० में रेलमे कटकर इनकी मृत्यु हुई। —सं०

अमीर खुसरो—मध्य एशियाकी लाचन जातिके तुर्क सैफुद्दीनके पुत्र अमीर खुसरोका जन्म सन् १२५४ ई० (६५२ हि०)में एटा (उत्तर-प्रदेश)के पटियाली नामक कस्बेमें हुआ था। लाचन जातिके तुर्क चंगेज खाँके आक्रमणोंसे पीडित होकर बलबन (१२६६-१२८६ ई०) के राज्यकालमें शरणार्थीके रूपमें भारतमें आ बसे थे। खुसरोकी माँ बलबनके युद्ध मन्त्री इमादुतुल मुल्ककी लड़की, एक भारतीय मुसलमान महिला थी। सात वर्षकी अवस्थामें खुसरोके पिताका देहान्त हो गया, किन्तु खुसरोकी शिक्षा-दीक्षामें बाधा नहीं आयी। अपने समयके दर्शन तथा विज्ञानमें उन्होंने विद्वत्ता प्राप्त की, किन्तु उनकी प्रतिभा बाल्यावस्थासे ही काव्योन्मुख थी। किशोरावस्थामें उन्होने कविता लिखना प्रारम्भ किया और २० वर्षके होते-होते वे कविके रूपमें प्रसिद्ध हो गये। जन्मजात कवि होते हुए भी खुसरोमे व्यावहारिक बुद्धिकी कमी नहीं थी। सामाजिक जीवनकी उन्होंने कभी अवहेलना नहीं की। जहाँ एक ओर उनमें एक कलाकारकी उच्च कल्पनाशीलता थी, वहाँ दूसरी ओर वे अपने समयके सामाजिक जीवनके उपयुक्त कूटनीतिक व्यवहार-कुशलतामें भी दक्ष थे। उस समय बुद्धिजीवी कलाकारोंके लिए आजीविकाका सबसे उत्तम साधन राज्याश्रय ही था। खुसरोने भी अपना सम्पूर्ण जीवन राज्याश्रयमे बिताया। उन्होंने गुलाम, खिल्जी और तुगलक—तीन अफगान राज-वंशों तथा ११ सुल्तानोंका उत्थान-पतन अपनी आँखों देखा। आश्चर्य यह है कि निरन्तर राजदरबारमें रहनेपर भी खुसरोने कभी भी उन राजनीतिक षड्यन्त्रोंमें किंचिन्मात्र भाग नहीं लिया जो प्रत्येक उत्तराधिकारके समय अनिवार्य रूपमे होते थे। राजनीतिक दॉव-पेंचसे अपनेको सदैव अनासक्त रखते हुए खुसरो निरन्तर एक कवि, कलाकार, संगीतज्ञ और सैनिक ही बने रहे। खुसरोकी व्यावहारिक बुद्धिका सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि वे जिस आश्रयदाताके कृपापात्र और सम्मानभाजन रहे, उसके हत्यारे उत्तराधिकारीने भी उन्हें उसी प्रकार आदर और सम्मान प्रदान किया।

सबसे पहले सन् १२७० ई० में खुसरोको सम्राट् गयासुद्दीन बलबनके भतीजे, कड़ा (इलाहाबाद)के हाकिम अलाउद्दीन मुहम्मद कुलिश खाँ (मलिक छज्जू)का राज्याश्रय प्राप्त हुआ। एक बार बलबनके द्वितीय पुत्र नसीरुद्दीन बुगरा खाँ की प्रशंसामें कसीदा लिखनेके कारण मलिक छज्जू उनसे अप्रसन्न हो गया और खुसरोको बुगरा खाँ का आश्रय ग्रहण करना पड़ा। जब बुगरा खाँ लखनौतीका हाकिम नियुक्त हुआ तो खुसरो भी उसके साथ चले गये। किन्तु वे पूर्वी प्रदेशके वातावरणमें अधिक दिन नहीं रह सके और बलबनके ज्येष्ठ पुत्र सुल्तान मुहम्मदका निमन्त्रण पाकर दिल्ली लौट आये। खुसरोका यही आश्रयदाता सर्वाधिक सुसंस्कृत और कला-प्रेमी था। सुल्तान मुहम्मदके साथ उन्हें मुल्तान भी जाना पड़ा और मुगलोंके साथ उसके युद्धमें भी सम्मिलित होना पड़ा। इस युद्धमें सुल्तान मुहम्मदकी मृत्यु हो गयी और खुसरो बन्दी बना लिये गये। खुसरोने बड़े साहस और कुशलताके साथ बन्दी-जीवनसे मुक्ति प्राप्त की। परन्तु इस घटनाके परिणामस्वरूप खुसरोने जो मर्सिया लिखा वह अत्यन्त हृदयद्रावक और प्रभावशाली है। कुछ दिनों तक वे अपनी माँके पास पटियाली तथा अवधके एक हाकिम अमीर अलीके यहाँ रहे। परन्तु शीघ्र ही वे दिल्ली लौट आये। दिल्लीमें पुनः उन्हे मुईजुद्दीन कैकबादके दरबारमें राजकीय सम्मान प्राप्त हुआ। यहाँ उन्होंने सन् १२८९ ई० में 'मसनवी किरानुससादैन'-की रचना की। गुलाम वंशके पतनके बाद जलालुद्दीन खिल्जी दिल्लीका सुल्तान हुआ। उसने खुसरोको अमीरकी उपाधिसे विभूषित किया। खुसरोने जलालुद्दीनकी प्रशंसामें 'मिफ्तोलफ तह' नामक ग्रन्थकी रचना की। जलालुद्दीनके हत्यारे उसके भतीजे अलाउद्दीनने भी सुल्तान होनेपर अमीर खुसरोको उसी प्रकार सम्मानित किया और उन्हे राजकविकी उपाधि प्रदान की। अलाउद्दीनकी प्रशंसामे खुसरोने जो रचनाएँ की वे अभूतपूर्व थीं। खुसरोकी अधिकांश रचनाएँ अलाउद्दीनके राज्यकालकी ही है। १२९८ से १३०१ ई० की अवधिमें उन्होंने पाँच रोमाण्टिक मसनवियाँ—१. 'मल्तोल अनवर', २.'शिरीन खुसरो', ३.'मजनू-लैला', ४. 'आईन-ए-सिकन्दरी' और ५. 'हश्त विहिश्त'—लिखीं। ये पंच-गंज नामसे प्रसिद्ध हैं। ये मसनवियाँ खुसरोने अपने धर्म-गुरु शेख निजामुद्दीन औलियाको समर्पित कीं तथा उन्हे सुल्तान अलाउद्दीनको भेंट कर दिया। पद्यके अतिरिक्त खुसरोने दो गद्य-ग्रन्थोंकी भी रचना की—१. 'खजाइनुल फतह', जिसमे अलाउद्दीनकी विजयोंका वर्णन है और २. 'एजाजयेखुसरवी', जो अलकारग्रन्थ है। अलाउद्दीनके शासनके अन्तिम दिनोंमे खुसरोने देवलरानी खिज्रखाँ नामक प्रसिद्ध ऐतिहासिक मसनवी लिखी।

अलाउद्दीनके उत्तराधिकारी उसके छोटे पुत्र कुतुबुद्दीन मुबारकशाहके दरबारमें भी खुसरो ससम्मान राजकविके रूपमें बने रहे. यद्यपि मुबारकशाह खुसरोके गुरु शेख-निजामुद्दीनसे शत्रुता रखता था। इस कालमें खुसरोने नूहसिपहर नामक ग्रन्थकी रचना की जिसमे मुबारकशाह-के राज्य-कालकी मुख्य-मुख्य घटनाओंका वर्णन है।

खुसरोकी अन्तिम ऐतिहासिक मसनवी 'तुग़लक' नामक है जो उन्होंने गयासुद्दीन तुगलकके राज्य-कालमें लिखी और जिसे उन्होंने उसी सुल्तानको समर्पित किया। सुल्तानके साथ खुसरो बगालके आक्रमणमें भी सम्मिलित थे। उनकी अनुपस्थितिमें ही दिल्लीमें उनके गुरु शेख निजामुद्दीनकी मृत्यु हो गयी। इस शोकको अमीर खुसरो सहन नहीं कर सके और दिल्ली लौटनेपर ६ मासके भीतर ही सन् १३२५ ई० में खुसरोने भी अपनी इहलीला समाप्त कर दी। खुसरोकी समाधि शेखकी समाधिके पास ही बनायी गयी।

शेख निजामुद्दीन औलिया अफ़गान-युगके महान् सूफ़ी सन्त थे। अमीर खुसरो आठ वर्षकी अवस्थासे ही उनके शिष्य हो गये थे और सम्भवतः गुरुकी प्रेरणासे ही उन्होंने काव्य-साधना प्रारम्भ की। यह गुरुका ही प्रभाव था कि राज-दरबारके वैभवके बीच रहते हुए भी खुसरो हृदयसे रहस्यवादी सूफ़ी सन्त बन गये। खुसरोने अपने गुरुका मुक्त कंठसे यशोगान किया है और अपनी मसनवियोंमें उन्हें सम्राट्से पहले स्मरण किया है।

अमीर खुसरो मुख्य रूपसे फारसीके कवि है। फारसी भाषापर उनका अप्रतिम अधिकार था। उनकी गणना महाकवि फ़िरदोसी, शेख सादिक और निज़ामी फ़ारसके महाकवियोंके साथ होती है। फारसी काव्यके लालित्य और मार्दवके कारण ही अमीर खुसरोको 'हिन्दकी तूती' कहा जाता है। खुसरोका फारसी काव्य चार वर्गोंमें विभक्त किया जा सकता है—ऐतिहासिक मसनवी जिसमें किरानुससादैन, मिफतोलफतह, देवलरानी खिज्रखाँ, नूह-सिपहर और तुगलकनामा नामकी रचनाएँ आती है; रोमाण्टिक मसनवी—जिसमें मतलऊ लअनवार, शिरीन खुसरो, आईन-ए-सिकन्दरी, मजनू-लैला और हश्त विहश्त गिनी जाती है; दीवान—जिसमे तुहफ तुस सिगहर, वास्तुलहयात आदि ग्रन्थ आते है; गद्य-रचनाएं— 'एजाजयेखुसरवी' और 'खज़ाइनुलफ़तह तथा मिश्रित'—जिसमे 'वेदऊलअजाइव', 'मसनवी शहरअसुब', 'चिस्तान' और 'खालिकबारी' नामकी रचनाएँ परिगणित हैं।

यद्यपि खुसरोकी महत्ता उनके फारसी काव्यपर आश्रित है, परन्तु उनकी लोकप्रियताका कारण उनकी हिन्दवीकी रचनाएँ ही है। हिन्दवीमें काव्य-रचना करनेवालोंमें अमीर खुसरोका नाम सर्वप्रमुख है। अरबी, फारसीके साथ-साथ अमीर खुसरोको अपने हिन्दवी ज्ञानपर भी गर्व था। उन्होंने स्वयं कहा है—"मै हिन्दुस्तानकी तूती हूँ। अगर तुम वास्तवमे मुझसे जानना चाहते हो तो हिन्दवीमे पूछो! मै तुम्हें अनुपम बाते बता सकूँगा।" अमीर खुसरोने कुछ रचनाएँ 'हिन्दी या हिन्दवीमे भी की थीं, इसका साक्ष्य स्वयं उनके इस कथनमे प्राप्त होता है—"जुजवे चन्द नज्में हिन्दी नजरे दोस्तां करदा अस्त।" उनके नामसे हिन्दीमें पहेलियाँ, मुकरियाँ, दो सुखने और कुछ गज़लें प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त उनका फारस-हिन्दी कोश ख़ालिक़बारी भी इस प्रसगमें उल्लेखनीय है।

दुर्भाग्य है कि अमीर खुसरोकी हिन्दवी रचनाएं लिखित रूपमे प्राप्त नहा होती। लोकमुखके माध्यमसे चली आ रहीं उनकी रचनाओंकी भाषामें निरन्तर परिवर्तन होता रहा होगा और आज वह जिस रूपमे प्राप्त होती हैं वह उसका आधुनिक रूप है। फिर भी हम निस्सन्देह यह विश्वास कर सकते है कि खुसरोने अपने समयकी खडी बोली अर्थात् हिन्दवीमें भी अपनी पहेलियाँ, मुकरियाँ आदि रची होंगी। कुछ लोगोंको अमीर खुसरोकी हिन्दी कविताकी प्रामाणिकतामें सन्देह होता है। स्व० प्रोफेसर शेरानी तथा कुछ अन्य आलोचक विद्वान् खालिकबारीको भी प्रसिद्ध अमीर खुसरोकी रचना नहीं मानते। परन्तु खुसरोकी हिन्दी कविताके सम्बन्धमें इतनी प्रबल लोक-परम्परा है कि उसपर अविश्वास नहीं किया जा सकता। यह परम्परा बहुत पुरानी है। 'अरफ़तुलआसितीन'के लेखक तक़ीओहदी जो १६०६ ई० में जहाँगीरके दरबारमें आये थे खुसरोकी हिन्दी कविताका जिक्र करते हैं। मीरतक़ी 'मीर' अपने 'निकातुसस्वरा'मे लिखते हैं कि उनके समय तक खुसरोके हिन्दी गीत अति लोकप्रिय थे (दे० यूसुफ हुसेन : 'ग्लिम्प्सेज़ आव मिडीवल इण्डियन कल्चर', पृ० १९५)। इस सम्बन्धमें सन्देहको स्थान नहीं है कि अमीर खुसरोने हिन्दवीमे रचना की थी। यह अवश्य है कि उसका रूप समयके प्रवाहमें बदलता आया हो। आवश्यकता यह है कि खुसरोकी हिन्दी-कविताका यथासम्भव वैज्ञानिक सम्पादन करके उसके प्राचीनतम रूपको प्राप्त करनेका यत्न किया जाय। काव्यकी दृष्टिसे भले ही उसमें उत्कृष्टता न हो, सांस्कृतिक और भाषावैज्ञानिक अध्ययनके लिए उसका मूल्य निस्सन्देह बहुत अधिक है। —मा० व० जा०

अमृतलाल चक्रवर्ती—जन्म बगालके नावरा ग्राममें १८६३ ई० में हुआ। कुछ समय तक इलाहाबादमें नौकरीकी 'लोको' विभागमे फिर साहबसे झगडा होनेपर काम छोड दिया। 'प्रयाग समाचार'के माध्यमसे हिन्दी-संसारमें प्रविष्ट हुए। फिर कुछ समय तक 'भारतमित्र'मे कार्य किया। नौकरी करते-करते बी० ए० (ऑनर्स) १८९० में किया। इसी वर्ष 'साप्ताहिक बंगवासी' आपके सम्पादनमें प्रकाशित हुआ। बादमें 'वेंकटेश्वर' और 'कलकत्ता समाचार'के सम्पादन-विभागमें भी रहे। हिन्दी पत्रकारिताके आरम्भिक युगमें आपका कार्य विशेष महत्त्वका है। हिन्दी साहित्य-सम्मेलनके सोलहवें अधिवेशनके लिए अध्यक्ष मनोनीत हुए। —सं०

अयोध्याप्रसाद खत्री—खड़ी बोली हिन्दीके प्रारम्भिक समर्थकों और पुरस्कर्ताओंमें अयोध्याप्रसाद खत्रीका नाम प्रमुख है। ये मुजफ्फरपुरमें कलक्टरीके पेशकार थे। १८८८ ई० मे इन्होंने 'खडी बोलीका आन्दोलन' नामक पुस्तिका प्रकाशित करायी। इनके अनुसार खड़ी बोली पद्यकी चार 'स्टाइलें' थीं—मौलवी स्टाइल, मुंशी स्टाइल, पण्डित स्टाइल, मास्टर स्टाइल। १८८७-८९ मे इन्होंने 'खडी बोलीका पद्य' नामक संग्रह दो भागोंमे प्रस्तुत किया जिसमे विभिन्न 'स्टाइलों'की रचनाएँ संकलित की गयीं। इसके अतिरिक्त सभाओं आदिमें बोलकर भी ये खडी बोलीके पक्षका समर्थन करते थे। 'सरस्वती' मार्च १९०५ में प्रकाशित 'अयोध्याप्रसाद' खत्री शीर्षक जीवनीके लेखक पुरुषोत्तमप्रसाद शर्माने लिखा था कि खडी बोलीका प्रचार करनेके लिए इन्होंने इतना द्रव्य खर्च किया कि राजा-महाराजा भी कम करते हैं। —सं०

अयोध्याप्रसाद गोयलीय—जन्म १९०२ ई० में बादशाहपुर (जिला गुड़गाव) मे हुआ। साहू जैनके औद्योगिक प्रतिष्ठानसे सम्बद्ध रहे। भारतीय ज्ञानपीठ, काशीका मन्त्रित्व भार कई वर्षों तक सँभाला। इन्होंने संस्मरणात्मक कथाएँ तथा उर्दू शायरीका क्रमबद्ध इतिहास लिखा है। प्रकाशन—'गहरे पानी पैठ'(कहानियाँ) १९५१ ई०, 'जिन खोजा तिन पाइयाँ' (१९५५ ई०), 'कुछ मोती कुछ सीप'

(१९५७ ई०)—कहानियोंके संकलन। 'शेर ओ शायरी' (१९४६ ई०), 'शेर ओ सुखन'—५ भाग (१९५१-१९५४ ई०)। 'शायरीके नये दौर' (१९५८-६१ ई०), 'शायरीके नये मोड़'(१९५८-५९ ई०), 'नग्मए हरम' (१९६१ ई०), 'लो कहानी सुनो' (१९६१ ई०)। —सं०

अयोध्याप्रसाद वाजपेयी 'औध'–यह सातन पुरवा, जिला रायबरेलीके निवासी कान्य-कुब्ज ब्राह्मण थे। इनका जन्म १८०३ ई० में हुआ। इनके पिता नन्दकिशोर वाजपेयी पण्डिताई तथा लेन-देनका कार्य करते थे, परन्तु इन्होंने गजाधर प्रसादसे व्याकरण, ज्योतिषके साथ काव्य-शास्त्रका अध्ययन किया और काव्य-रचना भी सीखी। इनका अधिकांश समय राज-दरबारोंमें कविके रूपमें बीता। इनके आश्रयदाताओंमें दिग्विजयसिंह (बलरामपुर; गोंडा), सुदर्शनसिंह (चन्दापुर; बहराइच), हरदत्तसिंह (बौंडी; बहराइच), मुनीश्वरबख्श सिंह (मल्लापुर; सीतापुर) और पाण्डे कृष्णादत्तराम (गोंडा) विशेष रूपसे रहे है। हरदत्तसिंहने इनको बाजपेयीका पुरवा नामक गाँव प्रदान किया जिसमें इनके वंशज अब भी बसते है। सन् १८५७ की क्रान्तिमें बौंडी राज्यके साथ इनकी माफी भी जब्त हो गयी, अतः अपनी जन्मभूमि लौट आये।

पद्माकरसे इनकी भेंट होनेकी जनश्रुति है। अयोध्याके महात्मा उमापति, बाबा रघुनाथदास और युगुलानन्यशरणकी इनपर कृपा थी। अपने जीवनका अन्तिम समय भी इन्होंने अयोध्यामें ही बिताया और वहीं इनकी मृत्यु १८८५ ई० (कार्तिक शुक्ला २, सं० १९४२) में हुई। इनके ग्रन्थोंमें अवध शिकार, रागरत्नावली, साहित्य सुधा-सागर, राम कवितावली, छन्दानन्द, शंकर शतक, ब्रज-ब्रज्या, चित्र-काव्य और राम सर्वस्व खोजमे उपलब्ध हुए हैं। इनको रीतिकालीन काव्य-धाराके अन्तिम कवियोंमें माना जा सकता है। इनमें इस परम्पराकी समस्त रूढ़ियाँ परिलक्षित होती है। इनके ग्रन्थोंसे यह भी प्रकट होता है कि इनपर भक्तिका भी पर्याप्त प्रभाव रहा है।

[सहायक ग्रन्थ—दि० भू० (भूमिका)।] —सं०

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'–खड़ी बोलीको काव्य-भाषाके पदपर प्रतिष्ठित करने वाले कवियोंमें अयोध्यासिंह उपाध्यायका नाम बहुत आदरसे लिया जाता है। आपका जन्म जिला आजमगढ़के निजामाबाद नामक स्थानमें सन् १८६५ ई० में हुआ था। उन्नीसवी शताब्दीके अन्तिम दशकमें १८९० ई०के आस-पास आपने साहित्य सेवाके क्षेत्रमें पदार्पण किया। आपकी मृत्यु १९४१ ई० मे लगभग छिहत्तर वर्षकी अवस्थामें हुई।

यह आरम्भमें नाटक तथा उपन्यास—लेखनकी ओर आकर्षित हुए। इनकी दो नाट्य कृतियाँ 'प्रद्युम्न विजय' तथा 'रुक्मिणी परिणय' क्रमशः १८९३ ई० तथा १८९४ ई० में प्रकाशित हुईं। १८९४ ई० ही मे इनका प्रथम उपन्यास 'प्रेमकान्ता'भी प्रकाशमें आया। बादमे दो अन्य औपन्यासिक कृतियाँ 'ठेठ हिन्दीका ठाठ' (१८९९ ई०) और 'अधखिला फूल' (१९०७ ई०) नामसे प्रकाशित हुईं। ये नाटक तथा उपन्यास साहित्यके उनके प्रारम्भिक प्रयास होनेकी दृष्टिसे उल्लेख्य हैं। इन कृतियोंमें नाट्यकला अथवा उपन्यासकलाकी विशेषताएं ढूंढ़ना तर्कसंगत नहीं है।

इनकी प्रतिभाका विकास वस्तुतः कवि-रूपमें हुआ। खड़ीबोलीका प्रथम महाकवि होनेका श्रेय इन्हींको है। 'हरिऔध'के उपनामसे इन्होंने अनेक छोटे-बड़े काव्योंकी सृष्टि की, जिनकी संख्या पन्द्रहसे ऊपर है—'रसिक रहस्य' (१८९९ ई०), 'प्रेमाम्बुवारिधि' (१९०० ई०), 'प्रेमप्रपंच' (१९०० ई०), 'प्रेमाम्बु प्रश्रवण' (१९०१ ई०), 'प्रेमाम्बु प्रवाह' (१९०१ ई०), 'प्रेम पुष्पहार' (१९०४ ई०), 'उद्बोधन'(१९०६ ई०), 'काव्योपवन'(१९०९ ई०),'प्रियप्रवास' (१९१४ ई०), 'कर्मवीर'(१९१६ ई०), 'ऋतु मुकुर' (१९१७ ई०), 'पद्यप्रसून' (१९२५ ई०), 'पद्मप्रमोद' (१९२७ ई०), 'चोखे चौपदे' (१९३२ ई०),' वैदेही बनवास' (१९४० ई०), 'चुभते चौपदे', 'रसकलश' आदि।

हरिऔधको कविरूपमें सर्वाधिक प्रसिद्धि उनके प्रबन्ध-काव्य 'प्रियप्रवास'के कारण मिली। 'प्रियप्रवास'की रचनासे पूर्वकी काव्यकृतियाँ कविताकी दिशामें उनके प्रयोगकी परिचायिका है। इन कृतियोंमें प्रेम और शृंगारके विभिन्न पक्षोंको लेकर काव्य-रचनाके लिए किये गये अभ्यासकी झलक मिलती है। 'प्रियप्रवास'को इसी क्रममें लेना चाहिए। 'प्रियप्रवास'के बादकी कृतियोमे 'चोखे-चौपदे' तथा 'वैदेही बनवास' उल्लेखनीय है। 'चोखे चौपदे' लोकभाषाके प्रयोगकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण है। 'प्रियप्रवास'की रचना संस्कृतकी कोमल-कान्त पदावलीसे हुई है और उसमें तत्सम शब्दोंका बाहुल्य है। 'चोखे चौपदे'में मुहावरोंके बाहुल्य तथा लोकभाषाके समावेश द्वारा कविने यह सिद्ध कर दिया कि वह अपनी सीधी सादी जबानको भूला नहीं है। 'वैदेही बनवास'की रचना द्वारा एक और प्रबन्ध सृष्टिका प्रयत्न किया गया है। आकारकी दृष्टिसे यह ग्रन्थ छोटा नहीं है किन्तु इसमे 'प्रियप्रवास' जैसी ताजगी और काव्यत्वका अभाव है।

'प्रियप्रवास' एक सशक्त विप्रलम्भ काव्य है। कविने अपनी इस कृतिमे कृष्ण-कथाके एक मार्मिक पक्षको किंचित् मौलिकता और एक नूतन दृष्टिकोणसे प्रस्तुत किया है। श्रीकृष्णके मथुरा-गमनके उपरान्त ब्रजवासियोंके विरह-सन्तप्त जीवन तथा मनोभावोंका हृदयग्राही अंकन प्रस्तुत करनेमे उन्हें बहुत सफलता मिली है। संस्कृतकी समस्त तथा कोमल-कान्त पदावलीसे अलंकृत एवं संस्कृत वर्ण-वृत्तोंमें लिखित यह रचना खड़ी बोलीका प्रथम महाकाव्य है। रामचन्द्र शुक्लने इसे आकारकी दृष्टिसे बड़ा कहा किन्तु उन्हें इस कृतिमें समुचित कथानकका अभाव प्रतीत हुआ और इसी अभावका उल्लेख करते हुए उन्होंने इसके प्रबन्धत्व एवं महाकाव्यत्वको अस्वीकार कर दिया है। (हि० सा० का इतिहास, पं० सं०, पृ० ६०८)। शुक्लजीसे सरलतापूर्वक सहमत नहीं हुआ जा सकता। प्रबन्ध काव्य-सम्बन्धी कुछ थोड़ी-सी रूढ़ियोंको छोड़ दिया जाय तो इस काव्यमें प्रबन्धत्वका दर्शन आसानीसे किया जा सकता है। यह सच है कि ऊपरसे देखनेपर इसका कथानक प्रवास-प्रसंग तक ही सीमित है, किन्तु हरिऔधने अपने कल्पना-कौशल द्वारा इसी सीमित क्षेत्रमें श्रीकृष्णके जीवनकी व्यापक झाँकियाँ प्रस्तुत करनेके अवसर ढूंढ़

निकाले हैं। इस काव्यकी एक और विशेषता यह है कि इसके नायक श्रीकृष्ण शुद्ध मानव रूपमें प्रस्तुत किये गये है, वे लोकसंरक्षण तथा विश्वकल्याणकी भावनासे परिपूर्ण मनुष्य अधिक हैं और अवतार अथवा ईश्वर नाममात्रके।

हरिऔधके अन्य साहित्यिक कृतित्वमें उनके ब्रजभाषा काव्य-संग्रह 'रसकलश'को विस्मृत नहीं किया जा सकता। इसमें उनकी आरम्भिक स्फुट कविताएँ संकलित हैं। ये कविताएँ शृंगारिक हैं और काव्य-सिद्धान्त निरूपणकी दृष्टिसे लिखी गयी हैं।

इन्होंने गद्य और आलोचनाकी ओर भी कुछ-कुछ ध्यान दिया था। काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमे हिन्दीके अवैतनिक अध्यापक पदपर कार्य करते हुए इन्होंने 'कबीर वचनावली'-का सम्पादन किया। 'वचनावली'की भूमिकामें कबीरपर लिखे गये लेखसे इनकी आलोचना-दृष्टिका पता चलता है। इन्होंने 'हिन्दी भाषा और साहित्यका विकास' शीर्षक एक इतिहास ग्रन्थ भी प्रस्तुत किया, जो बहुत लोकप्रिय हुआ।

अयोध्यासिंह उपाध्याय खड़ी बोली काव्यके निर्माताओंमे आते हैं। इन्होंने अपने कविकर्मका शुभारम्भ ब्रजभाषामे किया। 'रसकलश'की कविताओंसे पता चलता है कि इस भाषापर इनका अच्छा अधिकार था, किन्तु इन्होंने समयकी गति शीघ्र ही पहचान ली और खड़ी बोलीमें काव्य-रचना करने लगे। काव्य-भाषाके रूपमें इन्होंने खड़ी बोलीका परिमार्जन और संस्कार किया। 'प्रियप्रवास' की रचना करके इन्होंने संस्कृत-गर्भित कोमल-कान्त-पदावली-संयुक्त भाषाका अभिजात रूप प्रस्तुत किया। 'चोखे-चौपदे' तथा 'चुभते-चौपदे' द्वारा खड़ी बोलीके मुहावरा सौन्दर्य एवं उसके लौकिक स्वरूपकी झाँकी दी। छन्दोंकी दृष्टिसे इन्होंने संस्कृत, हिन्दी तथा उर्दू सभी प्रकारके छन्दोंका धड़ल्लेसे प्रयोग किया। ये प्रतिभा-सम्पन्न मानववादी कवि थे। इन्होंने 'प्रियप्रवास'में श्रीकृष्णके जिस मानवीय स्वरूपकी प्रतिष्ठा की है उससे इनके आधुनिक दृष्टिकोणका पता चलता है। इनके श्रीकृष्ण 'रसराज' या 'नटनागर' होनेकी अपेक्षा लोकरक्षक नेता हैं।

जीवन-कालमे ही इन्हें यथोचित सम्मान मिला था। १९२४ ई० में इन्होंने हिन्दी साहित्य सम्मेलनके प्रधान-पदको सुशोभित किया था। काशी हिन्दू विश्वविद्यालयने इनकी साहित्य सेवाओंका मूल्यांकन करते हुए इन्हें हिन्दीके अवैतनिक अध्यापकका पद प्रदान किया। एक अमेरिकन 'एनसाइक्लोपीडिया'ने इनका परिचय प्रकाशित करते हुए इन्हें विश्वके साहित्य सेवियोंकी पंक्ति प्रदान की। खड़ी बोली काव्यके विकासमे इनका योग निश्चित रूपसे बहुत महत्त्वपूर्ण है। यदि 'प्रियप्रवास' खड़ी बोलीका प्रथम महाकाव्य है तो 'हरिऔध' खड़ी बोलीके प्रथम महाकवि ! —र० भ०

अरिंदम–रासनृत्यके पूर्व गोपियोंने कृष्णको इसी नामसे सम्बोधन किया है। इस प्रकारका नाम देनेका कारण कदाचित् कृष्णका कंस द्वारा प्रेषित अनेक असुरोका दमन करना है। —ज० प्र० श्री०

अरिकेसी–कृष्णका नामान्तर है। अश्वरूप केशी राक्षसकी हत्या करनेके कारण कृष्णको इस नामसे अभिहित किया गया है। —ज० प्र० श्री०

अरिष्ट–भागवतके अनुसार बलिका पुत्र अरिष्ट कंसके द्वारा कृष्णकी हत्या करनेके लिए वृन्दावन भेजा गया था। इसकी आकृति वृषके समान थी। ब्रजमें पहुँचकर यह वहाँके पशुओंमे मिल गया लेकिन पशु तथा गोप-गोपी सभी इसे देखकर डर गये। इस वस्तुस्थितिको समझकर कृष्णने इसको मार डाला—'अघ-अरिष्ट, केसी, काली मथि दावानलहिं पियो' (सूर० पद १२१०)। सूरसागरमें अरिष्टासुरको वृषभासुर कहा गया है जो गोचारणके समय वनमें गायोंके समूहमें घुसकर उपद्रव करने लगा था तथा कृष्णके ऊपर चढ़ दौड़ा था। कृष्णने उसे टांग पकड़कर घुमाकर पृथ्वीपर पटक दिया था (सूर० पद २००४-२००५)। —ज० प्र० श्री०

अरुंधती–१ : यह कर्दम मुनिकी पुत्री तथा वसिष्ठकी स्त्री थीं। महाभारतकी एक कथाके अनुसार अरुन्धतीके मनमें वसिष्ठ जैसे निष्ठावान् पतिके प्रति भी उनके दुश्चरित्र होनेकी आशंका सदैव बनी रहती थी। उसी पापके फलस्वरूप उनकी प्रभा धूमारुणकी भाँति म्लान हो गयी और वह कभी दृश्य और कभी अदृश्य रहने लगी।

२ : दक्ष प्रजापतिकी एक पुत्रीका नाम भी अरुन्धती था जो धर्मकी स्त्री थीं—"अरुन्धती मिलि मैनहि बात चलाइहि" (तुलसी मा० ८८)।

३ : अरुन्धती नामका एक नक्षत्र भी है। आकाशमे सप्तर्षिमण्डलमे वसिष्ठके समीप इसकी स्थिति है। ऐसी मान्यता है कि मरणासन्न व्यक्तियोंको यह दृष्टिगत नहीं होता। ब्याहमे सप्तपदी परिक्रमाके पश्चात् वर-वधूको इस नक्षत्रका मुख्यरूपमे दर्शन कराया जाता है। —ज० प्र० श्री०

अर्जुन १–कृष्णके साथ अर्जुनके अनेक प्राचीन सन्दर्भ मिलते हैं। अर्जुनकी माता कुन्ती और पिता पाण्डु थे। किन्तु ये पाण्डुके क्षेत्रज, और कुन्तीके दुर्वासा द्वारा विरचित मन्त्रसे इन्द्रका आह्वान कर उनके साथ सहवास करनेके कारण इन्द्रके औरस पुत्र थे। ये आचार्य द्रोणके प्रमुख शिष्य एवं बाणविद्यामें प्रवीण थे। इस कलामे इनकी समता केवल कर्ण ही कर सकता था। बाणविद्याके ही बलसे अर्जुनने स्वयंवरमे मत्स्यवेधकर द्रौपदीसे विवाह किया, जो नियतिके विधानसे पाँचों पाण्डवोंकी वधू बनी। पाण्डवोंके द्वादशवर्षके गुप्तवासके समय इन्होंने परशुरामसे अस्त्रविद्यामें दीक्षा ली थी। इसी बीच नागकन्या उलूपीसे प्रेम हो जानेके कारण उससे इरावत नामक पुत्रका जन्म हुआ। अर्जुनने मणिपुरके राजा चित्रभानुकी पुत्री चित्रांगदासे भी विवाह किया जिससे बभ्रुवाहनका जन्म हुआ। कृष्णकी भगिनी सुभद्रासे विवाह करनेके उपरान्त उससे अभिमन्यु उत्पन्न हुए। महाभारतमे अभिमन्युके निर्दयतापूर्वक वध किये जानेपर अर्जुनने उसके प्रतिशोधस्वरूप जयद्रथवधकी प्रतिज्ञा की थी (दे० जयद्रथ वध, सर्ग ३ : मैथिलीशरण गुप्त)। अर्जुनका द्रौपदीके गर्भसे उत्पन्न पुत्र महाभारतके युद्धमें अश्वत्थामा द्वारा मारा गया। अर्जुनके पौरुष एवं पराक्रमसे प्रसन्न होकर

अनेक देवताओंने इन्हें दिव्यास्त्र दिये थे। युधिष्ठिरने कौरवोंके साथ द्यूतक्रीडामें जब सर्वस्व गँवा दिया तो ये हिमालयपर तप करने चले गये। वहाँ किरात वेशधारी शिवसे इनका युद्ध हुआ। शिवने इनकी वीरतासे प्रसन्न होकर इन्हें पाशुपत अस्त्र दिया था। कृष्णकी सहायतासे खाण्डव वन दहन करनेके बाद अग्निदेवने प्रसन्न होकर अर्जुनको आग्नेयास्त्र और गाण्डीव प्रदान किये। इन्द्रके साथ अमरावतीमें विहार करते समय उर्वशी इनपर रीझ गयी। उर्वशीकी इच्छापूर्ति न करनेपर उसने इन्हें नपुंसक होकर स्त्रीके समक्ष नृत्य करनेका शाप दिया, जिसके कारण अज्ञातवासमें इन्हें 'बृहन्नला'के रूपमें विराटकी राजकुमारी उत्तराको नृत्यकी शिक्षा देनी पड़ी। कुरुक्षेत्रके युद्धमें कृष्ण इनके सारथी बने। युद्धारम्भके पूर्व इनके मोहाविष्ट होनेपर कृष्णने इन्हें जो उपदेश दिया वह गीताके नामसे विख्यात कहा जाता है (दे० कृष्णायन, गीता काण्ड)। महाभारत युद्धमें अर्जुनने कौरव पक्षके अनेक सेनानियोंका वध किया। अन्तमें ये द्वारिका गये तथा यादवोंका विनाश होनेपर हिमालय चले गये, जहाँ इनका देहावसान हुआ। महाभारत, गीता और पौराणिक साहित्यमें अर्जुनके लिए कौन्तेय, गुडाकेश, धनंजय, विष्णु, किरीटिन्, श्वेतवाहन, पाकशासन, सव्यसाचिन्, पार्थ, बीभत्सु आदि इनके नाम मिलते हैं। महाभारत तथा पुराणोंमें अर्जुन और कृष्णको क्रमशः नर-नारायण रूपमें भी अभिहित किया गया है।

भक्ति युगके कृष्णपरक भक्त कवियोंमें सूरदासने अर्जुनके व्यक्तित्वमें भक्तिभावकी प्रतिष्ठा करते हुए 'भागवत'-के अनुकरणपर, सूरसागरमें उनकी कथा वर्णित की है। महाभारत एवं पौराणिक मान्यताके अनुसार अर्जुन और कृष्णकी नर-नारायणकी कल्पनाके आधारपर उन्होंने द्रौपदी-को नर-नारी नामसे उल्लेख किया है (दे० सू० सा० दशमस्कन्ध उत्तरार्द्ध)। भागवतके भाषानुवादोंमें (दे० 'अक्रूर'में दी गयी सूची) अर्जुनकी कथा उसीके अनुकरण-पर मिलती है। आधुनिक युगके कृष्ण कथा-काव्योंमें 'कृष्णायन' (दे० पूजा, गीता, जप, आरोहण कांड)के अन्तर्गत अर्जुनका आदर्शपरक पुरुषार्थ और व्यक्तित्व रचनाके उपनायकके रूपमें उभरा हुआ मिलता है।

अर्जुन २–हैहय राजा कृतवीर्यके पुत्र जो कार्तवीर्य नामसे प्रसिद्ध है।

अर्जुन ३–कृष्णके एक गोप मित्र।

अर्जुन ४–एक मध्यकालीन प्रसिद्ध वैष्णव भक्त। —रा० कु०

अर्जुनदास केडिया–सेठ अर्जुनदास केडिया हिन्दीमें अलंकारशास्त्रीके रूपमें माने जाते है। इनका जन्म राजपूतानाकी जयपुर रियासतके 'महनसर' नामक ग्राममें सन् १८५७ ई० में हुआ था। ये अग्रवाल वैश्य थे। इनका बाल्यकाल इनके पिता द्वारा बसाये गये 'रतननगर' नामक शहरमें व्यतीत हुआ। कवि स्वामी गणेशपुरी इनके काव्य-गुरु थे। इन्होंने संस्कृत, फारसी, गुजराती, गुरुमुखी और उर्दू तथा हिन्दीका अच्छा अध्ययन किया था। ज्योतिष, वैद्यक आदिमें भी इनकी अच्छी गति थी।

केडियाजी हिन्दीके कवि और काव्यशास्त्रके पण्डित दोनों रूपोंमें परिचित हैं। 'काव्य-कलानिधि' नामसे इन्होंने अपनी कविताओंका संचयन किया था जो तीन भागोंमें है। प्रथम भागकी शृंगारी कविताओंका शीर्षक 'रसिक रंजन' है। द्वितीय भागको 'नीति-नवनीत' तथा तृतीय भागको 'वैराग्य वैभव' नाम लेखकने दिया था। किन्तु 'भारती भूषण' नामक अलंकार ग्रन्थ ही इनकी प्रसिद्ध कृति है, जिसकी रचना १९२८ ई० में हुई थी। इसमें अलंकार-शास्त्रका विवेचन ही केडियाजीका अभिप्रेत रहा है। —नि० ति०

अर्ध कथानक–अर्ध कथानककी रचना जैन कवि बनारसी-दास (सन् १५८६-१६४३) ने सन् १६४१ ई० में की। अर्ध कथानक प्राप्त हिन्दी साहित्यमें सबसे प्राचीन पद्य-बद्ध आत्मचरित है। इस महत्त्वपूर्ण कृतिके दो संस्करण निकल चुके हैं—प्रयाग विश्वविद्यालयकी हिन्दी परिषद्‌से डॉ० माताप्रसाद गुप्त द्वारा सम्पादित सन् १९४३ ई० में तथा हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बईसे सन् १९४३ ई० में जिसके सम्पादक हैं स्व० नाथूराम प्रेमी। प्रेमीजीके संस्करणमें लेखककी जीवनी आदिसे सम्बन्धित अनेक ज्ञातव्य बातें भी दी हुई है, अतः गुप्तजीके संस्करणकी तुलनामें प्रेमीजीका संस्करण महत्त्वपूर्ण है। बनारसीदासने इस कृतिकी रचना सन् १६४१ में की थी, कृतिमें उन्होंने रचनाकालका उल्लेख किया है—"सोलहसै अठ्ठानवे, संवत् अगहन मास। सोमवार तिथि पचमी, सुकल पक्ष परगास।" 'अर्ध कथानक' नामके सम्बन्धमें उन्होंने कहा है कि वर्त-मान समयमें मनुष्यकी आयुका परिमाण ११० वर्ष है, उन्होंने उसकी आधी अवस्था, पचपन वर्षका, अपना विवरण दिया है, इसीसे बनारसीदासके चरित्रका यह अर्ध कथानक है। यथा—

"अपना चरित कहौ विख्यात। तब तिनि बरस पच पंचास॥ परिमिति दसा कही मुख भाषा। आगे ज्यु कछु होइगी और॥ तैसी समुझैंगे तिस ठौर। वरतमान-नर-आउ वखान॥ बरस एक सौ दस परवान। तातै अरध कथान यहु बानारसी चरित्र"। 'अर्ध कथानक' ६७५ छंदोंमें समाप्त हुआ है।

बनारसीदासने अपने जीवनके प्रसंगमें अनेक ऐसी घट-नाओंका उल्लेख किया है जिनसे तत्कालीन परिस्थितिका सजीव परिचय मिलता है। उस समय व्यापारियों विशेष-कर हिन्दुओंकी स्थिति संकटापन्न रहती थी। ठगों और चोरोंकी कमी नहीं थी। मुसलमान शासक मनमाना व्यवहार करते थे।

आत्मकथा कहनेके लिए जैसी निर्भीकताकी आवश्य-कता होती है, वह बनारसीदासमें थी। अपनी संकटपूर्ण स्थिति, जीवनके उतार-चढ़ावों और दुर्बलताओंका जिस साहस और सरलतासे उन्होंने चित्रण किया है उससे कृतिका मूल्य बहुत बढ़ गया है। बनारसीदासका परिवार समृद्ध और सम्भ्रान्त था किन्तु उन्हें सारे जीवन व्यापारके लिए इधरसे उधर भागना पड़ा। उन्होंने शिक्षा थोड़ी ही पायी थी किन्तु कविता करनेकी उनमें प्रतिभा थी। अपने उच्छृंखल प्रेमी जीवनका भी उन्होंने उल्लेख किया है जिसका उन्हें भारी मूल्य चुकाना पड़ा था। अनेक प्रकारके अन्ध-विश्वास उस समय प्रचलित थे और बनारसीदास

स्वयं भी उनमें विश्वास करते थे। एक संन्यासीके दिये हुए मंत्रका जाप शौचालयमें बैठकर नियमित रूपसे एक वर्ष तक वे इस आशामें करते रहे कि मन्त्र-सिद्धिके पश्चात् उन्हे प्रतिदिन एक दीनार पड़ा मिलेगा। यज्ञोपवीतधारी ब्राह्मणोंका उनके समयमें सम्मान था—चोर ब्राह्मणोंको नहीं लूटते थे। अकबरकी लोकप्रियताका भी उन्होंने उल्लेख किया है। मृगावती-मधुमालती कथाकृतियाँ लोकप्रिय थी। सती तथा प्रेतोंकी पूजामें लोग विश्वास करते थे।

कृतिमें अनेक नगरों और गाँवोंका उल्लेख है, जहा बनारसीदासको व्यापारके लिए यात्राएँ करनी पडी थीं। इलाहाबादको इलाहाबास कहा जाता था। आगरा, जौनपुर, पटना, बनारस व्यापारके अच्छे केन्द्र थे। अपनी कृतिकी भाषाको कविने 'मध्यदेशकी बोली' कहा है। उनकी भाषाका मूल ढाँचा ब्रजभाषाका है जिसमे खड़ीबोलीका भी पुट मिलता है। कृति अत्यन्त सहज और सरल शैलीमें लिखी गयी है। अलंकारोंके प्रयोगका प्रयास उसमे नही है, न कवि-कल्पनाके ही दर्शन होते हैं। स्वाभाविकता और आत्मीयता बनारसीदासकी शैलीके आकर्षक गुण हैं। उनकी शब्दावलीमे अरबी, फारसीके प्रचलित अनेक शब्दोंका प्रयोग हुआ है। उनकी शैलीकी दूसरी विशेषता है लोकोक्तियोंका प्रयोग; जैसे—"बहुत पढे बाभन अरु भाट, बनिक पुत्र तो बैठे हाट। बहुत पढे सो माँगे भीख, मानहु पूत बडेनि की सीख।" (अर्ध क० पद्य २००)। 'नदी नाव संजोग ज्यों, बिछुरि मिले नहिं कोई'। (अर्ध क० पद्य २४३)।

'अर्ध कथानक'का प्रधान छन्द चौपाई और दोहा है। चौपाई और दोहोके प्रयोगमे किसी निश्चित संख्या-क्रमका पालन नहीं किया गया है। यथा सुविधा कही अनेक दोहे एक साथ रखे गये हैं, कहीं बीच-बीचमें चौपाइयाँ रखी है, फिर दोहे। अन्य छन्दोंमें कवित्त (जिसको बनारसीदासने सवैया इकतीसा कहा है—छन्द २, २९, ४८६), छप्पय (छन्द ७०) के प्रयोग हुए है।

[सहायक ग्रन्थ—अर्ध कथानक : सम्पादक मानाप्रसाद गुप्त, इलाहाबाद, १९४३; अर्ध कथानक : सम्पादक पं० नाथूराम प्रेमी, बम्बई, १९४३; हिन्दी जैन साहित्यका इतिहास : कामताप्रसाद जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी।] —रा० तो०

अलंकार पंचाशिका—'अलंकार पंचाशिका'को कुछ लोगोंने प्रसिद्ध मतिरामकृत न मानकर किन्हीं दूसरे मतिरामकी रचना मानी है। इसका प्रधान प्रमाण यह दिया जाता है कि 'रसराज', 'ललितललाम' और 'सतसई'मे काफी समान दोहे मिलते है तथा कुछ छन्द भी ऐसे हैं जो प्रथम दो ग्रन्थोंमें समानरूपसे पाये जाते हैं। अतः यदि 'अलंकार पंचाशिका' भी मतिरामकी होती, तो उसमें भी कुछ छन्द ऐसे मिलते, जो दूसरे ग्रंथके हों। परन्तु यह तर्क बहुत ठोस नहीं है। केवल ५० अलंकारोंका वर्णन करनेवाले कुल ११६ छन्दोंके ग्रन्थमे आवश्यक नहीं कि दूसरे ग्रन्थोंके भी छन्द रखे जायें। साथ ही एक बात यह भी हो सकती है कि ग्रन्थकी रचनाके समय तक मतिरामके पूर्ववर्ती ग्रन्थ अति प्रसिद्ध हो चुके होंगे और कुमायूँ नरेश महाराज उदोतचन्द्रके पुत्र ज्ञानचन्द्रने यह कहा होगा कि वे नवीन छन्दोंपर ही पुरस्कृत करेंगे, अतः 'अलंकार पंचाशिका'में पुराने छन्दोंका समावेश नहीं किया गया।

इस प्रसंगमें 'मतिराम : कवि और आचार्य'के लेखकका विचार है कि भाषा और भावकी दृष्टिसे यह सिद्ध हो जाता है कि यह मतिरामका ही लिखा गया ग्रन्थ है (पृ० ५८-६०)। अनेक भाव जो 'अलंकार पंचाशिका'में ज्ञानचन्द्रकी प्रशंसामें लिखे गये हैं, वही है जो 'ललितललाम'में भावसिंहकी प्रशंसामे। इस प्रकार इनका मत है कि यह प्रसिद्ध मतिरामकृत ग्रन्थ है और कुमायूँके राजा ज्ञानचन्द्रके आश्रयमे लिखा गया। यह बात ग्रन्थके प्रारम्भिक दस छन्दोंसे प्रकट हो जाती है जो आश्रयदाता और कवि-परिचयमे सम्बन्धित हैं। साथ ही कुमायूँ नरेशकी दान-वीरता एवं विद्वानोंका सम्मान इतिहास-प्रसिद्ध था।

'अलंकार पंचाशिका'का रचनाकाल १६९० ई० है जो निम्नलिखित दोहेसे स्पष्ट हो जाता है—"संवत् सत्रहसै जहाँ, सैतालिस नभ मास। अलंकार पंचासिका, पूरन भयो प्रकास॥११६॥" इस ग्रन्थकी रचना 'कुवलयानन्द' और 'काव्यप्रकाश'के आधारपर हुई है। १०५ छन्दोंमें अलंकारोंके लक्षण और उदाहरण दिये गये हैं। 'अलंकार पंचाशिका'के उदाहरणोंमे एक छन्दको छोड़कर अन्य समस्त छन्द आश्रयदाताकी प्रशंसामे रचे गये है।

विचार करनेपर भाषा और कवित्वकी दृष्टिसे 'पंचाशिका'-के छन्द काफी शिथिल है। रचनाकालके विचारसे यह ग्रन्थ 'ललितललाम'के बादका है; फिर भी 'ललितललाम'-के समान प्रौढ़, प्रसन्न एवं प्रतिभापूर्ण रचना 'अलंकार पंचाशिका' नही है। महेन्द्रकुमारने भावसाम्यकी बात कही है, पर वह इसी तथ्यको सिद्ध करती है कि वे दूसरे मतिरामके है। मतिरामने 'रसराज'के छन्द 'ललित-ललाम'मे रख दिये है, यह बात सत्य है; पर 'रसराज' के किसी छन्दके भावके आधारपर दूसरा छन्द 'ललित ललाम'मे रचनेकी पुनरावृत्ति नही की। यह कार्य तो कोई दूसरा ही व्यक्ति कर सकता है। ऐसी दशामें 'अलंकार पंचाशिका' प्रसिद्ध मतिरामकी रची हुई न होकर 'वृत्त-कौमुदी'के रचयिता वत्सगोत्रीय वनपुर निवासी मतिरामकी है। दोनो मतिरामोंकी शैलीपर विचार करनेसे यह स्पष्ट हो जाता है कि दूसरे मतिरामका काव्य शिथिल है।

'अलंकार पंचाशिका'में शृंगार रसकी रचनाएँ नहीं है। केवल एक शृंगारिक छन्द है। शेष छन्द ओजपूर्ण वीर रसके है; पर वे प्रसाद गुणसे भी युक्त हैं। छन्द दोष भी ग्रन्थके अनेक छन्दोमें दिखलाई देता है। 'अलंकार पंचाशिका' और 'छन्दसार संग्रह' या 'वृत्तकौमुदी'के छन्द अवश्य ही एक शैलीके जान पडते है।

[सहायक ग्रन्थ—मतिराम—कवि और आचार्य : महेन्द्र कुमार; महाकवि मतिराम : त्रिभुवन सिंह।] —भ० मि०

अलंकार मंजरी—सेठ कन्हैयालाल पोद्दारने १८९६ई०में अलंकारकी एक पुस्तक 'अलंकार प्रकाश' लिखी। १९२३ई० में इसमें काव्यके सभी अंगोंका विवेचन करके इसको एक ग्रन्थ 'काव्य-कल्पद्रुम'का रूप दे दिया गया। इसके एक पूर्वरूपका प्रकाशन वेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बईमे १९०२ ई० मे हुआ

था। 'काव्य-कल्पद्रुम'की एक मंजरी (भाग) 'अलंकार-मंजरी' है। यह अलंकार विषयकी सबसे पूर्ण एवं उपादेय पुस्तक है। लेखकने संस्कृत साहित्यके सुप्रसिद्ध ग्रन्थोंके आधारपर इस पुस्तककी रचना की है; इसमें विषय विस्तारके साथ-साथ विषय प्रतिपादन भी पर्याप्त मात्रामें है।

५९ पृष्ठोंके प्राक्कथनमें लेखकने 'अलंकार साहित्यका संक्षिप्त इतिहास' प्रस्तुत किया है। संस्कृत तथा हिन्दीके प्राचीन आचार्योंकी तो प्रशंसा है, परन्तु समकालीन लेखकोंकी कटु आलोचना है। 'अलकार-मजरी'में 'काव्य-कल्पद्रुम'के अन्तिम तीन स्तवक है। शब्दालंकार ६ है—वक्रोक्ति, अनुप्रास, यमक, श्लेष, पुनरुक्तवदाभास, चित्र। अर्थालंकार १०० हैं। अन्तमें संसृष्टि-संकरका विवेचन है।

अलंकार लक्षण तथा विवेचन गद्यमें है। उदाहरण स्वरचित, अनूदित तथा अन्य रचित तीनों प्रकारके हैं। गद्य तथा खडीबोलीके उदाहरण अपवाद-मात्र ही है। इस रचनापर संस्कृतका अत्यधिक प्रभाव है और युग-प्रवाहकी उपेक्षा है। पाण्डित्यकी दृष्टिसे हिन्दीमे अलंकार विषयकी यह सबसे प्रौढ रचना है। —ओ०

अलंबुषा—सौन्दर्य तथा नृत्य कलामें बेजोड एक देवांगना थी। एक बार वह ब्रह्माके लोकमे नृत्य कर रही थी। विधूम नामक गन्धर्व उसे देखकर मुग्ध हो गया। कामातुर हो दोनों ही ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवताओंकी उपस्थिति भूलकर अवांछनीय चेष्टा करने लगे। फलतः ब्रह्मा (मतान्तरमें इन्द्र) ने उन्हें मनुष्य होनेका शाप दे डाला। कालान्तरमें अलंबुषा राजा कृतवर्माके वंशमे मृगावती हुई और विधूम पाण्डव कुलमें सहस्रानीक हुआ। दोनोका विवाह हुआ। मृगावतीकी गर्भावस्थामें नररक्तमे स्नान करनेका दोहद हुआ। स्नानोत्तर कोई पक्षी उसे मासपिण्ड समझकर लेकर उड गया। उसकी रक्षा एक दिव्य पुरुषने की और उस पुरुषने उसे उदयगिरिमें जमदग्निके आश्रममे रखा। उसमे तेजस्वी उदयनकी उत्पत्ति हुई। एक दिन एक सँपेरेको साँप पकडते देखकर, मदारीको अपनी माँका कंकण प्रदान कर सर्पको छुडा दिया। कंकण लिए हुए मदारी सहस्रानीकके राज्यमें पहुँचा जहाँ वह उसका विक्रय करते हुए पकडा गया। १४ वर्षोंकी अवधिके बाद रानीका पता पाकर सहस्रानीक उससे उदयनगिरिमें जा मिला। वियोगका कारण तिलोत्तमाका शाप था। उदयनको राज्यभार देकर मृगावती और सहस्रानीकने चक्रतीर्थमें स्नान किया और शापमुक्त होकर पूर्व योनियाँ प्राप्त की। —ज० प्र० श्री०

अलका—प्रसादकृत नाटक 'चन्द्रगुप्त' की पात्र। तक्षशिलाकी राजकुमारी अलका देश-भक्ति, वीरता एव चतुरतासे विभूषित होनेके कारण 'चन्द्रगुप्त'के स्त्री-पात्रोंके बीच अपना एक प्रभावशाली महत्त्व रखती है। वह सिंहरण, चन्द्रगुप्त और चाणक्यसे प्रभावित होकर स्वदेश-सेवाको अपना कर्त्तव्य निर्धारित करती है। उसके पिता और भाई विदेशियोंसे अभिसन्धिकर अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते है। उसका भाई आंभीक यवनोकी सहायताके लिए उद्भाण्डमें सिन्धुपर सेतु बनवा रहा है। अलका उसका मानचित्र बनवाकर देशभक्त सिंहरणको अर्पित करती है। मानचित्रको प्राप्त करनेमे उसकी सूझ-बूझ, निर्भीकता एव साहसका सुन्दर परिचय मिलता है। इस प्रकार वह मानचित्र सिंहरणको सौंपकर अपनी देश-भक्तिके दायित्वका निर्वाह सफलतापूर्वक करती है। अलका स्वदेश हितके लिए अपने परिजनोंसे भी विद्रोह करती है। वह पर्वतेश्वरकी सेनामें नटीके रूपमें वेष बदलकर अपना कार्य सिद्ध करती है। मालव-दुर्गकी रक्षामें एक वीर सैनिककी भाँति तत्पर होकर अपने पराक्रमसे अनेक यवन सैनिकोंको घायल करके सिकन्दरपर भी प्रहार करती है। सिल्यूकसके आक्रमणके समय हाथमें आर्यपताका धारणकर स्वदेश-प्रेमके गीत गाते हुए जनतामे उत्साह फैलाती है। आम्भीक भी उसके इस ओजस्वी व्यक्तित्वसे प्रभावित होकर अपने पूर्व कार्योंके प्रति खेद प्रकट करता है। आचार्य चाणक्य अलकाके स्वदेश-हित, त्याग एवं कष्टोंकी सराहना करते हुए नहीं थकते : 'मेरी लक्ष्मी—अलकाने आर्य गौरवके लिए क्या-क्या कष्ट नहीं उठाये।' अलकामे वाक्चातुरी और कार्य-कुशलता भी यथेष्ट मात्रामें है। वह वन-प्रदेशमे सेनापति सिल्यूकसको धोखा देकर उसके चंगुलमे निकल जाती है। पर्वतेश्वरको अपनी वाक्चातुरीसे प्रभावित कर थोडे समयके लिए पंचनदकी शासिका बनती है। इस प्रकार वह बडे कौशलसे सिंहरणको कारागारसे मुक्त कराकर सिकन्दरके लिए पर्वतेश्वरकी सैनिक सहायताको रुकवाकर देशके हितमे योग देती है। प्रसादने स्वदेशानुरागिणी अलकाके चरित्रका निरूपण करनेमे पूर्ण सफलता प्राप्त की है। —के० प्र० चौ०

अलबेली अलि—ब्रजभक्तिके उन्नायकोमे अलबेली अलि संस्कृत भाषाके परम्परागत विद्वानोंमे माने जाते है। वंशी अलिके वे शिष्य थे। वंशी अलि अपनी उपासना पद्धतिको नवीन रूप देनेवाले प्रसिद्ध महात्मा हुए है। विष्णुस्वामीकी दार्शनिक विचारधारासे वे प्रभावित थे। अलबेली अलिने संस्कृत भाषामें 'श्रीस्तोत्र' नामक काव्य यमक और अनुप्रासकी छटामे लिखा है। ब्रजभाषामे इनकी 'समय प्रबन्ध पदावली' प्रसिद्ध है। पदावलीमे राधाकृष्णकी रूपमाधुरीका बडे सरस रूपमें वर्णन किया गया है। राधाके रूप दर्शनको ही मोक्षसुख मानने वाले ब्रजके भक्तोमे उनके अनेक पद गाये जाते है। रूपसुधा ही भक्तोका भोजन है। उनकी मान्यता है कि—"नेही नेह बिना नहि जानत, चातक स्वाति बिन किनकोरी। अलबेली अलि रसिकन जीवन नैननि नैन मिलन इनकोरी।" —वि० स्ना०

अलाउद्दीन—'पदमावत'का सुल्तान अलाउद्दीन एक ऐतिहासिक व्यक्ति है, इसमे संदेह नहीं। यह तुर्कोंके खिलजी वंशका बादशाह था जो अपने चाचा सुल्तान जलालुद्दीन खिलजी (सन् १२९० ई०) की हत्या कराकर उसका उत्तराधिकारी बना और दिल्लीके सिंहासनपर सन् १२९६ ई० से आरूढ हुआ तथा सन् १३१६ ई० अर्थात् लगभग २० वर्षों तक राज्य करता रहा। इस प्रेमाख्यानके अन्तर्गत यह एक प्रतिनायकके रूपमें आता है और इसके नायक राजा रतनसेनके गढ चित्तौडपर विजय प्राप्त कर उसके नाशका भी कारण बनता है। यहींपर इसका प्रथम परिचय हमें उस समय मिलता है जब इसे राघवचेतन दिल्लीके दरबारमें पाता है और देखता है कि "संसारमें जहाँ

तक सूर्य तपता है वहाँ तक यह राज्य करता है" तथा "चारों खण्डोंके राजा वहाँ आते हैं और ऐसी भीड़ होती है कि वे दरबारमें उसे प्रणाम करनेका अवसर भी नहीं पाते" ३९ : १। किन्तु 'भिखारी' राघवचेतन वहाँ प्रवेश पा जाता है और अपने हाथमें लिये हुए पदुमावती वाले कंगन द्वारा, उसे आकृष्ट करके, फिर उस रूपवती रानीके प्रति इसकी जिज्ञासा जागृत करने तथा इसपर उसे पानेकी धुन सवार करा देनेमें भी वह सफल हो जाता है। अलाउद्दीनको, उस परम सुन्दरीके अनुपम सौन्दर्यकी प्रशंसा सुनते ही, मूर्छा आ जाती है (४१-२०) और संज्ञा प्राप्त करते ही, यह राघवचेतनको अनेक अनमोल वस्तुएँ पारितोषिक रूपमें देने लगता है तथा उससे यह भी कह देता है—"जिस दिन मैं पदुमिनीको पा जाऊँगा उस दिन, हे राघव, मैं तुझे चित्तौडके सिंहासनपर बैठा दूँगा।" और इसके साथ यह एक पत्रमें वहाँ लिख भी भेजता है, "सिंहलकी जो पदुमिनी तुम्हारे पास है, उसे मैं शीघ्र यहाँ चाहता हूँ" (४१-२२)। फिर तो राजा रतनसेनके इसे अस्वीकार कर देनेपर, इसकी ओरसे उसपर चढाई कर दी जाती है और चित्तौडपर आठ वरसोतक 'छेका' पड़ा रहता है (४३-१८)। कुछ दिनोंतक मेलकी बातें भी चलती हैं और इसका वहाँपर सम्मानके साथ स्वागत किया जाता है, किन्तु जब यह चौपड खेलते समय पदुमावतीका प्रतिबिम्ब किसी दर्पणमें देख लेता है और बेसुध हो जाता है (४६-१८) तो इसे छल करनेकी सूझती है और तदनुसार यह वहाँसे चलते समय पहुंचाने आये हुए रतनसेनको दुर्गके फाटकपर ही बन्दी बना लेता है और उसे अपने यहाँ लाकर लोहेकी बेडियाँ तक पहना देता है (४७-३)। यह एक बार किसी पातुरको जोगियाके वेषमें पदुमावतीके पास भेजकर, उसे बहकानेकी चेष्टा भी करता है, किन्तु सफल नहीं हो पाता और फिर अन्तमें, जब राजाकी मृत्यु हो जानेपर यह चित्तौड पहुँचता है तो देखता है कि वह रानी अपनी अन्य सपत्नियोंके साथ सती हो चुकी है (५७-४)।

इस प्रकार जायसीने अलाउद्दीनको अपने प्रेमाख्यानके अन्तर्गत अत्यन्त ऐश्वर्यशाली, किन्तु परनारी लोलुपके रूपमें भी चित्रित किया है। इतिहासके अनेक ग्रन्थोंमें भी इसकी उस चित्तौडकी चढाई (सन् १३०३ ई०)का मुख्य कारण पदुमावतीको प्राप्त करनेकी लालसा ही बतलाया गया दीख पडता है और उनमें उपर्युक्त कई घटनाओंका संक्षिप्त विवरण तक दिया गया पाया जाता है परन्तु आश्चर्यकी बात है कि ऐसे प्रसंगोंका कोई भी उल्लेख अमीर खुसरो अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'खजाइनुल फुतूह'में नहीं करता। उसके उल्लेखों द्वारा यही पता चलता है कि, "सोमवार ८ जमादी उस्मानी ७०२ हिजरी (२८ जनवरी १३०३ ई०)को सुल्तानने चित्तौडकी विजयका दृढ संकल्प कर लिया...सुल्तान सेना लेकर चित्तौड पर पहुँच गया।...शाही सेना दो मास तक आक्रमण करती रही, किन्तु विजय प्राप्त नहीं हो सकी।...सोमवार ११ मुहर्रम ७०३ हिजरी (२५ अगस्त १३०३ ई०)को सुल्तान उस किलेमें जहाँ चिड़िया भी प्रविष्ट नहीं हो सकती थी, दाखिल हो गया। इसका दास अमीर खुसरो भी उसके साथ था। राय सुल्तानकी सेवामें क्षमा याचनाके लिए उपस्थित हो गया। उसने रायको कोई हानि नहीं पहुँचायी, किन्तु उसके क्रोध द्वारा ३० हजार हिन्दुओंकी हत्या हो गयी (खि० का० भा०, पृ० १६०)।" अतएव, सम्भव है कि जायसीकी अधिकांश बातें या तो कल्पित हों अथवा किन्हीं ऐसी अनुश्रुतियोंपर आधारित हों जो उसके समय तकके लगभग २५० वर्षोंमें किसी समय यों ही गढ ली गयी हों। अनुमान तो यहाँ तक किया जाता है कि 'पद्मावती प्रसंग'की प्रायः सारी बातें सर्वप्रथम इस कविके ही मस्तिष्ककी उपज बनकर प्रचलित हुई थीं। परन्तु इस सम्बन्धमें कोई अन्तिम निर्णय देनेके लिए हमारे पास पर्याप्त प्रमाण प्रस्तुत नहीं है। जहाँतक अलाउद्दीनके चरित्र-चित्रणका प्रश्न है, इसमें सन्देह नहीं कि जायसीने एक ऐतिहासिक व्यक्तिके स्वभावको, अपने कथानकके अनुरूप अतिरंजित करके ही दिखलाया है।

[सहायक ग्रन्थ—पद्मावत : डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, चिरगाँव, सं० २०१२; नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग ११, १३, १५ वर्ष ६४, काशी; गोरा बादलकी कथा : सं० अयोध्याप्रसाद शर्मा, दारागंज, प्रयाग, सं० १९९१; खिलजीकालीन भारत : सैयद अतहर अब्बास रिजवी, अलीगढ, सन् १९५४ ई०; जायसी ग्रन्थावली : सं० रामचन्द्र शुक्ल, काशी, सन् १९२४ ई०; छिताई वार्ता : सं० डा० माताप्रसाद गुप्त, बनारस, स० २०१५; दि देहली सल्तनत, भारतीय विद्या भवन, बम्बई, १९६०।] —प० च०

अली—अली मोहम्मद साहबके मित्र (सोहाबी) थे। अली रिश्तेमें मोहम्मदके चाचा और दामाद भी थे। इन्हें 'खलीफा'का भी पद प्राप्त हुआ था। अलीके व्यक्तित्वमें वीरता और दानशीलताके गुणोंका समावेश था। अलीकी वीरताकी अनेक कहानियाँ प्रचलित हैं। उदाहरणार्थ खैबरके किलेके फाटकको इन्होंने उखाडकर फेंक दिया था। मुसलमान पहलवान आज भी 'या अली' कहकर कुश्ती लडते हैं (दे० 'काबा-कर्बला')। —रा० कु०

अली अकबर—इमाम हुसैनके लडके थे। इनकी माताका नाम शहरबानो था। हुसैनके साथ ये भी कर्बलाके धर्म-युद्धमें शहीद हुए थे। कहा जाता है कि शहीद होनेके एक दिन पहले इनका विवाह हुआ था। मुहर्रमके त्योहारमें जो 'मेहदी' उठाई जाती है वह इन्हींकी स्मृतिमें होती है (दे० 'काबा-कर्बला')। —रा० कु०

अलीमुहीब खाँ—इनका उपनाम 'प्रीतम' था। ये आगरेके रहनेवाले थे। इनकी जन्मतिथि अज्ञात है। प्रीतमका रचनाकाल १८वीं सदीका पूर्वार्द्ध है। इनकी केवल एक कृति 'खटमल बाईसी' मिलती है, जिसका रचनाकाल उसके रचनाकाल विषयक दोहेसे सन् १७३० है। यह पुस्तिका 'खटमल बाईसी' शीर्षकसे चन्द्रप्रभा प्रेस, काशीसे १८९६ ई० में प्रकाशित हो चुकी है। ऐसा अनुमान है कि इन्होंने और रचनाएँ भी की होंगी, यद्यपि आज वे उपलब्ध नहीं हैं। प्रीतमकी 'खटमल बाईसी' हास्य रसकी रचना है, जिसमें बाईस छन्दोंके कवित्तमें खटमलको आधार मानकर बडे सुन्दर एवं शिष्ट हास्यकी सृष्टिकी

गयी है। कविकी कल्पना शक्ति बड़ी उर्वर है। जैसा कि रामचन्द्र शुक्लने कहा है 'इन्हें एक उत्तम श्रेणीका पथप्रदर्शक कवि माना जा सकता है। पथप्रदर्शक इस मानेमें कि इन्होंने हास्य-रसकी स्वतन्त्र रचनाकी परम्परा चलायी, यद्यपि इनका अनुकरण करनेवाले सम्भवतः कम ही लोग हुए। संस्कृतकी खटमलविषयक सूक्तियोंका इनपर यत्र-तत्र प्रभाव दृष्टिगत होता है।

[सहायक ग्रन्थ—१. हिन्दी साहित्यका इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल; २. खटमल बाईसी : प्रीतम।] —भो० ना० ति०

अवधनाथ–दे० १. 'दशरथ' अथवा २. 'राम', यथा "अवधनाथ गवने अवध"(मा० ६।१।५)। —ज० प्र० श्री०

अवधपति–दे० 'अवधनाथ'—यथा "राम अनादि अवधपति सोई" (मा० १।१२७।३)। —ज० प्र० श्री०

अवधूतेश्वर–शिवका एक नाम। शिवपुराणके अनुसार एक बार बृहस्पति और इन्द्र शिवके दर्शनके लिए चले। शिवने उनकी परीक्षाके लिए भयानक रूप धारण कर उनका मार्ग अवरुद्ध कर दिया। इसपर इन्द्रने अपना वज्र प्रहार किया जिसे शिवने रोक लिया। फलस्वरूप अग्निकी ज्वाला प्रस्फुटित हो गयी। यह अग्नि बृहस्पतिके प्रार्थना करनेपर शान्ति हुई। —ज० प्र० श्री०

अवधेस–दे० 'अवधनाथ', 'दशरथ' अथवा 'राम', यथा—"अवधेसके द्वारे सकारे गई, सुत गोदकै भूपति लै निकसे" (क० १।१)। —ज० प्र० श्री०

अवनिकुमारी–सीताका पर्याय। यथा—"धरि धीरज उर अवनिकुमारी" (मा० २।६४।२)। —ज० प्र० श्री०

अशरफ–एक ख्याति-प्राप्त सूफी सन्त थे। ये पद्मावतके रचयिता मलिक मुहम्मद जायसीके गुरु एव मार्गदर्शक थे। —ज० प्र० श्री०

अशोक–१ : ये रामके अमात्य तथा उच्चकोटिके भक्त थे। ये एक महान् तत्त्वज्ञानी तथा नीति-विशारद भी थे।

२ : इनके पिता बिन्दुसार तथा पितामह चन्द्रगुप्त मौर्य थे। ये २७४ ई० पू० सिंहासनपर बैठे थे किन्तु इनका राज्याभिषेक चार वर्षके उपरान्त हुआ था। सिंहासनपर आरूढ़ होते ही इन्होंने 'प्रियदर्शी' तथा 'देवानाम्प्रिय' जैसी उपाधियाँ धारण कर ली थीं। २६२ ई० पू० के लगभग इन्होंने कलिंगपर आक्रमण किया था और भीषण रक्तपातके बाद उसपर विजय करके उसे अपने राज्यमें मिला लिया था। इस युद्धके परिणामस्वरूप इनके जीवनमें महान् परिवर्तन हुआ। इन्हे युद्धके प्रति ऐसी विरक्ति हुई कि इन्होंने आजीवन युद्ध न करनेका संकल्प कर लिया तथा कुछ समय पश्चात् बौद्ध धर्मकी दीक्षा ग्रहण कर ली। इन्होंने बौद्ध-धर्मके प्रसार और प्रचारमें महत्त्वपूर्ण योग दिया। इनके पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा इनके आदेशानुसार लंकामें बौद्धधर्मके प्रचारके लिए गये थे। आधुनिक हिन्दी साहित्यमें अनेक काव्य और नाटक अशोककी जीवनीसे सम्बन्धित लिखे गये हैं। —ज० प्र० श्री०

अशोकवाटिका–रावण जब सीताको अपहृत कर लंका ले गया तो उसने उन्हें अनेक प्रकारके प्रलोभन दिये किन्तु जब वह अपने समस्त प्रयत्नोंमें असफल रहा तो अन्ततोगत्वा उसने सीताको इसी विशेष स्थानमें निर्वासित किया। विभीषणसे सीताका पता जानकर हनुमान् इसी वाटिकाके एक अशोक वृक्षपर छिपकर बैठे थे। हनुमान्ने अशोकवाटिकामें रावणपक्षको सर्वप्रथम अपनी अपूर्व वीरताका परिचय दिया था तथा अशोकवाटिकाको उजाड़ डाला था—"तेहि अशोक वाटिका उजारी" (मा० ५।१७।३)। —ज० प्र० श्री०

अश्क–दे० उपेन्द्रनाथ 'अश्क'।

अश्वकेतु–कौरव पक्षका साथ देने वाले एक वीर राजा। महाभारत युद्धमे अर्जुनके पुत्र अभिमन्युने इनका संहार किया था (दे० 'जयद्रथ-वध' : मैथिलीशरण गुप्त)। —ज० प्र० श्री०

अश्वत्थामा–इनके पिताका नाम द्रोण तथा माताका नाम कृपा था जो शरद्वान्की लडकी थीं। जन्म ग्रहण करते ही इनके कण्ठसे हिनहिनानेकी सी ध्वनि हुई जिससे इनका नाम अश्वत्थामा पड़ा। महाभारत युद्धमें ये कौरव-पक्षके एक सेनापति थे। एक बार रातमे ये पाण्डवोंके शिविरमें गये और सोतेमें अपने पिताके हनन करनेवाले धृष्टद्युम्न और शिखंडी तथा पाण्डवोंके पाँचों लडकोंको मार डाला। पुत्र-वियोगके कारण द्रौपदी करुण विलाप करने लगी। इसपर क्षुब्ध हो अश्वत्थामाको अर्जुनने चुनौती दी। अश्वत्थामाने अर्जुनपर ऐशिकास्त्रसे आक्रमण किया। अर्जुनने प्रत्याक्रमणके लिए ब्रह्मशिरास्त्र उठाया, तब ये भागे "अश्वत्थामा भय करि भग्यो" आदि (सूर० पद २८९)। व्यास, नारद, युधिष्ठिर आदिने अर्जुनको अस्त्र-प्रयोग करनेसे रोका। द्रौपदीने इनकी मणि उतार लेनेका सुझाव दिया। अतः अर्जुनने इनकी मुकुटमणि लेकर प्राणदान दे दिया। अर्जुनने वह मणि द्रौपदीको दे दी जिसे द्रौपदीने युधिष्ठिरके अधिकारमें दे दिया। —ज० प्र० श्री०

अश्वपति–ये कैकय देशके अधिपति थे। दशरथकी सुन्दर रानी कैकेयी इन्हींकी कन्या थीं। —ज० प्र० श्री०

अश्वमेध–यह प्राचीन कालका एक महान् यज्ञ था। इसमे घोड़ेके मस्तकपर जय-पत्र बाँधकर भू-मण्डलकी दिग्विजय की जाती थी। दिग्विजयके बाद घोड़ेकी चर्बीसे हवन किया जाता था। यह यज्ञ एक वर्षमें समाप्त होता था। —ज० प्र० श्री०

अश्वसेन–सर्पराज तक्षकके पुत्र थे। पाण्डवों द्वारा खाण्डववनमें आग लगाये जानेपर इनकी प्राण-रक्षा करनेमें इनकी माताको प्राणोंकी आहुति देनी पडी। इनका आधा शरीर जल चुका था जबकि इन्द्रने मूसलधार वर्षाकर इनकी जीवन-रक्षा की। महाभारत युद्धके समय माँकी मृत्युके प्रतिशोधार्थ ये कर्णके तूणीरमें निवसित हो गये। कर्णने जब इनका सन्धान अर्जुनपर किया तो अर्जुनने अपना सिर झुका लिया जिससे केवल उनके मुकुटको क्षति पहुँची और इनकी इच्छा पूरी न हो सकी। इसपर इन्होंने कर्णको अपना रहस्य बताया और पुनः शर रूपमे प्रयुक्त होनेकी प्रार्थना की जिसे कर्णने अस्वीकृत कर दिया। अन्तमें ये प्रतिकारके लिए अर्जुनकी ओर बढ़े किन्तु मारे गये। —ज० प्र० श्री०

अश्विनी–१ : प्रजापति दक्षकी लड़की थीं। इनका विवाह चन्द्रमाके साथ सम्पन्न हुआ था। मतान्तरसे ये त्वष्टाकी

पुत्री थीं। इनका प्रारम्भिक नाम प्रभा था। इनका एक अन्य नाम संज्ञा भी है। ये सूर्यकी पत्नी थीं तथा इनकी दो सन्तान यम और यमुना थे। एक बार सूर्यका तेज सहन करनेमें असमर्थ होकर ये अपनी छाया तथा सन्ततिको त्यागकर अश्विनीका रूप धारण कर तप करने लगीं। तभीसे इनका नाम अश्विनी पड़ा। प्रभाकी छायासे भी सूर्यको दो सन्तान हुए—शनि और ताप्ती। अपनी सन्तति पाकर छाया प्रभाके पुत्रोंका अनादर करने लगी। इस प्रकार प्रभाके भागनेकी बात सूर्यको ज्ञात हुई। सूर्य इस रहस्यको जानकर अश्व रूपमें अश्विनीके पास गये जिसमे अश्विनीकुमार उत्पन्न हुए (दे० 'अश्विनीकुमार')।

२ : एक नक्षत्र है जिसका मुख अश्वका-सा माना जाता है। आश्विन मासकी शरत् पूर्णिमाको चन्द्र इसी नक्षत्रमें होता है। मतान्तरमे यह तिथि कार्त्तिकी पूर्णिमाको होती है। —ज० प्र० श्री०

अश्विनीकुमार–अश्विनीमे उत्पन्न, सूर्यके औरस पुत्र, दो वैदिक देवता थे। ये देव चिकित्सक थे। उषाके पहले ये रथारूढ होकर आकाशमे भ्रमण करते है और सम्भव है इसी कारण ये सूर्य-पुत्र मान लिये गये हों। पुराणोंके अनुसार नकुल और सहदेव इन्हींके अशसे उत्पन्न हुए थे। निरुक्तकार इन्हे 'स्वर्ग और पृथ्वी' और 'दिन और रात'के प्रतीक कहते है। राजा शर्यातिकी पुत्री सुकन्याके पाति व्रतमे प्रसन्न होकर महर्षि च्यवनका इन्होंने वृद्धावस्थामे कायाकल्प करा उन्हे चिरयौवन प्रदान किया था। चिकित्सक होनेके कारण इन्हे देवताओका यज्ञ भाग प्राप्त न था। च्यवनने इन्द्रसे इनके लिए सस्तुति कर इन्हे यज्ञ भाग दिलाया था। दध्यंग ऋषिके सिरको इन्होंने ही जोडा था। पर-ब्रह्म रामके विराट् रूपका उल्लेख करते हुए मन्दोदरीने रावणके समक्ष इन्हे रामका लघु-अंश बताया है—"जासु घ्रान अश्विनी कुमारा" (मा० ६।१५।२)। —ज० प्र० श्री०

अष्टकृष्ण–वल्लभ सम्प्रदायमे कृष्णके आठ रूप माने जाते हैं जिनके नाम इस प्रकार है—१. श्रीनाथ, २. नवनीतप्रिय, ३. मथुरानाथ, ४. विट्ठलनाथ, ५. द्वारकानाथ, ६. गोकुलनाथ, ७. गोकुलचन्द्र तथा ८. मदनमोहन। —ज० प्र० श्री०

अष्टयाम १–वैष्णव सम्प्रदायके मन्दिरोमे सेवा-पूजा विधिके अन्तर्गत अष्टयाम या आठ प्रहरकी सेवा-पूजाका विधान पाया जाता है। इस सम्प्रदायमें आठ पहरकी पूजाका बहुत ही विशद विस्तार पाया जाता है। गोस्वामी विट्ठलनाथने इसको व्यापक बनानेके लिए इसमें एक और वैभवकी सामग्रीका संकलन किया और कीर्तनको भी इससे जोडकर पद रचनाके लिए अवकाश कर दिया। कीर्तनका आठ पहरकी सेवा-पूजासे सम्बन्ध जुड़ जानेपर अन्य कवियोने 'अष्टयाम' नामसे ग्रन्थ रचना करना प्रारम्भ कर दिया। वृन्दावनके वैष्णव भक्ति सम्प्रदायोंमें अष्टयाम नामसे शताधिक रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। वल्लभ सम्प्रदायमें आठ समयकी कीर्तन-सेवा इस प्रकार है—मंगला, श्रृंगार, ग्वाल, राजभोग, उत्थापन, भोग, सन्ध्या-आरती, शयन। इन आठ समयोंके अनुसार पद रचना करके उन्हें एक ग्रन्थमें संकलित करनेको ही अष्टयाम कहते हैं।

राधावल्लभ, निम्बार्क, हरिदासी और गौड़ीय सम्प्रदायोके वृन्दावनस्थ मन्दिरोंमें भी आठ पहरकी सेवा-पूजाका क्रम चलता है और उसीके अनुसार कीर्तन या समाजके लिए पद रचनाकी पद्धति प्रचलित है। राधावल्लभ और निम्बार्क सम्प्रदायमें अष्टयाम ग्रन्थ बहुत लिखे गये हैं। इस सम्प्रदायके अनुसार अष्टयाम सेवा इस प्रकार है—मंगला, श्रृंगार, राजभोग, उत्थापन, सन्ध्या, शयन, शैया। इसीके आधारपर ध्रुवदास, नेही नागरीदास, अनन्यअली, चाचा वृन्दावनदास आदि अनेक अन्य कवियोंने अष्टयाम ग्रन्थोंकी रचना की है। —वि० स्ना०

अष्टयाम २–नाभादासकृत 'अष्टयाम' या 'रामाष्टयाम'का प्रकाशन वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बईसे सन् १९४४ में हुआ। एक प्रकाशन स्वामी परमानन्दने अयोध्यासे सन् १९३५ ई०मे कराया था। रचना ब्रजभाषा पद्यमें है। रामाष्टयाम' ब्रजभाषा गद्यमे भी लिखा कहा गया है, परन्तु अभी तक उसका प्रकाशन नहीं हो सका है। 'अष्टयाम'के रचनाकालका कोई संकेत ग्रन्थमे नहीं मिलता और न तो नाभादासके समयकी ही लिखी गयी कोई प्रति उपलब्ध है। प्रकाशकोंने भी किसी हस्तलिखित प्रतिकी ओर कोई सकेत नहीं किया है। प्रकाशित दोनो ही प्रतियोंमें थोड़ा-बहुत पाठभेद मिलता है। प्राचीन हस्तलिखित पोथियोंके अभावमें यह कहना अत्यन्त कठिन है कि प्रकाशित प्रतियोमे किस प्रतिका पाठ नितान्त शुद्ध है।

इस ग्रन्थमे रामकी अष्टयामीय लीलाका वर्णन है। प्रारम्भमें साकेतके मनोरम वर्णनके पश्चात् रामके रंग महल 'कनक भवन'का वर्णन है। कनक भवनके चारों ओर सखियोंके कुजों तथा सात कक्षोंका वर्णन है। उसके पश्चात् प्रातःकाल राम तथा सीताका उत्थापन, मज्जन, आरती आदिका वर्णन है। फिर राम सखाओं एवं भाइयोंमे मिलने बाहर आते हैं, उधर सीताजी भी बहिनों, पुरस्त्रियोसे परिवृत होकर रामके पास आती है। सखियोमें सुभगा, सहजा, सरयू, तुलसी, कमला, विमला, चन्द्रकला आदि प्रधान है। सखाओंको दर्शन देकर राम-सीता फिर स्नान-कुंजके लिए विदा होते है, स्नानके उपरान्त सखियाँ उनका श्रृगार करती है। राम यज्ञ-स्थल जाकर यज्ञ भी करते हैं। फिर प्रिया-प्रीतम भोजन-कुज जाते है। यहाँ सीता रामके पारस्परिक विनोदका भी वर्णन किया गया है। फिर दम्पति ताम्बूलादि लेकर शयनकुंजमें प्रवेश करते हैं। शयनोपरान्त राम राज-सभामें चले जाते हैं और सीता सासोंके पास। राज-सभामें पितासे मिलकर राम भाइयोकी इच्छापर विभिन्न शालाओं (अश्व, गज आदि)का निरीक्षण करने चले जाते है। फिर अवधकी बीथियोंमें भ्रमण करते हुए, घर-घर लोगोंसे भेंट करते हुए राम-भरत-लक्ष्मणादि द्वारा लगाई गयी वाटिकाओंका निरीक्षण करते है। वहाँसे सभी हाथियोंपर चढ़कर सरयू तटपर जाते है। वहाँ चौगान आदि खेल होता है। फिर अर्द्धयाम दिनके शेष रहनेपर राम घर लौटते है। मार्गमें ललनाएँ उनकी छविका पान करती है। फिर राम घर आकर माताओंसे मिलते है और कुछ जलपान करके

सखाओंके साथ पतंग उड़ाते हैं और सन्ध्याका समय देखकर सखाओंको विदाकर देते हैं। उधर सीताजी पुरस्त्रियोंसे मिलती हैं, फिर सासोंकी परिचर्या करती हैं। सन्ध्याको जब चारों कुँवर आ जाते हैं, सभी बैठकर व्यालू करते हैं। फिर वहाँसे लौटकर राम-सीता कनक भवन जाते हैं। यहाँ सखियाँ आरतीके पश्चात् नृत्यगीत आदिसे उनका मनोरंजन करती हैं। अर्द्धरात्रिके समय रस-लीला (विवाह लीला) होती है। मानादि लीलाएँ भी होती हैं। फिर दम्पतिके दृगोंमें आलस्य देखकर सखियाँ विदा लेती हैं। रंग महलमें आकर प्रभु परदा गिराकर शयन करते हैं।

संक्षेपमें लली-लालका यही आह्निक चित्र है।

इस ग्रन्थकी भाषा ब्रज है, किन्तु कहीं-कहीं तुलसीकृत 'रामचरितमानस'की भाषाकी भी छाप मिलती है। छन्द, दोहा-चौपाई और सोरठा हैं। 'भक्तमाल' जैसी प्रौढ़ता इस भाषामें नहीं है। इस ग्रंथकी प्रामाणिकताके लिए यदि विक्रमकी १७वीं शतीकी हस्तलिखित प्रतियोंकी अपेक्षा की जाय तो अनुचित न होगा।

[सहायक ग्रन्थ—रामाष्टयाम : नाभादास, वें० प्रेस बम्बई, १८९४ ई०।] —ब० ना० श्री०

अष्टावक्र–उद्दालककी कन्या सुजाता और कहोड ब्राह्मणकी सन्तान थे। कहा जाता है कि गर्भकी स्थितिमें ही कहोडको अशुद्ध वेदपाठके लिए टोक दिया था जिससे कुपित होकर इनके पिताने इन्हें 'अष्टावक्र' होनेका अभिशाप दे डाला था। आठ स्थानोंपर वक्रता होनेपर भी ये प्रखरबुद्धि थे। इनके पिताको मिथिलाके राजपण्डितसे शास्त्रार्थमें हारनेपर पानीमें डुबा दिया गया था। इन्होंने बारह वर्षकी आयुमें ही उस पण्डितको शास्त्रार्थमें पराजित किया और पुरस्कृत हुए और अपने पिताका जीवनोद्धार किया था। पिताकी आज्ञासे इन्होंने मिथिलासे लौटते समय समंगा नदीमें स्नान कर शरीरकी वक्रतासे मुक्ति पायी। शास्त्रार्थसम्बन्धी इनके प्रश्नोत्तर 'अष्टावक्र संहिता'में संकलित हैं। —ज० प्र० श्री०

असमंजस–इनके पिताका नाम सगर और माताका नाम केशिनी था। प्रसिद्ध राजा अंशुमान् इनके लड़के थे। स्वभावसे ये उद्धत और आत्मचारी थे। इनसे तंग आकर सगरने इन्हें देशनिष्कासनका दण्ड दिया था। समयान्तरमें ये राज्यके उत्तराधिकारी हुए तथा ख्याति प्राप्त की (दे० सूर० पद ४५३)। —ज० प्र० श्री०

अस्ति, अस्ती–जरासन्धकी ज्येष्ठा पुत्री थीं। इनका विवाह मथुराके राजा कंससे हुआ था। इनकी छोटी बहिन प्राप्ती भी कंससे ब्याही गयी थीं और इस प्रकार इनकी सपत्नी थीं। कंसके वधपर कृष्णने इन दोनोंको सांत्वना दी थी (दे० सूर० पद ३६९६-३७०२)। —ज० प्र० श्री०

अहमद–जहाँगीर बादशाहके समकालीन आगरानिवासी ताहिर अहमद नामक कवि हैं। इन्होंने अपने 'कोकसार' नामक ग्रन्थकी रचना १६२१ ई० (सं० १६७८, आषाढ़ बदी पंचमी)में की, इससे इनका जहाँगीरके शासन-कालमें विद्यमान होना प्रमाणित है। इनकी रचनाओंमें 'अहमद बारामासी', 'रतिविनोद', 'रसविनोद' और 'सामुद्रिक'की गणना भी की जाती है। इन ग्रन्थोंसे व्यक्त होता है कि ये शृंगारी भावनाके कवि हैं। वैसे नागरी प्रचारिणी सभाकी खोज रिपोर्टोंमें इन्हें कहीं सूफी और कहीं वैष्णव कहा गया है। 'दिग्विजय भूषण'में इनके दो कवित्त उद्धृत हैं। ये अपनी प्रेमकी कोमल कल्पनाके लिए विशेष प्रसिद्ध हैं।

[सहायक ग्रन्थ—दि० भू० (भूमिका)।] —सं०

अहल्या १–हलका अर्थ है कुरूप, अतः इनमें कुरूपता न होनेके कारण ब्रह्माने इन्हें अहल्या नाम दिया था। ये पंचकन्याओंमें ज्येष्ठा थीं। इनके पिता मुद्गल थे। एक अन्य मतके अनुसार इनकी माता मेनका और पिता वृद्धाश्व थे। ये महर्षि गौतमकी पत्नी थीं (दे० 'गौतम')। वाल्मीकिके अनुसार ब्रह्माने इनका निर्माण विश्वकी सुन्दरतम वस्तुओंका सार लेकर किया था और इनका सर्जन कर इन्हें गौतमको समर्पित कर दिया था। इनके सौन्दर्यके कारण इन्द्र इनके प्रति आसक्त हो गये थे और उन्होंने एक दिन महर्षिकी अनुपस्थितिमें छद्मवेश धारण कर चन्द्रकी सहायतासे इनके साथ सम्भोग किया। गौतमको जब यह रहस्य ज्ञात हुआ तो उन्होंने इन्द्र और अहल्या दोनोंको शाप दिया जिससे इन्द्र नपुंसक और सहस्रयोनि हुए और अहल्या पाषाणी—"गौतम नारि शापवश उपल देह धरि धीर" (मा० १।२१०)। मतान्तरमें अदृश्य इन्द्रकी शापसे निवृत्ति देवताओंके प्रयासस्वरूप हुई। रामावतारमें रामका दूलहके रूपमें दर्शन करनेपर इन्द्रकी योनियाँ नेत्रोंमें परिवर्तित हो गयीं (दे० 'इन्द्र')। अहल्या भी रामावतारमें रामके चरणोंके स्पर्शसे मोक्ष पाकर देवलोकमें जाकर पतिसे मिलीं—"चरन-कमल-रज परस अहल्या, निजपति लोक पठाई" (गी० १।५०)। कुमारिल भट्टने इस समस्त आख्यानको एक रूपक माना है तथा इन्द्रको सूर्य और अहल्याको रात्रिका प्रतीक माना है। एक भिन्न मतके अनुसार अहल्या जड़बुद्धि तथा अनुर्वरा पृथ्वीकी प्रतीक स्वीकारकी गयी है। अहल्याके पुत्रका नाम शतानन्द था जो राजा जनकके पुरोहित थे। सूरसागरमें इन्द्र-अहल्याकी कथा भागवतके आधारपर दी गयी है। (दे० सूर० पद ४१९)। —ज० प्र० श्री०

अहल्या २–प्रेमचन्दके उपन्यास 'कायाकल्प'की पात्र। अहल्याका बचपनका नाम सुखदा था और ठाकुर विशालसिंहकी पुत्री थी (यह रहस्य उपन्यासमें बहुत बादको उद्घाटित होता है)। सूर्यग्रहणके समय त्रिवेणीके मेलेमें वह यशोदानन्दन और ख्वाजामहमूदको खोई हुई बालिकाके रूपमें मिली। तबसे वह यशोदानन्दनकी पोष्य पुत्री हुई। बड़ी होकर वह सुन्दर, लज्जाशील, शान्त-स्वभाव और चित्तको मोहित करनेवाली, कवि-कल्पनाकी भाँति मधुर और रसमयी सिद्ध हुई। उसका शील, स्वभाव और चातुर्य सबको मुग्ध कर लेता है। प्रारम्भमें वह अपने पति चक्रधरके आदर्शको ही अपना आदर्श समझती है और उसके चित्तकी वृत्ति उसीपर केन्द्रित हो जाती है। उसमें लेखन-शक्ति है और समय पड़नेपर धनोपार्जन भी कर सकती है। पत्नी और गृहिणीके रूपमें अहल्या गृह-प्रबन्धमें कुशल, पति-सेवामें प्रवीण, उदार, दयालु और नीति-चतुर है। शंखधर उसका पुत्र है। अपने पिता ठाकुर विशालसिंहके यहाँ आकर उसकी कायापलट हो जाती है। वह दिन-प्र-

दिन आमोद-प्रमोद और विलासकी ओर झुक जाती है। उसका सेवा-भाव, साधना, आदर्श आदि बातें लुप्त हो जाती है। वह पति-प्रेमसे भी अधिक ऐश्वर्य-प्रेमको समझने लगी। इस ऐश्वर्य-प्रेमको पाकर वह पतिको खो बैठी, किन्तु पतिको खोकर उसने अपनेको पा लिया। —ल० सा० वा०

अहल्याबाई २–ये माणकोजी शिंदेकी पुत्री थीं। इनके पतिका नाम खण्डूजी था जो मल्हार राव होलकरके लडके थे। इनको मालेराव नामका एक लडका तथा मुक्ताबाई नामकी लडकी थी। इनके पतिकी मृत्यु तोपका गोला लग जानेके कारण हुई थी। पतिकी मृत्युके बाद ये सती होना चाहती थीं किन्तु इनके ससुरने इन्हें ऐसा नहीं करने दिया। क्षमा और दया इनके मूलमन्त्र थे किन्तु ये कठोर अनुशासन करना भी जानती थीं। मल्हार रावकी मृत्युके बाद चन्द्रावत राजपूतोंने इनके सेनापति तुकोजी होलकरकी अनुपस्थितिमें विद्रोह किया। इन्होंने सेना लेकर व्यक्तिगत रूपसे विद्रोहका दमन किया। इसी प्रकार एक बार सतपुड़ाके भीलोंने उपद्रव करना चाहा। इन्होंने उनके सरदारको पकडवाकर फाँसी दिलवा दी। मालेरावकी मृत्युके बाद राघोबा पेशवाने इनके राज्यको हस्तगत करना चाहा। इन्होंने स्त्रियोंकी एक सेना एकत्रकर राघोबाके पास सन्देश भेज दिया कि इनके युद्धमे हारनेपर कोई क्षति न होगी किन्तु राघोबाकी पराजय उनके लिए अपमानजनक होगी। फलतः राघोबाने आक्रमणका विचार त्याग दिया। इनकी मृत्यु १३ अगस्त सन् १७९५में लगभग ६० वर्षकी अवस्थामे हुई थी। इनके स्मरणीय कार्योंमे कलकत्तासे बनारसतक सडकका निर्माण तथा सोमनाथ (सौराष्ट्र), विष्णु (गया), विश्वेश्वर (बनारस)के मन्दिरोंकी स्थापना करना है (दे० 'अहल्याबाई' उपन्यास : वृन्दावनलाल वर्मा)। —ज० प्र० श्री०

अहिपति–दे० 'कालिय नाग'।

अहिरावण–रावणका मित्र जो महिरावणके साथ पातालमे रहता था। राम-रावण-युद्धमे इनके पराक्रम तथा आसुरी कर्मोंका उल्लेख हुआ है। हनुमान्‌की सहायतासे इनका नाश हुआ था। —ज० प्र० श्री०

आंभीक–प्रसादकृत नाटक 'चन्द्रगुप्त'का पात्र। आम्भीक विवेकशून्य, स्वार्थी और दम्भसे भरा हुआ तक्षशिलाका अविनीत राजकुमार है। अपने व्यक्तिगत द्वेषके कारण वह पर्वतेश्वरसे विरोध करके विदेशी शत्रु सिकन्दरको सहायताका वचन देकर अपनी विवेक-शून्यता एवं देशद्रोहिताका परिचय देता है। अपने पूज्यजनोंके प्रति उसमे श्रद्धाका भी एकान्त अभाव है। उसकी बहन अलका और उसके पिता आम्भीककी इस दुर्नीति एवं दुर्विनीतताके कारण अपना देश और घर छोडकर चले जाते है। अपने अहंसे ग्रस्त आम्भीक आचार्य चाणक्यकी भी आज्ञाका तिरस्कार कर देता है। अलकाके गृह-त्यागसे उसमे थोडी देरके लिए सद्‌वृत्तिका संचार होता है और वह पश्चात्ताप करता हुआ सोचता है—"इस अवस्थामें तो लौट आता, पर वे यवन सैनिक छातीपर खडे हैं। पुल बँध चुका है।" इसके पश्चात् वह अपने स्वभावोचित आचरणोंमे कुछ समयतक अपनी दुर्नीतिके वात्याचक्रमें इतने वेगसे उड़ता है कि वह अपनी बहन अलकाको भी पर्वतेश्वरकी सहायता करनेके अभियोगमें बन्दी बना लेता है। अन्तमें वह यवनोंकी पराधीनतासे पीडित होकर आत्मग्लानिमें गलने लगता है। चाणक्यके उपदेश एवं अलकाके अपूर्व आत्मत्यागसे प्रभावित होकर आम्भीक अपनी दाम्भिकता एवं तुच्छ आत्म-गौरवकी भावनाको छोड़कर शुद्ध हृदयसे प्रायश्चित करता है। हृदय-परिवर्तनके पश्चात् वह मौर्य-साम्राज्यका सदस्य बन जाता है तथा प्रायश्चित स्वरूप अलका और सिंहरणको गान्धार महाप्रदेशका शासक बना देता है। अन्तमें सिल्यूकसके साथ द्वन्द्व-युद्ध करते हुए वीरगतिको प्राप्त करके अपना कलंक धोनेमें समर्थ होता है। —के० प्र० चौ०

आँसू–'आँसू' जयशंकर प्रसादकी एक विशिष्ट रचना है। इसका प्रथम संस्करण १९२५ ई०में साहित्य-सदन, चिरगाँव, झाँसीसे प्रकाशित हुआ था। द्वितीय संस्करण १९३३ ई०मे भारती भण्डार, प्रयागसे प्रकाशित हुआ। 'आँसू'का रचनाकाल लगभग १९२३-२४ ई० है। कहा जाता है पहले कविका विचार इसे 'कामायनी'के अन्तर्गत ही प्रस्तुत करनेका था किन्तु अधिक गीतिमयताके कारण तथा प्रबन्ध काव्यके अधिक अनुरूप न होनेके कारण उसने यह विचार त्याग दिया। 'आँसू'के दोनों संस्करणोंमें पर्याप्त अन्तर है। प्रथम संस्करणमे केवल १२६ छन्द थे। उसका स्वर अतिशय निराशापूर्ण था। उसे एक दुःखान्त रचना कहा जायगा। नवीन संस्करणमे कविने कई संशोधन किये। छन्दोंकी संख्या १९० हो गयी और उसमें एक आशा-विश्वासका स्वर प्रतिपादित किया गया। कतिपय छन्दोंकी रूपरेखामे भी कविने परिवर्तन किया और छन्दोंको इस क्रमसे रखा गया कि उससे एक कथाका आभास मिल सके।

'आँसू' एक श्रेष्ठ गीतसृष्टि है, जिसमें प्रसाद की व्यक्तिगत जीवनानुभूतिका प्रकाशन हुआ है। अनेक प्रयत्नोंके बावजूद इस काव्यकी प्रेरणाके विषयमें निश्चित रूपसे कहना कठिन है, किन्तु इतना निर्विवाद है कि इसके मूलमे कोई प्रेम-कथा अवश्य है। 'आँसू'मे प्रत्यक्ष रीतिसे कविने अपने प्रियके समक्ष निवेदन किया है। कविके व्यक्तित्वका जितना मार्मिक प्रकाशन इस काव्यमे हुआ है उतना अन्यत्र नहीं दिखाई देता। अनेक स्थलोंपर वेदनामे डूबा हुआ कवि अपनी अनुभूतिको उसके चरम तापमें अंकित करता है। काव्यके अन्तमे वेदनाको एक चिन्तनकी भूमिका प्रदानकी गयी है। इसे वियोग और पीड़ाका प्रसार कह सकते है। कविके व्यक्तित्वकी आसाधारण विजय और क्षमता इसी अवसरपर प्रकट होती है। स्वानुभूतिका सामाजीकरण इस काव्यके अन्तमे सफलतापूर्वक व्यंजित है। मुख्यतया वियोगकी भूमिकापर प्रतिष्ठित होते हुए भी 'आँसू'के अन्तमें आशा-विश्वासका समावेश कर दिया गया है। शिल्पकी दिशामे 'आँसू' वैभवसम्पन्न है। प्रियाके रूपवर्णनमें सार्थक प्रतीकोंका प्रयोग बाह्य सौन्दर्यके साथ आन्तरिक गुणोंका भी प्रकाशन करता है। —प्रे० शं०

आकुलि—प्रसादकृत 'कामायनी'में असुर पुरोहितके रूपमें

चित्रित। किलातके साथ मिलकर वह मनुको यज्ञ करनेके लिए प्रेरित करता है। इन दोनोंकी निगाह श्रद्धा द्वारा पाले हुए पशुओंपर थी, जिनकी ये उस यज्ञमें बलि करवाते हैं। क्रमशः इन दोनोंका प्रभाव मनुके ऊपर बढ़ता जाता है। पर बादमें ये ही सारस्वत प्रदेशकी प्रजाको मनुके विरुद्ध विद्रोह करनेके लिए भड़काते हैं, और जन-क्रान्तिका नेतृत्व करते हैं। युद्धमें मनु इन दोनोंको मार डालते हैं। —सं०

आज़म—ये मुगल बादशाह मुहम्मदशाहके आश्रित कवि थे। इन्होंने उनकी आज्ञासे १७२९ ई०में 'शृंगार दर्पण' (शृंगाररस दर्पण) नामक रस तथा नायिका-भेद विषयपर ग्रन्थ लिखा जो साधारण रचना है। —सं०

आत्मदेव—ये तुंगभद्रा नदीके किनारे रहनेवाले प्रसिद्ध ब्राह्मण थे। संतान न रहनेके कारण ये चिन्तित रहा करते थे। एक बार किसी सिद्धने इनकी पत्नीको पुत्रोत्पत्तिके लिए एक फल प्रदान किया। इनकी पत्नीने वह फल अपनी बहिनको खानेके लिए दे दिया। बहिनने वह फल एक गायको खिला दिया। इनके पुत्रका नाम धुंधकारी हुआ और गायके पुत्रका नाम गोकर्ण क्योंकि उसके कान बैलके कानोंके सदृश बड़े थे। धुंधकारी अत्यधिक अत्याचारी था तथा गोकर्णको सताया करता था। गोकर्णने ज्ञानमार्ग अपनाकर परमार्थ लाभ किया। —ज० प्र० श्री०

आदम—यहूदियों तथा मुसलमानोंके अनुसार मनुष्यका आदि प्रजापति था। उनका विश्वास है कि ईश्वरने सबसे पहले 'आदम'को तथा उनके बाद बीवी हव्वाको उत्पन्न किया। संसारके समस्त स्त्री-पुरुष इन्हींके सन्तान हैं। आदमकी आयु ७०० वर्षकी थी। ये ९ गज लम्बे थे। जिस प्रकार हमारे नाखून है उसी प्रकारकी 'आदम'की खाल थी। इस रूपमें हम सबको थोडी-थोडी निशानी (नाखून) मिली है तथा इसीलिए हम सब 'आदमी' कहलाते है। ऐसी प्रसिद्धि है कि 'आदम' और 'हव्वा'से एक सन्तान प्रातःकाल और एक शामको होती थी (दे० काबा-कर्बला)। —रा० कु०

आदि कवि—महर्षि वाल्मीकिका नामान्तर है। उन्हें यह नाम इसलिए दिया गया कि वे प्रथम काव्य-रचयिताके रूपमें प्रसिद्ध हैं—"जान आदि कवि नाम प्रतापू" (मा० १।१९।३)। (दे० 'वाल्मीकि')। —ज० प्र० श्री०

आदिवराह—भगवान् विष्णुका द्वितीय अवतारसे सम्बद्ध स्वरूप था। एक बार हिरण्याक्ष पृथिवीको लेकर पातालको भाग रहा था। पृथिवीका उद्धार करनेके लिए उस समय भगवान्को अवतरित होना पडा। उन्होंने हिरण्याक्षका वध करके पृथिवीको संकटसे मुक्त किया था—"आदि वराह विहरि वारिधि मनो उठ्यो है दसन धरि धरिनी" (गी० २।५०)। —ज० प्र० श्री०

आनंद—१. ये महर्षि गालव्यके वंशमें उत्पन्न एक ख्यातिलब्ध ब्राह्मण थे।

२. ये महात्मा गौतम बुद्धके एक प्रिय शिष्य थे। बुद्धको इनपर अटूट विश्वास था। वे इन्हें अपने ही समान मानते थे (दे० प्रसादकृत 'अजातशत्रु')। —ज० प्र० श्री०

आनंद कादंबिनी—यह मासिका पत्र जुलाई १८८१ मे मीरजापुरसे निकला। इसके सम्पादक थे बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'। यह पत्र ४४ पृष्ठोंका होता था और ५०० प्रतियाँ ही बिकती थीं। पुस्तकोंकी आलोचना सबसे पहले इसी पत्रमें निकलने लगी थी। आचार्य रामचन्द्र शुक्लके शब्दोंमें 'प्रेमघन'जीने अपने ही उमड़ते हुए विचारों और 'भावों'को अंकित करनेके लिए यह पत्रिका निकाली थी और लोगोंके लेख नहींके बराबर रहा करते थे। भारतेन्दुने इस नीतिके विरुद्ध लिखा भी। इस पत्रिकाकी भाषा बडी रंगीन, अनुप्रासमयी और पाण्डित्यपूर्ण होती थी। —ह० दे० बा०

आनंदरघुनंदन—रीवां नरेश महाराज विश्वनाथ सिंहकृत 'आनंदरघुनंदन' नाटक हिन्दी नाट्यसाहित्यकी एक विशेष शृंखला है और हिन्दी जगत्मे इसे मान भी बहुत मिला है। अनेक विद्वानोंने इसे हिन्दीका प्रथम नाटक माना है (हिन्दी साहित्यका इतिहास, पं० रामचन्द्र शुक्ल, २००९ वि०, पृ० ३४५; हिन्दी नाटक साहित्य, वेदपाल खन्ना, पृ० सं० २२; हिन्दी नाटक साहित्यका इतिहास, डा० सोमनाथ गुप्त, पृ० सं० ६)। इसका कारण यह है कि इस नाटकमे नान्दी, विष्कम्भक, भरत-वाक्यके साथ-साथ रंग-निर्देश भी प्रयुक्त हुए हैं जो संस्कृतमें दिये गये हैं। साथ ही ब्रजभाषा गद्यका प्रयोग हुआ है और भाषा वैभिन्य भी है। इन्ही कारणोंसे इसे हिन्दीका प्रथम नाटक माना गया है। इस नाटकका ऐतिहासिक मूल्य है, अन्यथा नाटककी दृष्टिसे यह उत्कृष्ट रचना नही है और इसमे अनेक दोष है—१. इस नाटकका सबसे बड़ा दोष है इसकी दुर्बोधता। इस दुर्बोधताका प्रधान कारण है, इसके पात्रोंके नाम, जो अर्थानुसार रखे गये है। कुछ पात्रोंके प्रयुक्त नाम नीचे दिये जाते हैं—

रामायणके पात्र	नाटकमें प्रयुक्त नाम
दशरथ	दिग्जान
राम	हितकारी
भरत	डहडह-जगकारी
लक्ष्मण	डील धराधर
शत्रुघ्न	डिभीदर
वशिष्ठ	जगयोनिज
विश्वामित्र	भुवनहित
जनक	शीलकेतु
सीता	महिजा
बाणासुर	सुरासुर
रावण	दिग्शिर

दुर्बोधताका दूसरा कारण है संस्कृतका अत्यधिक प्रयोग तथा कई भाषाओका प्रयोग। २. नाटकका कथानक शिथिल एवं विशृंखल है। इसका कारण है नाटककारका यह प्रयास कि रामकी पूरी कथाको समेट लिया जाय। फलतः पात्रोंके चरित्र पूर्णतः स्पष्ट नही हो पाये है। ३. नाटककारने देश-कालका ध्यान नहीं रखा है। संस्कृत, प्राकृत, भोजपुरी, मैथिली, बंगला, करनाटकी एवं पैशाची-के साथ-साथ अंग्रेजी और फारसी भाषाओंका भी प्रयोग किया है। ४. नाटकमें सरलता, सरसता और प्राञ्जलता नहीं है। ब्रजभाषाके अन्य अनेक नाटकोंकी (करुणाभरण,

हनुमान् नाटक, शकुन्तला नाटक) कविता सरस है। इस नाटककी कविता या इसके गीतोंमें वह सरसता नहीं मिलती। इसका कारण है कि नाटककार कथाको दौड़ा रहा है, काव्य-कल्पनाका प्रयोग करनेका उसे अवसर नहीं है। नाटककार ने इसकी रचना पढ़ने और सुननेके लिए की थी, यथा—"सो नाटक आनन्द रघुनन्दन भाषा रचि है आउ पढाऊँ" (प्रस्तावना)। सूत्रधार—"अब होनहार आनन्द रघुनन्दन नामनाटक प्रकार पढ़िवेको मेरी मति त्वरा करे है।" गुरु—"वत्स भली कही, पढ़ि ही लेहु" (प्रस्तावना)। भले ही यह पढ़नेके लिए ही रचा गया हो, फिर भी इसमें काव्यत्व भरा जा सकता था। ५. नाटककारने औचित्यका भी ध्यान नहीं रखा है और रामके राज्य-तिलकके समय राम-सीताके सम्मुख अप्सराएँ, नाच-नाचकर स्वकीया, मुग्धा, ज्ञात यौवना, अज्ञात यौवना, धीरा, अधीरा, नवोढ़ा, प्रौढ़ा, गुप्ता, क्रियाविदग्धा, कुलटा, मुदिता, लक्षिता, अनुगमना, गणिका इत्यादि ३५ नायिकाओंके लक्षण बताती हैं। —भो० ना० ति०

आनंदीप्रसाद श्रीवास्तव—जन्म फतेहपुरमें १८९९ में हुआ। छायावादी युगके कवियोंमें शायद इतने अल्पकालमें इतना अधिक लिखनेवाला कवि कोई दूसरा नहीं है। इनका महत्त्व उन कवियोंके समान है जो किसी भी नयी प्रवृत्तिमें अधिकाधिक लिखकर उसकी सम्भावनाओंको विभिन्न दिशाओंमें परिमार्जित करते हैं। छायावादी अनुभूतिकी इस प्रक्रियाका अत्यन्त सफल परिचय हमें इनकी काव्यबोलीमें इसी प्रकार मिलता है। इनका कोई सग्रह प्रकाशित नहीं हो सका यह इनका दुर्भाग्य है। 'सरस्वती', 'माधुरी', 'विशाल भारत' आदि पत्र-पत्रिकाओंमे हमे उनकी कृतियाँ प्रकाशित हुई मिलती है। सग्रह न होनेके कारण उनका कोई निश्चित रूप नहीं बन पाता।

इनकी कविताओंमें प्रकृतिका एक ऐसा साहचर्यभाव हमें मिलता है जो अन्य छायावादी कवियोंमें उदात्त बनकर या तो आतंकजन्य रूपमें चित्रित हुआ है या फिर उनके यहाँ प्रकृतिको समझ सकनेकी कोई परिमार्जित भाषा या प्रतीक पद्धति ही नहीं बन पायी है। भाषाकी दृष्टिसे आनन्दीप्रसाद उस हिन्दी भाषाके निकट लगते हैं जो आगे चलकर कुछ सुन्दर और सरल मुहावरोंमें ढलती हुई दीख पड़ती है। विचारोंमें यद्यपि उतनी मौलिकता नहीं है फिर भी अभिव्यक्तिमें व्यापकता कुछ अधिक मात्रामें पूर्ण लगती है।

बी० ए० पास करनेके बाद आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव प्रयागके के० पी० स्कूलमें अध्यापक थे। कहा जाता है कि एक दिन किसी बातपर नाराज होकर घर छोड भाग गये और तबसे कहाँ हैं, क्या कर रहे है इसका कुछ भी पता नहीं।

कृतियाँ—अछूत नाटक (नाटक), मकरन्द (कहानी संग्रह), अबलाओका बल (सामाजिक उपन्यास) तथा कुछ बालोपयोगी रचनाएँ। —ल० कां० व०

आनकदुंदुभि—यह कृष्णके पिता वसुदेवका एक इतर नाम है। कहा जाता है कि इनके जन्मोत्सवपर देवताओंने विशेष रूपसे दुंदुभी बजाकर अपने हर्षातिरेकका प्रकाशन किया था, इसी कारण इन्हें यह नाम दिया गया (दे० 'वसुदेव')। —ज० प्र० श्री०

आयशा—मुसलमानोंमें आयशा 'हजरत बीबी आयशा सिद्दीक़ा' नामसे विख्यात हैं। ये मुहम्मद साहबकी सर्वाधिक प्रिय पत्नी तथा अबूबक्रकी पुत्री थीं। मुहम्मद साहबकी नौ पत्नियोंमें-से ये ही एकमात्र क्वाँरी थीं। आयशाका निवासस्थान अरबके 'मक्का' नामक नगरमें था। कहा जाता है कि इन्हें अनेक धार्मिक पुस्तकें (हदीसें) कण्ठस्थ थीं तथा अनेक सेहाबी इनसे आकर धर्मविषयक जानकारी प्राप्त करते थे। अपनी धर्म-परायणता तथा मुहम्मद साहबकी पत्नी होनेके कारण ये मुसलमानोंकी माता (उम्मुल मोमेनीन) के रूपमे विख्यात हैं। मुसलमानोंका ऐसा विश्वास है कि 'आयशा' इनका वास्तविक तथा 'सिद्दीक़ा' खुदाका दिया हुआ नाम था (दे० 'काबा-कर्बला', पृ० ४२)। —रा० कु०

आयोदधौम्य—ये वैदिककालीन एक ख्याति-लब्ध ऋषि थे। इनके शिष्योंमें उपमन्यु, आरुणि और वेद उल्लेखनीय थे। —ज० प्र० श्री०

आरसीप्रसाद सिंह—जन्म १९ अगस्त, १९११ ई०को एरौत, रोसडा, जिला दरभंगा (बिहार)में हुआ। कोशी कालेज, खगडिया, मुँगेरमें प्राध्यापक रहे। आकाशवाणीमें कई वर्ष सेवा की और हिन्दी कार्यक्रमके आयोजक रहे है। इनके प्रकाशन मुख्यतः 'तारा-मण्डल' द्वारा हुए है।

बिहारके कवियोंमे आरसीप्रसाद सिंहका ऊँचा स्थान है और वे प्रतिष्ठा एवं सम्मानकी दृष्टिसे देखे जाते हैं। दलबन्दियोंमे ये सदैव अलग रहते आये हैं। 'माधुरी'में इनकी रचनाएँ बड़े सम्मानके साथ छपती रही हैं। अपनी अन्तःक्षमता एवं साहित्य-शक्तिके कारण इन्होंने छायावादके तृतीय उत्थानके कवियोंमे ऊँचा स्थान प्राप्त कर लिया है। इनकी कविताएँ भाव एवं भाषा दोनों दृष्टियोंसे उत्तम हैं। विभिन्न विषयोंपर ये सुन्दरता एवं सफलताके साथ लिखते आ रहे है। इनका प्रकृति-वर्णन सूक्ष्मतापूर्ण, चित्रात्मक एवं कलात्मक होता है। पीडाकी आन्तरिकता एवं मार्मिक भावोंकी अभिव्यंजनामे इनकी कवि-लेखनीको कौशल प्राप्त है। आरम्भमें सुमित्रानन्दन पंतके रहस्यात्मक प्रकृतिवर्णनका इनपर प्रभाव पडा था। 'शतदल' ('नवयुग काव्य-विमर्श', पृ० ३२१) नामक रचनामें स्वर्ण-विहान, श्याम बादल, पुलकित हिमकर, गुंजित निर्झरिणी एवं सिन्धुकी उत्ताल तरंगावलिमें विश्वकी मूल रहस्य-शक्तिके दर्शन किये है। इनका कवि-स्वभाव पूर्ण स्वच्छन्दतावादी है, अतएव बादको इसी वृत्तिका इनके काव्यमें पूर्ण विकास हुआ है। ये शुद्ध छायावादी कवियोंकी भाँति प्रकृति और जीवनकी अन्तःछवियोंके अवगाहनमें तल्लीन रहे हैं; इसीसे इनकी रचनाओंमे जटिलता एवं क्लिष्टता नहीं, सरलता, सहजता, मधुरता एवं संगीत तरलताका वैशिष्ट्य है।

प्रकृति-चित्रणमें मानवीकरण शैलीकी प्रधानता है। कहीं-कहीं प्रकृतिके भीतर कवि विश्वास रूपमें चेतनाका अनुभव करता दिखाई पडता है। अलंकरणकी प्रवृत्ति भी इनकी रचना शैलीकी विशेषता है। भाषा संस्कृतकी मधुर-कोमल तत्सम-पदावलीसे पूर्ण, सुजटित एवं कलात्मक होती है।

तत्समताके होते हुए भी शब्दोंका लोष्टवत् प्रयोग कहीं नहीं मिलेगा। भाषामें एक मधुर मंथर किन्तु सुनियोजित प्रवाह है। —श्री० सिं० क्षे०

आरुणि–इनके पिताका नाम औपवेशि गौतम था। ये आयोदधौम्यके शिष्य थे। इनका श्वेतकेतु नामक एक पुत्र था। ये सामाजिक विधि-निषेधके प्रवर्तक माने जाते हैं। ब्रह्मविद्यापर इन्हें विशेष अधिकार प्राप्त था। इनकी गुरु-भक्तिकी एक कथा उल्लेखनीय है। एक बार इनके गुरुने इन्हें एक नाली बन्द करनेका आदेश दिया। जलमे वेग अधिक था जिसके परिणाम-स्वरूप ये कृतकार्य न हो सके। अतः जलावेगको रोकनेके लिए ये उस स्थानपर स्वयं लेट गये। अधिक समय बीतनेपर गुरु घटनास्थलपर आये तो इन्हें अचेत पाया। इनकी गुरुभक्तिसे प्रसन्न होकर उन्होंने इन्हें 'उद्दालक' नाम प्रदान किया। —ज० प्र० श्री०

आर्यक–ये कद्रूके लड़के थे। इनकी कन्या मारीषाका विवाह मथुराके यदुवंशमे उत्पन्न महाराज शूरसेनसे हुआ था। शूरसेन वसुदेवके पिता और कृष्णके पितामह थे। —ज० प्र० श्री०

आर्यावर्त–भारतके मध्यकालीन इतिहासमे उत्तर भारतके लिए 'आर्यावर्त' शब्दका प्रयोग मिलता है। मनुस्मृतिमे आर्यावर्तकी सीमाओंका निर्देश करते हुए उत्तर भारतमें हिमालय, दक्षिणमे विन्ध्याचल पर्वत तथा पूर्व और पश्चिममें समुद्रतटोंतक उसका विस्तार बताया गया है। आर्यावर्तके लिए अन्य पाँच भौगोलिक नामोका भी उल्लेख मिलता है—उदीची (उत्तर), प्रतीची (पश्चिम), प्राची (पूर्व), दक्षिण और मध्य। आर्यावर्तका मध्य भाग ही हिन्दी भाषा और साहित्यका उद्गम एवं विकासस्थल मध्यदेश कहलाता है। १२वीं शतीतकके साहित्यमें इस नामका निरन्तर प्रयोग हुआ है। तत्पश्चात इसका प्रयोग कम होता गया। विभिन्न युगोंमें आर्य संस्कृतिके विस्तार एवं विकासके साथ आर्यावर्तकी भी सीमाएँ बदलती रही हैं ('स्कन्दगुप्त', पृ० ७०)।

[सहायक ग्रन्थ— मध्यदेश : डा० धीरेन्द्र वर्मा।] —रा० कु०

आर्येंद्रशर्मा–जन्म १९१० ई०मे कुंवरगाँव (जिला-बदायूँ)में हुआ। शिक्षा प्रयाग तथा जर्मनीके म्यूनिख विश्वविद्यालयोंमे हुई। संस्कृत तथा भाषाविज्ञान अध्ययनके मुख्य विषय हैं। सम्प्रति हैदराबादमें उस्मानिया विश्व-विद्यालयमें संस्कृत विभागके अध्यक्ष हैं। भारत सरकारके तत्त्वावधानमें प्रकाशित हिन्दी व्याकरण (१९५८ ई०)का प्रारूप आपने ही प्रस्तुत किया है। मासिक 'कल्पना'के सम्पादक-मण्डलके प्रधान हैं। —सं०

आलम–ब्रजभाषाके मुसलमान कवियोंमे प्रमुख। 'ब्रजभाषा हेतु ब्रजभाषा हीन अनुमानों'को प्रमाणित करनेके लिए भिखारीदासने अपने 'काव्यनिर्णय'मे जिन कवियोंके नाम गिनाये है, उनमे रहीम, रसखान, और रसलीनसे पूर्व आलमको स्थान दिया है। 'हिन्दी साहित्यका इतिहास', 'कविता कौमुदी', 'मिश्रबन्धु विनोद', 'हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकोंका संक्षिप्त विवरण' आदि हिन्दीकी अनेक ग्रन्थोंमे अब तक यह प्रतिपादित किया जाता रहा है कि आलम नामके दो कवि हुए हैं। एक आलम अकबरके समकालीन सूफी कवि थे जिन्होंने 'माधवानल कामकन्दला'की रचना की और दूसरे आलम औरंगजेबके पुत्र मुअज्जमशाहके आश्रित थे। यह दूसरे आलम ही रीतिकालीन प्रसिद्ध कवित्त-सवैयामें श्रृंगारिक मुक्तकोंके रचयिता थे। शेखवाली किंवदन्ती भी इन्हीके साथ सम्बद्ध है (दे० 'शेख')।

दो आलमोंके इस प्रवादकी उत्पत्तिका आधार मुअ-ज्जमशाहकी प्रशंसामे लिखित यह छन्द रहा है जिसे शिवसिंहने अपने 'सरोज'में उद्धृत करके इस धारणाका सूत्रपात किया—"जानन औलि किताबनको जे निसाफके माने कहे हैं ते चीन्हे। पालत हौं इत 'आलम'को उत नीके रहीमके नाम को लीन्हे॥ मौजममाह तुम्हे करता, करिबेको दिलीपति है वर दीन्हे। काबिल हैं ते रहे कितहूँ, कहूँ काबिल होत हैं काबिल कीन्हे॥" इसमे आलम शब्द संसारके अर्थमे प्रयुक्त हुआ है अतएव आवश्यक नही है कि इसे आलम कविकृत माना ही जाय विशेषतः तब जब उनके स्फुट छन्दोंके प्राचीन हस्तलिखित संग्रहोंमें यह कहीं भी समाविष्ट नहीं मिलता। भवानी शंकर याज्ञिकने इस सम्बन्धमे विशेष शोध करके प्रमाणित किया है कि यह छन्द जैन कविकृत 'माजम-प्रभाव' नामक ग्रन्थका है। आलमका काव्य-काल इसी छन्दके आधारपर १६५५ ई० (सं० १७१२) के आसपास माना जाता रहा है जो भ्रामक है। याज्ञिकके अनुसार दो आलम न होकर एक ही आलम थे और वे अकबरके समकालीन थे (दे० 'आलम और रसखान' शीर्षक लेख, पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० २९१-३०२)।

प्रारम्भमे ही आलम एक विख्यात कवि रहे है। कहते है कि 'गुरु-ग्रन्थ साहब'के अन्तिम भागमें दी हुई 'राग-माला' इनके ग्रन्थ 'माधवानल कामकन्दला'का अंश है। 'गुरुग्रन्थ साहब'का वर्तमान रूप वही है जो १५०४ ई० (सं० १६६१) तक निश्चित हो चुका था और अकबरका राज्य १६०५ ई० तक रहा। मुअज्जम शाहके समयके कवि आलमकी रचनाका अंश उसमें होना सम्भव नहीं है इस विचारसे कुछ सिख 'रागमाला'को प्रक्षिप्त मानने लगे, परन्तु दो आलमोंके प्रवादके निराधार सिद्ध होनेसे उस शंकाका भी शमन हो गया। 'प्रबोधसुधासागर', 'सुजान-चरित्र', 'अलकार रत्नाकर' तथा कालिदासके 'हजारा'मे आलमके अनेक पद्य समाविष्ट मिलते है। १६८६ ई० मे विरचित कुलपति मिश्रकी 'युक्तितरंगिणी'में आलमकी प्रशस्तिमें यह दोहा लिखा है—"नवरसमय मूरति सदाँ, जिन बरने नँदलाल। आलम आलम बस कियौ, दै निज कविता जाल॥"

पूर्वनिर्दिष्ट लेखमे आलमविषयक पर्याप्त नवीन सामग्री प्रस्तुतकी गयी है परन्तु कतिपय निष्कर्ष अतिरंजनापूर्ण हैं, जैसे "रीतियुक्त कवियोंमें आलमका स्थान सर्वोच्च है।" अथवा "कवित्त-सवैयाकी पद्धतिका प्रवर्तक गंगके स्थानपर आलमको ही मानना चाहिये।" भाषा और वस्तु-तत्त्वकी दृष्टिसे भी आलमके कृतित्वपर सम्यक् विचार होनेके अन-न्तर ही कोई निश्चयात्मक बात कही जा सकती है।

आलमकी निम्नलिखित तीन कृतियाँ प्रामाणिक मानी जाती हैं—१. माधवानल कामकन्दला, २. श्याम सनेही, ३. आलमके कवित्त। एक चौथी कृति 'सुदामाचरित्र'का भी उल्लेख मिलता है पर वह सन्दिग्ध ही लगता है। 'माधवानल कामकंदला'में माधवानल और कामकंदलाके पारस्परिक प्रेमकी कथा प्रेमाख्यानक शैलीमें सूफी प्रभावके साथ वर्णित की गयी है। इसके दो रूप मिलते हैं। छोटा रूप बडेकी अपेक्षा प्राचीनतर प्रतीत होता है। कामकंदलाके नृत्य-गान वर्णनमें कविने अपने संगीत ज्ञानका विशेष परिचय दिया। यही अंश 'रागमाला' नामसे 'गुरु-ग्रन्थ साहब'मे संगृहीत हुआ है।

'श्याम सनेही'में रुक्मिणी विवाहकी कथा है और इसकी रचना भी दोहा चौपाई शैलीमें हुई है। 'आलमके कवित्त' कविके रीति शैलीके स्फुट पद्योंका संग्रह है। प्राचीन हस्तलिखित प्रतियोंमें इसके अनेक नाम मिलते हैं; जैसे-'कवित्त आलमके', 'रसकवित्त', 'आलमकेलि', 'अक्षरमालिका' और 'चतुःशती' आदि जिनमेंसे कोई सर्वमान्य नहीं है। 'आलमकेलि'का प्रकाशन उमाशंकर मेहता द्वारा बनारससे १९२२ ई०मे हुआ है। कुछ कवित्तोंमें 'शेख' छाप मिलती है, कुछमे 'आलम'। ग्रन्थकी पुष्पिकाओंसे ज्ञात होता है कि कविका पूरा नाम 'शेख आलम' था तथा उसे 'शेखसाईं' नामसे भी जाना जाता था। 'शेख' आलमकी स्त्री थी, इस मान्यतापर आधारित किंवदन्तियाँ 'शेख'के आलमकी उपाधिमात्र सिद्ध होनेसे निराधार हो जाती है।

कॉकरौलीके द्वारकेश पुस्तकालयमे 'चतुःशती' नामसे आलमके ४०० के लगभग मुक्तकोंकी जो पाण्डुलिपि मिलती है उसका लिपिकाल १६५५ ई० है। लिपिकालसे युक्त इससे प्राचीन कोई अन्य प्रति प्राप्त न होनेसे यह तिथि आलमके सन्दर्भमें विशेष महत्त्वपूर्ण मानी जाती रही है और इसी आधारपर बहुधा उनका कविता-काल भी निर्दिष्ट किया गया है। लाला भगवानदीनने १९१६ ई०की एक अन्य प्रतिके आधारपर 'आलमकेलि' नामसे आलमके कवित्त-सवैयोंका प्रसिद्ध संकलन प्रकाशित कराया तथा उसमे कविताकाल १६८३-१७०३ ई० माना। कॉकरौलीमे ही ४७१ छन्दोंका एक अन्य संकलन 'अक्षरमालिका' नामसे मिलता है जिसमे आलमके मुक्तकोंको व्यंजन और स्वर क्रमसे प्रस्तुत किया गया है। इसमे आलमके अन्य ग्रन्थोंके भी कुछ पद्य समाविष्ट कर लिये गये हैं।

आलमकी ख्याति अधिकतर मुक्तकोंके कारण ही हुई, अतएव 'आलमकेलि' कविकी सर्वप्रमुख रचना कही जा सकती है। यह नाम 'कवित्त आलमके लिख्यते'से ही गृहीत प्रतीत होता है। संग्रहकार्य सम्भवतः किसी परवर्ती व्यक्ति द्वारा सम्पन्न हुआ। इस संग्रह के मुक्तकोंमें निश्चय ही अनेक ऐसे है जिनमें भावात्मक तीव्रता कथनकी अतिशयताके साथ मिलकर सूफी-काव्यकी प्रकृतिका परिचय देती है। कविके भीतर प्रेमकी पिपासा विशेष लक्षित होती है। यह तत्त्व ब्रजभाषाके अन्य रीतिमुक्त प्रेमी कवियोंमें भी उपलब्ध होता है; पर आलमके छन्दोंमे उत्सर्गभावना एवं तन्मयताका ऐसा रूप भी मिलता है जिसे उनके कवि व्यक्तित्वकी निजी विशेषता कहा जा सकता है। उनके इस मार्मिक सवैयासे हिन्दी-काव्य-प्रेमी सुपरिचित है—"जा थल कीन्हे विहार अनेकन ता थल कॉकरी बैठि चुन्यो करे।"

[सहायक ग्रन्थ—मि० वि०; हि० सा० इ०; हि० सा०।] —ज० गु०

आल्हखंड—जगनिक कवि आल्हखण्डके रचयिता माने गये हैं। ये कालिंजर तथा महोबाके शासक परमाल (परमर्दि देव)के दरबारी कवि थे। कुछ विद्वानोंके अनुसार जगनिक भाट तथा कुछके मतमें बन्दीजन थे। जगनिक ११७३ ई०के आस-पास वर्तमान थे। उन्होंने महोबाके दो ख्याति-लब्ध वीरों—आल्हा और ऊदल—के वीर-चरितका विस्तृत वर्णन एक वीरगीतात्मक काव्यके रूपमे किया था। जगनिक कृत आल्हखण्डकी अभी तक कोई भी प्रति उपलब्ध नहीं हुई है। इस काव्यका प्रचार समस्त उत्तरी भारतवर्षमे है। उसके आधारपर प्रचलित गीत हिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तोंके गाँव-गाँवमे सुनायी पड़ते हैं। ये गीत वर्षा ऋतुमें गाये जाते हैं।

फर्रुखाबादमे १८६५ ई०मे वहाँके तत्कालीन कलक्टर सर चार्ल्स इलियटने अनेक भाटोंकी सहायतासे इसे लिखवाया था। सर जार्ज ग्रियर्सनने बिहारमें (इण्डियन एण्टीक्वेरी, भाग १४, पृष्ठ २०९, २२५) और विंसेंट स्मिथने बुन्देलखण्ड (लिंग्विस्टिक सर्वे आव इण्डिया, भाग ९, : १ :, पृ० ५०२) मे भी आल्हखण्डके कुछ भागोंका संग्रह किया था। इलियटके अनुरोधसे डब्ल्यू० वाटरफील्डने उनके द्वारा संगृहीत 'आल्हखण्ड'का अंगरेजी अनुवाद किया था, जिसका सम्पादन ग्रियर्सनने १९२३ ई० मे किया। वाटरफील्डकृत अनुवाद 'दि नाइन लाख चेन' अथवा 'दि मेरी फ्यूड'के नामसे कलकत्ता-रिव्यूमें सन् १८७५-७६ ई०मे प्रकाशित हुआ था।

इस रचनाके आल्हखण्ड नामसे ऐसा आभास होता है कि आल्हा सम्बन्धी ये वीरगीत जगनिककृत उस बडे काव्यके एक खण्डके अन्तर्गत थे जो चन्देलोंकी वीरताके वर्णनमे लिखा गया था।

साहित्यके रूपमे न रहनेपर भी जनताके कण्ठमे जगनिकके संगीतकी वीर-दर्पपूर्ण-ध्वनि अनेक बल खाती हुई अबतक चली आ रही है। इस दीर्घ समयमें देश और कालके अनुसार आल्हखण्डके कथानक और भाषामे बहुत कुछ हेर-फेर हो गया है। बहुतसे नये हथियारों (बन्दूक, किरिच) देशों और जातियोंके नाम सम्मिलित हो गये हैं और बराबर होते जा रहे है। इसमे पुनरुक्तिकी भरमार है। युद्धमें एक ही प्रकारके वर्णन मिलते हैं। कथामे पूर्वापर सम्बन्धके निर्वाहका अभाव है। अनेक स्थलोंपर शैथिल्य और अत्युक्तिपूर्ण वर्णनोंकी अधिकता है।

आल्हखण्ड 'पृथ्वीराजरासो'के 'महोबा-खड'की कथासे साम्य रखते हुए भी एक स्वतन्त्र रचना है। मौखिक परम्पराके कारण इसमें बहुतसे परिवर्त्तनों और दोषोंका समावेश हो गया है, पर इस रचनामें वीरत्वकी मनोरम गाथा है जिसमें उत्साह और गौरवकी मर्यादा सुन्दर रूपमे निबाही गयी है। इसने जनताकी सुप्त भावनाओंको सदैव गौरवके गर्वसे सजीव रखा है। 'आल्हखण्ड' जन-समूहकी

निधि है और इसी दृष्टिसे इनके महत्त्वका मूल्यांकन होना चाहिये।

[सहायक-ग्रन्थ—१. रामचन्द्रशुक्ल : हिन्दी साहित्यका इतिहास, नागरी प्रचारिणीसभा, काशी, संशोधित और परिवर्द्धित संस्करण, सं० २००३ वि०, पृ० ५१-५२; २. रामकुमार वर्मा : हिन्दी साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास, रामनारायण लाल, इलाहाबाद, तृतीय बार, १९५४ ई०, पृ० १७४-१७६; ३. धीरेन्द्र वर्मा, प्रधान सम्पादक—ब्रजेश्वर वर्मा, सहकारी सम्पादक : हिन्दी साहित्य, द्वितीय खण्ड, भारतीय हिन्दी परिषद्, प्रयाग, प्रथम संस्करण, मार्च, १९५९ ई०, पृ० १६२।] —ये० सिं० तो०

आसकरन–कछवाहा राजा पृथ्वीराजकी वंश-परम्परामें ये राजा भीमसिंहके पुत्र, एवं एक उच्चकोटिके वैष्णव तथा कील्ह-देव स्वामीके शिष्य थे। ये नरवरगढ़के अधिपति थे। इनके उपास्य देव युगलमोहन (जानकी मोहनराम तथा राधा-मोहन कृष्ण) थे। इनके विषयमें यह प्रसिद्ध है कि ये ईश्वरकी आराधना करते समय पूर्णतया तन्मय हो जाते थे। एक बार इनके एक शत्रुने इनपर आक्रमण कर दिया। इनकी तन्मयता भंग करनेके लिए उसने तलवारसे इनके पैरकी एँड़ी काट दी लेकिन इतनेपर भी इनकी ध्यानावस्थापर कोई प्रभाव न पड़ सका। इनकी ईश्वर-भक्ति देखकर वह इतना अधिक प्रभावित हुआ कि इनके राज्यकी विजय करनेकी भावनाका त्यागकर वापस चला गया। —ज० प्र० श्री०

आस्तीक १–जरत्कारु ऋषि इनके पिता थे। इनकी माताका नाम भी जरत्कारु था जो नागराज वासुकिकी भगिनी थीं। एक बार जब जरत्कारु सो रहे थे, उनकी पत्नीने उन्हें जगा दिया। इसपर वे क्रोधित होकर अपनी पत्नीको छोड़कर चले गये। जाते समय उन्होंने 'अस्ति' (गर्भ है) कहा था। फलस्वरूप, इनका नाम आस्तीक पड़ा। जन-मेजयके नागयज्ञमें जब सारे संसारके सर्पोंकी बलि दी जा रही थी, उस समय इन्होंने ही वासुकि तथा उसके परिवार-की रक्षा की थी (दे० 'जनमेजयका नागयज्ञ' : जयशंकर प्रसाद)। —ज० प्र० श्री०

आस्तीक २–प्रसादकृत नाटक 'जनमेजयका नागयज्ञ'का पात्र। आस्तीक जरत्कारु ऋषि तथा नागकन्या मनसाका पुत्र है। इस प्रकार उसके शरीरमें आर्य और अनार्य रक्त समान मात्रामें प्रवाहित हो रहा है इसीलिए उसके हृदयमें किसी एक के लिए पक्षपात और दूसरेके प्रति विद्वेषकी भावना नहीं है। ऋषि-स्वभावकी ही भाँति वह शान्त, स्निग्ध, विवेकपूर्ण, दार्शनिक और विश्वकल्याणका इच्छुक है। उसमें नाग जातिकी-सी बर्बरता और कुटिलताका अभाव है। वह अपनी विवेकपूर्ण निर्मल बुद्धि द्वारा आर्य एवं नागजातिके पारस्परिक वैमनस्यको मिटाकर शाश्वत मैत्रीका अभिलाषी है। वह माणवकसे कहता है : 'दो भयंकर जातियाँ क्रोधसे फुफकार रही हैं। उनमें शान्ति स्थापित करनेका हमने बीड़ा उठाया है।' नागोंकी हिंसक वृत्ति रोकनेके कारण माता उसे त्याज्य पुत्र मानकर छोड़ देती है। शीलवश अपनी माताकी आज्ञा न माननेका अपराध आस्तीक अपने ऊपर लिये रहता था। माताकी स्नेह-छायासे वंचित होकर कुछ कालके अनन्तर अपने पिताको भी खो देता है क्योंकि जरत्कारुकी जनमेजयके द्वारा आखेट में धोखेसे मृत्यु हो जाती है। इस प्रकार विपत्तियोंका साक्षात्कार करनेके कारण उसकी बुद्धि दार्शनिकतामें सम्पन्न हो जाती है। शैशवकालसे ही विश्वकी जटिलताओंका प्रत्यक्षीकरण हो जानेसे उसके हृदयमें सात्विकताका प्राधान्य हो जाता है। आस्तीकका अवतरण एक महान् उद्देश्य लिये हुए होता है। वह प्रतिकूल परिस्थितियोंमें भी अपने लक्ष्यसे विचलित नहीं होता। उसमें आत्म-विश्वासकी दृढ़ता एवं निश्छल निर्भीकता पर्याप्त मात्रामें है।

शीलकी मात्रा आस्तीकमें विशेष रूपसे है। माँके क्रुद्ध होनेपर भी आस्तीक अपना ही अपराध समझता हुआ आत्म-ग्लानिवश व्यासके समक्ष निवेदन करता है : "भगवन्! मैं मातृद्रोही हो गया हूँ। मैंने माताकी आज्ञा नहीं मानी। मेरे सिरपर यह एक भारी अपराध है।" आस्तीककी आत्मग्लानि व्यासके सदुपदेशोंसे मिट जाती है। कृती पुरुष आस्तीकका आविर्भाव किसी विशेष कार्यके लिए हुआ है। केवल वही नागयज्ञमें तत्पर जनमेजयकी प्रतिहिंसाग्निको शमन करनेमें समर्थ है। जनमेजय उसके सरल मुख-मण्डल और आकर्षक व्यक्तित्वसे प्रभावित होकर उसे अपना रक्त-दानतक करनेको प्रस्तुत हो जाता है और उसके समक्ष जरत्कारुकी हत्याका अपराध स्वीकार करता है। जनमेजयके प्रसन्न होनेपर आस्तीक अपनी स्वार्थसिद्धि न करके दो जातियोंमें स्थायी मैत्री-भाव देखनेका अभिलाषी है। उसका कथन है कि 'मुझे दो जातियोंमें शान्ति चाहिये। सम्राट् शान्तिकी घोषणा करके बन्दी नागराजको छोड़ दीजिये। यही मेरे लिए यथेष्ट प्रतिफल है।' उसीके अनुरोधसे नागयज्ञ समाप्त होता है। इस प्रकार आस्तीक अपनी माताके समक्षकी हुई प्रतिज्ञा पूरी करता है। —के० प्र० चौ०

आहुक–इनके पितामह राजा नल तथा पिता मृत्तिकावत् नगरीके पराक्रमी एवं ऐश्वर्यसम्पन्न भोजवंशी राजा अभिजित थे। मतान्तरसे ये पुनर्वसु के पुत्र थे। इनकी पत्नीका नाम-काश्या था जिससे देवक तथा उग्रसेन नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। अन्य मतके अनुसार इनके पुत्रका नाम शम्भर था। महाभारतमें उल्लेख है कि इनका कृष्णके साथ युद्ध भी हुआ था (दे० 'उग्रसेन')। —ज० प्र० श्री०

इंजील–दे० 'बाइबिल'।

इंदु–प्रेमचन्द्रकृत 'रंगभूमि'में इन्दुका प्रमुख स्थान है। वह विनयकी बहिन और राजा महेन्द्रकी पत्नी है। सरल और सुशील होनेके अतिरिक्त वह भी अपनी माताके नियन्त्रणमें पालित-पोषित और देश-प्रेम से ओत-प्रोत है। बहिनके रूपमें वह अगाध स्नेहसे पूर्ण है, तो पत्नीके रूपमें दुःखी है उसे अपने पतिकी नाम-लालसा तनिक भी अच्छी नहीं लगती। वह कृपण नहीं है, दयाकी मूर्ति है और मानव-धर्म पहचानती है। उसे अपने घरमें ही अपनी परवशता खटकती है, किन्तु माता द्वारा सिखाई हुई पति-परायणताके सामने विवश हो जाती है। वह अपनेको एक जाति-सेवककी पत्नीके रूपमें देखना चाहती है। यह न होते देख कर उसकी पति-परायणता और उसके जीवनादर्श-

में संघर्ष छिड़ जाता है। इसी संघर्षके फलस्वरूप उसके भीतरके नारीत्वका पूर्णरूपेण उदय होता है और वह ईश्वरपर भरोसा रखकर देश-सेवाके लिए निकल पड़ती है। —ल० सा० वा०

इंद्र–ऋग्वेदके अनुसार ये निष्टिग्रीके पुत्र थे। इनकी माता ने इन्हे सहस्र मासतक गर्भमें धारण कर रखा था। इनका जब जन्म हुआ तो ये वीर्यपूर्ण थे, अतएव इन्हें देखते ही इनकी माता इनपर मुग्ध हो गयी थीं। ऋग्वेदके एक उल्लेख-के अनुसार इन्होंने पिताके दोनों पैर पकडकर उनका वध कर डाला था। अथर्ववेदके अनुसार इनकी माता एकाष्टका थीं। एकाष्टकाने घोर तपस्या करके इन्हें उत्पन्न किया था। देवताओंने दस्युओं और असुरोंका संहार इन्हीं महाशक्ति सम्पन्न इन्द्रकी सहायतासे किया था। इनके पिता सोम थे। शतपथ ब्राह्मणके अनुसार इनकी उत्पत्ति प्रजापतिसे हुई थी। पौराणिक मतके अनुसार पिता कश्यप और माता अदिति थी। इन्द्रके क्षेत्रज पुत्र सम्भवतः नहीं थे। इनके औरस पुत्रोंमें बालि और अर्जुनका नाम लिया जाता है। ये वैदिककालके ही एक सर्वप्रमुख देवताके रूपमें स्मरण किये जाते हैं। ऋग्वेदके त्रिदेवोमे अग्नि और सूर्य अथवा वरुणके साथ इनका भी नाम लिया जाता है। ऋक् संहितामें इनके विषयमें सर्वाधिक (लगभग २५०) मन्त्र मिलते हैं। इन मन्त्रोंमें इन्द्रसे दासों और दस्युओंके नगरोंका विध्वंस करनेकी बार-बार प्रार्थनाकी गयी है। ये मूलतः आकाश और बादलोंके प्रतीक-स्वरूप मान्य देवता थे। इसीलिए इनका स्मरण जल-वृष्टिके लिए भी किया गया है। इनके देवेन्द्र होनेकी कथा यह है कि दस्युओं द्वारा आतंकित होनेपर एकबार देवता प्रजापतिके पास गये और कहा कि राजाके अभावमे युद्ध करना सम्भव नहीं है। प्रजापतिके निर्देशानुसार उन्होने इन्द्रसे राजा बननेकी प्रार्थना की। तबसे इन्द्र देवपक्षके राजा हुए। ऋग्वेदमें अनेक स्थानोपर इन्द्रके वृत्रको पराजित करनेका उल्लेख मिलता है। पुराणोमे इस कथाका विकास और विस्तार किया गया है। पुराणोंमे लिखा है कि वृत्रासुरके संहारके लिए इन्द्रने महर्षि दधीचिकी हड्डियाँ प्राप्तकर उनका वज्र बनवाया था और इस वज्रसे वृत्रासुरका वध किया था। तैत्तरीय ब्राह्मणमें कहा गया है कि देवताओने सम्मिलितरूपसे प्रजापतिको बताया कि असुरोंकी सृष्टि होनेपर इनके दमन करनेवालेकी भी आवश्यकता होगी। प्रजापतिने देवताओंको अपने समान ही तपोबल द्वारा इन्द्रको उत्पन्न करनेकी प्रेरणा दी। देवताओने प्रजापतिके कथनानुसार दीर्घकालतक घोर तपस्या की। तप करनेपर उन्हें अपनी आत्मामें ही इन्द्रका आभास मिला। उन्होंने इन्द्रसे जन्म लेनेकी प्रार्थना की। फलस्वरूप इन्द्रने यथासमय अवतार ग्रहण किया। इस ग्रन्थमें इन्द्राणीके साथ विवाह होनेके सम्बन्ध में लिखा है कि इन्द्रने उसके पिता पुलोमाको मारकर उसे हस्तगत किया था। ऐतरेय ब्राह्मणमें इनकी पत्नीका नाम प्रसहा मिलता है। वैदिककालके उपरान्त इन्द्रकी महत्ता क्षीण होती दिखाई देती है। रामायण, महाभारत तथा पुराणोंमें उनका स्थान पौराणिक त्रिदेवकी तुलनामें उत्त-रोत्तर हीन दिखाया गया है तथा इनकी चारित्रिक दुर्बल-ताओंके अनेक उल्लेख किये गये हैं। वाल्मीकि रामायणमें मेघनाद द्वारा इनके पराभूत होने और उसके द्वारा बन्दी बनाये जानेकी वार्ता मिलती है। इनकी मुक्तिके लिए देवताओंको रावणको अमर होनेका वरदान देना पड़ा था। महाभारतके अनुसार इन्होंने छद्मवेश धारणकर गौतमकी परिणीता पत्नी अहल्यासे रतिदान प्राप्त किया था। मुनिके शापसे ये सहस्रभग वाले हो गये थे। रामावतारमें स्वयम्वरके अवसरपर रामके दर्शनसे इनके भग नेत्रोंमें परिणत हुए थे और तबसे ये सहस्राक्ष कहलाये। काठकके मतानुसार ये विलिस्तेंगा नामक दानवीपर अनुरक्त हुए थे। एक बार बृहस्पतिका सम्मान न करनेके कारण देवताओंके साथ इन्हें असुरोंसे पराजित होना पड़ा था। तब ये ब्रह्माकी शरणमें गये, विश्वरूप ऋषि इनके गुरु बने; तभी इन्हे विजयश्री मिली। कृष्णकथासे भी इनके महत्त्वको कम करनेके प्रमाण मिलते हैं। कृष्णसे पूर्व ब्रजवासी इनकी उपासना किया करते थे। कृष्णने ब्रजवासियोंको गोवर्धनकी उपासना करनेके लिए प्रेरित और प्रोत्साहित किया। इसपर इन्द्रने कोप करके प्रलयंकर बादलोंको ब्रज-प्रदेशको जलमग्नकर देनेके लिए भेजा। कृष्णने अपनी कनिष्ठा अँगुलीपर गोवर्धनको उठाकर ब्रजवासियोंकी रक्षा की और इस प्रकार इन्द्रके दर्पको मिटाया—"सूरदास प्रभु इन्द्र-गर्व हरि, ब्रज राख्यौ करवर तें" (दे० सूर० पद १४२९-१६०१)। इसी प्रकारकी इन्द्रके सम्बन्धमें अनेक कथाएँ हैं (दे० 'कृष्ण')। इन्द्रके नाम भी अनेक हैं—महेन्द्र, शक्रधनु, ऋभुक्षु, अर्ह, दत्तेय, वज्र-पाणि, मेघवाहन, पाकशासन, देवपति, दिवस्पति, उलूक, स्वर्गपति, जिष्णु, मरुत्वान्, उग्रधन्वा, पुरन्दर आदि। इनका वाहन—ऐरावत, अस्त्र—वज्र; स्त्री—शची, पुत्र—जयन्त, नगरी—अमरावती, वन—नन्दन, घोड़ा—उच्चैश्रवाः, और सारथि—मातल हैं। वृत्र, बलि और विरोचन इनके प्रधान शत्रु हैं। ये ज्येष्ठा नक्षत्र और पूर्व दिशाके स्वामी हैं। —ज० प्र० श्री०

इंद्रकील–यह मंदराचलका नामान्तर है। अर्जुन ने इस पर्वतपर तपस्या की थी। शिवसे उनका यही युद्ध हुआ था। शिवने अर्जुनकी वीरतासे प्रसन्न होकर उन्हें पुरस्कार-स्वरूप पाशुपतास्त्र दिया था। शिशुपालका वध करनेके पूर्व कृष्णने यहाँ क्रीडा की थी। —ज० प्र० श्री०

इंद्रजित, इंद्रजीत–मेघनादका अन्य नाम, जो इन्द्रको पराजित करनेके कारण पड़ा—"चला इन्द्रजित अतुलित जोधा" (मा० ५।१९।२)। —ज० प्र० श्री०

इंद्रदेव–प्रसादके उपन्यास 'तितली'का पात्र। धामपुरके जमींदारके पुत्र, जो लन्दनसे बैरिस्टरी पास कर, शैलाको साथ लेकर अपने देश लौटते हैं। इन्द्रदेव शैलाके प्रति आकर्षित हैं, और इसी कारण उसकी सुख-सुविधा और गौरव बढानेके लिए सदैव चिन्तित रहते हैं। शैलाके प्रति घरवालोंकी उपेक्षा उन्हे असह्य है। प्रेमीके रूपमें इन्द्रदेवकी कुछ दुर्बलताएँ हैं। एक तो उन्हें तितली और अनवरीके प्रति हल्का-सा आकर्षण, यह सोचनेके लिए विवश करता है कि क्या वे शैलाको वैसा ही प्यार करते है ? दूसरे शैलाकी उदासीनता और वाटसनके स्नेहपूर्ण पत्रकी चर्चा उनमें

'कंकाल'के मंगलके समान शंका और ईर्ष्या उत्पन्न करती है। वे संदेह करते हैं कि शैला उन्हे जान-बूझ कर दूर रखना चाहती है। हम कह सकते है कि इन्द्रदेव का चरित्र स्वजनोंके प्यारकी धुरीपर ही परिचलित होता है और इसमें शैथिल्य आते ही वे क्षुब्ध और निराश हो उठते हैं। शैलासे विवाह करने तथा श्यामदुलारी, माधुरी और शैला-के प्रेममय मिलनसे उन्हें अत्यन्त सन्तोष होता है। शैलाके प्रति प्रेम उनके व्यक्तित्वके अन्य पक्षोंको नहीं उभरने देता। धनके प्रति निर्मोह उनके चरित्रकी दूसरी विशेषता है। धनके लिए षड्यन्त्र रचनेवाली माधुरीके प्रति वह क्षुब्ध रहते हैं। माँके स्नेहमें बाधक सम्पत्तिको वह उन्हींके नाम लिख देते है। व्यक्ति और समाजका आर्थिक सुविधाके प्रति मोह सम्मिलित कुटुम्ब और धर्म तथा संस्कृतिके प्रति अनास्थावादी भी बना देता है। गाँवोंके सुधारके लिए वह प्रथम आवश्यकता समझते है सम्पत्तिशालियोंके स्वार्थ-त्याग की। अतीत कालसे संचित पुरुषके जिस अधिकार-संस्कारकी चर्चा वह करते है, उसका कोई सशक्त रूप उनमे नहीं उपलब्ध होता—सम्पूर्ण उपन्यासमें दूसरोंकी भावनाओंके समक्ष वह नतमस्तक होते दिखाई पड़ते है; अधिकार-लालसा अधिक-से-अधिक उनकी खीझ या निराशा मनस्थितिसे उद्भूत जान पड़ती है। —शं० ना० च०

इंद्रद्युम्न—ये मालव देशके एक राजा थे जिन्होंने उत्कलस्थ पुरुषोत्तमदेवका मन्दिर बनवाया था। उसमे विश्वकर्मा स्वयं आकर दारुमयी मूर्त्तिका निर्माण कर गये थे। मुकुन्द-रामके जगन्नाथमंगलके अनुसार ये मन्दिर बनवाकर ब्रह्माके पास मूर्त्ति-स्थापनके लिए गये। अत्यधिक प्रार्थना करनेपर ब्रह्मा सन्तुष्ट हुए। चूँकि वे सन्ध्यावन्दन करने जा रहे थे अतः उन्होंने इनसे एक मुहूर्त ठहरनेको कहा। ब्रह्माका एक मुहूर्त ६० हजार वर्षका होता है। ये एक मुहूर्ततक ठहरे रहे। ब्रह्मा जब सन्ध्या करके लौटे तो इनसे बोले, "एक बार अपने राज्यतक वापस जाकर फिर आओ तो तुम्हे मूर्ति देंगे। अपने राज्यमे आनेपर ये उसे पहचाननतक न सके। कारण वहा सब कुछ नष्ट-भ्रष्ट हो चुका था। अन्ततोगत्वा एक पेचक और कूर्मने इन्हें सम्पूर्ण पूर्वकथासे परिचित कराया। ये पुनः राजा हुए और कौसाध राजाकी कन्या माला-वतीसे विवाह किया। इन्होंने फिर प्रस्तरका जगन्नाथका मन्दिर बनवाया। एक दिन किसी दूतने आकर इन्हे बताया कि समुद्रतटपर एक काष्ठ तैर रहा है। इन्होंने ब्रह्मा से सुन रखा था कि भगवान् कृष्ण एक निंब वृक्ष पर प्राण त्यागेंगे और बहकर समुद्रतीर पहुचेंगे। अतः दूतसे काष्ठकी बात सुनकर ये अविलंब समुद्रतटपर गये और अपूर्व महा समारोह करके काष्ठ ले आये। विश्वकर्माने आकर उसी काष्ठसे जगन्नाथकी मूर्ति निर्मित की थी। इन्होने अपनी कन्या सत्यवतीका जगन्नाथदेवसे विवाह कर दिया था।

२. मार्कण्डेयसे पूर्व इस नामके एक अत्यन्त प्राचीन ऋषि हुए थे जिन्हें पथभ्रष्ट होनेके कारण मर्त्यलोकमें आना पड़ा था।

३. सुमतिके पुत्र तथा भरतके पौत्र थे।

४. एक असुर राजा था जिसकी मृत्यु महाभारत (वन० १२ अ०)के अनुसार कृष्णके हाथों हुई थी।

५. एक राजा जो कि अगस्त्य ऋषिके अभिशापसे गज हो गया था। गज और ग्राहका जो युद्ध हुआ था, उसमें नारायणने इसका उद्धार किया था।

इंद्रनाथ मदान—जन्म, १९१० ई०में शाहपुर जिलेमें हुआ। शिक्षा, एम० ए०, पी० एच-डी०। अनेक वर्षोंसे पंजाब विश्वविद्यालयमें हिन्दीके प्राध्यापक हैं। अधिकतर समीक्षा-कृतियाँ प्रकाशित की हैं और आधुनिक साहित्यकी विभिन्न स्थितियोंपर विचार किया है। हिन्दी और अँग्रेजी दोनों ही माध्यमोंसे लिखा है। अंग्रेजीके माध्यमसे हिन्दीके बारेमें लिखनेवाले व्यक्तियोंमें इन्द्रनाथ मदानका नाम काफी पहले आता है। आपकी प्रकाशित कृतियाँ है—'हिन्दी कलाकार' (१९४७), 'प्रेमचन्द'(१९५१), 'शरचन्द्र चटर्जी' (१९५४); अँग्रेजीमें—'मॉडर्न हिन्दी लिट्रेचर' (१९३९), 'शरच्चन्द्र चटर्जी' (१९४४); 'प्रेमचन्द' (१९४६)। —सं०

इंद्रवर्मन—ये महाभारतकालीन मालवा-नरेश थे। इन्होंने युद्धमे कौरवोंका पक्ष ग्रहण किया था। प्रसिद्ध अश्वत्थामा नामक हाथी इन्हींका था जिसकी मृत्यु होनेपर युधिष्ठिर-ने जीवनमे प्रथम और अन्तिम बार "अश्वत्थामा हतो नरो वा कुञ्जरो वा" मिथ्याकथन किया था। —ज० प्र० श्री०

इंद्र विद्यावाचस्पति—आपका जन्म ९ नवम्बर १८८९ ई०मे नवाँशहर, जिला जालन्धरमें हुआ और मृत्यु २३ अगस्त १९६० ई०को दिल्लीमे हुई। गुरुकुल कांगड़ीमे शिक्षा प्राप्त करते समय ही अपने पिता स्वामी श्रद्धानन्दके साथ 'सद्धर्म-प्रचारक'का सम्पादन करनेका सुअवसर इन्हे प्राप्त हुआ। तभीसे वे हिन्दी-पत्रकारिताकी ओर प्रवृत्त हो गये। उन्होंने हिन्दी पत्रो और लेखन द्वारा हिन्दी-सेवाका व्रत स्नातक बनते ही लिया। जिस समय 'सद्धर्मप्रचारक'का कार्यालय कांगड़ीसे दिल्लीमे स्थानान्तरित हुआ उस समयसे 'सद्धर्म-प्रचारक'का कार्य वे स्वतन्त्ररूपसे करने लगे। पत्रकारितामे उनकी विशेष रुचि थी। उन्होंने 'विजय' नामक समाचार-पत्रका भी सम्पादन आरम्भ किया। 'विजय' दिल्लीका प्रथम हिन्दी-समाचारपत्र था। इसके कुछ समय पश्चात् 'वीर अर्जुन'का प्रकाशन आरम्भ हुआ जिसके सम्पादक भी इन्द्रजी थे। हिन्दीमें 'वीर अर्जुन'का स्थान बहुत ऊँचा है। इसका श्रेय इन्द्रजीकी लेखन-शैलीको ही है। पचीस वर्षतक इस पत्रका सम्पादन करनेके पश्चात् इन्द्रजीने 'जनसत्ता'के सम्पादनका कार्यभार संभाला। इस प्रकार इन्द्रजीका साहित्यिक जीवन पत्रकारितासे आरम्भ हुआ।

एक कुशल पत्रकार होनेके साथ-साथ इन्द्रजी एक विचारक और इतिहासके गम्भीर विद्यार्थी भी थे। उन्होंने इतिहासपर जो ग्रन्थ लिखे उनकी गणना इस विषयपर हिन्दीमे लिखे गये प्रथम श्रेणीके ग्रन्थोंमें होती है। 'भारतमे ब्रिटिश साम्राज्यका उदय और अन्त', 'मुगल साम्राज्यका क्षय और उसके कारण' और 'मराठोंका इतिहास' उनमे विख्यात है। इन्द्रजीकी अन्य पुस्तकोंमे 'आर्यसमाजका इतिहास', 'उपनिषदोंकी भूमिका', 'स्वतन्त्र भारतकी रूपरेखा', 'सम्राट रघु', 'मेरे पिता', 'स्वराज्य और चरित्र-निर्माण', 'जीवन-ज्योति', 'मैं इनका ऋणी हूँ', 'महर्षि दयानन्द', 'हमारे कर्मयोगी राष्ट्रपति' और

'भारतीय संस्कृतिका प्रवाह' हैं। ये सभी ग्रन्थ विचारपूर्ण हैं और इनकी भाषा प्रांजल है। ऐतिहासिक, राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक विषयोंके अतिरिक्त इन्द्रजीने कतिपय उपन्यास भी लिखे हैं। इनके आरम्भके उपन्यासों-की पृष्ठभूमि ऐतिहासिक रहती थी जैसे 'शाहआलमकी आँखें'। किन्तु सामाजिक पृष्ठभूमिको लेकर भी इन्होंने कतिपय उपन्यासोंकी रचना की है जैसे 'सरलाकी भाभी', 'जमींदार' और 'अपराधी कौन'।

कथा-साहित्यकी दिशामे जो प्रयोग इन्द्रजीने किये, वे लोकप्रिय भले ही हुए हों, पर पूर्ण सफल नही कहे जा सकते। इन्द्रजी भाषापर पूरा अधिकार रखते थे, किन्तु उनके उपन्यासोंके कथानक कहीं-कहीं शिथिल हैं। ऐतिहासिक उपन्यासोंमें इतिहासकी घटनाएँ इस प्रकार छायी हुई हैं कि वे कल्पनाको स्थान देनेमें संकोच करती हैं। पाठकको उपन्यास पढ़नेमें आनन्द आता है किन्तु उसे ऐसा आभास होता है मानो वह कल्पनाकी सूक्ष्मताके स्थानपर इतिहासका रोचक वर्णन पढ़ रहा हो। 'शाह आलमकी आँखें'में इतिहासने कल्पना-वस्तुको गौण बना दिया है। जिसने अंग्रेजी उपन्यासकार थैकरेकी रचनाओंको पढा हो, उसे यह दोष और भी अधिक खटकेगा। इतिहास और कल्पनामें जो समन्वय थैकरेने स्थापित किया है, उसका इन्द्रजीकी रचनाओमे हमें अभाव मिलता है। वास्तविकता यह है कि इन्द्रजीकी विचार और लेखन-शैलीपर पत्रकारिता, इतिहास और चालू विषयोका अत्यधिक प्रभाव है। वस्तुस्थितिका निरूपण ही उनकी ग्रन्थ-रचनाओंका आदर्श रहा है। इसलिए कल्पना-जगत्मे प्रवेश करके भी इन्द्रजी वहाँ अजनबी रहे।

इन्द्रजीके जीवनके प्रायः चालीस वर्ष धार्मिक हलचलों और राजनीतिक आन्दोलनोंमे बीते। इस सरगरमीके बीच उनकी लेखनीको अनुकूल वातावरण मिला और उन्होंने पत्रकार तथा लेखकके रूपमें हिन्दी संसारमें प्रवेश किया। अपने सार्वजनिक जीवनमे साहित्य-सर्जनके अतिरिक्त उन्होने हिन्दी-प्रचारके क्षेत्रमें प्रत्यक्ष रूपसे कार्य किया। अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य सम्मेलन तथा उसके प्रान्तीय सम्मेलनोंमे उनका निकटका सम्बन्ध रहा, किन्तु इन्द्रजीकी सबसे बडी सेवा उनके द्वारा गुरुकुल कागडीका सचालन तथा पथ-प्रदर्शन था। इन्हींके कुलपति-कार्यकालमे गुरुकुल महाविद्यालयमे विश्वविद्यालयमें परिणत हुआ, उसका शिक्षा-क्रम सर्वांगीण हुआ, जिसके फलस्वरूप गुरु-कुलकी उपाधियोंको केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों द्वारा मान्यता मिली। अनेक दिशाओंमे आधुनी-करण और व्यापक परिवर्तनके बावजूद हिन्दीका स्थान गुरुकुलमें वही रहा जो उसकी स्थापनाके समय था। तकनीकी विषयोंका शिक्षण भी आज गुरुकुलमे हिन्दीके माध्यमसे हो रहा है। इसका अधिकांश श्रेय इन्द्रजीको ही है और कदाचित् उन संस्कारोंको है जो उन्हे अपने पिता स्वामी श्रद्धानन्दसे विरासतमे मिले। अपने पिताके पद-चिह्नोंपर चलकर इन्द्रजीने शिक्षा और साहित्यके क्षेत्रमें अथक कार्य करके हिन्दीकी अमूल्य सेवाकी थी।

इन्द्रजी द्वारा लिखित पुस्तकोंकी सूची–'नेपोलियन बोनापार्टकी जीवनी' (जीवन-चरित्र) सन् १९१२, 'उप-निषदोंकी भूमिका' (भारतीय संस्कृति) सन् १९१४, 'प्रिंस बिस्मार्क' (जीवन-चरित्र) सन् १९१४, 'संस्कृत साहित्यका अनुशीलन' (साहित्य) सन् १९१५, 'राष्ट्रोंकी उन्नति' (राजनीति) सन् १९१५, 'राष्ट्रीयताका मूलमन्त्र' सन् १९१६, 'गैरीबाल्डी' (जीवन-चरित्र) १९१६, 'स्वर्ण देशका उद्धार' (नाटक) सन् १९२१, 'महर्षि दयानन्दका जीवन चरित्र' (जीवन-चरित्र) सन् १९२७, 'मुगल साम्राज्यका क्षय और उसके कारण' (इतिहास १, २) सन् १९३०, 'मुगल साम्राज्यका क्षय और उसके कारण' (३, ४) सन् १९३१, 'अपराधी कौन' (उपन्यास) १९३२, 'शाहआलमकी आँखें' (उपन्यास) सन् १९३२, 'जीवनकी झाँकियाँ—दिल्लीके वे स्मरणीय बीस दिन' (संस्मरण) सन् १९३५, 'पण्डित जवाहरलाल नेहरू' (जीवन-चरित्र) सन् १९३६, 'जमींदार' (उपन्यास) सन् १९३६, 'सरलाकी भाभी' (उपन्यास) सन् १९४४, 'जीवनकी झाँकियाँ—मैं चिकित्साके चक्रव्यूहसे कैसे निकला' (संस्मरण) सन् १९४५, 'स्वतन्त्र भारतकी रूपरेखा' (राजनीति) सन् १९४५, 'जीवन सग्राम' (राजनीति) सन् १९४५, 'सरला' (उपन्यास) सन् १९४६, 'जीवनकी झाँकियाँ—मेरे नौकर-शाही जेलके अनुभव' (संस्मरण) सन् १९४७; 'आत्म बलिदान'(उपन्यास) सन्१९४८, 'हमारे कर्मयोगी राष्ट्रपति' (संस्मरण) सन् १९५२; 'स्वराज्य और चरित्र निर्माण' (सामाजिक) सन् १९५२, 'रघुवंश'(साहित्य) सन् १९५४, 'किरातार्जुनीय' (साहित्य) सन् १९५५, 'ईशोपनिषद् भाष्य' (भारतीय संस्कृति) सन् १९५५, 'भारतमें ब्रिटिश साम्राज्यका उदय और अस्त—प्रथम भाग' (इतिहास) सन् १९५६, 'आधुनिक भारतमें वक्तृत्व कलाकी प्रगति' सन् १९५६, 'मेरे पिता' (संस्मरण) सन् १९५७, 'भारतीय संस्कृतिका प्रवाह' सन् १९५८, 'मै उनका ऋणी हूँ' (संस्मरण) सन् १९५९, 'भारतके स्वाधीनता-संग्रामका इतिहास' सन् १९६१, 'लोकमान्य तिलक' (अप्रकाशित); 'मेरे पत्रकारितासम्बधी अनुभव' (अप्रकाशित); 'आत्म-चरित्र' (अप्रकाशित)। —शा० द०

इंद्राणी–इन्द्रकी पत्नी शचीको कहा जाता है किन्तु इसके अतिरिक्त भी इन्द्राणी शब्दसे अनेक अर्थों का बोध होता है; यथा, बडी इलायची, बाई आँखकी पुतली, दुर्गा देवी, इन्द्रायन आदि। —रा० कु०

इंदिरा–लक्ष्मीका एक पर्याय। 'सती विधात्री इन्दिरा देखी अमित अनूप' (मा० १।५४)। —ज० प्र० श्री०

इंदुज–बुधका नामान्तर है। यह ताराके गर्भसे उत्पन्न चन्द्रका औरस पुत्र है। एक बार चन्द्रने राजसूय यज्ञ करनेपर विवेकशून्य होकर बृहस्पतिकी पत्नी ताराका अपहरण किया था। देवताओ द्वारा यह बताये जानेपर ब्रह्माने स्वय ताराको ले जाकर बृहस्पतिको समर्पित कर दिया था। बृहस्पतिने ताराको गर्भवती देखकर कहा कि वह उनके घरमे रहते हुए उस गर्भको धारण नही किये रह सकेगी। इसपर ताराने तुरन्त गर्भस्थ पुत्रको जलस्तंभपर फेंक दिया था। वह पुत्र जन्म लेनेके बाद ही ज्वलंत अग्निके सदृश चमकने लगा था। पुत्रको देखकर ब्रह्माने

तारासे पूछा कि वह किसका पुत्र है। ताराने सविनय बताया कि वह चन्द्रका पुत्र है। इसपर चन्द्रने उसे अंकमें लेकर उसका नाम बुध रखा। —ज० प्र० श्री०

इंदुमती–ये विदर्भराज भोजकी बहिन, राजा अजकी पत्नी और महाराज दशरथकी माता थीं। पूर्व जन्ममें ये 'हारिणी' अप्सरा थीं। इन्द्रने इन्हे 'तृणविन्दु' ऋषिकी तपस्या भंग करनेके लिए भेजा था। ऋषिने इन्हें मनुष्य योनिमें जन्म पानेका अभिशाप दिया था और इनके अत्यन्त विनय करनेपर ऋषिने इन्हें स्वर्गीय पुष्पका दर्शन करनेपर फिरसे इन्द्रलोकमें वापस हो सकनेका वचन प्रदान किया था। एक बार जब ये अजके साथ वाटिका-विहार कर रही थीं, उस समय इन्हें नींद आ गयी। ये लता-मंडपमें सोई हुई थीं। नारदकी, जो उसी समय सयोगवश स्वर्गसे आ रहे थे, वीणासे पारिजातकी माला इनके ऊपर गिर पड़ी। फलतः ये दिवंगत होकर पुनः इन्द्रलोक जा सकीं। —ज० प्र० श्री०

इंशा अल्ला खाँ–हिन्दी-खड़ी बोली-गद्यके उन्नायकोंमें इंशा अल्ला खाँका विशिष्ट स्थान है। इनके पिता मीर माशा अल्ला खाँ कश्मीरसे दिल्ली आकर बस गये थे और शाही हकीमके रूपमें कार्य करते थे। मुगल सम्राट्की स्थिति चिन्त्य होनेपर ये मुर्शिदाबादके नवाबके यहा चले गये। यहीं इंशाका जन्म हुआ। बंगालकी स्थिति बिगड़नेपर इंशाको दिल्लीमे शाह आलम द्वितीयके आश्रयमें आना पड़ा। इंशा बड़े ही खुशमिजाज, हाजिर जवाब और व्युत्पन्न व्यक्ति थे। शाह आलम नामके ही शाह थे। वे इंशाकी शायरीकी कद्र करते थे किन्तु उनको यथोचित पुरस्कारसे सन्तुष्ट नहीं कर पाते थे। अपनी महत्त्वाकांक्षा पूरी न होते देख इंशा लखनऊ चले आये और शाहजादा मिर्जा सुलेमानकी सेवामें नियुक्त हो गये। धीरे-धीरे इनका परिचय वजीर तफज्जुल हुसैन खाँसे हो गया। इन्हींकी सहायतासे ये नवाब सआदतअली खाँके दरबारमें पहुंचे। पहले तो नवाबसे इनकी खूब पटी किन्तु बादको इनके एक अभद्र मजाकपर नवाब साहब बिगड़ गये और इन्हे दरबार से अलग होना पड़ा। इनके जीवनके अन्तिम वर्ष कठिनाइयोंमें व्यतीत हुए। सन् १८१७ ई०मे इनकी मृत्यु हो गयी।

इंशा अल्ला खा उर्दू-फारसीके बहुत बड़े शायर थे। इन्होंने 'उर्दू गजलोंका दीवान', 'दीवाने रेख्ती', 'कसायद उर्दू फारसी', 'फारसी मसनवी', 'दीवाने फारसी', 'मसनवी बेनुक्त', 'मसनवी शिकारनामा', 'दरयाये लताफत' आदि अनेक कृतियाँ उर्दू-फारसीमें प्रस्तुत की है। हिन्दी-खड़ी-बोली-गद्यमें इनकी सर्वप्रसिद्ध रचना 'रानी केतकीकी कहानी' या 'उदयभान चरित' है। इस कहानीका महत्त्व भाषा, शैली और वर्ण्य वस्तु सभी दृष्टियो से है। स्वयं लेखकके अनुसार इसमे 'हिन्दवी छुट और किसी बोलीका पुट नहीं' है। लेखकने इसमे मुअल्लापनके साथ ही ब्रजभाषा, अवधी और संस्कृतके तत्सम शब्दोंको भी अलग रखना चाहा है। यह कहानी शुद्ध सांसारिक प्रेमको आधार बनाकर मनोरञ्जनके लिए लिखी गयी है। इंशाकी गद्य-शैली बड़ी ही चटपटी, मनोरंजक और हास्यपूर्ण है। इनकी भाषा मुहावरेदार और चलती हुई है। ठेठ घरेलू शब्दोंके प्रयोगके कारण वह बड़ी प्यारी लगती है। इंशामें सानुप्रास विराम देनेकी प्रवृत्ति अधिक है। इन्होंने पुरानी उर्दूके अनुकरणपर कृदन्तों और विशेषणोंमें भी बहुवचन सूचक चिह्न लगाये है। उदाहरणके लिए 'कुंजनियों', 'रामजनियों' और 'डोमिनियों'के साथ वे 'धूमे-मचातियों', 'अँगड़ातियाँ' और 'जम्हातियों'का प्रयोग करना आवश्यक समझते है। इस प्रकार के प्रयोग, आज, अशोभन लगते हैं।

बाबू श्यामसुन्दरदासने प्रारम्भिक गद्य-लेखकोंमें इंशाको महत्त्वकी दृष्टिसे पहला स्थान दिया है। इसमें सन्देह नहीं कि इनकी भाषा सबसे अधिक चलती हुई और मुहावरेदार है किन्तु उसका झुकाव उर्दूकी ओर अधिक है। उसमे हम वर्तमान हिन्दी-गद्यका पूर्वाभास नहीं पाते। जो भी हो, अपनी मनोरंजक वर्णन शैली, चटपटी और लच्छेदार वाक्यावली तथा विशुद्ध हिन्दवी-लेखनके साहसिक प्रयोगके कारण हिन्दी-गद्य-साहित्यके इतिहासमें इंशा अल्ला खाँ सदैव स्मरणीय रहेंगे।

[सहायक ग्रन्थ—उर्दू साहित्यका इतिहास : रामबाबू सक्सेना; हिन्दी साहित्यका इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल; आधुनिक हिन्दी-साहित्यकी भूमिका : लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय।] —रा० चं० ति०

इक्ष्वाकु, इच्छ्वाकु–१. ये वैवस्वत मनुके पुत्र प्रथम सूर्यवंशी राजा थे। अयोध्यामें कोसल राज्यकी स्थापना इन्हींके द्वारा हुई थी। सूरदासने लिखा है "दस सुत मनुके उपजे और भयौ इच्छ्वाकु सबनि सिरमौर" (सूर० पद ४४६)। इनके सौ पुत्र थे जिनमें विकुक्षि ज्येष्ठ थे। निमि और दण्ड इनके दो अन्य प्रसिद्ध पुत्र थे। शकुनि आदि पचास पुत्र उत्तरापथके और शेष दक्षिणापथके राजा हुए थे। इनकी उत्पत्ति मनुकी छींकसे हुई थी अतः इन्हें इक्ष्वाकु कहा गया। राम इन्हींके वंशज थे।

२. सुबन्धुके एक पुत्र काशी नरेशका नाम भी इक्ष्वाकु है। बौद्धोंके 'महावस्त्ववदान' नामक संस्कृत ग्रन्थमे इनकी उत्पत्तिके विषयमे लिखा है कि एक बार सुबन्धुने स्वप्नमें देखा कि उनका शयनागार इक्षुदण्डोंसे भर गया। निद्राभंग होनेपर स्वप्न सत्य निकला। कालान्तरमे इक्षुदण्डोमेसे एक शेष रहा। सुबन्धुने दैवज्ञोंको बुलाकर कारण पूछा तो उन्होंने बताया कि इक्षुके मध्यमें उनके पुत्र उत्पन्न होगा। हुआ भी वही। इस पुत्रका नाम इक्ष्वाकु हुआ। इनकी प्रधान रानी अलिंदा थीं जिनसे 'कुश' नामक बालकका जन्म हुआ था। —ज० प्र० श्री०

इडा–१. ये वैवस्वत मनुकी कन्या थीं। इडाकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें शतपथ ब्राह्मणसे प्रकाश पड़ता है। मनुने प्रजासृष्टि करनेके लिए पाकयज्ञका अनुष्ठान किया। जलमे घृत, नवनीत, आमिक्षा छोड़नेसे एक कन्या उत्पन्न हुई। मित्रावरुणने पूछा—"तुम कौन हो?" इन्होंने कहा—"मनु-पुत्री"। उन्होने कहा—"तुम हमारी हो"। इडाने कहा—"नहीं, मैं अपने जन्मदाताकी हूँ"। और मित्रावरुण-की ओर ध्यान दिये बिना वह मनुके पास चली गई। मनुने भी इनसे पूछा कि तुम कौन हो। इडाने बताया कि

मैं उनके यज्ञसे उत्पन्न उनकी पुत्री हूँ। मनुने इनके साथ कठिन यज्ञका अनुष्ठान किया और अन्ततः प्रजापति बने। इनका विवाह बुद्धसे हुआ था। इनके पुत्रका नाम पुरूरवा था। 'प्रसादजी'ने मनु और इड़ाके आख्यानका सन्निवेश 'कामायनी'में किया है। मनु इड़ासे सारस्वत प्रदेशमें मिलते हैं जहाँ कि दोनोंका परस्पर परिचय आदि होता है। वह बोली, "मैं हूँ इड़ा, कहो तुम कौन यहाँपर रहे डोल" (कामायनी, इडा, २२)। मतान्तरमें इनका पाणिग्रहण मित्रावरुणने किया था।

२. मानव शरीरमें स्थित एक नाडी विशेषको कहते है। इडा—गंगा, पिंगला—यमुना और सुषुम्णा—सरस्वतीकी प्रतीक मानी गयी हैं। इडा नाडी पीठकी रीढसे बायें नथने तक है। इसका प्रधान देवता चन्द्रमा माना गया है। "इड़ा पिंगला सुषमन नारी। सहज सुतामे बसे मुरारी" (सू० पद ३४४२।८)। नाडियोंकी चर्चा संस्कृतके योग साहित्य तथा हिन्दीके सन्त साहित्यमे प्रायः मिलती है। —ज० प्र० श्री०

इड़ा २–'प्रसाद'कृत 'कामायनी'की एक पात्र। इडा मनुके पाक यज्ञसे उत्पन्न श्रद्धाको छोड देनेके अनन्तर मनु सारस्वत प्रदेशमें पहुँचते हैं, जहाँकी अधिष्ठात्री इड़ा है। इडाके साथ मिलकर वे एक नयी वैज्ञानिक सभ्यताको जन्म देते हैं। पर इडाके ऊपर निर्वाधित अधिकार चाहनेकी लालसाके कारण उनके ऊपर शिवका कोप होता है, क्योंकि इडा स्वय मनुकी दुहिता है। बादमे मनु को खोज लेनेपर श्रद्धा अपने पुत्र मानवको इडाके संरक्षणमे छोड़कर मनुके साथ चली जाती है।

इडाका उल्लेख और कथा शतपथ ब्राह्मणमे है, जिसके आधारपर 'प्रसाद'ने अपने पात्रका निर्माण किया है। इड़ाका प्रमुखतः चित्रण 'इडा' सर्गमें है, जो 'कामायनी'के श्रेष्ठतम अंशोंमेंसे एक है। बुद्धिके प्रतीक रूपमे चित्रित इड़ा मनुको सहज ही आकर्षित कर लेती है, पर श्रद्धाके बिना उसका वैभव अपूर्ण और जड है। इसीलिए बुद्धिपक्ष और हृदयपक्षका समन्वय प्रतिपादित करनेके लिए प्रसाद श्रद्धा द्वारा उत्पन्न मानवको इडाके संरक्षणमें छोड देते हैं। —स०

इरावती १–प्रसादका अपूर्ण उपन्यास जिसका प्रकाशन उनकी मृत्युके बाद १९४० ई०में हुआ। पूर्ववर्ती दो उपन्यासोंमे प्रसादने वर्तमान समाजको अंकित किया है पर 'इरावती'मे वे पुनः अतीतकी ओर लौट गये है। इस अधूरे उपन्यासकी कथासामग्री इतिहाससे ग्रहणकी गयी है। बौद्धधर्म किसी समय भारतका प्रमुख नियामक धर्म रहा है। उसकी करुणा और दयाने राष्ट्रके प्रमुख सम्राटोको प्रभावित किया। तथागतकी वाणी घर-घरमें गूँजी। लंका, चीन, ब्रह्मा आदि अनेक पड़ोसी देश भी उससे प्रभावित हुए और बौद्धधर्म दूर-दूर स्थानोंपर अपना मानवीय सन्देश प्रचारित करनेमे समर्थ हुआ पर सम्राट् अशोकके समाप्त होते ही जैसे इस महान् धर्मको पाला मार गया। 'इरावती'की मुख्य भूमिका एक महाधर्मकी पतनोन्मुख अवस्थासे सम्बन्धित है। अमात्यकुमार बृहस्पतिमित्र अपनी हिंसात्मक प्रवृत्तिका प्रकाशन 'इरावती'में स्थल-स्थलपर करता है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे वह अहिंसाका एक विपर्यय बनकर आया है। मौर्य साम्राज्यका यह प्रतिनिधि प्रियदर्शी अशोककी तुलनामें उसका विरोधी प्रतीत होता है। इसी प्रकार बदले हुए वातावरणका संकेत करते हुए एक स्थानपर 'इरावती' में प्रसादने एक पात्रसे कहलाया है, "धर्मके नामपर शीलका पतन, काम सुखोंकी उत्तेजना और विलासिताका प्रचार तुमको भी बुरा नहीं लगता न! स्वर्गीय देवप्रिय सम्राट् अशोकका धर्मानुशासन एक स्वप्न नहीं था। सम्राट् उस धर्म-विजयको सजीव रखना चाहते थे किन्तु वह शासकोंकी कृपासे चलने पावे तब तो! तुम्हारी छायाके नीचे ये व्यभिचारके अड्डे, चरित्रके हत्यागृह और पाखण्डके उद्गम सबल हैं…।" देवमन्दिरोंमें विलासिताका वातावरण धर्मकी पतनावस्थाको घोषित करता है। मन्दिरोंके प्रांगणमें नर्तकियोंका गायन इसका प्रमाण है।

इस अधूरे उपन्यासका गौरव एक ओर यदि इतिहासके माध्यमसे सांस्कृतिक पतनके चित्रणमे है तो दूसरी ओर उसके परिपुष्ट शिल्पमे निहित है। बौद्ध युगके वातावरणको सजीव रूपमे अंकित करनेका सामर्थ्य प्रसादकी भाषामें है। इतिहास युगके अनुरूप सामग्रीका संचयन 'इरावती'में हुआ है, यथा—"एक साथ तूर्य्य, शंख, पटहकी मन्दध्वनिसे वह प्रदेश गूंज उठा! स्वर्ण-कपाटके दोनों ओर खड़े कवचधारी प्रहरियोंने स्वर्णनिर्मित राजचिह्नको ऊपर उठा लिया…।" इससे यह स्पष्ट है कि प्रसादने उस युगका विस्तृत अध्ययन किया था। काव्यमयी भाषा 'इरावती'में सर्वत्र सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक वातावरणको जागृत रखती है। उपन्यासका आरम्भ ही कितना काव्यमय है—"उसकी आँखें आशाविहीन संध्या और उल्लासविहीन उषाकी तरह काली और रतनारी थीं। कभी-कभी उनमे विदाहका भ्रम होता, वे जल उठती; परन्तु फिर जैसे बुझ जाती। वह न वेदना थी न प्रसन्नता…।" 'इरावती'के लिए प्रसादने कुछ संकेत-पत्र तैयार किये थे जिनसे यह ज्ञात होता है कि मानवताके भावात्मक विकासकी एक रूपरेखा 'इरावती'के निर्माणके समय उनके समक्ष थी। —प्रे० शं०

इरावती २–प्रसादके अपूर्ण उपन्यास 'इरावती'की पात्र, एक अनाथ युवती, जो जीविकाके लिए महाकालके मन्दिरमे नर्तकीके रूपमे रहती है। अग्निमित्रसे उसका पुराना परिचय है। उसे अकेले छोड जानेके कारण ही वह अग्निमित्रके प्रति उदासीनता प्रदर्शित करती है। अपनी कलाको स्वावलम्बनका साधन बना लेती है। इरावती बिहारके नियम-संयम और भिक्षुणीके बन्दिनी जीवनके प्रति क्षुब्ध रहनेपर भी अपनी भावनाओंको स्पष्ट अभिव्यक्ति नहीं दे पाती। इरावती अपनी आकांक्षाओंपर बाह्य, झूठा नियन्त्रण रखना चाहती है। भिक्षुणीके प्रश्न करनेपर कि क्या शील और संयमकी कहीं सीमा भी है वह अपनी आंतरिक अभिलाषाको दबाकर उत्तर देती हैं—"काम-गुणोसे बचकर मनको आकांक्षाकी लहरोंसे दूर ले जाना होगा।" इरावतीको प्रमुख विशेषता या दुर्बलता यही है कि वह हठात् अपने ऊपर विवशताके बोझको लादना चाहती है—सम्पूर्ण उपन्यासमें उसके क्रियाकलाप विवशतासे प्रेरित जान पडते हैं; महाकालके मन्दिरमें अग्निमित्र द्वारा

विरोध प्रस्तुत करनेपर भी बिहारमें चले जानेका निर्णय करनेसे लेकर बृहस्पतिमित्रके प्रणय-प्रस्तावको अस्वीकृत करनेतक सभीमें एक बेबसी या लाचारी ही उसके व्यक्तित्वमें झलक पाती है। इरावती आद्यन्त निराशासे घिरी रहती है, और स्यात् इसी कारण अपनी इच्छाओंके प्रतिकूल भी परिस्थितियोंसे समझौता कर लेती है। प्रेमिकाके रूपमें भी वह किसी आदर्शकी सृष्टि नहीं कर पाती। अग्निमित्रके प्रेमका वह प्रत्युत्तर नहीं देती। अग्निमित्रकी सहायता या प्रेमको यह जान-बूझकर ठुकरा देती है। उसके चरित्रके अध्ययनसे ऐसा प्रतीत होता है मानों वह अग्निमित्रसे स्वयं ही दूर हटना चाहती है। —शा० ना० च०

इला—श्रद्धा इनकी माता और वैवस्वत मनु इनके पिता थे। इनके जन्मके सम्बन्धमें कहा जाता है कि मनुने पुत्रोत्पत्ति की कामनासे यज्ञ किया था किन्तु श्रद्धा कन्याका जन्म चाहती थीं। कन्या होनेके लिए वे नियमपूर्वक दूध पीकर रहती थीं और होतासे प्रार्थना करवाती थीं। इस प्रकार जो सन्तान उत्पन्न हुई, वह इला थी। विष्णुके वरदानसे ये पुरुष होकर सुद्युम्न कहलाने लगी थीं। एक बार शिवके द्वारा अभिशप्त वन-प्रदेशमें प्रवेश करनेके कारण पुनः नारी हो गयी। मनुने अपने इस दुःखको वशिष्ठसे कहा। वशिष्ठने आदि पुरुष शिवकी आराधना कर इनके एक माह पुरुष और एक माह स्त्री होकर रहनेका वरदान प्राप्त कर लिया था। इस प्रकार ये सुद्युम्न और इला दोनों रूपोंमें प्रसिद्ध हैं (दे० 'सुद्युम्न'; 'इडा')। —ज० प्र० श्री

इलावृत्त—एक वन है जो मेरु पर्वतके बीच में है। इसे शिवका निवासस्थान कहा जाता है। —ज० प्र० श्री०

इलाचंद्र जोशी—जन्म १३ दिसम्बर १९०२ ई० में अल्मोड़ामें एक प्रतिष्ठित मध्यवर्गीय परिवारमें हुआ। अल्मोड़ा जैसे प्राकृतिक रमणीय स्थानने इनके व्यक्तित्वपर असर डाला है। इनका जीवन-दर्शन अन्तर्जीवन, अन्तर्दृष्टि एवं अन्तर्द्वन्द्वके अडिग स्तम्भोंपर आरूढ है। इनको किशोरकालमें ही संसारके श्रेष्ठतम साहित्यकारोंकी कृतियोंके अध्ययनका जो अवसर मिला वह सबको सुलभ नहीं। हाईस्कूल-जीवनमें ही ये रामायण, महाभारत, कालिदासकी रचनाएँ, शेली और कीट्सकी कविताएँ, टालस्टाय, दोस्तोएव्सकी और चेखवकी रचनाओंका रसास्वादन कर चुके थे। इन्होंने बंगला-अँग्रेजी कोशके सहारे बंगला भाषा और साहित्यका अध्ययन किया था। उसी समय स्वयं एक हस्तलिखित पत्रिकाका सम्पादन भी करने लगे थे। मनके संचित ओजकी अधिकताके कारण इनका मन पाठ्य पुस्तकोंसे ऊबने लगा था। मैट्रिक पास किया नहीं कि घरसे भाग निकले। उन दिनों कलकत्ताका पुस्तकालय देश भरमें वरेण्य माना जाता था। ये किसी तरह कलकत्ता पहुँच गये। वहाँ इन्हें 'कलकत्ता समाचार' नामक दैनिक पत्रमें कुछ काम मिल गया।

सन् १९२१ में शरत् बाबूसे इनकी भेंट हुई। इनकी उस समयकी रचनाओंमें अन्तर्निहित प्रज्ञा और वाद-विवादमें प्रस्फुटित विचारावलीसे शरत् बाबू बहुत प्रभावित हुए। ये सन् १९३६ तक बराबर इधर-उधर घूमते रहे। प्रयाग आते ही इन्हें 'चाँद'में सहयोगी सम्पादककी जगह मिल गयी। सम्पादनके साथ इनकी पढ़ाई-लिखाई भी चलती रही। उन दिनों ये न केवल हिन्दीमें वरन् बंगला तथा अँग्रेजीमें भी लिखते थे। सन् १९२९ में इन्होंने 'सुधा'का सम्पादन करना शुरू किया, पर सैद्धान्तिक मतभेदोंके कारण ये वहाँ अधिक दिन तक न टिक सके। इस वर्ष इनका पहला उपन्यास जो सन् १९२७ में लिखा गया था, प्रकाशित हुआ। सन् १९३० में पुनः कलकत्ते जाकर इन्होंने बड़े भाईके साथ 'विश्ववाणी' पत्रिका निकाली, जो आर्थिक कठिनाइयोंके कारण बन्द हो गयी थी। सन् १९३१ में इन्होंने साप्ताहिक 'विश्वमित्र'के सम्पादनका भार सँभाला। सन् ३६ सम्भवतः इनके जीवनका बहुत ही महत्त्वपूर्ण वर्ष था। इसी वर्ष 'विजनवती' छपवानेके लिए प्रयाग पधारे। यहाँ 'सम्मेलन पत्रिका' तथा 'भारत'में काम करते हुए साहित्यका सृजन अबाध रूपसे करते रहे। 'संगम'का सम्पादन आधुनिक पत्रकारिताका चरम उदाहरण माना जाता है। 'धर्मयुग'का सम्पादन-प्रकाशन करने भी ये गये, पर साल भर बाद ही वापस आ गये। प्रयागके साहित्यकार संसदके मुख पत्र 'साहित्यकार'का सम्पादन ये कर ही रहे थे कि इनको अखिल भारतीय आकाशवाणीमें काम करनेका निमन्त्रण मिला। इनकी साहित्यिक सृष्टि व्यापक और सारगर्भित है। इन्होंने उपन्यास, कहानी, निबन्ध, काव्य और समालोचना आदिका बड़ी कुशलतासे सृजन किया है। पत्रकारिताके प्रति इनकी रुचि और सूझ-बूझ बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। हिन्दीमें मनस्तत्वके आधारपर अपने उपन्यासोंसे व्यक्ति-मानवकी प्रतिष्ठा करनेवाले सर्वप्रथम उपान्यासकार इलाचन्द्र जोशी हैं। इनकी कहानियों और उपन्यासोंके कथानकोंको तीन भागोंमें विभाजित किया जा सकता है—

१. विशुद्ध व्यक्तिवादी, २. सामाजिक, ३. मिश्रित।

प्रथम रूपके दर्शन इनके प्रथम पाँच उपन्यासों-'घृणामयी', 'सन्यासी', 'पर्देकी रानी', 'प्रेत और छाया', तथा 'निर्वासित'में होते हैं। इन उपन्यासोंके सभी पात्र और इनमें घटित सभी घटनाएँ किसी न किसी मनोवैज्ञानिक सत्यकी आत्माका उद्घाटन करते हैं।

सामाजिक उपन्यास—'मुक्ति-पथ' और 'सुबहके भूले'का कथानक वर्णनात्मक होते हुए भी अन्तर्मनकी झाँकियोंसे अछूता नहीं है। 'जिप्सी', और 'जहाजका पंछी' मिश्रित कथानकोंमें अनुबन्धित हैं।

आत्म-विश्लेषण प्रणालीमें 'सन्यासी' और सामाजिक प्रभाव प्रणालीमें 'जहाजका पंछी' इलाचन्द्र जोशीके दो श्रेष्ठतम उपन्यास कहे जा सकते हैं। इनकी प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं—उपन्यास : १. 'घृणामयी' (१९२९), २. 'सन्यासी' (१९४०), ३. 'पर्देकी रानी' (१९४२), ४. 'प्रेत और छाया' (१९४४), ५. 'निर्वासित' (१९४६), ६. 'मुक्तिपथ' (१९४८), ७. 'सुबहके भूले' (१९५१), ८. 'जिप्सी' (१९५२), ९. 'जहाजका पंछी' (१९५४)। कहानी : १. 'धूपरेखा' (१९३८), २. 'दीवाली और होली' (१९४२), ३. 'रोमांटिक छाया' (१९४३), ४. 'आहुति' (१९४५), ५. 'खँडहरकी आत्माएँ' (१९४८), ६. 'डायरीके नीरस पृष्ठ' (१९५१), ७. 'कटीले फूल लजीले काँटे' (१९५७)।

समालोचना तथा निबंध : १. 'साहित्य सर्जना' (१९३८), २. 'विवेचना' (१९४३); ३. 'विश्लेषण' (१९५३), ४. 'साहित्य चिंतन'(१९५४), ५.'शरत्–व्यक्ति और कलाकार' (१९५४), ६. 'रवीन्द्रनाथ' (१९५५), ७. 'देखा-परखा' (१९५७)। विविध : १. 'ऐतिहासिक कथाएँ' (१९४२), २. 'उपनिषदोंकी कथाएँ (१९४३), ३. 'गोर्कीके संस्मरण' (१९४३), ४. 'इक्कीस विदेशी उपन्याससार' (१९४४), ५. 'महापुरुषोंकी प्रेम कथाएँ' (१९५४), ६. 'सूदखोरकी पत्नी' (१९५४) तथा दोस्ताएव्सकीकी दो कहानियोंका अनुवाद। —गं० प्र० पा०

इल्वल–एक दैत्य था। यह सिंहिकाके गर्भसे उत्पन्न विप्रचित्तिका औरस पुत्र था। इसका एक अन्य नाम सिंहिकेय भी था। इसके भाइयोंका नाम व्यंश्य, शल्य, नभ वातापि, नमुचि, खसुम, आंजिक, नरक, कालनाभ और राहु आदि थे। यह मणिमतीपुरका निवासी था। इसके कनिष्ठ भाई वातापिने किसी तपस्वी ब्राह्मणसे इन्द्रके समान पुत्र पानेका वर माँगा था और वर न मिलनेपर इल्वल और वातापि दोनों इसपर क्रुद्ध हो गये। इल्वलने ब्रह्महत्याका सकल्प कर लिया। यह अपने मायाबलसे मृत व्यक्तिको सशरीर यमके लोकमे बुलानेकी शक्ति रखता था। इस युक्तिको जाननेके कारण यह वातापिको भेड बनाकर ब्राह्मणके सामने लाता और उसका मांस बना कर ब्राह्मणको खिला देता। बादमें यह वातापिको बुलाता और वह ब्राह्मणका पेट फाडकर निकल आता। इस प्रकार ब्राह्मण मर जाता था। एक दिन अगस्त्य कुछ मुनियोंके साथ इसके घरपर आये। इसने सबका सत्कार किया और वातापिका मांस बनाया। ऋषि लोग यह सब विचित्र क्रिया-कलाप देखकर चकराये। किन्तु अगस्त्यने अविचलित भावसे कहा, 'कोई भयकी बात नहीं, मैं यह मांस खाऊँगा। आप लोग प्रतीक्षा कीजिये।' जब अगस्त्य मासाहार कर चुके तो इसने वातापिको पुकारना प्रारम्भ किया। अगस्त्य इस बीच उस मांसको खाकर पचा भी चुके थे। उन्होंने इल्वल से कहा, आपका वातापि अब कहाँ रहा। उसे तो मैंने पचा डाला। मायावी इल्वलने अगस्त्यको धमकी देना चाहा किन्तु वह भी अगस्त्यके नेत्रसे निर्गत अग्नि द्वारा भस्म हो गया। —ज० प्र० श्री०

ईशान–शिव अथवा रुद्रका नाम ईशान भी है। ये उत्तर-पूर्व दिशाके स्वामीके रूपमे माने गये हैं। "नमामीशमीशाननिर्वाणरूप" (मा० ७।१०८। इलोक १)। —ज० प्र० श्री०

ईश्वरीप्रसाद शर्मा–द्विवेदी-युगमें ईश्वरीप्रसाद शर्माने अपने बँगला उपन्यासके अनुवादों और हास्य-रसकी कविताओंके लिए बड़ी ख्याति पायी थी। आपने बंकिमचन्द्रके प्रसिद्ध उपन्यास'आनन्दमठ'का बडा ही सजीव अनुवाद किया था। आप कवि, अनुवादक, उपन्यासकार, नाटककार, कहानीकार, इतिहासलेखक और कोशकर सभी कुछ हैं। 'हिरण्यमयी' (१९०८ ई०), 'कोकिला' (१९०८ ई०), 'स्वर्णमयी' (१९१०), 'मागधी कुसुम' (१९१० ई०), 'नलिनी बाबू' (१९११ ई०), 'चन्द्रकला', 'नवाब नन्दिनी', 'चन्द्रधर' (१९१८ ई०), 'गल्पमाला' (१९१५ ई०), 'अन्योक्ति तरंगिणी' (१९२० ई०), 'मातृवंदना' (१९२० ई०), 'सौरभ' (१९२१ ई०), 'महन्त रामायण', 'सूर्योदय' (१९२५ ई०), 'चना-चबेना' (१९२५ ई०), 'रंगीली दुनिया' (१९२६ ई०), 'हिन्दी-बँगला कोष' (१९१५ ई०), 'सन् सत्तावनका गदर'(१९२४ ई०) आदि आपकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं। आप कलकत्तासे निकलनेवाले 'हिन्दूपत्र'के सम्पादक थे। आपका व्यक्तित्व बहुस्तरीय है। इसलिए आपकी भाषा-शैली के कई रूप लक्षित होते हैं। बँगला अनुवादोंमें आपने तत्सम प्रधान स्निग्ध कोमलकान्त पदावलीका प्रयोग किया है। स्वतन्त्र गद्य कृतियोमे आपने अँग्रेजीके प्रचलित और ठेठ बोल-चालके अप्रचलित शब्दोंके मेलसे निर्मित खडखडाती हुई भाषाका प्रयोग किया है। आपकी सबसे बडी देन अनुवादोंके रूपमे ही है और एक उच्चकोटिके अनुवादकके रूपमे आप सदैव स्मरणीय रहेंगे। आपने बँगलाके प्रसिद्ध उपन्यास 'इन्दुमती' का अनुवाद भी किया था जो सन् १९२०-२१ ई० में कलकत्तासे प्रकाशित हुआ था।

ईसा–ईसाइयोके धर्मग्रन्थ बाइबिलकी इञ्जील अथवा नव संहिता (न्यू टेस्टामेण्ट)के अनुसार ये मेरीके गर्भसे उनकी अनूढावस्थामे बेथेलहेम नगरमे उत्पन्न हुए थे। इनके पिता यूसुफ थे जो सेण्ट मैथ्यूके अनुसार इब्राहीम और डेविडके तथा सेण्ट लूकके मतानुसार आदमकी वंश-परम्परामे पैदा हुए थे। मैथ्यूका कथन है कि जब मेरीका विवाह यूसुफसे हुआ तो यूसुफको ज्ञात हुआ कि मेरी विवाहित होनेके पूर्वसे ही गर्भिणी है। अतः उन्होंने मेरीको छोडकर रहनेका निश्चय किया। एक दिन उन्होंने निद्रावस्थामें स्वप्न देखा जिसमे एक देवदूतने उनसे कहा कि मेरीके गर्भमें भ्रूण रूपमें विद्यमान शिशुको पवित्रात्मा समझो और जबतक यह उत्पन्न न हो, तबतक यह संवाद छिपाये रहो, मेरीको पत्नी रूपमे स्वीकार करो तथा शिशुका नाम ईसा रखो। स्वेच्छाचारी राजा हिरोदको इनके जन्मके समय अलौकिक घटनाओंको देखकर अत्यन्त विस्मय और साथ ही इनसे अपने जीवनको संकटका आभास मिला। फलतः उसने बेथेलहम और निकटवर्ती स्थानोंके दो वर्षतकके शिशुओंको मार डालनेका आदेश दिया। इस अवसरपर यूसुफ और जुलेखाको एक देवदूतने स्वप्न देकर ईसाको साथ लेकर मिस्र राज्यमें चले जानेका निर्देश दिया। लूकके मतानुसार मेरी और यूसूफ बालकको लेकर जेरुसलम गये तथा वहाँसे नजरेथ गये। ईसा अपूर्व प्रतिभासम्पन्न थे। इनके जीवनकालसे सम्बद्ध अनेकानेक अलौकिक तथा आश्चर्यपूर्ण कथाएँ प्रचलित हैं। इन्हें अपने धर्मके प्रचारके लिए आजीवन आपत्ति उठानी पडी और अन्ततः इसी कारण इन्हे क्रूसपर चढाया गया। इन्हें मृत्युके उपरान्त विशेष सम्मान प्राप्त हुआ। ईसाई धर्मका प्रवर्तन करनेवाले ये पहुँचे हुए साधु थे। ईसाई धर्मानुयायी इन्हे जगत्का त्राणकर्ता, ईश्वरका पुत्र और त्रित्व (ईश्वर, उसका पुत्र तथा शैतान)का एकांग मानकर पूजते हैं (दे० 'महात्मा ईसा' : पांडेय बेचनशर्मा 'उग्र')। —ज० प्र० श्री०

उक्ति रत्नाकर–साधुसुन्दर गणी-कृत उक्तिरत्नाकर (राजस्थान पुरातन ग्रन्थ माला, जयपुर १९५७ ई०) मुनि जिन

विजय द्वारा सम्पादित सत्रहवीं शतीकी रचना है। यह मनोरंजक औक्तिक ग्रन्थ है। लोकभाषामें प्रचलित शब्द-रूपोंको संस्कृत रूपोंकी सहायतासे समझाया गया है। प्रारम्भमें कारकोंका विवेचन संस्कृतमे है। उसके पश्चात् लगभग २४०० बोलियोंमें प्रचलित शब्दोंका संकलन है और उनके संस्कृत पर्याय दिये गये हैं। अनेक शब्द प्राचीन हिन्दी साहित्यमें प्रयुक्त मिलते हैं। भाषा और साहित्यकी दृष्टिसे ये शब्द महत्त्वपूर्ण हैं। संग्रहकर्ता ने इन शब्दोंको 'देशी शब्द' कहा है अर्थात् देशमें प्रचलित शब्द। उदाहरणतः छावडउ (सन्देशरासकमें प्रयुक्त हुआ है)—शावकः; बातचीत—वार्ताचिन्ता; पणीहारि—पानीयहारिका; जुआ जुआ—पृथक्-पृथक्; पोटली—पोट्टलिका; नाहर—नाखर; रसोई—रसवती। क्रिया पदोंकी सूची अलग है। मनावइ—मानयति, चोपडई—म्रक्षयति। —रा० तो०

उग्र १–१. धृतराष्ट्रका पुत्र था। इसका वध भीमने महाभारतके युद्धमें किया था।

२. एक राक्षस था। इसके पुत्रका नाम वज्रहा था। —ज० प्र० श्री०

उग्र २–दे० पाण्डेय बेचनशर्मा 'उग्र'।

उग्रकर्मा—महाभारतकालीन एक साल्व राजा था। इसका संहार भीमने किया था। —ज० प्र० श्री०

उग्रचंडी–यह दुर्गादेवीका एक अन्य नाम है। आश्विन महीनेकी कृष्णपक्षकी नवमीको विशेषतया शाक्तलोग इनका पूजन करते हैं। इनके हाथोंकी संख्या १८ मानी जाती है। दक्षने अपने यज्ञमें शिव और उमाको बलि नहीं दी थी। इसी अपमानका प्रतिकार करनेके लिए इन्होंने उग्रचण्डी बनकर पिताके यज्ञका विध्वस किया था। —ज० प्र० श्री०

उग्रतप–ये एक पहुंचे हुए प्राचीन ऋषि थे। इन्होंने कृष्णके उस स्वरूपकी आराधना की थी जिसमे कृष्ण गोपिकाओंके साथ विहार करनेमें रत रहते थे। परिणामस्वरूप इनका जन्म कृष्णावतारके समयमें गोकुलवासी गोप सुनन्दकी पुत्रीके रूपमें हुआ था। एक गोपिकाके रूपमें इन्होंने कृष्णकी अनन्यभावसे सेवा की थी। —ज० प्र० श्री०

उग्रतारा—यह देवी भगवतीका अन्य नाम है। इनकी उत्पत्तिकी कथा इस प्रकार है—एक बार शुम्भ और निशुम्भ राक्षस देवताओंके यज्ञका अंश चुराकर दिक्पाल बन बैठे थे। इनके अत्याचारोंसे त्रस्त होकर देवता हिमालयपर मातंग ऋषिके आश्रमपर एकत्र हुए। देवताओंने महामाया भगवतीका स्तवन किया जिससे प्रसन्न होकर ये मातंग मुनिकी पत्नीके रूपमे अवतरित हुई। देवीके वपुसे एक दिव्य तेज उत्पन्न हुआ जिससे कि शुम्भ-निशुम्भ राक्षसोंका वध सम्भव हुआ। उग्रतारा चतुर्भुजा (खड्ग, चामर, करपालिका और खर्पर युक्त), कृष्ण वर्णा, मुण्डमालधारिणी थीं। इनका बायाँ पैर शव-वक्षपर तथा दायाँ सिंहकी पीठपर था। इन्हे मातंगी भी कहा गया है (दे० 'ध्रुवस्वामिनी': जयशंकर प्रसाद)। —ज० प्र० श्री०

उग्रसेन–उग्रसेन मथुराके अत्याचारी शासक कंसके पिता थे। इनके पिताका नाम आहुक और माताका नाम काश्या था। ये मथुराके यदुवंशी राजा थे। उग्रसेनके नौ पुत्र और पाँच पुत्रियाँ थीं। कंस इनमें ज्येष्ठ था। वयस्क होनेपर कंसने उग्रसेनको कारागृहमें डालकर मथुराका शासन अपने हाथोंमें ले लिया। कृष्णने कंसको मारकर उग्रसेनको कारागारसे मुक्तकर उन्हें पुनः राजसिंहासनपर बिठाया।

कृष्ण-काव्यमें उग्रसेनकी उपर्युक्त कथा ही प्रयुक्त हुई है किन्तु इसके अतिरिक्त परीक्षितके पुत्र, जनमेजयके भाई और धृतराष्ट्रके पुत्रके रूपमें भी इनके नामका उल्लेख मिलता है। कृष्ण-भक्त कवियोंने उनमें प्रकारान्तरसे कृष्णके कृपाभाजन भक्तके व्यक्तित्वकी प्रतिष्ठा की है। कृष्ण-कथाके गीतिप्रबन्धों और भागवतके भाषानुवादोंको छोडकर उग्रसेनका चरित्र सर्वत्र उपेक्षित रहा है। आधुनिक युगमे 'कृष्णायन' तथा 'द्वापर'में उसे स्थान मिला है। 'द्वापर'के उग्रसेन राज्यच्युत दीन राजा, पुत्र प्रपीडित, प्रबुद्ध एवं सरल-स्वभाववाले तथा मानवतावादी आदर्शोंके समर्थकके रूपमें चित्रित हुए हैं। उनके स्वरमे आसुरी सत्तासे प्रपीडित प्रबुद्ध जनताका स्वर है। —रा० कु०

उग्रहय–जिस समय श्रीरामने अश्वमेध यज्ञ किया था, उस समय यह लक्ष्मणके साथ यज्ञके घोडेकी रक्षाके लिए गया था। —ज० प्र० श्री०

उच्चैः श्रवस्, उच्चैः श्रवा–समुद्र-मन्थनसे जो चौदह रत्न निकले थे, उनमेंसे यह भी एक था। कीर्ति और श्रुतिके सर्वत्र फैलनेके कारण इसका नाम उच्चैः श्रवा रखा गया था। यह इन्द्रको प्राप्त हुआ था। इसके सात मुँह थे। इसके कान खडे थे। "निकसे सबै कुँवर असवारी उच्चैः श्रवाके पीर" (सूर० पद ३०६)।

उजियारे कवि–ये वृन्दावननिवासी नवलशाहके पुत्र थे। इन्होंने हाथ-रसके जुगलकिशोर दीवानके आश्रयमें 'जुगल-रस-प्रकाश' तथा जयपुरके दौलतरामके लिए 'रसचन्द्रिका' नामक रस-ग्रन्थोंकी रचना की है। वस्तुतः ये दोनों एक ही ग्रन्थ है, दोनोंमें समान लक्षण-उदाहरण है। आश्रयदाताओंके नामपर ग्रन्थके दो नाम हो गये है। दोनोंमे प्रथम रचना 'जुगल-रस-प्रकाश' ही है, जिसकी रचनातिथि सन् १७८० ई० (सं० १८३७) दी हुई है, 'रसचन्द्रिका' की प्रतिमे तिथिवाला अंश खण्डित है। दोनोंकी हस्तलिखित प्रतियाँ नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसीके याज्ञिक संग्रहालयमे प्राप्त है। कविने 'जुगल-रस-प्रकाश'का आधार भरतका 'नाट्यशास्त्र' स्वीकार किया है। 'रसचन्द्रिका'मे प्रश्नोत्तरी शैलीका प्रयोग किया गया है। यह १६ प्रकाशोंमे विभक्त है, जिनमें विभाव, अनुभाव, संचारी और रसोंका अन्य रस सम्बन्धी ग्रन्थोंकी अपेक्षा अधिक विस्तार है। कभी-कभी 'रस नौ क्यों हैं, अधिक क्यों नहीं है?' ऐसे प्रश्नोंके माध्यमसे कवि गम्भीर विषयोंको भी उठाता है। यद्यपि मौलिकताका अभाव है फिर भी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इसमें प्रत्येक रसको एक-एक प्रकाशमें समुचित विस्तारसे विवेचित करनेका प्रयत्न किया गया है। 'जुगल-रस-प्रकाश' केवल बारह प्रकरणोंमें समाप्त हुआ है।

[सहायक ग्रन्थ— हि० सा० बृ० इ० (भाग ६)।] —म०

उजियारे लाल—लगता है ये उजियारे कविसे भिन्न कवि हैं। खोज रिपोर्टसे कविके सम्बन्धमें इतना ही ज्ञात होता है कि उसने 'गंगालहरी' नामक एक रचना की थी। इसके अतिरिक्त उसके विषयमें और कुछ भी ज्ञात नहीं। इसके अनुसार 'गंगालहरी'की एक हस्तलिखित प्रति मथुरामें रमनलाल हरिचन्द जौहरीके यहाँ देखी गयी थी। रचनामें कुल १६५ कवित्त और सवैये हैं। कविने परिपाटीबद्ध पद्धतिपर ही गंगाका स्तवन किया है। वर्णनमें न तो कोई नवीनता है और न कोई निखार ही। कविमें चमत्कार और अलंकार प्रदर्शनके प्रति मोह है।

[सहायक ग्रन्थ—खो० रि० (संख्या १०; सन् १९१७-१८); मि० वि०]। —रा० चि०

उत्तंक, उतंग १—१. मतंग ऋषिके शिष्य थे। ये ईश्वरके परम भक्त थे। मतंगने आज्ञा दी थी कि ये त्रेतायुगमें जबतक रामके दर्शन न हो जाये तबतक तप करें। तदनुसार ये दण्डकारण्यमें अनवरत तपस्यामें लगे रहे। फलतः दण्डकारण्यमें ही इन्हे भगवान् रामका दर्शन हुआ था।

२. वेदमुनिके एक शिष्यका नाम उत्तक था। ये जितेन्द्रिय, धर्मपरायण और गुरुभक्त थे। एक बार गुरु प्रवासपर गये थे। वेद पत्नीने अवसर पाकर इनसे अपनी कामेच्छा प्रकट की, जिसे इन्होने अस्वीकार कर दिया। गुरुने वापस आनेपर इनके चारित्रिक दृढताकी बात जानकर मनोकामनापूर्तिका आशीर्वाद दिया। जब इन्होंने गुरु-दक्षिणा देनेका प्रस्ताव किया तो गुरु-पत्नीने पौष्यराजकी पत्नीके कुण्डलोंकी याचना की। इन्होंने पौष्यराजके पास जाकर कुण्डलोंकी याचना की। पौष्यराजने कुण्डल देते हुए तक्षकके प्रति सजग रहनेको कहा क्योंकि वह इन कुण्डलोंको प्राप्त करना चाहता था। कुण्डलोंको लेकर आते समय उतंगका क्षपणकके छद्मवेशमें तक्षकने पीछा किया और जब ये कुण्डलोंको पृथ्वीपर रखकर सरोवरमें स्नान-तर्पणादिके लिए गये, तो तक्षक उन्हे लेकर नागलोक चला गया। कुण्डलोके चोरी चले जानेपर इन्हें पौष्यराजकी बात याद आयी। इन्होने अत्यन्त कठिनाईसे इन्द्रलोक जाकर वज्र प्राप्त किया और उसके सहारे नागलोक जाकर, वहाँसे कुण्डलोंको प्राप्त किया। इस प्रकार इन्होंने गुरु-दक्षिणामें गुरु-पत्नीको कुण्डल प्रदान किये। गुरुसे विदा लेकर ये जनमेजयके पास गये थे तथा तक्षकको मारनेकी प्रेरणा देकर इन्होंने उनसे सर्पयज्ञ कराया था।

३. गौतम मुनिके एक शिष्य भी उत्तंग नामके थे। ये गुरुके परम भक्त थे। इन्होंने गुरु-पत्नी अहल्याको गुरु-दक्षिणामें राजपत्नीके कुण्डल प्रदान किये थे। गौतमने इनके साथ अपनी कन्याका विवाह किया था। गुरुके प्रेममें तन्मय होकर ये अपना गृह-धर्म भूल गये थे। एक बार ये वनसे लकड़ी लानेमें थक गये अतः आश्रममें पहुँचकर इन्होने लकड़ियाँ फेंकना प्रारम्भ किया। इस प्रक्रियामें इनके कुछ बाल टूटकर गिर पड़े। अपने सफेद बाल देखकर इन्हें वयोवृद्ध होनेका आभास हुआ और ये रोने लगे। इनके रुदनका कारण जानकर गुरुने इन्हे अपने घर जानेकी आज्ञा प्रदानकी थी। —ज० प्र० श्री०

उत्तंक २—प्रसादकृत नाटक 'जनमेजयका नागयज्ञ'का पात्र। वेदका प्रिय शिष्य ब्रह्मचारी उत्तंक चरित्रवान्, संयमी, विनम्र, दृढप्रतिज्ञ और कर्त्तव्यशील नवयुवक है। मेधावी छात्रके रूपमें वह अपने सहपाठियोंकी अपेक्षा 'दार्शनिक प्रतिज्ञाएँ' शीघ्र समझ जाता है। गुरुपत्नी दामिनी उसके प्रति आकर्षित होती है और अनेक प्रकारकी शृङ्गारिक बातोंसे उसे लुभाती है किन्तु वह आत्म-संयमका सदा ध्यान रखता है। उत्तंककी इस विशेषताको अपने लिए निस्सार समझ कर उसपर क्षोभ प्रकट करती हुई दामिनी कहती भी है: "जिसे आत्म-संयमकी इतनी शिक्षा मिली है, उसे हाड़-मांसके मनुष्यका शरीर क्यों मिला! क्यों न उसे छाया शरीर मिला।" गुरु-पत्नीके प्रति उत्तंकका अनुराग पूर्ण सात्त्विक है, वासनाजन्य नहीं। वह गुरु-दक्षिणाके रूपमें गुरु-पत्नीको आज्ञानुसार उनके लिए मणि-कुण्डल लानेमें प्राणोंकी परवाह न करते हुए अपनी अनुपम निर्भीकताका परिचय देता है। छात्र-जीवन समाप्त कर जब वह सांसारिक जीवनमें प्रवेश करता है तो समाजकी सुव्यवस्था एवं सुरक्षाके लिए बर्बर नागजातिका दमन कल्याणकारी समझता है। नागयज्ञकी प्रेरणा जनमेजयमें उसीके द्वारा प्रादुर्भूत होती है। कर्त्तव्यकी दृढ़ता एवं ध्रुव इच्छा-शक्ति—ये गुण उसके चरित्रके मूलाधार हैं। ब्राह्मणों द्वारा हिंसा-मूलक नागयज्ञका विरोध किये जानेपर भी वह अपने लक्ष्यसे भ्रष्ट नहीं होता। इस प्रकारका कार्य वह लोकमंगलकी भावनासे प्रेरित होकर करवाता है। उसके कथनानुसार राष्ट्र तथा समाजके शासनको दृढ करना ही इस यज्ञका एकमात्र उद्देश्य है। लोकको पीडित करनेवाले नागोंके दमनसे ही राष्ट्र और समाजकी दृढता और उसका मंगल सम्भव है। उत्तंकमें निर्भीकताके साथ-साथ कर्तव्यनिष्ठाकी भावना भी विद्यमान है। इसीसे प्रेरित होकर वह गुरु-पत्नीसे मणिकुण्डल लानेकी प्रतिज्ञा करता है जो वस्तुतः एक दुस्साध्य कार्य था। अपने शिष्ट व्यवहार एवं विनीत आचरणसे कुण्डल प्राप्त भी कर लेता है किन्तु मार्गमें तक्षक बलपूर्वक छीननेकी चेष्टामें छुरी निकालकर वार करता है। उस समय उत्तंक अपने आत्मबलके सहज तेजसे उद्भासित होकर उसे ललकारते हुए कहता है: "यदि ब्राह्मण हूँगा, यदि मेरा ब्रह्मचर्य और स्वाध्याय सत्य होगा तो तेरा कुत्सित हाथ चल ही न सकेगा। हत्याकारी दस्युको यह अधिकार ही नहीं कि वह ब्रह्म तेजपर हाथ चला सके।" नागजातिके दमनका सारा श्रेय उत्तंकको ही मिलना चाहिए। वही अपने ओजस्वी वचनों द्वारा किंकर्तव्यविमूढ जनमेजयको नागयज्ञके विधानमें नियोजित करता है। उत्तंक नागयज्ञके इस अमानवीय कार्यव्यापारमे हृदयकी उत्तेजनासे प्रवृत्त होता है किन्तु जब दामिनी उसे समझाती है कि नागयज्ञ शाश्वत मानवताकी दृष्टिसे श्लाघ्य नहीं है तो वह उस क्रूर हिंसापूर्ण कार्यसे विरत हो जाता है। इस प्रकार उसके चरित्रका क्रमिक विकास परिस्थितिसापेक्ष मानव मनोवृत्तियोंपर आधारित है। प्रसादने पूर्ण स्वाभाविकताका निर्वाह करते हुए उत्तंकके चरित्र-चित्रणमें आदर्शकी प्रतिष्ठा प्रकृत रूपमें की है। —के० प्र० चौ०

उत्कल–ये राजा सुद्युम्नके लड़के थे। इन्होंने अपने नामपर उत्कल राज्यकी स्थापना की थी। वर्तमान समयमें उत्कल उड़ीसा राज्यके नामसे प्रसिद्ध है। —ज० प्र० श्री०

उत्तम–इनकी माता सुरुचि तथा पिता राजा उत्तानपाद थे। ये प्रियव्रतके भतीजे और ध्रुवके सौतेले भाई थे। एक बार ये शिकार खेलने गये थे जब कि ये वनमे मार्ग भूल गये। वहाँ कुबेरके हाथों मारे गये। इनकी माता सुरुचि इनके वापस न लौटनेपर इन्हे खोजने गयीं और वहीं उनकी भी मृत्यु हो गयी (दे० सू० पद ४०२-४०४)। —ज० प्र० श्री०

उत्तमौजस्–ये पंचाल देशके राजकुमार थे। इन्होंने महाभारतके युद्धमे पाण्डवोंका साथ दिया था। अभिमन्युके मारे जानेके बाद अर्जुनने दूसरे दिन पुत्र-वधका प्रतिकार करनेके लिए सूर्यास्तसे पूर्व जयद्रथका वध करनेका संकल्प किया था। उस दिन इन्होंने अपने भाई युधामन्युके साथ अर्जुनके अंगरक्षकके रूपमें कार्य किया था। उस दिन युद्धमें इन्होंने अपने अनुपम शौर्यका प्रदर्शन किया था। (दे० 'जयद्रथ वध' : मैथिलीशरण गुप्त)। —ज० प्र० श्री०

उत्तर–ये राजा विराटके पुत्र थे। पाण्डवोंकी अज्ञातवासकी अवधि समाप्त होनेपर भीष्म, द्रोणाचार्य आदि महारथियोंको साथ लेकर कौरवोंने राजा विराटकी गोशालापर आक्रमण कर अनेक गायोंका अपहरण कर लिया था। कौरवोंकी विशाल सेनाको देखकर राजकुमार उत्तर आतङ्कित हो गये थे। उस समय अर्जुनने, जो बृहन्नलाके छद्मनामसे रह रहे थे, अपना वास्तविक परिचय देकर इन्हें साहस प्रदान किया था। अर्जुनका सारथी बनकर इन्होंने उस युद्धमें भाग लिया था। इन्होंने महाभारतके युद्धमें पाण्डवोंका पक्ष ग्रहण किया था। इनकी मृत्यु उस युद्धमें शल्यके हाथसे हुई थी। —ज० प्र० श्री०

उत्तरप्रदेशीय हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग–स्था०—सन् १९२०; कार्य—कुछ दिनतक कार्य स्थगित रहा। सन् १९४० से कुछ साहित्यकारोंके प्रयत्नोंसे फिर कार्यारम्भ हुआ। अबतक इसके कई अधिवेशन हो चुके हैं। 'रेडियोकी भाषा नीति'पर एक पुस्तक प्रकाशित हुई, रेडियो विरोधी-दिवस मनाया गया। कचहरियोंमे हिन्दी प्रयोगके लिए आन्दोलन किया। अब वार्षिक अधिवेशन नियमित रूपसे होते हैं। —प्रे० ना० टं०

उत्तरा १–राजा विराटकी पुत्री थीं। जब पाण्डव अज्ञातवास कर रहे थे, उस समय अर्जुन बृहन्नला नाम ग्रहण करके रह रहे थे। बृहन्नलाने उत्तराको नृत्य, संगीत आदिकी शिक्षा दिया था। जिस समय कौरवोंने राजा विराटकी गायें हस्तगत कर ली थी, उस समय अर्जुनने कौरवोंसे युद्ध करके अपूर्व पराक्रम दिखाया था। अर्जुनकी उस वीरतासे प्रभावित होकर राजा विराटने अपनी कन्या उत्तराका विवाह अर्जुनसे करनेका प्रस्ताव रखा था किन्तु अर्जुनने यह कहकर कि उत्तरा उनकी शिष्या होनेके कारण उनकी पुत्रीके समान थी, उस सम्बन्धको अस्वीकार कर दिया था। कालान्तरमें उत्तराका विवाह अभिमन्युके साथ सम्पन्न हुआ था। चक्रव्यूह तोड़नेके लिए जानेसे पूर्व अभिमन्यु अपनी पत्नीसे विदा लेने गया था। उस समय उसने अभिमन्युसे प्रार्थना की थी—"हे उत्तराके धन रहो तुम उत्तराके पास ही" (*जयद्रथ वध : मैथिलीशरण गुप्त, तृतीय सर्ग*)। परीक्षितका जन्म इन्हींकी कोखसे अभिमन्युकी मृत्युके बाद हुआ था। —ज० प्र० श्री०

उत्तरा २–(१९४९ ई०) कवि पन्तका दसवाँ काव्य-संकलन है। इसे 'स्वर्णधूलि' और 'स्वर्णकिरण'का ही भावप्रसार कहना उपयुक्त होगा क्योंकि इसमें भी कविने चेतनावादी अरविन्द-दर्शनको मूलाधार माना है। इस संकलनकी ७५ रचनाओंमे कविकी भावधाराका रूप प्रायः वही है जो उपर्युक्त दो संकलनोंमे मिलता है, परन्तु भावभूमि अधिक व्यापक, सुस्पष्ट और परिमार्जित हो गयी है तथा अभिव्यंजना भी सहज, प्रासादिक एवं विविध है। 'उत्तरा'की प्रस्तावनामें कविने अरविन्द-दर्शनके ऋणको स्वीकार करनेके साथ अपनी नयी मनोभूमिका विश्लेषण भी किया है और अपने नवीन जीवन-तन्त्रकी व्याख्या भी प्रस्तुत की है जो भौतिक और आध्यात्मिक जीवन-पद्धतियोंके समीकरण एवं परिष्करणमे विश्वास रखता है। कवि इस भूमिकामे भारतीय दर्शनके प्रति एक नया दृष्टिकोण सामने लाता है: "भारतीय दर्शन भी आधुनिक भौतिक दर्शन (मार्क्सवाद)की तरह सत्यके प्रति एक उपनयन (एप्रोच) मात्र है, किन्तु अधिक परिपूर्ण, क्योंकि वह पदार्थ, प्राण (जीवन), मन तथा चेतना (स्पिरिट) रूपी मानव-सत्यके समस्त धरातलोंका विश्लेषण तथा संश्लेषण कर सकनेके कारण उपनिषत् (पूर्ण एप्रोच) बन गया है।" इस चिन्तनको आगे बढ़ाकर कवि गांधीवादी विचारधाराको विश्वचिन्तनका अनिवार्य अंग मानता है। उसके विचारमें "भारतका दान विश्वको राजनीतिक तन्त्र या वैज्ञानिक तन्त्रका दान नहीं हो सकता, वह संस्कृत और विकसित मनोयन्त्रकी ही भेंट होगी। इस युगके महापुरुष गांधीजी अहिंसाको एक व्यापक सांस्कृतिक प्रतीकके ही रूपमें दे गये हैं, जिसे हम मानव-चेतनाका नवनीत, अथवा विश्वमानवताका एकमात्र सार कह सकते हैं।" इस प्रकार कवि गांधीवादके सत्य-अहिंसाके सिद्धान्तोंको अन्तः संगठन (संस्कृति)के दो अनिवार्य उपादान मानता है, परन्तु सत्यकी व्यवस्थामें उसने दो भेद माने हैं—एक ऊर्ध्व अथवा आध्यात्मिक और दूसरा समदिक्, जो हमारे नैतिक और सामाजिक आदर्शोंके रूपमें विकासोन्मुख होता है। इस योजनाके द्वारा कविको अपने नये राजनीतिक और सामाजिक तन्त्रमें अध्यात्मवादको मार्क्सवाद और गांधीवादके साथ रखनेकी सुविधा प्राप्त हुई है। फलतः वह मानव-विकासके अन्तर्वहिश्चेतनास्रोतोंको अधिक व्यापक और सन्तुलित चिन्तन दे सका है। 'उत्तरा'की कविताएँ इसी मनोभूमिका काव्यचित्र हैं। उनमे चिन्तनकी अपेक्षा ग्रहण, आस्वादन और आनन्द ही अधिक उभरा है। इसीमे उनकी विशिष्टता भी समझी जा सकती है।

'उत्तरा'के गीत नये युगकी गीता है। इन गीतोंमें सद्यः स्वतन्त्र भारतकी अन्तरात्मा के पुनर्निर्माणकी चेतना स्पष्ट है। गीतोंकी भूमि बौद्धिक वाद-विवादको प्रश्रय नहीं देती। कविका मन अतर्क्य, अचिन्त्य है। वह क्रांतदर्शी है। नये भू-मनकी अनिवार्यताके प्रति उसका दृढ विश्वास है और

वह उसका अभिनन्दन करना चाहता है। उसकी आस्था है कि इस नये परिवर्तनको पहले कवि ही अपने मनमें मूर्तिमान करेगा। इसीलिए उसके कई गीतोंमें उसकी भावसाधनाके स्वरूपको वाणी मिली है। यहाँ वह नव-जीवनका शिल्पी कलाकार बन जाता है जिसका प्रत्येक प्रहार प्रस्तरके उरमें छिपी नवमानवताको उत्कीर्ण करनेमें समर्थ है। 'स्वप्नक्रान्त' शीर्षक रचनामें वह अपने उत्तर-दायित्वका प्रकाशन इन शब्दोंमें करता है :

"स्वप्न-भारसे मेरे कन्धे, झुक झुक पडते भूपर, क्लान्त भावनाके पग डगमग, कँपते उरमें निःस्वर। ज्वालगर्भ शोणितका बादल, लिपता धराशिखरपर उज्ज्वल, नीचे, छायाकी घाटीमें, जगता क्रन्दन मर्मर।"

इसी प्रकार 'युगसंघर्ष'में :

"गीतक्रान्त रे इस युगके कविका मन, नृत्यमत्त उसके छन्दोंका यौवन। वह हँस-हँसकर चीर रहा तमके घन, मुरलीका मधुरव कर भरता गर्जन। नव्य चेतनामें उसका उर ज्योतित, मानवके अन्तर्वैभवसे विसमित। युगविग्रहमें उसे दीखती विंबित, विगत युगोंकी रुद्ध चेतना सीमित।"

'जीवनदान', 'स्वप्न-वैभव', 'अवगाहन', 'भू-स्वर्ग', 'गीतविभव', 'नव-पावक', 'अनुभूति', 'काव्यचेतना' और 'गीतविहग' शीर्षक रचनाओंमें कविकी अपने प्रति जाग-रुकता और आस्था ही प्रकट होती है। उसका विश्वास है कि वह नयी चेतनाका अग्रदूत है। वह कहता है :

"मैं रे केवल उन्मन मधुकर, भरता शोभा स्वप्निल गुंजन, कल आयेंगे उर तरुण भृंग, स्वर्णिम मधुकण करने वितरण (नवपावक)।"

इन रचनाओंमे हम कविको केवल उद्गाताके रूपमें ही नहीं पाते, वह नये यज्ञका अध्वर्यु भी बन जाता है। सामान्यतः यह आरोप लगाया जाता है कि पन्तका चेतनावाद उनकी मौलिक प्रेरणा नहीं है, परन्तु कविने अरविन्दवादकी भूमिकापर किस प्रकार आस्था, प्रेम, उल्लास और सौन्दर्यके नये-नये रंगोकी रंगोली बनायी है, इसकी ओर आलोचकोंका ध्यान ही नहीं जाता। विचार, धर्म और दर्शन काव्यके क्षेत्रसे बहिष्कृत नहीं किये जा सकते। देखना यह है कि उनमे कविके स्वप्न बन जानेकी सामर्थ्य है या नहीं अथवा वे कविकी कल्पना और भावुकताको गर्भित करनेमे सफल हैं या नहीं। पंतकी रचनाओंमें दिव्य जीवनकी दार्शनिक और ऊहात्मक अभिव्यक्ति नहीं हुई है। वे भावप्रवण कविकी प्रत्यक्षानुभूति और संकल्पसिद्धिके उल्लाससे ओत-प्रोत हैं। उनमें बहिरन्तर-रूपान्तरकी कल्पना, भावना, सौन्दर्य और भावयोगको विषय बनाया गया है। अतः इन रचनाओंको हम अरविन्दवादका काव्यसंस्करण अथवा भावात्मक परिणति भी मान सकते हैं।

'उत्तरा'का आरम्भ, 'युगविषाद', 'युगसन्धि', 'युग-संघर्ष' जैसी रचनाओंसे होता है जिनमे कवि अपनी पीढी-के संघर्षोंसे उत्पन्न घनीभूत पीडाको वाणी देता है। इस मनोभावसे कविका शीघ्र ही त्राण हो जाता है और वह चित्सत्ताके प्रति विनत होकर प्रार्थी होता है :

"ज्योतिद्रवित हो, हे घन। छाया संशयका तम, तृष्णा करती गर्जन, ममता विद्युत-नर्तन, करती उरमें प्रतिक्षण। करुणा-धारामें झर स्नेह-अश्रु बरसा कर, व्यथा-भार उरका हर, शान्त करो आकुल मन।" (अंतर्व्यथा)

वह प्रार्थना उसके मनमें जागरणके नये द्वार खोल देती है। स्वयं कवि नव-मानवका प्रतीक बन जाता है और 'अग्निचक्षु' कहकर अपना अभिवादन करता है। इस नव-मानवको घेरकर ही उसके नव-मानववादी सपने मँडराते है। 'उत्तरा'मे इन नये सपनोंको मुक्त छोड दिया गया, किसी बौद्धिक तन्त्रमें नही बाँधा गया। इसीसे उनमें भावोद्वेलनकी अपार शक्ति है। 'भू-जीवन', 'भू-यौवन', 'भू-स्वर्ग' और 'भू-प्रांगण' शीर्षक रचनाओंमें उत्तर पंत भावजगतकी जिस मधुरिमाको वाणी देते हैं, वह अन्तर्राष्ट्रीय ही नहीं, सार्वभौमिक है क्योकि उसका उत्स मानवकी अन्तरात्मा है। पन्तकी इस नयी विचारणाको भू-वाद कहा गया है और स्वयं उन्होंने भूमिकाओं और निबन्धोंमें अपने इस नये जीवन-दर्शनको तन्त्रकी व्यवस्था देनेकी चेष्टा की है परन्तु कवितामे जो मनोमय स्वप्न-सृष्टि इस विचा-रणासे जाग्रत है उसकी अपनी सार्थकता है। वह चिर नवीन जीवनैषणाके सौरभसे गन्धमधुर बन गयी है। कविने कुछ रचनाओंमें (जैसे—'जागरण-गान', 'उद्बोधन' आदि) भारतके तारुण्यको इस 'असिधारव्रत'के लिए ललकारा है जो मनोदधिका मन्थन कर वृद्ध धरापर नये चेतना-स्वर्गका निर्माण करनेमे समर्थ है। उसने मानवको देवोत्तर और भारतभूको स्वर्गभू बनानेकी चुनौती दी है।

'उत्तरा'का प्रकृति-काव्य भी एक नयी सुषमासे ओत-प्रोत है जो 'स्वर्णधूलि' और 'स्वर्णकिरण'की प्रकृतिचेतनाकी परिणति है परन्तु उसमें भावना और सौन्दर्यचेतनाके जो शत-शत कमल खिले हैं, वे अपनी प्रतिभामे स्वयं पंतके प्रौढ व्यक्तित्व और उनकी अन्त-साधना का जैसा बहुमुखी, सार्थक और समर्थ प्रकाशन हैं वैसा कदाचित् कोई दूसरा संकलन नहीं। कविका विषादग्रस्त मन अनेक विचारविवर्तों और भावावर्तोंमें खुलकर नव-जागरणकी दीपशिखामें बदल जाता है। युगके गरलका आकण्ठ पान कर उसने नीलकंठ शिवकी भाँति नवचेतना-का वरदान ही बिखेरा है। इस आंतरिक और आध्यात्मिक साधनाकी परिपूर्णता और उत्कर्षमयताका प्रतीक वे प्रकृति-रचनाएँ हैं जो मानव-चेतनाके रूपांतरको ही नया रूपरंग देती हैं। इसमें सन्देह नहीं कि 'गुंजन'की भाँति ही 'उत्तरा' भी कविकी अन्तर्मुखी सौन्दर्यसाधना और अध्यात्म चेतनाकी महागीति है। उसकी स्फुट रचनाओंमें अति-मानसी ऊर्ध्व-चेतना और अधिमानसी प्राकृति-चेतनाके सारे सरगम दौड गये हैं। सब कुछ आत्माके अंकुठित और अपरिमेय सौन्दर्य एवं उल्लासके नाते ही मनोरम हो उठा है। —रा० र० भ०

उत्तानपाद–इनकी माता शतरूपा और पिता स्वायंभुव मनु थे। इनके दो रानियाँ थीं—सुनीति तथा सुरुचि। सुनीतिसे ध्रुव, कीर्तिमान् तथा आयुष्मान् और सुरुचिसे उत्तमका जन्म हुआ था। एक बार राजकुमार उत्तम-को पिताकी गोदमें बैठा देखकर ध्रुवने भी उनके अंकमें बैठना चाहा। सुरुचि इस अवसरपर उपस्थित थीं। उन्होंने ध्रुवको इस स्पर्धाके लिए झिडक दिया। सौतेली

माताके इस व्यवहारसे बालक ध्रुव मर्माहत हो गया। अपनेको अपमानित समझकर वह अपनी माताके पास जाकर फूट-फूट रोया और बचपनमें ही तपस्या करनेके लिए वनको चला गया। मार्गमें नारद मिल गये। उन्होंने ध्रुवको उपदेश दिया जिससे बालक ध्रुवने ईश्वरका साक्षात्कार किया। ध्रुवके प्रतापसे ही राजा उत्तानपादको ज्ञान हुआ था—"नृप उत्तानपाद सुत तासू। ध्रुव हरि-भगत भयउ सुत जासू॥" (मा० १।१४२।२); (द्वि० सूर०, पद ४०४-४०६)। —ज० प्र० श्री०

उदंत मार्तंड–यह पत्र एक साप्ताहिकके रूपमें कलकत्तासे मई, १८२६में निकला। इसके सम्पादक कानपुरनिवासी जुगुल किशोर सुकुल थे। इसे हिन्दीका प्रथम पत्र होनेका श्रेय दिया जाता है।

इस पत्रकी दो प्रमुख विशेषताएँ थी। पहली तो यह कि यह पत्र पुस्तकाकार (१२"×८") छपता था। आधुनिक पत्रोंके रूपकी कल्पनाका आधार इस पत्रमें देखा जा सकता है। दूसरी यह कि यह पत्र "हर सतवारे मंगलवार-को छापा जाता" था।

इसके कुल ७९ अंक ही निकल पाये थे कि डेढ़ साल बाद दिसम्बर १८२७में बन्द हो गया। इसके अन्तिम अंकमें लिखा है—

उदन्त मार्तण्डकी यात्रा

मिति पौष बदी १ भौम संवत् १८८४ तारीख दिसम्बर सन् १८२७।

"आज दिवस लौं उग चुक्यौ मार्तण्ड उदन्त

अस्ताचलको जात है दिनकर दिन अब अन्त।"

इस पत्रमें ब्रज और खड़ी बोली दोनों ही भाषाओंका प्रयोग किया जाता था। इस पत्रमें खड़ी बोलीको मध्यदेश-की भाषा कहा गया है। उस समय अंग्रेजी, फारसी और बँगलामें तो पत्र निकल रहे थे किन्तु हिन्दीमें कोई पत्र नहीं था। इसीलिए यह पत्र निकाला गया। इस विषयमें एक उद्धरण द्रष्टव्य है—"उनका सुख उन बोलियोंके जानने और पढनेवालोंको ही होता है। इससे सत्य समाचार हिन्दुस्तानी लोग देख आप पढ ओ समझ लेयँ ओ पराई अपेक्षा न करें जो अपने भाषेकी उपज न छोडे···इसलिए··· ऐसे साहसमें चित्र लगायके एक प्रकारसे यह नया ठाट ठाटा।" इस पत्रने अपनी भाषाको 'मध्यदेशीय भाषा' कहा है। —ह० दे० बा०

उदयन—१. वत्सराज नामसे भी विख्यात थे। इनके पिता सहस्रानीक थे। ये कौशाम्बीके प्रसिद्ध चन्द्रवंशी राजा थे। एक बार ये बन्दी बनाकर उज्जयिनी लाये गये थे। उज्जयिनीकी राजकुमारी वासवदत्ता इन्हें स्वप्नमें देखकर इनके प्रति आकृष्ट हो गयी। अपने कूटनीतिज्ञ मन्त्री योगन्धरायणके प्रयत्नसे जब ये स्वतन्त्र हुए और इन्हें वासवदत्ताके आकर्षणकी बात मालूम हुई तो इन्होंने उसका अपहरण कर उसके साथ विवाह किया। संस्कृत साहित्यका प्रसिद्ध नाटक 'स्वप्नवासवदत्ता' इसी कथापर आधारित है। इसके अलावा संस्कृतका 'प्रतिज्ञा योगन्धरायण' नाटक भी इनके चरित्रके आधारपर रचा गया था। इनके मन्त्रीने यह संकल्प किया था कि वह इन्हें एक चक्रवर्ती सम्राट बनायेगा और अपने इस उद्देश्यको प्राप्त करनेमें वह कृतकार्य हुआ था। हिन्दीमें उदयनकी कथा काव्य और नाट्य रचनाका विषय रही है। जयशंकर प्रसादके अजातशत्रुमें इसका उपयोग हुआ है।

२. विष्णु पुराणमें एक अन्य उदयनका उल्लेख है जिनके पिताका नाम दर्भक कहा गया है। ब्रह्माण्ड और वायु पुराणोंमें इनका नाम उदयिन मिलता है और भविष्यमें उदयाश्व। इन्होंने गंगा नदीके किनारे पुष्पनगरकी स्थापनाकी थी जो कि कालांतरमें पाटलिपुत्र (वर्तमान पटना) नामसे प्रसिद्ध हुआ था। —ज० प्र० श्री०

उदयनारायण तिवारी–जन्म १९०३ ई०मे बलिया जिलेके पीपरपाँती ग्राममें हुआ। शिक्षा प्रयाग, आगरा तथा कल-कत्ता विश्वविद्यालयमें हुई। मुख्य कार्यक्षेत्र भाषाविज्ञान है। आपके शोध-प्रबन्ध—'भोजपुरी भाषाका उद्गम और विकास' (प्रकाशन १९६० ई०)का पर्याप्त मान है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयागके आप उत्साही कार्यकर्ताओं और संचालकोंमें हैं। आप कई वर्षतक प्रयाग विश्व-विद्यालयके हिन्दी विभागमें सहायक प्रोफेसर रहे। सम्प्रति आप जबलपुर विश्वविद्यालयमें हैं। —सं०

उदयशंकर भट्ट–इनका जन्म (१८९८–) इटावामें अपने ननिहालमे हुआ। पूर्वज गुजरातके सिंहपुरसे आकर इन्दौर नरेशके न्यायाधीश नियुक्त होकर बुलन्दशहरके कर्णदास ग्राममें बस गये थे। घरका वातावरण संस्कृत-मय। पितामह पं० दुर्गाशंकरका संरक्षण। बचपनमें ही संस्कृतमे बातचीतका अभ्यास; कभी-कभी अनुष्टुभ् छन्दोंकी रचना भी। पिता पं० मेहता फतेहशंकर भट्ट अंग्रेजी पढ़े-लिखे, फिर भी संस्कृतनिष्ठ। वे ब्रजभाषामें कवित्त, सवैयोंकी रचना करते और कभी-कभी गोष्ठियोंमें पढते भी थे। भट्टजीको भी इन्ही गोष्ठियोंसे लिखनेकी प्रेरणा मिली। सर्वप्रथम ब्रजभाषामे काव्य निर्माण। शिक्षा : काशी हिन्दू विश्वविद्यालयसे बी० ए०, पंजाबसे शास्त्री और कलकत्तासे काव्यतीर्थ। लाला लाजपतरायके नेशनल कालेज लाहौरमे प्रथम अध्या-पन। फिर लाहौरके खालसा कॉलेज, सनातनधर्म कालेज आदिमें रहे। अध्यापनकालमें नाटक लिखनेकी रुचि विकसित हुई। सन् १९२१-२२ में 'असहयोग और स्वराज्य' तथा 'चितरंजनदास' शीर्षक रचनाएँ लिखीं और खेली। कांग्रेस द्वारा संचालित स्वतन्त्रता आन्दोलनमें भी भाग लेते रहे तथा सशस्त्र क्रान्तिकी चेष्टा करनेवालोंसे भी सम्पर्क रहा। देशके स्वाधीन होनेके बाद आकाशवाणीके परामर्शदाता एवं निर्देशक रहे। अब अवकाश ग्रहण करके घरपर ही साहित्य निर्माणके कार्यमें संलग्न हैं।

भट्टजीने सर्वप्रथम कवि रूपमें 'तक्षशिला' (१९२९)—एक आख्यानक काव्यकी रचनासे साहित्यिक जीवन प्रारम्भ किया। उसके बाद उनकी काव्य रचनाओंके कई संग्रह 'राका' (१९३१), 'मानसी' (१९३५), 'विसर्जन' (१९३६), 'युगदीप' (१९३९), 'अमृत और विष' (१९३९) तथा 'यथार्थ और कल्पना' (१९५०)में प्रकाशित हुए। इन संग्रहोंकी रचनाओंमें छायावादी भावुकता ही मुखर है। सन् १९४८ में उन्होंने फिर एक खण्ड काव्य 'विजय पथ'

की रचना की। नवीन काव्य संग्रह 'अन्तर्दर्शन' (१९५८) में रावण, राम और सीताका किन्हीं विशिष्ट परिस्थितियोंमें आत्मविश्लेषण है।

भट्टजीके प्रथम ऐतिहासिक नाटक 'विक्रमादित्य'(१९३०) में पश्चिम की संघर्षप्रधान नाट्यशैलीका प्रयोग है। दूसरी रचना 'दाहर अथवा सिंधपतन' (१९३२)में दुःखान्त पद्धतिको भी ग्रहण कर लिया गया है। इसके बादके ऐतिहासिक नाटकों 'मुक्ति पथ' (१९३८) और 'शक विजय' (१९५३)में पश्चिमकी स्वच्छन्दतावादी नाट्यशैली और निखर उठी है। पौराणिक नाटकों—'अम्बा' (१९३३) और 'सगर विजय' (१९३४) में पुरुषके अहं अधिकार-भाव एवं आतंकपूर्ण नीतिके विरुद्ध नारीके विद्रोहका चित्रण है। सामाजिक नाटको—'कमला'(१९३६) और 'अन्तहीन अन्त' (१९३७) में भी नारीकी बौद्धिक जागरूकताका प्रदर्शन है, किन्तु वह परिस्थितियोंके आगे नतशिर हो गयी है। 'क्रान्तिकारी' (१९५४) में सशस्त्र विद्रोहका प्रयास करनेवाले नवयुवकोंके अनुशासनपूर्ण जीवन, अपूर्व त्याग, असीम साहसिकता एवं अतुल पराक्रमको प्रस्तुत किया गया है। 'नया समाज' (१९५५) में जमींदारी उन्मूलनसे विपन्न एक अभिजात परिवारकी दुःखमय गाथाके साथ 'फ्रायड' द्वारा निर्देशित पितृ-रतिग्रन्थिको नाटकीय रूप दिया गया है। 'पार्वती' (१९६०)मे एक अर्ध-शिक्षित, पाश्चात्य सभ्यतामे मोहाविष्ट नारीपर बडा तीखा व्यङ्ग है।

भट्टजीकी साहित्यिक प्रतिभा उनके गीति नाटकों 'मत्स्यगन्धा' (१९३४), 'विश्वामित्र' (१९३५) और 'राधा' (१९३६) मे विशेष रूपसे निखर उठी है। इन रचनाओंमें पुरुषके प्रति नारीके चिरन्तन विद्रोहका चित्रण है; पर अन्तमे नारीको पुरुषके आगे आत्मसमर्पण करना पडा है। 'अशोकवन वन्दिनी' (१९५९) में भट्टजीने चार पद्य नाटक प्रस्तुत किये हैं: प्रथममे सीताका आधुनिक तर्कशील नारीके रूपमें चित्रण है; 'सन्त तुलसीदास' रेडियोरूपककी शैलीमे 'मानसकार'के आध्यात्मिक जागरणको उपस्थित करता है; 'गुरु द्रोणका अन्तर्निरीक्षण' वस्तुतः महाभारतके इस महामहिम चरित्रकी नाटकीय स्वीकारोक्ति है; और इसी प्रकार 'अश्वत्थामा' भी, पाण्डव पुत्रोंका सुप्तावस्थामें वध कर देनेके अनन्तर आत्मग्लानिका चित्र है। अन्तिम दोनों अमित्राक्षर छन्दके स्वोक्ति नाटक हैं।

भट्टजीकी एकांकी रचनाओंके भी कई संग्रह हैं: 'स्त्रीका हृदय', 'आदिम युग' (१९४७), 'धूमशिखा' (१९४८), 'पर्देके पीछे'(१९५०), 'अन्धकार और प्रकाश', 'समस्याका अन्त' (१९५२) तथा 'आजका आदमी' (१९६०)। इनमे भट्टजीने पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, प्रतीकात्मक, समस्या-प्रधान, हास्यपूर्ण सभी प्रकारकी रचनाएँ उपस्थित की हैं। इनमें वैदिक युगकी सामाजिक सांस्कृतिक पृष्ठभूमिसे लेकर आजकी ज्वलन्त समस्याओंतकका चित्रण है। भट्टजीके आदिम युगसे सम्बन्धित एकांकी उन्हें अनुसन्धाताके रूपमें उपस्थित करते हैं; ऐतिहासिक एकांकियोंमें युगविशेषकी दुर्बलताओंका उद्घाटन है; और आजके जीवनका चित्रण करनेवाली रचनाएँ सामाजिक विकृतियों एवं विद्रूपताओंसे बचनेका संकेत देती है।

भट्टजीने उपन्यास भी लिखे हैं: 'वह जो मैंने देखा' (१९३७-४२), नया नाम 'एक नीड़ दो पंछी' (१९५६)—संस्मरणात्मक रचना है। 'नये मोड़' (१९५६), नवीन नामकरण 'डॉ० शेफाली'—(१९६०) एक दृढ़चरित्र, कर्त्तव्यपरायण, जनसेवानिरत नवयुवतीकी जीवनगाथा है। 'सागर लहरें और मनुष्य' (१९५६)—बम्बईके पासके मछुओंके जीवनका चित्रण है। 'लोक परलोक'(१९५८), ग्रामीण जीवनपर पाश्चात्य सभ्यताके बढ़ते हुए दुष्प्रभावका चित्र है। 'शेष अशेष' (१९६०) में साधुओं और संन्यासियोंके जीवनका प्रकृतिवादी दृष्टिकोणसे उद्घाटन है।

भट्टजीके व्यक्तित्वमें प्राचीनताके प्रति अनुराग और नवीनके प्रति आकर्षणका अद्भुत संयोग है और उनकी यही द्विधावृत्ति उनकी रचनाओंमें भी प्रकट हुई है। मनसे वे संस्कृतनिष्ठ और आदर्शवादी हैं परन्तु बुद्धिसे यथार्थ द्रष्टा और विश्लेषक। अपने बाह्य जीवन और अन्तर्मनके प्रकोष्ठोंमे जो कुछ उन्होंने देखा है, उसे ही व्यक्त किया है। उनकी प्रारम्भिक रचनाओंमें ऐतिहासिक अनुशीलन के आधारपर राष्ट्रके पतनके कारणोंका दिग्दर्शन है। उसके बाद ये आजके जीवनकी कटुता और कुरूपताके उद्घाटनमें सलग्न हुए। उनकी इधरकी कृतियोंमें अन्तर्निरीक्षण है तथा साथ ही व्यक्तिको अपने कर्तव्यके प्रति सजग और समाजको प्रगतिके पथपर अग्रसर करनेका आग्रह है। भट्टजीकी रचनाओंमें पीडाका राग है किन्तु वह हमें 'उत्तिष्ठत जाग्रत'का मन्त्र देता है।

[सहायक ग्रन्थ—जयनाथ 'नलिन': हिन्दी नाटककार; रामचरण महेन्द्र: हिन्दी एकांकी—उद्भव और विकास; नगेन्द्र: आधुनिक हिन्दी नाटक।]

उदवसु—ये राजर्षि जनकके पुत्र तथा सीताके भाई थे। जनकके बाद ये मिथिलाके अधिपति हुए थे। —ज० प्र० श्री०

उद्दालक—ओपवेशि गौतमके पुत्र और साथ ही शिष्य-परम्परामे थे। इनका वास्तविक नाम उद्दालक आरुणि था। इनके एक पुत्र था जिसका नाम श्वेतकेतु था। ये याज्ञवल्क्यके गुरु भी रहे। ये ब्रह्मविद्याके अन्यतम विद्वान् और ऋषि थे। इन्हे सामाजिक विधि-निषेधका प्रवर्तन करनेवाला माना गया है। —ज० प्र० श्री०

उद्धव १—भागवतके अनुसार श्री कृष्णके प्रिय सखा और साक्षात् बृहस्पतिके शिष्य महामतिमान् उद्धव वृष्णिवंशीय यादवोके माननीय मन्त्री थे (भागवत, दशम स्कन्ध, पूर्वार्ध, अध्याय ४६)। उनके पिताका नाम उपंग कहा गया है। कहीं-कहीं उन्हें वसुदेवके भाई देवभागका पुत्र, अतः श्री कृष्णका चचेरा भाई भी बताया गया है। एक अन्य मतके अनुसार ये सत्यकके पुत्र तथा कृष्णके मामा कहे गये है। मथुराप्रवासमें जब श्री कृष्णको अपने माता-पिता तथा गोपियोंके विरह-दुःखका स्मरण होता है, तो वे उद्धवको नन्दके गोकुल भेजते हैं तथा माता-पिताको प्रसन्न करने तथा गोपियोंके वियोग-तापको शान्त करनेका आदेश देते हैं। उद्धव सहर्ष कृष्णका सन्देश लेकर ब्रज जाते है और नन्दादि गोपों तथा गोपियोंको प्रसन्न करते हैं। कृष्णके प्रति गोपियोंके कान्ताभावके अनन्य अनुरागको प्रत्यक्ष देखकर उद्धव अत्यन्त प्रभावित होते हैं, वे कृष्णका

यह सन्देश सुनाते हैं कि तुम्हें मेरा वियोग कभी नहीं हो सकता, क्योंकि मैं आत्मरूप हो सदैव तुम्हारे पास हूँ। मै तुमसे दूर इसलिए हूँ कि तुम सदैव मेरे ध्यानमें लीन रहो। तुम सब वासनाओंसे शून्य शुद्ध मनसे मुझमें अनुरक्त रहकर मेरा ध्यान करनेसे शीघ्र ही मुझे प्राप्त करोगी। प्रियतमका यह सन्देश सुनकर गोपियोंको प्रसन्नता हुई तथा उन्हें शुद्ध ज्ञान प्राप्त हुआ। उन्होंने प्रेम विह्वल होकर कृष्णके मनोहर रूप और ललित लीलाओंका स्मरण करते हुए अपनी घोर वियोग-व्यथा प्रकट की तथा भावातिरेककी स्थितिमें कृष्णसे ब्रजके उद्धारकी दीन प्रार्थनाकी। परन्तु श्रीकृष्णका सन्देश सुनकर उनका विरहताप शान्त हो गया। उन्होंने श्री कृष्ण भगवानको इन्द्रियोंका साक्षी परमात्मा जानकर उद्धवका भलीभाँति पूजन और आदर-सत्कार किया। उद्धव कई महीनेतक गोपियोंका शोक-नाश करते हुए ब्रजमें रहे। गोपियोंकी कृष्णासक्तिसे वे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने गोपियोंकी चरण-रजकी वन्दनाकी तथा इच्छा प्रकट की कि मै अगले जन्ममें गोपियोंकी चरण-रजसे पवित्र वृन्दावनकी लता, ओषध, झाडी आदि बनूं। इस प्रकार कृष्णके प्रति ब्रजवासियोंके प्रेमकी सराहना करते हुए तथा नन्दादि, गोप तथा गोपियोंसे कृष्णादिके लिए अनेक भेटें लेकर वे मथुरा लौट आये।

श्रीमद्भागवतके अतिरिक्त गोपाल कृष्णकी लीलाके वियोग-पक्षका विस्तृत वर्णन अन्य पुराणोमे नहीं मिलता। ब्रह्मवैवर्तमें यद्यपि उद्धवके ब्रज भेजे जानेका प्रसग आया है (श्री कृष्ण जन्म खण्ड, अध्याय ९४) परन्तु इस प्रसगमें भी प्रायः एकान्ततः राधाकी विरह-व्याकुलताकी ही प्रधानता है, उद्धव उन्हींके प्रेमसे प्रभावित होकर उन्हे सान्त्वना देनेमें प्रयत्नशील दिखाये गये हैं। वे राधाकी माता-सदृश स्तुति करते हैं, उनकी मूर्च्छा दूर करनेके उपाय करते हैं और अन्तमे उन्हें कृष्ण-मिलनका आश्वासन देकर मथुरा लौटते है तथा कृष्णको शीघ्र गोकुल जानेके लिए प्रेरित करते हैं। ब्रह्मवैवर्तमें वियोगका वर्णन भी विलासोन्मुख है, अतः इस प्रसंगमे उद्धवके व्यक्तित्वकी कोई विशेषता उभरती नहीं दिखाई देती।

हिन्दी कृष्ण-काव्यके प्रथम गायक विद्यापतिने यद्यपि विरहका विशद वर्णन किया है, परन्तु उसमे उद्धवके प्रसग को स्थान नहीं मिला, केवल एक-आध पदमे उद्धवका नाम मात्र आया है जहा विरह-विह्वल राधाको इगितकर सखी कहती है—"हे उद्धव, तू तुरन्त मथुरा जा और कह कि चन्द्रबदनी अब नहीं बचेगी, उसका वध किसे लगेगा?" इस एक सन्दर्भमें ही उद्धवके भागवतसे भिन्न व्यक्तित्वकी सूचना मिलती है। वस्तुतः कृष्ण-कथाके लोक-विश्रुत रूपमें उद्धव कृष्ण और गोपियों अथवा कृष्ण और राधाके बीच प्रेम-सन्देश-वाहक रहे हैं। हिन्दी कृष्ण भक्ति—काव्यमे भी उन्हें इसी रूपमें ग्रहण किया गया, यद्यपि हिन्दी कृष्णभक्ति—काव्यका प्रधान स्रोत और उपजीव्य भागवत ही था।

भक्त कवियोंमे सूरदासने ही उद्धवसम्बन्धी प्रसगका सम्यक् रूपसे विस्तृत वर्णन किया है। उन्होंने वियोगका मार्मिक चित्रण करनेके साथ इस प्रसंगके माध्यमसे भक्तिके स्वतः पूर्ण ऐकान्तिक स्वरूपको स्पष्ट करने तथा उसकी महत्ता प्रतिपादित करनेके लिए इतर साधनों—वैराग्य, योग, जप, तप, कर्मकाण्ड आदिकी हीनता प्रमाणित की है। अपने उस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए उन्होंने उद्धवके व्यक्तित्व का जो नव-निर्माण किया, वही अद्यावधि हिन्दी कृष्ण-काव्यकी स्वीकृत परम्परामें सुरक्षित है। सूरके उद्धव स्वयं कृष्णके शब्दोंमें काठकी भाँति निठुर, प्रेम-भजनसे सर्वथा शून्य, अद्वैतदर्शी, 'निठुर जोगी जंग' और 'भुरंग' सखा हैं। ये निर्गुणका व्रत लिए हुए हैं, कृष्णको 'त्रिगुण तन' समझते हैं तथा ब्रह्मको उनसे भिन्न मानते है, योगकी बातें करते हैं तथा प्रेमकी बातें सुनकर विपरीत बोलते हैं। वे अत्यन्त दम्भी, पाखण्डी और अहकारी हैं। कृष्ण उन्हें सीधे मार्गपर लानेके लिए उनका अद्वैतवादियों, निर्गुणवादियों, अलख-वादी योगियो जैसा अभिमान चूर करके प्रेमभक्तिमें दीक्षित करनेके उद्देश्यसे ही उन्हे छल करके ब्रज भेजते हैं। ब्रजकी गोपियाँ उनके 'ज्ञान'की धज्जियाँ उडा देती हैं, तथा सिद्ध कर देती हैं कि प्रेमसे शून्य होनेके कारण उनका गम्भीर पाण्डित्य एक दुर्वह बोझके सदृश है, वे वस्तुतः ज्ञानी नही महामूर्ख हैं, क्योंकि वे अपढ, गंवार, ग्रामीण युवतियोको योग सिखानेका हास्यास्पद प्रयत्न करने आये हैं। सूरदासने अपने समयके भक्ति—बाह्य सभी मतमतान्तरोंके प्रतिनिधित्वका दायित्व उद्धवपर लाद दिया और अन्तमे उद्धव-को प्रेमभक्तिका यहाँतक समर्थक बना दिया है कि मथुरा लौटकर वे स्वयं श्री कृष्णकी निठुरताकी आलोचना करने लगते है तथा उनसे ब्रजवासियोके विरह-दुःख दूर करनेकी प्रार्थना करते हैं। श्रीमद्भागवतके उद्धवके व्यक्तित्वको पुनः लोक-विश्रुत कृष्ण-कथाकी ओर किंचित् मोड देकर सूरदासने उद्धवके प्रेमदूतत्वके माध्यमसे जहाँ एक ओर अत्यन्त व्यंजनापूर्ण प्रेमविरह काव्यकी रचना की है, वहाँ दूसरी ओर भक्ति-मार्गकी सर्वश्रेष्ठता सिद्ध करनेमें अनुपम सफलता प्राप्तकी है। 'सूरसागर'के इस प्रसगमें साढे सात सौ पद हैं।

सूरदासके समकालीन अष्टछापके अन्य कवियोंसे नन्ददास-को छोडकर सभीने सूरके ही आधारपर उद्धवसम्बन्धी प्रसगपर स्फुट रचना की है, अतः उनके द्वारा उद्धवके चरित्र-चित्रणमे कोई नवीनता नहीं मिलती। केवल नन्ददासने अपने 'भवरगीत'मे उद्धवको एक अद्वैत-वेदान्तके समर्थक ज्ञानमार्गी पण्डितके रूपमे उपस्थित किया है जो न केवल गोपियोंकी उत्कट प्रेम-भक्ति वरन् उनके पाण्डित्यपूर्ण तर्कोंका लोहा मानकर भक्तिमार्गमें दीक्षित हो जाते हैं। यद्यपि कृष्णभक्तिके राधावलभी सदृश कुछ सम्प्रदायोमे विरहकी महत्ता नही मानी गयी और इस कारण उद्धव-सम्बन्धी प्रसग उनमे लोकप्रिय नहीं हुआ, फिर भी मुख्यतः सूरके उद्धव-गोपी संवाद तथा भ्रमरगीतका आधार लेकर आधुनिककाल तक दर्जनों रचनाएँ हुई हैं और उनमे उद्धवका व्यक्तित्व बहुत कुछ सूरके उद्धवकी ही भाँति चित्रित हुआ है। तुलसीदासने भी अपनी कृष्णगीतावलीमें इस प्रसगमें सरस पद रचे हैं। सच तो यह है कि कृष्ण-भक्त कवि ही नहीं; मध्यकालसे लेकर आधुनिक कालतक ब्रजभाषाका ऐसा कोई कवि न होगा जिसने इस प्रसंगपर कुछ छन्द न रचे हों। यह निर्विवाद सत्य है कि ब्रजभाषा

काव्यका मुख्य वर्ण्य-विषय राधाकृष्ण और गोपीकृष्णकी लीला ही रहा है और इस लीलामें सबसे अधिक मार्मिक, रसिकोंमें लोकप्रिय प्रसंग उद्धव-गोपी संवाद और भ्रमरगीत है। इन सभी कवियोंमें उद्धवके तथाकथित ज्ञानमार्गकी खिल्ली उड़ाने, उद्धवकी मूढ़ता प्रमाणित करने तथा प्रेम और भक्तिकी महत्ता प्रतिपादित करनेमें परस्पर प्रतिस्पर्द्धा-सी देखी जाती है।

आधुनिककालमे जगन्नाथदास 'रत्नाकर'ने 'उद्धवशतक'-में भक्ति और रीति काव्यकी परम्पराओंका समन्वय-सा करते हुए उद्धवके व्यक्तित्वमें संवेदन-शीलताका कुछ अधिक सन्निवेश किया है वैसे उनके उद्धव ब्रजभाषाके जाने-पहचाने उद्धव ही हैं। खड़ी बोलीके काव्यों 'प्रियप्रवास' (हरिऔध) और 'द्वापर' (मैथिलीशरण गुप्त)के उद्धव गोपियोंके हास-परिहासके आलम्बन नहीं बनते, तथा उनके व्यक्तित्वमें गम्भीरता पायी जाती है। दोनों कवियोंने उन्हें अधिक संवेदनशील, विचारशील तथा बुद्धिमान् चित्रित किया है।

[सहायक ग्रन्थ—सूरदास : ब्रजेश्वर वर्मा, हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय, इलाहाबाद; हिन्दीमें भ्रमरगीत काव्य और उसकी परम्परा : डा० स्नेहलता श्रीवास्तव, दिल्ली।] —ब्र० व०

उद्धव २—नाभादासकृत भक्तमालमे उद्धव नामके चार भक्तोंका उल्लेख है। एक प्रसिद्ध वैष्णव भक्त उद्धव नाभादासके यजमान थे। दूसरे उद्धोजी नामके एक अन्य वैष्णव भक्त अग्रदासके शिष्य और नाभादासके समकालीन थे। तीसरे उद्धव भी एक वैष्णव भक्त थे जो होशंगाबादके निवासी थे तथा जिन्होने अपनी कोठी भक्तोंको दान कर दी थी। चौथे उद्धव हनुमान्-वंशीय वनचर उद्धव कहे गये हैं। ये भी वैष्णव भक्त थे। —ब्र० व०

उद्धव-शतक—जगन्नाथदास रत्नाकरका 'उद्धव-शतक' दूतकाव्यकी भ्रमरगीत परम्परामें है। इसका प्रकाशन १९२९ ई० मे हुआ। भाषा अलंकृत ब्रजभाषा और छन्द घनाक्षरी है। छन्द मुक्तक-काव्यकी विशिष्टताओं से संयुक्त होते हुए भी प्रसंगानुकूल संगृहीत होनेके कारण इसे प्रबन्धात्मक रूप प्रदान करते है। कथानक गोपियोंके विप्रलम्भ, कृष्ण-सन्देश और उद्धव गोपी-संवादके प्रसङ्गोंसे गुम्फित है। गोपियाँ अनन्य प्रेमिकाएँ और उद्धव परम ज्ञानी है। विप्रलम्भ शृङ्गार और शान्त प्रधान रस हैं। विरह-निवेदन गम्भीर, उक्तियाँ चमत्कारपूर्ण, संवाद नाटकीय और दार्शनिक प्रतिपादन स्पष्ट हैं। रसायन, वेदान्त, तर्क, योग और विज्ञानसम्बन्धी कथन कविकी बहुज्ञताके परिचायक है। ज्ञानपर भक्तिकी विजय इस काव्यका उपजीव्य है। कविकी यह सर्वाधिक प्रसिद्ध कृति एक सुन्दर उपालम्भ-काव्य है। —स० ना० त्रि०

उपनिषद्—उपनिषद्को मुनियोंने वेदका शिरोभाग और वेदान्त कहा है। यह संस्कृत वाङ्मयके उन ग्रन्थोंका नाम है जिनमें सबसे पहली बार तत्त्वचिन्तनकी चेष्टा की गयी थी। ब्रह्म, जीव, जगत्, मोक्ष आदि दार्शनिक विषयोंका मौलिक विवेचन इन ग्रन्थोंमें प्रस्तुत किया गया था। वेदान्त, सांख्य इत्यादि षट्-दर्शनोंका विकास इन्हीं ग्रन्थोंके द्वारा हुआ था। धर्मकी दृष्टिसे ये वेदोंके समान माने जाते है यद्यपि प्राचीनतामें इनका स्थान वेदोंके बाद है। उपनिषदोंकी संख्याके विषयमें मतभेद है। कुछ विद्वान् केवल चार उपनिषदोंको प्रामाणिक मानते हैं। 'सर्वोपनिषदर्थानुभूति प्रकाश' ग्रन्थमें विद्यारण्य स्वामीने बारह उपनिषदोंको प्रधान माना है। मुक्तिकोपनिषद्में १०८ के नाम मिलते हैं। आधुनिक खोजोंके आधारपर इनकी संख्या २३५ है। इनमें छान्दोग्य, केन, ईश, कठ और बृहदारण्यक प्रमुख हैं। उपनिषदोंमें तत्त्वचिन्तनके चार मुख्य विषय हैं—(१) आत्माकी व्यापकता, (२) आत्माका देहान्तर या पुनर्जन्म ग्रहण, (३) सृष्टि तत्त्व और (४) प्रलय तत्त्व। —ज० प्र० श्री०

उपमन्यु (वासिष्ठ)—वसिष्ठ-कुलके श्री व्याघ्रपादके पुत्र थे। इनकी माताका नाम अम्बा था। आयोदधौम्य इनके गुरु थे। इनकी प्रसिद्धिका कारण इनकी गुरुभक्ति है। गुरुकी आज्ञासे ये गोचारण करते थे। इनके जीविकोपार्जनका साधन भिक्षा थी। इनके स्थूलकायको देखकर एक दिन आयोदधौम्यने उसका कारण पूछा और इनकी भिक्षावृत्तिकी बात जानकर उसका निषेध किया। अन्तमें इनकी परीक्षा लेनेके लिए निराहार रहनेका आदेश दिया। एक दिन भूखमे व्याकुल होकर इन्होंने अर्कपत्र खा लिया जिससे ये अन्धे हो गये और फलस्वरूप एक कुएँमें गिर पड़े। इनके गुरुने इनकी खोज की और इन्हें विपन्नावस्थामें देखकर अश्विनीकुमारोंकी स्तुति करनेका निर्देश दिया। इनके स्तवनसे प्रसन्न होकर अश्विनीकुमारोंने इन्हें औषध दी। उस औषधको खानेके लिए इन्होंने गुरुसे आज्ञा लेनी चाही। इसपर अश्विनीकुमारोने प्रसन्न होकर इन्हें दिव्य चक्षु प्रदान किया। गुरुके आशीर्वादसे इन्हे वेद-शास्त्रादिका ज्ञान हुआ। नन्दिकेश्वरकृत काशिकापर टीका, अर्द्धनारीश्वराष्टक, तत्त्वविमर्षिणी, शिवाष्टक, शिवस्तोत्र और उपमन्यु निरुक्त इनके छः प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। —ज० प्र० श्री०

उपरिचर—इनका अन्य नाम वसु भी है। इनके पिताका नाम कृती (मतान्तरसे कृतयश, कृतक) था। ये चन्द्रवंशी सुधन्वाके वशज थे। प्रत्यग्रह, कुशाम्ब (मणिवाहन), बृहद्रथ (महारथ), मावेल्ल और मत्स्य (यदु) इनके पाँच पुत्र थे तथा मत्स्यगन्धा कन्या। इन्हें मृगयाका व्यसन था। कालान्तरमे यह व्यसन छूट गया और इन्हें तपश्चर्या के प्रति विशेष अनुराग हो गया। इनकी साधना देखकर इन्द्रको अपने आसन छिन जानेकी आशंका होने लगी जिससे इन्द्रने इन्हें विरत करनेके लिए इनके पास देवताओंको भेजा। इन्होंने इन्द्रकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। इससे इन्द्रने प्रसन्न होकर इन्हें एक वैजयन्ती माला तथा स्फटिकका विमान भेंट किया था। —ज० प्र० श्री०

उपसुंद—निकुम्भ अथवा निसुन्द नामक राक्षसका छोटा लड़का था। यह हिरण्यकशिपुका वंशज था। इसके बड़े भाईका नाम सुन्द था। इन दोनों भाइयोंने विन्ध्याचल पर्वतपर कठोर तपस्या की। इनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर ब्रह्माने दोनों भाइयोंको वरदान दिया कि वे आपसमें लड़कर भले ही अपने प्राण त्याग दें लेकिन अन्य कोई उनका वध

न कर सकेगा। शक्ति प्राप्त कर सुन्द और इसने अत्यधिक अत्याचार किया। इनके अत्याचारसे त्रस्त होकर देवताओंने ब्रह्मासे प्रार्थना की। ब्रह्माने देवताओंका दुःख दूर करनेके लिए विश्वकर्माको एक अनुपम सुन्दरीका निर्माण करनेका आदेश दिया। विश्वकर्माने सृष्टिके सुन्दर उपकरणोंमे तिल तिलभर सुन्दरता लेकर तिलोत्तमा अप्सराकी रचना की। जब तिलोत्तमा दोनों भाइयोंके सामने पहुंची तो दोनों ही उसपर आसक्त होकर उसे हस्तगत करनेके लिए लड़ बैठे। फलस्वरूप दोनों ही एक-दूसरेके हाथसे मारे गये (दे० 'तिलोत्तमा': मैथिलीशरण गुप्त)। —ज० प्र० श्री०

उपेन्द्रनाथ अश्क—जन्म पंजाब प्रान्तके जालन्धर नामक नगरमें १४ दिसम्बर १९१०को एक मध्यवित्तके ब्राह्मण परिवारमें हुआ। ये छः भाइयोंमें दूसरे हैं। इनके पिता पण्डित माधोराम स्टेशन मास्टर थे। जालन्धरसे मैट्रिक और वहींके डी० ए० वी० कालेजसे इन्होंने १९३१में बी० ए०की परीक्षा पासकी। बचपनमे ही अश्क अध्यापक बनने, लेखक और सम्पादक बनने, वक्ता और वकील बनने, अभिनेता और डायरेक्टर बनने और थियेटर अथवा फिल्ममें जानेके अनेक सपने देखा करते थे। बी०ए० पास करते ही ये अपने ही स्कूलमें अध्यापक हो गये, पर १९३३में उसे छोड़ दिया और जीविकोपार्जन हेतु साप्ताहिक पत्र 'भूचाल'का सम्पादन किया और एक अन्य साप्ताहिक 'गुरु घण्टाल'के लिए प्रति-सप्ताह एक रुपयेमे एक कहानी लिखकर दी। १९३४में अचानक सब छोड़ ला कालेजमे प्रवेश लिया और १९३६मे लॉ पास किया। पर उसी वर्ष लम्बी बीमारी और प्रथम पत्नीके देहान्तके बाद इनके जीवनमे एक अपूर्व मोड़ आया। १९३६के बाद अश्कके लेखक व्यक्तित्वका अति उर्वर युग प्रारम्भ हुआ। अश्कने इससे पहले भी बहुत लिखा था। उर्दूमे 'नव-रत्न' और 'औरतकी फितरत' उनके दो कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके थे। प्रथम हिन्दी कहानी संग्रह 'जुदाईकी शामका गीत' (१९३३)की अधिकांश कहानियाँ उर्दूमे छप चुकी थीं।

जैसा कि अश्कने स्वयं लिखा है, '१९३६के पहलेकी ये कृतियाँ उतनी अच्छी नहीं बनी। वे आदर्शोन्मुख, कल्पना-प्रधान अथवा कोरी रोमानी थीं। अनुभूतिका स्पर्श उन्हें कम मिला था।' १९३६के बाद अश्ककी कृतियोंमें सुख-दुःखमय जीवनके व्यक्तिगत अनुभवने उनमे अद्भुत रंग भर गया। 'उर्दू काव्यकी एक नयी धारा' (आलोचना ग्रन्थ), 'जय पराजय' (ऐतिहासिक नाटक), 'पापी','वेश्या', 'अधिकारका रक्षक', 'लक्ष्मीका स्वागत', 'जोंक', 'पहेली' और 'आपसका समझौता'(एकांकी), 'स्वर्गकी झलक'(सामाजिक नाटक); कहानीसंग्रह 'पिंजरा'की सभी कहानियाँ, 'छींटे'की कुछ कहानियाँ और 'प्रात प्रदीप' (कविता संग्रह) की सभी कविताएँ उनकी पत्नीकी मृत्यु (१९३६)के दो ढाई सालके ही अल्प समयमें लिखी गयीं।

अश्क उर्दूसे हिन्दीमें लिखने तो १९३५में ही लगे थे पर हिन्दीमें अधिकांश कृतियाँ उन्होंने इसी ढाई वर्षकी अवधिमे लिखीं। १९३९में अश्क पौने दो सालके लिए प्रीत नगर चले गये। वहाँसे निकलनेवाली एक मासिक पत्रिकाके उर्दू-हिन्दी दोनों संस्करणोंका सम्पादन करने लगे। यहाँ उन्होंने कुछ कहानियोंके अतिरिक्त 'छठा बेटा' नाटक और 'गिरती दीवारें' उपन्यासका काफी भाग लिखा।

१९४१में दूसरा विवाह किया। उसी वर्ष आल इण्डिया रेडियोमें नौकरी की। १९४५ के दिसम्बरमें बम्बईके फिल्म जगत्के निमन्त्रणको स्वीकारकर वहाँ फिल्मोंमें लेखन कार्य करने लगे।

१९४७-४८में निरन्तर अस्वस्थ रहे। पर यह उनके साहित्यिक सर्जनकी उर्वरताका स्वर्ण-समय था। १९४८से १९५३तक अश्क दम्पत्ति (पत्नी, कौशल्या अश्क)के जीवनमे संघर्षके वर्ष रहे। पर इन्हीं दिनों अश्क यक्ष्माके चंगुलसे बचकर इलाहाबाद आये, नीलाभ प्रकाशन गृहकी व्यवस्था की, जिससे उनके सम्पूर्ण साहित्यिक व्यक्तित्वको रचना और प्रकाशन दोनो दृष्टियोंसे सहज पथ मिला।

अश्कने कहानी, उपन्यास, निबन्ध, लेख, संस्मरण, आलोचना, नाटक, एकांकी, कविता आदिके क्षेत्रोंमें कार्य किया है।

नाटकके क्षेत्रमे १९३७से लेकर इन्होंने जितनी कृतियाँ सम्पूर्ण नाटक और एकांकीके रूपमे लिखी हैं, सब प्रायः अपने लेखनकालके उपरान्त उसी वर्ष क्रमसे प्रकाशित हुई हैं।

नाटक—१. 'जय पराजय' (१९३७), २. 'स्वर्गकी झलक' (१९३८): ३. 'छठा बेटा' (१९४०), ४. 'कैद' (१९४३-४५), ५. 'उड़ान' (१९४३-४५), ६. 'पैंतरे' (१९५२), ७. 'अलग-अलग रास्ते'(१९४४-५३), ८.'आदर्श और यथार्थ' (१९५४), ९. 'अंजोदीदी' (१९५३-५४)। एकांकी—'पापी' (१९३८), 'वेश्या' (१९३८), 'लक्ष्मीका स्वागत' (१९३८), 'अधिकारका रक्षक' (१९३८), 'जोंक' (१९३९), 'आपसका समझौता'(१९३९), 'पहेली'(१९३९), 'विवाहके दिन' (१९४०), 'देवताओंकी छायामें' (१९४०), 'खिड़की' (१९४१), 'सूखी डाली' (१९४१), 'चमत्कार' (१९४१), 'नया पुराना' (१९४१), 'बहनें' (१९४२), 'कामदा'(१९४२), 'मेमूना' (१९४२), 'चिलमन' (१९४२), 'चरवाहे' (१९४२),'चुम्बक' (१९४२), 'तौलिये' (१९४३), 'भंवर' (१९४३), 'आदि मार्ग' (१९४३), 'पक्का गाना' (१९४४), 'तूफानसे पहले' (१९४६), 'कइसा साब कइसी आया' (१९४६), 'अन्धी गलीके आठ एकांकी' (१९४९), 'पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ' (१९५०), 'बतसिया' (१९५०), 'कस्बेके क्रिकेट क्लबका उद्‌घाटन' (१९५०), 'मस्केबाजोंका स्वर्ग' (१९५१), 'साहबको जुकाम है' (१९५४-६० के एकांकी)। उपन्यास—'सितारोंके खेल' (१९३७), 'गिरती दीवारें' (१९४७), 'गर्म राख' (१९५२), 'बड़ी-बड़ी आँखें' (१९५४) तथा 'पत्थर अलपत्थर' (१९५७)। कहानियाँ—१९३२ से १९३६ के रचनाकालमें 'अंकुर', 'नासूर', 'चट्टान', 'डाची', 'पिंजरा', 'गोखरू', 'बैंगनका पौधा', 'मेमने', 'डालिये', 'काले साहब', 'बच्चे', 'उबाल', 'केप्टन रशीद' आदि अश्ककी प्रतिनिधि कहानियोंके नमूने सहित कुल डेढ़-दो सौ कहानियोंमें अश्कका कहानीकार-व्यक्तित्व सफलतासे व्यक्त हुआ है। काव्य-ग्रन्थ—'दीप जलेगा' (१९५०), 'चाँदनी रात और अजगर', (१९५२),

'बरगदकी बेटी' (१९४९)। संस्मरण—'मण्टो मेरा दुश्मन' (१९५६)। निबन्ध लेख, पत्र, डायरी और विचार ग्रन्थ—'ज्यादा अपनी कम परायी' (१९५०), 'रेखाएँ और चित्र' (१९५८)। अनुवाद—'रंग साज' (१९५८)—रूसके प्रसिद्ध कहानीकार 'ऐंटन चेखव'के लघु उपन्यासका अनुवाद, 'ये आदमी ये चूहे' (१९५०)—स्टीनबैकके प्रसिद्ध उपन्यास 'आव माइस एण्ड मैन'का अनुवाद, 'हिज एक्सेलेन्सी' (१९५९)—अमर कथाकार 'दास्तवस्की'के लघु उपन्यास 'डर्टी स्टोरी'का हिन्दी अनुवाद। सम्पादन—'प्रतिनिधि एकांकी' (१९५०), 'रंग एकांकी' (१९५६), 'संकेत' (१९५६)।

सृजनकी इतनी क्षमतासे सहज ही अश्ककी लेखन-शक्ति और भाव जगतकी समृद्धताका अनुमान लगाया जा सकता है। उपन्यास, नाटक, कहानी और काव्य-क्षेत्रमे अश्ककी उपलब्धि मुख्यतः नाटक, उपन्यास और कहानीमें विशेष-रूपसे महत्त्वपूर्ण है। 'गिरती दीवारें' और 'गर्म राख' हिन्दी उपन्यास क्षेत्रमे यथार्थवादी परम्पराके उपन्यास हैं।

सम्पूर्ण नाटकोंमे 'छठा बेटा', 'अंजोदीदी' और 'कैद' अश्ककी नाट्यकलाके सफलतम उदाहरण हैं। 'छठा बेटा'के शिल्पमें हास्य और व्यंग; 'अंजोदीदी'के स्थापत्यमें व्यावहारिक रंग-मंचके सफलतम तत्त्व और शिल्पका अनूठापन तथा 'कैद'मे स्त्रीका हृदयस्पर्शी चरित्र-चित्रण तथा उसके रचना-विधानमे आधुनिक नाट्यतत्वकी जैसी अभिव्यक्ति हुई है उससे अश्ककी नाट्य-कला और रंग-मंचके परिचयका संकेत मिलता है। एकांकी नाटकोंमें 'भँवर', 'चरवाहे', 'चिलमन', 'तौलिए' और 'सूखी डाली' अश्ककी एकांकी कलाके सुन्दरतम उदाहरण हैं। सभी एकांकी रंगमंचके स्वायत्त अधिकारी हैं।

अश्ककी कहानियाँ प्रेमचन्दके आदर्शोन्मुख यथार्थवाद अथवा विकास-क्रमसे प्राप्त विशुद्ध यथार्थवादी परम्पराकी है। कहानी-कला और रचना-शिल्प स्पष्ट कथा-तत्वके सहित मूलतः चरित्रके केन्द्रविन्दुमे पूर्ण होता है। अश्कके समस्त चरित्र उपन्यास, नाटक अथवा कहानी किसी भी साहित्य प्रकारमें जो आये है, वे सर्वथा यथार्थ हैं। उनसे सामाजिक और वैयक्तिक जीवनकी समस्त समस्याओं राग-द्वेषका प्रतिनिधित्व होता है।

[सहायक ग्रन्थ—१. ज्यादा अपनी कम परायी: उपेन्द्रनाथ 'अश्क'; २. नाटककार 'अश्क': नीलाभ प्रकाशन।] —ल० ना० ला०

उभयबाई–भक्तमालके अनुसार यह दो राजकुमारियोंका सामूहिक नाम है। ये दोनों ही अत्यन्त साधु स्वभावकी थीं। एक बार सन्तोंके दर्शनके लोभमें यह सोचकर कि इनके पुत्रोंके मर जानेपर इनका रोना-धोना सुनकर सन्त लोग अवश्य आयेंगे, अपने लड़कोंको विषपान करा दिया। हुआ वही जो दोनों राजकन्याओंने सोचा था। लड़कोंके मृत होनेपर इनका करुण विलाप सुनकर सन्त लोग आये। अपने प्रति इनके प्रेम-भावको जानकर सन्तोंने इनके बालकोंको फिरसे जीवनदान दिया तथा इनका नाम उभयबाई रखा। —ज० प्र० श्री०

उभयभारती–ये मण्डन मिश्रकी पत्नी थीं। इनके अन्य नाम शारदा तथा सरसवाणी भी मिलते हैं। शंकराचार्य जिस समय अपनी दिग्विजय सम्बन्धी यात्रा करते हुए मिथिला पहुँचे तो उन्होंने मण्डन मिश्रसे शास्त्रार्थ कर उन्हे पराजित किया। इस पर मण्डन मिश्रकी पत्नी उभयभारतीने शंकराचार्यको कामशास्त्रपर शास्त्रार्थ करनेके लिए चुनौती दी। शंकराचार्य उस समय तो इस चुनौतीको स्वीकार न कर सके किन्तु कालान्तरमें कामशास्त्रका विशेष अध्ययन कर उन्होंने इन्हें पराजित किया जिससे कि पति-पत्नी दोनोंको उनका अनुयायी होनेके लिए बाध्य होना पड़ा था। —ज० प्र० श्री०

उमर–इस्लामके अनुसार उमर मोहम्मद साहबके सोहाबी (मित्र) थे। मोहम्मद साहबके पश्चात् 'खिलाफत' (नमाज पढाने)का कार्य इन्हींको मिला था। 'उमर'की न्यायपरायणता अत्यन्त प्रसिद्ध है। मुसलमानोंका विश्वास है कि डाक-व्यवस्थाका सूत्रपात उमरने ही किया (दे० 'कावा-कर्बला')। —रा० कु०

उमा–मेनकाके गर्भसे उत्पन्न, हिमालयकी औरस पुत्री। महादेव इनके पति थे। महादेवको वररूपमें पानेके लिए ये कठोर तपस्या कर रही थीं। अपनी चिन्ता न करते देख एक दिन इनकी माताने इनसे कहा था—'उ, मा' अर्थात् इतनी कठोर तपस्या मत करो। उसी समयसे इनका नाम उमा हो गया। इन्होंने दुःसाध्य साधना करके महादेवको पतिरूपमे प्राप्त किया। उमाका प्रथम उल्लेख केन उपनिषद्में अन्य देवताओंके साथ मिलता है। इनके अनेक नाम हैं—'नाम उमा, अंबिका भवानी' (मा० १।६७।१)। 'मानमंजरी नाममाला' (नंददास)में अपर्णा, ईश्वरी, गौरी, गिरिजा, मृडा, चंडिका, भवा, मेनकजा, आर्या, अजा, सर्वमंगला, माया आदि अन्य नामान्तर मिलते हैं। —ज० प्र० श्री०

उमाशंकर शुक्ल–जन्म १९०९ ई० मे। प्रयाग विश्वविद्यालयसे एम० ए० करनेके उपरान्त वहीं 'सूरसागर'की पाठ-समस्यापर कार्य करना आरम्भ किया। मध्यकालीन साहित्य और साहित्य शास्त्रके विशेषज्ञोंमें प्रमुख। इसके अतिरिक्त आपका विशेष कार्य पाठ-विज्ञानके क्षेत्रमें है। इस अपेक्षाकृत नवीन क्षेत्रमे आपका कार्य ऐतिहासिक महत्त्वका है। 'नन्ददास'की समस्त रचनाओंका सामाजिक पाठ आपने सम्पादित करके प्रयाग विश्वविद्यालयसे प्रकाशित कराया है। रीतिकालके प्रसिद्ध कवि सेनापतिके 'कवित्त रत्नाकर'का भी आपने वैज्ञानिक पद्धतिमें संस्करण प्रस्तुत किया है। वस्तुतः हिन्दी पाठ्यालोचनके क्षेत्रमे आपका कार्य आधार-शिलाके रूपमें है। —सं०

उमेशचन्द्रदेव मिश्र–जन्म फर्रुखाबादमें १९०४ ई०में वैद्यककी शिक्षा प्राप्त की। पर रुचि सदैव साहित्य और पत्रकारितामें रही। 'सरस्वती'के सम्पादकीय विभागमें रहे। १९५१ मे मृत्यु हो गयी।

कृतियाँ—'विश्वकवि रवीन्द्रनाथ', 'वंचिता', 'प्रतिरोध' और 'अतीतके बिखरे पत्र'।

उर्वशी–नारायणकी जंघासे इसकी उत्पत्ति मानी जाती है। पद्म पुराणके अनुसार कामदेवके ऊरुसे इसका जन्म हुआ था। श्रीमद्भागवतके अनुसार यह स्वर्गकी सर्वसुन्दर अप्सरा

थी। एक बार इन्द्रकी सभामें नाचते समय राजा पुरुरवाके प्रति आकृष्ट हो जानेके कारण ताल बिगड़ गया। इस अपराधके कारण इन्द्रने रुष्ट होकर मर्त्यलोकमें रहनेका अभिशाप दे दिया। मर्त्यलोकमें इसने पुरुरवाको अपना पति चुना किन्तु शर्त यह रखी कि यदि वह पुरुरवाको नग्न अवस्थामें देख ले, या पुरुरवा उसकी इच्छाके प्रतिकूल समागम करें अथवा उसके दो मेष स्थानान्तरित कर दिये जायँ तो वह उनसे सम्बन्ध-विच्छेद कर स्वर्गलोक जानेके लिए स्वतन्त्र हो जायेगी। उर्वशी और पुरुरवा बहुत समय तक पति-पत्नीके रूपमें साथ-साथ रहे। इनके नौ पुत्र—आयु, अमावसु, विश्वायु, श्रुतायु, दृढ़ायु, शतायु आदि उत्पन्न हुए। दीर्घ अवधि बीतनेपर गन्धर्वोंको उर्वशीकी अनुपस्थिति अप्रिय प्रतीत होने लगी। गन्धर्वोंने विश्वावसुको उर्वशीके मेष चुरानेके लिए भेजा। जिस समय विश्वावसु मेष चुरा रहा था, उस समय पुरुरवा नग्नावस्थामें थे। आहट पाकर वे उसी अवस्थामें विश्वावसुको पकड़ने दौड़े। अवसरसे लाभ उठाकर गन्धर्वोंने उसी समय प्रकाश कर दिया जिससे उर्वशीने पुरुरवाको नग्न देख लिया। आरोपित प्रतिबन्धोंके टूट जानेपर उर्वशी शापसे मुक्त हो गयी और पुरुरवाको छोड़कर स्वर्गलोक चली गयी। महाकवि कालिदासके विक्रमोर्वशी नाटककी कथाका आधार उक्त प्रसंग ही है। महाभारतकी एक कथाके अनुसार एक बार जब अर्जुन इन्द्रके पास अस्त्र-विद्याकी शिक्षा लेने गये थे तो उर्वशी इन्हें देखकर मुग्ध हो गयी थी। अर्जुनने उर्वशीको मातृवत् देखा, अतः उसकी इच्छा पूर्ति न करनेके कारण इन्हें शापित होकर एक वर्षतक पुरुत्वसे वंचित रहना पड़ा। रामधारी सिंह 'दिनकर'ने उर्वशीकी कथाको काव्य-रूप प्रदान किया है। —ज० प्र० श्री०

उर्मिला १—वाल्मीकि रामायणमें लक्ष्मणकी पत्नीके रूपमें उर्मिलाका नामोल्लेख मिलता है। महाभारत, पुराण तथा काव्यमें भी इससे अधिक उर्मिलाका कोई परिचय नहीं मिलता। केवल आधुनिक कालमें उर्मिलाके विषयमें विशेष सहानुभूति प्रकट की गयी है। युगकी भावनासे प्रेरित होकर आधुनिक युगमें दलितों, पतितों और उपेक्षितोंके उद्धारके जो प्रयत्न किये गये हैं उनमें प्राचीन काव्योंके विस्मृत और उपेक्षित पात्रों, विशेषकर स्त्री पात्रोंका भी अन्यतम स्थान है। सर्वप्रथम महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरने अपने एक निबन्धमें अत्यन्त भावुकतापूर्ण शैलीमे उपेक्षिता उर्मिलाका स्मरण किया और आदि कवि वाल्मीकि तथा अन्य परवर्ती कवियोंकी उर्मिला-विषयक उदासीनताकी आलोचना की। उसी लेखसे प्रेरणा लेकर आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदीने 'सरस्वती'में एक लेख लिखा और कवियोंको उर्मिलाका उद्धार करनेका आह्वान किया। मैथिलीशरण गुप्तने द्विवेदीजीके लेखसे प्रेरणा लेकर 'उर्मिला-उत्ताप' रचना प्रारम्भ की। 'उर्मिला-उत्ताप'के चार सर्ग सन् १९२० के पहले ही रचे जा चुके थे किन्तु बादमें गुप्तजीने अपनी रचनाको सम्पूर्ण रामकथाका रूप देनेका विचार किया और इसे 'साकेत'के नामसे रचकर प्रकाशित किया। रामकथामें उर्मिला जैसे एक गौण पात्रको जितनी प्रमुखता दी जा सकती थी, गुप्तजीने उसे देनेका भरपूर प्रयत्न किया। उन्होंने उर्मिलाके अल्पकालीन संयोगका मनोहर चित्र देकर उसके दीर्घ और दारुण वियोगका अत्यन्त मार्मिक और प्रभावशाली चित्र देनेमें सफलता प्राप्त की। 'साकेत'के नवम सर्गमें उर्मिलाके विरही-जीवनके बड़े ही मर्मस्पर्शी चित्र मिलते हैं। गुप्तजीने इस चित्रांकनमें प्राचीन कवियोंके वर्णनों और उक्तियोंका प्रयोग कर अपने काव्यानुशीलनका भी परिचय दिया है। 'साकेत'के अन्तिम सर्गमें लक्ष्मण और उर्मिलाका पुनर्मिलन वैसा ही हृदयावर्जक है, जैसा कि प्रथम सर्गमे वर्णित उनका संयोग-सुख आह्लादकारी है। उर्मिलाविषयक कुछ अन्य रचनाएँ भी हुईं जिसमे बालकृष्णशर्मा 'नवीन' का 'उर्मिला' शीर्षक खण्डकाव्य विशेष उल्लेखनीय है। इस खण्डकाव्यमें केवल उर्मिलाविषयक घटना प्रसंगोंको लेनेके कारण कवि कथानककी एकात्मकता और स्वतन्त्रताको अधिक सुरक्षित रख सका है (दे० 'साकेत' : मैथिलीशरण गुप्त; 'उर्मिला' : बालकृष्ण शर्मा 'नवीन')। —यो० प्र० सिं०

उर्मिला २—वीरपुंगव लक्ष्मणकी पत्नी उर्मिला मैथिलीशरण गुप्तकृत महाकाव्य 'साकेत'की नायिका है। वह अनिंद्य सुन्दरी, ललित कलानिपुण एवं सुसंस्कृत कुलवधू है। सर्वप्रथम वह एक प्रेमिकाके रूपमें उपस्थित होती है तथा उसका प्रेम भोग-प्रधान है। परन्तु अवसर आनेपर वह बलिदान करती है। लक्ष्मण जब रामके साथ वन-गमनका निश्चय कर लेते हैं तब उर्मिला अपने मनको प्रिय-पथका विघ्न नहीं बनने देती। पतिको कर्तव्यपालनसे विमुख न कर स्वयं चौदह वर्षके विरहका वरण करती है। विरहिणी उर्मिलाकी वेदना अपार है। परिस्थितिकी विषमता उसके विरहको और भी करुण बना देती है। परन्तु वह ईर्ष्या-द्वेषसे सर्वथा मुक्त है। विरह-कालमें उसके हृदयका और भी प्रसार हो जाता है। क्षुद्र जीवों और प्रकृतिके प्रति भी उसके मनमे सहानुभूति उत्पन्न होती है। उर्मिलाका विरह नित्य-प्रतिके पारिवारिक जीवनमें प्रतिफलित हुआ है। अतएव संयम एवं मर्यादित है। वह एक वीर नारीके रूपमे भी उपस्थित होती है—अयोध्याकी सेनाके साथ लंका-प्रस्थानको प्रस्तुत है। कुल मिलाकर उर्मिला एक अनन्य प्रेमिका, आदर्श पत्नी तथा कुलवधू है। —उ० का० गो०

उलूपी—ऐरावत वंशके कौरव्य नामक नागकी कन्या थी। इस नागकन्याका ब्याह एक नागसे हुआ था। इसके पतिको गरुड़ने मारकर खा लिया जिससे यह विधवा हो गयी। एक बार अर्जुन, जो प्रतिज्ञा भंग करनेके कारण बारह वर्षका वनवास कर रहे थे, ब्रह्मचारीके वेशमें तीर्थाटन करते हुए गंगाद्वारके निकट पहुँचे जहाँ इससे उनका साक्षात्कार हुआ। उलूपी अर्जुनको देखकर उनपर विमुग्ध हो गयी। यह अर्जुनको पाताल लोकमें ले गयी और उनसे विवाह करनेका अनुरोध किया। अपनी मनोकामना पूर्ण होनेपर इसने अर्जुनको समस्त जलचरोंका स्वामी होनेका वरदान दिया। जिस समय अर्जुन नागलोकमें निवास कर रहे थे, उस समय चित्रांगदासे उत्पन्न अर्जुनका पुत्र बभ्रुवाहन, जो अपने नाना, मणिपुर नरेशका उत्तराधिकारी था, उनके स्वागतके लिए उनके पास आया। बभ्रुवाहनको

युद्ध-सज्जामें न देखकर यथोचित व्यवहार नहीं किया। उलूपी बभ्रुवाहनकी देख-रेखकर चुकनेके कारण उसपर अपना प्रभाव रखती थी। उसने बभ्रुवाहनको अर्जुनके विरुद्ध भड़काया। फलतः पिता और पुत्रमें युद्ध हुआ। उलूपीकी मायाके प्रभावसे बभ्रुवाहन अर्जुनको मार डालनेमें समर्थ हुआ किन्तु अपने इस अकार्यके लिए उसे इतना दुःख हुआ कि उसने आत्म-हत्या करनेका निश्चय किया। बभ्रुवाहनके संकल्पको जानकर उलूपीने एक मणिकी सहायतासे अर्जुनको पुनः जीवनदान दिया। विष्णुपुराणके अनुसार अर्जुनसे उलूपीने इरावान् नामक पुत्रको जन्म दिया। उलूपी अर्जुनके सदेह स्वर्गारोहणके समयतक उनके साथ थी। —ज० प्र० श्री०

उषादेवी मित्रा–१८९७ ई० मे जबलपुरमें जन्म हुआ। लगभग १५ पुस्तकोंकी लेखिका है जिनमे 'वचनका मोल', 'नष्ट नीड' और 'सोहनी' नामक उपन्यास तथा 'सन्ध्या', 'पूर्वी', 'रातकी रानी' कहानी-संग्रह मुख्य हैं। वर्तमान समयमें जबलपुरमे ही रह रही हैं।

उषा देवी मित्राकी कहानियाँ विशेषरूपसे प्रेमचन्द और उत्तर प्रेमचन्द कालके लेखकोंसे भिन्न है। रोमानी जीवनकी घटनाओंमे अनुभूतिका एक सर्वथा नया बिन्दु ढूंढ निकालना और समस्त कहानीके रचना-विधानमे उस एक छोटे बिन्दुको ऐसे केन्द्रमे रखकर समस्त घटनाको नया सन्दर्भ और नया परिप्रेक्ष्य दे देना कि सर्वथा नया अनुभव हो जाय, आपकी कहानीकी विशेषता है। यथार्थके साक्ष्यसे मानव जीवनके अन्तरगमे उठनेवाली छोटी-छोटी लहरियोंको एक सार्थक रूप दे देना उषा देवी मित्राकी कहानियोंकी मूलभूत धारणा है। नारी सुलभ कोमलतासे द्रवित, उसकी करुणा और पीडाको यथार्थवादी रूपमे चित्रित करनेके साथ-साथ, रोमानी तत्त्वोंके मधुर वातावरणमे जीवन और उसके भाग्यको साकार रूपमें देखना, शायद यही लेखिकाकी कहानियोंकी प्रमुख विशेषता है।

उपन्यासोंमे कहानीकी यह शैली केवल 'नष्ट नीड'में उभर कर आयी है। कहानीकी तात्कालिक अनिवार्यता उपन्यासके रचना-विधानमें तीव्रता खो देती है इसीलिए अनुभूति होनेके बावजूद उषा देवी मित्राके उपन्यासोंमें वह ताजगी और आभिजात्य गुण नही मिल पाता फिर भी भाषा नितान्त यथार्थोन्मुखी और घटनाएँ सजीव, कोमल एवं मानवीय होनेके साथ-साथ बहुत सुन्दर प्रभाव डालती है। वस्तुतः सम्पूर्ण लेखन-शैली, नारी सुलभ कोमलता, भावपक्षके चित्रण और मानवीय विशिष्टताको देखते हुए लगता है कि महादेवी वर्माने 'अतीतके चल-चित्र'में जिस मानवीय करुणा, सन्निकटता और सहजताको अत्यन्त निश्छलताके साथ विकसित किया था, उसी संवेदना और उसी वातावरणको सर्वथा नये सन्दर्भोंके साथ जोडकर उषा देवी मित्राने उस परम्परामें एक नयी कड़ी जोड़ी है। सुभद्राकुमारी चौहानकी कहानियोंमें लक्ष्यपूर्तिकी ओर विशेष आग्रह मिलता है लेकिन उषा देवी मित्राकी शैली उस भावुकतासे ऊपर उठ जाती है। —ल० कां० व०

उसमान १–इस्लाम धर्मके अनुसार ये 'हजरत उसमान गनी'के नामसे प्रसिद्ध हैं। इस्लामके प्रवर्तक मुहम्मद साहबके बाद 'खिलाफत' (काबेमें नमाज पढ़नेका कार्य)का पद तीसरी बार इन्हें ही समर्पित किया गया था। 'गनी' इनका खुदाका दिया हुआ नाम कहा जाता है। इस्लामी विश्वासोंके अनुसार मोहम्मद साहबके पास आकाशवाणीसे खुदाका संदेश स्फुट रूपमें आता जाता था तथा पास बैठे हुए 'सोहाबी' (मित्र) उसे कहीं तख्तियोंपर और कहीं पत्तोंपर लिखते जाते थे। इन सभीको क्रमानुसार संकलित करनेके कारण ये 'जामे उल कुरान' कहलाये। मुसलमानोंके बीच इनके व्यक्तित्वकी उदारता, सहिष्णुता एवं शालीनताकी अनेक कथाएँ प्रचलित हैं (दे० 'काबा-कर्बला', पृ० २२)। —रा० कु०

उसमान २–उसमान सन् ईस्वीकी सत्रहवीं शताब्दीमें वर्तमान थे। हिन्दीके सूफी प्रेमाख्यानक काव्योंमें इनकी रचना 'चित्रावली'का एक प्रमुख स्थान है। 'चित्रावली'के सिवा इनकी किसी और रचनाका पता अभीतक नहीं चला है। हिन्दीके अन्य सूफी कवियोंकी तरह इनके भी जीवनके परिचयका एकमात्र आधार इनकी रचना 'चित्रावली' है। इन्होंने अपनी इस रचनामे अपना जो भी परिचय दिया है उससे पता चलता है कि ये सूफी मतसे प्रभावित तो थे, लेकिन मलिक मुहम्मद जायसीकी नाई ये सूफी साधक नहीं थे। 'चित्रावली'की रचना इन्होने इसलिए की कि इनका यश अमर रहे। अपनी रचनाका उद्देश्य उन्होंने निम्नलिखित पक्तियोमे व्यक्त किया है—"भगवान्‌की कृपासे मैंने चार अक्षर पढ लिये हैं और मैंने देखा है कि ससारमें सब कुछ तो नष्ट हो जाता है, लेकिन वाणी अमर है और यह ससारमे अमृतके समान है जिसे पाकर कवि अमर हो जाते हैं।" अतएव ये कहते हैं—"मोहूँ चाउ उठा पुनि हाए। होऊँ अमर यह अमिरित पीए॥" ('चित्रावली', नागरी प्रचारिणी सभा, पृ० १२)।

उसमान गाजीपुरके निवासी थे तथा इनके पिताका नाम शेख हुसेन था। उसमानके अनुसार गाजीपुर नगर सुख-शान्ति और समृद्धिसे परिपूर्ण था। नगरमें नाना प्रकारके गुणोंसे विभूषित लोग निवास करते थे। ज्ञानी, वीर, पिंगल और संगीतके जानकार सभी प्रकारके लोग गाजीपुरमें थे। नाना प्रकारकी जातियाँ जैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, मुगल, पठान, वैश्य और शूद्र आदिसे गाजीपुर सुशोभित था।

उसमान पाँच भाई थे। उसमानने अपने अन्य चार भाइयोंका भी परिचय दिया है। कविने बतलाया है कि इनके एक भाईका नाम शेख अजीज था जो बहुत बड़े विद्वान्, शीलवान् तथा दानी थे। दूसरे भाई इमानुलाह (मानुलाह) योग-मार्गकी साधनामें रत रहते थे। तीसरे भाई शेख फैजुलाह (सेख फैजुलह) एक बहुत बड़े वीर थे और चौथे भाई शेख हसन संगीतके अच्छे जानकार थे।

उसमान बादशाह जहाँगीरके कालमें हुए। उन्होंने 'चित्रावली'में शाहे वक्तकी प्रशंसामें जहाँगीरका नाम लिया है। जहाँगीरका शासनकाल सन् १६०५ ई०से सन् १६२७ ई० है। उसमानने 'चित्रावली'में जहाँगीरकी न्यायप्रियता और उसके घण्टेका उल्लेख किया

है। उस कालमें बादशाहके दरबारमें आनेवाले विदेशियोंका भी उसमानने वर्णन किया है। अंग्रेजोंका नाम लेकर उनके आचार-विचार, खान-पान आदिकी भी चर्चा की है। उसमानने इस देशके बहुतसे नगरोंका भी नाम लिया है। इसमे उसमानकी बहुज्ञता का परिचय मिलता है। तत्कालीन समाज, रस्म-रिवाज, उत्सव-अनुष्ठान आदिका उसमानने सुन्दर चित्रण किया है। समाजमें प्रचलित आचार-विचार आदिका उसमानने सूक्ष्म निरीक्षण किया था। उसमानमें कविप्रतिभा तो थी ही साथ ही अपने आसपासकी दुनियाको देखनेकी पैनी दृष्टि भी।

उसमानने अपने गुरुका नाम बाबा हाजी बतलाया है। वे चिश्ती-सम्प्रदायके थे। हिन्दू और मुसलमान समान रूपसे उनपर श्रद्धा करते थे। उसमानने उन्हें सिद्धि प्रदान करनेवाला बतलाया है। चिश्ती सम्प्रदायकी जिस शाखामें बाबा हाजी अन्तर्भुक्त थे, उसके पीर नारनोलिके शाह निजाम चिश्ती थे। कवि उसमानके जीवनके सम्बन्ध मे इससे अधिक ज्ञात नहीं, वैसे 'चित्रावली'के अध्ययनसे पता चलता है कि वे विनयी, गुणी तथा उदार प्रकृतिके थे।

कविकी दृष्टिसे हिन्दीके सूफी कवियोंमें जायसीके बाद उसमानको ही स्थान दिया जा सकता है। 'चित्रावली'मे पद-पदपर कविकी काव्य-प्रतिभा, वाग्वैदग्ध्य और रचना-कौशलका परिचय मिलता है। कवि बड़े परिश्रमसे काव्य-रचनामें प्रवृत्त हुआ और इसमें कोई सन्देह नहीं कि उसे सफलता भी मिली। कविने स्वयं कहा है—"कहत करेज लोहू भा पानी। सोई जान पीर जिन्ह जानी ॥ एक एक वचन मोति जनु पोवा। कोऊ हंसा कोऊ सुनि रोवा॥" ('चित्रावली', काशी नागरी प्रचारिणी सभा, पृष्ठ १४)।

कवि भारतीय विचारधारासे अत्यधिक प्रभावित था वैसे उसे सूफी परम्पराकी भी जानकारी थी। नगर, उद्यान, नायिकाके सौन्दर्य आदिके वर्णनमें कविने परम्पराका पालन पूरी मात्रामे किया है (दे० 'चित्रावली')।

[सहायक ग्रन्थ—जायसीके परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य : सरला शुक्ल; हिन्दी सूफी काव्यकी भूमिका : रामपूजन तिवारी।] —रा० पू० सि०

ऋषभचरण जैन—पहली जनवरी १९१२ को सराय सदर नामक स्थानपर जन्म हुआ। साहित्यलेखन और पत्रकारिता ही जीविकाके साधन रहे। कुछ दिनोंतक 'मानव'के उपनामसे भी लिखते रहे। भावुकतापूर्ण शैलीमे प्रेमचन्दयुगीन यथार्थवादी दृष्टिके लेखक हैं। विशेषतः उपन्यास और कहानियाँ ही लिखी हैं। १९२३मे आपका प्रथम उपन्यास 'भाई', १९२९ मे दूसरा उपन्यास 'मास्टर साहब' और १९३० मे 'रहस्यमयी' उपन्यास प्रकाशित हुए। १९३७ में दो कहानी संग्रह 'मन्दिर दीप' और 'चाँदनी रात' प्रकाशित हुए। सामाजिक जीवन और छोटी-छोटी घटनाओंपर आधारित ये कहानियाँ हिन्दी-साहित्यमे एक विशेष स्थान रखती है। १९५५ में आपका नवीनतम उपन्यास 'वह कौन थी' प्रकाशित हुआ। जैनके उपन्यासोंमें मध्यवर्गीय जीवनके मध्यकालीन संस्कारों और आधुनिक युगके गतिमय जीवनके साथ-साथ आदर्शोन्मुखी यथार्थके संघर्षोंकी सर्वाधिक झाँकियाँ देखनेको मिलती है। रोमानी प्रेम और गांधी युगके उदात्त आदर्शवाद—दोनों-को आपने भारतीय जीवनकी संस्कारबद्ध रूढ़ियोंके साथ सफलतापूर्वक चित्रित किया है। —ल० कां० व०

ऋषभदेव—जैनधर्मके प्रथम तीर्थंकर माने जाते है। इन्हें 'आदि देव' भी कहा जाता है। पौराणिक साहित्यके विकास-क्रमसे इन्हें भी विष्णु-अवतारके अंश रूपमें लिया गया है। भागवत पुराणमें इनका उल्लेख विष्णुके अंशके रूपमें किया गया है। इनके पिताका नाम राजा नाभि तथा माताका नाम मेरु था। इनकी पत्नी जयन्ती अत्यन्त पतिव्रता थीं। ऋषभदेवके ९९ पुत्र पैदा हुए थे। सभी पुत्र नव-नव खण्डोंके राजा हुए। ऋषभदेवके भरत नामक पुत्र ने भरत खण्डका राज्य पाया था। भागवतमें इनकी वंशावली भी दी हुई है। इनके वंशका सम्बन्ध ब्रह्माके पुत्र स्वायंभू मनुसे था। सूरदासने सूरसागरके पद सं० ४०९ में इनका अवतार रूपमे उल्लेख किया है। —यो० प्र० सिं०

ऋषिनाथ—इनका निवास-स्थान असनी जिला फतेहपुर था। ये जातिके ब्रह्म भट्ट और हिन्दीके प्रसिद्ध कवि ठाकुरके पिता तथा भारतेन्दुके समसामयिक कविवर सेवकके प्रपितामह थे। इनके आश्रयदाता थे काशिराज बरिबण्ड (बलवन्त) सिंहके दीवान रघुबरदयालके पिता कायस्थ सदानन्द, जिनकी आज्ञासे इन्होने 'अलंकारमणि-मंजरी' संज्ञक अलंकार-ग्रन्थकी रचना की। कुछ समयतक ऋषिनाथ काशिराजके भाई देवकीनन्द सिंहके यहाँ भी रहे। 'अलंकारमणि-मंजरी'का रचनाकाल मंगलवार १७ जनवरी, सन् १७७३ ई० है। इसका प्रकाशन आर्ययन्त्र, काशीसे सन् १८८२ ई०में हुआ। इसमें कविने उपमा, प्रतीप, रूपक, परिणाम, उल्लेख, अनुमान, अपह्नुति, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति तथा शब्दालंकार आदिका सांगोपांग एवं उत्कृष्ट विवेचन किया है। विषय-प्रतिपादन बड़ा सुबोध और सुन्दर है। यद्यपि इसमें घनाक्षरी और छप्पय छन्दोंका भी प्रयोग किया गया है तथापि सबसे अधिक संख्या दोहोंकी ही है। इनकी कविता अच्छी और भावपूर्ण होती थी। रामचन्द्र शुक्लने इनका काव्य-काल सन् १७३३से १७७४ ई० तक माना है। इनकी कविताके कुछ नमूने 'शिवसिंह सरोज' और 'दिग्विजय-भूषण'मे मिलते हैं।

[सहायक ग्रन्थ—खो० वि० (त्रै० ११); दि० भू०; शि० स०; हि० सा० इ०।] —रा० त्रि०

एक घूँट—जयशंकर प्रसादका नाटक जो १९३० ई०में प्रकाशित हुआ। यह एक एकांकी नाटक है और विशेष उद्देश्यको लेकर इसकी रचना की गयी है। आदिसे अन्ततक इसमे एक ही विषयका प्रतिपादन है, इसलिए इसे अन्यापदेशिक रचना अथवा रूपक (Allegory) कहना अधिक उचित होगा। एक अंक और एक दृश्यके इस नाटकमें केवल कथोपकथनके द्वारा कथाको विकसित किया गया है और उसमे अधिक नाटकीय तत्त्वोंका समावेश नहीं हो पाया है। तर्क और वार्तालापके आधारपर संवादोंकी रचना कर ली गयी है। उन्हें बहुत प्रभावशाली नहीं कहा जा सकता। कथाका प्रमुख घटनास्थल है—हरे-भरे प्राकृतिक वनमें अरुणांचल

आश्रम। वहाँ लोगोंकी जीवनयात्रा निराले ढंगसे चलती है। नाटककार उन परिवारोंमें नागरिक तथा ग्रामीण जीवनकी सन्धि पाता है, जिनका आदर्श है सरलता, स्वास्थ्य और सौन्दर्य। यदि समस्त एकांकीपर दृष्टि डाली जाय तो ज्ञात होगा कि जीवन और उसके उद्देश्यको लेकर नाटकके पात्र विचार-विमर्श करते हुए दिखाई देते हैं—कुछ-कुछ दार्शनिकोंकी भाँति। जीवनके प्रति व्यावहारिक, सैद्धान्तिक, यथार्थवादी, आदर्शवादी अनेक दृष्टिकोण हो सकते हैं। 'एक घूँट'के पात्र अपनी-अपनी जीवन-दृष्टियोंसे परिचालित हैं। आनन्द स्वतन्त्र प्रेमका पक्षपाती, यायावर प्रवृत्तिका एक सुन्दर युवक है। मुकुलमें अपार उत्साह है और वह तर्कके सहारे आगे बढ़ता है। अरुणाचल आश्रमका मन्त्री कुण्डा एक सफल प्रबन्धकर्ता है और सदैव प्रसन्न रहता है। रसाल एक निश्छल हृदयका भावुक कवि है। वह प्रकृति और मनुष्यका निरीक्षण करनेमें व्यस्त रहता है। नारी पात्रोंमें वनलता भावुक कवि रसालकी पत्नी है जिसे अपने पतिकी भावुकतासे घोर असन्तोष है। प्रेमलता मुकुलकी बहिन लगती है जिसके हृदयमें प्रेमकी लालसा है। झाड़वाला एक सन्तोषी जीव है किन्तु उसकी पत्नीमें इच्छाओंकी अपूर्तिके कारण कुण्ठाएँ हैं, विक्षोभ है।

इसमें प्रसादकी जीवन और जगत्‌के प्रति जो दृष्टि है वह प्रतिफलित हुई है। सिद्धान्तका प्रचार करनेवाला आनन्द प्रायः आदर्शवादितासे परिचालित होता है। वह शैवागमके आनन्दवादका पक्षपाती है। बुद्धि और हृदय, व्यावहारिकता और सैद्धान्तिकताके उभयपक्ष एकांकीमें आये हैं। इन दोनों पक्षोंके मिलानका समर्थन करते हुए नाटककारने आनन्दके मुखसे एक स्थानपर कहलाया है—"मेरा भ्रम मुझे दिखला दिया। मेरे कल्पित सन्देशमें सत्यका कितना अंश था, उसे अलग झलका दिया। मैं प्रेमका अर्थ समझ सका हूँ। आज मेरे मस्तिष्कके साथ हृदयका जैसे मेल हो गया है...।" एकांकीके अन्तमें उद्देश्य प्रतिपादित करते हुए वनलता कहती है—"आजसे यही इस अरुणाचल आश्रमका नियम होगा उच्छृंखल प्रेमको बाँधनेका।" एक घूँट आनन्दका प्रतीक बनकर आया है। इस उद्देश्यपरक रचनामें जगन्नाथप्रसाद शर्माने निबन्धके अधिक तत्व स्वीकार किये हैं। उनका कथन है—"सभा-सोसाइटियोंमें जिस प्रकार व्याख्याएँ की जाती हैं उसी प्रकार आश्रमों और संघोंका चित्र लेकर प्रसादने भी रूपक खड़ा किया है। अभ्यन्तरके खोखलेपनका मार्मिक उद्घाटन ही इसका उद्देश्य है।" —प्रे० शं०

एकनाथी भागवत—एकनाथी भागवतकी रचना सन् १५७० और सन् १५८०ई०के मध्य हुई। इसके रचयिता श्री एकनाथजी वैष्णव कवि थे। इन्होंने दो प्रकारकी रचनाएँ की—अध्यात्म-विषयक एवं चरित्र-विषयक। अध्यात्म-विषयक रचनाओंमें 'एकनाथी भागवत', 'स्वात्म-सुख', 'चतुःश्लोकी भागवत टीका', 'हस्तामलक' तथा 'आनन्दलहरी' प्रसिद्ध हैं। चरित्र-विषयक ग्रन्थोंमें 'भावार्थ रामायण' एवं 'रुक्मिणी स्वयंवर'का नाम लिया जाता है।

इनका जन्म सन् १५३३ ई०के लगभग हुआ। मूल नक्षत्रमें उत्पन्न होनेके कारण जन्मके थोड़े समय बाद ही माता-पिताका देहावसान हो गया। इनका पालन-पोषण वृद्ध दादा-दादीने किया। इनके दादाका नाम चक्रपाणि था। इनका उपनयन संस्कार छठे वर्षमें हुआ। कुशाग्र बुद्धि होनेके कारण थोड़े ही समयमें उन्होंने पुरुष सूक्त आदि कण्ठ कर लिया। बारह वर्षकी आयुमें इन्होंने महाभारत तथा श्रीमद्भागवतकी कथाएँ पढ़ लीं। १३वें वर्षमें ये श्री जनार्दन स्वामीकी सेवामें रहकर योगसाधन करने लगे। २५ वर्षकी अवस्थामें ये पैठण गये और भजन कीर्तनमें तत्पर हो गये। इनकी धर्मपत्नीका नाम गिरिजा देवी था। सन् १५९९ ई०में इनकी मृत्यु हो गयी।

इन्होंने भागवतकी रचना वाराणसी मुक्तिक्षेत्रमें, आनन्द-वनमें, मणिकर्णिका महातीरपर समाप्त की। ये केवल स्वतन्त्र रचना करनेमें ही सिद्धहस्त न थे वरन् एक भाषासे अन्य भाषामें अनुवाद करनेमें भी उतने ही कुशल थे। संस्कृतके पण्डित थे। संस्कृतमें काव्य लिखनेकी उनमें पूर्ण क्षमता थी किन्तु साधारण जनता संस्कृतके मर्मको समझनेमें असमर्थ थी। अतः जन-साधारणको संस्कृतका रहस्य समझानेके लिए सरल मराठी भाषामें भागवतकी रचना की। इस सम्बन्धमें इन्होंने सन्त ज्ञानेश्वरकी परम्पराका निर्वाह किया है। इस ग्रन्थमें श्रीमद्भागवतके ग्यारहवें अध्यायपर इन्होंने अपना समस्त पारमार्थिक अनुभव न्यौछावर कर दिया है।

इनके काव्यमें कृत्रिमताका अभाव है। भाषा सरस, सुबोध, शुद्ध, सरल एवं प्रभावशाली है। ज्ञानेश्वरकालीन प्राचीन और क्लिष्ट शब्दोंका समावेश इन्होंने अपनी भाषामें नहीं किया है। यत्र-तत्र फारसीके शब्दोंका प्रयोग अवश्य हो गया है।

इनकी वर्णन शैली बड़ी रोचक है। यहाँ तक कि वेदान्तके कठिन विषयोंको इन्होंने अत्यधिक मनोरंजक बना दिया है। कहीं-कहींपर तो मूल अर्थको सुबोध बनानेके लिए एक-एक श्लोकपर अनेक अध्याय लिखे हैं। तुलसीकी भाँति इन्होंने नामस्मरणको परमार्थकी प्राप्तिका सर्वसुलभ उपाय बतलाया है। इनका मत है कि नामके चिन्तनसे समस्त कार्योंकी सिद्धि होती है।

"चिन्तनें तुटे आधि व्याधि। चिन्तनें तुटतसे उपाधि॥
चिन्तनें होय सर्वसिद्धि। एका जनार्दनाचे चरणीं॥"

पूजन एवं ध्यानके लिए भगवान्‌की मूर्ति कैसी होनी चाहिए इस सम्बन्धमें उनका कथन है—

"मूर्ति साजिरी सुनयन। सम सपोम सुप्रसन्न। पाहतां निवे तन मन। देखतां जाय भूक तहान।"

अर्थात्—भगवान्‌की मूर्ति पुष्ट एवं हँसमुख होनी चाहिये जिसको देखते ही तन-मन शान्त हो जाय तथा दृष्टि पड़ते ही भूख-प्यास न रहे।

एकनाथ तथा तुलसी दोनोंके ग्रन्थोंमें विचार एवं अध्यात्मकी दृष्टिसे अत्यधिक साम्य है। दोनोंके जीवनमें भी सादृश्य दिखाई पड़ता है। दोनोंका जन्म मूल नक्षत्रमें हुआ था जिसके कारण उनके माता-पिताकी मृत्यु उनके बाल्यकालमें ही हो गयी थी। दोनोंका लालन-पालन उनके मातामह-पितामहके द्वारा हुआ। बाल्यावस्थासे ही दोनोंकी परमार्थ-साधनामें रुचि थी। दोनोंकी जन्मतिथि एवं

मृत्युकालके सम्बन्धमें बड़ा मतभेद है किन्तु इस बातको सभी विद्वान् मानते हैं कि इन दोनोंने ईसाकी सोलहवीं शताब्दीके मध्य अपनी-अपनी रचनाएँ कीं।

एकनाथने पैठण जैसे प्राचीन आचार-विचारों एवं संस्कृतसाहित्यके केन्द्रमें रहकर भागवत धर्मका प्रचार किया तथा संस्कृतके स्थानमें मराठीका प्रभुत्व स्थापित किया। वेदान्तके उच्च विचारोंको संस्कृतसे मराठीमें लाकर महाराष्ट्रमें उनका प्रचार करना एकनाथ जैसे कर्मयोगीका कार्य था। एकनाथके समयमें संस्कृतसाहित्यकी भाषा, मराठी जनसाधारणकी भाषा तथा फारसी राजभाषाके पद-पर आरूढ थी। इन्होंने मराठीको साहित्यकी भाषा बनाकर उसका प्रचार किया। सर्वप्रथम ज्ञानेश्वरीको शुद्ध रूप प्रदान करके उसीके आधारपर अपने प्रवचन आरम्भ किये। बादको भागवत धर्मके साथ ही साथ मराठी भाषाका प्रचार करने लगे। इस प्रकार इन्होंने केवल धर्मपरायण जनतामें ही जागर्ति उत्पन्न नहीं की वरन् उस समयके साहित्य-कारोंका भी पथ-प्रदर्शन किया। पैठणमें अब भी हर वर्ष फाल्गुन कृष्ण अष्टमीको उनकी समाधिपर लाखों व्यक्ति एकत्र होते हैं। —शि० शं० मि०

एकलिंग–'एकलिंग' शब्दका प्रयोग शिवके पर्यायके रूपमें मिलता है। इसके अतिरिक्त 'कुबेर'को भी 'एकलिंग' नामसे अभिहित किया जाता है। राजस्थानके उदयपुर राज्यके अन्तर्गत शिवका एकलिंगका मन्दिर अत्यन्त विख्यात है (दे० 'हल्दीघाटी', पृ० १९९)। —रा० कु०

एस० पी० खत्री–पूरा नाम—सूरजप्रसाद खत्री। जन्म—१९११ ई०। शिक्षा—प्रयाग विश्वविद्यालयसे एम० ए०, डी० फिल०। अनेक वर्षोंतक वहीं अंग्रेजी विभागमें अध्यापक रहे। हिन्दीमें आपने सैद्धान्तिक आलोचनाके क्षेत्रमें विशेष रूपसे कार्य किया। आपकी कृतियोंमें 'नाटककी परख', 'आलोचना - इतिहास तथा सिद्धान्त' (१९५३) तथा 'हास्यकी रूपरेखा' विशेष रूपसे प्रसिद्ध है। १९५८में आपका देहान्त हुआ। —स०

कंकाल–जयशंकर प्रसादकृत उपन्यास जो १९२९ में प्रकाशित हुआ। प्रसाद मुख्यतया आदर्शकी भूमिकापर कार्य करनेवाले रचनाकार हैं किन्तु 'कंकाल' उनकी एक ऐसी कृति है जिसमें पूर्णतया यथार्थका आग्रह है। इस दृष्टिसे उनका यह उपन्यास विशेष स्थान रखता है। 'कंकाल'में देशकी सामाजिक और धार्मिक स्थितिका अंकन है और अधिकांश पात्र इसी पीठिकामें चित्रित किये गये हैं। नायक विजय और नायिका ताराके माध्यमसे प्रेम और विवाह जैसे प्रश्नोंसे लेकर जाति-वर्ण तथा व्यक्ति-समाज जैसी समस्याओंपर लेखकने विचार किया है। इस उपन्यासकी कथावस्तु मुख्यतया मध्यमवर्गसे सम्बन्ध रखती है और समाजके पर्याप्त चित्रोंको उभारा गया है जिनसे वर्तमानका एक सश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत हो सके। वेश्यालयोंकी स्थितिके साथ ही काशी, प्रयाग, हरिद्वार जैसे तीर्थस्थानोंके साधु-सन्तोंका वर्णन एक विरोध प्रतीत होता है पर यथार्थको विस्तार देनेकी दृष्टिसे ऐसा करना नितान्त आवश्यक था। यथार्थ—सामाजिक यथार्थको उपन्यासमें अंकित करनेके लिए प्रसादने कहीं-कहीं व्यंग्यका आश्रय भी ग्रहण किया है, जो उनकी प्रवृत्तिके अधिक अनुकूल नहीं, पर यथार्थकी सार्थकता तीखे व्यंग्यमें ही होती है। कंकालमें एक ऐसा समाज अंकित है जिसकी आधारभूमि हिल गयी हो। पुरानी मान्यताएँ और विश्वास इसमें धराशायी हैं। बड़े कुलीन घरानोंमें क्या हाल है, इसे नायक-नायिकाके जीवनसे देखा जा सकता है। धर्मके ठेकेदार पादरी किसी युवतीकी परिस्थितिका लाभ उठाकर उसे प्रेमपाशमें आबद्ध करनेकी चेष्टा करते हैं, समाजमें स्त्रियोंकी स्थितिका संकेत करती हुई घण्टी एक स्थलपर कहती है—"हिन्दू स्त्रियोंका समाज ही कैसा है, इसमें उनके लिए कोई अधिकार हो तब तो सोचना-विचारना चाहिये…।" इसी प्रकार जमुना कहती है—"कोई समाज स्त्रियोंका नहीं बहन! सब पुरुषों के हैं, स्त्रियोंका एक धर्म है, आघात सहन करनेकी क्षमता…।" जो सामाजिक विषमता, अन्ध-विश्वास, भेदभाव, पाखण्ड प्रचलित है उसके स्थानपर प्रसाद उदार मानवीयतापर आधारित एक नया समाज चाहते हैं। 'कंकाल'का यही प्रतिपाद्य है। कहा जा सकता है कि जो नवीन जागरण बीसवीं शतीमें अपने देशमें आया है उसीकी भूमिकापर कंकालकी रचना हुई है।

'कंकाल'एक ऐसे रचनाकारकी कृति है जो मुख्यतया कवि है। यथार्थका चित्रण होते हुए भी इसमें प्रसादकी भावुकता कहीं-कहीं झलकती है और लम्बे उद्धरणोंमें, जहाँ विचारोंका क्रम है, यह अधिक स्पष्ट है। उपन्यासमें घटनाओंकी संख्या अधिक है और कथाक्रमकी सुन्दर योजनामें कुछ बाधा पड़ती है। कुछ लोग इसे प्रसादकी प्रचारात्मक दृष्टि कह सकते हैं पर सामाजिक यथार्थका विश्लेषण करनेवाला लेखक अपने विचारोंको किसी-न-किसी प्रकार प्रकट करेगा ही। 'कंकाल'की शक्ति उसका समाज-दर्शन है, जिसमें निश्चित रूपसे व्यक्तिकी प्रतिष्ठा है पर व्यक्तिका यह स्वातन्त्र्य सामाजिक दायित्व तथा व्यापक मानवीयतापर आधारित है। बीसवीं शतीमें जो सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना देशमें विकसित हुई है, उसका प्रभाव कंकालपर स्पष्ट है। —प्रे० शं०

कंस–कृष्ण काव्यमें कृष्ण जन्म तथा कृष्णकी अधिकांश असुर संहारक ब्रज और मथुरा-लीलाओंके अन्तर्गत कंसके उल्लेख मिलते हैं। वह मथुराके महाराज उग्रसेनका क्षेत्रज तथा दानवराजका वीर्यज पुत्र था। इसकी माताका नाम ऋतुस्नाता था। बड़े होकर कंसने मगधराज जरासन्धकी अस्ति तथा प्राप्ति नामक दो कन्याओंका पाणिग्रहण किया था। तत्पश्चात् अपने पिता उग्रसेनको राज्यच्युत करके स्वयं राज्यसिंहासन ग्रहण किया था। कंसने अपनी पितृव्यकी पुत्री देवकीका विवाह वासुदेवके साथ किया था। देवकीके आठवें पुत्र द्वारा अपने वधकी आकाशवाणी सुनकर उसे मारनेको उद्यत हुआ किन्तु प्रत्येक शिशुके जन्मपर ही उसे समर्पित कर देनेके आश्वासनपर उसे छोड़ दिया। फिर भी कंस आत्म-रक्षाके किसी उपायका प्रयोग करनेसे नहीं चूका। उसने कृष्णवधके लिए पूतना, श्रीधर, काग, शकट, वामन आदि अनेक असुरोंको भेजा, किन्तु वे विफल हो गये। इससे उसका मन व्याकुल हुआ (सू० सा० पद ६६९-६८०)। कंस मूढ़मति था। नारदके परामर्शपर उसने

नन्दके यहाँ कालीदहके कमलपुष्पोंको भेजनेका आदेश-पत्र भेजा। ब्रजवासियोंने भयवश उसकी इच्छा पूरी की। कंस-की प्रभुता एवं अत्याचारका ब्रजमें आतंक था। गोपियोंने कृष्णसे उसकी दुहाई दी (सू० सा०, पद २१२९-२१३०)। कृष्ण काव्योंमें उसका व्यक्तित्व सर्वत्र भय और चिन्ताकातर दिखाया गया है किन्तु प्रकारान्तरसे उसने इन्हीं वृत्तियोंसे कृष्णकी उपासना की है। इसीलिए उसे निर्वाण पदकी प्राप्ति हुई (सू० सा०, पद २६९६-३७०१)।

माधुर्य-भावके परिपोषक न होनेके कारण कंसका चरित्र निम्बार्क, चैतन्य, राधावल्लभ और हरिदासी सम्प्रदायोंके कृष्णकाव्यमें उपेक्षित रहा। वल्लभ सम्प्रदायके कवियोंमें भी सूरदासने ही कंसका सविस्तार चरित्र-चित्रण किया है तथा भागवतके भाषानुवादोंमें (दे० 'अक्रूर') उसकी कथा आयी है। रीति-युगमें भी इन्हीं कारणोंसे वह काव्यका विषय न बन सका। सम्पूर्ण कृष्ण-कथाके सन्दर्भमें कंसको खलनायककी संज्ञा दी जा सकती है। वह आसुरी प्रवृत्तियोंका पोषक भक्त था। कृष्ण-कथाके अधिकांश असुर यथास्थान उसके व्यक्तित्वके उद्दीपक हैं। लीलावतारी कृष्णके अतिप्राकृत व्यक्तित्वकी व्यंजक समग्र भूमिकाएँ प्रस्तुत करनेमें उसका महत्त्व असन्दिग्ध है।

आधुनिकयुगीन कृष्ण-कथा-काव्योंमें 'कृष्णायन' (काण्ड १।२) और 'द्वापर' (पृ० ११०-१२१) में कंसका चरित्र क्रमशः परम्परागत एवं किंचित् परिवर्तित रूपोंमें वर्णित हुआ है। 'द्वापर'में वह अग्निधर्मका समर्थक तथा अतिरेक-पूर्ण पुरुषार्थी एवं विश्वासी शासक था। वह कृष्ण-वधके उपक्रम हेतु अक्रूरका स्मरण करता है, इससे आगे उसकी कथा नहीं है। —रा० कु०

कचदेवयानी–कच और देवयानी पुराणोंके दो पात्र हैं। कच देवगुरु बृहस्पतिका पुत्र था जिसने देवताओंके अनुरोधमें मृत संजीविनी विद्या सीखनेके लिए छद्मवेशमें दैत्यगुरु शुक्राचार्यका शिष्यत्व ग्रहण किया। देवयानी शुक्राचार्यकी पुत्री थी। वहां दोनोंमें अनुराग उत्पन्न हो गया। यह रहस्य जानकर दैत्योंने उसका वध कर डाला किन्तु देवयानीके कहनेपर शुक्राचार्यने उसे जीवित कर दिया। अन्ततः दैत्योंने पुनः उसका वध करके उसे जला डाला तथा शवभस्मको मदिरामें मिलाकर शुक्राचार्यको पिला दिया। मन्त्रबलसे आचार्य शुक्रने उसे अपने पेटमें ही जीवित कर वहीं मृत संजीविनी विद्याकी शिक्षा दी। शिक्षा प्राप्त करनेपर गुरुकी आज्ञासे वह उनका पेट फाड़कर बाहर निकला और उसी मन्त्र बलसे उन्हें जिला दिया। शिक्षा समाप्तिके बाद देवयानीने उससे विवाहके लिए अनुरोध किया किन्तु गुरुकन्या होनेके कारण उसने अस्वीकार कर दिया। देवयानीने उसकी विद्याको अफलवती होनेका शाप दे दिया। यद्यपि उसकी विद्या उसके लिए फलवती नहीं थी, किन्तु दूसरोंके लिए तो थी ही, उसने देवताओंके बीच उस विद्याका प्रचार किया और देवतागण दैत्योंके संहारसे बच गये। —यों० प्र० सिं०

कट्टो–जैनेन्द्र कुमार लिखित 'परख' नामक उपन्यासकी प्रमुख पात्री। यह एक बाल-विधवा ग्राम बाला है, इसके भविष्यमें कोई आशासूत्र नहीं है। अपने बाल सखा सत्यधनसे प्रेम करती है। उसका स्नेह व्यवहार इसे प्रोत्साहित करता है और यह सत्यधनको पति रूपमें कल्पितकर सधवा बनना चाहती है। एक दिन बिहारीके आगमनसे उसे सत्यधन और गरिमाके होनेवाले सम्बन्धका आभास मिलता है। यह नाटकीय रूपसे सत्यधनके मार्गसे हट जाती है और उसका गरिमाके साथ विवाह हो जाने देती है। इस नाटकीयताकी सीमा तब आती है जब यह बिहारीके साथ सेवापथपर अग्रसर होनेका प्रण कर लेती है। आरम्भमें यह सत्यधनसे कहती है, "जो कुछ भी तुम चाहते हो सबमें कट्टोकी राय है। कट्टो भी उसे खूब चाहती है। उसका पूरा-पूरा विश्वास रखो। तुम्हारी खुशीमें उसकी खुशी है। तुम्हारे सोचमें उसकी मौत है। अपने कामोंमें कट्टोकी गिनती मत करो। वह गिनने लायक नहीं है। उसकी खुशी तुममें शामिल है। बस तुम ब्याह करना चाहते हो। कट्टो सबसे पहले तुम्हारा ब्याह चाहती है। वह तुम्हारी नाखुशी लेकर जिन्दा नहीं रह सकेगी। तुम तो कट्टोके मालिक हो फिर उसकी फिक्र क्यों करते हो" और सत्यधनके विवाहके बाद वह बिहारीसे कहती है, "हम दोनों वैधव्य यज्ञकी प्रतिज्ञामें एक दूसरेका हाथ लेकर आजन्म बँधते हैं। दोनोंका एक ही उद्देश्य होगा। दोनों अपनी नहीं दूसरोंकी सोचेंगे।" इस प्रकारसे इसके चरित्रके आधारसूत्र अस्वाभाविक एवं अवास्तविक प्रतीत होते हैं, क्योंकि इसकी प्रतिक्रियाएँ और व्यवहार इस कथनमें निहित और संकेतित स्थिरताकी भावनासे रहित हैं। —प्रे० ना० टं०

कर्णेरी–सिद्ध साहित्यमें इनके कार्णेरी, काणेरी, कानपा, कृष्णपाद, कानफा आदि नाम पाये जाते हैं। सिद्ध परम्परामें इन्हें नागार्जुनका शिष्य कहा जाता है। एक पदमें इन्होंने स्वयं कहा है—"पूछे काणेरी सुनि हो नागा अरजन्द, पिण्ड छूटे प्रान कहाँ समाई।" कुछ विद्वान् इन्हें मत्स्येन्द्रनाथका शिष्य मानते हैं क्योंकि इन्होंने एक स्थलपर आदिनाथ और मत्स्येन्द्रनाथका उल्लेख किया है। राहुलजीने संकेत किया है कि ये कर्णाटदेशीय ब्राह्मण थे किन्तु डा० विनयतोष भट्टाचार्यने उड़ीसावासी बताया है तथा इनकी भाषाको उड़िया कहते हैं। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदीने नाथ सिद्धोंकी बानियोंमें सती कर्णेरी और कर्णेरी-पावके पदोंको अलग-अलग रखा है। यद्यपि उन्होंने लिखा है कि 'कणेरी' शब्दके ईकारान्त होनेके कारण बादमें उन्हें स्त्री समझ लिया गया किन्तु कर्णेरीपावने स्वयं अपने पदोंमें सती कणेरीका उल्लेख किया है—"आदिनाथ नाती, मछेन्द्रनाथ पूता। सती कर्णेरी हम बोल्यो रे ले॥" प्रेमदासकी 'सिद्ध वन्दना'में भी कृष्णपादके लिए 'नमो कान्हो' तथा सती कर्णेरीके लिए 'नमो सिद्ध कणरी'का प्रयोग हुआ है।

राहुल सांकृत्यायनने इनके मगहीमें लिखित जिन छः ग्रन्थोंका उल्लेख किया है, वे हैं—कन्हूपा गीतिका, महाढुंढुल मूल, वसन्त तिलक, असम्बद्ध दृष्टि, वज्रगीति और दोहाकोश। इनमें-से दोहाकोश महामहोपाध्याय हर-प्रसाद शास्त्री द्वारा सम्पादित होकर प्रकाशित हो गया है। डा० द्विवेदीने नाथ सिद्धोंकी बानियोंमें इनके कुछ

पदोंको संकलित किया है।

[सहायक ग्रन्थ—पुरातत्त्व निबन्धावली : महापण्डित राहुल सांकृत्यायन; हिन्दी काव्यधारा : महापण्डित राहुल सांकृत्यायन; नाथ सम्प्रदाय : डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी; नाथ सिद्धोंकी बानियाँ : डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी; योग-प्रवाह : डा० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल] —यो० प्र० सिं०

कण्व—कश्यपगोत्रीय एक ऋषिके रूपमें विख्यात हैं। इन्होंने शकुन्तलाका उनकी माताके छोड़ देनेपर लालन-पालन किया था। कण्वकी गणना सप्त-ऋषियोंमें की जाती है। कण्वकी अनेक सूक्तियोंका उल्लेख मिलता है, जिनके कथासूत्र परस्पर उलझे हुए हैं। —रा० कु०

कथा बिजरषां साहिजादे व देवल दे की—यह रचना एक प्रेमाख्यान है जिसके रचयिता जानकवि हैं। जानकविका मूल नाम न्यामत खाँ अथवा नियामत खाँ था और ये फतहपुर (शेखावाटी)के क्यामखानी नवाबोंके वंशज तथा नवाब अलफ खाँके पुत्र थे। इनकी छोटी-बडी ७६ रचनाएँ उपलब्ध हैं जिनमें-से अधिक संख्या कथाओं और विशेषकर प्रेम-कहानियों की है। यह कथा भी उनमें-से एक है। जानकविके जन्म और मरणकी तिथियाँ ज्ञात नहीं, किन्तु इनकी कई रचनाओंके अन्तर्गत लिखित रचनाकालके आधारपर कहा जा सकता है कि इन्होंने कम-से-कम सन् १६१४ ई०से लेकर सन् १६६४ ई०तक अपने काव्य-ग्रन्थ लिखे थे और इस प्रकार ये एक दीर्घजीवी कवि रहे होंगे। 'कथा बिजरषां साहिजादे व देवल दे की' जानकविकी अन्य ६९ रचनाओंके साथ हस्तलिखित ग्रन्थोंकी एक पोथीमें बँधी मिली थी जिसका लिपिकाल सं० १७७७-७८ अर्थात् सन् १७२०-२१ ई० पडता है और उसके लिपिकार कोई फतेहचन्द हैं जिनके विषयमें विशेष पता नहीं चलता। पूरी पोथी पहले रावतमल सारस्वतके किसी परिचित व्यक्तिके पास रही और अब वह प्रयागकी हिन्दुस्तानी अकादेमीके सग्रहालयमें सुरक्षित है। कथाकी रचना दोहों-चौपाइयोंमें की गयी है और विस्तार ८६ दोहोंका है। इसमें सर्वप्रथम 'कर्ता'की स्तुति की गयी है और फिर मुहम्मद नबीका नाम लिया गया है जिसे उसने अपने 'कौतुक' दिखलाये थे और जिससे बातें भी की थीं। इसके अनन्तर हजरत मुहम्मदके चार यारों अर्थात् अबूबक्र, उमर, उसमान तथा अलीकी भी चर्चा की गयी है और अपने पीरका नाम शेख मुहम्मद दिया गया है। कथाका रचना-काल सं० १६९४ अर्थात् सन् १६३८ ई० दिया गया है जो पूस सुदी दूजको 'दयालु' बादशाह शाहजहाँके राज्यकालमें लिखी गयी थी।

कथाका सारांश इस प्रकार है—सुलतान अलाउद्दीनकी बडी धाक थी। अनेक हिन्दू तुर्क बना दिये जाते थे और जो नहीं बन पाते थे वे मार दिये जाते थे। उसके सभी पुत्रोंमें खिज्र खाँ शाहजादा निराला था और उसे वह सबसे अधिक प्यार भी करता था। खिज्र खाँका मामू अलफ खाँ सुलतानका सिपहसालार था जो बड़ा शूरवीर था और वह सर्वत्र विजय प्राप्त कर लेता था तथा उसे भी सुलतान बहुत मानता था। सुलतानने देवगिर लिया, दिल्लीसे रुकनुद्दीनको भगाया, गूजरखण्डके राजाको लुटवाया, रणथम्भोर और चित्तौरके दुर्ग लिये और मालवा, सिवाना तथा तिलंगानाके राजाओं-को अपने अधीन किया। करनराइके विरुद्ध अलफ खाँको भेजा गया जिसके सामने वह प्राण लेकर भागा और अपनी स्त्रियोंतकको निराश्रित छोड़ गया। उन स्त्रियोंको अलफ खाँ दिल्ली ले आया जहाँपर उनमेंसे एक रानी कंवल देको सुलतानने अपनी पटरानी बना लिया। एक दिन कंवल देने सुलतानसे आँखोंमें आँसू भरकर कहा कि मेरी प्यारी पुत्री देवल दे मुझसे बिछुड़ गयी है, उसे भी यहाँ मँगा लीजिये जिसे स्वीकार करके सुलतानने इसके लिए अलफ खाँको भेजा और उसने उसे करनराई द्वारा देवगिरके राजा सिंघदेवके यहाँ भेजे जाते समय मार्गमें ही अपने हाथ कर लिया और उसे लेकर दिल्ली आया जहाँपर सुलतानने उसका विवाह खिज्र खाँके साथ कर देनेका विचार किया। खिज्र खाँ उस समय केवल १० वर्षका था और देवलदे भी ८ वर्षसे अधिककी नहीं थी। दोनों एक साथ खेलते थे और दोनोंमें प्रेमभाव जागृत हो गया था। सुलतानने एक दिन खिज्र खाँकी माँको बुलाकर कहा कि देवल दे एक रावकी लडकी है और चेरी है इसलिए उसे खिज्र खाँके यहाँ जाने न दो और उसने यह भी कहा कि शाहजादेका विवाह उसके मामू अलफ खाँकी पुत्रीके साथ कराया जाय जिसे बेगमने पसन्द किया।

खिज्र खाँकी माँने दोनों प्रेमियोंको अलग-अलग करा दिया और एक चेरी देवल देको कन्धेपर लेकर किसी दूरके मकानमें पहुँचा आयी। फलतः दोनों एक दूसरेके विरहमें तडपने लगे तथा चम्पा, करना, कूजा एवं गुलाल नामक दूतियोंके द्वारा एक दूसरेके पास अपना-अपना सन्देश भेजने लग गये। कभी-कभी ये एक दूसरेको देख भी लिया करते थे जिसकी शिकायत खिज्र खाँकी माँके पास पहुँची तो उसने देवल देको और भी दूर भेजवा देना चाहा। एक दिन दूतियोंने मिलकर जब दोनो प्रेमियोंको एकत्र किया तो चाँदनीके कारण इन्हे बडी बाधा जान पड़ी और ये भलीभाँति न मिल सके तथा इन्होने दुःखका अनुभव किया। जब अकस्मात् बादल आ गये तो दोनों दो खम्भोंके सहारे खडे हुए और किसी प्रकार एक दूसरेको देखते रहे। जब देवल देको और भी दूर भेजा जाने लगा तो वह पालकीमें बिठाकर भेजी गयी जिसका पता पाकर खिज्र खाँने सिर दे मारा। उसने सिरके बाल भी नोच डाले और देवल देने उसे एक अंगूठी भी दी। इधर सुलतानने खिज्र खाँके विवाहकी तैयारी की और इसके लिए लग्न देखा गया तथा बाजे बजाये जाने लगे। विवाहके दिन वह स्वयं भी बारातमें गया। विवाह यथाविधि सम्पन्न हो गया और खिज्र खाँको उसकी इस पत्नीके पास भेजा गया, किन्तु यह उससे मिलकर सुखी नहीं हुआ। यह बराबर देवल देको ही स्मरण करता रहा और फिर इसके साथ उसका पत्र-व्यवहार भी चलने लगा। अन्तमें जब इनके दुःखका पता सुलतानको चला तो उसने दोनोंको मिला दिया। दोनोंको एक दूसरेसे मिलकर अपार आनन्द हुआ, किन्तु इसके कारण दूसरी पत्नी दुःखी हो गयी और खिज्र खाँकी माँ भी पछताने लगी। उसने खिज्र खाँसे कहा कि तुम मेरे भाईकी पुत्रीको जिसके साथ तुमने विवाह किया है छोड़ रहे हो, इसलिए

मैं अनशन करूँगी। इसपर इसने दोनोंको ही एक साथ गले लगाया परन्तु कविके अनुसार यद्यपि खिज्र खाँने अपनी माताके अनुरोधकी लाज रख ली, उसके चित्तमें सदा देवल दे ही बनी रही, दूसरी केवल कहनेको ही पत्नी थी।

जान कविने इस प्रेम कहानीको 'सुक्षिप' (स्वल्प) अर्थात् लघु-कथाओंकी कोटिमे रखा है और कहा है कि इसमें वर्णित विजयोंकी बातें पढी गयी किताबोंपर आधृत हैं। वे किसी ऐसे ग्रन्थका स्पष्ट उल्लेख नहीं करते, किन्तु सारी रचनाओके पढ लेनेपर यह प्रकट भी हो जाता है कि इसका मूलाधार अमीर खुसरोकी फारसी रचना 'दवल रानी व खिज्र खाँ' रही होगी जो प्रायः 'आशिकी' नामसे भी प्रसिद्ध कही जाती है तथा जिसका अधिकांश वस्तुतः कल्पना-प्रसूत ही समझा जाता है। जानकविने, अमीर खुसरोकी ही भाँति, इसमे, गुजरातके कर्णरायके विरुद्ध किसी ऐसी चढाईकी कल्पना करके, उसकी किसी देवल दे नामकी पुत्रीको पकड़कर दिल्ली लाये जानेकी बात लिखी है जिसका कोई मेल वास्तविक ऐतिहासिक घटनाओके साथ नहीं खाता तथा उसका ही अनुसरण करते हुए इन्होंने यहाँपर लगभग उन सारे प्रसंगोकी भी चर्चा कर डाली है जो खिज्र खाँ तथा उसके प्रेमसे सम्बद्ध है। कर्णरायकी किसी पुत्रीका देवल दे होना भी सिद्ध नही है। इस प्रेम कथाके आरम्भमे कविका सुलतान अलाउद्दीनकी विभिन्न विजयोंकी चर्चा छेड देना तथा खिज्र खाँके साथ अलफ खाँकी पुत्रीका विवाह होते समय विविध उत्सवादिको अनावश्यक विस्तार देने लगना भी, यथार्थमे, अमीर खुसरोके अनुकरण ही का परिणाम है; फिर भी जान-कविने, अमीर खुसरोकी भाँति, इस कथाको दुःखान्त नहीं बनाया है, प्रत्युत सुखान्त कर दिया है और इसी प्रकार, खिज्र खाँके पतन और अन्तका वर्णन नही किया है। इस रचनाकी प्रारम्भिक पंक्तियोंमे ही रूप सौन्दर्यके महत्त्वका वर्णन आ जाता है और प्रसगानुसार अन्यत्र व्यक्त की गयी प्रेम एवं विरहसम्बन्धी अनेक मार्मिक उक्तियाँ भी पायी जाती है जिनसे जान पड़ता है कि इसके रचयिताका प्रधान लक्ष्य प्रेम कहानीका वर्णन ही हो सकता है। इसके अप्रासंगिक उल्लेख इसके मुख्य अग नहीं हो सकते। जानकविने कर्णरायकी भागती हुई स्त्रियोंका जो करुणा-जनक वर्णन किया है (दो० १३) तथा जो दोनों प्रेमियोंके क्षणिक मिलनका चित्र खींचा है (दो० ३७-८) वह बहुत-ही सुन्दर और सजीव है।

[सहायक ग्रन्थ—खिलजीकालीन भारत, अप्रकाशित ग्रन्थावली, हिन्दुस्तानी एकेडमी : सं० सैयद अतहर अब्बास रिजवी, अलीगढ, सन् १९५४ ई०; नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग ११, अंक ४, पृ० ४०७-३७।] —प० च०

कद्रू–पौराणिक स्रोतोंके अनुसार कद्रू दक्ष प्रजापतिकी कन्या तथा कश्यप ऋषिकी पत्नी थी। ये अत्यन्त सुन्दरी और गुणवती थीं। ऐसा कहा जाता है कि कद्रूने एक सहस्र नागोंको जन्म दिया था, जिनमें वासुकी और शेष मुख्य हैं। —रा० कु०

कनकावती वा कनकावतीकी कथा–यह रचना एक प्रेमाख्यान है जिसके रचयिता जान कवि हैं (दे० 'कथा बिजरषां')। 'कनकावतीकी कथा' उनकी एक प्रेमकहानी है जो हस्तलिखित ग्रन्थोंकी एक बड़ी 'पोथी'में जान कविके अन्य ६९ ग्रन्थोंके साथ बँधी मिली थी। उसका लिपिकाल सं० १७७७ से लेकर सं० १७७८ अर्थात् सन् १७२० से लेकर सन् १७२१ ई०तक जान पड़ता है और उसके लिपि-कार कोई फतेहचन्द हैं। यह पोथी पहले श्री रावतमल-जी सारस्वतके किसी परिचित व्यक्तिके पास थी और अब हिन्दुस्तानी एकेडमी (प्रयाग)के संग्रहालयमें सुरक्षित है। 'कनकावती कथा' दोहा-चौपाइयोंमें रची गयी प्रेमकहानी है जिसका विस्तार ८१ दोहोंका है और कविके अनुसार केवल तीन दिनोमें पूरी हुई थी। इसका रचनाकाल स० १६७५ अर्थात् सन् १६१८ ई० है जिस समय मुगल सम्राट् जहाँगीर (सन् १६०५-२७ ई०) का राज्यकाल था।

कथाका सारांश इस प्रकार है—भरथ नामक एक राजा था जिसकी राजधानीका भरथनेर नगर चारों ओरसे जलके बीच बसा था। राजाकी कई रानियाँ थी किन्तु किसी प्रकार उसे केवल एक पुत्र हुआ जिसका नाम उसके अत्यन्त सुन्दर होनेके कारण परम रूप रखा गया। परम रूपने एक दिन स्वप्नमे किसी सुन्दरीको देखा जिससे वह पागल हो उठा और उसके कथनानुसार एक चित्रकारने कोई चित्र बनाया जिसे देखकर 'विप्र'ने बतलाया कि वह सिधपुरीके राजाकी पुत्री कनकावती है और भरथनेरसे ४०० कोसकी दूरीपर है। उसने यह भी कहा कि वह किसी जगपतिरायके हाथमें है। परम रूपने यह सुनकर जोगीका वेष धारणकर सेना सहित यात्रा कर दी और उधर 'विप्र'ने कनकावतीके यहाँ पहुँचकर उसे परम रूपके प्रति आकृष्ट किया। भरथरायको कनकावतीके लिए एक युद्ध भी ठानना पडा जिसमे वह पराजित हो गया और परम रूप-को लेकर कोई संन्यासी वनमें चला गया किन्तु 'विप्र'ने किसी प्रकार उस राजकुमारका पता लगाया और उसके तथा कनकावतीके बीच वह पत्रवाहकका काम करने लगा। फलतः दोनों प्रेमियोंका प्रेमभाव क्रमशः दृढ़तर होता गया और परम रूप एक दिन संन्यासीसे सीखी गयी 'कच्छपनिधि' विद्याके सहारे सिंधनगर पहुँच गया जहाँपर कनकावती द्वारा उसके बिना विवाहके अस्वीकृत कर दिये जानेपर 'विप्र'ने उन दोनोंके विवाहकी विधि भी अनुष्ठित कर दी परन्तु किसी दिन केलि करते समय परम रूपको संयोगवश भरथनेर स्मरण हो आया जिस कारण दोनों बीहड़ यात्रा समाप्तकर वहाँ चले आये। इधर सिंधपुरीके राजाको अपनी पुत्रीके इस प्रकार चले जाने का मार्मिक कष्ट हुआ और उसने ये सारी बातें जगपतिरायसे कह दीं। तदनुसार जगपतिराय अपनी सेना लेकर भरथनेर-पर चढ़ आया और उसने उस नगरके आधे भागको सुरंग द्वारा उड़ा दिया। नगरवासी पानीमें बहने लग गये और इस प्रकार परम रूप भी बहता-बहता किसी जगरामके हाथ लग गया जिसने उसका पुत्रवत् पालन किया। उधर कनकावती भी बहती हुई जगपतिरायके पास जा पहुँची जिसने उसे अपनी पुत्रीकी भाँति अपने पास रख लिया। परन्तु कनकावती उसके यहाँ रहकर सदा परम

रूपके विरहमें तड़पा करती थी, इस कारण, जब एक बार संयोगवश जगरामने जगपतिरायके यहाँ इस बातका प्रस्ताव भेजा कि मेरे पुत्रके साथ अपनी कन्याका विवाह कर दीजिए और इसे जगपतिरायने सहर्ष स्वीकार कर लिया तो उनके दुःख दूर हो गये। दोनोंकी मंगनी तय हो गयी, विवाह सम्पन्न हो गया तथा अन्तमें क्रमशः जगपतिराय और जगरामके साथ भरथनेर और सिंधपुरीके राजा भी मिल गये।

इस कहानीमें हमें किसी ऐतिहासिक या पौराणिक-तत्त्व का अंश नहीं दीख पड़ता और न किसी देश या नगरकी भौगोलिक स्थितिका ही पता चलता है। भरथनेर नगरका जलके बीच बसा होना, उसके आधा नष्ट हो जानेपर दोनों प्रेमियोंको इतस्ततः वह निकलनेको बाध्य कर देता है और इस प्रकार उन दोनोंको फिर एक बार विरहके कारण अपने तपाये जानेका अवसर मिल जाता है। कहानी दुःखान्त न होकर सुखान्त बन जाती है, किन्तु आश्चर्य है कि ऐसे अवसरपर हमें उस 'विप्र'के दर्शन नहीं हो पाते जो वस्तुतः इन दोनोंको प्रणय सूत्रमें बाँधनेका प्रमुख कारण बना था। कविके द्वारा किये गये संकेतोंसे प्रकट होता है कि इस कथाका कोई रूप लोगोंमें प्रचलित भी रहा होगा। जो हो, इसका अधिकांश हमें पूरा काल्पनिक-सा ही लगता है और इसके कम-से-कम दो नाम 'परम रूप' एवं 'जगपति राय' प्रसगानुसार सोद्देश्य रखे गये प्रतीत होते हैं। इस रचनाकी भाषाका नाम कविने 'ग्वारेरी' दिया है जो 'ग्वालियरी'का अन्य रूप है।

[सहायक ग्रन्थ–अप्रकाशित ग्रन्थावली, हिन्दुस्तानी एकेडेमी (प्रयाग) सूफी काव्य संग्रह : सं० परशुराम चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन 'प्रयाग', शक १८८०।] —प० च०

कनिष्क–भारतके प्राचीन शासकोंमें कनिष्क अत्यन्त प्रसिद्ध है। कनिष्कका समय (७८-१०१ ई०)तक माना जाता है। कनिष्कके पिताका नाम वित्र था। कुछ इतिहासकारोंकी ऐसी धारणा है कि कनिष्क वित्रके परिवारका न होकर कुषाणोंके किसी दूसरे घरानेका था। राज्यारोहणके साथ कनिष्कने एक नये संवत्का प्रवर्तन किया जो 'शक संवत्'के नामसे विख्यात है। कनिष्क कुषाण वंशका सर्वाधिक प्रतापी शासक था। कनिष्कके राज्यकालमें बौद्ध-धर्म, कला एवं साहित्यकी अच्छी प्रगति हुई। उसने बौद्ध धर्मको राजधर्म बनाकर उसके प्रसार एवं प्रचारमें अपूर्व योग दिया। उसने अनेक स्तूपों और बौद्ध-भवनोंका निर्माण करवाया। बौद्ध-धर्मके महायान मतके प्रसिद्ध आचार्य वसुमित्र तथा बुद्ध-चरित एवं सौन्दरनन्द आदि ग्रन्थोंके रचनाकार अश्वघोष कनिष्कके आश्रयमें रहते थे। इनके अतिरिक्त चरक, नागार्जुन, संघरक्ष, माठर आदि अनेक कवि-कलाकार तथा मनीषी कनिष्कके संरक्षणमें रहते थे (दे० 'स्कन्दगुप्त', पृ० १३१)। —रा० कु०

कन्हैयालाल पोद्दार–ये 'काव्य-कल्पद्रुम' ('रसमंजरी', 'अलंकार मंजरी')के रचयिताके विरदसे विख्यात हैं। इनका जन्म १८७१ ई०में हुआ था। इनके पूर्वजोंका निवास-स्थान बीकानेर राज्यमें चुरू था। पीछे वे लोग जयपुर राज्यके रामगढ़ स्थानपर रहने लगे। १८४३ ई०से उन लोगोंने मथुरामें श्रीगोविन्दजीका मन्दिर बनवाया और वहीं निवास भी करने लगे। व्यापारी-समाज, भक्त-समाज तथा साहित्यिकोंमें पोद्दारोंका बड़ा सम्मान रहा है। कन्हैयालालने १८९० ई० से १९४८ ई० तक निरन्तर साहित्यकी सेवा की है। भर्तृहरिके तीनों शतकोंका अनुवाद, अलंकार-प्रकाश, गंगालहरीका अनुवाद, भागवत दशमस्कन्धका अनुवाद, हिन्दी मेघदूत विमर्श, काव्य-कल्पद्रुम, संस्कृत साहित्यका इतिहास आदि इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। साहित्यिक सेवाओंका महत्त्व स्वीकार करते हुए सेठजीको एक अभिनन्दन ग्रन्थ प्रदान किया गया था। इन्होंने मथुरामें १९४८ ई०मे शरीर त्याग किया (दे० 'अलंकार-मंजरी')। —ओं० प्र०

कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी–जन्म २९ दिसम्बर सन् १८८७ ई०को भड़ोच (गुजरात)में भार्गव ब्राह्मण परिवारमें हुआ था। उच्च और सुशिक्षित परिवारके अनुरूप ऊँची शिक्षा पायी। अपनी प्रतिभा, परिश्रम और कानून-ज्ञानके कारण सफल वकील बने। प्रारम्भसे ही साहित्य-सर्जनमें रुचि रही और उसे गति भी सहज ही मिल गयी। पत्र-कारके रूपमें भी बड़े सफल रहे। गांधीजीके साथ १९१५ ई० में 'यंग इण्डिया'के सहसम्पादक बने। कई मासिक पत्रिकाओंका सम्पादन किया और गुजराती साहित्य परिषद्में प्रमुख स्थान पाया। साहित्यके क्षेत्रमें मुंशीजीकी गतिविधि बढ़ती ही जा रही है।

मुंशीजी गुजराती और अंग्रेजी दोनों भाषाओंके उच्च साहित्य-सर्जक होते हुए भी हिन्दीके महान् समर्थक और प्रेमी हैं। ऊँचा साहित्यकार किसी भाषाका साहित्य हो, उसका स्तर ऊँचा ही देखना और रखना पसन्द करता है। अंग्रेजी भाषामें प्रवीण मुंशीजीकी यह धारणा है कि हिन्दीकी भाव-प्रेषणीयता अंग्रेजीसे अधिक है। वे गठीली परिमार्जित और परिष्कृत संस्कृतनिष्ठ हिन्दीके समर्थक हैं। भाषा भावनाओंसे भरी हो, उद्गारोंसे ओत-प्रोत हो और उसपर कल्पनाका रंग चढ़ा हो—ऐसी शैली मुंशीजीकी मनभावनी लेखन-शैली है।

अपने लेख 'हिमालयकी ओर' में वे लिखते हैं—"हम कत्यूर राजाओंकी पुरानी राजधानी गरुण गये किन्तु इस बार आकाशपर बादल थे और हम घाटीमें बरफ नहीं देख सके। गाँवका मुखिया शुद्ध हिन्दी बोलता था और हमारी उपलब्धियोंमें उसकी सहज पैठ थी। यदि वे लोग जो यह कहते हैं कि शुद्ध संस्कृतनिष्ठ हिन्दी (बाजारू किस्मकी हिन्दी नहीं) एक कृत्रिम भाषा है, इन भागोंमें आयें और इन मुखियोंकी भाषा सुनें तो उन्हें आश्चर्य होगा। उन लोगोंकी बोलचालकी भाषा बनकर हिन्दीने इतनी सामर्थ्य और प्रेषणीयता अर्जित कर ली है कि हम अंग्रेजी बोलनेवालोंमें-से बहुतोंको उससे ईर्ष्या होगी।"

जीवन भर वकील, मन्त्री, राज्यपाल और एक अत्यन्त व्यस्त राजनीतिज्ञ रहते हुए भी श्री मुन्शीने ५० से ऊपर ग्रन्थ लिखे हैं जो अधिकतर गुजरातीमें हैं, कुछ अंग्रेजीमें। इनमें उपन्यास, कहानी, नाटक, इतिहास, ललित कलाएँ शामिल हैं। इसी कारण श्री मुंशीकी गणना देशके महान्

साहित्यकारोंमें होती है, और उनका नाम शरद, बंकिमचन्द्र चटर्जी और रवीन्द्रनाथ टैगोरके साथ लिया जाता है। उनकी रचनाओंमें अमर भारतीय साधना, उसकी मूलभूत ज्योति तथा आध्यात्मिकता और उसकी सार्वभौम उदारताके दर्शन होते हैं। यही उनकी प्रेरणाके स्रोत हैं और इन्हींका निखरा हुआ रूप उनकी प्रत्येक रचनासे मुखरित हुआ है। अतः मुंशीका साहित्य अधिकतर गुजरातीमें होते हुए भी किसी भाषा विशेषकी सीमाओंमें बँधकर रह जाने वाला साहित्य नहीं है। उसका भारतीय रूप, उसका सामान्य प्रेरणास्रोत और प्रत्येक पंक्तिसे झलकती राष्ट्रीयता अथवा भारतीयता उसे सहज सार्वदेशीय बना देती है। भारतीय भाषाएँ एक दूसरेसे इतनी निकट हैं कि किसी भी भाषाके महान् लेखककी कृतियोंका अन्य भाषाओके साहित्यपर प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता। मुंशीकी साहित्यिक रचनाओंका परोक्ष रूपसे हिन्दीपर प्रभाव पड़ा और इन रचनाओंके हिन्दी अनुवादसे यह प्रभाव प्रत्यक्ष हो गया है। इनके ऐतिहासिक उपन्यास और पौराणिक कथाओंपर आधारित रचनाएँ हिन्दीमें इतनी अधिक लोकप्रिय हुई है मानों मूलरूपसे वे इसी भाषामे लिखी गयी हो।

हिन्दीके लिए उनके मनमें सदा विशेष स्थान रहा है और अपने कृतित्वमे उन्होंने इसका प्रमाण भी दिया है। डा० सम्पूर्णानन्दके शब्दोंमें "हिन्दी उनको अपने प्रबल और अविकम्प्य समर्थकके रूपमे जानती है।" मुशीकी यह धारणा रही है—"विद्याकी कोई भी संस्था वास्तविक अर्थमे भारतीय नहीं कही जा सकती जबतक कि उसमें हिन्दीके अध्ययन-अध्यापनका प्रबन्ध नहीं है" (दे० 'मुंशी अभिनन्दन ग्रन्थ' : डा० विश्वनाथ प्रसादका लेख 'मुंशी और हिन्दी'से)। उन्होंने हिन्दी प्रचारके कार्यमे सक्रिय भाग लिया है। महात्मा गांधीने मुंशीको इस ओर खींचा था। उन्हीके निर्देशसे मुंशीने प्रेमचन्दके साथ बम्बईसे लगभग तीस वर्ष हुए सर्वांग सुन्दर मासिक 'हंस' चलाया था, जिसका उद्देश्य हिन्दीको अखिल भारतीय अन्तःप्रान्तीय रूप देना था। उसमे प्रत्येक भाषाका साहित्य हिन्दी और नागरी अक्षरोमे प्रकाशित करनेका आयोजन था। आज भी उनके द्वारा संचालित भारतीय विद्याभवनकी पाक्षिक पत्रिका 'भारती'के द्वारा हिन्दीमें समस्त भारतीय जीवन, साहित्य और संस्कृतिकी सन्देशवाहिनी क्षमताका ही विकास हो रहा है। हिन्दीके प्रति उनकी सेवाओंसे प्रभावित होकर ही अखिल भारतीय साहित्य सम्मेलनने मुशीको सन् १९५६में होनेवाले वार्षिक अधिवेशनका अध्यक्ष चुना था। इस अवसरपर हिन्दीके इतिहास और स्थितिके विषयमें उन्होंने जो अध्यक्षीय भाषण दिया था उसमें उन्होंने कहा था: "राष्ट्रभाषा हिन्दी एकमात्र संयुक्त प्रान्तकी स्वभाषा नहीं है, राजस्थानकी भी है···हिन्दीको यदि राष्ट्रभाषा होना है तो राष्ट्रकी अन्य भाषाओंकी शक्ति और सौन्दर्य इसमे लाना चाहिये" (दे० 'अ० भा० साहित्य सम्मेलन'के उदयपुर अधिवेशनमें अध्यक्ष कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशीका भाषण—१९५६)। "हिन्दी ही हमारे राष्ट्रीय एकीकरणका सबसे शक्तिशाली और प्रधान माध्यम है। यह किसी प्रदेश या क्षेत्रकी भाषा नहीं, बल्कि समस्त भारतकी भारतीके रूपमें ग्रहण की जानी चाहिये" (दे० 'भारतीय हिन्दी परिषद्' १९५३ में अध्यक्ष पदसे भाषण)।

उन्होंने अपने 'हिन्दी और हिन्दीका भविष्य' शीर्षक लेखमें हिन्दीका समर्थन इन शब्दोंमें किया है—"हमें यह भी नहीं सोचना चाहिये कि हम हिन्दीको केवल व्यवहार-मात्र या शासनकी भाषा बनाना चाहते हैं। हमको तो जैसी इंग्लैण्डकी अंग्रेजी भाषा है और फ्रांसकी फ्रेंच भाषा है उसी तरहकी भारतकी भारती हिन्दीको बनाना है।" (दे० 'त्रिपथगा', दिसम्बर १९५५, पृ० १३२)।

भारतीय संविधानमें हिन्दीको जो स्थान मिला, उसमें भी मुंशीका बड़ा हाथ था। जब हिन्दीके प्रश्नपर संविधान-सभामें विवाद होना था, श्री मुंशी संयोगसे सभाकी कांग्रेस पार्टीके स्थानापन्न अध्यक्ष थे, क्योंकि डा० पट्टाभि सीतारामैया अस्वस्थ हो गये थे। राष्ट्रभाषाके प्रश्नपर स्वयं कांग्रेस पार्टीमें कई मतवाले थे, जिनमें हिन्दीके कट्टर समर्थकोंसे लेकर इसके विरोधीतक शामिल थे। यह श्रेय मुंशी और उनके कुछ मित्रोंको है कि उन्होंने समझौतेका ऐसा सूत्र निकाला जिसपर सब कांग्रेसी ही नहीं बल्कि दूसरे सदस्य भी सहमत हो सके और इस तरह हिन्दीको सर्वसम्मतिसे राष्ट्रभाषाका स्थान देनेकी व्यवस्था की जा सकी। —ज्ञा० द०

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'—कन्हैयाल मिश्र 'प्रभाकर' का जन्म सन् १९०६ ई० में सहारनपुर जिलाके देवबन्द ग्राममें हुआ था। प्रारम्भसे ही राजनीतिक एव सामाजिक कार्योंमे गहरी दिलचस्पी लेनेके कारण आपको अनेक बार जेल-यात्रा करनी पड़ी। पत्रकारिताके क्षेत्रमें भी आपने बराबर कार्य किया है। 'ज्ञानोदय' का आप सम्पादन कर चुके हैं तथा सहारनपुर से आप आजकल 'नयाजीवन' नामक पत्रिका सम्पादन कर रहे हैं। आपने अपने लेखनके अतिरिक्त अपने वैयक्तिक स्नेह और सम्पर्कसे भी हिन्दीके अनेक नये लेखकोंको प्रेरित और प्रोत्साहित किया है।

प्रभाकरकी अबतक सात पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इनमे 'नयी पीढी, नये विचार'(१९५०),'जिन्दगी मुस्करायी' (१९५४), 'माटी हो गयी सोना' (१९५७) आपके रेखा-चित्रोंके संग्रह है। 'आकाशके तारे—धरतीके फूल' (१९५२) प्रभाकरजीकी लघु कहानियोंके संग्रहका शीर्षक है। 'दीप जले, शंख बजे' (१९५८)में, जीवनमें छोटेपर अपने-आपमें बड़े व्यक्तियोंके संस्मरणात्मक रेखाचित्रोंका संग्रह है। 'जिन्दगी मुस्करायी' (१९५४) तथा 'बाजे पायलियाके घुँघरू' (१९५७), नामक संग्रहोंमें आपके कतिपय छोटे प्रेरणादायी ललित निबन्ध संगृहीत हैं।

'प्रभाकर' हिन्दीके श्रेष्ठ रेखाचित्र, संस्मरण एवं ललित निबन्ध लेखकोंमें है। यह द्रष्टव्य है कि उनकी इन रचनाओंमें कलागत आत्मपरकता होते हुए भी एक ऐसी तटस्थता बनी रहती है कि उनमें चित्रणीय या संस्मरणीय ही प्रमुख हुआ है—स्वयं लेखक ने उन लोगोंके माध्यमसे अपने व्यक्तित्वको स्फीत नहीं करना चाहा है। उनकी शैलीकी आत्मीयता एवं सहजता पाठकके लिए प्रीतिकर

एवं हृदयग्राहिणी होती है। —दे० शं० अ०

कपिल–'कपिल' नामसे प्राचीन साहित्यमें अनेक संदर्भ मिलते हैं—

१. कपिल विष्णुके पाँचवें अवतार थे। इनकी उत्पत्ति कर्दम मुनिकी पत्नी देवाहूतिसे हुई थी। देवाहूति की विष्णु सदृश पुत्र उत्पन्न करनेकी कामना विष्णु अवतारका कारण थी। भोग-विलास एव आनन्दपूर्ण जीवन व्यतीत करनेके अनन्तर कर्दम और देवाहूतिने भगवान्से ज्ञान प्राप्तिकी प्रार्थना की। अपने माता-पिताके प्रश्नोंके उत्तरस्वरूप कपिल मुनिकी स्फुरित वाणी ही सांख्य ध्वनिके रूपमें प्रसिद्ध हुई। हरिवंश पुराणके अनुसार कपिल वितथके तथा श्वेताश्वतर उपनिषद्के अनुसार ब्रह्माके मानस पुत्र थे। कपिलके रचे हुए ग्रन्थोंकी सूची इस प्रकार है—(१) 'सांख्यसूत्र', (२) 'तत्त्वसमास', (३) 'व्यास प्रभाकर', (४) 'कपिल गीता', (५) 'कपिल पाँच रात्र', (६) 'कपिल संहिता', (७) 'कपिल स्मृति', (८) 'कपिल स्तोत्र'।

२. कपिलका दूसरा उल्लेख अग्निविशेषके नामके रूपमें मिलता है जो कर्म (विश्वपति अग्नि) तथा हिरण्यकशिपुकी पुत्री रोहिणीके पुत्र थे।

३. कश्यप तथा दनुसे उत्पन्न एक दानव पुत्रका नाम 'कपिल' था।

४. कश्यप तथा कद्रूसे उत्पन्न एक सर्प 'कपिल' था।

५. विन्ध्यवासी एक बानर 'कपिल' नामसे विख्यात है।

६. रुद्र गणोंमें एकका नाम 'कपिल' है।

७. शिवावतार दधिवाहनके एक शिष्य रूपमें कपिल-का उल्लेख मिलता है।

८. 'कपिल' एक यज्ञका भी पर्याय है।

९. भद्राश्वके पुत्र कपिल थे। —रा० कु०

कपिला–१. कश्यपकी पत्नीका नाम था जो दक्षकी कन्या थी।

२. कश्यप तथा श्वसामे उत्पन्न एक कन्याका नाम था। —रा० कु०

कबीर–उत्तर भारतमें भक्ति आन्दोलनका सूत्रपात वैष्णव आचार्योंकी प्रेरणासे हुआ। यह भक्ति आन्दोलन केवल सिद्धान्तोंकी मंजूषामें ही बन्द रह जाता यदि इसे जन-कवियोंकी वाणी प्राप्त न होती। इन कवियोंने तत्कालीन जन-भाषाओंमें भक्तिकी किरणोंका आलोक विकीर्ण कर जन-जनके मानसको पवित्र कर दिया। ऐसे जन-कवियोमे पहला नाम कबीरका ही है।

कबीरका आविर्भाव विक्रमकी पन्द्रहवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें हुआ। उनका जन्म ज्येष्ठ पूर्णिमा सोमवार सम्वत् १४५५ (सन् १३९८ ई०)को सिद्ध होता है। अनन्तदास रचित 'श्री कबीर साहबजीकी परचई'का समय खोज रिपोर्ट (१९०९-११)के अनुसार विक्रमकी सत्रहवीं शताब्दीका उत्तरार्द्ध संवत् १६५७ (सन् १६०० ई०) ही माना जाता है। इसके अनुसार कबीरके जीवनके सम्बन्धमे जो संकेत मिलते हैं, वे निम्नलिखित हैं—

१. कबीर जुलाहे थे और वे काशीमें निवास करते थे।

२. वे गुरु रामानन्दके शिष्य थे।

३. बघेल राजा वीरसिंह देव कबीरके समकालीन थे।

४. सिकन्दरशाहका काशीमें आगमन हुआ था और उन्होंने कबीरपर अत्याचार किये थे।

५. कबीरने १२० वर्षकी आयु पायी।

इनमें कुछ सकेतोंके सम्बन्धमें शंकाएँ हो सकती है। अनन्तदासजीने कबीरकी जन्मतिथि नहीं दी है किन्तु 'पीपाजीकी वाणी'मे कबीरकी प्रशंसामें एक पद आता है—

"जो कलि माँझ कबीर न होते। तौ ले" वेद अरु कलियुग मिलि करि भगति रसातल देते"(हस्तलिखित प्रति सरदगोटिका, सं० १८४२, पत्र १८८)।

पीपाका जन्म सन् १४२५ (संवत् १४८२)में हुआ था। पीपाने कबीरकी प्रशंसा मुक्त-कण्ठसे की है। इससे यह सिद्ध होता है कि या तो कबीर पीपासे पहले हो चुके होंगे अथवा कबीरने पीपाके जन्म-कालमे ही यथेष्ट ख्याति प्राप्त कर ली होगी। भक्तमालके अनुसार पीपा रामानन्द के शिष्य थे अतः कबीर भी रामानन्दके सम्पर्कमें आ सकते हैं। इतना तो स्पष्ट ही है कि कबीर सन् १४२५ (संवत् १४८२)के पूर्व ही हुए होगे। अतः यह कहा जा सकता है कि कबीरका जन्म 'कबीर चरित्र बोध'के अनुसार संवत् १४५५में होना अधिक सम्भव है जो गणनाके अनुसार भी ठीक बैठता है। सवत् १४५५के ज्येष्ठ शुक्ल १५को सोमवार ही पडता है।

बील, फर्कहर, हण्टर, ब्रिग्स, मेकालिफ, वेसकट, स्मिथ, भण्डारकर और ईश्वरी प्रसाद आदि इतिहासलेखक कबीर और सिकन्दर लोदीको समकालीन ही मानते है। सिकन्दर लोदी कट्टर मुसलमान था जिसका इतिहास मन्दिर गिराने और मूर्ति तोडनेकी घटनाओंसे परिपूर्ण है। कबीर-की वाणीमे हिन्दू विचारधाराका प्राधान्य होनेके कारण सिकन्दर लोदीने कबीरको अनेक प्रकारके दण्ड दिये होंगे जिनका सकेत अन्तःसाक्ष्यसे भी मिलता है।

कबीरकी १२० वर्षकी आयु कुछ अधिक समझी गयी है। जनश्रुतिसे वे १५७५मे मगहर गये और वही उनकी मृत्यु हुई। मेरी दृष्टिमे सिकन्दर लोदीके अत्याचारोंसे ही उनकी मृत्यु हुई होगी। मगहर जानेपर भी कबीर उसकी क्रूर दृष्टिसे न बच सके होगे। सिकन्दर लोदीका पूर्वी प्रदेशोंपर आक्रमण सं० १५५१मे हुआ है (दे० 'हिस्ट्री आव दि राइज आव मोहमडन पावर इन इण्डिया': जान ब्रिग्स, लन्दन, १८२९, पृ० ५७१-७२)। उसी समय उनकी मृत्यु हुई होगी। इस दृष्टिसे कबीरकी आयु ९६ वर्षकी निश्चित होती है।

कबीरका आविर्भाव ऐसे समयमें हुआ था जब राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक क्रान्तियाँ अपने चरम शिखरपर थीं। राजनीतिक परिस्थितियोंमे कोई स्थिरता नहीं थी। न तो राजवंशोमे कोई स्थिरता थी और न उनकी नीति ही निश्चित थी। किसी समय भी राज-परिवर्तनकी सम्भावना हो सकती थी और जनतापर उसका मनमाना अत्याचार चल सकता था। यही कारण है कि सामान्य जनतामे राजवंश और राजनीतिके प्रति कोई आस्था नहीं थी। "कोउ नृप होय, हमेका हानी"की प्रवृत्ति थी। उस समय तो लोदी वंशकी कट्टर राजनीति थी, जिससे जनतामें भय और आतंक था।

धार्मिक परिस्थितियोंमें अनेक मतवाद थे। पूर्ववर्ती नाथ

सम्प्रदायकी धारा तो हिन्दू और मुसलमानोंमें समान रूपसे चल रही थी। इसी प्रकार मुसलमानोंका सूफी धर्म भी समान रूपसे गृहीत था। वेदान्तके अद्वैतका सिद्धान्त आठवीं शतीसे ही प्रचार पा रहा था। इसके साथ रामानन्दका भक्ति आन्दोलन राम और कृष्णके अनन्त नामोंके साथ जन-जनके मानसमे बसने जा रहा था। दक्षिणके संतोंने अपने पर्यटनके साथ निर्गुण ब्रह्मकी सेवा विट्ठलके नामसे प्रचारित की थी। इस प्रकार धार्मिक परिस्थितियाँ अपने विविध प्रकारके विश्वासोके साथ बल संग्रह कर रही थीं।

सामाजिक परिस्थितियाँ वर्णाश्रम धर्मके कारण धीरे-धीरे विच्छिन्न हो रही थीं। ब्राह्मण और शूद्रोंमे मनोमालिन्य बढ रहा था। इसीके साथ मुसलमान शासकोंके शासनमे मुसलमानोंकी महत्-ग्रन्थि बढ रही थी जिससे हिन्दू और मुसलमानोंमें दिनोंदिन विद्वेष बढ रहा था। जातिका आधार प्रत्येक स्थलमें कर्मकाण्ड बनता जा रहा था और बाहरी वेश और आचारकी विविधा ही सामाजिक स्तरका मूल्यांकन कर रही थी।

कबीरका आविर्भाव जैसे इन राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियोंका एक आग्रहपूर्ण आमन्त्रण था और कबीरने धर्म और समाजके संघटनके लिए समस्त बाह्याचारोंका अन्त करने और प्रेमसे समान धरातलपर रहनेका एक सर्वमान्य सिद्धान्त प्रतिपादित किया। परम्पराओंके उचित संचयन तथा परिस्थितियोंकी प्रेरणामे कबीरने ऐसे विश्व-धर्मकी स्थापना की जो जन-जीवनकी व्यावहारिकतामे उतर सके और अन्य धर्मोंके प्रसारमें समानान्तर बहते हुए अपना रूप सुरक्षित रख सके। वह रूप सहज और स्वाभाविक हो तथा अपनी विचारधारामें सत्यसे इतना प्रखर हो कि विविध वर्ग और विचारवाले व्यक्ति अधिक-से-अधिक संख्यामें उसे स्वीकार कर सके और अपने जीवनका अंग बना ले। कबीर शास्त्रीय ज्ञानकी अपेक्षा अनुभव ज्ञानको अधिक महत्त्व देते थे। उनका विश्वास सत्संगमें था। उन्होने अद्वैतसे तो इतना ग्रहण किया कि ब्रह्म एक है, द्वितीय नहीं। जो कुछ भी दृश्यमान है, वह माया है, मिथ्या है और उन्होने माया का मानवीकरण कर उसे कंचन और कामिनी का पर्याय माना और सूफ़ीमतके शैतानकी भाँति पथभ्रष्ट करनेवाली समझा। उनका ईश्वर एक है जो निर्गुण और सगुणके भी परे है, वह निर्विकार है, अरूप है। उसे मूर्ति और अवतारमें सीमित करना ब्रह्मकी सर्वव्यापकताका निषेध करना है। इस निराकार ब्रह्मकी उपासना योग और भक्तिसे की जा सकती है। इनमे भी भक्ति महत्तर है। भक्तिके लिए किसी व्यक्तित्वकी अपेक्षा है। इस व्यक्तित्वको अवतारमे प्रतिष्ठित न कर कबीरने प्रतीकोंमे स्थापित किया। उन्होने ब्रह्मसे अपना मानसिक सम्बन्ध जोड़ा। ब्रह्म गुरु, राजा, पिता, माता, स्वामी, मित्र और पतिके रूपमे है। पतिका रूप माननेपर आत्मा उसकी प्रेयसी बन जाती है। इसी प्रियतम और प्रेयसीके सम्बन्धमे जो दाम्पत्य प्रेम लक्षित हुआ है, उसीमें कबीरके रहस्यवादकी सृष्टि हुई। उनकी मानसिक भक्तिमें न तो किसी कर्मकाण्डकी आवश्यकता है न मूर्ति और अवतार की। यह बात दूसरी है कि कबीर ने अपने ब्रह्मके लिए अवतारवादी नाम भी स्वीकार किये हैं क्योंकि ब्रह्मके नाम अनन्त हैं—"हरि मोरा पीव भाई हरि मोरा पीव। हरि बिन रहि न सकै मोरा जीव।।"

कबीरका व्यक्तित्व और निर्द्वन्द्व दृष्टिकोण इतना प्रभावशाली था कि उनके विचारोंके आधारपर एक सम्प्रदाय चल पड़ा जिसे सन्त सम्प्रदायकी संज्ञा मिली। इस सम्प्रदायमें अनेक कवि हुए—दादू, सुन्दरदास, गरीबदास, चरनदास आदि।

कबीरकी भाषा पूरबी जनपदकी भाषा थी। यह भाषा यद्यपि अत्यन्त साधारण थी तथापि इसमें भावोंकी अभिव्यंजनाकी बड़ी शक्ति है। इसे सधुक्कड़ी भाषाका नाम भी दिया गया किन्तु मेरी दृष्टिसे इनमें जो रूपक और प्रतीक प्रयुक्त हुए उनसे इस भाषाका साहित्यिक महत्त्व भी है। इसमे सामान्य रूपसे उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, यमक आदि अलंकार सरलतासे आ गये है। कबीरका प्रमुख दृष्टिकोण भावना और अनुभूतिको व्यक्त करना था, उन्होंने भाषाके सौष्ठवकी ओर अधिक ध्यान नहीं दिया तथापि उनकी भाषा सरस और सुबोध है। रूपक और प्रतीकोंके साथ उन्होने 'उल्टबाँसी'का प्रयोग किया जिससे कार्यव्यापारकी स्थितिमे विपर्यय ज्ञात होता है। यह अध्यात्मवादका मर्म समझानेका उनके पास बड़ा प्रभावशाली साधन है। 'पहले पूत पिछैरी माई' कहकर उन्होने जीवके उत्पन्न होनेपर मायाके प्रभावको लक्षित किया है। अध्यात्मवादका विषय इस शैलीमें अभिव्यक्त करनेके कारण उनके काव्यमे शान्त और अद्भुत रस बिना प्रयासके ही आ गये हैं।

कबीरके काव्यका प्रभाव इतना व्यापक रहा है कि वह देश-कालकी सीमाओंको पार कर अनेक भाषाओंमे अनुवादित हुआ। उन्होने जाति, वर्ग एवं सम्प्रदायोंकी सीमाओका अतिक्रमण कर एक ऐसे मानव-धर्म और मानव-समाजकी स्थापना की जिसमें विभिन्न दृष्टिकोण रखनेवाले व्यक्ति भी निस्संकोच होकर सम्मिलित हुए। यही कारण है कि कबीर पंथमें हिन्दू और मुसलमानोका प्रवेश समान रूपसे देखा जाता है। कबीर वास्तवमे एक ऐसे महाकवि थे जिन्होने जीवनगत सत्यका सन्देश सौन्दर्यके दृष्टिकोणसे रखा। जीवनकी स्वाभाविक और सात्त्विक क्रियाशीलतामें ही उनके धर्मकी व्यवस्था है जिसका प्रसार उन्होंने 'सबदों' और 'साखियों'मे किया। —रा० कु० व०

कबीरकी परिचई—भक्तिकालमें जिन महान् कवियों और सन्तोंने अपने सरल जीवन और कृतित्वसे जनताका कल्याण किया उनके जीवनको सरल छन्दोंमें लिखनेकी प्रवृत्ति उनके अनुयायियों और भक्तोमें उत्पन्न हुई। ऐसे ही महान् सन्तो और कवियोमें कबीर भी हुए जिनके चरित्रका परिचय देनेके लिए 'परिचई' लिखी गयी। इस 'परिचई'के लिखनेवाले श्री अनन्तदासजी थे। उनका आविर्भाव पन्द्रहवीं शताब्दीका उत्तरार्द्ध अर्थात् संवत् १६०० के आस-पास माना जाता है। कबीर परिचई की ६ प्रतियाँ उपलब्ध हैं। दो प्रतियाँ काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, एक हिन्दी साहित्य सम्मेलन, एक मलूकदासकी

गद्दी, कड़े में, एक पण्डित गणेशदत्त मिश्र और एक मेरे पास है। मेरे पासकी प्रति श्री सरबगोटिका वाणी नौ हजारके अन्तर्गत है जिसका लिपिकाल संवत् १८४२ पौष शुक्ल ५ मंगलवार है और लिपिकर्ता हैं साधु ब्रह्मदास, जो अमरदासके शिष्य और सेवादासके पोता शिष्य हैं।

इस परिचईमें कबीरके जीवनकी प्रमुख घटनाओंका उल्लेख किया गया है। इसमें कबीरके जीवनकी तिथि तो नहीं दी गयी परन्तु उनके १२० वर्षतक जीवित रहनेका उल्लेख है। इस 'परिचई'से यह स्पष्ट होता है कि—

(१) कबीर मुसलमान जुलाहे थे और काशीमें निवास करते थे।

(२) उन्होंने रामानन्दसे दीक्षा प्राप्त की थी।

(३) वे बघेल राजा वीरसिंह देवके समकालीन थे।

(४) सिकन्दरशाहने जब काशीमें प्रवेश किया तो उसने कबीरपर अनेक अत्याचार किये।

'परिचई'में कबीरके आध्यात्मिक चमत्कारोंका भी उल्लेख है। समस्त ग्रन्थ चौपाई और दोहोंमें लिखा गया है। उदाहरणस्वरूप निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिये :

चौपाई—"हम तौ भगति मुकति मैं आया। गुरु परसाद राम गुन गाया॥ राम भरोसै गिनौ न काहू। सब मिलि राजा रंक रिसाहू॥" दोहा—"रापनहारा राम है, मारि न सकै कोइ। पातिसाह हूँ ना डरौं, करता करै सो होइ॥" (२७।११६)। —रा० कु० व०

कमच्छ–विष्णुके एक अवतारका नाम है। इसे 'कच्छ' तथा 'कच्छप' भी कहा जाता है। ऐसी प्रसिद्धि है कि देवासुर संग्रामके अनन्तर जो वस्तुएं संघर्षमें खो गयी थीं, उनकी प्राप्तिके लिए समुद्र मन्थनका आयोजन हुआ। मन्दराचल तो मथानी बने, शिव तथा विष्णुने कच्छपका रूप धारण किया। वासुकि नागकी रस्सी बनायी गयी और देवताओं तथा असुरोंने एक-एक ओर खड़े होकर समुद्र-मन्थन किया जिससे निम्नलिखित चौदह वस्तुएँ प्राप्त हुईं—१. अमृत, २. धन्वन्तरि, ३. लक्ष्मी, ४ सुरा, ५. चन्द्र, ६. रम्भा, ७. उच्चैःश्रवा, ८. कौस्तुभ मणि, ९. पारिजात वृक्ष, १०. सुरभि गाय, ११. ऐरावत हाथी, १२. शंख, १३. धनुष तथा १४. विष (सू० सा० प० ३७८)। —रा० कु०

कमला–दे० 'लक्ष्मी'। —रा० कु०

कमलाकांत वर्मा–पिछले दो दशकोंमें आपकी कहानियों और एकांकी नाटक काफी महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। १९३०से लेकर १९५०तक आप बराबर पत्र-पत्रिकाओंमे लिखते रहे किन्तु इधर काफी दिनोंसे आपकी कोई चीज प्रकाशमे नहीं आयी है। कमलाकान्तजीमें मानवके प्रति एक उदात्त सहानुभूति है और जीवनकी छोटी-छोटी घटनाओंको मार्मिक ढंगसे व्यक्त करनेकी क्षमता है।

आपकी कहानियोंमें हमे आधी नगर और आधी कस्बेकी जिन्दगीकी बड़ी मार्मिक झाँकी मिलती है। मध्यम वर्गके जीवनमे राग, विराग, प्रेम और व्यंग्यकी बड़ी ही रोचक झलक एवं उनकी समस्याओंका बड़ा ही सुन्दर चित्रण मिलता है। वर्माजी जिन समस्याओंको कहानियोंमें अंकित करते हैं वे साधारण जीवन स्तरकी होते हुए भी नितान्त अनिवार्यता लिए हुए होती हैं। कमलाकान्त वर्माकी कुछ कहानियाँ १९३०से ४०तककी उस भाव-स्थितिका परिचय कराती हैं जिसमें प्रेमचन्दका आदर्शोन्मुख यथार्थवाद और नितान्त भावनात्मक यथार्थवाद साथ-साथ विकसित होकर एक दूसरेके पूरक होते हैं।

एकांकी नाटकोंमें भी कमलाकान्त वर्माकी यही प्रवृत्ति है। नाटकोंमे उन्हें कहानियोसे अधिक सफलता मिली है। प्रथम युद्धके बाद और दूसरे युद्धके पूर्व मध्यवर्गीय जीवनमें खुशहाली और सम्पन्नताके जो आसार दिखायी पड़े थे उससे प्रभावित मनःस्थितिका चित्रण इन नाटकोंमें भावुकता और सहजतासे किया गया है। उसके बाद तो मध्यवर्ग विघटनकी ओर बढ़ने लगा।

आपकी भाषा साधारण व्यवहारकी भाषा है यद्यपि कहीं-कहीं उसमे आभिजात्य गुण भी तीव्र रूपमें व्यक्त हुआ है। प्रेमचन्दके यथार्थकी भाषा भावुकतामें लिपटी हुई रहती थी। कहीं-कहीं उसमे सूक्तियोंके अंकुर भी झाँकनेसे दीखते थे किन्तु उत्तर प्रेमचन्द-युगमे लेखकोंकी भाषा उस आवेशको तोड़कर अधिक सामान्य धरातलपर बहती हुई लगती है किन्तु आदर्शकी गहरी संवेदनाके प्रति इनका वह आग्रह नहीं है। —ल० कां० व०

कमलादेवी चौधरी–१९०८ई०मे लखनऊमें जन्म। कहानियाँ और कविताएं लिखती हैं। विशेषरूपसे इनकी कहानियोंका हिन्दी कथा साहित्यके विकासमें बड़ा योग रहा है। अबतक लगभग १० पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है।

कमलादेवी चौधरीकी कहानियोंमें पारिवारिक जीवनकी झाकियाँ और छोटी-छोटी घटनाओंके चित्रणसे व्यापक जीवनकी आस्था और उसके व्यंगोकी सफल झाकी हमे मिलती है। नारी सुलभ कोमलताके साथ-साथ शिल्पमे नये यथार्थके आयामोंके घटित होनेसे विभिन्न प्रकारकी विपन्नताएँ हमें सहज ही दीख पड़ती हैं; इनकी रचनाओंमे सहज मानवीय वेदना बहुत ही गम्भीर होकर व्यक्त हुई है। इनकी कहानियोंमें दूसरी विशेष बात यह है कि ये प्रेमचन्दके आदर्शवादमें एक भिन्न प्रकारका पुट देकर मानव जीवनकी स्थितियोंका चित्रण करती हैं।

'अपना मरण जगतकी हँसी' नामक काव्य-संग्रहमें इनकी समकालीन प्रतिभाका स्पष्ट चित्रण मिलता है। उस समयकी इनकी कविताओंको पढ़कर ऐसा लगता है कि जैसे रोमानी द्वन्द्वोंकी कविता अपना कलेवर बदलकर नये अन्वेषित यथार्थोंकी ओर शीघ्रताके साथ अग्रसर हो रही है। उमर खैय्यामका अनुवाद—'खैय्यामका जाम' (जो उस कालके लेखकोंके आह्लादवादी दृष्टिका परिचायक है और जिसका अनुवाद करना उस समयका फैशन-सा था)—भी इनकी कृतियोंमें-से एक है। खैयामकी मूल भावना और उसके जीवन-दर्शनसे संलग्न जो छायावादी भाषा कुछ-कुछ तुतलाकर यथार्थकी वाणी अपनाना चाहती थी, उसकी भी झलक हमें इस अनुवादमे मिलती है।

इन दृष्टियोंसे कमला देवीकी कृतियाँ हिन्दी साहित्यके

उस अन्तरिम कालके लक्षणोंका परिचय कराती हैं जिनसे होकर हमारी साहित्य-धारा नये मोड़ ढूँढ रही थी। 'पिकनिक' कहानी-सग्रहकी अधिकांश कहानियाँ और 'यात्रा' संग्रहकी अधिकांश कहानियाँ प्रायः उसी मानसिक स्थितिमें अपना चिह्न अंकित कर जाती हैं। इनकी रचनाएँ 'विशाल भारत', 'सरस्वती', 'माधुरी', 'माया', 'रानी' आदिमें प्रकाशित होती रही हैं।

प्रकाशित ग्रन्थोंकी सूची इस प्रकार है—कहानी-संग्रह : 'उन्माद' (१९३४), 'पिकनिक' (१९३९), 'यात्रा' (१९४६), 'प्रसादी कमण्डल' (१९५७)। काव्य-संग्रह : 'अपना मरण जगत्की हँसी' (१९५२), 'खैय्यामका जाम'—रुबाइयात उमर खैय्यामका अनुवाद (१९५२)। —ल० कां० व०

कमलापति त्रिपाठी–जन्म वाराणसीमें सन् १९०५में हुआ। शिक्षा काशी विद्यापीठमें पायी और शास्त्रीकी उपाधि मिली। स्वाधीनता आन्दोलनमें भाग लिया, कई बार जेल गये। उत्तर प्रदेश विधान सभाके सदस्य, सूचना-मन्त्री, गृह-मन्त्री, तथा शिक्षा-मन्त्री पदका गौरव प्राप्त किया। आप हिन्दीके अच्छे विद्वान और वक्ता हैं। गान्धी-दर्शनका विशेष अध्ययन किया है तथा इसी विषयपर 'मंगलाप्रसाद पारितोषिक' भी पाया है। आपने गान्धीजीको श्रद्धांजलि अर्पित करनेके निमित्त 'गान्धीजी' नामक पत्रिकाका सम्पादन किया। यह पत्रिका काशी विद्यापीठने बापूके विचारोंको कम-से-कम व्ययमें भारतके कोने-कोनेमें पहुँचा देनेके लिए प्रकाशित की थी। इसमें देश-विदेशके महान् व्यक्तियों तथा संस्थाओंकी श्रद्धांजलियोंके अतिरिक्त गान्धीजीके लेख, प्रवचन, भाषण इत्यादिका समावेश किया गया।

त्रिपाठीजी दैनिक 'आज'के सहायक सम्पादक तथा कुछ दिनोंतक दैनिक 'संसार' के सम्पादक रहे हैं। 'पत्र और पत्रकार' इस विषयपर उनकी सर्वप्रथम पुस्तक मानी जाती है। हिन्दी पत्रोंका विकास और इतिहास तथा अन्य सामग्री, जिसका समावेश इस पुस्तकमें किया गया है, प्रमाणित समझी जाती है। अपनी वक्तृत्व कलाके लिए आप विशेष प्रसिद्ध हैं। विधान सभामें और सार्वजनिक सभाओंमें आप धाराप्रवाह विशुद्ध हिन्दीमें बोलते हैं और आपके भाषणका श्रोताओंपर समुचित प्रभाव पड़ता है। 'बापू और मानवता' तथा 'बापू और भारत' ये दो पुस्तकें आपने गान्धीजीपर लिखी हैं।

सन् १९४२ में आप प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनके अध्यक्ष बने थे। इस प्रकार हिन्दीकी प्रगतिमें आपने सदा रुचि ली है और पूरा योगदान दिया है। सफल पत्रकार, उत्तम वक्ता और निपुण लेखकके रूपमें आपने हिन्दी भाषाकी शैली और उसके रूपको सुन्दर बनाया है। —शा० द०

करन कवि–इस नामके तीन लेखकोंका उल्लेख 'सरोज'कारने किया है। एक करन कवि बन्दीजन जोधपुरवाले हैं जिनका उपस्थिति-काल सन् १७३१ (सं० १७८७) बतलाया गया है। दूसरे करन भट्ट पन्नानिवासी है जो सन् १७३८ में उपस्थित थे और जिन्होंने बुन्देलवंशावतंस राजा सभासिंह हृदयसाहि पन्ना-नरेशकी आज्ञासे 'बिहारी-सतसई' की 'साहित्य-चन्द्रिका' नामक टीका लिखी है। तीसरे है कर्ण ब्राह्मण बुन्देलखण्डी जिनका उपस्थितिकाल सन् १८०१ (सं० १८५७) बतलाया गया है और जो राजा हिन्दूपति पन्नानरेशके यहाँ रहे थे। इनकी 'साहित्यरस' (सन् १८०४) तथा 'रस कल्लोल' (सन् १८२९) नामक दो कृतियाँ है, जिनमें दूसरीकी प्रति नागरी प्रचारिणी सभा, काशीमें उपलब्ध है। तीनों लेखकोंमें इन अन्तिमकी ही विशेष प्रतिष्ठा है। आलंकारिक कवियोंमें आपका ही नाम लिया जाता है। ये षट्कुल भारद्वाज-गोत्रीय पाण्डेय थे। इनके पिताका नाम श्रीधर था।

करन कविने 'रस कल्लोल'में एक छन्दमें करुणरसमें छत्रसाल महाराजकी मृत्युका उल्लेख किया है और अन्य छन्दोंमें उनकी प्रशंसा है। इन्होंने पूर्ववर्ती संस्कृत आचार्योंके ग्रन्थोंका अध्ययन किया था। इन्होंने स्वयं बताया है कि इनका मत भरतके रस-वर्णनके अनुकूल है। रसका इन्होंने सांगोपांग वर्णन किया है तथा रसोंके रंग, देवता, विभाव तथा अनुभाव आदिका पृथक्-पृथक् उल्लेख किया है। इसके साथ-साथ शब्द-शक्ति तथा वृत्तिका भी वर्णन किया है।

'साहित्य रस' नामक दूसरे ग्रन्थमें इन्होंने लक्षणा, व्यंजना, ध्वनि-भेद, रस-भेद, गुण, दोष आदि सभी काव्य-विषयोंका विस्तारसे वर्णन किया है। इनको काव्यांगोंका सर्वांगपूर्ण वर्णन करनेवाले अधिकारी लेखकोंमें स्थान मिलना चाहिए। ये सफल कलाकार कवि होनेके साथ ही उत्तम रीति-ग्रन्थोंके सफल लेखक भी थे। इनकी प्रवृत्ति मुख्यतः आलंकारिक थी। इनकी रचनाओंमें सरस, मनोहर कविताके दर्शन तो होते ही हैं, सुविशता भी अच्छी झलकती है। इनकी कवितामें रीतिकालीन प्रवृत्तियोंके पूर्ण दर्शन होते हैं तथा यमक एवं अनुप्रासादिके साथ अन्य काव्यगुणोंका सम्यक् समावेश किया गया है। प्रवाहमयी रचना होनेके कारण वह स्मरण करने योग्य भी बन गयी है और भावानुकूल शब्दावलीका प्रयोग और भी प्रभावशाली सिद्ध होता है।

[सहायक ग्रन्थ—शि० स०; हि० सा० इ० : 'रसाल'; हि० सा० बृ० इ० (भाग ६)।] —आ० प्र० दी०

करनेस–अकबरके दरबारमें जिन हिन्दी-कवियोंका सम्बन्ध है, उनको दो वर्गोंमें रखा जा सकता है—'केवल दरबारमें आने-जाने वाले और अकबरके सम्पर्कमें आये हुए कवि' तथा 'स्थायी वृत्ति पाने वाले कवि' (सरयूप्रसाद अग्रवाल : अकबरी दरबारके हिन्दी-कवि)। इन कवियोंकी नामावलीका कुछ संकेत निम्नलिखित सवैयेसे मिलता है—
"पाय प्रसिद्ध पुरन्दर ब्रह्म सुधारस अमृत अमृत बानी। गोकुल गोप गोपाल गुनी करनेस गुनागर गंग सुजानी॥ जोध जगन्न जगे जगदीस जगामग जैत जगत्त है जानी। कोरे अकब्बर सो न कभी इतने मिलिके कविता जु बखानी॥" अकबरके सम्पर्कमें आनेवाले कवि या तो प्रतिभाकी दृष्टिसे सामान्य हैं या उनका साहित्य उपलब्ध नहीं होता। करनेसका भाग्य इसी पिछले वर्गमें पड़ा हुआ है। उनके सम्बन्धमें जितना मिश्रबन्धुओंको ज्ञात था उससे अधिक पीछेके लेखकोंको विदित न हो सका।

करनेसके विषयमें सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि वे

नरहरि कवि (जन्म १५०५ ई०)के साथ अकबरके दरबारमें आया-जाया करते थे ('मिश्रबन्धु विनोद', भाग १, पृ० ३२४, सं० १९९४) और उन्होंने 'कर्णाभरण', 'श्रुतिभूषण', तथा 'भूपभूषण' नामक तीन ग्रन्थ अलंकारसम्बन्धी लिखे थे (रामचन्द्र शुक्ल : 'हिन्दी साहित्यका इतिहास', पृ० २३२, सं० सप्तम)। इनका जन्मकाल सन् १५५४ और रचनाकाल सन् १५८० के लगभग माना गया है (भगीरथ मिश्र : 'हिन्दी काव्यशास्त्रका इतिहास', पृ० ३७, द्वितीय संस्करण)।

मिश्रबन्धुओंके अनुसार 'करनेस'ने खड़ीबोलीमें भी कविता की थी। इनका काव्य सामान्यतः साधारण श्रेणीका है। करनेसके तीनों ग्रन्थ अलंकारसम्बन्धी अथवा अलंकारशास्त्रसम्बन्धी माने जाते हैं। अभीतककी खोजके फलस्वरूप न तो इनमेंसे कोई ग्रन्थ उपलब्ध हुआ है और न पुस्तकोंका कोई उद्धरण किसी अन्य कविकी रचना अथवा संकलनमें प्राप्त होता है।

करनेसके नामको विभिन्न विद्वानोंने अलग-अलग ढंगसे लिखा है। रामचन्द्र शुक्ल तथा विजयेन्द्र स्नातक ('हिन्दी साहित्यका बृहत् इतिहास', षष्ठ भाग) 'करनेस कवि' लिखते हैं, हजारीप्रसाद द्विवेदी तथा भगीरथ मिश्र 'करनेस बन्दीजन' तो सरयूप्रसाद अग्रवालने 'करनेश' लिखा है (अकबरी दरबारके हिन्दी-कवि)। 'करनेसि', 'करणेश', 'कर्नेश' आदि एक ही नामके विभिन्न रूप मात्र हैं।

भगीरथ मिश्रने ('हिन्दी काव्यशास्त्रका इतिहास', द्वितीय संस्करण, पृ० १८०) चन्द्रशेखर बाजपेयीके प्रसंगमें 'असनी निवासी महापात्र करनेश कवि'की चर्चा की है। चन्द्रशेखरका जन्म सं० १८५५ अर्थात् सन् १७९८ ई०में हुआ था। उनके गुरु 'महापात्र करनेश कवि'का जन्म सन् १७५० के आसपास माना जा सकता है। दोनों करनेश कवियोंमें दो सौ वर्षका अन्तर है, दोनों अलग-अलग व्यक्ति हैं।

शिवसिंह सेंगरके अनुसार पन्ना नरेशके आश्रयमें करन नामके किसी कविने सन् १७०० अथवा सन् १८०० के आसपास 'रसकल्लोल' नामक ग्रन्थ लिखा था। भगीरथ मिश्रने 'करन' नामके एक कविकी चर्चा की है जिसने सं० १८६० अर्थात् सन् १८०३ में 'साहित्य रस' नामक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ लिखा था ('हिन्दी काव्यशास्त्रका इतिहास', द्वितीय संस्करण, पृ० ४२)।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० इ०; हि० सा० बृ० इ० (भाग ६); मि० वि० ।] —ओ० प्र०

करुणाभरण नाटक–करुणाभरण नाटकके निर्माणकालके विषयमें मतभेद है। बाबू ब्रजरत्नदास ('हिन्दी नाट्य साहित्य', च० सं०, पृ० ६०) एवं डा० दशरथ ओझा ('हिन्दी नाटक-उद्भव और विकास', प्र० सं०, पृ० १६१) ने इस काव्य नाटकका निर्माण-काल १७१५ ई० (१७७२ वि०) माना है। इन विद्वानोंके इस निर्णयका आधार है, सरस्वती भवन, उदयपुरवाली हस्तलिखित प्रति जो १७७२ वि० की है किन्तु याज्ञिक संग्रहकी एक हस्तलिखित पुस्तकमें ('याज्ञिक संग्रह' ८१२।३६, काशी नागरी प्रचारिणी सभाका आर्यभाषा पुस्तकालय) लिपिकाल १६९४ ई० (१७५१ वि०) मिलता है। इससे यह सिद्ध होता है कि यह काव्य-नाटक १६९४ ई०के पूर्व ही कभी निर्मित हुआ होगा। करुणाभरण नाटकके सातवें अंकमें लिखा है कि लछिरामने इस नाटकको बनाकर तत्कालीन प्रसिद्ध संन्यासी कवीन्द्र सरस्वतीको दिखाया। महात्मा कवीन्द्र सरस्वती 'योगवशिष्ठ सार'के प्रणेता है। 'योगवशिष्ठ सार'का रचनाकाल १६५७ ई० है। अतः हम करुणाभरणका निर्माणकाल १६५७ ई०के लगभग कूत सकते हैं।

लछिरामने कृष्णजीवनसे सम्बन्धित इस काव्य-नाटकको दोहे, चौपाईवाली शैलीमें लिखा। नाटक अंकोंमें विभाजित है और अंकोंका नामकरण राधा अवस्था, राधा मिलन आदि शीर्षकोंमें किया गया है। एक बार महाराज कृष्ण अपनी रानी रुक्मिणी, सत्यभामा इत्यादिके साथ सूर्यग्रहणके अवसरपर कुरुक्षेत्र पधारे। उधर ब्रजवासी भी आये, जिनमें थे नन्द, यशोदा, राधा गोपियाँ एवं गोप। नाटकमें नन्द, यशोदा, राधा एवं गोप-गोपियोंसे कृष्णका मिलन ही वर्णित है।

यद्यपि काव्य-नाटकमें सात अंक मिलते हैं किन्तु ऐसा भासित होता है कि मूलतः कविने छः ही अंक लिखे थे, सातवाँ अंक बादमें जोड़ा गया है। इस निष्कर्षके कई प्रमाण हैं—१. नाटकके जितने हस्तलेख मिले है उनमेंसे अधिकांश छः अंक ही रखते हैं। २. सातवा अंक अलगसे मिलता है। ३. छठे अंकके अन्तमें कविका कथन है—"लछिरामकी बुद्धि बिसाला। छन्द तीनसै करे रसाला॥" यदि छन्दोंकी गणना की जाय तो छठे अंकके अन्ततक तीन सौ छन्द प्राप्त होते हैं। सातवें अंकमें ३५ छंद हैं। यदि सातवें अंकको भी सम्मिलित माना जाय तो छन्द संख्या ३३५ हो जाती है। ४. छठे अंकके अन्ततक नाटक दुःखान्त है क्योंकि राधा और कृष्ण विलग होकर अपने-अपने देशको चले जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि कविने मूलतः दुःखान्त नाटक ही लिखा था। नाटकके नामकरणसे भी यही ज्ञात होता है कि नाटक करुणासे भरा हुआ है। नाटकके दो हस्तलेखोंमें नाम है–'करुणाभर' और 'करुणाभरण'। एक हस्तलेखमें 'करुणानाटक' नाम भी मिलता है (हस्तलेख २८६, काशी नागरी प्रचारिणी सभा)। कविका कथन भी इसी बातकी पुष्टि करता है—"नाटक करुनाभरनि तुम लछिराम करि देहु। प्रेम बढे उर निपट ही, अरु आवै अवरोह। करुणा और सिंगार रस, जहाँ बहुत करि होइ॥" लोगोंने इस दुःखान्त काव्य-नाटकको देखकर भला-बुरा कहा होगा या संभव है कि कवीन्द्र सरस्वतीने देखकर कहा हो—"भई अन्त ठीक नहीं रहा।" फलतः कविने सातवाँ अंक जोड़ दिया। ५. सातवें अंकके अन्तमें पुष्पिका है—"इतिश्री करुणा नाटक देवीदासकृत सम्पूर्ण।" इससे यह भी अनुमान होता है कि सातवाँ अंक किसी देवीदास द्वारा निर्मित हुआ हो। यह देवीदास कौन है? एक दूसरे हस्तलेखके अन्तमें 'देवदत्त गुरु' नाम भी मिलता है (हस्तलेख ५७१।२०, काशी नागरी प्रचारिणी सभा पुस्तकालय)। देवीदास और देवदत्त गुरु एक ही व्यक्तिके नाम हो सकते हैं। ये लछिरामके गुरु थे। सम्भवतः गुरुने कहा हो—दुःखान्त नाटक ठीक नहीं अतः कविने सातवाँ अंक रचा हो।

काव्य-नाटकका कथानक अत्यन्त प्रौढ़ एवं शृंखलित है। पात्र मनोवैज्ञानिक भूमिपर खडे हैं और उनमें अन्तर्द्वन्द्व भी दिखलाई पड़ता है। नाटकमें संघर्ष भी है जो मानसिक अधिक है। सत्यभामाकी ईर्ष्या काव्य-नाटकका केन्द्र-विन्दु है। भाषा सरल, सरस और प्रवाहपूर्ण है। वर्णनों एवं संवादोंमें भी बड़ी सरसता है।

'करुणाभरण नाटक' ब्रजभाषा कालका अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण काव्य-नाटक है—(१) यह नाटक अत्यन्त लोकप्रिय हुआ क्योंकि इसके अनेक हस्तलेख प्राप्त होते हैं। काशी नागरी प्रचारिणी सभामें ही इसके पाँच हस्तलेख सुरक्षित हैं और सरस्वती भवन उदयपुरमे तीन। (२) आगे उदय कविने 'राम करुणाकर' नाटक इसीसे अनुप्राणित होकर लिखा, नामसे यह प्रकट है। (३) प्रबन्ध काव्यकी शैलीपर लिखे ब्रजभाषा काव्य-नाटकोंको प्रायः सभी आलोचकोंने नाटक नहीं माना है। यह नाटक इन सभी विद्वानोंको उत्तर देता हुआ कहता है—हम नाटक है, हाँ, है काव्य-नाटक, जन-नाट्य शैलीके। आप प्रमाण चाहते हैं। मेरे पास है (१) 'करुणाभरण नाटक'का अभिनय हुआ था। कवि कहता है—"रसिक भगत पण्डित कविन कही, महाफल लेहु। नाटक करुनाभरिन तुम लछिराम करि देहु ॥१॥ लछिराम नाटक कियो, दीनो गुनिन पढाय। भेष-रेष निर्तन निपुन लाए नट निस धाइ ॥३॥ सुहृद मण्डली जोरि तहाँ कीनो बडो समाज। जो उनि नाच्यो (काछ्यो पाठान्तर) सो कह्यो कवितामें सुष साज ॥४॥" नाटककार स्पष्टतः घोषित करता है कि रूप-वेश-निपुण नट बुलाये गये। इनको नाटककारने नाटक पढा दिया। तब जननाट्यशैलीपर नाचकर इसका अभिनय हुआ। अभिनय रात्रिमें हुआ। (४) नाटकका दूसरा नाम 'कुरु क्षेत्र लीला' भी मिलता है। "अथ कुरुक्षेत्र लीला लीषते।" इससे भी प्रमाणित होता है कि यह जन-नाट्य शैली रासलीला शैलीमें लिखा गया था। (५) नाटकका निर्माण रसकी दृष्टिसे किया गया था—"करुना और स्यंगार रस, जिहाँ बहुत करि होय।" (६) इस नाटककी पहाडी शैलीके सत्रह चित्र प्राप्त हुए है ('कलानिधि पत्रिका', सम्पादक : रामकृष्णदास, श्रावण २००५ मे श्री गोपालकृष्णका लेख 'करुणाभरण नाटक और उसकी चित्रावली')। ऐसा अनु-मान है कि ये चित्र या तो नाटकके चित्राभिनयके लिए बने थे अथवा दृश्योंकी आयोजनाके लिए। इससे यह भी सिद्ध होता है कि इस नाटकको अच्छी प्रसिद्धि प्राप्त हो गयी थी। (७) नाटकका महत्त्व इससे भी आँका जा सकता है कि तत्कालीन प्रसिद्ध विद्वान् कवीन्द्र सरस्वतीने इस नाटक की परीक्षा की और इसकी सराहना की—"जब कवइन्द्र यूं लई परिक्षा। तब जानी सबगुरुकी सिक्षा। अंक ७॥"

—गो० ना० ति०

कर्ण—कर्ण महाभारतके मुख्य पात्र एवं दानवीरके रूप में प्रसिद्ध हैं किन्तु कर्ण नामसे और भी अनेक व्यक्तियों का उल्लेख मिलता है।

१. कुन्तीके गर्भसे उत्पन्न सूर्यके पुत्र थे। कुन्तीने एक बार दुर्वासाका विशेष आदर-सत्कार किया था। प्रसन्न होकर उन्होंने कुन्तीको एक मन्त्र बताया था, जिसके द्वारा वे किसी भी देवतासे सहवास कर सकती थीं। कुन्ती उस समय कुमारी ही थीं। उत्सुकतावश उन्होंने सूर्यका आह्वान किया। उनके सहवाससे कर्ण-का धनुष, वाण, कुण्डल, कवच सहित जन्म हुआ। परन्तु कुन्तीने सामाजिक मर्यादावश अपने नवजात शिशुको अश्व नदी में छोड दिया। वहाँसे धृतराष्ट्रके सूत अधिरथने उसे लाकर अपनी पत्नी राधाको दे दिया। इस सूत दम्पतिने ही कर्णका पालन-पोषण किया था। इसीसे कर्णके लिए 'सूतपुत्र' तथा 'राधेय' नामोंका भी प्रयोग मिलता है। कर्णको शस्त्र विद्याकी शिक्षा द्रोणाचार्यने ही दी थी किन्तु कर्णकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें सन्दिग्ध होकर उन्होंने इन्हे ब्रह्मास्त्रका प्रयोग नहीं सिखाया। अतः कर्ण परशुरामके पास गये और अपने को ब्राह्मण बताकर शस्त्र विद्या सीखने लगे। एक दिन परशुरामको किसी प्रकार यह ज्ञात हो गया कि यह ब्राह्मण नहीं है। इसलिए उन्होंने कर्णको शाप दिया कि जिस समय तुम्हें इस विद्याकी आवश्यकता होगी उस समय तुम इसे भूल जाओगे। कर्ण और दुर्योधन प्रारम्भसे ही मित्र थे। कर्णने दुर्योधनके लिए सफलतापूर्वक अश्वमेध यज्ञ भी किया था। जिस समय द्रौपदीके स्वयंवरके लिए राजागण द्रुपदके यहाँ एकत्र हुए थे दुर्योधनने कर्णको उसके उपयुक्त सिद्ध करनेके लिए उन्हे कलिंग देशका अधिपति बनाया था। द्रुपदके यहाँ अर्जुनके पूर्व कर्णने मत्स्यवेध किया था परन्तु द्रौपदीने कर्णके साथ विवाह करना अस्वीकार कर दिया। फलतः कर्णने अपनेको विशेष रूपसे अपमानित समझा। कर्णकी पत्नीका पद्मावती तथा पुत्रोंका वृषकेतु, वृषसेन आदि नामोल्लेख मिलता है। कर्ण और अर्जुन बाल्यकालमे ही परस्पर प्रतिद्वन्द्वी थे। सूतपुत्र होनेके कारण अर्जुन कर्णको हेय समझते थे। उन्हें यह ज्ञात नहीं था कि कर्ण उनके बडे भाई है। भीष्म भी कर्णको इसी कारण अधिरथ कहते थे। कर्णने पाँचों पाण्डवोंका वध करनेका संकल्प किया था पर माता कुन्तीके कहनेपर उन्होने अपने बधकी प्रतिज्ञा अर्जुनतक ही सीमित कर दी थी।

कर्णकी दानवीरताके भी अनेक सन्दर्भ मिलते है। उनकी दानशीलताकी ख्याति सुनकर इन्द्र उनके पास कुण्डल और कवच माँगने गये थे। कर्णने अपने पिता सूर्यके द्वारा इन्द्रकी प्रवंचनाका रहस्य जानते हुए भी उनको कुण्डल और कवच दे दिये। इन्द्रने उसके बदलेमें एक बार प्रयोगके लिए अपनी अमोघ शक्ति दे दी थी। उससे किसीका वध अवश्यम्भावी था। कर्ण उस शक्तिका प्रयोग अर्जुनपर करना चाहते थे किन्तु दुर्योधनके निर्देशपर उन्होंने उसका प्रयोग भीमके पुत्र घटोत्कचपर किया था। अपने अन्तिम समयमें पितामह भीष्मने कर्णको उनके जन्मका रहस्य बताते हुए महाभारतके युद्धमें पाण्डवोंका साथ देनेको कहा था किन्तु कर्णने इसका प्रतिरोध करके अपनी सत्यनिष्ठाका परिचय दिया। भीष्मके अनन्तर कर्ण कौरव सेनाके सेनापति नियुक्त हुए थे। अन्तमें तीन दिन तक युद्ध संचालनके उपरान्त अर्जुनने उनका वध कर दिया। कर्णके चरित्रमें आदर्शोंका दर्शन उनकी दानवीरता एवं युद्धवीरताके युगपत् प्रसंगोंमे किया जा सकता है।

२. कर्णका दूसरा उल्लेख मध्ययुगमें मेवाड़के प्रसिद्ध राणा प्रतापसिंहके पौत्रके रूपमें प्राप्त होता है। इनका पूरा नाम कर्णसिंह था। ये अमरसिंहके पुत्र थे। राजकीय सत्ताकी दुर्बलता एवं अस्वस्थताके कारण अमरसिंहने सं० १६७१में तत्कालीन मुगल शासक जहाँगीरसे सन्धि कर ली थी। उसी समय कर्णसिंह राज्यका कार्यभार देखने लगे थे। इनका औपचारिक राज्याभिषेक सं० १६७६में हुआ था। इन्होंने अपने राज्यकालमें कई महल बनवाये, पुराने महलोंकी मरम्मत करायी। ये पुण्यात्मा भी थे। सं० १६८४में इनका देहावसान हो गया।

३. कर्णका तीसरा उल्लेख गुजरातके प्रसिद्ध राजा भीमदेवके पुत्रके रूपमें प्राप्त होता है। इनका राज्यकाल सं० ११२०से ११५० तक रहा। इतिहासप्रसिद्ध जयसिंह सिद्धराज इन्हींका पुत्र था (दे० मैथिलीशरण गुप्तका 'सिद्धराज')।

४. गुजरातमें ही एक अन्य चालुक्य राजाका भी नाम कर्ण था। इनके पिताका नाम सारंगदेव था। इनके राज्यकालका उल्लेख सं० १३५३से १३६० तक प्राप्त होता है।

कृष्ण-कथा काव्योंमेंकर्णका चरित्र वर्णित हुआ है (दे० 'कृष्णायन' आदि काव्य ग्रन्थ : द्वारिकाप्रसाद मिश्र)। इसके अतिरिक्त कृष्ण-काव्यके कवियोंने भी परम्परागत विशेषताओंके साथ कर्णका नामोल्लेख किया है (सू० सा० पृ० ७६०)। —रा० कु०

कर्णाभरण–इस नामकी दो अलंकार-सम्बन्धी पुस्तकोंका उल्लेख मिलता है; एकके रचयिता करनेस थे, दूसरीके गोविन्द। करनेस अकबरके समकालीन कवि थे और नरहरिके साथ उनका अकबरी दरबारमें आना-जाना भी था। नरहरि और करनेसके जन्मकालमें इतना अन्तर है कि करनेसको नरहरिका शिष्य माना जा सकता है, मित्र नहीं। करनेसका कहीं भी नरहरिके बिना उल्लेख नहीं है।

करनेसकी तीन पुस्तकें प्रसिद्ध हैं—'कर्णाभरण', 'श्रुति-भूषण' तथा 'भूपभूषण'। इनकी रचना सोलहवीं शताब्दीके अन्तिम पादमें हुई होगी। अनुपलब्धिके कारण इन रचनाओंके विषयमें कुछ कहा नहीं जा सकता केवल दो अनुमान लगाए जा सकते हैं। प्रथम यह कि इन पुस्तकोंके नामसे विदित होता है कि इनका विषय अलंकार अथवा अधिक-से-अधिक अलंकार-शास्त्र रहा होगा। दूसरा यह कि इन तीनोंमें महत्त्वकी सर्वाधिक अधिकारिणी कृति 'कर्णाभरण' ही रही होगी—सभी विद्वानोंने 'कर्णाभरण'को गणना-क्रममें प्रथम स्थान दिया है। यदि 'कर्णाभरण' अथवा करनेसकी अन्य कोई रचना प्राप्त हो सके तो वह हिन्दी रीति-साहित्यका एक प्रमुख प्रकाश-चिह्न होगी, क्योंकि उसका रचनाकाल केशवदासकी रचनाओंसे भी पहिले का होगा। अलंकार-विषयपर करनेससे पूर्व हिन्दीमें लिखने वाले दो कवियोंके नाम ही लिये जाते हैं, 'पुण्य' तथा 'गोपा', किन्तु उनकी रचनाएँ भी उपलब्ध नहीं हैं।

गोविन्द कविने सन् १७४०में अलंकार-विषयपर 'कर्णाभरण' नामकी एक पुस्तक लिखी जो सन् १८०४में भारत जीवन प्रेस, काशीसे मुद्रित तथा प्रकाशित हुई। यह ४६ पृष्ठोंमें दोहोंमें केवल अलंकार-विषयका वर्णन करती है (ओमप्रकाश 'हिन्दी-अलंकार-साहित्य', पृ० १४४)। इसकी भाषा सरल तथा शैली सुबोध है; विद्यार्थियोंके लिए यह 'भाषा-भूषण'से भी अधिक उपयोगी हो सकती है। यह 'भाषा-भूषण'की शैलीमें लिखी गयी है पर कविने उपयोगिताका विशेष ध्यान रखा है। अतिमधुर शैलीमें संक्षेपतः विषयको हृदयंगम कराया है। पुस्तकके अन्तिम दोहेमें इसकी रचना-तिथि भी दी हुई है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० बृ० इ० (भा० ६); हि० अ० सा०।] —ओ० प्र०

कर्दम–एक प्रजापति थे। इनके पिताका नाम कीर्तिभानु तथा पुत्रका नाम अनेग था। इनकी उत्पत्ति ब्रह्माकी छाया से मानी जाती है। कर्दमका विवाह स्वायंभुव मनुकी कन्या देवहूतिसे हुआ था। देवहूतिने कपिल ऋषिको जन्म दिया। कपिल सांख्य-दर्शनके रचयिता थे। ऐसा कहा जाता है कि सुयोग्य पुत्र प्राप्तिकी कामनासे कर्दमने दस सहस्र वर्षोंतक घोर साधना की थी (सू० सा० प० ३९४)। —रा० कु०

कर्बला–अरबमें 'फरात' नदीके किनारे एक विशाल मैदान है। इसका पूरा नाम 'कर्बलाय मुअला' है। इस्लामके अनुसार इस मैदानमें हजरत इमाम हुसैन अपने परिवार सहित इस्लाम धर्मकी रक्षा हेतु धर्मयुद्ध (जेहाद)के लिए आये थे तथा अपने परिवारसहित तीन दिनोंतक भूखे-प्यासे रहे। अन्तमें उन्हें वहीं वीरगति (शहादत) प्राप्त हुई। उसी समयसे यह मैदान इस्लामी तीर्थ स्थानके रूपमें प्रसिद्ध है। प्रतिवर्ष विश्वके विभिन्न देशोंसे अनेक मुसलमान यात्री यहाँ आते हैं (दे० 'काबा-कर्बला', पृ० ६५)। —रा० कु०

कर्मभूमि–पाँच भागोंमें विभाजित प्रेमचन्दके इस उपन्यास (प्रका० १९३२ ई०)में लाला समरकान्त, उनके पुत्र अमरकान्त, पुत्रवधू सुखदा (रेणुकान्त सुखदाका पुत्र), पुत्री नैना, अमरकान्तकी सास रेणुका देवी, पठानिन और उसकी पुत्री सकीना, हाफिज हलीम और उनके पुत्र सलीम, धनीराम और उनके पुत्र मनीराम, डा० शान्तिकुमार और स्वामी आत्मानन्द, गूदड़, पयाग, काशी, सलोनी और मुन्नी आदिकी कहानी है। 'कर्मभूमि'में परिवारोंकी कथा है। इसमें प्रेमचन्द देशानुराग, समाज-सुधार, मदिरा-निवारण, अछूतोद्धार, शिक्षा, गरीबोंके लिए मकानोंकी समस्या, देशके प्रति कर्त्तव्य, जन-जागृति आदिकी ओर संकेत करते हैं। कृषकोंकी समस्या उपन्यासमें है तो, किन्तु वह प्रमुख नहीं हो पायी। सम्पूर्ण कथाका कार्य-क्षेत्र प्रधानतः काशी और हरिद्वारके पासका देहाती इलाका है।

अमरकान्त बनारसके रईस समरकान्तके पुत्र हैं। वे विद्यार्थी-जीवनसे ही सार्वजनिक जीवनमें कार्य करनेके शौकीन हैं। अपने मित्र सलीमकी आर्थिक सहायता भी करते रहते हैं। प्रारम्भमें उनके और उनके लोभी पिताके आदर्शोंमें काफी अन्तर बना रहता है। अमरकान्तका विवाह लखनऊके एक धनी परिवारकी एकमात्र सन्तान सुखदासे

हो तो जाता है, किन्तु दोनोंके दृष्टिकोणोंमें साम्य नहीं है। साथ-साथ रहते हुए भी दोनोंको एक-दूसरेसे प्रेम नहीं है। सुखदाको अपने पतिका खादी बेचना और सार्वजनिक कार्य पसन्द नहीं। पत्नीमे प्रेम न पाकर अमरकान्त सकीनाकी मुहब्बतमें पड जाते हैं। वे पहलेसे ही डॉ० शान्तिकुमारके साथ काशीमें कार्य करते थे। गोरे सिपाहियो द्वारा सताई गयी मुन्नीके मुकदमेके सम्बन्धमें उन्होंने काफी कार्य किया। व्यावहारिकता और आदर्शमें संघर्ष होनेके कारण अपने पिता तथा सुखदासे उनका पहलेसे ही जी ऊबा हुआ था, लेकिन जब सकीनाके साथ उनका प्रेमपूर्ण व्यवहार देखकर पठानिनने उन्हे फटकारा तो वे शहर छोड़कर चले गये।

शहर छोडकर वे हरिद्वारके पास एक ऐसे देहाती इलाकेमे पहुँचे जहाँ मुर्दाखोर और अछूत कहे जाने वाले लोग और किसान रहते थे। वे सलोनीके यहाँ रहते हुए गूदड, पयाग, काशी आदिके सम्पर्कमें आये और गाँववालों-में शिक्षा, अच्छी-अच्छी आदतो, सफाई आदिका प्रचार करने लगे। यहीं रहते हुए उनकी मुन्नीसे भेंट हुई। दोनोंमे परस्पर आकर्षण भी उत्पन्न हुआ। काशीसे आये आत्मा-नन्दसे उन्हे अपने सेवा-कार्यमें बराबर सहायता प्राप्त होती रहती थी। कृषकोंकी सहायताके लिए वे महन्त आशाराम गिरिसे मिले किन्तु उन्हे अधिक सफलता प्राप्त न हुई किन्तु काशीमें सुखदाके त्यागका समाचार सुनकर वे भी उत्तेजित हो उठते है और लगानबन्दीका आन्दोलन शुरू कर देते हैं। उनका पुराना मित्र सलीम, अब आई० सी० एस० ऑफिसर और उस इलाकेका इचार्ज, उन्हे पकड ले जाता है। किन्तु लाला समरकान्त, जिनमें अब परिवर्तन हो चुका था, जन-सेवाकी ओर मुडकर उसी इलाकेमें पहुँच जाते हैं और किसान-आन्दोलनके सिलसिलेमें कारावास-दण्ड भी भुगतते हैं। उनके प्रभावसे सलीमके भी हृदयमें परिवर्तन हो जाता है। वह स्वयं आन्दोलनकी बागडोर सम्हालता है और अन्तमें पकड़ा जाता है। तत्पश्चात् मुन्नी और सकीना (वह भी उस इलाकेमे पहुँच जाती है) भी गिरफ्तार हो जाती हैं। उग्र आत्मानन्द भी सरकारी शिकंजेसे बच नही पाते।

उधर काशीके मन्दिरोंमे अछूतोके प्रवेश, गरीबोके लिए मकान बनवाने आदि समस्याओको लेकर आन्दोलन छिड जाता है और सरकारसे सघर्ष होता है। इस आन्दोलनका संचालन सुखदा, पठानिन, रेणुकादेवी और यहाँतककी समरकान्त भी करते हैं। ये सब और डॉ० शान्तिकुमार जेल-यात्रा करते है। नैना भी वहाँ आ जाती है और एक जुलूसका नेतृत्व करते हुए चुंगीकी ओर जाती है। वहाँ उसका पति मनीराम उसे गोलीसे मार देता है। उसकी मृत्युमे चुंगीके मेम्बरोंमे भी हृदय-परिवर्तन हो जाता है और वे गरीबोंके मकानोंके लिए जमीन दे देते है। जो आन्दोलन सुखदाने प्रारम्भ किया था, उसका अन्त नैनाकी बलिसे होता है। लखनऊके सेण्ट्रल जेलमें अमरकान्त, मुन्नी, सकीना, सुखदा, पठानिन, रेणुका आदि सब मिल जाते हैं। धनीरामका पुत्र मनीराम मृत्युको प्राप्त होता है।

अन्तमें सेठ धनीरामकी मध्यस्थतासे सरकार द्वारा एक कमिटी नियुक्त हो जाती है जो सरकारसे मिलकर किसानों और गरीबोकी समस्याओंपर विचार करेगी। उस कमिटीमे अमर और सलीम तो रहते ही हैं, उनके अतिरिक्त तीन अन्य सदस्योंको चुननेका उन्हें अधिकार दिया गया। सर-कारने भी उस कमिटीमें दो सदस्य अपने रखे। यह समझौते-वाली नीति १९३० के कांग्रेस और सरकारके अस्थायी समझौतेके प्रभावके रूपमें है। सरकार तब कैदियोंको छोड देती है। अमरकान्त, सकीना और मुन्नीको बहनके रूपमें स्वीकार करते है और वे (अमरकान्त) और सुखदा एक-दूसरेका महत्त्व पहचानते है। —ल० सा० वा०

कलिंग–कलिंग प्रदेशका वर्णन सर्व-प्रथम महाभारतमें कटकके सुदूर-दक्षिण स्थित 'कोरो-मण्डल' प्रायद्वीपके रूपमें मिलता है। महाभारतके अनुसार 'दीर्घाला' या 'सुदेशना'-के पुत्र कलिंगनरेशने सर्वप्रथम यहाँके निवासियोंको एकत्रकर यहाँ राज्यकी स्थापना की थी। एक दूसरी परम्पराके अनुसार यह द्वीप उडीसासे दक्षिण गोदावरी नदीके मुहानेपर स्थित एक देश—विशेष है जिसकी राजधानीका नाम कलिग कहा जाता है। अशोकने कलिंग-विजयके अनन्तर ही ग्लानिके कारण युद्ध-विराम करके बौद्ध-धर्म ग्रहण किया था। —रा० कु०

कल्कि–विष्णुका अन्तिम अवतार माना जाता है। इसके अतिरिक्त इसी आधारपर 'कल्कि पुराण'का भी नामकरण हुआ है। इसके अनुसार विष्णुका 'कल्कि' अवतार कलियुगके अन्तमें होगा। कल्कि रूपमे अवतरित होकर विष्णु 'कलि'का सहार कर सतयुगका आविर्भाव करेंगे। इनके साथ ही पद्मा रूपमे लक्ष्मी भी अवतार लेंगी। कल्कि इनका पाणिग्रहण करेगे। इसके बाद विश्वकर्मा द्वारा निर्मित 'शंभल' नगरमे ये वास करेंगे। वही बौद्धोका दमन तथा कुथोदर नामक राक्षसीका वध करेंगे। इसके उपरान्त 'मल्लाह' नामक नगरसे अवरुद्ध शशिध्वज नामक राजाकी मुक्ति होगी। मल्लाहके निवासकालमे शय्याकर्ण राजासे इनका युद्ध होगा। इसके उपरात भूलोकके समस्त अत्याचारोके विनाशके बाद सतयुगका आविर्भाव होगा। भूतल पर देव तथा गन्धर्व आदि प्रकट होंगे। अन्तमें कल्कि भगवान वैकुण्ठ लौट जायेंगे। —रा० कु०

कल्पना–मासिक पत्र जो १९४९ से १९५१ तक द्वैमासिक रहा। प्रकाशन हैदराबादसे होता है। प्रारम्भसे ही इसका स्वरूप साहित्यिक रहा है। इसके प्रधान सम्पादक हैं आर्येन्द्र शर्मा। सम्पादक-मण्डलमे बदरी विशाल पित्ती, जगदीश मित्तल, गौतम राव, मुनीन्द्र है। कल्पनाके भाषा और हिज्जे सम्बन्धी अपने नियम है जिनका वह पालन करती है। सामग्री-चयनसे लेकर मुद्रणतकमे उसकी सुरुचि द्रष्टव्य है।

साहित्यिक दृष्टिसे कल्पना हिन्दी पत्रोंमें अपना अग्रिम स्थान रखती है। वर्तमान दशकके हिन्दी साहित्यको अग्रसर करनेमे कल्पनाका महत्वपूर्ण योगदान है। नये तथा पुराने सभी प्रकारके लेखकोका सहयोग उसे प्राप्त रहा है। वैसे भी कल्पनाने कभी अपने आपको किसी एक लेखक-मण्डलमे बाँधना नहीं चाहा। उसकी सम्पादकीय नीति उदार है, पर सामग्रीके चयनमें स्तरका बराबर ध्यान रखा जाता है। —श्री० रा० व०

कल्याण—इसका प्रकाशन अगस्त १९२६से बम्बईमें हुआ। एक वर्षके बाद यह पत्रिका गोरखपुरसे निकलने लगी। इसके सम्पादक हनुमान प्रसाद पोद्दार हैं। हिन्दी पत्रोंमें इसकी ग्राहक संख्या सबसे अधिक है। इसके प्रमुख लेखक हैं श्री चक्र, भगवान्, जयदयाल गोयन्दका, साधु-सन्त तथा संस्कृतके मर्मज्ञ। इसके अतिरिक्त कभी-कभी विदेशियोंके लेखोंके अनुवाद भी प्रकाशित होते हैं। ये विद्वान् निश्चय ही भारतीय धर्मके पोषक होते हैं।

इस पत्रिकाके विषय भजन, योग, धर्म तथा अध्यात्म हैं। इसके प्रतिवर्ष निकलनेवाले विशेषांक महत्त्व रखते हैं। प्रमुख विशेषांकोंमें कुछके नाम निम्नांकित हैं—

भगवन्नामांक, भक्तांक, गीतांक, रामायणांक, कृष्णांक, ईश्वरांक, शिवांक, शक्ति-अंक, योगांक, संतांक, मानसांक, गीता-तत्त्वांक, साधनांक, श्रीमद्भागवतांक, गौ-अंक, नारी अंक, उपनिषदांक। —ह० दे० बा०

कल्याणी—प्रसादकृत नाटक 'चन्द्रगुप्त'की पात्र। मगधकी राजकुमारी कल्याणी नन्दके विलास भवनमें पली हुई है फिर भी वह वीरता, साहस एवं आत्म-सम्मानकी भावनासे परिपूर्ण है। महलोंके कुत्सित विलासकी छाया उसके गरिमापूर्ण व्यक्तित्वको विकृत नहीं कर पाती। उसके जीवनकी दो आकांक्षाएं थीं—दुर्दिनके बाद आकाशके नक्षत्र-विलास-सी चन्द्रगुप्तकी छवि और पर्वतेश्वरसे प्रतिशोध; क्योंकि उसने उसके पिता नन्द द्वारा प्रस्तावित कल्याणीके विवाह-सम्बन्धको अस्वीकार कर दिया था। कल्याणी उसे नीचा दिखानेके लिए एक गुल्म-सेना लेकर ग्रीक-युद्धके अवसरपर उपस्थित होती है। घनघोर युद्ध के पश्चात् जब पर्वतेश्वर अपनी पराजय स्वीकार करता है तब भी कल्याणी उसे युद्ध करनेके लिए ललकारती है—"इन थोड़े-से अर्धजीवी यवनोंको विचलित करनेके लिए पर्याप्त मगध सेना है। महाराज, आज्ञा दीजिए।" इसकी यह साहसपूर्ण दर्पमयी वाणी पर्वतेश्वरके हृदयमें भयंकर भालेके आघातसे भी अधिक तीव्र प्रहार करती है। वह हतप्रभ होकर उसे अपनी निकृष्ट पराजय मानता है। मगधकी क्रान्तिके समय भी कल्याणी ही पर्वतेश्वरको बन्दी बनानेका प्रयत्न करती है परन्तु असफल होती है फिर भी उसका यह कार्य उसके असीम साहस एवं रण-कौशलका परिचायक है।

कल्याणीके जीवनका मधुर पक्ष अत्यन्त निराशापूर्ण है। वह अपने शैशवके साथी चन्द्रगुप्तको ही अपना उपयुक्त वर समझती है क्योंकि चीतेसे उसकी रक्षा करके चन्द्रगुप्तने उसके हृदयको जीत लिया है। वह पचनदके युद्धमें पर्वतेश्वरसे प्रतिशोध लेनेके साथ ही चन्द्रगुप्तको देखनेके लिए जाती है तथा अपने इस भावको उसके समक्ष व्यक्त करती हुई कहती है—"केवल तुम्हें देखनेके लिए! मैं जानती थी कि तुम युद्धमें अवश्य सम्मिलित होगे।" किन्तु दुर्भाग्य-से उसके कोमल हृदयकी पुकारको उसके निकट सम्बन्धी भी नहीं सुन पाते। उसे न तो उसका पिता समझ पाता है और न चन्द्रगुप्त। जीवनके अन्तिम पलोंमें ही चन्द्रगुप्त उसे पहचान पाता है। एक ओर पिताकी भक्ति और आत्म-सम्मानकी भावना और दूसरी ओर पितृघाती चन्द्रगुप्तसे प्रेम सम्बन्ध—इन्हीं दो परस्पर विरोधी भावोंमें कल्याणी पिस जाती है। कुछ समयतक तो वह अपनी इस आन्तरिक पीड़ाको छिपाये रखती है किन्तु बादमें उसे आत्महत्याके अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग ही नहीं मिलता। आदिसे अन्ततक कल्याणीका चरित्र द्वन्द्व एवं दुःखसे परिपूर्ण है। वह अपनी वंशकी मर्यादाके अनुकूल नारी जातिके आत्म-सम्मानकी रक्षा करते हुए विरोधी परिस्थितियोंका साहस के साथ सामना करती है। कल्याणीका चन्द्रगुप्तसे परिणय प्रदर्शित न कर नाटककारने आत्म-बलिदान द्वारा उसे सदाके लिए भावुकोंकी चिरकालीन सहानुभूति प्राप्त करनेका अधिकारी बना दिया है। —के० प्र० चौ०

कवि कल्पद्रुम (साहित्यसार)—रामदास, जिनका वास्तविक नाम राजकुमार था, द्वारा रचा हुआ काव्यशास्त्र ग्रन्थ। इसकी रचना सन् १८४४में आगरामें हुई थी। इसकी एक हस्तप्रति टीकमगढ़के सवाई महेन्द्र पुस्तकालयमें है। यह ग्रन्थ काव्य-शास्त्रके व्यापक सिद्धान्तोंके आधारपर रचा गया है और इसमें ध्वनि-सिद्धान्तको मुख्य रूपसे स्वीकार किया गया है। मम्मटके 'काव्य-प्रकाश'के समान इसीके अन्तर्गत शास्त्रके अन्य अंगोंका विवेचन किया गया है। कवि-आचार्यने इस ग्रन्थकी रचना संस्कृत तथा हिन्दीके अनेक शास्त्र-ग्रन्थोंका अनुशीलन करनेके बाद ही की है।

रामदासमें विवेचनकी प्रतिभा विशेष रूपसे देखी जा सकती है। तुलसीकी चौपाई "आखर अर्थ अलंकृत नाना। छन्द प्रबन्ध अनेक विधाना"के आधारपर अपनी वार्तामें रामदासने विषयका विवेचन किया है। इस प्रकारकी व्याख्याओंकी विशेषता है कि कविने तुलसीके कथनसे सम्बद्ध करके काव्य-सिद्धान्तोंका विवेचन किया है जो अपने-आपमें महत्त्वपूर्ण कार्य है। इनकी शैली सरल तथा स्पष्ट है और सभी शास्त्रीय विषयोंके विवेचनमें लेखककी विद्वत्ता प्रकट होती है। काव्य-हेतु, काव्य-फल, भाषा-भेद, काव्य-प्रकार, शब्दार्थ-भेद, रसके अंग, अलंकार, गुण तथा दोष आदि सभी विषयोंका विवेचन ध्वनि-सिद्धान्तके आधारपर सुस्पष्ट शैलीमें इस ग्रन्थमें मिलता है। ग्रन्थमें आचार्यत्वकी छाप है और इस दृष्टिसे यह हिन्दी रीति-परम्पराका महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।

[सहायक ग्रन्थ—खो० रि० (सं० १, १३); रा० ह० ग्र० खो० (भा० ३); हि० भू०; शि० स०; मि० वि० (भा० २)।] —स०

कविकुलकंठाभरण—कवि दूलहकृत अलंकारोंका यह एक श्रेष्ठ और प्रामाणिक ग्रन्थ है। इसका रचनाकाल क्या है, ग्रन्थसे पता नहीं चलता पर अनुमानतः सन् १७४३ माना जा सकता है। प्रकाशित रूपमें दुलारेलाल भार्गव, लखनऊ से प्राप्त है। कुल ८५ छन्दोंमें (८ दोहे, १ सवैया और शेष कवित्त) कविने ११५ अलंकारोंका (मिश्र बन्धुओंने अपनी टीकामें भ्रमवश ११७ संख्या दी है) वर्णन इस प्रकार किया है कि स्पष्ट परिभाषाके साथ ही साथ पाठकको लक्षण और उदाहरणके लिए कठिनाई न उठानी पड़े। इसलिए लक्षणके ठीक बाद उदाहरण दिये गये हैं। कवित्त और सवैया छन्दोंका प्रयोग ही इस सुविधाका कारण है, क्योंकि दोहा जैसे छोटे छन्दका प्रयोग करनेके कारण

'भाषा-भूषण' जैसे अलंकार ग्रन्थोंमें इसकी गुंजाइश सम्भव नहीं हो सकती। दूलहका मुख्य उद्देश्य पाठकको इस योग्य बनाना था कि वह सभामें अपनी विद्वत्ता प्रकट कर सके इसलिए प्रारम्भमें ही उन्होंने इसे स्पष्ट कर दिया है कि—"जो या कण्ठाभरनको कण्ठ करे चितलाय। सभा मध्य सोभा लहे अलंकृती ठहराय।" प्रायः अन्य अलंकार ग्रन्थोंके समान ही दूलहने भी 'कवि कुल कण्ठाभरण'की रचनाके लिए 'कुवलयानन्द' और 'चन्द्रालोक'को ही अपना आधार बनाया। इसे वे स्वीकार भी करते हैं—"'कुवलयानन्द' चन्द्रालोकके मते ते कहीं लुपता ये आठों-आठो प्रहर प्रमानिये।" किन्तु उनसे इनकी भिन्नता भी कहीं-कहीं स्पष्ट है। इन्होंने इन ग्रन्थोंके समान दोहा जैसे छोटे छन्दोंमें लक्षण-उदाहरण प्रस्तुत नहीं किये, यद्यपि "थोरे क्रम-क्रम ते कही अलकारकी रीति"के द्वारा अपनी शैलीको भी संक्षिप्त माना है। विषयप्रतिपादनमें कहीं-कहीं अन्तर भी है।

दूलहने उन पन्द्रह अलंकारोंका वर्णन किया है जिन्हे प्राचीन कवियोंने छोड दिया था तथा 'कुवलयानन्द' और 'चन्द्रालोक'मे जिनमें सात अलंकारों रसवत, प्रेय,ऊर्जस्वित्, समाहित, भावोदय, भावसन्धि, भावशबलताका सम्बन्ध रससे माना गया है, किन्तु दूलहने अन्य आठ अलंकारों—यथा, अनुमिति, उपमिति, शब्द, अर्थापत्ति, अनुपलब्धि, सम्भव, ऐतिह्यका वर्णन मीमांसा और तर्कशास्त्रके शब्दोंके माध्यमसे किया है। दूलह और पद्माकरके अतिरिक्त इनका वर्णन पूर्ववर्ती आचार्योंके ग्रन्थोंमें नहीं मिलता। केवल भिखारीदासने प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, अनुपलब्धि, सम्भव और अर्थापत्तिका उदाहरण मात्र दिया है जबकि दूलहने लक्षण और उदाहरणके साथ ही साथ ऐतिह्य आदि नामके नये अलंकारोंको भी जोडा है, संकर और संसृष्टि अलंकारका भी न्याय शब्दावलीमें विवेचन किया है और संकरके भेदों द्वारा अलकारोंकी श्रीवृद्धि की है। इस प्रकार उन्होंने काव्यगत रस और भावकी स्थितियोंसे उत्पन्न चमत्कारिक स्थलोंकी पहचान करके अपनी तीव्र कविदृष्टि द्वारा ज्ञानके अन्य क्षेत्रोंमे शब्द लेकर उनको प्रकाशित करनेका प्रयत्न किया है।

उद्देश्यकी सीमाके कारण प्रायः लक्षणोंको संक्षिप्त कर देना पडा है। अधिकसे अधिक अलंकारोंका कम-से-कम स्थानमे वर्णन करनेकी प्रवृत्तिके कारण कहीं-कहीं अत्यधिक क्लिष्टता आ जाती है। जिन अलकारोंके कई भेद प्रचलित हैं, उनके लक्षण न देकर केवल भेदोंकी विशेषताओंको समझाया गया है पर इनके लक्षण स्पष्ट और सुगम हैं—तुल्ययोगिता, दीपक, प्रतिवस्तूपमा, दृष्टान्त, निदर्शना और विभावना। ये परिभाषाएँ इतनी पूर्ण है और इनका वर्णन इस कुशलताके साथ किया गया है कि ग्रन्थ अपने नामकी सार्थकता सिद्ध करता है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० का० इ० (भ० मि०); हि० सा० इ०: रा० शु०; हि० सा० बृ० इ० (भा० ६)।] —ह० मो०

कविकुलकल्पतरु—इस ग्रन्थका रचनाकाल मिश्रबन्धुओं तथा रामचन्द्र शुक्लने १६५० ई० (सं० १७०७) माना है परन्तु इसमें 'शृंगार मंजरी'का भी उल्लेख है जिसकी रचना १६६३ ई० (सं० १७२०)के लगभग मानी गयी है। ऐसी दशामें सत्यदेव चौधरीका विचार है कि इसका रचनाकाल १६६८ ई० (सं० १७२५) के आसपास होगा (दे० 'हिन्दी रीति परम्पराके प्रमुख आचार्य', पृ० ३६)। भगीरथ मिश्रने इस ग्रन्थकी एक हस्तलिखित प्रतिका दतियाके राजकीय पुस्तकालयमें होनेका उल्लेख किया है। इसका प्रकाशन नवलकिशोर प्रेस, लखनऊसे हुआ है।

'कविकुलकल्पतरु'में कुल ११३३ पद्य हैं और यह आठ प्रकरणोंमें विभाजित है। प्रथम प्रकरणमें काव्य-भेद, काव्य-लक्षण, काव्य-पुरुष-रूपक और गुण-विवेचन है। दूसरे और तीसरे प्रकरणोंमें शब्द और अर्थके भेदके साथ अलंकारोंका निरूपण है। चौथे प्रकरणमे काव्यगत दोषोंपर विचार किया गया है। पाँचवें प्रकरणके तीन भाग हैं—प्रथम भागमें शब्दार्थ निरूपण है, दूसरेमे रसध्वनिको छोड़कर ध्वनिके शेष भेदोपभेदोंका तथा तीसरेमें रसध्वनिका समावेश किया गया है। नायिकाभेदका प्रसंग दूसरे भागके अन्तर्गत सन्निहित है तथा नायकभेद तीसरे भाग में। दोनोंकी समाप्ति 'राधावर्णनम्' और 'कृस्नप्रत्यगवर्णनम्'के नामसे की गयी है। चिन्तामणिने नायक-नायिका-भेदके प्रसंगको रस-निरूपणके अन्तर्गत रखकर विश्वनाथका पहली बार अनुसरण किया है। मम्मटकी तरह उन्होंने ध्वनि-प्रकरणमें इसकी उपेक्षा नहीं की। भानुदत्तका आश्रय अवश्य अतिरिक्त रूपसे लिया है, जैसा रीतिकालके अन्य अनेक कवियोंने किया है। ध्वनिका विस्तार ग्रन्थके अन्ततक है और शृंगार रस आदि विषय तथा ध्वनिसे सम्बद्ध अन्य प्रसंग इसी अन्तिम अंशमे निरूपित किये गये हैं। गुणीभूतव्यंग्यका निरूपण चिन्तामणिने नहीं किया है, यह विशेषकर उल्लेखनीय है। 'काव्य-प्रकाश' और 'साहित्य-दर्पण' उनके मुख्य आधार ग्रन्थ रहे हैं। वस्तु विभाजन और क्रम निर्धारणमें कहीं-कहीं चिन्तामणिके स्वतन्त्र व्यक्तित्वका परिचय मिलता है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० इ०; हि० का० शा० इ०; हि० सा० बृ० इ० (भा० ६)।] —ज० गु०

कवितावली—'कवितावली' गोस्वामी तुलसीदासकी प्रमुख रचनाओंमें है। इसमें हमे अनेक कवित्त, सवैयोंका संग्रह मिलता है। ये छन्द ब्रजभाषामें लिखे गये हैं और इनकी रचना प्रायः उसी परिपाटीपर की गयी है जिस परिपाटीपर रीतिकालका अधिकतर रीति-मुक्त काव्य लिखा गया। इन छन्दोंको दो भागोंमे विभाजित किया जा सकता है: एक तो वे जो रामकथाके सम्बन्धके हैं और दूसरे वे जो अन्य विविध विषयोंके हैं। समस्त छन्द सात खण्डोंमे विभक्त है। प्रथम प्रकारके छन्द रचनाके लंका-काण्डतक आते हैं और द्वितीय प्रकारके छन्द उत्तरकाण्डमें रख दिये गये हैं।

कथा-सम्बन्धी छन्द 'गीतावली'के पदोंकी भाँति—वरन् उससे भी अधिक स्फुट ढंगसे लिखे गये हैं। अरण्य-कांडका एक ही छन्द है जिसमें हरिणके पीछे रामके जानेमात्रका उल्लेख है। किष्किन्धाकाण्डकी कथाका एक भी छन्द नहीं है; जो एक छन्द किष्किन्धकाण्डके शीर्षकके नीचे दिया भी गया है, वह वास्तवमे सुन्दरकाण्डकी कथाका है, क्योंकि उसमें हनुमान्के समुद्र लाँघनेके लिए सिन्धु-तीरके एक

भूधरपर उचक कर चढ़नेका उल्लेख हुआ है। रचनामे उत्तरकाण्डका कथा-विषयक कोई छन्द नहीं है। इसके उत्तरकाण्डमें प्रारम्भमें रामके गुण-गानके कुछ छन्द है और तदन्तर कुछ स्फुट विषयोंके छन्दोंके आनेके बाद आत्म-निवेदन-विषयक छन्द आते हैं। इन आत्म-निवेदन-विषयक छन्दोंमें कविने प्रायः अपने जीवनके विभिन्न भागोंपर दृष्टिपात किया है, जो उसके जीवनवृत्तके तथ्योंको स्थिर करनेमें अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुए हैं। इनके अतिरिक्त कुछ छन्दोंमें कविने सीधे-सीधे भी अपने और समाजके अनेक तथ्योंपर प्रकाश डाला है। उत्तर काण्डके ये समस्त छन्द अप्रतिम महत्त्वके हैं।

'कवितावली'का काव्य-शिल्प मुक्तक काव्यका है। उक्तियोंकी विलक्षणता, अनुप्रासोंकी छटा, लयपूर्ण शब्दोंकी स्थापना कथा भागके छन्दोंमें दर्शनीय है। आगे रीति-काल में यह काव्य-शैली बहुत लोकप्रिय हुई और इस प्रकार तुलसीदास इस काव्य-शैलीके प्रथम कवियोंमें-से ज्ञात होते हैं फिर भी उनकी 'कवितावली'के छन्दोंमें पूरी प्रौढ़ता दिखाई पड़ती है। कुछ छन्द तो मुक्तक-शिल्पकी दृष्टिमें इतने सुन्दर बन पड़े हैं कि उनसे सुन्दर छन्द पूरे रीति-साहित्यमें भी कदाचित् ही मिल सकेंगे, यथा बालकाण्डके प्रथम सात छन्द। इसका कारण कदाचित् यह है कि इसके अधिकतर छन्द तुलसीदासके कवि-जीवनके उत्तरार्द्धके हैं। इसकी कथा पूर्ण रूपसे 'रामचरित मानस'का अनुसरण करती है, यह तथ्य भी इसी अनुमानकी पुष्टि करता है। हिन्दीमें रीति-धाराका प्रारम्भ केशवकी 'कविप्रिया' (सं० १६५८)तथा 'रसिकप्रिया'से माना जा सकता है। हो सकता है कि 'कवितावली' के अधिकतर छन्द इनके रचना-कालके आस-पास और बादके हों। आत्मोल्लेखके जो छन्द उत्तर-काण्डमें आते हैं उनमें भी तुलसीदासके कवि-जीवनके उत्तरार्द्धकी ही घटनाओंका उल्लेख हुआ है। कुछ छन्द तो कविके जीवनके निरे अन्तके ज्ञात होते है। इसलिए 'कवितावली'के छन्दोंका रचना-काल सं० १६५५ से १६८० तक ज्ञात होता है।

'कवितावली'का संकलन कब हुआ होगा, यह विचारणीय है, क्योंकि रचना-तिथिका उल्लेख नहीं हुआ है। इसकी जो भी प्रतियाँ अभीतक मिली है, उनके छन्दो तथा छन्द-क्रममें अन्तिम कुछ छन्दोको छोड़कर कोई अन्तर नहीं मिलता है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि इसका संकलन कविने अपने जीवन-कालमे ही कर दिया था। उसके देहावसान के बाद जो कवित्त-सवैये और भी प्राप्त हुए उन्हें रचनाके अन्तमे जिस प्रकार वे प्राप्त होते गये, लोगोंने जोड़ लिया; इसीलिए अन्तके कुछ छन्दोके विषयमे प्रतियोंमें यह अन्तर मिलता है। —मा० प्र० गु०

कवित्त रत्नाकर–सेनापति कविका प्राप्त एक मात्र ग्रन्थ। इसका रचनाकाल सं० १७०६ वि० (सन् १६४९ ई०) है। यह कविकी स्फुट रचनाओंका संकलन ग्रन्थ है। इसमें पाँच शीर्षक अथवा अध्याय हैं, जिन्हें 'तरंग'की संज्ञा दी गयी है। पहली तरंगमे ९६, दूसरीमे ७४, तीसरीमें ६२, चौथीमें ७६ तथा पाँचवींमें ८६ और सब मिलाकर पूरे ग्रन्थमें ३९४ छन्द हैं। इनमेसे कुछ छन्द ऐसे भी हैं जो दो तरंगोंमें समान रीतिसे प्राप्त होते हैं। १० पुनरावृत्ति वाले छन्दोंको छोड़कर कवित्त-रत्नाकरमें ३८४ छन्द हैं। इनके अतिरिक्त ७ कवित्त, १० दोहे कुल १७ छन्द और भी प्राप्त हुए हैं, जो 'कवित्त रत्नाकर'में परिशिष्ट रूपमें पृथक् दिये हुए मिलते है। ये छन्द रचना-शैली की दृष्टिसे सेनापतिके ही प्रतीत होते हैं किन्तु केवल एक ही हस्त-लिखित प्रतिमें प्राप्त होनेके कारण इन्हें असम्पादित रूप मे मुद्रित किया गया है (दे० 'हिन्दी परिषद्', प्रयाग विश्वविद्यालय संस्करण, पृ० ११९)।

'कवित्त-रत्नाकर'की ११ हस्तलिखित प्रतियाँ प्रकाशमे आ चुकी हैं, जिनमेसे ९ प्रतियाँ भरतपुरके राजकीय पुस्तकालयमें प्राप्त है। एक अन्य हस्तलिखित प्रति भी भरतपुरके राजकीय पुस्तकालयमें थी। प्रयाग विश्वविद्यालयके अंग्रेजीविभागके भूतपूर्व अध्यापक शिवाधार पाण्डेयने सन् १९३२ ई० में इस प्रतिकी एक प्रति-लिपि प्रस्तुत की थी, जिसका उपयोग हिन्दी परिषदके संस्करणमे हुआ है, किन्तु मूल हस्तलिखित प्रति अब भरतपुरके पुस्तकालयमे नही है। इन दस प्रतियोमे ज्ञात प्राचीनतम प्रति सं० १८१८ (सन् १७६१ ई०)की है। भरतपुरकी दो अन्य हस्तलिखित प्रतियोंका लिपिकाल ज्ञात है—सं० १८३२ (सन् १७७५ ई०) और सं० १८८० (सन् १८२३ ई०)। इन दस प्रतियोमे ४ प्रतियाँ खण्डित रूपमें प्राप्त हैं। इनके अतिरिक्त कवित्त रत्नाकरकी ज्ञात ग्यारहवी प्रति सं० १९४१ (सन् १८८४ ई०) की है जो सीतापुर निवासी प्रसिद्ध विद्वान स्व० कृष्णबिहारीके संकलन मे प्राप्त है। इस सामग्रीके आधारपर प्रयाग विश्वविद्यालयके हिन्दी विभागने कवित्त रत्नाकरका एक संस्करण उमाशंकर शुक्ल द्वारा प्रस्तुत करवाया था, जो पहली बार सन् १९३६ ई०में हिन्दी परिषद, प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित हुआ है।

'कवित्त-रत्नाकर'की पहली तरंगका दूसरा नाम श्लेष-वर्णन है। इसके दस प्रारम्भिक छन्दोमे 'मंगलाचरण', 'राम-स्तुति', 'गुरु-वन्दना', 'वंश-परिचय' तथा 'काव्य-परिचय' वर्णित हैं; छन्द ८ से छन्द ९६ तक ८९ श्लिष्ट छन्द संकलित है जिनकी प्रामाणिकता तथा सरसताकी आलोचकोंने सराहना की है। ब्रजभाषाकी साधारण-से-साधारण शब्दावलीका ऐसा चमत्कारपूर्ण प्रयोग कविने किया है कि उसकी वाणीसे छन्दोके दोहरे अर्थ बरबस निकलते चले आते हैं, एक कवित्त तो तीन अर्थ देता है। श्लेषके पश्चात् दूसरी तरंगमे शृंगारिक रचनाएँ संकलित है। इस तरंगके आधेसे अधिक छन्दोंमें रूप-वर्णन तथा नायिका-भेदका विस्तार मिलता है, शेष रचना विरहका अतिरंजित रूप प्रस्तुत करती है। इन तीनो विषयोका कोई निश्चित क्रम नहीं है। इनके छन्द मिले-जुले रूपमे पाये जाते है। तीसरी तरंगके ६२ छन्दोंमे ९ मे वसन्त, १५ में ग्रीष्म, १२ मे पावस, ६ मे शरद, ९ मे शिशिर तथा ११ में हेमन्त ऋतुका चित्रण हुआ है। जिस प्रकार दूसरी तरंगमें शृंगार रसके 'आलम्बन-विभाव'का चित्रण मिलता है, उसी प्रकार तीसरी तरंगमे 'उद्दीपन विभाव'की दृष्टिसे षट्ऋतु वर्णन प्रस्तुत किया गया है। यह अवश्य है कि

इसमें कविका दृष्टिकोण सामान्य रीतिकालीन दृष्टिकोणसे भिन्न है, क्योंकि उसके प्रकृति-चित्रणमें प्रकृतिके विभिन्न व्यापारोंके प्रति कविका सच्चा अनुराग झलकता है। चौथी तरंगका सम्बन्ध रामकथासे है। रामकथाकी विशालतासे कवि परिचित था इसलिए उसने प्रारम्भमें ही कथा-क्रमको नमस्कार कर लिया है (दे० 'तरंग' ३, छन्द ६) और 'रामकथा'के प्रमुख मार्मिक स्थलोंपर स्फुट रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। इस ग्रन्थकी अन्तिम तरंगमें भक्ति-ज्ञान-वैराग्यसम्बन्धी स्फुट रचनाएँ संगृहीत हैं। अन्तमें 'चित्रालंकार' विषयक कमलबद्धोत्तर, अमत्त, एकाक्षरी, द्वयक्षरी तथा लाटानुप्रासके थोड़ेसे छन्द सकलित हैं जो कविकी अलंकार-प्रियताके सूचक हैं। —उ० शं० शु०

कविप्रिया—यह केशवदासकी प्रमुख कृति है और इसका रचनाकाल सन् १६०१ (सं० १६५८) है। इसके निम्नलिखित मुद्रित सस्करण है—

मूल—(१) नवल किशोर प्रेस, लखनऊ (१९२४ ई०)। (२) 'केशव-ग्रन्थावली', प्रथम खण्ड : श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, हिन्दुस्तानी अकादमी, इलाहाबाद (१९५४ ई०)।

टीका—(१) श्री हरिचरणदास : पं० बन्दीदीन द्वारा संशोधित, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ (१८९० ई०)। (२) श्रीसरदार कवि, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ। (३) लाला भगवानदीन, साहित्य-भूषण कार्यालय, वाराणसी, (१९२५ ई०, सं० १९८२)। द्वितीयावृत्ति—'प्रिया प्रकाश' नामसे कल्याणदास एण्ड ब्रदर्स, वाराणसी (१९५७ ई०, सं० २०१४)। (४) श्री लक्ष्मीनिधि चतुर्वेदी, मातृभाषा मन्दिर, प्रयाग।

'कविप्रिया' कविशिक्षाकी पुस्तक है। केशवने इसका प्रणयन अपनी साहित्य-शिष्या तथा अपने आश्रयदाता इन्द्रजीत सिंहकी प्रधान दरबारी पातुर प्रवीणरायके हेतु किया था। फिर भी "समुझें बाला बालकहु, बर्नन पन्थ अगाध" केशवकी दृष्टिमें था। 'कविप्रिया'में १६ प्रभाव हैं। पहले दो प्रभावोमे वन्दना, नृपवंश और कविवंशका वर्णन है। तत्पश्चात् काव्य-दोषों और अलकारोंका वर्णन किया गया है। अन्तिम सोलहवें प्रभावमे चित्र-काव्य है। शिखनखसहित 'कविप्रिया'में ८९६ छन्द है।

'कविप्रिया'में केशवने तत्कालीन सभी प्रकारके काव्योपयोगी प्रवाहोंका संग्रह किया है। इसमे शास्त्रप्रवाह और जनप्रवाहके अतिरिक्त विदेशी फारसी 'साहित्य'के प्रवाहका भी नियोजन है। 'कविप्रिया' श्रृगारका ग्रन्थ नहीं है, पर उदाहरण अधिकतर श्रृगार-रसके है। परिभाषा और उदाहरणका अच्छा समन्वय किया गया है। विवेचनकी शैली उत्तम है। वर्णन कठिन होते हुए भी स्पष्ट है। काव्य-दूषणका विवेचन सबसे अधिक स्पष्ट है। दोषोंकी कल्पना संस्कृत-शास्त्रोंके अतिरिक्त चारणोंकी परम्परामें भिन्न प्रकारसे हुई है। उनके नाम अन्ध, बधिर, पंगु, नग्न और मृतक रखे गये हैं। अन्य शास्त्रीय दोषोंका भी थोड़ेमें विचार कर दिया गया है।

इसके अनन्तर कवियोंके भेदका विचार है। वे तीन प्रकारके कहे गये हैं—उत्तम, मध्यम और अधम। भक्तिभावित रचना करनेवाले उत्तम, मानुषी काव्य करनेवाले मध्यम तथा दोषयुक्त काव्यके रचयिता अधमकी श्रेणीमें रखे गये हैं।

कवियोंकी कविसमय-सम्बन्धी तीन रीतियोंका भी इसमें उल्लेख है। राजशेखर वर्णित त्रिविध कविसमय, असत्-निबन्धन, सत्-निबन्धन और नियम-निबन्धनको यों कहा है—"साँची बात न बरनहीं, झूठी बरनन बानि। एकनि बरनत नियम करि, कबिमत त्रिविध बखानि।"

इसमें केशवकी सबसे अद्भुत कल्पना अलंकारसम्बन्धी है। उन्होंने काव्यालंकार दो रूपका माना है—साधारण (सामान्य) और विशिष्ट। सामान्यके चार प्रकार बताये हैं—वर्ण, वर्ण्य, भूश्री और राज्यश्री। वर्णालंकार ७ प्रकारके तथा वर्ण्यालंकार २८ प्रकारके बताये हैं। भूमिभूषण १२ रखे हैं और राज्यश्रीभूषण १७ प्रकारके निर्दिष्ट किये हैं। विशिष्ट अलकारके अन्तर्गत ४४ अलंकारोका वर्णन है। इनमें-से आक्षेपालंकारके अन्तर्गत शिक्षाक्षेपमे बारहमासा रखा गया है। क्रमालंकारमें एकसे दसतक की संख्याके सूचक शब्दोंकी गणना आयी है। उपमालंकारका सबसे अधिक विस्तार कर उसके अंगरूपमे नखशिख और शिखनखका समावेश है।

केशव श्लेषके और श्लेषानुप्राणित अलंकारोंके विशेष प्रेमी थे। इन्होंने हिन्दीमे श्लिष्ट कविताएँ अधिक लिखी है। केशवने षट्ऋतुओंका भी श्लिष्ट वर्णन किया है। विरोधाभास भी उन्हे प्रिय है। व्यक्तियोंके वर्णनमें अधिकतर विरोधाभासका और राज्यके वर्णनमें बहुधा परिसंख्याका प्रयोग किया है। इसके व्यवहारमे ये बड़े सिद्धहस्त थे। 'कविप्रिया'में परिसंख्या श्लेषके ही अन्तर्गत है। उसे 'नियमश्लेष' लिखा है। केशवने इसमे चित्रकाव्य भी पर्याप्त दिया है। पण्डितराज जगन्नाथ तो चित्रकाव्यको अधमाधम काव्य कहते है। इन्होने इसमे एक स्थानपर संस्कृतके नियमसे 'भाव'के लिए 'भव' लिखा है जो हिन्दीमें भ्रामक है।

नखशिख, शिखनख और बारहमासा पहले 'कविप्रिया'के ही अन्तर्गत थे। आगे चलकर ये अलगसे प्रचारित हुए। सम्भव है इनकी रचना 'कविप्रिया'के पूर्व ही हुई हो और बादमे इन सबका या किसीका इसमे समावेश हुआ हो। 'कविप्रिया'की प्राचीन प्रतियोमें नखशिख उसके पन्द्रहवें प्रभावमे रखा हुआ है और उपमालकारका अंग माना गया है किन्तु उनके शिखनखका अभीतक पता न था। प्राचीन कविता-संग्रहोंमे केशवके कुछ ऐसे छन्द अवश्य मिलते थे जो उनके नखशिखमें प्राप्त नहीं थे या उनके और किसी ग्रन्थके अंग नहीं थे। अतः सामान्यतया यही धारणा होती थी कि इनका नखशिख बड़ा रहा होगा और ये सब उसीके अग रहे होंगे। इधर 'कविप्रिया'के सबसे प्राचीन हस्तलेख (१६६७ ई०, सं० १७२४)मे नखशिखके साथ 'शिखनख' भी जुड़ा हुआ मिला है। इस शिखनखकी स्वतन्त्र हस्तलिखित प्रति अभय जैन भण्डार (बीकानेर)से प्राप्त हुई जो सं० १७५१ (१६९४ ई०) की लिखी है। इसपर एक गुजराती टीका भी है, जिसका हस्तलेख सं० १७६२ (१७०५ ई०)का है। जान पड़ता है कि शिखनख स्वतन्त्र रूपसे भी केशव द्वारा प्रचारित किया गया, जैसे नखशिख। शिखनखके स्वतन्त्र हस्तलेखके अन्तमें कुछ अंगोंका वर्णन

ऐसा भी है जो नखशिखमें आ चुके हैं। सारी, समस्त भूषण और अंगवासके वर्णन वे ही हैं जो नखशिखके। उनके उपसंहारके छन्द भी मिलते हैं। शिखनखमें इतने अंग-उपांग, भूषणादिका वर्णन अधिक है—त्रिवली, नाभि, उदर, कुचान्त, कुचाग्र, भुजमूल, मुख, तारे, पाटी, माँग और नख। नखशिखके वर्णनमें यह बताया गया है कि अमुक अंगका वर्णन करते हुए किन-किन उपमानोंकी योजना करनी चाहिए पर शिखनखमें यह योजना नहीं है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि नखशिखके निर्माणके अनन्तर शिखनखका निर्माण किया गया, इसलिए इसमें इस प्रकारकी शिक्षाकी अपेक्षा नहीं थी। शिखनखमें जिन अंगोंका वर्णन अधिक है उनमें-से कुछका उल्लेख नखशिख-के दोहोंमें हुआ है, पर नखशिखमें उनका वर्णन नहीं आया है। दूसरा स्पष्ट अन्तर यह है कि नखशिखमें स्थान-स्थानपर 'वृषभानुकी कुमारी', 'राधिका कुँअरि' ऐसे शब्दों, विशेषणों और संकेतोंकी योजना है जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यह नखशिख राधिकाजीका है। नायकके रूपमें नन्दलाल, मुकुन्दजू आदि शब्द बराबर रखे गये हैं। शिखनखमें केवल ग्रीवा वर्णनमें न जाने क्यों 'कुँवरि राधिका' पदावली आ गयी है। अभय जैन-भण्डार (बीकानेर) प्रतिमें इसका पाठान्तर "कुँवरि काम-कामिनीको" मिलता है। इसलिए नखशिखका पाठ इससे कुछ मिलता-जुलता होना चाहिए था। नखशिखमें शिखनख-के जो छन्द आये है उन-मेंसे केवल एक ही छन्द ऐसा है जो राधिकाजीसे सम्बन्ध रखता है। शास्त्रीय ग्रन्थोंके अनुसार मण्डन, शिक्षा, शोभावर्णन आदि सखीके कर्म माने जाते हैं। नखशिखमें इसके संकेत बराबर मिलते हैं। शिखनखमें इस प्रकारकी योजना नहीं हैं। शिखनखकी योजनाएँ अत्यन्त मार्मिक हैं। केशवके नखशिखमें उनका शिखनख काव्योत्कर्ष और कल्पनाके अद्भुत नियोजनकी दृष्टिसे उत्कृष्टतर है।

ऋतुवर्णन संयोग और वियोग दोनों पक्षोंमें होता है, किन्तु 'बारहमासा' केवल वियोगपक्षमें ही नियोजित होता है। ऋतुवर्णनकी परम्परा पण्डितों द्वारा प्रवर्तित है तो 'बारहमासा' लोक द्वारा प्रवर्तित। केशवने 'कविप्रिया'के अन्तर्गत दोनों प्रकारकी परम्पराओंका नियोजन करनेका प्रयास किया है। उनके ऋतुवर्णनमें श्लिष्ट प्रयोगोंका आधिक्य है। 'कविप्रिया'के सातवें प्रभावमें ऋतुओंका वर्णन पूरा-का-पूरा श्लिष्ट रखा गया है। ऋतुवर्णन श्लिष्ट लिखना एक प्रकारकी रुढ़ि हो गयी है।

भाषापर केशवका अधिकार 'कविप्रिया'की उक्तियोंमें स्पष्ट दिखाई देता है।

[सहायक ग्रन्थ—केशवकी काव्यकला : कृष्णशंकर शुक्ल; आचार्य कवि केशव : कृष्णचन्द्र वर्मा; हि० सा० इ०; हि० का० शा० इ०।] —वि० प्र० मि०

कविराजा मुरारिदान—कविराजा 'जसवन्त जसोभूषण'की रचनाके लिए प्रसिद्ध हैं। ये जोधपुर-नरेश महाराज जसवन्तसिंहके आश्रयमें थे। संस्कृतके ये प्रकाण्ड पण्डित थे। 'जसवन्त जसोभूषण'की रचना १८९३ ई० (सं० १९५०)में हुई थी। इसका लघु-संस्करण 'जसवन्त-भूषण' ग्रन्थ है। आधुनिक काव्यशास्त्रमें इस पुस्तकका एक विशेष महत्त्व है। इसमें अलंकारोंके लक्षण उनके नामोंसे ही निकाले गये है। समकालीन साहित्यिकोंमें इसकी आलोचना और चर्चा भी खूब हुई है (दे० 'जसवन्त जसो-भूषण')। —ओं० प्र०

कविवचनसुधा—यह पत्रिका भारतेन्दु हरिश्चन्द्रकी १७ वर्ष की आयुमें उन्हीं द्वारा काशीसे निकाली गयी थी। पहले इसका रूप मासिक था। १८६७ से यह पाक्षिक हो गयी, फिर १८८१ से साप्ताहिक हो गयी। प्रथम संस्करण २५० प्रतियों मात्रका था। २२ पृष्ठोंकी इस पत्रिकाका मूल्य केवल ४ आने था।

इसमें वर्तमान समस्याओंपर छन्दोंमें कविताएँ छपती थीं। पहले प्राचीन कवियोंकी कृतियाँ प्रकाशित होती थी। धीरे-धीरे गद्यकी ओर ध्यान गया। भारतेन्दु भी इस ओर प्रेरित हुए।

इसमें राजनीति, समाजशास्त्र, साहित्य आदि विषयोंपर लेख प्रकाशित होते रहते थे।

पहले इसमें समाचार नहीं छपते थे। जब साप्ताहिक हुआ तो समाचार और निबन्ध भी छपने लगे। इसकी नीतिका सिद्धान्तसूत्र है—"खल जननसे सज्जन दुखी मत होंहि हरिपद मति रहै, उपधर्म छूटैं सत्व निज भारत गहै कर दुख बहै। बुध तजहिं मत्सर नारि नर सम होंहिं जग आनद लहैं, तजि ग्राम कविता सुकवि जनकी अमृत बानी सब कहैं।"

स्वामी दयानन्द, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और ग्रिफिथ जैसे सुप्रसिद्ध विद्वानोंके लेख इसमें प्रकाशित होते रहते थे। इसे जो सरकारी सहायता मिला करती थी, वह भारतेन्दु हरिश्चन्द्रके सरकारविरोधी विचारोंके कारण बन्द हो गयी किन्तु तब भी यह पत्रिका सन् १८८५ ई० तक प्रकाशित होती रही। —ह० दे० बा०

कवींद्र—वास्तविक नाम उदयनाथ, बनपुराके कालिदास त्रिवेदीके पुत्र। सन् १६८० के आसपास इनका जन्म हुआ था। बहुत दिनोंतक ये अमेठीके राजा हिम्मत सिंह तथा उनके पुत्र कवि तथा काव्यप्रेमी भूपति कवि (गुरुदत्त सिंह) के आश्रयमें रहे। बूँदीके राव बुद्ध सिंह तथा भगवन्तराय खीचीके यहाँ भी इनको काफी सम्मान प्राप्त हुआ था। वैसे तो इनके द्वारा रचित तीन पुस्तकों : (१) 'रस चन्द्रोदय', (२) 'विनोद चन्द्रिका' तथा (३) 'जोगलीला'का नाम लेते हुए रामचन्द्र शुक्लने लिखा है कि 'विनोद चन्द्रिका' सं० १७७७ और 'रसचन्द्रिका' सं० १८०४ मे बनी (हि० सा० इ०, पृ० १७०-७१) किन्तु भगीरथ मिश्रका कहना है कि 'रस चन्द्रोदय' और 'विनोदचन्द्रोदय' एक ही ग्रन्थ है। इस सम्बन्धमें उन्होंने एक उद्धरण दिया है—"संवत् सतक अठारह चार। नाइक नाइकाहिं निरधार।। लिखहिं कविन्द ललित रस ग्रन्थ। कियो विनोद चन्दोदय ग्रन्थ।।"

ज्ञातव्य यह है कि शुक्लजीने 'रसचन्द्रोदय'का जो रचनाकाल माना है, वही इस दोहेमें 'विनोदचन्द्रोदय'का भी है। अतः भगीरथ मिश्रका मत ठीक लगता है। इस ग्रन्थकी एक हस्तलिखित प्रति सवाई महेन्द्र पुस्तकालय, ओरछामें है और एक संस्करण नवलकिशोर प्रेस, लखनऊमे

सन् १९२४ में प्रकाशित हुआ है। 'रसचन्द्रोदय' शृंगारका एक अच्छा ग्रन्थ है। इसमें लक्षण दोहोमें तथा उदाहरण कवित्त, सवैया छन्दोंमे दिये गये हैं। उदाहरण बहुत ही रोचक और सुन्दर हैं, अस्तु इसका काव्यात्मक महत्त्व अधिक है, शास्त्रीय कम।

[सहायक ग्रन्थ—हि० का० शा० इ०; हि० सा० इ०।] —ह० मो०

कवींद्र कल्पलता—कवीन्द्राचार्य सरस्वतीकी एकमात्र प्राप्त ब्रजभाषामें लिखी कृति 'कवीन्द्रकल्पलता' (राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक ३४, जयपुर १९५८ ई० : सम्पादक श्रीमती रानी लक्ष्मीकुमारीजी चूडावत) है। कवीन्द्राचार्य काशीके अपने समयके अत्यन्त प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान् थे। शाहजहाँने काशी-प्रयागके हिन्दू यात्रियोंपर जो कर लगाया था उससे उन्हे सरस्वतीजीने ही मुक्त कराया था। गोदावरीतीरके किसी स्थानसे वे काशी आये थे। 'कवीन्द्र-कल्पलता'का प्रधान विषय मुगल सम्राट् शाहजहाँका यश वर्णन है। थोड़ेसे पद्य कृष्ण तथा तत्त्वज्ञानसे सम्बन्धित है। अन्तमे दारासाहिकी प्रशंसामें कुछ पद्य हैं। दोहा, छप्पय, सरसी, सवैया, कवित्त, चौपाई आदि छन्दोंका प्रयोग हुआ है। —रा० तो०

कांतानाथ पाण्डेय—उपनाम 'चोंच', बादमे 'राजहंस'। जन्म १९१४ ई०मे काशी नगरीके मुहल्ला नगवामे। हास्य रस के कवि, लेखक और कथाकार है। वैसे गम्भीर साहित्य भी आपने लिखा है किन्तु आपकी प्रसिद्धि हास्य-लेखकके रूपमें ही है। खडी बोली और ब्रजभाषा दोनों ही मे आप लिखते है। आप हरिश्चन्द्र डिग्री कालेजमें हिन्दीके प्राध्यापक है।

हास्य रसमे आपका एक विशिष्ट स्थान है। जीवनकी विभिन्न स्थितियों, विरोधाभासो और व्यंगोको आपने हास्यमें रखकर अपनी प्रतिभाका परिचय दिया है। सामाजिक जीवन, धार्मिक रूढियो, अधिनूतन, विवेकहीन अनुकरणोंपर भी आपने अच्छी रचनाएँ लिखी हैं। आधुनिक सभ्यताके अन्धे अनुकरण और उनके कुसस्कारोके प्रति भी आपने व्यग्य किये है। हास्यको सुलभ बनानेके साथ-साथ श्रेय और जीवन्त बनानेमे जिन कुछ लोगोने विशेष योग दिया है उनमे-से चोंच बनारसीका विशेष स्थान रहा है।

जिस युगमे चोंचजीने हास्य-रस लिखना आरम्भ किया था उस समय साहित्यिक वातावरणका एक जबरदस्त प्रभाव था। कवियोंकी विभिन्न भाव-स्थितियों, उनकी कुण्ठाओ और अपवादोंको लेकर भी चोंचजीने काफी हास्य लिखा है। उस हास्यमे कवियों और साहित्यकारोंके अहकार और उनके विभिन्न आचार-विचारोंपर चोंचजीने काफी व्यंग्य किये हैं। चोंचजीके व्यंग्यमे व्यावहारिकताके ऊपर अथवा उसके अभावमें हास्यास्पद स्थितियोंको लेकर हास्य रसकी पूर्ण रसानुभूति करा देनेकी बडी प्रबल शक्ति है।

पत्रकारके रूपमें भी चोंचजीकी काफी ख्याति रही है। 'आज', 'संसार', 'नोंक-झोंक' आदिमें आपकी रचनाएँ छपती रही हैं। इधर आपने रेडियोके लिए भी नये प्रकारके हास्य-व्यंग्य लिखने प्रारम्भ किये हैं। चोंचके हास्य और व्यंग्यमे एक प्रकारकी विशेषता यह है कि उसमें न तो किसी प्रकारका आक्रोश होता है और न निन्दा।

चोंचजीने गम्भीर साहित्यिक ग्रन्थ भी लिखे हैं जिनमें 'कादम्बिनी' और 'शिव ताण्डव' काव्य-रचनाएँ विशेष रूपसे प्रसिद्ध हुई है। रचनाएँ—हास्य-काव्य : 'चोंच चालीसा', 'महाकवि सॉड़', 'पानी पांड़े', 'टाल मटोल', 'खरी खोटी', 'छेड-छाड'। हास्य-कहानी : 'मौसेरे भाई', 'विचारे मुंशी', 'ठेंगा सिर', 'मसलन'। गम्भीर रचनाएँ : 'कादम्बिनी', 'शिव ताण्डव'। —ल० का० व०

काकभुशुंडि—विष्णुके अवतार रामके काक रूपधारी परम भक्तके रूपमें प्रसिद्ध हैं। मानसके अनुसार ये शाश्वत है। काकभुशुण्डि अपने पूर्व जन्ममे ब्राह्मण थे किन्तु लोमश-मुनिके शापसे कौएकी योनिमे आ गये। ये प्रकाण्ड ज्ञानी थे। काकभुशुण्डि रामके बाल-रूपके उपासक थे। ऐसी प्रसिद्धि है कि एक बार राम अपने आँगनमें खेल रहे थे तो काकभुशुण्डि उनके हाथसे पुएका टुकडा लेकर भागे। रामकी प्रेरणासे गरुड़ने काकभुशुण्डिका पीछा किया। गरुडके पीछा करनेसे काकभुशुण्डि घायल हुए। उन्हें तीनों लोकोंमें कही त्राण न मिला। अन्तमें रामने काकभुशुण्डिकी रक्षा की। तुलसीके 'रामचरित-मानस'में काकभुशुण्डि ही राम कथाके वक्ता हैं। शंकरने हंसका रूप धारण कर काकभुशुण्डिसे रामायण सुनी थी (मानस, बालकाण्ड)। —रा० कु०

काका कालेलकर—जन्म १ दिसम्बर १८८५, महाराष्ट्रके सातारा नगरमे हुआ था।

जिन नेताओने राष्ट्रभाषा प्रचारके कार्यमें विशेष दिलचस्पी ली और अपना समय अधिकतर इसी कामको दिया, उनमे प्रमुख काकासाहब कालेलकरका नाम आता है। उन्होने राष्ट्रभाषाके प्रचारको राष्ट्रीय कार्यक्रमके अन्तर्गत माना है। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाके अधिवेशनमें (१९३८) भाषण देते हुए उन्होंने कहा था—"हमारा राष्ट्रभाषाप्रचार एक राष्ट्रीय कार्यक्रम है।"

उन्होने पहले स्वयं हिन्दी सीखी और फिर कई वर्षतक दक्षिणमें सम्मेलनकी ओरसे प्रचार-कार्य किया। अपनी सूझ-बूझ, विलक्षणता और व्यापक अध्ययनके कारण उनकी गणना प्रमुख अध्यापको और व्यवस्थापकोंमें होने लगी। हिन्दी-प्रचारके कार्यमे जहा कही कोई दोष दिखाई देते अथवा किन्हीं कारणोंसे उसकी प्रगति रुक जाती, गाँधीजी काका कालेलकरको जाँचके लिए वहाँ भेजते। इस प्रकारके नाजुक काम काका कालेलकरने सदा सफलतासे किये। इसीलिए 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति'की स्थापनाके बाद गुजरातमे हिन्दी-प्रचारकी व्यवस्थाके लिए गाँधीजीने काका कालेलकरको चुना। काका साहबकी मातृभाषा मराठी है। नया काम सौंपे जानेपर उन्होंने गुजरातीका अध्ययन प्रारम्भ किया। कुछ वर्षतक गुजरातमें रह चुकनेके बाद वे गुजरातीमें धाराप्रवाह बोलने लगे। साहित्य अकादमीमें काका साहब आज गुजराती भाषाके प्रतिनिधि है। गुजरातमें हिन्दी-प्रचारको जो सफलता मिली, उसका मुख्य श्रेय काका साहबको है।

काका कालेलकर उच्चकोटिके विचारक और विद्वान् हैं। उनका योगदान हिन्दी-भाषाके प्रचारतक ही सीमित नहीं है। उनकी अपनी मौलिक रचनाओंसे हिन्दी साहित्य समृद्ध हुआ है। सरल और ओजस्वी भाषामें विचारपूर्ण निबन्ध और विभिन्न विषयोंकी तर्कपूर्ण व्याख्या उनकी लेखन-शैलीके विशेष गुण हैं। मूलरूपमें विचारक और साहित्यकार होनेके कारण उनकी अभिव्यक्तिकी अपनी शैली है, जिसे वह हिन्दी-गुजराती, मराठी और बँगलामें सामान्य रूपसे प्रयोग करते हैं। उनकी हिन्दी-शैलीमें एक विशेष प्रकारकी चमक और व्यग्रता है जो पाठकको आकर्षित करती है। उनकी दृष्टि बड़ी सूक्ष्म है इसलिए उनकी लेखनीमें प्रायः ऐसे चित्र बन पड़ते हैं जो मौलिक होनेके साथ-साथ नित्य नये दृष्टिकोण प्रदान करते हैं। उनकी भाषा और शैली बड़ी सजीव और प्रभावशाली है। कुछ लोग उनके गद्यको पद्यमय ठीक ही कहते हैं। उसमें सरलता होनेके कारण स्वाभाविक प्रवाह है और विचारोंका बाहुल्य होनेके कारण भावोंके लिए उड़ानकी क्षमता है। उनकी शैली प्रबुद्ध विचारककी सहज उपदेशात्मक शैली है, जिसमें विद्वत्ता, व्यंग्य, हास्य, नीति सभी तत्व विद्यमान हैं।

काका साहब मजे हुए लेखक हैं। किसी भी सुन्दर दृश्य का वर्णन अथवा पेचीदा समस्याका सुगम विश्लेषण उनके लिए आनन्दका विषय है। उन्होंने देश, विदेशोंका भ्रमण कर वहाँके भूगोलका ही ज्ञान नहीं कराया, अपितु उन प्रदेशों और देशोंकी समस्याओं, उनके समाज और उनके रहन-सहन, उनकी विशेषताओं इत्यादिका स्थान-स्थानपर अपनी पुस्तकोंमें बड़ा सजीव वर्णन किया है। वे जीवन-दर्शनके जैसे उत्सुक विद्यार्थी है, देश-दर्शनके भी वैसे ही शौकीन हैं।

काका कालेलकरकी अबतक लगभग ३० पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं जिनमें अधिकांशका अनेक भारतीय भाषाओंमें अनुवाद हो चुका है। उनकी कुछ प्रमुख रचनाएँ ये हैं—'स्मरण यात्रा', 'धर्मोदय' (दोनों आत्मचरित); 'हिमालय-नो प्रवास'; 'लोकमाता' (दोनों यात्रा-विवरण); 'जीवननो आनन्द'; 'अवरनावर' (दोनों निबन्ध संग्रह)।

काका कालेलकर सच्चे बुद्धिजीवी व्यक्ति हैं। लिखना सदासे उनका व्यसन रहा है। सार्वजनिक कार्यकी अनिश्चितता और व्यस्तताओंके बावजूद यदि उन्होंने बीससे ऊपर ग्रन्थोंकी रचना कर डाली, इसपर किसीको आश्चर्य नहीं होना चाहिये। इनमें-से कम-से-कम ५-६ उन्होंने मूल रूपमें हिन्दीमें लिखी हैं। यहाँ इस बातका उल्लेख भी अनुपयुक्त न होगा कि दो-चारको छोड़ बाकी ग्रन्थोंका अनुवाद स्वयं काका साहबने किया है अतः मौलिक हो या अनूदित वह काका साहबकी ही भाषा शैलीका परिचायक है। हिन्दीमें यात्रा-साहित्यका अभीतक अभाव रहा है। इस कमीको काका साहबने बहुत हदतक पूरा किया है। उनकी अधिकांश पुस्तकें और लेख यात्राके वर्णन अथवा लोक-जीवनके अनुभवोंके आधारपर लिखे गये हैं। हिन्दी, हिन्दुस्तानीके सम्बन्धमें भी उन्होंने कई लेख लिखे हैं। —शा० उ०

कागासुर–सरसागरके अनुसार यह कंसका सहायक एक असुर था जिसने कृष्णको मारनेके लिए कौएका रूप धारण कर लिया था। कंसकी आज्ञासे ब्रजमें आकर बालकृष्णकी आँखें निकालनेके उद्देश्यसे यह उनके पालनेके पास पहुँचा। बालकृष्णने अपने कोमल हाथोंसे उसे जैसे ही पकड़ा, उसकी दशा शोचनीय हो गयी और वह घबराकर कंसके पास जा गिरा तथा उसने कंसको बतलाया कि ब्रजमें किसी महाबलीने अवतार लिया है। कंस इस दुःसंवादको सुनकर अत्यन्त भयभीत और चिन्तित हो गया (दे० सूर० पद ६७७-६७८)। —सं०

कात्यायन–प्राचीन साहित्यमें 'कत्यायन'के अनेक सन्दर्भ मिलते हैं—

१. 'कात्यायन' विश्वामित्र कुलोत्पन्न एक प्राचीन ऋषि थे। उन्होंने 'श्रौतसूत्र', 'गृह्यसूत्र' आदिकी रचना की थी।

२. गोभिल नामक एक प्राचीन ऋषिके पुत्रका नाम कात्यायन था। इनके रचे हुए तीन ग्रन्थ कहे जाते हैं—'गृह्य-संग्रह', 'छन्दः परिशिष्ट' और 'कर्म प्रदीप'।

३. 'कात्यायन' एक बौद्ध आचार्य थे जिन्होंने 'अभिधर्म ज्ञान प्रस्थान' नामक ग्रन्थकी रचना की थी। इनका समय बुद्धसे ४५ वर्ष उपरान्त माना जाता है।

४. एक अन्य बौद्ध आचार्य थे जिन्होंने 'पालि व्याकरण' की रचना की थी और जो पालिमें 'कच्चयान' नामसे प्रसिद्ध हैं।

५. प्रसिद्ध महर्षि तथा व्याकरण शास्त्रके प्रणेता जिन्होंने पाणिनीय अष्टाध्यायीका परिशोधन कर उसपर वार्तिक लिखा था। कुछ लोग 'प्राकृत प्रकाश'के रचनाकार वररुचिको इनसे अभिन्न मानते हैं। कात्यायनके समयके प्रश्नको लेकर विद्वानोंमें मतभेद है। कात्यायनका समय मैक्समूलरके अनुसार चौथी शताब्दी ईसा पूर्व, गोल्डस्टकर-के अनुसार दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व तथा वेबरके अनुसार ईसाके जन्मके २५ वर्ष पूर्व है। व्याकरणके अतिरिक्त 'श्रौत सूत्रों' और 'यजुर्वेद प्रातिशाख्य'के भी रचयिता कात्यायन ही माने जाते हैं। वेबरने इनके सूत्रोंका सम्पादन किया है। कात्यायनको एक स्मृतिका भी रचनाकार कहा जाता है। कथा सरित्सागरके अनुसार ये पुष्पदन्त नामक गन्धर्वके अवतार थे। कात्यायनके नामसे प्राप्त प्रसिद्ध ग्रन्थोंकी सूची इस प्रकार है—(१) 'श्रौत सूत्र', (२) 'इष्टि पद्धति', (३) 'गृह परिशिष्ट', (४) 'कर्म प्रदीप', (५) 'श्राद्ध कल्प सूत्र', (६) 'पशु बन्ध सूत्र', (७) 'प्रतिहार सूत्र', (८) 'भ्राजश्लोक', (९) 'रुद्रविधान', (१०) 'वार्तिक पाठ', (११) 'कात्यायनी शांति', (१२) 'कात्यायनी शिक्षा', (१३) 'स्नान विधि', (१४) 'कात्यायन कारिका', (१५) 'कात्यायन प्रयोग', (१६) 'कात्यायन वेद प्राप्ति', (१७) 'कात्यायन शाखा भाष्य', (१८) 'कात्यायन स्मृति', (१९) 'कात्यायनोपनिषद्', (२०) 'कात्यायन गृह कारिका', (२१) 'वृषोत्सर्ग पद्धति', (२२) 'आतुर संन्यास विधि', (२३) 'गृहसूत्र', (२४) 'शुक्ल यजु प्रातिशाख्य', (२५) 'प्राकृत प्रकाश', (२६) 'अभिधर्म ज्ञान प्रस्थान'। भ्रमवश ये सभी ग्रन्थ वररुचि कात्यायन-के माने जाते हैं किन्तु यह उचित ज्ञात नहीं होता। इनमेंसे अनेक ग्रन्थ अप्राप्य हैं। —रा० कु०

कान्ह—इस छापके चार कवियोंका उल्लेख मिलता है। इनमें तीनका उपनाम 'कान्ह' है, उनके वास्तविक नाम कन्हैयालाल भट्ट (१७०४ ई०), कन्हैया बख्श बैस (१८४३ ई०) तथा कन्हईलाल (१८५७ ई०) है। पर कान्ह कवि का समय १८ वीं शताब्दीके अन्तमें माना गया है। शिवसिंहने इन्हींको प्राचीन कान्ह माना है और नायिका-भेद विषयक एक ग्रन्थका रचयिता माना है। इनकी एक रचना 'रसरंग नायिका' है जिसका रचना-काल १७४७ ई० (सं० १८०४) दिया हुआ है। इसके आधारपर सरोजकारके द्वारा दिया हुआ इनका उदयकाल १८४३ ई० ठीक नहीं ठहरता है। ये वृन्दावनमें रहते थे और इनका ग्रन्थ नायिका-भेदसे सम्बद्ध है।

[सहायक ग्रन्थ—शि०स०; दि०भू०(भूमिका)।] —सं०

कान्हड़दे प्रबन्ध—कवि पद्मनाभ ने १५१२ ई० में इस कृतिकी रचना की। कवि पद्मनाभ जालोरके निवासी थे। प्रसिद्ध चौहान वीर कान्हड़ देवी वीरताका कृतिमें वर्णन मिलता है। कृति चार खण्डोमें विभक्त है। ऐतिहासिक काव्यकी भाषा प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी है। कुछ विद्वानोंने कृतिकी भाषाको गोर्जर अपभ्रंश कहा है। 'कृति'के कई संस्करण निकले है। राजस्थान पुरातन ग्रन्थमालाने इसका नया संस्करण (१९५३ ई०) मे प्रकाशित किया है जो सम्पादनकी दृष्टिसे सर्वश्रेष्ठ है। दोहा, चौपाई आदि छन्दोंमे युक्त यह कृति काव्य, भाषा आदि अनेक दृष्टियोंमे उत्कृष्ट कृति है। —रा० सिं० तो०

काबा—इस्लाम धर्म मे 'काबा'के लिए 'काबा शरीफ' नाम का प्रयोग मिलता है। खुदाके आदेशपर हजरत इब्राहीमने अपने पुत्र हजरत इस्माईलके साथ अरबमे एक मस्जिद बनवाई, इसीका नाम 'काबा' है। इस्लामके विश्वासके अनुसार यह पृथ्वीकी नाभिपर स्थित है। इसके पूर्वा-दक्षिणी द्वारपर एक पत्थर गड़ा है, जो स्वर्गसे गिरा हुआ (हजर-र-अस्वद) बताया जाता है। मुसलमान लोग इसी 'काबे शरीफ' की ओर मुख करके नमाज पढते है। यह स्थान मुसलमानोंका प्रमुख तीर्थ स्थान है। प्रतिवर्ष यहाँ विश्वके विभिन्न देशोंसे बडी संख्यामे मुसलमान यात्री नमाज पढने आते है (दे० 'काबा-कर्बला', पृ० १४)। —रा० कु०

कामताप्रसाद गुरु—जन्म सागरमे १९३२ वि०मे हुआ। १७ वर्षकी अवस्थामे इण्ट्रेंस की परीक्षा प्राप्त की। १९२० मे प्रायः एक वर्षतक प्रयागके इण्डियन प्रेसमें 'बालसखा' और 'सरस्वती' का सम्पादन किया। विविध भाषाओंका इन्हें अच्छा ज्ञान था। हिन्दी व्याकरणके ये अधिकारी विद्वान् माने जाते हैं। वैसे रचनात्मक प्रतिभा बहुमुखी थी। इनकी कृतियोंमें 'सत्य', 'प्रेम' (उपन्यास), 'भौमासुर बध' तथा 'विनय पचासा' (ब्रजभाषा काव्य), 'पार्वती और यशोदा' (उपन्यास), 'पद्य पुष्पावली', 'सुदर्शन' (पौराणिक नाटक), और 'हिन्दुस्तानी शिष्टाचार' उल्लेखनीय है।

पर हिन्दीमें गुरुजीकी असाधारण ख्यातिका कारण उनका कृति साहित्य न होकर उनका व्याकरण ग्रन्थ है। काशीकी नागरी प्रचारिणी सभाने इस 'हिन्दी व्याकरण'का प्रकाशन किया था जो आज भी अपनी मान्यता अक्षुण्ण बनाये हुए है। —सं०

कामदेव—प्रेम और सौन्दर्यके देवता माने गये है। ऋग्वेद में अद्वैतमें इच्छाकी उत्पत्ति मानी गयी हैं। यह इच्छा ही आगे चलकर प्रेमके देवताके प्रतीक-स्वरूप कामदेवके नामसे विख्यात हुई। अथर्ववेदमें कामकी उत्पत्तिका विवेचन देते हुए ऐसा उल्लेख मिलता है कि कामकी उत्पत्ति सर्व-प्रथम हुई तथा उनके समान कोई देवता नहीं है। तैत्तिरीय ब्राह्मणमें कामदेवको न्यायके अधिष्ठाता धर्मराज तथा विश्वासके प्रतीकस्वरूप स्वीकृत देवी श्रद्धाका पुत्र कहा जा गया है। हरिवंश पुराणमें कामदेवको लक्ष्मी-पुत्र कहा गया है। कुछ स्रोतोंमे कामदेवके ब्रह्माके पुत्र होनेके भी उल्लेख प्राप्त होते है। कामदेवके लिये आत्मभू, अज तथा अनन्यज भी कहा जाता है। इन शब्दोंसे ऐसा संकेतित होता है कि कामदेवका जन्म बिना माता-पिताके ही हो गया था। पौराणिक स्रोतोंमें कामदेवकी स्त्रीको रति अथवा रेवा कहा गया है। ऐसी प्रसिद्धि है कि एक बार शंकरने ध्यान-भंग करनेके कारण इन्हे भस्म कर दिया था किन्तु कामदेवकी पत्नी रतिके विलाप करनेपर शंकर उसे अंगहीन (अनंग) होकर भी जीवित रहने तथा कृष्णके पुत्र प्रद्युम्नके रूपमें जन्म लेनेकी बात कही थी। रुक्मिणीके गर्भसे प्रद्युम्नका जन्म हुआ था तथा रति मायावतीके रूपमें उत्पन्न हुई थी। प्रद्युम्नने अनिरुद्ध नामक पुत्र तथा तृषा नामक पुत्रीका जन्म हुआ। वसन्त कामदेवका सहयोगी माना गया है। कामदेवके वाहन कोकिल और शुक है और अस्त्र फूलोका बाण कहा जाता है। इनकी ध्वजामें मकरका चिह्न है। कामदेवके पाँच बाणोंके दो वर्ग है—

(क) द्रवण, शोषण, तापन, मोहन और उन्माद।

(ख) पाटल, चम्पा, केवड़ा, कमल और आम्र बौर (पुष्प बाण)।

कामदेव शृंगारका देवता होनेके कारण सौन्दर्य एवं उन्मादके लिए उपमान रूपमें प्रयुक्त होता है। महान् कवियोंने अपने आराध्यके सौन्दर्यको कामदेवके सौन्दर्यसे श्रेष्ठ सिद्ध किया है। इसके अतिरिक्त सौन्दर्यके अन्य अनेक प्रसंगोंमे भी कामदेवकी चर्चा आती है। —रा० कु०

कामधेनु—समुद्र मंथनसे प्राप्त चौदह रत्नोंमे एकका नाम 'कामधेनु' है। इससे यथेष्ट वरकी प्राप्ति सम्भव हो सकती है। 'कामधेनु'का साहित्यमे उपमान रूपमें पर्याप्त प्रयोग मिलता है। —रा० कु०

कामरूप—स्थूल रूपसे कामरूप 'आसाम'के पर्याय रूपमे प्रयुक्त होता है किन्तु वर्तमान रंगपुर, जलपाईगुड़ी तथा कूच बिहार आदि आसामके जिलोंको प्राचीन कामरूपका क्षेत्र माना जाता है। कथा सरित्सागर तथा अन्य लोक-प्रचलित कथाओंसे ज्ञात होता है कि कामरूप किसी समय कौल साधनाका प्रमुख केन्द्र रहा है। इसके अतिरिक्त काम-रूप एक तीर्थके रूपमें भी विख्यात है। —रा० कु०

कामलता वा कामलता कथा—यह रचना एक प्रेमकहानी है जिसके रचयिताका नाम जानकवि है। 'जानकवि' केवल एक उपनाम मात्र है। उसका वास्तविक नाम न्यामत खाँ या नियामत खाँ था और वह जयपुर राज्यके अन्तर्गत फतह-पुर (शेखावाटी)का निवासी था। उसके पिताका नाम नवाब

अल्फा खाँ था और क्यामखानी नवाबोंका वंशज था। वह एक सिद्धहस्त कवि था और उसके द्वारा लिखित अभीतक ७६ छोटे बड़े ग्रन्थ उपलब्ध हो चुके हैं जिनमें-से अधिकांशको हम कथाकाव्य या चरितकाव्य कह सकते हैं। जानकविके जन्म अथवा मरणकी तिथियोंका अभीतक पता नहीं चला है, किन्तु अपनी विविध रचनाओंके रचनाकालके अनुसार वे मुगलसम्राट् जहाँगीरसे लेकर औरंगजेबतकके समसामयिक ठहरते हैं और इस प्रकार वे एक दीर्घजीवी कवि भी कहे जा सकते हैं। 'कामलता कथा'की हस्तलिखित प्रति उनके अन्य अनेक ग्रन्थोंकी भाँति एक बड़ी 'पोथी'में बँधी मिली थी जो इस समय प्रयागकी हिन्दुस्तानी एकेडमीमें सुरक्षित है। इस पोथीका लिपिकर्ता कोई फतेहचन्द है जो डीडवाणेका निवासी जान पड़ता है और इसका लिपिकाल सं० १७७७-७८ अर्थात् सन् १७२०-२१ दिया गया मिलता है। 'कामलता कथा' उक्त एकेडमीकी तिमाही पत्रिका 'हिन्दुस्तानी'के भाग १५, अंक ३ जुलाई, सितम्बर, १९४५ ई०, पृष्ठ १२४ से लेकर १३३ पर प्रकाशित भी है। इसका रचनाकाल सं० १६७८ दिया गया मिलता है। यह दोहों, चौपाइयोंमें रची गयी है तथा इसका विस्तार केवल ३२ दोहोंतक ही सीमित है।

कथाका सारांश इस प्रकार है—हंसपुरी नामक नगरीमें कोई रसाल नामका राजा रहा करता था जिसका प्रधान बुधवन्त एक बहुत योग्य व्यक्ति था। राजाने किसी दिन स्वप्नमें किसी सुन्दरीको अपने साथ मिलते देखा और संयोगवश स्वप्नावस्थामें ही बुधवन्तके जगा देनेसे वह उसपर क्रुद्ध हो गया। राजाके क्रोध एवं विरह दशामें प्रेरित होकर बुधवन्तने उसके कथनानुसार एक चित्र तैयार किया और उसे राजाको दिखलाया जिससे वह और भी विचलित हो उठा। चित्रको किसी मार्गमें रख दिया गया जिससे उसे देखकर कोई पथिक उसके मूलका परिचय दे सके। एक दिन किसी पथिकने उसको देखकर बतलाया कि वह सुन्दरपुरीका शासन करने वाली कामलता है, जिसने प्रण कर लिया है कि किसी पुरुषके साथ विवाह नहीं करूँगी और वह विवाह या पुरुष-मैत्रीका नाम लेनेपर भी चिढ़ जाया करती है। इसपर बुधवन्त एव रसाल दोनों ही सुन्दरपुरीकी ओर चल पड़े और वहाँ किसी प्रकार पहुँचकर बधुवन्तने अपनेको चित्रकार बतलाकर प्रसिद्ध कर दिया तथा कामलताके कथनानुसार चित्र बनाते समय उसने कलाकौशल द्वारा उसमें रसालको भी चित्रित कर दिया जिससे वह प्रभावित हो गयी। बुधवन्तने रसालवाले चित्रमें यह भी दिखला दिया था कि किसी घटनासे प्रेरित होकर राजाने स्त्रियोंके प्रति घृणा प्रदर्शित की है। कामलतापर इसका यथेष्ट प्रभाव पड़ा और रसालपर मोहित होकर उसने उसे तत्क्षण बुला भेजा। फिर तो वहाँ राजाके उपस्थित होते ही अनेक प्रकारके बाजे बजने लगे और दोनोंका विवाह सम्बन्ध हो गया तथा वे दोनों सुखपूर्वक जीवन बिताने लगे।

जानकविने इस प्रेमकहानीको सुनी सुनाई बातोंपर आश्रित बतलाया है और उसका अधिकांश काल्पनिक-सा भी लगता है। इसके आरम्भमें उन्होंने परमात्माको एक विलक्षण चित्रकारके रूपमें स्मरण कर कथाका सूत्रपात किया है। उनका कहना है कि यह सारा जगत् उस 'चित्रकार'की सृष्टि है और इसका प्रत्येक चित्र एक दूसरेसे भिन्न है तथा मैंने भी यह 'लघुचित्र' उसकी प्रेरणासे ही तैयार किया है। उन्होंने उस 'करतार'के अनन्तर फिर हजरत मुहम्मदका भी नाम लिया है और कहा है कि उनके आदर्शपर ही हम उसका स्पर्श कर सकते हैं। आगे इस कविने शाहेवक्तकी चर्चा की है किन्तु न अपने पीरका परिचय दिया है और न अपने विषयमें ही कुछ कहा है। कथाके अन्तमें फलश्रुतिकी भाँति कहा गया मिलता है कि सावधान रहकर जो प्रयत्न किया करता है वह प्रेमके प्रसादसे सच्चे परिणामका अधिकारी होता है। अन्तमें इसका रचना काल 'सोलह सै अठहत्तर' बताकर पाठकोंको कुछ सत्परामर्श भी दिया गया है। इस रचनाके अन्तर्गत चित्रकला को विशेष महत्त्व प्रदान किया गया मिलता है और जान पड़ता है कि इसके कविने इसी कारण परमेश्वरको भी सर्वप्रमुख 'चित्रकार' ठहराया होगा। यहाँपर कामलता के प्रति रसालका प्रेम, स्वप्नदर्शन द्वारा जागृत होनेपर भी वस्तुतः चित्रदर्शनमें ही परिपुष्टि पाता है और चित्र-दर्शनके प्रभावमें आकर कामलता अपने पुरुषोंके प्रति घृणा-भाव रखनेवाले स्वभावका सर्वथा परित्याग कर देती है। प्रेमलीलाकी प्रायः सारी घटनाओंका मूल सूत्राधार बुधवन्त भी यहाँपर एक अत्यन्त निपुण चित्रकारके रूपमें ही प्रस्तुत किया गया है तथा वह चित्रकार ही यहाँ गुरु या पथप्रदर्शक भी है। इस रचनामें ब्रजभाषाका प्रयोग हुआ है और इसके अनेक स्थल काव्यकलाकी दृष्टिसे भी बहुत उत्कृष्ट है।

[सहायक ग्रन्थ—अप्रकाशित ग्रन्थावली; हिन्दुस्तानी एकेडमी (प्रयाग), भाग १५, अंक ३।] —प० च०

कामायनी–'कामायनी' जयशंकरप्रसादकी और सम्भवतः छायावाद युगकी सर्वश्रेष्ठ कृति मानी जाती है। प्रौढ़ताके बिन्दुपर पहुँचे हुए कविकी यह अन्यतम रचना है। इसे प्रसादके सम्पूर्ण चिन्तन-मननका प्रतिफलन कहना अधिक उचित होगा। इसका प्रकाशन १९३५ई०में हुआ था। इसमें आदिमानव मनुकी कथा ली गयी है। इस काव्यकी कथा-वस्तु वेद, उपनिषद्, पुराण आदिसे प्रेरित है किन्तु मुख्य आधार शतपथ ब्राह्मणको स्वीकार किया गया है। आवश्य-कतानुसार प्रसादने पौराणिक कथामें परिवर्तन कर उसे न्यायोचित रूप दिया है। 'कामायनी'की कथा संक्षेपमें इस प्रकार है—पृथ्वीपर घोर जलप्लावन आया और उसमें केवल मनु जीवित रह गये। वे देवसृष्टिके अन्तिम अवशेष थे। जलप्लावन समाप्त होनेपर उन्होंने यज्ञ आदि करना आरम्भ किया। एक दिन कामकी पुत्री श्रद्धा उनके समीप आयी और वे दोनों साथ रहने लगे। भावी शिशुकी कल्पना निमग्न श्रद्धाको एक दिन ईर्ष्यावश मनु अनायास ही छोड़ कर चल दिये। उनकी भेंट सारस्वत प्रदेशकी अधिष्ठात्री इड़ासे हुई। उसने इन्हें शासनका भार सौंप दिया। पर वहाँकी प्रजा एक दिन इड़ापर मनुके अत्याचार और आधिपत्य-भावको देखकर विद्रोह कर उठी। मनु आहत हो गये तभी श्रद्धा अपने पुत्र मानवके साथ उन्हें खोजते हुए आ पहुँची किन्तु पश्चात्तापमें डूबे मनु पुनः उन सबको छोड़-

कर चल दिये। श्रद्धाने मानवको इड़ाके पास छोड़ दिया और अपने मनुको खोजते-खोजते पा गयी। अन्तमें सारस्वत प्रदेशके सभी प्राणी कैलास पर्वतपर जाकर श्रद्धा और मनुके दर्शन करते हैं।

'कामायनी'की कथा पन्द्रह सर्गोंमें विभक्त हैं, जिनका नामकरण चिंता, आशा, श्रद्धा, काम, वासना, लज्जा आदि मनोविकारोंके नामपर हुआ है। 'कामायनी' आदि मानवकी कथा तो है ही, पर इसके माध्यमसे कविने अपने युगके महत्त्वपूर्ण प्रश्नोंपर विचार भी किया है। सारस्वत-प्रदेशकी प्रजा जिस बुद्धिवादिता और भौतिकवादितासे त्रस्त है, वही आधुनिक युगकी स्थिति है। 'कामायनी' अपने रूपकत्वमें एक मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक मन्तव्यको प्रकट करती है। मनु मनका प्रतीक है और श्रद्धा तथा इडा क्रमशः उसके हृदय और बुद्धिपक्ष हैं। अपने आन्तरिक मनोविकारोंसे संघर्ष करता हुआ मन श्रद्धा-विश्वासकी सहायतासे आनन्द लोकतक पहुँचता है। प्रसादने समरसता सिद्धान्त तथा समन्वय मार्गका प्रतिपादन किया है। अन्तिम चार सर्गोंमें प्रतिपादित दर्शनपर शैवागमका प्रभाव है। 'कामायनी' एक विशिष्ट शैलीका महाकाव्य है। उसका गौरव उसके युगबोध, परिपुष्ट चिन्तन, महत् उद्देश्य और प्रौढ शिल्पमे निहित है। उसमे प्राचीन महाकाव्योका-सा वर्णनात्मक विस्तार नही है पर सर्वत्र कविकी गहन अनुभूतिके दर्शन होते हैं। यह भी स्वीकार करना होगा कि उसमे गीति-तत्त्व प्रमुखता पा गये हैं। मनोविकार अत्यन्त सूक्ष्म होते है। उन्हे मूर्त रूप देनेमें प्रसादने जो सफलता पायी है वह उनके अभिव्यक्ति कौशलकी परिचायक है। कहीं-कहीं भावपूर्ण प्रकाशनमे सम्भव है, सफल न हो, पर शिल्पकी प्रौढ़ता 'कामायनी'का प्रमुख गुण है। प्रतीक भाण्डार इतना समृद्ध है कि अनेक स्थलोंपर कवि चित्र निर्मित कर देता है। इस दृष्टिसे श्रद्धाका रूप-वर्णन सुन्दर है। लज्जा जैसे सूक्ष्म भावोके प्रकाशनमे 'कामायनी'को कवि अभिव्यक्तिके सर्वोत्तम स्वरूपका परिचय देता है। 'कामायनी'मे प्रसादके चिन्तन-मननको सहज ही देखा जा सकता है। इसे हम भाव और अनुभूति दोनो दृष्टियोंमे छायावादकी पूर्ण अभिव्यक्ति कह सकते हैं।

[सहायक ग्रन्थ—कामायनी अनुशीलन : रामलालसिंह; प्रसादका काव्य : प्रेमशंकर।] —प्रे० शं०

कामिल बुल्के–जन्म १९०९ ई०मे बेलजियम देशके रैम्सचैपल स्थानमे हुआ। मिशनरी कार्यके लिए भारत आये। अब यहांके नागरिक हैं। प्रयाग विश्वविद्यालयके हिन्दी विभागसे सम्बद्ध रहकर आपने अपना शोध प्रबन्ध 'राम कथा—उत्पत्ति और विकास' (१९५० ई०) प्रस्तुत किया जो अपने विषयका अद्वितीय ग्रन्थ है। मातरलिंकके प्रसिद्ध नाटक 'ब्लू बर्ड'का 'नीलपंछी' नामसे रूपान्तर किया (१९५८ ई०)। सम्प्रति राँचीके सेंट जेवियर्स कॉलेजमें हिन्दी तथा संस्कृत विभागके अध्यक्ष है। —सं०

कायाकल्प–'कायाकल्प' (१९२८ ई०) प्रेमचन्दका एक नवीन प्रयोग-शील किन्तु शिथिल उपन्यास है। चक्रधरकी कथाके साथ उन्होंने रानी देवप्रियाकी अलौकिक कथा जोड दी है। चक्रधरकी कथाके माध्यम द्वारा लेखकने विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक और साम्प्रदायिक समस्याएँ उठायी है। रानी देवप्रियाकी कथा द्वारा आत्मज्ञानसे विहीन जड विज्ञानकी निरर्थकता और जन्मान्तरवादका प्रतिपादन हुआ है। इसी दूसरी कथासे 'कायाकल्प'में नवीनता दृष्टिगोचर होती है अन्यथा उसके बिना यह उपन्यास प्रेमचन्दके अन्य उपन्यासोंकी परम्परामें ही रखा जा सकता है। विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक और साम्प्रदायिक समस्याओंके अतिरिक्त रानी देवप्रिया, ठाकुर विशालसिंह, शंखधर और यहाँ तक कि स्वयं चक्रधरकी पत्नी अहल्याके जीवन-क्रमके आधारपर उपन्यासकी मूल समस्या दाम्पत्य-प्रेमकी पवित्रता है। लौंगीका आदर्श प्रेम और पति-भक्ति और वागीश्वरीका अहल्याको उपदेश, ये दोनों बातें इसी मूल समस्याकी ओर संकेत करती हैं अर्थात् साधना तथा आत्मिक संयोगके अभावमें विलास और तृष्णापर आधारित दाम्पत्यजीवन सुखमय नहीं हो सकता।

अपने अन्य उपन्यासोंकी भाँति प्रेमचन्द 'कायाकल्प'में भी परिवारोंको लेकर चले हैं—यशोदानन्द और वागीश्वरीका परिवार, ख्वाजा महमूदका परिवार, मुंशी वज्रधर और निर्मलाका परिवार, दीवान हरिसेवकसिंह और लौंगीका परिवार, ठाकुर विशालसिंहका परिवार, रानी देवप्रियाका परिवार और अन्तमें चक्रधर और अहल्याका परिवार। —ल० सा० वा०

कार्तिकप्रसाद खत्री–जन्म सन् १८५२ ई० और मृत्यु सन् १९०५ई०मे हुई। हिन्दी पत्रकारिताके विकास कालमें जब बहुत-सी पत्रिकाएँ आर्थिक अभाव और पाठकोंकी कमीके कारण अकाल ही कालकवलित हो जाया करतीं थीं, इन्होने हिन्दी समाचारपत्रोंके प्रचारके लिए कठिन साधना की थी। सन् १८८२में खत्रीजीने 'हिन्दी दीप्ति प्रकाश' नामसे स्वयं एक पत्रिका निकाली थी किन्तु पाठकोंका तो सर्वथा अकाल था। इसलिए पाठकोंमें पत्रिकाके प्रति सुरुचि उत्पन्न करने मात्रके उद्देश्यसे खत्रीजी अत्यधिक दौड-धूप करते थे। यहाँतक कि लोगोंके घर जा-जा करके वे पत्रिका पढ़कर सुनाते थे, पर महीनों बीत जाते थे और ग्राहक लोग चन्दा देनेका नामतक नहीं लेते थे। परिणामस्वरूप इन्हें 'हिन्दी-दीप्ति-प्रकाश'का प्रकाशन बन्द कर देना पड़ा। लेकिन हिन्दीके प्रति इनका प्रेम निरन्तर बना रहा और हिन्दीमें रुचि लेनेवाले विदेशी विद्वानोंसे भी ये पत्र-व्यवहार करते रहते थे। फ्रेडरिक पिन्काटके सन् १८८७के एक-एक पत्रसे, जिसे उन्होंने खत्रीजीको लिखा था, पता चलता है कि सरकारी व्यवहारसम्बन्धी कार्योंके विषयमें उन्होंने पत्रव्यवहार किया था। यही नही जब सन् १८९४मे नागरी और हिन्दी प्रचारका उद्देश्य लेकर काशीमें श्यामसुन्दरदास, रामनारायण मिश्र और ठाकुर शिवकुमार सिंहके सहयोग और उत्साहसे काशी नागरी प्रचारिणी सभाकी स्थापना हुई तो आगे चलकर कार्तिक प्रसाद खत्री भी उसके सभापति निर्वाचित हुए थे। अप्रैल सन् १८७३में इनका 'रेलका विकट खेल' नामक एक नाटक प्रकाशित हुआ जिसे जनताने बहुत पसन्द किया किन्तु वह अधूरा ही रह गया। वैसे खत्रीजीकी किसी मौलिक साहित्यिक कृतिका उल्लेख

नहीं मिलता परन्तु उन्होंने अनेक बँगलाके उपन्यासों यथा 'इला', 'प्रमिला', 'जया', 'मधु-मालती' आदिका अनुवाद करके हिन्दी-साहित्यको समृद्ध किया है। —ह० मो०

कार्तिकेय–इनके लिए कातिक, गणेश, स्कन्द आदि पर्याय भी मिलते हैं (दे० 'गणेश')। —रा० कु०

कार्नेलिया–प्रसादकृत नाटक 'चन्द्रगुप्त'की पात्र। यवनबाला ग्रीककुमारी कार्नेलिया स्वभावसे भावुक, संवेदनशील एवं आर्यसंस्कृतमें पली हुई है। भारतकी प्रकृति-श्रीकी नैसर्गिक छटा प्रथम दर्शनमें ही उसके हृदयको रससे आप्लावित कर देती है। प्रकृतिकी रम्य छटाका वर्णन करते वह कभी तृप्त नहीं होती : "यहाँके श्यामल कुंज, घने जंगल, सरिताओंकी माला पहिने हुए शैल-श्रेणी, हरी-भरी वर्षा, शीतकालकी धूप, बाल्यकालकी सुनी हुई कहानियोंकी जीवित प्रतिमाएँ हैं।" वह भारतके निवासियोंके सरल निश्छल जीवन एवं उच्च दार्शनिक चिन्तनपर समान भावसे मुग्ध है। दाण्ड्यायनके आश्रममें जाकर वह उनके आध्यात्मिक प्रभावको देखकर स्तम्भित-सी रह जाती है। कुल मिलाकर इस अनुपम भारत-भूमिका प्रभाव उसके मनपर अमिट रूपसे अपनी छाप छोड़ जाता है : "यह स्वप्नोंका देश, यह त्याग और ज्ञानका पालना, यह प्रेमकी रंगभूमि है।" वस्तुतः एक विदेशी बाला द्वारा भारत-दर्शनकी यह दृष्टि प्रशंसनीय दृष्टि है। समस्त विदेशी पात्रोंके विचारों एवं नाटकपर नाटककारने देश-प्रेम और राष्ट्रीयताकी इतनी गहरी छाप छोड़ दी है कि नाटक मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे बहुत कुछ अस्वाभाविक-सा बन गया है।

दाण्ड्यायनके आश्रममें चन्द्रगुप्तसे कार्नेलियाका प्रथम साक्षात्कार होता है। वहींपर चन्द्रगुप्तके विषयमें भावी सम्राट् होनेकी घोषणा सुनकर उसके गौरवकी गरिमासे प्रभावित होकर वह उससे प्रेम करने लग जाती है। भावुक एवं गम्भीर कार्नेलिया चन्द्रगुप्तके बाह्य आकर्षक रूप एवं वीरतासे ही नहीं, वरन् उसकी उदार प्रकृति एवं सौजन्यपूर्ण व्यवहार से भी उसकी ओर आकृष्ट होती है। प्रेमका यह अंकुर चन्द्रगुप्तके द्वारा सिल्यूकसके प्रति शीलयुक्त भद्र व्यवहारके साथ और भी अधिक पल्लवित होता है। कार्नेलियाका प्रेम क्षणिक भावावेशका परिणाम नहीं, वरन् गम्भीरता एवं संयमके द्वारा सुस्थिर चिन्तनका फल है जिसकी जड़ें बहुत गहराईतक गयी हैं। युद्ध होना निश्चित जानकर कार्नेलिया नारी जातिके अनुकूल पूर्ण आत्मसम्मानके साथ अपने साहसको बटोरकर प्राणविसर्जनके लिए प्रस्तुत हो जाती है किन्तु ठीक समयपर चन्द्रगुप्त सहसा आकर उसे सौभाग्य प्रदान करता है। कार्नेलियाका बाह्य रूप भले ही विदेशी हो किन्तु उसका अन्तर विशुद्ध भारतीय है।

"वह यवनबाला सिरसे लेकर पैरतक आर्य संस्कृतिमें पली हुई है" वररुचिका उसके विषयमें यह कथन अक्षरशः सत्य है। आचार्य चाणक्य उसके इसी विशिष्ट गुणको पहिचानकर उसे भारतकी सम्राज्ञी बनाते हैं। —दे० प्र० चौ०

कालनेमि–'कालनेमि' शब्दका प्रयोग कई दैत्योंके लिए मिलता है—

१. लंकाका एक राक्षस जो लक्ष्मणको शक्ति लगनेपर ओषधिके लिए जाते हुए हनुमान्‌के मार्गमें विघ्न उपस्थित करनेके लिए रावण द्वारा भेजा गया था। यह ऋषिका वेश धारणकर उस स्थानपर बैठा था जहाँ हनुमान् जलपानके लिए रुके थे किन्तु प्रबुद्ध हनुमान्‌को इस रहस्यका तुरन्त आभास हो गया तथा उन्होंने क्षण मात्रमें ही उसको समाप्त कर दिया।

२. पातालवासी एक दैत्यका नाम जिसका वध विष्णु द्वारा हुआ था। 'पद्म-पुराण'में ऐसी मान्यता है कि अगले जन्ममें वही कृष्ण हुआ।

३. शम्भर-सुखके एक दैत्यका नाम।

हिन्दीके भक्त कवियोंने राम-कथाके अन्तर्गत कालनेमिकी कथाका समावेश किया है। —रा० कु०

कालयवन–एक प्राचीन राजा था। इसके पिता महर्षि गर्गके पुत्र महर्षि गार्ग्य तथा माता गोपाली नामक अप्सरा थीं। कालयवनकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें कहा जाता है कि एक बार भरी सभामें यादवोंने गार्ग्यको नपुंसक कहकर उनका उपहास किया। इससे क्षुब्ध होकर इन्होंने बारह वर्ष तक लौहचूर्ण खाकर पुत्र प्राप्तिकी कामनासे शिवकी घोर तपस्या की। कालयवन इसी तपस्याके फलस्वरूप उत्पन्न हुआ। यह अन्धकों तथा वृष्णियोंका घोर शत्रु था। शैशवमें इसका पालन एक यूनानी (यवन) राजाने किया। इसीलिए इसका नाम कालयवन पड़ा। यह अत्यन्त पराक्रमी राजा था। एक बार कालयवनने जरासन्धके साथ यादवोंपर आक्रमण कर दिया था, जिससे भयभीत होकर सारे यादव कृष्णके परामर्शसे द्वारिका भाग गये। युद्धमें पराजित होकर कृष्ण स्वयं हिमालयकी एक गुफामें भाग गये जहाँ मान्धाताके पुत्र मुचकुन्द सो रहे थे। कालयवन भी इनका पीछा करता हुआ वहाँ पहुँचा तथा मुचकुन्दको कृष्ण समझकर उन्हें पावकी ठोकरसे उठाने लगा। निद्रा भंग होकर ज्यों ही मुचकुन्दने कालयवनकी ओर देखा वह भस्म हो गया (दे० सू० सा० प० ४७८ आदि)। —रा० कु०

कालिंजर–यह वस्तुतः एक पर्वतका नाम-विशेष है। साथ-साथ महाभारतमें कलिंजर एक-विशेष प्रकारके तान्त्रिक-केन्द्रके रूपमें उल्लिखित मिलता है। यह कलिंजर पर्वत बुन्देलखण्डके अन्तर्गत करवीके पास स्थित है। अस्तु इस प्रदेशका नाम कालिंजर एवं यहाँके निवासियोंको कलिंजर कहा जाता है। कालिंजरका दुर्ग भी अत्यन्त प्रसिद्ध है। —यो० प्र० सिं०

कालिंदी–दे० 'यमुना'।

कालिंदी–प्रसादके अपूर्ण उपन्यास 'इरावती'की पात्र। नन्दवंशकी कुमारी, जो सम्राट् शतधनुषकी वासनापूर्तिके लिए प्रासादमें लायी गयी, परन्तु संयोगवश उसी दिन सम्राट्‌की मृत्यु हो गयी। वह नन्दकी निधिपर अपना अधिकार समझती है और इसी कारण मन्दिरके पुजारीसे ताम्रपत्र और निधिकी चाभी लेना चाहती है। मन्दिरमें अग्निमित्रसे उसकी भेंट होती है। प्रथम मिलनमें ही वह अग्निमित्रपर विश्वास कर लेती है और अग्निमित्रसे पुजारीसे ताम्रपत्र और निधिका रहस्य प्राप्त करनेका अनुरोध करती है। वह अग्निमित्रसे प्रेम करने लगती

है। कालिन्दीका व्यक्तित्व उपन्यासमें दो रूपोंमें प्रकाशित हुआ है—एक तो मौर्य्य वंशके विनाश और बृहस्पतिमित्रको सिंहासन-च्युत करनेमें प्रयत्नशील महत्त्वाकांक्षिणी नारीके रूपमें और दूसरे अग्निमित्रके प्रेममें विह्वल नारीके रूपमें। पहला रूप उसके पराक्रम, वैचारिक दृढता और क्षमताका परिचायक है। दूसरे रूपमें उसके हृदयकी दुर्बलता अभिव्यक्ति पा सकी है। कालिन्दी अपने अधिकारों और गौरवके प्रति जागरूक नारी है। वह मौर्य्योंसे अपने वंशका प्रतिशोध लेना चाहती है। वह नन्दकी निधिपर जन्मजात अधिकार समझती है। अग्निमित्र उसे सच्ची अधिकारिणी समझकर ताम्रपत्र दे देता है और निधिका रहस्य भी बता देता है। अपनी अधिकार-पूर्तिमें वह किसीकी सहायताकी इच्छुक नहीं। परन्तु प्रेमिकाके रूपमें अपने हृदयकी दुर्बलता वह नहीं छिपा पाती। प्रेयसीके रूपमें भी उसकी अधिकार-लालसा शिथिल नहीं हो सकी। उसका उद्घोष है कि अग्मिमित्रको मुझसे कोई नहीं छीन सकता। भिक्षुणी इरावतीकी अपेक्षा वह अग्निमित्रके लिए अपनेको अधिक उपयुक्त समझती है। उसका प्रणय महत्त्वाकांक्षाके उत्सर्गकी प्रेरणा देता है। अग्निमित्रको मगधका साम्राज्य देकर वह केवल उसे पाना चाहती है। उसका प्रेम निष्क्रिय नहीं—अधिकार-लालसाकी पूर्तिके समान ही वह अग्निमित्रको पानेके लिए भी प्रयास करती है। बृहस्पतिमित्रके सम्मुख वह प्रेम और भयका अभिनय करती है और उसकी दुर्बलताओंको उसीके मुखसे स्वीकार करवाती है। वह इरावतीके ठीक विपरीत है—अपनी कूटनीति, चातुर्य और स्पष्टवादिताकी दृष्टिसे। —शं० ना० च०

कालिका–दे० 'काली'।

कालिदास कपूर–जन्म १८९२ ई० में लखनऊमें हुआ। अनेक वर्षोंतक कालीचरण हाई स्कूलके प्रिंसिपल रहे। शिक्षा तथा समीक्षासे सम्बद्ध आपकी कई कृतियाँ प्रकाशित हुई हैं, यथा, 'साहित्य समीक्षा' (१९३० ई०), 'शिक्षा समीक्षा' (१९३८ ई०)। —सं०

कालिदास त्रिवेदी–कालिदास त्रिवेदी बनपुरा (अन्तर्वेद)के निवासी थे। इनके जन्म-मरणकी तिथियाँ अज्ञात हैं। १६९२ ई०मे ये विद्यमान थे। १६८८ ई०में गोलकुण्डाकी चढाईमें औरंगजेबके पक्षके किसी राजाके साथ ये उपस्थित थे। १६९२ ई० में त्रिपदा नदीके किनारेपर स्थित जम्बू नगरके नरेश जालिम जोगाजीतके लिए इन्होंने 'वधू-विनोद' नामक नायिका भेदका ग्रन्थ बनाया (इतिहास लेखकों द्वारा जम्बू नगर तथा त्रिपदा नदीकी भौगोलिक स्थिति मालूम करनेका अभीतक कोई प्रयत्न किया गया प्रतीत नहीं होता)। प्रसिद्ध कवि उदयनाथ 'कवीन्द्र' इनके पुत्र थे तथा दूलह इनके पौत्र थे।

काशी नागरी प्रचारिणी सभाकी खोज रिपोर्टोंमें इनके तीन ग्रन्थोंका उल्लेख है—(१) 'राधा माधव मिलन बुध विनोद' (१९०१ की रिपोर्ट, क्रमसंख्या ६८)। इस ग्रन्थके सम्बन्धमें किशोरीलाल गुप्तने अपने अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध 'सरोज-सर्वेक्षण'में यह धारणा व्यक्त की है कि 'वधू-विनोद' का ही मात्राके हेरफेरसे 'बुध-विनोद' हो गया है; (२) 'जंजीराबन्द' (१९०४ की रिपोर्ट, क्रमसंख्या ५ तथा १९०६-८ की रिपोर्ट, क्रमसंख्या १७८ ए)—३२ कवित्तोंकी यह छोटी-सी रचना श्री वेंकटेश्वर प्रेस बम्बईसे (प्रकाशन-काल अज्ञात) तथा आर्य भास्कर प्रेस मुरादाबादसे प्रकाशन-काल १८९८ ई०) प्रकाशित हो चुकी है; (३) 'कालिदास हजारा' (१९०६-८ की रिपोर्ट, क्रमसंख्या १६२)—यह संग्रह-ग्रन्थ है। इसमें १४२३ ई०से १७१८ ई० तकके २१२ कवियोंके एक सहस्र कवित्त संकलित हैं। शिवसिंहने अपने प्रसिद्ध इतिहास ग्रन्थ 'सरोज'में स्वीकार किया है कि उन्हें 'सरोज'की रचनामें 'कालिदास हजारा'से बड़ी सहायता प्राप्त हुई थी। रामचन्द्र शुक्लने भी कवियोंके काल आदिके निर्णयमें इसे बड़ा उपयोगी पाया है।

कविके रूपमें इनकी प्रसिद्धिका आधार इनका 'वधू-विनोद' नामक ग्रन्थ ही है जो 'वरवधू-विनोद' अथवा 'बारवधू-विनोद' नामोंसे भी प्रख्यात है। इसमें ३४० छन्द हैं और ललिता सखी द्वारा राधाको विभिन्न प्रकारकी नायिकाओंका परिचय दिया गया है। नायिका भेद-कथनमें शास्त्रीय दृष्टिसे कोई मौलिकता नहीं है; प्रायः भानुदत्तकी 'रस-मंजरी'का ही अनुकरण किया गया है किन्तु उदाहरण बडे सरस और कवित्वपूर्ण हैं। हजारीप्रसाद द्विवेदीने इन्हें 'सरस सूक्तियोंका चित्ताकर्षक रचयिता' कहा है (हि० सा०, १९५० ई० पृ० ३१५)। रामचन्द्र शुक्लके अनुसार 'ये अभ्यस्त और निपुण' कवि हैं (हि० सा० इ०, १९५० ई०, पृ० ३१५)। अनेक स्थलोंपर रूपका वर्णन उक्तिवैचित्र्यसे युक्त होकर भाव-व्यंजक तथा मार्मिक बन पड़ा है। अन्य आलोचकोंने भी इनके कवित्वकी प्रशंसा की है।

[सहायक ग्रन्थ—शि० स०; हि० का० शा० इ०; हि० सा० इ०; हि० सा० बृ० इ०, भाग ६; सरोज सर्वेक्षण (अ० प्र०): किशोरीलाल गुप्त।] —रा० गु०

कालियनाग–दे० 'कालीनाग'।

काली–'काली' नामका प्रयोग अनेकार्थी है—

१. एक विशेष देवीका नाम 'काली' है। 'कालिकापुराण' मे इसके चार हाथोंकी कल्पना है, जो दाहिने हाथोंमे खट्वांग और चन्द्रहास तथा बाएँ हाथोंमें ढाल और पाश धारण किये है। इसके गलेमें नरमुण्डकी माला है। व्याघ्र-चर्म इसका परिधान तथा शीर्षरहित शव इसका वाहन है।

२. उपरिचर वसुकी कन्याका नाम जो मत्स्यगन्धा, योजनगन्धा तथा सत्यवतीके नामसे भी विख्यात है।

३. भीमकी दूसरी पुत्रीका नाम जिनसे सर्वगत नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई थी। —रा० कु०

कालीदह–यमुनाकी धारामे ब्रजभूमिमें एक दहका नाम है। गरुडके भयसे आकर यहाँ 'काली' नामक नागके रहनेका उल्लेख मिलता है। सौमरि मुनिके शापके कारण गरुड उस दहमें प्रवेश नहीं कर सकता था। वर्तमान समयमें यह स्थान यमुनाके तटपर है तथा कृष्णकी लीला-स्थली होनेके कारण पूज्य है। कृष्ण-भक्त कवियोंमें सूर, भागवतके अनुवादकों आदिने कालीदहका वर्णन किया है (दे० 'कालीदमन')। —रा० कु०

कालीनाग–काली नागके लिए 'नागराज' भी कहा जाता है। गरुडके भयसे यह नागोंके निवास-स्थान रमणक द्वीपसे

भागकर सौभरि मुनिके शापसे गरुड़संरक्षित ब्रजभूमिमें एक दहमें आकर रहने लगा था। इसीके नामसे 'ब्रज'में यमुना तटपर कालीदह नामक स्थान प्रसिद्ध है। ऐसी प्रसिद्धि है कि इसके वहाँ रहनेसे वह स्थान उजाड़-सा हो गया था। एक बार कृष्ण जब छोटे थे तो खेलते-खेलते उस स्थानमें पहुँचकर दहमें गिर पड़े। कालियने अन्य नागोंके साथ कृष्णको घेर लिया। ब्रजके गोप-गोपियाँ, नन्द-यशोदा आदि इससे अत्यन्त चिन्तित हुए। अन्तमें कृष्णने इसे अपने वशमें कर लिया तथा इसके फनपर खड़े होकर नृत्य किया। ब्रज-मण्डलमें ऐसी प्रसिद्धि है कि कृष्णके उस समयके अंकित पद-चिह्न आजतक काले नागोंमें देखे जा सकते हैं। कृष्णने कालियनागको पुनः अपने समूहके साथ रमणीक द्वीपमें जाकर रहनेकी आज्ञा दे दी थी। गरुड़ने उसपर कृष्णके पदचिह्न अंकित देखकर उसे क्षमा कर दिया। हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियोंमें सूरदास (दे० सू० सा० प० ११९८-१२०७ तक), ब्रजवासीदास (ब्रजविलास) तथा भागवतके भावानुवादों (दे० 'अक्रूर') आदिमें कालीदमनकी कथा आयी है। भक्तकवियोंकी दृष्टिमें कालिनाग कृष्णका भक्त एवं कृपाभागीके रूपमें चित्रित हुआ है। —रा० कु०

काव्यकल्पद्रुम—'कवित्त-रत्नाकर'के रचयिता सेनापतिकी दूसरी रचना जो अद्यावधि अप्राप्त है। अनुमान किया गया है कि इस रचनाका विषय काव्य-शास्त्र रहा होगा। सम्भवतः ग्रन्थका नाम ही इस कल्पनाका मुख्य आधार है। —उ० शं० शु०

काव्यकल्पद्रुम—दे० 'अलंकारमंजरी', 'रसमंजरी'।

काव्य-दर्पण—आधुनिक काव्यशास्त्रियोंमे सुपरिचित रामदहिन मिश्र द्वारा लिखित 'काव्य-दर्पण'का प्रकाशन ग्रन्थमाला कार्यालय, बाँकीपुरसे सन् १९४७ में हुआ। हिन्दीका परिवर्द्धित साहित्य और पाश्चात्य प्रभाव इन दो कारणोंसे साहित्य-शास्त्र नया कलेवर धारण कर सकता है, वस्तुतः यही विचार 'काव्य-दर्पण'की रचनाका मूल रहा है। फलतः लेखकने 'काव्य-प्रकाश' और 'साहित्य-दर्पण'का सारांश लेकर कुछ नयी बातोंको जोड़नेका भी प्रयत्न किया है। प्रस्तुत लेखकका विचार है कि पाश्चात्य आचार्य भी घूम फिरकर रस-सिद्धान्तका ही चक्कर काटते हैं और इस तरह प्रस्तुत कृतिमे भी 'काव्यकी आत्मा रस है' की ही व्याख्या की गयी है। यद्यपि पाश्चात्य और प्राच्य साहित्य-चिन्तकोंको तुलनात्मक दृष्टिसे समझनेका इसमें अच्छा प्रयास हुआ है, किन्तु इसके बीचसे साहित्य-चिन्तनका कोई मौलिक दृष्टि प्रस्तुत ग्रन्थमें उभरती हुई नहीं लगती। प्राचीन विवेचन दृष्टिमें ही कुछ विषयोंको और जोड़ लिया गया है, जैसे लेखकका विचार है कि ९ की जगह १०, ११ या इसी तरह बहुतसे रस हो सकते हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थमें १२ प्रकाश हैं। पहले प्रकाशमे काव्य, जिसमें साहित्य-शास्त्र, काव्यके फल, कारण, लक्षण, कवि, कविता, रसिक आदि पर विचार हुआ है। दूसरे प्रकाशमें अर्थ और तीसरेमे रसका विवेचन है। रसके साथ ही साथ साधारणीकरण और व्यक्ति-वैचित्र्यवाद, सौन्दर्यानुभूति, रसानुभूति, रसनिष्पत्ति, अभिव्यक्तिवाद, रस और मनोविज्ञान, रसोंका वैज्ञानिक भेद इत्यादि बहुतसे प्रसंगोंका इस तीसरे प्रकाशमें पाण्डित्यपूर्ण विवेचन हुआ है। सम्भवतः पुस्तकका यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंश है। चौथे प्रकाशमें एकादश रस, पाँचवेंमें रसाभास, छठेमें ध्वनि, सातवेंमें काव्यके भेद, आठवेंमें दोष, नवेंमें गुण, दसवेंमें रीति, ग्यारहवेंमें अलंकारोंके लक्षण, काव्यमे अलंकारोंकी स्थिति, अलंकारोंके रूप, कार्य उनकी अनन्तता, आडम्बर, वर्गीकरण, अलंकार और मनोविज्ञान इत्यादि पर अच्छा विचार हुआ है और बारहवें प्रकाशमें अलंकारोंके भेद, लक्षण उदाहरण सहित दिये गये हैं। इसके अतिरिक्त प्रारम्भमे ९४ पृष्ठकी भूमिका है जिसमें लेखकने पूर्व-पश्चिमके चिन्तकोंकी साहित्य-शास्त्र सम्बन्धी विवेचनाओंका तुलनात्मक अध्ययन किया है, साथ ही विभिन्न आक्षेपोंके उत्तर देनेका प्रयास भी है।

काव्यशास्त्र पर इस ढंगकी आधुनिक युगमें लिखी गयी पुस्तकोंमे 'काव्य-दर्पण'का महत्त्व असन्दिग्ध है। विवेचन और प्रतिपादनमे लेखकने अत्यधिक कुशलता और काव्य-प्रतिभाका परिचय दिया है। —नि० ति०

काव्यनिर्णय—यह सुकवि और आचार्य भिखारीदासका एक श्रेष्ठ ग्रन्थ है। इसकी रचना हिन्दूपति सिंहके नाम पर सन् १७४६ (सं० १८०३) मे की गयी। 'रससारांश'के समान इसका संक्षिप्त रूस्करण लेखकने स्वयं प्रस्तुत किया था। इसमें केवल लक्षण हैं। इसमें २५ उलास तथा १२१० पद्य हैं। इसके कई सस्करण हुए हैं—श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई (१९३९ ई०); भारत जीवन प्रेस, काशी (१९४२ ई०)। जवाहरलाल चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित संस्करण अधिक उपयोगी है। नागरी प्रचारिणी सभाने 'दास ग्रन्थावली' भी प्रकाशित की है।

इसकी रचना 'काव्यप्रकाश' तथा 'चन्द्रालोक'के आधार पर लेखकने की है किन्तु उन्होंने संस्कृत आचार्योंके उन्ही तथ्योंको स्वीकार किया है जो भाषाकी रुचिके अनुकूल थे, क्योंकि विषयवर्णनका क्रम उनकी मौलिकताको प्रकट करनेवाला है। उनका ढंग बड़ा ही स्पष्ट और वैज्ञानिक तथा विवेचनापूर्ण है। इसमें २५ उल्लास है: प्रथममे प्रयोजन और काव्यागका वर्णन है; द्वितीयमे पदार्थ, शब्द-शक्ति; तृतीयमें अलकार; चतुर्थमे रस, रसांग; पंचममें अपरांग (रसवत् आदि अलकार); छठेमे ध्वनि; सप्तममे गुणीभूत व्यंग्य; अष्टमसे अष्टादश तक अलकार; उन्नीसवेमे गुण वृत्ति आदि; बीसवेंमें शब्दालंकर; इक्कीसवेंमें चित्रालंकार; बाईसवेमे तुक (अनुप्रास) निर्णय; तेईसवेंमें काव्य-दोष वर्णन; चौबीसवेंमें दोषोद्धार तथा पचीसवेमे रसदोष आदिके वर्णन हैं। इस प्रकार १४ उल्लास तो केवल अलंकारमें, ३ दोष विषयमें, ४ रस आदिमें, १ गुणादिमे, १ काव्यप्रयोजनमे और १ उल्लास तुकमे लगाया गया है। इस प्रकार मुख्य रूपमे 'काव्यनिर्णय' के विषय विभाग छः हैं।

काव्यप्रयोजनके वर्णनमे दासने मौलिकताका आभास दिया है केवल हिन्दीके कवियोंके उदाहरण द्वारा तथा यश, अर्थ, व्यवहार, ज्ञानके स्थान पर साधना, सम्पत्ति, यश, और सुखको प्रयोजन मानकर। शक्ति, शिक्षा, निरीक्षण

की एकत्र स्थितिसे ही कविता रोचक हो सकती है। काव्य लक्षणमें उनपर विश्वनाथका प्रभाव है, किन्तु भाषा लक्षणके प्रसंगमें ब्रजभाषाको मान्यता देकर उसके रूपकी वास्तविक कसौटीका जो आधार उदारताके गुणके कारण दिया है, वह उनकी अपनी देन है। अलंकारोंके भेदोप-भेद, व्याख्या तथा उदाहरणका प्रसंग 'चन्द्रालोक' और 'काव्य प्रकाश'के चक्करमें पड़ कर अवैज्ञानिक हो गया है। तृतीय उल्लासमें ४४ अलंकारोंके ११ वर्ग दासने दिये हैं जो स्वेच्छानुशासित हैं और किसी रीति अथवा सिद्धान्तपर आधारित नहीं है। आठवें उल्लाससे अठारहवें उल्लास तक आने वाले अलकारके वर्गोंका निर्धारण करनेमें लेखकने स्वतन्त्रतासे काम लिया है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० इ०; हि० सा० बृ० इ० (भा० ६); हि० का० शा० इ०।] —ह० मो०

काव्यप्रभाकर—एक स्थानमें काव्यके समस्त विषयोंके समावेशके लिये काव्य-प्रभाकरकी रचना जगन्नाथ प्रसाद भानु द्वारा की गयी। इसका प्रकाशन सन् १९०९ ई०में लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बईसे हुआ। लेखकके अनुसार "इस ग्रन्थका सम्बन्ध साहित्य तथा काव्य ग्रन्थोसे है, यह प्राचीन तथा अर्वाचीन रीत्यनुसार काव्य-निर्माणकी रीतिका पथ-प्रदर्शक है।" भानुजीने इसमे भाषा-काव्यके सम्पूर्ण विषयोका वर्णन करनेका यत्न किया है।

यह ग्रन्थ १२ मयूखोंमें समाप्त होता है। प्रथम मयूखमे छन्द-वर्णन, द्वितीयमे ध्वनि, तृतीयमें विभाव (नायिकाभेद), चतुर्थमें उद्दीपन विभाव, पंचममें अनुभाव, षष्ठमें संचारी भाव, सप्तममें स्थायी भाव, अष्टममे रस वर्णन, नवममें अलंकार, दशममें दोष, एकादशमें काव्य-निर्णयका विवेचन है तथा द्वादशमें लोकोक्तिसग्रह है। भूमिकामें कवि और काव्य, काव्यका प्राचीन इतिहास, काव्यसे लाभ और उसके प्रयोजन इत्यादिपर संक्षेपमे विचार हुआ है, जो प्राचीन चिन्तकोंका चर्वित-चर्वण है।

प्रस्तुत ग्रन्थमें लेखकने काव्यशास्त्रसम्बन्धी अपने पाण्डित्यका पूरा प्रदर्शन किया है, किन्तु वह मात्र प्राचीन विश्लेषण, व्याख्याकी जानकारीके रूपमे ही है। लेखकने कहीं भी अपनी मौलिक व्याख्या या उद्भावना देनेकी चेष्टा नही की है। अनेक संस्कृत ग्रन्थोंकी सहायतासे विषयको हिन्दीमें उसी रूपमें समझानेका यत्न किया है। उदाहरणोंके चयनमें लेखकने काफी परिश्रम किया है। कहीं-कहीं फुटनोट और सूचनाएँ है जो उपयोगी है। यह ग्रन्थ काव्यशास्त्रके लगभग सभी अंगोको समझानेमे सहायक है। —नि० ति०

काव्य-मंजरी—यह पदुमनदासका काव्य ग्रन्थ है जो काव्य-के सभी अंगोंपर लिखा हुआ है। इसका रचनाकाल १६८४ ई० (सं० १७४१ वि०) दिया हुआ है। इसका प्रकाशन लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बईसे १८९७ ई०में हुआ। इसमें कवि-शिक्षाके विषयको विशेषरूपसे लिया गया है। हिन्दीमें इस विषयको विशेष रूपसे लिया गया है। हिन्दीमें इस विषयपर बहुत कम ग्रन्थ हैं। इसमें १४ कलिकाएँ (प्रकरण) हैं। कविके अनुसार इसमें ७१६ छन्द हैं। पहले अध्यायमें मुख्यतः कवि-शिक्षाका प्रसंग है। दूसरे 'प्रत्यंग वर्णन' नामक अध्यायमें नायिकाका नख-शिख वर्णन है। तीसरेमें पुरुषके अंगोंका वर्णन है। चौथे अध्यायमें केशवके आधारपर 'सामान्यालंकार'के अन्तर्गत राजा, रानी, नगर, देश, ग्राम, घोटक, गज, प्रयाण, आखेट, युद्ध, सूर्योदय, चन्द्रोदय, नदी, सरोवर, सिन्धु, गिरि, तरु तथा ऋतुओं का वर्णन है। पाँचवें अध्यायका नाम 'वर्णकरत्न' है जिसमें अन्धकार, वयःसन्धि, अभिसार, ब्याह, स्वयम्बर, सुरापान, संभोग, जलकेलि, विरह तथा उद्यानका वर्णन है। छठे अध्यायमें एकसे सोलहतक संख्याओं तथा बत्तीस संख्या वाले पदार्थोंकी सूचियाँ दी गयी हैं। सातवें अध्यायमें सरल, कुटिल, त्रिकोण, मण्डल, स्थूल, पतले, कुरूप, सुन्दर, कोमल, कठोर, कटु, मधुर, शीतल, तप्त, मन्दमति, चंचल, निश्चल, सदागति, साँच-झूठ, दुःखद और सुखद वस्तुओंकी सूची उदाहरणके साथ दी गयी है। यहाँतक की विषय-वस्तु व्यापक रूपसे कवि-शिक्षाके अन्तर्गत ही आती है।

अगले अध्यायमें काव्यशास्त्रका विषय लिखा गया है। इसमें रीतियों, उक्ति-प्रसंग और दोष-प्रसंगकी चर्चा है। नवें अध्यायमें काव्यगुणोकी विवेचना की गयी है। दसवें और ग्यारहवेंमें अलंकारोंपर विचार किया गया है। आगेके अध्यायोंमे भाव तथा रसकी चर्चा की गयी है। इस ग्रन्थकी प्रमुख विशेषता कवि-शिक्षाके विषयको विस्तारसे ग्रहण करना है। काव्य शास्त्रीय भाग साधारण है। इस ग्रन्थका अधिकांश भाग लक्षणपरक है, इसमें उदाहरणके छन्द कम हैं। काव्यकी दृष्टिसे इस ग्रन्थको केशवकी 'कविप्रिया'की परम्परामें रखा जा सकता है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० बृ० इ० (भा० ६)।] —सं०

काव्यरसायन—रीतिकालके प्रख्यात कवि देवके इस एक मात्र सर्वांग निरूपक लक्षण-ग्रन्थ का दूसरा नाम 'शब्द-रसायन' भी मिलता है। इसका प्रकाशन हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से 'शब्दरसायन' नाम से ही हुआ है। इसका सम्पादन जानकीनाथ 'मनोज'ने किया था। कवि द्वारा ग्रन्थमे भी एक स्थानपर यह नाम आया है—यथा, "शब्द रसायन नाम यह, शब्द अर्थ रस सार।" नगेन्द्रने इसी आधारपर इसी संज्ञाको प्रामाणिक माना है, परन्तु पाठ-विज्ञानकी दृष्टिसे इसकी पाण्डुलिपियोका अध्ययन करके लक्ष्मीधर मालवीयने 'काव्यरसायन'को ही इसका प्रामाणिक नाम स्वीकार किया है। 'शिवसिंह सरोज'में देवके ग्रन्थोंकी जो सूची मिलती है उससे इसका समर्थन होता है (दे० 'देव')। सेंगरके अनुसार इस ग्रन्थका उप-योग काव्यरीतिके जिज्ञासु पाठ्य-ग्रन्थकी तरह करते थे। कविने इसका समर्पण किसी आश्रयदाताको नही किया है। इसका निर्माण अनुमानतः सं० १८०० (१७४३ ई०)के आसपास माना जा सकता है। पूर्वोक्त मुद्रित संस्करणके अतिरिक्त इसकी अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध होती है। मिश्रबन्धुओं तथा मैथिलीशरण गुप्तकी प्रतियाँ नागरी-प्रचारिणी सभामें सुरक्षित हैं और कृष्णबिहारी मिश्रकी उनके परिवारके पास हैं। इनके अतिरिक्त दो-तीन प्रतियाँ जानकीनाथ 'मनोज'के पास थीं जिनके आधारपर उन्होंने इसका सम्पादन किया था और जो सम्भवतः उनके सम्ब-

न्धियोंके अधिकारमें है।

जिस प्रकार 'रसविलास' नायिकाभेदका कोश है उसी तरह यह काव्यशास्त्रीय-कोश कहा जा सकता है, क्योंकि इसमें काव्य-विषयक प्रायः सभी शास्त्रीय विषयोंका न्यूनाधिक समावेश कर लिया गया है। शब्द-शक्ति, रीति, गुण, रस, दोष, अलंकार, पिंगल आदि प्रत्येक वस्तुको देवने पूर्वाचार्योंके मतका ध्यान रखते हुए इसमें अपने अन्य लक्षण-ग्रन्थोंकी अपेक्षा अधिक उत्तरदायित्वके साथ निरूपित किया है। इसी कारण उदाहरणोंपर ही नहीं, लक्षणोंपर भी कविकी सजग दृष्टि लक्षित होती है। यह अवश्य है कि कहीं-कहीं अनेक वस्तुओंके लिए एक ही उदाहरण दे दिया गया है अथवा लक्षण सर्वथा स्पष्ट नहीं हो सका है। प्रथम-द्वितीय प्रकाशमें 'काव्यप्रकाश' आदिके अनुरूप शब्द-शक्तियोंका निरूपण है। लक्षणादि तीन शक्तियोंके अतिरिक्त देवने मीमांसकोंकी तरह 'तात्पर्य'को भी स्वीकार किया है। लक्षणाका वर्णन अत्यन्त विस्तृत है। तृतीय-पंचम प्रकाशमें भानुदत्तकी 'रसतरंगिणी'के अनुरूप रसनिर्णय है। षष्ठमें नायक-नायिकाभेदको निरूपित किया गया है। देवने अभिधाको स्वकीया और व्यंजनाको परकीयासे एक करके "अभिधा उत्तम काव्य है" जैसा चकित करनेवाला निष्कर्ष सामने रख दिया है जिससे रामचन्द्र शुक्ल कुछ क्षुब्ध भी हो गये थे। सप्तम प्रकाशमे 'रीति'का गुणमें एकीकरण करते हुए वर्णन है और अष्टममें चित्र काव्यको अधम काव्य मानते हुए समाविष्ट किया गया है। नवममें अलंकार वर्णन है जो 'भावविलास'की अपेक्षा कहीं अधिक परिवृद्ध है। देवने उपमाको सब अलंकारोंका मूल मानकर उसका विशेष विस्तार किया है। अन्तिम दो प्रकाशोंमे पिंगल अथवा छन्दशास्त्रका निरूपण है जिसमें कविने छन्द-कल्पना, वर्गीकरण प्रस्तार, लक्षण आदिके क्षेत्रमें अनेक मौलिक उद्भावनाएँ करनेका यत्न किया है (दे० 'देव')। इसकी एक विशेषता यह भी है कि लक्षण-उदाहरण दोनों एक ही छन्दमे दिये गये हैं। इस ग्रन्थसे देवका व्यक्तित्व कविके अतिरिक्त आचार्य रूपमे विशेष उभरता है।

[सहायक ग्रन्थ—शि० स०; मि० वि०; हि० का० शा० इ०; रीo भू० तथा दे० का० देवके लक्षण-ग्रन्थोका पाठ और पाठ-समस्याएँ(अ० प्र०) : लक्ष्मीधर मालवीय।]—ज० गु०

काव्यविलास—प्रतापसाहिकृत विविध काव्यांग निरूपक यह ग्रन्थ सन् १८३० ई०में लिखा गया। यह ग्रन्थ नागरी प्रचारिणी सभा, काशीके याज्ञिक संग्रहमे सुरक्षित है। इसमे ६ प्रकाश तथा ४११ पद्य हैं। 'व्यंगार्थ-कौमुदी'के समान इसमें भी वृत्तिसे काम लिया गया है। पहले प्रकाशमें गणेशवन्दनाके पश्चात् काव्य-लक्षण, प्रयोजन, कारण तथा भेदोंपर संक्षेपमें विचार व्यक्त किये गये है। दूसरे प्रकाशमें शब्द-शक्ति, तीसरेमें ध्वनि तथा चौथेमें गुणीभूत-व्यंगका वर्णन है। पाँचवेंमें गुण तथा छठेमें दोषका वर्णन है।

ग्रन्थ सामान्य होनेके साथ ही भ्रान्तिपूर्ण भी है। काव्यलक्षणमे 'साहित्यदर्पण' तथा 'रस गंगाधर'के मतके नामपर मम्मट-परवर्ती वाग्भट आदि आचार्योंके लक्षणोंकी छाया रख दी गयी है। शब्दशक्ति विवेचनमें संकेतग्रह, लक्षणामूला व्यंजनाके भेद, लक्षणाके भेदोपभेदकी गणना, कतिपय दोषोंके लक्षणोदाहरण आदिमें प्रायः शिथिलता तथा भ्रान्ति रह गयी है। ग्रन्थमें मौलिकता तो है ही नहीं, शास्त्रानुकूलताका अभाव भी है और भाषाके असमर्थ प्रयोग उसे अस्पष्ट भी बना रहे है। विशेष रूपसे कुलपतिका आधार ग्रहण किया गया है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० का० शा० इ०; हि० सा० बृ० इ० (भा० ६)।] —आ० प्र० दी०

काशिराज चेतसिंह—काशीके प्रसिद्ध नरेश महाराजा चेतसिंह बड़े काव्यरसिक थे। उनके आश्रयमें कवि गोकुलनाथने सन् १७८३ ई०से सन् १८१३ ई० के बीच 'चेत-चन्द्रिका' ग्रन्थकी रचना की थी। उनके पुत्र बलवानसिंह स्वयं कविता करते थे। उन्होने १८३२ ई० से प्रारम्भ करके १८७४ ई० तक 'चित्र-चन्द्रिका' नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा। इस पुस्तकमे बलवानसिंहने अपना परिचय इन शब्दोंमे दिया है—"तासु तनय जग विदित है, चेतसिंह महाराज। हौ सुत तिनको जानिए, विदित नाम बलवान॥" इस ग्रन्थमे सर्वत्र काशिराजके पाण्डित्य, विशद अध्ययन तथा शास्त्र-ज्ञानका परिचय मिलता है। गद्यकी व्याख्याने विषयको सुबोध बना दिया है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० अ० सा०; हि० सा० बृ० इ० (भा० ६)।] —ओ० प्र०

काशीनाथ खत्री—जन्म आगरामें सन् १८४९ ई० मे हुआ था। जीविकोपार्जनके निमित्त ये आरम्भमें कुछ दिनोतक गवर्नमेंट वर्नाक्यूलर रिपोर्टरका कार्य करते रहे और बादमे लाट साहबके दफ्तरमें पुस्तकाध्यक्षके पदपर नियुक्त हुए। इनकी मृत्यु सन् १८९१ ई०में सिरसा(इलाहाबाद) मे हुई।

आचार्य रामचन्द्र शुक्लके शब्दोंमे काशीनाथ खत्री मातृभाषाके सच्चे सेवक थे, किन्तु "नीति, कर्त्तव्य पालन, स्वदेश हित ऐसे विषयोपर ही लेख और पुस्तकें लिखनेकी ओर इनकी रुचि थी। शुद्ध-साहित्य कोटिमे आनेवाली रचनाएँ इनकी बहुत कम है।" ('इतिहास', पृ० ४७९)। फिर भी, इनकी चार-पाँच कृतियाँ मौलिक और साहित्यिक मानी गयी है। इनमें-से तीन तो नाटक या रूपक हैं और शेष दो चरित्रवर्णनसम्बन्धी हैं—(१) 'बाल विधवा सन्ताप नाटक', (२) 'ग्रामपाठशाला और निकृष्ट नौकरी नाटक', (३) 'तीन ऐतिहासिक रूपक', (४) 'भारतवर्षकी विख्यात स्त्रियोंके चरित्र', (५) 'यूरोपियन धर्मशीला स्त्रियोके चरित्र'। 'तीन ऐतिहासिक रूपक' नामक जिल्दके अन्तर्गत 'सिन्धु देशकी राजकुमारियाँ', 'गुन्नौरकी रानी' तथा 'लवजीका स्वप्न' नामक तीन लघुकृतियाँ संकलित है। हिन्दी नाट्यसाहित्यके विकासमे अभी इन कृतियोका उचित मूल्यांकन नहीं हो सका है।

काशीनाथ खत्रीकी प्रतिभा मूलतः अनुवादक की थी। इन्हें अंग्रेजी भाषाका अच्छा ज्ञान था। अंग्रेजी पुस्तकों—व्याख्यानोका हिन्दी अनुवाद करनेमे इन्हें बहुत सफलता मिली। इन्होंने कर्नल अलकाटके व्याख्यानोंका अनुवाद 'भारत त्रिकालिक दशा'के नामसे, ह्यूमके व्याख्यानोंका अनुवाद 'इण्डियन नेशनल कांग्रेस'के नामसे तथा स्लैकीकृत 'सेल्फ कल्चर'का अनुवाद 'नीत्युपदेश' नामसे प्रस्तुत

किया है। इन्होंने लैबकृत शेक्सपियरके नाटकोपाख्यानोंका भी एक अनुवाद किया था। —र० भ०

काशीप्रसाद जायसवाल–जन्म मीरजापुरमें १८८१ ई०में हुआ था। आप पटनामें बैरिस्टरी करते थे। प्राचीन भारतीय इतिहास तथा संस्कृतिके क्षेत्रमें आपका कार्य ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। हिन्दी भाषा तथा साहित्यमें आपकी प्रारम्भमे ही रुचि थी। काफी समयतक आप नागरी प्रचारिणी सभासे सम्बद्ध रहे। भारतीय साहित्य तथा संस्कृतिपर हिन्दी माध्यमसे लिखनेवालोंमें आपका नाम अग्रणी रहेगा। १९३७ में आपकी मृत्यु हुई। —सं०

काशीराम–सरोजकारके अनुसार इनका जन्म १६६८ ई०में हुआ। ये औरंगजेबके सूबेदार निजामत खाँके आश्रित कवि थे। इनका जन्म कायस्थ कुलमें हुआ था। 'दिग्विजय भूषण'में उदाहृत इनके एक कवित्तमें निजामत खाँकी वीरताका वर्णन है, जिससे इनका औरंगजेबके समयमें होना निश्चित है। खोज विवरणके अनुसार इनके तीन ग्रन्थोंका पता चला है—'कनक मंजरी', 'परशुराम संवाद' और 'कवित्त काशीराम'। तीसरा ग्रन्थ कविकी स्फुट रचनाओंका संकलन मात्र है। इनके काव्यमे पर्याप्त सरसता और शब्द-कौशल है।

[सहायक ग्रन्थ—शि० स०; दि० भू०(भूमिका)।] —सं०

किन्नर–विष्णु तथा वायु पुराणों की मान्यताके अनुसार सुनक्षत्रके पुत्रका नाम किन्नर था। 'किन्नर' एक अश्वमुखी देवताको भी कहा जाता है। किन्नर संगीतके देवता माने गये हैं। इनका निवास स्थान कैलास पर्वतपर कुबेरपुरी है। ऐसी प्रसिद्धि है कि किन्नरोंकी उत्पत्ति ब्रह्माके अँगूठेसे हुई और ये पुलस्त्यके वंशज और कश्यपके पुत्र हैं। —रा० कु०

किरात–शिवका एक अवतार प्रसिद्ध है। इस रूपमें उन्होने मूक नामक राक्षसका वध किया था तथा अर्जुनसे युद्ध करके उन्हे पाशुपतास्त्र दिया था। 'किरात' एक आदिवासी जातिका भी नाम है। —रा० कु०

किलात–दे० 'आकुलि'।

किशोर–इस कविका पूरा नाम जुगलकिशोर बताया गया है। इनके पिताका नाम बालकृष्ण और बाबाका नाम निहचलराम दिया गया है। ये मुगल बादशाह मुहम्मद शाह (१७०९ ई०से १७४८ ई०तक) के आश्रित कवि थे। इनको दरबारसे राजाका पद प्राप्त हुआ था। इन्होंने अपने 'अलंकार निधि' नामक ग्रन्थमें अपना परिचय दिया है। इस ग्रन्थकी रचना सन् १७४८ ई० में हुई थी। 'शिवसिंह सरोज'में इनके 'किशोर संग्रह' नामक ग्रन्थका भी उल्लेख मिलता है। इनके 'कवित्त संग्रह' और 'फुटकर कवित्त' नामके दो संग्रह-ग्रन्थ और मिलते है जिनमें अन्य समकालीन कवियोंके छन्द भी दिये गये हैं। इनके काव्यमे वर्णनका विशेष लालित्य मिलता है। शब्द-चयनकी दृष्टिसे भी कविको विशेष सफलता प्राप्त हुई है।

[सहायक ग्रन्थ—शि० स०; दि० भू०(भूमिका)।]—सं०

किशोरीदास वाजपेयी–जन्म रामनगर (कानपुर)में हुआ। हिन्दीके वैयाकरणोंमें आपका प्रमुख स्थान है। आपने भाषा तथा शैलीकी अनेक समस्याओंपर विविध रूपोंमें विचार किया है। हिन्दीके प्रचार कार्यमे भी आपका पर्याप्त योगदान है। 'हिन्दी शब्दानुशासन' आपकी महत्त्वपूर्ण कृति है।

वाजपेयीजीकी अबतक दस पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमें प्रमुख ये हैं—'साहित्यजीवनके अनुभव और संस्मरण', 'काव्यमें रहस्यवाद', 'संस्कृतिके पाँच अध्याय', 'मानवधर्म मीमांसा', 'हिन्दी शब्दानुशासन' और 'सुभाषचन्द्र बोस'। —सं०

किशोरीलाल गोस्वामी–जन्म सन् १८६५ ई० में काशीमें हुआ। इनके नाना गोस्वामी कृष्णचैतन्य काशीमें ही रहते थे। यहीं इनकी शिक्षा-दीक्षा भी हुई। कुछ समय तक ये बिहारमें रहनेके उपरान्त स्थायी रूपसे काशीमें रहने लगे। गोस्वामी कृष्ण चैतन्य भारतेन्दु हरिश्चन्द्रके साहित्य-गुरु थे। भारतेन्दुके संसर्गमें आनेवाले साहित्यकारोंसे इनका घनिष्ठ सम्पर्क था। इनके मनमें भी साहित्य-सर्जनकी इच्छा जागरित हुई। सन् १९३२ ई० मे गोस्वामीजीकी मृत्यु हुई। ये मस्त तबीयतके जीव तथा बड़े सरस व्यक्ति थे। इस कारण इनकी रचनाओंमें सर्वत्र सरसता और सजीवता दिखायी पड़ती है। कहीं-कहीं यह सरसता आवश्यकतासे अधिक घनी हो जाती थी। ऐसे ही स्थलोंकी ओर संकेत करते हुए रामचन्द्र शुक्लने लिखा है कि "उनके बहुतसे उपन्यासोंका प्रभाव नवयुवकोंपर बुरा पड सकता है। उनमें उच्च वासनाएँ व्यक्त करनेवाले दृश्योंकी अपेक्षा निम्नकोटिकी वासनाएँ प्रकाशित करनेवाले दृश्य अधिक भी हैं और चटकीले भी।" (हि० सा० इ०, छठाँ संस्करण पृ० ५००)।

ये निम्बार्क सम्प्रदायके अनुयायी थे। इनकी सनातन हिन्दूधर्मके प्रति गहरी निष्ठा और श्रद्धा थी। १८५७ की क्रान्तिके विफल होनेके पश्चात् देशमें धार्मिक सुधारोंका आन्दोलन काफी जोरपर था। खृष्टीय मतका प्रचार बड़ी तेजीसे चल रहा था। बाहरी धर्मोंके आक्रमणसे अपनी रक्षा और हिन्दू धर्मके आन्तरिक सुधारके लिए दयानन्द सरस्वतीने आर्य समाजकी स्थापना की। इन सभी आन्दोलनोंके घात-प्रतिघातको गोस्वामीजीने निकटसे देखा था। ये हिन्दूधर्मके विरोधमे पडनेवाले सभी आन्दोलनोंके कट्टर विरोधी थे। अपने उपन्यासोंमें अक्सर ये यथावसर इस तरहके हिन्दू-विरोधी तत्त्वोंकी निन्दा करते हैं। यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि किशोरीलालकी रचनाओंमें तत्कालीन स्वस्थ सामाजिक चेतनाका अभाव है, जो भारतेन्दु तथा श्री निवास दास आदि लेखकों में दिखाई पड़ती है। इन्होंने अपने उपन्यासोंका उद्देश्य 'प्रेमके विज्ञान'का प्रचार माना है। 'सुख शर्वरी'के निदर्शनमें लिखा "प्रेम और प्रेमतत्त्वको सभी चाहते हैं; पर इसका उपाय बहुत कम लोग जानते होंगे।…इसका अभाव केवल उपन्यास ही दूर करता है इसीलिए प्राचीनतम कवियोंने और साम्प्रतिक यूरोपियन कवियोंने उपन्यासकी सृष्टि की। जो बात झूठ-सचसे नहीं होती, तन्त्रमन्त्रसे नहीं बनती वह 'प्रेमके विज्ञान' उपन्याससे सिद्ध होती है।"

ये मुख्यतया उपन्यासकार थे। इन्होंने १८९८ ई०में उपन्यास नामक एक मासिक पत्र भी निकाला। हिन्दी गद्यके विकासके द्वितीय उत्थान काल (सन् १८९३-१९१८)

के भीतर उपन्यासकार इन्हींको कह सकते हैं। और लोगोंने भी मौलिक उपन्यास लिखे, पर वे वास्तवमें उपन्यासकार न थे। और चीजें लिखते-लिखते उपन्यासकी ओर भी वे जा पड़ते थे, पर गोस्वामीजी यहीं घर करके बैठ गये (हि० सा० इ०, छठा संस्करण, पृ० ५००)। गोस्वामीजीने पाँच दर्जनसे भी अधिक उपन्यास लिखे। इनकी कुछ प्रसिद्ध रचनाएँ ये हैं—'त्रिवेणी' (१८८८ ई०), 'स्वर्गीय कुसुम वा कुसुम कुमारी' (१८८९), 'प्रणयिनी परिणय' (१८८०), 'लवंग लता वा आदर्श बाला' (१८९०), 'सुख शर्वरी (१८९१), 'लीलावती' (१९०१), 'प्रेममयी' (१९०१), 'राजकुमारी' (१९०२), 'तारा' (१९०२), 'चपला व नव्य समाज चित्र' (१९०३), 'कनककुसुम वा मस्तानी' (१९०३), 'चन्द्रावली वा कुलटा कुतूहल' (१९०५), 'हीराबाई या बेहयाईका बोरका' (१९०५), 'चन्द्रिका वा जड़ाऊ चम्पाकली' (१९०५), 'कटे मूड़की दो-दो बातें या तिलस्मी शीश महल' (१९०५), 'याकूती तख्ती या यमज सहोदरा' (१९०६), 'जिन्देकी लाश' (१९०६), 'तरुण तपस्विनी या कुटीरवासिनी' (१९०६), 'लखनऊकी कब्र या शाही महलसरा', 'रजिया बेगम या रंग महलमें हलाहल', 'मल्लिका देवी या बंगसरोजिनी', 'लीलावती वा आदर्श सती', 'पुनर्जन्म या सौतियाडाह', 'गुलबहार', 'इन्दुमती या वनविहगिनी', 'लावण्यमयी', 'मालती माधव वा मदन मोहिनी' आदि उपन्यास भी काफी लोकप्रिय हुए।

गोस्वामीजीने सभी प्रकारके उपन्यास लिखे हैं। उपरिलिखित सूचीसे स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने सामाजिक, ऐतिहासिक, जासूसी, तिलस्मी-ऐयारी आदि विभिन्न प्रकारके उपन्यास लिखनेका प्रयत्न किया। चूँकि गोस्वामीजीने उपन्यासका मुख्य उद्देश्य प्रेमके विज्ञानका प्रचार मान लिया था, इस कारण उनके अधिकांश उपन्यास यदि सम-विषम प्रेमके नाना रूपोंके इर्द-गिर्द चिपके मालूम होते हैं, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। गोस्वामीजीको प्रायः विकृत और अनैतिक प्रेमके चित्रणमें मजा आता था। इसी कारण उनके उपन्यासोंमें वेश्याओंके कृत्रिम प्रेमाभिनय, साली बहनोईका अवैध प्रेम, व्यभिचार, भ्रूणहत्या देवदासियोंका घृणित जीवन, कुटनियोंकी करामातें, सौतियाडाह आदिका बड़ा चटक चित्रण किया गया है। आश्चर्य तो यह देख कर होता है कि एक तरफ लेखक हिन्दूधर्मके गौरव और नारी मर्यादाकी रक्षाके लिए बड़े-बड़े उपदेश देता है और दूसरी ओर पतित नारियोंके रूप-यौवन और हाव-भावका रंगीन वर्णन करनेमें अजीब आनन्दका अनुभव करता है। माधवी माधव या मदन मोहिनी, सौतियाडाह, लीलावती त्रिवेणी, कुलटा कुतूहल आदि उपन्यासोंमें सर्वत्र यही प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। कभी-कभी जब लेखकका हिन्दू संस्कार और आदर्शवाद प्रबल होता है तो वे इन चरित्रोंमें आकस्मिक और अविश्वसनीय परिवर्तन भी उपस्थित कर देते हैं और ऐसे चरित्र अपने कुकर्मोंपर पश्चात्ताप करते हुए सन्मार्गपर चलनेका प्रयत्न करते हैं। गोस्वामीजी न केवल पात्रोंसे अपराध कराते हैं बल्कि उनके दण्ड-विधाता भी बनते हैं। ऐसे चरित्र अन्तमें अपने किये का फल पाते हैं और कभी अस्पतालमें गर्भपातके समय, (माधवी-माधव) कभी व्यभिचारके समय छत गिर जाने, कभी नाव उलट जाने आदि दुर्घटनाओंसे अपने पापका फल भोगते हैं। सज्जन चरित्र अन्ततः अपने शुभ कार्योंके लिए प्रेमिका-प्राप्ति, धन-प्राप्ति, पुत्र-प्राप्ति आदि विभिन्न तरहके सुपरिणामोंसे पुरस्कृत होते हैं।

गोस्वामीजीने यह स्पष्ट स्वीकार किया है कि "हमने अपने बनाये उपन्यासोंमें ऐतिहासिक घटनाको गौण और अपनी कल्पनाको मुख्य रखा है और कहीं-कहीं कल्पनाके आगे ऐतिहासिक घटनाको दूरसे ही नमस्कार कर दिया है" ('तारा', भूमिका)। इसी कारण इनके उपन्यास शुद्ध ऐतिहासिक न होकर सस्ते ऐतिहासिक रोमांसकी कोटिमें परिगणित किये जा सकते हैं। हिन्दुत्वका गौरव और जात्यभिमान इन उपन्यासोंका प्रमुख प्रतिपाद्य है। कहीं अत्याचारी सिराजुद्दौलाके फन्दे से लवंगलताके छूटनेका दास्तान है ('आदर्श बाला') तो कहीं प्रतापकी पौत्री ताराकी दारा जैसे लफंगे और बदमाश शाहजादेके हाथसे निकलनेके लिए तिकड़मबाजीका बयान, 'हीराबाई या बेहयाईका बोरका'में ऐतिहासिक तथ्योंको बदलकर लेखकने अपने मनपसन्द किस्सेको ऐतिहासिक तथ्यका जामा पहना दिया है कि काठियावाड़की रानी कमलाके स्थानपर उसकी आश्रिता हीराबाई अलाउद्दीनके पास गयी थी और खिजर खाँका ब्याह देवलदेवीसे नहीं, हीराबाईकी पुत्री लाखनसे हुआ था। 'लखनऊकी कब्र या शाही महलसरा'में ऐय्याश नवाब नासुरुद्दीन हैदरके महलके अजीब कारनामोंका हाल बयान किया गया है। बेगमोंकी प्रणय-कहानियों, बादशाहकी कामुक प्रवृत्तियों, खूबसूरत औरतोंके जमावड़े, बाँदियों और कुटनियोंकी ऐयारी तथा जासूसीके सनसनीखेज वर्णनोंसे उपन्यास भरा हुआ है। —शि० प्र० सि०

कीर्ति—वाङ्मयमें तीन कीर्तियोंका उल्लेख मिलता है—

(१) राजा प्रियव्रतकी पत्नीका नाम। (२) दक्ष प्रजापति की एक कन्याका नाम जो धर्मकी पत्नी थी। (३) ब्रज के प्रसिद्ध गोप वृषभानुकी पत्नी और राधाकी माता (दे० 'वृषभानु पत्नी')। —रा० कु०

कीर्तिलता—कीर्तिलता परवर्ती अपभ्रंश या अवहट्ठ भाषामें लिखा हुआ काव्य है। यह अपनी संक्रान्तिकालीन भाषा और काव्यशैलीके कारण विशेष महत्त्व रखता है। कीर्तिलताके रचनाकालके विषयमें काफी मतभेद है। अब तकके शोधके आधारपर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि इसकी रचना सन् १४०२ या १४०४ ई० के आसपास हुई। कीर्तिलता सर्वप्रथम बंगीय सन् १३३१ अर्थात् १९२४ ई० में हरप्रसाद शास्त्रीके सम्पादकत्वमें प्रकाशित हुई। शास्त्रीजी सन् १९२२ में नेपाल गये थे और वहाँसे कीर्तिलताकी प्रतिलिपि ले आये थे। इस प्रतिकी नकल जय जगज्ज्योतिर्मल्लेखकी आज्ञासे देवज्ञनारायण सिंहने नेपालमें बसे हुए किसी मैथिल पण्डितकी प्रतिसे की थी। यह प्रति नेवारी लिपिमें है। सन् १९२९ ई०में कीर्तिलताका हिन्दी संस्करण बाबूराम सक्सेनाके सम्पादनमें काशी नागरी प्रचारिणी सभासे प्रकाशित हुआ। इसमें तीन पाण्डुलि-

पियोंका प्रयोग किया गया है पर शास्त्रीजीके संस्करणसे इसे किसी भी अर्थमें उत्तम नहीं कहा जा सकता। इस संस्करणके लिए पहली पाण्डुलिपि श्रीगंगानाथ झाने नेपाल दरबारकी प्रतिसे नकल करके मँगवायी थी। दूसरी प्रति काशी नागरी प्रचारिणी सभाने प्रसिद्ध महादेवप्रसाद चतुर्वेदीसे प्राप्त की थी। तीसरी प्रति शास्त्रीजीके बंगला संस्करण की है। दूसरी प्रति अब प्राप्त नहीं है। कीर्तिलताकी एक प्रति संस्कृत टीकाके साथ प्राप्त हुई है जो अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेरमें सुरक्षित है। कीर्तिलताका नया संस्करण १९५५ ई०में शिवप्रसाद सिंहने प्रस्तुत किया, जो साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयागसे प्रकाशित हुआ है। इस संस्करणमें यथासम्भव पाठ और अर्थकी अनेकानेक समस्याओंको सुलझानेका प्रयत्न किया गया है।

कीर्तिलताकी भाषामे पुरानी मैथिलीके प्रयोग भी प्रचुर मात्रामें मिल गये हैं। विद्यापतिने इस पुस्तकमे अपने आश्रयदाता कवि कीर्तिसिंह द्वारा तिरहुतका सिंहासन प्राप्त किये जानेका वर्णन किया है। कवि अपनेको कीर्तिसिंहका 'खेलन कवि' कहता है जिससे प्रतीत होता है कि दोनों समवयस्क थे। लक्ष्मण संवत् २५२ मे असलान नामक सुल्ताननने धोखेसे तिरहुत नरेश गणेश्वरका वध कर दिया। राजाके वधके बाद मिथिलाकी सामाजिक और राजनीतिक स्थितिका ह्रास होना स्वाभाविक था। कीर्तिसिंह और उनके भाई वीरसिंह जौनपुरके शासक इब्राहीम शाहसे सहायता माँगने गये। इब्राहीम शाह तिरहुत-उद्धारके लिए ससैन्य चला,पर कुछ कारणवश उसे दूसरे युद्धमें जाना पड़ा। वहाँसे निबटकर उसने तिरहुतपर आक्रमण किया। असलान युद्धमे हार गया और कीर्तिसिंहने उसे प्राणदान दिया। तिरहुतके सिंहासनपर कीर्तिसिंह बैठे और बहुत उत्सव मनाया गया।

इस रचनासे कवि विद्यापतिकी प्रबन्ध-प्रतिभाका पता चलता है। यद्यपि यह काव्य मध्यकालीन ऐतिहासिक कथा-काव्योंकी शैलीमें लिखा गया है किन्तु कविने परिपाटीके प्रतिकूल इसमे अपने संरक्षक नरेशकी अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा बहुत कम की है। मध्यकालीन कथा-काव्य प्रायः पद्यमें लिखे गये हैं। कीर्तिलता प्रचलित चरित-काव्योसे किंचित् भिन्न शैलीमें लिखी गयी है। इसमें अलंकृत गद्य भी है। इस तरह इसमें कथाके कुछ लक्षण तो विद्यमान हैं किन्तु कुछ नहीं मिलते। इसीलिए विद्वानोंके मतसे विद्यापतिने कीर्तिलताको कथा न कहकर 'कहाणी' कहा है। कीर्तिलतामें मध्यकालीन कथाकाव्योंकी रुढियाँ यथा सज्जन प्रशंसा, दुर्जननिन्दा, नगरवर्णन, युद्धवर्णन आदि प्राप्त होती हैं। यह रासोके शुकशुकी संवादकी तरह भृंग-भृंगी सम्वादकी शैलीमें लिखी गयी है।

[सहायक ग्रन्थ—कीर्तिलता: बाबूराम सक्सेना, काशी, १९२९ ई०; कीर्तिलता और अवहट्ट भाषा: शिवप्रसादसिंह, प्रयाग, १९५५ ई०।] —शि० प्र० सिं०

कुंती–महाराजा पाण्डुकी पत्नी तथा युधिष्ठिर, भीम और अर्जुनकी माताका नाम था। ये पाँच कन्याओंमें-से एक थीं और अपने समयकी श्रेष्ठ सुन्दरी थीं। कुन्तीके पिताका नाम शूरसेन था। वे मथुराके राजा थे किन्तु इनका लालन-पालन राजा कुन्तिभोजने किया। जब ये कुमारी थीं तभी महर्षि दुर्वासाने इन्हें एक ऐसा मन्त्र दिया था जिससे आवाहन करनेपर मनोनुकूल देवता आकर इनसे सहवास कर सकता था। कुन्तीने एक बार विवाहके पूर्व ही इस मंत्रके प्रयोगसे सूर्यका आह्वान किया था जिनके सहवाससे महावीर और महादानी कर्णकी उत्पत्ति हुई। लज्जावश कुन्तीने सद्योजात शिशुको भागीरथीमें फेंक दिया। वह बहता हुआ शूद्र अधिरथके हाथ लगा। वह निःसन्तान था। उसकी स्त्रीका नाम राधा था। शूद्र दम्पतिने बच्चेका पालन-पोषण किया। इसके अनन्तर पाण्डुसे कुन्तीका विवाह हुआ और विवाहित जीवनमें धर्म, पवन तथा इन्द्रके आह्वान एवं सहवाससे क्रमशः युधिष्ठिर, भीम तथा अर्जुन नामक पाण्डवोंका जन्म हुआ। कुन्तीने अपनी सपत्नी माद्रीको भी दुर्वासा द्वारा प्राप्त मन्त्र बता दिया था जिससे उन्होंने अश्विनी कुमारोंका आह्वान कर नकुल तथा सहदेवको उत्पन्न किया था। माद्रीसे ईर्ष्या होनेपर भी कुन्तीने उसकी मृत्युके उपरान्त उसके बच्चोंका यत्नपूर्वक लालन-पालन किया था। महाभारत युद्धके अनन्तर कुन्ती धृतराष्ट्र तथा गांधारीके साथ वनमें चली गयीं जहाँ अन्तमें सभी दावानलमें भस्म हो गये। —रा० कु०

कुंभकर्ण–यह पुलस्त्य ऋषिके पौत्र तथा विश्रवाके पुत्रके रूपमें विख्यात हैं। सुमालीकी कन्या केकसीसे उत्पन्न यह रावणका भाई था। उत्पन्न होते ही यह सहस्रों नरोंका भक्षण कर गया। हाहाकार सुनकर इन्द्रने इसपर वज्र चलाया किन्तु घोर गर्जना करके इसने ऐरावतका एक दाँत उखाड लिया तथा उसे इन्द्रके ऊपर चलाया। इसपर लोगोंकी प्रार्थनासे ब्रह्माने इसे शाप दिया कि यह सदैव निद्रा-मग्न रहेगा। रावणके बहुत प्रार्थना करनेपर उन्होंने कहा कि यह वर्षमें ६ माह सोया करेगा। कुबेरकी समकक्षता हेतु उसने कठोर तपस्या की। जब ब्रह्मा वर देने आये तो लोग हाहाकार करने लगे। दैवात् सरस्वती इसके कण्ठमें जा बैठीं जिससे इसने शयन करते रहनेका ही वरदान माँगा। राम-रावण-युद्धके समय रावणने इसके जगानेका बहुत यत्न किया। इसके गलेमें एक रस्सी बाँध दी गयी जिसे हजारों व्यक्तियोंने मिलकर खीचा। क्षुब्ध होकर रावण इसपर प्रहार भी करने लगा। बडी कठिनाईसे जगनेपर इसने सीताहरणके लिए रावणकी निन्दा की और सीताको उसी रूपमें लौटा देनेको कहा, किन्तु रावणने यह प्रस्ताव अस्वीकृत कर उसे युद्धके लिए उत्तेजित किया। युद्धमें इसने रामदलमे हाहाकार मचा दी। इसने हनुमान्को मींज दिया और सुग्रीवको लंकाकी ओर फेंक दिया। अन्तमें रामने इसका वध किया। राम-कथा-काव्योंमें आसुरी शक्तियोंके संहार तथा रामके पराक्रमके दिग्दर्शनके उद्देश्यसे इसकी कथा प्रयुक्त हुई है। —रा० कु०

कुंभज–दे० 'अगस्त्य'।

कुंभनदास–अष्टछापके कवियोंमे सबसे पहले कुम्भनदासने महाप्रभु वल्लभाचार्यसे दीक्षा ली थी। अनुमानतः कुम्भनदासका जन्म सन् १४६८ ई०, सम्प्रदायप्रवेश सन् १४९२ ई० और गोलोकवास सन् १५८२ ई०के लगभग हुआ था। पुष्टिमार्गमें दीक्षित तथा श्रीनाथजीके मन्दिरमें

कीर्तनकारके पदपर नियुक्त होनेपर भी उन्होंने अपनी वृत्ति नहीं छोड़ी और अन्ततक निर्धनावस्थामें अपने परिवारका भरण-पोषण करते रहे। परिवारमें इनकी पत्नीके अतिरिक्त सात पुत्र, सात पुत्र-वधुएँ और एक विधवा भतीजी थी। अत्यन्त निर्धन होते हुए भी ये किसीका दान स्वीकार नहीं करते थे। राजा मानसिंहने इन्हें एक बार सोनेकी आरसी और एक हजार मोहरोंकी थैली भेंट करनी चाही थी परन्तु कुम्भनदासने उसे अस्वीकार कर दिया था। इन्होंने राजा मानसिंह द्वारा की गयी जमुनावतो गाँवकी माफीकी भेंट भी स्वीकार नहीं की थी और इनसे कह दिया था कि यदि आप दान करना चाहते हैं तो किसी ब्राह्मणको दीजिए। अपनी खेतीके अन्न, करीलके फूल और टेंटी तथा झाड़के बेरों से ही पूर्ण सन्तुष्ट रहकर ये श्रीनाथजीकी सेवामें लीन रहते थे। ये श्रीनाथजीका वियोग एक क्षणके लिए भी सहन नहीं कर पाते थे। प्रसिद्ध है कि एक बार अकबरने इन्हें फतहपुर सीकरी बुलाया था। सम्राट्की भेजी हुई सवारीपर न जाकर ये पैदल ही गये और जब सम्राट्ने इनसे कुछ गान सुननेकी इच्छा प्रकटकी तो इन्होंने गाया—"भक्तनको कहा सीकरी सों काम। आवत जात पनहिया टूटी बिसरि गयो हरि नाम। जाको मुख देखे दुख लागे ताको करन परी परनाम। कुम्भनदास लाल गिरिधर बिन यह सब झूठो धाम।" अकबरको विश्वास हो गया कि कुम्भनदास अपने इष्टदेवको छोड़कर अन्य किसीका यशोगान नहीं कर सकते फिर भी उन्होंने कुम्भनदाससे अनुरोध किया कि वे कोई भेंट स्वीकार करें, परन्तु कुम्भनदासने केवल यह माँगकी कि आजके बाद मुझे फिर कभी न बुलाया जाय। कुम्भनदासके सात पुत्र थे परन्तु गोस्वामी विठ्ठलनाथके पूछनेपर उन्होंने कहा था कि वास्तवमें उनके डेढ़ ही पुत्र हैं क्योंकि पाँच लोकासक्त हैं, एक चतुर्भुजदास भक्त हैं और आधे कृष्णदास हैं, क्योंकि वे भी गोवर्द्धन नाथजीकी गायोंकी सेवा करते हैं। कृष्णदासको जब गायें चराते हुए सिंहने मार डाला था तो कुम्भनदास यह समाचार सुनकर मूर्च्छित हो गये थे परन्तु इस मूर्च्छाका कारण पुत्र-शोक नहीं था, बल्कि यह आशंका थी कि वे सूतकके दिनोंमें श्रीनाथजीके दर्शनोंसे वंचित हो जायेंगे। भक्तकी भावनाका आदर करके गोस्वामीजीने सूतकका विचार छोड़कर कुम्भनदासको नित्य-दर्शनकी आज्ञा दे दी थी। श्रीनाथजीका वियोग सहन न कर सकनेके कारण ही कुम्भनदास गोस्वामी विठ्ठलनाथके साथ द्वारका नहीं गये थे और रास्तेसे लौट आये थे। गोस्वामीजीके प्रति भी कुम्भनदासकी अगाध भक्ति थी। एक बार गोस्वामीजीके जन्मोत्सवके लिए इन्होंने अपने पेड़े और पूड़ियाँ बेंचकर पाँच रुपये चन्देमें दिये थे। इनका भाव था कि अपना शरीर, प्राण, घर, स्त्री, पुत्र बेचकर भी यदि गुरुकी सेवा की, तब कहीं वैष्णव सिद्ध हो सकता है।

कुम्भनदासको निकुंजलीलाका रस अर्थात् मधुर-भावकी भक्ति प्रिय थी और इन्होंने महाप्रभुसे इसी भक्तिका वरदान माँगा था। अन्त समयमें इनका मन मधुर-भावमें ही लीन था, क्योंकि इन्होंने गोस्वामीजीके पूछनेपर इसी भावका एक पद गाया था। पुनः पूछनेपर कि तुम्हारा अन्तःकरण कहाँ है, कुम्भनदासने गाया था—"रसिकिनि रसमें रहत गड़ी। कनक बेलि वृषभान नन्दिनी स्याम तमाल चढ़ी॥ विहरत श्री गिरिधरनलाल संग कौने पाठ पढ़ी। कुम्भनदास प्रभु गोवर्धनधर रति रस केलि बढ़ी॥" प्रसिद्ध है कि कुम्भनदासने शरीर छोड़कर श्रीकृष्णकी निकुंज-लीलामें प्रवेश किया था।

कुम्भनदासके पदोंकी कुल संख्या जो 'राग-कल्पद्रुम', 'राग-रत्नाकर' तथा सम्प्रदायके कीर्तन-संग्रहोंमें मिलते हैं, ५००के लगभग हैं। इन पदोंमें आठ पहरकी सेवा तथा वर्षोत्सवोंके लिए रचे गये पदोंकी संख्या अधिक है। जन्माष्टमी, राधाकी बधाई, पालना, धनतेरस, गोवर्द्धन-पूजा, इन्द्रमानभंग, संक्रान्ति, मल्हार, रथयात्रा, हिंडोला, पवित्रा, राखी, वसन्त, धमार आदिके पद इसी प्रकारके हैं। कृष्णलीलासे सम्बद्ध प्रसंगोंमें कुम्भनदासने गोचारण, छाप, भोज, बीरी, राजभोग, शयन आदिके पद रचे हैं जो नित्यसेवासे सम्बद्ध हैं। इनके अतिरिक्त प्रभुरूप वर्णन, स्वामिनी रूप वर्णन, दान, मान, आसक्ति, सुरति, सुरतान्त, खण्डिता, विरह, मुरली, रुक्मिणीहरण आदि विषयोंसे सम्बद्ध शृंगारके पद भी हैं। कुम्भनदासने गुरु-भक्ति और गुरुके परिजनोंके प्रति श्रद्धा प्रकट करनेके लिए भी अनेक पदोंकी रचना की। आचार्यजीकी बधाई, गुसाईंजीकी बधाई, गुसाईंजीके पालना आदि विषयोंसे सम्बद्ध पद इसी प्रकारके हैं। कुम्भनदासके पदोंके उपर्युक्त वर्णनसे स्पष्ट है कि इनका दृष्टिकोण सूर और परमानन्दकी अपेक्षा अधिक साम्प्रदायिक था। कवित्वकी दृष्टिसे इनकी रचनामें कोई मौलिक विशेषताएँ नहीं हैं। उसे हम सूरका अनुकरण मात्र मान सकते हैं।

कुम्भनदासके पदोंका एक संग्रह 'कुम्भनदास' शीर्षकसे श्रीविद्या विभाग, कांकरोली द्वारा प्रकाशित हुआ है।

[सहायक ग्रन्थ—चौरासी वैष्णवनकी वार्ता; अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय : डा० दीनदयाल गुप्त: अष्टछाप परिचय : श्रीप्रभुदयाल मीतल।] —ब्र० व०

कुकुरमुत्ता—सन् १९४२ ई० में प्रकाशित सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'की व्यंग्य-प्रधान कविताओंका संग्रह है। इसमें 'कुकुरमुत्ता'के साथ-साथ अन्य छः कविताएँ—गर्म पकौड़ी, प्रेमसंगीत, रानी और कानी, खजोहरा, मास्को डायलाग्ज और स्फटिक शिला—संगृहीत हैं। प्रौढ़तर रचनाओंकी सर्जनाके बाद 'निराला'के जीवनमें एक परिवर्तन आया, जिसके फलस्वरूप वे अवसादपूर्ण तथा व्यंग्यात्मक रचनाएँ करने लगे। मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे दोनों प्रकार की रचनाएँ एक ही मनोवृत्तिकी द्योतक है।

इस संग्रहकी 'कुकुरमुत्ता' रचनाके सम्बन्धमें अब भी कम भ्रम नहीं फैला है। कोई इसे साम्यवादविरोधिनी रचना मानते हैं तो कोई साम्यवादकी समर्थक रचना। इसका मूल स्वर साम्यवादियोंके विरोधमें पड़ता है—फैशनपरस्त साम्यवादियोंके विरोधमें। 'कुकुरमुत्ता' इसी तथ्यका परिचायक है। कुकुरमुत्ता सर्वहाराका प्रतीक है, तो गुलाब पूँजीवादी वर्गका। कुकुरमुत्तेकी दृष्टिमें दुनियाकी गोलाई, डमरू, तबला, तानपूरा, पिरामिड, विक्टोरिया मेमोरियल, आर्य—पारसीक तथा गाथिक मेहराबें सभी पूँजीवादी संस्कृतिकी

ही चीजें हैं, अहंकारवश वह यह कहनेसे भी नहीं चूकता—"तू नहीं मैं ही बड़ा।" 'कुकुरमुत्ता'में चित्रित नवाब केवल सुनी-सुनाई बातोंके आधारपर ही फैशनपरस्त साम्यवादी बनना चाहता है। सर्वहाराके प्रति उसके मनमें कोई सहानुभूति नहीं है। सच्ची साम्यवादी भावना भीतरसे उत्पन्न होती है, यह बाहरकी वस्तु नहीं है। 'गर्म पकौड़ी, और 'प्रेम संगीत' रोमान्सविरोधी रचनाएँ हैं। 'रानी और कानी' तथा 'खजोहरा' यथार्थवादी कविताएँ हैं। 'स्फटिक शिला' तो बहुत कुछ अश्लील हो गयी है।

जहाँ तक भाषाका सम्बन्ध है, वह हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजीकी खिचड़ी है जो हिन्दुस्तानीसे कई कदम आगे बढ़ी हुई है। भूमिकाके स्थानपर 'जियाफत' बिठाया हुआ है। —ब० सिं०

कुणाल—सम्राट् अशोकका प्रथमपुत्र, जिसकी आँखे उसकी सौतेली माँ तिष्यरक्षिताने अपनी वासनापूर्ति न करनेके कारण ईर्ष्यावश फुड़वा डाली थी। इसका प्रामाणिक वृत्त अप्राप्य है। काल्पनिक कथा-संघटनोके आधारपर पण्डित सोहनलाल द्विवेदीने हिन्दीमें 'कुणाल' नामक खण्ड काव्यकी रचना प्रस्तुत की है। —यो० प्र० सिं०

कुतबन—अभी तक हिन्दी सूफी कवियोंके सम्बन्धमें जितनी भी जानकारी प्राप्त हुई है उनके आधारपर मुल्ला दाऊदको हिन्दीका पहला सूफी कवि मान सकते है तथा कुतबनको दूसरा। कुतुबन सन् ईस्वीकी पन्द्रहवी शताब्दीके अन्त तथा सोलहवी शताब्दीके प्रथम भागमे वर्तमान थे। इनकी एक रचना 'मृगावती'का ही अभी तक पता चला है। 'मृगावती'का जितना भी अंश प्राप्त है उसीसे कुतबनके सम्बन्धमें कुछ जानकारी प्राप्त हो जाती है।

कुतबनने 'मृगावती'मे अपने कालके शासकका नाम हुसेनशाह बतलाया है। हुसेनशाह जौनपुरके शासक थे। कुतबन शेख बुढनके शिष्य थे। कुतबनके जीवनके सम्बन्धमें अभी तक इससे अधिक कुछ भी ज्ञात नही। वैसे 'मृगावती'के रचनाकालका उन्होंने जिक्र किया है जिसके अनुसार वह सन् १५०३ ई०की रचना ठहरती है। कुतबनने यह भी बतलाया है कि दो महीने दस दिनोंमें उन्होंने इस ग्रन्थको पूरा किया।

कुतबनके गुरु तथा तत्कालीन शासकको लेकर विद्वानोंमें मतभेद है। आचार्य रामचन्द्र शुक्लने उनके गुरुका नाम शेख बुरहान बतलाया है (हिन्दी साहित्यका इतिहास, सातवाँ संस्करण, पृ० ९४)। लगता है जैसे 'मृगावती'में आये हुए 'सेख बुढन' शब्दको ही आचार्य शुक्लने 'शेख बुरहान' मान लिया है। डा० मोहनसिंह बुढनको ब्राह्मण बोड्ढन कहते है। मुसलमान इतिहासकारोने बतलाया है कि वे बड़े उदार थे और सभी धर्मोंकी अच्छाईको स्वीकार करते थे। इसीलिए सिकन्दर लोदीने उन्हें मरवा डाला (कबीर एण्ड द भक्ति मूवमेन्ट, १९३४, पृ० ९३)। 'आईने अकबरी'में शेख बुढन शत्तारीका नाम आया है जो सुल्तान सिकन्दर लोदीके कालमें वर्तमान थे। 'आईने अकबरी'मे कहा गया है कि उसके रचयिताके पिताके बड़े भाई शेख रिजक उल्लाह, शेख बुढनके सम्पर्कमे आये थे और उनसे आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त किया था। परशुराम चतुर्वेदीका अनुमान है कि यही बुढन कुतबनके भी गुरु थे (सूफी काव्य संग्रह, पृ० ९६)।

इसी प्रकारसे हुसेनशाहको आचार्य शुक्लने जौनपुरका शासक कहा है। परशुराम चतुर्वेदी उसे बंगालका शासक माननेके पक्षमें है। मेरा अनुमान है कि कुतबनने 'मृगावती'में जौनपुरके शासक हुसेनशाहकी ओर ही संकेत किया है।

'मृगावती'का जितना भी अंश प्राप्त है उससे कुतबनकी कवित्व शक्तिका पता चलता है। कुतबनने काव्य-रूढ़ि तथा कथानक-रूढ़ियोंमे भारतीय परम्पराका पालन किया है। उन्होंने स्वयं ही बतलाया है कि 'मृगावती'की रचना जिस कहानीके आधारपर हुई है उसका प्रचार पहलेसे ही था। छन्दोके सम्बन्धमें भी कविने स्पष्ट ही कहा है कि दोहा, चौपाई, सोरठा, अरिल्ल आदि छन्दोंके सहारे उसने कथाकी रचना की है। कुतबनने अवधी भाषाका प्रयोग किया है। हिन्दीके सूफी कवियोंका कुतबनने मार्ग-प्रदर्शन किया है। —रा० पू० ति०

कुबलयापीड—कुबलया एक पागल हाथी था जो कंसके सरक्षणमे था। कुबलयाको कंसने कृष्णको मारनेके लिए चुना था। कृष्ण जब मथुरा गये तो राजमहलके मुख्य द्वारपर इससे कृष्णकी मुठभेड हो गयी। अन्तमें कृष्णने इसे मार डाला—"सूरदास प्रभु सुर सुखदायक, मार्‌यो नाग पछारि।" (दे० सू० सा० पद० ३६७०, ३६७१, ३६७८, ३६९५)। —रा० कु०

कुबेर—अलकापुरीके अधिष्ठाताका नाम कुबेर है। कुबेरकी माता भारद्वाजकी पुत्री देववर्णिनी, पिता विश्रवा तथा पितामह महर्षि पुलस्त्य थे। पिताके आदेशसे ये पहले लंकापुरीमें रहते थे। वहाँ ब्रह्माके प्रसादसे माल्यवान्, माली तथा सुमाली नामके तीन राक्षस मनमाना अत्याचार करते थे जिन्हे दबानेके लिए स्वयं विष्णुको आना पड़ा। विष्णु के आतंकसे माल्यवान् तथा माली तो पातालमें चले गये और सुमाली मृत्युलोकमें विहार करने लगा। धनाधिप कुबेरको पुष्पकपर विहार करते हुए देखकर इसे ईर्ष्या हुई और इसने सोचा कि कोई ऐसा प्रतापी पुत्र उत्पन्न किया जाय जो कुबेरको लंकासे बहिष्कृत कर दे। इस अभिप्राय से इसने अपनी कन्या केकसीको विश्रवाके पास सन्तानोत्पत्तिकी इच्छासे भेज दिया। उसके गर्भसे महाप्रतापी रावणने जन्म लिया। रावणके अत्याचारसे कुबेरको लंका छोड़कर कैलासपर आश्रय लेना पड़ा। कुबेर यक्षोंके स्वामी तथा शिवके धनरक्षक कहे जाते हैं। ये अपनी कुरूपताके लिए विख्यात है।। कुबेरके लिए 'वैश्रवण' नामका भी प्रयोग हुआ है। ब्रह्माकी सेवाके फलस्वरूप ये चौथे लोकपाल भी हो गये। साहित्यमें कुबेर धनाढ्योंके लिए उपमान रूपमें प्रयुक्त हुए है। —रा० कु०

कुब्जा—१. दुर्भाग्यसे बाल-वैधव्यप्राप्त नारीके रूपमें कुब्जाने ६० वर्षोंतक पुण्य कर्म करते हुए अपना जीवन व्यतीत किया था। माघस्नानके पुण्यसे उसे बैकुण्ठ प्राप्त हुआ। इसके पश्चात् सुन्द-उपसुन्द नामक राक्षसोंका वध करनेके लिए वह तिलोत्तमा नामसे अवतरित हुई। सुन्द- उपसुन्दके वधके अनन्तर ब्रह्मदेवने उसे अभिनन्दित कर सूर्य-

लोक भेज दिया।

२. कंसकी दासी पीठपर कूबड़ होनेके कारण 'कुब्जा' नामसे ज्ञात थी। इसका शरीर तीन जगहसे टेढ़ा था। कंस द्वारा आमन्त्रित होकर जब कृष्ण और बलराम मथुरा गये उसी अवसरपर कृष्णकी सेवामें इसका शरीर सीधा हो गया। साहित्यमें 'कुब्जाके' लिए 'कुबरी' नाम भी प्रयुक्त हुआ है।

कृष्णभक्त कवियोंने उसे मथुरामें रंगभूमिके अवसरपर कृष्णकी अर्चनाकी भावनासे चन्दनका अंगराग लिए हुए वर्णित कर उसकी भक्ति-भावना व्यंजित की है। कृष्णने उसे उर्वशीके समान रूपवती बना दिया (दे० सू० सा० प० ३६६९)। 'भ्रमर गीत'के प्रसंगमें गोपियोंकी दृष्टिमें कुब्जा अत्यन्त हीन और वक्रशील नारी है। वे उसे अनेक प्रकारसे उलाहना देती है। कुब्जा और कृष्णका संग उन्हें काग और हंस, लहसुन और कर्पूर तथा कंचन और काँचके समान अनुपयुक्त लगता है। (दे० सू० सा०, प० ३७६०-३७७०)। कुब्जाका चरित्र कृष्णोपासनाके सद्भावमें निमग्न भक्तका चरित्र है। वह सरल, विनयशील, उदार किन्तु कृष्ण-कृपा प्राप्त कर लेनेके कारण गर्ववती है (सू० सा०, प० ४०६१-४०६५)। प्रकारान्तरसे कुब्जाका चरित्र भक्त कवियोंकी दृष्टिमें राधा और गोपियोंके प्रेमका उद्दीपक है। भागवतके भाषानुवादों तथा आधुनिक-युगीन 'कृष्णायन' आदि कृष्णपरक काव्योंमें वह कृष्ण-प्रियाके रूपमें ही आयी है। 'द्वापर'की (पृ० १४१-१५९) कुब्जा कृष्ण-वियोगमें उन्मत्त एवं दुःखी है। उसकी विरहानुभूति कृष्णके प्रति उसके अनुरागकी व्यंजक है।

३. कैकेयीकी दासी मन्थराका भी कुब्जाके नामसे उल्लेख मिलता है। —रा० कु०

कुमारगिरि—भगवतीचरण वर्माके 'चित्रलेखा' उपन्याससे जहाँ एक ओर जीवनकी क्रियाशीलता, भोग एवं वैभव को चित्रलेखा—बीजगुप्तके माध्यमसे प्रकट किया गया है वहीं कुमारगिरिको विराग एवं तप के मूर्तिमान् प्रतीक रूपमें उपस्थित किया गया है। रत्नाम्बरके शब्दोंमे "यौवन और विरागने मिल कर उसमें एक अलौकिक शक्ति उत्पन्न कर दी है।" "संयम उसका साधन है और स्वर्ग उसका लक्ष्य।" उसमें "ज्ञान है और कल्पना है"।" अपनी इस अलौकिक शक्ति, ज्ञान एव कल्पनाका परिचय वह सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्यके दरबारमें चाणक्यकी चुनौतीका उत्तर ईश्वरका रूप दिखाकर देता है।

यद्यपि एक स्थानपर कुमारगिरि कहता है, "मानापमान-से उसका कोई सम्बन्ध नहीं रह गया"; परन्तु वास्तवमे उसका स्वभाव अपमानसे क्षुब्ध हो उठनेका है और प्रारम्भ से ही एक प्रकारकी अहन्ता उसके व्यक्तित्वमें भासित होती है। विशालदेवसे कहा गया उसका यह वाक्य कि, "मै तुम्हें पुण्यका रूप दिखला दूँगा, और पुण्यको जानकर तुम पापका पता लगा सकोगे" उसकी अहन्ताको द्योतित कर देता है। उसके अहंकारको प्रकाशित करने वाले अंश उपन्यासमें विरल नहीं हैं।

उसके ज्ञानके आलोकमय संसारमे स्त्रीका कोई स्थान नहीं है। उसके लिये शान्ति या तथाकथित अकर्मण्यताका अर्थ है—"जिस शून्यसे उत्पन्न हुए हैं, उसीमें लय हो जाना और वही शून्य-जीवनका निर्धारित लक्ष्य है।" तथा "दुःखमय संसारको छोड़ देनेको ही सुख कहते है।" वह मानता है कि "सत्य अनुभवकी वस्तु है।"

सब मिलाकर उसका चरित्र आदर्श योगीकी ऊँचाईको नहीं पहुँच पाता। उपन्यासकारने जाने-अनजाने उसे भोग एवं सांसारिकताके प्रतीक चित्रलेखा, बीजगुप्तसे निम्न कोटिका चित्रित किया है। वह अपनी निर्बलताको जीत नहीं पाता; चित्रलेखाके प्रति वह भीषण रूपसे आकर्षित होता है और वासनाके प्रवाहमें बह जाता है। —दे० शं० अ०

कुमारमणि भट्ट—ग्रियर्सनके अनुसार कविका जन्म सन् १७४६ ई०में हुआ। वैसे उनका स्थायी निवास-स्थान गोकुल (ब्रज प्रदेश) था, किन्तु बहुत दिनों तक वे दतिया दरबारमें रहे। वे वत्सगोत्री तैलंग ब्राह्मण थे। उनके पिताका नाम हरिवल्लभ भट्ट था। प्रसिद्ध गाथा-सप्तशती-कार गोवर्धनाचार्य इसी वंशके थे। हरिवल्लभकी विद्वत्ता एवं पाण्डित्यसे प्रसन्न होकर सागर जिले (मध्यप्रदेश)के गढ-मण्डला-राज्यकी रानी दुर्गावतीने उन्हे कनेश और धर्मसी नामक दो गाँव दिये थे, जिनपर अब भी उनके वंशजोंका अधिकार है। कुमारमणि संस्कृत और हिन्दी दोनों ही भाषाओंके पण्डित थे। क्षेमनिधिने अपने ग्रन्थ 'संक्षेप भागवतामृत'में कुमारमणिको गुरु रूपमें याद किया है।

अब तककी खोजोंमे कविकी कुल तीन रचनाओंका पता चला है: 'सूक्ति-संग्रह' (प्राप्त) तथा 'सप्तशती' (अप्राप्त) संस्कृतमे और 'रसिक रसाल' हिन्दीमे। 'रसिक रसाल' का रचनाकाल सन् १७१९ ई० है। यह 'काव्य प्रकाश'के आधारपर लिखा गया कविका प्रसिद्ध रीति-ग्रन्थ है। इसमें काव्य-कारण, शब्द-शक्तियों, काव्य-भेदों तथा रसके विभिन्न अंगो एवं भेदों, अलंकारो और काव्यके भिन्न-भिन्न गुण-दोषो आदिपर विस्तारसे विचार किया गया है। विवेचन-शैली पुष्ट और प्राञ्जल है। कविने वात्सल्यको लेकर रसोंकी संख्या दस मानी है। मिश्रबन्धुओंने इनको काव्य-परिपाक और प्रौढतापर विचार करते हुए पद्माकरकी कोटिका कवि बतलाया है।

[सहायक ग्रन्थ—खो० वि० (भा० १, १२), मि० वि०; शि० स०; हि० सा० इ०; हि० का० शा० इ०।]—रा० त्रि०

कुरान—अरबी भाषामे लिखा हुआ इस्लामका धर्म ग्रन्थ है। आदरके कारण इसे 'कुरान शरीफ' भी कहते है। 'कुरान'का अर्थ है ईश्वरप्रदत्त धर्मोपदेशोंका संग्रह जो मोहम्मद साहब (७वीं शती)के साथ अवतीर्ण हुआ था। इस्लामके अनुसार 'कुरान'के स्फुट सदेशोंका संग्रह उनके धर्मनेता एवं मोहम्मद साहबके मित्र (सोहाबी) उसमान गनीने किया। इसलिए वे 'जामेउल कुरान' कहलाते हैं। कुरानकी रक्षाका भार स्वयं ईश्वरने अपने ऊपर लिया है। इसे 'अल्लाहका कलाम' भी कहते है। 'कुरान'मे जीवन-यापन, शासन, सैन्यसंगठन, धार्मिक और वैधानिक नियमोंका सांगोपांग निर्देश है। 'कुरान'में ईसाई धर्मके 'क्राइस्ट' और 'मोजेज'को भी पैगम्बर माना गया है

लेकिन सर्वश्रेष्ठ स्थान मोहम्मदका ही है। राजा 'कुरान'को लेकर राज्याभिषेकके समय इस्लाम धर्मानुसार राज्य संचालनकी सौगन्ध लेता है (दे० 'काबा-कर्बला')। —रा० कु०

कुरु–'कुरु' नामसे निम्नलिखित उल्लेख प्राप्त होते हैं:—

१. 'कुरु' एक प्रसिद्ध चन्द्रवंशी राजा थे। वैदिक साहित्यमें इनका उल्लेख मिलता है। कुरुके पिताका नाम सवरण तथा माताका नाम तपती था। शुभांगी तथा वाहिनी नामक इनकी दो स्त्रियाँ थीं। वाहिनीके पाँच पुत्र हुए जिनमें कनिष्ठका नाम जनमेजय था। उन्हींके वंशज धृतराष्ट्र एव पाण्डु हुए। वास्तवमें धृतराष्ट्र तथा पाण्डु दोनोंके वंशज कौरव कहे जा सकते है किन्तु धृतराष्ट्रके ही वंशज कौरव कहे जाते है।

२. अग्नीध्रके एक पुत्रका नाम 'कुरु' था जिनकी स्त्री मेरुकन्या प्रसिद्ध है। —रा० कु०

कुरुनाथ–दे० 'दुर्योधन'।

कुरुवंश–मधुराजाके पुत्रका नाम था। कुरुवंशके पुत्र अनु हुए। —रा० कु०

कुलजम स्वरूप–प्रणामी सम्प्रदायकी अनुश्रुतिके आधारपर कहा जा सकता है कि स्वामी 'प्राणनाथ' द्वारा प्रणीत १८ हजार चौपाइयाँ इस बृहत ग्रंथ मे संगृहीत है। इसका सम्पादन लगभग सन् १६९४ ई० मे स्वामी प्राणनाथके परमधामप्रवेशके बाद उनके एक प्रमुख शिष्य केसोदासने पन्नामें किया था। उसी रूपमें सम्प्रदायमें आज तक यह ग्रन्थ सुरक्षित है। गुरु ग्रन्थ साहबकी तरह यह भी एक धर्म ग्रन्थके रूपमें प्रत्येक प्रणामी मन्दिरमे पूजा जाता है। पन्नाके प्रणामी मन्दिरमे, जिसका निर्माण महाराज छत्रसाल ने किया था, एक प्रणामी पाठशाला लगती है जिसमें प्रणामी धर्मके बालकोको कई वर्षो तक इस ग्रन्थका अध्ययन कराया जाता है। इस ग्रन्थकी अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ देखने को मिली है, यत्र-तत्र कुछ शब्द रूपोंकी भिन्नताके अतिरिक्त वे सब पाठकी समानता प्रकट करती हैं। इस दृष्टिसे हिन्दीके हस्तलिखित ग्रन्थोंमे इसका विशेष महत्त्व है।

सम्प्रदायमे इस ग्रन्थको 'कुलजम स्वरूप', 'स्वरूप साहब' 'तारतम्य सागर', अथवा 'निजानन्द सागर'के नामसे अभिहित किया जाता है। 'कुलजम स्वरूप'का अर्थ है प्राणनाथकी उन बानियोंका पूर्ण सग्रह (कुलजमा) जिनमें स्वामीजी का वास्तविक स्वरूप सुरक्षित है। छत्रसालके समसामयिक शिष्य ब्रजभूषण द्वारा रचित वृत्तान्त मुक्तावलीमें कहा गया है–"बानी श्रीमुखकी सकल कुलजम लीला रूप" (वृत्तान्त मुक्तावली, प्रकरण ६६, चौपाई १४)। स्वर्गीय डॉक्टर हीरालालने 'कुजलम'को अरबी कुल्जुम (सागर)का तद्भव रूपान्तर माना है। कुलजम स्वरूप लगभग १००० पृष्ठोका बृहदाकार ग्रन्थ है जिसे १४ खण्डोमें विभाजित किया गया है। ये खण्ड निम्नलिखित हैं–(१) रास (१०१० चौपाइयाँ, गुजराती भाषा), (२) प्रकाश (११७६ हिन्दी अनुवाद सहित गुजराती चौपाइयाँ), (३) षट्सत (२३० गुजराती चौपाइयाँ), (४) कलस (७६८ हिन्दी अनुवाद सहित गुजराती चौपाइयाँ), (५) सनन्ध (१६९१ हिन्दी अनुवाद सहित हिन्दुस्तानी चौपाइयाँ) (६) किरन्तन (२१०२ हिन्दी या हिन्दुस्तानी चौपाइयाँ), (७) खुलासा (१०१९ हिन्दी या हिन्दुस्तानी चौपाइयाँ), (८) खिलवत (१०९४ हिन्दी या हिन्दुस्तानी चौपाइयाँ), (९) परकरमा (२४८४ हिन्दी या हिन्दुस्तानी चौपाइयाँ), (१०) सागर (११२८ हिन्दी या हिन्दुस्तानी चौपाइयाँ), (११) सिंगार (२२०९ हिन्दी या हिन्दुस्तानी चौपाइयाँ), (१२) सिंधी बानी (५९९ हिन्दी अनुवाद सहित सिन्धी चौपाइयाँ), (१३) मारफत (१०३४ हिन्दी या हिन्दुस्तानी चौपाइयाँ), (१४) क्यामतनामा छोटा ओ क्यामतनामा बड़ा (६६७ हिन्दी या हिन्दुस्तानी पद)।

स्वामी प्राणनाथकी जीवनीसे सम्बद्ध बानियोंमें उपयुक्त ग्रन्थोंकी रचना-तिथि, स्थान आदिका स्पष्ट उल्लेख मिलता है। स्वामी प्राणनाथने सबसे पहले सन् १६५५ ई०में प्रमोधपुरी (बन्दीगृह)में बानियोंकी रचना प्रारम्भ की थी। उसके बाद सूरत, अनूपशहर तथा पन्नामें उन्होंने सन् १६९४ ई० तक बानियोंका प्रणयन किया।

'कुलजम स्वरूप'का मुख्य वर्ण्य-विषय प्रणामी धर्म या निजानन्द सम्प्रदायका विवेचन ही है। यह धर्म एक सुधार आन्दोलनके रूपमें प्रारम्भ हुआ था। क्षर-अक्षरसे परे अक्षरातीत पर-ब्रह्म श्रीकृष्ण इसके उपास्य हैं। रास, प्रकाश, षट्सत और कलसमें कृष्ण-भक्तिका ही विवेचन मिलता है। सनन्धमें भागवत पुराण और कुरानका समन्वय किया गया है। खुलासा, मारफत, क्यामतनामा आदिमें इस्लामकी व्याख्या की गयी है और हिन्दू एवं इस्लाम धर्मके समन्वय-का प्रयत्न किया गया है। परकरमामें परमधामके सौन्दर्यका वर्णन है। इससे स्वामी प्राणनाथके विस्तृत भौगोलिक तथा वनस्पति जगत, वास्तुकला, चित्रकला और मूर्तिकला विषयक ज्ञानका परिचय मिलता है। सागर और सिंगारमें राधा और कृष्णके विराट् शृंगार तथा उनकी आठों यामकी लीलाका वर्णन है। शुद्ध काव्यकी दृष्टिसे किरन्तनके पद ही पूर्ण रूपसे साहित्यिक कहे जा सकते हैं। किरन्तन नामक ग्रन्थको छोड़कर अन्य सभी ग्रन्थ चौपाई, छन्दमें लिखे गये हैं। किरन्तनमें पद शैलीका प्रयोग हुआ है परन्तु वास्तवमें ये पद तुकान्त गद्य मात्र कहे जा सकते हैं। प्राणनाथ द्वारा प्रयुक्त चौपाई छन्दमे भी अनेक दोष पाये जाते हैं।

स्वामी प्राणनाथने अपनी भाषाको 'हिन्दोस्तानी' (हिन्दवी या हिन्दुस्तानी) कहा है। उनकी भाषामें खड़ी बोली या हिन्दवीका मध्यकालीन रूप सुरक्षित है। उसमें तद्भव शब्दोंकी प्रधानता है। संस्कृत, फारसी, अरबी आदिके शब्द भी स्वतन्त्रतापूर्वक तद्भव रूपमें ही प्रयुक्त हुए हैं। इस्लामधर्मके विवेचनमें फारसी और अरबी शब्दोंकी बहुलतासे भाषा कुछ दुरूह हो गयी है। प्राणनाथकी भाषामें प्रतीकात्मक शब्दोंका प्रयोग प्रचुरतासे हुआ है।

स्वामी प्राणनाथने अपनेको सच्चा हिन्दू और सच्चा मुसलमान या मोमिन घोषित किया है और औरंगजेबके कट्टर अनुयायियोंको सर्वत्र काफिर बताया है। धार्मिक, साहित्यिक, सामाजिक तथा भाषिक दृष्टिसे 'कुलजम स्वरूप' एक अमूल्य ग्रन्थ कहा जा सकता है। अभीतक यह केवल हस्तलिखित रूपमें प्राप्त है। —मा० ब० जा०

कुलपति मिश्र—ये आगरा-निवासी परशुराम मिश्रके पुत्र थे। इनके मामा महाकवि बिहारी प्रसिद्ध हैं। 'संग्रामसार'में इन्होंने किन्हीं केशवरायको अपना नाना बताया है। ये पहले विष्णुसिंह नामक किसी सामन्तके आश्रयमें रहे। बादमें बिहारीके आश्रयदाता कूर्मवंशीय महाराज जयसिंहके पुत्र महाराज रामसिंहके यहाँ रहे। ये भूषणके समकालीन थे। 'मिश्रबन्धु विनोद'में इन्हें भूषण-कालके अन्तर्गत 'परमोत्तम' कवियोंमें स्थान दिया गया है और सुखदेव मिश्रके साथ इन्हें 'भारी आचार्य' कहकर इनकी प्रशंसा की गयी है। अन्य विद्वान भी इनके आचार्यत्व तथा संस्कृतज्ञानकी प्रशंसा करते हैं। इनका रचनाकाल सन् १६६७ ई०से १६८६ ई० तक ठहरता है।

इनकी प्रमुख रचना 'रस रहस्य' (१६७० ई०)के अतिरिक्त अन्य रचनाएँ 'द्रोणपर्व' (१६८० ई०), 'युक्तितरंगिणी' (१६८६ ई०), 'नखसिख' और 'संग्रामसार' हैं। भगवतीप्रसाद सिंह 'दुर्गाभक्ति चन्द्रिका'को एवं रामशंकर शुक्ल 'रसाल' तथा भगीरथ मिश्र 'गुण रस-रहस्य'को भी इन्हींकी रचनाएँ मानते हैं। कुलपतिने 'रस रहस्य'में एक सीमातक मम्मटका आधार ग्रहण किया है किन्तु 'काव्य प्रकाश'की अपेक्षा विवेचन शिथिल और अपरिपक्व है। कुछ पुस्तकोंमें 'संग्रामसार'के स्थानपर 'संग्रह-सार' या 'संग्राम-सागर' और 'युक्तितरंगिणी'के स्थानपर 'मुक्ति तरंगिणी' भी छपा है। 'गुण रस-रहस्य' भी 'रस-रहस्य' ही प्रतीत होता है।

हिन्दी रीतिकालीन आचार्योंमें, जिनकी प्रवृत्ति काव्य-शास्त्रके गम्भीर प्रसंगोंके विवेचन की है, कुलपति भी परिगणनीय हैं। इनकी गिनती लक्ष्य तथा लक्षण दोनोंको समान रूपमें समुचित स्थान देनेवाले आचार्य चिन्तामणि, मतिराम, देव, श्रीपति, सोमनाथ तथा भिखारीदासके साथ की जाती है। विवेचनकी दृष्टिमें ये कारिकावृत्ति शैलीके आचार्योंकी श्रेणीमें और विषय-प्रतिपादनकी दृष्टिमें समग्र-विषयोंपर लिखकर भी रसवादी आचार्योंमें गणनीय ठहरते हैं। मौलिक सिद्धान्तप्रतिपादनकर्त्ता आचार्योंकी कोटिमें तो इन्हें स्थान नहीं दिया जा सकता और न हिन्दीके अधिकांश आचार्य इस कोटिमें रखे ही जा सकते है, किन्तु विषयको सरल और सुबोध बनाकर प्रस्तुत करनेमें तथा अधिक से अधिक सही रूपमें उपस्थित करनेमें ये श्रेष्ठ आचार्योंमें स्थान पाने योग्य हैं। विशेषता यह है कि इन्होंने गद्य-वार्त्तिकका भी सहारा लिया है। गद्यकी भाषा अपरिमार्जित, प्रायः अस्पष्ट और वाक्य-रचना दुरूह सी जान पडती है। स्वयं रसवादी होते हुए भी इनकी रचनामें रसनिर्वाह सम्यक् रूपमें नहीं हो सका है। इनका ध्यान विशेषतः आचार्यत्व पर ही केन्द्रित रहा, कवित्व उपेक्षित-सा रह गया है। कल्पना, चित्र-योजना और सुकोमल पद-विन्यासकी दृष्टिमें इनका काव्य द्वितीय श्रेणीका ही माना जा सकता है। आचार्यत्वमें अवश्य ही इन्होंने सोमनाथ तथा प्रतापसाहिकी कृतियोंको प्रभावित किया है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० बृ० इ० (भा० ६); हि० सा० इ०; हि० का० शा० इ०; हि० अ० सा०; दिग्विजय-भूषण : सं० भगवतीप्रसाद सिंह।] —आ० प्र० दी०

कूबरी—दे० 'कुब्जा', दे० 'अन्तरा'।

कूर्म—'कूर्म' शब्दसे निम्नलिखित उल्लेख प्राप्त होते हैं—

१. 'कूर्म' विष्णुके द्वितीय अवतारका नाम है। प्रजापतिने सन्तति प्रजननके अभिप्रायसे कूर्मका रूप धारण किया था। इनकी पीठका घेरा एक लाख योजनका था। कूर्मकी पीठपर मन्दराचल पर्वत स्थापित करनेसे ही समुद्र-मन्थन सम्भव हो सका था। 'पद्मपुराण'में इसी आधारपर विष्णुका कूर्मावतार वर्णित है।

२. अठारह पुराणोंमें एक पुराण 'कूर्मपुराण' कहलाता है। इसकी श्लोक संख्या १७ हजार तथा प्रकृति तामसी कही गयी है। पुराणोंके अन्तः साक्ष्यसे ज्ञात होता है कि इसमें भगवान् विष्णुने अपने कच्छपावतारमें ऋषियोंसे जीवनके चार लक्ष्यों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष)का वर्णन किया था। इसमें प्रमुख रूपसे शैव सिद्धान्त ही प्रतिपादित हुए हैं। इसके अधिकांश भागमें शिव तथा दुर्गाकी उपासनाका ही प्रतिपादन है। इस पुराणकी रचना बारहवी शतीके उपरान्त हुई है। —रा० कु०

कूर्मवंश यशप्रकाश या लावारासा—यह सीकरनिवासी चारण कवि गोपालदास (१८१५-१८८५ ई०) कृत वीर-रसात्मक ग्रन्थ है। अठारवीं शतीके उत्तरार्द्ध और उन्नीसवीं शतीके पूर्वार्द्धमें उत्तरी भारतमें जो अराजकता फैली हुई थी, इसमें उसकी एक झलक मिलती है। इस कृतिके पाँच प्रसंगोंमें अमीर खाँ नामक पठान पिण्डारी और कछवाहा क्षत्रियोंकी नरूका शाखाके वीर राजपूतोंके युद्धोंका वर्णन मिलता है। युद्ध लावा नामक स्थानपर हुआ था। कृतिकी भाषा ब्रज है। इसमें अरबी, फारसी और खड़ी बोलीके शब्दोंका भी मुक्त रूपसे प्रयोग हुआ है। कृतिमें गद्य वचनिकाएँ भी मिलती है और छन्दोंमें दोहा, सोरठा छप्पय, पद्धरी आदिका प्रयोग हुआ है। वर्णित युद्धोंकी घटनाएँ तो सत्य है किन्तु कवि-कल्पनाका भी प्रचुर प्रयोग हुआ है। बहुत पहले गोपालदासकृत 'शिखर-वंशोत्पत्ति' काशी नागरी प्रचारिणी सभासे प्रकाशित हो चुकी है। इसमें मानमर्यादा तथा विवाहों आदिके प्रश्नोंको लेकर राजपूत रजवाड़ोंमें होनेवाले कलह एवं युद्धोंके वर्णन पढते हुए पृथ्वीराज रासोकी शैली और भाषाका स्मरण हो आता है। —रा० सिं० तो०

कृतांत—दे० 'यमराज'।

कृपानिवास—कृपानिवास शृंगारी रामोपासनाके प्रमुख आचार्य माने जाते हैं। पं० रामचन्द्र शुक्लने इन्हें एक कल्पित व्यक्ति कहा है, किन्तु इनके विषयमें जो सन्दर्भ हिन्दी साहित्यके ऐतिहासिक स्रोतोंमें मिलते हैं, उनसे इनकी सत्ता असंदिग्ध ठहरती है। ये द्रविड़ देश (दक्षिण भारत)में १७५० ई०के लगभग उत्पन्न हुए थे। इनके पिताका नाम सीतानिवास और माताका गुणशीला था। ये श्रीरंगके उपासक थे। छोटी आयुमें ही पिताने इन्हे रामानुजीय वैष्णव सन्त आनन्द विलाससे दीक्षा दिला दी। पन्द्रह वर्षकी अवस्थामें ही ये घरबार त्याग कर विरक्त हो गये। इन्होंने दक्षिण भारतसे मिथिला आनेपर रसिक भावनाका आश्रय लिया। चारों धामकी पैदल यात्रा

करते हुए ये अग्रदासके आचार्य पीठ रेवासा (जयपुर) गये। वहाँसे आयोध्या जाकर इन्होंने एक वर्ष तक सीताकुण्डपर निवास किया। इसके बाद कुछ दिन उज्जैनमें व्यतीत करके ये चित्रकूट गये। इनके जीवनके शेष वर्ष यहीं बीते। चित्रकूटमें ही स्फटिकशिलाके पास इनका साकेतवास हुआ।

युगलप्रियाके अनुसार इन्होंने लक्षावधि छन्दोंकी रचना की थी किन्तु इस समय इनके प्राप्त निम्नलिखित २४ ग्रन्थोंमें छन्द-संख्या २५ हजारसे अधिक न होगी— 'गुरु महिमा', 'प्रार्थना शतक', 'लगन पचीसी', 'युगल-माधुरी प्रकाश', 'भावना शतक', 'जानकी सहस्रनाम,' 'राम सहस्रनाम', 'अनन्य चिंतामणि', 'समय प्रबन्ध', 'नित्यसुख', 'रहस्योपास्य', 'वर्षोत्सव पदावली','रूपरसामृत सिंधु', 'रससार', 'रहस्य पदावली', 'सिद्धान्त पदावली', 'उझकनी अष्टक', 'हनुमत पचीसी', 'पदावली', 'अष्टयाम', 'सीताराम रहस्य' 'रास पद्धति', 'प्रीति प्रार्थना' और 'सम्प्रदाय निर्णय'। इन रचनाओंके अनुशीलनसे ज्ञात होता है कि कृपानिवास रूपासक्त रामभक्त थे। इनका अधिकांश साहित्य साम्प्रदायिक है। उसमे कवित्वकी अपेक्षा सिद्धान्त निरूपणकी ही प्रधानता है। कुछ पद भावात्मक भी है, जो विभिन्न राग-रागिनियोमे लिखे गये हैं। इनकी भाषा अवधी है जिसमें पंजाबी और राजस्थानीके शब्द स्वतन्त्रतापूर्वक प्रयुक्त हुए हैं।

[सहायक ग्रन्थ—रामभक्तिमे रसिक सम्प्रदाय : भगवती प्रसाद सिंह।] —भ० प्र० सिं०

कृपाराम—'हिततरगिणी'के लेखक कृपारामकी जीवनीसे सम्बद्ध सामग्री सर्वथा अप्राप्य है। इनकी एकमात्र कृति 'हिततरंगिणी'का रचनाकाल १५४१ ई० है। प्राप्त हस्त-लिखित प्रतियोंमे-से प्रत्येकमे यह रचनाकाल स्पष्ट रूपसे उल्लिखित है। अतएव रचनाकालके सम्बन्धमे सन्देहके लिए स्थान नहीं है। इसका प्रथम प्रकाशन १८९५ ई०मे वाराणसीके भारत जीवन प्रेससे हुआ था। इसके सुसम्पादित संस्करणकी अब भी अपेक्षा है। 'हिततर-गिणी' काव्यशास्त्रपर प्रथम उपलब्ध रचना है। इसी आधारपर कृपारामको हिन्दी काव्यशास्त्रका प्रथम लेखक होनेका गौरव प्राप्त है।

'हिततरंगिणी'का मुख्य विषय नायिका भेद है। राम-चन्द्र शुक्लने रीतिकाव्यकी परम्पराका आरम्भ चिंतामणि त्रिपाठीके साथ १६४३ ई०से माना है किन्तु 'हिततरगिणी' मे इस बातका स्पष्ट उल्लेख है कि सोलहवी शताब्दीके पूर्वार्धमें भी इस प्रकारकी रचनाएँ प्रचुरतासे हो रही थीं— "बरनत कवि सिंगार रस छन्द बड़े बिस्तारि। मै बरन्यो दोहानि बिच यातें सुघर बिचारि।" 'हिततरगिणी'की रचना दोहा, छन्दमें हुई है। रामचन्द्र शुक्लके मतानुसार "'हिततरंगिणी'के दोहे बहुत ही सरस, भावपूर्ण तथा परिमार्जित भाषामें हैं।" (हि० सा० इ०, १९५० ई०, पृ० १९९)। आचार्यत्वकी दृष्टिसे भी 'हिततरंगिणी' नायिका भेद विषयपर एक महत्त्वपूर्ण कृति है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० इ०; हि० का० शा० इ०; ब्रजभाषा साहित्यका नायिका भेदः प्रभुदयाल मीतल; हि० सा० बृ० इ० (भा० ६)।] —रा० गु०

कृष्ण—ऋग्वेदमें कृष्ण नामका उल्लेख दो रूपोंमें मिलता है—एक कृष्ण आंगिरस, जो सोमपानके लिए अश्विनी कुमारोंका आह्वान करते हैं (ऋग्वेद ८।८५।१-९) और दूसरे कृष्ण नामका एक असुर, जो अपनी दस सहस्र सेनाओंके साथ अंशुमती तटवर्ती प्रदेशमें रहता था और इन्द्र द्वारा पराभूत हुआ था। कृष्णसम्बन्धी इन दोनों सन्दर्भोंमें परस्पर सम्बन्ध है अथवा नहीं, इस विषयमें निश्चित रूपसे कुछ नहीं कहा जा सकता। ऋग्वेदमें अश्विनी कुमारोंकी स्तुतिमें कक्षिवान् ऋषि द्वारा उन्हें कृष्णके पौत्र विष्णुके जिलानेका श्रेय दिया गया है (ऋग्वेद १।११६।७, २३)। कृष्णके पुत्र विश्वक (विश्वकाय)ने भी एक सूक्तमें सन्तान-के लिए अश्विनीकुमारोंका आह्वान किया है और दूरस्थ विष्णापुको लानेकी प्रार्थना की है (ऋग्वेद ८।८६।१-५)। ऐसा जान पड़ता है कि कदाचित् विष्णापु किसी प्रकार आहत हो गया था और कृष्ण आंगिरस और उनके पुत्रने उसके जीवनके लिए आरोग्यके देवता अश्विनीकुमारोंसे प्रार्थना की थी। कृष्णासुरके सम्बन्धमे भी उल्लेख है कि उसकी गर्भवती स्त्रियोंका इन्द्रने वध किया था (ऋग्वेद १। १०१।१)। परन्तु भागवत धर्मके उपास्य कृष्णकी कथासे इन सन्दर्भोंका कोई सीधा सम्बन्ध नहीं जान पड़ता। छान्दोग्य उपनिषद्मे देवकीपुत्र कृष्णको घोर आंगिरसका शिष्य कहा गया है और बताया गया है कि गुरुने उन्हें यज्ञकी एक ऐसी सरल रीति बतायी थी जिसकी दक्षिणा तप, दान, आर्जव, अहिंसा और सत्य थी। गुरुसे ज्ञान प्राप्त करनेके बाद कृष्णकी ज्ञान-पिपासा सदाके लिए शान्त हो गयी (छान्दोग्य उपनिषद् ३।१७।४-६)। कृष्ण आंगिरसका उल्लेख कौशीतकी ब्राह्मणमे भी मिलता है (३०।९)। कृष्ण-सम्बन्धी यह सन्दर्भ उन्हें गीताके उपदेष्टा और भागवत धर्मके पूज्य कृष्णके निकट ले जाता है।

बौद्ध साहित्यमें कृष्णका उल्लेख दो स्थलोंपर मिलता है—एक घत जातकमे वर्णित देवगभा और उपसागरके बलवान्, पराक्रमी, उद्धत और क्रीडाप्रिय पुत्र वासुदेव कण्हकी कथाके रूपमे और दूसरा महाउमग्ग जातकके कामासक्त वासुदेव कण्हके सन्दर्भमें। घत जातककी कृष्णकथा बहुत कुछ भागवतमे वर्णित कृष्णकथाके ही समान है। घत जातकके वासुदेव कण्ह पुत्रशोकमें दुःखी चित्रित किये गये है जिससे ऋग्वेदके आंगिरस कृष्णके सन्दर्भसे उनका सूत्र जोड़ा जा सकता हैं। महाउमग्ग जातकमें वासुदेव कण्ह द्वारा कामासक्त होकर चाण्डाल कन्या जाम्बवतीको महिषी बनानेका उल्लेख हुआ है।

महाभारतमें कृष्णसम्बन्धी अनेक वृत्तान्त मिलते हैं। भारत युद्धमें उनके पराक्रम, ऐश्वर्य और नीतिनैपुण्यके साथ उनके देवत्वका भी समन्वय पाया जाता है। सभापर्वमें भीष्म द्वारा उनकी प्रशंसा समस्त वेद-वेदान्तके ज्ञाता तथा राजनीतिमे निपुण बलवान् योद्धाके रूपमें की गयी है। उद्योग पर्वमें कहा गया है कि अर्जुन वज्रपाणि इन्द्रकी अपेक्षा कृष्णको अधिक पराक्रमी समझकर उन्हें युद्धमें अपनी ओर मिलानेमें अपना सौभाग्य मानते हैं। इसी स्थलपर कृष्णके पराक्रमका वर्णन करते हुए उनके द्वारा

दस्युओंके संहार, दुर्धर्ष राजाओंके विनाश, रुक्मिणीके हरण, नगजितके पुत्रोंकी पराजय, सुदर्शन राजाकी मुक्ति, पाण्ड्यके संहार, काशी नगरीके उद्धार, निषादोंके राजा एकलव्यके वध, उग्रसेनके पुत्र सुनामकी मृत्यु आदि कार्योंका वर्णन किया गया है। देवताओंके द्वारा उन्हें अवध्यताका वरदान मिला था। उन्होंने बाल्यावस्थामें ही इन्द्रके घोड़े उच्चैःश्रवाके समान बली, यमुनाके वनमें रहनेवाले हयराजको मार डाला था तथा वृष, प्रलंब, नरक, जृम्भ, मुर, कंस आदिका संहार किया था, जलदेवता वरुणको पराजित किया था तथा पातालवासी पंचजनको मारकर पाञ्चजन्य प्राप्त किया था। अपनी प्रिय पत्नी सत्यभामाकी प्रसन्नताके लिए वे अमरावतीसे पारिजात लाये थे। महाभारतमें प्राप्त कृष्ण-सम्बन्धी इन सन्दर्भोंसे उनके ऐतिहासिक व्यक्तित्वकी सूचना मिलती है और ज्ञात होता है कि वे वृष्णिवंशीय सात्वत जातिके पूज्य पुरुष थे। यह भी संकेत मिलता है कि महाभारत और पुराणोंमें वर्णित कृष्णके चरित्र और किन्हीं ऐतिहासिक वासुदेव कृष्णसम्बन्धी कथामें कुछ अन्तर अवश्य रहा होगा, क्योंकि महाभारत और पुराणोंमें अनेक स्थलोंपर इस बातपर बल दिया गया है कि यही कृष्ण वास्तविक वासुदेव हैं, यही द्वितीय वासुदेव है। द्वितीय वासुदेव कहनेका अभिप्राय यह था कि कुछ अन्य राजा भी अपनेको द्वितीय वासुदेवके नामसे प्रसिद्ध करनेका यत्न करते थे। पौण्ड्र राजा पुरुषोत्तम और करवीर-पुरके राजा शृगाल इसी प्रकारके व्यक्ति थे, जिन्हें मारकर कृष्णने सिद्ध किया कि उनका वासुदेवत्व मिथ्या है तथा वे ही स्वय एकमात्र वासुदेव हैं।

महाभारत, हरिवंश तथा विष्णु, वायु, वामन, भागवत आदि पुराणोंमें कृष्णकी अपेक्षा इन्द्रकी हीनता सिद्ध करनेके लिए अनेक कथाएँ दी गयी हैं; परन्तु फिर भी गोवर्द्धन धारणके प्रसंगमें उनके इन्द्र द्वारा अभिषिक्त होने और 'उपेन्द्र' नामसे स्वीकृत होनेका उल्लेख हुआ है। पुराणोंमें विविध कथाओंके माध्यमसे उत्तरोत्तर कृष्णकी महत्ता और उसी अनुपातमें इन्द्रकी हीनता प्रमाणित की गयी है। महाभारत में कृष्णके ऐश्वर्य और देवत्वका तो प्रचुर वर्णन है परन्तु उनके लालित्य और माधुर्यका कोई संकेत नहीं मिलता। महाभारत उनके गोपजीवन और गोपीप्रेमके सम्बन्धमें सर्वथा मौन है। सभा पर्वके उस प्रसंगमें भी, जिसे प्रक्षिप्त कहा जाता है और जिसमें शिशुपाल कृष्णकी निन्दा करते हुए उनके द्वारा पूतना, बकासुर, केशी, वत्सासुर और कंस-के वध तथा गोवर्द्धन धारण किये जानेका उल्लेख करता है, गोपियोंसे उनके प्रेमका कोई संकेत नहीं किया गया है। इससे यह स्पष्ट सूचित होता है कि गोपाल कृष्णका ललित और मधुर चरित मूलतः महाभारतके कृष्णके चरित से भिन्न था। पुराणोंमें वर्णित कृष्णकथासम्बन्धी प्रसंगोंको देखनेसे यह विदित होता है कि गोपालकृष्णसम्बन्धी ललित कथाएँ उनमें उत्तरोत्तर वृद्धि पाती गयी हैं। उदाहरणके लिए हरिवंशमें जिसे वास्तवमें महाभारतका परिशिष्ट कहा जाता है, उनके गोपाल रूप सम्बन्धी सन्दर्भ अत्यन्त संक्षिप्त है। उनकी तुलनामें उनके ऐश्वर्य रूपकी भोग-विलाससम्बन्धी अनेक कथाएँ कहीं अधिक विस्तारमे वर्णित हैं। विष्णु पुराणमें भी लगभग ऐसी ही स्थिति है। किन्तु भागवत, पद्म, ब्रह्मवैवर्त तथा कुछ अन्य पुराणोंमें, जिन्हें परवर्ती कहा जा सकता है, गोपालकृष्णसम्बन्धी कथन अधिक विस्तृत होते गये हैं। पुराणोंके भोग-ऐश्वर्य-सम्बन्धी आख्यानों और गोप-गोपी लीला-सम्बन्धी मधुर कथाओंमें वातावरणका बहुत अन्तर पाया जाता है। यदि एकमें घोर भौतिकता, विलासिता और नग्न ऐन्द्रियता है तो दूसरेमें भावात्मक कोमलता, हार्दिक उत्फुल्लता, सूक्ष्म अनुभूति और अलौकिकताकी ओर उन्मुख उदात्तता है।

अनुमान है कि गोपाल कृष्ण मूलतः शूरसेन प्रदेशके सात्वत वृष्णिवंशीय पशुपालक क्षत्रियोंके कुल देवता थे और उनके क्रीडा कौतुककी मनोरंजक कथाएँ मौखिक रूपमे लोक-प्रचलित थीं। इन कथाओंके लोक-प्रचलित होनेके प्रमाण कुछ पाषाण मूर्तियों और शिलापट्टोंपर उत्कीर्ण चित्रोंमे मिले हैं। मथुरामें प्राप्त एक खण्डित शिलापट्टमे वसुदेव नवजात कृष्णको एक सूपमें सिरपर रखकर यमुना पार करते हुए दिखाये गये है। यह शिलापट्ट प्रथम शताब्दी ईसवीका अनुमान किया गया है। ५वीं शताब्दी ईसवीके एक दूसरे खण्डित शिला पट्टमें कालिय-दमनका दृश्य अङ्कित है। मथुरामे ही एक अन्य कृष्ण मूर्ति मिली है जिसमें गोवर्द्धन धारणका दृश्य दिखाया गया है। यह छठी शताब्दी ईस्वीकी अनुमान की गयी है। बंगालके पहाड़पुर नामक स्थानमें छठी शताब्दीकी कुछ मृण्मूर्तियाँ मिली हैं जिनमें धेनुकासुर वध, यमलार्जुन उद्धार तथा मुष्टिक चाणूरके साथ मल्ल-युद्धके दृश्य दिखाये गये हैं। यहींपर एक अन्य मूर्ति मिली है जिसमें कृष्णको किसी गोपीके साथ प्रसिद्ध मुद्रामे खड़े हुए दिखाया गया है। अनुमान किया गया है कि यह गोपी सम्भवतः राधाका सबसे प्राचीन मूर्तिगत प्रमाण प्रस्तुत करती है। राजस्थान-के मण्डोर तथा बीकानेरके पास सूरतगढमे क्रमशः द्वार-पाटोंपर उत्कीर्ण गोवर्द्धन-धारण, नवनीत-चौर्य, शकट-भंजन और कालिय-दमनके चित्र उत्कीर्ण मिले हैं तथा गोवर्द्धन-धारण और दान-लीलाका दृश्यांकन प्रस्तुत करने-वाले कुछ सुन्दर मिट्टीके खिलौने प्राप्त हुए हैं। मण्डोरके चित्र चौथी-पाँचवी शताब्दी ईस्वीके अनुमान किये गये है। दक्षिण भारतके बादामीके पहाड़ी किलेपर कृष्ण-जन्म, पूतना-वध, शकट-भंजन, कंस-वध आदिके अनेक दृश्य गुफाओंमे उत्कीर्ण मिले हैं जो छठी-सातवीं शताब्दी ईस्वीके माने जाते है (दे० आर्केलाजिकल सर्वे रिपोर्ट १९२६-२७, १९०५-६ तथा १९२८-२९ ई०)।

काव्यमें गोपाल कृष्णकी लीलाका पहला सन्दर्भ प्रथम शताब्दी ईसवीमें रचित अश्वघोषके 'बुद्धचरित' (१-५)मे मिलता है। अनुमानतः प्रथम शताब्दी ईस्वीमें हाल सातवाहन द्वारा संगृहीत 'गाहासत्तसई' (गाथा सप्तशती) में कई गाथाएँ कृष्ण, राधा, गोपी, यशोदा आदिसे सम्बद्ध मिलती है (दे० 'गाहासत्तसई' १।२९, ५।४७, २।१२, २।१४)। इन गाथाओंमें कृष्ण द्वारा नारियोंके गौरव-हरण, मुखमारुतसे राधिकाके गोरजके अपनयन आदिके उल्लेख हुए हैं। इन उल्लेखोंसे सूचित होता है कि कृष्णके गोपी-प्रेमसम्बन्धी प्रसंग कमसे कम पहली शताब्दी ईस्वीके

पहलेसे ही लोक-प्रचलित थे। यह अवश्य द्रष्टव्य है कि 'गाहासत्तसई'में भक्तिभावनाका कोई संकेत नहीं मिलता, उसका वातावरण सर्वथा लौकिक शृंगारका ही है परन्तु इससे भिन्न दक्षिणके आलवार सन्तों द्वारा रचित गीत पूर्णतया भक्तिभावनासे प्रेरित और अनुप्राणित हैं। इन सन्तोंका समय पाँचवींसे नवीं शताब्दी ईसवी अनुमान किया गया है। आलवार सन्तोंके इन गीतोंमें विष्णु, नारायण अथवा वासुदेव तथा उनके अवतारों—राम और कृष्णके प्रति अपूर्व भक्ति-भाव प्रकट किया गया है। इनमें गोपाल-कृष्णकी ललित लीलाके ऐसे अनेक प्रसंग वर्णित हैं जो उत्तर भारतके मध्यकालीन कृष्ण भक्ति-काव्यके प्रिय विषय रहे हैं। इन गीतोंमे कृष्णकी प्रेम-लीलाओंसे सम्बद्ध एक नाप्पिन्नाय नामक गोपीका प्रमुख रूपमें वर्णन है। उसे कृष्णकी प्रियतमा और विष्णुकी अर्द्धांगिनी लक्ष्मीका अवतार कहा गया है। अनुमान है कि यह गोपी उत्तर भारतकी कृष्णकथामें प्रयुक्त राधा ही है। राधाकृष्ण कथाकी प्राचीनताकी दृष्टिसे तमिल साहित्यका यह प्रमाण महत्त्वपूर्ण है।

आठवी शताब्दीमें रचित भट्टनारायणके 'वेणीसंहार' नामक नाटकमे नांदीश्लोकमें तथा वाक्पतिराज द्वारा लिखित प्राकृत महाकाव्य 'गउडवहो' के मंगलाचरणमें कृष्णकी स्तुति उनके राधा और गोपी-प्रेम तथा यशोदाके वात्सल्यभाजन होनेकी स्पष्ट सूचना देती है। 'गउडवहो' में उन्हे 'विष्णुस्वरूप' और 'लक्ष्मीपति' भी कहा गया है। नवीं शताब्दी ईसवीके 'ध्वन्यालोक'में उद्धृत दो श्लोकोंमे कृष्ण और राधाके मधुर प्रेमके सन्दर्भ प्राप्त होते हैं। दसवीं शताब्दीके त्रिविक्रम भट्ट द्वारा रचित 'नलचम्पू'के एक श्लोकमें परम पुरुष कृष्णके साथ राधाके अनुरागका संकेत प्राप्त होता है। दसवी शताब्दीकी ही वल्लभदेव द्वारा रचित 'शिशुपालवध'की टीका तथा सोमदेवसूरिके 'यशस्य-तिलकचम्पू' मे भी राधाके प्रिय कृष्णका जिस रूपमें उल्लेख मिलता है उससे कृष्णके गोपीवल्लभ रूपकी सूचना प्राप्त होती है। 'कवीन्द्रवचन समुच्चय' नामक कवितासंग्रह भी दसवीं शताब्दीका माना गया है। इसमें संकलित अनेक श्लोकोंमें कृष्णकी गोपी और राधासम्बन्धी प्रेम-क्रीड़ाओंका सन्दर्भ मिलता है जिनसे कृष्णके यशोदाके वात्सल्य-भाजन, गोपियोंके कान्त, गोपोंके सुहृद् तथा राधाके अनन्य प्रेमभाजन व्यक्तित्वकी सूचना मिलती है। इन सभी सन्दर्भोंमें कृष्णके दक्षिण और धृष्ट नायकत्वके भी स्पष्ट संकेत हैं। दशवीं शताब्दी तक राधा और कृष्णके प्रति पूज्यभाव भी विकसित हो चुका था। इसका प्रमाण मालवाधीश वाक्पति मुंजपरमारके एक अभिलेखसे भी मिलता है जिसमें श्रीकृष्णकी स्तुति करते हुए उनका विष्णु रूपमें वर्णन है और साथ ही उन्हे राधाके विरहमें पीड़ित कहा गया है।

कृष्णके व्यक्तित्वके लालित्य और माधुर्यके साथ उनके दैवत रूपकी प्रतिष्ठा १२वीं शताब्दीतक और अधिक दृढ़ता-के साथ हो गयी थी। इसका प्रमाण लीलाशुक द्वारा रचित 'कृष्णकर्णामृतस्तोत्र', ईश्वरपुरी द्वारा रचित 'श्रीकृष्ण-लीलामृत' तथा महाकवि जयदेवका 'गीतगोविन्द' है। 'श्रीकृष्णलीलामृत' का शृंगार रस निश्चित रूपमें माधुर्य भक्ति है। इसी प्रकार 'गीतगोविन्द' में राधा-माधवके जिस उद्दाम शृंगारका वर्णन किया गया है, उसकी मूल प्रेरणा भी धार्मिक है। कृष्णके व्यक्तित्वमें इस प्रकार जिस लोक-रंजनकारी लालित्यका उदात्तीकरण वैष्णव भक्तिके विकासमें होता गया उसीकी चरम परिणति हम परवर्ती साहित्यमें पाते हैं।

बारहवीं शताब्दीके बाद कृष्ण-काव्य मुक्तकोंके अतिरिक्त प्रबन्धोंके रूपमें भी प्राप्त होता है। 'सदुक्तिकर्णामृत' नामक एक मुक्तक संग्रह १३वीं शताब्दीके प्रारम्भका है जिसमें गोपाल कृष्णकी लीलासे सम्बद्ध साठ श्लोक हैं। इन श्लोकोंमें गोपालकृष्णके शैशव, कैशोर और यौवनकी ललित लीलाओंका ही वर्णन मिलता है। १३वीं-१४वीं शताब्दीमें रचित बोपदेवकी 'हरिलीला' तथा वेदान्तदेशिककी 'यादवा-भ्युदय' नामक रचनाएँ तथा पन्द्रहवीं शताब्दीकी 'ब्रजविहारी' (श्रीधरस्वामी), 'गोपलीला' (रामचन्द्र भट्ट), 'हरिचरित'-काव्य (चतुर्भुज), 'हरिविलास'-काव्य (ब्रज-लोलिम्बराज), 'गोपालचरित' (पद्मनाभ), 'मुरारिविजय'-नाटक (कृष्ण भट्ट) और 'कंस-निधन' महाकाव्य (श्रीराम) आदि अनेक काव्य और नाटक गोपालकृष्णके मधुर, ललित और पूज्य चरितका चित्रण करते हैं। १६वी शताब्दीसे कृष्णभक्ति आन्दोलन सम्पूर्ण उत्तर भारतमें व्याप्त हो गया और कृष्ण-काव्य आधुनिक भाषाओंमें रचा जाने लगा। इस काव्यका मूलाधार श्रीमद्भागवत था, परन्तु साथ ही कवियोंने लोकमें प्रचलित कृष्णसम्बन्धी उन असंख्य कथा प्रसंगोंका भरपूर उपयोग किया जिनमें कृष्णका चरित वात्सल्य, सख्य और माधुर्यव्यंजक लीलाओंसे समन्वित रहा है।

हिन्दीका कृष्ण-भक्ति काव्य यद्यपि सूरदाससे प्रारम्भ होता है परन्तु इससे पहले १५वीं शताब्दीमें विद्यापतिने अपने पदोंमें कृष्णके शृंगारी रूपका जो वर्णन किया था उसकी प्रकृति भले ही लौकिक शृंगार की रही हो, उसका उपयोग भक्तोंने माधुर्य भक्तिके सन्दर्भमें ही किया। विद्यापतिकी पदावली कृष्ण-चरितके जिस पक्षका परिचय देती है वही आगे चलकर काव्यमें शृंगार-रसके नायकका लोकप्रिय विषय बन गया। परन्तु विद्यापति और हिन्दीके रीतिकालीन राधाकृष्णसम्बन्धी शृंगार-काव्यके बीच हिन्दी भक्ति-काव्यका एक लम्बा व्यवधान है जिसमें कृष्णका व्यक्तित्व कवियोंने अत्यन्त कुशलताके साथ मानव और अतिमानवके परस्पर विरोधी तत्त्वोंसे निर्मित कर चित्रित किया है। कृष्णके इस चरित-चित्रणमें बड़ी विलक्षणता है। एक ओर उन्हें विष्णुका अवतार, ब्रह्मा-विष्णु और महेशसे परे तथा साक्षात् सच्चिदानन्द ब्रह्म कहा गया है, तो दूसरी ओर उनकी शैशव, बाल्य और किशोरकालकी अत्यन्त मानवीय और स्वाभाविक लीलाका मनोहर वर्णन किया गया है। हिन्दी कृष्ण-काव्यके रचयिताओंमें कृष्णका सम्यक् चरित्र-चित्रण वास्तवमें सूरदासने ही किया किन्तु सूरदासका चरित्र-चित्रण वस्तुतः भावात्मक है। प्रधान रूपसे उन्होंने कृष्णको वात्सल्य, सख्य और माधुर्यका आलम्बन बनाया है और इन भावोंका अत्यन्त स्वाभाविक

चित्रण करते हुए दैन्य और विस्मयके भावोंके सहारे उनके प्रति पूज्य भावना व्यक्त की है।

कृष्णके चरित्र-चित्रणमें सूरकी अन्य विशेषता यह है कि यद्यपि वे नन्द-यशोदा, गोप-गोपी आदिके साथ राग-रगमें आचूल मग्न रहते हैं, फिर भी उनके व्यवहारसे व्यंजित होता है कि वास्तवमे वे भावातीत और वीतराग हैं। कृष्णके मथुरा और द्वारका-प्रवास तथा उनके प्रति ब्रज-वासियों और विशेषकर गोपियोंके विरह-भावका वर्णन करते हुए सूरदासने कृष्णके इस विलक्षण व्यक्तित्वका अत्यन्त प्रभावशाली चित्रण किया है। इसके द्वारा हमें गीताके योगिराज कृष्णकी अनासक्तिका व्यावहारिक परिचय मिलता है।

सूरदासके अतिरिक्त अन्य कृष्ण-भक्त कवियोंने कृष्णके सम्पूर्ण चरितका चित्रण नहीं किया। बहुत थोडेसे कवियोंने कृष्णके बाल्य और किशोरकालके जीवनका परिचय दिया। अधिकांश कवि उनके माधुर्यपूर्ण चरितकी ओर ही झुके और राधा और गोपियोंके साथ उनके प्रेम सम्बन्धोंके चित्रणमें ही निमग्न रहे। कृष्णके प्रेमी और प्रेमपात्र दोनो रूपोंके चित्रणमें अनेक कवियोंने तन्मयता प्रदर्शित की, परन्तु सूरदासने उनमें वीतरागत्व और अनासक्तिके सकेतो तथा अन्य उपायों द्वारा जिस आध्यात्मिकताकी उच्च काव्यमयी व्यजना की थी, वह कोई अन्य कवि नहीं कर सका। सूरदासने कृष्णके असुर-संहारी रूपका भी विशद वर्णन किया था। यद्यपि उनके वर्णनमें कृष्णकी वीरता और पराक्रमके स्थानपर उनके विस्मयकारी क्रीड़ा-कौतुककी ही प्रधानता है, परन्तु उनका उद्देश्य जिस अलौकिककी व्यजना करना था उसे परवर्ती कवि नहीं समझ सके। इस कारण उन्होंने कृष्ण-चरितके इस पक्षकी प्रायः उपेक्षा ही की। श्रीकृष्णके सहज मानवीय शृंगारी रूपको सूरदासने उनके प्रति दैन्य भावना व्यक्त करके तथा उनके अलौकिक कृत्योंके वर्णन द्वारा विस्मयकी व्यंजना करके उनके चरितमे जिस उदात्तताका सन्निवेश किया था, परवर्ती कवियोंने उसे विस्मृत कर दिया और श्रीकृष्णका चरित लगभग पूर्ण रूपसे इहलौकिक हो गया और उसमें मानव व्यक्तित्वकी संकुचित एकांगिता ही शेष रह गयी। फलतः जीवनकी व्याख्याकी कसौटीपर कसनेपर वह अत्यन्त कल्पित और अयथार्थ लगता है, जैसे राग-रंग और आनन्द-विहारमे लिप्त जीवनका कोई उद्देश्य ही न हो। वास्तवमें तथ्य यही है कि कृष्ण-चरित जीवनके वास्तविक चित्रण अथवा आदर्श चित्रणके रूपमें रचा ही नहीं गया, उनका चरित वास्तवमे परब्रह्मकी लीलामात्र है जिसका प्रयोजन लीलानन्दके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं। उसका उद्देश्य अखण्ड आनन्दमें जीवनकी आध्यात्मिक परिपूर्णताकी व्यंजना करना ही है। भक्त कवियोंने उस आनन्दका रूप स्त्री-पुरुषके रति-भावमें कल्पित किया है—श्रीकृष्ण परम-आनन्द रूपमे परम-पुरुष हैं और उनकी परासक्ति रूप प्रकृतिस्वरूपा राधा हैं जिनके संयोगमें ही परम-आनन्दकी परिपूर्णता सिद्ध होती है।

भक्ति-काव्यके प्रथम उन्मेषके बाद ज्यों-ज्यो कृष्ण-भक्ति एक ओर सम्प्रदायोंके संकुचित कर्मकाण्डमें तथा दूसरी और लौकिक शृंगारके गर्हित वातावरणमें आबद्ध होती गयी, त्यों-त्यों श्रीकृष्णका चरित भी उत्तरोत्तर अत्यन्त सामान्य विलासी नायकके रूपमें परिणत होता गया, यहाँ तक कि उसमें सामान्य शिष्टता और सुसंस्कारका भी अभाव होता गया। यद्यपि आधुनिक कालमें श्रीकृष्णके शृंगारी रूपका परम्परागत वर्णन-चित्रण ब्रजभाषाके कवियों द्वारा मुक्तक रचनाओंमे चलता रहा, परन्तु वह युगकी भावनाके अनुकूल नहीं था। पुरानी परम्परामे कोई मौलिक उद्भावना वास्तवमें सम्भव ही नहीं थी। फिर भी जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने अपने 'उद्धवशतक' के द्वारा कृष्णके चरित्र-चित्रणमें भक्ति-भावना, शृंगारिकता और चमत्कारपूर्ण काव्य-कलाका एक साथ ही समन्वय करके उसके चिर-परिचित रूपको नवीन सज्जासे विभूषित करनेका सराहनीय प्रयत्न किया। किन्तु रत्नाकरके श्रीकृष्णका व्यक्तित्व भी एक ऐसे प्रेमीका ही व्यक्तित्व है जिसका जीवन एकान्ततः प्रेमासक्तिमे ही लीन रहता है। वियोगी हरिके 'प्रेमांजलि', 'प्रेमशतक' आदि काव्य-संग्रहोंमे भी कृष्णके भक्तिकालीन स्वरूपकी झाकी मिल जाती है। यद्यपि उनका चित्रण आत्मानुभूतिपूर्ण है, फिर भी उसमें कोई उल्लेखनीय विशेषता नही देखी जा सकती।

आधुनिक युगकी भावनासे प्रेरित होकर अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'ने सन् १९१४ मे 'प्रिय-प्रवास' के द्वारा श्रीकृष्णके जिस चरित्रकी अवतारणा की, उसमें पर्याप्त मौलिकता और नवीनता है। यद्यपि 'हरिऔध' के श्रीकृष्ण भक्तिकालीन श्रीकृष्णकी ही भाँति क्रीडा-कौतुकप्रिय लीलाधारी अलौकिक पुरुष ही हैं, फिर भी उनका चरित्र एक आदर्श जन-नायकका चरित्र है। इन्द्रका दमन कर, असुरोंका सहार कर तथा अपनी अपौरुषेय शक्तिसे नही, बल्कि अपनी बुद्धिमत्ता और नीति-कुशलतासे लोक-जीवनके सुखके हेतु अनेक कल्याणकारी कार्य कर वे अपने युग-प्रवर्तक और लोक-सेवक नेताका रूप प्रमाणित करते है। 'हरिऔध'ने कृष्णके चरितमे गौरव और गरिमाका सन्निवेश कर उसे नया रूप प्रदान किया है। कृष्णके चरित-चित्रणमे द्वारकाप्रसाद मिश्र द्वारा रचित 'कृष्णायन' के द्वारा भी युग-भावनाके अनुरूप नवीन दृष्टिका परिचय मिलता है। मिश्रजी एक राजनीतिक नेता है और उन्होंने गान्धीजीके नेतृत्वमे भारतीय स्वतन्त्रतासंग्राममे सक्रिय भाग लिया है, अतः श्रीकृष्णके चरित्र-चित्रणमे वे भारतमे अंग्रेजी साम्राज्यके समयकी राजनीतिसे पूर्णतया प्रभावित हुए हैं। उनके श्रीकृष्ण सच्चे अर्थमे लोकनायक हैं। मिश्रजीने कृष्णकी उन चारित्रिक विशेषताओंका उद्घाटन किया है जो उनके उत्तरचरित अर्थात् मथुरा और द्वारका के चरितमे सम्बद्ध हैं जिनकी कृष्णभक्त कवियोंने अपेक्षाकृत उपेक्षा की है।

मैथिलीशरण गुप्तके 'जयद्रथ वध', 'विरहिणी व्रजांगना' (अनूदित) तथा 'द्वापर'में भी कृष्णके चरित्रकी कुछ विशेषताएँ उद्घाटित हुई हैं परन्तु गुप्तजीने चरित्र-चित्रणका कोई सम्यक् प्रयास नहीं किया। 'द्वापर'के श्रीकृष्ण विविध भावोंके प्रेमके आलम्बन ही हैं। न केवल यशोदा, वसुदेव, देवकी, उग्रसेन, अक्रूर, राधा और उद्धव उनके

प्रति अपने भाव—प्रेमानुभूति-वात्सल्य, मैत्री और कान्तारति आदि, प्रकट करते हैं, बल्कि कंस आदिके मनमें भी उनके प्रति प्रेम-भावना व्यंजित की गयी है । आधुनिक कालके कृष्णसम्बन्धी काव्योमे रामचरित उपाध्यायका 'देव-द्रौपदी' नामक काव्य उल्लेखनीय है परन्तु उसमें भी सम्यक् चरित्र-चित्रणका प्रयास नहीं मिलता, केवल कृष्ण-की उदारताका वर्णन हुआ है । कृष्णचरित्रको समसामयिक विचारधाराके अनुरूप चित्रित करनेके अनेक प्रयासोंमें तुलसीराम शर्मा 'दिनेश' द्वारा लिखित श्रीकृष्ण काव्यका उदाहरणस्वरूप उल्लेख किया जा सकता है, जिसमे कृष्ण-को कृषकोंकी दीनदशा तथा भारतवासियोंकी दरिद्रता, निर्धनता आदिपर आँसू बहाते चित्रित किया गया है परन्तु ऐसे प्रयास नीरस और काव्य-दृष्टिसे सर्वथा रहित है ।

छायावादी काव्य-धाराके अन्तर्गत यद्यपि प्रेमका विविध रूपचित्रण हुआ, परन्तु युग-युगसे चले आते हुए प्रेमके प्रतीक श्रीकृष्णको छायावादी कवियोने विस्मृत कर दिया । यही नहीं, कृष्ण-काव्यके शृंगारी रूपके प्रति उन्होंने अरुचि और घृणाके भाव भी व्यक्त किये । फिर भी यदा-कदा किसी-किसी कविकी दृष्टि पीछेकी ओर मुडी है और उसने प्रेम और आनन्दके आगार श्रीकृष्णको स्मरण कर लिया है । 'निराला'की 'यमुनाके प्रति' शीर्षक कविता इसका प्रमाण है।

छायावादोत्तर कालमें जब कवियोंकी दृष्टि वैयक्तिक अनु-भूतियोसे मुक्त होकर बाह्य-जीवनकी ओर उन्मुख हुई, तब किसी-किसीका ध्यान काव्यके चिरन्तन उपजीव्य कृष्णा-ख्यानकी ओर भी गया। रामधारी सिंह 'दिनकर'का 'रश्मिरथी' गीताके उपदेष्टा कृष्णके विराट् स्वरूपका परिचय देता है । मध्ययुगमे कृष्णकथाके सुदामासम्बन्धी प्रसगको लेकर अनेक काव्योंकी रचना हुई थी, जिनमें कृष्णके आदर्श मैत्रीभाव और उनकी अपरिमित दानशीलताका मर्मस्पर्शी चित्रण मिलता है । आधुनिक युगमें भी इस प्रसंगको लेकर कुछ रचनाएँ की गयी । गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश'का 'प्रयाण' नामक खण्डकाव्य ऐसी ही एक रचना है, जिसमें युगानुकूल मर्यादाओंका समन्वय किया गया है ।

हिन्दी काव्यकी नवरचनाके प्रयोगोंमें यद्यपि यथार्थ जीवनकी कठोर वास्तविकताओंको ही काव्यमें उतारनेके प्रयत्न होते हैं, फिर भी कुछ कवियोंका ध्यान कृष्ण-कथाकी ओर मुडता हुआ कभी-कभी दिखाई दे जाता है। धर्मवीर भारतीकी 'अन्धा-युग' नामक पद्य-नाट्यकृति तथा 'कनु-प्रिया' नामक काव्य इसी दिशाके उल्लेखनीय प्रयत्न है। इन दोनों कृतियोंमें कृष्णका चरित्र-चित्रण नये कविकी नवीन मान्यताओं और उसकी व्यक्तिगत भावनाओं और आस्थाओंसे प्रभावित है । 'अन्धायुग'के कृष्णमें एक लोक-नायकका स्वरूप मुखर हुआ है, तो 'कनुप्रिया'में प्रणयी और प्रणय-पिपासु कृष्णका स्वरूप सम्मुख आया है । दोनों रूपोंमें कृष्णका चरित्र-चित्रण वेदनाकी उस अन्तर्धारासे प्रभावित है, जो कविकी अपनी विशेषता है ।

इस प्रकार श्रीकृष्णका अनेकमुखी विलक्षण व्यक्तित्व निरन्तर कवियोंको प्रेरणा देता रहा है । उसमें प्रत्येक युगके अनुरूप परिवर्तनकी असीम सम्भावनाएँ प्रकट हुई हैं। फिर भी भक्त कवियोंने उसमें जिस शाश्वत प्रेम, चिरन्तन आनन्द, असीम सौन्दर्य और अलौकिक रसवत्ताका समावेश किया था, वह किसी-न-किसी रूपमें निरन्तर वर्त्तमान रही है । वस्तुतः कृष्ण प्रेम और आनन्दके प्रतीक बन गये हैं ।

[सहायक ग्रन्थ—हिन्दी साहित्य (खण्ड २), भारतीय हिन्दी परिषद् , इलाहाबाद; सूरदास : ब्रजेश्वर वर्मा, हिन्दी परिषद्, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद ।]—ब्र० व०

कृष्ण कवि–प्रसिद्ध कवि बिहारीके पुत्र कहे जाते हैं, पर यह समझमें आनेकी बात नहीं है कि इसका उल्लेख इन्होंने स्वयं क्यों नहीं किया । बिहारीके आश्रयदाता महाराज जयसिंह के मन्त्री राजा आयामल्लकी आज्ञासे इन्होंने 'बिहारी सतसई'पर टीका लिखी और उसमें ब्रजभाषा गद्यका प्रयोग किया। इस टीकामें जयसिंहका उल्लेख वर्तमानकालिक क्रियामे किया गया है, इससे यह सिद्ध होता है कि ये जयसिंहके समसामयिक हैं। लगभग सन् १७२८ से ३३ के बीच यह टीका की गयी है। इनकी सबसे बडी विशेषता यह थी कि बिहारीके दोहोंके भावको पूरी तरह अभिव्यक्ति प्रदान करनेके लिए इन्होंने सवैया छन्दका प्रयोग किया था और वार्तिकमें काव्यांग स्फुट किया। वास्तवमें काव्यांग ही इनकी टीकाका प्रधान अंग है। यद्यपि इन्होंने अन्यकी भावनाको ही पल्लवित और विकसित किया है, किन्तु भाषापर अधिकार तथा सहृदयता इनकी कविप्रतिभाको पूरी तरह प्रकट करते हैं ।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० इ०; हि० भा० और सा० इ० : चतुरसेन; हि० सा० बृ० इ० (भा० ६)।]—ह० मो०

कृष्णकांत मालवीय—प्रयागके प्रसिद्ध राष्ट्रवादी पत्र 'अभ्युदय'के सम्पादक। जन्म १८८३ ई० में। 'अभ्युदय' की स्थापना मदनमोहन मालवीयने की थी (१९०७)। बादमें कृष्णकान्तजीने उसका सम्पादन-भार सम्भाला। १९१० मे 'अभ्युदय' प्रेससे ही 'मर्यादा' नामक मासिक पत्रिका निकली, जिसके सम्पादक प्रारम्भमें पुरुषोत्तमदास टण्डन थे; फिर कृष्णकान्त मालवीय अन्त तक उसके सम्पादक रहे। आपकी पुस्तक 'सोहागरात' भी पर्याप्त रूप से लोकप्रिय सिद्ध हुई है। आपकी मृत्यु १९४१ ई०में हुई। —सं०

कृष्णगीतावली–यह तुलसीदासके कृष्ण-चरितसम्बन्धी गीतोंका सग्रह है । कुल गीत केवल ६१ है। कृष्ण चरितके कोमल और मधुर अंशोंको चित्रित करनेके लिए तुलसी-दासको इन गीतोंमें कुछ अनुकूल क्षेत्र मिला था। इसीलिए वे वर्णन-विस्तारमें बिलकुल नहीं गये और रूप-रेखा मात्रसे उन्होंने कृष्ण-कथा कह डाली।

'कृष्णगीतावली'मे सूर सागरके चार पद भी पाये जाते हैं। उनके सम्बन्धमें प्रायः यह कहा गया है कि वे स्वतः कवि द्वारा अथवा उसके किसी भक्त द्वारा 'सूरसागर'से लेकर 'कृष्णगीतावली'में रख लिये गये हैं। वस्तुस्थिति जो भी हो, एक बात बिना किसी खटकेके कही जा सकती है कि जिन तुलसीदासने लगभग सात सौ गीतोंकी रचना की है और वे गीत शिल्पमे किसीसे पीछे नहीं हैं, वे 'गीतावली'के तीन और 'कृष्णगीतावली'के चार—कुल मिलाकर सात

गीत 'सूरसागर'मे लेकर अपनी रचनाओंमें कभी नही रख सकते थे।

इन गीतोंमें एक बात दर्शनीय है—कृष्णकथा जैसे विषयको लेकर भी उन्होंने अपने मर्यादावादको काफी हद तक निभाया है। रचना छोटी है, किन्तु कलाकी दृष्टिसे सुन्दर है; पद-योजना सरस और प्रयासहीन है। सम्भव है इसमें उस समय तक बन चुके कृष्ण-विषयक विशाल गीत-साहित्यका भी सहारा हो। शैली बहुत सुव्यवस्थित और भाषा ठेठ बोलचालकी ब्रज है जिसके कारण रचनामें ब्रज प्रदेशका एक वातावरण भी मिलता है।

रचना छोटी है, उसमें पुनरावृत्तियाँ किसी रूपमें नहीं मिलतीं और कथाकी रूपरेखा सम्यक् प्रकारसे आ जाती है, इसलिए यह रचना न उतने स्फुट ढंगसे निर्मित हुई ज्ञात होती है, और न उतनी विस्तृत अवधिमें लिखी ज्ञात होती है, जितनी 'गीतावली'। ऐसा ज्ञात होता है कि 'गीतावली' के संग्रहके तैयार हो जानेपर तुलसीदासको यह लगा कि कृष्ण-चरितसम्बन्धी भी एक 'गीतावली' उन्हें रचनी चाहिए और उसीका परिणाम यह है। इसका रचना-काल 'गीतावली'के कुछ ही पीछे होना चाहिए।—मा० प्र० गु०

कृष्णचंद्र दारोगा–प्रेमचन्द्रकृत सेवा-सदनका पात्र। दारोगाके रूपमे कृष्णचन्द्रने सदैव दूसरोंके साथ भलाई की और निःस्पृह भावसे अपने कर्तव्यका पालन किया। वह रसिक, उदार और सज्जन मनुष्य है। उसने कभी रिश्वत नहीं ली। वह निर्लोभ है किन्तु बच्चों और स्त्रीके आराम के लिए कभी किफायतशारी न की। साथ ही अपनी अकर्मण्यताके कारण अपनी पुत्री सुमनके लिए योग्य वर न ढूँढ सका। दहेज-प्रथा भी उसके मार्गमें एक बड़ी भारी बाधा थी। इस बाधाको दूर करनेके लिए ही उसने रिश्वत ली और अन्तमें जेल-यात्रा की। वास्तवमे सीधे रास्तेपर चलनेवाला कृष्णचन्द्र जीवनकी पेचीदा गलियोंमें फँसकर रास्ता भूल जाता है। वह आत्मा और धर्मके बन्धनमें फँसकर झूठी मर्यादाके चक्करमें पड़ जाता है। जेलसे छूटनेके बाद वह अपने साले उमानाथके यहाँ रहते हुए विक्षिप्तोंका-सा व्यवहार करता है। उसकी आत्मा निर्बल हो जाती है और वह अपना कर्त्तव्य भूल जाता है। जब उसे सुमनके कलंकपूर्ण जीवनकी बात ज्ञात होती है तब तो वह अपना संतुलन बिलकुल खो बैठता है। उसे अपने ऊपर क्षोभ होता है। प्रेमचन्द उसे फिर आत्म-परिष्कारकी ओर ले जाते हैं फिर भी वह जीवन और मृत्युके बीच संघर्ष करता हुआ गंगाकी लहरोंमें विलीन हो जाता है। —ल० सा० वा०

कृष्णदास १–मीरजापुर निवासी कृष्णदास माधुर्यभक्तिको स्वीकार करनेवाले भक्त कवि हैं। इनकी एक विशाल रचना 'माधुर्य लहरी' प्राप्त है जिसमें गीतिका छन्दमे राधाकृष्णके नित्यविहारसम्बन्धी प्रसंगोंका बड़ी सरस एव परिष्कृत शैलीमें वर्णन है। 'माधुर्य लहरी' के प्रारम्भमें कविने अपना परिचय तथा लहरीका रचनाकाल भी दिया है जिसके आधारपर संवत् १८५२-५३ (सन् १७९५-९६ ई०) इस ग्रन्थका रचनाकाल है। लहरीमें गीतिका छन्दके साथ और छन्दोंका भी प्रयोग हुआ है। कृष्णदासको निम्बार्क सम्प्रदायका अनुयायी बताया जाता है। इनका बनवाया हुआ एक स्थान 'मीरजापुरवाली कुंज' नामसे आज भी वृन्दावनमें विद्यमान है। 'माधुर्य लहरी' की कविताका प्रयोग रासलीलामें आज भी वृन्दावनमें किया जाता है।

'माधुर्य लहरी'की भाषापर संस्कृतकी गहरी छाप है। ऐसा प्रतीत होता है कि कृष्णदासने संस्कृत भाषाका अच्छा अध्ययन किया था क्योंकि भाषा ही नहीं, विषय वर्णनमें भी दार्शनिक विचारोंका ऊहापोह संस्कृत ग्रन्थोंसे प्रभावित है। —वि० स्ना०

कृष्णदास २–अष्टछापके प्रथम चार कवियोंमें अन्तिम कृष्णदास अधिकारी हैं। उनका जन्म सन् १४९५ ई०के आसपास गुजरात प्रदेशके एक ग्रामीण कुनबी परिवारमें हुआ था। सन् १५०९ ई०में वे पुष्टिमार्गमें दीक्षित हुए और सन् १५७५ और १५८१ई० के बीच उनका देहावसान हुआ। बाल्यकालसे ही कृष्णदासमें असाधारण धार्मिक प्रवृत्ति थी। १२-१३ वर्षकी अवस्था मे उन्होंने अपने पिताके एक चोरीके अपराधको पकड़कर उन्हें मुखियाके पदसे हटवा दिया था। इसके फलस्वरूप पिताने उन्हें घरसे निकाल दिया और वे भ्रमण करते हुए ब्रजमे आ गये। उसी समय श्रीनाथजीका स्वरूप नवीन मन्दिरमे प्रतिष्ठित किया जाने वाला था। श्रीनाथजीके दर्शन कर वे बहुत प्रभावित हुए। वल्लभाचार्यजीसे भेंट कर उन्होंने सम्प्रदायकी दीक्षा ग्रहण की। कृष्णदासमें असाधारण बुद्धिमत्ता, व्यवहार-कुशलता और सघटनकी योग्यता थी। पहले उन्हें वल्लभाचार्यने भेंटिया (भेंट उगाहनेवाला)के पदपर रखा और फिर उन्हें श्रीनाथजीके मन्दिरके अधिकारी का पद सौंप दिया। अपने इस उत्तरदायित्वका कृष्णदासने बड़ी योग्यतासे निर्वाह किया। मन्दिरपर गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायके बगाली ब्राह्मणोंका प्रभाव बढ़ता देखकर कृष्णदासने छल और बलका प्रयोग कर उन्हें निकाल दिया। अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिए कृष्णदासको बंगालियो की झोपड़ियोंमें आग लगानी पड़ी तथा उन्हें बाँसोंसे पिटवाना पड़ा। श्रीनाथजीके मन्दिरमें कृष्णदास अधिकारीका ऐसा एकाधिपत्य हो गया था कि एक बार उन्होने स्वयं गोसाईं विट्ठलनाथसे सेवाका अधिकार छीनकर उनके भतीजे श्री पुरुषोत्तमजीको दे दिया था। लगभग ६ महीनेतक गोसाईंजी श्रीनाथजीसे वियुक्त होकर परासौलीमे निवास करते रहे। महाराज बीरबलने कृष्णदासको इस अपराधके दण्डस्वरूप बन्दीखानेमे डलवा दिया था परन्तु गोसाईंजीने महाराज बीरबलकी इस आज्ञाके विरुद्ध अनशन कर कृष्णदासको मुक्त करा दिया। विट्ठलनाथजीकी इस उदारतासे प्रभावित होकर कृष्णदासको अपने मिथ्या अहंकारपर पश्चात्ताप हुआ और उन्होने गोस्वामीजीके प्रति भी भक्ति-भाव प्रकट करना प्रारम्भ कर दिया तथा उनकी प्रशसामे वे पद-रचना भी करने लगे। वास्तवमे गोस्वामीजीके प्रति कृष्णदासने जो दुर्व्यवहार किया था, उसका कारण कुछ और था। गंगाबाई नामक एक क्षत्राणीसे कृष्णदासकी गहरी मित्रता थी। एक बार गोस्वामीजीने उनके इस सम्बन्धपर कुछ कटु व्यंग किया जिससे कृष्णदास-

ने असन्तुष्ट होकर उनसे यह बदला लिया। एक बार विषम ज्वरकी अवस्थामें प्यास लगनेपर उन्होंने वृन्दावनके अन्यमार्गीय वैष्णव ब्राह्मणोंके यहाँ जल नहीं पिया, जब एक पुष्टिमार्गीय भंगीके यहाँका जल लाया गया तब उन्होंने अपनी प्यास बुझायी। कृष्णदासके अन्तिम समयकी घटना भी उनके स्वभावकी तामसी प्रवृत्तिको चरितार्थ करती है। किसी वैष्णवके कुएँके निमित्त दिये हुए ३०० रुपयेमें-से उन्होंने दो सौ रुपये कुएँमें व्यय करके १०० रुपये छिपा लिए थे। उसी अधूरे कुएँमें गिरकर उनका शरीर लुप्त हो गया और वे प्रेत बन गये। जब उन्होंने एक ग्वालसे कहकर गोसाईंजीके द्वारा गड़े हुए रुपये निकलवाये और गोसाईंजीने कुँआँ पूरा कराया तब उनकी सद्गति हुई।

चरित्रकी इतनी दुर्बलताएँ होते हुए भी कृष्णदासको साम्प्रदायिक सिद्धान्तोंका बहुत अच्छा ज्ञान था और भक्तगण उनके उपदेशोंके लिए अत्यन्त उत्सुक रहा करते थे। जातिके शूद्र होते हुए भी सम्प्रदायमें उनका स्थान उस समय अग्रगण्य था और उन्होंने पुष्टिमार्गके प्रचारमें जो सामयिक योग दिया वह कदाचित् अष्टछापके अन्य भक्त कवियोंकी अपेक्षा कहीं अधिक सराहा जाता था। कृष्णदासने कृष्णलीलाके अनेक प्रसंगोंपर पद-रचना की है। प्रसिद्ध है कि पद-रचनामें सूरदासके साथ वे प्रतिस्पर्धा करते थे। इस क्षेत्रमें भी अपने स्वभावके अनुसार उनकी इच्छा सर्वोपरि स्थान ग्रहण करनेकी थी। भले ही कृष्णदासने उच्चकोटिकी काव्यरचना न की हो, उन्होंने अपने प्रबन्ध-कौशल द्वारा उन परिस्थितियोंके निर्माणमें अवश्य महत्त्वपूर्ण योग दिया, जिनके कारण सूरदास, परमानन्ददास, नन्ददास आदि महान् कवियोंको अपनी प्रतिभाका विकास करनेके लिए अवसर मिला।

कृष्णदासके 'राग-कल्पद्रुम', 'राग-रत्नाकर' और सम्प्रदायके कीर्तन संग्रहोंमे प्राप्त पदोंका विषय लगभग वही है जो कुम्भनदासके पदोंका है। अतिरिक्त विषयोंमें चन्द्रावलीजीकी बधाई, गोकुलनाथजीकी बधाई और गोसाईंजीके हिंडोराके पद विशेष उल्लेखनीय हैं। कृष्णदासके कुल पदोंकी संख्या २५० से अधिक नहीं है।

कृष्णदासके पदोंका संग्रह विद्याविभाग, कांकरौलीसे प्रकाशित हुआ है।

[सहायक ग्रन्थ—चौरासी वैष्णवनकी वार्ता; अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय : डा० दीनदयाल गुप्त; अष्टछाप परिचय : श्री प्रभुदयाल मीतल।] —ब्र० व०

कृष्णदेवप्रसाद गौड़ 'बेढब'–जन्म ११ नवम्बर १८९५ ई० में वाराणसीमें हुआ। एम० ए० की परीक्षा समाप्त करनेके बाद आप वहींके डी० ए० वी० कालेजमे प्राध्यापक और प्रधानाचार्यके पदपर कार्य करते रहे। 'बेढब'के उपनामसे आप हिन्दी साहित्यमें हास्य और व्यंग्यकी रचनाएँ लिखते रहे हैं। लगभग १० पुस्तकें आपकी प्रकाशित हो चुकी हैं। गद्य और पद्य दोनों विधाओंको आपने अपने हास्यके लिए समान सरलताके साथ प्रयोग किया है। दोनोंमें ही आपकी कृतियाँ एक निश्चित हास्य स्तरकी हैं।

'बेढब'की कविताओंमें हमें प्रेम, रोमान्स, आधुनिकता और राजनीतिक समस्याओंपर काफी सरस चित्रण मिलते हैं किन्तु इस सरसताका कोई सार्थक उद्देश्य नजर नहीं आता। आधुनिकताका विरोध भी औपचारिक रूपमें ही दीख पड़ता है। इसमें सन्देह नहीं कि 'बेढब'ने इस विधाको उस समय अपनाया, जब साहित्यमें गम्भीर लिखनेवालोंकी संख्या अधिक थी और जब सम्पूर्ण राष्ट्रीय जीवनमें पुनरुत्थानवादी प्रवृत्तियाँ जोरपर थीं। 'बेढब'की हास्यप्रधान कविताओंमें हमें समसामयिक विडम्बनाओंकी तीखी टिप्पणी मिलती है। आज भी बिना इन टिप्पणियोंके मानसिक स्तरका ज्ञान अधूरा ही रहेगा।

'बेढब'की कहानियोंमें हमे अधिकतर नागरिकोंकी विरोधी मनोग्रन्थियोंके दर्शन होते हैं। इसी विरोधमे 'बेढब'की पैनी विवेचना हमें हास्य रसकी अनुभूति देती है। वस्तुतः जिस युगमें 'बेढब' हास्यप्रधान रचनाएँ लिख रहे थे, उस युगमें मध्यवर्गके जीवनमें सामाजिक और आर्थिक स्तरपर कई प्रकारके उथल-पुथल चल रहे थे। न तो गाँव वाला अपने ग्रामीण मूल्योंके प्रति आस्थावान् था और न शहरका गतिशील जीवन ही आत्मविश्वास प्राप्त कर सका था। परिणामस्वरूप इस समय समस्त भावस्थिति गाँव और शहर, किसानी और नौकरी, पूर्वी और पश्चिमी मूल्योंके बीच भाग-दौड़की स्थितिमे थी। 'बेढब'की कहानियोंमें भी हमें उसी द्वन्द्वमें डूबा हास्य मिलता है।

'बेढब'के कुछ प्रकाशित ग्रन्थ ये है—'बेढबकी बहक', 'काव्य कमल' (काव्य-संग्रह १९४०), 'बनारसी एक्का', 'गान्धीका भूत और टनाटन' (कहानी-संग्रह), 'अभिनेता' (नाटक)। —ल० का० व०

कृष्णदेव सिंह–जन्म १८६५ ई०मे भरतपुरके प्रसिद्ध राजवंशमें हुआ था। भारतेन्दु-युगके लेखक थे। इनका लिखा हुआ 'माधुरी रूपक' नामक एक मौलिक नाटक मिलता है तथा कुछ स्फुट कविताएँ भी है।—दे० शं० अ०

कृष्णबिहारी मिश्र–जन्म सन् १८९०में गन्धौली, जिला सीतापुरमे हुआ था। पितृव्य श्रीयुगल किशोर मिश्र 'ब्रजराज' तथा पिता श्री रसिकबिहारी मिश्र की साहित्य-मर्मज्ञताका इनपर समुचित प्रभाव पड़ा।

इन्होने सीतापुरके गवर्नमेण्ट हाईस्कूलसे एण्ट्रेन्स तथा कैनिंग कालेज, लखनऊसे १९१३ई०मे बी० ए० पास किया, प्रयागसे एल० एल० बी० पास किया और वकालत करने लगे। १९१७से१९२४तक ये यही कार्य करते रहे।

छात्र-जीवनमे ही इन्होंने 'सम्राट्' (कालाकाकरसे प्रकाशित)में लिखना प्रारम्भ कर दिया था। बादमें 'मर्यादा', 'इन्दु' तथा 'अभ्युदय' आदिमें भी इनकी कविताएँ और लेख प्रकाशित होने लगे। चीनका इतिहास भी इन्होंने लिखा।

वकालत छोड़कर इन्होंने 'माधुरी'का सम्पादन किया और फिर लखनऊसे 'साहित्य-समालोचक' निकाला, जो पहले त्रैमासिक था, बादमे द्वैमासिक हो गया। इसके पूर्व ये 'आज'के सम्पादकीय विभागमें भी रहे।

आपके मौलिक ग्रन्थ हैं—'चीनका इतिहास', 'देव और बिहारी' तथा सम्पादित ग्रन्थ हैं—'गंगाभरण', 'नवरस तरंग', 'मतिराम ग्रन्थावली', 'नटनागर विनोद',

तथा 'मोहन विनोद।'

'देव और बिहारी' तुलनात्मक आलोचनाका प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसमें पक्षपातपूर्ण आलोचनाके स्पष्ट दर्शन होते है। इन्होंने पद्मसिंह शर्माको उत्तर देनेके लिए देवको श्रेष्ठ सिद्ध किया है। 'मतिराम ग्रन्थावली'की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। विवेचनात्मक आलोचनाकी दृष्टिसे इसकी भूमिका द्रष्टव्य है। उसमें कृष्णबिहारी मिश्रके पाण्डित्यके दर्शन होते हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्लके शब्दोंमें "मिश्र बन्धुओंकी अपेक्षा पण्डित कृष्णबिहारी मिश्र साहित्यिक आलोचनाके कहीं अधिक अधिकारी कहे जा सकते हैं। मिश्रजीने जो कुछ कहा है, शास्त्रीय विवेचनके साथ कहा है।" —ह० दे० बा०

कृष्णशंकर शुक्ल—आपने काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमे एम० ए० किया। इसके बाद कान्यकुब्ज इण्टरमीडिएट कालेज, कानपुरमें अध्यापक हो गये। बादमें आप डी० ए० वी० कालेजमें प्राध्यापक हुए। आचार्य रामचन्द्र शुक्लकी परम्परामें कार्य करनेवाले इने-गिने व्यक्तियोंमें-से आप एक हैं।

आप एक उत्कृष्ट आलोचक और इतिहासलेखकके रूपमें प्रसिद्ध है। आपकी ये पुस्तकें प्रकाशित हैं—(१) 'आधुनिक हिन्दी साहित्यका इतिहास', (२) 'कविवर रत्नाकर', (३) 'केशवकी काव्यकला,' (४) 'हिन्दी साहित्यकी रूपरेखा।' इस समय सन्त साहित्यपर विशेष रूपसे कार्य कर रहे हैं। —ह० दे० बा०

कृष्णानन्द गुप्त—जन्म ललितपुर (झाँसी) मे सन् १९०३ में हुआ था। लेखकके रूपमें इनकी प्रसिद्धि 'प्रसादके दो नाटक'(१९३३) नामक पुस्तकमे हुई। इस पुस्तकमे कृष्णानन्दजीने 'स्कन्दगुप्त' एवं 'चन्द्रगुप्त' नामक प्रसादके दो नाटकोंकी कटु आलोचना की है। इन्होंने इन नाटकोंपर अनैतिहासिकताका भी आक्षेप लगाया है तथा इब्सनके यथार्थवादी रंगमंचके आधारपर इन नाटकोंको अत्यन्त त्रुटिपूर्ण बताया है। इस पुस्तककी काफी चर्चा भी हुई, परन्तु इसके बाद इनकी कोई आलोचनात्मक कृति प्रकाशमें नहीं आयी है। इनके दो कहानी-संग्रह 'अंकुर' और 'पुरस्कार' क्रमशः १९२९ और १९३९ में प्रकाशित हुए हैं तथा 'केन' नामक एक उपन्यास भी १९२९ मे प्रकाशित हुआ था किन्तु इनके कथा-साहित्यसम्बन्धी इस लेखनको बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं समझा गया। जीवशास्त्रपर भी एक पुस्तक 'जीवकी कहानी' (१९४०)मे प्रकाशित हुई है।

इनका मुख्य कार्यक्षेत्र पिछले कुछ वर्षोंसे लोक-वार्तासम्बन्धी रहा है। इन्होंने लोक-वार्तासे सम्बद्ध 'मधुकर' नामक पत्रका सम्पादन भी किया है। 'बुन्देलखण्डी कहावत संग्रह' एवं 'बृहत् हिन्दी कहावत-कोश' इस क्षेत्रमें इनके मुख्य ग्रन्थ हैं। वास्तवमें हिन्दीमें लोक-वार्ताके शोधकर्ता और संग्राहकके रूपमें इनका कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। —दे० शं० अ०

कृष्णायन—सुप्रसिद्ध राजनीतिक नेता, मध्यप्रदेशके विख्यात पत्रकार और भूतपूर्व गृहमन्त्री पण्डित द्वारिकाप्रसाद मिश्रकी प्रसिद्ध अवधी महाकृति जो सन् १९४२ ई०के स्वतन्त्रता संग्रामके दिनोंमें कारागृहमें लिखित एवं सन् १९४७ ई०में नवशताधिक पृष्ठोंकी पृथुलताके साथ प्रकाशमें आयी है। यह कृतिकारकी एकमात्र काव्य-कृति है, जिसपर उसका समस्त कार्य-अस्तित्व आधृत है। समाजसेवी, पत्रकार, जन-नायक एवं बहुविध अनुभवशाली होनेके कारण लेखकने इस ग्रन्थमें जीवनकी विशालता, विविधता, यथार्थता, आदर्शमयता एवं व्यवहार-सत्यको एक प्रवहमान राष्ट्रीय सांस्कृतिक चिन्ताधाराका स्वरूप दिया है। नन्ददुलारे वाजपेयीके शब्दोंमें "भारतीय जीवन और उसकी सर्वश्रेष्ठ सांस्कृतिक परम्पराको विशुद्ध भारतीय स्वरूपमें उपस्थित करनेके लिए 'कृष्णायन'का निर्माण किया गया है" (आधुनिक साहित्य प्र० सं०, पृ० १०६-७)।

ग्रन्थकी कथावस्तु मुख्यतः 'महाभारत'के कथानकपर आधृत है। मिश्रजीने 'श्रीमद्भागवत' और 'सूरसागर'का कथाधार तो अपनाया ही है, वर्णन एवं स्थल-काल-चित्रणमें 'शिशुपाल-वध' आदि संस्कृत ग्रन्थोंसे भी रचनात्मक सहायता ली है। एक साथ ही ब्रजके लीला-कृष्ण, द्वारिकाके प्रणयी कृष्ण एवं गीताके कर्मयोगी कृष्णके तीनों पक्षोंका समाहारकर कविने श्रीकृष्णको विस्तृत एवं आदर्श महापुरुषत्व प्रदान करनेका महान् प्रयास किया है, जो अपने विस्तार, प्रकीर्णता एवं वैचित्र्यके कारण एक साथ सर्वांशतः अबतक किसी द्वारा स्पष्टः नहीं हुआ था। जिस प्रकार मध्ययुगके दासत्व कालमें राम जैसे महान् चरित्रकी अवतारणा करते हुए तुलसीने तत्कालीन एवं सर्वकालीन भारतीय जीवनको एक चिरन्तन चरित्राधार देनेका प्रयास किया था, उसी प्रकार मिश्रजीने अपने युगको 'कृष्णायन'के कृष्ण द्वारा एक पूर्ण एवं अनुकरणीय कर्मठ चरित्र प्रदान करनेका प्रयत्न किया है, जो एक साथ राष्ट्रीयता, सांस्कृतिक ऐक्य, आदर्श, यथार्थ, राजनीति, व्यवहार-नीति, युद्धनीति एवं व्यक्तिके सामाजिक जीवनको उज्ज्वल आलोक प्रदान कर समस्या-ग्रन्थियोंको समाधान दे सके। कथानक जहाँ एक ओर अतीतकालीन जीवन-दर्शन एवं जिजीविषादर्शको प्रस्तुत करता है, वहीं अतीतकी पृष्ठभूमिसे वर्तमानको भी उपयुक्त संदेश देता हुआ भविष्यका मार्ग निर्दिष्ट करता दिखाई देता है। 'कृष्णायन' आजके भारतको अखण्ड देश-व्यापी एवं प्रान्तीयतानिर्मुक्त राष्ट्रीय ऐक्य-भावनाका आदर्श प्रदान करता है। 'कृष्णायन'की असुर राजनीतिको अधिनायकता, नात्सीवाद, भौतिकवाद, साम्राज्यवाद एवं आतंकवादका अतीत-गत प्रतिनिधि मान सकते हैं और 'आर्यनीति'को 'रामराज्य' आदर्श लोकतन्त्र एवं प्रेम-शासनका प्रतीक। चार्वाक स्वार्थमय भौतिकवाद एवं छद्म शासनका आचार्य है। मिश्रजीने 'भक्ति'के आराध्य कृष्णको समाजनीति, राजनीति एवं जीवन यथार्थका आदर्श बनाया है, जिसमें उन्होंने वर्तमानकी पुकारको देशकी सांस्कृतिक पीठिकासे सम्बद्ध कर दिया है। —श्री० सिं० क्षे०

कृत्या—मन्त्रके द्वारा आवाहन करके प्रकट की गयी अनिष्टकारक देवी विशेषको कृत्याके नाममे सम्बोधित किया गया है। यह वस्तुतः अनिष्ट और विनाशकी देवी समझी जाती है। कहीं कहीं यह 'काली'के पर्याय रूपमें भी स्वीकृत हुई है। —यो० प्र० सिं०

केतु–साहित्यमें 'केतु' के निम्नलिखित विवरण प्राप्त होते हैं—

(१) नवग्रहोंमें-से एक ग्रहका नाम केतु है। इसके रथको लाखके रंगके आठ घोड़े खींचते हैं। प्रति संक्रान्ति यह सूर्यको ग्रसित करता है। मतान्तरसे यह एक दैत्यका नाम है, जिसको धड़मात्र होता है। समुद्रमन्थनके उपरान्त सब देवता अमृत पान करने बैठे। यह भी अमरत्वकी इच्छासे देवताओंकी पंक्तिमें बैठ गया लेकिन सूर्य और चन्द्रने इसे पहचान कर इसके रहस्यको खोल दिया। तुरन्त विष्णुने इसका सिर काट दिया किन्तु अमृत इसके गलेमें उतर चुका था। फलस्वरूप कटे होनेपर भी इसके सिर और धड़ अलग-अलग हो गये। मस्तकका नाम राहु पड़ा और धड़का केतु। सूर्य और चन्द्रमासे अपना बैर चुकानेके लिए राहु और केतु सूर्य और चन्द्रमाको ग्रसित करते हैं। ज्योतिषमें इसीलिए ये पापग्रह कहे जाते हैं। विंशोत्तरी गणनाके अनुसार केतुकी दशाका फल सात वर्षतक विद्यमान रहता है। केतुके पूर्व बुद्ध और बादमें शुक्रकी दशा आती है। केतुकी माताका नाम सिंहिका था। मतान्तरमें यह कश्यप तथा दनुका पुत्र था।

(२) ऋषभदेव तथा जयन्तीके १०० पुत्रोंमें-से एकका नाम केतु था।

(३) 'तामस' मनुके पुत्रके रूपमें भी विख्यात हैं। इन्हे तपोधन भी कहा जाता है।

(४) ब्रह्माने अपनी प्रजाकी अत्यधिक वृद्धि होते देखकर मृत्यु नामकी एक कन्या उत्पन्न की। उससे असंख्य प्रजा का संहार होते देखकर वह रोने लगी। उसके अश्रुओंसे सहस्रों रोग पैदा हो गये। तत्पश्चात उन्होंने तप किया जिससे उन्हे यह वर मिला कि इस नाशसे उनको कोई पाप न लगेगा। इस आश्वासनमें उन्होंने एक दीर्घ श्वास ली, जिससे केतु उत्पन्न हुआ। धूमकेतु इसीका शिष्य था (मानस १ : १० : ३)। —रा० कु०

केदारनाथ अग्रवाल–जन्म बाँदा जिलेके गाँवमें १९११ ई० मे हुआ। प्रयाग और आगरा विश्वविद्यालयसे बी० ए०, एल-एल०बी० की परीक्षा पास की और तभीसे बाँदामें वकालत कर रहे हैं। हिन्दीके प्रगतिवादी आन्दोलनसे अग्रवालजीका गहरा सम्बन्ध रहा है। आप किसी जमानेमे प्रमुख प्रगतिवादी कवियोंमें-से थे। 'हंस', 'नया साहित्य' और इसी प्रकारकी अन्य प्रगतिवादी पत्रिकाओंमे आपकी रचनाएँ बराबर प्रकाशित होती रहीं।

कविके रूपमें अग्रवालजी प्रगतिवादी कवियोंमे सबसे अधिक कलात्मक कवि हैं। आपके पास शब्दचयन है, भावाभिव्यक्ति है, एक काव्यगत तटस्थताकी सम्भावना भी है किन्तु जहाँ आप इन विशेषताओंके साथ प्रगतिवादी आग्रहोंको कवितामें जोड़ने लगते हैं, वहीं उसका सौन्दर्य, उसकी मार्मिकता कम हो जाती है।

आपके काव्यकी विशेषता जीवन और उससे उपजी हुई रागात्मकताका साक्षात्कार करना है। यह साक्षात्कार जहाँ सहज मानवीय स्तरपर हुआ है वहाँ तो पूर्ण सफलता भी मिली है, किन्तु जहाँ कवि मतवाद और वर्गवादकी आँखोंसे इस यथार्थको देखने लगता है, वहाँ कवि-सत्यका बहुत बड़ा अंश उसके हाथसे छूट जाता है। 'युगकी गंगा' की अधिकांश कविताएँ नयी तो हैं किन्तु उनमें यह दोष हमें समान रूपसे मिलता है। 'नींदके बादल' संग्रहमें भी आपसे वह त्रुटि सँभल नहीं सकी है। इस संग्रहकी कविताओंमें सुन्दर और सजीव प्रकृतिचित्रण या सुगठित काव्य-रचनामें शिथिलता आनेका एकमात्र कारण है— अनुभूति और उद्देश्य दोनोंको अनावश्यक रूपमें जोड़नेका प्रयास।

शैलीकारके रूपमें मुक्त छन्दों और गीतके छन्दोंका प्रयोग आपने कहीं-कहीं बड़ी सफलताके साथ किया है। बिम्बों और उपमाओंमें भी आपके पास काफी नवीनता है।

अग्रवालजीकी भाषा यथार्थ और छायावादकी भाषासे मिलती-जुलती है। वस्तुतः आप जिस युगके कवि हैं उस युगकी सम्पूर्ण संवेदना छायावादका विरोध करते हुए भी छायावादसे मुक्त नहीं हो पा रही थी। उस युगके कवियोंमे आपका एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। अबतक आपके तीन काव्य-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं—

'युगकी गंगा' (१९४७), 'नींदके बादल' (१९४७) और 'लोक और आलोक' (१९४७)। —ल० का० व०

केदारनाथ मिश्र 'प्रभात'–जन्म आरामें १२ अगस्त सन् १९०७में हुआ। शिक्षा-स्थान क्रमशः सासाराम, बक्सर और पटना रहे है। जन-जीवनमे प्रथम प्रवेश १९२२में हुआ। १९२९में पटना विश्वविद्यालयसे बी० ए० और १९३१मे एम० ए० किया। १९२७मे भरतपुरमें आयोजित अखिल भारतीय 'वसन्त प्रतियोगिता'मे प्रथम पुरस्कार प्राप्त किया।

'कलेजेके टुकडे' नामसे १९२८मे सर्वप्रथम इनकी षट्पदियोका संग्रह निकला। इसका मूल स्वर वैयक्तिक है। सन् १९२९मे 'ज्वाला' नामसे स्वतन्त्रता-सम्बन्धी गीतोंका 'नवीन'जीकी भूमिकासहित एक संकलन निकला, जिसे अवैधता और निषिद्धताके भयसे प्रकाशकने समस्ततः नष्ट कर दिया। सन् १९३६में 'श्वेत नील' (गीत-संग्रह), १९३९मे 'कलापिनी' (गीत-सग्रह), १९४२मे 'कम्पन' (दार्शनिक कविता-संग्रह), १९४४में 'संवर्त्त' (गीति-नाट्य), १९५०मे 'कैकेयी' (प्रबन्ध-काव्य), १९५१मे 'स्वर्णोदय' (सांस्कृतिक गीति-नाट्य), १९५१में 'कर्ण', १९५१में 'चिरस्पर्श' (आध्यात्मिक कविता-संग्रह), १९५२में 'सत्यं, शिवं, सुन्दरम्' (बालकोंके लिए पत्र-संग्रह), सन् १९५२में ही 'समुद्रके मोती', 'आश्चर्यजनक कहानियाँ', 'मनोरंजक कहानियाँ' और 'मूर्खोंकी कहानियाँ' (सभी किशोर साहित्य); १९५४मे 'तप्तगीत' (प्रबन्ध, पटना विश्वविद्यालय) और १९५७में 'ऋतम्भरा' (मानवताके भविष्य और सृष्टि एव मानव प्रगतिसे सम्बद्ध प्रबन्ध) प्रकाशित हुए। 'कैकेयी'में 'प्रभातजी'ने कैकयीके कुत्सित चरित्रको राष्ट्र-माताके रूपमें उभारा है। उनके अनुसार कैकेयीने रामको रावणके विरुद्ध अभियानका नेता बनाया। दशरथकी असमर्थतामें यह उनकी प्रतिभाका उज्ज्वल प्रमाण है।

'प्रभात'जी प्रशासकीय सेवा-विभागमें रहकर भी साहित्य-साधना करते रहे हैं। गीत-रचनाके क्षेत्रमें उन्हें चाहे अधिक महत्त्व न दिया जाय, पर प्रबन्धकारोंमें उनका

महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'छायायुगीन' कवियोंमें उनकी देन अनुपेक्षणीय है। उनकी रचनाका आधार भावुकता और कल्पनासे अधिक अनुशीलन और चिन्तन है।

[सहायक ग्रन्थ—(१) हिन्दी सेवी संसार, द्वि० सं० : प्रेमनारायण टण्डन; (२) आधुनिक साहित्य—नन्ददुलारे वाजपेयी।] —श्री० सिं० क्षे०

केशवदास—हिन्दीके एक प्रमुख आचार्य, जिनका समय भक्ति-कालके अन्तर्गत पड़ता है, पर जो अपनी रचनामें पूर्णतः शास्त्रीय तथा रीतिबद्ध हैं। शिवसिंह सेंगर तथा ग्रियर्सन द्वारा उल्लिखित क्रमशः सन् १५६७ ई० (सं० १६२४) तथा १५८० ई० (सं० १६३७) इनका कविता-काल है, जन्मकाल नहीं। 'मिश्रबन्धुविनोद' प्रथम भागमें १५५५ ई० (सं० १६१२) तथा 'हिन्दी नवरत्न'में १५५१ ई० (सं० १६०८)मे अनुमानित जन्मकाल है। रामचन्द्र शुक्लने १५५५ ई० (सम्वत् १६१२) जन्मकाल माना है। गौरीशंकर द्विवेदीके 'सुकवि सरोज'मे उद्धृत दोहोंके अनुसार इनका जन्मकाल १५५९ ई० (सम्वत् १६१८) तथा जन्म-मास चैत्र प्रमाणित होता है। लाला भगवानदीन इनकी वंशपरंपरामें मान्य जन्मतिथि सम्वत् १६१८ (१५५९ ई०)के चैत्रमासकी रामनवमीकी पुष्टि करते हैं। तुंगारण्यके समीप बेतवा नदीके तटपर स्थित ओड़छा नगरमें इनका जन्म हुआ था। मिश्रबन्धु और रामचन्द्र शुक्ल १६१७ ई० (सं० १६७४)मे तथा लाला भगवानदीन और गौरीशंकर द्विवेदी १६२३ ई० (सं० १६८०)मे इनका निधन मानते हैं। तुलसीदास द्वारा केशवके प्रेत-योनिसे उद्धार किये जानेकी किंवदन्तीके आधारपर इनका निधन सन् १६२३ ई०के पूर्व ठहरता है। इनकी अन्तिम रचना 'जहांगीरजसचन्द्रिका'का रचनाकाल १६१२ ई० (सं० १६६९) है। इन्होने वृद्धावस्थाका मार्मिक वर्णन किया है। अतः १५६१ ई०में इनका जन्म हुआ तो मृत्यु सन् १६२१ ई० (सं० १६७८)के निकट तक जा सकती है।

केशवदासने 'कविप्रिया'में अपना वंशपरिचय विस्तारमे दिया है, जिसके अनुसार वंशानुक्रम यो है—कुम्भवार→देवानन्द→जयदेव→दिनकर → गयागजाधर → जयानन्द→त्रिविक्रम→भावशर्मा→सुरोत्तम या 'शिरोमणि' →हरिनाथ → कृष्णदत्त → काशीनाथ → बलभद्र→केशवदास → कल्याण। 'रामचन्द्रिका' और 'विज्ञानगीता'के आरम्भमे उल्लिखित परिचय संक्षिप्त है। 'विज्ञानगीता'मे वंशके मूल पुरुषका नाम वेदव्यास उल्लिखित है। इनके परिवारकी वृत्ति पुराण की थी। ये भारद्वाज गोत्रीय मार्दनी शाखाके यजुर्वेदी, मिश्र उपाधिधारी ब्राह्मण थे। ओड़छाधिपति महाराज इन्द्रजीत सिंह इनके प्रधान आश्रयदाता थे, जिन्होंने २१ गाँव इन्हें भेंटमें दिये थे। वीरसिंहदेवका आश्रय भी इन्हें प्राप्त था। तत्कालीन जिन विशिष्ट जनोंसे इनका घनिष्ठ परिचय था, उनके उल्लिखित नाम ये हैं—अकबर, बीरबल, टोडरमल और उदयपुरके राणा अमरसिंह। तुलसीदासजीसे इनका साक्षात्कार महाराज इन्द्रजीतके साथ काशी यात्राके समय सम्भव है। उच्चकोटिके रसिक होनेपर भी ये पूरे आस्तिक थे। ये व्यवहारकुशल, वाग्विदग्ध और विनोदी थे। अपने पाण्डित्यका इन्हें अभिमान था। नीति-निपुण, निर्भीक एवं स्पष्टवादी केशवकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। साहित्य और संगीत, धर्मशास्त्र और राजनीति, ज्योतिष और वैद्यक सभी विषयोंका इन्होंने गम्भीर अध्ययन किया था।

केशवदासकी प्राप्य प्रामाणिक रचनाएँ रचनाक्रमके अनुसार ये हैं—'रसिकप्रिया' (१५९१ ई०), 'कविप्रिया' और 'रामचन्द्रिका' (१६०१ ई०), 'वीरचरित्र' या 'वीरसिंहदेवचरित्र' (१६०६ ई०), 'विज्ञानगीता' (१६१० ई०) और 'जहाँगीरजसचन्द्रिका' (१६१२ ई०)। 'रतनबावनी'का रचनाकाल अज्ञात है, पर यह इनकी सर्वप्रथम रचना है। नखशिख, शिखनख और बारहमासा पहले 'कविप्रिया'के ही अन्तर्गत थे। आगे चलकर ये पृथक् प्रचारित हुए। सम्भव है इनकी रचना 'कविप्रिया' के पूर्व ही हुई हो और बादमें इन सबका या किसीका उसमे समावेश किया गया हो। 'छन्दमाला'का रचनाकाल भी अज्ञात है। 'रामअलंकृतमंजरी' ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। लाला भगवानदीन इसे अलंकारका तथा अन्य कुछ विद्वानोंने छन्दशास्त्रका ग्रन्थ अनुमित किया है। 'जैमुनिकी कथा', 'बालचरित्र', 'हनुमान्‌जन्मलीला', 'रसललित' और 'अमीघूँट' नामक रचनाएं प्रसिद्ध कवि केशव द्वारा प्रणीत नहीं हैं। 'जैमुनिकी कथा' जैमिनीकृत 'अश्वमेध'का हिन्दी रूपान्तर है। केशवकी छापसे भिन्न इसमें 'प्रधान केसौराइ' छाप मिलती है। इसका रचनाकाल विक्रमकी अठारहवीं शताब्दीका उत्तरार्द्ध है। 'बालचरित्र' और 'हनुमान्‌जन्मलीला'की रचना अति शिथिल है। इसमें ब्रज तथा अवधीका मिश्रण तथा बुन्देलीका अभाव है। 'रसललित'मे कृष्णलीला वर्णित है तथा 'अमीघूट' किसी निर्गुणमार्गी कवि केसवकी रचना है। 'अमीघूंट'की भाषा, शैली और विषय तीनो सन्त-परम्पराके अनुरूप हैं। केशव निम्बार्क सम्प्रदायमें दीक्षित थे, अतः ये रचनाएँ इनकी सिद्ध नहीं होतीं।

'रसिकप्रिया'मे नायिकाभेद और रसका निरूपण हैं। इसमें प्रियजू और प्रियाजूकी प्रशस्ति वर्णित है। रसास्वादियोके लिए निर्मित होनेके कारण इसमें उदाहरणोपर विशेष दृष्टि है। 'कविप्रिया' कविशिक्षाकी पुस्तक है, इसलिए इसमे शास्त्रप्रवाह और जनप्रवाहके अतिरिक्त विदेशी साहित्यप्रवाहका भी नियोजन है। 'रामचन्द्रिका'में रामकथा वर्णित है। 'छन्दमाला'में दो खण्ड हैं। पहिलेमे वर्णवृत्तोंका और दूसरेमें मात्रावृत्तोंका विचार किया गया है तथा उदाहरण अधिकतर 'रामचन्द्रिका'से ही रखे गये है। 'वीरचरित्र'मे वीरसिंह देवका चरित्र चित्रित है। संस्कृतके 'प्रबोधचन्द्रोदय नाटक'के आधारपर 'विज्ञानगीता' निर्मित हुई, जिसमें अपनी ओरसे बहुत-सी सामग्री पौराणिक वृत्तिवाले पण्डित कविने जोड़ रखी है। 'जहाँगीरजसचन्द्रिका'में जहाँगीरके दरबारका वर्णन है। 'रतनबावनी'में रत्नसेनके वीरोत्साहका वर्णन है। मूलके मुद्रित संस्करणोंका उल्लेख उनके स्वतन्त्र विवरणके साथ यथास्थान है तथा केशव-

ग्रन्थावलीके रूपमें केशवके सभी प्रामाणिक ग्रन्थ विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित होकर हिन्दुस्तानी अकादमी, प्रयागसे सन् १९५९में प्रकाशित कर दिये गये हैं।

केशवदासने लक्षण-ग्रन्थ ही नहीं, लक्ष्य-ग्रन्थ भी लिखे हैं। शृंगारकी ही नहीं, अन्य रसोंकी भी रचनाएँ की है। मुक्तक ही नहीं, प्रबन्ध भी प्रणीत किये हैं। इनके लक्षण-ग्रन्थ तीन हैं—'रसिकप्रिया', 'कविप्रिया', और 'छंदमाला'। 'रसिकप्रिया'का आधार ग्रन्थ रुद्रभट्टका 'शृंगारतिलक' है। इसमें संस्कृतके तद्विषयक बहुप्रचलित ग्रन्थोंसे कुछ विभिन्नता है। इन्होने उसमें कुछ बातें 'कामतन्त्र'की भी जोड दी हैं। केशवने 'काव्यकल्पलतावृत्ति', 'काव्यादर्श' आदिके आधारपर कविशिक्षाकी पुस्तक 'कविप्रिया' प्रस्तुत की। 'कविप्रिया'में इन्होने 'अलकार' शब्दको उसी व्यापक अर्थमे ग्रहण किया है, जिसमे दण्डी, वामन आदि आचार्योंने। इसीसे पारिभाषिक अर्थके अनुसार विशेषालंकारके अतिरिक्त इन्होंने सामान्यालकारके अन्तर्गत काव्यकी शोभा बढानेवाली सभी सामग्री जुटा दी है। 'छन्दमाला'का आधार संस्कृतके 'वृत्तरत्नाकर' आदि पिंगलग्रन्थ ही है। इसमें लक्षण देनेकी प्रणाली केशवने अपनी रखी है। वस्तुतः इस क्षेत्रमें केशवने कोई नयी उद्भावना नहीं की है।

केशवके लक्ष्य-ग्रन्थोंमें पूर्ण अवधानता नही दिखायी देती। इनके प्रसिद्ध महाकाव्य 'रामचन्द्रिका'मे कथाके क्रमबद्ध रूप और अवसरके अनुकूल विस्तार-संकोचका अपेक्षित ध्यान नही रखा गया है। ये वस्तुतः दरबारी जीव थे इसलिए इसमें दरबारके अनुकूल बातोका ही वर्णन विस्तारसे किया गया है। 'रामचन्द्रिका'के छन्दोंका परिवर्तन इतना शीघ्र और इतने अधिक रूपोमें किया गया है कि प्रवाह आ ही नहीं पाता। केशवने इसमें नाट्यतत्त्वका अच्छा नियोजन किया है, जिससे यह लीलाके उपयुक्त हो गयी है। 'वीरचरित्र' प्रबन्धकाव्य है, किन्तु इसमें प्रबन्धके गुण पूर्ण मात्रामे नही पाये जाते। 'जहाँगीरजसचन्द्रिका' प्रशस्ति-काव्य है। चमत्कारके चक्करमें अधिक रहनेसे इनकी रचनाओंमें भावपक्षकी अपेक्षा कलापक्ष प्रधान हो गया है।

केशवने अपने ग्रन्थ, साहित्यकी सामान्य काव्यभाषा, ब्रजमे लिखे है। बुन्देलप्रान्त निवासी होनेके कारण उसके कुछ शब्द और प्रयोग इनकी रचनामे आ गये है। संस्कृत-ग्रन्थोंका अनुवदन और उनकी छायाका ग्रहण केशवने संस्कृत वर्ण-वृत्तोंमे अधिक किया है। इसलिए ऐसे स्थलोंकी भाषामें, विशेष रूपसे 'रामचन्द्रिका' और 'विज्ञान-गीता'में, संस्कृतका प्रभाव अधिक है। केशवकी दुरूहताका कारण संस्कृतके प्रयोगो या शब्दोंका हिन्दीमें रखना है। 'रसिकप्रिया'में इन्होंने हिन्दी-काव्य-प्रवाहके अनुरूप सशक्त, समर्थ और प्रांजल भाषा रखी है। वह सबसे अधिक वाग्योगपूर्ण है। उसमें ब्रजका पूर्ण वैभव दिखाई देता है। 'रतनबावनी'की भाषामें पुरानापन अधिक है। वह बतलाती है कि अपभ्रंशके रूप हिन्दीमें पारम्परिक प्रवाहके कारण चलते रहे हैं। इन्होंने सब प्रकारकी भाषामें रचना करनेका अभ्यास किया होगा। केशवने अपने साहित्यिक नवयौवनमें अपभ्रंश या पुरानी हिन्दीमें हाथ माँजा, फिर इन्होंने ब्रजमें रचना की और उसे काव्यके अनुरूप परिष्कृत किया। अन्तमें ये संस्कृत प्रधान भाषाकी ओर मुड़े। यही मोड़ ये सँभाल न सके।

केशवकी रचनामें इनके तीन रूप दिखाई देते हैं—आचार्यका, महाकविका और इतिहासकारका। ये परमार्थतः हिन्दीके प्रथम आचार्य हैं। आचार्यका आसन ग्रहण करने पर इन्हे संस्कृतकी शास्त्रीय पद्धतिको हिन्दीमें प्रचलित करनेकी चिन्ता हुई जो जीवनके अन्त तक बनी रही। इन्होंने ही हिन्दीमें संस्कृतकी परम्पराकी व्यवस्थापूर्वक स्थापना की थी। आधुनिक युगके पूर्व तक उसका अनुगमन होता आया है। इनके पहले भी रीतिग्रन्थ लिखे गये, पर व्यवस्थित और सर्वांगपूर्ण ग्रन्थ सबसे पहले इन्होने ही प्रस्तुत किये। यद्यपि कविशिक्षाकी पुस्तकें बादमें भी लिखी गयीं, तथापि उनका साहित्यमें पठन-पाठन उतना नही हुआ। हिन्दीकी सारी परम्पराको इन्होंने प्रभावित कर रखा है, 'कविप्रिया'के माध्यम से। इनकी सबसे अद्भुत कल्पना अलंकार सम्बन्धी है। श्लेषके और श्लेषानुप्राणित अलंकारोंके ये विशेष प्रेमी थे। इनके श्लेष संस्कृत-पदावलीके है। हिन्दीमें श्लेषके दूसरे पण्डित सेनापतिके श्लेष हिन्दी पदावलीके हैं। दोनोंकी श्लेष योजनामें यही भेद है। इनका कविरूप, इनकी प्रबन्ध एव मुक्तक दोनों प्रकारकी रचनाओंमें स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। हिन्दीके परवर्ती प्रायः सभी शृगारी कवि इनकी उक्तियों एवं भावव्यंजकतासे प्रभावित हैं। बिहारीने इनसे भाव, रूपक आदि ग्रहण किये तथा देवने उपमा और उक्ति तक लेनेमें संकोच नहीं किया। इनमे एक विशिष्ट गुण है सम्वादोंके उपयुक्त विधानका। मानव मनोभावोंकी इन्होने सुन्दर व्यंजना की है। सवादोंमें इनकी उक्तियाँ विशेष मार्मिक हैं, पर प्रबन्धके बीच अनावश्यक उपदेशात्मक प्रसंगोंका नियोजन उसके वैशिष्ट्यमें व्यवधान उपस्थित करता है। इनके प्रशस्ति-काव्योंमें इतिहासकी प्रचुर सामग्री भरी है। ओड़छा राज्यका विस्तृत इतिहास प्रस्तुत करनेमें वे बडे सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

प्राचीन काव्य जगत्में केशवका जो माहात्म्य था, उसकी कल्पना आज नहीं की जा सकती। मध्यकालमे इनका काव्य-प्रवाहमे जैसा मान था, वैसा अन्यका नही। प्राचीन युगमें सुरति मिश्र ऐसे पडित और सरदार कवि ऐसे कविसरदारने इनकी कृतियोंकी टीकाएँ लिखीं। यह इस बातका प्रमाण है कि इनके काव्यका मनन करनेवाले जिज्ञासुओंकी संख्या पर्याप्त थी। नैषधका हिन्दीमें उल्था करनेवाले गुमानने इनकी 'रामचन्द्रिका'के जोडतोडमें 'कृष्णचन्द्रिका' लिखी। इनका लोहा सभी मानते थे और इनकी रचनाका अध्ययन निरन्तर होता रहा। इनकी कुत्सा काव्य-पाण्डित्यके स्खलनके कारण नहीं थी। मध्यकालमें तो किसीके पाण्डित्य या विदग्धताकी जाँचकी कसौटी थी, इनकी कविता। 'कविको दीन न चहै बिदाई, पूछे केसवकी कविताई' यह उक्ति इसका प्रमाण है। इनकी रचनाओंके अर्थकी कठिनाईका अर्थ लगाया गया कि इनकी कवितामे 'रस' नहीं, 'सहृदयता' नहीं। इनके हृदयमे प्रकृतिके प्रति उतना राग नहीं था जितना कविके लिये अपेक्षित है पर

ये ही नहीं, हिन्दीका सारा मध्यकाल प्रकृतिके प्रति उदासीन है।

'केसव अर्थ गम्भीरकों' की चर्चा अब कोई नहीं करता। यदि केशव 'रसिकप्रिया' की-सी भाषा लिखते रहते तो इनका इतना विरोध न होता। प्रसंग-कल्पनाशक्ति-सम्पन्न तथा काव्य-भाषा-प्रवीण होनेपर भी केशव पाण्डित्य प्रदर्शनका लोभ संवरण नहीं कर सके, अन्यथा ये 'कठिन काव्यके प्रेत' होनेसे बच जाते।

[सहायक ग्रन्थ–(१) केशवकी काव्यकला : कृष्णशंकर शुक्ल, (२) आचार्य केशवदास : हीरालाल दीक्षित, (३) केशवदास : चन्द्रबली पाण्डेय, (४) केशवदास : रामरतन भटनागर, (५) आचार्य कवि केशव : कृष्णचन्द्र वर्मा, (६) बुन्देल-वैभव (भा० १) : गौरीशंकर द्विवेदी, (७) सुकवि-सरोज प्रथम भाग : गौरीशंकर द्विवेदी, (८) हि० सा० इ० : रा० च० शुक्ल, (९) हि० सा० बृ० इ० (भा० ६) : नं० नगेन्द्र, (१०) हि० का० शा० इ० : भगीरथ मिश्र।] —वि० प्र० मि०

केशवप्रसाद पाठक–जन्म १९०६ ई० में जबलपुरमें हुआ। एम० ए० (हिन्दी) तककी शिक्षा प्राप्त की। इनके द्वारा प्रस्तुत उमरखैयामकी रुबाइयातका अनुवाद अत्यन्त सफल माना जाता है। 'त्रिधारा' इनकी दूसरी रचना है। इनकी मृत्यु १९५७ ई० में हुई। —स०

केशवप्रसाद मिश्र–जन्म काशीमें १८८५ ई० (१९४२ वि०) में हुआ; मृत्यु १९५१ ई० मे हुई। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदीकी प्रेरणासे हिन्दी-भाषा तथा साहित्यकी सेवाका व्रत ग्रहण करनेवाले लोगोंमे काशीके पण्डित केशवप्रसाद मिश्रका नाम उल्लेखनीय है। आप भाषा, व्याकरण तथा साहित्यशास्त्रके अच्छे पण्डित माने जाते थे। काशीकी नागरी प्रचारिणी पत्रिकाके सम्पादक तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके हिन्दी विभागके अध्यक्षकी हैसियतसे आपने हिन्दीकी जो सेवाएं कीं, वे बहुत मूल्यवान् सिद्ध हुईं। आपके प्रकाशित कार्योंमें 'मेघदूत' का पद्यात्मक अनुवाद प्रसिद्ध है। इसी ग्रन्थकी आलोचनात्मक भूमिकामे आपने रसानुभूतिकी प्रक्रियाका शास्त्रीय विवेचन किया है तथा 'मधुमती भूमिका' के सिद्धान्तका प्रतिपादन भी। केशवप्रसाद मिश्रके फुटकर लेख पत्र-पत्रिकाओंमे बिखरे पड़े है। उदाहरणार्थ नागरी प्रचारिणी पत्रिकाकी दसवीं जिल्दमें इनके 'उच्चारण' शीर्षक लेखको लिया जा सकता है। इस प्रकारके लेखोंसे इनके गम्भीर पाण्डित्यका पता चलता है और इनकी भाषा-शैलीके सम्बन्धमे यह धारणा बनती है कि ये अत्यन्त परिमार्जित तथा अर्थपूर्ण लेखनमे सिद्धहस्त थे। —र० भ०

केशवप्रसाद सिंह–इनका रचनाकाल १९०५ ई० है। द्विवेदी युगमें आकर हिन्दी-गद्यमे विविधता और शैलीमे अपेक्षाकृत प्रौढता आती है। श्रीकृष्ण लालके अनुसार "विकासका प्रथम चिह्न केशव प्रसाद सिंहके 'आपत्तियोंका पहाड़' नामक निबन्धमें पाया जाता है, जो अंगरेजीके एक निबन्धके आधारपर लिखा गया था" (आधुनिक हिन्दी साहित्यका विकास, पृ० ३४९)। स्वप्नोंके रूपमें कथात्मक निबन्ध 'भारतेन्दु-युग'में भी लिखे गये थे, पर भाषाकी जो व्यंजनाशक्ति एवं कलाका जितना अभिराम रूप इस निबन्धमें प्राप्त होता है, उतना पहलेके निबन्धोंमें नहीं। लेखक सुकरातकी एक उक्तिपर विचार करते हुए सो जाता है और उसे एक बहुत ही रोचक स्वप्न दिखायी देता है। एक स्थानपर लोगों द्वारा फेंकी गयी आपत्तियोंके बण्डलोंसे पहाड़ बन जाता है, फिर सभी लोग अपने-अपने मनकी एक आपत्ति चुनना चाहते हैं। इन नयी आपत्तियोंके अनुभवका वर्णन करते-करते लेखक जाग पड़ता है। स्पष्ट है कि इस प्रकारकी रचनामें लेखककी कल्पनाको खुलकर खेलने एवं व्यक्तित्वकी अभिव्यंजनाका अपूर्व अवसर मिलता है। इसी कारण कलारूपकी दृष्टिसे यह निबन्ध बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण बन पड़ा है। इसके अनुकरणपर अन्य कथात्मक निबन्ध भी लिखे गये हैं। —दे० शं० अ०

केशवराम भट्ट–इनका नाम उन्नीसवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धके बिहारके हिन्दीसेवियोंमें लिया जाता है। इनका जन्म सन् १८५४ ई०में एक मध्यमवर्गीय ब्राह्मण परिवार मे हुआ था। इन्होंने हिन्दीके साथ-साथ उर्दूकी भी शिक्षा प्राप्त की थी। ये बँगला साहित्यके भी सम्पर्कमे आये थे। ये सरकारी शिक्षा विभागसे सम्बद्ध थे और उस हैसियतसे इन्होंने स्कूली पाठ्यक्रमविषयक कई पुस्तकें लिखी थीं।

भारतेन्दुकालीन हिन्दी भाषा और साहित्यके नूतन विकासमे केशवराम भट्टका योगदान अत्यल्प है किन्तु वह अनुल्लेखनीय नहीं है। भारतेन्दु युग हिन्दीके व्यापक आन्दोलनका युग था। उसे सक्रिय बनाये रखनेके लिए उस युगमे अनेक पत्र-पत्रिकाएँ निकाली गयी थीं। उनमे एक पत्र 'बिहार-बन्धु' केशवराम भट्टके सम्पादनमे निकलता था। इसका सम्पादन-प्रकाशन इन्होंने १८७२ ई० में ही आरम्भ किया था। इस समयतक हिन्दीके नामपर दो-एक पत्र ही निकल पाये थे। भारतेन्दुकालीन अन्य पत्र-पत्रिकाओंकी बाढ तो बादमे आयी। अपने पत्रको और अधिक स्थायित्व प्रदान करनेके लिए केशवराम भट्टने १८७४ ई० मे 'बिहारबन्धु प्रेस' की भी स्थापना की थी।

केशवराम भट्टके साहित्यिक कृतित्वके रूपमे उनकी दो पुस्तके उल्लेखनीय है—'सज्जाद सुम्बुल' और 'शमशाद सौसन'। इनकी रचना क्रमशः बँगलाकी 'शरत् और सरोजिनी' एवं 'सुरेश मोहिनी' नामक कृतियोंके आधारपर हुई है। इनकी चर्चा भारतेन्दुयुगीन यथार्थवादी नाटकोंके अन्तर्गत की जानी चाहिये। इनमें विभिन्न सम्प्रदाय और विभिन्न वर्गोंके पात्रोंके चरित्रांकन द्वारा समसामयिक जीवनकी विद्रूपताएँ चित्रित की गयी हैं। इन दो नाट्य-कृतियोंके अतिरिक्त इन्होने सामयिक विषयोपर कुछ टिप्पणियाँ (सम्पादकीय) और साधारण ढंगके लेख भी लिखे है। 'बिहारबन्धु'के कुछ अंकोंमें इन्हे देखा जा सकता है।

इनकी भाषा उर्दूप्रधान थी। इनकी कृतियोंमें उर्दू-फारसी के शब्दों तथा मुहावरोंकी भरमार है। इनकी मृत्यु लगभग पचास वर्षकी आयुमें सन् १९०५ ई०में हुई थी। —र० भ०

केशी–केशीका उल्लेख दो रूपोंमें प्राप्त होता है—

१. बृहदाकारका अश्वरूपधारी एक राक्षस जो कंस द्वारा कृष्ण-वधके लिए भेजा गया था। वह ब्रजकी गायोंको मारकर खा जाता था, जिसके भयमे गोपोंने गायें चराना

बन्द कर दिया, अन्तमें कृष्णने उसका वध करके ब्रज-वासियोंको आतंकमुक्त कर दिया। कृष्ण-भक्त कवियोंने भागवतमें वर्णित केशीकी कथामें भक्ति-भावनाका रंग घोलते हुए कृष्णकी असुरसंहारक लीलाओंका क्रम वर्णन किया है (दि० सू० सा०, पृ० २३८)।

२. नाभादासके अनुसार केशी मध्ययुगकी एक हरिभक्त परायणा नारी थी।

किन्तु अधिकतर 'असुर केशी' से ही हिन्दीके पाठक परिचित हैं। —रा० कु०

केहरी–ये आचार्य केशवके समकालीन और ओरछानरेशके ही आश्रित कवि थे। 'दिग्विजयभूषण'में दिये हुए छन्दसे ये मधुकरशाहके पुत्र रतनसिंहके दरबारके कवि ठहरते है। 'शिवसिंह सरोज' और 'दिग्विजयभूषण'मे इनका एक ही छन्द दिया गया है, पर इससे उनके वीरतापरक काव्यका संकेत मिलता है। इनकी रचनाएं प्राचीन सग्रहों-में प्राप्त होती हैं। —सं०

कैकेयी १–अयोध्याके महाराज दशरथकी पत्नी कैकेयीके चरित्रकी कल्पना आदिकवि वाल्मीकिकी कथागत शिल्प-योजनाकी कुशलताका प्रमाण है। यद्यपि पौराणिक एवं अन्य रामायणोंके ऐतिहासिक साक्ष्योसे कैकेयी कैकयनरेश-की पुत्री ठहरती हैं, किन्तु इसके लिए प्रमाणोंका सर्वथा अभाव है। सम्पूर्ण रामकथामे कैकेयीकी महत्ताका कारण उनकी वस्तुनिष्ठा है, आदर्शवादिता नही। उनका महत्त्व इस दृष्टिसे नहीं है कि वे भरत सदृश आदर्शनिष्ठ पुत्रकी माता है, अपितु इसलिए कि वे मुख्य कथाको अपने उद्देश्य तक पहुँचनेके लिए एक अप्रत्याशित मोड देती है।

वाल्मीकि रामायणमें कैकेयी स्वाभिमानिनी, सौंदर्यवती एवं सासारिक लिप्साके प्रति आकर्षित रमणीके रूपमे आती है। वाल्मीकि उन्हे प्रारम्भसे ही इस रूपमें चित्रित करते है कि अपने स्वार्थपूर्ण अधिकारकी प्राप्तिके लिए वे स्वभावतः रामको वन भेजने जैसा क्रूर कर्म करनेमें भी संकोच नहीं करती। मन्थरा द्वारा प्रेरणा तथा उत्तेजना पाना वस्तुतः प्रासंगिक मात्र है। वस्तुस्थितिको समझकर वे सौभाग्यमदमे गर्वित, क्रोधाग्निसे तिलमिलाती हुई कोप-भवनमें प्रविष्ट हो जाती हैं। सम्पूर्ण अयोध्याको शोक-संतप्त करनेका कारण बनकर भी उन्हे पश्चात्ताप नहीं होता और वे अन्ततक वस्तुनिष्ठ ही बनी रहती हैं। उनके चरित्रको वाल्मीकिने नायक-विरोधी कथागत तत्त्वोंसे निर्मित किया है।

कैकेयीके विवाह आदिके सम्बन्धमे वाल्मीकि रामायणके अनन्तर राम-कथाकाव्योमे कही-कहीं किंचित् भिन्नता मिलती है। 'पउम चरिउ' (पुष्पदन्त)मे कैकेयीको ही 'अग्रमहिषी' कहा गया है। दशरथकी प्रथम विवाहित रानी वे ही थी। 'दशरथ जातक'में कहा गया है कि दशरथ अपनी राजमहिषीकी मृत्युके अनन्तर दूसरी रानीसे विवाह करते हैं, जिससे भरतका जन्म होता है। 'पद्म-पुराण'में भरतकी माताका नाम 'सुरुपा' मिलता है।

वाल्मीकि रामायणकी परम्परामें लिखे गये काव्यों और नाटकोंमें कैकेयीको राम-वनवासके लिए दोषी ठहराया गया है। उनके लिए असहिष्णु, कलंकिनी आदि न जाने कितने सम्बोधनोंका प्रयोग करके उनकी निन्दा की गयी है। इसी दिशामें उनके कलंकको दूर करनेके लिए 'अध्यात्म रामायण'में सम्भवतः सर्वप्रथम सरस्वतीके प्रेरणाकी कल्पना की गयी है। तुलसीदास उसी आदर्शको लेकर सम्पूर्ण रामायणमें उनके चरित्रको कलुषित होनेसे बचानेका प्रयत्न करते हैं किन्तु फिर भी तुलसीकी दृष्टिमें उनका चरित्र सम्पूर्णतः धुल नहीं पाता। उनके साथ कविकी सहानुभूति कभी नही जुड़ पाती। अतः अयोध्यावासियोंके मुँहसे उनके लिए 'पापिन' 'कलंकिनि' आदि अनेक सम्बोधनोंका प्रयोग तो वे करवाते ही है, साथ ही स्वयं भी अवसर पाकर 'कुटिल', 'नीच' कहनेमें संकोच नहीं करते। तुलसीकी कैकेयी अन्ततक एकान्त-नीरव, भयावह एवं ग्लानियुक्त ही बनी रहती हैं। कवि उन्हे पश्चात्ताप करनेका अवसर भी नहीं देता।

तुलसीदासके अनन्तर लिखे गये राम-साहित्यमें कैकेयीके चरित्र-निर्माणकी ओर कोई कवि सजग नहीं हो सका। आधुनिक युगमें मैथिलीशरण गुप्तने अपने 'साकेत'में जन-जीवनके जागरण तथा युग-युगसे पीड़ित भारतीय नारीके उत्थानकी भावनासे प्रेरित होकर कैकेयीके चिर-लांछित, निन्दित और दुःखपर्यवसायी चरित्रको उज्ज्वल करनेका प्रयत्न किया है। मैथिलीशरण गुप्तने उनके निन्दित कार्यका कारण न तो दैवी प्रभाव बताया है और न मन्थरा अथवा स्वय उसके प्रभावकी कुटिलता; वरन् उन्होने कैकेयीको सरलस्वभाव, सहज वात्सल्यमयी, वात्सल्यकी साक्षात् प्रतिमा माताके रूपमें चित्रित करते हुए दिखाया है कि जब उनके मनमे यह सन्देह पैदा हो जाता है कि राज्या-भिषेकके अवसरपर भरतको न बुलानेका कारण उनके चरित्रपर सन्देह करना है, तभी उनका आत्माभिमान जाग उठता है और वह आवेशयुक्त होकर सारा विवेक खो बैठती है। इस प्रकार मैथिलीशरण गुप्तकी कैकेयी वाल्मीकिकी कैकेयीकी भाँति यथार्थवादी, वस्तुनिष्ठ स्वभावकी नारी नहीं है, वरन् अत्यन्त भावनाशील, संवेदनशील और भावप्रवण नारी है, जिसका वात्सल्य उसे अन्धा और विवेकहीन बना देता है। चित्रकूटकी सभामे उनके व्यक्तित्वकी सराहनीय विशेषताओंका उद्घाटन होता है और उन्हे अपने कृत्यपर पश्चात्ताप होता है और वे 'रघुकुलकी अभागिन रानी'के रूपमें अपना दोष भी स्वीकार करती है। वे क्षमा-याचनाके ही सबल तर्कोंका प्रयोग नहीं करती, अपितु रामके पुनः प्रत्यागमनके लिए अपने अधिकार एवं विनयके प्रयोगसे भी पीछे नही हटती। इस दृष्टिसे कैकेयीके चरित्रका स्वाभाविक विकास 'साकेत'में उपलब्ध होता है। राम-काव्यके अन्य कवियोंने कैकेयीके चरित्र-चित्रणमें किसी उल्लेखनीय विशेषताका संकेत नहीं किया है।

[सहायक ग्रन्थ—रामकथा : डा० कामिल बुल्के, हिन्दी परिषद्, विश्वविद्यालय, इलाहाबाद; तुलसीदास : डा० माताप्रसाद गुप्त, हिन्दी परिषद्, विश्वविद्यालय, इलाहा-बाद।] —यो० प्र० सिंह

कैकेयी २–केदारनाथ मिश्र 'प्रभात'का १३ सर्गोंका विविध मात्रिक छन्दोंमें रचित प्रबन्धकाव्य है। प्रथम संस्करण

आवरण पत्रपर शिवपूजन सहाय द्वारा अभिनन्दित १९५० में पटनासे प्रकाशित हुआ है। प्रथम सर्गमें आर्य धर्मके गौरवभाव, वरेण्यताका वर्णन है। द्वितीय सर्गमें कैकेयी अनार्य अभियानका भयकारी स्वप्न देखती है। तृतीय सर्ग संघर्षशील यौवन, कर्ममय पौरुष, वास्तविक शान्तिकी महिमा, क्रान्ति और कैकेयीके संकल्पके उदयका वर्णन है। चतुर्थ सर्ग कैकेयीके मातृत्व, वात्सल्य, क्रान्तिके मंगल सौन्दर्य-दर्शन, कर्तव्यके द्वन्द्व एवं रामके राज्योत्तर व्यक्तित्वके मानसिक प्रतिघातोंका पुंज है। षष्ठ सर्ग भी रक्षात्मिका प्रतिहिंसाकी वांछनीयता एवं मातृत्व, सिंदूर तथा कर्तव्यके बीच अन्तर्द्वन्द्वके पश्चात् कर्तव्य-संकल्पके विजयका सर्ग है। सप्तम सर्ग युग-धर्म एवं विध्वंसके मूल्योंसे सम्बद्ध है। अष्टम सर्गका विषय दशरथ-कैकेयी-संवाद, दशरथ-व्यामोहका नाश एवं युग-सन्देश-वाहिनी कैकेयीके संकल्पकी विजय है। नवम सर्ग राम द्वारा लोकानुभूति एवं ज्ञान, कर्तव्य और सेवा-माहात्म्यका चित्रण है। दशम सर्ग कैकेयीके ममताके समक्ष मनः प्रबोध, एकादश सर्ग कैकेयीके वैधव्य-संकेतमें भी अटलता, द्वादश सर्ग भरत-भर्त्सना एवं विबोधन और अन्तिम त्रयोदश सर्ग पंचवटी-वर्णन, कर्तव्यके स्वरूप-चित्रण एवं राम, लक्ष्मण तथा सीताके क्रमशः कर्तव्य, शौर्य और शक्ति रूपमें उपस्थापनसे सम्बद्ध है।

सम्पूर्ण प्रबन्ध कैकेयीकी अभिनव चरित्र-कल्पनापर आधृत है। कैकेयीका नव-निर्मित एवं सुष्ठु-विकसित व्यक्तित्व ही सारे काव्यका प्राण तत्त्व और मौलिक उपादान है। शेष दशरथ और भरत-रामादि चरित्र उसके पोषणार्थ आये हैं। रचनाकी मूल प्रेरणा भारतीय वाङ्मयकी उपेक्षिताओंसे सम्बद्ध रवीन्द्रका वह प्रसिद्ध लेख है, जिसे महावीरप्रसाद द्विवेदीने 'सरस्वती' में दुहराया था और जिसे मैथिलीशरण गुप्तने अपने 'साकेत', 'यशोधरा', 'पंचवटी' आदिमें प्रेरणाधार बनाया है। लक्ष्मण, उर्मिला, भरत आदि सभी पात्रोंपर आधुनिकयुगीन मनोविज्ञान एवं समाजशास्त्र-परक अध्ययनोंकी नवीन रश्मियाँ पड़ी हैं। 'प्रभात' जीने कैकेयीको अपनी महानुभूति, मानवीयता, बौद्धिकता एवं आधुनिकताका पात्र बनाया है। वाल्मीकिकी कैकेयीमें मानवीयता है और तुलसीने भी 'मानस' की कैकेयीके अपराधको देव-मायाकी छायासे कुछ न्यूनतर किया है, पर फिर भी वह जग-कुत्साकी पात्र एक कलंकिनीके रूपमें ही उपस्थित हुई है। मैथिलीशरण गुप्तने 'साकेत' में मातृत्व एवं पुत्र-स्नेहके मनोविज्ञानकी सहानुभूति देकर कैकेयीके चरित्रको मनःशास्त्रीय स्तरपर उठानेका प्रयास किया है। 'प्रभात' जीने कैकेयीको एक सर्वथा नवीन दृष्टिसे देखा है। राष्ट्र-प्रेम, सभ्यता-संस्कृतिके अभिरक्षण, धर्म-प्रतिष्ठा, युग-धर्मकी पुकार, लोक-सेवाके आदर्श, राष्ट्रके लिए वात्सल्यके संवरण एवं युग-कल्याणके लिए सर्वोत्सर्गकी उत्कट चेतनाका परिप्रेक्ष्य देकर कविने कैकेयीके व्यक्तित्वको एक क्रान्तिकारिणी युग-दर्शिकाका स्वरूप प्रदान किया है। —शी० सिं० क्षे०

कौटिल्य–दे० 'चाणक्य'।

कौरव–कुरुके वंशजोंको 'कौरव' कहा जाता है परन्तु धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंके लिए 'कौरव' शब्द रूढ़ हो गया है। धृतराष्ट्र और पाण्डु क्रमशः अम्बिका और अम्बालिकाके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। ये दोनों विचित्रवीर्यकी पत्नियाँ थीं। इन दोनोंको सत्यवतीपुत्र व्यासका औरस पुत्र माना जाता है। धृतराष्ट्रके दुर्योधन आदि सौ पुत्र हुए, जो कौरव कहे जाते हैं और पाण्डुके युधिष्ठिर आदि पाँच पुत्र हुए, जो पाण्डव कहलाते हैं। कौरव और पाण्डवोंके ही बीच 'महाभारत' युद्ध हुआ। भक्ति-काव्यमें कौरवोंका वर्णन मिलता है किन्तु कौरवोंके प्रति परम्परासे भारतीय जन-मानसमें सहानुभूतिकी भावना नहीं मिलती। महाभारतसम्बन्धी ऐतिहासिक एवं पौराणिक काव्योंमें ('जयद्रथ वध' आदि) 'कौरवों'का उल्लेख प्राप्त होता है। —रा० कु०

कौशलेन्द्र राठौर–जन्म डालूपुर (एटा)में १८९६ ई०में हुआ। ये खड़ी-बोलीके परिष्कारकालके अत्यन्त प्रतिभावान् कवि हैं। इन्होंने अधिकतर कवित्त छन्दका प्रयोग किया है। ब्रजभाषाके इस काव्य-रूपको खड़ी-बोलीमें कविने कुछ अधिक चमत्कृत रूपमें ही प्रस्तुत किया है। इनका एक संकलन 'काकली' १९२९ ई०में प्रकाशित हुआ। इसकी सभी प्रतियाँ स्वयं कविके साथ घरमें आग लग जानेके कारण जल कर भस्म हो गयीं। द्वितीय संस्करण, जिसका सम्पादन हरिशंकर शर्माने किया, १९३३ ई०में छपा। स्फुट रूपमें कविकी रचनाएँ 'सुधा' और 'माधुरी'में बराबर छपती रहीं।

कौशलेन्द्रके समस्त काव्यमें भाषाके निखरे स्वरूपके अतिरिक्त एक ऐसी मर्मस्पर्शिता मिलती है, जो अपनी प्रकृतिमें अत्यन्त करुण है। इस करुणामय संवेदनामें कविकी दुःखद और असामयिक मृत्युका जैसे कुछ आभास मिलता है। २८ अप्रैल १९३० को घरमें भीषण आग लग जानेसे परिवारके कई अन्य व्यक्तियोंके साथ कौशलेन्द्रकी मृत्यु हुई। कविका एक छन्द उदाहरणार्थ प्रस्तुत है—"काँपता पवन अविराम पन्थ चलनेसे, धरा हुई धूल भार जगका उठानेसे। जलती अनल अपने हीमें निरन्तर है, नीला पड़ा अम्बर है आहें टकरानेसे। 'कौशलेन्द्र' जल भी बना कवल प्यासका है, बच सका कौन जगतीमें दुःख पानेसे। टाल दिया मुझको कहाँ है भगवान्! हाय, दुखिया हुआ मैं इन दुखियोंमें आनेसे।" —सं०

कौशल्या–कथावस्तुकी दृष्टिसे रामकाव्यमें कौशल्याका अन्य प्रमुख पात्रोंकी तुलनामें अधिक महत्त्व नहीं है। वे दशरथकी अग्रमहिषी एवं राम जैसे आदर्श पुत्रकी माता हैं। उनका सर्वप्रथम उल्लेख वाल्मीकि रामायणमें पुत्र-प्रेमकी आकांक्षिणीके रूपमें मिलता है। वाल्मीकिकी परम्परामें रचित काव्यों और नाटकोंमें कौशल्या सर्वत्र अग्रमहिषीके रूप ही चित्रित हैं, केवल आनन्द-रामायणमें दशरथ एवं कौशल्याके विवाहका वर्णन विस्तारसे हुआ है। गुणभद्रकृत 'उत्तर-पुराण'में कौशल्याकी माताका नाम सुबाला तथा पुष्पदन्तके 'पउम-चरिउ'में कौशल्याका दूसरा नाम अपराजिता दिया गया है। रामकथामें अवतारके प्रभावके फलस्वरूप पुराणोंमें कश्यप और अदितिके दशरथ और कौशल्याके रूपमें अवतार लेनेका वर्णन हुआ है।

परिस्थितिवश कौशल्या जीवनभर दुःखी रहती हैं। अपने वास्तविक अधिकारसे वंचित होकर उनका जीवन करुण और दयनीय हो जाता है। अतः उन्हें क्षीणकाया, खिन्न-मना, उपवासपरायणा, क्षमाशीला, त्यागशीला, सौम्य, विनीत, गंभीर प्रशांत, विशालहृदया तथा पति-सेवा-परायणा आदर्श महिलाके रूपमें चित्रित किया गया है। अपने निरपराध पुत्रके वनवास पर वे अपने इन गुणोंका और भी अधिक विकास करती हुई देखी जाती हैं। इस अवसरपर अनेक कवियोंने उनके मातृ-हृदयकी भूरि-भूरि सराहना की है। इस अन्यायका समाचार सुनकर वाल्मीकिकी कौशल्या का संयम और धैर्य टूट जाता है और साकेतिक शब्दावली-का प्रयोग करके वे रामको पितासे विद्रोह करनेके लिए प्रेरित करना चाहती है। अध्यात्म-रामायणमे उन्हे अपने अधिकारोंके प्रति सचेष्ट तथा रामको वन जानेसे रोकते हुए चित्रित करके उनके मनकी द्विविधाका वर्णन किया गया है तथा उनके हृदयमे प्रेम-भावना और बुद्धिका परस्पर सघर्ष दिखाया गया है परन्तु तुलसीदासने इस प्रसंगके वर्णनमें कौशल्याके चरित्रको बहुत ऊँचा उठा दिया है। उन्होंने बड़ी कुशलतासे कौशल्याका अन्तर्द्वन्द्व चित्रित करते हुए कर्तव्य-कर्म और विवेक-बुद्धिकी विजयका जो चित्रण किया है, वह अकेला ही तुलसीदासकी महत्ताको प्रमाणित करनेमे सक्षम है। इस प्रसंगके अतिरिक्त अन्यत्र भी तुलसी ने कौशल्याके चरित्रकी महनीयता चित्रित की है। भरतको राजमुकुट धारण करनेका उपदेश तथा वनयात्रामे भरत-शत्रुघ्नसे रथपर चढनेका तर्कपूर्ण अनुरोध उनके हृदयकी विशालता, बिना किसी भेदभावके चारो पुत्रोंके प्रति उनके मातृ-हृदयका सहज वात्सल्य तथा सभी अयोध्यावासियोंके प्रति हार्दिक ममत्वका प्रमाण देता है। मानसमे कौशल्याके चरित्रमे उच्च बुद्धिमत्ताका भी चित्रण हुआ है। जब वे चित्रकूटमे सीताकी माताको विषम परिस्थितिमे धैर्य धारण करनेको कहती है, उनके कथनमे एक दार्शनिक दृष्टिके साथ-साथ गहरी आत्मानुभूतिके दर्शन होते है परन्तु मानससे भिन्न 'गीतावली'मे तुलसीदास कृष्ण-काव्यकी यशोदाकी भाँति कौशल्याको एक स्नेहमयी माताके वात्सल्य-वियोगकी करुणामूर्तिके रूपमे चित्रित करते है। मानसमे कौशल्याका चरित्र जितना गम्भीर और धैर्यनिष्ठ है, गीतावलीमे उतना ही संवेद्य और तरल बन जाता है। जब राम और लक्ष्मण विश्वामित्रके साथ चले जाते है, कौशल्या उनके लिए अत्यंत चिन्ताकुल होती हैं। उनकी व्यथा क्रमशः राम-वन-गमन, चित्रकूटसे लौटने तथा वनवासकी अवधि समाप्तिके पूर्वके अवसरोंपर करुणसे करुण-तर चित्रित की गयी है।

आधुनिक युगमे कौशल्याके चरित्रका मातृ-पक्ष मानससे कहीं अधिक विस्तारपूर्वक बलदेवप्रसाद मिश्रने 'कोशल-किशोर'में उभारा है, किन्तु वह रामकी युवा अवस्थातक की घटनाओंतक ही सीमित रह गया है। मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत'में भी कौशल्याका पुत्र-प्रेम स्वाभाविक रूपमें चित्रित किया गया है, किन्तु चरित्र-चित्रणकी सम्पूर्णता तथा प्रभाव-समष्टि उसमें नहीं मिलती। उनकी तुलनामें साकेतकारने कैकेयीपर अधिक ध्यान दिया है परन्तु कौशल्याके चरित्रमें आदिकविसे प्रारम्भ होकर तुलसीदास के द्वारा जिस आदर्शकी परिणति हुई है, वही वस्तुतः लोकमतमें प्रतिष्ठित होकर रह गया है।

[सहायक ग्रन्थ—रामकथा : डा० कामिल बुल्के तथा तुलसीदास : डा० माताप्रसादगुप्त, हिन्दी परिषद, विश्व-विद्यालय, इलाहाबाद।] —यो० प्र० सिं०

कौशिक–दे० 'विश्वामित्र' (मानस १,२४७,३)।

'कौशिक' विश्वंभरनाथ शर्मा–पण्डित हरिश्चन्द्र कौशिकके पुत्र तथा अपने चाचा पण्डित इन्द्रसेनके दत्तक पुत्र पण्डित विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक'का जन्म १८९१ ई० (सं० १९४८वि०)मे अम्बालामे हुआ था। उनके पूर्वज मूलतः जिला सहारनपुरके गंगोह नामक कस्बेके निवासी थे। पण्डित इन्द्रसेनके कारण वे अम्बालासे कानपुर चले आये और हिन्दी, संस्कृत, उर्दू और फारसीकी शिक्षा प्राप्त करते हुए उन्होंने मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण की। प्रारम्भमें उनकी रुचि उर्दूकी ओर थी। १९०९ ई० से उन्होंने हिन्दी-क्षेत्रमें पदार्पण किया और १९११ ई० से नियमित रूपसे हिन्दीमे लिखने लगे। कानपुरके साप्ताहिक पत्र 'जीवन' में उनकी प्रारम्भिक रचनाएँ प्रकाशित हुई। ये रचनाएँ कहानियाँ थीं। पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदीके प्रोत्साहनके फलस्वरूप उन्होंने कुछ बँगला कहानियोंका हिन्दीमें अनुवाद किया और साथ ही हिन्दीमें भी मौलिक कहानियाँ लिखीं। उस समय उन्होंने 'षोडशी' नामक बँगला कहानी-संग्रहमें से 'निशीथे' नामक कहानीका अनुवाद किया और 'रक्षाबन्धन' (१९१३ ई०) नामक मौलिक कहानी 'सरस्वती'में प्रकाशित करायी। १९१२ ई० से उनकी कहानियोंका प्रकाशन-काल प्रारम्भ होता है। उनकी रुचि विशेषतः कहानियों और उपन्यासोंकी रचनाकी ओर ही रही। उत्कृष्ट कथा-साहित्य के निर्माणकी दृष्टिसे 'कौशिक' का हिन्दी साहित्यमें ऊँचा स्थान है। उनकी अपनी बहुत-सी ऐसी विशेषताएँ हैं जो उन्हे प्रेमचन्दसे पृथक् करती है और उनके व्यक्तित्व पर प्रकाश डालती है। १९४५ ई० मे उनका देहान्त हो गया।

'कौशिक'की प्रारम्भिक प्रकाशित पुस्तकोंमें 'भीष्म' (कानपुर, १९१८ ई०) और 'गल्प-मन्दिर' (कानपुर, १९१९ ई०) का उल्लेख किया जा सकता है। उनके मौलिक कहानी-संग्रहोंमे 'चित्रशाला' (लखनऊ, १९२४ ई०, २ भाग), 'मणिमाला' (लखनऊ, १९१९ ई०) और 'कल्लोल' (मीरजापुर, १९३३ ई०) प्रसिद्ध हैं। उपन्यासोंमे 'माँ' (लखनऊ, १९२९ ई०) और 'भिखारिणी' (लखनऊ, १९२९ ई०) उनके उच्चकोटिके उपन्यास हैं। 'रूसका राहु' (रासपुटीनकी जीवनी, कानपुर, १९१९ ई०), 'संसार-की असभ्य जातियोंकी स्त्रियाँ' (कानपुर, १९२४ ई०), 'जारीना' (रूसकी महारानी जारीनाका जीवन-चरित्र) उनकी अन्य मौलिक एवं संकलित रचनाएँ है। 'दुबेजीकी चिट्ठियाँ' शीर्षक चिट्ठियोंका एक संग्रह भी 'कौशिक' जीने प्रकाशित किया था। उनकी अन्तिम रचना 'पेरिसकी नर्तकी' (इलाहाबाद) १९४२ ई० में प्रकाशित हुई।

'कौशिक'जीकी कहानियोंमें मानव-हृदयकी कोमल वृत्तियोंका प्रस्फुटन अत्यन्त सुन्दर रूपमें हुआ है। वे पारिवारिक एवं व्यक्तिगत चित्रण करनेमें प्रवीण हैं। 'माँ'

उपन्यासमें यदि माताके वात्सल्य और उदात्त स्नेहमय रूपका यथार्थवादी-आदर्शवादी भूमिपर चित्रण हुआ है, तो 'भिखारिणी'में एक भिखारिनीके अनुराग और अनुपम त्यागकी कहानी है। 'माँ' में सुलोचना अपने पुत्र शम्भूको जीवनके प्रशस्त एवं आदर्श मार्गपर ले जाकर माताके रूपमें अपनी महत्ता सिद्ध करती है। सावित्री लाड़-प्यारसे अपने पुत्र श्यामूको बिगाड़ देती है। 'भिखारिणी'में भिखारिनी जस्सोके चिथड़ोंमें एक हृदय-रत्न छिपा हुआ मिलता है। उपन्यासोंका कथा-संघटन सरल, प्रवाहपूर्ण, स्वाभाविक और सुसम्बद्ध घटनावलीसे पूर्ण है। उनके पात्र समाजके विभिन्न वर्गोंका प्रतिनिधित्व करने वाले हैं। भाषाकी व्यावहारिकता, स्वाभाविकता और उसके संयमित रूपने 'कौशिक'जीकी कथोपकथन-शैलीमें एक अनूठापन उत्पन्न कर दिया है।

'दुबेजीकी चिट्ठियाँ' हास्य-व्यङ्ग मिश्रित शैलीमें समकालीन समस्याओंपर विचार हैं। इन चिट्ठियोंको उन्होंने विजयानन्द दुबेके नामसे पत्रोंमे प्रकाशित करायी थीं। —ल० सा० वा०

क्लार्क—प्रेमचन्द्रकृत 'रंगभूमि'की कथामें क्लार्क जिलेका हाकिम है। मिसेज सेवकने उसे अपनी पुत्री सोफीके लिए चुना है। व्यक्तिके रूपमें क्लार्क धार्मिक प्रवृत्तिका है, सद्‌गुणी है, सुयोग्य, शीलवान्, उदार और सहृदय है। उसने सोफीके प्रति ही नहीं, विनयके प्रति भी शीलका व्यवहार किया। वह शिष्टाचारमें प्रवीण है और भौतिक दृष्टिसे किसी भी स्त्रीको सुखी रख सकता है, किन्तु वह भारतमें साम्राज्यशाहीका एजेण्ट है। उसमें त्याग और सेवा-भाव नहीं है, उच्चादर्श नहीं है। राजनीतिको राजनीति ही समझकर वह प्रजापर आतंक जमाये रखनेमें विश्वास करता है। सोफीके व्यवहारमे उसमे नैराश्य, दुःख, अविश्वास और क्रोध अवश्य उत्पन्न होता है, किन्तु तब भी वह अपनी सज्जनता नहीं छोड़ता। —ल० सा० वा०

क्लियोपेट्रा—मिस्र देशकी असाधारण रूपवती रानीके रूपमे प्रसिद्ध है। इसने ज्यूलियस सीजरको आसक्त कर लिया था। सीजर उसे अपने साथ रोम ले गया। सीजरकी मृत्युके अनन्तर वह पुनः लौट गयी और एण्टोनीको अपने रूपसे आसक्त कर लिया। एण्टोनीकी मृत्युपर परम्परागत प्रसिद्धिके अनुसार उसने एक विषैले सर्पको अपने वक्षःस्थलपर लपेटकर उसके विषसे आत्महत्या कर ली। —रा० कु०

क्षितिमोहन सेन—आचार्य क्षितिमोहन सेन का जन्म १८८० ई०में हुआ और निधन १९६० ई०मे। आपकी शिक्षा क्वीन्स कालेज वाराणसीमें हुई। वहींसे आपने शास्त्री और एम० ए० की उपाधियाँ प्राप्त की। आप रवीन्द्रनाथ ठाकुरके प्रसिद्ध शिक्षा-संस्थान विश्वभारतीके अन्तर्गत विद्याभवनके अध्यक्ष थे। आप मध्यकालीन सन्त-साहित्यके महान् समीक्षक, मर्मज्ञ विवेचक और अन्यतम व्याख्याता एवं शोधकर्ता थे। आपके सतत अनुशीलन और अनुसन्धानने भारतीय संस्कृतिके अभिज्ञानको एक नयी दिशा दी है। भारतीय साहित्य एवं संस्कृतिकी आत्माके पास पहुँचनेके लिए कोई भी अध्येता आपके कृतित्वकी उपेक्षा नहीं कर सकता। आपकी अब तक लगभग १५ रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमें कुछके ये नाम हैं—बंगला: 'भारतीय मध्ययुगेर साधनार धारा' (१९३०), 'दादू' (१९३८), 'बलाका काव्य परिक्रमा' 'साहित्यालोचना ग्रन्थ' (१९५२), 'बांगलार बाउल' (१९५४)। हिन्दी: 'भारतमें जातिभेद' (समाजशास्त्र)। गुजराती: 'तन्त्रकी साधना'। अंग्रेजी: 'मिडीवल मिस्टिसिज्म' (१९३५)। —सं०

खगेस—दे० 'गरुड़'।

खन्ना—प्रेमचन्द्रकृत 'गोदान'का पात्र। मिल मालिक खन्ना पूँजीपतियोंका प्रतिनिधित्व करनेवाला पात्र है। उसमे स्वार्थ और धनके प्रति जितना मोह है, उतना मानवताके प्रति नहीं। अपनी सीधी-सादी, स्नेह और त्यागकी मूर्ति पत्नी, गोविन्दीमें उसे कुछ भी आकर्षण दिखाई नहीं देता। इसलिए वह मालतीके 'तितली' वाले रूपकी ओर आकृष्ट होता है और विलास-आवरण ओढ़े हुए उसे अपनी हृदयेश्वरी बनानेकी चेष्टा करता है। प्रेमचन्द्रने उसके चरित्रको दो-रुखी चित्रित किया है। एक ओर वह स्वार्थ, विलास और प्रभुताका भक्त था, तो दूसरी ओर त्याग, जन-सेवा और उपकार का। उसके इन अधम और उत्तम रूपोंमें निरन्तर संघर्ष हुआ करता था। मिलमें आग लग जानेके बाद उसके उत्तम रूपकी विवृति होती है। दौलतसे मिलने वाला सम्मान अब उसे खोखला प्रतीत होने लगता है। उसकी निर्जीव, निराश और आहत आत्मा सान्त्वनाके लिए छटपटाने लगती है। यह सान्त्वना उसे गोविन्दीके स्नेहांचलमें मिली। खन्नाका अर्थ पर आधारित आत्मसेवा, भोग और विलासमें लिप्त, अर्थपरायण जीवन अब ऊँचे और पवित्र मार्गका अवलम्बन करता है। अब वह आत्मिक, बौद्धिक और शारीरिक शक्तियोंके सामंजस्यको वास्तविक धन समझने लगता है। —ल० सा० वा०

खरदूषण—'खरदूषण' नामके निम्नलिखित सन्दर्भ मिलते हैं—

(१) एक राक्षस था। खरदूषण रावण तथा सूर्पणखाका भाई था। सुमाली राक्षसकी कन्या इसकी माता तथा विश्वावसुमुनि इसके पिता थे। वनवासमे पंचवटीमें जब लक्ष्मणने सूर्पणखाके नाक-कान काट लिए तो अपनी भगिनीके प्रतिवाद हेतु यह रामचन्द्रजीसे युद्ध करने आया था। उसी समय रामने इसका वध कर दिया। कहा जाता है कि यह अत्यन्त पण्डित था।

(२) खरदूषण एक राक्षस था, जो कंसका अनुचर था।

(३) रावणपक्षीय एक अन्य राक्षस भी 'खरदूषण' नाम से प्रसिद्ध है।

(४) त्रिजटा नामक राक्षसीके पुत्रका नाम था।

(५) लम्बासुर नामक राक्षसके भाईका नाम था।

रामचरितमानसमें जिस खरदूषणकी कथा है, वह सूर्पणखाका भाई खरदूषण है। —रा० कु०

खलीफा—मोहम्मद साहबके बाद जिस व्यक्तिको धर्म-संरक्षकका कार्य प्राप्त होता था, उसे खलीफाकी पदवी दी जाती थी। इस्लामके अनुसार खलीफा शासकका निर्देशक है। अबूबक्र, उमर, उसमानगनी, अली, आदि प्रमुख खलीफा माने जाते हैं। (देखिए 'काबा-कर्बला')—रा० कु०

खान कवि—इनके विषयमें कोई विशेष सूचना प्राप्त नहीं होती। मिश्रबन्धुओंके अनुसार इनका काव्य-रचनाकाल सन् १८६८ ई० का पूर्वकाल है। 'शिवसिंह-सरोज' तथा 'दिग्विजय-भूषण' में इनका केवल एक ही छन्द उद्धृत मिलता है, जिसमें किसी 'रानाजू'की प्रशंसा की गयी है। ये 'राना' कौन थे, कहाँके रहनेवाले थे, इस सम्बन्धमें कुछ भी ज्ञात नहीं है। शायद यह कविके आश्रयदाता थे। कवि साधारण श्रेणीका जान पड़ता है। —रा० त्रि०

खिलजी—'खिलजी' अफगानिस्तानकी सीमापर रहनेवाली पठानोंकी एक जातिका नाम है। भारतीय इतिहासमें सल्तनत युगके राजवंशोंमें खिलजी वंश (१२९० से १३२० ई० तक)का महत्त्वपूर्ण स्थान है। खिलजी वंशके शासकोंमे अलाउद्दीन खिलजी सबसे प्रसिद्ध है। उसकी राज्य-सीमा उत्तरमें लाहौरसे लेकर दक्षिणमें द्वारसमुद्रतक तथा पश्चिममे गुजरातसे लेकर पूर्वमें लखनौतीतक थी। वह उग्र साम्राज्यवादी था। हिन्दुओंपर उसने अनेक अत्याचार किये। उसने कठोर सैनिक शासनकी स्थापना की थी तथा शासकको इस्लामके धर्म नेताओंसे उच्चतर माना। अलाउद्दीनके अतिरिक्त खिलजी वंशके शासकोंमे जलालुद्दीन (अलाउद्दीनका पूर्ववर्ती) तथा कुतुबुद्दीन मुबारक शाहका नाम लिया जाता है (दे० 'अलाउद्दीन')। —रा० कु०

खुमान बन्दीजन—खुमानका उपनाम 'मान' था। ये जातिके बन्दीजन थे। बुन्देलखण्डके अन्तर्गत चरखारी राज्यके महाराज विक्रमसाहि इनके आश्रयदाता थे। ये छतरपुर राज्यके खरगवा ग्रामके निवासी बतलाये जाते है। खुमानके पुत्रका नाम ब्रजलाल बन्दीजन था। मान कविका कविता-काल १७७३-१८२३ ई० माना जा सकता है। कहा जाता है कि ये जन्मान्ध थे। एक संन्यासीकी कृपासे इन्हें कविताका बोध हुआ था। इन्होंने संस्कृत और हिन्दी दोनोंमे रचनाएँ की है।

खुमानने निम्नलिखित ग्रन्थोंकी रचना की है—(१) 'अमर-प्रकाश'(१७७६ ई०)—यह ग्रन्थ अमरकोशका अनुवाद है। (२) 'अष्टजाम' (१७९५ ई०)—इसमें खुमानने अपने आश्रयदाता चरखारीके शासक विक्रमसाहिकी प्रतिदिनकी दिनचर्याका वर्णन किया है। (३) 'नृसिह चरित्र'—इसमें नृसिंह अवतारका वर्णन हुआ है। (४) 'नीति-विधान'—इसमें दीवान पृथ्वीसिंहका वर्णन किया गया है। (५) 'हनुमत-पचीसी'—इसमे हनुमान्‌की स्तुतिकी गयी है। (६) 'हनुमत-नख-शिख' (हनुमान्-नखशिख)—इसमें हनुमान्‌के रूपका वर्णनहै। (७) 'हनुमान-पंचक'—इसमें भी हनुमान्‌की स्तुति एवं प्रार्थना की गयी हैं। (८) 'समरसार'—इसका रचनाकाल १७९५ ई० है। चरखारीके महाराजकुमार धर्मपाल सिंह ने किसी उच्च पदाधिकारी अंग्रेजको वशमे किया था। इस कृतिमें इसी घटनाका वीररसात्मक शैलीमे चित्रण हुआ है। (९) 'लक्ष्मण-शतक'—इस काव्यकी रचना १७९८ ई०मे हुई थी। इसमें १२९ छन्द हैं। इसमें लक्ष्मण और मेघनादके युद्धका वर्णन बड़ी प्रभावोत्पादक शैलीमें किया गया है। वस्तुतः खुमानकी कीर्तिका स्तम्भ यही ग्रन्थ है। इसमें ओजस्विनी शब्दावली प्रयुक्त हुई है। खुमानने अपनी हिन्दी रचनाओंमें साहित्यिक ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। ये अनुप्रासके बड़े भक्त थे। इस प्रकार भक्ति तथा वीर-काव्यधारा दोनोंमें खुमान बन्दीजनका एक विशिष्ट स्थान है।

[सहायक ग्रन्थ—मि० वि०; हि० सा० इ०; खो० वि० (संक्षिप्त विवरण, भाग १)] —टी० तो०

खुसरो—दे० 'अमीर खुसरो'।

ख्यात बाँकीदास री—बाँकीदास (१७८१-१८३३ ई०) राजस्थानके प्रसिद्ध चारण कवि थे। इनकी छब्बीस कृतियाँ दो भागोंमें काशी नागरी प्रचारिणी सभासे बाँकीदास ग्रन्थावलीके रूपमें प्रकाशित हो चुकी है। लगभग दस कृतियाँ अप्रकाशित हैं। 'ख्यात' (राजस्थान पुरातन ग्रन्थ-माला, जयपुर १९५६ ई०)में विशेष रूपसे राजपूतोंकी प्रसिद्ध शाखाओंके सम्बन्धमें राजस्थानी गद्यमें सूचनाएँ दी गयी हैं। कुछ अन्य विषयोंसे सम्बद्ध सूचनाएँ भी हैं। इतिहासकी दृष्टिसे कृति महत्त्वपूर्ण है। —रा० तो०

गंग—इनके विषयमें अभी तक कोई निश्चित वृत्त ज्ञात नहीं हो सका है। प्रसिद्ध है कि गंग भट्ट नामके एक कवि अकबरके दरबारमें रहते थे। गंग कविको कुछ लोग ब्राह्मण मानते हैं। गंगके सम्बन्ध में जो कुछ वृत्त ज्ञात हुआ है उमसे विदित होता है कि इस नामके एक ही कवि थे और ये ब्रह्मभट्ट थे। ये अकबरके दरबारमें रहते थे। इन्हींको ब्राह्मण भी कहा गया है। इनका जन्म १५३८ ई० मे हुआ माना जाता है। कहते है कि रहीम (अब्दुल रहीम खानखाना) इनका बहुत सम्मान करते थे। ये बीरबल, मानसिंह तथा टोडरमलके भी कृपापात्र थे।

गंगके नामसे 'चन्द छन्दवर्णनकी महिमा' नामक एक खड़ी-बोली गद्यकी पुस्तक प्रसिद्ध है, जिसमें प्रत्यक्ष रूपमें अकबरका उल्लेख हुआ है। यदि इसे प्रामाणिक माना जाय तो गंगका अकबरके दरबारमें होना सिद्ध होता है। 'गंग ऐसे गुनीको गयन्दमे चिराइये' तथा 'गंगको लेन गनेश पठायें' आदि कथनोंसे इस किंवदन्तीकी पुष्टि होती है कि इन्हे किसी राजाने हाथीसे कुचलवाकर मरवा डाला था। पर यह स्पष्टतः नही कहा जा सकता कि वह राजा कौन था। कहते है कि नूरजहाँ का भाई जेन खाँ इनसे रुष्ट हो गया था, जिसके कारण इन्हे जहाँगीरका कोपभाजन होना पड़ा। गंग जैसे स्पष्टवादी तथा निर्भीक प्रकृतिके व्यक्तिका ऐसे कष्टमें पड़ जाना तत्कालीन स्थितिके अनुरूप है। यह घटना प्रायः १६२५ ई० की मानी गयी है। इसका साक्ष्य 'सब देवनको दरबार जुर्‌यो'से प्रारम्भ होनेवाले सवैयामें तथा गंगकी इन पंक्तियोंमे भी निहित माना जाता है—"संगदिल शाह जहाँगीरसे उमंग आज, देते है मतंग मद सोई गंग छातीमें।" चन्द्रबली पाण्डेका विचार है कि ब्राह्मणोंको उकसानेके कारण अकबरके मन्त्री बैरमखाँने ही गंगको यह दण्ड दिया था। कुछ लोगोंने अनुमान किया है कि औरंगजेबने उन्हें मरवाया था। यह भी कहा जाता है कि वे स्वतः हाथीकी चपेटमें आ गये थे।

गंगकी तीन रचनाएँ प्राप्त हैं—'गंगपदावली', 'गंग पचीसी', और 'गंगरत्नावली'। 'चन्द छन्द वर्णनकी महिमा' इनकी एक अन्य कृति कही जाती है, जो खड़ी-बोली

गद्यकी पहली रचना मानी गयी है। इनके 'दिग्विजय-भूषण'में उद्धृत छन्द तीन ऐतिहासिक सन्दर्भोंको प्रस्तुत करते हैं। दो में बीरबल तथा रहीमकी दानशीलताका वर्णन है और एकमें मिर्जा भावसिंह (मिर्जा जयसिंहके पिता)के किसी पठान (जालौरके शासक गजनी खाँ) से युद्धका वर्णन है। भावसिंहकी मृत्यु १६२१ ई० में हुई थी।

गंगके अनेक कवित्त काव्य-रसिकोंकी मण्डलियोंमें कहे-सुने जाते हैं। निस्सन्देह इनमें एक सच्चे कविकी प्रतिभा थी और इनके समयमें इनकी अच्छी ख्याति थी। इनके काव्यमें आलंकारिक चमत्कार अति-वैचित्र्य तथा वाग्वैदग्ध्य तो पाया जाता है, पर साथ ही सरसता तथा मार्मिकता भी पर्याप्त है। हिन्दीके मध्ययुगीन कवियोंमें उनकी चर्चा सर्वोच्च कोटिके कवियोंके साथ महाकविके रूप में होती रही है। इसीलिए भिखारीदासने तुलसीदासके साथ इनका उल्लेख किया है, यथा—"तुलसी गंग दुवो भये सुकविनके सरदार।"

[सहायक ग्रन्थ—अकबरी दरबारके हिन्दी कवि : सरयूप्रसाद अग्रवाल; मि० वि०; हि० सा० इ०; दि० भू० (भूमिका)।] —यो० प्र० सि०

गंगा—पुराणोंके अनुसार गंगा एक पुण्य सरिताका नाम है। पुराणोंमें गंगा देवीके रूपमें वर्णित हुई है। विष्णुपदी, मन्दाकिनी, सुरसरि, देवपगा, हरिनदी आदि गंगाके पर्याय हैं। ऋग्वेदमें भी गंगाका उल्लेख मिलता है। गंगाकी उत्पत्ति एवं स्थितिके सम्बन्धमें निम्नलिखित दो कथाएँ प्रचलित हैं—

(१) गंगाकी उत्पत्ति विष्णुके चरणोंसे हुई थी। ब्रह्माने इन्हें अपने कमण्डलमें भर लिया था। ऐसी प्रसिद्धि है कि विराट् अवतारके आकाशस्थित तीसरे चरणको धोकर ब्रह्माने अपने कमण्डलमें रख लिया था। इसके सम्बन्धमें एक भिन्न व्याख्या भी मिलती है। समस्त आकाशमें स्थित मेघका ही पौराणिक गण विष्णु जैसा वर्णन करते हैं। मेघसे वृष्टि होती है और उसीसे गंगाकी उत्पत्ति हुई।

(२) गंगाका जन्म हिमालयकी कन्याके रूपमें सुमेरु-तनया अथवा मैनाके गर्भसे हुआ था। किसी विशेष कारणवश गंगा ब्रह्माके कमण्डलमें जा छिपी। देवी भागवतके अनुसार लक्ष्मी, सरस्वती और गंगा तीनों नारायणकी पत्नी हैं। पारस्परिक कलहके कारण उन्होंने एक दूसरेको शाप देकर नदी रूपमें अवतरित होकर मृत्यु लोकमें निवास करनेको बाध्य कर दिया था। फलस्वरूप तीनों ही पृथ्वीपर अवतरित हुई। पुराणोंमें गंगा शान्तनुकी पत्नी और भीष्मकी माता कही गयी है।

पृथ्वीपर गंगा-अवतरणकी कथा इस प्रकार है—कपिल मुनिके शापसे राजा सगरके साठ हजार पुत्र भस्म हो गये। उनके वंशजोंने गंगाको पृथ्वीपर लानेके लिए घोर तपस्या की। अन्तमें भगीरथकी घोर तपस्यासे ब्रह्मा प्रसन्न हो गये। उन्होंने गंगाको पृथ्वीपर ले जानेकी अनुमति दे दी, किन्तु पृथ्वी ब्रह्मलोकसे अवतरित होनेवाली गंगाका भार सहन कर सकनेमें असमर्थ थी। अतएव भगीरथने महादेवजीसे गंगाको अपनी जटाओंमें धारण करनेकी प्रार्थना की। ब्रह्माके कमण्डलसे निकल-कर गंगा शिवकी जटाओंमें खो गयीं। मार्गमें जह्नु ऋषि अपने यज्ञकी सामग्री नष्ट हो जानेके कारण गंगाको पान कर गये। भगीरथके प्रार्थना करनेपर उन्होंने फिर गंगाको पुनः अपनी जाँघसे निकाल दिया। इसी समयसे गंगाका नाम जाह्नवी पड़ा। भगीरथ आगे-आगे चलकर गंगाको अपने पूर्वजोंकी मातृ-भूमितक ले आये। इस प्रकार उन्होंने उन्हें मुक्ति दिलायी। भगीरथके प्रयत्नोंसे प्रवाहित होनेके कारण गंगाको भागीरथी कहा जाता है।

हिन्दी साहित्यमें गंगा-माहात्म्य प्रचुर मात्रामें वर्णित हुआ है। भक्त कवियोंने गंगाके माहात्म्यके वर्णनके अतिरिक्त विष्णुके हृदयप्रदेशपर सुशोभित मुक्ता-माला आदिकी उपमा गंगासे दी है। इसके अतिरिक्त विषय रूपमें भी उसकी महिमाका आख्यान हुआ है (सू० सा०, प० ४५३; मानस १, ११६, २०, १३, ६४)। गंगाका धार्मिक महत्त्व तो स्पष्ट ही है। गंगाके अवतरित होनेकी कथापर आधारित रत्नाकरका 'गंगावतरण' नामक प्रबन्ध काव्य अत्यन्त प्रसिद्ध है। पुण्य-सलिलाके रूपमें तो उसके अनेक सन्दर्भ मिलते हैं। —रा० कु०

गंगाधर—ये 'महेश्वरभूषण' (सन् १८९५ ई०) के लेखक हैं। इनका उपनाम 'द्विजगंग' था। इनके पिता द्विज बलदेव-प्रसाद भी अच्छे कवि थे। इन्होंने महाराज प्रताप रुद्रसिंहके आश्रयमें 'प्रताप-विनोद' नामक अलंकार-ग्रन्थकी रचना की थी। द्विजगंग प्रताप रुद्रसिंहके अनुज महेश्वरवत्स सिंहके आश्रयमें थे। उन्हींके नाम पर 'महेश्वरभूषण'की रचना हुई है। गंगाधर अवधान्तर्गत सीतापुर प्रदेशके रहनेवाले थे। ये सामान्य कोटिके कवि हैं। —ओं० प्र०

गंगापति—शिवसिंहके अनुसार इनका उदयकाल १६८७ ई० है। मिश्रबन्धुओं तथा ग्रियर्सनने इनकी 'विज्ञान विलास' नामक रचनाका उल्लेख किया है। इसका रचनाकाल १७१८ ई० है। 'दिग्विजयभूषण' तथा 'शिवसिंह सरोज'में उद्धृत छन्दसे ये रीतिकालीन परम्पराके शृङ्गारी कवि जान पड़ते हैं। —सं०

गंगाप्रसाद अग्निहोत्री—हिन्दीमें पाश्चात्य समीक्षा सिद्धान्तोंका सूत्रपात करनेवालोंमें गंगाप्रसाद अग्निहोत्री अग्रणी हैं। आपका जन्म मध्यप्रदेशके नागपुर शहरमें श्रावणकृष्ण ७, सन् १८७० ई० में हुआ था। घरकी आर्थिक स्थिति अच्छी न होनेके कारण आपकी शिक्षाका उचित प्रबन्ध न हो सका। ज्यों-त्यों आप एण्ट्रेंसकी परीक्षामें सम्मिलित हुए और अनुत्तीर्ण होकर रह गये। आपने वैकल्पिक विषयके रूपमें मराठी और संस्कृतका भी ज्ञान प्राप्त कर लिया था।

सन् १८९२ ई० में आप असिस्टेंट सेटिलमेंट आफिसर जगन्नाथ प्रसाद भानुके सम्पर्कमें आये। उनकी कृपासे आपको दुहरा लाभ हुआ। जीविकाके लिए नकलनवीसीका काम मिल गया और साहित्यिक विकासके लिए निरन्तर प्रेरणा मिलती रही। सबसे पहले आपने चिपलूणकर शास्त्रीके 'समालोचना' शीर्षक निबन्धका अनुवाद मराठी से हिन्दीमें किया, जो नागरी प्रचारिणी पत्रिकाके पहले वर्ष (१८९७ ई०)के पहले अंकमें प्रकाशित हुआ। आपको

ख्याति मिली और उत्साहित होकर आपने चिपलूणकर शास्त्रीकी पूरी पुस्तक 'निबन्धमालादर्श'का अनुवाद किया। फिर तो आप बराबर लिखते रहे। 'राष्ट्रभाषा' (१८९९ ई०) (मराठीसे हिन्दीमें अनुवाद), 'प्रणयीमाधव' (मराठीसे अनुवाद), 'संस्कृत कविपंचक', 'मेघदूत','निबन्धमालादर्श', 'डॉ० जानसनकी जीवनी' (अप्रकाशित), 'नर्मदा विहार', 'संसार सुख साधन' (१९१७ ई०), 'किसानोंकी कामधेनु' आपकी प्रसिद्ध अनूदित और मौलिक कृतियाँ हैं।

आपकी भाषा तत्समप्रधान है। उसमें प्रायः उर्दू शब्दों का अभाव है। अँग्रेजीके बहुप्रचलित शब्दोंको आपने ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया है। आप हिन्दीके प्रबल समर्थक थे और उसे ही राष्ट्रभाषाके लिए सर्वथा उपयुक्त समझते थे।

आपकी सबसे बड़ी देन हिन्दी आलोचनाके क्षेत्रमे है। जिस समय हिन्दीमें आलोचनाके नाम पर या तो पुस्तक-परिचय लिखे जाते थे या रीतिकालीन मानदंडोंके आधार पर गुण-दोष विवेचन किया जाता था, उस समय पाश्चात्य समीक्षा-सिद्धान्तोंका प्रतिपादन करनेवाली पद्धतिका सूत्रपात करके आपने महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

जीवनके अन्तिम दिनोमे उन्नति करते हुए आप कोरिया रियासतके नायब दीवान हो गये थे। सन् १९३१ ई० में आपकी मृत्यु हुई। —रा० चं० ति०

गंगाप्रसाद सिंह, अखौरी–जन्म १९०१ ई०में हुआ। 'विश्वदूत' (कलकत्ता) तथा 'भारतजीवन', आदि पत्रोके सम्पादकीय विभागमे कार्य किया। 'हिन्दीके मुसलमान कवि', 'देवदास,' 'अभागिनी' आदि आपकी प्रकाशित रचनाएँ हैं। कुछ दिनों तक आप 'भारतमित्र'के व्यवस्थापक भी रहे। —सं०

गंगाप्रसाद उपाध्याय–जन्म ६ सितम्बर, १८८१ ई०को नदराई (कासगंज)में हुआ। एम० ए०की उपाधि अंग्रेजी साहित्य (१९१२) तथा दर्शनमें (१९२३) प्रयाग विश्वविद्यालयसे प्राप्त की। १९१८ में सरकारी नौकरी छोड़कर डी० ए० वी० हाईस्कूल, इलाहाबादमे प्रधान अध्यापकके रूपमे नियुक्त हुए और १९३९ तक इसी पदपर कार्य करते रहे। आर्य समाजके आन्दोलनमे सक्रिय रूपमे सम्बद्ध रहे। राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतनाको अग्रसर तथा पुष्ट करनेमें जिन विचारकोंका योग रहा है, उनमें उपाध्यायजी भी एक है। अंग्रेजी तथा हिन्दी माध्यमसे प्रमुखतः धर्म, दर्शन तथा संस्कृति सम्बन्धी बहुत सी पुस्तकें लिखी है। वृद्धावस्थामें भी आपकी निष्ठा और उत्साहमें कोई कमी नहीं आयी है।

प्रमुख कृतियाँ—हिन्दीमें : 'अंग्रेज जातिका इतिहास' (१९२२), 'विधवा विवाह मीमांसा'(१९२३), 'आर्यसमाज' (१९२४) 'आस्तिकवाद' (१९२६), 'अद्वैतवाद' (१९२८), 'सर्वदर्शन सिद्धान्त संग्रह'(१९३८),'सनातन धर्म और आर्य-समाज'(१९५१), 'जीवन चक्र' (१९५४), 'मीमांसा रहस्य' (१९६१)। अंग्रेजीमें : 'रीजन एण्ड रिलीजन' (१९३९), 'आई एण्ड माई गॉड' (१९३९), 'वैदिक कल्चर' (१९४९), 'कम्यूनिज्म' (१९५०), 'फिलॉसफी ऑफ दयानन्द' (१९५५), 'सोशल रिकंस्ट्रक्शन बाई बुद्ध एण्ड दयानन्द' (१९५६)। —सं०

गंगाभरण–गन्धोलीनिवासी नन्दकिशोर मिश्र, उपनाम 'लेखराज'ने सन् १८७८में 'गंगाभरण'की रचना की। इसका प्रकाशन सूर्यबली लालने गन्धोल (सिधौली, जिला सीतापुर)से १९११ ई०में किया था। यह छोटी-सी अलंकार पुस्तक दोहे तथा कवित्तोंमें लिखी हुई है। कविमें भक्तिकी प्रबलता है। उसने अलंकारोके व्याजसे गंगाका गुणगान किया है—"कहे लेखराज लिखो लख कवि-पन्थ या तै, अलंकार-मिस कीन्हों गंगा-गुन-गान मै।" 'गंगाभरण'के तीन भाग हैं—प्रथममें अर्थालंकार प्रायः 'भाषाभूषण'के अनुसार है। द्वितीयमें शब्दालकारके पाँच भेद दिये हैं। तृतीयमे चित्रकाव्यके ६ भेदोंका वर्णन है। पुस्तक सामान्य एवं सरल है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० अ० सा०।] —ओं० प्र०

गंगालहरी–पद्माकरकी अन्तिम रचना। अतः इसका रचनाकाल सन् १८३० ई०के आसपास माना जा सकता है। अन्तिम समय निकट समझ कर पद्माकर गंगा-तटपर निवास करनेकी दृष्टिसे सात वर्ष कानपुरमे रहे। इन्हीं वर्षोंमें उन्होंने 'गंगालहरी'की रचना की, जिसमें उनकी विरक्ति तथा भक्ति-भावना अभिव्यक्त हुई है। इसके कई संस्करण प्रकाशित हुए हैं, जिससे इसकी लोकप्रियताका अनुमान लगाया जा सकता है। इसका प्रथम संस्करण श्रीधर शिवलाल द्वारा बम्बईसे १८७४ ई०में प्रकाशित हुआ था। इसके अतिरिक्त दिलकुशा प्रेस, मुरादाबादसे १८८६ ई०में; रामस्वरूप शर्मा द्वारा मुरादाबादसे १८९९ई० में; जैन प्रेस, लखनऊसे १८९९ ई० में और शिवदुलारे बाजपेयी द्वारा कल्याणसे १९२३ ई०में इसके विभिन्न संस्करण निकले। —सं०

गंगावतरण–'गंगावतरण' जगन्नाथदास 'रत्नाकर'का एक आख्यानक प्रबन्ध-काव्य है। इसकी समाप्ति सन् १९२७ ई०में हुई और प्रकाशन १९३३ ई०मे हुआ। इसमे कपिल मुनिके शापसे भस्म हुए सगरके साठ हजार पुत्रोंके उद्धार के लिए भगीरथके अथक प्रयाससे गगाके अवतरित होनेकी कथा विस्तारसे तेरह सर्गोंके अन्तर्गत रोला छन्दोंमे कही गयी है। कथानकका मूल स्रोत वाल्मीकीय रामायण हैं। भाषा ब्रज और मुख्य रस शृंगार, करुण एवं वीर हैं। चरित्रोंमें सगर धर्मनिष्ठ, अंशुमान् विनयशील, दिलीप प्रजावत्सल और भगीरथ कर्मठ हैं। रत्नाकरकी रचनाओंमे 'उद्धव-शतक'के बाद इसीका स्थान है। —स० ना० त्रि०

गंजन–काशीके रहनेवाले गुजराती ब्राह्मण थे। इनका समय सन् १७२८ ई०के आस-पास है। इनके ग्रन्थमें वंश-परिचय है। प्रपितामह मुकुटराय अकबरके कृपापात्र थे। मुकुटरायके पुत्र थे मानसिंह। मानसिंहके पुत्र गिरिधर, गिरिधरके पुत्र मुरलीधर और उनके पुत्र गजनराय हुए। इनकी कविप्रतिभा बहुत प्रखर नहीं थी। अपने कृपालु अमीर और दिल्ली बादशाहतके (बादशाह मुहम्मदशाहके) वजीर कमरुद्दीन खाँकी प्रशंसा करनेके लिए सन् १७३० ई०में इन्होंने 'कमरुद्दीन खाँ हुलास' नामक ग्रन्थकी रचना की। इसमें ३२७ छन्द हैं। इसका मुख्य उद्देश्य अपना वंश परिचय देना और अमीर तथा अपने प्रपितामह मुकुटरायकी प्रशंसा करना ही प्रतीत होता है। वैसे भावभेद, रस-भेदके

साथ षट्ऋतु का वर्णन आता है, किन्तु ऋतुवर्णनमें विलास और ऐयाशीके सामानोंकी गणना ही अधिक है। गंजनकी कृतिमें भाषा और कवित्वशक्ति दोनोंका ही अभाव है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० इ०; हि० भा० सा० इ० : चतुरसेन।] —ह० मो०

गंधर्व–'गन्धर्व' नामसे निम्नलिखि तउल्लेख प्राप्त होते हैं—

(१) गन्धर्व एक वैदिक देवता हैं, जिन्होंने विश्वका रहस्य जानकर उसे जन-साधारणके लिए प्रकट किया।

(२) कद्रूपुत्र एक सर्पका भी नाम गन्धर्व है।

(३) गन्धर्व देवताओंकी एक जातिविशेष है, जिसका निवास स्वर्ग तथा अन्तरिक्ष था। इनका मुख्य कार्य देवताओंके लिए सोमरस तैयार करना था। गन्धर्व स्त्रियोंके अपूर्व अनुरागी थे और उनपर अपूर्व अधिकार रखते थे। अथर्ववेदमें ६३३३ गन्धर्वोंका उल्लेख किया गया है। इन्हे ओषधि तथा वनस्पतियोंका विशेषज्ञ बताया गया है। 'विष्णु पुराण' के अनुसार गन्धर्वोंकी उत्पत्ति ब्रह्मासे तथा 'हरिवंश' के अनुसार ब्रह्माकी नाकसे हुई थी। गन्धर्वोंमें चित्ररथ प्रधान कहे गये हैं। मतान्तरसे चित्ररथकी उत्पत्ति कश्यपकी पत्नी मुनिसे हुई। कहा जाता है कि गन्धर्वों और नागोंका युद्ध हुआ था। महाभारतके अनुसार गन्धर्व एक जातिविशेष थी, जो जंगलोंमें रहती थी। नागोंने विष्णुकी अनुमतिसे अपनी भगिनी नर्मदाको पुरुकुत्सके पास भेजकर इनका संहार करवाया था। —रा० कु०

गज–'गज' से सम्बद्ध अनेक कथासन्दर्भ मिलते है—

(१) दुर्योधनके मामा शकुनिके एक भाईका नाम गज था।

(२) 'गज' एक वीर बालक था, जो राम-सेनाके सेनापतियोंमें-से एक था।

(३) 'गजासुर' नामसे प्रसिद्ध एक दैत्य भी 'गज' कहलाता है।

भक्तिकाव्योंमें 'गज' के उद्धारकी कथाका उल्लेख मिलता है। —रा० कु०

गजाधर–प्रेमचन्दकृत 'सेवासदन' का पात्र। सुमनका पति, निर्धन, कृपण और संयमशील गजाधर अपनी पत्नीकी 'खा-पी-बराबर' वाली प्रवृत्तिके कारण परेशान रहनेवाला व्यक्ति है. किन्तु प्रेम और परिश्रमसे सुमनके हृदयपर विजय प्राप्त न कर वह उसपर शासनाधिकार जमाना चाहता है, जिसके फलस्वरूप पति-पत्नीमे तनाव पैदा हो जाता है। सुमन सुन्दर है किन्तु निर्धनकी पत्नी है। इससे गजाधर को उसके चरित्रके सम्बन्धमें बराबर सन्देह बना रहता है और अन्तमें वह उसे घरसे निकाल देता है। आगे चलकर उसे अपनी असज्जनता और निर्दयतापर क्षोभ होता है, क्योंकि उसीके कारण सुमनको वेश्या-वृत्ति धारण करनी पड़ी। गजाधर गजानन्द नामसे साधु हो जाता है। वह आत्मघात न कर अपनी आत्माकी कालिमा धोनेके लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहता है। वह आत्मबल विकसित करनेमें प्रवृत्त होता है और कई अवसरोंपर सुमन, कृष्णचन्द आदिको आत्महत्या करनेसे बचाता है। वह अपने उच्च भावोंसे सुमनको सेवा-मार्गकी ओर ले जाता है। —ल० सा० वा०

गणिका–वैष्णव भक्त-कवियोंके काव्यमें गणिकाका प्रसंग अत्यन्त लोकप्रिय रहा है। यह 'जीवन्ती' नामक एक वेश्या थी, जो अपने तोतेसे अत्यधिक प्रेम करती थी। एक दिन एक महात्मा उसके घरकी ओरसे निकले। उन्हें यह नहीं ज्ञात था कि यह किसी वेश्याका घर है। अतः भूलसे वे वहाँ भिक्षा हेतु चले गये। उसकी वास्तविकता तथा उसके तोतेके प्रति अगाध प्रेमका ज्ञान होनेपर उन्होंने वेश्यासे कहा कि तुम इसे नित्य प्रति रामनाम पढ़ाया करो। महात्माके निर्देशपर वह तोतेको रामनाम पढ़ाने लगी। वेश्या रामनामके माहात्म्यसे अनभिज्ञ थी। अभ्यासके कारण मृत्युके समय भी वह रामनामका उच्चारण करती रही, जिसके फलस्वरूप वह भवसागर तर गयी।—रा० कु०

गणेश–एक देवताके रूपमे अधिक विख्यात हैं, किन्तु गणेशका उल्लेख एक अन्य रूपमें भी मिलता है। कविगण काव्य रचनाके पूर्व सरस्वतीके साथ गणेशकी भी वन्दना करते हैं—

१. गणेशको शिवके गणोंका अधिपति तथा शिव और पार्वतीका पुत्र कहा गया है। गणेश का समस्त शरीर मनुष्यका तथा मुख हाथीका है। ऐसी प्रसिद्धि है कि जन्मके समय इन्हे शनि भी देखने आये थे। शनि जिसे देख लेते थे, उसका सिर धड़से अलग हो जाता था। शनिके देखते ही गणेशका सिर धड़से अलग हो गया। उस समय विष्णुके परामर्शसे उत्तर दिशामें सिर किये हुए इन्द्रके हाथी ऐरावतका सिर काटकर गणेशको लगा दिया गया। इनके एकदन्त होनेके सम्बन्धमे यह प्रसिद्ध है कि एक बार शंकर और पार्वती निद्रामग्न थे। गणेश उस समय द्वारपाल थे। परशुराम शंकरसे मिलने आये। गणेशने उन्हे रोका, जिससे क्रुद्ध होकर परशुरामने इनका एक दाँत काट डाला। कहा जाता है कि देवताओंने एक बार पृथ्वीकी परिक्रमा करनी चाही। सभी देवता पृथ्वीके चारो ओर गये, किन्तु गणेशने सर्वव्यापी रामनाम लिखकर उसकी परिक्रमा कर डाली, जिससे देवताओंमें सर्वप्रथम इन्हींकी पूजा होती है। महाभारतमें यह भी उल्लेख है कि व्यासके महाभारतके बोलनेपर गणेशने इसे लिपिबद्ध किया था। गणेशका वाहन चूहा है। लम्बोदर, हेरम्ब, द्वैमातुर, इकदन्त, मूषकवाहन, गजबदन, गजमुख, गणपति, विनायक, कार्तिकेय आदि 'गणेश' के ही पर्याय हैं।

२. नाभादासके अनुसार एक वैष्णव-भक्त था। —रा० कु०

गणेशप्रसाद द्विवेदी–आपका जन्म १९०० ई०में हुआ। हिन्दी एकांकीकारोंमे आपका नाम विशेष महत्त्व रखता है। आपने वैसे कहानियाँ भी लिखी हैं लेकिन आपकी प्रसिद्धि एकांकी नाटकोंके कारण है।

द्विवेदीजीके नाटकोंमे सामाजिक यथार्थका निपुण चित्रण मिलता है। आप क्षेत्रीय भाषाओंके माध्यमसे कहीं-कहीं बड़ा सफल और रोचक दृश्य प्रस्तुत करते हैं। इस स्वाभाविकताके कारण आपके नाटकोंमें जितने भी पात्र आते हैं, वे सभी अपनी स्थितियों और अपने संस्कारोंकी सफल अभिव्यक्ति करते है। यही कारण है कि द्विवेदीजीके नाटक न तो भुवनेश्वरके नाटकोंकी भाँति तीव्र बौद्धिक व्यंग्य और कटुताकी मार्मिक पृष्ठभूमि लेकर चलते हैं और न उनमें

रामकुमार वर्माके एकांकियोंकी भाँति सरल लालित्य होता है। स्वाभाविकताके कारण आपके नाटक आभिजात्यकी अतिवादी दृष्टिसे बराबर बचते जाते हैं और हमारे सामने ऐसे दृश्य प्रस्तुत करते हैं, जो वास्तवमें जीवनके होते हैं। आपकी शैली सहजता और स्वाभाविकताके कारण विभिन्न स्थितियोंमें उलझे हुए मानव जीवनके मानवीय पक्षको बड़े ही मार्मिक ढंगसे प्रस्तुत करती है। आपके 'सोहाग बिन्दी' (१९३५) शीर्षक संकलनमें ६ एकांकी नाटक संकलित हैं। —ल० का० व०

गणेशशंकर विद्यार्थी–आपका जन्म सितम्बर १८९० ई०-मे अपने ननिहाल प्रयागमें हुआ था। आपके पिताका नाम श्री जयनारायण था। वे अध्यापक थे और उर्दू-फारसी खूब जानते थे।

गणेशशंकर विद्यार्थीकी शिक्षा-दीक्षा मुंगावली (ग्वालियर)मे हुई थी। आपने उर्दू-फारसीका अध्ययन किया। आर्थिक कठिनाइयोंके कारण एण्ट्रेंसतक ही पढ सके, किन्तु उनका स्वतन्त्र अध्ययन अनवरत चलता रहा। इसके बाद कानपुरमें करेंसी आफिसमे नौकरी की किन्तु अंग्रेज अधिकारीसे नहीं पटी। अतः उक्त नौकरी छोड़कर अध्यापक हो गये।

महावीरप्रसाद द्विवेदी आपकी योग्यतापर रीझे हुए थे। फलतः उन्होंने आपको अपने पास 'सरस्वती'के लिए बुला लिया। आपकी रुचि राजनीतिकी ओर थी। फलतः आप एक ही वर्ष बाद 'अभ्युदय' नामक पत्रमें चले गये और कुछ दिन वहीं रहे।

इसके बाद सन् १९०७ से १९१२ ई०तकका जीवन अत्यन्त संकटापन्न रहा। आपने कुछ दिनोंतक 'प्रभा'का भी संपादन किया था। १९१३ अक्तूबर मासमे 'प्रताप' (साप्ताहिक)के सम्पादक हुए।

आपने अपने पत्रमे किसानोंकी आवाज बुलन्द की। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समस्याओंपर आपके विचार बड़े ही निर्भीक होते थे। आपने देशी रियासतोंकी प्रजापर किये गये अत्याचारोंका भी तीव्र विरोध किया।

आप कानपुरके लोकप्रिय नेता तथा पत्रकार, शैलीकार, एवं निबन्ध-लेखक रहे हैं। आप अपनी अतुल देश-भक्ति और अनुपम आत्मोत्सर्गके लिए चिरस्मरणीय रहेंगे। आपकी मृत्यु कानपुरके हिन्दू-मुस्लिम दंगेमे निस्सहायोंको बचाते हुए सन् १९३१ ई०में हुई।

विद्यार्थीजीने प्रेमचन्दकी तरह पहले उर्दूमें लिखना प्रारम्भ किया था। उसके बाद हिन्दीमें पत्रकारिताके माध्यमसे वे आये और आजीवन पत्रकार रहे। उनके अधिकांश निबन्ध त्याग और बलिदान सम्बन्धी विषयोंपर है। इसके अतिरिक्त वे एक बहुत अच्छे वक्ता भी थे। विद्यार्थीजीकी भाषामें अपूर्व शक्ति है। उसमें सरलता और प्रवाहमयता सर्वत्र मिलती है। उनकी शैलीमें भावात्मकता, ओज, गाम्भीर्य और निर्भीकता भी पर्याप्त मात्रामें पायी जाती है। उसमें आप प्रायः वक्रता-प्रधान शैली ग्रहण कर लेते हैं, जिससे निबन्ध कलाका ह्रास भले होता दीखे किन्तु पाठकके मनपर गहरा प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। —ह० दे० बा०

गढ़ कुंडार–वृन्दावनलाल वर्माका ऐतिहासिक उपन्यास है। इसका समाप्तिकाल १७ जून, १९२७ और प्रकाशन तिथि १९२८ है। इसकी मुख्य कथा इस प्रकार है—कुण्डार गढ़का आधिपत्य हुरमत सिंह खंगारकी दो सन्तानों नागदेव और मानवतीको प्राप्त है। हुरमत सिंह नागदेव-का विवाह सोहनपाल बुन्देलकी लड़की हेमवतीसे करना चाहता है। सोहनपाल अपने भाईसे प्रताड़ित होकर अपने धीरप्रधानके साथ भरतपुराकी गढ़ीमें ठहरता है जहाँ एक रात्रिको नागदेव और उसका मित्र अग्निदत्त दोनों मिलकर मुसलमानोंके आक्रमणसे उनकी रक्षा करते हैं। नागदेव द्वारा सहानुभूति पाकर सोहनपाल अपने पुत्र सहजेन्द्र और पुत्री हेमवती तथा धीरप्रधान और उसके पुत्र दिवाकरके साथ गढ कुण्डारमें ही रहने लगते हैं। यहाँ अग्निदत्तका मानवतीके प्रति तथा दिवाकरका अग्नि-दत्तकी बहिन ताराके प्रति प्रेम विकसित होता है। अपने जातीय अभिमानके कारण हेमवती नागदेवसे न तो प्रेम करती है और न विवाह ही करना चाहती है। फलस्वरूप दोनों राजघरानोंमे भीतर-ही-भीतर वैमनस्य फैल जाता है। नागदेवसे रुष्ट होकर अग्निदत्त बुन्देलोंसे मिलकर खंगारोंमे प्रतिशोध की तैयारी करता है। बुन्देले झूठ ही हेमवतीकी शादीका बचन देते हैं और विवाहके दिन खंगारोंको खूब मदिरापान कराते हैं। खंगारों और बुन्देलोंमें भयकर युद्ध होता है, जिसमें खंगार मारे जाते हैं और गढ कुण्डारपर बुन्देलोंका अधिकार हो जाता है।

हुरमत सिंह कुण्डारगढका राजा है। नागदेव उसका पुत्र तथा मानवती पुत्री है। अग्निदत्त नागदेवका मित्र तथा मानवतीका प्रेमी है। सोहनपाल, हेमवतीका पिता है। धीरप्रधान, सोहनपाल बुन्देलेका मन्त्री है, जो राजनीतिज्ञ और स्वामिभक्त है। सहजेन्द्र सोहनपालका वीर पुत्र है। दिवाकर, धीरप्रधानका पुत्र तथा आदर्श प्रेमी है। हेमवती इस उपन्यासकी नायिका है। तारा अग्निदत्तकी बहिन तथा दिवाकरकी प्रेमिका है।

गढ कुण्डार अहंकारजन्य व्यर्थताकी कहानी है। जातियोंके उत्थान-पतन एवं युद्धोंके निर्माणमें इसी भावनाका हाथ रहता है। खंगारोंका नाश इसी अहंकार वृत्तिके कारण हुआ।

शैली मुख्य रूपसे वर्णनात्मक है, परन्तु कहीं-कहीं भावात्मकता एव तज्जन्य काव्यात्मकताका भी समावेश है। भाषा परिस्थिति और पात्रोंके अनुकूल और भाव-संवहनमें समर्थ है।

यह लेखककी प्रथम प्रौढ कृति है जिसमे औपन्यासिक कला उत्कृष्ट रूपमें विद्यमान है। हिन्दीका यह प्रथम सफल ऐतिहासिक उपन्यास कहा जाता है। इस कृतिके निर्माणने अपने समयमे हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यास साहित्यको एक नयी दिशा प्रदान की। आज भी यह वर्माजीके सर्वाधिक लोकप्रिय उपन्यासोंमें प्रमुख स्थान रखता है। —ज० गु०

गदाधर सिंह (ठाकुर)–इनका जन्म सन् १८६९ ई० में एक मध्यमवर्गीय राजपूत परिवारमें हुआ था। आरम्भ में इन्होंने एक सफल सैनिकका जीवन व्यतीत किया।

बादमें यात्रा-वृत्तान्त लेखनकी ओर प्रवृत्त हुए। १९०० ई० में इन्होंने चीनकी यात्रा की थी। उसी समय चीनमें 'बाक्सर-विद्रोह' हुआ था। ब्रिटिश सरकारने उसके दमनार्थ भारतसे जो सातवीं राजपूत सेना भेजी थी, गदाधर सिंह उसके एक सैनिक सदस्य थे। ये इंगलैंड भी हो आये थे। सम्राट् एडवर्डके तिलकोत्सवके अवसरपर इन्हें इस यात्राका सुअवसर प्राप्त हुआ था। सन् १९१८ ई० में उनचास वर्षकी अल्पायुमें ही इनकी मृत्यु हो गयी।

गदाधर सिंह की दो कृतियाँ उल्लेख्य है—

(१) 'चीनमें तेरह मास' (ग्रन्थकार, लखनऊ, १९०३ ई०); (२) 'हमारी एडवर्ड तिलक यात्रा' (लाला सीताराम, जुही, कानपुर)

'चीनमें तेरह मास' नामक ग्रंथ ३१९ पृष्ठोंमें है और काशी नागरी प्रचारिणी सभाके आर्यभाषा पुस्तकालयमे इसकी एक प्रति सुरक्षित है। लेखकने इस पुस्तकमे अपनी चीन देशकी यात्राका मनोहर वृत्तान्त तथा अपने सैनिक जीवनकी साहसपूर्ण कहानी बडे रोचक ढंगसे लिखी है। इसमें "युद्धके समाचार सुनानेके साथ-साथ चीन देशके अन्यान्य वृत्तान्त भी संग्रह किये गये हैं" (द्वि० मूल पुस्तकका निवेदन पृष्ठ)। 'एडवर्ड तिलक यात्रा' नामक कृतिमें लेखककी इंगलैण्ड यात्राके रोचक संस्मरण अंकित हैं।

बीसवीं शताब्दी ईस्वीके आरम्भिक दशकके हिन्दी गद्य-लेखकोंमें गदाधरसिंह एक विशिष्ट स्थानके अधिकारी हैं। उस समय तक हिन्दीमें गद्य-रचनाका कोई शुद्ध स्वरूप स्थिर नहीं हो पाया था। भाषाके परिष्कार और उसकी व्यंजना शक्तिको बढानेका प्रयास किया जा रहा था। गदाधर सिंहकी कृतियोंने हिन्दी गद्यके इस आरम्भिक निर्माणमें महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इनकी भाषाका स्वरूप सहज और सरस था। हास्य-व्यंग्ययुक्त मनोरंजक शैलीके कारण ये अपने पाठकोंको आकर्षित कर लेते थे।

गदाधर सिंहके कृतित्वका महत्त्व इस दृष्टिसे बहुत अधिक हो जाता है कि ये आधुनिक हिन्दीके यात्रा-वृत्तान्त लेखकों-में अग्रगण्य हैं। उन्नीसवीं शताब्दीके अन्ततक हिन्दी गद्य-की इस महत्त्वपूर्ण विधाका कोई सुनिश्चित विकास नहीं हो पाया था। बीसवीं शताब्दीके आरम्भमे भी यात्राओंके विवरण अथवा तत्सम्बन्धी लेख अधिकतर पत्र-पत्रिकाओंमें ही निकलते रहते थे। ऐसी परिस्थितिमें गदाधर सिंहने हिन्दीको यात्रा-वृत्तान्तविषयक दो स्वतन्त्र ग्रन्थ प्रदान किये। —र० भ०

गदाधरसिंह (बाबू)—भारतेन्दु हरिश्चन्द्रके समसामयिक साहित्यसेवियों और भारतेन्दुके सहयोगियोंमें बाबू गदाधरसिंहका नाम भी आता है। इनका जन्म सन् १८४८ ई०मे हुआ था। लगभग २५ वर्षकी आयुमें ही इन्होंने 'भाषा-सेवा'का व्रत लिया और फिर आजीवन इस कार्यमें निष्ठापूर्वक संलग्न रहे। इनकी मृत्यु पचास वर्षकी आयुमें सन् १८९८ ई०मे हुई।

गदाधरसिंह मातृभाषा हिन्दीके अतिरिक्त बँगलाके भी अच्छे जानकार थे। भारतेन्दु द्वारा प्रोत्साहित किये जानेपर इन्होंने बंगभाषासे अनुवाद-कार्य करना प्रारम्भ किया। इनकी प्रतिभाका विकास अनुवादकके रूपमें ही हुआ। बँगलासे अनूदित इनकी निम्नलिखित पुस्तकें उपलब्ध होती है—(१) ओथेलो (२) बंग-विजेता और (३) दुर्गेशनन्दिनी। इनके अतिरिक्त, इन्होंने संस्कृतकी बाणकृत 'कादम्बरी'की कथा भी बँगलाके आधारपर लिखी थी।

'ओथेलो'को रेवेन्यु सुपरिण्टेण्डेण्टने इटावासे १८९४ ई० में प्रकाशित किया था। यह पुस्तक पहले अँगरेजीसे बँगलामें अनूदित हुई और फिर गदाधरसिंह द्वारा बँगलासे हिन्दीमें रूपान्तरित होनेपर इसका सहज रूप जाता रहा। इसका थोड़ा बहुत महत्त्व भाषानुवादकी दृष्टिसे ही है। 'बंग-विजेता' और 'दुर्गेशनन्दिनी' बँगलाके तत्कालीन लोकप्रिय उपन्यास रहे हैं। इनके अनुवादोंमें, बँगलाके अच्छी जानकारी प्राप्त होनेके कारण, गदाधरसिंहको अपेक्षाकृत अधिक सफलता प्राप्त हुई है। 'बंग-विजेता'का अनुवाद बहुत लोकप्रिय हुआ था। बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' द्वारा सम्पादित 'आनन्द-कादम्बिनी' नामक पत्रिकामें इसकी 'आलोचना' लगभग पाँच पृष्ठोंमे प्रकाशित हुई थी। 'आलोचना' स्वयं 'प्रेमघन'जीने ही की थी।

गदाधरसिंहको साहित्यके क्षेत्रमे 'कादम्बरी'की कथा लिखनेके कारण अधिक यश प्राप्त हुआ था। यह इनके आरम्भिक कार्योंमे है। इसका प्रकाशन सन् १८७८ ई०में ही हुआ था। यह रचना औपन्यासिक है। डाक्टर श्याम सुन्दरदास इसे हिन्दी साहित्यकी प्रथम कथात्मक कृति माननेके पक्षमें हैं (द्वि० 'हिन्दीके निर्माता', भाग १, प्रयाग, प्रथम संस्करण, पृ० २७)। जैसा कि आरम्भमें ही कहा जा चुका है, गदाधरसिंहने अपनी इस कृतिके प्रणयनके निमित्त संस्कृतकी मूल 'कादम्बरी'का आधार नहीं लिया था। इनकी यह कृति वस्तुतः बँगलाकी कादम्बरी कथाका हिन्दी रूपान्तर प्रतीत होती है। थोड़े-बहुत परिवर्तनकी स्वतन्त्रता इन्होंने अवश्य ली है।

गदाधरसिंहके उक्त अनुवाद कार्य भाषा-सेवा और भाषा प्रचारकी दृष्टिसे किये गये है। अस्तु, उनमे भाषाको यथासम्भव सहज और सरल रखनेका प्रयास किया गया है। भाषा और वाक्य-रचना सम्बन्धी सामान्य त्रुटियाँ यत्र-तत्र परिलक्षित होती हैं।

गदाधरसिंहकी महत्त्वपूर्ण साहित्य-सेवाओंके साथ काशी नागरी प्रचारिणी सभा नामक संस्थाका नाम जुड़ा हुआ है। ये नागरी प्रचारिणी सभाके आरम्भिक सहायकोंमें गिने जाते है। 'सभा'के वर्तमान आर्य भाषा पुस्तकालयकी स्थापना सन् १८८४ ई०में इन्होंने ही की थी। आरम्भमे १८९४ ई०तक यह पुस्तकालय इनके संचालनमे स्वतन्त्र रूपसे कार्य करता रहा और बादमे 'सभा'की स्थापना हो जानेपर उसका अविच्छिन्न अंग बना दिया गया।

गदाधरसिंह आधुनिक हिन्दीके इतिहासमें एक निश्चित स्थानके अधिकारी हैं। उन्नीसवीं शताब्दीके उत्तरार्धमे, जब कि खड़ी-बोलीके आन्दोलनके साथ हिन्दीकी बहुमुखी उन्नतिका युग आरम्भ होता है, इन्होंने साहित्यकी जो यत्-किंचित् सेवाएँ की वे महत्त्वपूर्ण है। भाषाके प्रचारकी

दृष्टिसे इनके अनुवादोंने एक स्वस्थ परम्पराको जन्म दिया था। 'सभा'के 'आर्यभाषा पुस्तकालय'के संस्थापकके रूपमें इनकी कीर्ति अमर है। —र० भ्र०

गबन–मध्यवर्गीय जीवन और मनोवृत्तिका जितना सफल चित्रण प्रेमचन्दने 'गबन' (प्र० १९३० ई०) में किया है, उतना उनके साहित्यमें अन्यत्र नहीं मिलता। औपन्यासिक कलाकी दृष्टिसे भी यह उनकी एक सुन्दर रचना है। इसमें दो कथानक हैं—एक प्रयागसे सम्बद्ध और दूसरा कलकत्तेसे सम्बद्ध। दोनों कथानक जालपाकी मध्यस्थता द्वारा जोड़ दिए गये हैं। कथानकमें अनावश्यक घटनाओं और विस्तार का अभाव है।

प्रयागके छोटेसे गाँवके जमींदारके मुख्तार महाशय दीनदयाल और मानकीकी इकलौती पुत्री जालपाको बचपन से ही आभूषणों, विशेषतः चन्द्रहारकी लालसा लग गयी थी। वह स्वप्न देखती थी कि विवाहके समय उसके लिए चन्द्रहार जरूर चढ़ेगा। जब उसका विवाह कचहरीमें नौकर मुंशी दयानाथके बेकार पुत्र रमानाथसे हुआ तो चढ़ावेमें और गहने तो थे, चन्द्रहार न था। इसमें जालपा को घोर निराशा हुई। दीनदयाल और दयानाथ दोनोंने अपनी-अपनी बिसातसे ज्यादा विवाहमे खर्च किया। दयानाथने कचहरीमें रहते हुए रिश्वतकी कमाईसे मुँह मोड़ रखा था। पुत्रके विवाहमें वे कर्जमें लद गये। दयानाथ तो चन्द्रहार भी चढ़ाना चाहते थे लेकिन उनकी पत्नी जागेश्वरीने उनका प्रस्ताव रद्द कर दिया था। जालपाकी एक सखी शहजादी उसे चन्द्रहार प्राप्त करनेके लिए और भी उत्तेजित करती है। जालपा चन्द्रहारकी टेक लेकर ही ससुराल गयी। घरकी हालत तो खस्ता थी, किन्तु रमानाथने जालपाके सामने अपने घरानेकी बड़ी शान मार रखी थी। कर्ज उतारनेके लिए जब पिताने जालपाके कुछ गहने चुपकेसे लानेके लिए कहा तो रमानाथ कुछ मानसिक संघर्षके बाद आभूषणोंका सन्दूक चुपकेसे उठाकर उन्हे दे आते है और जालपासे चोरी हो जानेका बहाना कर देते हैं किन्तु अपने इस कपटपूर्ण व्यवहारमे उन्हे आत्मग्लानि होती है, विशेषतः जब कि वे अपनी पत्नीसे अत्यधिक प्रेम करते हैं। जालपाका जीवन तो क्षुब्ध हो उठता है। अब रमानाथ को नौकरीकी चिन्ता होती है। वे अपने शतरंजके साथी विधुर और चुंगीमे नौकरी करनेवाले रमेश बाबूकी सहायता से चुंगीमें तीस रुपये मासिककी नौकरी पा जाते हैं। जालपाको वे अपना वेतन चालीस रुपये बताते हैं। इसी समय जालपाको अपनी माताका भेजा हुआ चन्द्रहार मिलता है किन्तु दयामें दिया हुआ दान समझकर वह उसे स्वीकार नहीं करती। अब रमानाथमें जालपाके लिए गहने बनवानेका हौसला पैदा होता है। इस हौसलेको वे सराफोंके कर्जसे लद जानेपर भी पूरा करते हैं। इन्दुभूषण वकीलकी पत्नी रतनको जालपाके जड़ाऊ कंगन बहुत अच्छे लगते है। वैसे ही कंगन लानेके लिए वह रमानाथको ६०० रु० देती हैं। सर्राफ इन रुपयोंको कर्जखातेमें जमा-कर रमानाथको कंगन उधार देनेसे इनकार कर देता है। रतन कंगनोंके लिए बराबर तकाजा करती रहती है। अन्त में वह अपने रुपए ही वापिस लानेके लिए कहती है। उसके रुपये वापिस करनेके ख्यालसे रमानाथ चुंगीके रुपये ही घर ले आते हैं। उनकी अनुपस्थितिमे जब रतन अपने रुपये माँगने आती है तो जालपा उन्हीं रुपयोंको उठाकर दे देती है। घर आनेपर जब रमानाथको पता लगा तो उन्हें बड़ी चिन्ता हुई। गबनके मामलेमें उनकी सजा हो सकती थी। सारी परिस्थितिका स्पष्टीकरण करते हुए उन्होंने अपनी पत्नीके नाम एक पत्र लिखा। वे उसे अपनी पत्नीको देने या न देनेके बारेमें सोच ही रहे थे, कि वह पत्र जालपाको मिल जाता है। उसे पत्र पढ़ते देखकर उन्हें इतनी आत्म-ग्लानि होती है कि वे घरसे भाग जाते हैं। जालपा अपने गहने बेचकर चुंगीके रुपये लौटा देती है। इसके पश्चात् कथा कलकत्तेकी ओर मुड़ती है।

कलकत्तेमे रमानाथ अपने हितैषी देवीदीन खटिकके यहाँ कुछ दिनों तक गुप्त रूपमे रहनेके बाद चायकी दुकान खोल लेते है। वे अपनी वास्तविकता छिपाये रहते हैं। एक दिन जब वे नाटक देखकर लौट रहे थे, पुलिस उन्हे सुबहेमें पकड़ लेती है। घबराहटमे रमानाथ अपने गबन आदिके बारेमे सारी कथा सुना देते है। पुलिसवाले अपनी तहकीकात द्वारा उन्हे निर्दोष पाते हुए भी नहीं छोड़ते और उन्हे क्रान्तिकारियोंपर चल रहे एक मुकदमें गवाहके रूपमे पेश कर देते है। जेल-जीवनसे भयभीत होनेके कारण रमानाथ पुलिसवालोंकी बात मान लेते हैं। पुलिसने उन्हे एक बँगलेमे बड़े आरामसे रखा और जोहरा नामक एक वेश्या उनके मनोरंजनके लिए नियुक्त की गयी। उधर जालपा रतनके परामर्शसे शतरंज-सम्बन्धी ५०)का एक विज्ञापन प्रकाशित करती है। जिस व्यक्तिने वह विज्ञापन जीता, वह रमानाथ ही थे और इससे जालपाको मालूम हो गया कि वे कलकत्तेमें है। खोजते-खोजते वह देवीदीन खटिकके यहाँ पहुँच जाती है और रमानाथको पुलिसके कुचक्रसे निकालनेकी असफल चेष्टा करती है। रतन भी उन्हीं दिनो अपने बूढ़े पतिका इलाज करानेके लिए कलकत्ते आती है। पतिकी मृत्युके बाद वह जालपाकी सहायता करनेमे किसी प्रकारका संकोच प्रकट नहीं करती। क्रान्तिकारियोंके विरुद्ध गवाही देनेके पश्चात् उन्हें जालपाका एक पत्र मिला, जिसने उनके भाव बदल दिये। उन्होंने जजके सामने सारी वास्तविकता प्रकट कर दी, जिससे उसको विश्वास हो गया कि निरपराध व्यक्तियोंको दण्ड दिया गया है। जजने अपना पहला निर्णय वापस ले लिया। रमानाथ, जालपा, जोहरा आदि वापस आकर प्रयागके समीप रहने लगे।

जालपाके कारण रमानाथमें आत्म-सम्मानका फिरसे उदय हो जाता है। जोहरा वेश्या-जीवन छोड़कर सेवा-व्रत धारण करती है। रमानाथ और जालपा भी सेवा-मार्गका अनुसरण करते हैं। जोहराने अपनी सेवा, आत्म-त्याग और सरल स्वभावसे सभीको मुग्ध कर लिया था। रतन मृत्युको प्राप्त हुई। एक बार प्रयागके समीप गंगामें डूबते हुए यात्रीको बचाते समय जोहरा भी बह गयी। रमानाथने कोशिश की कि उसे बचानेके लिए आगे बढ़ जाय। जालपा भी पानीमें कूद पड़ी थी। रमानाथ आगे न बढ़ सके। एक शक्ति आगे खींचती थी, एक पीछे। आगे

की शक्तिमें अनुराग था, निराशा थी, बलिदान था। पीछे की शक्तिमें कर्त्तव्य था, स्नेह था, बन्धन था। बन्धनने रोक लिया। कलकत्तेमें जोहरा विलासकी वस्तु थी। प्रयागमें उसके साथ घरके प्राणी-जैसा व्यवहार होता था। दयानाथ और रामेश्वरीको यह कह कर शान्त कर दिया गया था कि वह देवीदीनकी विधवा बहू है। जोहरामें आत्म-शुद्धिकी ज्योति जगमगा उठी थी। अपनी क्षीण आशा लिये रमानाथ और जालपा घर लौट गये। उनकी आँखोंके सामने जोहराकी तस्वीर खड़ी हो जाती थी। —ल० सा० वा०

गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'- उन्नाव जिलेके हड़हा नामक ग्राममें सन् १८८३ ई० में जन्म हुआ। हिन्दी और उर्दू के साथ उन्हें मिडिल स्कूलतककी ही शिक्षा प्राप्त हुई। इसके पश्चात् १६ वर्षकी आयुमें ही सन् १८९९ ई० में ही मिडिल स्कूलके अध्यापक हो गये। अध्यापनके साथ ही हिन्दीके प्राचीन साहित्य, उर्दू एवं फारसी साहित्य आदिका अध्ययन उन्होंने बराबर जारी रखा। प्रारम्भमे ही साहित्यके इस प्रेमने उन्हें शीघ्र ही साहित्यसर्जनके क्षेत्रमें ला खड़ा किया। सन् १९०४ या १९०५ में मनोहर-लाल मिश्रके 'रसिकमित्र' में उनकी पहली कविता प्रकाशित हुई थी। युवक कवि 'सनेही'को एक बातका विश्वास पहलेसे ही था कि कविको शिक्षा, साधना एवं अभ्यासकी बड़ी आवश्यकता होती है। वे यावज्जीवन इस तैयारीमे लगे रहे। इसी कारण उनकी अभिव्यंजना सदा अत्यधिक अनुशासित एवं रचना मर्यादित रही है। कुछ दिनोंकी इस तैयारी एवं अभ्यासके बाद सन् १९१३ में गणेशशंकर विद्यार्थीके 'प्रताप' में उनकी 'कृषक-क्रन्दन' कविता प्रकाशित हुई थी। इस कविताने तत्काल आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदीका ध्यान आकर्षित किया और उन्होंने 'सरस्वती' में लिखनेके लिए 'सनेही'जीको आमन्त्रित करते हुए दहेजकी कुप्रथापर लिखनेका आग्रह किया। उसी वर्ष द्विवेदीजी द्वारा दिये गये इस विषयपर उनकी कविता 'सरस्वती'मे प्रकाशित हुई। फिर वे लम्बे अरसेतक नियमित रूपसे 'सरस्वती'मे लिखते रहे। इस प्रकार गणेशजीने उन्हे राष्ट्रीय कविताओंके लिए प्रेरणा दी एवं द्विवेदीजीने समाज-सुधार तथा ऐतिहासिक पौराणिक आख्यानोंकी ओर आकर्षित किया। स्वामी नारायणानन्द द्वारा सम्पादित 'कवीन्द्र' पत्रिकामें भी 'सनेही'जी नियमित रूपसे लिखते रहे—पर यहाँपर क्षेत्र परम्पराप्राप्त विषयोंका चित्रण रहा। 'कवीन्द्र' के बन्द हो जानेके कुछ दिन बाद सन् १९२८ में उन्होने 'सुकवि' नामक 'काव्य-पत्रिका' निकाली, जिसने सन् १९५० तक अनवरुद्ध गतिसे हिन्दी कविताके सर्जन एवं प्रसारमें अपने ढंगसे योग दिया है। सैकड़ों कवियोंकी काव्याभिव्यक्तियोंको इसने उपस्थित कर उस भूमिका काम किया है, जिसपर खड़ी-बोली कविताका भवन खड़ा हो सका। समस्या-पूर्तियो आदिके द्वारा भाषाका परिष्करण एवं भाव-क्षेत्रका विस्तार ही नहीं हुआ, वाग्वैदग्ध्यकी भी स्थापना खड़ी-बोलीमें हो सकी। आजके कितने ही प्रसिद्ध कवियों या लेखकोंकी प्रारम्भिक रचनाओंको प्रकाशित करके 'सुकवि' ने उन्हे प्रोत्साहन दिया था तथा उनकी रचनाओंकी अभिव्यंजना पद्धतिको 'सुकवि'-सम्पादक 'सनेही' ने सँवारा था। इस क्षेत्रमें उनके प्रभाव एवं आचार्यत्वका इस बातसे सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि हिन्दीमें कवियोंका एक 'सनेही-सम्प्रदाय' ही है, जो कानपुरमें ही नहीं, कानपुरके बाहर भी दूर-दूरतक फैला है—तथा 'सनेही'जीको अपना गुरु कहकर गौरव-का अनुभव करता है। कवित्त और सवैया छन्दोंमें काव्य-रचना इस सम्प्रदायकी मुख्य शैली है।

गयाप्रसाद शुक्लका प्रारम्भमें कविनाम 'सनेही' था। परन्तु 'प्रताप'में छपनेवाली राष्ट्रीय कविताएँ उस युगमें एक अध्यापक लिखे—यह सरकारको सह्य न था। परिणाम स्वरूप नाना प्रकारके दबाओंसे बचनेके लिए उन्होंने 'त्रिशूल' उपनामसे कविताएँ लिखनी शुरू कर दीं एवं उनकी भाषामें भी उर्दूका रंग कुछ गहरा कर दिया। 'सनेही' ही त्रिशूल है, यह बात तबतक रहस्य ही बनी रही, जबतक कि वे मई सन् १९२१ में अध्यापकी छोड़कर कानपुर नहीं आ गये। परन्तु 'त्रिशूल' नामसे लिखना उन्होंने फिर बन्द नहीं किया। परुष संवेदनाएँ एवं राष्ट्रीय संघर्षका स्वर 'त्रिशूल' नामांकित कविताओंमे प्रकाश पाता रहा एवं शृंगार आदि परम्पराप्राप्त विषयोंपर कविता लिखनेका काम 'सनेही' नामके जिम्मे रहा। 'सनेही' नामसे लिखी जानेवाली कविताओंमे खड़ीबोली एवं ब्रजभाषा दोनों ही का टकसाली रूप हमे प्राप्त होता है। 'त्रिशूल'ने खड़ीबोली हिन्दी तथा उर्दूका समन्वय अपने काव्यमें करके उसे हिन्दी-उर्दू भाषी जनताके लिए सुबोध बनाना चाहा था परन्तु भाषाका यह समन्वय बहुत दूरतक सफल नहीं हो सका। इन तीनो ही काव्यभाषाओंमें उन्होंने अनुमानतः बीस सहस्रसे ऊपर छन्द लिखे हैं, जो दुर्भाग्यवश अबतक पूरी तरह संगृहीत नहीं हो सके हैं। इसी कारण उनके काव्यका समुचित मूल्यांकन फिलहाल कुछ कठिन है। 'प्रेम-पचीसी', 'कृषक क्रन्दन', 'राष्ट्रीय मन्त्र', 'राष्ट्रीय वीणा', 'त्रिशूल तरंग', 'कलामें त्रिशूल', 'संजीवनी' और 'करुणा कादम्बिनी' नामक उनकी कुछ छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ ही प्रकाशित हुई हैं। खड़ीबोली हिन्दीको काव्य-माध्यमके रूपमे विकसित, पुष्ट एवं प्रसारित करनेमें उनका स्थान किसी भी अंशमे श्रीधर पाठक, 'हरिऔध' एवं मैथिलीशरण गुप्तसे कम नहीं है। उर्दूकी परम्परासे घनिष्ठ रूपसे सम्बद्ध होनेके कारण खड़ी बोलीकी प्रकृतिका उन्हें ज्ञान था और इसी कारण उसे वे इतने परिष्कृत रूपमे उपस्थित कर सके थे। द्विवेदीयुगके कुछ पहलेसे ही ब्रजभाषा एवं खड़ीबोलीका जो विवाद प्रारम्भ हो गया था उसमें बहुधा खड़ीबोलीके समर्थकोंको दोनों ही माध्यमोंमें लिखकर खड़ीबोलीकी शक्ति प्रमाणित करनी पड़ी थी। 'सनेही'जी भी ऐसे ही कवियोंमे थे।

राष्ट्रीय भावधाराकी अपनी कविताओंमे 'सनेहीजी'ने एक ओर तो प्राचीन आदर्श चरित्रों एवं पौराणिक आख्यानोंका इतिवृत्तात्मक वर्णन किया है तो दूसरी ओर दलित-पीड़ित-शोषित जनकी वेदनाका मार्मिक चित्रण करते हुए उसके निराकरणका आह्वान कर उन्होंने पाठककी चेतनाको जागृत एवं विशद बनानेका ऐतिहासिक कार्य किया है। 'करुणा

कादम्बिनी'में संगृहीत ये रचनाएँ समसामयिक कष्ट, शोक एवं करुणाकी कहानियाँ हैं, जो सीधे-सीधे भी अभिव्यक्त हुई हैं एवं इतिवृत्तात्मक युगके कविके मुखसे मिलते-जुलते पौराणिक आख्यानोंके रूपमें भी फूट पड़ी हैं। इसके अतिरिक्त सत्याग्रह संग्राममें जानेवाले वीरोंका उन्होंने स्वागत ही नहीं किया, उनके गानेके लिए बलिदानी गीतों एवं प्रयाण गीतोंका भी प्रणयन किया। आर्थिक विषमता, अस्पृश्यता, भेदभाव, देश, भाषाकी समस्याएँ विविध रूपोंमें 'त्रिशूल'के काव्यमें अभिव्यक्त हुई हैं।

पर गयाप्रसाद शुक्ल केवल 'त्रिशूल' ही नहीं थे, वे 'सनेही' भी थे। अपने इस 'सनेही' रूपमें उन्होंने कलात्मक क्षमताका पूरा परिचय दिया है। 'त्रिशूल'की कविताएँ जहाँ अत्यधिक सामयिक एवं क्षणिक-आवेगसम्मत है, वहाँ 'सनेही' अधिक प्रशान्त, पर स्थायी हैं। इस दूसरे रूपमे भाषा एवं संवेदना दोनों ही अधिक अनुशासित हैं। उनके श्रृंगार या नीतिके छन्द ब्रजभाषाके सिद्धहस्त छन्दोंके साथ सुविधापूर्वक रखे जा सकते हैं। अन्तरमात्र इतना है कि अत्यधिक अलंकरणके स्थानपर एक प्रकारकी रोमांटिक कल्पना और वैयक्तिक अनुभूति उन्हें बराबर नया बनाये रही है। इसके अतिरिक्त अर्थगम्भीर्य, बिम्बविधान, शब्द-चयन एव मुहावरेदार भाषाका प्रवाह इन छन्दोंको पर्याप्त महत्त्वपूर्ण बना सके है। उर्दू परम्परासे निकटका परिचय होनेके कारण उनकी अभिव्यंजनामें उक्तिका चमत्कार एव सीधेपनकी वक्रता और चोट भी प्रकट हुई है। ऊहात्मक प्रसंग और चमत्कार लानेमे उन्होंने अपने उर्दू-फारसी ज्ञानका समुचित प्रयोग किया है।

हिन्दी-कविताको कवि-सम्मेलनोंके माध्यमसे जनता तक पहुँचानेका मुख्य श्रेय भी 'सनेहीजी'को ही है। वे कवि-सम्मेलनोंके वास्तविक प्रतिष्ठापक कहे जा सकते हैं। इस कार्यने हिन्दी-कविताको समाजसे प्रारम्भसे ही सम्बन्धित रखनेमे बडी सहायता दी है—परन्तु कवि-सम्मेलनोंने उनकी रचनाक्षमताको भी धक्का पहुँचाया है। प्राचीन परिपाटीके रसबोधमें पगी जनताको परितुष्ट करनेमें वे अपनी नवीनता खोते गये—उनके भाव जगत्का भी सूक्ष्मताके स्तरपर विकास नहीं हो सका। इसी कारण जहाँ छायावादी कवि शिल्प एवं भावके अत्यधिक समृद्ध एवं नूतन प्रयोगोंकी ओर बढ़े, वहाँ वे द्विवेदीयुगीन प्रणालियोंसे भी पीछे हटकर रीतिकालके प्रभावको अधिकाधिक ग्रहण करते गये। इसका प्रमाण और प्रभाव कवि-सम्मेलनोंमे अत्यन्त स्थूल रूपमे पाया जा सकता है। छायावादी काव्यचेतनाके रसबोधमे पगे श्रोता-समाजने धीरे-धीरे 'सनेही' स्कूलके छन्दकारोंको अपदस्थ कर दिया एवं नये गीतकार उसपर अपना कब्जा जमाते गये। —दे० शं० अ०

गरीबदास–सन्त कवि गरीबदासका जन्म रोहतक जिलेकी झज्जर तहसीलके छुडानी ग्राममे सं० १७७४ (सन् १७१७ ई०)की वैशाख सुदी १५ को हुआ था। इनके पिता जातिके जाट तथा व्यवसायसे जमींदार थे। जनश्रुति है कि गरीबदास जब १२ वर्षकी आयुके थे, उस समय भैंसें चराते हुए उन्हें कबीर साहबके दर्शन हुए थे। एक अन्य जनश्रुति यह है कि गरीबदासको स्वप्नमें कबीर साहबके दर्शन हुए और उसी क्षणसे इन्होंने उन्हें अपना गुरु मान लिया। सत्य यह है कि गरीबदास, कबीर साहबको अपना पथ-प्रदर्शक मानते थे और उन्हींके सिद्धान्तोंसे प्रभावित भी थे। गरीबदासने कभी भी किसी सम्प्रदाय विशेषका भेष धारण नहीं किया और न उन्होंने गार्हस्थ्य जीवनका परित्याग ही किया। पारिवारिक जीवनमें रहते हुए इन्हें चार पुत्र तथा दो पुत्रियाँ प्राप्त हुईं। वे आजीवन छुडानीमें रहकर सत्सग करते रहे। छुडानीमें भादों सुदी २, सं० १८३५ को इन्होंने पार्थिव शरीरका परित्याग करके स्वर्गारोहण किया। गरीबदासके साकेतवास हो जानेके बाद उनके गुरुमुख शिष्य सलोतजी गद्दीपर बैठे। अपने जीवन-कालमें गरीबदासने छुड़ानीमें एक मेला लगवाया था, जो अब तक वर्षमें एक दिन लगता है।

गरीबदास 'गरीब-पन्थ'के संस्थापक थे। पूर्वी पंजाब, दिल्ली, अलवर, नारनौल, विजेसर तथा रोहतक इसके केन्द्र है। पूर्वी पंजाबमें यह पन्थ बडा जनप्रिय है। इस पन्थके शिष्योंमें सभी वर्ग, सभी वर्ण तथा सभी जातियोंके व्यक्ति पाये जाते है, हिन्दू मुसलमानोंका भी कोई भेद नहीं माना जाता है।

गरीबदास बडे भावुक, शीलवान् तथा श्रद्धालु प्राणी थे। उन्होंने २४ हजार साखियों और पदोंका संग्रह 'हिंखर बोध' नामसे प्रस्तुत किया था। इनमें-से १७ हजार रचनाएँ इनकी हैं और शेष कबीरदास की हैं। इन १७ हजार पदों एवं साखियोंमे से कुछका सग्रह बेलवेडियर प्रेस, प्रयागसे 'गरीबदासकी बानी' नामसे प्रकाशित हुआ है। प्रसिद्ध है कि कबीर साहबकी शैलीपर उन्होंने भी एक बीजक नामक ग्रन्थकी रचना की थी। गरीबदासके सम्बन्ध में अनेक चमत्कार प्रसिद्ध हैं। बादशाहके कैदखानेसे चमत्कार द्वारा निकल भागना, श्रद्धाविहीन व्यक्तियोंमें श्रद्धाका बीज अंकुरित कर देना आदि विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं।

गरीबदास शब्दातीत, निर्गुण-सगुणसे परे ब्रह्मके उपासक थे। उन्होंने कहा भी है—"शब्द अतीत अगाध है, निरगुन सरगुन नाहि।" यह ब्रह्माण्ड उस ब्रह्माण्डसे किसी प्रकार भिन्न नहीं है। सामान्य मानवको भ्रान्ति का जो आभास होता है, उसका कारण माया है—"दास गरीब वह अमर निज ब्रह्म है, एक ही फूल, फल, डाल है रे।" गरीबदासने स्वानुभूतिके लिए "सुरत व निरतका परचा" हो जाना अनिवार्य बताया है। —त्रि० ना० दी०

गरुड़–गरुड़ एक पौराणिक पक्षीके रूपमें विख्यात है, जिसका आधा शरीर पक्षीका और आधा शरीर मनुष्यका था। गरुडके अनेक पर्याय हैं; यथा—गरुत्वान्, तार्क्ष्य, वैनतेय, खगेश, नागान्तक, विष्णुरथ, सुपर्ण, पन्नगाशन, पक्षसिंह, उरगाशन, शाल्मलीस्थ, खगेन्द्र आदि। गरुड़ विष्णुका वाहन है। पुत्रेष्टि यज्ञके अनन्तर बालखिल्योंकी तपस्याके फलस्वरूप कश्यप और विनतासे पक्षीराज-गरुड़की उत्पत्ति हुई। कद्रू और विनताकी शत्रुताके कारण ये कद्रूपुत्र सर्पोंके बहुत बड़े शत्रु हैं। इनका मुख श्वेत, पंख लाल और शरीर सुनहला है। इनके पुत्रका नाम सम्पाती और पत्नीका

नाम विनायका है। अपनी माताको कद्रू से स्वतन्त्रता दिलानेके लिए इन्होंने पाताल लोकमे अमृत चुराया था, जिसके फलस्वरूप इन्द्रसे घोर युद्ध हुआ। अन्तमें अमृत इन्द्र को प्राप्त हुआ। मानसके अनुसार एक बार गरुड़के मनमें रामके परम ब्रह्मत्वपर सन्देह उत्पन्न हुआ क्योंकि लंका युद्ध में मेघनादने उनको नागपाशमें आबद्ध कर लिया और गरुड़को उनका बन्धन काटनेके लिए जाना पड़ा। इस सन्देहको गरुड़ने नारद आदिसे कहा किन्तु किसी भी प्रकार सन्देह दूर नहीं हुआ। अन्तमें शंकरजीने इन्हें काकभुशुण्डिके पास भेजा। वहाँ जाते ही इनका सन्देह दूर हो गया। गरुड़ रामचरित मानसके चार वक्ता और श्रोता वर्गमेंसे काकभुशुण्डि और गरुड़ भी एक वर्ग है (दे० मानस १, १४५, २९२, ४, ५, २०, ४)। कृष्णकाव्यमे भी गरुड़के उल्लेख मिलते हैं (सू० सा०, प० ७ आदि)। —रा० कु०

गरुड़ पुराण–अठारह पुराणोंमें-से एक। गरुड़ पुराणकी प्रकृति सात्विक मानी गयी है। गरुड़ कल्पमे विष्णु भगवानने इसे सुनाया था। इसमे विनतानन्दन गरुड़के जन्मकी कथा कही गयी है। गरुड़ पुराणके वर्ण्य विषयका अधिकाश तन्त्रोंके मन्त्र और ओषधियोंसे सम्बद्ध है। रत्न, धातु आदिकी परीक्षा-विधि सविस्तार दी गयी है। इसके पश्चात् सृष्टिप्रकरणसे लेकर सूर्य तथा यदुवंशी राजाओंतकका इतिहास वर्णित किया गया है। कुछ पाश्चात्य विद्वानोंने इस पुराणकी प्रामाणिकतापर सन्देह प्रकट किया है। —रा० कु०

गांगेय नरोत्तम शास्त्री–इनका जन्म १९०० ई० में वाराणसीमें हुआ। ये कुछ समयतक काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमें संस्कृतके अध्यापक रहे। बादमें कलकत्ता चले गये। वहाँ हिन्दी साहित्यके लिए उपयुक्त वातावरण तैयार करनेमें इन्होंने पर्याप्त योगदान दिया। ये प्रमुखतः कवि थे। १९५५ ई० में इनकी मृत्यु हुई।

कृतियाँ—'गांगेय दोहावली', 'गांगेय तरंग', 'समस्या पूर्ति चन्द्रिका', 'प्रणय पूरण', 'करुणा तरंगिणी'। —स०

गांडीव–अर्जुनका प्रिय धनुष था। एक बार अर्जुनने अग्निका अजीर्ण रोग मिटाया था, जिससे प्रसन्न होकर अग्निने उन्हें गाण्डीव नामक धनुष वरुणसे दिला दिया था। गाण्डीवके सम्बन्धमें प्रसिद्ध है कि इसका निर्माण ब्रह्माने किया था। तत्पश्चात् उन्होने सोमको और सोमने वरुणको दे दिया था। मृत्युके पूर्व इस विशालकाय गाण्डीवका उपयोग न कर सकनेके कारण अर्जुनने इसे पुनः वरुणको समर्पित कर दिया ('जगद्रथ वध', ८०)। —रा० कु०

गांधारी–गान्धार देशके सुबल नामक राजाकी कन्या थी। इसीलिए इसका नाम गान्धारी पड़ा। गान्धारी धृतराष्ट्रकी पत्नी और दुर्योधनादिकी माता थीं। शिवके वरदानसे गांधारीके १०० पुत्र हुए, जो कौरव कहलाये। गान्धारी पतिव्रताके रूपमें आदर्श थीं। पतिके अन्धा होनेके कारण विवाहोपरांत ही गान्धारीने आँखोपर पट्टी बाँध ली थी तथा उसे आजन्म बाँधे रही। महाभारतके अनन्तर गान्धारी अपने पतिके साथ वनमे गयीं। वहाँ दावाग्निमे वे भस्म हो गयीं (सू० सा०, प० २८४)। —रा० कु०

गाधि–ये विश्वामित्रके पिताके रूपमें विख्यात हैं। वायु पुराणके अनुसार गाधि कुशाश्वके पुत्र थे। इनकी माता पुरुकुत्सकी कन्या थीं। ऋचीक ऋषिके दिये हुए चरुके प्रभावसे इनके विश्वामित्र नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। इस बालकमें ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनोंके गुण विद्यमान थे। इनकी कन्याका नाम सत्यवती था। ये कान्यकुब्ज देशके राजा थे। नाभादासके अनुसार इन्हींके कन्याके पुत्र जमदग्नि मुनि हुए, जिनके आत्मज परशुराम कहे जाते है। —रा० कु०

गायत्री–प्रेमचन्दकृत 'प्रेमाश्रम'की पात्र। प्रारम्भमें गायत्री एक गौरवशीला नारी है। उसे अपने सतीत्व और स्वर्गीय पतिके प्रति अनुरक्तिपर गर्व है। ज्ञानशंकरके कुचक्रमें पड़कर वह पहले तो अपने प्रेमको धर्मपर आधारित करती है, किन्तु शीघ्र वह उसके मनोवेगोपर अधिकार प्राप्त कर लेता है। वास्तवमें ज्ञानशंकरकी तीव्र बुद्धि, लेखन-शक्ति, भाषण-कला आदिने गायत्रीको अभिभूत कर लिया था। उसके कारण गायत्रीको सम्मान भी मिला। इसीलिए उसका ज्ञानशंकरके प्रति 'राधा-भाव' धारण कर लेना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। धीरे-धीरे इस बातका उद्घाटन भी हो जाता है कि गायत्रीका भक्ति-भाव उसकी विलासिताका आवरणमात्र है किन्तु इतनेपर भी वह अपना सर्वनाश न कर पायी थी। विद्याकी मृत्युने जब उसकी आँखे खोल दी तो वह आत्म-मन्थनमें प्रवृत्त हुई और उसने सज्जनताके आवरणमे ज्ञानशंकरकी असज्जनता पहचानी। उसकी गौरवशीला प्रकृति फिर स्वच्छन्द होनेके लिए तड़पने लगी। जिस नारीको अपने आत्मबलपर घमण्ड था, जो इन्द्रिय-सुखको तुच्छ समझती थी, वह ज्ञानशंकरके मन्त्रसे ऐसी मारी गयी कि आत्म-ग्लानिके सिवा उसके जीवनमें कुछ और न रह गया। अब वह आत्म-शुद्धिकी क्रियाओंमे तल्लीन रहने लगी। आत्म-ग्लानिकी विषम और भीषण पीडासे पीड़ित होकर ही वह पहाड़से गिरकर मर जाती है। गायत्रीका अन्त एक मृदु, सरल, निष्कपट, उदार, नम्र और प्रेममयी रमणीका भीषण अन्त है। —ल० सा० वा०

गार्गी–'गार्गी' नामसे दो सन्दर्भ मिलते हैं—

(१) 'गार्गी' एक अत्यन्त ब्रह्मनिष्ठ तथा पण्डिता वैदिक स्त्री थी। जनककी राज्यसभामें याज्ञवल्क्य मुनिसे इसने शास्त्रार्थ किया था। पाणिनिने भी इनका उल्लेख किया है।

(२) 'गार्गी' दुर्गाका एक पर्याय भी है। —रा० कु०

गार्सां द तासी–गार्सां द तासीका जन्म फ्रांसमे हुआ था। ये वहाँके एक राजकीय स्कूलमे प्रचलित पूर्वी भाषाओंके प्राध्यापक थे। इसके अतिरिक्त वे फ्रासीसी इंस्टीट्यूट, पेरिस, लन्दन, कलकत्ता, मद्रास और बम्बईकी एशियाटिक सोसाइटियोंके सदस्य भी थे। सेण्ट पीटर्सबर्गकी इम्पीरियल एकेडेमी ऑव साइन्सेज, म्यूनिख, लिस्बन और ट्यूरिनकी रॉयल एकेडेमियों, नार्वे और कोपेनहेगेनकी रॉयल सोसाइटियों, अमेरिकाके ओरियण्टल, लाहौरके 'अंजुमन' और अलीगढ़ इन्स्टीट्यूटने इन्हें अपनी सदस्यता प्रदान की थी। इन्हें 'नाइट ऑव दि लिजियन ऑव ऑनर' (फ्रांस), 'स्टॉर ऑव दि साउथ पोल' आदि उपाधियाँ भी मिली थीं।

गार्सां द तासीकी पुस्तकें निम्नांकित हैं—'इस्त्वार द ल लितरेत्यूर ऐंदुई ऐ ऐंदूस्तानी', 'ले ओत्यूर ऐंदूस्तानी ऐल्यूर इवरज' (हिन्दुस्तानी लेखक और उनकी रचनाएँ १८६८, पेरिस संस्करण), 'ल लॉंग ऐ ल लितरेत्यूर ऐंदूस्तानी द १८५० अ १८६९'(१८५० से १८६९ तक हिन्दुस्तानी भाषा और साहित्य), 'दिस्कुर द इवरत्यूर द् कुर द ऐंदूस्तानी' (हिन्दुस्तानीकी प्रारम्भिक गति पर भाषण, १८७४, पेरिस, द्वितीय संस्करण), 'ल लॉंग ऐ ल लितरेत्यूर ऐंदूस्तानी—रेव्यू ऐन्युऐल, १८७०-१८७६', (हिन्दुस्तानी भाषा और साहित्य, वार्षिक समीक्षा १८७०-१८७६, १८७१ और १८७३-१८७६ में पेरिससे प्रकाशित), 'रुदीमॉं दल लॉंग ऐंदूस्तानी' (हिन्दुस्तानी भाषाके प्राथमिक सिद्धान्त),'मेम्वार सूरल रेलिजिओं मुसलमान दॉं लिंप'(भारतमें मुसलमानोंके धर्मका विवरण), 'ल पोएजी फिलोसोफिक ऐ रेलिज्यूस शै लै पैर्सां' (फारस-निवासियोंका दार्शनिक और धार्मिक काव्य), 'रहतोरिक दै नैसिओं मुसलमान' (मुसलमान जातियोंका काव्य-शास्त्र) तथा अन्य।

इनके इतिहास-ग्रन्थसे ज्ञात होता है कि इन्होंने भारतके लोकप्रिय उत्सवोंका भी विवरण प्रस्तुत किया था। 'खुतबात तासी' नामसे उनके कुछ भाषण उर्दूमें अनूदित हुए हैं',अन्य ग्रन्थोंका अनुवाद उपलब्ध नहीं है। केवल 'इस्त्वार द ल लितरेत्यूर ऐंदुई ऐ ऐंदूस्तानी'के ऐंदुई (हिन्दई) से सम्बन्धित अंशका अनुवाद केवल हिन्दीमें उपलब्ध है।

गार्सां द तासीने 'महाभारत'का भी एक संस्करण प्रकाशित किया था। तासी भाषाओंमे हिन्दी तथा हिन्दुस्तानीके साहित्यिक एवं भाषात्मक पक्षोंका विशेष ज्ञान रखते थे। भारतके ऐतिहासिक, धार्मिक जीवनमें भी उनका पुष्कल परिचय था। ये काव्य-शास्त्रके भी मर्मज्ञ थे।

'इस्त्वार द ल लितरेत्यूर ऐंदुई ऐ ऐंदूस्तानी' हिन्दी और हिन्दुस्तानी साहित्यका सर्वप्रथम इतिहास ग्रन्थ माना जाता है। उसमें हिन्दी-उर्दूके अनेक कवियों और लेखकोंकी जीवनियाँ, ग्रन्थ-विवरण और उद्धरण हैं। इसका पहला संस्करण दो भागोंमें १८३९ तथा १८४७ मे प्रकाशित हुआ था। दूसरा परिवर्द्धित संस्करण तीन भागोमे १८७०-७१ में प्रकाशित हुआ था। सरजार्ज ग्रियर्सनने इसका उपयोग किया था और 'दि माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑव हिन्दुस्तान' लिखते समय इससे लाभ उठाया था। इस ग्रन्थने हिन्दी साहित्यकी दीर्घकालीन परम्पराके बिखरावको सूत्रबद्ध किया है। तासीके ग्रन्थसे बहुत विस्तृत सूचनाएँ मिलती हैं।

गार्सां द तासीके अनुसार हिन्दुस्तानी 'हिन्दी' या 'हिन्दकी' के अनिश्चित नामसे तथा यूरोपियन लोगों द्वारा 'हिन्दुस्तानी'के नामसे पुकारी जाती है। स्थान और व्यक्तियोंकी रुचिके अनुसार उसे प्रायः फारसी लिपिमें लिखा जाता है तथा हिन्दू देवनागरी लिपिमे लिखते हैं। गार्सां द तासी हिन्दुस्तानी साहित्यके महत्त्वको स्वीकार करते हैं और उसे किसी दूसरी भाषासे हीन नहीं समझते। —ह० दे० बा०

गिरती दीवारें—यह उपेन्द्रनाथ 'अश्क' का उपन्यास है। इसका रचनाकाल १९३८ ई०से प्रारम्भ होकर १९४५ ई० में समाप्त होता है। इसके अबतकके तीन संस्करण हो चुके हैं—प्रथम १९४७, द्वितीय १९५१, तृतीय १९५७। तीसरे संस्करणमें उपन्यासकी कथावस्तुमें पर्याप्त विस्तार हुआ है।

'गिरती दीवारें'में १९३५-४० ई०के पंजाबके निम्न मध्यवर्गीय जीवनका यथार्थ चित्र प्रस्तुत हुआ है। प्रायः सात सौ पृष्ठोंके इस उपन्यासके कथानायक चेतन शराबी, अत्यन्त जीवित, परन्तु उग्र स्वभावके पण्डित शादीराम पण्डितका एक लड़का है—छः भाइयोंमें दूसरा। उपन्यासके प्रारम्भमें चेतन बी० ए० पास करके स्कूलमें अध्यापक हो चुका है। कुमारावस्थामें उसका प्रथम प्रेम कुन्तीसे होता है, पर उससे उसका विवाह न होकर, उसकी इच्छाके विरुद्ध दीनबन्धुकी लड़की चन्दासे होता है। चन्दा चेतनको बिलकुल पसन्द नहीं है, अतः वह जालन्धरके कलोवानी मुहल्लेसे भागकर लाहौर पहुँचता है और अनेक प्रकारके जीवनसघर्ष करता है। चंगड मुहल्लेमें वह प्रकाशो और केशर नामक दो लड़कियोंके सम्पर्कमें आता है। फिर वह अपनी पत्नी चन्दाकी चचेरी बहन लीलाको अपने हृदयमें स्थान देता है। किन्तु एक मानवसुलभ भूलके कारण लीला और उसके बीच एक दीवार खड़ी हो जाती है। इसी बीच चेतन कविराज रामदासके सम्पर्कमें आता है। इधर लीलाका विवाह रंगूनमें काम करनेवाले एक अधेड़, कुरूप मिलिट्री एकाउण्टेण्टसे हो जाता है।

'गिरती दीवारें'की विशेषता इसके कथासूत्रमें नहीं है, वरन् इसके परम यथार्थवादी चरित्र-चित्रण, व्यक्तित्व-प्रतिष्ठा और समूचे निम्न मध्यवर्गीय समाज और उसके बीच एक युवककी कुण्ठाओं, इच्छाओं तथा उसकी विकसनशील चेतनाके दिग्दर्शनमें इसकी सारी कलात्मकता प्रकट हुई है। चेतन इस समाजके युवक वर्ग, उसकी समस्त इच्छाशक्ति और कुण्ठाओंका सजीव प्रतिनिधि है, जिसे उपन्यासकारकी सौन्दर्यदृष्टिके माध्यमसे प्रतीककी भी संज्ञा दी जा सकती है। चेतन नाम स्वभावतः उस चेतनाकी ओर सफल संकेत है, जो किसीभी मध्यवर्गीय युवकके सम्पूर्ण मनका चित्र उपस्थित करती है। अपने रक्तमें परम्परासे प्राप्त रूढ मान्यताओंका संस्कार लिए हुए तथा अर्थाभाव तथा उग्र पिताके दमनके फलस्वरूप चेतनमें कितनी मनोग्रन्थियाँ पड जाती है तथा उसे कैसे गन्दे वातावरणों और कटु सघर्षोंसे गुजरना पडता है, इसका एक अपूर्व हृदयग्राही, अणुवीक्षक दृष्टिमय चित्र इस उपन्यासमें प्रस्तुत किया गया है।

चेतन ही उपन्यासकी समूची चेतनाका चरित-नायक है, जिसके इर्द-गिर्द अन्य अनेक मध्यवर्गीय चरित्रोंके जीवन्त रूप उभरे हैं। निश्चय ही इस वर्गके साथ 'अश्क'की अनुभूति और लगाव गहरा और व्यापक है। चेतनके बड़े भाई रामानन्द कट्टर क्रोधी और शराबी; पिता पण्डित शादीराम, धैर्य, स्नेह, उदारता और त्यागकी मूर्ति; उसकी माँ झगड़ालू तथा कर्कश स्वभाववाली; चेतनकी भाभी; उसकी सीधी-सादी पत्नी चन्दा; सुन्दर-आकर्षक वयःसन्धिको पार कर दमकते हुए रूपवाली लीला, केशर, प्रकाशो, धूर्त कविराज, बेइमान हुनर साहब तथा इस तरहके अन्य अनेक सजीव पात्रोंके व्यक्तित्व-प्रतिष्ठासे यह सर्वथा स्पष्ट है कि 'गिरती

दीवारें'के चरित्र सर्वत्र यथार्थ, सहज, अकृत्रिम तथा सीधे जीवनसे लिये गये हैं।

अथक लम्बाई, व्यापकता, गहनता तथा छोटे-छोटे तफसीलोंको लेकर चलनेवाली रचना-शैली, उसके शिल्पकी अन्यतम विशेषताएँ हैं। 'पैटर्न'में नायकके अन्दर-बाहरकी उलझनों, संघर्षोंकी कलात्मक बिनावट सर्वत्र उजागर है। 'अश्क'की अन्य औपन्यासिक कृतियों 'गर्म राख', 'बडी-बड़ी आँखें' आदिकी अपेक्षा 'गिरती दीवारें'का स्थान महत्त्वपूर्ण है। —ल० ना० ला०

गिरिजा–दे० 'पार्वती'। —रा० कु०

गिरिजाकुमार घोष–आप इण्डियन प्रेस, प्रयागके मैनेजर थे। आपके समयमें ही 'सरस्वती' (१९०० ई०)का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। 'पार्वतीनन्दन'के नामसे लिखी हुई आपकी कहानियाँ हिन्दी कथा-साहित्यकी प्रारम्भिक रचनाओंमें हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी कहानीका हिन्दीमें पहला अनुवाद आपने ही किया, जो १९०१ ई०की 'सरस्वती'में प्रकाशित हुआ। कुछ समय तक आपने लीडर प्रेसमें भी मैनेजरके पदपर कार्य किया। आपकी मृत्यु ४२ वर्षकी अवस्थामें १९२० ई०में हुई। —स०

गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश'–आपका जन्म १८९९ ई०में जौनपुरमें हुआ। आपने प्रयाग विश्वविद्यालयसे बी० ए०की डिग्री ली। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' आपके गुरु थे। उन्हींके निर्देशनमें आपने काव्य-कलाकी साधना शुरू की।

'गिरीश'जी कवि, आलोचक एवं कथाकार थे। आलोचनाके क्षेत्रमें 'गुप्तजीकी काव्यधारा' (१९३६), 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल' (१९५५) एवं 'महाकवि हरिऔध' (१९३४) उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं। कथा-साहित्यके अन्तर्गत 'बाबू साहब', 'जगद्गुरु', 'पोफेसर', 'विद्रोह', 'पण्डाजी', 'लम्बोदर त्रिपाठी' एवं 'बहता पानी' उल्लेखनीय हैं। कविताके क्षेत्रमें आपकी पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित छिटपुट कविताएँ तथा 'तारक-वध' (१९५८) नामक महाकाव्य महत्त्वपूर्ण है।

एक आलोचकके रूपमें गिरीशजीमें वे सभी गुण थे, जो सफल आलोचकके लिए अनिवार्य हैं तो भी कवियोंकी तुलना करते समय वे पक्षधर हो ही गये हैं। रामचन्द्र शुक्लपर उनका कार्य अवश्य सराहनीय है।

एक कविके रूपमें वे उतने विख्यात नहीं हुए। उनकी महत्त्वाकांक्षाका अन्तिम प्रयास उनका महाकाव्य 'तारक-वध' है। 'तारक वध' इतिवृत्तात्मक शैलीमें लिखा गया कदाचित् हिन्दीका सबसे बड़ा महाकाव्य है। इसकी कथा 'कुमारसम्भव'के अनुरूप है।

'गिरीश'जीका मुख्य कार्य-क्षेत्र आलोचना ही माना जायगा। हिन्दी आलोचनाके प्रारम्भिक दिनोंमें किया गया उनका कार्य बराबर आदरकी दृष्टिसे देखा जायगा। —ह० दे० बा०

गिरिधर कविराय–गिरिधरके समय तथा जीवनके सम्बन्धमें प्रामाणिक रूपमें कुछ कहना कठिन है, क्योंकि अन्तःसाक्ष्य या बहिःसाक्ष्य, किसीसे भी कोई आधार प्राप्त नहीं है। इनकी कुण्डलियाँ अधिकांशतः अवधीमें मिलती हैं। इससे अनुमान होता है कि ये अवधी प्रदेशके रहनेवाले थे। नामके साथ 'कविराय' या 'कविराज' लगे होनेसे ये भाट जातिके ज्ञात होते हैं। इलाहाबादके आस-पासके भाटोंसे पूछनेपर भी इसीकी पुष्टि होती है। ये भाट इनकी कुण्डलियाँ तथा इसी प्रकारके अन्य छन्द गा-गाकर भीख माँगते फिरते हैं। शिवसिंह सेंगरके अनुसार इनका जन्म सन् १७१३ में हुआ था। इस आधारपर इनका रचनाकाल १८वीं सदीका मध्य माना जा सकता है। इनके सम्बन्धमें एक अत्यन्त प्रसिद्ध जनश्रुति है। कहा जाता है कि एक बढ़ईसे किसी कारण इनकी अनबन हो गयी। बढ़ईने इनसे बदला लेनेके बारेमें सोचा और उसने एक ऐसी चारपाई बनाकर वहाँके राजाको दी कि इस चारपाई पर ज्योंही कोई सोता था, उसके चारों कोनोंपर लगे चार पंखे चलने लगते थे। राजा बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उसी प्रकारकी कुछ और चारपाइयाँ बनानेकी आज्ञा दी। उसने कहा कि इसके बनानेके लिए बेरकी लकड़ी चाहिए, गिरिधर कविरायके आँगनमें एक बेरका अच्छा पेड़ है, वह मुझे दिलवा दीजिये। राजाने गिरिधरसे कहा। गिरिधरने बहुत अनुनय विनय की, किन्तु कोई फल न हुआ और उनके आँगनका पेड़ काट ही लिया गया। गिरिधरको स्वाभावतः बहुत बुरा लगा और वे पत्नीको साथ लेकर राज्य छोड़कर निकल गये। वे फिर कभी उस राज्यमें नहीं लौटे और आजीवन पत्नीके साथ घूमते तथा अपनी कुण्डलियाँ सुनाकर माँगते-खाते रहे। कहा जाता है कि उनकी जिन कुण्डलियोंमें 'साईं' शब्दकी छाप है वे उनकी पत्नी द्वारा पतिको अर्थात् (स्वामी या साईं) को सम्बोधित करके लिखी गयी हैं। यदि यह बात ठीक है तो उनके नामसे प्रचलित काफी कुण्डलियाँ उनकी स्त्रीकी भी लिखी हैं।

ये कुण्डलियाँ हस्तलिखित पोथियोंके रूपमें भी मिलती हैं। इनके छोटे-बड़े लगभग दस संस्करण निकल चुके हैं, जिनमें 'कुण्डलियाँ', मुस्तफाए प्रेस, लाहौर (१८७४ ई०); 'कुण्डलियाँ', नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ (१८३३); 'गिरिधर कविराय', गुलशने पंजाब प्रेस, रावलपिण्डी (१८९६) और 'कुण्डलियाँ', भार्गव बुकडिपो, बनारस (१९०४) प्रमुख हैं। सबसे बड़ा संग्रह 'कविराय गिरिधर-रायकृत कुण्डलियाँ', खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई (१९५३) है, जिसमें ४५७ कुण्डलियाँ हैं। इन कुण्डलियोंके अतिरिक्त इनके लिखे कुछ दोहे, सोरठे और छप्पय भी मिलते हैं।

उत्तरी भारतकी हिन्दी जनतामें गिरिधरकी कुण्डलियोंका बहुत अधिक प्रचार है। इस प्रचारका कारण है, इनकी कुण्डलियोंमें दैनिक जीवनके लिए अत्यन्त उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण बातोंका सरल और सीधी भाषा-शैलीमें वर्णित होना। इनके नीति-काव्यके प्रमुख विषय जाति, पिता, पुत्र, युग, यश, नारी, गृहिणी, चिन्ता, बैर, विश्वास, बनिया, सत्य, संग, शत्रु, धन, गुण, व्यवहार, राजा, चुगला, धर्म, भाग्य, मन, दान, होनहार, मूर्ख तथा ईश्वर आदि हैं। इनमें नीतिकी परम्परागत बातें भी हैं और अपने अनुभवपर आधारित नयी बातें भी। इनमें काव्यत्वका प्रायः बिल्कुल ही अभाव है और इस रूपमें इन्हें कवि या

सूक्तिकार न कहकर पद्यकार कहना अधिक उचित है। हाँ, इनकी कुछ अन्योक्तियाँ अवश्य मिलती हैं, जिन्हें काव्यकी श्रेणीमें रखा जा सकता है, किन्तु ऐसे छन्द सामान्य होनेके साथ-साथ संख्यामें भी अधिक नहीं हैं। पर्याप्त मात्रामें नीति-काव्य लिखनेवाले थोड़े ही कवि हैं और उनमें गिरिधर भी हैं, किन्तु मात्राको छोड़ यदि कवित्तपर ध्यान दिया जाय तो नीतिकारोंमें भी इनका स्थान बहुत सामान्य है।

[सहायक ग्रन्थ—हिन्दी नीति-काव्य-संग्रह : भोलानाथ तिवारी।] —भो० ना० ति०

गिरिधरदास–भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रके पिता बाबू गोपालचन्द्र 'गिरिधर दास' 'गिरिधर' उपनामसे ब्रजभाषा की कविता करते थे। इनका जन्म १८३३ ई० (पौष कृष्ण, १५ सं० १८९०)में हुआ था। गोपालचन्द्र काव्यरसिक तथा विद्वान् थे। "इन्होंने अपने निजके परिश्रमसे संस्कृत और हिन्दीमें बडी स्थिर योग्यता प्राप्त की और पुस्तकोंका एक बहुत बडा अनमोल संग्रह किया। पुस्तकालयका नाम इन्होने 'सरस्वती भवन' रखा, जिसका मूल्य स्वर्गीय डा० राजेन्द्रलाल मित्र एक लाख रुपया तक दिलवाते रहे।" (हि० सा० इ०)। इनकी मृत्यु १८६० ई०मे हुई।

गिरिधरदासने ४० ग्रन्थोंकी रचनाकी, जिनमेसे कुछ ही प्राप्त हैं। इनमें मुख्य ये है—जरासंधवध महाकाव्य, भारतीभूषण, बलराम कथामृत, बुद्धकथामृत, नहुष नाटक, वाल्मीकि रामायण, छन्दोवर्णन। इन रचनाओंके भाव-पक्ष पर भक्ति काव्य-परम्परा और कलापक्षपर रीतिकाव्य-परम्पराका प्रभाव है। 'भारतीभूषण' अलकार ग्रन्थ है। 'नहुष नाटक' हिन्दी भाषाका प्रथम नाटक है। इसका रचनाकाल सन् १८५७ ई० है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० इ०; हि० सा० बृ० इ० (भा० ६); हि० अ० सा०।] —ओ० प्र०

गिरिधर शर्मा 'नवरत्न'–आपका जन्म जयपुरके झालारापाटन नगरमे सन् १८८१मे हुआ था। शिक्षा-दीक्षा मुख्यतः काशीमे हुई। आप महामहोपाध्याय जैसी श्रेष्ठ उपाधिमे विभूषित हुए थे।

'मातृवन्दना' आपकी प्रमुख मौलिक कवितापुस्तक है। अनुवादके क्षेत्रमे आपने पुष्कल कार्य किया है। 'आर्यशास्त्र', व्यापार-शिक्षा', 'शुश्रूषा', 'कठिनाईमे विद्याभ्यास,' 'आरोग्य दिग्दर्शन', 'जया जयन्त', 'राईका पर्वत', 'सरस्वती यश', 'सुकन्या', 'सावित्री', 'ऋतु-विनोद', 'शुद्धाद्वैत-सिद्धान्त-रहस्य', 'चित्रांगदा', 'भीष्म-प्रतिज्ञा', 'कविता-कुसुम', 'कल्याण मन्दिर', 'बार-भावना', 'रत्न करण्ड' एवं 'निशापहार' आपकी प्रमुख रचनाएँ हैं। अंग्रेजीके 'हरमिट' काव्यके मूल एवं अनुवाद दोनोंको आपने संस्कृतमें ही पद्यबद्ध किया है। 'गीतांजलि'का भी आपने हिन्दी पद्यानुवाद प्रस्तुत किया है। आपने सन् १९२८ ई०में संस्कृत काव्य 'शिशुपाल वध'के दो सर्गोंका हिन्दीमें पद्यानुवाद किया। 'मेरो सब लगे प्रभो देशकी भलाईमें' जैसी पंक्तियोंसे सम्पन्न 'मातृ-वन्दना'की रचना राष्ट्रीयता एवं स्वदेश-प्रेमकी प्रेरणासे हुई है। उस समयतक स्वदेशप्रेमविषयक प्रकाशित हिन्दी रचनाओंमे वह तृतीय थी। इस विषयपर गोपालदासकृत 'भारत भजनावली' (सन् १८९७ में प्रकाशित) एवं गुरुप्रसाद सिंह द्वारा रचित 'भारत संगीत' (सन् १९०१में प्रकाशित) दो पूर्ववर्ती रचनाएँ और प्राप्त हुई हैं। इनकी तुलनामें उक्त रचना पुष्टतर और सुन्दरतर है। इसमें राष्ट्रीयता के शुद्ध भावका प्रसार हुआ है। 'मातृ-वन्दना'का जो पावन-स्वर बंगकाव्यमें मुखरित हुआ था, हिन्दी-क्षेत्र भी उससे अछूता नहीं रहा। जिस समय अधिकांश कवि मध्यकालीन वातावरणमें ही साँस ले रहे थे और काव्य-धारा ह्रासोन्मुखी हो रही थी, स्वदेश-भावका यह जागरण देश-प्रेमका शंखनाद ही माना जायगा। आपने अतीतके प्रति निष्क्रिय मोह एवं प्रतिक्रियात्मक आसक्ति तथा राष्ट्रीयतामें अन्तर करते हुए जागरणका जो शंखनाद किया, उसे कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता। अनुवाद कार्य विषय-वस्तुकी विस्तृत भूमिसे सम्बद्ध है। आयुर्वेद, दर्शन, व्यवहार-शास्त्र, समाजशास्त्र नीति एवं आचरण सभी विषयोंपर आपकी लेखनी चली है। आपने 'विद्या भास्कर'का सम्पादन भी किया है। १९६१ में आपकी मृत्यु हुई। —श्री० सिं० क्षे०

गीतावली—यह तुलसीदासकी एक प्रमुख रचना है। इसमें गीतोंमे राम-कथा कही गयी है अथवा यों कहना चाहिए कि राम-कथा सम्बन्धी जो गीत तुलसीदासने समय-समय पर रचे, वे इस ग्रन्थमे संगृहीत हुए हैं। सम्पूर्ण रचना सात खण्डोंमें विभक्त है। काण्डोंमें कथाका विभाजन प्रायः उसी प्रकार हुआ है, जिस प्रकार 'रामचरित मानस'में हुआ है, किन्तु न इसमें कथाकी कोई प्रस्तावना या भूमिका है और न 'मानस'की भाँति इसमें उत्तरकाण्डमें अध्यात्म-विवेचन। बीच-बीचमें भी 'मानस'की भाँति आध्यात्मिक विषयोका उपदेश करनेका कोई प्रयास नहीं किया गया है। सम्पूर्ण पदावली राम-कथा तथा रामचरितमे सम्बन्धित है। मुद्रित संग्रहमें ३२८ पद हैं।

इधर इसका एक पूर्ववर्ती रूप भी प्राप्त हुआ है, जो इससे छोटा था। उसका नाम 'पदावली रामायण' था। इसकी केवल एक प्रति प्राप्त हुई है और वह भी अत्यन्त खण्डित है। इसमें सुन्दर और उत्तरकाण्डोंके ही कुछ अंश बचे हैं और उत्तरकाण्डका भी अन्तिम अंश न होनेके कारण पुष्पिका नहीं रह गयी है। इसलिए प्रतिकी ठीक तिथि ज्ञात नहीं है।

यह सग्रह वर्तमानसे छोटा रहा होगा। यह इससे प्रकट है कि प्राप्त अंशोंमें वर्तमान संग्रहके अनेक पद बीच-बीचमे नहीं है। यदि यह कहा जाय कि यह वर्तमानका कोई चयन होगा, तो यह ठीक नही है, क्योंकि कभी-कभी छन्दोंका क्रम भिन्न मिलता है। इसके अतिरिक्त इसके साथकी ही एक प्रति 'विनयपत्रिका'की प्राप्त हुई है—जिसका प्रतिमें ही 'राम गीतावली' नाम दिया हुआ है। वह भी 'विनय-पत्रिका'का वर्तमानसे छोटा पाठ देती है। इसलिए यह प्रकट है कि 'पदावली रामायण'का वह पाठ जो प्रस्तुत एक मात्र प्रतिमें मिलता है, 'गीतावली'का ही कोई पूर्व रूप रहा होगा।

'गीतावली'में कुछ पद (बालकाण्ड, २३, २४, २८) ऐसे

भी है, जो 'सूरसागर'में मिलते हैं। प्रायः यह कहा जाता है कि ये पद उसमें 'सूरसागर'से गये होंगे। सूरदास, तुलसीदाससे कुछ ज्येष्ठ थे, इसलिए कुछ आलोचक तो यह भी कहनेमें नहीं हिचकते कि इन्हें तुलसीदासने ही 'गीतावली'में रख लिया होगा और जो इस सीमा तक नहीं जाना चाहते, वे कहते हैं कि तुलसीदासके भक्तोंने उनकी रचनाको और पूर्ण बनानेके लिए यह किया होगा किन्तु एक बात इस सम्बन्धमें विचारणीय है। 'गीतावली'की प्रतियाँ कई दर्जन सख्यामें प्राप्त हुई हैं और वे सभी आकार-प्रकारमें सर्वथा एक-सी हैं और उन सबोंमें ये छन्द पाये जाते हैं। 'सूरसागर'की जितनी प्रतियाँ मिलती है, उनमे आकार-प्रकार भेद अधिक है। कुछमें केवल कुछ सौ पद है तो कुछमें कुछ हजार पद हैं, उनमें क्रम आदिमें भी परस्पर काफी वैभिन्न्य है और फिर 'सूरसागर'की सभी प्रतियोंमें ये पद पाये भी जाते हैं या नहीं, यह अभी तक देखा नहीं गया है। 'सूरसागर'के मुद्रित पाठमें अन्य अनेक ज्ञात कवियों-भक्तोंके पद भी सम्मिलित मिलते हैं। ऐसी दशामें वास्तविकता तो उलटे यह जान पडती है कि ये पद तुलसीदासकी ही 'गीतावली'के थे, जो अन्य कवियों-भक्तोंकी पदावलीकी भाँति 'सूरसागर'में सूरदासके प्रेमियोंके द्वारा सम्मिलित कर लिये गये। तुलसीदासने कुल लगभग सात सौ पदोंकी रचना की है और गीति-शिल्पमें वे किसीसे पीछे नहीं है। ऐसी दशामे वे तीन पद 'गीतावली'मे और तीन-चार पद 'कृष्ण गीतावली'मे सूरदास या किसी अन्य कविसे लेकर क्यों रखते ?

इसमे जो राम-कथा आती है, वह प्रायः 'रामचरित मानस'के समान ही है, केवल कुछ विस्तारोंमें अन्तर है। ये अन्तर दो प्रकारके है : कुछ कथा-विस्तार ऐसे हैं जो 'रामचरित मानस'के पूर्व रचे ग्रन्थोंमें ही मिलते है, और कुछ ऐसे है जो कविकी किसी भी अन्य कृतिमें नहीं मिलते हैं। प्रथम प्रकारके अन्तर निम्नलिखित हैं—

(१) परशुराम-राम-मिलन मिथिलाकी स्वयवर भूमिमे न होकर बारातकी वापसीमें होता है और उसमे विवाद परशुराम-राममें ही होता है, लक्ष्मणसे नहीं। (२) रामके राज्यारोहणके अनन्तर 'स्वान, यती, खग'के न्याय, ब्राह्मण बालकके जीवन-दान, सीताके निर्वासन और लव-कुश जन्म की कथाएँ आती हैं। इसी विस्तारमे 'रामाज्ञा प्रश्न' भी है। दूसरे प्रकारके अन्तर निम्नलिखित है—

(१) स्वयवर भूमिमें जब विश्वामित्र रामको धनुष तोड़नेके लिए आज्ञा देते हैं, जनक रामके कृतकार्य होनेके विषयमे सन्देह प्रकट करते हैं, इस पर विश्वामित्र जनकके योग-वैराग्यकी सराहना करते हुए कहते है कि ऐसा वे राम के स्नेहके वशमें होनेके कारण समझते है और राम भी जनकके योग-वैराग्यकी उस सराहनाका समर्थन करते हैं; जब इन सबके अनन्तर जनककी शंकाका निवारण हो जाता है, 'गीतावली'मे तब राम धनुष तोड़नेके लिए आगे बढते हैं। (२) विश्वामित्रके साथ गये हुए राम-लक्ष्मणके विषय-में माताएँ चिन्तित होती है। (३) वनवासकी अवधिमें कौसल्या अनेक बार राम-विरहमे व्यथित होती है। (४) राम जटायुके प्रति पितृ-स्नेह और शबरीके प्रति मातृ-स्नेह व्यक्त करते हैं। (५) रावणके द्वारा सीताके हरी जानेकी सूचना रामको देव-गण देते हैं। (६) हनुमान जब सीता को रामकी मुद्रिका देते है, सीता मुद्रिकासे रामका कुशल पूछती हैं और मुद्रिका उसका उत्तर देती है। (७) रावण से अपमानित होकर विभीषण सीधे रामकी शरणमें नहीं जाता है, वह अपने एक अन्य बन्धु कुबेरसे परामर्श करके जाता है। (८) युद्धस्थलमें लक्ष्मणके आहत होनेका समाचार पाकर सुमित्रा हनुमान्से अपने दूसरे पुत्र शत्रुघ्नको भी रामकी सहायताके लिए भेजनेको उद्यत होती है। (९) रामके राज्याभिषेकके अनन्तर दोलोत्सव, दीपमालिकोत्सव तथा वसन्तोत्सव आदि होते है, जिसमें अयोध्याका समस्त नर-नारी समाज निस्संकोच भावसे सम्मिलित होता है।

'मानस','गीतावली'की तुलनामें आकार-प्रकारसे चौगुना है और प्रबन्धकाव्य है, फिर भी ये कथा-विस्तार उसमें नहीं मिलते हैं, यह तथ्य ध्यान देने योग्य है।

उपर्युक्त पृथक् प्रकारके कथा-विस्तारोंसे ज्ञात होता है कि 'गीतावली'के कुछ अंश 'मानस'के पूर्वकी रचना अवश्य होंगे और इसी प्रकार उपर्युक्त दूसरे प्रकारके कथा-विस्तारों से ज्ञात होता है कि उसके कुछ अंश 'रामचरित मानस'के बादकी रचना होगे। 'रामचरित मानस'के समान तो 'गीतावली'का अधिकांश है ही, जिसका यहाँ पर कोई प्रमाण देना अनावश्यक होगा और यह 'रामचरित मानस' के आस-पास रचा गया होगा। इस प्रकार 'गीतावली'के पदोंकी रचना एक बहुत विस्तृत अवधिमें हुई होगी। अन्तिम रूपमे इसका संकलन कब हुआ होगा, कहना कठिन है। इसके उपर्युक्त सीता-मुद्रिका सवादकी कल्पना यदि तुलसीदासने केशवकी 'रामचन्द्रिका'(सं० १६५८) देखकर की हो, तो इसका सकलन-काल स० १६५८ के बाद किसी तिथिको हुआ होना चाहिए। 'पदावली रामायण'मे यह संवाद नहीं है, इसलिए 'गीतावली'का यह रूप असम्भव नहीं यदि स० १६५८ के पूर्वका हो।

'गीतावली'का तुलसीदासकी रचनाओमे एक विशिष्ट स्थान है, जिस पर अभी तक यथेष्ट ध्यान नहीं दिया गया है। अनेक बातोमे यह 'रामचरित मानस'के समान होते हुए भी गीतोके साँचे उसीकी राम-कथाको ढाल देनेका प्रयास मात्र नही है। यह एक प्रकारसे 'मानस'का पूरक है। 'मानस'मे जीवनके कोमल और मधुर-पक्षोंको जैसे जान-बूझकर दबाया गया हो: 'मानस'मे कौसल्या रामको वन भेजकर केवल एक बार व्यथित दीख पडती है—वह है भरतके आगमन पर, किन्तु फिर पुत्रशोकातुरा कौसल्याके दर्शन नही होते; 'गीतावली'मे तो अनेक बार वह राम-विरहमे धैर्य खोती चित्रित होती है; उसमें तो वह राम-विरहमे उन्माद-ग्रस्त हो चुकी है : "कबहुं प्रथम ज्यों जाइ जगावति कहि प्रिय बचन सबारे। उठहु तात, बलि मातु बदन पर अनुज सखा सब द्वारे॥ कबहुँ कहति यों बडी बार भइ जाहु भूप पहं भैया। बन्धु बोलि जेंइय जो भावै गई निछावरी मैया (अयो० ५२) ॥" आदि पदोंमें कौसल्याका जो चित्र अंकित किया गया है, वह 'मानस'में नहीं किया गया है और कदाचित् जान-बूझकर नहीं किया गया है। फिर, सीताके साथ रामकी जिस 'माधुरी-विलास-हास'का

चित्रण चित्रकूटकी दिनचर्यामें 'गीतावली' (अयो० पद ४४) में हुआ है अथवा उसके उत्तरकाण्डमें भोरमें 'प्रिया प्रेम रस पागे' अलसाये हुए रामका जो चित्रण हुआ है (उत्तर० २), और विभिन्न प्रसंगोंमें अयोध्याके नारी-समाज द्वारा रामके जिस सौन्दर्य-पानका वर्णन किया गया है (उत्तर० १८-१९ तथा २१-२२) उनका एक भी समतुल्य 'मानस'में नहीं है। प्रश्न यह है कि ऐसा क्यों हुआ है। इसका एकमात्र कारण कदाचित् यह है कि 'मानस'की रचना उन्होंने सम्पूर्ण समाजके लिए की थी : 'सुर सरि सम सब कहँ हित होई' यह भावना उनकी रचनाके मूलमें काम कर रही थी और इसलिए उसके मर्यादावादकी सीमाओंका कहीं भी अतिक्रमण नहीं होने दिया, जब कि 'गीतावली'के अधिकतर पदोंकी रचना उन्होंने सम्भवतः केवल भक्त और रसिक समुदायके लिए की, इसलिए इनमें हमें 'मानस'के तुलसीदासकी अपेक्षा एक अधिक वास्तविक और हाड़-मांसके तुलसीदासके दर्शन होते हैं। —मा० प्र० गु०

गीतिका–इसका प्रकाशन-काल सन् १९३६ ई० है। इसमें सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'के नये स्वर-तालयुक्त शास्त्रानुमोदित गीत संगृहीत हैं। खड़ीबोलीमें इस प्रकार के प्रथम गीत-स्रष्टा जयशंकर प्रसाद हैं। उनके नाटकोंके अन्तर्गत जिन गीतोंकी सृष्टि हुई है, वे सर्वथा शास्त्रानुमोदित हैं किन्तु ये गीत विशेष वातावरणमें उनके पात्रों द्वारा गाये जाते हैं। ये गीत पात्र तथा वातावरण सापेक्ष हैं। शास्त्रानुमोदित निरपेक्ष गीतोंकी सर्जनाका श्रेय 'निराला'को ही है। शास्त्रानुमोदनका तात्पर्य यह नहीं है कि ये गीत भी पुरानी राग-रागनियोंके बन्धनोंमें बँधे हुए हैं। बंगालमें रहनेके कारण 'निराला'का ध्यान बंगलाके उन गीतोंकी ओर गया जिनकी स्वर-लिपियाँ अंग्रेजी संगीतके आधारपर तैयार की गयी थीं किन्तु बंगलामें भी अंग्रेजी स्वर-शैलीकी हूबहू नकल नहीं की गयी। 'गीतिका'की भूमिकामें 'निराला'ने स्वयं लिखा है, "अंग्रेजी संगीतकी पूरी नकल करनेपर उससे भारतके कानोंको कभी तृप्ति होगी, यह संदिग्ध है। कारण, भारतीय संगीतकी स्वर-मैत्रीमें जो स्वर प्रतिकूल समझे जाते हैं, वे अंग्रेजी संगीतमें लगते हैं।..." अस्तु, अंग्रेजी संगीतके नामपर जो कुछ लिया गया, उसे हम "अंग्रेजी ढंगका संगीत कह सकते हैं, स्वर मैत्री हिन्दुस्तानी ही रही।"

संगीत और काव्यमें जहाँ विशेष सम्बन्ध है, वहाँ इनका अन्तर भी स्पष्ट है। संगीतमें स्वरकी प्रधानता होती है और यह अपेक्षाकृत अपरिवर्तनशील कला है। संगीतके लिए काव्य अनिवार्य नहीं है, पर काव्यके लिए एक प्रकारके संगीतकी अनिवार्यता मानी जा सकती है। 'गीतिका'में संगृहीत गीतोंमें संगीत-तत्त्वके साथ ही काव्य-तत्त्वका भी प्रचुर विनियोग हुआ है। इसमें कई प्रकारके गीत हैं—आत्मनिवेदन या प्रार्थनाप्रधान गीत, नारी सौन्दर्य-चित्रणप्रधान, प्रकृति वर्णनपरक, दार्शनिक एवं राष्ट्रीय गीत।

इसके गीतोंको संगीतात्मक बनानेके लिए शब्द ध्वनिपर विशेष ध्यान दिया गया है। व्यापक सांस्कृतिक परिवेश ग्रहण करनेके कारण वे वस्तुमूलक, बौद्धिक तथा अधिक गूढ़ भावोंके द्योतक हो गये। कहीं-कहीं लघुकाय गीतोंमें भाव अँट नहीं पाया है और कहीं-कहीं दुरूह शब्दयोजना प्रेषणीयतामें विशेष बाधा डालती हुई दीख पड़ती है किन्तु ऐसे गीतोंकी संख्या अल्प है। —ब० सिं०

गुंजन–यह कवि सुमित्रानन्दन पन्तका काव्य-संग्रह है। इसका प्रकाशन सन् १९३२में हुआ था। इसे कवि पन्तने अपने प्राणोंका 'उन्मन-गुंजन' कहा है। यह संकलन 'वीणा', 'पल्लव' कालके बाद कविके नये भावोदयकी सूचना देता है। इसमें हम उसे मानवके कल्याण और मंगलाशाके नये सूत्र काव्यबद्ध करते पाते हैं। कल्पना और भावनाका वह उद्दाम प्रवाह जो 'पल्लव'की रचनाओंको उन्मादक बनाता है, 'गुंजन'में नहीं है। एक आकर्षक कोमल आभिजात्यसे सकलनकी रचनाएँ ओतप्रोत हैं। दो-चार रचनाओंको छोड़कर जो १९२२ और १९२७ की रचनाएँ हैं या जिनका रचनाकाल कुछ पहले १९१८तक जाता है, शेष रचनाएँ १९३२ की ही सृष्टि हैं। यह वर्ष पन्तके कवि-जीवनका मोड़ कहा जा सकता है क्योंकि इससे उनकी संवेदना, अभिव्यंजना तथा चिन्तनको नयी दिशा मिलती है। 'मदन-दहन' (दे० 'पल्लव'की समापन-कविता)के बाद नूतन अनंगका यह जन्म स्वयं कविके स्वस्तिवाचनका विषय बना है।

ग्रन्थमें ४५ गीतियाँ संकलित हैं। इनमें प्रगीतात्मकताके साथ संगीतकी स्वर-लहरी भी मिलेगी। वस्तुतः इनमें अनेक रचनाएँ 'गान'की कोटिमें आयेंगी। नये गीत-कण्ठने भाषा-शैली, छन्द और मूर्त्त-विधान सभी दिशाओंमें नया समारम्भ प्रस्तुत किया है। इन प्रगीतोंमें अन्तस्का माधुर्य, भावबोध, सौन्दर्य-सम्भार एवं गीत-विलास आशा और मंगलके स्वर-सन्धानके द्वारा सार्थक हुआ है। 'ज्योत्स्ना'में रूपकके रंगमें ढालकर जिस मानव-कल्याण-कामनाको योजनाबद्ध किया गया है, उसका प्रथम उन्मेष 'गुंजन'की गीतियोंमें ही मिलेगा। 'पल्लव'कालकी कल्पना-प्रचुरता हमें केवल एक रचना 'अप्सरी'में मिलती है, जिसमें कवीन्द्र रवीन्द्रकी 'ऊर्वशी'की छाया स्पष्ट है परन्तु जिसमें एक भिन्न कोटिकी मायाविनी मानसीको मूर्तिमान किया गया है, जो आदिमकालसे मनुष्यकी सौन्दर्य-चेतनाको उकसाती रही है। मानवने अपने चारों ओर जो कल्पना, रहस्य और सौन्दर्यका छाया-जगत् बिछाया है, वह इसी छाया मूर्तिकी देन है। इसीलिए रचनाके समापनपर कवि कहता है—

"जगके सुख-दुख, पाप-ताप, तृष्णा-ज्वालासे हीन। जरा-जन्म-भय-मरण-शून्य, यौवनमयि, नित्यनवीन। अतल-विश्व-शोभा-वारिधिमें, मज्जित जीवन-मीन। तुम अदृश्य, अस्पृश्य अप्सरी, निज सुखमें तल्लीन।"

परन्तु यहाँ कवि इन्द्रजाली कल्पनासे नीचे उतरकर ऐसे संयत भाव-चित्रोंको ही चुनता है, जो हमारे चिर परिचित आयामोंसे भिन्न नहीं हैं।

'गुंजन' की श्रेष्ठतम रचनाएँ हैं—'नौकाविहार', 'एक तारा', 'मधुबन', 'भावी पत्नीके प्रति' और 'चाँदनी'। इन रचनाओंमें कविकी आत्मिक तल्लीनता प्राकृतिक सौन्दर्य तथा रूपात्मक संकेतोंके भीतरसे नया रसबोध

जाग्रत करनेमें सफल हुई है। विराट्, विशृंखलित और क्षिप्रगतिसे बदलते हुए उपमानोंके स्थानपर संयत कल्पना-चित्र और अमूर्त्तविधान हमें बराबर आश्वस्त रखते हैं, किंचिन्मात्र भी झकझोरते नहीं। इस रचनामें पन्तका काव्य आभिजात्यकी एक सीढ़ी और चढ़ गया है। उसका आत्मनियन्त्रण आश्चर्यजनक है। भावनाओंकी बाढ़ जैसे उतर गयी हो और तरुण कवि नये शरदाकाशके उज्ज्वल वैभवको अर्घ्य-दान दे रहा हो। 'चाँदनी' पर दो रचनाएँ हैं और उन्हें हम कविकी साम्प्रतिक चेतनाका बाह्य प्रतीक कह सकते हैं।

'गुंजन' में कविका प्रकृति-काव्य अधिक प्राकृतिक हो गया है। उसमें वर्ण्य विषय खुलता है, उपमाओंकी झड़ीमें मुँद नहीं जाता। प्रकृतिकी सहज, प्रसन्न, शान्त चित्रपटी 'गुंजन' में मिलेगी क्योंकि वही कविके नये भावपरिवर्त्तनके अनुकूल है। मधुमासपर लिखी हुई कुछ रचनाओंमें वर्णकी चटुलता भी है परन्तु वह क्रीड़ामात्र न होकर यौवनकी आन्तरिक सम्पन्नताकी ही द्योतक है। इस संकलनकी दूसरी विशेषता मिलन-सुख और प्रेमोल्लाससम्बन्धी कुछ गीतियाँ हैं, जो सम्भोग-शृंगारके रीतिकालीन स्वरूपसे भिन्न नयी भावमाधुरीसे ओतप्रोत हैं। ये रचनाएँ कविका मनःकल्प ही कही जा सकती हैं। इन आकांक्षामधुर रचनाओंमें जिस नारी-मूर्त्तिका आह्वान है, वह 'भावी पत्नीके प्रति' और 'रूपतारा, तुम पूर्ण प्रकाम' रचनाओंमें पुष्पित हुआ है। 'गुंजन' की ये कविताएँ कविके 'उच्छ्वास'-'आँसू' प्रभृति विप्रलम्भ-काव्यकी पूरक है। सम्भवतः पिछली रचनाओंसे अधिक सहज होनेके कारण ये लोकप्रिय भी अधिक हैं। 'गुंजन' की तीसरी दिशा कविका दार्शनिक चिन्तन है जो वेदान्ती होकर भी स्वानुभूत सत्यके प्रकाशसे ज्योतिर्मान् है। कवि जब कहता है:

"मैं प्रेमी उच्चादर्शोंका, संस्कृतिके स्वर्गिक स्पर्शोंका। जीवनके हर्ष-विमर्शोंका, लगता अपूर्ण मानव-जीवन" तो हम इन पंक्तियोंमें उत्तर पन्तका समस्त काव्य-विकास झाँकता पाते हैं। 'साठ वर्ष' में कविने इस कालकी अपनी निर्जनताकी भावनाका उल्लेख किया है और एकाकी जीवनको चिन्तन, भावना और आत्मसंस्कारसे भरनेका प्रयत्न ही 'गुंजन' है। इसलिए अनेक गीतियोंमें कवि अपने मनसे सम्बोधित होता है और उससे खिलने अथवा तपनेका आग्रह करता है। वास्तवमें 'गुंजन' पंतकी आत्मसाधनाका प्रतीक ग्रन्थ है। यह साधना प्रकृति-सौन्दर्यसे आगे बढ़कर मानव-सौन्दर्यतक पहुँचती है। इसमें जीवनके आनन्द, उल्लास, सहज संवेदन तथा माधुर्यका प्रकाश भरा गया है। सब कुछ जैसे जादूकी छड़ीसे सुन्दर और सार्थक बन गया है। इस सुन्दरताका केन्द्र मानव है, जो प्रकृतिके आनन्द, उल्लास और सौन्दर्यका मूल उत्स है। इसी मानवको पंतने अपनी मंगल-कामना समर्पित की है। यह ठीक है कि 'गुंजन'की मंगल-कामना अनिर्दिष्ट है, उसमें किसी प्रकारका तन्त्र या 'वाद' दर्शित नहीं होता, परन्तु कविके सहज, सौम्य, प्रसन्नचेता व्यक्तित्वके माध्यमसे प्रकृति और मानवके समस्त सुन्दर और शोभन आयामोंका संकलन स्वतः हो जाता है। लगता है, कवि बालसुलभ चापल्य और वयःसन्धिके स्वप्नोंको पीछे छोड़कर तथा कौसानीकी चित्रशलभ-सी पंख खोलकर उड़नेवाली घाटीसे नीचे उतरकर गंगाके उन्मुक्त कछारमें आ गया है और उसकी कवि-चेतनासे नीलाकाशमें आबद्ध अनन्त दिक्प्रसारको हृदयंगम किया है। उत्तर पन्तकी रचनाएँ यहींसे आरम्भ होती हैं और निरन्तर नये आयाम ग्रहण करती जाती हैं। —रा० र० भ०

गुमान द्विज—'शिवसिंह सरोज' और खोज-विवरणोंमें गुमान नामके दो कवियोंका स्पष्ट उल्लेख किया गया है। उनमेंसे एक है गुमान द्विज और दूसरे गुमान मिश्र। फिर भी मिश्रबन्धुओं और रामचन्द्र शुक्लने दोनोंको एक ही समझ लेनेकी भूल की है। प्रथम गुमान सन् १७३१ ई० में विद्यमान थे और वे महोबावासी त्रिपाठी-कुलीय द्विज गोपालमनिके पुत्र थे। द्विज गुमानके तीन और भाई थे—दीपमाहि, खुमान और अमान। इन्होंने 'श्रीकृष्ण चन्द्रिका' और 'छन्दाटवी' संज्ञक ग्रन्थोंकी रचना की, जिनमें प्रथमका निर्माण-काल सन् १७८१ ई० है। इस ग्रन्थके आदिमें कविने मंगलाचरणके अतिरिक्त पिंगल आदिका वर्णन किया है। इसके बाद भागवतके प्रथम स्कन्ध, तृतीय स्कन्ध तथा दशम स्कन्धके पूर्वार्द्धमें पायी जानेवाली कथाओको भाषान्तरित किया है। 'छन्दाटवी' पिंगल-ग्रन्थ है। ये साधारण श्रेणीके कवि ज्ञात होते हैं।

[सहायक ग्रन्थ—खो० वि० (वा० १९०५; वै० १,३,१२, १३); मि० वि०; शि० स०; हि० सा० इ०।]—रा० त्रि०

गुमान मिश्र—शिवसिंह सेंगरने गुमान मिश्रको साँडीवासी और सन् १७४८ ई० मे वर्तमान बताया है। कविने स्वय अपना परिचय देते हुए लिखा है कि वे मिश्र ब्राह्मण और सबसुख मिश्रके शिष्य हैं। ये हिन्दी तथा संस्कृत भाषा एवं साहित्यशास्त्रके पण्डित थे। ये सर्वप्रथम कुछ दिनोंतक दिल्लीमे मुहम्मद बादशाहके यहाँ राजा युगलकिशोर भट्टके पास रहे; फिर पिहानीके महमदी महाराज अकबर अली खाँके यहाँ चले गये। उन्हींसे प्रोत्साहन प्राप्त कर इन्होने हर्षकृत 'नैषध'का 'काव्यकलानिधि' नामसे हिन्दीमे उल्था किया। इसका अनुवादकाल सन् १७४६ ई० है। प्रकाशन भी इसका श्रीवेंकटेश्वर प्रेससे हो गया है, जो नितान्त अशुद्ध है। खोज-विवरणोमे इसके अतिरिक्त भी इस कविकी दो कृतियाँ बतायी गयी हैं—(१) 'अलंकार-दर्पण' और (२) 'गुलाल चन्द्रोदय'। क्रमसे इनका रचनाकाल सन् १७६० और १७६१ ई० है। जैसा कि नामसे ही स्पष्ट है, प्रथम रचना अलंकार-विवेचनसे सम्बन्धित है और दूसरी बिसवाँ (जिला सीतापुर) के तालुकेदारकी संरक्षकतामें लिखी गयी है। यद्यपि कविने यथासम्भव नाना छन्दों आदिमें 'नैषध'के अनुवादको सफल बनानेकी चेष्टा की है तथापि वह पूर्ण सफल नहीं हो पाया है। बिना मूल ग्रन्थको सामने रखे अनूदित पंक्तियोंका अर्थ खुलता नही है। कविको काव्य-चमत्कार कितना प्रिय था, यह 'नैषध'के आदि भागमें अली अकबर खाँकी प्रशंसामें लिखे गये बहुतसे कवित्तोंमें बड़ी स्पष्टतासे देखा जा सकता है। ये साहित्य तथा कला-मर्मज्ञ थे। भाषापर इनका पूरा-पूरा अधिकार था। इनकी अनुप्रासबहुल

भाषा पद्माकरकी भाषाकी याद दिला देती है।

[सहायक ग्रन्थ—खो० वि० (वा० १९०५; त्रै० १, ३, १२, १३); मि० वि०; हि० सा० इ०; क० को० भा० १।] —रा० त्रि०

गुरु अर्जुनदेव–गुरु अर्जुनदेव सिक्खोंके पाँचवें गुरु थे। उनका जन्म अप्रैल सन् १५६३ ई०(बैसाख बदी ७, संवत् १६२० वि०)में गोइन्दवाल नामक स्थानमें हुआ। उनके पिता सिक्खोंके चौथे गुरु रामदास जी तथा माता भानी थीं। उन्हें छोटी ही आयुसे भलीभाँति शिक्षा-दीक्षा दी गयी। वे गोइन्दवालमे ११ वर्षकी आयु तक रहे। अपने नाना सिक्खोंके तीसरे गुरु अमरदासजीके देहान्तके बाद अपने पिता गुरु रामदासजीके साथ अमृतसर आ गये। कहते हैं कि एक बार छोटी ही आयुमें गुरु अर्जुनदेवने घिसटते-घिसटते गुरु अमरदासजीकी गुरु-गद्दीपर बैठना चाहा। इसपर गुरु अमरदासजीने बड़े प्यारसे पुचकार कर कहा, "बेटा, तू अभी ही हमारे आसनपर बैठना चाहता है। उतावला मत बन। समय आनेपर ही यह आसन मिलेगा।"

गुरु अर्जुनदेवके दो विवाह हुए। उनकी पहली सहधर्मिणी रामदेवी थीं और दूसरी गंगादेवी। सिक्खोंके छठे गुरु श्री हरिगोविन्दजी गंगादेवीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। सन् १५८१ ई०में १८ वर्षकी आयुमें गुरु-गद्दीका भार गुरु अर्जुनदेवको सौंपा गया। गुरु अर्जुनदेवके बडे भाई बाबा पृथ्वीचन्द उर्फ पृथियाने उनका बड़ा विरोध किया। पृथ्वीचन्दने अकबर बादशाहके यहाँ प्रार्थना-पत्र दिया कि मैं बडा पुत्र हूँ, अतएव मैं ही गुरु-गद्दीका अधिकारी हूं। अकबर बादशाहने प्रार्थनापत्रपर विचार किया। वजीर खाँने राय दी, "गुरुगद्दी कोई पैतृक सम्पत्ति नहीं है कि बडे पुत्रको ही दी जाय। यह गुणोंके आधारपर दी जाती है।" इसपर अकबर बादशाहने उस प्रार्थनापत्रको खारिज कर दया।

गुरु अर्जुनदेव महान् निर्माता और संघटनकर्ता थे। उन्होंने गुरु नानकदेवकी शिक्षाओंका प्रसार किया। उनके समयमें सिक्ख धर्मकी बहुत उन्नति हुई और उसके अनुयायियोंकी संख्या बहुत बढ़ गयी। गुरु अर्जुनदेव शान्ति, सरलता, पवित्रता और सेवाकी प्रतिमूर्ति थे। उन्होंने अमृतसरको पक्का किया। संगतिके साथ स्वय कार्य किया करते थे। इसका संकेत गुरु ग्रन्थ साहिबमे मिलता है—"संताके कारजि आपि खलोइआ हरि कंमु करावणि आइआ राम। धरति सुहावी तालु सुहावा विचि अंमृत जलु छाइआ राम।" (दे० *गुरु ग्रन्थ साहिब*, सूही महला ५)।

गुरु अर्जुनदेवने १५८६ ई०मे 'सन्तोखसर'को भी पक्का कराया। उन्होंने हरि-मन्दिरकी नींव अक्तूबर, सन् १५८८ ई० (कार्तिक सुदी ५, सं० १६४५ वि०) में डाली। मई सन् १५९० ई०में 'तरनतारन' बसाया। नवम्बर, सन् १५९३ ई०में करतारपुर जिला जलन्धर बसाया। सन् १५९९ में लाहौरमें 'बाउली साहब' गुरुद्वारा बनवाया। सन् १६०० ई०में गुरु अर्जुनदेव अमृतसर जिलेमें बाबा नामक स्थानपर बाबा श्रीचन्दसे मिले। बाबा श्रीचन्द गुरु नानकके ज्येष्ठ पुत्र थे और उदासी सम्प्रदायके संस्थापक थे। उसी वर्ष अमृतसर भी लौट आये।

सन् १६०४ ई० (भाद्रपद सुदी १, सं० १६३१ वि०)मे 'गुरु ग्रन्थ साहब'का संग्रह पूर्ण हुआ। उसकी संस्थापना हरि-मन्दिरमें हुई। बाबा बुड्ढाजी सबसे पहले ग्रन्थी नियुक्त किये गये (दे० 'गुरु ग्रन्थ साहिब')। गुरु अर्जुनदेव द्वारा 'गुरु ग्रन्थ साहिब'का संकलन उनका सबसे अप्रतिम कार्य है। 'गुरु ग्रन्थ' उनकी अमर स्मृति है।

चन्दूशाह अपनी पुत्री सदाकौरका विवाह गुरु अर्जुनदेवके पुत्र हरगोविन्दसे करना चाहते थे। पर गुरु अर्जुनदेवने इस विवाहको अस्वीकृत कर दिया। चन्दूशाह अकबर बादशाहका नायब दीवान था। अकबरकी मृत्युके पश्चात् जहाँगीरकी भी नौकरी की। विवाहको अस्वीकृत हुआ जानकर चन्दू अत्यधिक क्रुद्ध और क्षुब्ध हुआ। वह गुरु अर्जुनदेवका महान् शत्रु बन गया। गुरु अर्जुनदेवके बड़े भाई पृथ्वीचन्द और चन्दूशाहने मिलकर उनके विरुद्ध षडयन्त्र रचा। एक मुसलमान सुलही खाँ भी इस षडयन्त्रमें सम्मिलित हुआ। गुरु अर्जुनदेवके विरुद्ध यह शिकायतकी गयी कि 'गुरु ग्रन्थ साहब'के संग्रहमें हिन्दुओं तथा मुसलमानोंके प्रति घृणापूर्ण और विद्वेषयुक्त बातें हैं। संयोगवशात् अकबर पंजाबके दौरेपर था। उसने 'गुरु ग्रन्थ साहिब'का संग्रह देखना चाहा। भाई बुड्ढा और भाई गुरुदासने अकबरको 'गुरु ग्रन्थ साहिब' के अनेक स्थलोंको पढकर सुनाया। अकबरको कोई भी बात हिन्दू अथवा मुसलमानके प्रति विरोधिनी प्रतीत नहीं हुई। अतः वह पूर्णरूपसे सन्तुष्ट हो गया और उसने अपने भाव इस प्रकार व्यक्त किये, 'यह पुनीत ग्रन्थ है और इसके प्रति पूर्ण सम्मान व्यक्त करना चाहिए।' किन्तु इससे चन्दूशाह हताश नहीं हुआ।

अकबरका देहान्त सन् १६०५में हो गया। उसी वर्ष बाबा पृथ्वीचन्दकी भी मृत्यु हुई। जहाँगीर बादशाह बना और उसके पुत्र खुसरोने राज्यविद्रोह किया। खुसरो आगरेसे भगा और शाही फौजने उसका पीछा किया। खुसरोने तरनतारन (अमृतसर)मे गुरु अर्जुनदेवसे सहायता माँगी। उसकी दयनीय स्थिति देखकर गुरु अर्जुनदेवने उसे पाँच सहस्र रुपये देकर विदा किया। खुसरो झेलम नदी पार करते हुए पकडा गया और जहाँगीरके पास भेज दिया गया।

पृथ्वीचन्दके पुत्र मिहरबानने इस घटनाकी सूचना चन्दूशाहको दी। चन्दूने नमक मिर्च लगाकर इस घटनाका अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन जहाँगीरसे किया कि गुरु अर्जुनदेवने खुसरोको आशीर्वाद दिया है कि वह बादशाह बने। जहाँगीर इस बातको सुनकर जल-भुन गया, उसकी क्रोधाग्नि भडक उठी और उसने गुरु अर्जुनदेवको बुलवाया।

गुरु अर्जुनदेवको यह भलीभाँति ज्ञात हो गया कि अब उनका अन्त समीप आ गया है, क्योंकि उनके शत्रुओंने जहाँगीरके कान खूब भरे हैं। गुरु अर्जुनदेव अपना उत्तराधिकारी अपने पुत्र हरगोविन्दको बनाकर लाहौरकी ओर रवाना हुए। जहाँगीरने गुरु अर्जुनदेवसे कहा, "दो

लाख रुपया जुर्माना दो और ग्रन्थ साहबकी वे पंक्तियाँ निकाल दो, जो हिन्दुओं अथवा मुसलमानोंकी आलोचनामें हैं।" गुरु अर्जुनदेवने उत्तर दिया, "मेरे जो कुछ भी रुपये हैं, वे गरीबों, निराश्रितोंके लिए हैं। यदि आपको रुपयेकी आवश्यकता है, तो आप ले सकते हैं, किन्तु जुर्मानेके नामपर तो मैं एक कौड़ी भी नहीं दूँगा। जुर्माना दुष्टोंपर लगता है, साधु-सन्तोंपर नहीं। जहाँतक 'ग्रन्थ साहिबके शब्दोंको हटानेका प्रश्न है, उसमेंसे मैं एक अक्षर भी नहीं निकाल सकता। मैं अमर परमात्माका पुजारी हूँ। परमात्माको छोड़कर और कोई बादशाह नहीं है। जो कुछ उसने गुरुओंपर प्रकट किया, वही उसमें है। उसमें कोई भी बात ऐसी नहीं हैं, जो हिन्दू अथवा मुसलमानके विरोधमें हो। यदि सत्यके प्रतिपादनमें इस नश्वर शरीरका नाश भी हो जाता है तो मैं इसे अपना अहोभाग्य ही समझूँगा।"

गुरु अर्जुनदेवकी बातें सुनकर जहाँगीरने कुछ उत्तर नहीं दिया। इसके पश्चात् एक काजीने गुरुजीको सूचित किया, "या तो जुर्माना दो, या सजा भोगो।" लाहौरके सिक्ख जुर्माना देना चाहते थे, किन्तु गुरुने उन्हें यह कहकर रोक दिया, "धार्मिक व्यक्ति और ईश्वर भक्त कभी जुर्माना नहीं देते। जुर्माना नंगों-लुच्चों तथा चोरों बदमाशोंके लिए है।"

गुरु अर्जुनदेवका यह निश्चय जानकर, उन्हें कठोर नारकीय यातनाएँ दी गयीं। वे मुर्तजा खाँको सौंप दिये गये। मुर्तजा खाँने अत्यन्त क्रूरतापूर्वक गुरु अर्जुनदेवको यातनाएँ दीं, पर वे टस-से-मस नहीं हुए। उनके मुखमण्डल पर वही तेज, और वही शान्ति विराजमान थी। गुरु अर्जुनदेव उबलते देगमें रखे गये। उनके ऊपर गर्म बालू और धधकते लोहे भी रखे गये। गुरुजी ने कहा, "वाहिगुरु (परमात्मा) तेरा नाम शीतल है। तू आगको आग बनी रहने दे, किन्तु मुझे अपने नामकी शीतलता प्रदान कर, ताकि मैं अग्निकी उष्णता सहन करनेमें समर्थ होऊँ।" गुरु अर्जुनदेवने अपने उपर्युक्त कथनको अक्षरशः सत्य प्रमाणित करके दिखा दिया।

गुरु अर्जुनदेवके रक्तसे भरे हुए शरीरको रावी नदीके ठण्डे पानीमें डाला गया। अन्तमें 'जप जी'का पाठ करते हुए वे अपने नश्वर शरीरको त्यागकर सन् १६०६ ई० में 'ज्योती ज्योति'में लीन हुए। नदीके किनारे ही उनके शरीर का दाह-संस्कार हुआ। उस स्थान पर एक गुरुद्वारा बनाया गया है, जिसका नाम 'डेहरा साहब' है।

पिनकाटके अनुसार गुरु ग्रन्थ साहिबमें १५५७५ बन्द हैं, जिनमेंसे गुरु अर्जुनदेवके ६२०४ बन्द हैं। इस प्रकार गुरु अर्जुनदेवकी वाणी समस्त गुरुओं और भक्तोंसे अधिक है। गुरु अर्जुनदेवकी प्रमुख वाणियाँ निम्नलिखित हैं–बारांमांह, बावन अक्खरी, गउडी थिती, सुखमनी साहब और गाथा। बारांमांहमें परमात्मासे बिछुड़े जीवोंका वर्णन है और मिलन की युक्ति भी बतायी गयी है। इसी प्रकार थिती (तिथि)के माध्यमसे भी परमात्माके ज्ञान, भक्ति और वैराग्यका वर्णन किया गया है।

गुरु अर्जुनदेवकी सबसे महत्त्वपूर्ण रचना 'सुखमनी साहब' है। 'सुखमनी साहब'में २४ अष्टपदियाँ हैं। सुखमनी साहबका भाव यह है कि परमात्माके नामका स्मरण अन्य सभी धार्मिक कार्योंसे श्रेष्ठ है ('अष्टपदी' १,२ तथा ३)। मायामें आसक्त जीवके ऊपर यदि प्रभुकी कृपा हो जाय, तभी उसे नामका दान प्राप्त होता है ('अष्टपदी' ४, ५ और ६)। जब प्रभुकी कृपा होती है तो मनुष्य गुरुमुखों की संगतिमें रहकर 'नाम' प्राप्त करता है। वे गुरुमुख चाहे साधु कहे जाय, चाहे ब्रह्मचारी, चाहे किसी अन्य नामसे सम्बोधित किये जाँय, किन्तु वे सदैव परमात्मासे युक्त रहते हैं ('अष्टपदी' ७, ८ और ९)। उस अकाल पुरुषकी स्तुतिमें जगत्के समस्त प्राणी लीन हैं, यह सर्वव्यापी है, प्रत्येक जीवको उसीसे सत्ता और शक्ति प्राप्त होती है ('अष्टपदी' १०, ११)। प्रभुके भक्तको दीन स्वभाव रखना चाहिए ('अष्टपदी' १२)। वह निन्दासे बचा रहे ('अष्टपदी' १३)। वह एक अकाल पुरुषमें ही प्रीति रखे, क्योंकि प्रत्येक प्राणीकी आवश्यकताओंको जानने और पूर्ण करने वाला प्रभु ही है ('अष्टपदी' १४, १५)। वह अकाल पुरुष सभीमें व्याप्त होता हुआ भी मायासे परे है ('अष्टपदी' १६)। वह शाश्वत है ('अष्टपदी' १७)। सद्गुरुकी शरणमें जानेसे उसका प्रकाश हृदयमें होता है ('अष्टपदी' १८)। प्रभुका नाम ही मनुष्यके साथ सदैव निभता है ('अष्टपदी' १९)। प्रभुसे प्रार्थना करने पर ही इस धनकी प्राप्ति होती है ('अष्टपदी' २०)। निर्गुण स्वरूप परमात्माने ही जगत्-स्वरूप अपना सगुण रूप बनाया है। प्रत्येक स्थानमें वह आप ही व्याप्त है ('अष्टपदी' २१ और २२)। जब मनुष्यको सद्गुरुप्रदत्त ज्ञानरूपी अंजन प्राप्त होता है, तभी उसे यह बोध होता है कि परमात्मा सर्वत्र है ('अष्टपदी' २३)। प्रभु सारे सुखोंका भण्डार है। उसके नामके स्मरणसे अनन्त गुण प्राप्त हो जाते हैं। इसीलिए नामको सुखोंकी मणि (सुखमनी) कहा गया है ('अष्टपदी' २४)।

गुरु अर्जुनदेवकी रचनामें भक्ति, ज्ञान और वैराग्यकी अबाध मन्दाकिनी प्रवाहित हुई है। उनकी भाषा पंजाबी मिश्रित ब्रजभाषा है और प्रसाद गुणसे ओत-प्रोत है। उनकी रचनाएँ अध्यात्मिकतासे परिपूर्ण हैं। उनमें जीवनकी अद्भुत निर्माणकारिणी शक्ति है।

[सहायक ग्रन्थ—(१) द आदि ग्रन्थ : आर्नेस्ट ट्रम्प, लन्दन १८७७ ई०; (२) द सिक्ख रिलीजन : मैक्स आर्थर मैकालिफ, खण्ड ३, क्लैरण्डन प्रेस, आक्सफोर्ड, १९०९ ई०; (३) द बुक आफ टेन मास्टर्स : पूरनसिंह, सिक्ख युनीवर्सिटी प्रेस, निस्बत रोड, लाहौर, १९२० ई०; (४) मार्टीरम आफ गुरु अर्जुनदेव : हरनामसिंह, सिक्ख ट्रेक्ट सोसायटी, अमृतसर, १९२४ ई०; (५) द मेसेज आफ गुरु अर्जुन : पूरनसिंह, लाहौर बुक शाप, निस्बत रोड, लाहौर, १९४५ ई०; (६) सुखमनी साहिब (सटीक) : साहिबसिंह, लाहौर बुक शाप, निस्बत रोड, लाहौर, १९४५ ई०।] —ज० रा० सि०

गुरु गोविंदसिंह–गुरु गोविन्द सिंह सिक्खोंके दसवें और अन्तिम गुरु थे। उनका जन्म पौष, सुदी सप्तमी, संवत् १७२३ विक्रमी, तदनुसार सन् १६६६ ई०में पटना (बिहार) में हुआ था। उनके पिता सिक्खोंके नवें गुरु तेगबहादुर तथा माता गूजरी थीं। उनका नाम गोविन्दराय रखा

गया। उनकी बाल्यावस्था पटनामें ही व्यतीत हुई। बड़े यत्न और सावधानीसे उनकी शिक्षा-दीक्षा हुई। पाँच वर्षकी अवस्थामें उन्हें माता गुजरीने स्वयं गुरुमुखी सिखायी। गुरु तेगबहादुरने उन्हें शस्त्र-शास्त्र दोनोंकी शिक्षा दिलायी। बाल्यावस्थामें ही उन्होंने बिहारी और बंगला भी सीख ली।

बचपनमें ही उनमें अलौकिकता दिखायी देती थी। बाल-सखाओंकी सेना बनाकर तथा स्वयं सेनापति बनकर उन्हें युद्ध करना सिखाते थे। एक दिन वे कुछ बालकोंके साथ खेल रहे थे, उसी समय पटनेके नवाबकी सवारी निकली। चोबदारने कहा, "बच्चों नवाब साहब आ रहे हैं। खड़े हो जाओ, सलाम करो और सिर झुकाओ।" बालकोंके सरदार गोविन्दरायने कहा, "खड़े मत हो, सलाम मत करो, सिर मत झुकाओ।"

कश्मीरी पण्डितोंको औरंगजेबने जब मुसलमान बनाना चाहा, तो सब मिलकर गुरु तेगबहादुरके पास आनन्दपुर गये और उन्हे अपनी करुण कहानी सुनायी। उनकी बातोंसे गुरु तेगबहादुर मौन, उदास और दुःखी हो गये। उसी समय नववर्षीय गोविन्दराय उनके पास आये। उन्होंने पितासे उनकी उदासीका कारण पूछा। पिताने बताया, "कश्मीरी पण्डितोंपर घोर संकट है। औरंगजेब उन्हे मुसलमान बनाना चाहता है।" गोविन्दरायने पूछा, "इससे बचनेका उपाय क्या है?" गुरु तेगबहादुरने उत्तर दिया, "औरंगजेबकी प्रचण्ड धर्मकी द्वेषाग्निमे किसी महान् धर्मात्माकी आहुति ही इससे बचनेका उपाय है।" गोविन्दराय तुरन्त बोल उठे, "आपसे बढ़कर कौन धर्मात्मा भारतवर्षमे होगा? आप ही उस अग्नि की आहुति बनिये।" हर्षातिरेकके कारण गुरु तेगबहादुरने उनका मुख चूम लिया और मन-ही-मन समझ लिया कि मेरा पुत्र मेरे न रहनेपर गुरु-गद्दीका भार सुन्दर रीतिसे संभाल लेगा।

सन् १६७५ ई०में गुरु तेगबहादुर हँसते-हँसते दिल्लीमे शहीद हुए। उनकी शहादतसे सारा देश थर्रा उठा। गुरु-गद्दीका उत्तरदायित्व अल्पायुमें ही गोविन्दरायके ऊपर आ पड़ा। उन्होंने उस समय शक्ति संघटनके लिए हिमालयकी शरण ली और वहीं पहाड़ियोंमें अपना निवास-स्थान बनाया तथा २० वर्षतक ऐकान्तिक साधना की। इस ऐकान्तिक साधनाके अनेक निम्नलिखित शुभ परिणाम निकले—(१) उन्होने फारसी और संस्कृतके ऐतिहासिक-पौराणिक ग्रन्थोंका विशद अध्ययन कर लिया; (२) हिन्दी कवियों द्वारा उन्होंने पंजाबमे पहली बार वीर-रसके काव्यका प्रणयन कराया और स्वयं भी काव्य-रचना की; (३) घुड़सवारी और तीरन्दाजीमें असाधारण निपुणता प्राप्त कर ली; (४) आखेट विद्यामे दक्षता प्राप्त की और कठोर जीवन व्यतीत करनेका अभ्यास किया; (५) हिन्दू जातिकी दयनीय दशाको देखते हुए यह अनुभव किया कि परमात्माने मुझे देश, जाति और धर्मका उत्थान करनेके लिए भेजा है। इसी समय उन्होंने अपना भावी कार्यक्रम बना लिया (दि० गोकुलचन्द: 'ट्रांसफार्मेशन आव सिक्खिज्म', पृ० १२७-१२८)।

अनंगपालके पश्चात् गुरु गोविन्दसिंहके समान कोई भी राजनीतिक नेता नहीं हुआ। गुरु गोविन्दसिंहने भलीभाँति समझ लिया कि हिन्दुओंमें धर्म तो है, किन्तु राजनीतिक जागरूकता और चेतना नहीं है और राष्ट्रीय एकीकरणमें तत्कालीन जाति-व्यवस्था अत्यधिक बाधक है।

गुरु गोविन्दसिंह द्वारा "खालसा पन्थ" का निर्माण उनके जीवनकी सर्वोपरि सफलता है। उन्होंने बैशाख बदी १, सम्वत् १७५६, तदनुसार १६९९ ई०में आनन्दपुरके केशगढ़ नामक स्थानपर दयाराम, धर्मदास, मुहकमचन्द, साहिबचन्द, हिम्मत इन पाँच सिक्खोंको मृत्युंजयी बनाकर 'सिंह' बनाया और स्वयं उनसे दीक्षा लेकर गोविन्दराय-से गोविन्दसिंह बने। उन्होंने कहा कि इन पाँच सिक्खोंमेंसे एक-एक ऐसे है, जिन्हें मैं सवा लाखसे लड़ा सकता हूँ। जिस प्रकार कायरता संक्रामक होती है, उसी प्रकार वीरता भी संक्रामक होती है। गुरु गोविन्दसिंहका यह मन्त्र संजीवनी शक्ति बन गया। उन्होंने 'खालसा पन्थ'को बाह्य दृष्टिसे शक्तिशाली बनानेके लिए प्रतिपादित किया कि—(१) सभी सिक्ख समान है, उनकी एक ही जाति है और वह है सिंह, अतः सभीके नामके आगे 'सिंह' लगाया जाय; (२) सभी एक ढगसे "सत् श्री अकाल" कहकर नमस्कार करें; (३) 'गुरु ग्रन्थ साहिब' को छोड़कर अन्य बाह्य वस्तुओंकी पूजा न की जाय; (४) केवल एक 'अमृतसर' ही तीर्थ हो; (५) सिरमे साफा बाँधना आवश्यक हो; (६) कोई भी 'सिंह' तम्बाकूका सेवन न करे तथा (७) प्रत्येक 'सिंह' केश, कंघा, कृपाण, कड़ा और कच्छ धारण करे।

आन्तरिक दृष्टिसे इस प्रकार सिंहोंको दृढ़ करनेके लिए उन्होने घोषित किया कि—(१) प्रत्येक 'सिंह'के ऊपर परमात्माकी छत्रच्छाया है, जहाँ कहीं भी उनकी जमात एकत्र होगी, वही परमात्मा और गुरु रहेगा; (२) प्रत्येक 'सिंह' विजय प्राप्तिके लिए उत्पन्न हुआ है और उसका नारा है—"वाह गुरुजीका खालसा, वाह गुरुजीकी फतेह।" (३) वीर-रसके साहित्यका अध्ययन प्रत्येक 'सिंह'के लिए आवश्यक है।

गुरु गोविन्दसिंहने भगाणी, गुलेर, आनन्दपुर, चमकौर तथा मुकतार आदिकी लड़ाइयाँ बहादुरीसे लड़ीं। गुरु गोविन्दसिंहने सिक्खोंके धर्मके व्यावहारिक रूपका आदर्श उदाहरण देशके सामने प्रस्तुत किया और वे अन्याय अत्याचारसे जीवनपर्यन्त जूझते रहे तथा एक-एकको सवा लाखसे जुझाते रहे। उन्होंने अपने चार पुत्रों—अजीत सिंह, जोरावर सिंह, जुझार सिंह और फतेह सिंहको देशकी रक्षाके लिए कुरबान कर दिया और उनके दिवंगत होनेपर कहा, "मैंने अपने चार पुत्रोंको इसलिए कुरबान किया है कि मेरे सहस्रों पुत्र आनन्दपूर्वक जीवनयापन कर सकें।"

उनका नाम धर्मसुधारकोंमें तो है ही, राष्ट्र-उन्नायकोंमें भी उनका नाम अग्रगण्य है। उन्होंने गीताके प्रसुप्त आदर्शोंको पंजाबमें फिरसे जागरित किया तथा लोक और परलोक एवं व्यवहार और अध्यात्ममें अपूर्व सामंजस्य स्थापित किया। उनका जीवन संघर्षमय, त्यागमय और सेवामय था। वे पूर्ण निष्काम कर्मयोगी थे।

दक्षिण भारतके नदेड़ (हैदराबाद दक्षिण) नामक स्थान

पर सन् १७०८ ई०में एक पठानने उन्हें आहत कर दिया। मरहम पट्टीसे वे अच्छे होने लगे थे, किन्तु धनुषपर तीरका सन्धान करते समय उनके घावका टाँका टूट गया और वे अपनी देहलीला समाप्त कर 'ज्योती-ज्योति'में लीन हो गये। उन्होंने गुरु-गद्दीके भावी संघर्षोंकी भीषणताका अनुमान कर गुरुत्वका समस्त भार 'श्री गुरु ग्रन्थ साहिब'में केन्द्रित कर दिया। ट्रम्प, मैकालिफ, तेजसिंह और गण्डासिंह आदि विद्वानोंके अनुसार 'गुरु ग्रन्थ साहिब'में उनका रचा हुआ एक दोहरा है, परन्तु शेरसिंह इसका खण्डन करते हैं। उनका कथन है कि वह दोहरा गुरु गोविन्द सिंहका बनाया नहीं है बल्कि गुरु तेगबहादुर द्वारा उसकी रचना हुई है।

दशम ग्रन्थ गुरु गोविन्दसिंहसे सम्बद्ध ग्रन्थ है। इसके रचयिताके सम्बन्धमें मतभेद है। मैकालिफ तो इसे सामूहिक कवियोंका प्रयास मानते हैं, किन्तु कतिपय निर्मला सम्प्रदाय वाले इसे गुरु गोविन्दसिंह द्वारा रचित मानते हैं। इस ग्रन्थमें हिन्दू पौराणिक गाथाएँ, धर्म, दर्शन, इतिहास और साहित्यका संग्रह है। इस ग्रन्थके स्वतन्त्र अध्ययन एवं शोधकी बहुत बड़ी आवश्यकता है। दशम ग्रन्थका विभाजन निम्नलिखित शीर्षकोंमें किया जा सकता है— (१) जापजी (पृष्ठ १-११), (२) अकाल उसतत (पृष्ठ ११-३८), (३) बिचित्र नाटक (पृष्ठ ३९-११८), (४) वार श्री भगउतीजीकी (पृष्ठ ११९-१२७), (५) ज्ञान प्रबोध (पृष्ठ १२७-१५४), (६) चौपायां (पृष्ठ १५५-७०८), (७) शब्द हजारे-रामकली (पृष्ठ ७०९-७१२), (८) सवैया बत्तीस (पृष्ठ ७१३-७१७), (९) शास्त्र नाम माला (पृष्ठ ७१८-८०८), (१०) स्त्री चरित्र (पृष्ठ ८०९-१३५९) तथा (११) जफरनामा और हिकायत (पृष्ठ १३५९-१४२७)।

दशम ग्रन्थकी तीन हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हैं। ये भाई मनीसिंहजी द्वारा लिखी गयी हैं। एक प्रति राजा गुलाबसिंह सेठी, ४७ हनुमान रोड, दिल्लीके अधिकारमें है, दूसरी पटनाके एवं तीसरी सगरूरके गुरुद्वारे में है। दशम ग्रन्थकी प्रकाशित प्रतियाँ (गुरुमुखी लिपिमें) शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, अमृतसरसे प्राप्य है।

गुरु गोविन्दसिंहके 'जापु साहिब'में परमात्माके निर्गुण स्वरूपका वर्णन है। इसमें कुल १९९ छन्द हैं। 'अकाल उसतति' अकाल पुरुषकी स्तुति है। 'बिचित्र नाटक' पौराणिक काव्य-रचना है। इसमे गुरु गोविन्दसिंहजीने अपने जीवनकी बातें कही हैं तथा अपने पूर्व-जन्मकी बातें भी बतायी हैं। ऐतिहासिक दृष्टिसे इसका बहुत महत्त्व है। 'चण्डी चरित्र' दुर्गा-सप्तशतीके आधारपर लिखा गया है। इसमें २२७ छन्द हैं। 'ज्ञान प्रबोध'में दान, धर्म एवं राजधर्मका वर्णन है। 'शास्त्र नाम माला'में शास्त्रोंके नामके माध्यम द्वारा परमात्माका स्मरण है। चौपाईमें 'दूलह दई' और 'श्वास वीर्य' राक्षसके युद्धका वर्णन है। 'जफरनामा' सन् १७०६ ई०मे औरंगजेबको लिखा हुआ पत्र है, जिसमे गुरु गोविन्दसिंहजीके आदर्शोंकी व्याख्या है। उनकी वाणीमे परमात्माकी भक्ति तथा देश भक्तिका अलौकिक वर्णन है।

गुरु गोविन्द सिंहजीकी वाणीमें शान्त एवं वीर-रसकी प्रधानता है। परमात्माकी स्तुतिमें भक्ति, ज्ञान और वैराग्य की मन्दाकिनी प्रवाहित हुई है। युद्धोंके वर्णनमें वीर-रस प्रधान है। रौद्र और वीभत्स रस उसके अंगीभूत हैं। इसमें यों तो सभी अलंकारोंके उदाहरण मिल सकते हैं, किन्तु उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा और दृष्टान्तका बाहुल्य है। शब्दालंकारोंमें अनुप्रासकी प्रधानता है। छन्दोंकी दृष्टिसे इसमें विविधता पायी जाती है। छप्पय, भुजगप्रयात, कवित्त, चरपट, मधुभार, भगवती, रसावल, हरबोलमना, एकाक्षरी, कवित्त, सवैया, चौपाई, तोमर, पाधड़ी, तोटक, नराच, त्रिभंगी आदि अनेक छन्द प्रयुक्त हुए हैं।

गुरु गोविन्द सिंहकी भाषा प्रधानतया ब्रजभाषा है, किन्तु बीच-बीचमें अरबी, फारसी और संस्कृत शब्दोंकी भी प्रचुरता है। उनकी भाषामें सरिताका प्रवाह एवं निर्झरका कलकल निनाद है। उदाहरणार्थ—"करुणालय हैं। अरिघालय हैं॥ खल खंडन हैं। महि मंडन हैं। जगतेस्वर है। परमेस्वर है॥ कलि कारन हैं। सर्व-उबारन है॥" (जाप साहिब)। "कई वेद रटंत। कई सेख नाम उचरंत॥ बैराग कहूँ संन्यास। कहूँ फिरत रूप उदास॥ सब कर्म फोकट जान। सब धर्म निहफल मान॥ बिन एक नाम अधार। सब कर्म धर्म विचार॥" (अकाल उसतत)।

[सहायक ग्रन्थ—(१) आर्नेस्ट ट्रम्प : द आदि ग्रन्थ, लन्दन, १८७७ ई०; (२) एम० ए० मैकालिफ : क्लेरण्डन प्रेस, आक्सफर्ड, १९०९ ई०; (३) गोकुलचन्द नारंग : ट्रांसफारमेशन आफ सिक्खिज्म, तृतीय संस्करण, न्यू बुक सोसायटी, लाहौर, १९४६ ई०।] —ज० रा० सि०

गुरु ग्रन्थ साहिब—यह सिक्खोंका परम पूज्य धर्म-ग्रन्थ है। १४३० पृष्ठोंके इस बृहत्काय धर्म-ग्रन्थमें ही सिक्खोंके सम्पूर्ण धार्मिक और दार्शनिक विचारोंका परिचय मिलता है। यह ग्रन्थ 'आदि ग्रन्थ'के नामसे भी विख्यात है। गुरु गोविन्द सिंहके दशम ग्रन्थसे विभिन्नता प्रदर्शित करनेके लिए 'आदि' शब्द प्रारम्भमें जोड दिया गया है। 'ग्रन्थ' का पूरा नाम 'आदि श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी' है। गुरु ग्रन्थ साहिबकी प्रथम प्रति करतारपुर, जिला अमृतसरके सोधियोंके अधिकारमें है। यह करतारपुरके गुरुद्वारेमें देखी जा सकती है। गुरु ग्रन्थ साहिबकी प्रकाशित प्रतियाँ, गुरुमुखी एव देवनागरी लिपिमें, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, अमृतसरसे प्राप्य है।

'गुरु ग्रन्थ साहिब'का सकलन सिक्खोंके पंचम गुरु अर्जुन देव (१५६३ ई०-१६०६ ई०) ने सन् १६०४ में बड़े परिश्रमसे पूरा किया था। सिक्ख-गुरुओंकी वाणीके अतिरिक्त अन्य प्रसिद्ध भक्तोंकी ऐसी वाणियाँ भी इसमें संकलित कर ली गयी हैं, जो तत्कालीन धार्मिक सुधार-भावनाके अनुरूप थीं और सिक्ख-गुरुओंकी शिक्षाके विरुद्ध अथवा प्रतिकूल नहीं पडती थीं। इन भक्तोंकी वाणियोंमें यदा-कदा परिवर्तन भी दिखायी पड़ते हैं। इसका प्रमुख कारण यही है कि उनकी वाणियाँ गुरु अर्जुनदेवके समयके उनके अनुयायियों तक आते-आते परिवर्तित हो गयीं, उनमें पंजाबी शब्द आ गये। प्रायः गुरु ग्रन्थ साहिबमें संकलित सन्त वाणियाँ अन्यत्र नहीं मिलतीं। इतना निश्चित है कि

१६०४ ई० के संग्रहके बाद उनमें कोई भी परिवर्तन नहीं हुआ। 'संग्रह'की समाप्तिके पश्चात् भाई बुड्ढा और भाई गुरुदासकी सलाहसे 'गुरु ग्रन्थ साहिब'की प्रति अमृतसरके हर-मन्दिरमें अत्यधिक सम्मानके साथ प्रतिष्ठित कर दी गयी (दे० 'द सिक्ख रिलीजन', भाग ३ : एम० ए० मैकालिफ, पृष्ठ ६५)।

संग्रहकी समाप्तिके पश्चात् गुरु अर्जुन देवने अपने सिक्खोंसे कहा, "ग्रन्थ साहिब गुरुओंकी ही प्रतिमूर्ति है, अतएव इन्हें (ग्रन्थ साहिबको) वही प्रदान करना चाहिये" (दे० वही)। 'श्री ग्रन्थ साहिब'की स्थापनाके बाद उनकी सेवाका भार भाई बुड्ढाको सौंपा गया।

पिनकाटके अनुसार 'गुरु ग्रन्थ साहिब'मे ३३८४ वाणियाँ हैं और १५५७५ बन्द हैं। इनमेंसे ६२०४ बन्द पाँचवें गुरु अर्जुन देव द्वारा, २९४९ बन्द आदि गुरु नानक देव द्वारा, २५२२ बन्द तीसरे गुरु अमरदासजी द्वारा, १७३० बन्द चौथे गुरु रामदासजी द्वारा, १९६ बन्द नवम गुरु तेगबहादुर द्वारा और ५७ बन्द द्वितीय गुरु अंगदेव द्वारा रचे गये हैं। अवशिष्ट बन्दोंमेंसे कबीरके बन्द सबसे अधिक है और 'मरदाना'के सबसे कम (दे० 'जर्नल आव द रायल एशियाटिक सोसायटी', भाग १८ में फ्रेडरिक पिनकाटका लेख)।

सुविधाके लिए 'गुरु ग्रन्थ साहिब'के रचयिताओंका क्रम और उनकी रचनाओंका विवरण निम्न प्रकारसे दिया जा सकता है: (क) सिक्ख गुरु, (ख) भक्त गण, (ग) भट्ट समुदाय, (घ) फुटकर वाणीकार। (क) सिक्ख गुरु—१. गुरु नानक (महला पहला), २. गुरु अंगदेव (महला दूजा), ३. गुरु अमरदास (महला तीजा), ४. गुरु रामदास (महला चौथा), ५. गुरु अर्जुनदेव (महला पाँचवाँ), ६. गुरु तेगबहादुर (महला नवाँ), ७. गुरु गोविन्द सिंह (महला दसवाँ)। ट्रम्प मैकालिफ, तेजसिंह और गण्डासिंह आदि विद्वान् 'गुरु ग्रन्थ साहिब'में गुरु गोविन्द सिंह द्वारा रचित केवल एक दोहरा मानते हैं। शेरसिंहने इसे भी गुरु तेगबहादुर द्वारा रचित माना है (शेरसिंह : फिलासफी आव द सिक्खिज्म, पृ० ४९)। सभी गुरुओंने 'नानक' नामसे ही वाणियाँ रची हैं। उन्हें पृथक रूपसे जाननेके लिए 'महला पहला', 'महला दूजा' आदि कहकर महलाके बाद गुरुकी क्रम संख्याका निर्देश कर दिया गया है। (ख) ट्रम्प और गोकुलचन्द नारंग इन भक्तोंकी संख्या १४ मानते हैं—१. जयदेव, २. नामदेव, ३. त्रिलोचन, ४. सदना, ५. बेनी, ६. रामानन्द, ७. धन्ना जाट, ८. पीपा, ९ सेन, १०. कबीर, ११. रवदास अथवा रविदास अथवा रैदास, १२. फरीद, १३. भीखन और १४. सूरदास (मदनमोहन)।

मैकालिफ उपर्युक्त नामोंके अतिरिक्त दो नाम और जोड़ते हैं—मीराबाई और परमानन्द। मीराबाईका एक पद भाई बन्नोंके 'ग्रन्थ साहिब'की प्रतिमें है किन्तु वह प्रति प्रामाणिक नहीं समझी जाती। परमानन्दका एक पद राग सारंगमे १२५३ पृष्ठपर है। शीर्षकमें अन्य भक्तोंके नामोंकी भाँति उनका नाम नहीं दिया गया है। पदके अन्तमें उनका नाम अवश्य मिलता है। (ग) भट्ट समुदायकी वाणियोंमें प्रथम पाँच गुरुओंकी स्तुति सवैया छन्दोंमें की गयी है। उनके नामों और संख्याके सम्बन्धमें विद्वानोंमें मतभेद है। ट्रम्पने भट्टोंके नामोंकी संख्या १५ बतलायी है। गोकुलचन्द नारंगने भी ट्रम्पकी दी हुई संख्या और नामावलीकी पुष्टि की है। मोहनसिंहने केवल १२ नाम गिनाये हैं। साहबसिंहके मतसे उनकी संख्या ११ है। शेरसिंहने १७ नामोंकी सूची दी है। (घ) फुटकर वाणीकार सुन्दर मरदाना, सत्ता और बलवड हैं। सुन्दरका रामकलीका पद, मरदानाकी वाणी और सत्ता तथा बलवडकी वार 'ग्रन्थ साहिब'में संगृहीत हैं।

'ग्रन्थ साहिब'का क्रम इस प्रकार है :—(क) जपुजी पृष्ठ १-८ तक, (ख) सोदरु पृष्ठ ८-१० तक, (ग) सोपुरखु पृष्ठ १०-१२ तक, (घ) सोहिला पृष्ठ १२-१३ तक और (ङ) पृष्ठ १४ से पृष्ठ १३५३ तक। निम्नलिखित ३१ राग हैं : १. सिरी रागु, २. रागु माझ, ३. रागु गउडी, ४. रागु आसा, ५. रागु गूजरी, ६. रागु देवगन्धारी, ७. रागु विहागड़ा, ८. रागु वडहसु, ९. रागु सोरठि, १०. रागु धनासिरी, ११. रागु जैतासिरी, १२. रागु टोडी, १३. रागु बेराड़ी, १४. रागु तिलगु, १५. रागु सुही, १६. रागु बिलावलु, १७. रागु गोड, १८. रागु रामकली, १९. रागु नट नाराइन, २०. रागु माली गउडा, २१. रागु मारु, २२. रागु तुखारी, २३. रागु केदारा, २४. रागु भैरउ, २५. रागु बसन्त, २६. रागु बसन्तु, २७. रागु मलार, २८. रागु कनाड़ा, २९. रागु कलिआन, ३०. रागु प्रभाती तथा ३१. रागु जैजावन्ती। (च) पृष्ठ १३५३से पृष्ठ १४३० तक, जिसका क्रम इस प्रकार है—१. सलोक सहस-कृती, २. गाथा, ३. फुनहे, ४. चउबोले, ५. सलोक कबीर और फरीदेके, ६. महला ५ तथा भट्टोंके सवैये, ७. सलोक वारां ते वधीक, ८. मुन्दावणी, ९. रागमाला। प्रत्येक रागमें साधारणतया वाणियाँ निम्नलिखित क्रमसे रखी गयी हैं—१. सबद, (शुद्ध), २. असटपदाआ (अष्टपदियाँ), ३. छन्त (छन्द), ४. वार और ५. भक्तोंकी वाणियाँ।

'गुरु ग्रन्थ साहिब'की भाषामे अनेकरूपता है। उसमे फारसी, मुल्तानी, सिन्धी, हिन्दी, मराठी, पुरानी पंजाबी तथा अन्य बोलियोंके रूप पाये जाते हैं।

इस ग्रन्थमे ईसाकी बारहवीं शताब्दीके मध्यसे लेकर सोलहवीं शताब्दीके मध्यतकके विभिन्न सम्प्रदायी भक्तोंकी विचारधारा उपलब्ध है। इस दृष्टिसे 'गुरु ग्रन्थ साहिब'का अतुलनीय महत्त्व है।

'गुरु ग्रन्थ साहिब'में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियोंका सुन्दर चित्रण प्राप्त होता है। इस ग्रन्थमें पाखण्डों और बाह्याडम्बरोंका खण्डन किया गया है, चाहे वह हिन्दू ब्राह्मणोंका हो, चाहे जैनोंका हो, चाहे योगियोंका हो, चाहे मुल्लाओं अथवा काजियोंका हो। 'गुरु ग्रन्थ साहिब'में सामाजिक कुरीतियोंका बुरी तरहसे खण्डन किया गया है। जाति व्यवस्थाके सम्बन्धमें इस प्रकारकी उक्ति मिलती है—"जाणहु जोति न पूछहु जाती आगे जाति न हे ॥" १ रहाउ ॥३॥ ('गुरु ग्रन्थ साहिब', आसा, महला १, पृष्ठ ३४९) अर्थात् परमात्माकी ज्योति ही समस्त प्राणियोंमें समझो। अतः जातिका प्रश्न न करो, क्योंकि पहले किसी प्रकारकी जाति-व्यवस्था नहीं थी।

इसी प्रकार इस ग्रन्थमें उपेक्षित नारी-समाजको फिरसे प्रतिष्ठा एवं गौरवके आसनपर बिठाया गया है।

'गुरु ग्रन्थ साहिब'में हिन्दू और मुसलमान दोनों ही धर्मोंके बीच समन्वय स्थापित करनेकी चेष्टा की गयी है। दोनों धर्मोंकी आन्तरिक अच्छाइयोंको ग्रहण किया गया है। जहाँ एक ओर सच्चे मुसलमान बननेकी विधि बतायी गयी है, वहीं दूसरी ओर यह भी बताया गया है कि सच्चा ब्राह्मण कौन है?

'गुरु ग्रन्थ साहिब'में परमात्माको अव्यक्त, निर्गुण स्वरूपमें प्रतिष्ठित किया गया है। अवतारवादका खण्डन करके एकेश्वरवाद स्थापित किया गया है। परमात्माके सम्बन्धमें 'गुरु ग्रन्थ साहिब' एवं उपनिषदोंकी विचारावलीमें बहुत कुछ समानता है। गुरु ग्रन्थ साहिबमें मायाको स्वतन्त्र न मानकर परमात्माके अधीन माना गया है। स्थान-स्थानपर मायाके सर्वव्यापी स्वरूपका चित्रण मिलता है। अहंकार और द्वैतवादके कारण जीव बँधा रहता है। अहंकार नाशके निमित्त विविध उपाय भी बताये गये हैं, जिनमे कर्म-मार्ग, योग-मार्ग और ज्ञान-मार्ग प्रधान हैं। भक्ति-मार्ग सर्वोपरि साधन है। इसीके अन्तर्गत सभी साधन मार्ग आ जाते है। भक्ति-मार्गके विविध उपकरणोंकी चर्चा भी इस ग्रन्थमें मिलती है, जिनमें प्रमुख निम्नलिखित है—सद्गुरु, नामोपासना, साधु-संगति, परमात्मामें भय एवं दृढ़ प्रीति, दैन्य भाव, आत्म-समर्पण भाव, परमात्माका स्मरण एवं कीर्तन तथा भगवत्कृपा आदि।

[सहायक ग्रन्थ—(१) डा० आर्नेस्ट ट्रम्प : द आदि ग्रन्थ, लन्दन, १८७७ ई०; (२) एम० ए० मैकालिफ : द सिक्ख रिलीजन, क्लेरेण्डन प्रेस, आक्सफर्ड, १९०९ ई०; (३) डा० शेरसिंह : फिलाफसी ऑव सिक्खिज्म, सिक्ख युनीवर्सिटी प्रेस, लाहौर, १९४४ ई० तथा (४) डा० जयराम मिश्र : श्री गुरु ग्रन्थ दर्शन, साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग, १९६० ई०।] —ज० रा० मि०

गुरु तेगबहादुर—दे० तेगबहादुर 'गुरु'।

गुरुदत्त—ये मकरन्दपुर जिला फरूखाबादके निवासी शिवनाथके पुत्र थे। ये १८०७ ई०में विद्यमान कहे जाते हैं। इनका 'पक्षी विलास' विषय-वस्तुकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें अन्योक्ति शैलीमें विविध पक्षियोंको सम्बोधित करके उनका वर्णन किया गया है। 'दिग्विजय-भूषण'में उद्धृत सवैयोंमें शुक, चातक तथा पपीहाकी विशेषताओंको लक्ष्य करके अन्योक्ति की गयी है। —स०

गुरुदीन—'शिवसिंह सरोज'के अनुसार ये सन् १८३५ (सं० १८९१)में उपस्थित थे। इनका अन्य वृत्तान्त ज्ञात नहीं होता। केवल इतना पता चलता है कि इन्होंने 'वाक्मनोहर पिंगल' अथवा 'बागमनोहर पिंगल' नामका एक बृहद् ग्रन्थ सन् १८०४ ई०में रचा था, जिसमें पिंगलके अतिरिक्त अलंकार, षट्ऋतु, नखशिख, रस, अलंकार, गुण, दोष, शब्दशक्ति आदि विषयोंका भी विवेचन प्रस्तुत किया गया है। यह सर्वांगपूर्ण ग्रन्थके रूपमें उपस्थित किया गया है और केशवकृत 'कविप्रिया'की शैलीपर लिखा गया है। विशेषता यह है कि पिंगलका सुविस्तृत वर्णन भी किया गया है। सभी प्रकार के छन्दोंका प्रयोग करते हुए भी विशेषतः संस्कृत वर्ण-वृत्त अधिक अपनाये गये हैं। उदाहरण सरस, सुन्दर तथा उपयुक्त हैं। मिश्रबन्धुओंने इन्हें बेनी-प्रवीन-कालका प्रमुख कवि माना है।

[सहायक ग्रन्थ—शि० सिंह सरोज; हि० सा० इ०; मि० वि०।] —आ० प्र० दी०

गुरु नानक—दे० 'नानकगुरु'।

गुरु भक्तसिंह 'भक्त'—इनकी जन्म-तिथि ७ अगस्त, सन् १८९३ है। जन्म गाजीपुर जिलेके जमानियाँ तहसीलके शासकीय औषधालयमें हुआ। पिता ठाकुर कालिकाप्रसाद सिंह पृथ्वीराज चौहानके वंशज, सहायक सर्जन एवं सुशिक्षित अरबी-फारसी-प्रेमी परिवारके काव्यानुरागी सहृदय व्यक्ति थे। ये बलियामें ही बस गये। 'भक्तजी' बी० ए०; एल० एल० बी० हैं। कई रियासतोंमें दीवान रहनेके बाद आजमगढ़ नगरपालिकाके कार्याधिकारी हुए। अब उस पदसे अवकाश लेकर साहित्य-साधना कर रहे हैं।

'सरस सुमन' (रचना-काल १९२०-२५ ई०, प्रकाशन-काल १९२५ ई०), 'कुसुम कुंज' (रच० १९२६-२८, प्रका० १९२९), 'वंशी-ध्वनि' (रच० १९२६-३०, प्रका० १९३०), 'वन श्री' (रच० १९२०-३०, प्रका० १९३२), 'नूरजहाँ' (रच० १९३२-३३, प्रका० १९३५) एवं 'विक्रमादित्य' (रच० १९३९-४४, प्रका० १९४४) उनकी प्रकाशित रचनाएँ हैं। 'प्रेम पाश' (नाटक, रच० १९२०), 'रधिया' (उपन्यास, रच० १९२२), 'वे दोनों' (उपन्यास, रच० १९२४), 'नूरजहाँ' (अंग्रेजी काव्यानुवाद, (रच० १९५८-६०) 'प्रमद वन' (गीत, मुक्तक, हिन्दी-गजल, चतुष्पदियोंका नवीन संग्रह, रच० १९४४-६०) एवं 'आत्मकथा' (अद्यतन जीवनी) अप्रकाशित रचनाएँ हैं। 'सरस सुमन', 'कुसुम कुंज', 'वंशी-ध्वनि' एवं 'वन श्री' स्फुट कविताओंके संग्रह हैं। ये कविताएँ ग्रामीण प्रकृति, ग्राम्य जीवन एवं वन, पुष्प और पक्षियोंसे सम्बद्ध अपने समयमें काव्यके व्यापक वस्तु-विषय तथा शेष सृष्टिके प्रति नवीन राग-विस्तारका संकेत करती हैं। प्रकृतिके प्रति आत्मीयता, ग्राम्य जीवन-रूपोंके आत्म-स्पर्श और अपरिचित, उपेक्षित निसर्ग-पक्षोंके सरस विवरणोंसे युक्त इन रचनाओंके कारण इन्हे 'हिन्दीका वर्ड्सवर्थ' कहा गया है। 'नूरजहाँ' इतिहास प्रसिद्ध व्यक्तित्व नूरजहाँ पर लिखित महाकाव्यके रूपमे विख्यात ललित प्रबन्ध है। 'विक्रमादित्य' भारतीय इतिहासके स्वर्ण-कालसे सम्बद्ध छठी शतीके संस्कृत नाटककार विशाखदत्तके 'देवी चन्द्रगुप्त' नाटकके सुप्रसिद्ध अंश पर आधृत उनका द्वितीय महाकाव्य है। 'भक्त'जी ने शोध, अध्यवसाय एवं विधायक कल्पना द्वारा इस प्रबन्धको 'नूरजहाँ'से भी आगे ले जाकर जीवनकी गहनतर विशालतामे फैला दिया है। तत्कालीन इतिहास, इस प्रबन्धमें पुनरुज्जीवित होकर अन्तर्बाह्य चित्रणकी विविधता, जीवन प्रश्नों की गम्भीर सूक्ष्मता, चरित्रांकनकी यथार्थता एवं भाषा-प्रांजलताकी विशेषताओंके साथ नाटकीय संघर्षकी गति पाकर मूर्तिमान् हो उठा है।

'भक्तजी'ने द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकताको सरस वर्णन-सौन्दर्य, आदर्शवादको मानवीय यथार्थकी मनोदृष्टि, प्रकृति-संकोचको नूतन विस्तार एवं भाषाकी गद्यात्मक रुक्षताको

तरल प्रवाह एवं मुहाविरोंको जीवन्त मधुरिमा प्रदान की है। ये छायावादी अमूर्तता एवं वैयक्तिकतासे परे अपरोक्ष अनुभूतियोंके सहज प्रसारक एवं तत्कालीन काव्य-विषयको नूतन अर्थभूमि प्रदान करने वाले प्रकृत स्वच्छन्दतावादी कवि हैं। इनके प्रयाससे छायावादी काव्य एक नवीन मोड़ लेता है। —श्री० सिं० क्षे०

गुलाबरत्न वाजपेयी–इनका जन्म उन्नावमें १९५८ वि०में हुआ। इनकी कविताएँ मासिक 'माधुरी'में प्रायः प्रकाशित होती रहीं। 'चित्रकला', 'लतिका', 'मृत्युंजय', 'मल्लिका', 'कर्मरेखा' इनकी रचनाएँ हैं। कलकत्ताके एक चलचित्र प्रतिष्ठानसे सम्बद्ध रहे। —सं०

गुलाबराय–इनका जन्म इटावामें १८८८ ई० (माघ शुक्ला ४, संवत् १९४४) और मृत्यु १३ अप्रैल १९६३ ई०को हुई। दर्शनशास्त्रमें एम० ए० और बादमें एल-एल० बी०; आगरा विश्वविद्यालयसे सम्मानार्थ डी० लिट्‌की उपाधि; ८ वें दर्जे तक फारसी पढ़ी, फिर संस्कृत ली। बी० ए०में संस्कृत पढ़नेके अतिरिक्त काव्यशास्त्र और दर्शनशास्त्रके अध्ययनके सिलसिलेमें संस्कृतका घरपर भी अध्ययन किया।

गुलाबरायके साहित्यिक कृतित्वके अनेक रूप हैं—काव्यशास्त्रकार, आलोचक, निबन्धकार, दार्शनिक। काव्यशास्त्रसे सम्बद्ध उनकी कृतियाँ है—(१) 'नवरस' (१९२०), (२) 'सिद्धान्त और अध्ययन' (१९४६), (३) 'काव्यके रूप' (१९४७), (४) 'हिन्दी नाट्य विमर्श' आदि; आलोचनात्मक कृतियोंमें उल्लेखनीय हैं—(१) 'हिन्दी साहित्यका सुबोध इतिहास', (२) 'अध्ययन और आस्वाद' (३) 'हिन्दी काव्य विमर्श'। प्रमुख निबन्ध-संकलन हैं—(१) 'ठलुआ क्लब', (२) 'फिर निराशा क्यों', (३) 'मेरी असफलताएँ' (हास्य-व्यंग शैलीमें प्रस्तुत आत्म-कथा), (४) 'मेरे निबन्ध' (१९५५), (५) 'कुछ उथले, कुछ गहरे', (६) 'मनोवैज्ञानिक निबन्ध', (७) 'राष्ट्रीयता', (८) 'जीवन-रश्मियाँ' (प्रेसमे); और दार्शनिक ग्रन्थोंके अन्तर्गत आते हैं—(१) 'मनकी बातें' (१९५४), (२) 'तर्कशास्त्र' (तीन भाग, दो भागोंमें पाश्चात्य तर्कशास्त्र और तीसरेमें भारतीय तर्कशास्त्र), (३) 'कर्तव्यशास्त्र', (४) 'पाश्चात्य दर्शनोंका इतिहास', (५) 'बौद्ध धर्म'।

इनकी प्रतिभाका विशिष्ट गुण है समन्वय—प्राचीन और नवीनका समन्वय; पौरस्त्य और पाश्चात्यका समन्वय, बौद्धिक और रागात्मकका समन्वय। काव्यशास्त्रमें इन्होंने आचार्य रामचन्द्र शुक्लकी शैलीमें प्राचीन और नवीन अथवा भारतीय और पाश्चात्य सिद्धान्तोंका समंजन कर भारतीय काव्यकी विवेचना करनेके लिए एक प्रकारके समन्वित काव्यशास्त्रके विकासमें योगदान किया है। दर्शन और मनोविज्ञानका पुष्ट आधार होनेके कारण इनके सिद्धान्त प्रतिपादनमें प्रामाणिकता, संगति और तारतम्यके गुण विद्यमान रहते हैं। शुक्लजीका-सा गाम्भीर्य और दृढ़ता न होनेपर भी इनमें दूसरे पक्षके प्रति एक सहज सहिष्णुता मिलती है, जिससे इनके सिद्धान्त-प्रतिपादनमें अनायास ही औदार्यका समावेश हो जाता है। इनका ग्रहण-पक्ष उनके त्याग-पक्षसे कहीं अधिक प्रबल है। इससे कभी-कभी दृढ़ताका अभाव हो जानेपर भी इनकी समन्वय-भावनाका पोषण ही होता है।

व्यावहारिक आलोचनामें इन्होंने प्रायः व्याख्यात्मक पद्धतिका ही अवलम्बन किया है। इनके विचार सुलझे और निर्णय कोमल होते हैं—अर्थात् ये प्रायः अप्रिय निष्कर्ष कम ही निकालते हैं; जहाँतक सम्भव होता है, आलोच्यके दोषोंकी अपेक्षा गुणोंका ही अनुसन्धान इन्हें रुचिकर होता है। इस क्षेत्रमें भाव-पक्षकी अपेक्षा विचार-पक्षका विश्लेषण, दर्शन और मनोविज्ञानमें सहज गति होनेके कारण, उनके लिए अधिक सुकर होता है—रागात्मक समृद्धि अथवा शैल्पिक सूक्ष्मताओं तक इनकी पहुँच इतनी नहीं है।

निबन्धकारकी दृष्टिसे इनकी सफलता और भी अधिक है। अहंकारकी उग्रतासे मुक्त भीनी व्यक्ति-गन्ध इनके ललित निबन्धोंकी प्रमुख विशेषता है। व्यक्ति-तत्त्वके तीखे कोनोंको खरादनेके लिए वे प्रायः हास्यका आश्रय लेते हैं—अपनी सतही कमजोरियोंपर मीठी हँसी हँसते हुए ये अत्यन्त सहज भावसे पाठककी सहानुभूतिपर और अन्ततः उसके आदर-भावपर अधिकार कर लेते है। इस प्रकार इनके व्यक्तित्वका कोमल प्रभाव प्रच्छन्न रूपसे इनके निबन्धोंमें व्याप्त रहता है। इस दृष्टिसे ये हिन्दी-निबन्धके क्षेत्रमें अकेले हैं। तीखे व्यंग्यसे मुक्त कोमल हास्यकी धवलता स्निग्ध रूपसे इन निबन्धोंकी वस्तु और शैलीमें रमी रहती है। मनोवैज्ञानिक निबन्धोंमे यह कला और भी विकसित हुई है। मनोविश्लेषणशास्त्रकी नवीन पद्धतियोंके आधारपर चेतन और अवचेतन मनकी आन्तरिक प्रक्रियाओंके चित्रण हास्यके कोमल स्पर्शोंसे बड़े मनोरम बन गये हैं। व्यक्तिपरक निबन्धोंके अतिरिक्त वस्तु-परक निबन्ध भी गुलाबरायने अनेक लिखे हैं। इनमें विषय-प्रतिपादन स्वच्छ एवं स्पष्ट शैलीमें किया जाता है—प्रत्येक विचार-बिन्दु सहज रूपमें खुलता जाता है और उनमें आपसमें तर्क-सम्मत सम्बन्ध रहता है। इन विचारोंके पीछे लेखकका नैतिक दृष्टिकोण सर्वत्र विद्यमान रहता है, किन्तु यह नैतिकता कठोर नहीं होती—लेखकके व्यक्तित्वकी कोमलता उसे सहिष्णु बनाये रखती है। इनके जीवन-सम्बन्धी निबन्धोंमें धर्म, अर्थ, कामके सुखद समन्वयसे अनुप्राणित जीवन-दर्शन विद्यमान है।

दार्शनिकके रूपमें गुलाबरायका योगदान मौलिक चिन्तनकी दृष्टिसे नहीं है। हिन्दीमें अध्ययन योग्य गम्भीर सामग्री उपस्थित करनेमें उनका योगदान सराहनीय है। ये जीव ब्रह्मकी एकता मानते हुए भी संसारको मिथ्या नहीं मानते। यही दृष्टिकोण इनके निबन्धोंको अनुप्राणित करता है। पाश्चात्य दर्शनोंका इतिहास, बौद्धधर्म और कर्तव्यशास्त्र आदिके मूलतत्त्वोंको हिन्दी-पाठकके लिए बोधगम्य बनाकर लेखकने आजसे लगभग ३०-३५ वर्ष पूर्व एक बड़ा काम किया था। द्विवेदी युगमें हिन्दी-गद्यको ज्ञान-विज्ञानके क्षेत्रमें गम्भीर विवेचनके उपयुक्त बनानेमें जिन विद्वानोंका हाथ था, उनमें गुलाबराय अग्रणी थे।

इस प्रकार आधुनिक हिन्दी-गद्यके उन्नायकोंमें डाक्टर गुलाबरायका महत्त्वपूर्ण स्थान है—काव्यशास्त्र, व्यावहा-

रिक आलोचना, ललित निबन्ध, गम्भीर निबन्ध, ज्ञान-साहित्य आदिके विकासमें सम्यक् योगदान देकर, द्विवेदी-युगसे लेकर नयी कविता और नयी आलोचनाके इस अत्याधुनिक युगतककी विकासशील चेतनाको आत्मसात् कर, मन्थर किन्तु स्थिर गतिसे, आगे बढ़ता हुआ यह वयोवृद्ध लेखक विशेष ऐतिहासिक गौरवका अधिकारी है। —न०

गुलाबसिंह—ये 'वनिताभूषण'के लेखक हैं। ये बूँदीपति रघुवीरसिंहके आश्रयमें रहते थे। 'वनिताभूषण'की रचना इन्होंने १८९८ ई० (सं० १९४९) में की थी। इस ग्रन्थकी मुख्य विशेषता है नायिका-भेद तथा अलंकार-विषयका एकत्र विवेचन। —ओ० प्र०

गुलाल—इतिहास ग्रन्थोंमें इनका जीवन वृत्त नहीं मिलता। शिवसिंहने इनका समय १८१८ ई० माना है। 'शालिहोत्र' नामक इनकी एक रचनाकी चर्चा की जाती है और षट्ऋतु तथा नायिका-भेदपर इनके कुछ छन्द संग्रह-ग्रन्थोंमें मिलते हैं। 'शिवसिंह सरोज' और 'दिग्विजयभूषण'में उद्धृत इनके छन्दमें वसन्तका वर्णन है। —सं०

गुलाल साहब—ये प्रसिद्ध सन्त बुल्ला साहबके शिष्य थे। ये जिला गाजीपुर, परगना सादियाबाद, तालुका बसहरीके जमींदार और जातिके क्षत्रिय थे। इनका जन्म १७ वी शतीके अन्तिम चरणमें हुआ था। इनके गुरु बुल्ला साहब पहले बुलाकीराम कुर्मीके रूपमे इनका हलवाही करते थे। अपने हलवाहेके उच्च आध्यात्मिक जीवनसे प्रभावित होकर ये उसके शिष्य हो गये। 'भुरकुडा' इन्हींकी जमींदारीमे पडता है। बुल्ला साहबके बाद सन् १७०९ ई०मे स्वयं इस गद्दीके महन्त हुए। इनकी मृत्यु सन् १७६० ई०मे हुई। भीखा साहब और हरलाल साहब इनके प्रसिद्ध शिष्य हुए। इनकी वाणियोंका एक सग्रह 'गुलाल साहबकी बानी' नामसे बेलवेडियर प्रेस प्रयागसे प्रकाशित हो चुका है। भुरकुडा गद्दीसे प्रकाशित 'महात्माओंकी बानी'मे स्फुट पदोंके अतिरिक्त इनकी दो अन्य रचनाएँ—'ज्ञान गुष्टि' और 'राम सहस्र नाम' भी सगृहीत हैं। इनकी साधना ऊँचे दर्जेकी जान पड़ती है। निर्विकल्प मनकी समावस्थाकी दिव्य अनुभूतिका वर्णन अनेक रूपोंमें करते हुए ये अघाते नहीं। इनकी रचनाओमें भोजपुरी शब्द प्रचुर मात्रामे मिलते है। काव्य दृष्टिसे इनकी रचनाएँ साधारण हैं।

[सहायक ग्रन्थ—महात्माओंकी बानी, भुरकुडा (गाजीपुर) संस्करण; उत्तरी भारतकी सन्त परम्परा : परशुराम चतुर्वेदी।] —रा० च० ति०

गोकुल—गोकुल ब्रजका एक ग्राम है। यह वल्लभ सम्प्रदायका प्रमुख केन्द्र रहा है। गोस्वामी विट्ठलनाथके "श्रीमद् गोकुल सर्वस्व, श्रीमद् गोकुल मंडनम्। श्रीमद् गोकुल दृक्तारा, श्रीमद् गोकुल जीवनम्।" नामक श्लोकसे इस तथ्यकी पुष्टि होती है। 'वार्ता साहित्य'के निर्माणका कार्य यहाँ ही पूरा हुआ। गोकुलमें वल्लभ सम्प्रदायकी २४ हवेलियाँ हैं, जो पुष्टिमार्गीय भक्तों और आचार्योंसे सम्बद्ध हैं। गोकुलके द्रष्टव्य स्थानोंमें आचार्य महाप्रभुकी भीतरली और बाहरली बैठक, दामोदर हरसानीकी बैठक, गुसाईं गोकुलनाथजीकी बैठक, गोविन्द घाट, वलभ घाट, गोकुलनाथजीका मंदिर, ब्रजराजजीका मन्दिर आदि उल्लेखनीय हैं। नवनीत प्रियजीके मन्दिरके कारण गोकुलका महत्त्व और भी बढ़ गया है।

कृष्ण कथाके अन्तर्गत कृष्णकी गोकुल लीलाओंका महत्त्वपूर्ण स्थान है। गोकुल लीलाओंके लौकिक और अलौकिक दो रूप मिलते हैं। लौकिक लीलाओंमें कृष्णके संस्कार, नामकरण, अन्नप्राशन, वर्षगाँठ, कर्णछेदन, रक्षाबन्धन, बाललीला, चन्द खिलौना, प्रभाती, माखन चोरी और गोदोहन तथा अलौकिक लीलाओंमें कृष्ण जन्म, पूतना, सिद्धवर ब्राह्मण, कागासुर, शकटासुर, तृणावर्त्त आदि सम्मिलित हैं। गोकुल लीलाएँ अधिकतर भागवतपर आधारित है। इस सन्दर्भमें यह स्मरणीय है कि वात्सल्य भक्तिका निधान होनेके कारण गोकुल लीलाओंका वर्णन वल्लभ सम्प्रदायके ही काव्यमें मिलता है। निम्बार्क, चैतन्य, राधावल्लभ और हरिदासी सम्प्रदायोंमें माधुर्योपासनाकी प्रधानता रही है। इसलिए उनके सम्प्रदायोंमें गोकुल लीलाओंका ही वर्णन नहीं मिलता, न उनके भक्तोंका गोकुलके प्रति आकर्षण ही था।

[सहायक ग्रन्थ—ब्रज और ब्रज यात्रा : सेठ गोविन्द दास; ब्रजभाषा और गुजराती कृष्णकाव्यका तुलनात्मक अध्ययन : डाक्टर जगदीश गुप्त; सूरदास : डाक्टर ब्रजेश्वर वर्मा।] —रा० कु०

गोकुलनाथ—रीतिकालमे प्रबन्ध और रीति ग्रन्थ लिखनेमें समान सफलता प्राप्त करने वाले काशीनिवासी गोकुलनाथका जन्म संवत् १८२० के आस-पास स्थिर किया जाता है। गोकुलनाथने अपने ग्रन्थोंमे उनका जो रचनाकाल दिया है उसीके आधार पर उनकी जन्मतिथिका निर्णय किया गया है। वे हिन्दीके प्रसिद्ध कवि रघुनाथ बन्दीजनके पुत्र थे। उन्होंने काशीनरेश श्री उदितनारायण सिंहके आदेशसे महाभारत और हरिवंशका हिन्दी अनुवाद अत्यन्त सुन्दरताके साथ किया। इस अनुवाद कार्यमे कवि गोपीनाथ और मणिदेवने भी उनका साथ दिया था। यह एक सामूहिक प्रयत्नसे सम्पन्न साहित्यिक अनुष्ठान है। कथा-प्रबन्धका दो सहस्र पृष्ठोंमे व्यापक प्रयोग इससे पहले हिन्दीमें किसीने नही किया। विविध छन्दोंमे यह कार्य पूर्ण किया गया है। भाषा अत्यन्त प्राजल और काव्योचित है। दीर्घकाल तक तीनों कवि इस विशाल कथा-काव्यके अनुवादमें संलग्न रह कर इस अनुष्ठानको पूर्ण कर सके थे।

गोकुलनाथकी रचनाओके सम्बन्धमे रामचन्द्र शुक्लने अपने इतिहासमे और भी सूचनाएँ दी हैं। उनके लिखे हुए आठ ग्रन्थोंके नाम इस प्रकार है—'चेत चन्द्रिका', 'राधा नख शिख', 'नाम रत्नमाला' (कोश), 'सीताराम गुणार्णव', 'राधा-कृष्ण विलास', 'अमरकोष (भाषा)' और 'कवि मुखमण्डल'। इस सूचीको देखकर गोकुलनाथकी बहुमुखी प्रतिभाका पता चलता है। 'चेत चन्द्रिका' अलंकार-ग्रन्थ है। 'सीताराम गुणार्णव' आध्यात्म रामायणका अनुवाद है। 'कवि मुख-मण्डल' भी अलंकारग्रन्थ है। इन ग्रन्थोंका रचनाकाल संवत् १८४० से १८७० तक स्थिर किया गया है। रामचन्द्र शुक्लके शब्दोंमें "रीति ग्रन्थ रचना और प्रबन्ध रचना

दोनोंमें समान रूपसे कुशल और दूसरा कवि रीतिकालके भीतर नहीं पाया जाता।"

[सहायक ग्रन्थ—हिन्दी साहित्यका इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल; हिन्दी साहित्यका बृहद इतिहासः डा० नगेन्द्र; अष्टछाप परिचयः प्रभुदयाल मीतल; अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदायः डा० दीनदयालु गुप्त; चौरासी वैष्णवनकी वार्ता, अग्रवाल प्रेस, मथुरा।] वि० स्ना०

गोकुलनाथ गोस्वामी–इनका जन्म विक्रम संवत् १६०८ में हुआ था और देहावसान संवत् १६९७में। ये गोसाईं विट्ठलनाथजीके चतुर्थ पुत्र थे। विट्ठलनाथजीके सातो पुत्रोंके सात गृह और पीठ हैं। ६ भाइयोंके साम्प्रदायिक विचारों तथा सिद्धान्तोंमे विशेष विभिन्नता नहीं है, परन्तु इनके गृह और पीठके साम्प्रदायिक विचार अन्य पीठोंकी अपेक्षा तनिक भिन्न हैं। इनके अनुयायी भड़ूची वैष्णव कहलाते हैं। इनकी विचार-विभिन्नताके सम्बन्धमे एक कथा प्रचलित है। कहा जाता है, जब इनका जन्म हुआ था तब गोस्वामी विट्ठलनाथ ठाकुरजीकी सेवामे संलग्न थे। अतएव पुत्र-जन्मके समाचारको सुनकर उन्हे सेवा स्थगित करनी पडी। तब क्षुब्ध होकर उन्होने कहा था कि 'इसके कारण सेवामे बाधा पडी है। अतएव इसके अनुयायी ठाकुरजीकी स्वरूप-सेवामे वञ्चित रहेंगे।' सम्प्रदायमे विश्वास है कि गोस्वामी विट्ठलनाथके उपर्युक्त 'वचनों'का ही यह परिणाम है कि गोकुलनाथके अनुयायी भड़ूची-वैष्णव गोकुलनाथजीके पीठको ही मानते-पूजते है।

ये पुष्टि-सम्प्रदायके प्रबल प्रचारक थे। इन्होंने अपनी सरस व्याख्यान-शैलीसे भक्तोंको मुग्ध बना रखा था। ये अपने विद्वत्तापूर्ण प्रवचनोंके अवसरपर भक्तोंके चरित्रोका भी बखान किया करते थे, जिससे श्रोता उनका जीवनमें अनुसरण करनेको उत्साहित हों। इन्हीं मौखिक भक्त-चरित्रोंको हरिरायजीने लेखबद्ध किया था, जो बादमे 'चौरासी' और 'दो सौ बावन वैष्णवों'की वार्ताओंके नामसे प्रसिद्ध हुए। 'वार्ताओं'को गोकुलनाथकृत कहनेका आशय इतना ही है कि ये उनके श्रीमुखसे निःसृत हुई थी। यद्यपि इनके द्वारा रचित कई ग्रन्थ और वचनामृत प्रसिद्ध है पर ये वार्ताकारके रूपमें ही विशेष रूपसे स्मरण किये जाते है। हिन्दी-साहित्यके इतिहास-ग्रन्थोमे इनके कृतित्वपर प्रकाश नहीं डाला गया। डा० रामकुमार वर्माने अपने 'हिन्दी साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास'मे लिखा है कि "इनकी पुस्तकोंका उद्देश्य एकमात्र धार्मिक ही है क्योंकि उनमे साहित्यिक सौन्दर्य नाममात्रको नही है। एक ही बात अनेक बार दुहरायी गयी है। उनमे अनेक भाषाओंके शब्द भी हैं। इसका कारण यही ज्ञात होता है कि गोकुलनाथको अपने धर्म-प्रचारमे यथेष्ट पर्यटन करना पडा होगा और अनेक स्थानोंमे जानेके कारण वहाँके शब्द भी अज्ञात रूपसे इनकी भाषामें मिल गये होंगे। इतनी बात अवश्य है कि इस चित्रणमें स्वाभाविकता अधिक है। इसमें जीवनके अनेक चित्र मिलते है।" इन्हें यदि पुष्टि-सम्प्रदाय रूपी मन्दिरका कलश कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। हरिरायजी इनके लिपिकार और टीकाकार हैं।

[सहायक ग्रन्थ— अष्टछाप : प्रभुदयाल मीतल; हिन्दी साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास : डा० रामकुमार वर्मा।] —वि० मो० श०

गोकुलप्रसाद 'बृज'–इनका जन्म १८२० ई० (चैत्र कृष्ण १, सं० १८७७)में श्रीवास्तव कायस्थ वंशमें बलरामपुरके बलुहा मुहल्लामें हुआ था। इनके पिताका नाम भाईलाल और पितामहका नाम रंगीलाल था। ये बहुभाषाविद् थे। इन्होंने कुलपरम्पराके अनुसार घरपर हिन्दी तथा फारसीका अध्ययन करनेके बाद संस्कृतकी शिक्षा भी प्राप्त की। इनको नैपाली, द्रविड, पंजाबी आदि भाषाओंका भी पर्याप्त ज्ञान था। इन्होंने काव्य-शास्त्रका अध्ययन गदाधर शर्मासे किया है। प्रारम्भसे ही इनका बलरामपुरके राजा दिग्विजय सिंहके दरबारमे आना जाना था। इन्होंने काशीमें परमहंस दीनदयाल गिरिसे रीति-शास्त्रका भलीभाँति अनुशीलन किया। काशीसे वापस आनेपर बलरामपुर राज्यकी नौकरी कर ली और इनको कटरा तथा पहाड़पुरकी कोतवाली मिली। इस कालमें सिंहा चन्दा (जिला गोंडा)के ताल्लुकेदार कृष्णदत्त पाण्डेसे अपनी मित्रताके फलस्वरूप इन्होंने 'कृष्णदत्त भूषण'की रचना की। इस पदसे ये तुलसीपुर (गोंडा)के राजा द्रिगराजके आश्रयमें चले गये, पर उनसे सन्तुष्ट न रहनेके कारण पुनः दिग्विजयसिंहके आमन्त्रणपर बलरामपुर वापस आ गये। सं० १९०५ से फूलपुर (बस्ती) मे भवन-निर्माणके निरीक्षक तथा सीरके अधिकारी रहनेके बाद राजाने इनकी काव्य-शक्तिसे आकर्षित होकर इनको दरबारमे बुला लिया और ये राजाका निजी पत्र-व्यवहार तथा तोशकखानाकी देख-रेख करने लगे। इस कार्यमें इनको काव्य-साधनाका अधिक अवसर मिला। राजाकी ओरसे इनको दो गाँव प्राप्त हुए थे, जो इनके वंशजोंके पास बहुत दिनों तक रहे। इन आश्रयदाताओंके अतिरिक्त गोकुल कवि मेहनोन (गोंडा)के राजा अचल सिंह और पयागपुर (बहराइच)के ठाकुर विजयपाल सिंहके कृपापात्र रहे हैं और इन्होंने उनके नामपर 'अचल प्रकाश' तथा 'महावीर प्रकाश'की रचना की है। काव्य-शास्त्रपर शास्त्रार्थ तथा समस्या-पूर्त्तिकी प्रतिद्वन्द्वितामें इनकी विशेष रुचि थी।

शिवसिंह सेंगरने गोकुल कविकी केवल चार रचनाओंकी चर्चा की है—दिग्विजय भूषण, अष्टयाम, चित्रकलाधर और दूतीदर्पण। ग्रियर्सनने भी इन्ही चारका उल्लेख किया है। किशोरीलाल गुप्तने अपने शोध-प्रबन्ध 'सरोज सर्वेक्षण'में २१ ग्रन्थोंकी सूची दी है, जिनमे भगवतीप्रसाद सिंहके अनुसार 'टिट्टिभि आख्यान' 'सुहृदोपदेश'के अन्तर्गत आता है। इनकी सूचीमें कविकी अन्तिम रचना 'गद्दी प्रकाश' सम्मिलित नहीं है। इस प्रकार कुल संख्या २१ ही रहती है, जिनके साथ 'अर्जुन विलास'की भूमिकाको भी स्वीकार किया जा सकता है। कविने इसका सम्पादन सन् १८६२ के लगभग किया। अन्य कृतियोंकी सूची इस प्रकार है—१. 'अष्टयाम प्रकाश' (१८६२ ई०), २. 'दूतीदर्पण' (१८६२ ई०) ३. 'दिग्विजय भूषण' (१८६२-६८ ई०), ४. 'नीतिरत्नाकर' (दिग्विजय सिंहके सहयोगसे १८६४ ई०), ५. 'चित्रकलाधर' (१८६४ ई०), ६. 'पंचदेव पंचक' (१८६७ ई०), ७. 'नीतिमार्त्तण्ड' (१८६९ ई०),

८. 'सुतोपदेश' (१८७१ ई०), ९. 'वामविनोद' (१८७२ ई०), १०. 'चौबीस अवतार' (१८६९-७५ ई०), ११. 'शोकविनास' (१८७५ ई०), १२. 'शक्ति प्रभाकर' (१८७६ ई०), १३. 'सुहृदोपदेश' (टिट्टिभि आख्यान १८७८ ई०), १४. 'मृगया मयंक' (१८८० ई०), १५. 'दिग्विजय प्रकाश' (१८८२ ई०), १६. 'एकादशी माहात्म्य' (१८८२ ई०), १७. 'महारानी धर्मचन्द्रिका' (१८९७ ई०), १८. 'गद्दी प्रकाश' (१९०० ई०), १९. 'कृष्णदत्त भूषण', २०. 'अचल प्रकाश' तथा २१. 'महावीर प्रकाश'।

'अर्जुनविलास' दिग्विजयसिंहके पिताके आश्रित कवि मदनगोपाल शुक्लकी रचना है (सन् १८१९), जिसका प्रकाशन १८६३ ई० में गोकुल कविकी भूमिकाके साथ दिग्विजय सिंहने कराया। 'अष्टयाम प्रकाश'में रीतिकालीन अष्टयाम शैलीमें दिग्विजय सिंहके आठ प्रहरके कृत्योंका वर्णन है। इसका प्रकाशन जंगबहादुरी यन्त्रालय (लीथो प्रेस) बलरामपुरसे १८६३ ई० में हुआ। 'दूतीदर्पण'की मूल प्रति अप्राप्त है, 'दिग्विजय भूषण'में केवल इसका सन्दर्भ आया है। इसके अनुसार इस ग्रन्थमें ३६ जातिकी दूतियोंके सन्देशका वर्णन है। 'नीतिरत्नाकर'के रचयिताके रूपमे दिग्विजय सिंहका नाम भी आता है, पर ग्रन्थान्तमे यह गोकुल कवि की रचना ही सिद्ध होती है। भगवतीप्रसाद सिंह के अनुसार यह असंदिग्ध रूपसे गोकुलकी रचना है। इसमें दिग्विजयसिंहके छन्दोंको स्थान अवश्य मिला है। इसकी रचनाका उद्देश्य प्रजा-जनका मार्ग-प्रदर्शन है, परन्तु इसमे नीतिके साथ रस तथा नायिका भेदका विषय भी वर्णित है। इसका प्रकाशन उपर्युक्त प्रेससे हुआ था। 'चित्रकलाधर'में चित्रकाव्यके चमत्कारके साथ आश्रयदाताके ऐश्वर्य का वर्णन है। उपर्युक्त यन्त्रालयसे ही सन् १८६६ में इसका प्रकाशन हुआ था। 'पचदेव पचक' पंच देव(गणेश, शिव, दुर्गा, सूर्य, विष्णु)की स्तुतिके रूपमें लिखा गया है। मूल ग्रन्थ अप्राप्त है। इस दरबारके अन्य कवि दलपतिरायके 'श्रवणाख्यान'की भूमिकामें गोकुलकी इस रचनाके कतिपय छन्द संकलित हैं। 'नीतिमार्त्तण्ड' नीति-विषयक इनकी दूसरी रचना है। 'सुतोपदेश'मे इतिवृत्तात्मक शैलीमें पुत्रके कर्त्तव्यों और उसकी जीवन-यात्राके सहायक तत्त्वोंका पिताके द्वारा उपदेश दिया गया है।

'वामविनोद' स्त्री-शिक्षा सम्बन्धी ग्रन्थ है। इसमें १९ वीं शतीकी स्त्री-शिक्षाकी समस्या पर प्रकाश पडता है। 'चौबीस अवतार'के प्रथम खण्डमें बीस अवतारोंका वर्णन है और दूसरे खण्डमें व्यास, कृष्ण, बुद्ध तथा कल्किके चरित्र पौराणिक आधार पर वर्णित हैं। इसका प्रकाशन उपर्युक्त प्रेससे १८७६ ई० में हुआ। चरित्र-वर्णनके साथ इसमें काव्यांगोंकी छटाका चमत्कार दिखानेका प्रयत्न भी किया गया है। 'सोकविनास' कविका पुत्र-शोकके आधार पर लिखी शांत रसकी रचना है। 'शक्ति प्रभाकर' ब्रजभाषामें 'अद्भुत रामायण'का पद्यानुवाद है। व्यापक शक्तिप्रभावके कारण इसे कविने यह नाम दिया है। 'सुहृदोपदेश' संस्कृतके 'टिट्टिभि आख्यान'का ब्रजभाषामें पद्यानुवाद है, कविने इसे 'आत्मपुराण'से संकलित कहा है। आखेट पर कविने 'मृगया मयंक' नामक ग्रन्थ लिखा, जो अपने वर्ण्य-विषयसे काफी रोचक है। ये तीनों ग्रन्थ उपर्युक्त यन्त्रालयमे क्रमशः १८७९ ई०, १८७८ ई० तथा १८८० ई० में प्रकाशित हुए। महारानी इन्द्र कुँवरिके आदेशसे कविने अपने आश्रयदाताका जीवन-वृत्त 'दिग्विजय प्रकाश'में लिखा, जो समसामयिक इतिहासकी दृष्टिसे बहुत महत्त्वका है। इसमें तत्कालीन जीवनका चित्रण है, साथ ही १८५७ ई० के विद्रोहका प्रत्यक्ष चित्रण भी है। 'एकादशी माहात्म्य'की मूल प्रति उपलब्ध नहीं है, पर वर्ण्य-विषय नामसे स्पष्ट है। 'महारानी धर्म चन्द्रिका' दिग्विजय सिंहकी छोटी रानी जयपाल कुँवरिकी इच्छानुसार किया हुआ 'मनुस्मृति'का पद्यानुवाद है। इसका प्रकाशन खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पटनासे १९०४ ई० में हुआ। गोकुल कविकी अन्तिम रचना 'गद्दी प्रकाश' मानी जाती है, जो दिग्विजय सिंहके उत्तराधिकारी भगवतीप्रसाद सिंहके राज्याभिषेकके अवसर पर लिखी गयी है। इसका प्रकाशन राजकीय यन्त्रालय, बलरामपुरसे १९०१ ई० में हुआ। इन ग्रन्थोंके अतिरिक्त सिंहाचन्द (गोंडा)के राजा कृष्णदत्त पाण्डेके नाम पर 'कृष्णदत्त भूषण', मेहनोन (गोंडा) के राजा अचलसिंहके नाम पर 'अचल प्रकाश' तथा पयागपुर (बहराइच)के ठाकुर विजयपाल सिंहके आश्रयमें 'महावीर प्रकाश'की रचना की गयी।

गोकुल कविने इस प्रकार अनेक विषय पर ग्रन्थ लिखे हैं, पर इनका स्थान रीतिकालीन काव्य-परम्परामें सुरक्षित है। यद्यपि इस क्षेत्रमें इन्होंने परम्पराका अनुसरण किया है फिर भी इनके काव्यमें पर्याप्त मौलिक उद्भावना तथा स्वतन्त्र कल्पना देखी जा सकती है। इनको चमत्कारपूर्ण प्रयोगमें विशेष सफलता मिली है।

[सहायक ग्रन्थ— शि० स०; दि० भू० (भूमिका)] —भ० प्र० सिं०

गोदान—प्रेमचन्दका अन्तिम और सबसे प्रसिद्ध उपन्यास है। यह १९३६ ई०में प्रकाशित हुआ। हिन्दी उपन्यासोंमें 'गोदान' कृषक-जीवनका महाकाव्य माना जाता है। उनके कुछ अन्य उपन्यासोंकी भाँति इस उपन्यासमें भी दो कथानक हैं—एक तो प्रधान और ग्रामीण जीवनसे सम्बद्ध और दूसरा प्रासंगिक तथा नागरिक जीवनसे सम्बद्ध। होरी बेलारी गाँव (अवध प्रान्त)का रहनेवाला एक किसान है। उसकी पत्नी धनिया, पुत्र गोबर और सोना तथा रूपा दो पुत्रियाँ हैं। शोभा और हीरा उसके दो भाई हैं। होरी अपने कठिन परिश्रम द्वारा जीविकोपार्जन करता और परिवारकी प्रतिष्ठा बनाये रहता है। भाइयोंमें बँटवारा हो जानेके पश्चात् घरकी आर्थिक स्थिति विषम हो जाती है। ऐसी स्थितिमें होरी सेमरी गाँवमे रहनेवाले राय साहब अमरपालसिंह (जमींदार)को प्रायः सलाम करने चला जाता है और अपनी व्यावहारिक कृषक-बुद्धिका परिचय देता है। एक बार जमींदारके यहाँ जाते समय भोलाकी गाय देखकर उसके हृदयमें भी गायकी लालसा उत्पन्न होती है। अपनी मान-मर्यादाके लिए उसे गाय रखना आवश्यक प्रतीत होता है। वह भोलाको उसका दूसरा विवाह करा देने और मुफ्त भूसा देनेका लोभ दिखाता है। गोबरको

साथ लेकर वह भोलाके घर भूसा डाल भी आता है। इसी अवसरपर गोबर और भोलाकी विधवा लड़की झुनिया एक-दूसरेपर मुग्ध हो जाते हैं। शामको गोबर गाय लेकर पहुँचा तो होरीने आँगनमें बाँध दी। इससे कुछ ही समय पूर्व होरीने जब साझेके बाँस बेचने चाहे तो उसके भाई हीराकी पत्नी पुनियाने विरोध किया था। इसीलिए जब गाँवके सभी आदमी गाय देखने आये तो हीरा और पुनिया न आये। एक दिन अवसर पाकर हीरा गायको जहर दे देता है और घरसे भाग जाता है। होरीकी पत्नी धनिया इस बातपर तूफान मचा देती है। गाँवके चौकीदारकी सूचनाके आधारपर पुलिस थानेदार आकर जब हीराके घरकी तलाशी लेता है, तो होरी कुलकी प्रतिष्ठा बनाये रखनेकी दृष्टिसे इस बातका विरोध करता है। होरी कर्ज लेकर थानेदारको रिश्वत तक देनेके लिए प्रस्तुत हो जाता है किन्तु धनिया अपना उग्र रूप प्रकट कर होरीको कर्ज लेने और रिश्वत देनेसे बचाती है। थानेदार सूखा ही वापिस लौट जाता है। होरी सब प्रकारके कष्ट सहन करते हुए भी अपनी सज्जनता, सरलता और हृदयकी विशालता नहीं छोड़ता। यहाँतक कि गोबर और झुनियाके गुप्त प्रेम-व्यवहारके कारण गाँववालोंके लांछन सहता है। होरीकी हालत दिनपर-दिन खराब ही होती जाती है। खलिहानमें जब अनाज तैयार हुआ तो उसे प्रसन्नता हुई। लेकिन झुनियाको लेकर जब पंचायतने उसपर सौ रुपये नकद और तीस मन अनाजका जुर्माना किया तो उसकी आर्थिक दशा और भी बिगड़ गयी। इतनेपर भी उसने और उसकी पत्नीने, मिजाज की तेज होते हुए भी, झुनियाके प्रति अपना मानवोचित कर्त्तव्य न छोड़ा। उसी दिन रातको झुनियाके लड़का हुआ और होरीने लाचार होकर कुछ अनाज और अस्सी रुपयेपर अपना घर झिंगुरी सिंहके हाथ गिरवी रखकर बिरादरीका जुर्माना अदा किया। गोबर घर छोड़कर लखनऊ शहरमें मजदूरी करने लगता है। होरी महाजनोंके शिकजोंमें पूरी तौरसे फँस चुका था। ऐसी दुर्दशामें भी वह अपने भाईकी पत्नी पुनियाकी सहायता करता रहता है। भोला भी उससे अपने रुपयोंके लिए बार-बार तकाजा करता है और एक दिन कुछ गाँववालोंके मना करनेपर भी, उसके बैल खोल ले जाता है। विवश होकर होरी दातादीनके साझेमें आधी बँटाईपर काम करता है। जब ईख काटी जा रही थी तो झिंगुरी सिंह और नोखेराम उसकी सारी कमाई ले लेते हैं। वह खेतिहरसे मजदूर हो जाता है। वह दातादीनका नौकर हो जाता है। साथमें धनिया, सोना और रूपा भी मजदूरी करती है। सारा घर आर्थिक विषमताके कारण पिस गया। एक दिन काम करते-करते होरी को लू लग गयी और वह बीमार पड़ गया। उधर गोबर अचानक आ पहुँचा। वह गाँवमें अपना खूब रोब जमाता है और भोलाके यहाँसे अपने बैलोंकी जोड़ी भी वापिस ले आता है। वह चाहता है कि होरी अपनी सिधाई छोड़ दे, जिसके लिए होरी तैयार न था। वह अपना स्वभाव कैसे छोड़ सकता था। अन्तमें गोबर झुनिया और बच्चेको लेकर फिर लखनऊ वापिस चला जाता है। वह बात करनेमें तेज था, परन्तु घरकी स्थिति सम्हालनेमें असमर्थ था। होरी अब महाजनोंके चंगुलमें पूर्णतः फँस चुका था। दुलारी सहुआइन और नोहरीसे उधार लेकर सोनाका विवाह मथुराके एक किसानके बेटेसे किया। साथ ही गाँवकी सिलिया चमाइनको भी घरमें आश्रय दिया। लेकिन अब वह ऋणके बोझसे दबा जा रहा था। जीवनके संघर्षमें वह चूर-चूर हो जाता है। गोबर घर वापिस आ जाता है और अबकी बार पिताके प्रति सहानुभूतिपूर्ण हृदय लेकर आता है। होरी मजदूरी कर उदर-पूर्ति करता है। उसके भाई हीरा और शोभा भी लौट आते हैं। होरी उनका सहृदतापूर्वक स्वागत करता है किन्तु अब उसमें शक्ति नहीं रही। पुत्र, भाई आदि सब उसके हृदयकी विशालतासे द्रवीभूत हो चुके थे। भौतिक दृष्टिसे भले ही वह पराजित हो गया हो, लेकिन मनसे वह प्रसन्न था, उसमें पुलक और गर्व था। उसके टूटे-फूटे अस्त्र उसकी विजय पताकाएँ थीं। मजदूरी करते हुए उसे एक दिन लू लग गयी, उसकी मृत्युके दिन समीप आ गये। गायकी लालसा पूर्ण न हो सकी। धनियाकी आँखोंसे आँसू बहने लगे। हीराने रोते हुए कहा—'भाभी दिल कड़ा करो, गोदान करा दो, दादा चले।' धनिया उस दिन सुतली बेचकर बीस आने लायी थी। पतिके ठण्डे हाथमें रखकर सामने खड़े दातादीनसे बोली—'महाराज, घरमें न गाय है, न बछिया, न पैसा। यही पैसे हैं, यही इनका गो-दान है!'

नगरसे सम्बन्धित प्रासंगिक कथाके रायसाहब अमरपालसिंह, 'बिजली' पत्रके सम्पादक पण्डित ओंकारनाथ, बीमा कम्पनीके दलाल मि० तनखा, प्रोफेसर मेहता, लेडी डाक्टर मालती, मिल-मालिक खन्ना, उनकी पत्नी गोविन्दी, मिर्जाजी आदि प्रमुख पात्र हैं। रामलीलामें धनुष-यज्ञके अवसरपर सभी एक-दूसरेसे परिचित हो जाते हैं और अपने-अपने सामाजिक एवं राजनीतिक विचार प्रकट करते हैं। सभी अपने-अपने वर्गके अनुसार विचार रखते हैं। मिर्जाजी के कारण इस मित्र-मण्डलीका काफी मनोरंजन होता रहता है। अभिनय, शिकार, कबड्डी आदिसे इन लोगोंको मन-बहलावके साधन मिल जाते हैं। शिकार पार्टीमें मेहता और मालतीमें घनिष्ठता बढ़ती है, यद्यपि दोनोंके विचारोंमें बहुत साम्य नहीं है। मालती बाहरसे तितली, भीतरसे मधुमक्खी है। प्रारम्भमें मेहता अपने भावुकतापूर्ण आदर्शके कारण उसे ठीक-ठीक नहीं समझ पाते। खन्ना रसिक व्यक्ति हैं, अपनी पत्नी गोविन्दीसे उनकी नहीं पटती और रुपयेके बलपर मालतीके हृदयपर विजय प्राप्त करनेमें सचेष्ट रहते हैं किन्तु इस कार्यमें उन्हें सफलता नहीं मिलती। वे पूरे व्यवसायी और पूँजीपति हैं, स्वार्थ-साधना उनके जीवनका प्रधान लक्ष्य है। मजदूरोंकी हड़तालका सामना करनेके बाद जब उनकी मिल जल जाती है तो उनका हृदय परिवर्तित हो जाता है और वे अपने पिछले जीवनपर क्षोभ प्रकट करते हैं। उधर मेहता और मालती धीरे-धीरे एक-दूसरेके और निकट आ जाते हैं। वे विवाह द्वारा अपने व्यक्तित्वोंको संकीर्ण परिधिमें न बाँधकर मित्र-भावसे साथ-साथ रहकर समस्त विश्वको ही अपना परिवार मानकर, दीनजनों और पीड़ितोंकी सेवामें रत हो जाते हैं।

उपन्यासका अन्त अत्यन्त हृदयद्रावक है। इसमें प्रेम-

न्दका जीवन-संचित अनुभव और उनकी कलाका निखरा हुआ रूप मिलता है। उन्होंने चारों ओरके जीर्ण-शीर्ण एवं विशृंखल होते हुए समाजका सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। कानून बदलने या थोड़ेसे सुधारवादी कार्यों द्वारा इस समाजका त्राण नहीं हो सकता। उसमें तो आमूल परिवर्तनकी आवश्यकता है। होरी भी बहुत-कुछ इसी समाजकी उपज है, किन्तु सामन्तों, पूँजीवादियों, धर्मके ठीकेदारों आदिसे वह कहीं महान् है क्योंकि इस समाजमें इहलोक और परलोक सभी पैसेवालोंका है, इसीलिए होरी संघर्षकी चक्कीमें पिस जाता है। वह समाजको चुनौती देकर संसारसे चला जाता है। उसकी चुनौती जीवनके प्रत्येक क्षेत्रके पीड़ित एवं दलित व्यक्तियोंकी चुनौती है। प्रेमचन्दने इस उपन्यासमें जनवाद और सेवा-मार्गकी स्थापना भी की है। उन्होंने अपने समकालीन भारतीय जीवनका 'गोदान'में सुन्दर और विशद चित्रण किया है। —ल० सा० वा०

गोप–ये ओरछानरेश पृथ्वीसिंहके आश्रित कवि थे। मिश्रबन्धुओंके अनुसार इनका रचना-काल सन् १७१६ है। अलंकार विषयपर लिखे गये इनके तीन ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं। इनके 'रामअलंकार'की चर्चा मिश्रबन्धुओंने की है तथा भगीरथ मिश्रने 'रामचन्द्र भूषण' तथा 'रामचन्द्राभरण', इन दो ग्रन्थोंकी और चर्चा की है। इनमें पहलेकी प्रति दतिया राजपुस्तकालयमें और टीकमगढ़के सवाई महेन्द्र पुस्तकालय, ओरछामें और दूसरेकी केवल महेन्द्र पुस्तकालयमें पायी गयी है। 'रामअलंकार'की सूचना प्रथम 'त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट (सन् १९०६-०८)में प्राप्त है। इस ग्रन्थमें कविने अपना पूर्वज दक्षिणसे आये हुए नन्दनाथ दीक्षितको माना है। इन्होंके वंशमें जदुनाथ कविके मझले पुत्र गोप कवि है। इन्होंने ओरछाके पृथ्वीसिंहके पास रह कर इस ग्रन्थकी रचना की।

गोपके तीनों ग्रन्थ वस्तुतः नाम तथा विषय दोनों ही दृष्टियोंसे समान हैं। सामान्यतः 'चन्द्रालोक' और 'भाषाभूषण'के आधारपर लिखे गये ग्रन्थ हैं। भगीरथ मिश्रने 'रामचन्द्र भूषण'में दी हुई अलंकारकी परिभाषाको महत्त्व दिया है—"इनके विचारमें शब्दों और अर्थोंकी रुचिकर रचना अलंकार है, जिनका विकास भाव, रस और गुणोंके सौन्दर्यसे होता है" (का० शा० इ०, पृ० ११५)। पर ओम् प्रकाशने इसमें कोई विशेषता नहीं मानी है—"इसका अर्थ यही होगा कि शब्दार्थ रचना काव्यके शोभाकारक धर्मका नाम अलंकार है, यह भावादि तथा गुणसे भिन्न प्रकारका होता है" (हि० सा० बृ० इ०, पृ० ४५६)। इनके ग्रन्थोंमें दोहोंमें लक्षण तथा उदाहरण दोनों दिये गये हैं, प्रथमार्धमें लक्षण और द्वितीयार्धमें उदाहरण। उदाहरण रामके चरित्रसे सम्बद्ध हैं। गोप कविका आचार्यत्व सामान्य स्तरका है, भाषा सरल तथा उदाहरण सहज हैं।

[सहायक ग्रन्थ—मि० वि०; हि० का० शा० इ०; हि० सा० बृ० इ० (भा० ६)।] —सं०

गोपा–साहित्यके इतिहास ग्रन्थोंमें केशवके पूर्व अलंकार-शास्त्रपर लिखनेवाले आचार्योंमें करनेसके साथ इनका नाम भी लिया जाता है। इनके ग्रन्थका नाम 'अलंकार-चन्द्रिका' माना जाता है। भगीरथ मिश्रने (हि० का० शा० इ०) गोपाको गोप कविसे अभिन्न माना है और इनका समय १५५८ ई०के बजाय १७१६ ई० स्वीकार किया है। —सं०

गोपाल बन्दीजन–ये असोथर (जिला फतेहपुर)के भगवन्तराय खीचीके आश्रित कवियोंमें श्यामदास बन्दीजनके पुत्र थे। ये चरखारी नरेश रतनसिंहके भी आश्रयमें रहे हैं और इन्हींसे 'सुकवि'की उपाधि भी इनको प्राप्त हुई। आश्रयदाताओंके आधारपर इनका रचनाकाल १८०० ई०से १८३५ ई०तक माना जा सकता है। इन्होंने बलभद्रकृत 'नख शिख'की टीका 'नखशिख दर्पण' नामसे की है। रामचन्द्र शुक्लने इनका नाम गोपाल कवि दिया है और कहा है कि बलभद्रके तीन ग्रन्थोंकी सूचना इसी टीकामें प्राप्त होती है—'बलभद्री व्याकरण', 'हनुमन्नाटक' और 'गोवर्द्धन सतसई'(टीका)। भगवतीप्रसाद सिंहने 'दिग्विजय-भूषण'की भूमिकामें इनके दो अतिरिक्त ग्रन्थोंका भी उल्लेख किया है—'भगवन्तरायकी विरुदावली' और 'पुरुष-स्त्री संवाद'। —सं०

गोपाल भाट–पटियालाके महाराज कर्मसिंहके छोटेभाई अजीतसिंह इनके आश्रयदाता माने गये हैं। ये चैतन्य सम्प्रदायके अनुयायी वृन्दावनके रामबख्शके शिष्य थे। 'दिग्विजय भूषण'की भूमिकामें इनके १२ ग्रन्थोंकी सूची दी गयी है—'दम्पति काव्य विलास', 'दूषण विलास', 'ध्वनि विलास', 'भाव विलास', 'भूषण विलास', 'मान पचीसी', 'रस सागर', 'रामपचाध्यायी सटीक', 'वंशी लीला', 'वपोत्सव', 'वृन्दावनधामानुरागावली' और 'वृन्दावन माहात्म्य'। इनमें कुछ ग्रन्थ कृष्ण-भक्ति-परक हैं और कुछ काव्य-शास्त्रीय विषयपर हैं। —सं०

गोपाल राम गहमरी–आपका जन्म गाजीपुर जिलेके 'गहमर' गाँवमें सन १८६६ ई० में हुआ था। 'गहमर'में उत्पन्न होनेके कारण आप 'गहमरी' नामसे प्रसिद्ध हुए। आप बहुमुखी प्रतिभाके साहित्यकार माने जा सकते हैं। कवि, अनुवादक, उपन्यासकार, निबन्ध लेखक, नाटककार, कहानी लेखक आदि कई रूपोंमें आपकी साहित्य-प्रतिभा व्यक्त हुई है। प्रारम्भमें आपने बंगलाके कुछ नाटकों और उपन्यासोंका अनुवाद प्रस्तुत किया। आप द्वारा अनूदित नाटकोंमें 'विद्या विनोद' (१८९२ ई०), 'देश दशा' (१८९२), 'यौवन योगिनी' (१८९३ ई०), 'दादा और मैं' (१८९३ ई०), 'चित्रांगदा' (१८९५ ई०) तथा 'बनबीर' और 'बभ्रुवाहन' प्रसिद्ध हैं। आपने कुछ मौलिक 'प्रहसन' भी लिखे थे, जिनमें 'जैसेको तैसा' विशेष प्रसिद्ध हुआ था। इसमें वृद्ध-विवाहको परिहासका विषय बनाया गया है। अनूदित उपन्यासोंमें 'चतुर चंचला' (१८९३ ई०) 'भानुमती' (१८९४ ई०), 'नये बाबू' (१८९४ ई०), 'नेमा' (१८९४ ई०), 'सास-पतोहू' (१८९९ ई०), बड़ा भाई (१९००), 'देवरानी जेठानी' (१९०१ ई०), 'दो बहिन' (१९०२ ई०) तथा 'तीन-पतोहू' (१९०४ ई०) उल्लेखनीय हैं। प्रायः इन सभी उपन्यासोंमें सामान्य जीवन-क्रममें उठने वाले पारिवारिक प्रश्नोंको महत्त्व दिया गया है। लेखकका दृष्टिकोण सुधारवादी रहा है। न

तो वह प्राचीन अन्धविश्वासों एवं रूढ़ियोंका हिमायती है और न अतिशय नवीनताको सहज रूपमे स्वीकार कर सका है। आपने समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओंमें स्फुट निबन्ध भी लिखे थे। इन निबन्धोंके विषय सामयिक होते थे। निबन्धशैली व्यंग्य-पूर्ण है। भाषामें वक्रता, प्रगल्भता और चटपटापन है। वस्तुतः आपकी गद्य-शैली पर बंगलाके प्रसिद्ध लेखक बंकिम चन्द्रका प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। आपकी गद्य-शैलीकी भंगिमा बंकिमकी वक्रताका हिन्दी संस्करण है।

आपकी सर्वाधिक ख्याति जासूसी उपन्यासोंके क्षेत्रमें प्राप्त हुई। हिन्दीमें आपको जासूसी उपन्यासोंका प्रवर्तक माना जाता है। सन् १८९६ ई० में आपके जासूसी उपन्यासोंकी अखण्ड-परम्परा आरम्भ होती है, जो १९४६ ई० तक चली आयी है। सन् १९०० मे आपने गहमरसे 'जासूस' नामक एक मासिक पत्र निकाला। इसके लिए अनिवार्यतः आपको प्रतिमास एक जासूसी उपन्यासकी रचना करनी पड़ी। फलस्वरूप आज आपके जासूसी उपन्यासोंकी संख्या २०० से ऊपर है। आपके प्रसिद्ध जासूसी उपन्यास निम्नलिखित हैं— 'अद्भुत लाश' (१८९६ ई०), 'गुप्तचर' (१८९९ ई०), 'बेकसूरकी फाँसी' (१९०० ई०), 'सरकती लाश' (१९०० ई०), 'खूनी कौन (१९०० ई०), 'बेगुनाहका खून' (१९०० ई०) 'जमुनाका खून' (१९०० ई०), 'डबल जासूस' (१९०० ई०), 'मायाविनी' (१९०१), 'चक्करदार चोरी' (१९०१), 'जासूसकी भूल' (१९०१ ई०), 'भयंकर चोरी' (१९०१ ई०) 'जादूगरनी मनोरमा' (१९०१ ई०) 'मालगोदाममे चोरी' (१९०२ ई०), 'जासूसकी चोरी' (१९०२ ई०), 'अद्भुत खून' (१९०२ ई०), 'जासूस पर जासूसी' (१९०४ ई०) 'डाके पर डाका' (१९०४ ई०), 'जासूस चक्करमे' (१९०६ ई०), 'खूनीका भेद' (१९१० ई०), 'खूनीकी खोज' (१९१० ई०), 'इन्द्रजालिक जासूस' (१९१० ई०), 'लाइन पर लाश' (१९१० ई०), 'किलेमे खून' (१९१० ई०), 'भोजपुरकी ठगी' (१९११ ई०), 'गुप्तभेद' (१९१३ ई०), 'जासूसकी ऐय्यारी' (१९१४ ई०) आदि। उपन्यासोंके अतिरिक्त आपने कुछ जासूसी कहानियाँ भी लिखी हैं, जिनमें 'जासूसकी डाली' (१९२७ ई०) और 'हस राजकी डायरी' (१९४१ ई०) प्रसिद्ध हैं। ध्यान देनेपर इन जासूसी उपन्यासोंमें अद्भुत एकरूपता लक्षित होती है। कुल ५ या ६ घटना-प्रकार हैं, जिनपर प्रायः सभी उपन्यासोंकी कथा आधारित है। जासूसीका प्रश्न गुप्त, रहस्यमयी और सनसनीखेज घटनाओंके साथ ही उठ सकता है। इसलिए लेखकने खून, चोरी, डकैती, ठगी, जादू और इन्द्रजाल आदिकी घटनाओं को लेकर ही समस्त उपन्यासोंका ढाँचा खड़ा किया है। ये उपन्यास भी तिलस्मी उपन्यासोंकी भाँति घटनाप्रधान होते हैं। प्रारम्भमें एक भयंकर और अद्भुत काण्ड हो जाता है। प्रसिद्ध जासूस उसके रहस्योंको सुलझानेकी चेष्टा करते हैं। क्रमशः उसी प्रकारके अन्य काण्ड घटित होते है और कथानक उलझ जाता है और अन्ततः जासूसका धैर्य, उत्साह और बुद्धिवैलक्षण्य विपक्षीको विफल करके रहस्यको सुलझा लेता है। इसी नुस्खेका प्रयोग सभी जासूसी उपन्यासोंमें किया जाता है। इन उपन्यासोंका लक्ष्य भी हल्का मनोरंजन है, इसलिए उच्च कोटिके सुरुचिपूर्ण साहित्यिक कृतित्वके अन्तर्गत इन्हें नहीं रखा जा सकता। इस प्रकार उद्देश्य, स्वरूप और टेकनीककी दृष्टिसे ये उपन्यास तिलस्मी-ऐय्यारी उपन्यासोंके निकट हैं। अन्तर केवल यह है कि ये अपेक्षाकृत जीवनके अधिक निकट होते हैं। इनकी घटनाएँ सम्भाव्य और बुद्धिग्राह्य होती है और उनमें एक सूत्रता भी होती है। इनमें एक सीमा तक चरित्र-चित्रणकी प्रवृत्ति भी मिलती है, यद्यपि घटनाओंके जालमें वह उभर नहीं पाती। अँग्रेजी साहित्यमें जासूसी उपन्यासोंकी स्वस्थ और सुरुचिपूर्ण परम्परा है। इस क्षेत्रमें 'कॉनन डायल' का कृतित्व अविस्मरणीय है। गोपालराम गहमरीको हिन्दीका 'कॉनन डायल' कहा जा सकता है। यद्यपि दोनोंमें बड़ा अन्तर है। कॉनन डायलकी घटनाएँ बिल्कुल स्वाभाविक प्रतीत होती है। वह जीवनके सभी क्षेत्रोंसे कथा-सूत्र चुन सकता है। उसके पात्र सजीव और यथार्थजीवी हैं। उसके कथानक सुरुचिपूर्ण हैं। वस्तुतः हिन्दीमें, जासूसी उपन्यासोंके क्षेत्रमे, उस कोटिकी प्रतिभाके अवतरित होनेके पहले ही इस परम्पराका विकास अवरुद्ध हो गया। यहाँ तो हम गोपाल राम गहमरीसे चलकर गोपालराम गहमरी तक ही पहुँचते है। वस्तुतः हिन्दी जासूसी उपन्यासोंके क्षेत्रमे आपका व्यक्तित्व अन्यतम है। आपके साहित्यिक वैशिष्ट्यका दूसरा महत्त्वपूर्ण पक्ष आपकी वक्रतापूर्ण गद्य-शैली है। जासूसीके चक्करमे गहमरीका निबन्धकार-रूप पूर्ण विकसित नहीं हो सका, अन्यथा हिन्दीको एक बड़ा शैलीकार प्राप्त हुआ होता। सन् १९४६ ई०मे आपकी मृत्यु हो गयी। —रा० चं० ति०

गोपालराम (राय)–इतिहास ग्रन्थोंसे इस कविके बारेमें कुछ ज्ञात नहीं होता। केवल इसके दो ग्रन्थ 'रस सागर' और 'भूषण विलास'का उल्लेख किया गया है। 'रस सागर' का रचनाकाल १६६९ ई० (स० १७२६) दिया गया है, पर आधारका उल्लेख नहीं है। इसको ठीक माना जाय तो इनके रचना-कालका अनुमान किया जा सकता है। —सं०

गोपालशरण सिंह (ठाकुर)–गोपालशरण सिंह, द्विवेदीयुगके सुप्रसिद्ध कवि हैं। इनका जन्म सन् १८९१ई०में रीवाँराज्यके नयीगढ़ीके एक प्रतिष्ठित जमींदार घरानेमें हुआ था। इनकी शिक्षा-दीक्षा क्रमशः रीवाँ और प्रयागमें हुई। इनकी प्रथम रचना १९११ई०मे प्रकाशमे आयी और आगामी तीन-चार वर्षोंमे (१९१४ ई०तक) ये कविके रूपमें प्रतिष्ठित हो गये। क्रमशः इनकी ये काव्य-कृतियाँ प्रकाशमें आयी—'माधवी' (कविता-संग्रह), 'कादम्बिनी' (गीत काव्य), 'मानवी' (नारी जीवन-सम्बन्धी गीत-काव्य), 'सुमना' (गीत-संग्रह), 'ज्योतिष्मती' (गीत-संग्रह) और 'संचिता' (कविता-संग्रह)। खड़ीबोलीका परिमार्जन एवं संस्कार करनेवाले कवियोंमें गोपालशरण सिंह का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है। इन्होंने अपनी काव्य-भाषामे शुद्ध, सहज एवं साहित्यिक प्रयोग बड़ी सतर्कतासे किये। विषय एवं भावानुरूप शब्द-चयनमें इन्हें अपूर्व सफलता मिली। खड़ीबोलीमें लिखे गये इनके कवित्त और सवैये प्राचीन ब्रजभाषा छन्दोंसे टक्कर लेते हैं। उनमे सरसता और मार्मिकताका निर्वाह

आपन्न हुआ है। उदाहरणार्थ 'वह छवि' ('माधुरी', १९२५ ई०) शीर्षक रचना ली जा सकती है—"तेज धारियोंमें है कृशानुका भी नाम बड़ा, किन्तु भानु सबसे महान् तेजवान है। पादपोंमें पारिजात, पर्वतोंमें हिमवान, नदियोंमें जाह्नवी मनोज्ञताकी खान है। मोरसा मनोहर न कोई खग रूपवान, फूल कौन दूसरा गुलाबके समान है? यद्यपि सभी हैं उपमान इन्हें मान चुके, किन्तु उस छविसा न कोई छविमान है।" गोपालशरणसिंहकी अधिकांश रचनाएँ इसी प्रकारकी मार्मिक उद्भावनाओंसे ओतप्रोत हैं और उनमें अभिव्यंजनाकी एक विशिष्ट पद्धति परिलक्षित होती है। इनकी रचनाओंमें जीवनकी नाना दशाओंके चित्र उपलब्ध हो जाते हैं। ये वस्तुतः धरतीकी चेतनाके कवि रहे हैं। इनके काव्यगत दृष्टिकोणको समझनेके लिए इनकी एक प्रार्थना उल्लेखनीय है—"पृथ्वीपर ही मेरे पद हों, दूर सदा आकाश रहे।" गोपाल शरणसिंहकी कविताओंमें कहीं-कहीं छायावादकी भी झलक मिलती है। भावोंकी व्यंजना तथा रमणीय लाक्षणिक प्रयोगोंकी दृष्टिसे ये अपने कुछ प्रगीत मुक्तकोंमें छायावादके निकट आ जाते हैं। गोपालशरणसिंह कविके अतिरिक्त एक सक्रिय साहित्यिक व्यक्तित्व रहे हैं। रघुराज साहित्य परिषद्, रीवाँ; कविसमाज, प्रयाग तथा मध्यभारतीय साहित्य समिति, इन्दौरके सभापतिके रूपमें इनकी साहित्य सेवाएँ उल्लेख्य हैं। १९६० ई०में आपका देहावसान हो गया। —र० भ०

गोपालसिंह 'नेपाली'—इनका जन्म सन् १९०२ ई० (संवत् १९६०वि०) में बेतिया, चम्पारनमें हुआ और मृत्यु १९६३ में हुई। ये एक लड़ाकू सिपाहीके बेटे थे, जिसमें अथक युद्धोत्साह, अदम्य साहस एवं संकटोंको झेलनेका अटूट सामर्थ्य था। अपने जीवनकी विशिष्ट परिस्थितियोंके कारण 'नेपाली' को भारतके सुदूर भागोंमें भ्रमणका पर्याप्त अवसर मिला। वन, पर्वत, निर्झर, वीथिका, सहकार-वन, घाटी और बीहड़ स्थलोंको देखने एवं भ्रमण करनेका इन्हें विशिष्ट अनुभव प्राप्त था। भारतीय प्रकृतिकी विविधताके इस परिदर्शनने इन्हें प्रकृतिके प्रति एक प्रगाढ़ प्रेम और सहज अनुराग प्रदान किया। प्रकृतिके प्रति यह उत्साहपूर्ण प्रेम इनके काव्यमे गुंजरित हुआ है। इन्होंने प्रवेशिकातक शिक्षा प्राप्त की थी। इन्हें पत्रकारिताका भी अनुभव था। 'रतलाम टाइम्स' मालवा, 'चित्रपट' दिल्ली, 'सुधा' लखनऊ, और 'योगी' (साप्ताहिक) पटनाके सम्पादन-विभागमें रहे थे। इन्होंने चलचित्रोंमें गीतकारका कार्य भी किया। चलचित्र-निर्माणमें भी प्रयास किये और हिमालय-पिक्चर्स एवं नेपाली-पिक्चर्सके निर्माता भी रहे।

सन् १९२९ ई०से ही इनका रचना-काल प्रारम्भ हो जाता है। इतनी कम शिक्षा होनेपर भी काव्य-रचनाका यह अनवरत एवं सुन्दर प्रयास सिद्ध करता है कि इनमें प्रतिभाका सहज और सशक्त प्रकाश था, जो वयोविकासके साथ समृद्ध होता गया। जुलाई, १९३४ ई०में प्रकाशित 'उमंग' इनकी प्रथम-काव्यकृति है। 'उमंग' वस्तुतः कविके तरंगित यौवनकी उमंग है। भावोंकी मादकता, मोहकता, आन्तरिक महत्त्वाकांक्षा एवं रोमानीपनसे आवेष्टित इस संग्रहकी रचनाएँ उस समय बड़ी प्रत्यग्र एवं नव्यता-मण्डित थीं। इनमें काव्य-प्रतिभाका सहज उन्मेष, कैशोरका नूतन पावित्र्य एवं हृदयका मुक्त-मधुर प्रवाह था। भाषा अत्यन्त मधुर, सरस, प्रांजल एवं कोमल है—"यह घास नहीं है, पनप उठी मेरे जीवनकी मधुर आस" जैसी पंक्तियाँ प्रकृतिके प्रति कविके सहज तादात्म्य एवं एकात्म उल्लासकी परिचायिका तथा छायावादकी उद्यान-मुखी प्रकृति-सज्जासे विलग, उसके मुक्त, सहज एवं नैसर्गिक स्वरूपके प्रति अनुरागकी सन्देशवाहिनी है। बीच-बीचमें आनेवाले मधुरता-मण्डित तद्भव शब्द-रूप 'नेपाली'जीकी भाषाकी निजी विशेषता है। सन् १९३४ ई० में प्रकाशित 'पंछी' उनका दूसरा काव्य-संकलन है। जिस प्रकार 'उमंग'की हरी घास, पीपल, पंछी, सरिता आदि कविताएँ प्रमुख रूपसे कविके मानसका प्रतिनिधित्व करती हैं, उसी प्रकार 'पंछी' संग्रहमें कविके प्रभातकालकी 'पन्द्रहमिनटी' रचनाओंका संकलन हुआ है। सन् १९३५ ई०में तीसरा-स्फुट काव्य-संकलन 'रागिनी' नामसे प्रकाशमें आया। काव्यने प्रेमके भारी रहस्य-केन्द्रको छू लिया और उसकी वाणीको पहचान गया। 'टुकड़ी', 'विद्रोही' आदि रचनाएँ उसकी प्रगति-मनस्कताकी भी द्योतिका हैं। 'नीलिमा' संग्रहमें कविका मानस-क्षितिज और भाव-प्रवाह बदला है। 'दार्जिलिंगकी बूँदाबाँदी', 'गंगा किनारे' जैसी रचनाएँ प्रमुख हैं। इनमें कविके छवि-चित्र अत्यन्त मधुर एवं पूर्ण हैं। सन् १९४२ ई०में प्रकाशित 'पंचमी' काव्य-संग्रह साहित्य-देवताके मन्दिरमें कविकी पाँचवीं पुकार है। इसकी विशाल भारत एवं राष्ट्रीयतापरक रचनाएँ उच्च मानसिक भूमिकी परिचायिका है। 'सावन' शीर्षक १०१ रुबाइयोंमें लिखित और सुन्दर उपमाओंसे सुसज्जित रचना 'पन्त'जीकी 'बादल' कविताकी भाँति एक ही वस्तुके विविध दर्शन एवं पूर्ण निरीक्षणका प्रमाण है। 'कल्पना', 'आंचल', 'नवीन', 'रिमझिम' और 'हमारी राष्ट्रवाणी' इनकी अन्य पुस्तकें हैं।

'छायावाद'के 'तृतीय-उत्थान'के मानववादी-स्वच्छन्दतावादी कवियोंमें 'नेपाली'का प्रमुख एवं अविस्मरणीय स्थान है। नरेन्द्र शर्माके मानववादको 'नेपाली'ने प्रकृतिकी सहज सुषमाका मधुरालोक और प्रेमकी तरल हार्दिकता प्रदान कर लोक-निकटतर बनाया है। प्रकृतिके सहज अनगढ़ स्वरूपके प्रति जो तन्मयता 'नेपाली'की रचनाओंमे है, वह इस उत्थानके कवियोंमें ही नहीं, प्रथम एवं द्वितीय उत्थानके कवियोंमें भी दुर्लभ है। गुरुभक्तसिंह 'भक्त'ने प्रकृतिके जिस नैसर्गिक एवं ग्राम्य सौन्दर्यका अनावरण किया था, वह 'नेपाली'के गीतोंमें रस-सिक्त और चुने रूपमें चित्रित हुआ है। कुछ ही सीधे-सादे और मधुर-शब्दोंकी रेखाओंमे सारे वातावरणके माधुर्यको बाँध लेनेकी इनमें अद्भुत क्षमता है। मस्ती, निर्भीकता एवं तरंगिताका जो रोमानी उल्लास इन पंक्तियोंमें संकेतित है, वह 'नेपाली'के उच्छल व्यक्तित्वकी सहज श्री है—"गंगा यमुनाकी रेतीमें सुन्दर महल बनाना हो। कालिन्दीके हरित कूलमें रूठा हृदय मनाना हो। तो चुपचाप निकल परदेसी, भूल भटकजा रहा कहीं। नंगे पग चलनेवालोंको

है नद-नदी अथाह नहीं।" 'नेपाली' के प्रेम-विरहकी निश्छल तड़पका नमूना इस पंक्तिमें मिल सकता है—"तनका दिया, नेहकी बाती, दीपक जलता रहा रातभर।" इसी प्रकार 'नवीन' संग्रहकी 'कल्पना करो, नवीन कल्पना करो' रचना युवकोंको नवीन दृष्टि और नव-सर्जनोत्साह देनेमें अत्यन्त सफल हुई है। चल जीवन-क्रममें मिले प्रेमके दो क्षणोंकी मधुरिमाको चित्रित करनेवाली ये पंक्तियाँ भी कितनी सजीव हैं—'दो मेघ मिले डोले-बोले, बरसाकर दो-दो बूँद चले।' अनुभूतियोंकी सहजतम अभिव्यक्ति इनके गीतोंका प्राण है। रसपूर्ण भाषा, लय, संगीतमय छन्द, सहज-कोमल प्रतीक, काठिन्यसे सर्वथा परे रहनेवाले पद-विन्यास, सुकुमार भाव-शैय्या, सौन्दर्यमयी वृत्ति, शृंगारिकसे अधिक रोमानी भावावेश, आन्तरिक स्फुरण, मनकी सहज प्रेरणा और कल्पना-प्रवण यौवनकी ऊष्मताके लिए 'नेपाली'-का गीतकार अविस्मरणीय रहेगा। —श्री० सिं० क्षे०

गोपीचंद–हजारीप्रसाद द्विवेदीका अनुमान है कि गोपीचन्द बंगालके गोविन्दचन्द ही थे, जिन्हें वर्णरत्नाकरमें दी हुई सिद्धोंकी सूचीमें गोन्विद नामसे ७१ वें स्थान पर रखा गया है। बंगालमें प्राप्त 'गोविन्दचन्देरगान'से भी सूचित होता है कि गोविन्दचन्द ही गोपीचन्द थे। यदि यह ठीक है तो गोविन्दचन्द और दक्षिणके राजा राजेन्द्र चोलके बीच हुए युद्धके आधार पर गोपीचन्दका समय ११ वी शताब्दी के आस-पास माना जा सकता है। राहुल सांकृत्यायनने गोपीचन्दका नाम सिद्धोंकी सूचीमें नहीं रखा है। चर्पटीनाथने अपने एक ५२ वें सबदमे गोपीचन्द और भरथरीकी एक साथ वन्दना की है (दि० नाथ सिद्धोंकी बानियाँ)। गोपीचन्दने भी अपने पदोंमें गोरखनाथको अपना गुरु तथा चर्पटीनाथको गुरु-भाई कहा है, यथा—"गुरु हमारे गोरख बोलिये, चर्पट हैं गुरु भाई।" इसमे भी यही निष्कर्ष निकलता है कि गोपीचन्द ११ वीं शताब्दीमें हुए होंगे किन्तु जब हम देखते हैं कि उन्होंने दो सबदोंमें जालन्धरपादके अनुग्रहकी इस प्रकार चर्चा की है कि जैसे वे उनके समकालीन रहे हों तब उनके समयके विषयमें सन्देह होने लगता है। उक्त 'सबद' इस प्रकार है—"तजिला बंगाल देश मैंणावंती माई। जलंध्री प्रसादे गोपीचन्द चौपदी गाई।" (सबदी ४)। तथा "जलंध्रीपाव हाथि दे डीबी गोपीचंद धंदाया जी" (सबदी १४)। सम्भव है गोपीचन्द ने जलन्धरपादका इस प्रकार स्मरण गुरु परम्पराके कारण किया हो। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदीने अवश्य अनुमान किया है कि गोपीचन्द जलन्धरपादके शिष्य कानपा द्वारा सिद्ध सम्प्रदायमें दीक्षित हुए थे।

गोपीचन्दके सम्बन्धमें अनेक लोक-कथाएँ और लोक-गीत विशेष रूपसे पूर्वी भारतमें प्रचलित रहे हैं। प्रसिद्ध है कि गोपीचन्दने अपनी माता मैनावतीके उपदेशसे अपनी दो रानियों उदयनी और पद्मिनीको त्यागकर वैराग्य धारण कर लिया था। गोपीचन्दके पदोंसे प्रकट होता है कि उनकी रानियोंने उनसे पुनः विलासपूर्ण जीवन व्यतीत करनेका आग्रह किया था। परन्तु गोपीचन्दमें विरक्तिका भाव इतना दृढ़ था कि उन्होंने बारम्बार राज्य-वैभवके प्रति घृणा प्रकट करते हुए अपनी रानियोंकी भी भर्त्सना की है। गोपीचन्दकी सबदीमें वैराग्यकी भावना ही प्रमुख है, सिद्ध संकेतोंका उसमें एकान्त अभाव है। सबदी तथा बंगालमें प्राप्त 'गोविन्दचन्देरगान'के अतिरिक्त गोपीचन्दकी किसी कृतिका कोई उल्लेख प्राप्त नहीं हुआ है।

[सहायक ग्रन्थ—पुरातत्त्व निबन्धावली : महापण्डित राहुल सांकृत्यायन; हिन्दी काव्यधारा : महापण्डित राहुल सांकृत्यायन; नाथ सम्प्रदाय : डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी; नाथ सिद्धोंकी बानियाँ : डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी; योग-प्रवाह : डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल।] —यो० प्र० सिं०

गोपीनाथ–गोपीनाथ नामसे तीन उल्लेख प्राप्त होते हैं—

१. गोपीनाथ शब्द भक्तिकाल तथा रीतिकालीन हिन्दी कवितामें कृष्णका अभिधान बन गया था। भागवत पुराणमें भी गोपीनाथ श्रीकृष्णका पर्याय है। रास-लीलाके प्रसंगमें श्रीकृष्णको गोपीनाथ शब्द द्वारा ही अभिहित किया गया है। ब्रजकी युवतियोंको गोपीकी संज्ञा पुराणोंमें प्राप्त हुई थी, उसके बाद गोपीवल्लभ, गोपीनाथ, गोपीपति शब्दोंका प्रयोग श्रीकृष्णके लिए हिन्दी साहित्यमें प्रचुर मात्रामे हुआ है (दि० 'कृष्ण')।

२. गोपीनाथजी श्रीवल्लभाचार्यके ज्येष्ठ पुत्र थे। इनका जन्म संवत् १५६८ (सन् १५०१), अप्रैलमें प्रयागमें हुआ था। वल्लभाचार्यजीके बाद ये पुष्टि सम्प्रदायके आचार्य हुए। इनकी सहज प्रवृत्ति वैराग्यकी ओर थी। साम्प्रदायिक ग्रन्थोंके अध्ययनमें विशेष रुचि रखते थे। पुष्टि सम्प्रदायकी गद्दीके स्वामी होते हुए भी उसकी ओर इनका ध्यान बहुत कम रहता था तथा तीर्थाटनमें रहनेके कारण अपने छोटे भाई विट्ठलनाथको ही सब कार्यभार सौंप देते थे। गोपीनाथने गुजरात, काठियावाड़ और पूर्वदेशकी यात्रा करके पुष्टि सम्प्रदायका प्रचार किया। इनका निधन संवत् १६१०में हुआ। गोपीनाथका लिखा हुआ एक ही ग्रन्थ 'साधन दीपिका' उपलब्ध है। इस ग्रन्थमें पुष्टिमार्गीय भक्तिकी सेवाविधिका विवरण है। यह संस्कृतमें लिखा गया है।

३. रीतिकालके कवियोंमें गोपीनाथका नाम महाभारत और हरिवंश पुराणके अनुवादकोंमें आता है। यह अनुवाद कार्य सयुक्त रूपसे गोकुलनाथ, गोपीनाथ और मणिदेवने किया था। गोपीनाथ हिन्दीके प्रसिद्ध कवि रघुनाथ बन्दीजनके पौत्र बताये जाते हैं। महाभारत और हरिवंश पुराणका हिन्दी पद्यात्मक अनुवाद जो लगभग ५० वर्षमें तैयार हुआ था, उस युगका सहकार भावनासे किया हुआ एक स्तुत्य प्रयास है। यह कार्य काशीनरेश उदितनारायणसिंहकी आज्ञासे किया गया था। गोपीनाथ अठारहवीं शतीके प्रारम्भमें विद्यमान थे। इनकी काव्य रचना शैली सरस और आकर्षक है। इन्होंने अपने महाभारत अनुवादमें ब्रजभाषाका प्रयोग किया है (दि० 'गोकुलनाथ')। —वि० स्ना०

गोपीनाथ पुरोहित–आपका जन्म १८६३ ई०में जयपुरमें हुआ। भारतेन्दु-युगमें ही अंग्रेजी-साहित्यकी विश्वप्रसिद्ध कृतियोंके अनुवादकी ओर हिन्दी-लेखकोंने ध्यान दिया था। स्वयं भारतेन्दुने शेक्सपियरके नाटकोंका अनुवाद किया था। सन् १८९६ ई०में जयपुरके पुरोहित गोपीनाथ

एम० ए० एक अच्छे अनुवादकके रूपमें सामने आये। आपने शेक्सपियरके तीन नाटकों—'मरचेण्ट ऑफ वेनिस' 'ऐज यू लाइक इट' और 'रोमियो ऐण्ड जूलियट'का अनुवाद क्रमशः 'वेनिसका व्यापारी', 'मनभावन' (१८९६ ई०) और प्रेमलीला (१८९७ ई०) नामसे किया। आपने पद्यांशोंको भी गद्यमें ही अनूदित किया है। आपने सिसरो के निबन्धका 'मित्रता' शीर्षकसे और 'ग्रेज एलेजी'का 'शोकोक्ति' शीर्षकसे अनुवाद किया। 'शोकोक्ति' भाषा छन्दोंमें अनूदित है। आपने 'वीरेन्द्र' (१८९७) नामक एक वीर और शृंगार रस-प्रधान उपन्यास भी लिखा है, जो किसी अँग्रेजी उपन्यासकी छायापर लिखा गया है। इसमें एक ऐतिहासिक उपन्यासका-सा वातावरण प्रस्तुत किया गया है और भाषा पात्रोंके अनुसार कहीं शुद्ध उर्दू और कहीं शुद्ध हिन्दी है। आपको संस्कृतका भी अच्छा ज्ञान था और आपने 'भर्तृहरि शतकत्रयम' (१८९६ ई०) का अंग्रेजी अनुवाद और हिन्दीभाषान्तर (टिप्पणी और व्याख्या सहित) भी प्रस्तुत किया है। 'सतीचरित-चमत्कार' (१९०० ई०) नामक आपकी एक मौलिक कृति भी प्राप्त होती है। आप अविकल अनुवादके पक्षमें थे और कविके आशयको कविके ही शब्दों, वाक्यों और मुहावरोंमें प्रकट करना चाहते थे। इस प्रयत्नमें कहीं-कहीं आपके अनुवादोंमें अंग्रेजीके मुहावरे ज्योंके त्यों भाषान्तरित होकर आ गये हैं। आपकी भाषा परिमार्जित और प्रवाहमयी है। अनेक युगके अनुवादकोंमें आपका श्रेष्ठ स्थान है।—रा० चं० ति०

गोबर–प्रेमचन्दकृत उपन्यास 'गोदान'का पात्र। गोबर नयी पीढ़ीके किसान-युवकका प्रतीक है। उसमें तेजी, स्पष्टवादिता है, हाकिमों और महाजनोंके हथकण्डे समझनेकी शक्ति है और अधिकार भावना है किन्तु उसके सामने कोई सुनिश्चित और स्पष्ट योजना नहीं है। वह केवल विद्रोह और असन्तोष प्रकट करना जानता है—पिताके प्रति और समाजके प्रति भी। खण्डनात्मक रूप उसका तीव्र और प्रखर है। रचनात्मक दृष्टिसे उसमें कर्त्तव्य-निष्ठा, रचनात्मक दृष्टिकोण और समझदारीका अभाव है। अपनी अदूरदर्शिताके कारण ही वह मारा-मारा फिरता है। उसकी स्वावलम्बन शक्ति दुर्बल है। गाँवके रोमांससे वह भाग लेता है, लेकिन अपने उत्तरदायित्वका निर्वाह करनेका साहस उसमें वहाँ भी नहीं है। शहरमें जाकर तो वह और बिगड़ जाता है। अन्तमें प्रेमचन्दने उसे एक ऐसे नवयुवकके रूपमें चित्रित किया है, जो बुद्धिमान हो जाता है, जो यह समझने लगता है कि "अपना भाग्य खुद बनाना होगा—कोई देवता और गुप्त शक्ति उसकी मदद करने न आवेगी।" उद्दण्डता और गरूरके स्थानपर उसमें गहरी संवेदना सजग हो उठती है, वह अपना कर्त्तव्य (केवल अधिकार नहीं) समझने लगता है और नम्र तथा उद्योगशील हो जाता है। उसे पिताके प्रति किये गये अपने पिछले दुर्व्यवहारपर पश्चात्ताप भी होता है। —ल० सा० वा०

गोरखनाथ (गोरक्षनाथ)–सिद्धोंसे सम्बद्ध सभी जनश्रुतियाँ इस बातपर एकमत हैं कि नाथ सम्प्रदायके आदि-प्रवर्तक चार महायोगी हुए हैं। आदिनाथ स्वयं शिव ही हैं। उनके दो शिष्य हुए, जालंधरनाथ और मत्स्येंद्रनाथ या मच्छन्दनाथ। जालन्धरनाथके शिष्य थे कृष्णपाद (कान्हपाद, कान्हपा, कानफा) और मत्स्येंद्रनाथके गोरख (गोरक्ष) नाथ। इस प्रकार ये चार सिद्ध योगीश्वर नाथ सम्प्रदायके मूल प्रवर्तक हैं। परवर्ती नाथ सम्प्रदायमें मत्स्येन्द्रनाथ और गोरखनाथका ही अधिक उल्लेख पाया जाता है। इन सिद्धोंके बारेमें सारे देशमें जो अनुश्रुतियाँ और दन्तकथाएं प्रचलित हैं, उनसे आसानीसे इन निष्कर्षोंपर पहुंचा जा सकता है—(१) मत्स्येन्द्र और जालन्धर समसामयिक गुरुभाई थे और दोनोंके प्रधान शिष्य क्रमशः गोरखनाथ और कृष्णपाद (कानपा) थे, (२) मत्स्येन्द्रनाथ किसी विशेष प्रकारके योग मार्गके प्रवर्तक थे, परन्तु बादमें किसी ऐसी साधनामें जा फँसे थे, जहाँ स्त्रियोंका अबाध संसर्ग माना जाता था, 'कौलज्ञान निर्णय'से जान पड़ता है कि यह वामाचारी कौल साधना थी, जिसे सिद्ध कौशल मत कहते थे; गोरखनाथने अपने गुरुका वहासे उद्धार किया था। (३) शुरूमें ही मत्स्येन्द्र और गोरखकी साधना पद्धति जालन्धर और कृष्णपादकी साधना पद्धतिसे भिन्न थी।

इनके समयके बारेमें ये निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं—(१) मत्स्येन्द्रनाथ द्वारा लिखित कहे जानेवाले ग्रन्थ 'कौलज्ञान निर्णय'की प्रतिका लिपिकाल डाक्टर प्रबोधचन्द्र बागचीके अनुसार ११ वीं शतीके पूर्वका है। यदि यह ठीक हो तो मत्स्येन्द्रनाथका समय ईस्वी ११ वीं शतीसे पहले होना चाहिए। (२) सुप्रसिद्ध कश्मीरी आचार्य अभिनवगुप्तके तन्त्रालोकमें मच्छन्द विभुको बड़े आदरसे स्मरण किया गया है। अभिनवगुप्त निश्चित रूपसे सन् ई० की दसवीं शतीके अन्तमें और ग्यारहवीं शतीके प्रारम्भमें विद्यमान थे। इस प्रकार मत्स्येन्द्रनाथ इस समयसे काफी पहले हुए होंगे। (३) मत्स्येन्द्रनाथका एक नाम मीननाथ है। ब्रजयानी सिद्धोंमें एक मीनपा हैं जो मत्स्येन्द्रनाथके पिता बताये गये हैं। मीनपा राजा देवपालके राजत्वकालमें हुए थे। देवपालका राज्यकाल ८०९ से ८४९ ई० तक है। इससे सिद्ध होता है कि मत्स्येन्द्र ई० सन्‌की नवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें विद्यमान थे। (४) तिब्बती परम्पराके अनुसार कानपा (कृष्णपाद) राजा देवपालके राज्यकालमें आविर्भूत हुए थे। इस प्रकार मत्स्येन्द्र आदि सिद्धोंका समय ई० सन्‌के नवीं शताब्दीका उत्तरार्द्ध और दसवीं शताब्दीका पूर्वार्द्ध समझना चाहिए। कुछ ऐसी भी दन्तकथाएं हैं जो गोरखनाथका समय बहुत बादमें रखने का संकेत करती हैं जैसे कबीर और नानकसे उनका संवाद, परन्तु ये बहुत बादकी बातें हैं, जब मान लिया गया था कि गोरखनाथ चिरजीवी हैं। गूँगाकी कहानी, पश्चिमी नाथोंकी अनुश्रुतियाँ, बंगालकी दन्तकथाएँ और धर्मपूजा सम्प्रदाय की प्रसिद्धियाँ, महाराष्ट्रके सन्त ज्ञानेश्वर आदिकी परम्पराएँ इस कालको १२०० ईस्वीके पूर्व ले जाती हैं। इस बातका ऐतिहासिक सबूत है कि ईस्वी तेरहवीं शताब्दीमें गोरखपुरका मठ ढहा दिया गया था, इसीलिए इसके बहुत पूर्व गोरखनाथका समय होना चाहिए। बहुतसे पूर्ववर्ती मत गोरक्षनाथी सम्प्रदायमें अन्तर्भुक्त हो गये थे। इनकी अनुश्रुतियोंका सम्बन्ध भी गोरखनाथसे जोड़ दिया गया है। इसलिए कभी-कभी गोरक्षनाथका समय और भी पहले

निश्चित किया जाता है। लेखकने 'नाथ-सम्प्रदाय' नामक पुस्तकमें इन सम्प्रदायोंके अन्तर्भुक्त होनेकी प्रक्रियाका सविस्तार विवेचन किया है। सब बातोंपर विचार करनेसे गोरखनाथका समय ईस्वी सन्‌की नवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें ही माना जाना ठीक जान पड़ता है।

गोरक्षनाथके नामसे बहुत-सी पुस्तकें संस्कृतमें मिलती हैं और अनेक आधुनिक भारतीय भाषाओंमें भी चलती है। निम्नलिखित पुस्तकें गोरखनाथकी लिखी बतायी गयी हैं—(१) 'अमवस्क', (२) 'अवरोधशासनम्', (३) 'अवधूत गीता', (४) 'गोरक्षकाल', (५) 'गोरक्षकौमुदी', (६) 'गोरक्ष गीता', (७) 'गोरक्ष चिकित्सा', (८) 'गोरक्षपंचय', (९) 'गोरक्षपद्धति', (१०) 'गोरक्षशतक', (११) 'गोरक्षशास्त्र', (१२) 'गोरक्षसंहिता', (१३) 'चतुरशीत्यासन', (१४) 'ज्ञान प्रकाश शतक', (१५) 'ज्ञान शतक', (१६) 'ज्ञानामृत योग', (१७) 'नाडीज्ञान प्रदीपिका', (१८) 'महार्थमंजरी', (१९) 'योगचिन्तामणि', (२०) 'योगमार्तण्ड', (२१) 'योगबीज', (२२) 'योगशास्त्र', (२३) 'योगसिद्धासन पद्धति', (२४) 'विवेक मार्तण्ड', (२५) 'श्रीनाथसूत्र', (२६) 'सिद्धसिद्धान्त पद्धति', (२७) 'हठयोग', (२८) 'हठ संहिता'। इसमें महार्थ मञ्जरीके लेखकका नाम पर्याय रूपमें महेश्वराचार्य भी लिखा है और यह प्राकृतमें है, बाकी संस्कृतमें हैं। कई एक दूसरेसे मिलती हैं; कई पुस्तकोंके गोरक्षलिखित होनेमें सन्देह है। हिन्दीमें सब मिलाकर ४० छोटी-बड़ी रचनाएं गोरखनाथकी कही जाती हैं, जिनकी प्रामाणिकता असन्दिग्ध नहीं है—(१) 'सबदी', (२) 'पद', (३) 'सिष्यादर्सन', (४) 'प्राणसंकली', (५) 'नरवे बोध', (६) 'आतम बोध' (पहला), (७) 'अभैमात्रा योग', (८) 'पन्द्रह तिथि', (९) 'सप्तवाद', (१०) 'मछींद्रगोरख बोध', (११) 'रोमावली', (१२) 'ग्यानतिलक', (१३) 'ग्यान चौतीसा', (१४) 'पच-मात्रा', (१५) 'गोरखगणेश गोष्ठी', (१६) 'गोरावदत्त गोष्ठी', ('ग्यानदीप बोध'), (१७) 'महादेवगोरख गुष्ट', (१८) 'सिस्टपुराण', (१९) 'दयाबोध', (२०) 'जाती भौरावली' (छन्द-गोरख), (२१) 'नवग्रह', (२२) 'नवरात्र', (२३) 'अष्ट पारछया', (२४) 'रहरास', (२५) 'ग्यानमाल', (२६) 'आतमाबोध' (दूसरा), (२७) 'व्रत', (२८) 'निरजन पुराण', (२९) 'गोरखवचन', (३०) 'इन्द्री देवता', (३१) 'मूल गर्भावती', (३२) 'खाणवाणी', (३३) 'गोरखसत', (३४) 'अष्टमुद्रा', (३५) 'चौबी सिधि', (३६) 'डक्षरी', (३७) 'पंच अग्नि', (३८) 'अष्टचक्र', (३९) 'अवलि सिलूक', (४०) 'काफिर बोध'।

इन ग्रन्थोंमेसे अधिकाश गोरखनाथी मतके संग्रहमात्र हैं। ग्रन्थ रूपमें स्वय गोरखनाथने इनकी रचना की होगी, यह बात संदिग्ध है। अन्य भारतीय भाषाओंमें भी, जैसे बगाली, मराठी, गुजराती, पंजाबी आदिमें इसी प्रकारकी रचनाएँ प्राप्त होती है।

गोरखनाथ द्वारा प्रवर्तित योगिसम्प्रदाय मुख्य रूपसे बारह शाखाओंमें विभक्त है। इसीलिए इसे बारहपन्थी कहते हैं। इस मतके अनुयायी कान फड़वाकर मुद्रा धारण करते हैं इसलिए उन्हें कनफटा, भाकतफटा योगी भी कहते हैं। बारहमें से छः तो शिवद्वारा प्रवर्तित माने जाते हैं और छः गोरख द्वारा—(१) भुजके कंठरनाथ (२) पागलनाथ, (३) रावल, (४) पंख या पंक जिससे सतनाथ, धरमनाथ, गरीबनाथ और हाडीभरंग सम्बद्ध हैं, (५) बन और (६) गोपाल या रामके सम्प्रदाय जो शिवके सम्प्रदाय कहे जाते है और (७) चाँदनाथ कपिलानी, जिससे गंगानाथ, मायनाथ, कपिलानी, नीमनाथ, पारसनाथ आदिके सम्बन्ध हैं, (८) हेठनाथ, जिससे लक्ष्मणनाथ या कालनाथ, दरियांथ, नाटमेरी, जाफर पीर आदिका सम्बन्ध बताया जाता है। (९) आई पन्थके चोलीनाथ जिससे मस्तनाथ, आई पन्थसे छोटी दरगाह, बड़ी दरगाह आदिका सम्बन्ध है, (१०) वैराग पन्थ, जिससे भाईनाथ, प्रेमनाथ, रतननाथ आदिका सम्बन्ध है और कायानाथ या कायमुद्दीन द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाय भी सम्बन्धित हैं, (११) जैपुरके पावनाथ, जिससे पापन्थ, कानिया, बामारग आदिका सम्बन्ध है और (१२) धजनाथ, जो हनुमान्‌जीके द्वारा प्रवर्तित कहा जाता है, गोरखनाथके सम्प्रदाय कहे जाते हैं। इसका विश्लेषण करनेसे पता चलता है कि इनमें अनेक पुराने मत, जैसे कपिलका योगमार्ग, लकुलीशमत, कापालिक मत, वाम-मार्ग आदि सम्मिलित हो गये हैं।

गोरक्षमतके योगको पतंजलि वर्णित अष्टांगयोगसे भिन्न बतानेके लिए षडंग योग कहते है। इसमें योगके केवल छः अंगोंका ही महत्त्व है, प्रथम दो अर्थात् यम और नियम इसमें गौण हैं। इसका साधनापक्ष या प्रक्रिया-अंग हठयोग कहा जाता है। शरीरमे प्राण और अपान, सूर्य और चन्द्र नामक जो बहिर्मुखी और अन्तर्मुखी शक्तियाँ है, उनको प्राणायाम, आसन, बन्ध आदिके द्वारा सामरस्यमें लानेमे सहज समाधि सिद्ध होती है। जो कुछ पिण्डमें है, वही ब्रह्माण्डमें भी है। इसलिए हठयोगकी साधना पिण्ड या शरीरको ही केन्द्र बनाकर विश्व ब्रह्माण्डमें क्रियाशील शक्तिको प्राप्त करनेका प्रयास हैं। गोरक्षनाथ-के नामपर चलनेवाले ग्रन्थोंमे विशेष रूपसे इस साधना-प्रक्रियाका ही विस्तार है। कुछ अंग दर्शन या तत्त्ववादके समझानेके उद्देश्यसे लिखे गये है। अवरोधशासन, सिद्ध-सिद्धान्त पद्धति, महार्थ मंजरी (त्रिक दर्शन) आदि ग्रन्थ इसी श्रेणीमें आते हैं। अवरोध शासनमें (पृ० ८-९) गोरख-नाथने वेदान्तियों, मीमांसकों, कौलों, वज्रयानियों और शाक्त तान्त्रिकोके मोक्षसम्बन्धी विचारोंको मूर्खता कहा है। असली मोक्ष वे सहज समाधिको मानते हैं। सहज समाधि उस अवस्थाको बताया गया है, जिसमें मन स्वयं ही मनको देखने लगता है। दूसरे शब्दोंमें स्वसंवेदन ज्ञान की अवस्था ही सहज समाधि है। यही चरम लक्ष्य है।

आधुनिक देशी भाषाओंके पुराने रूपोंमें जो पुस्तकें मिलती हैं, उनकी प्रामाणिकता संदिग्ध है। इनमें अधिकतर योगांगों, उनकी प्रक्रियाओं, वैराग्य, ब्रह्मचर्य, सदाचार आदिके उपदेश हैं और मायाकी भर्त्सना है। तर्क-वितर्कको गर्हित कहा गया है, भवसागरमें पच-पचकर मरनेवाले जीवोंपर तरस खाया गया है और पाखण्डियोंको फटकार बतायी गयी है। सदाचार और ब्रह्मचर्यपर गोरखनाथने बहुत बल दिया है। शंकराचार्यके बाद भारतीय लोकमत-को इतना प्रभावित करनेवाला आचार्य भक्तिकाव्यके पूर्व

दूसरा नहीं हुआ। निर्गुणमार्गी भक्ति शाखापर भी गोरखनाथका भारी प्रभाव है। निस्सन्देह गोरखनाथ बहुत तेजस्वी और प्रभावशाली व्यक्तित्व लेकर आये थे।

[सहायक ग्रन्थ—नाथ सम्प्रदाय : डाक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी।] —ह० प्र० द्वि०

गोरखप्रसाद–जन्म १८९६ ई०में गोरखपुरमें हुआ। अनेक वर्षोंतक प्रयाग विश्वविद्यालयके गणित विभागमें प्राध्यापक रहे। हिन्दी माध्यमसे वैज्ञानिक विषयोंपर लिखनेवालोंमें डॉ० गोरखप्रसादका नाम सदैव बड़े सम्मानके साथ लिया जायगा। देवनागरी लिपिके सुधारके सम्बन्धमें भी आपके विचार महत्त्वपूर्ण रहे हैं। प्रयाग विश्वविद्यालयसे अवकाश ग्रहण करनेके उपरान्त आप नागरी प्रचारिणी सभा काशीसे प्रकाशित होनेवाले 'हिन्दी विश्वकोश'के एक सम्पादक नियुक्त हुए। पर दुर्भाग्यवश १९६१में नदीमें डूब जानेसे काशीमें आपकी मृत्यु हो गयी। आपकी प्रकाशित कृतियाँ इस प्रकार हैं—'फोटोग्राफी' (१९३०), 'सौर परिवार' (१९३१), 'नीहारिकाएँ' (१९५५), 'भारतीय ज्योतिषका इतिहास' (१९५६)। —सं०

गोवर्धन–ब्रजके एक ग्राम और पुराणप्रसिद्ध पर्वतका नाम गोवर्धन है। गोवर्धनको श्रद्धाके कारण 'गिरिराज' कहा जाता है। गोवर्धनको कृष्णने इन्द्रकी प्रलयंकारी वर्षामे ब्रजको बचानेके लिए इसे अंगुलीपर धारण किया था। भागवत (१०-२४-३५)के अनुसार इस पर्वतकी पूजाके समय कृष्णने ही गिरिराज पर्वतपर प्रत्यक्ष देवरूप धारण करके पूजा ग्रहण की थी। अतः इस पर्वतको साक्षात् कृष्णका रूप मानकर पूजा जाता है। गोवर्धनको ब्रजमण्डलका छत्र भी कहा जाता है। गिरिराज गोवर्धनके तीर्थोंमे ब्रह्मकुण्ड, चक्रतीर्थ, चक्रेश्वर शिव, हरिदेवजी, मनसा देवी, लक्ष्मीनारायणजी, गिरिराजजीका मन्दिर, दानघाटी, दानघाटीके गिरिराजजी, और चारकुण्ड (धर्मरोचन, पापमोचन, ऋणमोचन, गोरोचन) प्रसिद्ध हैं। गोवर्धनमें मानसी गंगाके निकट अष्टछापके प्रसिद्ध कवि नन्ददास निवास किया करते थे। प्रतिवर्ष श्रावण मासमें होने वाली ब्रज-यात्रामें गोवर्धनकी यात्राका विशेष महत्त्व है। वैसे भी गिरिराजकी परिक्रमाकी प्रथा है।

गर्ग संहिताके गिरिराज खण्डके अनुसार गोवर्धनकी उत्पत्तिके अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। पुराणोंके अनुसार गिरिराजकी उत्पत्ति द्रोणाचल पर्वतसे है तथा ब्रजमे उसे पुलस्त्य ऋषि लेकर आये थे। गिरिराजने ऋषिसे यह वचन लिया था कि वे जहाँ भी उसे रख देंगे, वहाँसे वह फिर नहीं हटेगा। ये उन्हें काशीपुर ले जाना चाहते थे। परन्तु मार्गमें ब्रजभूमिके सौन्दर्य और कृष्णावतारकी अपनी सेवाओंका स्मरण कर गिरिराजने प्रभुको स्मरण किया और उन्होंने मुनिको लघुशंकाके वेगसे आकुल कर दिया। मुनिने सहसा गिरिराजको उनके वर्तमान स्थानपर रख दिया, जहाँ वे अभी तक स्थित हैं। वाराह पुराणके अनुसार हनुमान् सेतुबन्धके समय उत्तराखण्डसे इन्हें ला रहे थे। उस समय सेतुबन्ध बंध चुका था। अतः रामकी आज्ञा हुई जो पर्वत लिए जहाँ हो, वहीं रख दें। रामकी देसी आज्ञा सुनकर उन्होंने गिरिराजको ब्रजमें ही छोड़ दिया।

कृष्णकी अलौकिक वृन्दावनलीलाओंमें गोवर्धन-धारण लीलाका महत्त्वपूर्ण स्थान है परन्तु इस लीलाका वर्णन अधिकतर वल्लभ सम्प्रदायके ही कवियोंने किया है। निम्बार्क, राधावल्लभ, चैतन्य और हरिदासी सम्प्रदायोंके ही कवियोंने माधुर्योपासनाके फलस्वरूप गोवर्धनधारण-लीलाकी उपेक्षा की है। गोवर्धन वल्लभसम्प्रदायका प्रमुख केन्द्र है। अन्य सम्प्रदायोंका इसकी ओर विशेष आकर्षण नहीं दिखायी पड़ता।

[सहायक ग्रन्थ—ब्रज और ब्रज यात्रा : सेठ गोविन्ददास; ब्रजभाषा और गुजराती कृष्णकाव्यका तुलनात्मक अध्ययन : डाक्टर जगदीश गुप्त; मथुरा परिचय : पं० कृष्ण दत्त वाजपेयी।] —रा० कु०

गोवर्धन–ब्रजमण्डलमें स्थित गोकुलके समीप एक प्रसिद्ध पर्वत। ब्रजवासी पहले इन्द्रकी पूजा करते थे। लीलाबिहारी कृष्णने ब्रजवासियोंको इन्द्रकी पूजा छोड़कर उनकी उपासना करनेका परामर्श दिया। इससे इन्द्रने कुपित होकर मूसलाधार वर्षा द्वारा ब्रजको डुबानेकी प्रतिज्ञा की। फलस्वरूप गोकुलमें वर्षाके आधिक्यके कारण त्राहि-त्राहि मच गयी। जब भगवान् कृष्णने गोवर्धन पर्वतको अपने हाथकी छिगुनी पर उठा लिया, तब एक भी बूंद पानी ब्रजपर नहीं पड़ा और ब्रजवासी इन्द्रके कोपसे बच गये। अन्तः इन्द्रने हार स्वीकार कर ली। गोवर्धन पर्वतको धारण करने ही के कारण कृष्ण 'गिरिधर', 'गोवर्धननाथ', 'गिरधारी' आदि नामोंसे अभिहित किये जाते हैं। ब्रजवासी गोवर्धनके लिए गिरिराज सम्बोधनका प्रयोग करते हैं। सावन मासमें गोवर्धन-पर्वतकी परिक्रमा की जाती है। कृष्ण-काव्यमे कृष्णकी अतिप्राकृत व्यक्तित्वकी व्यंजक लीलाओंमें उनकी गोवर्धन लीलाका महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस लीलाके द्वारा कृष्णभक्त कवियोंने कृष्णके लोक-मंगलकारी एवं ब्रजरक्षक रूपका उद्घाटन किया है। वर्तमान समयमे 'गोवर्धन' नामसे कस्बा भी बस गया है। इस कस्बेमें अनेक कृष्ण मन्दिर हैं (दे० सूरसागर-गोवर्धनलीला)। —रा० कु०

गोवर्धन लीला–दे० 'नन्ददास'।

गोरा बादल–'पद्मावत'के अन्तर्गत गोरा बादलका परिचय सर्वप्रथम हमें वहाँपर मिलता है, जहाँ सुल्तान अलाउद्दीनका चित्तौड़गढ़में स्वागत होता रहता है और वह उसके भीतर सभी कुछ देखता तथा राजा रतनसेनसे बातचीत करता रहता है। जायसीके अनुसार 'गोरा और बादल' राजाके पास थे, दोनों रावत (प्रमुख सामन्तोंमे-से) थे और उसकी दोनों भुजाओंके समान थे। उन्होंने राजाके कानमे आकर कहा कि "हमने वाणीसे परीक्षा ली है और तुर्कको समझ लिया है, यह प्रकटमें मेल और गुप्त रूपमे सेनाकी बातें सोचता है। तुर्कोंसे मेल मत कीजिये, अन्तके दॉवमें ये अवश्य छल करते हैं। आज हमारा छत्र इस दुष्टके हाथमें गया है, मूलके नष्ट होनेपर संगके पत्ते भी नहीं रहते" (४६-७)। परन्तु इन बातोंको राजाने पसन्द नहीं किया और शिष्टाचारकी बातें करने लगे, जिसपर क्रोधमें आकर ये वहाँसे अपने भवन वापस चले आये (४६-८)। तबसे इन्होंने इधर कोई रुचि लेना बन्द-सा कर दिया था, किन्तु जब राजाके बन्दी हो जानेपर दुःखित हो पद्मावती

इनके द्वारपर स्वयं पैदल पहुँची तो इन्होंने उसका बड़ी श्रद्धा और भक्तिके साथ अभिनन्दन किया और कहा कि "आज गंगाकी धार उलटी बहने लगी है, सेवकके द्वारपर कभी रानी नहीं आया करती। ऐसा कष्ट क्यों किया? शीघ्र ही आज्ञा करें, हमारे प्राण आपके कार्यके लिए समर्पित हैं" (५१-१)। रानीकी बातें सुनकर ये दोनों क्षुब्ध हो जाते हैं, अपने प्रस्तावके ठुकराये जानेपर दरबार से पहले रूठ कर चले आनेकी चर्चा करते हैं और फिर रानीके हाथका बीड़ा भी स्वीकार कर लेते हैं तथा राजाके छुड़ानेका इतना दृढ़ संकल्प कर लेते हैं कि बादल अपने मॉंके अनुरोधकी कुछ भी परवाह नहीं करता तथा अपनी गौनेमें आयी हुई नव-वधूके आग्रहको भी अनसुनी कर देता है और उसका स्पर्शतक नहीं करता (५२-१ और ८)। ये दोनों वीर फिर एक अनुपम योजनाके अनुसार "सोलह सौ चंडोल" तैयार करते हैं। गोरा बन्दीगृहके संरक्षकको दस लाख टके भेंट करके अनुमति मॅंगवा लेता है और राजा मुक्त होकर बादलके साथ चित्तौड़ गढ पहुॅंच जाता है तथा गोरा इधर युद्ध करते-करते काम आ जाता है (५३-२ से ७ तक और १५)। उधर बादलके भुजदण्डों-की रानी द्वारा पूजा की जाती है (५४-४)। और इसीको गढ़ सौंपकर रतनसेन भी अपने प्राण छोड़ता है (५६-१)। परन्तु, अन्तमें दोनों रानियोंके सती हो जानेपर जब सुल्तान फिर गढपर धावा बोलता है तो बादल भी उसके विरुद्ध लड़ते-लड़ते "दुर्गकी पोरमें" जूझ जाता है (५७-४)।

गोरा-बादलविषयक उपर्युक्त कथा बहुत प्रसिद्ध है और इसपर अनेक उत्कृष्ट रचनाएँ भी प्रस्तुत की जा चुकी हैं परन्तु फिर भी इन दोनों वीरोंके ऐतिहासिक व्यक्तित्वका हमें आजतक स्पष्ट और प्रामाणिक परिचय उपलब्ध नहीं हो पाया है। आचार्य पण्डित रामचन्द्र शुक्लने कर्नल टाडकी पुस्तकके आधारपर लिखा है—"गोरा पद्मिनीका चचा लगता था और बादल गोराका भतीजा था" (जा० ग्र० पृ० २५), किन्तु यदि पदुमावती सचमुच सिंघलके राजा की पुत्री थी, उस दशामें इन दोनोंके वहाँसे आनेके विषय-में भी कोई संकेत मिलना चाहिए था, जो अप्राप्य है। इसके विरुद्ध म० म० गौरीशंकर हीराचन्द ओझाका कहना है, "गोरा बादल दो नाम नहीं, किन्तु राठौर दुर्गादास, सीसोदिया मत्ता आदि के समान एक नाम होना सम्भव है, उसका पहला अंश उसके वंशका सूचक और दूसरा उसका व्यक्तिगत नाम है" (ना० प्र० पत्रिका, भाग १३, पृ० १६)। उन्होंने पत्रिकाके पृष्ठ ७ से लेकर ११ तक पर किसी 'गोर' नामक अज्ञात क्षत्रियवंशका कुछ ऐतिहासिक सामग्रियोंके आधारपर एक परिचय भी दिया है और इतना यह भी कहा है "वि० सं० की १४ शताब्दीमें भी गोरवंशी राजपूत मेवाड़के राजाओंकी सेनामें थे (पृ० १०) तथा जिन पुस्तकोंमें गोरा और बादल जैसे दो भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंको माना गया है वे गोरा बादलके मृत्यु-कालसे बहुत पीछे रची गयी थीं, इस कारण इतने दीर्घकालमें नामोंमें भ्रम होना संभव है" और "गोरा बादलका वास्त-विक अभिप्राय गोर (गोरा) वंशके बादल नामक पुरुषसे हो सकता है" (पृ० ११)। इससे उनके मतके सम्बन्धमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं रह जाता। अतएव, स्पष्ट है कि जायसीने यहाँपर परम्परागत जनश्रुतियोंके आधारपर केवल एक ही ऐतिहासिक व्यक्तिको भी दो पृथक्-पृथक् रूपोंमें देखा होगा और इस प्रकार ऐसे दो व्यक्तियोंकी कार्य-कुशलता एवं शौर्य प्रदर्शनके आधारपर उपर्युक्त चण्डोल-वाली योजनाको कार्यान्वित करनेकी कथा भी तैयार कर ली होगी। तथ्य जो भी रहा हो, उन्होंने इन दोनों पात्रोंके चरित्र-चित्रणमें इनकी स्वामिभक्ति, वीरता, कार्यपटुता एवं दूरदर्शिताको प्रदर्शित कर सफल चरित्र-चित्रण किया है। —प० च०

गोराबादल री बात—हस्तलिखित प्रतियोंमें जटमलकी इस कृतिके 'गोरा बादलकी कथा', 'गोरे बादल की कथा', 'गोरा बादलरी कथा', 'गोरा बादलकी बात', विभिन्न नाम मिलते हैं। एक सौ पचास पद्योंकी इस कृतिकी रचना जटमलने १६२३ या १६२८ ई०में की थी। 'गोरा बादलकी कथा'का कथानक इतिहास प्रसिद्ध चित्तौड़-की पद्मिनीसे सम्बन्ध रखता है। रत्नसेन और सिंहलकी पद्मिनीके परिणय, राघवचेतन और अलाउद्दीनकी भेंट और पद्मिनीके सौन्दर्यके प्रति उसके आकर्षित होने तथा सुल्तान अलाउद्दीन द्वारा रत्नसेनको बन्दी बनाकर कष्ट देनेकी कथा-की मोटी रूपरेखा भिन्न न होते हुए भी जटमलने अनेक नवीन तथ्योंकी कल्पना की है। अलाउद्दीनके आक्रमणके सामना करनेमें गोरा बादलकी वीरताका चित्रण कृतिका प्रधान उद्देश्य है। कथाका लोकप्रचलित रूप ही जटमलने ग्रहण किया है; इतिहाससे वे परिचित नहीं जान पड़ते, क्योंकि रत्नसेनको उन्होंने चौहानवंशी कहा है। अलाउद्दीन का सिंहलपर आक्रमण करना और फिर चित्तौड़पर आक्रमण करना भी इसी प्रकारकी ऐतिहासिक त्रुटि है।

कृतिमें वीर और शृंगार रसका परिपाक हुआ है। कृतिकी भाषा मिश्रित ब्रजभाषा कही जा सकती है, जो राजस्थानीसे प्रभावित है। तत्सम शब्दोंके स्थानपर जटमल तद्भव शब्दोंका ही प्रयोग करते हैं। कृतिमें वीर काव्योंकी द्वित्ववर्णप्रधान कृत्रिम शैलीके दर्शन कम ही होते हैं। अलंकारोंके प्रयोगमें भी जटमलने आग्रह नहीं किया है। दोहा और छप्पय जटमलके प्रिय छन्द कहे जा सकते हैं। छन्दोंकी विविधता 'गोरा बादल री बात'में नहीं मिलती। कृतिके अच्छे संस्करणकी आवश्यकता है। तरुण भारत ग्रन्थावली कार्यालय, प्रयागसे एक संस्करण निकला था जो कठिनाईसे मिलता है।

[सहायक ग्रन्थ—हिन्दी साहित्य, खण्ड २, भारतीय हिन्दी परिषद्, प्रयाग; राजस्थानी भाषा और साहित्य : मेनारिया।] —रा० तो०

गोविंद दास, सेठ—इनका जन्म जबलपुर, मध्य प्रदेशके एक विशेष सम्पन्न और धार्मिक मनोवृत्तिके, वल्लभ सम्प्र-दायके प्रति अनुरक्त, परिवारमें १८९६ ई० में हुआ था। पितामह गोकुलदासके धर्मप्राण और सुसंस्कृत व्यक्तित्वका सेठजीपर विशेष प्रभाव पड़ा। उन्हींके संरक्षणमें सेठजीके अध्ययनकी व्यवस्था थी। घर पर ही अंग्रेजी, संस्कृत और हिन्दीकी शिक्षा मिली। इन्होंने हिन्दी तथा अंग्रेजी साहित्य का सम्यक अध्ययन किया। बचपनमें ही रेमोनाल्ड्स और

देवकीनन्दन खत्रीकी रचनाएँ पढ़ीं और तिलस्मी उपन्यास लिखने की रुचि हुई। बारह वर्षकी अवस्थामें एक तिलस्मी उपन्यास 'चम्पावती'की रचना की। शुरूसे ही वल्लभ सम्प्रदायके ललित उत्सवों, रामलीला, पारसी नाटक कम्पनियोंके अभिनयोंमें आपकी विशेष रुचि थी। इन्हींसे नाटक-रचनाकी ओर प्रवृत्ति हुई। सन् १९१६ में 'शारदा भवन पुस्तकालय'की स्थापना, 'श्री शारदा' साहित्यिक मासिकके प्रकाशन और 'शारदा पुस्तकमाला'के प्रारम्भसे साहित्यिक क्षेत्रमें व्यवस्थित कार्य प्रारम्भ हुआ। १९१९ में पुस्तकालयके वार्षिकोत्सवके लिए 'विश्वप्रेम' नाटक लिखा और खेला। इसी वर्ष सेठजी सार्वजनिक जीवनमें भी प्रविष्ट हुए। गांधीजीके प्रभावमें आये और स्वाधीनता-आन्दोलनमें भी भाग लेने लगे। सन् १९३० में पहली बार जेल गये। अधिकांश साहित्य जेलोंमें ही लिखा गया। सन् १९३४ में सेठजीने बम्बईमें 'आदर्श चित्र लिमिटेड' नामकी फिल्म कम्पनी भी स्थापित की थी और अपने नाटक 'कुलीनता'का 'धुआँधार' नाम देकर, फिल्मीकरण किया था। देशके स्वतन्त्र होनेके बादसे संसद-सदस्य हैं। हिन्दीको संसद द्वारा राष्ट्र-भाषा स्वीकृत करानेमें आपका विशेष योग रहा है।

आपके बहुमुखी व्यक्तित्वमें साहित्य-निर्माणके प्रति विशेष आग्रह है। आपने अधिकतर नाटकीय रचनाएँ लिखीं। पौराणिक आख्यानों के श्रद्धाभिभूत चित्रणसे लेकर उन्होंने आधुनिक पद्धतिके बुद्धिवादी नाटकों तककी रचना की है। पौराणिक नाटकोंमें सबसे पहले 'कर्तव्य' (१९३६) आता है। पूर्वार्धमें रामचरित तथा उत्तरार्धमें कृष्णके जीवनके विशिष्ट प्रसंगोंका चित्रण है। रामके प्रति अत्यधिक श्रद्धावनत होते हुए भी सेठजीने उन्हें अवतारके रूपमें नहीं वरन् जागरूक आत्माके महापुरुषके रूपमें चित्रित किया है। जब किसी मर्यादाका खण्डन होता है तो उनके मनमें द्वन्द्व खड़ा हो जाता है। कृष्णका चित्रण भी एक विद्रोही एवं नयी मान्यताओंके प्रतिष्ठाताके रूपमें है। महाभारतके एक चरित्रको लेकर लिखित नाटक 'कर्ण' (१९४६) में उन्होंने स्वगत कथनोंके सहारे एक अवैध सन्तानके रूपमें कर्णके और ऐसे पुत्रकी माताके रूपमें कुन्तीके मनोविज्ञानका विश्लेषण किया है। 'स्नेह या स्वर्ग' (१९४६) गीति-नाट्यमें यूनानके एक पौराणिक आख्यानको भारतीय रूप देकर एक जागरूक व्यक्तित्वकी नारीका चित्रण किया गया है। ऐतिहासिक नाटक 'कुलीनता' (१९२७) में विन्ध्य प्रदेशके एक मध्ययुगीन आख्यानको लेकर कुलके स्थानपर पौरुषकी श्रेष्ठताका दिग्दर्शन है। 'हर्ष' (१९३५) में स्वच्छन्दतावादी नाट्य-कलाके साथ बुद्धिवादी नाटकीय पद्धतिका समन्वय है। 'शशिगुप्त' (१९४२) भी इसी समन्वित शैलीको लेकर चन्द्रगुप्त और चाणक्यकी प्रसिद्ध कथा उपस्थित करता है। 'शेरशाह', 'अशोक', 'सिंहलद्वीप', 'विजयबेलि', 'भिक्षुसे गृहस्थ और गृहस्थसे भिक्षु', में भी इसी नाट्य-शैलीका उपयोग है। 'विश्वासघात'में बंगालके नवाब सिराजुद्दौलाके प्रति मीरजाफर और सेठ अमीचन्दके अंग्रेजोंसे मिलकर किये गये धोखेका वर्णन है। सेठजीने कुछ ऐतिहासिक जीवनी नाटक भी लिखे हैं : 'वल्लभाचार्य', 'रहीम', 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र', और 'महात्मा गान्धी'।

आपके सामाजिक नाटकोंमें प्रथम 'विश्वप्रेम' (१९१७) है। इसके बाद उन्होंने 'प्रकाश' (१९३५), 'सिद्धान्त-स्वातन्त्र्य' (१९३६), 'पाकिस्तान' (र० १९४२, प्र० १९४६) और 'भूदान' राजनीतिक समस्याओंपर लिखे। 'दलित कुसुम' और 'पतित सुमन' सामाजिक रूढ़ियों और अन्धविश्वासोंके दमन-चक्रमें पिसते नारी-जीवनका चित्रण है। 'सेवापथ', 'दुःख क्यों', 'महत्त्व किसे', 'बड़ा पापी कौन', 'त्याग या ग्रहण', 'हिंसा या अहिंसा', 'प्रेम या पाप', 'सन्तोष कहाँ', 'सुख किसमें' तथा 'गरीबी और अमीरी' वैयक्तिक समस्याओंपर आधारित हैं। इन सभीमें सामान्य रूपसे सेठजीने यह दिखानेका प्रयत्न किया है कि वैभव और ऐश्वर्यका प्रकाश क्षणभरके लिए अपनी इन्द्रधनुषी आभा फैलाकर विलीन हो जाता है; किन्तु जीवनकी सहज भावना चाँदनीकी भाँति बहुत समयतक अपना शीतल आलोक बिखेरती रहती है।

आपके प्रयोगशील नाटकोंमें 'विकास' (१९३६) स्वप्न चित्रणकी शैलीमें गौतमबुद्ध, ईसा और गान्धीकी अवतारणा करके यह दिखाता है कि सृष्टि चक्रवत् नहीं घूम रही, वरन् विकासके पथपर अग्रसर है। 'नवरस' (र० १९३०, प्र० १९४०) प्रतीकवादी नाटक है। इसमें भारतीय साहित्य-शास्त्रके नवरसोंका मानवीकरण करके एक ऐतिहासिक आख्यानके सहारे हिंसापर अहिंसाकी विजय दिखायी गयी है। 'षट्दर्शन'में उदात्त प्रकृतिवादी शैलीमें भारतीय नारीके जीवन-क्रमका चित्रण है।

आपके एकांकी-संग्रह 'सप्तरश्मि' (१९४०), 'एकादशी' (१९४२), 'चतुष्पथ', 'पंचभूत' आदि हैं। इनमें भी सेठजीने पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक और प्रतीकात्मक—सभी प्रकारके इतिवृत्त लिये हैं। 'चतुष्पथ'में उनके चार एकपात्रीय नाटक संगृहीत हैं। हिन्दीमें सेठजीने ही इस साहित्यिक विधाका सूत्रपात किया है।

आपने इधर एक विस्तृत उपन्यास इन्दुमती भी लिखा है। इसमें १९२० से लेकर अब तककी राजनीतिक, सामाजिक हलचलोंके साथ कृत्रिम गर्भाधानसे उत्पन्न समस्याका भी चित्रण है। डाक्टर भगवानदासने इस उपन्यासको व्यवहार ज्ञानका कोश कहा है। सेठजीने अपने यात्रा-विवरण 'भू परिक्रमा'में और आत्मवृत्त 'आत्मनिरीक्षण'में लिखे हैं। सन् १९१९ में उन्होंने 'बाणासुर पराभव' नामक महाकाव्य भी लिखना प्रारम्भ किया था, जो अब तक अपूर्ण है, किन्तु हिन्दी साहित्यमें आपकी विशेष प्रतिष्ठा नाटककारके रूपमें ही है।

[सहायक ग्रन्थ—सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्रन्थ : नगेन्द्र (सं०); हिन्दी नाटककार : जयनाथ नलिन; सेठ गोविन्ददास—नाट्य-कला तथा कृतियाँ : रामचन्द्र महेन्द्र।]

—वि० मि०

गोविंदनारायण मिश्र–हिन्दी गद्य-साहित्यके इतिहासमें गोविन्दनारायण मिश्र अपनी सुदीर्घ वाक्यावली और समास-बहुल शैलीके लिए सदैव स्मरणीय रहेंगे। आपका जन्म सन् १८५९ ई०में हुआ था। आप संस्कृत और हिन्दीके

अच्छे पण्डित थे। आपके निबन्ध 'सारसुधानिधि' पत्रमें बराबर निकलते रहते थे। आप हिन्दी साहित्य सम्मेलनके द्वितीय अधिवेशनके सभापति बनाये गये थे। इस अवसरपर आपने जो सारगर्भित वक्तृता दी थी, उसका ऐतिहासिक महत्त्व माना जाता है। 'विभक्ति विचार' (१९११ ई०) और 'गोविन्द निबन्धावली' (१९२५ ई०) आपकी दो प्रसिद्ध कृतियाँ है। 'शिक्षा सोपान' और 'सारस्वत सर्वस्व' नामक दो अन्य कृतियोंका उल्लेख भी मिलता है। सन् १९२६ ई०में आपका स्वर्गवास हो गया।

आप शैलीके सम्बन्धमें संस्कृतके महान् गद्यकार बाण और दण्डीको अपना आदर्श मानते थे। आपको यह ध्यान ही नहीं था कि हिन्दी अयोगात्मक भाषा है और इसकी जातीय प्रवृत्ति संस्कृतसे सर्वथा भिन्न है। रामचन्द्र शुक्लने अपनी गम्भीर व्यंग्य शैलीमें आपके गद्यको "समास-अनुप्रासमें गुँथे शब्द-गुच्छोंका अटाला" कहा है। आपके एक-एक वाक्य दो-दो पृष्ठोंके होते हैं। आपकी शब्दावलीमे संस्कृतके तत्सम और ब्रज भाषाके प्रचलित शब्दोंका अद्‌भुत संमिश्रण रहता है। पाठक शब्द-गुच्छोंमें उलझकर रह जाता है। वह अभिप्रेत अर्थतक पहुँच ही नहीं पाता। जब आपको 'कवि' शब्दका प्रयोग करना होगा तो आप कहेंगे—"अभिनव सब नवरस रसीली नित नव-नव भाव-रस रमीली अनूप रूप सरूप गरबीली सुजन मनमोहन मन्त्रकी कीली गमक जमकादि सहज सुहाते चमचमाते अनेक अलंकार-सिंगार-साज सजीली छबीली कविता कल्पना कुशल कवि—" इस शैली वैशिष्ट्यके कारण आप सदैव हिन्दी-गद्य-साहित्यमें महत्त्वपूर्ण स्थानके अधिकारी रहेंगे। —रा० चं० ति०

गोविंदवल्लभ पंत १—आपका जन्म रानीखेतमें सन् १८९८ ई० मे हुआ। परिवारका वातावरण संस्कृतनिष्ठ था। ज्येष्ठ भ्राता पण्डित अम्बिकादत्त पन्त (वैद्य) की प्रेरणासे साहित्यके प्रति रुचि हुई। सन् १९१३ में एण्ट्रेंसकी परीक्षा पास की। इसके बाद काशीके सेण्ट्रल हिन्दू कालेजमे प्रवेश किया किन्तु असहयोग आन्दोलनके समय पढना छोड़ दिया। आपने 'ज्ञानमण्डल'में भी कार्य किया है। उसके बाद विश्वम्भर सहाय 'व्याकुल'की 'व्याकुल भारत' नाटक कम्पनीमे सम्मिलित हो गये। इस संस्थाके लिए आपने अनेक नाटक लिखे और अन्य लोगोंकी रचनाएँ संशोधित भी कीं। उस कालकी रचनाओंमे पण्डित बनारसीदासके साथ लिखित विल्वमंगलके चरित पर आधारित नाटक 'प्रेमयोगी' उल्लेखनीय है। आपने 'मातृभक्ति' नामका भी एक नाटक लिखा। वर्ष भर तक यह सब कार्य करनेके अनन्तर आप रानीखेत वापस आ गये और अध्यायन कार्य करते हुए 'वरमाला' (१९२४) का निर्माण किया। फिर ताड़ीखेतके गान्धी आश्रममें अध्यापक हुए और विद्यार्थियोंके आग्रह पर ऐतिहासिक नाटक 'राजमुकुट' (१९३२) की रचना की। कुछ समय तक पण्डित राधेश्याम कथावाचकके साथ भी रहे और रंगमंचका व्यावहारिक अनुभव बढ़ाया। फिर बम्बई गये और फिल्म व्यवसायमें साहित्यिक कार्य करने लगे। उन्हीं दिनों आपने 'पृथ्वी थियेटर्स'के लिए 'अहंकार' नाटक लिखा। इस समय दिल्लीमें आकाशवाणी के संगीत और नाट्य-विभागमें कार्य कर रहे हैं।

आपने १८-१९ वर्षकी अवस्थासे ही काव्य रचना प्रारम्भ कर दी थी। काशीप्रवासमें प्रसादजीसे भी आपकी घनिष्ठता रही और १९१९ में उन्हींकी प्रेरणासे 'आरती' काव्य संग्रह प्रकाशित किया। इसके अनन्तर नाटक रचनाके क्षेत्रमें आ गये। 'कंजूसकी खोपड़ी' (१९२१) आपका हास्य नाटक है। 'वरमाला' (१९२४) और 'अन्तःपुरका छिद्र' (१९२५) भाव-नाट्य है और 'राजमुकुट' (१९३२) ऐतिहासिक नाटक है। 'अंगूरकी बेटी' (१९३५) और 'सुहाग बिन्दी' (१९४०) में आजके समाजका चित्रण है। 'ययाति' (१९४७) में पौराणिक प्रसंग लिया गया है। पन्तजीके दो नाटक 'अहंकार' (१९४५) तथा 'तीन दिन' अभी अप्रकाशित हैं। पन्तजीके नाटकोंमें रंगमंचसे सम्पर्क होनेके कारण अभिनेयता विशेष रूपसे है। रचना शैलीकी दृष्टिसे स्वच्छन्दतावादी पद्धति इन्हे विशेष प्रिय है। इसीलिए सामाजिक नाटकोंमें भी गीतोंका प्रयोग हुआ है। कुछ रचनाओंमें प्रारम्भमें मंगल गीत और अन्तमें भरतवाक्यकी योजना है। आपका एक एकांकी संग्रह 'विषकन्या' (१९५९) भी प्रकाशित हुआ है, इसमें आपके पौराणिक, ऐतिहासिक, समस्यात्मक और हास्यपूर्ण सभी प्रकारके एकांकी हैं।

आपने कथा साहित्यकी भी रचना की है। आपने प्रारम्भ में कहानियाँ लिखीं, जिनके दो संग्रह 'एकादशी' (१९२४) तथा 'संध्याप्रदीप' (१९३१) प्रकाशित हुए। इसके बाद आप उपन्यासोंकी रचनाकी ओर प्रवृत्त हुए। 'प्रतिमा' (१९३३) में पद्मराग नामक एक द्वीपकी कल्पना करके उसकी पृष्ठभूमि में मानवीय सम्बन्धोंका चित्रण किया गया है। 'मदारी' (१९३३) आंचलिक उपन्यास है। इसमें एक युवा मदारीके पर्वत प्रदेशमें घूमने-फिरने और उसके माध्यमसे वहाँकी सभ्यता और संस्कृतिका चित्रण हुआ है। 'तारिका' (१९३४) और 'तारोंके सपने' (१९०७) फिल्मी जीवन पर आधारित हैं। 'अनुरागिनी' (१९४२) में श्रमकी महत्ता घोषित की गयी है। 'एकसूत्र' (१९४४)में मुगल-सम्राट् अकबर द्वारा बच्चोंको लेकर भाषाका उद्‌गम जाननेके विषयमें किये गये प्रयोगको एक मनोरंजक कथाका रूप दिया गया है। 'अमिताभ' (१९४५) में गौतम बुद्धकी जीवन्त कथाको काव्यात्मक शैलीमे उपस्थित किया गया है। 'नूरजहाँ' (१९४५) में जहाँगीरकी इतिहासप्रसिद्ध प्रेयसी का मनोरंजक चरित्र चित्रित है। 'मुक्तिके बन्धन' (१९४८) 'जलसमाधि' (१९५३) और 'फारगेट मी नाट' (१९५९) पहाडी जीवन पर आधारित रचनाएँ हैं। 'मैत्रेय' (१९५९) तिब्बतकी पृष्ठभूमि पर लिखित उपन्यास है। आपके अन्य उपन्यास 'चक्रकान्त' (१९४८), 'प्रगतिकी राह' (१९४८), 'यामिनी' (१९५२) और 'नौजवान' (१९५३) आदि हैं।

आपकी ख्याति हिन्दी जगतमें विशेष रूपसे नाटककार के रूपमें रही है। आपके नाटकोंका मूल तत्त्व संघर्ष है। साथ ही उनमें मनोभावोंका भी बड़ा सूक्ष्म चित्रण मिलता है। नाटक हो या उपन्यास, कथा-रसके लिए उसमें रहस्य-ग्रन्थिकी स्थापना करके फिर उसे घटना प्रवाहमें धीरे-धीरे खोलना आपको भली प्रकार आता है। चरित्र चित्रणमें श्वेत और श्यामके प्रति आपका विशेष आग्रह है। आपकी

सभी रचनाओंमें हमें कथा-प्रसंगकी विचित्रता दृष्टिगत होती है। आप भावुक और कल्पनाशील प्रवृत्तिके व्यक्ति हैं। आपकी रचनाओंमें इसीलिए भावपूर्ण स्थलों और कल्पना का प्राचुर्य है। आपकी रचनाओंके विचित्र प्रसंगोंको देखकर ऐसा प्रतीत होता है, जैसे आप आत्म-प्रतिष्ठाका प्रयास कर रहे हों। आपकी रचनाएँ कभी तो जीवनके व्यापक स्वरूपकी अभिव्यक्ति, कभी समाज-परिष्कार और कभी मात्र मनोरंजनके लिए लिखित हैं। —वि० मि०

गोविंदवल्लभ पंत २–आपका जन्म १० सितम्बर १८८७ को अल्मोड़ा जिलेमें हुआ और मृत्यु ७ मार्च १९६१ को दिल्लीमें हुई। पन्तजीने उच्च शिक्षा प्राप्त कर १९०७ में नैनीताल में वकालत आरम्भ की। आप राजनीतिमें भी सक्रिय भाग लेते रहे। आपने स्थानीय समस्याओंके निराकरणके लिए १९१६ में 'कुमायूं परिषद्' की स्थापना की और कुमायूंके जिलोंको माण्टफोर्ड शासन सुधारोंके अन्तर्गत शामिल करवाया। उसी वर्ष अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के और १९२३ में उत्तरप्रदेशीय विधान परिषद्के सदस्य चुने गये। सात वर्षतक आप इस परिषदकी स्वराज्य पार्टीके नेता रहे। सन् १९२७ में प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके अध्यक्ष बने। पन्तजीको साइमन-कमीशनविरोधी आन्दोलनमें जवाहरलाल नेहरूके साथ लाठीकी मार पड़ी और एक प्रकारसे उन्होंने नेहरूजीकी ढाल बनकर उनकी रक्षा की, जिसका प्रभाव नेहरूजीके हृदयपर आजतक है। पन्तजी जीवनके अन्तिम वर्षोंमें उत्तरप्रदेशके मुख्यमन्त्री और बादमें केन्द्रीय गृहमन्त्री रहे।

आधुनिक युगमें, विशेषकर सन् १९३७ के पश्चात्, जब शासनका सूत्र राष्ट्रीय नेताओंके हाथमें आया, हिन्दी भाषा और साहित्यके प्रसारमें उत्तरप्रदेशका प्रमुख स्थान रहा है और इस प्रदेशके मुख्यमन्त्री होनेके नाते इस साहित्यिक गतिविधिमें पन्तजीका बहुत हाथ रहा है। कांग्रेस मन्त्रिमण्डलोंके निर्माणमें हिन्दीके प्रसार और साहित्य निर्माणको अपूर्व प्रोत्साहन मिला। उत्तरप्रदेशमें प्रशासनके कामकाजमें तथा शिक्षा-विभागमें हिन्दीको समुचित स्थान दिलानेका श्रेय पन्तजीको है। सबसे पहले सन् १९३८-३९ में पारिभाषिक शब्दकोष बनानेकी दिशामें पन्तजीके नेतृत्वमें उत्तरप्रदेशकी सरकारने ही पग उठाया था। यह स्वाभाविक था कि ऐसे विशाल परिवर्तनके साथ अनेक नयी समस्याएँ उत्पन्न हो जायं। पन्तजीकी व्यवहार-बुद्धि और उनका हिन्दी-स्नेह इन सब समस्याओंको सुलझानेमें सफल रहा है। परिणामतः विभिन्न राजकीय विभागोंमें और विशेषकर जिला-स्तरके प्रशासन-कार्यमें आंशिक अथवा पूर्णरूपसे अंग्रेजीके स्थानपर हिन्दीका उपयोग होने लगा। सन् १९३९ में सहसा कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलोंके पद-त्यागके परिणामस्वरूप यह परीक्षण उस समय अधूरा रह गया, किन्तु सन् १९४५ में मन्त्रिपद-ग्रहणके कारण पन्तजीको वही अवसर फिरसे प्राप्त हुआ और उन्होंने उसका जैसा सदुपयोग किया, वह सर्वविदित है। उन्होंने सचिवालयमें ही हिन्दीके कार्यका प्रसार नहीं किया, बल्कि हिन्दी-सम्बन्धी सार्वदेशिक समस्याओंको सुलझानेका यत्न किया। राजकीय प्रकाशन विभागका विस्तार कर उन्होंने आधारभूत पारिभाषिक तथा प्रामाणिक ग्रन्थोंके हिन्दी-रूपान्तरकी योजना बनायी। यह कार्य एक विशेष अनुवाद-समितिके सुपुर्द किया गया। कृषि, वन्य-विज्ञान और अन्य सम्बद्ध वैज्ञानिक विषयोंपर पहली बार हिन्दी-ग्रन्थोंका प्रकाशन हुआ।

देवनागरी लिपि-सुधार और टाइपराइटर तथा टेली-प्रिन्टरके लिए देवनागरीको उपयुक्त बनानेके प्रयत्न उत्तरप्रदेशके मुख्यमन्त्री द्वारा सन् १९४८ में आरम्भ किये गये थे यद्यपि इस काममें यथोचित सफलता अभी तक नहीं मिल पायी है, किन्तु विभिन्न शासनों तथा हिन्दीके हितैषियोंका ध्यान बराबर इस ओर रहा है और अब भी है। उन्हीं दिनों उत्तरप्रदेश सरकारके तत्त्वावधानमें ही हिन्दी-शीघ्रलिपिमें सुधार तथा उसके प्रतिमानीकरणकी दिशामें भी बहुत कुछ किया गया है, और ये प्रयत्न अधिक सफल हुए हैं। केन्द्रीय गृहमन्त्रीके पदपर नियुक्त होनेके पश्चात् पन्तजीके सुझावपर संविधानकी धाराके अनुसार राष्ट्रपतिने भाषा-आयोगकी नियुक्ति की थी। आयोगके और तत्पश्चात् वैधानिक समितिके प्रतिवेदनोंपर गृहमन्त्रालयकी ओरसे पन्तजी हिन्दीके पक्षका सोत्साह समर्थन करते रहे। उनका सबसे बड़ा योगदान सरकारी कर्मचारियोंको हिन्दी-कक्षाकी सुविधा उपलब्ध कराना था। उन्होंने सभी अहिन्दी-भाषी केन्द्रीय कर्मचारियोंके शिक्षणके लिये वृहत् योजनाका निर्माण किया और उसके अनुसार सहस्रों व्यक्ति हिन्दी सीख चुके हैं और अन्य लोग इस समय सीख रहे हैं। उन्हींके मन्त्रालय द्वारा समय-समयपर हिन्दी-विद्यापीठों द्वारा दिये गये प्रमाण-पत्रोंकी स्वीकृतिपर सहानुभूतिपूर्वक विचार होता रहा है, जिसके फलस्वरूप गुरुकुल कांगड़ी, कन्या गुरुकुल (देहरादून), हिन्दी साहित्य सम्मेलन, द० भा० हि० प्रचार सभा, राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, वर्धा आदिके प्रमाण-पत्रों तथा उपाधियोंको केन्द्रीय परीक्षाओं और सरकारी नौकरियोंमें भर्तीके लिए स्वीकृत किया गया। भाषा-आयोगके प्रतिवेदनपर वाद-विवादके समय पन्तजीने लोकसभामें जो उद्गार प्रकट किये थे, उनकी हिन्दी क्षेत्रोंमें व्यापक प्रशंसा हुई थी। हिन्दी द्वारा केन्द्रमें अंग्रेजीका स्थान लेनेका कार्यक्रम चाहे किसी स्थितिमें हो, पन्तजीके प्रयास केन्द्रीय कर्मचारियोंमें हिन्दी शिक्षणका कार्यक्रम बराबर पूर्व योजनानुसार चलता रहा है। पन्तजी हिन्दीके अच्छे लेखक और प्रभावशाली वक्ता थे। उनके भाषणोंके दो संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, हिन्दी साहित्य सम्मेलन और काशी नागरी प्रचारिणी सभाको पन्तजीसे आवश्यकतानुसार सदा सहयोग मिलता रहा है। इन तीनों संस्थाओंके मञ्चसे वे हिन्दीके समर्थनमें बोल चुके हैं। अपने कर्मठ सार्वजनिक जीवनमें नेताके रूपमें तथा सत्तारूढ़ होकर हिन्दीका प्रत्यक्ष समर्थन करके तथा अनेक अवसरोंपर प्रतिकूल हवाओंमें हिन्दीकी रक्षा करके पन्तजीने संकटके समय राष्ट्रभाषाकी इतनी अधिक सेवा की है कि उनकी निजी रचनाओंका अभाव नहीं खटकता। —शा० द०

गोविन्द सिंह–दे० 'गुरु गोविन्द सिंह'।

गोविंद स्वामी–अष्टछापके उन चार कवियोंमें जो गोसाईं

विट्ठलनाथके शिष्य थे, कालक्रमके अनुसार सबसे पहला नाम गोविन्द स्वामीका है। अनुमान है कि वे भरतपुर राज्यके एक गाँवमें सन् १५०५ ई०के आसपास पैदा हुए थे। सन् १५३५ ई०में उन्होंने गोसाईंजीसे दीक्षा ली थी और सन् १५८५ ई०में उनका गोलोकवास हुआ था। घर छोड़कर गोविन्द स्वामी कुछ दिन महाबनमें आकर रुके। फिर उन्होंने गोकुल और महाबनके टीलोंपर बैठकर कीर्तन करते हुए अनेक वर्ष बिता दिये। अन्तमें वे गोवर्धन जाकर पर्वतकी कदमखण्डीमें अपना स्थायी निवास-स्थान बना कर रहने लगे। जातिके वे सनाढ्य ब्राह्मण बताये गये हैं। सम्भवतः प्रारम्भमें उन्होंने गृहस्थजीवन भी बिताया था परन्तु उनकी वैराग्यकी प्रवृत्ति सदैवसे उन्हें सांसारिक जीवनसे उदासीन बनाये रही। गोविन्द स्वामीकी गान-विद्याकी ख्याति पुष्टि-मार्गमें दीक्षित होनेसे पहले ही फैल चुकी थी। उनके अनेक सेवक हो गये थे और वे स्वामीके रूपमें प्रसिद्ध हो गये थे। वैष्णव लोग गोविन्द स्वामीके पदोंसे प्रभावित होकर गोसाईं विट्ठलनाथके पास उनकी प्रशंसा पहुँचाने लगे और गोस्वामीजी उनकी ओर आकृष्ट होने लगे। गोविन्द स्वामी भी मन-ही-मन विट्ठलनाथजीके प्रति श्रद्धाकी भावना रखते थे। एक दिन गोकुलमें यमुना-घाटपर उन्होंने विट्ठलनाथजीको सन्ध्या-वन्दन करते हुए देखा तो उन्हें आश्चर्य हुआ कि भक्ति-मार्गमें यह कर्मकाण्ड कैसा? विट्ठलनाथजीसे उन्होंने अपनी शंका प्रकट की और उनसे कर्म एवं भक्तिका सामंजस्य समझकर उन्होंने विट्ठलनाथजीसे शरणमें लेनेकी प्रार्थना की। गोविन्द स्वामी बड़े विनोदी स्वभावके थे। एक बार उन्होंने अपने पुराने सेवकोंसे कह दिया कि गोविन्द स्वामी कई वर्ष हुए मर गये। सेवकोंको आश्चर्य हुआ परन्तु बादमें जब गोविन्द स्वामीने बताया कि अब वे गोविन्द स्वामी नहीं, गोविन्द-दास हैं, उनका 'स्वामीपना' बहुत दिनोंसे छूट गया है तब वे समस्त सेवक विट्ठलनाथजीके सेवक बन गये। गोविन्ददासको श्रीनाथजीकी कीर्तन-सेवाका कार्य मिला था और उन्होंने श्रीनाथजीके पास रहकर सखा-भावकी भक्ति की थी। 'चौरासी वैष्णवनकी वार्ता'मे इनके और श्रीनाथजी-के विनोदकी बड़ी रोचक और विलक्षण कहानियाँ मिलती हैं। गुरुके प्रति भी गोविन्ददासकी भक्ति प्रगाढ थी। जब विट्ठलनाथजीने श्रीकृष्णकी लीलामें प्रवेश किया था, उसी समय गोविन्ददासने भी सशरीर गोवर्धनकी गुफामें प्रवेश करके इस लोकसे विदा ली थी।

गोविन्द स्वामी काव्य-रचनामें तो निपुण थे ही, गान-विद्यामें भी उनकी विशेष ख्याति थी। वार्तामे लिखा है कि प्रसिद्ध गवैया तानसेन उनसे सगीत सीखने आते थे। गोविन्द स्वामी द्वारा सहस्रावधि पद रचे जानेका उल्लेख है परन्तु उनके दो सौ बावन पद बहुत प्रसिद्ध हैं। उनके पदोंका विषय लगभग वही है, जो कुम्भनदासके पदोंमें मिलता है (दि० 'कुम्भनदास')। उनके पदोंका एक संग्रह विद्या-विभाग, कांकरौलीसे 'गोविन्ददास' शीर्षकसे प्रकाशित हो चुका है।

[सहायक ग्रन्थ—दो सौ वैष्णवनकी वार्ता; अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय : डा० दीनदयाल गुप्त; अष्टछाप परिचय : प्रभुदयाल मीतल।] —ब्र० ब०

गोसाईं चरित्र–'सरोज'में 'गोसाईं चरित्र'के लेखक बेनीमाधवदास कहे गये हैं। डा० माताप्रसाद गुप्तने एक अन्य 'गोसाईंचरित'की खोज की है, जिसके लेखक भवानीदास कहे गये हैं। 'सरोज'में 'गोसाईंचरित'की जो पंक्तियाँ उद्धृतकी गयी हैं, वे भवानीदासके 'गोसाईं चरित'से बहुत मिलती-जुलती हैं। यही नहीं, डाक्टर गुप्तके अनुसार भवानीदासके शेष ग्रन्थकी शैलीमें पर्याप्त समता भी है। अतः वे इस निष्कर्षपर पहुँचते हैं कि वह 'गोसाईं चरित्र' जो शिवसिंह सेंगरने देखा था, हमें भी बहुत-कुछ उसी रूपमें उपलब्ध हो गया है। दूसरे 'गोसाईं चरित'के लेखक भवानीदास सरीलानिवासी स्वामी नन्दलालकी शिष्यपरम्पराके महात्मा योधारामके शिष्य थे। लेखकने अयोध्या, बड़ा स्थानके महन्त रामप्रसादके, जो नन्दलालकी शिष्य परम्परामें थे, आदेशसे 'गोसाईं चरित'की रचना की थी। रामप्रसादजीका जीवनकाल सन् १७०३-१८०४ तक था, प्रौढावस्थामें उन्होंने महन्थी पायी होगी और उसके पर्याप्तकाल बाद भवानीदासको आदेश दिया होगा 'गोसाईं चरित्र' लिखनेके लिए। अतः लगभग सन् १७४० ई०के 'गोसाईं चरित्र' लिखा गया होगा। बेनीमाधवदासका 'मूल गोसाईं चरित' अब उपलब्ध है किन्तु उसमें वे पंक्तियाँ नहीं मिलतीं, जिनका उल्लेख 'सरोज'में किया गया है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि भवानीदासकृत 'गोसाईं चरित' ही शिवसिंह सेंगरको उपलब्ध हुआ हो और उन्होंने उसे बेनीमाधवदासकृत मान लिया हो। भवानीदासका 'चरित्र' नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ द्वारा रामचरणदासकी टीकाके साथ प्रकाशित 'मानस'की भूमिकाके रूपमें मिलता है और यह तीस हजार शब्दोंका है। उसमें अनेक ऐतिहासिक व्यक्तियोंके उल्लेख है, किन्तु तिथियों आदिका कोई विस्तार नहीं मिलता किन्तु गंगके सम्बन्धमे उसका उल्लेख ठीक नहीं है। इस ग्रन्थके अनुसार गंगको बादशाहने तुलसीके जीवनकालमें ही मरवा डाला, जब कि गंगको औरंगजेबने हाथीसे कुचलवा डाला था। स्पष्ट है कि यह चरित्र जन-श्रुतिपर अधिक आधृत है।

बेनीमाधवदासकी रचनाका नाम है 'मूल गोसाईं चरित'। इसकी एक हस्तलिखित प्रति डाक्टर चन्दा, जिला गया (बिहार)के रामानन्द तिवारीके पास है। इसकी पुष्पिका इस प्रकार है—"इति श्री बेणीमाधवदास-कृत मूल गोसाईं चरित समाप्तम्। श्री शाण्डिल्य गोत्रोत्पन्न पंक्तिपावन त्रिपाठी रामरक्षामणिरामदासेन तदात्मजेन च लिखितम्। मिति विजयादशमी, संवत् १८४८ भृगुवासरे।" गणनासे यह तिथि ठीक उतरती है। इस ग्रन्थमें तुलसीके जीवनका विस्तृत वर्णन मिलता है। घटनाओंके साथ तिथियोंका भी समावेश किया गया है। कुछ प्रमुख तिथियाँ ये हैं—तुलसीकी जन्मतिथि—श्रावण शुक्ला ७ स० १५५४ (सन् १४९७ ई०); यज्ञोपवीत तिथि-माघ शुक्ल ५, शुक्रवार सं० १५६१ (सन् १५०४ ई०); विवाह तिथि-ज्येष्ठ शुक्ल १३, गुरुवार सं० १५८३ (सन् १५२६ ई०); मानसकी समाप्ति तिथि-मार्ग शीर्ष शुक्ला

५, मंगलवार सं० १६३३ (सन् १५७६ ई०); देहावसान तिथि-श्रावण कृष्णा तीज शनि सं० १६८० (सन् १६२३ ई०)। गणनासे यज्ञोपवीत और विवाहकी तिथियाँ ठीक उतरती हैं। अनेक ऐतिहासिक व्यक्तियोंसे तुलसीदासके साथ सम्पर्क स्थापित करनेकी भी चर्चा इस ग्रन्थमें की गयी है, किन्तु इतिहासकी कसौटी पर वे खरी नहीं उतरतीं। इसके साथ ही अनेक ऐसे उल्लेख तथा विस्तार इस ग्रन्थमें मिलते हैं, जो तुलसीदासकी कृतियों तथा उनके आत्मोल्लेखोंके विरुद्ध पड़ते हैं। डाक्टर गुप्तने अपने 'तुलसीदास' ग्रन्थमें उनपर विस्तारसे विवेचन किया है।

'मूल गोसाईं चरित'में कुछ ऐसी शब्दावलीका भी प्रयोग हुआ है, जो उसे आधुनिक कृति सिद्ध करती है। "धुनि सुने सत्यम शिवम् सुन्दरम्" ऐसी ही एक शब्दावली है।

भवानीदासकृत 'गोसाईं चरित'से इसकी अनेक प्रकारसे समता होनेके कारण यह सम्भव है कि या तो 'मूल गोसाईं चरित' 'गोसाईं चरित'के आधारपर लिखा गया हो या इन दोनोंका आधार जनश्रुतियाँ हों, जो पूर्णतया प्रामाणिक नहीं हैं।

[सहायक ग्रन्थ— तुलसीदास : डॉ० माताप्रसाद गुप्त; हिन्दी साहित्यका इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल।] —ब० ना० श्री०

गौतम १–राजा शुद्धोधनके पुत्र। ज्ञानप्राप्तिके अनन्तर गौतम बुद्धके नामसे विख्यात हुए। सिद्धार्थ प्रारम्भसे ही निर्विकार भावके थे। इनके पिताने बड़े होने पर इनका विवाह अपूर्व रूपवती युवती यशोधरासे कर दिया। उससे सिद्धार्थके राहुल नामके एक पुत्रका भी जन्म हुआ किन्तु इन सांसारिक आकर्षणोंसे उनकी निर्विकारता समाप्त नहीं हुई। वे तत्त्व-चिन्तन तथा सत्यकी खोजमें संलग्न रहे। एक दिन रात्रिमें अवसर पाकर वे अपने पिता, राजपाट, पत्नी, पुत्र सबका परित्याग करके सत्यकी खोजमें चल निकले। उन्होंने पर्याप्त साधना की और अन्तमें उन्हें एक पीपलके वृक्षके नीचे एकाएक आत्मतत्त्व एवं सत्य ज्ञानकी उपलब्धि हुई। तभीसे वे गौतमबुद्धके नामसे विख्यात हो गये। उन्हें बौद्ध-धर्मका प्रवर्तक कहा जाता है। बौद्धधर्मके सिद्धान्त गौतम द्वारा दी गयी शिक्षाओं पर ही आधारित हैं। बौद्ध-धर्म वस्तुतः हिन्दूधर्मके दोषोंके परिष्कारहेतु एक सुधार आन्दोलनके रूपमें आया था। बादमें यह एक स्वतन्त्र धर्म बन गया। प्राचीनकालमें अशोक, कनिष्क, आदि शासकोंने इसे अपना राजधर्म घोषित करके देश और विदेशोंमें इसका प्रचार एवं प्रसार किया। बादमें बौद्ध-धर्मके भिक्षु-भिक्षुणियोंमें भ्रष्टाचार बढ़ने लगा। इसका उत्कर्ष प्रायः एक हजार वर्षोंतक रहा। कुमारिल भट्ट और शंकराचार्य ऐसे विद्वानोंने हिन्दू धर्मके पुनरुत्थानके अनेक यत्न किये। उनकी प्रतिद्वन्द्वितामें बौद्ध धर्म विकसित नहीं हो सका। आगे चलकर हीनयान, महायान, वज्रयान, मन्त्रयान, सिद्ध तथा नाथ सम्प्रदायोंके रूपमें इसका विकास हुआ।

हिन्दीके आदिकालीन सिद्ध और नाथ सम्प्रदायोंके साहित्य पर बौद्ध धर्मके तान्त्रिक मतसे संयुक्त परिवर्तित रूपका प्रभाव स्पष्ट दिखायी पड़ता है।

मध्ययुगके वैष्णव भक्तिप्रवण वातावरणमें बौद्ध धर्म हिन्दी साहित्यको प्रभावित नहीं कर सका। अतः गौतमके चरित्र एवं उनकी धार्मिक विचारधारासे सम्बन्ध साहित्यका अभाव मिलता है। आधुनिक युगके पुनरुत्थानवादी एवं अहिंसात्मक दृष्टिकोणके प्रभाव स्वरूप गौतमका चरित्र हिन्दी साहित्यमें वर्णित हुआ है (दे० 'अजातशत्रु', 'यशोधरा', 'सिद्धार्थ' आदि रचनाएँ)। गौतमके जीवनचरित्र और सिद्धांतोंसे सम्बद्ध इन रचनाओंमें अहिंसा, उदारता, सहिष्णुता, दार्शनिकता, लोकमंगलकी भावना आदि दिव्य गुणोंके सन्निवेश द्वारा कथाके अन्तर्गत उनके चरित्रका आदर्शके ही धरातलपर चित्रण किया गया है। —रा०कु०

गौतम २–बौद्ध-धर्मके प्रवर्तक गौतम (बुद्ध)का समय ५६३से ४८३ ई० पूर्वतक है। प्रसादकृत 'अजातशत्रु' नाटकमें वे सरल-चित्त, करुणा, विश्व-मैत्री एवं अहिंसाके सन्देशवाहक रूपमें हमारे समक्ष आते हैं। उनमें कर्त्तव्यपालन एवं सत्कर्मकी भावनाका प्राधान्य है। वे परोपकारिता, संवेदनशीलता एवं परदुःखकातरताके साकार प्रतीक हैं। वे अपने निश्छल आचरण द्वारा विरोधियोंका भी अहित नहीं चाहते। किसीके प्रति भी वे विरोध-भाव नहीं रखते। सहनशीलताका ऐसा प्रत्यक्ष प्रमाण दुर्लभ है। बौद्ध-मतमें बुद्धने कृत, दृष्ट और उद्दिष्ट—इन तीन प्रकारकी हिंसाओंका निषेध किया था। यदि भिक्षामें माँस भी मिले, तो वर्जित नहीं था किन्तु देवदत्त यह चाहता था कि संघमें यह नियम हो जाय कि कोई भिक्षु माँस खाये ही नहीं। गौतम द्वारा इस प्रकारकी आज्ञा न दिलवाने एवं अहिंसाकी जैन धर्मानुकूल व्याख्या न प्रचारित करवानेके कारण देवदत्त उनका विरोधी हो गया। इसने धर्मके बहाने छलनाकी सहानुभूति पाकर अजातशत्रुको उकसाकर गृहकलह करवा दिया। यह अनेक कुचक्रोंसे गौतमके प्राण लेनेकी चेष्टा करने लगा। इसके इन प्रयासों द्वारा गौतममें किसी प्रकारका आक्रोश उत्पन्न नहीं हुआ और न उनके सात्त्विक स्वभावमें किसी प्रकारका विकार आया। भिक्षुओं द्वारा यह सुनकर कि देवदत्त उनका प्राण लेने आ रहा है, गौतमने शान्तभावसे यही कहा कि "घबराओ नहीं, देवदत्त मेरा कुछ अनिष्ट नहीं कर सकता। वह स्वयं मेरे पास नहीं आ सकता, उसमें इतनी शक्ति नहीं।" और सचमुच देवदत्त उन तक न पहुँच सका, रास्तेमें किसी जलाशयमें डूब मरा। गौतमकी वाणी सच निकली। वे लोकोत्तर गुणोंसे सम्पन्न हैं, उनका व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावशाली है। वे सर्वत्र भ्रमण करते हुए तटस्थ भावसे राजनीतिक गुत्थियोंको सुलझाते हैं तथा असद् भावनाओंका विरोध करते हुए सदाचार, उच्चादर्श एवं विश्वमैत्रीकी प्रतिष्ठा करते हैं। उनकी गति कहीं भी अवरुद्ध नहीं होती। मगधमें वे बिम्बसार और अजातशत्रुके बीच होनेवाले संघर्षका निवारण करते हैं। कोशल जाकर प्रसेनजित्को सन्मार्ग दिखलाते हैं। गौतमके ही कहनेसे प्रसेनजित् अपनी परित्यक्ता पत्नी एवं विद्रोही पुत्र विरुद्धकको पुनः अंगीकार करता है। वे क्षमाके अनुगामी, करुणाके पुजारी तथा अपने आचरण द्वारा समाजको शिक्षा देनेवाले एक

व्यावहारिक आचरणशील व्यक्ति हैं। संसारको उनका सन्देश है कि "विश्वभरमें यदि कुछ कर सकती है तो वह करुणा है जो प्राणिमात्रमें समदृष्टि रखती है।...शीतल वाणी, मधुर व्यवहारसे क्या वन्य पशु भी वशमें नहीं हो जाते?" गौतम "शुद्ध बुद्धिकी प्रेरणासे सत्कर्म" करने वाले उच्चाशयशील महात्मा हैं। शैलेन्द्र द्वारा मारी हुई मागन्धीको मृतप्राय स्थितिमें वे उठाकर आश्रममे ले जाते हैं तथा उचित उपचारसे उसे पुनः जीवनदान देते हैं। उनके वशीकरणात्मक व्यक्तित्वसे प्रभावित होकर अजातशत्रु, छलना, मागन्धी, शक्तिमती, विरुद्धक आदि अपने पुराने दोषोंसे मुक्ति पाकर सन्मार्गगामी एवं सदाचरणशील बनते हैं। 'अजातशत्रु'के अनेक कथा-सूत्रोंमे गौतम किसी न किसी रूपमें सम्बद्ध हैं। ऐतिहासिक दृष्टिमे अजातशत्रु और बिम्बसारके बीचमे गौतमका कोई स्थान नहीं था किन्तु इनके माध्यमसे नाटककार नाटकमे करुणाको प्रतिष्ठित कर सका है। अजातशत्रु और बिम्बसारके संघर्षमे गौतमकी अवतारणा प्रसादकी अपनी मौलिक सूझ है। इस प्रकार प्रसादने ऐतिहासिक वृत्तोंमे कल्पनाका योग करके एक नये जगत्की सृष्टि की है तथा इतिहासकी विकीर्ण सामग्रीको एकसूत्रमे ग्रथित करके एवं कल्पनाजन्य सम्बन्ध योजनाका आश्रय लेकर एक अनोखे ऐतिहासिक रसकी अन्विति की है। गौतमका उल्लेख प्रसादके 'स्कन्दगुप्त' नाटक (अक १, २, ४)में तथा उनकी 'स्वर्गके खण्डहरमें' नामक कहानीमे भी हुआ है। —के० प्र० चौ०

गौरीदत्त–जन्म सन् १८३६ मे हुआ था। इनका जन्मस्थान मेरठ था। ये सारस्वत ब्राह्मण थे और अध्यापनकार्य करते थे। इन्होंने स्त्री-शिक्षाविषयक तीन पुस्तकोंकी रचना की थी, जिनके विषयमे जानकारी उपलब्ध नही है। इन्होंने 'गौरी नागरी कोश' का भी सम्पादन किया था। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'देवनागरीकी पुकार' नामक एक और पुस्तक सम्पादित की थी। इन्हे भाषापर अच्छा अधिकार प्राप्त था और इनकी गद्य शैली बहुत सरल, स्पष्ट और परिमार्जित थी। हिन्दी भाषा और साहित्यके विकासमे गौरीदत्तके योगदानका असाधारण महत्त्व इस कारण है कि इन्होंने भारतेन्दु हरिश्चन्द्रके स्वर्गवासके कुछ काल पूर्व नागरी-प्रचारका आन्दोलन आरम्भ किया, जो राष्ट्र-भाषाके प्रचारके उद्देश्यसे किया गया सर्वप्रथम सुसंगठित आन्दोलन था। ये दृढ़ निश्चयी थे। इन्होंने लगभग चालीस वर्षकी अवस्थामें अपनी समस्त-सम्पत्ति नागरी प्रचार-कार्यके लिए रजिस्ट्री कर दी। तब इन्होंने अध्यापन कार्यसे अवकाश ले लिया और जीवन भर नागरी-प्रचारपर घूम-घूमकर व्याख्यान देते रहे। इन्होंने मेरठके निकट अनेक देवनागरी स्कूल खुलवाये, जिनमे मेरठका नागरी-स्कूल विशेष प्रसिद्ध है। नागरी-प्रचारके उद्देश्यसे इन्होंने अनेक रोचक खेल बनाये। जहाँ कहीं भी कोई मेला या सार्वजनिक उत्सव होता था, वहाँ यह नागरीका झण्डा लगा देते थे और लड़कोंकी भीड़ लगाकर खेलोंका प्रदर्शन करते थे। इससे लोगोंका मनोरंजन होता था और वे नागरी-लिपि भी सीखते थे। इन्होंने मेरठ नागरी प्रचारिणी सभाकी भी स्थापना की और उसका संचालन किया। इस प्रचार-कार्यमें इन्हें अयोध्याप्रसाद खत्री आदिका भी सहयोग मिला। नागरीके ये इतने कट्टर प्रेमी थे कि किसीसे भेंट होनेपर 'प्रणाम', 'नमस्कार', या 'जयराम' न कहकर 'जयनागरी' ही कहा करते थे। सन् १८९४ में इन्होंने दफ्तरोंमें नागरी-प्रयोगके लिए अपने सहयोगियोंके साथ एक स्मरण-पत्र भी सरकारको भेजा था। ये राष्ट्र-भाषाके सम्बन्धमें सरकारकी नीतिका निरन्तर विरोध करते रहे। आगे चलकर नागरीका जो प्रचार हुआ, उसका अधिकांश श्रेय इन्हींको है। सन् १९०५ में इनका स्वर्गवास हुआ। इनकी समाधिपर 'गुप्त संन्यासी नागरी प्रचारानन्द' अंकित है। —प्र० ना० ट०

गौरीशंकर हीराचंद ओझा–जन्म सन् १८६३में (सं० १९२० भाद्रपद शुक्ला २ को) सिरोहीके रोहेड़ा गाँवमें सहस्र औदीच्य जातिमें हुआ था। इनके पिताका नाम हीराचन्द था। इन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा घरपर प्राप्त की। फिर बम्बई जाकर इन्होंने इतिहास, पुरातत्त्व तथा लिपियों आदिका पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया। तदनन्तर उदयपुरमे राजकीय पुरातत्त्व विभागके अध्यक्ष पदपर नियुक्त हुए। इस बीच इनके शोधपूर्ण लेख प्रकाशित होने लगे थे और उनकी सख्या कम नहीं थी। सन् १८९८में अपने विषयपर विश्वकी सर्वश्रेष्ठ रचना 'भारतीय प्राचीन लिपिमाला'के प्रकाशनके बाद इन्हे उच्चकोटिका शोधकर्ता मान लिया गया। सन् १९०८में राजपूताना म्यूजियम (अजमेर)की स्थापना होनेपर ये वहाँके अध्यक्ष हुए और सन् १९३८तक उक्त पदपर कार्य करते रहे। इन्होंने सन् १९२८में हिन्दुस्तानी अकादमी, इलाहाबादमें मध्यकालीन भारतीय संस्कृतियोंपर तीन भाषण दिये। १९३३में ये ओरियण्टल कान्फ्रेंस, बड़ौदामे इतिहास विभागके अध्यक्ष हुए। आपको रायबहादुर, महामहोपाध्यायकी उपाधियाँ क्रमशः सन् १९१४ और २८में मिली। १९२७मे सम्मेलन एवं गुजरात साहित्य सभाके सभापति हुए। १९३३में भारतीय अनुशीलन ग्रन्थमे अभिनन्दित हुए। १९३७मे साहित्य वाचस्पति एवं वाचस्पतिकी उपाधियोंसे विभूषित हुए। १९३७ में ही काशी हिन्दू विश्वविद्यालयने डी० लिट्० की उपाधि एवं आन्ध्र विश्वविद्यालयने पुरातत्त्ववेत्ताकी मान्यता दी। १९२०मे नागरी प्रचारिणी पत्रिकाके सम्पादक थे।

इनकी मृत्यु रोहेडामें ही सन् १९४७ (सं० २००४ वैशाख बदी ११)को हुई। वे राजपूतानाकी ऐतिहासिक संघर्ष-जर्जर मानवताके शताब्दियों तकके घटना-क्रमके एक व्यासकार थे। ताम्र-पत्र, पट्टे, परवाने और रेकार्ड ओझाजीको सहज पाठ्य थे। पनघटों, मन्दिरों, धर्मशालाओं, खण्डहरों, गढ़ों, किलों, विजन स्थानोंके मौन पाषाण शिला-लेखोंके वे महान् विद्यार्थी थे।

इनकी अनेक रचनाएँ हैं—इन्होंने कर्नल टाडके इतिहासका सम्पादन(१९०२) तथा 'सोलंकियोंका इतिहास' १९०८ में लिखा। 'पृथ्वीराज विजय' तथा 'कर्मचन्द वंश' सम्बन्धी पुस्तकोका सम्पादन किया। १९१८में 'प्राचीन लिपिमाला'का बृहद् संस्करण निकला, जिसपर सम्मेलनने मंगलाप्रसाद पारितोषिक भी दिया। इन्होंने १९२३ में 'राजपूतानाका इतिहास' लिखना शुरू किया। उदयपुर,

डूँगरपुर, बाँसवाड़ा, प्रतापगढ़, जोधपुर और बीकानेर राज्योंका इतिहास लिखा। फिर मुँहरणोत नैणसीकी ख्यात-का सम्पादन किया तथा १५० पृष्ठोंके लगभग शोध-लेख लिखे। इनके अतिरिक्त साहित्य-संस्थान रा० वि० विद्यापीठ द्वारा 'ओझा निबन्ध संग्रह'के नामसे उनके सभी निबन्ध प्रकाशित हुए हैं। —श्री० व०

ग्रंथि—यह सुमित्रानन्दन पन्तकी प्रारम्भिक रचनाओंमें से है। इसे प्रेमाख्यानक गीतिकाव्य कह सकते हैं। स्वयं पन्तने इसे "छोटा-सा खण्ड-काव्य" कहा है। यह कहना कठिन है कि इसमें कविकी आत्मानुभूति किस मात्रामें उपयोगमें आयी है क्योंकि स्वयं कविने इस रचनापर अपने आकाश-वाणी आलेखमें उन प्रवादोंका प्रतिकार किया है जो इस रचनामें व्यक्तिगत पक्षको लेकर चले हैं। वे इसे विशुद्ध काव्य-प्रयास मानते हैं। कालिदासकी 'मेघदूत' और 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' जैसी रचनाओंसे कविने अपने काशी-प्रवासमें जो संस्कार संचित किये थे, उन्हें ही यहाँ उसने कल्पित कथाके सहारे वाणी दी है, ऐसा उसका अपना मन्तव्य है परन्तु कथाके कितने ही सन्दर्भ जैसे नायककी मातृहीनता, मामा द्वारा लालन-पालन आदि कविकी स्वोक्तिपर भी पूरे उतरते हैं, अतः निर्भ्रान्त रूपसे कुछ भी कहना असम्भव है। सच तो यह है कि 'ग्रन्थि', 'उच्छ्वास', 'आँसू' और 'आँसूकी बालिकासे' शीर्षक रचनाएँ कविकी प्रारम्भिक कृतियोंमें एक सुनिश्चित शृंखला-का निर्माण करती हैं और उनके प्रेमका विप्रलम्भ-पक्ष अत्यन्त मर्म-मधुर बन गया है। उसे कविकी स्वानुभूति न मानना कठिन है। सकल्पात्मक अनुभूतिमें उतनी विदग्धता असम्भव है, जितनी इन रचनाओंमें दिखलायी पड़ती है।

'ग्रन्थि'की कथा चार खण्डोंमें बँटी है, जिनका निर्देश प्रत्येक खण्डकी पहली पंक्तिके प्रथम दो शब्दोंसे किया गया है। प्रथम खण्डमें कवि कल्पनाके प्रति सम्बोधित होकर पूर्वस्मृतिको जाग्रत करनेके लिए उसका आह्वान करता है और मधुमासकी भूमिका बाँधकर पाठकको अपनी प्रणय-गाथाके लिए तैयार करता है। सूर्यास्तके साथ ही नाव तालमें डूब जाती है और नायक जब मूर्च्छासे आँखें खोलता है तो एक कोमल निःश्वास उसे पुनर्जीवन देता जान पड़ता है। उसे आभास होता है कि उसका सिर किसी बालाकी सुकोमल जाँघपर टिका है, जिसने कदाचित् उसके प्राण बचाये हैं। प्रथम दृष्टिमें ही दोनोंमें प्रेमका संचार हो जाता है और प्रेमीकी जिज्ञासाका उत्तर नायिका के मुखसे उच्चरित 'नाथ' शब्दकी मधुरिमामें झंकृत हो जाता है। प्रथम दर्शनके संकोच, आह्लाद और भावद्वन्द्वको कविने अत्यन्त सफलतासे अंकित किया है। दूसरे खण्डमें नायिकाके भावपरिवर्तनको लेकर सखियोंकी वार्ता उल्लिखित है, जिसपर 'अभिज्ञान-शाकुन्तलम्', विद्यापतिकी पदावली और रीतिकवियोंकी भाव-मधुरिमाका प्रभाव स्पष्ट रूपसे लक्षित है। अन्तमें कवि बतलाता है कि इस प्रकार प्रति दिवस सखियोंमें हुई प्रेमचर्चा नायिकाके भाव-जगत्को उकसा कर मधुर बना रही थी। इस भागको कविका प्रेमदर्शन कहा जा सकता है जिसपर रोमांटिक काव्यकी अतीन्द्रियता और स्वर्गीयताकी छाप भी स्पष्ट है। तीसरे खण्डमें कवि नायक जीवनके नये मोड़की सूचना देता है। उसके दुःखद बाल-जीवन और कठिन किशोर-कालकी पृष्ठभूमि देकर वह हमें उस घटना या दुर्घटनाके लिए तैयार करता है जो इस दुःखान्तकीय प्रगीतिकाका प्राण है। कविके शब्दोंमें: "हाय, मेरे सामने ही प्रणयका, ग्रन्थिबन्धन हो गया, वह नवकमल मधुप-सा मेरा हृदय लेकर, किसी अन्य मानसका विभूषण हो गया। पाणि, कोमल पाणि! निज बन्धूककी मृदु हथेलीमें सरल मेरा हृदय भूलसे यदि ले लिया था, तो मुझे क्यों न वह लौटा दिया तुमने पुनः ?"

इसके पश्चात् कवि बड़ी भावुकतासे अपनी आत्मव्यथा-का चित्रण करता है। प्रकृतिकी विराट् मिलनस्थलीमें एक मात्र वही सब प्रकार अकेला, कंगाल खड़ा है। वह अपने हृदयको धिक्कारता और उस विमोहक सौन्दर्यको भी उपा-लम्भ देनेमें नहीं चूकता, जिसने इस प्रकार आँखमिचौनीका खेल-खेलकर उसके हृदयमें घाव कर दिया। अन्तमें वह अपनी वेदनाको विश्वव्यापी रूप देकर अपने सन्तापको हलका करता है: "वेदना!—कैसा करुण उद्गार है। वेदना ही है अखिल ब्रह्माण्ड यह, तुहिनमें, तृणमें, उपलमें, लहरमें, तारकोंमें, व्योममें है वेदना। वेदना!—कितना विशद यह रूप है। यह अँधेरे हृदयकी दीपक-शिखा। रूपकी अन्तिम छटा। औ' विश्वकी अगम चरम अवधि, क्षितिजकी परिधि सी।"

अन्तिम 'प्रेमवञ्चित' खण्डमें कवि विरह-व्यथित नायकके मनोजगत्का चित्रण करता हुआ नियतिकी दुर्वहताकी शिकायत कर कथाका पटाक्षेप करता है और विज्ञ वाचकको आश्वस्त कर विदा लेता है कि छलकती आँखोंके शेष आँसुओंको वह फिर कभी उनके कर-कमलोंमें भेंट देगा।

स्पष्ट है कि इस कथानकमें भावचित्रणकी ही प्रधानता है और पात्रोंका व्यक्तित्व कथा-सूत्रोंके उभारने भरमें सार्थक है। मिलनकी अपेक्षा विरह-वर्णनमें कविका मन अधिक रमा है। ऐसा जान पड़ता है कि वयःसन्धिके हृदय-की अनजान आकुलताको वाणी देनेके लिए ही कविने इस प्रेमकथाकी कल्पना कर डाली है। इसीसे कथा और पात्र दोनों वायवीय बने रहे हैं, केवल अव्यक्त हृदय-पीड़ा ही विप्रयोगके रूपमें प्रकट हुई है। स्वयं पन्त इस रचनाको द्विवेदी युगकी काव्य-कलाका विकास या प्रसार मानते हैं। अतः इसे हम श्रीधर पाठककी रचना 'एकान्तवासी योगी' और रामनरेश त्रिपाठीकी 'मिलन', 'पथिक' और 'स्वप्न' कृतियों तथा प्रसादकी 'प्रेमपथिक' कोटिकी रचना ही मान सकते हैं। स्वच्छन्द और एकान्तिक किशोर-प्रेमका उदात्त और मनोनिष्ठ चित्रण इस रचनाकी विशेषता है।

भाषा और शैलीकी दृष्टिसे यह रचना विशेष महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि 'ग्रन्थि' की भाषा द्विवेदीयुगीन काव्य-भाषाके अधिक निकट है और उसमें इतिवृत्तात्मकताका भी पर्याप्त निर्वाह है परन्तु उसमें 'उपमा कालिदासस्य' के आदर्शका निर्वाह करते हुए कवि जिन अनूठी और सरस उपमाओं-उत्प्रेक्षाओंका सञ्चयन करता है, वे रचनाको एकदम नयी कोटि दे देती हैं। इस भावविदग्ध प्रणय-गाथामें अनेक

छोटे-छोटे स्मृतिखण्ड अँगूठीमें नगीनेकी तरह जड़ गये हैं। बीचमें भविष्यत्, स्मृति, वेदना आदिके प्रति सम्बोधन काव्यको सम्बोधि-गीतिकी मार्मिकता प्रदान करते हैं। यद्यपि इस रचनामें कविका भावबोध परम्परासे एकदम विच्छिन्न नहीं हुआ है, उसका स्वर स्वीकारी ही बना रहा है, परन्तु उसमें काव्यका रसात्मक, कल्पनाप्रवण तथा भाषामधुर स्वरूप नयी काव्यचेतनाकी ओर ही इंगित करता है। सरस और प्रासादिक भाषामें अतुकान्त शैलीकी यह प्रेमगीति पन्तकी प्राथमिक कृति होनेपर भी अपनेमें पूर्ण कलासृष्टि है। —रा० र० भ०

ग्रंभ्रप–ग्रन्भ्रप वस्तुतः गन्धर्वका परिवर्तित रूप है। ऋग्वेदमें गन्धर्व आकाशचारी एक योनिविशेषके रूपमें मिलते हैं। इसी परम्पराके दूसरे उल्लेखसे ये गम्भीर जलनिवासी देव ठहरते हैं। इनके अधीश्वर वरुण बताये जाते हैं। एक तीसरी परम्पराके अनुसार ये सोमके रक्षक एवं भैषज्-जातिके रूपमें उल्लिखित प्राप्त होते हैं। ऋग्वेदके अनुसार इन्द्रने गन्धर्व-जातिके लोगोंको परास्त किया था। इस दृष्टिसे कुछ विद्वान् इन्हें एक मानव जाति विशेषका होना निश्चित करते हैं। सभी परम्पराओंमें इन्हें नृत्य गीतके प्रतिनिधिके रूपमें स्मरण किया गया है। पुरुरवा वस्तुतः ऋग्वेदके अनुसार गन्धर्व जातिसे ही सम्बद्ध थे। इन्होंने इन्द्रके लिए नृत्यशाला तैयार किया था।

इनके बारेमें इतिहासकारोंका विचार है कि यह निश्चय ही विलासी, नृत्य-संगीत-प्रिय जाति रही होगी। इनके आदि देशके विषयमें मतैक्यका अभाव है। (दे० 'कबीर ग्रन्थावली', २९९)। —यो० प्र० सिं०

ग्राम्या–(प्र० १९४० ई०) सुमित्रानन्दन पन्तकी ५३ कविताओंका संकलन है। उनके काव्य-संकलनोंमें इसकी संख्या छठी है। 'युगवाणी'में पन्तकी संवेदनाका चिन्तन-पक्ष या धारणा-पक्ष सामने आता है। 'ग्राम्या'में सहानुभूतिके माध्यमसे कविका चिन्तन ग्रामीण जीवनके आवर्त्तों-विवर्त्तोंको छूना चाहता है। इस प्रकार 'युगवाणी' कविकी मार्क्सवादी चिन्ताका बौद्धिक पक्ष है तो 'ग्राम्या' काव्यात्मक एवं व्यावहारिक पक्ष। उसे हम 'युगवाणी'की क्रियात्मक भूमि भी कह सकते हैं। इस रचनाके सम्बन्धमें स्वयं कविने निवेदनमें लिखा है–"इनमें पाठकोंको ग्रामीणों के प्रति केवल बौद्धिक सहानुभूति ही मिल सकती है। ग्राम-जीवनमें मिलकर, उसके भीतरसे, ये अवश्य नहीं लिखी गयी हैं। ग्रामोंकी वर्त्तमान दशामें वैसा करना केवल प्रतिक्रियात्मक साहित्यको जन्म देना होता।" इस वक्तव्य से यह स्पष्ट है कि कविने अपनी सहानुभूतिके पंख बाँध दिये हैं और उसकी उडान मर्यादित है। 'ग्राम्या'के प्रगीतोंमें पन्तका अभिव्यंजनसम्बन्धी दृष्टिकोण 'वाणी' शीर्षक रचनासे प्रकट हो जाता है, जिसमें वह चुनौतीके स्वरमें अपनी वाणीसे सम्बोधित होता है: "तुम वहन कर सको जन-जनमें मेरे विचार, वाणी मेरी, चाहिए तुम्हें क्या अलंकार।"

'कवि-किसान' शीर्षक रचनामें उन्होंने कविको युगका सांस्कृतिक नेता मानकर चेतना-भूमिमें चिर जीर्ण विगत की खाद डालने, उसे सम बनाने, बीज वपन करने और निरानेका रूपक बाँधा है। यह नयी दृष्टि उसके कवि-कर्मकी नयी दिशा पर प्रकाश डालती है।

परन्तु अभिव्यंजनाके क्षेत्रकी यह नवीनता ही कविका लक्ष्य नहीं है। लक्ष्य है धरतीके समीप सिमट कर रहने वाली काली-कुरूप और उच्छिष्ट मानवताका चित्रण। कवि ग्रामीण जीवन और संस्कारोंको निर्ममतासे देखता-परखता है। वह उनके ऊपर रोमांसका झीना आवरण नहीं चढ़ाना चाहता। उसकी पहुँच बौद्धिक है, भाविक नहीं। इसीसे उसने ग्रामको स्वर्गके रूपमें कल्पित नहीं किया है। उसका ग्राम कल्पनाका ग्राम न होकर यथार्थ ग्राम है जहाँ—"यहाँ, खर्व नर, बानर रहते युग-युगके अभिशापित। अन्न-वस्त्र-पीडित असभ्य, निर्बुद्धि, पंकमें पालित। यह तो मानव-लोक नहीं रे, यह है नरक अपरिचित। यह भारत का ग्राम, सभ्यता, संस्कृतिसे निर्वासित। झाड़-फूँकके विवर, यही क्या जीवन-शिल्पीके घर? कीड़ोंसे रेंगते कौन ये? बुद्धिप्राण नारी-नर? अकथनीय क्षुद्रता, विवशता भरी यहाँके जगमें। गृह-गृहमें कलह, खेतमें कलह, कलह है मगमें।"—(ग्रामचित्र)।

ग्रामीण जीवनकी इस करुणाको कविने 'भारत-ग्राम', 'ग्राम-वधू', 'ग्राम-देवता', 'वह बुड्ढा', 'गाँवके लड़के', 'वे आखें', 'कठपुतले', 'ग्राम-नारी'आदि रचनाओंमें बड़ी सहानुभूतिसे उतारा है। उसने विश्वको ग्रामीण नयनोंसे देखना चाहा है और 'ग्राम-दृष्टि' शीर्षक रचनामें अपने इन नये दृष्टिकोणको उजागर भी किया है। इन रचनाओंमें हम जीवनकी कुरूपता और कठोरताका ऐसा चित्र पाते हैं जो हमें स्तम्भित कर देता है, विशेषतः 'वे आखें' जैसी रचनामें उभरता हुआ चित्र। ये आखें स्वाधीन किसानकी अभिमान-भरी आखें थीं, जिसके जीवनने उससे छल किया। उसके लहराते खेत बेदखल हो गये, एकमात्र पुत्र भरी जवानीमें कारकुनों की लाठीसे मारा गया, महाजनने बैलोंकी हृष्ट-पुष्ट जोड़ी बिकवा दी, बिना दवा-दारूके गृहिणी चल बसी, दुधमुँही बिटिया दो दिन बाद मर गयी और अन्तमें विधवा पतोहूने कोतवाल द्वारा बलात् भ्रष्ट किये जानेपर कुँएमें डूब कर प्राण दे दिये। इन आँखोंका अथाह नैराश्य, उनका दारुण दुःख-दैन्य और नीरव रोदन नागरी संस्कृतिके लिए धिक्कार है। इस धिक्कारको दग्धाक्षरोंमें बाँध कर काव्यका रूप देना साधारण कार्य नहीं है, यद्यपि जीवनकी इस कठोर वास्तविकताको काव्यके दर्पणमें देखनेके लिए समीक्षक तैयार नहीं थे।

एक अन्य प्रकारका ग्राम भी इन रचनाओंमें उभरा है, कदाचित् कविके अनचाहे—यह सुन्दरता, उल्लास, नृत्य, पर्व, आमोद-प्रमोद और वर्ण संस्कारों आदिके भीतरसे ही झाँकता हुआ उद्दाम मानव-भावका संसार है। 'ग्रामयुवती', 'धोबियोंका नृत्य', 'ग्राम-श्री', 'नहान', 'चमारोंका नाच', 'कहारोंका रुद्र-नृत्य' जैसी रचनाएँ इन नये ग्रामसे भी हमारा परिचय कराती हैं। यह ग्राम जीवनकी ऊर्जासे ओतप्रोत, कुसंस्कारोंमें आबद्ध, परन्तु प्राणवान् मानव-चेतनासे आन्दोलित सांस्कृतिक इकाई है। ग्रामीण जीवनके इस सौन्दर्यको उद्घाटित करनेके लिए कविको नयी भाषा-

शैली, नये छन्द, नयी भावोन्मुक्तिकी रूप रेखा गढ़नी पड़ी है, परन्तु वह इस नयी दिशामें भी पूर्णतः सफल है। उसकी तूलिका वर्णन-कलामें सिद्ध होती गयी है और ग्राम-जीवनके अनेक गत्यात्मक चित्र उसने बाँधे हैं। जन-जीवनकी प्रतिनिधि ये रचनाएँ अनाविल सौन्दर्य और रेखाविरल चातुर्यमे पूर्ण हैं परन्तु बौद्धिकतामे अनुशासित रहनेपर भी इन रचनाओंमें भारतीय जन-जीवनका अव-चेतनीय सौन्दर्य असंख्य रगों-रूपोंमें खिल पड़ा है।

संकलनकी केन्द्रीय रचनाएँ दो हैं—'भारत-माता', जो नवोदित भारत-राष्ट्रका जनगीत बन गयी है और 'ग्राम-देवता', जिसमें कवि भारतीय जनवादका समर्थक बनकर ग्राम-संस्कृतिके प्रति अपना अभिवादन प्रकट करता है। नये मानवतावादमें जन-संस्कृतिको समाविष्ट करनेकी लालसा इस रचनामें परिव्याप्त है। ग्राम-देवताकी यह प्रशस्ति व्यंगप्राण होकर भी नवयुगके लिए अशेष आशीष बन गयी है क्योंकि इसीमें हमने ग्राम-भारतके यथार्थ रूपको पहचाना है। रचनाका धरातल बौद्धिक है और उसमें कविकी अधतन चिन्ताकी स्पष्ट झलक है परन्तु उसकी सप्राणता उसमें पर्याप्त भावुकताका सचार कर देती है। निःसन्देह यह रचना 'ग्राम्या'का शीर्ष है।

अन्य सकलनोंकी भाँति 'ग्राम्या'में प्रकृतिके सुन्दर चित्र हैं, जो ग्रामीण प्रकृति-पटको खुली आँखों और विरल रगरेखाओंमें उतारते हैं। अधिकांश रचनाओंमें प्रकृति पृष्ठभूमि बनकर आयी है परन्तु उसने ग्राम-शोभामें वृद्धि ही की है। 'सन्ध्याके बाद', 'दिवास्वप्न', 'खिड़कीसे' जैसी रचनाएँ हमें कविकी परिचित मनोभूमिकी झाँकी देती हैं यद्यपि प्रौढ़ताके साथ चिन्तन और चित्रणके क्षेत्रमें काफी परिवर्तन भी हुआ है, जो विकासमान कलाकारके अनुरूप ही कहा जा सकता है। अन्तिम श्रेणी ऐसी कविताओंकी है, जिसमें कविने आधुनिक नारीको चित्रित किया है और उसके अस्वाभाविक जीवनदर्शन तथा क्रियाकलापके प्रति लज्जा प्रकट की है। 'आधुनिका', 'नारी', 'स्वीट पीके प्रति', 'द्वन्द्व प्रणय' जैसी रचनाओंमे कवि ग्रामीण और श्रमिक नारीके स्वस्थ प्रणयके समकक्ष अभिजाती प्रेमकी कृत्रिमता और आत्महीनताको उभारकर रख देता है यह उसके चिन्तनकी नयी दिशा है जो बादमें उसकी सांस्कृतिक विचारधाराका महत्त्वपूर्ण अंग बन गयी है। इन कविताओंका रचनाकाल द्वितीय महायुद्धकी विभीषिकासे त्रस्त था। अतः पन्तका काव्यचिन्तन जन-जीवनकी ओर मुड़ा और उन्होंने हिंसा-अहिंसाके द्वन्द्वसे ऊपर उठकर तरुण शक्तिको ग्रामोंकी ओर ललकारा, जहाँ जनजीवन अनिरुद्ध और मूर्च्छित था। 'अहिंसा' शीर्षक कवितामें उसका वह स्वर स्पष्ट है : "बन्धन बन रही अहिंसा आज जनोंके हित।"

—रा० र० भ०

ग्रियर्सन, जार्ज अब्राहम - सन् १८६८ में राबर्ट एट्किन्सन-से संस्कृत वर्णमालाका ज्ञान प्राप्त किया। इन्होंने भारतकी पौराणिक गाथाओंमें इतिहासका दर्शन किया और ग्रामीणों-की कहावतोंमें ज्ञान प्राप्त किया। ये वेद और संस्कृतसे भी बहुत प्रभावित थे। इनके सहायकोंमें गौरीकान्त, स्टेनकोनो ई० एच० हाल आदि रहे हैं। एक भाषा-वैज्ञानिक एवं इतिहासज्ञके रूपमें ये प्रसिद्ध हैं।

इन्होंने बिहारमें काम करना प्रारम्भ किया था। वहीं इन्होंने बिहारी भाषाओंका अध्ययन किया और 'बिहारी भाषाओंके सात व्याकरण' १८८३ से १८८७ ई० तक प्रकाशित किये।

ग्रियर्सनको हिन्दीसे अतिशय प्रेम था। इसीलिए इन्होंने ३३ वर्ष तक पर्याप्त परिश्रम कर असंख्य व्यक्तियोंसे पत्राचार एव सम्पर्क स्थापित करके भारतीय भाषाओं एवं बोलियोंके विषयमें भरसक प्रामाणिक आँकड़े और विवरण एकत्र किये (लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया)। भाषाओं और बोलियोंके सम्बन्धमें खोज तथा छानबीनका इतना विशाल एवं विस्तृत प्रयत्न किसी भी देशमें नहीं किया गया। अंग्रेजीमें यह ११ जिल्दोंमें प्रकाशित हुआ था।

ग्रियर्सनके ही शब्दोंमें "इसका विवरणात्मक भाग दो हिस्सोंमें विभक्त है। पहलेका शीर्षक 'भूमिका' है और इसमें उन सभी पूर्व प्रयत्नोंका विवरण प्रस्तुत है, जो भारतकी भाषाओंके अध्ययनके सम्बन्धमें किये गये थे।... दूसरे भागमें सर्वेक्षणके परिणामों तथा उनसे प्राप्त शिक्षाओं-पर दृष्टिपात करनेका प्रयत्न किया गया है।...इन दो खण्डोंके अतिरिक्त इस सर्वेक्षणमें दो अन्य संग्रह भी हैं जिनमें समस्त सर्वेक्षणके लिए बृहत् योग एवं लघु योग तथा शोधनीय सामग्री है।...अन्तमें तीन परिशिष्ट भी जोड़े गये हैं। इनमें... भारतकी सभी भाषाओंकी वर्गीकृत सूची, उन भाषाओंकी सूची, जिनके ग्रामोफोन रेकार्ड इस देशमें तथा पेरिसमें उपलब्ध है तथा सभी भारतीय भाषाओं-के नाम हैं।" इसमें विभिन्न भाषाओंके नमूने भी हैं।

'भाषा-सर्वेक्षण' नामक यह ग्रन्थ साहित्य, भाषा तथा उसके इतिहासके लिए एक अनुपम सन्दर्भ ग्रन्थ है। वे इसे १८९४ से प्रारम्भ कर १९२७ ई०में समाप्त कर सके। इसीसे उसकी विशालताका अन्दाज लगेगा।

इसके अतिरिक्त इनकी एक पुस्तक 'माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर आफ नादर्न हिन्दुस्तान' भी है, जिसका प्रकाशन सन् १८८९ ई० में हुआ। १९०६ ई०में पिशाच भाषा तथा १९११ में कश्मीरी पर (२ भागोंमें) भी इनके प्रामाणिक ग्रन्थ निकले। १९२४ में ४ भागोंमें इनका 'कश्मीरी कोष' प्रकाशित हुआ।

ग्रियर्सनका भाषासम्बन्धी वर्गीकरण भले ही उचित न हो पर महत्त्वपूर्ण अवश्य है। उनकी दृष्टिमें हिन्दी, हिन्दुस्तानीका ही एक रूप है। हिन्दुस्तानीको उन्होंने मूल भाषा माना है। इसकी परिणति वे उर्दूमें मानते हैं। ग्रियर्सनके भाषा-सर्वेक्षणमें विभिन्न बोलियोंके उदाहरण तो हैं किन्तु अरबी-फारसी शब्दोंकी संख्या नगण्य है। वे ठेठ हिन्दुस्तानीको साहित्यिक उर्दू तथा हिन्दीकी जननी मानते हैं। ग्रियर्सन फारसीकी तरह संस्कृतको भी विदेशी भाषा मानते हैं। जो भी हो, ११ जिल्दोंमें (जिनमेंसे कुछ कई भागोंमें विभक्त हैं) सभी भारतीय भाषाओं एवं बोलियों-का उदाहरण एवं उनका व्याकरण दे देना ग्रियर्सनके अमरत्वके लिए पर्याप्त है। उनकी सुविस्तृत भूमिका उनके श्रेष्ठ पाण्डित्यका उत्कृष्ट प्रमाण है।

—हृ० दे० बा०

ग्वाल कवि–'सरोज'में सन् १६५९ में इस कविका उपस्थित होना माना गया है और कालिदासके 'हजारा'में उद्धृत प्राचीन ग्वाल तथा सन् १८२३ में उपस्थित मथुरानिवासी बन्दीजन ग्वालके नामसे दो कवियोंका उल्लेख किया है, जिनमें दूसरे व्यक्ति ही विशेष प्रसिद्ध हैं। ये सेवाराम बन्दीजनके पुत्र थे और समकालीन कवि नवनीत चतुर्वेदी तथा रामपुर दरबारके अमीर अहमद मीनाईकी पुस्तक 'इन्तखाबे यादगार'के उल्लेखके आधार पर ये वास्तविक निवासी वृन्दावनके सिद्ध होते हैं तथा वहाँ कालिया घाट पर इनके मकानोंके चिह्न तथा इनके वंशज अब भी हैं। मथुरासे भी इनका सम्बन्ध रहा है और वहाँ भी इन्होंने मकान बनवाया था। इनके 'रसिकानन्द' नामक ग्रन्थसे इनके पिताका नाम मुरलीधर राव भी मिलता है। इनके गुरुका नाम दयालजी बतलाया जाता है। इनका जन्म मार्गशीर्ष शुक्ल द्वितीया सं० १८४८ (सन् १७९२) मे हुआ। इनका रचनाकाल सन् १८२२ से १८६१ तक माना जाता है। ये शतरंजके खिलाडी थे और फक्कड स्वभावके होनेके कारण इधर-उधर बहुत घूमे। ये नाभानरेश महाराज जसवन्तसिंह, महाराज रणजीतसिंह, सुकेत मण्डी तथा रामपुर रियासतके आश्रयमे विशेष रूपसे रहे। रामपुरमें ये दो बार रहे और वहीं १६ अगस्त सन् १८६७ को इनकी मृत्यु हुई। इनके दो पुत्र खूबचन्द (या रूपचन्द) तथा खेमचन्द नामसे थे।

ग्वालके ग्रन्थोंकी संख्या ५० के लगभग बतायी जाती है और प्रत्येक इतिहासकार अथवा ग्वालके आलोचकने कुछ न कुछ नये पुस्तकोंके नाम जोड दिये हैं, किन्तु 'रसरग', 'अलंकारभ्रमभंजन' तथा 'कवि-दर्पण' महत्त्व की है। इनमें से अनेक रचनाएँ तो प्राप्त भी नही हैं। 'रसरग' सेठ कन्हैयालाल पोद्दारके निजी पुस्तकालयमे तथा शेष दो ना० प्र० सभा, काशीमें खण्डित रूपमे सुरक्षित है। इनके अब तक बताये जानेवाले ग्रन्थोंके नाम तथा रचनाकाल इस प्रकार है : १. 'यमुना लहरी' सन् १८२४ (प्र० नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, १९२४ ई०), २. 'रसिकानन्द' सन् १८२४, ३. 'हमीरहठ' सन् १८२६, ४. 'राधामाधवमिलन', ५. 'राधाअष्टक', सन् १८२६, ६. 'श्रीकृष्ण जूको नखशिख' सन् १८२८ ई० (प्र० लक्ष्मीनारायण प्रेस, मुरादाबाद), ७. 'नेह-निबाहन', ८. 'बंशीलीला', ९. 'गोपी-पचीसी', १०. 'कुब्जाष्टक' सन् १८२८, ११. 'कवि-दर्पण' सन् १८३६, १२. 'साहित्यानन्द' सन् १८४८, १३. 'रसरग' सन् १८४७, १४. 'अलंकार-भ्रमभंजन', १५. 'प्रस्तारप्रकाश', १६. 'भक्तिभावन या भक्तभावन' सन् १८६४, १७. 'साहित्य भूषण', १८. 'साहित्यदर्पण', १९. 'दोहा शृंगार', २०. 'शृंगार कवित्त' २१. 'दूपण दर्पण' सन् १८३५, २२. 'कवित्त वसन्त', २३. 'बंशी बीसा', २४. 'ग्वाल पहेली', २५. 'रामाष्टक', २६. 'गणेशाष्टक' १-२, २७. 'दगशतक', २८. 'कवित्त ग्रन्थमाला', २९. 'कवि-हृदय विनोद', ३०. 'इश्क लहर दरियाव' सन् १८६३, ३१. 'विजय विनोद' सन् १८४९, ३२. 'षट्ऋतु वर्णन' (प्र० भारत जीवन प्रेस, बनारस, १९३६ ई०)।

राजेश्वर चतुर्वेदी 'कवि दर्पण'को ही 'दूपण दर्पण', 'साहित्यदर्पण' तथा 'साहित्यभूषण'के नामसे प्रचलित मानते हैं तथा 'कवि-हृदय विनोद'को 'भक्तिभावन' या 'भक्तिपावन'का काशित लघु-संस्करण बताते हैं। इसी प्रकार हो सकता है 'बंशीलीला' भी एक ही पुस्तकके दो नाम हों। अभी तो अनुमानसे ही आलोचकोंने इन सब ग्रन्थोंके विषय भी निर्धारित कर लिए हैं। इन ग्रन्थोंसे ग्वालका काव्यांगोंका विवेचक होना तो सिद्ध होता ही है, उनकी भक्ति तथा शृगारिक कविताका भी संकेत मिलता है। काव्यशास्त्रमे रस, अलंकार तथा पिंगल ही उनके विषय रहे। 'रसिकानन्द'मे नायक-नायिका भेद, हाव-भाव तथा रस-निरूपण है और उदाहरणोंका ही विशेष वर्णन है। (हि० का० शा० इ० तथा हि० सा० बृ० इ०में इसे अलंकार-ग्रन्थ माना गया है)। 'रसरग'मे दोहोंमें रस-रसांगोंके लक्षण संक्षिप्त तथा स्पष्ट रूपमें दिये गये हैं। 'कृष्ण जूका नखशिख' बलभद्रके 'नखशिख'के अनुकरण-पर है और अलकाराधिक्यमे स्वाभाविकता खो बैठा है। यह अलकारका ग्रन्थ है। साथ ही 'अलंकार-भ्रम-भंजन' अलगसे इसी विषयके लिए लिखा गया है। 'प्रस्तार-प्रकाश' पिंगल-निरूपक ग्रन्थ है और 'कवि-दर्पण' रीति-ग्रन्थ। 'रसिकानन्द'की रचना नाभानरेश महाराज जसवन्तसिंहके यहाँ हुई थी और 'कृष्णाष्टक'की रचना टोंकके नवाबकी इच्छासे हुई थी। मीर हसनकी मसनवी 'सहरुल-बयान'की 'इश्कलहर दरियाव' (सं० १९२०)के नामसे अनुवाद है और 'विजय विनोद' (स० १९०८)मे महाराज रणजीतसिंहके दरबारकी घटनाएँ है। इसमे राजा ध्यान-सिंहका यश वर्णित है और उन्हें 'हिन्दूपति' कहा गया है। 'विजय विनोद'की हस्तलिखित प्रति भाई साहब बागड़िया तथा महाराज पटियालाके पुस्तकालयमें उपलब्ध बतायी जाती है।

घुमक्कड होनेके कारण इन्हे १९ भाषाओंका अभ्यास था। दरबारी वाग्विलासमे ये सिद्ध हो चुके थे और उसीके प्रभावसे उक्तियोंमे अश्लीलताका पुट लानेसे बचे न रह सके। प्रान्तीय भाषाओंमें छन्द-रचना करनेके साथ ही इन्होने फारसी-अरबीबहुल हिन्दीका प्रयोग किया है। इनके वर्णनोंमे वैभवके प्रति आकर्षण तथा इनकी पद्माकरी शैलीमे वस्तु-परिगणन तथा वाग्विलासकी ओर विशेष प्रवृत्ति है। भाषामे पद्माकरके समान अनुप्रासमयता, चमत्कार-विधान, कल्पनाका विशेष पुट, अलंकृति और मुहावरेके उचित प्रयोगके रहते हुए भी बाजारूपन अवश्य आ गया है। भोग-विलासकी वस्तुओंके परिगणन, षट्ऋतु वर्णन तथा शृंगारोद्दीपक ऋतु वर्णनसे प्रायः काव्यमें अस्वाभाविकता आ गयी है। वैसे ऋतुवर्णन विस्तृत है और विदग्धताके साथ किया गया है। ये जगदम्बा तथा शिवके उपासक थे, किन्तु कविताके वर्ण्य-विषयके लिए इन्होंने राधा-कृष्णको ही विशेष रूपमे चुना और उनको नायक-नायिकाके रूपमें वर्णित किया है। इनमे भक्ति तो यत्किंचित ही है, रीतिका अनुकरण और निर्वाह ही मुख्य है। फिर भी देव, पद्माकर जैसे रससिद्ध कवियोंके साथ इनको आसन नहीं दिया जा सकता। रस-परिपाक तथा अभिव्यंजना-प्रभाव दोनोंमें ग्वाल समर्थ और सफल हुए हैं,

किन्तु अनुकरण, बाजारूपन तथा प्रतिभाजन्य विशिष्टताकी कमीके कारण इन्हें प्रथम श्रेणीमें स्थान नहीं दिया जा सकता। षट्ऋतु-वर्णनमें ग्वाल सेनापतिके अतिरिक्त अपना सानी नहीं रखते।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० इ०; शि० स०; मि० वि०; क० को० (भा० १); दि० भू०; ब्रजभारती (९-४)।] —आ० प्र० दी०

घंटी–प्रसादके उपन्यास 'कंकाल'की पात्र। यह नन्दोकी पुत्री है। रामदेवने उसे एक मेलेमें लड़केके बदलेमें छोड़ दिया था। गोविन्दी चौबाइनने उसका पालन पोषण किया। उसके मरनेपर वह अनाथ हो गयी। वह बाल-विधवा थी। घण्टी हँसोड़ प्रकृति की, निर्लज्ज, स्पष्टवादिनी युवती है। वृन्दावनमें विजय और किशोरीसे उसकी भेंट होती है। विजयके प्रति वह आकर्षित होती है। प्रेमिकाके रूपमें घण्टी स्वच्छन्दतावादी है। पुरुषके प्रति प्रणय और आकर्षणको वह नारीकी सहज प्रवृत्ति मानती है और इसी कारण न तो विजयके साथ घूमनेमें उसे संकोच होता है और न उसके आलिंगन-पाशमें बंधनेमें लज्जाकी अनुभूति होती है। विजयके साथ वह मथुरा चली जाती है। विजयके हत्या-अपराधके भयसे भाग जानेपर वह भी एक दिन बाथमके चक्करसे निकल भागती है। घण्टी, यमुनाके विपरीत पुरुषोंके अत्याचारोंका अधिक आक्रोशपूर्ण विरोध करती है। पगली घण्टीकी मुलाकात अनायास ही अपनी माँ नन्दोसे हो जाती है। किशोरी दोनोंको निर्वासित कर देती है। घण्टी अन्तमें भारत-संघम समाज-सेविकाके रूपमें काम करने लगती है। विजयके दाह-संस्कारकी व्यवस्थामें सहयोग देना उसके सेविका स्वरूपका परिचायक है। —शि० ना० च०

घनश्याम–इनका जन्म असनी (जिला फतेहपुर)के कान्यकुब्ज कुलमें १६८० ई०में हुआ और मृत्यु १७७८ ई० में। 'दिग्विजयभूषण'में उद्धृत छन्दके अनुसार ये बांधवगढ़ (रीवां)के बघेल राजाके आश्रित कवि थे। 'शिवसिंह सरोज' में उद्धृत छन्दके अनुसार काशिराजके आश्रयमें इनका कुछ दिन रहना भी सिद्ध होता है। शिवसिंहने 'कालिदास हजारा'में इनके छन्दोंका संकलित होना माना है, जो भगवतीप्रसाद सिंहके अनुसार (दि० भू० की भूमिका) उचित नहीं है, क्योंकि इसके संकलन-काल १६९३ ई०में इनकी अवस्था केवल १३ वर्ष ठहरती है। स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं मिलता, शिवसिंहने इनके २०० छन्द संगृहीत किये थे। इनके काव्यमें आलंकारिक चमत्कार तथा ऊहात्मक कल्पना विशेष रूपसे पायी जाती है। —स०

घनश्यामदास बिरला–देशके प्रसिद्ध उद्योगपति। आपका जन्म पिलानी (राजस्थान)में १८९१ ई० में हुआ। हिन्दी भाषा और साहित्यमें प्रारम्भसे ही रुचि रही है। स्वयं भी लिखते रहे हैं। महात्मा गान्धीके निकट सम्पर्कमें रहे। 'बापू' नामक आपका ग्रन्थ विशेष रूपसे आदृत हुआ। इसकी भूमिका स्वर्गीय महादेव देसाईने लिखी थी। अंग्रेजीमें आपकी कृति 'इन द श्रेडो ऑव द महात्मा' प्रकाशित हुई है।

घनानंद–ये रीतिकालीन कवि हैं। इनके जीवन-चरित्रका व्यवस्थित विवरण कहीं भी प्राप्त नहीं होता। ग्रियर्सनने अपने पूर्ववर्ती साहित्य-इतिहासकारों महादेव प्रसाद और शिवसिंहके आधारपर अपने 'माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑव हिन्दुस्तान'में इनके सम्बन्धमें थोड़ी जानकारी दी है। वे इन्हें जातिका कायस्थ और बहादुरशाहका मीर मुंशी बतलाते हैं। जब ये विरक्त हो मथुरा, वृन्दावन चले गये तब नादिरशाहके सिपाहियों द्वारा तलवारसे मार डाले गये। महाराज रघुराज सिंह जू देवके 'भक्तमाल' ग्रन्थमें भी इनका चरित्र दिया गया है। ज्ञात होता है कि उसमें मथुरामें प्रचलित किंवदन्तीका आधार लिया गया है। मथुरामें जब दिल्लीके किसी शाहजादाको जूतेकी माला पहनाकर अपमानित किया गया तब उसने दिल्लीसे सेना बुलाकर नागरिकोंका 'कत्लेआम' करवाया। उस समय घनानन्द सखी-भावमें भगवान् कृष्णकी उपासना कर रहे थे। सैनिकोंने उनपर तलवारका वार किया, पर वे मरे नहीं। उन्होंने भगवान्से मुक्तिकी प्रार्थना की और सैनिकोंसे पुनः 'वार' करनेको कहा। इस बार उनके प्राण निकल गये पर शरीरसे रक्तकी एक बूँद भी नहीं निकली—"घन आनन्द तन कढ्यौ न लोहू, सो चरित्र लखि पर्यौ न कोऊ" गोस्वामी श्री राधाचरणने इनके सम्बन्धमें एक छप्पय लिखा है—"दिल्लीश्वर नृप निमित्त एक धुरपद नहिं गायौ। पै निजप्यारी कहे सभाको रीझि रिझायौ॥ कुपित होय नृप दिये निकाम वृन्दावन आये। परम सुजान सुजान छाप पद कवित बनाये॥ नादिरशाही ब्रजरज मिले किय न नेक उच्चार मन। हरिभक्ति बेलि सिंचन करी घनआनन्द आनन्द घन॥"

इससे कविका वेश्या सुजानसे प्रेम-सम्बन्ध उल्लिखित है। कहा जाता है कि कविने उसीके नामको श्रीकृष्णके नामपर ढालकर छन्द रचना की। इस प्रकार कविके जीवनकी सामग्रीका मुख्य आधार रघुराजसिंह जूकी 'भक्तमाल' और राधाचरण गोस्वामीका 'छप्पय' है। इनकी सामग्री किंवदन्तीपर ही आधारित है। किंवदन्तीके आधारपर ही ये निम्बार्क-मतानुयायी और सखी भावोपासक भक्त माने जाते हैं। मनोहर लाल गौडको भवानीशंकर याज्ञिक द्वारा प्राप्त 'जय कवित्त'के चार भड़ौआ छन्दोंमें कविकी जीवनीका उल्लेख मिला है। छन्दोंके प्रारम्भमें ही लिखा है—"कायथ आनन्दघन महा हरामजादो हो। सुब्रजकी कटामे आयो परन्तु अपजस वाको थिर है—ताको वर्णन"। एक भड़ौआ जिसमें कविका 'तुरकिनी सुजान' के प्रेम-सम्बन्धका वर्णन है, यहाँ दिया जा रहा है—"डफरी बजावे डोम ढाढी सम गावै, काहू तुरकै रिझावै तब पावै झूठौ नाम है। तुरकिनी सुजान तुरकिनीको सेवक है, तजि रामनाम वाकौ पूजै काम धाम है।"

'मिश्रबन्धु विनोद' में इन्हे वेश्यासक्त बतलाया गया है। रामचन्द्र शुक्लने भी मिश्रबन्धु-विनोद और गोस्वामीजीके छप्पयका आधार लिया है। जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने इनकी जन्मभूमि बुलन्दशहर जिला मानी है और यही अनुमान ठीक जान पड़ता है। इनके जन्म और मृत्युके समयमें भी विद्वानोंमें मतभेद है परन्तु यह तो उनके

यत्र-तत्र बिखरे हुए पदों तथा अन्य ग्रन्थोंके आधारपर निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि ये विक्रमकी १८वीं और १९वीं शताब्दीमें विद्यमान थे। लाला भगवानदीन इनका जन्म १६५८ ई० (सं० १७१५) और मृत्यु १७३९ ई० (सं० १७९६ वि०); रामचन्द्र शुक्ल जन्म-समय १६८९ ई० (सं० १७४६) के लगभग और विश्वनाथप्रसाद मिश्र १६७३ ई० (सं० १७३०) के आसपास मानते हैं, जिसका समर्थन मनोहरलाल गौड भी करते हैं। कविकी मृत्यु मथुरामें नादिरशाहके आक्रमणके समय हुई। इस आक्रमणका समय ११ मार्च सन् १७३९ है। इस समयका समर्थन ग्रियर्सन, राधाचरण गोस्वामी और रामचन्द्र शुक्ल करते हैं परन्तु इतिहास-ग्रन्थोंसे ज्ञात होता है कि नादिरशाहका आक्रमण केवल दिल्लीपर हुआ और वहीं भयकर नर-सहार भी हुआ था। उसने मथुरापर चढाई की ही नहीं। मथुरापर अब्दाली दुर्रानीका दो बार आक्रमण हुआ और प्रत्येक बार नागरिकोका कत्लेआम भी। ज्ञानवती त्रिवेदीका यह मत समीचीन जान पडता है कि कवि मथुरा पर अब्दाली दुर्रानीके दूसरे कत्लेआमके समय १६६० ई० (सं० १८१७) मे मारे गये।

हिन्दीमे आनन्द घन, घन आनन्द, आनन्द और घनानन्द नामसे अनेक रचनाएँ प्रचलित है। पहले इन सबको एक ही माना जाता रहा है। बहुत कुछ गडबड़-झाला तो आनन्द घन कविके अनेक नामोंकी छापके कारण पैदा हुआ है। उसने आनन्द घन, अनन्दघन, आनन्दमोद, आनन्दनिधान, आनन्द, आनन्दमेघ, आनन्दमेह, घन आनन्द आदिका प्रयोग किया है। कदाचित् छन्दोभंगकी रक्षाके लिए कविका नाम आनन्दघन और उपनाम घनानन्द जान पडता है। आनन्द घनानन्दमे पृथक् कवि सिद्ध होते है। कुछ समयतक जैनधर्मी आनन्दघन कवि और घनानन्दकी एकता मानी जाती रही है, पर विश्वनाथ प्रसाद मिश्रने दोनों कवियोकी पृथक्-पृथक् रचनाएँ छापकर भिन्नता स्पष्ट कर दी।

घनानन्दने सुजानका इतनी तन्मयतासे अपने पदोमे उल्लेख किया है कि उसका आध्यात्मीकरण-सा हो गया है। उसका उनकी प्रेयसी होना ही अधिक सिद्ध होता है। कहा जाता है कि वह मुहम्मदशाहके दरबारमे, जहाँ कवि भी थे, नर्तकी (वेश्या) थी और उसीके प्रेममे कविने अपनेको अर्पित कर दिया था—उसीमे भगवान्के नाना रूपोंके दर्शन किये थे।

आनन्दघन या घनानन्दकी रचनाएँ मुक्तक और निबन्धरूपमें प्राप्त होती हैं। इनकी कतिपय रचनाओका सर्वप्रथम प्रकाशन हरिश्चन्द्रने 'सुन्दरी तिलक'मे कराया था। सन् १८७० में उन्होंने 'सुजान सतक' नामसे इनके ११९ कवित्त प्रकाशित किये। इसके पश्चात् जगन्नाथदास 'रत्नाकर'ने सन् १८९७ में 'सुजान सागर' छपवाया। सन् १९०७ में काशीप्रसाद जायसवालने इनकी 'बियोग बेलि' और 'विरह लीला'को काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित कराया। शम्भुप्रसाद बहुगुनाने कविकी कृतियोंका विशेष अध्ययन कर उनके ६५ कवित्त, सवैये, दोहे आदि और ५८ गेय पद अपनी 'घन-आनन्द' पुस्तकमें खोजपूर्ण भूमिका सहित प्रकाशित कराये। विश्वनाथप्रसाद मिश्रने कवि पर विशेष शोध-कार्य किया और उनकी रचनाओंके तीन संग्रह प्रकाशित कराये-१. घनानन्द कवित्त (जिसमें २८८ सवैये और २१४ कवित्त हैं) में कविके समसामयिक काव्य-प्रेमी ब्रजनाथ द्वारा संगृहीत प्रतिका उपयोग किया गया है, जो कविकी कृतियोंका प्राचीनतम संग्रह माना जाता है। २. दूसरा संग्रह सं० २००२ में छपा है, इसमें कवित्त, सवैयोंके अतिरिक्त घनानन्दके ५०० पद, 'बियोग बेलि', 'इश्कलता', "यमुनायश', 'प्रीति पावस' तथा 'प्रेम पत्रिका'का संग्रह है। कविके सवैयोंके संग्रहमें कविका 'सुजान हित' प्रबन्ध मुख्य है। ३. घनानन्द ग्रन्थावलीका प्रकाशन १९५२ ई० (सं० २००९)में हुआ। इसमें वृन्दावन तथा लन्दनके संग्रहालयोंकी हस्तप्रतियोंका प्रयोग कर अन्य विकीर्ण सामग्रीका भी संग्रह किया गया हैं। इसमें आनन्दघनकी कई पुस्तकें प्रकाशित की गयी हैं—(१) 'कवित्त सवैयों का संग्रह', (२) 'पदावली', (३) 'कृपानन्द', (४) 'बियोग बेलि', (५) 'इश्कलता', (६) 'यमुनायश', (७) प्रीतिपावस', (८) 'प्रेम पत्रिका', (९) 'अनुभवचन्द्रिका', (१०) 'रंगबधाई', (११) 'प्रेम पद्धति', (१२) 'वृषभानपुर सुषमा वर्णन,' (१३) 'गोकुल गीत', (१४) 'नाममाधुरी', (१५) 'गिरि पूजन' (१६), 'विचार सार', (१७) 'दानघटा', (१८) 'भावना प्रकाश', (१९) 'ब्रजस्वरूप', (२०) 'प्रेमपहेली', (२१) 'रसायनयश', (२२) 'गोकुल विनोद', (२३) 'कृष्ण कौमुदी', (२४) 'धाम चमत्कार', (२५) 'प्रिया प्रमाद', (२६) 'वृन्दावन मुद्रा', (२७) 'ब्रजप्रसाद', (२८) 'गोकुलचरित्र', (२९) 'मुरलीका मोद', (३०) 'मनोरथ मंजरी', (३१) 'गिरिगाथा', (३२) 'ब्रजव्योहार', (३३) 'छंदाष्टक', (३४) 'त्रिभंगी', (३५) 'परमहसावलो', (३६) 'कर्तृत्व तथा शीर्षक परीक्षा' आदि।

रामचन्द्र शुक्लने कविको रोमांटिक-धाराका श्रेष्ठ कवि कहा है। उसकी ब्रजभाषा सजीव, लाक्षणिकता तथा व्यंजना प्रचुर और व्याकरणसम्मत है। अपने भावोंमें फारसी काव्यसे अनुप्राणित होते हुए भी कविने भाषामें उसका बेमेल मिश्रण नहीं होने दिया। कवि ध्वन्यात्मक शब्दोंके प्रयोगमे पटु है। उसके समकालीन भडोआकारने उसकी कविताकी आलोचना करते हुए लिखा है—"हुरकिनी सुजान है तुरकिनीको सेवक है, तजि राम नाम वाको पूजे काम धाम है। और बेनको चुरावे वाको मजमून लावे....।" आदि। इससे प्रतीत होता है कि कविने फारसी साहित्यसे भी भावग्रहण किया है। रीतिकाव्यमें कविने आत्माभिव्यक्ति द्वारा मुक्त काव्य-धाराका जो रूप प्रस्तुत किया, वह उसकी अपनी सूझ है।

[सहायक ग्रन्थ—घनानन्द और स्वच्छन्द काव्यधाराः मनोहरलाल गौड; हि० सा० इ०; घनानन्द ग्रन्थावलीः सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र; मि० वि०; माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑव हिन्दुस्तान : ग्रियर्सन।] —वि० मो० श०

घाघ—ये जातिके दुबे (ब्राह्मण) और कन्नौजके रहनेवाले कहे जाते है तथा इनका जन्म सन् १६९६ ई०में हुआ माना जाता है। शुक्लजी, रसालजी तथा हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि प्रायः सभी इतिहासकारोंने इन्हें हिन्दीका

कवि या हिन्दीका लोककवि माना है। रामनरेश त्रिपाठीने घाघके सम्बन्धमें काफी छानबीन की है और इन्हें अकबरका समकालीन स्वीकार किया है। इनका यह भी कहना है कि घाघने अपने समकालीन बादशाह अकबरके नामपर 'अकबराबाद सराय घाघ' नामका गाँव बसाया था, जो आज भी है और 'सराय घाघ' या 'चौधरी घाघ' नामसे पुकारा जाता है। लगता है कि इन विद्वानोंका ध्यान 'डाक' नामके प्रसिद्ध आसामी तथा उड़िया लोककवियोंकी ओर नहीं गया है। आसाममें 'डाक' नामके प्रसिद्ध लोककवि हो गये हैं, जिनके 'वचन'का संग्रह प्रकाशित हो चुका है। उनके छन्द भी घाघ जैसे हैं। अधिकांश तो ऐसे हैं, जिनको हिन्दी छन्दोंका आसामी रूपांतर कहा जा सकता है। उड़ीसाके 'डाक' कविके बारेमें भी यही बात है। तुलनात्मक अध्ययनके आधारपर यह निष्कर्ष निकलता है कि ये तीनों ही एक कवि ही हैं। बिहार और राजस्थानमें घाघ 'डाक' नामसे भी प्रसिद्ध हैं। इससे भी डाक और घाघ या उक्त तीनों कवियोंके एक माननेको बल मिलता है। मजेकी बात यह है कि उड़ीसावाले इनका जन्मस्थान उड़ीसामें, आसामवाले आसाममें और राजस्थानवाले राजस्थानमें मानते हैं। ऊपर इनके कन्नौजके होनेकी बात भी कही जा चुकी है। ऐसी स्थितिमें यह एक समस्या है कि ये मूलतः कहाके थे और मूलतः किस भाषाके कवि थे।

पूरे उत्तर भारतमें क्षेत्रीय भाषाओंमें इनके खेतीविषयक तथा अन्य व्यावहारिक छन्द मिलते हैं। स्थानके अनुसार इनकी भाषा तथा कभी-कभी शब्दावली बदलती गयी है। ये छन्द मौसम, वर्षा, बुवाई, कटाई, दवाई, गोड़ाई, भोजन, स्वास्थ्य तथा व्यवहार आदिके सम्बन्धमें हैं। इनके बहुत से छन्द तो लोकोक्ति बन चुके हैं। इनके छन्द काव्य न होकर तुकबन्दी मात्र हैं किन्तु हैं बड़े कामके। देहातके अनपढ़ किसानोंके लिए वे कृषि-विज्ञानके जीते-जागते सूत्र हैं। प्रायः उनमें साहित्य-परम्परामें बहु प्रचलित छन्दोंका प्रयोग नहीं है। अलंकार आदि भी प्रायः नहींके बराबर हैं।

इनके छन्दोंकी कोई पुरानी पाण्डुलिपि नहीं मिलती। लोगोंसे सुन-सुनकर बहुतसे लोगोंने इन्हें संगृहीत किया है। सबसे अच्छा संग्रह रामनरेश त्रिपाठीका है जो 'घाघ और भड्डरी' नामसे (हिन्दुस्तानी अकादमी, इलाहाबाद, १९३१ ई०) छप चुका है।

[सहायक ग्रन्थ—१. हिन्दी नीति काव्य-संग्रह : भोलानाथ तिवारी।] —भो० ना० ति०

घासीराम–इनका जन्म महावाँ (जिला हरदोई)के एक ब्राह्मण कुलमें १५६६ ई०में हुआ और जीवन-काल १६२५ ई० तक माना जाता है। शिवसिंहने 'कालीदास हजारा'-में इनके छन्द संकलित बतलाये हैं। इनकी एकमात्र रचना 'पक्षी विलास' १५२३ ई० की मानी जाती है, जो अन्योक्ति शैलीमें लिखा हुआ स्वीकार किया गया है। मुक्तक छन्द प्राचीन संकलनोंमें मिलते हैं। 'शिवसिंह सरोज' तथा 'दिग्विजयभूषण'में उद्धृत इनके छन्दोंसे जान पड़ता है कि इन्होंने नख-शिख, नायिका-भेद तथा अलंकार जैसे विषयपर छन्द-रचना की है। इनके काव्यमें आलंकारिक चमत्कार विशेषरूपसे परिलक्षित होता है। —सं०

चंडीप्रसाद 'हृदयेश'–जन्म १८९८ ई०, मृत्युतिथि १९३६ ई० के लगभग। ये जातिके क्षत्रिय थे। पिताका नाम शंभूनाथ सिंह था। आधुनिक हिन्दी गद्यमें एक शैलीकारके रूपमें 'हृदयेश'का विशेष स्थान है। भाषाके अलंकृत तथा समृद्ध रूपका प्रयोग आपने बड़ी कुशलताके साथ किया है। आपके उपन्यास और कहानियोंमें जैसे पूर्व छायावादका गद्यरूप देखनेको मिलता है। अवश्य ही इसकी कथा-दृष्टि नितान्त आरम्भिक ढंगकी रही। 'हृदयेश'के कहानी-संग्रह हैं—'नन्दन निकुंज', 'गल्प संग्रह', 'वनमाला' और उपन्यास हैं 'मंगल प्रभात' तथा 'मनोरमा'। अपने प्रकाशनके समय 'मंगल प्रभात' अत्यन्त लोकप्रिय सिद्ध हुआ था। यह भावपूर्ण शैलीमें एक आदर्शवादी उपन्यास है जिसमें सेवा, त्याग, आत्म-शुद्धि आदि उच्च कृतियोंकी महिमाका वर्णन है।

चंद–चन्द 'पृथ्वीराज रासो'में दो प्रकारसे आता है, एक तो कथा-नायकके सहचरके रूपमें और दूसरे काव्यके कविके रूपमें। कहीं तो यह चन्द विरदिआ है, कहीं चन्द, कहीं चन्द वरदाइ और कहीं भट्ट चन्द। 'विरदिआ' या 'विरुदिआ'का अर्थ है विरुद(प्रशस्ति)का गान करनेवाला। 'वरदाइ' या 'वरदाई'का अर्थ बहुत स्पष्ट नहीं है किन्तु रचनामें एक स्थानपर आता है कि उसे हरसे सिद्धिका वर प्राप्त था। पृथ्वीराज उससे कयमासवधके अनन्तर पूछता है—"कहा भुजग कहा उद्दे सुर निकसु कव्व कवि षंडि। कइ छयमास बताहि मो कइ हर सिद्धीवर छंडि॥" किन्तु अन्यत्र यह ध्वनित होता है कि उसे सरस्वतीका वर प्राप्त था, यथा कन्नौजमें जयचन्दके भेजे हुए कवि उसका स्वागत करते हुए उससे कहते हैं—"जउ सरसइ वरु जानहु रचउ। तउ अदिट्ठ वरनउ नृत संचउ॥" इस स्थानपर यह अवश्य सम्भव है कि 'वरु' शब्दका प्रयोग प्रसिद्ध स्तुति-पाठक जाति 'भाट'के अर्थमें हुआ है। 'विरुदिआ' और 'भट्ट' प्रायः समानार्थी माने जा सकते हैं। इसलिए कहा जा सकता है कि वह जातिसे भट्ट था और विरुद-गान करना उसका कार्य था। उसे हरसे किसी प्रकारकी सिद्धिका वरदान प्राप्त थी। उसके सम्बन्धमें ऐसा विश्वास किया जाता था, यह भी माना जा सकता है।

इस चन्दका स्वभाव कदाचित् उग्र था, इसीलिए रचनामें इसे 'चंड चंद' और 'चंडिय' भी कहा गया है। 'चंड चंद' स्वयं चन्दके मुखसे कहलाया गया है। कन्नौज राजा जयचन्दकी प्रशंसामें वह कहता है—"जपिय सच्च सो चंड चंद। थप्पिय जाय तिरहूति पिड॥" 'चडिय' कवि करके उसका उल्लेख किया गया है। कयमास-वधके अनन्तर पृथ्वीराजकी सभामें वह इसी रूपसे आता है—"सकल सूर बोलिव सभ मण्डिय। आसिष आइ दीघ कवि चडिय।" 'चंडिअ'का अर्थ 'कृत्त', 'छिन्न' अथवा 'काटा हुआ' होता है, जो यहाँ सम्भव नहीं है। असम्भव नहीं कि 'चंडिय' 'चंड'के अर्थमें ही प्रयुक्त हो और 'मंडिय' से तुक मिलानेके लिए 'चंड'का ही एक विकृत रूप कर लिया गया हो।

इस चन्दके सम्बन्धमें प्रायः यह प्रसिद्ध रहा है कि इसका जन्म पृथ्वीराजके साथ-साथ हुआ और दोनोंका प्राणान्त भी साथ-साथ हुआ। पहली प्रसिद्धिका आधार 'रासो'का एक दोहा रहा है, जो उसके समस्त रूपोंमें नहीं मिलता है और इसलिए जिसकी प्रामाणिकता नितान्त सन्दिग्ध है। दूसरी प्रसिद्धिका आधार 'रासो'की कथा रही है जिसमें शब्दवेधी बाणकी सहायतासे पृथ्वीराज द्वारा शहाबुद्दीन गोरीका वध करानेके अनन्तर पृथ्वीराज और चन्दका प्राणान्त होना कहा गया है—"मरन चन्द बरदिआ राज धुनि साह हन्यउ सुनि। पुहपन्जलि असमान सीस छोडीत देवतनि॥" किन्तु 'चन्द बरदिआ और राजाका मरण हुआ'के स्थानपर "मरन चन्द बरदिआ राज"से अर्थ 'चन्द बरदिआ कहता है, राजाका मरण हुआ' भी लगाया जा सकता है।

एक प्रसिद्धि और रही है कि इसी कारण चन्द अपने काव्यको पूरा नहीं कर सका था, और वह इस सम्भावना को जानते हुए जब पृथ्वीराजका उद्धार करने गजनी जाने लगा था, उसने अपने पुत्र जल्हको इस रचनाको पूरा करनेका कार्य सौंपा था। इसका आधार भी 'रासो'मे आये हुए छन्द हैं किन्तु ये छन्द 'रासो'के सबसे अधिक प्रक्षिप्त रूपमें ही मिलते हैं अन्यमे नहीं, इसलिए विश्वसनीय नहीं है।

यह चन्द वास्तवमें पृथ्वीराजका समकालीन और उसका सहचर था, यह रचनासे पूर्णतः प्रमाणित नही होता है, कारण यह है कि रचनाके जितने भी रूप-रूपान्तर प्राप्त हैं, कुछ न कुछ अनैतिहासिकता सभीमे पायी जाती है। यह अवश्य है कि जो रूप-रूपान्तर आकारमे जितने ही बड़े हैं, उनमें यह अनैतिहासिकता उतनी ही अधिक है। उदाहरणके लिए रचनाके समस्त रूपोंमे तत्कालीन आबूपतिको सलष और उसके पुत्रको जैत कहा गया है, और इन्हें पृथ्वीराजका सामन्त कहा गया है जो उसके साथ क्रमशः जयचन्द और गोरीसे हुए युद्धोंमे मारे जाते हैं किन्तु यह इतिहाससे प्रमाणित है कि उस समय आबूपति धारावर्ण था जो गुर्जरेशका सामन्त था। ऐसी दशामें यही ज्ञात होता है कि 'पृथ्वीराज रासो'का रचयिता कोई परवर्ती कवि है, जिसने चन्दके नामसे सारे काव्यकी रचनाकी है। यदि यह कहा जाय कि कोई चन्द पृथ्वीराजका समकालीन और उसका आश्रित रहा होगा, जिसकी स्फुट रचनाओंके आधारपर 'पृथ्वीराज रासो'का पुनर्निर्माण बादमें किसी अन्य कविने किया हो, तो यह एक कल्पना ही कही जायगी। क्योंकि 'रासो'के जितने भी पाठ हैं, उनकी सहायतासे उसका कोई भी ऐसा पाठ नहीं तैयार किया जा सकता जो इतिहाससे कुछ न कुछ विरुद्ध न जाता हो। फिर भी रचना अत्यन्त प्राचीन है। इसलिए उसका महत्त्व प्रमाणित है। —मा० प्र० गु०

चंदन—चन्दनराय नाहिल पुवायाँ (जिला शाहजहाँपुर)के रहनेवाले बन्दीजन थे। धर्मदास इनके पिता, फकीरेराम पितामह और भीषम प्रपितामह थे। चन्दनके दो पुत्र भी थे—प्रेमराम और जीवन। इनका काव्य-काल सन् १७५३ और १८०८के बीचका समय है। ये हिन्दी, संस्कृत और फारसीके मर्मज्ञ विद्वान् थे। फारसीमें भी ये अच्छी शायरी करते थे और उसमें इनका तखल्लुस 'संदल' था। १२ इनके ऐसे चेले बताये जाते हैं, जिनमें सबके सब कवि थे, उनमें भी कोई मनभावन बहुत प्रसिद्ध हुए हैं। ये इतने मनमौजी, विद्वान् और स्वाभिमानी थे कि राजा केशरीसिंहके अतिरिक्त ये किसीके यहाँ आश्रयार्थ नहीं गये। कहा जाता है कि एक बार इनकी प्रसिद्धि सुनकर अवधके नवाबने बुलावा भेजा और इन्हें अपने यहाँ आनेपर मजबूर किया। इसपर कविने उत्तरमें निम्नलिखित दोहा लिखकर भेजा और स्वयं नाहिल छोड़कर काशी चले गये—"खरी टूक खर खरथुआ खारी नोन सँजोग। ये तौ जो घर ही मिले चन्दन छप्पन भोग।"

कविकी कुल रचनाएँ ५२ कही जाती हैं, जिनमें विशेष रूपसे केवल ८ का ही पता चलता है—१. 'कृष्ण काव्य' (रचना काल १७५३ ई०), २. 'केशरी प्रकाश' (१७६० ई०), ३. 'राधाजीको नखशिख' (१७६८ ई०), ४. 'प्राग्य विलास' (१७६८ ई०), ५. 'काव्याभरण' (१७८८ ई०), ६. 'रस कल्लोल' (१७८९ ई०), ७. 'तत्त्व-संज्ञा' और ८. 'पीतम वीर विलास'(१८०८ ई०)। 'काव्याभरण'की हस्तलिखित प्रति कृष्णबिहारी मिश्रके संग्रहमें है। इनके अतिरिक्त भी 'चन्दन सतसई', 'पथिक बोध', 'शृंगार सार,' 'नाममाला' (कोश), 'तत्त्व संज्ञा' और 'सीत बसन्त' नामक रचनाएँ भी बतायी गयी हैं। 'दीवाने संदल' कविकी फारसीकी रचना है। 'शृंगार सार', 'काव्याभरण' और 'रस कल्लोल' रीति रचनाएँ हैं तथा 'तत्त्व संज्ञा' एवं 'प्राग्य विलास'मे तत्त्वज्ञानकी बातें वर्णित की गयी हैं। 'चन्दन सतसई' बिहारी सतसईके आदर्शपर रची गयी है और 'सीत बसन्त' संवेदनाको तरल बनानेवाली एक रुचिकर लोक कहानी है। इसे देखकर स्पष्ट ही यह कहा जा सकता है कि कवि परम्परित रीतिके पचड़ेमें ही पड़ा रहना नही चाहता था, वरन् भिन्न-भिन्न विषयोंको अपनाकर साहित्य-समृद्धिमें वैविध्य लाना चाहता था। परम्परासे अलग होकर 'सीत बसन्त' जैसी जनप्रिय कहानीको अपने कृतित्वका विषय बनाना इसका सबसे बड़ा प्रमाण है। इस दृष्टिसे भी कविका अनूठा महत्त्व है। भाव और भाषापर कविका महत्त्वपूर्ण अधिकार था। इनका काव्य सरस, सरल और रमणीय है। मिश्रबन्धुओंने इसी नाते इन्हें दास-श्रेणीका कवि माना है।

[सहायक ग्रन्थ—खो० वि० (वा० १९०१; त्रै० २, १०, १२, १३); शि० स०; दि० भू०; हि० सा० इ०।] —रा० त्रि०

चंदर बदन औ माहियार—यह रचना दक्खिनी हिन्दीका प्रेमाख्यान है और इसके रचयिता 'मुकीमी' हैं। मुकीमीके जीवन-वृत्त या उनके जीवन-कालतकके विषयमें पर्याप्त प्रामाणिक सामग्री अभीतक उपलब्ध नहीं है। 'उर्दू ए कदीम'के लेखक सैयद शम्शुल्ला कादिरीने "सदी बारहवींमें थे कम साल दो। लिख्या नज्म कूँ मैंने वातर्ज नौ" उद्धृत करके इसके आधारपर उसका रचनाकाल सन् १०९८ हि० (१६८६ ई०) ठहराया है (पृ० ९४) किन्तु यह पंक्ति प्रकाशित रचना या इसके किसी प्राप्त एवं

माननीय हस्तलिखित प्रतिमें नहीं दीख पड़ती। ऐसी दशामें 'योरपमें दखनी मख़तूतात'के लेखक नसीरुद्दीन हाशमीने, "बाज़ अन्दरूनी शहादतों"के आधारपर अनुमान किया है कि यह पुस्तक सन् १०३७ हि० और सन् १०५० हि०के बीच (या सन् १६२७-३९ ई०में) किसी समय लिखी गयी होगी (पृ० २१०)। परन्तु अपनी "दकनमें उर्दू"के अन्तर्गत उन्होंने फिर इसका रचनाकाल सन् १०५० हि० (सन् १६३९ई०) ही मान लिया ह (पृ० १५४) जिसके लिए वे कोई कारण भी नहीं बताते। इसके विपरीत 'उर्दू मस्नवीका इर्तका'के लेखक अब्दुल कादिर सर्वरीने मही‍मुद्दीन कादरी 'जोर'की पुस्तक 'उर्दू शहपारे' (भा० १ पृ० ३०)के आधारपर कहा है कि यह समय सन् १०३५ हि० और १०४८ हि०के बीच (या सन् १६२५-३८ई०में) कभी होगा, क्योंकि "इसमें पहले गोलकुण्डामें गवासीकी मस्नवी 'सैफुल मुल्क और बदीउज्जमाल' (सन् १०३५ हि०में ही) लिखी जा चुकी थी" (पृ० ४९-५०) जिसकी ओर 'मुकीमी'ने संकेत किया है। इस बातकी पुष्टि डा० जोरने अपनी पुस्तक 'तजकिरा उर्दू मख़तूतात' (पृ० ३८)के अन्तर्गत भी फिर की है और उन्होंने यह भी कहा है कि 'अमीन' कविके प्रेमाख्यान 'बहराम व हुस्नबानू' (रचनाकाल सन् १०५० हि०)में 'मुकीमी'की ऐसी काव्य-रचनाकी चर्चा आ गयी है। प्रकाशित 'चन्दर बन्दन और महियार'के सम्पादक मुहम्मद अकबरुद्दीन सिद्दीकीने सम्भवतः कोई स्पष्ट प्रमाण न मिलनेके ही कारण इसके लिए निश्चित सन् देना उचित नहीं समझा है।

परन्तु 'मुकीमी'के पूरे नाम मिर्जा सैयद मुहम्मद मुकीमीके साथ बहुत लेखकोंने जहाँ 'अस्तराबादी' जोड़कर इस कविके जन्मस्थानका उत्तरी ईरानके अस्तराबाद (या अससाबाद) होना सिद्ध करना चाहा है वहाँ सिद्दीकीने यह अनुमान किया है कि उसे 'मशहदी' होना चाहिए। इनकी धारणा है कि वह सन् १०१० हि० और १०१५ हि०के बीच (या १६०१-६ई०में) किसी समय, दक्षिण भारतके बीजापुर नगरमें ही उत्पन्न हुआ होगा जहाँपर उसके पिता मीर मुहम्मद रजा रिज़वी (मला रजाई) मशहदीका कुछ प्रमाणोंके आधारपर सन् ९८८ हि० (सन् १५७९ ई०)में वर्तमान रहना सिद्ध होता है, इन्होंने हाशमी तथा अन्य अनेक लेखकोंके भी इस कथनके प्रति कि, उसने जन्मस्थान अस्तराबादसे दक्षिण शीराजमें शिक्षा पायी थी तथा अपने पिताका देहान्त हो जानेपर जीविकाकी खोजमें वह बीजापुर आया था, कहीं अपनी सहमति नहीं प्रकटकी है, प्रत्युत अपने मतके समर्थनमें बहुतसे तर्क उपस्थित किये हैं तथा इसके लिए कई तत्कालीन प्रमाण भी उपस्थित किये हैं। इनका यह भी कहना है कि 'मुकीमी'का मृत्युकाल भी सन् १०७५ हि० और सन् १०८० हि०के बीच कभी हो सकता है, वह अपनी फारसी रचनाओंमें 'मुकीम' या 'सलमी' उपनाम रखता होगा और दक्खिनी हिन्दीमें 'मुकीमी' देता होगा तथा उसने जीवन-कालका अधिकांश बीजापुरमें ही व्यतीत किया होगा। 'मुकीमी'का कुछ कालतक गोलकुण्डा एवं अहमदनगरमें रहना भी बतलाया जाता है और उसके फारसी दीवानमें सन् १०६७ हि० (१६५६ई०) लिखित मिलता है। नज़ीर अहमदने अपने 'जुहूरी-लाइफ ऐण्ड वर्क्स' नामक अंग्रेजी निबन्धमें 'मुकीमी'के ईरानी होनेपर, उसका दक्खिनी हिन्दीमें भी किसी मस्नवीका सफलतापूर्वक रचना करना सम्भव नहीं समझा है (पृ० १६३) तथा इस सम्बन्धमें कुछ अन्य लेखकोंने भी सन्देह प्रकट किया है परन्तु उसके जन्मसे ही बीजापुरीय सिद्ध हो जानेपर तथा इस बातके कारण भी कि उस समय कतिपय अन्य फारसी कवियोंने भी ऐसा किया था, यह तर्क निर्बल पड़ जाता है।

'मुकीमी'की यह दक्खिनी हिन्दी रचना 'किस्सा सोमहार'के नामसे भी प्रसिद्ध है जिसे 'उर्दू ए क़दीम'के अन्तर्गत (पृ० ९४) "गुर्बत देहकानका फिसाना" बतलाया गया है किन्तु जिसकी 'चन्दर बदन ओ माहियार'से तुलना कर लेनेपर सिद्दीकी इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि दोनो वस्तुतः एक और अभिन्न हैं।

उन्होंने अपने सम्पादित 'चन्दर बदन ओ माहियार' के संस्करणके 'मुकदमः' के प्रायः अन्तमें कुछ हस्तलिखित प्रतियोंका पता देकर यह भी बतलाया है कि हामिदुल्लानदवीके अनुसार इसका एक संस्करण 'करीमी' प्रेस बम्बईसे सन् १२९० हि० (१८७२ ई०) में प्रकाशित हुआ था। इसकी दो हस्तलिखित प्रतियाँ यूरोपमें हैं जिनमेंसे एक इण्डिया आफिसमें है और दूसरी एडिनबरा यूनिवर्सिटीके पुस्तकालयमें है किन्तु प्रथम प्रतिका विवरण देते समय इसके रचयिताका नाम भूलसे 'अजीज' दे दिया गया है जो भ्रमात्मक हो जाता है। 'चंदर बदन ओ माहियार'का आरम्भ 'खुदा' या परमात्माके प्रति विनयसे होता है और फिर उसकी स्तुतिके अनन्तर क्रमशः हजरत मुहम्मद तथा उनके चार यारोंकी प्रशंसाकी जाती है, तत्पश्चात् न तो नियमानुसार किसी शाहे वक्तकी चर्चाकी जाती है न आत्म-परिचय दिया जाता है और न रचनाकालका उल्लेख ही किया जाता है। अपने पीर या धार्मिक सम्प्रदायके विषयमें कुछ नहीं कहा जाता और न स्पष्ट शब्दोंमें इस रचनाके कथानकका कोई आधार ही बतलाया जाता है। सर्वप्रथम "पिरितका रत्न" या प्रेमरत्नको अनुपम ठहराकर उसका महत्त्व वर्णन करते हुए कविने अपनेको "मुहब्बतमें मदहोश" कहा है और तब यह भी प्रकट किया है कि एक बार उससे किसीने एक ऐसी प्रेम कहानी कही जिसे सुनकर लैला और मजनूको भी भूला जा सकता है तथा उसीसे प्रेरणा पाकर इसे लिखना आरम्भ किया और उसके शब्द नये ढंगसे निकलने लग गये। उसने यहाँ पर अपने समकालीन गवासी कविका नाम बड़ी श्रद्धाके साथ लिया है किन्तु फिर यह भी कह दिया है कि मैं किसीका अनुसरण नहीं करता तथा वैसा करना 'नन्हा काम' भी होता है।

कथाका सारांश इस प्रकार है—सुन्दर पटनमें एक हिन्दू राजा रंगरापती था। वहाँ पर एक मन्दिर भी था जिसमें पूजा करने बहुतसे लोग आया करते थे। राजाको कोई लड़का नहीं था, केवल एक लड़की थी जो परम रूपवती थी

और उसका नाम चन्दर बदन था। वर्षमें एक बार वहाँ मेला लगा करता था जहाँ लाखोंकी भीड़ हुआ करती थी और चंदर बदन भी वहाँ पूजा करने जाया करती थी। एक दूसरे नगरका कोई व्यापारी था जिसकी कई पत्नियाँ थीं किन्तु एक ही लड़का था जिसका नाम माहियार (महीउद्दीन) था और वह अपने प्रारम्भिक जीवनसे ही सौंदर्योपासक था। माहियारको किसी प्रकार चन्दर बदनके रूपकी प्रशंसा सुन पड़ी और वह इसे देखनेके लिए आतुर हो उठा। वह किसी बहाने वार्षिक मेलेके अवसर पर सुन्दर पटन आया और वहाँ पर चन्दर बदनको देखकर बहुत प्रभावित हुआ। उसने इससे साग्रह अनुरोध किया कि मुझे कभी अपनेसे दूर न होने दे और अनुनय विनय करता हुआ वह इसके चरणों पर गिर पड़ा परन्तु चन्दर बदनने उस पर कुछ भी दया नहीं की। इसने कहा कि "मै हिन्दू हूँ और तूं तुर्क है। तुझसे मुझमें कोई सम्बन्ध हो ही कैसे सकता है?" ऐसा कहते हुए इसने उसे झिड़की भी दी और कह दिया, "अरे मुए, क्या तूँ दीवाना हो गया है?" जिससे अत्यन्त मर्माहत होकर वह पागल-सा बनकर निकलपड़ा और देश-विदेश भ्रमण करने लगा। घूमता फिरता माहियार किसी प्रकार बीजानगर पहुँचा जहाँका बादशाह फाजिल बहुत गुणवान और परोपकारी भी था। उसने जब इसे बुरी विरहावस्थामें पाया तो इसके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित की। वह इसे अपने महलमें हाथ पकड़कर ले गया और इसे अपनी सुन्दर युवतियोंको दिखलाया, किन्तु इस पर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ा और न उस नगर या देशकी अन्य सुन्दरियोंकी ओर ही वह आकृष्ट हुआ। बादशाहके पूछने पर इसने सुन्दर पटन, उसके राजा रंगरापती तथा उसकी लड़की चन्दर बदनका परिचय दिया तथा उससे अपनी कथा भी कह दी।

बादशाहने यह सुनकर इसे धैर्य दिया और इसे अपने साथ ले सुन्दर पटनके वार्षिक मेलेके अवसर पर आ पहुँचा। यहाँ पर उसने राजा रंगरापतीके यहाँ सन्देश भेजकर उसे अपनी लड़की चन्दर बदनको इसे दे देनेका प्रस्ताव किया जिसे राजाने हिन्दू होनेके नाते ठुकरा दिया। बादशाहने तब इसके साथ फकीरी वेषमें रहकर इसकी सहायता करने की ठान ली। इधर फिर तीसरे वार्षिक मेलेका भी अवसर आ गया जब माहियार चन्दर बदनके निकट गया और यह उसके चरणों पर शीश रखकर प्रार्थना करने लगा। चन्दर बदन इस बार कुछ प्रभावित अवश्य जान पड़ी, किन्तु, अपनी बेबशीके कारण उसने इससे कह दिया 'क्या ऐ दीवाने तूँ अभी तक जीता है?' जिसका कठोर आघात यह सह नहीं सका। इसका देहान्त हो गया, जिससे सभीको आश्चर्य हुआ और लोगोंने इसके ऊपर कफन डालकर इसकी अरथी तैयार की। परन्तु जब लोग अरथी ले जाने लगे तो वह केवल उसी ओर बढ़ पाती थी, जिधर चन्दर बदनका मकान था दूसरी ओर ले जाने पर उसमें रुकावट आ जाती थी। अन्तमें अरथी उसके द्वार पर आकर अटक गयी और लाख प्रयत्न करने पर भी नहीं टली, जिस बातको सुनकर राजा रंगरापती भी वहाँ आ पहुँचा। बादशाहके फिर सन्देश भेजने पर एवं अनुरोध करने पर राजाने चन्दर बदनसे बातचीत की और यह उस घटनासे इतनी प्रभावित हुई कि इसने अपने पितासे आज्ञा मांगी। इसने अपनी माता एवं सहेलियोंसे भी विदा ले ली और बादशाह फाजिलके पास अपने लिए कोई 'आलिम' भेजनेके लिए कहला दिया। आलिमके आने पर इसने उससे इस्लाम धर्मके रहस्यका परिचय प्राप्त किया तथा अपना हृदय शुद्ध करके उसे ग्रहण कर लिया। मुस्लिम होकर यह फिर जाकर सो गयी और माहियारकी अरथी बिना किसी रुकावट के आगे बढने लगी। जब उसके शवको लोगोंने कब्रमें दफनानेके लिए अरथीसे निकाला तो उन्हें यह देखकर महान् आश्चर्य हुआ कि उसकी तथा चन्दर बदनकी 'लाशें' एक दूसरेको आलिंगन कर रही थीं।

इस प्रेमाख्यानके कथानकका आधार एक वास्तविक घटना बतलायी जाती है, जो बीजापुरके आदिल शाही सुल्तान इब्राहिम आदिलशाह द्वितीय (सन् १५७९-१६२८ ई०) के समय घटी थी तथा यह भी कहा जाता है कि अन्तिम समय वह स्वयं भी यहाँ वर्त्तमान था। सिद्दीकीके अनुसार इस बातकी चर्चा काजी नूरुल्ला एवं शाहतजली अली नामक इतिहास लेखकोंने क्रमशः अपनी 'तारीख आदिलशाहिया' एवं 'तुजुक आसफिया'में कुछ विस्तारसे की है तथा दोनों प्रेमियोंकी कब्र भी इस समयतक मद्रास नगरसे ८० मील दूर उत्तर-पश्चिम 'कदरी कोटा'में वर्तमान है। इस प्रकार स्पष्ट है कि यह वृत्त कविके जीवन-कालका भी हो सकता है, किन्तु इस ओर उसने कोई संकेत नहीं किया है। कथा प्रसंगमें उसने 'शाह सुलतान फाजिल'का नाम लेकर उसे शहर 'बीजानगर'का बतलाया है तथा उसे 'शहंशाह आदिल' भी कह डाला है, इसे यदि कुछ मान ले तो हो भी सकता है। इस कहानीकी रचनाका मुख्य उद्देश्य केवल प्रेमतत्त्वका महत्त्व प्रदर्शित करना मात्र ही नहीं, अपितु इस्लाम धर्मकी प्रतिष्ठा और महत्ता सिद्ध करना भी है। इसकी कथावस्तुको लेकर दक्खिनीमें सर्वप्रथम मुकीमीने ही लिखा और फारसीमें 'आतशी' ने रचना की, जिसका उर्दू अनुवाद 'बुलबुल' ने किया। इनके अतिरिक्त फारसीमें लिखी एक रचना किसी 'अख्गर' की भी मिलती है, किन्तु उर्दूकी रचनाएँ कई एक हैं। कहते हैं कि किसी 'इश्क' नामक कविने भी लिखा है और 'आगाह' तथा 'शाकिर' ने तो अपनी-अपनी कहानियोंमें तसव्वुफ (सूफी-मत) की बातें भी सम्मिलित कर ली हैं। 'वाकिफ' नामके एक कविने इसके प्रायः प्रत्येक प्रसंगको बहुत विस्तार देकर लिखा है और उसमें अपना काव्य-चमत्कार भी दिखलाया है। उत्तरी भारतके उर्दू कवियोंमें-से भी 'सेफुल्ला' ने इस विषयको लेकर लिखा है तथा प्रसिद्ध मीरतकी 'मीर' तकने भी अपनी तीन मसनवियोंकी रचना करते समय और दक्खिनी सैयद मुहम्मद ने अपनी 'तालिब व मोहनी' लिखते समय इससे प्रेरणा ग्रहण की है। फिर भी मुकीमीकी इस रचनाका महत्त्व जितना कथा विशेषपर आधारित होनेके कारण है, उतना इसके साहित्यिक सौष्ठवके कारण नहीं। यहाँपर न तो कहीं काव्य-सौन्दर्यकी छटा दीख पड़ती है और न कविका दक्खिनी भाषापर वैसा अधिकार ही सूचित होता है।

उसकी भावुकता अवश्य कहीं न कहीं लक्षित हो जाती है।

[सहायक ग्रन्थ—चन्दर बदन ओ माहियार : स० मुहम्मद अकबरुद्दीन सिद्दकी, दक्खिनी साहित्य प्रकाशक समिति, हैदराबाद, १९५६ ई०; उर्दू ए कदीम : हकीम सैयद शम्सुल्ला 'कादरी', नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, १९२५ ई०; योरपमें दखनी मखतूतात : नसीरुद्दीन हाशमी, हैदराबाद, १९३२ ई०; उर्दू मसनवीका इर्तका : कादिर 'सर्वरी', हैदराबाद, १९४० ई०; दकनमें उर्दू : नसीरुद्दीन हाशमी, लाहौर, १९५२ ई०; जुहुरी : नाजिर अहमद; इलाहाबाद, १९५३ ई०; दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा : राहुल सांकृत्यायन, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, १९५९ ई०।] —प० च०

चंदायन—यह लोर या लोरिक तथा चन्दाकी प्रेमकथा है, जो दाऊद द्वारा रचित है। लोर या लोरिकका इस समय जो प्राचीनतम उल्लेख मिलता है, वह 'लोरिक नाचों' अर्थात् 'लोरिक नृत्य'के प्रसंगमें मिलता है। ज्योतिरीश्वर ठाकुर ने 'वर्ण रत्नाकर'में, जिसकी रचना चौदहवीं शताब्दी विक्रमीयमें हुई थी, नगर-वर्णनका विवरण देते हुए एक स्थानपर 'लोरिक नाचो'का उल्लेख किया है। इससे यह प्रकट होता है कि लोरिककी कथाको लेकर निर्मित किसी लोकगीतसे सम्बन्धित एक नृत्य मिथिलामें चौदहवीं शताब्दी विक्रमीयमें प्रचलित था। इस समय भी लोरिक गीत अनेक नामोंसे उत्तरी भारतके अनेक भूभागोंमें प्रचलित हैं। इसीके किसी रूपको लेकर मौलाना दाऊदने उक्त प्रेमकथा लिखी थी, जो सामान्यतः 'चन्दायन'के नामसे प्रसिद्ध है।

यह रचना अनेक दृष्टियोंसे बड़े महत्त्व की है और यह प्रसन्नताकी बात है कि इधर इसकी कुछ अत्यन्त प्राचीन प्रतियाँ उपलब्ध हुई हैं। यद्यपि किंचित् दुःख इस बातका अवश्य है कि उन प्राप्त प्रतियोंको मिलाकर भी रचनाका पूर्ण रूप हमारे सामने नहीं आ रहा है, किन्तु जितना अंश प्राप्त हुआ है, उतना ही इस रचनाका पर्याप्त परिचय प्रस्तुत करता है। इसलिए उसी अंशको लेकर रचनाका कुछ परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है। प्रतियोंकी लिपि अरबी, फारसी, होनेके कारण, जो अवधीकी ध्वनियोंको व्यक्त करनेके लिए बहुत ही अनुपयुक्त और अपर्याप्त थी और इन अंशोंके भी अलग-अलग एक ही प्रतिमें पाये जानेके कारण पाठके पुनर्निमाणमें बड़ी भारी कठिनाई है और अनेक स्थलोंपर पाठकी उलझनें सुलझ नहीं सकेंगी। आशा है यदि इस महत्त्वपूर्ण रचनाकी कुछ और भी प्रतियाँ प्राप्त हो सकेंगी तो इसका सन्तोषजनक रूपमें सम्पादन हो सकेगा।

'मुन्तखबुत्तवारीख'में आनेवाले अलबदायूनीके एक उल्लेखके कारण इस रचनाका नाम 'चन्दायन' प्रसिद्ध रहा है, किन्तु रचनाका जितना अंश प्राप्त हुआ है, उसमे यह नाम कहीं नहीं आता है। इस अंशमें इनका नाम 'लोर-कहा' आता है जो 'लोर-कथा'का अपभ्रंश है—"लोर कहा मइं हिय खंड गाऊँ (गावउँ)। कथा काव कइ लोग सुनाऊँ (सुनावउँ)।" अतः जब तक रचनामें अन्यत्र 'चन्दायन' नाम न मिल जाय 'लोर कहा' ही रचनाका वास्तविक नाम मानना चाहिये। हो सकता है कि 'रामायण'के अनुसरण पर पीछे यह रचना 'चन्दायन' नामसे प्रसिद्ध हुई हो।

कविने ग्रन्थमें रचनातिथि देते हुए कहा है—"बरस सातसै होई एक्यासी। तिहि माह कवि सरसेउ मासी। साहि पीरोज दिली सुलताना। जौना साहि जीत बखाना।" अलबदायूनीके अनुसार सन् ७७२ हि० (१३७० ई०)में जूनाशाह फीरोजशाहका प्रधान मन्त्री हुआ था। इसलिए ७८१ हि० (१३७९ ई०)में जूनाशाहके मन्त्रित्वकालमें इस रचनाका प्रस्तुत किया जाना ही ठीक लगता है।

सम्पूर्ण प्रतियोंके अत्यधिक खण्डित होनेके कारण रचना कितनी बड़ी रही होगी, इसका कोई निश्चित ज्ञान हमें नहीं है। प्रयुक्त छन्द केवल दो है—चौपाई और दोहा। पाँच अर्धालियोंके बाद एक दोहेका क्रम बराबर निबाहा गया है किन्तु दोहोंके सम्बन्धमे हम प्रायः देखते हैं कि प्रथम अथवा द्वितीय अथवा दोनो चरणोंमे चौबीसके स्थानपर अट्ठाईस मात्राएँ आती हैं। जायसीके 'पद्मावत'में भी हमे यह बात प्रायः मिलती है।

रचनाकी भाषा ठेठ अवधी है। सूफी साहित्यके प्रसिद्ध अन्वेषक प्रो० अस्करीने लिखा है कि इसकी भाषापर प्राकृत भाषाओं—मागधी, शौरसेनी तथा अर्धमागधीका प्रभाव ढूँढ निकालना उपयोगी होगा। इसमें अवधीके अनेक रूपोंमे पूर्वीका रूप—पछाही या बैसवारीकी तुलनामे—बहुत अधिक स्पष्ट है और इसमें खड़ीबोलीके तत्त्व पाये जाते हैं। इस सम्बन्धमें उन्होने रचनासे उदाहरण भी दिये है किन्तु उनके उदाहरण प्रायः पढनेकी भूलोंके कारण ऐसे लगते है। पर ठीक पढे जानेपर इसके प्रयोगोको देखा जाय तो वे सभी मलिक मुहम्मद जायसीके 'पद्मावत' तथा तुलसीदासके 'रामचरितमानस'मे मिलेंगे। दाऊदकी रचना ठेठ अवधी और विशुद्ध अवधीमें है।

रचनाके प्राप्त अंशोमे दो बार लोरिक कथानायकसे उसका पूर्व-परिचय दिलाया गया है और इन परिचयोंमें उस प्रारम्भिक कथाकी भी रूपरेखा प्रायः आ जाती है, जो प्रतियोंके खण्डित होनेके कारण अभी तक पर्याप्त रूपसे प्राप्त नहीं है। कथा संक्षेपमे कुछ इस प्रकार बनती है: लोरिक एक अहीर है, जो गोवरमे रहता है। वह विवाहित है। उसकी विवाहिता पत्नीका नाम मैना है। उसी नगरमें बावन नामका एक अन्य अहीर है, जिसका विवाह उस नगरके एक सम्पन्न अहीर सहदेवकी कन्या चाँदासे हुआ है। किसी प्रसंगमें लोरिक और चाँदा एक दूसरेको देख लेते हैं और वे परस्पर अनुरक्त हो जाते हैं। बृहस्पति नाम की एक दूती दोनोका मिलन कराती है। तदनन्तर लोरिक चोरी-चोरी चाँदाके घर जाने लगता है। एक दिन लोरिक और चाँदा पण्डितसे साइत लेकर गोवरसे भाग निकलते है। लोरिकका एक भाई है, जिसका नाम कुँवरू है। वह उसे मार्गमें मिलता है और लोरिकको उसकी बूढी माता तथा उसकी स्त्री मैनाके जीवनका ध्यान दिलाकर इस कार्यसे विरत करना चाहता है, किन्तु वह कृतकार्य नहीं हो पाता। आगे चलनेपर उन्हें गंगा पार करना पड़ता है।

केवट चाँदाके रूपपर मुग्ध हो जाता है तब तक चाँदाका विवाहित पति बावन भी पहुँच जाता है और चाँदाको धिक्कारता है किन्तु लोरिकसे भयभीत होकर वह लौट जाता है। इधर केवट जाकर राजा करिंगासे चाँदाके सौन्दर्यके विषयमे कहता है। राजा गंगेऊ नामक मल्लको भेजता है, जिसे लोर परास्त कर देता है। तदनन्तर राजा बीदई नामक मल्लको भेजता है, जिसे लोरिक बुरी तरह क्षत-विक्षत करके वापस करता है। तब राजा दस विद्वान् ब्राह्मणोंको बुलाकर उन्हे लोरको लिवा आनेके लिए भेजता है और उनके साथ लोरिक राजाके सामने उपस्थित होता है। राजा लोरिकके शिष्ट-व्यवहारसे प्रसन्न होकर उसके पथ-प्रदर्शनके लिए दस ब्राह्मणोको साथ कर विदा करता है। उनके साथ चलकर लोरिक उडीसा पहुँचता है, जहाँ एक नाग चाँदाको डस लेता है। इस घटनामे लोर अत्यन्त दुःखी होता है और रोता है। यहाँपर कवि प्रेमकी अग्निकी दुर्दान्तताका उल्लेख करता है। लोरिक चितापर चाँदाके साथ जल मरनेके लिए प्रस्तुत होता है। तब तक एक गारुडी आ जाता है, जिसके प्रयोगसे चाँदा जी उठती है। यहाँपर कवि अपने तथा रचनाके नामका उल्लेख करता है और रहस्यात्मक कथाके स्वरूपकी ओर संकेत भी करता है। लोरिक तदनन्तर वहाँसे चलकर सारगपुर आता है। चाँदा स्वप्नमे देखती है कि एक सिद्धने आकर उससे कहा कि उसे एक तोना योगी भगा ले जायेगा। लोरिक वहाँ एक मढीमे चाँदाको छिपाकर नगरको चला जाता है। इस बीच तोना योगी वहाँ आकर सिंगीनाद करता है और चाँदापर चेटक डालकर उसे भगा ले चलता है। लौटकर जब लोरिक मढीको सूनी देखता है, वह चाँदाकी खोजमे निकल पडता है। खोजते-खोजते वह तोनाको जा पकडता है। दोनो कहते है कि चाँदा उन्हींकी है। झगडा निपटानेके लिए दोनो नगर-सभाके सामने उपस्थित होते हैं। दोनो अपना-अपना दावा पेश करते है। लोरिकसे उसका परिचय पूछा जाता है, जिसे वह संक्षेपमें देते हुए अपनी पूर्ववर्ती कथा भी संक्षेपमे कहता है। अन्ततः चाँदा उसको मिल जाती है। मैना विरहमे किसी प्रकार दिन काटती है और फिर एक सुरजनके द्वारा लोरिकके पास सन्देश भेजती है। इस सन्देशको पाकर लोरिक चाँदाके साथ गोवर लौटता है। लोरिकके घर लौटनेपर चाँदाका पिता सहदेव महर चाँदा और लोरिकका स्वागत करता है और उनके सम्बन्धपर अपनी स्वीकृति देता है। पूर्वविवाहिता मैना तथा चाँदामे झगडा होता है। चाँदा शृंगार करती है और दोनोंका शैयापर मिलन होता है। जेवनार होती है, जिसमे गालियाँ गायी जाती हैं। कथाका अन्त किस प्रकार होता है, वह ज्ञात नहीं है।

प्रो० अस्करीने लिखा है कि "जायसीसे भिन्न, जिनके 'पद्मावत'मे सूफी रहस्यवाद पर्याप्त मात्रामे है......हमारे १४ वीं शताब्दीके मौलानाने अपनेको केवल लोक प्रचलित विश्वासों तथा हिन्दुओंके धर्माख्यानों तक ही सीमित रखा है।" किन्तु रचनाका एक छन्द इसका स्पष्ट प्रतिवाद करता है। अपनी रचनाके 'अर्थ विचार'पर बल देते हुए उस छन्दमें कविका कहना है कि "हिरदइँ जानि सो चाँदा रानी" और "लोर कहा मइं हिय खण्ड गावउँ" जो अत्यन्त स्पष्ट रूपसे कथाके रहस्य-परक होनेका निर्देश करते हैं। उसके उपदेश-लक्षित होनेका भी प्रमाण कविके निम्नलिखित कथनमे मिलता है, जो चाँदाके साँपसे डँसे जानेपर लोरि द्वारा कहाया गया है "जासकी नेउँ तस पाएउ रँडे चाँद मन लाइ। जो बाउर मनु सहि चित बाँधइ सो अइसनहि पछिताइ॥" फलतः इसमें सन्देह नहीं कि 'चन्दायन' (लोर कहा) प्रायः सभी अर्थोंमें 'पद्मावत'-की एक यशस्विनी पूर्वज है और हिन्दी साहित्यके इतिहासमें एक महत्त्वका स्थान रखती है। अतः प्रो० अस्करीके उपर्युक्त कथनसे सहमत होना सम्भव नहीं है। —मा० प्र० गु०

चंद्रकांता—देवकीनन्दन खत्रीकी प्रथम रचना है। हिन्दीमें तिलस्मी ऐयारी उपन्यासोकी परम्परा इसीसे आरम्भ होती है। इसका प्रथम संस्करण सन् १८८८ई०में काशीके हरि-प्रकाश यन्त्रालयमे मुद्रित होकर प्रकाशित हुआ था। इसका उनतीसवाँ संस्करण सन् १९५६ई०में लहरी बुक डिपोसे प्रकाशित हुआ है। ऐयारोंके अद्भुत कारनामोंके प्रदर्शनके लिए किये गये कार्य-व्यापार-विस्तारको अलग कर देनेपर, अपने मूल-रूपमें, यह एक प्रेम-कहानी है। सुरेन्द्रसिंह नौगढके महाराज है और जयसिंह विजयगढके राजा। नौगढका राजकुमार वीरेन्द्रसिंह विजयगढ़की राजकुमारी चन्द्रकान्ताको प्यार करता है। यह प्रेम उभय पक्षोंमे सम है। विजयगढ राज्यके मन्त्री कुपथसिंहका लडका क्रूरसिंह भी चन्द्रकान्ताको चाहता है। क्रूरसिंह चुनारगढके महाराजा शिवदत्त सिंहसे सहायता लेता है। चन्द्रकान्ताकी रूप-चर्चा सुनकर शिवदत्त सिंह स्वयं उसे प्राप्त करना चाहते हैं। नौगढ और विजयगढकी राज-शक्तियाँ एक होकर शिवदत्त सिंहका मुकाबला करती हैं। शिवदत्त सिंहके ऐयार चन्द्रकान्ता और उसकी सखी चपलाको उठा ले जाते है और एक खोहमे छिपा देते हैं। वे किसी प्रकार वहाँसे छूट जाती है किन्तु एक तिलस्ममें फँस जाती है। वीरेन्द्र सिंह अपने ऐयारों—जीतसिंह और तेजसिंह—की सहायतासे तिलस्म तोड़ते है और उसमें गड़े हुए अपार धनके साथ ही कुमारी चन्द्रकान्ताको भी प्राप्त करते है।

तिलस्मी उपन्यासोंमें यह सर्वाधिक लोकप्रिय रचना है। मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण तथा उदात्त रस-भाव-विधानके अभावमे भी अद्भुत कल्पना-वैभव एवं रहस्य कुतूहलपूर्ण घटना-वैचित्र्यके कारण यह अनेकानेक पाठकोंको बराबर आकर्षित करती रही है। इसकी भाषा जन-साधारणमे प्रचलित हिन्दी है। हिन्दी-प्रचारकी दृष्टिसे यह विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण कृति है। उर्दू और गोरखी लिपीमेंभी इसके संस्करण प्रकाशित हुए थे। देवकीनन्दन खत्रीका स्मरण दिलानेके लिये यह एक ही कृति पर्याप्त है। —रा० चं० ति०

चंद्रकांता संतति—देवकीनन्दन खत्रीका दूसरा लोकप्रिय उपन्यास है। पहली बार सन् १८९६ ई० में प्रकाशित हुआ था। इसके अबतक २२ संस्करण निकल चुके हैं। इसमें

रानी चन्द्रकान्ताकी सन्तानों—इन्द्रजीत सिंह और आनन्द सिंह—की कहानी वर्णित है। इसीलिए इसका नाम 'चन्द्रकान्ता सन्तति' है। इन्द्रजीत सिंह चुनारकी राजकुमारी किशोरीको प्यार करते हैं। गयाकी राजकुमारी माधवी इन्द्रजीत सिंहको चाहती है। वह किशोरीको अपने कब्जेमें कर लेती है। रोहतास गढ़के महाराज दिग्विजय सिंह अपने कुमार कल्याण सिंहके लिए किशोरीको माधवीके जालमें छुड़ाकर अपने यहाँ कैद कर लेते हैं। रोहतास गढ़का सम्बन्ध जमानियाँके तिलस्ममे है। जमानियाँके राजा गोपाल सिंहका दारोगा धूर्त है। वह उनका ब्याह लक्ष्मीदेवीके स्थानपर मुन्दरसे करा देता है। मुन्दर गोपाल सिंहको कैद कर लेती है और स्वयं मायारानी बनकर राजसुख भोगती है। मायारानी कुमार आनन्द सिंहको चाहती है। किशोरीको छुड़ानेके प्रयत्नमें इन्द्रजीत सिंह और आनन्द सिंह मायारानीके जालमें फँस जाते हैं। लक्ष्मी देवीकी बहन कमलिनी मायादेवीका रहस्य जानकर उसका विरोध करती है। कमलिनी और भूतनाथके प्रयत्नसे मायारानीका पराभव होता है। गोपाल सिंह मुक्त होते हैं। इन्द्रजीत सिंह और आनन्द सिंह जमानियाँका तिलस्म तोड़ते हैं। उसमें गड़ी हुई अपार सम्पत्ति उन्हें प्राप्त होती है। इन्द्रजीत सिंह किशोरीके साथ ही कमलिनीको भी प्राप्त करते हैं। इस उपन्यासका कलेवर विस्तृत है। यह ६ खण्डों और २४ भागोंमें समाप्त हुआ है। यह उपन्यास भी सहस्रों नवयुवकोंको हिन्दी सिखानेमें सहायक हुआ है और इसी दृष्टिसे इसका महत्त्व है। —रा० च० ति०

चंद्रकुँवर बर्त्वाल–जन्म गढ़वालमें १९०२ ई० में और मृत्यु १९४१ में। हिन्दी काव्यकी स्वच्छन्दतावादी धारामें आपका योग विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। प्रकृति-जीवनके कुछ अछूते चित्रोंके लिए आप सदैव स्मरण किये जायेंगे।

कृतियाँ—'नन्दिनी' (गीत-कथा), और 'नागिनी' (गद्य-संग्रह)।

चंद्रगुप्त १–सन् १९३१ ई०में प्रकाशित जयशंकर प्रसादका नाटक। इसका पूर्व-रूप 'कल्याणी परिणय' है। चन्द्रगुप्त नाटककी रचना इतिहासके आधारपर हुई है। मौर्य साम्राज्यका संस्थापक यह सम्राट् पर्याप्त बहुश्रुत है और संस्कृतके प्रसिद्ध नाटककार विशाखदत्तने 'मुद्राराक्षस'में तथा द्विजेन्द्रलालरायने 'चन्द्रगुप्त'मे इस ऐतिहासिक व्यक्तित्वका चित्रण किया है। यों तो प्रायः इतिहासकी सामग्रीका प्रयोग और समर्थन प्रसादने किया है, पर अपने दृष्टिकोणको उचित रूपसे प्रस्तुत करनेके लिए उन्होंने कल्पनाका आश्रय लिया है। इस नाटकके निर्माणमें प्रसाद राष्ट्रीय और सांस्कृतिक भावनाओंसे निश्चय ही परिचालित हैं। चन्द्रगुप्तके चरित्रांकनमे इस उद्देश्यको सहज ही देखा जा सकता है। उसके अभिजात कुलजन्मा होनेमें कोई सन्देह नहीं। वह परम तेजस्वी और पौरुषवान् है। कार्नेलियाकी रक्षा करके वह उसे अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। संकटमें पड़ जानेपर अलक्षेन्द्र, सेल्यूकस सभीको परास्त करके भाग निकलता है। उस युगकी दो प्रसिद्ध सभ्यताएँ—भारत और यूनान की, आपसमें संघर्ष करती हैं। दाण्ड्यायन और चाणक्य भारतीय पक्षके प्रतिनिधि हैं। अन्तमें भारतीय संस्कृतिकी विजय होती है। सेल्यूकसकी पराजय इसका प्रमाण है। प्रसादने अलक्षेन्द्र और चन्द्रगुप्तके परोक्ष द्वन्द्वको दो सभ्यताओं, संस्कृतियोंका संघर्ष स्वीकार किया है। दाण्ड्यायनकी निर्भीक वाणीमें भारतीय संस्कृतिका गौरव है। वह चन्द्रगुप्तके विषयमें भविष्यवाणी करता हुआ अलक्षेन्द्रसे कहता है—"यह भारतका भावी सम्राट् तुम्हारे सामने बैठा है।' कार्नेलिया 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' का भारतगीत गाती है, मानो यवनबालिका इस देशके वैभवके समक्ष अपने देशको पराजित स्वीकार कर रही है। चाणक्यका चरित्र-चित्रण नाटकमें विशेष दृष्टिसे अंकित किया गया है। इतिहास जिसे निर्मम कूटनीतिज्ञके रूप में चित्रित करता है, प्रसादने उस क्रूर ब्राह्मणमें भी प्रेमकी भावना भर दी है। चाणक्य सुवासिनीसे प्रेम करता था, पर वह उसे न पा सका। कौन कह सकता है कि इस पराजयने प्रतिशोधकी ज्वालामें हव्यका कार्य नहीं किया? त्याग, क्षमा, तपमें विश्वास रखता हुआ ब्राह्मणत्वके उच्चादर्शोंपर आस्थाके साथ चाणक्य आगे बढ़ता है। नाटकके अन्तमें उसकी यह उदार मानवीयता द्रष्टव्य है। सेल्यूकस उसे "बुद्धिसागर" कहकर पुकारता है।

नाटकमें स्त्री पात्रोंकी नियोजना करते समय प्रसादने कल्पनाका सहारा लिया है। सुवासिनी, कल्याणी और मालविका, कार्नेलिया सभी भावुक पात्र हैं, यद्यपि उनकी भावुकताकी मात्रामें अन्तर है। शकटारकी कन्या सुवासिनीको अनेक प्रकारका अभिनय करना पड़ता है। नन्दकी राजसभामें गायिका होकर वह राक्षसकी प्रेमिका बनती और अन्तमें चाणक्य के पास भी पहुँचती है। चन्द्रगुप्तके प्रति अपने हृदयमें दुर्बलता रखनेवाली कल्याणी और मालविका तो अपने प्रेमीके लिए अपने प्राणोंको बलितक दे देती हैं। अलका तक्षशिलाकी राजकुमारी है और प्रसादने उसमें राष्ट्रीय भावनाओंका समावेश किया है। "हिमाद्रि तुंग शृंगसे" प्रयाण गीतमें राष्ट्रीय भावना मुखर है। अलकाके जीवनमें त्यागकी दृष्टिसे परीक्षाका अवसर उस समय आता है, जब राज्यके कल्याणार्थ कुछ समयके लिए उसे पर्वतेश्वरकी रानी भी बनना पड़ता है।

'चन्द्रगुप्त'में प्रसादने कई दशकोंका इतिहास प्रस्तुत करना चाहा है। महत्त्वपूर्ण राजनीतिक घटनाओंको ही ग्रहण किया गया है। नाटकोंमे इतिहासकी कथावस्तुके साथ पात्रोंके चरित्रको विकसित करनेमे प्रसादको सफलता प्राप्त हुई है। चन्द्रगुप्त और चाणक्य तथा अलका और सिंहरण जैसे राष्ट्रसेवी पात्रोंका भी आन्तरिक द्वन्द्व कई स्थानोंपर झलक आया है। समन्वित प्रभावकी दृष्टिसे 'चन्द्रगुप्त' प्रसादकी एक अत्यन्त सफल रचना है। कुछ समीक्षकोंका मत है कि नाटक तीन अंकोंमे ही समाप्त हो सकता था पर उस अवस्थामे चाणक्यके व्यक्तित्वका जो वैराग्यपूर्ण, निष्काम पक्ष है, वह पूर्ण स्पष्ट न हो पाता। सांस्कृतिक दृष्टिसे कार्नेलिया और चन्द्रगुप्तका विवाह भारतीय पक्षकी पूर्णता है। राष्ट्रीय भावना और सांस्कृतिक चेतनाकी छाया 'चन्द्रगुप्त'मे सर्वत्र देखी जा सकती है। —प्रे० शं०

चंद्रगुप्त २–प्रसादकृत 'चन्द्रगुप्त' नाटकका नायक चन्द्रगुप्त, मौर्य-साम्राज्यका संस्थापक माना जाता है।

इतिहासमें उसका राज्यकाल ३२२-२९८ई०पूर्व निर्धारित किया गया है। ग्रीक साहित्यमें इसे सन्ड्रोकोटसके नामसे अभिहित किया गया है। कतिपय इतिहासकारोंके मतसे चन्द्रगुप्त मोरिय जातिका क्षत्रिय था। कुछ लोगोंने इसे मुरा नामकी दासी—नापितकन्यासे उत्पन्न बताया है किन्तु नाटककार प्रसादको यह मत मान्य नहीं है। 'चन्द्रगुप्त' नाटककी भूमिकासे पता चलता है कि प्रस्तुत नाटकके कथानकके लिए लेखकने समस्त बिखरी हुई सामग्रीका उपयोग किया है। बौद्ध ग्रन्थोंमे अट्ठकथा, महावंश, जैनग्रन्थोंमें त्रिकाण्ड शेष और हेमचन्द्र, अभिधान पुराणोंमें वायु और विष्णु पुराण, ग्रीक इतिहासकारोंमे डायोडोरस, जस्टिनस, स्ट्रावो एवं प्लूटार्कका नाम लिया गया है। इसके अतिरिक्त कथासरित्सागर, मुद्राराक्षस, मैक्समूलर, टाड और विसेण्टस्मिथसे भी यथास्थल आवश्यक सामग्री ग्रहण की गयी है।

'चन्द्रगुप्त' नाटकका धीरोदात्त नायक चन्द्रगुप्त ही है। उसमें धैर्य, वीरता, उत्साह, उदारता, त्याग आदि समस्त आदर्श गुणोंका समन्वय मिलता है। निर्भीकता एवं मधुरता उसके व्यक्तित्वके अपरिहार्य अग हैं। कार्नेलियाके कथनानुसार वह "शृंगार और रौद्रका संगम" है। "उनमें कितनी विनयशील वीरता है।" यदि एक ओर चन्द्रगुप्तमें कैशोरिक चांचल्य है तो दूसरी ओर परिपक्व आयुकी गम्भीरता भी। इस प्रकार उसके चरित्रमे कौमार्यकी चंचलता, यौवनका उत्साह और प्रौढावस्थाकी गम्भीरताका क्रमिक विकास मिलता है। देशकालकी परिस्थितिके अनुसार अपने अद्भुत पुरुषार्थ एवं अडिग संकल्पके कारण चन्द्रगुप्त साधारण स्थितिसे उठकर भारतका सम्राट् बन जाता है। वह शस्त्र और शास्त्र दोनोमे पूर्ण पारगत तक्षशिलाका सुयोग्य स्नातक है। चन्द्रगुप्तकी शिक्षा उसके चरित्रमे स्वावलम्बन एवं आत्मसम्मानके भावोको जगाकर उसे कर्त्तव्यशीलताका पाठ पढाती है। अपने इसी गुणके कारण वह आम्भीकको गुरुकुलमे ही "प्रत्येक निरपराध आर्यकी स्वतन्त्रता"के नामपर फटकार देता है। चन्द्रगुप्त अपने अद्भुत पराक्रम एवं साहसके बलपर नन्दके कारागारमे एकाकी प्रवेश करता है और राक्षस तथा वररुचिके समक्ष ही चाणक्यको बन्धनसे छुडा लेता है तथा अन्यत्र अपने प्रचण्ड पराक्रमसे फिलिप्सको द्वन्द्व युद्धमे पराजित करता है। युद्धमें विश्वविजयीका सामना करते हुए उसे भी घायल कर देता है। अपनी इसी अद्भुत वीरताके बलपर वह साधारण स्थितिसे ऊपर उठकर समस्त उत्तरापथका एकछत्र सम्राट् बन जाता है। चन्द्रगुप्तके चरित्रकी अन्य उल्लेखनीय विशेषता स्वावलम्बन एवं आत्मसम्मानकी भावना है। चन्द्रगुप्तके कथनानुसार "आत्मसम्मानके लिए मर मिटना ही दिव्य जीवन है।" अपने इसी गुणके कारण वह आचार्य चाणक्य एवं सिंहरणको भी रुष्टकर स्वावलम्बनके द्वारा जीवन पथपर आगे बढता है। कर्मभावसे प्रदीप्त एकाकी चन्द्रगुप्तकी यह घोषणा सचमुच आत्मसम्मान एवं उसके स्वालम्बनकी प्रबल परिचायिका है: "पिता गये, माता गयी, गुरुदेव गये, कन्धेसे कन्धा भिड़ाकर प्राण देनेवाला चिर सहचर सिंहरण गया। तो भी चन्द्रगुप्तको रहना पड़ेगा और वह रहेगा।" "मै आज सम्राट् नहीं सैनिक हूँ! चिन्ता क्या सिंहरण और गुरुदेव न साथ दें, डर क्या?" कर्त्तव्यपरायणताके अतिरिक्त चन्द्रगुप्तमें निर्भीकता एवं स्पष्टवादिताकी भी कमी नहीं है। जब सिकन्दर आम्भीकके समान उसे भी अपनी ओर मिलाकर मगधपर आक्रमण करना चाहता है तब चन्द्रगुप्त सिकन्दरको अपनी निर्भीकतासे हतप्रभ कर देता है: "मुझे लोभसे पराभूत गान्धारराज आम्भीक समझनेकी भूल न होनी चाहिए; मै मगधका उद्धार करना चाहता हूँ। परन्तु यवन लुटेरोंकी सहायतासे नहीं।" वीरताके अतिरिक्त चन्द्रगुप्तमें आर्त्तपरायणताकी भावना भी है। इसका व्यक्तित्व बड़ा ही प्रभविष्णु और आकर्षक है, जिससे प्रभावित होकर दाण्ड्यायन उसके बारेमें भारतका भावी सम्राट् होनेकी भविष्यवाणी करते है। चन्द्रगुप्तके व्यक्तित्वका मधुर पक्ष उसके ओजस्वी जीवनकी भाँति ही परम स्पृहणीय है। वह मालविकाकी सरलतापर मुग्ध होकर युद्धमे जानेके पूर्व मुरलीकी एक मीठी तान सुननेकी आकांक्षा करता है। उसके चरित्रमें "साधारण जनसुलभ दुर्बलता" केवल एक बार इसी अवसरपर दिखायी पडती है।

कार्नेलियाके साथ चन्द्रगुप्तका प्रेम-प्रसंग भी पूर्ण मनोवैज्ञानिक है। दाण्ड्यायनके आश्रममे दोनों एक दूसरेसे परिचित होते है। फिलिप्सको पराजित करनेके पश्चात् कार्नेलिया चन्द्रगुप्तके शक्ति-शील-सौन्दर्यसे प्रभावित होती है। चन्द्रगुप्त भी ग्रीककुमारीके सहज सौन्दर्य एवं उसकी भारतीय सस्कृतिके प्रति अभिरुचिको देखकर उसकी ओर आकर्षित होता है किन्तु कुछ समयके लिए राजनीतिक संघर्षोंके बीच अनुरागजन्य स्मृतिलता मुरझा जाती है। राजनीतिक और सास्कृतिक दृष्टिसे चन्द्रगुप्त और कार्नेलियाका परिणय परम श्रेयस्कर सिद्ध होता है। इससे भारत और यूनान, इन दो सबल प्राचीन राष्ट्रोंकी राजनीतिक एकता स्थायी होकर और भी सुदृढ बन जाती है तथा दोनों देशोमे सास्कृतिक आदान-प्रदानके नये क्षितिज खुलते हैं।

चन्द्रगुप्तके चरित्रको उद्घाटित करनेवाले अन्य नाटकोंमें उसके स्वतन्त्र व्यक्तित्वका पूर्ण विकास नहीं हो पाया है।

'मुद्राराक्षस'का चन्द्रगुप्त चाणक्यके संकेतोंपर चलनेवाला उसके हाथकी कठपुतली मात्र है। इसी प्रकार डी० एल० रायके 'चन्द्रगुप्त नाटक' में चन्द्रगुप्तकी अपेक्षा चाणक्यका चरित्र ही प्रधान है। चाणक्यके समक्ष चन्द्रगुप्तके चरित्रका विशद विकास नहीं हो सका। प्रसादने स्वतन्त्र रूपसे चन्द्रगुप्तके व्यक्तित्वका विकास प्रस्तुत किया है। चाणक्यसे प्रभावित एवं अनुप्रेरित होते हुए भी चन्द्रगुप्त अपने व्यक्तिगत स्वातन्त्र्यको बनाये रखता है तथा नाटकका नायक होनेके नाते उसको ही नाटकका फल अर्थात् सम्पूर्ण आर्य-साम्राज्य एवं नायिका कार्नेलियाकी प्राप्ति होती है। —के० प्र० चौ०

चंद्रगुप्त ३–चन्द्रगुप्त प्रसादकृत 'ध्रुवस्वामिनी' नाटकका नायक है। वह वीर, साहसी, उदार एवं धैर्यवान् है। अपनी वंश-परम्पराकी गौरवरक्षाके प्रति चन्द्रगुप्त पूर्ण सजग है। नाटककारने उसके चरित्रका विकास क्रमिक रूप

से दिखाया है। गुप्तवंशकी गौरव-रक्षाकी भावना चन्द्रगुप्त में विशेष रूपसे सुरक्षित है। पारिवारिक शान्तिको बनाये रखनेके लिए ही पिता द्वारा प्रदत्त राज्यको वह सहर्ष रामगुप्तको दे देता है, यहां तक कि अपनी वाग्दत्ता पत्नी ध्रुवस्वामिनीके वरणके लिए भी किसी प्रकारकी शक्तिका प्रयोग नहीं करता। चन्द्रगुप्तका यह अपूर्व त्याग उसके शील-सौजन्यका परिचायक है किन्तु रामगुप्त द्वारा जब नारीका अपमान होता है एवं कुलके गौरवपर आंच आती है तो उसके शीलको चोट लगती है और स्वभावतः पुरुषार्थ-युक्त स्वाभिमानका स्फुलिंग प्रज्वलित हो उठता है। वह ध्रुवस्वामिनीसे स्पष्ट कहता है : "यह नहीं हो सकता। महादेवि! जिस मर्यादाके लिए, जिस महत्त्वको स्थिर रखनेके लिए, मैंने राजदण्ड ग्रहण न करके अपना मिला हुआ अधिकार छोड़ दिया, उसका यह अपमान! मेरे जीवित रहते आर्य समुद्रगुप्तके स्वर्गीय गर्वको इस तरह पददलित होना न पड़ेगा।" चन्द्रगुप्तमें विचारोंकी दृढ़ता एवं कर्तव्य-पथ पर अविचलित भावसे चलते रहनेकी स्पृहणीय क्षमता है। वह लक्ष्य प्राप्तिके लिए प्रत्येक सम्भव उपायका अवलम्ब ग्रहण करता है। ध्रुवस्वामिनीके वेशमें शकराजके अन्तःपुरमें प्रविष्ट होकर अपना वास्तविक रूप प्रकट करता है और उसे चुनौतीके स्वरमें ललकारता है : "मैं हूँ चन्द्रगुप्त, तुम्हारा काल! मैं अकेला आया हूं तुम्हारी वीरताकी परीक्षा लेनेके लिए।" द्वन्द्व युद्धमें शकराजके लिए कालस्वरूप बन जाता है तथा बड़े पराक्रम से गुप्तवंशकी कुल-लक्ष्मीका उद्धार करता है। पराक्रमी और शक्तिशाली होते हुए भी अपने सहज शीलके कारण अपने भाई रामगुप्तकी आज्ञाके अनुसार बन्दी बन जाता है किन्तु ध्रुवस्वामिनीको बन्दी बनाये जाने पर उसकी सुजनताका बांध फूट जाता है और बन्धनसे अपनेको मुक्त करता हुआ वह अन्यायियोंको ललकारता है। यहां तक कि वह रामगुप्तको भी नहीं छोड़ता- "आज तुम राजा नहीं हो। तुम्हारे पाप प्रायश्चित्तकी पुकार कर रहे हैं। न्यायपूर्ण निर्णयके लिए प्रतीक्षा करो और अभियुक्त बनकर अपराधोंको सुनो।" वह वस्तुतः वंशकी मर्यादा एवं नारी-सम्मानकी सुरक्षाके लिए ही संघर्षमें पड़ता है।

चन्द्रगुप्तकी बाह्य आकृति उसके आन्तरिक गुणोंके पूर्ण अनुरूप है। ध्रुवस्वामिनी तो उसे "निरभ्र प्राचीका बाला-रुण" कहती है। उसका "विश्वास पूर्ण मुखमण्डल" सहज ही सबकी दृष्टि अपनी ओर खींच लेता है। उसके अंगोंकी गठनमें सुदृढ़ताके साथ कोमलता एवं कमनीयता भी है तभी तो वह ध्रुवस्वामिनीका कृत्रिम वेश बनानेमें सफल होता है। ध्रुवस्वामिनी चन्द्रगुप्तके इन्हीं बाह्य-आन्तरिक गुणोंसे प्रभावित होती है और हृदयसे उसे चाहती है। दोनोंकी एकसी परिस्थितियां एवं जीवन विकास क्रम भी उन्हें स्नेह-सूत्रमें बांध देता है। दोनों साथ-साथ मृत्युगह्वरमें प्रवेश करनेके लिए जाते हैं और शकराजको पराजित कर सौभाग्य श्री का वरण करते हैं। विनम्रताकी अतिशयतासे चन्द्रगुप्त अपनी वास्तविकता प्रकट करनेमें हिचकता है किन्तु अनीतिकी जब इतनी अधिक अतिरंजना हो जाती है कि वस्तुस्थिति विपरीत दिशाको संक्रमण करने लगती है तभी चन्द्रगुप्त सहजोद्दीप्त आचरणसे अपने वास्तविक स्वरूपको ग्रहण कर राज्य पद एवं राजलक्ष्मीको प्राप्त करता है। प्रस्तुत नाटकमें पुरुष पात्रोंके बीच सबसे अधिक ओजस्वी एवं उदात्त व्यक्तित्वसे सम्पन्न पात्र चन्द्र-गुप्त ही है, जिसका चित्रण नाटककारने बड़ी सफलताके साथ किया है। —के० प्र० चौ०

चंद्रगुप्त विद्यालंकार—जन्म १९०६ ई०में मुजफ्फरगढ़ जिलेमें हुआ। पिछले तीस वर्षोंसे आप हिन्दीमें पत्रका-रितासे लेकर कहानी, नाटक और निबन्ध आदि लिखते रहे हैं। विशेष रूपमें आपकी कहानियाँ और उसके बाद एकांकी नाटकोंका हिन्दी साहित्यमें विशेष स्थान है। आपकी कहानियोंमें हमें शिल्पकी प्रौढ़ता अधिक मिलती है। शिल्पके प्रति अधिक जागरूक रहनेके कारण कभी-कभी कहानियोंका मानवीय पक्ष छूट जाता है। पाश्चात्य शिल्पकी सम्पूर्ण मार्मिकताको चन्द्रगुप्तजी बड़ी सफलतासे अपनी कहानियोंमें प्रस्तुत करते हैं। ऐसा लगता है जैसे सौमरसेट मामकी कहानियोंका शिल्प और चन्द्रगुप्त विद्या-लंकारकी कहानियोंका शिल्प समान स्तरपर व्यवहृत होता है। मामकी कहानियोंकी तरह इनकी कहानियोंमें भी हमें उनकी शिल्पगत विशेषता अधिक प्रभावित करती है, कहानी कम। शिल्पकी प्रौढ़ताके अतिरिक्त जिस रोमानी वातावरणका चित्रण चन्द्रगुप्तजी करते हैं, उसमें पूर्व निश्चित योजनाकी झलक मिल जाती है। मानव नियतिके मुक्त और स्वच्छन्द अस्तित्वकी अपेक्षा उनकी यह शैलीगत मान्यता उनके पात्रोंको पालतू सा बना देती है। चन्द्रगुप्तजीके एकांकी नाटक भी एकांकी शिल्पका सफल परिचय देते हैं। इनके नाटकोंमें मानवीय संवेदनाओंकी अतिनाटकीयता होती है और यथार्थका खिंचा हुआ रूप देखनेको मिलता है, लेकिन एकांकीके शिल्पका निर्वाह कुछ अंशोंमें बड़ा ही सफल होता है।

सम्पूर्ण नाटकोंमें 'न्यायकी रात' और 'देव और मानव' महत्त्वपूर्ण हैं। ऐसा लगता है कि चन्द्रगुप्तजीका कहानी और एकांकी कलाकार सम्पूर्ण नाटककी मर्मपूर्ण, विस्तृत योजनाको दायित्वपूर्ण ढंगसे निभा नहीं पाया है क्योंकि जैसा कि नाटकोंके नामोंसे ही स्पष्ट है, चन्द्रगुप्तजीके इन नाटकोंमें कोमलता और पूर्वनिश्चित उद्देश्योंकी पुष्टिकी बात अधिक सिद्ध होती है। दोनों नाटकोंमें पात्रोंके चरित्रका निर्माण या उनके व्यक्तित्वका विकास, नाटकमें प्रस्तुत घटनाएँ कम करती हैं, लेखककी पूर्वनिश्चित दृष्टि और उसकी काव्यात्मक भावुकता अधिक उभर कर आती है। यही कारण है कि जहां एकांकी नाटकों और कहा-नियोंमें चन्द्रगुप्तजी अधिक सफल होते हैं, वहाँ सम्पूर्ण नाटकोंमें नाटकका मर्म जैसे इनसे छूट जाता है।

कहानी और नाटक दोनोंमें ही वातावरणके अनुकूल भाषाका आपने प्रयोग किया है। कहीं-कहीं नाटकोंमें गुप्तजीकी निरी साहित्यिक भाषा खटकती है, लेकिन ऐसे स्थान बहुत कम हैं।

आपकी प्रकाशित रचनाओंमें से कहानी-संग्रह 'वापसी' (१९[illegible]४) और 'चन्द्रकला' (१९३४) काफी महत्त्वपूर्ण हैं; एकांकी नाटकोंमें 'कास्मोपोलिटन क्लब' नामक संग्रह जो

१९४५ में प्रकाशित हुआ है, अधिक रुचिसम्पन्न है। सम्पूर्ण नाटकोंमें 'अशोक'(१९३४)'देव और मानव'(१९५६) 'न्यायकी रात' (१९५८) हैं। इस समय आप मासिक 'आजकल'(हिन्दी)के सम्पादक हैं। —ल० कां० व०

चंद्रधरशर्मा गुलेरी–जन्म सन् १८८३ ई० तथा मृत्यु १९२० ई० में। आधुनिक हिन्दी कहानी, निबन्ध तथा समीक्षा एवं भाषाशास्त्रके विकासमें चन्द्रधर शर्मा गुलेरीका योगदान महत्त्वपूर्ण समझा जाता है। आप संस्कृतके प्रकाण्ड पण्डित तथा अंग्रेजीके अच्छे जानकार थे। बहुत दिनोंतक अजमेरके मेयो कॉलेजमे अध्यापक पदपर कार्य करनेके उपरान्त आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके संस्कृत महाविद्यालयमें प्रधानाध्यापक होकर आये।

कहानीकारकी हैसियतसे चन्द्रधरशर्मा गुलेरीने कुल तीन कहानियाँ लिखीं। आपकी पहली कहानी 'सुखमय जीवन' १९११ ई० में 'भारत मित्र' में छपी थी। आपकी प्रसिद्ध कहानी 'उसने कहा था' कोई चार वर्ष बाद १९१५ ई० की 'सरस्वती' (भाग १६, खण्ड १, पृ० ३१४) में प्रकाशित हुई। यह रचना हिन्दी कहानीकी शिल्प-विधि तथा विषय-वस्तुके विकासकी दृष्टिसे 'मीलका पत्थर' मानी जाती है। इसमे एक यथार्थपूर्ण वातावरणमे प्रेमके सूक्ष्म तथा उदात्त स्वरूपकी मार्मिक व्यजना की गयी है। तीसरी कहानी 'बुद्धूका काँटा' है।

निबन्धलेखनके क्षेत्रमें 'चन्द्रधर शर्मा' गुलेरी विलक्षण शैलीकारके रूपमें आते हैं। आपने गूढ शास्त्रीय तथा सामान्य कोटिके विषयोंपर समान अधिकारसे लिखा है। पाण्डित्यपूर्ण हास तथा अर्थगत वक्रताकी दृष्टिसे आपकी शैली विशिष्ट है। आपके दो निबन्ध 'कछुआ धरम' तथा 'मारेसि मोहिं कुठाउँ' बहुत प्रसिद्ध हुए थे।

'सरस्वती' के मचपर चन्द्रधरशर्मा गुलेरी शोध-विद्वान् तथा समीक्षकके रूपमें भी आये थे। १९१०ई०की'सरस्वती' में 'जयसिंह काव्य' तथा १९१३ ई० की 'सरस्वती' मे 'पृथ्वीराज विजय महाकाव्य' शीर्षक आपके दो लेख उल्लेखनीय है। 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' की दूसरी जिल्दमें प्रकाशित 'पुरानी हिन्दी' विषयक स्थापनाएँ आपकी भाषा वैज्ञानिकताका परिचय देती हैं। यह निबन्ध हिन्दी भाषाके इतिहास-प्रसंगमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना गया है।

चन्द्रधरशर्मा गुलेरीने १९०० ई० के आसपास जयपुरसे अपने सम्पादकत्वमें 'समालोचक' नामका एक पत्र निकलवाया था। १९२० ई० में आप नागरी प्रचारिणी सभा (काशी) की व्याकरणसंशोधन-समितिके सदस्य भी रहे। —र० भ्र०

चंद्रबली पांडेय–जन्म १९०४ ई० में तथा मृत्यु १९५८ ई० में हुई। आप आजमगढ़के निवासी थे। आपने काशी हिन्दू विश्वविद्यालयसे एम० ए० पास किया। वहीं पर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तथा महेशप्रसादके निकट सम्पर्कमें आये। अंग्रेजी और संस्कृतके अतिरिक्त उर्दू, अरबी और फारसीका भी अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। हिन्दी साहित्य सम्मेलनके सभापति रहे। आपका पूरा जीवन त्यागमय व्यतीत हुआ। प्रायः अपना सारा समय अध्ययन और हिन्दीप्रचारमें लगाया। आप नागरी प्रचारिणी सभाके भी सभापति थे।

हिन्दीमें विश्वविद्यालीय वृत्तके बाहर जिन लेखकोंने खोजपूर्ण तथा एकेडेमिक कार्य किया, उनमें चन्द्रबली पाण्डेयका नाम अग्रणी है। आपकी शैली प्रखर तथा विचार उग्र थे पर अपने विचारोंका प्रतिपादन आपने बराबर सफलतापूर्वक किया। उर्दू-हिन्दीके प्रश्नको लेकर आपने गहराईसे विचार किया था। आपकी कुछ प्रसिद्ध रचनाएँ ये हैं: 'उर्दूका रहस्य' (१९९७ वि०), 'तसव्वुफ अथवा सूफीमत', (१९५४ ई०), 'भाषाका प्रश्न' (१९९६ वि०), 'राष्ट्रभाषा पर विचार' (२००२ वि०) 'कालिदास'। हिन्दी-उर्दू समस्या तथा सूफी साहित्य और दर्शनसे सम्बद्ध आपके विचार ऐतिहासिक महत्त्वके हैं।

[सहायक ग्रन्थ—नागरी प्रचारिणी पत्रिका—'चन्द्रबली पाण्डेय स्मृति अंक'।] —ह० दे० बा०

चंद्रलेखा–प्रसादके 'विशाख' नाटककी नायिका चन्द्रलेखा प्रतिष्ठित नागराज सुश्रुवाकी कन्या है। सम्भ्रान्त परिवारमें उत्पन्न होनेके कारण समस्त अभिजात संस्कार—आतिथ्य भावना, आचरणकी पवित्रता एवं मर्यादाकी भावना उसके आचरणमें पाये जाते हैं। नाटकका समस्त इतिवृत्तचक्र उसके व्यक्तित्वके चतुर्दिक् घूमता है। नाटककारने उसके चरित्रका विस्तार अपेक्षाकृत अन्य स्त्री पात्रोंसे कहीं अधिक किया है। अन्तमें विशाखसे उसका परिणय भी होता है। अतः चन्द्रलेखा ही प्रस्तुत नाटकमे नायिकाके पदपर प्रतिष्ठित होनेमे पूर्ण सक्षम है। नाटकके प्रारंभमें वह सर्वप्रथम अपनी बहिन इरावतीके साथ अत्यन्त मलिन वेशमें एक दरिद्र रमणीके रूपमें उदरपूर्तिके लिए खेतसे सेमकी फलियाँ तोड़ती हुई दिखलायी पड़ती है। मलिनवेशमें भी वह अनुपम रूपवती प्रतीत होती है। लोकदृष्टिमें इस प्रकारका निन्द्य कार्य करनेमें उसे लज्जाका अनुभव होता है। विशाखके द्वारा औपचारिक ढंगसे पूछे जानेपर वह अत्यन्त शालीनतासे उत्तर देती है: "क्षमा कीजिए अब मैं कभी इधर न आऊंगी। दरिद्रताने विवश किया है, इसीसे आज सेमकी फलियाँ पेट भरनेके लिए···तोड़ ली हैं। यदि आज्ञा हो तो इन्हें भी रख दूँ।" चन्द्रलेखामें स्त्रीसुलभ प्रेमकी पवित्र भावना विशाखकी सौम्य मूर्तिका दर्शन करते ही अंकित हो जाती है। विशाखके प्रति उसका प्रेम सुदृढ एवं अखण्डित है। बड़े-से-बड़े वैभवके प्रलोभन भी उसे अपनी एकनिष्ठ प्रेम-भावनासे विचलित नहीं कर पाते। महापिंगल एवं कश्मीर नरेश नरदेवके प्रस्तावोंको भी वह ठुकरा देती है और राजरानी बननेकी अपेक्षा अपनी अकिंचन झोपडीमें ही राजमन्दिरसे कहीं बढकर आनन्दका अनुभव करती है। वह अपने पतिकी कल्याण-कामनाके निमित्त अर्धरात्रिमें एकाकी चैत्यमें दीप जलाने जाती है। वहाँ वह प्रवंचक भिक्षुकी देववाणीके रूपमें ध्वनित आज्ञा की भी अवहेलना कर देती है। वह अपने पतिकी सच्ची चिरसंगिनी है। सुख-दुःख सब प्रकारकी परस्परविरोधी परिस्थितियोंमें वह विशाखका साथ देती है। महापिंगलकी हत्या करनेके अभियोगमें जब विशाख राजकीय अनुचरों द्वारा बन्दी बना लिया जाता है तो वह भी उसके पीछे-पीछे स्वेच्छया चली जाती है। एक बार अपनेको समर्पित कर

सतीसाध्वीकी भाँति अन्ततक अपने धर्मका पालन करती रहती है। विशाखके अतिरिक्त उसे संसारमें अन्य किसी वस्तुकी कामना नहीं है। विदेश जानेको उत्सुक विशाखके प्रति उसका यह कथन चन्द्रलेखाकी अनन्यनिष्ठाका परिचायक है : "मैं क्या जानूँ कि संसार क्या चाहता है। मैं तो केवल तुम्हें चाहती हूँ। मेरे संकीर्ण हृदयमें तो इतना स्थान नहीं कि संसारकी बातें आ जायँ।" चन्द्रलेखामें आतिथ्य-सत्कारकी भावना भी उसके आदर्श आचरणकी सुषमाको द्विगुणित कर देती है। अपनी झोंपड़ीमें आये हुए महापिंगल एवं नृपति नरदेवका बड़े उत्साह एवं निश्छल पवित्रतासे वह स्वागत करती हुई कहती है : "मैं आतिथ्य करनेके योग्य नहीं, तब भी दोनोंकी भेंट फलमूल स्वीकार कीजिए।" नरदेवके घृणित प्रेम-प्रस्तावका प्रतिरोध उसको एक अतिथि मानकर परिस्थितिजन्य विवशताके कारण कितनी शालीनताके साथ करती है : "राजन्, मुझसे अनादर न हूजिए। बस यहाँसे चले जाइये।" प्रेम-प्रस्तावके ठुकरानेमें चन्द्रलेखाकी प्रशंसनीय निर्भीकता, आत्मदृढ़ता एवं सतीत्वकी पवित्रताका परिचय मिलता है। यही उसके चरित्रका सर्वोत्तम गुण है। कानीर विहारमें भी सत्यशीलके प्रलोभनोंको ठुकराकर अपने इसी वैयक्तिक गुणका परिचय दिया था। —के० प्र० चौ०

चंद्रशेखर पाठक–जन्म १८८५ई०के लगभग और मृत्यु १९३२ई०के लगभग। आपका बाल्यकाल तो काशीमें बीता, किन्तु जीवनका अधिकांश भाग कलकत्तामें। महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे। संस्कृत, अंग्रेजी, मराठी, हिन्दी और बंगला भाषाओंके ज्ञाता थे। आप सरल और मुहावरेदार भाषा लिखनेमें बड़े ही कुशल थे। पृथ्वीराज, महाराणा प्रताप, नेपोलियन बोनापार्ट, वारांगना रहस्य (छः भागोंमें सामाजिक उपन्यास), मायापुरी, हेमलता, भीमसिंह, भीष्म पितामह आदि आपकी मुख्य कृतियाँ हैं। आपने कई महत्त्वपूर्ण पुस्तकोंका अनुवाद भी किया था, जिनमें मेटेरिया मेडिका आदि ८-१० होमियोपैथिकके बड़े ग्रन्थोंके अनुवाद बहुत प्रसिद्ध और प्रचलित हैं।

चंद्रशेखर वाजपेयी–चन्द्रशेखर वाजपेयीका जन्म पौष शुक्ल १०, सं० १८५५ (१७९८ई०)को फतेहपुरके अन्तर्गत मोजमाबादमें हुआ था। इनके पिता मनीराम भी एक अच्छे कवि थे। यह असनीनिवासी महापात्र करनेश कविके शिष्य थे। २२ वर्षकी अवस्थामें ये दरभंगा की ओर गये और सात वर्षतक वहाँके राजाओंके आश्रयमें रहे। तदनन्तर जोधपुराधीश मानसिंह (१७८३ ई०-१८४३ई०)के दरबारमें ६ वर्ष व्यतीत किये। इसके पश्चात् पटियाला नरेश कर्मसिंह (१८१३-१८४५ई०) तथा महाराज नरेन्द्रसिंह (१८४५-१८६२ई०)के आश्रयमें रहे। इनकी मृत्यु १८७५ई० में हुई।

इनके निम्नलिखित ग्रन्थोंकी चर्चाकी जाती है—१. विवेक-विलास, २. हरि-भक्ति-विलास (हरि-मानस-विलास), ३. नख-शिख, ४. वृन्दावन-शतक (कहा जाता है कि इस काव्यका निर्माण इन्होंने वृन्दावनमें रहकर किया था), ५. गुरुपंचाशिका, ६. ज्योतिषका ताजक, ७. माधवी वसन्त, ८. हम्मीर हठ (चन्द्रशेखरने अपने आश्रयदाता नरेन्द्र सिंहके आदेशानुसार इस काव्यकी रचना फाल्गुन कृष्ण ४, सं० १९०२ (१८४५ई०)को की थी (छन्द ३-५)। इसमें ४०३ छन्द हैं। 'हम्मीरहठ'में 'रणथम्भोरके हम्मीर और अलाउद्दीनके युद्धका वर्णन है। यह रचना वीर-रसका उत्कृष्ट उदाहरण है। प्रासंगिक रूपसे शृंगारका भी चित्रण हुआ है। विविध छन्दोंका प्रयोग किया गया है। भाषामें आलंकारिक छटा और प्रवाह है। यह ग्रन्थ लहरी बुक डिपो, वाराणसीसे छप चुका है—('तृतीय संस्करण'), ९. रसिक-विनोद—शेखरने इस ग्रन्थकी रचना माघ शुक्ल सप्तमी, शनिवार, सं० १९०३ (१८४६ई०)को की थी। यह कृति उक्त नरेन्द्र सिंहके लिए रची गयी थी। इसमें ७४७ छन्द हैं। प्रारम्भमें मंगलाचरणके पश्चात् आश्रयदाताका वर्णन किया गया है। (छन्द १२, २८, २९, ३२)। तदनन्तर लक्षणाके लक्षण, नायक-नायिका भेद तथा रस-वर्णन किया गया है। 'रसिक-विनोद'की रचना 'रसमंजरी', भरत कृत 'नाट्यशास्त्र' तथा 'रसतरंगिणी'के आधारपर की गयी है। स्थान-स्थानपर कविने अपनी स्वच्छंदता एवं मौलिकता का परिचय दिया है। आचार्यत्व और कवित्व दोनों दृष्टियोंसे यह ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण है।

इस प्रकार चन्द्रशेखर शृंगार और वीररस दोनोंके सफल कवि हैं। इनकी वर्णन-शैली प्रभावोत्पादक थी और भाषापर अधिकार था। अनुप्रास, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारोंका प्रयोग इनके काव्यको दीप्ति प्रदान करता है। रीतिकार कवियोंमें चन्द्रशेखरका प्रमुख स्थान है; पर ये वीररसके चित्रणमें अधिक सफल हुए हैं।

[सहायक ग्रन्थ—मि० वि०; हि० सा० इ०; हि० सा० वृ० इ० (भा० ६)।] —टी० तो०

चंद्रहास–इतिहास ग्रन्थोंमें इनका परिचय प्राप्त नहीं होता। इनके 'शृंगार सागर' नामक ग्रन्थकी चर्चा अवश्य हुई है। इसका रचनाकाल ग्रन्थमें १७५४ई० (सं० १८११) दिया हुआ है। कविने वह ग्रन्थ 'रामपंचाध्यायी'के आधारपर रचा है। इसमें शृंगार रस भक्तिपरक है और राधाकृष्णके ऐश्वर्य तथा विलाससे सम्बद्ध है। इसमें १६ शृंगारोंका वर्णन है, कुछ अंश नायिका-भेद ग्रन्थोंके समान हैं। —सं०

चंद्रावली–राधाकी प्रधान एवं अभिन्न सखीके रूपमें चन्द्रावलीको कृष्णकाव्य तथा कृष्णभक्तिमें अन्यतम प्रसिद्धि मिली है। पुराणोंमें ब्रह्मवैवर्त और पद्मपुराण (पाताल खण्ड)में इसका राधाकी सखीके रूपमें चित्रण मिलता है। इसके अतिरिक्त रूपगोस्वामीकृत 'भक्ति रसामृत सिन्धु' में भी इसका परिचय उसी रूपमें मिलता है। वहाँ उसके पतिका नाम गोवर्धनमल्ल और सासका नाम जरती प्राप्त होता है। कृष्णभक्तिके सभी सम्प्रदायोंमें सहचरीके उपास्य भावकी स्वीकृतिके कारण चन्द्रावलीके चरित्रको स्थान मिला है। कृष्णकथाके अन्तर्गत उसका सर्वप्रथम उल्लेख गोवर्धनपूजाके प्रसंगमें (सू० सा० प० १४५५) मिलता है। चन्द्रावलीके पिता राजा चन्द्रभानु हैं। इसके उपरान्त दानलीलाके अन्तर्गत (सू० सा० प० ४०७९-४०८५) उसकी झलक मिलती है। वह राधाकृष्णकी नित्यनिकुंज-लीलाओंमें योग देकर उनके दर्शनका सुख प्राप्त करती है।

कृष्णके राधाके साथ छद्मवेशमें गोपीका रूप धारण करके विचरण करनेपर चन्द्रावली इस तथ्यका रहस्य जाननेका यत्न करती है। वह राधासे कृष्णको अपनी सखी बता देती है, किन्तु अन्तमें इस रहस्यका उद्घाटन हो जाता है। राधा-कृष्ण से चन्द्रावलीकी घनिष्ठताके और भी अनेक सन्दर्भ मिलते हैं (सू० सा० प० २७७५-२७७८)। राधाकी सहचरीके अतिरिक्त चन्द्रावलीका ललिताके समान खण्डिता नायिकाके भी रूपमें चित्रण हुआ है। कृष्ण उसे मिलनका आश्वासन देकर एक अन्य गोपी सुषमाके साथ रतिक्रीडा करने चले जाते हैं। प्रातःकाल कृष्णके मिलनेपर वह कुपित होकर अन्तःकक्षमें किवाड बन्द कर लेट जाती है परन्तु लीलाबिहारी कृष्ण उसके पास उसकी मनोकामना पूर्ति हेतु पहुँच जाते हैं। इससे चन्द्रावलीको अभूतपूर्व सुखकी अनुभूति होती है।

कृष्णभक्त कवियोंने उसके व्यक्तित्वमें सहचरीके उपास्य रूपका आदर्श उपस्थित किया है। मध्ययुगमें रासलीला एवं छद्मलीलाओंके अन्तर्गत चन्द्रावलीका चरित्र अनेक नवीन सन्दर्भोंमें प्रस्तुत होता रहा। आधुनिक युगमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजीने चन्द्रावलीकी परम्परागत कल्पनाके आधारपर 'चन्द्रावली' नाटिकामे उसे नायिकाका पद प्रदान कर उसके व्यक्तित्वमे भक्ति और शृंगारका अद्भुत समन्वय दिखाया है। वह श्रीकृष्णकी पूर्वानुरागिनी प्रेमिका है। भारतेन्दुने चन्द्रावलीका आदर्श रूपमें चित्रण किया है। उसमें व्यक्तित्वके मानसिक अन्तर्द्वंद्वका अभाव होते हुए भी भक्ति और शृंगारके समन्वित पक्षोंको उभार मिला है। नाटिकाकी कथाके विकास के साथ वह इन्हीं आदर्शोंकी ओर उत्तरोत्तर उन्मुख होती दिखायी देती है। चन्द्रावली पुष्टिमार्गीय भक्तिकी पोषिका है। लौकिक बन्धन उसकी प्रेम भावनाके उद्दाम प्रवाहको रोक नहीं पाते और अन्ततः वह प्रेमकी एकनिष्ठताके कारण कृष्णकी कृपाभाजन बनती है। —रा० कु०

चंद्रावली नाटिका–भारतेन्दु हरिश्चन्द्रकृत 'चन्द्रावली नाटिका'में चन्द्रावलीका कृष्णके प्रति पूर्वानुरागजनित दिव्य प्रेम, विरह और मिलन चित्रित किया गया है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्रको अपनी यह रचना अत्यन्त प्रिय थी। इसमें उनका भक्त हृदय प्रकट हुआ है। चन्द्रावलीका उल्लेख भागवत और सूरसागरमें भी मिलता है, किन्तु जिस रूपमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने उसका वर्णन किया है, वह अन्यत्र नहीं मिलता। इस दृष्टिसे कथा मौलिक ही मानी जाय तो अनुचित न होगा। विष्कंभकके अन्तर्गत नारद-शुकदेव-सवाद द्वारा और मुख्यकथाका विकास प्रस्तुत करते समय उन्होंने अपनी पुष्टिमार्गीय भक्तिका प्रतिपादन किया है। नाटिका में चार अंक हैं, जिनमें चन्द्रावलीका कृष्णके प्रति उत्कट प्रेम, उसका विरह और विरहोन्माद, उसकी पाती, सखियों द्वारा चन्द्रावली और कृष्णके मिलनका उपाय सोचना, और अन्तमें योगिनीके वेषमे कृष्णके प्रकट होने आदिका वर्णन हुआ है। प्रसंगवश भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने वर्षा, झूला आदिका भी मनोहारी वर्णन किया है। 'चन्द्रावली नाटिका' भक्ति, काव्य और प्रकृतिका सुन्दर सम्मिश्रण है। वह प्राचीन नाट्य-शास्त्रके लगभग सभी सिद्धान्तोंसे समन्वित रचना है। भाषा यद्यपि प्रधानतः खड़ीबोली है, तो भी बीच-बीचमें ब्रजभाषाका प्रयोग हुआ है। भाषाकी दृष्टिसे यह एक टकसाली रचना मानी जाती है। नाटिकाके विधान पर समकालीन लोकमंचका प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है। —ल० सा० वा०

चंपतराय–ओरछानरेश चम्पतराय अपनी वीरताके लिए विशेष प्रसिद्ध नहीं रहे है। वे शाहजहाँ के समकालीन लगभग संन् १६५० ई० के आस-पास ओरछा नामक एक छोटी रियासतके सामन्त थे। इतिहासज्ञ उनकी प्रियता वस्तुतः उनके पुत्र छत्रसालके कारण सिद्ध करते हैं। चम्पतराय एवं उनकी रानी सारंधाको विषय बनाकर मुंशी प्रेमचन्दने 'रानी सारधा' नामक कहानीकी रचना की है। इसके भी पूर्व भूषण ग्रन्थावलीमें 'छत्रसाल'के सन्दर्भमें इनका नाम आ चुका है। —यो० प्र० सिं०

चक्रधर–प्रेमचन्दकृत उपन्यास 'कायाकल्प' का पात्र। चक्रधर मुंशी वज्रधर सिंहका पुत्र है। अपने बुद्धि-बलसे उसने उच्च शिक्षा प्राप्त की और विद्यार्थी-जीवनसे ही वह एक आदर्शसे अनुप्राणित नवयुवक है। स्वतन्त्र रहकर सेवा-कार्य कर, साधना और संयममे संलग्न रहकर वह आत्मगौरवका अनुभव करना चाहता है। वह सुशील, गम्भीर और सिद्धान्तप्रिय है। पिताके लाख समझानेपर भी उसने अपना निर्धारित मार्ग न छोड़ा। अपनी आजीविका स्वयं उत्पन्न करनेके लिए वह जगदीशपुरके दीवान ठाकुर हरिसेवक सिंहकी पुत्री मनोरमाको पढाता है। वह कर्त्तव्य-पालन और सिद्धान्त-प्रेमके कारण ही माता-पिताकी इच्छाके विरुद्ध अहल्यासे विवाह करता है। चक्रधर आत्माको धनसे ऊपर समझनेवाला व्यक्ति है। वह निर्भीक और साहसी है, जिसका परिचय वह आगरेके हिन्दू-मुस्लिम दंगेके समय और ठाकुर विशाल सिंहके तिलकोत्सवके समय मजदूरोंके विद्रोह करनेपर देता है। उसमें वात्सल्य और आत्मीयताकी भी कमी नहीं। वह पीडित जनोंके प्रति सहानुभूति रखता है। उन्हीके कारण वह जेल-यातना सहन करता है। वास्तवमे चक्रधर राष्ट्र-प्रेमी और जन-प्रेमी तो है, किन्तु उसकी मानसिक अवस्थामे उसका जीवन असन्तुलित हो जाता है। अहल्यासे उसने विवाह कर्त्तव्यके वशीभूत होकर किया था। उसका मन तो मनोरमामें रमा हुआ था, किन्तु मनोरमाके सामने अपना प्रेम प्रकट करनेमें उसे संकोच होता है। उस समय प्रेम और इच्छाके स्थानपर वह धर्म और कर्त्तव्य की बातें करने लगता है। फलस्वरूप वह आजीवन एक कुण्ठित और दमित व्यक्तित्व लिए रहता है। जब वह जगदीशपुर छोड़कर चला जाता है तब भी उसका व्यक्तित्व स्वस्थ नहीं कहा जा सकता। चक्रधर महामानव बनना चाहता है, किन्तु अपने सहज मानवत्वको भुलाकर। इसीलिए जहाँ आत्म-विश्वासकी आवश्यकता पड़ती है वहाँ वह डगमगाने लगता है। —ल० सा० वा०

चक्रवर्ती राजगोपालाचारी–इनका जन्म सालेम जिलेके हौसुर नामक स्थानमें ८ दिसम्बर सन् १८७९ मे हुआ। उनका व्यक्तित्व और कृतित्व सर्वविदित है। नेताके रूपमे

तो इनका व्यक्तित्व प्रतिभाशाली रहा ही है, लेखकके रूपमें भी इनकी प्रतिभा चमकी है। हिन्दीके मौलिक लेखक न सही, राजाजी हिन्दीके बड़े पुराने प्रचारक हैं। राजाजी दक्षिण हिन्दी प्रचार सभाके सदस्य रहे हैं। हिन्दीके प्रचार में उन्होंने योग दिया है और हिन्दीका समर्थन भी किया है। कई अधिवेशनोंमें सभाके अध्यक्ष रहे हैं और हिन्दी के प्रति उन्होंने लोगोंको आकर्षित किया है तथा सभाका मार्गदर्शन किया है।

राजाजीने स्वर्गीय जमनालाल बजाजके साथ सन् १९२९ में हिन्दी प्रचारार्थ दौरा किया और इसी दौरानमें ९ फरवरी १९२९को एर्नाकुलममें हिन्दी पुस्तकालयका उद्घाटन किया। इस अवसर पर उन्होंने अपने जो विचार व्यक्त किये, उनसे ज्ञात होता है कि वे हिन्दीके कितने बड़े हिमायती थे। उस समय कोचीनको उन्होंने हिन्दी-प्रचार आन्दोलनमें अग्रणी रहनेके लिये बधाई दी थी और हिन्दीके भारतकी सर्वमान्य भाषा बननेकी आशा व्यक्त की थी। इससे भी आगे बढ़कर तत्कालीन राज्य-सरकारसे हिन्दीको अनिवार्य विषय बना देनेकी प्रार्थना और घोषणा की थी। मद्रासमें 'मद्रास टीचर्स' एसोसिएशनके सम्मेलनमें राजाजीने हिन्दीका समर्थन किया था।

'भारतीय शिक्षामें हिन्दीका क्या स्थान है' इस विषयपर बोलते हुए राजाजीने 'इटरनेशनल फैलोशिप'के सम्मेलनमें निश्चित रूपसे दक्षिण भारतमें हिन्दीकी अनिवार्य शिक्षापर जोर दिया था और कहा था कि स्वतन्त्रता-प्राप्तिके बाद गणराज्यकी राष्ट्रभाषा एकमात्र हिन्दी ही हो सकती है।

वर्तमान कालमें राजनीतिक कारणोंसे राजाजी हिन्दीके विरोधी बन गये मालूम होते हैं, किन्तु उनका पुराना हिन्दी प्रेम टूट गया हो, यह नहीं माना जा सकता। राजनीति समयके अनुसार मनुष्यके विचारोंको बदल दे सकती है किन्तु भाषा और साहित्यकी स्थिरता विचारोंको पूर्णरूपसे हिला नहीं सकती। आज भी राजाजीका योग हिन्दीको मिल रहा है, इसमें तनिक भी सन्देह करनेकी गुंजाइश नहीं। उनके द्वारा लिखित 'दशरथनन्दन श्री राम'का अनुवाद उनकी पुत्री लक्ष्मी देवदास गान्धीने किया है। अपने पिता राजाजी और श्वशुर गान्धीजीसे पाये संस्कारों का ही यह फल कहा जा सकता है और पिताकी पुस्तकका हिन्दीमें अनुवाद करके राजाजीकी ओरसे हिन्दी-साहित्यकी यह सेवा मानी जा सकती है। राजाजी इस प्रकार आज भी हिन्दी भाषा और साहित्यके विकासमें योगदान दे रहे हैं, यह सत्य भुलाया नहीं जा सकता। —शा० द०

चतुरसेन शास्त्री - इनका जन्म सन् १८९१ ई०में पश्चिमी उत्तर प्रदेशके जिला अनूप शहरमें तथा मृत्यु ६९ वर्षकी उम्रमें दिलीमें सन् १९६० ई०में हुई। इन्होंने १९०६ ई०में लिखना आरम्भ किया था और १९१४ ई० तक कहानी लेखकके रूपमें प्रतिष्ठित हो गये थे। इन्होंने हिन्दी गद्यके विभिन्न रूपोंको अंगीकार करते हुए लगभग चौवालीस वर्ष तक विपुल मात्रामें लिखा। कहानी, उपन्यास, गद्य-काव्य, नाटक तथा इतिहासके अतिरिक्त धर्म, राजनीति, चिकित्सा, कामशास्त्र तथा पाकशास्त्र जैसे विषयोंको भी अपने लेखनका आधार बनाया। इनकी कुल प्रकाशित कृतियोंकी संख्या १८६ बतायी जाती है और कहा जाता है कि कोई ५२ कृतियाँ अब भी अप्रकाशित रह गयी हैं।

चतुरसेन द्वारा लिखित कहानी साहित्यके अन्तर्गत लगभग ४५० कहानियाँ आती हैं। इन कहानियोंकी विषय भूमि बौद्धकालीन, राजपूतकालीन एवं मुगलकालीन समाज और संस्कृति है। अनेक कहानियाँ आधुनिक सामाजिकतासे भी सम्बद्ध हैं। चतुरसेनकृत इस समस्त कहानी साहित्यकी कुछ थोड़ी सी कहानियाँ शिल्प, गठन और मानवीय अनुभूतियोंकी अभिव्यक्तिकी दृष्टिसे सफल बन पायी हैं। ऐसी कहानियोंमें 'दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी' उल्लेखनीय है। इस प्रकारकी कहानियोंमें एक विचित्र प्रकारका रोमानी 'इतिहास-रस' परिलक्षित होता है। चतुरसेनकृत सम्पूर्ण कहानी साहित्य १९६१ ई०में दिल्लीसे एक साथ पाँच भागोंमें प्रकाशित हुआ है—(१) 'बाहर-भीतर', (२) 'दुखवा मैं कासे कहूँ', (३) 'धरती और आसमान', (४) 'सोया हुआ शहर', और (५) 'कहानी खत्म हो गयी'।

इनके उपन्यासोंकी संख्या ३२ कही गयी है। इनमेंसे कुछ कृतियाँ इस प्रकार हैं—'हृदयकी परख' (१९१८ ई०), 'व्यभिचार' (१९२४ ई०), 'हृदयकी प्यास' (१९३२ ई०), 'अमर अभिलाषा' (१९३२ ई०), 'आत्मदाह' (१९३७ ई०), 'वैशालीकी नगर वधू' (दो भाग) (१९४९ ई०), 'नरमेध' (१९५० ई०), 'अपराजिता' (१९५२ ई०), 'बगुलाके पंख' (१९५८ ई०), 'उदयास्त' (१९५९ ई०) 'पत्थर युगके दो बुत' (१९५९ ई०), 'सोना और खून' (दो भाग) (१९६० ई०), 'सह्याद्रिकी चट्टानें' (१९६० ई०), 'खग्रास' (१९६० ई०)। कहानियोंकी भाँति चतुरसेनके उपन्यास भी सांस्कृतिक, ऐतिहासिक अथवा सामाजिक पृष्ठिकापर आधारित हैं। सामाजिक विषयोंपर लिखते समय इनकी दृष्टि यथार्थवादी अधिक रही है। यथार्थके प्रति अधिक मोह होनेके कारण कहीं-कहीं अश्लीलता और अस्वाभाविकताको भी प्रश्रय देना पड़ा है। उदाहरणार्थ 'अमर-अभिलाषा' नामक कृतिको लिया जा सकता है। इसमें एकाधिक विधवा स्त्रियोंके माध्यमसे विधवा जीवनकी यन्त्रणापूर्ण कहानी कही गयी है। विधवा समस्याके निदानकी ओर भी संकेत किया गया है किन्तु परिस्थितियों-के यथार्थ चित्रणके कारण कई अंश नंगे और अश्लील हो गये हैं। सामाजिक उपन्यासोंकी तुलनामें चतुरसेनको ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक उपन्यासोंमें अधिक सफलता मिली है। इनके दो उपन्यास 'वैशालीकी नगर वधू' तथा 'वयं रक्षामः' बहुत लोकप्रिय हुए हैं। 'वैशालीकी नगर वधू'का कथानक बौद्धकालीन है। इसमें तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक गतिविधियोंका बड़ा कलात्मक अंकन प्रस्तुत किया गया है। 'वयं रक्षामः' 'प्रागैतिहासिक अतीतकी कृति' है। इसके कथानकके मूलाधार राक्षसराज रावण तथा महापुरुष राम हैं।

चतुरसेनकृत गद्य-काव्योंके चार संग्रह प्रकाशित हैं—१. अन्तस्तल (१९२१ ई०), (२) तरलाग्नि (१९३६ ई०), ३. मरी खालकी हाय (१९३९ ई०) तथा (४) जवाहर (१९४६ ई०)। इनमेंसे पहली पुस्तक 'अन्तस्तल' गद्य-

काव्यात्मक प्रबन्धोंका संग्रह है, जिनमें वैयक्तिकता तथा भावात्मकताका समावेश पूरी मात्रामें हुआ है। शेष तीनों पुस्तकोंकी रचनाएँ देशभक्ति तथा राष्ट्रीयताकी भावनाओंसे ओतप्रोत हैं। चतुरसेनकी नाट्यकृतियोंमें-से दो का—'अमर राठौर' और 'उत्सर्ग'—उल्लेखमात्र किया जा सकता है।

उपर्युक्त विवरणसे स्पष्ट है कि चतुरसेनने मात्रा और परिमाणकी दृष्टिसे बहुत अधिक लिखा है। शायद यही कारण है कि उनके लेखनमें फैलाव और विस्तारकी अपेक्षा गहराई तथा गठनका अभाव है। अधिक लिखना कठिन नहीं है किन्तु अधिक लिखना और अच्छा लिखना बहुत कठिन है। भाषा-शैलीकी दृष्टिसे चतुरसेन अन्ततक आधुनिक नहीं हो पाये हैं। इनके आरम्भिक उपन्यासोंमें व्याकरण और वाक्यरचनासम्बन्धी भयंकर अशुद्धियाँ पायी जाती हैं। बादमें भी उनकी वर्णनशैली बहुत आकर्षक नहीं बन पायी है। उनकी भाषाशैलीका अपेक्षाकृत परिपुष्ट रूप उनकी इतिहास-रसवाली कुछ थोड़ी-सी कहानियोंमें दिखलायी पड़ता है। —र० भ्र०

चतुरानन–दे० 'ब्रह्मा'। —रा० कु०

चतुर्भुज–रीति परम्परामें इस नामके दो कवियोंका उल्लेख मिलता है। एक अयोध्या प्रसाद वाजपेयी 'औध कवि'के भाई थे, जिनका जन्म-स्थान सातन पुरवा (जि० रायबरेली) था। भगवती प्रसाद सिंहने इनका उपस्थिति-काल १८०३ई० माना है (दि० भू० भूमिका) और दूसरे कुलपति मिश्रके वंशज भरतपुरके राजा जसवन्त सिंहके दरबारी कवि हुए है, इनका समय १८१२ई०के आसपास माना गया है। 'दि० भू०'में प्रथमके छन्द उदाहृत हो सकते हैं, क्योंकि गोकुल कवि तथा औध कविमें मित्रता थी और 'अलंकार-आभा' नामक काव्य-शास्त्रीय ग्रन्थ द्वितीयका माना जा सकता है। भगीरथ मिश्रने इस ग्रन्थका रचना-काल १८३९ई० माना है।

[सहायक ग्रन्थ—शि० स०; दि० भू० (भूमिका); हि० का० शा० इ०।] —स०

चतुर्भुज औदीच्य–चतुर्भुज औदीच्य (रचना-काल १९०४ ई०) द्विवेदी-युगके निबन्धकार थे। ऐसा लगता है कि ये उन लेखकोंमें-से थे, जो साहित्यको जीवनका अनिवार्य अंग या व्यापार न बनाकर कभी-कभी लिखते हैं। ऐसे लेखक गौण होते हुए भी साहित्यके लिए अपेक्षित वातावरण बनानेमें सहायक होते हैं। औदीच्यजीका 'कवित्व' नामक निबन्ध बहुप्रशंसित है। 'कवित्व' निबन्धमें भाव, उपादान और शैली सभी महत्त्वपूर्ण थे (श्रीकृष्णलाल : 'आधुनिक हिन्दी साहित्यका विकास', पृ० ३५४)। इस निबन्धका मूलाधार बंगलाके पंचानन तर्करत्नका 'कवित्व' शीर्षक निबन्ध है। यह रूप और शैलीमें खण्ड-काव्यके निकट पहुँचता है। यह चार अध्यायोंमें विभक्त है। प्रथम अध्यायमें कवित्वकी प्रशंसा, द्वितीयमें कवित्वका जन्म, तृतीयमें कवित्वका भाषासे विवाह तथा चतुर्थमें मिथ्या (कल्पना)का कवित्वसे सम्बन्ध स्थापन किया गया है। "इस प्रकार लेखकने एक बहुत ही कवित्वपूर्ण रूपात्मक कहानीकी सृष्टि की, जिसमें कवित्व, भाषा, मिथ्या और कल्पनाका मानवीयकरण हुआ है।" सम्भवतः ऐसे ही निबन्धोंको ध्यानमें रखकर रामचन्द्र शुक्लने कविताकी भाषाका प्रयोग आलोचनाके क्षेत्रमें अनुचित माना है ('हिन्दी साहित्यका इतिहास', सप्तम संस्करण, पृ० ५१५-५१६)। वस्तुतः इस निबन्धको आलोचनाके क्षेत्रसे अलगकर शुद्ध कलात्मक निबन्धके अन्तर्गत परिगणित करना चाहिए।—दे०शं०अ०

चतुर्भुजदास (अष्टछापी)–हिन्दी साहित्यके इतिहास ग्रन्थोंमें चतुर्भुजदास नामसे दो प्रसिद्ध कवियोंका उल्लेख प्राप्त होता है। चतुर्भुजदास नामके एक भक्त कवि अष्टछापके सुप्रसिद्ध कवि है और दूसरे राधावल्लभ सम्प्रदायके भी एक भक्त कवि इसी नामके हुए हैं। प्रारम्भमें दोनोंकी ही रचनाओंको भ्रमवश एक ही समझा जाता रहा, किन्तु डा० दीनदयालुगुप्तने 'अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय' ग्रन्थमें इस भ्रमका निवारण किया है।

अष्टछापके भक्त कवि चतुर्भुजदासका चरित 'दो सौ बावन वैष्णवनकी वार्ता' और 'अष्टसखानकी वार्ता'में मिलता है। उनका जन्म सन् १५३० में स्थिर किया जाता है। 'सम्प्रदाय कल्पद्रुम'के अनुसार उन्होंने सन् १५४० ई० में दीक्षा ग्रहण करके पुष्टिमार्ग स्वीकार किया था। उनका निधन सन् १५८५ ई० में हुआ। चतुर्भुजदासकी शैशवसे ही कवितामें रुचि दिखने लगी थी। अष्टछापी कवि कुंभनदासकी वे सातवीं सन्तान थे। अपने पिताके काव्य-रचना संस्कारोंसे परिपूर्ण होनेके कारण आपने पिता द्वारा सर्वाधिक प्रेम और वात्सल्य प्राप्त किया था। उनका जन्म-स्थान जमुनावतो नामक गाँव था, जो गोवर्धनके समीप ही है।

चतुर्भुजदासने किसी ग्रन्थविशेषकी रचना नहीं की। स्फुट पदोंके रूपमें ही उनकी काव्य-रचना प्रक्रिया आजीवन चलती रही। उनके पदोंके तीन संग्रह कांकरोली विद्या विभागकी ओरसे 'चतुर्भुज कीर्तन संग्रह', 'कीर्तनावली' और 'दानलीला' शीर्षकसे प्रकाशित हुए हैं। उनकी कवितामें भक्ति-भावना और माधुर्य शृंगारकी अच्छी छटा दृष्टिगत होती है। भगवान् कृष्णके जन्मसे लेकर गोपी विरह तकके प्रसंगोंका उनके पदोंमें वर्णन है। 'मधुमालती' नामक एक रचना चतुर्भुजदासके नामसे प्रसिद्ध है, किन्तु यह रचना किसी और चतुर्भुजदासकी प्रतीत होती है। सभी अन्वेषक विद्वान् इसे अन्य व्यक्तिकी कृति स्वीकार करते हैं।

[सहायक ग्रन्थ—अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय : डा० दीनदयालु गुप्त; अष्टछाप निर्णय : प्रभुदयाल मीतल; अष्टछाप : डा० धीरेन्द्र वर्मा।] —वि० स्ना०

चतुर्भुजदास (राधावल्लभीय)–राधावल्लभ सम्प्रदायके प्रसिद्ध भक्त चतुर्भुजदासका वर्णन नाभाजीने अपने 'भक्तमाल' में किया है। उसमें जन्मस्थान, सम्प्रदाय, छाप और गुरुका भी स्पष्ट संकेत है। ध्रुवदासने भी 'भक्त नामावली' में इनका वृत्तान्त लिखा है। इन दोनों जीवन वृत्तोंके आधारपर चतुर्भुजदास गोंडवाना प्रदेश, जबलपुरके समीप गढा नामक गाँवके निवासी थे। इन्होंने अपनी प्रसिद्ध कृति 'द्वादश यश' में रचना संवत् दिया है। सेवकजी दामोदरदासके वे समकालीन थे, अतः इन दोनों आधारोंपर इनका जन्म संवत् १५८५ (सन् १५२८) के आसपास

निश्चित किया जाता है। इनके बारह ग्रन्थ उपलब्ध हैं, जो 'द्वादश यश' नामसे विख्यात हैं। सेठ मणिलाल जमुनादास शाहने अहमदाबादसे इसका प्रकाशन करा दिया है। ये बारह रचनाएँ पृथक्-पृथक् नामसे भी मिलती हैं। 'हितजूको मंगल', 'मंगलसार यश' और 'शिक्षासार यश' इनकी उत्कृष्ट रचनाएँ हैं।

चतुर्भुजदासकी भाषा शुद्ध ब्रजभाषा नहीं है, उसपर बैसवाड़ी और बुन्देलीका गहरा प्रभाव है। वे संस्कृत भाषाके भी विद्वान् थे, उन्होंने अपने 'द्वादश यश' ग्रन्थकी टीका स्वयं संस्कृतमें लिखी है। उनकी संस्कृत भाषामें अच्छा प्रवाह है। 'द्वादश यश'के अध्ययनसे यह भी विदित होता है कि भक्तिको जीवनका सर्वस्व स्वीकार करनेपर भी उन्होंने दम्भ और पाखण्डका पूरे जोरके साथ खण्डन किया है। कुछ स्थलोंपर अपने युगके दुष्प्रभावोंका भी वर्णन है। गुरु सेवा आदिपर बल दिया गया है। काव्यकी दृष्टिसे बहुत उच्चकोटिकी रचना इसे नहीं कहा जा सकता, किन्तु भाव-वस्तुकी दृष्टिसे इसका महत्त्व है।

[सहायक ग्रन्थ—अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय : डा० दीनदयालु गुप्त; अष्टछाप निर्णय : प्रभुदयाल मीतल; राधावल्लभ सम्प्रदाय—सिद्धान्त और साहित्य : डा० विजयेन्द्र स्नातक।] —वि० स्ना०

चतुर्मुख—दे० 'ब्रह्मा'। —रा० कु०

चरक—एक महर्षि एवं आयुर्वेद-विशारदके रूपमें विख्यात हैं। 'चरक संहिता' इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ है। 'चरक संहिता'के अनुसार इनको यह विद्या अग्निवेशसे प्राप्त हुई थी तथा उनको यह विद्या आत्रेय भारद्वाजसे मिली थी। चरकको शेषनागका अवतार भी कहा जाता है। ८वीं शतीमें 'चरक संहिता'का अरबी भाषामें अनुवाद हुआ था। वैद्यक शास्त्रमें 'चरक संहिता'का अद्वितीय स्थान है। —रा० कु०

चरनदास—इनका जन्म मेवात (राजपूताना)के डेहरा गाँवमें भाद्र शुक्ल ३, मंगलवार सन् १७०३ ई० में एक ढूसर वैश्यकुलमें हुआ था। इनके पिताका नाम मुरलीधर और माताका कुंजो था। मिश्रबन्धुओंने इन्हें पण्डितपुर निवासी ब्राह्मण कहा है। मेवातके ढूसर अपनेको वधूसर (भार्गव) ब्राह्मण कहते हैं, कदाचित् इसीलिए मिश्रबन्धुओंको उपर्युक्त भ्रम हुआ था। इन्होंने अपने गुरुका नाम शुकदेव बताया है और इन्हें भागवतके व्याख्याता व्यास-पुत्र शुकदेव मुनिसे अभिन्न माना है किन्तु कहा जाता है कि इनके गुरु मुजफ्फरनगरके समीपवर्ती शुकताल गाँवके निवासी कोई सुखदेवदास या सुखानन्द थे। इनकी मृत्यु अगहन सुदी ४ सन् १७८२ ई०में दिल्लीमें हुई थी। यहीं इन्होंने अपना सन्त-जीवन व्यतीत किया था।

इनकी कुल २१ रचनाएँ बतायी जाती हैं। इनमें १५ का एक संग्रह वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बईसे प्रकाशित हुआ है। नवलकिशोर प्रेस, लखनऊसे इनकी प्रायः सभी रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। 'ब्रज चरित', 'अमरलोक अखण्ड धाम वर्णन', 'धर्म जहाज वर्णन', 'अष्टांग योग वर्णन', 'योग सन्देह सागर', 'ज्ञान स्वरोदय', 'पंचोपनिषद्', 'भक्ति पदार्थ वर्णन', 'मनविकृत करन गुटकासार', 'ब्रह्मज्ञान सागर', 'शब्द और भक्ति सागर' इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। इनके अतिरिक्त 'जागरण माहात्म्य', 'दान-लीला' 'मटकी लीला', 'कालीनाथ-लीला' 'श्रीधर ब्राह्मण लीला', 'माखन चोरी लीला', 'कुरुक्षेत्र लीला', 'नासकेत लीला', और 'कवित्त' अन्य रचनाएँ है जो इन्हींकी कृतियाँ मानी जाती हैं। इनकी समस्त रचनाओंका प्रमुख विषय-योग, ज्ञान, भक्ति, कर्म और कृष्ण चरितका दिव्य सांकेतिक वर्णन है। भागवत पुराणका ग्यारहवाँ स्कन्ध इनकी रचनाओंका प्रेरणा स्रोत है। समन्वयात्मक दृष्टिकोण होते हुए भी इन्होंने योगसाधना-पर अधिक बल दिया है। इसीलिए रामदास गौड़ने इनके सम्प्रदायको योगमतके अन्तर्गत रखा है। विल्सन महोदयने इसे वैष्णव पंथ माना है जो गोकुलस्थ गोस्वामियोंके महत्त्वको कम करनेके लिए प्रवर्तित हुआ था। बड़थ्वालने प्रेमानुभक्तिकी प्रगाढ़ताके कारण इसे निर्गुण सन्त-सम्प्रदायके अन्तर्गत रखना ही उचित माना है। परशुराम चतुर्वेदीने इसे ज्ञान, भक्ति, योगका समन्वय करनेवाला पन्थ कहा है।

इनके शिष्योंकी कुल संख्या ५२ बतायी जाती है जिन्होंने विभिन्न स्थानोंपर पन्थका प्रचार किया था। सहजोबाई और दयाबाई इनकी प्रसिद्ध शिष्याएँ हैं। समन्वयात्मक दृष्टिकोण होनेपर भी इनका मूल स्वर सन्तोंका ही है। इनमें काव्य रचनाकी अच्छी क्षमता थी और इनकी रचनाएँ सामान्य सन्तोंसे उत्कृष्ट हैं।

[सहायक ग्रन्थ—उत्तरी भारतकी सन्त परम्परा : परशुराम चतुर्वेदी, हिन्दी काव्यमें निर्गुण सम्प्रदाय : पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल; सन्तबानी संग्रह (पहिला भाग), बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग; चरनदासजीकी बानी (भाग पहिला और भाग दूसरा), बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग।] —रा० चं० ति०

चर्पटीनाथ—चौरासी सिद्धोंमेंसे एक, जिन्हें राहुल सांकृत्यायनकी सूचीमें ५९वाँ और 'वर्ण रत्नाकर'की सूचीमें ३१वाँ सिद्ध बताया गया है। राहुलजीने इन्हें गोरखनाथका शिष्य मानकर इनका समय ११वीं शती अनुमित किया है। 'नाथ सिद्धोंकी बानियाँ'में इनकी सबदी सकलित हैं। उसमें एक स्थलपर कहा गया है—"आई भी छोडिये, लैन न जाइये। कुहै गोरष कूना विचारि-विचारि पाइये॥" सबदीमें कई स्थलोंपर अवधूत या अवधू शब्दका भी प्रयोग हुआ है। एक सबदीमें नागार्जुनको सम्बोधित किया गया है—"कहै चर्पटी सोण हो नागा अर्जुन।" इन उल्लेखोंसे विदित होता है कि चर्पटीनाथ गोरखनाथके परवर्ती और नागार्जुनके समसामयिक सिद्ध थे, अतः अनुमान किया जा सकता है कि वे ११वीं १२वीं शताब्दीमें हुए होंगे। रज्जबकी सर्वांगीमें इन्हें चारणीके गर्भसे उत्पन्न कहा गया है किन्तु डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वालने इनका नाम चम्ब रियासतकी राजवंशावलीमें खोज निकाला है। एक सबदीमें "सत-सत भाषन्त श्री चरपटराव" कहकर कदाचित् चर्पटीनाथने स्वयं राजवंशसे अपने सम्बन्धका संकेत किया है।

चर्पटीनाथकी किसी स्वतन्त्र रचनाका प्रमाण नहीं मिला। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदीने उनकी एक तिब्बती भाषामें लिखी कृति 'चतुर्भवाभिशन'का उल्लेख किया है। 'नाथ

सिद्धोंकी बानियाँमें चर्पटीनाथकी ५९ सबदियाँ और ५ सलोक संकलित हैं। इनका वर्ण्य-विषय लौकिक पाखण्डोंका खण्डन तथा कामिनी-कंचनकी निन्दा आदि है। एक सलोकमें पारदका यशोगान किया गया है और इसी सन्दर्भमें स्वर्ण या स्वर्णभस्म बनानेकी विधिका उल्लेख भी हुआ है। इसीलिए चर्पटीनाथ रसेश्वरसिद्ध कहे जाते हैं।

[सहायक ग्रन्थ—पुरातत्त्व निबन्धावली : महापण्डित राहुल सांकृत्यायन; हिन्दी काव्यधारा : महापण्डित राहुल सांकृत्यायन; नाथ सम्प्रदाय : डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी; नाथ सिद्धोंकी बानियाँ : डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी; योग-प्रवाह : डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल।] —यो० प्र० सिं०

चर्यागीत–बौद्ध साहित्यमें चर्याका अर्थ चरित या दैनन्दिन कार्यक्रमका व्यावहारिक रूप है। बुद्धचर्या, जिसका वर्णन राहुल सांकृत्यायनने अपने इसी नामके ग्रन्थमें किया है, बौद्धोंकी चर्याका आदर्श बन गयी और उसीका प्रयोग दैनन्दिन कार्यक्रममें बोधिचित्तके लिए होने लगा। सिद्ध और नाथ परम्परामें संगीतका प्रभाव बढ़नेपर जब गायनका प्रयोग साधनाकी अभिव्यक्तिके लिए होने लगा तो बोधिचित्त अर्थात् चित्तकी जाग्रत् अवस्थाके गानोंको 'चर्यागीत'की संज्ञा दी गयी। चर्यागीत सिद्धोंके वे गीति पद हैं, जिनमें सिद्धोंकी मनःस्थिति प्रतीकों द्वारा व्यक्त की गयी है। इनमें योगिनियोंके सम्मिलन, साधककी मानसिक अवस्थाओंमें क्रमशः राग और आनन्दके प्रस्फुटन तथा बोधिचित्तकी विभिन्न स्थितियोंके सरस वर्णन किये गये हैं। इनमें प्रायः शृंगार, वीभत्स और उत्साहकी मार्मिक व्यंजनाएँ मिलती हैं। आलम्बनके रूपमें मुख्यतः स्वयं साधक आता है। नायिकाओंमें प्रायः निम्न कुलसे सम्बन्धित डोमनी, चाण्डाली, शबरी आदि मिलती हैं। चर्यागीतकी शैलीमें संघाभाषाका प्रयोग हुआ है। अतः इन गीतोंमें प्रयुक्त नायिकाओंका प्रतीकात्मक अर्थ ही निकाला जा सकता है। कापालिक साधनाके विविध उपकरणों तथा योगसाधना, तन्त्राचार आदिका चमत्कारपूर्ण वर्णन भी इन गीतोंमें प्राप्त होता है। इनमें गीतिकाव्यके अनेक तत्त्व देखे जा सकते हैं। कदाचित् सिद्धोंने जन साधारणको आकृष्ट करनेके लिए ही गीति-शैलीका प्रयोग किया है। गीतिशैली तथा प्रतीकात्मक भाषाके प्रयोगकी दृष्टिसे चर्यागीत हिन्दीके सन्त कवियोंकी रचनाकी पृष्ठभूमिका सुन्दर परिचय देते हैं। सन्तोंकी उलटबासियाँ चर्यागीतोंकी संघाभाषाकी ही परम्परामें आती है। इन गीतोंमें अनेक राग-रागिनियोंका प्रयोग हुआ है। वीणपा आदिकी रेखाकृतियों तथा गोपीचन्द द्वारा निर्मित गोपीयन्त्र (सारंगी) आदिसे प्रमाणित होता है कि इन गीतोंका प्रयोग विभिन्न राग-रागिनियोंके अनुसार गाकर किया जाता था। सरहपाके विषयमें प्रसिद्ध है कि वे कई रागोंके जन्मदाता थे। महामहोपाध्याय पण्डित हरप्रसाद शास्त्रीने चर्यागीतोंके १८ रागोंका उल्लेख किया है। गीतोंमें प्रयुक्त छन्दोंके सम्बन्धमें डा० सुनीति कुमार चटर्जीने यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है कि उनमें पयार छन्दका प्रयोग हुआ है। पयार छन्द वास्तवमें संस्कृतका पादाकुलक छन्द ही है।

यह नहीं समझना चाहिए कि सिद्धोंका सम्पूर्ण गीति-साहित्य चर्यागीत ही है। उनके साधनासम्बन्धी गीत 'वज्रगीत'के एक भिन्न नामसे अभिहित हैं। सिद्धोंने वज्रगीत और चर्यागीतकी भिन्नताका बराबर संकेत किया है। चर्यागीतकी भाषा आधुनिक आर्य भाषाओंके पूर्वकी अपभ्रंश भाषा है परन्तु हिन्दीके संत-साहित्यकी भाषा, छन्द-विधान, शैली, प्रतीक, रागतत्त्व आदिके अध्ययनके लिए इन गीतोंका परिचय आवश्यक है।

[सहायक ग्रन्थ—पुरातत्त्व निबन्धावली : महापण्डित राहुल सांकृत्यायन; हिन्दीकाव्य धारा : महापण्डित राहुल सांकृत्यायन; नाथ सम्प्रदाय : डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी; नाथ सिद्धोंकी बानियाँ : डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी; योग-प्रवाह : डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल।] —यो० प्र० सिं०

चाँद–मासिक पत्र। इसका प्रकाशन इलाहाबादसे १९२३ ई० मे हुआ। इसके सम्पादक नन्दगोपाल सिंह सहगल, महादेवी वर्मा, नन्दकिशोर तिवारी रहे हैं। कुछ दिनों तक इसका सम्पादन मुंशी नवजादिक लालने किया था।

नारी जीवनसे सम्बद्ध समस्याओं पर इसमे अधिक चर्चा रहती थी। 'चाँद'का 'मारवाड़ी अंक' अपने समयमें बहुचर्चित था। साहित्यक होते हुए भी इस पत्रमें समाज सुधारकी प्रवृत्ति बलवती रही। इसका एक विशेषांक 'फाँसी' नामसे भी प्रकाशित हुआ था। —ह० दे० बा०

चाणक्य १–प्राचीन भारतीय इतिहासमें चाणक्य एक विद्वान्, अर्थशास्त्री एवं कूटनीतिज्ञके रूपमें विख्यात हैं। इन्होंने अपमानित होनेके कारण कुपित होकर नन्दवंशका नाश करके चन्द्रगुप्त मौर्यको गद्दी पर बिठाया था। चाणक्य चन्द्रगुप्तके निर्देशक आचार्य थे। उनका 'अर्थशास्त्र' अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रन्थ है। 'चाणक्यसूत्र' नामक एक अन्य ग्रन्थ भी इनका रचा हुआ कहा जाता है। 'चाणक्य सूत्र'का अंग्रेजी अनुवाद बेवरने किया है। हिन्दी कथा साहित्यमें चाणक्यके चरित्र पर आधारित अनेक ऐतिहासिक नाटकों एवं उपन्यासोंकी रचना हुई है। प्रसादका 'चन्द्रगुप्त', सत्यकेतु विद्यालंकारका 'आचार्य चाणक्य' आदि विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। —रा० कु०

चाणक्य २–प्रसादकृत 'चन्द्रगुप्त' नाटकमे नायक चन्द्रगुप्तके पश्चात् अत्यन्त तेजस्वी और महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व चाणक्यका है। विशुद्ध ब्राह्मण-शक्तिके सर्वोत्तम परिचायक आचार्य चाणक्यके विष्णुगुप्त, पक्षिल स्वामी, वात्स्यायन, द्रमिल, कौटिल्य आदि अनेक नाम मिलते हैं। जस्टिस तैलंग, बी० ए० स्मिथ, हेमचन्द्र, कनिंघम आदिने चाणक्यका चरित्र अंकित किया है। इनकी रचनाओंमें चाणक्य-नीति, अर्थशास्त्र, कामसूत्र और न्यायभाष्यकी गणना की जाती है। चाणक्यकी कथाओंमें मिलता है कि वे श्यामवर्णके पुरुष तथा कुरूप थे, इसी कारण वे नन्दकी सभासे श्राद्धके समय हटाये गये। वे नन्द द्वारा अपमानित होनेपर नन्द-वंशका नाश करनेकी प्रतिज्ञा करके बाहर निकल पड़े और चन्द्रगुप्तसे मिलकर उसे अपनी कूटनीतिपरक चतुरतासे नन्दराज्यका स्वामी बना दिया।

विष्णुगुप्त चाणक्य मौर्य साम्राज्यका निर्माता एवं ब्राह्मणत्वके गर्वसे परिपूर्ण है। उसका चरित्र अत्यन्त

गरिमापूर्ण एवं विविध घटनाओंसे संकुलित है। नाटकमें जहाँ चन्द्रगुप्तका क्षत्रिय-तेज अपने चरम-विकासके साथ चित्रित किया गया है, वहाँ चाणक्यमें ब्राह्मणत्वके पूर्ण तपका निदर्शन बड़ी सुन्दरताके साथ प्रस्तुत किया गया है। निर्भीकता, स्पष्टवादिता, दृढ़ता, कष्ट सहिष्णुता और सतत कर्मशीलता चाणक्यके प्रखर व्यक्तित्वके सबल अंग हैं। तक्षशिलासे लौटनेपर वह शास्त्रव्यवसायी न होकर सरल कृषक जीवन बिताना चाहता था किन्तु देशकी तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितिने उसे समस्त उत्तरापथकी राजनीतिक बागडोरको अपने हाथमें लेनेके लिए विवश किया। उसने अपनी प्रखर दूरदर्शितासे आर्यावर्तको विदेशी विजेतासे पददलित न होने देनेके लिए पारम्परिक ऐक्य संघटनकी भावना जगायी। एक ओर चाणक्य स्वदेश-प्रेमसे अनुप्राणित होकर यवनोंके आक्रमणको विफल बनानेका प्रयत्न करता है और दूसरी ओर अपने अपमान का प्रतिशोध लेनेके लिए मगधके राज्य-शासनको उलटनेके लिए कृत-संकल्प होता है। ब्राह्मणत्व एवं उग्र तपका चरम निदर्शन हमें चाणक्यके व्यक्तित्वमें देखनेको मिलता है। उसका कथन है कि "त्याग और क्षमा, तप और विद्या, तेज और सम्मानके लिए हैं—लोहे और सोनेके सामने सिर झुकानेके लिए हम लोग ब्राह्मण नहीं बने हैं। हमारी दी दी हुई विभूतिसे हमीको अपमानित किया जाय, ऐसा नहीं हो सकता।" पर्वतेश्वर द्वारा पिप्पली काननके मौर्योंको वृषल कहनेपर उसका प्रतिकार करते हुए चाणक्य स्पष्ट घोषणा करता है: "ब्राह्मणत्व एक सार्वभौम शाश्वत बुद्धि-वैभव है। वह अपनी रक्षाके लिए, पुष्टिके लिए और सेवाके लिए इतर वर्णोंका संगठन कर लेगा।" इसी प्रकार पर्वतेश्वर द्वारा राज्यसे निर्वासित किये जानेपर चाणक्यका ज्वलित ब्राह्मणत्व पुनः फुकार कर उठता है: "रे पददलित ब्राह्मणत्व देख! शूद्रने निगड़-बद्ध किया। क्षत्रिय निर्वासित करता है, तब जल—एक बार अपनी ज्वालासे जल।" अमात्य राक्षस चाणक्यके बुद्धि-वैभवकी प्रशंसा करते हुए नहीं थकता: "चाणक्य विलक्षण बुद्धिका ब्राह्मण है। उसकी प्रखर प्रतिभा कूट-राजनीतिके साथ दिन-रात जैसे खिलवाड़ किया करती है।" अपने इसी बुद्धि-बल और संगठनशक्तिसे सिकन्दरको पराजित कर उसके जगद्विजेता बननेके गर्वको चूर कर देता है। वह अपनी प्रखर प्रतिभासे समस्त आर्यावर्त को एक शासन-सूत्रमें बाँधकर गान्धारसे लेकर मगधतकका एकच्छत्र राज्य चन्द्रगुप्तके हाथमें सौंप देता है। चाणक्य परम निर्भीक, साहसी एवं अपने सिद्धान्तोंमें दृढ़तासे स्थिर रहनेवाला जीवटपूर्ण व्यक्ति है। अधिकार और शक्ति प्राप्त होनेपर चाणक्य अपने समस्त विरोधियोंको या तो निर्मूल कर देता है या अपना अनुगामी बना लेता है। "चाणक्य सिद्धि देखता है, साधन चाहे कैसे ही हों।" वह छलसे राक्षस से मुद्रा लेकर उसके और नन्दके बीचमें द्वेष फैलाता है, पर्वतेश्वरको मगधका आधा राज्य देनेका प्रलोभन देकर मगधकी क्रान्तिमें उससे सहायता लेता है और अन्तमें कल्याणी द्वारा उसकी हत्या करवाकर चन्द्रगुप्तको सब ओरसे निष्कण्टक बना देता है। वह क्रूर और महत्त्वाकांक्षी है। चाणक्यके कथनानुसार "महत्त्वाकांक्षाका मोती निष्ठुरता की सीपीमें रहता है।" किन्तु उसकी क्रूरता स्वाभावोचित न होकर परिस्थितियोंसे उद्भूत होती है। उसकी महत्त्वाकांक्षा निःस्वार्थ भावनासे प्रेरित है। वह राजाओंका नियामक है, उसे स्वयं सम्राट्-पदकी लालसा नहीं। उसमें ब्राह्मणोचित विद्वत्ता और निर्भीकताके साथ उदारता और क्षमाशीलता भी है। नन्द, मौर्य सेनापति, सिकन्दर और राक्षसके प्रति उसकी अन्तिम मंगल कामनाएं कितनी उदार और भव्य हैं। चाणक्य राजनीतिके जटिल जीवनमें निरन्तर व्यस्त रहनेपर भी अपने हृदयके मधुरपक्षकी अवहेलना नहीं कर देता। सुवासिनीसे शैशवकालीन प्रणय होनेपर भी "विजन बालुकासिन्धुमें सुधाकी लहर" दौड़ पड़नेपर वह अपना विवेक नहीं खो देता, वरन् उसके हितकी चिन्ता करके उसे राक्षससे विवाह करनेकी आज्ञा देता है। इस प्रकार वह "अपने हाथों बनाया हुआ, इतने बड़े साम्राज्यका शासन, हृदयकी आकांक्षाके साथ अपने प्रतिपक्षीको" सौंपकर अपनी अनुपम त्यागशीलताका परिचय देता है। उसके त्यागमय कर्मनिष्ठ जीवनकी प्रशंसा सभी मुक्तकण्ठसे करते हैं। पर्वतेश्वर, राक्षस, आम्भीक, सेल्यूकस, सिकन्दर, कार्नेलिया सभी उसके महामहिम व्यक्तित्वका गौरव स्वीकार करते हैं। "मेघके समान मुक्त-वर्षा सा जीवनदान, सूर्यके समान अबाध आलोक विकीर्ण करना, सागरके समान कामना—नदियोंको पचाते हुए सीमाके बाहर न जाना, यही तो ब्राह्मणका आदर्श है।" और चाणक्यके व्यक्तित्वमें समाहित इसी ब्राह्मणत्वके समक्ष सभीका मस्तक श्रद्धासे झुक आता है। —के० प्र० चौ०

चार्वाक–'चार्वाक'के दो उल्लेख प्राप्त होते हैं—

१. चार्वाक एक राक्षस था। यह दुर्योधनका मित्र था। महाभारत युद्धके उपरान्त विजेताके रूपमें जब युधिष्ठरने हस्तिनापुरमें प्रवेश किया तो छद्मवेशी ब्राह्मणके रूपमें युधिष्ठरको उनके किये गये पापोंके लिए दोषी ठहराया। परन्तु ब्राह्मणोंने इस रहस्यको जानकर अपनी नेत्र ज्योतिसे इसे भस्म कर दिया। उसके द्वारा भाइयोंकी हत्या का आरोप लगाये जाने पर युधिष्ठरको इतना क्षोभ हुआ कि वे वनवासके लिए प्रस्तुत हो गये। ब्राह्मणोंने युधिष्ठर को रहस्य बतलाकर वैराग्यसे विरत कर लिया।

२. एक नास्तिक एवं तत्त्वज्ञानीके रूपमें विख्यात है। क्षिप्रा और चामला नदीके संगमपर स्थित शंखद्वार नामक क्षेत्रमें इनका जन्म हुआ था। इनके पिताका नाम इन्दुकान्त और माताका नाम रुक्मिणी था। पुष्करतीर्थके यज्ञगिरि नामक पर्वत पर इनकी मृत्यु हुई थी। वंचना-शास्त्रके रचनाकार बृहस्पतिके शिष्य थे। यह चार्वाक ध्वनिके रचयिता थे। —रा० कु०

चिंतामणि–ये रीतिकालके दो अन्य प्रमुख कवि मतिराम और भूषणके सगे भाई माने जाते हैं। इनका जन्म १६०९ ई० में स्वीकार किया गया है। 'काव्य निर्णय'में दासने पूर्ववर्ती कवियोंका स्मरण करते हुए चिन्तामणिका नाम मतिराम और भूषणके साथ लिया है—जो संयोगवश भी हो सकता है और सम्बन्धसूचक भी। इनका जन्मस्थान भी तिकवाँपुर (कानपुर) बतलाया जाता है। पिताका नाम रत्नाकर त्रिपाठी था। विविध स्रोतोंसे अब तक उनके

सम्बन्धमें यही ज्ञात हुआ है कि वे शाहजहाँ, रुद्रसिंह, सोलंकी, जैनदी अहमदके अतिरिक्त नागपुरके सूर्यवंशी भोंसला राजा मकरन्द शाहके दरबारमें पर्याप्त समय तक राजकविके रूपमें सम्मान पाते रहे।

प्रामाणिक रूपसे उनके रचे अभी तक निम्नलिखित ६ ग्रन्थ मिले हैं—१. 'काव्य विवेक', २. 'कविकुलकल्पतरु', ३. 'काव्यप्रकाश', ४. 'रामायण', ५. 'छन्दविचार पिंगल', ६. 'रसमंजरी'। इनके तीन ग्रन्थ 'कविकल्पतरु', 'पिंगल' तथा 'शृंगारमंजरी' दतियाके राजपुस्तकालयमें है। 'रसमंजरी'के समानान्तर 'शृंगारमंजरी' नामक एक अन्य ग्रन्थ उनका रचा माना जाता है, जो वस्तुतः उनकी मौलिक रचना न होकर इसी नामके तेलुगु लिपिमें लिखित संस्कृत के गद्यग्रन्थका उनके द्वारा किया हुआ अंशतः पद्यमय अनुवाद है। इस सम्बन्धमें सत्यदेव चौधरीका एक लेख 'हिन्दी अनुशीलन', जनवरी-मार्च, १९५७में प्रकाशित हुआ है। इससे पूर्व भगीरथ मिश्रने 'शृंगारमंजरी'को चिन्तामणि का मौलिक ग्रन्थ मानकर सम्पादित एवं प्रकाशित किया था। इस ग्रन्थमें लक्षणोंकी सरल व्याख्या और उदाहृत पद्यभाग चिन्तामणिकी अपनी वस्तु है तथा शेष भाग अनूदित है। 'रामायण'को छोड़कर उपर्युक्त छः ग्रन्थोंमें-से शेष सभी काव्य-शास्त्रसे सम्बद्ध हैं। काव्यशास्त्रीय ग्रन्थोंमें सबसे प्रमुख ग्रन्थ, जिसपर चिन्तामणिकी ख्याति मुख्य रूपसे आधारित है, 'कविकुलकल्पतरु' है।

चिन्तामणि त्रिपाठी रीति-काव्यके एक प्रमुख आचार्य कवि हैं। उनका आचार्यत्व उनके कविरूपसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। आचार्यके रूपमें उनकी मान्यता इस दृष्टिसे विशेष है कि उन्होंने केशव द्वारा अपनाये गये भामह-दण्डीकी परम्पराको छोड़कर मम्मट और विश्वनाथकी परम्पराको अपनाया और उसके पश्चात् रीतिकालके अन्य अनेक आचार्योंने भी इसी परम्पराको ग्रहण किया किन्तु इसका सम्पूर्ण श्रेय चिन्तामणिको है, यह कहना कठिन है। रीतिकाव्यके कतिपय मान्य विद्वानोंने परम्परा-प्रवर्तनका मुख्य श्रेय देकर उन्हें रीति-काव्यका आदि आचार्य घोषित किया है। सर्वप्रथम रामचन्द्र शुक्लने ही अपने इतिहासमें लिखा—"हिन्दी रीति ग्रन्थोंकी अखण्ड परम्परा चिन्तामणि त्रिपाठीसे चली, अतः रीतिकालका प्रारम्भ उन्हींसे मानना चाहिये (पृ० २५९)।" नगेन्द्रने इसका प्रतिवाद करते हुए लिखा "चिन्तामणिको भी यह गौरव देना अन्याय है, क्योंकि यह केवल एक संयोग था कि उनके उपरान्त रीतिकालकी धारा अविच्छिन्न रूपसे प्रवाहित हो चली"। (विशेष विस्तारके लिए द्रष्टव्य, रीतिकाव्य संग्रह, पृ १९-२३)।

आचार्यत्वकी दृष्टिसे चिन्तामणिका स्थान दास और कुलपतिके समकक्ष आता है। वस्तुकी दृष्टिसे उनका निरूपण मम्मट और विश्वनाथके निरूपणसे साम्य रखता है। संस्कृतकी कारिका-वृत्ति-शैलीके समानान्तर उन्होंने गद्यका भी कहीं-कहीं प्रयोग किया है, परन्तु अधिकतर लक्षण और उदाहरण दोनोंके लिए केवल पद्यात्मक शैलीका प्रयोग किया है। उनकी यह शैली जयदेव और अप्पय दीक्षितके अनुरूप है। इसीके आग्रहसे उन्होंने 'शृंगार मंजरी'के सूत्रोंतकका अनुवाद पद्यमें कर दिया है। उनकी व्याख्याएँ गम्भीर, लक्षण प्रायः उपयुक्त तथा उदाहरण अधिकतर लक्षणानुरूप हैं। मौलिकताकी दृष्टिसे उनकी कोई विशेष देन नहीं है।

आचार्य होनेपर भी कवित्वकी दृष्टिसे चिन्तामणिका स्थान महत्त्वपूर्ण है। रसवादी कवि होनेके कारण इनके काव्यमें शृंगार रसका विशेष परिपाक देखा जा सकता है। पर इनमें देव तथा मतिराम जैसे परवर्ती कवियोंकी भावशीलता या चित्रमयता नहीं है। भाषाके प्रसाद गुण तथा अनुभूतिकी सरलतामें ये मतिरामके समान जरूर कहे जा सकते हैं। भाषा शैलीकी दृष्टिसे इनकी रचनाएँ परिष्कृत हैं। इनके काव्यमें भाषाके सहज और स्वच्छन्द प्रयोग, अनुप्रास-योजना और पदावलीका लालित्य मिलता है।

[सहायक ग्रन्थ—मि० वि०; हि० सा० इ०; हि० का० शा० इ०; हि० सा० बृ० इ०; (भा० ६); हि० सा०; रीति काव्य संग्रह : सं० जगदीश गुप्त।] —ज० गु०

चित्रकेतु—कथा साहित्यमें 'चित्रकेतु'के अनेक संदर्भ मिलते हैः—

१. पुराणोंके अनुसार चित्रकेतु एक राजा थे। उसके अनेक स्त्रियाँ थीं। नारद और अंगिराके यज्ञ करानेसे 'कृत दूती' नामक एक स्त्रीसे उसके एक पुत्र हुआ था, जिसे अन्य रानियोंने सपत्नी भावसे विष दे दिया। स्नेहके कारण चित्रकेतु उसका दाह-कर्म नहीं करना चाहता था। कहा जाता है कि अन्तमें उस बालकके उपदेशसे ही उसका मोह छूटा और तत्पश्चात् उसकी अन्त्येष्टि-क्रिया की। नारदने चित्रकेतुको एक मन्त्र दिया था, जिसके प्रभावसे केवल सात ही दिनमें उसने अप्रतिहत गति पायी तथा सर्वत्र उसकी अबाध गति हो गयी। एक दिन विमानपर बैठकर वह कैलास पर्वतपर शिवजीके पास पहुँचा एवं उन्हें पार्वतीको अपनी जाँघपर बिठाये देखकर ज्ञानोपदेश देने लगा। शिवजी तो इसपर मुस्कराये परन्तु पार्वतीने आगामी जन्ममें उसे राक्षस होनेका शाप दे दिया, जिसके फलस्वरूप अगले जन्ममें वह वृत्रासुर हुआ।

२. स्वायम्भुव मन्वन्तरमें वशिष्ठ-ऋषिके एक पुत्रका नाम चित्रकेतु था। इनकी माताका नाम अर्जा था।

३. शूरसेन नामक जनपदके एक राजाका नाम चित्रकेतु था। इनके अनेक स्त्रियाँ थीं, फिर भी ये निःसन्तान रहे। अन्तमें अंगिरा ऋषिकी कृपासे इनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ।

४. लक्ष्मणके दूसरे पुत्रका नाम चित्रकेतु था। ये चन्द्रकान्त नामक नगरमें रहते थे।

५. पांचाल देशके राजा द्रुपदके पुत्रका नाम चित्रकेतु था। द्रोणाचार्यने इसके भाई वीर्यकेतुको मँगाया, जिससे क्रुद्ध होकर द्रोणाचार्यपर इसने आक्रमण किया पर उनके हाथसे ही इसकी मृत्यु हुई। —रा० कु०

चित्रगुप्त—इनकी उत्पत्तिकी कथा बड़ी मनोरंजक है। एक बार जब ब्रह्मा ध्यानस्थ थे, उनके अंगसे अनेक वर्णोंसे चित्रित, लेखनी और मसि पात्र लिए एक पुरुष उत्पन्न हुआ, इन्हींका नाम चित्रगुप्त था। ब्रह्माके कायासे उत्पन्न

होनेके कारण इन्हें कायस्थ भी कहते हैं। उत्पन्न होते ही चित्रगुप्तने ब्रह्मासे अपने कार्यके सम्बन्धमें पूछा। ब्रह्मा पुनः ध्यानस्थ हो गये। योग निद्राके अवसानके उपरान्त ब्रह्माने चित्रगुप्तसे कहा कि यमलोकमें जाकर मनुष्योंके पाप और पुण्यका लेखा तैयार करो। उसी समयसे ये यमलोकमें पाप और पुण्यकी गणना करते हैं। अम्बष्ट, माथुर तथा गौड इनके नौ पुत्र हुए। गरुण पुराणमें यमलोकके निकट ही चित्रलोक की भी कल्पना की गयी है। कार्तिक-मासकी शुक्ला द्वितीयाको इनकी पूजा होती है। इसीलिए इसे यम द्वितीया भी कहा जाता है। शापग्रस्त राजा सुदास इसी तिथिको इनकी पूजा करके स्वर्गके भागी हुए। भीष्म पितामहने भी इनकी पूजा करके इच्छा मृत्युका वर प्राप्त किया था। मतान्तरसे चित्रगुप्तके पिता मित्त नामक कायस्थ थे। इनकी बहनका नाम चित्रा था, पिताके देहावसानके उपरान्त प्रभास क्षेत्रमें जाकर सूर्यकी तपस्या की, जिसके फलसे इन्हें ज्ञानोपलब्धि हुई। यमराजने इन्हें न्यायालयमें लेखकका पद दिया। उसी समयसे ये चित्रगुप्त नामसे प्रसिद्ध हुए। यमराजने इन्हें धर्मका रहस्य समझाया। चित्रलेखाकी सहायतासे चित्रगुप्तने अपने भवनकी इतनी अधिक सज्जा की कि देवशिल्पी विश्वकर्मा भी स्पर्धा करने लगे। वर्तमान समयमें कायस्थ जातिके लोग चित्रगुप्तके ही वंशज कहे जाते हैं (गु० मा० प० १२५)। —रा० कु०

चित्रचंद्रिका – काशीनरेशके साथ दो समाभिधानी पुस्तकोंका सम्बन्ध है, एक 'चेत-चन्द्रिका' और दूसरी 'चित्रचन्द्रिका'। 'चेतचन्द्रिका'की रचना कवि गोकुलनाथने सन् १७८३ से १८१३ ई०के बीच महाराज चेतसिंहके आश्रयमें की थी, उसका नाम आश्रयदाताके नामपर था। 'चित्र-चन्द्रिका' एक अन्य पुस्तक है, जिसके लेखकने अपना परिचय इस प्रकार दिया है—"रामसु तनय जग विदित हैं, चेतसिंह महाराज। हो सुत तिनको जानिए, विदित नाम बलवान्॥" बलवानसिंह महाराज चेतसिंहके सुपुत्र थे। उन्होंने १८३२ ई०में 'चित्र'के अगाध समुद्रकी थाह लेनेके लिए भाषामें 'चित्र-चन्द्रिका'की रचना प्रारम्भ की—"निधि, सिद्धि, नाग, चन्द्र, विक्रम सुअब्द" तथा "चित्र समुद्र अगाध कोऊ कवि थाह न ल्यायो।" यह रचना सन् १८७४ ई०मे ही पूर्ण हो सकी—"इन्दु राम ग्रह ससि बरस, मार्ग शुक्ल रविवार। चित्र-चन्द्रिका पूर्ण भो, पंचम तिथि सविचार॥" इसका प्रकाशन इलाही प्रेस, आगरासे १८८९ ई०में हुआ।

'चित्र-चन्द्रिका' अत्यन्त पाण्डित्यपूर्ण एवं उपयोगी ग्रन्थ है। इसमे लेखकका अध्ययन तथा अध्यवसाय दोनो ही सराहनीय है। संस्कृतके अनेक ग्रन्थोंका मनन तथा प्राकृत, हिन्दी एवं फारसीकी छाया स्थान-स्थानपर प्रतिबिम्बित है। भाषा-टीका तथा चित्रोंने ग्रन्थको और भी उपयोगी बना दिया है। इसमें चित्रके तीन भेद हैं—शब्द चित्र, अर्थ चित्र, सकर चित्र। शब्दचित्रके ७ भेद—वर्ण चित्र, स्थान चित्र, स्वर चित्र, आकार चित्र, गति चित्र, आकार बन्ध चित्र, गुण बन्ध चित्र, प्रथम ७ प्रकाशोंमें वर्णित है। अर्थ चित्रके ६ भेदों—प्रहेलिका, सूक्ष्मालंकार, गूढोत्तर, अपह्नुति, श्लेष तथा यमक—का वर्णन अष्टम प्रकाशमें है। अन्तिम प्रकाशमें पदार्थ (शब्दार्थ) संकर, चित्र या उभयालंकारका वर्णन है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० अ० सा०; हि० सा० बृ० इ० (भा० ६)।] —ओ० प्र०

चित्रलेखा १ – १९३४ ई०में प्रकाशित भगवतीचरण वर्माका सुप्रसिद्ध उपन्यास। 'चित्रलेखा' हिन्दीके उन विरल उपन्यासोंमें-से है, जो सफल तथा महत्त्वपूर्ण दोनों ही हैं। इस उपन्यासको असाधारण लोकप्रियता प्राप्त हुई। इसे प्रादेशिक भाषाओंमे अनूदित किया गया और इसका एक अँग्रेजी रूपान्तर प्रकाशित हुआ है। उपन्यासके आधारपर एक चलचित्र भी बनाया गया है।

'चित्रलेखा'का प्रेरणा-स्रोत अनातोले फ्रांसका उपन्यास 'थायस' माना जाता है। दोनोंके कथानकमें समता होनेपर भी 'चित्रलेखा'का संघटन एकदम अपना है। कुछ ऐतिहासिक पात्रोंके नामोंका प्रयोग करके उपन्यासको गुप्तकालीन संस्कृतिमे प्रतिष्ठित किया गया है। महाप्रभु रत्नाम्बरके दो शिष्य आचार्यसे प्रश्न करते हैं कि 'पाप क्या है'? गुरु उत्तरके लिए एकको नगरके प्रसिद्ध सामन्त बीजगुप्तके पास भेज देते है और दूसरेको योगी कुमारगिरिके पास। प्रसिद्ध नर्तकी 'चित्रलेखा', जो अपूर्व सौन्दर्यके साथ अपूर्व बुद्धिकी भी स्वामिनी है, बीजगुप्तकी सहचरी है। फिर एकाएक वह कुमारगिरिकी ओर आकर्षित होती है। बीजगुप्त, चित्रलेखा और कुमारगिरिके अन्तरसम्बन्धोंके माध्यमसे कथाको बडे रोचक और प्रभावशाली ढंगसे कहा गया है। रत्नाम्बरके शिष्य इन सम्बन्धोंके आधारपर अपने अनुभवको समृद्ध करते है और पाप-पुण्यका विवेक करना चाहते हैं। अंतमे रत्नाम्बर इसी निष्कर्षको प्रस्तुत करते हैं कि पाप-पुण्य वस्तुतः कुछ नहीं है। उनका अपना स्वरूप विभिन्न दृष्टियोंसे देखनेपर निर्भर है। —सं०

चित्रलेखा २ – चित्रलेखा भगवतीचरण वर्मा द्वारा रचित "'चित्रलेखा' उपन्यासकी प्रमुख नायिका ही नहीं, केन्द्रीय संवेदना भी है। समस्त कथावस्तु एवं सारे पात्र कहीं-न-कहीं उसके सम्पर्कमें आते है और वह इन सबके माध्यमसे मानो अपने किसी-न-किसी अंशको अभिव्यक्त करती है। ये पात्र और घटनाएँ उसके चरित्रकी व्याख्या करते हैं।' आसन्न उसके चरित्रका प्रभा-मण्डल समस्त उपन्यासको आच्छादित किये रहता है।

चित्रलेखाके जीवनके इतिहासकी संक्षिप्त रूपरेखा इस प्रकार है—वह एक ब्राह्मण विधवा है, जो किसी कृष्णादित्यके सम्पर्कमें आकर समाजच्युत हो जाती है। कृष्णादित्य एवं उससे प्राप्त पुत्रकी मृत्यु हो जाती है तब उसे एक नर्तकीके यहाँ आश्रय मिलता है। धीरे-धीरे यह अद्‌भुत रूपवती नर्तकी बनकर 'समुदाय'के सामने आने लगती है। पाटलिपुत्रके ऊपर उसका रूप, यौवन और कला छा जाती है, पर उसके जीवनमें 'व्यक्ति'का कोई स्थान नहीं। फिर अचानक बीजगुप्तमें उसे कृष्णादित्यकी छाया दिखायी पड़ जाती है और एक बार प्रत्याख्यान करनेके बाद वह फिर बीजगुप्तको अपने जीवनमें बुला लेती है। पर अभी एक व्यक्तिको उसके जीवनमे और आना था—वह था कुमारगिरि।

यह योगी उसे आकर्षित भी करता है, पर वह उसे अपनी आत्मशक्तिसे पराजित करती है, परन्तु प्रतिक्रियाके एक वेदनापूर्ण क्षणमें उसे समर्पित भी हो जाती है। अन्ततः वह अपनी समस्त सम्पत्तिको त्यागकर बीजगुप्तके साथ देशाटनके लिए निकल पड़नेके लिए प्रस्तुत हो जाती है। पतिके प्रति उसका प्रेम उसे स्वयं ईश्वरीय प्रतीत होता था; कृष्णादित्यके प्रसंगमें वह प्रेम प्राकृतिक स्तरपर उतर आता है। बीजगुप्तसे प्रणय करते समय उसे लगा कि जीवनमें प्रेमके अतिरिक्त अन्य उद्गार भी होते हैं; पर कुमारगिरिके प्रति वह क्यों आकर्षित हुई, यह वह स्वयं नहीं जानती थी।

उपन्यासके प्रारम्भमें ही पता लग जाता है कि चित्रलेखा जीवनको अविकल पिपासा माननेवाली, उद्दाम वासनाओंकी लहरोंपर तैरनेवाली सुन्दरी ही नहीं है, उसमें एक तेज और बौद्धिक व्यक्तित्व भी है। उस व्यक्तित्वके कारण उसमें भाषाका प्रत्युतपन्नमतित्व प्रभूत मात्रामें है। योगीने नर्तकीमें ज्ञान देखा था और प्रभावित हुआ था। वह "तपस्याको आत्माका हनन" मानती है और प्रेमको प्रकृतिके अन्तर्गत परिवर्तनीय भी स्वीकार करती है। अपनी आत्मशक्तिमें वह योगी एवं मन्त्री चाणक्यके सदृश ही सिद्ध हुई थी। इस शक्तिसे घबड़ाकर योगीने उसे दीक्षा देना भी अस्वीकार किया था और वह उसी क्षणतक कुमारगिरिकी ओर आकृष्ट रही, जबतक उसमें शक्ति रही, पर जिस क्षणसे कुमारगिरि विपथगामी होते हैं, वह उन्हें छोड़ देती है। उसका सिद्धान्त है कि "स्त्री उसी मनुष्यसे प्रेम कर सकती है, जो उसपर विजय पा सके।" —दे० शं० अ०

चित्रावली–हिन्दी सूफी प्रेमाख्यानक काव्योंमें 'चित्रावली' का स्थान महत्त्वका है। इसके रचयिता कवि उसमान थे। इस ग्रन्थकी रचना जहाँगीरके शासनकालमें सन् १६१३ ई०में हुई। 'चित्रावली'का कथानक कल्पना-प्रसूत है। कविने अत्यन्त ही रोचक ढंगसे कहानी कही है। इस रचनासे कविके काव्यकौशलका पता चल जाता है। अमर यशकी प्राप्तिकी लालसामें कविने इस ग्रन्थकी रचना की थी, अतएव कलात्मकताकी ओर कविका ध्यान जाना आवश्यक था।

कथा आरम्भ करनेके पहले कविने ईश्वर-स्तुति की है। इसके बाद मुहम्मद साहब, उनके चार 'मीत' अर्थात् प्रथम चार खलीफों तथा तत्कालीन बादशाह जहाँगीरकी प्रशंसा की है। शाह निजाम चिस्तीको स्मरण कर उसमानने अपने गुरु बाबा हाजीकी ही प्रशंसा की है। फिर अपने निवास-स्थान गाजीपुर, पाँच भाइयोंके वर्णन तथा रूप, प्रेम और विरहके वर्णनके बाद कविने कहानी प्रारम्भ की है। रूप, प्रेम और विरह शीर्षक देकर कविने जो वर्णन किया है, वह उसकी अपनी विशेषता है। इस प्रकारकी परम्परा हिन्दीके अन्य सूफी प्रेमाख्यानक काव्योंमें देखनेको नहीं मिलती।

'चित्रावली'का सम्पादन श्री जगमोहन वर्माने सन् १९१२ ई०में किया। काशी नागरी प्रचारिणी सभाको इस ग्रन्थका पता सन् १९०४ ई०में चला। इस पुस्तककी अखण्डित प्रति काशी नरेश पुस्तकालयमें मिली। इस पुस्तकका प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभाकी ओरसे सन् १९१२ ई०के दिसम्बरमें हुआ।

कथाके प्रारम्भसे लेकर अन्त तक उसमानने तत्कालीन काव्य तथा कथानक-रूढ़ियों और परम्पराओंका निर्वाह किया है फिर भी कविकी प्रतिभाका परिचय सर्वत्र मिलता है। प्रारम्भमें जहाँगीरके दरबारका परिचय देते हुए कवि कहता है—"कहीं न जग पतियाइ कोउ, सुनि अचरज संसार। होहिं छहों रितु एकठौं, जहाँगीर दरबार॥" कविने अपनी कल्पना शक्ति और मौलिक सूझका परिचय देते हुए बतलाया है कि किस प्रकार जहाँगीरके दरबारमें छः ऋतुएँ एक साथ ही वर्तमान रहती हैं। कविने कहा है कि बादशाह सूर्यकी तरह प्रकाशित हो रहा है, इससे संसारमें ग्रीष्मऋतु बनी है। बादशाहके दरवाजेपर हाथी झूमते रहते हैं, जिससे वहाँ पावस ऋतु बनी रहती है। मस्त हाथी बादलोंके रंगके हैं, उनके दाँत बगुलोंकी पंक्ति जैसे हैं, हाथियोंका चिग्घाड़ना बादलोंके गरजने जैसा है। श्रेष्ठ सुन्दरियोंका दल शरद् ऋतुकी तरह है। पराजित गढ़पतियोंके हृदयमें हिम ऋतु विराजित है, जिससे वे काँप-काँप उठते हैं। गढ़पतियोंकी स्त्रियाँ शिशिर ऋतु जैसी सजी हैं जिनके हृदयमें जाड़ा है और वे चीर धारण किये हुए हैं, तथा—"बरन बरन उमराव तन चोवा चन्दन चारु। फूले मनहुँ बसन्त रितु, मंहकि रहा दरबारु॥" ('चित्रावली', नागरी प्रचारिणी सभा, पृ० ७-८)।

'चित्रावली'की कथा सन्तानके लिए नेपालके राजा धरनीधरके राजपाट त्यागकर शिवकी आराधनाके वर्णनसे शुरू होती है। शिव प्रसन्न होकर राजाको वरदान देते हैं कि वे अपने अंशसे राजाके पुत्रके रूपमें अवतरित होंगे। उसमानने शिवका जो वर्णन किया है वह पूराका पूरा हिन्दू परम्पराके अनुसार है। निम्नलिखित कुछ पंक्तियोंमें शिवका वर्णन जिस प्रकारसे किया गया है, उससे उपर्युक्त कथनको समझा जा सकता है—"सुरसरि सीस कलानिधि माथे। फनपति ग्रीव बसहकर नाथे। चहुँ दिस जुत्थ जटा छहरानी। आठहुँ अंग भसम लपटानी॥......आक पात पुनि मुखहिं चबाहीं। बाउर जानि धतूरा खाहीं ('चित्रावली', पृ० १९)।" यथासमय राजाके घर पुत्र उत्पन्न होता है और सब कुछका विचारकर ज्योतिषी उसका नाम सुजान रखते हैं। सुजान अत्यन्त तीव्र बुद्धिवाला है और शीघ्र ही सारी विद्याएँ सीख लेता है। उसे शिकारका शौक है। एक दिन उसके शिकार खेलकर लौटते समय आँधी आती है और वह अपने साथियोंसे बिछुड़ जाता है। भटकता हुआ वह पर्वतके पास पहुँचता है, जहाँ एक देव रहता है। रातको सुजान उसकी मढ़ीमें जाकर सो जाता है। देव, राजकुमारको सोया हुआ देखकर देशके राजाके एकमात्र पुत्रकी रक्षाके लिए द्वारपर बैठ जाता है। उसका एक मित्र दूसरा देव आता है और रूपनगरकी राजकन्या चित्रावलीकी वर्षगांठका उत्सव देखनेके लिए उसे निमन्त्रित करता है लेकिन देव, राजकुमारको अकेला छोड़कर जाना नहीं चाहता। फिर दोनों निश्चय करते हैं कि सोये हुए राजकुमारको लेकर रूपनगर जाँय। वहाँ जाकर

वे राजकुमारको चित्रावलीकी चित्रसारीमें सुला देते हैं। देवोंके इस तरह राजकुमारको उठा ले जाने और नायिकाके कमरेमें पहुँचा देनेकी कथानक-रूढ़िके सम्बन्धमें कुछ विद्वानोंका अनुमान है कि यह फारसी काव्यकी परम्परा है लेकिन भारतीय कथा-साहित्यमें इस कथानक-रूढ़िका प्रयोग मिलता है। नेमिचन्द्रकृत 'लीलावती'में सोते हुए नायकको नायिकाकी शय्यापर सुलाने और फिर उसे उसके स्थानपर पहुँचानेकी बात कही गयी है ('हिन्दी सूफी काव्यकी भूमिका', पृ० ६५)।

चित्र देखकर मोहित होनेकी कथानक-रूढ़िका भी प्रयोग 'चित्रावली' में है। राजकुमार सुजानकी नींद जब चित्रसारीमें खुलती है तब वह चित्रावलीके चित्रको देखकर मोहित हो जाता है। चित्रावलीके चित्रसे उसके पैरोंके निकट राजकुमार अपना चित्र बनाकर फिर सो जाता है। उत्सव समाप्त होनेपर देव उसे सहीस लाकर सुला देता है। दूसरे दिन राजकुमारके चित्रको देखकर चित्रावली मोहित हो जाती है। दोनोंकी व्याकुलताका कविने वर्णन किया है।

उसमानने भी तत्कालीन सूफी तथा सूफीतर प्रेमाख्यानक काव्योंकी परम्पराओं और काव्य-रूढ़ियोंका 'चित्रावली' में उपयोग किया है। जैसे, सखियों सहित चित्रावलीका सरोवरमें स्नान करने जाना तथा क्रीड़ा करना। इस स्थलपर अन्य सूफी कवियोंकी नाईं उसमानने भी पीहर और ससुरालके रूपकके सहारे तत्त्वकी चर्चा की है। सखियाँ चित्रावलीसे कहती हैं—"एह नहियर और पितु कै राजू। ससुरे गये आव नहिं काजू। दिन दुइ चार इहाँ कर रहना। सेल्ह हमस सोई पै लहना" आदि ('चित्रावली', पृ० ४५)।

सुजानके चित्र और उसके प्रति चित्रावलीके प्रेमासक्त होनेकी बात एक नपुंसक उसकी माता रानी हीरासे कहता है। रानी क्रुद्ध होकर चित्र धुलवा देती है। तत्कालीन मुगल बादशाहोंके अन्तःपुरमें रहनेवाले खोजोंकी छाया चित्रावलीके नपुंसकोंमें है। उसमानने नाना देशोंके वर्णनका सुयोग भी पाया है। चित्रावली चार नपुंसकोंको सुजानकी खोजमें भेजती है। उसमानने विभिन्न स्थान जैसे हरिद्वार, श्रीनगर, कुमायूँ, बद्री, केदार आदिका जिक्र इस स्थलपर किया है।

चित्रावलीका एक दूत परेवा जोगीके वेशमें राजकुमारको खोजता उसके पास पहुँचता है। जोगीसे जब कुँअर उसके देशका परिचय पूछता है, तब वह रूपनगरके राजा चित्रसेन तथा चित्रावलीकी बातें बतलाता है। यहाँ भी कवि उसमानको अवसर मिल गया है, अतएव परम्परा-पालनके लिए वह नगर, सरोवर, पक्षी, फल, फूल आदिके नाम गिना डालता है—"मधुल जम्भीरी अति बहुताई। नेबू टारन गलगल जाई। अंमिरित-फर ओ दाड़िम दाखा। सन्तति जिये निमिष जो चाखा॥" ('चित्रावली', पृ० ६१)। इसी प्रकार पक्षियोंका वर्णन करते हुए कवि कहता है—"भंगराज और भृंगी, हारिल चात्रिक जूह। निसि बासर तेहि बारि महँ, कुरलहिं पंछि समूह॥" ('चित्रावली', पृ० ६२)। फूलोंका वर्णन करते हुए कवि कहता है—"केलि कदम नवमल्लिका, फुल्ल चम्पा सुरतान। छ ऋतु बारह मास तहँ, ऋतु बसन्त अस्थान॥" ('चित्रावली', पृ० ६२)। चित्रावलीका नख-शिख वर्णन भी परम्पराभुक्त ही है—"भौंह धनुष बरुनी विषबाना। देखि मदन धनु गहन लजाना॥ बरुनी बान गड़े जेहि हीये। बहुरिन निकसे जब लहु जीये॥ ..अधर सुरंग जनु खाए तंबोला। अबहीं जनु चाहै हँसि बोला॥" ('चित्रावली', पृ० ६१-६४)।

जायसीके 'पद्मावत'में जिस प्रकार हीरामन सुग्गा मार्ग-प्रदर्शकका काम करता है, उसी प्रकार 'चित्रावली'में परेवा मार्ग-प्रदर्शनका कार्य करता है। चित्रावलीका परोक्ष सत्ताके रूपमें वर्णन करते हुए परेवा कुँअरसे कहता है कि उसीके आदेशसे उसने जोगीका वेश धारण किया है और देशाटनको निकला है।

उसमानने मूर्ति-पूजाका खण्डन किया है लेकिन कविने किसी विद्वेषके कारण ऐसा नहीं किया है। मध्ययुगीन सन्तोंकी परम्परा इस खण्डनके मूलमें है। कवि कहता है—"जो न आपु आप हि पहिचाना। आन क पेम कहाँ धुन जाना॥ जेइ कुबुध जानिके देवा। बहुत करहिं पाहनकी सेवा॥ पाहन पूजि सिद्धि किन पाई। सेमर सेई सुआ पछिताई॥" ('चित्रावली', पृ० ६८)।

कविने तत्कालीन अन्य सूफी कवियोंकी नाईं नखशिख वर्णन, षट्ऋतु वर्णन, बारहमासा, नाना प्रकारके भोजन तथा मिष्टान्न आदिका वर्णन किया है। भारतवर्षके विभिन्न स्थानों तथा निवासियोंकी विशेषताओंका वर्णन कविने बड़े रोचक ढंगसे किया है। उसमानने बलंदीपमें अंग्रेजोंका भी वर्णन किया है। कविने कहा है—"बलंदीप देखा अंगरेजा। जहाँ जाइ नाहि कठिन करेजा। ऊँच नीच धन सम्पति हेरा। मद बराह भोजन जिन केरा॥" ('चित्रावली', पृ० १६०)। बङ्गाल और बंगालियोंकी विशेषताका वर्णन करते हुए कवि कहता है—"सब कहँ अमिरित पाँच है, बंगाली कहँ सात। केला काँजी पान रस साग माछरी भात॥" ('चित्रावली', पृ० १६१)।

चित्रावलीके नगरमें पहुँचनेकी कठिनाइयोंका वर्णन करते हुए कविने मार्गमें चार नगर और उन्हें घेरे हुए चार सरोवर बतलाये हैं। इस वर्णनमें कविके सामने 'सूफीमार्ग'की चार मंजिलें और चार अवस्थाएँ थीं। इस काव्यमें भी नायकके दो विवाहोंकी बात कही गयी है। कुँअर चित्रावली और कौलावतीसे विवाह करता है और बहुत दिनों तक पत्नियों सहित आनन्दसे समय बिताता हुआ राज्यका भार सम्हालता है। उसमानने अन्य सूफी कवियोंकी तरह अपने काव्यको दुःखान्त नहीं बनाया है। कवि स्वयं कहता है—"कवितन्ह मरन कथा कै गाई। मोहिं मरत हिय लागु छोहाई॥ ओ जे प्रेमअमी रस पीया। मरे न मारे जुग-जुग जीया॥" ('चित्रावली', पृ० २३६)।

इस रचनासे कवि उसमानकी काव्य-प्रतिभाका पता चलता है। वह सहज भावसे अपनी कहानी कहता है। प्रसिद्ध सूफी कवियोंमें कवि उसमानको अन्तिम सूफी कवि कहा जा सकता है, जिसमें विचारोंकी उदारता थी। उसने किसी प्रकार की धार्मिक संकीर्णताका परिचय नहीं दिया है, जैसा बादके सूफी कवि नूर मुहम्मद, शेख निसार आदिमें पाते हैं।

[सहायक ग्रन्थ—चित्रावली : काशी नागरी प्रचारिणी सभा; हिन्दी सूफी काव्यकी भूमिका : रामपूजन तिवारी, ग्रन्थ वितान, पटना–१, सन् १९६० ई०; जायसीके परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य : सरला शुक्ल, स० २०१३ वि०।] —रा० पू० ति०

चेतक–महाराणा प्रतापके कृष्णवर्णी प्रिय अश्वका नाम चेतक था। 'हल्दी घाटी'के युद्धमें चेतकने अपनी स्वामिभक्ति एवं वीरताका परिचय दिया था। अन्ततः वह मृत्युको प्राप्त हुआ। 'हल्दी घाटी' महाकाव्यमे चेतकके पराक्रम एवं उसकी स्वामिभक्तिकी कथा वर्णित हुई है। आज भी चित्तौड़मे 'चेतक'की समाधि बनी हुई है। —रा० कु०

चेतन–उपेन्द्रनाथ 'अश्क'के उपन्यास 'गिरती दीवारें'का कथानायक और चरितनायक चेतन है। वह अत्यन्त भावप्रवण, किन्तु साधारण व्यक्तित्वका पात्र है जिसके व्यक्तित्व निर्माणमें अनेक विरोधी तत्त्व और संस्कार कार्यान्वित हैं। उसके कुमार जीवन तथा यौवनके प्रारम्भिक वर्षों, २० से २५ तकके चरित्रसे समग्र भारतीय जीवनके निम्न मध्यवर्गकी युवक चेतनाका प्रतिनिधित्व होता है। "उसकी दशा उस मृगशावककी-सी थी, जिसकी टाँगें जन्मसे ही निर्बल हों और जो अपने मनकी समस्त चंचलताके बावजूद दुनियाकी रंगीनीको मुटर-मुटर तकता और कुलाचे भरनेकी इच्छाको मन-ही-मन दबाकर रह जाय।" चेतन पूरे उपन्यासमें एक संघर्षशील, महत्त्वाकांक्षी, निर्बलपर दृढ संकल्प, भाव-प्रवण-प्रेमी चरित्र है, जो निश्चय ही अपने वर्गके युवककी चेतना और कुंठाओंका एक जीवित प्रतीक है। वह बचपनसे ही एक कवि, लेखक, चित्रकार, अभिनेता, वक्ता, सम्पादक और न जाने कितने असंख्य स्वप्निल आदर्शवादी रूपोंकी कामना करता रहा पर परिस्थितियों तथा विषमताओंने कितनी ही दीवारें इनके बीच खडी कर दीं। उसके जीवनकी सबसे बडी व्यथा उसकी भावुकता, संकोच, हीनताके भाव और इनसे उद्भूत कटु क्षोभके भावमे मिलती है।

अनीति, शोषण, अत्याचार, छल, कपटके प्रति उसके मनमें कटु विद्रोह था, पर उसने कभी भी खुलकर उनका विरोध नहीं किया। सदैव वह असफल विरोध, आँसू और कुढनके रूपमें प्रकट करता रहा। चेतनके मनमें और समाजमें कितनी दुर्लंघ्य और अभेद्य दीवारें है और "उन स्थूल दीवारोंके साथ सूक्ष्म दीवारे भी है जो नायक (चेतन)के मन-मस्तिष्कको बाँधे है और जो उसके अनुभवोंके बढनेके साथ गिरती है जिनके गिरनेसे उसके मस्तिष्कका अन्धकार दूर होता है और यथार्थताके ज्ञानका प्रकाश उसके कोने-अंतरे जगमगाता है।" (गिरती दीवारें : द्वितीय संस्करणकी भूमिका)। —ल० ना० ला०

चोखे चौपदे–अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'कृत चार पंक्तियोंवाले मुक्तक छन्दोंका यह संग्रह पहली बार सन् १९३२ ई०में प्रकाशित हुआ था। अबतक इसके कई संस्करण निकल चुके है। इसमें संकलित चौपदे फुटकर तथा विविध विषयोंसे सम्बद्ध है। इनकी रचना बोलचालकी मुहावरेदार भाषामे की गयी है। 'हरिऔध'ने अपने प्रसिद्ध काव्य 'प्रियप्रवास'की रचना पाण्डित्यपूर्ण समासयुक्त

शैलीमें की थी। 'चोखे चौपदे'की फुटकर कविताओं द्वारा उन्होंने बोलचालकी सहज भाषा शैलीपर भी अपना अधिकार सिद्ध किया। —र० भ०

चौरंगीनाथ–'बौद्धगान ओ दूहा'के अनुसार चौरंगीनाथ चौरासी सिद्धोंमें तीसरे सिद्ध थे, किन्तु राहुल सांकृत्यायनने इन्हें अपनी 'पुरातत्त्व निबन्धावली'में दसवाँ स्थान दिया है। चौरंगीनाथ मत्स्येन्द्रनाथके शिष्य और गोरखनाथके गुरुभाई थे। इनका जन्म स्यालकोटके राजा शालिवाहनके घर हुआ था किन्तु इनकी विमाताने इनके पैर कटवा दिये थे। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदीका अनुमान है कि पंजाब तथा कुछ अन्य प्रदेशोंमे प्रचलित पूरनभगतकी कथाके नायक चौरंगीनाथ ही हैं। अनुमानतः इनका समय नवीं-दसवीं शताब्दी माना जा सकता है। चौरंगीनाथकी प्रसिद्ध कृति 'प्राणसंकली' है, जिसके द्वारा न केवल उनकी सिद्धिका प्रमाण मिलता है, वरन् उनके सम्बन्धमें कुछ ऐतिहासिक संकेत भी मिल जाते हैं। 'प्राणसंकली'के अतिरिक्त 'वायुतत्त्व-भावनोपदेश' नामक एक अन्य कृति भी इनकी बतायी जाती है। डा० पीताम्बरदत्त बडथ्वालने अपने 'योग-प्रवाह'मे इनके कुछ पद संकलित किये हैं।

[सहायक ग्रन्थ—पुरातत्त्व निबन्धावली : महापण्डित राहुल सांकृत्यायन; हिन्दी काव्यधारा : महापण्डित राहुल सांकृत्यायन; नाथ सम्प्रदाय : डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी; नाथ सिद्धोंकी बानियाँ : डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी; योग-प्रवाह : डा० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल।] —यो० प्र० सिं०

चौरासी वैष्णवनकी वार्ता और दो सौ बावन वैष्णवनकी वार्ता–महाप्रभु वल्लभाचार्यजीके पुष्टि-सम्प्रदायमें इन वार्ताओंका बडा महत्त्व है। इनमें पुष्टि-सम्प्रदायके भक्तोंकी, जिनमे हिन्दीके आठ प्रमुख कवि भी सम्मिलित हैं, जीवनियाँ संकलित है। 'चौरासी वैष्णवनकी वार्ता'में वल्लभाचार्यके शिष्योंकी कथाएँ संकलित हैं और 'दो सौ बावन वैष्णवन'की वार्तामें गोस्वामी विठ्ठलनाथके शिष्योंकी कथाएँ संकलित हैं।

इन वार्ताओंके रचयिताके सम्बन्धमें विद्वानोंमे मतभेद है। सामान्यतः इनके रचयिता गोस्वामी गोकुलनाथ माने जाते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्लने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'हिन्दी साहित्यका इतिहास'के संवत् १९८६ के संस्करणमें इसे गोकुलनाथकृत माना है। वे लिखते है, "ये दोनों वार्ताएँ वल्लभाचार्यके पौत्र और विट्ठलनाथके पुत्र गोकुलनाथकी लिखी है" (पृ० ४८१) परन्तु सम्भवतः जब डा० धीरेन्द्र वर्माका 'हिन्दुस्तानी' पत्रिकाके अप्रैल सन् १९३२ के अंकमें इस मतका सप्रमाण विरोध प्रकाशित हुआ तो आचार्य शुक्लने भी अपनी सम्मतिमे संशोधन कर लिखा, "इनमे-से प्रथम आचार्य श्री वल्लभाचार्यके पौत्र और विट्ठलनाथके पुत्र गोकुलनाथजीकी लिखी कही जाती है, पर गोकुलनाथके किसी शिष्यकी लिखी जान पड़ती है, क्योंकि इसमें गोकुलनाथका कई जगह बड़े भक्ति भावसे उल्लेख है" (संस्करण २०१४, पृ० ३७१)। हिन्दी साहित्य के प्रथम फ्रांसीसी इतिहासकार गार्सां द तासीने इन्हें गोकुलनाथकृत माना है। मिश्रबन्धुओंने भी तासीका समर्थन किया है।

डाक्टर धीरेन्द्र वर्माको 'चौरासी वैष्णवनकी वार्ता'को गोकुलनाथकृत माननेमें विशेष आपत्ति नहीं जान पड़ती, किन्तु 'दो सौ बावन वैष्णवनकी वार्ता'को वे गोकुलनाथकृत माननेमें झिझकते हैं। उनका कथन है, 'चौरासी वार्ता' तथा 'दो सौ बावन वार्ता'के इस समयके डाकोरके संस्करण प्रामाणिक हैं किन्तु इनके मुखपृष्ठपर इनके गोकुलनाथकृत होनेका उल्लेख नहीं है। 'चौरासी वार्ता'में कोई ऐसे विशेष उल्लेख देखनेमें नहीं आते हैं, जो इसके गोकुलनाथकृत होनेमें सन्देह उत्पन्न करते हों किन्तु 'दो सौ बावन वार्ता'में अनेक ऐसी बातें मिलती हैं, जिनसे इसका गोकुलनाथकृत होना अत्यन्त संदिग्ध हो जाता है" ('विचारधारा', द्वितीयसंस्करण, पृ० ११३)। सबसे पहली बात तो यह है कि इस वार्तामें अनेक स्थलोंपर गोकुलनाथका नाम इस तरह आया है, जिस तरह कोई भी लेखक अपना नाम नहीं लिख सकता। उदाहरणार्थ—"जब कहते कहते अर्ध रात्र बीती तब, श्री गुसाईं जी पौढ़े। गोविन्द स्वामी घर कूं चले। तब श्रीबालकृष्णजी तथा श्री गोकुलनाथजी तथा श्रीरघुनाथजी तीनों भाई वैष्णवनके मण्डलमें विराजते हैं। जब गोविन्द स्वामीने जायके दण्डवत करी। तब श्री गोकुलनाथजीने पूछे जो श्रीगुसाईंजीके यहां कहा प्रसंग चलतो हतो।" ऐसे अनेक गोकुलनाथजीके प्रति आदरसूचक उल्लेख 'वार्ताओं'में मिलनेके कारण डा० धीरेन्द्र वर्मा और बादमें पं० रामचन्द्र शुक्लको संदेह हुआ कि इनके रचयिता गोस्वामी गोकुलनाथ नहीं हो सकते। घटनाओंसे ऐतिहासिक उल्लेखोंसे भी उनके गोकुलनाथकृत होनेमें संदेह दृढ़ हो जाता है। 'दो सौ बावन वैष्णवनकी वार्ता'में ऐसा पहला स्थल श्रीगुसाईंजीकी सेवक लाडबाई तथा धारबाई शीर्षक १९९वीं वार्तामें है। वे कदाचित् वेश्याएँ थीं। उन्होंने अपने जीवन भरकी कमाई "नव लक्ष रुपया" पहले विट्ठलनाथको तथा कुछ दिनों बाद उनके पुत्र गोकुलनाथको अर्पण करना चाहा, किन्तु दोनोंने आसुरी धन समझकर अंगीकार नहीं किया। "तब गोकुलनाथके अधिकारीने गोकुलनाथके पूछे बिना एक छातमें द्रव्य बिछायके ऊपर काकर डरायके चूनो लगाय दियो सो वा छातमें रह्यो आयो। फेर साठ वर्ष पीछे औरंगजेब बादशाहकी जुल्मीके समयमें म्लेच्छ लोक लूटवे कूं आये तब श्री गोकुलमें सु सब लोग भाग गये और मन्दिर सब खाली होय गए। कोई मनुष्य गाँवमें रह्यो नाहीं" तब गाँवमें जितने मन्दिर हते सब मन्दिरनकी छात खुदाय डारी।"

उक्त घटनासे डा० वर्माने यह निष्कर्ष निकाला है कि इतिहासकार स्मिथके अनुसार औरंगजेबने मन्दिर तुड़वानेकी नीति सन् १६६९ से प्रारम्भ की और खोजके अनुसार गोकुलनाथका समय सन् १५५१ से १६४७ ई०तक माना गया है। इस तरह गोकुलनाथकृत ग्रन्थमें औरंगजेबके राज्यकी इस घटनाका उल्लेख सम्भव नहीं है। इस उल्लेखसे यह भी ध्वनि निकलती है कि वार्ता कदाचित् औरंगजेबके राज्यकालके बाद लिखी गयी है।

दूसरा स्थल गुसाईंजीकी सेवक 'गंगाबाई क्षत्राणी' शीर्षक ५१वीं वार्तामें है, उसमें गंगाबाईका जन्म-समय "सोन्नेसे अट्ठाईस और भूतलदास सत्रे सो छत्तीस" उल्लिखित है। गंगाबाईका श्रीनाथजीके साथ मेवाड़ जानेका उल्लेख 'श्री गोवर्धननाथजीके प्रागट्यकी वार्ता' शीर्षकमें इस प्रकार आया है, "मिति असाढ सुदी १५ शुक्ल संवत् १७२६ के पहिली पहर रात्रि श्रीवल्लभजी महाराज पयान सिद्ध कराए, अरोगाए। पीछे रथ हाके चले नहीं तब श्री गोस्वामि बिनती कीउ तब श्री जीकी आज्ञाकी जो गंगाबाईको गाड़ीमें बैठायके संग लै चलौ।" यह घटना भी इस प्रमाणके अनुसार १६६९ ई० में ही पड़ती है। गंगाबाईके सम्बन्धमें निश्चित उल्लेखसे भी यही सिद्ध होता है कि 'दो सौ वैष्णवनकी वार्ता' गोकुलनाथकृत नहीं हो सकती। तीसरा प्रमाण डा० वर्माने वार्ताओंके व्याकरणिक रूपका दिया है और यह निष्कर्ष निकाला है कि एक ही लेखक अपनी दो कृतियोंमें व्याकरणके इन छोटे-छोटे रूपोंमें इस तरह भेद नहीं कर सकता।

यद्यपि डा० वर्माने 'चौरासी वैष्णवनकी वार्ता'के गोकुलकृत होनेमें विशेष सन्देह व्यक्त नहीं किया, पर आचार्य शुक्ल उसे "गोकुलनाथके पीछे उनके किसी गुजराती शिष्यकी रचना" मानते हैं। हिन्दीके कुछ अन्वेषक तो समग्र 'वार्ता साहित्य'को ही अप्रामाणिक मानते हैं। इसके विपरीत द्वारिकादास पारिख और कण्ठमणि शास्त्री उसे प्रामाणिक सिद्ध करते हैं। इन दोनों विद्वानोंके तर्कोंके आधारपर प्रभुदयाल मीतलने उपर्युक्त विद्वानोंकी शकाओंका समाधान करनेका प्रयत्न किया है। वे दोनों 'वार्ताओं' को गोकुलनाथकृत मानते हैं; दोनों ग्रन्थोंको गोकुलनाथके मुखसे निःसृत प्रवचन मानते हैं जो "बादमें हरिराय द्वारा सम्पादित होकर चौरासी और दो सौ वैष्णवनकी वार्ताके रूपमें प्रसिद्ध हुए।" ऐसा ज्ञात होता है कि चौरासी वार्तावाले प्रवचन पहले लिपिबद्ध किये गये और दो सौ बावनवाले बादको। इन प्रवचनोंकी मूल प्रतियाँ भी लिखित रूपमें इधर-उधर मिल जाती हैं। उनका मत है, "सम्भवतः किसी गुजराती लेखककी लिपिबद्ध चौरासी वार्ताकी पुस्तक शुक्लजीने देखी होगी, जिसके कारण उनकी उक्त धारणा हो गयी होगी।" 'वार्ता' के पाठकसे यह छिपा नहीं है कि उसमें गोकुलनाथकी अपेक्षा गोसाईंजीके ज्येष्ठ पुत्र गिरिधरकी विशेष प्रशंसा मिलती है। यदि यह पुस्तक गोकुलनाथके किसी शिष्यकी लिखी होती तो उसमें ऐसा होना सम्भव नहीं था, क्योंकि गोकुलनाथके शिष्य अपने गुरुसे बढ़कर किसीको भी नहीं मानते हैं। दो सौ बावन वार्तामें गोकुलनाथका नाम इस प्रकार उल्लिखित हुआ है कि यह उनकी रचित ज्ञात नहीं होती। इस तर्कके सम्बन्धमें मीतलका कथन है कि हरिरायने उनके सम्पादनमें प्रसंगवश गोकुलनाथके नामका समावेश कर दिया है। वे वास्तवमें गोकुलनाथके प्रवचन ही हैं।

दो सौ बावन वार्तामें गोकुलनाथके बादकी घटनाओंके उल्लेखके सम्बन्धमें उनका कहना है कि उनका समावेश हरिरायने अपने 'भाव-प्रकाश' में किया था। उन्होंने प्रसंगकी पूर्णता और भावोंकी स्पष्टताके लिए अनेक घटनाएँ अपने अनुभवके आधारपर वार्ताओंकी टिप्पणीस्वरूप 'भाव-प्रकाश' में व्यक्त की थीं। ये घटनाएँ गोकुलनाथके प्रवचन

अथवा वार्ताओंके अंगरूपसे नहीं लिखी गयीं, अतः उनको गोकुलनाथकी कृति समझना ठीक नहीं है। वे हरिरायके शब्द हैं, जिनके लिए गोकुलनाथ उत्तरदायी नहीं है। हरिरायका देहावसान सं० १७७२ में हुआ था। अतः उनके समयमें घटित औरंगजेबके मन्दिर तोड़ने अथवा अन्य इसी प्रकारकी घटनाओंसे वार्ताओंकी प्रामाणिकतामें सन्देह नहीं होना चाहिए। हरिरायके बादके लेखकोंकी असावधानीसे मूल वार्ता और भाव-प्रकाशका सम्मिश्रण हो गया है, जिसके कारण हरिराय द्वारा लिखी हुई गोकुलनाथके बादकी घटनाएँ भी गोकुलनाथकी लिखी हुई सी ज्ञात हो सकती हैं।

'चौरासी' और 'दो सौ बावन वार्ताओं' के रूपोंकी व्याकरणिक विभिन्नताके सम्बन्धमें उनका कथन है कि चौरासी वार्ताके मूल प्रवचनोंको पहले लिपिबद्ध किया गया था और दो सौ बावनके प्रवचनोंको बादमें। फिर इन प्रवचनोंको भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंने भिन्न-भिन्न समयमे लिपिबद्ध किया था और यह लिपि-प्रतिलिपिका क्रम बहुत समय तक चलता रहा। प्रत्येक लेखकने अपनी रुचि और विद्याबुद्धिके कारण भी 'वार्ताओं'के रूपोंमें कुछ उलट-फेर कर दिया होगा। इसलिए दोनों वार्ता-पुस्तकोंकी व्याकरणसम्बन्धी विभिन्नता कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। वार्ताओंकी प्राचीनताके सम्बन्धमें उन्होंने अनेक प्रमाण प्रस्तुत किये हैं। उनमेंसे कतिपय नीचे दिये जाते हैं— (१) चौरासी वार्ताकी प्राप्त प्रतियोंमें सं० १६९७ की चैत्र शुक्ल ५ की लिखी हुई प्रति सबसे प्राचीन है, जो कांकरौली में सुरक्षित है। यह प्रति गोकुलनाथके देहावसानके ११ महीने पूर्व उनकी विद्यमानतामें गोकुलमें लिखी गयी थी। इस प्रतिको डा० दीनदयाल गुप्त आदि विद्वानोंने प्राचीन और प्रामाणिक माना है। इस प्रतिसे सिद्ध होता है कि वार्ताएँ सं० १६९७ तक लिखित रूपमे प्रसिद्ध हो चुकी थीं। (२) वार्ताओंपर गोकुलनाथके समकालीन शिष्य हरिरायका 'भाव प्रकाश' प्राप्त है। इससे सिद्ध होता है कि वार्ताओंकी रचना 'भाव प्रकाश' से पहले हो चुकी थी। 'भाव प्रकाश'की रचनाका अनुमान सं० १७२९ के बाद और सं० १७५० के पूर्व किया गया है। स० १७५२ की लिखी हुई चौरासी और 'अष्टसखानकी वार्ता'की संयुक्त प्रति 'पाटन'से प्राप्त हो चुकी थी। इससे सिद्ध होता है कि सं० १७५२ तक 'भाव प्रकाश'की रचना हो चुकी थी। हरिरायजी गोकुलनाथके अतिरिक्त किसी सामान्य व्यक्तिकी रचनापर शायद 'टीका'का श्रम नहीं करते। (३) वार्ताएँ पुष्टि-सम्प्रदायमें 'गुरु-वाक्य'के समान श्रद्धास्पद मानी जाती हैं। यदि उनकी रचना साधारण वैष्णव द्वारा होती तो ऐसा सम्भव न था। (४) गोकुलनाथके समकालीन देवकीनन्दनकृत 'प्रभुचरित्र चिन्तामणि' में वार्ताओंका उल्लेख है। श्री नाथभट्टने सं० १७२७ के लगभग चौरासी वार्ताका 'संस्कृत मणिमाला' नामक ग्रन्थ में संस्कृतमे अनुवाद किया है। (५) हरिरायके शिष्य विट्ठलनाथ भट्टने सं० १७२९ में 'सम्प्रदाय कल्पद्रुम'में गोकुलनाथके रचे ग्रन्थोंमें वार्ताओंका उल्लेख किया है।

उपर्युक्त प्रमाणोंमे 'चौरासी वार्ता'का गोकुलनाथके समयमें रचित होना सिद्ध हो जाता है, पर 'दो सौ बावन वैष्णवनकी वार्ता'की मूल या अतिप्राचीन प्रति न उपलब्ध हो सकनेसे उसकी प्रामाणिकता अभी सन्दिग्ध बनी हुई है। वार्ताओंका साहित्यिक महत्त्व इसलिए है कि उनमें सत्रहवीं शतीके प्राचीन ब्रजभाषा-गद्यका रूप मिलता है और उनसे कई वैष्णव कवियोंके जीवन-चरित्रपर प्रकाश भी पड़ता है। कृष्ण-भक्ति-साहित्यकी सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक पृष्ठभूमि समझनेके लिए भी इनका अध्ययन उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

[सहायक ग्रन्थ—विचारधारा : डा० धीरेन्द्र वर्मा; अष्टछाप : मीतल और डा० दीनदयाल गुप्त; हिन्दी साहित्य-का इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल; हिन्दी साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास : डा० रामकुमार वर्मा; प्राचीन वार्ता रहस्य (द्वितीय भाग), विद्या विभाग, कांकरोली।] —वि० मो० श०

च्यवन–ऋग्वेदके अन्तर्गत च्यवन ऋषिका उल्लेख मिलता है। महाभारतके अनुसार च्यवनकी माता पुलोमा और पिता भृगु थे। 'च्यवन'का अर्थ है 'गिरा हुआ'। ऐसी प्रसिद्धि है कि जब च्यवनकी माता गर्भवती थी तो एक राक्षस उन्हें ले भागा। मार्गमें भयवश उनका गर्भपात हो गया। राक्षसने द्रवीभूत होकर उन्हें पुत्रको साथ ले चलने की आज्ञा दी। गर्भपात द्वारा उत्पन्न होनेके कारण वे 'च्यवन' कहलाये। च्यवन एक महान् ऋषि थे। कहा जाता है कि नर्मदातटपर एक बार ये साधनामें इतने मग्न हुए कि केवल नेत्रोंको छोडकर इनके सारे शरीरको दीमकोंने ढँक लिया। फलस्वरूप उनके समस्त शरीरमें केवल नेत्र ही चमकते रहे। उनके आश्रममें एक बार राजा शर्यातिकी पुत्री सुकन्या पहुँच गयी। उसने इनके नेत्रोंको जुगनू समझकर कुरेद दिया। फलस्वरूप इनके नेत्रोंसे रक्त प्रवाहित हो निकला। इसमे राजा शर्याति इनमे क्षमा माँगने आये, लेकिन कन्याको स्त्री रूपमे देनेकी शर्तपर ही च्यवन क्षमा करनेको राजी हुए। च्यवनकी वृद्धावस्था एवं जीर्णकाय शरीर तथा सुकन्याके रूप और यौवनका परस्पर कोई साम्य न देखकर सब लोग उस कन्यापर हँसते थे। कहा जाता है कि एक बार च्यवन ऋषिके बुढापेका उपहास करके अश्विनी कुमारोंने सुकन्याको विचलित करना चाहा। उन्होंने उसके सतीत्वकी परीक्षा की। एक बार कुमारोंको सरोवरमें च्यवनके साथ स्नान कराया गया। दिव्यदेह धारण करके वे सभी क्रमशः निकले तथा सुकन्यासे एकको चुननेके लिए कहा। किन्तु उसने च्यवनको ही चुना। इससे अश्विनी कुमार सुकन्यासे अत्यधिक प्रभावित हुए तथा च्यवनको स्थायी ओषधि द्वारा यौवन प्रदान किया। 'च्यवन ऋषि'के ही नामपर 'च्यवनप्राश' नामक पौष्टिक ओषधि प्रसिद्ध है। कुमारोंके इस उपकारके फलस्वरूप च्यवनने इन्द्रसे कहकर कुमारोंको यज्ञमें भाग दिलवाया (सू० सा० प० ४४७)। —रा० कु०

छंद-प्रभाकर–जगन्नाथप्रसाद 'भानु' द्वारा रचित 'छन्द-प्रभाकर' लगभग २२४ पृष्ठोंका पिंगल ग्रन्थ है, जिसका प्रकाशन सन् १८९३ ई०में वर्धासे हुआ था। इस ग्रन्थमें लगभग ७०० छन्दोंपर विचार हुआ है। छन्दशास्त्रके

ज्ञानमें उत्तरोत्तर अवनतिके कारण प्रस्तुत लेखकने इस ग्रन्थको लिखनेकी आवश्यकता समझी। अन्य पुस्तकोंकी विषयकी अपूर्णता, वर्णनप्रणालीकी क्लिष्टता इत्यादिको ध्यानमें रखकर उसे अपेक्षाकृत अधिक पूर्ण, सरल और दोष-रहित बनानेका प्रयत्न प्रस्तुत ग्रन्थमें हुआ है। हिन्दी-संस्कृत छन्दोंके साथ-साथ कई छन्द उर्दू और मराठीके भी लक्षण और उदाहरणों सहित दिये गये हैं। मात्रा-प्रस्तार, वर्ण-प्रस्तार, मेरु, मर्कटी, पताका प्रकरण, मात्रिक सम, अर्द्धसम, विषम और वर्णसम, अर्द्धसम तथा विषमवृत्त प्रकरणोंका वर्णन सरल ढंगसे किया गया है। लक्षण और उदाहरणोंके साथ टीका और टिप्पणियोंमें उन्हें अधिकाधिक बोधगम्य बनानेका यत्न किया गया है। —नि० ति०

छंदमाला–इस ग्रन्थके लेखक केशवदास हैं। इसका रचना-काल अज्ञात है। 'छन्दमाला'की जैन ग्रन्थ भण्डार (बीकानेर)मे उपलब्ध प्रति अधूरी जान पड़ती है। इसकी प्रतिलिपि किसी खण्डित प्रतिसे हुई प्रतीत होती है। 'रामचन्द्रिका'में आये सभी छन्दोंका लक्षण तो इसमें होना ही चाहिए था पर उसके भी कई छन्द इसमें नहीं आ सके हैं। इसकी एक हस्तलिखित प्रति गुरुमुखी लिपिमें पटियालामें भी है। यह अभी तक अप्रकाशित कृति है।

'छन्दमाला' पिंगलशास्त्रका ग्रन्थ है और इसमें दो खण्ड हैं। पहले खण्डमें वर्णवृत्तोंका विचार किया गया है और दूसरेमें मात्रावृत्तोंका। पहला खण्ड महादेवकी स्तुतिसे तथा दूसरा गणेश और पिंगलाचार्यकी स्तुतिसे आरम्भ होता है। इसमें लक्षण लक्ष्य सहित छन्दोंकी संख्या १५७ है। मात्रिककी अपेक्षा वर्णिक वृत्तोंके विवेचनकी ओर अधिक दृष्टि रही है। इसका आधार संस्कृतके 'वृत्तरत्नाकर' आदि पिंगल ग्रन्थ ही हैं। इसमें कोई नवीनता नहीं है।

केशवने 'छन्दमाला'में भाषाकल्पवृक्षकी तीन शाखाएँ कही हैं—सुरभाषा, नागभाषा और नरभाषा। सुरभाषाके आदि कवि वाल्मीकि, नागभाषा (प्राकृत-अपभ्रंश भाषा) के महसु (गहसु सहस्रशीर्ष-शेषनाथ) और नरभाषा या देशभाषाके पिंगलनाग (जो शेषके अवतार माने जाते हैं) बताये गये हैं। इन्होंने वर्णवृत्तके केवल सम छन्दोंको ही लिया है। कलावृत्तिमें सम और विषम दोनोंको स्वीकृति दी है। छन्दोभंगमें 'प्राकृतपैंगलम्'के आधारपर श्रवणतुल्यको प्रमाण माना है। अन्तमें सूची दी गयी है।

इससे लक्षण देनेकी प्रणाली केशवने अपनी रखी है। ऐसा ही प्रवाह परवर्ती प्राचीन हिन्दी छन्द-ग्रन्थोंमे दिखायी देता है। इसमें लक्षणोंको बहुत सरल बनाकर रखनेका प्रयास किया गया है फिर भी कुछ ऐसे पारिभाषिक शब्द व्यवहृत हैं जिनसे पिंगलसे परिचित व्यक्तियोंको भी कठिनाई होती है, जैसे प्रिय (।।), द्विज (।।।।), नन्द (ऽ।), भुजा (।ऽ), करना (ऽऽ), तिरना (ऽऽऽऽ)। कहीं-कहीं बड़े छन्दके लक्षणोंमे छोटे छन्दको पारिभाषिक रूपसे रख दिया गया है।

'छन्दमाला'के अधिकतर उदाहरण 'रामचन्द्रिका'मे उद्धृत हैं, कुछ ही नवनिर्मित हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि 'रामचन्द्रिका'में प्रयुक्त छन्दोंके ही आधारपर 'छन्दमाला' पिरो दी गयी है। पुस्तककी पूर्ति कुछ नये उदाहरणोंसे की गयी है। —वि० प्र० मि०

छंद-विचार–दे० 'पिंगल'। —सं०

छंदसार पिंगल–मतिराम द्वारा प्रणीत छन्दशास्त्रपर लिखा 'छन्दसार पिंगल' नामक ग्रन्थ 'शिवसिंह सरोज' और 'मिश्रबन्धु विनोद'मे उल्लिखित हुआ है पर इसकी सम्पूर्ण प्रति देखनेमें नहीं आयी है। नागरी प्रचारिणी सभामें ग्रन्थकी एक प्रति है, वह भी खण्डित है अतः 'छन्दसार पिंगल'का पूरा परिचय देना सम्भव नहीं जान पड़ता। भगीरथप्रसाद दीक्षितने इसे 'वृत्तकौमुदी'से अभिन्न माना है। वृत्त-कौमुदीकार मतिरामकी जो वंश-परम्परा है, वह प्रसिद्ध मतिरामकी वंश-परपरासे भिन्न है। 'वृत्तकौमुदी'के रचयिताने ग्रन्थके अन्तमें 'छन्दसार-संग्रह' भी उसका नाम दिया है। हो सकता है कि 'छन्दसार संग्रह' और 'छन्दसार पिंगल' एक ही ग्रन्थ हों और उन्हें 'छन्दसार' (पिंगल) नामसे प्रसिद्ध कर दिया हो। यदि 'वृत्तकौमुदी' और 'छन्दसार संग्रह' या 'पिंगल' एक ही ग्रन्थ है, तो यह ग्रन्थ श्रीनगर (गढ़वाल)के स्वरूप साहि बुन्देलाके आश्रयमें लिखा गया। यह बात 'वृत्तकौमुदी'के एक छन्दसे स्पष्ट हो जाती है (पंचम प्रकाश)।

छन्दकी शिथिलता और कल्पना-कवित्तहीनता ही इस बातको सिद्ध करती है कि यह प्रसिद्ध मतिरामकी रचना नहीं है। इस ग्रन्थकी रचनाका समय यों दिया गया है—"संवत सत्रह सौ बरस अट्ठावन सुभ साल। कातिक शुक्ल त्रयोदसी, करि विचार तिहि काल॥" (पंचम प्रकाश)। इस प्रकार इसकी रचना १७०१ ई० (सं० १७५८) की निश्चित होती है।

इस 'छन्दसार संग्रह' या 'वृत्तकौमुदी'का वर्ण्य विषय पाँच प्रकाशोंमे विभक्त है। आश्रयदाताकी प्रशंसाके बाद गण, देवता, जाति, वर्ण आदिका वर्णन, मात्रिक, वर्णिक विवेचन तथा इन छन्दोंके भेद-प्रभेदोंका वर्णन किया गया है। प्रत्यय, प्रस्तार, पताका आदिका विवेचन भी इसमें है। 'पंचम प्रकाश'मे दण्डकके भेदोंका विवरण दिया गया है। ग्रन्थ प्रमुखतया भट्ट केदारककृत 'वृत्त रत्नाकर' और हेमचन्द्रकृत 'छन्दोनुशासन'पर आधारित है। छन्दकी दृष्टिसे यह महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ अवश्य है, पर कवित्वकी दृष्टिसे यह ग्रन्थ सामान्य है।

[सहायक ग्रन्थ—शि० स०; मि० वि०; हि० सा० इ०; मतिराम—कवि और आचार्य : महेन्द्रकुमार।] —भ० मि०

छंदोर्णव पिंगल–भिखारीदासरचित यह पिङ्गल ग्रन्थ हिन्दीमें छन्दोंपर लिखा हुआ महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है, क्योंकि यह बहुत व्यवस्थित तथा क्रमबद्ध है। इसकी रचना सन् १७४३ ई० में हुई। सन् १८१५ ई०में काशिराजके किसी दरबारी ने प्रतिलिपि करते समय इसमें 'छन्दप्रकाश' नामक परिशिष्ट जोड़ दिया है। इसके मुख्य संस्करणोंका प्रकाशन गोपीनाथ पाठक, बनारस (१९१२ ई०), लखनऊ प्रिंटिंग प्रेस, लखनऊ (१९३७ ई०) तथा नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ (१९१८ ई०) में हुआ है।

'छन्दोर्णव'मे १५ तरंगें हैं। पहली तरंगमें छन्दशास्त्र सम्बन्धी सामान्य चर्चा है, दूसरीमें लघु-गुरुविचार तथा मात्रिक एवं वर्णिक गणोंका विवेचन है, तीसरी तथा चौथीमें

क्रमशः मात्रिक और वर्णिक प्रस्तारोंका विवेचन है। पाँचवीं तरङ्गमें २ से ३२ मात्रा वाले सम छन्दोंपर विचार है, छठीमें मात्रिक मुक्तक छन्दोंका, सातवींमें मात्रिक अर्द्धसम छन्दोंका, आठवी में प्राकृत भाषामें प्रयुक्त छन्दोंका और नवींमें मात्रिक दण्डक छन्दों (३२ मात्रासे अधिक) का विवेचन है। दसवीं तरंगमे १ से २६ वर्णवाले वर्णिक छन्दोंका ११ वींमें २१ से २६वर्णवाले वर्णिक छन्दोंका (वर्ण सवैया), बारहवींमें संस्कृतके प्रसिद्ध छन्दोंका विवेचन किया गया है। तेरहवी तरंगोंमें अर्द्धसम तथा विषम छन्दोंका और चौदहवींमें वर्णिक मुक्त छन्दोंका विस्तार है। अन्तिम तरंगमे २६ से अधिक वर्ण वाले वर्णिक दण्डकों का विवेचन है।

इस प्रकार इसमें कुल ३६१ मात्रिक तथा वर्णिक छन्दोका विस्तार है। २ मात्रासे लेकर ४६ मात्रा तक के मात्रिक छन्दोंका प्रस्तार दिया गया है। ३२ मात्राके बाद दण्डक छन्द हो जाता है, अतः इनमें कुछका विवेचन है—३७, ३८, ४०, ४५ तथा ४६ मात्रा के। इसी प्रकार १ वर्णसे ४८ वर्ण तकके वर्णिक छन्दोका विस्तार है, पर ५, २८, २९, ३५, ३७, ४०, ४१, ४३, ४४, ४६, ४७ वर्णोंके छन्दोंपर विचार नहीं है।

'छन्दशास्त्र'का इतना विशद तथा विस्तृत निरूपण हिन्दीमे दूसरा नही है। इस ग्रन्थकी विशेषता वर्गीकरण-प्रियता है, विशेष गणोपर आधारित मात्रिक छन्दोको एक स्थानपर, संस्कृत तथा प्राकृत छन्दोंको अलग-अलग तरगोंमें रखा गया है। सातवीं तरङ्गमें अवश्य मिश्र वर्गके छन्दोको एक साथ रख दिया गया है। वर्णिक छन्दोंमे सवैयाके १४ प्रकारोंका विवेचन महत्त्वका है। इसका उदाहरण भाग भी सुन्दर है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० इ०; हि० सा० बृ० इ० (भा० ६)।] —सं०

छत्रप्रकाश–इसकी रचना लाल कवि उपनाम गोरेलालने सन् १६५८-१७१० ई०मे की थी। छत्रसालके जीवनकी 'छत्रप्रकाश'में वर्णित अतिम घटना 'लोहागढ-विजय' है। इस घटनाका समय १७६४ वि० (१७०७ ई०) मानकर मिश्रबन्धुओं, रामचन्द्र शुक्ल आदि विद्वानोने उक्त तिथिको ही लाल कविकी सम्भावित मरण-तिथि होनेकी कल्पना की है, पर यह अशुद्ध है। वस्तुतः छत्रसाल बुन्देलाने लोहागढको २६ दिसम्बर, १७१० ई०को जीता था। अतएव यदि 'छत्रप्रकाश'की वर्तमान प्रतिको पूर्ण माना जाय तो गोरेलालने इस काव्यकी रचना दिसम्बर, १७१० ई०में की होगी और उनकी मृत्यु भी इसी तिथिके आसपास हुई होगी। इन्होंने छत्रसाल बुन्देलाकी आज्ञासे इस ग्रन्थका निर्माण किया था ('छत्रप्रकाश', पृ० ६६)। यह २६ अध्यायोंमे विभक्त है। इसके प्रथम ५ अध्यायोंमें क्रमशः बुन्देल-जन्म, बुन्देल-वंश, चम्पतिरायके पुत्र सारवाहन, छत्रसालकी बाल-लीला, चोर-वध और पहाडसिंह-प्रपंचका उल्लेख है। अध्याय ६-७में औरंगजेबका उत्तराधिकार-युद्ध, चम्पतिराय और बहादुर खाँका वैमनस्य, शुभकरन-पराजय आदि घटनाओंका वर्णन है। अष्टम अध्यायमें इन्द्रमणि धन्धेरा तथा चम्पतिरायकी मृत्यु चित्रित है। अध्याय ९-१०में जयसिंह-छत्रसाल-मिलन तथा देवगढ़ विजयका वर्णन है। अध्याय ११-१६में छत्रसाल-शिवाजी मिलन तथा छत्रसालकी प्रारम्भिक विजयों, शाहजादा अकबरके विद्रोह आदि घटनाओंका उल्लेख किया गया है। अध्याय १७-२२में सुजानसिंहकी मृत्यु, इन्द्रमनिका राज्याभिषेक, छत्रसालकी विजयोंकी विस्तृत सूची, मुतरदीन-पराजय, हमीद, सैद लतीफ, बीस-मवासी-युद्ध, अब्दुल समदपराजय, बहलोल खाँ मयाती-मरण, मोधा-मठौध विजय आदि घटनाओंका वर्णन है। अध्याय २३-२५में छत्रसाल और सैद अफगन-युद्ध, प्राणनाथ द्वारा छत्रसालको शिक्षा, कृष्ण-जन्म-वर्णन, प्राणनाथ-वरदान आदि घटनाओंका उल्लेख है तथा अध्याय २६में बहादुरशाहके राज्याभिषेक और छत्रसाल द्वारा लोहागढ-विजयका वर्णन है।

'छत्रप्रकाश'मे दोहा और चौपाई छन्दोंका प्रयोग हुआ है। इसमें वर्णनकी विशदता और वीररसकी प्रधानता है। इसकी भाषा ब्रजभाषाका प्रचलित साहित्यिक रूप है, जिस पर बुन्देलखण्डीका पर्याप्त प्रभाव है। अरबी तथा फारसीके प्रयोगोंमे भाषा अधिक सजीव हो गयी है। इस प्रकार 'छत्र-प्रकाश' साहित्य और इतिहासकी दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी कृति है। यह ग्रन्थ नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा १९१६ ई० मे प्रकाशित हो चुका है।

[सहायक ग्रन्थ—हिन्दी वीरकाव्य (१६००-१८०० ई०): टीकमसिंह तोमर, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, उ० प्र० इलाहाबाद प्रथम संस्करण, १९५४ ई०, पृ० २७-३०, ४४-४६, ६६-६८, ८७-८८, १०९-१११, १६६-१६७, २६७-२८७; हिन्दी साहित्य (द्वितीय खण्ड): धीरेन्द्र वर्मा (प्रधान सम्पादक), भारतीय हिन्दी परिषद् प्रयाग, प्रथम संस्करण, मार्च, १९५९ ई०, पृ० १६९-१७०]। —टी० सिं० तो०

छत्रसाल–दे० 'छत्रप्रकाश'। —सं०

छत्रसालदशक–इसके रचयिता भूषण (१६१३-१७१५ ई०) हैं। 'छत्रसालदशक'में केवल दस छन्द—९ कवित्त और एक छप्पय—हैं। इन्होंने इस काव्यमें अपने आश्रयदाता बुन्देल वशावतंस वीर केशरी छत्रसाल बुन्देलाके आतंक, पराक्रम, रण, तलवार, तोपखाना, प्रताप तथा शौर्यका वर्णन किया है। छत्रसाल बुन्देलाने अनेक शत्रुओंको पराजित किया था। भूषणने इनमेसे चकत्ता (औरंगजेब), अब्दुस्समद, महमद अमी खाँ, तहवर खान, मुतरुदीन, बहलोल खाँ, मियाना, सेर अफगन आदि छत्रसालके विपक्षियोंका उल्लेख किया है।

यह एक मुक्तक रचना है। भूषणने इसमें अपने चरित्र-नायकके विशिष्ट गुणोंका अच्छा चित्रण किया है। इसमें वीररस और युद्ध-सामग्रीका सफल चित्रण देखनेको मिलता है। इसके छन्दोमे अनुप्रास, उत्प्रेक्षा, यमक, उपमा, उदाहरण, अत्युक्ति, रूपक आदि अलंकारोंका सफल एव स्वाभाविक प्रयोग हुआ है। इसकी भाषा ब्रज-भाषा है। इस प्रकार यह वीररसकी एक उत्कृष्ट रचना है। यह रचना अनेक स्थानोंसे भूषण-ग्रन्थावलीमें प्रकाशित हो चुकी है, जिनमेंसे कुछ ये हैं—

(क) सम्पादक—विश्वनाथप्रसाद मिश्र: भूषण-ग्रन्थावली, साहित्य-सेवक-कार्यालय, काशी, द्वितीयावृत्ति,

शरत्पूर्णिमा, १९९३।

(ख) सम्पादक—श्यामबिहारी मिश्र और शुकदेवबिहारी मिश्र : भूषण-ग्रन्थावली, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी पंचम-संशोधित संस्करण सं० १९९६ वि०।

(ग) सम्पादक—राज नारायण शर्मा, भूषण-ग्रन्थावली, हिन्दी भवन लाहौर।

(घ) सम्पादक—ब्रजरत्नदास, भूषण-ग्रन्थावली, रामनारायणलाल इलाहाबाद, प्रथम बार, १९३० ई०।

[सहायक ग्रन्थ— हिन्दी वीर काव्य (१६००-१८०० ई०) : टीकमसिंह तोमर, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, उ० प्र० इलाहाबाद, पृ० २८-२६, ४३; हिन्दी साहित्य (द्वितीय खण्ड) : धीरेन्द्र वर्मा (प्रधान सम्पादक), हिन्दी परिषद् प्रयाग, प्रथम संस्करण, मार्च, १९५९ ई०, पृ० १६६-६७।] —टी० सि० तो०

छत्रसाल रासो–बूँदीके रावराजा छत्रसाल (शत्रुसाल) १६३१ ई०में गद्दीपर बैठे। शाहजहाँ तथा औरंगजेब का अनेक युद्धोंमें इन्होंने साथ दिया। फलस्वरूप ये शाहजहाँके बड़े कृपापात्र थे। शत्रुसाल वीर थे और दानी भी। इन्होंने आजीवन औरंगजेबके साथ संघर्ष किया और उसीकी सेनाके साथ युद्धमें मारे गये। इनकी दानवीरताका उल्लेख भूषण, मतिराम तथा लालने अपनी कृतियोंमें किया है। शत्रुसालके आश्रयमें राव डूंगरसी भी थे। शत्रुसालके जीवनकी प्रसिद्ध घटनाओंको लेकर राव डूंगरसीने सन् १६५३ ई०के लगभग 'शत्रुसाल रासो'की रचना की। कृतिकी काव्य-शैली बहुत कुछ अन्य इस प्रकारकी वीर-शृंगाररसात्मक कृतियोंमें मिलती-जुलती है। दूहा, सारठा, छप्पय, भुजंगी, मौक्तिकदाम आदि छन्दोंका प्रयोग कृतिमें हुआ है। शत्रुसाल रासोकी एक हस्तलिखित प्रति कलकत्ताके 'सूरजमल नागरमल पुस्तकालय'में है।

[सहायक ग्रन्थ—राजस्थानका पिंगल साहित्य : मो० मोतीलाल मेनारिया।] —रा० तो०

छद्म विनोद-लीला–'राग छद्म विनोद' हित वृन्दावनदास रचित लीलाओंका समूह है। इन लीलाओंका रास लीलानुकरणमें प्रयोग होता है। कृष्ण छद्मरूपमें वेशपरिवर्तन करके राधासे मिलने आते हैं, किन्तु प्रत्येक बार भेद खुल जाता है। कृष्ण कभी मालिनका रूप धारण करते हैं, कभी चितेरिन, कभी धोबिन, नाइन, तमोलिन, मेनावारी आदिका रूप धारण करके राधासे मिलनेका उपक्रम करते हैं। इनमें सात लीलाएँ कृष्णके जोगी रूप की हैं। काव्यसौष्ठवकी दृष्टिसे इन लीलाओंका विशेष महत्त्व नहीं है। इनमें वचनिका (गद्य) का भी प्रयोग है। रासधारी मण्डलियाँ इनमें अपनी रुचिसे बीच-बीचमें गद्य-पद्यका समावेश करके इनका ब्रजमें अभिनय करती आ रही हैं, अतः इनके भीतर कितना प्रक्षिप्तांश है, यह कहना कठिन है। —वि० स्ना०

छलना–प्रसादकृत नाटक 'अजातशत्रु' की पात्र। छलना मगध-सम्राट् बिम्बसारकी छोटी रानी और अजातशत्रुकी माँ है। बौद्ध इतिहासमें इसे वैशालीकी वृजिजातिके राजवंशसे सम्बन्धित होनेके कारण वैशालीकी राजकुमारी और वैदेहीके नामसे अभिहित किया गया है। यह भी किंवदन्ती है कि छलना जैनमतकी अनुयायिनी थी, इसीलिए देवदत्तके द्वारा जैनमतानुकूल अहिंसाके सिद्धान्तको बुद्धसे मनवानेके कारण वह उसपर प्रसन्न हुई और उसे प्रश्रय दिया, भले ही देवदत्तकी अभिलाषा पूरी न हो सकी। मगधकी राजमाता छलना, "जिसकी धमनियोंमें लिच्छवी रक्त बड़ी शीघ्रतासे दौड़ता है", अपनी महत्त्वाकांक्षा, क्रूरता और कुटिलताके बलपर उच्च पद प्राप्त करनेके लिए कृतसंकल्प होती है। अपने पुत्र अजातको "हिंसामूलक" शिक्षाका अविनीत पाठ पढ़ाकर मगधके राजपरिवारमें विघटन उत्पन्न कर देती है। वह स्वभावसे ही क्रूर, स्वार्थी, कुटिल और ईर्ष्यालु है। शिष्टता और सज्जनता तो जैसे उसके स्वभावमें ही नहीं है। वह बड़ी रानी वासवीका स्थान-स्थानपर अपमान करती है। पैनी कटूक्तियोंसे उनके मर्मपर प्रहार करती है और अपनी दुर्नीतिमें ज़रा भी सफल हो जानेपर मिथ्या गर्वका प्रदर्शन करती हुई इतराती चलती है। वह अजातशत्रुको बलपूर्वक बिम्बसारसे कहकर युवराज पदपर आसीन करवाती है। छलना बिम्बसारसे राज्यसत्ता हस्तगत करके सन्तुष्ट नहीं हो जाती, वरन् उनपर सैनिक नियन्त्रण रखनेकी भी कुचेष्टा करती है। अपनी संस्कारोचित दुर्वृत्तियोंसे विवश होकर वह अजातशत्रुको कोशलके साथ युक्त करनेके लिए प्रेरित करती है। उसकी अदूरदर्शिताके कारण अजातशत्रु बन्दी बनता है, छलनाकी प्रतिहिंसा सजग होकर वासवीको अपना लक्ष्य बनाती है। वह अपने कलुषित हृदयमें विषको उगलती हुई देवी तुल्य वासवीके समक्ष जाकर ललकारती हुई कहती है :—"वासवी, सावधान मैं भूखी सिंहनी हो रही हूँ।" वह अपनी अदूरदर्शिताके कारण हिताहितकी पहिचान न करके देवदत्तके संकेतोंपर चलकर स्वयं अनिष्टका वरण करती है। नारी हृदयकी सहज प्रवृत्तियोंके विरुद्ध चलनेके कारण अपने उद्देश्योंमें असफल होती है और अपने पतिसे विद्रोह करनेके पश्चात् पुत्रको भी खो बैठती है किन्तु अन्तमें बार-बार असफलता प्राप्त होनेपर वासवीके द्वारा उसमें सद्बुद्धिका जागरण होता है। आत्मबोधको पाकर वह पश्चात्ताप करती हुई वासवीके अंचलमें मुँह डालकर उससे अपने पुत्रकी भीख माँगती है और पतिसे अपने दुराचरणोंके प्रति ग्लानि प्रकट करती हुई क्षमाकी याचना करती है। अन्तमें वासवीके सत्प्रयासोंसे उसे पुनः अपने खोये हुए मातृत्व एवं पत्नीत्व की प्राप्ति होती है। —के० प्र० चौ०

छविनाथ पांडेय–जन्म १८९६ ई० में मीरजापुर जिलान्तर्गत जलालपुर ग्राममें हुआ। शिक्षा प्रयाग विश्वविद्यालय में हुई। आपने साहित्यके विभिन्न रूपोंको अपनाया है। कुल ग्रन्थ संख्या ७५ है। प्रमुख कृतियाँ—'सफल जीवन' (१९२४),—'विद्रोही' (१९४२)—दोनों निबन्ध; 'माँ की ममता' (१९५०), 'अस्पतालमें' (१९५३)—उपन्यास; 'अपनी बात और अटपटे चित्र' (संस्मरण १९५५), 'मुद्रण कला' (१९५७)। आप कुछ दिनों तक ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसीके व्यवस्थापक रहे, उसके बाद आपने बिहारमें प्रौढ़ शिक्षा प्रसार अधिकारीके पदपर काम करके अवकाश ग्रहण किया। आप बड़े ही अध्यवसायी और कर्मठ व्यक्ति हैं।

छीत स्वामी–अष्टछापके कवियोंमें छीत स्वामी एक ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने जीवनपर्यन्त गृहस्थ-जीवन बिताते हुए तथा अपने ही घर रहते हुए श्रीनाथजीकी कीर्तन-सेवा की। ये मथुराके रहनेवाले चौबे थे। इनका जन्म अनुमानतः सन् १५१० ई० के आसपास, सम्प्रदायप्रवेश सन् १५३५ ई० तथा गोलोकवास सन् १५८५ ई० में हुआ था। इनका प्रारम्भिक जीवन बहुत उच्छृंखल और उद्दण्डतापूर्ण था। वार्तामें लिखा है कि ये बड़े मसखरे, लम्पट और गुण्डे थे। एक बार गोसाईं विट्ठलनाथकी परीक्षा लेनेके लिए वे अपने चार चौबे मित्रोंके साथ उन्हे एक खोटा रुपया और एक थोथा नारियल भेंट करने गये, किन्तु विट्ठलनाथको देखते ही इनपर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने हाथ जोड़कर गोसाईं जीसे क्षमा याचना की और उनसे शरणमें लेनेकी प्रार्थना की। शरणमे लेनेके बाद गोसाईंजीने श्रीनाथजीकी सेवा-प्रणालीके निर्माणमे छीतस्वामीसे बहुत सहायता ली। महाराज बीरबलके वे पुरोहित थे और उनसे वार्षिक वृत्ति पाते थे। एक बार बीरबलको उन्होंने एक पद सुनाया, जिसमे गोस्वामीजीकी साक्षात् कृष्णके रूपमें प्रशंसा वर्णित थी। बीरबलने उस पदकी सराहना नहीं की। इसपर छीत स्वामी अप्रसन्न हो गये और उन्होंने बीरबलसे वार्षिक वृत्ति लेना बन्द कर दिया। गोसाईंजीने लाहौरके वैष्णवोंसे उनके लिए वार्षिक वृत्तिका प्रबन्ध कर दिया। कविता और संगति दोनोमें छीत स्वामी बड़े निपुण थे। प्रसिद्ध है कि अकबर भी उनके पद सुननेके लिए वेष बदलकर आते थे।

छीत स्वामीके केवल ६४ पदोंका पता चला है। उनका वर्ण्य-विषय भी वही है, जो अष्टछापके अन्य प्रसिद्ध कवियोंके पदोंका है यथा—आठ पहरकी सेवा, कृष्ण लीलाके विविध प्रसङ्ग, गोसाईंजीकी बधाई आदि।

इनके पदोंका एक सकलन विद्या-विभाग, कांकरोलीसे 'छीतस्वामी' शीर्षकसे प्रकाशित हो चुका है।

[सहायक ग्रन्थ—दो सौ वैष्णवनकी वार्ता; अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय : डा० दीनदयाल गुप्त; अष्टछाप परिचय : प्रभुदयाल मीतल।] —ब्र० व०

छीहल–इनकी अभी तक एकमात्र कृति 'पंच सहेली' ही उपलब्ध हो सकी है। इस कृतिका कोई विशेष साहित्यिक महत्त्व नहीं है। मिश्रबन्धुओंने इन्हे तीसरी श्रेणीका कवि स्वीकार किया है। इन्होंने 'पंच सहेली'की रचना तिथि सं० १५७५ वि० दी है। इनका जीवन-काल इसीके आसपास निर्धारित किया जाता है। यद्यपि इनकी गणना कृष्ण भक्ति शाखाके कवियोंके साथ की गयी है किन्तु सम्पूर्णतः ये भक्त कवि नहीं ठहरते। पंच सहेली' कृतिमें में ये 'पाँच-सखियोंके क्रमशः विप्रलम्भ और सम्भोग शृंगार निरूपणके प्रति सजग दिखायी पड़ते हैं। इनकी राजस्थानीबहुल भाषा देखकर राजस्थानी-साहित्यके इतिहास लेखक इन्हे राजस्थानी कवि स्वीकार करते हैं। रामचन्द्र शुक्लने यद्यपि इनके द्वारा लिखी गयी एक अन्य रचना 'बावनी'का भी उल्लेख किया है, किन्तु अभी तक उसके प्रकाशमें आनेकी सूचना नहीं मिली है।

[सहायक ग्रन्थ—मिश्रबन्धु विनोद (भाग १); हि० सा० इ० : रामचन्द्र शुक्ल; राजस्थानी भाषा और साहित्य : पं० मोतीलाल मेनारिया।] —यो० प्र० सिं०

जंगनामा–रचयिता 'श्रीधर', उपनाम मुरलीधर। इसमें वर्णित अन्तिम घटना जनवरी, १७१३ ई० की है। अतएव इस ग्रन्थका निर्माण इसी तिथिके आसपास हुआ होगा।

जंगनामामें १६३० पंक्तियाँ हैं। इसमें बहादुरशाहके मरनेपर फर्रुखसियर और जहाँदारशाहके मध्य लड़े गये युद्धका वर्णन किया गया है। इस काव्यमें अब्दुलगफ्फार खाँ और अबुलहसनका युद्ध, फर्रुखसियरका प्रयाग-आगमन, खजुआका युद्ध और ऐजुद्दीनकी पराजय, जहाँदारशाहका दिल्ली-दरबार तथा उसका आगरा-आगमन, फर्रुखसियरका आगरा पहुँचना, युद्ध और जहाँदारशाहपर फर्रुखसियरकी विजयका वर्णन है।

श्रीधरने जंगनामामे अमीरों और वीरोंकी दीर्घ सूचीकी बार-बार आवृत्ति की है। इसमें दोहा, तोमर, हरिगीतिका, भुजंगप्रयात आदि छन्दोंका प्रयोग हुआ है। इसकी भाषा ब्रजभाषाका प्रचलित रूप है, जिसपर बुन्देली, डिंगल, अवधी आदि भाषाओंकी स्पष्ट छाप वर्तमान है। किं-बहुना जंगनामा इतिहाससम्बन्धी मौलिक एवं तथ्यपूर्ण सामग्री प्रचुर मात्रामें प्रस्तुत करके ऐतिहासिक ज्ञानकी श्रीवृद्धि करनेमें सहायक होता है। यह ग्रन्थ श्री राधा कृष्णदास और श्री किशोरीलाल गोस्वामी द्वारा सम्पादित तथा नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा १९०४ ई० में प्रकाशित हो चुका है।

[सहायक ग्रन्थ— हिन्दी वीरकाव्य (१६००-१८०० ई०) : टीकमसिंह तोमर, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, उ० प्र० इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, १९५४ ई०, पृ० ३०-३१, ४६-४७, ८८-८९, १६७, २८८-३०६; हिन्दी साहित्य, (द्वितीय खण्ड) : धीरेन्द्र वर्मा (प्रधान सम्पादक), भारतीय हिन्दी परिषद् प्रयाग, पृ० १७०-१७१।] —टी० सिं० तो०

जम्बूद्वीप–पौराणिक स्रोतोंमे ज्ञात होता है कि जम्बू द्वीप सात द्वीपोंसे घिरे एक मुख्य द्वीपका नाम है। इसके विस्तारको ९ खण्डोंमें विभाजित किया गया, जिसमें एक भारतवर्ष भी है। महाभारतमें मेरुपर्वतको घेरकर स्थित सप्त द्वीपोंको ही 'जम्बूद्वीप' कहा गया है। कुछ स्रोतोंसे ऐसा भी ज्ञात होता है कि मेरु पर्वतके चारों ओर जम्बू (जामुन) के वृक्ष स्थित होनेके कारण ही यह जम्बूद्वीपके रूपमें प्रख्यात हुआ। वर्तमान समयके जम्बू द्वीपकी ऐतिहासिकता आज अनिश्चित है। —रा० कु०

जंभनाथ–सन्त कवि जम्भनाथका जन्म जोधपुर राज्यके नागोर इलाकेके पीपासर (अथवा पयासर) नामक ग्राममें सोमवार,भाद्र पद कृष्ण अष्टमी सं० १५०८ (सन् १४५१ ई०)को राजपूत परमार लोहितके गृहमें हुआ था। इनकी माताका नाम हाँसा देवी था। बाल्यावस्थामें इनके माता-पिता प्रेमके कारण इन्हे जम्भो नामसे बुलाते थे। कालान्तरमें जम्भनाथके साथ ही साथ इनका जम्भोजी नाम भी प्रचलित हो गया। इनके नामके सम्बन्धमें श्री एच० ए० रोजका मत है कि चौंतीस वर्षकी अवस्था तक इन्होंने एक भी शब्द उच्चारित नहीं किया और अनेक चमत्कारिक एवं विस्मयजनक कार्य किये, अतः जनताने इन्हें जम्भाजी

कहना प्रारम्भ किया। सिद्धि प्राप्त हो जानेके अनन्तर ये मुनीन्द्र जम्भ ऋषिके नामसे विख्यात हुए।

जम्भनाथ अपने माता-पिताकी एक मात्र सन्तान थे। इनकी शिक्षा-दीक्षाके सम्बन्धमें कोई विवरण नहीं मिलता है। जनश्रुति है कि जम्भनाथके चौंतीसवें वर्षमें पदार्पण करनेपर इनके माता-पिताको इनके गूँगेपनपर विशेष चिन्ता हुई। नागोरकी देवीके मन्दिरमें बारह दीप जलाकर उन्होंने अपने पुत्रके हेतु वाणी-वरदानकी याचना की। यह देखकर जम्भनाथने दीपक बुझा दिये और वहाँपर उपस्थित जनताको ब्रह्मविषयक उपदेश देने लगे। किंवदन्ती है कि वे आजीवन ब्रह्मचारी, पवित्र निष्कलंक तथा वासनाहीन जीवन व्यतीत करते रहे। वे बड़े विनयशील, नम्र तथा उदारचेता थे तथा सेवा-भावमें सदैव दत्तचित्त रहा करते थे। जाति-पाँति और कुलमें उनकी आस्था कभी नहीं रही। सन्तोंकी भाँति वे भ्रमणशील थे। प्रसिद्ध है कि राजस्थानके बाहर जाकर भी अन्य प्रदेशोंमें उन्होंने अपने उपदेशोंका प्रसार और प्रचार किया था। अनुमान किया जाता है कि उत्तर प्रदेशके मुरादाबाद, बरेली और बिजनौर तक यात्रा करके उन्होंने अपने आदर्शोंको जनता तक पहुँचानेका प्रयत्न किया था।

वे अच्छे कवि थे। परन्तु दुर्भाग्यसे उनकी कोई पुस्तक उपलब्ध नहीं है। कतिपय संग्रहोंमें उनकी स्फुट रचनाएँ सगृहीत हैं। इन रचनाओंके आधारपर कहा जा सकता है कि उनका भाषापर अच्छा अधिकार था और अभिव्यञ्जनाकी सराहनीय शक्ति थी। उनकी काव्यभाषा अवधी थी, जिसमें खड़ीबोलीका विकासमान रूप उपलब्ध होता है। उदाहरणार्थ यहाँपर कतिपय पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं—

"गगन हमारा बाजा बाजे, मूल मन्तर फल हाथी। संगेका बल गुरुमुख तोटा, पाँच पुरुष मेरे साथी। जुगति हमारी छत्र सिंघासन, महत्सक्तिमें आँगे। जम्भनाथ वह पुरुष विलच्छन, जिन मन्दिर रचा अकासे॥" उन्होंने अपने आदर्शोंके प्रचारार्थ विश्नुई सम्प्रदायकी स्थापना की। अपने जीवनकालमें उन्होंने ४ प्रमुख शिष्योंको मान्यता प्रदान की। इनके नाम हैं—हावली, पावजी, लोहा पागल, दत्तनाथ तथा मालदेव। नामसे ये शिष्य नाथपन्थी प्रतीत होते हैं। सम्भव है कि विश्नुई सम्प्रदाय नाथपन्थके आदर्शोंसे किसी अंश तक प्रभावित रहा हो। परशुराम चतुर्वेदीका मत है कि इनकी उपलब्ध रचनाओंमें भी वस्तुतः देहभेद, योगाभ्यास, कायासिद्धि जैसे विषय अधिकतर पाये जाते हैं। फिर भी उन सबके देखनेसे यही प्रतीत होता है कि वे सन्त मतके अनुयायी थे, किन्तु नाथपन्थका भी प्रभाव उनपर विशेष रूपसे पड़ा था।

इनकी रचनाओंमें ओंकार जप, निरंजनकी उपासना, अजपाजप, गगन मण्डल, पंच पुरुष, सतगुरु महिमा, सोहंजप, अमृत पानसे जरामरण मुक्ति, अनन्य भक्ति आदिका बारम्बार उल्लेख हुआ है। हिन्दीके अन्य सन्तोंकी रचनाओंमें सिद्धान्तप्रतिपादन तथा साधना-उपदेश प्रसंगमें यही शब्दावली सहस्रों बार प्रयुक्त हुई है।

जम्भनाथने सं० १५८० वि०(सन् १५२३ ई०)के लगभग तालवा, बीकानेरमें समाधि लेकर जीवनलीला समाप्त की।

[सहायक ग्रन्थ—उत्तरी भारतकी सन्त परम्परा : पं० परशुराम चतुर्वेदी।] —त्रि० ना० दी०

जगजीवनदास—निर्गुण सन्त-परम्परामें इस नामके तीन सन्तोंका उल्लेख मिलता है। जगजीवन दादूपंथी, जगजीवन निरंजनी और जगजीवन सत्तनामी। इनमें सर्वाधिक ख्याति जगजीवनदास सत्तनामीको मिली है। डब्ल्यू० क्रुक साहबके अनुसार इनका जन्म सन् १६८२ ई०में बाराबंकी जिलेके सरदहा ग्राममें हुआ था। पिताम्बर दत्त बड़थ्वाल साम्प्रदायिक अनुश्रुतिके अनुसार इनका जन्म १६७० ई० मानते हैं। ये जातिके चन्देल ठाकुर थे। साम्प्रदायिक परम्पराके अनुसार इनके गुरु काशीके कोई विश्वेश्वर पुरी थे, किन्तु इन विश्वेश्वर पुरीका कोई ऐतिहासिक विवरण नहीं मिलता। एक दूसरी परम्पराके अनुसार ये बावरी पन्थके सन्त बूला साहब और गोविन्द साहबके शिष्य थे। भीखा पन्थी लोग इन्हें गुलाल साहब की परम्परामें मानते हैं।

जगजीवनदासकी कुल सात रचनाएँ प्रसिद्ध हैं—शब्द सागर, ज्ञानप्रकाश (प्रथम ग्रन्थ), आगमपद्धति, महाप्रलय, प्रेम ग्रन्थ और अघविनाश। इनमें-से केवल, 'शब्द-सागर' जगजीवन साहबकी वाणीके नामसे (दो भागोंमें) बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित हुआ है।

इन्होंने गृहस्थ जीवन यापन किया था। भौतिक जीवन एवं आध्यात्मिक साधनामें पूर्ण समन्वय स्थापित कर लेना ही इनकी विशेषता है। इनकी निश्चित मान्यता थी कि समारके कार्योंमें लगे रहनेपर भी 'सत्तसमरथ'में एकान्त निष्ठा होनेपर पूर्ण शान्ति प्राप्त हो सकती है। 'सत्तसमरथ'की प्रतिष्ठाके कारण ही इनका सम्प्रदाय 'सत्तनामी' कहा गया। इनके शिष्योंमें सभी वर्णों और जातियोंके लोग पाये जाते हैं। सत्तनामियोंकी इतिहास प्रसिद्ध नारनौल शाखा (जिसने औरङ्गजेबके विरुद्ध घोर विद्रोह किया था) इनका सीधा सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाता। इनके शिष्योंमें दूलनदास, देवीदास, गुसाईंदास और खेमदास चार पावा कहे जाते हैं। इन सभीकी रचनाएँ प्राप्त हैं।

जगजीवनदास 'सत्तनाम'के उपासक हैं और उसे अनादि-अनन्त मानते हुए भी उससे व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित करते हैं। उसके प्रति समर्पण भावना व्यक्त करते हुए सगुण भक्तोंकी शब्दावलीमें बोलने लगते हैं और उसके मिलन और विरहकी तीव्र आध्यात्मिक अनुभूतिकी व्यंजना करते समय कृष्ण-काव्य-शैलीके अभिप्रायों और प्रतीकोंका प्रयोग भी कर देते हैं। इनकी वाणी अधिक परिमार्जित नहीं है। उसमें यत्र-तत्र अवधीके प्रयोग भी मिल जाते हैं। वस्तुतः जगजीवनदासका महत्त्व उनकी अनुभूतिकी निश्छलता एवं उच्च नैतिक मूल्योंकी व्यावहारिक स्तर पर सहज प्रतिष्ठाके कारण है।

[सहायक ग्रन्थ—उत्तरी भारतकी सन्त-परम्परा : परशुराम चतुर्वेदी; हिन्दी-काव्यमें निर्गुण सम्प्रदाय : पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल; सन्तकाव्य : परशुराम चतुर्वेदी; जगजीवन साहबकी वाणी, बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग।]—रा० चं० ति०

जगदंबाप्रसाद मिश्र 'हितैषी'–जन्म सन् १८९५में उन्नाव जिलेमें हुआ तथा सन् १९५७ में कानपुरमें मृत्यु हुई। वे संस्कृत, बंगला, फारसी और उर्दूके भी अच्छे जानकार थे। कानपुरमें उनका लोहेका अच्छा व्यवसाय था।

'हितैषीजी'की 'मातृगीता', 'कल्लोलिनी' तथा 'वैकाली' नामक तीन कविता-पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। मूल फारसीसे उमरखैयामकी रुबाइयोंका एक अनुवाद तथा 'दर्शना' नामक काव्य-ग्रन्थके कतिपय अंश कानपुरसे प्रकाशित होनेवाली 'प्रतिमा'में प्रकाशित हुए थे—पर पुस्तक रूपमें वे नहीं आ सके। इनके अतिरिक्त उनकी फुटकल कविताओं, भड़ौवों, गजलों एवं रुबाइयोंका भी संकलन और प्रकाशन होना है।

'हितैषी'जी उस परम्पराके सर्वोत्तम कवि थे, जिसे 'सनेही स्कूल' के नामसे अभिहित किया जाता है। कवित्त और सवैयोंके माध्यमसे उन्होंने पुराने काव्य-विषयोंपर ही नहीं लिखा, नयी स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों एवं उपेक्षित विषयोंको भी चित्रित करना चाहा है। 'कल्लोलिनी' वस्तुतः इनकी कविताओंका प्रतिनिधि संग्रह है। सवैयाके अन्तर्गत मत्तगयन्द इन्हे विशेष प्रिय रहा है तथा उसे उप-अन्त्यानुप्रासकी स्थापना द्वारा अधिक नाद-सक्षम बनाया है। उनके सवैये अत्यन्त अर्थगर्भित हो सके हैं। चतुर्थ पंक्तिपर अधिक बल दिये जानेके बावजूद उनके सवैयोंकी सभी पंक्तियाँ महत्त्वपूर्ण है। कवित्त-सवैयोंके अतिरिक्त संस्कृतके वर्णवृत्तो एवं उर्दू छन्दोंका भी उन्होने कुशल प्रयोग किया है। उनकी भाषाकी प्रशंसा करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्लने अपने हिन्दी साहित्यका इतिहासमें लिखा है, "यदि खड़ीबोलीकी कविता आरम्भमें ऐसी ही सजीवताके साथ चली होती, जैसी इनकी रचनाओंमें पायी जाती है तो उसे रूखी और नीरस कोई न कहता" (पृ० ६११)। छायावादी युगमे जिस दार्शनिकता और प्रकृति-प्रेमके दर्शन हमे होते है वे इनके काव्यमें भी विद्यमान हैं। आपकी बहुत-सी कविताएँ हास्य-व्यंग्य सम्बन्धी भी हैं। —दे० शं० अ०

जगतसिंह–ये बिसेन वंशकी भिनगा (जि० बहराइच)वाली शाखाके दिग्विजयसिंहके पुत्र थे, जो बलरामपुरसे पाँच मील दूर देवतहाके ताल्लुकेदार थे। इन्होंने 'भारती कण्ठाभरण'मे अपने कुलका परिचय दिया है। इनका रचनाकाल १८०० ई०से १८२० ई० तक माना जा सकता है। इनके काव्य-गुरु शिवकवि अरसेला बन्दीजन थे। इन्होंने मुख्यतः शास्त्रीय ग्रन्थोंकी रचना की है और सस्कृतके आचार्यो-मम्मट, विश्वनाथ, जयदेवके सिद्धान्तोकी आलोचनात्मक व्याख्या करनेमें इनकी वृत्ति विशेष रूपसे रमी है। ये केशवदाससे भी प्रभावित थे और उनकी 'कविप्रिया' तथा 'रसिकप्रिया' की टीकाएँ लिखकर अपनी शास्त्रीय रुचिका परिचय दिया है।

इनका सर्वाधिक चर्चित ग्रन्थ 'साहित्य सुधानिधि' है। ग्रन्थकी रचना-तिथि 'हि० का० शा० इ०'में सं० १८५८ वि० (१८०१ ई०) दी गयी है, इसमें पाठ इस प्रकार है—"संवत वपु शर बसुशशि अरु गुरुवार"। और 'हि० सा० बृ० इ०', भा० ६ में यह तिथि १८९२ वि० (१८३५ ई०) मानी गयी है और इसमें पाठ इस प्रकार दिया गया है—"दग रस वसु ससि संवत अनु गुरुवार"। इनका प्रमुख आधार ग्रन्थ है 'चन्द्रालोक'पर कविने अन्य प्रमुख ग्रन्थों—'नाट्यशास्त्र', 'काव्यप्रकाश', 'साहित्यदर्पण' आदिसे सहायता लेनेकी घोषणा की है। इसमें १० तरंगे और ६३६ बरवै है। इस ग्रन्थमें काव्यशास्त्रके विषयको विस्तारसे लिया गया है। इनके अन्य ग्रन्थोंमें 'चित्र-मीमांसा'की हस्तलिखित प्रतियाँ ना० प्र० स० काशीमें है। यह चित्र-काव्य विषयक ग्रन्थ है। इसीमें कविके नायक-नायिका विषयक एक ग्रन्थ 'रसमृगांक' (१८०६ ई०)का उल्लेख हुआ है। इन ग्रन्थोंके अतिरिक्त 'दिग्विजयभूषण'की भूमिकामे भगवतीप्रसाद सिंहने इनके अन्य ग्रन्थोंका भी उल्लेख किया है—'रसमंजरी कोष' (१८०६ ई०), 'उत्तम-मंजरी', 'जगतविलास', 'नखशिख', 'भारती-कण्ठाभरण' (लिपिकाल १८०७ ई०), 'जगतप्रकाश' (१८०८ ई०) और 'नायिकादर्शन'(१८२० ई०)। इन्होंने 'साहित्य सुधानिधि'-का उल्लेख नही किया है।

जगतसिंहमें कविकी अपेक्षा आचार्य प्रधान है। आचार्यत्व की दृष्टिसे उन्होंने संक्षेपमे काम लेनेका प्रयत्न किया है। काव्य-शास्त्रके विविध पक्षोंकी मीमांसा करनेका प्रयत्न इन्होंने अपने ग्रन्थोंमे किया है परन्तु संस्कृत आचार्योंकी उक्तियोंको प्रस्तुत करनेके प्रयत्नमे इसमे काव्य-सौन्दर्य नहीं आ पाया है। काव्यमे ध्वनिको महत्त्व देनेपर भी इनके काव्यमे वैसी व्यंजना नहीं है। भाषा सरल और छन्दोंके अनुकूल है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० का० शा० इ०; हि० सा० बृ० इ०, भाग ६; दि० भू०।] —सं०

जगदीशलाल–इनके नायिका-भेदविषयक 'ब्रज-विनोद' नामक ग्रन्थका उल्लेख इतिहास ग्रन्थोंमें मिलता है। यह १८०० ई० के आसपासकी रचना मानी गयी है (हि० सा० बृ० इ०; भा० ६)। इनके एक अन्य ग्रन्थ 'परमानन्द-रस-तरंग'का उल्लेख और हुआ है (हि० का० शा० इ०)। —सं०

जगद्विनोद–पद्माकर द्वारा रचित नवरस-निरूपक यह ग्रन्थ जयपुर राजा जगतसिंहके आश्रयमें उन्हींके लिए सन् १८११ ई० मे लिखा गया था। इसका प्रकाशन नवलकिशोर प्रेस, लखनऊसे १८७९ ई० में तथा लखनऊ प्रिंटिंग प्रेससे १८९५ ई० में हुआ है। इसमें शृंगारकी श्रेष्ठता मानते हुए नायिकाभेदके साथ उसका विस्तृत वर्णन किया गया है, जिसके कारण रामचन्द्र शुक्ल इसे शृंगार रसका सारग्रन्थ मानते है। लक्षण-ग्रन्थकी अपेक्षा यह काव्यगुण सम्पन्न कृतिके रूपमें अधिक महत्त्वपूर्ण है। यह मतिरामके 'रसराज'के समकक्ष माना जाता है। नायिकाभेद वर्णनमें भानुदत्तकी 'रसमजरी'का अनुकरण किया गया है। इसमें अष्टविध नायिकाओंके केवल उदाहरण ही दिये गये हैं, लक्षण नहीं। नायिकाभेदके पश्चात् नायकभेद, दर्शन-उद्दीपन, नायकसखा, सखी-कर्म, षट्ऋतु, अनुभाव, हाव, संचारी, भाव तथा स्थायीभावके वर्णनके बाद रसका निरूपण किया गया है।

ये शृंगारका भाव जागरित करनेवालीको नायिका कहते

है, पतिके बाद भोजन-शयन करनेवाली तथा उससे पहले उठनेवाली स्त्रीको स्वकीया मानते हैं। ये शान्तको भी रस स्वीकार करते हैं। इन्होंने चित्तमें रतिभाव अनुभव करानेवाले अनुभाव, स्वभाव तथा अंग-विकासकोंको सात्विक भाव कहा है और हावोंके साथ उन्हें भी अनुभावोंमें रखा है। जृम्भाको भानुदत्तके समान सात्विक माना है। बोधक नामसे ११वाँ हाव और जोड़ दिया है। संचारीके लक्षणमें भरत मतके अतिरिक्त दशरूपकका मत भी स्वीकार किया है। रसानुकूल विकारको स्थायीभाव, जुगुप्साको ग्लानि, विस्मयको अचरज नाम दिया है और स्थायी भावके रसरूपमें परिवर्तनको दूधसे दहीमें परिवर्तनसे उपमित किया है।

वियोग शृंगारके केवल पूर्वानुराग, मान, प्रवास भेद मानते हुए मानको लघु, मध्यम तथा गुरु तथा प्रवासको भविष्यत्, भूत और वर्तमान नामक भेदसे तीन प्रकारका माना है। प्रत्येक रसके देवता, रग, हाव-भाव, अनुभावादिका वर्णन किया गया है, अन्य रसोंके भी जैसे सफल उदाहरण इस रचनामें हैं, वैसे बहुत कम रचनाओंमें मिलेंगे। यह निश्चय ही एक अत्यन्त सरस नवरस-निरूपक सफल रचना है। विवेचनपर मतिराम, कुमारमणि तथा 'काम-शास्त्र'का प्रभाव लक्षित होता है। अनभिज्ञ नायक तथा गणिकाके वर्णनमें आचार्यत्वके फेरमें पड़नेसे अस्वाभाविकता आ गयी है। विवेचन लक्षणके लिए दोहा लिखनेके बाद कवित्त-सवैयामें उदाहरण देकर किया गया है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० का० शा० इ०; हि० सा० बृ० इ० (भा० ६); रीतिकालीन कविता एवं शृंगार रसका विवेचन : राजेश्वर चतुर्वेदी; काव्यमें रस सिद्धान्तका स्वरूप विश्लेषण : आनन्द प्रकाश दीक्षित] —आ० प्र० दी०

जगन्नाथदास 'रत्नाकर'—'रत्नाकर'के पूर्वज अकबरके शासन-कालमें अपने मूलस्थान सफीदों, जिला पानीपतसे आकर दिल्लीमें बस गये और बहुत दिनों तक सरकारी नौकरी करनेके बाद मुगलोंके पतनकालमें लखनऊ आ गये। आगे चलकर इन लोगोंका सम्बन्ध काशीसे हो गया। 'रत्नाकर'के पिता पुरुषोत्तमदास हरिश्चन्द्रके समकालीन और उनकी जाति बिरादरीके थे। वे अत्यन्त समृद्ध, फारसीके अच्छे जानकार और हिन्दीके परम प्रेमी थे। 'रत्नाकर'का जन्म १८६६ ई०मे इसी सम्पन्न वैश्य घरानेमें काशीमें हुआ था। उनकी शिक्षाका आरम्भ उर्दू-फारसीसे हुआ। फिर छठें वर्षमे हिन्दी और आठवें वर्षमे अंग्रेजीकी पढ़ाई शुरू हुई। क्वीन्स कालेज, बनारससे १८९१ ई०मे बी० ए० पास करनेके बाद एल-एल० बी० और एम० ए० (फारसी)का अध्ययन प्रारम्भ किया किन्तु माताकी मृत्युके कारण पूरा न हो सका। १९०० ई०में अवागढ़के खजानेके निरीक्षक, १९०२ ई०मे अयोध्या-नरेश प्रतापनारायण सिंहके प्राइवेट सेक्रेटरी और १९०६ ई०में महाराजकी मृत्युके पश्चात् महारानीके प्राइवेट सेक्रेटरी नियुक्त हुए। शादियाँ दो हुई थीं। प्रथम पत्नीसे दो सन्तानें हुई—कमलामणि देवी और राधेदास। दूसरीसे कोई सन्तान न थी। दोनों अल्पायुमें ही मर गयीं।

'रत्नाकर'का ठाट-बाट रईसाना था। हुक्का, इत्र, पान, घुड़सवारी, व्यायाम और कबूतरोंके वे विशेष शौकीन थे। प्राचीन संस्कृति, धर्म और साहित्यमें उनकी विशेष अभिरुचि थी। मध्यकालीन हिन्दी काव्य, उर्दू, फारसी, संस्कृत प्राकृत, अपभ्रंश, मराठी, बंगला, पंजाबी, आयुर्वेद, संगीत, ज्योतिष, व्याकरण, छन्दशास्त्र, विज्ञान, योग, दर्शन, इतिहास, पुरातत्त्व आदिकी अच्छी जानकारी थी। हरिद्वार, श्रीनाथद्वारा, जगन्नाथपुरी, कश्मीर, कलकत्ता आदि भारतके लगभग सभी प्रसिद्ध स्थानोंका भ्रमण उन्होंने किया था।

'रत्नाकर'की साहित्यिक साधनाका प्रारम्भ बचपनकी समस्यापूर्तियोंसे हुआ था। विद्यार्थी-जीवनमें वे 'जकी' उपनामसे उर्दू एवं फारसीमें भी कविता करते थे किन्तु आगे चलकर हिन्दी कवियोंसे प्रभावित होकर केवल ब्रजभाषामें कविता करने लगे। यद्यपि सन् १९०७ से १९२० ई० तक अत्यधिक कार्यव्यस्तता और मानसिक अशान्तिके कारण कुछ भी न लिख सके, किन्तु फिर भी उन्होंने अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोंका सम्पादन, मौलिक कृतियोंकी रचना की और विभिन्न प्रकारके साहित्यिक एवं ऐतिहासिक लेख लिखे। इनसे उनके गम्भीर अध्ययन, मौलिक प्रतिभा और सूक्ष्म अन्तर्दृष्टिका पता चलता है। 'साहित्य सुधानिधि' तथा 'सरस्वती' आदि पत्रिकाओंके सम्पादन और रसिक-मण्डल प्रयाग, काशी नागरी प्रचारणी सभाकी स्थापना एवं विकाससे सक्रिय योग दिया। १९२२ ई० मे कलकत्तेके बीसवें अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, १९२५ ई० मे कानपुरके अखिल भारतीय कवि-सम्मेलन और १९२६ ई० में चौथी ओरिएन्टल कान्फ्रेन्सके हिन्दी विभागका सभापतित्व किया। देहावसान २१ जून, १९३२ ई०को हरिद्वारमे हुआ।

काव्य-कृतियाँ : 'हिंडोला'—सौ रोला छन्दोंका अध्यात्मपरक शृंगारिक निबन्ध-काव्य (प्रकाशन १८९४ ई०), 'समालोचनादर्श' पोपके 'एसेज आन क्रिटिसिज्म'का रोलामे अनुवाद (प्रकाशन, १९१९ ई०), 'हरिश्चन्द्र भारतेन्दुके 'सत्यहरिश्चन्द्र' नाटकपर आधारित ४ सर्गोंका खण्डकाव्य, 'कलकाशी'—१४२ रोला छन्दोंका काशी-सम्बन्धी वर्णनात्मक अपूर्ण प्रबन्धकाव्य, 'शृंगारलहरी'—शृंगारपरक १६८ कवित्त-सवैया, 'गंगा तथा विष्णुलहरी' ५२-५२ छन्दोंके भक्तिविषयक काव्य, 'रत्नाष्टक'—देवताओं, महापुरुषों तथा षट्ऋतुओंसे सम्बन्धित १६ अष्टक (रचनाकाल १९२२-२७ ई०), 'वीराष्टक'—१३ ऐतिहासिक वीरों तथा वीरांगनाओंसे सम्बन्धित १४ अष्टक, 'प्रकीर्ण-पद्यावली'—फुटकर छन्दोंका संग्रह, 'गंगावतरण'—गंगावतरणसे सम्बन्धित १३ सर्गोंका आख्यानक प्रबन्धकाव्य (प्रकाशन, १९२७ ई०), 'उद्धवशतक'—घनाक्षरी छन्दोंमें लिखित प्रबन्ध-मुक्तक दूतकाव्य (प्रकाशन १९२९ ई०)। नागरी प्रचारणी-सभा, काशीसे ब्रजभाषाकी इन रचनाओंका संग्रह दो भागोंमे 'रत्नाकर' नामसे प्रकाशित हुआ है। खड़ीबोलीके छन्द भी इसीमें संगृहीत हैं।

संपादित ग्रन्थ : 'सुधासर'—प्राचीन कवियोंके शृंगारपरक छन्दोंका संग्रह (प्रकाशन, सम्पादन १८८७ ई०), 'कविकुल कण्ठाभरण'—दूलह कविका अलंकार-ग्रन्थ

(प्रकाशन १८८९ ई०), 'दीपप्रकाश'—ब्रह्मदत्त कविका लक्षण ग्रन्थ (प्र० १८८९ ई०), 'सुन्दर शृंगार'—सुन्दर-कृत शृंगारपरक ग्रन्थ, नृपशम्भुकृत 'नखशिख' (प्र० १८९३ ई०), चन्द्रशेखर वाजपेयीकृत 'नखशिख' (सम्पादन १८९४ ई०), 'हम्मीरहठ'—चन्द्रशेखर वाजपेयीकी रस-सम्बन्धी रचना (प्र० १८९३ ई०), चन्द्रशेखर वाजपेयी-कृत 'रसविनोद' (प्र० १८९४ ई०), 'समस्यापूर्ति' (भाग १)–विभिन्न समकालीन कवियोंकी समस्या पूर्तियोंका संग्रह (प्र० १८९४ ई०), 'वासोख्ते कलक'—लखनऊके उर्दू शायर कलककी रचना, 'हिततरंगिनी'—कृपारामकृत शृंगार-ग्रन्थ (सम्पादन-प्रकाशन १८९४ ई०), केशवदासकृत 'नखशिख' (सं० प्र० १८९६ ई०), 'सुजानसागर'—घनानन्दकी कृति (प्र० १८९७ ई०), 'बिहारी रत्नाकर', 'बिहारी सतसई'की टीका (सं० १९२२ ई०), 'सूरसागर' (अपूर्ण), जिसे नन्ददुलारे वाजपेयीने पूरा किया।

साहित्यिक लेख—'रोला छन्दके लक्षण' (प्र० १९२४ ई०), 'महाकवि बिहारीलालकी जीवनी'—बिहारी सतसई-सम्बन्धी साहित्य (प्र० १९२८), 'साहित्यिक ब्रजभाषा तथा 'उसके व्याकरणकी सामग्री', 'बिहारी सतसईकी टीकाएँ' तथा 'बिहारीपर स्फुट लेख', 'साहित्य रत्नाकर' (१८८८ ई०), 'घनाक्षरी नियमरत्नाकर' (प्र० १८९७ ई०) 'कवित्त सवैया छन्द' (प्र० १९०२ ई०), 'तिथियों तथा वारोंको मिलानेकी सुगम रीति' (प्र० १९२२ ई०), 'श्री देवदत्त कविका शिवाष्टक' (प्र० १९२८ ई०), 'कविवर बिहारी'(पुस्तकाकार सम्पादित बिहारी सम्बन्धी ७६ लेख)।

ऐतिहासिक लेख—'महाराज शिवाजीका एक नया पत्र' (प्र० १९२२ ई०), 'शुंगवंशका एक नया शिलालेख' (प्र० १९२४ ई०), 'एक ऐतिहासिक पाषाणाश्वकी प्राप्ति' (प्र० १९२७ ई०), 'एक प्राचीन मूर्ति'(प्र० १९२७ ई०), 'समुद्रगुप्तके पाषाणाश्वकी प्राप्ति' (प्र० १९२८ ई०)।

लिखित व्याख्यान—प्रथम अखिल भारतीय कविसम्मेलनके सभापति पदसे दिया गया भाषण (२६ दिसम्बर, १९२५ ई०), बीसवें अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके सभापति पदसे दिया गया भाषण (२६ मई, १९३० ई०) और चतुर्थ प्राच्य सम्मेलनमे दिया गया अंग्रेजी भाषण (६ नवम्बर १९२६ ई०)।

'रत्नाकर'की भक्तिका दार्शनिक आधार मध्व, वल्लभ और चैतन्यकी समन्वित विचारधारा है। वह राधाकृष्णको उपास्य मानकर वैष्णव-धर्मकी उदारता लेकर चली है। राजनीतिक दृष्टिसे वे सर्वतोमुखी क्रान्तिके समर्थक और राष्ट्रीय गौरवके उन्नायक थे। उनकी राष्ट्रीयता जातीय उत्थानकी भावनासे अनुप्राणित है। वे सामाजिक कुरीतियों एवं धार्मिक रूढियोंका उन्मूलन कर स्वस्थ परम्पराओंका पुनरुद्धार करना चाहते थे। उनका साहित्यिक आदर्श परम्परावादी और प्राचीनता-पोषक है। कविताका धरातल वैचारिक, अभिव्यक्ति रीत्यनुमोदित और अन्तरंग आत्मनिष्ठ है। वाणीकी अतिशय अलंकृति भावाभिव्यंजन अथवा रसोद्रेकमें कहीं भी बाधक नहीं हुई है। अभिनव कल्पनाओंसे स्फीत होनेके कारण उक्तियोंकी सम्प्रेषणीयता बढ गयी है। वासनामय प्रेमोद्गारोंमें भी शिष्टोचित शालीनता है। शिल्प-विधान बहुत कुछ मध्ययुगीन है। कथात्मक, वर्णनात्मक एवं निबन्धात्मक प्रबन्ध और गेय, पाठ्य सूक्ति तथा प्रबन्धमुक्तक आदि शैलियोंके प्रयोग काफी सफल हैं। अन्य समकालीन कवियोंने पूर्ववर्ती काव्यकी एकाधिक प्रवृत्तियोंका शृंगार किया है, किन्तु 'रत्नाकर'की कृतियाँ भक्ति, शृंगार, वीर, तथा नीति आदि सभी प्रवृत्तियोंका प्रतिनिधित्व करती हैं। इस तरह वे भावनासे रससिद्ध, अभिरुचिसे अलंकारवादी और प्रवृत्या समन्वयवादी कलाकार हैं। उनमें एक आचार्यकी प्रतिभा भी थी। एक ओर उनकी काव्य-कृतियोंमें बिहारीकी भाँति नायिका-भेद, रीति, अलकार आदिकी शास्त्रीयता प्रच्छन्न रूपसे स्वीकृत है और दूसरी ओर निबन्धों एवं भूमिकाओंमें छन्द, भाषा एवं समालोचनादर्शको लेकर वैज्ञानिक दृष्टिसे शास्त्रीय मान्यताओंको नये निष्कर्षोंसे संशोधित किया गया है। उनका काव्य पुरातनताका नवीन संस्करण है। उसका सबसे बडा आकर्षण जीवनके शाश्वत मूल्योंका युग-चेतनापरक आकलन है।

[सहायक ग्रन्थ—कविवर-रत्नाकर : कृष्णशंकर शुक्ल]। —स० ना० त्रि०

जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी–जन्म १८७५ई०में नदिया जिलेके छिटका गाँवमें हुआ। पूर्वज आगरा जिलेके मई स्थानके निवासी थे। एफ० ए०की परीक्षामें असफल होकर पढना छोड दिया। कॉलेज छोडनेपर इनका परिचय 'भारतमित्र'-के सम्पादक बालमुकुन्द गुप्तसे हुआ। तभीसे ये बराबर 'भारतमित्र'मे लिखते रहे। इन्ही दिनों 'संसारचक्र' नामक उपन्यास भी लिखा पर इनकी प्रमुख ख्याति हास्य-रसात्मक कविताओंके कारण है, जिससे इन्हें हास्यरसावतार कहा जाता था। द्वादश हिन्दी साहित्य सम्मेलन, लाहौरके ये सभापति थे। इनका देहान्त १९३९ई०में हुआ। कृतियाँ—'वसन्त मालती', 'संसारचक्र', 'तूफान', 'विचित्र विचरण', 'भारतकी वर्तमान दशा', 'स्वदेशी आन्दोलन', 'गद्य-पद्यमाला', 'निरंकुशता निदर्शन', 'कृष्णचरित', 'राष्ट्रीय गीत', 'अनुप्रासका अन्वेषण', 'सिंहावलोकन', 'हिन्दी लिंग विचार', 'मधुर मिलन' (नाटक)। —सं०

जगन्नाथप्रसाद 'भानु'–इनका जन्म मध्यप्रदेशके नागपुरमें श्रावण शुक्ल दशमी, सं० १९१६ (ता० ८ अगस्त १८५९ई०) को हुआ था। इनके पिता बख्शीराम भी कवि थे। 'भानु'-जीका बाल्यकाल अधिकतर बिलासपुरमें व्यतीत हुआ। स्वाध्यायसे इन्होंने हिन्दी, उर्दू, संस्कृत, अंग्रेजी, उड़िया और मराठीका अच्छा ज्ञान प्राप्त किया था। इन्होंने शिक्षा विभागसे नौकरी प्रारम्भकी और बादमें ये असिसटेन्ट सेटेलमेंट अफसर हो गये थे। ये अपने कार्यमें अत्यन्त कुशल होनेके साथ ही साथ सामाजिक कार्योंमें भी काफी रुचि रखते थे। इन्होंने लगभग १० साहित्यिक पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें 'छन्द प्रभाकर' (रचना सन् १८९४ ई०) और 'काव्यप्रभाकर' (१९०५ई०) अधिक प्रसिद्ध हैं। रामायण, गणित इत्यादिपर भी इन्होंने कई पुस्तकें लिखी हैं। यह इनकी विभिन्न विषयोंकी समर्थताका द्योतक है। १९३८ ई०में हिन्दी साहित्य सम्मेलनने महात्मागान्धी तथा ग्रियर्सन जैसे महत्त्वपूर्ण व्यक्तियोंके साथ 'भानु'जीको

भी 'साहित्य-वाचस्पति'की उपाधि प्रदान की। इनकी मृत्यु २५ अक्तूबर १९४५ई०में हुई।

ये छन्द-शास्त्र और काव्य-शास्त्रके निष्णात पण्डित थे। साथ ही इनके ग्रन्थोंमें काव्य-प्रतिभा भी प्रस्फुटित हुई है। इन्होंने काव्यशास्त्रके विभिन्न अंगोंका विवेचन करनेके साथ ही साथ उदाहरणों द्वारा उन्हें बोधगम्य बनानेका प्रयास पूर्णतः किया है। प्राचीन ढंगकी काव्य और विवेचनशैली इनकी प्रमुख विशेषता है (दे० 'काव्यप्रभाकर')। —नि० नि०

जगन्नाथप्रसाद 'मिलिंद'–इनका जन्म १९०७ ई० मुरार, ग्वालियरमें हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा मुरारमें ही मिली। उसके बाद काशी विद्यापीठमें साहित्य, इतिहास, राजनीति और अर्थशास्त्रका अध्ययन किया। हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजीके अतिरिक्त स्वाध्यायसे उर्दू, मराठी, बंगला, और गुजराती भाषाओंका सम्यक् ज्ञान प्राप्त किया। विश्वभारती, शान्ति-निकेतन तथा महिला आश्रम वर्धामें अध्यापन। प्रयाग और अजमेरमें साहित्यिक एवं राजनीतिक कार्य। पंजाब तथा ग्वालियरमें अनेक पत्र तथा पत्रिकाओंका सम्पादन। कांग्रेस और समाजवादी पार्टीमें कई महत्वपूर्ण पदोंपर रहे। इस समय निष्पक्ष पत्रकारके रूपमें कार्य करते हुए अध्ययन और साहित्यिक निर्माणमें संलग्न हैं।

'मिलिन्द'जीने सन् १९२२ के लगभग काव्य रचना प्रारम्भ की। सन् १९२९ में अपनी जन्मभूमि मुरारके कुछ विद्यार्थियोंके आग्रहपर 'प्रताप प्रतिज्ञा' नाटककी रचना की। इसमें केवल पुरुष पात्रोंको लेकर महाराणा प्रतापके मुगल सम्राट् अकबरसे राजनीतिक सघर्षका चित्रण है। नाटकमें बाह्य द्वन्द्वकी प्रधानता है और अन्तमें महाराणा प्रतापकी बड़े तीव्र मानसिक विक्षोभमें मृत्यु दिखायी गयी है। इस प्रकार यह दुःखान्तकी रचना है, किन्तु इसका मूल उद्देश्य हमारे मनमें विषादका भाव जगाना नहीं, वरन् हमें देशके प्रति अपने कर्त्तव्य निर्वाहकी ओर सचेष्ट करना है। सन् १९५० में 'मिलिन्द'जीका दूसरा नाटक 'समर्पण' प्रकाशित हुआ। यह पश्चिमकी बुद्धिवादी नाटकीय शैलीमें लिखित समस्या नाटक है और उसमें आजकी सामाजिक परिस्थितिका चित्रण किया गया है। इनकी तीसरी नाट्यकृति 'गौतम नन्द' (१९५२)में राज्याभिषेककी घोषणा हो जानेपर, गौतम बुद्धका नवपरिणीता पत्नी तथा राजसी वैभवको छोड़कर भिक्षु होनेका प्रसंग है। बाह्य द्वन्द्व अथवा क्रियाशीलताके स्थानपर इसमें भी वाद-प्रतिवाद ही अधिक है।

'मिलिन्द'जीकी काव्य रचनाओंके कई संग्रह प्रकाशित हुए हैं: 'जीवन संगीत' (१९४० ई०), 'नवयुगके गान' (१९४२ ई०), 'बलिपथके गीत', 'भूमिकी अनुभूति' एवं 'मुक्तिका'। इन रचनाओंमें देशभक्तिका स्वर ही प्रधान है। इनके दो निबन्धसंग्रह 'चिन्तन कण' और 'सांस्कृतिक प्रश्न' (१९५४ ई०) भी प्रकाशित हुए हैं तथा एक व्यंग्य विनोद कथा-संग्रह 'बिल्लोंका नखछेदन' भी छपा है। इनकी सभी रचनाओंमें राष्ट्रीयता और आदर्शवादका स्वर प्रधान है। नाटकीय क्षेत्रमें प्रारम्भमें इन्होंने स्वच्छन्दतावादी पद्धति अपनायी थी। बादकी रचनाओंमें यद्यपि इन्होंने बुद्धिवादी नाटकोंकी यथार्थ चित्रणकी शैली ग्रहण कर ली है तथापि पहलेकी शैलीका भी कुछ प्रभाव शेष रह गया है। इसीलिए इनके बुद्धिवादी नाटकोंमें हमें गीतोंका प्रयोग मिलता है। —वि० मि०

जगन्नाथप्रसाद शर्मा–जन्म १९०५ ई०में उँचेहरा (जिला-नागौद)में। शिक्षा हिन्दू विश्वविद्यालय, काशीमें (एम० ए०; डी० लिट०), जहाँ अब आप हिन्दी विभागके अध्यक्ष हैं। हिन्दी समीक्षाके प्रारम्भिक कालमें आपने उसे समृद्ध बनानेमें पूरा योग दिया। आपकी दो कृतियाँ विशेष रूपसे प्रसिद्ध हैं—'हिन्दीकी गद्य शैलीका विकास' (१९३० ई०) तथा 'प्रसादके नाटकोंका शास्त्रीय अध्ययन' (१९५२ ई०)। कहानीका रचना-विधान(१९५३ ई०) आपकी नयी समीक्षा-कृति है। —सं०

जगमोहन सिंह (ठाकुर)–जगमोहन सिंहका नाम 'भारतेन्दु युग'के सहृदय साहित्य सेवियोंमें आता है। आप मध्यप्रदेश स्थित विजयराघव गढ़के राजकुमार और अपने समयके बहुत बड़े विद्यानुरागी थे। आपका जन्म सन् १८५७ ई० और मृत्यु बयालीस वर्षकी आयुमें १८९९ ई०में हुई। शिक्षा-दीक्षाके सिलसिलेमें आपको कुछ दिनोंके लिए काशी आना पड़ा था और उसी बीच आपको काशीके तत्कालीन सुप्रसिद्ध साहित्यकारोंसे परिचित होनेका सुअवसर भी मिला था। आप मूलतः कवि थे। आपने जो गद्य लिखा है, उसपर भी आपके कवि-व्यक्तित्वकी स्पष्ट छाप है।

आप उन्नीसवीं शताब्दीके उत्तरार्धके उन स्वनामधन्य कवियोंमें प्रमुख माने जाते हैं, "जिन्होंने एक ओर तो हिन्दी साहित्यकी नवीन गतिके प्रवर्त्तनमें योग दिया, दूसरी ओर पुरानी परिपाटीकी कविताके साथ भी अपना पूरा सम्बन्ध बनाये रखा।" इस सन्दर्भमें आचार्य रामचन्द्र शुक्लने आपको "एक प्रेम-पथिक कवि"के रूपमें स्मरण किया है (दे० 'हिन्दी साहित्यका इतिहास', संशोधित संस्करण, काशी १९४८ ई०, पृ० ४७८, ५८०)। आपकी काव्य भाषा परिमार्जित ब्रजभाषा थी। सरस शृंगारी भावभूमिको लेकर कवित्त-सवैयाकी रचना करनेमें आप बहुत निपुण थे। उनकी रचनाओंकी एक बहुत बड़ी विशेषता इस बातमें है कि वे प्रकृतिके नाना मनोहर चित्रोंसे अलंकृत हैं। उनमें प्रकृतिके विस्तृत सौन्दर्यके प्रति व्यापक अनुराग दृष्टि बिम्बित हुई है। छायावाद युग आरम्भ होनेके कोई २५-३० वर्ष पूर्व ही जगमोहन सिंहकी कृतियोंमें मानवीय सौन्दर्यको प्राकृतिक सौन्दर्यकी तुलनामूलक पृष्ठभूमिमें देखने-परखनेका एक संकेत उपलब्ध होता है और इस दृष्टिसे उनकी तत्कालीन रचनाएं "हिन्दी काव्यमें एक नूतन विधानका आभास देती हैं।"

आपकी कविताओंके तीन संग्रह प्रसिद्ध हैं—१. प्रेम सम्पत्ति लता (१८८५ ई०), २. श्यामा लता और ३. श्यामा-सरोजिनी (१८८६ ई०)। 'प्रेमसम्पत्ति लता'से इनकी एक बहुउद्धृत शृंगारिक रचना (सवैया) निम्नांकित है—"अब यो उर आवत है सजनी, मिलि जाउँ गरे लगिकै छतियों। मनकी करि भाँति अनेकन औ मिलि कीजिय री रसकी बतियाँ॥ हम हारि अरी करि कोटि

उपाय, लिखी बहु नेह भरी पतियाँ। जगमोहन मोहनी मूरतिके बिना कैसे कटैं दुखकी रतियाँ॥"

आप हिन्दीके अतिरिक्त संस्कृतसाहित्यके भी अच्छे ज्ञाता थे। आपके समस्त कृतित्वपर संस्कृत-अध्ययनकी व्यापक छाप है। आपने ब्रजभाषाके कवित्त और सवैया नामक छन्दोंमें कालिदास कृत 'मेघदूत'का बहुत सुन्दर अनुवाद भी किया है।

आप अपने समयके उत्कृष्ट गद्य लेखक भी रहे हैं। हिन्दी निबन्धके प्रथम उत्थानकालके निबन्धकारोंमें आपका स्थान महत्त्वपूर्ण है। आप ललित शैलीके सरस लेखक थे। इनकी भाषा बड़ी परिमार्जित एवं संस्कृतगर्भित थी और शैली प्रवाहयुक्त तथा गद्य काव्यात्मक। फिर भी हिन्दीके आरम्भिक गद्यमें उपलब्ध होनेवाले पूर्वी प्रयोगों और 'पण्डिताऊपन'की चिन्त्य शैलीसे आप बच नहीं पाये हैं। 'धरे हैं', 'हम क्या करें', 'चाहती हौ', 'जिमै दूँ' और 'ढोल पिटै' जैसे अशुद्ध प्रयोग आपकी रचनाओंमे बहुत अधिक मात्रामें प्राप्त होते हैं। आप अंगरेजीके भी अच्छे ज्ञाता थे।

'श्यामा स्वप्न' जगमोहन सिंहकी प्रमुख गद्य कृति है। इसका एक प्रामाणिक स्वरूप श्रीकृष्णलाल द्वारा सम्पादित होकर काशीकी नागरी प्रचारिणी सभासे प्रकाशित हो चुका है। लेखकके समसामयिक युगके सुप्रसिद्ध साहित्यकार अम्बिकादत्त व्यासने इस कृतिको गद्य-काव्य कहा है। स्वयं लेखकने इसे "गद्यप्रधान चार खण्डोंमे एक कल्पना" कहा है। यह वाक्यांश इस पुस्तकके मुख पृष्ठपर अंकित है। इसमें गद्य और पद्य दोनोंका प्रयोग किया गया है किन्तु गद्यकी तुलनामे पद्यकी मात्रा बहुत कम है। यह कृति वस्तुतः एक भावप्रधान उपन्यास है। इसकी शैली वर्णनात्मक है और इसमे चरित्र-चित्रणकी उपेक्षा करके प्रकृति तथा प्रेममय जीवनके सुन्दर चित्र अंकित किये गये हैं।

आपने आधुनिक युगके द्वारपर खड़े होकर शायद पहली बार प्रकृतिको वास्तविक अनुराग-दृष्टिसे देखा था। आपके कविरूपकी यह एक विशेषता है। निबन्धकारके रूपमे आपने हिन्दीकी आरम्भिक गद्यशैलीको एक साहित्यिक व्यवस्था प्रदान की थी। —र० भ०

जटमल–अपनी कृति 'गोरा बादल री बात'में जटमलने जो कुछ उलेख किये हैं, उनके आधारपर जटमलके विषयमें केवल इतना पता चलता है कि वे मोरछड़ेके पठान शासक नासिरनन्दअली खाँ न्याजी खाँके समकालीन थे। उनके पिताका नाम धरमसी था और उनका पूरा नाम 'नाहर जाट जटमल' (नाहर खाँ जटमल) था। अपनी एकमात्र कृति 'गोरा बादल'की रचना उन्होंने १६२८ई० (अथवा १६२३ई०)में सांबेला (संबला या सुबुला) ग्राममें की थी। कुछ विद्वानोंका अनुमान है कि नाहर खाँ जटमलकी उपाधि थी, वास्तवमे वे हिन्दू थे और पीछे मुसलमान हो गये थे। सांबेला ग्रामकी निश्चित स्थितिके विषयमें कुछ नहीं कहा जा सकता। सम्भव है जटमल जाट हों, जैसा कि उन्होंने स्वयं उलेख किया है। अली खाँके राज्यकी सुख-शान्तिका जैसा वर्णन उन्होंने किया है, उससे लगता है कि जटमल उसके आश्रयमें रहे होंगे। इनके समयके सम्बन्धमें केवल इतना कहा जा सकता है कि ये सन् १६२३-१६२८में विद्यमान थे।

[सहायक ग्रन्थ—हिन्दी साहित्य, खण्ड २, भारतीय हिन्दी परिषद्, प्रयाग।] —रा० तो०

जटायु–परम्परानुसार एक प्रसिद्ध गृद्ध तथा दशरथके मित्र थे। इनके पिता विनतानन्दन सूर्य-सारथि अरुण थे। जटायुके भाईका नाम संपाती था। दोनों प्रबल पराक्रमी थे। एक बार इन्होंने आकाश मार्गमें उड़कर सूर्यका रथ रोकनेका दुस्साहस किया था। जटायु पंचवटीमें निवास करते थे। सीताका अपहरण कर आकाश मार्गसे जाते हुए रावणसे इन्होंने युद्ध किया और प्रारम्भमें रावणको पछाड़ भी दिया, किन्तु अन्तमे रावणने इनके पंख काट डाले और मुमूर्षु अवस्थामे छोड़कर भाग गया। सीताको खोजते हुए रामने मूर्च्छितावस्थामे इन्हें देखा। इन्होंने रामके सामने प्राण त्यागे। रामने अपने हाथों इनकी अन्त्येष्टि क्रिया की (दे० 'सूरसागर', प० ४२४ तथा 'मानस', सीताहरण प्रसंग)। —रा० कु०

जटाशंकर–'नीलकण्ठ'। —सं०

जटासुर–१. जटासुर महाभारतकालीन एक असुर था। महाभारतमे लिखा है कि जब अर्जुन बदरिकाश्रममें ठहरे थे तो जटासुर द्रौपदीपर मोहित हो गया था। जटासुर भीमसे भयभीत रहता था। अतः वह एक बार भीमकी अनुपस्थितिमें ब्राह्मण वेश धारण करके द्रौपदीको हरने आया। हरण करके जाते समय भीम मिल गये तथा उन्होंने इसका वध कर डाला। जटासुरके पुत्र अलम्बुशने महाभारत युद्धमे कौरवोंका साथ दिया था।

२. युधिष्ठिरकी राजसभामे एक राजाके रूपमें भी जटासुरका उल्लेख मिलता है। —रा० कु०

जड़भरत–भागवतमें वर्णित है कि जड़भरत एक प्राचीन राजा थे, जो परम विद्वान् और शास्त्रज्ञ होते हुए भी सांसारिक वासनाओंसे अपना पीछा न छुड़ा सके। वानप्रस्थ धारण करके भी उन्होने सद्योजात एक मृग शावकको पालकर उससे अत्यन्त स्नेह किया था। अन्तमें ईश्वरके स्थानपर उसीका ध्यान करते हुए गोलोकवासी हुए। इसके अनन्तर चौरासी योनियाँ भोगते हुए पुनः मनुष्य योनिमें अवतीर्ण हुए, किन्तु फिर भी इनकी जड़ता नहीं गयी। इसीलिए 'जड़भरत' नामसे प्रसिद्ध हुए। परम विद्वान् होते हुए भी इन्हें लोग मूर्ख समझते थे और केवल भोजन देकर इनसे खूब काम लेते थे। एक बार राजा सौवीरने इन्हें पालकी ढोनेमे लगाना चाहा। इसी अपमानसे इन्हें आत्मज्ञानकी अनुभूति हुई। पालकी ढोनेकी अवज्ञा करनेपर इनपर मार पड़ी, किन्तु ये विचलित नहीं हुए। अन्तमे राजा सौवीरने इन्हें पहिचाना और क्षमा-याचना करते हुए इनसे ज्ञानोपदेश प्राप्त किया। भरतने भी ज्ञानोद्रेक द्वारा मोक्ष प्राप्त किया (दे० सू० सा०, प० ४१०-४११)। —रा० कु०

जनक–सीताके पिता। जनक अपने अध्यात्म तथा तत्त्वज्ञानके लिए अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। जनकके पूर्वज निमि कहे जाते हैं। निमिने एक बृहत् यज्ञका आयोजन करके वशिष्ठको पौरोहित्यके हेतु आमन्त्रित किया, किन्तु वशिष्ठ

उस समय इन्द्रके यज्ञमें संलग्न थे। अतः वे असमर्थ रहे। निमिने गौतम आदि ऋषियोंकी सहायतासे यज्ञ आरम्भ करा दिया। वसिष्ठने उन्हें शाप दे दिया, किन्तु प्रत्युत्तरमें निमिने भी शाप दिया। परिणामतः दोनों ही भस्म हो गये। ऋषियोंने एक विशेष उपचारसे यज्ञसमाप्तितक निमिका शरीर सुरक्षित रखा। निमिके कोई सन्तान नहीं थी, अतएव ऋषियोंने अरणिसे उनका शरीर मन्थन किया, जिससे इनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। मृतदेहसे उत्पन्न होनेके कारण यही पुत्र जनक कहलाया। शरीर मन्थनसे उत्पन्न होनेके कारण जनकको मिथि भी कहा जाता है। इसीके आधारपर इन्होंने मिथिलापुरी बसायी। (सू० सा० प० ४९२९, मानस १. ११. ३)। —रा० कु०

जनकराज किशोरीशरण 'रसिक अली'—इनका आविर्भाव १८१८ ई०के आस-पास काठियावाड़के एक नागर ब्राह्मणके परिवारमें हुआ था। बाल्यावस्थामें ही किसी साधुके साथ गुजरातसे अयोध्या चले आये और यहाँ महात्मा राजराघवदासके शिष्य हो गये। गुरु-कृपासे ये थोड़े ही दिनों में संस्कृत और हिन्दीके अच्छे ज्ञाता हो गये। राजराघवदासकी आस्था दास्यभाव की थी किन्तु इनकी रुझान शृंगारी उपासना की ओर अधिक थी। अतः गुरुसे अनुमति लेकर इन्होंने रसिकाचार्य रामचरण दाससे माधुर्य भक्तिकी दीक्षा ले ली। इनका 'रसिक अली' नाम इसी समय रखा गया। तबसे ये इसी नामसे प्रसिद्ध हो गये। कुछ समय तक अयोध्यामें निवास करके ये बुन्देलखण्ड चले गये और बारह वर्ष तक इस प्रदेशमें शृंगारी रामभक्तिका प्रचार करते रहे। झाँसी, जालौन आदि जिलोंमें इनकी शिष्य-परम्परा अब तक चल रही है। बुन्देलखण्ड से अयोध्या आकर इन्होंने 'रसिक निवास'की स्थापना की। इसके पश्चात् इन्होंने मिथिलामें प्रियाप्रियतमकी माधुर्य लीला गान करते हुए जीवनके शेष दिन व्यतीत किये। वहीं मार्गशीर्ष पूर्णिमा १८४८ ई० को इनका लीला-प्रवेश हुआ।

'रसिकअली'के द्वारा विरचित ग्रन्थोंकी संख्या २४ है। उनकी नामावली इस प्रकार है—'सिद्धान्त मुक्तावली', 'अनन्य तरंगिनी', 'आन्दोलरहस्य दीपिका', 'तुलसीदास चरित्र', 'विवेकसार चन्द्रिका', 'सिद्धान्त चौंतीसा', 'बारह खड़ी', 'ललित शृंगार दीपक', 'कवितावली', 'जानकीकरणाभरण', 'श्रीसीतारामरहस्य तरंगिनी', 'आत्मसम्बन्ध दर्पण', 'होलिका विनोद', 'वेदान्तसारसुभ दीपिका', 'श्रुति दीपिका', 'श्रीराम रास दीपिका', 'दोहावली', 'रघुबर करुणाभरण', 'मिथिला विलास', 'अष्टयामप्रबन्ध', 'वर्षोत्सव पदावली', 'जिज्ञासा पंचक', 'श्रीसीतारामसिद्धान्त तरंगिनी' और 'अमर रामायण'। ये शृंगारी रामोपासनाके प्रमुख आचार्य माने जाते हैं। मौलिकता और विचार स्वतन्त्रता इनकी रस-साधनाका प्रधान गुण है। इसका प्रमाण इनके द्वारा परम्परागत तत्सुखी सिद्धान्तके विपरीत स्वसुखी सिद्धान्तका प्रवर्तन है। इनकी रचनाएँ जिज्ञासु साधकों तथा साहित्य रसिकों के लिए समान रूपसे रुचिकर हैं। ब्रज तथा अवधीके अतिरिक्त संस्कृत भाषामें भी इन्होंने कई ग्रन्थ लिखे हैं। इनका 'अमर रामायण' रामचरितको लेकर संस्कृतमें लिखे गये प्रबन्धोंकी परम्पराका अन्तिम महत्त्वपूर्ण महाकाव्य है।

[सहायक ग्रन्थ—रामभक्तिमें रसिक सम्प्रदाय : भगवती प्रसाद सिंह।] —भ० प्र० सिं०

जनमेजय १—जनमेजयके नामसे निम्नलिखित उल्लेख मिलते हैं—

१. जनमेजय एक महान राजा थे। ये अर्जुनके प्रपौत्र तथा परीक्षित और माद्रवतीके पुत्र थे। ब्रह्महत्या दोषसे मुक्त होनेके लिए इन्होंने वैशम्पायनसे महाभारत सुना था। इनके पिताकी मृत्यु तक्षक नामक सर्पके डँसनेसे हुई थी। अतः इन्होंने सर्पोंको समाप्त करनेकी प्रतिज्ञासे एक सर्प यज्ञ आयोजित किया था, जिसमें समस्त सर्प मन्त्राहूत होकर यज्ञाग्निमें भस्म गये। केवल आस्तीककी प्रार्थनासे शेष सर्प बचे। जनमेजय और आस्तीक ऋषिका संवाद भी प्रसिद्ध है। जनमेजयको सरमाने शाप दिया था।

२. नीपके वंशज एक कुलघातक राजाका भी नाम 'जनमेजय' था।

३. राजा दुर्मुखके पुत्र और युधिष्ठिरके एक सहायकके रूपमें भी विख्यात हैं।

४. चन्द्रवंशी राजा कुरुके पुत्रका नाम जनमेजय था। जनमेजयकी माताका नाम कौशल्या तथा स्त्रीका नाम अनन्ता था। कहा जाता है कि जनमेजय ब्रह्म-हत्याके भागी हुए थे तथा यज्ञ द्वारा उससे मुक्त हुए थे।

५. चन्द्रवंशी राजा अविक्षितके एक वंशज थे।

६. जनमेजय एक नाग विशेषके लिए भी प्रसिद्ध हैं।

किन्तु इनमें नागयज्ञकर्ता जनमेजय ही अधिक प्रसिद्ध हैं (हि० सू० सा० ४९३६)। —रा० कु०

जनमेजय २—'जनमेजयका नाग-यज्ञ' नाटककी भूमिकामें प्रसादने लिखा है कि इस नाटकमें ऐसी कोई रचना समाविष्ट नहीं है, जिसका मूल भारत और हरिवंशमें न हो। इस नाटकके पात्रोंमें कल्पित केवल चार-पाँच हैं। पुरुषोंमें माणवक और त्रिविक्रम तथा स्त्रियोंमें दामिनी और शीला। जहाँ तक हो सका है, उसके आख्यान भागमें भारत-काल की ऐतिहासिकताकी रक्षाकी गयी है तथा कल्पित पात्रोंसे मूल घटनाओंका सम्बन्धसूत्र जोड़नेका ही काम लिया गया है। कथाका सम्बन्ध आर्य और नागजातिके भारतकालीन संघर्षसे है। कथाके मूलाधार ग्रन्थ महाभारतका शान्ति पर्व, हरिवंशका भविष्य पर्व, शतपथ ब्राह्मण और ऐतरेय ब्राह्मण है। परीक्षित-पुत्र जनमेजयने भूलसे एक ब्रह्महत्या कर दी थी, जिसपर उन्हें प्रायश्चित्तस्वरूप अश्वमेध यज्ञ करना पड़ा, जिसमें पुरोहित बने शौनक (शान्तिपर्व अध्याय १५०) क्योंकि कश्यप पुरोहितोंने राजाका साथ छोड़ दिया था। इसपर आंगिरस काश्यपने अपने पुरोहित बनाये जानेके लिए ब्रह्म-आन्दोलन तक किया था। पूर्वकालमें अर्जुनने खाण्डव-दाह करके भारतवर्षकी प्राचीन नागजातिको बहुत पीड़ित किया था, अवसर पाकर विपीड़ित नागजातिने पुनर्विद्रोह किया। नागराज तक्षकने काश्यप आदिसे मिलकर परीक्षितकी हत्या की। इस राजनीतिक षड्यन्त्र और क्रान्तिका पूर्णतया उन्मूलन करनेके लिए जनमेजयको विशेष प्रयत्न

करना पड़ा। फलस्वरूप सर्प-सत्र अर्थात् तक्षशिलाविजय और नागजातिका पूर्ण पराभव हुआ। इस पराजयके कारण दोनों पक्षोंमें मित्रता हो गयी और राज्यमें पुनः शान्ति स्थापित हो जानेपर हजारों वर्षों तक भारतीय प्रजा फलती-फूलती रही।

प्रस्तुत नाटकका नायक जनमेजय इन्द्रप्रस्थका सम्राट् है, जिसमें धीरोदात्त नायकके समस्त गुण पाये जाते हैं। वह तेजस्वी, वीर, उत्साही, कर्त्तव्यशील तथा राजशक्तिसे गर्वित क्षमाशील सम्राट् है। नाटकके प्रारम्भमें ही उसकी विनम्रता और सहनशीलताका सुन्दर परिचय मिलता है। वह पाखण्डी काश्यपके प्रगल्भ आचरणपर क्रुद्ध न होकर उसे दक्षिणादिसे सन्तुष्ट रखनेका प्रयत्न करता है। जरत्कारु ऋषिकी अज्ञानतासे हत्या हो जानेके कारण उसे बड़ी ग्लानि होती है, इससे उसके हृदयकी शुद्धता प्रकट होती है। यद्यपि उसके इस निरपराध कृत्यकी बडी आलोचना होती है, फिर भी वह राजशक्तिका अनुचित प्रयोग कर किसीका प्रतिकार नहीं करता, वरन् प्रायश्चित्तस्वरूप अश्वमेध यज्ञका विधान करता है। वंशगत विरोधका स्मरण करके उसके हृदयमें नागजातिके प्रति बडा विद्वेष भरा है। उसमें साहस और दृढताकी मात्रा यथेष्ट है। पहले तो ब्राह्मणोंके षडयन्त्रसे कुछ देरके लिए विचलित हो जाता है, किन्तु उत्तंककी मन्त्रणासे नागयज्ञ करनेके लिए कृत-संकल्प हो जाता है। उसमे जातीय अभिमानकी भावना लहरें ले रही हैं, इसीलिए नागपरिणय करने वाली यादवी सरमाका तिरस्कार करते हुए कहता है: "चुप रहो! पतिता स्त्रियोंको श्रेष्ठ और पवित्र आर्योंपर अपराध लगानेका कोई अधिकार नहीं है।" अपने पिताकी हत्या करनेवाली नागजातिका दमन वह राज्यधर्मानुकूल बड़ी कठोरतासे करता है क्योंकि बर्बर नागजाति दस्यु वृत्ति ग्रहण करके शान्त आर्य-जनपदोंकी सुख-शान्ति भग करती है। क्रूर दण्डादि कर्मोंका विधान करते हुए भी जनमेजय अपने हृदयकी स्निग्धता एवं विवेकशीलताको खो नहीं देता, इससे आस्तीककी प्रार्थनाको न्यायसंगत मानकर तक्षकको मुक्त कर देता है। न्यायविधानके नीरस वातावरणमें समय वितानेवाले जनमेजयमे सौन्दर्यानुभूतिकी मात्रा भी कम नहीं है। वह नागकन्या मणिमालाके नैसर्गिक सौन्दर्यसे प्रभावित होता है तथा नाटकके अन्तमें सरमाके अनुरोध तथा अपनी पत्नी वपुष्टमाकी स्वीकृति मिल जानेपर उसे पत्नी बनाता है। इस सम्बन्धका परिणाम सांस्कृतिक एवं लोक दृष्टिसे बड़ा कल्याणकारी सिद्ध होता है। आर्य और नागजाति पारस्परिक सांस्कृतिक भाव-प्रदान करके एक दूसरेके दृढ मैत्री सूत्रमें बँध जाती हैं।

जनमेजयके चरित्रकी मानवोचित दुर्बलता उसकी नियतिवादिता है। शक्तिशाली सम्राट् होते हुए भी वह भाग्यके फेरमें पड़कर निरुत्साहित सा हो जाता है, यह उसके चरित्रका एक दुर्बल पक्ष कहा जा सकता है। सम्भवतः प्रसादने अपने नियतिवादकी उसपर गहरी छाप लगा दी है। इसीलिए वह प्रायः कहता रहता है: "मनुष्य प्रकृतिका अनुचर और नियतिका दास है।" नियतिवादी होनेके कारण ही वह कभी-कभी किंकर्त्तव्य विमूढ हो जाता है, लेकिन व्यास एवं उत्तंकके द्वारा उत्साहित किये जानेपर शीघ्र सजग हो जाता है। —के० प्र० चौ०

जनराज–इनका वास्तविक नाम छेदराज था। इनके कविता-गुरु श्री आचार्यसे इनको यह नाम प्राप्त हुआ। इनकी रचना 'कविता-रस-विनोद'के आधारपर ये सिंहलगोत्रीय अग्रवाल वैश्य थे। इनके पिताका नाम दयाराम और पितामहका हीरानन्द था। इनके पूर्वज पहले गठवारे नामक गाँवके रहनेवाले थे, पर पिता जयपुरमें बस गये थे। तत्कालीन जयपुर नरेश पृथ्वीसिंह इनके आश्रयदाता रहे हैं और इस ग्रन्थपर इन्होंने कविको पुरस्कृत भी किया।

'कविता-रस-विनोद'की रचना १७७६ ई० (सं० १८३३) मे की गयी। नागरी प्रचारिणी सभाके भवानीशंकर याज्ञिकके संग्रहमे इसकी हस्तलिखित प्रति सुरक्षित है। इसमें २४ विनोद और २०२५ छन्द हैं। इस विस्तृत ग्रन्थमें काव्य-शास्त्रके विविध अंगोंके साथ छन्दशास्त्रके विषयको भी लिया गया है, पर विषय विवेचनमें कोई नवीनता नहीं है। पहले चार विनोदोंमें पिंगल-शास्त्रका विवेचन है। पाँचवें विनोदमें 'व्यंग-भेद' वर्णन है। छठें, सातवें और आठवेंमे क्रमशः ध्वनि (उत्तम), गुणीभूत व्यंग्य (मध्यम) तथा अलंकार (अधम)के विषयको लिया गया है। नवें विनोदमे गुण-दोष विवेचन है। यहाँ तक प्रायः 'साहित्य-दर्पण'का आधार है। दसवेंसे बीसवें विनोद तक रस, भाव, नायक-नायिका भेद, सखी, दूत, दूती, नायकसखा तथा नख-शिख आदिका विस्तृत वर्णन है, जो प्रायः भानुदत्तके ग्रन्थोंके आधारपर है। इक्कीसवें विनोदमें अन्य रसोंका विवेचन है, बाइसवेंमें प्रहेलिका और यमक अलंकारोंका वर्णन है और तेईसवेंमे चित्र-अलंकारोंको लिया गया है। अन्तिममें नगर (जयपुर), राजा तथा वंशपरिचय आदि देकर ग्रन्थ समाप्त किया गया है।

काव्यकी दृष्टिसे जनराजका महत्त्व अधिक है। वे इस दृष्टिसे मतिरामकी परम्परामें आते हैं। इनके काव्यमें सरल भावचित्र विशेष रूपसे मिलते हैं। भाषा अवश्य मतिराम जैसी निखरी हुई नहीं है, वरन् भूषण आदिके समान शब्दोंकी तोड़-मरोड़ इनके काव्यमें मिलती है। अभिव्यंजना, रस-निर्वाह तथा कल्पनाके वैचित्र्यकी दृष्टिसे भी इनका काव्य शिथिल है पर अपनी निश्छल अभिव्यक्ति तथा छन्द-योजनामें कविको सफलता मिली है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० का० शा० इ०; हि० सा० बृ० इ० (भा० ६)] —स०

जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज'–जन्म-स्थान रामपुर डीह, भागलपुर, जिला, बिहार प्रान्त। जन्म-तिथि १९०४ ई०। हिन्दू विश्वविद्यालयसे एम० ए० पास करके शिक्षण कार्यमें लग गये। आजकल बिहार प्रान्तमें ही पूर्णिया कालेज, पूर्णियामें प्रधानाचार्य हैं। लगभग ८ पुस्तकोंके लेखक हैं। कहानी, रेखाचित्र और कविताके क्षेत्रमें लेखन अभ्यास करते रहे। १९३१में कहानियोंका प्रथम संग्रह 'किसलय' नामसे प्रकाशित हुआ। १९३३में 'अनुभूति' नामसे प्रथम काव्य-संग्रह तथा प्रेमचन्दपर एक समीक्षात्मक ग्रन्थ 'प्रेमचन्दकी उपन्यास कला' नामसे प्रकाशित हुआ।

१९३६ में 'मधुमयी' कहानी संग्रह, १९४१में 'अन्तर्ध्वनि' काव्य-संकलन तथा १९४३में 'चरित्र रेखा' नामक रेखाचित्रोंका संग्रह छपा।

काव्य-शैलीमें छायावादी प्रवृत्ति ही अधिक उभरकर आयी है। आत्मव्यंजक शैलीमें 'अनुभूति' और 'अन्तर्ध्वनि' दोनों काव्य-संकलन अपने समयकी मूल प्रवृत्तिका प्रतिनिधित्व करते हैं। भाषामें छायावादी बिम्बों और प्रतीकोंका प्राधान्य है।

कहानीकारके रूपमें 'द्विज'की कहानियाँ यथार्थकी अपेक्षा भावुकताको अधिक चित्रित करती हैं। आदर्शवादी चरित्र नायकोंकी खोज की, जो प्रेमचन्दके साहित्यमें प्रारम्भ हुई थी, छाया 'द्विज'जीकी कहानियोंमें मिलती है।

आलोचनाकी शैली अधिक वर्णनप्रधान होनेके नाते आलोचनात्मक कम, प्रभावव्यंजक अधिक है। 'द्विज'जीने 'प्रेमचन्दकी उपन्यास कला'में उन तत्त्वोंपर विशेष ध्यान नहीं दिया, जो प्रेमचन्दकी मानसिक स्थिति और विभिन्न उपन्यासोंकी पृष्ठभूमिमें कार्य करते रहे हैं। उन्होंने केवल उनकी प्रशंसात्मक व्याख्या ही अधिक की है।

'रेखाचित्रों'की वैसे भी हिन्दी साहित्यमें बड़ी कमी रही है। कुछ ही लोगोंने इस विधाको अपनाया है। 'द्विज'जी भी उनमेंसे एक हैं किन्तु 'द्विज'जी इन रेखा-चित्रोंमें यथार्थ और भावना दोनों ही मानवीय सन्दर्भोंमें मनुष्यके निर्माण और अनुभूतियोंको अन्यतम स्तरपर हस्तान्तरित करते हैं। फिर भी अधिकांश रेखाचित्र रोचक और हृदयग्राही बन पड़े हैं।

इनका कृतिकारके रूपमें एक ऐतिहासिक महत्त्व है क्योंकि जिस युगके ये कवि या लेखक हैं, उस युगमें तीन शैलियोंका विचित्र द्वन्द्व था—इतिवृत्तात्मक शैली, आदर्शवादी शैली और आत्मव्यंजक शैलीका। 'द्विज'की कृतियोंमें इन तीनोंका स्वरूप स्थान-स्थानपर स्पष्ट दीख पड़ता है। कविताओं, कहानियों और रेखाचित्रोंके माध्यमोंको शायद इसीलिए उन्हें मजबूरन स्वीकार करना पड़ा। —ल० कां० व०

जमनालाल बजाज–आपका जन्म राजस्थानमें ४ नवम्बर १८८९ ई०को हुआ और निधन ११ फरवरी १९४२ ई० को वर्धामें। जमनालालजी बहुत कम पढ़े-लिखे होते हुए भी साहित्यिक थे और कभी कानूनकी किताब न देखने पर भी सरदार पटेलके शब्दोंमें कांग्रेस कार्यकारिणीके वकील थे। उनका व्यक्तित्व अद्भुत था। हिन्दी भाषा और साहित्यकी उन्होंने बड़ी सेवा की। हिन्दीके प्रति उनका स्नेह इतना अधिक था कि निजी अभिव्यक्तिके लिए उन्हें लिपि-बद्ध रचनाओंकी अपेक्षा न थी। उनके पास इस स्नेहके प्रदर्शनके लिए और मार्ग थे, जो उन्हें सुलभ थे जो भाषाओंके लिए साधारणतः दुर्गम होते हैं। उनका स्नेह भावनाओंमें उमड़कर प्रायः भाषाका रूप ले लेता था और कभी उनका सेवाव्रत और दृढ़ संकल्प उनके पत्रों और औपचारिक वक्तव्योंमें साहित्यिक तत्त्व आरोपित कर देता था। इसी प्रकार उनके जीवनसे सम्बन्धित किन्हीं घटनाओंके बारेमें मतभेद हो सकता है किन्तु उनके साहित्यप्रेमी होनेके विषयमें सब एकमत हैं।

ये १९३७ ई०में हिन्दी साहित्य सम्मेलनके मद्रास अधिवेशनमें सभापति रहे। राष्ट्रभाषा प्रचार सभाके मुख्य सचालकोंमें रहे और हिन्दी साहित्यके प्रकाशनार्थ उन्होंने दो संस्थाओंकी स्थापना की। एक बम्बईमें (गान्धी हिन्दी पुस्तक भण्डार) और एक अजमेरमें (सस्ता साहित्य मण्डल)। सन् १९१८ में गान्धीजीके सुझावपर जब हिन्दी साहित्य सम्मेलनने दक्षिणमें हिन्दी प्रचार करनेका निर्णय किया, उस कार्यके लिए साधन भी जमनालालजीके दान द्वारा ही जुटाये जा सके और स्वयं सक्रियरूपसे हिन्दी-प्रचारके लिए राजाजीके साथ सन् १९२९ में दक्षिणका दौरा किया। अपने जीवनमें उन्होंने आर्थिक सहायता द्वारा कई हिन्दी पत्रोंको जन्म दिया और अनेक प्रचलित पत्रोंको धराशायी होनेसे बचाया। पहली श्रेणीमें आनेवाले पत्रोंमें 'हिन्दी नवजीवन' उल्लेखनीय है और दूसरी श्रेणीवालोंमें 'कर्मवीर', 'प्रताप', 'राजस्थान केसरी' आदि। उनके इसी व्यक्तित्वके कारण हिन्दीको 'श्रेयार्थी जमनालालजी', 'पाचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद' और 'स्मरणांजलि' जैसी पुस्तकें प्राप्त हो सकीं। —शा० द०

जमलार्जुन–नलकूबर और मणिग्रीव नामक कुबेरके दो पुत्र नारदके शापसे यमलार्जुन नामसे वृक्षके रूपमें परिणत होकर गोकुलमें उगे। नारदके वरदानके कारण जड़ वृक्ष होनेपर भी पूर्व जन्मकी बातें उन्हें स्मरण थीं। बाल कृष्ण के उधमसे ऊबकर एक बार यशोदाने उन्हें ऊखल में बाँध दिया था। संयोगसे श्री कृष्ण ऊखलको घसीटते हुए वहाँ जा पहुँचे, जहाँ यमलार्जुन वृक्ष थे। श्रीकृष्णका चरण स्पर्श होते ही वे दोनों वृक्ष लुप्त हो गये और उनके स्थानपर दो सिद्ध पुरुष उपस्थित हुए, जो श्रीकृष्णकी स्तुति करते हुए उत्तरकी ओर चले गये। 'सूरसागर'में जमलार्जुन उद्धारकी कथा मिलती है। सूरदासने उनके व्यक्तित्वमें भक्ति भाव दर्शाया है ('सूरसागर' पद १०००-१००२)। —रा० कु०

जमाल–जमाल जमालुद्दीन जातिके मुसलमान थे यद्यपि कुछ लोग इन्हें हिन्दू भाट मानते हैं। इनका जन्म 'शिवसिंह सरोज'के अनुसार सन् १५४५ ई०में हुआ था। ये हरदोई जिलेमें पिहानीके रहने वाले थे। इनके जीवन के सम्बन्धमें कुछ विशेष ज्ञात नहीं है। एक किंवदन्तीके अनुसार इनकी एक बार अकबर से भेंट हुई थी। अकबरने इनके काव्यसे प्रसन्न होकर इनकी सवारी हाथीपर बिठलाकर निकाली और इनपर अशर्फियोंकी वर्षा की। इनके नामसे 'जमाल पचीसी' तथा 'भक्तमालकी टिप्पणी' नामके दो ग्रन्थ कहे जाते हैं। आज इनके लगभग पौने चार सौ फुटकल दोहे तथा छप्पय मिलते हैं। छप्पय तथा कुछ दोहोंके बारेमें कुछ लोगोंको सन्देह है। इनके कुछ दोहे कूट हैं, जिनका विषय शृंगार है। इनके अधिकांश छन्द प्रेम, नीति तथा कृष्णविषयक हैं। कूटोंमें इनकी बौद्धिक उड़ान दिखायी पड़ती है तो अन्य छन्दोंमें ये एक अत्यन्त सुन्दर कविके रूपमें हमारे सामने आते हैं। भावकी दृष्टिसे इनकी देन परम्परागत है।

[सहायक ग्रन्थ—जमाल दोहावली : महावीरसिंह गहलोत, काशी, १९४५ ई०।] —भो० ना० ति०

जयंत–'जयन्त' नामसे अनेक व्यक्तियोंका उल्लेख मिलता है—१. जयन्त एक प्रसिद्ध मध्यकालीन वैष्णव भक्त थे। २. जयन्त पांचाल देशके एक क्षत्रिय राजा थे। इन्होने महाभारत युद्धमें पाण्डवोंकी सहायता की थी। ३. आज्ञातवासके समय भीमका एक नाम जयन्त था। ४. राजा दशरथके आठ महात्माओंमें-से एक थे। ५. अष्ट-वसुओंमेंसे एकको जयन्त कहा जाता है। ६. द्वादश आदित्योंमेंसे एक जयन्त थे। ७. रामचन्द्रके एक भक्त तथा सचिव थे (दे० मानस २।१४२)।

इसके अतिरिक्त इन्द्र और शचीसे उत्पन्न जयन्त था। कृष्णके पुत्र प्रद्युम्नसे जयन्तका युद्ध हुआ था। जयन्तने कौवेका रूप धारण करके सीतापर चोंचसे प्रहार किया था, जिसके फलस्वरूप रामने उसे मारना चाहा था किन्तु वह रामचन्द्रजीकी शरणमें आ गया। रामने उसे प्राण-दान देते हुए भी उसकी एक आँख फोड दी थी। जयन्तके लिए 'उपेन्द्र' पर्याय भी प्रयुक्त होता है। —रा० कु०

जयसिंह–इतिहासमे जयसिंह नामक अनेक व्यक्तियोंका उल्लेख मिलता है—

१. इनमे सर्वप्रथम हैं रीतिकालके प्रसिद्ध कवि बिहारीके आश्रयदाता आमेरके मिर्जा राजा जयसिंह, जो अपने पितामहकी मृत्युके उपरान्त १६१७ ई० मे गद्दीपर बैठे थे। आरम्भमे जहाँगीरके आदेशानुसार शाहजहांका विरोध करते हुए भी बादमे वे उसके प्रबल समर्थक बन गये। इनकी सेवाओंसे प्रसन्न होकर शाहजहाँने सन् १६३९ ई०में इन्हे 'मिर्जा राजा'की उपाधि दी थी। १६४७ ई० मे मुगल सेनाके अध्यक्ष रूपमे इन्होंने बल्ख और बदख्शाके युद्धों तथा कन्धारके तीन घेरोंमे अपूर्व शौर्यका परिचय दिया था ('आधुनिक राजस्थान' पृ० १०४)। बिहारीने इन घटनाओसे सम्बन्धित अनेक दोहे लिखे थे (दे० 'बिहारी रत्नाकर' ७१०। ११।१२)। साथ ही रीति कवियोंकी प्रवृत्तिके अनुसार उन्होने जयसिंहके औदार्यकी भी प्रशसा की है(दे० 'बिहारी रत्नाकर' १५६)। इन जयसिंहके कवि रूपकी सूचना (दे० 'शिवसिंह सरोज' पृ० ४२३), ग्रियर्सन ('मा० व० लि० आ० हि०', पृ० १९८), कर्नल टाड ('राजस्थान' भाग २, पृ० ३५६-६८ तथा पृ० ३९३-४०७), नकछेद तिवारी ('कवि कीर्ति कलानिधि', पृ० २८) आदिने दी है किन्तु इस सम्बन्धमे कुछ भी निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता। बहुत सम्भव है कि कवियोंके ससर्गसे इनकी काव्य-प्रतिभाका विकास हुआ हो किन्तु सरोजमें उद्धृत कवित्त जयसिंहका न होकर 'आलम'का है। 'कवि कीर्ति कलानिधि'मे इनके 'जयसिंह कल्पद्रुम' नामक ग्रन्थकी चर्चा की गयी है।

२. दूसरे जयसिंह औरंगजेबके प्रसिद्ध प्रतिद्वन्द्वी उदयपुर-के महाराजा राजसिंह (१६४२ से १६७५ ई० तक) के पुत्र राणा जयसिंहके नामसे प्रसिद्ध हैं। इन जयसिंहका समय सन् १६७५ से १६९८ तक रहा है। शिवसिंहने इन्हें भी कवि कहते हुए इनके 'जयदेव कवि विलास' नामक ग्रन्थ संकलित करनेका उल्लेख किया है ('शिवसिंह सरोज' ४२३)। इनके दरबारके दयाराम और मुरली उल्लेखनीय कवि हुए हैं।

३. तीसरे जयसिंह जयपुर नगरके बसानेवाले सवाई जयसिंह (सन् १६९९ से १७४३ तक) हैं। रीतिकालके कवि घनानन्दके गुरु वृन्दावन देवाचार्यसे इन्होंने भी दीक्षा ली थी। इनके समयमे जयपुरके प्रसिद्ध कवि देवर्षि मण्डन हुए थे।

४. चौथे जयसिंह गुजरातके सोलंकी शासकोंकी परम्परा मे हुए थे। इसी जयसिंहके वीरचरितका आधार लेकर मैथिलीशरण गुप्तने 'सिद्धराज' नामक महाकाव्यकी रचना की है। इन्हें सिद्धराज जयसिंह भी कहा जाता है। —रा० कु०

जयद्रथ वध–इसका प्रकाशन १९१० ई०में हुआ। मैथिली-शरण गुप्तकी प्रारम्भिक रचनाओंमें 'भारत-भारती'को छोड़-कर 'जयद्रथ वध'की प्रसिद्धि सर्वाधिक रही। हरिगीतिका छन्दमें रचित यह एक खण्ड-काव्य है। कथाका आधार महा भारत है। एक दिन युद्ध-निरत अर्जुनके दूर निकल जाने-पर द्रोणाचार्यकृत चक्रव्यूह-भेदनके निमित्त शस्त्रास्त्र-सज्जित अभिमन्यु उसमें प्रविष्ट हुआ। अप्रतिम वीर अभिमन्युके समक्ष एकाकी ठहर सकनेमे असमर्थ योद्धाओंमेंसे सात रथियोंने षड्यन्त्र द्वारा उसकी हत्या की। इसमें जयद्रथका विशेष हाथ था, अतः अर्जुनने अगले दिन सूर्यास्तसे पूर्व जयद्रथका वध न कर सकनेपर स्वयं जल मरनेकी प्रतिज्ञा की। आचार्यविरचित चक्र-व्यूहमें रक्षित जयद्रथका वध कौन्तेय उक्त समयतक न कर सके। फलतः अर्जुन स्वयं जलनेके लिए तैयार हुए। अपने शत्रुको जलता हुआ देखनेके लिए जयद्रथ सामने आ गया। तब श्रीकृष्णने "अस्ताचलके निकट घन-मुक्त मार्तण्ड"के दर्शन करा अर्जुन-को शर-संधानका आदेश दिया। जयद्रथका सिर आकाशमें उड़ता हुआ उसके पिताकी गोदमें जा गिरा, जिससे पुत्रके साथ पिताकी भी मृत्यु हुई (जयद्रथके पिता वृद्धक्षत्रको ऐसा ही शाप मिला था)। प्राचीन कथाको ज्योंका त्यों लेकर भी कविने अपनी सरस-प्रवाहपूर्ण शैली द्वारा नव-जीवन प्रदान किया है—अपनी लेखनीके स्पर्शसे उसे रुचिकर एवं सप्रभाव बना दिया है।

काव्यकी दृष्टिसे 'जयद्रथ वध' मैथिलीशरणजीके कृतित्व के आरम्भिक कालकी रचनाओंमें सर्वश्रेष्ठ है। सुभद्रा और उत्तराके विलापमे करुणकी अप्रतिबद्ध धारा प्रवाहित है। चित्रणकला और अप्रस्तुत-विधान काफी अच्छा है। भाषामें प्रवाह और ओज है। यद्यपि संस्कृतके बोझिल और पण्डिताऊ शब्द भी प्रयुक्त हैं—किन्तु खड़ीबोलीकी यह पहली सरस रचना है। ब्रजभाषाके 'चढ़े हुए नशे'को उतारने वाला प्रथम काव्य यही है। —उ० का० गो०

जयप्रकाश नारायण–जन्म ११ अक्तूबर १९०३ को बिहारके सारन जिलेके सोनभद्र नामक ग्राममें हुआ। जयप्रकाश नारायण समाजवादी दलके सैद्धान्तिक पक्षके प्रतिनिधि हैं। समाजवादके मौलिक सिद्धान्तोंपर उन्होंने अनेक लेख लिखे हैं और कुछ पुस्तकें भी।

जयप्रकाशजी गम्भीर विचारक और चिन्तक हैं और यही गुण उनके लेखों और उनकी लेखनशैलीमें प्रतिबिम्बित होते हैं। उनके विचार युक्तिसंगत होते हैं, जिसकी झलक उनकी शैलीमें स्पष्ट मिलती है। जयप्रकाशजी लेखको विचारोंकी अभिव्यक्तिका माध्यम मानते हैं, इसलिए वे

तभी लिखते हैं, जब कुछ कहनेको बाध्य हों। यद्यपि अपने सार्वजनिक जीवनके प्रारम्भिक कालमें वे अधिकतर अंग्रेजीमें लिखते थे, किन्तु सर्वोदय और विनोबाजीके प्रभावमें आनेके पश्चात् उन्होंने हिन्दीमें लिखना आरम्भ किया है। 'छात्रोंके बीच'के अतिरिक्त 'जीवन दान', (१९५५) 'मजदूरोंमें', 'मेरी विदेश यात्रा' (१९६०) और 'समताकी खोजमें' (अनूदित) इत्यादि इनकी तीन-चार पुस्तकें हिन्दीमें प्रकाशित हो चुकी हैं। उनकी भाषा सरल, अलंकाररहित, किन्तु सारगर्भित है। सीधी उक्ति इनकी शैलीकी विशेषता है।

जयप्रकाशजी सात वर्षतक (सन् १९२२ से १९२९) अमेरिकामें विद्याध्ययनके लिए रहे। वहाँसे जो स्वातन्त्र्य-प्रेरणा उन्होंने पायी, वही दिन-प्रति-दिन घनी होती गयी और सतत चिन्तानुभूति तथा जनजीवनसे उसे अभिव्यक्ति मिली।

संविधान द्वारा राष्ट्रभाषाके रूपमें हिन्दीकी स्वीकृतिसे पहले ही वे हिन्दीके पक्षपाती थे और इस सम्बन्धमें उन्होंने कुछ लेखों द्वारा हिन्दीके पक्षका समर्थन भी किया है। इसलिये जयप्रकाश नारायणके योगदानका मूल्यांकन करते समय इन बातोंका विशेष ध्यान रखना होगा—सार्वजनिक क्षेत्रमें उनकी स्थिति तथा इस जीवनका उनका अनुभव, उनकी भाषामें विचारतत्त्व और उनके विचारों तथा व्यक्त मतकी लोकप्रियता। इन सभी बातोंकी दृष्टिसे उनकी प्रकाशित पुस्तकें सर्वोदय-साहित्यके महत्त्वपूर्ण अंग हैं। —शा० द०

जय यौधेय–'जय यौधेय' (१९४४) राहुलजीका प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास है। राहुलको भारतीय इतिहासके वे अछूते अंग विशेष रूपसे रुचिकर लगे हैं, जिन्हें ऐतिहासिक ग्रन्थोंमें स्थान नहीं मिले हैं और जिनमें जनतन्त्रीय प्रणाली प्रमुख रूपसे उजागर हुई है। 'वोल्गासे गंगा' लिखते समय उन्होंने 'सुपर्णयौधेय' नामक कहानी लिखी थी, परन्तु उससे सन्तोष नहीं हुआ था। यौधेयोंपर उपन्यास लिखनेका निश्चय उस समय हुआ, जब उन्होंने १ जनवरी १९४४ को वाराणसीमें होनेवाले 'प्राच्य परिषद्'में डाक्टर अलतेकर द्वारा पढ़ा गया एक लेख सुना कि कुषाणोंके हाथसे मध्यदेशको मुक्त करानेका श्रेय गुप्तोंको नहीं, यौधेयोंको है। स्वभाववश राहुलजीने गुप्तोंके इतिहासका गम्भीर अध्ययन किया और यौधेयोंके नामसे पाये जानेवाले सिक्कों एवं शिलालेखोंका परीक्षण किया।

ई० सन् ३५०-४०० के भारतीय इतिहासमें यौधेय गणतन्त्र बड़ा बलशाली था। गुप्तवंशके साम्राज्यविस्तारमें इस गणतन्त्रका विशेष हाथ रहा है। यद्यपि गुप्तोंके प्रखर प्रभावके सम्मुख यौधेय क्षीण हो गये, परन्तु उनकी कीर्तिकथा अलवर, गुड़गाँव, भावलपुर आदि प्रदेशोंकी गाथाओं एवं गीतोंमें आज भी सुरक्षित है। राहुलजीने उपन्यासकी भूमिकामें स्पष्ट कर दिया है कि "उपन्यासके शरीरमें ऐतिहासिक सामग्रीने अस्थिपंजरका काम किया है किन्तु मांस मैंने अपनी कल्पनासे पूरा किया है"। यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है, जिसमें प्रसिद्ध चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य तथा यौधेयोंके कल्पित वीर पुरुष 'जय'के क्रिया-कलापोंका बहुविध वर्णन है। यह उपन्यास 'आत्मकथा शैलीमें लिखा गया है। यौधेय पुंगव 'जय' स्वयं अपनी कथा कहता है। राहुलजीने कथा सूत्रको सुगठित करनेके लिए उपन्यासके प्रथम परिच्छेदमें ही सिद्ध कर दिया है कि सम्राट् समुद्रगुप्तने यौधेय कन्या दत्तासे विवाह कर यौधेयोंको अपने पक्षमें कर लिया और यौधेयोंको आश्वासन भी दिया कि दत्तासे उत्पन्न पुत्र ही गुप्त सिंहासनका उत्तराधिकारी होगा। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य उसी यौधेय कन्या दत्ताकी कोखसे उत्पन्न द्वितीय पुत्र है और उपन्यास नायक 'जय' दत्ताका छोटा भाई है। गुप्तों और यौधेयोंके इस रक्त-संयोजनसे उपन्यास-कथा अति स्वाभाविक हो गयी है और साथ ही इतिहासकी भी रक्षा हुई है।

राहुलजीने इस उपन्यासमें हिमालयसे लेकर सिंहलतककी सामाजिक रीतियों, विभिन्न जातियों, शासन एवं धर्म-प्रणालियों आदि प्रायः प्रत्येक विषयपर प्रकाश डाला है। इसमें नायक 'जय' बौद्धधर्मके प्रसिद्ध विद्वान् एवं अभिधर्मकोशके रचयिता वसुबन्धुसे शिक्षा प्राप्त करता है। अन्तमें उसकी भेंट महाकवि कालिदाससे भी होती है। राहुलजीने गुप्तकालके सभी श्रेष्ठ पुरुषों, विद्वानों एवं कलाकारोंसे नायक 'जय' की भेंट करायी है।

ऐतिहासिक उपन्यासोंमें 'जय' जैसे कम नायक मिलते हैं। भारतका भावी सम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य जहाँ एक ओर विलाससे मग्न है, वहाँ 'जय' ब्रह्मचर्यका पालन कर रहा है। चन्द्रगुप्त जहाँ कलामें विलास ढूँढ़ता है, वहाँ 'जय' नृत्य, नाटक, वीणावादन, गायन, मूर्तिकला आदिमें निपुण होते हुए भी स्थितप्रज्ञ जैसा है। गुप्तोंका सेनापति अथवा मन्त्रिपद स्वीकार न करते हुए वह यौधेय भूमिमें चला जाता है और उनमें नवजागरण उत्पन्न करता है। वह चन्द्रगुप्तकी नीतिसे अप्रसन्न है, इसलिए गुप्तोंका आधिपत्य नहीं स्वीकार करता। उसके नेतृत्वमें यौधेयगण गुप्त वाहिनीसे लड़ते हैं। चन्द्रगुप्त अनेक प्रलोभन देता है परन्तु यौधेयोंका नेता 'जय' अपनी जाति और यौधेयोंकी गणतन्त्रीय प्रणालीको श्रेष्ठ समझता है और अन्ततक वह गुप्तोंको स्वीकार नहीं करता। कालिदाससे वह कहता है कि "मैं भरत-खण्डको इसी तरह स्वतन्त्र गणोंका स्वच्छन्द संघ देखना चाहता हूँ" वस्तुतः उपन्यास रचनाका यही मूल स्वर है और मूल उद्देश्य भी। उपन्यासका अन्त गुप्तों और यौधेयोंके युद्ध और यौधेयोंकी हारके साथ होता है।

उपन्यासके अन्य चरित्र सर्वथा गौण हैं, यहाँतक कि चन्द्रगुप्त भी। सम्पूर्ण उपन्यासमें ही नहीं, अपितु उपन्यासके प्रत्येक परिच्छेदमें 'जय' का ही चरित्र छाया हुआ है। कोई भी अन्य चरित्र स्वतन्त्र होकर विकसित नहीं हो सका है। इस उपन्यासके विषयमें उल्लेखनीय तथ्य यह है कि इसकी रचना केवल इक्कीस दिनोंमें हुई है। मराठी तथा गुजराती भाषामें इस उपन्यासके अनुवाद हुए हैं। —स० व्र० सि०

जयशंकर प्रसाद–जन्म सन् १८८९ ई० (माघ शुक्ल दशमी, संवत् १९४६ वि०) वाराणसी में। कविके पितामह शिव रत्न साहु वाराणसीके अत्यन्त प्रतिष्ठित नागरिक थे और एक विशेष प्रकारकी सुरती (तम्बाकू) बनानेके

कारण 'सुँघनी साहु'के नामसे विख्यात थे। उनकी दान-शीलता सर्वविदित थी और उनके यहाँ विद्वानों, कलाकारों-का समादर होता था। जयशंकर प्रसादके पिता देवी-प्रसाद साहुने भी अपने पूर्वजोंकी परम्पराका पालन किया। इस परिवारकी गणना वाराणसीके अतिशय समृद्ध घरानोंमें थी और धन-वैभवका कोई अभाव न था। प्रसादका कुटुम्ब शिवका उपासक था। माता-पिताने उनके जन्मके लिए अपने इष्टदेवसे बडी प्रार्थना की थी। वैद्यनाथधामके झार-खण्डसे लेकर उज्जयिनीके महाकालकी आराधनाके फल-स्वरूप पुत्रजन्म स्वीकार कर लेनेके कारण शैशवमें जय-शंकर प्रसादको 'झारखण्डी' कहकर पुकारा जाता था। वैद्यनाथधाममें ही इनका नामकरण संस्कार हुआ। जय-शंकर प्रसादकी शिक्षा घरपर ही आरम्भ हुई। संस्कृत, हिन्दी, फारसी, उर्दूके लिए शिक्षक नियुक्त थे। इनमें 'रसमय सिद्ध' प्रमुख थे। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थोंके लिए दीनबन्धु ब्रह्मचारी शिक्षक थे। कुछ समय बाद स्थानीय क्वीन्स कालेजमें प्रसादका नाम लिखा दिया गया, पर यहाँ वे आठवीं कक्षा तक ही पढ सके। प्रसाद एक अध्य-वसायी व्यक्ति थे और नियमित रूपसे अध्ययन करते थे।

इनकी बारह वर्षकी अवस्था थी, तभी उनके पिताका देहान्त हो गया। इसीके बाद परिवारमें गृहकलह आरम्भ हुआ और पैतृक व्यवसायको इतनी हानि पहुँची कि वही 'सुँघनीसाहु'का परिवार, जो वैभवमें लोटता था, ऋणके भारसे दब गया। पिताकी मृत्युके दो-तीन वर्षोंके भीतर ही प्रसादकी माताका भी देहावसान हो गया और सबसे अधिक दुर्भाग्यका दिन वह आया, जब उनके ज्येष्ठ भ्राता शम्भूरतन चल बसे तथा सत्रह वर्षकी अवस्थामें ही प्रसादको एक भारी उत्तरदायित्व सम्भालना पड़ा। प्रसाद-का अधिकांश जीवन वाराणसीमे ही बीता। उन्होंने अपने जीवनमें केवल तीन-चार बार यात्राएँ की थीं, जिनकी छाया उनकी कतिपय रचनाओंमें प्राप्त हो जाती है। प्रसादको काव्यसृष्टिकी आरम्भिक प्रेरणा घरपर होनेवाली समस्यापूर्तियोंसे प्राप्त हुई, जो विद्वानोंकी मण्डलीमें उस समय प्रचलित थी। यक्ष्माके कारण कविका देहान्त १५ नवम्बर, १९३७ ई०में हो गया।

कहा जाता है कि नौ वर्षकी अवस्थामें ही जयशंकर प्रसादने 'कलाधर' उपनामसे ब्रजभाषामें एक सवैया लिखकर अपने गुरु रसमयसिद्धको दिखाया था। उनकी आरम्भिक रचनाएँ यद्यपि ब्रजभाषामे मिलती हैं, पर क्रमशः वे खडी बोलीको अपनाते गये और इस समय उनकी ब्रजभाषाकी जो रचनाएँ उपलब्ध है, उनका महत्त्व केवल ऐतिहासिक है। प्रसाद की ही प्रेरणासे १९०९ ई०में उनके मामा अम्बिकाप्रसाद गुप्तके सम्पा-दकत्वमें 'इन्दु' नामक मासिक पत्रका प्रकाशन आरम्भ हुआ। प्रसाद इसमें नियमित रूपसे लिखते थे और उनकी आरम्भिक रचनाएँ इसीके अंकोंमें देखी जा सकती हैं। कालक्रमके अनुसार 'चित्राधार' प्रसादका प्रथम संग्रह है। इसका प्रथम संस्करण १९१८ ई०में हुआ। इसमें कविता, कहानी, नाटक, निबन्ध सभीका संकलन था और भाषा ब्रज तथा खड़ीबोली दोनों थी। लगभग दस वर्ष बाद १९२८ में जब इसका दूसरा संस्करण आया, तब इसमें ब्रजभाषाकी रचनाएँ ही रखी गयीं। साथ ही इसमें प्रसाद की आरम्भिक कथाएँ भी संकलित हैं। 'चित्राधार'की कविताओंको दो प्रमुख भागोंमें विभक्त किया जा सकता है। एक खण्ड उन आख्यानक कविताओं अथवा कथा काव्योंका है, जिनमें प्रबन्धात्मकता है। अयोध्याका उद्धार, वनमिलन, और प्रेमराज्य तीन कथाकाव्य इसमें संगृहीत हैं। 'अयोध्या-का उद्धार'में लव द्वारा अयोध्याको पुनः बसानेकी कथा है। इसकी प्रेरणा कालिदासका 'रघुवंश' है। 'वनमिलन'में 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्'की प्रेरणा है। 'प्रेमराज्य'की कथा ऐतिहासिक है। 'चित्राधार'की स्फुट रचनाएँ प्रकृतिविषयक तथा भक्ति और प्रेमसम्बन्धिनी हैं। 'कानन कुसुम' प्रसादकी खड़ीबोलीकी कविताओंका प्रथम संग्रह है। यद्यपि इसके प्रथम संस्करणमें ब्रज और खडी बोली दोनोंकी कविताएँ हैं पर दूसरे संस्करण (१९१८ ई०) तथा तीसरे संस्करण (१९२९ ई०)में अनेक परिवर्तन दिखायी देते हैं और अब उसमें केवल खडीबोलीकी कविताएँ हैं। कविके अनुसार यह १९६६ वि०से १९७४ वि० तककी कविताओंका संग्रह है। इसमें भी ऐतिहासिक तथा पौराणिक कथाओंके आधारपर लिखी गयी कुछ कविताएँ हैं। अन्य कविताओंमें विनय, प्रकृति, प्रेम तथा सामाजिक भावनाएँ हैं। 'कानन कुसुम'में प्रसादने अनुभूति और अभिव्यक्तिकी नयी दिशाएँ खोजनेका प्रयत्न किया है। इसके अनन्तर कथाकाव्योंका समय आया है। 'प्रेम पथिक'का ब्रजभाषा स्वरूप सबसे पहले 'इन्दु' (१९०९ ई०)में प्रकाशित हुआ था और १९७० वि०में कविने इसे खडीबोलीमे रूपान्तरित किया। इसकी विज्ञप्तिमें उन्होंने स्वयं कहा है कि "यह काव्य ब्रज-भाषामें आठ वर्ष पहले मैंने लिखा था।" 'प्रेमपथिक'में एक भावमूलक कथा है, जिसके माध्यमसे आदर्श प्रेमकी व्यंजना की गयी है। 'करुणालय'की रचना गीतिनाट्यके आधारपर हुई है। इसका प्रथम प्रकाशन 'इन्दु' (१९१३ ई०)में हुआ। 'चित्राधार'के प्रथम संस्करणमें भी यह है। १९२८ ई०मे इसका पुस्तक रूपमें स्वतन्त्र प्रकाशन हुआ। इसमें राजा हरिश्चन्द्रकी कथा है। 'महाराणाका महत्त्व' १९१४ ई०में 'इन्दु'में प्रकाशित हुआ था। यह भी 'चित्रा-धार'में संकलित था, पर १९२८ में इसका स्वतन्त्र प्रकाशन हुआ। इसमे महाराणा प्रतापकी कथा है।

'झरना'का प्रथम प्रकाशन १९१८ई०में हुआ था। आगामी संस्करणोंमें कुछ परिवर्तन किये गये। इसकी अधिकांश कविताएँ १९१४-१९१७के बीच लिखी गयीं, यद्यपि कुछ रचनाएँ बादकी भी प्रतीत होती हैं। 'झरना'में प्रसादके व्यक्तित्वका प्रथम बार स्पष्ट प्रकाशन हुआ है और इसमें आधुनिक काव्यकी प्रवृत्तियोंको अधिक मुखर रूपमें देखा जा सकता है। इसमें छायावाद युगका प्रतिष्ठापन माना जाता है। 'आँसू' प्रसादकी एक विशिष्ट रचना है। इसका प्रथम संस्करण १९८२ वि०(१९२५ ई०)में निकला था। दूसरा संस्करण १९९० वि० (१९३३ई०)में प्रकाशित हुआ। 'आँसू' एक श्रेष्ठ गीतिकाव्य है, जिसमें कविकी प्रेमानुभूति व्यंजित है। इसका मूलस्वर विषादका है पर अन्तिम पंक्तियोंमें आशा-विश्वासके स्वर हैं। 'लहर

में प्रसादकी सर्वोत्तम कविताएँ संकलित हैं। इसमें कविकी प्रौढ़ रचनाएँ हैं। इसका प्रकाशन १९३३ई०में हुआ। 'कामायनी' प्रसादका प्रबन्धकाव्य है। इसका प्रथम संस्करण १९३५ई०में प्रकाशित हुआ था। कविका गौरव इस महाकाव्यकी रचनासे बहुत बढ़ गया। इसमें आदि मानव मनुकी कथा है, पर कविने अपने युगके महत्त्वपूर्ण प्रश्नोंपर विचार किया है।

प्रसादके नाटकोंकी संख्या लगभग बारह है। 'सज्जन' का प्रकाशन 'इन्दु'में १९१०-११में हुआ था। 'कल्याणी परिणय' नागरी प्रचारिणी पत्रिकामें १९१२में निकला। 'प्रायश्चित्त' 'इन्दु'में ही १९१४में और 'राज्यश्री' १९१५में। 'राज्यश्री'के प्रथम और द्वितीय संस्करणमें पर्याप्त अन्तर है। अन्य नाटकोंका क्रम इस प्रकार है—'विशाख' (१९२१), 'कामना' (१९२७), 'जनमेजयका नागयज्ञ' (१९२६), 'स्कन्दगुप्त' (१९२८), 'एक घूँट' (१९३०), 'चन्द्रगुप्त' (१९३१) 'ध्रुवस्वामिनी' (१९३३)। 'छाया' (१९१२), 'प्रतिध्वनि' (१९२६), 'आकाशदीप' (१९२९), 'आँधी' (१९३१), 'इन्द्रजाल' (१९३६) प्रसादके कथा संग्रह हैं। 'कंकाल' (१९२९), 'तितली' (१९३४), 'इरावती'—अपूर्ण (१९४०) उनके उपन्यास हैं और 'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध' (१९३९) उनका निबन्धसंग्रह है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रसाद बहुमुखी प्रतिभाके रचनाकार हैं।

प्रसादके सम्पूर्ण साहित्यपर दृष्टि डालनेसे ज्ञात होगा कि वे एक विकासमान व्यक्तित्वके कलाकार हैं। उनकी आरम्भिक रचनाएँ शिथिल हैं और उनमें परम्पराकी छाया भी दिखायी देती है, पर प्रसादने अनुभूति और शिल्प दोनों ही दिशाओंमें सतत जागरूक दृष्टिका परिचय दिया और इसी कारण वे 'चित्राधार' जैसी साधारण कृतियोंकी आरम्भिक भूमिकासे उठकर 'कामायनी' जैसी महत्त्वपूर्ण रचनाओंतक जा सके। प्रसाद मुख्यतया अनुभूति, गहन अनुभूतिके रचनाकार हैं। उनके अनुभवकी सीमाएँ हैं और इसी कारण यथार्थवादी लेखकों जैसी व्यापकता उनमें प्राप्त नहीं होती। पर अध्ययन, मननके द्वारा उन्होंने इतिहासकी दृष्टि प्राप्त की थी और 'कामायनी'में उनका युगबोध सहज ही देखा जा सकता है। प्रसादका समस्त साहित्य मानवीय और सांस्कृतिक भूमिकापर प्रतिष्ठित है। प्रेम, सौन्दर्य आदिकी अनुभूतियाँ उनकी मानवीयतासे सम्बन्ध रखती हैं। नाटकोंमें सांस्कृतिक दृष्टि अधिक स्पष्ट है। कविताओंमें प्रसादकी आन्तरिक अनुभूतियोंका प्रकाशन अधिक स्पष्ट है। 'आँसू' तो उनके व्यक्तित्वका पूर्ण प्रतिफलन ही बन गया है। नाटकोंमें प्रसादने एक सांस्कृतिक पुनरुत्थानका प्रयास किया है। इतिहासके माध्यमसे वे भारतीय अतीतकी सांस्कृतिक चेतनाको अभिव्यक्ति देना चाहते हैं। भारतीय इतिहास, दर्शन और संस्कृतिके प्रति कविकी रागात्मकता सर्वत्र देखी जा सकती है। अपनी भावनामयता और अनुभूतिप्रवणताके कारण प्रसादकी मूल चेतना कविसे सम्बद्ध है, पर उसमें मानवीयता और सांस्कृतिक दृष्टिका योग भी है।

प्रसाद छायावाद युगके कृती हैं और इस साहित्य-आन्दोलनकी जितनी अधिक प्रवृत्तियाँ उनके साहित्यमें मिलती हैं, उतनी अन्य किसीमें नहीं। अनुभूतिकी गहनता, लाक्षणिक शैली, गीतिमयता, प्रेमानुभूति, सौन्दर्य चेतना, कल्पना तत्त्व, सांस्कृतिक भावना, आदर्शवादी दृष्टि, आत्म-प्रकाशन आदिके जो गुण छायावादी काव्यमें प्रमुखतासे प्राप्त हैं, उनका सर्वाधिक प्रतिफलन प्रसादमें मिलता है। हम कह सकते हैं कि 'कामायनी' जैसी कृतियोंमें छायावाद अपने चरम विन्दु पर व्यक्त हुआ है। उसमें उसका सर्वोत्तम प्रतिफलन है। 'झरना'में छायावादकी जो प्रवृत्तियाँ संकेत रूपमें दिखायी देती हैं, वे प्रसादके महा-काव्यमें पूर्ण अभिव्यक्ति पा सकी हैं। छायावादके अन्य दो प्रमुख कवि 'निराला' और पंत किसी महाकाव्यकी रचनामें प्रवृत्त नहीं हुए, इस दृष्टिसे प्रसादकी 'कामायनी' विशिष्टता प्राप्त करती है, नहीं तो एक महत्त्वपूर्ण साहित्य-आन्दोलन महाकाव्यसे वंचित रह जाता।

शिल्पकी दिशामें प्रसादका व्यक्तित्व उनकी मौलिकताका परिचायक है। प्रांजल प्रसादगुण सम्पन्न उनकी भाषा कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास सभीमें एकरूप है और कहीं-कहीं भावपरिचालित होनेके कारण गद्यमें भी वह कवित्वपूर्ण हो जाती है। भाषाके सामर्थ्यसे सम्पन्न होनेके कारण प्रसादको अभिव्यंजनामें कठिनाईका अनुभव नहीं होता। शब्दोंमें लाक्षणिकताका गुण उनकी प्रमुख विशेषता है। शब्दकी लक्षणा और व्यंजना शक्तियोंका उनमें प्राधान्य है। प्रसादकी प्रतीक-योजना भी पर्याप्त प्रसिद्ध है। वास्तवमें वे प्रायः संकेत और ध्वनिसे काम लेते हैं और जब किसी वस्तुका वर्णन करना होता है तो वे उसका चित्र ही प्रस्तुत कर देते हैं। 'कामायनी'में मनोविकारोंका मूर्तीकरण किया गया है। छन्दकी दिशामें प्रसादने विविध प्रयोग किये। आरम्भिक ब्रजभाषा-रचनाओंकी सवैया, कवित्त परम्पराका कविने शीघ्र परित्याग कर दिया। 'आँसू'में चौदह मात्राओंका आनन्द छन्द है। 'कामायनी'का प्रमुख छन्द ताटंक है। प्रसादने अतुकान्त कविताएँ भी प्रस्तुत की। जयशंकर प्रसादके सम्पूर्ण व्यक्तित्व पर दृष्टिपात करनेसे ज्ञात होगा कि उन्होंने अपनी अनुभूति और चिन्तनाको विभिन्न माध्यममें प्रस्तुत किया है। नाटकोंमें उनकी इतिहास और संस्कृतिकी दृष्टि प्रमुख है। काव्यमें वे आन्तरिक अनुभूतिका प्रकाशन करते हैं। कहानियोंमें गीतिमयता है—पात्रोंकी द्वन्द्वात्मक स्थितिके कारण। उपन्यासोंकी भूमिका अधिक यथार्थवादिनी है। प्रसादका निधन अपेक्षाकृत जल्दी हो गया और उस समय हुआ जबकि वे प्रौढ़ताके विन्दु पर पहुँच चुके थे। यदि वे कुछ काल तक और जीवित रहते तो अन्य प्रौढ़ कृतियाँ भी हमारे समक्ष आतीं। अपूर्ण उपन्यास 'इरावती' इसका प्रमाण है।

[सहायक ग्रन्थ—जयशंकर प्रसाद : नन्ददुलारे वाजपेयी; प्रसादके नाटकोंका शास्त्रीय अध्ययन : जगन्नाथप्रसाद शर्मा; प्रसादका काव्य : प्रेमशंकर।] —प्रे० शं०

जरासंध–प्राचीन स्रोतोंके द्वारा जरासंधके दो उल्लेख प्राप्त होते हैं—

१. मगधाधिपति वृहद्रथके पुत्रका नाम जरासंध था। वृहद्रथने पुत्रप्राप्तिके लिए चन्द्र कौशिककी प्रार्थना की।

उन्होंने एक फल देकर राजासे कहा कि इसे रानीको खिला दो। राजाके दो रानियाँ थीं, फलतः बीचोबीचसे काटकर उन्होंने एक-एक टुकड़ा रानियोंको दे दिया। समय आनेपर दोनों रानियोंके आधा-आधा पुत्र उत्पन्न हुआ। राजाने उन्हें फेंकवा दिया किन्तु श्मशाननिवासिनी 'जरा' नामक राक्षसीने दोनोंको जोड़ 'सन्धि' कर दी। इसीलिए इसका नाम जरासंध पड़ा। कालान्तरमें यह एक महान् योद्धा हुआ। अस्ति और प्राप्ति नामक कंसकी दो कन्याएँ इसीको ब्याही थीं। कृष्ण द्वारा कंसके मारे जानेके बाद जरासंधने कृष्णको अपने आक्रमणोंसे मथुरा छोड़नेको बाध्य किया। कृष्ण द्वारकामें रहने लगे। युधिष्ठिरने राजसूय यज्ञके पूर्व जरासंध और भीममें द्वन्द्व युद्ध कराया। कृष्णके संकेतसे भीमने जरासंधके शरीरकी सन्धि तोड़ दी और वह मर गया।

२. धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम भी जरासन्ध था। जरासन्धका उल्लेख कृष्ण कथा-काव्योंमे (दे० सू० सा० प० ४८२४) मिलता है। इसके अतिरिक्त कुछ ऐतिहासिक काव्य-ग्रन्थोंमें भी उसके उल्लेख मिलते हैं (दे० 'शिवाबावनी' १)। —रा० कु०

जल्ह—जल्हके विषयमें निश्चित रूपसे कुछ ज्ञात नहीं है। एक जल्ह 'बुद्धि रासो' नामक अप्रकाशित कृतिके रचयिता हैं। कृतिका रचनाकाल अनिश्चित है, अतः जल्हके समयके विषयमें कुछ नहीं कहा जा सकता। 'पृथ्वीराज रासो'की एक हस्तलिखित प्रतिमें जल्हको 'रासो'को पूरा करनेवाला कहा गया है। 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह'मे (१५वीं शती वि०) दो छप्पय मिलते हैं, जिनमें जल्हका रचयिताके रूपमें उल्लेख हुआ है। डा० मेनारियाने पता नहीं किस आधारपर जल्हको जैन कहा है और उनका काल १५६८ ई०मे बताया है। उनकी कृतिमें जो उद्धरण दिये गये हैं, उनके आधारपर जल्हको जैन मानने योग्य कोई संकेत नहीं मिलता। सम्भव है तीनों जल्ह एक ही हों। इस प्रकार जल्ह १५वीं शतीमें रहे होंगे।

[सहायक ग्रन्थ—राजस्थानका पिंगल साहित्य, बम्बई १९५८; राजस्थानी भाषा और साहित्य, प्रयाग १९४९ ई०; हिन्दी साहित्यका इतिहास (भाग २)—भारतीय हिन्दी परिषद, प्रयाग १९५९।] —रा० तो०

जवाहरलाल चतुर्वेदी—जन्म मथुरामें १८ नवम्बर १८९० ई०। १९३०में प्रकाशित रचना 'आँख और कविगण'से जहाँ एक ओर इनकी श्रृंगारिक अभिरुचिका परिचय मिलता है, वहाँ दूसरी ओर 'भक्त और भगवान्'से भक्ति-भावनाका। इसका प्रकाशन १९३३ ई०में हुआ। आलोचनाके क्षेत्रमें इन्होंने दो ग्रन्थ प्रस्तुत किये हैं—'श्रृंगार लतिका-सौरभ' (द्विजदेव) और 'काव्यनिर्णय'। दोनोंका प्रकाशन क्रमशः १९३६ ई० और १९५६ ई०में हुआ है। प्रथम समीक्षा ग्रन्थ है और दूसरा काव्यशास्त्र सम्बन्धी। चतुर्वेदीजीने १९३६ ई०में 'नन्ददास-ग्रन्थावली' और १९५३ ई०में 'पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ'का सम्पादन किया। आपने 'सूर पदावली'का भी सम्पादन किया है। —स० ना० त्रि०

जवाहरलाल नेहरू—जन्म प्रयागमें १४ नवम्बर १८८९ ई०। किसी भी असाधारण प्रतिभाशाली व्यक्तिकी तरह उनके व्यक्तित्वके विभिन्न अंग हैं। उन अंगोंमे उनका साहित्यप्रेम और लेखनकला सर्वोपरि है। इसमें सन्देह नहीं कि प्रशासक, राजनीतिज्ञ और राजनयिकके रूपमें उनकी ख्याति अन्तरराष्ट्रीय है, किन्तु सबसे पहले सफल लेखकके रूपमें ही उन्हें मान्यता मिली। उनकी 'मेरी कहानी', 'हिन्दुस्तानकी कहानी' और 'विश्व इतिहासकी झलक' उनके प्रधान मन्त्री बनने और विश्वमंचपर पदार्पणसे कहीं पहले अपनी प्रतिभा बिखेर चुकी थी।

जवाहरलालकी विचारधारा और लेखनशैलीमें पर्याप्त दृढता और स्पष्टता है। ज्यों-ज्यों राजनीतिमें वे गहरे उतरते गये लेखन-शैली परिपक्व होती गयी। 'मेरी कहानी'मे जो सरल और निष्कपट वर्णन है, 'विश्व इतिहासकी झलक' में इन गुणोंमे तुलनात्मक अध्ययन और मूल्यांकन जोड़ दिये गये हैं। 'हिन्दुस्तानकी कहानी' में और विभिन्न भाषणोंके संग्रहोमें आत्मगत भाव नम्र हो वस्तुस्थितिको ग्रहण करनेके लिए आतुर दिखायी देते हैं। आदर्शवाद यथार्थवादके भारको खुशीसे वहन करता है, कल्पना ठोस तथ्योंके हाथ बनने-बिगड़नेको तैयार रहती है। उन्होंने जो कुछ लिखा, उसका हर शब्द जागता-बोलता चित्र है और शाश्वत साहित्यका नमूना है। प्रबुद्ध एवं परिपक्व कल्पना, उच्चाशयता, भावुकता, काव्यमयता, सभी कला-साहित्यके अनिवार्य उपकरण इसमें विद्यमान है।

नेहरूजीकी विचारधारापर विज्ञानका गहरा प्रभाव है। इसके बाद व्यापक अध्ययनके परिणामस्वरूप उनकी रुचि मानवकी आधारभूत समस्याओंमे हुई। यही कारण है कि उनके उन्मुक्त विचार यदि कभी देहातोंमे कंकाल और दरिद्रताका ताण्डव देखते हैं तो कभी सुनहले स्वप्नोंकी रचना करते हैं—ऐसे स्वप्न, जिनका चिन्तन सुखद है और जिनका साकार होना जीवनकी महानतम सफलता है। जीवनका सत्य उनके लिए स्थिर धरातल है और जीवनका निर्माण सुनहले स्वप्नों और मधुर कल्पनाओंका साकार रूप। जीवनकी वास्तविकतासे वे भागते नहीं और जीवनका सौन्दर्य उनके विचारोंका श्रृंगार बना है। सफल जीवनद्रष्टाके रूपमें उनका व्यक्तित्व चमका है और स्वप्नस्रष्टाके रूपमें उनकी कला निखरी है। इसीसे उनके साहित्यमें 'सत्य शिवं सुंदरम्'की अभिव्यक्ति हुई है। अनेक प्रभावों, सम्पर्कों तथा अध्ययनके फलस्वरूप नेहरूजी ने ऐसी समन्वयदृष्टि पायी जो भारतकी ही नहीं, अन्तरराष्ट्रीय जगत्मे व्याप्त परस्परविरोधी विचारधाराओंका समन्वय भी कर सकी। इन सब विचारोंका प्रभाव साहित्यके अतिरिक्त उनकी राजनीतिक धारणाओंपर भी पड़ा और सच बात यह है कि आधुनिक भारतकी तटस्थ नीति भी इसी समन्वयात्मक दृष्टिकी देन है। उनकी कृतियों, वक्तव्यों और भाषणोंमें इन प्रतिक्रियाओंका आभास मिलता है और मानव-बन्धुत्वसम्बन्धी जो संकल्पना है, उससे उनका यह विश्वास मेल खाता है।

भले ही जवाहरलालजीने अधिकतर अंग्रेजीमें लिखा हो, वे हिन्दीके भी अच्छे लेखक हैं। उनके मूल हिन्दी निबन्ध

'सरस्वती' तथा 'विशाल भारत'में प्रकाशित हुए हैं। अपनी रचनाओं द्वारा उन्होंने हिन्दी साहित्यको समृद्धि और नवचेतना दोनों दी है। उनकी अपनी विशिष्ट शैली है, अपना वाक्य विन्यास और शब्द-चयन है। भाषा और साहित्यके सन्दर्भमें भी वे घोर जनतन्त्रवादी हैं और जनतन्त्रमें अविचल आस्थाके कारण ही जनभाषामें भी उनका अटूट विश्वास है। सर्वसाधारणके लाभार्थ साहित्य-रचनाके विषयमें उन्होंने अपने एक लेखमें लिखा है—"हमारी भाषा ऐसी होनी चाहिये, जो सभ्य हो और जिसे अधिकसे अधिक जनता समझे।...इसकी बुनियाद तभी मजबूत पड़ेगी, जब लिखनेवाले आम जनताके लिए लिखेंगे और बोलनेवाले उनके ही लिए बोलेंगे।" भाषाके इसी विकासको ध्यानमें रखते हुए हिन्दीके पक्षका समर्थन भी वे उसी प्रकार करते हैं। उनका यह निश्चित मत है कि सीमाबद्ध होकर भाषाका विकास रुक जाता है। इसी दृष्टिसे उन्होंने कहा था—"हिन्दी आगे कैसे बढ़ रही है? यह विचार कि एक भाषा दूसरी भाषाको पछाड़के बढ़ती है, यह निकम्मा विचार है, गलत विचार है। वह अपनी शक्तिसे बढ़ती है।" (दे० आकाशवाणी साहित्य सम्मेलनके उद्घाटनके अवसरपर ५ अप्रैल, १९५७ को दिया गया भाषण)। हिन्दी भाषाकी शक्तिपर उन्हें विश्वास है। अतः वे आगे कहते हैं—"हिन्दीमें जान है, वह जीवित भाषा है।" —ज्ञा० दे०

जसवंत जसोभूषन–महाराज जसवन्तसिंहके आश्रयमें कविराजा मुरारिदानने यह ग्रन्थ १८९३ ई०में लिखा। इस ग्रन्थका संस्कृत रूपान्तर भी हुआ और लघु संस्करण भी। इसमें ७ आकृतियाँ हैं—१. सामान्य परिचय, २. काव्य-स्वरूप निरूपण, ३. शब्दालंकार, ४. अर्थालंकार, ५. रसवदादि अलंकार-निरूपण, ६. अन्तर्भाव तथा ७. उपसंहार। प्रधानतः यह अलंकार ग्रन्थ है। आश्रयदाताकी यशोगाथा अलंकारोंके उदाहरणस्वरूप यहाँ वर्णित है।

अलंकार साहित्यमें 'जसवन्त जसोभूषन'का एक विशेष महत्त्व है। सेठ कन्हैयालाल पोद्दारने इस ग्रन्थकी कड़ी आलोचना की है। लेखककी एक सर्वोपरि स्थापना 'लक्षण-नाम-प्रकाश' है—"दूसरे कवियोंने तो अलंकारोंके नामोंको लक्षण नहीं समझा है, इसलिए सबोंने नामोंके अतिरिक्त लक्षण बनाये हैं। एक जयदेव कविने स्मृति, भ्रान्ति और सन्देह इन तीन अलंकारोंके नामोंको लक्षण समझा है...समस्त अलंकारोंके नाम ही लक्षण सिद्ध हो गये।"

इस ग्रन्थकी दूसरी विलक्षणता है कि अर्थालंकारोंमें "उपमा अति प्रसिद्ध है, इसलिए उपमाको प्रथम कहकर फिर वर्णमाला क्रमसे दूसरे अलंकार" वर्णित हैं। शब्दालंकारोंमे केवल अनुप्रास ही स्वीकार किया गया है। अर्थालंकार ८० हैं। इनमे अतुल्ययोगिता, अनवसर, अपूर्वरूप, अप्रत्यनीक, अभेद, अवसर, आभास, नियम, प्रतिमा, मिष, विकास, संकोच तथा संस्कार अप्रसिद्ध एवं नवीन हैं। १८ पुराने अर्थालंकारोंका अन्यत्र अन्तर्भाव कर लिया गया है। अलंकारोंके लक्षण–उदाहरण पहले पद्यमें हैं फिर गद्यमें उनकी व्याख्या है। —ओं० प्र०

जसवंत सिंह (महाराज)–उपस्थिति काल सन् १६२६से सन् १६७८ ई०। प्रसिद्ध प्रतापी हिन्दू-नरेश महाराज जसवन्त सिंह जोधपुरके महाराज गजसिंहके दूसरे पुत्र थे। इनके बड़े भाई अमरसिंहको उनके उद्धत स्वभावसे अप्रसन्न होकर महाराज गजसिंहने राज्याधिकारसे च्युत कर दिया था। परिणामस्वरूप जसवन्त सिंह सन् १६३८में केवल १२ वर्षकी अवस्थामे राज्यारूढ हुए। ये शाहजहाँ तथा औरंगजेब दोनोंके समकालीन थे। इनके प्रबल प्रतापके कारण स्वयं औरंगजेब भी सशंक रहता था। उसने इन्हें गुजरातका सूबेदार बनाकर भेजा था, वहीसे ये शाइस्ता खाँके साथ शिवाजीके विरुद्ध युद्धमें दक्षिण भेजे गये। उस युद्धमें, प्रसिद्धिके अनुसार, इनके संकेतपर ही शाइस्ता खाँकी इतिहासप्रसिद्ध दुर्गति हुई। बादमें ये अफगानोंके विरुद्ध युद्धमें काबुल भेजे गये। कहते हैं, वहीं सन् १६७८ में इनका देहान्त हुआ। रामनरेश त्रिपाठी तथा भगीरथ मिश्रने क्रमशः इनकी मृत्यु सन् १६८२ तथा १७०८मे बतायी है, किन्तु इसका कोई आधार नहीं बताया। इनके देहान्तके सम्बन्धमे भी थोड़ा मतभेद मिलता है। यों प्रायः सभीने इनका देहान्त काबुलमे बताया है, किन्तु रामनरेश त्रिपाठीका कथन है कि इन्हें विष मिलाकर मारा गया था। भगवती प्रसाद सिंहका विचार है कि इनको जमुरंद नदीके किनारे वीरगति प्राप्त हुई थी।

जसवन्त सिंह जितने ही प्रतापी थे, उतने ही विद्याव्यसनी, साहित्यमर्मज्ञ तथा तत्त्वज्ञानसम्पन्न भी थे। शक्ति और ज्ञान, राग और विरागका इनमे अद्भुत मिश्रण हुआ था। ये स्वयं तो रचनामे प्रवृत्त रहते ही थे, साथ ही अन्य लेखकोंको भी प्रवृत्त करते थे। इनके इसी विद्यानुरागके फलस्वरूप इनके राज्यमें विद्या-चर्चा उस समय एक सामान्य-सी बात हो गयी थी। ये हिन्दीके आचार्योंके बीच विशेषतया प्रतिष्ठित और समादृत है, साथ ही अन्य रचनाओंमे भी इनको सफलता प्राप्त हुई है। परवर्ती कवि तथा आचार्य दोनो श्रेणीके लेखक इनसे प्रभावित हुए हैं।

इनकी लिखी हुई कई पुस्तकें बतायी जाती है। (१) 'भाषाभूषण', (२) 'सिद्धान्तबोध', (३) 'आनन्दविलास', (४) 'अपरोक्ष सिद्धान्त', (५) 'अनुभव प्रकाश', (६) 'सिद्धान्तसार' नामक ६ मौलिक कृतियाँ तो सभीके द्वारा स्वीकृत हैं, किन्तु भगवती प्रसाद सिंहने इनका एक सातवाँ ग्रन्थ 'इच्छा-विवेक' भी बताया है। इन्होंने संस्कृतके प्रसिद्ध लेखक कृष्ण मिश्रके प्रसिद्ध नाटक 'प्रबोध चन्द्रोदय'का हिन्दी पद्यानुवाद भी किया था। इस प्रकार इनकी कुल आठ पुस्तकें हैं, जिनमें 'भाषाभूषण' उनके आचार्य पक्षको सिद्ध करनेवाला अलंकार-निरूपणका ग्रन्थ है, शेष ज्ञान तथा वैराग्य सम्बन्धी कृतियाँ हैं। 'भाषाभूषण' सन् १६४४ की रचना है और 'इच्छा-विवेक' सन् १९६८की। 'प्रबोध चन्द्रोदय'का रचनाकाल सन् १६४३ है। यह ब्रजभाषा गद्य तथा पद्यमे लिखा गया है। अनुवाद बहुत सुन्दर और अक्षरशः मूलके अनुकूल रहनेका प्रयत्न करते हुए किया गया है। जोधपुर पुस्तकालयमें इसकी एक हस्तलिपि सुरक्षित है। सोमनाथ गुप्त तथा वीरेन्द्र शुक्लने कलात्मक दृष्टि

से इसे हिन्दीका सर्वप्रथम नाटक बताया है। यों इसमें नाटकीयता कम है और आध्यात्मिक तत्त्वोंका विश्लेषण अधिक किया गया है। हिन्दीमें इस नाटकके लगभग एक-दर्जन अनुवाद हुए और इसकी शैलीसे प्रभावित होकर अन्य रचनाएँ भी प्रकाशमें आयीं। भारतेन्दुसे पूर्व शाहजहाँके मुंशी कनवासीदासका फारसी अनुवाद 'गुलजारे हाल', अनाथदास, सुरति मिश्र, ब्रजवासीदास, कविवर आनन्द, गुलाबसिंह, नानकदास, धौकल मिश्र, हरिवल्लभ, जन अनन्यकृत अनुवादोंके साथ उल्लिखित होता है और भारतेन्दुके समय भी शीतलाप्रसाद तथा अयोध्याप्रसाद चौधरीकृत अनुवादोंका नाम लिया जाता है। इनमें महाराज जसवंतसिंहकृत अनुवाद शुद्ध अनुवादकी दृष्टिसे अत्यन्त प्रशंसनीय है।

'भाषाभूषण'की रचना चन्द्रालोक-शैलीमें अप्पय दीक्षितके 'कुवलयानन्द'से प्रभावित होकर की गयी है। जसवंतसिंह महाराजको न तो किसी आश्रयदाताको स्वरचित उदाहरण देकर प्रसन्न करनेकी चिन्ता थी, न राजसभाओंमें दूसरे कवियोंको अपने पदोंके वैचित्र्यसे हतप्रभ करनेकी ही आवश्यकता थी। वे इन दोनों स्वार्थोंसे मुक्त रहे, अतएव उन्होंने लक्षणोदाहरणकी स्पष्टता और यौक्तिकताका विशेष ध्यान रखा है। अलंकारोंको वे जितने सच्चे और सही रूपमें समझा सकते थे, उन्होंने उसका पूरा प्रयत्न किया है। इसके लिए इन्होंने संस्कृतके प्रसिद्ध ग्रन्थोंका सहारा लेकर सरल रूपमें लक्षणोदाहरणोंको एक ही दोहेमें प्रस्तुत करते हुए अद्‌भुत सफलताका परिचय दिया है। यद्यपि इन्होंने अलंकारोंका विवेचन किया है, तथापि जयदेवके समान काव्यमे अलंकारोंको अनिवार्य मानकर ये नहीं चले हैं। इनके इस ग्रन्थका परवर्ती आचार्योंके विवेचन तथा उनकी शैली पर विशेष प्रभाव पड़ा है तथा आज तक इसकी अनेक टीकाएँ लिखी गयी है और उनके अनेक संस्करण प्रकाशित हुए हैं। स्वयं पद्माकर इनसे प्रभावित जान पड़ते हैं। रामसिंहके 'अलकारदर्पण'में दिये गये लक्षणोंपर इनका प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। सोमनाथने 'रसपीयूषनिधि'में इन्हींसे प्रभावित होकर अर्थालंकारोंका वर्णन किया है। इनके बाद श्रीधर ओझाने अपने 'भाषा-भूषण' नामक ग्रन्थमें इनका ही अनुकरण किया है। सारांश यह कि महाराज जसवन्तसिंहकी प्रतिभा कई रूपोंमें विकसित हुई है। वे सफल आचार्य तो थे ही, वेदान्त-विशेषज्ञ तथा अनुवादक भी थे।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० इ०; हि० सा० बृ० इ० (भा० ६); हि० का० इ०; हि० अ० सा०; दि० भू०; हि० ना० उ० वि० : दशरथ ओझा; हि० ना० सा० आ० अ० : वेदपाल खन्ना] —आ० प्र० दी०

जसवंतसिंह (द्वितीय)—बघेल क्षत्रिय हम्मीर सिंहके पुत्र तथा तेरवाँ कन्नौजके पासके राजा थे। 'शिवसिंह सरोज'से सन् १८०० ई०के लगभग इनकी उपस्थिति तथा सन् १८१५ के लगभग इनकी मृत्युकी सूचना मात्र मिलती है। जन्म-तिथिका कोई पता नहीं चलता। केवल १८०० ई०के आसपास आपका रचनाकाल माना गया है। संस्कृत भाषा तथा फारसीके पण्डित, अमूल्य ग्रन्थोंके बृहद भाण्डारके स्वामी, ग्वाल कविके आश्रयदाता और सिद्धहस्त साहित्य-रसिक कविके रूपमें आपकी ख्याति है। 'सरोज'में आपके 'शृंगार-शिरोमणि' (पं० कृष्णाबिहारी मिश्रके संग्रहमें सीतापुरमें हस्तलिखित प्रति), 'शालिहोत्र' तथा 'भाषाभूषण' नामक तीन ग्रन्थ बताये गये हैं, जिनमें 'भाषाभूषण' भ्रमसे इनके नाम लिखी गयी जान पड़ती है। यह रचना जसवन्त सिंह महाराज प्रथम की है। 'शृंगार शिरोमणि' सम्भवतः १८०० ई०के आसपासकी शृंगार रसका विस्तृत विवेचन करनेवाली रचना है, जिसमें शृंगार रसको रस-शिरोमणिके रूपमें प्रतिष्ठित किया गया है। इसमें उत्पन्न होते हुए रसके प्रथम विकारको स्थायीभाव कहा गया है और रतिके श्रवण तथा दर्शन नामक दो भेद किये गये हैं। विशेषता इस बातमें है कि नायकके सहायक नर्मसचिव आदिके ज्ञानभेदमे वैयाकरणी, नैय्यायिक आदि बहुतसे भेद बताये गये हैं, जो अपने-अपने सिद्धान्तोंके अनुकूल प्रेमकी बातें सिखाते हैं। इसके छः अंगोंमें स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव, सात्त्विक भाव, सचारी भाव तथा हावोंका वर्णन है। विवेचन विद्वत्तापूर्ण नहीं है।

[सहायक ग्रन्थ—शि० स०; हि० सा० इ०; हि० का० शा० इ०; दि० भू० (भूमिका)।] —आ० प्र० दी०

जहाँगीरजसचंद्रिका—यह केशवदासकी कृति है और इसका रचनाकाल १६१२ ई० है। इसका मुद्रण 'केशव-ग्रन्थावली'के तृतीय खण्डमें हिन्दुस्तानी अकादमी, इलाहाबादसे सन् १९५९ ई०में हुआ है।

यह केशवदासकी सबसे अन्तिम प्राप्त रचना है। इसमें २०१ छन्दोंमे जहाँगीरके दरबारका वर्णन है। दरबारमें अब्दुर्रहीम खानखानाके पुत्र एलचशाहने केशवसे पूछा कि उद्यम बड़ा है या कर्म। इसपर उद्यम और कर्म (भाग्य)के संवादरूपमें कथाका विकास होता है। कथा यों बतायी गयी है कि कभी गंगातटपर उदय और भाग्य शरीरीके रूपमें बैठे थे। किसी दरिद्र ब्राह्मणने उनसे दरिद्रता दूर होनेका उपाय पूछा। उसकी पृच्छापर उदय और भाग्यने क्रमशः उद्यम और कर्मका पक्ष लेकर विवाद प्रारम्भ किया। वाद-विवाद बहुत बढ़ जानेपर आकाशवाणी हुई कि आप मथुरापुरीके भूतेश महादेवके निकट जाकर अपना निर्णय करा लें। भूतेशने उन्हें जहाँगीरके पास भेज दिया। वहाँ जाकर उन्होंने जहाँगीरका दरबार देखा। प्रश्नोत्तरके रूपमें उसके दरबारियोंका उन्होंने वर्णन किया। उदय और भाग्यने विप्र वेशमें बादशाहसे पूछा कि उद्यम और कर्ममें कौन बड़ा है। उसने उत्तर दिया—"जगमें उद्दिम कर्म ये मेरे जान समान।" जहाँगीरके सम्बन्धमें केशवने लिखा है—"केसवराय जहाँनमें कियो रायतें राज'।

इसमें कोई ऐतिहासिक वृत्तान्त तो नहीं है पर जहाँगीरके दरबारका प्रत्यक्षदर्शीके रूपमें वर्णन, उसके दरबारियों और उनके देशोंका उल्लेख तथा बादशाह और उसके दरबारियोंका प्रशस्ति-गायन होनेसे इसका भी कुछ ऐतिहासिक महत्त्व अवश्य है।

'रामचन्द्रिका'में धनुषयज्ञके प्रसंगमें सुमति और विमतिका जैसा संवाद विभिन्न नरेशोंके वर्णनमें संस्कृतके नाटक

प्रसन्नराघवके आधारपर रखा गया है, वैसा ही संवाद नूतन उद्भावनापूर्ण उदय और भाग्यके द्वारा जहाँगीरके दरबारियोंके सम्बन्धमें इसमें दिया गया है। 'जहाँगीरजसचन्द्रिका'में अधिकांशमें कवित्त-सवैयोंको अपनाया गया है। दोहेको छोड़कर अन्य छन्द बहुत ही कम प्रयुक्त हैं। —वि० प्र० मि०

जहूरबख्श–जन्म १८९९ ई० में सागरमें हुआ। अध्यापक वृत्ति स्वीकार की और हिन्दी साहित्य आपको अध्यापक जहूरबख्शके नामसे ही जानता है। चुस्त और मुहावरेदार खड़ीबोली लिखनेमें आप जैसी कुशलता कमही लेखकोंमें मिलेगी। बालोपयोगी साहित्यका भी सृजन किया है। मूलतः आप पारिवारिक वृत्तके लेखक रहे हैं। प्रकाशित कृतियाँ 'मजेदार कहानियाँ' (१९२२) 'मनोरंजक कहानियाँ' (१९२६), 'समाजकी चिनगारियाँ' (१९२८), 'शबनम' (१९५०), 'स्फुलिंग' (१९३०), 'हवाई कहानियाँ' (१९३५), 'हम पिरशीएण्ट हैं' (१९५५), 'गुलिस्ताँ' (१९५६)। कुल रचनाओंकी संख्या लगभग १७५ है। 'शबनम' रूसी भाषामें अनुवादित और प्रकाशित (१९६१) हुई है।

जांबवंत (जामवंत)–जामवन्तके सम्बन्धमें सम्भावना की जाती है कि वे कोई अनार्य राजा थे। पौराणिक स्रोतोंके अनुसार जाम्बवन्त ब्रह्माके पुत्र थे। त्रेतामें राम-रावण युद्धमें जाम्बवन्त रामके सहायक थे। द्वापरमें स्यंतक मणि (दे० 'अक्रूर')के लिए कृष्णने जाम्बवन्तसे युद्ध किया था। संघर्षके अनन्तर जाम्बवन्तने अपनी कन्या जाम्बवती तथा स्यंतक मणि कृष्णको समर्पित कर दी। मध्ययुगके प्रसिद्ध ग्रन्थ 'भक्तमाल'में नाभादासके अनुसार जाम्बवन्त रामके अग्रगण्य भक्त थे। रामकथा काव्यों ('वाल्मीकि-रामायण', 'रामचरित मानस', 'रामचन्द्रिका' आदि) तथा कृष्ण काव्यों ('सूरसागर', 'भागवतके भाषानुवाद', 'कृष्णायन' आदि) में जाम्बवन्तका चरित्र क्रमशः राम और कृष्णभक्तके रूपमें वर्णित हुआ है। —रा० कु०

जातुधान–जातुधान मूलतः संस्कृतको 'यातु' धातुसे निर्मित तद्भव रूप है। 'यातु'का शाब्दिक अर्थ है 'निकृष्ट आत्मा' तथा 'धान'का अर्थ है 'धारण करना'। आगे चलकर निकृष्ट आत्माके धारण करनेके कारण 'जातुधान' राक्षसके अर्थमें रूढ़ हो गया। वाल्मीकीय रामायणमें 'यातुधान' रावणकी सेना विशेषका संकेतक है। इस सेनाका संचालक खरदूषण था। तुलसीने वाल्मीकिके अनुकरणपर 'जातुधान' शब्द राक्षसोंकी सेनाके पर्याय रूपमें प्रयुक्त किया है। —रा० कु०

जान कवि–राजस्थानमें सीकरके समीप फतहपुरमें मुसलमानी शासनकालमें कायमखानी नवाबोंका राज्य था। फतहपुरको नवाब फतह खाँने बसाया था। इसीके खानदानमें न्यामत खाँ हुए, जो जान उपनामसे कविता करते थे। जानके समयकी निश्चित तिथियाँ ज्ञात नहीं हैं, किन्तु अपनी कृतियोंमें जानने रचनाकालका उल्लेख किया है, जिसके आधारपर जानका रचनाकाल १६१४-१६६४ ई० ठहरता है। संस्कृत, अरबी, फारसी, ब्रजभाषापर जानका अच्छा अधिकार था। 'कायम रासो'में जानके कायमखानी वंशका इतिहास विस्तारके साथ प्रस्तुत किया गया है। जानकी छोटी बड़ी ७६ रचनाओंका पता चला है, जिनमें 'कायमखाँ रासो' जैसी एकाध कृति ही प्रकाशित हुई है। प्रेम-कथाओंमें 'कनकावती', 'कामलता', 'मधुकर मालती', 'रतनावली', 'छीता' आदि उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। प्रेम-कथाओंके अतिरिक्त नाममाला अनेकार्थी कोश जैसी रचनाएँ भी मिलती हैं। शृंगार रससे सम्बन्धित कृतियाँ ही अधिक हैं। जानकी कृतियोंमें कहानीकारकी क्षमता मिलती है, काव्यकी दृष्टिसे वे विशेष महत्त्वकी नहीं हैं। जानकी भाषा सरल, प्रवाहयुक्त है।

[सहायक ग्रन्थ—राजस्थानका पिंगल साहित्य : डा० मोतीलाल मेनारिया, बम्बई, १९५८ ई०; हिन्दुस्तानी, भाग ५, अंक ३; कायमखाँ रासो, जयपुर, १९५३।] —रा० तो०

जानकी मंगल–गोस्वामी तुलसीदासकी एक रचना। इसमें सोहर और हरिगीतिका छन्दोंमें राम-सीता-विवाह वर्णित है। रचनाके मुद्रित पाठमें १९२ सोहरकी द्विपदियाँ और २४ हरिगीतिकाएँ हैं। इस रचनाका एक अन्य पाठ भी मिलता है, किन्तु वास्तवमें वह इससे भिन्न रचना है, नाम मात्रका इससे साम्य है। वह किन्हीं बालकृष्णकी कृति है। इस रचनामें राम-सीता-विवाहका वर्णन प्रायः उतने ही विस्तारसे किया गया है, जितने विस्तारसे वह 'रामचरित मानस'में मिलता है।

किन्तु राम-विवाहके सीमित कथा-विस्तारोंकी भी यदि दोनोंमें तुलना की जाय तो दोनोंमें कुछ अन्तर दीख पड़ेगा। उदाहरणार्थ, इसमें धनुर्भंगके पूर्वका वह पुष्प-वाटिका-विहारका प्रसंग नहीं है, जो 'मानस'में आता है; परशुराम-विवाद इसमें 'मानस'की भाँति स्वयम्वर-भूमिमें न होकर बारातकी वापसीमें अयोध्याके मार्गमें होता है और विवादमें लक्ष्मण नहीं सम्मिलित होते हैं, जैसे वे 'मानस'में हुए हैं। 'रामाज्ञा-प्रश्न' भी इसी प्रकार 'मानस'से भिन्न है।

दूसरी ओर इसमें भी 'मानस'के समान ही कुछ प्रसंग आते हैं, जो 'रामाज्ञा-प्रश्न'में नहीं आते हैं, यथा—बन्दीजनका जनककी प्रतिज्ञाकी घोषणा करना और लक्ष्मणका धनुर्भंगके पूर्व दिक्पालोंको सावधान करना।

इसके साथ ही यह भी दर्शनीय है कि 'जानकी मंगल' और 'मानस'की शैली, शब्द और उक्ति-योजनाओंमें पर्याप्त साम्य है। इसलिए यदि यह मान भी लिया जाय कि 'मानस'से मिलनेवाले और 'रामाज्ञा प्रश्न'से भिन्न जो कथा-विस्तार 'रामाज्ञा प्रश्न'में नहीं आते हैं, वे 'रामाज्ञा प्रश्न'में इस कारण भी न आये हों कि वह एक अति संक्षिप्त रूपमें रामकथाको प्रस्तुत करती है, तो भी शैली, शब्द और उक्ति-योजनाओं-विषयक 'मानस' और 'जानकी मंगल'का साम्य विचारणीय है और इसका समाधान कदाचित् यही है कि 'जानकी मंगल' 'मानस'से (सं० १६३१) पूर्वकी किन्तु 'रामाज्ञा प्रश्न' (सं० १६२१)से बादकी रचना है। इसलिए यदि 'जानकी मंगल'का समय दोनोंके बीचमें सं० १६२६के लगभग रखा जाय, तो कदाचित् हम वास्तविकतासे दूर न होंगे। —मा० प्र० गु०

जाबालि–प्राचीन स्रोतोंमें जाबालि नामक चार ऋषियोंका

उल्लेख प्राप्त होता है—

१. इस नामके एक प्रसिद्ध ऋषि राजा दशरथके मन्त्री तथा पुरोहित थे। ये एक महान् दार्शनिक थे। जाबालि ऋषिने रामको निज मतावलम्बी बनानेकी चेष्टा की, किन्तु रामने इनके मतका विरोध किया। ये एक नैय्यायिक थे। किसी विशेष कारणसे इन्होंने अपने अनीश्वरवादविषयक मत प्रकट किये। ये हरिभक्त थे। नाभादासने इन्हें प्रमुख हरिभक्तोंकी श्रेणीमें रखा है। 'रामचरितमानस', 'साकेत' आदि रामकथा-काव्योंमें इनका उल्लेख है।

२. मन्दराचल पर्वतपर निवास करनेवाले एक तपस्वी महर्षि जाबालिका उल्लेख हुआ है, जिन्होंने ऋतुम्भर नामक एक निःसन्तान राजाको विष्णु सेवा, गो-सेवा और शिवकी आराधनाका उपदेश दिया था। एक बार ये वनमें गये और वहाँ उन्होंने एक परम सुन्दरी स्त्रीको तपस्या करते देखा। इन्होंने उससे प्रश्न करना चाहा किन्तु उसका ध्यान नहीं हटा। अन्तमें इन्हें मालूम हुआ कि वह कृष्णकी आराधनामें मग्न थी। इससे इनके मनमें कृष्णोपासनाकी भावना जगी और गोकुलमें चित्रगन्धा नामक गोपीके रूपमें जन्म लिया।

३. भृगु-कुलोत्पन्न एक जाबाल नामक स्मृतिकार। हेमाद्रि और हलायुधने इन्हें आधार माना है।

४. विश्वामित्रके एक पुत्र जाबालि कहे गये हैं। ये एक प्रसिद्ध ऋषि थे।

जाबालि नामक उपर्युक्त ऋषि वस्तुतः परस्पर भिन्न-भिन्न व्यक्ति थे, यह नहीं कहा जा सकता। —रा० कु०

जालंधरपा-नाथ सम्प्रदायमें जालन्धरपाका आदिनाथके रूपमें स्मरण किया गया है और उन्हें मत्स्येन्द्रनाथका गुरु बताया गया है। जलन्धरपाको जलन्धरीपाँव, जलन्धरीपा भी कहा गया है। ये विभिन्न नाम जलन्धरपादके विकृत रूप है। किसीका अनुमान है कि इनका मूल नाम जाल-धारक (जाल धारण करने वाला) था औरयह मछुए जातिके थे किन्तु तिब्बती परम्परामें इन्हें भोगदेशका निवासी पण्डित (ब्राह्मण) माना गया है। राहुल सांकृत्यायनने इनके चार शिष्यों—कर्णपा, मीनपा, धर्मपा और तन्तिपाका उल्लेख किया है। मीनपा अर्थात् मत्स्येन्द्रनाथको जनश्रुतिके अनुसार जालन्धरपाका गुरु-भाई भी बताया गया है। 'गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह'में गोरक्षपादने इन्हें नाथ सम्प्रदायके प्रवर्तकोंमें गिनाया है। स्वयं जालन्धरपाने अपनी कृति 'विमुक्त मंजरी'में अपनेको आदिनाथ कहा है। चन्द्रनाथ योगी द्वारा रचित 'योगि सम्प्रदाय विष्कृति'में एक कथा दी गयी है, जिसमें बताया गया है कि इनकी उत्पत्ति गुप्त साम्राज्यके उच्छेदक बृहद्रथ द्वारा रचित यज्ञकी अग्निसे हुआ था और इसी कारण इनका नाम जलेन्द्रनाथ पड़ा था। जलेन्द्रनाथी जलन्धरपादके रूपमें बदल गया। इन उलेखोंसे प्रकट होता है कि जालन्धरपा सिद्ध सम्प्रदायके प्राचीनतम आचार्योंमेंसे एक हैं। यदि उन्हें मत्स्येन्द्रनाथका गुरुभाई स्वीकार किया जाय तो उनका समय आठवीं-नवीं शताब्दी ठहरता है। गोपीचन्दकी कथामें जालन्धरपाको गोपीचन्दकी माता मैनामतीका गुरु बताया गया है। इससे भी जालन्धरपाका समय आठवीं-नवीं शताब्दी ही जान पड़ता है। जालन्धरपा मूल रूपमें पंजाबके निवासी बताये गये हैं। कहा जाता है कि जालन्धर नगर उन्हींके नाम पर बसाया गया था। वहाँ पर उनका एक मठ या पीठ था, जहाँ आज भी एक टीला उनकी स्मृतिको सुरक्षित किये हुए है।

जालन्धरपाकी दो पुस्तकें मगही भाषामें रची बतायी गयी हैं—'विमुक्त मंजरी गीत' और 'हुँकार चित्त विन्दुभावना क्रम'। इन पुस्तकोंमें साधनाके विभिन्न उपक्रमों और सिद्धिकी अवस्थाओंका वर्णन है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा सम्पादित 'नाथ सिद्धोंकी बानियाँ'के अन्तर्गत जालन्धपावके पद शीर्षकसे इनके १३ पद (सबदी) दिये गये हैं। इनके पदोंका विषय गुरु, ज्ञान, निरजन, धरती, आकाश, सूर्य, चन्द आदिका वर्णन है। पाँचवी सबदीमें गोपीचन्दका उल्लेख है, जिससे इनके समयका अनुमान किया जा सकता है। जालन्धरपाकी पाँच संस्कृत रचनाओं का भी उल्लेख किया गया है किन्तु उनके सम्बन्धमें कुछ भी ज्ञात नहीं है। 'वज्र प्रदीप' पर लिखी इनकी टीका 'शुद्धि वज्र प्रदीप' नाथ परम्परामें प्रसिद्ध है।

[सहायक ग्रन्थ—पुरातत्व निबन्धावली: महापण्डित राहुल सांकृत्यायन; हिन्दी काव्यधारा: महापण्डित राहुल सांकृत्यायन; नाथ सम्प्रदाय: डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी; नाथ सिद्धोंकी बानियाँ: डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी; योग प्रवाह: डा० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल।] —यो० प्र० सिं०

जालपा-प्रेमचन्दकृत 'गबन'की पात्र। सामन्ती वातावरणमें पली जालपा रमानाथकी पत्नी है। एक ओर तो वह रमानाथ जैसे दुर्बल मनोवृत्तिवाले व्यक्तिकी पत्नी है, दूसरी ओर उसमें आभूषणों, विशेषतः चन्द्रहारके प्रति उत्कट प्रेम है। उसके पतिने घरकी वास्तविक स्थिति छिपाकर उसका आभूषण-प्रेम और भी अधिक तीव्र कर दिया। इसके अतिरिक्त जालपामें आत्म-सम्मानकी तीव्र भावना है। वह माँका भेजा हुआ चन्द्रहार वापस कर देती है किन्तु जालपा है दृढ़ चरित्रकी नारी। जब उसे घरकी वास्तविकता और पतिकी दुर्बलताका पता लग जाता है तो वह अपने आभूषण-प्रेमपर विजय प्राप्त कर गबनका रुपया चुका देती है। ऐसा कर उसने अपनी दुर्बलतापर विजय प्राप्त करनेकी शक्ति और अवसरानुकूल कार्य करनेकी क्षमता प्रकट की किन्तु उसके चरित्रमें एकाएक परिवर्तन हो जाता है। यदि धीरे-धीरे होता तो अधिक स्वाभाविक लगता। वह सदैव साहस और धैर्यसे काम लेती है और अन्तमें पतिको खोज ही नहीं लेती, वरन् उसे सुधार भी देती है। जालपाका चरित्र उर्ध्वगामी है और वह नारी-जीवनका आदर्श प्रस्तुत करती है। वह परिस्थितियोंसे टक्कर लेती है। जालपा जाग्रत् नारीत्वका आदर्श लिए हुए है। —ल० सा० वा०

जाहरपीर-ये मुसलमानोंके पंचपीरोंमेंसे एक प्रधान पीर है। गुरु गुग्गा और जाहर पीर, दोनों एक ही व्यक्ति माने जाते हैं। टेम्पुल महोदयने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'दी लीजेण्ड्स ऑव दी पंजाब'में लिखा है कि, "गुग्गाकी समस्त कहानी महान् अन्धकारमें पड़ी हुई है। आजकल वह

मुसलमानोंके प्रधान फकीरोंमेंसे हैं। ये जाहर पीरके नामसे भी विख्यात हैं।" जगदीश सिंह गहलोतका कथन है कि "गोगा या गुग्गा पंजाबके हरियाना जिलेके मेहरी नामक गाँवका चौहान राजपूत था। स० १३५३ में दिल्ली-के बादशाह फ़िरोजशाह द्वितीयके सेनापति अवकमें युद्ध करते हुए वीरगतिको प्राप्त हुआ। हिन्दू इसे देवता तुल्य मानकर भादों बदी नवमीको इसकी जयन्ती मनाते हैं। मुसलमान इसे जाहर पीरके नामसे पूजते हैं।" इन दोनों उद्धरणोंसे गुग्गा और जाहर पीर अभिन्न व्यक्ति ठहरते हैं। गुग्गाकी कथासे पता चलता है कि उसकी माता बाछल और पिता देवराय थे। इसका विवाह कामरूप, आसामके राजा संजाकी बेटी सिरियलसे हुआ था। जुग्गा विषवैद्य था। यह सर्पोंके द्वारा काटे गये मनुष्योंके जहरको अपने प्रभावसे नष्ट कर देता था। सम्भवतः इसीलिए मुसलमान-लोग इसे जहर, बीरपीर, साधु या जाहर पीरके रूपमे पूजते हैं। इसने संजाकी बेटी सिरियलके सर्प-दंशको दूर कर दिया था।

देवीके जागरणकी भाँति ब्रजमें एक जागरण जाहर पीरका भी होता है। एक पट, जिसे चन्दोवा कहते हैं, टाँग दिया जाता है। इस पटपर जाहर पीर सम्बन्धी विविध वृत्तोंके चित्र कढ़े रहते हैं। वहाँ मोरछलीकी एक ध्वजा बाँसमें बाँधकर खड़ी कर दी जाती है। इस जागरणमे जाहर पीरका गीत गाया जाता है। मारवाड़ तथा पजाबमें जाहर पीरकी पूजाका बड़ा प्रचार है। वहाँ नाग पचमीके दिन, जिसे गुग्गा पचमी कहते हैं, इसकी पूजा होती है। —कृ० दे० उ०

जाह्नवी–'रंगभूमि'में जाह्नवीके माध्यमसे प्रेमचन्दने अपना नारी-संबंधी आदर्श प्रस्तुत किया है। वह इन्दु और विनय की माँ है। विनयको वह यदि स्वदेशानुरागी, सेवाव्रती और कर्त्तव्य-परायण आदि बनाना चाहती है, तो इन्दुको पति-परायण बनानेमें तत्पर रहती है। वह विनय और इन्दु दोनोंपर कठोर अनुशासन रखती है किन्तु इस कठोरताके पीछे अगाध वात्सल्य छिपा हुआ है। उसकी कोमल कायामें उच्च और परिष्कृत विचार छिपे हुए हैं। वह स्त्री जातिके प्रति सदिच्छाओंसे पूर्ण है और भारतीय नारीकी अवनतिको ही भारतकी अवनतिका कारण समझती है। मिथ्यावाद, स्वार्थवाद और जड़वादसे वह ऊपर उठना चाहती है। उसमें कुल-मर्यादा और भारतीय धर्मकी श्रेष्ठता का ख्याल बराबर बना रहता है। वह सोफीकी आत्मापर मुग्ध है, किन्तु जबतक उसे यह शंका बनी रहती है कि वह (सोफी) विनयके कर्त्तव्य-पथमें बाधक सिद्ध होगी तभी तक वह दोनोंको अलग रखना चाहती है। सोफी और विनयकी तपस्या और उनकी पवित्र आत्माओंको जब वह पहचान जाती है तो उसका वास्तविक मातृत्व प्रकट होने लगता है। वात्सल्यके कारण उसमें भी कभी-कभी कमजोरी दृष्टिगोचर होती है किन्तु विनयकी मृत्युके बाद वह तपस्विनीका वेष धारणकर बड़ी स्फूर्ति और तत्परताके साथ सेवक-दलका संघटन और संचालन करनेमें संलग्न हो जाती है। —ल० सा० वा०

जॉन गिलक्राइस्ट–(१७५९-१८४१) जन्म एडिनबरामें हुआ। उन्होंने वहाँके जार्ज हेरियट्स अस्पतालमें चिकित्सा सम्बन्धी शिक्षा ग्रहण की। १७८३ में ईस्ट इण्डिया कम्पनीमें सहायक सर्जन होकर भारत आये। तबतक शासन कार्य फारसीमें होता था। जॉन गिलक्राइस्टने फारसीके स्थानपर शासनकार्यको हिन्दुस्तानीके माध्यमसे चलानेकी बात सोची। वे स्वयं अध्ययन करते रहे और दूसरोंको भी इस बातके लिए प्रेरणा देते रहे।

डिक्शनरीके लिए सामग्री जुटानेके लिए उन्होंने गाजीपुरमें (१७८७-१७९४) नीलकी खेती और अफीमका कार्य शुरू किया। इसी सिलसिलेमें वे कुछ दिन बनारसमें भी रहे और इस प्रकार गहन अध्यवसायके बाद १७८७-१७९० ई०में 'डिक्शनरी इंग्लिश ऐण्ड हिन्दुस्तानी'के दो भाग प्रकाशित किये।

१७९४में वे कलकत्तामे निवास करने लगे। वहीं उन्होंने 'हिन्दुतानी ग्रामर' (१७९६-९८) तथा 'ओरियण्टल लिंग्विस्ट' १७९८ ई०में लिखा।

इन्हीं दिनों कम्पनीके विदेशी कर्मचारियोंको फारसी और हिन्दुस्तानी सिखानेकी एक योजना तैयार की गयी। १७९८ से परीक्षाएँ भी आरम्भ कर दी गयी। 'ओरियण्टल सेमिनरी' नामक एक सरकारी संस्थाका भी जन्म हुआ। लार्ड वेलेजलीके आनेपर फोर्ट विलियम कॉलेजमें जॉन गिलक्राइस्ट हिन्दुस्तानी भाषाके विभागाध्यक्ष हो गये।

१८०० ई० में 'ओरियण्टल लिंग्विस्ट'का संक्षिप्त सस्करण निकला। १८०२ ई० मे 'हिन्दुस्तानी टेल्स एण्ड प्रिंसिपल्स्', 'पालिग्लॉट' और 'गुलिस्ताँ'के अनुवाद प्रकाशित हुए।

१८०३ ई०में 'द हिन्दी मारल पर्सेप्ट्स' लिखा। १८०४ मे 'ए कलेक्शन आफ डायलाग्स'की रचना की। इसी बीच लल्लूलाल और सदल मिश्रको वे फोर्ट विलियम कॉलेजमे हिन्दुस्तानी पढ़ानेके लिए ले गये।

१८०४ में वे यूरोप चले गये। उनका कार्यक्षेत्र प्रायः लन्दन रहा। उन्हें एडिनबरासे एल-एल० डी०की उपाधि मिली। यूरोपमे रहकर वे कोई रचना प्रकाशित न कर सके। निजी रूपमे वे १८१६-२६ तक पढ़ाते रहे। पहले वे 'ओरियण्टल इन्स्ट्रक्टर' रहे, फिर हिन्दुस्तानीकी कक्षाएँ लेने लगे।

'डिक्शनरी इंग्लिश ऐण्ड हिन्दुस्तानी'में अधिकांश शब्द अरबी फारसीके है। इसमे शब्द फारसी लिपिमे हैं।

'हिन्दुस्तानी ग्रामर'मे फारसी छन्दोंके उदाहरण हैं। पारिभाषिक शब्दावली अरबी फारसीकी है। उद्धरण उर्दू साहित्यमे भी दिये गये है, जैसे वली, दर्द, ताबाँ, अफजल, जुरअत, मीर, सौदा, बेदार आदि।

'मिलिट्री-टर्म्स', 'आर्टिकिल्स ऑफ वार', 'टेल्स ऐण्ड एनेक्डोट्स', 'ओड्स', 'स्ट्रेन्जर्स गाइड', 'हिन्दी डिक्शनरी' (१८०२) भी हिन्दुस्तानी व्याकरण हैं।

'हिन्दी मैनुअल' मौलिक रचना नहीं, संग्रह है। इसमें अपने विभागके अध्यापकोंकी कृतियोंसे विचित्र शैलियोंके नमूने चुने गये हैं।

'हिन्दी स्टोरी टेलर' इनकी मौलिक रचना है।

'हिन्दी मारल प्रेसप्टर' हिन्दीसे फारसी और फारसीमे

हिन्दीका व्याकरण है। यह भी मौलिक नहीं है।

'हिन्दी रोमन आन ग्रैफिकल अल्टीमेटम'में रोमन लिपि की श्रेष्ठता प्रमाणित की गयी है। यह भी मौलिक कृति है।

जॉन गिलक्राइस्टकी दृष्टिमें 'हिन्दुस्तानी' दरबारी भाषा है। उन्होंने इसे हिन्दी, उर्दू, उर्दुवी और रेखता भी कहा है। हिन्दवीको वे केवल हिन्दुओंकी भाषा मानते थे। इसे गँवारू कहते थे। शैलीके लिए फारसी भाषा और लिपिका ज्ञान अनिवार्य मानते थे। उन्हींके शब्दोंमें हिन्दुस्तानी, हिन्दी, अरबी और फारसीका मिश्रित रूप है। वह भाषा आया, मुंशी और खानसामाकी भाषा है।

जॉन गिलक्राइस्टके भाषा और लिपिसम्बन्धी दृष्टिकोणों से आज असहमति हो सकती है किन्तु साहित्यके इतिहास में खड़ीबोलीके आधुनिक गद्यके उन्नायकके रूपमे उनका नाम सदाशयतासे लिया जायेगा। —ह० दे० बा०

जॉनसेवक–जॉन सेवक प्रेमचन्द्रकृत 'रंगभूमि'में "धनका देवता" है। वह भारतवर्षमें अकुरित नवीन पूँजीवादी व्यवस्था और व्यावसायिक लोलुपताका प्रतीक है और व्यवहार तथा व्यापार-कुशल है। उसका व्यक्तित्व आकर्षक है। वह अनुभवशील और मानव-चरित्रका ज्ञाता है। जॉन सेवक जिस कार्यको हाथमें लेता है उसे किसी-न-किसी प्रकार पूरा कर ही लेता है—भले ही उसे साम्राज्यवादी और सामन्तवादी शक्तियोंकी सहायता लेनी पडती हो। उसका उद्देश्य सूरदासकी जमीन और पाण्डेपुर गाँव लेना है। इसके लिए वह कानूनी विधानों, कूटनीति, धमकियों आदि सबका सहारा लेता है। उसका गिरजाघर जाना भी व्यावहारिक बुद्धिका परिचायक है। धर्म और व्यापारमे वह कोई सम्बन्ध नहीं समझता। साधनमात्रमे उसे विश्वास है। वह समझता है कि सफलता सब दोषोंको ढक लेती है। उसमें राजनीतिक पृथक्त्वकी भावना है, किन्तु वह भी व्यावसायिक दृष्टिसे प्रेरित है। स्वार्थकी दृष्टिसे ही वह राज्यभक्त है और स्वार्थकी दृष्टिसे ही स्वदेशी चीजोंका समर्थक। सूरदासके साथ संघर्षमें वह जीता अवश्य था, किन्तु वह जीत कर भी दुःखी था। इतनेपर भी धन-प्रेम ही उसकी जीवनधाराका मुख्य स्रोत बना रहता है। उसके लिए ससारके अन्य सब धन्धे इसी एक बातके अन्तर्गत आते हैं किन्तु ऐसा व्यक्ति भी अपनी पत्नीसे मजबूर है। मिसेज सेवकका उसपर पूर्ण आधिपत्य है। —ल० सा० वा०

जी० पी० श्रीवास्तव–पूरा नाम गंगाप्रसाद श्रीवास्तव। हिन्दीके पाठकोंमें आप जी० पी० श्रीवास्तवके नामसे ही प्रसिद्ध हैं। जन्मस्थान छपरा, जिला सारन, बिहार प्रान्त। जन्मतिथि २३ अप्रैल १८९० ई० है। प्रयाग विश्वविद्यालयसे बी० ए०, एल-एल० बी०की परीक्षा पास करके गोण्डा जिलामें वकालत कर रहे हैं। हिन्दीके हास्य-रसके लेखकोंमें आपका प्रमुख स्थान है। हास्य-रसकी जिस परम्पराको भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने 'अन्धेर नगरी चौपट राजा' मे स्थापित किया था, आपने हास्यको उसी दिशामें विकसित किया है। आपकी प्रतिभा प्रायः सभी विधाओंमें समान रूपसे व्यक्त हुई है। नाटक, उपन्यास, कहानी, कविता एवं शुद्ध परिकल्पनाके आधारपर गल्प भी आपने लिखे हैं। कुल मिलाकर अबतक आपकी बाईस पुस्तकें प्रकाशमें आ चुकी है। आपकी प्रमुख कृतियाँ इस प्रकार हैं—

कहानी संग्रह 'लम्बी दाढी' १९१३ ई० में प्रकाशित हुई। नाटक 'उलट फेर' १९१८ ई० और काव्यसंग्रह 'नोक झोंक' १९१९ ई० में प्रकाशमे आया। १९३१ में आपका प्रथम उपन्यास 'लतखोरीलाल' प्रकाशित हुआ, जो अपने समयमें बहुचर्चित उपन्यास रहा। १९३२ ई०में दूसरा उपन्यास 'दिल जलेकी आत्मकथा' प्रकाशित हुआ। १९५३ में आपका एक नाटक 'बौछार' के नामसे प्रकाशित हुआ है। —ल० कां० व०

जीवन–ये लखनऊके नवाब मुहम्मद अली (१८३७ ई०-१८४२ ई०) के आश्रित कवि थे। इनका जन्म १७४६ ई०में पुवायाँ (जिला शाहजहाँपुर) में हुआ था और इनके पिता चन्दन कवि थे। इन्होंने बरगाँव (जिला सीतापुर)के बरिवण्ड सिंहके आश्रयमें 'बरिबण्ड विलास' की रचना की। इनका काव्य शृंगारपरक है। —सं०

जीवाराम 'युगलप्रिया'–ये सारन (बिहार) निवासी पण्डित शकरदासके पुत्र थे। घरपर पितासे व्याकरण और ज्योतिष पढ़कर इन्होने उसी जिलेके खरौंद नामक गाँवमें मसारामसे अष्टांग योग सीखा। इसके बाद पिताकी अनुमति लेकर ये अयोध्या आये और रसिकाचार्य रामचरणदासका शिष्यत्व प्राप्त किया। इनकी चार कृतियाँ उपलब्ध हैं—'रसिक प्रकाश भक्तमाल' (१८३९ ई०), 'पदावली', 'शृंगार रस-रहस्य' और 'अष्टयाम वार्तिक'। इनमें 'रसिक प्रकाश भक्तमाल' सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। रसिक परम्पराके सन्तोंका वृत्त इसमें भक्तमालकी शैलीपर प्रस्तुत किया गया है। शृंगारी रामभक्ति शाखामें 'युगलप्रिया' जी 'चन्द्रकलापरत्व' के प्रमुख आचार्य माने जाते हैं। अयोध्याके प्रसिद्ध रसिक महात्मा युगलानन्यशरण इन्हींके शिष्य थे।

[सहायक ग्रन्थ—रामभक्तिमे रसिक सम्प्रदाय : भगवती प्रसाद सिंह; रामभक्ति साहित्यमे मधुर उपासना : भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र 'माधव'।] —भ० प्र० सिं०

जुगल विलास–महाराज पृथ्वीसिंह अपरनाम पीथल कुशलगढ़ नरेशने सन् १७४६ ई० में 'जुगलविलास'की रचना की। माधुर्यपूर्ण ब्रजभाषामें श्रीकृष्णकी शृंगारिक लीलाओंका इस कृतिमे वर्णन है। नखशिख वर्णन, नायक-नायिका निरूपण, दूती वचन, संयोग और वियोग वर्णन, ऋतु वर्णन कृतिके प्रधान विषय हैं। दोहा, कवित्त, सवैया, कुण्डलिया, मौक्तिकदाम आदि छन्दोंका कृतिमें प्रयोग हुआ है। राजस्थान पुरातन ग्रन्थ मालामें जयपुरसे सन् १९५८ ई०में कृति प्रकाशित हुई है। —रा० तो०

जुलेखा–फारसी और सूफी प्रेमकाव्योंकी एक प्रसिद्ध नायिका जुलेखा अत्यन्त रूपवती थी। इसके पिता पश्चिम देशके तैमूस नामक सुल्तान थे। उसका स्वप्न दर्शनमें यूसुफसे प्रेम हो गया था (दे० 'यूसुफ-जुलेखा')। उसका यह प्रेम इतना घनीभूत हो गया कि यदि उससे आकर कोई कह देता कि मैंने यूसुफको देखा है तो वह उसे गलेका हार दे देती। उसके पास सत्तर ऊंट हीरे थे। धीरे-धीरे वे सब समाप्त हो गये। वह केवल यूसुफको स्मरण करती थी। यहाँ तक

कि आकाशके तारोंमें उसे यूसुफ ही दिखाई देता था। जुलेखाके प्रेममें उदात्तता एवं एकनिष्ठताका चरमोत्कर्ष दिखाई देता है। —रा० कु०

जैनेंद्रकिशोर–जन्म अठारहवीं शताब्दीके प्रारम्भिक वर्षोंमें अनुमानित किया जाता है। ये आराके निवासी अग्रवाल जैन थे। इनके परिवारमें जमींदारीका काम होता था। इन्होंने 'कमलिनी', 'मनोरमा', 'सोमा सती' तथा 'परख' आदि उपन्यासोंकी रचना की थी। इनमेंसे 'कमलिनी'का प्रकाशन सन् १८३४ ई०में हुआ था। 'परख'पर इन्हें हिन्दुस्तानी अकादमीसे पुरस्कार भी प्राप्त हुआ था। इनकी लिखी हुई 'खगोल विज्ञान' नामक एक और पुस्तक भी मानी जाती है। यह बहुत मंजे हुए गद्य-लेखक थे। भाषा पर इनका अच्छा अधिकार था परन्तु भाषाके विषयमें इनका एक कट्टर आग्रह यह था कि ये ठेठ हिन्दी लिखनेके समर्थक थे, जिसकी शब्दावलीमें संस्कृतके शब्दोंकी अधिकता थी। अपने उपन्यासोंमें भाषाका प्रयोग इन्होंने इसी कट्टरतासे किया है। उदाहरणके लिए 'कमलिनी'में इन्होंने 'नाक बह रही है' लिखनेके स्थान पर "नासिका रन्ध्र स्फीत हो रहा है" लिखा है। —प्र० ना० टं०

जैनेंद्र कुमार–जन्म सन् १९०५, स्थान कौड़ियागंज (जिला अलीगढ़)। इनकी मुख्य देन उपन्यास तथा कहानी है। एक साहित्य विचारकके रूपमें भी इनका स्थान मान्य है। इनके जन्मके दो वर्ष पश्चात् इनके पिताकी मृत्यु हो गयी। इनकी माता एवं मामाने ही इनका पालन-पोषण किया। इनके मामाने हस्तिनापुरमें एक गुरुकुलकी स्थापना की थी। वहीं जैनेन्द्रकी प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा हुई। उनका नामकरण भी इसी संस्थामें हुआ। उनका घरका नाम आनन्दी लाल था। सन् १९१२ में उन्होंने गुरुकुल छोड़ दिया। प्राइवेट रूपसे मैट्रिक परीक्षामें बैठनेकी तैयारीके लिए वह बिजनौर आ गये। १९१९ में उन्होंने यह परीक्षा बिजनौरसे न करके पंजाबसे उत्तीर्ण की। जैनेन्द्रकी उच्च शिक्षा काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमें हुई। १९२१ में उन्होंने विश्वविद्यालयकी पढ़ाई छोड़ दी और कांग्रेसके असहयोग आन्दोलनमें भाग लेनेके उद्देश्यसे दिल्ली आ गये। कुछ समयके लिए यह लाला लाजपतरायके 'तिलक स्कूल आफ पालिटिक्स'में भी रहे, परन्तु अन्तमें उसे भी छोड़ दिया।

सन् १९२१ से २३ के बीच जैनेन्द्रने अपनी माताकी सहायतासे व्यापार किया, जिसमें इन्हें सफलता भी मिली। परन्तु सन् २३ में वे नागपुर चले गये और वहाँ राजनीतिक पत्रोंमें संवाददाताके रूपमें कार्य करने लगे। उसी वर्ष इन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और तीन माहके बाद छूट गये। दिल्ली लौटनेपर इन्होंने व्यापारसे अपनेको अलग कर लिया। जीविकाकी खोजमें ये कलकत्ते भी गये, परन्तु वहाँसे भी इन्हें निराश होकर लौटना पड़ा। इसके बाद इन्होंने लेखन कार्य आरम्भ किया।

जैनेन्द्रकी सर्वप्रथम औपन्यासिक कृति 'परख'का प्रकाशन सन् १९२९ में हुआ। सत्यधन, कट्टो, बिहारी और गरिमा नामक पात्र-पात्रियोंके चरित्रपर आधारित यह मनोवैज्ञानिक कथा अप्रत्यक्ष रूपसे विधवा विवाहकी समस्यासे सम्बन्ध रखती है, जो भारतेन्दुयुगीन औपन्यासिक प्रवृत्ति है। जैनेन्द्रके आगामी उपन्यासोंकी अपेक्षा 'परख'में चरित्र-चित्रण अशक्त प्रतीत होता है। मुख्यतः इसी कारणसे 'परख'को वह महत्त्व नहीं प्राप्त हो सका, जो जैनेन्द्रके अन्य उपन्यासों विशेष रूपसे 'सुनीता' (१९३५) तथा 'त्यागपत्र' (१९३७)को प्राप्त हुआ। इसका एक कारण इस उपन्यासकी अविश्वसनीय कथा भी है। इसके प्रधान पात्र-पात्रियाँ अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व रखते हुए भी अधिकांशतः नाटकीय व्यवहार करते हैं। आदर्शवादी कथा-तत्त्व यत्र-तत्र उभरे हुए हैं, जिनमें आत्मबलिदानकी भावनाको प्रमुखता मिली है।

सन् १९३५ में जैनेन्द्रके दूसरे उपन्यास 'सुनीता'का प्रकाशन हुआ। आरम्भमें इसका दो तिहाई अंश 'चित्रपट' में प्रकाशित हुआ था। गुजरातीकी एक पत्रिकामें यह धारावाहिक रूपसे अनूदित भी हुआ। 'सुनीता' और जैनेन्द्रकी पूर्वप्रकाशित औपन्यासिक कृति 'परख'के कथानक में दृष्टिकोणगत बहुत कुछ समानता है। इस उपन्यासकी कमियाँ भी स्पष्ट हैं। इस उपन्यासके पात्र-पात्रियोंके व्यवहार और प्रतिक्रियाएं निरुद्देश्य एवं अप्रत्याशित लगती हैं। अप्रत्याशित व्यवहार प्रदर्शनकी भावनाके कारण ही उपन्यासमें क्षीण स्थल आये हैं। उपन्यासकारका पहेली बुझानेका आग्रह कृतिमें हलकापन ला देता है परन्तु कहीं-कहीं उपन्यासके चरित्र अपनी सीमाओंका अतिक्रमण करके अतिशय उच्चताका परिचय देते हैं। जैनेन्द्रकी अटपटी कथा शैली इस उपन्यासमें सहजता, स्वाभाविकतासे युक्त प्रतीत होती है। इस दृष्टिसे 'सुनीता'-को जैनेन्द्रकी सर्वश्रेष्ठ औपन्यासिक कृति कहा जा सकता है। उपन्यासके प्रभावशाली वातावरण और सप्राण चरित्रोंके बीच पाठक चकित सा रह जाता है। जैनेन्द्रकी सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक दृष्टि और सशक्त वातावरणका चित्रण पाठकपर अमिट प्रभाव डालता है। 'सुनीता'के कथा-चक्रकी सबसे भारी घटना निर्जन वनमें अर्धरात्रिके समय उपन्यासका प्रधान पात्री सुनीताका हरि प्रसन्नके सामने निर्वसना हो जाना है। परन्तु 'सुनीता'के चरित्रोंकी मानसिक अस्थिरताको देखते हुए इस घटनाको बहुत अधिक महत्त्व नहीं देना चाहिए। इसके आधारपर जैनेन्द्रपर नग्नवादिताके आरोप अनौचित्यपूर्ण है।

जैनेन्द्रकी तीसरी औपन्यासिक कृति 'त्यागपत्र' है। इसका प्रकाशन सन् १९३७ में हुआ। इसका अनुवाद अनेक प्रादेशिक तथा विदेशी भाषाओंमें हो चुका है। हिन्दीके भी सर्वश्रेष्ठ लघु उपन्यासोंमें मृणाल नामक भाग्यहीना युवतीके जीवनपर आधारित यह मार्मिक कथा अत्यन्त प्रभावशाली बन सकी है। उसका भतीजा प्रमोद उसकी पीड़ाको समझता है। वह अपने सर्वस्वकी बाजी लगाकर भी अपनी बुआके दुर्भाग्यपर विजय प्राप्त करना चाहता है, परन्तु मृणाल सदैव ही उसकी कृपाको अस्वीकृत कर देती है। वह स्वयं कभी इसके लिए जोर नहीं दे पाता, क्योंकि वह दुविधामें पड़ा रहता है। उसके हृदयके किसी कोनेमें दबी स्वार्थवृत्ति भी उसे पीछे खींचती है। जीवन भर वह अपने आपको मृणालकी ओरसे भुलावेमें

रखनेमें सफल होता है, परन्तु मृणालकी अन्तिम अवस्था उसे आन्दोलित कर देती है और वह अपने पद जजीसे त्यागपत्र देकर प्रायश्चित्त करता है। मृणालकी सूक्ष्म चारित्रिक प्रतिक्रियाओं, विवश इच्छाओं, दमित स्वप्नों तथा निरुद्वेग विकारोंकी यह मनोवैज्ञानिक कथा अत्यन्त मार्मिक बन सकी है। प्रथम पुरुषके रूपमें कही गयी यह रचना पाठककी मनोभावनाओं और संवेदनाओंको आन्दोलित करनेमें समर्थ है। आकर्षक और उपयुक्त शिल्प रूपमें ढाली गयी यह कृति जैनेन्द्रकी रचनाओंमें प्रमुख स्थान रखती है।

सन् १९३९ में जैनेन्द्रके चौथे उपन्यास 'कल्याणी'का प्रकाशन हुआ। यह उपन्यास भी आत्मकथात्मक शैलीमे लिखा गया है। सामान्यतः इस शैलीमें जो उपन्यास लिखे जाते हैं, उनमे कथाके किसी महत्वपूर्ण पात्रकी ओरसे ही उसका सम्पूर्ण विवरण प्रस्तुत किया जाता है परन्तु इस उपन्यासकी विशेषता यह है कि कथाका प्रस्तुतकर्ता उपन्यासका गौण पात्र है। उपन्यासकी प्रधान पात्री श्रीमती असरानी हैं, जिनके नामपर ही उपन्यासका नामकरण भी हुआ है। प्रस्तुतकर्त्ताने अपने कुछ परिचितोंकी जीवन-कथाके रूपमे यह कहानी सामने रखी है। चूँकि वह स्वंय कथामें प्रधानता नहीं रखता, इसलिए उसके प्रति अपना दृष्टिकोण भी अधिकांशतः तटस्थ रखनेका प्रयत्न करता है। इसी कारण कथानकके विकास-चक्रमे कहीं-कहीं कुछ ऐसे अंश आ गये है, जो उसके प्रवाहकी गति भंग कर देते हैं। प्रासंगिक रूपसे जो दार्शनिक विचार इसमे समावेशित किये गये है, वे भी चिन्तनपूर्ण नही है।

जैनेन्द्रका पाँचवाँ उपन्यास 'सुखदा' (१९५३ ई०) है, जो प्रारम्भमे धारावाहिक रूपसे 'धर्मयुग'मे प्रकाशित हुआ था। इसका कथानक घटनाओंके वैविध्य बोझसे आक्रान्त है। जैसाकि इस उपन्यासके शीर्षकसे स्पष्ट है इसकी प्रधान पात्री सुखदा है। उसका जीवन उसके लिए भार बन चुका है। वह एक धनी घरानेकी कन्या और विवाहिता है। वैचारिक असमानताओंके कारण उसके सम्बन्ध अपने पतिसे सन्तोषप्रद नहीं हैं। उपन्यासकी यह परिस्थिति तो स्पष्ट है, परन्तु इसको आधार बनाकर कथाका जो ताना-बाना बिना गया है, वह पाठकको विचित्र लगता है। कथाका उद्देश्य अन्त तक अप्रकट ही रहता है। सुखदाके लालकी ओर आकर्षित होने पर भी कथानकका तनाव नहीं खत्म होता। अनेक स्वभावविरोधी प्रतिक्रियाओं तथा नाटकीय मोडोके बाद सुखदा पतिको त्यागकर अस्पतालमें भरती हो जाती है। अनेक अनावश्यक, अप्रासंगिक विवरणों तथा चमत्कारिक तत्त्वोंमे कथा अशक्त हो गयी है।

जैनेन्द्रकी छठवीं औपन्यासिक कृति 'विवर्त'का प्रकाशन सन् १९५३ मे हुआ। प्रारम्भमे यह उपन्यास 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान'मे धारावाहिक रूपसे प्रकाशित हुआ। इस उपन्यासके कथानकका केन्द्र जितेनका चरित्र है। उसकी सामान्य पारिवारिक स्थितिसे कथाका व्यावहारिक आरम्भ होता है। उसकी असाधारण प्रसिद्धि आदि बताकर लेखक कथा-विकासका भावी मार्ग खोलता है। भुवनमोहिनीके कथानकमें प्रवेशसे उसमे गति आती है परन्तु जब भुवनमोहिनी जितेनसे विवाह न करके नरेशचन्द्र की पत्नी बन जाती है तब कथाकी समस्याका अन्त हो जाता है। उसका असफल प्रेम उसे क्रान्तिकारी दलमें सम्मिलित हो जानेकी प्रेरणा देता है। चार वर्षके बाद जितेनका आना, शरण पाना, भुवनमोहिनीके गहने चुरा कर भागना, उसके दलवालोंका भुवन मोहिनीको पकड़ ले जाना, जितेनका पुलिसको समर्पण आदि नाटकीयता-पूर्ण घटनाएँ क्रमशः घटित होने लगती हैं। उसका अन्त भी इन्हींके जालमें बँधकर आकस्मिक रूपसे होता है और पाठकके हृदय पर कोई प्रभाव नहीं डाल पाता।

जैनेद्रका सातवाँ उपन्यास 'व्यतीत' है, जो सन् १९५३ मे प्रकाशित हुआ था। इस उपन्यासका नायक कवि जयन्त है। वह अपने जीवनकी प्रौढावस्थामें पहुँचकर अपने आपको टूटा-सा अनुभव करता है। अनिता उसके प्रति प्रेम-भाव रखती है परन्तु उसका विवाह पुरीसे हो गया है। वह पचहत्तर रुपयेकी नौकरी कर लेता है। इसी बीच पिताकी मृत्यु हो जानेके कारण उसे ढाई हजार रुपया मिलता है। वह रुपया भी अपनी बड़ी बहिन को दे देता है। जयन्तके मालिकको पता लगता है कि उसका परिचय पुरीसे है। वह इससे लाभके उद्देश्यसे अपनी पुत्रीको जयन्तके सम्पर्कमें लाता है। वह जयन्तके साहचर्यकी कामना करने लगती है। कुमार चाहता है कि चन्द्रीका विवाह जयन्तसे हो जाय। जयन्त इसमें असमर्थता प्रकट करता है और पुनः अनिताके पास लौट जाता है। वह निश्चय करता है कि वह युद्धमें जाकर प्राण दे देगा। बीचमें कुछ ऐसी परिस्थितियाँ उपजती हैं कि वह चन्द्रीसे विवाह कर लेता है। इसके आगेकी कथा उलझी हुई है। जयन्त, अनिता, चन्द्री, पुरी तथा कपिला आदि पात्र-पात्रियाँ कठपुतलियोंकी भाँति व्यवहार करते हैं और कथानककी गति रुद्ध हो जाती है। ऐसी ही परिस्थितिमें 'व्यतीत' की कथा समाप्त हो जाती है।

जैनेन्द्रकी नवीनतम औपन्यासिक कृति 'जयवर्द्धन' है। इसका प्रकाशन सन् १९५६मे हुआ। 'जयवर्द्धन'की कथाको एक अमेरिकन पत्रकार विल्बर हस्टनकी लिखी गयी डायरीके रूपमें प्रस्तुत किया गया है। कथात्मकता एवं विचारात्मकताकी दृष्टिसे यह उनके पूर्व उपन्यासोंसे पर्याप्त भिन्नता रखता है। इस कथाका नायक स्वयं 'जयवर्द्धन' ही है। उसके अतिरिक्त अन्य महत्त्वपूर्ण चरित्रोंमें आचार्य स्वामी चिदानन्द, इन्द्र मोहन लिजा, इला तथा नाथ आदि हैं। कथा प्रारम्भसे ही प्रायः दो सूत्रोंमें विभक्त होकर विकसित हुई है। ये दोनों सूत्र कथानायक जयवर्द्धनके वैयक्तिक तथा राजनीतिक जीवनको आधार बनाकर गतिशील रहते हैं। यह उपन्यास पात्रोंके तर्क सूत्रों, विचार तत्त्वों, सामाजिक आदर्शों एवं राजनीतिक दर्शनसे बोझिल हो गया है। ऐसा भासित होता है कि इस कृतिमें जो विषय प्रस्तुत किये गये हैं, उनके लिए उपन्यास उपयुक्त माध्यम नहीं है।

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारोंमें जैनन्द्रकुमारका विशिष्ट स्थान है। वह हिन्दी उपन्यासके इतिहासमें मनोविश्लेषणात्मक परम्पराके प्रवर्त्तकके रूपमें मान्य हैं। जैनेन्द्र अपने

पात्रोंकी सामान्यगतिमें सूक्ष्म संकेतोंकी निहितिकी खोज करके उन्हें बड़े कौशलसे प्रस्तुत करते हैं। उनके पात्रोंकी चारित्रिक विशेषताएँ इसी कारणसे संयुक्त होकर उभरती हैं। जैनेन्द्रके उपन्यासोंमें घटनाओंकी संघटनात्मकतापर बहुत कम बल दिया गया मिलता है। चरित्रोंकी प्रतिक्रियात्मक सम्भावनाओंके निर्देशक सूत्र ही मनोविज्ञान और दर्शनका आश्रय लेकर विकासको प्राप्त होते हैं।

जैनेन्द्रके प्रायः सभी उपन्यासोंमें दार्शनिक और आध्यात्मिक तत्त्वोंके समावेशसे दुरूहता आयी है परन्तु ये सारे तत्त्व जहाँ-जहाँ भी उपन्यासोंमें समाविष्ट हुए हैं, वहाँ वे पात्रोंके अन्तरका सृजन प्रतीत होते हैं। यही कारण है कि जैनेन्द्रके पात्र बाह्य वातावरण और परिस्थितियोंसे अप्रभावित लगते हैं और अपनी अन्तर्मुखी गतियोंसे संचालित। उनकी प्रतिक्रियाएँ और व्यवहार भी प्रायः इन्हीं गतियोंके अनुरूप होते हैं। इसीका एक परिणाम यह भी हुआ है कि जैनेन्द्रके उपन्यासोंमे चरित्रोंकी भरमार नहीं दिखायी देती। पात्रोंकी अल्पसंख्याके कारण भी जैनेन्द्रके उपन्यासोंमें वैयक्तिक तत्त्वोंकी प्रधानता रही है।

क्रान्तिकारिता तथा आतंकवादिताके तत्त्व भी जैनेन्द्रके उपन्यासोंके कथानकका महत्त्वपूर्ण आधार हैं। उनके सभी उपन्यासोंके प्रमुख पुरुष पात्र सशस्त्र क्रान्तिमें आस्था रखते हैं। बाह्य स्वभाव, रुचि और व्यवहारमें एक प्रकारकी कोमलता और भीरुताकी भावना लिए होकर भी ये अपने अन्तरमें महान् विध्वंसक होते हैं। उनका यह विध्वंसकारी व्यक्तित्व नारीकी प्रेमविषयक अस्वीकृतियोंकी प्रतिक्रियाके फलस्वरूप निर्मित होता है। इसी कारण जब वे किसी नारीका थोड़ा भी आश्रय, सहानुभूति या प्रेम पाते हैं, तब टूटकर गिर पड़ते हैं और तभी उनका बाह्य स्वभाव कोमल बन जाता है।

जैनेन्द्रके नारी पात्र प्रायः उपन्यासमें प्रधानता लिए हुए होते हैं। उपन्यासकारने अपने नारी पात्रोंके चरित्र-चित्रणमें सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक दृष्टिका परिचय दिया है। स्त्रीके विविध रूपों, उसकी क्षमताओं और प्रतिक्रियाओंका विश्वसनीय अंकन जैनेन्द्र कर सके हैं। 'सुनीता' 'त्यागपत्र' तथा 'सुखदा' आदि उपन्यासोंमें ऐसे अनेक अवसर आये हैं, जब उनके नारी चरित्र भीषण मानसिक संघर्षकी स्थितिसे गुजरे हैं। नारी और पुरुषकी अपूर्णता तथा अन्तर्निर्भरताकी भावना इस संघर्षका मूल आधार है। वह अपने प्रति पुरुषके आकर्षणको समझती है, समर्पणके लिए प्रस्तुत रहती है और पूरक भावनाकी इस क्षमतासे आह्लादित होती है परन्तु कभी-कभी जब वह पुरुषमें इस आकर्षण मोहका अभाव देखती है, तब क्षुब्ध होती है, व्यथित होती है। इसी प्रकारसे जब वह पुरुषमें कठोरताकी अपेक्षाके समय विनम्रता पाती है, तब यह भी उसे असह्य हो जाता है।

एक कहानीकारके रूपमें भी जैनेन्द्रकी उपलब्धियाँ महती हैं। उनकी विविध कहानियाँ—'फाँसी' (१९२९), 'वातायन' (१९३०), 'नीलम देशकी राजकन्या' (१९३३), 'एक रात'(१९३४),'दो चिड़ियाँ'(१९३५),'पाजेब' (१९४२) तथा 'जयसन्धि' (१९४९) शीर्षक संग्रहोंमें प्रकाशित हो चुकी हैं। इधर जैनेन्द्रकी लिखी हुई समस्त कहानियाँ 'जैनेन्द्रकी कहानियाँ'के नामसे सात भागोंमें छपी हैं। इनमेंसे पहले भागमें राष्ट्रीय और क्रान्तिकारी, दूसरेमें बाल मनोविज्ञान और वात्सल्यकी कहानियाँ, तीसरेमें दार्शनिक और प्रतीकात्मक, चौथेमें प्रेम और विवाह-सम्बन्धी कहानियाँ, पाँचवेंमें प्रेमके विविध रूपोंकी कहानियाँ, छठेमें सामाजिक कहानियाँ तथा सातवेंमें अन्य कहानियाँ हैं। सामान्य रूपसे जैनेन्द्रकी कहानियोंमें भी प्रायः वे ही तत्त्व विद्यमान हैं, जो उनके उपन्यासोंमें।

'प्रस्तुत प्रश्न' (१९३६), 'जड़की बात' (१९४५), 'पूर्वोदय' (१९५१), 'साहित्यका श्रेय और प्रेय' (१९५३), 'मन्थन'(१९५३), 'सोच विचार' (१९५३), 'काम, प्रेम और परिवार' (१९५३)' 'ये और वे' (१९५४) आदि जैनेन्द्रके विचारप्रधान निबन्धसंग्रह हैं। इन संग्रहोंके माध्यमसे जैनेन्द्र एक गम्भीर चिन्तकके रूपमें हमारे सामने आते हैं। इनके विषय साहित्य, समाज, राजनीति, धर्म, संस्कृति तथा दर्शन आदि है। जैनेन्द्रके ये निबन्ध जहाँ एक ओर वैचारिक गहनताके गुणसे पूरित हैं, वहाँ भाषाकी अस्पष्टता और दुरूहता भी इनमें देखी जा सकती है। इनकी शैली भी अटपटी लगती है। गम्भीर विषयोंके सूक्ष्म विवेचनके लिए विचार-क्रममें जो सुलझाव और सुचिन्तन अनिवार्य है, उसका भी इनमें अभाव प्रतीत होता है। जैनेन्द्रके उपर्युक्त विषयोंपर जो विचार प्रश्नोत्तर रूपमें प्रस्तुत किये गये हैं, इनपर भी उपर्युक्त कथन लागू होता है।

सर्जनात्मक क्षेत्रमें कार्य करनेके अतिरिक्त जैनेन्द्र अनुवाद क्षेत्रमें भी सक्रिय रहे हैं। उन्होंने मैटरलिंकके एक नाटकका अनुवाद हिन्दीमें 'मन्दालिनी'के नामसे किया है। इसका प्रकाशन सन् १९३५ में हुआ। सन् १९३७ में उन्होंने 'प्रेममें भगवान' शीर्षकसे टाल्सटायकी कुछ कहानियोंका अनुवाद प्रस्तुत किया। इसी साहित्यकारके एक नाटक का अनुवाद भी उन्होंने 'पाप और प्रकाश'के नामसे किया, जिसका प्रकाशन सन् १९५३ में हुआ।

जैनेन्द्रकुमारकी प्रकाशित रचनाएँ ये हैं—उपन्यास : 'परख' (१९२९), 'सुनीता' (१९३५), 'त्यागपत्र' (१९३७), 'कल्याणी' (१९३९), 'विवर्त' (१९५३), 'सुखदा' (१९५३), 'व्यतीत' (१९५३) तथा 'जयवर्धन' (१९५६)। कहानी-संग्रह : 'फाँसी' (१९२९), 'वातायन' (१९३०), 'नीलम देशकी राजकन्या' (१९३३), 'एक रात' (१९३४), 'दो चिड़ियाँ' (१९३५), 'पाजेब' (१९४२), 'जयसन्धि' (१९२९) तथा 'जैनेन्द्रकी कहानियाँ' (सात भाग)। निबन्ध-संग्रह : 'प्रस्तुत प्रश्न' (१९३६), 'जड़की बात' (१९४५), 'पूर्वोदय' (१९५१), 'साहित्यका श्रेय और प्रेय' (१९५३), 'मन्थन' (१९५३), 'सोच विचार' (१९५३), 'काम, प्रेम और परिवार' (१९५३), तथा 'ये और वे' (१९५४)। अनुवादित ग्रन्थ : 'मन्दालिनी' (नाटक—१९३५), 'प्रेममें भगवान' (कहानी संग्रह—१९३७), तथा 'पाप और प्रकाश' (नाटक—१९५३)। सह लेखन : 'तपोभूमि' (उपन्यास, ऋषभचरण जैनके साथ—१९३२)। सम्पादित ग्रन्थ : 'साहित्य चयन' (निबन्ध संग्रह—१९५१) तथा

'विचारवल्लरी' (निबन्ध संग्रह—१९५२)।

[सहायक ग्रन्थ—जैनेन्द्र-साहित्य और समीक्षा : रामरतन भटनागर।] —प्र० ना० ट०

जैमिनि पुराण भाषा–कृष्णद्वैपायन व्यासके शिष्य, मीमांसा दर्शनके प्रवर्तक महर्षि जैमिनिके 'अश्वमेध पर्व'के अनुवाद हिन्दी साहित्यमे बहुत उपलब्ध होते हैं। अधिकांशतः ये रीतिकालीन कवियोंके अनुवाद हैं। आधुनिकतम खोजोंके आधार पर निम्नलिखित ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण हैं—

१. जैमिनि पुराण भाषा—सेवादासकृत। रचनाकाल-संवत् १७०० वि०। ऐतिहासिकताकी दृष्टिसे यह प्राचीन ग्रन्थ है, किन्तु साहित्यिकताकी दृष्टिसे अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है। इसकी भाषा सधुक्कडी है। उदाहरणार्थ—"जैमुणि कहे जणमेजय काजा। परम पुणीत कथा यह राजा॥"

२. महाभारत अश्वमेध पर्व—सबलसिंह चौहानकृत। रचनाकाल संवत् १७१८ वि० तथा १७८१ वि०के मध्य। लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बईसे प्रकाशित। दोहा, चौपाई, सोरठामें रचित। शैली—वर्णनात्मक। भाषा—अवधी। उदाहरण—"अर्जुन सुत इमि मार किया महावीर प्रचण्ड। रूप भयानक देखियत जिमि जम लीन्हे दंड॥"

३. जैमुनकी कथा—केशोदासकृत। उक्त केशोदास 'रामचन्द्रिका'के रचयिता आचार्य केशवदाससे भिन्न हैं। ग्रन्थकी एक हस्तलिपि खखरा, मैगलगज, जिला सीतापुरके निवासी पण्डित रामनारायण मिश्रके पास है। यह सम्पूर्ण मूल ग्रन्थका अनुवाद है, किन्तु यह महाकाव्यकी शैली और गाम्भीर्यसे रहित है। ग्रन्थमे ६७ अध्याय हैं और ३५६५ छन्द। उदाहरण—"तीनो देव वन्दना करत जाकी प्रीति हुत, जुग जुग तीनों लोक प्रभुता बढत है।"

४. जैमिनि पुराण—प्राणनाथकृत। रचनाकाल १७५७ वि०, प्रतिलिपि काल संवत् १९१६ वि०। इस ग्रन्थमें रस, अलंकार एवं पिंगलका सम्यक् विधान है। उदाहरण—"गजमुख सनमुख होत ही, बीतहिं कुमति कुतर्क। कोक सोक मेंचक महा, जथा विलोकत अर्क॥"

५. जैमिनि पुरान भाषा—शिवदुलारे वाजपेयीकृत। यह आधुनिककालकी कृति है। रचनाकालके सम्बन्धमें ग्रन्थके आरम्भमें इस प्रकारका उल्लेख है—"रसवेदाक शशाङ्कशुभ, संवत् दिनकर वार। मास दमोदर शुक्ल महँ, भयो ग्रन्थ अवतार॥"

रस = ६, वेद = ४, अंक = ९, शशांक = १। 'अंकानां वामतो गतिः'के अनुसार संवत् १९४६ में इसकी रचना हुई। इसका प्रकाशन नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ द्वारा हुआ, जिसकी तृतियावृत्ति १९०९ ई०में हुई। यह गद्यात्मक रचना है तथा मूल संस्कृतके 'अश्वमेध पर्व' का अक्षरशः अनुवाद है। इसमें ६६ अध्याय हैं।

६. जैमिनीय अश्वमेध—पुरुषोत्तमदासकृत। इसका रचनाकाल अज्ञात है। कथानक दोहा, चौपाइयोंमें सरल रीतिसे वर्णित है।

७. जैमिनि पुराण—सरयूराम पण्डितकृत। यह रचना सभी प्रकारसे साहित्यिक है। इसकी रस सामग्री अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह वीर-रस प्रधान काव्य है, किन्तु यत्र-तत्र शृंगारका भी पुट है। उदाहरणार्थ नीचेकी चौपाईमें सम्भोग शृंगारका वर्णन है—"लै-लै सुमन सकल गन आली। की उहि जित-तित मदन मराली॥"

सरयूरामकी भाषामें सबसे अधिक संस्कृतके ही शब्द हैं। भाषा विशुद्ध साहित्यिक अवधी है। कविने मात्रिक और वर्णिक दोनों प्रकारके छन्दोंका प्रयोग किया है किन्तु मात्रिक छन्दोंके प्रयोगमें वह अधिक सफल है। रचनाकालके सम्बन्धमें एक दोहा है—"विशिख व्योम वसु बुद्धिवर, सुकुल अष्टमी फाग। पूरण भइ श्री गुरु कृपा, कथा युधिष्ठिर याग॥"

विशिख = ५, व्योम = ०, वसु = ८, बुद्धिवर = १।

'अंकानां वामतो गतिः'के अनुसार संवत् १८०५ वि० शुक्ल पक्ष ८ फाल्गुन मासमे इसकी रचना हुई।

उपर्युक्त ग्रन्थोंके अतिरिक्त वेंकटेश्वर प्रेससे तीन 'जैमिनीयाश्वमेध'के संस्करण पृथक्-पृथक् निकल चुके हैं, किन्तु उनके लेखकोंके विषयमें कुछ ज्ञात नहीं। सरयूरामकृत 'जैमिनि पुराण'की अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध है, जिनका विवरण इस प्रकार है—

१. कालिका तिवारी, महेशपुर (सीतापुर) निवासी द्वारा की गयी प्रतिलिपि। प्रतिलिपिकाल सन् १८८०।

२. कालिका तिवारीके वंशज दिवाकर नाथ त्रिपाठीके पास प्रतिलिपि। यह जीर्ण-शीर्ण दशामें है।

३. कृष्ण बिहारी मिश्र, गन्धौली (सीतापुर)के पुस्तकालयमें सुरक्षित प्रतिलिपि। इसमें अन्तिम पृष्ठ न होनेके कारण रचनाकाल अज्ञात है।

४. ग्राम सागरगढी जिला हरदोईमें लाला जंग बहादुर के पास सुरक्षित।

५. प्रतिलिपिकार ललितादीन पाण्डेय—प्रतिलिपि काल सन् १८२८ ई०। यह 'मिश्र बन्धुओं'के पास थी। —शि० शे० मि०

जोधराज–जोधराज नीमराणा (अलवर) के चौहानवंशीय राजा चन्द्रभाणके आश्रित थे। इनके पिताका नाम बालकृष्ण था। जोधराजका निवासस्थान बीजवार ग्राम था। यह अत्रिगोत्रीय गौड़ वंशोत्पन्न ब्राह्मण थे। जोधराज काव्य-कला और ज्योतिष-शास्त्रके पूर्ण पण्डित थे। इन्होंने अपने आश्रयदाताकी आज्ञासे 'हम्मीररासो' लिखा था ('हम्मीररासो' छन्द ५-१३)।

जोधराजने इसकी रचना-तिथि इस प्रकार दी है—"चन्द्र नाग वसु पंचगिनि संवत् माधव मास। शुक्ल सुतृतीया जीव जुत ता दिन ग्रन्थ प्रकास।" (छन्द ९६८)। नागको सातका पर्यायवाची माननेसे 'हम्मीररासो' की रचना-तिथि सं० १७८५ वि०, वैशाख शुक्ला ३, जीव (गुरुवार) ठहरती है। गणना करनेपर ज्ञात होता है कि १७८५ वि० में वैशाख शुक्ल तृतीयाको गुरुवार नहीं पड़ा था। नागका अर्थ आठ लेनेसे जोधराज कथित तिथि १८८५ वि० वैशाख शुक्ल तृतीया बृहस्पतिवार आती है। यह तिथि गणना करनेपर खरी उतरती है। अतएव जोधराजने 'हम्मीररासो' की रचना सं० १८८५ वि०, वैशाख शुक्ल ३, बृहस्पतिवार तदनुसार १७ अप्रैल, १८२८ ई० को की थी। मिश्रबन्धुओं, श्यामसुन्दरदास आदि विद्वानोंने इसकी रचना-तिथि १७८५ वि० (१७२८ ई०)

तथा रामचन्द्र शुक्लने १८७५ वि० (१८१८ ई०) मानी है पर ये मत भ्रामक हैं।

'हम्मीररासो' में ९६९ छन्द हैं। ग्रन्थके आरम्भमें कविने गणेश और सरस्वतीकी स्तुति, आश्रयदाता तथा अपना परिचय देनेके पश्चात् सृष्टि-रचना, चन्द्र-सूर्य-वंश-उत्पत्ति, अग्नि-कुल-जन्म आदिका वर्णन किया है। तदनन्तर रणथम्भौरके राव हम्मीर और अलाउद्दीनके युद्ध का विस्तारपूर्वक चित्रण किया गया है।

जोधराजकी रचनापर पौराणिक आख्यानों, 'पृथ्वीराजरासो' तथा 'रामचरितमानस' का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। इन्होंने ऐतिहासिक तथ्यनिरूपणमें असावधानीसे काम लिया है। इस काव्यमें वीर-रसका सफल चित्रण किया गया है। साथ ही इसमें शृंगार, रौद्र और वीभत्स आदि रसोंका भी अच्छा निर्वाह हुआ है और दोहरा, मोतीदाम, नाराच, कवित्त, छप्पय आदि विविध छन्दोंका प्रयोग किया गया है। हम्मीरके प्रतिद्वन्द्वी अलाउद्दीनके द्वारा आवृत (चूहा) को मरवाकर उसके चरित्रको उपहासास्पद बना दिया गया है। इसमें ब्रजभाषाके साहित्यिक रूपके दर्शन होते हैं, पर कहीं-कहींपर उसने बोलचालका रूप धारण कर लिया है। फारसी, अरबी आदिके तद्भव प्रयोग भी प्रचुर मात्रामें मिलते हैं। मुहावरोंके प्रयोग द्वारा जोधराजने अपनी भाषाको अधिक सबल, व्यापक और प्रौढ़ बनाया है। इस प्रकार जोधराज वीर-रसके उत्कृष्ट कोटिके कवि हैं।

[सहायक ग्रन्थ—हि० वी०; हि० सा० इ०, हि० सा० (भा० २) ।] —टी० तो०

जौहर-व्रत–इस व्रतका प्रथम उल्लेख इतिहासमें अलाउद्दीन एवं राणा रत्नसेनके युद्ध (सन् १३०१ ई०के आसपास)में मिलता है। इसके अनन्तर राजस्थानके इतिहासमें 'जौहर-व्रत'के अनेक प्रमाण प्राप्त होते हैं। इतिहासकारका मत है कि शक एवं हूणोंसे अपने धर्म एवं मर्यादाकी रक्षाके लिए भारतीय स्त्रियोंमें अग्निमें जलकर नष्ट हो जानेकी प्रथा चली थी। इतिहासमें 'राज्यश्री'के अग्निमें जलनेका वर्णन बाणभट्टकृत 'हर्षचरित'में मिलता है। हिन्दीमें पद्मावतीके जौहरव्रतका महत्त्व श्यामनारायण पाण्डेयने 'जौहर' नामक एक काव्यकी रचना करके दर्शाया है। —यो० प्र० सिं०

ज्ञानपरोछि–दे० 'मलूकदास'।

ज्ञानबोध–दे० 'मलूकदास'।

ज्ञानशंकर–'प्रेमाश्रम'का पात्र ज्ञानशंकर, प्रेमचन्दके शब्दोंमें, कुशिक्षाका प्रतीक है। वह योग्य है, कार्य-पटु है, किन्तु है स्वार्थ-भक्त। उसे वह शिक्षा ही नहीं मिली, जिससे वह स्वार्थसे ऊपर उठ सकता। स्वार्थके लिए ज्ञानशंकर आत्मा और ईमानका बलिदान कर सकता है और मिथ्या भक्तिका ढोंग रच सकता है। वैभव-लालसाकी बलिवेदीपर वह अपने मनुष्यत्वको चढ़ा देता है। वह इच्छाओं और कुवासनाओंका दास है तथा अनात्मवादी है। द्वेष और वैमनस्य उसके चरित्रके प्रधान अंग हैं। उसकी संकीर्णता, क्षुद्रता और अमानुषिकताके फलस्वरूप ही उसकी पत्नी विद्या आत्महत्या कर लेती है। सम्पत्ति-लोलुपताके कारण ही वह गायत्रीके साथ झूठा 'आध्यात्मिक प्रेम-सम्बन्ध' स्थापित करता है और अपनी कुवासनाओंको भी तुष्ट करना चाहता है। उसका ससुर राय कमलानन्द ही उसे अच्छी तरह पहिचानता है। ज्ञानशंकर देवताके स्वरूपमें पिशाच है, रंगा सियार है। बुद्धि-बल और दुर्जनता, चातुरी और कपटका वह अद्भुत सम्मिश्रण है। इसलिए वह बहुत खतरनाक है। —ल० सा० वा०

ज्ञानोदय–इस मासिक पत्रका प्रकाशन सन् १९४९ में बनारससे हुआ। बादमें कलकत्तासे प्रकाशन होने लगा। इसके प्रथम सम्पादकोंमें लक्ष्मीचन्द्र जैन एवं जगदीश थे।

यह पत्र कलात्मक, सुरुचिपूर्ण एवं साहित्यिक दृष्टिकोणसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। प्रतिवर्ष इसके विशिष्टांक निकलते रहे हैं, जिनमें 'इतिहास अंक', 'विज्ञान अंक' आदि महत्त्वपूर्ण हैं। इसका लेखक-परिवार बहुत विस्तृत है। हिन्दी साहित्यकी नवीन प्रवृत्तियों और गतिविधियोंको 'ज्ञानोदय'ने बड़े उत्साहसे प्रतिफलित किया है। —ह० दे० बा०

ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल'–जन्म १९०३ ई०में सिहगढ़ (जिला इलाहाबाद)में हुआ। पत्रकारिता आपका प्रधान कार्य-क्षेत्र रहा। साप्ताहिक 'देशदूत'के सम्पादकके रूपमें विशेष ख्याति अर्जित की। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयागके प्रधान कार्यकर्ताओंमें रहे हैं। —सं०

ज्योत्स्ना–(प्र० १९३४ ई०) सुमित्रानन्दन पन्तका प्रसिद्ध प्रतीकरूपक है। 'गुंजन'के पश्चात् इस रचनाका प्रकाशन एक नया अर्थ रखता है। 'गुंजन' यदि कविका मनःकल्प है तो 'ज्योत्स्ना' संकल्प। इस रचनामें कवि अपने मनके मानवके लिए नयी जीवन-दिशा कल्पित करता है। सौन्दर्य, प्रेम, प्राकृतिक उन्मेष तथा मानसिक एवं नैतिक स्वास्थ्यसे परिपूर्ण नर-नारीके ऐहिक जीवनके प्रति उत्साह और साहससे भरकर इस रूपकमें कवि नये जीवन-तन्त्रकी ऐसी रूपरेखा प्रस्तुत करता है, जो अत्यन्त आकर्षक है। इसे हम पन्तके परवर्ती काव्यकी सौन्दर्यजड़ित भूमिका कह सकते हैं। राष्ट्र-जाति-वर्णगत भेद-विभेदके ऊपर चिरन्तन मानवत्वकी प्रतिष्ठा इस सुकुमार कल्पनामें हुई है, जो स्वर्गकी रानी ज्योत्स्ना द्वारा परिचालित है। यह ज्योत्स्ना कवि मानसकी मांगलिक उज्ज्वलताका ही प्रतीक है। रामराज्यका यह नया संस्करण नवजागरणशील राष्ट्रीय चेतनाका सबसे सुन्दर उपहार कहा जा सकता है,

'ज्योत्स्ना'की मूल मंगल-भावनाको कविने एक काल्पनिक रूपकके रूपमें उपस्थित करनेकी चेष्टा की है। नाटकका कथानक न बहुत महत्त्वपूर्ण है, न बहुत संगठित। अपने विचारोंको प्रकट करनेके लिए कविने नाटकका माध्यम चुना है। यह माध्यम ही उसकी मौलिकता है। इस माध्यमके नाते ही उसे पात्रों और वार्तालापकी योजना करनी पड़ी है। कथा इस प्रकार है—संसारमें सर्वत्र ऊहापोह और घातक क्रान्ति देखकर इन्द्र उसके शासनकी बागडोर अपनी महिषी ज्योत्स्नाको दे देता है जो स्वर्गसे भूपर आकर पवन और सुरभि अथवा स्वप्न और कल्पनाकी सहायतासे संसारमें प्रेमका नवीन स्वर्ग, सौन्दर्यका नवीन आलोक, जीवनका नवीन आदर्श स्थापित करती

है। यह कथा पाँच अंकोंमें कही गयी है। पहले अंकमें संध्या और छायाका पारस्परिक वार्तालाप सूचना देता है कि इन्द्र अपने शासनकी बागडोर बहू ज्योत्स्नाको देना चाहता है और इस प्रकार नये जीवनतन्त्रकी अवतारणाके साथ पृथ्वीपर स्वर्गके उतारनेकी इच्छा प्रकट करता है। दूसरे अंकमें यह सूच्य कार्यमें परिणत होता है। इन्द्र भूलोकका शासन ज्योत्स्नाको सौंप देता है। नाटकका तीसरा अंक सबसे सशक्त और केन्द्रीय है क्योंकि उसमे पवन और सुरभिके साथ ज्योत्स्नाके अवतरणकी सुन्दर कल्पना मूर्त्त हुई है और आधुनिक संसारकी विषम जीवन-स्थितियोंकी विशद विवेचना है। धर्मान्धता, अन्धविश्वास और जीर्ण रूढियोंसे ग्रस्त मानव स्वयं एक विडम्बना बन गया है। वैभव और शक्तिके मोहने उसे पूर्णतः शृंखलाबद्ध कर रखा है। बुद्धिके अहंकारने मनुष्यके मूलभूत चैतन्य और देवत्वको बुरी तरह दबा लिया है। मृत्युलोकके दूत झींगुरके मुँहसे कविने आधुनिक युगके शक्तिवादी दर्शनको स्पष्ट रूपमे मुखरित किया है, जो समर्थ और शक्तिमान्को ही जीनेका अधिकार देता है। इस पार्थिव दर्शनसे ज्योत्स्नाके भाव-जगत् पर कठोर आघात होता है और वह विचलित होकर नये निर्माणके लिए आकुल हो उठती है। वह पवन और सुरभिपर हाथ फेर कर उन्हे स्वप्न और कल्पनाका रूप दे देती है और उन्हें काव्य, संगीत और शिल्पके द्वारा उत्कृष्ट मानव-मूल्योंके धरातल पर नवनिर्माणकी आज्ञा देती है। स्वप्न और कल्पना ज्योत्स्नाकी आज्ञा शिरोधार्य कर मानवके मनोलोकमें अज्ञात रूपसे प्रवेश करते हैं और अनेक कोमल और स्वस्थ मानसी भावनाओंको जन्म देकर मर्त्यलोकका कायाकल्प कर देते हैं। भक्ति, शक्ति, दया, सत्य, श्रेय, समता, साधना, धर्म, निष्काम कर्म, करुणा, ममता, स्नेह और कलाके द्वारा मानव पृथ्वी पर विश्वबन्धुत्वकी स्थापनामे सफल होता है और समस्त संसार एक आदर्श गृहस्थीका रूप धारण कर लेता है। इस अंकमे ही हम कविकी विभिन्न भावनाओ और विचारधाराओंके प्रतिरूप पात्र-पात्रियोंको अपने-अपने सिद्धान्तोंकी व्याख्या करते पाते है। अपने कार्यकी समाप्ति पर ज्योत्स्ना स्वर्गलोककी ओर प्रयाण करती है और चौथे अकमे छाया और उल्लूके माध्यमसे कवि तामसी प्रवृत्तियोंके पलायनकी सूचना हमें देता है। इस अंकके अन्तमें लावा पक्षीका अवतरण नये प्रभातकी सूचना देता है और अगले पाँचवें अंकमे ऊषाके आगमनके साथ संसारमें नये स्वर्गकी स्थापना हो जाती है। इस नये स्वर्गका भावोल्लास ओस, तितली, लहर आदिके सुन्दर गीतोंके रूपमें फूट निकलता है और नयी मानवताके जन्मके साथ नाटकका पटाक्षेप होता है। यह स्पष्ट है कि नाटकीयताकी दृष्टिसे यह कथानक उत्कृष्ट नहीं कहा जा सकता क्योंकि उसमें न कार्यका उचित संगठन है, न पात्रोंका चारित्रिक वैशिष्ट्य। पात्र वायवीय भावना-चित्र मात्र रह गये है। सारा नाटक रूपक मात्र है। उसमें सैद्धान्तिक विवेचना तो अवश्य है परन्तु प्राणोंका रस किंचित् मात्र भी नहीं। पात्रोंके वार्त्तालापके दार्शनिक विवेचनाओंसे भरे होनेके कारण लोक-रुचि उनकी ओर आकर्षित नहीं हो सकती। वस्तुतः नाटककी दृष्टिसे यह कृति असमर्थ ही कही जायगी, परन्तु फिर भी इस रचनाको एकदम असफल नहीं कहा जा सकता। कविने जिस रूपमें उसकी कल्पना की है, वह नाटकीय होते हुए भी काव्यात्मक है। काव्यके भीतर से 'ज्योत्स्ना' पूर्णतः सफल है। उसमें कविने अपने मनःस्वप्नको सफलतापूर्वक अंकित किया है। मूर्त्त और अमूर्त्त अनेक वस्तुओंका अत्यन्त सुन्दर और काव्यात्मक चित्रण हुआ है। प्रकृति और मानव-मनके अनेक उपादान इतने सुन्दर और चटकीले वस्त्र पहन कर उपस्थित होते हैं कि हम मुग्ध रह जाते है। एक नया ही जगत् हमारी आँखोंके सामने नाचने लगता है। फिर इस नाटकमें हमें कविकी सामाजिक, राजनीतिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विचारधाराका परिचय मिलता है। जीवनके सर्वांगीण विकास-पथ पर मनुष्य कैसे बढ़े, यही 'ज्योत्स्ना'का केन्द्र-विन्दु है। मनुष्यको यदि इसी पृथ्वी पर स्वर्गका निर्माण करना है तो वह 'ज्योत्स्ना'के आदर्शोंसे परिचालित हुए बिना नहीं रह सकता। इस रचनामें हम कवि पन्तको जीवन-चिन्तक और सौन्दर्यद्रष्टा कविके रूपमे देखते हैं और किशोर कण्ठ तारुण्यके स्वप्निल आवेश और निर्माणोन्मुख कल्पनावैभवमें परिवर्तित हो जाता है। परवर्त्ती रचनाओंमें पन्त अध्यात्म, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान और दर्शनके सूत्रोंके सहारे मानव-जीवनके लिए नये-नये तन्त्रोंकी योजना करते हैं परन्तु 'ज्योत्स्ना'में प्राकृतिक रूपकके सहारे कविकी कल्पनाने जो चमत्कारी सौन्दर्यसृष्टि प्रस्तुत की है वह वायवी और अनिर्दिष्ट होने पर भी मनोहारी है और ये परवर्त्ती रचनाएँ अधिक प्रौढ चिन्तनकी उपज होने पर भी उसका स्थान नहीं ग्रहण कर सकतीं। पन्तकी रचनाओंमें उनके इस मनःस्वप्नका स्थान कम महत्त्वपूर्ण नहीं रहेगा।

—रा० र० भ०

ज्वालादत्त शर्मा—जन्म १८८८ ई०में किसरौल, मुरादाबादमे। घरपर ही संस्कृत, अंग्रेजी, उर्दू, बंगला आदिका ज्ञान प्राप्त किया। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदीसे परिचय होनेपर कहानी-रचनामें प्रवृत्त हुए। ज्वालापुरके 'भारतोदय' पत्रमे बाणभट्टके नामसे लिखते थे। १९५८ ई०में रेल-दुर्घटनामे मृत्यु हुई। आधुनिक हिन्दी कहानीके विकासमें योग देनेवाले लेखकोंमें ज्वालादत्त शर्माका नाम आता है। ये १९१४ ई०में कहानी लेखनकी ओर उन्मुख हुए थे और इनकी प्रथम रचना इसी वर्ष 'सरस्वती'मे छपी थी। इनकी कहानियाँ प्रायः कथानक-प्रधान हैं और किसी न किसी सुधारवादी दृष्टिकोणसे प्रेरित प्रतीत होती हैं। इस प्रकार इन्हें 'सुदर्शन' अथवा 'कौशिक' आदि तत्कालीन कथा-लेखकोंकी कोटिमें रखा जा सकता है। इन लोगोंने सामाजिक यथार्थकी व्यंजना करनेके निमित्त कहानी जैसे लोकप्रिय माध्यमको स्वीकार किया था। ज्वालादत्त शर्माकी भाषाशैली सरस और परिमार्जित है। इनकी कहानियोंमें यत्र-तत्र भावुकता और भावप्रवणता भी पायी जाती है (दे० 'भाग्यका चक्र')। द्विवेदीयुगके अधिकांश लेखक किसी न किसी पत्र-पत्रिकाके सम्पादक थे। ज्वालादत्त शर्माने भी 'प्रतिभा' नामक पत्रका सम्पादन किया था। आपकी अन्य कृतियों-

में 'हाली और उनका काव्य' तथा 'गीतामें ईश्वरवाद' (अनुवाद) हैं। —र० भ्र०

झरना—जयशंकर प्रसादके इस काव्य संकलनका प्रथम प्रकाशन १९१८ ई०में हुआ। इसमें अपेक्षाकृत कम कविताएँ थीं। आगामी संस्करणोंमें कुछ कविताएँ नयी रख दी गयीं और और कुछको हटा दिया गया। आज जिस रूपमें 'झरना' उपलब्ध है, उसे देखनेपर एक विविधता प्रतीत होती है। कतिपय रचनाएं ऐसी हैं, जो प्रौढ़ हैं, पर अधिकाश कविताएँ शिथिल और अपरिपक्व हैं किन्तु इन कविताओंमें कविके आगामी विकासका आभास प्राप्त हो जाता है और इसी कारण समीक्षक इसे छायावादयुगका एक महत्त्वपूर्ण सोपान मानते हैं। 'झरना'की अधिकांश कविताएँ यद्यपि १९१४-१७ के बीच लिखी गयीं, पर कतिपय ऐसी भी हैं, जिनका निर्माण १९१७ के बाद हुआ है। 'झरना' कविके यौवनकालकी रचना है और इसकी कविताओंमें उसकी मनोदशाका बोध होता है। प्रसादको इस काव्यमें मानसिक द्वन्द्वकी भूमिकासे गुजरते हुए देखा जा सकता है। कहीं-कहीं यह अभिव्यक्ति अतिशय स्थूल और साधारण हो गयी है, पर 'झरना'में ऐसी भी पंक्तियां उपलब्ध हैं, जिनमें भावोत्कर्ष, लाक्षणिकता और धार्मिक अभिव्यंजनाका स्वरूप द्रष्टव्य है। आत्माभिव्यक्तिके विभिन्न रूप उसमें मिल जाते हैं। लाक्षणिकता और सांकेतिकता जो आगे चलकर प्रसादकाव्यकी प्रमुख विशेषताएँ बनीं, उनके आरम्भिक सूत्र 'झरना'में उपलब्ध हैं। प्रकृतिका मानवीय भावोंके साथ एकीकरण भी इन कविताओंमें देखा जा सकता है। चित्रात्मकता कतिपय रचनाओंका प्रमुख गुण है। 'झरना'में जयशंकर प्रसादने भाव और शिल्प, दोनों दृष्टियोंसे प्रयोग करना चाहा है, और इसलिए कविके काव्य-विकासमें उसका विशेष महत्त्व है। —प्रे० शं०

झाँसीकी रानी लक्ष्मीबाई—लेखक वृन्दावनलाल वर्मा, प्रकाशन तिथि सन् १९४६ ई०। पेशवाई समाप्त हो जानेके पश्चात् बाजीराव द्वितीय अपने कामदार मोरोपन्तके साथ बिठूरमें रहने लगे। मोरोपन्तकी एक लड़की मनूबाई थी। बाजीरावने नाना धोंदूपन्त नामक एक बालकको गोद लिया था। नानाका छोटा भाई राव साहब, भी साथ ही रहता था। ये तीनों बालक—नाना, राव साहब और मनूबाई—साथ-साथ खेलते थे तथा मल्लखम्भ, कुश्ती, तलवार चलाना, अश्वारोहण आदिसे अपना मनोरंजन करते थे। मनूबाई तीनों बालकोंमें कुशाग्रबुद्धि एवं तेजस्विनी थी।

१३ वर्षकी उम्रमें मनूबाईका विवाह झाँसीके अधेड़ विधुर राजा गंगाधर रावसे हुआ और मनूबाईका नाम लक्ष्मीबाई रखा गया। उसकी सेवाके लिए सुन्दर, मुन्दर और काशी नामक तीन दासियाँ रखी गयीं।

रानीके सम्पर्कमें आनेपर गंगाधर रावकी सहज कठोर प्रकृतिमें मधुरताका संचार हुआ। अपने मधुर व्यवहारके कारण रानी भी लोकप्रिय हो चलीं। वे अपनी सहेलियों तथा नगरकी स्त्रियोंको भी युद्ध-विद्या एवं अश्वारोहणकी शिक्षा देने लगीं।

समयानुसार रानीको एक पुत्र हुआ, किन्तु वह असमय ही कालकवलित हुआ। कुछ समय पश्चात् गंगाधर रावकी मृत्यु हो गयी। रानीने दामोदर राव नामक एक बालकको गोद लिया, लेकिन गवर्नर जनरलने उसे अवैध करार देकर झाँसीको अंग्रेजी राज्यमें मिला लिया तथा रानीको कुछ पेंशन दे दी।

उधर नानाकी भी पेंशन जब्त कर ली गयी। इसलिए नाना और तात्या टोपे (नानाका एक सरदार) झाँसी आये और रानीसे मिले। रानी, नाना तथा तात्या टोपेने मिलकर देशव्यापी स्वराज्य-आन्दोलनकी योजनाका निर्माण किया। गंगाधर रावके पुराने सरदार जवाहरसिंह, रघुनाथसिंह खुदाबख्श आदिने तथा राजनर्तकी मोतीबाई और जूहीने भी इस योजनामें योग दिया।

अनेक माध्यमों द्वारा अंग्रेजोंके विरुद्ध क्रान्ति करनेकी भावनाका प्रचार जनता एवं सैनिकोंमें होने लगा। रानी तथा उनके सहयोगियोंने यह निश्चय किया कि ३१ मई १८५७ के ११ बजे दिनको एक साथ सम्पूर्ण उत्तरी भारतमें क्रान्ति हो, किन्तु कुछ सैनिकोंकी उतावलीके कारण यह क्रान्ति पहिले ही प्रारम्भ हो गयी।

इस क्रान्तिको दबानेके लिए जनरल ह्यूरोज इंगलैण्डसे एक विशाल सेना लेकर चला। विद्रोहियोंको दबाता हुआ झाँसी पहुँचा। रानीका मुकाबला किया, भयकर युद्ध हुआ। रानी अपने कुछ विश्वस्त अनुचरोंको लेकर दामोदर रावके साथ कालपी भाग निकलीं। कालपीमें पेशवाकी सेना अस्त-व्यस्त अवस्थामें थी। रानीने उसमें सुधार किये। वहाँ बानपुर, शाहगढ़, बाँदा आदिके राजे और नवाब भी अपनी सेना लेकर उपस्थित हुए। जनरल रोजसे फिर एक टक्कर हुई। रोज हार गया।

रोजने फिर सभलकर आक्रमण किया। सेनामें अत्यधिक अव्यवस्थाके कारण पेशवाकी हार होती चली गयी। रानी वीरतासे लड़ी, किन्तु असफल रहीं। एक अंग्रेज सिपाही के वारसे रानी स्वर्ग सिधार गयीं। बाबा गंगादासकी कुटियापर रानीका दाह-संस्कार हुआ और इस प्रकार रानी स्वराज्यकी नींवका पत्थर बनीं।

उपन्यासकी सबसे प्रमुख पात्री है, झाँसीकी रानी लक्ष्मीबाई, जो उपन्यासकी नायिका है। लेखकने रानीको एक आदर्श नारीके रूपमें चित्रित किया है। रघुनाथ सिंह और जवाहर सिंह रानीके देशभक्त एवं कर्मठ सेनापति हैं। तात्या टोपे, राव साहबकी सेनाका वीर सिपाही है। पीर अली एवं अली बहादुर देशद्रोही हैं। बरहानुद्दीन, गुल मुहम्मद, खुदाबख्श, गौस खाँ भी भारतीय स्वतन्त्रताके कर्मठ सेनानी, धीर और वीर हैं। स्त्री पात्रोंमें सुन्दर, मुन्दर तथा काशीबाई रानीकी दासी होनेके साथ ही उनकी सहेली भी हैं। ये भी राष्ट्रप्रेमसे युक्त हैं। जूही तथा नर्तकी मोतीबाई भी स्वतन्त्रताके युद्धमें अपनेको होम कर देती हैं। झलकारी, बख्शन जू तथा बख्शी भी आदर्श पात्र ही हैं।

पारसनीसने लिखा है कि रानी जनरल रोजकी ओरसे झाँसीका प्रबन्ध करते हुए बाध्य होकर अंग्रेजोंसे लड़ीं। पारसनीसका यह कथन लेखकको मान्य नहीं है। इस कथन-

की व्यर्थताको सिद्ध करनेके लिए ही लेखकने अनेक तथ्य एकत्र किये, वर्षों परिश्रम किया और इस उपन्यास द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि रानी बाध्य होकर नहीं, बल्कि स्वराज्यके लिए लड़ी थीं। इसी तथ्यात्मकताके कारण ही इस कृतिकी औपन्यासिकता क्षीण हो गयी है। अनेक स्थलोंपर घटनाएँ विवरणकी तरह प्रस्तुत की गयी है।

शैली अत्यधिक वर्णनात्मक है। देशज शब्दों एवं वाक्यांशोंका प्रयोग बहुलतासे हुआ है। —ज० गु०

ठाकुर–ये रीतिकालके अन्तर्गत अपेक्षाकृत गौण, किन्तु स्वतन्त्र रीतिमे प्रवाहित, रीतिमुक्त प्रेमी कवियोंकी महत्त्वपूर्ण भावधाराके एक विशिष्ट कवि थे। उनका जन्म १७६३ ई० (सं० १८२३) तथा देहावसान १८२४ ई० (सं० १८८०)के लगभग माना जाता है। ठाकुर बुन्देलखण्डके निवासी तथा उसी क्षेत्रमें स्थित जैतपुरके राजा केसरीसिंहके दरबारी कवि थे। उनके पिता गुलाबराय ओरछा महाराजाके मुसाहब थे और पितामह खंगराय कांकोरीके मनसबदार थे। इनके पुत्र दरियावसिंह 'चातुर' और पौत्र शंकर प्रसाद भी कवि थे। नामसे ठाकुर होते हुए भी वे जातिके कायस्थ थे। बिजावरके राजाने भी उनको एक गाँव देकर सम्मानित किया था। केसरीसिंहके पुत्र पारीछतने सिंहासनारूढ होनेपर ठाकुरको अपनी सभाका एक रत्न बनाया। वे पद्माकरके समकालीन थे तथा बाँदाके राजा हिम्मतबहादुर गोसाईंके, जो पद्ममाकरके एक प्रमुख आश्रयदाता थे, दरबारमे आमन्त्रित किये जानेपर कभी-कभी उनकी और पद्माकरकी पारस्परिक काव्य-स्पर्धा हो जाया करती थी। इस सम्बन्धमे ठाकुरकी व्युत्पन्नमतिको व्यक्त करने वाली अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं।

ठाकुर स्वभावसे स्पष्टवादी, विरोधियोंके प्रति उग्र और सहयोगियोंके प्रति सहृदय एवं भावुक थे। हिम्मतबहादुर द्वारा कटु वचन कहे जानेपर उन्होंने भरे दरबारमें तलवार खींचकर जो कवित्त पढ़ा था, वह उनकी आन्तरिक प्रकृतिको पूर्णतया व्यक्त करता है—"सेवक सिपाही हम उन राजपूतनके, दान जुद्ध जुरिबेमें नेकु जो न मुरके। नीति देनवारे हैं महीके महिपालनको, हियेके विसुद्ध है सनेही साँचे उर के। 'ठाकुर' कहत हम बैरी बेवकूफनके, जालिम दमाद है अदानिया ससुरके। चोजिनके चोजी, महा मौजिनके महाराज, हम कविराज है पै चाकर चतुर के।"

स्फुट रूपसे ठाकुरके मुक्तक अनेक प्राचीन-अर्वाचीन काव्य-संग्रहोमे स्थान पाते रहे हैं, परन्तु उनके पद्योंके संग्रह दो ही सामने आये है। प्रथम संग्रह 'ठाकुर शतक' नामसे रामकृष्ण वर्माकी देखरेखमें काशीमे १९०४ ई०में मुद्रित हुआ था। इसके संग्रहकर्ता थे चरखारीनिवासी काशीप्रसाद। परिचयके रूपमें प्रारम्भमें इसपर एक पंक्ति छपा है—"जिसमें ठाकुर कवि रचित एक सौ उत्तम सवैया और कवित्त है।" दूसरा संग्रह जो वास्तवमें इसीका संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण कहा जा सकता है, 'साहित्य-सेवक' कार्यालय, काशीसे १९२६ ई०में शंकर पुस्तकमालाके तृतीय पुष्पके रूपमें प्रकाशित किया गया। इसका सम्पादन लाला भगवानदीनने किया है। इसमें 'ठाकुर शतक'के १०७ छन्दोंमेंसे केवल तीन (छन्द संख्या ५, ६५, ८७) को छोड़कर शेष सभी 'ठाकुर ठसक'में समाविष्ट कर लिये गये हैं, यद्यपि सम्पादकने 'शतक'को ठाकुरोंकी कविताकी 'खिचड़ी' कहा है। दीनजीने इतना श्रेयस्कर कार्य अवश्य किया है कि शतकमें प्राप्त छन्दोंके अतिरिक्त ८८ छन्द और खोजकर प्रकाशित कर दिये हैं। किसी पाण्डुलिपिके अभावमें उनकी प्रामाणिकता संदिग्ध ही कही जायगी। अपने संग्रहमें दीनजीने उन चार छन्दों (संख्या ११४, ९१, १०१, १०८)को भी सम्मिलित कर लिया है, जिन्हें आरम्भमें उन्होंने स्वयं असनीवाले ठाकुरोंकी रचना बताया है।

'ठाकुर ठमक' दीनजी द्वारा सम्पादित ठाकुरकी स्फुट कृतियोंका प्रसिद्ध संग्रह है। उसकी भूमिका में उनके सम्बन्धमे स्पष्टतया लिखा है—"हमारे हिन्दी साहित्यमे तीन व्यक्ति ठाकुर नामके कवि हो गये हैं, दो तो असनी (फतेहपुर)के थे। और एक जैतपुर (बुन्देलखण्ड)के। असनीवाले भट्ट थे और जैतपुरवाले कायस्थ जिनकी कविता प्रायः लोगोंके मुखसे सुनी जाती है और जिनका लोगोमें अधिक मान है, वे जैतपुर वाले ठाकुर थे। दीनजीके अनुसार असनीवाले ठाकुरोकी कविता ठेठ रीतिबद्ध परम्पराकी कविता थी और उनकी भाषा रीतिकाव्यमें प्रचलित परिनिष्ठित ब्रजभाषा। जैतपुरी ठाकुरकी भाषामे बुन्देलीपन और काव्य-वस्तुमे प्रेम-तत्त्वकी प्रधानताके साथ रीतिपरम्पराके विषयोंका प्रायः अभाव मिलता है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने "सखा प्यारे कृष्णके गुलाम राधारानीके"से अन्त होनेवाले आत्मपरिचयपरक कवित्तपर ठाकुरके ऊपर उद्धृत छन्दकी छाया प्रतीत होती है। भारतेन्दुके और छन्दों, विशेषकर सवैयोंपर ठाकुरकी भाव-भगिमाका स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। सवैया छन्दमे ठाकुरकी सहज गति थी। भाषा शैली अकृत्रिम और ओजस्वितापूर्ण होते हुए भी कोमल भावोंको अभिव्यक्त करनेमें सक्षम है। लोकोक्तियों और लोक-प्रचलित शब्दोंका प्रयोग उन्होने अपने काव्यमें स्थान-स्थानपर पर्याप्त उपयुक्त ढंगसे किया है।

ठाकुर द्वारा अपने समयमे प्रतिष्ठित एवं प्रचलित काव्यको लक्ष्यमें रखकर दी गयी कविताकी परिभाषा अत्यन्त मार्मिक है—"मोतिनकी-सी मनोहर माल गुहै तुक अक्षर जोरि बनावै।" प्रेमको पन्थ कथा हरि नामकी उक्ति अनूठी बनाइ सुनावै। 'ठाकुर'सो कवि भावत मोहिं जो राजसभामें बड़प्पन पावै। पण्डित और प्रवीननको जोइ चित्त हरे सो कवित्त कहावै।" इसके अतिरिक्त "डेल सो बनाय आय मेलत सभाके बीच, लोगन कवित्त कीबो खेलि करि जानो है" लिखकर उन्होंने अपने कालकी हासोन्मुखी कवितापर तीव्र व्यंग भी किया है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० इ०; शि० स०; मि० वि०; ठाकुर-ठसक : सं० लाला भगवानदीन।] —ज० गु०

ठाकुर असनीवाले–असनीके ठाकुर नामवाले दो कवि प्रसिद्ध हैं, जिनमें प्राचीन ठाकुरका समय सन् १६४५ के लगभग माना गया है किन्तु इनकी कोई रचना उपलब्ध नहीं होती और छन्द भी अन्य ठाकुरनामधारी कवियोंके

साथ मिश्रित हो गये हैं। ये ब्रह्मभट्ट थे और इनकी रचना भी स्वच्छ है।

असनीके दूसरे ठाकुर ऋषिनाथ कविके पुत्र थे और इनके पौत्र सेवक कविके भतीजे श्रीकृष्ण द्वारा लिखित अपने पूर्वजोंकी कथासे इनके पूर्वज देवकीनन्दन मिश्र गोरखपुरके सरयूपारीण ब्राह्मण ठहरते हैं, जिन्होंने मझोलीके राजाके यहाँ विवाहोत्सवमें एक कवित्त पढ़कर पुरस्कार तो पाया किन्तु उन्हें इसी बात पर जातिच्युत होकर रहना पड़ा और बादमें असनीके प्रसिद्ध भाट नरहर कविकी पुत्रीसे विवाह करके ये भाट बनकर असनीमें ही बस गये। रामनरेश त्रिपाठीके अनुसार ठाकुरका जन्म सन् १७३६ (सं० १७९२) में हुआ था।

रीतिमुक्त कवियोंमें आपका विशिष्ट स्थान है और यत्र-तत्र आयी हुई अश्लीलताकी झलकको छोड़कर इनकी रचना प्रायः शिष्ट तथा मानव-प्रकृतिके अनुकूल है। इनका रचना-काल सन् १८०४-५ के आस-पास बताया जाता है और उसी समयकी इनकी 'बिहारी सतसई'की देवकीनन्दन टीका 'सतसई वरनार्थ' बतायी जाती है। देवकीनन्दन काशिराजके सम्बन्धी और काशीके प्रसिद्ध रईस एवं ठाकुर के आश्रयदाता थे। उन्हींके नाम पर टीका है।

[सहायक ग्रन्थ—शि० स०; हि० सा० इ०; क० कौ० (भा० १)।] —आ० प्र० दी०

डगर–एक भक्त। चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रभावित अष्टादश प्रधान वैष्णव प्रचारकोंमें इनका प्रमुख स्थान था। नाभादासजीने 'भक्तमाल'में इनका उल्लेख किया है।—मो० अ०

डिंभ–हंसका अनुज तथा जरासंधका सेनापति। दुर्वासा ऋषिका अपमान करनेके अपराधमें भगवान् श्रीकृष्णने इससे भयंकर युद्ध किया। युद्ध करते-करते जब यह बहुत दूर निकल गया तो इसे अपने भाई हंसकी मृत्युका समाचार मिला। तब दुःख एवं भयसे व्याकुल होकर वह यमुनामें कूद पड़ा और अपने प्राण छोड़ दिये।—मो० अ०

ढोला–ढोला राजस्थान, मालवा, ब्रज और उत्तरभारतीय हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्रका लोककाव्य है। वर्षाऋतुमें प्रायः 'चिकोड़े' (चिकारा अथवा सारंगीकी आकृतिका एक छोटा तन्तुवाद्य) पर इसे गाया जाता है। ढोलक और मजीरे साथमें बजते हैं। 'सुरैया' नामक दूसरा गायक बीच-बीचमें प्रमुख गायकको विश्राम देनेके लिए सुर भरता है। ढोलाकी कथा राजस्थानके 'ढोरा मारू' पर आधारित है, जिसमें युवा होनेपर ढोला अपनी बालपनमें ब्याही पत्नी मरवणको अनेक कठिनाइयोंके पश्चात् प्राप्त करता है। 'ढोला मारू-रा दूहा' ग्रन्थ नागरी प्रचारिणी सभा, काशीसे प्रकाशित हुआ है। इसकी रचना तथा सबसे पुराना स्वरूप ग्यारहवीं या बारहवीं शताब्दीका प्रतीत होता है। छत्तीसगढ़में प्राप्त ढोलाकी कथामें केवल मारूके गौनेका वर्णन है। इसमें 'रेवा' नामक जादूगरनी ढोलापर मोहित होकर बाधाएँ उपस्थित करती है। कथाके और भी रूप प्राप्त हैं। सन् १८९० ई० में यह कथा दो बार लिपिबद्ध की गयी। 'आर्कयोलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट'के अनुसार ढोलाकी कथा पौराणिक नल और दमयन्तीसे जोड़ी गयी है। छत्तीसगढ़की दूसरी कथाओंमें ढोलाको 'दूल्हन' कहा गया है, जिसका विवाह बचपनमें गढ़पिंगलाकी राजकुमारी मरवणसे हुआ था। राजकुमारीने युवा होनेपर ढोलाके पास कई सन्देश भेजे, पर अपनी दो रानियोंके प्रेममें फँसा हुआ ढोला उन्हें प्राप्त नहीं कर सका। अन्तमें सन्देश प्राप्त होनेपर वह अन्धी ऊँटनीपर सवार होकर मरवणके पास पहुँचता है और उसे प्राप्त करता है। एक कथामें मारू तोतेके हाथ ढोलाको सन्देश भेजती है। रेवा कहीं-कहीं मालिन भी घोषित की गयी है। ब्रजमें प्रचलित ढोला 'दूलह' या 'दुर्लभ'से बना प्रतीत होता है। स्त्रियोंमें गाये जानेवाले 'ढोला' 'ढोलना' क्रियासे सम्बद्ध गीत हैं, जो मार्गमें चलते समय गाये जाते हैं। अपनी विशेष प्रसिद्धिके कारण 'ढोला' राजस्थान और मालवामें प्रियतम-का पर्याय बन गया है। ढोला गानेवाले बहुत कम मिलते हैं। उन्हें दुलैया कहा जाता है। कालान्तरमें ढोलाकी कथाके कई रूपान्तर बन गये। गोरख सम्प्रदाय और शाक्तोंका प्रभाव इस कथापर स्पष्ट है (दे० 'ढोला मारू रा दूहा'—ना० प्र० स०; 'दी स्टोरी ऑफ ढोला', पृ० ३७१; 'लोक सांग्ज ऑफ छत्तीस गढ़' : एलविन; 'छत्तीसगढ़ी लोकगीतोंका परिचय' : दुबे; 'ब्रजलोक साहित्यका अध्ययन', पृ० ३५७ तथा 'ढोला राहचिकाड़ेमें' : गजाधरसिंह भूदेव एवं 'नल चरित्र ढोला' : छेदीलाल करकौली)। —श्या० प०

ढोलामारू–'ढोला मारू'की कथा राजस्थानकी अत्यन्त प्रसिद्ध लोक-गाथा है। इस प्रेम-गाथामें मानव-हृदयके कोमल भावों तथा बाह्य प्रकृतिके बड़े ही मनोहर चित्र अंकित किये गये हैं। इस गाथाकी लोकप्रियताका अनुमान निम्नलिखित दोहेसे लगाया जा सकता है, जो राजस्थानमें अत्यन्त प्रचलित है—"सोरठियो दूहो भलो, भलि मरवणरी बात। जोबन छाई धण भली, तारों छाई रात॥" हेमचन्द्रके 'प्राकृत-व्याकरण'में जो अपभ्रंशके उदाहरण दिये गये हैं, उनमें ढोला शब्द आया है। वहाँ ढोलासे आशय नायकका है। ढोला नाम नायकका क्यों पड़ा, यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता। बहुत सम्भव है, इस लोकगाथाके नायककी सुप्रसिद्धिके कारण ही नायककी संज्ञा ढोला हो गयी हो।

ढोला मारूकी गाथा ऐतिहासिक आधारपर प्रतिष्ठित है। ढोला कछवाहा वंशके राजा नलका पुत्र था। मारवणी पूगलके राजा पिंगलकी कन्या थी। दोनोंका विवाह ऐतिहासिक घटना है। राजस्थानके सुप्रसिद्ध इतिहासलेखक मुँहणोत नैणसीकी 'ख्यात'में ढोलाके मारवणी और मालवणी दो स्त्रियोंके होनेका उल्लेख पाया जाता है। एक बार पूगल देशमें अकाल पड़ा। राजा पिंगल सपरिवार नलके देशमें चल आया। नलके पुत्र ढोलाको—जिसका दूसरा नाम साल्ह कुमार भी था—देखकर पिंगलकी रानी रीझ गयी। उसने आग्रह करके अपनी कन्या मारवणीका विवाह ढोलाके साथ करवा दिया। इन्हीं ढोला और मारवणीके प्रेमका वर्णन बड़ी ही सुन्दर रीतिसे इस गाथामें किया गया है।

विद्वानोंने राजा नलका समय संवत् ९५० और १००० वि० के बीच माना है। अतएव ढोला-मारूकी कथा १००० वर्ष पुरानी है। जैसीकी लोक-गाथाओंकी विशेषता होती है,

वैसे ही इस गाथामें भी समय-समयपर परिवर्तन होते गये हैं। जैसलमेरके रावल हरिराजके आश्रित जैन कवि कुशल लाभने, जिनका समय १५६१ ई०के आस-पास है, दूहोंमें प्रचलित इस गाथाके छिन्न-भिन्न कथासूत्रोंको मिलानेके लिए चौपाइयोंकी रचना की। आजकल ढोला-मारू काव्यके चार रूपान्तर उपलब्ध होते हैं—१. जिसमें केवल दूहे हो और जो प्राचीन है, २. जिसमें दूहे और कुशल लाभकी चौपाइयाँ हैं, ३. जिसमें दूहे और गद्य-वार्ता है और ४. जिसमे दूहे, कुशल लाभकी कुछ चौपाइयाँ और गद्य-वार्ता है। नरोत्तमदास स्वामी और उनके मित्रोंने इन प्राचीन दूहोका सुन्दर सम्पादन कर विद्वत्तापूर्ण भूमिकाके साथ 'ढोला-मारू रा दूहा' के नामसे काशी नागरी प्रचारिणी सभासे प्रकाशित किया है।

'ढोला मारू रा दूहा' मे प्रेमका बडा ही मनोरम हृदय दिखलाया गया है। मारवणीका सन्देश, मालवणीका विरह वर्णन, प्रकृतिका सजीव चित्रण आदि इस ग्रन्थके कतिपय रमणीय प्रसंग हैं, जो पाठकोंके चित्तको आकर्षित कर लेते हैं। लोककविने राजस्थानके विशेष पशु—ऊँटका भी वर्णन किया है। वह राजस्थानकी बालुकामयी भूमि और उसकी पैदावारका चित्रण करना भी नहीं भूलता। इस प्रकार प्रस्तुत लोक-गाथाको राजस्थानकी प्रतिनिधि-गाथा कहा जाय तो कुछ अत्युक्ति न होगी। ढोला-मारूकी गाथा मध्य प्रदेश तथा उत्तर प्रदेशमें भी प्रचलित है। भोजपुरी लोकगाथामे ढोला ने ढोलनका रूप धारण कर लिया है। प्राचीनता तथा काव्यत्वकी दृष्टिसे वर्तमान गाथा अद्वितीय है। —कृ० दे० उ०

ढोला मारू चौपाई–खरतरगच्छीय जैन कवि कुशलाभने सन् १५६० ई० के लगभग 'ढोला मारू चौपाई'की रचना की। नलवरगढके राजा नलके पुत्र साल्हका लोकप्रिय नाम ढोला (सं० दुर्लभ→दुल्लह→दूल्हा और ढोला ?) है। मारवाडके राजाकी सुन्दरी कुमारीका नाम था मारव, मारवणी या मारू। ढोला और मारूकी प्रेम-कथाको लेकर अनेक प्रेम-काव्योंकी रचना हुई है। 'ढोला मारू रा दूहा' इस कथाको लेकर रची गयी सरस काव्यकृति है। कुशल लाभने चौपाइयोंमें अपनी कृतिकी रचना की है। ढोला मारूकी कथामे ऐतिहासिकता खोजना व्यर्थ है। कृतिकी रचना जैसलमेरके युवराज हरराजके आग्रहमे की गयी थी। कुशल लाभके ग्रन्थकी भाषा सरल पश्चिमी हिन्दी है, जिसमें ब्रजभाषा, गुजराती और राजस्थानी सभीकी कुछ न कुछ विशेषताएँ मिलती हैं। शैली सहज प्रवाहयुक्त है।

[सहायक ग्रन्थ—हिन्दी साहित्य, खण्ड २, भारतीय हिन्दी परिषद्, प्रयाग।] —रा० तो०

तंतिपाल, तंत्रिपाल–सहदेव (पाण्डव)का छद्मनाम, जो उन्होंने अज्ञातवास कालमें धारण किया था। —मो० अ०

तक्ष–भरत तथा माण्डवीके पुत्र। इन्होंने अपने भाई पुष्करके साथ जाकर गान्धार प्रदेशपर विजय प्राप्त करके तक्षशिला नामक नगरी बसायी। —मो० अ०

तक्षक–शृंगी ऋषिसे शापित परीक्षितको काटनेवाला, कश्यप और कद्रूका पुत्र, अष्टकुली सर्पोंमें श्रेष्ठ एक प्रसिद्ध सर्प। परीक्षितके पुत्र जनमेजयने प्रतिशोधवश जब नाग-यज्ञ किया तो यह स्वरक्षार्थ इन्द्रकी शरणमें चला गया किन्तु मन्त्र-शक्तिके कारण जब तक्षक सहित इन्द्रासन भी यज्ञ-कुण्डकी ओर खिंचने लगा तो इन्द्रने तक्षकको छोड़ दिया। तब वासुकिने अपने भानजे आस्तीकको भेजकर येन-केन-प्रकारेण उसके प्राणोंकी रक्षा करवायी (दे० सूर० पद ४९३६ तथा 'जनमेजयका नाग यज्ञ' : जयशंकर प्रसाद)। —मो० अ०

तत्त्वा–कबीरके शिष्य एक प्रसिद्ध दाक्षिणात्य ब्राह्मण। जुलाहेके शिष्य होनेके कारण जातिवालोंने इनका बहिष्कार कर दिया था। इनके जीवा नामक एक भाई थे। एक भाईके पुत्र तथा दूसरेके एक कन्या थी, जिसका विवाह न होनेपर कबीरने दोनोंके परस्परिक विवाहकी आज्ञा दी। अन्तमें जातिवालोंने घबराकर दोनोंका अलग-अलग विवाह करा दिया। —मो० अ०

तबई–'तबई' नाम दक्खिनी हिन्दीके प्रेमाख्यान 'बहराम ओ गुल अन्दाम' के रचयिताका था। यह उसका केवल उपनाम मात्र था अथवा उसका पूरा नाम, इसका कुछ भी पता नहीं चलता और न उसके जीवनवृत्तकी सामग्री ही उपलब्ध है। 'बहराम ओ गुल अन्दाम' के प्रायः अन्तमें पायी जानेवाली शाहे वक्तकी 'मदह' या प्रशंसा द्वारा जान पड़ता है कि यह कवि गोलकुण्डा राज्यके सुल्तान अब्दुल्ला कुतुबशाह (सन् १६३६-७२ ई०) का समकालीन था और उसके दामाद एवं उत्तराधिकारी सुल्तान अबुलहसन तानाशाह (सन् १६७२-८६ ई०) के दरबारका एक प्रसिद्ध कवि भी रहा। तानाशाह गोलकुण्डाका अन्तिम सुल्तान था, जिसपर सन् १६८७ ई० में विजय प्राप्त करके सम्राट् औरंगजेबके पुत्र शाहजादा आजमनने उसे बन्दी बनाया था तथा जिसका इसी कारण दौलताबादके दुर्गमें १४ वर्षोंतक नजरबन्द रहनेके अनन्तर सन् १७०० ई० में देहान्त हुआ था। 'तबई' ने उक्त रचनाके ही प्रारम्भिक अंश (दी वाचा) को शाह राजू हुसेनी (सन् १६९३ ई०)के साथ सम्बन्धित किया है, जो सम्भवतः तानाशाहके गुरु और प्रसिद्ध ख्वाजा गेसूदराजके वंशज भी थे। पता नहीं, इस कविके साथ शाह राजू हुसेनीका भी कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध था या नहीं। हो सकता है कि उन्हें यह अपना 'पीर' भी मानता रहा हो। 'तबई' की एकमात्र उपलब्ध रचना 'बहराम ओ गुल अन्दाम' एक उच्चकोटिका काव्यग्रन्थ है और कहते हैं कि केवल इसी एकके आधारपर वह दक्खिनी हिन्दीका अन्तिम श्रेष्ठ कवि भी समझा जाता है। इस प्रेमाख्यानके अन्तर्गत ईरानके सासानी वंशवाले चौदहवें बादशाह बहराम गोर (सन् १४२१-३८ ई०) के विलासप्रिय जीवनकी कहानी कही गयी है, जो बहुत रोचक भी है। इससे कविकी योग्यता न केवल इसके सुव्यवस्थित रूप एव कथा-प्रवाहमें ही दीख पड़ती है, अपितु इसमें प्रसंगानुसार निर्मित हुए कतिपय पाण्डित्यपूर्ण स्थलोंसे भी प्रकट हो जाता है कि वह कितना बड़ा विद्वान् एवं अनुभवी रहा होगा। उसे स्वयं भी अपनी विलक्षण प्रतिभापर गर्व है, जिस कारण वह कभी-कभी अन्य कवियोंकी चुटकी भी लेता जान पड़ता है परन्तु फिर भी 'तबई' को हम केवल इसी दोषके कारण निरा घमण्डी भी

नहीं ठहरा सकते। इस रचनाके अन्य अनेक स्थलोंमें हमें ऐसा भी समझ पड़ता है कि उसे अपनी मर्यादाका भी ध्यान रहता है और वह इस बातको भली-भाँति जानता है कि किसी वास्तविक योग्यतावाले व्यक्तिके प्रति हमें अपनी श्रद्धा किस प्रकार दिखानी चाहिए। उदाहरणके लिए उसमें प्रसिद्ध कवि मुल्ला वजहीके प्रति गम्भीर सम्मानकी भावना जान पड़ती है। वह इस रचनाके ही अन्तर्गत एक स्थलपर कहता है कि इस मसनवी (प्रेमाख्यान) की रचना करते समय मुझे एक दिन वजहीने स्वप्नमें अपने दर्शन दिये और इसपर प्रसन्न होकर कहा कि "तबई यह तेरी कृति बहुत सुन्दर है", जिसे सुनते ही मैं हर्षित हो गया और उन्होंने मेरे हाथ अपने हाथोंमें लेकर मेरे प्रति अपना प्यार प्रकट किया। 'तबई' का अपनी काव्य-रचनाका उद्देश्य यही जान पड़ता है कि "मैं कोई ऐसा काम कर दूँ कि वह 'कयामत' तक स्मरण किया जाता रहे।" 'तबई' को अपनी जन्मभूमिके प्रति भी अनुराग है और वह इसके लिए भी "वतन सबको दुनिया में प्याराऊ है" कहता दीख पड़ता है। 'बहराम ओ गुल अन्दाम' को पढ़नेसे पता चलता है कि यह रचना सम्भवतः उसकी स्वतन्त्र कृति भी हो सकती है। इसके पहले फारसी एवं दक्खिनी हिन्दीतकमें इस विषयपर बहुत कुछ लिखा जा चुका था, किन्तु यह उनके अनुकरणमें नहीं बनी।

[सहायक ग्रन्थ—यूरोपमें दक्खिनी मखतूतात : नसीरुद्दीन हाशमी, हैदराबाद, सन् १९५३ ई०; ए हिस्ट्री ऑव उर्दू लिटरेचर : ग्राहम बेली, एसोसियेशन प्रेस, कलकत्ता, सन् १९३२ ई०; दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा : राहुल सांकृत्यायन, पटना, १९५९ ई०।] —प० च०

ताड़का–मारीच-सुबाहुकी माता, सुकेतु नामक यक्षकी पुत्री, जो अगस्त्य ऋषिके शापसे राक्षसी हो गयी थी। यह सरयूके निकट ताड़का वनमें रहकर ऋषियोंके यज्ञोंमें बाधा डालती थी। अत्याचारसे पीड़ित होकर विश्वामित्र उसके वधके लिए राम-लक्ष्मणको दशरथसे माँगकर ले गये। स्त्री जानकर राम उसे मारनेमें सकोच कर रहे थे, किन्तु विश्वामित्रकी आज्ञा पाकर उन्होंने उसे मार डाला। इसका दूसरा नाम 'सुकेतुसुता' भी है (दे० 'रामचरितमानस' बालकाण्ड)। —मो० अ०

तानसेन–अकबरके नवरत्नों तथा मुगलकालीन संगीतकारोंमें तानसेनका नाम परम-प्रसिद्ध है। यद्यपि काव्य-रचनाकी दृष्टिसे तानसेनका योगदान विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं कहा जा सकता, परन्तु संगीत और काव्यके संयोगकी दृष्टिसे, जो भक्तिकालीन काव्यकी एक बहुत बड़ी विशेषता थी, तानसेन साहित्यके इतिहासमें अवश्य उल्लेखनीय हैं।

तानसेनकी जीवनीके सम्बन्धमें बहुत कम ऐसा वृत्त ज्ञात है, जिसे पूर्ण प्रामाणिक कहा जा सके। प्रसिद्ध है कि वे ग्वालियरके एक ब्राह्मण थे और किसी सुन्दर स्त्रीके प्रेमके वशीभूत होकर मुसलमान हो गये थे। प्रसिद्ध कृष्ण-भक्त स्वामी हरिदास इनके दीक्षा-गुरु कहे जाते हैं। 'चौरासी वैष्णवनकी वार्ता' में सूरसे इनकी भेंटका उल्लेख हुआ है। 'दो सौ बावन वैष्णवनकी वार्ता' में गोसाईं विट्ठलनाथसे भी इनके भेंट करनेकी चर्चा मिलती है।

तानसेनके तीन ग्रन्थोंका उल्लेख मिलता है—'संगीतसार', 'रागमाला' और 'श्रीगणेश स्तोत्र'। भारतीय संगीतके इतिहासमें ध्रुपदकारके रूपमें तानसेनका नाम सदैव अमर रहेगा। इसके साथ ही ब्रजभाषाके पद साहित्यका संगीतके साथ जो अटूट सम्बन्ध रहा है, उसके सन्दर्भमें भी तानसेन चिरस्मरणीय रहेंगे।

[सहायक ग्रन्थ—संगीतसम्राट् तानसेन (जीवनी और रचनाएँ): प्रभुदयाल मीतल, साहित्य संस्थान, मथुरा; हिन्दी साहित्यका इतिहास : पं० रामचन्द्र शुक्ल; अकबरी दरबारके हिन्दी कवि : डा० सरयू प्रसाद अग्रवाल।]—यो० प्र० सिं०

तारक–देवविरोधी एक राक्षस, जो वज्रांगका पुत्र था। ब्रह्माने उसकी तपस्यासे प्रसन्न होकर उसे वर दिया कि वह संसारमें अजेय होगा और सात दिनके बालक द्वारा उसकी मृत्यु होगी। अतः देवताओंके कहनेसे कामदेव शिवजीके मनमें क्षोभ उत्पन्न करनेके लिए गया, जिससे शिव पार्वतीसे विवाह कर लें किन्तु कामदेव शिवका तीसरा नेत्र खुलते ही भस्म हो गया। अन्तमें देवताओंकी प्रार्थनापर शिवने पार्वतीसे विवाह किया और उनसे उत्पन्न कार्तिकेय द्वारा तारकका वध हुआ। गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश'कृत 'तारक-वध' काव्यमें तारकका चरित्र-चित्रण हुआ है। —मो० अ०

तार सप्तक–१९४३ में 'तार सप्तक'के प्रकाशनसे हिन्दी कवितामें प्रयोग-युगका आरम्भ माना जा सकता है। इसमें सात कवियोंकी (गजानन माधव मुक्तिबोध, नेमिचन्द, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, रामविलास शर्मा तथा सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय') कविताएँ संकलित हैं। संगृहीत कवि किसी एक मत या विचारधाराके नहीं हैं, यहाँ तक कि उन कवियोंमें भी पर्याप्त अन्तर है, जो सामान्यतः एक ही विचार धाराके लगते हैं, जैसे मार्क्सवादी कवि, भारतभूषण अग्रवाल मार्क्सवादको आजके समाजके लिए रामबाण मानते हैं, गजानन मुक्तिबोधको मार्क्सवादसे "अधिक वैज्ञानिक, अधिक मूर्त और अधिक तेजस्वी दृष्टिकोण ... प्राप्त हुआ", नेमिचन्द्र "व्यक्तित्वकी सामाजिकतामें विश्वास करते हैं—व्यक्तिविहीनतामें नहीं", रामविलास शर्माको हिन्दुस्तानके गाँव और किसान पसन्द हैं। इनसे अलग वर्गमें रखे जा सकते हैं, गिरिजाकुमार माथुर, जिन्होंने कवितामें टेकनीक, भाषा, रंग, रस आदिपर अधिक ध्यान दिया है, प्रभाकर माचवे, जो कवितामें प्रयोगादिका अधिक शास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक आधार खोजते हैं तथा 'अज्ञेय' जो अनुभव करते हैं कि "भाषाका पुराना व्यापकत्व उसमें नहीं है—शब्दोंके साधारण अर्थसे बड़ा अर्थ हम उसमें भरना चाहते हैं, पर उस बड़े अर्थको पाठकके मनमें उतार देनेके साधन अपर्याप्त हैं। वह या तो अर्थ कम पाता है या कुछ भिन्न पाता है। ... जो व्यक्तिकी अनुभूति है, उसे उसकी सम्पूर्णता तक कैसे पहुँचाया जाय, यही पहली समस्या है, जो प्रयोगशीलताको ललकारती है।"

संकलनकर्ता 'अज्ञेय'के शब्दोंमें इन सातों कवियोंके एकत्र होनेका कारण एक तो बिलकुल व्यावहारिक था—छोटे-छोटे फुटकल संग्रह छापनेके बजाय एक संयुक्त संग्रह

छापना, जिसका अधिक व्यापक प्रभाव पड़ सके, दूसरा मूल (साहित्यिक) सिद्धान्त यह था कि "संगृहीत कवि सभी ऐसे होंगे, जो कविताको प्रयोगका विषय मानते हैं—जो यह दावा नहीं करते कि काव्यका सत्य उन्होंने पा लिया है, केवल अन्वेषी ही अपनेको मानते हैं···वे किसी एक स्कूलके नहीं हैं, किसी मंजिलपर पहुँचे हुए नहीं हैं, अभी राही हैं—राही नहीं, राहोंके अन्वेषी··· ।"

कविताओंका आज गुणात्मक महत्त्व इतना नहीं है, जितना ऐतिहासिक। यह उन कवियोंके लिए और भी सच है, जो 'तार सप्तक'के बाद स्वतन्त्र दिशाओंमें विकसित होते रहे। संग्रहकी यह विशेषता उल्लेखनीय है कि उसमें तथाकथित प्रगतिवादी और प्रयोगवादी, दोनों ही प्रकारके कवियोंकी रचनाएँ हैं और इस बातकी ओर ध्यान आकर्षित करती हैं कि आगे चलकर कवितामें जो विकास और परिवर्तन हुआ, वह विचारों या मतोंपर कम आश्रित रहा, कविता-सम्बन्धी, बल्कि भाषासम्बन्धी तत्त्वोंपर अधिक। यदि १९५१ और १९५९ में क्रमशः प्रकाशित केवल 'दूसरा सप्तक' और 'तीसरा सप्तक'के ही आधारपर नयी काव्यधाराका अध्ययन किया जाय तो भी विकासका क्रम विषयवस्तुकी अपेक्षा रूप-पक्षमें अधिक स्पष्ट दीखता है, यद्यपि इससे यह अभिप्रेत नहीं कि कविताका नया रूप नये विचारोंसे प्रभावित नहीं रहा। —कुँ० ना०

तारा १–१. बालिकी पत्नी तथा अंगदकी माता। बालि-वध हो जानेके पश्चात् ये अपने देवर सुग्रीवके साथ पत्नी-भाव मे रहने लगीं। सुषेण नामके वानरराज इनके पिता थे।

२. बृहस्पतिकी स्त्री, जिसका अपहरण चन्द्रमाने कर लिया था। इसी कारण देवासुरसंग्राम हुआ। शुक्रने सोम (चन्द्र)का और शिव तथा इन्द्रने बृहस्पतिका पक्ष लिया। अन्ततोगत्वा ब्रह्माके बीच-बिचाव करने पर तारा बृहस्पतिको लौटा दी गयी। —मो० अ०

तारा २–प्रसादकृत उपन्यास 'कंकाल' की पात्र। विधवा रामाकी पुत्री, जो एक कुटनीके कुचक्रमें पड़कर लखनऊके चौकमे वेश्याके रूपमें रहनेको बाध्य की गयी। यहीं मंगलसे उसकी भेंट होती है और वह उसके साथ युक्तिपूर्वक निकल जाती है। मंगल समाज-भयसे विवाह-मण्डपमें बैठी ताराको छोड़कर चला जाता है। वह उस समय गर्भवती थी। एक अनाथालयमें अपने पुत्रको छोड़कर वह भाग जाती है और किशोरीके यहाँ दासीका काम करती है। अपना नाम वह यमुना बताती है। यमुनाके चरित्रकी विशेषता है, परुष और कोमल, विद्रोही और सहिष्णु भावनाओंके समन्वय की। एक ओर यदि वह पुरुष-जाति पर कटु आक्षेप करती है, पुरुषोंको राक्षस बताती है, तो दूसरी ओर नारीकी दुर्बलता स्वीकार कर उसे "आघात सहनेकी क्षमता" रखनेका सन्देश देती है। विजय जब मंगलकी प्रशंसा करता है तो वह विद्रोह करती है—"मंगल ही नहीं, सब पुरुष राक्षस हैं, देवता कदापि नहीं हो सकते।" परन्तु दूसरे ही क्षण विजय और किशोरी द्वारा मंगलसे जलपानके लिए न पूछने पर उसे क्षोभ होता है। पुरुष-जाति पर आक्षेप करनेके साथ ही साथ वह नारीकी सहनशीलता और उत्सर्गकी भावनाको कायम रखनेकी बात कहती है। यमुनामें जागरूकता होने पर भी विद्रोहपूर्ण आक्रोश नहीं है। यमुना निर्बल नारी और माँ है। अपने पुत्र मोहनको छोड़ आने पर वह क्षुब्ध रहती है और अन्तमें माँकी ममता ही उसे किशोरी और श्रीचन्दके यहाँ नौकरी करनेके लिए विवश करती है। भाईके जिस स्नेहकी माँग उसने विजयसे की थी, वह उसे उससे मिल जाता है। उत्सर्गकी भावना भी उसमें प्रबल है। विजयकी हत्याके अपराधको वह अपने सिर ले लेती है। मंगल और मालाके विवाहके अवसर पर भी चुप रहती है। हिन्दू समाज और उसकी निष्ठुरता पर उसे क्षोभ है, परन्तु विद्रोह वह नहीं कर पाती। विजयकी अंत्येष्टि-क्रियाके लिए श्रीचन्दसे दस रुपये लेना उसकी सहृदयता और स्नेहका परिचय देता है। —शं० ना० च०

तारा पांडेय–जन्म १९१५ ई० में दिल्लीमें हुआ। १९ वर्षकी ही अवस्थामें आपका काव्य-संग्रह 'सीकर' (१९३४) प्रकाशित हुआ।

तारा पाण्डेयमें हमें छायावादी काव्य-शैलीकी कोमल किन्तु मार्मिक मानव-संवेदनाओंके दर्शन होते हैं। गीतोंमें महादेवी वर्मा जैसा आभिजात्य गुण तो नहीं है किन्तु संवेदनाशील क्षणोंकी अनुभूति-स्पष्टता और उसका सार-तत्त्व हमे तारा पाण्डेयके गीतोंमें मिलता है।

तारा पाण्डेयके गीतोंमें हमें एक तत्त्व और मिलता है, वह है नारीसुलभ कोमलता और वेदनाकी मानवतामें ही उपलब्धि की खोज। रोमानी अनुभूतियोंके इन दोनों तत्त्वोंने कवयित्रीको और भी व्यापक स्तरपर ला खड़ा किया है। तारा पाण्डेयमें निहित नारीसुलभ लज्जा, शील और वेदना गीतकी शैलीको एक नया आयाम देनेमें समर्थ हुई है।

कृतियाँ: 'सीकर' (काव्य-संग्रह—१९३४), 'उत्सर्ग' (कहानी-संग्रह—१९३२), 'रेखाएँ' (काव्य-संग्रह–१९४१), 'गोधूली' (काव्य-संग्रह—१९४४), 'अन्तरंगनी' (काव्य-संग्रह—१९४६), 'विपची' (काव्य-संग्रह—१९५०), 'काकली' (काव्य-संग्रह—१९५३)। आजकल आप म्युनिसिपल बोर्ड, नैनीतालमे उप-प्रधान हैं और अब भी उसी तन्मयताके साथ लिखनेमें व्यस्त हैं। —ल० का० व०

तारापीड–सूर्यवंशी राजा चन्द्रावलीकका पुत्र। 'कादम्बरी'का नायक, जो प्रतापादित्यका पुत्र था। इसके भाईका नाम चन्द्रापीड था। राज्यके लोभसे इसने अपने अग्रजकी हत्या करवा दी थी (दे० 'कादम्बरी', हिन्दी-अनुवाद)। —मो० अ०

तारामती–राजा हरिश्चन्द्रकी राजमहिषी, शैव्य देशके राजाकी पुत्री। इन्हें शैव्या भी कहते हैं। सत्यवादी हरिश्चन्द्र डोमके हाथ बिक गये थे और तारामती एक ब्राह्मणके यहाँ दासीका काम करने लगीं। वहाँ इनके पुत्र रोहिताश्वकी सर्प-दंशसे मृत्यु हो गयी। अतः वे उसे श्मशान लेकर पहुँचीं, जहाँ डोम द्वारा नियुक्त हरिश्चन्द्रने कर माँगा। शैव्याके पास कर चुकानेके लिए बालकका कफन भी नहीं था किन्तु कर्त्तव्यारूढ़ हरिचन्द्र बिना कर लिये दाह नहीं करने दे रहे थे। उनकी सत्यनिष्ठासे प्रसन्न होकर इन्द्र प्रकट हुए और विश्वामित्रने परीक्षामें सफल

हरिश्चन्द्रके पुत्रको जीवित कर दिया (दे० 'सत्यहरिश्चन्द्र': भारतेन्दु हरिश्चन्द्र)। —मो० अ०

तालकेतु—१. एक दानव, जो दस अक्षौहिणी सेनाके साथ शून्यक नगरीके उत्तरी द्वारका रक्षक था।

२. एक राक्षस, जिसे कृष्णने मारा था।

३. बलदेवकी पताका। —मो० अ०

तालजंघ—सौ पुत्रोंका पिता, वीतिहोत्रका सबसे बड़ा पुत्र जयध्वजका पुत्र। परशुरामसे भयभीत यह हिमालयकी ओर भाग गया था, फिर शान्ति स्थापित हो जानेपर यह अपनी राजधानीमें वापस आया। अयोध्यामें जब इसकी विजयवाहिनी पहुँची तो वहाँका राजा फल्गुतन्त्र अपनी स्त्री तथा पुत्र सहित भाग गया। कालान्तरमें यह सगर द्वारा पराजित हुआ। वीतिहोत्र, शर्यात्, तुण्डिकर, भोज तथा अवन्त्य इन पाँच गणोंका सम्मिलित नाम तालजंघ है। —मो० अ०

तालवन—वृन्दावनके निकट ताड़का एक वन। यहाँ धेनुक नामक एक दानव रहता था, जिसे कृष्ण तथा बलरामने मार डाला था। —मो० अ०

तितली १—जयशंकर प्रसादका उपन्यास, जो १९३४ ई०में प्रकाशित हुआ। 'तितली', ग्राम्यजीवनसे सम्बद्ध उपन्यास है, यद्यपि कथानकके आगे बढ़नेपर उसमें कलकत्ता आदि महानगरोंके छायासंकेत भी मिल जाते हैं। इसकी कथा धामपुर नामक गाँवके चारों ओर परिक्रमा करती है। इसके जमींदार इन्द्रदेव हैं, जो विलायतसे अपने साथ शैला नामक विदेशी युवतीको ले आये हैं। इस विदेशी बालाका सम्बन्ध प्रसादने भारतसे स्थापित कर दिया है, क्योंकि उसका जन्म यहीं हुआ था। धामपुरका प्रमुख पात्र मधुबन अथवा मधुआ है, जिसके पिता कभी शेरकोट दुर्गके स्वामी थे। गाँवमें भारतीय संस्कृति और दर्शनकी साक्षात् मूर्ति बाबा रामनाथ हैं, जिनकी पालिता कन्या बंजो अथवा तितली है। इसी तितलीसे मधुआका विवाह होता है। मधुआकी विधवा बहिन राजकुमारीके शरीरसे धामपुरका महन्त खेलना चाहता है। मधुआ उसका गला दबाकर भाग निकलता है। यहाँसे उसका जीवन-संघर्ष आरम्भ हो जाता है। कलकत्तेमें वह गिरहकटोंके साथ रहता है। फिर रिक्शा चलाते हुए पकड़ा जाता है। आठ वर्ष जेलमें रहकर घर वापस आता है। मधुआके जीवनके अतिरिक्त इन्द्रदेव और उनके परिवारकी कथा है, जिसमें एक धनी परिवारकी पारिवारिक समस्याएँ अंकित हैं।

'तितली'में प्रमुख रूपसे ग्राम्य जीवनके चित्र और समस्याओंका समावेश किया गया है। भारतीय ग्रामोंमें आज भी संस्कृतिके मूल तत्त्व विद्यमान हैं, यद्यपि वातावरण पर्याप्त विकृत और दूषित हो गया है। एक ओर इन्द्रदेवको लेकर सामन्ती वातावरणका चित्रण है तो दूसरी ओर बाबा रामनाथ और मधुआ ग्रामीण जीवनका प्रकाशन करते हैं। भूमिहीन किसानोंमें क्रान्ति-विद्रोहका जो भाव है, वह मधुबनमें स्पष्ट है। ग्राम्य-जीवनके उद्धारका प्रयत्न इन्द्रदेव और शैला करते हैं। बैंक, अस्पताल, ग्रामसुधार आदिकी योजनाएँ उन्हींके द्वारा कार्यान्वित होती हैं। मिटती हुई सामन्तवादी प्रथाकी सूचना 'तितली'में मिलती है। महाजनोंका शोषण, महन्तोंका पाखण्ड इसमें अंकित है। 'गोदान' जैसी विशाल आधारभूमि 'तितली'को नहीं प्राप्त हो सकी है, पर समस्याएँ उसी तरहकी हैं। शैला रामनाथसे तर्क करती है और अन्तमें भारतीय संस्कृतिकी उच्चता स्वीकार कर लेती है। बाबा रामनाथ भारतीय उदार मानवीयताके प्रतिनिधि पात्र हैं, जिन्हें कृषि परम्पराका आधुनिक प्रतीक कहा जायगा। पारिवारिक विषमताके कारण टूटती हुई संयुक्त कुटुम्बव्यवस्था इन्द्रदेवके परिवारमें स्पष्ट है। यद्यपि उपन्यासकी अधिकांश कथा ग्रामीण जीवन की है पर नगर-सभ्यताके संकेत भी मिल जाते हैं, जैसे कलकत्ता नगरीके जीवनमें। 'तितली'का कथानक अधिक सम्बद्ध और संग्रथित है। दोनों कथाओंको (मधुआ और इन्द्रदेव) इस प्रकार संग्रथित कर दिया गया है कि उनमें अलगाव नहीं रह जाता। कतिपय अविश्वसनीय कथा-प्रसंगोंको छोड़कर अधिकांश घटनाएँ स्वाभाविक हैं। कविका रूप भाषा और शैली दोनोंमें झलक आया है। अनेक स्थलोंपर कवि प्रसादकी भाषा जाग उठी है और 'तितली'का अन्त इसी काव्यमय शैलीमें होता है। 'कंकाल' नगर जीवनसे सम्बद्ध है तो 'तितली' ग्रामीण जीवनसे। एकमें यदि नग्न यथार्थ है तो दूसरेमें अपेक्षाकृत प्रक्षिप्त और इस दृष्टिसे 'कंकाल' और 'तीतली' दोनों एक-दूसरेके पूरक हैं। —प्रे० शं०

तितली २—प्रसादके उपन्यास 'तितली'की पात्र। सिंहपुरके प्रमुख किसान देवनन्दनकी पुत्री, जिसे बाबा रामनाथने पाला। वह मधुबनको प्यार करती है, और उससे विवाह कर लेती है। प्रारम्भकी भोली-भाली, लाजवन्ती तितलीके व्यक्तित्वका विकास एक आदर्श नारीके रूपमें हमें बादमें देखनेको मिलता है। अपनी एकाध दुर्बलताओं, जैसे शेरकोटमें मधुबन और मैनाके आश्रय लेनेसे उत्पन्न क्षोभको छोड़कर, तितली प्रसादकी आदर्श नारी-पात्र कही जा सकती है। वह नारीके सम्मानकी रक्षाके प्रति जागरूक रहनेके कारण ही मधुबनसे, श्यामलाल द्वारा अनाहूत मलियाको अपने यहाँ रखनेका अनुरोध करती है। तितली गार्हस्थिक और बाह्य दोनों ही क्षेत्रोंमें आदर्शकी सृष्टि करती है। वह अपनी लघुताका प्रदर्शन नहीं करना चाहती और इसी कारण मधुबनके मुकदमेके लिए इन्द्रदेवकी सहायताको अस्वीकार करती है। वह अपनी शक्तियोंके सहारे ही संघर्ष करना चाहती है। बालिकाओंको पढ़ाकर अपनी जीविका निर्वाह करती है और वाट्सनकी उदारताका तिरस्कार करती है। दो दृष्टियोंसे तितली श्रद्धाके अधिक निकट प्रतीत होती है—एक तो शैलाको हिन्दू नारीके समर्पणके सन्देश देनेकी दृष्टिसे और दूसरे सुन्दर और शिवके प्रति हृदयकी समीपता बढ़ाकर सत्य और पवित्रताकी उपलब्धिकी दृष्टिसे। —शं० ना० च०

तिलोत्तमा—ब्रह्माके आदेशानुसार विश्वकर्मा द्वारा संसारकी प्रत्येक सुन्दर वस्तुसे तिल-तिल भर सौन्दर्य लेकर निर्मित तिलोत्तमा एक अप्सरा थी। वही सुन्द तथा उपसुन्द नामक महा अत्याचारी राक्षसोंकी मृत्युका कारण हुई। तिलोत्तमाके अप्रतिम सौन्दर्य पर मोहित होकर उसे प्राप्त करनेके लिए दोनों आपसमें लड़ने लगे। युद्धमें दोनोंने एक-दूसरे-

को मार डाला (दे० 'सुन्द-उप-सुन्द')। —मो० अ०

तिसिर–१. एक राक्षस, जो दूषणका मन्त्री था।

२. कश्यप और भसाका पुत्र, जिसका वध रामने किया था।

३. कुबेरका एक नाम।

४. ज्वर—गर्मी, सर्दी और पसीना, इसकी तीन अवस्थाएँ हैं। —मो० अ०

तीनवर्ष–भगवती चरण वर्माका प्रसिद्ध उपन्यास। रचना-की भाव-भूमि सामाजिक है और शैली अत्यन्त रोचक। अजित, रमेश, प्रभा और सरोज नामक चरित्रोंके व्यूहमें कथा चलती है। अजित और प्रभा सम्पन्न परिवारके हैं और रमेशके सहपाठी हैं, जो स्वयं निम्न मध्यम वर्गका है। सरोज एक वेश्या है। तीन वर्षोंके अन्तरालमें घटना-क्रम इस स्थितिको स्पष्ट करता है कि प्रभा, जो सुशिक्षित-सुसंस्कृत मानी जाती है, वस्तुतः धन-लिप्सासे ऊपर नहीं उठ पाती। दूसरी ओर सरोज, जो वेश्या होनेके कारण समाजमें तिरस्कृत है, जीवनके उच्चतर मूल्योंसे प्रेरित है। प्रभाका रमेशके प्रति प्रेम धनाभावके कारण अवरुद्ध है, सरोज मरते-मरते अपनी सारी सम्पत्ति रमेशके नाम लिख जाती है। —सं०

तुंबुरु–संगीत-विशारद नारदके अनुग एक गन्धर्व। जब श्रीकृष्णने गोवर्धन धारण किया तो यह उनका गुण-गान करते रहे। कुबेरके शापके कारण ये विराध नामक राक्षस हुए। त्रेतामें रामके हाथों मृत्यु पाकर मुक्त हुए। तम्बूरा वाद्य इन्हींके नामपर प्रचलित है। —मो० अ०

तुलसी–पूर्व जन्ममें राधाकी एक सखी। कृष्णके साथ विहार करते देख राधाने उसे शाप दिया, जिससे वह धर्मध्वज राजाकी पुत्री हुई। कृष्ण सम्भोगकी लालसासे उसने घोर तप किया। ब्रह्माके आदेशानुसार उसने शंखचूड़ राक्षससे विवाह किया। शंखचूडको वरदान था कि जबतक उसकी स्त्रीका सतीत्व भंग न होगा तब तक उसकी मृत्यु न होगी। जब देवता लोग शंखचूडसे बहुत पीडित हो गये तो विष्णुने शंखचूडका रूप धारणकर तुलसीका सतीत्व नष्ट किया। शंखचूडकी मृत्यु हुई परन्तु तुलसीने कुपित होकर विष्णुको पत्थर हो जानेका शाप दिया। तभीसे विष्णु शालिग्राम बने और उनके वरदानसे तुलसी तुलसीका पौधा बनी, जो सदा शालिग्रामकी पिण्डीके समीप रहकर पत्ते उनके वक्षःस्थलपर गिराती रहती है। तुलसीका नाम उसके अतुलनीय सौन्दर्यके कारण पडा था। —मो० अ०

तुलसी चरित–महात्मा रघुवरदास द्वारा लिखित 'तुलसी चरित' नामक ग्रन्थकी सर्वप्रथम सूचना ज्येष्ठ सं० १९६९ (सन् १९१२ ई०)में स्वर्गीय बाबू इन्द्रदेव नारायणने 'मर्यादा' पत्रिकामें दी। उनके अनुसार इस ग्रन्थमें एक लाख चौंतीस हजार नौ सौ बासठ छन्द हैं। 'तुलसी चरित'में चार खण्ड कहे जाते हैं—अवध, काशी, नर्मदा और मथुरा। ग्रन्थके कुछ अंशों (५३ छन्द)का उन्होंने प्रकाशन भी कराया। समूचा ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हो सका, अतः उसकी रचना-तिथि, प्रामाणिकता आदिके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

ग्रन्थका जो भी अंश प्रकाशित है, उसके अनुसार तुलसीका जीवन-वृत्त इस प्रकार है—तुलसीके प्रपितामह परशुराम मिश्र थे। उनके पुत्र थे शंकर मिश्र और शंकर मिश्रके पुत्र थे रुद्रनाथ मिश्र। रुद्रनाथ मिश्रके पुत्र थे मुरारी। मुरारी मिश्रके चार पुत्र थे—गणपति, महेश, तुलसी या तुलाराम और मंगल। तुलसीके तीन विवाह हुए थे। पहले दो विवाहोंसे आयी स्त्रियाँ मर गयीं। अतः तीसरा विवाह कंचनपुरके उपाध्याय लछिमनकी कन्यासे हुआ। इस विवाहसे तुलसीके पिताको पर्याप्त द्रव्य मिला था, किन्तु यही विवाह तुलसीके गृह-त्यागका कारण भी हुआ। इस ग्रन्थसे यह भी विदित होता है कि मारवाडियोंसे इस वंशको पर्याप्त धन मिला करता था, जिससे इस कुलके लोग प्रायः राजाओं तकका सम्मान अस्वीकृत किया करते थे। इस ग्रन्थके अनुसार परशुराम सरवारमें मझौलीसे तेईस कोसपर कसया ग्राममें रहते थे। तीर्थाटन करते हुए वे चित्रकूट गये और फिर राजापुरमें बस गये। इस ग्रन्थमें तुलसीकी जन्मतिथि सन् १४९७ ई० दी हुई है तथा उन्हें सरयूपारीण ब्राह्मण कहा गया है।

डा० माताप्रसाद गुप्तने इस ग्रन्थको कल्पित एवं अप्रा-माणिक कहा है, क्योंकि "यह समस्त वृत्त कवि द्वारा किये गये उन आत्मोल्लेखोंके सर्वथा प्रतिकूल पडता है, जो उसने अपने अनेक ग्रन्थोंमें अपने बाल्यजीवनके सम्बन्धमें किये हैं।"

'तुलसी चरित'के पूर्ण प्रकाशित हो जानेके पश्चात् ही तुलसीदासके जीवन-निर्माणमें इस ग्रन्थके योगका सही मूल्यांकन किया जा सकेगा।

[सहायक ग्रन्थ—'मर्यादा' पत्रिका, ज्येष्ठ, सं० १९६९ वि०; तुलसीदास : डा० माताप्रसाद गुप्त; हिन्दी साहित्यका इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल।] —ब० ना० श्री०

तुलसीदास–(प्र० सन् १९३८ ई०) सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'का अन्तर्मुखी प्रबन्धकाव्य है। यह उनकी प्रौढ़-तम रचनाओंमें एक है। इसका कथानक जन-सामान्य-में प्रचलित उस कहानीपर आधृत है जिसमें गोस्वामीजी-को अपनी स्त्रीपर अत्यधिक आसक्त बताया गया है। इस छोटेसे कथासूत्रको तुलसीके मानसिक संघर्ष, मनोवैज्ञानिक तथ्योंके उद्घाटन तथा रहस्य-भावनाके संगुम्फन द्वारा सम्पुष्ट करते हुए इसे काव्यात्मक उत्कर्षकी अपेक्षित ऊँचाई तक पहुँचा दिया गया है।

स्थूल रूपसे इसके कथनको दो-तीन भागोंमें विभाजित कर सकते हैं। प्रथम भागमें, जिसे कथाकी पृष्ठभूमि भी कह सकते हैं, भारतीय संस्कृतिके ह्रासका बहुत ही प्रभावोत्पादक चित्र प्रस्तुत किया गया है। द्वितीय भागमें तुलसीदासक प्रकृत द्वारा जड देशमें नवजीवनके संचारका सन्देश मिलता है पर इससे उन्हें अपेक्षित प्रेरणा नहीं मिल पाती। तृतीय भागमें वे अपनी पत्नीको खोजते हुए उसके मायके पहुँच जाते हैं। वहाँपर उसकी कटूक्तियाँ उनके ज्ञानका कपाट खोल देती हैं। फिर तो वे अज्ञात भावसे अनन्तकी ओर बढते चले जाते हैं।

तुलसीकी सफलतामें ऊर्ध्वमनकी प्रतिक्रियाका विशेष योग है। इसी साधना द्वारा जीव आत्म-साक्षात्कार करता

है। अधिकांश भारतीय दार्शनिकोंने अंतःसाधनापर विशेष ज़ोर दिया है। आत्मा और परमात्माका अभेद एक विशेष आध्यात्मिक प्रक्रिया द्वारा ही सम्पन्न होता है। इसीको 'निराला'ने मनकी ऊर्ध्वगतिकी संज्ञा दी है। जब तक साधक भौतिक संस्कारोंसे मुक्त होकर निस्संग न होगा, उसे आत्मदर्शन नहीं हो सकता। तुलसीके भी जीवनके द्वन्द्व और बन्धन इसी निस्संगावस्थाके कारण टूट गये। दृष्टिभेदसे ही व्यक्तिको बन्धन और मोक्षकी प्राप्ति होती है।

तुलसीके इस आत्मबोधके पीछे लोककी विपन्नताका प्रभाव था। रामका सम्पूर्ण जीवन आदर्शवादी लोक-जीवनके अनुकूल था। तुलसीकी चिन्ताका मुख्य अंश लोक-वेदनामें ही परिचालित था। इसीलिए देशके कल्मष, छल तथा अमंगलको पराभूत करनेके लिए उन्होंने रामचरितका आश्रय ग्रहण किया।

बीच-बीचमें तीखे व्यंग्योंके प्रयोगसे कथाका सौष्ठव और भी समृद्ध हो गया है। हाँ, अनगढ शब्दोंके व्यवहारसे अपेक्षित अर्थ तक पहुँचनेमें कठिनाई होती है पर इससे हिन्दी की व्यंजना शक्ति बढ़ी ही है। —ब० सिं०

तुलसीदास (गोस्वामी)–तुलसीदासका जन्म किस तिथिको हुआ था, यह निश्चित नहीं है। उनके जन्मकी विभिन्न तिथियाँ मानी जाती रही हैं, किन्तु सबसे अधिक सं० १५८९ की तिथि प्रचलित रही है। इसका आधार कदाचित् तुलसीदासजीकी किसी शिष्य-परम्पराकी मान्यता थी। इधर एक और साक्ष्यसे इस तिथिकी पुष्टि हुई है। हाथरसके सन्त तुलसी साहब (सं० १८२०-१९००) ने अपने 'घट रामायण'में यह लिखते हुए कि वे पूर्ववर्ती जन्ममें तुलसीदास थे, सं० १५८९, भाद्रपद शुक्ला ११, मंगलवारको जन्म लेना लिखा है और यह पूरी तिथि ज्योतिषकी गणनासे ठीक आती है। सं० १५८९ की तिथिकी तुलसीदासके सम्बन्धमें अन्य ज्ञात तथ्यों और तिथियोंसे भी कोई असंगति नहीं है। इसलिए यह तिथि उनकी जन्मतिथि मानी जा सकती है।

तुलसीदासकी मृत्यु-तिथिके बारेमें भी यथेष्ट निश्चयात्मकता नहीं है। लोक-परम्परा सं० १६८० में श्रावण शुक्ला सप्तमीको उनका निधन मानती रही है, किन्तु उनके स्नेही टोडरके वंशज श्रावण कृष्णा तृतीयाको उनकी बर्षी मनाते रहे हैं। इसलिए सं० १६८० की श्रावण कृष्णा तृतीयाको तुलसीदासकी निधन-तिथि माना जा सकता है।

तुलसीदासका जन्म एक अच्छे कुलमें हुआ था। यह उनके 'दियो सुकुल जन्म'(विनय० १३५) लिखनेसे निश्चित ज्ञात होता है। उनका ब्राह्मण होना भी कदाचित् निर्विवाद है। उनके गोत्रादिके सम्बन्धमें अवश्य कुछ ज्ञात नहीं है। उनके जीवनके उत्तरार्द्धमें काशीमें उनकी जाति-पातिको लेकर एक वितंडावाद छिड़ा था, जिसका कुछ परिचय 'कवितावली' और 'विनय पत्रिका'के कुछ उल्लेखोंमें मिलता है (कवि० उत्तर १०६,१०७ तथा विनय० ७६)। फिर भी तुलसीदासके ब्राह्मण होनेमें सन्देह नहीं ज्ञात होता है। उनके माता-पिताके नाम बताये जाते हैं, किन्तु उनकी प्रामाणिकता सर्वथा सन्दिग्ध है।

उनका जन्म कहाँ हुआ था, इस प्रश्न पर तो पिछले कुछ समयसे काफी विवाद चल रहा है। बीस वर्ष पूर्व तक तो राजापुर (जिला बांदा) ही उनका जन्म-स्थान समझा जाता था, किन्तु कुछ नवप्राप्त आधारों पर सोरों (जिला एटा)को कुछ लोग उनका जन्म-स्थान प्रमाणित करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। ये तथाकथित नवप्राप्त आधार बहुत सन्दिग्ध हैं। इनके आधार पर सोरोंको तुलसीदासका जन्म-स्थान मानना ठीक न होगा। तुलसीदासने 'रामचरित मानस'में यह उल्लेख अवश्य किया है "मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सो सूकर खेत। समुझी नहिं तसि बालपन तब मति रहेउँ अचेत" (बाल० ३०) किन्तु इससे इतना ही परिणाम निकलता है कि सूकरखेतमें उन्होंने अपने गुरुसे बालपनमें रामकथा सुनी, यह सूकरखेत यदि सोरों ही रहा हो—जिसकी सम्भावना यथेष्ट है—तो भी इससे सूकर खेतमें तुलसीदासका जन्म भी हुआ होगा, यह परिणाम नहीं निकाला जा सकता। स्थिति यह है कि जन्म-स्थानका निर्णय करनेके लिए प्राप्त साक्ष्य न तो यथेष्ट रूपमें विश्वसनीय हैं और न पर्याप्त ही। उपर्युक्त सन्त तुलसी साहबने तुलसीदासके रूपमें राजापुरमें अपना पूर्वका जन्म अवश्य बताया है और तुलसीदास साहब हाथरसके रहने वाले थे। अतः इतना अवश्य निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि अबसे सवा सौ—डेढ सौ वर्ष पहले भी राजापुर ही तुलसीदासके जन्मस्थानके रूपमें प्रसिद्ध था।

तुलसीदासका बालपन बड़ी कठिनाइयोंमें बीता था। जीवनके प्रारम्भिक वर्षोंमें ही उनके माता-पितासे उनका विछोह हो गया था और तदनन्तर वे भिक्षा माँग-माँगकर उदरपूर्ति कर रहे थे। अपनी इस अवस्थाका तुलसीदासने बहुत करुण चित्र उपस्थित किया है (कवि० उत्तर० ५७, ७३ तथा विनय० २२७, २७५)। उनके भोजनाच्छादनकी कुछ सन्तोषजनक व्यवस्था तब हुई जब उनको किसी हनुमान् मन्दिरमें आश्रय मिल गया। इस मन्दिरके साथ लगी हुई खोंची माँग-माँगकर वे निर्वाह करने लगे थे (बाहुक २१, २९, ३४ तथा विनय० ३३)।

कदाचित इसके कुछ ही समय पश्चात् तुलसीदासने राम भक्तिकी दीक्षा ली। उनके गुरु कौन थे, यह भी निश्चित रूपसे ज्ञात नहीं है। 'मानस'के एक सोरठे (बाल० वन्दना)से यह ध्वनि ली जाती है कि उनके गुरुका नाम नरहरि या नरहरि दास था, किन्तु उक्त सोरठेसे न यह अर्थ निश्चित रूपमें लिया ही जा सकता है, और न इस नाममात्रके ज्ञानसे हमारा कोई लाभ ही हो सकता है, क्योंकि उस युगमें इन नामोंके अनेक व्यक्ति हुए हैं। उनके गुरु रामभक्त अवश्य थे, यह तुलसीदासके ही एक आत्मोल्लेखमें ज्ञात होता है : "गुरु कह्यो राम भजन नीको मोहिं लागत राज डगरोसो" (विनय० १७३)।

कुछ और काल व्यतीत होनेपर उन्होंने कदाचित् विवाह भी किया। 'दोहावली'के एक दोहेमें विरक्त तुलसीदाससे उनकी स्त्रीका उसे साथ ले जानेका आग्रह है। यह भी कहा जाता है कि स्त्रीके वचनोंसे ही प्रभावित होकर तुलसीदासने गृहत्याग किया, किन्तु इसके लिए पर्याप्त प्रमाण नहीं हैं। यदि ऐसा होता तो वे सम्भवतः

इस तथ्यका कृतज्ञतापूर्वक कहीं-न-कहीं उल्लेख अवश्य करते।

विरक्त तुलसीदास कुछ समयतक चित्रकूटमें रामभक्तिकी साधना करते रहे, यह 'रामाज्ञा प्रश्न' (२, ६, १-३ तथा ७, ४, ७)से प्रकट है। अन्य कुछ तीर्थोंकी भी उन्होंने यात्राएँ की थीं (कवि० उत्तर १३८-१४०, १४४-१४७, विनय० ६०), किन्तु कब-कब की थीं, यह नहीं कहा जा सकता। 'रामचरित मानस'की रचना सं० १६३१ में उन्होंने अयोध्यामें आरम्भ की थी (बा० ३४-३५), किन्तु उसका कुछ अंश उन्होंने काशीमें भी लिखा (किष्किं० बन्दना)। पीछे तो वे काशीमें ही रहने लगे थे और यहीं उनका देहावसान भी हुआ। काशीमें वह स्थान अब भी है, जहाँ तुलसीदास रहते थे और जो आजकल तुलसीघाटके नामसे प्रसिद्ध है। वहाँपर तुलसीदासजी द्वारा स्थापित रामपंचायतनकी प्रतिमा और बीसा यन्त्रपर प्रतिष्ठित हनुमान्‌जीकी प्रतिमा अब भी वर्तमान है, जिसकी पूजा होती है। तुलसीदासजी द्वारा प्रयुक्त नावका एक अंश, उनकी चरणपादुका और उनके हाथसे लिखे गये 'मानस'का एक अंश आज भी वहाँ सुरक्षित है। इसके साथ ही तुलसीदासका प्राचीनतम चित्र भी उपलब्ध है, जिसमें उनके शिष्य टोडरमल चँवर डुलाते दिखाये गये हैं। इसी स्थानके अन्तर्गत तुलसीदासजी द्वारा काशीमें स्थापित हनुमानजीका मन्दिर आजकल 'संकटमोचन'के नामसे विख्यात है।

हिन्दी हस्त-लिखित पुस्तकोंके खोज-विवरणोंके अनुसार निम्नलिखित रचनाएँ तुलसीदासकी कही जाती हैं—१. 'रामलला नहछू', २. 'रामाज्ञा प्रश्न', ३. 'जानकीमंगल', ४. 'रामचरितमानस', ५ 'पार्वतीमगल', ६. 'गीतावली', ७. 'कृष्ण गीतावली', ८. 'विनयपत्रिका', ९. 'बरवै रामायण' १०. 'दोहावली', ११. 'कवितावली', १२. 'हनुमान बाहुक', १३. 'वैराग्य-सन्दीपिनी', १४. 'सतसई', १५. 'कुण्डलिया रामायण', १६. 'अंकावली', १७. 'बजरंग बाण', १८. 'बजरग साठिका', १९. 'भरत मिलाप', २०. 'विजय दोहावली', २१. 'बृहस्पति काण्ड', २२. 'छन्दावली रामायण', २३. 'छप्पय रामायण', २४. 'धर्मरायकी गीता' २५. 'ध्रुव प्रश्नावली', २६. 'गीता भाषा', २७. 'हनुमान् स्तोत्र', २८. 'हनुमान् चालीसा', २९. 'हनुमान् पंचक', ३०. 'ज्ञान दीपिका', ३१. 'राम मुक्तावली', ३२. 'पदबन्द रामायण', ३३. 'रस भूषण', ३४. 'साखी तुलसीदासजीकी', ३५. 'संकट मोचन', ३६. 'सतभक्त उपदेश', ३७. 'सूर्य पुराण', ३८. 'तुलसीदासजीकी बानी' और ३९. 'उपदेश दोहा'।

तुलसीदासजीने अपनी रचनाओंकी कोई सूची नहीं दी है और न किसी अन्य प्राचीन साक्ष्यके आधारपर तुलसीदासकी प्रामाणिक रचनाओंकी सूची निर्मित की जा सकती है, किन्तु कुछ रचनाएँ असन्दिग्ध रूपसे उन्हीं की हैं, यथा 'रामचरितमानस', 'गीतावली', 'विनयपत्रिका' तथा 'कवितावली'। इन्हींकी कसौटीपर उन अन्य रचनाओंको भी कसा जा सकता है, जो तुलसीदासकी कही जाती हैं। उनकी अवधी रचनाओंके लिए 'मानस' को और ब्रजभाषाकी रचनाओंके लिए 'विनयपत्रिका' और 'कवितावली' को प्रमाण माना जा सकता है। यह अवश्य है कि देश-काल-भेदसे भाषा-शैलीमें अन्तर पड़ता है, फिर भी उसके मूल-तत्त्व बहुत-कुछ बने रहते हैं। इस प्रसंगमें सबसे अधिक निश्चयात्मक रचनाओंका भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन होना चाहिये था, किन्तु खेद है कि अभीतक इस प्रकारका कोई प्रयास नहीं किया गया है।

प्राचीन प्रतियोंकी प्राप्ति भी इस विषयमें हमारी कुछ सहायता कर सकती थी, किन्तु थोड़ी ही रचनाएँ ऐसी हैं, जिनकी बहुत प्राचीन प्रतियाँ प्राप्त हैं। कविके जीवन-काल-की निश्चित रूपसे मान्य प्रतियाँ केवल तीन हैं—एक 'विनयपत्रिका' की, जो सं० १६६६ की है और दूसरी 'गीतावली' की, जो उसीके साथ की है, यद्यपि अन्तमें खण्डित होनेके कारण अ-तिथिकी हो गयी है। इनके अतिरिक्त सं० १६६५में लिखी 'रामलला नहछू'की भी एक प्रति प्राप्त हुई है। 'रामाज्ञा प्रश्न'के संस्करणके आधारपर तथा कुछ अन्य साक्ष्योंसे यह भी प्रमाणित है कि किसी समय इस रचनाकी एक प्रति सं० १६५५ की थी। 'रामचरित मानस' की अनेक प्रतियाँ तुलसीदासके समयकी कही जाती हैं और कमसे कम एक जो राजापुरमें है, उनके हाथकी लिखी भी कही जाती है, किन्तु कोई भी प्रति उनके जीवन-कालकी भी प्रमाणित नहीं हो सकी है, उनके हाथकी लिखी होनेका तो कोई प्रश्न नहीं है। 'जानकी मंगल'की एक प्रतिके शीर्षमें प्रतिलिपिकारसे भिन्न व्यक्तिका लिखा हुआ "सं० १६३२ कथा किये सवा" लिखा हुआ है। इसके साक्ष्यपर कोई विश्वास नहीं किया जा सकता है, प्रतिका अन्तिम पत्रा अब नहीं है।

भाषा-शैलीके साक्ष्यके अनुसार 'रामाज्ञा प्रश्न', 'जानकी मंगल' और 'पार्वती मंगल' 'रामचरित मानस'से मेल खाते हैं। 'रामाज्ञा प्रश्न'में एक दोहेमें सं० १६२१ की तिथि दी हुई है, यद्यपि कुछ असाधारण ढंगसे दिये हुए होनेके कारण वह कठिनाईसे समझमें आती है; 'पार्वती मंगल'में जय संवत् फाल्गुन शु० ५, गुरुवारकी तिथि दी हुई है, जय संवत् १६४२ में पड़ा था, किन्तु उक्त सवत्‌में तिथिका दिया हुआ विस्तार ठीक नहीं आता है, सं० १६४३ में ठीक आता है, इसलिए सम्भव है कि तिथिके दोहेमें कोई सन्देहजनक बात हो किन्तु शेष रचनाकी भाषा शैली 'जानकी मंगल' और 'मानस' की शैलीसे पूरा-पूरा मिलती है। 'जानकी मंगल' वस्तु-योजना तथा भाषा-शैली दोनों दृष्टियोंसे 'रामाज्ञा प्रश्न' और 'रामचरित मानस'की मध्यवर्तिनी है। भाषा-शैलीमें 'कृष्ण गीतावली' प्रायः 'गीतावली'का ही अनुसरण करती है। 'गीतावली' और 'विनयपत्रिका'की शैलियोंमें अभिन्नता है ही। 'हनुमान बाहुक' पूर्ण रूपसे 'कवितावली'के अंतिम अंशोंकी भाषा-शैलीमें रचा गया है और उसके परिशिष्टके रूपमें प्रायः प्रतियोंमें मिलता है। 'दोहावली' एक संग्रह है, जिसमें तुलसीदासकी पूर्ववर्ती रचनाओंसे कुछ दोहे रख लिये गये हैं और कुछ ऐसे निजी दोहे हैं जिनकी भाषा-शैली भी प्रायः संकलित दोहोंकी भाषा-शैलीसे मिलती है। 'सतसई' और 'दोहावली'में

अनेक दोहे समान रूपसे मिलते हैं। लगता यह है कि कुछ दोहे स्फुट रूपमें तुलसीदासके देहान्तके बाद मिले। उन्हें तथा अन्य कुछ दोहोंको उनकी अन्य रचनाओंसे चुनकर, एक बड़े संग्रहका आकार दे दिया गया। 'सतसई' इसी प्रकार उन्हींमें और नवकल्पित दोहे रखकर बना दी गयी। 'बरवै'की स्थिति भी 'सतसई'जैसी लगती है। 'रामलला नहछू'की भाषा-शैली 'जानकी मंगल'से मिलती-जुलती है, यद्यपि उसमें साहित्यिकता नहीं है, किन्तु उसकी सं० १६६५ की प्रति प्राप्त हुई है, इससे उसकी प्रामाणिकतामें सन्देह प्रतीत नहीं होता है।

फलतः ऊपर उल्लिखित रचनाओंमें-से प्रथम बारह प्रामाणिक रूपमे तुलसीदासकी मानी जा सकती हैं। शेष रचनाओंके सम्बन्धमें इस प्रकारके दृढ साक्ष्य प्राप्त नहीं है, इसलिए उनकी प्रामाणिकता संदिग्ध है। यदि वे तुलसीदास की प्रमाणित भी हों तो उनसे कविके साहित्यिक योगमें कोई अभिवृद्धि नहीं होगी।

तुलसीदासकी ये कृतियाँ तत्कालीन अनेक काव्य-रूपोंकी प्रतिनिधि रचनाएँ हैं। उनका 'रामचरित मानस' 'चउपईबन्ध' परम्पराका काव्य है, जिसमें मुख्य छन्द चौपाई है और बीच-बीचमें दोहे, सोरठे, हरिगीतिका तथा अन्य छन्द आते हैं। उनके 'रामलला नहछू', 'जानकी मगल' और 'पार्वती मंगल' तत्कालीन स्त्रियोंके प्रचलित छन्द सोहरमें लिखे गये हैं। 'नहछू'में केवल सोहर छन्द है, शेष दोमें सोहरकी निश्चित पंक्तियोंके बाद 'हरिगीतिका'की पक्तियाँ आती हैं। 'रामाज्ञा प्रश्न' तत्कालीन 'दूहाबन्ध' काव्य-परम्परामें लिखा गया है। साथ ही सारी रचनामें रामकथाके साथ-साथ प्रश्न विचारका भी समावेश किया गया है। 'गीतावली', 'कृष्ण गीतावली' तथा 'विनयपत्रिका'में 'गीतबन्ध' परिपाटीकी रचनाएँ हैं। 'कवितावली' उस कवित्त-सवैया-पद्धतिकी एक उत्कृष्ट रचना है, जो तुलसीदासके बाद बहुत अधिक लोकप्रिय हुई। उसके पृथक छः काण्ड रामकथाके हैं और उत्तर काण्ड विविध विषयोंके छन्दोंका है। 'दोहावली'में कविके स्फुट दोहोंका संकलन है। 'हनुमान् बाहुक' बाहु-पीड़ा-निवारणके लिए कवित्त-सवैयोंमें की गयी हनुमान्की स्तुतिपरक रचना है। 'बरवै'की मुद्रित रूपमें स्थिति 'कवितावली' जैसी ही है, किन्तु कुछ प्रतियोंमें उसका एक अन्य रूप भी मिलता है, जिसकी स्थिति 'दोहावली' जैसी है। दर्शनीय यह है कि इतने विविध काव्य-रूपोंमें तुलसीदासने रामकथा या रामभक्तिविषयक रचनाएँ ही प्रस्तुत की है। 'हनुमान् बाहुक' इस विषयमें एक प्रकारका अपवाद है, किन्तु उसे 'कवितावली'का एक परिशिष्ट समझना चाहिये—'कवितावली'में महामारी आदिके जो छन्द उसके उत्तर काण्डमें आते हैं, 'बाहुक'के छन्द उन्हींकी परम्परामें है।

प्रबन्ध और मुक्तक, दोनों प्रकारके काव्योंके सर्वोत्कृष्ट उदाहरण भी इसी प्रकार उनकी रचनाओंमे मिलते हैं। 'रामचरित मानस' हिन्दी साहित्यका सर्वोत्कृष्ट महाकाव्य है। सोहर छन्दोंमें लिखे हुए 'नहछू' और दोनों 'मंगल' साधारणतः अच्छे खण्डकाव्य हैं। 'गीतावली', 'कृष्ण गीतावली,' 'विनयपत्रिका' हिन्दीके सर्वोत्तम गीतिकाव्योंमें-से हैं। 'विनयपत्रिका' तो हिन्दीके विनयकाव्योंमें अद्वितीय है। और 'कवितावली', आगे रीतिकालमें जिस मुक्तक-परम्पराका विकास हुआ, उसके प्रारम्भमें आने वाली एक परम उत्कृष्ट रचना है।

हम यह देख ही चुके हैं कि तुलसीदासने दो भाषाओंमें रचना की है। अतः भाषाओंकी दृष्टिसे यह कहनेमें कोई अत्युक्ति न होगी कि दो साहित्यिक माध्यमों—अवधी और ब्रजभाषा—पर एक साथ जितना पूर्ण अधिकार तुलसीदासको था, हिन्दी साहित्यमे न पहले मिला और न बाद मे।

पुनः काव्यका बहिःपक्ष तुलसीदासमें जितना सबल है, उसका अन्तःपक्ष उससे भी सबल है। तुलसीदासने राम-भक्तिसे प्रेरित होकर अपने राम-कथा ग्रन्थोंमे राम तथा उनके भक्तोंका जो चरित्र प्रस्तुत किया है, वह मानवताके सर्वोच्च आदर्शोंकी स्थापना करता है। इस सम्बन्धमें उनका 'रामचरितमानस' एक अद्वितीय रचना है। उनके गीति-काव्यों 'गीतावली' और 'कृष्ण गीतावली'में भावनाओंकी जो सरिता उमडी है, उसकी तुलना हिन्दी साहित्यमें केवल सूरदासकी भावधारामें की जा सकती है। पुनः 'विनय-पत्रिका'के पदोंमे जो द्रवित कर देनेवाला आत्म-निवेदन उन्होंने प्रस्तुत किया है, वह हिन्दी साहित्यमे बेजोड़ है। इस प्रकार तुलसीदास, वस्तुतः ऐसे महाकवि हैं, जिनपर हिन्दी साहित्य उचित ही गर्व कर सकता है।

[सहायक ग्रन्थ—१. नोट्स आन तुलसीदास : जी० ए० ग्रियर्सन (१८९३); २. श्री गोस्वामी तुलसीदासजी : शिवनन्दन सहाय (१९१६); ३. गोस्वामी तुलसीदास : श्यामसुन्दर दास (१९३१); ४. गोस्वामी तुलसीदास : रामचन्द्र शुक्ल (१९२३); ५. दि रामायण आव तुलसी दास : जे० एम० मैकफी (१९३०); ६. तुलसी दर्शन : डा० बलदेव प्रसाद मिश्र (१९३८); ७. मानस दर्शन : डा० श्री कृष्ण लाल (१९४९); ८. रामकथा का विकास : डा० कामिल बुल्के (१९५०); ९. तुलसीदास और उनका युग : डा० राजपति दीक्षित (१९५२); १०. तुलसीदासः डा० माताप्रसाद गुप्त (१९४२) तथा ११. तुलसी ग्रन्थावली (१९४९)।] —मा० प्र० गु०

तुलसी-भूषण—रसरूप द्वारा रचित अलंकार ग्रन्थ है। इसकी रचना सन् १७५८ ई० में की गयी—"दस बसु सत संवत हुता, अधिक और दस एक।" 'तुलसी भूषण'की दो हस्तलिखित प्रतियाँ दो भिन्न स्थानोंसे प्राप्त हुई हैं, जिनका लिपिकाल क्रमशः १८२९ ई० और १८४० ई० है। ना० प्र० स० काशीमे सॉवलदासकृत हस्तलिखित प्रति है। इस ग्रन्थमें कविने "औरनके लच्छन (लक्षण) लिए" हैं और "रामायनके लच्छ" (उदाहरण) प्रस्तुत किये हैं। वस्तुतः इसमे 'काव्य-प्रकाश', 'कुवलयानन्द' तथा 'चन्द्रालोक' आदिका आधार लिया गया है और तुलसीके 'रामचरित-मानस', 'गीतावली' तथा कहीं-कहीं 'बरवै रामायण'में प्राप्त होनेवाले अलंकारोंका उदाहरण रूपमे निर्देश किया गया है—"श्री तुलसी निज भनित मैं, भूषण धरे दुराय। ताहि प्रकासन की भई, मेरे चितमें चाय॥" (खो० रि०, सन् १९०४)।

'तुलसी-भूषण'में ५६ पृष्ठ हैं। रसरूपके अनुसार तुलसी ने प्रभेदों को छोड़कर १११ अलंकारोंका प्रयोग किया है—"एकादश अरु एक शत मुख्य अलंकृत रूप। विविध भेद इनके धरे तुलसीदास अनूप।" कविका "रामायणके लच्छ" में रामायणका अर्थ तुलसी द्वारा लिखी राम-कथा है, क्योंकि उदाहरण अन्य कृतियोंके भी दिये गये हैं। प्रारम्भमें ६ शब्दालंकार हैं और बादमें शब्दालंकारका विवेचन अकरादि क्रमसे किया गया है, यह इस ग्रन्थकी विशिष्टता है। साथ ही लक्षण देकर दूसरे कविके उदाहरण देना, यह हिन्दी रीति-परम्पराकी दृष्टिसे नवीन बात है।

[सहायक ग्रन्थ—खो० रि० (सं० ११, ७६, २६९); मि० वि०; हि० सा० बृ० इ०, (भा० ६); हि० सा०।] —सं०

तुलसी साहिब—ये 'साहिब पन्थ'के प्रवर्तक थे। 'शब्दावली'-के (भाग १), सम्पादकने इनका जन्म सन् १७६३ ई० और मृत्यु सन् १८४३ ई० में माना है। क्षितिमोहन सेनने जन्म सन् १७६० ई० और मृत्यु सन् १८४२ ई० में माना है। कहा जाता है कि ये मराठा सरदार रघुनाथ रावके ज्येष्ठ पुत्र और बाजीराव द्वितीयके बडे भाई थे। इनका घर का नाम श्याम राव था। इतिहास इस अनुश्रुतिका समर्थन नहीं करता। इतिहास ग्रन्थोंके अनुसार रघुनाथ रावके ज्येष्ठ पुत्रका नाम अमृतराव था। प्रसिद्ध है कि १२ वर्ष की अवस्थामें ही ये घरसे विरक्त होकर निकल पडे थे और हाथरसमें आकर रहने लगे थे। क्षिति बाबूके अनुसार पहले ये 'आवापन्थ'में दीक्षित हुए थे और बादको सन्तमतमें आये किन्तु ऐसा माननेका कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है।

तुलसी साहबने हृदयस्थ 'कंज गुरु' या 'पद्मगुरु'को ही अपना पथ-निर्देशक माना है। इसे ही कहीं-कहीं इन्होंने 'मूल सन्त' भी कहा है। इस प्रकार ये किसी लोक-पुरुषको अपने गुरु-रूपमें स्वीकार नहीं करते। 'घटरामायन', 'शब्दावली', 'रत्नसागर' और 'पद्मसागर' (अपूर्ण) इनकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं, जो सभी वेलवेडियर प्रेस, प्रयागसे प्रकाशित हो चुकी हैं। पिण्ड-ब्रह्माण्डकी एकता, सृष्टि-रहस्य, ज्ञान, योग, भक्ति, वैराग्य, कर्मवाद और सत्सग-महिमा इनकी रचनाओंके प्रमुख विषय हैं। 'घट रामायन'के अनुसार काशीमें रहते हुए इन्हें मुसलमान, जैनी, गुसाईं, पण्डित, संन्यासी, कबीरपन्थी और नानकपन्थी साधुओंसे आध्यात्मिक प्रश्नों पर विवाद करना पडा था और इन्होंने सभीका समाधान किया था। इसी कृतिमें इन्होंने अपने को पूर्व जन्ममें गोस्वामी तुलसीदास बताया है और अपना जीवन-वृत्तान्त भी दिया है, जो तर्क-सम्मत नहीं है। बडथ्वाल साहब इस वृत्तान्तको क्षेपक मानते हैं।

तुलसी साहबने मनोमय जगत्‌में सूक्ष्मतर आध्यात्मिक भूमियोंकी कल्पना भी की है और सूक्ष्मतम भूमिको 'महाशून्य', 'सत्तलोक' या 'अगमपुर' कहा है। इस प्रकार की कल्पनाएँ अन्य परवर्ती सन्तोंमें भी पायी जाती हैं। इन्होंने सन्तमतको साम्प्रदायिक भावनासे मुक्त करनेकी चेष्टा की है किन्तु ऐसा लगता है कि इनमें आत्म-महत्त्व-स्थापनकी प्रवृत्ति अत्यधिक प्रबल थी, इसीलिए कहीं-कहीं परस्पर-विरोधी, असंगत और दुरूह कल्पनाएँ करनेमें भी इन्हें संकोच नहीं हुआ। इनमें कौशल, चतुरता और आडम्बर अधिक है, सन्तोंकी सहजता कम। काव्य-दृष्टिसे इनकी रचनाएँ उत्कृष्ट नहीं हैं। आध्यात्मिक विषयोंकी आग्रहपूर्ण अभिव्यक्तिके कारण इनकी वाणी सरस नहीं हो सकी है।

[सहायक ग्रन्थ—हिन्दी काव्यमें निर्गुण सम्प्रदाय: पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल; उत्तरी भारतकी सन्तपरम्परा: परशुराम चतुर्वेदी; सन्तबानी सग्रह, पहिला भाग, वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग; घटरामायन, बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग।] —रा० चं० ति०

तुष्टिमत्, तुष्टिमान्—उग्रसेनका पुत्र, कंसका भाई। —मो० अ०

तृणावर्त—कंसका सहायक एक असुर। इसे कंसने कृष्णके प्राण लेनेके उद्देश्यसे गोकुल भेजा था। उसने भयंकर बवण्डर रूपसे सारे गोकुलको धूल-कंकड़ोंके भीषण वातचक्र-मे डालते हुए कृष्णको आकाशमें उठा लिया। कृष्णने उसकी गर्दन कसकर पकड ली और अपने शरीरको इतना भारी बना लिया कि भार सम्भालनेमें असमर्थ वह पृथ्वी-पर गिर पड़ा। कृष्ण द्वारा दबाये जानेसे उसके नेत्र फट गये और उसका प्राणान्त हो गया। (दे० सू० पद० ६९४-६९५)। —मो० अ०

तेगबहादुर गुरु—सिखोंके नवें गुरु तेगबहादुरका जन्म १ अप्रैल, सन् १६२१ (५ बैसाख बदी, संवत् १६७८ वि०) को गुरुके महल, अमृतसरमें हुआ। इनके पिताका नाम गुरु हरगोविन्द साहब था। वे सिखोंके छठे गुरु थे। उनकी माता श्रीनानकी देवी थीं। गुरु तेगबहादुर वैराग्यके मूर्तिमान् स्वरूप थे। वे बचपनमें ही सन्त-स्वभाव, गम्भीर प्रकृति और विरागी-वृत्तिके महात्मा थे। उनकी शिक्षा-दीक्षा गुरु हरिगोविन्दजीकी ही निगरानीमें हुई। छठे गुरु हरिगोविन्दजी उनके सम्बन्धमें प्रायः कहा करते थे, "हमारा पुत्र शूरवीर और तलवारका धनी होगा।" इसलिए उनका नाम ही तेगबहादुर रखा गया। गुरु तेगबहादुरजी अत्यन्त, सुन्दर, हृष्टपुष्ट, शूरवीर, विद्वान्, अस्त्र-शस्त्रमें निपुण और राजनीतिज्ञ थे।

गुरुजीका विवाह करतारपुर-निवासी लालचन्दकी सुपुत्री श्री गूजरीजीके साथ हुआ, जिनके गर्भसे श्री गुरु गोविन्द-सिंह उत्पन्न हुए थे। गुरु तेगबहादुर सिंह की गृहस्थी बड़ी सुखमय थी। अपने पिता श्री गुरु हरगोविन्दके ज्योति-ज्योतिमें लीन होनेके उपरान्त, गुरु तेगबहादुर सन् १६४४ ई०में अपनी माता नानकी देवी तथा सहधर्मिणी गूजरी देवीके साथ बकाला गाँवमें जा बसे। वहाँ गुरु तेगबहादुर अपना जीवन कठोर साधना, संयम, चिन्तन और ध्यानमें व्यतीत करते थे।

आठवें गुरु हरिकृष्णजीके ज्योति-ज्योतिमे लीन होनेके पश्चात् गुरु तेगबहादुर अप्रैल, सन् १६६४ ई० में ४३ वर्षकी आयुमें गुरु-गद्दीपर आसीन हुए। गुरु-गद्दीपर विराज-मान होते ही वे तरनतारन और गोइन्दवाल आदि स्थानों का दर्शन करने गये। तत्पश्चात् 'हरि मन्दिर'के दर्शनार्थ अमृतसर पहुँचे। वहाँसे थोडी दूरपर गुरुद्वारा 'थड़ा साहब' में जाकर गुरु तेगबहादुरजी विराजमान हुए। इसके बाद

कीर्तिपुर गये। यह स्थान होशियारपुर जिलेमें है। मार्गमें स्थित जालन्धर, नवाशहर, दुर्गा आदि नगरोंमें भी धर्म-प्रचार किया। गुरु तेगबहादुरने कीर्तिपुरसे छः-सात मीलकी दूरीपर आनन्दपुर नगर बसाया। यह स्थान सतलजके तटपर जैना देवीके पर्वतके पास है। कुछ ही दिनोंमें आनन्दपुर सुन्दरी नगरीमें परिवर्तित होकर सिखोंका प्रमुख केन्द्र बन गया। सिखोंके इतिहासमें आनन्दपुरका बड़ा महत्त्व है। यह वही स्थान है, जहाँ कश्मीरके पण्डितोंने औरंगजेबके अत्याचारोंसे भयभीत होकर गुरु तेगबहादुरसे धर्मरक्षाकी भिक्षा माँगी थी, जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया था।

सन् १६६५ ई० में गुरु तेगबहादुरने अपनी धर्म-प्रचार यात्रा आरम्भ की। इस यात्रामें उन्होंने अनेक स्थानोंमें विचरण किया। वे मालवा और बांगर आदि क्षेत्रोंसे होते हुए उत्तर-प्रदेश और बिहारमें सिख धर्मके प्रचारके लिए गये। मंजी साहब (पटियाला), कड़ा-मानिकपुर (जिला इलाहाबाद), अहियापुर (इलाहाबाद), बनारस, पटना (बिहार), धोबड़ी (आसाम) आदि स्थानोंमें उनके यात्रा-सम्बन्धी गुरुद्वारे हैं। आगरा, मथुरा, गया शहरोंमें भी गुरु तेगबहादुरकी स्मृतिमें गुरुद्वारे हैं।

राजा विशनसिंह जोधपुरीने आसामके राजापर आक्रमण करना चाहा। आक्रमण करनेके लिए जाते हुए वे गुरु तेगबहादुरसे गया शहरके पास मिले। गुरु तेग-बहादुर स्थितिकी गम्भीरता देखकर विशन सिंहके साथ आसाम चले गये और परिवारको पटना (बिहार) में छोड़ दिया। उन्होंने दोनों राजाओंमें सन्धि करा दी और जनता का रक्तपात होनेसे बचा दिया। आसाममें ही उन्हें (गुरु) गोविन्द सिंहजीके जन्मका समाचार प्राप्त हुआ।

कलकत्ता और जगन्नाथपुरी होते हुए गुरु तेगबहादुरजी पटना वापस आ गये। वे पटनामें तीन महीने रहे। तत्पश्चात् परिवारको फिर वहीं छोड़कर बनारस और अयोध्या होते हुए सन् १६६८ ई० में आनन्दपुर पहुँचे। उन्होंने सन् १६७२ ई० में अपने परिवारको आनन्दपुर बुलवा लिया। वे मई, १६६८ ई० से जून १६७५ ई० तक आनन्दपुर ही में रहे।

औरंगजेबने कश्मीरके हिन्दुओंपर महान् अत्याचार करना प्रारम्भ किया। उन्हें बलात् मुसलमान बनाया जाने लगा। कश्मीरी हिन्दुओंने अपने कुछ प्रतिनिधि गुरु तेग-बहादुरकी सेवामें भेजे। उन प्रतिनिधियोंने अत्यन्त करुण भाषामें अपना दुःख सुनाया। गुरु तेगबहादुर उनका दुःख सुनकर अत्यन्त दुःखी हुए। इसी बीच गोविन्द सिंहजी (तब गोबिन्दराय) गुरु तेगबहादुरके पास आ गये और पितासे उदासीका कारण पूछा। पहले तो गुरु तेगबहादुरने उन्हें ९ वर्षका अबोध बालक जानकर कारण नहीं बताया। किन्तु गोविन्द सिंहजीके हठ करनेपर कहा, "कश्मीरी हिन्दुओंपर घनघोर विपत्ति पड़ी है। औरगजेब बलात उन्हें मुसलमान बनाना चाहता है। इसलिए मैं दुःखी हूँ।" इसपर गोविन्द सिंहने पूछा, "पिताजी, इनके बचनेका भी कोई उपाय है?" गुरु तेगबहादुरका उत्तर था, "हाँ, है।" गोविन्द सिंहने फिर जिज्ञासा की, "क्या है पिताजी?" गुरु तेगबहादुरने आँखोंमें आँसू भरकर कहा, "बेटा, यदि कोई महान् धार्मिक एवं पवित्रात्मा औरंगजेबकी धर्मान्धता-की कोपाग्निमें अपनी आहुति दे, तो यह विपत्ति टल सकती है।" गोविन्द सिंहने तुरन्त ओजस्वी वाणीमें कहा "पिताजी, आपसे बढ़कर इस समय भारतवर्षमें कौन धार्मिक और पवित्र है? आप ही इस अग्निकी आहुति बनिये।" गुरु तेगबहादुरने मन ही मन समझ लिया कि ९ वर्षके गोविन्द सिंह गुरु-गद्दीका भार भलीभाँति सँभाल लेंगे और हर्षातिरेकसे उनका मुख चूम लिया। उन्होंने कश्मीरी पण्डितोंसे कहा, "पण्डितजी, आप लोग दिल्ली चले जायँ और औरंगजेबसे कहें कि हमारे धार्मिक नेता गुरु तेग-बहादुर हैं। यदि वे इस्लाम धर्म कबूल कर लें, तो हम लोग भी मुसलमान बन जायेंगे।" पण्डित लोग दिल्ली पहुँचे औरंगजेबसे सारी बात कह दी। औरंगजेबने प्रसन्न होकर गुरु तेगबहादुरकी गिरफ्तारीका हुक्म जारी किया।

इधर गुरु तेगबहादुरजी आनन्दपुरका सारा प्रबन्ध करके दिल्लीकी ओर रवाना हो गये। उन्होंने अपनेको जान-बूझकर आगरेमें गिरफ्तार करवा दिया। गुरुजीके साथ उनके पाँच शिष्य भी थे—भाई मतिदास, भाई दयाला, भाई जेता, भाई ऊदा और भाई गुरदित्ता।

औरंगजेबने गुरु तेगबहादुरको मुसलमान बनानेके लिए बड़े-बड़े प्रलोभन दिये किन्तु वे हिमालयकी भाँति अडिग रहे। भाई मतिदासको आरेसे चिराया गया और भाई दयालाको देगमें उबाला गया किन्तु न तो उन्होंने 'उफ' किया और न धर्म-परिवर्तन ही। कहते हैं कि जिस समय भाई मतिदासके ऊपर आरा चलाया जा रहा था, उस समय वे शान्त भावसे 'जपजी'का पाठ कर रहे थे। सन् १६७५ ई०में चाँदनी चौकमें गुरु तेगबहादुरजीका सिर काटा गया। बड़ा रोमांचकारी दृश्य था। भाई जेता अवसर पाकर उनका सिर आनन्दपुर ले गये। लक्खी व्यापारीकी सहायतासे भाई ऊदाजीने सद्गुरुके शरीरकी दाह-क्रिया अपने गाँवमें जाकर की। अब वह स्थान 'रकाबगंज' गुरुद्वारेके नामसे प्रसिद्ध है। गुरु तेगबहादुरके इस आत्म-बलिदानको देखकर लोगोंने उन्हें 'हिन्दकी चादर'की उपाधि दी। गुरु तेगबहादुरका जहाँ सिर काटा गया था, वहाँ अब एक गुरुद्वारा है, जिसका नाम 'शीशगंज' है। 'शीशगंज' चाँदनी चौकमें है और 'रकाबगंज' नयी दिल्ली में।

'विचित्र नाटक'में गुरु गोविन्द सिंहजीने गुरु तेगबहादुर-की शहीदीके बारेमें इस प्रकार लिखा है—"धर्म हेत साका जिन कीया, सीस दिया पर सिर न दीया। साधन हेत इति जिन करी। सीस दिया पर सी न उचरी।" गुरु तेगबहादुरकी सारी आयु ५४ वर्ष और आठ महीने रही।

गुरु तेगबहादुरजीकी वाणी 'गुरु ग्रन्थ साहिब'में 'महला ९'के नामसे दर्ज है। उनके ५९ 'सबद' और ५७ 'सलोक' हैं। 'सलोक' 'गुरु ग्रन्थ साहिब'के अन्तमें है। उनके सबद १५ रागोंमें हैं—गउड़ीमें ९, आसामें १, देव-गन्धारीमें ३, बिहागड़ामें १, सोरठिमें १२, धनासरीमें ४, जैतसरीमें ३, टोडीमें १, तिलंगमें ३, बिलावलमें ३, राम-

कलीमें ३, मारूमें ३, बसन्तमें ५, सारंगमें ४ तथा जैजावंती में ४।

गुरु तेगबहादुरकी सारी वाणी ब्रजभाषामें है। हाँ, यत्र-तत्र पंजाबीके शब्द अवश्य हैं। उनकी वाणी भक्ति एवं वैराग्यपूर्ण है। वैराग्यकी अधिकता प्रायः सर्वत्र दिखलायी पड़ती है। उन्होंने यही बतलाया है कि मनको समस्त विकारोंसे हटाकर परमात्माकी शरणमें जाना चाहिये। सांसारिक वैभव रात्रिके स्वप्न और बादलकी छायाके समान हैं। मोह, अभिमान और मायिक आकर्षणोंको त्याग कर मुक्तिमार्गका अन्वेषण करना चाहिये। अनेक जन्म-जन्मान्तरोंमें भटकनेके बाद मानव-जीवन प्राप्त होता है। मनुष्य-योनिमें ही परमात्माकी भक्ति सम्भव है। परमात्माका आश्रय त्यागकर सांसारिक ऐश्वर्योंके लिए जन-जनका मुहताज बनकर मनुष्य अपने आपको उपहास्य ही बनाता है।

[सहायक ग्रन्थ—(१) द आदि ग्रन्थ : आर्नेस्ट ट्रम्प, लन्दन, १८७७ ई०; (२) द सिक्ख रिलीजन : मेक्स आर्थर मैकालिफ, खण्ड ४, क्लेरेण्डन प्रेस, आक्सफर्ड, १९०९ ई०; (३) द बुक आफ टेन मास्टर्स : पूरनसिंह, सिख युनीवर्सिटी प्रेस, निस्बत रोड, लाहौर, १९२० ई०।] —ज० रा० मि०

तेजनारायण काक–जन्म १९०४ ई० में। गद्य-काव्य और खलील जिब्रानके ढंगकी सूक्तियाँ लिखी हैं। माध्यमके अनुकूल आपकी रचनाओंमें संक्षिप्ति और मार्मिकता है। गद्य-काव्योंका संकलन 'मदिरा' नामसे प्रकाशित हुआ है। —स०

तोताराम–प्रेमचन्दके उपन्यास 'निर्मला'का पात्र। तोताराम निर्मलाका विधुर पति है। उसमें वैयक्तिकताका अभाव और कृपणता, ये दो बातें विशेष रूपसे पायी जाती हैं। कृपण होते हुए भी दम्पत्ति-विज्ञानमें कुशल है, क्योंकि नयी पत्नीपर खूब खर्च करता है। वह विलासी है, उसमें सहृदयताका अभाव है और अवस्थाके अनुसार शंकालुहृदय है। मानवीय गुणोंका विकास उसमें नहीं मिलता। वह पूर्णतः घटना-चक्रोंके अधीन बना रहता है। अपनी कपटपूर्ण नीति द्वारा मन्साराम और निर्मलामें विरोध उत्पन्न करना चाहता है, जिससे वह अपनेको घृणित बना डालता है। अपने पुत्र सियारामके चले जानेपर उसके हृदयमें ममता जगती है, नहीं तो उसके चरित्रमें उज्ज्वलता कम ही दृष्टिगोचर होती है। —ल० सा० वा०

तोताराम वर्मा–(बाबू) तोताराम वर्माका जन्म सन् १८४७ ई०में अलीगढ़में हुआ था। बी० ए०की शिक्षा प्राप्त कर लेनेके उपरान्त ये फतेहगढ़के स्कूलमें हेडमास्टर नियुक्त हुए। कुछ दिनों बाद वहाँसे इनकी बदली बनारसके लिए हुई थी। सरकारी नौकरीका यह कार्य इनसे बहुत दिनों तक न चल सका। ये प्रकृतिसे लेखक थे और किसी बन्धनमें बंधकर रहना इन्हें प्रिय नहीं था। १८७६-७७ ई०के आसपास नौकरीसे अलग होकर ये हिन्दी-भाषा तथा साहित्यकी श्रीवृद्धिमें संलग्न हो गये। इनकी मृत्यु ५५ वर्षकी अवस्थामें सन् १९०२ ई०में हुई थी।

साहित्यकारके रूपमें तोताराम वर्मा भारतेन्दु युगके लेखकोंमें स्मरणीय हैं। ये भारतेन्दु हरिश्चन्द्रके मित्रों और सहयोगियोंमें थे। इनकी कुछेक रचनाएँ 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' (मैगजीन)में प्रकाशित हुई थीं। इन रचनाओंमें 'अद्भुत अपूर्व स्वप्न' (निबन्ध) और 'कीर्त्ति केतु' (नाटक) विशेष उल्लेखनीय हैं। 'केटो वृत्तान्त' नामक इनकी एक अन्य नाट्य-रचना एक सफल कृतिके रूपमें लोकप्रिय हुई। यह वस्तुतः जोजेफ एडीसनकृत 'केटो' शीर्षक नाटकका अविकल अनुवाद है। इसमें मूल कृतिमें पात्रोंके नाम तक ज्यों-के-त्यों ले लिये गये हैं। दृश्यके स्थानपर गर्भाकका प्रयोग किया गया है। भाषा और शैलीकी दृष्टिसे कोई विशेष बात नहीं मिलती। वाक्य-रचना शिथिल प्रतीत होती है और जहाँ-तहाँ कुछ पूर्वी प्रयोग भी दिखलायी पड़ते हैं। तोताराम वर्माने उक्त कृतियोंके अतिरिक्त 'स्त्री सुबोधिनी' आदि कुछ और पुस्तकें लिखी थीं और 'राम रामायण' नामसे वाल्मीकीय रामायणका हिन्दी अनुवाद प्रारम्भ किया था किन्तु इनका यह अन्तिम कार्य अधूरा ही रह गया।

तोताराम वर्माने हिन्दीकी सेवाके लिए कई आन्दोलनात्मक प्रचार कार्य भी किये। इन्होंने १८७७ ई०में अलीगढ़से 'भारत-बन्धु' नामक पत्र निकाला। 'लायल-लाइब्रेरी'की स्थापना की और श्रेष्ठ पुस्तकोंके मुद्रण तथा प्रकाशनके निमित्त 'भाषा संवर्धिनी सभा' स्थापित की। इस सभाकी सहायताके लिए ये पुस्तकें लिखकर उसे अर्पित कर दिया करते थे।

तोताराम वर्माके समस्त साहित्यिक तथा भाषाविषयक कार्योंका मूल्यांकन करते हुए यह कहा जा सकता है कि ये अपने समयके सजग भाषा-सेवी और सक्रिय लेखक थे। सरकारी नौकरीका परित्याग करके इन्होंने हिन्दीकी बहुमुखी उन्नतिमें अपना योग प्रदान किया। "हिन्दीका हरएक प्रकारसे हितसाधन करनेके लिए जब भारतेन्दुजी खड़े हुए थे, उस समय उनका साथ देनेवालोंमें ये भी थे।"

[सहायक ग्रन्थ—(१) आधुनिक हिन्दी साहित्य : लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, हिन्दी परिषद्, प्रयाग; (२) हिन्दी साहित्यका इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल, ना० प्र० स० काशी।] —र० भ०

तोशलक–कंसका मल्ल, जो मुष्टिक आदि अन्य पहलवानोंके साथ कृष्ण द्वारा कंसके अखाड़ेमें मारा गया था। —मो० अ०

तोषनिधि–ये कंपिला (जिला फर्रुखाबाद)के रहनेवाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण ताराचन्द अवस्थीके पुत्र थे। इनको 'सुधानिधि'के रचयिता प्रसिद्ध तोष कविसे भिन्न माना गया है। रामचन्द्र शुक्लने भ्रमसे तोषको ही तोषनिधि मान लिया है। 'दिग्विजय भूषण'की भूमिकामें भगवतीप्रसाद सिंहने इनके तीन ग्रन्थोंका उल्लेख किया है—'व्यंग्यशतक', 'रतिमंजरी' और 'नखशिख'। 'रतिमंजरी'का रचनाकाल १७३७ ई० दिया गया है, जिससे कविके उपस्थिति-कालका अनुमान लगाया जा सकता है। —सं०

तोषमणि–इनके जीवनवृत्त और कालके समयमें कुछ निश्चित पता नहीं चलता। रामचन्द्र शुक्लने इनको तोषनिधि भ्रमवश मान लिया है। इनके 'सुधानिधि'

ग्रन्थके एक दोहेसे पता चलता है कि इन्होंने सं० १६९१ अर्थात् सन् १६३५ में गुरुवार, आषाढ़ पूर्णिमाके दिन उपर्युक्त ग्रन्थकी रचना की थी। तोष शृंगवेरपुर (सिंगरौर) के रहनेवाले चतुर्भुज शुक्लके पुत्र थे। एक सवैया—"शुक्ल चतुर्भुजको सुत तोष बसे सिंगरौर जहाँ रिषि थानो। दक्षिन देव नदी निकटै दस कोस प्रयागहि पूरब मानो।" से प्रकट होता है कि इनके पिता प्रयागकी पूरब दिशामें दस कोस दूर गंगाके तट पर सिंगरौर गाँवके रहने वाले थे। सिंगरौर ग्राम रामायणका शृंगवेरपुर है, जो शृंगी ऋषिकी तपोभूमि था, किन्तु शुक्लजीने 'सुधानिधि'का काल सं० १७९१ दिया है, जो ठीक नहीं लगता। ये भाषा पर अधिकार रखने वाले रससिद्ध कवि थे।

'सुधानिधि'के अतिरिक्त इनके दो और ग्रन्थोंका पता चला है—'विनयशतक' और 'नखशिख'। इनमें काव्य प्रतिभा और आचार्यत्व दोनोंका समावेश तो था ही, किन्तु कल्पना और भावकी सघनता इनके काव्य-गुणको अधिक द्योतित करती है, यद्यपि कहीं-कहीं ऊहात्मकतामें पूर्ण अत्युक्तियोंके दर्शन भी होते हैं। इनकी रचनामें उक्ति चमत्कार तथा सरसताका संयोग रसखानके समान हुआ है। भाषा-प्रवाह और आलंकारिक सौन्दर्य विशेष रूपसे पाया जाता है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० इ०; हि० सा०; हि० सा० बृ० इ० (भा० ६)।] —ह० मो० श्री०

त्यागपत्र–दे० 'जैनेन्द्रकुमार'।

त्रिकूट–(१) एक पर्वत जिसपर लंका स्थित थी।

(२) मेरुके चरणपर स्थित एक पर्वत, जिसकी रजत, लौह, स्वर्णकी तीन चमकदार चोटियाँ हैं। इसीकी उपत्यकामें देवबालाओंका विहार-वन है। —मो० अ०

त्रिजटा–एक साध्वी राक्षसी, जिसे रावणने सीताकी देख-रेखके लिए अशोकवाटिकामें नियुक्त किया था। इसने रावण द्वारा त्रस्त सीताको सान्त्वना देते हुए अपना स्वप्न सुनाया था कि रावणका नाश हो जायगा। इसीने वह विशिष्ट स्वप्न देखा था, जिसके फलस्वरूप राक्षसोंके विनाशकी सम्भावना हुई थी (दे० 'रामचरितमानस', लंकाकाण्ड)। —मो० अ०

त्रिपुर–तारकासुरके तीन पुत्रों (तारकाक्ष, कमलाक्ष, विद्युन्माली)के लिए मयदानव द्वारा निर्मित सोने, चाँदी और लोहेके तीन नगर, जो बादमें सामूहिक रूपसे त्रिपुर कहलाये। इन राक्षसोंसे पीड़ित देवोंकी प्रार्थनापर शिवने एक ही बाणसे त्रिपुरका नाश कर दिया। तभीसे शिवका नाम त्रिपुरारि हुआ। —मो० अ०

त्रिपुरदास–प्रसिद्ध वैष्णव भक्त। प्रियादासके मतानुसार यह स्वामी विट्ठलनाथजीके सर्वाधिक प्रिय शिष्य थे। —मो० अ०

त्रिपुर सुंदरी–एक देवी। इन्होंने अर्जुनको बाणविद्या सिखायी थी। अल्मोड़ेमें इनका एक मन्दिर है। —मो० अ०

त्रिपुरहरि–अग्रदासजीके गुरुभाई, रामानन्दी सम्प्रदायके एक प्रसिद्ध भक्त। ये पयहारीजीके चौरासी शिष्योंमें गिने जाते हैं। —मो० अ०

त्रिलोचन–१. त्र्यम्बक क्षेत्रमें शिवका नाम।

२. एक प्रसिद्ध वैष्णव आचार्य, जो सन्त ज्ञानदेव और नामदेवके गुरु थे। कहा जाता है कि स्वयं भगवान्‌ने इनके यहाँ भृत्य बनकर सेवा-कार्य किया था। किंवदन्ती है कि ये रुद्र-सम्प्रदायके तथाकथित संस्थापक विष्णुस्वामीकी परम्परामें हुए थे, जिसमें आगे चलकर वल्लभाचार्यने पुष्टि-मार्गकी स्थापना की। —मो० अ०

त्रिविक्रम–विष्णुके अवतार वामन। बलिके यज्ञमें याचना करनेपर जब तीन पग पृथ्वी दान दी तो इन्होंने तीन पगोंमें स्वर्ग, मर्त्य और पाताल लोक नाप लिये। ब्रह्म पुरुषोत्तम-की मूर्तिको भी त्रिविक्रम कहते हैं। ऋग्वेदमें विष्णुको त्रिविक्रम कहकर जो उनके पृथ्वी, अन्तरिक्ष और आकाशमें त्रिपाद-क्षेप करनेका उल्लेख हुआ है, उससे कुछ विद्वान् अनुमान करते हैं, यह त्रिविक्रम विष्णु प्रसिद्ध वैदिक देवता सविता (सूर्य) ही हैं परन्तु त्रिविक्रम शब्द विष्णुके अर्थमें रूढ़ हो गया है। —मो० अ०

त्रिविक्रा–एक कुबड़ी दासी, जो कंसके यहाँ लेपनादि द्रव्य पहुँचाया करती थी (दे० 'कुब्जा')।

त्रिवेणी–प्रयागमें गंगा, यमुना, सरस्वतीका संगम। तीन धाराएँ। प्रायः तीन वस्तुओंकी उपमा इसके माध्यमसे दी जाती है। —मो० अ०

त्रिशंकु–सूर्यवंशमें उत्पन्न एक राजा, जो सशरीर स्वर्ग जाना चाहते थे किन्तु वशिष्ठके शापसे चाण्डाल हो गये थे। इन्होंने विश्वामित्रको अपना गुरु बनाया और अपनी मनोभिलाषा प्रकट की। विश्वामित्रने यज्ञ करवाकर उन्हें अपने तपोबलसे स्वर्ग भेज दिया लेकिन इन्द्रने क्रोधित होकर उन्हें नीचे फेंका। इसपर क्रुद्ध होकर विश्वामित्र उनके लिए नये स्वर्गका निर्माण करने लगे। इसपर देवोंने घबराकर विश्वामित्रसे समझौता कर लिया। इसलिए त्रिशंकु अधोमुख आकाश और पृथ्वीके मध्य लटक गये। हिन्दी साहित्यमें इनका कभी प्रतीक और कभी उपमाके रूपमें उल्लेख मिलता है। 'अज्ञेय'ने अपने विचारोंको व्यक्त करते हुए अपने निबन्ध ग्रन्थका नाम ही 'त्रिशंकु' रख दिया है। —मो० अ०

त्रिशीर्ष–रावणका एक पुत्र, जो हनुमान् द्वारा मारा गया था। —मो० अ०

त्रेता–चतुर्युगी (सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग)में-से एक युग, जिसकी अवधि १२,९६,००० वर्ष है। इसी युगमें रामका अवतार हुआ था। पुराणों एवं सभी सन्त ग्रन्थोंमें इसका उल्लेख मिलता है। मानसमें भी इसका उल्लेख है। —मो० अ०

थान कवि (थानराय)–ये डौंडियाखेरे (जि० रायबरेली)के निहाल रायके पुत्र और चन्दन बन्दीजनके भानजे थे। इन्होंने बैसवाड़ाके चँडेला गाँवके जमींदार दलेल सिंहके नामपर 'दलेल प्रकाश' नामक काव्य-शास्त्र ग्रन्थकी रचना १७९१ ई०में की। इस ग्रन्थमें रामचन्द्र शुक्लके अनुसार "विषयोंका कोई क्रम नहीं। इसमें गण-विचार, रस-भाव-भेद, गुण-दोष आदिका कुछ निरूपण है और कहीं-कहीं अलंकारोंके कुछ लक्षण आदि भी दे दिये गये हैं।" इसकी एक विशेषता है कि कुछ राग-रागनियोंके भी लक्षण दिये गये हैं। काव्यशास्त्रकी दृष्टिसे इसमें छिट-पुट प्रयास ही है,

कुछ विषयोंमें अवश्य सफलता मिल सकी है। भाषा सरल, प्रवाहपूर्ण और व्यंजक है।

[सहायक ग्रन्थ—मि० वि०; हि० सा० इ०।] —सं०

दंड—इक्ष्वाकुके मूर्ख, उन्मत्त एवं अयोग्य पुत्र, जो विन्ध्य तथा शैवल पर्वतके मध्यकी भूमि परमधुमत्त नामक नगर बसाकर रहते थे। इनके पुरोहित शुक्र थे। एक बार चैत्र मासमे भार्गवके आश्रममें जाकर इन्होंने गुरु-कन्या अरजासे बलात्कार किया। ऋषिने शाप दिया कि यह राजा राज्य सहित नष्ट हो जाय। क्षमा याचनार्थ इन्होंने सौ वर्षतक तपस्या की। फिर अनावृष्टिके कारण सौ योजनतक यह भूमि अरण्य हो गयी। तबसे इस प्रदेशका नाम दण्डकारण्य पड़ा। —मो० अ०

दंडकारण्य—दूसरा नाम दंडक वन। रामचन्द्रने इसमें वनवासका अधिक समय बिताया था। यहाँ रहकर उन्होंने शबरीके बेर खाये, लक्ष्मणने शूर्पणखाको विकृतांग बनाया तथा दोनों भाइयोंने अन्य अनेक राक्षसोंका वध किया। —मो० अ०

दंडधर—१. मगधके एक राजा, जो महाभारतमे अर्जुनके हाथों मारे गये।

२. धृतराष्ट्रके एक पुत्र, जिन्हें भीम द्वारा युद्धमें वीरगति प्राप्त हुई।

३. पाण्डवपक्षीय एक राजा, जिनका शरीरान्त कर्णके बाणों द्वारा हुआ। —मो० अ०

दंडपाणि—१. वहीनरके पुत्र, मतान्तरसे मेधावीके पुत्र।

२. काशिराज पौड्रक वासुदेवके पुत्र। श्रीकृष्ण द्वारा अपने पिताके वधसे क्षुब्ध हो इन्होंने कृष्ण महेश्वर नामक यज्ञ करके भगवान् शंकरसे कृष्णके नाशका उपाय पूछा। कृष्ण भयभीत हो द्वारका चले गये और वहाँसे सुदर्शन चक्र द्वारा उन्होंने दण्डपाणिका उनके नगर सहित संहार कर दिया। —मो० अ०

दंडभृत—त्रेताके एक क्षत्रिय, जो रामके अश्वमेध यज्ञके घोड़ेके रक्षार्थ शत्रुघ्नके साथ गये थे। —मो० अ०

दंडी मुंडीश्वर—शिवका एक अवतार। —मो० अ०

दंतवक्र—दंतवक्रको दंतवक्त्र भी कहा गया है। इनके पिता का नाम वृद्धशर्मा और माताका श्रुतदेवी था। सहदेव द्वारा ये राजसूय-यज्ञमें पराजित हुए थे। इनकी मृत्यु इन्हींकी इच्छासे कृष्ण द्वारा हुई और इन्हें मोक्ष प्राप्त हुआ। 'सूरसागर'के दशम स्कन्ध ४८४० वे पदमें इनका उल्लेख मिलता है। यह कथा कृष्णके औदार्यको प्रकट करती है। —श्री० व०

दंभ—१. अधर्मका पुत्र, मतान्तरसे आयुका पुत्र।

२. कुशद्वीपमें एक नदी। —मो० अ०

दंश—एक दानव। भृगुकी स्त्रीका अपहरण करनेके कारण भृगुने उसे कीट योनिमें जन्म लेनेका शाप दिया। तदनुसार वह अलर्क नामक कीड़ा हुआ। जब उसने प्रार्थना और क्षमा याचना की तो भृगुने कहा कि जा मेरे वंशज रामके द्वारा तेरी मुक्ति होगी। परशुरामके आश्रममे जब कर्ण विद्या सीख रहे थे, तो एक दिन परशुराम उसकी जंघा पर सिर रखकर सो गये। तब उसी कीड़ेने कर्णकी जांघको बेधना शुरू किया। रक्तके स्पर्शसे परशुराम जागे और कर्णकी सहनशक्ति देख उन्होंने अनुमान किया कि यह कोई क्षत्रिय है। साथ ही उन्होंने क्रोधित नेत्रोंसे कीड़ेकी ओर देखा और वह भस्म होकर अपने पूर्व रूपको प्राप्त हो गया। —मो० अ०

दंष्ट्रा—क्रोधवशकी कन्या तथा पुलहकी स्त्री, जिससे सिंह, चीता, हाथी आदिकी उत्पत्ति हुई। —मो० अ०

दक्ष—ब्रह्माके दाहिने अँगूठेसे उत्पन्न एक प्रजापति। इन्होंने स्वायंभुव मनुकी प्रसूतिसे विवाह किया। उनकी १६ पुत्रियोंमें-से १३ धर्मको, एक अग्निको, एक पितृसूको और एक शिवको ब्याही थी। एक सत्रमें आनेपर सभी उपस्थितोंने खड़े होकर उनका सम्मान किया, केवल ब्रह्मा और शिव बैठे रहे। इसपर क्रोधित होकर दक्षने शाप दिया कि शिवको यज्ञमे भाग नहीं मिलेगा। इसपर शिवके नान्दीने अत्यन्त कुपित होकर दक्षको अभिशाप दिया कि तुम सारा आत्मज्ञान खोकर बकरीकी मुखाकृतिके हो जाओगे। यह सुनकर भृगुने प्रतिशाप दिया कि शिवोपासना पाखण्ड कहलायेगी। ब्रह्मा द्वारा नियामक रूप नियुक्त दक्षने एक यज्ञ किया, जिसमें शिवके अतिरिक्त अन्य सभी देवता आमन्त्रित किये गये। सतीने शिवसे जानेकी आज्ञा माँगी। शिवने उनका अतीव आग्रह देखकर हाँ कर दी। यज्ञमें शिवका अपमान देखकर सतीने योगाग्निमें भस्म होकर शरीर छोड़ दिया। इसपर शिव-गण यज्ञ विध्वंस करने लगे। लेकिन भृगुने एक ऐसा देव-वर्ग उत्पन्न किया, जिसने शिव-गणोंको पराजित कर दिया। यह सुनकर शिवजीने क्रोधाभिभूत होकर वीरभद्रको भेजा। उन्होंने जाकर दक्षका शीश काट लिया और भृगुकी दाढ़ी नोच ली। यज्ञ विध्वंस हो गया। बादमें ब्रह्माने विग्रह शान्त किया और तब दक्षको बकरीका सिर तथा भृगुको बकरेकी दाढ़ी प्राप्त हुई। —मो० अ०

दक्षिणा—१. यज्ञकी पत्नी तथा वहिन और बारह याम देवोंकी माता।

२. रुचिकी पुत्री अकूती तथा हरिके अवतार सुयज्ञकी स्त्री। इनके १२ पुत्र स्वायंभुव मनु-युगके तुषित देव कहलाते थे। —मो० अ०

दत्त १—बलराम तथा कृष्णके विद्यागुरु संदीपनिका पुत्र, जिसे पंचजन नामक राक्षस उठाकर समुद्रमे ले गया था। यह दैत्य समुद्रमें शंखरूप धारणकर निवास करता था। संदीपनिने जब गुरु-दक्षिणाके बदले अपने पुत्रको मांगा तो भगवान् कृष्णने समुद्रमे प्रवेश कर राक्षसका वध किया और दत्तको निकाल लाये। शंख-रूप पंचजनके मृत शरीरको उन्होने अपना शंख बना लिया, जो 'पांचजन्य' कहलाया। —मो० अ०

दत्त २—दत्त नामके कई कवियोंका उल्लेख मिलता है—'सज्जन विलास', 'वीर विलास' तथा 'ब्रजराज पंचाशिका' (१७५१ ई०) के रचयिता गयावासी कुँवर फतेहसिंहके आश्रित दत्त (रचनाकाल १७५१ ई०) प्राचीन माढ़ि, जिला कानपुरवाले दत्त, नऊरानीपुर और गुलजार ग्रामवासी जनगोपाल और दत्तलाल 'दत्त' उपनामधारी दत्त और 'लालित्यलता' नामक ग्रन्थके रचयिता कवि दत्त। इन सभी कवियोंकी रचनाओंमें प्रायः 'दत्त' अथवा

कभी कहीं 'दत्त कवि' (छन्दपूर्तिके लिए कवि शब्दका प्रयोग)की भी छाप मिलती है, जिसके नाते यह निश्चय कर पाना कठिन होता है कि कौन किस दत्तकी रचना है। 'दिग्विजय भूषण'में 'कवि दत्त' तथा 'दत्त कवि' नामसे दो, 'शिवसिंह सरोज'में तीन और 'मिश्रबन्धु विनोद' में दो दत्त कवियोंका स्पष्ट एवं पृथक्-पृथक् उल्लेख किया गया है। किन्तु काव्य गरिमाके विचारसे इनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध और महत्त्वपूर्ण हैं अन्तिम दत्त, जिन्होंने 'लालित्य लता' नामक उत्कृष्ट रीति-ग्रन्थकी रचना की है। इसलिए इन्हींके बारेमें किंचित् विस्तारसे विचार किया जाता है।

ये जाजमऊके (जिला कानपुर), जो असनी और कन्नौज-के बीच स्थित है, रहनेवाले थे। शिवसिंहने इस कविका जन्मकाल १७७९ ई० बताया है, जबकि ग्रियर्सन उसकी स्थिति १८१५ ई० के बाद मानते हैं किन्तु इतना होते हुए भी दोनों ही यह मानते हैं कि वे चरखारीके राजा खुमान-सिंहके दरबारी कवि थे। चूंकि खुमानसिंहका शासन-काल १७६१ से १७८२ ई० तक ही था, इस कारण कविको उक्त समय ('सरोज' और 'ग्रियर्सन')से सम्बद्ध मानना बिल-कुल गलत होगा। 'लालित्य लता'का निर्माण-काल है— सन् १७३४ ई०। इस नाते दत्त १८वीं शतीके पूर्वार्द्धमें ही पैदा हुए होंगे। 'लालित्य लता' सुन्दर अलंकार-ग्रन्थ है। कविता सरस, चमत्कारिणी एवं मनोहर है। भाव और कलागत, दोनों प्रकारके वैशिष्ट्य उनकी कवितामें दिखायी पड़ते हैं। इसी कारण अधिकांश समीक्षकोंने इनकी गणना पद्माकर-श्रेणीके कवियोंमें की है।

[सहायक ग्रन्थ—खो० वि० (वार्षिक १९०३, त्रै० २); मि० वि० (भा० २); शि० स०; दि० भू०; हि० सा० इ०।]
—रा० त्रि०

दत्तात्रेय–अत्रि एवं अनुसूयाके पुत्र; विष्णुके एक अवतार। ये महान् विद्वान्, योगी एवं प्रसिद्ध ऋषि थे। भागवतके अनुसार इन्होंने पृथ्वी, आकाश, वायु, जल, अग्नि, चन्द्रमा सूर्य, कबूतर, अजगर, सागर, पतंग, मधुकर, हाथी, मधु-हारी, हरिण, मछली, पिंगला वेश्या, गृद्ध, बालक, कुमारी कन्या, बाण-निर्माता, सर्प, मकड़ी और तितली—ये चौबीस गुरु बनाये थे।
—मो० अ०

दधिमुख—राम सेनाका एक गम्भीर वानर। रामाश्वमेध-के अश्वकी रक्षामें उन्होंने भी शत्रुघ्नका साथ दिया था।
—मो० अ०

दधीचि–एक प्रसिद्ध ऋषि। वृत्रासुरसे त्रस्त इन्द्रको भगवान्-ने बताया कि दधीचिकी हड्डियोंसे बना अस्त्र ही वृत्रासुरके सिरको काट सकेगा। अतः देवताओंने दधीचिके पास जाकर यह अभिलाषा प्रकट की। दधीचिने लोकसेवार्थ अपना शरीर त्याग दिया। तब विश्वकर्माने उनकी हड्डियोंसे वज्रका निर्माण किया, जिसके प्रयोगसे इन्द्र द्वारा वृत्रासुरका वध हुआ। तबसे दधीचि त्यागके प्रतीक बन गये हैं। त्यागके प्रतीकके रूपमें इनके नामका प्रयोग मानससे लेकर आज तक किया गया है।
—मो० अ०

दनु–कश्यपकी स्त्रियोंमेंसे एक और दक्ष प्रजापतिकी पुत्री। यह दानवोंकी माता थी। इसीसे इसके पुत्रोंका नाम दानव हुआ।
—मो० अ०

दम–१. मरुतके पुत्र, राज्यवर्द्धनके पिता।

२. क्रियाके पुत्र।

३. बैकुण्ठके देवता।

४. नरिष्यन्तके पुत्र एक दण्डधर, विक्रान्तके पिता।

५. दमयन्तीके भ्राता, विदर्भनरेश भीमके पुत्र।
—मो० अ०

दमनक–१. दुर्योधन पक्षके एक योद्धा।

२. दमयन्तीके एक भाई।

३. अंगिरा और सुरूपाके पुत्र।

४. एक ऋषि, जिनके आशीर्वादसे विदर्भनरेश भीमकी सन्तानें हुई।

५. वासुदेव रोहिणीके पुत्र।

६. तीसरे द्वापरमें भगवान्‌के अवतार।
—मो० अ०

दमयन्ती–विदर्भराज भीमकी कन्या, जो हंस द्वारा गुण-श्रवण करके नैषधराज नलपर अनुरक्त हो गयी थी। उसने स्वयम्वरमें देवताओं तथा अन्य राजाओंको छोड़कर नलको ही जयमाला पहनायी। फलतः कुपित होकर कलिने उन्हें अनेक कष्ट दिये। नल हृतराज्य होकर दमयन्तीके साथ वन-वन भटकने लगे। एक बार निद्रितावस्थामें दमयन्ती की आधी साड़ी फाड़कर नलने स्वयं पहन ली और उसे छोड़-कर चले गये। दमयन्ती अनेक कष्ट सहती हुई सुबाहुनगर पहुंची, जहाँ राजगृहमें सैरन्ध्रीका कार्य करने लगी। वहांसे उसके पिताके व्यक्ति ढूंढकर उसे ले गये। वहां जाकर उसने स्वयम्वरका मिथ्या समाचार भेजकर नलको बड़े सुन्दर उपायसे बुलवाया और उन्हें पहचान लिया।
—मो० अ०

दयानंद (महर्षि)–जन्म सन् १८२४ ई०में गुजरात (काठियावाड़)के टंकारा ग्राममें औदीच्य ब्राह्मण परि-वारमें हुआ था। कुलकी परम्परा और विद्वान् पिताके आग्रहसे उनकी प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा संस्कृतमें हुई। बादमें वैदिक-साहित्यका विस्तृत अध्ययन किया और प्रचलित हिन्दू-धर्म तथा सच्चे वैदिक धर्मके बीच उत्पन्न खाईको पाटनेका दृढ़ संकल्प किया। इस प्रकार हिन्दू समाजमें प्रचलित रीति-रिवाज और कर्मकाण्डमें सुधार करना उनके जीवनका प्रथम उद्देश्य बन गया। उनके मनमें समाज-सुधारके लिए अदम्य उत्साह था, इस-लिए उन्होंने देशकी सभी सुधारवादी संस्थाओंसे सम्पर्क स्थापित किया, जिनमें सर्वप्रथम बंगालका ब्रह्मसमाज था। इसके बाद ही उनके हृदयमें एक अलग वैदिक-समाजके रूप-में 'आर्यसमाज'की स्थापनाका विचार जाग्रत् हुआ। ७ अप्रैल, १८७५ ई०में उन्होंने 'आर्यसमाज'की स्थापना बम्बईमें की।

जिन सामाजिक तथा धार्मिक आन्दोलनोंके द्वारा हिन्दी-को प्रोत्साहन मिला तथा जिन प्रवृत्तियोंका इस दिशामें योगदान रहा है, उनमें आर्यसमाज सर्वप्रथम है। यही कारण है कि हिन्दी भाषा अथवा साहित्यका इतिहास लिखनेवाले सभी विद्वानोंने हिन्दी-गद्यके निर्माणमें आर्य-समाजके योगको विशेष महत्त्वपूर्ण माना है। महर्षि दयानन्द व्यावहारिक पुरुष थे, अतः देशकी सार्वजनिक गतिविधिमें मिलकर आर्यसमाजका प्रचार करना चाहते

थे। इसके लिए उन्होंने देशकी विभिन्न भागोंमें भ्रमण करते हुए अपने मतका प्रचार किया और अनुभव किया कि इसके व्यापक प्रचारके लिए ऐसी भाषाका आश्रय लिया जाय, जिससे उत्तर, दक्षिण और पूर्व-पश्चिम सभी जगह काम चलाया जा सके। वह भाषा हिन्दी थी। स्वामी दयानन्दने इस तथ्यको समझकर स्वयं हिन्दी सीखी और यह घोषणा की कि प्रत्येक आर्यसमाजीके लिए हिन्दी पढ़ना आवश्यक है और हिन्दी ही 'आर्यभाषा' अर्थात् समस्त देशकी भाषा है। उन्होंने यह भी निर्णय किया कि आर्यसमाजका समस्त साहित्य हिन्दीमें प्रकाशित हो और हिन्दी ही इसके प्रचारका प्रमुख माध्यम हो। उनकी मातृभाषा गुजराती थी और वे अंग्रेजी नहींके बराबर जानते थे। हिन्दीके बलपर ही वे विभिन्न प्रान्तोंकी यात्रा कर सके और बड़ी सभाओंमें भाषण दे सके। स्वामी दयानन्द और उनके अनुयायियोंमे उत्साह था। ग्रन्थोंकी रचना करनेके अतिरिक्ति उन्होने कई मासिक और साप्ताहिक पत्रिकाएँ भी निकालनी आरम्भ कीं और कई प्रचलित पत्रिकाओंमें लेख इत्यादि भी हिन्दीमें ही लिखे, जिससे समाजको उनके विचार मिले और हिन्दीकी भी प्रगति हुई। प्रान्तीयता, जातिभेद और अन्य सभी सीमाओंको लाँघकर जहाँ-जहाँ आर्यसमाजकी स्थापना हुई, वहाँ हिन्दी-प्रेम भी पहुँचा। इसका सबसे बड़ा उदाहरण पंजाब है। जैसे ही पंजाब आर्यसमाजके प्रभावमें आया, अन्य जातियोंके विरोध और सरकारकी उपेक्षाके बावजूद भी हिन्दीका पौधा वहाँ जड़ पकड़ने लगा और बढ़ते-बढ़ते उसने वृक्षका रूप ले लिया।

आर्य समाजकी स्थापनाके साथ ही साथ महर्षि दयानन्द ने हिन्दीमें लिखना आरम्भ किया और जो ग्रन्थ उन्होंने पहले संस्कृतमें लिखे थे, उनका हिन्दीमें अनुवाद कराया। इनमें प्रमुख 'वेदभाष्य' और 'संस्कारविधि' है। अपने भाष्यके विषयमें दयानन्दने लिखा है कि भाष्यमें ज्ञान, कर्म, उपासना काण्डका विचार नहीं किया जायगा, क्योंकि दर्शन, उपनिषद् तथा ब्राह्मण ग्रन्थोंमें उनका विवेचन किया गया है, अतः भाष्यमें केवल अर्थ ही दिये जायेंगे।

महर्षि दयानन्दके वैदिक ग्रन्थोंमें 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' सबसे उत्तम मानी जाती है। इसमें दयानन्दकी असाधारण योग्यता और मौलिकताका परिचय मिलता है। इनकी शैलीका मर्म इस ग्रन्थकी पंक्ति-पंक्तिमें प्रतिभासित होता है।

ऋषि दयानन्दके भाष्योंमें यौगिक शैलीकी प्रधानता है। एक प्रकारसे दयानन्दकी भाष्य-शैलीकी तुलना निरुक्तकार यास्कसे की जाती है। हिन्दी भाषामें इन भाष्योंके अनुवाद हो चुके हैं। अतः हिन्दी भाषाको दयानन्दसे वैदिक-साहित्यकी बहुमूल्य निधि मिली है।

'संस्कार-विधि'में दयानन्दने हिन्दुओंके सोलह वैदिक संस्कारोंकी परिपूर्ण व्याख्या की है। उनकी भाषासे यह स्पष्ट होता है कि लेखक अहिन्दी भाषी है, संस्कृतका विद्वान् है और बोलचालकी हिन्दीसे उसका विशेष परिचय नहीं है। इसकी चिन्ता न करके वे हिन्दीको अपनाये रहे और आर्यसमाजके आधारभूत ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश'की रचना मूल रूपसे ही उन्होंने हिन्दीमें आरम्भ की। 'सत्यार्थप्रकाश' स्वामी दयानन्दका सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ है। कोई भी ऐसा विषय नहीं, जिस पर उन्होंने इसमें प्रकाश न डाला हो। उनकी मातृभाषा गुजराती होनेके कारण गुजराती, संस्कृत-अध्ययनके कारण संस्कृत और मथुरामें दीर्घ निवासके कारण ब्रजभाषा—इन तीन भाषा-शैलियोंका सम्मिश्रण 'सत्यार्थप्रकाश'की भाषामें मिलता है। इससे यह ज्ञात होता है कि दयानन्दमें समन्वयात्मक दृष्टि थी और इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए हिन्दी उनके लिए साधन रूप थी। उन्होंने वैदिक धर्मके प्रचारार्थ, जनजागर्तिके आह्वान हेतु हिन्दी भाषाको अपनाकर उसकी उन्नतिके द्वारका उद्घाटन किया।

धार्मिक, सामाजिक, राष्ट्रीय और शिक्षाके क्षेत्रमें दयानन्दकी हिन्दी-सेवा अद्वितीय है। जिस प्रकार स्वराज्यका मूलमन्त्र दयानन्दने देशको इन शब्दोंमें दिया—"कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है।" हिन्दीके लिए राष्ट्रभाषाके भवन-निर्माणकी नींव भी उन्होने रखी।

हिन्दीआन्दोलनके लिए यह घटना एक ईश्वरीय देन थी। दयानन्दके वेदोंके अधिकृत ज्ञान, उनके प्रबल सुधारवाद, ओजस्वी व्यक्तित्व, लेखन और प्रचारसे हिन्दी भाषाको असाधारण और अभूतपूर्व गति मिली, व्यापकता मिली और सबसे बढ़कर लोकप्रियता मिली। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि वैदिक-साहित्यके अतिरिक्त दयानन्दका पत्र-व्यवहार भी महत्त्वपूर्ण है। दयानन्द केवल धार्मिक आचार्य ही नहीं थे, सार्वजनिक नेता भी थे। प्रचारकार्यके लिए देश-भ्रमणमें सैकड़ों व्यक्तियोंसे परिचय और पत्र-व्यवहार हुआ। उनके पत्र-व्यवहारकी भाषा पहले संस्कृत और बादमें बराबर हिन्दी रहती थी, उत्तर भले ही और भाषाओंमें आते हो। मदाम ब्लावस्की तकको उन्होंने हिन्दीमें लिखा। मदाम ब्लावस्कीको उन्होंने एक पत्रमें लिखा था "जिस पत्रका हमसे उत्तर चाहें उसको नागरी कराकर हमारे पास भेजा करें।" वैदिक संग्रहालय, अजमेरमें दयानन्दके अनेक हस्तलिखित पत्र सुरक्षित हैं। इन पत्रोंसे उनके हिन्दी-प्रेम और अपने सिद्धान्तोंमें आस्थाका पूर्ण परिचय मिलता है। १३ जुलाई १८७९ को अल्कोटको लिखे एक पत्रसे ज्ञात होता है कि उन्होंने अल्कोटको भी हिन्दी सीखनेकी प्रेरणा दी। इसका प्रमाण इस वाक्यसे मिलेगा—"मुझे सुनकर खुशी हुई कि आपने नागरी पढ़ना आरम्भ कर दिया है।"

वैदिक साहित्यको जनसाधारणमें सुलभ बनानेकी अभिलाषासे एक विज्ञापनमें दयानन्दने लिखा है—"वेद और प्राचीन आर्य-ग्रन्थोंके ज्ञानके बिना किसीको संस्कृत विद्याका यथार्थ फल नहीं हो सकता और इसके बिना मनुष्य जन्मका साफल्य होना दुर्घट है। इसलिए जो सनातन प्रतिष्ठित पाणिनीय अष्टाध्यायी महाभाष्य नामक व्याकरण है, उसमें अष्टाध्यायी सुगम संस्कृत और आर्यभाषामें वृत्ति बनानेकी इच्छा है" (ऋ० द० स० के पत्र और विज्ञापनसे)

ग्रामवासियोंकी सुविधाके लिए भी दयानन्दको हिन्दी और देवनागरीके प्रयोगपर कितना ध्यान रहता था,

यह उनके श्यामजी कृष्ण वर्मा को ७ अक्तूबर, १८७८ को लिखे पत्रसे ज्ञात होता है। उन्होंने लिखा था—"अबकी बार भी वेदभाष्यके लिफाफेके ऊपर देवनागरी नहीं लिखी गयी। जो कहीं ग्राममें अंग्रेजी पढ़ा न होगा तो अंक वहाँ कैसे पहुँचते होंगे और ग्रामोंमें देवनागरी पढ़े बहुत होते हैं।...इसलिए अभी इसी पत्रके देखते ही देवनागरी जाननेवाला मुंशी रख लेवें, नहीं तो किसी रजिस्टरके अनुसार ग्राहकोंका पता किसी देवनागरी-वालेसे नागरीमें लिखाकर पास किया करें" (पत्र और विज्ञापन)।

इससे भी ज्ञात होता है कि दयानन्दके लिए भाषासे अधिक भाव तथा कार्यका मूल्य था। वे तो हिन्दीको देशव्यापी बनानेका स्वप्न देखते थे। एक बार एक पंजाबी भक्तने उनके समस्त ग्रन्थोंका अनुवाद करनेकी अनुमति माँगी। दयानन्दने अपना भाव इन शब्दोंमे व्यक्त किया—"भाई मेरी आँखें तो उस दिनको देखनेके लिए तरस रही हैं, जब काश्मीरसे कन्या कुमारीतक सब भारतीय एक भाषाको समझने और बोलने लग जायेंगे। जिन्हें सचमुच मेरे भावोंको जाननेकी इच्छा होगी वे इस 'आर्य-भाषा' का सीखना अपना कर्त्तव्य समझेंगे। अनुवाद तो विदेशियोंके लिए हुआ करते हैं।" इस स्वप्नका साकार दर्शन हम उनके इस शब्द-चित्रमें करते हैं।

दयानन्दके सार्वजनिक जीवनकी अवधि लगभग २० वर्षकी थी। इस समयमें उन्होंने धर्म-प्रचार और आर्य-समाजके हेतु जिस साहित्यका स्वयं निर्माण किया और जो निजी प्रेरणासे अपने साथियो द्वारा लेखबद्ध कराया, वह हिन्दीके विकासकी दृष्टिसे विपुल होनेके अतिरिक्त महत्त्वपूर्ण भी है। इस कालकी उनकी अपनी छोटी बड़ी रचनाएँ इतनी अधिक है कि उन्हें देखकर आश्चर्य होता है। उन्हींकी रचनाओं तथा शिक्षासे प्रेरणा लेकर आर्य-समाजके अनुयायियोंने भी साहित्य-निर्माणमे हाथ बँटाया। धर्म, समाज और शिक्षा तीनो ही क्षेत्रमें आर्यसमाजका बड़ा प्रभाव था। हजारीप्रसाद द्विवेदीके शब्दोंमे—"आर्य-समाजने भारतीय चिन्ताको झकझोर दिया था, पर प्राचीन आप्त वाक्यको माननेकी प्रवृत्तिको उसने और भी अधिक प्रतिष्ठित किया। इसका परिणाम सभी क्षेत्रोंमें देखा गया। साहित्यके क्षेत्रमें भी इस समयतक प्रमाण-ग्रन्थोंके आधार-पर विवेचन करनेकी प्रथा चल पड़ी थी।" इसका सर्वाधिक श्रेय दयानन्दके भाष्यादि लेखन-साहित्यको ही देना होगा। हिन्दी-भाषा तथा साहित्यके लिए दयानन्दकी यह ठोस सेवा है।

महर्षि दयानन्द द्वारा लिखित पुस्तकें इस प्रकार हैं :—

१. 'अनुभ्रमोच्छेदन', २.'अष्टाध्यायी भाष्य', ३.'आत्म-चरित', ४. 'आर्याभिविनय', ५.'आर्योद्देश्य रत्नमाला', ६. 'कुरान-हिन्दी', ७. 'गोकरुणा-निधि', ८. 'गौतम अहल्याकी कथा', ९.'जालन्धरकी बहस', १०.'पंचमहायज्ञविधि'(सन्ध्या भाष्य), ११.'भाव्यार्थ', १२.'पोपलीला', १३.'प्रतिमापूजन विचार', १४. 'प्रश्नोत्तर हलधर', १५.'प्रश्नोत्तर उदयपुर,' १६. 'भ्रमोच्छेदन', १७. 'मेला चाँदपुर', १८. 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका', १९.'ऋग्वेद भाष्य', २०. 'यजुर्वेद-भाष्य', २१.'वेदविरुद्ध मत खण्डन', २२.'वेदान्तिध्वान्त निवारण', २३.'व्यवहारभानु', २४.'शिक्षापत्री ध्वान्त-निवारण', २५. 'संस्कारविधि', २६. 'सस्कृत वाक्य प्रबोध', २७. 'सत्यार्थ प्रकाश', २८.'सत्यासत्य विवेक', २९. 'वर्णोच्चारण', ३०. 'सन्धि-विषय', ३१. 'नामिक', ३२. 'आख्यातिक', ३३. 'पारिभाषिक', ३४. 'सौवर', ३५. 'अनादि कोष', ३६. 'निघण्टु', ३७. 'पाणिनिके ग्रन्थ अष्टाध्यायी, धातुपाठ, गणपाठ, शिक्षा और प्रातिपादिक', ३८. 'आलं-कारिक कथा'।

दयानन्द सरस्वती उन धर्म-प्रवर्तकोंकी परम्परामे है, जिन्होंने जन-भाषाको अपने सिद्धान्तों, विचारों और उद्देश्योंके प्रचार-प्रसारका अनिवार्य और उपयोगी साधन मानकर अपनाया था। संन्यास जीवनमें आपने विभिन्न विद्वानोंसे विद्याध्ययन किया। मथुरामें (स्वामी) विरजा-नन्द शास्त्रीसे आप विशेष प्रभावित हुए और तीन वर्षों तक (१८६०-६३ ई०) उनके चरणोंमे बैठकर अध्ययन करनेके बाद लोक-सुधारमें प्रवृत्त हुए। सन् १८६३ से १८७५ ई० तक भारतवर्षके विभिन्न प्रान्तोंमे भ्रमण करते हुए आपने अनेक विद्वानोंको शास्त्रार्थमे पराजित किया। संकीर्णता और पाखण्डके आप घोर विरोधी थे। इसलिए अनेक लोग आपके कट्टर शत्रु हो गये थे। २९ सितम्बर, सन् १८८३ ई०में किसीने आपको दूधके साथ काँच पीसकर पिला दिया, फलस्वरूप सन् १८८३ ई०में आपका देहावसान हो गया।

संस्कृत-संस्कारके कारण कहीं-कहीं आपने सस्कृतके तत्सम और सामान्यतः हिन्दीमे अप्रचलित शब्दोंका प्रयोग किया है। 'संयोगज', 'गति परिणामीपन', 'पुरश्चरण', 'अत्युद्युक्त', 'प्राग्भाववत्', 'परिच्छिन्न', 'पृथिवीकाय', 'आर्यावर्तस्थ' आदि अनेक शब्दोंका प्रयोग इसी कोटिमें आता है। जनतासे घुल-मिल जानेके कारण कहीं-कहीं आपने 'टिक्की जमाई', 'गपड़चौथ', 'भेड़-भड़क्का' जैसे ठेठ ग्रामीण मुहावरोंका भी प्रयोग किया है। दार्शनिक और आध्यात्मिक सत्यको व्यक्त करनेके कारण आपकी भाषामें एक प्रकारकी पारिभा-षिकता भी है। यह सब होनेपर भी आपके अथक प्रयत्नसे हिन्दी-गद्यकी अभिव्यक्ति-क्षमता बढ़ी। गम्भीर विषयोंपर तर्क और विवाद करनेकी शक्तिका विकास हुआ। व्यंग्य-शैली विकसित हुई और हिन्दीतर प्रान्तोमे हिन्दीका प्रचार-प्रसार हुआ। इस दृष्टिसे हिन्दी-गद्यको आपकी देन अविस्मरणीय है। —ज्ञा० द० और रा० चं० ति०

दयाबाई—सन्तचरणदासकी शिष्या और सहजोबाईकी गुरु-भगिनी थीं। इनका जन्म मेवात (राजपूताना)के डेहरा गाँवमें हुआ था। गुरुके साथ दिल्ली चली आयी थीं और वहीं सन्त-जीवन व्यतीत किया था। इनकी प्रसिद्ध कृति 'दयाबोध' है, जिसकी रचना सन् १७६१ ई० में हुई थी। बेलवेडियर प्रेस, प्रयागसे 'दयाबोध'के साथ ही दयादासरचित 'विनयमालिका' भी प्रकाशित हुई है। 'सन्तबानी पुस्तक माला'के सम्पादकने 'दयाबाई' और 'दयादास'को अभिन्न माना है। इनकी रचनाओंमें प्रायः 'दया' नामकी छाप मिलती है। कहीं-कहीं 'दयाकुँवर'

और 'दयादास'की छाप भी मिलती है। अतः 'दयाबाई' 'दया' और 'दयादास'की अभिन्नता मान्य हो सकती है। शिवव्रत लालके अनुसार इनकी मृत्यु सन् १७६३ ई० में हुई थी। इनकी वाणियोंका विषय वही है, जो सहजोबाई या अन्य सन्तकवियोंकी वाणियोंका। इन्होंने परमतत्त्वको 'अजर', 'अमर', 'अविगत', 'अविनासी', 'अभय', 'अलख' और 'आनन्दमय' मानते हुए 'मनिका'में सूत्रकी तरह जड-चेतन सबमें व्याप्त माना है। 'विनयमालिका'में इनकी भक्ति दैन्यभावापन्न हो गयी है और सेवक-सेव्य-भावोपासक सगुण कवियोंकी मनोभूमिको स्पर्श करने लगी है। आपकी अभिव्यक्ति सहज-सरल और प्रवाहमयी है।

[सहायक ग्रन्थ—उत्तरी भारतकी सन्त परम्परा : परशुराम चतुर्वेदी, सन्तकाव्य : परशुराम चतुर्वेदी; सन्तबानी संग्रह, पहिला भाग, बेलवेडियर प्रेस प्रयाग।] —रा० चं० ति०

दयाशंकर दुबे—जन्म १८९६ ई० मे खण्डवामें हुआ। शिक्षा एम० ए०; एल०-एल० बी०। प्रयाग विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्रके अध्यापक थे। हिन्दी माध्यममे अपने विषय पर बहुत पहलेसे ही लिखने रहे। हिन्दी साहित्य सम्मेलन से भी विभिन्न रूपोंमे सम्बद्ध रहे। कृतियाँ—'भारतमे कृषि सुधार' (१९२२), 'नर्मदा रहस्य' (१९३४), 'अर्थशास्त्रकी रूपरेखा' (१९४०), 'गंगा रहस्य' (१९४२) और 'सरल राजस्व' (१९४७)। —सं०

दरद—दुर्योधनपक्षीय एक योद्धा, जो कश्मीरके समीपवर्ती वर्तमान दर्दिस्तानके अधिपति थे। —मो० अ०

दरियासाहब (बिहारवाले)—दरिया साहब अठारहवीं शताब्दीमे आविर्भूत बिहारप्रान्तीय निर्गुण सन्त कवियोंमे सर्वश्रेष्ठ है। कहा जाता है कि इनके पूर्वज उज्जैननिवासी क्षत्रिय थे, जो बिहारमे आकर बस गये थे और बादको इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया; किन्तु बिहार प्रान्तके वर्तमान उज्जैनी क्षत्रिय-परिवारोमे इनका सम्बन्ध नहीं जुडता। दलदास दरियापन्थी इनका जन्म सन् १६३४ ई०में और दरियासागरके सम्पादक सन् १६७४ ई०मे मानते है। धर्मेन्द्र ब्रह्मचारीने पूरी छान-बीनके बाद सन् १७३४ ई०को इनका जन्मकाल निश्चित किया है। इनकी मृत्यु सन् १७८० ई०मे निश्चित है। इनका जन्म शाहाबाद जिलेके धरकन्धा गाँवमे हुआ था। नौ वर्षकी अल्प आयुमे आपका विवाह हो गया था। २० वर्षकी अवस्थामें ही विरक्त होकर आपने सन्त-जीवन व्यतीत करना आरम्भ किया। आपकी पत्नी शाहमती सदा आपके साथ रहीं। कहा जाता है कि नवाब मीर कासिमने आपको १०१ बीघा जमीन प्रदान की थी जिसे आपके उत्तराधिकारी बराबर बढाते रहे।

दरिया साहब अपनेको कबीरका अवतार मानते थे। यथासाध्य आपने कबीरके पद-चिह्नोंपर ही चलनेका प्रयत्न किया है। समकालीन सन्तोंमें आप शिवनारायण साहबसे विशेष प्रभावित प्रतीत होते हैं। प्रारम्भमे आपको अपने गाँवके ही गणेश पण्डित और उनके साथियोंके उग्र विरोधका सामना करना पडा था किन्तु धीरे-धीरे आपकी प्रसिद्धि बढ़ती गयी और हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ही आपके अनुयायी होने लगे। आपके पन्थमें किसी प्रकारकी जटिलता नहीं है। साधु और गृहस्थ दोनों ही पन्थमें समान रूपसे आदृत होते हैं। साधु नंगे सिर रहते हैं, यही उनका चिह्न है। गृहस्थ टोपी पहन सकते हैं। हिन्दू और मुसलमान दोनों समान रूपसे पन्थमें प्रवेश पाते हैं। गृहस्थ सन्तसमाजमे समान आचरण करते हैं किन्तु गृहस्थीमें लौटनेपर अपना-अपना कुलव्यवहार निभाते हैं। अब धीरे-धीरे यह पन्थ अपना अस्तित्व खोता जा रहा है।

दरिया साहबकी कुल बीस रचनाएँ प्रसिद्ध हैं—'अग्र-ज्ञान', 'अमरसार', 'भक्ति हेतु', 'ब्रह्म चैतन्य', 'ब्रह्मविवेक', 'दरियानामा', 'दरियासागर', 'गणेशगोष्ठी,' 'ज्ञानदीपक', 'ज्ञानमूल', 'ज्ञानरत्न', 'ज्ञानस्वरोदय', 'कालचरित्र', 'मूर्ति उखाड', 'निर्भयज्ञान', 'प्रेममूल', 'शब्द या बीजक' 'सहसरानी', 'विवेक सागर' और 'यज्ञ समाधि'। धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी उपर्युक्त रचनाओंको ही प्रामाणिक मानते हैं। उनके अनुसार बुकानन साहबकी शाहाबाद रिपोर्ट, नागरी प्रचारिणी सभा, काशीकी खोज रिपोर्ट तथा 'दरियासागर' और 'ज्ञानदीपक'की प्रकाशित प्रतियोंकी भूमिकाओंमें जो ग्रन्थ उपर्युक्त सूचीसे भिन्न गिनाये गये हैं वे या तो उप-र्युक्त ग्रन्थोंमे किसी एकके प्रमादजन्य रूपान्तर है या किसी बृहत् कृतिके भिन्न अंश हैं या अप्राप्य हैं। ऐसी स्थितिमें उपर्युक्त कृतियाँ ही प्रामाणिक मानी जा सकती हैं। इनमें 'ब्रह्म चैतन्य' संस्कृत तथा 'दरियानामा' फारसीमें लिखा गया है। शेष कृतियाँ हिन्दीमें है। 'दरियासागर' (१९१० ई०—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद), 'प्रेममूल' (१९३४ ई०—शान्ति प्रिण्टिंग प्रेस, सहारनपुर) तथा 'ज्ञानदीपक' (१९३६ ई०) प्रकाशित हो चुके हैं। दो संग्रह ग्रन्थ—'दरियासाहब बिहारवालेके चुने हुए पद और साखी' (१९३४ ई०—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद) और 'दरिया दर्पण' (ग्रन्थमाला कार्यालय, पटना) भी प्रकाशित हुए हैं। इधर 'बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद'ने 'दरिया ग्रन्था-वली' प्रकाशन मालाके प्रथम सुमनके रूपमे 'सन्त कवि दरिया—एक अनुशीलन' नामक ग्रन्थ (१९५४ ई०) प्रका-शित किया है, जिसमें दरियासाहबकी एक महत्त्वपूर्ण कृति 'ज्ञान स्वरोदय' सम्पादित होकर सामने आयी है। दरिया साहबकी कृतियोंमे 'ज्ञानस्वरोदय', 'दरियानामा', 'दरियासागर', 'ज्ञानरत्न', 'विवेकसागर', 'शब्द', 'ज्ञान-दीपक', 'सहसरानी' विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण मानी जा सकती हैं। प्रथम दो कृतियोंमें योग-पद्धतिका वैज्ञानिक निरूपण किया गया है। 'दरियासागर'में 'छपलोप' (एक प्रकारकी साधना प्रसूत आनन्दमयी मनोभूमि) या 'अमरलोक'का वर्णन है। 'ज्ञानरत्न'में रामायण और 'विवेकसागर'में महाभारतकी कथाको सन्तमतके अनुकूल उपस्थित किया गया है। 'शब्द' गेय पदोंका बृहत संग्रह है। 'ज्ञानदीपक'में प्रायः वे सभी विषय आ गये हैं, जिनका वर्णन संत-साहित्यमें किया जाता है। 'सहसरानी'में एक सहस्रसे अधिक साखियाँ संगृहीत हैं।

दरिया साहबका प्रतिपाद्य विषय है—सत्पुरुषका स्वरूप, नाम महिमा, बाह्याचार खण्डन, सद्गुरुका महत्त्व, मुक्त और बद्ध जीव, ब्रह्माण्डरूप पिण्डका महत्त्व, पुनर्जन्म

और कर्मसिद्धान्त, ज्ञानसे मुक्ति, छपलोकका वर्णन, पिपीलिका योग (हठयोग) और विहंगम योगका निरूपण, सृष्टि-रचना, मायाकी जटिलता, भक्ति और प्रेम तथा आत्मानुशासन। योग-पद्धति तथा सूफी प्रेमसाधनाकी ओर झुकाव, कबीरको आदर्श रूपमें स्वीकार करना, 'छपलोक' की कल्पना, रामायण-महाभारत और पौराणिक आख्यानोंकी सन्तमतानुकूल व्याख्या तथा तुलसीदासके अनुकरण पर अवधी-भाषाका अधिक प्रयोग दरियासाहबकी विशेषताएँ मानी जा सकती हैं।

दरिया साहबमें सामान्य सन्तकवियोंकी तुलनामें कवित्व-शक्ति कहीं अधिक है। उन्होंने स्थल-स्थल पर अलंकारों और प्रतीकोंका सफल प्रयोग किया है। कुल मिलाकर आपने ४० प्रकारके छन्दोंका प्रयोग किया है। यह प्रयोग-वैविध्य आपके पिंगलज्ञानका परिचायक है। आपने फारसी, संस्कृत तथा भोजपुरी और खड़ीबोली मिश्रित अवधी भाषाका प्रयोग किया है। फारसी और संस्कृतमें लिखी गयी रचनाएँ व्याकरणसम्मत नहीं हैं। इन भाषाओंका आपका ज्ञान सामान्य स्तरका ही था। शब्द-समूहकी दृष्टिसे आपकी भाषाके दो रूप हैं। पंजाबीपन लिये हुए फारसी और अरबी शब्दसमूहप्रधान-भाषा और संस्कृत शब्दोंके तत्सम-तद्भव रूपोंसे युक्त देशज-शब्द-समूह-प्रधान भाषा। आपमें वर्णनकी अच्छी क्षमता थी। आपने प्रबन्ध और मुक्तक, दोनों शैलियोंमें रचनाएँ की हैं। आपकी कृतियोंमें शान्तरसका प्राधान्य है। 'ज्ञानरत्न'में अन्य सभी रसोंकी स्थिति देखी जा सकती है।

दरिया साहब हिन्दी-सन्त-परम्पराके एक प्रमुख विचारक, प्रसिद्ध प्रचारक तथा प्रभावशाली व्यक्ति थे। उत्तर मध्यकालमें सन्तमतकी सम्पूर्ण विशेषताओंका सफल प्रतिनिधित्व करने वाले आप अकेले सन्त हैं।

[सहायक ग्रन्थ—सन्तकवि दरिया—एक अनुशीलन : डा० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी; उत्तरी भारतकी सन्त-परम्परा : परशुराम चतुर्वेदी; हिन्दी काव्यमें निर्गुण सम्प्रदाय : डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल।] —रा० चं० ति०

दरीमुख–रामसेनाके एक सेनापति वीर वानर योद्धा। —मो० अ०

दशमस्कंध–दे० 'नन्ददास'।

दशरथ १–रामकथाके पात्रोंमें दशरथ सर्वाधिक प्राचीन ठहरते हैं। ऋग्वेदमें दानी यजमानोंमे दशरथका नाम सबसे पहले मिलता है। वहाँ-कहीं उन्हें इक्ष्वाकुवंशीय भी कहा गया है परन्तु ऋग्वेदमे इसका कोई संकेत नहीं उपलब्ध होता कि यही दशरथ रामके पिता थे।

रामायण और महाभारतमे दशरथ एक प्रतापी नरेशके रूपमें चित्रित किये गये हैं। स्वयं देवराज इन्द्र उनके पराक्रमसे प्रभावित बताये गये हैं। उन्होंने अनेक युद्धोंमे विजय प्राप्त की और समय-समयपर देवताओंकी सहायता की। इसके अतिरिक्त दशरथके स्त्रैण होनेकी दुर्बलताका भी उल्लेख यहीसे मिलने लगता है।

बौद्ध-साहित्यमें दशरथका उल्लेख सर्वप्रथम 'दशरथ जातक'मे मिलता है। वे वाराणसीके एक धर्मनिष्ठ सम्राट बताये गये हैं। उनके तीन पुत्र राम, भरत और लक्ष्मण तथा एक पुत्री सीता थीं। 'दशरथ कथानक'में भी दशरथका उल्लेख मिलता है किन्तु उसमे उनके स्वरूपकी स्पष्टता नहीं पायी जाती। 'अनामकं जातक' तथा 'बुद्ध जातक'में भी दशरथ रामके पिता बताये गये हैं।

जैन साहित्यमें दशरथसम्बन्धी जो सन्दर्भ मिलते हैं, उनमे केवल इतना सूचित होता है कि वे अपने युगके एक प्रसिद्ध महात्मा और वीर पुरुष थे।

वाल्मीकि-रामायणके दाक्षिणात्य पाठमें कश्यप और अदितिके तपका प्रसंग प्राप्त होता है। उसीके अनुसार पुराणोंमे कश्यपके रूपमे दशरथके अवतार लेनेकी कथाएँ पायी जाती हैं। अध्यात्म-रामायणमें दशरथके ऊपर रामकी कृपाका उल्लेख है, जो इस विषयका सर्वप्रथम उल्लेख कहा जा सकता है। 'स्कन्ध पुराण'मे दो स्थलोंपर पुत्र-प्राप्तिके हेतु दशरथके तप करनेका उल्लेख मिलता है।

संस्कृत काव्योंमे दशरथका चरित्र वाल्मीकि-रामायणके आधारपर चित्रित हुआ है। कालिदासके 'रघुवंश'में दशरथ एक योद्धा, कान्तिमान्, सौन्दर्यपूर्ण और ललित प्रकृतिके सम्राट्के रूपमें वर्णित है। कालिदासने एक स्वतन्त्र अध्यायमें यमक अलंकारका प्रयोग करते हुए दशरथके विलास और पौरुषपूर्ण व्यक्तित्वका सुन्दर चित्रण किया है। दशरथकी वीरतासे प्रभावित इन्द्र उनकी मैत्रीकी कामना करते है और दशरथ उनकी सहायता करके अपने पौरुषको प्रमाणित करते है। संस्कृतके अन्य काव्योमे दशरथसम्बन्धी कोई उल्लेखनीय उद्भावना नहीं पायी जाती है।

हिन्दी साहित्यमें सर्वप्रथम तुलसीदासके 'रामचरितमानस'मे ही दशरथका विस्तृत चरित्र-चित्रण मिलता है। पौराणिक परम्पराके आधारपर उन्हे कश्यपका अवतार बताया गया है। राम-वन-गमनके प्रसंगमें तुलसीदासने कैकेयीके प्रति दशरथकी दुर्बलताका चित्रण करते हुए उनके स्त्रैण होनेका संकेत किया है। परन्तु तुलसीदासके दशरथके चरित्रकी सबसे बड़ी विशेषता है रामके प्रति उनका वात्सल्य, जिसमे तुलसीदास अपनी भावनाके अनुसार रामभक्तिकी व्यंजना करते है। तुलसीदासके इस चित्रणके आधारपर वे भक्तोंके एक महान् आदर्शके रूपमे प्रसिद्ध हो गये। दशरथके जीवनका अन्त उन्हे एक 'दुःख-पर्यवसायी चरित्र'के रूपमें प्रस्तुत करता है परन्तु तुलसीदासने दशरथके दुःखद अन्तमे ही उनके जीवनकी पूर्ण सार्थकता प्रमाणित की है।

रामभक्तिमें रसिकता और माधुर्यके प्रभावके कारण परवर्ती राम-साहित्यमे दशरथ एक उपेक्षित-पात्रके रूपमे ही देखे जा सकते हैं। आधुनिककालमे निर्मित रामकथा सम्बन्धी काव्यों—'कोशलकिशोर' और 'साकेत' आदिमें भी—दशरथके चरित-चित्रणमे कोई विशेष उल्लेखनीय मौलिकता नहीं पायी जाती। 'साकेत'मे मैथिलीशरण गुप्तने यह अवश्य दिखाया है कि वे यह चाहते हैं कि राम उनकी आज्ञाका उल्लंघन करके वन जाना अस्वीकार कर दे अथवा लक्ष्मण इस सम्बन्धमे अधिकार और औचित्यका ध्यान रखते हुए रामको वन जानेसे रोक लें। इस प्रकार वे सुमन्तसे भी कहते है कि वे राम, सीता और लक्ष्मणको थोड़ी दूर वनमें घुमा-फिराकर किसी प्रकार

लौटा लायें। दशरथके चरित्रकी इस दुर्बलताका कारण युगके प्रभावसे प्रसूत वह मनोवैज्ञानिक स्वाभाविकता मानी जा सकती है, जिसका आग्रह साकेतके चरित्र-चित्रणमें सर्वत्र देखा जाता है। मैथिलीशरण गुप्त दशरथ-के चरित्रको ऊँचा नहीं उठा सके, प्रत्युत वे तुलसीदासके दशरथकी अपेक्षा कुछ गिरे हुए ही लगते है। अन्य काव्यों-में दशरथका चरित्र बहुत कुछ प्राचीन परम्पराके अनुसार ही चित्रित हुआ है।

[सहायक ग्रन्थ—रामकथा : डा० कामिल बुल्के; तुलसीदास : डा० माता प्रसाद गुप्त; कल्याणका मानस विशेषांक (गीताप्रेस, गोरखपुर); तुलसीदास और उनका युग : राजपति दीक्षित।] —यो० प्र० सिं०

दशरथ २–इस कविका जीवन-वृत्त अज्ञात है। इनकी 'वृत्तविचार' नामक पिंगलकी रचना महत्त्वपूर्ण है, जिसका रचनाकाल १७९९ ई० (१८५६ वि०) है। इसकी एक प्रति नागरी प्रचारिणी सभा, काशीमें है। यह रचना आकारमें छोटी होनेपर भी अनेक नवीन छन्दोंकी विवेचना-के कारण महत्त्वपूर्ण है। इसके चार अध्यायोंमे-से प्रथममे मात्रा, गण तथा वर्गीकरणका विवेचन है। दूसरेमे वर्णिक छन्दोंका, तीसरेमें मात्रिक छन्दोंका तथा चौथेमें केवल दो छन्दों—श्लोक तथा घनाक्षरीका विवेचन है। सामान्यतः 'प्राकृत पैंगलम'का आधार लिया गया है, पर इसमें २२ नये छन्दोका विवेचन है—महीप, विमला, दामिनी, सुगण, नग, लगन (पॉच अक्षरके), गगन, छगन, अगम, मणिहारबन्द, संवत् , कुशल (छः अक्षरके), सुधा, अभि-नव, हरिहर (सात अक्षरके), मातंग (बारह अक्षरके); मात्रिक छन्दोंमें—मद (७), सैनिक (९), मुक्तावली (१०), सुमन (१२) और अह्न (२१)। विवेचन साधारण कोटिका है और काव्य भी साधारण स्तर का है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० बृ० इ० (भूमिका)।]—सं०

दशरथ ओझा–जन्म १९०९ ई०मे वाराणसी जिलेमे हुआ। शिक्षा एम० ए०, पी-एच० डी०। हिन्दू कालेज, दिल्लीमें हिन्दीके अध्यापक है। हिन्दी नाटकके सम्बन्धमे आपका शोध-कार्य विशेष रूपसे महत्त्वपूर्ण है। प्रकाशित कृतियॉ —'हिन्दी नाटक-उद्भव और विकास' (१९५४) और 'समीक्षा-शास्त्र' (१९५६)। —सं०

दाऊ–कृष्णके भाई बलरामके लिए प्रयुक्त (दे० बलराम)। —सं०

दाऊद–दाऊद, जो मुल्लादाऊदके नामसे प्रसिद्ध रहे है, 'चन्दायन' के रचयिता है। इन्होने अपना नाम रचनाके प्राप्त अंशोंमें दिया है और साथ ही एक मलिक नथनका नाम भी दिया है, जिन्हे इसमे सम्बोधित किया गया है : "दाऊद कबि जो चाँदा गाई। जेइं र (रे) सुना सो गा मुरछाई। धनि ते बोल धनि लेखन हारा। धनि ते आखर धनि अरथ बिचारा। हिरदइं जानि सो चांदा रानी। सांप डंसइ हउं सोइ बखानी। लोर कहा मइं हिय खण्ड गाऊं (गावउ)। कथा काब कइ लोग सुनाऊं (सुनावउ)। मलिक नथन सुनु बोल हमारे। सुनइ कान दइ यहि गुनयारे। अउर गीत मइं करउं बीनती सीस नाइ कर जोरि। रकइक (एक एक) बोल मोति जस पिरुवा (पिरोवा) कहौं जो हियरा तोरि॥५६॥"

इन दाऊदके बारेमें हमें अधिक ज्ञात नहीं है। अल्ब-दाऊनीने 'मुन्तखिब-उल-तवारीख'में इन्हें 'मौलाना दाऊद' कहा है। और अरबी-फारसीमें मौलानाका अर्थ असाधारण विद्वान् होता है, इसलिए दाऊदकी प्रसिद्धि अल्बदाऊनीके समयमें एक बड़े विद्वान्के रूपमें थी, यह प्रकट है यद्यपि यह असम्भव नहीं कि यह प्रसिद्धि उनकी 'चन्दायन'की रचनाके बाद हुई हो।

अगरचन्द नाहटाके अनुसार रचनाके एक छन्दमें दाऊद के स्थानके सम्बन्धमें निम्नलिखित पंक्ति आती है— "'दल्यौ' नयरु बसे नवरंगा। ऊपर कोट तले बह गंगा।" किन्तु वास्तवमे शब्द 'दल्यौ' या 'दलेऊ' नहीं 'डलमऊ' है, जो फारसी-अरबी लिपियोंकी त्रुटिके कारण ऐसा विकृत हो गया है। डलमऊ आज भी गंगापर बसा हुआ एक नगर है, जो रायबरेली जिलेमें उत्तरप्रदेशमें है।

मलिक नथनके बारेमें हमें और भी कम ज्ञात है। ऊपर 'चन्दायन' से उद्धृत पक्तियोंके आधारपर हम इतना ही कह सकते हैं कि वे दाऊदके कोई कृपापात्र थे, जिनको उन्होंने कथा सुनायी है।

मौलाना दाऊदके समयके सम्बन्धमें कुछ विवाद रहा है किन्तु अल्बदाऊनीके उल्लेखसे उसका समाधान हो जाता है। 'मुन्तखिब-उल-तवारीख' में उसने लिखा है, खानजहाँ, जो फीरोजशाहका प्रधान मन्त्री था, मर गया और उसका लड़का जूनाशाह उसके पदपर नियुक्त हुआ। 'चन्दायन', जो हिन्दीकी एक मनसवी है और लोरिक तथा चाँदाके प्रेमका वर्णन करती है, उसके लिए मौलाना दाऊद द्वारा रची गयी थी। यह इन भूभागोंमे इतनी अधिक प्रख्यात है कि इसकी प्रशंसा करना अनावश्यक होगा। मखदूम शेख तकीउद्दीन वाइज रब्बानीने एक अवसर पर इससे कुछ अंश पढ़कर सुनाये तो उसे सुनकर लोगोंको एक अद्भुत आनन्द प्राप्त हुआ। जब उस युगके कुछ विद्वानोंने शेखसे इस ममनवीको इस प्रकार महत्त्व देनेका कारण पूछा तो उन्होंने उत्तर दिया कि यह पूरी रचना ईश्वरीय सत्य तथा संकेतोंसे भरी हुई थी, रोचक थी, ईश्वर-प्रेमियों तथा उपासकोंको आनन्दपूर्ण चिन्तनकी सामग्री प्रदान करती थी, कुरानकी कुछ आयतोंका मर्म स्पष्ट करनेमें उपयोगी थी और भारतके मधुर गीतोंकी परि-चायक थी।

कुछ समय हुआ, अगरचन्द नाहटाने 'मिश्रबन्धु विनोद'की कुछ भूलोंकी ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए लिखा था कि मौलना दाऊदकी इस रचनाकी तिथि ७८१ हि० है, जो १४३१ वि० होती है (किन्तु ७८१ हि० १४३६ वि० है) और यह लिखते हुए उन्होंने उसकी एक प्रतिसे निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत की थीं—"बरस सातसे होइ एकयासी। तिहि याह कवि सरसे उमासी। साहि पीरोज दिली सुलताना। जोना साहि जीत बखाना। दल्यो नयरु बसे नवरंगा। उपरि कोट तले बह गंगा।" अल्बदाऊनीके ऊपर उद्धृत विवरणसे इस उद्धरणका मेल बैठता है, इसलिए इसमें कोई सन्देह नहीं कि मौलाना दाऊदका समय

विक्रमीय पन्द्रहवीं शताब्दीका प्रारम्भ है।—मा० प्र० गु०

दादा कामरेड—यशपालका प्रसिद्ध उपन्यास। मई सन् १९४१ ई०में प्रकाशित। इसमें यशपालने राजनीतिक सिद्धान्तों तथा नैतिक मूल्योंके सम्बन्धमें अपने गत्यात्मक विचारोंको व्यक्त किया है। मार्क्सवादी होते हुए भी वे बहुत कुछ अपने चिन्तनमें स्वतन्त्र हैं।

हरीश इस उपन्यासका केन्द्रीय पात्र है। वह जेलसे भागकर अपनी क्रान्तिकारी पार्टीके प्रतिकूल अनुभव करता है—"गुप्त पार्टी बना दस-पाँच आदमियोंमें अपनी शक्तिको संकुचित कर देनेसे कोई लाभ नहीं है···हमें अपनी टेकनीक बदलना चाहिए, बजाय शहादतके परिणामकी ओर ध्यान देना चाहिए। हमने क्या किया?···हम अपने आदमियोंके जरिये कांग्रेसमें घुसें और दूसरे जन-आन्दोलनमें हाथ बटावें।" इसके कारण पार्टी और हरीशमें मतभेद उत्पन्न हो जाता है और पार्टी उसे गोली मार देनेका निश्चय करती है। पर शैला द्वारा इस निश्चयकी सूचना प्राप्त होनेपर वह अपनेको बचा लेता है। अपनी धारणाके अनुसार वह मजदूर आन्दोलनके संघटनमें सक्रिय हो उठता है। पर डकैतीके झूठे अपराधमें पकड़े जानेपर उसे फाँसी हो जाती है। हरीशके विचारों द्वारा यशपालने तत्कालीन गुप्त क्रान्तिकारियोंकी टेकनीकको व्यर्थ बताकर नये टेकनीकमें विश्वास प्रकट किया है, जो उनके गत्यात्मक दृष्टिकोणका द्योतक है।

'शैला'की कथामें सेक्स और रोमांसकी प्रधानता देखनेवाले उसके मूलमें निहित वास्तविकताको नहीं देख पाते। वास्तवमें उसके द्वारा एक नये मूल्यकी स्थापना की गयी है। उससे लोगोंका मतभेद हो सकता है पर वह प्रेम तथा भारतीय समाज और सामाजिक रूढ़ियोंके प्रति विद्रोहका जीवन्त प्रतीक है। यह उनका पहला उपन्यास है किन्तु उसमें लेखकके भावी विकासकी समस्त सम्भावनाएँ निहित हैं। —ब० सिं०

दादू जन्म-लीला परची—लक्ष्मीराम ट्रस्ट, जयपुरसे सन् १९४९ ई०में प्रकाशित हुई। इसकी रचना दादूदयालके प्रमुख शिष्य जनगोपालने उनके जीवनकालमें ही की थी। इसकी प्राप्त प्राचीनतम हस्तलिखित प्रति सन् १६६६ ई० (संवत् १७२३ वि०)की है। सम्पूर्ण कृति दादूदयालके जीवनसम्बन्धी अलौकिक कृत्यों—नदीकी लहरोंसे उत्पत्ति, सरागयन्दको शान्त करना, एक साथ सात निमन्त्रणोंमें उपस्थित होना और मृत्युके बाद कायाका कर्पूरमें परिवर्तित हो जाना आदिसे भरी है। इतिहासकी दृष्टिसे इसमें वर्णित केवल दो घटनाएँ महत्त्वपूर्ण हैं। एक आमेरनरेश महाराज मानसिंहसे भेंट और उनकी शंकाओंका समाधान तथा दूसरी सम्राट् अकबरके निमन्त्रणपर सीकरी जाकर अकबर, अबुलफजल और बीरबलसे धार्मिक प्रश्नोंपर गूढ़ प्रश्नोत्तर। कृति आद्योपान्त दोहे-चौपाईमें लिखी गयी है। भाषा राजस्थानी है, जो बहुत कुछ अजमेरसे हिसार और अलवरसे शेखावटी तक बोली जाने वाली जनभाषाके निकट है। काव्यकी दृष्टिसे यह रचना सामान्य स्तरकी है। वैज्ञानिक दृष्टिसे दादूके जीवन-चरितका अध्ययन करनेवालोंके लिए इसका विशेष महत्त्व नहीं है। —रा० चं० ति०

दादूदयाल—निर्गुण सन्त-परम्परामें कबीरके बाद दूसरा महिमामय व्यक्तित्व दादूदयालका है। दादूका जन्म सन् १५४४ ई०में अहमदाबाद (गुजरात)में हुआ था। इनकी जातिके सम्बन्धमें विद्वानोंमें पर्याप्त मतभेद है। अकबरकालीन प्रसिद्ध इतिहासकार मुहसन फनीने इनको धुनियाँ कहा है। विल्सन भी इन्हें धुनियाँ ही मानते हैं। तारादत्त गैरोला रज्जबकी 'सर्वांगी'के एक पद—"धुनी गर्भेउत्पन्नो देवेन्द्रो महामुनिः"के साक्ष्यपर इन्हें धुनियाँ मानते है। स्वामी दयानन्दने इन्हे तेलीका कार्य करनेवाला कहा है। सुधाकर द्विवेदीने मोची बताया है। क्षितिमोहन सेन बाउलोंके एक वन्दना वाक्य—"श्रीयुत दाऊद वन्दि दादू यारं नाम"के आधारपर इनका वास्तविक नाम दाऊद मानकर इन्हे मुसलमान स्वीकार करते हैं। दादूपंथके कुछ लोग इन्हे लोदीराम नागर ब्राह्मणका औरस पुत्र मानते हैं और कुछ लोग उनके द्वारा मात्र पालित स्वीकार करते है। 'जीवनलीला परची'के अनुसार अहमदाबादके एक सौदागर लोधीराम शाहने इन्हे सन्तोंके आशीर्वादस्वरूप साबरमती नदीमें तैरता हुआ पाया था। ऐसी स्थितिमे इनकी जाति और पेशेको लेकर निश्चित रूपसे कुछ भी नहीं कहा जा सकता। ऐसा लगता है कि कबीरकी भाँति ये भी समाजके निचले स्तरसे ही आये थे।

इनके गुरुका नाम बुड्ढन था। विल्सन बुड्ढनको कबीरकी वंश-परम्परामें स्वीकार करते हुए इन्हें भी कबीरका ही वंशज मानते हैं। सुधाकर द्विवेदी इन्हें कबीरके पुत्र कमालका शिष्य बताते है। पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल विल्सनसे सहमत हैं। परशुराम चतुर्वेदी सन् १५९२ के आसपास बुड्ढन नामधारी किसी ऐतिहासिक व्यक्तिकी स्थिति न मानते हुए विल्सनके मतको निराधार स्वीकार करते है। दादूपन्थी बुड्ढनमें साक्षात् भगवानका अर्थ लेते हैं और ११ वर्षकी अवस्थामें भगवान्ने वृद्ध महात्माके रूपमें बालक दादूको दर्शन दिया था, ऐसा मानते हैं।

प्रसिद्ध है कि दादूदयालने गृहस्थ जीवन बिताया था। इनके जीवनके प्रारम्भिक दिन अहमदाबादमें व्यतीत हुए। ३० वर्षकी अवस्थामें ये साँभर आये। यहाँ ३२ वर्षकी अवस्थामें इनके पुत्र गरीबदासका जन्म हुआ। इनके दूसरे पुत्रका नाम मिस्कीनदास था। इनकी दो पुत्रियाँ—नानाबाई और मानाबाई—भी थीं। 'जीवन परची'के सम्पादक सुखदयाल और 'दादू वाणी'के सम्पादक मंगलदास इन्हे गृहस्थ नहीं मानते। इन लोगोंका कहना है कि गरीबदास और मिस्कीनदास इनके औरस पुत्र नहीं थे, बल्कि इनके आशीर्वादसे उत्पन्न हुए थे। नानाबाई इनकी माताका नाम था। 'दोनों बाई' इनकी पुत्रियाँ नहीं, इनकी शिष्याएँ—राजकुमारी और श्यामकुमारी—थीं। इन लोगोंने किस आधारपर ऐसा कहा है, यह स्पष्ट नहीं है। कम से कम 'जीवनपरची'से इन मान्यताओंका समर्थन नहीं होता!

दादूने साँभर में ही 'ब्रह्म सम्प्रदाय'की स्थापना की थी। आगे चलकर यह सम्प्रदाय 'परब्रह्म सम्प्रदाय' कहा जाने

लगा और अन्तमें यही 'दादू पंथ'के नामसे विख्यात हुआ। साँभरके बाद आमेरमें रहते हुए ही आपको अकबरसे भेंट करनेका अवसर मिला था। कहा जाता है कि अकबरके साथ इनका सत्संग ४० दिनों तक चला था। यह घटना सन् १५८६ ई० के आसपास की है। राजस्थानके अतिरिक्त इन्होंने दिल्ली, काशी, बिहार, बंगाल और गुजरात आदि स्थानोंकी यात्राएँ भी की थीं। इन यात्राओंमें इन्हें विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायोंको प्रभावित करनेका और उनसे प्रभाव ग्रहण करनेका अवसर मिला था। इसीलिए इनकी वाणी सिन्धी, गुजराती, मारवाड़ी आदि कई भाषाओंके रंग-रूपमे ढल गयी है। इनकी शिष्य-परम्परा विशाल है। शिष्योंकी कुल संख्या १५२ बतलायी जाती है। इनमे भी ५२ तो सम्प्रदायके स्तम्भ माने जाते हैं। प्रसिद्ध सन्त रज्जब, गरीबदास, सुन्दरदास, बखना, जनगोपाल आदि इन्हींकी शिष्य-परम्परामे आते हैं।

दादूकी मृत्यु साँभरके निकट नरानेकी गुफामे सन् १६०३ ई०मे हुई थी। यही दादू पन्थियोका 'दादू द्वारा' है, जहाँ प्रतिवर्ष फाल्गुनमे मेला लगता है। यहाँ आपके बाल, तूँबा, चोला और खडाऊँ आज भी सुरक्षित हैं।

दादूकी एकमात्र प्रसिद्ध कृति 'अनभैवाणी' है। यह एक संग्रह-ग्रन्थ है। इसमे इनकी साखियाँ और पद संगृहीत है। इनकी दूसरी कृति 'कायाबेलि' भी इसीके साथ प्रकाशित है। 'अनभैवाणी'के समय-समय पर विभिन्न विद्वानों द्वारा संकलित और सम्पादित होकर कई संस्करण प्रकाशित हुए हैं। सुधाकर द्विवेदीका नागरी प्रचारिणी सभा सस्करण, दलगंजन सिंहका जयपुर सस्करण, बालेश्वरीप्रसादका बेलवेडियर प्रेस संस्करण, चन्द्रिकाप्रसाद त्रिपाठीका अजमेर संस्करण और मंगलदासका लक्ष्मीराम ट्रस्ट, जयपुर सस्करण अब तक हिन्दी-जगत्के सामने आ चुके है। इनमे चन्द्रिकाप्रसाद त्रिपाठीका अजमेर संस्करण सर्वोत्तम है। इधर परशुराम चतुर्वेदीने नागरी प्रचारिणी सभा, काशीके लिए इनकी कृतियों पर एक वैज्ञानिक सस्करण प्रस्तुत किया है, जो शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है।

प्राप्त सामग्रीके आधार पर दादूकी चिन्ताधारा, साधना और व्यक्तित्वका अध्ययन भलीभाँति हो सकता है। दादू की 'वाणी' कबीरकी टक्करकी मानी जाती है। उन्होने भी कबीरकी भाँति अपने उपास्य परमतत्त्वको अलख, अनादि, गुणातीत, अप्रमेय, पूर्ण, निश्चल, एकरस, निरंजन और निराकार माना है। उनकी साधनामे भी वैष्णवोंकी अहिंसा, योगियोंका चित्तवृत्ति-निरोध, सूफियोंकी प्रेम-साधना और पूर्ववर्ती सन्तोंके शब्द-योगका समन्वित उत्कर्ष देखा जा सकता है। गुरु-गोविन्दकी एकता, नाम-माहात्म्य, आत्म-समर्पणकी भावना, संसारका मिथ्यात्व, सामान्य संसारी जीवोंकी माया-बद्धता, अव्यक्तके प्रति उत्कट राग और उसके विरहकी तीव्र अनुभूति, पिण्ड-ब्रह्माण्डकी एकता, अन्तस्में सत्यका सन्निवेश और उच्च नैतिक जीवनकी सार्थकता आदि अनेक आध्यात्मिक सत्य उनकी वाणियोंमे भी व्यक्त हुए हैं, जिन्हें कबीरकी साखियोंमें भी देखा जा सकता है। फिर भी कबीर और दादू एक नहीं हैं। दोनोके व्यक्तित्वोंका अन्तर समझनेके लिए दोनोंके युग-जीवनके अन्तरको देखना और समझना होगा। कबीरका युग राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक संघर्षका युग है; मानव मूल्योंके संक्रमणका युग है। दादूका युग दो महान् संस्कृतियोंके क्रमशः संघर्ष और सम्पर्ककी स्थितियोंको लाँघकर समन्वयोन्मुख होनेका युग है। इसीलिये कबीर उग्र, प्रचण्ड, उद्धत, तीखे, निर्मम, और बेलौस हैं; दादू सहज, सरल, विनम्र, निर्वैर, दयालु और सर्वभूत-हित-रत हैं। दादू वह नवनीत है, जो इस्लामी संस्कृतिके कठोर मंदराचल द्वारा मथित होकर भारतीय संस्कृतिके महान् सागरकी अतल गहराईसे सहज ही ऊपर उठ आया है। दादूके विचारोंका मूल उत्स मानवका सहज जीवन है। उनकी वाणीका एक-एक शब्द पाठकके हृदय पर सीधे चोट करता है। निश्चय ही हिन्दी साहित्यके निर्गुण भक्ति-सम्प्रदायमे कबीरके बाद दादूका स्थान सभी दृष्टियोंसे अन्यतम है।

[सहायक ग्रन्थ—(१) दादूदयालजीकी वाणी, लक्ष्मीराम ट्रस्ट, जयपुर संस्करण, (२) उत्तरी भारतकी सन्त परम्परा : परशुराम चतुर्वेदी; (३) हिन्दी काव्यमें निर्गुण सम्प्रदाय : पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, (४) सन्तबानी संग्रह (भाग पहिला), बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, (५) दादू जन्म-लीला परची, लक्ष्मीराम ट्रस्ट जयपुरसे प्रकाशित, (६) इन्फ्लूयेन्स आफ इस्लाम आन इण्डियन कल्चर : ताराचन्द। —रा० चं० ति०

दामघोषि–दमघोषके पुत्र शिशुपालका नाम। —मो० अ०

दामोदर शास्त्री–जन्म सन् १८५२ के लगभग माना जाता है। इनकी रची हुई कृतियोंमे 'रामलीला', 'मृच्छकटिक,' 'बाल खेल', 'राधा माधव', 'मै वही हूँ,' 'विमुग्ध शिक्षा', 'पूर्व दिग्यात्रा', 'दक्षिण दिग्यात्रा', 'चित्तौर गढ', 'लखनऊका इतिहास' तथा 'सक्षिप्त रामायण' आदि हैं। इनमे-से अधिकाश नाटक हैं और एक नाटककारके रूपमें इनका नाम हिन्दी साहित्यके इतिहासमे मान्य है। इन्होंने कुछ अनुवाद कार्य भी किया था। —प्र० ना० टं०

दारुक–१. कृष्णके सारथीका नाम।

२. एक शिवावतार।

३. एक राक्षस। —मो० अ०

दावानल–कृष्णकी अलौकिक लीलाओंके क्रममे दावानलका मूल रूप भागवत और ब्रह्मवैवर्त पुराणोंमे प्राप्त है। दोनोंमें तात्त्विक अन्तर यह है कि भागवतके कृष्ण दावानल पान कर जाते हैं और ब्रह्मवैवर्तके कृष्ण उसका शमन करते हैं। पौराणिक साहित्यमे दावानलके उद्भवका कोई कारण निर्दिष्ट नहीं है परन्तु कृष्ण-भक्त कवियोंने दावानलको कंसके राक्षसके रूपमे चित्रित किया है। उसने अग्निका रूप धारणकर ब्रजकी प्रकृतिको प्रज्वलित कर दिया। कृष्णने सब ब्रजवासियोंके अग्निग्रस्त अवस्थामें नेत्र बन्द करके अपनी अतिप्रकृति शक्तिमे उसका पान कर लिया (सू० सा० प० १२०८-१२११)। सूरके समसामयिक नन्ददासने दावानलको अभिचारजन्य चित्रित किया है लेकिन पान करनेके कारणका कोई निर्देश नहीं दिया है। उन्होंने दावानलके पानकी दो स्थितियोंको वर्णित किया

है। प्रथम स्तरपर तो कृष्णकी शक्ति उसका पान करती है और द्वितीय स्तरपर स्वयं कृष्ण ('नन्ददास' २८०-२८५)। भागवतके भाषानुवादों और कृष्णचरितके पूर्व रूपका चित्रण करनेवाले काव्य-ग्रन्थोंमें इसका वर्णन मिलता है। कृष्णकी दावानल-पानलीलाका प्रयोजन कृष्णके बाल-व्यक्तित्वमें विरुद्ध धर्माश्रयत्वकी प्रतिष्ठा करके उनके अति-प्राकृत रूपकी व्यंजना है। —रा० कु०

दास–दास, जिनका पूरा नाम भिखारीदास है, हिन्दीके अग्रगण्य आचार्यों और कवियोंमें अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। कुछ अशोंमें तो ये केशवदाससे भी बढ़कर हैं। इनके जीवनवृत्तके सम्बन्धमें जो कुछ सामग्री उपलब्ध हुई है, उसका आधार 'काव्य-निर्णय' नामक इनका ग्रन्थ ही है। हिन्दीके अधिकांश कवियोंके समान इनके बारेमें भी निश्चयके साथ अधिक कुछ नहीं कहा जा सकता। सर्व-सम्मत वृत्त यह है कि ये प्रतापगढ़ नरेश राजा पृथ्वीपति सिंहके अनुज हिन्दूपति सिंहके आश्रयमें रहे। जन्म-स्थान प्रतापगढ़से तनिक दूर टेंग्वा (टेंउगा) नामक स्थान था। इनके पिता कृपालदास, प्रपितामह रामदास, भाई चैनलाल थे, अवधेश लाल पुत्र तथा पौत्र गौरीशंकर लाल थे, जिनके पुत्रहीन होकर मर जानेके कारण इनका वंश आगे न चल सका। ये जातिके कायस्थ थे। जन्मकालका ठीक निश्चय नहीं। इनकी रचनाओंके आधारपर इनका काव्य-काल सन् १७२१ से सन् १७५१ तक कहा जा सकता है। इनकी मृत्युका भी कोई निश्चित समय अथवा स्थान निर्धारित नहीं किया गया है। कुछ लोगोंका मत है कि इनकी मृत्यु 'भभुआ', जिला आरा (बिहार) में हुई थी। आरामें इनके नामका एक मन्दिर अब भी है, जहाँ प्रति वर्ष बैशाख शुक्ला त्रयोदशीको एक मेला लगता है और वहाँ इनकी कविताओंका पाठ किया जाता है, किन्तु मृत्यु-काल क्या था, इसके विषयमें केवल अनुमान ही किया जा सकता है। जवाहिरलाल चतुर्वेदी इनके ग्रन्थ-निर्माण-संवतोंको ध्यानमें रखते हुए इस निष्कर्षपर पहुँचते हैं कि इनकी मृत्यु 'शृंगार निर्णय'की रचना (सन् १७५१) के कुछ वर्ष बाद हुई होगी, क्योंकि इसके बाद दासजी द्वारा रचित उनकी कोई अन्य कृति प्राप्त नहीं हुई है।

दास द्वारा रचित ग्रन्थोंके सम्बन्धमें भी कुछ विवाद है। 'रस सारांश' (सन् १७३५), 'नाम प्रकाश' (सन् १७३९), 'छन्दोर्णव पिंगल' (सन् १७४३), 'काव्य निर्णय' (सन् १७४७) तथा 'शृंगार निर्णय' (सन् १७५१) के अतिरिक्त 'विष्णुपुराण भाषा', 'शतरंजशतिका' तथा किन्हीं-किन्हीं हिन्दीके इतिहास ग्रन्थोंमें दासकृत (१) 'छन्दप्रकाश', (२) 'बाग बहार', (३) 'रागनिर्णय', (४) 'ब्रज माहात्म्य-चन्द्रिका', (५) 'पन्थ पारख्या', (६) 'वर्ण निर्णय' तथा (७) 'रघुनाथ नाटक' इत्यादि ग्रन्थोंके नाम भी गिनाये गये हैं। किन्तु 'छन्दप्रकाश' ग्रन्थ इनका स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है, अपितु भिखारीदासकृत 'छन्दोर्णव पिंगल' पर किसी अन्य कवि द्वारा की हुई टीका है, जो इनकी मृत्युके बाद लिखी गयी थी। इसी प्रकार 'बाग बहार' तथा 'राग निर्णय' भी सन्दिग्ध रचनाएँ हैं। 'ब्रज माहात्म्य चन्द्रिका' को लेकर भी उसकी प्रामाणिकताके विषयमें विवाद हो चुका है। साधारणतः यह रचना अच्छी होते हुए भी उनके अन्य ग्रन्थोंके समान नहीं है। दूसरे दासकी कृतियोंमें उद्धृत-छन्दोंका बहुत कुछ आपसमें विनिमय हुआ है। 'पन्थ पारख्या' भी दादूपन्थियोंके सिद्धान्त और नियमों-का वर्णन-समूह है तथा इसकी भाषामें राजस्थानीका प्रभाव होना यह निश्चित करता है कि यह दास द्वारा रचित पुस्तक नहीं हो सकती। इसी प्रकार 'वर्णन निर्णय' के दासकृत होनेका उल्लेख केवल माताप्रसाद गुप्तकी पुस्तक 'हिन्दी पुस्तक साहित्य'के पृष्ठ ५३६ पर मिलता है। इसलिए दासकृत अनेक ग्रन्थ विवादास्पद हैं। 'प्रताप सोमवंशावली'के रचयिता कवि द्विजदेवने भिखारी-दासके सात ग्रन्थोंका उल्लेख एक स्थलपर किया है। इसके आधारपर इन सात ग्रन्थों, यथा—१. 'काव्य निर्णय', २. 'शृंगार निर्णय', ३. 'छन्दोर्णव पिंगल', ४. 'विष्णु पुराण', ५. 'रस सारांश', ६. 'अमर कोश', (शब्द-नाम-प्रकाश) तथा ७. 'शतरंजशतिका'के प्रामाणिक होनेमें कोई सन्देह नहीं रहना चाहिए।

उपर्युक्त विवेचित ग्रन्थोंमें 'रस सारांश'में रसका प्रसंग है, जिसके अन्तर्गत नायक-नायिका-भेदका पर्याप्त विस्तार है। इसके अतिरिक्त नायिकाओंके हावभावादि, सात्त्विक अलंकारों, सात्त्विक भावों, अन्य रसों, भाव तथा भावाभास आदिका निरूपण है। 'शृंगार निर्णय'में मुख्यतः शृंगार रस विषयक सामग्री प्रस्तुत की गयी है। 'काव्य निर्णय' इनका प्रमुख ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ काव्यशास्त्रकी सर्वांगीण दृष्टिको प्रस्तुत करता है, क्योंकि इसमें ध्वनि, रस, अलंकार, गुणी-भूत व्यंग्य, गुण, दोष तथा तुक आदि सभीका विवेचन किया गया है। 'छन्दोर्णव पिंगल' छन्द-शास्त्रका ग्रन्थ है और हिन्दी छन्दशास्त्रीय ग्रन्थोंमें महत्त्वका है। इन शास्त्रीय ग्रन्थोंके अतिरिक्त अन्य ग्रन्थोंमें एक शब्दकोश है, दूसरा अनुवाद तथा तीसरा शतरंजपर लिखा गया ग्रन्थ है।

दासमें आचार्यत्व और कवित्व दोनों ही प्रकारकी प्रतिभा थी। एक ओर जहाँ वे जटिल विषयको भी सरल तथा सुगम रीतिसे हृदयंगम करानेमें केशवसे अधिक समर्थ प्रतीत होते हैं, वहीं दूसरी ओर इनकी रचना कलापक्षमें संयत और भावपक्षमें रंजनकारिणी होकर इन्हें श्रेष्ठ कवि बनाती है। शुक्लजीने इन्हें आचार्यसे अधिक कवि माना है क्योंकि बिना व्याख्याके इनके लक्षण कहीं-कहीं अपर्याप्त और भ्रामक हो जाते हैं। उपादान लक्षणका लक्षण और उदाहरण दोनों ही अशुद्ध रूपमें इन्होंने दिये हैं। ऐसे स्थल यद्यपि अधिक नहीं हैं फिर भी आचार्यत्वकी दृष्टिसे यह दोष कुछ कम महत्त्वका नहीं है। कवि कर्ममें ये अवश्य अधिक सफल रहे हैं। इन्होंने साहित्यिक और परिमार्जित भाषाका व्यवहार सर्वत्र किया है। उस कालके अनुरूप शृंगार ही इनका भी मुख्य वर्ण्य विषय रहा, पर इन्होंने सदैव मर्यादाका ध्यान रखा। देवकी तरह निम्न-वर्गीय स्त्रियोंका नायिका रूपमें वर्णन न करके दूती रूपमें किया है। शब्दोंकी कलाबाजी और दूरकी कौड़ी लानेका प्रयास इनके काव्यमें नहीं मिलता। जिस बातको

ये जिस ढंगसे कहना चाहते थे, उस बातको उस ढंगसे कहनेकी इनमें पूरी शक्ति थी और कलाकारके अन्दर जो अनासक्तिकी भावना उसे श्रेष्ठ बनाती है, वह इनमें पूरी तरहसे थी—"आगेके सुकवि रीझिहैं तो कविताई, नत राधिका कन्हाई सुमिरनको बहानो है" से यह प्रकट होता है। इसमें सन्देह नहीं कि दास रीतिकालके श्रेष्ठ कवियोंमें हैं और प्रमुख आचार्योंमें महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० इ०; हि० सा० बृ० इ०; (भा० ६), हि० का० इ०; हि० अ० सा०।]—ह० मो० श्री०

दिग्विजय भूषण–गोकुल कविकी काव्य-शास्त्रपर लिखी हुई महत्त्वपूर्ण रचना। इसकी रचना बलरामपुरके महाराज दिग्विजय सिंहके नामपर सन् १८६२ में प्रारम्भ हुई। प्रारम्भमें कविका उद्देश्य केवल अलंकार-ग्रन्थ लिखने का था। बादमें रामस्वरूप द्वारा इसकी टीकाकी जानेके समय कविने रीतिकालीन परिपाटीके अनुसरणपर रचनाको सर्वांगपूर्ण बनानेकी दृष्टिमे इसमें पहले चौदह प्रकाशोंके साथ क्रमशः नखशिख, षट्ऋतु, नायिका-भेद और कवि प्रौढोक्ति सम्बन्धी प्रकाश जोड दिये। प्रस्तुत रूपमे टीका सहित इसका पहला संस्करण जगबहादुर यन्त्रालय, बलरामपुरसे १८६८ ई०मे प्रकाशित हुआ। इधर इसका भगवतीप्रसाद सिंह द्वारा सुसम्पादित सस्करण अवध साहित्य मन्दिर, बलरामपुरसे १९५९ ई० (सं० २०१६ वि०)मे प्रकाशित हुआ है। इस ग्रन्थमें १८६७ ई० (सं० १९२४)की एक घटनाका वर्णन (बघेलखण्डमें जगली हाथी का शिकार) है, जिससे ग्रन्थके प्रारम्भमें दिया गया संवत् १९१९ (१८६२ ई०) केवल रचनाको प्रारम्भ करनेका काल माना जा सकता है। इसके टीकाकार रामस्वरूप कविके काव्य-गुरु गदाधरके भतीजे हैं।

इस ग्रन्थके प्रारम्भिक चौदह प्रकाशोंमें विषयका विभाजन इस प्रकार है—१. मंगलाचरण, देश, नगर, २. सृष्टि विधान, ३. सूर्यवंश, ४. चन्द्रवंश, ५. नृपवंश, ग्रन्थ-रचना-काल, बारह प्रकाश वर्णन, ६. एक छन्दमे एक अलंकार, ७. चारों चरणोंमे एक अलंकार, ८. संकर अलंकार—एक छन्दमें दो अलंकार, ९. अक्रम संसृष्टि—एक छन्दमे कई अलंकार, १०. संक्रम संसृष्टि—एक छन्दमें कई अलंकार, ११. दोहोंमे परिभाषा सहित एक अलंकार वर्णन, १२. चित्रालंकार, १३. अनुप्रास और यमक, १४. वीप्सा, श्लेष और वक्रोक्ति। इस ग्रन्थके १२ प्रकाशोमे (६ से ९, ११ से १८)मे कविने प्राचीन कवियोंकी रचनाएँ उदाहरणके रूपमें प्रस्तुत की हैं। गोकुल कविने इन कवियोंकी सख्या १९२ मानी है, जबकि भगवती प्रसाद सिंहके अनुसार यह संख्या १८९ ठहरती है। गोकुल कविने इस ग्रन्थमें संस्कृत अलंकार-शास्त्रकी प्राचीन तथा नवीन दोनों पद्धतियोंका अनुसरण किया है। इसके दशम प्रकाशमें गोकुल कविने अलंकारोंके वर्गीकरणका प्रयत्न किया है। कहीं-कहीं एक छन्दमें कई अलकारोंका बिना संकरके प्रयोग किया गया है। विभाजनमें प्राचीन परम्पराकी अपेक्षा लक्षणसाम्यपर बल दिया गया है।

[सहायक ग्रन्थ—दि० भू० (भूमिका)।]—भ० प्र० सिं०

दिनकर–दे० रामधारीसिंह 'दिनकर'।

दिनेश—ये टिकारी राज्य (बिहार) के निवासी कवि थे। इनके दो ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं—'रस-रहस्य' (१८२६ ई०) और 'काव्य कदम्ब'। 'रस-रहस्य'को शिवसिंह तथा ग्रियर्सन ने नख-शिखसम्बन्धी ग्रन्थ माना है, जो उसके नामसे स्पष्ट नहीं है। 'दिग्विजयभूषण'में उद्धृत इनके छन्द भी नख-शिखसम्बन्धी हैं। इससे या तो यह माना जा सकता है कि इनका कोई ग्रन्थ नख-शिखपर भी था या 'रस-रहस्य'का विषय नख-शिख है।

[सहायक ग्रन्थ—शि० स०; दि० भू० (भूमिका)।] —सं०

दिलीप—१. अंशुमान् और यशोदाके पुत्र तथा भगीरथके पिता। इन्होंने गंगाको पृथ्वीपर लानेका असफल प्रयास किया तथा दीर्घकाल राज्य भोगकर अन्त में बनवास ले लिया।

२. इक्ष्वाकुवंशीय एक प्रसिद्ध राजा, जिन्होंने स्वर्गसे आते समय एक बार कामधेनुको प्रणाम नहीं किया, इसलिए कामधेनुने शाप दिया कि तुम्हें मेरी पुत्री नन्दिनीकी सेवा किये बिना सन्तान न होगी। सन्तानाभावमें वशिष्ठके आदेशसे उन्होने नन्दिनीकी सेवा की तब उनकी रानी सुदक्षिणा के गर्भसे रघुका जन्म हुआ। —मो० अ०

दिल्ली प्रान्तीय हिंदी साहित्य सम्मेलन, दिल्ली–स्थापना—मार्च १९४५। कार्य और विभाग—रेडियोकी हिन्दी उपेक्षा-नीतिका विरोध किया। सम्मेलनकी विशेष समितिका आयोजन किया। दिल्ली कारपोरेशनके चुनावमें भाग लेकर कई प्रतिनिधि निर्वाचित कराये। १९६० ई० मे राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डनका अभिनन्दन समारोह करके अखिल भारतीय ख्याति प्राप्त की। —प्रे० ना० टं०

दिव्या–(प्र० १९४५ ई०) यशपालका प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास। इसमें बौद्धकालीन ऐतिहासिक फलकपर व्यक्ति और समाजकी प्रवृत्ति एवं गतिका चित्र अंकित किया गया है। बौद्धकालीन भारतके सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक वातावरणके वर्गगत स्वार्थों और संघर्षोंके बीच अनेक परिस्थितियोंसे होकर गुजरती हुई नारीकी जाग्रत् चेतनाको इस उपन्यासमें अतिशय कलापूर्ण ढगसे अंकित किया गया है। हिन्दीके उपन्यासोमे इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। कई भाषाओंमें इसका अनुवाद भी हो चुका है।

दिव्या सागलके धर्मस्थ महापण्डितकी प्रपौत्री तथा जनपद कल्याणी मल्लिकाकी शिष्या है। मधुपर्वके अवसरपर 'मराली नृत्य'के कारण उसे 'सरस्वती पुत्री'की सर्वश्रेष्ठ उपाधि मिली। उसी दिन दासपुत्र पृथुसेनको 'सर्वश्रेष्ठ खड्गधारी'की उपाधि प्राप्त हुई। पृथुसेनसे आकृष्ट होकर दिव्याने उसे आत्मसमर्पण कर दिया। इसी दिन पृथुसेन युद्धमें चला गया। विजय होकर लौटनेपर उसने गणपतिसे विवाह कर लिया। गर्भवती दिव्याको मार्मिक क्लेश हुआ। अब अपने समाजमें उसे कोई स्थान नहीं था। वह बाहर निकल पड़ी पर दास-विक्रेताओंके हाथ पकड़कर उसे कठोर यन्त्रणाओंका सामना करना पड़ा। इस जीवनसे निष्कृति पानेके लिए वह यमुनामें कूद गयी किन्तु मथुराकी प्रसिद्ध नर्तकीने उसे बचा लिया तथा अपने संरक्षणमें

नृत्य-संगीतकी शिक्षा दी। बादमें मल्लिका उसे फिर सागल ले गयी पर उसी अभिजात वर्गने उसे फिर वहाँसे निष्कासित कर दिया। बाहर एक पान्थशालामें उसे उसके पुराने तीनों प्रणयी पृथुसेन, आचार्य रुद्रधीर तथा चार्वाक मारिश मिले। मारिशका व्यावहारिक जीवन दर्शन देखकर दिव्याने उसे आत्मसमर्पण कर दिया।

दिव्या युग-युगमें शोषित नारीके विद्रोहकी वाणी है। वर्णाश्रम धर्म, बौद्धसंघ सभी एक सुनिश्चित घेरेमें अभिजातीय आकांक्षाओंके पोषक हैं। अभिजातीय गौरव प्राप्त होनेपर पृथुसेन भी बदल जाता है। सबके सब नारीको सम्पत्तिसे अधिक कुछ नहीं समझते, उसका अपना कोई स्वत्व नहीं है, कोई व्यक्तित्व नहीं है। वह पशुओंकी तरह जगह-जगह बेची जाती है पर उसके रूपके सभी ग्राहक हैं, सभी उसे तथाकथित सम्मानका प्रलोभन देते हैं पर वह उस व्यक्तिको समर्पण करती है, जो नारीत्वकी कामनाको पहचानता है, जो आश्रयके आदान-प्रदानका विश्वासी है। इस प्रतिपाद्यको जीवन्त बनानेके लिए उस युगके वातावरण —शस्त्रप्रतियोगिताके महोल्लास, रजतपिंजरोंमे आबद्ध शुक-सारिकाओंके शृंगेचार, मधुशालाओं और पानगोष्ठियोंके रंगीन चित्रणों—को बहुत ही रसमयपूर्ण तथा प्रभावोत्पादक ढंगसे अंकित किया गया है। —द० सिं०

दीनदयाल गिरि–दीनदयाल हिन्दी नीति-काव्यके प्रमुख स्तम्भोंमें हैं। इनका जन्म सन् १८०२ ई० में बनारसके गायघाट मुहल्लेमें हुआ था। ये दशनामी सन्यासी और कृष्णभक्त थे। अन्तःसाक्ष्यसे ("सुखद देहली पै जहाँ बसत विनायक देव। पश्चिम द्वार उदार है, काशीको सुर सेव"—'अनुराग बाग') पता चलता है कि ये काशीके पश्चिमी द्वार पर देहली-विनायक पर रहते थे। 'शिवसिंह सरोज'के अनुसार ये संस्कृत और हिन्दीके महान् पण्डित थे। इनके गुरुका नाम कुशागिरि था। श्यामसुन्दर दासके अनुसार अपने गुरु भाइयों (जो दो थे—स्वयंवर गिरि, रामदयाल गिरि) से पटती नहीं थी, जिसका इन्हें बड़ा दुःख रहता था। इनकी मृत्यु सन् १८६५ में हुई। इनके 'अनुराग बाग', 'दृष्टान्त-तरंगिणी', 'अन्योक्ति माला', 'वैराग्य दिनेश' और 'अन्योक्ति कल्पद्रुम' ये पाँच ग्रन्थ मिलते हैं, जो श्यामसुन्दर दास द्वारा सम्पादित होकर नागरी प्रचारिणी सभा, काशीसे १९१९ ई०में 'दीनदयाल गिरि ग्रन्थावली' नामसे प्रकाशित हो चुके हैं। शिवसिंह सरोजमें इनके एक अन्य ग्रन्थ 'बाग बहार'का उल्लेख मिलता है, किन्तु अभी तक उक्त ग्रन्थ नहीं मिल सका है। श्यामसुन्दर दासका अनुमान है कि यह कोई दूसरा ग्रन्थ नहीं है, अपितु 'अनुराग बाग'का ही दूसरा नाम है। 'अनुराग बाग' कृष्णलीला विषयक ग्रन्थ है। आलोचकोंका ध्यान प्रायः इस ग्रन्थकी ओर नहीं गया है। काव्यत्वकी दृष्टिसे यह एक उच्चकोटिकी रचना है। 'वैराग्य दिनेश'का विषय वैराग्य है। इस पर रीतिकालका पर्याप्त प्रभाव है। शेष तीन ग्रन्थ नीति-विषयक हैं। इनका नीति-काव्य संस्कृतसे प्रभावित है किन्तु साथ ही मौलिक अंश भी पर्याप्त है। इनके प्रमुख नीतिविषय राजा, भले-बुरे, सुम, मित्र, समय, नारी, सन्तोष, भाग्य, विद्या, गर्व आदि हैं। नीतिके कवियोंमें अधिकांशतः पद्यकार हैं। दीनदयाल उन थोड़ेसे नीतिकारोंमें हैं, जिन्हें पद्यकार न कहकर कवि कहना चाहिए। इनकी भाषा संस्कृतमिश्रित और बहुत प्रौढ़ है। व्याकरणिक दृष्टिसे वह मूलतः ब्रज है किन्तु अवधी-भोजपुरीका भी कहीं-कहीं प्रभाव है। हिन्दीके अन्योक्तिकारोंमें दीनदयालका स्थान बहुत ऊँचा है। इनके प्रिय छन्द कुण्डलियाँ और दोहे हैं, यों कवित्त, सवैया आदि का भी इन्होंने प्रयोग किया है। इनकी शैलीका विशिष्ट सौन्दर्य इनकी अन्योक्तियोंमें परिलक्षित होता है। कविकी कल्पनाशक्ति बड़ी उर्वरा है, जिसका पता उसके अप्रस्तुत चयनसे लगता है।

[सहायक ग्रन्थ—दीनदयाल गिरि ग्रन्थावली : सं० श्यामसुन्दर दास।] —भो० ना० ति०

दीनदयालु गुप्त–जन्म १९०५ ई० मे सिगनपुर (जिला-अलीगढ)मे हुआ। शिक्षा (एम० ए०, डी० लिट्०) प्रयाग विश्वविद्यालयमें हुई। आपका शोध-प्रबन्ध 'अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय' विद्वानोंके बीच पर्याप्त रूपसे आदृत है। सम्प्रति आप लखनऊ विश्वविद्यालयमे हिन्दी विभागके अध्यक्ष हैं। हिन्दीके आरम्भकालीन अध्यापन और शोधमे आपका योगदान ऐतिहासिक महत्त्वका है। —सं०

दीपशिखा–'दीपशिखा' महादेवी वर्माका पाँचवाँ काव्य-संग्रह है, जिसका प्रथम संस्करण सन् १९४२ में किताबिस्तान, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित हुआ था। इस पुस्तकमें कुल ५१ गीत संकलित हैं। प्रत्येक गीत कवयित्री द्वारा बनाये गये एक भावात्मक चित्रके साथ उसीकी हस्तलिपिके ब्लाकमें छपा है। इस तरह इस संग्रहमें महादेवीके काव्य-सौन्दर्यके साथ उनकी सुसंस्कृत सुरुचि और चित्रात्मक सर्जन शक्तिका भी पूर्ण प्रस्फुटन हुआ है। प्रारम्भमें 'चिन्तनके कुछ क्षण' शीर्षकसे २३ पृष्ठोंकी लम्बी भूमिका है, जिसमें काव्य और कलाके उद्देश्य, छायावाद, रहस्यवाद, यथार्थवाद, प्रगतिवाद, आधुनिकता, वर्तमान सामाजिक स्थिति आदिके सम्बन्धमें विवेचना की गयी है। पूर्ववर्ती काव्य-संग्रहोंमें यदि महादेवी साधनावस्थामें थीं तो 'दीपशिखा'में वे सिद्धावस्थामें पहुँच गयी हैं, जिसमें साधिकाकी आत्माकी दीपशिखा अकम्पित और चंचल होकर आराध्यकी ज्योतिमें विलीन हो गयी है। इसी कारण इस संग्रहमें १४ गीत तो पूर्णतः दीपकके रूपकपर आधारित हैं और अन्य गीतोंमें बीच-बीचमें दीपकका प्रसंग बार-बार आया है। पूर्ववर्ती संग्रहोंमें भी दीपकका प्रतीक उन्होंने ग्रहण किया है किन्तु इस संग्रहमें उनका पूरा काव्य दीपक-भावनामय है। तुलसीकी चातक भावकी उपासनाकी तरह महादेवीकी दीपक-भावसे आराध्यकी उपासना भी हिन्दी साहित्यके लिए एक नयी वस्तु है।

इस दीपक-भावनाके मूलमें महादेवीका वह जीवन-दर्शन है, जिसने उनकी उपासना पद्धतिका रूप स्थिर किया है। उनकी उपासना केवल अपने लिए नहीं, विश्वके हितके लिए है। वे अपने त्याग, दुःख और करुणासे विश्वका मार्ग प्रशस्त करना चाहती हैं पर उनका अभिनव दुःखवाद गौतम बुद्धके दुःखवादसे भिन्न है क्योंकि गौतम बुद्धने अनन्त करुणा द्वारा निर्वाणका मार्ग प्रशस्त किया पर महादेवी निर्वाण चाहती ही नहीं। दुःखका पथ ही उनका निर्वाण है। "पथ मेरा

निर्वाण बन गया" (सं० ३९) त्यागमय दुःखने स्वयं आराधिकाको आराध्य बना दिया, वह "ज्वालासे धुली मोम का देवता" बन गयी है, परिधिहीन व्योम ही उसका मन्दिर है, पृथ्वी चरण पीठ है, सिन्धु गर्जन ही शंखध्वनि और उसकी सांस-सांस आरती है (सं० ६)। इस तरह आँसुओं के देशमें प्रियकी अनन्त खोज ही उसे वरदान बन गयी है (सं० १७)। इस अद्वैत स्थितिमें आराध्यके पास सन्देश भेजनेकी आवश्यकता नहीं रह जाती क्योंकि वह आराधिका के स्वप्न और प्यासमें घुल-मिलकर उसीमें समा गया है (सं० २२)। यह अद्वैत स्थिति ऐसी विचित्र है कि मिलन हो जानेपर भी विरह बना हुआ है क्योंकि यह एकाकी मिलन है, जो विरह में ही संभव है। अतः कवयित्रीको विरहावस्था ही काम्य है (सं० २)। इस तरह विरह-वेदनाकी चरमावस्था ही महादेवीकी मिलन-सिद्धि है। इस अवस्थामें पहुँच जाने पर मृत्युका भय नहीं रह जाता, इसके विपरीत वह ममतामयी माँ जैसी लगती हैं क्योंकि लेखिका पुनर्जन्ममे विश्वास करती है, जिसके अनुसार मृत्यु ही नये जन्मका कारण बनती है। महादेवीजी सगुण भक्तोकी भाँति बार-बार जन्म लेकर विरह-साधना करना चाहती है (सं० १५)।

उपर्युक्त जीवन-दर्शनके अनुरूप ही कवयित्रीकी उपासना दीपक-भावनासे अनुप्रेरित है। दीपक उसके उपासनारत जीवनका प्रतीक और आदर्श है। इसीलिए कभी वह विश्वका तम दूर करनेके लिए दीपक राग गाकर बुझे हुए प्राणोंके दीपक जलाती है (सं० ५). कभी विराट पुरुषके विश्व मन्दिरके प्रांगणकी शून्यता दूर करने और भौतिकता के जड अन्धकारमे आध्यात्मिक चेतनाका प्रतिनिधित्व करनेके लिए अपनेको ही दीपक रूपमे देखती हैं (सं० १३) और कभी उसे विश्व ही दीपक और काल उसकी शिखा प्रतीत होता है (सं० १८)। कभी उसे अपना जीवन काल-प्रवाहमें बहता एक ऐसा दीपक प्रतीत होता है, जिसकी छायामें कालकी लहरें रंगीन हो जाती हैं और जो अपनी ज्वालासे अमर गीतोंकी सर्जना करता है (सं० ३७) और कभी लौकिक कामनारूपी शलभोंको अपने आध्यात्मिक जीवन दीपकके पास आनेसे मना करती है क्योंकि दीपकका जड़ शरीर तो नाशवान है, जिसके लिए शलभ पागल होते हैं (सं० ३६)। उसका जीवन-दीपक कभी तन्द्रिल होकर सोता नहीं, बाधाओंके झकोरोंके बीच भी अनवरत जलता रहता है (सं० ४५)। इसी कारण उसे यह जाननेकी आवश्यकता ही नहीं है कि कितनी रात बाकी है? झंझा-झकोरे उसका कुछ नहीं बिगाड सकते क्योंकि जलानेवाले आराध्यकी अलक्षित हथेलियोका सम्पुट उसे घेरे हुए है (सं० ४२)।

इस संग्रहमें भी पूर्ववर्ती संग्रहोंकी भाँति प्रकृतिका चित्रण स्वतन्त्र रूपमें बहुत कम हुआ है। वैसे तो सभी कविताओं-में अप्रस्तुत प्रकृतिमे ही लिये गये है, पर कुछ गीतोंमें बादल (सं० ८), पक्षी (सं० ११), वर्षान्तके मेघ (सं० २१) रात्रि (सं० ३२), प्रातःकाल (सं० ५०) आदिका वर्णन सम्यक् रूपमें हुआ है। एक गीत (सं० ४४) में हिमालयके हिमाच्छादित श्रृंगोंका पृथ्वीके शतदलके रूपमें चित्रात्मक वर्णन हुआ है। पर इन गीतोंमें भी कवयित्रीने अपने आदर्शों और भावनाओंका आरोप प्रकृतिकी वस्तुओंपर बहुत अधिक किया है। इस संग्रहमें विषय-वैविध्य बिलकुल नहीं है। प्रणय-निवेदन और प्रकृतिके अतिरिक्त और किसी विषयपर कविता नहीं है।

'दीपशिखा' में गीतोंका रूप-शिल्प बहुत ही परिमार्जित और कलात्मक है। संक्षिप्तता और भावान्वितिके साथ विविध गेय छन्दोंके प्रयोगके कारण ये गीत आधुनिक हिन्दी काव्यकी अमूल्य निधि है किन्तु शिल्पगत उत्कृष्टताके साथ इस संग्रहमें एक खटकनेवाली बात कुछ विशेष शब्दोंकी अत्यधिक आवृत्ति भी है। —श० ना० सिं०

दीर्घजिह्वा–एक राक्षसी, जो अशोक वाटिकामें सीताजीकी रखवाली करती थी। —मो० अ०

दीर्घतम–१. धन्वन्तरिके पिता तथा राष्ट्रके पुत्रोंमें-से एक।

२. उशिजके एक पुत्र, जिन्हें गर्भमें ही बृहस्पतिने संज्ञाशून्यताका अभिशाप दे दिया था। एक बार कामवश उन्होने अपने भाईकी स्त्रीका आलिंगन कर लिया, जिससे क्रुद्ध भाइयोंने इन्हें गंगामें बहा दिया। विरोचन बलिसे भेंट होनेपर बलिने उन्हें क्षेत्रज सन्तानोत्पादनार्थ रख लिया। बलिकी रानीसे पाँच तथा रानीकी दासीसे एक पुत्र हुआ। इस पुत्रका नाम कक्षिवत् था, जो गौतमके नामसे प्रसिद्ध हुआ।

३. गर्भसे ही एक साधु।

४. उतथ्य तथा ममताके एक पुत्र; अंग, बंग, कलिंग आदि पुत्रोंके पिता। भारद्वाजके सौतेले भाई। —मो० अ०

दीर्घबाहु–१. खट्वांगके पुत्र दिलीपका नाम दीर्घबाहु भी है। ये रघुके पिता थे।

२. अजके पुत्रके रूपमें भी दीर्घबाहु प्रसिद्ध है। —मो० अ०

दीर्घिका—अत्यन्त लम्बी, वीरशर्माकी कन्या। इसे शांडिली भी कहते है। अमंगल रूप समझकर कोई इससे विवाह नहीं करता था। अतः दीर्घिकाने वृद्धावस्था तक खूब तपस्या की। एक कोढ़ीकी प्रार्थनापर इसने विवाह कर लिया। वह कोढी वेश्यागामी था। दीर्घिका रातमे उसे कन्धेपर बिठाकर वेश्याके यहाँ ले जाती थी। एक बार अन्धेरेमें पैर छू जानेसे माण्डव्य ऋषिने शाप दिया कि सूर्योदय होते ही पैर छुआने वाला मर जायगा। दीर्घिकाने अपने सतीत्वसे सूर्योदय ही न होने दिया। तब अनसूयाके कहनेसे सूर्योदय हुआ। देवताओंने प्रसन्न होकर दोनोंको यौवन एवं स्वास्थ्य प्रदान किया। —मो० अ०

दुंदुभि–(१) मय और रम्भाका एक पुत्र। दीर्घ तपस्या कर सहस्रगजबलप्राप्त यह राक्षस भैंसेके रूपमें विचरने लगा। बलिने इसे मारकर मतंग ऋषिके आश्रममें फेंक दिया। क्रुद्ध मतगने बलिको शाप दिया कि इस आश्रममें आते ही तू मर जायगा। इसलिए बालिसे बचकर सुग्रीव ऋष्यमूक पर्वतपर रहता था। मतंगका आश्रम इसी पर्वतपर था। यहीं सुग्रीवसे रामकी मित्रता हुई थी और सुग्रीवके कहनेपर रामने अपने पदांगुष्ठसे दुंदुभिकी अस्थियोंको १६ योजन दूर फेंककर अपना बल दिखाया था।

रामचरित मानसमें यह प्रसंग इस प्रकार है—"दुंदुभि अस्थि ताल दिखराए, बिनु प्रयास रघुबीर ढहाए"। (द्रि० मानस ४।७।६)। —मो० अ०

दुरासद–भस्मासुरका पुत्र, जो शिवसे मन्त्र प्राप्त कर जपनेसे शक्तिवान् बन गया और संसारको पीडित करने लगा। अन्तमें शक्तिपुत्र ढुंढीने उसे मार डाला। —मो० अ०

दुर्गम–दुर्गा द्वारा वध किया गया एक राक्षस। इसने वेदों को नष्ट कर वैदिक कर्म विलुप्त करना चाहा था। इसके वधके कारण ही देवीका नाम दुर्गा पड़ा। (दे० 'दुर्गा')। —मो० अ०

दुर्गा–शिवकी पत्नी सतीका एक रूप, जो आदि शक्तिका प्रतीक माना जाता है। इनके अन्य नाम हैं—शिवा, भवानी, देवी, चण्डी, कालिका, भैरवी, कापालिका, काली, भद्रकाली आदि। शान्त, कोमल, मधुर रूपमें वे पार्वती, उमा, गौरी आदि नामोंसे अभिहित की जाती है, प्रचण्ड एवं विकराल रूपमें चण्डी आदि द्वारा। दुर्गम नामका असुर संहार करनेके कारण दुर्गा कहलाती है। आदिशक्तिके उपासक शाक्त कहलाते हैं। दुर्गा देवीके दस हाथ हैं, जिनमें वे विविध आयुध धारण किये हुए है। उनके गलेमें मुण्डमाल है और उनका वाहन सिंह है। वे शुभ, निशुंभ, महिषासुर, रक्तबीज आदि अन्य राक्षसोंकी वधकर्त्री है। तान्त्रिक उनकी प्रमुखतासे पूजा करते हैं, लेकिन स्मार्त भी उन्हें मानते हैं। दुर्गा योगमायाका एक नाम भी है। जामवानकी गुहासे कृष्णके सकुशल वापस आनेपर देवकी आदिने दुर्गाको तुष्ट किया था। —मो० अ०

दुर्गाप्रसाद खत्री–देवकीनन्दन खत्रीके ज्येष्ठ पुत्र। जन्म सन् १८९५ ई०में काशीके लाहौरी टोलेमें। सन् १९१२ ई०में स्कूल लीविंग सर्टिफिकेटकी परीक्षा विज्ञान तथा गणितमें विशेष योग्यताके साथ पास करनेके बाद आपने साहित्य-क्षेत्रमें प्रवेश किया। राष्ट्रीय आन्दोलनोंमें बराबर भाग लिया। कई बार जेल जा चुके है। स्वभावसे शान्तिप्रिय व्यक्ति थे। आपकी डेढ़ दर्जनसे अधिक कृतियाँ प्रकाशित है। उनके नाम इस प्रकार हैं—'अभागेका भाग्य' (१९१४ ई०), 'अनगपाल' (१९१७ ई०), 'बलिदान' (१९१९ ई०), 'प्रोफेसर भोंदू' (१९२० ई०), 'प्रतिशोध' (१९२५ ई०), 'लालपंजा' (१९२७ ई०), 'रक्त-मण्डल' (१९२७ ई०), 'कालाचोर' (१९३२ ई०), 'कलक-कालिमा' (१९३२ ई०), 'सुफेद शैतान' (१९३५ ई०), 'भूतनाथ' (१९१६-३४ ई०), 'सुवर्ण रेखा' (१९४० ई०), 'स्वर्गपुरी' (१९४१ ई०), 'रोहतास मठ' (१९४९ ई०), 'सागर सम्राट्' (१९५० ई०), 'साकेत' (१९५२ ई०), 'संसार चक्र' (१९५३ ई० द्वि० स०), 'माया' (१९५६ ई० द्वि० स०)। इनमें 'माया'के अतिरिक्त शेष सभी उपन्यास है। आपके उपन्यासोंको चार श्रेणियोंमे रखा जा सकता है। 'तिलस्मी ऐय्यारी-उपन्यास', 'जासूसी उपन्यास', 'सामाजिक उपन्यास' और 'अद्भुत किन्तु सम्भाव्य घटना-प्रधान-उपन्यास'। 'भूतनाथ' और 'रोहतास मठ' ऐय्यारी-तिलस्मी उपन्यास है और देवकीनन्दन खत्रीकी परम्पराको जीवित रखनेमें सहायक हुए है। 'प्रतिशोध', 'लालपंजा', 'रक्तमण्डल', 'सुफेद शैतान' जासूसी उपन्यास है किन्तु इनमें राष्ट्रीयताकी भावनाका विकास हुआ। 'सुफेद शैतान' में तो सम्पूर्ण एशियाको स्वतन्त्र करानेकी मौलिक उद्भावना की गयी है। 'सुवर्ण रेखा', 'स्वर्गपुरी', 'सागर सम्राट्', 'साकेत' और 'कालाचोर' शुद्ध जासूसी उपन्यास हैं, जिनमें वैज्ञानिक अनुसन्धानोंके आधार पर जासूसी-कलाको विकसित किया गया है। 'कलक कालिमा' सामाजिक उपन्यास है। इसमें अनैतिक प्रेमका दुष्परिणाम दिखाया गया है। 'बलिदान'की समस्या भी सामाजिक है किन्तु इसके उत्तरार्द्धमें जासूसीकी प्रवृत्ति आ गयी है और यह एक 'चरित्र प्रधान' उपन्यास बनते-बनते रह गया है। 'संसार चक्र' अद्भुत किन्तु सम्भाव्य घटना-चक्रोंको लेकर लिखा गया है। 'माया'में कुल ६ कहानियाँ संगृहीत हैं। अपने निष्कर्षोंमे ये कहानियाँ गीताके कुछ श्लोकोंको उदाहृत करती है। इनकी भाव-भूमि नैतिक-सामाजिक है और घटनाएँ स्थूल। आपके साहित्यिक कृतित्वका महत्त्व दो दृष्टियोंसे है। एक ओर तो आपने देवकीनन्दन खत्री और गोपालराय गहमरीकी सम्मिलित परम्पराको विकसित किया है; दूसरी ओर सामाजिक और राष्ट्रीय प्रश्नोंको जासूसी तकनीकमे प्रस्तुत करके नवीन परम्पराको जन्म दिया है। —रा० चं० ति०

दुर्गाप्रसाद मिश्र–हिन्दी-गद्यके विकासमे हिन्दीतर देशके जिन इने-गिने साहित्यकारोंने योग दिया था, उनमे दुर्गाप्रसाद मिश्र अग्रणी हैं। आपका जन्म कश्मीरके साँबा नगरमे सन् १८५९ ई० मे हुआ था। आपके पितामह कलकत्तेमे बस गये थे। आपका अधिकांश जीवन भी वहीं बीता। आपने हिन्दी, डोगरा और बंगला भाषाका अभ्यास घरपर किया था; संस्कृत काशीमे पढ़ी थी और अंग्रेजी कलकत्तेके नार्मल स्कूलमे सीखी थी। 'अमृत बाजार-पत्रिका'के प्रवर्त्तक-सम्पादक शिशिर कुमार घोष आपके राजनीतिक गुरु थे। उनकी प्रेरणासे आपने पत्रकारिताके क्षेत्रमे प्रवेश किया और अपने जीवन-कालमे 'भारत मित्र' (१८७८ ई०) 'सारसुधानिधि', 'उचितवक्ता' (१८८० ई०), 'जम्बू प्रकाश', 'बिहारबन्धु' और 'मारवाड़ी बन्धु' आदि कई पत्रोंका सम्पादन किया। जम्मूनरेश रणवीरसिंहके आप विशेष कृपापात्र थे। कुछ दिनो तक कश्मीर राज्यके शिक्षा-विभागके सर्वोच्च अधिकारीके पदपर भी आपने कार्य किया था।

आपकी कुल २०-२२ कृतियाँ बतायी जाती हैं, जिनमे 'सरस्वती' (१८७८ ई०)—बंगलाके 'स्वर्णलता' नाटकके आधारपर रचित हिन्दू-गार्हस्थ्य रूपक, 'चारुपाठ' (भाग १, २, ३), 'कश्मीर कीर्ति', 'लक्ष्मीबाईका जीवन', 'विद्यामुकुल', 'लक्ष्मी' (गार्हस्थ्य रूपक)', 'शिक्षा-दर्शन', 'हिन्दीबोध' (भाग १, २, ३), 'आदर्शचरित्र', 'संक्षिप्त महाभारत', 'नीतिकुसुम', 'शिवाजीका जीवन चरित', 'प्रभास मिलन' (१८९९ ई०), 'भारतधर्म' (१९०० ई०) 'सर्पदंशनचिकित्सा' प्रसिद्ध हैं। अधिकांश कृतियाँ बिहार प्रान्तके विद्यार्थियोंके पाठ्य-क्रममे निर्धारित थीं और उन्हींको

दृष्टिमें रखकर लिखी गयी थीं।

आप बड़े अच्छे वक्ता थे। आपकी भाषा जोरदार और शैली सजीव है। अभिव्यक्तिके प्रवाहमें आपने 'डर्टी', 'क्रुयल्टी', 'डार्क', 'फारेस्ट' आदि अंग्रेजीके; 'अख्तियार', 'बेशक', 'उम्दा', 'ख्याल', 'मुतबन्ना,' 'मुलाकात', 'बन्दोबस्त' आदि उर्दूके और 'मनुक्ख' (मनुष्य), 'संझा' (संध्या), 'गिरास' (ग्राम) जैसे ठेठ हिन्दीके शब्दोका प्रयोग निस्संकोच भावसे किया है। स्वभावसे आप हँसमुख थे और राजनीति के गूढ प्रश्नोंपर भी हास्यगर्भित लेख सहज ढंगसे लिखते थे। विदेशी रीति-नीति आपको नहीं भाती थी। अपनी कृतियोमे भी आपने अंगरेजी साहित्यकी कुरुचिपूर्ण भावनाओंके ग्रहण करनेका विरोध किया है। सन् १९१० ई०मे कलकत्तेमें आपका देहान्त हो गया। —रा० चं० ति०

दुर्धर—१. राम सेनाका एक वानर।

२. रावणका मन्त्री।

३. महिषासुरका अनुगामी। —मो० अ०

दुर्धर्ष—१. हनुमान् द्वारा हत, रावणपक्षीय एक सेनापति।
२. राम द्वारा मारा गया रावण पक्षका एक वीर।
३. धृतराष्ट्रका पुत्र। —मो० अ०

दुर्वासा—ये अनसूया और अत्रिके पुत्र थे। ऋक्षकुल पर्वत पर इस ऋषि दम्पत्तिकी तपस्यासे प्रसन्न क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरके अंशोंसे चन्द्रमा, दत्त तथा दुर्वासा—ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए। इस प्रकार दुर्वासा रुद्रके अंश कहे जाते हैं। यही कारण है कि 'शतरुद्र संहिता' आदि शैव ग्रन्थोमे इन्हे रुद्रका अवतार भी कहा गया है। इनका विवाह और्व मुनिकी कन्या कन्दलीके साथ हुआ था। ये वस्तुतः अपने क्रोधके कारण प्रायः स्मरण किये गये हैं। इनके सम्बन्धमें अनेक कहानियां महाभारत और भागवतमे उल्लिखित है। इनके शापसे देवराज इन्द्र राज्यभ्रष्ट हुए थे। इन्हीके शापसे पति-परित्यक्ता शकुन्तलाको अनेक कष्ट सहन करने पड़े थे। भागवतमे अम्बरीषकी परीक्षाका उल्लेख मिलता है। जब सुदर्शन चक्रने दुर्वासाका पीछा किया तब अम्बरीषकी प्रार्थना करने पर शिवके आदेशसे यह चक्र शान्त हुआ। इस घटनाका सांकेतिक उल्लेख 'सूरसागर'मे अनेक स्थलो पर हुआ है (दे० 'अम्बरीष')। —यो० प्र० सिं०

दुर्मद—१. धृतराष्ट्रका एक पुत्र, जिसे भीमने मारा था।

२. मय दानवका पुत्र, जिसे बलिने पराजित किया था।

३. वसुदेव और पौरवीका पुत्र।

४. अंगराज मायावर्माका एक पुत्र। —मो० अ०

दुर्मुख—१. पाँचालके एक नरेश, जिनके पुत्र जनमेजय पाण्डवोंके पक्षमें थे।

२. भीमके हाथों मारा जानेवाला धृतराष्ट्रका एक पुत्र।

३. रावणपक्षीय एक वीर।

४. राम- पक्षका एक वानर।

५. कद्रूका एक पुत्र, सर्प। —मो० अ०

दुर्योधन—धृतराष्ट्र और गान्धारीके सौ पुत्रोंमे ज्येष्ठ। बलरामसे उसने गदा चलाना सीखा था। बलराम सुभद्रासे उसका विवाह भी कराना चाहते थे, किन्तु अर्जुन द्वारा सुभद्रा-हरणसे वह निराश होकर उनका शत्रु हो गया। धृतराष्ट्र युधिष्ठिरको राजा बनाना चाहते थे, किन्तु दुर्योधनने ऐसा नहीं होने दिया। उसने लाक्षागृहमें पाण्डवों को जलानेका असफल प्रयत्न किया। युधिष्ठिरके राजसूय में मय दानव निर्मित फर्श पर उसे जलका भ्रम हो गया और जहाँ जल था, वहाँ उसे सूखी भूमि दिखायी पड़ी। जिस पर भीम तथा द्रौपदीने उसकी हँसी उड़ायी। ईर्ष्यावश शकुनिकी सहायतासे उसने पाण्डवोंकी सब सम्पत्ति और द्रौपदीको भी जीतकर अपमानका बदला लेनेके लिए भरी-सभामें द्रौपदीको नंगी करनेकी आज्ञा दी और अपनी जाँघ खोलकर कहा कि उसे इस पर बिठाओ। कृष्ण की कृपासे द्रौपदीकी लज्जा बची और अपने प्रणके अनुसार महाभारतके अन्तमें भीमने गदासे दुर्योधनकी जाँघ तोड़ दी। दुर्योधन सूईकी नोकके बराबर भी भूमि पाण्डवोको देनेको तैयार नहीं था। अतएव महाभारत युद्ध हुआ, जिसमे दुर्योधन अपने सब भाइयोसहित नष्ट हो गया। दुर्योधन जल-स्तम्भन विद्या जानता था। अतः वह एक जलाशयमे छिप गया। भीमने वहाँ जाकर उसे ललकारा। वीर दर्पवश वह बाहर आ गया। दोनोंका गदा-युद्ध हुआ और भीमने उसकी जाँघपर प्रहार किया। आहत अवस्था मे अकेले पड़े हुए दुर्योधनने अश्वत्थामासे भीमका सर लाने को कहा। अश्वत्थामा रात्रिमें पाण्डवोके शिविरमें घुसकर पाण्डवोके पुत्रोंके शीश काट लाया। जब दुर्योधनको यथार्थता मालूम हुई तो शोकार्त हो उसने शरीर छोड़ दिया। रामधारी सिंह 'दिनकर'कृत 'कुरुक्षेत्र'मे ये वर्णन प्रतीक रूपमें आते है। —मो० अ०

दुर्वारण—एक असुर, जो जालन्धरका दूत था। यह देवताओं से समुद्र-मन्थनमे उपलब्ध १४ रत्न मांगने गया। इन्द्रके इनकार कर देने पर देवासुर-संग्राम हुआ। —मो० अ०

दुलारेलाल भार्गव—जन्म १८९५ ई०, लखनऊमे। आपने पहले उर्दू पढी और फिर हिन्दीका अध्ययन किया। आपकी पढाई इन्टरमीडिएटसे आगे न चल सकी। इसके बाद आप नवल किशोर प्रेसमें काम करने लगे। आपकी विशेष ख्याति 'माधुरी' और 'सुधा' पत्रिकाके सम्पादक रूपमें है। हिन्दीमे सर्वप्रथम विशेषांक निकालनेका श्रेय आपको ही है। 'द्विजेन्द्रलाल राय' (उनकी जीवनी और रचनाओंका परिचय, प्रकाशन—१९३४ ई०) जैसी कई पुस्तकें आपने लिखी है किन्तु साहित्यिक कृति केवल 'दुलारे-दोहावली' है, जो सत-सई-परम्पराकी एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। इसमें दोहोंके अतिरिक्त सोरठे भी हैं। 'दोहावली' भाव, उक्ति आदि सभी दृष्टियोंसे बिहारी-सतसईसे विशेषतः और विद्यापति, कबीर, सूर, तुलसी, मतिराम, देव आदि कवियोंसे सामान्यतः अनुप्रेरित है। इसमे गणेश, राधाकृष्ण, विष्णु और सरस्वती सम्बन्धी दोहे स्तुतिपरक अवश्य हैं किन्तु उनमें भक्तोका अनन्य अनुराग नहीं है। बौद्धिक तन्मयता द्वारा आरोपित आस्था है, जो 'राधा-कन्हाई सुमिरन'से अधिक 'कविताई' है। अतः कविके राधा-कृष्ण लौकिक प्रेमानुभूतिके आलम्बन हैं। इसी तरह ब्रह्म, जीव, जगत्,

अथवा मुक्तिका ग्रहण गम्भीर दार्शनिक विवेचनके लिए नहीं, अपितु उक्ति-चमत्कारके लिए किया गया है। नायिका-भेद और शृंगार-निरूपणमें शास्त्रीयताका विशेष ख्याल रखा गया है किन्तु न तो कोई मौलिक उद्भावना हुई है और न किसी नवीन नायिका-भेदका निर्देश ही। दोहावलीका कवि युगचेतनासे भी पर्याप्त अनुप्राणित है। स्वराज्य, अछूतोद्धार, सामयिक क्रान्ति और देशप्रेमकी सांकेतिक अभिव्यक्ति उसने की है।

दुलारेलालमें एक सफल मुक्तककारकी प्रतिभा है। उन्होंने अपने दोहोंकी रचनामें बिहारीका काव्यादर्श स्वीकार किया है। वियोग, शरीर-कृशता तथा विरह-तापका वैसा ही अत्युक्तिपूर्ण एवं चमत्कारी वर्णन किया है। रूप-सौन्दर्यकी अभिनव सृष्टि, नवीन औपम्य-विधान और मनोवैज्ञानिक संस्पर्शोंसे अनुभावोंको मुखरित करनेमें कविको विशेष सफलता मिली है। —म० ना० त्रि०

दुःशासन—धृतराष्ट्रका पुत्र। जब धर्मराज युधिष्ठिर जुएमें सब कुछके साथ द्रौपदीको भी हार गये तो दुःशासनने भरी सभामें दुर्योधनकी आज्ञासे द्रौपदीको नंगी करनेका प्रयास किया। असहाय होकर द्रौपदीने भगवान् कृष्णको पुकारा और कृष्णने चीर बढ़ाकर द्रौपदीकी लाज रखी। दुःशासन चीर खींचते-खींचते थक गया, किन्तु द्रौपदीको नग्न न कर सका। दुःशासनके इस नीच कृत्यसे कुपित भीमने उसका रक्तपान करनेकी प्रतिज्ञा की थी, जिसे उन्होंने महाभारत-युद्धमें पूरा किया। भक्त कवियोंने कृष्णकी भक्त-वत्सलताके उदाहरणोंमें इस कथाका बार-बार सन्दर्भ दिया है। —मो० अ०

दुष्यन्त—पुरुवंशी राजा दुष्यन्त एक बार मृगयाका शिकार करते हुए संयोगवश महर्षि कण्वके आश्रमसे पहुँचे और उन्होंने ऋषिकी पोष्य दुहिता शकुन्तलापर आसक्त होकर उससे गन्धर्व विधिसे विवाह कर लिया तथा अपनी मुद्रिका शकुन्तलाको प्रदानकर राजधानीमें आ गये। शकुन्तलाके गर्भसे एक पुत्र पैदा हुआ। शकुन्तला पुत्रको लेकर दुष्यन्तके पास आयी। मार्गमें असावधानीवश स्नानादिके समय अँगूठी किसी सरोवरमें गिर गयी। दुष्यन्तने शकुन्तलाको स्वीकार नहीं किया, किन्तु जब आकाशवाणी हुई कि तुम इसे स्वीकार करो तो दुष्यन्तने दोनोंको स्वीकार कर लिया। एक दूसरे मतसे शापवश राजाको सब विस्मरण हो गया था। अतः शकुन्तला निराश होकर लौट आयी। कुछ दिनों बाद एक मछुएको मछलीके पेटमें वह अँगूठी मिली। जब वह अँगूठी राजाके पास पहुँची तो उसे समस्त घटनाओंका स्मरण हुआ और तब शकुन्तला बुलाकर लायी गयी। उसके पुत्रका नाम भरत रखा गया, जो बादमें चलकर भारतवर्ष या भारत नामका जनक हुआ। —मो० अ०

दूलनदास—जगजीवन साहबके प्रमुख शिष्योंमें एक थे। सत्तनामियोंके अनुसार इनका जन्म सन् १६६० ई० में जिला लखनऊके समेसी गाँवके एक सोमवंशी क्षत्रिय परिवारमें हुआ था। इन्होंने रायबरेली जिलेमें धर्मे नामक एक गाँव बसाया था और वहीं गृहस्थाश्रममें रहते हुए आध्यात्मिक जीवन यापन किया था। इनकी मृत्यु सन् १७७८ ई० में (११८ वर्षकी अवस्थामें) हुई थी। 'भ्रम विनाश', 'शब्दावली', 'दोहावली', 'मंगलगीत' आदि कई कृतियाँ इनके द्वारा रचित बतायी जाती हैं किन्तु अभीतक इनकी वाणियोंका एक छोटा-सा संग्रह ही बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित हुआ है। गुरु माहात्म्य, नाममहिमा, साधुमहिमा, शून्य एवं सहजकी आध्यात्मिक अनुभूति, संसारकी नश्वरता तथा साध्य परमतत्त्वके प्रति प्रणय-विरह और समर्पणकी भावना आदि आपकी वाणियोंके प्रमुख विषय हैं किन्तु आपका झुकाव सगुण उपासनाके प्रति भी जान पड़ता है। दशरथनन्दन राम और हनुमान्‌के प्रति आपने प्रगाढ़ भक्ति-भावना व्यक्त की है। आपकी रचनाएँ जगजीवन साहबकी अपेक्षा अधिक सरस हैं।

[सहायक ग्रन्थ—दूलनदासकी वाणी, बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग; उत्तरी भारतकी सन्त-परम्परा : परशुराम चतुर्वेदी; सन्त-काव्य : परशुराम चतुर्वेदी।] —रा० चं० ति०

दूलह कवि—कालिदास त्रिवेदीके पौत्र और उदयनाथ कवीन्द्रके पुत्र होनेके कारण काव्यकी प्रतिभा इन्हें विरासतमें मिली थी। किसी कविने इन्हें "और बराती सकल कवि दूल्हा दूलहराय" कहकर इनकी लोकप्रियता और श्रेष्ठताकी प्रशंसा की थी। दूलह वास्तवमें इनकी उपाधि है, नाम नहीं। ग्रियर्सनने इनको दोआबके बनपुराका रहनेवाला बतलाया है। इनके जन्म और मृत्युकालके बारेमें कुछ निश्चित पता नहीं चलता। वैसे शुक्लजीने सन् १७४३ से १७६८ ई० तक इनका रचनाकाल माना है। इनकी प्रतिभा और विद्वत्ताका पता इसीसे चलता है कि अपनी कुछ ही रचनाओंके बलपर ये रीतिकालके श्रेष्ठ कवियों—देव, मतिराम, दास आदिके साथ गिने जाते हैं। 'कवि-कुल-कण्ठाभरण' इनका अलंकारोंका एक प्रसिद्ध और प्रामाणिक ग्रन्थ है। इसमें लक्षण और उदाहरण कवित्तोंमें दिये गये हैं जो इतने मधुर और सुन्दर हैं कि दूलहके आचार्यत्व और कवित्व, दोनोंको ही प्रमाणित करते हैं। इस ग्रन्थके अतिरिक्त १५ या २० स्फुट रचनाएँ इनकी और प्राप्त हैं। वे मधुर और चित्ताकर्षक हैं। भाषापर तो इनका सहज अधिकार था, वे जैसा चाहते थे, भाषा वैसी ही भावानुगामिनी हो जाती थी। इन्होंने केशवके समान यह मत प्रतिपादन किया है कि काव्यमें चरण, वर्ण तथा ललित लक्षणोंके अतिरिक्त आलंकारिकता भी होनी चाहिए ('बिन भूषन नहिं भूषई कविता, बनिता चार')। साथ ही आत्मसन्तोषके साथ समाजमें यश-लाभ कृतिको अलंकृत करनेपर ही मिलेगा।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० इ० : रा० शु०; हिन्दी साहित्यका प्रथम इतिहास : ग्रियर्सन, अनु० किशोरीलाल गुप्त; ए हिस्ट्री आफ हिन्दी लिटरेचर : एफ० ई० के।] —ह० मो० श्री०

दूषण—रावणके भाई खरका सेनापति। यह खरके साथ पञ्चवटीमें रहता था। रामके साथ युद्ध करते हुए अपने भाइयों एवं मन्त्रियों सहित मारा गया। —मो० अ०

दृष्टिकोण—इसका प्रकाशन फरवरी १९४८ से बाँकीपुर, पटनासे हुआ। इसके दो सम्पादक थे—नलिनविलोचन शर्मा तथा शिवचन्द्र शर्मा। इस पत्रिकाकी दो प्रमुख विशेषताएँ हैं—१. भारतीय साहित्यके अतिरिक्त विदेशी

चले आये और काशीनरेशकी कृपासे आपको चकिया तथा नौगढ़के जंगलोंका ठीका मिल गया। इसी सिलसिलेमें आपको जंगलों और पहाड़ोंमें घूमने तथा प्राचीन इमारतोंके भग्नावशेषोंको देखनेका अच्छा सुयोग प्राप्त हुआ। इस संयोग-सुलभ वातावरणने आपके भावुक मनको रहस्यमयी-रंगीन कल्पनाओंसे रंग दिया। आपने ठीकेदारी छोड़कर लिखना आरम्भ किया।

आपका पहला उपन्यास 'चन्द्रकान्ता' सन् १८८८ ई० में काशीके हरिप्रकाश प्रेसमें मुद्रित होकर प्रकाशित हुआ। 'चन्द्रकान्ता सन्तति'के ११ भाग भी इसी प्रेसमें मुद्रित हुए। इन उपन्यासोंकी लोकप्रियताने आपको इसी क्षेत्रमें रमा दिया। सन् १८९३ ई०में 'नरेन्द्र मोहिनी', नारायन प्रेस, मुजफ्फरपुर से प्रकाशित हुआ। सन् १८९६ ई० में नागरी प्रचारिणी सभा, काशीने 'वीरेन्द्र वीर' प्रकाशित किया। सन् १८९८ मे आपने 'लहरी प्रेस' नामसे निजी प्रेस खोला। इसी प्रेससे आपके अन्य उपन्यास—'कुसुम कुमारी' (१८९९), 'काजरकी कोठरी' (१९०२ ई०), 'भूतनाथ'—प्रथम ९ भाग (१९०६), 'गुप्त गोदना' (१९०६ ई०)—प्रकाशित हुए। आपके अन्य दो उपन्यास—'अनूठी बेगम' फ्रेन्ड्स एण्ड कम्पनी, मथुरासे सन् १९०५ में तथा 'नौलखा हार' कचौड़ी गली, बनारससे १८९९ ई० मे प्रकाशित हुए। सन् १९०० ई० में आपने माधवप्रसाद मिश्रके सम्पादकत्वमें 'सुदर्शन' नामक एक साहित्यिक मासिक पत्रका प्रकाशन आरम्भ किया, जो दो वर्षोंतक चलकर बन्द हो गया।

आप हिन्दी-साहित्यमें ऐयारी-तिलस्मी उपन्यासोंके प्रवर्त्तक माने जा सकते हैं। इस प्रकारके उपन्यासोंकी प्रेरणा आपको कदाचित् 'तिलस्म-इ-होशरुबा'से मिली थी। 'चन्द्रकान्ता' और 'चन्द्रकान्ता सन्तति'को उर्दू साहित्यके 'बोस्तान-इ-ख्याल' और 'दास्तान-इ-अमीर हम्जा'के मुकाबलेका माना गया है किन्तु ध्यान रखना होगा कि उर्दूके उपन्यास वासनापरक हैं, जबकि आपके उपन्यासोंमें वासनाकी गन्ध भी नहीं मिलती। तिलस्मोंकी प्रेरणा आपको चाहे जहाँसे मिली हो किन्तु 'ऐयारों'की परम्परा तो शुद्ध भारतीय है। लोक-जीवनमें ऐसी बहुत-सी कहानियाँ प्रचलित है, जिनमें एक राजाका 'चतुर चोर' दूसरे राजाके 'चतुर रक्षकों'को छकाकर उसकी कोई बहुमूल्य वस्तु चुरा लाता है और अपने महाराजकी सेवामें समर्पित करता है और कौशलकी परीक्षा हो जाने पर वह वस्तु पुनः उसके वास्तविक स्वामीको लौटा दी जाती है। लोक-कथाओंका यह 'चतुर चोर' एक प्रकारका 'ऐयार' ही है। संस्कृतके नीति-साहित्यमें राजाओं द्वारा शासनकी दृढ़ता, स्थिरता एवं रक्षाके लिए 'गूढ़-पुरुषों'की नियुक्तिका उल्लेख मिलता है। ये 'गूढ़-पुरुष' गुप्त रूपसे स्व-पक्षकी रक्षा और शत्रु-पक्षका नाश करनेमें सहायता पहुँचाते थे। देवकीनन्दन खत्रीका 'ऐयार' संस्कृत-नीति-साहित्यके 'गूढ़ पुरुष' और 'लोक-कथाओं'के 'चतुर चोर'का ही ध्वंसोन्मुख मध्ययुगीन सामन्तीय संस्करण है। आपने स्वयं राजदरबारोंमें ऐसे लोगोंके नियुक्त होनेकी बात कही है ('चन्द्रकान्ता' प्रथम संस्करणकी भूमिका)। जो भी हो, यह सर्वथा मान्य है कि आप हिन्दीके पहले मौलिक उपन्यास लेखक हैं, जिनके उपन्यासों की सर्व-साधारणमें धूम मच गयी थी।

इन 'तिलस्मी-ऐयारी' उपन्यासोंमें कुछ सामान्य 'कथानक-रूढ़ियों'का पालन किया जाता है। कथानक किसी कुलीन राजकुमार और राजकुमारीके सम-प्रेमको लेकर अग्रसर होता है। क्रूर, धूर्त और हिंसक प्रतिनायक और सुन्दरी किन्तु निष्ठुर प्रतिनायिका द्वारा व्याघात उपस्थित होता है। इन क्रूर पात्रोंके फेरमें पड़कर नायक और नायिका प्रायः किसी तिलस्ममें फस जाते हैं। इन तिलस्मों-की रचना पेंचीदी और जटिल होती है। इनमें अपार सम्पत्ति छिपी रहती है। इन तिलस्मोंके तोड़नेका ब्योरा 'रक्तगन्ध' नामक पोथीमें लिखा रहता है। भाग्यवश यह पोथी नायक-को प्राप्त होती है और इसे पढ़कर वह तिलस्म तोड़नेमें सफल होता है। प्रत्येक तिलस्मका एक पुश्तैनी दारोगा होता है, जो कुशल ऐयार होता है, जिसे तिलस्मके रहस्यों-का ज्ञान होता है। अन्तमें नायक अपने चतुर, स्वामिभक्त और वीर ऐयारोंकी सहायता तथा अपनी शक्तिसे विरोधियों पर विजय प्राप्त करता है। उसे नायिकाके साथ ही तिलस्म-का पूरा खजाना भी प्राप्त होता है। नायिकाकी सखियाँ—जिनमें बहुत सी कुशल 'ऐयारा' होती हैं—नायकके साथियों और ऐयारोंको प्राप्त होती है। यह आवश्यक नहीं कि इन सभी रूढ़ियोंका पालन प्रत्येक तिलस्मी उपन्यासमें किया जाय किन्तु अधिकांश रूढ़ियाँ प्रायः सभीमें मिल जाती हैं।

इन उपन्यासोंको उच्च साहित्यिक रचनाओंकी कोटिमें नहीं रखा जाता क्योंकि न तो इनमें सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक और यथार्थ चरित्रांकन ही होता है, न रमणीय भाव-रस-विधान ही। कथानक, पात्र और वातावरण सभी कुछ लेखकके संकेत पर निर्मित होता है। मकड़ीके जालेकी तरह लेखक अलौकिक-असामान्य घटनाओंके रहस्यमय जंगलमें पाठकको भटकाता रहता है। इनसे सामान्य रुचिके अर्द्ध-शिक्षित पाठकोंका समय कट जाता है। देवकीनन्दन खत्रीने इनकी रचना करके जन-साधारणके बीच हिन्दीकी प्रतिष्ठा स्थापित करनेका बहुत बड़ा कार्य पूरा किया थों, ये उपन्यास नैतिक दृष्टिकोणसे सर्वथा हीन नहीं हैं। नायकका निष्ठावान्, भाग्यवादी, वीर और न्यायप्रिय होना; ऐयारों-का वीर, स्वामिभक्त, अहिंसक और बातका धनी होना; प्रेम-चित्रोंमें वासनाका अभाव होना; नायिकाओंमें प्रेमकी अनन्यताका दिखाया जाना और अन्ततः क्रूर-कुविचारी पात्रों-का सर्वनाश दिखाना आदि ऐसे तत्त्व इनमें मिलते हैं, जिनसे एक तो भारतीय नैतिक आदर्शवादी दृष्टिकोणकी रक्षा हुई है, दूसरे सामान्य जातीय चरित्रकी स्थूल रेखाओं-का अकन भी हो गया है। लेखक जिस ढंगसे घटनाओं-को बिखेर देता है, उलझा देता है और फिर समेट लेता है, सुलझा देता है, उससे उसकी उर्वर कल्पना-शक्ति और अद्‌भुत स्मरण-शक्तिका अनुमान लगाया जा सकता है। इन उपन्यासोंके माध्यमसे देवकीनन्दन खत्रीने हिन्दी-भाषाका जो रूप खड़ा किया, उसका—तत्कालीन परिस्थितियोंको देखते हुए—बहुत महत्त्व है। घटनाओंके रहस्य-जालमें रमनेके लिए बहुतसे लोगोंने हिन्दीकी ओर देखा और

अल्पप्रयासमे 'खत्रीय-हिन्दी' सीखकर हिन्दीके हिमायती बन गये। बहुतसे व्यक्तियोंने 'चन्द्रकान्ता' पढ़नेके लिए हिन्दी सीखी, ऐसा कहा जाता है।

पहली अगस्त सन् १९१३ ई० को देवकीनन्दन खत्रीका देहान्त हो गया। अपने जीवन-कालमें 'तिलस्मी-ऐयारी' उपन्यासोंकी धूम मचाकर संस्कारोंसे आस्थावादी, स्वभावसे मौजी, हृदयसे उदार और साधनसम्पन्नताके कारण शौकीन तबीयत देवकीनन्दन खत्रीने हिन्दीका बहुत बड़ा कल्याण किया। —रा० चं० ति०

देवकीनंदन त्रिपाठी—रचनाकाल सन् १८७६ के लगभग माना जाता है। इनकी कृतियोंमें 'सीताहरण' और 'रुक्मिणीहरण नाटक' (१८७६), 'रामलीला नाटक' (१८७९ से पूर्व), 'कंसवध नाटक' (१८७९), 'नन्दोत्सव नाटक' (१८८०), 'लक्ष्मी सरस्वती मिलन नाटक' (१८८१), 'प्रचण्ड गोरक्षण नाटक', और 'बाल-विवाह नाटक' तथा 'गोवध निषेध नाटक' (१८८१) आदि हैं। ये सभी हस्तलिखित हैं। इन नाटकोंके अतिरिक्त इन्होंने 'रक्षाबन्धन' (१८७२), 'एक-एक के तीन-तीन' और 'स्त्री-चरित्र' (१८७९), 'वेश्या विलास' 'बैल छे टके को', 'जय नरसिंहकी' (१८८३ के लगभग), 'सैकड़ेमें दश दश' तथा 'कलजुगी जनेऊ' (१८८६) आदि प्रहसन भी लिखे थे। ये भी हस्तलिखित ही हैं। इनके लिखे हुए 'होली खगेश' तथा 'चक्षुदान' शीर्षक दो और नाटकोंका उल्लेख किया जाता है। ये सफल नाटककार थे और बहुत तीखी शैलीमे लिखते थे। इन्होंने समाज की अनेक कुप्रथाओं और रूढ़ियोंका विरोध किया है तथा उन पर व्यंग्य भी किये हैं। अपने प्रहसनों द्वारा इन्होंने समाज-सुधारका वह प्रशंसनीय कार्य आगे बढ़ाया, जो भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने आरम्भ किया था। —प्र० ना० टं०

देवदत्त—प्रसादकृत ना० क 'अजातशत्रु'का ऐतिहासिक खल पात्र है। यह बड़ा ही कुटिल, कुचक्री और धूर्त है। इतिहास द्वारा पता चलता है कि यह पहले गौतमके संघमे था और संघमे जैन धर्मानुकूल अहिंसाकी व्याख्या करानेके लिए प्रयत्नशील था। अपनी चेष्टामे सफल न होनेके कारण वह गौतमका प्रतिद्वन्द्वी बन गया और "संघभेद करके राष्ट्रभेद करने"की अभिलाषासे उसने राजनीतिमे प्रवेश किया। वह अपने लक्ष्य-भेदमे बड़ा व्यवहारकुशल है। 'विनय पिटक', 'दीर्घ निकाय' और 'सुमंगल विलासिनी'के अनुसार देवदत्तने अजातशत्रुसे कहा—"तुम अपने पिताकी हत्या कर राजा बनो और मैं बुद्धकी हत्या कर शास्ता बनता हूँ।" वह छलना और अजातके हृदयमे वासवी और बिम्बसारके प्रति द्रोहाग्नि प्रज्वलित करता है। अपने कुचक्रोंसे मगध-परिषदकी अध्यक्षता ग्रहण करके राजकुलमे आन्तरिक विघटनकी भावनाको जन्म देता है। शुद्धबुद्ध गौतमको ढोंगी और कपट-मुनि समझता है किन्तु वह स्वयं ऐसे कुलक्षणोंसे युक्त है। देवदत्त ऊपरसे विरक्त होनेका ढोंग करता हुआ अन्दरसे पदलोलुप और पाखण्डी है। भेद खुलनेपर छलना कहती है—"पाखण्ड! जब तूने धर्मके नामपर उत्तेजित करके मुझे कुशिक्षा दी, तब मैं भूलमें थी। गौतमको कलंकित करनेके लिए कौन श्रावस्ती गया था? और किसने मत-वाला हाथी दौड़ाकर उनके प्राण लेने की चेष्टा की थी!" छलना अपने पुत्र अजातशत्रुके पराजित होनेका सारा अभियोग देवदत्तपर मढ़ती है और उसे बन्दी बना लेती है। वासवीके कहनेपर उसे छोड़ दिया जाता है। प्यासा होनेके कारण वह एक सरोवरमें उतरता है और ग्राहके द्वारा अथवा लज्जासे डूबकर मृत्युको प्राप्त होता है। देवदत्तका असद्वृत्तियोंसे युक्त कलुषित चरित्र गौतमके पुण्य-शील चरित्रको और भी अधिक उज्ज्वल बनानेमें सहायक सिद्ध होता है। —के० प्र० चौ०

देवनारायण द्विवेदी—वर्तमान समयमें हिन्दीके सुप्रसिद्ध प्रकाशन संस्थान—ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी—के प्रकाशन विभागके अध्यक्ष देवनारायण द्विवेदीका जन्म सन् १८९७ ई०मे हुआ। हिन्दी-साहित्यके क्षेत्रमें इनकी ख्याति सर्वप्रथम इनकी 'देशकी बात' नामक पुस्तकके कारण हुई। इसके कई संस्करण प्रकाशित हुए हैं। यद्यपि इसका आधार बंगलाकी 'देशेर कथा' थी फिर भी इसमें मौलिकताका आभाव न था। १२४ ए—राजद्रोहके अन्तर्गत यह पुस्तक जब्त कर ली गयी थी। १९२५ ई० से लेकर १९३७ ई० तककी अवधिमें क्रमशः इनके चार उपन्यास प्रकाशित हुए—'कर्त्तव्याघात', 'प्रणय', 'पश्चात्ताप' और 'दहेज'। ये कृतियाँ धीरे-धीरे बहुत लोकप्रिय हुईं। इनके कई संस्करण निकले। 'दहेज'का तो बारहवाँ संस्करण प्रकाशित हो चुका है। आपने गोस्वामी तुलसीदासकृत कई ग्रन्थोंकी टीकाएँ लिखी हैं। रामचरितमानस, विनय-पत्रिका, कवितावली तथा हनुमान्-बाहुक नामक ग्रन्थोंपरकी गयी इनकी टीकाएँ विद्वानों द्वारा समादृत हैं। इन्होंने कई अनुवाद भी किये हैं। बंगलासे 'गोरा' तथा 'मिलन-मन्दिर' नामक पुस्तकोंके अनुवाद बहुत सफल हुए हैं। आपने योगिराज अरविन्दघोषकी कई पुस्तकोंका अनुवाद किया है, जैसे 'धर्म और जातीयता', 'गीताकी भूमिका', 'अरविन्द मन्दिरमें' आदि। राबर्ट ब्लैक सीरीजके कोई पैंतीस उपन्यासोंके अनुवाद लोकरुचिका ध्यान रखकर आपने किये हैं। इन अनुवादोंकी भाषा सहज और साधारण जनताके लिए बोधगम्य एवं रुचिकर है। सन् १९४०-४१के लगभग आपने 'काशी-समाचार' नामक साप्ताहिक पत्रका सम्पादन किया था। यह पत्र काशीसे निकलता था। खड़ीबोली हिन्दीके विकसनशील स्वरूपमें द्विवेदीजीका कार्य अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है। —र० भ्र०

देवप्रिया, रानी—प्रेमचन्दके उपन्यास 'कायाकल्प'की पात्र। देवप्रिया विनोद और विलासकी पुतली है। उसकी रियासत उसके भोग-विलासके लिए साधन मात्र है। जिस प्रेममे त्याग और भक्तिका समावेश होना चाहिए, वह उससे सदैव वंचित रही। प्रेमचन्द भी इसी बातकी ओर संकेत करते हैं कि दाम्पत्य-प्रेम जब तक विलासपर आधारित रहेगा तब तक अमंगलकारी रहेगा। यद्यपि एक बार देवप्रिया ममत्व और विराग लेकर निकल पड़ी थी तो भी वह सब कुछ यौवनके द्वार फिरसे खोलनेके लिए था। रानी कमलावतीके रूपमें वह सुख-लालसाकी इच्छुक रही। उसकी वासना ही पति-मृत्युका कारण बनती है। शंखधरकी पत्नीके रूपमें उसे देखकर ही ठाकुर विशालसिंह

सशंकित हो उठा था। ईश्वरकी मृत्यु भी हुई। उसके बाद विलासिनी देवप्रिया तपस्विनी देवप्रिया बन जाती है और अब उसका भविष्य अन्धकारमय नहीं रह जाता। प्रभातकी आशामयी किरणें उसका जीवन-मार्ग आलोकित करने लगती है। —ल० सा० वा०

देव-पुरस्कार–हिन्दी काव्यपर दिया जानेवाला सर्वाधिक प्रसिद्ध पुरस्कार। ओरछानरेश द्वारा प्रदत्त दो हजार रुपये-का यह पुरस्कार एक वर्ष खड़ीबोलीके और दूसरे वर्ष ब्रजभाषाके सर्वश्रेष्ठ काव्यपर दिया जाता है। प्रथम पुरस्कार दुलारेलाल भार्गवको उनकी दोहावली पर मिला था।

देवमाया प्रपंच नाटक–यह रीतिकालके प्रसिद्ध कवि देवकी एकमात्र नाट्यकृति है, जो काव्यमय होनेपर भी अपनी वस्तु-योजनाके कारण हिन्दी नाटकके इतिहासोंमे उल्लिखित होती रही है। इसकी रचना कविने श्रीकृष्ण मिश्र द्वारा विरचित संस्कृतके प्रसिद्ध नाटक 'प्रबोध-चन्द्रोदय'की शैलीके समानान्तरकी है। ग्रन्थ नाममें प्रयुक्त देव शब्द कवि नामका बोधक भी माना गया है और इसके देवकृत माननेका कारण भी बताया गया है। इसकी एक अत्यन्त प्राचीन प्रति देवके वंशज मातादीन दुबेके पास सुरक्षित है तथा एक अन्य प्रति गन्धौलीमें कृष्णबिहारी मिश्रके परिवारमें प्राप्त है। ग्रन्थके अन्तमें भी कविने अपने नामका समावेश "हृदे बसो कवि देवके सतसंगतिको पाय।" लिखकर किया है। नगेन्द्रने इसकी रचना 'देवचरित्र'के बाद मानी है। निश्चित रचनाकाल अज्ञात है। देवके अन्य प्रामाणिक ग्रन्थोंके अनेक छन्द इसमें प्राप्त हैं अतएव इस कारण भी इसकी प्रामाणिकता असंदिग्ध है।

परब्रह्म रूप पुरुषकी दो पत्नियाँ हैं—एक प्रकृति और दूसरी माया। प्रकृतिमे बुद्धि और मायासे मन उद्भूत हुआ है। नाटकीय कथा-विकासमें परपुरुष मायाका बन्दी हो जाता है तथा बुद्धि भटक जाती है। जनश्रुति उसे उपदिष्ट करके सत्संगतिसे मिलाती है फिर धर्म पक्ष और अधर्म पक्षमे घोर युद्ध होता है। कलह और कलक कलियुगके पक्षधर हैं। तर्ककी गुप्त मन्त्रणासे मन मोह-मुक्त होता है। उसे मायाके बन्धनसे भी मुक्ति मिलती है, तत्पश्चात् वह अपने पितासे मिलता है। युद्धमें अधर्म पक्षकी पराजय और धर्मपक्षकी विजय होती है। इस प्रतीक-कथाका अन्त परपुरुषके साथ प्रकृति, मन और बुद्धिके पूर्ण सयोगसे होता है। मायाके प्रपंचका शमन ही अभीष्ट है। सम्पूर्ण नाटक छः अंकोंमें विभाजित है। प्रस्तावना और नान्दी पाठकी भी व्यवस्था है। एक दोहेमे कथावस्तुका पूरा संकेत किया गया है—"सुत भूल्यो सुतके भये, पच्यो पिता सों बीचु। मातु मते भगिनी तजी, घर धर नाच्यो नीचु॥"

इसके पद्योंमें अनेक ऐसे पद्य हैं, जिनमें देवकी विराग-वृत्ति पूरी तरह प्रतिबिम्बित हुई है। कहीं-कहीं ऐसी उक्तियाँ भी मिलती हैं, जिनसे लगता है कि देव अपने समयकी समाज-व्यवस्था तथा ब्रह्मवादसे भी असन्तुष्ट थे। "वेदन मूँदु कियो जिन दूँदु कि सूदु अपावन पौंड़े।" सम्भवतः इसी प्रकारकी उक्ति है।

'प्रबोध-चन्द्रोदय'से इस नाटकके उद्देश्यमें तथा कुछ अंशोंमें पात्र एवं वस्तु-कल्पनामें ही साम्य है। शेष कथावस्तु कवि द्वारा स्वयं संयोजित है, अतः इससे देव कविकी प्रतिभा एवं स्वभावका एक ऐसा पक्ष सामने आता है, जो उनके अन्य ग्रन्थोंमें कहीं उपलब्ध नहीं होता। यह नाटक इस प्रकार कई दृष्टियोंसे महत्त्वपूर्ण है।

[सहायक ग्रन्थ—शि० स०; मि० वि०; हि० का० शा० इ०; रीः भू० तथा दे० का०; देवके लक्षण-ग्रन्थोंका पाठ और पाठ-समस्याएँ (अ० प्र०) : लक्ष्मीधर मालवीय।] —ज० गु०

देवयानी–दे० 'कचदेवयानी'।

देवराज उपाध्याय–जन्म सन् १९०२ ई० में शाहाबादके वामन गाँवमें। एम० ए०, पी-एच० डी० की शिक्षा समाप्त करके आप इन दिनों जोधपुरमे रह रहे हैं। पटना और राजपूताना विश्वविद्यालय में शिक्षा पाने के बाद, विद्यार्थी कालसे ही आपकी अभिरुचि साहित्यमें थी। आपने आलोचनाके क्षेत्रको अपनाया है। अब तक लगभग सात-आठ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमें से तीन-चार विदेशी उपन्यासोंके अनुवाद हैं। शेष आलोचना की पुस्तकें हैं। आपके अनुसन्धानका विषय 'आधुनिक कथा साहित्य और मनोविज्ञान' (१९५६) था। इसी नामसे आपका शोध-ग्रन्थ प्रकाशित भी हुआ है, जिसमें आधुनिक कथा-साहित्यपर मनोवैज्ञानिक रूपसे विवेचना प्रस्तुत करनेका प्रयास किया गया है। इसके अतिरिक्त आपकी दूसरी पुस्तक काव्य-शास्त्रसम्बन्धी है, जिसका नाम 'रोमांटिक साहित्य शास्त्र' (१९५६) है। इस पुस्तकमें काव्य-सम्बन्धी शास्त्रीय विवेचना और रचना-प्रक्रिया आदिपर भी विचार किया गया है। व्यक्तिगत निबन्धों और साहित्यिक निबन्धोंका एक और संकलन प्रकाशित है, जिसका नाम है 'रेखा' (१९४०)। इन पुस्तकोंके अतिरिक्त लियोनार्ड फ्रेंक द्वारा लिखित पुस्तक 'कार्ल एण्ड एनना'का भी आपने अनुवाद किया है। गांधीजी की पुस्तक 'इण्डिया आफ माई ड्रीम्स" का भी अनुवाद प्रकाशित हो चुका है। —ल० कां० व०

देवल दे की कथा–दे० 'कथा बिजरषां साहिजादे व देवल दे की'। —सं०

देवव्रत–भीष्मका एक नाम। ये शान्तनु और जाह्नवीके पुत्र थे और विष्णुकी योगशक्तिको जानते थे (दे० 'भीष्म')। —मो० अ०

देवसेना १–इन्द्रकी पुत्री। देवसेनाका विवाह कार्तिकेयसे हुआ था। —मो० अ०

देवसेना २–प्रसादकृत नाटक 'स्कन्दगुप्त'की पात्र। बन्धुवर्माकी बहिन मालव-कुमारी देवसेनाके चरित्रका निर्माण प्रसादकी अमर कल्पनासे हुआ है। उसमें आदर्श नारी-चरित्रकी प्रमुख विशेषताएँ, यथा सहनशीलता, उदारता, भावुकता, गम्भीरता, देश-प्रेम, संगीतप्रियता, प्रेमानुभूति एवं दृढ़ता आदि समस्त गुण पाये जाते हैं। अपने इसी सर्वतोमुखी व्यक्तित्वके कारण देवसेनाका चरित्र काल्पनिक होते हुए भी वास्तविक जान पड़ता है। प्रथम अंकके अन्तिम दृश्यमें सर्वप्रथम वह हमारे समक्ष आती है तथा विजया और जयमालाके साथ वार्तालाप करती हुई "देशके

मानका, स्त्रियोंकी प्रतिष्ठाका, बच्चोंकी रक्षाका" कुछ ध्यान न होनेके कारण अपनी चिन्ता व्यक्त करती है। देवसेना अपने सामाजिक—दायित्वके प्रति पूर्ण सजग है। वह "भाव विभोर दूरकी रागिनी सुनती हुई कुरंगी सी कुमारी" लोक-जीवनके संघर्षोंमें भी अडिग भावसे अपनी व्यावहारिक क्षमताके बलपर निराले व्यक्तित्वकी प्रतिष्ठा करती है। संगीतकी अनन्य प्रेमिका एवं पवित्र प्रेमकी प्रतिमूर्ति देवसेना अपने जीवन और जगत्‌के कण-कणमें एक लय और तानकी समरसता देखती है। वह जीवनकी विषमताको भी संगीतकी मधुरिम स्वर लहरीमें डुबोकर आकर्षक बना देती है। मालव दुर्गपर जब विदेशियोंका आक्रमण होता है, उस संकटकी स्थितिमें भी अपनी संगीतप्रियता व्यक्त करती हुई जयमालासे कहती है: "तो भाभी, मैं तो गाती हूँ। एक बार गा लूँ, हमारा प्रिय गान फिर गानेको मिले या नहीं।" देवसेना संगीतको ब्रह्मकी सत्ताके समान अणु-परमाणुमें सर्वत्र परिव्याप्त देखती है। इस प्रकार वह सामान्य अनुभूतिके स्तरसे ऊंचे उठकर रहस्यात्मक अनुभूतिके क्षेत्रमें पहुँच जाती है। देवसेनाका चरित्र अपने ढंगका सर्वथा निराला है। सुख-दुखकी प्रत्येक स्थितिमें निश्चिन्त बनी रहनेवाली यह रहस्यपूर्ण रमणी अपने ऐकान्तिक सम्पूर्णतामें सदैव डूबी रहती है। उसके जीवनका आदर्श "एकान्त टीलेपर, सबसे अलग, शरदके सुन्दर प्रभातमें फूला हुआ, फूलोंसे लदा हुआ पारिजात वृक्ष" है।

देवसेनाकी यह रहस्यात्मकता एवं संगीतप्रियता करुण-भावनासे परिचालित है। जयमाला इस ओर संकेत करते हुए कहती है: "जब तू गाती है तब तेरे भीतरकी रागिनी रोती है।" देवसेनाके साक्ष्य पर "जब हृदयमें रुदनका स्वर उठता है, तभी संगीतकी वीणा मिला लेती हूँ" के द्वारा इसकी पुष्टि हो जाती है। उसकी रहस्य-भावनाके मूलमें हृदय-पक्षकी प्रधानता परिलक्षित होती है। इस दृष्टिसे वह भावुकताकी सजीव प्रतिमूर्ति प्रतीत होती है। गम्भीरताके संयोगसे उसकी यही भावुकता रहस्योन्मुखतामें परिणत हो गयी है तथा प्रेमके क्षेत्रमें पहुँचकर संयम, त्याग एवं दृढ़ताका मंगलकारी विधान प्रस्तुत करती है। देवसेनाकी प्रणय-गाथा भी उसकी रहस्यात्मकताकी भाँति बड़ी नाटकीय एवं रोमांचकारी है। वह अपने यौवनकी प्रखर दोपहरीमें स्कन्दकी जिस मन्मथ मूर्तिका वरण करती है, वही भ्रमवश विजयाकी ओर आकृष्ट हो जाता है, जिसकी पुष्टि मालवकी राजसभामें स्कन्द गुप्त द्वारा अनायास व्यक्त की गयी वाणी द्वारा हो जाती है: "विजया, यह तुमने क्या किया।" फिर भी देवसेना क्षुद्र सपत्नी-भावका आश्रय ग्रहण न करके असाधारण गम्भीरता और सहनशीलतासे अपने भावोद्गारोंको दबाकर स्वस्थ एवं सन्तुलित बनी रहती है। उसके चरित्रकी यह लोकोत्तर अद्वितीयता उसीके कथनोंकी व्यावहारिक भूमिका प्रस्तुत करती है—"संसारमें ही नक्षत्रसे उज्ज्वल किन्तु कोमल स्वर्गीय संगीतकी प्रतिमा तथा स्थायी कीर्ति-सौरभवाले प्राणी देखे जाते हैं। उन्हींसे स्वर्गका अनुमान कर लिया जा सकता है।" देवसेनाके चरित्रमें अनासक्त कर्मयोगकी भावनाका सजीव अंकन नाटककार द्वारा किया गया है। जिस समय भीमवर्मा देवसेनाको यह सुसंवाद सुनाता है कि तुम्हारे प्राण बचानेके पुरस्कारमें स्कन्दने मातृ-गुप्तको कश्मीरका शासक नियुक्त किया है, उस समय बड़े संयत स्वरोंमें देवसेना यही कहती है: "सम्राट्‌की महानुभावता है। भाई! मेरे प्राणोंका इतना मूल्य।" इसी प्रकार स्कन्दगुप्त द्वारा आर्य-साम्राज्यकी उद्धार-चर्चा सुनकर बड़े निर्लिप्त भावसे कहती है: "मंगलमय भगवान् सब मंगल करेंगे।" स्कन्दके प्रति देवसेनाका प्रेम वासनापरक न होकर अलौकिक दिव्य-भावोंसे युक्त है। स्कन्दगुप्त जब उसे अपना ममत्व अर्पित करके किसी काननके कोनेमें उसके साथ एकान्तवासकी कामना करता है, तब उसके इस ममत्वपूर्ण आत्मनिवेदनसे देवसेनाकी पूर्ण आध्यात्मिक तुष्टि हो जाती है फिर भी वह उदात्त व्यक्तित्वसे सम्पन्न आदर्श नारी प्रत्युत्तरमें कहती है—"क्षमा हो सम्राट्! उस समय आप विजयाका स्वप्न देखते थे, अब प्रतिदान लेकर मैं उस महत्त्वको कलंकित न करूँगी। मैं आजीवन दासी बनी रहूँगी, परन्तु आपके प्राप्यमें भाग न लूँगी।...इस हृदयमें...आह कहना ही पड़ा, स्कन्दगुप्तको छोड़कर न तो कोई दूसरा आया और न वह जायगा। नाथ! मैं आपकी ही हूँ, मैंने अपनेको दे दिया है, अब उसके बदले कुछ लिया नहीं चाहती।" देवसेनाके इस कथनमें स्कन्दके प्रति दायित्वपूर्ण एकनिष्ठ प्रेम एवं नारी जातिकी निष्काम-निष्ठा अनुपम ढंगसे व्यक्त हुई है। वह लोकोत्तर सात्त्विक प्रेमनिष्ठपूर्ण आत्मसमर्पण करके भी विनिमयमें वेदनाको स्वीकार करती है—"आह वेदना मिली विदाई"। इस प्रकार देवसेना अपने अलौकिक व्यक्तित्वसे केवल "नन्दनकी वसन्त श्री, अमरावतीकी शची और स्वर्गकी लक्ष्मी ही नहीं है", वरन् प्रेमकी संवेदनशील भावुकता एवं दुर्बलतामें मृत्युलोककी कामना एवं आशामयी मानवी भी है। प्रसादने उसके चरित्रकी इस द्वैतपरक-द्वन्द्वताको बड़े नाटकीय ढंगसे उभारा है। —के० प्र० चौ०

देवहूति–स्वायम्भुव मनुकी पुत्री, प्रियव्रत तथा उत्तानपादकी बहिन, कर्दम प्रजापतिकी पत्नी एवं कपिल मुनिकी माता। नारदसे कर्दमकी महत्ताका बखान सुनकर देवहूतिने कर्दमसे विवाह करनेका निश्चय कर लिया था। विवाहके पश्चात् १०० वर्षोंतक सुखभोग करके देवहूतिने ९ कन्याओंको जन्म दिया। जब कर्दम योग-साधनार्थ विदा होने लगे तो देवहूतिने अपनी रक्षाके साधनोंके लिए प्रार्थना की। अतः उन्हें वरदान मिला कि "तुम्हारे गर्भसे भगवान् विष्णु जन्म लेंगे"। तदनुसार कपिलका जन्म हुआ। कर्दमके वनमें चले जानेपर कपिलसे सांख्य-शास्त्र सुनकर देवहूतिने निर्वाण प्राप्त किया (दे० सूर० पद ३९४)। —मो० अ०

देवांतक–१. रावणका एक पुत्र, जिसका वध हनुमान्‌के हाथों हुआ।

२. कालनेमिका पुत्र। —मो० अ०

देवीदत्त शुक्ल–देवीदत्त शुक्ल हिन्दी-पत्रकारिताके इतिहासमें सदैव स्मरणीय रहेंगे। इनका जन्म सन् १८८८ ई० में हुआ था। महावीरप्रसाद द्विवेदीके बाद 'सरस्वती' पत्रिकाके सम्पादनका गुरुतर दायित्व आपको ही संभालना पड़ा था। आपने २७ वर्षोंतक योग्यताके साथ 'सरस्वती'का सम्पादन किया। आप हिन्दीके श्रेष्ठ गद्य-

लेखक हैं। आपने कहानी, उपन्यास, जीवनी, आत्म-कथा, इतिहास तथा धर्म और दर्शनसम्बन्धी अनेक पुस्तकें लिखी हैं। 'स्वाधीनताके पुजारी', 'अवधके गदरका इतिहास', 'सम्पादकके पचीस वर्ष', 'हिन्दुओंकी पोथी', 'साधकका संवाद', 'कालरात्रि' और 'क्रान्तिकारी' आदि आपकी प्रसिद्ध गद्य-कृतियाँ हैं। आपकी प्रसिद्धि पत्रकारके रूपमें ही अधिक है। आपने प्रयागको ही अपना स्थायी निवास-स्थान बना लिया है। —रा० चं० ति०

देवीदयाल चतुर्वेदी–'मस्त' उपनाम। जन्म २० जुलाई, १९११ ई०। ग्राम देवी, जिला सागर, मध्यभारत। प्रारम्भसे ही पत्रकारितामें रुचि रही है। काफी दिनों तक 'सरस्वती'के सम्पादक रहे हैं। 'मनोरमा'का सम्पादन भी किया है। अब तक लगभग आठ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

'मस्त'जी मुख्यतः एक कथाकार और कुशल सम्पादक हैं। कथाकारके रूपमें आपकी कहानियाँ समय-समय पर हिन्दीकी विभिन्न पत्रिकाओंमें प्रकाशित होती रही हैं। सामाजिक यथार्थके प्रति भावुक दृष्टिकोण ही कहानियोंमें चित्रित हुआ है। प्रेमचन्दकी शैलीका प्रभाव अधिक है। घटनात्मक वृत्तमें एक कथानकको विकसित करके उसको एक नियमित स्थितिमें ही पूर्ण कर देना जैसे आपकी कहानियोंके चरित्रोंका उद्देश्य रहा हो। कहीं भी संवेदना-के नये स्तरोंको आपने छूनेका साहस नहीं किया।

फिर भी कहानियाँ रोचक और सामान्य रूपसे पठनीय हैं। प्रेमचन्दकी शैली एक खतरनाक शैली है इसीलिए कि उसमें जब तक तथ्यकी गहराई नहीं होगी तब तक वह शैली प्रभावित नहीं कर पायेगी। 'मस्त'जीकी कहानियाँ उस शैलीके अन्तर्गत आनेके कारण भी कुछ उन्हीं सीमाओं-में संकुचित हो गयी है।

शैलीकारके रूपमें उपन्यासोंमें विशेषकर 'उड़ते पत्ते'में आपने अपनी शैलीका लाभ उठाना चाहा है किन्तु उसमे भी गहराईकी कमी है, जिसके कारण वह कृति एक महत्त्व-पूर्ण स्थान नहीं पा सकी है। जैसे हर शैली प्रत्येक विषय वस्तुके लिए उपयुक्त नहीं होती, ठीक उसी प्रकार विधाका अपना एक क्षेत्र होता है।

कहानियोंमें भी जिस भाषाका प्रयोग हुआ है, वह साधारण है। सरल प्रचलित शब्दावलियोंका व्यवहार आपकी कहानियोंकी विशेषता है। जैसे शिल्पमें नयी दिशा के प्रयोगका अभाव है, ठीक उसी प्रकार शब्द-चयन और भाषाके विषयमें भी है। फिर भी 'मस्त'जीका स्थान उन कहानीकारोंमें है, जिन्होंने प्रेमचन्दकी परम्परा और उनकी शैलीको प्रतिष्ठित करनेके साथ-साथ उसकी सम्भावनाओंको विकसित करनेका प्रयास किया है।

कृतियाँ : 'रानी दुर्गावती' (१९३९), 'अनार ज्वाला' (१९३९), 'हवाका रुख' (१९५४), 'रंगीन डोरे' (१९५७)—कहानी संग्रह है। उपन्यासोंमें 'अनुष्ठान' (१९४७) और 'उड़ते पत्ते' (१९५६) प्रकाशित हुए हैं। —ल० कां० व०

देवीदास–इनका समय १६वीं सदी है। ये शेखावटी (राज-स्थान) के राव लूणकरणके मन्त्री थे। एक दिन 'बुद्धि और धनमें कौन बड़ा है ?' इस प्रश्नपर राव और मन्त्रीमें विवाद हो गया और देवीदास रावका व्यंग्य सुनकर उनके छोटे भाईके यहाँ चले आये, जो अपेक्षाकृत निर्धन थे। धीरे-धीरे इन्होंने रावके छोटे भाईको अकबरका कृपा-पात्र बनवा दिया और अकबरने प्रसन्न होकर उनको एक अच्छा जागीरदार बना दिया। इस प्रकार देवीदासने बुद्धिका बड़ा होना सिद्ध कर दिया। देवीदास दोनों भाइयों और अकबरके सम्मानपात्र थे। इनके जीवनके बारेमें कुछ और नहीं ज्ञात है। राजस्थानमें एक नीतिकारके रूपमें देवीदास प्रसिद्ध हैं। इनका ग्रन्थ 'देवीदास रा कवित्त' है, जो अभी तक अप्रकाशित है। इसमें राज तथा व्यवहार नीति-विषयक एक सौ कवित्त और सवैये हैं। इनकी नीतिकी बातें अनुभूतिपर आधारित हैं, इसी कारण कहनेका ढंग बहुत मार्मिक या रचनात्मक न होनेपर भी उनमें आकर्षण है। राजाओंके सम्बन्धमें इन्होंने बड़ी व्यावहारिक और लाभप्रद बातें कही हैं। काव्यत्वकी दृष्टिसे इनके छन्द सामान्य कोटिके हैं। इनके ग्रन्थकी एक प्रतिलिपि रामनरेश त्रिपाठीके पास थी।

[सहायक ग्रन्थ—कविताकौमुदी (भाग १), १९५४, बम्बई।] —भो० ना० ति०

देवीदीन–प्रेमचन्दकृत 'गबन' का एकपात्र। देवीदीन कल-कत्तामें रहता है। प्रयाग छोड़नेके बाद रमानाथ उसीके यहाँ आश्रय लेता है। वह अल्पशिक्षित और श्रमजीवी है किन्तु उसने एक उन्नत, विशाल और उदार हृदय पाया है। वह मनुष्यको मनुष्यके रूपमें देखता और अपने आचरण और त्यागसे मनुष्यत्वका आदर्श स्थापित करता है। वह दूसरोंकी सहायताके लिए सदैव प्रस्तुत रहता है। अपने घरमें वह एक प्रकारसे विरक्तकी भाँति रहता है। देवीदीन अकर्मण्यता और उत्साहका मिश्रण है। उसमें उत्कट राष्ट्रीय भावना है और अपने दोनों पुत्रोंको राष्ट्रीय-सेवामें लगा देता है। उनकी मृत्युसे वह निराश नहीं होता किन्तु अपने राष्ट्र-प्रेमका वह ढिंढोरा नहीं पीटता फिरता। रमानाथको उचित मार्गपर लानेमें जालपाकी सहायता ही नहीं करता, वरन् सेठों और नेताओंसे सम्बन्धित अपने अनुभवोंका यथार्थवादी ढंगसे उल्लेख भी करता है। —ल० सा० वा०

देवीप्रसाद मुंसिफ–जन्म सन् १८४७ ई०में जयपुरमें हुआ। सन् १८६३ ई०से १८७७ ई० तक आपने टोंकके नवाबके यहाँ नौकरी की। १८७९ में आप महाराज जोधपुरके यहाँ मुंसिफ हो गये। यहाँ आपको राज्यकी ओरसे प्राचीन शिला-लेखोंकी खोजका कार्य भी करना पड़ता था। आपका इतिहासका बड़ा अच्छा अध्ययन था और आप हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओंमें समान रूप से लिखते थे। ऐतिहासिक अनुसन्धानके आधारपर आपने अनेक महापुरुषोंकी प्रामाणिक जीवनियाँ प्रस्तुत कीं। बाबर, हुमायूँ, शेरशाह, अकबर, शाहजहाँ और औरंगजेब आदि मुसलमान बादशाहों; राणा साँगा, उदय सिंह, प्रताप सिंह, मानसिंह, भगवानदास, रतन सिंह, विक्रमा-दित्य (चित्तौर वाले), बनबीर, पृथ्वीराज (जयपुर), पूरनमल, राजसिंह (जयपुर), आसकरण, कल्याणमल, मालदेव,

बीकाजी, जैतसी आदि राजपूत राजाओं तथा मीराबाई, रहीम, सूरदास, बीरबल आदि कवियोंका प्रामाणिक जीवन-वृत्त प्रस्तुत करके आपने ऐतिहासिक महत्त्वका कार्य किया है। 'हिन्दोस्तानमें मुसलमान बादशाह' (१९०९ ई०), 'यवनराज वंशावली' (१९०९), 'मुगलवंश' (१९११ ई०), 'सिन्धका इतिहास' (१९२१), 'पड़िहार वंश प्रकाश' (१९११ ई०), 'स्वप्न राजस्थान' (१८९३ ई०), 'मारवाड के प्राचीन लेख' (१८९६ ई०) तथा 'मारवाड़का भूगोल' आपके इतिहास, पुरातत्त्व और भूगोलविषयक ग्रन्थ है। 'राजपूताने में हिन्दी पुस्तकों की खोज' (१९११ ई०), 'कवि रत्न माला' (१९११ ई०), 'महिलामृदुवाणी' (१९०५ ई०), 'रूठीरानी' (१९०६ ई०) आपकी प्रसिद्ध साहित्य-कृतियाँ है। ऐतिहासिक तथ्योंकी छान-बीन और इतिहासविषयक ग्रन्थोंकी रचनाके लिए नागरी प्रचारिणी सभा, काशीने आपको पुरस्कार दिया था। आपकी गद्य-शैली इतिवृत्तात्मक और भाषा सहज, सरल, सुबोध और व्यावहारिक है। हिन्दी-गद्यके विकासकालमें मौलिक इतिहास-लेखकका गुरुतर दायित्व निभाकर सचमुच आपने हिन्दीकी बहुत बड़ी सेवा की है। —रा० चं० ति०

देवीप्रसाद शुक्ल–जन्म १८७७ ई०। अनेक वर्षोंतक क्राइस्ट चर्च कॉलेज, कानपुरमें अध्यापक रहे। तदुपरान्त प्रयाग विश्वविद्यालयके हिन्दी विभागमें नियुक्त हुए। प्राध्यापकके रूपमें ५० वर्षोंसे भी अधिक समय तक आपने कार्य किया। महामना मदनमोहन मालवीयके निकट सम्पर्कमें रहे और उनके उद्योगोंसे स्थापित हिन्दू बोर्डिंग हाउसका बहुत समय-तक संचालन किया। महावीरप्रसाद द्विवेदीके अस्वस्थ होने-पर १९१० ई० में एक वर्षके लिए 'सरस्वती'का सम्पादन भी किया। अनेक वृत्तोंमें आपके व्यक्तित्वकी सरलता और लोकप्रियता चिरस्मरणीय रहेगी। सन् १९५९ ई०में आपकी मृत्यु हुई। —स०

देवेंद्र सत्यार्थी–जन्म २८ मई, १९०८ में हुआ। देवेन्द्र सत्यार्थी एक सैलानी एवं साहसी किस्मके लेखक हैं। उन्होंने सम्पूर्ण भारतकी यात्राएँ की है—कभी पैदल और कभी सवारी से। हर यात्राका उद्देश्य लोकगीतों एवं लोककलाओं-सम्बन्धी जिज्ञासा की पूर्ति रहा है। आप एक अच्छे पत्रकार, कवि, कहानी एवं उपन्यासलेखक, रिपोर्ताज लेखक, संस्मरण लेखक तथा लोकसम्बन्धी सम्पूर्ण विधाओंके मर्मी आलोचक हैं। लोकसम्बन्धी कलाओंके अनुसन्धाताके रूपमें आपका नाम अमर रहेगा।

देवेन्द्र सत्यार्थी कई भाषाओंके ज्ञाता हैं। पंजाबी उनकी मातृभाषा है। बंगला, हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी वे भलीभाँति जानते हैं।

उनकी बहुत-सी रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी है। लोकगीत सम्बन्धी पुस्तकें चार भाषाओंमें हैं—पंजाबीमें—'गिद्धा' (१९३६), 'दीवा बले सारी रात' (१९४१); उर्दूमें—'मैं हूँ खानाबदोश' (१९४१), 'गाये जा हिन्दुस्तान' (१९४६); अंग्रेजीमें—'मीट माई पीपुल' (१९४६); हिन्दीमें—'धरती गाती है' (१९४८), 'धीरे बहो गंगा' (१९४८), 'बेला फूले आधी रात' (१९४८) और 'जय लोकगीत' (१९५०)। इनकी कविताएँ भी दो भाषाओंमें हैं। पंजाबीमें—'धरती दीयां वात्रां' (१९४१), 'मुड़काते कणक' (१९५०) और हिन्दीमें—'बन्दनवार' (१९५९)। इसी प्रकार कहानियाँ भी हैं। पंजाबी-में—'कुंगपोश' (१९४१), 'सोनां वाची' (१९५०); उर्दूमें—'नये देवता' (१९४३) और 'बाँसुरी बजती रही' (१९४६); हिन्दीमे—'चट्टानसे पहले' (१९५०)। इनके निबन्धसंग्रह केवल दो हैं : 'एक युग, एक प्रतीक' (१९४८) और 'रेखायें बोल उठीं' (१९४९)। अंग्रेजीमें—'डेवलपिंग विलेज इण्डिया' (१९५६) एवं-हिन्दीमें 'मुंशी अभिनन्दन ग्रन्थ' (१९५९) संयुक्तरूपसे इनके द्वारा सम्पादित ग्रन्थ हैं। 'ब्रह्मपुत्र' और 'दूध गाछ' इनके उपन्यास हैं।

देवेन्द्र सत्यार्थी एक भावुक व्यक्ति है। उनकी भावुकता उनके सम्पूर्ण कार्यमे प्रतिच्छायित है। लोकगीतोंके अध्ययन में वे आलोचक न रहकर रस-मुग्ध हो जाते हैं। उनकी कहानियाँ, स्केच एवं उपन्यास सबमें यह लोक-तत्त्व बड़ी भावुकतामें आ जाता है। वे भावाकुल, अकृत्रिम शैलीके लेखक है।

कुछ वर्षोंतक 'आजकल'के सम्पादक रहे हैं। —श्री० ब०

देवेश दास–जन्म १९११ ई० कलकत्तामे। शिक्षा कलकत्ता तथा लन्दन विश्वविद्यालयोंमें हुई। आई० सी० एस० के लिए चुने गये। पर साहित्यक अभिरुचि बराबर बनी रही। बंगला, हिन्दी तथा अंग्रेजी तीनों माध्यमोंसे लिखा है। विशेषतः संस्मरणात्मक शैलीके क्षेत्रमें प्रयोग किये हैं। आपका हिन्दी-गद्य अत्यन्त परिमार्जित तथा अकाल्पनिक माध्यमोंके लिए नितान्त उपयुक्त है। संस्मरण-यात्रा-वृत्तान्त-रेखाचित्रका एक मिलाजुला और बड़ा ही प्रीतिकर रूप आपकी रचनाओंमे मिलता है। हिन्दी-गद्यका स्वरूप आपकी कृतियोंमे समृद्ध हुआ है।

कृतियाँ—'यूरोप' (निबन्ध-१९४०), 'मास्कोसे मारवाड़' (१९५५), 'राजसी' (१९६०)। —सं०

दैत्यवंश महाकाव्य–कालिदासके रघुवंशकी पद्धतिपर लिखा गया हरदयालु सिंहका 'दैत्यवंश' महाकाव्य १९४० ई० में प्रकाशित हुआ। इसके अठारह सर्गोंमें हिरण्याक्ष एवं हिरण्यकशिपु-वध, वामनकी बलि-वञ्चना, समुद्र-मन्थन और उषा अनिरुद्ध-आख्यान वर्णित हैं। चरित्रोंमे—प्रह्लाद भक्त, बलि दानी, विष्णु छली, इन्द्र विलासी और उषा एवं लक्ष्मी परम रूपवती है। प्रमुख रस शृंगार, वीर और भाषा मिश्रित ब्रज है। इसमें महाकाव्यके सभी शास्त्रीय लक्षण हैं। दैत्यवंशको चरितनायक कल्पित कर देवों-दैत्यों-के जातिगत संघर्षके अन्तरालमे उनकी चारित्रिक विशिष्टताओंका किया गया मनोवैज्ञानिक विश्लेषण इस काव्यका विशेष आकर्षण है। 'दैत्यवंश' कविकी सर्वश्रेष्ठ कृति है। —स० ना० त्रि०

दो सौ बावन वैष्णवनकी वार्ता–दे० 'चौरासी वैष्णवन-की वार्ता'।

दोहावली–यह तुलसीदासके दोहोंका एक संग्रह-ग्रन्थ है। इसके मुद्रित पाठमे ५७३ दोहे हैं। इन दोहोंमें-से अनेक दोहे तुलसीदासके अन्य ग्रन्थोमें भी मिलते हैं और उनसे लिए गये हैं। उदाहरणार्थ बहुतसे दोहे 'रामचरित मानस' और 'रामाज्ञा प्रश्न'से लिये गये हैं। वे उन्हीं रचनाओंसे 'दोहावली'में लिये गये हैं, यह तथ्य इससे प्रमाणित है

कि वे प्रायः निश्चित प्रसंगोंके हैं और अपने प्रसंगोंसे निकाल लिए जाने पर वे छिन्न-मूलसे ज्ञात होते हैं।

'दोहावली'की विभिन्न प्रतियोंमें उसके कई पाठ भी मिलते हैं। इन पाठोंका मिलान नहीं किया गया है किन्तु इनमें परस्पर अन्तर बहुत है। उदाहरणार्थ सं० १७९७ की एक प्रतिमें, जो प्राप्त प्रतियोंमें सबसे प्राचीन है, केवल ४७८ दोहे हैं और इनमें भी ६ ऐसे हैं, जो मुद्रित पाठमें नहीं मिलते। बहुत-कुछ यही दशा रचनावली और प्रतियों की भी है। इससे ज्ञात यह होता है कि इसका सम्पादन कवि अपने जीवनकालमें नहीं कर सका था। सम्भवतः उसके विविध विषयोके कुछ स्फुट दोहे ही थे, जिन्हें अलग-अलग ढंगसे अलग-अलग व्यक्तियोंने संकलित कर लिया।

इन्हीं दोहोंके साथ नव-कल्पित दोहोंको मिलाकर एक 'सतसई' भी तैयारकी गयी, जिस पर अन्यत्र विचार किया गया है (दे० 'सतसई' शीर्षक)। यही कारण है कि 'दोहावली' और 'सतसई'के बहुतसे दोहे एक ही है।

'दोहावली' किसी एक विषयकी रचना नहीं है। इसमे अनेकानेक विषयोंके स्फुट दोहे संकलित हुए हैं। इनमें-से 'चातक'की अनन्य निष्ठा पर कहे गये छन्द सबसे अधिक मनोहर हैं। कुछ छन्द कविके जीवनकी अनेक घटनाओंमे सम्बन्धित हैं। इनका महत्त्व कविके प्रामाणिक जीवन-वृत्त-के निर्माणमें बहुत अधिक है। 'कवितावली'के छन्दोके बाद 'दोहावली'के इन दोहोंमे ही कविके जीवन-वृत्त निर्माणमें हमे उल्लेखनीय सहायता मिलती है।

'दोहावली'के ये दोहे भी 'कवितावली'के उपर्युक्त छन्दों की भाँति कविके जीवनके अन्तिम भागमे सम्बन्ध रखते हैं। फलतः यह असम्भव नहीं कि 'दोहावली'के छन्दोकी रचना भी 'कवितावली'के छन्दोकी भाँति तुलसीदासके कवि-जीवन-के उत्तरार्द्धकी हो, किन्तु यह बात उतने निश्चयके साथ नहीं कही जा सकती है, जितने निश्चयके साथ 'कविता-वली'के छन्दोंके विषयमें कही गयी है। —मा० प्र० गु०

दौलतराम—दौलतरामरचित जैन पद्म पुराण (रविषेणाचार्यकृत)का भाषानुवाद हिन्दी खड़ीबोली गद्यके विकासकी प्रकृत-परम्पराका उदाहरण प्रस्तुत करता है। यह ७०० पृष्ठोंका एक बृहत् ग्रन्थ है। इसकी रचना सन् १७६६ ई० में हुई। दौलतराम मध्यप्रदेशके बसवा नामक स्थानके रहने वाले थे। यह प्रदेश मुसलमानों और अंग्रेजो, दोनोंके प्रभाव-क्षेत्रसे पृथक् रहा है। इसलिए 'जैन पद्मपुराण'की भाषा "इस बातका पूरा पता देती है कि फारसी-उर्दूसे कोई सम्पर्क न रखनेवाली अधिकांश शिष्ट जनताके बीच खड़ी-बोली किस स्वाभाविक रूपमें प्रचलित थी।" साथ ही इससे यह भी सिद्ध हो जाता है कि खड़ीबोली गद्यका प्रचलन अंग्रेजोंकी प्रेरणासे नहीं हुआ, वह पहलेसे ही लेखकों और साहित्यिकोंमें प्रतिष्ठित था। ग्रियर्सनके अनुसार लल्लूलालने खड़ीबोलीसे फारसी-अरबीके शब्दोंको निकालकर उनके स्थानपर संस्कृत शब्दोंका समावेश करके एक प्रकारसे कृत्रिम खड़ीबोलीका रूप प्रतिष्ठित किया। ग्रियर्सनकी इस मान्यताने साहित्यके इतिहासमें एक बहुत बड़े भ्रमको जन्म दिया। 'भाषा योगवासिष्ठ' (रामप्रसाद निरंजनीकृत) और 'जैन पद्म-पुराण' दोनोंसे ही इस भ्रमका निराकरण हो जाता है। 'जैन पद्म-पुराण'की भाषामें पण्डिताऊपन अधिक है। "मगधनामा देश अति सुन्दर है", "सदा भोगा-पभोग करै है", "भूमि विषै साँठेन के बाड़े शोभायमान है" आदि प्रयोग खटकते है। —रा० चं० ति०

द्रुपद—पांचाल प्रदेशके राजा पृषतके पुत्र, द्रौपदी और धृष्टद्युम्नके पिता। इनका दूसरा नाम यज्ञसेन भी है। बच-पनमें द्रोणके घनिष्ठ मित्र थे किन्तु राजा हो जानेपर उन्होंने द्रोणका तिरस्कार किया। प्रतिशोधके भावनावश द्रोणने गुरु-दक्षिणा रूपमें उन्हें पाण्डवों द्वारा बन्दी बनवाकर अपने सामने मंगवाया। उनका आधा राज्य ले लिया किन्तु फिर मुक्त करके राज्य वापस कर दिया। इस अपमान से दुःखी द्रुपदने द्रोणविनाशक पुत्र-प्राप्ति हेतु श्रौताग्नि-साध्य यज्ञ किया। यज्ञ पूर्ण होनेपर यज्ञ-कुण्डसे धृष्टद्युम्न और द्रौपदीका जन्म हुआ। इन दोके अतिरिक्त द्रुपदके शिखण्डी तथा शिखण्डिनी नामक दो सन्तानें और थीं। महाभारत युद्धमें जब द्रोण सेनापति हुए तो उन्होंने द्रुपदका वध किया और द्रुपदके पुत्र धृष्टद्युम्नने द्रोणको मार डाला। —मो० अ०

द्रोणाचार्य—भारद्वाज ऋषिके पुत्र, महाभारतके प्रसिद्ध वीर, कौरव-पाण्डवोंके गुरु द्रोणाचार्यके जन्मके सम्बन्धमें प्रसिद्ध है कि एक बार घृताची अप्सराको विवस्त्र स्नान करते देख भारद्वाजका वीर्य स्खलित हो गया, जिसे उन्होंने द्रोण नामक यज्ञ पात्रमें रख दिया। कालान्तरमे उसीसे एक बालक उत्पन्न हुआ, जिसका नाम द्रोण रख दिया गया। मुनि अग्निवेश्य तथा परशुरामसे द्रोणने धनुर्विद्या सीखी। द्रुपद और द्रोण शैशवके मित्र थे, किन्तु राजा हो जानेके बाद द्रुपदने मित्रता भुला दी और एक बार स्वयमागत द्रोण-का तिरस्कार किया। जब द्रोणाचार्य कौरव-पाण्डवोंको शस्त्र-शिक्षा देनेके लिए नियुक्त किये गये तो उन्होंने पाण्डवों द्वारा पराजित द्रुपदको अपने सम्मुख बन्दी बनवाकर उपस्थित करवाया। द्रोणके पुत्रका नाम अश्वत्थामा था। द्रोण तथा अश्वत्थामा दोनों ही कौरवोंकी ओरसे महाभारत मे लड़े थे। जब युद्धमे द्रोणकी मृत्यु न हो सकी तो कृष्णने अश्वत्थामाकी मृत्युका समाचार फैलाया। वास्तवमे अश्वत्थामा नामक एक हाथी मारा गया था। युधिष्ठिरके मुँहसे 'अश्वत्थामा मृतो नरो वा कुंजरो वा' कहलाकर कृष्णने 'वा कुंजरो वा' पर शंखध्वनिकर दी। पुत्रकी मृत्यु सुनकर द्रोण विचलित हो गये, बस इसी बीच द्रुपदके पुत्र धृष्टद्युम्नने उनका 'वध' कर दिया। 'जयद्रथ वध' (मै० श० गुप्त), 'कुरुक्षेत्र' ('दिनकर') एवं 'एकलव्य' (रामकुमार वर्मा) मे द्रोणाचार्यका एक प्रमुख पात्रके रूपमें सुन्दर चित्रण हुआ है। —मो० अ०

द्रौपदी—महाराज द्रुपदकी पुत्री, जो यज्ञकुण्डसे उत्पन्न हुई थी। स्वयंवरमें मत्स्य-वेध कर अर्जुनने द्रौपदीको प्राप्त किया। घर आकर उन्होंने माता कुन्तीसे कहा कि हम एक वस्तु लाये हैं। माताने कहा कि सब लोग आपसमें बांट लो। इसीसे द्रौपदी पांचों पाण्डवोंकी पत्नी हुई। युधिष्ठिरके राजसूयमें भ्रमित दुर्योधनको देखकर द्रौपदीको

हँसी आ गयी थी। इसीका बदला लेनेके लिए पाण्डवों द्वारा जुएमें हारी हुई द्रौपदीको दुर्योधनने नंगा करनेकी आज्ञा दी। दुःशासनने चीर हरण किया किन्तु भगवान् कृष्णकी कृपासे चीर बढ़ता ही गया। पाण्डवोंके अज्ञातवासके समय द्रौपदीने 'सैरन्ध्री' नामसे विराट्के यहां दासीका कार्य किया। विराट्का साला कीचक सैरन्ध्रीपर आसक्त हो गया। अतः उस कामार्त्तको भीमने मार डाला। पांचों पतियोंसे द्रौपदीके पाच पुत्र हुए। पाण्डवोंके धोखे अश्वत्थामा इन्हीं बालकोंके शीश काटकर दुर्योधनके पास ले गया था (दे० 'दुर्योधन')। महाभारतके बाद वे पतियोंके साथ हिमालयपर गयीं और वे ही सबसे पहले गल कर मर गयीं। भगवान् कृष्णकी कृपालुता और भक्तवत्सलताके उदाहरणोंमें द्रौपदीका उल्लेख भक्ति-काव्यमें बारम्बार हुआ है (दे० सूर० पद २४५-२६५)। 'कृष्णायन' (द्वारकाप्रसाद मिश्र) में द्रौपदीका सुन्दर चरित्र-चित्रण हुआ है। —मो० अ०

द्वारिका—सौराष्ट्रकी एक प्राचीन नगरी, जिसे भगवान् कृष्णने अपनी राजधानी बनाया था। कृष्णके सखा सुदामा इसी नगरीमें आकर कृष्णसे मिले थे। कृष्णने भोज, वृष्णि तथा अंधकवंशियोंको यहाँ बसाया था। कहा जाता है कि यह प्रसिद्ध तीर्थस्थान कृष्णके शरीर-त्यागके पश्चात् समुद्रमें निमग्न हो गया। 'सूरसागर', 'सुदामाचरित', 'प्रियप्रवास', 'कृष्णायन' एवं 'सिद्धराज'में द्वारिकाका वर्णन एवं उल्लेख हुआ है। —मो० अ०

द्वारिकाप्रसाद शर्मा, (चतुर्वेदी)—हिन्दी गद्यके विकास-कालके आरम्भिक लेखकोंमें-से। इटावा निवासी थे, प्रयागमें आ कर बस गये थे। १९१० ई०में सरकारी नौकरी छोड़कर साहित्य सेवामें प्रवृत्त हुए। आपकी लिखी पुस्तकोंकी संख्या १०० से अधिक है, जिनमें कई महत्त्वपूर्ण कोश भी हैं। १९५४ ई०में प्राय: ७७ वर्षकी अवस्थामें आपकी मृत्यु हुई। —सं०

द्वारिकाप्रसाद मिश्र—जन्म ५ अगस्त सन् १९०१ ई०में पढरी ग्राम, जिला उन्नाव (उत्तरप्रदेश)में हुआ। पिताका नाम पं० अयोध्याप्रसाद मिश्र हैं। उन्नाव कान्यकुब्ज ब्राह्मणोंका जनपद है। अब यह परिवार मध्यप्रदेशका ही निवासी हो गया है। मिश्रजीने अपना सामाजिक जीवन मध्यप्रदेशमें ही प्रारम्भ किया। शिक्षाकी दृष्टिसे ये बी० ए०; एल०एल० बी० हैं। मध्यप्रान्तमें ये कांग्रेस दलके एम० एल० ए० रहे, फिर सचिव पद पर पहुँचे। अपनी योग्यता एवं नेतृत्व-क्षमताके कारण ये दिवंगत रविशंकर शुक्लके साथ मन्त्रि-परिषद्में गृह-मन्त्री तथा उनके दाहिने हाथ रहे। कई सालतक सागर विश्वविद्यालयके उपकुल-पति पदपर प्रतिष्ठित रहे। साहित्य एवं हिन्दी पत्रकारिताके लिए प्रारम्भसे ही सेवा दान करते रहे हैं। प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनके सागर अधिवेशनके सन् १९३२ में सभापति भी रह चुके हैं। मध्यप्रदेशके 'लोकमत' पत्रके जन्मदाता हैं तथा मासिक 'श्री शारदा' और साप्ताहिक 'सारथी'के भूतपूर्व सम्पादक हैं। भारतीय स्वतन्त्रता युद्धके एक सैनिक एवं श्रद्धेय सेनानी रहे हैं। कई बार एतदर्थ कारा-यात्राएँ की और काराकालमें ही सन् १९४२ में 'कृष्णायन' महाकाव्यकी रचना की।

कृतियोंके विषयमें आपने शालीन संकोचके साथ लिखा है कि "आप ऐसा समझ सकते हैं कि मेरा लिखा हुआ एक-मात्र ग्रन्थ 'कृष्णायन' ही है।" प्रेमनारायण टण्डनकृत 'हिन्दी सेवी संसार' प्रथम संस्करणके पृ० सं० ११८ के अनुसार लेखक द्वारा प्रणीत एक दूसरा ग्रन्थ 'हिन्दुओंका स्वातन्त्र्य प्रेम' भी है। आपका महाकाव्य 'कृष्णायन' सन् १९४७ ई०में प्रकाशमें आया। भगवान् कृष्णका जीवन इस प्रकार विविध और साधारणतः परस्पर-विरोधी तत्त्वों एवं परिस्थितियोंसे पूर्ण तथा इतना फैला हुआ है कि उसे समेट कर एक जीवनव्यष्टिका स्वरूप प्रदान कर पाना अत्यन्त दुष्कर है। सम्भवतः इसीलिए ऐसा प्रयास भी नहीं हुआ है। भक्तोंने उनके लीलामय बाल-रूप एवं गोपी-प्रणयको ही सजाया-संवारा हैं। प्रेम-गाथाओंने द्वारिकाधीशकी विलास-मधुरिमा एवं वैभव-गरिमाको अपनाकर प्रेमवर्षा की हैं। 'महाभारत'ने योगिराज, कर्मवादी एवं राजनीतिज्ञ कृष्णका गौरव प्रकाश किया है। इन सबको समेटकर एक लोक-नायक, समाज-विधाता और युग-निर्माता व्यक्तित्वका सुसंघटन कठिन भी था और किया भी नहीं गया था। रीतिकालमें गुमानी मिश्रके सन् १८२६ के 'कृष्ण-चन्द्रिका' काव्यमें ऐसा प्रयास अवश्य हुआ, पर कृष्ण-काव्य परम्परानुगमनके कारण महाकाव्योचित महाप्राणता, चरित्र-वैविध्य, जीवन-विस्तार, कल्पना-विशालता और गम्भीर दृष्टिके अभावमें वैसा करनेमें कवि सफल नहीं हो सका। उद्देश्यकी महत्ता, जीवनसमग्रताको समेटनेकी विराट् दृष्टि, राष्ट्रव्यापी महाप्राणता एवं युग-युगान्तरपरक दूरदर्शिताके कारण अबतकके सभी प्रयासोंमें मिश्रजी 'कृष्णायन'के प्रणयनमें सफल हुए है। यद्यपि 'कृष्णायन'के सभी चरित्र अपना अपेक्षित उभाड़ नहीं पा सके हैं, कहीं-कहीं कथामें प्रवाह-गतिरोध भी आ गये हैं, शैली प्राचीन 'मानस' अनुवर्त्तिनी एवं मन्थरगामिनी है, पर मिश्रजीका प्रयास सर्वथा स्तुत्य और अभिनन्दनीय है। 'मानस' कविका आदर्श रहा है, इसीलिए सप्तकाण्डोंकी योजना, अवधी भाषा और दोहा-चौपाई छन्दोंको भी अपनाया गया है पर 'कृष्णायन'में 'मानस'की पौराणिक शैलीका अनुकरण नहीं, यथोचित नवीनता एवं नाटकीयता-का उपयोग हुआ है।

द्वारिकाप्रसाद मिश्र तुलसी-काव्य-परम्पराके एक आधुनिक संस्करण हैं। रामचरितके समानान्तर कृष्ण-चरित देकर उन्होंने भारतीय चिन्ताधारा एवं विराट जीवनकी बहुरूपताको एक सुघट इकाई प्रदान की है। 'कृष्णायन'कार अतीतमोही एवं गतानुगतिकताप्रेमी नहीं है, वह वर्तमानकी दृष्टिको ससम्मान अतीतमें प्रवेश देता है और भविष्यपर प्रकाशकी किरणोंका संकेत भी। वर्तमान युगमें ब्रजभाषामें काव्यके विशाल प्रयास तो हुए, पर अवधी भाषा उपेक्षित ही रही। ब्रजके रसिक कृष्णको युगानुरूप स्वरूप देने और अवधीकी साहित्यिक श्रेष्ठताको अक्षुण्ण रखनेमें मिश्रजीका ऐतिहासिक योग है। कृष्णके जीवनके द्वारा उन्होंने कर्म, भोग, आदर्श, व्यवहार, क्षमा, दण्ड, योग एवं क्षेमका सर्वतः पूर्ण और व्यापक स्वरूप

प्रस्तुत किया है। भारतीय चिन्ताधाराके त्यागमय भोग और भोगमय त्यागकी महत्ताको इस ग्रन्थमें समुचित आलोक मिला है। —श्री० सिं० क्षे०

द्विजदेव–अयोध्याके राजा मानसिंह 'द्विजदेव'के नामसे साहित्यमें प्रसिद्ध हैं। ये शाकद्वीपी ब्राह्मण वंशमें उत्पन्न हुए थे। इनके पिता महाराज दर्शनसिंह थे। इनका जन्म १८३० ई०में हुआ था। इनको संस्कृत, फारसी, अरबी, अंग्रेजीकी शिक्षा मिली थी (शि० स०)। ये वीर और पराक्रमी भी थे। सन् १८५७ की क्रान्तिमें इन्होंने अंग्रेजोंकी सहायता की थी, जिसके परिणामस्वरूप इनको जागीर प्राप्त हुई परन्तु बादमें विरोधियोंके भड़कानेसे अंग्रेजी शासनका इन्हें कोपभाजन बनना पड़ा। ये सब कुछ त्यागकर वृन्दावन चले गये और वहीं १८७१ ई०में इनकी मृत्यु हुई। लछिराम, पण्डित प्रवीन, बलिदेव तथा जगन्नाथ अवस्थी जैसे कवि इनके दरबारी कवि थे।

इनके तीन ग्रन्थोंकी चर्चा की जाती है—'शृंगारलतिका', 'शृंगारबत्तीसी' और 'शृंगारचालीसी'। रामचन्द्र शुक्ल आदिने तीसरे ग्रन्थको स्वतन्त्र न मानकर दो ही ग्रन्थ माने हैं। 'शृंगारलतिका'की 'सौरभ' नामकी टीका महाराज प्रतापनारायण सिंहने लिखी और यह सटीक संस्करण अयोध्याकी महारानी द्वारा प्रकाशित भी किया गया था (१८८३ ई०)। 'शृंगारबत्तीसी' भी एक बार प्रकाशित हुई है (१८७७ ई०)।

इन्होंने रीति-ग्रन्थोंका भलीभाँति अध्ययन किया था, इनके काव्यपर इसकी स्पष्ट छाप है। इनका काव्य रीतिकालकी मुक्त शृंगारी-परम्परामें आता है पर उसमें शास्त्रीय परम्पराका पूर्ण निर्वाह है। रामचन्द्र शुक्लने इनको ब्रजभाषाके शृंगारी-कवियोंकी परम्पराका अन्तिम प्रमुख कवि माना है। इनके शृगार वर्णनमें माधुर्य, लालित्य, भाव-योजना तथा कल्पनाशीलता विशेष रूपसे मिलती है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० इ०; हि० सा० बृ० इ० (भा० ६); दि० भू० (भूमिका)।] —सं०

द्विजेन्द्रनाथ मिश्र 'निर्गुण'–जन्म १५ सितम्बर १९१५ ई० में बदायूँ जिलेके कुमार गाँवमें। एम० ए०, साहित्याचार्य और साहित्यरत्नकी परीक्षाएँ पास करके आप इस समय संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसीमें अध्यापन कार्य कर रहे हैं। हिन्दीमें आपके लगभग सात-आठ कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

'निर्गुण'ने अपनी कहानियोंमें मध्यवर्गके जीवनका बड़ी सफलतासे चित्रण किया है। 'निर्गुण'की कहानियोंमें बड़ी ही जीवन्त शैलीका आभास मिलता है। छोटी घटनाओं और छोटी-छोटी स्थितियोंके साथ स्वाभाविक मानवीय मार्मिकताको सहज शैलीमें प्रस्तुत करना ही 'निर्गुण'की विशेषता है। 'निर्गुण'ने मध्यवर्गके उन मानवोंकी हँसी, खुशी, संवेदनशीलता, वेदना और अनुभूतिको अंकित किया है, जो विराट्त्वके नशेमें हमसे सदैव छूट जाते रहे हैं। 'छोटा डाक्टर', 'सावुन', 'बहूजी' या 'जिन्दगी' आदि कहानियोंमें हमें सहसा नये स्तर पर नये मानव व्यक्तित्वकी जटिल समस्याओंके दर्शन होते हैं।

करुणाका भाव 'निर्गुण'की कहानियोंका मूल भाव है। आजके विघटित मूल्योंमें जैसे मनुष्य फँसा रहता है और अपने ही अन्तरमें छिपे उदात्तकी रक्षा करनेमें जिस प्रकार टूट रहा है, बिखर रहा है, उसकी सफल और सुन्दर झाँकी 'निर्गुण'की कहानियोंमें हमें मिलती है।

जीवनके व्यंग्योंके बीच भी मनुष्य अपने व्यक्तित्वका साधारण गुण सुरक्षित रख सकता है और तमाम विरोधाभासोंके बावजूद भी वह समस्त आधारभूत मानवीयताको सुरक्षित रख सकता है—यही 'निर्गुण'का संदेश है। कभी-कभी परिस्थितियोंकी विडम्बनामें सम्पूर्ण मानव व्यवहार और आचरण हमें आधुनिक जीवनके मूल्यहीन और सारहीन तत्त्वोंकी विवेचनाके लिए विवश कर देता है। 'निर्गुण'की कहानियोंका इसीलिए नितान्त आत्मपरक तत्त्व प्रमुख रूपसे उभर कर आता है। 'निर्गुण'की कहानियोंमें हमे जिस मनुष्यके दर्शन होते है वह संघर्षशील, आधारभूत, मानववादी दृष्टिसे ओत-प्रोत ऐसा आदमी है, जो व्यापक विघटनको भोगता हुआ जीवनके व्यंग्योंमें जीवित रहनेका आकांक्षी है।

चरित्र-चित्रणकी दृष्टिसे 'निर्गुण'का कलाकार-व्यक्तित्व आधुनिक जीवनकी समस्त विशृंखलताओंके बीच अपने पात्रोंको मुक्त छोड़ देता है। इसीलिए 'निर्गुण'की कहानियोंका प्रत्येक पात्र अपनी विवशताको भी झेलता है और साथ ही वह उस विवशतामें खोयी हुई आस्थाको वर्तमान परिस्थितियोंकी सापेक्षतामें निश्चित करना चाहता है। वह न तो आदर्शवादकी भूल-भूलैयामें अपनेको खो देता है और न उसमें अपनी पंगुता ही देख पाता है। वह जीवनके गतिशील प्रवाहमें विश्वास करता है और प्रत्येक संक्रमणकी स्थितिमें वह सब कुछ झेल लेनेमें समर्थ हो जाता है।

'निर्गुण'की कहानियाँ परम्परागत होते हुए भी भावस्तर पर अनुभूतिके नये आयामोंका अन्वेषण करती हैं। आधुनिक युगकी समस्याओंमें संस्कार और प्रगतिके बीच मिटती और बिगड़ती मानव प्रतिमाओंका स्वल्प निरूपण इनकी कहानियोंमें समान रूपसे व्याप्त है लेकिन इसके बीच मानव अनुभूतियोंकी जटिलता, उनकी असहाय स्थितिको चित्रित करनेमें इनकी शैलीने वास्तवमें भावस्तरपर कुछ नये और बड़े ही सुन्दर प्रयोग किये हैं।

'निर्गुण'के कहानी-संग्रह इस प्रकार हैं—'पूर्ति' (१९४०), 'बहूजी' (१९४१), 'टीला' (१९४५), 'कच्चा धागा' (१९४७), 'प्यारके भूखे' (१९५४), 'टूटे सपने' (१९५४), 'जिन्दगी' (१९५४)। —ल० कां० व०

द्वियक्षी–अशोक वाटिकामें वन्दिनी सीताकी देखभालके लिए रावण द्वारा नियुक्त एक राक्षसी। —मो० अ०

द्विविद–१. नरकासुरका वानर मित्र, सुग्रीवका मन्त्री तथा मयन्दका भाई। नरकासुरके मारे जानेपर कुपित होकर वह कृष्णके नगरोंको नष्ट करने लगा, परन्तु रैवतक पर्वतपर बलराम द्वारा मारा गया (दे० सूर० पद ४८२६)।

२. कंसका मित्र, कृष्ण द्वारा वध किया गया एक दानव। —मो० अ०

द्वैपायन–२८वें द्वापरमें व्यासका नाम। सत्यवतीने परा-

शरसे वर पाकर इन्हींके साथ अपनी इच्छा पूरी की, जिससे उन्हें गर्भ रहा। गर्भसे व्यासका जन्म हुआ। यमुना नदीके किनारे एक द्वीपमें उत्पन्न होनेसे वे द्वैपायन और कृष्णके अंशावतार होनेसे कृष्ण द्वैपायन कहलाये (दे० 'व्यास')। —मो० अ०

धनंजय–१. पराक्रममें शक्रके समान, इन्द्र और पृथाके पुत्र, अर्जुनका नामान्तर।

२. काद्रवेय—एक प्रसिद्ध नाग, जो त्रिपुरारिके रथमे घोड़ोंके स्थानपर जोता गया था।

३. एक ऋषि, सोलहवें वेद व्यास।

४. विश्वामित्रके पुत्र। —मो० अ०

धनिया–प्रेमचन्दकृत 'गोदान'की पात्र। होरीके शब्दोंमे धनिया "सेवा और त्यागकी देवी; जबानकी तेज, पर मोम-जैसा हृदय; पैसे-पैसेके पीछे प्राण देनेवाली, पर मर्यादा-रक्षाके लिए अपना सर्वस्व होम कर देनेको तैयार" रहने वाली नारी है। चाहे जो कुछ हो जाय, वह होरीका साथ छोड़नेके लिए तैयार नहीं है। सच्चे अर्थमें वह अर्धांगिनी है। उसमें न तो होरीकी-सी व्यवहारकुशलता है और न वह लल्लो-चप्पो करना ही जानती है। अपने व्यवहार और आचरण द्वारा वह होरीकी सहायता करती है, उसे डगमगानेमें बचाती है, ढाढस देती है। लेकिन सुनाती भी खूब है। वह निर्भीक और निडर है और कभी-कभी अदूरदर्शितापूर्ण कार्य भी कर जाती है। प्रतिशोध-भावना उसमें उत्पन्न होती है किन्तु किसीकी पीड़ा देखकर दब भी जाती है। धनिया जिस बातको ठीक समझती है, उसे जात-बिरादरी, समाज, कानून आदिकी परवा किये बिना करती है। एक नारीकी भाँति वह मातृ-भावना और स्नेहसे पूर्ण है। वास्तवमें यदि होरी भारतीय किसानका प्रतीक है, तो धनिया एक कृषक-पत्नीका प्रतीक है। कभी-कभी तो वह अपने आचरण द्वारा गाँवकी नाक रख लेती है। —ल० सा० वा०

धनीराम 'प्रेम'–व्यवसायसे डाक्टरपर रुचि बराबर साहित्यमें रही। इग्लैंडसे डाक्टरीकी शिक्षा प्राप्त करके कई वर्षों तक वहीं कार्य करते रहे। बादमें स्वदेश लौट आये। आपके एकांकी और कहानियोंका प्रकाशन 'सरस्वती', 'चाँद' आदि पत्रोंमें होता रहा।

कृतियाँ—'प्राणेश्वरी,' 'वीरांगना पन्ना', 'वल्लरी', 'देवी,' 'जॉन'।

धन्या–ध्रुवकी स्त्री, मनसकी पुत्री। इनके पुत्रका नाम शिष्ट था। —मो० अ०

धन्वंतरि–विष्णुके अवतार। दीर्घतमके एक पुत्र, जो आयुर्वेदके जनक तथा केतुमानके पिता थे। पुराणोंके अनुसार वे अमृत-मन्थनमें निकले १४ रत्नोंमें-से एक थे। —मो० अ०

धरनीदास–ईसाकी सत्रहवीं शताब्दीमे आविर्भूत होनेवाले सन्तोंमें धरनीदासका महत्त्वपूर्ण स्थान है। आपका जन्म छपरा (बिहार) जिलेके माँझी गाँवमें एक कायस्थ परिवारमें हुआ था। आपके विषयमें लोक-प्रसिद्धि है कि "कबिरा पुनि धरनी भयो शाहजहाँके राज।" इससे प्रकट है कि जनतामें आपका पर्याप्त आदर था। आपका जन्म-काल अनिश्चित है। आपके अनुयायी आपका जन्म सन् १५७५ ई०, डॉक्टर बड़थ्वाल १६५६ ई० और रामकुमार वर्मा सन् १६१६ ई० में मानते है। 'प्रेम-प्रगास' के साक्ष्यपर सन् १६५६ ई० में आपका विरक्त होना निश्चित है। उस समय यदि आपकी अवस्था ४० वर्ष भी मान ली जाय तो सन् १६१६ ई० को आपका जन्मकाल माना जा सकता है। आपके दीक्षा-गुरु स्वामी विनोदानन्द थे, जो रामानन्दकी शिष्य-परम्पराकी आठवीं पीढ़ीमे आते हैं। आपकी तीन रचनाएँ—'शब्दप्रकाश', 'रत्नावली' और 'प्रेम-प्रगास' प्रसिद्ध हैं। 'शब्दप्रकाश'का प्रकाशन नरसिंह शरण प्रेस, छपरासे सन् १८८७ ई० में हुआ था। बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद से जो 'धरनीदासजीकी बानी' प्रकाशित हुई है, उसमें अधिकांश पद 'शब्द-प्रकाश' से ही संगृहीत हैं। शेष दो कृतियाँ अभीतक अप्रकाशित हैं। 'प्रेम-प्रगास' सूफियोंकी प्रेमाख्यानक शैलीमे रचित एक प्रेमगाथा है, जिसमे मन-मोहन और प्रानमतीकी प्रेम-कहानी वर्णित है। 'रतनावली' में आपकी गुरु-परम्पराका उल्लेख है और कुछ अन्य सन्तों और नाथ-सिद्धोंका परिचय भी दिया गया है। विनय, आत्महीनता, नामस्मरण, उद्बोधन, योगनिरूपण तथा आध्यात्मिक संयोग-वियोगका चित्रण आपकी कृतियोंके प्रमुख विषय हैं। आपने 'शब्द-प्रकाश' के गेय पदोंकी रचना भोजपुरीमे और 'प्रेम-प्रगास'का प्रणयन अवधी भाषामें किया है। आपने प्रायः दोहा (साखी), चौपाई, पद और सवैया छन्दोंका प्रयोग किया है। आपके पदोंमें लोक-जीवनकी सरसता और साखियोंमे अभिव्यक्तिकी प्रांजलता लक्षित होती है। निस्सन्देह ये एक उच्च साधक तथा प्रसिद्ध सन्त और कवि थे।

[सहायक ग्रन्थ—उत्तरी भारतकी सन्त-परम्परा : परशुराम चतुर्वेदी; हिन्दी काव्यमे निर्गुण सम्प्रदाय : पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल; धरनीदासकी बानी : बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग; सन्तकाव्य : परशुराम चतुर्वेदी।] —रा० चं० ति०

धर्म–१. सृष्टिप्रचारार्थ उत्पन्न प्रथम पाँच पदार्थोंमे-से एक, जो ब्रह्माके वक्षःस्थलके दाहिने भागसे उत्पन्न हुआ। प्रथम देवता, जिन्होंने दक्षकी तेरह कन्याओंसे विवाह किया था। कन्याओंके नाम है—श्रद्धा, मैत्री, दया, शान्ति, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, उन्नति, बुद्धि, मेधा, तितिक्षा, ह्री तथा मूर्ति। मूर्तिसे नर-नारायणका जन्म हुआ। धर्म वृषभके आकारका माना गया है, जिसके पैर गुण, द्रव्य, क्रिया और जाति है। सतयुगमें वह चारों पैरोंसे, त्रेतामें तीन, द्वापरमें दो और कलियुगमें एकसे प्रजाकी रक्षा करता है।

२. एक नक्षत्रसमूह, जो ध्रुवके चारों ओर घूमकर उसे ठीक स्थितिमें रखता है।

३. सत्यसेनके पिता, जिनकी स्त्रीका नाम सुनृता था।

४. न्यायके नियामक देवता; युधिष्ठिरके पिता; धर्मदत्तके पिता, जो बादमें गयाके शील कहलाये।

५. गान्धारके पुत्र और धृत (या घृत) के पिता।

६. हैहयके पुत्र, नेत्रके पिता।

७. पृथुश्रवसके पुत्र तथा उशनसके पिता।

८. काशीमें चतुर्मूर्ति।

९. दीर्घतमसके पुत्र।

१०. दस सुतप गणोंमें-से एक।

११. सुव्रतके पुत्र तथा सुश्रवके पिता।

१२. एक वसु, जिनकी पत्नीका नाम मनोहरा था। —मो० अ०

धर्मदास (धनी)—सन्त कबीरके दृष्टिकोणका जनतामें प्रचार करनेवाले सन्तोंमे धनी धर्मदास का नाम सर्वप्रथम आता है। धनी धर्मदासने कबीरके उपदेशोंको संवादके रूप-में लिखकर बहुतसे ग्रन्थोंकी रचना की है। धर्मसम्बन्धी जिज्ञासाओंको इन्होंने सन्त कबीरके समक्ष रखा और सन्त कबीरने आध्यात्मिक सत्यकी विवेचना उनके समक्ष की। इस भाँति सन्त कबीरके वास्तविक मर्मको स्पष्ट करनेमें धनी धर्मदासका बहुत बड़ा हाथ है।

ये सन्त कबीरके प्रधान शिष्य थे। इनकी जन्म-तिथिके सम्बन्धमें कुछ भी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। सन्त सम्प्रदायमें ऐसी मान्यता है कि धनी धर्मदास कबीरसे आयुमें छोटे थे और उनकी मृत्यु कबीरकी मृत्यु के लगभग पचीस वर्ष बाद हुई। इस प्रकार सामान्य रूपसे धर्मदासका जीवन संवत् १४७५ और १५८५ के बीचमें मानना उचित होगा।

धर्मदास प्रारम्भमें साकारोपासनामे विश्वास रखते थे। अपने ग्रन्थ 'अमर सुख निधान'मे इन्होंने अपना परिचय स्वयं दिया है: "धरमदास बन्धोके बानी। प्रेम प्रीति भक्ति में जानी॥ सालिगरामकी सेवा करई। दया धरम बहुतै चित धरई॥ साधु भक्तके चरन पखारै। भोजन कराइ अस्तुति निस्तारै॥ भागवत गीता बहुत कहाई। प्रेम भक्ति रस पियै अघाई॥ मनसा वाचा भजै गुपाला। तिलक देइ तुलसी की माला॥ द्वारिका जगन्नाथ होई आए। गया बनारस गंग नहाए॥"

सन्त गरीबदासने भी अपने वाणी-ग्रन्थमें धर्मदासके सम्बन्धमें इस कथनका समर्थन किया है: "बाँधो गढ है गाम, नाम धर्मदास कहीजै। वैश्यकुली कुल जाति, शूद्र नहीं बात सुनीजै॥ सर्गुण ज्ञान सरूप, ध्यान सालिग की सेवा। मलागीर छिरकंत, सन्त सब पूजैं देवा॥ अढसढि तीरथ न्हॉन, ध्यान करि करि हम आये। पूजै सालिगराम तिलक गलिमाल चढाये॥ धूप दीप अधिकार, आरती करै हमेशा। राम कृष्णका जाप, रटत है शंकर सेषा॥ नियम धर्म सें नेह, सनेह दुनिया सैं नाही। आरूढ वैराग्य और की मानौ नाहीं॥"('वाणी ग्रन्थ', पृष्ठ २२०)।

उपर्युक्त उद्धरणमे विस्तारसे धनी धर्मदासके धार्मिक विश्वासोंपर प्रकाश पडता है। साकारोपासनाके विश्वासी बनकर जब ये तीर्थ भ्रमण कर रहे थे, तभी इनकी भेंट सन्त कबीरसे हुई। ये उनसे इतने प्रभावित हुए कि इन्होंने अपना सारा धन लुटाकर कबीर-पन्थमें प्रवेश किया। सन्त कबीरके उपदेशोंको काव्यमें प्रकट करते हुए इन्होने प्रचुर साहित्यका निर्माण किया। सन्त तुलसी साहबने अपने ग्रन्थ 'घटरामायण' में इनके विचारोंके परिवर्तनका बडा प्रभावपूर्ण वर्णन किया है। निर्गुण ब्रह्मके उपासक होकर इन्होंने सपरिवार काशीमे निवास किया। इन्होने कबीरके सच्चे शिष्यके रूपमें उनकी वाणीका संग्रह संवत् १५२१ (सन् १४६४) में किया।

धर्मदासके सम्बन्धमें रेवरेंड एफ० ई० कीने लिखा है कि "धर्मदास केवल धनी और साहित्य मर्मज्ञ ही नहीं थे, वरन् चरित्रके सुदृढ सन्त थे। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि कबीर-पन्थके प्रसारका बहुत बड़ा श्रेय धर्मदासको है। कबीरके बाद धर्मदास ही कबीर-पन्थके प्रधान नेता है। वे उस साहित्यमें विशिष्ट रूपसे उल्लेख्य हैं, जो उनके और कबीरके संवादोंमें लिखा गया है ('कबीर एण्ड हिज फालोअर्स', पृष्ठ ९७)।

कहा जाता है कि तत्कालीन बाँधोगढ नरेशने धर्मदासके इस निर्गुण-प्रचारके लिए कडी चेतावनी दी। धार्मिक अनुष्ठान, व्रत, पूजा आदिके विरोधमें धर्मदासने जो काव्य लिखा, उसके लिए बाँधोगढ नरेशने उन्हें दण्डित भी करना चाहा। इस अवसरपर धर्मदासने कबीरकी अराधना की और कहा जाता है कि सन्त कबीरने उनकी सब प्रकारसे रक्षा की। धर्मदासने अनेक ग्रन्थोंकी रचना की। इनकी रचना कबीरकी रचनासे इतनी मिल गयी है कि दोनोको अलग करना बहुत कठिन हो गया है। इनका प्रमुख ग्रन्थ 'सुखनिधान' है, जिसे कबीर पन्थके अनुयायी बहुत महत्त्व देते हैं। कबीर साहबके सिद्धान्तोंकी व्याख्या इनमे अधिक कोई नहीं कर सका। यही कारण है कि इनकी रचनाका दृष्टिकोण अधिकतर कबीरकी रचनाके समानान्तर ही है। इन्होंने भी रहस्यवाद-की पृष्ठभूमिमे प्रतीकात्मक छन्द लिखे हैं और जीवनको 'विरह'का विस्तार मानते हुए आत्माको विरहिणी कहा है। कबीरके भक्त होनेके कारण इन्होने उनकी विधिवत् पूजाका विधान भी वर्णित किया है, फलतः इनकी उपासनामे विनती, मंगल-प्रश्नोत्तर और आरतीका विशेष विधान वर्णित किया गया है। इनकी रचनामें प्रतीक शैली आ जानेके कारण बारहमासा, होली और वसन्तमें भी विरह और मिलनके अनेक प्रसग उपस्थित किये गये हैं। इनके काव्यमे विशेष कलात्मक पक्ष तो नहीं है किन्तु भाषा स्वाभाविक और प्रवाहमय है। इनके काव्यमे भाषाका रूप स्वाभाविक रूपसे बाँधोगढके निवासी होनेके कारण बघेलखण्डी होना चाहिये किन्तु कबीरकी रचनाके प्रति प्रेम और उनके प्रति भक्ति-भाव होनेके कारण उन्होंने अपनी स्वाभविक भाषा तकमे परिवर्तन कर उसे 'पूरबी' रूप दे दिया। उदाहरणके लिये उनकी दो पंक्तियाँ देखिये:—

"सूतल रहली मै सखियों तो विष कर आगर हो। सतगुरु दिहले जगाइ, पायौ सुख सागर हो॥" कबीर-पन्थमें कबीरके बाद धर्मदासके प्रति श्रद्धा और भक्ति है। —रा० कु०

धर्मराज—काल देवता यमका विशेषण। युधिष्ठिरका भी एक नाम धर्मराज है। —मो० अ०

धर्मवीर एम० ए०—जन्म १९०४ ई० में, झेलममें। आप पंजाब प्रान्तीय हिन्दू महासभाके मन्त्री थे और गोलमेज़ कान्फ्रेसमें भाई परमानन्दके साथ उनके परामर्शदाताके रूपमें इंग्लैण्ड गये थे। आपकी कहानियाँ और रेखाचित्र बराबर पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित होते रहे हैं। पूर्व-एशियाकी भी आपने यात्रा की। आजकल जालन्धरमें रह रहे हैं। कृतियाँ—'संसारकी कहानियाँ', 'पंजाबका इतिहास',

'दक्षिणका इतिहास', 'अमर-पत्र' और 'बारह कहानियाँ'।

धर्मेंद्र ब्रह्मचारी शास्त्री–जन्म १९०५ ई० में जिला सारनमें हुआ। शिक्षा एम० ए०, पी-एच० डी०। प्रमुखतः सन्त-साहित्यके विशेषज्ञ। कृतियोंमें प्रमुख हैं—'सन्त कवि दरिया—एक अनुशीलन' (१९५४), और 'सन्तमतका सरभंग सम्प्रदाय'।

धीरेंद्र वर्मा–जन्म सोमवार, १७ मई, १८९७ को बरेलीके भूड़ मुहल्लेमें हुआ। पिताका नाम श्री खानचन्द। श्री खानचन्द एक जमींदार पिताके पुत्र होते हुए भी भारतीय संस्कृतिमें प्रेम रखते थे। वे आर्यसमाजके प्रभावमें आये। धीरेन्द्र वर्मा पर बचपनमें पिताके इन गुणोंका और इस वातावरणका प्रभाव पड़ा।

प्रारम्भमें इनका नाम सन् १९०८ में डी० ए० वी० कालेज देहरादूनमें लिखा गया किन्तु कुछ ही दिनों बाद वे अपने पिताके पास चले आये और इनका नाम क्वींस कालेज, लखनऊमें लिखा गया। इसी स्कूलसे सन् १९१४ ई०में प्रथम श्रेणीमें स्कूल लीविंग सर्टीफिकेट परीक्षा पास की और हिन्दीमें विशेष योग्यता प्राप्त की। तदनन्तर म्योर सेंट्रल कालेज, इलाहाबादमें नाम लिखाया। सन् १९२१ ई०में इसी कालेजसे इन्होंने संस्कृतमें एम० ए० किया।

सन् १९२४ ई०में इलाहाबाद विश्वविद्यालयमें हिन्दीके प्रथम अध्यापक नियुक्त हुए। बादमें वहीं प्रोफेसर तथा हिन्दी विभागके अध्यक्ष हुए। "जो कार्य हिन्दी समीक्षाके क्षेत्रमें आचार्य रामचन्द्र शुक्लने किया, हिन्दी शोधके क्षेत्रमें वही कार्य धीरेन्द्रजीका है" (हिन्दी अनुशीलन, धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक, पृ० १६)। इनकी चिन्तन-शैली अत्यन्त संश्लिष्ट है। भाषा और साहित्यको इन्होंने हमेशा संस्कृतिके व्यापक परिवेशमें ग्रहण किया है। आधुनिक समयमें 'मध्यदेश'को एक भौगोलिक तथा सांस्कृतिक इकाईके रूपमें पुनरन्वेषित करनेका श्रेय धीरेन्द्र वर्माको ही है।

एक ओर ये हिन्दी विभागके उत्कृष्ट व्यवस्थापक रहे हैं और दूसरी ओर एक आदर्श प्राध्यापक भी। स्नातक और स्नातकोत्तर परीक्षाओंके पाठ्यक्रमके निर्धारण, नियोजन और व्यवस्थापनमें जो विशद कार्य श्यामसुन्दर दासने किया था, उसे उन्होंने वैशिष्ट्य प्रदान किया। पाठ्यक्रममें भाषा और साहित्यकी व्यापकताको ध्यातव्य मानकर उसे नवीन गति प्रदान की। इनकी अध्यापन शैली अत्यन्त व्यवस्थापूर्ण, सुस्पष्ट एवं क्रमिक विवेचनायुक्त रही है। भाषा-विज्ञान जैसे विषयको भी ये सरल सुबोध बनाकर प्रस्तुत करते हैं। हिन्दी-भाषा और साहित्यके इतिहासको लेकर इनकी जैसी स्वस्थ और स्पष्ट दृष्टि कम ही देखनेको मिलती है।

इनके निबन्धोंके आधार पर अनेक गम्भीर शोध-कार्य हुए हैं। भारतीय भाषाओंसे सम्बद्ध समस्त शोध-कार्यके आधार पर इन्होंने १९३३ ई० में हिन्दी भाषाका प्रथम वैज्ञानिक इतिहास लिखा। सन् १९३४ ई०में ये पेरिस गये और प्रसिद्ध भाषा-वैज्ञानिक ज्यूल ब्लॉखके निर्देशनमें पेरिस यूनिवर्सिटीसे डी० लिटकी उपाधि प्राप्त की।

हिन्दुस्तानी अकादमीके सन् १९२७ ई०से ही सदस्य रहे और दीर्घकालतक उसके मन्त्री भी। सन् १९५८-५९ ई०में लिंग्विस्टिक सोसायटी आफ इण्डियाके अध्यक्ष पदपर रहे। प्रथम 'हिन्दी विश्वकोश'के प्रधान सम्पादक रहे हैं। सम्प्रति आप सागर विश्वविद्यालयमें भाषाविज्ञान विभागके अध्यक्ष हैं।

डा० वर्माकी कृतियाँ अनेक हैं और बहुविध हैं। 'हिन्दी भाषाका इतिहास' अपने समय तकके आधुनिक भाषाओंसे सम्बन्धित खोज-कार्यके गम्भीर अनुशीलनके आधारपर लिखा हुआ हिन्दी भाषाका प्रथम वैज्ञानिक एवं महत्त्वपूर्ण इतिहास है।

फ्रेंच भाषामें ब्रजभाषापर शोध-प्रबन्ध है (सन् १९३५ ई०), जिसका अब हिन्दी अनुवाद हो चुका है। 'हिन्दी भाषा और लिपि', 'हिन्दी भाषाका इतिहास'की भूमिकाका स्वतन्त्र रूप है। हिन्दुस्तानी अकादमीने इसे १९३५ में प्रकाशित किया है। इनके ग्रन्थोंका विवरण इस प्रकार है—

'ब्रजभाषा व्याकरण'—प्र० रामनारायण लाल, इलाहाबाद, सन् १९३७; 'अष्टछाप'—प्र० रामनारायण लाल, इलाहाबाद, सन् १९३८; 'सूरसागर-सार'—सूरके ८१७ उत्कृष्ट पदोंका चयन एवं सम्पादन, प्र० साहित्य भवन लि०, इलाहाबाद, १९५४ ई०; 'मेरी कालिज डायरी'—१९१७ से १९२३ तकके विद्यार्थी जीवनमें लिखी गयी डायरीका पुस्तक रूप है, प्र० साहित्य भवन लि०, इलाहाबाद, १९५४ ई०; 'मध्यदेश'—भारतीय संस्कृति-सम्बन्धी ग्रन्थ है। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्के तत्त्वावधानमें दिये गये भाषणोंका यह संशोधित रूप है।—प्र० बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, १९५५ ई०; 'ब्रजभाषा'—थीसिसका हिन्दी रूपान्तर है।—प्र० हिन्दुस्तानी अकादमी, १९५७ ई०; 'हिन्दी साहित्य कोश' (प्रथम भाग)—सम्पादन, प्र० ज्ञानमण्डल लि०, बनारस, १९५८ ई०; 'हिन्दी साहित्य'—सम्पादन, प्र० भारतीय हिन्दी परिषद्, १९५९ ई०; 'कम्पनीके पत्र'—सम्पादन, प्र० इलाहाबाद यूनिवर्सिटी, १९५९ ई०; 'ग्रामीण हिन्दी'—प्र० साहित्य भवन लि०, इलाहाबाद; 'हिन्दी राष्ट्र'—प्र० भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद; 'विचार-धारा'—निबन्ध-संग्रह है।—प्र० साहित्य भवन लि०, इलाहाबाद; 'यूरोपके पत्र'—यूरोप जानेके बाद वहाँसे लिखे गये पत्रोंका महत्त्वपूर्ण संचयन है।—प्र० साहित्य भवन लि०, इलाहाबाद। —ह० दे० बा०

धुंधु–१. पीत्रायुधका पुत्र, एक असुर, जो अपने २१०० पुत्रोंसहित कुवलयाश्व द्वारा मारा गया।

२ मधु राक्षसका पुत्र, जो लोकपीड़क था। उत्तंगकी प्रार्थनापर बृहदश्वने उसे परास्त किया।

३. एक राक्षस, जिसने उत्तंक ऋषिके आश्रमके समीप मरुभूमिमें संसारके नाश करनेके हेतु कठिन तप किया। एक वर्षमें वह एक बार ही श्वास लेता था, किन्तु उसके कारण सात दिन तक पृथ्वी हिलती रहती थी और धूलसे सूर्य छिप जाता था। कुवलयाश्वने उसका वध किया और धुन्धुमार कहलाये। —मो० अ०

धुंधुमार—कुवलाश्व या कुवलयाश्वका एक नाम, जो धुन्धुको मारनेके कारण पड़ा था (दे० धुन्धु)। —मो० अ०

धृतराष्ट्र–१. विचित्रवीर्य और अम्बिकाके बड़े पुत्र। विचित्रवीर्य वस्तुतः निःसन्तान मर गये थे। अतः अम्बिकाने व्यास द्वारा नियोग कराकर धृतराष्ट्रको जन्म दिया। व्यास अम्बिकाके कुमारावस्थाके पुत्र थे, इसलिए सम्भोगके समय अम्बिकाने लज्जाके कारण नेत्र मूँद लिये, फलस्वरूप धृतराष्ट्र जन्मान्ध हुए। इनकी पत्नीका नाम गान्धारी था। ये दुर्योधन आदि १०० पुत्र तथा दुःशला नामक पुत्री मिलाकर १०१ सन्तानोंके पिता थे। ये अत्यन्त न्यायप्रिय थे। महाभारतके पश्चात् वनमें जाकर गान्धारी, कुन्ती सहित अग्निमें जल गयी। आधुनिक युगमें धर्मवीर भारतीने इन्हींके चरित्रके आधारपर 'अन्धा युग' नामक गीति नाट्यकी कल्पना की है।

२. एक प्रसिद्ध नाग, जो भूमि-गायके दुहने तथा त्रिपुरारिके रथमें रज्जुरूपमें प्रयुक्त हुआ। नारदसे विष्णु पुराण सुनकर उसने वासुकिको सुनाया। —मो० अ०

धृष्टद्युम्न–ये द्रुपदके पुत्र तथा द्रौपदीके भाई थे, जो यज्ञ-कुण्डसे उत्पन्न हुए थे। इनके पुत्रका नाम धृष्टकेतु था। पाण्डवोंकी ओरसे महाभारतमें युद्ध लड़े थे। इन्होंने द्रोणका वध किया था (दे० 'द्रोण', 'द्रुपद')। —मो० अ०

धेनुक–धेनुकासुर १–कंसका सहायक एक धेनुक नामका असुर भी था, जो गर्दभ रूप धरकर वृन्दावनके समीपस्थ तालवनमें रहता था। एक बार गोचारणके समय गोपोंकी इच्छा पूरी करनेके लिए बलराम ताड़के फल लेने गये। असुरने बलरामके वक्षमें दुलत्ती मारी। बलरामने उसे घुमाकर पटक दिया। उसके अन्य साथी गधे आये, जिन्हे कृष्णने वृक्षोपर पटक-पटक कर मार डाला (दे० सू२०, प० १११७)। —मो० अ०

धेनुकासुर २–एक राक्षस था तथा गर्दभका रूप धारण करके कृष्ण-वध हेतु आया था। एक बार कृष्ण और बलराम गोकुलके समीप एक वनमें फूल-फल तोड़ रहे थे तो धेनुकने अपने पिछले पैरोंसे कृष्णपर आक्रमण किया किन्तु बलरामने उसके पिछले पैरोंको पकड़कर उसे मार डाला। धेनुकके वधके अनन्तर उसके साथी अनेक गर्दभोंने आक्रमण किया पर बलरामने क्रमशः सबोंको मार डाला। बलरामने उनकी ठठरीको वृक्षोंके ऊपर फेंक दिया, जिससे सभी वृक्षोंपर गधे दिखायी देने लगे।

धेनुकासुरवधके प्रसंगको लेकर पुराणोंकी सूचनाओंमें भेद मिलता है। 'हरिवंश' और 'भागवत पुराणों'के अनुसार तालवनवासी गर्दभोंका स्वामी धेनुकासुर था। वही बलराम पर प्रहार करता है और वे ही उसका संहार करते हैं। 'ब्रह्मवैवर्त्त'में यह कथा कालियदमन और गोवर्द्धनके बाद दी गयी है तथा धेनुकको दुर्वासाशापित बाल पुत्र बताते हुए उसके वधको कृष्ण द्वारा वर्णित किया गया है। सूरने भागवत-वर्णनका आधार लिया है (दे० सू० सा०, प० १११७)। —रा० कु०

ध्यानमंजरी–'ध्यानमंजरी'के लेखक अग्रदास हैं। अग्रदास सन् १५५६ ई० में वर्तमान थे और उस समय तक उनकी ख्याति भी दूर-दूरतक व्याप्त हो चुकी थी, अतः 'ध्यानमंजरी' उसी समयकी कृति होगी। इसकी प्रकाशित प्रतियोंमें रचनातिथिके सम्बन्धमें कोई संकेत नहीं मिलता है। नागरी प्रचारिणी सभा, काशीमें 'अग्रपदावली' नामसे इनकी रचनाएँ सुरक्षित हैं। इसकी एक प्रति सन् १९२२ई० में वेंकटेश्वर प्रेससे प्रकाशित हुई, दूसरी प्रति सन् १९४० ई० में श्री रघुवीर प्रसाद रिटायर्ड तहसीलदारने अयोध्यासे प्रकाशित की। रेवासामें इसकी एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति सुरक्षित कही जाती है, किन्तु अग्रदासके हाथसे लिखी कोई प्रति उपलब्ध नहीं है। साम्प्रदायिक विद्वानोंके मतसे यह अग्रदासकी प्रामाणिक रचना है। 'रसिक प्रकाश भक्तमाल'में उसका उल्लेख मिलता है।

इस ग्रन्थमें रामका ध्यान किस रूपमें करना चाहिये, इसकी भूमिका उपस्थित करते हुए लेखकने सर्वप्रथम मणि-कांचनसे युक्त अवधका वर्णन किया है। अवधके समीप ही सरयू है, जो कमलकुलोंसे संकुल है, जिसके जलमें स्नानादि करनेमात्रसे मुक्ति मिल जाती है। सरयूके तट पर अशोक वन है, वहाँ कल्पवृक्षके समीप ही एक मणि-मण्डप है। मंडपमे एक स्वर्णवेदिका है, जिसके ऊपर रत्न का सिंहासन है। सिंहासनके मध्यमें स्थित कमलकी कर्णिकाके ऊपर श्रीरामजी सुशोभित हैं, जिनका किरीट मंजुल-मणियोंसे युक्त है, जिनके कानोंमें सुन्दर कुण्डल हैं, जिनका सर्वांग मनोरम है। यहाँपर रामके अंग-प्रत्यंग का सुन्दर वर्णन किया गया है और उनके आभूषणों तथा दिव्यायुधोंका विस्तृत निरूपण किया गया है। रामका यह सोलह वर्षका नित्य किशोररूप परम लावण्ययुक्त है। उनके वामपार्श्वमें अनेक सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित जनककुमारी शोभित हो रही हैं। उनका भी नख-शिख वर्णन अग्रदासने यहाँ किया है। लक्ष्मणके हाथमें छत्र, भरतके हाथमें चँवर है। शत्रुघ्न और हनुमान् भी सेवारत हैं। रामके इसी रूपका ध्यान भक्तोंके लिए विधेय है। 'ध्यानमंजरी' ब्रजभाषामे रोला छन्दमें लिखी गयी है। इसकी भाषा सरल तथा अनलंकृत है। कहीं-कहीं विभक्तियोंमे आधुनिकता मिलती है, जैसे कर्मकारकमें यहाँ 'को' अनुसर्गका ही प्रयोग मिलता है—कौं, कै, कें, कूं, या कुं का नहीं।

कथामें कुछ नवीनता मिलती है। रामके षोडशवर्षीय रूपका ध्यान करनेको कहा गया है, इस नवीनताकी व्याख्या कदाचित् यह कहकर की जा सकती है कि भगवान् रामका सीता और हनुमान् दोनोंसे ही निरन्तर साहचर्य रहता है।

इस ग्रन्थका महत्त्व रामानन्द-सम्प्रदायमे माधुर्यभाव-की भक्तिकी दृष्टिसे विशेष है। अग्रदास इस भक्तिके प्रवर्तक कहे जाते हैं और उनकी 'ध्यानमंजरी', 'अष्टयाम' आदि रचनाएँ इस भावके उपासकोंके लिए सन्दर्भ ग्रन्थ माने जाते हैं।

[सहायक ग्रन्थ—ध्यानमंजरी, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।] —ब० ना० श्री०

ध्रुव–राजा उत्तानपाद और सुनीतिके पुत्र। उत्तानपादकी दूसरी रानी सुरुचिके पुत्रका नाम उत्तम था। एक दिन पिताकी गोदमें बैठे हुए ध्रुवको सुरुचिने गोदसे उतार कर

पने पुत्र उत्तमको बिठा दिया। ध्रुवके हृदयमें ऐसी चोट गी कि वह बालपनमें ही तपस्या करने चले गये। पस्या पूर्णकर घर लौटे और राज्य भोगकर अन्तमें विष्णु ारा प्रदत्त ध्रुव-लोकको चले गये। ध्रुवलोक सब नक्षत्रोंसे पर अचल एवं अटल है। इला और भ्रमि इनकी स्त्रियाँ ीं, जिनसे कल्प, वत्सर एवं उत्कल नामक पुत्र हुए। ौतेले भाईको यक्षोंने मार डाला था, अतः इन्होंने यक्षोंसे ुद्ध भी किया था। ध्रुव अपनी तपस्यामें इन्द्रादि द्वारा नेक प्रयत्न होनेपर भी नहीं डिगे थे। इसलिए ध्रुव टलताके प्रतीक माने जाते हैं (दि० सूर० पद ४०२-४०४, ानस—१, २६, ३)। —मो० अ०

ध्रुवचरित—दे० 'मलूकदास'।

ध्रुवदास—सहारनपुर (उत्तरप्रदेश)के देवबन्द कस्बेके एक ायस्थ कुलमें उत्पन्न ध्रुवदासके जन्म संवत्‌का अन्तिम ि्णय अभीतक नहीं हुआ है किन्तु उनकी रचनाओं था कतिपय साम्प्रदायिक वाणियोंके आधार पर सन् ५७५ ई०के आस-पास इनकी जन्मतिथि ठहरती है। 'ब्रज ाधुरीसार'में श्री वियोगी हरिने इनका जन्म सन् १५९३ आस-पास स्थिर किया है किन्तु यह सन् प्रामाणिक हीं प्रतीत होता, क्योंकि इसी सन्‌की 'रसानन्द लीला' ामक इनकी रचना उपलब्ध होती है। ध्रुवदासके वंशजोंके ाषयमें जनश्रुति चली आती है कि ध्रुवदासके पितामह ाठलदास श्रीहित हरिवंशके शिष्य थे और जूनागढ राज्य दीवान थे। ध्रुवदासके पिता श्यामदास भी परम भक्त ौर साधुसेवी पुरुष थे। इन्होंने हित-हरिवंशके पुत्र ोपीनाथसे राधावल्लभीय दीक्षा ग्रहण की थी। ध्रुवदास वंश-रम्परासे राधावल्लभीय थे। शैशवमें ही उन्हें विरक्ति ोगयी थी और घरबार छोड़कर वृन्दावनमें आ गये थे। न्म-पर्यन्त वे वृन्दावनमें ही निवास करते रहे और कभी सकी सीमासे बाहर पैर नहीं रखा।

ध्रुवदास अत्यन्त विनीत, साधुसेवी, सन्तोषी, सहिष्णु ौर गम्भीर प्रकृतिके महात्मा थे। उनका मन राधा-कृष्ण- लीला-गानके सिवाय किसी और काममें नहीं लगता ा। भगवत मुदितने 'रसिक अनन्यमाल'में उनके शील-वभावका वर्णन करते हुए लिखा है कि ध्रुवदासने राधाको सन्न करके उनसे पद रचना और लीला-वर्णनकी अनुमति ाप्त कर ली थी। एक ओर भक्ति-भावनासे उनका अन्तः-रण ओत-प्रोत था, तो दूसरी ओर काव्यशास्त्र तथा छन्द-ास्त्रका भी उन्होंने भलीभाँति अध्ययन किया था। फलतः न ग्रन्थोंमें भक्ति-सिद्धान्त, भक्ति-भावना, काव्यसौष्ठव, न्द-वैविध्य, शैली-वैविध्य आदि सभी तत्त्व पाये जाते हैं। स समय काव्य-क्षेत्रमें जिन शैलियोंका प्रचलन था, उन बका ध्रुवदासने अपनी रचनाओंमें समाहार किया है। नकी काव्य-भाषा और वर्णन-शैलीमें सर्वत्र स्निग्धता पायी ाती है। भक्ति-मार्गकी सरसता ही जैसे उनका उपास्य त्त्व बन गया था, अतः शुष्कता, विलष्टता, दुरूहता और स-विहीनता आदिसे वे सदैव दूर रहे।

ध्रुवदासलिखित बयालीस ग्रन्थ विख्यात हैं, जो ्यालीस-लीला' नामसे तीन बार प्रकाशित हो चुके हैं था हस्तलेखोंके रूपमें भी अनेक स्थानों पर उपलब्ध हैं। यथार्थमें इन्हें ग्रन्थ नामसे अभिहित करना समीचीन नहीं है, क्योंकि उन सबमें न तो ग्रन्थ-कोटिकी व्यापकता है और न वर्ण्य-वस्तुकी दृष्टिसे ग्रन्थकी मर्यादाका पालन ही। कोई-कोई लीला तो केवल आठ दोहोंमें वर्णित हुई है। इनके साथ लीला शब्दका व्यवहार भी रस-पद्धतिके कारण हुआ है। यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक ग्रन्थमें किसी लीलाका वर्णन हो। लीला शब्दका प्रयोग केवल प्रचलित व्यवहारके कारण कर दिया गया है। बयालीस लीलाके अतिरिक्त उनके १०३ फुटकर पद भी मिलते हैं।

ध्रुवदासका स्थान राधावल्लभ-सम्प्रदायके भक्त महानुभावोंमें सिद्धान्त प्रतिपादनकी दृष्टिसे हित हरिवंश गोस्वामीके बाद मूर्द्धन्य है। राधावल्लभ सम्प्रदायका सैद्धान्तिक स्वरूप उन्हींके ग्रन्थोंमें उद्घाटित होता है। ध्रुवदास पहले व्यक्ति हैं, जिन्होंने साम्प्रदायिक सिद्धान्तोंके उद्घाटनके लिए 'सिद्धान्त-विचार' ग्रन्थमें बड़े विस्तारपूर्वक गद्यका प्रयोग किया है और प्रेमके सापेक्षिक महत्त्वपर बड़ी व्यापक शैलीसे विचार किया है। इतना गम्भीर विचार किसी और भक्तके गद्यमें प्राप्त नहीं होता। ध्रुवदासके ग्रन्थोंका अनुशीलन करनेपर यह निष्कर्ष सहज ही में निकल आता है कि ध्रुवदासने केवल राधावल्लभीय सिद्धान्तोंका उद्घाटन नहीं किया, वरन् माधुर्य भक्तिके लिए हिन्दीमें सैद्धान्तिक आधार भी तैयार किया। रूपसनातन गोस्वामीने जिन सिद्धान्तोंको अपने संस्कृत ग्रन्थोंमें रखा था, उन्हे ध्रुवदासने पहली बार अपनी काव्यमयी शैलीसे हिन्दीमें प्रस्तुत किया। ध्रुवदास हित-हरिवंशके भाष्यकार और व्याख्याकार होनेके साथ ही माधुर्य-भक्तिके ब्रजभाषा द्वारा समर्थ साधक थे। माधुर्य-भक्तिकी तल्लीनता और रसव्यंजक पदावलीकी रोचकता जैसी ध्रुवदासके पदोंमें है, वैसी मध्ययुगीन भक्तोंमे बहुत कम देखी जाती है। यदि भाषा-माधुर्य, शैली-वैविध्य, छन्द-कुतूहलको दृष्टिमें रखकर उनकी रचनापर विचार किया जाय तो वे भक्तिकालीन और रीतिकालीन कवियोंको जोड़ने वाले रस-सिद्ध कवि-भक्त माने जायेंगे।

ध्रुवदासकी वाणीमे काव्य-सौष्ठव इतनी प्रचुर मात्रामें है कि कहीं-कहीं तो इनकी अलंकृत रचनाएँ रीतिकालीन कवियोंसे भी बाजी मार ले जाती हैं। 'हित-शृंगार लीला', 'रस-मुक्तावली', 'सभामण्डल', 'शृंगाररस' आदि रचनाओंका काव्यस्तर रीतिकालीन देव, मतिराम, पद्माकर आदिसे टक्कर लेनेवाला है। काव्य-रूढियोका उन्हें शास्त्रीय ज्ञान था और उसीके अनुसार उन्होंने नायिका-भेद, नख-शिख, बारहमासा, ऋतु-वर्णन आदिका सर्वांगीण रूपसे अपने ग्रन्थोंमें निर्वाह किया है। एक भक्त-कविकी सीमाओंमें रहकर शृंगारका ऐसा सजीव वर्णन करना कलाकी चरम सिद्धिका निदर्शन ही माना जायगा।

ध्रुवदासके ग्रन्थोंमें विषय-वैविध्य भी अत्यधिक है। 'जीव-दशा', 'वैद्यक-लीला', 'मन शिक्षा', 'भक्त नामावली' आदि ग्रन्थ इतने विचित्र हैं कि उन्हें देखकर ध्रुवदासकी रुचिकी विलक्षणतापर विस्मय होता है। 'भक्त नामावली' एक प्रकारका 'सूत्रात्मक भक्तमाल' है।

ध्रुवदासके कुछ ग्रन्थ स्वतन्त्र रूपसे भी प्रकाशित हुए हैं। भारत जीवन प्रेससे बाबू रामकृष्ण वर्माने 'ध्रुव सर्वस्व'

नामसे कई ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं। नागरी प्रचारिणी सभा और इण्डियन प्रेस द्वारा 'भक्त नामावली' प्रकाशित हो चुकी है। नागरी प्रचारिणी सभाकी खोज रिपोर्टोंमें इनके ग्रन्थोंका स्फुट-रूपमें अनेक स्थलोंपर उल्लेख मिलता है। 'वृन्दावन सत'का उल्लेख अनेक स्थलोंपर मिलता है। ध्रुवदासके ग्रन्थोंकी संख्या अब बयालीस निर्धारित हो चुकी है और उसीको प्रामाणिक स्थिर कर दिया गया है। उनके चालीस ग्रन्थोंके नाम इस प्रकार हैं—

१. 'जीवदशा लीला', २. 'वैद्यक ज्ञान लीला', ३. 'मन शिक्षा लीला', ४. 'वृन्दावन सत लीला', ५. 'ख्याल हुलास लीला', ६. 'भक्त नामावली लीला', ७. 'बृहद् बावन पुराणकी भाषा लीला', ८. 'सिद्धान्त विचार लीला' (गद्यवार्ता), ९. 'प्रीतिचौवनी लीला', १०. 'आनन्दाष्टक लीला', ११. 'भजनाष्टक लीला', १२. 'भजन कुण्डलिया लीला', १३. 'भजन सत लीला', १४. 'भजन शृंगार सत लीला', १५. 'मन शृंगार लीला', १६. 'हित शृंगार लीला', १७. 'सभामण्डल लीला', १८. 'रस मुक्तावली लीला', १९. 'प्रेमावली लीला', २०. 'प्रियाजी नामावली लीला', २१. 'रहस्य मंजरी लीला', २२. 'सुख मंजरी लीला', २३. 'रति मंजरी लीला', २४. 'नेह मंजरी लीला', २५. 'वनविहार लीला', २६. 'रंगविहार लीला', २७. 'रसविहार लीला', २८. 'रंग हुलास लीला', २९. 'रंग विनोद लीला', ३०. 'आनन्ददशा विनोद लीला', ३१. रहस्यलता लीला', ३२. 'आनन्दलता लीला', ३३. 'अनुराग लता लीला', ३४. 'प्रेमदशा लीला', ३५. 'रसानन्द लीला', ३६. 'ब्रजलीला', ३७ 'जुगलध्यान लीला', ३८. 'नृत्य विलास लीला', ३९ 'मान लीला', और ४०. 'दान लीला'।

[सहायक ग्रन्थ—राधावल्लभ सम्प्रदाय-सिद्धान्त और साहित्य : डा० विजयेन्द्र स्नातक; गोस्वामी हित हरिवंश और उनका सम्प्रदाय : ललिता चरण गोस्वामी; हिन्दी साहित्यका इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल; हिन्दी साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास : डाक्टर रामकुमार वर्मा।] —वि० स्ना०

ध्रुवस्वामिनी—जयशंकर प्रसादकृत अन्तिम नाटक, जिसका प्रकाशन सन् १९३३ ई०में हुआ। 'ध्रुवस्वामिनी' की कथा-वस्तु गुप्तकाल से ली गयी है। ध्रुवस्वामिनी समुद्रगुप्तको दिग्विजयके समय प्राप्त हुई थी। समुद्रगुप्तकी मृत्युके अनन्तर रामगुप्तने छलकपटसे राज्यपर अधिकार कर लिया और उसीके साथ ध्रुवस्वामिनीको प्राप्त किया। समुद्रगुप्तने उत्तराधिकार चन्द्रगुप्त द्वितीयको देना चाहा था पर वह बन्दी बना लिया गया। चन्द्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनीमें जो प्रेम था, वह विकसित होता रहा और विरोधोंमें समाप्त न हुआ। शकपतिके भयसे समुद्रगुप्त ने ध्रुवस्वामिनीको देना चाहा, पर उसने इसका विरोध किया। चन्द्रगुप्तने अपनी बुद्धि चातुरीसे शकराजका अन्त कर दिया और ध्रुवस्वामिनीसे उसका परिणय सम्पन्न हुआ। यद्यपि कथावस्तु इतिहाससे ली गयी है पर प्रसाद ने इसमें नारीकी विवाह समस्यापर विचार करना चाहा है। क्या नारी विक्रयके लिए है? अन्य सामग्रियोंकी भाँति क्या उसका व्यापार हो सकता है? स्वयं प्रसादने लिखा है—"आज जितने सुधार या समाजशास्त्र के परीक्षात्मक प्रयोग देखे या सुने जा सकते हैं, उन्हें अचिन्तित और नवीन समझकर हम बहुत शीघ्र उन्हें अभारतीय कह देते हैं, किन्तु मेरा ऐसा विश्वास है कि प्राचीन आर्यावर्त्तने समाजकी दीर्घकालीन परम्परामें प्रायः प्रत्येक विधानका परीक्षात्मक प्रयोग किया है।" शकराज और रामगुप्तके संघर्षमें राजनीतिक तत्त्व स्वयं ही आ गये हैं पर 'ध्रुवस्वामिनी'की मुख्य समस्या नारी जीवन और विवाहसे सम्बद्ध है। धर्मशास्त्रोंका विरोध प्रसादने नहीं किया, पर उन्होंने इस प्रश्नपर आधुनिक दृष्टि डाली है।

ध्रुवदेवी और रामगुप्तका विवाह प्रत्येक दृष्टिसे वर्जित और विषम है। केवल पति होनेके नाते वह ध्रुवस्वामिनी का व्यक्तित्व पूँजीकी भाँति बेच देनेका अधिकारी नहीं और प्रश्न तो यह है कि वह सच्चा पति भी कहाँ है? ध्रुवस्वामिनी तो कभी उसे स्वीकार ही नहीं करती। वह अन्त तक इस बातका विरोध करती है कि उसे शकराजको समर्पित कर दिया जाय। ध्रुवस्वामिनी चन्द्रगुप्तको प्रेम करती है और विवाह उसकी पूर्णता है। रामगुप्तके चरित्र में प्रसादने एक कायर और दुर्बल राजाको अंकित किया है, जिसके विरुद्ध विद्रोह करनेके लिए प्रजाको पूर्ण अधिकार है। अपनी वासनाओंमें बन्दी रामगुप्त मूर्खताका परिचय देता है और अन्तमें समाप्त हो जाता है। उसके विपरीत चन्द्रगुप्त एक वीर पुरुष है। अपने विवेकबलसे वह ध्रुवस्वामिनीको पा जाता है। ध्रुवस्वामिनीका चरित्र निर्भीक और बुद्धिप्रधान है। समस्त कथाका संचालन उससे सम्बन्ध रखता है। वह अन्त तक रामगुप्तका विरोध करती है—अपनी दृढ इच्छाशक्तिके सहारे। उसके व्यक्तित्व-मे उस जागरूक नारीका स्वरूप है, जो विक्रयकी वस्तु होनेसे इनकार कर देती है। उसके कथनमें ओज और शक्ति है। नये युगकी जाग्रत् नारीका प्रतीक उसे कहा जायगा। 'ध्रुवस्वामिनी' नाट्यकलाकी दृष्टिसे प्रसादकी उत्कृष्ट रचना है। इसमें तीन अंक हैं और प्रत्येक अंकमें एक दृश्य। कार्य-व्यापार एक ही स्थानपर इनमें सम्पन्न होता है। एक धारावाहिक क्रम नाटकमें आद्योपान्त देखा जा सकता है। इस नाटकके निर्माणमें प्रसादने रंगमंचका ध्यान रखा है। दृश्यों में अधिक परिवर्तनकी आवश्यकता नहीं और संवादोंमें गति होनेके कारण प्रवाहमयतामें भी बाधा नहीं है। कतिपय समीक्षक 'ध्रुवस्वामिनी'को समस्या-प्रधान नाटकोंके समीप रखते हैं और उसमें आधुनिक नाटककारों का प्रभाव पाते हैं। 'ध्रुवस्वामिनी' नाट्यकलाकी दृष्टिसे प्रसादकी सफल कृति है। —प्रे० शं०

नंद—कृष्ण-काव्यके पात्रोंमें नन्दका स्थान गौण कहा जा सकता है। श्रीमद्भागवतके पूर्व कृष्ण-कथाकी परम्परामें यद्यपि नन्दका नाम अनेक स्थलोंपर मिल जाता है, परन्तु उनके चरित्रकी कोई उल्लेखनीय विशेषता नहीं दिखायी देती। महाभारतमें गोपाल कृष्णकी कथाके सन्दर्भ प्रायः नहीं हैं, इसलिए उसमें नन्दका भी नाम नहीं मिलता। बौद्ध घत जातकके अनुसार वासुदेव कण्ह देवगमाके गर्भसे उत्पन्न होकर नन्द गोपा नामकी कंसकी दासीके द्वारा पाले

गये थे। नन्द गोपाके पतिका नाम अंधकवेणु था। हरिवंशको यदि महाभारतका परिशिष्ट मानते हुए प्राचीनतम पुराण स्वीकार किया जाय तो कहा जा सकता कि सबसे पहले हरिवंशमें ही नन्दका कृष्णके पोषक-पिताके रूपमें उल्लेख हुआ है। देवकीके गर्भसे उत्पन्न होनेके बाद कृष्णके पिता वसुदेवने उन्हें कंसके क्रोधसे सुरक्षित रखनेके लिए गोकुलके नन्द गोपके यहाँ भेज दिया था। इस प्रकार नन्दने कृष्णका लालन-पालन किया था परन्तु हरिवंशमें गोपाल कृष्णकी कथाका बहुत कम विस्तार है, अतः नन्दका चरित्र भी उसमें विकसित नहीं हुआ। नन्दके चरित्र-विकासका आधार वस्तुतः श्रीमद्भागवत ही है, जिसमें वे एक अत्यन्त सरल स्वभाव ग्रामप्रमुखके रूपमें केवल इस उद्देश्यसे चित्रित किये गये हैं कि वे कृष्णके प्रति उत्कट वात्सल्य भक्ति रखते हैं। भागवत (नवमस्कन्ध)में नन्द और उपनन्द नामक वसुदेवके पुत्र भी कहे गये हैं, जो उनकी मदिरा नामक स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे परन्तु यही नन्द कृष्णके पोषक पिता नहीं माने जा सकते।

श्रीमद्भागवतके नन्दमें एक ऐसे ग्रामप्रमुखका उदाहरण मिलता है, जो सदैव क्रूर शासकसे भयभीत रहता है तथा उसकी इच्छा-पूर्तिके लिए विवश होकर सब कुछ करनेको तैयार हो जाता है। ब्रह्मवैवर्त्त-पुराणमें नन्दका उल्लेख मुख्य रूपमें उस समय हुआ है, जब वे शिशु कृष्णको वन-प्रान्तरके एकान्तमें राधाको सौंप देते हैं तथा राधा एवं राधाकृष्णके प्रति अपनी भक्ति-भावना व्यक्त करते हैं। नन्दके इस चरित्रमें बड़ी कृत्रिमता और अविश्वसनीयता है। जयदेवके 'गीतगोविन्द'में भी ब्रह्मवैवर्त्त-पुराणके इस प्रसंगका उल्लेख मिलता है। नन्द द्वारा राधाको कृष्णके सौंपे जानेका उल्लेख हिन्दीके कुछ कवियोंने भी किया है। 'सूरसागर'में भी राधा-कृष्ण मिलनके प्रसंगमें इसका संकेत पाया जाता है परन्तु 'सूरसागर'के नन्दका चरित्र काव्यकी सीमाओंके भीतर सम्यक् रूपसे चित्रित हुआ है। सूरदासने उन्हें गोकुलके सबसे अधिक सम्भ्रान्त और सम्पन्न 'महर' तथा ग्रामवासी अहीरोंके नायकके रूपमें चित्रित किया है। सूरदासने गोकुलके अन्य महरोंको उपनन्द कहा है, जिससे यह भी सूचित होता है कि नन्द कदाचित् ग्रामप्रमुखकी कोई पदवी है। उपनन्दके अतिरिक्त कहीं-कहीं उदाहरणार्थ 'सूरसागर सारावली'में धरानन्द, सुरसुरानन्द आदि अन्य नाम भी आये है परन्तु हिन्दी कृष्ण-काव्यमें नन्दका नाम कृष्णके पोषक पिताके रूपमें रूढ़ हो गया है।

गोकुलके पंचायती समाजमें नन्दपर ही राजा कंसके राज्य अंश तथा अन्य करोंके चुकानेका दायित्व रहता है। अपने समाजके वे लोकप्रिय नेता हैं और सभी कार्य सबकी सलाहसे करते हैं। कृष्ण जैसा पुत्र पाकर उनकी प्रतिष्ठा और ख्यातिमें वृद्धि हो जाती है, परन्तु साथ ही उन्हें इस कारण संकटोंका आये दिन सामना करना पड़ता है। ग्रामीणोंकी सरलता उनके चरित्रकी प्रमुख विशेषता है। सरलताके साथ उनके चरित्रकी सबसे बड़ी विशेषता स्नेहशीलता है, जो कृष्णके सम्बन्धमें आये दिनके संकटोंके कारण भय, चिन्ता और आशंकासे समन्वित होकर प्रायः कातरतामें परिणत होती देखी जाती है। उनके स्वभावकी सरलताके प्रमाण उन अवसरोंपर मिलते हैं, जब वे अत्यन्त भयाकुल होते हुए भी कृष्णके आश्वासनोंके द्वारा बहुत जल्द शान्त हो जाते हैं और ऐसे व्यवहार करने लगते है, मानों उन्हें किसीका डर न हो। कालियदमन और गोवर्द्धनधारणके प्रसंगोंमें उनके इस स्वभावका सुन्दर चित्रण हुआ है। अक्रूरके साथ कृष्णके मथुरा जानेके अवसरपर नन्दके स्वभावकी सरलताका प्रमाण पुनः प्राप्त होता है, जब वे कृष्णके भावी वियोगकी पीड़ासे व्यथित यशोदाको यह कहकर समझाते हैं कि जिन कृष्णने व्रजके अनेक संकटोंका निवारण किया था, उनके विषयमें आशंकाकी आवश्यकता नहीं है। कृष्णके प्रति नन्दके वात्सल्य-भावकी तीव्रता सूरदासने यशोदाकी अपेक्षा किंचित् न्यून व्यंजित की है। इसी कारण वे कृष्णके अतिलौकिक व्यक्तित्वकी अपेक्षाकृत अधिक प्रतीति करते देखे जाते हैं। इसका एक स्वाभाविक कारण यह भी है कि वे पुरुष हैं तथा कृष्णने अनेक बार, उदाहरणार्थ वरुण-पाशसे छुड़ानेके प्रसंगमें, उनके सम्मुख अपनी अलौकिकताका प्रत्यक्ष प्रमाण प्रस्तुत किया था। मथुरामें कंस आदिका वध करनेके उपरान्त कृष्ण जब उन्हें व्रज लौट जानेको कहते हैं, उस समय नन्दके स्नेह-कातर हृदयका सूरदासने अत्यन्त मर्मस्पर्शी चित्र अंकित किया है। नन्दको लौटानेके लिए उन्हें मायाकी मोहिनीका प्रयोग करना पड़ा है। कृष्णके वियोगमें नन्दकी आत्मग्लानि और अधिक मर्मस्पर्शी हो गयी है। नन्द और यशोदा जब कृष्णको एक दूसरेके द्वारा दिये गये कष्टोंका परस्पर लांछन लगाते हैं तब उनके सरल स्वभाव और स्नेहशील हृदयका सुन्दर परिचय मिलता है।

सूरदास द्वारा चित्रित नन्दके हृदयकी कृष्ण-वियोग-जन्य आत्मग्लानि परवर्ती कृष्ण-काव्यमें भी यदा-कदा देखनेको मिल जाती है, यद्यपि परवर्ती कृष्ण-काव्य अधिकांशतः माधुर्य, भक्ति और शृंगार रसमें ही सीमित और संकुचित होता गया तथा सूरदास द्वारा चित्रित वात्सल्य एक प्रकारसे विस्मृत-सा हो गया। आधुनिक कालके कृष्णकाव्यके ब्रजभाषा कवियोंने कभी-कभी इसी रूपमें नन्दका स्मरणमात्र कर लिया है। जगन्नाथदास 'रत्नाकर'का 'उद्धव-शतक' इसका एक उदाहरण है। 'प्रियप्रवास'में अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'ने नन्दके चरित्र-चित्रणमें पश्चात्तापकी भावनाको प्रमुखता दी है। वे यह सोचकर घोर आत्म-भर्त्सना करते हैं कि उन्होने स्वयं अपने हाथोंसे अपना पुत्र कंस जैसे क्रूर व्यक्तिको सौंप दिया। मैथिलीशरण गुप्तने भी अपने 'द्वापर'में नन्दको पश्चात्तापकी भावनासे अभिभूत होकर एकान्तमें रुदन करते हुए चित्रित किया है। इस प्रकार नन्दका व्यक्तित्व निरन्तर वात्सल्यका आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करता हुआ चित्रित हुआ है।

[सहायक ग्रन्थ—हिन्दी साहित्य (खण्ड २), भारतीय हिन्दी परिषद्, प्रयाग; सूरदास : ब्रजेश्वर वर्मा, हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय।] —ब्र० व०

नंदकिशोर—'प्राकृतपैंगलम्'के आधार पर रचा हुआ इनका 'पिंगल प्रकाश' है। इस ग्रन्थमें कोई नवीनता नहीं है।

छन्दोंके लक्षण, वर्गीकरण और क्रम प्रायः उसीके आधार पर हैं। —सं०

नंदक–१. एक प्रधान नाग, जिसका निवास तृतीय तलमें था।

२. वृकदेवी और वसुदेवका पुत्र।

३. ब्रह्माके अनुचर।

४. विष्णुकी तलवार, जो जरासंधसे युद्ध करते समय कृष्णके पास पहुँच गयी थी। —मो० अ०

नंददास–अष्टछाप कवियोंमें सूरदासके बाद नन्ददास ही सबसे अधिक प्रसिद्ध हुए हैं। नन्ददासके जीवनके सम्बन्धमे विश्वसनीय सामग्री बहुत कम प्राप्त है। उनका जन्म-स्थान ब्रजके पूर्व कोई रामपुर नामका गाँव था। उनका जन्म-काल सन् १५३३ ई०, सम्प्रदाय-प्रवेश सन् १५५९ ई० तथा गोलोकवास सन् १५८६ ई० के पूर्व अनुमान किया गया है। 'दो सौ बावन वैष्णवनकी वार्ता'में उन्हें गोस्वामी तुलसीदासका भाई कहा गया है। पुष्टिमार्गमे दीक्षित होनेके पहले वे काशीमे भी रहे थे। तुलसीदासजीने उन्हें राम-भक्त बनानेका प्रयत्न किया परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। काशीसे नन्ददास द्वारिकाकी यात्राके लिए चल पड़े। रास्तेमे कुरुक्षेत्रके आगे सीहनन्द गाँवके एक खत्री साहूकारकी रूपवती स्त्रीपर वे इतने मुग्ध हो गये कि द्वारिकाकी यात्रा भूलकर उसके यहाँ नित्य भिक्षाके लिए जाने लगे। लोकापवादके डरसे साहूकार अपनी स्त्रीको लेकर गोकुलकी यात्रापर चल पड़ा किन्तु नन्ददास भी उसके पीछे-पीछे लग गये। जब वे यमुना तटपर पहुँचे तो नाविकने नन्ददासको पार नहीं उतारा। अतः वे यमुना तटपर बैठकर यमुना-स्तुतिके पद रचकर गाने लगे। जब वह साहूकार अपनी स्त्री सहित विट्ठलनाथजीके दर्शन करने गया तो गोस्वामीजीने पूछा कि उस ब्राह्मणको जमुनाके उस पार क्यो छोड आये हो? गोस्वामीजीके इस चमत्कारको देखकर साहूकार चकित हो गया। गोसाईं-जीने तुरन्त नन्ददासको बुला भेजा और उन्हे अपनी शरणमे ले लिया। पुष्टिमार्गमे दीक्षित होनेके उपरान्त नन्ददासकी वह आसक्ति जो पहले खतरानीके रूपमें सीमित थी, परिष्कृत होकर श्रीकृष्णकी रूप-माधुरीमें केन्द्रीभूत हो गयी। कृष्ण-भक्तिके लिए जिस सौन्दर्य, प्रेम और रसिकताकी आवश्यकता है, वह नन्ददासमें प्रचुर मात्रामें विद्यमान थी। ऐसा अनुमान है कि उनकी कोई स्त्री-मित्र भी थीं, जिनके लिए उन्होंने कई ग्रन्थोंकी रचना की। 'वार्ता'के अनुसार जिस समय अकबरने मानसी गगापर डेरा डाला था, नन्ददास उनकी एक वैष्णवदासी रूप-मंजरीसे मिलने गये थे। उसी समय बीरबल भी नन्ददाससे मिलने आये। यह भी कहा गया है कि नन्ददास का गोलोकवास मानसी गगापर अकबरके सामने ही हुआ था।

नन्ददासकी कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जिनके कारण अष्टछाप कवियोंमें उनका स्थान अद्वितीय कहा जा सकता है। कवित्व-शक्ति और भक्ति-भावनाके अतिरिक्त सिद्धान्त-वादिता और शास्त्रीयता भी उनमें सबसे अधिक मुखर रूपमें पायी जाती है। कृष्ण-भक्तिके माहात्म्यको वे तर्क और पाण्डित्य द्वारा सिद्ध करनेका प्रयत्न करते हैं। पुष्टि-मार्गीय सिद्धान्त-कथनके अतिरिक्त नन्ददासने अपनी कृष्ण-भक्तिके सन्दर्भमें ही काव्य-शास्त्रीय विवेचनकी भी प्रवृत्ति प्रकट की है। अष्टछापके अन्य कवियोंने कृष्णलीलासम्बन्धी विविध विषयोंपर रचना अवश्य की, परन्तु उन विषयोंको स्वतन्त्र ग्रन्थके रूपमें प्रस्तुत करनेकी प्रवृत्ति केवल नन्ददासमें पायी जाती है। नन्ददासने कृष्ण-लीलासम्बन्धी विषयोके अतिरिक्त कुछ ऐसे विषयोंको भी अपनी रचनाका विषय बनाया है, जो लौकिक और साहित्यिक कहे जा सकते हैं। नन्ददास अष्टछाप कवियोंमे परवर्तीकालके कवि हैं। अतः यह स्वाभाविक है कि उनमें हम साम्प्रदायि-कताका आधिक्य तथा लौकिक विषयोंके प्रति उन्मुखता देखते हैं।

नन्ददासकी सर्वोत्कृष्ट रचनाएँ 'रासपंचाध्यायी' और 'भँवरगीत' हैं। 'रासपचाध्यायी'में श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध पूर्वार्द्धके राससम्बन्धी पाँच अध्यायों (२९-३३)की कथा मनोहर छन्द और ललित पदावलीमे वर्णित की गयी है। इस रचना द्वारा नन्ददासकी दृश्य, रूप और क्रिया-कलाप वर्णन करनेकी शक्ति, उनका असाधारण भाषा-धिकार, विचारोकी स्पष्टता, वाणीकी वक्रता तथा विषयको तर्कपूर्ण ढंगसे उपस्थित करनेकी योग्यताका परिचय मिलता है। ब्रजभाषाका पद लालित्य 'रासपंचाध्यायी'में उत्कृष्ट रूपमें प्राप्त होता है। इसी रचनाके आधार पर प्रायः नन्ददासकी तुलना संस्कृतकी कोमलकान्त-पदावली-में रचना करने वाले महाकवि जयदेवसे करते हैं। 'भँवर-गीत'में नन्ददासने कृष्णकथाके उद्धव-गोपीसम्बन्धी प्रसिद्ध प्रसगको एक स्वतन्त्र खण्ड-काव्यके रूपमें रचा है। इस रचनामे पर्याप्त नाटकीयता, विषयकी स्पष्टता, भाषाकी सरलता और प्रांजलता, कथाकी क्रमबद्धता और छन्दकी अनूठी मनोहारिता है। यह अवश्य है कि इसमे वैसी रसवत्ता और भावकी तल्लीनता नहीं मिलती, जैसी कि सूरदासके 'भ्रमरगीत'के पदोंमें पायी जाती है। नन्ददासकी रचनामे बुद्धि और तर्ककी प्रधानता है। नन्ददासकी गोपियाँ अध्यात्म और न्यायदर्शनकी सहायतासे उद्धवको परास्त करनेका प्रयत्न करती हैं। 'रासपंचाध्यायी'में नन्ददासने कृष्ण और गोपियोके कान्ता-प्रेमको भक्तिके उज्ज्वल रसके रूपमें प्रस्तुत करनेका जो प्रयत्न किया है, उसीका पुनः औचित्य सिद्ध करनेके लिए उन्होंने 'सिद्धान्त पंचाध्यायी'-की रचना की। इसका विषय भी रासलीला ही है किन्तु इसमें रास-वर्णनके स्थान पर उसके आध्यात्मिक पक्षका उद्घाटन किया गया है। 'स्यामसगाई' राधा और कृष्णकी सगाईके विषयको लेकर एक छोटेसे काव्यके रूपमे वर्णित की गयी है। इसका आधार 'सूरसागर'के राधा-कृष्ण प्रेम सम्बन्धी 'गारुडी प्रसंग'में मिलता है। इसकी भाषा और छन्द तथा शैलीमें 'भँवरगीत' जैसा आकर्षण है। नन्ददासकी पाँच मंजरियोंमेसे 'रसमजरी' नायक-नायिका भेदकी रचना है। इसका आधार भानुकविकृत सस्कृतकी 'रसमंजरी' है। इसकी रचनाका औचित्य बताते हुए नन्ददासने कहा है कि जो व्यक्ति प्रेमभावके भेदोंको नहीं जानता, वह प्रेमके रहस्यको नहीं समझ सकता। प्रेम मार्गके अनुयायीको प्रेम

का रहस्य अवश्य जानना चाहिये। अतः भगवद्भक्तिके लिए शृंगार रसका समझना आवश्यक है। नन्ददासने शृंगारके सभी भाव श्रीकृष्णको नायक मानकर व्यक्त किये हैं। उनका विचार है कि जिस प्रकार अग्निमें पड़कर सब वस्तुएँ भस्म हो जाती हैं, उसी प्रकार बुरे भाव भी भगवान्‌के संसर्गमें पड़कर भस्म हो जाते हैं। रचनाके प्रारम्भमे उन्होंने आनन्दघन, रसरूप, रसके कारण, रसके भोक्ता, आनन्दके मूल स्रोत नन्दकुमारकी स्तुति करके अपने प्रेम और रसानन्दको उन्हींमें समर्पित किया है। इस भूमिका के बाद उन्होंने शृंगारका जैसा विशद वर्णन किया है, वह रीतिकालीन कवियोंका पूर्वगामी कहा जा सकता है। 'अनेकार्थ मंजरी' संस्कृत भाषा न जानने वालोंके लिए एक छोटा-सा शब्दकोश है, जिसमें दोहा छन्दमें एक-एक शब्दके अनेक अर्थ दिये गये हैं। रचनाका सम्बन्ध पुष्टि-मार्गीय भक्तिमें केवल इतना है कि मंगलाचरणमें अविकृत परिणामवादका सिद्धान्त स्पष्ट किया गया है और प्रत्येक दोहेके अन्तिम चरणमें उसमें वर्णित शब्दको भगवान्‌के साथ सम्बद्ध किया गया है। 'मानमंजरी नाममाला' भी एक कोश-ग्रन्थ है किन्तु साथ ही इसमें राधाके मानका वर्णन भी है। एक कोश ग्रन्थमें कथानकका क्रमिक वर्णन नन्ददास जैसे कलाकारके लिए ही सम्भव था। 'विरह मंजरी'में एक व्रजयुवतीकी वियोग-दशाका वर्णन किया गया है। इसकी शैली बारहमासे जैसी है। व्रजयुवतीका वियोग काल्पनिक रूपमें वर्णित है। युवती सोचती है कि कृष्ण द्वारिका चले गये हैं और वह उनके वियोगमें व्यथित हो रही है। वास्तविक स्थितिका ध्यान आते ही वह प्रेम-मग्न हो जाती है। इस रचनाका उद्देश्य प्रेमभक्तिमें विरह-की महत्ताका प्रतिपादन करना है। 'रूप मंजरी' एक छोटा सा कथा-काव्य है, जिसमें एक सुन्दर स्त्रीके सौन्दर्य तथा लौकिक प्रेमको छोड़कर कृष्णके प्रति उसके 'जार भाव'के प्रेम तथा उसकी एक सखी इन्दुमतीके साथ उसके सम्बन्ध-का वर्णन है। काव्यकी नायिका रूपमंजरी स्वयं नन्ददास-की मित्र रूपमंजरी है और सखी स्वयं कवि नन्ददास हैं। यद्यपि रूपमंजरीका कथानक लौकिक शृंगारसे सम्बद्ध है किन्तु उसमें नन्ददासने अपने आध्यात्मिक भावों तथा प्रेम लक्षणा-भक्तिके अन्तर्गत परकीया प्रेमके आदर्शको स्पष्ट किया है। काव्यकला और रसात्मकताकी दृष्टिसे यह रचना उत्कृष्ट है। 'रुक्मिणी-मंगल'की कथा श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध उत्तरार्धके ५२, ५३ और ५४ वे अध्यायसे ली गयी है। नन्ददासने भागवतके कुछ विस्तारोंको छोड़ दिया है तथा कुछ भावपूर्ण स्थलोंको अधिक विशद कर दिया है। 'दशमस्कन्ध'की रचना नन्ददासने अपने एक मित्रके अनुरोधसे की थी, जिससे उन्हें संस्कृत भागवतके विषयका भाषा द्वारा ज्ञान हो जाय। इसमें भागवतका भावानुवाद किया गया है और साथ ही भागवतकी कुछ टीकाओंका भी उपयोग कर लिया गया है। दशमस्कन्धकी कथाका इसमें केवल उन्तीसवें अध्याय तकका वर्णन है। कहा जाता है कि नन्ददास सम्पूर्ण भागवतका अनुवाद करना चाहते थे किन्तु बादमें ब्राह्मणोंके प्रार्थना करनेपर कि उनकी वृत्ति छिन जायगी, उन्होंने अपना संकल्प त्याग दिया। उपर्युक्त रचनाओंके अतिरिक्त नन्ददासने विविध विषयोंपर गेय पदोंकी भी रचना की थी। कृष्णलीलासे सम्बद्ध विषयोंके अतिरिक्त उनके ऐसे भी पद हैं, जिनमें गुरु-महिमा, नाम महिमा, विनय-भावना और भक्तिके लक्षणोंका वर्णन हुआ है। नन्ददासके नामसे 'गोवर्द्धन लीला' और 'सुदामाचरित' नामक दो रचनाएँ और प्रसिद्ध हैं किन्तु गोवर्द्धनलीला दशमस्कन्धका ही एक अंश है और वह उसके २४-२५ वें अध्यायमे वर्णित है। 'सुदामाचरित'की प्रामाणिकतापर विद्वानोंमें मतभेद है।

रचनाकी प्रचुरता तथा विषयकी विविधताकी दृष्टिसे नन्ददासका स्थान अष्टछापके कवियोंमें बहुत ऊँचा है। भक्त होनेके साथ ही वे ऐसे सचेष्ट और सचेतन कलाकार भी हैं, जिन्हें अपने कविकर्मके उत्तरदायित्वका सदैव ध्यान रहता है। यह अवश्य है कि नन्ददासने काव्यकला-सम्बन्धी जो सामग्री प्रस्तुत की है, उसका स्रोत बहुत अंशमें 'सूरसागर' ही है। नन्ददासकी विशेषता यह है कि उन्होंने उस विषयको जो सूरदास, परमानन्ददास तथा अष्टछापके अन्य कवियोंने प्रच्छन्न रूपमे वर्णित किया था, स्पष्ट रूपमें सम्मुख रख दिया और इस प्रकार वे हिन्दीके भक्ति-काव्य तथा लौकिक शृंगारी—काव्यको जोड़ने वाली एक कड़ी बन गये। काव्यकलाकी दृष्टिसे नन्ददासकी इस प्रवृत्तिकी सराहना की जा सकती है परन्तु उनके भक्तिभावकी ऐकान्तिकता और तीव्रतामें शंका उठना भी स्वाभाविक है। भावानुभूतिकी गम्भीरताके अभावके ही कारण नन्ददासकी अनुभूति और अभिव्यक्तिमें वैसी एकात्मकता और घनिष्ठता नहीं है, जैसी कि पूर्ववर्ती कवियोमें पायी जाती है। शब्दोंके प्रयोगमें नन्ददास बड़ी सावधानी और सतर्कताका परिचय देते हैं और यह कथन सत्य ही है कि जहाँ और कवि 'गढ़िया' हैं, नन्ददास 'जड़िया' है परन्तु भाषा सौन्दर्यपर अत्यधिक ध्यान देनेके कारण वे न केवल कभी-कभी भावोकी उपेक्षा कर जाते हैं, वरन् यमक, अनुप्रास छन्दकी लय और प्रवाहके अनुरोधसे शब्दोंको विरूप भी कर देते हैं। नन्ददासका छन्द-प्रयोग भी बहुत आकर्षक है। रोला-दोहाके संयुक्त छन्दका प्रयोग उन्होंने सूरदासके अनुकरण-पर अपनी कई रचनाओंमे किया है। इस छन्दके अन्तमें एक छोटा चरण जोड़कर पूर्वगामी भावका सार वे जिस प्रभावशाली ढंगसे व्यक्त करते हैं, उससे छन्दका आकर्षण और अधिक बढ़ जाता है। अपनी अनेक विशेषताओंके कारण हिन्दी-साहित्यमे नन्ददासका स्थान कुछ चुने हुए महान् कवियोंके बाद ही आता है। नन्ददासकी सम्पूर्ण कृतियोंके दो संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं—एक पण्डित उमाशंकर शुक्ल द्वारा सम्पादित तथा प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित 'नन्ददास' तथा दूसरा व्रजरत्न दास द्वारा सम्पादित और नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित 'नन्ददास ग्रन्थावली'।

[सहायक ग्रन्थ—दो सौ बावन वैष्णवनकी वार्ता; अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय : डा० दीनदयाल गुप्त; नन्ददास : पण्डित उमाशंकर शुक्ल; नन्ददास ग्रन्थावली : व्रजरत्नदास।]

—व्र० व०

नंददुलारे वाजपेयी—शुक्लोत्तर समीक्षकोंमें नन्ददुलारे वाजपेयीकी गणना शीर्षस्थानीय आलोचकोंमें की जाती है। वे आचार्य रामचन्द्र शुक्लके सच्चे उत्तराधिकारी हैं, उनकी समीक्षाओं द्वारा शुक्लजीकी समीक्षा-पद्धति विकसित हुई है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि उन्होंने शुक्लजीकी समीक्षा-सरणिका अनुकरण किया अथवा उनकी मान्यताओं-को ज्योंका त्यों स्वीकार कर लिया। उन्होंने शुक्लजीकी कमियोंकी ओर, उनके बँधे-बँधाये दृष्टिकोणकी ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करते हुए अपनी निजी मान्यताओंकी स्थापना की, जो कहीं-कहीं शुक्लजीकी विरोधी होती हुई भी उनकी पूरक हैं। अपने मौलिक दृष्टिकोण, नव्यतर समीक्षात्मक मान, तलस्पर्शी दृष्टि, मार्मिक व्याख्याके कारण वे हिन्दीके मूर्द्धन्य आलोचकोंमें गिने जाते हैं।

वाजपेयीजीका जन्म सन् १९०६ ई० (सं० १९६३) की भाद्रपद अमावस्याको ग्राम मगरैल, जिला उन्नावके एक कान्यकुब्ज कुलमें हुआ था। उनके पिता हिन्दी साहित्यके अच्छे जानकार थे। वाजपेयीजीको साहित्यके प्रति प्रारम्भिक रुचि उन्हींसे प्राप्त हुई। वाजपेयीजीका बचपन अपने पिताके साथ हजारीबागमे बीता। उनकी उच्च शिक्षा काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमें हुई। सन् १९२९ में एम० ए० (हिन्दी)की परीक्षामे उन्होंने सर्वोत्तम स्थान प्राप्त किया। वे बाबू श्यामसुन्दर दासके अत्यन्त प्रिय शिष्य थे। उन्हींके प्रेरणासे वे अनुसन्धान कार्यमें लग गये।

सन् १९३२ ई०में वे हिन्दीके प्रसिद्ध दैनिक पत्र 'भारत' के सम्पादक होकर प्रयाग चले गये। अपने सम्पादन-कालमें उन्होंने आधुनिक साहित्यकारोंके सम्बन्धमे अनेक विद्वत्तापूर्ण समीक्षात्मक निबन्ध लिखे, जो बादमें 'जयशंकर प्रसाद' और 'हिन्दी साहित्य—बीसवीं शताब्दी' में सगृहीत हुए। पर 'भारत' के व्यवस्थापकोंसे सैद्धान्तिक मतभेदके कारण आप वहाँ टिक न सके। प्रयागसे वे काशी चले आये और नागरी प्रचारिणी सभामें 'सूरसागर'का सम्पादन करने लगे। सन् १९३६ ई०में यह कार्य पूरा कर लेनेके पश्चात् सन् '३७ में 'रामचरितमानस' का सम्पादन करनेके लिए गीताप्रेस, गोरखपुर चले गये। यह कार्य दो वर्षों-तक चलता रहा किन्तु गीता प्रेसकी नीति उन्हें सह्य न हुई और वे नौकरी छोड़कर बिना किसी आधारके प्रयाग आ गये। सन् '४१ ई०में वे काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके हिन्दी-विभागमें प्राध्यापक नियुक्त हुए। सन् '४७ ई०से सागर विश्वविद्यालयमें हिन्दी-विभागके अध्यक्ष हैं।

वाजपेयीजी हिन्दी-समीक्षाके क्षेत्रमें छायावादी-काव्यके समीक्षक-रूपमें आये। वे पहले समीक्षक हैं, जिन्होंने छायावादी काव्यका गहन और सूक्ष्म विश्लेषण किया। आचार्य शुक्लकी छायावादी काव्यकी आलोचनाएँ काल-क्रमकी दृष्टिसे बादमें लिखी गयीं। छायावाद काव्यके नये जीवन-दर्शन, नयी भाव-धारा, नूतन कल्पना-छवियों और अभिनव भाषा-रूपोंने उन्हें अपनी ओर आकृष्ट किया और उनके आलोचनात्मक दृष्टिकोणको नवीन चेतना दी। छायावादी काव्यालोचनमें उन्होंने काव्यके अन्तःसौन्दर्यको उद्घाटित करते हुए उसकी उपलब्धियों और सम्भावनाओंपर प्रकाश डाला। उन्होंने उस काव्यके नवीन मानव-मूल्यों, भाव-सम्पदा और सौन्दर्य-बोधको नये ढंगसे विवेचित किया। छायावादी कवियोंने बाह्यजगत्की अपेक्षा अन्तर्जगत्को अपने काव्यका विषय बनाया। इसलिए आलोचकके लिए भी उनके मानसिक तथा कलात्मक उत्कर्षका आकलन करना आवश्यक हो गया।

उनकी पहली पुस्तक 'हिन्दी साहित्य—बीसवीं शताब्दी' (३० से ४० तकके निबन्धोंका संग्रह)में साहित्यकारोंकी अन्तर्वृत्तियोंका अध्ययन विशेष रूपसे प्रस्तुत किया गया है। उसी पुस्तकमें उन्होंने प्रमुखताके क्रमसे अपने सात समीक्षा-सूत्रोंका उल्लेख किया है, जिनमेंसे प्रथम तीन हैं—१. रचनामें कविकी अन्तर्वृत्तियोंका अध्ययन, २. रचनामें कविकी मौलिकता, शक्तिमत्ता और सृजनकी लघुता-विशालता (कलात्मक सौष्ठव)का अध्ययन, ३. रीतियों, शैलियों और रचनाके बाह्यांगोंका अध्ययन। शेष सूत्रोंमें तत्कालीन सामाजिक स्थिति, प्रेरणास्रोत, कविकी व्यक्तिगत जीवनी और उसकी रचनाओं पर उसका प्रभाव और उसके विचार, जीवन-दर्शनको सन्निविष्ट किया गया है। इससे स्पष्ट है कि प्रारम्भसे ही उनकी समीक्षा व्यापक आधार लिये हुए थी, पर जैसा पहले कहा जा चुका है, छायावादी कवियोंकी समीक्षा प्रस्तुत करते समय उन्होंने उनके मानसिक उत्कर्ष, आस्था, विश्वास आदिका ही मुख्य रूपसे आकलन किया।

अपनी दूसरी पुस्तक 'जयशंकर प्रसाद'में १९३८ ई० में उनकी समीक्षात्मक दृष्टि और व्यापक हुई। सन् '३२-'३३ तक उनका समीक्षा-कार्य प्रगीत काव्योंके विवेचन तक ही सीमित रहा। उसके बाद वे नाटक, उपन्यास, प्रबन्ध-काव्य आदिके साहचर्यमें आये। आलोच्यके वैविध्यके साथ-साथ उनकी समीक्षामें भी विविधताके दर्शन हुए। 'कंकाल' जैसी यथार्थवादी कृतिकी प्रशंसात्मक समीक्षा करना, उनकी आलोचनाके विकासकी अगली मंजिल थी। उनकी तीसरी पुस्तक 'प्रेमचन्द' है। चौथी पुस्तक 'आधुनिक साहित्य'में (सन् १९५० ई०) सन् '३५-'३६ के बादकी हिन्दी साहित्यकी प्रगतिका विवेचन किया गया है। वाजपेयीजी साहित्यकी प्रगति द्वन्द्वात्मक नहीं, धारावाहिक मानते हैं। वे प्रसाद, प्रेमचन्द, निराला, पन्त आदिको निष्ठामयी रागिनी और जनवादी स्वरसे नीचे उतरनेके लिए तैयार नहीं थे। इसलिए जीवनके प्रति निषेधात्मक दृष्टिकोण रखनेवाले रचयिताओंका स्वागत करना उनके लिए सम्भव न था। उनकी पाँचवी पुस्तक 'नया साहित्य—नये प्रश्न'में (सन् १९५५ ई०) उनकी समीक्षात्मक दृष्टि और भी व्यापक तथा संयमित हो गयी है। जिन सात सूत्रोंका उल्लेख उन्होंने अपनी पुस्तकमें किया था, वे अब उनकी समीक्षाके अनिवार्य अंग हो गये हैं।

वाजपेयीजी साहित्य अथवा समीक्षाको 'वाद' विशेषमें बाँधनेके पक्षपाती नहीं हैं। साहित्यकार वादग्रस्त होकर अपनी सर्जनात्मक प्रतिभाको कुण्ठित कर देता है और वाद-ग्रही आलोचक कृतियोंकी स्वतन्त्र सत्ता न स्वीकार कर अपने मूल्योंको ढूँढनेका दुराग्रह करता है लेकिन उनका विश्वास है कि श्रेष्ठ साहित्यकी रचना युग-चेतनाको अंगीकृत किये बिना सम्भव नहीं है। वे कविताकी श्रेष्ठता 'जीवन चेतना' की श्रेष्ठता पर ही आश्रित मानते हैं। वे उच्चकोटिके साहित्य

के लिए आस्था और उच्चकोटिकी नैतिक चेतनाको अनिवार्य मानते हैं। नैतिक चेतनासे उनका तात्पर्य मानव-सम्बन्धोंकी सम्पन्नतासे है। इधर वाजपेयीजीकी आलोचनामें प्रकाश्य-रूपसे एक तत्त्व और जुड़ गया है, जिसके आधारपर वे साहित्यमें रचनात्मक और क्रियाशील जनतन्त्रकी माँग करने लगे हैं।

वाजपेयीजीने कोई स्वतन्त्र पुस्तक नहीं लिखी है ('प्रेमचन्द'को अपवाद मानना होगा)। सभी पुस्तकें समय-समय पर लिखे गये निबन्धोंके संग्रह हैं। जिस प्रकार छायावादी प्रगीतोंमें काव्य-सौष्ठव देखा जाता है, उसी प्रकार उनके स्फुट निबन्धोंमें छायावादी कालके समीक्षककी तेजस्विता, मौलिकता, चिन्तन-मनन है। उनकी समीक्षा-सरणिमें हिन्दी आलोचना पर्याप्त समर्थ हुई है। —ब० सिं०

नंदन–शिवसिंहने इनको १५६८ ई० में उपस्थित माना है और कहा है कि इनके छन्द 'कालिदास हजारा'में सकलित हैं। ग्रियर्सन तथा मिश्रबन्धुने भी इसीका उल्लेख किया है। 'दिग्विजयभूषण'में उद्धृत इनके छन्दोंके आधार पर कहा जा सकता है कि ये शृंगार-रसके अच्छे कवि हैं और इनकी शैली गीति-काव्यके उक्ति-वैचित्र्य तथा वैदग्ध्यसे युक्त है। —सं०

नंदनवन–देवताओंका विहार वन। यह वन पारिजात पुष्पके लिए प्रसिद्ध है। कृष्ण और उनकी पत्नी सत्यभामाने इसी उद्देश्यसे इसका निरीक्षण किया था। —मो० अ०

नंदिग्राम–वह स्थान, जहाँ रामके वन चले जानेपर भरतने निवास किया था। यहींसे वे शासन-कार्य करते रहे। नन्दिग्राममें ही उनकी भेंट हनुमान्से हुई थी। प्रायः सभी रामकथा-सम्बन्धी काव्य-ग्रन्थोंमें इसका उल्लेख है। —मो० अ०

नंदिनी–वशिष्ठकी कामधेनुका नाम नन्दिनी प्रसिद्ध है परन्तु नन्दिनीको कामधेनुकी पुत्री भी कहा गया है। नन्दिनीकी सेवा करनेसे दिलीपको पुत्रकी प्राप्ति हुई थी। द्यौ नामक वसु एक बार उसे चुरा ले गया। फलतः वह भीष्म बनकर उत्पन्न हुआ। एक बार विश्वामित्र लोभवश नन्दिनीको जबरदस्ती लेकर चलने लगे परन्तु नन्दिनीके चिल्लानेसे एक सेना निकली, जिसने विश्वामित्रको परास्त कर दिया। 'रघुवंश'के प्रथम सर्गमें नन्दिनीका वर्णन आता है। हिन्दीमें उसका वर्णन आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदीके अनुवाद द्वारा उपलब्ध है। —मो० अ०

नंदी–१. महादेवका एक गण।

२. शिवका वाहन वृषभ, जो बाणके रथके घोड़ेका साज ठीक करता था।

३. धृतिका पति, जिसे त्यागकर धृति सोमके पास चली गयी थी।

४. नन्दिवर्द्धनका पुत्र, जो प्रद्योत-वंशका पचम एवं अन्तिम राजा था।

५. स्वर्गका पुत्र। —मो० अ०

नकुल–युधिष्ठिरके चतुर्थ भ्राता, अश्विनीकुमारोंके औरस और पाण्डुके क्षेत्रज पुत्र। इनकी माताका नाम माद्री था। इनके सहोदरका नाम सहदेव था। नकुल नीतिपटु तथा पशु-चिकित्सामें दक्ष थे। अज्ञातवासमें ये विराट्के यहाँ गाय चराते थे। इनकी स्त्री करेणुमती, चेदिराजकी कन्या थी। निरमित्र और शतानीक नामक इनके दो पुत्र थे। —मो० अ०

नगेंद्र–हिन्दीके आधुनिक आलोचकोंमें नगेन्द्रका विशिष्ट स्थान है। उनका जन्म मार्च, १९१५ ई०में अतरौली (अलीगढ़)में हुआ था। उन्होंने अंग्रेजी और हिन्दीमें एम० ए० करनेके बाद हिन्दीमें डी॰लिट्० की उपाधि भी ली। उनका साहित्यिक जीवन कविके रूपमें आरम्भ होता है। सन् १९३७ ई०में उनका पहला काव्य-संग्रह 'वनमाला' प्रकाशित हुआ। इसमें विद्यार्थीकालकी गीति-कविताएँ संगृहीत हैं। एम० ए० करनेके बाद वे दस वर्ष तक दिल्लीके कामर्स कालेजमें अंग्रेजीके अध्यापक रहे। कुछ दिनों तक 'आल इण्डिया रेडियो'में भी कार्य कर चुके हैं। आजकल दिल्ली विश्वविद्यालयमें हिन्दी विभागके अध्यक्ष हैं।

'साहित्य-सन्देश'में प्रकाशित उनके लेखोंने उनकी ओर लोगोंका ध्यान आकृष्ट किया। उनकी तीन आलोचनात्मक कृतियाँ प्रकाशित हुईं—'सुमित्रानन्दन पन्त' (१९३८ ई०), 'साकेत—एक अध्ययन' (१९४० ई०) और 'आधुनिक हिन्दी नाटक'। पहली पुस्तकका पाठकों और आलोचकोंके बीच खूब स्वागत हुआ। वे अंग्रेजीके श्रेष्ठ आलोचकोंकी कृतियोंसे खूब प्रभावित थे और उन कृतियोंकी तरह ही वे उच्चस्तरीय समीक्षा-पुस्तक प्रस्तुत करना चाहते थे। 'साकेत—एक अध्ययन' पर इस मनोवृत्तिका स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है।

'आधुनिक हिन्दी नाटक'में उनके आलोचक स्वरूपने एक नया मोड़ लिया और वे फ्रायडीय मनोविज्ञानके क्षेत्रमें आ गये। उन्होंने फ्रायडके मनोविश्लेषण शास्त्रके आधारपर नाटक और नाटककारोंकी आलोचनाएँ लिखी। बादमें क्रोचे आदिके अध्ययनके फलस्वरूप उनका झुकाव सैद्धान्तिक आलोचनाकी ओर हुआ। 'रीति-काव्यकी भूमिका तथा देव और उनकी कविता' (१९५० ई०-शोध ग्रन्थ) के भूमिका भागमें भारतीय काव्य-शास्त्रपर विचार किया गया है, जिसमें उनके मनोविश्लेषण-शास्त्रके अध्ययनसे काफी सहायता मिली है।

नगेन्द्र मूलतः रसवादी आलोचक हैं, रस-सिद्धान्तमें उनकी गहरी आस्था है। फ्रायडके मनोविश्लेषण-शास्त्रको उन्होंने एक उपकरणके रूपमें ग्रहण किया है, जो रस सिद्धान्तके विश्लेषणमें पोषक ही सिद्ध हुआ है। हिन्दीकी आलोचनापर आचार्य रामचन्द्र शुक्लका गहरा प्रभाव पड़ा है और सच पूछिये तो आजकी हिन्दी-आलोचना शुक्लजीके सिद्धान्तोंका अगला कदम ही है। नगेन्द्रपर भी शुक्लजीका प्रभाव पड़ा। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है कि रस-सिद्धान्तोंकी ओर उनके झुकावके मूलमें शुक्लजीका ही प्रभाव है। नगेन्द्रजी काव्यमें रस-सिद्धान्तको अन्तिम मानते हैं। इसके बाहर न तो वे काव्यकी गति मानते हैं और न सार्थकता।

पौरस्त्य आचार्योंमें वे भट्टनायक और अभिनवगुप्तसे विशेष प्रभावित हैं और पाश्चात्य आलोचकोंमें क्रोचे

और आई० ए० रिचार्ड्‌स से। उन्होंने भारतीय तथा पाश्चात्य काव्य-शास्त्र दोनोंका गहरा आलोडन किया है। दोनोंके तुलनात्मक अध्ययनके आधारपर उनका कहना है कि सैद्धान्तिक आलोचनाके क्षेत्रमें भारतीय-काव्य शास्त्र पश्चिमी काव्य-शास्त्रसे ही कहीं आगे बढ़ा हुआ है।

भारतीय और पाश्चात्य आचार्योंने काव्य-बोधके सम्बन्धमें अलग-अलग पद्धतियाँ अपनायी हैं। भारतीय आचार्योंने काव्य-चर्चा करते समय सहृदयको विवेचनका केन्द्रीय विषय माना है तो पाश्चात्य आचार्योंने कविको केन्द्रीय विषय मानकर सृजन-प्रक्रियाकी व्याख्या की है। ये दोनों दृष्टियाँ एक दूसरे की पूरक हैं, अपने आपमें प्रत्येक एकांगी ही रह जाती है। नगेन्द्रने इन दोनों पद्धतियोंके समन्वयका प्रयास किया है।

नगेन्द्र सुलझे हुए विचारक और गहरे विश्लेषक है। उलझन उनमे कहीं नही है। अपनी सूझ-बूझ तथा पकड़के कारण वे गहराईमें पैठकर केवल विश्लेषण ही नहीं करते, बल्कि नयी उद्‌भावनाओंसे अपने विवेचनको विचारोत्तेजक भी बनाते जाते हैं। 'साधारणीकरण' सम्बन्धी उनकी उद्‌भावनाओंसे लोग असहमत भले ही हों, पर उसके कारण लोगोंको उस सम्बन्धमें नये ढंगसे विचार करना पड़ा है। 'भारतीय काव्य-शास्त्र' (१९५५ ई०) की विद्वत्तापूर्ण भूमिका प्रस्तुत करके उन्होंने हिन्दीमे एक बडे अभावकी पूर्ति की है। इधर वे 'पाश्चात्य काव्य-शास्त्र'के अनुवादकी ओर अग्रसर हुए हैं। अरस्तूके काव्य-शास्त्रका भूमिका-अंश उनकी सूक्ष्म पकड, बारीक विश्लेषण और अध्यवसायका परिचायक है। बीच-बीचमें भारतीय काव्य-शास्त्रसे तुलना करके उन्होने उसे और भी उपयोगी बना दिया है।

नगेन्द्रकी शैली तर्कपूर्ण, विश्लेषणात्मक तथा प्रत्यायक है। यह सब होते हुए भी उसमें सर्वत्र एक प्रकारकी अनुभूत्यात्मक सरसता मिलती है। वे अपने निबन्धों और प्रबन्धोंको जब तक अपनी अनुभूतिका अंग नही बना लेते तब तक उन्हे अभिव्यक्ति नही देते। अतः उनकी समीक्षाओंमे विशेषरूपसे निबन्धोंमे भी सर्जनाका समावेश रहता है। —व० सिं०

नचिकेता–१. महाभारतानुसार प्रभावशाली उद्दालक ऋषिके पुत्र। एक बार उद्दालकने नचिकेताको नदीके किनारे जाकर कुश, पुष्प, फलादि ले आनेको कहा, जिन्हें वे वहाँ भूल आये थे। नचिकेता गये, किन्तु वस्तुएँ प्राप्त न होनेसे खाली हाथ लौट आये। उद्दालकने उन्हें खाली हाथ देख क्रोधित होकर कहा, "जा तुझे यमका दर्शन हो।" तत्काल नचिकेताका शरीर प्राणहीन होकर गिर पड़ा। उद्दालक विलाप करने लगे। प्रातःकाल होनेपर नचिकेता पुनर्जीवित हो उठे और यमलोकके समस्त अनुभव पिता को सुनाने लगे।

२. कठोपनिषद्‌के अनुसार अत्यन्त धार्मिक वाजश्रवस् (नामान्तर गौतम) राजाके पुत्र। वाजश्रवस् राजा एक बार विश्वजित् यज्ञ करके दक्षिणास्वरूप सब धन दान कर रहे थे। बालक नचिकेता बार-बार हठ करता था कि मुझे भी किसीको दान दे दीजिए। अतएव पिताने कुपित होकर कहा कि जा तुझे यमको दिया। सत्यपालक वाजश्रवसने बादमें उसे यमसदन भेज दिया। यमके पास नचिकताने ब्रह्म विद्या सीखी। आध्यात्म-विद्याका उपदेश करनेके पूर्व यमने यद्यपि उसे अनेक प्रलोभन दिये, किन्तु नचिकेता अपने लक्ष्यपर अटल रहा। अन्तमें यमने सर्वदुःखसे मुक्त करनेवाले परमात्म-विषयमें उसके समस्त सन्देह दूरकर उसे गूढ़ ज्ञानोपदेश दिया एवं अनेक रत्नमालाएँ प्रदान कीं। इस कथाको प्रतीक रूपमें नये कवियोंने स्पर्श किया है। —मो० अ०

नबी १–इस्लाम धर्ममें 'नबी' खुदाका पैगाम लानेवालेको कहते है। मोहम्मद साहबको खुदाका भेजा हुआ 'नबी' अथवा 'रसूल' कहते हैं (दे० 'काबा-कर्बला')। —रा० कु०

नबी २–शिवसिंहने इनके 'नखशिख' नामक ग्रन्थकी चर्चा की है। 'दि० भू०'में उद्‌धृत इनके छन्दोंसे यह सिद्ध होता है कि इस नामके किसी ग्रन्थकी रचना इन्होंने की होगी। 'सरोज'मे दिया हुआ छन्द भी नख-शिखसम्बन्धी है। कल्पनाके चमत्कार और भाषापर अधिकारकी दृष्टिसे ये रीति-परम्पराके अच्छे कवि जान पड़ते हैं। —सं०

नमुचि–अतलके प्रथम तलका निवासी, विप्रचित्तिका पुत्र, इन्द्रका विरोधी एक असुरराज। यह हिरण्यकशिपुका भतीजा था। इसकी स्त्रीका नाम सुप्रभा था, जो स्वरभानु की पुत्री थी। इसने इन्द्रके विपक्षी वृत्रकी सहायता की थी और बलि तथा इन्द्रके बीच हुए देवासुरसंग्राममें भाग लिया था। इसे वरदान था कि वह किसी गीली या सूखी वस्तुसे नहीं मरेगा। अतः इन्द्रका वज्र उसका वध न कर सका। तभी इन्द्रको आकाशवाणी द्वारा इसका पता चला और उन्होंने फेनका प्रयोग करके उसका प्राणान्त कर दिया। —मो० अ०

नर–१. दक्षकी कन्या मूर्तिके गर्भसे उत्पन्न, धर्मके पुत्र, नारायणके छोटे भाई, जो विष्णुके अवतार थे। वे हरिके आदिशेष रूप भी हैं, जो तपस्याके लिए प्रख्यात है। कहा जाता हैं कि इन्होंने नारायणके साथ बदरी-वनमे घोर तप किया था। इन्द्रने भयभीत होकर उनका तप भंग करनेको कामदेव और अप्सराएँ भेजी। नरने उनके सेवार्थ अनेक सुन्दरियाँ उत्पन्न कर दीं और किसी एकको चुननेके लिए कहा, जिससे स्वर्गकी शोभा विवर्द्धित हो। वे उर्वशीको ले गये और इन्द्रसे नरकी असीम शक्तिका वर्णन किया।

२. तामस मनुके एक पुत्र।

३. सुधृतिके पुत्र और केवलके पिता।

४. मन्युके पुत्र और संस्कृतिके पिता।

५. विरतके पिता और गयके पुत्र।

६. चन्द्रमाके रथके दस घोड़ोंमें-से एक।

७. एक देवर्षि। (दे० 'नारायण')। —मो० अ०

नरक–यमके अधिकारमें वह स्थल, जहाँ पापी पुरुष मरकर जाते हैं और यमदूतों द्वारा उन्हें नाना प्रकारके कष्ट दिये जाते हैं। कष्टकी अवधि समाप्त होनेपर स्वकर्मानुसार उन्हें नीच योनियोंमें जन्म मिलता है। नरक २७ हैं। जिस प्रकार स्वर्गका स्थान आकाश माना जाता है, उसी प्रकार नरकका पाताल। शेषलोकके नीचे रौरव, शीततप, कालसूत्र, अप्रतिष्ठ, अवीची, लौहप्रस्थ तथा अविध्युः ये सात

अत्यन्त प्रसिद्ध नरक हैं। भागवत और मनुस्मृतिके अनुसार उनकी संख्या २१ है, यद्यपि नामोंमें यत्किंचित् भेद है। दोनोंमें उल्लिखित प्रसिद्ध नरक हैं कुम्भीपाक, रौरव, अन्धतामिस्र, शूकरमुख, कृमिभोजन, सूचीमुख, असिपत्रवन। इसके साथ ही ८४ नरककुण्डोंका भी वर्णन मिलता है, यथा—वह्निकुण्ड, तप्तकुण्ड, क्षारकुण्ड, आदि। नरकका वर्णन मानसके उत्तरकाण्ड तथा सन्तकाव्योंमें हुआ है (दे० मानस ७।१००।१)। —मो० अ०

नरकासुर—१. नामान्तर भौम, पृथ्वीका पुत्र, एक राक्षस। वराह अवतारमें विष्णुने पृथ्वीसे सम्भोग किया था, जिसमें पृथ्वीके गर्भसे नरकासुरकी उत्पत्ति हुई थी। यह प्राग्ज्योतिषपुरका राजा था। इसने अनेक राजाओं, ऋषियोंकी स्त्रियोंका अपहरण किया था। यही नहीं, यह अदितिके कुण्डल, वरुणका छत्र भी लेकर भागा और इन्द्रसे ऐरावत लेनेकी याचना करने लगा। इन्द्रकी प्रार्थनापर कृष्णने इसे चक्रसे काट डाला और इसकी सारी सम्पत्तिको देवताओंमें वितरित कर इसकी बन्दी स्त्रियोंसे विवाह कर लिया। यह असुर एक बार शनैश्चरके साथ भी देवासुर-संग्राममें लड़ा था।

२. हिरण्यकशिपुका भतीजा, पृथ्वी और विप्रचित्तका पुत्र।

३. कश्यप तथा दनुका पुत्र।

४. दिति कन्या सिंहिकाका पुत्र। —मो० अ०

नरदेव—प्रसादके 'विशाख' नाटकमें नरदेव सर्वप्रथम एक कर्त्तव्यनिष्ठ न्यायपरायण राजाके रूपमें दिखाई देता है किन्तु आगे चलकर चन्द्रलेखाके ऊपर आसक्त होनेपर वह क्रमशः नैतिक पतनके गर्तमें गिर जाता है। वहाँपर नरदेव एक कामासक्त मनुष्यकी भाँति अविवेकपूर्ण आचरण करता हुआ कर्त्तव्यपालन एवं न्याय-भावनासे शून्य दिखलाई पड़ता है। अन्तमें प्रेमानन्दके सात्त्विक उपदेशों एवं आकस्मिक नाटकीय घटनाओंके कारण वह पुनः सत्पथपर आ जाता है एवं अविवेकके दूर होनेपर उसमें सात्त्विक बुद्धिका उदय हो जाता है, जिसके फलस्वरूप वह विशाख और चन्द्रलेखा दोनोंसे क्षमायाचना करता है। एक प्रजापालक न्यायशील राजाकी भाँति नरदेव विशाख द्वारा कानीर विहारके बौद्ध महन्त सत्यशीलके दुराचारोंकी कथा सुनकर शीघ्र ही निरलस भावसे उन बातोंकी खोज करनेकी आज्ञा देता है एवं स्वयं वहाँ जाकर चन्द्रलेखाको मुक्त कराता है तथा सुश्रवा नागकी अपहृत भूमि उसे पुनः वापिस दिलाता है। इतना होते हुए भी नरदेवमें न्यायपूर्ण सात्त्विक बुद्धिका अभाव है। वह उच्छृंखल एवं उग्र स्वभावका है। क्रोधके आवेशमें आकर सत्यशीलके पापाचारोंसे उत्तेजित होकर वह समस्त बौद्ध-विहारोंको भस्म करनेकी आज्ञा दे देता है किन्तु प्रेमानन्दके अनुरोधसे वह अपनी अविवेकपूर्ण आज्ञाको लौटा लेता है। अपने इसी सद्गुणके कारण वह अन्तमें गिरते-गिरते भी सम्हल जाता है।

विलासिता नरदेवके आचरणकी एक अपरिहार्य चर्या प्रतीत होती है। वह सदैव नर्तकियों एवं महापिंगल जैसे चाटुकर सभासदोंसे घिरा रहता है। चन्द्रलेखाके सौन्दर्यको देखते ही अपनी नृपोचित मर्यादाको भूलकर उससे घृणित प्रस्ताव कर बैठता है और उसे पानेके प्रयत्नमें कुटिलता और क्रूरताका व्यवहार करने लगता है। चैत्यमें एक भिक्षुकको भेजकर चन्द्रलेखाके हृदयमें राजरानी बननेकी भावना उत्पन्न करानेका षड्यन्त्र कराता है। कामवासनामें अन्धा बना वह अपनी रानीकी कल्याणकारी सीखकी भी उपेक्षाकर देता है एवं अनीति तथा अत्याचारकी चरम सीमापर पहुँचकर चन्द्रलेखाके सतीत्वका सौदा हर सम्भव उपायोंसे करने लगता है और इस प्रकार वह स्वयं अपने लिए विनाशका वातावरण बना लेता है। महापिंगलकी हत्याका प्रतिकार वह विशाखको निर्वासित कर, प्राणदण्डकी आज्ञा देकर करना चाहता है, जिससे सारी नाग जाति विद्रोह कर बैठती है और नरदेवको ही अग्निकी तीव्र लपटोंमें परिवार सहित जलना पड़ता है किन्तु प्रेमानन्द और चन्द्रलेखाकी सज्जनता, संवेदनशीलताके कारण उसके प्राण बच जाते हैं और वह पापाचरणका यथेष्ट दण्ड पाकर पुनः अपने पुराने सदाचरणको ग्रहण करता है। प्रेमानन्दके उदार आचरणसे उसका विवेक जागरित हो जाता है। अपने पिछले कुकृत्यों पर सच्चे हृदयसे प्रायश्चित्त करते हुए नरदेव कहता है : "हाय हाय मैंने क्या किया, एक पिशाचग्रस्त मनुष्यकी तरह मैंने प्रमादकी धारा बहा दी।" इस प्रकार वह आत्मग्लानिकी अग्निमें तपकर पुनः एक कर्त्तव्यनिष्ठ न्यायशील नृपति बन जाता है और अपने कुकृत्योंके लिए क्षमा माँगता है। नरदेवके चरित्रमें घटनाओंके घात-प्रतिघात और परिस्थितियोंके आग्रहसे जो परिवर्तन या व्यतिक्रम उत्पन्न हो जाता है, वह नाटककार द्वारा पूर्ण स्वाभाविकताके साथ चित्रित किया गया है। —के० प्र० चौ०

नरपति नाल्ह—नरपति नाल्ह पुरानी पश्चिमी राजस्थानीकी एक सुप्रसिद्ध रचना 'बीसलदेव रासो'का कवि है। रचनामें कहीं पर इसने अपनी छाप 'नरपति' दी है और कहीं पर 'नाल्ह'; यथा—"कर जोडी नरपति अणइ" (छन्द १) "नाल्ह वषाणइ वेकर जोडि" (छन्द ४)। इन दोनोंमें से सम्भव है 'नरपति' उसकी उपाधि रही हो, नाम उसका 'नाल्ह' रहा हो। यह कब हुआ और कहाँका निवासी था, आदि बातें अज्ञात हैं। नरपति नामका एक जैन कवि सोलहवीं शताब्दीमें हुआ है। अगरचन्द नाहटाके अनुसार यह असम्भव नहीं है कि 'बीसलदेव रासो'का रचयिता वही 'नरपति' हो किन्तु यह सर्वथा असम्भव है। रचनाकी सोलहवीं शती ईसवीकी प्रतियाँ मिलती हैं, जिनमें पाठ-विषयक अन्तर इतना अधिक है कि रचनाकी पाठ-परम्परा कमसे कम डेढ़-दो सौ वर्ष उनसे पूर्वकी होनी चाहिए। पुनः रचनामें न जैन नमस्क्रिया है और न जैन कथाओंका विरक्तिमय अन्त है; अन्य कोई जैन तत्त्व भी रचनामें नहीं मिलते। नाहटाजीने कुछ शब्दों और प्रयोगोंको दिखाया है जो 'बीसलदेव रासो' और उक्त नरपतिकी रची हुई एक प्रशस्तिमें समान रूपसे मिलते हैं किन्तु इतना साम्य उसी भाषाकी मध्ययुगकी दो कृतियोंमें प्रायः मिल सकता है। इसलिए 'बीसलदेव रासो'के रचयिताको १६ वीं शतीका नरपति नहीं माना जा सकता है।

सं० १५३८ मे भाण कविकी रची हुई 'हम्मीर दे चउपई'

में एक नाल्हका विवरण आता है, जो हम्मीर देवका चारण है (छन्द २७७-३१९)। यह हम्मीर देवके मारे जाने पर भी उक्त रचनाके अनुसार अलाउद्दीनके सम्मुख हम्मीरका यशोगान करता है। इस पर क्रुद्ध होकर बादशाह उसे मार डालता है। हम्मीरका निधन सं० १५३८ में हुआ था। 'बीसलदेव रासो'की रचना चौदहवीं शती विक्रमीयकी मानी गयी है (अन्यत्र दे० 'बीसलदेव रासो')। इसलिए यह असम्भव तो नहीं है कि 'बीसलदेव रासो'का रचयिता यही नाल्ह हो, फिर भी निश्चयात्मक रूपसे यह नहीं कहा जा सकता।

[सहायक ग्रन्थ—बीसलदेव रासो-नरपति नाल्ह : सं० मा० प्र० गुप्त तथा अगरचन्द नाहटा, हिन्दी परिषद, प्रयाग विश्वविद्यालय।] —मा० प्र० गु०

नरसिंह—हिरण्यकशिपुका वध करने वाले विष्णुके एक अवतार। विष्णुने नृसिंह रूप धारण कर अपने नखोंसे हिरण्यकशिपुको विदीर्ण कर डाला था। ब्रह्मासे वर प्राप्त कर हिरण्यकशिपु देवोंको कष्ट देने लगा। सुरोंकी प्रार्थना पर नृसिंह भगवान् हिरण्यकशिपुका वध करनेके लिए उसकी सभामें पहुँचे। केवल प्रह्लादने भगवान्‌को पहचाना। अन्य सभीने उनपर चारों ओरसे आक्रमण किया। नृसिंहने सबको मारकर अन्तमें द्वन्द्वार्थ सन्नद्ध हिरण्यकशिपुका भी उदर फाड़ दिया। भागवतके अनुसार नरसिंह खम्भेसे प्रकट हुए थे। दूसरा नाम नरहरि है (दे० 'प्रह्लाद', 'हिरण्यकशिपु')। —मो० अ०

नरहरि—इनका जन्म रायबरेली जिलेके पखरौली गाँवमें सन् १५०५ ई० मे हुआ था। ये संस्कृत और फारसीके अच्छे विद्वान् तथा ब्रजभाषाके कवि थे। हुमायूँ, शेरशाह, सलीमशाह तथा रीवाँ नरेश रामचन्द्र आदि कई लोगोंका समय-समयपर इनसे सम्पर्क रहा किन्तु इनका सबसे अधिक सम्मान अकबरने किया। अकबरने ही इन्हे महापात्रकी उपाधि दी थी। कहा जाता है कि एक बार किसी कसाईके हाथसे छूटकर एक गाय इनके घरमें जा छिपी। इन्हें उसपर बड़ी दया आयी और उसके गलेमें एक छप्पय बनाकर इन्होने लटका दिया और उसी प्रकार उसे अकबरके सामने पेश किया। प्रसिद्धि है कि उस छप्पयका अकबरपर इतना प्रभाव पड़ा कि उसने अपने राज्यमें गो-बध बन्द करवा दिया। नरहरिकी मृत्यु १६१० ई० में हुई। नरहरिके नामसे तीन पुस्तकें प्रसिद्ध हैं—'रुक्मिणी मंगल', 'छप्पय नीति', 'कवित्त संग्रह'। इनमें अबतक केवल प्रथम ग्रन्थ ही मिला है। इसके अतिरिक्त इनके लगभग ढाई सौ फुटकर छन्द भी मिलते हैं। उस कालमें न केवल हिन्दी प्रदेशमे, अपितु बाहर भी मंगल-काव्य लिखनेकी परम्परा थी। उसी परम्परामें इन्होंने 'रुक्मिणी मंगल' की रचना की। इसमें कुन्दनपुरकी राजकुमारी रुक्मिणीके गन्धर्व-विवाहका वर्णन है। फुटकल छन्दोंमें कुछ तो 'वादु लोहे सोनेके', 'तेल तम्बोलका वादु', 'लज्जा भूखको वादु' आदि रूपोंमें मनोरंजक विवाद है, कुछ भक्ति या गोपी-विरह आदिकी कविताएँ हैं और शेष नीतिविषयक हैं। नीति-कविके रूपमें ही इनकी विशेष ख्याति है। अनेक नीति-कवियोंकी भाँति नरहरिने सुनी-सुनायी और परम्परा-गत बातोंको ही अपने नीतिके छन्दोंमें नहीं कहा है, अपितु अपनी अनुभूतिजन्य बातोंको भी पर्याप्त स्थान दिया है। इनके प्रमुख नीति विषय—नारी, राजा, शठ, लोभ, मित्र, प्रजा, दान, कृपण तथा व्यवहार आदि हैं। इनमें उच्चस्तरका काव्यत्व नहीं है किन्तु इनके नीति छन्द प्रभविष्णुतासे शून्य नहीं कहे जा सकते। इनके द्वारा प्रयुक्त छन्द प्रमुखतः छप्पय, दोहा, सोरठा, सवैये तथा कुण्डलियाँ हैं। इनकी रचनाएँ स्वतन्त्र रूपसे अभीतक प्रकाशित नहीं हुई हैं। डा० सरयूप्रसाद अग्रवालके 'अकबरी दरबारके हिन्दी कवि' (लखनऊ, २००७ वि०) के परिशिष्ट-में वे संगृहीत हैं।

[सहायक ग्रन्थ—अकबरी दरबारके हिन्दी कवि : डाक्टर सरयूप्रसाद अग्रवाल।] —मो० ना० ति०

नरेंद्रदेव, आचार्य—जन्म ३१ अक्तूबर, १८८९ई०को उत्तर प्रदेश स्थित सीतापुर नामक स्थानमें हुआ और मृत्यु १९ फरवरी, १९५६ में हुई। सन् १९२० ई०में असहयोगमें आन्दोलनमें शरीक हुए और वकालत छोड़ी। लोकमान्य तिलकके नेतृत्वमें राजनीतिक कार्य आरम्भ किया और १९२१ ई०मेंश्री शिवप्रसाद गुप्त द्वारा स्थापित काशी-विद्यापीठमें अध्यापकका कार्य करने लगे, फिर वहीं आचार्य बने और बादमें उसके कुलपति। विशुद्ध विद्वत्ता, गम्भीर विवेचन और सच्ची जनसेवाकी भावना इन सबका सुन्दर सम्मिश्रण उनके व्यक्तित्वमें मिलता है। उन्होंने विभिन्न भाषाओं और भाषा-विज्ञानका ही अध्ययन नहीं किया, इतिहास और राजनीतिक शास्त्रके भी वह प्रकाण्ड पण्डित थे। हिन्दीके प्रति श्रद्धा और स्नेह उन्हें परम्परासे मिली थी। उन्होंने इतिहास, राजनीति और समाजशास्त्रपर हिन्दीमें लेख और पुस्तकें लिखीं। विद्यार्थियोंके लिए अच्छी पाठ्यपुस्तकोंकी दृष्टिसे विदेशोंके इतिहासपर छोटे-छोटे ग्रन्थ लिखे, जिनमें इंगलैंड, आयरलैंड, रूस, इटली, अमेरिका आदिके इतिहास सम्मिलित हैं।

समाजवादके सम्बन्धमें भी १९३०-३१ ई०में कई लेख लिखे और भाषण दिये, जो 'राष्ट्रीयता और समाजवाद' नामक पुस्तकमें संकलित हैं। हिन्दीमें समाजवादके सिद्धान्तोंकी व्याख्या करनेवालोंमें आचार्य नरेन्द्रदेव सर्वप्रथम हैं। समाजवादी विचारोंके प्रचारार्थ इन्हींके सम्पादकत्वमें लखनऊसे 'संघर्ष' साप्ताहिक निकाला गया। 'संघर्ष'के लिये लिखनेवालोंमें जवाहरलाल नेहरू भी शामिल थे। नरेन्द्रदेवजी प्रायः कांग्रेस-समाजवादीदलके प्रवक्ताके रूपमें बोलते या लिखते थे।

नरेन्द्रदेवजी बड़े शिक्षाशास्त्री थे। विभिन्न शिक्षा-प्रणालियोंका उनका अध्ययन गहन था और देशकी शिक्षा-समस्या पर उन्होंने बहुत कुछ लिखा। उनका दृष्टि-कोण एक बुद्धिवादीका है किन्तु क्रियात्मक है। उन्होंने 'जनवाणी'में शिक्षकोंकी स्थिति पर एक लेख लिखा था, जिसमें प्राचीन और अर्वाचीन शिक्षा-प्रणालीकी ओर ध्यान दिलाते हुए आधुनिक दृष्टिकोणके अनुसार शिक्षकोंकी स्थिति सुधारनेके लिये उद्बोधन था। जनहित और व्यावहारिक उपादेयता ही किसी भी सिद्धान्तकी परखके लिए उनकी कसौटी है। आधुनिक शिक्षापद्धति और प्राचीन भारतीय

शिक्षाप्रणाली पर उनके लेख अत्यन्त सारगर्भित और महत्त्वपूर्ण हैं। शिक्षण-पद्धतिमें धार्मिक शिक्षाकी उपयोगिता पर भी उन्होंने अपने विचार व्यक्त किये हैं। उनका अभिमत था कि सर्वधर्म-समन्वयको बालकबुद्धि इतनी शीघ्रतासे नहीं समझ सकती, इसके लिए परिपक्व मस्तिष्ककी आवश्यकता है।

आचार्य नरेन्द्रदेवने धर्मका गहरा अध्ययन किया था। जब वह लखनऊ और काशी हिन्दू विश्वविद्यालयोंके उपकुलपतिके पद पर रहे, शिक्षाके साथ बौद्धमतके आदर्शों और भारतमें बौद्धधर्मके विकास तथा ह्रासके इतिहासकी ओर आकृष्ट हुए। जीवनके अन्तिम वर्ष उन्होंने 'बौद्धधर्म दर्शन' लिखनेमें बिताये। यह बृहत् ग्रन्थ उनके देहान्तोपरान्त प्रकाशित हो सका। इसकी गणना इस विषयके सर्वोत्तम प्रामाणिक ग्रन्थोंमें की जाती है। इस पर साहित्य अकादमीने १९५६ की हिन्दी साहित्यकी सर्वश्रेष्ठ रचनाके रूपमें ५,०००) का पुरस्कार घोषित किया था।

नरेन्द्रदेवजीकी शैली सुगठित, गम्भीर और विचारोंसे ओतप्रोत है। विषयकी गम्भीरता और विचारोंकी विविधताके कारण कहीं-कहीं क्लिष्ट और बोझिल भी बन गयी है किन्तु विषयविशेषसे परिचित पाठकके लिए उसे ग्रहण करने और समझनेमें कठिनाई नहीं हो सकती। पर बौद्धधर्मकी व्याख्या और दर्शनके प्रतिपादनकी भाषा कहीं-कहीं बहुत क्लिष्ट हो गयी है। इसे एक प्रकारसे शैलीका दोष ही मानना होगा, किन्तु उनकी सामाजिक तथा राजनीतिक विषयोंकी भाषा और लेखनशैली अपेक्षाकृत सरल है और इसी कारण नरेन्द्रदेवजीके लेखोंका जनता पर व्यापक प्रभाव पड़ा है।

उन्होंने प्रायः सभी विषयों पर हिन्दीमें ही लिखा। हिन्दी पर उनका पूर्ण अधिकार था और इसे ही वह जनगणकी भाषा मानते थे। 'राष्ट्रीयता और समाजवाद' और 'बौद्धधर्म दर्शन'के अतिरिक्त उनकी रचनाओंमें 'समाजवाद—लक्ष्य तथा साधन' भी है, जो उनके भाषणोंके आधारपर तैयार की गयी है। इस पुस्तकका समावेश 'राष्ट्रीयता और समाजवाद'में कर लिया गया है। नरेन्द्रदेवजीकी भाषा विषयके साथ-साथ बदलती रहती थी। कहीं सरल तो कहीं दुरूह। यह इस बातका प्रमाण है कि उन्होंने विद्वत्समाज तथा जनसाधारण दोनोंका उसी प्रकार ध्यान रखा है, जैसे शिक्षक और विद्यार्थीका। हिन्दी भाषा और साहित्यको उनकी सरल तथा क्लिष्ट दोनों ही शैलियोंको साथ-साथ लेकर चलना पड़ा है। बौद्ध-दर्शनकी शैलीमें वह दबी है किन्तु साहित्य भरा है। सरल हो या क्लिष्ट, नरेन्द्रदेवजीकी विद्वत्ता और सुलझे हुए विचारोंसे हिन्दी भाषा परिष्कृत और परिमार्जित हुई है तथा उसका साहित्य-तत्व भी उभरा है।—शा० द०

नरेंद्र शर्मा—जन्म १९१३ ई० में जहाँगीरपुर (बुलन्दशहर) में हुआ। शिक्षा प्रयाग विश्वविद्यालयमें एम० ए०तक हुई। कुछ दिनों तक फिल्मोंसे सम्बद्ध रहे। सम्प्रति आकाशवाणीके विविध-भारती कार्यक्रमके प्रधान हैं। नरेन्द्रके व्यक्तित्व, व्यवहारकी कोमलता और संकोचशीलताके पीछे छिपी गम्भीरता आस्थाओं और मान्यताओंके प्रति सच्चे समर्पणका भाव कभी-कभी ही दृष्टिगोचर हो पाता है पर उनके कवित्वमें वह उभर कर सामने आता है। उनके कवि-स्वरमें कहीं संकोच-शिथिलता नहीं है—हाँ कोमलता यथेष्ट है। नरेन्द्र छायावादोत्तर कालके कवि हैं, छायावादकी काव्यानुभूतिसे परिचित, प्रभावित और अन्ततः पोषित पर उनके कवि-मनमें अतिशय सूक्ष्मता और निर्वैयक्तिकताके प्रति सहज आकर्षण नहीं है। यदि उनका काव्य कहीं अतिशय सूक्ष्म हो भी जाता है, अर्थकी जगह मात्र अर्थका आभास ही दे पाता है, तो यह उनकी सहज प्रवृत्ति और रूचि, आस्था और काव्यताके प्रतिकूल और उसके बावजूद ही होता है—और होता इस कारण है कि उनकी काव्य-प्रेरणा छायावादकी छत्रछायामें ही रोपी गयी और पल्लवित-पुष्पित हुई।

परिवेशके प्रति इनका दायित्व-बोध छायावादी प्रभावका परिणाम नहीं, उसके विरुद्ध उनके व्यक्तित्वका विद्रोह है। समाजके प्रति अपने कर्त्तव्य-निर्वाहकी लगन उनकी सजग संवेदनशीलताका प्रमाण है। उनका नाम प्रगतिवादी कवियोंमें लिया जाता है और यह अंशतः उचित ही है। पर न तो नरेन्द्र पूर्णरूपेण आत्मकेन्द्रित व्यक्तिवादी ही रहे, नहीं उन्होंने व्यक्तित्वके सर्वथा विलीन होनेमें विश्वास किया। व्यक्ति और समाज दोनों ही नरेन्द्रकी काव्य-प्रेरणाके हेतु और निमित्त रहे। 'हंसमाला'की भूमिकामें उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है: "पिछले कुछ वर्षोंमें व्यक्ति और समाजके जीवनके अनेक घटनाएँ घटित हुई है, अनेक संकटकाल आये है और वह आधिभौतिक और आधिदैविक प्रहार हुए है कि कभी तो हमारी चेतना लपटोंके पंख लगाकर एक महती आकाक्षाके समान ऊपर उठी है और कभी मृतावस्थाकी राख-मिट्टीमें दबकर मूर्च्छना बन कर सो गयी है।" इन शब्दोंमें जहाँ व्यक्ति और समाजकी कष्टानुभूतिको समान महत्व दिया गया है, वहीं आधिभौतिक और आधिदैविकको भी—और नरेन्द्रकी कविताका सही मूल्यांकन करनेके लिए आधिभौतिकके साथ आधिदैविक, लौकिकके साथ अलौकिक, ज्ञातके साथ अज्ञात, वास्तविकके साथ रूमानीके प्रति उनकी आस्था और आकर्षणको समझना और स्वीकार करना आवश्यक है। विशुद्ध 'प्रगतिवादी' कवियोंमें नरेन्द्रको अलग करता है उनका व्यक्तिके प्रति और आधिदैविक प्रेरणा-स्रोतोंके प्रति सहज आकर्षण, पर उनकी प्रबल सामाजिक चेतना उन्हें एकान्त व्यक्तिवादी अथवा भावुक रूमानी कवियोंसे भी उतनी ही दूर पहुँचा देती है। उनकी भाषा-शैली प्रांजल और प्रवाहमयी है। उनके गीतात्मक काव्योंमें यथेष्ट तारल्य और अन्वितिकी ऊष्मा है। इनकी शब्दानुभूतिमें सच्चाई है और अभिव्यक्तिमें स्पष्टताके साथ-साथ सहज सकेतात्मकताका आकर्षक योग है। उनके आरम्भिक काव्यमें विरह-मिलनकी करुणा-सुषमा है, गीतात्मकता है और प्रकृति-वर्णनोंमें चित्रमयता है। साथ ही विशेषतः 'अग्नि-शस्य' (१९२०) की कविताओंमें—विश्व-वेदनाकी अनुगूँज भी है। नरेन्द्र मूलतः प्रगीतोंके कवि हैं। उनके प्रबन्धकाव्य 'द्रौपदी' द्वारा इस बातका खण्डन नहीं होता, प्रत्युत इसकी पुष्टि ही होती है।

कविता-संग्रहोंके अतिरिक्त नरेन्द्रका एक कहानी-संग्रह 'कड़वी-मीठी बातें' (१९४२) भी है, जिनके पीछे वही भावुक, संवेदनशील व्यक्तित्व परिलक्षित होता है, जिसकी छाप इनकी कवितापर है। इस एक-मात्र संग्रहकी कहानियाँ पढ़कर यह नहीं लगता कि इनका रचयिता अब और कहानियाँ न लिखेगा—और यह तो बिल्कुल भी नहीं लगता कि उसे और कहानियाँ लिखनी ही न चाहिये।

कृतियाँ—'प्रभात फेरी' (१९३८), 'प्रवासी के गीत' (१९३८), 'पलासवन' (१९३९), 'कड़वी मीठी बातें' (कहानियाँ-१९४२), 'अग्निशस्य' (१९५०), 'कदली वन' (१९५४) —बा० कृ० रा०

नरोत्तमदास—इनके जीवन-वृत्तके सम्बन्धमें विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। इनकी जन्म तथा निधनतिथि भी अज्ञात है। शिवसिंह सरोजसे यही ज्ञात होता है कि ये विक्रम संवत् १६०२ तक जीवित रहे। ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे तथा उत्तर प्रदेशके सीतापुर जिलेके अन्तर्गत बाड़ी नामक स्थानके रहनेवाले थे। इनके ग्रन्थोंमे 'सुदामा चरित्र' ही उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त इनके 'ध्रुव-चरित' और 'विचारमाला' नामक ग्रन्थोंका भी उल्लेख किया जाता है, पर ये उपलब्ध नहीं है। ये अपने एक ही ग्रन्थ 'सुदामा चरित'के कारण अपनी अक्षय कीर्ति छोड़ गये हैं। यह खण्ड-काव्य अत्यन्त प्रासादिक एवं सरस शैलीमें लिखा गया है।

काशी नगरी प्रचारिणी सभाके हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थोंके पन्द्रहवें त्रैवार्षिक विवरणमें 'नामसंकीर्तन' नामक ग्रन्थके रचयिता नरोत्तमदासका उल्लेख है। खोज-रिपोर्टके लेखकका कहना है कि ये गौडीय सम्प्रदायके वैष्णव थे। इनके सम्बन्धमे ऐसा संकेत नहीं मिलता कि ये 'सुदामा चरित'के रचयिता नरोत्तमदास हैं या नहीं। 'नामसंकीर्तन'में महाप्रभु कृष्णचैतन्यका संकीर्तन अथवा स्तोत्र है। —वि० मो० श०

नरोत्तमदास स्वामी—जन्म १९०५ ई० मे हुआ। एम० ए० तक शिक्षा प्राप्त की। राजस्थानके प्राचीन साहित्यके सम्पादनमें विशेष रुचि रही। लोक-साहित्यके क्षेत्रमें भी कार्य किया। प्रकाशन—'मीरा मन्दाकिनी', 'राजस्थान रा दूहा', 'राजस्थानके लोकगीत', 'ढोला मारु रा दूहा', आदि। —सं०

नर्मदा—१. शुकाला पितृकी मानसकन्या, जिसका विवाह उसके भाई उरगने पुरुकुत्सके साथ कर दिया था। उसके पुत्रका नाम त्रसदस्यु था, जिसने रसातलके किसी उद्धत गन्धर्वको मार डाला था।

२. अम्बरीषके पुत्र युवनाश्वकी स्त्री।

३. सोमप पितृकी मानसकन्या, जो हव्यवाहनकी १६ स्त्रियोंमें-से एक थी। यह दक्षिणापथकी एक नदीके रूपमें परिवर्तित हो गयी। —मो० अ०

नर्मदाप्रसाद खरे—जन्म १९१४ ई०। मुख्य साहित्यिक कार्य-क्षेत्र मध्यप्रदेश रहा। प्रकाशन—'स्वर पाथेय', 'नीराजना', 'कथा कलश', 'बाँसुरी' (कविता)। कई पत्रों—'शुभचिन्तक', 'युगारम्भ', 'प्रेमा'का सम्पादन किया। —सं०

नल—१. चन्द्रवंशीय निषाधिपति वीरसेनके पुत्र, अश्वपरीक्षा और अश्व-परिचालनके अद्भुत विशेषज्ञ, वेदज्ञ, किन्तु द्यूतक्रीडानुरागी नल विदर्भराज भीमकी अप्रतिम सुन्दरी कन्या दमयन्तीका रूप गुण सुनकर आसक्त हो गये। अपना उदास मन बहलानेके लिए उद्यानमें रहने लगे। एक दिन वहाँ कुछ सुनहले हंस आये। नलने एक हंसको पकड़ लिया। हंसने विनय की "हे राजन् आप मुझे छोड़ दीजिये। मैं दमयन्तीसे आपकी प्रशंसा करूँगा, जिससे वह आपको ही वरण करे।" मुक्त होकर हंस अविलम्ब विदर्भ नगर पहुँचा। प्रशंसा सुनकर दमयन्तीने भी, जो नलमें पूर्वानुरक्त थी, प्रतिज्ञा की "कि मैं भी नलके अतिरिक्त किसीका चिन्तन तक न करूँगी।" दमयन्तीको प्राप्त-यौवना देखकर पिताने स्वयम्वरकी तैयारी की। स्वयम्वरके लिए देवता भी चले। रास्तेमें नलको देखकर देवताओंने नलको दूत बनाकर भेजा। नलने दमयन्तीको सन्देश सुनाया कि इन्द्र, अग्नि, यम और वरुण मण्डपमें उपस्थित हैं किन्तु दमयन्ती अपने निश्चयपर दृढ़ रही। इन्द्रादिको जब यह पता चला तो उन्होंने नलका रूप धारण किया। अतः मण्डपमे पाँच नल दिखायी पड़े। दमयन्तीने स्वेदरहित, निर्निमेष-नेत्र, प्रतिच्छायाहीन आदि लक्षणवाले देवताओंको पहचानकर नलके गलेमें जयमाला डाल दी। इन्द्र, अग्नि, यम, वरुण तो प्रसन्न होकर लौट गये, किन्तु मार्गमे कलि तथा द्वापरसे भेंट हुई, जो स्वयम्वरमे आ रहे थे। समाचार जानकर कलि आग-बबूला हो गये। एक बार नल शौचादिसे निवृत्त हो केवल पैर धोकर ही सन्ध्या करने बैठ गये। कलिने इसी सन्धिको पाकर उनके शरीरमें प्रवेश किया। अज्ञान आ जानेसे नल अपने भाई पुष्करसे जुएमें सर्वस्व हारकर दमयन्तीके साथ वन-वनमे भटकने लगे। वहीं वे दमयन्तीको निद्रावस्थामें छोड़कर चले गये। कष्ट झेलते-झेलते द्यूत-विद्या विशारद अयोध्यानरेश ऋतुपर्णके यहाँ बाहुक नामसे उन्होंने सारथीका कार्य किया। इधर दमयन्ती भटकती-भटकती सुबाहु नगरमे पहुँची और राजगृहमें सैरन्ध्रीका कार्य करने लगी। वहाँसे विदर्भके राजदूत खोजकर उसे घर ले गये। नलका पता लगानेके लिए भी आदमी भेजे गये। एक ब्राह्मणने दमयन्तीको जाकर नलका अयोध्यामे होना बताया। अतः दमयन्तीके स्वयम्वरका मिथ्या समाचार ऋतुपर्णके पास भेजा गया। समय इतना कम था कि नलके सिवा कोई भी नहीं पहुँच सकता था। ऋतुपर्णको लेकर नल विदर्भ नगर पहुँचे। वहाँ दमयन्तीने नलसे बातचीत करके जान लिया कि वे ही उसके पति हैं। दोनों व्याकुल होकर एक दूसरेसे मिले। राजा ऋतुपर्णको जब नलका पता चला तो उन्होंने क्षमा माँगी। नलने बदलेमें उनसे अक्षविद्या सीखी और उन्हें अश्वविद्या सिखायी। बादमे नलने अपने घर आकर पुष्करको द्यूतमे हराकर अपना राज्य प्राप्त किया।

२. ऋतुध्वज ऋषिके शापके कारण विश्वकर्माके औरस घृताची अप्सराके गर्भसे गोदावरीके किनारे नलका जन्म हुआ था। यह रामदलका प्रसिद्ध वानर था, जिसने सेतु रचना की थी (दि० मा० ४।२२)। —मो० अ०

नलकूबर—कुबेरका पुत्र। एक बार अपने भाई मणिग्रीव सहित कुछ सुन्दरियोंके साथ नग्न होकर जलक्रीड़ा कर रहे थे। दैवात् नारदका आगमन हुआ। स्त्रियोंने तो वस्त्र धारण कर लिये किन्तु ये दोनों नग्नावस्थामें ही बने रहे। इसपर नारदने उन्हें १०० वर्षतक वृक्ष-योनिमें रहनेका अभिशाप दिया। फलतः ये यमलार्जुन वृक्ष यशोदाके घरमें उगे और उलूखल-बन्धनके समय कृष्ण द्वारा उनका उद्धार हुआ। (दे० उलूखल-बन्धन, सू० पद ९९९-१००९)। —मो० अ०

नल दमयंती वा कथा नल दमयंती की—यह एक प्रेमाख्यान है जिसके रचयिता जान कवि हैं। जान कविका मूल नाम न्यामत खाँ या नियामत खाँ था और ये फतहपुर (शेखावाटी) के क्यामखानी नवाबोंके वंशज तथा नवाब अलफ खाँ के पुत्र थे। इनकी छोटी बड़ी ७६ रचनाएँ उपलब्ध हैं, जिनमें-से अधिक संख्या कथाओं और विशेषकर प्रेम-कहानियों की हैं। इनके जन्म या मरणकी तिथियाँ अभीतक विदित नहीं हैं, किन्तु इनकी कई रचनाओंके अन्तर्गत लिखित रचना-कालसे पता चलता है कि इन्होंने कम-से-कम सन् १६१४ ई० से लेकर सन् १६६४ ई० तक अपने काव्यग्रन्थ लिखे थे और इस प्रकार ये एक दीर्घजीवी कवि रहे होंगे। 'कथा नल दमयन्ती'की एक प्रेम कहानी है, जो हस्तलिखित ग्रन्थोंकी एक बड़ी 'पोथी'के अन्तर्गत इनके अन्य ६९ ग्रन्थोंके साथ बँधी मिली थी। उसका लिपिकाल सं० १७७७ से लेकर सं० १७७८ अर्थात् सन् १७२० से लेकर सन् १७२१ ई० तक जान पड़ता है और उसके लिपिकार कोई फतेहचन्द नामके हैं। पूरी पोथी पहले रावतमल सारस्वत (बीकानेर) के किसी परिचित व्यक्तिके पास थी और अब हिन्दुस्तानी अकादमी (प्रयाग) के संग्रहालयमें है। इस कथाकी रचना दोहों-चौपाइयोंमें हुई है, किन्तु बीच-बीचमें कुछ सवैये तथा एक-आध कवित्त भी आ गये हैं। दोहोंकी संख्या १४७ है, जो ८-८ अर्द्धालियोंके अनन्तर आये हैं और पूरी रचना 'पोथी'के ३० वें पृष्ठतक चली गयी है। रचनाकालके लिए "सन् हज्जार बहत्तरो" अर्थात् १०७२ हि० दिया गया है, जो सन् १६६१ ई० मे पड़ता है और २३ दिनमें आदित्यवारको इसका समाप्त किया जाना भी बतलाया गया है। कविके कथनसे जान पड़ता है कि उस समयतक औरंगजेब अपने दो भाइयों अर्थात् दाराशिकोह एवं शुजाको लड़ाइयोंमें जीत चुका था और मुरादको बन्दी बनाकर ग्वालियर भेज भी चुका था, जिससे यह उसीको आशीर्वाद भी देता है। इसने अपनी इस रचनाके आरम्भमें 'अलख अगोचर' परमात्माके अतिरिक्त हजरत मुहम्मद तथा उनके चार यारोंके विषयमें स्तुतिपरक पंक्तियाँ लिखी हैं और अपने पीर शेख मुहम्मदका भी उल्लेख किया है, जो हांसीके निवासी थे अथवा जिनकी समाधि (विश्राम) हांसीमें थी।

कथाका सारांश इस प्रकार है। निषध देशके 'उजीन' नगरके राजा वीरसेन थे, जिनके दो पुत्र नल एवं पुहकर नामके थे और जिनके मरनेपर नल राजा हुए। विदर्भ देशके राजा भीम थे, जिनकी रानी पुहपावती थीं, किन्तु जिनकी कोई सन्तान नहीं थी। उन्होंने इसके लिए किसी दमन ऋषिसे भेंट की, जिन्होंने उन्हें एक आम और एक दाख दिया, जिन्हें खा लेनेपर पुहपावतीके गर्भसे दाम एवं दमयन्तीका जन्म हुआ। दमयन्ती परम सुन्दरी थी और उसका सौन्दर्य अनेक अप्सराओं जैसा था, जिस कारण सर्वत्र उसकी प्रसिद्धि हो गयी किन्तु वह किसीके भी विवाहके प्रस्तावको स्वीकार नहीं करती थी, जिसके कारण कई बार अनेक राजाओंको अपमानित भी होना पड़ा। राजा नल भी वैसे ही सुन्दर थे। इन दोनोंको, एक दूसरेके रूप-की प्रशंसा सुनकर, परस्पर प्रेम हो गया। दोनोंने एक दूसरेको स्वप्नमें देखा तथा चित्र बनवाकर भी देखा। फलतः दोनोंही विरह-तापके कारण व्याकुल हो उठे और और एक दूसरेको प्रत्यक्ष देखनेके लिए आतुर बन गये। एक दिन अपने उद्यानमें नलने कोई 'स्वर्णपक्ष' हंस देखा, जिसे पकड़कर उन्होंने उसके पैरमें दमयन्तीके नाम पत्र बाँध दिया और उसे विदर्भ भेज दिया। दमयन्तीने जब यह पत्र पढ़ा तो वह बहुत प्रभावित हुई और उसने भी एक पत्र उसी प्रकार नलके यहाँ भेज दिया। अन्तमें जब इसका पता उसकी माताको लगा तो उसने राजासे कहकर एक स्वयंवरकी रचना करा दी।

स्वयम्वरमें दमयन्तीके सौन्दर्यसे प्रभावित बहुतसे राजा आये थे और उनके साथ इन्द्र, अग्नि, यम एवं वरुण तक बैठे थे। परन्तु इनके छल करनेपर भी उसने राजा नलके गलेमें जयमाला डाल दी और दोनोंका विवाह सम्पन्न हो गया। राजा नलने घर आकर एक अश्वमेध यज्ञ किया और उन्हें इन्द्रसेन नामका एक पुत्र तथा इन्द्रसेना नामकी एक पुत्री हुई। राजा नलको इन बातोंके कारण गर्व हो गया और उनका भाई पुहकर उनके प्रति ईर्ष्या भी करने लगा। इसने उनके साथ जुआ खेला, जिसमें नल हार गये। दमयन्तीने अपने बच्चोंको मैके भेज दिया और दोनों दम्पति स्वयं वनमें निकल पड़े। ये तीन दिनों तक बिना-कुछ खाये पिये रह गये। नलने एक पक्षीको पकड़नेके लिए वस्त्र फेंका, जिसे लेकर वह उड़ गया, जिन मछलियोंको खानेके लिए भुना, वे जलमे तैरकर भाग गयीं और जिस आमके वृक्षकी डाल फल तोड़नेके लिए झुकायी, वह ऊपर चली गयी, जिस कारण दोनोंको और भी अधिक कष्ट सहना पड़ गया। नलने अन्तमें दमयन्तीको किसी बरगदके नीचे सोती हुई छोड़ दिया और स्वयं पृथक् हो गये। दमयन्तीको किसी काले सर्पने निगल लिया, जिसके पेटसे उसे किसी पथिकने निकाला, उसे बाघ-बाघिन एवं राक्षसका सामना करना पड़ा और फिर किसी तपस्वीसे कुछ ढाढ़स मिला। तब दमयन्ती एक नदीको बिना नावके ही पार कर गयी और चन्देरीकी रानीसे भेंट हो जानेपर उसने इसे अपनी पुत्री सुनन्दाके लिए रख लिया।

उधर नलको रातके समय वनकी आग दीख पड़ी, जिसमें से उन्होंने किसी जलते हुए सर्पको निकाला किन्तु सर्पने इन्हें डस लिया और ये काले पड़ गये तथा उसने इन्हें यह बतला भी दिया कि इस वेशमें ही दमयन्तीसे भेंट हो जायगी। उसने इन्हें अपनी एक केंचुल दी तथा एक वस्त्र भी दिया और इन्हें कह-सुनकर अयोध्याके राजा

ऋतुपर्णके यहाँ बाहुकके नामसे नौकरी करनेको भेज दिया। नल वहाँपर ऋतुपर्णके निपुण रसोइया तथा 'शालिहोत्र' एवं सारथी-कलाके एक विशेषज्ञ बनकर समय काटने लगे। राजा भीमसेनको जब नल एवं दमयन्तीकी दुखमयी कहानीका पता चला तो उन्होंने इन्हें ढूँढनेके लिए लोग भेजे। एक ब्राह्मणने चन्देरी जाकर दमयन्तीका पता लगाया और उसका वास्तविक परिचय पाकर वहाँकी रानीने बताया कि वह इसकी मौसी है तथा उसने इसे प्रसन्नतापूर्वक विदर्भ भेज दिया। यहाँ आकर दमयन्तीने नलका पता लगानेके लिए बहुतसे लोगोंको भेजा और किसी 'पर्नाद'ने अयोध्या जाकर उन्हें पहिचान लिया। फिर यहाँसे 'सुदेव' भेजा गया, जिसने ऋतुपर्णसे मिलकर उसे सुन्दरी दमयन्तीके किसी 'नवीन' स्वयंवरकी ओर आकृष्ट किया। फलतः नलकी सहायतासे ऋतुपर्ण यथासमय कुण्डनपुर पहुँच गया, किन्तु यहाँ पर स्वयंवरका कोई चिह्न न देखकर उसे आश्चर्य हुआ। उधर दमयन्तीने दूती भेजकर अस्तबलमें राजा नलकी पहचान करायी और वहाँ जाकर उनसे भेंट भी की। तीन वर्षोंकी दुःख-गाथाका अन्त हुआ। राजा नलने काले सर्प अथवा कर्कोटक नागका स्मरण किया, जिसने आकर केंचुल जला दी और उनको पुनः अपना सौंदर्य प्राप्त कर लेने पर वस्त्र भी पहना दिया। राजा नलने ऋतुपर्णको अयोध्या पहुँचा दिया और दमयन्ती तथा पुत्र एव पुत्रीके साथ 'उजीनी' लौट आये। यहाँ पर पुहकर उन्हें सभी कुछ लौटा देनेके लिए तैयार था किन्तु उन्होंने उसे जुआ खेलकर फिर हरा दिया और इस प्रकार सभी कुछ वापस पा लिया। एक दिन उद्यानमें पतझड़ देखकर ये बहुत प्रभावित हुए और इन्द्रसेनको राज्य देकर जंगलमें चले गये। जब राजा नल मरे तो दमयन्ती उनके साथ सती हो गयी और इन्द्रसेन उनकी ही भाँति योग्यतापूर्वक राज्य करता रहा।

नल दमयन्तीकी कथा एक पौराणिक आख्यान है, जिसकी कथावस्तु 'महाभारत' (वन पर्व, अध्याय ५३-७८) पर आधारित है। जान कविके समय तक इसे लेकर अनेक रचनाएँ निर्मित हो चुकी थीं और वे विविध भाषाओंमें उपलब्ध थीं। उदाहरणके लिए कमसे कम त्रिविक्रम कवि का 'नलचम्पू' (१० वीं शताब्दी), श्रीहर्षका 'नैषधीय चरित्र' (१२ वीं शताब्दी) तथा माणिक्यचन्द्रका 'नलायन' (सन् १२२० ई०) में संस्कृत रचनाएँ थीं। बारहवीं शताब्दीमें ही महानुभवी कवि नृसिंहने मराठीमें 'नलोपाख्यान' लिख लिया था। श्रीनाथ (१३६५-१४४० ई०)ने तेलुगुमें 'शृंगार नैषद'की रचना कर ली थी। ऋषिवर्धनने गुजरातीमें 'नल दवदन्तिरास' (सन् १४५६ ई०) तथा महीराजने अपभ्रंशमें 'नलदवदन्तीरास' (सन् १४७६ ई०) रच लिये थे। पीताम्बरने बंगलामें 'नल दमयन्तीचरित्र' (सन् १५४४-४५ ई०) लिखा था तथा हरिदासी कवि कनकदासने कन्नड़में 'नल चरित्रे' (१६ वीं शताब्दी) भी लिख लिया था। कहते हैं कि तमिल भाषा तकके किसी पुगलेन्दि नामक कविने इस विषयसे ही सम्बन्धित 'नलवेणवा'की रचना ११ वीं शताब्दीमें कर डाली थी और वह ४२४ कवित्तोंका लघु-ग्रन्थ भी 'महाभारत' वाली कथा पर ही आधारित था। 'संदेश रासक'के रचनाकाल (सम्भवतः ११वीं या १२वीं शताब्दी) तक नल-चरित्र एक लोकप्रिय विषय बन चुका था (प्रक्रम २, पद्य ४४)। जान कविके लिए तबतक फारसीके कवि फैजी द्वारा १६वीं शताब्दीमें रचे गये 'नल दमन'का भी एक आदर्श प्रस्तुत किया जा चुका था और अन्य कई भाषाओंकी भाँति हिन्दीमें भी एकसे अधिक रचनाएँ उपलब्ध थीं। कम से कम मुकुन्दसिंहने सन् १६४१ ई०में अपना 'नल चरित्र' लिख लिया था और कवि सूरदासने भी सन् १६५७ ई०में अपनी 'नल दमन'की रचना कर ली थी। इन्होंने कदाचित् इसीलिए कह भी दिया है कि नल दमयन्तीकी कथाको मैंने 'बहुग्रन्थन'में पढ़ लिया था, एक भाँतिका नहीं पाया' था इस कारण 'जैसा भला लगा लिख दिया"। इस रचनाके अन्तर्गत जान कविकी कोई वैसी घटनासम्बन्धी नवीनता नहीं लक्षित होती। यत्र-तत्र प्रसंगवश कतिपय सूक्तियोंका समावेश कर दिया है तथा कहीं-कहींपर काव्य-कौशल प्रदर्शित करनेकी चेष्टामें रीतिकालीन कवियोंकी वर्णन-शैलीका प्रयोग भी किया है। प्रेमी एवं प्रेमिका दोनोंके हृदयोंमें एक दूसरेके सौन्दर्यकी प्रशंसा सुनकर आपसे आप प्रेमभावका जाग्रत हो उठना और फिर क्रमशः स्वप्न-दर्शन एवं चित्र-दर्शन द्वारा उसका उत्तरोत्तर दृढ़तर होता जाना तथा दोनोंके लिए बुरे दिनके आ जानेपर प्रायः प्रत्येक अवसर पर किसी न किसी घटना वैचित्र्यका दीख पड़ना इस कहानीकी विशेषताओंमें-से ही हैं।

[सहायक ग्रन्थ—अप्रकाशित ग्रन्थावली, हिन्दुस्तानी अकादमी, प्रयाग।] —प० च०

नलिनी मोहन सान्याल—हिन्दीके आरम्भिक भाषा वैज्ञानिकोंमें प्रमुख। इनकी भाषा विज्ञानके सिद्धान्तोंपर लिखी पुस्तक अनेक वर्षों तक अपने विषयकी महत्त्वपूर्ण कृति रही। हिन्दीकी कुछ बोलियोंके सम्बन्धमें भी आपने कार्य किया। अपने पदसे अवकाश ग्रहण करनेके बाद आपने स्वाध्याय द्वारा कलकत्ता विश्वविद्यालयसे हिन्दीमें एम० ए० की उपाधि प्राप्त की और फिर वहीं हिन्दीके प्राध्यापक हो गये। ८२ वर्षकी आयुमे आपने पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। आपकी मृत्यु १९५१ ई० में ९० वर्षकी आयुमें हुई। —सं०

नवग्रह—रवि, सोम, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु। कहा जाता है कि ये ग्रह आकाशमें विचरण करते हुए मनुष्यके भाग्यपर प्रभाव डालते हैं। इस लिए इन ग्रहोंकी शान्ति हेतु काम्य-कर्मके पूर्व इनका पूजन किया जाता है (दे० मा० ७।२७।३)। —मो० अ०

नवरंग—भारतके प्रसिद्ध मुगल सम्राट् औरंगजेबका भूषण आदि कवियों द्वारा किया हुआ नामान्तर है। यह शाहजहाँका पुत्र और दिल्लीका बादशाह था। औरंगजेबका शासनकाल सन् १६५८ ई०से १७०७ ई० तक रहा। —मो० अ०

नवरसतरंग—यह बेनी प्रवीनकी तीनों कृतियोंमें सर्वाधिक ख्यातिप्राप्त कृति है। इसकी रचना-तिथि १८१७ ई० है और इसका प्रकाशन कृष्णबिहारी मिश्रके सम्पादनमें एस० एस० मेहता द्वारा बनारससे १९२५ ई० में हुआ। इसकी

रचना बरवै, दोहा, सवैया, सोरठा एवं मनहरण छन्दमें हुई है। ग्रन्थका विषय रस-वर्णन है। केशवदासने कृष्णकी वन्दना करते हुए उन्हें 'नवरसमय ब्रजराज' कहा है। उनकी इसी उक्तिका स्मरण करके अपने इस रसविषयक ग्रन्थका नाम बेनी प्रवीनने 'नवरसतरंग' रखा है। कुल ५३४ छन्दोंमें ४९७ तक शृंगार संयोग-वियोग पक्ष तथा नायिका-नायक भेदका ही निरूपण है और शेष रसोंको अन्तमें छू भर दिया गया है। प्रारम्भके अतिरिक्त ३३ छन्दोंमें वन्दना और कविका आत्मचरित वर्णित है। मिश्रबन्धुओंके अनुसार इसमें गणिका, परकीया और अभिसारिकाके बड़े ही विशद वर्णन हैं। जातिके आधारपर दूतीके भी अनेक भेद किये गये हैं।

इस ग्रन्थमें नायिका-भेदके वर्णनमें प्रथम स्वकीया, परकीया तथा सामान्याका वर्गीकरण इनके भेदोपभेदोंके साथ किया गया है। इन सभीके अन्य सुरतिदुःखिता, गर्विता तथा मानवती भेद किये गये हैं। इसके बाद अवस्था-भेदमें प्रोषितपतिका आदि और गुण-भेदसे उत्तमा, मध्यमा तथा अधमाका विवेचन है। फिर नायक-भेदके बाद उद्दीपन विभाव, भाव, अनुभाव, सात्त्विक तथा संचारीके लक्षण और उदाहरण हैं। भाव शान्ति, सन्धि, सबलता और भावाभास आदिके साथ शृंगारके संयोग एवं वियोग पक्षोंका वर्णन है। अन्य रसोंकी संक्षेपमें चर्चा है, यद्यपि लक्षण तथा उदाहरणसगत हैं। इस ग्रन्थके अनेक उदाहरण 'शृंगार भूषण'से ही लिये गये हैं।

अपने पूर्ववर्ती कवियोंमें बेनी प्रवीनने केशव, बिहारी, मतिराम, घनानन्द, देव, तोष और प्रतापसाहि आदि अनेकसे प्रभाव ग्रहण किया है तथा उनकी उक्तियोंका अनुसरण किया है। 'नवरसतरंग'के सम्पादक कृष्णबिहारी मिश्रने उसकी भूमिकामें इस पक्षको उदाहरण सहित प्रस्तुत किया है तथा विभिन्न कवियोंसे बेनी प्रवीनकी काव्य-कलाकी तुलना की है। कविने अपनी कविताको विविध अलंकारोंसे अलंकृत करके भी इस परिपाककी ओर पूर्ण ध्यान दिया है। उसके अनेक छन्द 'टकसाली' हैं तथा उनका समावेश बहुतसे संग्रहकारोंने अपने संग्रहोंमें किया है। लक्षण भले ही दोषपूर्ण रह गये हों परन्तु उदाहरणोंको पूर्णतया परिष्कृत एवं प्रभावपूर्ण बनानेका यत्न किया गया है। मध्याधीराके उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत छन्द अनेक काव्य-मर्मज्ञों द्वारा उनका सर्वोत्कृष्ट छन्द माना गया है—"भोर ही न्योति गयी तो तुम्हें वह गोकुल गांवकी ग्वालिनी गोरी।"

[सहायक ग्रन्थ—मि० वि०; हि० सा० इ०; हि० का० शा० इ०।] —ज० गु०

नवलसिंह—ये झाँसीके रहनेवाले श्रीवास्तव कायस्थ थे। गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए ही इन्होंने रामानुज सम्प्रदायमें दीक्षा ली थी। इनका तत्सम्बन्धी नाम रामानुजदास शरण था। इनके मुख्य आश्रयदाता समथरके महाराज हिन्दूपति थे। टीकमगढ़ तथा दतिया दरबारमें भी इनके कवि-जीवनका कुछ समय व्यतीत हुआ था। अबतक इनकी निम्नांकित कृतियोंका पता चला है—'शंकामोचन' (१८१६ ई०), 'जौहरिन तरंग' (१८१८ ई०), 'रसिक रंजनी' (१८२० ई०), 'विज्ञान भास्कर' (१८२१ ई०), 'ब्रजराज दीपिका' (१८२६ ई०), 'शुकरम्भा संवाद' (१८३१ ई०), 'कवितावली' (१८५६ ई०), 'भाषा सप्तशती' (१८६० ई०), 'कविजीवन' (१८६१ ई०), 'आल्हा रामायण' (१८६५ ई०), 'रुक्मिणी मंगल' (१८६८ ई०), 'मूलढोला' (१८६८ ई०), 'रहस्य लावनी' (१८६९ ई०), 'अध्यात्म रामायण', 'रूपक रामायण', 'नारी प्रकरण', 'सीता स्वयंवर', 'रामचन्द्र विलास' (सात खण्डोंमें विभाजित—आदि खण्ड, जन्म खण्ड, पूर्व शृंगार खण्ड, मिथिला खण्ड, रामविवाह खण्ड, विलास खण्ड और रास खण्ड), 'भारत वार्त्तिक', 'रामायण सुमिरनी', 'दानलोभ सवाद', 'नाम रामायण', 'रामायण कोश' और 'आल्हा भारत'।

नवलसिंहकी कृतियोंसे यह विदित होता है कि ये रसिक भावके रामोपासक थे। इनकी साम्प्रदायिक भावना अत्यन्त उदार थी। कृष्ण-चरितका वर्णन इन्होंने उसी तन्मयताके साथ किया है, जैसा रामकी शृंगारी-लीलाओंका। इनकी रचनाएँ रीतिकालकी शृंगारी प्रवृत्तिसे अत्यन्त प्रभावित हैं। इन्होंने पद्य एवं गद्य दोनोंमें ब्रजभाषाका प्रयोग किया है। इनकी काव्यशैली बड़ी समृद्ध और परिष्कृत है।

[सहायक ग्रन्थ—हिन्दी साहित्यका इतिहास: रामचन्द्र शुक्ल; खोज रिपोर्ट, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।] —भ० प्र० सिं०

नवीन १—इस नामके दो कवि पाये जाते हैं। नवीन भट्ट बिलग्रामी (जिला हरदोई) और दूसरे नवीन ब्रजवासी। 'मिश्रबन्धुविनोद'में बिलग्रामीका जन्मकाल सन् १८४१ ई० दिया गया है, साथ ही इन्हें 'शिवताण्डव' और 'महिम्न भाषा' नामक दो ग्रन्थोंका रचयिता तथा सरस कवि कहा गया है किन्तु अधिक प्रसिद्धि दूसरे नवीन (ब्रजवासी)की ही है। 'मिश्रबन्धुविनोद' भाग ३ से इस कविकी चार रचनाओंका पता लगता है—(१) 'सुधासार', (२) 'सरस रस', (३) 'नेह निदान' और (४) 'रंग तरंग'। इनमें 'सुधासार' (हि० पु० सा०में जगन्नाथदास 'रत्नाकर' द्वारा सम्पादित इसका एक संस्करण बनारससे प्रकाशित बताया गया है) और 'सरस रस' किस प्रकारकी रचना है, इसके विषयमें कोई विशेष सूचना नहीं मिलती किन्तु कविकी अन्य रचनाओंको देखते हुए यह कहा जा सकता है कि इनका सम्बन्ध प्रधानतः शृंगार अथवा प्रेम-वर्णनसे ही होगा। 'नेह निदान'के विषयमें सन् १९०५ ई०की वार्षिक खोज-रिपोर्ट (सं० ३९)में किंचित विस्तारसे सूचना मिलती है। प्रेम अथवा स्नेह-वर्णन इस रचनाका भी मुख्य विषय है। रिपोर्टके अनुसार इसकी एक हस्तलिखित प्रति छत्तरपुरके किसी जगन्नाथ प्रसादके यहाँ मिली थी, जिसका लिपिकाल सन् १८५० ई० (सं० १९०७) है। इसके कुल छन्दोंकी संख्या १४५ है। इसी ग्रन्थके अन्तःसाक्ष्यसे यह भी ज्ञात होता है कि कवि मालवा-नरेश जसवन्तसिंहका आश्रित था और उसीकी प्रेरणासे उसने उक्त रचनाएँ की हैं। जसवन्तसिंहका समय १७वीं शतीका उत्तरार्द्ध अर्थात् शाहजहाँका शासनकाल माना जाता है। अतएव कविका भी वही समय होना चाहिए। 'रंग-तरंग' कविकी रस-वर्णन प्रधान रचना है। मिश्रबन्धुओंके अनुसार यह

कविकी अन्तिम रचना है, जिसका रचनाकाल सन् १८४२ ई० (सं० १८९९) है।

किन्तु उपर्युक्त चार कृतियोंके अतिरिक्त कविकी 'शृंगार शतक' और 'शृंगार सप्तक' नामक दो अन्य कृतियोंका पता त्रयोदश त्रैवार्षिक खोज-रिपोर्ट (सं० ३३० ए, ३३० बी)से चलता है। प्रथम हस्तलिखित प्रतिका लिपिकाल १७७८ ई० और द्वितीयका १८०३ ई० है। प्रथममें कुल ३२० छन्द हैं और द्वितीयमें ४४०। दोनों ही कृतियोंके मुख्य वर्ण्य-विषय शृंगार और नायिका-भेद हैं। कविके काव्यालोचनसे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि वह सुकुमार एवं मार्मिक अनुभूतियोंका धनी था। भाव और भाषापर उसका समान अधिकार था। इसी कारण मिश्रबन्धुओंने उसे पद्माकरकी कोटिका कवि कहा है। काव्यगत उत्कृष्ट भाव-गरिमा और कलात्मक चारुतासे कविका कवित्व ओत-प्रोत है।

[सहायक ग्रन्थ—खो० वि० (सं० ३९, सन् १९०५ और सं० ३३० ए-बी, सन् १९२६-२८); शि० स०; हि० सा० बृ० इ० (भा० ६)।] —रा० त्रि०

नवीन २–दे० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'।

नवीनचंद्रराय–हिन्दीके प्रचार और प्रसारके लिए जो कार्य संयुक्त प्रान्तमें शिक्षा-विभागमें रहकर राजा शिव प्रसादने किया, लगभग वही कार्य पंजाब प्रान्तमें नवीन चन्द्र रायने किया। आपका जन्म सन् १८३७ ई० में हुआ था। बचपनमें ही पिताकी मृत्यु हो जानेके कारण आपकी शिक्षाका उचित प्रबन्ध न हो सका। अपने अध्यवसायसे आपने हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजीमें अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। धीरे-धीरे आप शिक्षा-विभागमे उच्चपदस्थ कर्मचारी हो गये। आप 'ब्रह्म समाज'के अनुगामी थे। आपके विचार नवयुगके सुधारवादी दृष्टिकोणके अनुकूल थे। आपने स्त्री-शिक्षाका पूर्ण समर्थन किया और लाहौरमें फीमेल नार्मल स्कूल खोलकर स्वयं ही उसका सूत्रपात भी किया। सन् १८६३ ई० से १८८० ई० के बीच सामाजिक, धार्मिक, दार्शनिक और वैज्ञानिक विषयों पर आपकी कई पुस्तकें प्रकाशित हुईं। 'आचारादर्श' (१८७२ ई०), धर्म दीपिका' (१८७३ ई०), 'ब्राह्मधर्मके प्रश्नोत्तर' (१८८० ई०-मित्र विलास प्रेस, लाहौरसे प्रकाशित), 'तत्त्वबोध' (१८७५ ई०—गोपाल चन्द्र डे द्वारा कलकत्तासे प्रकाशित), 'उपनिषत्सार' (१८७५ ई०—स्वयं लेखक द्वारा लाहौरसे प्रकाशित), 'जलस्थिति और जलगति' (१८८२ ई०) और 'स्थिति तत्त्व और गतितत्त्व' (१८८२—पंजाब यूनिवर्सिटी कालेज, लौहारसे प्रकाशित) आपकी प्रसिद्ध पुस्तकें हैं। अपने सिद्धान्तोंके प्रचारके लिए आपने कई पत्रिकाएँ निकाली थी, जिनमे 'ज्ञान प्रदायिनी' (१८६७ ई०) प्रसिद्ध है। आप शुद्ध हिन्दीके समर्थक थे। राजा शिवप्रसादसे आपकी भाषा-नीति भिन्न थी। आपने 'हिन्दी'को 'उर्दू'की छायासे सदैव अलग रखा।

सन् १८९० ई० मे आपका देहान्त हो गया। हिन्दी-गद्य के आविर्भावकालमे एक हिन्दीतर प्रान्तमें सरकारी कर्मचारीकी हैसियतसे हिन्दी प्रचारके लिए आपने जो कुछ किया, वह सदैव स्मरणीय रहेगा। —रा० चं० ति०

नहुष–चन्द्रवंशीय आयु राजाके पुत्र, पुरुरवाके पौत्र। जब वृत्रासुर वधके कारण इन्द्रको ब्रह्म-हत्या लगी तो उसके भयसे वे १००० वर्ष तक कमलनालमें छिपे रहे। उस समय बृहस्पतिके निर्णयानुसार रिक्त इन्द्रासन पर नहुषको प्रतिष्ठित किया गया। नहुष इन्द्राणी पर मोहित हो गये। उन्होंने इन्द्राणीसे मिलनेकी इच्छा प्रकट की। बृहस्पतिसे सलाह लेकर इन्द्राणीने कहला भेजा कि यदि आप सप्तर्षियों के कन्धों पर पालकीमे आयें तो मुझे आपसे मिलना स्वीकार है। कामार्त नहुषने ऐसा ही किया। पालकीमे बैठे नहुष आतुरतावश सप्तर्षियोंको आदेश देते हुए बोले—'सर्प, सर्प', अर्थात् शीघ्र चलो। इस पर क्रोधित होकर अगस्त्य ऋषिने उन्हें शाप दिया कि 'मूढ, तू सर्प हो जा'। तदनुसार स्वर्ग-भ्रष्ट नहुष अनेक वर्षों तक सर्प-योनिमें पड़े रहे। महाभारतके अनुसार नहुषका पैर अगस्त्य ऋषिको लग गया था, जिससे उन्होंने शाप दिया। जब नहुषने ऋषिकी बहुत बिनती की तो उन्होंने कहा कि धर्मराज युधिष्ठिर तुम्हें शाप-मुक्त करेंगे। वनवासके समय द्वैतवनमे सर्प रूप इन्हीं नहुषने भीमसेनको पकड़ लिया था। फिर युधिष्ठिरने आकर उन्हें छुड़ाया और नहुषको शाप-मुक्त किया (दे० सूर० पद ४१९, 'नहुप': मैथिलीशरण गुप्त)। —मो० अ०

नहुष (नाटक)–बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्रके पिता गोपालचन्द्र, उपनाम गिरिधरदासने १८५७ ई० में नहुष नाटककी रचना की। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र 'नहुष'को हिन्दीका प्रथम नाटक मानते हैं। वे कहते हैं "विशुद्ध नाटक रीतिसे पात्र प्रवेशादि नियम रक्षण द्वारा भाषाका प्रथम नाटक मेरे पिता पूज्यचरण श्री कविवर गिरिधरदास (वास्तविक नाम बाबू गोपालचन्द्रजी)का है" (भारतेन्दु ग्रन्थावली, सं० ब्रजरत्नदास, भाग १, प्र० सं०, पृ० ७५२)। यह प्रथम नाटक है, इसके पक्षमें उन्होने दो कारण दिये हैं—१. इसमें विशुद्ध नाटक रीति है और २. पात्र प्रवेशादिके नियमकी रक्षा हुई है। देवमाया प्रपंच, प्रभावती (सम्भवतः प्रद्युम्न विजय) एव आनन्द रघुनन्दनको वे नाटक नहीं मानते हैं क्योंकि ये छन्द-प्रधान ग्रन्थ हैं और इनमे नाटकीय यावत् नियमोंका पालन नहीं हुआ है।

तुलना की जाय, तो नहुष नाटक और अन्य ब्रजभाषा नाटकोंमें बहुत अन्तर नहीं है, वरन् यह नाटक ब्रजभाषा नाटकोंकी एक कड़ी है। कारण—१. अन्य ब्रजभाषा नाटकोंके समान नहुष भी छन्दप्रधान ग्रन्थ है। नहुषमें गद्य तो कभी-कभी अपना अवगुंठन हटाता है, वह भी कुछ क्षणोंके लिए। आनन्द रघुनन्दनमें गद्यकी मात्रा इससे अधिक है। २. ब्रजभाषा नाटकोंके समान नहुषमे भी प्रबन्ध काव्यात्मक शैली प्राप्त होती है। तीसरे अंकमें जब अप्सराएँ नृत्य कर रही हैं तो कवि स्वयं मंचपर आकर उनका वर्णन करता है। नहुषके राज्यतिलकके समयका पूरा-पूरा विधान कवि द्वारा वर्णित है। छठे अंकमें अश्वमेध यज्ञ होता है। कवि स्वयं इस यज्ञका विस्तृत वर्णन करता है। सभी अंकोंमें यह शैली मिलेगी। ब्रजभाषा नाटकोंमें जब कोई पात्र रंगमंचपर आता है तो कवि उस पात्रका परिचय देता है एवं पात्रकी वेष-भूषाका वर्णन करता है। यह शैली नहुषमें मौजूद है। जब राजा नहुष रंगमंचपर आता है तब कवि उसका

वर्णन करता हुआ कहता है—"हाटक-सी दमकै दुति देहन हीरनके हिय हार सुहाए। जामा सपेद विराजि रह्यो विधि हाथनमें धनु बान बसाए। ध्यावत ही 'गिरिधारन'के पद सकपनेको गरूर बढ़ाए। सोह्यो नरेस सुभेस गुनाकर तेज विसेस दिनेस लजाए ॥३-२३॥

आरम्भमें शास्त्रीय ढंगकी प्रस्तावना है, जिसमें नान्दी, प्ररोचना और कथोद्घात नामक अंग मिलते हैं किन्तु अन्तमें शास्त्रीय शैलीका भरतवाक्य नहीं है। इन्द्र कहता है कि, विष्णुकी कृपासे हमें राज्य मिला है। तो चलो, उनके पास चलें। जयन्त एवं इन्द्राणीने सानन्द इसका समर्थन किया और वे चल देते हैं। नाटकके नामसे प्रतीत होता है कि इस नाटकका नायक नहुष है। नाटककार प्रस्तावनामें कहता है—"जा विधि राजा नहुषने कियो स्वर्गको राज, सो नाटक चाहत करन हुकुम कियो महाराज।" इससे भी सिद्ध होता है कि नाटककार नहुषको नायक बनाना चाहता है एवं उसके स्वर्ग-चरित्रको दर्शकोंके सामने रखना चाहता है। यदि पूर्वी नाट्य-शास्त्रकी दृष्टिसे परखा जाय तो नहुषमें नायकके गुण नहीं हैं। आधिकारिक फल है—इन्द्रासन एवं उसीसे संलग्न इन्द्राणी। नहुष इन्द्रासन पाकर इन्द्राणीको पानेका प्रयास करता है किन्तु वह इन्द्राणीके साथ इन्द्रासनसे भी हाथ धोता है, ऊपरसे उसे सर्प बननेका शाप मिलता है और वह सर्प बन जाता है। इस प्रकार नहुषकी बड़ी दुर्गति होती है। अवश्य अन्तमें नाटककारको नहुषका ध्यान आता है और वह उसे "हरि ढिग" पहुँचा देता है, जिसके लिए नाटकमें कोई कारण उपलब्ध नहीं है। नहुष कहता है—यह युधिष्ठिरके दर्शनका प्रताप है, जो मैं हरिके निकट जा रहा हूँ। इस प्रकार नहुषमें नायकके गुण एवं कर्म नहीं हैं, भारतीय नाट्यशास्त्र यही कहेगा। हाँ, पश्चिमी नाट्यशास्त्रकी दृष्टिसे वह नायक सिद्ध हो सकता है क्योंकि कथा उसीसे लिपटकर आगे बढ़ती है। नाटककार नहुषके जीवनसे शिक्षा देना चाहता है, फलतः वह नहुषको नायक बनाता है। यह पश्चिमी दृष्टिकोणका ही परिणाम है। वैसे चरित्रमें इन्द्र नहुषसे बढ़कर है। इन्द्रने देखा कि वृत्रासुर मेरी प्रजाको सता रहा है, फलतः उसने वृत्रासुरका वध किया, यद्यपि इससे उसे ब्रह्महत्या दोषका भागी बनना पड़ा। इधर नहुष जब इन्द्रासन पा जाता है तो उन्मत्त हो उठता है। वह अप्सराओंके नृत्य देखनेमें लग जाता है और स्वर्गके सभी भोगोंको भोगनेकी कामना करता है। नहुष पतिव्रता इन्द्राणीका धर्म डिगाना चाहता है और स्वर्गके सर्वश्रेष्ठ सात ऋषियोंको अपने वाहनमें जोतता है। पाठक या दर्शककी सहानुभूति इन्द्रके साथ है, नहुषके साथ नहीं। पश्चिमी नाटकोंके प्रभाववश होकर ही कविने नहुषको नायक बनाया है, इससे यही सिद्ध होता है। नहुषकी दृष्टिसे नाटकका अन्त दुःखान्त है, भले ही सहसा उसे "हरि ढिग" पहुँचा दिया गया है। उसे सहस्रो वर्ष सर्प-योनिमें कष्ट भोगना पड़ा है। नहुष नाटकसे ही पूर्वी एवं पश्चिमी नाट्य-शैलियोंका समन्वय प्रारम्भ हो जाता है। आगे भारतेन्दु-युगके नाटकोंमें यह समन्वय सतत अग्रसर रहा है।

'नहुष' हिन्दीका प्रथम नाटक है, जिसमें रंग संकेत अधिक स्पष्ट और अधिक मात्रामें है। इसमें भारतीय नाट्य-शास्त्रका अनुकरण करते हुए भी पश्चिमी दृष्टिकोण अपनाया गया है। इसका काव्य-पक्ष सुन्दर है। यह चरित्रप्रधान नाटक है। —गो० ना० ति०

नाग–कश्यप एवं कद्रूकी सन्तान। ये सर्प तथा मानवाकृतिके मिश्रित रूपके थे। इनकी राजधानी भोगवती थी। आठ प्रमुख सर्प अष्टकुली कहलाते है। इनके नाम हैं—अनन्त, वासुकि, तक्षक, कर्कोटक, पद्म, महापद्म, शंख तथा कुलिक। —मो० अ०

नागमती–पद्मावतकी प्रेमगाथाके अन्तर्गत नागमती एक नायिकाके रूपमे आती है। इसके ऐतिहासिक व्यक्तित्व का हमें कोई परिचय उपलब्ध नहीं है, किन्तु जायसी द्वारा किया गया इसका चरित्र-चित्रण भी हमें कम सजीव प्रतीत नहीं होता। यहाँपर हमारे सामने वह राजा रतनसेनकी अति रूपवती रानी है तथा समस्त रनिवासमे उसकी पट्टमहिषीके रूपमे आती है (८-१)। वह रूपगर्विता है इस कारण उसे सुएके मुखसे 'सिंघलकी रानी' की प्रशंसा स्वभावतः अच्छी नहीं लगती (८-२) और इस डरसे कि कहीं वह पक्षी उसके पतिसे भी ऐसी बातें कहकर उसका चित्त मेरी ओरसे फेर न दे, वह उस सुएका नाश कर देनेपर भी तुल जाती है। वह राजा रतनसेनके जोगी बनकर सिंघलकी ओर चलते समय उसके साथ जोगिनी बनकर जानेको उद्यत हो जाती है और इसके लिए हठ आग्रह भी करती है, किन्तु यह दशापर भी यह कहना नहीं भूलती कि "चाहे पद्मिनी रूपमें कितनी ही सुन्दर हो, हमसे बढ़कर और कोई भी रूपवती नहीं है" (८-६) और वह अन्यत्र स्वयं पद्मावतीसे भी कहती है, "मैं सारे संसारका सिंगार जीत चुकी हूँ" (३६-१०)। वह उससे यहाँतक कह डालती है, "मैं रानी हूँ और मेरे प्रियतम (रतनसेन) राजा है तेरे लिए तो वे केवल जोगी और नाथ ही है" (३६ '')। राजा रतनसेनके सिंहलकी ओर चल देनेपर वह चित्तौड़में रहकर उसकी बाट देखा करती है और उसके वियोगको सह न सकनेके कारण एक आदर्श विरहिणीके रूपमें अपना विरह-सन्देश भेजती है, जो उसकी मनोव्यथा को भलीभाँति प्रकट कर देता है। कविने उसके मुखसे सन्देश-वाहक द्वारा उसके आषाढ़से लेकर अगले जेठतकके पूरे एक वर्षकी दुःखगाथा प्रेषित किये जानेका उपक्रम किया है तथा इसी व्याजसे उसने उसके अन्तर्भावोंकी ऐसी सुन्दर अभिव्यक्ति कर दी है, जो बहुत कुछ काव्य-रूढ़ियोपर आश्रित होती हुई भी हमें किन्हीं स्वाभाविक हृदयोद्गारोंका वर्णन जैसा प्रभावित करती जान पड़ती है और इसके लिए जायसीका काव्य-कौशल सर्वथा प्रशंसनीय है। नागमती प्रत्येक प्रकारसे एक पतिपरायणा हिन्दू रमणी है और यह बात उसके रोम-रोमसे फूट निकलती प्रतीत होती है। जब वह एक विरहिणीके रूपमें सभी मनुष्योसे पूछकर हार जाती है और उनसे इसके प्रियतमका कोई पता नहीं चलता तो वह कदाचित् विक्षिप्त-सी बनकर पशु-पक्षियोंतकसे उसके समाचार पूछने लग जाती है और निरन्तर उसके

शुभ-कल्याणकी ही कामना करती रहती है। वह किसी एक पक्षी द्वारा उसे सिंघल सन्देश भेजते समय अपने यहाँ की पूरी दयनीय दशाका परिचय करा देना चाहती है, जिसका प्रभाव स्वाभावतः राजा रत्नसेनपर पड़े बिना नहीं रहता और वे वहाँसे यथाशीघ्र चल देनेके लिए उद्यत हो जाता है। अन्तमें नागमती अपने पति राजा रतनसेनकी मृत्युके उपरान्त, अपनी सपत्नी पदुमावतीके प्रति भेदभाव भुलाकर उसके साथ एक ही खाटपर बैठकर सती हो जाती है (५७-२)। —प० च०

नागरीदास—नागरीदास नामसे ब्रजमें कई अन्य कवि हुए हैं। नागरी (राधा)के सेवक बनकर उसका गुणगान करनेमे जो भक्त लीन हुआ, उसीने अपना नाम नागरीदास रख लिया, किन्तु इनमे कृष्णगढ़ नरेश महाराज सावन्तसिंहजी ही प्रसिद्ध नागरीदास कवि है। नागरीदासका जन्म स० १७५६ (सन् १६९९ ई०) मे हुआ था। शैशवसे ही इन्हे युद्धविद्यामे लगना पड़ा और तेरह वर्षकी अल्पायुके बूँदीके हाड़ा जैतसिंहको इन्होंने परास्त किया। इसके बाद पिताकी मृत्यु हो जाने पर इनके भाई इनकी अनुपस्थितिमे गद्दी पर अधिकार जमा बैठे और इन्हे फिर उनसे भी युद्ध ठाननेको विवश होना पड़ा। मराठोंकी सहायतासे इन्होंने अपने भाई बहादुरसिंहको गद्दीसे उतार कर राज्य अपने अधिकार-मे ले लिया किन्तु गृहकलहके कारण इन्हे राजपाटसे गहरी विरक्ति हो गयी। स० १८१४ (सन् १७५७ ई०) मे राजगद्दी पर अपने पुत्र सरदारसिंहको आसीन कर विरक्ति भावसे वृन्दावन चले आये और आजीवन वहीं भक्तके रूपमे रहे।

नागरीदासने कृष्णगढमे रहते हुए ही काव्य-रचना करना प्रारम्भ कर दिया था। उस समय वे ब्रजलीलापरक अनेक छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ लिख चुके थे। उनकी रचनाओंमे माधुर्य-भक्तिका ही प्राधान्य लक्षित होता है। कुछ ग्रन्थ रीतिकाव्यसे भी सम्बन्ध रखते है और कुछ वैराग्य-भावनाका वर्णन करनेवाले भी है। इनके सम्प्रदाय-के सम्बन्धमे विद्वानोंमे कुछ मतभेद रहा है। कुछ विद्वान् इन्हे वल्लभ-कुलमे दीक्षित कहते हैं, किन्तु वृन्दावनमे इनका सम्बन्ध निम्बार्क सम्प्रदायमे ही माना जाता है। वृन्दावन का नागर कुंज निम्बार्कीय ही कहा जाता है।

इनके ग्रन्थोका संकलन 'नागर समुच्चय' नामसे प्रकाशित हो चुका है। नागर समुच्चय और रामचन्द्र शुक्लद्वारा लिखित 'हिन्दी साहित्यका इतिहास'मे दी हुई ग्रन्थ सूचीको देखकर आश्चर्य होता है कि राजकाजमे लगे रहने पर भी नागरी दासजीने किस प्रकार ७५ ग्रन्थोंकी रचना की।

भाषा और काव्यसौष्ठवकी दृष्टिसे नागरीदासका काव्य साधारण कोटिका ही है। भाषा यद्यपि मुख्यतया ब्रज ही है, किन्तु कहीं-कहीं उर्दू या खड़ीबोलीका भी प्रभाव दिखाई देता है। सूफियानी और आशिकी ढंगकी प्रेम कविताएँ भी उनके ग्रन्थोमे मिलती है, जो उस युगके प्रभावमें लिखी गयी प्रतीत होती है। पद-रचनामे उन्हें अपेक्षाकृत सफलता मिली है। कविता तथा अन्य छन्द साधारण कोटिके ही हैं।

[सहायक ग्रन्थ—हिन्दी साहित्यका इतिहास : प० रामचन्द्र शुक्ल; निम्बार्क माधुरी : ब्रह्मचारी बिहारी शरण; ब्रजमाधुरी सार : वियोगीहरि।] —वि० स्ना०

नागरी प्रचारिणी पत्रिका—इस पत्रिकाका प्रकाशन वाराणसीसे जून १८९६ ई०से प्रारम्भ हुआ। इसके प्रथम सम्पादक वेणीप्रसाद थे। उसके बाद मुंशी देवीप्रसाद और चन्द्रधर शर्मा गुलेरी थे। फिर कालक्रमानुसार गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा, राधाकृष्णदास, श्रीकृष्णचन्द्र, श्याम-सुन्दरदास, रामचन्द्र शुक्ल, केशवप्रसाद मिश्र, मंगलदेव शास्त्री, जयचन्द नारंग, लक्ष्मीप्रसाद पाण्डेय, पद्मनारायण आचार्य, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, हजारीप्रसाद द्विवेदी क्रमशः सम्पादक या सम्पादक मण्डलमें रहे।

२४ वर्ष तक यह पत्रिका मासिक रही। बादमें त्रैमा-सिक हो गयी। ४८ पृष्ठोंकी डिमाई आकारमें २५० प्रतियाँ शुरूमे ।) मूल्यपर प्रकाशित होती थीं। आरम्भमें सभाकी सूचनाएँ अथवा हिन्दी भाषा या साहित्यपर टिप्पणियाँ ही प्रकाशित होती थीं।

लेकिन सन् १९१७ ई० में 'शिक्षाका माध्यम', 'आँखों देखा नक्षत्र जगत्', 'कोलम्बसकी यात्रा', प्रतिमोक्ष सूत्रके साथ-साथ सम्मेलनका विवरण प्रकाशित हुआ।

सन् १९४९ ई०में गुप्त सम्राट् और विष्णु सहस्रनाम, राम-वनवासका भूगोल, मिश्रबन्धु विनोदकी भूलें, प्रागैतिहासिक लाट देश जैसे खोजपूर्ण एवं महत्त्वपूर्ण लेख प्रकाशित होने लगे।

आचार्य रामचन्द्र शुक्लके अनुसार "नागरी प्रचारिणी पत्रिकाकी प्रारम्भिक संख्याओंको यदि हम निकालकर देखे तो उनमे अनेक विषयोंके लेखोंके अतिरिक्त कहीं-कहीं ऐसी कविताएँ भी मिल जायेंगी, जैसी श्रीयुत महा-वीर प्रसाद द्विवेदीकी 'नागरी तेरी यह दशा'। सम्प्रति पत्रिकाका रूप शोध-प्रधान है। —ह० दे० बा०

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी-स्थापित—१६ जुलाई, १८९३ ई०; संस्थापक—बाबू श्यामसुन्दरदास, पं० राम-नारायण मिश्र और ठाकुर शिवकुमारसिंह; कार्य और विभाग—कार्यकर्त्ताओंके उद्योगसे सन् १८९८ ई०मे सर-कारी कचहरियोंमे नागरीका प्रवेश हुआ और अदालती आवेदनपत्र तथा सम्मन आदि हिन्दीमे लिखे जाने लगे। (१) संगठन—सदस्योंकी संख्या २९१७ है, इनमें १३ वाच-स्पत्य, ५४ मान्य, ८१ विशिष्ट, ६०७ स्थायी तथा २१६२ साधारण सभासद हैं। हिन्दी प्रचारका उद्देश्य रखनेवाली भारतभरमे ५५ संस्थाएँ इससे सम्बद्ध हैं। (२) आर्यभाषा पुस्तकालय—विभिन्न भाषाओंके ३५,५११ ग्रन्थ सगृहीत है, जिनमे ३५१४ हस्तलिखित हैं। वाचनालयमे कई भाषाओंकी २४४ पत्र-पत्रिकाएँ आती है। (३) हस्तलिखित ग्रन्थोंकी खोज—इसके लिए अनेक रिसर्च स्कॉलर इस विभागमें कार्य करते है। यह कार्य सं० १९५७ से किया जा रहा है। सं० १९७९ से प्रतिवर्ष २००० रु० का अनुदान इस कार्यके निमित्त प्राप्त होता रहा है। अबतक १३,७३७ ग्रन्थोंके विवरण प्राप्त किये जा चुके है। (४) प्रकाशन—सन् १९४५ ई०में रामचन्द्र वर्माके सम्पादकत्व-मे एक अधिकृत 'हिन्दी शब्द सागरका' निर्माण हुआ है। एक 'राजकीय कोश'के प्रकाशनकी भी योजना है। अठारह भागोंमें 'हिन्दी साहित्यका बृहत् इतिहास' प्रकाशित हो

रहा है। इसके तीन भाग विभिन्न विद्वानोंके द्वारा सम्पादित होकर छप चुके हैं। इसके संयोजक राजबली पाण्डेय हैं। 'आकर ग्रन्थमाला'के संयोजक विश्वनाथ प्रसाद मिश्र हैं, जिसके अन्तर्गत प्राचीन कवियोंकी कृतियोंका सम्पादन शास्त्रीय एवं आधुनिक वैज्ञानिक पद्धतिसे हो रहा है। 'राजा बलदेवदास बिड़ला ग्रन्थमाला'के संयोजक शिव प्रसाद मिश्र 'रुद्र' हैं। सं० १९५३ से 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका'का प्रकाशन हो रहा है। 'हिन्दी रिव्यू' नामक अंग्रेजी मासिक कई वर्षतक प्रकाशित हुई। चार वर्षोंसे 'विधि पत्रिका' भी प्रकाशित हो रही है। इसके अतिरिक्त 'नागरी प्रचारिणी ग्रन्थमाला', 'मनोरंजन पुस्तकमाला', 'शास्त्र-विज्ञान पुस्तकमाला', 'पाठोपयोगी पुस्तकमाला', 'प्रादेशिक-ग्रन्थमाला', 'वैदेशिक ग्रन्थमाला', 'कोश ग्रन्थमाला', 'सूर्यकुमारी पुस्तकमाला', 'देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला', 'बालाबक्ष राजपूत चारणमाला', 'रामविलास पोद्दार स्मारक ग्रन्थमाला', 'श्रीमती रुक्मिणी तिवारी ग्रन्थमाला', 'नवभारत ग्रन्थमाला' आदि प्रकाशन चल रहे हैं। (५) प्रेमचन्द स्मारक—उपन्यास-सम्राट् मुंशी प्रेमचन्दजीके जन्मग्राम लमहीमें भव्य स्मारकका निर्माण हो रहा है। (६) प्रसाद साहित्य गोष्ठी–सन् १९३०में स्थापित इस गोष्ठीमें विविध साहित्यिक समारोह आयोजित होते रहते हैं (७) पुरस्कार-पदक—सभाकी ओरसे राजा बलदेवदास बिड़ला पुरस्कार, बटुक प्रसाद पुरस्कार, रत्नाकरपुरस्कार, डा० छन्नूलाल पुरस्कार, जोधसिंह पुरस्कार, माधवीदेवी पुरस्कार, डा० श्यामसुन्दर-दास पुरस्कार, भैरवप्रसाद पुरस्कार, माण्डलिक पुरस्कार, हीरालाल स्वर्णपदक, डा० द्विवेदी स्वर्णपदक, सुधाकर पदक, ग्रीव्ज पदक, राधाकृष्णदास पदक, बलदेवदास पदक, गुलेरी पदक, रेडिचे पदक, वसुमति पदक, भगवानदेवी बाजोरिया पदक, पुच्छरत पदक प्रदान किये जाते हैं। (८) सत्यज्ञान निकेतन—३० नवम्बर १९४३ को स्वामी सत्यदेव परिव्राजक ने ज्वालापुर (हरिद्वार) स्थित अपना आश्रम सभाको समर्पित कर दिया। यहाँ सभाने पश्चिम भारतके लिए अपना प्रचार-केन्द्र स्थापित कर दिया है। निकेतनकी प्रवृत्तियोंके चार अंग है—(क) पुस्तकालय—पुस्तकोंकी सख्या १९६६ है, (ख) व्याख्यानमाला, (ग) विद्यालय और (घ) सामयिक प्रचार। सभाने १५०००रु० की लागतसे यहाँपर भवन बनवा लिया है। (९) विद्यालय—राष्ट्रभाषा मुद्रण, नागरी मुद्रण तथा हिन्दी सकेत लिपिके विद्यालय चल रहे हैं। (१०) भारतीय कला—कविन्द्र रवीन्द्रके सभापतित्वमे स० १९७७ मे स्थापित 'भारत-कला-परिषद्' आज 'भारत-कला-भवन'के रूपमें कार्यरत है। यहाँ भारतीय सस्कृति और साहित्यसे सन्बन्ध रखनेवाली अमूल्य वस्तुएँ संगृहीत हैं। सं० २००७ मे संग्रहालयके बहुत बढ़ जानेके कारण इसे हिन्दूविश्वविद्यालय काशीमें स्थानान्तरित कर दिया गया है। (११) सं० २००० में सभाकी अर्द्ध शताब्दी और विक्रमकी द्विसहस्राब्दी बड़े समारोहके साथ मनायी गयी। केन्द्रीय सरकारके सहयोगसे सम्प्रति 'हिन्दी विश्वकोश' की योजनापर कार्य हो रहा है, जिसके अन्तर्गत पहला खण्ड १९६०ई० में प्रकाशित हुआ। —प्रे० ना० ट०

नागार्जुन १–नागा अरजन्द, नागा अंजन तथा नागनाथ नागार्जुनके ही विकृत रूप माने जाते हैं। राहुल सांकृत्यायनके अनुसार ये सरहपादके शिष्य थे तथा कांचीके निवासी और जातिके ब्राह्मण थे। 'प्रबन्ध चिन्तामणिमें' बताया गया है कि नागार्जुनने पारद सिद्धिके लिए पार्श्वनाथकी मूर्तिके सामने योग साधना की थी। इन्हें शालिवाहनका गुरु भी बताया गया है। अनुमान है कि ये दशवी-ग्यारहवीं शताब्दीमें हुए थे। हजारीप्रसाद द्विवेदीने इन्हें गोरखनाथकी पारसनाथी-शाखाका प्रवर्तक स्वीकार करते हुए इनका समय ग्यारहवीं शताब्दीके आसपास अनुमान किया है। कभी-कभी महायान सम्प्रदायके आदि आचार्य तथा शून्यवादके प्रवर्तक सिद्ध नागार्जुनसे इनकी अभिन्नताका उल्लेख किया जाता है परन्तु यह संगत नहीं जान पड़ता। नागार्जुनकी कोई स्वतन्त्र कृति अभी तक नही मिली है। 'नाथ सिद्धोंकी बानिया'में दो सबदी नागार्जुनकी भी दी गयी है, जिनमे सिद्धोंकी रहस्यवादी साधनाका उल्लेख हुआ है। नागार्जुनने इसे 'सिद्ध संकेत'का नाम दिया है। यह सिद्ध संकेत वास्तवमें नाडीचक्र और पिंडमे ब्रह्माण्डकी खोजके बाद अनेक स्थलों के नामोंके रूपमें प्रयुक्त होता था। नागार्जुन इन सकेतोके ज्ञाता जान पड़ते हैं।

[सहायक ग्रन्थ—पुरातत्व निबन्धावली : महापण्डित राहुल सांकृत्यायन; हिन्दी काव्यधारा : महापण्डित राहुल सांकृत्यायन; नाथ सम्प्रदाय : डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी; नाथ सिद्धोंकी बानियां : डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी; योग-प्रवाह : डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल।] —गो० प्र० सिं०

नागार्जुन २–असली नाम वैद्यनाथ मिश्र। 'नागार्जुन' और 'यात्री'के नामसे लिखा है। जन्म तरौनी (जिला दरभंगा)मे १९१० ई० मे हुआ। ये प्रगतिवादी विचारधाराके लेखक और कवि है। १९४५ ई० के आस-पास ये साहित्य सेवाके क्षेत्रमे आये। अब तक इनकी कई कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। प्रकाशित कृतियोंमे पहला वर्ग उपन्यासोका है—(१) 'रतिनाथकी चाची' (१९४८ ई०), (२) 'बलचनमा' (१९५२ ई०), (३) 'नयी पौध' (१९५३ ई०), (४) 'बाबा बटेसर नाथ' (१९५४ ई०), (५) 'दुखमोचन' (१९५७ ई०) और (६) 'वरुणके बेटे' (१९५७)। इन औपन्यासिक कृतियोमे नागार्जुन सामाजिक समस्याओके सधे हुए लेखक के रूपमें आते है। जनपदीय सस्कृति और लोक-जीवन उनकी कथा-सृष्टिका चौडा फलक है। उन्होने कही तो आचलिक परिवेशमें किसी ग्रामीण परिवारके सुख-दुःखकी कहानी कही है, कहीं मार्क्सवादी सिद्धान्तोकी झलक देते हुए सामाजिक आन्दोलनोंका समर्थन किया है और कहीं-कहीं समाजमे व्याप्त शोषण वृत्ति एवं धार्मिक-सामाजिक कुरीतियो पर कुठाराघात किया है। इन सन्दर्भोंमे नागार्जुनकी 'बाबा बटेसर नाथ' रचना उल्लेखनीय एवं परिपुष्ट कृति है। इसमे जमींदारी उन्मूलनके बादकी सामाजिक समस्याओं एवं ग्रामीण परिस्थितियोंका अंकन हुआ है। और उनके निदान रूपमें समाजवादी संगठन द्वारा व्यापक संघर्षकी परिकल्पना की गयी है। कथाके प्रस्तुती-

करणके लिए व्यवहृत किये जानेवाले एक अभिनव-रोचक शिल्पकी दृष्टिसे भी नागार्जुनका यह उपन्यास महत्त्वपूर्ण है।

नागार्जुनकी प्रकाशित रचनाओंका दूसरा वर्ग कविताओं-का है। उनकी अनेक कविताएँ पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित होती रही हैं। 'युगधारा' (१९५२) उनका प्रारम्भिक भाव-संकलन है। इधरकी कविताओंका एक संग्रह "सतरंगे पखों-वाली" अभी हालमें ही प्रकाशित हुआ है। कविकी हैसियत-से नागार्जुन प्रगतिशील और एक हद तक प्रयोगशील भी हैं। उनकी अनेक कविताएँ प्रगति और प्रयोगके मणि-कांचन संयोगके कारण एक प्रकारके सहजभाव-सौन्दर्यसे दीप्त हो उठी हैं। आधुनिक हिन्दी कवितामें शिष्टगम्भीर-हास्य तथा सूक्ष्म चुटीले व्यंग्यकी दृष्टिसे भी नागार्जुनकी कुछ रचनाएँ अपनी एक अलग पहचान रखती हैं। इन्होंने कहीं-कहीं सरस मार्मिक प्रकृति-चित्रण भी किया है। नागार्जुनकी भाषा लोक-भाषाके निकट है। कुछ थोडी सी कविताओंमे संस्कृतके क्लिष्ट-तत्सम शब्दोंका प्रयोग अधिक मात्रामे किया गया है किन्तु अधिकतर कविताओ और उपन्यासोंकी भाषा सरल है। तद्भव तथा ग्रामीण शब्दोंके प्रयोगके कारण इसमे एक विचित्र प्रकारकी मिठास आ गयी है। नागार्जुनकी शैलीगत विशेषता भी यही है। वे लोकमुखकी वाणी बोलना चाहते हैं। —र० भ०

नाट्य दीपिका—यह नारायण कविकी कृति है, जो १९वीं शताब्दी तक हिन्दीमे नाट्यशास्त्र विषयपर एक मात्र पुस्तक है। कविके आश्रयदाता दतियाके राजा भवानीसिंह-का समय १९ वीं शताब्दीमें पडता है, अतः इसका रचना-काल इसी शताब्दीमे माना जायगा। इसकी रचना प्रायः भरत तथा शार्ङ्गधरके आधारपर हुई है। ग्रन्थका प्रारम्भ पौराणिक आधारपर नाटककी उत्पत्तिसे हुआ है। भरतने गन्धर्वों और अप्सराओंके साथ ब्रह्माके सम्मुख अभिनय किया। महादेवने अपने गणोको यह कला सिखाई और पार्वतीने बाणासुरकी पुत्री उषाको सिखाया। उषाने गोपियों-को और गोपियोंने सुराष्ट्रकी स्त्रियोको इस कलाकी शिक्षा दी। इसमें आधार ग्रन्थोके समान रस, अभिनय और और गायन तीनोंका विवेचन है। विवेचनकी शैली प्रश्नो-त्तरकी है, जो 'नाट्यशास्त्र' से ग्रहण की गयी है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० का० शा० इ०।] —सं०

नाथ सिद्धोंकी बानियाँ—डाक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदीने सिद्धों और नाथोंकी दुर्लभ बानियोंका संग्रह इस ग्रन्थमें किया है। इसमे कुल मिलाकर २४ प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध सिद्ध नाथों-की वाणियाँ दी गयी हैं। वास्तवमे इसमें नाथोंमेंसे तो कोई नहीं छूटा किन्तु सिद्धोंमें केवल उन्हींका उल्लेख हुआ है, जो नाथ सम्प्रदायके आदि प्रवर्तकोंमें गिने जाते हैं। जालन्धरपाद, मत्स्येन्द्रनाथ आदि ऐसे ही सिद्ध हैं। नागा-र्जुन, भरत या भर्तृहरि, चर्पटी, गोरखनाथ आदिके अति-रिक्त इसमें कुछ ऐसे अप्रसिद्ध नाथ भी है, जिनका उल्लेख पहले नहीं हुआ था। धूँधलीमल, पार्वतीजी, महादेवजी, रामचन्द्रजी, लक्ष्मणजी, सतवन्तीजी आदि इसी प्रकारके साधक हैं।

नाथ सिद्धोंकी बानियोंका कला और शिल्पकी दृष्टिसे विशेष महत्त्व नहीं है। उनका महत्त्व केवल इतना है कि उनके द्वारा हमें अपनी भाषा और साहित्यकी पृष्ठभूमि-का अच्छा परिचय मिल जाता है। हिन्दीका सन्त-साहित्य निश्चय ही सिद्ध और नाथ परम्पराका ऋणी है। कबीरकी सबदी, साखी, संवाद आदिकी भाषा, शैली और विचार-धाराका अध्ययन नाथ सिद्धोंकी वाणियोंकी तुलनाके बिना पूर्ण नहीं हो सकता। कहीं-कहीं तो कबीरकी साखियाँ नाथोंकी वाणीका अनुवाद मात्र जान पड़ती हैं। निर्गुण-वादी सन्तोंकी वाणी ही नहीं, परवर्ती वैष्णव भक्ति-साहित्य में कमसे कम पद-शैली और विभिन्न रागोंमें पदोंका विभाजन नाथ सिद्धोंकी वाणियोंकी परम्परामें ही आता हैं। कबीरमें तो निरजन, सतगुरु, सुरत, निरत, उनमन आदि अनेक पारिभाषिक शब्दोंका प्रयोग नाथोंकी वाणियों-से ही लेकर किया जान पड़ता है। हिन्दी भाषाके साहि-त्यिक प्रयोगका इतिहास जाननेके लिए इन वाणियोंका महत्त्व असन्दिग्ध है। इनके अध्ययनसे प्रकट होता है कि हिन्दी-भाषाका रूप १२वीं-१३वीं शताब्दीतक कितना परिमार्जित हो चुका था कि उसमें साहित्य रचनाकी शक्ति आ गयी थी। —यो० प्र० सिं०

नाथूरामशर्मा 'शंकर'—सन् १८५९ ई०में अलीगढ़ जिलेके हरदुआगंज नामक कस्बेमें जन्म हुआ एवं वहीं सन् १९३५ ई०में उनका देहावसान भी हुआ। हिन्दी, उर्दू एवं फारसीका आपको प्रारम्भमे अध्ययन कराया गया, बादको संस्कृतमें भी पूरी तरह योग्यता अर्जित कर ली। नक्शा-नवीसी और पैमाइसका काम सीखकर वे कानपुरमें नहर विभागमें नौकरी करने लगे। अपने कार्यमें तो वे दक्ष थे ही, दफ्तरके अंग्रेज अफसरोंको हिन्दी भी सिखाते थे। लगभग साढ़े सात वर्ष वे कानपुरमें इस पदपर काम करते रहे, फिर अचानक ही एक दिन स्वाभिमानी नाथूराम शर्माने अपने सम्मानके प्रश्नपर नौकरीसे त्यागपत्र दे दिया और जन्म-स्थानको लौट गये। जीविकाके लिये उन्होंने नये सिरेमे आयुर्वेदका अध्ययन किया और शीघ्र ही पीयूषपाणि वैद्यके रूपमें विख्यात हो गये।

रचनाका स्रोत उनमें प्रारम्भसे ही विद्यमान था। कहते हैं कि तेरह वर्षकी आयुमे ही अपने एक साथीपर उन्होंने दोहा लिखा था। वह उर्दू-फारसीका जमाना था। मुशायरों का जोर था। बालक नाथूरामकी सृजनशक्ति पहलेसे इस उर्दू माध्यमकी ओर ही आकृष्ट हुई और वे हरदुआगंजके मुशायरोंमें शीघ्र ही अपना 'कलाम' पढनेके लिये आम-न्त्रित होने लगे। परन्तु इस समय तक आर्य समाजकी हवा बहने लगी थी—बालक नाथूरामपर उसका भी प्रभाव पडा एवं कानपुर आनेपर वह प्रभाव ही गहरा नहीं हुआ, भारतेन्दु मण्डलके अन्यतम नक्षत्र पं० प्रतापनारायण मिश्र और उनके 'ब्राह्मण'के सम्पर्कमें आये। उनकी प्रतिभा 'हिन्दी'के माध्यमसे यहींसे फूटी।

'अनुराग रत्न', 'शंकर सरोज' 'गर्भरण्डा-रहस्य' नामक ग्रन्थ आपके जीवनकालमें ही प्रकाशित हो गये थे। सन् १९५१ ई० में उनकी मुक्तक कविताओंके पाँच संग्रह (गीतावली, कविता कुंज, दोहा, समस्या पूर्तियाँ, विविध रचनाएँ) 'शंकर सर्वस्व' नामक संग्रहमें एक साथ संगृहीत होकर प्रकाशित हो गये हैं। इनके अतिरिक्त 'कलित

कलेवर' नामक नख-शिख वर्णन सम्बन्धित रीतिकालीन परम्पराका काव्यग्रन्थ और उन्होंने लिखा था, पर समसामयिक जीवन और प्रकृतियोंके प्रति जागरूक 'शंकरजी'ने उसे अपने ही हाथों नष्ट कर दिया। 'शंकर सतसई' नामक उनका एक अन्य ग्रन्थ जल कर नष्ट हो गया था।

शंकरजीका रचनाकाल भारतेन्दु-युगसे लेकर द्विवेदी युग तक प्रसरित है। वे वास्तवमें एक प्रकारसे संक्रान्ति युगके कवि थे। उनके रचनाकालका सबसे अधिक उर्वर समय वह था, जब आर्य समाज एवं भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन जोर पकड़ रहे थे। भारतेन्दु-युगकी परिणति द्विवेदी युगमें हो रही थी। साहित्यके विषय ही नहीं, भाषा भी बदल रही थी। उस समय पुरानेके प्रति मोह भी था, विवेकके आलोकमें नयेको ग्रहण करनेकी चेष्टा भी की थी। महाकवि 'शंकर'में ये सभी प्रवृत्तियाँ बद्धमूल थीं।

'शंकर'जी अपनी शिक्षा-दीक्षा, संस्कार तथा युगीन रुचियोंमें दो पूर्ववर्ती परम्पराओंसे सम्बन्धित थे। एक परम्परा उर्दू-काव्य और उसके मुशायरोंकी थी तथा दूसरी रीतिकालीन ब्रजभाषाके कवित्त, सवैया एवं दोहोंकी शृंगारी परम्परा थी। दोनों ही परम्पराएँ चमत्कार एवं वाक्-कौशलपर बल देती थीं। दोनों में ही अभ्यास एवं लक्षणशास्त्रपर अत्यधिक बल दिया जाता था। पदक, पुरस्कार उपहार एवं वाह-वाही कविके लिये नितान्त गौरवका विषय होते थे। 'शंकर' भी उर्दू और हिन्दीमें चमत्कारपूर्ण कविताएँ लिखते थे समस्या पूर्तियोंमें तो वे निष्णात थे। जीवनमें सैकड़ों समस्या पूर्तियाँ उन्होंने की और उनके आधारपर सम्मानित हुए। 'भारत प्रज्ञेन्दु', 'साहित्य सुधाधर' आदि दर्जनों उपाधियाँ उन्हें अपनी इस सहज चमत्कारिणी कवित्व शक्तिके लिए प्राप्त हुई थी। उनकी अभिव्यंजनाका यह वैदग्ध्य नवीन भाषा एवं काव्यके नवीन विषयोंको अपनानेके बाद भी सुरक्षित रहा।

उनका वास्तविक महत्त्व इन चमत्कारपूर्ण व्यंजनाओंकी अपेक्षा उस शक्तिमें निहित है, जिसके कारण वे नये जीवनकी समस्याओंको समझ सके थे। उस जीवनने उन्हें आन्दोलित एवं प्रेरित किया था। यदि यह शक्ति उनमें न होती तो न तो रीतिकालके रस-बोधसे पगा उनका मन देश-भक्ति एवं समाज-सुधारकी सैकड़ों फुटकर कविताएँ एवं 'गर्भरण्डा रहस्य' जैसा प्रबन्ध-काव्य एक सामाजिक समस्यापर लिख पाते और न वे खड़ीबोलीको काव्य के क्षेत्रमें इतने सरस शक्तिपूर्ण ढंगसे आत्मविश्वास-पूर्वक प्रयुक्त कर पाते। महावीरप्रसाद द्विवेदीने जब गद्य-पद्यकी भाषाओंको एक रूप करनेके लिए 'सरस्वती'के माध्यमसे प्रयास प्रारम्भ किया, तब खड़ीबोलीकी 'सरस्वती' में प्रकाशित कविताओंके बारेमें अपनी राय लिखते हुए डा० ग्रियर्सनने उन्हें नीरस बताया था। द्विवेदीजीने 'शंकर'-जीसे 'सरस्वती'की लाज रखनेकी प्रार्थना की। इस प्रार्थनाके परिणामस्वरूप 'शंकर'की 'सरस्वती'में प्रकाशित कविताएँ पढ़कर ग्रियर्सनने खड़ीबोलीकी कविताओंके सम्बन्धमें अपनी सम्मतिको परिवर्तित करते हुए द्विवेदीजीको लिखा— "अब मैं निश्चय पूर्वक कह सकता हूँ कि खड़ीबोलीमें भी सुन्दर और सरस कविताएँ हो सकती हैं।" खड़ीबोलीमें उनके लिखे कवित्त आज भी बेजोड़ माने जाते हैं। साहित्यके क्षेत्रमें गतानुगतिकता और आडम्बरको छिन्न-भिन्न करके सर्वथा नवीन प्रणालियोंके प्रयोक्ताओंमेंसे एक प्रमुख प्रयोक्ताका गौरव उन्हें मिलना चाहिये। देशकी आर्थिक दुरवस्था, किसानोंकी गरीबी और दरिद्रताका उन्होंने मर्म-स्पर्शी चित्रण किया है—"कैसे पेट अकिंचन सोय रहे, बिन भोजन बालक रोय रहे, चिथड़े तक भी न रहे तन पै, धिक धूल पड़े इस जीवन पै।" सम्प्रदायवाद, गुरुडम, धूर्तताको उन्होंने धिक्कारा है, भारतकी शस्त्रहीनतापर क्षोभ प्रकट किया है। पराधीनतापर मर्मान्तक वेदनाका प्रकाशन किया है। रिश्वतखोर अफसरों एवं सूदखोर महाजनोंको डॉट पिलायी है। शिल्पकलाकी दुर्दशापर आँसू बहाये हैं, कूपमण्डूकताका तिरस्कार किया है। धर्मके पाखण्डियोंके पाखण्डका निर्मम-भावसे उद्घाटन किया है। अपने युगकी समस्त नैतिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक समस्याओंपर उन्होंने अपने काव्यके माध्यमसे विचार किया है।

सुधार एवं संघर्ष-युगकी प्रवृत्तिके अनुकूल यह जागरूकता यद्यपि एकदम प्रत्यक्ष एवं स्थूल रूपमें प्रकट हुई है पर इससे उस प्रदेशके ऐतिहासिक महत्त्वमें कमी नहीं आती, जो 'शंकर'की वाणी द्वारा हिन्दी काव्यके विषयक्षेत्र एवं भाषाको प्राप्त हुआ है। उनके मनमें काव्य एवं छन्दकी एकता गहरे रूपमें विद्यमान थी—इसी कारण पुराने विषयोंमें ही नहीं, नयी शैलीमें भी छन्दसम्बन्धी त्रुटियाँ उनमें अपवादके लिये भी प्राप्त नहीं होतीं। छन्दोंके अनेक नये एवं सशक्त प्रयोग भी उन्होंने किये हैं। दो छन्दोंके मिश्रणसे नये छन्द भी उन्होंने बनाये हैं जैसे त्रोटकात्मक (मिलिन्दपाद) तथा कजली जैसे लोकछन्दोंको भी उन्होंने अपनाया है। मात्रिक छन्दोंमें भी समान वर्णोंकी योजनाका दुस्साध्य कार्य उन्होंने किया है। कवित्त छन्दके तो वे पण्डित थे। 'सनेही'जीने अपने प्रारम्भिक रचनाकालमें उनसे प्रशंसा पायी थी। वास्तवमें 'सनेही' एवं 'रत्नाकर'की परम्पराके वे बीज थे। उनका ब्रजभाषा-कविका रूप रत्नाकरमें निखरता है एवं खड़ीबोलीकी घनाक्षरी-सवैयाकी परम्परा 'सनेही स्कूल'में पुष्पित-पल्लवित होती है।

अपने हास्य एवं व्यंग्य काव्यके लिए जिस सचोट भाषाका उन्होंने उपयोग किया है, उसके कारण 'शंकरजी'की भाषाके बारेमें एक भ्रम फैल गया है कि वे परुष शब्दावलीका प्रयोग करते हैं। यह बात सत्य नहीं है। उनके शृंगार, करुण एवं शान्त रससम्बन्धी छन्दोंकी भाषा मृदुल एवं श्रुतिप्रिय है। अपने व्यंग्य-काव्यमें अवश्य उन्होंने मधुरताकी ओर ध्यान नहीं दिया। पर यह विषयका तकाजा था। व्यंग्य-काव्य लिखनेके लिए भाषाको अधिक समर्थ और शक्तिशाली होना भी चाहिए। 'शंकर'जीकी भाषामें यह सत्य पूर्णतया निहित है। 'गर्भरण्डा रहस्य'में विधवाओंकी बुरी स्थिति एवं मन्दिरोंमें चलनेवाले दुराचारकी इसी करारी भाषामें बखिया-उधेड़न की गयी है। वास्तवमें उनके सामाजिक

विषयोंपर लिखे गये काव्यका मूलस्वर ओजपूर्ण है। पद्मसिंह शर्मा उनके काव्यमें रस, अलंकार, छन्द आदि परम्परागत तत्वोंपर मुग्ध थे और इसी कारण आधुनिक कवियोंमें उन्हें सर्वश्रेष्ठ एवं अनेक अंशोंमें प्राचीन कवियोंसे भी अच्छा समझते थे। इतिहासज्ञ काशीप्रसाद जायसवालने उन्हें नयी पद्य-रचनाके मूल आचार्योंमेसे माना था एवं इस नवीनतासे अभिभूत गणेशशंकर विद्यार्थीने उनमें 'जबरदस्त मौलिकता' देखी थी।

स्वतन्त्र काव्य-रचनाके अतिरिक्त उर्दू-फारसी और संस्कृतकी कविताओं एवं सूक्तियोंके वे उत्तम अनुवादक भी थे। पद्मसिंह शर्मा उनसे बहुधा ऐसे अनुवाद कराया करते थे। कानपुरप्रवासमें उन्होंने प्रताप नारायण मिश्रके 'ब्राह्मण'के सम्पादनमें भी अपना बहुमूल्य सहयोग दिया था। फिर वे केवल कोरे साहित्यिक ही नहीं थे, राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य संग्राम एवं आर्यसमाजके आन्दोलनोंमे उन्होंने खुलकर निर्भयतापूर्वक काम किया था।

खड़ीबोलीके काव्यके प्रथम निर्णायकोंमें नाथूराम शर्मा अग्रणी है एवं कविताको समाजके साथ सम्बन्धित करनेका ऐतिहासिक दायित्व उन्होंने निभाया है। खड़ीबोलीको उन्होंने काव्यशैली एवं छन्दोके साँचे ही नहीं दिये, अभिव्यंजनागत सामर्थ्य भी प्रदान की। उनके इसी ऐतिहासिक महत्त्वको ध्यानमें रखते हुये ही प्रेमचन्दजीने दिल्ली प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनके अध्यक्षीय भाषणमें कहा था—"शायद कोई जमाना आये कि हरदुआगंज('शंकर'की जन्मभूमि हमारा तीर्थस्थान बन जाय।" काव्यमें जिसे 'रेटारिक' तत्त्व कहते है, वह हमें उनके काव्यमे प्रभूत मात्रामे उपलब्ध होता है, बल्कि कहना यों चाहिए कि हिन्दी-काव्यमे उनकी परम्परामे ही यह तत्त्व आज भी अप्रमुख नहीं हो सका है। —दे० शं० अ०

नादिर–प्रसिद्ध बादशाह नादिरशाह, जिसने मुहम्मदशाह रंगीलेके समय भारत पर आक्रमण किया था। इसके सैनिकों ने दिल्लीको बड़ी नृशंसतासे लूटा और जी भर कत्लेआम किया। इसी कारण मनमाने अत्याचारके लिए 'नादिर शाही'का प्रयोग किया जाता है। —मो० अ०

नानक (गुरु)–गुरु नानक सिखोंके आदिगुरु थे। कोई उन्हें गुरु नानक, कोई बाबा नानक, कोई नानक शाह, कोई गुरु नानक देव, कोई नानक पातशाह और कोई नानक साहब कहते हैं। गुरु नानकका जन्म १५ अप्रैल, १४६९ ई० (बैशाख सुदी ३, संवत् १५२६ विक्रमी)को तलवण्डी नामक स्थानमे हुआ था। सिख लोग तलवण्डीको 'ननकाना साहब' भी कहते है किन्तु सुविधाके लिए इनकी जन्म-तिथि कातिक पूर्णिमाको मनायी जाती है। तलवण्डी लाहौर (पश्चिमी पाकिस्तान) जिलेमें, लाहौर शहरसे ३० मील दक्षिण-पश्चिममे स्थित है।

नानकके पिताका नाम कालू एवं माताका तृप्ता था। उनके पिता खत्री जाति एवं वेदी वंशके थे। वे कृषि और साधारण व्यापार करते थे और गाँवके पटवारी भी थे। गुरु नानक देवकी बाल्यावस्था गाँवमें व्यतीत हुई। बाल्यावस्थासे ही उनमें असाधारणता और विचित्रता थी। उनके साथी जब खेल-कूदमें अपना समय व्यतीत करते तो वे नेत्र बन्द कर आत्म-चिन्तनमें निमग्न हो जाते थे। उनकी इस प्रवृत्तिसे उनके पिता कालू चिन्तित रहते थे।

सात वर्षकी आयुमें वे पढ़नेके लिए गोपाल अध्यापकके पास भेजे गये। एक दिन जब वे पढ़ाईसे विरक्त हो, अन्तर्मुख होकर आत्म-चिन्तनमें निमग्न थे, अध्यापकने पूछा, "पढ़ क्यों नहीं रहे हो?" गुरु नानकका उत्तर था, "क्या आप मुझे पढ़ा सकते है?" इस पर अध्यापकने कहा, "मैं सारी विद्याएँ और वेद-शास्त्र जानता हूँ।" गुरु नानक देवने "मुझे तो सांसारिक पढ़ाईकी अपेक्षा परमात्माकी पढ़ाई अधिक आनन्दायिनी प्रतीत होती है" कहकर निम्नलिखित वाणीका उच्चारण किया : "जालि मोह घसि मसु करि, मति कागदु करि सारु। भाउ कलम करि चितु लेखारी, गुर पुछि लिखु बीचारु। लिखु नाम सालाह लिखु लिखु अन्त न पारावारु"।१६। (श्री गुरु ग्रन्थ, सिरी रागु, महला १, पृष्ठ १६) अर्थात्, "मोहको जलाकर (उसे) घिसकर स्याही बनाओ, बुद्धिको ही श्रेष्ठ कागद बनाओ, प्रेमकी कलम बनाओ और चित्तको लेखक। गुरुसे पूछकर विचारपूर्वक लिखो। नाम लिखो, (नामकी) स्तुति लिखो और यह भी लिखो (कि उस परमात्माका) न तो अन्त है और न सीमा है।" इसपर अध्यापकजी आश्चर्यान्वित हो गये और उन्होंने गुरु नानकको पहुँचा हुआ फकीर समझकर कहा, "तुम्हारी जो इच्छा हो सो करो।"

इसके पश्चात् गुरु नानकने स्कूल छोड़ दिया। वे अपना अधिकांश समय मनन, निदिध्यासन, ध्यान एवं सत्संगमें व्यतीत करने लगे। गुरु नानकसे-सम्बन्धित सभी जन्म साखियाँ इस बातको पुष्ट करती हैं कि उन्होंने विभिन्न सम्प्रदायोंके साधु-महात्माओंका सत्संग किया था। उनमें-से बहुतसे ऐसे थे, जो धर्मशास्त्रके प्रकाण्ड पण्डित थे। अन्तःसाक्ष्यके आधारपर यह भलीभाँति सिद्ध हो जाता है कि गुरु नानकने फारसीका भी अध्ययन किया था। 'गुरु-ग्रन्थ साहब'में गुरु नानक द्वारा कुछ पद ऐसे रचे गये हैं, जिनमें फारसी शब्दोंका आधिक्य है।

गुरु नानककी अन्तर्मुखी-प्रवृत्ति तथा विरक्ति-भावनासे उनके पिता कालू चिन्तित रहा करते थे। नानकको विक्षिप्त समझकर कालूने उन्हे भैंसें चरानेका काम सौंपा। एक दिन ऐसा हुआ कि गुरु नानक देव भैंसें चराते-चराते सो गये। भैंसें एक किसानके खेतमे पड़ गयीं और उन्होंने उसकी फसल चर डाली। किसानने इसका उलाहना दिया किन्तु जब उसका खेत देखा गया, तो सभी आश्चर्यमें पड़ गये। फसलका एक पौधा भी नहीं चरा गया था।

९ वर्षकी अवस्थामें उनका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ। यज्ञोपवीतके अवसरपर उन्होंने पण्डितसे कहा : "दइया कपाह सन्तोखु सूतु जतु गढी सतु वटु, एहु जनेऊ जीअका हई ता पाडे घतु॥ ना एहु तुटै न मलु लगै ना एहु जले न जाइ॥" (श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, आसाकी वार, महला १, पृ० ४७१) अर्थात् "दया कपास हो, सन्तोष सूत हो, संयम गाँठ हो, (और) सत्य उस जनेऊकी पूरन हो। यही जीवके लिए (आध्यात्मिक) जनेऊ है। ऐ पाण्डे यदि इस प्रकारका जनेऊ तुम्हारे पास हो, तो मेरे गलेमे पहना दो, यह जनेऊ न तो टूटता है, न इसमें मैल लगता है,

न यह जलता है और न यह खोता ही है।"

सन् १४८५ ई०में नानकका विवाह बटालानिवासी, मूलाकी कन्या सुलक्खनीसे हुआ। उनके वैवाहिक जीवनके सम्बन्धमें बहुत कम जानकारी है। २८ वर्षकी अवस्थामें उनके बड़े पुत्र श्रीचन्दका जन्म हुआ। ३१ वर्षकी अवस्थामें उनके द्वितीय पुत्र लक्ष्मीदास अथवा लक्ष्मीचन्द उत्पन्न हुए।

गुरु नानकके पिताने उन्हें कृषि, व्यापार आदिमें लगाना चाहा किन्तु उनके सारे प्रयास निष्फल सिद्ध हुए। घोड़ेके व्यापारके निमित्त दिये हुए रुपयोंको गुरु नानकने साधुसेवामें लगा दिया और अपने पिताजीसे कहा कि यही सच्चा व्यापार है। नवम्बर सन् १५०४ ई० में उनके बहनोई जयराम (उनकी बड़ी बहिन नानकीके पति)ने गुरु नानकको अपने पास सुल्तानपुर बुला लिया। नवम्बर, १५०४ ई० से अक्तूबर १५०७ ई० तक वे सुल्तानपुरमें ही रहे। अपने बहनोई जयरामके प्रयाससे वे सुल्तानपुरके गवर्नर दौलत खाँके यहाँ मोदी रख लिये गये। उन्होंने अपना कार्य अत्यन्त ईमानदारीसे पूरा किया। वहाँकी जनता तथा वहाँके शासक दौलत खाँ नानकके कार्यसे बहुत सन्तुष्ट हुए। वे अपनी आयका अधिकांश भाग गरीबों और साधुओंको दे देते थे। कभी-कभी वे पूरी रात परमात्माके भजनमें व्यतीत कर देते थे। मरदाना तलवण्डीसे आकर यहीं गुरु नानकका सेवक गया था और अन्त तक उनके साथ रहा। गुरु नानक देव अपने पद गाते थे और मरदाना रबाब बजाता था।

गुरु नानक नित्य प्रातः बेई नदीमें स्नान करने जाया करते थे। कहते हैं कि एक दिन वे स्नान करनेके पश्चात् वनमे अन्तर्धान हो गये। उन्हें परमात्माका साक्षात्कार हुआ। परमात्माने उन्हें अमृत पिलाया और कहा, "मैं सदैव तुम्हारे साथ हूँ, मैंने तुम्हें आनन्दित किया है। जो तुम्हारे सम्पर्कमें आयेंगे, वे भी आनन्दित होंगे। जाओ नाममें रहो, दान दो, उपासना करो, स्वय नाम लो और दूसरोंसे भी नाम स्मरण कराओ।" इस घटनाके पश्चात् वे अपने परिवारका भार अपने श्वसुर मूलाको सौंपकर विचरण करने निकल पड़े और धर्मका प्रचार करने लगे। मरदाना उनकी यात्रामें बराबर रहा।

गुरु नानककी पहली 'उदासी'(विचरण यात्रा) अक्तूबर, १५०७ ई० से १५१५ ई० तक रही। इस यात्रामे उन्होंने हरिद्वार, अयोध्या, प्रयाग, काशी, गया, पटना, असम, जगन्नाथपुरी, रामेश्वर, सोमनाथ, द्वारिका, नर्मदातट, बीकानेर, पुष्करतीर्थ, दिल्ली, पानीपत, कुरुक्षेत्र, मुल्तान, लाहौर आदि स्थानोंमें भ्रमण किया। उन्होंने बहुतोंका हृदय परिवर्तन किया। ठगोंको साधु बनाया, वेश्याओंका अन्तःकरण शुद्ध कर नामका दान दिया, कर्मकाण्डियोंको बाह्याडम्बरोंसे निकालकर रागात्मिकता भक्तिमें लगाया, अहंकारियोंका अहंकार दूर कर उन्हें मानवताका पाठ पढ़ाया। यात्रासे लौटकर वे दो वर्ष तक अपने माता-पिताके साथ रहे। उनकी दूसरी 'उदासी' १५१७ ई० से १५१८ ई० तक यानी एक वर्षकी रही। इसमे उन्होंने ऐमनाबाद, सियालकोट, सुमेर पर्वत आदिकी यात्रा की और अन्तमें वे करतारपुर पहुँचे।

तीसरी 'उदासी' १५१८ ई० से १५२१ ई० तक लगभग तीन वर्षकी रही। इसमें उन्होंने रियासत बहावलपुर, साधुबेला (सिन्ध), मक्का, मदीना, बगदाद, बलख बुखारा, काबुल, कन्धार, ऐमनाबाद आदि स्थानोंकी यात्रा की। १५२१ ई०में ऐमनाबाद पर बाबरका आक्रमण गुरु नानकने स्वयं अपनी आँखोंसे देखा था।

अपनी यात्राओंको समाप्त कर वे करतारपुरमें बस गये और १५२१ ई० से १५३९ ई० तक वहीं रहे।

गुरुनानकका व्यक्तित्व असाधारण था। उनमें पैगम्बर, दार्शनिक, राजयोगी, गृहस्थ, त्यागी, धर्मसुधारक, समाजसुधारक, कवि, संगीतज्ञ, देशभक्त, विश्वबन्धु सभीके गुण उत्कृष्ट मात्रामे विद्यमान थे। उनमे विचार-शक्ति और क्रिया-शक्तिका अपूर्व सामंजस्य था।

गुरु-गद्दीका भार १५३९ ई० मे गुरु अंगद देव (बाबा लहना)को सौंपकर वे १५३९ ई०में करतारपुरमे 'ज्योति-ज्योति'में लीन हुए। 'श्री गुरु-ग्रन्थ साहब'मे उनकी रचनाएँ 'महला १' के नामसे संकलित हैं।

गुरु नानककी शिक्षाका मूल निचोड़ यही है कि परमात्मा एक, अनन्त, सर्वशक्तिमान, सत्य, कर्त्ता, निर्भय, निर्वैर, अयोनि, स्वयंभू है। वह सर्वत्र व्याप्त है। मूर्ति-पूजा आदि निरर्थक है। बाह्य साधनोंसे उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता। आन्तरिक साधना ही उसकी प्राप्तिका एक मात्र उपाय है। गुरु-कृपा, परमात्मा कृपा एवं शुभ-कर्मोंका आचरण इस साधनाके अंग है। नाम-स्मरण उसका सर्वोपरि तत्व है, और 'नाम' गुरुके द्वारा ही प्राप्त होता है।

गुरु नानककी वाणी भक्ति, ज्ञान और वैराग्यसे ओत-प्रोत है। उनकी वाणीमे यत्र-तत्र तत्कालीन राजनीतिक, धार्मिक एव सामाजिक स्थितिकी मनोहर झाँकी मिलती है, जिससे उनकी असाधारण देश-भक्ति और राष्ट्र-प्रेम परिलक्षित होता है। उन्होंने हिन्दुओं-मुसलमानों दोनोंकी प्रचलित रुढियो एवं कुसस्कारोंकी तीव्र भर्त्सना की है और उन्हे सच्चे हिन्दू अथवा सच्चे मुसलमान बननेकी विधि बतायी है। सन्त-साहित्यमे गुरु नानक ही एक ऐसे व्यक्ति हैं, जिन्होंने स्त्रियोकी निन्दा नही की, अपितु उनकी महत्ता स्वीकार की है।

गुरु नानककी कवितामें कहीं-कहीं प्रकृतिका बड़ा सुन्दर चित्रण मिलता है। 'तुखारी' रागके बारहमाहाँ (बारहमासा)में प्रत्येक मासका हृदयग्राही वर्णन है। चैत्रमे सारा वन प्रफुल्लित हो जाता है, पुष्पों पर भ्रमरोंका गुंजन बड़ा ही सुहावना लगता है। बैशाखमे शाखाएँ अनेक वेश धारण करती हैं। इसी प्रकार ज्येष्ठ-आषाढकी तपती धरती, सावन-भादोंकी रिमझिम, दादुर, मोर, कोयलोकी पुकारे, दामिनीकी चमक, सर्पों एवं मच्छरोंके दंशन आदिका रोचक वर्णन है। प्रत्येक ऋतुकी विशेषताओंकी ओर संकेत किया गया है।

गुरु नानककी वाणीमें शान्त एवं श्रृंगार रसकी प्रधानता है। इन दोनों रसोंके अतिरिक्त, करुण, भयानक, वीर,

रौद्र, अद्भुत, हास्य और वीभत्स रस भी मिलते हैं।

उनकी कवितामें वैसे तो सभी प्रसिद्ध अलंकार मिल जाते हैं, किन्तु उपमा और रुपक अलंकारोंकी प्रधानता है। कहीं-कहीं अन्योक्तियाँ बड़ी सुन्दर बन पड़ी हैं।

गुरु नानकने अपनी रचनामें निम्नलिखित उन्नीस रागों-के प्रयोग किये हैं—सिरी, माझ, गऊड़ी, आसा, गूजरी, बडहंस, सोरठि, धनासरी, तिलंग, सूही, बिलावल, रामकली, मारु, तुखारी, भरेउ, वसन्त, सारग, मलार, प्रभाती।

भाषाकी दृष्टिसे गुरु नानककी वाणीमें फारसी, मुल्तानी, पंजाबी, सिन्धी, ब्रजभाषा, खड़ीबोली आदिके प्रयोग हुए हैं। संस्कृत, अरबी और फारसीके अनेक शब्द ग्रहण किये गये हैं।

[सहायक ग्रन्थ—आदि ग्रन्थ : आर्नेस्ट ट्रम्प, लन्दन, १८७७ ई०; द सिख रिलीजन : मैक्स आर्थर मैकालिफ (खण्ड १), क्लैरेंडन प्रेस आक्सफोर्ड, १९०९ ई०; लाइफ आफ गुरु नानक देव : करतार सिंह, सिख पब्लिशिंग हाउस, अमृतसर।] —ज० रा० मि०

नाभादास–नाभादास अग्रदासके मुख्य शिष्य थे। इनकी गुरु-परम्परा इस प्रकार है—रामानन्द-अनन्तानाद-कृष्णदास पयहारी-अग्रदास। इनकी सिद्धतासे प्रसन्न होकर ही अग्रदासने इन्हे 'भक्तमाल'की रचना करनेकी आज्ञा दी थी। प्रियादासके अनुसार ये हनुमान्-वंशीय थे। बाल्यावस्था-से ही ये दृगहीन थे। जब ये पाँच वर्षके थे, देशमे भयंकर अकाल पडा और इनकी माँ इन्हे लेकर घरसे चल पड़ीं। मार्गमे किसी वनमें इन्हे छोडकर चली गयीं। संयोगसे कील्ह और अग्र उधरसे जा रहे थे। अनाथ बालकको उन्होंने उठा लिया, कमण्डलुके जलके छीटेसे बालककी आँखें खुल गयीं और उसने अग्रके कुछ प्रश्नोंके उत्तर भी दिये, फिर महात्माओंने बालकका पुत्रवत् पालन किया।

मुंशी तुलसीराम तथा तपस्वीरामजीके अनुसार हनुमान् वंशके प्रवर्त्तक समर्थ रामदास थे, जो तैलगमे गोदावरीके समीप रामभद्राचलके निवासी थे। इनके वशज हनुमान् वंशी कहे गये। रघुराज सिंहने हनुमान्-वंशका 'लागूली ब्राह्मण' अर्थ किया है। कुछ लोगोंने इन्हे डोम भी कहा है। रूपकलाजीका मत है कि पश्चिममें डोम भंगी नहीं माने जाते, बल्कि कलावन्त, ढाढ़ी, भाँट, कत्थककी भाँति ही वे भी गान-विद्यामे ही जीविकोपार्जन करते हैं। लाखा भक्तका परिचय देते हुए नाभाजीने इन्हे 'वानरवशी' कहा है। इस छप्पयकी टीकामें प्रियादासने लिखा है : "लाखा नामभक्त ताको वानरौ बखान कियो कहै जग डोम जासो मेरौ सिरमौर है।" इनके यहाँ सन्त गणप्रसाद भी आते थे। कुछ भक्तोंने इन्हें ब्रह्माका अवतार कहा है। भक्तिकी वृद्धिके लिए शंकरजीने नभसे हनुमान्का स्वेद गिराया, फलतः 'नभभूज' या 'नाभा' नाम पड़ा है। दक्षिण भारत-में डोमों और मेदारा जातियोंमें हनुमान् गोत्र मिलते हैं। अतः यह सम्भव है कि नाभाजीका भी जन्म डोम या मेदारा जातिमें हुआ हो और संयोगवश वे उत्तर—भारत आ गये हों।

नाभा जब कुछ बड़े हुए, कील्हकी आज्ञासे अग्रने इन्हें दीक्षा मन्त्र दिया और साधु-सेवामें नियोजित कर दिया। प्रियादासने इनकी आज्ञासे सन् १७१२ ई० में 'भक्तमाल' की टीका की थी। इनका नाम 'नाभाअली' भी था। इनका प्रथम नाम 'नारायणदास' था। सन् १५९५ ई०मे कान्हर-दासके भण्डारेमें ये गोस्वामी पदसे विभूषित किये गये। 'भक्तमाल' की रचना सन् १५९२ ई० में मानी जाती है। महावीर सिंह गहलोत सन् १६५८ ई०में इसे पूर्ण हुआ मानते हैं। रूपकलाजीके मतसे सन् १६६२ ई०में इनकी मृत्यु हुई। 'रसिक प्रकाश भक्तमाल'ने इन्हें विलक्षण रसिक कहा है।

इनकी दो प्रमुख रचनाएँ हैं : १—'भक्तमाल' २—'रामाष्टयाम'। 'भक्तमाल' इनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है। यह मध्ययुगके सन्तोंकी प्रमुख विशेषताओंका अच्छा उद्घाटन करती है। इसका सबसे सुन्दर प्रकाशन सीताराम शरण भगवान प्रसाद, 'रूपकला'ने नवलकिशोर प्रेस, लखनऊसे कराया है। 'रामाष्टयाम' वेंकटेश्वर प्रेससे सन् १८९४ ई०में प्रकाशित हुआ। इसकी एक प्रति ब्रजभाषा गद्यमे मिली है।

नाभाजीका महत्त्व उनके 'भक्तमाल'के कारण विशेष रूपसे है।

[सहायक ग्रन्थ—रामानन्द सम्प्रदाय : डा० बदरी-नारायण श्रीवास्तव; रामभक्तिमें रसिक सम्प्रदाय : डा० भगवती प्रसाद सिंह; भक्तमाल : नाभादास; रसिक प्रकाश भक्तमाल युगलप्रिया, सम्मेलन पत्रिका, वैशाख-आषाढ सन् १९४८ ई०, महावीर सिंह गहलोतका लेख, पृ० १२०।] —ब० ना० श्री०

नामदेव–नामदेव महाराष्ट्र-साहित्यमें एक प्रसिद्ध सन्त माने गये हैं, जिनके अभग सामान्य जनतामें भी प्रेमसे गाये जाते हैं। उन्होने हिन्दीमें भी कविता लिखी, इस भाँति वे हिन्दी साहित्यके इतिहासमे भी कवि और सन्तके रूपमें मान्य है। इनका जन्म नरसी-वमनी (सतारा)में सन् १२७० ई०मे हुआ। इनके आविर्भाव-कालके सम्बन्धमें विद्वानोंमे मतभेद है। डाक्टर भण्डारकरका मत है कि इनकी मराठी कविता सन्त ज्ञानेश्वरकी कवितासे अधिक परिष्कृत और परवर्ती है। अतः इनका आविर्भाव काल ईसाकी तेरहवी शताब्दीमे न होकर बादमें होना चाहिए। उनका कथन है कि चौदहवीं शताब्दीके प्रारम्भमें मुसल-मानोंने अपना राज्य दक्षिणमें स्थापित किया। नामदेवने अपने एक अभंगमें (सं० ३६४)में तुरकोंके द्वारा मूर्ति तोड़े जानेकी बात कही है। अतः नामदेव ईसाकी चौदहवीं शताब्दीके लगभग या उसके अन्तमे ही हुए होंगे (वैष्णविज्म, शैविज्म एण्ड माइनर रिलीजस सिस्टम्स : भण्डारकर, पृष्ठ ९२)। किन्तु प्रो० रानाडेका मत है कि नामदेव ज्ञानेश्वरके समकालीन ही थे। नामदेवकी भाषाके परिष्करणके सम्बन्धमें उनका कथन है कि नामदेवका काव्य शताब्दियों तक मौखिक रूपमें रहा है, अतः उसमें समय-समयपर संशोधन होता रहा। यही कारण है कि जनताकी श्रद्धा और काव्यपाठके सार्वजनिक प्रचारने भाषाको आधुनिकताका रुप दे दिया। मूर्ति तोड़नेके उल्लेखके सम्बन्धमें प्रो० रानाडेका कथन है कि अलाउद्दीन खिलजीने दक्षिणपर सन् १३०६ ई० में आक्रमण किया था।

उसने मलिक काफूरके सेना-नायकत्वमें एक विशाल सेना देवगिरिपर आक्रमण करनेके लिए भेजी। मलिक काफूरने क्रमशः देवगिरि, वारंगल, होयसल और पाण्ड्य राज्योंको जीता। उसने इन स्थानोंपर स्वर्ण और रत्नोंके असंख्य मन्दिर सुने थे। उसने अनेक स्वर्ण मूर्तियाँ और पूजाकी अनेक मूल्यवान् सामग्रियाँ तोड़ीं और अमित धन प्राप्त किया। इसी आधारपर प्रो० रानाडे नामदेवका आविर्भाव काल सन् १२७० ई० के लगभग मानते हैं।

नामदेव दमशेटी नामक दर्जीके पुत्र थे। इसलिए ये छीपा जातिमें प्रसिद्ध हैं। इनका विवाह राजाबाईसे हुआ था, जिनसे इनके चार पुत्र हुए—नारायण, महादेव, गोविन्द और विट्ठल। इनकी मृत्यु ८० वर्षकी अवस्थामें सन् १३५० ई० में हुई। इनकी समाधि पंढरपुरमें बनायी गयी।

नामदेव निर्गुण सम्प्रदायके एक बड़े सन्त हुए। कबीरके पहले होनेके कारण इन्हें सन्त सम्प्रदायकी पृष्ठभूमि उपस्थित करनेका श्रेय है। नामदेवने विट्ठलकी उपासना की। इसमें नाम-स्मरणका अत्यधिक महत्त्व है। यह विट्ठल सम्प्रदाय सन् १२०९ ई०के लगभग दक्षिणमें पंढरपुर नामक स्थानसे प्रचारित हुआ। इसके प्रचारक कन्नड सन्त पुण्डलीक हैं। विट्ठल-सम्प्रदाय, वैष्णव-सम्प्रदाय और शैव सम्प्रदायका मिश्रण है। इस सम्प्रदायमें विष्णु और शिवमें कोई अन्तर नहीं है। पंढरपुरमें शिवलिंगको शीशपर चढ़ाये हुए विष्णुकी मूर्ति है। इसी मूर्तिका नाम विट्ठल है। यही विट्ठल एक सर्वव्यापी ब्रह्मके प्रतीक बनकर समस्त महाराष्ट्रके आराध्य हैं। आठवीं शताब्दीके शैव-धर्मसे ग्यारहवीं शताब्दीके वैष्णव धर्मका समझौता विट्ठल सम्प्रदायके रूपमें हुआ और इसके सबसे बड़े सन्त नामदेव हुए। ज्ञानेश्वर महाराज और सन्त नामदेवने साथ-साथ समस्त उत्तर-भारतकी यात्रा की और अपने इस व्यापक धर्मका प्रचार किया। इस विट्ठल सम्प्रदायके अन्तर्गत बहुत-से सन्त हुए, जिनमें गोरा कुम्हार, चोखा मेला, जनाबाई, कान्होपात्रा वेश्यापुत्री आदिके नाम लिये जा सकते हैं। विट्ठल सम्प्रदायमें नाम स्मरणसे ही भक्ति होती है और भक्तिसे आत्मज्ञान। जब एक बार आत्मज्ञान हो गया तो मूर्ति-पूजा और कर्मकाण्डकी विशेष आवश्यकता नहीं रह जाती है। यह बात दूसरी है कि विट्ठलका नाम स्मरण करनेके लिए विट्ठलकी मूर्ति भक्त अपने समक्ष रखते हैं। आत्मज्ञानी भक्त ही सच्चे सन्त हैं। सन्त ज्ञानेश्वरने भी कहा है—"आत्मज्ञानी चोखडी सन्त हे माझे रूपडी।" अत यह स्पष्ट देखा जा सकता है कि इस विचारधारामें विट्ठलको ब्रह्मका प्रतीक मानकर उसके प्रेमकी पवित्र धारामें जाति और वर्गका सारा द्वेष बह जाता है और नामका सस्कार हृदयमें स्थिर हो जाता है। भक्तिका यह ऐसा उन्मेष था कि इसमें दरजी, कुम्हार, माली, भंगी, दासी और वेश्यापुत्री समान रूपसे भक्तिमें लीन हो सकते हैं। उन्होंने जहाँ 'अनाहत नाद'के अलौकिक माधुर्यमें परमात्माकी अनुभूति प्राप्त की, वहां प्रेमके दिव्य आलोकमें उन्होंने आत्मज्ञानका अनुभव प्राप्त किया और परमात्माकी विभूति देखी। महाराष्ट्रमें इस भक्तिका सस्कार दो बातोंपर निर्भर है। पहली कर्मकाण्डकी अपेक्षा हृदयकी पवित्रता और शुद्धतामें है और दूसरी व्यक्तिगत और जाति-गत सस्कारोंसे उठ कर जीवन-मुक्तिके धरातल तक पहुँचने में है। इन्होंने उस साधककी संज्ञा 'सन्त' दी जाती है।

माधवराव अप्पाजी मुलेने नामदेवके काव्यके सम्बन्धमें लिखा है—"उसमें सत्त्व, विश्वास और भक्तिका तथा प्रेममें आत्मसमर्पण, प्रकाश तथा लोकोत्तर आनन्दका आलोक है। वह हृदयके प्रति हृदयका गीत है।" नामदेवके काव्यमें सरसता और सुबोधता दोनोंका ही अद्भुत मिश्रण है। उन्होंने ऐसे अभगों और गीतोंकी रचना की कि उनके जीवनकालमें ही उनका यश समस्त भारतमें फैल गया।

नामदेवकी कविता उनके जीवनकालकी दृष्टिसे तीन भागोंमें विभक्तकी जा सकती है—

१. प्रथम उन्मेषकी रचनाएँ—जब वे मूर्तिपूजक थे; २. मध्यकालीन रचनाएँ—जब वे परम्परासे रहित हो रहे थे; ३. उत्तरकालीन रचनाएँ—जब वे ईश्वरका व्यापक रूप सर्वत्र देखने लगे थे। यही उत्तरकालीन रचनाएँ उनके निर्गुण मार्गकी संपोषिका है। वे समान रूपसे मराठी और हिन्दीमें कविता लिख सकते थे—"गजेन्द्र गणिकेची राखिली तुवालाज, उद्धरिला द्विज अजामिल ॥" (मराठी) "तारिले गनिका बिन रूप कुब्जा, बिआध अजामिलु तारि-अले ॥" (हिन्दी) —रा० कु०

नारद—ब्रह्माके पुत्र, एक देवर्षि। शापवश इन्हें गन्धर्व-योनि प्राप्त हुई थी, किन्तु तपस्याके बलसे उन्होंने फिर पूर्व रूप प्राप्त कर लिया। लगभग सभी पुराणोंमें इनका वर्णन मिलता है। नारदका प्रिय वाद्य वीणा है और वे हरिका गुणगान करते हुए विचरण करते रहते हैं। भागवत में इन्हें एक दासी ब्राह्मणका पुत्र कहा गया है, जो साधु-सन्तोंका जूठा प्रसाद खा-खाकर ज्ञानी बन गया था। जब इनकी माताकी सर्पदंशसे मृत्यु हो गयी तो ये उत्तर दिशाकी ओर चले गये। वहाँ एक सरोवरमें स्नान कर इन्होंने हरि स्मरण किया तो इन्हें भगवान्का मानस-दर्शन हुआ। जब इन्होंने प्रत्यक्ष दर्शनार्थ व्याकुलता प्रकट की, तब आकाशवाणी हुई 'मैंने तुम्हारे भीतर अपने प्रति अनुराग वृद्धि हेतु दर्शन दिये थे। तुम साधु-सेवामें रत रहो, उसीसे मेरे पास आ सकोगे।' इस प्रकार कालान्तरमें नारद परमधामको प्राप्त हुए।

एक बार नारदके मनमें अभिमान हो गया कि मैंने काम को जीत लिया है। इसका वर्णन उन्होंने ब्रह्मा और शिवसे किया। दोनों देवोंके मना करनेपर भी वे विष्णुके पास गये और अपनी विजय कह सुनायी। विष्णुने उनका अभिमान दूर करनेके लिए मार्गमें एक सुन्दर नगर निर्मित किया। वहाँकी राजकन्याका स्वयम्वर हो रहा था। कन्याके लक्षण देखकर कि इससे विवाह करनेवाला त्रिभुवनपति, अजय, अमर होगा, नारद उससे विवाह करनेको बेचैन हो विष्णुके पास रूप माँगने गये। विष्णुने उन्हें बन्दरका रूप दिया। नारद स्वयम्वरमें पहुँचे। कुमारी-ने छद्मवेशी विष्णुको जयमाल पहनायी। बादमें नारदने अपना बानर रूप देखकर विष्णुको शाप दिया कि तुम भी स्त्री-वियोगमें दुःखी होगे और बानर तुम्हारी सहायता

करेंगे। ये दोनों शाप रामावतारमें फलित हुए। नारदका वर्णन प्रायः संगीत, भजन, कलह एवं विद्वत्ताके सन्दर्भमें कई ग्रन्थोंमे आया है। केवल 'मानस'में उनका हास्यपूर्ण चित्र उपस्थित किया गया है। 'सूरसागर'में आरम्भसे अन्त तक—विशेष रूपसे छलपूर्वक कसको कृष्णके मारनेके लिए विविध उपाय करनेकी प्रेरणा देनेके सम्बन्धमें नारदका उल्लेख हुआ है। 'सूरसागर'के दशम स्कन्ध उत्तरार्धमें नारदके मोहकी कथा भी भागवतके आधार-पर दी गयी है। —मो० अ०

नारायण १–प्राचीन स्रोतोंमे नारायणके अनेक सन्दर्भ प्राप्त होते हैं—

१. नारायण एक सूत्र-द्रष्टा थे।

२. नरके ज्येष्ठ भ्राता एक ऋषि थे। देवी भागवत पुराणके अनुसार नर और नारायण दक्ष कन्याके पुत्र थे। जब दक्ष प्रजापति यज्ञ कर रहे थे तो नर और नारायण गन्धमादन पर्वत पर तपस्या कर रहे थे। सती जब यज्ञ-कुण्डमें कूदीं तो शंकरने अपना त्रिशूल यज्ञ विध्वस करनेके लिए भेजा। त्रिशूल यज्ञ विध्वंस करनेके अनन्तर बडे जोरों से नारायणकी छाती पर लगा। इस पर नारायणने गर्जना-की, जिसे सुनकर त्रिशूल लौट गया। महादेव कुपित होकर स्वयं नारायणसे संघर्ष हेतु आये, किन्तु ब्रह्मा द्वारा नारायण के भगवान् रूपका ज्ञान पाने पर उन्होने नारायणसे क्षमा मांग ली। नारायणकी उत्कृष्ट तपस्याका एक सन्दर्भ इन्द्रके वैमनस्यके सन्दर्भमे मिलता है। एक बार इन्द्रने नर और नारायणकी तपस्याके भयसे स्वर्गकी सुन्दरी कामसेनाको उनके पास डिगानेके उद्देश्यसे भेजा। नारायणने इन्द्र तथा अप्सराको लज्जित करनेके उद्देश्यसे अपने उरसे उर्वशी तथा अन्य अनेक इन्द्रकी अप्सराओमे श्रेष्ठ सुन्दरी अप्सराएँ उत्पन्न की। इसपर वे अप्सराएँ लज्जित हुई और उन्होंने स्वयंको वरण करनेका निवेदन किया। नारायण इसपर राजी हो गये। पौराणिक मान्यताओके अनुसार द्वापरमें अर्जुन नर और कृष्ण नारायण तथा गोपियाँ अप्सराएँ हुई (दे० 'अर्जुन')।

३. भागवत तथा विष्णु पुराणोंके अनुसार भूमित्रके पुत्र थे। कुछ मान्यताओंके अनुसार भूतिमित्रके पुत्र थे।

४. परिहारवशीय शूरसेन राजाके पुत्र थे।

५. तुषित साध्य देवोमेसे एक 'नारायण' भी माने गये है। 'नारायण'के नाम पर धार्मिक साहित्यमें इतनी अधिक उद्भावनाएँ होती गयी कि उनकी एक सुदृढ परम्परा प्राप्त होती है। —रा० कु०

नारायण २–इनके विषयमें अधिक ज्ञात नही। ये गोकुलके रहने वाले थे और दतियाके राजा भवानीसिंहकी आज्ञासे इन्होंने 'नाट्यदीपिका' नामक ग्रन्थकी रचना की थी। हि० सा० बृ० इ० (भाग ६)मे इसका नाम सम्भवतः भ्रमसे 'नारायण दीपिका' दिया गया है। यह हिन्दी नाट्यशास्त्र पर लिखी हुई रचना है और वह भी गद्यमे है। इसमे मुख्यतः भरत और शार्ङ्गधरका आधार ग्रहण किया गया है। इस कविके समयका अनुमान भवानीसिंहके अनुसार १९ वीं शताब्दी किया जाता है। —रा० कु०

नारायणप्रसाद अरोड़ा–२७ नवम्बर, १८८१ई०को कानपुर में जन्म हुआ। १९०६ ई० में क्राइस्ट चर्च कालेज, कानपुरसे बी० ए० करके वे अध्यापन-कार्यमें प्रवृत्त हुए। लोकमान्य तिलकके प्रभावमें आकर वे राजनीतिक कार्योंमें रुचि लेने लगे, जो यावज्जीवन बनी रही। इन्हीं राजनीतिक गतिविधियोंके सिलसिलेमें वे पाँच बार कारावास गये तथा कानपुर नगर, उत्तर-प्रदेशीय एवं अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटियोंसे सम्बधित रहनेके साथ ही सन् १९२४ ई०मे प्रान्तीय लेजिस्लेटिव कौंसिलके सदस्य भी चुने गये। लाला हरदयालके सम्पर्कमें रहनेके कारण सशस्त्र-क्रान्ति-कारियोंके भी वे सहायक रहे। समाज-सुधारके विविध कार्योंमे उन्होंने योग दिया। लावनीबाजोंके भी आप मुख्य-पोषक रहे हैं। स्वामी नारायणानन्द द्वारा लावणियोंका एक सग्रह कराके उसे आपने स्वयं ही प्रकाशित भी किया है। पत्रकारिताके क्षेत्रमे वे कानपुरके 'प्रताप'के प्रारम्भिक संस्थापकोंमें से है तथा 'संसार' और 'विक्रम'का सम्पादन कर चुके है। 'कानपुर इतिहास समिति' स्थापित करके उसकी ओरसे उन्होने कानपुर जनपदका इतिहास प्रकाशित किया है। विभिन्न विषयोपर उन्होने लगभग ७० पुस्तकें लिखी या सम्पादित की हैं। 'फलाहार या फल चिकित्सा', 'पहलवानी और पहलवान', 'मेरे गुरुजन','बच्चोंसे व्यवहार', 'चींटी', 'स्वाधीन विचार', 'कानपुरके प्रसिद्ध पुरुष', 'प्रताप लहरी' (सम्पादित) आदि उनकी मुख्य पुस्तके हैं। सर्वत्र उनकी भाषा सर्वजनग्राह्य एवं शैली सुबोध है। अरोड़ाजी-की मृत्यु ९ फरवरी, १९६१ ई०को हुई। —दे० शं० अ०

नारायणप्रसाद 'बेताब'–नारायण प्रसाद 'बेताब' कलकत्ता मे रहकर अल्फ्रेड थिएट्रिकल कम्पनीके लिए नाटक लिखते थे। इनके पूर्वज कश्मीरी ब्राह्मण थे, जो दिल्लीमें आकर बस गये थे। इनके पिता ढलाराय मिर्जा गालिबके शिष्य और अच्छे शायर थे। अल्फ्रेड कम्पनीमें कार्य करते समय इन्होंने एक पत्रिका निकाली थी, जिसमें शेक्सपियरके नाटकोंका अनुवाद छपता था। 'कतल नजीर', 'जहरी साँप', 'फरेबे मुहब्बत', 'रामायण', 'गोरखधन्धा', और 'कृष्ण-सुदामा' आपके प्रसिद्ध नाटक है। 'कतल नजीर' पहला नाटक है, जो आपने कम्पनीके लिए लिखा था। हिन्दीमे आपकी धूम 'महाभारत' नाटकसे हुई, जो सर्वप्रथम १९१३ ई० मे दिल्लीमे खेला गया था। नाटकोंमें संवाद लिखते समय बीच-बीचमें आपने पद्यका भी प्रचुर प्रयोग किया है, जो अस्वाभाविक लगता है। इसी प्रकार कहीं कही हिन्दी-संस्कृतके शब्दोंके साथ प्रयुक्त अरबी-फारसीके शब्द भी बेमेल खिचडी जान पडते है। इन दुर्बलताओंके बावजूद नारायणप्रसाद 'बेताब' हिन्दीमे अपने रंगमचीय पौराणिक नाटकोंके लिए सदैव स्मरणीय रहेंगे। आपने 'प्रात पुंज' नामक एक सकलन भी प्रकाशित किया था, जो विभिन्न प्रकारके तुकोंका कोश कहा जा सकता है। आपके जीवनका अन्तिम समय दिल्लीमे बीता। —रा० चं० ति०

नारी–(प्र० १९३७ ई०) सियारामशरण गुप्तके तीन उपन्यासोंमे सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। इसमें चिरन्तन नारीत्वकी मूक-वेदना अभिव्यक्त हुई है। इसमें नारीकी अतृप्त भूख देखना गुप्तजीके साथ अन्याय करना है। जिन उच्चतर मूल्यों—गाँधीवादी मूल्योंमें गुप्तजीकी

अटूट आस्था है वे नारीमें ही नहीं, उनके अन्य दो उपन्यासों—'गोद' और 'अन्तिम आकांक्षा'में भी व्याप्त है। जैनेन्द्रकी मृणाल और गुप्तजीकी जमुनाको एक ही माप-दण्डसे नापना उनपर अपने दृष्टिकोणको आरोपित करना है। मृणाल असामान्य जीव है तो जमुना साधारण प्राणी। मनोवैज्ञानिक ग्रन्थियाँ प्रायः असामान्य व्यक्तियोंमें ही देखी जाती हैं। गुप्तजीके अग्रज राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्तका लोकप्रिय कथन 'अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी…' नारीके सम्बन्धमें ठीक उसी प्रकार चरितार्थ है, जिस प्रकार यशोधरा और उर्मिलाके सम्बन्धमें। पर उनमें अन्तर भी उतना ही है, जितना काव्य और उपन्यासमें होता है।

जमुना, अजित और हल्ली इसके तीन प्रमुख पात्र हैं। जमुना एक सामान्य स्त्री है और जिस तरह सामान्य स्त्री अपने सीमित संसारमें सन्तुष्ट रहती है, उसी प्रकार वह अपने पति-पुत्रकी दुनियामें सुखी है पर झूठे कलंकोंके कारण वह पतिको पाकर भी नहीं पाती। अजितकी निःस्वार्थ सेवाओंके कारण उसकी ओर स्वभावतः आकृष्ट होती है लेकिन वह भी उसके हाथ नहीं आता। फिर तो वह संसारके तूफानोंमें चल निकलती है—केवल हल्लीके सहारे। यदि जमुनाकी सहनशीलतापर गाधीवादी रंग है तो अजितकी निःस्वार्थपरता और सेवापरायणतापर उसीका प्रभाव है। कलाकी दृष्टिसे यह अन्य उपन्यासोंकी भी अपेक्षा पेचीदा है, जिसके कारण कुछ प्रभावशाली स्थितियाँ तथा तज्जन्य चरित्रोंकी सृष्टि सम्भव हो सकी है। —ब० सिं०

नाल्ह–दे० 'नरपति नाल्ह'।

नासिकेतोपाख्यान–सदल मिश्रकी प्रसिद्ध कृति। इसकी रचना फोर्ट विलियम कालेजमें अध्यापन कार्य करते समय जानगिल क्राइस्टकी आज्ञासे सन् १८०३ ई० में की गयी थी। इसमें मह राज रघुकी पुत्री चन्द्रावती और उसके पुत्र नासिकेतका पौराणिक आख्यान खड़ीबोली गद्यमें वर्णित है। गंगामें स्नान करती हुई चन्द्रावतीने अज्ञानवश गंगाकी धारामें प्रवाहित कमल कोशमें बन्द महामुनि उद्दालकका वीर्य सूँघ लिया था। उसीके प्रभावसे उसकी नासिकासे नासिकेत उत्पन्न हुआ। नासिकेतके आचरणसे क्रुद्ध होकर उद्दालकने उसे यमपुर जानेका शाप दिया। नासिकेत यमपुर गया और यमराजसे अजरामर होनेका वरदान प्राप्तकर लौट आया। सदल मिश्रने यह आख्यान बड़ी ही मनोरंजक और प्रसन्न शैलीमें लिखा है। यह कृति नागरी प्रचारिणी सभा, काशीसे प्रकाशित हुई थी। इधर बिहार राष्ट्र-भाषा परिषद्ने (१९६० ई० में) 'सदल मिश्र ग्रन्थावली'के अन्तर्गत इसका पुनः प्रकाशन किया है। प्रारम्भिक हिन्दी खड़ीबोली गद्यके मान्यरूपको उदाहृत करनेके कारण इस कृतिका विशेष महत्त्व है। —रा० चं० ति०

निउनिया–हजारी प्रसाद द्विवेदीकृत 'बाणभट्टकी आत्मकथा' उपन्यासके प्रमुख नारी पात्रोंमें एक। यह कल्पित पात्र है। नारीके आत्मदानकी जीवन्त मूर्ति है, जिसके जीवनकी सार्थकता अपने समस्त क्रन्दन, हा-हाकार और वेदनाको छिपाकर प्रियके चरणोंमें अपनेको विसर्जित करनेमें है। विकलतापूर्ण अन्तर्मथन और गहरी घुटन इसके जीवनमें है पर वह उनसे निकलनेकी राह पा लेती है। लेखककी सर्वाधिक सहानुभूति इस पात्रके साथ है। —ब० सिं०

निकषा–रावण तथा कुम्भकर्णकी माता, सुमालीकी कन्या तथा ऋषि विश्रवाकी पत्नी। —मो० अ०

निकुंभ–१. हर्यश्व राजाके पुत्र, वर्हणाश्वके पिता, राम-रावण युद्धमें इनकी मृत्यु हो गयी। इन्होंने छात्र धर्मका दृढ़तासे पालन किया।

२. सुतलमें रहनेवाला एक ब्रह्म-राक्षस, जो स्फूर्जाका पुत्र था।

३. बलका पुत्र।

४. एक गणेश, जिन्होंने राजा दिवोदासके समय अपनी पूजा करनेके लिए एक ब्राह्मणको स्वप्न दिया। दिवोदासकी रानी सुयशाने पुत्रकामनासे निकुम्भकी पर्याप्त सेवा की, किन्तु पुत्र न होनेपर दिवोदासने उस मन्दिरको नष्ट कर दिया। फलस्वरूप देवताने नगर नष्ट हो जानेका शाप दिया। —मो० अ०

निपट–सम्भवतः इनका पूरा नाम निपटनिरंजन था। 'दि० भू०' में उद्धृत इनके छन्दोंमें यही छाप है। इनका जन्म बुन्देलखण्डके चन्देरी नगरमें हुआ था और औरंगजेबके समकालीन होनेके कारण इनका समय १७वीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें माना जा सकता है। ये बचपनमें साधुओंके साथ दक्षिण चले गये और औरंगाबादके समीप एकनाथजीके मन्दिरमें रहने लगे। कहते हैं कि औरंगजेब इनसे प्रभावित था। इनकी तीन रचनाओंका पता है—'कवित्त निपटजीके', 'शान्त रस वेदान्त' और एक ग्रन्थका नाम विदित नहीं है। शिवसिंहने 'निरंजन संग्रह' और 'शान्त सरसी' ग्रन्थ इनके बताये हैं। सम्भवतः ये उपर्युक्त ग्रन्थोंके ही नाम हैं। ये शान्त-रसके कवि हैं।

[सहायक ग्रन्थ—दि० भू० (भूमिका)।] —सं०

निमि–इक्ष्वाकुके पुत्र निमिने वशिष्ठसे पुत्रेष्टि-यज्ञ करानेकी प्रार्थना की। वशिष्ठने इन्हें प्रतीक्षा करनेको कहा, क्योंकि वशिष्ठ इसी उद्देश्यसे इन्द्रके यहाँ जा रहे थे। किन्तु निमिने वशिष्ठके लौटनेके पूर्व ही अन्य ऋषियोंकी सहायतासे यज्ञ पूरा किया, जिससे वशिष्ठको बहुत क्रोध हुआ। उन्होंने शाप दिया कि निमिका शरीर छूट जाय। प्रतिशोधमें निमिने भी वशिष्ठको वही शाप दिया। दोनोंके शरीर छूट गये। वशिष्ठ तो मित्रावरुणके वीर्यसे पुनः उत्पन्न हुए किन्तु ऋषियोंने जब सात दिनतक निमिका शरीर विभिन्न लेपों द्वारा सुरक्षित रखकर देवोंसे उनके जीवन-दानकी प्रार्थना की तो निमिने देह-बन्धन प्राप्त करनेसे इनकार कर दिया। इसपर देवताओंने उन्हें पलकोंके ऊपर स्थान दिया। तबसे निमि पलकोंके देवता कहे जाते हैं "मनहुँ सकुचि निमि तजे दृगंचल" (मानस)। —मो० अ०

निराला–दे० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'।

निषाद–१. वेणु राजाके शरीरमन्थनसे उत्पन्न कृष्णवर्ण एक पुरुष।

२. प्रथम धनुर्धर वसुदेवका पुत्र।

३. मल्लाह नामकी एक जाति, जो विन्ध्यगिरिके निकटवर्ती प्रदेशोंमें रहती थी। उसी जातिके एक प्रमुखने वन

जाते समय जब राम गंगा पार करने लगे तो अपनी नावसे उन्हें पार किया था। रामके प्रति उस निषादराजने बड़ी श्रद्धा-भक्ति दिखायी थी। तुलसीदासने अपने 'राम चरित मानस' तथा अन्य ग्रन्थोंमें निषादकी भक्तिकी भूरि-भूरि सराहना की है तथा ऐसी नीच जातिके एक व्यक्तिको अपनानेके कारण रामकी भक्त-वत्सलताका एक और प्रमाण दिया है। भक्ति-भावनाके ही कारण निषादराज वशिष्ठ जैसे ब्राह्मण विद्वान् ऋषि द्वारा आदर पानेका अधिकारी हुआ था। रामके चित्रकूटनिवासतक निषादराज उनका निकट-वर्ती सेवक रहा। तुलसीकी दास्यभावकी भक्तिका वह एक उत्तम आदर्श है। —मो० अ०

निर्गुण–दे० द्विजेन्द्रनाथ मिश्र 'निर्गुण'।

निर्मला १–प्रेमचन्दकृत 'निर्मला' (नि० का० १९२३ ई० और प्र० १९२७ ई०) में अनमेल विवाह और दहेज-प्रथाकी दुःखान्त कहानी है। उपन्यासके अन्तमें निर्मलाकी मृत्यु इस कुत्सित सामाजिक प्रथाको मिटा डालनेके लिए एक भारी चुनौती है। पिता उदयभानु लालकी मृत्यु हो जानेपर माता कल्याणी दहेज न दे सकनेके कारण अपनी पुत्री निर्मलाका विवाह भालचन्द्र और रँगीलीके पुत्र भुवन मोहनसे न कर बूढे वकील तोतारामसे कर देती है। तोतारामके तीन पुत्र पहले ही से थे, इसपर भी उनकी विलासिता किसी प्रकार कम न हुई। इतना ही नहीं, निर्मलाके घरमें आनेपर एक नवयुवती वधूके हृदयकी उमंगोंका आदर और उसे अपना प्रेम देनेके स्थानपर तोतारामको अपनी पत्नी और अपने बड़े लड़के मंसाराम के पारस्परिक सम्बन्धपर विलासिताजन्य सन्देह होने लगता है, जो अन्ततोगत्वा न केवल मंसारामके प्राणान्तका कारण बनता है, वरन् सारे परिवारके लिए अभिशाप बन जाता है। दूसरा लड़का जियाराम भी घरके विषाक्त वातावरणके प्रभावान्तर्गत कुसंगमें पड़कर निर्मलाके आभूषण चुराकर ले जाता है। रहस्यका उद्घाटन होनेपर वह भी आत्म-हत्या कर लेता है। सबसे छोटा लड़का सियाराम विरक्त होकर साधु हो जाता है। परिवारमें निर्मलाकी ननद रुक्मिणी उसको फूटी आँखों भी नहीं देख सकती और प्रायः निर्मलाके लिए दुःख और क्लेशका कारण बनती है। तोताराम दो पुत्रोंके विरहसे सन्तप्त होकर सियारामको ढूँढने निकल पड़ते हैं। उधर भुवन-मोहन निर्मलाको अपने प्रेम-पाशमें फाँसनेकी चेष्टा करता है और असफल होनेपर आत्महत्या कर लेता है। निर्मलाके जीवनमें घुटनके सिवाय और कुछ नहीं रह जाता। अन्तमें वह मृत्युको प्राप्त होती है। जिस समय उसकी चिता जलती है, तोताराम लौट आते हैं। इस प्रकार उपन्यासका अन्त करुणापूर्ण है और घटना-प्रवाहमें अत्यन्त तीव्रता है।

निर्मला और तोतारामकी इस प्रधान कथाके साथ सुधाकी कहानी जुड़ी हुई है। तोतारामको जब निर्मला और मंसारामके सम्बन्धमें निराधार सन्देह होने लगता है और निर्मला अपनेको निर्दोष सिद्ध करनेके लिए मंसारामके प्रति निष्ठुरताका अभिनय करती है और जब मंसारामको घरसे हटाकर बोर्डिंगमें दाखिल कर दिया जाता है, तो बालक मंसारामके हृदयको मार्मिक आघात पहुँचता है। उसकी दशा दिन-पर-दिन गिरती जाती है और अन्तमें अपने पिताका भ्रम दूरकर वह मृत्युको प्राप्त होता है। तोताराम-को मानसिक विक्षोभ होता है। इसी समय प्रेमचन्दने सुधा और उसके पति डॉ० भुवन मोहनका (जिसके साथ निर्मल-का पहले विवाह होनेवाला था) निर्मलासे मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित कराया है। सुधा और निर्मला घनिष्ठ मित्र बन जाती हैं। सुधा अपने शील, सौजन्य और सहानुभूतिपूर्ण हृदयसे निर्मलाको मुग्ध कर लेती है। वह निर्मलाकी छोटी बहन कृष्णाका विवाह अपने देवरसे कराती ही नहीं, वरन् निर्मलाकी माताकी गुप्त रूपसे आर्थिक सहायता भी करती है। निर्मलाके मायकेमें कृष्णके विवाहके बाद सुधाका पुत्र मर जाता है। निर्मलाके भी एक बच्ची पैदा होती है। उसे लेकर वह अपने घर लौट आती है। एक दिन सुधा-की अनुपस्थितिमें जब निर्मला उसके घर गयी तो डॉ० भुवन मोहन आत्मसंयम खो बैठते हैं। पता लगने पर सुधा अपने पतिकी ऐसी भर्त्सना करती है कि वह आत्म-ग्लानिके वशीभूत हो आत्महत्या कर लेता है। इस घटना के पश्चात् तो निर्मलाके जीवनकी विषादपूर्ण कथा अपने चरम सीमा पर पहुँच जाती है।

प्रेमचन्दने भालचन्द और मोटेराम शास्त्रीके प्रसंग द्वारा उपन्यासमें हास्यकी सृष्टि की है।

आकस्मिक रूपसे घटित होने वाली कुछ घटनाओंको छोड़कर 'निर्मला'के कथानकका विकास सीधे-सरल ढंगसे होता है। प्रासंगिक कथाओंके कारण उसमें दुरूहता उत्पन्न नहीं हुई है। कथानकमें कसावट है। कथा अत्यन्त दृढ़ताके साथ विवृत होती हुई अपने अन्तिम लक्ष्य तक पहुँच जाती है। —ल० सा० वा०

निर्मला २–प्रेमचन्दके उपन्यास 'निर्मला'की नायिका। आर्थिक कठिनाइयोंके कारण निर्मलाका विवाह विधुर तोता-रामके साथ हो जाता है। यह विवाह अनमेल विवाह है। पति उसे पैसेसे, आभूषणोंसे प्रसन्न करना चाहता है किन्तु उसे मानसिक सुख और उल्लास प्राप्त नहीं हो पाता। परिस्थितियोंके चक्रमें पड़कर वह अधिकाधिक दुःखी ही होती है। पतिका सन्देह और भी उसके जीवनके लिए अभिशाप सिद्ध होता है। एक अतृप्त नारी-हृदय लिए वह अपने पतिके घरमें बलि-पशुकी भाँति छटपटाया करती है। निर्मलाके पास मातृ-हृदय है, सहनशीलता है। मंसाराम को मरते देख वह पति और समाजकी परवा न कर अस्प-ताल पहुँच जाती है। यह नारीके उपयुक्त गर्व और साहस का उदाहरण है। ऐसा साहस उसने पहले दिखाया होता तो सम्भवतः मंसाराम मृत्युको प्राप्त न होता। मंसारामकी मृत्युके बाद वह कर्कशा और कृपण स्वभावकी हो जाती है। उसपर डॉ० भुवनका उसके प्रति प्रेम-निवेदन, डॉ० भुवनकी मृत्यु और गार्हस्थ्य जीवनकी विषमताएँ उसे घुला-घुलाकर मार डालती हैं किन्तु वह पतिके विरुद्ध विद्रोह नहीं कर पाती। —ल० सा० वा०

निर्वासित–मध्यवर्गीय समाजसे चुनी हुई रोमांसकी रंगीनीमें रंगी एक लम्बी कहानी इलाचन्द्र जोशीकृत 'निर्वासित' (१९४६ ई०) में कही गयी है। इसका मुख्य

कथानायक महीप प्रेमकी त्रिकोणात्मक कथाका आधार बनकर प्रेम-यात्रियोंके मनमें निर्वासित हो जाता है। प्रेमकी यह कथा नवीन न होते हुए भी अपना एक सजग आकर्षण रखती है। इसे हम नायिका-प्रधान उपन्यास कह सकते हैं।

इसमें नारी पात्रोंकी विशिष्ट चारित्रिक परम्पराएँ तथा मान्यताएँ हैं। इनकी नारियाँ प्रेमको व्यक्तिगत तथा मानसिक प्रश्नके रूपमें स्वीकार करती हैं और पुरुषकी अपेक्षा सशक्त, संयमी और प्रभावशाली दिखायी पड़ती हैं। उनका अपना एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व होता है। अपने प्रेमी पुरुषोंको प्रेरित करनेकी इनमें अद्भुत क्षमता पायी जाती है। उनके जीवनका दृष्टिकोण युगीन नव-जागरणकी जाग्रत् नारीका है, जो युगान्तकारी परिवर्तनका प्रतीक है। इनकी नारी पुरुष परिचालित सामाजिक मान्यताओंको आँख मूँदकर स्वीकार करना नहीं जानती, बल्कि साहस और त्यागके साथ वह पुरुषको उसकी नारीविषयक हीन भावनामें परिवर्तनकी सूचना देती है। 'सन्यासी' की शान्ति, 'प्रेत और छाया' की मंजरी तथा 'मुक्ति पथ' की सुनन्दा इस बातकी साक्षी हैं।

पुरुषके च्युत होनेपर वे अपना पथ स्वयं चुनती हैं और उसपर चलकर अत्यन्त गौरवमय जीवन व्यतीत करती हैं। पुरुषकी अनैतिक गतिविधियों और उसके अत्याचारोंसे मुक्ति पानेकी दो प्रमुख भावनाओंका इनमें उन्मेष पाया जाता है—१. पुरुषकी उपेक्षाके प्रति प्रतिशोधकी भावना और २. स्वतन्त्र अस्तित्व बनाये रखनेके लिए स्वावलम्बनकी भावना। युग-युगोंसे शोषित क्षीणकाय पुतली नारीने इस उपन्यासमें जो विशाल चण्डीका रूप धारण किया है, उसे देखकर आश्चर्यके साथ हर्ष होता है। नीलिमा, प्रतिमा और शारदाकी अन्तर्वेदनाके माध्यमसे उपन्यासकार प्रचण्ड नारी सृष्टिका मन्थन करते हुए सर्वशोषित भावमात्र शेष नारीकी ज्वालाको ज्वालामुखीका रूप देनेमें सफल हुआ है। असह्य पीड़नोंसे जर्जर नारी प्राणोंमें जैसे कोमलताका कोई अंश शेष नहीं रह गया, वह तो केवल एक दहकती हुई अनुभूतिसे एक धधकती हुई आत्माकी चटकती हुई कराह है, जो सत्वहीन खालकी धौंकनीसे निकली हुई गरम साँससे संसार भरके नारी-शोषकोंको झुलसा देनेके लिए पर्याप्त है।

इस उपन्यासके द्वारा इलाचन्द्र जोशीने नवयुगकी उस नारीका स्वरूप सामने रखा है, जो सामाजिक सुख-साधनोंके प्रलोभनोंके बहावमें बहते हुए भी जीवनके किसी महान् किन्तु अस्पष्ट लक्ष्यकी ओर पग बढ़ानेके लिए अपने अन्तर्मनसे उत्सुक तथा जागरूक रहती है। चाहे वह अपने आदर्शकी स्पष्ट झाँकी न पाती हो, पर इतना तो निश्चित रूपसे वह अनुभव करती है कि जीवितसे लगने वाले जिस गुड़ियों-गुड्डोंके बीचमें वह रहती है, उनके ढोंग और बनावटी जीवनके परे जीवनकी स्वाभाविक स्वच्छता कहीं न कहीं अवश्य वर्तमान है। —ग० प्र० पा०

निशा निमंत्रण-'बच्चन'के गीतोंका संकलन, जो, १९३८ ई० में प्रकाशित हुआ। १३-१३ पंक्तियोंके ये गीत हिन्दी साहित्यकी श्रेष्ठतम उपलब्धियोंमेंसे हैं। शैली और गठनकी दृष्टिसे ये गीत अतुलनीय हैं। नितान्त एकाकीपनकी स्थितिमें लिखी गयी ये त्रयोदशपदियाँ अनुभूतिकी दृष्टिसे वैसी ही सघन हैं जैसी भाषा-शिल्पकी दृष्टिसे परिष्कृत। सभी गीतोंका स्वतंत्र अस्तित्व होते हुए भी रचनाका गठन एक मूल भावसे अनुशासित है। प्रथम गीत 'दिन जल्दी-जल्दी ढलता है' से प्रारम्भ होकर 'निशा निमन्त्रण' रात्रिकी निस्तब्धताके बड़े सघन चित्र प्रस्तुत करता हुआ प्रातःकालीन प्रकाशमें समाप्त होता है। सभी दृष्टियोंसे 'निशा निमन्त्रण'में बच्चनका कवि अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँच गया है। —सं०

निशुंभ—यह महर्षि कश्यपका औरस पुत्र था, जो दनुके गर्भसे उत्पन्न हुआ था। निशुंभके दो भाइयों शुंभ और नमुचिका भी उल्लेख मिलता है। इन्द्रके द्वारा नमुचिके वधित होने पर कुपित होकर शुंभ और निशुंभने स्वर्ग पर आधिपत्य करके शासन प्रारम्भ कर दिया। निशुंभने दुर्गाके वधका भी उपक्रम किया था पर बादमें दुर्गासे इन दोनोंने अपनेमें-से किसी एकसे विवाह करनेको कहा। दुर्गाने एक शर्त रखी कि परस्पर-युद्धमें जो मुझपर विजयी होगा, उसीके साथ विवाह करूँगी। दोनोंका परस्पर युद्ध हुआ तथा देवीने निशुंभ और शुंभको क्रमशः मार डाला (दे० 'शिवराज भूषण', २२)। —रा० कु०

निहालचन्द वेरी- जन्म १८९३ ई०। आपका बाल्य-जीवन बिहार और काशीमें, उसके बादका जीवन सन् १९४० तक कलकत्तेमें बीता। आप 'हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय'के नामसे प्रकाशनका काम करते रहे। पाँच पुस्तकें लिखी हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—'मोती महल', 'जादूका महल', 'सोनेका महल', 'आनन्द भवन' और 'प्रेमका फल'। सभी तिलस्मी उपन्यास हैं। १९४० ई० से आप काशीमें रहने लगे हैं। —सं०

निहाल दे—निहाल दे राजस्थान और ब्रजके जन-जीवनमें रमी हुई लोक-गाथा है, जो गीतोंमें बद्ध होकर प्रायः सावनके दिनोंमें गायी जाती है। इसे अपनी विशेष धुनके कारण स्वतन्त्र लोक-राग भी कहा जाता है। राजकुमार सुलतानने अपने पिता द्वारा देश निकाला पाकर एक राज्यमें शरण पायी। वहीं निहाल देसे उसका विवाह हुआ। विवाहके पश्चात् उसे फिर भागना पड़ा। नरवर गढ़ जाकर उसे फिर आश्रय मिला। उसने ढोलाकी पत्नी मरवणको भी अपनी धर्म बहन बनाया। इधर निहाल देने अपने पतिके पास अनेक सन्देश भेजे। जब सुलतान निहाल देसे मिलनेके लिए पहुँचा तो वह विरहमें तप्त होकर चितारूढ़ हो चुकी थी। राजस्थानी गीतमें निहाल देकी विरहावस्थाका सजीव चित्रण हुआ है। ब्रजमें एक दूसरी ही कथा इस गीतमें निबद्ध है। निहाल दे चन्द्रावलीकी भाँति माँके मना करनेपर भी झूला-झूलनेके लिए बागमें जाती है। वहाँ मुगलोंने उसे पकड़ लिया। अन्तमें भाई आकर बहनको मुक्त कराता है। निहाल दे सावनके गीतोंका लोकप्रिय स्त्री चरित्र है। 'निहाल दे-सुलतान'के नामसे कुछ 'ख्याल' भी मारवाड़ी भाषामें उपलब्ध है। —श्या० प०

नीरजा—'नीरजा' महादेवी वर्माका तीसरा काव्य-संग्रह है, जिसका प्रथम प्रकाशन १९३४ ई० में इण्डियन प्रेस, प्रयाग

द्वारा हुआ था। इसमें कुल ५८ कविताएँ संकलित है। जिस तरह इस संग्रहमें उनकी भावनाएँ अधिक संयमित, आत्मनिष्ठ और अभिव्यंजना अधिक भावावेशयुक्त हो गयी है, उसी तरह इसमें कविताओंका काव्यरूप भी गीत-काव्यका है क्योंकि गीतकाव्यमे ही संयमित भावातिरेककी अभिव्यक्ति कमसे कम शब्दोंमे और आन्तरिक भावलयके अनुरूप गेय छान्दसिक-लयमें हो सकती है।

'नीरजा'में महादेवीकी वह सामंजस्यपूर्ण भाव-चेतना दृष्टिगत होती है, जिसमें दुःख और सुख मिलकर एक हो गये हैं। इसी कारण इस संग्रहमे महादेवीका 'अश्रुनीर दुःखसे आविल और सुखसे पंकिल' है (गीत सं० १)। इस संग्रहकी दूसरी विशेषता यह है कि इसमे प्रकृति-चित्रणकी अधिकता है किन्तु प्रकृतिको महादेवीने आलम्बन-रूपमे नही ग्रहण किया है। कहो वह उद्दीपन-रूपमें गृहीत है, कहीं प्रतीक और संकेतके रूपमे और कही केवल आलंकारिक अप्रस्तुतके रूपमे। प्रकृतिके विभिन्न रूपोमे कभी कवयित्रीको अपने आध्यात्मिक प्रियतमका रूप दिखायी पडता है जैसे "तेरा मुख सहास अरुणोदय, परछाईं रजनी विषाद मय" (सं० १२) और कभी प्रकृति उसे अपने ही समान उसी प्रियतमसे मिलनेके लिए आकुल दीख पड़ती है, जिसके लिए वह स्वयं तड़प रही है। ऐसे गीतोंमें प्रकृति अभिसारिकाके रूपमे दिखायी पड़ती है। इस कारण प्रकृति उसकी सहयोगिनी और सहायिका बनकर प्रियके आगमनका संकेत करती है, "मुसकाता संकेत भरा नभ, अलि क्या प्रिय आने वाले हैं?" (सं० ४१) या "लाये कौन संदेश नये घन?" (सं० ४३) अथवा प्रियका पदचाप सुनकर स्वयं प्रसन्न और पुलकित हो उठती है (सं० २)। कुछ ही गीत ऐसे है, जिसमें प्रकृतिका स्वतन्त्र चित्रण हुआ है (सं० ११, ३२)। पर इनमे भी प्रकृतिको नारी-रूपमे ही चित्रित किया गया है। एक गीत (सं० ५४)मे कवयित्री अपने प्रियमें इतना तद्रूप हो जाती है कि प्रकृति ही उसे अपनी प्रेयसी प्रतीत होने लगती है। उस विराट् विश्व-प्रकृतिको उसने अपनी 'प्रिय-प्रेयसि' कहकर नर्तन करती हुई अप्सराके रूपमे चित्रित किया है "प्रिय प्रेयसि तेरा लास अमर"। गीत संख्या ९, १९, २३, ३६, ३९, ४५, ४७ और ५७ मे प्रकृति-चित्रण अलंकार-रूपमे हुआ है। इनमे कवयित्रीने कहीं अपने विरही जीवन और दुःखी प्राणोके साथ जलजात, मधुमास, घन, पिक, पाटल और कमल दलपर अंकित चित्रका रूपक खड़ा किया है और कहीं अन्योक्ति और अपह्नुति अलंकारोंके रूपमे प्रकृतिके साथ अपना साम्य प्रस्तुत किया है।

विषयोंका वैविध्य इस संग्रहकी कविताओंमे नहींके बराबर है केवल तिरपनवें गीतमे भारतीय जनताको बुद्ध और कृष्णका आदर्श सामने रखकर उद्बुद्ध किया गया है, जो पूरे संग्रहके लिए विषयान्तर जैसा है किन्तु एक निश्चित विषयके लघु गागरके भीतर ही महादेवीने गहरी और विभिन्न आयामोंवाली अनुभूतियोंका विशाल सागर भर दिया है। संयमित शब्द चयन, गेय छन्द-योजना और वक्रतामयी मोहक अभिव्यंजना-पद्धतिके कारण इस संग्रहकी कविताओंमें और भी उत्कृष्टता आ गयी है। —शं० ना० सिं०

नील–राम-सेनाका एक प्रसिद्ध वानर, जो विश्वकर्माका अंशावतार था। इसके साथीका नाम नल था। रामकी सेना उतारनेके लिए इसने सेतु रचना की थी। यह वीर योद्धा था और रामके अश्वमेधयज्ञमें अश्वके रक्षार्थ साथ गया था। —मो० अ०

नीलकंठ १–भगवान् शंकरका एक नाम। समुद्र-मन्थनसे अमृतके पश्चात् विष निकला, जिसके गन्धमात्रसे संसार अचेत होने लगा। तब ब्रह्माके अनुरोधसे शिवने उसे अपने गलेमें धारण कर लिया, जिससे उनका कण्ठ कुछ नीला पड गया। इसीसे उनका नाम नीलकण्ठ है। इस विशेषणका प्रयोग प्रतीक रूपमे ऐसे व्यक्तिके लिए होता है जो जन-हितके लिए सामूहिक संकटको अपने ऊपर लेकर अपने प्राणोंको उत्सर्ग कर सकता है। —मो० अ०

नीलकंठ २–तिकवाँपुरके रत्नाकर त्रिपाठीके चार कवि पुत्रोमे एक नीलकण्ठ नामसे प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार ये मतिराम, भूषण तथा चिन्तामणिके भाई है। शिवसिंहने इनका असली नाम जटाशंकर दिया है, जिसको अन्य इतिहास ग्रन्थोंमे प्रायः स्वीकार किया गया है। 'शिवसिंह सरोज'मे इनका उपस्थितिकाल १६७३ ई० माना गया है। इनकी एक कृति 'अमरेस विलास' 'अमरू-शतक'का छन्द-बद्ध अनुवाद है और इसका रचनाकाल १६४१ ई० है। नायिका-भेद विषयपर एक खण्डित ग्रन्थ भी प्राप्त हुआ है। 'दिग्विजय भूषण'मे उदाहृत एक छन्दके अनुसार ये औरंगजेबके समकालीन थे। —सं०

नीलदेवी (प्र० १८८१ ई०)–भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने जिस समय नाट्य-रचना प्रारम्भ की, उस समय हिन्दीकी अपनी कोई नाट्य-परम्परा नहीं थी। उनके सामने या तो संस्कृत नाट्य-साहित्य पद्धति थी या पाश्चात्य नाट्य-साहित्य एवं पद्धति। उन्होंने दोनोंमेंसे आवश्यक तत्त्व ग्रहणकर हिन्दीके अपने नाट्य-शास्त्रको जन्म दिया और दोनों प्रकारकी रचना-पद्धतियोंके अनुसार ग्रन्थ प्रस्तुत किये। 'नीलदेवी' नवीन या पाश्चात्य पद्धतिके अनुसार लिखा गया ऐतिहासिक गीति-रूपक (वियोगान्त) है। उसमे दस अंक हैं। पहले अंकमे कोरस द्वारा भारतकी क्षत्राणियोंका यशोगान है। द्वितीय अंकमे अब्दुश्शरीफ खाँ काजीसे सूरजदेवकी वीरताका वर्णन और किसी न किसी प्रकार उसपर विजय प्राप्त करनेका उल्लेख करता है। तृतीय अंकमें सूरजदेव शत्रुका सामना करनेका निश्चय तो करता है किन्तु अधर्म द्वारा नहीं। चतुर्थ अंकमे भठियारीके यहाँ चपरगट्टू खाँ और पीकदान अलीका हास्यपूर्वक वार्तालाप है। पाँचवें अंकमे यवनोंके विजयकी ओर संकेत है। सातवे अंकमें सूरजदेव एक लोहेके पिंजड़ेमे बन्द और भारतकी स्वाधीनताके सम्बन्धमे हाय-हाय करता हुआ मूर्च्छित अवस्थामें दृष्टिगोचर होता है। आठवें अंकमे मियाँ और पागल दो गुप्तचरो द्वारा सूरजदेवके प्राणान्तकी सूचना मिलती है। पागलका प्रलाप सोद्देश्य और सारगर्भित है। नवें अंकमें नीलदेवी कौशल द्वारा शत्रुपर विजय प्राप्त करनेका दृढ़ निश्चय करती है। दसवें अंकमें नशेमें चूर अमीरकी

मजलिसमें गायिकाके वेषमें नीलदेवी अमीरका वध कर डालती है और उसका संकेत प्राप्त कर कुमार सोमदेव अपने सैनिकोंके साथ मुसलमानोंपर टूट पड़ता है और विजय प्राप्त करता है। नाटकसे भारतेन्दु हरिश्चन्द्रकी देश-भक्तिके साथ-साथ नवोत्थानकालीन उनके नारी-सम्बन्धी दृष्टिकोणका परिचय भी प्राप्त होता है। —ल० सा० वा०

नीहार–'नीहार' महादेवी वर्माकी प्रथम काव्य-कृति है। इसका प्रथम संस्करण सन् १९३० ई० में गाँधी हिन्दी पुस्तक भण्डार, प्रयाग द्वारा प्रकाशित हुआ था और इसकी भूमिका (परिचय) अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'ने लिखी थी। इसमें महादेवीकी सन् १९२३ ई० से लेकर सन् १९२९ ई० तकके बीच लिखी कुल ४७ कविताएँ संगृहीत हैं। यद्यपि ये कवयित्रीकी प्रारम्भिक रचनाएँ हैं पर इनमें काव्यकी वह उत्कृष्टता और व्यक्तित्वकी वह छाप स्पष्ट दिखायी पड़ती है, जो उनकी परवर्ती रचनाओंमें विशेष रूपमें परिस्फुट और विकसित रूपमें सामने आयी। किन्तु इसमें 'फिर एक बार', 'स्मृति', 'नीरव भाषण', 'फूल', 'परिचय' आदि कुछ कविताएँ ऐसी भी हैं, जो किशोरावस्था-सुलभ भावुकता और अपरिपक्व भावनाओंकी अभिव्यक्ति करती हैं और अभिव्यंजनाकी शिथिलताके कारण कवयित्रीका प्रारम्भिक काव्याभ्यास प्रतीत होती हैं।

कविताओंमें छायावादका उन्मेषकालीन आवेग, आवेश और कल्पनाकी अतिशयता आद्यन्त वर्तमान है किन्तु महादेवीकी दृष्टि केन्द्रगामिनी है, परिधिगामिनी नहीं। इसी कारण इन कविताओंमें जगत्के नाना नाम-रूपात्मक विषयोंका समावेश नहीं हुआ है, न तो प्रकृतिको अज्ञात प्रियका रूप मानकर उसके सौन्दर्यमें उनका मन ही रमा है। वस्तुतः इन कविताओंमें प्रारम्भसे ही महादेवी उस भाव-भूमिकामें पहुँच गयी हैं, जिसमें कवि अपने परोक्ष प्रियकी खोज, परिचय, दर्शन, मिलन, विरह आदिकी रहस्यवादी अनुभूतियोंकी ही अभिव्यक्ति करता रहता है। उनका आराध्य प्रिय किसी अज्ञात 'उस पार' वाले लोकमें रहता है और कभी-कभी प्रकृतिके रम्य-रूपोंमें अपनी झलक दिखा जाता है। प्रियकी झलक मिलते ही कवयित्री उस विरह-वेदनामें उन्मत्त हो जाती है, जो सूफी-काव्यकी निजी विशेषता है। इस तरह सूफी कवियोंकी भाँति महादेवी भी इन कविताओंमें अपने प्राणोंके छालोंको अपनी निधि मानने लगती हैं ("मिलन' पृष्ठ ४) और उनके टूटे तारोंसे करुण विहाग निकलने लगता है ('अतिथिसे')। वह जगत्में ही विरह-वेदनामें घुलकर मिटनेको जीवनका लक्ष्य मानती है, स्वर्ग-अपवर्ग उनके लक्ष्य नहीं हैं। वही कहती हैं "क्या अमरोंका लोक मिलेगा तेरी करुणाका उपहार? रहने दो हे देव, अरे यह मेरा मिटनेका अधिकार!" ('अधिकार' पृष्ठ १२)। वह अपनी वेदनाकी असीमताके बलपर ही अनन्त करुणामयकी तुलनामें अपनेको छोटा माननेको तैयार नहीं हैं—"उनसे कैसे छोटा है मेरा यह भिक्षुक जीवन! उनमें अनन्त करुणा है, इसमें असीम सूनापन!" ('अभिमान' पृष्ठ ३२)। महादेवीकी यह विरह-वेदना अनुभूतिपरक और मनोवैज्ञानिक नहीं, केवल बौद्धिक और काल्पनिक है क्योंकि वे किसी भी मूल्य पर पीड़ासे अपना नाता तोड़नेको तैय[ार] नहीं है। वे आराध्य और पीड़ामें कोई अन्तर ही न मानतीं, इसीसे पीड़ा ही उनकी क्रीड़ा बन गयी है—"[...] शेष नहीं होगी यह मेरे प्राणोंकी क्रीड़ा। तुमको पीड़[ा में] ढूँढ़ा, तुममें ढूँढ़ूँगी पीड़ा" ('उत्तर' पृष्ठ ५७)। इस त[रह] महादेवी वर्माका माधुर्य-भावनावाला रहस्यवाद, जो आ[गे] चलकर पूर्णतः विकसित हुआ, 'नीहार'में ही अंकुरित [और] प्रस्फुटित हो गया है। —शं० ना० सिं[०]

नूरकचंदा–दे० 'चन्दायन'।

नूरजहाँ–१९३५ ई० में प्रकाशित गुरुभक्त सिंह 'भक्त' [का] यह प्रथम प्रबन्ध है और अफगनकी विवाहिता एवं मुग[ल] सम्राट् जहाँगीरकी प्रेयसी नूरजहाँके इतिहास-सुरभि[त] चरित्रको लेकर लिखा गया आधुनिक युगका एक ब[हु]चर्चित एवं लोकप्रिय महाकाव्य है। 'नूरजहाँ'में 'वन श्री' के कविने प्रेमके कुश-कंटकमय मार्गमें जीवन-संगीत पकड़नेका प्रयास किया है। अन्तरकी समस्त पीड़ा, प्राण[ोंका] अविकल उच्छ्वास एवं जीवनकी समग्र रस-ग्राहिता कवि-कल्पनाकी सपनीली हथेलीपर रूप, राग एवं रोमांस [से] महमहाती इस प्रेम-पीड़ाकी कहानीको रखकर मा[नो] उसके तलवर्ती भाव-संवेगको मोहिनी व्यथासे परिणय [करा] दिया है। यही कारण है कि 'नूरजहाँ'की कहानीमें आदि[से] अन्त तक जीवनकी ऊष्मता, संघर्षका वेग, यथार्थ[की] मूर्तिमत्ता, मनोविज्ञानकी अन्तःस्पर्शिता और प्रकृ[ति] शोभाका सजीव परिवेश कसमसा रहा है। द्विवेदी-युगी[न] अतिआदर्शवाद एवं परिपाटी-बद्ध आचारिकताके सम[य] जीवनकी यह यथार्थवादी मानवता एवं अपरोक्ष चित्र[ण] एक नवीन वस्तु एवं दृष्टि है। ये सामान्य मानवीय चरि[त्र] अपनी दुर्बलता एवं सबलतामें सजीव एवं अमर हैं[।] यह मानवतावाद और प्रेम-सौन्दर्यका यथार्थ जीव[न] दर्शन 'नूरजहाँ'की नवीनता, मौलिकता एवं विभाज[क] सुन्दरता थी, जिसने हिन्दी जगत्ने उसका पलकों[से] स्वागत किया।

नूरजहाँ शकुन्तलाकी भाँति परित्यक्ता निसर्ग कन्या है[।] कविने उसके अनुरूप ही प्रकृति उल्लासका आयोजन कि[या] है। ईरानी संस्कृति एवं प्रकृतिका अत्यन्त मनमोहक चित्र[ण] हुआ है। 'नूरजहाँ'के प्रेम-सौन्दर्य-दर्शनमें सूफियो[ंकी] विराट्ता, ईरानियोंकी मांसलता एवं भारतीयोंकी चिन्त[न]मयता एक साथ घुलमिल गयी है। अनारकली प्रेम[की] उत्सर्गात्मक विराट्ता, नूरजहाँ उसकी मानवीय गम्भीर[ता] एवं जमील उसके ईर्ष्या, छलकी प्रतिनिधि है[।] 'नूरजहाँ'की कथा अभारतीय, पर उसका आत्मस्[वर] भारतीय है। सर्व सुन्दरी देश-प्रेम और मानव[ीय] प्रणयकी इस रंगशालामें प्रेमके लोकोत्तर रूपको प्रकाशि[त] करती है। यह ग्रन्थ इतिहास, रोमांस एवं काव्य[की] त्रिवेणी है। —श्री० सिं० क्षे[०]

नृग–परम दानी एवं न्यायमूर्ति, इक्ष्वाकुके पुत्र, एक प्रसि[द्ध] राजा। एकबार किसी ब्राह्मणकी एक गाय इनकी गायों[में] आ मिली, जिसे दूसरे ब्राह्मणको दानमें दे डाला। गाय[के] स्वामीने अपनी गाय पहचान कर झगड़ा किया। फल[तः] दोनों राजाके पास आये। नृग इस गायके बदले ए[क]

सहस्र गायें देनेको प्रस्तुत हुए किन्तु ब्राह्मणोंने स्वीकार न किया। नृग भयभीत एवं किंकर्तव्यविमूढकी भाँति मौन रहकर सिर हिलाने लगे। इसपर ब्राह्मणोंने शाप दिया कि तू हमें लड़ाकर बैठा-बैठा गिरगिटकी तरह सर हिलाता है, तो जा एक हजार वर्ष गिरगिट योनिमें रहेगा। परिणामतः वे मृत्युके बाद गिरगिट हुए और कृष्णावतारमे भगवान् कृष्ण द्वारा उनका उद्धार हुआ (दे० सूर०, पद ४८७२)। —मो० अ०

नृपशंभु-शिवसिंहके अनुसार सितारागढ़के सोलंकी क्षत्रिय राजा थे और इनका वास्तविक नाम शम्भूनाथसिंह था। भगवतीप्रसाद सिंहने इनको मराठा कहा है(दि० भू० की भूमिका)। मनिरामसे इनकी घनिष्ठता थी। इनका 'नख-शिख' नामक ग्रन्थ प्रसिद्ध है, जो जगन्नाथदास 'रत्नाकर'के सम्पादनमें भारत जीवन प्रेस, काशीसे प्रकाशित हुआ (हि० पु० सा० में लहरी प्रेस, बनारससे और नारायण प्रेस मुजफ्फरपुरसे १८९३ ई०मे प्रकाशित होनेकी सूचना है)। इनके छन्द 'सरोज' तथा 'दिग्विजयभूषण'में भी उद्धृत हैं। इनके काव्यमे शृंगारिक भावना और उक्ति वैचित्र्य रीति-परम्पराके अनुकूल है, पर कवित्व साधारण स्तरका है।

[सहायक ग्रन्थ—शि०स०; दि०भू० (भूमिका)।]—स०

नेही नागरीदास-राधावल्लभ सम्प्रदायके अनुयायी नागरीदासके नामके साथ नेही विशेषणके रूपमे प्रयुक्त होता रहा है। हित शब्दके पर्यायके रूपमे नागरीदासजीने इस शब्दको अपने नामका अंग बना लिया था। नागरीदास बेरछाके निवासी थे। चतुर्भुजदास गढ़ानिवासीके वे समकालीन थे। एकबार चतुर्भुजदास घूमते हुए बेरछा आ निकले, वहाँ उनका नागरीदाससे परिचय हुआ। चतुर्भुजदासकी सत्संगतिसे प्रभावित होकर नागरीदास घरबार छोड़कर वृन्दावन चले आये। जातिके वे पँवार क्षत्रिय थे। घरपर जमींदारी थी, किन्तु उनकी रुचि प्रारम्भसे ही भगवद्भक्तिकी ओर थी। नागरीदासका जन्म संवत् निर्णय करना कठिन है, किन्तु चतुर्भुजदासके समसामयिक होनेसे आनुमानिक रूपसे संवत् १६०० (सन् १५४३ ई०) के आसपास इनका जन्मसमय ठहराया जाता है।

वृन्दावन आनेपर भी नागरीदास केवल हित-हरिवंशकी वाणीके अनुशीलन करनेमे ही व्यस्त रहते थे। रासलीला या भागवत-कथा आदिमें भी नही जाते थे। भागवत कथाके क्रूर कथा-प्रसंगोंसे उन्हे खीझ पैदा होती थी। केवल कोमल भावनाओके विचारमे लीन रहना ही उन्हें प्रिय था। वृन्दावनमे जब उन्हे कोलाहल प्रतीत हुआ तो एकान्तवासकी इच्छासे वे बरसाना चले गये। वहाँ उन्होंने राधाष्टमी पर्वको बड़े समारोहसे मनाना प्रारम्भ किया, जो आजतक उसी रूपमे मनाया जाता है।

नेही नागरीदासकी वाणीका विषयानुसार तीन वर्गोंमें विभाजन किया जा सकता है। 'सिद्धान्त दोहावली'-९३५ दोहे, 'पदावली'-१०२ पद, और 'रस-पदावली'-२३२ पद। 'सिद्धान्त दोहावली'मे हित हरिवंश द्वारा प्रतिपादित भक्ति-सिद्धान्तका कथन किया गया है। हरिवंशका यशोगान भी इन दोहोंमें है। नेही नागरीदासके काव्यमें भाव और कला दोनोंका समुचित समन्वय है। भाषा परिमार्जित ब्रज है। यत्र-तत्र बुन्देलीका प्रभाव अवश्य आ गया है। तत्सम पदावलीको दूर ही रखा गया है। अलंकार या रीति-वृत्ति आदि काव्यके उपकरणोंका प्रयत्नपूर्वक प्रयोग नहीं है, सहज रूपमें ही उनका प्रयोग हुआ है। अभीतक नागरीदासजीका 'अष्टक' ही प्रकाशित हुआ है। शेष रचनाएँ अप्रकाशित रूपसे वृन्दावनके राधावल्लभीय गोस्वामियों तथा साधुओंके पास सुरक्षित हैं।

[सहायक ग्रन्थ—राधावल्लभ सम्प्रदाय—सिद्धान्त और साहित्य : डा० विजयेन्द्र स्नातक; गोस्वामी हितहरिवंश और उनका सम्प्रदाय : ललिताचरण गोस्वामी।] —वि० स्ना०

नैना-प्रेमचन्दकृत 'कर्मभूमि'में एक पात्र। नैनाका व्यक्तित्व अत्यधिक अनुरागपूर्ण है। उसके हृदयमें भाई अमरकान्त और भाभी सुखदा दोनोंके प्रति स्नेह है। जन-सेवाकी भावना भी नैनामे है। दुर्भाग्यवश उसका विवाह एक निम्नकोटिके व्यक्तिके साथ हो जाता है और गरीबोंके लिए मकानोंकी योजनाके आन्दोलनमे पतिकी गोलीका शिकार बन जाती है किन्तु उसके बलिदानसे गरीबोंको सफलता प्राप्त होती है। —ल० सा० वा०

नैषध-१. कौरवोंके पक्षमें लड़ने वाले एक राजा, जो धृष्टद्युम्न द्वारा मारे गये।

२. नलका एक नाम (दे० 'नल')। —मो० अ०

नैषध (गुमान)-संस्कृतके नैषधीयचरित अथवा नैषध महाकाव्यके रचयिता श्रीहर्ष है। संस्कृतका यह मूल ग्रन्थ २२ सर्गोंमे उपलब्ध है, जिनमें नल-दमयन्तीके प्रेम और विवाहकी रोचक कथा वर्णित है। उनकी प्रथम मिलन-रात्रिके वर्णनके बाद ग्रन्थ समाप्त हो जाता है। कुछ विद्वानोंके मतमे यह ग्रन्थ अपूर्ण है। कुछके अनुसार यह पूर्ण है। कतिपय परम्परागत उक्तियोंके अनुसार मूल ग्रन्थमे ६० अथवा १२० सर्ग थे। सत्रहवे सर्गमे कलि, नल और दमयन्तीको पृथक् करनेका प्रयत्न करता है किन्तु कथा दोनोके विवाह तथा वैवाहिक आनन्दके वर्णनसे समाप्त हो जाती है। इसीसे ग्रन्थकी अपूर्णताका भ्रम होता है।

गुमान मिश्रने संस्कृतके नैषध-काव्यका हिन्दीमें पद्यानुवाद किया है। गुमान मिश्रने कथाका विस्तार २३ सर्गोंमें किया है, जिसके कारण संस्कृतके सर्गोंके क्रममे हेर-फेर हो गया है। इस अनुवादका प्रकाशन दो स्थानोंमे हुआ है—१. वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई द्वारा श्रावण सं० १९५२, शाके १८१७ में और २. काव्य कलानिधि अर्थात् हिन्दी नैषधचरित—गुमान मिश्र विरचित, सम्पादक सत्य जीवन वर्मा (भारतीय)—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा संवत् १९९९ मे। नैषध महाकाव्यका एक मूल-सहित भाषानुवाद इधर हरगोविन्द शास्त्रीने किया है, जो चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी द्वारा सन् १९५४ ई०में प्रकाशित हुई है। गुमान मिश्र द्वारा अनूदित 'नैषध'के वेंकटेश्वर प्रेसके संस्करणमे अनेक अशुद्धियाँ थी। उसीके आधारपर मूल संस्कृत नैषधसे मिलाकर हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयागने 'काव्यकलानिधि' नामसे उसका प्रकाशन किया। अन्य किसी हस्तलिपिके अभावमें इस ग्रन्थका पाठ

और प्रामाणिक नहीं बनाया जा सकता था। अभी तक हिन्दीमें इसका कोई भी हस्तलिखित ग्रन्थ देखनेमें नहीं आया है। दोनों संस्करणोंमें शब्दोंमें यत्र-तत्र अन्तर मिलता है, जैसे वेंकटेश्वर प्रेसके 'वरणी' और 'प्रकाशु'के स्थानपर हिन्दी साहित्य सम्मेलनके संस्करणमें 'बरनी' और 'प्रकासु' शब्द मिलते हैं।

गुमान मिश्रका नाम सर्वसुख मिश्र था। कवि कहता है—"मिश्र सर्वसुख सुकविवर श्री गुरुचरन मनाइ। बरनि कथा हौं कहत हौ होइहै बड़े सहाइ॥"

ये महोबेके गोपालमणिके पुत्र थे। इनके तीन भाई थे—दीप साहि, सुमान और अमान। ये जिला खीरीके मोहमदी नगरके राजा अली अकबर खाँके आश्रित कवि थे। ये विद्वान् और हिन्दी कवियोंके आश्रयदाता थे। इनके दरबार में प्रेमनाथ, निधान आदि अन्य कवि भी थे। ग्रन्थके आरम्भमें कविने मोहमदी नगरका वर्णन किया है—"धरमके धाम नर नारी अभिराम जहाँ ऐसो महमदी नामनगर बसतु है। पवन अगमगामी भीतें बड़ी भवन नहीं ऐसो गाइयत महमदीके प्रकाशु है। जह राजत नगर नरेश बर खाँ साहिब अकबर अली।..."

प्रत्येक सर्गके अन्तमें कविने अली अकबर खाँका नाम लिया है। "इति श्री मत्प्रचण्ड दौर्दण्डप्रतापमार्तण्डमण्डित-भूमण्डल। खण्डल श्री खाँ साहब अली अकबर खा प्रोत्साहित गुमानमिश्रविरचिते काव्यकलानिधौ... वर्णन नाम... सर्गः।"

रामचन्द्र शुक्लने अकबर अली खाँको पिहानीका राजा बतलाया है। सम्भवतः अकबर अली खाँके राज्यका विस्तार हरदोई जिलेके पिहानी, गोपामऊ आदि स्थानों तथा खीरी जिलेके मोहमदी आदि स्थानों तक था। क्योंकि उक्त स्थान लगभग दोनों जिलोंके सीमान्तपर स्थित है। राजा अली अकबर खाँके पिताका नाम अब्दुल्ला खा था। ये सोमवंशीय क्षत्रिय थे और इनका हिन्दू नाम बदरसिंह था। ये जिला हरदोई, परगना गोपामऊके अन्तर्गत बटिय गावमें अपने नाना दानशाह अहिवंशीके यहाँ रहते थे। जिस समय सैयद सुर्मने दानशाहपर आक्रमण किया उसने बदर-सिंहको मुसलमान बना लिया। तदन्तर अब्दुलाने सारी सम्पत्तिपर अधिकार कर लिया। उसने मोहमदी नगरमें एक दुर्ग बनवाया और राजाकी उपाधि धारण की। इस प्रकार आचार्य रामचन्द्र शुक्लका मत अंशतः सत्य प्रतीत होता है।

गुमान मिश्रने संस्कृतके नैषधके आधारपर अपने ग्रन्थकी रचना की है, ऐसा वे स्वयं कहते है—"खा साहेबके हुकुम ते मिश्र गुमान विचारि, बरणी नैषधकी कथा, संस्कृतकी अनुहारि।" किन्तु यह केवल अनुवाद ही नहीं है बल्कि अनेक स्थलोंपर कविने अपनी मौलिक कवित्व-शक्तिका परिचय दिया है। संस्कृतके नैषधमें केवल २२ सर्ग हैं। गुमान मिश्रने कथाका विस्तार २३ सर्गोंमें किया है। इस कारण संस्कृतके सर्गोंके क्रममें हेर-फेर हो गया है। गुमान मिश्रने आरम्भका सर्ग प्रस्तावनाके रूपमें अपनी ओरसे जोड़ा है।

कविने ग्रन्थका आरम्भ संवत् १८२४ शुक्लपक्षकी सप्तमी, दिन बृहस्पतिवारको किया, जैसा वे स्वयं कहते है—"संयुक्त प्रकृत पुराणसे, संवतसर निरदम्भ। सुरगुरु सह सित सप्तमी कह्यौ ग्रन्थ प्रारम्भ॥"

ग्रन्थकी समाप्ति संवत् १९४५ माघ मास, कृष्ण पक्षकी पंचमी, दिन भौमवारको हुई—"माघमासे कृष्णपक्षे तिथौ पंचम्यां भौमवासरे संवत् १९४५ शुभम भूयात्।"

सोरठा—"संवत् शर अरु वेद, ग्रह शशि तपसा पंचिमी। यामें नहि कछु भेद, कृष्णपक्ष कुज वार है।"
श्लोक—"शरवेदांकचन्द्रे द्वे नक्रमासाऽसिते दले। अहि-तिथ्यां भौमसंयोगे ग्रंथोयम् पूर्णतामगमत्॥"

इस अनुवादकी भाषा यत्र-तत्र जटिल हो गयी है किन्तु भाव स्पष्ट हैं। यद्यपि कविका भाषापर पूर्ण अधिकार है किन्तु संस्कृतके भावोंके सम्यक् अवतरणमें वे असफल हैं। रामचन्द्र शुक्लके शब्दोंमें "जिन श्लोकोंके भाव जटिल नहीं हैं, उनका अनुवाद बहुत ही सरस और सुन्दर है। वह स्वतन्त्र रचनाके रूपमें प्रतीत होता है पर जहाँ कुछ जटिलता है, वहाँकी वाक्यावली उलझी हुई और अर्थ अस्पष्ट है... अतः सारी पुस्तकके सम्बन्धमें यही कहना चाहिये कि अनुवादमें वैसी सफलता नहीं हुई है।"

ग्रन्थमें इन्द्रवज्रा, वंशस्थ, मन्दाक्रान्ता, शार्दूलविक्रीडित, आदि छन्दोंसे लेकर दोहा, सोरठा, चौपाइयों तकका प्रयोग हुआ है। छन्दोंका परिवर्तन बहुत जल्दी-जल्दी मिलता है। ग्रन्थमें परिसंख्या अलंकारकी भरमार है।

चौखम्बा संस्कृत सीरीजसे जो नैषधका भाषानुवाद हुआ है, उसमें मल्लिनाथकृत 'जीवातु' तथा 'नैषध प्रकाश' अर्थात् 'नारायणी' टीकाका आश्रय लिया गया है। दोनों टीकाओंमें मूल श्लोकोंमें अनेकत्र पाठ भेद हैं। ऐसे स्थलोंमें अनुवादकने प्रथम 'जीवातु'के आधारपर पुनः 'नैषध प्रकाश' के अनुसार विविधार्थोंको लिखा है। —शि० शे० मि०

नैषादि–निषाद पुत्र एकलव्यका एक नाम। —मो० अ०

न्यग्रोध–१. उग्रसेनका पुत्र, कसका भाई, जिसे बलरामने मारा था।

२. कृष्णके एक पुत्रका नाम।

३. रमणकका बरगद, जो कमलकी आकृतिका है, जिसके कारण पुष्कर द्वीपका नामकरण हुआ। प्रलयकालमें भगवान् नारायणने बालक रूपमें इसके पत्तेपर शयन किया था। —मो० अ०

पंचकन्या–पुराणानुसार सर्वदा कन्या रहनेवाली पाँच स्त्रियाँ—अहल्या, द्रौपदी, कुन्ती, तारा तथा मन्दोदरी। ऐसा माना जाता है कि विवाह आदि हो जानेपर भी इनका कन्यात्व नष्ट नहीं हुआ। —मो० अ०

पंचतंत्र–विष्णु शर्मा द्वारा विरचित प्रसिद्ध कथा-पुस्तक। ये कथाएँ वास्तवमें राजकुमारोंको नीति-शिक्षा हेतु कही गयी थीं। बादमें 'हितोपदेश'के नामसे इसका संक्षिप्त रूप अत्यन्त लोकप्रिय हुआ। अनेक भाषाओंमें इसके अनुवाद हुए। 'अनवर-ए-दानिश' नामक फारसी पुस्तक 'पंच-तन्त्र' के आधारपर ही लिखी गयी है। —मो० अ०

पंचभूत–यह वस्तुतः पंचमहाभूत, पंचभूत, पंचतत्त्व आदि नामोंसे भारतीय दर्शनमें विश्रुत रहा है। भारतीय ईश्वर-वादी दर्शनमें क्षिति, जल, अग्नि, वायु एवं आकाशके रूपमें इसका उल्लेख किया गया है किन्तु जैनियोंने इस

परम्पराको जीव, अजीव, आकाश, धर्म, पुद्गलके रूपमें परिवर्तित कर दिया है। सांख्य दर्शनमें, इन तत्त्वोंका पूर्णतया ईश्वरवादी दर्शनके वर्णित रूपका ही समर्थन होता है। बौद्ध-दर्शनमें इन्हें महाभूतोंकी संज्ञा दी गयी और रस, स्पर्श, गन्ध आदि इन्द्रियज आसक्तियोंका कारण माना गया। उपनिषदोंमें—बृहदारण्यक (१।२।१-२), छान्दोग्य (६।२।१-४), एतरेय (२।१-३), प्रश्नोपनिषद् (२।१-१२)—प्रायः सृष्टिक्रम निरूपणके सन्दर्भमें इन पंचमहाभूतोंकी उत्पत्तिका आख्यान मिलता है। अद्वैत वेदान्तमे माया तथा सृष्टि निरूपण एवं 'अभ्यास' क्रममे इसका वर्णन हुआ है। हिन्दीके सन्त कवि एवं रामकाव्यमें इन तत्वोंका प्रायः उल्लेख मिलता है। प्रसादने 'कामायनी'में सृष्टि-प्रलयके प्रसंगमें पंचभूत तत्त्वोंके रौरव मिश्रणका उल्लेख किया है। —यो० प्र० सिं०

पंचवटी १—एक वन जो दण्डकारण्यमें स्थित था। यह स्थान गोदावरीके पास है। लक्ष्मणने यही शूर्पणखाके नाक, कान काटे थे। यहाँ रामका बनाया हुआ एक मन्दिर खण्डहर रूपमें विद्यमान है। पंचवटीका वर्णन 'रामचरितमानस', 'रामचन्द्रिका', 'साकेत', 'पंचवटी' एव 'साकेत-सन्त' आदि प्रायः सभी रामकथासम्बन्धी काव्योंमे मिलता है। —मो० अ०

पंचवटी २—मैथिलीशरण गुप्तके प्रसिद्ध खण्डकाव्य 'पंचवटी' (प्र० १९८२ वि०) का कथानक राम-साहित्यका चिर-परिचित आख्यान—शूर्पणखा-प्रसंग है। पचवटीके रमणीक वातावरणमे राम और सीता पर्णकुटीमें विश्राम कर रहें है तथा मदनशोभी वीर लक्ष्मण प्रहरीके रूपमें कुटियाके बाहर स्वच्छ शिलापर विराजमान है। रात्रिके अन्तिम प्रहरमें शूर्पणखा उपस्थित होती है। ढलती रातमे अकेली अबलाको उम वनमे देखकर लक्ष्मण आश्चर्यचकित रह जाते हैं। लक्ष्मणको विस्मित देख वह स्वयं वार्तालाप आरम्भ करती है और अन्ततः विवाहका प्रस्ताव करती है। लक्ष्मणको उसका प्रस्ताव स्वीकार्य नही होता। वर्तालापमे ही प्रातःकाल हो जाता है। पर्णकुटीका द्वार खुलता है। अब शूर्पणखा रामपर मोहित हो जाती है और उन्हींका वरण करना चाहती है। दोनों ओर से असफल होनेपर वह विकराल रूप धारण कर लेती है और अन्ततः लक्ष्मण उसके नाक, कान काट लेते है। इस पूर्व-परिचित प्रसंगमे कविकी कतिपय नूतन उद्भावनाएँ है परन्तु मूलसूत्र प्राचीन ही है। कथा-विकास एवं प्रतिपादन-शैली कविके अपने हैं। मधुर-तरल हास्य-विनोदने इसे सजीवता प्रदान की है। दृश्योंका नाटकीय परिवर्तन पाठकको बरबस आकृष्ट कर लेता है। चरित्र-चित्रणमें प्रायः परम्पराका ही अनुसरण किया गया है परन्तु फिर भी कविके दृष्टिकोणपर आधुनिकताकी छाप है। पात्रोंके इतिहास-प्रतिष्ठित रूपको स्वीकार करनेपर भी गुप्तजीने उन्हें यथासम्भव मानवीय रूपमे प्रस्तुत करनेका सफल प्रयास किया है। 'पचवटी'की भाषा निखरी हुई खड़ीबोली है। यद्यपि वह प्रौढ़ नहीं है तथापि प्रांजल एवं कान्तिमयी है।

गुप्त-काव्यके विकास-पथमें 'पंचवटी' एक मार्ग-स्तम्भ है। इसकी रचनासे कविके कृतित्वके प्रारम्भिक कालकी समाप्ति एवं मध्यकालका प्रारम्भ होता है। —उ० का० गो०

पजनेस—इनके विषयमें अधिक कुछ ज्ञात नहीं है। इनका स्थान पन्ना था और 'शिवसिंह सरोज'के आधारपर रामचन्द्र शुक्लने अपने इतिहासमे इनके दो ग्रन्थोंकी चर्चा की है—'मधुप्रिया' तथा 'नखशिख' पर यह 'नखशिख' इनके ग्रन्थ 'मधुप्रिया'का ही अंग है। यह ग्रन्थ प्रकाशमें नहीं आया है। इनके कवित्त-सवैयोंके दो सग्रह भारत जीवन प्रेस, काशीसे 'पजनेस पचासा' और 'पजनेस प्रकाश' नामसे १८९२ ई० तथा १८९४ ई०मे प्रकाशित हुए हैं। 'शिवसिंह सरोज' तथा 'दि० भू०' आदिमे भी इनके छन्द उद्धृत हैं। ये शृंगारी प्रवृत्तिके रीतिकालीन शैलीके कवि हैं। भाषामें फारसी शब्दोंका प्रयोग स्थान-स्थानपर हुआ है। इन्होंने 'प्रतिकूलवर्णत्व' दोषको स्वीकार नहीं किया है और ऐसे वर्णोंका स्वच्छन्द रूपसे प्रयोग किया है फिर भी उनकी भाषामें पद-लालित्य पर्याप्त मात्रामे है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० इ०; हि० सा० बृ० इ० (भा० ६)।] —सं०

पर्णाद—एक ब्राह्मण, जिसको दमयन्तीने नलके पास दूत बनाकर भेजा था। —मो० अ०

पथिक—रामनरेश त्रिपाठीके प्रेमाख्यानक खण्डकाव्योंके रचनाक्रमकी दृष्टिमे 'पथिक' उनकी दूसरी कृति है। यह १९२० ई० मे प्रकाशित हुई थी। इसकी लोकप्रियताका कुछ अनुमान इस बातसे किया जा सकता है कि १९५४ ई० तक हिन्दी मन्दिर, प्रयागमे इसके इकतीस (३१) संस्करण निकल चुके है। इस आख्यानक कृतिका कथानक सूक्ष्म और मौलिक है। इसका नायक पथिक अपनी प्रियासे अतिशय प्रेम करता है। कालान्तरमे परिस्थितियोंवश उसकी यह प्रेम-भावना प्रकृतिके प्रांगणसे गुजरती हुई स्वराष्ट्र-प्रेमकी ओर उन्मुख हो जाती है। मनोरम प्रकृति-चित्रण तथा राष्ट्र-प्रेमकी उदात्त भावनाओंका समावेश इस खण्ड-काव्यकी दो प्रमुख विशेषताएँ हैं। भाषा सधी-मँजी खड़ीबोली है। —र० भ०

पदमावत—यह रचना हिन्दीके प्रसिद्ध सूफी-कवि मलिक मुहम्मद जायसी का प्रेमाख्यान है, जिसकी हस्तलिखित प्रतियाँ प्रायः 'पदमावती' या 'पदुमावति' जैसे नामोंके साथ भी पायी जाती है। इसकी सर्वप्रथम उल्लेखनीय चर्चा फ्रेंच लेखक गार्साँ द तासी ने अपनी पुस्तक 'इस्त्वार द ल लितरेत्यूर ऐन्दूई ऐ ऐन्दुस्तानी' के द्वितीय भागमें की थी और उन्होंने उस समय (सन् १८४७ ई०) तक देश-विदेशोमे पायी जानेवाली तथा नागरी, फारसी एवं कैथीमें लिखित इसकी कई प्रतियोंका पता भी दिया था, किन्तु वे इस रचनाके विषयादिका कोई विस्तृत विवेचन नहीं कर सके थे। इसके अनन्तर हिन्दी साहित्यके इतिहासकारोंने उन बातोकी ओर भी ध्यान देना आरम्भ किया और इस प्रकार यदि किसी-किसीने इसके साहित्यिक महत्त्वका उल्लेख किया तो दूसरोंने इसकी कथा अथवा भाषा आदिपर भी न्यूनाधिक प्रकाश डाला। इसके सुसम्पादित सस्करणोंके प्रकाशनका आरम्भ बीसवीं ईस्वी सदीके दूसरे दशकमे हुआ, जबसे आजतक यह सानुवाद या केवल मूलपाठके ही साथ विभिन्न स्थानोंसे निकल चुकी

है। इसके अतिरिक्त इस काव्य-ग्रन्थपर अबतक अनेक विद्वानों द्वारा भिन्न-भिन्न दृष्टियोंसे विचार भी होता आ रहा है और इसमें सन्देह नहीं कि इस रचनाके ही आधार-पर जायसीको हिन्दीके उत्कृष्ट कवियोंमें उच्च स्थान भी दिया जाता है।

'पदमावत' के रचना-कालके बारेमें बहुतसे लेखकोंमें मतभेद है। उन्होंने या तो इसकी अनेक प्रतियोंमें पाये जानेवाले पाठानुसार उसे सन् ९२७ हि० (सन् १५२१ ई०) या सन् ९४७ हि० (सन् १५४० ई०) माना है अथवा कभी-कभी इसके सन् ९३६ हि० (सन् १५२९ ई०), ९४५ हि० (सन् १५३८ ई०) या सन् ९४८ हि० (सन् १५४१ ई०) वाले पाठोंके आधारपर इसका तदनुसार काल-निर्णय करनेकी ओर प्रयत्न किया है। परन्तु इस रचनाके १३ वें अंशसे लेकर १७ वें अंशतक 'शाहे वक्त' के रूपमें सुल्तान शेरशाह सूर (सन् १५४०-४५ ई०)की चर्चाके स्पष्ट रूपमें आ जाने तथा उसके अन्तर्गत कवि द्वारा किये गये "सेरसाहि दिल्ली सुलतानू। चारिउ खण्ड तपइ जस भानू। ओही छाज छात औ पाटू। सब राजा भुइँ धरहिं लिलाटू।" जैसे कथनके हो जानेसे भी इस मतको ही अधिक समर्थन मिलता जान पड़ता है कि वह समय सन् ९४७ हि० रहा होगा। सुलतान शेरशाह ने इतिहासके अनुसार १७ मई, सन् १५४० ई० को मुगल बादशाह हुमायूँपर कन्नौजके युद्धमें पूर्ण विजय प्राप्त कर उसे अपदस्थ कर दिया था और यद्यपि उसका राज्याभिषेक १५ जनवरी, सन् १५४२ ई० के पहले विधिवत् नहीं हो पाया, फिर भी केन्द्रमें अधिकार पा जानेके कारण उसका वहाँ वस्तुतः कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं रह गया था। अतएव जायसीने भी यहाँ पर 'तपइ' एवं 'धरहिं' जैसी क्रियाओंका वर्तमानकालमें प्रयोग करके इसकी पुष्टि कर दी है।

'पदमावत' ठेठ अवधीमें लिखी गयी है और उसमें उसके रचनाकालके स्वाभाविक बोलचालके उदाहरण मिलते हैं। उसकी भाषामें न तो तत्समशब्दोंके प्रति कोई आग्रह दीख पड़ता है और न इसके अलंकरणका ही कोई प्रयास लक्षित होता है। सारी बातें सीधे-सादे ढंगसे कही गयी प्रतीत होती हैं और गूढ़से गूढ़ विषयोंका प्रतिपादन सर-लताके साथ किया गया मिलता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि इस रचनाके अन्तर्गत अवधी भाषाका सोलहवीं सदीका रूप भलीभाँति सुरक्षित है। इसकी भाषाकी एक विशेषता यह भी कही जा सकती है कि इसमें प्रचलित सूक्तियों, लोकोक्तियों, मुहावरों तथा कहावतों तकके प्रयोग यथास्थल बड़े सुन्दर ढंगसे किये गये दीख पड़ते हैं और इनके कारण वह पूर्णरूपसे समृद्ध और सशक्त बन गयी है। यहाँपर प्रयुक्त देशज शब्द एवं तद्भव तक अपने अनगढ़े रूपोंमें कभी-कभी हमारे सामने अपरिचितसे लगते हैं, किन्तु जब हम उन्हें समझ लेते हैं तो उनकी स्वाभाविक उपयुक्तता एवं भावपूर्णताका अनुभव कर अत्यन्त आनन्दित भी हो जाते हैं। पूरी रचना दोहों-चौपाइयोंमें लिखी गयी है और उसमें प्रायः सर्वत्र सात अर्द्धालियोंके अनन्तर दोहेका प्रयोग किया गया है। इस प्रकारकी रचना-शैली कथात्मक विवरणोंके लिए बहुत उपयुक्त समझी जाती है और यह फारसीकी मसनवी शैलीसे भी बहुत कुछ मिलती-जुलती है, जिस कारण इसे अधिकतर अन्य अनेक सूफी प्रेमाख्यानोंके रचयिताओंने भी अपनाया है।

'पदमावत'के प्रामाणिक समझे जाने वाले संस्करण उपर्युक्त दोहों, चौपाइयोंमें निर्मित ६५३ अंशोंमें बाँट दिये गये हैं और इनमें-से कुछको एक साथ ले-लेकर उन्हें भिन्न-भिन्न विषयानुसार शीर्षक देनेकी परम्परा भी दीख पड़ती है। इस पद्धतिको स्वीकार करनेवाले सम्पादकों ने ऐसे प्रत्येक शीर्षकको 'खण्ड'का नाम दिया है तथा उसे उसके वर्ण्य विषयानुसार परिचित भी कराया है। ये खण्ड 'स्तुति खण्ड'से आरम्भ होकर 'उपसंहार खण्ड' तक समाप्त होते हैं और इनकी कुल संख्या ५८ तक पहुँचती है। प्रेमाख्यानकी कथा केवल २५ वेंसे लेकर ६५१ वे अंशों तक चलती है और शेषमें-से प्रथम २४ अंशों तक, जो उक्त 'स्तुति खण्ड'के अन्तर्गत आते हैं क्रमशः 'करतारू' अथवा सृष्टिकर्ता परमात्माकी स्तुति, मुहम्मद और उनके चार 'मीत' अथवा खलीफाओंकी प्रशंसा, शाहे वक्त शेर-शाहकी महत्ता तथा कविके पीर एवं गुरुके परिचयके साथ-साथ, उसके द्वारा स्वयं अपनी और अपने चार मित्रों की ओर किया गया कुछ परिचयात्मक संकेत भी मिलता है, जो संक्षिप्त होता हुआ भी अपना विशेष महत्त्व रखता है। २४ वें अंशमें 'पद्मावत'का रचनाकाल दिया गया है तथा इसी प्रकार आगे आनेवाली कथाका सूत्र-रूपमें निर्देश भी कर दिया गया है और उसके दो अन्तिम अंशों द्वारा कविने पूरी कहानी एवं अपनी वृद्धावस्थाजन्य दयनीय दशा पर भी प्रकाश डाला है इस रचनाके कुछ संस्करणोंवाले 'उपसंहार खण्ड'में एक ऐसा अंश भी पाया जाता है, जिसमें पूरी कहानीकी आध्या-त्मिक ढंगसेकी गयी व्याख्या दीख पड़ती है किन्तु इसके प्रामाणिक संस्करणोंमें उसे निकाल दिया गया है।

'पद्मावत'का कथा-सारांश इस प्रकार है—सिंहल द्वीपके राजा गन्धर्वसेनकी पुत्री पद्मावती परम सुन्दरी थी और उसके योग्य वर कहीं नहीं मिलता था। पद्मावतीके पास हीरामन नामका एक तोता था, जो बहुत वाचाल एवं पण्डित था और उसे बहुत प्रिय था। एक दिन जब वह पद्मावतीके साथ उसके वरके विषयमें बातचीत कर रहा था, राजा गन्धर्वसेनने सुन लिया, जिसके कारण उनका कोपभाजन बन जानेके डरसे वह चुपकेसे उड़ गया। एक दिन वह किसी बहेलियेके हाथ पड़ गया, जिसने उसे बाजारमें लाकर चित्तौरके एक ब्राह्मणके हाथ बेच दिया। उस ब्राह्मणसे फिर चित्तौरके राजा रतनसेनने उसे एक लाख रुपये देकर क्रय कर लिया और वह उसे बहुत मानने लगा। एक दिन जब रतनसेन आखेटको गये थे, हीरामनने उनकी रूपगर्विणी रानी नागमतीसे सिंहल द्वीपकी पद्मावती-के रूपकी बड़ी प्रशंसा कर दी, जिसे सुनकर ईर्ष्यावश उसने मरवा डालना चाहा, किन्तु उसकी चेरीने राजाके भयसे इसे अपने घर छिपा लिया। राजा रतनसेन आखेटसे लौट-कर जब सुएके लिए बहुत उत्कण्ठित हुए तो वह उनके सामने लाया गया और उसने इनसे सारा वृत्तान्त कह सुनाया। पद्मावतीके रूप एवं गुणोंकी प्रशंसा सुनते ही

राजा रतनसेन उसके लिए अधीर हो उठे और उसे प्राप्त करनेकी आशामें जोगीका वेश धारण कर घरसे निकल पड़े। राजाके साथ यात्रामें सोलह सहस्र अन्य राजकुमार भी सम्मिलित हुए और हीरामन उन सभीका पथ-प्रदर्शक बन गया। ये लोग कलिंगकी ओरसे जहाजोंमें सवार होकर सिंहलकी ओर चल पड़े, जहाँ ये अनेक कष्ट झेलने पर ही पहुंच सके।

सिंहल द्वीपमें पहुँचकर राजा रतनसेन जोगियोंके साथ शिवके मन्दिरमें पद्मावतीका ध्यान एवं नाम जाप करने लगा। हीरामनने उधर यह समाचार पद्मावतीसे कह सुनाया, जो राजाके प्रेमसे प्रभावित होकर विकल हो उठी। पंचमीके दिन वह शिवपूजनके लिए उस मन्दिरमें गयी, जहाँ उसका रूप देखते ही राजा मूर्छित हो गया और वह भलीभाँति उसे देख भी नहीं सका। जागने पर जब वह अधीर हो रहा था, पद्मावतीने उसे कहला भेजा कि दुर्गम सिंहलगढपर चढ़े बिना अब उससे भेंट होना सम्भव नहीं है। तदनुसार शिवसे सिद्धि पाकर रतनसेन उक्त गढमें प्रवेश करनेकी चेष्टामें ही सवेरे पकड लिया गया और उसके लिए सूलीकी आज्ञा दे दी गयी। अन्तमें जोगियों द्वारा गढके घिर जानेपर शिवकी सहायतासे उसपर विजय हो गयी और गन्धर्वसेनने पद्मावतीके साथ रतनसेनका विवाह कर दिया। राजा रतनसेन पद्मावतीको लेकर किसी प्रकार चित्तौर लौटा और वहा उसके साथ सुखपूर्वक रहने लगा। राजाके दरबारमें राघव चेतन नामका एक पण्डित था, जिसे यक्षिणी सिद्ध थी और जिसे वहाँके अन्य पण्डितोंके साथ कलह बढ जानेके कारण उन्होंने अपने यहाँसे निकाल दिया। राघव चेतन राजासे बदला लेनेकी इच्छासे दिल्लीके बादशाह अलाउद्दीनके यहाँ गया और उसे पद्मावतीका कंगन दिखाकर उसे मुग्ध कर दिया। अलाउद्दीनने राजा रतनसेनको पद्मावतीके लिए पत्र लिख भेजा, जिसे पाकर वह क्रुद्ध हो गया और युद्धकी तैयारी होने लगी।

जब अलाउद्दीन कई वर्षतक चित्तौरगढपर घेरा डालकर भी उसे तोड न सका तो उसने रतनसेनके यहाँ सन्धिका प्रस्ताव भेजा, जिसे राजाने स्वीकार कर उसे अपने महलमें प्रीतिभोज दिया और वहाँपर उसके साथ शतरंज खेलते समय अपने सामने रखे गये दर्पणमें पद्मावतीकी एक झलक देख बादशाह मूर्छित होकर गिर पड़ा किन्तु फिर जब राजा उसे पहुँचानेके लिए बाहरी फाटकपर गया तो बादशाहने उसे छलपूर्वक अपने सैनिकों द्वारा पकड़वा लिया और उसे दिल्ली भेज दिया। पद्मावती यह समाचार सुनकर अधीर हो उठी और वह अपने पतिको छुड़ानेके उपाय सोचने लगी। तदनुसार गोरा एवं बादल नामक दो वीर सरदार ७०० पालकियोंमें सशस्त्र सैनिक छिपाये हुए उनके साथ दिल्ली पहुंचे और कहला भेजा कि पद्मावती पहले राजासे मिलना चाहती है। फलतः इसके लिए आज्ञा पाते ही एक ढकी हुई पालकीसे निकलकर किसी लोहारने राजाकी बेड़ियाँ काट दीं और वह घोड़ेपर बाहर आ गया। बादशाहकी सेना द्वारा उसपर धावा किये जानेपर गोरा कुछ सैनिकोंके साथ इधर उसे रोकता रहा और उधर बादल राजाके साथ सकुशल चित्तौर पहुँच गया, किन्तु फिर कुम्भलनेरके राजा देवपालपर चढ़ाई करने जानेपर उसकी वहीं युद्धमें मृत्यु हो गयी। रतनसेनका शव वहाँसे चित्तौर लाया गया और उसके साथ पद्मावती एवं नागमती दोनों ही रानियाँ सती हो गयीं। अन्तमें जब अलाउद्दीन अपनी सेना लेकर चित्तौरगढ़ पहुँचा तो उसे पद्मावतीकी जगह उसकी चिताकी राख मात्र ही मिली, जिससे उसे दुःख एवं ग्लानिका अनुभव हुआ।

'पद्मावत'की कथाके अन्तर्गत वर्णित घटनाओंके दो प्रधान केन्द्र सिंहल द्वीप एवं चित्तौरगढ हैं। इनमें-से प्रथमकी भौगोलिक स्थिति और उसके ऐतिहासिक परिचयके सम्बन्धमें अभीतक मतभेद चला आता है तथा कुछ लोग उसे लंकाका सीलोन, कुछ लोग ब्रह्मदेशके दक्षिणी भागका कोई स्थल तथा अन्य भारतके ही भीतर स्थित कोई भूभाग ठहरानेका प्रयत्न करते हैं परन्तु जायसी द्वारा किये गये इसके वर्णन, इससे सम्बन्धित पद्मावती और गन्धर्वसेन जैसे नाम तथा इसकी यात्रा करते समय राजा रतनसेनको मिलते गये समुद्रादिपर विचार कर लेनेपर उनमेंसे किसीके भी साथ इसका पूरा मेल खाता नहीं दीख पड़ता। इन सारी बातोंके विषयमें अधिकतर कल्पनासे ही काम लिया गया प्रतीत होता है और ऐसा लगता है जैसे कविने यहाँ लोक-प्रचलित अनुश्रुतियोंके आधारपर किसी ऐसे भूखंड की सृष्टि कर दी है, जो 'पद्मिनी' कही जाने वाली सुन्दरियोंका देश है, जहाँके निवासी यक्ष-यक्षिणी जैसे हो सकते हैं, जहाँ की यात्रा करना अत्यन्त कठिन है, जहाँ केवल जोगियोंको ही सफलता मिल सकती है तथा जहाँ राजा तकका नाम भी गन्धर्वसेन ही उपयुक्त होगा। अतएव आश्चर्य नहीं कि जायसीने यहाँपर 'सिंहलद्वीप' सम्बन्धित सभी स्थलों एवं घटनाओंका वर्णन अपनी प्रेमगाथाके मूलमें अवस्थित आध्यात्मिक सूफी-भावनाओंके अनुसार करनेकी ही चेष्टा की हो और ऐसा करते समय उन लोकपरम्परागत नामों एवं दन्तकथाओंका भी उपयोग कर लिया हो, जो उनकी दृष्टिमें इसके लिए उपयुक्त जँचे हों।

परन्तु जहाँ तक चित्तौरगढ़से सम्बन्धित नामों एवं घटनाओंका प्रश्न है, उसमेंसे प्रायः सभी किसी न किसी रूपमें ऐतिहासिक एवं वस्तुस्थितिके अनुरूप सिद्ध होते जान पड़ते हैं और तदनुसार यहाँपर कल्पनाका हाथ उतना अधिक नहीं दिखलाई देता। चित्तौरगढ मेवाड़का प्रसिद्ध दुर्ग है, जहाँपर सम्भवतः राणा रत्नसिंहके राज्यकालमें दिल्लीके सुल्तान अलाउद्दीनने छः महीनों तक घेरा डाला था और जिसपर उसे गोरा और बादल जैसे वीरोंसे युद्ध कर लेनेके अनन्तर सन् १३०२-३ ई०में सफलता मिली थी। परन्तु राणा रत्नसिंहकी कोई रानी वास्तवमें 'पद्मावती' नामकी थी या नहीं तथा उसकी कोई छाया दर्पणमें देखकर अलाउद्दीन उसपर विशेष रूप से आसक्त हुआ, उसने राणा रत्नसिंहको भी बन्दी बनाया और उसे छुडानेके लिए डोलियाँ भेजी गयीं या नहीं, जैसे प्रश्नोंके उत्तर विशुद्ध इतिहास देता हुआ नहीं

दीख पड़ता और इसके लिए केवल अनुश्रुतियोंका ही सहारा लेना पड़ता है। कुछ आलोचकोंके अनुसार पद्मावती-प्रसंग जायसीकी मनगढ़न्त कहानी है, जिसका वास्तविक ऐतिहासिक घटनाओंके साथ कोई लगाव नहीं। उनका यह भी कथन है कि उसके जितने भी उल्लेख पाये जाते हैं, वे सभी 'पद्मावत'की रचनाके अनन्तरके ही किये गये दीख पड़ते हैं परन्तु कवि नारायणदासकी रचना 'छिताई वार्ता' (३२१)में, जिसका निर्माण-काल सं० १५८३ (सन् १५२६ ई०) बतलाया जाता है, इसका स्पष्ट उल्लेख है और अनुमान किया जाता है कि कतिपय अन्य ऐसी पुरानी कृतियोंमें भी इसका कोई न कोई रूप देखनेको मिल सकता है। वास्तवमें 'छिताई वार्ता' अथवा 'पद्मावत' इन दोनोंमेंसे कोई भी ऐतिहासिक ग्रन्थ नहीं कहा जा सकता तथा पहली रचनाके उक्त ३२१ एवं दूसरीके ४९२ की तुलना करनेपर कोई भी पाठक सन्देहमें पड़ सकता है कि उनमें वर्णित घटनाओंमेंसे किसको पहलेकी और किसको बादकी कहा जाय और इस प्रकार उनकी आलोचना किसी तथ्यके आधारपर करना अनावश्यक हो जाता है।

'पद्मावत'के कथानकमें कितना ऐतिहासिक तथ्य है, कितना अनुश्रुतियोंपर आधारित है तथा कितनेको निरा कल्पित अंश ठहरा सकते हैं, यह उसका वास्तविक मूल्य निर्धारित करते समय उतना महत्त्वपूर्ण नहीं रह जाता। इसमें सन्देह नहीं कि इसकी मूल-कथाका कोई न कोई अंश, चाहे वह जिस किसी भी रूपमें रहा हो, जायसीके पहलेसे विद्यमान था और उसके द्वारा भारतीय वीरोंके आत्मत्याग एवं क्षत्राणियोंकी सतीत्व-रक्षा जैसे महान् आदर्शोंको उदाहृत करनेवाले साहित्यका सृजन भी होता आ रहा था। जायसीने उसका 'पद्मावत'के लिए उपयोग करते समय स्वभावतः अपने सूफी मन्तव्यों तथा 'मजहबे-इस्लाम'की प्रतिष्ठाकी ओर भी ध्यान देना बहुत आवश्यक समझा और तदनुसार इसमें अनेक ऐसी बातोंका भी समावेश कर दिया, जो काव्योचित कल्पनाकी दृष्टिसे अस्वीकार्य नहीं है। कमसे कम इसके कथानकको लेकर तथा उसके अनेक अंशोंको न्यूनाधिक महत्त्व देते हुए जायसीके अनन्तर कई कवियोंने रचनाएँ प्रस्तुत कीं तथा बहुतोंने 'पद्मावत'से प्रभावित होकर इसके अन्य भाषाओंमें सुन्दर अनुवादतक कर डाले। ऐसे अनुवादकों अथवा इसकी कथाके आधारपर प्रायः स्वतन्त्र ढंगसे लिखनेवालोंमें कईके नाम लिए जा सकते हैं, जैसे फारसी पद्यमें 'पदमावत' (१०२८ हि०—१६१८ ई०)का रचयिता अब्दुश्शकूर' बज्मा' और 'शमा परवाना' (१०६९ हि०—१६५८ ई०) का कवि आकिल खाँ 'राजी' तथा फारसी गद्यमें इस विषयपर सन् १५९५ ई० मे लिखनेवाला राय गोविन्द मुंशी, पश्तो कवि इब्राहिम, उर्दू 'पदमावत' (१०९१ हि०—१६७९ ई०)का कवि गुलाम अली और 'रतन पदम'का रचयिता वली वेल्लोरी तथा बंगलामे 'पद्मावती' (सन् १६४५-५२ ई०) का कवि प्रसिद्ध अलाओल और 'पद्मिनी उपाख्यान' (सन् १८५८ ई०) का रचयिता रंगलाल वन्द्योपाध्याय आदि। इस अन्तिम रचनाके अन्तर्गत उक्त कथाके गोरा-बादलवाले युद्धके प्रकरणको ही विशेष महत्त्व देते हुए उसमें राष्ट्रीयताके भाव भरनेकी भी चेष्टा की गयी है। हिन्दीके हेमरतन, लब्धोदय एवं जटमल नाहर जैसे कई कवियोंने भी विशेषकर इस अंशको अधिक महत्त्व दिया है और उनकी रचनाओंपर विचार करनेपर हमें ऐसा लगता है कि ये सभी लोग सम्भवतः किसी लोकप्रिय अनुश्रुतिका अनुसरण करते आ रहे हैं किन्तु जायसीने इसके साथ ही पद्मावतीवाले प्रसंगका चित्रण एक ऐसे ढंगसे कर दिया है, जिसके अनुसार वह प्रचलित लोकगाथाओंवाली सिंहलकी पद्मिनी भी बन जाती है और उसके लिए हीरामन तोता, अपार समुद्र और विकट यात्रादि तकको भी लाना पड़ जाता है।

'पद्मावत' के अन्तर्गत कथावस्तुका सुन्दर संघटन पाया जाता है और विविध घटनाओंका क्रमविकास भी तदनुकूल है। जहाँतक इसमें प्रयुक्त कथानक रूढ़ियोंका प्रश्न है, वे स्वभावतः इसके पूर्व भागमें ही अधिक संख्यामें दीख पड़ती हैं। रचनाका वास्तविक उद्देश्य प्रेमतत्त्व एवं विरहका सूफी मतानुसार निरूपण तथा उसी प्रकार प्रेम-साधनाका सम्यक् प्रतिपादन करना जान पड़ता है, जिसके लिए जायसीने रतनसेन और पद्मावतीकी प्रेम-कहानीको माध्यम बनाकर उसे अपने ढंगसे कहा है। फलतः इसके अनेक स्थलोंपर हमें कई ऐसे कथन भी मिल सकते हैं, जिनका मूलकथाके साथ कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं प्रतीत होता, किन्तु जिन्हे यदि कविके मन्तव्यानुसार परखा जाय तो हम बहुत महत्त्वपूर्ण एवं उपयुक्त तक ठहरा सकते हैं। प्रेमका आदर्श यहाँपर अत्यन्त उच्च और महान् है तथा इसमें उसके लौकिक एवं आध्यात्मिक जैसे दो भिन्न-भिन्न पक्षोंका कोई महत्त्व नहीं। अतएव प्रेमी राजा रतनसेनको यहाँपर अपनी प्रेयसी पद्मावतीके लिए ऐसे प्रयत्न करने पड़ते हैं, जो हमें योग-साधनासे लगते हैं तथा उसके प्रति ऐसा व्यवहार भी करना पड़ता है, जिसका वर्णन रहस्यवाद गर्भित जान पड़ता है। इस रचनामें किया गया रूप सौन्दर्य-वर्णन तथा प्रकृति वर्णन भी हमें इसी कारण अधिकतर वैसे ही रंगसे रंजित जान पड़ता है।

'पद्मावत' को हम केवल एक सफल प्रेमाख्यान मात्र ही नहीं कह सकते, इसे एक उत्कृष्ट महाकाव्यतक ठहरा सकते हैं। इसमें न केवल कथोपयुक्त सांगोपांग वर्णन और प्रेमात्मक इतिवृत्तकी रोचकता है, अपितु गम्भीर भावोंकी सुन्दर अभिव्यक्ति, उदात्त चरित्रोंका विशद चित्रण तथा एक आदर्श रचनाकी सोद्देश्यता भी कम नहीं है। इसके अन्तर्गत हमें उन सभी लक्षणोंके उदाहरण अवश्य नहीं मिल सकते, जिन्हें प्राचीन काव्यशास्त्रज्ञोंने गिनाया है, किन्तु केवल इसीके कारण हम इसे महत्त्वहीन भी नहीं बतला सकते, क्योंकि इसकी बहुत-सी वैसी कमियाँ, इसके अन्य गुणोंके रहते कदाचित् क्षम्य भी ठहरायी जा सकती हैं। इसके कविकी निश्छल भावुकता, सहृदयता और समन्वयात्मक प्रवृत्तिके कारण इसके अनेक स्थल अत्यन्त आकर्षक बन गये हैं तथा उसकी प्रतीकात्मक वर्णन शैलीने इसमें प्रायः सर्वत्र एक विचित्र सजीवता ला दी है। 'पद्मावत'में पाण्डित्य-प्रदर्शन अथवा बौद्धिकता सूचकस्थलोंका अभाव नहीं है, किन्तु वे अधिकतर परम्परा-

पालनके अनुरोधमें ही आये हैं और इसी प्रकार जहाँ तक जायसीकी इस्लामके प्रति एकांत-निष्ठाका प्रश्न है, हम उसे भी उनके लिए स्वाभाविक ही मान ले सकते हैं। इनके कारण हम उनकी उस अपूर्व प्रतिभाकी अपेक्षा नहीं कर सकते, जिसके प्रभावमें किसी काल्पनिक पात्रका भी रूप निखरकर ऐतिहासिक बन जा सकता है तथा कोई एक मनगढन्त प्रसंग तक तथ्यपूर्ण घटनाका रंग पकड़ ले सकता है।

[सहायक ग्रन्थ—पदमावत : व्याख्याकार डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, सं० २०१२; नागरी प्रचारिणी पत्रिका, काशी, वर्ष ५७ अक ४, स० २००९; जर्नल आफ दि बिहार रिसर्च सोसाइटी पटना, भाग ३९ खण्ड १-२, सन् १९५३ ई०: हिन्दी अनुशीलन-भारतीय हिन्दी परिषद्, प्रयाग, चैत्र, ज्येष्ठ २०१० और जुलाई, सितम्बर, १९५८ ई०; सूफी काव्य संग्रह : सं० परशुराम चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, शक १८८०; दि माडर्न रिव्यू : कलकत्ता, नवम्बर, १९५६ ई०; समालोचक-आगरा, सितम्बर, १९५९ ई०; विश्वभारती अनाल्स-भाग ९, शान्ति निकेतन, वीरभूमि, १९५९ ई०; पद्मिनी उपाख्यान : रंगलाल वन्द्योपाध्याय, बंगीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता, १३५८; योरपमे दखिनी मखतूतात : सं० नसीरुद्दीन हाशमी, हैदराबाद, १९३२ ई० ।] —प० च०

पदमिनी चउपई—इस रचनाका पूरा नाम 'गोरा बादल कथा पद्मिणी चउपई', भी मिलता है। इसका रचयिता हेमरतन है, जो पूर्णिमा गच्छके देय तिलक सूरिके पट्टधर ग्यान तिलक सूरिके शिष्य वाचक पद्मराजका शिष्य था। जैसा इसकी प्रशस्ति (६०९-१०) से भी प्रकट है और यहींपर इस बातका भी पता चलता है कि उसने इसे महाराणा प्रतापके मन्त्री कावेउचा गोत्रवाले भामाशाहके अनुज ताराचन्दके आदेशसे सं० १६४५ (सन् १५८८ ई०) की श्रावण सुदी पाँचके दिन सादडी ग्राममें रचा था (६११-४)। हेमरतनने इस रचनाको "बात रची ऐ बादल तणी" द्वारा स्वयं कदाचित् "बात"की संज्ञा दी है, जो सस्कृत शब्द 'वार्ता'की भाँति वृत्तान्त अथवा जनश्रुतिका भी अर्थ रखता है। उसने बतलाया है कि यहाँपर वह 'सांमि धरमि' (स्वामिधर्म)की कहानी कहता है, जिसमें विशेषकर वीर एवं श्रृंगार रसकी कविताएँ हैं तथा 'जैसा सुना है उसके अनुसार' वह इसे ६१६ गाथाओंकी रचना द्वारा वर्णन करके प्रस्तुत कर देता है (६१५-७)। इसकी कई उपलब्ध हस्तलिखित प्रतियोंमें-से सबसे प्राचीन सं० १६४६ की लिखी समझी गयी है और कहा गया है कि वह श्री रविशंकर देराश्री बनेडाके पास है (दे० राजस्थानमें हिन्दीके हस्तलिखित ग्रन्थोंकी खोज, तृतीय भाग, पृ० ८३), जिसके अन्तके "इतिश्री गोरा बादल चरित्रे। वादिल जय लक्ष्मी वर्णनो नाम प्रथम खण्डः"से सूचित होता है कि वह अधूरी हो सकती है परन्तु उक्त 'खोज' वाले विवरणके सम्पादक उदयसिंह भटनागरका कहना है कि, "इस प्रथम खण्डसे आगेकी कथा अब तक कहीं नहीं मिलती है" (वही पृष्ठ ८४)। उनका यह भी कथन है कि केवल प्रथम खण्डका ही प्रचार सर्वत्र दीख पड़ता है तथा यदि अन्य कवियोंने "इसका भाषान्तर कर क्षेपकों द्वारा विविध संस्करण भी तैयार कर दिये हैं" तो भी उनकी रचनाओंमें इसके वर्ण्य-विषयसे आगेकी कथा आती नहीं जान पड़ती। वास्तवमें इसका निर्णय मूल प्रतिसे ही हो सकता है क्योंकि उसीके आधारपर सम्भवतः यह भी पता चल सकता है कि कविकी इच्छा इस कथाको आगे बढ़ानेकी रही भी होगी अथवा नहीं।

'गोरा बादल कथा—पद्मिणी चउपई' तथा इसके रचयिता 'हेमरतनसूरि'का उल्लेख 'जैनगुर्जर कविओं' (प्रथम भाग) के पृ० २०७-११ पर किया गया मिलता है, जो मोहनलाल दलीचन्द देसाई द्वारा लिखित एवं वि० सं० १९८२ (सन् १९२६ ई०)में अमदाबाद (अहमदाबाद)से मुद्रित होकर प्रकाशित है और उसमे इस रचनाके 'आदि' और 'अन्त'की कतिपय पंक्तियाँ भी उद्धृत की गयी हैं परन्तु आश्चर्य है कि वहाँपर उपर्युक्त सं० १६४६ वाली प्रतिसे रचनाकालके विषयमे दी गयी पंक्तियाँ क्यों नहीं दीख पड़तीं। इन दोनों उद्धरणोंमें पाठभेद भी कम नही जान पड़ता, जिस कारण किसी भी पाठकके सन्देहको बल मिलता है। इसके सिवाय उक्त ग्रन्थके अन्तर्गत दिये गये 'अन्त'वाले उद्धरणके नीचे किसी अन्य प्रतिसे भी कुछ पंक्तियाँ लेकर दी गयी हैं, जिनमे रचनाकाल 'संवत सोलहसे सेताल' का स्पष्ट उल्लेख है तथा दोनो उद्धरणोंके पहले लेखकने स्वयं भी रचनाके शीर्षकके आगे 'संवत् १६४७ (५) चै० ब० १४ गुरु सादडीया' दिया है। केवल कोष्ठमें पीछे 'टीपमां १६४५-सोलइसइ पणयाल-सबलपुरमां'का भी एक संदिग्ध-सा उल्लेख कर दिया है। इस सम्बन्धमें यहाँपर यह भी उल्लेखनीय है कि उपर्युक्त 'जैनगुर्जर कविओं' वाले उद्धरणके अन्तमे एक 'कलस कवित्त' और ७ दोहे ऐसे भी आ गये हैं, जिनसे जान पडता है कि उनका लेखक हेमरतनसे भिन्न व्यक्ति होगा, उसका नाम 'भागविजयी' हो सकता है (जिसे अगरचन्द नाहटाने कुछ अन्य प्रमाणोंके भी आधारपर 'संग्राम सूरि' कहा है) और वह उसे चैत बदी १४ गुरुवारके दिन 'साठे बरस' (सम्भवतः सं० १७६० वि०)मे लिख रहा है फिर भी 'राजस्थानमें हिन्दीके हस्तलिखित ग्रन्थोंकी खोज' (प्रथम भाग)के लेखक मोतीलाल मेनारियाने उसके पृष्ठ ५३ पर इसीको हेमरतनकी 'पदमिणी चउपई'का भी रचनाकाल स्वीकार कर लिया, जिसका प्रभाव काशी नागरी प्रचारिणी सभाकी खोज सम्बन्धी उन्नीसवी त्रैमासिक विवरण पत्रिका (सं० २००१-२००३ वि०) पर भी बिना पडे नहीं रह सका (दे० 'ना० प्र० पत्रिका' वर्ष ५६, अंक १, पृ० ४०) और इस भूलका सुधार पीछे (दे० वही, वर्ष ५७, अंक १ पृ० ८८-९०) तभी किया जा सका, जब इस ओर अगरचन्द नाहटाने 'सभा'का ध्यान दिलाया तथा हेमरतन एवं 'गोरा बादल-पद्मिणी चउपई' सम्बन्धी अनेक बातोंपर नवीन प्रकाश भी डाला (दे० 'शोध पत्रिका', उदयपुर भा० ३, अंक ३, पृ० १०५-१४)। अन्तमें राजस्थानवाली उक्त 'खोज' विवरण (तृतीय भाग)के लेखक उदयसिंह भटनागरने उसके

पृष्ठ ८३-९ पर न केवल इसकी सबसे प्राचीन (सं० १६४६ की) उपलब्ध प्रतिसे इसके कुछ आवश्यक अंश उद्धृत कर दिये, अपितु उन्होंने इसकी ऐसी अन्य तीन (सं० १६६१, सं० १७२९ और सं० १७८५ की) प्रतियोंका भी उल्लेख कर दिया तथा भाग विजय अथवा संग्रामसूरिकी भी उस रचनाका पृथक् परिचय दे दिया, जिसका रचनाकाल सं० १७६० पाया जाता है। उन्होंने अन्यत्र (उक्त 'शोध पत्रिका' भाग ३ अंक ४ के पृष्ठ २१२-२१ पर) फिर इसकी ६ हस्तलिखित प्रतियोंका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया तथा इसके विविध उपलब्ध संस्करणोंकी भी प्रतियोंका तुलनात्मक अध्ययन करके यह परिणाम निकाला कि जटमलकी 'गोरा बादल री कथा' (र० का० सं० १६८०-६) तथा लब्धोदय लालचन्दका ग्रन्थ 'पद्मिनी चरित्र' (र० का० सं० १७०७) और गिरधारी लालकी वैसी ही कृति (र० का० सं० १८३२) भी वस्तुतः इसी रचनाके नवीन संस्करण कहे जा सकते हैं।

उदयसिंह भटनागरके उपर्युक्त 'शोध पत्रिका' वाले लेख द्वारा पता चलता है कि उन्होंने इस रचनाका एक 'एक्जास्टिव क्रिटिकल एडीशन' तैयार कर दिया है, जो 'राजस्थान पुरातत्त्व मन्दिर, जयपुर'से प्रकाशित होने वाला है तथा वे अपनी 'थीसिस'से सम्बन्धित कोई लेखमाला भी प्रकाशित करना चाहते हैं, जिसका उक्त लेख 'प्रथमांश' कहा गया है किन्तु यह रचना अभी तक प्रकाशित नहीं सुनी गयी और न इसकी कोई प्रामाणिक हस्तलिखित प्रति भी अभी तक अपने पूरे रूपमें देखनेको मिल सकी। इस रचनाकी भाषा राजस्थानीकी उपशाखा मेवाड़ी बतलायी जाती है, जिसपर ब्रजभाषाका भी प्रभाव कम नहीं जान पड़ता। यह 'काव्यगत डिंगलसे रहित' है किन्तु इसका गम्भीर अध्ययन करनेवालेका कथन है कि यह रचना 'साहित्यिक दृष्टिसे भी महत्त्वपूर्ण है।' गोरा बादलकी कथाको केवल सुल्तान अलाउद्दीनके यहाँसे राणा रतनसिंहको छुड़ाकर चित्तौर तक वापस ले आने तककी ही घटनाओंके साथ समाप्त कर देना और पद्मिनीके सती होनेकी चर्चा जैसी बातोंका न छोड़ना, इसकी एक विशेषता है। वास्तवमें इसके रचयिताका उद्देश्य जितना रतनसेन और पद्मिनीके प्रेम-प्रसंगको महत्त्व देना नहीं है, उतना गोरा एवं बादल जैसे शूरवीरोंके शौर्य, स्वामिधर्म, आत्म-त्याग एवं मर्यादा-पालनविषयक यशोगान करना कहला सकता है। जायसीकी रचना प्रसिद्ध 'पद्मावत' एवं हेमरतन की 'गोरा बादल पदमिणी चउपई'की तुलना करनेपर उसका अन्तर इस दृष्टिसे पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है। हेमरतनने अपनी रचना जायसीसे ४८ वर्ष अनन्तर पूरी की थी, जिससे उसपर 'पद्मावत'का प्रभाव पड़ना भी असम्भव नहीं है किन्तु दोनोंमें वर्णित सभी घटनाएँ एक सी नहीं दीख पड़ती तथा कतिपय व्यक्तियों एवं स्थलोंके विषयमें भी किंचित् हेर-फेर किया गया जान पड़ता है, जिसका एक कारण यह भी हो सकता है कि हेमरतनने अपनी बातें किसी भिन्न स्रोतसे ग्रहण की होंगी। कमसे कम इतना तो निश्चित लगता है कि गोरा बादलके युद्ध-प्रसंग एवं रतनसेन और पद्मिनीके प्रेम-प्रसंगमेंसे किसी एकको विशेष महत्त्व देकर काव्यग्रन्थोंकी रचना करनेकी दो भिन्न-भिन्न पद्धतियां चल रही थीं तथा इन दोनोंके विशिष्ट कवि क्रमशः हेमरतन एवं जायसी थे। जायसी एक सूफी कवि थे और उनके मार्गका अनुसरण अधिकतर मुस्लिम कवियोंने किया, जहाँ हेमरतनकी रचनाशैली हिन्दू कवियोंको अधिक पसन्द आयी। जायसीकी 'पद्मावत' अपने ढंगकी प्रथम कृति भी हो सकती है, किन्तु हेमरतनकी रचनाके लिए कदाचित् ऐसा नहीं भी कहा जा सकता है। हेमरतन एक जैन कवि थे और उपर्युक्त 'जैनगुर्जर कविओं'में (पृ० २०७-८) इनके अन्य तीन ग्रन्थोंके भी नाम दिये गये हैं, जैसे 'शीलवती कथा' (सं० १६०३ और १६७३ (?) 'लीलावती' (सं० १६०३) और 'महिपाल चौपई-गाथा ६९६' (सं० १६३६), जिनमेंसे पृथक् दोका एक ही रचना होना भी कहा जाता है। इसी प्रकार इनकी अन्य उपलब्ध रचनाओंमेंसे 'अमरकुमार चौपाई', 'जदम्बा बावनी', 'रामरासो' तथा 'शनिश्चर छन्द'के भी नाम लिये जाते हैं (शोध पत्रिका, पृ० १११-२)।

[सहायक ग्रन्थ—जैन गुर्जर कविओं (प्रथम भाग): मोहनलाल दलीचन्द देसाई, श्रीजैन श्वेताम्बर कान्फ्रेंस आफिस, बम्बई, सं० १९८२ वि०; राजस्थानमें हिन्दीके हस्तलिखित ग्रन्थोंकी खोज (प्रथम भाग): मोतीलाल मेनारिया, हिन्दी विद्यापीठ, उदयपुर, सन् १९४२ ई०; राजस्थानमें हिन्दीके हस्तलिखित ग्रन्थोंकी खोज (तृतीय भाग): उदयसिंह भटनागर, साहित्य संस्थान, उदयपुर, सन् १९५२ ई०; नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५६, अंक १ वर्ष ५७, अंक १, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, सं० २००९; शोध पत्रिका(भाग ३), अंक ३ और ४ उदयपुर सं० २००९ चैत्र और आषाढ़; समालोचक, द्वितीय वर्ष, अंक ८, आगरा, सितम्बर, १९५९ ई०।] —प० च०

पदुमनदास—ये बादम नगरके शासक रामसिंहके पुत्र दलेलसिंहके आश्रित कवि थे। इनका केवल एक ग्रन्थ प्राप्त हुआ है—'काव्यमंजरी'। अपने आश्रयदाताकी प्रेरणासे इसकी रचना इन्होंने १६८४ ई० (सं० १७४१ वि०)में की। कवि-शिक्षा ग्रन्थोंकी दृष्टिसे हिन्दीमें केशवके बाद इन्हींका स्थान है। संस्कृतके आचार्योंके अतिरिक्त इन्होंने केशवकी 'कविप्रिया'से भी सहायता ली है। इस ग्रन्थमें अन्य काव्यांगोंका विवेचन भी है पर कवि-शिक्षाविषयक प्रकरण 'कविप्रिया'के इस प्रकरणकी अपेक्षा अधिक व्यवस्थित है। ये केशवकी परम्पराके कवि माने गये हैं। इनकी रचनाओंमें विषयकी व्यापकता और भाषाका अनगढ़पन केशव जैसा नहीं है पर उपमान योजना और अभिव्यक्ति शैली उन्हींके समान है। इस कविने किसी विषय वस्तुका वर्णन करनेके लिए परम्परागत उपमानों अथवा कविसमयोंका चयनमात्र किया है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० बृ० इ०(भा० ६)।] —सं०

पदुमलाल पुन्नालाल बक्शी—जन्म सन् १८९४ ई०में हुआ। बी० ए० तक शिक्षा प्राप्त करनेके साथ-साथ आप साहित्य-सेवाके क्षेत्रमें आये और 'सरस्वती'में लिखना प्रारम्भ किया। आपका नाम 'द्विवेदीयुग'के प्रमुख साहित्यकारोंमें लिया जाता है। पदुमलाल पुन्नालाल बक्शीने

अपने साहित्यिक जीवनका शुभारम्भ कवि रूपमें किया था। १९१६ ई०से लेकर लगभग १९२५ ई०तक आपकी स्वच्छन्दतावादी प्रकृतिकी फुटकर कविताएँ तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित होती रही। बादमें 'शतदल' नामसे आपका एक कविता-संग्रह भी प्रकाशित हुआ। पदुमलाल पुन्नालाल बक्शीको वास्तविक ख्याति आलोचक तथा निबन्ध-कारके रूपमें मिली। आरम्भमें आपकी दो आलोचनात्मक कृतियाँ प्रकाशित हुईं—'हिन्दी साहित्य विमर्श'(१९२३ ई०) और 'विश्व साहित्य' (१९२४ ई०)। इन कृतियोंमे भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्य-सिद्धान्तोंके सामजस्य एव विवेचनकी चेष्टा की गयी है। 'विश्वसाहित्य'मे यूरोपीय साहित्य तथा पाश्चात्य काव्य-मतपर कुछ फुटकर निबन्ध भी दिये गये हैं। इन पुस्तकोंके अतिरिक्त बक्शीकी दो अन्य आलोच-नात्मक कृतियाँ बादमे प्रकाशित हुईं—'हिन्दी कहानी साहित्य' और 'हिन्दी उपन्यास साहित्य'। निबन्ध-लेखन के क्षेत्रमे पदुमलाल पुन्नालाल बक्शी एक विशिष्ट शैलीकार के रूपमें आते है। आपने जीवन, समाज, धर्म, संस्कृति और साहित्य आदि विभिन्न विषयोपर उच्च कोटिके ललित निबन्ध लिखे है। आपके निबन्धोंमें नाटककी-सी रमणीयता और कहानी जैसी रंजकता पायी जाती है। यत्र-तत्र शिष्ट तथा गम्भीर व्यंग-विनोदकी अवतारणा करते चलना आपके शैलीकारकी एक प्रमुख विशेषता है। अबतक आपके चार निबन्ध-संग्रह प्रकाशित हो चुके है—(१) 'पंचपात्र', (२) 'पद्म वन', (३) 'कुछ' तथा (४) 'और कुछ।' बक्शीजीकी एक पुस्तक 'यात्री' नामसे प्रकाशित हुई है। यह एक यात्रा वृत्तान्त है और इसमे 'अनन्त पथकी यात्रा'का रोचक वर्णन प्रस्तुत किया गया है। पत्रकारिताके क्षेत्रमे भी पदुमलाल पुन्नालाल बक्शीकी सेवाएँ उल्लेख्य हैं। इन्होने १९२० ई०से १९२७ ई०तक 'सरस्वती'का सम्पादन किया। कुछ वर्षोंतक 'छाया' (इलाहाबाद)के भी सम्पादक रहे। —र० भ्र०

पदुमावती—जायसीने 'पदमावत' के अन्तर्गत पदुमावती-को उसके सभी अन्य पात्रोंकी अपेक्षा अधिक महत्त्व दिया है। यह 'सिंघल दीप' की 'पदुमिनी रानी' है (१-२४) जहाँ सात विभिन्न समुद्रोको लाँघकर जाना पड़ता है (१५-१)। पदुमावती वहाँके चक्रवर्ती राजा गन्धर्व पुत्री है, जिसका जन्म उसकी पटरानी चम्पावती हुआ है और इसके अनुपम सौन्दर्य और गुणोंकी सुनकर 'सप्तदीप' के 'वर' इसके लिए आते निराश होकर लौट जाते है (३-४)। तदनुसार सुएके मुखसे इसके नख-शिखका वर्णन सुनते का राजा रतनसेन भी मूर्च्छित हो जाता है। संज्ञा प्राप्त कर लेनेपर इसे पानेके लिए राज सोलह सहस्र कुँवरोंके साथ 'जोगी' बनकर चल है (१२-११)। वह दुर्गम और सुदीर्घ मार्ग पार कर ही किसी प्रकार सिंघलगढ पहुँचता है और वहाँपर मण्डप-में इसका ध्यान करने लगता है परन्तु इसके आनेपर इसे देखते ही वह बेसुध भी हो जाता है (२०-१५) और इस प्रकार कृतकार्य न हो सकनेपर अधीर हो उठता है तथा फिर किसी प्रकार महेश एवं पार्वतीकी कृपासे सिद्धि

विकसित कड़ीमें गीतोंके नये प्रयोगोंके मूर्धन्योंमेंसे एक मानना अनुचित न होगा। हिन्दीमें यह गीत-शैली कुछ विचित्र प्रकारसे आयी। १९३० ई० के आसपास छायावादकी समस्त बिम्ब-योजना और शब्द-योजना जैसे आकर ठहर गयी और उसमें कुछ नयी संवेदना प्रवेश ही नहीं कर पायी। उसी समय उमरखैयामके अनुवादोंकी धूम मची। पद्मकान्त मालवीयने सर्वप्रथम उस छायावादी गीतको नयी अभिव्यंजनाका रूप दिया। इसमें सन्देह नहीं कि हालावादी कवियोंमेंसे पद्मकान्त मालवीय ही थे, जिन्होंने उमरखैयामके बन्धनोंको छोड़कर नयी दृष्टि भी दी।

किन्तु आज वह सब एकदम हमारी स्मृतिसे उतर चुका है। पद्मकान्त मालवीयने उसे एक विधाके साथ प्रयोग किया किन्तु उसकी विविधता एवं उसकी रसग्राह्यताको वे सँभाल नहीं पाये। फिर भी इस बातसे इनकार नहीं किया जा सकता कि हालावादी गीतके लिए मालवीयने ही पहले भूमिका तैयार की। यही नहीं, हालावादी काव्य-धाराको अग्रसर करनेमें भी इनका प्रमुख हाथ था। छायावादकी सूक्ष्म, उदात्त, आतंकजन्य भावस्थितिसे पृथक् करके गीतको नया स्वर आपने दिया।

आपके प्रकाशित ग्रन्थोंकी सूची इस प्रकार है—'त्रिवेणी' 'प्याला', 'प्रेम पत्र', 'आत्म-वेदना', 'आत्म-विस्मृति', 'हार'। —ल० कां० व०

पद्मगंधा—पूर्वजन्ममें एक क्रौंची। अपने प्रिय शिशुओंके गंगामें डूबकर मर जानेके बाद यह इन्द्रकी इच्छासे उसकी दासी बन गयी थी। —मो० अ०

पद्मनाभ—१. भगवान् विष्णुका एक नाम।

२. मणिवर और देवजनीका पुत्र एक यक्ष।

३. एक ब्राह्मण। इन्हें त्रास देने जब एक राक्षस आया तो विष्णुने अपने चक्रसे इनकी रक्षा की। तबसे उस स्थान का नाम चक्रतीर्थ हुआ।

४. रामानन्दी सम्प्रदायके प्रसिद्ध भक्त जो पयहारीजी-के शिष्य और नाभाजीके गुरु-भाई थे (दे० भक्तमाल: नाभादास)। —मो० अ०

पद्मनारायण आचार्य—आपका जन्म मध्यप्रदेशके नरसिंह-पुर जिलान्तर्गत गाडखारामें पौष शुक्ल सप्तमी शनिवार, १९६४ (१० जनवरी, १९०८ ई०)को सरयूपारीण परिवारमें हुआ। आपके पिता पण्डित मधुसूदन संस्कृतके विद्वान और प्रसिद्ध व्यास थे। [illegible]ाण आचार्यकी प्रारम्भिक शिक्षा गाडखारामें ही [illegible]के अन्तर आपने काशी हिन्दू विश्वविद्यालयसे [illegible]और हिन्दी, दो विषयोंमें एम० ए० किया १९३१ ई० में काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमें नियुक्त हुए। आपने 'शिक्षामें सुधार', 'वैदिक, 'शब्द शक्ति', 'साहित्यकी आत्मा' आदि अनेक [illegible]बन्ध लिखे हैं। आपने 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका', 'पण्डित पत्र', 'ब्रह्मविद्या', 'गीताधर्म' आदि पत्रोंका सफल सम्पादन किया है। आप धर्मेन्द्र, नाथूराम प्रेमी आदि कई अभिनन्दन-ग्रन्थोंके सम्पादकमण्डलमें भी रहे। आपके संस्मरण लेख सशक्त और प्रभावशाली बन पड़े हैं। अभिनन्दन ग्रन्थोंमें आपकी कई कविताएँ भी

छपी है। आपने निम्नलिखित संग्रह सम्पादित किये हैं—(१) 'रसायन', (२) 'नयी कहानियाँ', (३) 'गद्य-भारती', (४) 'नवरत्न', (५) 'चुने फूल' और (६) 'सफल एकांकी'। आपने सन् १९३४ ई० मे 'भाषा-रहस्य' की रचना की तथा सन् १९३४ ई०से १९३७ ई० तक बाबू श्यामसुन्दरदासके कई ग्रन्थोंका परिवर्द्धन भी किया। आप प्रसाद साहित्य और 'कामायनी'के विशेष मर्मज्ञ हैं। —सं०

पद्मसिंह–प्रेमचन्दके 'सेवासदन'का पात्र। सुभद्राका पति वकील पद्मसिंह आचारवान् होते हुए भी अपने सिद्धान्तोंपर स्थिर रहनेकी सामर्थ्य नहीं रखता और वेश्या-भक्त मित्रोंके आग्रहपर म्युनिसिपैलिटीके चुनावमें जीतनेपर भोलीका मुजरा करा डालता है। गजाधर द्वारा परित्यक्ता सुमन जब उसके यहाँ आश्रय लेती है तो वह बदनामीके डरसे उसे घरसे निकाल देता है। सुमन उसके यहाँसे निकलनेके बाद ही वेश्यावृत्ति धारण करती है। इसपर पद्मसिंह आजन्म आत्मग्लानिसे पीडित रहता है। उसका हृदय साफ है, किन्तु उसमे साहसका अभाव है। अपनी पत्नीके सामने उसकी बहुत नहीं चलती। पद्मसिंह विचारशील होते हुए भी किसी मामलेमें एकदम फैसला नहीं कर सकता। वह अपनी कर्त्तव्य-निष्ठापर गर्व करता था किन्तु सुमनके प्रति किया गया व्यवहार उसके अभिमानको चूर्ण कर डालता है। कर्त्तव्य-क्षेत्रमे लानेके लिए पद्मसिंहको उत्साहित करनेकी आवश्यकता पडती है। वह जागते हुए भी आलसी है। संघर्षोंके फलस्वरूप उसमे धीरे-धीरे सेवा और प्रेमका भाव उत्पन्न होता है। —ल० सा० वा०

पद्मसिंह शर्मा–बिजनौर जिलेके एक गाँवमे पद्मसिंह शर्माका जन्म सन् १८७६ ई०मे हुआ था तथा उनकी मृत्यु सन् १९३२ ई० मे हुई। शर्माजी हिन्दी, संस्कृत, फारसी और उर्दूके गहरे ज्ञाता थे। उन्होंने 'साहित्य', 'भारतोदय' तथा 'समालोचक' जैसे पत्रोंका सम्पादन भी किया था। ज्वालापुर महाविद्यालयमे उन्होंने बहुत दिनोंतक अध्यापन किया। उनका घर उस समयके साहित्यकारोंका प्रमुख केन्द्र था।

शर्माजीकी प्रसिद्ध पुस्तक है—'बिहारीकी सतसई'। इसके अतिरिक्त 'पद्मपराग' प्रथम भाग (प्र० सन् १९२९ ई०)मे उनके कुछ निबन्ध सगृहीत है एवं 'हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी' नामकी पुस्तकमें भाषा-समस्यापर उनके विचार संकलित हैं। शर्माजीका एक सम्पादित ग्रन्थ है—'प्रदीप्त मंजरा'।

भारतेन्दु-युगकी प्रारम्भिक साहित्यसमीक्षाने पुस्तक समीक्षाओं एवं दोष-दर्शनकी प्रवृत्तिके बाद अपने द्वितीय चरणमे जो विकास किया, उसका मुख्य श्रेय महावीर प्रसाद द्विवेदी, मिश्रबन्धु एवं पद्मसिंह शर्माको है। इन तीनोंमें (और इनके माध्यमसे उस समयकी समस्त समीक्षामें) एक साम्य स्पष्ट दिखायी देता है कि तीनोंका मुख्य आकर्षण-केन्द्र कवियोंका अभिव्यंजना-शिल्प रहा है। काव्यकी आन्तरिक भाव-संवेदनाकी ओर इनका ध्यान कम गया है। तीनोंने ही अभिव्यंजन-क्षमताके आकलनमें भारतीय काव्य-शास्त्र तथा व्याकरण-शास्त्रका सहारा लिया है।

हिन्दीमें तुलनात्मक समीक्षाके प्रवर्तकोंमें पद्मसिंह शर्माका नाम अग्रगण्य है। उन्होंने जुलाई, १९०७ की 'सरस्वती'में बिहारी और फारसी कवि सादीकी तुलनात्मक समालोचना प्रकाशित करायी। इसी अंकमें शर्माजीका एक लेख और था—'भिन्न भाषाओंके समानार्थी पद्य'। यह निबन्ध क्रमशः 'सरस्वती'के अनेक अंकोंमे निकला और १९११ ई०में जाकर समाप्त हुआ। इसी प्रकार जुलाई, १९०८ ई०की 'सरस्वती'में उनका 'संस्कृत और हिन्दी कविताका बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव' निकलना शुरू हुआ और १९१२ ई० में जाकर समाप्त हुआ। 'सरस्वती', अगस्त, १९०९ ई०में उन्होंने 'भिन्न भाषाओंकी कविताका बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव' लिखा। इन बड़े-छोटे निबन्धोंमें तुलनात्मक आकलन तो नहीं था पर पारस्परिक समता दिखानेकी इस प्रवृत्तिने लोगोंको इस दिशामें सोचनेके लिए प्रेरित किया। वस्तुतः इन निबन्धोंकी आधारशिलापर ही आगे चलकर तुलनात्मक समालोचनाका जोर बढता है।

तुलनापरक इन पद्योंकी खोजने ही शर्माजीको इस दिशामे आगे बढनेके लिए प्रेरित किया। इस दिशामें 'बिहारीकी सतसई', जो बिहारी सतसईके भाष्यकी भूमिका है, उनका प्रौढ प्रयोग है। इस पुस्तकमें 'गाथा सनसई', 'आर्य सप्तशती', 'अमरुक शतक' आदिकी उस शृंगारिक-साहित्यिक परम्पराका निरूपण हुआ है, जिसका अनुसरण बिहारीने किया है। इन ग्रन्थोंमे बिहारीने बहुत-कुछ ग्रहण किया है, उसी कारण कुछ आलोचकोंने बिहारीपर भावापहरण और साहित्यिक चोरीका आरोप लगाया है। पद्मसिंह शर्माने ऐसे स्थलोंका तुलनात्मक अध्ययन और विश्लेषण करके बिहारीकी विशिष्टता और श्रेष्ठताकी ओर संकेत करना चाहा है और उन्हे भावापहरणके आरोपसे मुक्त करनेकी चेष्टा की है। यद्यपि यह प्रयत्न तटस्थ और निर्भ्रान्त नहीं है। बिहारीके प्रति आग्रहपूर्ण पक्षपात रखनेके कारण वे संस्कृत-ग्रन्थोंके काव्य-सौन्दर्यकी उपेक्षा करके बिहारीको जबरदस्ती श्रेष्ठकवि घोषित करनेकी चेष्टा करते है। 'शून्यं वासगृहं विलोक्य' तथा 'त्वं मुग्धाक्षि विनयैव कंचुलिकया धत्से मनोहारिणी'में रस-क्षमता बिहारी के 'मैं मिसहा सोयो समुझि' अथवा 'पति रतिकी बतियाँ कहीं' से कम नहीं है, पर शर्माजीने उनमें किसी-न-किसी प्रकारका दोष निकालकर बिहारीको ऊँचा उठानेकी चेष्टा की है।

परस्पर साम्यके इस अध्ययनमें उन्होंने कतिपय समीक्षा-सिद्धान्त भी निर्धारित किये और इन सिद्धान्तोंका पुष्टीकरण उन्होंने संस्कृतके अन्य काव्य-शास्त्रीय ग्रन्थोंके आधारपर किया है। आनन्दवर्द्धन, राजशेखर आदि द्वारा भावापहरणसम्बन्धी चर्चाओंका उल्लेख करते हुए मौलिकताके सम्बन्धमें उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि चिरपरिचित और कवि-परम्परासे प्राप्त तथ्यको उक्ति-वैचित्र्यके साथ रख देना भी मौलिकता है। इसी प्रकार महाकवित्वके लिए किसी महाकाव्यकी रचनाको भी उन्होंने आवश्यक नहीं माना। वस्तुतः यह सिद्धान्त भावी स्वच्छन्दतावादी आन्दोलनकी भूमिका ही था। शुक्लजीने जहाँ प्रबन्धकाव्यको ही महत्ता प्रदान की थी, वहीं

स्वच्छन्दतावादी समीक्षकोंने मुक्तकको भी उतना ही महत्त्वपूर्ण माना । शर्माजी इसी सिद्धान्तके लिए पृष्ठभूमिका निर्माण कर सके थे ।

शर्माजीका आलोचनाके क्षेत्रमें एक बहुत बड़ा प्रदेय है, जिसकी ओर साधारणतः समालोचकोंने ध्यान नहीं दिया है । उनका रचनाकाल यद्यपि शुद्धता और नैतिकतावादी आर्यसमाजी 'द्विवेदीयुग' था, पर साहित्यिक परम्पराके वास्तविक प्रतिनिधिके रूपमें उन्होंने शृंगारके रसराजत्वको स्थापित किया तथा शृंगारमात्रको अश्लील समझनेकी धारणाको परिवर्तित किया । यह तथ्य भी रोमाण्टिक परम्पराकी ओर बढ़ाव है परन्तु इस कथनसे यह अर्थ निकालना ठीक न होगा कि वे शृंगारी-परम्पराके आलोचक थे । "उनके सम्बन्धमें भ्रम हो जाता है कि वे शृंगारिक परम्पराके आलोचक थे किन्तु वे समीक्षक थे शब्द और अर्थके, शृंगारिकतासे उनका सम्बन्ध न था । वे अभिव्यंजना-परीक्षाके आचार्य थे, शब्दगत तथा अर्थगत बारीकियों तक उनका जैसा प्रवेश था, हिन्दीमें किसी दूसरे व्यक्तिका नहीं देखा गया ।" (हिन्दी-साहित्य—बीसवीं शताब्दी : प० नन्ददुलारे वाजपेयी, भूमिका, पृ० २ सं० १९४५ ई०) । बिहारीका काव्य-सौष्ठव प्रतिपादित करते हुए उन्होंने बिहारीकी अभिव्यंजनासम्बन्धी कारीगरीकी ओर ही ध्यान अधिक दिलाया है ।

इस अभिव्यंजना-सौष्ठवके स्पष्टीकरणके लिए यद्यपि वे सहारा शास्त्रका ही लेते हैं पर उनकी आलोचनाको शास्त्रीय समीक्षा न कहकर प्रभाववादी-समीक्षा कहना उचित है । वे अपनी बात कहनेके लिए शास्त्रका उपयोग भर करते हैं या फिर कभी-कभी शास्त्रको अपनी ओर जबरदस्ती मोड़ लेते हैं, जैसे कि प्रतीयमान अर्थमें उन्होंने उक्तिवैचित्र्यका भाव निकालना चाहा है । तुलनात्मक समीक्षाके लिए जिस तटस्थताकी आवश्यकता होती है, उसका उनकी आलोचनाओंमें (विशेषकर 'बिहारीकी सतसई'में) नितान्त अभाव है । डा० भगवतस्वरूपका यह मन्तव्य ठीक लगता है कि वस्तुतः "पण्डितजी (पद्मसिंह शर्मा) की आलोचनाका मूल आधार सहृदयता और प्रभावाभिव्यंजकता ही है । पर बिहारीके सौष्ठवका प्रतिपादन करते हुए उन्होंने प्राचीन आचार्यों द्वारा मान्य काव्यांगोंका निरूपणभी अनेक स्थानोंपर किया है ।" ('हिन्दी आलोचना—उद्भव और विकास', पृ० ३१४) ।

इस प्रभाववादी पक्षके कारण उनकी आलोचनाओंमें गम्भीर शैली नहीं रह गयी है । जहाँ किसी उक्तिपर वे रीझे कि बस उछल पड़े और उस प्रभावके कारणोंका विश्लेषण करनेके स्थानपर अपने ऊपर पड़े प्रभावको ही अभिव्यक्त करने लग जाते थे । उनकी इस 'वाह-वाह', 'क्या खूब' वाली शैलीकी इसी कारण निन्दा की गयी है परन्तु इन प्रशंसात्मक अंशोंको यदि थोड़ा सा भुलाकर पढ़ा जाय तो उनकी शैली अपने लालित्य-प्रवाह तथा हास्य-विनोदके कारण अत्यन्त सुपाठ्य बन पड़ी है । कहना न होगा कि ऐसी सुपठनीय समीक्षाएँ हिन्दीमें कम लिखी गयी हैं । शब्दके अपेक्षित प्रयोगपर उन्होंने बहुत अधिक ध्यान दिया है ।

आलोचनाके अतिरिक्त शर्माजी ने निबन्धोंके क्षेत्रमें भी कार्य किया है और इस दिशामें उनके व्यक्तित्वकी छाप स्पष्ट है । द्विवेदी-युगके प्रमुख निबन्ध-लेखकोंमें उनकी गिनती की जा सकती है । वे मूलतः शैलीकार थे । निबन्धोंमें कभी उन्होंने धार्मिक सद्भावनाकी गुहार लगायी है, कभी भगवान् श्रीकृष्णके पौराणिक चरित्रके वर्णनके माध्यमसे आधुनिककालके नेताओंपर व्यंग्य किये हैं एवं कभी-कभी 'मुझे मेरे मित्रोंसे बचाओ' जैसी मजेदार चर्चा की है । इन निबन्धों ('पद्मराग'में संकलित) की भाषामें उर्दूकी मुहावरेदानी एवं बोलचालके लहजेका प्रवाह अत्यन्त स्पष्ट है तथा यत्र-तत्र भाषण-कलाका भी प्रभाव दिखाई देता है । शर्माजीने कविताएँ भी लिखी हैं पर उस क्षेत्रमें उन्हें अधिक महत्त्व प्रदान नहीं किया जा सकता । —दे० शं० अ०

पद्माकर भट्ट–रीतिकालके अन्तिम श्रेष्ठ आलंकारिक कविके रूपमें पद्माकर भट्टका नाम प्रसिद्ध है । इनका प्रभाव अपने परवर्तियोंपर भी पड़ा है । ये जातिके तैलंग ब्राह्मण थे और बाँदानिवासी मोहनलाल भट्टके पुत्र थे । इनका जन्म रामचन्द्र शुक्लके अतिरिक्त सभी सन् १७५३ ई०में सागरमें हुआ बताते हैं । ये मथुरास्थित शाखाके वैष्णव हो गये थे । इनके पिता तथा कुलके अन्य लोग भी कवि थे और इनके वंशका नाम ही 'कवीश्वर' पड़ गया था । इनकी मृत्यु गंगा तटपर कानपुरमें सन् १८३३ ई०में ८० वर्षकी आयुमें हुई । ये अनेक राजदरबारोंमें रहे और इनका वैभव-विलास किसी राजासे कम नहीं था । इनको नागपुरके महाराज रघुनाथराव अप्पा साहब, पन्नाके महाराज हिन्दूपति, जयपुर नरेश महाराज प्रतापसिंह, सुगराके नोने अर्जुनसिंह, गोसाईं अनूपगिरि उपनाम हिम्मतबहादुर, उदयपुरके महाराणा भीमसिंह, ग्वालियरके महाराज दौलतराव सिंधिया तथा बूँदी दरबारकी ओरसे बहुत सम्मान, दान आदि मिला और ये पन्ना महाराज तथा नोने अर्जुनसिंहके गुरु रहे । पन्ना महाराज तथा जयपुरनरेशसे क्रमशः इन्होंने गाँव प्राप्त किये, 'कविराज शिरोमणि'की उपाधि पायी और जागीरके अधिकारी हुए। सितारेके महाराज रघुनाथरावसे इन्हें एक हाथी, एक लाख रुपया तथा दस गाँव मिले । 'दिग्विजय भूषण'में उद्धृत इनके एक छन्दमें (दूनी तेज दाहते हैं···काली है) आये भगवन्त सिंह नामसे ऐसा लगता है कि यह भी इनके आश्रयदाता थे, किन्तु अन्यत्र इसी छन्दमें रघुनाथराव आया है, अतएव दि० भू० में आया नाम भ्रमात्मक है ।

पद्माकरके नामसे 'हिम्मतबहादुर विरुदावली', 'पद्माभरण', 'जगद्विनोद', 'प्रबोध पचासा' (भारत जीवन प्रेस, बनारस, १८९२ ई० तथा रामरत्न वाजपेयी, लखनऊ, १८९६ ई०) 'गंगा लहरी', 'राम रसायन' (भारत जीवन प्रेस, बनारस, १८९४ ई०), 'भाषाहितोपदेश', 'ईश्वर पचीसी', 'आलीजाह प्रकाश' तथा 'प्रतापसिंह-विरुदावली' (जयपुर निवासी वंशजोंके पास ह० प्र० है) नामक ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं । 'हिम्मतबहादुर विरुदावली' वीर-रसकी फड़कती रचना है और हिम्मतबहादुरकी प्रशंसामें लिखी गयी है । 'जगद्विनोद' रस-विवेचनका ग्रन्थ है और जयपुर महाराज

प्रताप सिंहके पुत्र महाराज जयसिंहके यहाँ उन्हींके नामपर रचा गया था। सम्भवतः वहीं 'पद्माभरण'की रचना भी हुई। यह अलंकार-ग्रन्थ है। 'प्रताप सिंह-विरुदावली'में सवाई महाराज प्रताप सिंहके यशका वर्णन किया गया है। 'आलीजाह प्रकाश' अथवा 'आलीजाह सागर'की रचना पद्माकरने दौलतराव सिंधियाके नामपर सन् १८२१ ई० में की है। पद्माकरने अपने ग्रन्थोंमे केवल इसीका रचना-काल दिया है। इसमें 'जगद्विनोद'से कम ही अन्तर है।

उदयपुरके महाराणा भीमसिंहकी आज्ञासे इन्होंने 'गनगौर' मेलेका वर्णन किया। सिन्धिया दरबारमे सरदार ऊदाजीके अनुरोधपर 'हितोपदेश'का गद्य-पद्यात्मक भाषानुवाद प्रस्तुत किया। अन्तिम कालमे रोग-ग्रस्त रहनेपर 'प्रबोध-पचासा'की तथा गंगा तटपर सात वर्ष रहनेके समय 'गंगालहरी'की रचना हुई। इन्होने वाल्मीकि-रामायणके आधारपर दोहा-चौपाईमे 'राम-रसायन' चरितकाव्यकी रचना भी की। इस प्रकार रचनाकी दृष्टिसे आप रीति-शास्त्र के ज्ञाता, शृंगार तथा भक्तिके साथ-साथ वीर-रसके समान रूपसे कवि, मुक्तक तथा प्रबन्ध दोनों शैलियोंके सफल रचनाकार, सफल अनुवादक तथा पचासा-शैलीके प्रवर्तक माने जायेंगे। काव्यगत रमणीयताकी दृष्टिसे इनकी समकक्षतामें बिहारी ही बैठ पाते हैं। इसी कारण ये रीतिकालके एक प्रमुख कवि माने जाते हैं।

स्वाभाविक तथा मधुर कल्पना और हाव-भावके प्रत्यक्षवत् मूर्तिविधानकी दृष्टिसे शुक्लजी 'जगद्विनोद' को शृंगारका सारग्रन्थ मानते हैं। शब्दाडम्बर और ऊहात्मक वैचित्र्यसे मुक्त रहकर चमत्कार-चातुरीके साथ सुघर कल्पनावाले भाव-चित्रोंकी उपस्थिति, अन्तः भावनाओंकी व्यंजना-शक्तिके द्वारा सजीवता और साकारताके साथ बड़े कौशलके साथ सजावट, चित्रांकन तथा बहुज्ञता और विद्वत्ताके एक साथ निर्वाहके लिए पद्माकर अद्वितीय कहे जा सकते हैं। भाषापर इनका अद्भुत अधिकार था, उसकी समस्त शक्तियोंसे ये एक-सा काम ले सकते थे। रामचन्द्र शुक्लके शब्दोंमें "कहीं तो इनकी भाषा स्निग्ध मधुर पदावली द्वारा एक सजीव भावभरी प्रेममूर्ति खड़ी करती है, कहीं भाव या रसकी धारा बहाती है, कहीं अनुप्रासोंकी मिश्रित झंकार उत्पन्न करती है, कहीं वीरदर्पसे क्षुब्ध-वाहिनीके समान अकड़ती और कड़कती हुई चलती है और कहीं प्रशान्त सरोवरके समान स्थिर और गम्भीर होकर मनुष्य जीवनकी विश्रान्तिकी छाया दिखाती है"। यह गौरव केवल पद्माकरको ही मिला कि भाषाकी अनेकरूपताके आधारपर इनकी तुलसीदासजीसे तुलना की गयी।

इनकी भाषा सरस, सुव्यवस्थित, व्याकरणानुमोदित तथा सुगुम्फित है। गुणोंका पूरा निर्वाह इनके छन्दोंमें हुआ है। साथ ही सवैया तथा कवित्तपर गतिमयता और प्रवाहपूर्णताकी दृष्टिसे इनका जैसा अधिकार भी दूसरे कविको नहीं मिला है। रस-निर्वाहमें भी इनको पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। इन्हें लम्बे अनुप्रासों तथा यमकोंकी लड़ी गूँथनेका बड़ा शौक था और उसमे ये सफल भी हुए हैं। व्यर्थ शब्दोंका प्रयोग न करके इन्होंने काव्यको अरुचिकर बननेसे बचा लिया है। इन्होंने रस-वर्णन तथा ऋतु-वर्णनमें भी विस्तारसे काम लिया गया है। शृंगार-वर्णनमें यत्र-तत्र सीमोल्लंघन दिखाई पड़ने लगा है। इस आलंकारिक प्रवृत्तिसे इनकी 'गंगालहरी' भी अछूती नहीं रह सकी। उसमें भी गंगाकी स्थिति, उसके नामस्मरणसे मुक्ति, स्नानसे शिवरूपता आदिके वर्णनके साथ ही जहाँ शृंगारहीन मौलिक भावोंका निर्वाह किया गया है, वहीं उसे अलंकारोंसे सुसज्जित करना भी ये नहीं भूले हैं। भक्ति और शृंगार दोनोंका समान भावसे इनमें निर्वाह दिखाई देता है, किन्तु किसी एक काव्यमें इनकी एकत्र अवस्थिति नहीं है।

पद्माकर पंचदेवोपासक थे और सांसारिक जटिलताका पूरा अनुभव कर चुके थे। अतएव पेटकी बेगार, झूठी तृष्णा, शरीर नश्वरता आदि का अच्छा वर्णन कर सके हैं। लोकानुभवके अनुकूल देवताओंमे विश्वास करनेकी इनमें उदारता थी। इनपर अपने पूर्ववर्तियोंका भी प्रभाव पड़ा था। उदाहरणके लिए 'हिम्मतबहादुर विरुदावली'में 'सुजानचरित'के समान राजपूतोंके छत्तीस कुलों, तलवार चलानेकी रीतियों तथा तोपोंकी गणना करायी गयी है। केशवदासजीके समान ऋषि-आश्रममें इलाहाबादके आसपास ही अगूरकी बेलें देखने लगे है। शास्त्र-विवेचनमे 'पद्माभरण'पर 'चन्द्रालोक'का तथा बैरीसालके 'भाषाभरण' का प्रभाव पड़ा है। उदाहरणोंमे स्वतन्त्रता बरतते हुए भी लक्षण सस्कृतके अनुकरणपर ही है, साथ ही अस्पष्ट भी।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० इ०; मि० वि०; हि० सा० बृ० इ० (भाग ६); दि० भू०; क० को०; शि० स०; पद्माकर पंचामृत।] —आ० प्र० दी०

पद्माभरण—लेखक पद्माकर भट्ट। रचनाकाल सन् १८११ ई० के लगभग। इसका एक सस्करण रामकृष्ण वर्मा द्वारा सम्पादित भारतजीवन प्रेस, बनारससे १९००ई०में प्रकाशित हुआ। यह ग्रन्थ अलकार-विवेचनके लिए लिखा गया है और 'चन्द्रालोक', 'भाषा भूषण', 'कविकुलकण्ठाभरण' से प्रभाव ग्रहण करते हुए विशेषतः बैरीसालके 'भाषाभरण' ग्रन्थके अनुकरणपर इसकी रचना हुई है। कहीं-कहीं 'भाषाभरण' ही परिवर्तित रूपमे रख लिया गया है। 'भाषाभूषण' से लगभग दुगुना यह ग्रन्थ ३४४ छन्दोंमें पूरा हुआ है। प्रधानतः दोहा छन्दका प्रयोग किया गया और कहीं-कहीं चौपाइयाँ भी रख दी गयीं हैं। इसमे अर्थालकार तथा पंचदश अलंकार प्रकरणके नाम से पृथक् रूप से दो प्रकरण रखे गये हैं। प्रथममें स्वीकृत अलंकारोंके लक्षण तथा उदाहरण देनेके बाद दूसरेमे विवादग्रस्त १५ अलंकारोंका वर्णन किया गया है। प्रथम प्रकरणमें 'कुवलयानन्द' से १०० मुख्य अलंकारोंका उसी क्रमसे वर्णन है। प्रकरण-भिन्नताके साथ शैलियाँ भी भिन्न अपनाई गयी हैं। पद्माकरने यह रचना "देखि कविनको पन्थ" लिखी है और एक प्रवाहमे बहकर ही रची है। 'काव्यप्रकाश', 'साहित्यदर्पण' तथा अन्य ग्रन्थोसे भी सामग्री ग्रहण की गयी है।

मुख्यतः आधार ग्रन्थका अनुवाद रखा गया है, तदनन्तर आवश्यकतानुसार अन्य ग्रन्थोंका प्रभाव निःसंकोच

ग्रहण किया गया है। पहले अलंकारके लक्षण तथा भेदका निरूपण एक दोहेमें करके बादमें दोहोंमें एक-एक भेदका वर्णन किया गया है। कहीं विरल तथा कहीं विस्तृत वार्तिक लिखकर समझानेकी चेष्टा की गयी है। उदाहरण दूसरोंके रखे गये हैं। विशेषतः बिहारी तथा बैरीसालका ऋण स्वीकार किया गया है। पुनर्यथा कहकर एकाधिक उदाहरण प्रस्तुत करते हुए चमत्कार लानेका प्रयत्न किया गया है। परम्परागत उदाहरण रखते हुए भी उनमें निर्दोषिता नहीं आ सकी है। उदाहरणतः अवर्ण्य श्लेष, विशेषोक्ति, असंगति, प्रौढोक्ति तथा सम्भावनाका विवेचन दोषयुक्त है। सम्भावनाके स्थानपर 'साहित्यदर्पण' से अतिशयोक्तिके उदाहरणका अनुवाद रख दिया गया है, ललितका उदाहरण वस्तुतः लोकोक्तिका है और दृष्टान्तका उदाहरण परिसंख्यापर घटित होता है। उत्प्रेक्षावर्णनमें कुछ नवीनता है। उसके भेद, वस्तु, हेतु तथा फलोत्प्रेक्षाके भी उक्त-विषया, अनुक्तविषया नामक दो भेद करके अन्तमें गम्योत्प्रेक्षा रखी है, जो 'कुवलयानन्द' में इसी नाम से तथा 'चन्द्रालोक' में गूढोत्प्रेक्षाके नाम से कही गयी है।

मंगलाचरणके बाद ३ दोहोंमें अलंकार-रीतिकी चर्चा तो की गयी है, किन्तु अलंकारका लक्षण नहीं दिया गया है और न काव्यमें उसका स्थान ही निर्धारित किया गया है। अलंकारके शब्द, अर्थ तथा उभय नामक तीन भेद अवश्य किये गये हैं। केवल अर्थालंकारोंका वर्णन किया गया है। पंचदश अलंकार प्रकरणमें ४ रसवत्, ३ भावोदयादि, ८ प्रमाण अलंकारोंका वर्णन करते हुए आरम्भमें गुरु तथा गणेशकी वन्दना की गयी है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० अ० सा०; हि० का० शा० इ०; हि० सा० बृ० इ० (भा० ६)।] —आ० प्र० दी०

पद्मावत–दे० 'पदमावत'।

पद्मावती–१. कंसकी माता, विदर्भराज सत्यकेतुकी पुत्री तथा उग्रसेनकी पत्नी। इसे मोहवश कुबेरके एक दूतसे गर्भ रह गया था। कंस उसी गर्भमें उत्पन्न हुआ था।

२. सिंहलदीपके राजा गन्धर्वसेनकी अत्यन्त रूपवती कन्या, जिसे प्राप्त करनेके लिये रत्नसेनने अनेक कष्ट सहे थे। इस लोक-कथाके आधारपर जायसीने पदमावतकी रचना की (दे० 'पदमावत')।

३. भक्तमालके अनुसार रामानन्दकी एक प्रमुख शिष्या (दे० 'भक्तमाल': नाभादास)।

४. कृष्णकी स्त्री, जो भंगकारकी पुत्री थी। —मो० अ०

पद्मिनी–यह मेवाड़के राजा रत्नसिंहकी अतीव सुन्दरी रानी थी। अलाउद्दीन खिलजीने पद्मिनीकी रूप-चर्चा सुनकर इसे प्राप्त करनेके लिए मेवाड़पर आक्रमण कर दिया। राजपूतों और मुसलमानोंमें घोर युद्ध हुआ। अन्तमें राजपूत अपनी अल्प-संख्याके कारण पराजित हो गये। मुसलमानोंके हाथोंमें पड़नेकी अपेक्षा रानीने देह-त्याग ही अच्छा समझा और उन्होंने जौहर किया। उनके साथ अन्य सभी रानियोंने अग्निमें कूदकर अपनी मर्यादाकी रक्षा की। परम रूपवती वीर राजपूतानी और मर्यादाके लिए मर मिटने वाली महिलाके रूपमें पद्मिनीका नाम हिन्दी साहित्यमें अमर है (दे० 'पदमावत')। —रा० कु०

पद्मिनी चरित्र–इस रचनाके रचयिताका नाम 'लब्धोदय गणि' लिखा मिलता है, जो सम्भवतः उसका दीक्षा नाम था, मूल नाम 'लालचन्द' था। इसका वर्ण्य विषय वस्तुतः वही है, जो हेमरतनकी रचना 'गोरा बादल पद्मिणी चउपई' (दे० 'पद्मिनी चउपई')का है। 'जैनगुर्जर कविओं' (बीजो भाग)के पृष्ठ १३४ से लेकर १३८ तक जो इसका परिचय दिया गया है तथा उसके उद्धरण भी दिये गये हैं, उनसे पता चलता है कि खरतर गच्छी श्री जिनराज सूरिके 'पाटि' श्रीजिनरंग सूरिके आदेशसे लब्धोदयने सं० १७०६ में उदयपुरमें चौमासा किया। उस समय दिल्लीका बादशाह शाहजहाँ (सन् १६२८-५८ ई०) था और उदयपुरमें राणा जगतसिंह (सन् १६२८-५२ ई०) राज्य करते थे, जिनकी माता जाम्बुवतीके मन्त्री केसरके पुत्र हसराज डुंगरसी एवं भागचन्दके अनुरोधसे ज्ञानराज वाचकके शिष्य लब्धोदयने इसे सं० १७०७ (सन् १६५० ई०)की चैत्र-पूर्णिमाको शनिवारके दिन रचकर पूरा किया। लब्धोदयने यहाँपर अपने गुरु ज्ञानराजकी भी गुरु-परम्परा दे दी है और बतलाया है कि श्रीजिनमानिक सूरिके प्रथम शिष्य विनय समुद्र थे, जिनके शिष्य हर्षशील या हर्षविलास थे और उनके शिष्य ज्ञान समुद्रके शिष्य ज्ञानराज थे, जो इनके दीक्षा गुरु थे। उपर्युक्त कुछ उद्धरणों द्वारा इस बातकी भी सूचना मिल जाती है कि इस रचनाके अन्तर्गत कविने शूरवीरोंके 'सिरताज' गोरा बादलका चरित्र वर्णन किया है और पद्मिनीके शील-व्रत पालनकी कथा कही है, जिससे यह रचना भी 'सती चरित सिरताज' कहलाने योग्य है। 'जैनगुर्जर कविओं'के लेखकने इस परिचयके सन्दर्भमें कुछ ऐसी पंक्तियाँ भी उद्धृत की है, जिनसे जान पड़ता है कि यह पूरी रचना कमसे कम तीन खण्डोंमे समाप्त हुई होगी, जिनमेंसे प्रथम एवं तृतीयके नाम भी क्रमशः 'राणा रतनसेन पद्मिनी परणयण' तथा 'श्रीगोरा बादल रिणंजय प्रापणो' जान पड़ते हैं, किन्तु द्वितीय खण्डका नाम कहीं पर नहीं दीख पड़ता। इसी प्रकार इस रचनाके अन्तमें दी गयी पंक्तियोंसे ज्ञात होता है कि यह 'ढालभाषाबन्ध' भी कही गयी है, जिसका तात्पर्य कदाचित् यह है कि यह गेय छन्दोंमें निर्मित की गयी है। 'जैनगुर्जर कविओं' (त्रीजो भाग, खण्ड २)के पृष्ठ ११८५ पर लब्धोदयका नाम 'लब्धोदय-लालचन्द'के रूपमें दिया गया मिलता है। इस ग्रन्थके लेखकने लब्धोदयकी दो अन्य रचनाओंका भी उल्लेख किया है, जिनमेंसे एक 'मलय सुन्दरी चौपई' (र० का० सं० १७४३ सन् १६८६ ई०) है और दूसरी 'गुणावली चौपई' (र० का० सं० १७४५ सन् १६८८ ई० का० सु० १०) है तथा इनमेंसे प्रथममें गुरु ज्ञानराजको महोपाध्याय कहा गया है।

काशी नागरी प्रचारिणी सभाके तत्वावधानमेंकी जाने वाली हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थोंकी खोजके पन्द्रहवें त्रैवार्षिक विवरण (सन् १९३२-३४ ई०)के देखनेसे पता चलता है कि 'पद्मिनी चरित्र'के रचयिताका नाम 'लब्धोदय'की जगह 'लक्षोदय' पढ़ा गया था। तथा उसके सम्पादक डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वालने उनके

नाम 'लालचन्द' पर एक टिप्पणी लिखते हुए उसकी एक रचना 'लीलावती' का भी उल्लेख किया है। परन्तु अगरचंद नाहटाने इन तीनों बातोंको भ्रान्तिजन्य ठहराकर उनका ध्यान वास्तविकताकी ओर आकृष्ट किया, जिसके फलस्वरूप 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' वर्ष ५६, अंक २ (पृ० १८३-४) की एक टिप्पणी द्वारा भूलसुधारका प्रयत्न किया गया। 'राजस्थानमे हिन्दीके हस्तलिखित ग्रन्थोंकी खोज' (द्वितीय भाग)के विवरण पृ० १५९ से भी पता चलता है कि जिस 'लीलावती' ग्रन्थके रचयिताका नाम 'लालचंद' बतलाया जाता है, वह वस्तुतः 'लीलावती रास' (र० का० सं० १७२८, सन् १६७१ ई०) है तथा उसका लालचन्द भी खरतर गच्छीय जैनपति है और वह लब्धोदयसे नितान्त भिन्न है। इसी प्रकार उस खोज (तृतीय भाग) वाले विवरण पृ० ८७-८८ से यह भी विदित होता है कि इस रचनाकी जो तीन हस्तलिखित प्रतियाँ उसके लेखकको मिली है, उनमेंसे तीसरीके अनुसार इसके प्रथम खण्डमें १४४ छन्द हैं, द्वितीयमें १५६ हैं तथा तृतीय में ५११ हैं। किन्तु वहाँपर उन खण्डोंका कोई नामानिर्देश भी नहीं किया गया है, जिनके द्वारा उनके विभिन्न वर्ण्य-विषयोंका भी कोई स्पष्ट संकेत मिल सके। उसके लेखक उदयसिंह भटनागरने फिर अन्यत्र (दे० शो० प० उदयपुर, भाग ३, अंक ४, पृ० २१९-२०) इसकी १३ प्रतियोंका उल्लेख किया है, जो क्रमशः सं० १७४५, १७५३, १७५८, १७६१, १७७१, १७७३, १७९०, १७९८, १८२१, १८२३, १८२७, १८२९ और १८३७ मे लिखित है और वहाँ पर उन्होंने यह भी बतलाया है कि "यह रचना गानेकी ढाल और दोहोमे है, परन्तु भाषा और व्यवस्थित वाक्य हेमरतनकी रचनामे ज्योंके त्यो ले लिये गये है और कथा भी रतनसेनकी मुक्तिपर समाप्त हो जाती है।" (पृ० २२०)। वास्तवमे यह रचना हेमरतनकी 'गोरा बादल पदमिणी चउपई'का एक संस्करण विशेष ही कही जा सकती है।

'गोरा बादल पदमिणी चउपई'की रचना-परम्पराके अन्तर्गत आनेके कारण इसमे सम्भवतः रतनसेन एवं पद्मिनीके प्रेम-प्रसंगकी अपेक्षा गोरा एवं बादल सम्बन्धी युद्ध-प्रसंगको ही अधिक महत्त्व दिया गया जान पड़ता है और इस दृष्टिसे यह जटमलकी रचना 'गोरा बादल'की कथाके समान भी कही जा सकती है, जिसका निर्माण इससे पहले सं० १६८० एवं सं० १६८६के बीच किसी समय हो चुका था परन्तु यदि इसकी तुलना उसके साथ की जाती है तो पता चलता है कि कमसे-कम कतिपय पात्रों एवं घटनाओंके वर्णनोंमें अन्तर आ जानेके कारण ये दोनों रचनाएँ एक दूसरेसे किंचित् भिन्न सी लगती हैं—यद्यपि जायसीकी 'पद्मावत'से भी वहाँ इनकी कोई समानता नहीं है। उदाहरणके लिए जायसीके अनुसार रतनसेन पद्मावतीके रूप-सौन्दर्यपर हीरामन तोतेके कथन द्वारा मोहित हुआ था और जटमलका कहना है कि 'सिंघलद्वीप'से आये हुए किसी भाटने 'पद्मिनी' स्त्रीकी प्रशंसा द्वारा उसे इस ओर उभाड़ा था। किन्तु लब्धोदयके अनुसार राजाकी पटराणी परभावतीने उसे ताना देकर पद्मिनी स्त्री व्याह लानेके लिए उकसाया था। इसी प्रकार जायसीके अनुसार जहाँ रतनसेन स्वयं योगी बनकर और अनेक राजकुमारों तथा तोतेको साथ लेकर कष्ट झेलता हुआ 'सिंहल' देश पहुँचता है, वहाँ जटमलके अनुसार उसे कोई 'जोगेन्द्र' मृगछालापर बिठाकर तथा मन्त्र पढकर वहाँ तक पहुँचा देता है, किन्तु लब्धोदयका कहना है कि समुद्र तटतक तो राजा स्वयं पहुँच जाता है पर उसे पारकर सिंहल तक जानेमें उसे किसी औघड़नाथ सिद्धसे सहायता लेनी पड़ती है, जो इसके लिए योगबलका प्रयोग करता है। जहाँ तक सिंहलमें रतनसेन एवं पद्मावतीके मिलनका प्रसंग है, वह जायसी के अनुसार तोतेकी सहायतासे वसन्त पंचमीके दिन शिवके मन्दिरमे घटित होता है तथा शिवकी आज्ञा पाकर ही उस प्रेमपात्रीका पिता दोनोंके विवाहकी व्यवस्था करता है, किन्तु जटमलके अनुसार रतनसेनका सहायक जोगेन्द्र उसका परिचय वहाँके राजाको दे देता है और उसका विवाह पद्मिनीके साथ हो जाता है। लब्धोदयका कहना है कि जिस समय रतनसेन वहाँ पहुँचा, उस समय सिंहलमें राजाकी बहन पद्मिनीके विवाहके लिए वहाँ ढिंढोरा पिटवाया गया था, जिससे प्रेरित होकर वह वहाँके अखाड़ेमे उतरा और अपना पराक्रम प्रदर्शित करके अपनी प्रेयसीको पा सका। फिर विवाहादि सम्पन्न हो जानेपर जायसी, रतनसेनका सिंहलमें कुछ दिनोंतक रह जाना, किसी पक्षी द्वारा अपनी चित्तौरकी रानी नागमतीके विरह दुःखको सुनकर दुःखित होना तथा वहाँसे विदा होकर किसी प्रकार कष्ट झेलते हुए अपनी राजधानी लौटना बतलाता है, किन्तु जटमलके अनुसार रतनसेन पद्मिनी एवं जोगेन्द्र आदिके साथ किसी "उडण खटोली" पर बैठकर चित्तौर पहुँच जाते हैं और उनके साथ यहाँ तक एक ब्राह्मण राघवचेतन भी आता है, जिसकी चर्चा यहाँपर न तो जायसी करता है और न लब्धोदय ही उसका नाम लेता है। लब्धोदय यहाँ पर एक नयी बात यह बतलाता है कि रतनसेन सिंहलसे लौटकर चित्रकूटमें ही ठहर गये और तब तक उनका लड़का वीरभाण चित्तौरमें राज्य करता था। जायसीके अनुसार ब्राह्मण राघवचेतन रतनसेनके यहाँ रहता था और वह जादू-टोनेमे प्रवीण था, जिसका भेद खुल जानेपर वह दरबारसे निकाल दिया गया और इसका बदला उसने अलाउद्दीनसे रानी पद्मावतीके सौन्दर्यकी प्रशंसा कर उसे चित्तौरपर चढ़ा लाने द्वारा लिया। परन्तु जटमलके अनुसार राघवचेतन सिंहलसे आया था और एक बार जब वह रतनसेनके साथ शिकारमें गया था, उसने पद्मिनीके वियोगमे व्याकुल राजाको उसकी एक ऐसी पुतली बनाकर दे दी, जिसकी जाँघपर ठीक रानीके जैसा एक तिल विद्यमान था और इस बातसे सन्देह करके राजाने उसे अपने यहाँसे निकाल दिया तथा साधु बनकर दिल्ली पहुँच जानेपर उस ब्राह्मणने पद्मिनीके सौन्दर्यकी प्रशंसा करके अलाउद्दीनको रतनसेनके दुर्गपर चढ़ायी करनेके लिए प्रोत्साहन दिया। इसके विपरीत लब्धोदयके अनुसार 'राघवचेतन' शब्द केवल किसी एक व्यक्तिका नाम न होकर राघव और चेतन नामक दो पण्डितोंको सूचित करता है, जो चित्रकूटमें रतनसेनसे रुष्ट होकर

दिल्ली जाकर ज्योतिष विद्यामें निपुण बन अलाउद्दीनके प्रियपात्र बनते हैं तथा अन्तमें राजा द्वारा किये गये अपमानका बदला लेनेके उद्देश्यसे किसी तोते द्वारा पद्मिनीकी प्रशंसा वहाँ कराकर बादशाहको चित्तौरपर चढ़ा लाते हैं। तीनों रचनाओंमें इनके अतिरिक्त कई अन्य भी ऐसे छोटे-मोटे अन्तर दीख पड़ते हैं, जिनका कारण या तो मूल स्रोतोंकी भिन्नता है या कल्पना भी कही जा सकती है।

लब्धोदय द्वारा रचित 'पद्मिनी चरित्र' उस काव्यग्रन्थ-मालाकी एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है, जिसकी रचनाका उद्देश्य विशेषतः गोरा बादलकी अनुपम वीरता एवं कार्यपटुताको यथोचित उत्कर्ष प्रदान करना रहा। उनकी वीरगाथा पहले सम्भवतः मौखिक रूपमें ही प्रचलित थी, जिसे अपने ढंगसे कोई न कोई सुव्यवस्थित रूप भी दे देनेका प्रचलन, हेमरतनकी रचना 'गोरा बादल पदमिणी चउपई' अथवा हो सकता है कि इसके कुछ पहले की किसी अन्य ऐसी कृतिसे ही आरम्भ हुआ। हेमरतनकी रचनासे ४८ वर्ष पूर्व सूफी कवि जायसीने भी इस प्रसंगको लेकर अपने 'पद्मावत'को समाप्त किया किन्तु उसका प्रमुख उद्देश्य कुछ और था। राजा रतनसेन एवं पद्मावतीके मानवीय-प्रेमको 'इश्क मजाजी'के स्तरसे 'इश्क हकीकी' तक ले जाकर उसे ईश्वरीय प्रेमका रूप देनेके प्रयत्नमें उन्हें उपर्युक्त गौरवपूर्ण प्रसंगको स्वभावतः किंचित् गौण स्थान देना पड़ गया और वे उसके साथ यथेष्ट न्याय न कर सके। उनकी इस प्रवृत्ति विशेषकी ओर कोई ध्यान न देकर हेमरतन तथा उनके अनन्तर आनेवाले जटमल, लब्धोदय, संग्राम सूरि एवं गिरधारीलाल आदिने उक्त पूर्वपरम्परागत कथा-वस्तुको ही अधिक प्रश्रय दिया तथा उसे अपनी रचनाओंका प्रमुख आधार बनाया। कहते हैं कि लब्धोदयकी रचनासे लगभग २५-३० वर्ष पीछे रचित कवि दौलतविजय (या पूर्वनाम दलपत)के बृहत् ग्रन्थ 'खुमाण रासउ' छठे खण्डमें भी उक्त प्रसंग भी पूरी कथाको विस्तारके साथ दिया गया है। फिर भी 'पद्मिनी चरित्र' अपनी विशिष्ट रचना शैलीके कारण अपना एक पृथक् स्थान रखती है, जो अनेक दृष्टियोंसे उल्लेखनीय है।

[सहायक ग्रन्थ—जैनगुर्जर कविओ (बीजो भाग): मोहनलाल दलीचन्द देसाई, जैन श्वेताम्बर कान्फ्रेंस आफिस, बम्बई, सन् १९३१ ई०; जैन गुर्जर कविओ (त्रीजो भाग), १९४४ ई०; नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १३, अंक ४, भाग १५, अंक २, वर्ष ४४ अंक ४, वर्ष ४६, अंक २; हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थोंका पन्द्रहवाँ त्रैवार्षिक विवरण (सन् १९३२-३४ ई०), नागरी प्रचारिणी सभा काशी, सन् १९५४ ई० (सं० २०११ वि०); राजस्थानमें हिन्दीके हस्तलिखित ग्रन्थोंकी खोज (प्रथम भाग), उदयपुर, सन् १९४२ ई०; राजस्थानमें हिन्दीके हस्तलिखित ग्रन्थोंकी खोज (द्वितीय भाग), सन् १९४७ ई०; राजस्थानमें हिन्दीके हस्तलिखित ग्रन्थोंकी खोज (तृतीय भाग), सन् १९५२ ई०; शोध पत्रिका भाग ३, अंक ३ व ४, उदयपुर, सं० [illegible]०९; सम्मेलन पत्रिका, भाग २९, संख्या १-२, सं० १९९८, प्रयाग; गोरा बादलकी कथा: अयोध्या प्रसाद शर्मा, तरुण-भारत ग्रन्थावली, प्रयाग, सं० १९९१; समालोचक, द्वितीय वर्ष, अंक ८, आगरा, सन् १९५९ ई०।] —प० च०

पनस–१. राम दलका एक वानर।

२. विभीषणके चार मन्त्रियोंमेंसे एक। —मो० अ०

परम प्रबोध विधु नाटक–(प्र० १८४७ ई० से पूर्व) ब्रजभाषा नाटककालमें प्रबोध चन्द्रोदयके अनुवाद एवं छायानुवाद हुए (महाराज यशवन्त सिंह, अनाथदास, सुरति मिश्र, ब्रजवासीदास, आनन्द, गुलाब सिंह, नानकदास, धौंकल मिश्र, हरिवल्लभ, जन अनन्यके)। प्रबोध चन्द्रोदयके अनुकरणपर ही 'परम प्रबोध विधु नाटक' लिखा गया, जो नितान्त मौलिक नाटक है। भारतके राजघरानोंमें रीवा वंश अपनी साहित्यिक अभिरुचिके लिए प्रसिद्ध है। इसी वंशमें महाराज जयसिंहके पुत्र महाराज विश्वनाथ सिंह प्रसिद्ध भक्त कवि एवं साहित्य-सेवी थे। इन्हीं महाराज विश्वनाथ सिंहका 'आनन्द रघुनन्दन' नाटक है। महाराज विश्वनाथ सिंहके पुत्र युवराज रघुराज सिंहने भी एक नाटक लिखा, जिसका नाम है 'परम प्रबोध बिधु नाटक' ("नाती नृप जयसिंहको रघुराज सिंह शुभ नाम। विरच्यो परम प्रबोध बिधु नाटक यह अभिराम॥")। इस नाटककी टीका लिखी महाराज विश्वनाथ सिंहने और इसे चन्द्रिका नाम दिया ("ताकी टीका चन्द्रिका नाम करौं अभिराम। अधिकारी सियरामको विश्वनाथ मम नाम॥")। नाटक यदि बिधु है तो टीकाका चन्द्रिका नाम सार्थक ही है। यह टीका काशिराज पुस्तकालयमें सुरक्षित है। टीकाकी अन्तिम पुष्पिकामें संवत् १९०४ वि० दिया गया है—"इति सिद्धि श्री महाराजाधिराज श्री महाराजा श्री राजा बहादुर श्री सीतारामचन्द्र कृपा पात्राधिकारी विश्वनाथ सिंह जू देव कृत चन्द्रिका नामी टीका सम्पूर्ण शुभमस्तु ९।७ मिति फाल्गुन मासे कृष्णपक्षे पंचमि [illegible] संवत् १९०४।" यहाँ दिया हुआ संवत् १९०४ या तो टीकाका संवत् है अथवा उसकी प्रतिलिपिका। फलतः यही निष्कर्ष निकलता है कि नाटककी रचना इससे पूर्व हो चुकी थी। टीकाकी शैली यह है: मूल—"महाराज विश्वनाथ सुत युवराज रघुराज सिंह आयसु सों मति विरमै पूरी है।" टीका—"महाराज विश्वनाथ सिंह तिनके सुत हैं ये ही भाँतिके युवराज रघुराज सिंह तिनकी आयसु जो है कीजै नाटक बनाउ तासो मेरी मति विसमैंमे पूरी है की कहा करौं।" नाटकसे अधिक महत्त्व टीकाका है क्योंकि टीकामें कुछ नाटकीय नामोंके लक्षण भी दिये गये हैं। उदाहरण: सूत्रधारका लक्षण—"नाटकीय कथा सूत्र प्रथमं येन सूच्यते, रंगभूमिं समासाद्य सूत्रधारः उच्यते।" नेपथ्यका लक्षण—"नेपथ्य जो है कनातको वह पार जामे कोलाहल भयो।" टीकासे यह भी प्रतीत होता है कि इस नाटकका अभिनय भी हुआ था। इस अभिनयका सूत्रधार था रामप्रसाद नायक। इस टीकामें रामप्रसाद नायकके अभिनय संकेत दिये गये हैं—"मुरलीधरको पूत, नायक रामप्रसादजो। नाट्यकार धर सूत, यहि नाटकको जानियो॥" यह रामप्रसादका कथन है—"सबै परम प्रबोधै बिधु जीति महा-

मोहै, मिलिके विवेक जीव राम प्रेम पायो है। पूर्व ब्रह्म परावर रामहिं विहान भयो, रस रुपा लहै जीव जीवन्मुक्त भायो है। फेरि बाधा येको नाहिं को न्यास मैं तेहि काहि, दिव्य सुष सम्पत्ति सों सदाहि सुहायो है। महाराज सुत जुवराज रघुराज सिंह, तेसे षुसी होहु रामपरसाद गायो है ॥" —गो० ना० ति०

परमानंददास—अष्टछापके कवियोंमें सूरदासके बाद सबसे अधिक प्रतिभासम्पन्न भक्त-कवि परमानन्ददास ही माने जा सकते है। वे कन्नौजके निवासी एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। अनुमानतः उनका जन्म सन् १४९३ ई०, सम्प्रदाय-प्रवेश सन् १५१९ ई० और गोलोकवास सन् १५८३ ई० के आसपास हुआ। निर्धनताके कारण उनके माता-पिता उनका विवाह भी नहीं कर सके। उनकी इच्छा थी कि उनका पुत्र धन कमाकर सद्गृहस्थ बने, परन्तु परमानन्दके मनमें बाल्यावस्थासे ही वैराग्यके गहरे सस्कार थे। उनके पिता धन कमानेके लिए दक्षिण देश चले गये परन्तु परमानन्द उनके साथ नहीं गये और अपना जीवन भगवद्भक्तिमें बिताने लगे। शीघ्र ही वे एक अच्छे कीर्तनकार और पद-रचयिताके रूपमें प्रसिद्ध हो गये। उनके अनेक शिष्य हो गये और परमानन्द स्वामी कहलाने लगे। एक बार वे मकर-स्नान करने प्रयाग गये, वहाँ उनके कीर्तनोंकी धूम मच गयी। आचार्य वल्लभने भी अरैलमें रहते हुए उनकी ख्याति सुनी। एक रात स्वप्नमे परमानन्दको अरैल जानेकी प्रेरणा हुई। दूसरे ही दिन वहाँ जाकर उन्होंने महाप्रभुके दर्शन किये। महाप्रभुके अनुरोधपर उन्होंने एक पद गाया, जिसमें विरह-भाव प्रधान था। महाप्रभुने उनसे बाल-लीलाके गायनका अनुरोध किया। परमानन्दके अनभिज्ञता प्रकट करनेपर महाप्रभुने उन्हे स्नान कराकर मन्त्र सुनाया और अपनी शरणमें लिया। बाल-लीलासे परिचित होनेके उपरान्त परमानन्दने कुछ दिन अरैलमे रहकर नवनीत प्रियजीके कीर्तनकी सेवा की और फिर आचार्यजीके साथ ब्रजकी यात्रा की। मार्गमे आचार्यजी *परमानन्दके गाँव कन्नौजमें भी रुके। कन्नौजमें आजतक* आचार्यजीकी एक बैठक विद्यमान है। कन्नौजमें परमानन्दने आचार्यजीको एक विरहका पद सुनाया, जिसे सुनकर वे तीन दिनतक ध्यानावस्थित बने रहे। भूतपूर्व परमानन्द स्वामीके कन्नौजमें जितने सेवक थे, वे सब आचार्यजीके सेवक बन गये और परमानन्द स्वामी सेवकों सहित पूर्ण रूपसे परमानन्ददास हो गये। ब्रज पहुँचकर आचार्यजीने परमानन्द दासको श्रीनाथजीकी कीर्तन-सेवा सौंप दी, जिसमें वे आजीवन संलग्न रहे। परमानन्द दासकी पद-रचना प्रचुरता और श्रेष्ठता दोनों दृष्टियोंसे सूरदासको छोड़कर अष्टछापके *कवियोंमें सर्वप्रथम आती है। महाप्रभुने उन्हें* भी सागरकी उपाधिसे विभूषित किया था।

परमानन्द दासके गोलोकवासका विवरण बहुत रोचक है। देहावसानके एक दिन पूर्व जन्माष्टमी थी। परमानन्ददासने उस दिन विट्ठलनाथजीके साथ गोकुल जाकर नवनीत प्रियके समक्ष बधाईके कई पद गाये। दूसरे दिन दधिकान्दोके उत्सवमें आनन्दविभोर होकर उन्होंने इतना नृत्य किया कि उन्हें मूर्च्छा आ गयी। विट्ठलनाथजीने उपचार करके उन्हें सचेत किया परन्तु गोवर्धनपर आकर श्रीनाथजीके सामने वे पुनः भाव-मग्न हो गये। कुछ देर बाद मूर्च्छासे जागकर वे अपनी कुटी-सुरभी कुण्डपर गये। वहाँ जाकर उन्होंने बोलना छोड़ दिया। विट्ठलनाथ जीने वहाँ पहुँचकर समझ लिया कि अब उनका अन्त समय आ गया है। कुछ देर बाद आखें खोलकर उन्होंने एक भक्तिपूर्ण पद गाया। पुनः एक वैष्णवके पूछनेपर उन्होंने भक्तिका साधन बताते हुए एक और पद गाया, जिसमें आचार्य जी, गोस्वामी जी और उनके सात पुत्रोंके चरणोंकी वन्दना की गयी है। यद्यपि विट्ठलनाथजीने नवनीत प्रियजी और श्रीनाथजीके सम्मुख परमानन्द दासकी भाव-तल्लीनता देखकर कहा था कि उन्हें बाल-लीलाका उसी प्रकार बोध हुआ है, जिस प्रकार कुम्भनदासको निकुंज-लीलाका, परन्तु परमानन्द दासने गोस्वामीजीके पूछनेपर कि तुम्हारा मन कहाँ है, अन्त समयमें जो पद गाया था वह इस प्रकार है—"रोधे बैठी तिलक सम्भारति। मृग नयनी कुसुमायुध करि धरि नन्द सुवनको रूप विचारत॥ दरपन हाथ सिंगार बनावति। बासर जुग सम टारति॥ अन्तर प्रीत स्यामसुन्दर सों हरि संग केलि सम्भारति। बासर गत रजनी ब्रज आवत मिलत गोवर्धन प्यारी। परमानन्द स्वामीके संग मुदित भई ब्रज नारी॥" इस प्रकार परमानन्द दासने युगल-रूपमें अपना मन लीन करते हुए शरीर त्यागा और श्रीकृष्णकी नित्य-लीलामें प्रवेश किया। यह विशेष रूपसे द्रष्टव्य है कि सूरदास और परमानन्द दास दोनोंको आचार्यजीने शरणागतिके अवसरपर बाल-लीलाके बोधकी प्रेरणा दी थी और उसीके पद गानेका अनुरोध किया था और इन दोनों भक्त-कवियोंने अष्टछापके अन्य कवियोंकी तुलनामें सबसे अधिक बाल-लीलाके पद रचे थे, परन्तु दोनोंने अन्त समयमें मधुर-भावमें ही अपना मन लीन करके शरीर त्यागा।

अष्टछापके कवियोंमें सूरके अतिरिक्त केवल परमानन्द दासने कृष्णकी सम्पूर्ण लीलाके वर्णनका प्रयत्न किया है। परमानन्ददासके पदोंका संग्रह 'परमानन्द सागर' नामसे प्रसिद्ध है। *विद्या विभाग कांकरोलीकी 'परमानन्द सागर'की* हस्तलिखित प्रतिलिपिमें ११०१ पद संगृहीत हैं। वास्तवमें 'परमानन्द सागर'की सम्पादन-समस्या भी उसी प्रकार महत्त्वपूर्ण है, जिस प्रकार 'सूरसागर'के सम्पादनकी समस्या। 'परमानन्द सागर'के अतिरिक्त परमानन्दकृत 'दानलीला' और 'ध्रुवचरित' नामक दो और ग्रन्थ परमानन्द द्वारा रचित बताये जाते हैं परन्तु वे दोनों अनुपलब्ध हैं। अतः इनकी प्रामाणिकताके सम्बन्धमें कुछ नहीं कहा जा सकता। परमानन्ददासके पद सम्प्रदायके कीर्तन-संग्रहों तथा 'राग-कल्पद्रुम' और 'राग-रत्नाकर'में मिलते हैं। इनमेंसे अनेक पद वही हैं, जो 'परमानन्दसागर' में भी सम्मिलित हैं।

परमानन्द दासके पदोंका संग्रह 'परमानन्ददास और उनका काव्य' नामसे भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़से प्रकाशित हुआ है।

[सहायक ग्रन्थ—चौरासी वैष्णवनकी वार्ता; अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदायः डा० दीनदयाल गुप्त; अष्टछाप परिचय : प्रभुदयाल मीतल।] —ब्र० व०

परमानंद सागर–अष्टछापके प्रसिद्ध कवि परमानन्द दासके पदोंका संग्रह 'परमानन्द सागर'के नामसे प्रसिद्ध हुआ है। परमानन्द सागरकी एक हस्तलिखित प्रति कांकरोली (उदयपुर, राजस्थान) के श्रीनाथजी के मन्दिरसे सम्बद्ध विद्या विभागमें है। इस प्रतिमें ११०१ पदोंका संग्रह है। 'परमानन्द सागर'में कृष्णलीलाकी लगभग वैसी ही रूपरेखा प्राप्त होती है, जैसी 'सूरसागर'में है। यद्यपि इस संग्रहके पदोंकी प्रामाणिकताके सम्बन्धमें कुछ नहीं कहा जा सकता और उसके प्रामाणिक पाठके प्रकाशनकी आवश्यकता है तथापि उसके द्वारा परमानन्द दासके कवित्व और उनकी भक्ति-भावनाके सम्बन्धमें अवश्य कुछ अनुमान किया जा सकता है। 'परमानन्द सागर'में कृष्णकी बाल-लीलाके अन्तर्गत जन्म, पालना, छठी, स्वामिनीजीका जन्म, गोपी उपालम्भ, कृष्ण-यशोदाके उत्तर-प्रत्युत्तर, सखाओंके साथ केलि, हास-विनोद, असुरमर्दन, यमुना-विहार, गोदोहन, वन-क्रीड़ा, गोचारण, दानलीला, ब्रजमें प्रत्यागमन आदिसे सम्बन्धित पद हैं। किशोर-लीलामें गोपियोंकी आसक्ति, राधाकी आसक्ति, कृष्ण रूप-वर्णन, राधारूप-वर्णन, युगल-रस-वर्णन, रास-क्रीड़ा, अन्तर्धान, जल-क्रीड़ा, खण्डिता-समय, मान-लीला, मनुहार, फूलोत्सव, दीप-मालिका, वसन्तोत्सव, धमार, स्वामिनीजीका उत्कर्ष, हिंडोल, यमुना-विहार आदि विषयोंके पद हैं। विरह वर्णनके प्रसगमें कृष्णके मथुरा गमन, गोपियोंके विरह और उद्धव-सन्देश, भ्रमरगीत आदिके पद मिलते हैं। कृष्णलीलाके उपर्युक्त प्रसगोंसे यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि 'परमानन्द सागर' और 'सूरसागर'के वर्ण्य-विषयमें बहुत अधिक समानता है। यही नहीं, काव्य-गुणोंकी दृष्टिसे भी 'परमानन्द सागर'के पद 'सूरसागर'के पदोंसे हीन कोटिके नहीं कहे जा सकते। यही कारण है कि 'परमानन्द सागर'के अनेक पद 'सूरसागर'में सम्मिलित हो गये हैं। 'परमानन्द सागर'में कृष्णलीलाके अतिरिक्त रामोत्सव तथा नृसिंह और वामनावतार आदिसे सम्बन्धित कुछ ऐसे भी पद हैं, जिनसे 'सूरसागर'की भाँति परमानन्द सागरको भी श्रीमद्भागवतसे प्रभावित कहा जा सकता है। इनके अतिरिक्त परमानन्द दासने मन्दिर-शोभा, अक्षय तृतीया, वर्षा ऋतु, पवित्रा, दशहरा, रक्षाबन्धन और रथयात्रा आदि स्फुट विषयों पर भी पद रचना की है। इन पदोंकी प्रकृति शुद्ध धार्मिक और साम्प्रदायिक है।

'सूरसागर'की भाँति 'परमानन्द सागर'की भी यह विशेषता है कि उसमें वात्सल्य भावका विस्तारसे चित्रण हुआ है। सूरदासकी तरह परमानन्द दासके सम्बन्धमें भी यह प्रसिद्ध है कि उन्हें बाल-लीलाका बोध हुआ था परन्तु सूरसागर की ही भाँति 'परमानन्द सागर'में भी अधिक परिमाण गोपी और राधा भावकी कान्तारतिसम्बन्धी रचनाका ही है।

परमानन्द दासके पदोंका एक संग्रह 'परमानन्द दास और उनका काव्य' शीर्षकसे भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़से प्रकाशित हुआ है। विशेषके लिए दे० 'परमानन्द दास'।

[सहायक ग्रन्थ—अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय : डा० दीनदयाल गुप्त।] —ब्र० व०

परमालरासो–सन् १९१९ ई० (सं० १९७६) में काशी नागरी प्रचारिणी सभासे 'परमालरासो' प्रकाशित हुआ। जिन दो हस्तलिखित प्रतियोंके आधारपर कृतिका सम्पादन श्यामसुन्दर दासने किया, उनका प्रतिलिपि काल सन् १८६८ ई० तथा १७९२ ई० है। हस्तलिखित प्रतियोंमें कृतिका नाम 'महोबाखण्ड' तथा 'पृथ्वीराज रासो' मिलता है। कृतिमे पृथ्वीराज चौहान तथा परमर्दिदेव 'परमाल'के बीच हुए युद्धका वर्णन है, अत: कथाको ध्यानमे रखते हुए सम्पादकने कृतिका नाम 'परमाल रासो' दिया है। 'पृथ्वीराज रासो' (नागरी प्रचारिणी सभा संस्करण)में भी एक 'महोबाखण्ड' मिलता है किन्तु उसकी तुलनामें 'परमालरासो' अधिक बड़ा है। ग्रन्थका ऐतिहासिक दृष्टिसे कोई महत्त्व नहीं है। आल्हा-ऊदलसे सम्बन्धित प्रचलित किंवदन्तियोंके आधार पर कृतिकी रचना हुई है। कृति ३६ खण्डोंमें विभाजित है और अन्तिम पद्यमें कृतिका नाम महोबा समय दिया है। 'पृथ्वीराज रासो'के समान प्रस्तुत कृतिमे दोहा, सोरठा, पद्धड़िया, पादाकुलक, भुजंग प्रयात, नाराच, छप्पय, रसावला, नग्नमाल, नीसानी, मौक्तिकदाम, कुण्डलिया, अरिल्ल, त्रोटक, हरिगीतिका, तोमर, गाथा आदिका प्रयोग हुआ है, कहीं-कहीं संस्कृत श्लोक भी उद्धृत किये गये हैं और गद्यका भी प्रयोग हुआ है। कृति सरल इतिवृत्तात्मक शैलीमे लिखी गयी है। वीर रस प्रधान रस है, बीच-बीचमे गोरखनाथ भी आते हैं। पात्रोंको स्वप्न द्वारा घटनाओंका पूर्वाभास मिलता है तथा आल्हाको अमर कहा गया है। इस प्रकार 'आश्चर्य तत्त्व' का भी कृतिमें पर्याप्त समावेश हुआ है। भाषा बुन्देलखण्डीसे प्रभावित ब्रज है, जिसमे कृत्रिमता भी मिलती है। रचयिता चन्द कहे गये हैं। कृति सत्रहवीं शती से पहलेकी नहीं लगती।

[सहायक ग्रन्थ—परमालरासो : श्यामसुन्दरदास बी० ए०, नागरी प्रचारिणी सभा, १९१९ ई०।] —रा० च० ति०

परशुराम–१. भृगुवंशीय जमदग्नि और रेणुकाके पुत्र, विष्णुके अवतार परशुराम शिवके परम भक्त थे। इनका नाम तो राम था, किन्तु शंकर द्वारा प्रदत्त अमोघ परशुको सदैव धारण किये रहनेके कारण ये परशुराम कहलाते थे। एक बार इनके पिताने अपने सब पुत्रोंको माताका वध करनेके लिए कहा। परशुरामके अतिरिक्त कोई भी तैयार न हुआ। अतः जमदग्निने सबको संज्ञाहीन कर दिया। परशुरामने पिताकी आज्ञा मानकर माताका शीश काट डाला। पिताने प्रसन्न होकर वर माँगनेको कहा तो उन्होंने चार वरदान माँगे—एक माँ पुनर्जीवित हो जायँ, दूसरे उन्हें मरनेकी स्मृति न रहे, तीसरे भाई चेतना-युक्त हो जायँ और चौथे मैं परमायु होऊँ। जमदग्निने उन्हें चारों वरदान दे दिये। एक बार कार्त्तवीर्यने परशुरामकी अनुपस्थितिमें आश्रम उजाड़ डाला था, जिससे परशुरामने क्रोधित हो उसकी सहस्र भुजाओंको काट डाला। कार्त्तवीर्यके सम्बन्धियोंने प्रतिशोधकी भावनासे जमदग्निका वध कर दिया। इसपर परशुरामने २१ बार पृथ्वीको क्षत्रिय-विहीन कर दिया। रामावतारमें रामचन्द्र द्वारा शिवका धनुष तोड़नेपर ये क्रुद्ध होकर आये थे। इन्होंने

परीक्षाके लिए उनका धनुष रामचन्द्रको दिया। जब रामने धनुष चढ़ा दिया तो परशुराम समझ गये कि रामचन्द्र विष्णुके अवतार हैं। इसलिए उनकी वन्दना करके वे तपस्या करने चले गये। "कहि जय जय जय रघुकुल केतू। भृगुपति गए बनहिं तप हेतू॥" यह वर्णन 'रामचरितमानस', प्रथम सोपानमें २६७ से २८४ दोहे तक मिलता है।

२. कृष्णके पुरोहित, जिन्होंने कुरुक्षेत्रमें यज्ञ कराया था। —मो० अ०

परिचई—सन्त-काव्यसे सम्बद्ध परिचई साहित्य विशेष महत्त्व रखता है। अनेक सन्तोंकी परिचइयाँ उनके शिष्यों, प्रशिष्यों द्वारा लिखी गयीं, जिनसे सन्तोके जीवनपर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। यहाँ उपलब्ध परिचई साहित्यका संक्षेपमें परिचय दिया जा रहा है।

पेमदासकृत 'गोपीचन्द चरित परिचई'में गोपीचन्दके उज्ज्वल चरितका वर्णन हुआ है। परिचईकारने प्रारम्भमें काल, कर्म और अंजनसे परे निरंजन शेष, महेश, ब्रह्मा, विष्णु, गणेश, नारद, शारदा आदिकी वन्दना की है और तब गोपीचन्दके ऐश्वर्यपूर्ण जीवन और अन्तमे उनके योगी हो जाने तथा वैराग्यका वर्णन किया है। ग्रन्थके अन्तमें परिचईके माहात्म्यका वर्णन है। इस रचनाका समय उसमें नहीं दिया गया है परन्तु एक स्थानपर रज्जब साहबकी वन्दना और कृपाका उल्लेख है, जिससे अनुमान होता है कि इसकी रचना रज्जब साहबके जीवन कालमें हुई होगी। अतः इसका रचनाकाल सन् १६८३ ई० (सं० १७४० वि०) के लगभग माना जा सकता है।

'त्रिलोचन परिचई'की एक प्रति संवत् १८९० वि० (सन् १८३३ ई०) की प्राप्त हुई है। इसके प्रतिलिपिकार कोई भक्त रामदास थे। इसके लेखक अनन्तदास है परन्तु इसका रचनाकाल अज्ञात है। परिचईके चरित-वर्णनके अन्तर्गत एक रोचक प्रसंग दिया गया है, जिससे त्रिलोचनकी उच्च भक्ति-भावनाका परिचय मिलता है। उनके यहाँ एक अत्यन्त दीन-हीन शान्त-स्वभावका व्यक्ति नौकरीकी खोजमें आया, जिसने दो शर्तोंपर नौकरी करना स्वीकार किया—एक थी पाँच-छः सेर भोजन की और दूसरी अधिक भोजन करनेकी निन्दा सुनते ही नौकरी छोड देनेकी। त्रिलोचन दम्पतिने यह शर्त स्वीकार कर ली परन्तु एक दिन त्रिलोचनकी पत्नीने अपनी पडोसिनसे कहा—"पीसत पोवत बल गयो मेरो, भूखो रहे अघाय न चेरो।" नौकरने जब यह सुना तो वह अन्तर्धान हो गया, जिससे त्रिलोचन दम्पति अत्यन्त दुःखी हुए। परिचईकारका संकेत यही जान पड़ता है कि यह नौकर कोई दिव्य-पुरुष था।

'रंका-बंकाकी परिचई'के लेखक भी कवि अनन्तदास थे। इसका भी रचनाकाल नहीं दिया गया है। इसमें रंका-बंकाकी धर्म-परायणता, उनके पंढरपुरमे निवास, उनकी भक्ति-भावनाके विकास और सन्तोंके मार्गको ग्रहण करके जाति-पाँतिकी भावनाके परित्यागका वर्णन हुआ है। यह भी उल्लेख है कि सन्त नामदेव रकाके दर्शनार्थ आये थे और रंकाने उन्हें सतगुरुसे प्राप्त साधनाका मार्ग समझाया था। अनन्तदास द्वारा प्रणीत अन्य परिचइयोंकी अपेक्षा इसमें अधिक भाव-सौन्दर्य पाया जाता है।

'धनांकी परिचई'के लेखक भी अनन्तदास ही हैं। हरिकी वन्दनाके उपरान्त इसमें बताया गया है कि धनां जब बीज लेकर बोनेके लिए खेतकी ओर प्रस्थान करते हैं तो मार्ग में उन्हें भिक्षुक रूपमें अन्नकी याचना करते हुए भगवान्के दर्शन होते हैं। परन्तु धनां अज्ञानवश अन्न देना स्वीकार नहीं करते। अन्तमें भिक्षुकके बहुत हठ करनेपर वे बीजका अन्न भिक्षुकको दे डालते हैं। इसी प्रकार धनांकी भक्तिकी उसमें प्रशंसा की गयी है।

अनन्तदासने ही 'भक्त रैदासकी परिचई'की भी रचना की। कृतिके प्रारम्भमें कविने कहा है "सद्‌गुरु मोहीं आज्ञा कीन्हीं तासों मों यहि गरन्थ करि दीनी।" गुरु-गोविन्द तथा सन्तोंकी वन्दना करनेके बाद बताया गया है कि रैदास बनारसमें उत्पन्न हुए थे। पूर्व-जन्ममें वे मांस-भक्षी ब्राह्मण थे, इसी कारण उन्हें चमारके यहाँ जन्म मिला। रामानन्दको उन्होंने गुरु बनाया और निरन्तर स्वावलम्बी जीवन बिताया। ब्राह्मणोंने इनका बराबर विरोध किया परन्तु इनके जीवनकालमें ही इनकी प्रतिष्ठा और इनका सम्मान इतना व्यापक हो गया कि झालीरानी उनकी शिष्या बन गयीं।

'कबीरजीकी परिचई'के लेखक भी अनन्तदास हैं। कबीरके उज्ज्वल चरितका वर्णन करते हुए लेखकने इसमें बताया है कि वे रामानन्दके शिष्य हुए थे। तत्पश्चात् मायाका परित्याग करके सन्तोंको सुख देनेके कारण उनकी बहुत प्रतिष्ठा हुई। जीवनमें उन्हें बहुत आर्थिक कष्ट उठाना पड़ा किन्तु भगवान्ने कृपा करके उन्हें यथेष्ट द्रव्य और अन्न प्रदान कर दिया। उन्होंने जुलाहेके व्यवसायका परित्याग कर दिया। वृद्धावस्थामें वे काशी छोड़कर मगहर चले गये। सभी देवताओंने उनकी प्रशंसा और वन्दना की। इस परिचईके भी रचनाकालका कोई उल्लेख नहीं मिलता।

'नामदेवकी परिचई'की रचना भी अनन्तदासने ही की थी। प्रारम्भमें कृष्णानन्द, रामानन्द, अनन्तानन्द आदि-सन्तोकी वन्दना की गयी है और तब बताया गया है कि नामदेव पण्ढरपुरमें निवास करते थे। उन्होंने ब्राह्मणोंको जाति-भेद त्यागनेका उपदेश दिया तथा ब्राह्मणोंने राजाके पास जाकर उनकी शिकायत की। राजाने सम्पूर्ण गाँवको नष्ट करनेकी आज्ञा दी परन्तु भगवान्ने चक्र लेकर पातसाहपर आक्रमण कर दिया, जिससे उसे वापस लौटना पड़ा। इस परिचईका रचनाकाल भी अज्ञात है।

अनन्तदास द्वारा लिखित 'पीपाजीकी परिचई'में एक बहुत बडी विशेषता यह है कि इसके अन्तमें लेखकने आत्म-परिचय भी दिया है। भक्त पीपाके उज्ज्वल चरितका वर्णन करते हुए परिचईकारने बताया है कि राजा पीपा कैसे प्रजापालक और रूप-श्रीसम्पन्न व्यक्ति थे। जब उन्हें राज्यसे विरक्ति हुई तो प्रजा अत्यन्त दुःखी हुई थी। पीपा द्वारिका लौट आये थे। वियोगके समय रामानन्द पीपा और सीतासे स्वयं गले मिले थे। महोत्सवके दिन घरमें जब सामानका अभाव हुआ तो सीता एक विषयी बनियेके पास गयी, पीपा स्वय उसे विषयी बनियेके पास रातको

पहुँचाने गये, बनिया अत्यन्त लज्जित हुआ और पीपाका शिष्य बन गया। अन्तमें ग्रन्थके पाठका माहात्म्य भी दिया गया है।

'दादू जन्मलीला परिचई'के लेखक स्वामी जनगोपाल हैं। वे दादूदयालके प्रमुख शिष्योंमें-से थे। स्वामी मंगलदासके कथनानुसार इस परिचईका रचनाकाल १७वीं शताब्दी है। यह परिचई, परिचई-साहित्यमें सबसे अधिक विस्तृत, वैज्ञानिक तथा साहित्यिक गुणोंमे युक्त है। इसका वर्ण्य-विषय सोलह विश्रामोंमें विभाजित किया गया है। दादूकी जीवनीके उच्चादर्श और उनके उज्ज्वल चरितका वर्णन करनेके उपरान्त कविने अन्तमें ग्रन्थके पाठका माहात्म्य भी बताया है।

'मलूकदासकी परिचई'के लेखकका नाम मथुरादास है। कृतिमें रचनाकालका उल्लेख नहीं है। मलूकदासके जन्म, प्रारम्भिक धार्मिक जीवन, समारमे वैराग्य और हरि-भक्तिमें लीन होनेके वर्णनके उपरान्त उनके निधनका भी उल्लेख हुआ है। इससे प्रकट होता है कि इसकी रचना मलूकदास-के निधनके उपरान्त अर्थात् सं० १७३९ वि० (सन् १६८२ ई०) के बाद हुई होगी (दे० 'मलूकदास')।

'स्वामी सेवादासकी परचई'के लेखकका नाम रूपदास है। इसकी रचना रूपदासने अपने गुरु अमरदासकी प्रेरणासे की थी। इसमे ग्रन्थका रचनाकाल गुरुवार, वैशाख कृष्ण १२, सं० १८३२ वि० (सन् १७७५ ई०) दिया हुआ है। प्रारम्भमें गुरु-गोविन्द, सन्तों, सिद्धों, साधकों और हरिकी वन्दना की गयी है। कविने अपनी हीनताका भी वर्णन किया है। स्वामी सेवादासके अद्वितीय कान्तिमान् और अलौकिक गुणोंसे सम्पन्न व्यक्तित्वका चित्रण करनेके उपरान्त अन्तमें लेखकने परचईके पढने-पढ़ानेके फलका भी कथन किया है।

'स्वामी हरिदासजीकी परचई'की रचना रघुनाथदासने साक्षात् निरजन देव (कृष्ण)की आज्ञासे की थी। अनुमान है कि इसकी रचना सं० १७४६ वि० (सन् १६८९ ई०)के पहले हो चुकी थी। प्रारम्भमें कविने निरंजन, कबीर, सुखदेव, ध्रुव, प्रह्लाद, गोरखनाथ, अपने गुरु अमरदास तथा अन्य सन्तोंको वन्दना की है। हरिदासके चरितका वर्णन करते हुए लेखकने उनके जन्म, निरंजनसे उनके अभेद, भक्ति, ज्ञान और वैराग्यमें उनकी कुशलता, काम-क्रोध, मद-लोभ मोहसे उनकी निर्लिप्तिका वर्णन करते हुए कविने बताया है कि किस प्रकार एक कपटी स्वामीने हरिदासको जहर दिया, जिससे उनकी मृत्यु हो गयी और उन्होंने महाप्रस्थान किया।

बोधदासकृत 'सन्त परिचई'की रचना नाभादासके 'भक्त-माल'से प्राप्त हुई थी। इसमे जगजीवन साहबके चरितका वर्णन हुआ है। इसकी रचना भौमवार, वैशाख शुक्ल सप्तमी सं० १८४८ वि० (सन् १७९१ ई०) को समाप्त हुई थी। ग्रन्थमें इसके आकार और विस्तारका भी उल्लेख किया गया है तथा अन्तमें उसके पाठ, माहात्म्यका कथन हुआ है।

'चरनदासकी परिचई' स्वामी रामरूपने लगभग स० १८४०-४१ वि० (सन् १८८३-८४ ई०) मे की थी। स्वामी रामरूपको स्वयं चरनदासने अपने ग्रन्थोंके संग्रह और प्रतिलिपिका कार्य दिया था। स्वामी रामरूपने अपने गुरुके उज्ज्वल चरितसे प्रभावित होकर उनके आदर्श-चरितका भी वर्णन कर दिया।

उपर्युक्त परिचइयोंके कुछ लेखकोंने अपनी रचनाओंमें प्रसंगवश आत्म-परिचय भी दिया है। अनन्तदासका नाम परिचई लेखकोंमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि उन्होंने अपने विषयमें अधिक उल्लेख नहीं किया परन्तु 'पीपाजीकी परिचई'के अन्तमें उन्होंने लिखा है—"श्री रामानन्दके अनन्तानन्दा। सदा प्रगट ज्यौं पूरण चन्दा॥ ताके कृष्णादास अधिकारी। सब कोइ जाने दूधा धारी॥ ताके अग्र आगरो प्रेमू। लै बैठे सुमिरनको नेमू॥ अग्रको शिष्य विनोदी भाई। ताको दास अनन्त पै आई॥ ता परसाद परिचई भाषी। सुनौ सन्त जन साची साषी॥ यह परिचई सुनै जो कोई। सहजय सब सुख पावै सोई॥" इससे ज्ञात होता है कि अनन्तदास नाभादासके गुरु-भाईके शिष्य थे। अनुमान है कि वे नाभादासके समकालीन थे। पं० परशुराम चतुर्वेदीका विचार है कि, "यह राजस्थान जैसे किसी पश्चिमी प्रान्तके रहे होंगे। इनके गुरुका नाम कृष्णदास था और ये विक्रमकी सत्रहवीं शताब्दीके पूर्वार्द्धके आसपास वर्तमान थे।"

जगजीवन साहबकी जीवनीका परिचय देते हुए 'सन्त परिचई'मे बोधेदासने कुछ अपना परिचय भी दिया है। बोधेदासका जन्म अवधके बरैठा गाँवमें हुआ था। कालान्तरमें वे बरैठा त्यागकर कोटवामें आ बसे थे। उन्होंने लिखा है—"रामेश्वरको चेला, बोधे भये तेहि नाउ। कीन्ह परावन कोटवा, छाड़ि बरैठा गाउ॥" बोधेदास जगजीवन साहबके समकालीन थे। वे कायस्थ दम्पतिके सन्तान थे। उन्होंने लिखा है—"कायथ जात करम कर हीना। मरनायहु पर परबस कीन्हा॥ यह अपराध समुझि मन आई। तबही सन्त परिचई बनाई॥" उनके माता-पिता, स्वजन-परिजन उन्हें छोड़कर लखनापुरमे जा बसे थे।

'दादू-जन्मलीला परिचई'के लेखक जनगोपालका जन्म फतहपुर सीकरीमें हुआ था। बादमे वे डीडवाणां गाँवमे जा बसे थे। जनगोपालने अपने जन्म आदिकी तिथियोंका उल्लेख नहीं किया है परन्तु अनुमान है कि स० १६४० वि० (सन् १५८३ ई०)के आसपास हुए होंगे क्योंकि वे दादूके प्रमुख शिष्योंमेसे थे और उनके समकालीन थे। जनगोपालका जन्म वैश्य कुलमे हुआ था—"सतगुरु दादू दीन दयालू। जाति महाजन जन गोपालू॥" जनगोपाल ने दादू-जन्म लीला परचीके अतिरिक्त १२ ग्रन्थोंकी रचना और की थी। उनके नाम ये है—ध्रुवचरित, प्रह्लाद चरित, मोह-विवेक संवाद, जड़ भरत चरित्र, शुक्र-संवाद, काया-प्राण संवाद, अनन्त लीला, चौबीस गुरुओंकी लीला, बारहमासिया, भेंटके सवैये, पद और साखी।

'चरनदासकी परिचई'के लेखक स्वामी रामरूपने अपना परिचय अन्य परिचईकारोंकी तुलनामें अधिक दिया है परन्तु उन्होंने अपने जन्मकालका उल्लेख नहीं किया। उन्होंने सं० १८११ वि० (सन् १७५४ ई०)में ११ वर्षकी अवस्थामें चरनदाससे दीक्षा ली थी। इस प्रकार उनका जन्म काल सं० १८०० वि० (सन् १७४३ ई०)के आसपास

ठहरता है। वे ब्राह्मण जातिके थे और उनके पिताका नाम महाराम था। उनका पालन-पोषण बड़े सुन्दर ढंगसे हुआ था। दीक्षाके समय चरनदासने उनका नाम भक्तानन्द रखा था। परिचईके अतिरिक्त स्वामी रामरूपकी कई रचनाएँ चरनदासी सम्प्रदायके महन्तके पास हस्तलिखित रूपमें सुरक्षित हैं। उनकी एक पुस्तक 'गुरु-भक्ति प्रकाश' प्रकाशित हो गयी है।

'गोपीचन्द चरित परिचई'के अन्तमें उसके पेमदासने अपना जो संक्षिप्त परिचय दिया है, वह अत्यन्त अपर्याप्त है। उससे यह भी स्पष्ट नहीं होता कि वे दादू-पन्थके अनुयायी पेमदास थे अथवा निरंजनी सम्प्रदायके प्रमुख प्रचारक पेमदास। 'सुन्दर ग्रन्थावली'में श्री हरिनारायण शर्माने दादूपन्थी पेमदासका उल्लेख किया है परन्तु पं० परशुराम चतुर्वेदीने निरंजनी सम्प्रदाय वाले पेमदासका परिचय दिया है। इनमेंसे गोपीचन्द चरित परिचईके लेखक कौन थे, यह कहना सम्भव नहीं है।

'स्वामी हरिदासकी परचई'के अन्तमें उसके लेखक रघुनाथ दासने जो आत्म-परिचय दिया है, वह बहुत अधूरा है। इस परिचईके द्वारा केवल इतना ज्ञात होता है कि रघुनाथ दासके गुरु अमरदास थे और उन्होंने ही उन्हें भक्ति-भावका वरदान दिया था।

रूपदासने 'स्वामी सेवादासकी परिचई'मे इस प्रकार आत्मपरिचय दिया है—"यह परचा पर-ब्रह्मका। कहि गुरुके उपदेश ॥ श्री स्वामी सेवादासजी। कीया ब्रह्म प्रवेश ॥ मै परचा कैसे कहूँ। यह गुरका उपगार ॥ जन रूपदास वरणे कहा। परचा अनन्त अपार ॥ श्री अमरदास गुरुदेव जी। मेरे सिरका ताज ॥ उनके सतगुरु सेवाजी। सकल सुधारण काज ॥ घटती बढती मातरा। अक्षर तुक अनुसार ॥ हरिजन सकल सुधार ज्यो। जन रूपदास बलिहार ॥" रूपदास निरंजनी सम्प्रदायके अनुयायी थे।

सथुरादासने मलूकदासकी परिचईमे अपने सम्बन्धमें बहुत कम परिचय दिया है। उनके विषयमें विद्वानोमें पर्याप्त मतभेद रहा है। डा० बडथ्वालने उनका नाम सथरादास लिखा है परन्तु परिचईकी हस्तलिखित प्रतियोंसे ज्ञात होता है कि उनका नाम सथुरादास ही था, यथा— "जैसें भाखें सथुरादास"। उनकी जातिके सम्बन्धमें भी मतभेद प्रकट किया गया है। कुछ लोग उन्हें कायस्थ और कुछ खत्री जातिका बताते हैं। इस सम्बन्धमे परिचईके द्वारा महत्त्वपूर्ण सूचना मिलती है। उसमें लिखा है—"मलूकके भगिनी सुत जोई। मलूकको पुन शिष्य है सोई ॥ तिन हित सहित परिचई भाषी। बसे प्रयाग जगत सब साषी ॥" इससे स्पष्ट है कि सथुरादास खत्री जातिके थे और प्रयागके निवासी थे।

परिचई साहित्य और परिचईकारोंके उपर्युक्त विवरणसे स्पष्ट होता है कि यह साहित्य काव्यकी दृष्टिसे भले ही महत्त्वपूर्ण न हो, सन्तोंकी जीवनियों पर इससे अवश्य प्रकाश पडता है। सन्त-जीवनके वातावरणका अनुमान लगानेमें इससे पर्याप्त सहायता मिल सकती है। भाषाके अध्ययनमें भी इसका उपयोग सफलतापूर्वक किया जा सकता है। —सा० शु०

परीक्षित—ये पाण्डव वंशमें उत्पन्न हुए थे। अर्जुनके पौत्र तथा अभिमन्युके पुत्र थे। उत्तरा इनकी माता थीं। इन्हें एक बार तक्षकने अपराधके कारण शाप दिया कि इनकी मृत्यु आजसे ठीक सातवें दिन होगी। परीक्षितने सात दिन तक हरि कथाका श्रवण किया और अन्तमें इन्हें मुक्ति प्राप्त हुई। महाभारतके बाद परीक्षित ही चक्रवर्ती सम्राट हुए। कलि परीक्षितके समयसे ही अवतरित हुआ। परीक्षित भागवतके श्रोता माने गये हैं (दि० सू० सा० पृ० २६०)। —रा० कु०

पर्णदत्त—प्रसादकृत नाटक 'स्कन्दगुप्त'का पात्र। गुप्त साम्राज्यका महाबलाधिकृत पर्णदत्त सम्राट्का स्वामिभक्त सेवक, कर्तव्यपरायणताकी प्रतिमूर्ति एवं साहस, धैर्य आदि उदात्त गुणोके कारण नाटकका एक तेजस्वी पात्र बन पड़ा है। आदिसे अन्ततक उसका निर्मल चरित्र एवं आदर्श व्यक्तित्व अपनी झलक मात्र दिखाकर एक स्थायी प्रभाव मानव-मनपर छोड जाता है। ऐतिहासिक दृष्टिसे जूनागढ़के शिलालेखके साक्ष्यसे वह सम्राट्का विश्वसनीय सहयोगी और सौराष्ट्रका गोप्ता माना गया है। सम्पूर्ण नाटकमें वृद्ध पर्णदत्तकी कर्तव्यपरायणता एवं स्वामिभक्तिसे संचालित चरित्रकी झाँकी केवल दो बार देखनेको मिलती है। यद्यपि नाटककारने पर्णदत्तके शौर्यका परिचय युद्ध-व्यापार द्वारा नहीं दिया, फिर भी स्कन्दगुप्त आदिकी उक्तियों द्वारा उसकी वीरता स्पष्ट व्यंजित हो जाती है—"आर्य! आपकी वीरताकी लेखमाला शिप्रा और सिन्धुकी लोल लहरियोंसे लिखी जाती है, शत्रु भी उस वीरताकी सराहना करते हुए सुने जाते है।...जिसके लोहेसे आग बरसती थी, वह जंगलकी लकड़ियाँ बटोर कर आग सुलगाता है।" वृद्ध पर्णदत्त साम्राज्यकी मान-मर्यादाकी रक्षाके लिए सदैव चिन्तित एवं प्रयत्नशील रहता है। नाटकके प्रारम्भमें ही अयोध्यामें होनेवाले नित्य नये परिवर्तन एवं युवराज स्कन्दकी अपने अधिकारोंके प्रति उदासीनताको देखकर वह अपनी व्यंग्योक्तियों द्वारा इसे प्रोत्साहित करता है—"गुप्तकुलके शासक इस साम्राज्यको 'गले पड़ी' वस्तु समझने लगे है।" स्कन्दगुप्तको क्षात्र-धर्मका पालन करते हुए जब वह मालवके दूतको शरणागतरक्षाहित आश्वासन देते हुए सुनता है तो उसके आत्मिक आनन्दकी सीमा नहीं रहती—"युवराज! आज यह वृद्ध हृदयसे प्रसन्न हुआ और गुप्त साम्राज्यकी लक्ष्मी भी प्रसन्न होगी।" पर्णदत्तके स्वयंके कथन द्वारा भी उनके अद्भुत रणोत्साह एवं स्वामिभक्तिका परिचय मिलता है—"इस वृद्धने गरुड़ध्वज लेकर आर्य चन्द्रगुप्तकी सेनाका संचालन किया है। अब भी गुप्त-साम्राज्यकी नासीर-सेनामें—उसी गरुड़ध्वजकी छायामें पवित्र क्षात्र-धर्मका पालन करते हुए उसीके मानके लिए मर मिटूँ—यही कामना है।" स्कन्दगुप्तके राज्यारोहणकी आनन्दित बेलामें भी पर्णदत्त सौराष्ट्रकी चंचल राष्ट्रनीतिकी देखरेखमें संलग्न रहकर अपना कर्तव्यपालन करते रहते हैं। नगरहारके युद्धमे आर्य-साम्राज्यके सारे सूत्रके छिन्न-भिन्न हो जानेपर वृद्ध सेनापति निराश्रितोंके संघटन एवं उनकी सेवाका कार्य-भार अपने वृद्ध कन्धोंपर उठाते हैं। अन्न-वस्त्रकी समस्याको सुलझानेके लिए गर्हित भिक्षावृत्ति-

का भी आश्रय ग्रहण करते हैं, जंगलसे सूखी लकड़ियाँ बटोरते हैं। देशवासियोंकी विलासिता और स्वार्थी प्रवृत्तिको देखकर पर्णदत्तकी राष्ट्र-भक्ति क्षुब्ध हो उठती है। वे देवसेनासे आक्रोशयुक्त वाणीमें कहते हैं—"विलासके लिए उनके पास पुष्कल धन है और दरिद्रोंके लिए नहीं।" उनकी कायतत्परता एवं त्यागकी भावनाको देखकर जब लोग जय-जयकार करने लगते हैं, तब उसका विरोध करते हुए पर्णदत्त कहते हैं—"मुझे जय नहीं चाहिए—भीख चाहिए। जो दे सकता हो अपने प्राण, जो जन्मभूमिके लिए उत्सर्ग कर सकता हो जीवन, वैसे वीर चाहिए; कोई देगा भीख में।" सच्चे हृदयकी पुकार फलवती होती है। स्कन्दगुप्त स्वयं प्रकट होकर उसे अपने आपको सौंप देता है। इस प्रकार पर्णदत्तकी हार्दिक अभिलाषा पूरी होती है। आदिसे अन्ततक पर्णदत्तका चरित्र त्याग, कर्तव्यपरायणता, स्वामिभक्ति एवं राष्ट्र-प्रेमकी भावनासे ओत-प्रोत आदर्श गुणोंकी गौरवगाथा प्रस्तुत करता है। —के० प्र० चौ०

पर्वतेश्वर—प्रसादकृत नाटक 'चन्द्रगुप्त'का पात्र। पञ्चनद-नरेश पर्वतेश्वर (जिसे ग्रीक इतिहासकारोंने 'पोरस' भी कहा है) सिकन्दरके समयमें झेलम और चनाब नदियोंके बीचके प्रदेशका शासक और एक देशभक्त राजा है। उसके चरित्रमें सद् और असद् वृत्तियोंकी मिली-जुली रेखाएँ समाहित हैं। पर्वतेश्वरमें क्षत्रियोचित साहस, शौर्य एवं अपूर्व रणकौशल है। गज-सेनाके विशृंखल हो जानेपर जब उसके सैनिक उत्साह खोने लगते हैं तब वह गर्जना करते हुए कहता है—"सेनापति! देखो, उन कायरोंको रोको। उनसे कह दो कि आज रणभूमिमें पर्वतेश्वर पर्वतके समान अचल है। जय पराजयकी चिन्ता नहीं। इन्हें बतला देना होगा कि भारतीय लड़ना जानते हैं। बादलोंसे पानी बरसनेकी जगह वज्र बरसे, सारी राज-सेना छिन्न-भिन्न हो जाय" परन्तु एक पग भी पीछे हटना पर्वतेश्वर के लिए असम्भव है।" पर्वतेश्वरकी इस वरेण्य वीरतासे सिकन्दर भी आश्चर्यचकित हो जाता है। पराजित होकर भी वह अपने वीर-दर्पसे सिकन्दरके हृदयको जीत लेता है। परन्तु इस सत्-पक्षके दूसरी ओर उसका उद्धत विलासी एव राजनीतिक शून्यताका भी एक कुत्सित पक्ष है, जिससे वह निरन्तर पतनकी ओर बढ़ता जाता है। चाणक्यके समझानेपर वह चन्द्रगुप्तकी सैनिक सहायताकर मगधकी एक लाखसे भी अधिक सेनाके सहयोगसे स्वयको वंचित कर लेता है तथा सिकन्दरके साथ अकेला युद्ध करता है। प्राच्य देशके बौद्ध और शूद्र राजा नन्दकी कन्यासे सम्बन्ध स्थापित करनेमें भी वह अपना अनादर समझता है। सिकन्दरके साथ मैत्री स्थापित करनेके अनन्तर पर्वतेश्वरमे विषयलोलुपता एवं स्वदेश-सम्मानकी विस्मृति आ जाती है। वह विलासकी गम्भीर कालिमामें निमज्जित हो जाता है। वह अलकाको अपने विलास-भवनमें ले जाना चाहता है। सिकन्दरको सैनिक सहायता न देनेकी जो प्रतिज्ञा वह अलकासे करता है, उसे भी भग कर देता है। इस प्रकार अपनी विवेकशून्य दुर्नीतिके कारण असफलताका स्वयं वरण करता है। वह अलकाको खोकर उधर सिकन्दरके द्वारा भी उपेक्षित होता है। फलतः हताश होकर आत्म-हत्याके लिए प्रस्तुत होकर अपनी नैतिकताशून्य दुर्बुद्धिका परिचय देता है। मगधकी राज्यक्रान्तिमें सक्रिय सहयोग देनेपर भी वह प्रतिज्ञानुसार आधे राज्यको प्राप्त करनेके लिए प्रयत्नशील नहीं होता, वरन् कामुकतावश मगधकी राजकुमारी कल्याणीको अपनी परिणीता बनाकर आधा राज्य पाना चाहता है। अपने मिथ्यादर्पमें आकर उसने पहले जिस विवाह प्रस्तावको अस्वीकृत कर दिया था, अब उसीकी ओर वह लोलुपतावश आकर्षित होता है। यह भूल उसके निकृष्ट विलासी मनोवृत्तिका सबल परिचायक है। पर्वतेश्वरको इस पतनोन्मुख विलासिताका समुचित दण्ड मिलता है। बलपूर्वक पकड़नेकी चेष्टामें कल्याणी छुरा मारकर उसके जीवनका अन्त कर डालती है। प्रसादने इतिहास-सम्मत भारतीय संस्कृतिके संरक्षक वीर, राष्ट्र-भक्त-को सौन्दर्य-लिप्सु, उद्धत एवं राजनीतिक अदूरदर्शिताके कारण कामी, पतित एवं विलासी बनाकर उसके चरित्रके साथ उचित न्याय नहीं किया। —के० प्र० चौ०

परख—दे० 'जैनेन्द्रकुमार'।

परशुराम चतुर्वेदी—जन्म २५ जुलाई, सन् १८९४ ई० को बलियासे पूर्व दिशाकी ओर लगभग ८ मील दूर गंगाके किनारे जवही नामक ग्राममें हुआ। पिताका नाम पं० रामछबीले चतुर्वेदी। प्रारम्भिक शिक्षा महाजनी पद्धतिपर दी गयी। साथ ही संस्कृतका भी अभ्यास कराया गया। संस्कृतके प्रति आपकी रुचि कुछ ऐसी रही कि बाल्यकालसे अबतक उसका अध्ययन करते आ रहे हैं। हिन्दीकी शिक्षा आपको मात्र कक्षा २ तक ही मिली। बादमें इन्होंने अपने मामाकी सहायतासे बलियामें अंग्रेजी शिक्षा प्रारम्भ की। इन्हीं दिनों आप वन्देमातरम् आन्दोलन (सन् १९११ई०)के सिलसिलेमें स्कूल तथा छात्रावाससे निकाल दिये गये। परन्तु इनके चचेरे नानाने फिर इन्हें भर्ती करा दिया।

सन् १९१४ ई० में स्कूल लीविंग सर्टीफिकेटकी परीक्षामें उत्तीर्ण होनेके पश्चात् आगेकी शिक्षाके लिए परशुरामजी प्रयाग चले आये। यहाँ आकर उन्होंने कायस्थ पाठशालामें अपना नाम लिखाया। रहनेकी व्यवस्था हिन्दू बोर्डिंग हाउसमें हुई। आपके समकालीन छात्रोंमें आचार्य नरेन्द्र देव, डा० धीरेन्द्र वर्मा, डा० बाबूराम सक्सेना, कविवर सुमित्रानन्दन पन्त जैसे विद्यानुरागी थे। परशुरामजी भी इन सुरुचि एवं ज्ञानसम्पन्न महानुभावोंकी गोष्ठीके अन्यतम सदस्य थे।

इन्हीं लोगोंमेंसे कुछने आगे चलकर प्रयाग विश्वविद्यालय (सन् १९२३-२४ ई० तत्कालीन म्योर सेण्ट्रल कालेज)में हिन्दी परिषद्की स्थापना की। परशुरामजी इसके प्रथम मन्त्री चुने गये।

सन् १९२५ ई०में आपने बलियामें वकालत प्रारम्भ की। यह एक विचित्र तथ्य है कि साधारणतः अपने जीवनमें प्रायः मौन तथा सभा-भीरु रहनेपर भी वे एक सफल वकील हैं।

परशुरामजीकी ख्याति आज हिन्दी साहित्यमें एक कुशल अनुसन्धानकर्ता और आलोचकके रूपमें है परन्तु इस कोटिके अन्वेषक तथा समीक्षकका साहित्यिक जीवन

कवितासे प्रारम्भ हुआ था। प्रयाग आनेपर इन्होंने राष्ट्रीय कविताएँ लिखीं। 'प्रताप'के सम्पादक गणेशशंकर विद्यार्थी इनकी रचनाएँ प्रायः प्रकाशित करते थे।

इसके पश्चात् संस्कृत तथा हिन्दीके सम्पूर्ण भक्ति तथा श्रृंगारिक काव्यका इन्होंने अत्यन्त मनोयोगसे अनुशीलन किया। सन् १९३४ ई०में इन्होंने 'संक्षिप्त रामचरित मानस' का सम्पादन करके उसे हिन्दुस्तानी प्रेस, बाँकीपुरसे प्रकाशित करवाया। उनकी प्रकाशित पुस्तकोंमे यह प्रथम थी। उस समय इस पुस्तकका भूमिका-भाग खो गया था, अतः सन् १९३४ ई० के इस संस्करणमें 'रामचरित मानस'का पाठमात्र था। अब उस भूमिकाको फिरसे लिख कर परशुरामजीने इन दोनों भागोंको 'मानसकी राम-कथा' नामक ग्रन्थमें एक साथ प्रकाशित करवाया है। इसकी शोध-पूर्ण विस्तृत भूमिका कई दृष्टिकोणोंसे महत्त्वपूर्ण तथा उपादेय है।

अब तक चतुर्वेदीजीकी १० पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। 'मीराबाईकी पदावली', 'उत्तरी भारतकी सन्त परम्परा' (१९५१), 'सूफी काव्य-संग्रह' (१९५१), 'सन्त-काव्य', 'हिन्दी काव्य-धारामे प्रेम-प्रवाह' (१९५२), 'वैष्णव धर्म, 'मानसकी राम कथा' (१९५३), 'गार्हस्थ्य जीवन और ग्राम सेवा' (१९५२), 'नव निबन्ध'(१९५१), 'मध्यकालीन प्रेम-साधना' (१९५२)।

'मीराबाईकी पदावली' (१९५१) में मीराके काव्य और भक्तिके समस्त पदोंका विवेचन किया गया है। पाठान्तरों और टिप्पणियोंके साथ मीराके अपेक्षाकृत प्रामाणिक २०० से ऊपर पद दिये गये हैं। 'उत्तरी भारतकी सन्त परम्परा' मौलिक आलोचनात्मक ग्रन्थ है। इसे उत्तरी भारतके सन्तों और उनके सम्प्रदायोंका विश्व-कोश कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। 'सूफी काव्य संग्रह' (१९५१) में प्रथम बार सारी उपलब्ध सामग्रीका उपयोग करके आलोचनात्मक दृष्टिके साथ हिन्दीके प्रधान सूफी कवियोंकी रचनाएँ संकलित की गयी है। 'सन्त काव्य' (१९५२) के प्रारम्भमें सन्त-साहित्यके कला और भाव दोनों ही पक्षों पर बड़े वैज्ञानिक ढंगसे विचार किया गया है। विद्वान् लेखकने संग्रहका पाठ देनेमें राजस्थानमे बिखरी पाण्डुलिपियोंमे सहायता ली है और इस प्रकार इस संग्रह द्वारा बहुत सी नवीन और शुद्ध रूपमे सामग्री हिन्दी पाठकोंके समक्ष आयी है। 'हिन्दी काव्य-धारामें प्रेम प्रवाह' मौलिक आलोचनात्मक ग्रन्थ है। इसमें हिन्दी साहित्यके आदिकालमे लेकर आज तककी प्रेम-पद्धतियोंका वैज्ञानिक विश्लेषण है। 'वैष्णव धर्म' (१९५३) भी मौलिक आलोचनात्मक ग्रन्थ है। प्रस्तुत पुस्तक उस लेखका संशोधित और परिवर्द्धित संस्करण है जो 'वैष्णव धर्म सम्प्रदायका क्रमिक विकास' शीर्षकसे 'हिन्दुस्तानी' (१९३७) पत्रिकामे प्रकाशित हुआ था। 'मानसकी राम-कथा' (१९५३) भूमिकाके साथ सम्पादित ग्रन्थ है। यह गोस्वामी तुलसीदासकृत 'रामचरित मानस'-का उसकी कथा-वस्तुके आधारपर किया गया अध्ययन है। इसमें मूल रामकथाके उद्गम, उद्भव एवं विकासके साथ-साथ भिन्न-भिन्न देशोंमें प्रचलित राम-कथाके विविध रूपोंका भी दिग्दर्शन कराया गया है। पुस्तकके दो खण्ड हैं। इनमें एक भूमिका रूपमें है और दूसरेमें 'मानस'की मूल राम-कथा दी गयी है।

परशुरामजीकी आलोचना खोजपूर्ण तथा शास्त्रीय स्तर-पर है और उनकी समीक्षा-पद्धति वैज्ञानिक है। हिन्दी साहित्यका मध्ययुग तथा सन्त-साहित्यके लेखक आपके अध्ययनके प्रिय विषय हैं। —ह० दे० बा०

परिमल–सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'का काव्य-संग्रह। १९२२ ई०में 'अनामिका' नाममे उनका एक काव्य-संग्रह प्रकाशित हो चुका था। इस दृष्टिसे यह द्वितीय काव्य-ग्रन्थ है। पर इसमे संगृहीत कविताओंकी रचना-तिथियोंको देखते हुए इसे प्रथम संग्रह माना जाता सकता है। यों इसका प्रकाशन १९२९ ई०मे हुआ। इस संग्रहमें 'जुहीकी कली' जैसी कविता भी, जो १९१६ ई०में लिखी गयी, संगृहीत है। पर सामान्यतः 'मतवाला'में (सन् १९२४-२५ ई०) प्रकाशित अधिकांश कविताओंका ही संग्रह इसमें किया गया है।

'निराला'की बहुवस्तु-स्पर्शिनी प्रतिभा, प्रगतिशील दृष्टिकोण, दार्शनिक तथा बौद्धिक विचारधाराका परिचय 'परिमल'में संगृहीत रचनाओंमे मिलने लगता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्लने छायावादियोंके सम्बन्धमे भाव-भूमिके संकोचका जो उल्लेख किया है, वह 'निराला'मे नहीं पाया जाता। इस काव्य-संग्रहके तीन खण्ड हैं—प्रथम खण्डमें छन्दोबद्ध रचनाएँ हैं, द्वितीय खण्डमें स्वच्छन्द छन्दका प्रयोग किया गया है तो तृतीयमे मुक्तवृत्त का।

भारतीय लोकहितवादके आन्दोलनकी ओर अपने समसामयिक कवियोंमे 'निराला' सबसे पहले उन्मुख हुए। 'परिमल'की भिक्षुक, दीन, विधवा, बादल राग आदि कविताएँ उनके नवीन दृष्टिकोणकी सूचना देनेके साथ-साथ उनके अप्रतिम भावोन्मेषको भी प्रकट करती हैं। यह उनके उद्दाम यौवनका काल था। उसकी प्रखर धारामें अवरोधोंका टिकना सम्भव न था—"बहने दो, रोक-टोकसे कभी नहीं रुकती है, यौवन मद बाढ नदी की, किसे देख झुकती है।"

'परिमल'की भाषा सहज, मधुर तथा आकर्षक है। अभी उसमे अलंकृतिका स्पर्श नहीं हो पाया है। संस्कृतके बहु-प्रचलित तत्सम शब्दोंका उन्होंने धड़ल्लेसे प्रयोग किया है। सामासिक पदावली तथा नाद-योजना उनकी शैलीकी प्रमुख पहचान है। 'तुम और मैं' भाषाकी दृष्टिमे उनकी प्रतिनिधि रचना कही जा सकती है। —ब० सिं०

परीक्षा गुरु–'परीक्षा गुरु' (प्र० १८८२ ई०), जैसा श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शीने लिखा है, हिन्दीकी एक स्थायी नीधि है। 'परीक्षा गुरु'को हम हिन्दी उपन्यासके विकास पथपर मीलका पत्थर कह सकते हैं। उन दिनों हिन्दी उपन्यास तिलस्मी, ऐयारी और अन्य तरहकी चमत्कारिक घटनाबहुल शैलीमें लिखा जाता था, जिसमें व्यक्ति और समाजके आन्तरिक संघर्षों और समस्याओंपर नहीं, ऊहात्मक कल्पनाप्रवण ऐन्द्रजालिक वातावरणकी सृष्टिपर ज्यादा ध्यान दिया जाता था। एकाध लेखकोंने इस वातावरणकी दमघोंट सीमाओंको तोड़कर बाहर निकलनेका प्रयत्न भी किया पर वे अधिकसे अधिक अर्धरोमानी सस्ते

प्रेम कथानकोंकी रचना भर कर सके। यहाँ भी मुईंघरों, सुरंगों और पेचोंसे खुलने-बन्द होनेवाली कोठरियोंसे नजात न मिल सकी। इस तरहकी परिस्थितिमें लाला श्री निवासदासका 'परीक्षा गुरु' प्रकाशित हुआ, जिसमें जीवन की समस्याओंसे मुख मोड़कर तिलस्मी गुहा-कोटरोंमें शरण लेनेकी प्रवृत्तिका एक दम अभाव था। उन्होंने अंग्रेजियत और उसके बढ़ते हुए विषैले प्रभावमें घुटती हुई भारतीयता-की सुरक्षाकी समस्याको सामने रखा। इस प्रकारकी समया-नुकूल कथा-वस्तुके चयन और उसके उपस्थापनके अद्‌भुत साहसके लिए श्रीनिवास दासकी जितनी भी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है।

'परीक्षा गुरु' दिल्लीके बिगड़े रईस मदनमोहनके विनि-पात और उद्धारकी कथा है। मदनमोहन ह्रासशील रईसीका प्रतिनिधि है, जो अर्थलोलुप और स्वार्थी चाटुकार दोस्तोंकी चापलूसीके चक्करमें पड़कर मिथ्या प्रतिष्ठा और बड़प्पनके प्रदर्शनमें अपना सब कुछ गवाँ बैठता है। एक ओर वह अंग्रेजियत और नयी हवासे प्रभावित होकर विला-यती प्रसाधन सामग्रियोंको दूने-चौगुने मूल्योंपर खरीदनेमे अपनी शान समझता है, दूसरी ओर अपने सभासद चुन्नीलाल, मास्टर शम्भूदयाल, पण्डित पुरुषोत्तमदास, हकीम अहमद हुसैन तथा बाबू बैजनाथ जैसे परावलम्बी लोगोंके चाटु-वाक्योंमे गद्‌गद् होकर रागरंग, फिजूलखर्ची, और आवारागर्दीको झूठी इज्जत मानकर दिवालिया बनता है। अंसारीका लड़का हरगोविन्द बारह-बारह रुपयेकी लखनवी टोपियोंको अट्ठारहके भाव खरीदकर मदन मोहनसे शाबाशी पाता है, तो हकीम अहमद हुसैन एक कल्पित अत्तारकी विपत्तिकी झूठी कहानियाँ सुनाकर रईसी-वस्तुओंके पारखी और संरक्षक मदनमोहनसे एक शीशी इत्रके लिए पचीस रुपये ऐंठ लेता है। मिस्टर ब्राइट, मिस्टर रसल और घोड़ोंके व्यापारी आगाजानमे मिलकर चुन्नीलाल और शम्भूदयाल दलाली और कमी-शनमें हजारों रुपयोंका वारा-न्यारा करते हैं और मदन-मोहनको तारीफ और झूठी प्रशंसाके जालमे फँसाकर दिवालिया बना देते हैं। मदनमोहनकी दुरवस्थामें सभी चाटुकार मित्र एक-एक करके खिसक जाते हैं, उस समय उसके मित्र ब्रजकिशोरने, जो उसे आरम्भसे ही सही रास्ता दिखाकर सुधारनेका प्रयत्न करते रहे, बड़े धैर्यके साथ इस विपत्तिमें उसकी सहायता की और उसे आर्थिक संकट और सामाजिक अपमानसे छुटकारा दिलाया। मदन-मोहनकी पत्नी भी दुःखके दिनोंमें सारा तिरस्कार भूलकर पतिके साथ खड़ी रही और हर प्रकारसे उसकी सहायता की।

मदनमोहनके सिरसे थोथी प्रतिष्ठा और चाटुकार-प्रियताका भूत उतर जाता है और जब वह सही बातपर आ जाता है तो ब्रजकिशोर सोचते हैं—"जो बात सौ बार समझानेसे समझमें नहीं आती, वह एक बारकी परीक्षासे भली-भाँति मनमें बैठ जाती है और इसी वास्ते लोग 'परीक्षा' को 'गुरु' मानते हैं।"

'परीक्षा गुरु' उपन्यासकी सबसे बड़ी विशेषता यही है कि उसने हिन्दी उपन्यासकी जीवनहीन एकरस चमत्कार-बहुल कथा-परम्पराको तोड़कर यथार्थवादी वस्तुको ग्रहण किया। 'परीक्षा गुरु'का लेखक सामाजिक सुधारको साहित्य-का प्रमुख प्रयोजन मानता है। इसी सोद्देश्यताके कारण यह उपन्यास तत्कालीन अन्य उपन्यासोंसे बिल्कुल भिन्न हो गया है। कभी-कभी सोद्देश्यताका आग्रह इतना प्रमुख हो जाता है कि लेखक उपन्यासकी कथाके बीच-बीचमें नैतिक उपदेशोंसे भरे लम्बे-लम्बे अंशोंका समावेश कर देता है। इस तरहके अंश कथाके विकासमें निश्चित रूपसे बाधक हैं। इसे लेखक भी अच्छी तरह जानते थे। इसी कारण उन्होंने 'निवेदन'में लिखा है "जहाँका कुछ विद्याका विषय आ गया है कुछ शब्द संस्कृत आदिके लेने पड़े हैं परन्तु जिनको ऐसी बातोंके समझनेमें कुछ झमेल मालूम हो उन्की सुगमताके लिए ऐसे प्रकरणोंपर ऐसा × चिह्न लगा दिया गया है जिससे उन प्रकरणोंको छोड़कर हरेक मनुष्य सिलसिलेवार वृत्तान्त पढ़ सकता है।"

शैलीकी दृष्टिसे यह उपन्यास समसामयिकोंमे भिन्न और अपेक्षाकृत अधिक आधुनिक शैलीका प्रतीत होता है, जैसा कि लेखकने खुद लिखा है कि "अबतक नागरी और उर्दू भाषामें अनेक तरहकी अच्छी-अच्छी पुस्तकें तैयार हो गयी है परन्तु मेरे जान इस रीतिसे कोई नहीं लिखी गयी इसलिए अपनी भाषामें यह 'नयी चाल' की पुस्तक होगी।" आगे इन्होंने इस 'नयी चाल'की व्याख्या करते हुए लिखा— "अपनी भाषामे अबतक जो वार्तारूपी पुस्तकें लिखी गयी हैं उनमें अक्सर नायक-नायिका वगैरहका हाल ठेठसे सिल-सिलेवार लिखा गया है जैसे कोई राजा, बादशाह, सेठ-साहूकारका लड़का था···उसके मनमें इस बातसे रुचि हुई और उसका यह परिणाम निकला···ऐसा सिलसिला इसमें कुछ भी नहीं है।"

इसमें शक नहीं कि 'परीक्षा गुरु'का आरम्भ बहुत ही सांकेतिक और नाटकीय ढंगसे हुआ है। मदनमोहन अंग्रेजी सौदागरकी दूकानमे नयी चालकी चीजें देखने जाता है और वहीं उसके चाटुकार मित्रों और निःस्वार्थ शुभ-चिन्तक ब्रजकिशोरके वाद-विवादसे उपन्यासका आरम्भ होता है। आज यह शैली हमारे उपन्यासोमे इतनी प्रयुक्त हो चुकी है कि इसमें कोई नवीनता नही प्रतीत होती पर उस समय तो इस शैलीमें उपन्यास लिखनेका प्रयत्न करना 'नयी चाल' अवश्य थी। इस 'नयी चाल' के बावजूद उपन्यासका कथानक अत्यन्त विशृंखल और अव्यवस्थित है। लेखक नैतिक उपदेश और विभिन्न प्रकारके सामयिक-असामयिक उद्धरणोंके देनेका मोह संवरण नहीं कर पाता, जो प्रायः कथाकी एकसूत्रताको खण्डित कर देते हैं। —शि० प्र० सिं०

पल्लव–(प्र० १९२८ ई०) पन्तके प्रारम्भिक काव्य-प्रयोगोंकी परिणति है। संकलित रचनाओंकी संख्या ३२ है, जो १९१८ई०से लेकर १९२५ ई०तककी कृतियाँ है। 'विज्ञापन' में कविने लिखा है कि उसने प्रत्येक वर्षकी २-३ रचनाएँ ग्रन्थमें संगृहीत कर दी हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इस रचनासे कविके काव्य-विकासकी प्रगति स्पष्टतः सूचित होती है। श्रेष्ठतम रचनाएँ अन्तिम चार वर्षों (१९२१-१९२५ ई०) की कृतियाँ हैं। इनमें कवि रसबोधकी

परिपूर्णता प्राप्त कर सका है। 'पल्लव' की अन्तिम कविता 'परिवर्त्तन' कविके जीवनदर्शन तथा काव्य-प्रयासमें एक नये मोड़की सूचना देती है और 'छाया-काल' शीर्षक अन्तिम रचनामें अबतकके जीवनको छाया-काल मानकर अन्तमें कविने नये तरुण जीवनका आह्वान स्वीकार किया है, इस मंगलाशाके साथ कि, "दिव्य हो भोला बालापन, नव्य जीवन, पर, परिवर्त्तन। स्वस्ति, मेरे अनंग नूतन। पुरातन मदन-दहन॥" (दिसम्बर, १९२५)।

सच तो यह है कि 'पल्लव' कविकी काव्य-प्रतिभाका गौरीशंकर है और काव्य-पारखियोंने उसे इसी रूपमें ग्रहण किया है। कल्पना, कला, मूर्तिमत्ता, भाषा-माधुर्य तथा अभिव्यंजनाकी प्रौढतामें कवि इस संकलनमें अपनी सभी पहली रचनाओंको पीछे छोड आया है। इस ग्रन्थको हम पन्तके कल्पनाशील किशोर जीवनका सर्वोच्च उत्कर्ष कह सकते हैं।

'पल्लव' की रचनाओंको हम कई श्रेणियोंमें रख सकते हैं। पहली श्रेणी विप्रलम्भ-प्रधान रचनाओं की है, जिनमें 'उच्छ्वास' (१९२२), 'आँसू' (१९२१) और 'स्मृति' (१९२२) शीर्षक रचनाएँ आती है। इनमे 'उच्छ्वास' कविकी पहली प्रकाशित रचना भी है। इन रचनाओंको हम 'ग्रन्थि' की भावभूमिमे जोड सकते है यद्यपि अभिव्यंजनाके क्षेत्रमें ये उसमे कहीं आगे बढी रचनाएँ हैं। 'पल्लव' के 'प्रवेश' (भूमिका) में कविने 'आँसू' की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत कर इस नयी छन्द-पद्धतिपर प्रकाश डाला है। अतः इन रचनाओंमें भावभूमिकी तात्कालिकताके आग्रहके साथ शिल्पगत प्रयोगकी नयी भूमि भी मिलती है। इन्हीं रचनाओंके आधारपर प्रारम्भिक समीक्षकोंने पन्तको विप्रलम्भका कवि कहा है और उसके काव्यमें उसीकी पंक्तियो—'वियोगी होगा पहला कवि, आहसे निकला होगा गान।' को चरितार्थ करनेका पयत्न किया है। दूसरी श्रेणीकी रचनाएँ 'वीणा' कालकी अवशिष्ट रचनाएँ हैं। ये रचनाएँ हैं 'विनय', 'वसन्तश्री', 'मुस्कान', 'निर्झर-गान', 'सोनेका गान', 'निर्झरी', 'आकांक्षा', 'याचना' और 'स्याहीका बूँद'। इनमें हमें बालकविका स्वप्न-विलास और तुतला कण्ठस्वर ही अधिक मिलता है। सरस, प्रासादिक भावाभिव्यक्तिसे लेकर 'स्याहीकी बूँद' रचनाकी दुरूह कल्पना तक, जो काव्यक्रीडा जैसी लगती है, इन रचनाओंका भाव-जगत् फैला है। जिज्ञासा, वैचित्र्य, अद्‌भुतके प्रति आकर्षण और कोमलताकी साधनाका वैशिष्ट्य इन रचनाओंको स्वतन्त्र व्यक्तित्व प्रदान करता है परन्तु इन रचनाओंमें कविका किशोर कण्ठ अभी फूटा नहीं है। तीसरी कोटिकी रचनाएँ 'परिवर्त्तन'को छोड़ कर शेष रचनाएँ हैं, जिन्हें पूर्व पन्तकी श्रेष्ठतम कृतियाँ कहा जा सकता है। इन रचनाओंमे अंग्रेजीके रोमांटिक कवियों, विशेषतः वर्ड्‌स्वर्थ और शेलीकी रचनाओंसे स्पर्द्धा स्पष्ट रूपमें दिखलाई देती है। कल्पनाका अबाध और अप्रतिहत प्रवाह इन रचनाओंकी विशेषता है। इससे जहाँ भावोन्मुक्तिकी सूचना मिलती है, वहाँ किशोर कविके दुस्साहस और असंयमका भी पता चलता है। 'छायावाद' शब्दसे यही रचनाएँ परिलक्षित थीं, जिनमें द्विवेदीयुगीन काव्यकी बँधी-सधी लीकको छोड़कर कवि इन्द्रधनुषके साथ दौड़ लगाता दिखलाई देता है। पन्तने इन रचनाओंको द्विवेदीयुगका प्रसार माना है परन्तु 'प्रवेश' में उनका विद्रोह और चुनौतीका भाव भी स्पष्ट हो जाता है। इन रचनाओंमें जहाँ चित्रमय भाषा-शैली और स्वरात्मक माधुर्यका नया वैभव है, वहाँ भावोंकी कोमलता और नवीनता भी द्रष्टव्य है। 'बीचिविलास', 'अनग', 'नक्षत्र', 'स्वप्न' और 'छाया' इस कोटिकी आधी दर्जन सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ हैं, जिनमें स्वच्छन्दतावाद अपने सम्पूर्ण वैभवके साथ पल्लवित हुआ है। इनके अतिरिक्त 'मौन-निमन्त्रण', 'विश्वछवि' और 'विश्वव्याप्ति' जैसी रचनाओंमें कवि अद्भुत और प्रकृतिका अंचल पकड़ कर रहस्यवादकी अवतारणा करता है और अपने प्राकृतिक संवेदनोंमें अतीन्द्रिय रहस्यलोकका संकेत देता है। 'मौन-निमन्त्रण' पन्तकी अत्यन्त लोकप्रिय कविता है, जिसमें प्रकृतिके माध्यमसे रहस्यसत्ताकी व्यंजना की गयी है। ये सभी रचनाएँ प्रकृति-व्यापारको विषय बनाती हैं परन्तु कवि शीघ्र ही बाह्य प्रकृतिका आलम्बन छोड़कर कल्पित रूप-जगत्‌में खो जाता है। भावसाम्यके आधार पर उसके कल्पना-जगत्‌मे असंख्य फूल खिल जाते हैं और उसकी कवि-प्रतिभा किसी प्रकारका नियन्त्रण नहीं मानती। पहली कोटिकी रचनाओंमें यदि कवि मानवीय प्रेम और वियोगका कवि है तो इस कोटिकी रचनाओंमें वह प्रकृतिका लाडला चितेरा है, यद्यपि वह जिस तूलिकासे अपने चित्र बनाता है, वह साधारण तूलिका नहीं है। उसमें प्रकृतिको भावोंमे रंग कर नया रूपरंग और नयी सार्थकता देनेकी अपार क्षमता है। चौथी कोटिका निर्माण 'परिवर्त्तन' शीर्षक एकमात्र कवितामें मिलता है। यह 'पल्लव'की सर्वश्रेष्ठ रचना समझी जाती है परन्तु कविके सम्पूर्ण काव्यमें भी यह प्रथम पंक्तिमे रहेगी। इस रचनामें अनेक स्वतन्त्र भावानुबन्ध हैं और कवि सामान्य द्वन्द्वबोधसे ऊपर उठकर विराट् चित्रों और गम्भीरतम दार्शनिक विचारणाके क्षेत्रमें पहुँच जाता है। इस रचनाको हम महाकाव्यात्मक रचना कह सकते हैं। इसीमे पन्तका कोमल नारी-कण्ठ पहली बार पुरुष-कण्ठमें बदला है। तारुण्यके पंख खोलते हुए कविने इस रचनामें निस्सीम नीलाकाशमें उन्मुक्त उड़ान भरी है।

भाषा और शैलीकी दृष्टिसे 'पल्लव' स्वयं एक अभिनव जगत् है। उसमें संस्कृतके समस्त शब्दकोशको खोज कर मधुर, सानुप्रास तथा साभिप्राय शब्दोंका उपयोग हुआ है। 'प्रवेश'मे कविने लिखा है—"हम खडीबोलीसे अपरिचित हैं, उसमें हमने अपने प्राणोंका सगीत अभी नही भरा, उसके शब्द हमारे हृदयके मधुसे सिक्त होकर अभी सरस नहीं हुए, वे केवल नाम मात्र हैं, उनमें हमें रूप-रस-गंध भरना होगा। उनकी आत्मासे अभी हमारी आत्माका साक्षात्कार नहीं हुआ, उनके हृत्स्पन्दनसे हमारा हृत्स्पन्दन नहीं मिला, वे अभी हमारे मनोवेगोंके चिरालिंगन-पाशमें नहीं बँधे, इसीलिए उनका स्पर्श अभी हमें रोमांचित नहीं करता, वे हमें रसहीन, गन्धहीन लगते हैं। जिस प्रकार बडी चुवानेसे पहले उड़दकी पीठीको मथ कर हलका तथा कोमल

कर लेना पड़ता है, उसी प्रकार कविताके स्वरूपमें, भावों के ढांचेमें, ढालनेके पूर्व भाषाको भी हृदयके तापमें गला कर कोमल, करुण, सरस, प्रांजल कर लेना पड़ता है।' (पृ० ४५-४६)। इस मंतव्यमें स्वयं कविकी स्वर-साधनाकी झंकार प्रकट है। पुल्लिंग-स्त्रीलिंग प्रयोग तथा संयुक्त क्रियाओंके क्षेत्रमें कविने भावाभिव्यंजनाके लिए छूटकी मांग की है और इससे उसकी रचनामें विशिष्टता ही आयी है। कवि मुक्त-छन्दका समर्थक नहीं है, ऐसा भूमिकासे जान पड़ता है, परन्तु हिन्दीकी प्रकृतिके अनुरूप प्रथित मात्रिक छन्दोंको चुन कर उनमें पद-परिवर्तनके द्वारा नयी भावभंगिमा भरनेमें वह समर्थ सिद्ध हुआ है। संस्कृतकी कोमलकान्त पदावलीका आदर्श सामने रखते हुए कविने हिन्दीके कण्ठकी रक्षा की है। छन्द-विधान पर विशेषतः अंग्रेजी काव्यका प्रभाव परिलक्षित है। तात्पर्य यह कि 'पल्लव'के साथ खड़ीबोलीके काव्यका कण्ठ फूटता है और वह समर्थ अभिव्यजनाके साहसी अभियानकी दिशामें अग्रसर होता है। भाषा, छन्द और प्रतीक-विधानके क्षेत्रमें नये कविका दृष्टिकोण द्विवेदीयुगके कविसे भिन्न है, इसका दो-टूक पता 'प्रवेश'से लगता है, जिसका आधुनिक काव्य-समीक्षामें महत्त्वपूर्ण स्थान है। कालरिज और वर्ड्सवर्थकी 'लिरिकल बैलेड्स'की भूमिकाकी भांति 'पल्लव'की भूमिका भी काव्य-जगत्की ऐतिहासिक घटना है। 'पल्लव'का कविकी रचनाओंमें क्या स्थान है, यह विवादग्रस्त प्रश्न है। कुछ विद्वानोंके विचारमें 'पल्लव'की ऊँचाई पर पन्त फिर नहीं उठ सके—वे विचारों और 'वादों'के जगत्में खो गये और उन्होंने अपनी सौन्दर्यान्वेषी कवि-प्रतिभाको पंगु बना लिया। परन्तु 'पल्लव'में पन्तकी सौन्दर्यदृष्टि प्रकृति पर केन्द्रित थी और यह दृष्टि नये-नये सन्दर्भोंसे पुष्ट होकर उनके काव्यमें बराबर सम्पन्न होती गयी है। उत्तर रचनाओंमें उन्होंने अपने अबाध कल्पनाको लगाम दी है परन्तु उनका भावप्रवण कल्पनाशील व्यक्तित्व उन्हें तथ्य-कथनकी नीरसतासे निरन्तर उबारता रहा है। निःसन्देह 'पल्लव'में कविके किशोर स्वप्न मूर्त्तिमान हैं और परवर्त्ती काव्यमें उसने इन स्वप्नोंको जगके सुख-दुःखसे मांसल बनाना चाहा है। जो हो, वयःसन्धिक, कल्पनाप्रवण और विशुद्धताग्रही काव्यरसिकोंके लिए 'पल्लव' छायावादका सर्वोच्च शिखर ही रहेगा। —रा० र० भ०

पांचजन्य—पाँचजन्यका उल्लेख कई रूपोंमें मिलता है—

१. पांचजन्य कृष्णके शंखका नाम है। यह शंख उन्हें पंचजन नामक दैत्यसे प्राप्त हुआ था।

२. पुराणोंके अनुसार पांचजन्य एक ऋषि थे।

३. अग्निपुराणके अनुसार जम्बूद्वीपके एक प्रदेशका नाम।

किन्तु इस नामसे कृष्णका शंख ही अधिक विख्यात है (द्वापर, २)। —रा० कु०

पांडु—विचित्र वीर्यके क्षेत्रज पुत्र। क्षयरोगके कारण विचित्रवीर्यकी मृत्यु हो जानेसे उनकी माता सत्यवतीने शान्तनुकी प्रथम पत्नी गंगाके पुत्र भीष्मसे विचित्रवीर्यकी विधवा पत्नी अम्बिका तथा अम्बालिकाके साथ नियोग कर सन्तानोत्पादनकी प्रार्थना की किन्तु आजन्म ब्रह्मचारी भीष्मने इसे अस्वीकार कर दिया। तब सत्यवतीने अपने प्रथम पुत्र व्यासका स्मरण किया। व्यास उपस्थित हुए तो सत्यवतीने वंशवृद्धिके हेतु उनसे सन्तान उत्पन्न करनेकी प्रार्थना की। अस्तु, नियोगके समय शर्मसे अम्बिकाने आँखें बन्द कर लीं, अतः उनके गर्भसे अन्धे धृतराष्ट्रका जन्म हुआ। अम्बालिका भयभीत होकर पीली पड़ गयी, अतः उसके गर्भसे पीले रंगका बालक उत्पन्न हुआ, जिसका नाम पाण्डु हुआ। इनकी दो स्त्रियाँ कुन्ती और माद्री थी। एकबार मैथुन करते हुए हिरण दम्पतिको मार डालनेसे इन्हें शाप मिला था कि जब तुम किसीके साथ मैथुन करोगे तो तुम्हारा प्राणान्त हो जायगा। इस कारण पाण्डु मैथुन नहीं करते थे। अतएव कुन्तीने देवताओंका आह्वान करके पाँच पुत्र प्राप्त किये थे। एक बार वसन्तमें पाण्डु अत्यन्त कामातुर हो लाख मना करनेपर भी माद्रीके साथ सम्भोग कर बैठे। परिणामस्वरूप उनकी मृत्यु हो गयी। —मो० अ०

पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'—जन्म एक निर्धन परिवारमें सन् १९०० ई०में मीरजापुर जिलान्तर्गत चुनारमें। बाल्यकालमें ही पिताका स्वर्गवास हो जानेके कारण काफी गरीबीका संकटपूर्ण जीवन। प्रारम्भिक शिक्षा चुनारमें चाचाकी कृपासे थोड़ी-बहुत मिली। बचपनसे ही उग्र विचारोंके कारण स्कूलसे निकाल दिये गये। बड़े भाईके साथ बहुत दिनोंतक अयोध्याके महन्थोंकी रामलीला मण्डलियोंमें सीता और भरतका अभिनय करते रहे। कुछ वर्ष बाद उसे छोड़ दिया। चाचाकी दयासे बनारसमें फिर शिक्षा प्रारम्भ करके उसे छोड़ दिया। चुनार गये तो भाईके डरसे कलकत्ता भाग गये। वहाँ एक दूकानमें पता लिखनेका काम करते रहे। इसी बीच १९२१ ई० में राष्ट्रीय आन्दोलनमें काशी आकर जेल चले गये। छूटनेके बाद १९२१ से १९२४ ई०तक 'आज'में 'अष्टावक्र'के नामसे राष्ट्रीय कहानी आदि लिखते रहे। क्रान्तिकारी कहानीके आप जन्मदाता हैं। १९२३ ई०में 'महात्मा ईसा' नामक नाटक लिखा। १९२३ ई०में ही एक नयी हास्य पत्रिकाका सम्पादन किया, जिसका नाम था 'भूत'। १९२४ ई०में 'मतवाला' नामक साप्ताहिकके जन्मदाता महादेवप्रसाद सेठसे मीरजापुरमें परिचय प्राप्त हुआ। १९२४ ई०में ही गोरखपुरसे एक नयी पत्रिका 'स्वदेश' नामसे निकली। एक ही अंक छपनेपर इनके नाम वारण्ट निकल गया। इससे वे फिर कलकत्ता गये। वहाँ वे 'मतवाला'का सम्पादन करने लगे। कई वर्ष बाद 'मतवाला'की स्थिति बिगड़ जानेपर आप बम्बई चले गये। कई सालतक बम्बईमें साईलेण्ट फिल्ममें लेखकका काम करते रहे, लेकिन उसी साल 'स्वदेश'के सम्पादनके जुर्ममें बम्बईसे पकड़कर गोरखपुर लाये गये। ६ महीनेकी सख्त कैदकी सजा हुई। फिर 'आज' में काम करने लगे, लेकिन दो कहानियाँ 'बुढ़ापा' और 'रुपया' को लेकर सरकारने इन्हें कैद कर लिया। कलकत्ता-प्रवासमें आपने 'चाकलेट' आदि कई पुस्तकें भी लिखीं। बम्बई-प्रवासमें काफी कर्जदार हो जानेके कारण वहाँसे इन्दौर भाग गये। वहाँ हिन्दीसाहित्य समितिकी ओरसे हिन्दीका आन्दोलन चलाते रहे। यहींपर उन्होंने 'वीणा' और 'स्वराज्य' का सम्पादन किया। कुछ दिनों उज्जैनमें भी रहे। उज्जैनसे निकलने-

वाले 'विक्रम' पत्रका भी सम्पादन किया। १९४५ से १९४८ई०तक फिर बम्बईमें रहे। 'विक्रम' और 'संग्राम' का सम्पादन भी इसी बीच किया। १९४८ ई०में मीरजापुर आये। यहाँ १९५० ई०तक रहे। १९५० से १९५१ ई०तक फिर कलकत्तामें रहे। कई सालतक आप दिल्लीमें रहे। दिल्लीमें आपने 'उग्र' नामक पत्रका सम्पादन किया, जो दो-चार अंक निकलनेके बाद ही बन्द हो गया। इसी बीच आप कुछ दिनोंतक जयपुरमें भी रहे।

'उग्रजी' हिन्दीके प्रसिद्ध लेखकोंमें हैं। गद्यके शैलीकारोंमें उनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'उग्र'के पास यथार्थकी अनुभूति बड़ी तीव्र है। जीवनकी तिक्तताओं और कटुताओंका आजीवन साक्षी होनेके नाते 'उग्र'जीके समस्त कृतित्वपर उसका प्रभाव है। शैलीकी दृष्टिसे 'उग्र'के लेखों, रचनाओं और कृतियोंमे जीवनकी परिस्थितियोंके प्रति तीव्र कटाक्ष, कटु आक्रमण और विरोध स्पष्ट झलकता है। 'उग्र'के पास यथार्थ और आक्रोशकी भाषाके साथ-साथ नितान्त पौरुषपूर्ण शैली भी है। उनकी जीवनी 'अपनी खबर' (१९६० ई०)की शैलीमे 'उग्र'जीके नितान्त वैयक्तिक पात्रों और जीवनमे आये हुए व्यक्तियोंका परिचय पढनेको मिला है। जिस 'उग्र'के पास हँसाने, व्यंग्य करने और विनोद करनेकी भाषा है, उसने इस छोटी सी पुस्तकमें 'करुण'के साथ जिन पात्रोका परिचय दिया है, वह स्मरणीय है।

साहित्यिक कृतियोंमे यद्यपि 'उग्र'जीकी दो ही रचनाओंको विशेष ख्याति प्राप्त है फिर भी आपकी हास्य और व्यंग्यकी प्रतिभा किंवदन्तियोंके रूपमें प्रायः साहित्यिक गोष्ठियो और साहित्यिक चर्चाओंका विषय बनी रहती है। 'महात्मा ईसा' नाटक तो आज भी अपनी मौलिकताके नाते उतना ही नया है, जितना कि शायद उस समय रहा हो, जब वह प्रथम प्रकाशित हुआ था। ठीक उसी प्रकार आपका प्रसिद्ध उपन्यास 'चाकलेट' भी बहुचर्चित रहा है। इस पुस्तककी निन्दा लोगोने महात्मा गान्धीसे की। गाँधीजीने जब पुस्तक पढी तो उसकी नितान्त यथार्थ अभिव्यक्तिको देखकर मौन रह गये। 'उग्र'ने 'अपनी खबर' नामक आत्म-कथामे लिखा है कि गान्धीजीने कहा कि कटु चाहे जितना हो, सत्य तो है ही। इसीसे यह स्पष्ट हो जाता है कि कितनी निर्भीक और कितनी साहसपूर्ण दृष्टि एवं प्रतिभा 'उग्र' जीमे रही है। साहित्यिक स्तरपर काव्य और गद्य रचनाओमे हमे 'उग्र'जीके उस बेलाग और साहसपूर्ण मिजाजका परिचय मिलता है, जो उनके व्यक्तित्वका अभिन्न अश है।

'उग्र'जी साहित्यिक पालिटीशियन या पालिटीशियन साहित्यिकके घोर विरोधी है। 'मतवाला'का सम्पादन भी हिन्दीकी साहित्यिक पत्रकारिताका एक प्रतीक है। 'आज' में जो उस समय उन्होंने हास्य और व्यंग्य लिखे हैं, वे आज भी उतने ही ताजे और नये है, जितने कि उस समय थे।

मौलिकताकी दृष्टिसे 'उग्र'की रचनाओंमें साहस और शक्तिका परिचय मिलता है। 'उग्र'ने सदैव उसी मौलिकता की खोजमे कभी-कभी साहित्यिक स्तरकी भी परवाह नहीं की है। यही कारण है कि 'उग्र'ने जितना भी लिखा है, वह यद्यपि सबका सब साहित्यिक स्तरसे उतना महत्त्वपूर्ण न हो, फिर भी अपनी मौलिकताके कारण उसका एक विशिष्ट स्थान है। 'उग्र' जिस युगमें थे, उसमें शायद भाषा और दृष्टि दोनोंमें एक आदर्शवादी आग्रह अधिक था। प्रत्येक आदर्शवादी युगमें समसामयिकताका बोध प्रायः खो जाता है। ऐसे युगमें भी अपनी नितान्त समसामयिक अनुभूतियोंको लिख देना और उसकी यथार्थात्मक दृष्टिका प्रतिनिधित्व करा देना कम महत्त्वकी बात नहीं है। —ल० कां० व०

पारस–पारस एक कल्पित पत्थर है, जिसके सम्बन्धमें यह प्रसिद्ध है कि यदि लोहा उससे छू जाय तो सोना हो जाता है (सिद्धराज, १६)। —रा० कु०

पारसनाथ सिंह–बिहारनिवासी। हिन्दू विश्वविद्यालय काशीमे शिक्षा हुई। बिड़ला औद्योगिक संस्थानसे सम्बद्ध रहे। प्रमुखतः बिड़ला द्वारा नियन्त्रित समाचार पत्रोंके निर्देशक थे। उपयोगी विषयोंपर लिखी हुई आपकी कुछ पुस्तके बहुत प्रसिद्ध हुईं।

कृतियाँ—'पक्षी', 'परिचय', 'जगत सेठ', 'केसरकी रामकहानी' आदि।

पार्वती–पर्वत शब्दसे पर्वत-पुत्री 'पार्वती' शब्दकी व्युत्पत्ति हुई है। प्रथम प्रजापति दक्षकी पुत्री 'सती'के रूपमें इनका उल्लेख अध्यात्म रामायण, शिव पुराण आदिमें मिलता है। अध्यात्म रामायणकी परम्पराके अनुसार सतीने दूसरे जन्ममे पार्वतीके रूपमें जन्म धारण किया। रामचरितमानसमे ठीक इसी परम्पराका समर्थन मिलता है। कालिदासने कुमारसम्भव महाकाव्यमें पार्वतीकी गहन तपस्या एवं शिवविषयक आसक्तिका सुन्दर वर्णन किया है। वस्तुतः शंकरकी अर्द्धांगिनीके रूपमें पार्वतीकी कल्पना पौराणिक कालकी देन है। महाभारतके किरातार्जुनीय युद्धके प्रसगमे शिव और उनकी शक्तिका उल्लेख हुआ है। विद्वानोंका अनुमान है कि वैष्णव-धर्मके दो देवताओं विष्णु एव ब्रह्माके साथ उनकी पत्नीभावनाके आधार पर शिवके साथ वैसी कल्पना की गयी। पत्नीत्वकी भावनाका उद्गम शैव दर्शनके शक्तिसिद्धान्तसे उद्भूत हुआ। अतः शक्ति, परमशक्ति दुर्गा, भवानी आदि रूपोंमे सर्वप्रथम पार्वतीका ही उल्लेख मिलता है। 'शिव संहिता'में इनकी महत्ता अनेक रूपोंमे कही गयी है। —यो० प्र० सिं०

पार्वती मंगल–यह रचना गोस्वामी तुलसीदासकी है। इसका विषय शिव-पार्वती विवाह है। 'जानकी मंगल'की भाँति यह भी सोहर और हरिगीतिका छन्दोंमें रची गयी है। इसमे सोहरकी १४८ द्विपदियाँ तथा १६ हरिगीतिकाएँ है। इसकी भाषा भी 'जानकी मंगल'की भाँति अवधी है। इसकी कथा 'रामचरित मानस'में आने वाली शिव-विवाहकी कथासे कुछ भिन्न है और संक्षेपमे इस प्रकार है—

हिमवान्की स्त्री मैना थी। जगज्जननी भवानीने उनकी कन्याके रूपमें जन्म लिया। वे सयानी हुईं। दम्पतिको इनके विवाहकी चिन्ता हुई। इन्हीं दिनों नारद इनके यहाँ आये। जब दम्पतिने अपनी कन्याके उपयुक्त वरके बारेमें उनसे प्रश्न किया, नारदने कहा 'इसे बावला वर प्राप्त

होगा, यद्यपि वह देवताओं द्वारा वंदित होगा।' यह सुनकर दम्पतिको चिन्ता हुई। नारदने इस दोषको दूर करनेके लिए गिरिजा द्वारा शिवकी उपासनाका उपदेश दिया। अतः गिरिजा शिवकी उपासनामें लग गयीं। जब गिरिजाके यौवन और सौन्दर्यका कोई प्रभाव शिव पर नहीं पड़ा, देवताओंने कामदेवको उन्हें विचलित करनेके लिए प्रेरित किया किन्तु कामदेवको उन्होंने भस्म कर दिया। फिर भी गिरिजाने अपनी साधना न छोड़ी। कन्द-मूल-फल छोड़कर वे बेलके पत्ते खाने लगीं और फिर उन्होंने उसको भी छोड़ दिया। तब उनके प्रेमकी परीक्षाके लिए शिवने बटुका वेष धारण किया और वे गिरिजाके पास गये। तपस्याका कारण पूछने पर गिरिजाकी सखीने बताया कि वह शिवको वरके रूपमें प्राप्त करना चाहती है। यह सुनकर बटुने शिवके सम्बन्धमें कहा—'वे भिक्षा मांगकर खाते-पीते हैं, मसानमें वे सोते हैं, पिशाच-पिशाचिनें उनके अनुचर हैं—आदि। ऐसे वरसे उमे क्या सुख मिलेगा?' किन्तु गिरिजा अपने विचारोंमें अविचल रहीं। यह देखकर स्वयं शिव साक्षात् प्रकट हुए और उन्होंने गिरिजाको कृतार्थ किया। इसके अनन्तर शिवने सप्तर्षियोंको हिमवान्के घर विवाहकी तिथि आदि निश्चित करनेके लिए भेजा और हिमवान्से लगन कर सप्तर्षि शिवके पास गये। विवाहके दिन शिवकी बारात हिमवान्के घर गयी। बावले वरके साथ भूत-प्रेतादिकी वह बारात देखकर नगरमे कोलाहल मच गया। मैनाने जब सुना तो वह बड़ी दुःखी हुई और हिमवान्के समझाने-बुझाने पर किसी प्रकार शान्त हुई। यह लीला कर लेनेके बाद शिव अपने सुन्दर और भव्य रूपमें परिवर्तित हो गये और गिरिजाके साथ धूम-धामसे उनका विवाह हुआ।

'मानस'में शिवके लिए गिरिजाकी तपस्या तथा शिवका एकाकीपन देखकर राम ने शिवसे गिरिजाको अंगीकार करनेके लिए कहा है, जिसे उन्होंने स्वीकार किया है। तदन्तर शिवने सप्तर्षियोंको गिरिजाकी प्रेम-परीक्षाके लिए भेजा है। 'पार्वती मंगल'मे राम बीचमें नहीं पड़ते और गिरिजाकी तपस्यासे प्रसन्न होकर शिव स्वयं बटु रूपमे जाकर पार्वतीकी परीक्षा लेते हैं। 'मानस'मे जो संवाद सप्तर्षि और गिरिजाके बीचमें होता है, वह 'पार्वती मंगल' में बटु और उनके बीच होता है। 'मानस'में कामदहन इस प्रेम-परीक्षाके बाद होता है, जो 'पार्वती मंगल'मे पहले ही हुआ रहता है। इसीलिए इसके बाद 'मानस'मे विष्णु आदिको मिल कर शिवसे अनुरोध करना पड़ता है कि वे पार्वतीको अर्द्धांगिनी रूपमे अंगीकार करें, जो 'पार्वती मंगल'में नहीं है। तदनन्तर 'मानस'में ब्रह्माने सप्तर्षिको हिमवान्के घर लग्न-पत्रिका प्राप्त करनेके लिए भेजा है, जिसके लिए 'पार्वती मंगल'मे शिव ही उन्हे भेजते है। शेष कथा दोनों रचनाओंमें प्रायः एक-सी है।

प्रश्न यह है कि इस अन्तरका कारण क्या है? 'मानस' की कथा शिव-पुराणका अनुसरण करती है और 'पार्वती मंगल'की कथा 'कुमार-सम्भव'का। ऐसा ज्ञात होता है कि किसी समय तुलसीदासने शिव-विवाहके विषयका भी उसी प्रकारका एक स्त्री-लोकोपयोगी खण्डकाव्य रचना चाहा, जिस प्रकार उन्होंने राम-विवाहका 'जानकी मंगल' रचा था। इस समय 'शिव-पुराण'की तुलनामें उन्हें 'कुमार सम्भव'का आधार ग्रहण करना अधिक जंचा और इसीलिए उन्होंने ऐसा किया।

'पार्वती मंगल'में उसका रचना-काल 'जय संवत्, फाल्गुन शु० ५, गुरुवार' दिया हुआ है। जय संवत् सं० १६४२ मे था, किन्तु उक्त तिथि विस्तार सं० १६४२ में ठीक नहीं उतरता, इसकी रचना-तिथि सं० १६४३ मानी जाती है किन्तु तिथिका अशुद्ध होना उस छन्दकी प्रामाणिकतामें सन्देह उपस्थित करता है, जिसमें तिथि आती है। इस प्रसंगमें विचारणीय यह है कि 'रामाज्ञा प्रश्न'के कुछ स्थलोंपर कालिदासके 'रघुवंश'का प्रभाव झलकता है, जो 'मानस'के पीछे उन स्थलोंपर दिखाई नहीं पड़ा है। यही बात 'जानकी मंगल'में भी दिखाई पड़ती है। फिर 'पार्वती मंगल' अनेक बातोंमें 'जानकी मंगल'के समान है ही, इसलिए आश्चर्य न होगा यदि 'पार्वती मंगल' 'जानकी मंगल'के आस-पासकी ही और 'रामचरित मानस'के पूर्वकी रचना प्रमाणित हो। —मा० प्र० गु०

पिंगला १—यह चिन्तामणि द्वारा लिखा गया 'छन्द-ग्रंथ' है। रामचन्द्र शुक्लने इस ग्रन्थका 'छन्द-विचार' नाम दिया है। इसकी हस्तलिखित प्रति नागरी प्रचारिणी सभा, काशी और राज पुस्तकालय, दतियामे प्राप्त है और इनसे इसका नाम 'पिंगल' ही प्रमाणित होता है। इसका आधार ग्रन्थ 'प्राकृतपैंगलम्' है, अतः इसीके अनुसार छन्दोंके लक्षण दिये गये है और छन्दोंका क्रम इसीके अनुसार है परन्तु कुछ नये छन्दोंकी चर्चा भी की गयी है। छन्दोंके साधारण नियमोंकी चर्चा करनेके बाद 'वरनमेरु' और 'मात्रामेरु'का निरूपण किया गया है और इसके बाद वरनपताका, मात्रापताका, वरनमर्कटी, मात्रामर्कटी, गाथा, गाहा, विग्गाहा, संघनी और अश्वमेधाका वर्णन है। अनन्तर दोहा प्रकरणमे दोहाके भेदोंकी चर्चा है। आगे रोला, गंधान, चौपैया, घत्ता, घत्तानन्द, पद्धरि, अरिल्ल, पादाकुलक, चौबोला छन्दोंका वर्णन है और फिर छप्पय प्रकरणमें उसके भेदोंका विवेचन किया गया है। अन्तमे पद्मावती, कुण्डलिया, अमृतध्वनि, द्विपदी और झुलनाकी चर्चा करके ग्रन्थ समाप्त हुआ है। यह साधारण स्तरका ग्रन्थ है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० का० शा० इ०; हि० सा० बृ० इ० (भा० ६)।] —सं०

पिंगला २—पुराणोंमे 'पिंगला' नामसे दो वेश्याओंके संदर्भ मिलते है—

१ अवन्ती नगरीकी वेश्या पिंगलापर एक ब्राह्मण आसक्त हो गया। ऋषभ योग्यकी सेवाके प्रसादसे यह चन्द्रानन्द नामक राजाकी स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न हुई और कीर्तिमालिनी नामसे प्रसिद्ध हुई। इसका विवाह भद्रायुसे हुआ।

२. मिथिला नगरीकी वेश्या पिंगलाने रामसे पत्नीत्व स्थापित करनेकी प्रार्थना की थी किन्तु एक पत्नी-व्रत होनेके कारण रामने उसे अस्वीकार कर दिया। अगले जन्ममें यही कुब्जा हुई।

२. इसके अतिरिक्त सन्त साहित्यमें 'पिंगला' शब्दका हठयोगपर आधारित उल्लेख भी प्राप्त होता है। मेरुदण्ड-में वर्तमान यह एक नाडी है, जो उसकी दाहिनी ओरसे उठकर सुषुम्नासे लिपटती हुई ऊपरकी ओर चली जाती है और अन्तमें नाककी दाहिनी ओर समाप्त हो जाती है। इसको सूर्य नाड़ी अथवा यमुना नदी भी कहते हैं। —रा० कु०

पिनाक–एकादश रुद्रोंमें पिनाकिन्का नाम आता है। पिनाक धनुष धारण करनेके कारण शिवको पिनाकिन् कहा गया है। यह पिनाक दधीचिकी अस्थियोंका बना था। सीता स्वयंवरके अवसरपर रामने इस धनुषकी प्रत्यंचा चढायी थी किन्तु जीर्णताके कारण यह टूट गया। शिवके शिष्य परशुराम इसपर बहुत कुपित हुए थे। 'रामचरितमानस'के बालकाण्डमें इसका वर्णन मिलता है। —यो० प्र० सिं०

पिरामिड–मिस्रवासियोंकी वास्तुकलाका पूर्ण विकास 'पिरामिडों'में देखा जा सकता है। पिरामिड मिस्रके प्राचीन शासकों द्वारा निर्मित विशाल भवन हैं। अधिकांश पिरामिड नील नदीके तटपर 'गिजे' नामक स्थानपर निर्मित हुए थे। इनमें खुफु फरोहका मिरामिड सर्वाधिक प्रसिद्ध है। इसका क्षेत्रफल १३ एकड़ है। पहले इसकी ऊँचाई ४८१ फुट थी लेकिन अब केवल ३५० फुट शेष रह गयी है। इसका निर्माण कुल ३५० लाख शिलाखण्डोंसे हुआ है। प्रत्येक शिलाखण्ड ढाई टन भारका है। ये परस्पर बडी कुशलतापूर्वक जोडे गये हैं। मिस्रके इतिहास-के मध्यकालमें पिरामिडनिर्माणकी परम्परा परित्यक्त हो जाती है। पिरामिडोंके द्वारा मिस्रकी प्राचीन संस्कृतिके अध्ययनमें अत्यन्त सहायता मिलती है। —रा० कु०

पीतांबरदत्त बड़थ्वाल–जन्म जहरखेल (गढ़वाल) में १९०२ ई० मे हुआ। काशी हिन्दू विश्वविद्यालयसे एम० ए० किया तथा हिन्दीमें डी० लिट्० की उपाधि प्राप्त की। काशी तथा लखनऊके विश्वविद्यालयोंमें प्राध्यापक रहे।

आपका शोध-प्रबन्ध 'हिन्दी काव्यमे निर्गुण सम्प्रदाय' काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा डी० लिट० उपाधिके लिए स्वीकृत प्रथम शोध-प्रबन्ध माना जाता है। हिन्दी-शोधकी आधारशिला रखनेवालोंमें आपका नाम प्रमुख है। असामयिक मृत्यु हो जानेसे आपके कार्यकी अन्य सम्भवा-नाएँ पूरी न हो सकीं। उक्त प्रबन्ध १९३४ ई० में स्वीकृत हुआ था और अपने विषयका अत्यन्त प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। भारतीय विश्वविद्यालयोंमें हिन्दी साहित्य-से सम्बद्ध यह प्रथम शोध-ग्रन्थ कहा जा सकता है।—सं०

पीपा–रामानन्दकी शिष्य-परम्परामें इनका सर्वप्रथम उल्लेख मिलता है। रामानन्दके अन्य शिष्य कबीर एवं रविदास (रैदास) ने इनका नाम लिया है। 'भक्तमाल'के प्रसिद्ध टीकाकार प्रियादासने 'पीपाजीकी कथा' नामक एक काव्य भी लिखा है, जिसका विवरण काशी नागरी प्रचारिणी सभा-से प्रकाशित हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थोंके चौदहवें त्रैमासिक विवरणमें प्रकाशित हुआ है। इसमें पीपाजीके सम्पूर्ण जीवनका विवरण प्राप्त होता है। ये गागरौनगढ़के खीची चौहान राजा थे। इनकी छोटी रानीका नाम सीता था। पीपाजीके जीवनकालका निर्धारण प्रायः जटिल नहीं है। जनरल कनिंघमके अनुसार पीपाजी जैतपालकी चौथी पीढ़ीमें हुए थे। यह पीढ़ी इस प्रकार थी—जैतपाल→ सावन्त सिंह→ रावकेरवा→ पीपाजी। इस परम्पराके अनुसार कनिंघम ने पीपाजीका जन्म सन् १३६० से १३९२ ई० के बीच स्वीकार किया है। डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल पीपाके पौत्र अचलदास एवं सुल्तान हो-शंग गोरीके बीच हुए विवाद एवं उसके द्वारा सन् १४२९ ई० में छीने गये गागरौनगढ़के आधारपर प्रायः अनुमान लगाते हैं कि उनका जन्म सं० १४१० और १४६० (सन् १३५३ और १४०३ ई०) के बीचमें रहा होगा। पीपाजीकी वाणीका उल्लेख हस्तलिखित प्रति 'सरब गोटिका' सं० १८४२ (सन् १७८५ ई०), पत्र ११८मे प्राप्त है। पीपाजीका महत्त्व प्रायः रामानन्दजीकी परम्परातक ही सीमित है। —यो० प्र० सिं०

पुरंजन–भागवतके अनुसार पुरंजन पांचाल देशके एक प्रतापी राजा थे। पुरंजनने एक बार पशु बलि यज्ञमें अनेक पशुओंकी बलि दी थी। इससे उनके मनमें अत्यन्त ग्लानि उत्पन्न हुई। वह इसके प्रायश्चित्तके लिए यत्नशील और चिन्तित थे। इतनेमें नारदने इन्हें आकर यह सन्देश दिया कि तुमने जो पशु यज्ञमें मारे थे, वे सब तुम्हारा मार्ग जोह रहे हैं। इस पर पुरंजनने नारदसे निवेदन कर सत्पथ दिखानेका निवेदन किया। नारदने एक अन्य नृप की कथाके रूपकसे उन्हे हरिभक्तिका उपदेश दिया, जिससे पुरंजनको आत्मज्ञानकी प्राप्ति हुई। सूरने भागवतके आधार पर पुरंजनकी कथा कही है (दि० सू० सा० प० ४०६)। —रा० कु०

पुरंदर–१. वैवस्वत मन्वन्तरके इन्द्रके रूपमें विख्यात हैं। इन्होंने वास्तुशास्त्रपर एक ग्रन्थकी रचना की थी।

२. विष्णुको भी पुरन्दर कहा गया है।

३. 'पुरन्दर' शब्दके ज्येष्ठा नक्षत्र, चव्य-चई तथा मिर्च आदि भी अर्थ होते हैं। —रा० कु०

पुरुरवा–पुरुरवाके ऐतिहासिक और पौराणिक दो व्यक्तित्व मिलते हैं। ऋग्वेदके पुरुरवस् ही वस्तुतः आगे चलकर ऐतिहासिक व्यक्तित्वके रूपमें कल्पित कर लिये गये। इनकी राजधानी गंगा तटपर स्थित प्रतिष्ठानपुर (आधु-निक पुरानी झूँसी) प्रयागमे बतायी जाती है। पुरुरवस्से सम्बद्ध उर्वशीकी प्रेम-कथा निश्चित ही अपनी प्राचीनता-में महत्त्वपूर्ण है। स्वर्गसे आते समय उर्वशी अप्सराको देखकर उसपर मोहित हो गये। इन्द्रने प्रसन्न होकर इन्हे उर्वशीको दे दिया। एक पुत्र होनेके बाद वह पुनः स्वर्ग चली गयी। इसपर पुरुरवा पुनः म्लान और दुखी हो गये। इसपर उर्वशी पाँच बार लौटी। इस क्रममें इन्हें पाँच पुत्र और हुए। यही कहानी किंचित् परिवर्तनके साथ विक्रमोर्वशीय एवं शतपथ ब्राह्मणमे भी मिलती है। सूरने राजा पुरुरवाकी कथा 'सूरसागरमे' वर्णित की है (दि० सू० सा० प० ४४६)। —यो० प्र० सिं०

पुरुषोत्तमदास टंडन–जन्म प्रयागमें ११ अगस्त १८८२ ई०में और मृत्यु १ जुलाई, १९६२ ई०में। अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी स्थापनाके बाद

महामना मालवीयजीने टण्डनजीको सन् १९०९ ई०में 'अभ्युदय'का सम्पादक बनाया और सम्मेलनका समस्त कार्यभार उनके सुपुर्द कर दिया और उन्होंने इस दायित्वको ऐसी खूबीसे निभाया है कि टण्डनजी अब 'सम्मेलनके प्राण' विख्यात हैं। आरम्भसे अन्त तक वे अपने सुविचारित सिद्धान्तोंपर अडिग रहे हैं और इसके लिए उन्होंने बड़ेसे बड़े नेताओं और संस्थाओंका मुकाबला किया और हँसी-खुशीसे वैयक्तिक त्याग भी किया। टण्डनजीका कार्यक्षेत्र अधिकतर इलाहाबाद रहा है। वहाँ वे वकालत करते थे। असाधारण रूपसे सफल और अत्यधिक-व्यस्त वकील होते हुए भी सार्वजनिक कार्योंके लिए समय निकालना उनके लिए कठिन न था। इसके कारण शीघ्र ही उत्तर प्रदेशके प्रमुख नेताओंमें उनकी गणना होने लगी। हिन्दी साहित्य सम्मेलनके तो वे सूत्रधार थे ही, कांग्रेसमें भी उनका स्थान प्रथम पंक्तिमें आ गया।

टण्डनजी आस्थावान पुरुष थे किन्तु वे अपने धार्मिक विश्वासोंका प्रदर्शन करना पसन्द नहीं करते थे। इसलिए कम लोग यह जानते हैं कि वे राधास्वामी मतके अनुयायी थे और प्रायः सर्वप्रथम गुरुकी समाधिके समीप बैठकर ध्यानमग्न होना उन्हें रुचता था। राधास्वामी मतसे सम्बन्ध भी इस बातका कारण हो सकता है कि उन्हें सन्तवाणी विशेषकर कबीर, दादू और रैदासकी वाणीमें विशेष मोह था और इन सन्तोंकी शिक्षाका टण्डनजीके जीवनपर प्रत्यक्ष प्रभाव भी पड़ा था।

लाला लाजपतराय द्वारा स्थापित लोक सेवा मण्डलके सदस्य बन जानेसे टण्डनजीका कार्य क्षेत्र पंजाब भी बन गया। १९२६ ई०में मण्डलके सदस्य बन और वकालतको तिलांजलि देकर टण्डनजीने अपना समस्त जीवन सार्वजनिक कार्योंके लिए अर्पित कर दिया। मण्डलका प्रधान कार्यालय लाहौरमें था, इसलिए उन्हें अधिकतर वहीं रहना पड़ा। इस स्थितिसे पंजाबके हिन्दी-आन्दोलनको बड़ी प्रेरणा मिली और टण्डनजीके पथप्रदर्शनमें प्रान्तीय हिन्दी सम्मेलन और आर्यसमाज, सनातन-धर्म सभा, देवसमाज आदि द्वारा स्थापित शिक्षण-संस्थाओंमें हिन्दीके लिए अधिकाधिक स्थान देनेकी भावनाको बल मिला। हिन्दीके सभी केन्द्रोंसे उनका निकट सम्पर्क रहा। लाहौर, अमृतसर, जालन्धर और अबोहर ये हिन्दीके केन्द्र थे और इन सभीको टण्डनजीसे यथासमय परामर्श और सहायता मिलती रही।

यह सर्वविदित है कि पुरुषोत्तमदास टण्डन हिन्दी साहित्य सम्मेलनके जन्मदाताओंमेंसे हैं। टण्डनजीकी दूसरी हिन्दी-सेवा सम्मेलनके तत्वावधानमें हिन्दी विद्यापीठकी स्थापना है। सन् १९३० ई०में इसे सम्मेलनसे पृथक करके स्वतन्त्र रूप दे दिया गया। हिन्दीके शिक्षण और प्रचारमें विद्यापीठ आज बहुमूल्य कार्य कर रहा है।

उच्चकोटिके नेता और व्यवस्थापककी हैसियतसे ही टण्डनजीने हिन्दीकी सेवा नहीं की, वे स्वयं ऊँचे साहित्यिक और साहित्यके पारखी थे। जिन्होंने टण्डनजीको साहित्यिक गोष्ठियों और कवि-सम्मेलनोंमें भाग लेते देखा है, वे जानते हैं कि वे कितने काव्यप्रेमी और रसिक थे। यदाकदा वे स्वयं भी कविता करते थे। कबीर और रहीमके वे विशेष प्रशंसकोंमें थे। उन्हींकी प्रेरणासे दिल्ली प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन रहीम खानखानाके मकबरे पर प्रतिवर्ष इस महान् कविकी बरसी मनाने लगा है और मकबरेकी इमारतमें सरकार द्वारा सुधारका काम भी उन्हींके सुझावसे होना आरम्भ हुआ है।

टण्डनजी सन् १९२२ ई०में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, कानपुर अधिवेशनके सभापति हुए थे और अनेक बार प्रान्तीय सम्मेलनोंका सभापतित्व कर चुके हैं। टण्डनजी सदा हिन्दीके पक्षमें रहे और महात्मा गान्धीकी 'हिन्दुस्तानी'के विरोधी। इसीलिए सन् १९४५ ई०में हिन्दी-हिन्दुस्तानीके प्रश्न पर मतभेदके कारण गान्धीजीने हिन्दी साहित्य सम्मेलनसे त्यागपत्र दे दिया। उन्होंने टण्डनजीके नाम पत्रमें लिखा—"जब मैं सम्मेलनकी भाषा और नागरी-लिपिको पूरा राष्ट्रीय स्थान नहीं देता हूँ, तब मुझे सम्मेलनसे हट जाना चाहिये, ऐसी दलील मुझे योग्य लगती है।" टण्डनजीने इस पत्रके उत्तरमें कहा कि गान्धीजी और सम्मेलनके दृष्टिकोणमें कोई मौलिक मतभेद नहीं, किन्तु यदि गान्धीजी इस बातसे सहमत न हों तो उनके निर्णयको सम्मेलनको दुःखके साथ स्वीकार करना पड़ेगा। बात सिद्धान्तकी थी। टण्डनजीका कहना था कि देवनागरी अक्षर ही हिन्दीके लिए सबसे अधिक उपयुक्त हैं और हिन्दीके लिए दो लिपियाँ निर्धारित करना भाषा और उसके व्यापक प्रचारके लिए घातक होगा। टण्डनजीका विचार युक्तिसंगत था। सन् १९४९ ई०में देशकी संविधान परिषद्ने भी हिन्दी और देवनागरी लिपिको ही मान्यता दी।

सन् १९२२ ई०में तेरहवें हिन्दी साहित्य सम्मेलनके सभापति-पदसे भाषण देते हुए टण्डनजीने जो उद्गार प्रकट किये और जिस प्रकार अपने विचारोंको सजाकर रखा, वह कोई साहित्यिक ही कर सकता है। इस भाषण में उन्होंने कहा—"यह समय भारतवर्षके लिए महान् परिवर्तन और बड़े महत्त्व का है। यहीं एक ऐसा अवसर है, जबकि वह अपने विचारों और कृत्योंसे संसार का सारा मानसिक प्रवाह बदल दे।...कृत्रिमता छोड़िये, भावुकता संग्रह कीजिये। सूर्यकी नैसर्गिक ज्योतिका सौन्दर्य पहाड़ों और जंगलोंमें स्वतः दिखलाई पड़ता है।...आभूषणोंकी आवश्यकता, कवियोंके चलनके अनुसार भी, परकीया नायिकाको अधिक होती है। स्वकीया सतीका शृंगार आभूषणोंपर न निर्भर ही है और न उससे बढ़ता ही है।...वाणीकी सार्थकता इसीमें है कि वह आकाशमें सीढ़ी बाँधकर मनुष्यको उस स्थानपर चढ़ा दे, जहाँसे वाणीका उद्गार हुआ है।...आप अपनी वाणीका ऊँचा आदर्श रखें। वह पवित्र कुलकी पुत्री है, उसका शृंगार नैसर्गिक मालती और मल्लिकासे ही कर उसका पूजन करें।...निस्सार नीचे गिरानेवाले रसों और उन्हींके समान संचारी भावों, विभावों और अनुभावोंको छोड़कर दिव्य नये रसोंका प्रादुर्भाव कीजिये। उनके उपयुक्त संचारी भावोंसे उन्हें संचरित कीजिये और तब उनके परिणामस्वरूप महत् अनुभावोंका दर्शनकर कृतार्थ होइये।" इस प्रकारके सुन्दर और साहित्यिक विचारों द्वारा टण्डनजी सम्मेलन तथा अन्य हिन्दीसेवी संस्थाओंमें सतत प्राण भरते

रहे। टण्डनजी इस शतीके प्रथम. दशकसे इस समस्त आन्दोलनके प्रवर्तकोंमेंसे हैं। रंगमंचके सूत्रधारकी भाँति उन्हें इस साहित्यिक मंचके स्थायित्वको बनाये रखनेके लिए बराबर सतर्क और सचेष्ट रहना पड़ा। टण्डनजी हिन्दीके ऐसे संरक्षक और प्रहरी थे, जिसने केवल मंचकी ही चिन्ता नहीं की, अपितु समय-समयपर स्वयं उसपर आकर साहित्य-भाण्डारको समृद्ध करनेका भी यत्न किया। इसका प्रमाण टण्डनजीकी रचनाएँ हैं, जो भाषणों, लेखों, पत्रों आदिके रूपमें बिखरी पडी हैं और सौभाग्यसे संकलित अथवा फुटकर हमें उपलब्ध है। उनकी संयत, किन्तु सजीव और ओजपूर्ण शैलीने हिन्दीकी साहित्यश्रीको समृद्ध किया है। वे गत ५० वर्षोंसे हिन्दी साहित्य सम्मेलन तथा अन्य हिन्दी संस्थाओंके अटल प्रहरी और साहित्यकोंके अमोघप्रेरणादायक मार्गदर्शक रहे। अपनी हिन्दी सेवाओंके लिए टण्डनजीको १९६१ ई० मे 'भारतरत्न'की उपाधि प्रदान की गयी। —शा० द०

पुलस्त्य–ये ब्रह्माके मानस पुत्र और दक्षके जामातृ थे। हविःश्रुवा इनकी पत्नी थी, जो कर्दम-प्रजापतिकी पुत्री थी। हविःश्रुवासे इनके दो पुत्र उत्पन्न हुए—अगस्त्य और विश्रवा। कुबेर और रावण, विश्रवाके ही पुत्र थे। भागवतके अनुसार इणविन्दु नामक राजाकी कन्या गोसे पुलस्त्यका विवाह हुआ था।

२. सप्तऋषियोंमेंसे एक। —मो० अ०

पूतना–एक राक्षसी। यह बकासुर तथा अघासुरकी बहन थी। कंसने कृष्णको मार डालनेकी नीयतसे पूतनाको गोकुल भेजा था। वह उसमे सफल न हो सकी। कृष्णने उसका स्तन पान करते हुए ही उसे मृत्युके मुखमे पहुँचा दिया। पूतनाकी यह कथा 'सूरसागर'में वर्णित है (दे० सू० सा० प० ६६७-६७४)। —श्री० व०

पूषा–पूषा एक वैदिक देव है। इन्हे सृष्टिके संरक्षणका कार्य करना पडता है। वैदिक-साहित्यमे ये गोष्ठोके संरक्षक कहे गये हैं। आदित्यके रूपमे ये विश्वके प्राणरक्षक एवं आत्माके शान्तिदाता हैं। आत्माको ब्रह्मलोकमे ले जानेमे सहायता भी करते है। ये सूर्यकी बहनके प्रेमी भी कहे जाते है। ये प्रायः सोम और चन्द्रमाके साथ रहते है। दिन और रात्रिके परिवर्तनमें इनका विशेष हाथ है। बादमें ये द्वादश आदित्यमे एक विशेष रूपसे प्रतिष्ठित होकर रेवती नक्षत्रके अधिदेव हुए। 'कामायनी'में इसी रूपमे सविताके साथ इनका नामोल्लेख हुआ है—"विश्वदेव, सविता या पूषा, सोम, मरुत, चंचल पवमान; वरुण आदि सब घूम रहे हैं किसके शासनमें अम्लान ?"(दे० 'कामायनी'—आशा सर्ग)। —यो० प्र० सिं०

पूर्ण–देखो राय देवीप्रसाद 'पूर्ण'।

पूर्णसिंह–पूर्णसिंहकी चर्चा एक श्रेष्ठ आत्मव्यंजक निबन्धकारके रूपमें लगभग सभी इतिहासकारोंने की है। सिख परिवारमें उनका जन्म १८८१ ई०में हुआ था तथा मृत्यु १९३१ ई०में। पेशेसे वे अध्यापक थे तथा बादको केवल अंगरेजीमें लिखने लगे थे।

पूर्णसिंहके निबन्धोंकी संख्या लगभग आधा दर्जन है। पर इतने ही निबन्धोंसे उन्होंने हिन्दीके निबन्ध-साहित्यपर अपनी छाप छोडी है। यद्यपि वे द्विवेदीकालके निबन्ध लेखक थे परन्तु उनके निबन्धोंमें द्विवेदीयुगकी नीरस निर्वैयक्तिकता एवं तमाम विषयोंपर लिखनेकी विविधता दृष्टिगोचर नहीं होती है। उनके निबन्धोंमें भावनाका वह आवेग एवं कल्पनाकी वैसी उड़ान मिलती है, जिसने आगे चलकर छायावादको विकसित किया। वस्तुतः उनके निबन्धोंमे हमें स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तिके स्पष्ट दर्शन होते हैं। उनके निबन्धोंमें द्विवेदीयुगकी प्रमुख प्रवृत्ति उपदेशात्मकता तथा प्यूरिटनिज्मकी गन्ध तो अवश्य है परन्तु वह एक ऐसे महत् मानवीय आदर्शसे परिचालित है तथा आध्यात्मिकताकी एक ऐसी व्यापक किन्तु सूक्ष्म और गहन वृत्तिसे प्रेरित है कि सहज ही उनके निबन्ध रोमाण्टिक धरातलका स्पर्श करने लगते है।

यूरोपकी मशीनी सभ्यताकी जो प्रतिक्रिया हमें टाल्स्टॉय, रस्किन एव बादको गान्धीमें प्राप्त होती है, वही पूर्णसिंहके निबन्धोकी वास्तविक भूमिका है। यह देखकर आश्चर्य होता है कि गान्धीसे भी कुछ पहले ही पूर्णसिंहने चरखा या हाथमे बनी वस्तुओंको मशीनी उत्पादनकी अपेक्षा तरजीह दी थी। पूंजीवादके प्रारम्भिक युगमें ही श्रम और श्रमिकको जो महत्त्व उन्होंने प्रदान किया, उसे बादको राष्ट्रीय आन्दोलनने एक प्रमुख मूल्यके रूपमें स्वीकार किया। वस्तुतः भौतिक जीवनकी समृद्धिके स्थानपर आध्यात्मिक जीवनको वे सम्पन्न और सशक्त बनाना चाहते थे। इसी कारण उन्होंने "विविध सम्प्रदायोंके बाहरी विधि-विधानको हटाकर उन सबके भीतर एक आत्माका स्पन्दन, एक सार्वभौम मानवधर्मका स्वरूप देखा और अपने पाठकोंको दिखानेकी चेष्टा की।" इस चेष्टामे उन्होंने तार्किकता या बौद्धिकताका सहारा न लेकर मनुष्यके भावनाजगत्का स्पर्श करना चाहा है। इसी कारण उनके निबन्धोंमे विचारका सूत्र अत्यन्त क्षीण है और कहीं-कहीं तो वह टूट जाता है, पर अपने भावनात्मक प्रवाहमे वे निश्चित रूपसे पाठकको बहा ले जाते है। उनके 'आचरणकी सभ्यता', 'मजदूरी और प्रेम', 'सच्ची वीरता' जैसे निबन्ध वस्तुतः 'निर्बन्ध निबन्ध' के अन्तर्गत रखे जाने चाहिए।

रामचन्द्र शुक्लने पूर्णसिंहकी शैलीके विषयमें लिखा है, "उनकी लाक्षणिकता हिन्दी गद्य-साहित्यमे नयी चीज थी। ''भाषा और भावकी एक नयी विभूति उन्होंने सामने रखी" ('हिन्दी साहित्यका इतिहास', पृ० ४८०-८१)। उनकी शैलीमे दो गुण एक साथ मिले-जुले रहते हैं—एक तो वक्तृत्व कलाका ओज और प्रवाह दूसरे चित्रात्मकता या मूर्तिमत्ता। इन दोनोंके सम्मिलनके कारण इन निबन्धोकी शैली हिन्दीमे अनूठी बन पडी है और वह अत्यधिक प्रभावकर हो सकी है। एक ओर उनके निबन्ध स्वयमें प्रभावाभिव्यंजक एवं गहरे रूपमें व्यक्तिनिष्ठ हैं तथा दूसरी ओर पाठकोंके लिए नितान्त साधारणीकृत भी। —दे० शं० अ०

पृथु–शाब्दिक अर्थकी दृष्टिसे पृथु पृथ्वीको समतल बनाने वालेको कहते हैं। किसी-किसी पुराणमें इन्हें विष्णुके अवतारके रूपमे कल्पित कर लिया गया है। ये सूर्यवंशी चतुर्थ राजा वेणुके पुत्र कहे जाते हैं। अत्रिवंशी अग्नि

नामक प्रजापतिने धर्मराजकी कन्या सुनिथासे वेणु नामक पुत्र उत्पन्न किया था। वेणु इतने कुमार्गगामी थे कि साक्षात् पृथ्वी उनसे त्रस्त हो गयी थी। वेणुने अपनी दुश्चरित्रतासे पृथ्वीका दोहन कर डाला था। मरीचि आदि देवताओंने इन्हें सन्मार्गपर चलनेकी चेतावनी दी किन्तु ये नहीं माने। अतः ऋषियोंने शाप देकर वेणुको मार डाला और उनकी बाईं एवं दाईं भुजाओंके मन्थनसे निषाद एवं पृथुकी उत्पत्ति की। साहित्यमें पृथुका धर्म-प्रिय, दानी एवं यशस्वी राजाके रूपमें उल्लेख हुआ है। (दि० सूर० पद० ४०५)। —यो० प्र० सिं०

पृथ्वीराज (राठोड़)–कवि, भक्त तथा शूरवीर पृथ्वीराज राठोड़का जन्म बीकानेरके राजवंशमें १५४९ ई०मे हुआ। ये बीकानेरनरेश रायसिंहके छोटे भाई थे। पृथ्वीराज मुगल सम्राट् अकबरके बड़े कृपापात्र थे और उनकी ओरसे उन्होंने अनेक युद्धोंमें भाग लिया था। 'मुहणोत नेणसी'की ख्यातमें प्राप्त एक उल्लेखके अनुसार अकबरने इनको गागरोन गढका जागीर प्रदान किया था। पृथ्वीराज स्वदेशाभिमानी वीर क्षत्रिय थे। कहा जाता है कि निराश होकर महाराणा प्रताप अकबरसे सन्धि करने वाले थे किन्तु पृथ्वीराजके जोशीले पत्रको पढ़कर प्रतापने उत्साहित हो अपना विचार बदल दिया। उनके दो विवाह हुए थे। उनकी मृत्यु और भक्ति-भावनाके महत्त्वके विषयमें अनेक किंवदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं। १६०० ई०में मथुरामे मृत्यु हुई। उनकी गणना उच्चकोटिके भक्तोंमें की जाती थी, इसका सबसे बड़ा प्रमाण नाभादासके 'भक्तमाल'में प्राप्त छप्पय है, जिसमें उनकी काव्य-प्रतिभा तथा भाषा-निपुणताकी भी प्रशंसा की गयी है। कर्नल टाडने पृथ्वीराजकी तुलना मध्ययुगीन पश्चिमी यूरोपके वीरयशगायकों (त्रोवादोरे)से की है।

डिंगल भाषाके सर्वश्रेष्ठ कवियोंमें पृथ्वीराजकी गणनाकी जाती है। 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' भक्तिरसपूर्ण डिंगलमें लिखित अत्यन्त सुन्दर कृति है। इसके अतिरिक्त रामकी स्तुतिसे सम्बद्ध लगभग पचास पद्योंमें समाप्त 'दसरथ-रावउत', कृष्णकी स्तुतिसे सम्बद्ध लगभग १६५ पद्योंमें समाप्त 'वसदेवरावउत', 'गंगा लहरी' तथा 'दसम भागवत रा दूहा' अन्य कृतियाँ भी डिंगल भाषामें रचित हैं। ये सभी रचनाएँ भक्तिविषयक हैं। पृथ्वीराजके नामसे अनेक फुटकर पद्य भी राजस्थानमें प्रचलित हैं। ब्रजभाषा (पिंगल)में भी पृथ्वीराजने कुछ रचनाएँ की होंगी, किन्तु प्रामाणिक रूपसे इस विषयमें कुछ भी नहीं कहा जा सकता। पृथ्वीराजको काव्यके अतिरिक्त अन्य अनेक शास्त्रों की जानकारी थी, राजनीति और लोकनीतिसे तो वे भलीभाँति परिचित थे ही, यह उनकी रचनाओंके आधारपर निस्सन्देह रूपसे कहा जा सकता है।

[सहायक ग्रन्थ—राजस्थानी भाषा और साहित्य : मेनारिया; वेलि क्रिसन रुकमणी री : रामसिंह, सूर्यकरण पारीक आदि।] —रा० तो०

पृथ्वीराज रासो–कुछ समय पूर्वतक 'पृथ्वीराज रासो' नाम लेनेसे उसका वह रूप समझा जाता था, जो पहले एशियाटिक सोसाइटी ऑव बंगाल द्वारा प्रकाशित हो रहा था और तदन्तर उसके द्वारा बीचमें ही छोड़ दिये जानेपर काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हुआ। इसकी ऐतिहासिकताके प्रश्नको लेकर प्रायः पचास वर्षोंतक विवाद चलते रहे हैं किन्तु पिछले बीस-पचीस वर्षोंमें रचनाके कई और भी रूप-रूपान्तर प्राप्त हुए हैं। सभासे प्रकाशित पाठवाली प्रतियोंमें १०७०९ रूपक हैं। कुछ प्रतियोंमें लगभग ३४०० रूपक हैं, कुछमें ११००-१२०० हैं, एकमें ५५२ रूपक हैं और एकमें केवल ४२२ रूपक हैं। इसलिए अब रचनाकी ऐतिहासिकताका प्रश्न पीछे चला गया है। इस समय सबसे महत्त्वका प्रश्न सामने तो यह है कि इन नाना रूपोंमें व्यक्त कृति मूलतः किस आकार-प्रकारकी रही होगी। इस प्रश्नको लेकर भी कई मत व्यक्त किये गये हैं। कोई कहता है कि जो सबसे बड़ा पाठ है, वही मूल पाठ है और उत्तरोत्तर जो छोटे पाठ हैं, वे उसके संक्षेप हैं और कोई कहता है कि ठीक इसका उलटा है और जो सबसे छोटा प्राप्त है, वही मूल या मूल के सबसे अधिक निकट है और जो पाठ जितना ही बड़ा है, वह मूलसे उतना ही दूर है। एक बीचकी स्थितिकी भी कल्पना की जा सकती है (कहा जा सकता है कि वास्तविकता दोनों अतिवादोंके बीचमें पड़नी चाहिए) उसीसे जहाँ एक ओर रचनाकी आकार-वृद्धि की गयी, दूसरी ओर संक्षेप किया गया। सच पूछिये तो यह प्रश्न इस प्रकार हल नहीं किया जा सकता है। इसका एकमात्र हल पाठालोचनके सिद्धान्तोंकी सहायतासे सम्भव है। वस्तुस्थिति यह है कि सबसे छोटा पाठ ही मूलके सबसे अधिक निकट है किन्तु उसके प्रारम्भमें कुछ छन्द उससे बड़े पाठके ऐसे कुछ प्रसंगोंसे, जो उस सबसे छोटे पाठमें पहले नहीं थे, लाकर रख दिये गये हैं और इसी प्रकार रचनाके बीच-बीचमें भी कुछ छन्द उससे बड़े पाठसे लेकर सम्मिलित कर लिये गये हैं। इसलिए मूल पाठ इस सबसे छोटे पाठसे भी छोटा होना चाहिए। इस मतके आधार अनेक हैं, केवल एकका उल्लेख यहाँ किया जा रहा है।

सबसे छोटे पाठमें भी पृथ्वीराजके पूर्वपुरुषोंके संक्षिप्त उल्लेख हैं। ये उल्लेख पृथ्वीराजके पूर्वकी दो पीढ़ीतकके ही ठीक हैं औरकी पीढ़ियोंके प्रायः इतिहास-विरुद्ध हैं। जब कि जयानकके 'पृथ्वीराज विजय'में पृथ्वीराजके पूर्व पुरुषोंका जो वृत्त मिलता है, वह प्रायः इतिहास-सम्मत है किन्तु विचित्रता यह है कि 'पृथ्वीराज रासो'के लेखकको 'पृथ्वीराज विजय'से पूरा परिचय था और यह 'पृथ्वीराज रासो' से ही प्रमाणित है। 'कयमास-वध'के अनन्तर 'रासो'में पृथ्वीराज जब अपनी सभा बुलाता है, उसके पूर्व वह पण्डित (जयानक)से शाह (शहाबुद्दीन) पर उसे जो विजय प्राप्त हुई थी, उसका वर्णन करनेको कहता है—"मज्झ पहर पुच्छई पहु पण्डिअ। कहु कवि विजय साह जिहि दण्डिय। सकल सूर बोलिव सभ मंडिय। आसिष असि दीय कवि चंडिय।।"

इस समय 'पृथ्वीराज विजय'की एक अति खण्डित प्रति मात्र प्राप्त है, जिसमे पृथ्वीराजके शासकीय जीवनके कुछ प्रारम्भिक वर्षों तकके ही विवरण आते हैं। यह प्रति कश्मीरमें बूलरको प्राप्त हुई थी। विद्वानोंका अनुमान था

कि जिस विजयका इसमें वर्णन रहा होगा, वह गोरीपर प्राप्त हुई पृथ्वीराजकी विजय रही होगी। 'पृथ्वीराज रासो'के इस उल्लेखने उस समस्याका हल कर दिया। 'रासो'के लेखकको यह भलीभाँति ज्ञात था कि 'पृथ्वीराज विजय'का विषय क्या था। ऐसी दशामें जहाँतक बातें 'पृथ्वीराज विजय'में आती हैं, उनसे 'पृथ्वीराज रासो'में आये हुए उल्लेखोंका कोई स्पष्ट विरोध न होना चाहिए फिर भी हम देखते है कि 'रासो'के सबसे छोटे पाठमें भी 'विजय'मे आयी हुई पृथ्वीराजके पूर्वपुरुषोंके वृत्तसे बडा भारी अन्तर है। इसलिए यह मानना पड़ेगा कि यह और इस प्रकार और भी कुछ अंश 'रासो'के सबसे छोटे पाठमे भी प्रक्षेपोंके रूपमे बादमे ऐसे व्यक्तियो द्वारा बढाये गये हैं, जो 'पृथ्वीराज विजय'से सर्वथा अपरिचित थे। प्रस्तुत लेखकका ध्यान है कि 'रासो' अपने मूल रूपमें उन्ही घटनाओं तक सीमित था, जो गोरी पर प्राप्त हुई पृथ्वीराजकी उस इतिहास-प्रसिद्ध विजयके बाद आती थी और 'रासो' और 'विजय'के वर्ण्य-विषय एक दूसरे के पूरक थे। बादमे लोगोंको 'रासो'मे कुछ अधूरापन लगा और उन्होने उसे प्रक्षेपोकी सहायतासे पूरा कर डालनेका प्रयास किया।

'रासो'के इस मूल रूपमे प्रस्तुत लेखकका अनुमान है कि मंगलाचरण और कथाकी एक संक्षिप्त भूमिकाके अनन्तर जयचन्दके राजसूय और संयोगिताके पृथ्वीराजसम्बन्धी प्रेमानुष्ठानविषयक विवरणोंसे रचना प्रारम्भ हुई होगी। तदनन्तर उसमे मन्त्री कयमासके वध, पृथ्वीराजके कन्नौज-गमनमें उसके प्राकट्य, संयोगिता-परिणय, पृथ्वीराज-जयचन्द-युद्ध और दिल्ली आकर पृथ्वीराज-संयोगिताके केलि-विलासकी कथाएँ उसके पूर्वार्द्धकी सृष्टि करती रही होंगी और उत्तरार्द्धमे उस केलि-विलासमे चन्दके द्वारा किये गये पृथ्वीराजके उद्‌बोधन, शहाबुद्दीन-पृथ्वीराजके (द्वितीय) युद्ध तथा शहाबुद्दीन और पृथ्वीराजके अन्तकी कथाएँ रही होंगी। इस मूल रूपका आकार लगभग ३६० रूपकोंका रहा होगा।

इधर राजस्थानके कुछ विद्वान् 'रासो'को १६ वीं, १७ वीं शतीकी रचना बताने लगे हैं। यह बात उसके सबसे बडे रूपके सम्बन्धमे ही किसी हदतक ठीक मानी जा सकती है और वह भी इस अर्थमें कि यह सबसे बडा रूप १६ वीं-१७ वी शतीमे इस आकार-प्रकारमें आया होगा किन्तु रचना अपने मूल रूपमे बहुत प्राचीन रही होगी, इसमें अब कोई सन्देह नही रहा है।

लगभग २५ वर्ष पूर्व प्रसिद्ध जैन विद्वान् मुनि जिन विजयजीको कुछ ऐसे जैन प्रबन्ध मिले है, जिनमें पृथ्वीराज और जयचन्दकी रचनाएँ आती है और इनमे चार छप्पय ऐसे मिले हैं, जिसमेसे तीन 'पृथ्वीराज रासो'में मिलते हैं। अन्तर केवल भाषाके रूपका है। जैन प्रबन्धोंमें इन छप्पयों-की जो भाषा मिलती है, वह अपेक्षाकृत पुरानी ज्ञात होती है। इन जैन प्रबन्धोंकी जो प्रतियाँ मिली हैं, उनमेसे एक सं० १५२८ की है, इसलिए यह तो मानना ही पड़ेगा कि उक्त छप्पय सं० १५२८ के इतने काफी पहले रचे गये होंगे कि विद्वानोंमें उनको मान्यता प्राप्त हो गयी हो। यदि सं० १५२८ की प्रतिके सौ-सवा सौ वर्ष पहले भी इन छन्दोंकी रचना मानी जाय, जो कि किसी भी दृष्टिसे अनुचित नहीं होगा तो इन छन्दोंकी रचना १४०० वि० के आसपास ठहरती है।

कुछ विद्वानोंने इन छन्दोके विषयमें यह समाधान सोच निकाला है कि पृथ्वीराजसम्बन्धी कुछ स्फुट छन्द प्रचलित थे, उन्हींमेसे कुछ इन जैन प्रबन्धोंमें उद्‌धृत किये गये हैं। कोई 'रासो' जैसी प्रबन्धात्मक कृतिका होना इन छन्दोंसे प्रमाणित नहीं होता है किन्तु यह कल्पना सर्वथा निराधार है। ये सभी छन्द ऐसे हैं, जो विशिष्ट प्रसंगोंके हैं और किसी प्रबन्धके बाहर इनकी कल्पना नही की जा सकती है।

वीर-रसके काव्यकी दृष्टिसे तो 'रासो' अपने लघुतम रूप-में भी अप्रतिम है। हिन्दीका कोई भी अन्य काव्य वास्तविक वीरताका, जिसमे अपनी आनके लिए मर मिटनेकी साध ही सर्वोपरि होती है, इतना ऊँचा आदर्श नहीं प्रस्तुत करता है, जितना यह। —मा० प्र० गु०

पौंड्रक–पौण्ड्रकके साथ तीन उल्लेख मिलते है—

१. भागवतके अनुसार पौण्ड्रक कुम्भकर्णका पौत्र था। इसका पिता निभुंक था।

२. पौण्ड्रकका उल्लेख मात्स्यकके रूपमें प्राप्त होता है। महाभारतमे इसने कौरवोंका पक्ष लिया था।

३. पौण्ड्रक वसुदेव नामसे करूष देशके एक राजाका भी उल्लेख मिलता है। चेदि वंशमे ये पुरुषोत्तम नामसे प्रसिद्ध थे और शरीर पर श्रीकृष्णके चिह्न धारण करते थे। श्रीकृष्ण-ने काशिराजके साथ इनका वध किया था (दे० पौण्ड्रक वध, सू० सा० प० ४८२४)। —रा० कु०

प्रकाशचंद्र गुप्त–जन्म १६ मार्च १९०८ ई०। इलाहाबाद विश्वविद्यालयमे उन्होने अंग्रेजी साहित्यमे एम० ए० किया और वहींपर अंग्रेजी-साहित्यके अध्यापक हैं। उनकी निम्नांकित आलोचनात्मक पुस्तकें हिन्दीमें प्रकाशित हो चुकी हैं—'नया हिन्दी-साहित्य'(१९३९), 'आधुनिक हिन्दी-साहित्य'—एक दृष्टि (१९५२), 'हिन्दी-साहित्यकी जनवादी परम्परा' (१९५३), 'साहित्यधारा' (१९५६)। इनके अति-रिक्त पत्र-पत्रिकाओमे इनके समीक्षात्मक लेख, टिप्पणियाँ एवं पुस्तक-समीक्षाएँ प्रकाशित होती रहती है। आलोचनाके अतिरिक्त इन्होंने कृति-साहित्य भी प्रकाशित कराया है। 'रेखा चित्र' (१९४०), 'पुरानी स्मृतियाँ' (१९४७) नामक रेखाचित्र संग्रह तथा 'विशाख' (१९५७) शीर्षक उपन्यास अब तक प्रकाशित हो चुके हैं।

आप हिन्दीमें मार्क्सवादी समीक्षा-प्रणालीके प्रारम्भिक प्रयोक्ताओं एवं प्रगतिवादके उन्नायकोंमेसे एक हैं। सन् १९३६ ई०के आसपाससे ही प्रगतिशील साहित्यकी चर्चा प्रारम्भ हुई और वही उनके लेखनका प्रारम्भिक समय है। मार्क्स-दर्शनके अनुसार उन्होंने बताया कि प्रकृतिके साथ होने वाले संघर्षमें जो अनुभूतियाँ मनुष्य अर्जित करता है, साहित्यमें उन्हें ही वह शब्द-बद्ध करता है। प्रारम्भमे उन्होंने आधुनिक साहित्यको ही अपनी आलो-चनाका लक्ष्य बनाया था, पर इधर सन् १९५० ई०के बादसे उन्होंने मध्यकालीन साहित्यपर भी दृष्टिपात किया है। पर कबीर, सूर और तुलसीपर लिखे 'आलोचना' त्रैमासिकमें

प्रकाशित उनके निबन्ध साहित्यकी सामाजिक व्याख्याकी कसौटीपर बहुत गहरे नहीं लगते। इनमें समाजकी अन्तर्विरोधिनी शक्तियों एवं उनकी साहित्यिक प्रतिच्छायाओंके बौद्धिक विश्लेषणकी अपेक्षा कुछ प्रभावपरक मन्तव्य प्रकट करनेकी प्रवृत्ति है अथवा अत्यन्त स्थूल रूपसे 'खतियाने' की। आधुनिक साहित्यमें सामाजिकता एवं यथार्थका आग्रह बढ़ानेमें उन्होंने सहायता अवश्य दी है पर बहुधा उनके द्वारा किये गये मूल्यांकन अधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध नहीं हो सके। उन्हें यह श्रेय अवश्य है कि प्रगतिवादी समीक्षा-प्रणालीके प्रारम्भिक रूपको उन्होंने संवारा है तथा हिन्दी आलोचनाको शास्त्रीयताके वाग्जाल तथा पाण्डित्यके थोथे प्रदर्शनसे मुक्त करके सरल, स्पष्ट एवं गतिशील बनाया है। —दे० शं० अ०

प्रताप–यह कानपुरका एक साप्ताहिक पत्र था, जिसका प्रकाशन नवम्बर, १९१३ ई०को गणेशशंकर विद्यार्थीके सम्पादकत्वमें हुआ। पहले १६ पृष्ठोंका ही निकलता था। बादमें बढ़ते-बढ़ते ४० पृष्ठोंतक निकलने लगा। 'प्रताप' नाम राणा प्रताप और प्रतापनारायण मिश्रकी स्मृतिमें रखा गया।

यह पत्र व्यक्तिगत चरित्रको उठाने तथा सामाजिक एवं राजनीतिक जागृति लानेका पक्षधर था। १९२० ई०से यह दैनिक हो गया। आठ महीनेतक यह दैनिक ही रहा, फिर साप्ताहिक हो गया।

सन् १९२३-२४ ई० तक इसके सम्पादक माखनलाल चतुर्वेदी रहे। इसके बाद फिर गणेशशंकर विद्यार्थी आ गये और सात वर्षतक कार्य करते रहे। सन् १९३१ ई०में उनकी मृत्यु हो जानेके बाद बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' इसके सम्पादक हुए। उस समय यह दैनिक पत्र था। इस समय भी इसका प्रकाशन दैनिक रूपमें हो रहा है। —ह० दे० बा०

प्रतापनारायण मिश्र–जन्म उन्नाव जिलेके बैजेगांवमें सन् १८५६ ई० में हुआ था। इनके जन्मके कुछ दिनों बाद ही इनके ज्योतिषी पिता पण्डित संकठाप्रसाद कानपुर आकर रहने लगे थे। यहींपर उनकी शिक्षा-दीक्षा प्रारम्भ हुई। पिता उन्हें ज्योतिष पढ़ाकर अपने ही पैतृक व्यवसायमें लगाना चाहते थे, पर इनका मनमौजी स्वभाव उसमें नहीं रमा। अंग्रेजी स्कूलमें कुछ दिनों पढ़ा, पर उनका मन वस्तुतः जमकर अनुशासनपूर्ण ढंगसे पढ़नेमें न लगता था। यों संस्कृत, उर्दू, फारसी, अंग्रेजी और बंगलामें उनकी अच्छी गति थी। बालमुकुन्द गुप्तने सन् १९०७ ई० में प्रतापनारायण मिश्रका चरित्र 'भारतमित्र'में प्रकाशित करते हुए उसमें लिखा था कि उपर्युक्त भाषाएँ वे धाराप्रवाह बोल लेते थे। कानपुर उन दिनों लावनीबाजोंका केन्द्र था और प्रतापनारायण मिश्र लावनीके अत्यन्त शौकीन थे। लावनीबाजोंके सम्पर्कमें आकर इन्होंने स्वयं लावनियाँ और ख्याल लिखना शुरू किया। यहींसे उनके कवि और लेखक जीवनका प्रारम्भ होता है—फिर तो आजीवन अनेक रूपोंमें उन्होंने हिन्दीकी सेवा की। पर वे कोरे साहित्यकार नहीं थे। समसामयिक जीवनमें उनकी गहरी दिलचस्पी थी। कानपुरकी अनेक सामाजिक, राजनीतिक संस्थाओंसे उनका सम्पर्क था। इलाहाबाद कांग्रेस-अधिवेशनमें वे कानपुरसे प्रतिनिधि बनकर सम्मिलित हुए थे। कानपुरमें नाटक-सभा नामक एक संटघनकी नींव उन्होंने डाली थी और उसके माध्यमसे पारसी थियेटरके विरोधमें उन्होंने हिन्दीका अपना रंगमंच खड़ा करना चाहा था। वे स्वयं कुशल अभिनय करते थे। स्त्री पात्रका अभिनय करनेके लिए उन्होंने अपने पितासे मूछें मुड़ा लेनेकी आज्ञा भी प्राप्त कर ली थी। भारतेन्दुके व्यक्तित्वसे वे अत्यधिक प्रभावित थे तथा उन्हें अपना गुरु तथा आदर्श मानते थे। उनका स्वभाव अत्यन्त हँसोड़ था। वे वाग्वैदग्ध्यके धनी थे। अपनी हाजिरजवाबी एवं मसखरे स्वभावके लिए वे अपने समयमें कानपुरमें अत्यन्त प्रसिद्ध थे। मिश्रजीकी मृत्यु कानपुरमें ही सन् १८९५ ई०में हुई।

मिश्रजी द्वारा लिखित पुस्तकोंकी संख्या ५० के लगभग है। अधिकांशतः ये सभी उनके पत्र 'ब्राह्मण'में प्रकाशित हुई हैं। उनमेंसे कतिपय पुस्तकाकार भी बादको निकलीं। उनकी मौलिक पुस्तकाकार प्रकाशित रचनाएँ हैं—'प्रेम पुष्पावली', 'मनकी लहर', 'दंगल खण्ड', 'लोकोक्तिशतक', 'तृप्यन्ताम्','ब्राडला स्वागत','शैवसर्वस्व','शृंगार विलास', 'मानसविनोद', 'प्रताप संग्रह', 'रसखानशतक'—ये उनके कविता संग्रहोंके नाम हैं। 'कलि कौतुक', 'भारत दुर्दशा', 'कलि प्रभाव', 'हठी हमीर', 'गो संकट'—उनके नाटक हैं एवं 'जुआरी-खुआरी' प्रहसन तथा 'संगीत शाकुन्तल' लावनियोंमें लिखा गया उनका पद्य-नाटक है। महावीर प्रसाद द्विवेदीने इसकी प्रशंसा की थी। उनके निबन्धोंका संग्रह जीवनकालमें नहीं आया, बादको नारायण प्रसाद अरोड़ाने 'नारायण निबन्धावली'में उनके कतिपय निबन्ध संकलित किये। अब नागरी प्रचारिणी सभा, काशीकी ओरसे उनके समस्त लेखनको 'प्रतापनारायण मिश्र ग्रन्थावली'के नामसे संकलित करके प्रकाशित किया जा रहा है। प्रतापनारायणजीने अपनी समकालीन परम्पराके अन्तर्गत ही बंगलासे कुछ अनुवाद भी किये। बंकिमचन्द्रके 'राजसिंह', 'इन्दिरा', 'राधारानी', 'युगलांगुरीय' उपन्यासोंका अनुवाद उन्होंने किया था। 'चरिताष्टक', 'पंचामृत' एवं 'नीतिरत्नमाला' भी बंगलासे अनूदित उनकी पुस्तकें हैं। इनके अतिरिक्त पाठ्यपुस्तकोंके रूपमें भी उनकी कतिपय रचनाएँ मौलिक या अनूदित रूपमें प्राप्त होती हैं।

कविताके क्षेत्रमें मुख्यतः वे पुरानी धाराके अनुवर्ती थे। ब्रजभाषामें समस्यापूर्तियाँ वे खूब किया करते थे। इन सवैयों या घनाक्षरियोंका मूलस्वर भक्ति और शृंगारका होता था पर मुख्य ध्यान देने योग्य बात है कि इन्होंने समसामयिक समस्याओंको भी अपनी काव्य-वस्तुके अन्तर्गत समेटनेका प्रयास प्रारम्भ कर दिया था। "जिन धन धरती हरी सो करिहैं कौन भलाई, बन्दर काके मीत कलन्दर केहिके भाई" में अंग्रेजी राज्यके तथाकथित प्रजाहितैषी रूपपर जितना प्रखरचेतनासम्पन्न व्यंग्य है, वह भारतेन्दुमें भी कठिनतासे मिलता है। 'हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्थान' का नारा भी उन्होंने ही दिया था। "सब धन लिहे जात अंगरेज, हम केवल लेक्चरके तेज"में भारतवर्षके उदारपन्थी

समझौतावादियोंपर आक्षेप है तथा उनकी पुकार है, "पढ़ि कमाय कीन्हों कहा, हरे न देश कलेस, जैसे कन्ता घर रहे तैसे रहे विदेस।" इस प्रकार 'ब्राडला स्वागत'के बहाने उन्होंने भारतवर्षको दुर्गतिका पद्यबद्ध चित्रण किया है। वास्तवमें उनका काव्य वह सुदृढ़ भूमि है, जिसपर आगेका राष्ट्रीय एवं राजनीतिक काव्य खड़ा होता है।

मिश्रजीकी उग्रता कविताओंसे भी अधिक उनके निबन्धकार एवं सम्पादक व्यक्तित्वके माध्यमसे व्यक्त हुई है। इस युगके लेखकोंके इन दो व्यक्तित्वोंको एक दूसरेका पूरक समझना चाहिए। 'ब्राह्मण' पत्रका प्रकाशन १५ मार्च, १८८३ ई०से उन्होंने प्रारम्भ किया था। सन् १८९४ ई० तक यह प्रकाशित हुआ। बीचमे कुछ दिनोंके लिए मिश्रजी कालाकांकरसे प्रकाशित होनेवाले 'हिन्दुस्तान' में सम्पादक होकर चले गये थे, तब 'ब्राह्मण' भी वहींसे प्रकाशित होने लगा था। अपने अन्तिम वर्षोंमे वह श्री रामदीन सिंहके खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुरसे निकलता रहा। 'ब्राह्मण' के प्रथम अंकमें ही उसके स्वरूपकी ओर इंगित करते हुए उन्होंने कहा था—"...कभी राज्य-सम्बन्धी, कभी व्यापार-सम्बन्धी विषय भी सुनायेंगे, कभी गद्य-पद्यमय नाटकसे भी रिझायेंगे।" तथा एक अन्य अकमे अपने उद्देश्यको बताते हुए उन्होंने लिखा, "अपने देश भाइयोंका दुःख-सुख ज्योंका त्यों प्रकाश करना हमारा मुख्य कर्तव्य है।" वस्तुतः 'ब्राह्मण' और 'हिन्दी प्रदीप' ने उस युगकी पत्रकारिताको बहुमुखी ही नहीं बनाया, उसे पैनापन भी प्रदान किया। इन दोनों ही पत्रोंने अपने समयकी हर समस्याका स्पर्श किया है और उसपर अपनी स्पष्ट राय दी है—बिना किसी लाग लपेटके। दोनों ही पत्र (क्रमशः प्रतापनारायण मिश्र एवं बालकृष्ण भट्ट द्वारा सम्पादित) उग्र राजनीतिक विचारधारावाले पत्र हैं। राजनीतिक चेतनाकी दृष्टिसे प्रतापनारायणजी भारतेन्दुसे भी आगे थे। ढुलमुल नीतिपर उनका विश्वास नहीं था और साहसपूर्वक वे विदेशी सरकारपर आक्रमण करते थे। गम्भीर विषयोंके अतिरिक्त हास्य-व्यग्यका अनोखा पुट भी 'ब्राह्मण'में हुआ करता था। 'मुच्छ', 'परीक्षा', 'ट', 'द' आदि ऐसे ही निबन्ध हैं।

'ब्राह्मण' की प्रतियोंमे प्राप्त उनके शताधिक निबन्ध लेखकके व्यक्तित्वकी आत्मीयता एवं फक्कड़पनसे ओतप्रोत हैं। जब गम्भीर विषयोंपर लिखते थे तो भाषा अत्यन्त सधी और निश्चित, पर जहाँ मौजमे आये कि फिर मुहावरों, कहावतों, बैसवाड़ी प्रयोगोंके माध्यमसे उनका व्यक्तित्व फूट पड़ता था। 'दाँत', 'बुढ़ापा', 'भौंह', 'बात' आदि निबन्धोंमें हमे जिस आत्मीयताके दर्शन होते हैं, वह निबन्धकलाका प्राण है। हिन्दी-निबन्धोंके क्षेत्रमें आज भी उनके जैसे कलात्मक निबन्धलेखकोंकी संख्या विरल ही है। इन निबन्धोंकी शैलीमें एक अद्भुत प्रवाह और आकर्षण है। वे सच्चे अर्थोंमे हिन्दी-गद्यके निर्माता एवं शैलीकारके रूपमें सदैव याद किये जायेंगे। उनके निबन्धों जैसी धार एवं पैनापन हमें उस युगमें केवल बालकृष्ण भट्टमें ही प्राप्त होता है। पर भट्टजीमें जहाँ पाण्डित्यका गम्भीर स्वर मुख्य था, वहीं प्रतापनारायणमें सहजताका भोलापन एवं मस्तीका विलास था।

उनके नाटक यद्यपि कलाकी दृष्टिसे बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, परन्तु उस युगमें नाटक और रंगमंचके लिए जो असफल सा प्रयास उन्होंने किया, वह इतिहासकी वस्तु है।

केवल ३९ वर्ष जीवित रहने वाला यह व्यक्ति प्रतिभा एवं परिश्रमसे आधुनिक हिन्दीके निर्माताओंकी बृहत्त्रयी (भारतेन्दु, बालकृष्ण भट्ट एवं प्रताप नारायण मिश्र)मेंसे एक है। इस सम्बन्धमें यह भी ध्यानमे रखना चाहिए कि प्रतापनारायणजीको न तो भारतेन्दु जैसा साधन और वातावरण मिला था और न भट्टजी जैसी लम्बी आयु, परन्तु उनका महत्त्व इन दोनों ही व्यक्तियोंसे किसी प्रकार कम नहीं है। इस सम्बन्धमें बालमुकुन्द गुप्तका यह कथन सत्य ही लगता है, "पण्डित प्रतापनारायण मिश्रमें बहुत बातें बाबू हरिश्चन्द्रकी सी थीं। कितनी ही बातोंमें यह उनके बराबर और कितनी हीमें कम थे, पर एक आधमें बढ़ कर भी थे। जिस गुणमें वह कितनी ही बार हरिश्चन्द्रके बराबर हो जाते थे, वह उनकी काव्यत्व-शक्ति और सुन्दर भाषा लिखनेकी शैली थी। हिन्दी गद्य और पद्यके लिखनेमें हरिश्चन्द्र जैसे तेज, तीखे और बेधड़क थे, प्रतापनारायण भी वैसे ही थे" (बालमुकुन्द गुप्त : 'निबन्धावली', पृ० २)।

[सहायक ग्रन्थ— हिन्दी साहित्यका विकास और कानपुर : नरेशचन्द्र चतुर्वेदी; प्रतापनारायण ग्रन्थावली : विजयशंकर मल्ल; आलोचना और आलोचना : डॉ० देवीशंकर अवस्थी।] —दे० शं० अ०

प्रतापनारायण श्रीवास्तव—जन्म १९०४ ई० में कानपुर में हुआ। आपने अपनी शिक्षाके क्रममें बी० ए० तथा एल-एल० बी० की उपाधियाँ प्राप्त कीं। साहित्यमे आप उपन्यासकारके रूपमे प्रसिद्ध है। आपकी औपन्यासिक कृतियाँ निम्नलिखित हैं—

'निकुंज' (१९२२ ई०), 'विदा' (१९२९ ई०), 'विजय' (१९३७ ई०), 'विकास' (१९४१ ई०), 'बयालीस' (१९४८ ई०), 'विसर्जन' (१९५० ई०), 'बेकसीका मजार' (१९५६ ई०), 'वेदना' (१९६० ई०), 'विश्वासकी वेदी पर' (१९६० ई०)।

प्रतापनारायण श्रीवास्तव हिन्दी उपन्यास लेखनके क्षेत्रमें प्रेमचन्दकी अपेक्षा कुछ बादमें आये किन्तु इन्हें प्रेमचन्द युगके उपन्यास-लेखकोंमे ही मानना चाहिये। वैसे तो ये अब तक लिखते जा रहे हैं लेकिन इनकी प्रथम प्रसिद्ध औपन्यासिक रचना 'विदा' प्रेमचन्दके 'गोदान'से कोई सात वर्ष पूर्व प्रकाशित हुई थी। इनकी इसी प्रारम्भिक कृतिने इन्हें हिन्दी उपन्यासकारकी प्रतिष्ठा दी। अपनी इस कृतिमे प्रतापनारायण श्रीवास्तव नागरिक जीवनके अभिजात वर्गके चित्रकार बनकर आये। उन्होंने यूरोपीय सभ्यतामें रँगे हुए 'सिविल लाइन्स'के बँगलोंकी जिन्दगीका अंकन किया और इस दृष्टिकोणके साथ कि उसके मूलमें कहीं-न-कहीं भारतीय आत्मा सुरक्षित है। 'विदा'के सभी पात्र आदर्शवादिताके साँचेमें ढले हुए जान पड़ते हैं। नागरिक जीवनकी शोख और रंगीनीके बावजूद वे आदर्श चरित्रोंके रूपमें प्रस्तुत किये गये हैं। प्रतापनारायण श्रीवास्तवका दूसरा उपन्यास 'विजय' उच्चवर्गीय समाजके विधवा-जीवनकी समस्याको लेकर चला है। अपनी इस

कृतिमें भी प्रतापनारायण श्रीवास्तव आदर्शवादी हैं और एक आदर्श हिन्दू विधवाके लिए वे पुनर्विवाहके सिद्धान्तको स्वीकार नहीं करते। इधरकी कुछ नयी कृतियोंमें प्रतापनारायण श्रीवास्तवने यथार्थवादिताका अवलम्बन ग्रहण किया है। इस दृष्टिसे इनका ऐतिहासिक उपन्यास 'बेकसीका मजार' उल्लेख्य है। इसमें १८५७ ई० के प्रथम स्वाधीनता समरके सच्चे एवं सजीव चित्र प्रस्तुत करनेमें इन्हें बहुत सफलता मिली है।

प्रतापनारायण श्रीवास्तवने अपनी कृतियोंसे हिन्दी उपन्यास साहित्यकी महत्त्वपूर्ण श्रीवृद्धि की है। इन्होंने सामाजिक, राजनीतिक एवं ऐतिहासिक विषयों एवं समस्याओंको अपने उपन्यासोंमें सफलतापूर्वक अंकित किया है। इनकी भाषा निखरी हुई और शैली प्रौढ है। —र० भ०

प्रतापसाहि—रीतिकालीन काव्यके चरमोत्कर्षके अन्तिम व्यक्तियोंमें प्रतापसाहिका नाम कवि तथा शास्त्रज्ञ दोनों रूपोंमें प्रतिष्ठाके साथ लिया जाता है। अपार पाण्डित्य और उत्तम रचना-कौशलके कारण इनकी बडी प्रशंसा की गयी है। इनके पिताका नाम रतनसेन बन्दीजन था। 'शिवसिंह सरोज'में सन् १७०४ ई० (सं० १७६०) इनका उपस्थिति-काल बताया गया है तथा यह भी कहा गया है कि ये महाराज छत्रसाल परना पुरन्दरके यहाँ थे। इसके अतिरिक्त आपका चरखारी, बुन्देलखण्डके महाराज विक्रमसाहिके यहाँ रहना भी सिद्ध होता है। इनका रचनाकाल सन् १७२४ से १८४४ ई० तक माना गया है। इससे इनका १९ वीं शतीके मध्यमें रचनामें प्रवृत्त रहनेका पता चलता है।

इनकी रचनाओंमें सर्वाधिक प्रसिद्धि 'व्यंगार्थ-कौमुदी' (सन् १८२७ ई०) तथा 'काव्य-विलास' (सन् १८२९ ई०)को मिली। इनके अतिरिक्त 'जयसिंह प्रकाश'(सन् १७९६ ई०), 'शृंगार मंजरी' (सन् १८३७ ई०), 'शृंगार शिरोमणि' (सन् १८३९ ई०), 'अलंकार-चिन्तामणि' (सन् १८३९) एवं 'काव्य विनोद' (सन् १८४१ ई०) नामक मौलिक रचनाएँ तथा 'भाषाभूषण'की टीका, 'रसराज'की टीका (सन् १८४१ ई०), 'बिहारी सतसई'की 'रत्नचन्द्रिका' नामक टीका (सन् १८४१ ई०) तथा बलभद्रकी 'नखशिख'की टीका और 'जुगल नखशिख' तथा 'रस-चन्द्रिका' नामक पुस्तकें भी लिखीं। सरोजकारने इनके रचे जिस 'विज्ञार्थकौमुदी' ग्रन्थका उल्लेख किया है, वह वस्तुतः 'व्यंगार्थ-कौमुदी' है। 'भाषाभूषण' तथा बलभद्रकृत 'नखशिख'की टीका विक्रमासाहिकी आज्ञासे रची गयी थी।

इस रूपमें प्रतापसाहिकी प्रतिभाका विकास तीन दिशाओंमें हुआ। ये यशस्वी कवि, शास्त्रज्ञ तथा शास्त्र-प्रतिपादक और टीकाकार थे। इसके अतिरिक्त इनकी यह भी विशेषता है कि इन्होंने स्वरचित ग्रन्थोंकी सुस्पष्टताके लिए स्वयं ब्रजभाषा गद्यमें उनकी वृत्ति भी लिखी है। सिद्धान्त-पक्षमें ये व्यंगको काव्य-जीवित मानते थे। विशेषता यह कि अपनी इस धारणाको इन्होंने अपने काव्यके व्यावहारिक क्षेत्रमें उतार लानेका भी प्रयत्न किया है, भले ही उसके निर्वाहके कारण यत्र-तत्र कुछ क्लिष्टता या अस्पष्टता भी जान पडती हो। वस्तुतः काव्य-परम्परा और शास्त्र-परम्परासे परिचित पाठकके लिए वह अपरिचित ज्ञात नहीं होगी। सिद्धान्तके प्रति इतनी ईमानदारी अन्य आचार्य-कवियोंमें नहीं दीख पडती। यह ठीक है कि व्यंजनाकी क्लिष्टताके कारण उससे अपरिचितोंको बोध होनेसे पूर्व रसास्वादमें विघ्न अनुभव होगा, साथ ही प्रतापसाहिमें अनुभूतिकी उतनी तीव्रता नहीं मिलेगी, किन्तु व्यंगका बोध होनेपर रसास्वादकी सान्द्रता ही नहीं बढ जायगी, अपितु इनकी उत्कृष्ट कल्पना तथा निश्छल अभिव्यंजनापर भी मुग्ध होना पडेगा।

इनकी भाषा व्याकरण, भाव तथा व्यंगार्थके अनुकूल मिलेगी। इनके काव्य-कौशल तथा इनकी सरस हृदयता पर रीझकर ही हिन्दीके आलोचकोंने इन्हें आचार्य तथा कवि दोनों रूपोंमें मतिराम, श्रीपति तथा भिखारीदासके समकक्ष बताया है। इतिहासकारोंको निःसंकोच यह स्वीकार करना पडा है कि उक्त लेखकोंके अतिरिक्त पद्माकरके द्वारा जिस भाषा और मुक्तक शैलीकी कलाकारिताको चरमोत्कर्ष पर पहुँचाया गया था, उसे प्रतापसाहिकी कवितामें ही आकर पूर्णता मिली। लक्षणा-व्यंजनाका लक्षणोदाहरण-युक्त विवेचन करनेमें तो ये मतिराम, श्रीपति, दास और पद्माकर सबसे आगे रहे। इनमेंसे किसीने भी उसका विस्तृत निरूपण नहीं किया था। मिश्रबन्धुओंने इनकी प्रशंसा करते हुए स्पष्ट स्वीकार किया है कि, "इनकी भाषा मतिरामकी भाषासे बहुत मिल जाती है और उत्तम छन्दोंकी संख्या भी इनकी सव्यंग रचनामें विशेष है। उसमें उद्दण्डता भी पायी जाती है।" साथ ही इन्हें काव्यांगोंका अच्छा ज्ञाता और बड़ा ही प्रशंसनीय कवि भी बताया है।

रामचन्द्र शुक्ल भी इनकी प्रशंसा करते थकते नहीं। उनके शब्दोंमें "प्रतापसाहिजीका यह कौशल अपूर्व है कि उन्होंने एक रसग्रन्थके अनुरूप नायिकाभेदके क्रमसे सब पद्य रचे हैं, जिससे उनके ग्रन्थको जी चाहे तो नायिकाभेद-का एक अत्यन्त सरस और मधुर ग्रन्थ भी कह सकते हैं। यदि हम आचार्यत्व और कवित्व दोनोंके एक अनूठे संयोग-की दृष्टिसे विचार करते हैं तो मतिराम, श्रीपति और दाससे ये कुछ बीस ही ठहरते हैं। इधर भाषाकी स्निग्ध सुख-सरल गति, कल्पनाकी मूर्तिमत्ता और हृदयकी द्रवणशीलता मतिराम, श्रीपति और बेनीप्रवीनके मेलमें जाती है तो उधर आचार्यत्व इन तीनोंसे भी और दाससे भी कुछ आगे दिखाई पडता है। इनकी प्रखर प्रतिभाने मानो पद्माकरकी प्रतिभाके साथ-साथ रीतिबद्ध काव्य-कलाको पूर्णता पर पहुँचाकर छोड दिया। पद्माकरकी अनुप्रास-योजना कभी-कभी रुचिकर सीमाके बाहर जा पडी है, पर इस भावुक और प्रवीणकी वाणीमें यह दोष कहीं नहीं आने पाया है। इनकी भाषामें बड़ा भारी गुण यह है कि वह बराबर एक समान चलती है—उसमें न कहीं कृत्रिम आडम्बरका अड़गा है, न गतिका शैथिल्य और न शब्दोंकी तोड-मरोड।" इस प्रकार रामचन्द्र शुक्ल इन्हें पद्माकरके समकक्ष मानते हैं।

'हि० सा० बृ० इतिहास', षष्ठ भागमें भी आपको रीति-कालका अन्तिम प्रतिनिधि कवि माना गया है और कारिका शैलीके प्रमुख लेखकके रूपमें इनकी प्रशंसा की गयी है।

संस्कृत शैलीसे भिन्न स्वनिर्मित उदाहरण रखनेवालोंमें इनकी ओर ध्यान आकृष्ट कराया गया है और यह स्वीकार किया गया है कि हिन्दी-रीतिकाव्यमें ध्वनिवादका सर्वोत्कृष्ट रूप बिहारी तथा प्रतापसाहिमें ही मिलता है। काव्य-लक्षणोंमें मम्मटके लक्षणकी आलोचना कुलपति और प्रतापसाहि ही कर पाये, फिर भी 'काव्य-विलास'मे प्रतापसाहिके शास्त्रीय-विवेचनकी सदोषता देखते हुए सत्यदेव चौधरीको यह निष्कर्ष उपस्थित करना पड़ा है कि प्रतापसाहि 'व्यंगार्थ-कौमुदी'में जितने सफल कवि हैं, 'काव्य विलास'-में वे उतने सफल आचार्य नहीं हैं।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० इ०; हि० का० शा० इ०; हि० सा० बृ० इ० (भा० ६); मि० वि०; हिन्दी रीति परम्पराके प्रमुख आचार्य : सत्यदेव चौधरी।] —आ०प्र०दी०

प्रतिज्ञा–प्रेमचन्दकृत उपन्यास (प्र० १९०४ ई० के लगभग)। 'प्रतिज्ञा' मे लाला बदरीप्रसाद और देवकी, पण्डित बसन्तकुमार और पूर्णाके परिवारों, विधुर अमृतराय और दाननाथकी कथा है और प्रेमचन्दने विधवा नारीकी समस्या उठाई है। लाला बदरीप्रसादकी एक पुत्री प्रेमा और एक पुत्र कमलाप्रसाद तथा पुत्रवधू सुमित्रा है। अमृतराय और दाननाथ घनिष्ठ मित्र हैं और प्रेमासे प्रेम करते हैं। प्रेमा अमृतरायकी साली है। अमृतराय अमरनाथका भाषण सुनकर प्रेमासे विवाह न कर किसी विधवासे विवाह करनेकी प्रतिज्ञा करते तथा अपना जीवन निस्सहाय विधवाओंकी सहायताके लिए अर्पित कर देते हैं। प्रेमाका पिता उसका विवाह दाननाथके साथ कर देता है, यद्यपि प्रेमा और अमृतराय एक-दूसरेको अपने-अपने हृदयमे स्थान दिये रहते है। प्रेमा पत्नीके रूपमें अपने कर्त्तव्य-पथमे विचलित न होकर पातिव्रत धर्मका पालन करती है।

गंगामे डूब जानेके कारण बसन्तकुमारकी मृत्यु हो जानेके उपरान्त उसकी पत्नी पूर्णा प्रेमाके पिता लाला बदरीप्रसादके यहाँ आकर रहने लगती है किन्तु कृपण और दुराचारी तथा विलासी कमलाप्रसाद अपनी पत्नी सुमित्रासे उदासीन रहनेके कारण अब पूर्णाको अपने प्रेम-जालमें फाँसनेकी चेष्टामे रत रहता है और साथ ही अमृतरायकी नारी-सहायतासम्बन्धी योजनाओका विरोध करता है। दाननाथ भी अपने मित्रका विरोध करता है—अपने प्रति प्रेमाके प्रेमकी परीक्षा करनेके लिए। प्रेमा यद्यपि अपने पातिव्रतमे कोई अन्तर नहीं आने देती किन्तु उसकी सहानुभूति पूर्णतः अमृतरायके साथ है और एक दिन एक सार्वजनिक सभामे पहुँचकर अमृतरायकी सहायता भी करती है। उधर एक दिन कमलाप्रसाद पूर्णाको अपने बागमे ले जाकर बलात्कार करनेकी चेष्टा करनेमे उसके द्वारा घायल होता है। पूर्णा अमृतरायके आश्रममें चली जाती है। कमलाप्रसाद सुधरकर अपना दुराचरण छोड देता है और सुमित्राके साथ सुखपूर्वक रहने लगता है। अमृतरायने आश्रमके लिए जीवन अर्पित कर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण की।

उपन्यासमें 'प्रेमचन्द'का समाज-सुधारसम्बन्धी दृष्टिकोण और आर्य-समाजका प्रभाव मिलता है। कलाकी दृष्टिसे यह उत्कृष्ट कोटिकी रचना नहीं है। —ल० सा० वा०

प्रद्युम्न–कृष्ण एवं रुक्मिणीके पुत्र प्रद्युम्न अपने ऐतिहासिक, पौराणिक व्यक्तित्वके साथ-साथ प्रतीकात्मक व्यक्तित्व भी रखते हैं। वैष्णव धर्मके चतुर्व्यूहकी कल्पनामे प्रद्युम्नको मनकी संज्ञा दी गयी है। परम संहितामें उल्लेख मिलता है—"······वासुदेवात् संकर्षणो नाम जीवो जायते, संकर्षणात् प्रद्युम्नसंज्ञं मनो जायते।" इस प्रकार प्रद्युम्न मनके प्रतीक ठहरते हैं। पौराणिक परम्पराओंके उल्लेखमें इनके पुत्र अनिरुद्धका नहीं, अपितु शम्बासुर नामक राक्षस द्वारा इन्हींका अपहरण कराया गया है। इस दृष्टिसे ये 'काम'के अवतार भी ठहरते हैं किन्तु अधिकांश परम्पराएँ इस कथाका नायकत्व प्रद्युम्नको न देखकर उनके पुत्र अनिरुद्धको ही देती हैं। —यो० प्र० सिं०

प्रद्युम्न विजय–(प्र० १८६४ ई०) ब्रजभाषा नाटककालका गणेशकविकृत 'प्रद्युम्न विजय नाटक' प्रौढ एवं महत्त्वपूर्ण काव्य-नाटक है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने अपने निबन्ध 'नाटक'में लिखा है, "गणेश कविने काशिराजकी आज्ञा से 'प्रभावती' नामक नाटककी रचना की थी" ('भारतेन्दु ग्रन्थावली', पहिला भाग, सं० ब्रजरत्नदास, प्र० सं० पृ० ७५२)। गणेश कविकृत एकमात्र 'प्रद्युम्न विजय' नामक नाटक मिला है और सम्भवतः यही वह नाटक है, जिसे भारतेन्दुजीने 'प्रभावती' बताया है। इस अनुमानके निम्नलिखित कारण हैं—(१) 'प्रद्युम्न विजय' नाटकका निर्माण काशिराजकी आज्ञासे हुआ था। कविने तत्कालीन काशिराज महाराज ईश्वरीनारायण सिंहकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। साथ ही कवि कहता है कि—"भूपमोलि श्री ईश्वरनारायन महाराज, लपि मेरे गुन रंझि कै आयसु दयो दराज। गये बीति अनगन बरस नाटक विधि व्योहार, भये गुप्त तेहि प्रगट करि दरसावो सुषसार" ॥१-२०॥ अन्तिम पुष्पिकामें भी पुष्टि होती है—"श्री ईश्वरीनारायणसिंहबहादुरकारिते कविविरचितसाहित्यसागरनामनि अलंकारप्रबन्ध चतुःषष्ट्यंगसहितप्रद्युम्नविजयनाटकनिरूपण नाम द्वादशस्तरंगः।" (२) भारतेन्दुजीका कथन है कि 'प्रभावती' नाटक नाटक-रीतिसे बना है (वही पृष्ठ ७५२)। 'प्रद्युम्न विजय' नाटकपर यह बात लागू होती है। ऊपर जो पुष्पिका दी गयी है, उससे स्पष्ट है कि यह नाटक चौंसठों अंग रखता है (चतुःषष्ट्यंगसहित 'प्रद्युम्न विजय नाटक')। 'प्रद्युम्न विजय' नाटक स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है, वरन् गणेश कविके 'साहित्य सागर' नामक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थका एक अंश है और नाटकके उदाहरणरूप यह वहाँ रखा गया है। राजाकी आज्ञा हुई थी कि नाटक-विधि और नाट्य-प्रयोगसे सम्पन्न नाटक लिखो। उसीके फलस्वरूप यह नाटक लिखा गया है, जिसमें नाटक-विधि और नाट्य-प्रयोग है। (३) भारतेन्दुजीने आगे कहा है कि 'प्रभावती' छन्दप्रधान ग्रन्थ है (वही पृष्ठ ७५२)। इस लक्षणपर भी 'प्रद्युम्न विजय' ठीक बैठता है। इसमें गद्य है ही नहीं। (४) प्रश्न यह है कि भारतेन्दुजीने नाम दिया है 'प्रभावती', जब कि प्राप्त हस्तलेखोंमें नाम मिलता है 'प्रद्युम्न विजय'। इसका समाधान क्या है? ऐसा प्रतीत होता है कि गणेश कविने पहिले स्वतन्त्र रूपसे

जब नाटक लिखा था तब इसका नाम 'प्रभावती' था। सम्भव है भारतेन्दु बाबूने स्वयं इसे देखा हो या सुना हो। पुनः जब गणेश कविने इसे 'साहित्य सागर'में स्थान दिया तो नाटकमें थोड़ा सा हेर-फेर करके इसका नाम 'प्रद्युम्न विजय' कर दिया। वैसे इसका नाम 'प्रभावती' ही अधिक उपयुक्त है। कारण—(क) यह प्रेम नाटक है। संस्कृत एवं हिन्दीमें प्रेम नाटकोंका नामकरण प्रायः या तो नायिका अथवा नायकके नामपर किया गया है अथवा नायक-नायिका दोनोंके नामोंपर। उदाहरणोंकी कमी नहीं है—नायिकाके नामवाले नाटक 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्', 'रत्नावली', 'कर्पूरमंजरी', 'प्रिय दर्शिका', 'सुभद्रा परिणय', 'भैरवानन्द', 'सौगन्धिका हरण', 'मुदित मदालसा', 'पार्वती परिणय', 'कुवलयाश्वचरित', 'वसन्तिका परिणय', 'वसुमति परिणय', 'मृगांकलेखा', 'वस्तुमंगल' इत्यादि। नायक-नायिका नामवाले नाटक— 'विक्रमोर्वशी', 'मालविकाग्निमित्र', 'मालती-माधव', 'पारिजात मञ्जरी' इत्यादि। संस्कृतकी यह परम्परा भारतेन्दु कालमें चल रही थी और नाटककार अपने प्रेम-नाटकोंके नाम इसी प्रकार रख रहे थे, उदाहरण—'चन्द्रावली', 'ललिता', 'नीलदेवी', 'गंगोत्री', 'कुन्दकली', 'मिथिलेश कुमारी','मयंक मञ्जरी', 'रणधीर प्रेम मोहिनी', 'कमल मोहिनी', 'भँवर सिंह', 'मालती बसन्त', 'रति कुसुमायुध', 'लावण्यवती', 'सुदर्शन' इत्यादि। (ख) पहिले और सातवें अंकोंमे कृष्ण-इन्द्र षड्यन्त्र एवं वज्रनाभ-मरण कथा है। शेष पाँच अंकोंमें प्रभावतीकी ही कहानी द्रुतगतिसे दौड़ती है। थोड़ेसे हेर-फेरके साथ इन दोनों अंकों को सरलतया अलग किया जा सकता है और तब 'प्रभावती' नाटक नाम बन जाता है। ऐसा अनुमान होता है कि प्रारम्भिक रूपमें नाटकमें ये ही पाँच अंक थे। कविने बादमें दो अंक जोड़कर 'प्रद्युम्न विजय' नाम कर दिया। (ग) 'प्रद्युम्न विजय' नामसे भासता है कि यह वीर-रसका नाटक होगा। किन्तु यह सम्पूर्ण रूपसे शृंगार रसका नाटक है, केवल सातवें अंकमें युद्ध वर्णन है। इस युद्धमें भी प्रमुख पात्र है कृष्ण, न कि प्रद्युम्न। प्रद्युम्नकी विजय तो प्रभावती पर हुई है, वह भी रति-क्षेत्र में।

नाटकमें प्रद्युम्न द्वारा वज्रनाभकी सुन्दर कन्या प्रभावती-से गन्धर्व विवाहका वर्णन है। साथ ही प्रद्युम्न, प्रभावतीके पिता वज्रनाभको मारते हैं और इन्द्रको उसका इन्द्रासन वापस दे देते हैं। नाटकके नायक प्रद्युम्न ही हैं, जो प्रभावतीको प्राप्त करते हैं, जिसके फलस्वरूप वज्रनाभका मरण होता है। कृष्ण इस प्रकार नायक प्रद्युम्नके प्रधान सहायक या पीठमर्द हैं। नाटककारका कथन है कि नाटक-में चौसठों अंग विद्यमान हैं एवं यह नाटक अभिनयके लिए बना है। चौसठों अंगसे उसका अभिप्राय है, चौसठ संध्यंग। अतः नाट्यशास्त्रकी दृष्टिसे यह काव्य-नाटक महत्त्वपूर्ण रचना है।

अन्य ब्रजभाषा काव्य-नाटकोंकी तरह यह काव्य-नाटक भी जन-नाट्यशैलीका नाटक है—(१) यह छन्दप्रधान नाटक है, (२) इसकी शैली भी प्रबन्धात्मक है। (३) इसमें जन-नाट्य शैलीसे सम्बन्धित संकेत प्राप्त होते हैं। वे हैं—(क) पटमन्दिरसे बाहर आई १—२६, (ख) नाटकमें नृत्य-गानको पर्याप्त स्थान मिला है, (ग) कवि उस नाटकको उत्तम मानता है, जिसमें रस एवं अभिनयके साथ-साथ नृत्य-गानका समावेश हो। सूत्रधार कहता है—"हे प्रिये जे गावती करि नृत्य गान विधान, परसपर संवाद करती भूरि कौतुक मान, हँसनि बोलनि चलनि चितवनि लरनि मुर मुस्क्यानि, गिरनि तर्जनि कलनि मै उठि परनि जे रस पानि" ॥१-६३॥ "करहिं जो सो होहि लीला ललित अद्भुत पुंज, तेहि देत दरसन वचन नूतन गान प्रनतिहुं पुंज, देषिके अति चातुरी सुषमा बरी अनुराग, देत आदर नाट्यको सब भरे मोद विभाग" ॥१-६४॥ उत्तम नाटक कौन है, अन्यत्र कवि कहता है—"सूत्रधार—मोहिं विलोकि महेन्द्र सो करिके कृपा दराज, आयसु दीन्हो करो नट प्रमुदित रसिक समाज" ॥१-३९॥ "विविध नाट्य तें अति सुषद होय पवित्र विचित्र, अभिनै करिए नाट्य सो जेहि लखि रीझै मित्र" ॥१-४०॥ "यह सुन्दर कोमल अरथ प्रगट विविध रस होय। और विभाव अनुभावमिलि उज्ज्वल गान मजोय" ॥१-४१॥ "कहत मधुर स्वर कण्ठ तें यती वस्तु जेहि माहिं। सो नाटक हाटक कहत ज्यों भूषन सरसाहिं" ॥१-४२॥ यहाँ द्रष्टव्य है कि नाटकके उदाहरण-में रखे जाने वाले नाटकमें उत्तम नाटकके ये लक्षण दिये गये हैं। इनमें उज्ज्वल गान, जो मधुर कण्ठसे निकले, सम्मिलित है। साथ ही 'विविध नाट्य' भी नाटकमें होने चाहिए, यह भी नाटककारका मत है। यह प्रभाव प्रचलित जन-नाट्य शैलीका था। नाटककार एक ओर विभाव, अनुभाव इत्यादिसे साहित्यिक शैलीकी और संकेत करता है तो दूसरी ओर नृत्य-गानसे जन-नाट्य शैलीकी ओर। 'प्रद्युम्नविजय' ऐसा ही नाटक है। —गो० ना० ति०

प्रफुल्लचंद्र ओझा 'मुक्त'–कवि और पत्रकार। पटनासे प्रकाशित होनेवाले पत्र 'बिजली' और 'आरती'के सम्पादक रहे। कृतियाँ—'पतझड़', 'पाप-पुण्य', 'संन्यासी','लालिमा', 'धारा', 'जेलयात्रा', 'दो दिनकी दुनिया'। —सं०

प्रबीनराय–ओरछा दरबारकी नर्तकी प्रबीनरायका इन्द्रजीत सिंहसे प्रेम सम्बन्ध था। केशवने इसको काव्य-शास्त्रकी शिक्षा दी थी। कहते हैं इसने वाणी-कौशलसे अपने सतीत्व-की रक्षा की और इन्द्रजीत सिंहका एक करोड़का जुर्माना माफ करा दिया। यह परमसुन्दरी थी। अकबरने इन्द्रजीत सिंहसे उसे मँगनी माँगी। इन्द्रजीत सिंह इससे अधीर हो उठे। रायप्रबीनको भेज दे तो भी कुशल नहीं और न भेजें तो बादशाह जबरदस्ती उनसे छीन ले जा सकता था। रायप्रबीनने कहा आप मेरे लिए चिन्तित न हों। मै अक-बरके पास जाती हूँ और फिर वहाँसे आपके पास वापस आ जाऊँगी। प्रबीनरायने अकबरके सम्मुख यह निवेदन किया था—"बिनती राय प्रवीनकी, सुनिये साह जहान। जूठ पतौवा दै भावे, कौवा ओरो स्वान।" और इसीसे प्रभावित होकर अकबरने इसको ओरछा वापस भेज दिया था। इसके स्वतन्त्र छन्द प्राचीन संकलनोंमे प्राप्त होते हैं। 'दि० भू०' आदि ग्रन्थोंमें उद्धृत छन्दोंके आधारपर इनके काव्यमें प्रेमपरक व्यंजना और ऊहात्मक कल्पना विशेष रूपसे पाई जाती है। —सं०

प्रबोधचंद्रोदय १–संस्कृतके 'प्रबोधचन्द्रोदय' नामक नाटकके रचयिता कृष्णमिश्र हैं। ये जैजाकमुक्तिके राजा कीर्तिवर्माके शासनकालमें हुए थे। कीर्तिवर्माका एक शिलालेख प्राप्त हुआ है, जो सन् १०९८ ई० का है। इसके आधारपर कृष्णमिश्रका समय सन् ११०० ई० के लगभग माना जा सकता है।

'प्रबोधचन्द्रोदय' रूपकात्मक नाटक है। यह शान्तरसप्रधान है। इसमें वेदान्तके अद्वैतवादका प्रतिपादन नाटकीय ढंगपर हुआ है। इसमें मोह, विवेक, दम्भ, ज्ञान, श्रद्धा, भक्ति, विद्या, बुद्धि आदिको पुरुष और स्त्री पात्रोंके रूपमें कल्पित किया गया है। इस प्रकार इस नाटकमें अध्यात्म विद्याका उपदेश बड़े रोचक ढंगसे दिया गया है। अतएव दार्शनिक दृष्टिकोणसे यह नाटक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसमें ज्ञान और भक्तिका सुन्दर समन्वय प्राप्त होता है। यह नाटक अंग्रेजीके रूपकात्मक नाटकोंके ढंगका है।

संस्कृतके इस 'प्रबोधचन्द्रोदय' नाटकके हिन्दीमें अनेक अनुवाद हुए, जिनका विवरण इस प्रकार है—

१. 'पाखण्ड विडम्बन', जिसके अनुवादक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हैं। इसका प्रकाशन सन् १८७३ ई० में बनारस प्रिंटिंग प्रेस द्वारा हुआ तथा संवत् १९९३ मे रामनारायण लाल, इलाहाबाद द्वारा 'भारतेन्दु नाटकावली', द्वितीय भागके अन्तर्गत हुआ।

२. 'प्रबोधचन्द्रोदय'—अनुवादक अनाथदास, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ द्वारा सन् १८८३ ई० में प्रकाशित।

३. 'प्रबोधचन्द्रोदय'—अनुवादक कवि गुलाब सिंह, परमानन्द स्वामी, द्वारिका द्वारा सन् १९०५ ई० में प्रकाशित।

४. 'प्रबोधचन्द्रोदय'—अनुवादक महेशचन्द्रप्रसाद, सन् १९३५ ई० मे पटनामें प्रकाशित।

५. 'प्रबोधचन्द्रोदय' : (छन्दोबद्ध अनुवाद), अनुवादक ब्रजवासीदास।

६. 'प्रबोधचन्द्रोदय'—अनुवादक महाराज जसवन्तसिंह।

उपर्युक्त अनुवादोंमें सर्वप्रमुख भारतेन्दु हरिश्चन्द्रका 'पाखण्ड विडम्बन' है। इसकी सूचना सर्वप्रथम ११ पौष कृष्ण संवत् १९२८ तदनुसार २६ दिसम्बर, सन् १८७१ ई० में मिली। यह संस्कृतके 'प्रबोधचन्द्रोदय' नाटकके तृतीय अंकका अनुवाद है। इसमे भावोंका द्वन्द्व चित्रित किया गया है। नाटकके प्रमुख पात्र विवेक तथा मोह हैं। विवेकका प्रभुत्व बढता देख मोह दम्भको साथ लेकर काशी आता है। श्रद्धा और धर्ममें भेद पैदा करनेके लिए वह मिथ्या दृष्टिको भेजता है तथा शान्तिको बन्दी करनेकी आज्ञा देता है। इसीके बादसे तीसरा अंक आरम्भ होता है। इस अंकमें करुणा, शान्तिके साथ अपनी माँ श्रद्धाको खोजती हुई आती है। उसके वियोगमें वह आत्महत्या करनेका विचार करती है किन्तु करुणाके कहनेपर उसे खोजनेके लिए तैयार होती है। तदनन्तर दिगम्बर जैन, बौद्ध और सोम सिद्धान्तवाले कापालिक एक-एक करके आते हैं और अपने-अपने सिद्धान्तोंका प्रतिपादन करते हैं। सोमपानके पश्चात् दिगम्बर जैन तथा बौद्ध कापालिकके शिष्य हो जाते हैं और श्रद्धाको खोजनेमें तत्पर होते हैं। उनको ज्ञात होता है कि श्रद्धा और धर्म भी विष्णु भक्तिके पास हैं। अतः वे उन्हें वहाँसे खींच लानेका प्रयास करते हैं। यहींपर 'पाखण्ड विडम्बन' नामक तृतीय अंक समाप्त हो जाता है।

यह अनुवाद संवत् १९२९ में समाप्त हुआ। नाटकमें वैष्णव धर्मकी विशेषता दिखलाई गयी है। साथ ही इसमें भक्तिकी पराकाष्ठा देखनेको मिलती है। अनुवाद गद्य पद्यमय है तथा भाषा अत्यन्त सरल। केवल एक अंकका अनुवाद होनेके कारण इसपर विशेष प्रकाश नहीं डाला जा सकता।

दूसरा महत्त्वपूर्ण अनुवाद ब्रजवासीदासजीका है। ये वृन्दावनके निवासी थे। ये वल्लभ सम्प्रदायके अनुयायी माने जाते हैं। इन्होंने अनुवादमें विविध छन्दोंका प्रयोग किया है। अनुवादकी भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है, उसमें अवधी या बैसवाड़ीका नाम तक नहीं है। इसमें सरल, सुव्यवस्थित तथा चलती हुई भाषाका प्रयोग किया गया है। निरर्थक एवं व्यर्थ शब्दोंका पूर्णतः अभाव है।

तीसरा उच्चकोटिका अनुवाद महाराज जसवन्त सिंहका है। यह पद्यात्मक अनुवाद है। इनके ग्रन्थमें पद्यरचनाकी पूर्ण निपुणता प्रकट होती है। महाराज जसवन्तसिंहका जन्म संवत् १६८३ मे हुआ। ये मारवाड़के प्रसिद्ध नरेश थे तथा महाराज गजसिंहके दूसरे पुत्र थे और संवत् १६९५ मे सिंहासनारूढ़ हुए। ये अत्यन्त प्रतापी हिन्दू नरेश थे। शाहजहाँके समयमे इन्होने कई लड़ाइयोंमें भाग लिया। औरंगजेब सदा इनसे भयभीत रहता था। कहा जाता है कि औरंगजेबने इनको गुजरातका सूबेदार नियुक्त कर दिया था। ये शाइस्ता खाँके साथ शिवाजीके विरुद्ध दक्षिण भेजे गये। अन्तमें अफगानोंके विरुद्ध ये काबुल भेजे गये। वहींपर संवत् १७३८ में इनकी मृत्यु हो गयी। —शि० शे० मि०

प्रबोधचंद्रोदय २–(नानकदास १७८९ ई०) "संवत सात अठारस अवर षष्ट चालीस, मंघर शुक्ल पंचमी पोथी पूर्ण करीम।" नानकदासकृत 'प्रबोध चन्द्रोदय' दोहे, चौपाइयोंमें लिखित है। प्रस्तावनामे नानकदासने कहा है कि कृष्णदासका एक शिष्य बड़ा मूर्ख था, क्योंकि उसे सदा युद्धचर्चा ही भाती थी। इसी शिष्यका मन बदलनेके लिए नाटकका निर्माण हुआ था। नटका कथन है कि कृष्णदास अपने शिष्यसे राजा 'कीरत वर्मा'की कथा कहता है—एक राजा था कीरत वर्मा। उसने बचपनमें इच्छा की थी कि भगवानके भजनसे जीवन सार्थक बना लूँ किन्तु मायाको यह बात न रुची और वह राजामे आकर चिपट गयी। फलतः राजा भगवान्से दूर हटता गया। उसने अनेक विजय पायी और राज्यमे प्राप्त सुखोंको भोगा। धीरे-धीरे मृगतृष्णा शान्त हुई। अतः अब राजा शान्त रस पीना चाहता है। मन्त्री गोपालने नटको आज्ञा दी कि राजाको 'प्रबोध चन्द्रोदय'का खेल दिखाओ। नट अपने साथियोंके साथ राजा कीरत वर्माकी राजसभामें पहुँचा और अभिनय करनेकी आज्ञा मांगी।" नानकदासका कथन है कि मैंने यह नाटक यवन भाषामें लिखित बलीरामकृत 'प्रबोध चन्द्रोदय'के आधार पर रचा है—"यह पोथी पूरण करी

बलीराम हरिसन्त, ताको भाषा यों रच्यो नानकदास विनवन्त" ॥१८०॥ भाषा नाटक-अंक, कथा, पात्र इत्यादिका क्रम 'प्रबोध चन्द्रोदय' जैसा ही है। इसकी भाषा शैली सबल है।

इस नाटकका महत्त्व भी यही है कि यह जन-नाट्य शैलीके कुछ संकेत देता है—(१) एक कनात खड़ी की जाती थी। इस कनातके पीछे पात्र अपना वेश परिवर्तन करते थे। कनातको हटाकर पात्र सभामें प्रवेश करते थे—(क) "आगे करी कनात इक स्वांग बनावन काज, जाते आवें स्वांग बन देखे सकल समाज।" (ख) "तातें जाहु कनातके पाछे। रुचि-रुचि स्वांग पठाओ आछे।" (ग) "सो कनातके बाहर आयी।" (२) प्रत्येक अंकके आरम्भ होते समय वाद्य-यन्त्र बजते थे और अभिनेता या अभिनेत्री दर्शकोंके सामने कनातसे बाहर आकर नृत्य करती थी—(क) दूसरा अंक आरम्भ हो रहा है—"फिर नट वर एकठ होइ आए। राग अलाप बजन्त्र बजाए। ताछिन स्वांग दम्भका आया। बड़े शब्द सो गरज सुनाया।" तीसरे अंकका प्रारम्भ—"फिरि बाजे बाजनि लागे, गाजे ढोल मृदंग। सूत्रधार एकत्र मिल, उठ्यो रागको रंग।" पाँचवें अंकके आरम्भ होते समय भी यही होता है—"तब बाजन्त्री बाज बजाए। राग अलाप मधुर सुर गाए। ढोलक छैना अरु इक तुहरी। सबनो मिलकरि बह धुनि पूरी।" (३) पात्र ऊँचे स्वरमें बोलते थे—(क) "ता दिन स्वांग दंभका आया। बडे शब्द सो गरज सुनाया।" (ख) "सो कनातके बाहर आयी। सगल सभाको गरज सुनाई।" (४) अभिनय रातको होता था—"मैत्री सर्धाकी सहचरी। जाम स्वांग आयो निसधरी।" (५) नाटकमें कहीं-कहीं खड़ीबोलीका भी प्रयोग मिलता है—(क) "ता छिन स्वांग दम्भका आया, बड़े शब्द सों गरज सुनाया। तुम भी सावधान अब होवो। तन मन ते आलस सब धोवो।" (ख) "वेदोंके ज्ञाता भी भ्रमें सुन विरुद्ध सबद ही ते मूर्ख जन खेद अफल करें है ॥१८५॥" —गो० ना० ति०

प्रबोधचंद्रोदय ३—(ब्रजवासीदास १७६० ई०)। "ऋषि शशि धन गनपति रदन सम्मत सेस बिलास। तामें यह भाषा करी जन ब्रजवासी दास" ॥२३॥ संस्कृतमें श्रीकृष्ण-मिश्र रचित 'प्रबोध चन्द्रोदय'को विशिष्ट स्थान प्राप्त है। विद्वानोंका मत है कि इस नाटककी रचना ग्यारहवीं शतीमें हुई थी। इसके द्वारा शान्त रसको नाटकमें स्थान दिया गया है। दर्शन और अध्यात्मके कुछ तत्त्वोंको लेकर प्रतीकात्मक शैलीपर यह नाटक लिखा गया है। ब्रजभाषा-कालमें इस नाटकको बहुत मान प्राप्त हुआ। इसका अनुमान इसी बातसे लगाया जा सकता है कि इस कालमें 'प्रबोध चन्द्रोदय'के लगभग एक दर्जन अनुवाद या छायानुवाद हुए। इनमेंसे ब्रजवासीदासकृत 'प्रबोध चन्द्रोदय' प्रकाशित भी हो चुका है (विवेचनाका आधार यही प्रकाशित नाटक है, जो बनारस लाइट यन्त्रालय द्वारा मुद्रित हुआ था और जिसे लाला छेदीलालने मुंशी हरिवंशलाल एवं बाबा अविनाशलालके आज्ञानुसार शोधकर सवत् १९३२ वि०में प्रकाशित किया था)। ब्रजवासीदासने इस नाटककी प्रस्तावनामें नाटकके सम्बन्धमें कुछ चर्चा की है। भाषा नाटककी यह प्रस्तावना मूल नाटकसे भिन्न है। संस्कृत नाटकमें आनन्दस्वरूप ब्रह्मकी स्तुति (१-१)के पश्चात् महादेवकी ज्योतिका वर्णन है (१-२)। इस नान्दी पाठके अनन्तर सूत्रधार दर्शकोंको बताता है कि आज कीर्तिवर्मा राजाके सामने शान्तरससम्पन्न श्रीकृष्ण मिश्र रचित 'प्रबोध चन्द्रोदय' नाटकका अभिनय होगा, ताकि राजाको निर्वेद प्राप्त हो और उसका मन विजयों एवं वैभव-विलाससे हट जाय। ब्रजवासीदासने इस सूक्ष्म-सी चर्चाको बड़ा विस्तार दिया है और इसी प्रसंगमें अपने भाषा-नाटकके सम्बन्धमें भी कुछ कहा है। प्रारम्भिक आठ दोहोंमें भगवानकी स्तुति है। इसके बाद कई दोहोंमें सत्संगका गुण गाया गया है। तत्पश्चात् नाटकके जन्मकी कथा है, जो मूल नाटकमें भिन्न है। प्रस्तावनामें बताया गया है कि दक्षिणमें भक्ति और विद्यासे परिपूर्ण एक प्रसिद्ध पण्डित था, जिसका नाम था कृष्णदास भट्ट। उसका एक ब्राह्मण शिष्य था। गुरु बड़े स्नेहसे शिष्यको वेदान्त पढ़ाता था किन्तु शृंगारासक्त शिष्यका मन उधर जाता ही न था। फलतः गुरुने एक ग्रन्थ बनाया। वह ग्रन्थ कैसा था—"कला विदूषक खान अर्थसिद्धि वेदान्त मय॥१४॥" गुरुने इस ग्रन्थका नाम रखा 'प्रबोध चन्द्रोदय'। इस नाटककी रचना मूलतः संस्कृतमें शिष्यको पढ़ानेके लिए हुई थी। ब्रजवासीदासका कथन है कि जो कोई इस संस्कृत नाटकको रुचिसे सुनेगा, पढ़ेगा एवं समझेगा, उसकी सांसारिक आपत्तियाँ दूर हो जायँगी—"(सुनै समुझै) पढ़ै रुचि सों मिटै जगत विपत्ति ॥१६॥" ब्रजवासीदास आगे प्रस्तावनामें कहते हैं कि संस्कृत-प्राकृतमें होनेसे यह नाटक सर्वजन बोधगम्य न था। केवल कुछ विद्वान् व्यक्ति ही इसे पढ़ एवं समझ पाते थे। तब बलीरामने इस संस्कृतको यवन-भाषामें लिखा। किन्तु यवन भाषा भी सबके लिए सुबोध न थी ('प्रबोध चन्द्रोदय', १८)। फलतः ब्रजवासीदासने इसे भाषामें लिखा। कवि अपनी नम्रता प्रदर्शित करता है और कहता है—"नहि चतुर नहिं रसिक वर नही कवि भक्त उदार, पाछौ लै हरिजन कहत लेहै साधु सुधार ॥२१॥" गुरु शिष्यको कथा सुनाता हुआ कहता है कि एक राजा था 'वीरतब्रह्म', जिसका मन्त्री था 'गुपाल'। राजसभामें एक नट आया। नटके साथ उसके अनेक शिष्य थे। शिष्याएँ भी साथ थी। इस नट-मण्डलीके पास बहुतसे बाजे थे। ब्रजवासीदासने आगे बाजोंके नाम भी गिनाये हैं। वे ताल मृदंग, ढोलकी, मुहचंगवेन, बीन, उपंग, महुवरी, सारंग, सितार, खजरी, करतार इत्यादि लिये थे। बाजोंका नाम गिनाते समय नाटककारका ध्यान जन-नाट्य शैलीकी ही ओर था। अन्यत्र भी इस शैलीके संकेत प्राप्त होते हैं। उदाहरण—(१) "नटकी यह शिष्य मण्डली नृत्य-गान मे अत्यन्त निपुण थी। सभामें आकर मण्डली ने गीत गाये ॥२८॥" (२) "पुनि इक पट मन्दिर रच्यो स्वांग साज तहं राखि। नट नटिनी तित भए परम प्रेम अभिलाखि ॥२९॥ छिन निनै करि नट कह्यो भुजा उठाय पुकार, तनक ढोलको थाम्भिकै चुप कीजो सब यार ॥३०॥ जब सब गाँवन ते थम्भे रहिगो तन्त्री नाद, तब विदुध नट नटी प्रति करन लग्यौ सवाद ॥३१॥" (३) नट नटीसे कहता है कि मैने आकाशवाणी सुनी है, जिसमे कहा गया है

कि राजा 'कीरत ब्रह्म'का मन परमार्थकी ओर जाता है किन्तु मन्त्री गोपाल उधर नहीं जाने देता है। अतः हे नटी तू मेरे साथ चल। राजाके सामने इस नाटकको गा एवं इसका स्वांग भी बना ॥४१-४२॥ भाषा नाटकमें अनेक छन्दोंका प्रयोग हुआ है। ये छन्द हैं—दोहा, चौपाई, रोला, सोरठा, कुसुमविचित्रता, तोमर, सुगीतिका, हाकलिका, सवैया, त्रोटक, भुजंग प्रयात, कवित्त, सुन्दरी, हरिगीतिका, पंकजवाटिका, कुण्डलिया, अमृतगति, छप्पय, बरवै, छन्द, भुजंगी, चंचला, पद्मावती, कुमारलता, त्रिभंगी, निसिपालिका, मोहन, संयुता, मधुभार, सुप्रिया, अनुकूल, अग्नानी, अरिला, काव्य, गंगोदक, मालती, मोदक, दोधक, झूलना, भरहटा, शोभन, चम्पक, तारक, मनमोहन, अर्धभुजंगी, ब्रह्मरूपक, विद्युन्माल, रंगिका, नगस्वरूपनी, रवंधा, सिंह अवलोकन। अनुवाद सुन्दर है और केवल पद्यात्मक है। —गो० ना० ति०

प्रभा–इस पत्रिकाका प्रकाशन १९१३ ई०मे खडवासे हुआ। फिर १९१७ ई०मे यह कानपुरमे प्रकाशित होने लगी और सन् १९२३ ई० तक वहींमे प्रकाशित होती रही। माखनलाल चतुर्वेदी और फिर शिवनारायण मिश्र इसके सम्पादक थे। अन्य सम्पादकोंमे गणेशशंकर विद्यार्थी तथा श्रीकृष्णदत्त पालीवाल रहे। सन् १९२३ ई० से इसका सम्पादन-भार बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने लिया। उन्होने इसका 'झण्डा अंक' निकाला।

प्रमुखतया यह एक राजनीतिक पत्रिका थी किन्तु इसमे साहित्यिक निबन्ध एवं कविताएँ भी प्रकाशित होती थी। —ह० दे० बा०

प्रभा अध्यक्ष–सर कृष्ण अध्यक्षकी आधुनिका पुत्री, भगवती चरण वर्माकृत उपन्यास 'तीन वर्ष' के पूर्वार्द्धकी नायिका। कक्षाके सबसे बड़े रईस अजित एव सबसे मेधावी छात्र रमेश एक साथ ही उसके सम्पर्कमे आते है। लगता है कि प्रेमका शाश्वत त्रिकोण बनने जा रहा है, पर अजित अपनी ओर आकृष्ट होती प्रभाके प्रेम-सम्बन्धको बढावा नही देता और धीरे धीरे रमेश-प्रभाका प्रेम बढता जाता है। आधुनिक पाश्चात्य संस्कृति एवं विचारधाराके प्रभावमे ढली उस नारीके लिए न तो यौन नैतिकता ही महत्त्वपूर्ण है और न वह प्रेमके मध्यवर्गीय रोमाण्टिक आदर्शवादको ही महत्त्वपूर्ण मानती है। वह यौवनको अराजकताका दूसरा नाम मानती है, उसके लेखे 'पाप-पुण्य भी मनुष्यके दृष्टिकोणकी विषमताका दूसरा नाम है।' —दे० श० अ०

प्रभाशंकर–प्रेमचन्दकृत 'प्रेमाश्रम'का पात्र। प्रभाशंकर पुराने दम्भका आदमी है—कुलकी मर्यादा, सन्तान-प्रेम और अतिथि-सत्कारके लिए जान देने वाला। लोक-निन्दा से उसे बहुत डर लगता है। वह अपने कारण किसीकी आत्माको कष्ट देना नहीं चाहता। यहाँ तक कि असामियोंके प्रति सहानुभूति और उदारतापूर्ण व्यवहार करता है। वास्तवमें प्रभाशंकर प्राचीन जमींदारी-प्रथाका भग्नावशेष है और पुराना स्वर्ग-सपना देखना चाहता है। वह सरल-हृदय, निर्मल स्वभाव और श्रद्धालु प्रकृतिका व्यक्ति है। कृत्रिमता उसे छू तक नहीं जाती। उसने न तो धन कमाया जाता है और न धनका सदुपयोग ही किया जाता है। रईसीमें आकर ही वह सन्तानको सुशिक्षा न दे सका। स्वाद-लोलुपता उसके चरित्रकी एक दुर्बलता है।—ल० सा० वा०

प्रभुदयाल मीतल–जन्म मथुरामें सन् १९०२ ई० में। इनके ग्रन्थ है—'मेवाड़की अमरकथाएँ', 'राजपूती कथाएँ' (कथासाहित्य)। 'भक्तकवि व्यासजी', 'सूरराम चरित्र' (जीवनी)। 'अष्टछाप-परिचय', 'ब्रजभाषा साहित्यका ऋतु-सौन्दर्य', 'सूरदासकी वार्ता', 'सूर-निर्णय', 'सूर-सारावली', 'चैतन्यमत' और 'ब्रजसाहित्य'। आप ब्रजभाषा काव्यके मर्मज्ञ और सूर-साहित्यके विशेष अध्येता हैं। 'ब्रजभाषा साहित्यका ऋतुसौन्दर्य' हिन्दी साहित्यके लिए आपकी एक मौलिक योजना है। इसमें प्रथम बार इन्होंने प्रकृतिसम्बन्धी कविताओंका संकलन किया है। सूरसम्बधी निष्कर्ष आपके गम्भीर अध्ययनके परिचायक है। आपमे आलोचकसे अधिक एक अनुसन्धित्सुकी प्रतिभा है। —स० ना० त्रि०

प्रभुसेवक–प्रेमचन्दकृत 'रंगभूमि'मे प्रभुसेवक प्रकृति-सौन्दर्य, निद्रा और विनोद—जीवनके इन तीन तत्त्वोंपर बल देनेवाला पात्र है। वह धर्मको बुद्धिसे अलग रखना चाहता है। न तो उसे अपनी बहन सोफीका सत्यासत्य-निरूपण ही बहुत अच्छा लगता है और न अपने पिताका व्यवसाय-प्रेम। वह अपना समय साहित्य, दर्शन और काव्यके अध्ययनमे व्यतीत करना चाहता है। उसमें उत्साह और उमग अवश्य है किन्तु उसकी सारी शक्ति शब्द-योजनातक ही सीमित रहती है। प्रभुसेवकके जीवन मे सांसारिकताका अभाव है। उसमे राष्ट्रीय भावना भी है और सेवा-समितिका भार ग्रहण कर उसे उत्तरदायित्व-पूर्ण ढगमे निभाता भी है किन्तु अपने विचार-स्वातन्त्र्य के कारण वह सीमित परिधिको छोडकर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का आदर्श सामने रख इगलैण्ड और अमरीकामे जीवन व्यतीत करता है। प्रेमचन्द उसके इस विश्वबन्धुत्व-को निरर्थक समझते है, क्योकि वह तो समताके आधार-पर ही स्थापित हो सकता है। भारत तथा अन्य देशोंके दास बने रहते हुए उनकी दृष्टिमें यह आदर्श खोखला है। —ल० सा० वा०

प्रमथ्यु–यह एक यूनानी पुराण पुरुषके रूपमें विख्यात है, जो सृष्टिके आरम्भमे प्रथम बार स्वर्गमे द्युतिपरके प्रासादसे मानवीय त्राणके लिए अग्नि हर लाया था, जिसके दण्ड-स्वरूप द्युतिपरने उसे एक शिलासे बँधवा दिया था और एक गिद्ध निरन्तर उसके हृदय पिण्डको खाते रहनेके लिए नियुक्त कर दिया था। इस पाश्चात्य पुराण पुरुषकी कथा-के आधारपर डा० धर्मवीर भारतीने द्युतिपर अग्नि-युद्ध आदिके सन्दर्भमे 'प्रमथ्यु गाथा' नामक नाट्य गीतकी रचना की है (दे० सात गीतवर्ष पृ० १८-२०)। —रा०कु०

प्रवासीलाल वर्मा–जन्म १८९७ ई०में अगर-मालवा (मध्यप्रदेश)मे हुआ था। कुछ दिनों तक आप 'सरस्वती' प्रेसमे रहे। आपने कई पुस्तकें लिखी हैं।

आपके प्रकाशित ग्रन्थोंकी सूची इस प्रकार है—'आरोग्य मन्दिर' (१९२२), 'वृक्ष विज्ञान' (१९२९), 'जगलकी भयानक कहानियां' (१९३७), 'मट्ठा उपयोग' (१९४८), 'सौराष्ट्रकी लोक-कथाएँ' (१९५५)। —ल० कां० व०

प्रसाद–दे० 'जयशंकर प्रसाद'।

प्रसेनजित्–प्रसादकृत नाटक 'अजातशत्रु'का पात्र। कोशल-नरेश प्रसेनजित् 'अजातशत्रु' नाटकके प्रथम अंकमें विरुद्धकके पिताके रूपमें अदूरदर्शी, क्रोधी, दम्भी और ईर्ष्यालु स्वभावका दिखाई पड़ता है। प्रसेनजित् विरुद्धककी कथाके आधार ग्रन्थ धम्मपद, अट्ठकथा, महावंश, दीर्घनिकाय भद्दसाल जातक और अवदान कल्पलता आदि हैं। मज्झिम-निकायके साक्ष्यपर काशी और कोशलका राजा प्रसेनजित् बिम्बसार और बुद्धका घनिष्ठ मित्र था। बुद्धके प्रति उसकी अडिग आस्था थी। उसके एक अन्य नाम 'अग्निदक्ष'का भी पता मिलता है। प्रसेनजित्की बहिन वासवी मगध सम्राट बिम्बसारकी बड़ी रानी है। अजात द्वारा बिम्बसारके बन्दी बना लिये जानेपर वह वासवीकी इच्छाके अनुसार काशीकी प्रजाको कर न देनेके लिए आज्ञापत्र लिख देता है तथा इसी प्रसंगमें अजातशत्रुके 'क्षुद्र विप्लव'से उत्तेजित होकर अदूरदर्शितासे अपने पुत्र विरुद्धकके प्रति रुष्ट होकर उसे तथा उसकी माताको राज्याधिकारसे वंचित कर देता है और उसे राष्ट्रका शत्रु बना लेता है। उसके इस कार्यकी आलोचना करते हुए अमात्यने कहा भी है—"किसी दूसरेके पुत्रका कलंकित कार्य सुनकर श्रीमान् उत्तेजित हों,अपने पुत्रको दण्ड दें, यह तो श्रीमान्की प्रत्यक्ष निर्बलता है।"

प्रसेनजित्के चरित्रका जघन्यतम कलंकित पक्ष अपने प्रधान सेनापति बन्धुलकी बढ़ती हुई शक्तिसे ईर्ष्यालु बनकर शैलेन्द्र नामधारी डाकूसे उसकी हत्या करवा देना है। इस प्रकार वह एक सच्चे स्वामिभक्त, रणकुशल पराक्रमी सेना नायकके प्रति विश्वासघात करके अपनी पाशविक प्रवृत्तियोंका परिचय देता है और राष्ट्रकी सैनिक शक्तिको निर्बल बना लेता है। अपनी इन्हीं क्षुद्रताओंके कारण वह अजातशत्रु द्वारा पराजित होकर बन्दी बनता है। अपने स्वामीभक्त सेनापतिके प्रति किये गये जघन्यतम अपराधको वह मल्लिकाके समक्ष स्पष्ट स्वीकार करता है—"सेनापति बन्धुलके प्रति मेरा हृदय शुद्ध नहीं था।" बन्धुलकी धर्म-पत्नी मल्लिकाके निश्छल एव क्षमापूर्ण आचरणसे उसे आत्मग्लानिकी तीव्र लपटोंमें झुलसना पड़ता है—"देवि, एक अभिशाप भी दे दो, जिससे नरककी ज्वाला शान्त हो जाय और पापी प्राण निकलनेमें सुख पावें।" अपनी मानसिक दुर्बलताके कारण वह अपने पापोंको एकान्तमे मल्लिका के समक्ष स्वीकार कर उससे क्षमा तो माँग लेता है किन्तु सार्वजनिक रूपसे राजसभाके मध्य उसकी कहानी सुननेसे विमुख हो जाता है किन्तु अन्तमे मल्लिका एवं गौतमके आदेशानुसार वह अपनी परिणीता भार्या एवं अधिकार-च्युत पुत्रको पुनः स्वीकार करके मृदुल हृदयका परिचय देता है। अपनी बहिन वासवीके प्रति अनुराग एवं सहानुभूतिका व्यवहार प्रसेनजित्के चरित्रका एक उज्ज्वल पक्ष है। वासवीके अनुरोधसे ही वह बन्दी अजातशत्रुको शीघ्र मुक्त करके अपनी पुत्री वाजिराका उसके साथ विवाह कर देता है। 'भद्दसाल जातक'में इसका विस्तृत विवरण मिलता है कि विद्रोही विरुद्धक गौतमके कहनेपर फिरसे अपनी पूर्ण मर्यादापर अपने पिताके द्वारा अधिष्ठित हुआ। —के० प्र० चौ०

प्रह्लाद–हिरण्यकशिपु और कयाधुके पुत्र, परम भागवत प्रह्लादको दत्तात्रेय तथा शुक्राचार्यके पुत्रोंने शिक्षा दी थी। विष्णुका विरोधी हिरण्यकशिपु प्रह्लादको भक्ति मार्गसे विरत करनेमें विफल हुआ तो उसने उन्हें हाथीसे कुचलवानेका प्रयत्न किया, पहाड़से नीचे फिकवाया, समुद्रमें गिराया, आगमें भस्म करनेकी चेष्टा की, किन्तु प्रह्लादका बाल बाँका न हुआ। एक बार हिरण्यकशिपुकी सभामें प्रह्लादने हरि-भक्तिपर व्याख्यान दिया। क्रुद्ध हिरण्यकशिपुने पूछा, 'कहाँ है तेरा भगवान्?' प्रह्लादने उत्तर दिया—'सर्वत्र'। हिरण्यकशिपु गरज उठा, 'तो क्या वह इस खम्भेमें भी है?' प्रह्लादने दृढतासे कहा 'हाँ, निस्सन्देह'। इतना कहकर हिरण्यकशिपुने मुष्टिक एवं खड्गसे प्रहार किया। खम्भा टूटा और नरसिंह भगवान् प्रकट हुए, जिन्होंने हिरण्यकशिपुको मार डाला। हिरण्यकशिपुका वध करके भी नृसिंह क्रोधसे काँप रहे थे। इससे भयभीत देवोंने प्रह्लादसे विनय की कि भगवान्को शान्त करो। प्रह्लादकी स्तुतिसे भगवान् शान्त हुए और उससे वर माँगनेको कहा। प्रह्लादने हरि-भक्तिका वर माँग लिया (दे० 'नरसिंह', 'हरिण्यकशिपु' और सूर० पद ४२०-४२५) —मो० अ०

प्राणचंद चौहान–इनका विशेष महत्त्व इनके 'रामायण महानाटक' के कारण है। यह दिल्लीके निवासी थे। इनका समय ईसाकी १५ वीं शताब्दीके अन्त तथा १६ वीं शताब्दीके पूर्वार्द्धमे माना जा सकता है। इनका 'रामायण महानाटक' सन् १६१० ई० मे लिखा गया, जिसका रचना काल इन्होंने इस प्रकार दिया है—"कातिक मास पच्छ उजियारा। तीरथ पुन्य सोम कर वारा॥ ता दिन कथा कीन्ह अनुमाना। शाह सलेम दिलीपति थाना॥ संवत् सोरहसे सत साठा। पुन्य प्रगास पाप भय नाठा॥"

इस नाटकमे रामकी सम्पूर्ण कथा दोहा-चौपाईमे वर्णित है। शैली संवादात्मक है। रचनाका उद्देश्य बतलाते हुए प्राणचन्दने लिखा है—"रामचरित जो कहे बखाना, बाढे धर्म पाप होए हाना॥ अरु जो सुनै श्रवन चितलाई। सो जमपुरके निकट न जाई॥ नारद बालमीक दुर्वासा। तिन्हू राम नामकी आसा॥" डा० गोपीनाथ तिवारीने इसे हिन्दीका सबसे पहिला मौलिक नाटक कहा है। यह जन नाट्य शैलीमें लिखा गया है।

इस प्रकार प्राणचन्द चौहानका हिन्दी नाटक साहित्यके इतिहासमें प्रथम मौलिक नाटककार होनेके कारण विशेष स्थान हो जाता है। —ब० ना० श्री०

प्राणनाथ–प्रणामी मतके प्रवर्त्तक, महाराजा छत्रसाल बुन्देलाके धर्म-गुरु स्वामी प्राणनाथने मध्ययुगके अन्य सन्तों-कबीर, नानक और दादू आदिकी भाँति अविरोधी मानव-धर्मका सिद्धान्त स्वीकार कर न केवल हिन्दू और इस्लाम धर्मकी एकताका समर्थन किया, बल्कि हिन्दुओंके धर्म-ग्रन्थ वेद, उपनिषद्, गीता और भागवत, मुसलमानोके धर्मग्रन्थ कुरान, ईसाइयोंके इंजील, यहूदियोंके जम्बूर तथा दाऊद पैगम्बरके अनुयायियोंके धर्मग्रन्थ तोरेतमें मौलिक एकता मानकर विश्व-धर्म-समन्वयका एक ऐसा स्वप्न देखा, जो

उस युगके लिए विस्मयजनक कहा जा सकता है। स्वामी प्राणनाथका जन्म हल्लार जनपदके जामनगर (काठियावाड़), जिसे प्रणामी साहित्यमें नवतनपुरीकी संज्ञा दी गयी है, रविवार, ६ सितम्बर, १६१८ ई० (भाद्रपद कृष्ण चतुर्दशी, सं० १६७५ वि०) को हुआ था। इनके पिताका नाम केशव ठाकुर और माताका धनबाई था। इनके पिता जामनगरके प्रधानमन्त्री थे। प्राणनाथका बचपनका नाम मेहेराज (मिहिरराज) ठाकुर था। इनके तीन बड़े भाई—श्यामल, गोवर्द्धन और हरवंश और एक छोटे भाई ऊधव थे। सन् १६३० ई० में १२ वर्ष दो मास और १४ दिनकी अवस्थामें इन्होंने अपने बड़े भाईके साथ नवतनपुरीमें श्री देवचन्दकी शिष्यता स्वीकार की। श्री देवचन्दने मेहेराजको तारतम्य मन्त्रकी दीक्षा दी। मेहेराजने विवाह करके अपनी पत्नी राजबाईके साथ आजन्म गार्हस्थ्य धर्मका पालन किया।

सन् १६४६ ई० में श्री देवचन्दने अपने एक प्रमुख शिष्य के भाईका समाचार लेनेके लिए मेहेराजको 'बरारब' (बर्रे-अरब) भेजा। ४० दिनमें ये नाव द्वारा अरब पहुँचे और वहाँ चार वर्ष तक रहे। सन् १६५५ ई० मे देवचन्दका स्वर्गवास हो गया। मेहेराजने उनके औरस पुत्र बिहारीजी को गद्दी पर आसीन कराकर स्वयं जामनगरके प्रधानमन्त्रीका पद ग्रहण किया। राजबाईके साथ वे धर्मका प्रचार भी करते रहे। कुछ समय बाद उन्हे एक मिथ्या अपराधमें कारावासमें डाल दिया गया। कारावास-जीवनमें मेहेराजकी दिव्यवाणी प्रस्फुटित हुई और उनकी प्रथम गुजराती रचना 'रास' अवतरित हुई। प्रणामी मतानुयायी इस कारावासको 'प्रमोधपुरी' कहते हैं। कालान्तरमे जाम राजा ने अपनी भूल स्वीकार की, मेहेराजसे क्षमा मागी और उन्हे कारावाससे मुक्त किया। शीघ्र ही उन्हे राजनीतिक जीवनसे विरक्ति हो गयी और वे उसे त्यागकर पूर्ण रूपसे धर्म-जागरणके कार्यमें लग गये।

अहमदाबादसे मेहेराज दीवबन्दर (आधुनिक ड्यू), पोरबन्दर, पाटण, माण्डवी, भोजनगर होते हुए तट्टा नगर पहुँचे, जहाँ उन्होंने कबीरपन्थी साधु चिन्तामनको शास्त्रार्थमे परास्त कर शिष्य बनाया। मेहेराजके धर्मानुयायी 'सुन्दर साथ' कहलाते थे। 'सुन्दर साथ' के द्वारा ही उन्हें श्रद्धापूर्वक 'प्राणनाथ'की उपाधि दे दी गयी थी। तट्टामे ही सन् १६६७ ई०मे बीतक रचयिता लालदासने उनसे दीक्षा ली और वे आजीवन सपत्नीक प्राणनाथके साथ धर्म प्रचार-में लगे रहे। धर्म-प्रचारके लिए प्राणनाथने बहुत दूर-दूरकी यात्राएं कीं। मस्कत, अब्बासी (अरब) आदि स्थानोंके अतिरिक्त इन्होंने देशके अनेक प्रधान नगरोंकी यात्रा की। सन् १६६४ ई०मे उन्होंने मेड़तेमें जैनाचार्य लाभानन्द यतीको शास्त्रार्थमें पराजित किया और महाराज जसवन्त सिंह राठौरको अपने मतमें दीक्षित करनेके लिए अपने शिष्य गोवर्द्धनको अटकपार भेजा किन्तु जसवन्त सिंह 'जाग्रत्' नहीं हो सके। यहींपर एक दिन प्रातःकालकी नमाजके समय 'लाइलाहोइल्लिल्लाहो मुहम्मदुर्रसूलल्ला" सुनकर उन्हें कलमा और तारतम्य मन्त्रमें ऐक्यका अनुभव हुआ। यहींपर उन्होंने निश्चय किया कि उन्हें औरंगजेबको धार्मिक ऐक्यका रहस्य समझानेके लिए सत्याग्रहका महाव्रत लेना चाहिए। अतः अग्निव्रत लेकर वे गोकुल, मथुरा और आगरा होते हुए सन् १६७८ ई०में दिल्ली पहुँचे। औरंगजेबको सत्यधर्मका परिचय करानेके उद्देश्यसे उन्होंने लालदासकी सहायतासे पहले हिन्दवीमें एक पत्र तैयार किया। बादमें साथियोंकी सलाहसे उसे फारसीमें किया गया परन्तु इस समय परिस्थिति उनके अनुकूल नहीं थी।

सन् १६७८ ई०में हरिद्वारके कुम्भ पर्वके अवसरपर प्राणनाथने रामानुज, मध्व, निम्बार्क, विष्णुस्वामी, षट्दर्शनी आदि सम्प्रदायोंके पण्डितोंको शास्त्रार्थमें पराजित कर अपने 'निजानन्द सम्प्रदाय'की श्रेष्ठता सिद्ध की और 'निष्कलंक बुद्ध'की उपाधि अर्जित की। हरिद्वारमें चार मास ठहर कर पुनः दिल्ली आ गये और लाल दरवाजेके पास रहने लगे। उन्होंने औरंगजेबके मुख्य वैयक्तिक सहायक शेख सुलेमानके पास एक पत्र भेजा किन्तु उससे कोई लाभ नहीं हुआ। दिल्लीसे वे अपने शिष्योंमें उठे हुए मतभेदको शान्त करनेके उद्देश्यसे अनूप शहर चले गये। वहाँपर उन्होंने 'सनन्ध' नामसे कुरानकी श्रीमद्भागवतके माध्यमसे एक नवीन व्याख्या हिन्दुस्तानी या हिन्दवीमे लिखी। इस रचनाको उन्होंने औरंगजेबके पास भेजनेका यत्न किया किन्तु इसमें वे सफल न हो सके। औरंगजेबको प्रभावित करनेके लिए उन्होंने पुनः दिल्ली जाकर अपनी वाणियोंको फारसी लिपिमें लिखाकर औरंगजेबके उस्ताद, मुख्य काजी, प्रधान न्यायाधीश आदिके पास भिजवाया। उन्होने कुरानकी शरहोंकी नयी व्याख्या करके भी मुख्य-मुख्य व्यक्तियोंके पास पत्र प्रेषित किया। पुनः उन्होंने अपने १२ शिष्योंको इस कार्यके लिए नियुक्त किया कि वे उनकी वाणियोंको मस्जिदमें जाकर उस समय पढ़ें जब औरंगजेब नमाजके लिए आये। शिष्यों ने जब ऐसा किया तो वे औरंगजेबके पास पकड़कर लाये गये। शिष्योंने औरंगजेबसे एकान्तमें धार्मिक वाद-विवाद करनेकी माँग की, किन्तु इसमें वे सफल नहीं हो सके। अपने इस गुरुतर प्रयत्नमे असफल हो जानेपर स्वामी प्राणनाथने हिन्दू राजाओंको 'जाग्रत्' करनेका निश्चय किया। स्वामी प्राणनाथका राजाओंको 'जाग्रत्' करनेका प्रयत्न केवल पन्नाके महाराज छत्रसालके साथ सफल हुआ। छत्रसाल उनके शिष्य बन गये और उन्होंने स्वामी प्राणनाथको बहुत-सी सम्पत्ति प्रदान की। २९ जून, सन् १६९४ ई० (आषाढ कृष्ण ४, सं० १७५१ वि०)को स्वामी प्राणनाथने चित्रकूटमें अपने सहस्रों शिष्योंके समक्ष समाधि लेकर 'परमधाम'की यात्रा की।

उपर्युक्त विवरणसे स्पष्ट है कि स्वामी प्राणनाथ एक अत्यन्त जागरूक युग-पुरुष थे। वे विश्व-धर्मके आधारपर देशमें वास्तविक एकता स्थापित करना चाहते थे। उनका प्रणामी धर्म अथवा निजानन्द सम्प्रदाय व्यापक मानव-धर्मका ही एक रूप था। इस धर्मके उपास्य क्षर-अक्षरसे परे परब्रह्म श्रीकृष्ण माने जाते हैं। परमधाम इनकी लीलाभूमि है। दशधा भक्ति अर्थात् प्रेमलक्षणा भक्ति उन्हें प्राप्त करनेका परम साधन है। इस सम्प्रदायमें सूक्ष्म

भक्ति भाव और कर्मको प्रधानता दी गयी है। मूर्ति-पूजा उसमें स्वीकृत नहीं है। सम्प्रदायका एकमात्र उपास्य ग्रन्थ 'कुलजमस्वरूप' है, जिसमें स्वामी प्राणनाथकी सम्पूर्ण बानियाँ संगृहीत हैं। स्वामी प्राणनाथकी प्रार्थनासभामें श्रीमद्भागवतके साथ कुरानका पाठ भी होता था। उन्होंने हिन्दू और इस्लाम धर्मोंकी एकता सिद्ध करनेके लिए 'खुलासा', 'खिलवत', 'कयामतनामा' आदि रचनाएँ कीं। धार्मिक ऐक्यकी भावनाको ऐसे व्यावहारिक रूपमें प्रकट करनेवाला कोई दूसरा उदाहरण मध्ययुगमें नहीं मिल सकता। स्वामी प्राणनाथ एक प्रगतिशील समाजसुधारकके रूपमें जाति-पाँति और ऊँच-नीच भावनापर खुलकर प्रहार करते थे। उनकी दृष्टिमें चाण्डाल और ब्राह्मणमें कोई अन्तर नहीं था।

इनकी सम्पूर्ण रचनाएँ 'कुलजमस्वरूप'में संगृहीत हैं। यह संग्रह उनके एक प्रमुख शिष्य केशोदासने उनकी समस्त बानियोंको १४ ग्रन्थोंमें वर्गीकृत करके सन् १६९४ ई०में सम्पादित किया था। यह ग्रन्थ आज भी हस्तलिखित रूपमें प्रत्येक प्रणामी मन्दिरमें पूजा जाता है। प्राणनाथकी रचनामें चाहे सूक्ष्म कलात्मकताके दर्शन न हों, किन्तु सीधी-सादी स्वाभाविक भाषामें उन्होंने काव्य और धार्मिकताका जैसा सफल संगम कराया है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। उनके 'किरन्तन' नामक ग्रन्थमें ऐसे हजारों पद मिलेंगे, जिनमें उनकी उच्च कल्पना, तीव्र अनुभूति और प्रभावशाली अभिव्यंजनाके दर्शन होते हैं। तत्कालीन युगके सांस्कृतिक अध्ययनके लिए प्राणनाथकी रचनाएँ बहुमूल्य सामग्री प्रदान करती हैं।

भाषाकी दृष्टिसे प्राणनाथकी रचनाओंका विशेष महत्त्व है। यद्यपि उनकी भाषा गुजराती थी और उन्हें संस्कृत, फारसी, अरबी, सिन्धी, जाटी आदि भाषाओंका अच्छा ज्ञान था, किन्तु उन्होंने अपनी वाणीका माध्यम हिन्दी भाषाको बनाकर अपनी बहुत बड़ी सूझबूझ प्रकट की थी। आजसे ३०० वर्ष पूर्व खड़ीबोली पर आधारित हिन्दीको सर्वव्यापक और सर्वसुगम राष्ट्रभाषाके रूपमें स्वीकार करके स्वामी प्राणनाथने एक राष्ट्र-निर्माताका कार्य किया था। उन्होंने भाषाके सम्बन्धमें कहा है—"बिना हिसाबें बोलियाँ। मिने सकल जहाँन ॥ सबको सुगम जानके। कहूँगी हिन्दोस्तान ॥ बड़ी भाषा यही भली। जो सबमें जाहिर ॥ करने पाक सबनको। अन्तर माहें बाहिर ॥"

भारतीय संस्कृतिके मूलाधार—समन्वयके दृष्टिकोणको स्वामी प्राणनाथने पूर्णरूपमें अपनाकर संस्कृतिके एक महान् संरक्षक और उद्धारकका कार्य किया था। उनकी बानियाँ समन्वयके सिद्धान्त पर आधारित मानवताकी अमूल्य निधि हैं।

[सहायक ग्रन्थ—कुलजमस्वरूप; हिन्दी अनुशीलन-वर्ष १०, अंक ४, पृ० १-१७; 'बीतक परिचय' शीर्षक लेख; वही, वर्ष ११, पृ० २७-३२, 'बीतककी ऐतिहासिक समीक्षा' शीर्षक लेख : श्री माताबदल जायसवाल।]—मा०ब०जा०

प्राणसंकली—चौरंगीनाथ द्वारा रचित यह कृति 'नाथ सिद्धों की बानियाँ'में संकलित है। इसमें चौरंगीनाथने "सालिवाहन घरे हमरा जनम उतपत्ति⋯", "श्री गुरु मछन्द्रनाथ प्रसादे सिध चौरंगीनाथ ज्योति-ज्योति समाय", तथा "मछन्द्रनाथ गुरु अम्हारा गोरखनाथ भाई" आदि कथनोंके द्वारा अपने सम्बन्धमें महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ दी हैं। इनके आधार पर चौरंगीनाथ तथा 'प्राणसंकली'के रचनाकालका अनुमान किया जा सकता है।

प्राणसंकलीकी रचनाका उद्देश्य बाहर और भीतर व्याप्त मायाको नष्ट करना है। इस रचनामें आदिसे अंत तक सिद्ध संकेतोंका उल्लेख हुआ है। यह सिद्ध संकेत ज्ञानकी प्राप्ति और अज्ञानके विनाशके मूल साधन हैं। पिण्डमें ब्रह्माण्डकी स्थितिकी ओर संकेत करते हुए चौरंगीनाथ आत्मदर्शनकी प्रेरणा देते हैं तथा शरीररचना, नाड़ीचक्र आदिका उल्लेख करते हुए यौगिक क्रियाओंका उपदेश देते हैं। शरीरकी आदिम अवस्थाके अष्टकुल नाग, अष्टपाताल और चतुर्दश भवन हैं। सात द्वीप, सात सागर, सात सरिताएँ, सात पाताल और सात दुर्ग तथा पंच कुल उसीके आश्रित हैं। ज्ञान, विज्ञान, जीव, योनियाँ अनेक नाम रूपोंमें इसी 'काय मध्य'में वर्तमान हैं। शरीरके विभिन्न अंगोंमें भी सिद्धोंकी रंगशाला है। जिह्वामूल, दन्तपटी और तालूके ऊपर गगन-गंगा है, दूसरी ओर यमुना है और इन दोनोंके सम्मिलित केन्द्र पर त्रिवेणी स्थित है। साधक इसी त्रिवेणीमें स्नान कर मुक्त होते हैं। इसके ऊपर शून्य (ब्रह्माण्ड) है और यहीं मन और पवनका संयोग होता है, जिसे चौरंगीनाथने पिण्डमें ब्रह्माण्डका सिद्धान्त कहा है। साधनाके सम्बन्धमें चौरंगीनाथ कहते हैं कि साधनाके द्वारा ब्रह्माग्नि स्फुटित होती है और वह षट्चक्रोंको बेधती हुई ब्रह्म-मण्डलमें प्रवेश करती है। इसके पश्चात् वह गगनको बेधती हुई अन्तमें गगनगुहामें प्रवेश कर सहज आनन्द और मुक्तिके सुखका कारण बनती है। 'प्राणसंकली'के द्वारा सिद्धोंकी साधनाका अच्छा परिचय मिलता है। हिन्दीके सन्त कवियों पर सिद्धोंकी परम्पराके प्रभावके अध्ययनमें 'प्राणसंकली' एक उपयोगी कृति है।

[सहायक ग्रन्थ—पुरातत्त्व निबन्धावली : महापण्डित राहुल सांकृत्यायन; हिन्दी काव्यधारा : महापण्डित राहुल सांकृत्यायन; नाथ सम्प्रदाय : डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी; नाथ सिद्धोंकी बानियाँ : डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी; योग-प्रवाह : डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल।] —यो० प्र० सिं०

प्रियप्रवास—अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' (१८६५–१९४१ ई०) की इस काव्य कृतिको खड़ीबोलीकी प्रथम महत्त्वपूर्ण प्रबन्ध-सृष्टि होनेका गौरव प्राप्त है। इसका प्रकाशन १९१४ ई० में हुआ था। 'हिन्दी साहित्य कुटीर' बनारससे इसके कई संस्करण निकल चुके हैं। 'प्रिय प्रवास' एक बृहत् विप्रलम्भकाव्य है। इसमें कृष्णके मथुरागमनके उपरान्त ब्रजवासियोंकी विरह-व्यथा तथा उनके मनोभावोंका बड़ा मार्मिक अंकन किया गया है। इसकी रचना कोमलकान्त तथा समस्त पदावलीसे सुशोभित संस्कृतके वर्ण-वृत्तोंमें हुई है। रामचन्द्र शुक्ल तथा कुछ अन्य समीक्षक 'हरिऔध'की इस कृतिको किसी समुचित कथानकके अभावमें प्रबन्ध-काव्यके अवयवोंसे अपूर्ण मानते हैं किन्तु महाकाव्यसम्बन्धी कुछ थोड़ी-सी रूढ़ियोंको छोड़ दिया जाय तो इस प्रवास-प्रसंग-गर्भित

कृतिमें कृष्णके जीवनकी व्यापक झाँकियाँ मिलती हैं। 'प्रियप्रवास'की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें कृष्ण-कथाको एक आधुनिक कलेवर देनेकी चेष्टा की गयी है और नायक श्रीकृष्ण तथा नायिका राधाको विश्व-कल्याण की भावनासे परिपूर्ण शुद्ध मानव-रूपमे चित्रित किया गया है। —र० भ०

प्रीतम–दे० 'अली मुहीब खाँ'।

प्रेमघन–दे० 'बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन''।

प्रेत और छाया–इलाचन्द्र जोशीकृत 'प्रेत और छाया' (प्र० १९४४ ई०)का नायक पारसनाथ प्रारम्भमे एक सहज-स्वाभाविक आदर्शवादीके रूपमे सामने आता है किन्तु अपने पिताकी आक्रोशपूर्ण वाणी सुनकर वह सहसा ऐसा भ्रान्त हो उठता है कि उसका जीवन एक दम बदल जाता है। पारसनाथके मनमे जमी हुई हीन भावनाके माध्यमसे कथाकारने इस उपन्यासकी रचना की है। कथानकका आधार लेखकने उपन्यासकी भूमिकामें स्पष्ट कर दिया है—"आधुनिक मनोविज्ञानने अत्यन्त परिपुष्ट प्रमाणोंसे यह सिद्ध कर दिया है कि मानव मनके भीतर अतल गहराईमे एक ऐसा गहन रहस्यमय, अपार और अपरिमित जगत् वर्तमान है, जिसकी अपनी निजी स्वतन्त्र सत्ता है" ('प्रेत और छाया'की भूमिका)।

पारसनाथ अपने जारजपनकी हीन भावनाकी क्षतिपूर्ति करनेकी कुठामे फँसकर किस प्रकार उलटे पथका पथिक बनता है, उसका मन किन विकृतियोंमे उलझ जाता है, इसी तथ्यका 'प्रेत और छाया'मे उद्घाटन है। वह अपनी माँके सतीत्व भंगके भ्रामक विश्वाससे स्त्री-मात्रके प्रति सन्देहशील हो उठता है। वह प्रत्येक नारीमे अपनी माँकी दुराचारिणी प्रतिच्छाया देखता है और अपने घृणित जीवनका सारा दायित्व नारी जातिपर मढ़ देता है। फलतः नारीके नारीत्वसे क्रीडा करना ही उसके मनकी तृप्ति बन जाती है। वह समझता है कि यदि संसारमे कोई भी नारी सती न रह जायगी तो उसका जारजपन अपने आप एक सामूहिक स्वरूप तथा स्वीकृति पा जायगी। वस्तुतः उसका मन कुमारियोंके कौमार्यहरणसे ही सन्तुष्ट न होकर विवाहिताओंको भी भ्रष्ट करनेकी ओर लपकता है। अपने इस दुष्कर्मको वह सामाजिक विद्रोहकी सज्ञा देनेमे भी नहीं चूकता। इस विकृत विद्रोहका बिगुल बजानेमे वह गौरवका अनुभव करता है। छल-बल तथा विश्वासघात या किसी भी निम्न ढंगसे नारीके सतीत्व-हरणको वह अपने जीवनका चरम लक्ष्य मानता है। प्रेम, विवाह, सदाचार उसके लिए सामाजिक छलना मात्र है।

वह सहसा एक दिन यह जानकारी प्राप्त करता है कि उसके पिताने योंही क्रोधमें उसे जारज कह दिया था, यह सत्य नहीं, नितान्त मिथ्या है। इसके बाद उसके मनमे क्षोभ, ग्लानि और पश्चात्तापकी एक ऐसी तीव्रतम प्रतिक्रिया होती है कि वह एक वेश्यासे विधिपूर्वक विवाह करके सुख और शान्तिमय जीवन व्यतीत करने लगता है। इस परिवर्तनका आनयन उपन्यासकारने किसी जादूकी छड़ीसे नहीं किया, बल्कि इसके लिए उसे नाना जीवन-चक्रों एवं घात-प्रतिघातोंके तुमुल द्वन्द्वोंका सविस्तार वर्णन एवं उद्घाटन करना पड़ा है।

पारसनाथरूपी सोनेको उसकी सारी विकृतियों (मिलावटों)से अलगकर उसे उसके शुद्ध, सात्त्विक तथा मौलिक रूपमें उपस्थित करना इस उपन्यासकी चरम एवं परम सफलता है। मनुष्यकी अन्तश्चेतनाके बोधका महत्त्व ही इसका उद्घोष है। —गां० प्र० पा०

प्रेमचंद–(१८८०-१९३६ ई०)। हिन्दीके उपन्यास-साहित्यमें 'प्रेमचन्द' (वास्तविक नाम धनपतराय)का शीर्ष स्थान है। उनका जन्म १८८० ई० में बनारस (वाराणसी) से पाँच-छः मील दूर लमही नामक गाँवमें हुआ था। मृत्यु सन् १९३६ ई०मे काशीमे हुई। पिताका नाम मुंशी अजायबराय और माताका नाम आनन्दी देवी था। खेती उनके घरका मुख्य व्यवसाय था किन्तु निर्धनताके कारण परिवारका पालन-पोषण अत्यन्त कठिनाईके साथ हो पाता था। विवश होकर पिताको नौकरी करनी पडी। उन्हे वही डाकखानेमें क्लर्कीका स्थान मिला और जिस समय प्रेमचन्दका जन्म हुआ, उस समय उनके पिताको बीस रुपया मासिक वेतन मिलता था। वे यद्यपि अब किसान न रह गये थे, तो भी उनके घरका वातावरण किसानोंका-सा और जीवन-स्तर निम्न मध्यवर्गका था। इसीलिए प्रेमचन्दको बाल्यावस्थामे ही न केवल कृषक-जीवनके वातावरणसे परिचय प्राप्त हुआ, वरन् निम्न मध्यवर्गीय परिवारमें पालित-पोषित होनेके कारण जीवनकी कठिनाइयोंका भी अनुभव हुआ और विपत्तियाँ झेलनेकी शक्ति मिली। उनकी छोटी-छोटी अभिलाषाएँ भी प्रायः अपूर्ण रह जाती थीं। अपूर्ण अभिलाषाओं और दरिद्र जीवनको लेकर वे जीवन-पथपर अग्रसर हुए। प्रेमचन्दकी तीन बहनें भी थीं किन्तु दोकी तो अकाल मृत्यु हो गयी और तीसरी बहुत दिनोंतक जीवित रही। पाँचवें वर्षसे उनकी शिक्षा प्रारम्भ हुई। पुरानी पीढीके होनेके कारण उनके पिताको उर्दूके प्रति अत्यधिक रुचि थी। अतएव प्रेमचन्दको भी प्रारम्भमे उर्दूकी शिक्षा दी गयी। धीरे-धीरे प्रेमचन्द इस भाषापर अधिकार प्राप्त करने लगे। जब वे आठ वर्षके थे तो छः महीनेकी बीमारी के पश्चात् उनकी माताका देहान्त हो गया। इस प्रकार अपूर्ण अभिलाषाओं और दरिद्र जीवन सहन करनेके साथ-साथ वे बचपनसे ही मातृ-स्नेहसे वंचित रह गये। इन अनुभवोंकी अभिव्यक्ति आगे चलकर उनके साहित्यमें भी हुई। चार वर्ष बाद उनके पिताकी बदली जीमनपुर हो गयी। वहाँ उनके पिताने एक बहुत-ही गन्दा मकान डेढ़ रुपया मासिक किरायेपर लिया। मकान कितना गन्दा रहा होगा, इसका अनुमान इस बातसे लगाया जा सकता है कि वे स्वयं एक तम्बाकूवालेके मकानमें चले जाया करते थे। शिवरानी देवीके कथनानुसार बचपनसे ही उन्हें पढ़ने-लिखनेमें रुचि थी। इसलिए तम्बाकूवालेके यहाँ तम्बाकूके पिण्डोंके पीछे बैठकर 'तिलिस्म-इ होशरुबा' पढ़ा करते थे। यह बृहत् तिलिस्मी रचना उन्होंने बड़े चावसे पढ़ी। तेरह वर्षकी अवस्थातक प्रेमचन्दने उर्दूके कई प्रसिद्ध ग्रन्थ पढ़ डाले थे। रतननाथ सरशार, मिर्जा रुसवा और मौलाना शररकी रचनाओंका उन्होंने विशेष रूपसे अध्ययन किया।

सरशारकृत 'फसाने आजाद' का तो उन्होंने आगे चलकर 'आजाद कथा' के नामसे हिन्दीमें अनुवाद भी किया। वे निर्धन थे, किन्तु परिश्रम और ईमानदारीके साथ रुपया पैदा कर उपन्यास पढते थे। कठिनाइयोंसे वे घबराये नहीं। इन सब आदर्शोंके उदाहरण उनके साहित्यमें बराबर मिलते हैं। कठिनाइयोंकी भीषणता जितनी बढ़ती गयी, उतना ही उनका अध्ययन-प्रेम बढता गया। यहाँतक कि जब कुछ पुराणोंके उर्दू-अनुवाद प्रकाशित हुए तो वे भी उन्होंने पढ डाले।

जीवनके पथरीले और कण्टकपूर्ण ऊबड़-खाबड़ मार्गपर चलते समय प्रेमचन्द अपने लहू-लुहान पैरके साथ ही हृदय लिए निरन्तर अपने लक्ष्यकी ओर बढते गये। वे ट्यूशन करते थे, अँधेरी कोठरीमें तेलकी कुप्पीसे पढते थे किन्तु शिक्षा प्राप्त करनेमें शिथिलता प्रदर्शित न करते थे। जैसे-तैसे उन्होंने १९१० ई० में इण्टरकी परीक्षामें सफलता प्राप्त की। इसी समय उन्होंने महाजनोंके कटु व्यवहारका भी अनुभव किया। निर्धनताके कारण उन्हें महाजनोंसे उधार लेना पड़ता था। उस समय गाँव-गाँवमें महाजनोंकी तूती बोलती थी। इसी रुपयेके बलपर वे गरीबोंका खून चूसते और अत्याचार करते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रेमचन्दने व्यक्तिगत अनुभवके आधारपर ही महाजनोंका चित्रण अपने साहित्यमें किया। इण्टर परीक्षामें सफलता प्राप्त करनेसे पूर्व उन्होंने अठारह रुपया मासिक वेतनपर एक स्कूलमें नौकरी की।

१९०१ ई० से प्रेमचन्दने अपना साहित्यिक जीवन प्रारम्भ किया। अपनी पहली पत्नीसे असन्तुष्ट रहनेके कारण उन्होंने उसे १९०५ ई० में त्याग दिया और शिवरानी देवीसे विवाह किया, जो उस समय बाल-विधवा थीं। १९१९ ई० में उन्होंने बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की। उनकी जीविकाका प्रधान साधन अध्यापन था। गोरखपुर, कानपुर, बनारस, बस्ती आदि स्थानोंमें वे अध्यापक रहे। साथ ही कुछ वर्ष डिस्ट्रिक्ट बोर्डके सब-इन्सपेक्टरके रूपमें महोबे का जीवन भी उन्होंने अपनी आँखोंसे देखा। अध्यापक और सब-इन्सपेक्टरके रूपमें प्रेमचन्दने न केवल अपने जीवनमें कटु अनुभव प्राप्त किये, वरन् इतने बड़े भूभागकी जनताकी निर्धनताका हृदय-द्रावक दृश्य भी देखा, जिसका चित्रण उन्होंने अपने साहित्यमें किया है।

अनेकानेक कठिनाइयों और संघर्षोंका सामना करते हुए भी प्रेमचन्दने आत्म-गौरवकी रक्षा की। आपके विचार बड़े ही उदार थे। आपके छोटे भाईका नाम श्री महताब-राय था। ये विमाताके पुत्र थे। प्रेमचन्दजी बिलकुल सीधे-साधे ढंगसे रहते थे, पर भाईको अच्छासे अच्छा खिलाने-पहनानेमें जरा भी संकोच नहीं करते थे। उनका यह गुणगान महताबरायजी बहुधा किया करते थे। शिव-रानी देवीकृत 'प्रेमचन्द—घरमें' (१९४४ ई०) द्वारा उनके व्यक्तित्वपर बड़ा अच्छा प्रकाश पड़ता है। वे अपने समयके सभी प्रगतिशील विचारोंके समर्थक थे और उनकी सूक्ष्म दृष्टि सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक, साहित्यिक आदि सभी क्षेत्रों तक व्याप्त थी। कुछ लोगोंने उन्हें साम्प्रदायिक दृष्टिकोणसे देखने और परखने-की चेष्टा की है। यह प्रेमचन्दके प्रति घोर अन्याय है। उनके साहित्यका अध्ययन करनेपर यही निष्कर्ष निकलता है कि वे संकीर्ण साम्प्रदायिकतासे बहुत ऊपर थे। उन्होंने विचार-स्वातन्त्र्यकी रक्षा करने और लेखककी स्वाधीनताको बनाये रखनेकी बराबर चेष्टा की। अंग्रेजी सरकारने कई बार उनका दमन करना चाहा, किन्तु वे कभी भी नतमस्तक न हुए। कुछ दिनोंतक उन्होंने काशी विद्यापीठमें, जो एक राष्ट्रीय शिक्षण-संस्था है, अध्यापन कार्य किया। लेखन-कार्यके अतिरिक्त उन्होंने 'जमाना', ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी द्वारा प्रकाशित 'मर्यादा', 'माधुरी', 'जागरण' और 'हंस' नामक पत्रोंका समय-समयपर सम्पादन-भार ग्रहणकर साहित्यके उच्च आदर्शोंकी स्थापना की। उर्दूमें 'नवाबराय' (जो धनपतराय नामका एक प्रकारसे अनुवाद ही है) के नामसे लिखते थे। कहा जाता है, उन्हें 'प्रेमचन्द' नाम 'जमाना'के सम्पादक दयानरायन निगम ने दिया था। अंग्रेज सरकारकी धमकियोंके बाद ही उन्होंने प्रेमचन्द नामसे लिखना शुरू किया था। १९३० ई० में उन्होने 'हंस' का प्रकाशन प्रारम्भ कर दिया था। १९३६ ई० में रोग-शय्यापर पड़े रहनेपर भी उन्होंने 'हंस'की जमानतके लिए आवश्यक धन का प्रबन्ध किया। 'हंस' उन्हे बहुत प्रिय था और उसे वे किसी भी प्रकार बन्द नहीं होने देना चाहते थे। 'हंस'के लिए ही उन्होंने फिल्मी दुनियामे कदम रखा था, किन्तु उनका मन वहाँ रमा नहीं। आर्थिक दृष्टिसे भी उन्हे वहाँ कटु अनुभव हुए। निर्धनताकी यातनाएँ सहन करते हुए भी उन्होंने अपना आत्म-सम्मान और आत्म-गौरव सुरक्षित रखा। साहित्य और कलाके क्षेत्रमें उन्होने वणिक्-वृत्तिको कभी प्रश्रय न दिया।

प्रेमचन्दने रवीन्द्रनाथ टैगोरकी कई कहानियोंके उर्दू-अनुवाद प्रकाशित कराये। उन्होंने स्वयं कई मौलिक कहानियाँ भी उर्दूमे लिखीं, जो कानपुरके 'जमाना' और इण्डियन प्रेस, इलाहाबादके 'अदीब' नामक पत्रोंमे प्रकाशित हुईं। प्रेमचन्द की सबसे पहली मौलिक कहानी 'ससारका अनमोल' रत्न बताई जाती है, जो १९०७ ई०में 'जमाना'में छपी थी। १९०८ ई० मे उनका 'सोज़ेवतन' नामक उर्दू-कहानी-संग्रह प्रकाशित हुआ, जो राष्ट्रीय भावनाओंसे पूर्ण था। इस संग्रहके कारण प्रेमचन्दको सरकारका कोप-भाजन बनना पडा। इसके बाद ही वे प्रेमचन्द नामसे 'जमाना'मे सामाजिक कहानियाँ लिखने लगे। उनके कई जीवनी-लेखकोंने बताया है कि जब वे बस्तीमे थे तो उनकी मन्नन द्विवेदी गजपुरीसे, जो उस समय डोमरियागंजमें तहसीलदार थे, भेंट हुई और उन्हींकी प्रेरणासे प्रेमचन्द ने अपनी कहानियोंको हिन्दीमें रूपान्तरित करके प्रकाशित कराया। हिन्दीमें उनकी कहानियोंको लोकप्रिय होते देर न लगी। इसके साथ-साथ उनके जीवनी-लेखकोंने इस बात का भी उल्लेख किया है कि जब उनकी बदली गोरखपुर हुई तो उन्होंने महावीरप्रसाद पोद्दारकी प्रेरणासे 'सेवा-सदन' उपन्यास हिन्दीमें लिखा। तबसे वे हिन्दीमें बराबर लिखने लगे और उनकी लोकप्रियतामें भी अनुदिन वृद्धि

होती गयी। तदनन्तर उनके अनेक उपन्यास और कहानी-संग्रह हिन्दीमें प्रकाशित हुए और हिन्दीकी पत्र-पत्रिकाओंमें उनकी रचनाएँ आदरपूर्ण स्थान प्राप्त करने लगीं। आपने 'रूठी रानी' नामक ऐतिहासिक उपन्यास 'कृष्ण', 'वरदान', 'प्रतिज्ञा' आदि उपन्यास लिखे। इन्हें सन् १९०० ई० और १९०६ ई०के बीचमें लिखित रचनाओंके रूपमें माना जा सकता है। हिन्दीमें उनकी तीसरी औपन्यासिक कृति 'सेवासदन' है। इस उपन्यासका प्रकाशन गोरखपुरमें सन् १९१६ ई०में हुआ था। यद्यपि उसके रचना कालके रूपमें सन् १९१४ ई०का उल्लेख मिलता है। उसका एक प्राचीन संस्करण सन् १९१८ ई०का भी है। 'प्रेमाश्रम' की रचना तो सन् १९१८ ई०मे हुई बतायी जाती है किन्तु सन् १९२२ ई०में यह उपन्यास कलकत्तासे प्रकाशित हुआ। 'निर्मला' १९२३ ई०में लिखी गयी किन्तु १९२७ ई०में वह लखनऊसे छपी। १९२८ ई०मे उसका एक संस्करण इलाहाबादसे भी निकला। 'रंगभूमि'की रचना-तिथि १९२४-२५ ई० है और सर्वप्रथम यह उपन्यास लखनऊसे प्रकाशित हुआ। लखनऊसे ही उसके कई और संस्करण निकल चुके है। 'रंगभूमि'के पश्चात् 'कायाकल्प' १९२८ ई०मे और 'गबन' १९३० ई०में प्रकाशित हुए। 'गबन'का एक संस्करण १९३१ ई०मे बनारससेभी मुद्रित हुआ। 'कर्मभूमि' और 'गोदान' क्रमशः १९३२ ई० और १९३६ ई०मे बनारससे छपे। 'प्रेमचन्द'का अन्तिम उपन्यास 'मंगल सूत्र' (१९३६ ई०) अपूर्ण है। आपके कई उपन्यासोंके संक्षिप्त संस्करण भी प्रकाशित हुए हैं।

उपर्युक्त औपन्यासिक कृतियोके अतिरिक्त प्रेमचन्दके अनेक कहानी-संग्रह मिलते है, जिनमें कुल मिलाकर लगभग ३०० कहानियाँ है। उनकी कहानियोंके संग्रह इस प्रकार है—'सप्तसरोज' (१९१७ ई०, गोरखपुर), 'नवनिधि' (१९१८ ई०, बम्बई), 'प्रेमपूर्णिमा' (१९१८ ई०, १९२० ई० कलकत्ता), 'बडे घरकी बेटी', 'लाल फीता', 'नमकका दारोगा' (१९२१ ई०, कलकत्ता), 'प्रेम पचीसी' (१९२३ ई०, कलकत्ता), 'प्रेम प्रसून' (१९२४ ई०, लखनऊ), 'प्रेम द्वादशी' (१९२६ ई०, लखनऊ), 'प्रेम-प्रतिमा' (१९२६ ई०, बनारस, बादको लखनऊसे भी), 'प्रेम-प्रमोद' (१९२६ ई०, इलाहाबाद), 'प्रेम-तीर्थ' (१९२९ ई०, बनारस), 'पाँच फूल' (१९२९ ई०, बनारस), 'प्रेम चतुर्थी' (१९२९ ई०, कलकत्ता), 'प्रेम प्रतिज्ञा' (१९२९ ई०, बनारस), 'सप्त सुमन' (१९३० ई०, बनारस), 'प्रेम पंचमी' (१९३० ई०, लखनऊ), 'प्रेरणा' (१९३२ ई०, बनारस), 'समर-यात्रा' (१९३२ ई० बनारस और कलकत्ता), 'पंच प्रसून' (१९३४ ई०, कलकत्ता) और 'नवजीवन' (१९३५ ई० कलकत्ता)। इसके अतिरिक्त 'बैंकका दिवाला' (१९२४ ई०) तथा 'शान्ति' (१९२७ ई०) शीर्षक कहानी पुस्तकें कलकत्तासे और 'अग्नि समाधि' (१९२९ ई०) लखनऊसे प्रकाशित हुई। 'प्रेमचन्द'की मृत्युके बाद भी उनकी कहानियोंके कई सम्पादित संस्करण निकले, 'कफन और शेष रचनाएँ' (१९३७ ई०, बनारस) और 'नारी जीवनकी कहानियाँ' (१९३८ ई०, बनारस)। 'गल्प-रत्न'का एक सम्पादित संस्करण १९२९ ई०में बनारस और 'प्रेम पीयूष' का एक सम्पादित संस्करण १९४१ ई० में बनारससे छपा। 'प्रेमचन्दकी सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ' (१९३३ई०) शीर्षक एक संग्रह लाहौरसे मुद्रित हुआ। यह संग्रह स्वयं प्रेमचन्द द्वारा संकलित किया गया था। 'गल्प-समुच्चय' (१९२८ ई०), 'हिन्दीकी आदर्श कहानियाँ' (१९२७ ई०, बनारस), 'गल्प-संसार-माला' (१९३८ ई०, बनारस) आदि हिन्दीके अनेक संग्रहोंमे भी 'प्रेमचन्द्रकी कहानियाँ' मिलती हैं। उनके एक कहानी-संग्रह 'ग्राम्य जीवनकी कहानियों'का रचना-काल अज्ञात है। प्रेमचन्दकी लगभग सभी कहानियोंका संग्रह 'मानसरोवर' नामसे आठ भागोंमें सरस्वती प्रेस, बनारससे प्रकाशित हो चुका है। कहानियोंमें नगरके निम्न मध्यवर्गके अत्यन्त सजीव चित्रोंके अतिरिक्त बुन्देलखण्डके वीरतापूर्ण जीवन और ऐतिहासिक घटनाओंका सजीव चित्रण हुआ है। उनमें मानव-प्रकृतिकी मार्मिक अभिव्यक्ति मिलती है।

उपन्यासकार और कहानी-लेखकके अतिरिक्त प्रेमचन्द नाटककार, निबन्धकार, सम्पादक, जीवनी-लेखक और अनुवादक भी थे। नाटकोंके नाम हैं : 'संग्राम' (१९२३ ई०, कलकत्ता), 'कर्बला' (१९२४ ई०, लखनऊ) और 'प्रेमकी वेदी' (१९३३ ई०, बनारस)। उनके आलोचनात्मक लेख 'जागरण' और 'हँस'की फाइलोंमें मिलते हैं। उनमेंसे कुछ का संग्रह 'कुछ विचार' (१९३९ ई०, बनारस) में है। उनकी सम्पादन-कलाके 'जागरण' और 'हँस' ज्वलन्त उदाहरण है। जीवनियोंमें 'महात्मा शेख सादी' (१९१८ ई०, गोरखपुर), 'दुर्गादास' (१९३८ ई०, बनारस), और 'कलम, तलवार और त्याग' उल्लेखनीय है। 'जीवन-सार' शीर्षक आत्म-कहानी प्रेमचन्दने १९३३ ई० के 'हँस' के आत्मकथांकमें प्रकाशित की। अनुवादोंमें : 'सुखदास' (जॉर्ज इलियटके 'साइलस मार्नर'का संक्षिप्त रूपान्तर, १९२० ई०, बम्बई), 'टॉलस्टायकी कहानियाँ' (१९२३ ई०, कलकत्ता), 'अहंकार' (अनातोले फ्रांसकृत 'थायस'का अनुवाद, १९२३ ई०, कलकत्ता), 'आजादकथा' (रतन नाथ सरशारकृत 'फसान-ए-आजाद'का अनुवाद १९२७ ई० बनारस), 'हड़ताल' (गॉल्सवर्दीका नाटक, १९३० ई०, इलाहाबाद), 'चाँदीकी डिबिया' (गॉल्सवर्दीका नाटक, १९३१ ई०, इलाहाबाद), 'न्याय' (गॉल्सवर्दीका नाटक, १९३१ ई०, इलाहाबाद), और 'सृष्टि का आरम्भ' (बर्नार्ड शॉका नाटक, १९३९ ई०, बनारस) हैं। उनकी शेष अन्य रचनाएँ स्फुट और बालोपयोगी हैं—'मनमोदक' (सं०—१९२६ ई०, इलाहाबाद), 'कुत्तेकी कहानी' (१९३६ ई०, बनारस), 'जगलकी कहानियाँ' (१९३८ ई०, बनारस) और 'रामचर्चा' (१९४१ ई०, बनारस)। 'दुर्गादास' भी वास्तवमें बालोपयोगी है। स्फुट रचनाओंमे 'स्वराज्यके फायदे' (१९२१ ई०, कलकत्ता) विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। अनूदित एवं बालोपयोगी पुस्तकोंमे प्रेमचन्दके विचारोंकी सामान्य रूपरेखाका परिचय मिलता है।

प्रेमचन्दने जिस समय कथा-साहित्यके क्षेत्रमें पदार्पण किया, उस समय हिन्दीमें कहानियोंकी तो कोई पुष्ट-परम्परा

नहीं थी किन्तु उपन्यासोंकी अपनी एक परम्परा थी, जो भारतेन्दु हरिश्चन्द्रकृत 'पूर्ण प्रकाश और चन्द्रप्रभा' नामक उपन्यासमें चली आ रही थी। नाटककी भाँति हिन्दी उपन्यासका जन्म भी सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक आन्दोलनोंकी गोदमें हुआ था। 'पूर्णप्रकाश और चन्द्रप्रभा' में वृद्ध-विवाहका खण्डन किया गया है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्रके बादके लेखकोंने भी या तो सामाजिक तथा गार्हस्थ्य जीवनसे सम्बद्ध कथानक चुने और अनेक व्यक्तिगत एवं सामूहिक दोषोंका परिहार करनेकी चेष्टा की या भारतेन्दुकालीन भारतीय पुनरुत्थानके प्रथम चरण-की भावनासे प्रेरित होकर साहित्य, कला, शिल्प आदिके क्षेत्रोंमें देशी-विदेशी विद्वानों द्वारा की गयी खोजोंके फल-स्वरूप उत्पन्न आत्मगौरवकी उदात्त-भावना ग्रहण कर और राजनीतिक आन्दोलनोंके फलस्वरूप उत्पन्न तत्कालीन राष्ट्रीय-भावनासे ओतप्रोत होकर ऐतिहासिक कथानकोंके आधारपर मौलिक अथवा अनूदित उपन्यासोंकी रचना कर अपनी व्यक्तिगत आन या देशकी आनपर मर-मिटनेवालोंके चित्र प्रस्तुत किये। उन्नीसवीं शताब्दीके उपन्यास-लेखकोंने देशका भावी सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक मार्ग प्रशस्त करनेकी अपने युगके अनुसार चेष्टा की। नवीन पाश्चात्य शिक्षाके अपने दोष थे किन्तु उस शिक्षासे कुछ लाभ भी हुआ, इस बातसे इनकार नहीं किया जा सकता। एक लाभ था वैज्ञानिक दृष्टिका विकास। वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे प्रेरित होकर उन्नीसवीं शताब्दीके उपन्यास-लेखकोंने मध्ययुगीन पौराणिकता और तज्जनित कुरीतियों तथा कुप्रथाओंका उन्मूलन कर व्यक्तिगत एवं सामूहिक चरित्रकी दृढ़ आधार-शिलापर राष्ट्रकी नींव स्थापित करनी चाही। प्रेमचन्द कम-से-कम अपनी प्रारम्भिक रचनाओंमें—'प्रतिज्ञा', 'वरदान', 'सेवासदन' और 'निर्मला' में—उन्नीसवीं शताब्दीके उपन्यास-लेखकोंकी परम्पराकी एक जाज्वल्यमान कड़ीके रूपमें थे किन्तु ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होता गया, नये युगकी नयी समस्याएँ ज्यों-ज्यों सामने आती गयीं, प्रेमचन्दका दृष्टिकोण भी निरन्तर व्यापक होता गया—यद्यपि उन्नीसवीं शताब्दीका समाज-सुधारवादी दृष्टिकोण वे अपनी अन्य रचनाओं 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि', 'कायाकल्प', 'कर्मभूमि' और यहाँतक कि 'गोदान'में भी पूर्णतः नहीं छोड़ पाये। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उन्नीसवीं शताब्दीके लेखकोंकी अपेक्षा प्रेमचन्दका दृष्टिकोण अधिक गहराई लिये हुए है। कहनेका तात्पर्य यह है कि हम उन्हें पूर्ववर्ती परम्परासे एकदम अलग नहीं कर सकते। हाँ, उस परम्परा-सूत्रका उन्होंने अपने युगके अनुसार विकास अवश्य किया। एकदम नयी स्लेटपर उन्होंने लिखना शुरू किया हो, ऐसी बात नहीं है। यहाँतक कि उपन्यास-कलाकी दृष्टिसे भी उनके 'प्रतिज्ञा' और 'वरदान' जैसे उपन्यासोंकी कला बहुत-कुछ उन्नीसवीं शताब्दीके उपन्यासों जैसी है किन्तु कलाकी दृष्टिसे प्रेमचन्दने बहुत शीघ्र अपनी मौलिकता प्रकट की। कथा-संगठन, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन आदि-की दृष्टिसे वे अपने पूर्ववर्ती लेखकोंको पीछे छोड़कर आगे बढ़ गये। कहानियोंमें निस्सन्देह उन्होंने अपनी पूर्णतः मौलिक प्रतिभाका परिचय दिया।

प्रेमचन्द जीवन-सत्यका अनुसरण करनेवाले कलाकार थे। वे पूर्णतः देशकी मिट्टीसे बने हुए थे। उन्होंने बाह्य प्रभाव स्वीकार किये—विचारों और कला दोनों ही दृष्टियोंसे, किन्तु उन्हें अपना बनाकर। इसपर भी उनके साहित्यकी विशेषता यह है कि उसका आनन्द केवल भारतवासी ही नहीं, मानवमात्र उठा सकता है, क्योंकि युग-सत्यका अनुसरण करते हुए भी वे सार्वभौम मानवताके कट्टर समर्थक थे। प्रेमचन्द-साहित्यका अध्ययन करनेके पश्चात् यह एक महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकलता है कि वे परिवारको, जो व्यक्तियों द्वारा निर्मित होता है, जीवनका केन्द्र-विन्दु मानकर चले हैं। उनके जीवनकी परिधि इसी केन्द्र-विन्दु से निरन्तर प्रसारकी ओर उन्मुख होती है। किसी परिवार या किसी व्यक्तिका केवल अपने तक सीमित रहना संकीर्णता और सकुचित एवं सीमित दृष्टिकोणका परिचायक है! प्रेमचन्दकी दृष्टिसे प्रत्येक परिवार और व्यक्तिको अपनी-अपनी सामर्थ्यके अनुसार समाज और राष्ट्रकी सेवा करनी चाहिए—भारतीय संस्कृतिके अनुसार माने गये सभी ऋण चुकाने चाहिए। उनका परिवार और व्यक्ति समाज और राष्ट्र-सापेक्ष है। समष्टिगत जीवनको महत्त्व प्रदान करते हुए भी प्रेमचन्दने व्यक्तिकी सत्ता भुला नहीं दी। प्रेमचन्द-साहित्यमें अपनी सारी तत्कालीन आशाओं तथा निराशाओं और आकांक्षाओं सहित १९०० ई० और १९३६ ई०के बीचका भारतीय जीवन और स्वतन्त्रता-सग्राममें रत एक पतित एवं पराधीन देशका भावुकतापूर्ण आदर्श व्यक्त हुआ है और कलाकी दृष्टिसे उसमें नवीनता है। उन्होंने एक अत्यन्त उच्च धरातलपर आसीन होकर जीवनके मूल तत्त्वों और सत्यका सामंजस्यपूर्ण दृष्टिकोणसे अनुसन्धान किया। विविध सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षणिक आदि समस्याएँ इसी सामंजस्यपूर्ण सत्यान्वेषणकी प्रधान धाराकी सहायक धाराओंके रूपमें हैं। इन सब समस्याओंके बीच वे मानवकी मानवता खोजते हैं, जो सेवा-भाव, आत्मगौरव, प्रेम और अहिंसापर आधारित है। इस मानवोचित मार्गसे विचलित अपने प्रिय-से-प्रिय पात्रको भी वे नबीह किये बिना नहीं रहे। अपने सभी पात्रोंकी दुर्बलताओं और सबलताओंके बीच उन्होंने उनमें छिपा हुआ मानव उभार कर रख दिया है। पतितसे पतित और स्वार्थ-साधनामें लिप्त पात्र भी अन्तमें कोई ठोकर खाकर अपना मानव रूप प्रकट करने लगता है। वे घूरा कुरेद कर सोना निकालनेकी तलाशमें रहते हैं। जहाँ ऐसा नहीं किया या हो सका, वही जीवन खोखला, सारहीन और विनाशोन्मुख है। उसका दारुण अन्त तुरन्त पाठकोंके सामने आ जाता है। अन्याय, अत्याचार, दमन, शोषण, पर-पीड़ा आदिका विरोध करते हुए भी वे समन्वय के पक्षपाती थे। वर्ग-संघर्ष अथवा किसी 'वाद'की दृष्टिसे उन्हें देखना उनके साथ अन्याय करना और उन्हें संकीर्ण परिधिमें बाँधना है, उनके व्यक्तित्वको कम करना है।

[सहायक ग्रन्थ—प्रेमचन्दकी उपन्यास कला : जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज' (१९३३ ई०); प्रेमचन्द—घरमें : श्रीमती शिवरानी देवी (१९४४ ई०); प्रेमचन्द—एक अध्ययन

(१९४४ ई०), प्रेमचन्द (१९४८ ई०), कलाकार प्रेमचन्द (१९५१ ई०) : रामरतन भटनागर ।] —ल० सा० वा०

प्रेमशंकर–'प्रेमाश्रम' उपन्यासमें प्रेमशंकरके विचार एक प्रकारसे प्रेमचन्दके ही विचार हैं। वह उपन्यासका प्रधान आदर्श पात्र है। वह अमेरिकासे अपने विचारोंमें परिवर्तन लेकर लौटा है किन्तु वह प्रचलित अर्थमें क्रान्तिकारी न होकर, सुधारवादी है और अहिंसा तथा हृदय-परिवर्तनमें विश्वास करता है। वह शान्त-प्रकृति, विचारशील है, पीड़ित जनताके प्रति सहानुभूति रखता है और विचार-स्वातन्त्र्यमें विश्वास करता है। साहस और निर्भयता उसके जीवनके अंग हैं। उसमें व्यावसायिक बुद्धि नहीं है। अपने सिद्धान्त-प्रेमके कारण वह भ्रातृ-प्रेम में अन्तर नहीं आने देता। अपनी पत्नी श्रद्धाके मिथ्या विश्वाससे उसे हार्दिक दुःख अवश्य होता है किन्तु इतने पर भी इस बातका ध्यान रखता है कि उसे किसी प्रकारका आत्मिक कष्ट और मानसिक सन्ताप न हो। अपने धैर्य द्वारा ही वह श्रद्धाके हृदयमे परिवर्तन उपस्थित करता है। वह न्यूनतम आवश्यकताओंमें विश्वास करता है। इन्द्रिय-सुखका परित्याग, सेवा, संयम और साधना उसके जीवनका लक्ष्य है। वह हर एक व्यक्तिका उज्ज्वल पक्ष देखता है और अपने सम्पर्कसे बुरेसे बुरे व्यक्तिमें भी अनन्त ज्योतिका प्रकाश भर देता है। इसीलिए सब लोग उसे आदमी नहीं, फरिश्ता मानते हैं। —ल० सा० वा०

प्रेमसखी–ये शृंगवेरपुर (सिंगरौर) के समीपस्थ किसी ग्रामके निवासी ब्राह्मण थे और १७३४ ई० के आसपास विद्यमान थे। छोटी आयुमें ही विरक्त होकर ये चित्रकूट चले गये। महात्मा रामदास गूदरसे दीक्षा लेकर इन्होंने कुछ काल तक चित्रकूटमें निवास किया। यहाँसे ये मिथिला-अयोध्या होते हुए पुनः चित्रकूट चले आये और फिर इन्होंने उसे ही अपनी मुख्य साधनाभूमि बनाया। अपने समयमें ये एक पहुँचे हुए भक्तके रूपमें विख्यात थे। कहते है अवधके नवाब सआदत अली खाँ ने महात्मा रामप्रसादसे प्रशंसा सुनकर इनके पास सवा लाखकी भेंट भेजी थी। उसे अस्वीकार करके इन्होंने अपनी तीव्र विरक्तिका परिचय दिया था। इनकी तीन रचनाएँ ही अब तक प्रकाशमें आ सकी हैं—'होली', 'कवित्तादि प्रबन्ध' और 'श्री सीताराम नखशिख'। इनमे वर्णित रामकी 'शृंगार-लीलाएँ' प्रेमसखीकी वास्तविक अनुभूतिका आभास देती हैं। ब्रजभाषाका बहुत ही निखरा हुआ, प्रवाहपूर्ण और अलंकृत रूप इनकी कृतियोंमें मिलता है। —भ० प्र० सिं०

प्रेमसागर–सन् १५६७ ई० में चतुर्भुज मिश्रने ब्रजभाषामें दोहा-चौपाइयोंमें भागवतके दशम स्कन्धका अनुवाद किया था। उसीके आधार पर लल्लूलालने १८०३ ई० में जान गिलक्राइस्टके आदेशसे फोर्ट विलियम कालेजके विद्यार्थियोंके पढ़नेके लिए 'प्रेमसागरकी' रचना की। इसमें भागवतके दशम स्कन्धकी कथा ९० अध्यायोंमें वर्णित है। इस ग्रन्थको लल्लूलालने अपने संस्कृत यन्त्रालय (कलकत्ता) से सन् १८१० ई० में प्रकाशित किया। आगे चलकर योगध्यान मिश्रने अपने कुछ संशोधनोंके साथ १८४२ ई० में इसका पुनर्मुद्रण किया। उसके आवरणपृष्ठपर लिखा है—"श्री योगध्यान मिश्रेण परिष्कृत्य यथामति समंकित लालकृतं प्रेमसागरपुस्तकं।" लल्लूलालने अपने प्रकाशित संस्करणकी भूमिकामें उसकी भाषाके सम्बन्धमें लिखा है—"श्रीयुत गुन-गाहक गुनियन-सुखदायक जान गिलकिरिस्त महाशयकी आज्ञासे सं० १८६० में श्री लल्लूलालजी लाल कवि ब्राह्मन गुजराती सहस्र-अवदीच आगरेवालेने विसका सार ले, यामिनी भाषा छोड़, दिल्ली आगरेकी खड़ीबोलीमें कह, नाम 'प्रेमसागर' धरा।" अबतक इस ग्रन्थके अनेक संस्करण हो चुके हैं, जिनमेंसे काशी नागरी प्रचारिणी सभाका संस्करण सबसे प्रामाणित माना जा सकता है, क्योंकि उसके सम्पादकने उसका पाठ लल्लूलाल द्वारा प्रकाशित संस्करणके अनुसार ही रखा है।

'प्रेमसागर'की जो प्रति १८१० ई० में प्रकाशित हुई थी, उसके आवरण पृष्ठपर 'हिन्दुवी' शब्द अंकित है। इससे यह स्पष्ट है कि लेखकने 'प्रेमसागर'की खड़ीबोलीको हिन्दी ही माना है। यामनी भाषासे तात्पर्य फारसी-अरबी-तुर्कीके शब्दोंसे ही था, जिनका 'प्रेमसागर'में सतर्कताके साथ बहिष्कार किया गया है। तुर्कीका केवल एक शब्द 'बैरक' (बिरख) प्रमादवश आ गया है। अंग्रेज शासकोंकी तत्कालीन नीतिके अनुसार हिन्दी वह थी, जिसमें अरबी-फारसीका कोई भी शब्द न आने पाये। इस कारण 'प्रेमसागर'की भाषा कुछ अंशोंमें कृत्रिम हो गयी है। उसकी कृत्रिमताका दूसरा कारण उसकी काव्यात्मकता भी है। उसमें ब्रजभाषाके जो मिश्रण पाये जाते हैं, उनमें कुछ तो चतुर्भुज मिश्रके मूलग्रन्थके प्रभाव हैं। पर सबसे प्रधान बात तो यह है कि आगरेकी खड़ीबोलीमें उसकी भौगोलिक स्थितिके अनुसार ही ब्रजरंजित प्रयोग स्वभावतः पाये जाते हैं।

'प्रेमसागरके' जो संस्करण अब तक देखनेमें आये हैं, वे ये हैं—(१) 'प्रेमसागर'—सम्पा० तथा प्र० लल्लूलाल, कलकत्ता १८१० ई०, (२) 'प्रेमसागर'—कलकत्ता १८४२ ई०, (३) 'प्रेमसागर'—सम्पा० जगन्नाथ सुकुल, कलकत्ता १८६७ ई०, (४) 'प्रेमसागर'—कलकत्ता १८७८ ई०, (५) 'प्रेमसागर'—कलकत्ता १८८९ ई०, (६) 'प्रेमसागर'—कलकत्ता १९०७ ई०, (७) 'प्रेमसागर'—बनारस १९२३ ई०, (८) 'प्रेमसागर'—सम्पा० ब्रजरत्नदास, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, १९२२ ई० और 'प्रेमसागर'—दूसरा प्रकाशन, १९२३ ई०, (९) 'प्रेमसागर'—सम्पा० कालिकाप्रसाद दीक्षित, प्रयाग १८३२ ई०, (१०) 'प्रेमसागर'—सम्पा० बैजनाथ केडिया, कलकत्ता, १९२४ ई०, (११) 'प्रेमसागर'—अँग्रेजीमें अनुवादित, अदालत खाँ, कलकत्ता, १८९२ ई०, (१२) 'प्रेमसागर'—अनुवादित, कैप्टन डब्ल्यू हौलिंग्स, कलकत्ता, १८४८ ई० (१३) 'प्रेमसागर'—सचित्र पंचम संस्करण, सन् १९५७ ई०, श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई। (१४) इसके छः संस्करण अंग्रेजीमें भी विभिन्न स्थानोंसे प्रकाशित हुए हैं। —वि० प्र०

प्रेमाश्रम–'प्रेमाश्रम' (प्र० १९२२ ई०) प्रेमचन्दका सर्वप्रथम उपन्यास है, जिसमें उन्होंने नागरिक जीवन और ग्रामीण जीवनका सम्पर्क स्थापित किया है और जिसमें वे परिवारके सीमित क्षेत्रसे बाहर सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रमें पदार्पण करते हैं। परिवारोंकी कथाका

मोह तो वे इस उपन्यासमें भी नहीं छोड़ सके, क्योंकि प्रभाशंकर, रायकमलानन्द, गायत्री और डिप्टी ज्वालासिंह-के परिवारोंकी कथासे ही उपन्यासका ताना-बाना बुना गया है, तो भी वे जीवनके व्यापक क्षेत्रमें आते हैं। भारतीय स्वतन्त्रतासंग्रामकी प्रथम झाँकी और भावनागत राम-राज्यकी स्थापनाका स्वप्न 'प्रेमाश्रम'की अपनी विशेषता है। उसका उद्देश्य है—'साम्य सिद्धान्त'। प्रेमशंकर द्वारा हाजीपुरमें स्थापित प्रेमाश्रममें जीवन-मरण-के गूढ़, जटिल प्रश्नोंकी मीमांसा होती थी। सभी लोग पक्षपात और अहंकारसे मुक्त थे। आश्रम सारल्य, सन्तोष और सुविचारकी तपोभूमि बन गया था। वहाँ न ईर्ष्याका सन्ताप था, न लोभका उन्माद, न तृष्णाका प्रकोप। वहाँ न धनकी पूजा होती थी और न दीनता पैरों तले कुचली जाती थी। आश्रममें सब एक दूसरेके मित्र और हितैषी थे। मानव-कल्याण उनका चरम लक्ष्य था। उसका व्यावहारिक रूप हमें उपन्यासके 'उपसंहार' शीर्षक अंशमें मिलता है। लखनपुर गाँवमें स्वार्थ-सेवा और मायाका प्रभाव नहीं रह गया। वहाँ अब मनुष्यकी मनुष्य के रूपमें प्रतिष्ठा हुई है—ऐसे मनुष्यकी, जिसके जीवनमें सुख, शान्ति, आनन्द और आत्मोल्लास है।

'प्रेमाश्रम'की कथाका सूत्रपात बनारससे बारह मील दूर लखनपुर गाँवसे होता है। जमींदार ज्ञानशंकरकी ओर-से शुद्ध घीके लिए बयाना बँटता है। केवल मनोहर नहीं लेता। मनोहरकी धृष्टता जमींदार और उसके कारिन्दा गौस खाँके लिए असह्य थी। ज्ञानशंकर तो उससे बहुत नाराज होते हैं और इस मामलेको लेकर अपने चाचा प्रभाशंकर तकसे बिगड़ जाते हैं। प्रभाशंकर पुराने रईस हैं, बनारसके औरंगाबाद मुहल्लेमें रहते हैं और अपने असामियोंके प्रति भी वात्सल्य भाव रखते हैं। उनके भाई जटाशंकरके पुत्र ज्ञानशंकरको उनकी यह उदारता पसन्द नहीं। अपने चाचाकी नीतिसे प्रसन्न न होनेके कारण वे प्रभाशंकरके दारोगा पुत्र दयाशंकर पर चल रहे अभि-योगमें जरा भी सहायता करनेके लिए प्रस्तुत नहीं हैं किन्तु उनके मित्र डिप्टी ज्वालासिंहने दयाशंकर को छोड़ दिया। नौबत यहाँ तक पहुँची कि ज्ञानशंकरने परिवारमे बँटवारा करा लिया। डिप्टी ज्वाला सिंह न्यायशील और दयालु व्यक्ति थे। कर्त्तव्य-पालनकी ओर उनका सदैव ध्यान रहता था। वे गाँवके दौरेमें बेगारी बन्द करा देनेकी आज्ञा देते हैं और मनोहरके पुत्र बलराज की निर्भीकतासे प्रसन्न होते हैं। ज्ञानशंकर अत्यन्त स्वार्थ-प्रिय और धनलोलुप हैं। जब अपने ससुर राय कमलानन्द (लखनऊ) के पुत्रकी मृत्युके समय वे अपनी पत्नी विद्या (राय कमलानन्दकी छोटी पुत्री) के साथ लखनऊ पहुँचते हैं तो उनकी निगाह अपनी विधवा साली गायत्रीपर और उसकी धन-सम्पत्तिपर पड़ती है। राय कमलानन्द बड़े ही रसिक और अनुभवी व्यक्ति हैं। वे ज्ञानशंकरकी नीयत तुरन्त ताड़ जाते हैं। वे यह भी समझ जाते हैं कि ज्ञानशंकरकी दृष्टि गायत्री और उसकी धन-सम्पत्तिपर ही नहीं, उनकी अपनी धन-सम्पत्तिपर भी है। सरल-हृदया गायत्री ज्ञानशंकरके पंजेमे धीरे-धीरे फँसती जाती है। वे अपने उद्देश्यकी पूर्तिमें सतत प्रयत्नशील रहते हैं। उधर गाँवमें आये दिन कोई-न-कोई अत्याचार होता रहता है। ज्ञानशंकरके भाई प्रेमशंकर भी अमेरिकासे लौट आते हैं। वे नवीन आर्थिक, सामाजिक और राज-नीतिक विचारोंसे अनुप्राणित होकर घर वापिस आये हैं। ज्ञानशंकरको उनके वापिस आनेसे हार्दिक प्रसन्नता न हुई। प्रेमशंकरके विदेश-गमनके फलस्वरूप उनके जाति-बहिष्कार या प्रायश्चित्तकी समस्या भी उठती है। यहाँतक कि प्रेमशंकरकी पत्नी श्रद्धा भी उनसे दूर-ही-दूर रहती है किन्तु प्रेमशंकर निर्भीक होकर अपने मार्गका निर्माण स्वयं करते हैं। वे सब प्रकारका आर्थिक लोभ छोड़कर जन-सेवाका मार्ग ग्रहण करते और हाजीपुरमें अपना आश्रम स्थापित करते हैं। ज्ञानशंकरको अपने भाईका साम्य-सिद्धान्त बिल्कुल पसन्द नहीं। प्रेमशंकरने जब पैत्रिक सम्पत्तिमें अपने अधिकारको तिलांजलि दे दी तो ज्ञानशंकरको अत्यन्त प्रसन्नता हुई। वे अब गायत्रीके यहाँ गोरखपुर आने-जाने लगे और अपनी बुद्धि, व्यावहारिकता, प्रबन्ध-पटुता और कार्य-कुशलताके फलस्वरूप उसपर पूर्ण रूपसे हावी ही नहीं हो गये, वरन् उसकी धार्मिकताका अनुचित लाभ उठाते हुए 'राधा-कृष्णभाव' की 'भक्ति' का भी आनन्द उठाने लगे। इसी समय विलासीका अपमान करनेके कारण मनोहरने साथ जाकर बलराज द्वारा गौस खाँ कारिन्दाकी हत्या करा दी, जिसके फलस्वरूप सारा गाँव विपत्तिमे पड़ गया। गाँववालोंपर मुकदमा चला। प्रेमशंकर और डिप्टी ज्वाला सिंह उनकी आर्थिक और कानूनी सहायताके लिए कटिबद्ध हो गये। ज्ञानशंकरको यह बात बिल्कुल अच्छी न लगी। उधर राय कमलानन्द ज्ञानशंकरकी 'भक्ति' के जालसे गायत्रीको बचाना चाहते थे। ज्ञानशंकरने उन्हें विष देकर मार डालना चाहा किन्तु राय कमलानन्द अपने योग-बल द्वारा विषको पचा गये। राय कमलानन्दने विद्याको चेतावनी देनी चाही। यद्यपि विद्याको अपने पतिकी स्वार्थपरता और क्षुद्रता बिल्कुल न सुहाती थी तो भी उसे पतिके नैतिक चरित्र के सम्बन्धमें अभीतक कोई सन्देह न था। इसलिए राय कमलानन्दकी चेतावनी उसे अच्छी न लगी किन्तु बनारस आकर जब उसने ज्ञानशंकर और गायत्रीका 'भक्ति-सम्बन्ध' देखा तो आँखें खुल गयी। गायत्रीको तो इससे आत्म-ग्लानि हुई ही, विद्याको भी अत्यधिक मानसिक क्लेश हुआ। जब ज्ञानशंकरने मायाशंकरको गायत्रीकी गोद देना चाहा तब तो उसने अपने हाथों इहलीला ही समाप्त कर दी। विद्याकी मृत्युने गायत्रीके सामने सारी परिस्थिति स्पष्ट कर दी। वह ज्ञानशंकरकी बदनीयती और क्रूरतासे ही अवगत न हुई, वरन् विद्याके रक्तसे अपने ही हाथ रँगे देखने लगी। गायत्री मायाशंकरको प्रेमशंकरके हाथ सौंप-कर तीर्थाटनके लिए चली जाती है। वह बदरीनारायण जाना चाहती थी, किन्तु चित्रकूटमें एक महात्माकी (जो वास्तवमें राय कमलानन्द थे) चर्चा सुनकर वह उधर ही चल पड़ी। वह अपने मानसिक संघर्षको लिये जब पहाड़ी-पर चढ़नेकी चेष्टा कर रही थी, उस समय पैर फिसल जानेके कारण पर्वतके गहन गर्तमें गिरकर मृत्युको प्राप्त

हो गयी।

प्रेमशंकर और डिप्टी ज्वाला सिंहने इफनि अली वकील, और डॉ० प्रियनाथ चोपड़ाकी सहायतासे गाँव वालोंकी रक्षा की, यद्यपि मनोहरने जेल हीमें आत्महत्या कर ली थी। इतना ही नहीं, इफनि अली और डा० प्रियनाथ चोपड़ा जैसे आत्म-सेवियोंके हृदयमें प्रेमशंकर अपने स्नेह और त्यागसे परिवर्तन उपस्थित कर देते हैं। इजाद हुसेन भी, जो पहले हिन्दू-मुस्लिम इत्तिहादके बहाने अपना ही स्वार्थ साधते थे, प्रेमशंकरके व्यक्तित्वसे प्रभावित हो सचाई और ईमानका मार्ग ग्रहण करते हैं। ये तीनों ही व्यक्ति प्रेमशंकरके अनुगामी होकर हाजीपुरके प्रेमाश्रमके जीवनमें अपना-अपना योग प्रदान करते हैं। श्रद्धा, जो अपनी जड़ और मिथ्या धार्मिकताके कारण अपने पतिसे कटी-कटी रहती है, अब उनकी सेवा, त्याग, संयम, साधना, परोपकार-व्यस्तता आदिको प्रायश्चितका असली रूप समझ कर पतिके चरणोंकी सच्ची उपासिका बन सचमुच श्रद्धा और अनुरागकी देवी बन जाती है। प्रभाशंकरका पुत्र दयाशंकर वैराग्य धारण कर लेता है। उनके दो अन्य पुत्र तेजशंकर और पद्मशंकर आसानीसे समृद्ध हो जानेकी आकांक्षासे प्रेरित हो भैरव-मन्त्र जगानेके प्रयत्नमें अपना-अपना अन्त कर डालते हैं। मिथ्या विश्वास और कुशिक्षाने दो जीवन-पुष्पोंको अपने पैरों तले कुचल दिया। मायाशंकर प्रारम्भसे ही सन्तोष और त्यागकी भावना लिए हुए था। प्रेमशंकरके संरक्षणमें रहनेके कारण उसके ये संस्कार और भी दृढ हो गये। अपने तिलकोत्सवके समय उसने जो भाषण दिया, उसमें दीनोंके कल्याण, कर्त्तव्य-पालन, न्याय, धर्म, दुर्बलोंके आँसुओंकी ओर ही अधिक ध्यान दिया गया था। उसने जमींदारी-उन्मूलन और सहकारिताके भाव व्यक्त किये थे। ज्ञानशंकरने अपने जीवन भरकी आशाओं-पर पानी फिरते देख गंगामें डूबकर आत्महत्या कर ली।

अन्तमें प्रेमाश्रमके सदस्योंके साथ प्रेमशंकर और मायाशंकर दीनोंकी रक्षा और उनके जीवनको सुखमय बनानेमे दत्तचित्त रहते हैं। राजसभाके सदस्योंके रूपमे भी वे जन-सेवाकी भावना से ही प्रेरित होते हैं। गाँवमें राम-राज्यकी स्थापना कर वे दिव्य आनन्दका अनुभव करते हैं। विविध सुधारों, सफाई, शिक्षा, अच्छी कृषिके लिए अच्छे बीजकी व्यवस्था की जाती है। वे प्रजाके ट्रस्टी बन जाते हैं। —ल० सा० वा०

फूलदेवसहाय वर्मा–जन्म १८९१ ई०में सारन (बिहार) जिलेमें हुआ। काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमें रसायन विभागमे प्राध्यापक रहे। वहाँसे अवकाश प्राप्त करके बिहार प्रदेशमें महाविद्यालयोंके निरीक्षक नियुक्त हुए। हिन्दी माध्यमसे वैज्ञानिक विषयों पर लिखने वालोंमें आपका नाम अग्रणी है। विज्ञान परिषद्, इलाहाबादके सभापति भी रह चुके हैं। आजकल आप काशी नागरी-प्रचारिणी सभाके तत्त्वावधानमें प्रकाशित होनेवाले 'हिन्दी विश्व-कोश' के विज्ञान विभागके सम्पादक हैं।

कृतियाँ—'प्रारम्भिक रसायन', 'साधारण रसायन', 'मिट्टीके बरतन', 'कोयला', 'पेट्रोलियन', 'ईख और चीनी', 'रबर'। —सं०

फूलमंजरी–यह मतिरामकी प्रथम रचना मानी जाती है। यह अभी तक अप्रकाशित है। इसकी प्रति भवानीशंकर याज्ञिकको भरतपुर राज्यमें हिन्दी पुस्तकोंकी खोजके समय मिली थी। इसका विवरण ९ जुलाई सन् १९२४की 'माधुरी' पत्रिकामें (मायाशंकर याज्ञिक लिखित 'मतिराम और भूषण' लेखमें) दिया गया है। इसके अनुसार यह एक छोटी सी पुस्तिका है। इसमें ६० दोहे हैं और प्रत्येक दोहेमें एक फूलका नाम आता है, इसके साथ ही नायिकासे सम्बन्धित वर्णन भी है। फूलका नाम श्लेषसे उस वर्णनमें भी खप जाता है। इस पुस्तककी तीन प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं और सबसे प्राचीन प्रति सन् १७९३ ई० (सं० १८५०) की लिखी हुई है। ग्रन्थके अन्तिम दोहेमें यह स्पष्ट है कि यह पुस्तक जहाँगीरके लिए आगरेमें बनायी गयी थी—"हुकुम पाय जहाँगीरको नगर आगरे धाम। फूलनिकी माला करी, मति सों कवि मतिराम॥" इससे स्पष्ट है कि जब जहाँगीर बादशाह हो गया और वह आगरेके महलमें था, उस समय मतिराम कविको 'फूलमजरी' लिखनेकी उसने आज्ञा दी। यह समय 'मतिराम ग्रन्थावली'के सम्पादकके अनुसार वह था, जब जहाँगीर १६ वें जलूसी वर्षका उत्सव मना रहा था। 'जहाँगीरनामा'के प्रमाणके अनुसार यह उत्सव सं० १६७८ वि० (१०३० हि०) में मनाया गया था। अतः 'फूलमंजरी'का रचनाकाल भी इसीके आसपास माना जाना चाहिए। 'फूलमंजरी' जैसी रचना उत्सवके समयकी ही कृति हो सकती है।

कुछ विद्वानोंके मतानुसार 'फूलमंजरी'की रचनामें एक दो वर्ष लगे होंगे (महाकवि मतिराम, पृष्ठ १२६)। इस प्रकार इसकी समाप्ति सं० १८८२ या ८४ में हुई परन्तु मतिराम जैसे प्रतिभासम्पन्न व्यक्तिका ६० दोहोंके लिए दो सालका समय लगाना उचित नहीं जान पड़ता। अतः 'फूलमंजरी' १६२१ ई०की ही रचना मानी जानी चाहिए। कृष्णबिहारी मिश्रके मतानुसार यदि उस समय उनकी किशोरावस्थाकी आयु १८ वर्षके लगभग मानी जाये तो मतिरामका जन्म-काल १६०३ ई० के आसपास समझा जा सकता है।

'फूलमंजरी' एक सरस रचना है। इसमें मतिरामकी रसिकता टपकती है। फूलोंके नामके साथ जहाँगीरका विभिन्न नायिकाओंके साथ विनोद इसमें वर्णित है—"निसि कारी भारी हुती, तरसत मेरी जीव। फूल निवारीको सरस, वारी तुम पर पीव॥ कमल नैन लीने कमल, कमल मुखीके ठाँव। तन न्योछावरि राजकी, यहि आवनि बलि जाँव॥" इसकी भाषा सरल एवं सरल है। फूलोंके प्रसंगको लेकर इस प्रकारके ग्रन्थोंकी परम्परा हिन्दीमें मिलती है और इस प्रसंगमें 'कुसुमावली' और 'अनुराग बाग'के नाम उल्लेखनीय हैं, जिनमें क्रमशः फूलोंके साथ भगवन्नामोल्लेख एवं प्रेमका वर्णन हुआ है। मतिरामकी जन्मतिथि निकालनेकी दृष्टिसे 'फूलमंजरी'का विशेष स्थान है।

[सहायक ग्रन्थ—मतिराम—कवि और आचार्य : महेन्द्र-कुमार; महाकवि मतिराम : त्रिभुवन सिंह।] —भ० मि०

बंधुल–प्रसादकृत नाटक 'अजातशत्रु'का पात्र। प्रसिद्ध

ऐतिहासिक पात्र बन्धुल कुशीनाराका एक मल्ल सामन्त है। अपनी पत्नी मल्लिकाकी 'दोहद इच्छा'की पूर्तिके लिए उसने 'कमल-सरोवर'के रक्षक लिच्छिवि कुलपुत्रोंके एक रेखामें खड़े ५०० रथोंको एक ही तीरसे बींधकर अपने अनुपम शौर्यका परिचय दिया। तक्षशिलामें पढ़ते समय प्रसेनजित्की बन्धुलसे मित्रता हो गयी थी। वह अपने पराक्रम, रणकुशलता, स्वामिभक्ति एवं न्यायप्रियताके कारण कोशलका प्रधान सेनापति बना। उसके अधिनायकत्वमें कोशलके समस्त विद्रोही परास्त हो गये और कोशलके सीमान्तमें "शान्ति स्वयं पहरा देने लगी।" यह अनुपम वीर होते हुए भी नितान्त सरल एवं निश्छल स्वामिभक्त है। मल्लिका ऐसे पतिको पाकर स्वयंको धन्य समझती है। मल्लिकाके शब्दोंमें "वे तलवारकी धार है,··· वीरताके वरेण्य दूत है।" प्रसेनजित् उसके बढ़ते प्रभावसे चिन्तित होकर उससे ईर्ष्या करने लगता है और उसकी वीरतासे आतंकित होकर उसे षड्यन्त्रसे काशीका सामन्त बनाकर भेजता है। विरुद्धक द्वारा प्रसेनजित्के स्पष्ट षड्यन्त्रकी सूचना पाकर भी वह अपनी स्वामिभक्तिको दूषित नहीं होने देता और एक सच्चे वीर तथा स्वामिभक्त सेवककी भाँति अपने कर्त्तव्यपर आरूढ़ रहता है। क्रूर विरुद्धक छलपूर्वक उसपर आघात कर उसे मार डालता है और स्वयं उसके आघातोंसे घायल होकर बन्दी होता है। प्रसादने मल्लिकाके दोहद-प्रसंगमें 'वैशालीके कमल सर'के स्थानपर 'पावाके अमृत सर'का उल्लेख किया है। यह स्पष्ट ही ऐतिहासिक भ्रान्ति है। मूलकथाके अनुसार न्यायाधीश बनाये जानेके उपरान्त ही बन्धुलके प्रति प्रसेनजित्के मनमें सन्देह उत्पन्न कराया गया था किन्तु नाटकमें बन्धुलपर सन्देह इसलिए हुआ है कि वह सीमाप्रान्तके विद्रोहको दबाकर कोशलकी जनताका प्रिय हो गया था। इस प्रकार घटनाक्रममें उलट-फेर किया गया है। वस्तुतः सीमान्तके विद्रोहको दबानेकी घटनाके ठीक बाद ही बन्धुलकी हत्या कर दी गयी थी। बन्धुल विजयी होकर कोशल लौटा ही नहीं। प्रसादने बन्धुलकी हत्या विरुद्धकके साथ काशीमें लड़े गये छलपूर्ण द्वन्द्व-युद्धमें करवाई है, यह कल्पनाप्रसूत है ('प्रसादके ऐतिहासिक नाटक' : जगदीशचन्द्र जोशी, पृ० ९३)। —के० प्र० चौ०

बंधुवर्मा–प्रसादकृत नाटक 'स्कन्दगुप्त'का पात्र। मालवनरेश बन्धुवर्मा नरवर्माका पौत्र और विश्ववर्माका पुत्र है। बहुतसे इतिहासकार उसे स्वतन्त्र शासक न मानकर कुमारगुप्तका प्रतिनिधि स्वीकार करते हैं। वह "वसुन्धराका शृंगार" और "वीरताका वरणीय बन्धु" है। बन्धुवर्मा 'स्कन्दगुप्त' नाटकका एक दीप्तिसम्पन्न व्यक्तित्व है, जिसका तेज स्कन्दगुप्तके प्रकाशके समक्ष भी मलिन नहीं होने पाता। विपत्तिमें धैर्य, उत्साह और बलिदानकी भावना उसके चरित्रको विशेष गौरव प्रदान करती है। हूणोंसे मालवकी रक्षा स्कन्दगुप्तके द्वारा होनेपर कृतज्ञतावश वह अपने राज्यको दे देता है और जयमालाके प्रतिरोध करनेपर भी स्वयंको आर्य साम्राज्यका एक सैनिक समझनेमें गौरवका अनुभव करता है। वह एक रणकुशल और पराक्रमी योद्धा है। गान्धार घाटीमें उसके नेतृत्वमें होनेवाले युद्धमें आर्य-सैनिकोंने असीम साहसका परिचय दिया। उसने स्कन्दगुप्तसे "नदीकी तीक्ष्णधाराको लाल कर बहा देने"की जो भीषण प्रतिज्ञा की थी, उसकी पूर्ति अपने प्राणोंकी बाजी लगाकर की। बन्धुवर्माका पराक्रम परमुखापेक्षी नहीं। आक्रमणकारियों द्वारा दुर्ग घेर लिये जानेपर वह अन्तिम क्षणतक विस्मयजनक साहसके साथ शत्रुका मुकाबला करता है तथा अपने अद्भुत शौर्यसे प्राणोंका उत्सर्ग करके विजय प्राप्त करता है। युद्धमें वीर-गति प्राप्त करनेके बाद भी बन्धुवर्माकी शक्ति और उसका प्रभाव अक्षुण्ण बना रहता है और जब उसके सहयोगी—जिनके लिए उसने अपने प्राणोंकी आहुति दी थी—अपने लक्ष्यकी प्राप्ति कर लेते हैं, तभी उसकी समाप्ति होती है। अपने चमत्कारिक चारित्र्यसे बन्धुवर्मा नाटकके वस्तु-विन्याससे फल-प्राप्तिकी एक सशक्त कड़ी सिद्ध होता है। उससे क्षत्रियोचित साहस एवं शौर्यके अतिरिक्त शीलसौजन्यपूर्ण व्यक्तित्व एवं कर्त्तव्यकी भावना भी है। अपनी व्यावहारिक बुद्धिसे वह शीघ्र समझ जाता है कि "आर्यावर्तका एक मात्र आशा-स्थल युवराज स्कन्दगुप्त है।" अतः उसकी सेवामें अपना सर्वस्व अर्पित कर देता है। आगे चलकर परिस्थितियोंके प्रसादसे उसका यही निर्णय मांगलिकताका वरण करता है। स्कन्दगुप्त जब पारिवारिक दुरभिसन्धियोंमें ग्रस्त हो जाता है और देशके अहित होनेकी सम्भावना प्रतीत होती है, तब बन्धुवर्मा अपना मन्तव्य स्पष्ट करते हुए कहता है—"आर्यावर्तका जीवन स्कन्दगुप्तके कल्याणसे है और उज्जयिनीमें साम्राज्याभिषेकका अनुष्ठान होगा, सम्राट् होंगे स्कन्दगुप्त। बन्धुवर्मा तो आजसे आर्य साम्राज्य सेनाका एक साधारण पदाति सैनिक है।" वह अन्ततक सच्चे देश-भक्तकी भाँति यही प्रचारित करता रहता है कि, "मालवका राजकुटुम्ब, एक-एक बच्चा, आर्य जातिके कल्याणके लिए जीवन उत्सर्ग करनेको प्रस्तुत है।" बन्धुवर्मा निःस्वार्थ भावसे साम्राज्यकी मर्यादा-रक्षाके लिए अपने राज्य एवं प्राणोंतकको अर्पित कर देता है। स्कन्दगुप्त उसके इस लोकोत्तर त्यागकी स्मृति उसके मरनेके बाद भी करते रहते है—"जिसने निःस्वार्थ भावसे सब कुछ मेरे चरणोंमे अर्पित कर दिया था, उससे कैसे उऋण होऊँगा।" बन्धुवर्माका उत्सर्गपूर्ण निःस्वार्थ चरित्र स्वदेश-प्रेमकी भावनासे परिपूर्ण, शौर्यशील एवं कर्त्तव्यनिष्ठासे युक्त तथा अपना स्थायी प्रभाव छोड़ जानेकी अद्भुत क्षमता रखता है। —के० प्र० चौ०

बंग महिला–(रचनाकाल १९०४ ई०) वास्तविक नाम श्रीमती राजेन्द्रबाला घोष। कलकत्ताके पास चन्द्रनगरके किसी गाँवमें जन्म हुआ।

हिन्दीकी प्रथम मौलिक (आधुनिक) कहानी लेखिकाके रूपमें 'बंग महिला'का नाम चिरस्मरणीय है। ये मीरजापुरके एक प्रतिष्ठित बंगाली महाशय राम प्रसन्न घोषकी पुत्री और पूर्णचन्द्रकी धर्मपत्नी थी। मीरजापुरमें रामचन्द्र शुक्लके सम्पर्कमें आने पर हिन्दीमें लिखने लगीं। इन्होंने हिन्दीमें बहुत सी बंगला कहानियोंका अनुवाद प्रस्तुत करके आधुनिक हिन्दी कहानीका पथ प्रशस्त किया। बादमें कुछ मौलिक कहानियाँ भी लिखीं, जिनमें 'दुलाई वाली' प्रसिद्ध है। इस कहानीको हिन्दीकी प्रथम मौलिक कहानी होनेका

श्रेय दिया जाता है। यह १९०७ ई० की 'सरस्वती' (भाग ८, संख्या ५) में प्रकाशित हुई थी। स्थानीय रंगत (लोकल कलर), यथार्थ चित्रण तथा पात्रानुकूल भाषाकी दृष्टिसे यह कहानी द्रष्टव्य है। 'बंग महिला'की अन्य कहानियों (पत्र-पत्रिकाओंमे प्रकाशित) में भी ये विशेषताएँ पाई जाती है। आपका एक कहानी संग्रह 'कुसुम संग्रह'के नामसे प्रकाशित हुआ। सन् १९५० ई०के आस-पास आपकी मृत्यु हुई। —र० भ०

बंगीय हिंदी परिषद, कलकत्ता– स्थापना–वसन्त पंचमी, १९४५ ई०; संस्थापक–स्वर्गीय आचार्य ललिता प्रसाद-सुकुल; कार्य एवं विभाग—१. साहित्यिक आयोजन—कबीर, सूर, तुलसी, मीरा, भारतेन्दु, रत्नाकर, प्रसाद आदिकी जयन्तियोंके बृहत् सार्वजनिक आयोजन कलकत्ता-में प्रथम बार प्रारम्भ किये गये। २. प्रकाशन—लगभग २४२० महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमे मुख्य हैं—'मीरा-स्मृति-ग्रन्थ', 'काव्य-चर्चा', 'कबीर-परिचय', 'नवीन दर्शन', 'प्रेमचन्द-प्रतिभा', 'भारतेन्दु कला' तथा 'बुन्देले हर बोलोंके मुँह जिसने सुनी कहानी'। इसके अतिरिक्त मुंशी देवीप्रसादकृत 'मीराबाई', ठाकुर जगमोहन सिंहकृत 'श्यामा-स्वप्न','ऋतु संहार', 'अमिताक्षर दीपिका', बाबू गिरिधरदासकृत 'भारती-भूषण' आदि दुर्लभ ग्रन्थोंको भी प्रकाशित किया गया है। ३. प्रतिमासके प्रथम रविवार को देशी और विदेशी विद्वानोंके परिभाषणोंका आयोजन किया जाता है। ४. कवि-कल्प—स्थानीय कवियोंके प्रोत्साहनार्थ निर्मित इस संस्थाकी बैठक प्रतिमास तीसरे रविवारको होती है। ५. हिन्दी कक्षाएँ—पश्चिमी बंगके राजकीय कर्मचारियोंके लिए हिन्दी प्रशिक्षणकी व्यवस्था की जाती है। ६. 'जन भारती' नामक त्रैमासिक पत्रिका निरन्तर आठ वर्षोसे प्रकाशित हो रही है। ७. पुस्तकालय—परिषदका स्थायी पुस्तकालय है। स्थायी सदस्यों-की संख्या ४५ है। —प्रे० ना० ट०

बकासुर–बकासुर कंसका अनुचर एवं पूतनाका भाई था। कृष्ण-वधके लिए यत्न करनेवालोंमें बकासुर भी था। कंसने इसे कृष्ण-वध हेतु वृन्दावन भेजा। वहाँ यह बक रूपमे यमुना तटपर विचरण करने लगा। जब कृष्ण आये तो इसने उन्हें अपनी चोंचमें दबा लिया। कुछ समय बाद बकका तालु जलने लगा और उसने कृष्णको उगल दिया। पुनः कृष्णको उदरस्थ करनेके यत्नके पूर्व ही कृष्णने उसकी चोंचके दोनों भाग चीर दिये तथा उसकी मृत्यु हो गयी। सूरने इस प्रसंगमे एक बार बलराम और दुबारा कृष्ण द्वारा उसकी मृत्यु वर्णित की है (सू० सा० प० १९०)। —रा० कु०

बकी–बकी नाम पूतनाका ही पर्याय है। यह बकासुरकी बहन थी। कंसने इसे भी कृष्ण-वधके लिए भेजा था पर अन्तमें कृष्णके द्वारा ही मारी गयी(दे०'पूतना')। —रा० कु०

बख्शी हंसराज–जन्म पन्ना राज्यमे सन् १७४२ ई० में। इनके पूर्वज पन्ना राज्यमें उच्च पदोंपर आसीन थे। बख्शी जी भी पन्नाके महाराज अमानसिंहके दरबारियोंमें थे। बख्शीजी 'प्रेमसखी' उपनामसे कविता करते थे। इनकी उपासना सखीभाव की थी। वृन्दावनकी व्यासगद्दीके विजयसखी नामक महात्माके ये शिष्य थे। ब्रजके माधुर्यभाव की छटा इनकी रचनाओंमें ओत-प्रोत है। इनकी चार प्रसिद्ध रचनाओंका इतिहास ग्रन्थोंमें उल्लेख मिलता है—'सनेह सागर', 'विरह-विलास', 'रामचन्द्रिका', 'बारहमासा'। इनके अतिरिक्त छोटी-छोटी लीला तथा पत्रिका भी इनकी लिखी बतायी जाती है, जिनमें 'चुनहारिन लीला', 'फाग तरंगिनी लीला', 'श्रीकृष्ण जूकी पाती', 'जुगलस्वरूप पत्रिका' प्रसिद्ध हैं।

'सनेहसागर'का सम्पादन करके लाला भगवानदीनने उसे प्रकाशित करा दिया है। शेष ग्रन्थ अभी हस्तलिखित रूपमें ही उपलब्ध हैं। 'सनेहसागर' नौ तरंगोंमें समाप्त हुआ है, जिसमें कृष्णकी लीलाएँ सार छन्दमें वर्णित की गयी है। भाषा माधुर्यपूर्ण, प्रवाहपूर्ण और सरस है। अनुप्रास आदिका बोझ न होनेसे भाषामें नैसर्गिकता बनी रही है। भाव-विधानके उचित प्रसगोंका उन्होंने चयन किया है और उसीके अनुकूल भाषाका विधान है। इनकी भाषाको आचार्य शुक्लने आदर्श भाषा स्वीकार किया है। —वि० स्ना०

बच्चन–दे० हरिवंशराय 'बच्चन'।

बदरीनाथ भट्ट–संस्कृतके प्रसिद्ध पण्डित गोकुलपुरा (आगरा) निवासी रामेश्वर भट्टके पुत्र। जन्म १८९१ ई० मे हुआ। जीवनके अन्तिम वर्षोंमे लखनऊ विश्वविद्यालयके हिन्दी विभागमे लेक्चरर रहे। साहित्यके क्षेत्रमें इनकी ख्याति प्रधानतः इनके नाटकोंके कारण है। कविताएँ भी लिखी हैं। १९३२ ई० मे इनकी मृत्यु हुई।

हिन्दीमे स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियोंका प्रारम्भ भारतेन्दु युगमे ही हो गया था पर उसका व्यवस्थित रूप हमे द्विवेदी युगके कतिपय लेखकोंमें प्राप्त होने लगता है। बदरीनाथ भट्ट उन लेखकोंमेसे एक हैं, जिन्होंने स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियोंको बढावा दिया है। 'सरस्वती'के फरवरी १९१३ ई० के अंकमे उन्होंने रीतिकाव्यकी भाषाका विरोध करते हुए लिखा था, "भाषाके इतिहासमें एक समय ऐसा भी आता है, जब असली कवित्व-शक्ति न रहनेपर भी लोग बनावटी भाषामें कुछ भी भला-बुरा लिखकर शब्दोंकी खींचातानी दिखाते हुए अपनी लियाकतका इजहार करते है और चाहे जैसी अश्लील या अनर्गल बातको छन्दके खोलमें दिया हुआ देख लोग उसीको कविता समझने लगते है।" स्पष्ट है कि रीतिकाव्यकी रूढ़िबद्ध भाषाका यह विरोध स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियोंका बढाव ही है। आगे चलकर सुमित्रानन्दन पन्तने 'पल्लव' की भूमिकामें भी इसी प्रकार रीति-परम्परा और उसकी भाषाका विरोध किया था। स्वय अपनी कविताओंमे भट्टजीने नयी भाषा, नयी विषयवस्तु और नये काव्यरूपोंका प्रयोग प्रारम्भ किया। १९१४ ई० के आसपाससे उनकी ऐसी कविताएँ आने लगी थीं, जो मात्र इतिवृत्तात्मक नहीं थीं, जिनमें रहस्यात्मक वृत्तियोंका समावेश होने लगा था। टकसाली सवैयों या घनाक्षरियोंके स्थानपर भट्टजीने लोकगीतोंके कजरी, लावनी या भक्तिकालके कवियों जैसे पदोंको अपनी कविताओंमें आजमाया है। यह सारा बढ़ाव स्वच्छन्दता-वादका था। निबन्धोंके क्षेत्रमें भी उन्होंने 'सभाकी सभ्यता'

जैसे निबन्धोंमें व्यंग्यकी प्रवृत्तिको अपनाया है। यों 'हमारे कवि और समालोचक', 'हमारी कविताकी भाषा' आदि विषयपरक निबन्ध भी लिखे हैं। उनके निबन्धोंमें संस्कृत के साथ ही अंगरेजी शब्दोंका निर्बन्ध प्रयोग भी गद्यकी भाषाका विकास ही कहा जायगा।

बदरीनाथ भट्टका मुख्य क्षेत्र नाटक है। वस्तुतः भारतेन्दु और प्रसादकी मध्यवर्ती कड़ी वे ही हैं। आलोचकोंने इस ओर कम ही ध्यान दिया है पर यह कहना असंगत न होगा कि भारतेन्दुके बाद नाटकके क्षेत्रमें नयी जमीन तोड़नेका काम भट्टजीने ही किया था। सन् १९०० ई० के आसपास हिन्दी नाटक क्षेत्रमें मौलिक सृजन-शक्ति और नवोन्मेषका नितान्त अभाव दिखाई देता है। पारसी थियेटर कम्पनीके स्टेजके प्रति असन्तोषका भाव तो था पर जैसे कोई दिशा नहीं मिल रही थी। दिशाका अनुसन्धान सबसे पहले १९१२ ई० में प्रकाशित बदरीनाथ भट्टके 'कुरुवन दहन' में प्राप्त होता है। श्रीकृष्णलालने नोट किया है कि 'कुरुवन दहन' में "नवीन नाट्यकलाके अंकुर थे" ('आधुनिक हिन्दी-साहित्यका विकास', पृ० २१३)। इस सम्बन्धमें ध्यान देने योग्य बात यह भी है कि १९१२ ई० में ही प्रसादका 'करुणालय' भी प्रकाशित हुआ था पर नाट्यकलाकी दृष्टिसे वह अपेक्षाकृत 'कुरुवन दहन' से कम महत्त्वपूर्ण है 'कुरुवन दहन' संस्कृतके 'वेणीसंहार' नाटकका हिन्दी रूपान्तर है, जो अनुवाद न होकर नयी परिस्थितियों एवं नवीन शिल्पके अनुसार रूपान्तर ही कहा जाना चाहिए। इस नवीनताकी ओर नाटककी अंग्रेजी भूमिकामें भट्टजीने स्वयं इंगित किया है। यह भूमिका उस समयके नाटकीय विकासकी दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। भूमिकाके अनुसार, "इसके स्थानपर, मैंने एक दूसरा पथ ग्रहण करनेका निश्चय किया, जिसमें कि मुझे अधिक स्वच्छन्दता प्राप्त होनेकी आशा थी। यह रास्ता इसे रूपान्तरित करनेका था।...मैंने छःके स्थानपर इसे सात अंकोंमें समाप्त किया और नाटकीय पात्रोंके भाषणोंको अनेक स्थलोंपर घटा, बढ़ा और परिवर्तित करके इसे यथासम्भव आधुनिक रुचियों और परिस्थितियोंके अनुकूल बनानेका प्रयत्न किया। कहीं-कहीं आवश्यक समझकर मैंने कुछ नवीन पात्र और कुछ हास्यपूर्ण संवाद बढ़ा दिये हैं। वस्तुतः मैंने इस ग्रन्थमें अंग्रेजी और संस्कृत नाटकीय विधानोंका समन्वय बनानेका प्रयत्न किया है। जहाँ कहीं दोषोंका कोई कारण नहीं मिल सका और जहाँ कहीं नाटकीय प्रसंगोंके लिए आवश्यकता जान पड़ी, वहाँ 'वेणीसंहार'के अंकोंके बीच रिक्त स्थलोंको नवीन पात्रोंके द्वारा भर दिया।" यह दृष्टि एक नये युगकी प्रवर्तिका है। इस नाटकमें वस्तु संगठन, चरित्र-चित्रण और हासपूर्ण प्रसंगोंकी अवतारणा करके उसे आधुनिक रुचिके अनुकूल बनानेका प्रयास किया गया है। बहुधा लम्बे एवं महत्त्वपूर्ण संवादोंके स्थानपर अधिक व्यंजक और सूक्ष्म तथा संक्षिप्त संलापोंका सहारा लिया गया है। कथाके विविध प्रसंगोंपर बल भी नये ढंगसे दिया गया, जैसे भीष्मकी मृत्युकी सूचना तथा जयद्रथ-वधका अत्यन्त विस्तारसे पूरे एक अंकमें चित्रण। इसी प्रकार अंकोंका दृश्योंमें विभाजन भी नये ढंगके अनुरूप हुआ है। उनके संवादोंने कथानकके विकास तथा चरित्रोंके शीलनिरूपणमें सहायता दी है। वे प्रायः सजीव और सशक्त बन पड़े हैं। इस प्रकार नाटकमें निर्देशन-नैपुण्य तथा कलात्मक संयमका सौन्दर्य प्राप्त होता है। यह अवश्य है कि इसमें भाषा तथा देशकालके उपयुक्त वातावरणके निर्वाहपर उतना जोर नहीं दिया गया तथा चरित्रोंके शीलनिरूपणपर भी अधिक बल नहीं दिया जा सका। संवादोंमें भी पारसी थियेटर कम्पनियोंका पर्याप्त प्रभाव है। इन दोषोंको दूर करनेका दायित्व प्रसादने लिया।

'कुरुवन दहन' पौराणिक नाटक है, भट्टजीका 'बेनचरित' (१९२१) भी पौराणिक है तथा 'तुलसीदास' (१९२२) ऐतिहासिक व्यक्तित्वपर आधृत होते हुए भी अपनी आत्मामें पौराणिक ही है। इन पौराणिक नाटकोंकी दो एक विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं। प्रथम तो यह कि इनमें नाटककारने पुराणोंकी कथाओंको ज्योंका त्यों न स्वीकार कर अपनी रुचि तथा कथाकी प्रवृत्ति एवं नाटकीय आग्रहोंमें अनेक मौलिक परिवर्तन कर दिये हैं। इस प्रकार इन नाटकोंमें लेखककी कल्पनाको (यह भी स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति ही है) अधिक मुखर होनेका अवकाश मिला है। दूसरे इन नाटकोंमें अतिप्राकृत प्रसंगोंकी न्यूनता हो गयी थी। कालक्रमसम्बन्धी दोष अवश्य बने रहे। वातावरणके चित्रणपर भी बल दिया गया परन्तु सांस्कृतिक शक्तियोंका जीवन्त चित्रण नहीं हो सका। कभी-कभी कालव्यतिक्रमके भी दोष मिल जाते हैं, जैसे कि 'तुलसीदास'में रानी पिस्तौल दिखाकर 'मेजर' और 'कैप्टेन'को बन्दी बनाती है। चरित्र-चित्रणकी दृष्टिसे भी ये नाटक पारसी थियेटरके नाटकों या भारतेन्दु-युगके नाटकोंसे बहुत आगे बढ़े हुए हैं। पर यह भी सत्य है कि इनमें मुख्य ध्यान कथावस्तु या कथासंघटनके पुनर्नवीकरणकी ओर अधिक था, शील-निरूपणकी ओर कम। मानसिक द्वन्द्वात्मक स्थितियोंके आकलनकी ओर ध्यान नहीं दिया गया। इन नाटकोंकी भाषा भी उतनी सक्षम नहीं है, जितनी कि प्रसादके नाटकोंमें आगे चल कर प्राप्त होती है।

भट्टजीके 'दुर्गावती' (सन् १९२५) एवं 'चन्द्रगुप्त' नामक दो ऐतिहासिक नाटक भी प्राप्त होते हैं। इन दोनों नाटकों पर पारसी रंगमंचका प्रभाव कुछ अधिक है। कलात्मक वैभवकी दृष्टिसे उनके ये नाटक पौराणिक नाटकोंसे नीचे पड़ते हैं।

नाटकोंमें प्रहसनके क्षेत्रमें भी भट्टजीने महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। उनके प्रहसनोंमें 'चुंगीकी उम्मीदवारी'(१९१९), 'लबड़धोंधों' (१९२६), 'विवाह विज्ञापन' (१९२७), 'मिस अमेरिकन' (१९२९) बहुत प्रसिद्ध हैं। समसामयिक समस्याओं तथा उनकी विकृतियोंपर इनमें हास्य-व्यंग्यके सहारे प्रकाश डाला गया है। 'मिस अमेरिकन'में पाश्चात्य अर्थप्रधान सभ्यतापर गहरा व्यंग है। इन नाटकोंपर प्रसिद्ध फ्रांसीसी हास्य नाटककार मोलियरका भी कुछ प्रभाव परिलक्षित होता है।

—दे० शं० अ०

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'–(उपाध्याय) बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन' भारतेन्दु मण्डलके प्रतिष्ठित

लेखक थे। भारतेन्दु-युगके साहित्य-निर्माणमें इनका योगदान बहुत महत्त्वपूर्ण है। इनका जन्म सन् १८५५ ई०में उत्तर प्रदेशके मीरजापुर जिलेमें हुआ था। कवि, नाटककार, पत्रकार और निबन्धलेखकके रूपमें आपने उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी ईस्वीके सन्धिकालमें हिन्दीके भाण्डारकी श्री वृद्धि की। इनकी मृत्यु सन् १९२२ ई० में हुई।

बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन'ने अपने साहित्यिक जीवनका शुभारम्भ कवि-रूपमें किया था। ब्रजभाषामें कवित्त-सवैया लिखनेवाली परम्पराप्रथित पद्धति उन्हें बहुत प्रिय थी। आधुनिक युगके द्वारपर खड़े होकर भी उन्होंने अपना सम्बन्ध काव्य-रचनाकी इस पुरानी परिपाटी से बनाये रखा। समस्या-पूर्तिके कौशलमें वे बहुत निपुण थे। इस दृष्टिसे उनकी एक अति-प्रसिद्ध रचना उल्लेख्य है। इसकी विषयवस्तु सामान्य और शृंगारिक ही है किन्तु अनुप्रासोंकी छटाके कारण इसका काव्य-रस द्विगुणित हो उठा है—"बगियान बसन्त बसेरो कियो, बसिए तेहि त्यागि तपाइए ना। दिन काम कुतूहलके जो बने, तिन बीच बियोग बुलाइए ना॥ 'घन प्रेम' बढाय कै प्रेम, अहो ! बिथा बारि बृथा बरसाइए ना। चित चैतकी चाँदनी चाह भरी, चरचा चलिबेकी चलाइए ना॥" ब्रजभाषाकी सरस फुटकर काव्य-रचनाके अतिरिक्त 'प्रेमघन'ने कजली, होली, लावनी आदिकी शैलीमे बहुत सी लोक-गीतात्मक कविताएँ भी लिखी है। 'कजली कादम्बिनी'के नामसे उनके मीरजापुरी धुनके कजली गानोंका एक संग्रह प्राप्त होता है। पुरानी ब्रजभाषा परिपाटी और लोकगीत-परिपाटीकी उनकी बहुत-सी रचनाएँ तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित हैं।

'भारतेन्दु युग'मे प्रबन्धकाव्योकी सृष्टि नहीके बराबर हुई, किन्तु बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन'ने इस दिशामें महत्त्वपूर्ण प्रयास किये थे। इनकी 'जीर्ण जनपद' नामक रचना प्रबन्धकाव्यात्मक है। इसमें तत्कालीन ग्रामीण जीवनके वास्तविक चित्र अंकित किये गये है और ग्रामीण समाजके विभिन्न वर्गके प्रतिनिधि-पात्रोंकी कमजोरियाँ दिखाई गयी हैं। इन्होंने कंस-वधपर एक महाकाव्यकी रचना आरम्भ की थी किन्तु इनकी मृत्युके कारण यह अधूरी रह गयी। 'प्रेमघन' भारतेन्दु मण्डलके उन उल्लेख्य कवियोंमे हैं, जिन्होंने ब्रजभाषाके अतिरिक्त खड़ीबोलीमे भी काव्य-रचना करनेकी सफल चेष्टा की थी। इनकी खड़ीबोलीकी अधिकांश रचनाएँ समसामयिक सामाजिक-राजनीतिक चेतनासे ओतप्रोत है। उदाहरणार्थ इनकी 'आनन्द-अरुणोदय' शीर्षक रचना ली जा सकती है। इसमें भारतवासियोंके नवजागरणका वर्णन किया गया है। इनकी अन्तिम रचना 'मयंक महिमा' भी खडीबोलीमें ही है। इसे इन्होंने बहुत बादमे सन् १९२२ ई० में लिखा था। खड़ीबोलीमें लिखे गये इनके अनेक ओजपूर्ण कवित्त भी उपलब्ध होते है।

बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन' कवि होनेके साथ-साथ एक उत्कृष्ट गद्य-लेखक भी थे। नाटककारके रूपमें इन्हें बडी ख्याति मिली थी। सर्वप्रथम सन् १८८६ ई० में इन्होंने 'वारांगना रहस्य' अथवा 'वेश्याविनोद' नामक सामाजिक नाटककी रचना एक बड़े पैमानेपर आरम्भ की थी किन्तु वह अपूर्ण रह गया। इनकी दूसरी नाट्य कृति 'भारत सौभाग्य'के नामसे प्रसिद्ध है। यह एकांकी नाटकोंकी कोटि में आती है। इसकी रचना सन् १८८८ ई० में कांग्रेसके अवसरपर खेले जानेके लिये की गयी थी। इसके पात्र विभिन्न प्रान्तोंके हैं और भिन्न-भिन्न भाषाओंका उपयोग करते हैं। इसकी कथावस्तुमें १८५७ ई० के गदरसे लेकर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी स्थापना तककी सामाजिक पृष्ठ-भूमिको समाहित करनेकी चेष्टा की गयी है। अभिनयकी दृष्टिसे यह कृति बहुत सफल नहीं है। 'प्रयाग रामागमन' इनका तीसरा नाटक है। इसकी रचना इन्होंने १९०४ ई० में की थी। इसकी विषय-भूमि संक्षिप्त है। इसमें रामके भरद्वाज-आश्रम तक पहुँचने और वहाँ आतिथ्य ग्रहण करनेका वर्णन किया गया है। इसमें एक उल्लेखनीय बात यह है कि सीता ब्रजभाषाका प्रयोग करती हैं जबकि उन्हें मैथिली या कमसे कम अवधीका प्रयोग करना चाहिये था। उपर्युक्त विवरणके आधारपर 'प्रेमघन' नाटककारके रूपमें बहुत सफल नहीं कहे जा सकते।

रामचन्द्र शुक्लने 'प्रेमघन'को विलक्षण-शैलीके गद्य लेखकके रूपमें स्मरण किया है और लिखा है कि "वे गद्यरचनाको एक कलाके रूपमें ग्रहण करने वाले—कलमकी कारीगरी समझने वाले—लेखक थे और कभी-कभी ऐसे पेचीले मजमून बाँधते थे कि पाठक एक-एक डेढ़-डेढ़ कालमके लम्बे वाक्यमें उलझा रह जाता था" (हिन्दी साहित्यका इतिहास, सशोधित संस्करण, १९४८, पृ० ४६९)। किन्तु इस प्रकारकी उक्तियोंसे यह तात्पर्य नहीं निकालना चाहिये कि बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन' साहित्यिक कोटिके निबन्धोंके लेखक थे। बालकृष्ण भट्ट और प्रतापनारायण मिश्रके निबन्धोंकी तुलनामें उनके निबन्ध साधारण कोटिके लेख सिद्ध होते है। वस्तुतः उन्होंने सामयिक तथा चलते विषयों पर टिप्पणियाँ अधिक लिखी हैं। उनकी इस प्रकारकी गद्य रचनाएँ 'आनन्द कादम्बिनी' तथा तत्कालीन अन्य पत्र-पत्रिकाओंमे प्रकाशित हैं।

भारतेन्दु-युग हिन्दीके बहुमुखी विकासका युग माना जाता है। आधुनिक आलोचना पद्धतिका सूत्रपात भी इसी युगमें हुआ था और इसका श्रेय इस कालके दो लेखकोंको दिया जाता है, एक तो (पण्डित) बालकृष्ण भट्टको और दूसरा (उपाध्याय) बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन'को। 'प्रेमघन'ने श्री निवासदासकृत 'संयोगिता स्वयंवर'की आलोचना और गदाधर सिंहकृत 'बंगविजेता'के अनुवादकी आलोचना 'आनन्दकादम्बिनी'के कई पृष्ठोंमें विस्तारपूर्वक की थी। उनकी ये आलोचनाएँ उनकी व्यक्तिगत रुचि-अनुकूल आलोच्य पुस्तकोंके गुण-दोष उद्‌घाटन तक ही सीमित हैं। कहीं-कहीं भाषासम्बन्धी भूलों पर व्यापक रूपसे विचार किया गया है।

हिन्दी पत्रकारिताके इतिहासमें भी बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन'का स्थान महत्त्वपूर्ण है। ऊपर 'आनन्द-कादम्बिनी' नामक पत्रकी चर्चा कई स्थानोंपर की गयी है। इसे इन्होंने सन् १८८१ ई० में मीरजापुरसे निकाला था। इसमें तत्कालीन अन्य साहित्यकारोंके लेखादि बहुत कम

मात्रामें उपलब्ध होते हैं और इसके विभिन्न अंकोंमें इन्हीं-की कृतियाँ अधिकतर प्रकाशित हैं। 'आनन्द कादम्बिनी'के अतिरिक्त 'प्रेमघन'ने 'नागरी नीरद' नामसे एक साप्ताहिक भी निकाला था।

'प्रेमघन'के समस्त कृतित्वका मूल्यांकन करते हुए हिन्दी के विकासमें उनके योगदानको महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है। उन्होंने काव्य-भाषाके लिए खड़ीबोलीको भी अपनाकर उसका पथ प्रशस्त किया। गद्यकारके रूपमें उन्होंने भाषाके शुद्ध-परिमार्जित रूपका सायास प्रयोग करके उसे प्रौढता प्रदान करनेकी चेष्टा की। उनकी शैली उलझी हुई, दुरूह और गद्य काव्यात्मक थी फिर भी उन्होंने हिन्दीमें सम्यक् आलोचनाका सूत्रपात किया। —र० भ०

बनादास–बनादासका जन्म गोंडा जिलेके अशोकपुर नामक गाँवमें सन् १८२१ ई० में हुआ था। ये क्षत्रिय जातिके थे। इनके पिताका नाम गुरुदत्तसिंह था। घरकी आर्थिक स्थिति अच्छी न होनेके कारण इन्होंने भिनगा राज्य (बहराइच) की सेनामें नौकरी कर ली और लगभग सात वर्ष तक वहीं रहे। इसके पश्चात् घर लौट आये। वहाँ रहते अधिक दिन नहीं बीते थे कि इनके एकमात्र पुत्र-का अकस्मात् निधन हो गया। पुत्रके शवके साथ ही १८५१ ई० की कातिक पूर्णिमाको ये अयोध्या चले गये और फिर वहींके हो गये। आरम्भमें दो वर्ष देशाटन करके इन्होंने चौदह वर्षों तक रामघाट पर कुटी बनाकर घोर तप किया। साधना पूरी होने पर इन्हें आराध्यका साक्षात्कार हुआ। इसके अनन्तर इन्होंने विक्टोरिया पार्कसे सलग्न भूमि पर 'भवहरण कुंज' नामक आश्रम बनाया। इसी स्थान पर सन् १८९२ ई० को इनका साकेतवास हुआ।

बनादासने १८५१ ई० से १८९२ ई० तक विस्तृत कविताकालमें ६४ ग्रन्थोंकी रचना की थी। इन पंक्तियोंके लेखकको उनमेंसे ६१ प्राप्त हो चुके हैं। उनकी तालिका इस प्रकार है—'अर्जपत्रिका' (१८५१ ई०), 'नाम निरूपण' (१८५२ ई०), 'रामपचाग'(१८५३ ई०), 'सुरसरि पचरत्न', 'विवेक मुक्तावली', 'रामछटा','गरजपत्री', 'मोहिनी अष्टक', 'अनुराग विवर्धक रामायण', 'पहाड़ा', 'मात्रा मुक्तावली', 'ककहरा अरिल', 'ककहरा झलना', 'ककहरा कुण्डलिया', 'ककहरा चौपाई','खण्डनखग', 'विक्षेप विनाश','आत्मबोध', 'नाम मुक्तावली', 'अनुराग रत्नावली', 'ब्रह्म संगम','विज्ञान मुक्तावली', 'तत्त्वप्रकाश वेदान्त', 'सिद्धान्तबोध वेदान्त', 'शब्दातीत वेदान्त,' 'अनिर्वाच्य वेदान्त', 'स्वरूपानन्द वेदान्त', 'अक्षरातीत वेदान्त','अनुभवानन्द वेदान्त','वेदान्त पंचाग ब्रह्मायन द्वार'(१८७२ ई०),'ब्रह्मायन तत्त्व निरूपण', 'ब्रह्मायन ज्ञान मुक्तावली', 'ब्रह्मायन विज्ञान छत्तीसा', 'ब्रह्मायन शान्ति सुषुप्ति','ब्रह्मायन परमात्म बोध','ब्रह्मायन पराभक्ति परत्तु', 'शुद्धबोध वेदान्त ब्रह्मायनसार','रकारादि सहस्रनाम' (१८७४ ई०), 'मकारादि सहस्रनाम' (१८७४-ई०),'बजरंग विजय'(१८७४ ई०),'उभय प्रबोधक रामायण' (१८७४ ई०), 'विस्मरण सम्हार' (१८७४ ई०), 'सारशब्दा-वली'(१८७४ ई०), 'नाम परत्तु' (१८७५ ई०), 'नाम परत्तु संग्रह'(१८७६ ई०), 'बीजक' (१८७७ ई०),'मुक्त मुक्तावली' (१८७७ ई०), 'गुरु माहात्म्य'(१८७७ ई०), 'सन्त सुमिरनी' (१८८२ ई०), 'समस्यावली' (१८८२ ई०), 'समस्याविनोद' (१८८२ ई०), 'झूलन पचीसी', 'शिवसुमिरनी', 'हनुमन्त विजय' (१८८३ ई०), 'रोग पराजय'(१८८४ ई०), 'गजेन्द्र पंचदशी','प्रह्लाद पंचदशी', 'द्रौपदीपंचदशी', 'दाम दुलाई', 'अर्जपत्री', 'मोक्ष मंजरी', 'सगुन बोधक' और 'बीजक राम गायत्री'।

गोस्वामी तुलसीदासके बाद रचना शैलियोंकी विविधता, प्रबन्ध पटुता और काव्य-सौष्ठवके विचारसे ये रामभक्ति शाखाके अन्यतम कवि ठहरते हैं। इनकी रचनाओंमें निर्गुणपन्थी, सूफी तथा रीतिकालीन शैलियोंका प्रयोग एक साथ ही मिलता है किन्तु प्रतिपाद्य सबका रामभक्ति ही है। अब तक इनके लिखे ग्रन्थोंमेंसे केवल 'उभय प्रबोधक रामायण' और 'विस्मरणसम्हार' मुद्रित हुए हैं।

[सहायक ग्रन्थ—रामभक्तिमें रसिक सम्प्रदाय : भगवती-प्रसाद सिंह।] —भ० प्र० सिं०

बनारस अखबार–गोविन्द रघुनाथ थत्तेके सम्पादकत्वमें राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द'के स्वामित्वमें यह साप्ताहिक पत्र काशीमें १८४४ ई०में निकला। इसका प्रमुख उद्देश्य भाषाका प्रचार था। साम्प्रदायिक नीति होनेके कारण मिशनरियोंका इसने विरोध किया। इस पत्रकी भाषा-नीति-के विरोधमें १८५० ई० में तारामोहन मैत्रके सम्पादकत्वमें 'सुधाकर'का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। —ह० दे० बा०

बनारसीदास–श्वेताम्बर जैन सम्प्रदायके अनुयायी श्रीमाल वैश्य कुलमें बनारसीदासका जन्म जौनपुरमें सन् १८५६ ई०में हुआ। उनके पिताका नाम खरगसेन था और खरतरगच्छीय लघुशाखाके भानुचन्द्र उनके गुरु थे। लग-भग सन् १६२३ ई० तक वे श्वेताम्बर सम्प्रदायके अनुयायी रहे। उस समय तक रचित उनकी कृतियोंमें उक्त सम्प्रदाय-की झलक मिलती है। उनकी ससुराल खैराबादके निवासी अर्थमल ढोरके प्रभावसे बनारसीदासकी आस्था श्वेताम्बर मतसे हट गयी और वे क्रियाकाण्डको छोड़ अध्यात्मी बन गये। रूपचन्द नामक जैन विद्वान्के प्रभावसे वे दिगम्बर सम्प्रदायकी ओर झुके। परवर्ती जैनाचार्योंने उनके मतको 'साम्प्रतिक अध्यात्ममत', 'आध्यात्मिक' या 'वाणारसीय' कहा है। बनारसीदासको वे पूर्णरूपेण दिगम्बर सम्प्रदायका अनुयायी नहीं मानते। जैन धर्मको सर्वसाधारण तक पहुँचानेके लिए बनारसीदासने बोलचालकी भाषाका प्रयोग किया और उनके तथा उनके समान अन्य विद्वानोंके प्रयासोंके फलस्वरूप संस्कृत और प्राकृतके अतिरिक्त सामान्य जनभाषामें भी जैन धर्मकी रचनाएँ लिखी जाने लगीं। बनारसीदासके मतका समर्थन तथा विरोध करनेके लिए अनेक कृतियाँ रची गयीं। जो हो, वे निर्भीक और स्वतन्त्र विचारक थे।

अपनी कृति 'अर्ध कथानक'में बनारसीदासने अपने जीवनके पचपन वर्षोंकी अनेक घटनाओंका बहुत ही रोचक ढंगसे वर्णन किया है। वे व्यापार करते थे और बैलगाडियाँ लेकर आगरा तक आया-जाया करते थे। मार्ग में उन्हें अनेक प्रकारकी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता था। अनेक झंझटोंके बीच रहकर भी वे साहित्य-

रचना किया करते थे। उनका जीवन बहुत सुखी नहीं था। उनके कई लड़के हुए किन्तु सब मर गये। अपने विषयमें उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा है कि "वे क्षमावन्त, सन्तोषी हैं, कवित्त पढ़नेकी कलामें दक्ष हैं, संस्कृत, प्राकृत और नाना देश-भाषाओंके ज्ञाता हैं, मिष्टभाषी हैं और जैनधर्ममें दृढ़ विश्वास रखते हैं।" अपने दोषोंका भी अपनी 'आत्मकथा'में उन्होंने स्पष्ट रूपसे उल्लेख किया है। सब मिलाकर उनका पारिवारिक जीवन दुःखी था किन्तु उस दुःखको उन्होंने दार्शनिककी भांति देखा, वे मस्त जीव थे।

बनारसीदास प्रतिभासम्पन्न तथा बहुश्रुत व्यक्ति थे। अनेक प्रकारकी कृतियाँ उन्होंने लिखी हैं। चौदह वर्षकी अवस्थामें लौकिक-प्रेमसे सम्बन्धित दोहा-चौपाइयोंमें 'नवरस' नामक कृतिकी उन्होंने रचना की थी, जिसे उन्होंने स्वयं गोमतीमें प्रवाहित कर दिया था। उनकी प्राप्त कृतियोंमें 'नाममाला' सबसे प्रारम्भकी कृति है। १७५ दोहोंमें समाप्त यह शब्दकोश है। वीर सेवा मन्दिर सरसावासे यह कृति प्रकाशित हो चुकी है। कुन्द-कुन्दकी प्राकृत रचना तथा उसपर लिखी टीकाओंसे प्रेरणा प्राप्त कर सन् १६३६ई०मे बनारसीदासने 'नाटक समयसार'की रचना दोहा, सोरठा, चौपाई, छप्पय, अरिल्ल, कुण्डलिया, सवैया और कवित्त आदि छन्दोंमें की। यह कृति टीकाओं सहित हिन्दी और गुजरातीमे प्रकाशित हो चुकी है। श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनो ही सम्प्रदायोंमे इस कृतिका समान रूपसे प्रचार है। बनारसीदासकी रचनाओं को उनकी मृत्युके थोड़े ही दिन बाद जगजीवनने सन् १६४४ ई०में 'बनारसी विलास'के नामसे संगृहीत किया था। उसमें इनकी सभी रचनाएँ—लगभग छोटी-बडी ७५ कृतियों—संगृहीत है। जगजीवनने कुछ रचनाओका रचनाकाल भी दिया है। प्रायः सभी कृतियोंका विषय धार्मिक या उपदेशप्रधान है। यह उनकी कृतियोंके नामसे ही स्पष्ट हो जायगा—'ज्ञान बावनी,' 'जिन सहस्रनाम', 'सूक्त मुक्तावली','कर्म प्रकृति विधान', 'अजितनाथके छन्द', 'करमछतीसी','ज्ञान पचीसी','ध्यान बत्तीसी', 'पैडी', 'सूक्ति मुक्तावली', 'वेदनिर्णयपचासिका,' 'त्रेसठशलाका पुरुषोंकी नामावली', 'मार्गणाविधान', 'साधुवन्दना, 'सोलह तिथि,' 'तेरह काठिया', 'अध्यात्म गीत', 'पंचपद विधान', 'मोहविवेकजुद्ध', 'बनारसी पद्धति' आदि। और भी इस प्रकारकी अनेक कृतियोंकी इन्होंने रचना की है। इन छन्दोबद्ध कृतियोंमें काव्यकी मात्रा बहुत ही कम है। मध्ययुगीन भावधारा तथा संस्कृतिके अध्ययनके लिए यह साहित्य मूल्यवान् है।

[सहायक ग्रन्थ—हिन्दी जैन साहित्यका इतिहास: कामता प्रसाद जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी; अर्ध कथानक: नाथूराम प्रेमी संस्करण, भूमिका; हिन्दी साहित्यके विभिन्न इतिहास।] —रा० तो०

बनारसीदास चतुर्वेदी—जन्म २४ दिसम्बर, १८९२ ई० को फिरोजाबादमे हुआ। बनारसीदास चतुर्वेदीकी गणना अग्रगण्य पत्रकार और साहित्यिकोंमें की जाती है, यद्यपि हिन्दी-साहित्यके प्रति अनुराग और लेखककी अभिरुचिके लक्षण इनमें पत्रकार बननेसे पहले ही दिखाई दे चुके थे। साहित्य-सृजन और सार्वजनिक सेवा ही ने इन्हें सुखी और सम्पन्न जीवनके प्रति उदासीन बना दिया और राजकुमार कालेजकी स्थिर नौकरी छोड़ अस्थिर और अल्पवेतन वाले काम करने पर बाध्य किया। बनारसीदासजीकी इन प्रवृत्तियोंको यथेष्ट आश्रय पत्रकारिता ही में मिला। यह इनका सौभाग्य था कि ऐसे ही समय जब ये साहित्य सेवा के आदर्शसे अनुप्राणित हुए, इनका सम्पर्क गणेशशंकर विद्यार्थी जैसे पत्रकार और जननायकसे हो गया। उनसे बनारसीदासजीने जो कुछ सीखा और जो प्रेरणा पायी, उस ऋणसे उऋण वे गणेशशंकरजी की जीवनी लिखकर ही हो सके।

बनारसीदासजीका पत्रकारिता-जीवन 'विशाल भारत'के सम्पादनसे आरम्भ होता है। स्वर्गीय रामानन्द चटर्जी, जो 'मार्डन रिव्यू' और 'विशाल भारत'के मालिक थे, बनारसीदासजीकी सेवा भावना और लगनसे बहुत प्रभावित थे। कलकत्तामें रहते हुए उनका अनेक प्रमुख राष्ट्रीय नेताओंसे परिचय हुआ। प्रवासी भारतीयोंकी समस्यामें इनकी विशेष दिलचस्पी थी। इसके कारण ही सी० एफ० एंड्रूज और श्रीनिवास शास्त्रीसे उनकी विशेष मैत्री हो गयी। इन दोनों महानुभावोंका प्रवासी भारतीयोंकी समस्यासे विशेष सम्बन्ध था। बनारसीदासजीने 'विशाल भारत'को एक साहित्यिक और सामान्य जानकारीसे परिपूर्ण मासिक पत्रिका बना दिया। इसके स्तम्भोंमें प्रायः सभी प्रमुख लेखकोंकी रचनाएँ प्रकाशित होती थी।

'विशाल भारत' छोड़नेके बाद बनारसीदासजीने टीकमगढसे 'मधुकर'का सम्पादन करना आरम्भ किया। ओरछा नरेश इनका विशेष आदर करते थे और हिन्दीप्रेमी थे। बनारसीदासजीने वास्तवमे जीवन भर पढने और लिखनेके सिवाय कुछ नही किया। उनका अध्ययन हिन्दी, संस्कृत और भारतीय साहित्य तक ही सीमित नहीं। अंग्रेजीके माध्यमसे उन्होने पाश्चात्य साहित्यका भी गहरा अध्ययन किया है। बनारसीदासजीकी अपनी शैली है, जो बातचीतकी भाषाके निकट होते हुए भी ओजपूर्ण तथा प्रांजल है और अत्यधिक आकर्षक है। निबन्ध, रेखा-चित्र, वर्णन आदिके लिए उनकी लेख-शैली विशेष रूपसे उपयुक्त है। उनकी रचनाओमे 'रेखा-चित्र' (१९५२ ई०), 'साहित्य और जीवन' (१९५४ ई०), 'गणेशशंकर विद्यार्थी', 'संस्मरण' आदि अधिक प्रसिद्ध है। अपने लेखों और सहानुभूतिपूर्ण आलोचना द्वारा उन्होंने अनेक तरुण लेखकोंको प्रोत्साहित किया है।

बनारसीदासजीने जीवनको निकटसे देखा है। इसलिए उनके रेखाचित्र सजीव है, वे चलते फिरते दिखाई देते है और बोलतेसे सुनाई पडते हैं। रेखा-चित्रोंके क्षेत्रमे इनका कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

चतुर्वेदीजी नियमित रूपसे अपनी डायरी लिखते हैं, जिसका सम्पूर्ण प्रकाशन हिन्दी साहित्यमें अवश्य ही महत्त्वपूर्ण होगा। हालमें ही वे रूसी लेखक संघके आमन्त्रण पर रूसकी भी सैर कर आये है और वहाँसे लौटकर उन्होंने सुन्दर लेखमाला लिखी है। आजकल दिल्लीमें वे सभी साहित्यिक संस्थाओंसे किसी न किसी रूपमे सम्बद्ध

है। राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत राज्यसभाके सदस्य भी है। यह सम्मान उन्हें अपनी हिन्दी सेवाके कारण ही मिला है। संसद-सदस्यके रूपमें दिल्ली-निवासकी अवधिमें भी वे सभी साहित्यिक हलचलोंके प्रमुख सूत्रधारोंमें हैं। संसदीय हिन्दी-परिषद, दिल्ली हिन्दी साहित्य सम्मेलन, हिन्दी पत्रकार संघ आदि संस्थाओंके संचालनमें रुचि लेने के साथ-साथ बनारसीदासजीको दिल्लीमें 'हिन्दी भवन' खोलनेका भी श्रेय है। 'हिन्दी भवन' राजधानीकी साहित्यिक गतिविधिका केन्द्र बनता जा रहा है। किसी भी विषयको लेकर संकलन अथवा प्रकाशनके कार्यमें जहाँ कहीं कोई कठिनाई होती है, वहाँ बनारसीदासजी सदा सहायकके रूपमें तैयार रहते हैं। इसका उदाहरण स्वातन्त्र्य-संग्रामके शहीदोंकी जीवनियोंका प्रकाशन है। सामग्रीका संकलन बनारसीदासजीने किया और इस काम का कार्यालय उनका घर ही है। इस प्रकार निशिदिन वे हिन्दी भाषा और साहित्यके निर्माणमें संलग्न हैं।

कृतियाँ—'राष्ट्रभाषा' (१९१९ ई०), कविरत्न सत्य नारायण जीकी जीवनी (१९०६ ई०), 'संस्मरण' (१९५२ ई०), 'रेखाचित्र' (१९५२ ई०)। —शा० द०

बरवै नायिका भेद—रहीमकृत नायिका भेदके इस प्रसिद्ध ग्रन्थमें जाति, गुण, अवस्था आदिके अनुसार विभिन्न नायिकाओंके ७९ और नायकोंके ११ भेदोंका मात्र उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। इसमें मतिरामके लक्षणों को मिलाकर इसे लक्षण-लक्ष्य पद्धतिका काव्य बना दिया गया है। 'समालोचक' (कृष्णबिहारी मिश्र, १९२८ ई०) में यह ग्रन्थ 'नवीन-संग्रह' नामसे प्रकाशित हुआ था। सम्भव है किसी 'नवीन' नामधारी कविने मतिरामके लक्षणोंको मिलाकर इसे पूर्णता प्रदान की हो। इसकी दो हस्तलिखित प्रतियाँ—काशीराज पुस्तकालयकी प्रति और कृष्ण बिहारी मिश्रकी प्रति—प्रसिद्ध है। इसके कई सम्पादित संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। मायाशंकर याज्ञिक (रहीम रत्नावली), ब्रजरत्नदास (रहिमन विलास), नकछेदी तिवारी (बरवै नायिका भेद), कृष्ण बिहारी मिश्र (बरवै नायिका भेद) और प्रभुदयाल मीतल (बरवै नायिका भेद) के संस्करण उल्लेख्य है। रहीमके ये बरवै अत्यन्त मोहक और कलात्मक हैं। —रा० च० ति०

बरवै रामायण—यह रचना तुलसीदासकी है। इसमे बरवा छन्दोंमें रामकथा कही गयी है। रचनाके मुद्रित पाठमें स्फुट ६९ बरवै है, जो 'कवितावली'कीही भाँति सात काण्डोंमें विभाजित है। प्रथम छः काण्डोमे रामकथाके छन्द हैं, उत्तरकाण्डमे रामभक्तिके। मुद्रित पाठको लिया जाय तो यह रचना बहुत स्फुट ढंगपर निर्मित हुई है, या यों कहना चाहिए कि इसमें बहुत स्फुट ढग पर रचे हुए रामकथा तथा रामभक्तिसम्बन्धी बरवा छन्दोंका संग्रह हुआ है। किष्किन्धाकाण्डमें सुग्रीवका रामसे प्रश्न है, "कुजन पाल गुन वर्जित अकुल अनाथ, कहहु कृपानिधि राउर कर गुन नाथ॥" किन्तु यहींपर किष्किन्धाकाण्ड समाप्त हो जाता है। लंकाकाण्डमें रामकी जलधि सदृश रामकी वाहिनीका एक छन्दमें वर्णन किया गया है और यही एक मात्र छन्द लंकाकाण्डकी कथाका है। उत्तरकाण्डकी कथाका एक भी छन्द नहीं है।

किन्तु 'बरवा' की ऐसी प्रतियाँ भी मिलती हैं, जिनमें कथा विस्तारके साथ कही गयी है। कुछ ऐसी प्रतियाँ भी मिलती हैं, जिनमें रामकथा है ही नहीं, केवल रामभक्ति सम्बन्धी बरवै हैं। ऐसी दशामें इस रचनाके पाठकी स्थिति अत्यन्त अनिश्चित हो जाती है। इनकी अधिक अनिश्चित स्थिति तुलसीदासकी रचनाओंमेंसे किसीके पाठकी नहीं है। हो सकता है कि दस-बीस स्फुट बरवै किसी समय तुलसीदासके रचे रहे हों, जिन्हें स्वतन्त्र रचनाका रूप देना उन्होंने आवश्यक न समझा हो। उनके देहान्तके बाद उन्हीं इने-गिने बरवोंमें नवकल्पित बरवै मिलाकर भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंने भिन्न-भिन्न बरवा-संग्रह तैयार कर लिये।

इन परिस्थितियोंमें रचनाका काल निर्धारण असम्भव है। यह रचना विभिन्न प्रतियोंमें जितने भी रूपोंमें प्राप्त है, उनमेंसे कोई भी रूप कविके समयका कदाचित् नही है। उसके देहावसानके बाद ही संभवतः इस रचनाके समस्त रूप निर्मित हुए, अधिकसे-अधिक यही कहा जा सकता है। —मा० प्र० गु०

बलदेव—ये दासापुर (जिला सीतापुर) गाँवके निवासी थे। इनका जन्म १८४० ई०मे हुआ था। इनका 'प्रताप-विनोद' नामक काव्य-शास्त्रका ग्रन्थ लगभग १८६९ ई०में लिखा गया। इसके अतिरिक्त इनके तीन ग्रन्थ और प्राप्त हुए हैं—'मुक्तमाल, 'ब्रजराज विहार' और 'शृंगार सुधाकर'। ये सभी रचनाएँ शृंगारपरक और रीति-परम्परा की है।—सं०

बलदेव मिश्र—ये औरंगजेबके समकालीन आजमगढ़के संस्थापक अजमत खाँ और आजम खाँके आश्रित कवि थे। इनके नामपर इन्होंने 'अजमति खाँ यशवर्णन' नामक ग्रन्थ लिखा। इनके फुटकर छन्द संकलनोंमें मिलते हैं। —सं०

बलभद्र मिश्र—ये ओरछाके सनाढ्य ब्राह्मण कुलके काशीनाथके पुत्र और आचार्य केशवदासके बड़े भाई थे। रामचन्द्र शुक्लने इनका जन्म १५४३ ई०के लगभग माना है। इनके रीति परम्परासे सम्बद्ध दो ग्रन्थ माने जाते हैं—'नखशिख' और 'रसविलास'। इनका रचना-काल १५८३ ई०के पहले माना गया है। गोपाल कविने बलभद्रकृत 'नखशिख'की टीका १८३४ ई०में लिखी, जिसमें इनके तीन और ग्रन्थोंका उल्लेख किया है—'बलभद्री व्याकरण', 'हनुमन्नाटक', 'गोवर्द्धन सतसई टीका'। एक 'पूषण विचार' नामक पुस्तकका पता और चला है।

इनका 'नखशिख' प्रसिद्ध रहा है। इसमे नायिकाके अंगोंका वर्णन आलंकारिक शैलीमे किया गया है। 'रसविलास'मे रसोंका वर्णन अपनी विशेषता लिये हुए है। बलभद्रने इसको महाकाव्य कहा है और इसमे संचारी, ललित और स्थायी भावोंका ही वर्णन किया गया है। रसका स्वतन्त्र वर्णन नहीं है, वरन् इन वर्णनोंके अनेक उदाहरण रसपूर्ण हैं। इनके काव्यमें इनका भाषापर अधिकार और पांडित्य प्रत्यक्ष है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० इ०; हि० सा० बृ० इ० (भा० ६)।] —सं०

बलराम—महाभारत और पुराणोंमें कृष्णके साथ उनके भाई

बलराम अथवा बलभद्रका उल्लेख प्रायः सर्वत्र हुआ है। परन्तु बलरामके जन्मका वर्णन कदाचित् सबसे पहले हरिवंशमें ही मिलता है। बलराम देवकीके सातवें पुत्र थे परन्तु देवकीके गर्भसे ही उन्हें योगमायाके द्वारा संकर्षित करके रोहिणीके गर्भमें धारण कर दिया गया था। रोहणी वसुदेवकी दूसरी पत्नी थी, जिसे उन्होंने प्रसवके पूर्व ही नन्दके यहाँ भेज दिया था। इस प्रकार नन्दके यहाँ ही बलरामका जन्म हुआ। गर्भ संकर्षणके कारण बलरामका नाम संकर्षण पड़ा। श्रीमद्भागवतमें कृष्णकथाके अन्य प्रसंगोंकी भाँति बलरामके जन्म और चरित्रके भी विवरण विस्तारसे दिये गये हैं। वे शेषनागके अवतार हैं तथा कृष्णके दैवत रूपके एक अंश हैं। अत्यन्त शक्तिशाली होनेके कारण ही उनका नाम बलराम है। कृष्णकी असुर संहार-लीलामें वे उनकी सहायता करते हैं। कंस द्वारा भेजे गये प्रलम्ब और धेनुक नामक असुरोंका उन्होंने ही वध किया था। कंस द्वारा आयोजित धनुष-यज्ञमें भी वे कृष्णके साथ मथुरा गये थे और कंसके मल्ल मुष्टिकका उन्होंने ही वध किया था। गदा-युद्धमें वे अत्यन्त निपुण थे। दुर्योधनको उन्होंने एक बार पराजित किया था, अतः दुर्योधनने उनसे गदायुद्धकी शिक्षा ली थी। महाभारत युद्धमे उनके भी भाग लेनेकी सम्भावना थी, इसीलिए कृष्णने उन्हें युद्धके पूर्व तीर्थस्थानोंकी यात्राके लिए भेज दिया था। कृष्णके मथुरा-प्रवासके समय उन्होंने ब्रजकी यात्रा भी की थी और वहाँ अपने बल-प्रयोगके द्वारा यमुनाके साथ मनमानीकी थी (दि० सूर० पद ४८२१-४८२३)। हरिवंशसे लेकर भागवत और ब्रह्मवैवर्त्त तक सभी पुराणोंमें बलरामका स्वभाव क्रोधी और उद्दण्ड चित्रित किया गया है। मद्यपान उनके स्वभावका अभिन्न अंग कहा गया है (दि० सूर० पद ४८१९-४८२०)। हल और मूसल उनके प्रमुख शस्त्र हैं, जिनके कारण उन्हें हलधर और मूसलधर भी कहा गया है।

सूरदासने बलरामको कृष्णके अलौकिक व्यक्तित्वके एक अंशके रूपमें चित्रित किया है। एक पदमें सूरदास कहते हैं—वे रोहिणी सुत राम हैं। उनका रंग गौर है, लोचन सुरंग (लाल) हैं, मानो उनमें प्रलयका क्रोध प्रकट हुआ हो। एक श्रवणमे वे कुण्डल धारण किये हुए हैं।...अंग पर नीलाम्बर पहने हैं, वे श्यामकी कामना पूर्ण करने वाले हैं। उन्होंने तालवनमें वत्सको मारकर ब्रह्माकी कामना पूर्ण की थी। वे सूर प्रभुको आकर्षित करते हैं, इससे उनका नाम संकर्षण है (पद ३६६३)। अवस्थामें कृष्णसे बड़े होनेके कारण वे कृष्णके प्रति वात्सल्य भाव रखते हैं, यद्यपि कृष्णके क्रीडा और गोचारण सहचर होनेके कारण वे उनके सखा ही हैं। बलरामके चरित्रकी सबसे बड़ी विशेषता सूरदासने यह दिखाई है कि वे कृष्णके वास्तविक रूपसे परिचित हैं और उनकी लीलाओंका रहस्य जानते हैं। कृष्णकी मानव-लीलाओंको देखकर वे निरन्तर उनके अति प्राकृत व्यक्तित्वकी ओर संकेत करते हुए आश्चर्य प्रकट करते देखे जाते हैं। खेलमें कृष्णको चिढ़ानेके लिए जब वे यह कहते हैं कि न तो इसकी माँ है और न इसका बाप तथा यह हार-जीत कुछ नहीं समझता, इसीलिए सखाओंसे झगड़ा करने लगता है, तब बलरामके कथनमें कृष्णके अलौकिक व्यक्तित्वका संकेत छिपा रहता है। सूरदासने बलरामके द्वारा कृष्णके माता-पिताहीन होनेका अनेक बार उल्लेख कराया है। कृष्णके प्रति बलरामका भ्रातृ-स्नेह उलूखल-बन्धनके प्रसंगमें सबसे अधिक तीव्र रूपमें प्रकट हुआ है। कृष्णको बँधा देखकर वे अत्यन्त दुःखी हो जाते हैं। पहले वे कृष्णकी स्नेहपूर्ण भर्त्सना करते हैं फिर यशोदासे अत्यन्त विनीत प्रार्थना करते हैं कि कृष्णको बन्धनसे छोड़ दें, चाहे उसके बदले मुझे बाँध दें। यशोदाकी निष्ठुरताकी निन्दा करते हुए वे अत्यन्त क्रुद्ध हो जाते हैं और उन्हें धमकीतक देने लगते हैं। ऊलूखल-बन्धनसे कृष्णको बलराम ही छुड़ाते हैं और उन्हें हृदयसे लगाकर उनका दुःख दूर करते हैं। सूरदासने इस प्रसंगमें बलरामका एक स्नेहशील अग्रजके रूपमें स्वाभाविक चित्रण किया है। यद्यपि उन्होंने बलरामके इस स्वगत कथनका भी उल्लेख कर दिया है, जिसमें वे कहते हैं कि उन्हें कौन बाँध सकता है और कौन छोड़ सकता है, वे ही तो उत्पत्ति और प्रलय करते हैं। गोचारणके लिए वन जानेकी आज्ञा कृष्णको बलरामकी सहायतासे ही मिलती है। वनमे जितने असुरोंका कृष्णने संहार किया, उनमेंसे वत्स और धेनुकको बलरामने ही मारा था। प्रलम्बासुरका वध भी उन्हींके संकेतसे हुआ था। असुरोंके वधके अतिरिक्त अन्य लीलाओंमें भी कृष्णको उनसे सहायता मिलती है। कालियदह और गोवर्द्धनधारणके प्रसंगोंमें ब्रजवासियोंको आश्वासन देकर उनकी व्याकुलताको दूर करनेका सफल प्रयत्न बलराम ही करते हैं। कृष्ण भी उनका समुचित सम्मान करते हैं और जैसा कि यशोदा कहती हैं कृष्ण यदि किसीसे सकुचते हैं तो केवल अपने 'बलभइया' से। कृष्णको बलरामकी सहायता अपने सभी संहार और उद्धारके कार्योंमे मिलती है। सूरदासने कृष्ण-लीलाके इस पक्षके वर्णनमें बलरामको सबसे अधिक महत्त्व दिया है। कृष्णावतारके मर्यादा-रूपके उद्देश्यकी पूर्ति कराना बलरामपर निर्भर है। कृष्णके मथुरा प्रस्थानके समय वे माता यशोदाको संसारकी क्षणभंगुरताका उपदेश देते हैं और कृष्णके महान् उद्देश्यकी पूर्तिका संकेत करते हैं। सूरदासने भी बलरामके मद्यपानका उल्लेख किया है और कहा है कि वारुणी उन्हे अत्यन्त प्रिय है। द्वारकासे जब वे ब्रज जाते हैं तो सुरापानमें उन्मत्त होकर वे कालिन्दीके साथ दुर्व्यवहार करते हैं। ऐसा अनुमान होता है कि बलराम कृष्णके तामस रूपके प्रतीक है। सूरदासने कृष्णसे उनकी अभिन्नताके कारण कृष्ण-बलरामको अपने इष्टदेवके रूपमें स्वीकार किया है।

परवर्ती कृष्ण-काव्यमें कृष्णके साथ बलरामका नामोल्लेख तो कहीं-कहीं हो गया परन्तु उनके कार्योंका वर्णन बिल्कुल नहीं किया गया। कारण यही है कि परवर्ती कृष्ण-काव्य माधुर्य-भाव और शृंगार-रससे परिसीमित है। आधुनिक कालमें अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'ने अपने 'प्रियप्रवास'में बलरामका कृष्णके भ्राताके रूपमें सामान्य उल्लेख किया है तथा उनके उत्साहपूर्ण कृत्यों, शौर्य और पराक्रमका भी किंचित् परिचय दिया है। मैथिलीशरण गुप्तने 'द्वापर'में बलरामके माध्यमसे अतीतके गौरवका

ज्ञान कराया है और यद्यपि कृष्णके मथुराप्रस्थानके समय वे कृष्णके साथ ही थे फिर भी उनके द्वारा कृष्णका स्मरण कराया है। कृष्ण-कथासम्बन्धी अन्य काव्योंमें बलरामकी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया।

[सहायक ग्रन्थ—सूरदास : ब्रजेश्वर वर्मा, हिन्दी परिषद्, विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।] —ब्र० व०

बलबीर—इतिहास ग्रन्थों और खोज विवरणोंमें इनके 'उपमालंकार' तथा 'दम्पति विलास' नामक काव्य-शास्त्रीय ग्रन्थोंकी चर्चा हुई है। पहलेका रचना-काल १६८४ ई० और दूसरेका १७०२ ई० माना गया है। इस आधारपर इनके उपस्थिति-कालका अनुमान भी लगाया जा सकता है। —सं०

बलि—बलि एक दैत्यराजके रूपमे प्रसिद्ध हैं। ये प्रह्लादके पौत्र तथा विरोचनके पुत्र थे। बलिकी पत्नीका नाम विन्ध्यावली कहा जाता है। कठोर तपस्यासे संचित शक्ति के आधारपर बलिने इन्द्रको भी पराजित किया था। इस प्रकार इसने तीनों लोकोंपर अपना प्रभुत्व स्थापित किया था। बलिने अन्तमें अश्वमेध यज्ञका आयोजन करके दान देना प्रारम्भ किया। इससे इन्द्रको बलि द्वारा अपने पदके हस्तगत हो जानेका सन्देह हुआ। अतः इन्द्रकी प्रार्थनापर विष्णु वामन रूपमें बलिके सामने उपस्थित हुए। वामनने बलिकी प्रशंसा की तथा उससे तीन पग भूमिकी याचना की। बलि इससे बड़े आश्चर्यचकित हुए। बलि के गुरु शुक्राचार्यने उस समय उन्हें अस्वीकृति देनेके लिए कहा। वे समझ गये कि वामन विष्णुके प्रतिरूप हैं किन्तु बलिने उनका कहना नहीं माना। उन्होंने कहा कि अपने द्वारपर आये हुए किसी भी व्यक्तिको मैं निराश नहीं जाने दूँगा। दानके संकल्प-पाठके समय शुक्राचार्य ने जलपात्रकी टोंटीमें बैठकर उसे अवरुद्ध कर दिया। सींकेसे जब जलको बाहर निकालनेका यत्न हुआ तो शुक्राचार्य की आँख फूट गयी। इसके अनन्तर जब दान लेनेका समय आया तो वामनरूपधारी विष्णुने अपना अनन्त विस्तार किया तथा एक पगमें समस्त भूमण्डल तथा दूसरे पगमें स्वर्गको नाप लिया। तीसरा पग उठानेपर उन्हें पग रखने की जगह भी न मिली। बलिसे प्रश्न करनेपर उसने अपने मस्तकपर रखनेकी बात कही। विष्णुने इसे स्वीकार करके तीसरा पैर बलिके मस्तकपर रख दिया। बलिकी यह अवस्था देखकर इस परिस्थितिसे उनकी रक्षा हेतु स्वयं प्रह्लाद प्रकट हुए। उनके अनुनय, विनय तथा स्वयं बलिके पुण्य कार्योंसे प्रसन्न होकर विष्णुने बलिको विश्वकर्मा द्वारा निर्मित सुतलमें रहनेकी आज्ञा प्रदान की तथा अन्तमें इन्द्रपदप्राप्तिका भी वरदान दिया। बलि उनकी आज्ञा स्वीकारकर उस रोग, जरा, मृत्युहीन लोकमें जाकर अवस्थित हो गये। —रा० कु०

बलिराम—इनके 'रस-विवेक' नामक काव्य-शास्त्रीय ग्रन्थ का उल्लेख मिलता है। १७ वीं शताब्दीका अन्त इनका समय माना जा सकता है। —सं०

बलदेवप्रसाद मिश्र १—जन्म १८९८ ई० में राजनाँदगाँव (मध्यप्रदेश)में हुआ। शिक्षा एम० ए०, एल एल० बी०, डी० लिट तक। 'साकेत सन्त' (१९४६ ई०) आपका प्रसिद्ध महाकाव्य है। 'तुलसी दर्शन' आपकी शोध-कृति है।—सं०

बलदेवप्रसाद मिश्र २—जन्म २९ अप्रैल, सन् १९१३ ई०में काशीमें तथा मृत्यु २० मई, सन् १९५६ ई०में लखनऊमें। आपकी कहानियोंके दो संग्रह काशीसे सन् १९४७ ई० में प्रकाशित हुए हैं—'उलूकतन्त्र' और 'शवसाधन'। 'उलूक-तन्त्र'में हास्यरसकी कहानियोंका संग्रह है और 'शवसाधन' में विभिन्न प्रकारकी कहानियोंका। आपकी कहानियाँ बहुत उच्चकोटिकी हैं।

कृतियाँ—'अनुभूति', 'शवसाधन', 'उलूकतन्त्र' (कहानी संग्रह), 'दीपदान', और 'ब्रज-विभूति' (कविता संग्रह), 'मौलिकताका मूल्य' (लघुकथा, निबन्ध)। —सं०

बहराम ओ गुल अंदाम—यह रचना दक्खिनी हिन्दीका एक प्रेमाख्यान है, जिसके रचयिताका नाम 'तबई' है। 'तबई'ने इसका रचनाकाल सन् १६७० ई० (१०८१ हि०) दिया है और कहा है कि उसने इसे "रात दिन बेहिसाब" परिश्रम करके और "फिक्र"के साथ "चलीस दिनोंमें" लिखा है तथा इसके अन्तर्गत १३४० "वेतवेता" (अथवा शेर) गिने जा सकते हैं। इस रचनाका नायक ईरानके सासानी वंशका चौदहवाँ बादशाह बहराम गोर (सन् ४२१-३८ ई०) है, जिसके विषयमें प्रसिद्ध फारसी कवि 'निजामी गंजवी' (सन् ११४०-१२०३)ने 'हफ्त पेकर' या 'बहरामनामा'की रचना की है तथा यह भी प्रसिद्ध है कि इसीकी जीवनीसे सम्बद्ध घटनाओंके आधारपर एक अन्य ऐसे ही कवि 'हातिफी' (मृत्यु सन् १५२१ ई०)ने भी अपना 'हफ्त मंजर' काव्यग्रन्थ लिखा है। भारतके कवियोंमेंसे भी अमीर खुसरो (सन् १५२३-१५२५ ई०)ने इस विषयपर फारसीमें अपनी 'हस्त बिहिश्त' नामक रचना प्रस्तुत की है, जिसका दक्खिनी हिन्दी अनुवाद मलिक खुशनोदने सन् १६४५ ई० (१०२६ हि०)में किया है और निजामीकी उक्त रचनाका भी बंगला अनुवाद अलाओल कविने सन् १६६० ई०में किया है तथा दक्खिनीमें ही प्रायः स्वतन्त्र रूपमें 'अमीन'ने सन् १६२० ई०में 'बहराम ओ हुस्नबानू'का लिखना आरम्भ किया था, जिसे फिर सन् १६३८ ई०मे 'दौलत'ने पूरा किया। 'तबई'के लिए इस प्रकारके सभी काव्यग्रन्थ किसी न किसी रूपमें अपने आदर्शका काम दे सकते थे। 'तबई'के बाद मुहम्मद सैयदुद्दीनने हैदराबादमें अपनी पुस्तक 'किस्सा बहराम ओ दिन आराम'की रचना की। अंग्रेज लेखक डा० आर्वेरीने फारसी साहित्यके प्राचीनतम इतिहासके रचयिता 'ओफी'के आधारपर बतलाया है कि बहराम गोरने ही फारसीका प्रथम पद्य भी रचा था। वह बादशाह एक बहुत बड़ा शिकारी था और अपने विशेषकर 'गोरखर' या जंगली गधेके शिकारके ही कारण वह 'गोर' कहलाकर प्रसिद्ध हुआ था। उसकी सात प्रमुख बेगमें थी, जो सात-भिन्न-भिन्न देशोंकी थीं, जो उसके साथ विभिन्न उद्यानोंमें रहती थी और जिन सभीसे वह प्रेम करता था। 'तबई'ने 'बहराम ओ गुल अन्दाम'के अन्तर्गत इसी बादशाहके विलासप्रिय जीवनपर प्रकाश डाला है। इस रचनाका कोई सुन्दर प्रामाणिक संस्करण अभीतक प्रकाशित नहीं है और यह अधिकतर हस्तलिखित रूपमें ही पाया जाता

है। इसकी एक प्रति ब्रिटिश म्यूजियममें भी उपलब्ध है। कविने इसे नियमतः परमात्माकी स्तुतिसे ही आरम्भ किया है और फिर हजरत मुहम्मद, हजातअली तथा शाहराजूकी भी प्रशंसा या वन्दना की है। उसने यहाँपर यह भी लिखा है कि किसी दिन स्वप्नमें प्रसिद्ध कवि वजहीने आकर मेरी मसनवीकी प्रशंशा की। काव्य-रचनाका उद्देश्य यह अक्षयकीर्ति ही देता है।

मूल कथाका सारांश इस प्रकार है—बहराम ईरानके बादशाह यज्देगिर्दका पुत्र था और वह आवश्यक शिक्षा प्राप्त करनेके लिए अरब प्रदेशमें भेजा गया गया। वहाँपर वह हीराके अरब बादशाह नोमनके संरक्षणमें रहने लगा, जिसने अपने पुत्र मंजनके साथ उसे उचित शिक्षा देना आरम्भ किया। शाहजादा बहरामके रहनेके लिए उसने एक राजमहल पृथक् बनवा दिया, जो 'खबरनक' नामसे प्रसिद्ध हुआ। वहाँसे वह प्रायः शिकार खेलनेके लिए अपने घोडे 'अशकर'पर निकल पड़ता और जंगली जानवर तथा विशेषकर बनैले गधोंका शिकार किया करता। एक दिन उसे खबरनक महलके किसी गुप्त अंशमें सुन्दरी राजकुमारियोंके सात चित्र मिल गये, जो सात विभिन्न देशोंकी थीं और वह उनपर मोहित हो गया परन्तु लगभग उसी समय उसे अपने यहाँसे बादशाह यज्देगिर्दकी मृत्युका समाचार मिला, जिस कारण उसे ईरान वापस जाना पड़ गया। ईरानका सिंहासन सूना पाकर कर्मचारियों ने किसी व्यक्तिको उस पर बिठा दिया दिया था, जिसे हटानेके लिए सहजादेने एक प्रस्ताव रखा। इसने कहलाया कि ईरानी राजमुकुटको दो सिंहोंके बीच रख दिया जाय और उसे जो वहाँसे प्राप्त कर ले, उसे ही बादशाह बनाया जाय। तदनुसार दो भयानक सिंहोंके बीच उसे रखा गया तथा अपने प्रतिद्वन्द्वीके हिचकनेपर शिकारी शहजादेने उसे सरलतापूर्वक हाथमे कर लिया। राज्य प्राप्त कर लेनेपर बहरामने सर्वप्रथम अपने अभिभावक नोमनको अनेक प्रकारके भेंट अर्पित किये और फिर दूसरोंको भी सन्तुष्ट किया।

तदुपरान्त उसने फिर अपनी आखेटप्रियताका परिचय देना आरम्भ किया। वह नित्यप्रति इसके लिए निकलने लगा और अपने साथ अधिकतर अपनी प्रेयसी दासकन्या फितना या 'दिलाराम'को भी ले जाने लगा, जो अवकाशके क्षणोंमें उसका मनोरंजन संगीत द्वारा किया करती थी। एक दिन संयोगवश जब उसने तीर चलानेमें विशिष्ट हस्तकौशल दिखलाया तो फितनाने उसकी सराहना नहीं की, प्रत्युत उसके प्रश्न कर उठने पर इसने यहाँतक कह डाला कि कि यह तो केवल अभ्यासका परिणाम है, जो किसी दूसरेके लिए असम्भव भी नहीं है। बहराम गोरको यह सुनकर बड़ा क्रोध आया और उसने इसे मार डालनेकी आज्ञा दे दी परन्तु फितनाने मारनेवालेसे कहसुनकर उस समय अपनेको बचा लिया और किसी निवास गृहमें छिपकर रहती हुई वह वहाँ अपने कन्धेपर एक नवजात बछड़ा लेकर सात सीढियोंसे नित्यशः चढ़ने-उतरने लगी, जिसका परिणाम यह हुआ कि चार वर्षके भीतर उसका शरीर क्रमशः अधिकाधिक पुष्ट और सुडौल बनता चला गया। फलतः एक दिन जब वहाँ आये हुए बहराम गोरकी दृष्टि उसपर पड़ी और उसने इसके उक्त अभ्यासकी कहानी सुनी तो वह इसे पहचानकर और भी अधिक प्रसन्न हुआ तथा न केवल उसने इसे फिर स्वीकार कर लिया, अपितु इस घटनाकी स्मृतिमें उसने वहाँ एक नवीन महल भी बनवा दिया। बहराम गोरने इसी बीच कई युद्धोंमें शत्रुओं पर विजय प्राप्त की तथा चीनी आक्रमणकारियोंका सफलतापूर्वक सामना करके उन्हें पीछे खदेड़ दिया।

सभी ओर शान्ति स्थापितकर लेने पर उसका ध्यान फिर उन सात चित्रोंकी ओर आकृष्ट हुआ, जो सात सुन्दरी राजकुमारियोंके थे। तदनुसार उसने उनके देशोंके राजाओं के यहाँ कहला भेजा कि अपनी-अपनी राजकुमारीका विवाह मेरे साथ कर दीजिये। उन राजाओंके यहाँसे स्वीकृति प्राप्त कर लेने पर इसने विवाह कर लिये तथा उन पत्नियोंके रहनेके लिए किसी नवनिर्मित विस्तृत महलके सात उद्यान-खण्ड पृथक्-पृथक् सुसज्जित कराये। इनमेंसे प्रत्येक खण्डको एक विशेष रंगसे रंगा गया और उसीके उपयुक्त वहाँ पर बेगम भी ठहरायी गयी। वह उसी रंगमें रंगा हुआ वस्त्र पहनकर स्वयं भी सप्ताहके दिन क्रमसे उनसे मिला करता और वे अपनी-अपनी पारीसे लम्बी कथा कहकर उसका मनोरंजन किया करतीं। तब तक उसके कतिपय प्रबन्ध-मन्त्री राज्य कार्यमें कुछ न कुछ अनर्थ करते जा रहे थे, जिन्हें दण्ड देना उसके लिए आवश्यक हो गया और एक गडेरिये तथा उसके दुष्ट कुत्तेकी घटनासे प्रेरणा प्राप्त कर उसने उन्हें कठोरताके साथ दण्डित किया। अन्तमें, जंगली गधोंके लिए आखेटमें जाने पर ही एक बार वह किसी दलदलमे फँस गया, जहाँसे किसी भी प्रकार निकल नहीं सका और 'गोर' ही वस्तुतः उसकी 'गोर' (कब्र) भी बन गये।

'तबई'ने 'बहराम ओ गुलअंदाम'के अन्तर्गत नायक एवं नायिकाके जीवन पर पौराणिकताका रंग अधिक चढ़ाया है। इस रचनाके अनेक स्थलों पर उसने असाधारण एवं चमत्कारपूर्ण बातोंको स्थान दिया है तथा अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन भी किया है। वास्तवमें बहराम गोर एक ऐतिहासिक व्यक्ति होता हुआ भी भारतीय नरेश उदयनकी भाँति बहुत काल तक लोकप्रिय काव्योंका नायक बनता आ रहा था और उसके विषयमें अनेक प्रकारकी अतिरंजित घटनाओंकी कल्पना की जा चुकी थी तथा वे काव्य-रूढियोंकी कोटि तक पहुँची कही जा सकती थीं। 'तबई'ने प्रायः उन सभीका समावेश अपनी इस रचनाके अन्तर्गत कर दिया है, जिसके कारण इसमे यथार्थताका अश अल्पमात्र रह जाता है। फिर भी एक ओर जहाँ वर्ण्यविषय अतिप्राकृत-सा प्रतीत होता है, वहाँ दूसरी ओर इसमें वर्णनशैलीके काव्योत्कर्षको पूरा प्रश्रय मिलता भी दीख पड़ता है। इसका कवि इस दृष्टिसे उन बहुतसे ऐसे काव्य रचयिताओंसे अधिक सफल कहा जा सकता है, जिन्होंने उसके पहले या पीछे भी इस विषयको लिया है तथा इसी कारण केवल इस एक ही उपलब्ध रचनाके भी आधार पर वह अपने समयके सर्वश्रेष्ठ कवियों तकमें

गिना जाता है। उसे स्वयं भी अपने काव्य-कौशलपर गर्व है, जिसका एक पुष्ट आधार प्रदर्शित करनेके लिए ही उसने अपने उपर्युक्त स्वप्न एवं वजहीके साथ उसमें हुए अपने कल्पित वार्तालापकी ओर संकेत करता है तथा इस प्रकार उसके व्याजसे इसका एक प्रमाण उपस्थित कर देता है। पता नहीं उसने इस रचनामें अपने पूर्ववर्ती कवियोंसे कहाँ तक सहायता ली है अथवा वह उनका कहाँ तक ऋणी कहा जा सकता है परन्तु इतना निःसन्देह कहा जा सकता है कि यदि उसने किसी फारसी रचनाका अनुवाद भी किया होगा तो भी यहाँपर उसके कारण कोई हल्कापन नहीं आ पाया है।

[सहायक ग्रन्थ—उर्दू एकदीम : हकीम सैयद शम्सुल्ला कादरी, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, सन् १९२५ ई०; योरपमें दक्खिनी मखतूतात : नसीरुद्दीन हाशमी, हैदराबाद, सन् १९३२ ई०; दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा : राहुल सांकृत्यायन, पटना, १९५९ ई०; ए हिस्ट्री आफ उर्दू लिटरेचर : टी ग्राहम बेली, एसोसियेशन प्रेस, कलकत्ता, सन् १९३२ ई०; क्लासिकल परसियन लिटरेचर : लन्दन, सन् १९५८ ई०।] —प० च०

बाइबिल–ईसाई धर्मका आधारभूत ग्रन्थ। इसके दो रूप हैं—'ओल्ड टेस्टामेण्ट' और 'न्यू टेस्टामेण्ट'। 'ओल्ड टेस्टामेण्ट' उसका पूर्व ऐतिहासिक रूप है, जो ३९ पुस्तकों का संकलन है। यह तीन वर्गोंमें विभाजित है—(क) नियम, (ख) भविष्यवाणी, धर्मोपदेश, और (ग) मिश्रित विषय। बाइबिलका प्राचीनतम रूप हिब्रू भाषामें सुरक्षित है। ईसाई धर्मके प्रोटेस्टेण्ट मतके समर्थक 'बाइबिल'के कुछ सन्देहपूर्ण स्थलोंको पृथक् करके उसका प्रयोग करते हैं किन्तु रोमन कैथोलिक मतके लोग 'कीन्स बाइबिल'को मान्यता देते हैं, जिसमें प्रोटेस्टेण्ट-मतवालों द्वारा बहिष्कृत अंश भी सम्मिलित रहता है। उसीकी साक्षी देकर राजाको राज्याभिषेकके समय प्रतिज्ञा दिलाई जाती है। 'न्यू टेस्टामेण्ट'की बाइबिल ग्रीक भाषामें लिखी गयी थी तथा ऐसी प्रसिद्धि है कि ईश्वर प्रदत्त सन्देशोंके आधारपर देव पुरुषों द्वारा इसकी रचना हुई किन्तु इस सम्बन्धमें निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। सम्पूर्ण बाइबिलका लैटिन भाषामें अनुवाद ४०० ई० के लगभग हुआ। बाइबिल के कुछ अंशोंका प्राचीन अंग्रेजीमें अनुवाद ८वीं शतीमें हुआ था। तदनन्तर धर्मपुरुष बेडने सेण्ट जानके उपदेशों का अंग्रेजीमें अनुवाद किया। सन् १५३५ ई०में कवर्डेलका सम्पूर्ण बाइबिलका अनुवाद प्रकाशमें आया। इसका पूर्ण प्रामाणिक संस्करण सन् १६११ ई० में जेम्स प्रथमके राज्यकालमें प्रकाशित हुआ था। सुन्दर शब्द चयनके कारण इसका अत्यन्त महत्त्व है। इसका परिवर्धित अमेरिकन संस्करण सन् १९५२ ई० में प्रकाशित हुआ। ईसाई धर्म, सभ्यता एवं संस्कृतिके अनुशीलनमें बाइबिल आधारभूत ग्रन्थ है।

ईसाई मिशनरियोंने धर्मप्रचारके सिलसिलेमें बाइबिलके अनेक हिन्दी अनुवाद किये। सन् १८०६ ई०मे डा० ब्यूकमैन अपने साथ मालबारके सीरियन ईसाइयोंका सीरियन भाषा में लिखा हुआ बाइबिल अपने साथ ले आये थे किन्तु इसका प्रयोग अल्प मात्रामें ही होता था। भारतीय भाषाओंमें बाइबिलके अनुवादोंकी परम्पराको प्रोटेस्टेण्ट ईसाइयोंके द्वारा विशेष बल मिला। भारतीय भाषाओंमें जीगनबालगकृत बाइबिलका तमिल अनुवाद सर्वप्रथम प्रकाशमें आया। इसी समय उनके मित्र शुद्जने बाइबिल का एक हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया। १९वीं शतीमें फोर्ट विलियम कालेज और डेनिश मिशनके द्वारा बाइबिल के हिन्दी अनुवादोंको विशेष प्रोत्साहन मिला। फोर्ट विलियम कालेजमे पण्डितों और मुंशी लोगोंकी सहायता से बाइबिलके अनुवादोंका कार्य एक विभागके अन्तर्गत नियोजित किया गया। ब्राउन और ब्यूकमेन, कोलब्रुक और विलियम हण्टरने बाइबिलके हिन्दुस्तानी रूपान्तर प्रस्तुत किये। कैरेके निर्देशनमें (सन् १८०७-१८११ ई०) में 'न्यू टेस्टामेण्ट'का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत हुआ तथा (सन् १८०९-१८११ ई०) छपकर तैयार हुआ। इसके अतिरिक्त उन्होंने 'ओल्ड टेस्टामेण्ट'का भी पृथक-पृथक् भागोंमें हिन्दी रूपान्तर (सन् १८१३-१८१८ ई० तक) भी प्रकाशित किया किन्तु ये अनुवाद अरबी-फारसी शब्दोंके प्रयोगके बाहुल्यके कारण आगरा तथा उसके निकटवर्ती भूभागोंमें समादृत न रहे, जिसके फलस्वरूप चैम्बरलैनने भाषा-विषयक संशोधनोंके साथ उसे पुनः प्रकाशित किया। उसके पश्चात् कैरेने (सन् १८१२-१८१८ ई० तक) बाइबिलका हिन्दी अनुवाद पाँच भागोंमें प्रकाशित किया। सन् १८५१ ई०में कैरेकृत 'उत्पत्ति की पुस्तक' और 'एक्सोड्स' का कुछ अंशका संशोधित संस्करण कलकत्तासे प्रकाशित हुआ। बाइबिलके इसके बादके अनुवादोंमें हेनरी मार्टिनकृत 'न्यू टेस्टामेण्ट'के मौलवियों और पण्डितोंकी सहायतासे अरबी लिपि (सन् १८१४-१८१५ ई०) तथा देवनागरी लिपि सन् १८१७ ई० में तैयार किये गये अनुवाद छपे। अरबी-फारसीके शब्दोंके बाहुल्यके कारण यह लोकप्रिय न हो सका। अतः विलियम बाऊलेने संस्कृत शब्दोंका प्रयोग करके 'हिन्दुई' भाषामें इसका रूपान्तर किया। इसके बाद कलकत्तेकी एक बाइबिल सोसायटी द्वारा 'मती', 'मरकस' और 'लूक' नामक तीन सुसमाचार सन् १८१४ ई० मे तथा 'यहून्ना' रूपान्तर सन् १८२० ई० में प्रकाशित हुए। सन् १८२६ ई० में सम्पूर्ण 'न्यू टेस्टामेण्ट'का हिन्दी रूपान्तर 'जगत तारक प्रभु ईसा मसीहका नया नियम—मंगल समाचार' नामसे चर्च मिशन प्रेससे छपा। बाऊलेने 'ओल्ड टेस्टामेण्ट' का हिन्दी अनुवाद दो भागोंमे (१८३४-१८३५ ई०) में प्रकाशित किया, जो बाइबिलके अंग्रेजी संस्करणपर आधारित था। इस प्रकार मार्टिनके बाद बाऊलेके 'बाइबिल' के अनुवादोंका कार्य विशेष महत्त्वका कहा जा सकता है।

इसके बाद भी बाइबिलके हिन्दी अनुवादोंकी परम्पराका उत्तरोत्तर विकास होता रहा। बाऊलेके परवर्ती बाइबिलके अनुवादोंमें येट्स और ऐडूलेसिलीकृत 'न्यू टेस्टामेण्ट'का हिन्दी अनुवाद (सन् १८४८, परिवर्धित एवं संशोधित संस्करण सन् १८६८ ई०), बार्थ द्वारा सम्पादित 'न्यू टेस्टामेण्ट'का अनुवाद (सन् १८४९ ई०), जोजेफ ओवेनकृत 'ओल्ड टेस्टामेण्ट'का संशोधित अनुवाद दो भागोंमें (सन्

१८५२ तथा १८५५ ई०) आदि उल्लेखनीय हैं। किन्तु ये सब १९ वीं शती पूर्वार्द्धके हैं। सन् १८५० ई० के बादके बार्थकी 'हिस्ट्री आफ दि बाइबिल' का 'धर्म पुस्तकके इतिहास' नामक अनुवाद उल्लेखनीय है। इसके उपरान्त सन् १८७८ ई० के अमेरिकन संस्करणके आधारपर ओल्ड और न्यू टेस्टामेण्टका हिन्दी रूपान्तर कैलसो नामक पादरीने प्रस्तुत किया। सन् १८८३ ई०और १८९५ ई०के हिब्रूके ओल्ड टेस्टामेण्टके अनुवाद भी महत्त्वपूर्ण हैं।

बाइबिलके इन अनुवादोंके अतिरिक्त हिन्दू धर्मके सिद्धान्तोंका खण्डन करनेके उद्देश्यसे मिशनरियोंने ईसाई धर्म तत्त्व निरूपक कुछ स्फुट संग्रह भी प्रकाशित किये। इनमें जे० डी० टाम्सनका 'दाऊदके गीत' (सन् १८३६ ई०), जान पारसमका 'गीत संग्रह', जान म्योरका 'ईश्वरोक्त शास्त्र-धारा' (सन् १८४६ ई०) और टाम्पसनकृत 'इंजीलकी तफसीर' उल्लेखनीय हैं। १९ वीं शतीतक बाइबिलके हिन्दी अनुवादोंकी इस सशक्त परम्पराका उद्देश्य भारतमें ईसाई धर्मका प्रचार मात्र था, हिन्दी गद्यको शक्ति प्रदान करना नहीं। फिर भी इनकी भाषा नीति और योजनासे हिन्दी गद्यको प्रकारान्तरसे अनेक पुष्टतत्त्व प्राप्त हुए। संस्कृत शब्दावलीकी प्रधानता इनकी भाषागत उल्लेखनीय विशेषता है। इसके अतिरिक्त ईसाइयोंने लोक-भाषाओंकी भी शब्दावलीका यथास्थान प्रयोग किया है। भाषामे रूपकों और प्रतीकोंका प्रयोग तथा प्रेषणीयताका युगपत् निदर्शन इन्हें सामान्य भारतीय जनताके निकट लानेमें सहायक हुआ। भाषाके अतिरिक्त इनके अन्तर्गत जीवनी-साहित्यकी भी परम्परा पल्लवित हुई है।

[सहायक ग्रन्थ—आधुनिक हिन्दी साहित्य और आधुनिक हिन्दी-साहित्यकी भूमिका : डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय।] —रा० कु०

बाणभट्ट—हजारीप्रसाद द्विवेदीके उपन्यास 'बाणभट्टकी आत्मकथा'का केन्द्रीय पात्र। उसके बाह्य जीवनके आधार पर लोग उसे 'बंड' और आवारा समझते थे। पर वह अत्यन्त सहृदय, साहसी, मेधावी तथा संयमी था। नारी शरीरको वह देवमन्दिरकी भाँति पवित्र समझता था। यह उसकी उदात्त रोमाण्टिक प्रवृत्ति थी। अपने इसी दृष्टिकोणके कारण वह भट्टिनीका स्नेहभाजन हो सका, निउनियामें देवताका दर्शन कर सका और स्वयंको काव्यके क्षेत्रमे इतनी ऊँचाईपर उठा पाया। —ब० सिं०

बाणभट्टकी आत्मकथा—हजारीप्रसाद द्विवेदीका प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास है। प्रारम्भमे यह कथा 'विशाल भारत' मासिकमें प्रकाशित होती रही। पुस्तकके रूपमे यह पहली बार सन् १९४६ ई०में छपी। अब तक इसके तीन संस्करण हो चुके हैं। साहित्य अकादमीने संविधानमें स्वीकृत देशकी सभी भाषाओंमें इसके अनुवादका निश्चय कियाहै। अब तक कई भाषाओंमें इसका अनुवाद हो भी चुका है।

बाणभट्ट और हर्षकी कृतियाँ इस उपन्यासके मुख्य उपजीव्य हैं। पर लेखकने अपनी मौलिक उद्भावनाओं और काल्पनिक प्रसंगोंके संयोगसे इसे जो रूप दिया है, वह इसे विश्व उपन्यासकी श्रेणीमें ला खड़ा करता है। बाणभट्ट घुमक्कड़ व्यक्ति है और वह इसका केन्द्रीय चरित्र है। सम्पूर्ण कथा उसके चतुर्दिक घूमती है। एक दिन घूमते-घूमते वह स्थाणीश्वर पहुँचा। वहाँ नाट्य-मण्डलीकी अभिनेत्री निपुणिका (निउनिया)से उसकी भेंट हुई। निपुणिकाने उसे बताया कि मौखरिवंशके छोटे घरानेमें एक साध्वी राजकुमारी अपनी इच्छाके विरुद्ध बन्दी है। निपुणिका और बाणभट्टने उसका उद्धार किया। वह विषम समर विजयी, बाल्हीक विमर्दन प्रत्यन्त बाड़व देव पुत्र तुवर मिलिन्दकी राजकन्या थी। हर्षके छोटे भाई कुमार कृष्णकी सहायतासे ये लोग नौका द्वारा दक्षिण भेज दिये गये।

रास्तेमें उन्हें अनेक कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। किसी तरह ये लोग मध्येश्वर दुर्गके आभीर सामन्त लोरिक देवके आश्रममें पहुँच गये। देशपर दस्युओंका आक्रमण होने वाला था। केवल तुविर मिलिन्द ही ऐसे व्यक्ति थे, जो आक्रमणकारियोंसे देशकी रक्षा कर सकते थे। स्थाणीश्वर नरेशने उनके प्रीत्यर्थ भट्टिनीको अनुरोधपूर्वक अपने यहाँ बुला लिया, उसके सम्मानार्थ उसने स्कन्धावारमें भी जानेका निश्चय किया। इस अवसरपर बाणने हर्षलिखित 'रत्नावली'के अभिनयका आयोजन किया पर वासवदत्ताकी भूमिकामे निउनिया रत्नावलीका हाथ राजा (बाण)के हाथमें देते समय इतनी विचलित हुई कि उसके प्राण पखेरू उड़ गये। निपुणिकाके श्रद्धोपरान्त बाणको पुरुषपुर जानेकी आज्ञा हुई। भट्टिनीने आर्द्र कण्ठसे उसे जल्दी लौट आनेके लिए कहा, किन्तु बाणभट्टकी आत्मा चीत्कार उठी—"फिर क्या मिलना होगा।" संक्षेपमें कथा इतनी ही है।

इसके प्रमुख पात्र हैं—बाणभट्ट, भट्टिनी और निउनिया। बाणभट्ट लोगोंकी दृष्टिमें 'बण्ड' है और निउनिया पतिता। पर दोनों ही मानवीय गुणोंसे ओत-प्रोत हैं। उनके हृदयमें मनुष्यके प्रति अपार ममता है, सहृदयता है। ये सभी चरित्र मूलतः रोमाण्टिक हैं—अतः उनमें साहसकी कमी नहीं है। रोमांस एक शक्ति है, जो व्यक्तिसे बड़ासे बड़ा बलिदान कराती है। वह उसे ऊर्ध्वोन्मुखी बनाती है। इनके प्रेममें एक संयम है, सब कुछ निछावर कर देनेकी क्षमता है। प्रेमकी चरितार्थता इसीमें है। कुमार कृष्ण, सुगरभद्र, अघोर, भैरव, महामाया, सुचरिता, बाभ्रव्य आदि पात्रोंको भी सप्राण बनानेमें कुछ उठा नहीं रखा गया है। जिस पात्रके विकासके लिए अवसर नहीं मिला है, उसे भी एक अर्थपूर्ण रेखा द्वारा चमका दिया गया है। उदाहरणार्थ वृद्ध बाभ्रव्यको देखा जा सकता है।

इस उपन्यासके माध्यमसे तत्कालीन धर्म-साधना, राजनीति, अभिजातीय वातावरण आदिका चित्रण प्रस्तुत करते हुए लेखकने एक उदात्त जीवन-दर्शन भी दिया है—"मनुष्य जितना देता है उतना ही पाता है···आत्मदान ऐसी वस्तु है जो दाता और ग्रहीता दोनोंका सार्थक करता है···।" "यह बन्धन ही चारुता है, सयम है, सुरुचि है। बन्धन ही सौन्दर्य है, आत्मदानकी सुरुचि है, बाधाएँ ही माधुर्य है···" इस उपन्यासके सभी प्रमुख पात्र दाता हैं, संयमी है। फ्रायडीय मनोविज्ञानके उन्नयनका सिद्धान्त भी यहाँ अत्यन्त उत्कृष्ट रूपमें चरितार्थ हुआ है। धर्म और आचार

के सम्बन्धमें लेखक लकीरका फकीर नहीं है। जनताके प्रति उसका अदम्य विश्वास उनके जीवन-दर्शनके मेलमें है।

क्या वस्तु, क्या शैली दोनों दृष्टियोंसे यह उपन्यास हिन्दीमें अकेला है। संस्कृतकी अलंकृत शैलीको अपनाते हुए भी लेखकका विन्यास पूर्णतः स्वच्छन्दतावादी है। यदि अंग्रेजी शब्दावलीका व्यवहार किया जाय तो इसे 'क्लासिकी रोमाण्टिक' शैलीका नाम दिया जा सकता है। लम्बे-लम्बे वर्णनोंमें जहाँ वह जमकर लिखता है, वहाँ क्लासिकल धैर्य, संयम और विस्तार दिखाई देता है पर भावावेगोंके चित्रणमें उसकी गतिमें तीव्रता और भावुकता आ जाती है। —ब० सिं०

बापू–(प्र० सन् १९३७ ई०) सियारामशरण गुप्तका गीति-काव्य है, जिसमें कुल इक्कीस गीतियाँ संगृहीत हैं। किसी समसामयिक महापुरुष या महद्‌घटना पर काव्य-रचना करना विशेष कठिन कार्य है। प्रायः देखा गया है कि गान्धी-जीपर बंगालके अकाल, खादी आदिको विषय-वस्तुके रूपमें ग्रहण कर कवियोंने साधारण ढंगकी कृतियाँ प्रस्तुत की हैं। कवि जब तक इन वस्तुओंसे केवल बौद्धिक स्तर पर ही तादात्म्य स्थापित कर पाता है तब तक उसकी अभि-व्यक्तियाँ अन्तर्मनके स्वरसे विरहित रहती हैं। पर बापूके प्रति, उनके महान् रचनात्मक कार्योंके प्रति, उनके उच्च पवित्र सिद्धान्तोंके प्रति गुप्तजीकी अटूट आस्था है। इन आस्थाओंसे ही उनका व्यक्तित्व निर्मित हुआ है, इन्हींसे वह गरिमापूर्ण बन सका है। इसीलिए 'बापू'के प्रति उनका आत्मनिवेदन उनके अन्तर्मनकी वाणीसे मुखरित हो उठा है। यह आत्मनिवेदन भक्तके आत्मनिवेदनसे इस अर्थमें भिन्न है कि यह एक समसामयिक युगपुरुषके प्रति किया गया है। उसमें मानवताकी अशेष आशाएँ हैं—वह प्रेम-मन्त्रसे मानवके समस्त कल्मषको धोकर उसे उचित स्थान पर अभिषिक्त करनेमें समर्थ हैं। भक्तके आत्म-निवेदनसे वह एक दूसरे अर्थमें भी भिन्न है। भक्तकी अभिव्यक्तियाँ सामान्यतः भावावेगों पर आश्रित रहती हैं पर 'बापू'की अभिव्यक्तियाँ मुख्यतः वैचारिक हैं, यद्यपि वे भावके संस्पर्शसे अछूती नहीं कही जा सकतीं। बापूकी शान्त वाणीमें जो ऊर्ज्वस्विता, बल, प्रेरणा और अकिंचन व्यक्तिमें निर्धूम अग्निशिखाकी भाँति ज्योतिर्मय शम समाहित है, उसे गुप्तजीने सम्पूर्ण शक्तिसे व्यंजित किया है। इसलिए इस ग्रन्थमें ओजकी व्याप्ति आद्यन्त मिलेगी। यह एक अन्तर्वृत्तिनिरूपक मुक्तक काव्य है, जो संस्कृतकी तत्सम पदावलीसे ओत-प्रोत तथा स्फूर्तिमय है। —ब० सिं०

बाबूराव विष्णु पराड़कर–जन्म काशीमें १६ नवम्बर, सन् १८८३ ई०में और मृत्यु १२ जनवरी, सन् १९५५ ई०में। आपके पिता पण्डित विष्णुशास्त्री पराड़कर संस्कृतके विद्वान् थे। आपका बचपनका नाम 'सदाशिव' था। आप जिस समय भागलपुरके तेजनारायण कालेजमें इण्टर-मिडियेटमें पढ़ रहे थे, १९०३ ई० में ही प्लेगसे आपकी माँका देहान्त हो गया और १५ वर्षकी उम्रमें ही पिताका भी निधन हो गया। ऐसी परिस्थितिमें आपको कालेजकी पढ़ाई छोड़कर जीवन संघर्षमें कूदना पड़ा। जीविकाकी खोजमें आप कलकत्ता पहुँचे। आपने वहाँ अपने मामा सखाराम गणेश देउस्करके यहाँ रहते हुए 'हिन्दी बंगवासी' में सम्पादन कार्य आरम्भ कर दिया। 'बंगवासी'में केवल एक वर्षतक(१९०६-७ ई०) कार्य करनेके बाद आप १९०७ ई० से १० ई० तक 'हितवार्ता' और १९१० से १५ तक 'भारतमित्र'के संयुक्त सम्पादक रहे। 'हितवार्ता'में राज-नीतिक विषयोंपर गम्भीर समीक्षात्मक लेख प्रकाशित कर आपने हिन्दी पत्रकारितामें एक नयी परम्पराका प्रवर्तन किया। आपकी सम्पादन कला आरम्भसे ही राष्ट्र-सेवाकी उत्कट भावनासे स्फूर्ति पाती रही है। आप सम्पादनके साथ-साथ सक्रिय राजनीतिमें भी आ गये। आपका सम्पर्क रासबिहारी घोष तथा अरविन्द घोषसे भी हुआ। आप धीरे-धीरे क्रान्तिकारियोंके परामर्शदाता भी बन गये। एक क्रान्तिकारी पत्रकारके रूपमें आपको काफी दिनोंतक नजरबन्द रहना पड़ा। इसी बीच राष्ट्ररत्न बाबू शिवप्रसाद गुप्तने काशीमें हिन्दीमें उच्चकोटिके साहित्यिक प्रकाशन तथा दैनिक पत्र निकालनेके संकल्पसे 'ज्ञान-मण्डल'की स्थापना की। १९२० ई० में पराड़करजी ज्ञानमण्डलमें आ गये। तभीसे आप ज्ञानमण्डलसे प्रकाशित होनेवाले दैनिक 'आज'के सम्पादक हो गये, जिस पदपर आप आजीवन बने रहे। आपने अपनी पत्रकारिताकी अद्वितीय प्रतिभासे 'आज'को हिन्दीका सर्व-प्रमुख स्वतन्त्र दैनिक पत्र बना दिया। 'आज'के माध्यमसे हिन्दी भाषाके उन्नयन और राष्ट्रजागरणका जो कार्य आपने सम्पन्न किया है, वह सदा अविस्मरणीय रहेगा। नमक सत्याग्रहके दिनोंमें 'आज'पर प्रतिबन्ध लग जानेपर पराड़करजीने सन् १९३० ई० में 'रणभेरी' नामसे एक गुप्त पत्रिकाका भी सम्पादन और प्रकाशन किया था।

हिन्दी पत्रकारिताका निर्माण करनेवाली बृहत्त्रयीमें पराड़करजीका स्थान अन्यतम है। आपने अपने अग्रलेखोंमें उच्चकोटिकी अनुभूति और चिन्तनका जैसा समन्वय प्रतिष्ठित किया है, वह हिन्दी पत्रकारिताका निरन्तर मार्गदर्शन करता रहेगा। अर्थशास्त्रसम्बन्धी जटिल विषयों पर आपने समय-समय पर जैसे लेख प्रस्तुत किये वे उच्चकोटिके अंग्रेजी पत्रोंसे भी आगे बढ गये। अपने अग्रलेखोंमें आपने जिस गम्भीर राजनीतिक सूझ-बूझका परिचय दिया, उससे देशके प्रमुख विचारशील नेता भी प्रभावित होते रहे हैं। हिन्दी भाषाके विकासमें पराड़करजीके योगदानका अभी सम्यक् मूल्यांकन नहीं हो सका है। 'नेशन'के लिए 'राष्ट्र', 'इन्फ्लेशन'के लिए 'मुद्रास्फीति' जैसे सैकड़ों शब्द पराड़करजीके चलाये हुए हैं, जिनका प्रयोग आज सारे देशमें हो रहा है। हिन्दीके सर्जनशील साहित्यके प्रति आपकी कैसी गम्भीर अन्तर्दृष्टि थी, इसका परिचय 'हंस'के 'प्रेमचन्द स्मृति अंक' (सन् १९३७ ई०)में, जिसके आप सम्पादक थे, लिखे गये सम्पादकीय लेखसे मिलता है। हिन्दीके साथ बंगलापर भी आपका असाधारण अधिकार था। आपने देउस्करजीकी बंगला पुस्तक 'देशेर कथा'का अनुवाद 'देशकी बात'के नामसे किया है। हिन्दी साहित्य-सम्मेलनने शिमलाके अपने सत्ताइसवें अधिवेशनका सभा-पति बनाकर आपको सम्मानित किया था। —श्री० शु०

बाबूराम सक्सेना—जन्म १८९७ ई० में लखीमपुर जिलेमें हुआ। शिक्षा एम० ए०, डी० लिट्० प्रयाग तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमें और लन्दन स्कूल ऑफ ओरियण्टल स्टडीजमें हुई। आपका शोध-प्रबन्ध 'अवधीका विकास' हिन्दीसे सम्बद्ध पहला प्रबन्ध माना जाता है। अनेक वर्षोंतक प्रयाग विश्वविद्यालयके संस्कृत विभागके अध्यक्ष रहे। अब सागर विश्वविद्यालयमें भाषाविज्ञान विभागके अध्यक्ष हैं। संस्कृत और भाषाविज्ञान दोनों ही आपके कार्यकी प्रमुख दिशाएँ हैं। हिन्दीके भाषावैज्ञानिकोंमें आपका नाम अग्रणी है। आपके उद्योग और प्रेरणासे हिन्दी क्षेत्रमें भाषाविज्ञानसम्बन्धी कार्य हुआ। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, लिंग्विस्टिक सोसाइटी ऑफ इण्डिया, भारतीय हिन्दी-परिषद् जैसी संस्थाओंसे घनिष्ठ रूपसे सम्बद्ध रहे हैं और उनके अधिवेशनोंकी अध्यक्षता की है। प्रारम्भसे ही राष्ट्रीय दृष्टिकोण होनेके कारण भारतीय संस्कृति और हिन्दी भाषाके प्रचार-प्रसारमे आपकी विशेष रुचि रही है।

डॉ० सक्सेनाका शोध-प्रबन्ध 'अवधीका विकास' अपने ढंगका पहला अध्ययन है। इंग्लैण्डमें रहकर प्रसिद्ध भाषा-विज्ञानी डॉ० टर्नरके सहयोगसे आपने कार्य किया था। 'अवधीका विकास'मे प्रयोगात्मक ध्वनि-विज्ञानके निष्कर्षोंका प्रथम बार प्रयोग हुआ है। वस्तुतः आपका प्रबन्ध हिन्दी के भाषा वैज्ञानिकोंके लिए आदर्श और मानक रूपमें रहा है। भाषा-विज्ञानके सैद्धान्तिक पक्षोंपर भी आपने विचार किया है।

कृतियाँ—'अर्थ-विज्ञान' (१९५१ ई०), 'सामान्य भाषा-विज्ञान' (१९५३ ई०), 'दक्खिनी हिन्दी' (१९४३ ई०), 'कीर्तिलता' (सम्पादन—१९३० ई०), 'एवल्यूशन ऑफ अवधी' (अंग्रेजीमे १९३८ ई०)। —सं०

बारहखड़ी—दे० 'मलूकदास'।

बालअली—इनका मूल नाम बालकृष्ण नायक था। 'बालअली' रस-साधनासम्बन्धी इनके भावदेहकी संज्ञा थी। ये राजस्थानके निवासी थे। आरम्भमे इन्होंने रामानुज सम्प्रदायमें दीक्षा ली और अहोबल गद्दीके परम्परानुसार वैष्णव चिह्न धारण करके कई वर्षोंतक साधनामय जीवन व्यतीत किया किन्तु उससे इन्हे तृप्ति नहीं हुई। इसके पश्चात् ये अग्रदासजी गद्दीके चतुर्थ आचार्य चरणदासके शिष्य हुए। गुरुकी साकेत-यात्राके उपरान्त ये रेवासा पीठके अधिकारी बने। इनके लिखे आठ ग्रन्थ खोजमे मिले है—'ध्यानमजरी' (१६६९ ई०), 'सिद्धान्त तत्त्वदीपिका', 'दयाल मंजरी', 'ग्वाल पहेली', 'प्रेम पहेली' 'प्रेम परीक्षा', 'परतीत परीक्षा' और 'नेह प्रकाश' (१६९२ ई०)। इस आधारपर इनका कवित्व-काल १६६९ ई०से १६९२ ई० तक निश्चित किया जा सकता है। इनका ध्यान अपनी कृतियोंमें काव्य-गुणोंकी योजनाकी अपेक्षा सैद्धान्तिक विवेचनकी ओर अधिक रहा है। शृंगारी रामोपासकोंमें इनके 'नेहप्रकाश'-की बड़ी प्रतिष्ठा है।

[सहायक ग्रन्थ—रामभक्तिमें रसिक सम्प्रदाय : भगवतीप्रसाद सिंह।] —भ० प्र० सिं०

बालकृष्ण भट्ट—जन्म इलाहाबादमें ३ जून, १८४४ ई०में। पिता इनके व्यापारी थे। माता सुसंस्कृत महिला थीं और उन्होंने इनके मनमें पढ़नेकी विशेष रुचि जगायी। प्रारम्भ में उन्होंने संस्कृत पढ़ी फिर प्रयागके मिशन स्कूलसे एण्ट्रेन्सकी परीक्षा पास की। इस परीक्षाके बाद ही वे मिशन स्कूलमें अध्यापक हो गये पर ईसाई वातावरणमें उनकी पट नहीं सकी और शीघ्र ही वे त्यागपत्र देकर अलग हो गये। इसके पश्चात् संस्कृतका स्वाध्याय उन्होंने अत्यन्त लगनके साथ किया। भट्टजीके पिता एवं अन्य सम्बन्धी चाहते थे कि वे पैतृक व्यापारमें लगें पर भट्टजीका पण्डित मन व्यापारमे नहीं रमा। इस प्रश्नपर गृहकलहके बवण्डरमें अत्यन्त दुःखी होकर उन्हें अपना सम्पन्न पैतृक घर छोड़कर अलग रहनेके लिए बाध्य होना पड़ा। घरसे अलग होनेके बाद भट्टजीको सारा जीवन भयंकर आर्थिक कठिनाइयोंके मध्य गुजारना पड़ा पर इस दृढ़ एवं आत्मसम्मानी व्यक्तिने कभी भी हिम्मत नहीं हारी। कर्मठतापूर्वक सारा जीवन उन्होंने साहित्यको अर्पित किया। संवत् १८८८ के लगभग सी० ए० वी० स्कूल इलाहाबादमें वे संस्कृत पढ़ाने लगे थे तथा कुछ दिनोंके बाद वे कायस्थ पाठशाला इण्टर कालेज, इलाहाबादमें संस्कृतके अध्यापक हो गये पर अपने उग्र राजनीतिक विचारोंके कारण अन्ततः यह नौकरी भी उन्हे छोड़नी पड़ी थी। फिर उन्हें यत्र-तत्र लेखन और पत्रकारिताके द्वारा ही जीविका चलानेके लिए बाध्य होना पड़ा। जीवनके अन्तिम वर्षोंमे श्यामसुन्दर दास-ने उन्हे हिन्दी-शब्द कोशके सम्पादनके लिए वैतनिक सहायकके रूपमे बुलाया था पर भट्टजीके प्रति उनका व्यवहार बहुत अच्छा न था और स्वाभिमानी बालकृष्ण भट्ट शीघ्र ही उस कार्यसे भी अलग हो गये। २० जुलाई, १९१४ ई०को उनकी प्रयागमें मृत्यु हो गयी।

भारतेन्दु-युगके लेखकोंमें बालकृष्ण भट्ट का स्थान केवल भारतेन्दुके बाद आता है। आधुनिक हिन्दी-साहित्यके विकासमें उनका महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक स्थान है। विशेषतः निबन्धकार एवं पत्रकारके रूपमे उन्हे इतिहास कभी भुला नहीं सकता। यों हिन्दीमे व्यावहारिक आलो-चनाओंके वे प्रारम्भिक प्रवक्ता है तथा उन्होंने नाटक, उपन्यास और कहानियाँ भी लिखी हैं। इस लेखनके अतिरिक्त अपने साहित्यिक व्यक्तित्वके माध्यमसे उन्होंने अपने युगके तमाम लेखकोंको प्रेरित और प्रभावित किया है।

भारतेन्दु युगके लेखकोंके सम्बन्धमे यह महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि वे सभी लेखक भी थे और पत्रकार भी। बल्कि यों कहें कि वे लोग मूलतः पत्रकार थे और उनका अधिकांश लेखन अपने-अपने पत्रोंकी कलेवर पूर्तिके लिए हुआ है। पर पत्रकारिताको उन लोगोंने एक ऐसे मिशन के रूपमें लिया था, जिसके कारण उस सारे लेखनमें भावनाका सहज संस्पर्श घुलमिल गया है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्रसे प्रेरणा पाकर एवं उन्हीं द्वारा लिखित सन्देशको 'मोटो' बनाकर १ सितम्बर, १८७७ ई०को 'हिन्दी प्रदीप' नामक मासिक पत्र बालकृष्ण भट्टने इलाहाबादसे 'हिन्दी वर्द्धिनी सभा' की ओरसे निकालना प्रारम्भ किया। इसमें

छपनेवाले विषयोंकी सूची मुख पृष्ठपर इस प्रकार दी रहती थी, "विद्या, नाटक, समाचारावली, इतिहास, परिहास, साहित्य, दर्शन, राजसम्बन्धी इतिहासके विषयमें"। स्पष्ट है कि यह पत्र एक व्यापक सांस्कृतिक-सामाजिक चेतनाको उद्बुद्ध करनेका लक्ष्य लेकर प्रकाशित किया गया था। भट्टजीने सरकार, ग्राहकों, अर्थ, आदिकी अनेक दुर्लंघ्य बाधाओंका डट कर मुकाबला करते हुए ३३ वर्षतक 'हिन्दी प्रदीप'का सम्पादन किया। अप्रैल १९०९ ई० के अंकके बाद 'हिन्दी प्रदीप' बन्द हो गया। हिन्दी पत्रकारिताके प्रारम्भिक युगमें ३३ वर्षों तक एक गम्भीर पत्रिकाका चलाना जहाँ एक ओर ऐतिहासिक महत्त्वकी बात है, वहीं भट्टजीकी असाधारण लगन और कर्मठताको भी सूचित करती है। इस पत्रके माध्यमसे अत्यन्त निर्भीकतापूर्वक भट्टजीने हिन्दीके प्रचार-प्रसारमें योग दिया तथा राष्ट्रीय चेतनाको बलवती बनाया।

निबन्धको कला-रूपके अर्थमें लेकर विचार किया जाय तो प्रतीत होगा कि भट्टजी हिन्दीके पहले निबन्धकार हैं, जिनके निबन्धोंमें आत्मपरकता, व्यक्तित्वप्रधानता एवं कलात्मक शैलीका प्रयोग हुआ है। उन्होंने अपने साहित्यिक जीवनमें एक हजारके लगभग निबन्ध लिखे होंगे पर उनमेंसे सौके लगभग महत्त्वपूर्ण निबन्ध हैं। बहुतसे लोग उन्हें हिन्दीका 'एडिसन' कहना चाहते हैं। युगीन अन्य साहित्यकारोंकी भाँति उन्होंने राजनीतिक, सामाजिक एवं साहित्यिक सभी विषयों पर कलम चलायी है। राजनीतिक निबन्धोंमें जहाँ अत्यन्त प्रखर आक्रोश व्यंजित है तो साहित्यिक निबन्धोंमें भावनाका ललित विलास। अपने सामाजिक निबन्धोंमें भट्टजीने समाजमें प्रचलित बुराइयोंके प्रति ध्यान आकर्षित किया है एवं नये समाजका आदर्श भी उपस्थित करना चाहा है। इन तीनों प्रकारके निबन्धोंमें वक्तव्य वस्तुका फैलाव बहुत अधिक है। इन मोटे विभागोंके तमाम उपेक्षित या अमहत्त्वपूर्ण प्रसंगों पर भी उनकी दृष्टि गयी है। भावों या मनोविकारों पर लिखे गये उनके निबन्ध खड़ीबोलीके प्रारम्भिक युगमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माने जायेंगे। साहित्यिक-कलात्मक निबन्धोंमें उनकी मुहावरेदार, सरल एवं शब्द चयनकी दृष्टिसे उदार भाषा अत्यन्त शक्तिशालिनी बन सकी है। व्यंग्य, चुहल, कटाक्ष, भावनाका अकृत्रिम आवेग, अशुचिके परित्यागकी उत्कटता तथा शिवको ग्रहण करनेकी तीव्र लालसा इन निबन्धोंमें विद्यमान मिलती है।

हिन्दी आलोचनाके जन्मदाताके रूपमें राम विलास शर्माने भट्टजीको याद किया है (भारतेंदु युग, पृ० ११७)। सन् १८८१ ई० के आस-पास उन्होंने वेदोंकी युक्तियुक्त समीक्षा की थी। 'हिन्दी प्रदीप'के प्रकाशनके कुछ ही दिनों बादसे (सन् १८७७ ई०के अन्तिम भाग) उसमें पुस्तक समीक्षाएँ भी प्रकाशित होनी प्रारम्भ हो गयी थीं। १८८६ ई०में उन्होंने 'संयोगिता स्वयम्वर'की बड़ी कठोर आलोचना की थी। भट्टजीकी आलोचनाओंका परिमाण अधिक नहीं है पर उनकी सतर्क, सजग एवं प्रगतिवादी दृष्टि सर्वत्र देखी जा सकती है। प्राचीन साहित्यसे लेकर समसामयिक साहित्य तककी वे खरी आलोचनाएँ किया करते थे। यह अवश्य है कि दोष-दर्शनकी प्रवृत्ति उनमें अधिक थी, परन्तु पहली बार साहित्यकी सामाजिक उपयोगिताको ध्यानमें रख कर साहित्य-चिन्तनका प्रयास हमें उनमें उपलब्ध होता है।

सन् १८७९ ई०के 'हिन्दी प्रदीप'में 'रहस्यकथा' नामसे भट्टजीकी एक औपन्यासिक कृति प्रकाशित होनी प्रारम्भ हुई थी परन्तु बादको वह पूरी नहीं हुई। इसके अतिरिक्त १८८६ ई०में 'नूतन ब्रह्मचारी', १८९० ई० में 'सौ अजान एक सुजान' प्रकाशित हुए। 'गुप्त वैरी', 'रसातल', 'दक्षिणा', एवं 'हमारी घड़ी' नामक उपन्यास भी भट्टजीने लिखने और प्रकाशित कराने प्रारम्भ किये थे पर वे पूरे नहीं हो सके। वस्तुतः कथा-साहित्य उनकी प्रतिभाका वास्तविक क्षेत्र न था। उनके ये उपन्यास सामाजिक उद्देश्योंको लेकर लिखे गये हैं तथा कलाकी दृष्टिसे अपरिपक्व हैं।

भट्टजी द्वारा लिखित नाटकोंकी संख्या राजेन्द्र शर्माने तेरह बतायी है, वह इस प्रकार है—(१) 'पद्मावती', (२) 'चन्द्रसेन', (३) 'किरातार्जुनीय', (४) 'पृथुचरित या वेणी संहार', (५) 'शिशुपाल वध', (६) 'नल-दमयन्ती या दमयन्ती स्वयम्वर', (७) 'शिक्षादान', (८) 'आचार विडम्बन', (९) 'नयी रोशनीका विष', (१०) 'बृहन्नला', (११) 'सीता वनवास', (१२) 'पतित पंचम', (१३) 'मेघनाद वध' (पण्डित बालकृष्ण भट्ट—जीवन और साहित्य, पृ० ४०४)। इस सूचीको देखनेसे यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने पौराणिक और सामाजिक दो प्रकारके नाटक लिखे हैं। नाटक भी उनके उस महत्त्वके अधिकारी नहीं हैं, जितने कि उनके निबन्ध, आलोचना या पत्र-सम्पादन अधिकारी हैं। इन नाटकोंमें संवादोंके माध्यमसे कुछ घटनाओंका अंकन करनेका प्रयास किया गया है पर न तो चरित्र उभरते हैं और न रंगमंच सम्बन्धी कोई नया प्रयोग ही है।

सब मिलाकर भट्टजी आधुनिक हिन्दी साहित्यके निर्माताओंमें श्रेष्ठ स्थानके अधिकारी हैं। हिन्दीके लिए व्यक्तिगत रूपमें उनसे अधिक त्याग करनेवाला साहित्यकार हमें अपने सम्पूर्ण इतिहासमें कठिनतासे मिलेगा।

[सहायक ग्रन्थ—हिन्दी गद्यके निर्माता पण्डित बालकृष्ण भट्ट : राजेन्द्र शर्मा; भारतेन्दु युग : रामविलास शर्मा; निबन्धकार बालकृष्ण भट्ट : गोपाल पुरोहित।] —दे० शं० अ०

बालकृष्ण राव—देशके प्रसिद्ध उदारवादी नेता सर सी० वाई० चिन्तामणिके सुपुत्र बालकृष्ण राव (बी० सी० राव) का जन्म सन् १९१३ ई० में प्रयागमें हुआ। उच्च शिक्षा प्राप्त करनेके उपरान्त आई० सी० एस० की परीक्षा उत्तीर्ण करते हुए आपने अपनी विलक्षण प्रतिभाका परिचय दिया। आपमें बाल्यकालसे ही काव्य तथा साहित्यके प्रति गहरी रुचि थी। पहली कविता 'माधुरी'के मई १९२८ ई०के अंकमें छपी। प्रायः १५ वर्षकी अवस्थासे ही आप काव्य-रचनाकी ओर उन्मुख हुए थे और १९३१ ई० में आपकी कविताओंका एक संग्रह 'कौमुदी' नामसे प्रकाशित हुआ। इस संग्रहका अच्छा स्वागत हुआ था किन्तु सरकारी सेवाके

उत्तरदायित्वपूर्ण पदपर प्रतिष्ठित हो जानेके कारण आपकी काव्य-साधना कुछ अन्तर्मुखी-सी हो गयी। आपकी कविताओंका दूसरा संग्रह 'कवि और छवि' कोई ग्यारह वर्ष बाद १९४७ ई० में प्रकाशित हुआ। इस संग्रहमे आपकी चुनी हुई ४४ रचनाएँ संकलित हैं, जिनपर 'छायावाद'की स्पष्ट छाप दृष्टिगत होती है किन्तु बालकृष्ण रावको 'छायावाद' के कविके रूपमें स्वीकार करना बड़ी भारी भूल होगी। वे छायावादी काव्यधारासे प्रभावित अवश्य हुए हैं किन्तु उनके कवि व्यक्तित्वका क्रमशः स्वतन्त्र विकास हुआ है। १९५० ई० के बाद उनमें प्रयोगशीलताके लक्षण स्पष्ट होने लगते है और १९५५ ई० तक वे हिन्दीकी नव्यतम कविताधारा 'नयी कविता' के साथ हो जाते है। पत्र-पत्रिकाओंमें तथा संग्रहरूपमें प्रकाशित उनकी इधरकी रचनाएँ उनके अधुनातन काव्य-बोधकी परिचायिका हैं। बालकृष्ण रावने चतुर्दशपदी (सानेट) के भी कुछ बहुत आकर्षक प्रयोग किये है। उनकी भाषा सरल, वाक्यरचना बोलचालके निकट तथा अभिव्यंजना प्रणाली सहज तथा प्रभावोत्पादक होती है।

बालकृष्ण रावके अन्य साहित्यिक कार्योंमे 'कवि भारती' (१९५३ ई०) का सम्पादन तथा मिल्टनके 'सैम्सन एगोनिस्टस' का काव्यानुवाद 'विक्रान्त सैम्सन' विशेषतः उल्लेखनीय है। पत्रकारिता तथा स्फुट लेखनमे आपकी बराबर रुचि रही है। अंग्रेजीके कई पत्रोंमे विभिन्न विषयों (विशेषतः साहित्यिक विषयों) पर लिखते रहे हैं। हिन्दीमे आपके समीक्षात्मक निबन्ध गम्भीर अध्ययन तथा गहरी सूझ-बूझके परिचायक है। आकाशवाणीके महानिर्देशक पदपर कार्य करते समय आपने एक व्यापक योजना बनाकर हिन्दीके अनेक साहित्यकारोंका सहयोग आकाशवाणीके लिए प्राप्त किया। वस्तुतः आकाशवाणीमें हिन्दीसे सम्बद्ध विभिन्न आयोजनोंका मुख्य श्रेय आपको ही है। १९६० ई० मे आपके सम्पादनमे इलाहाबादसे 'कादम्बिनी' नामक मासिक पत्रिकाका प्रकाशन शुरू हुआ। बालकृष्ण राव 'सुकवि समाज' (प्रयाग) के मन्त्री, हिन्दुस्तानी अकादमी के मन्त्री (१९४३-१९४४ ई०) कविसम्मेलन-द्विवेदी मेला (प्रयाग) के सयोजक तथा हिन्दी-साहित्य सघ (लखनऊ) के अध्यक्ष रह चुके है। आपने कई प्रकारके उच्च सरकारी पदोंपर प्रतिष्ठित होकर देशकी सेवा की है।

कृतियाँ—'कौमुदी' (१९३१ ई०), 'आभास' (१९३५ ई०), 'कवि और छवि' (१९४७ ई०), 'रात बीती' (१९५४ ई०), 'हमारी बात' (१९५७ ई०)—सभी काव्य-सकलन तथा 'विक्रान्त सैम्सन' (मिल्टनके 'सैम्सन एगोनिस्टिस'का काव्यानुवाद—१९५७ ई०)। —र० भ्र०

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'—जन्म ग्वालियर राज्यके भयाना नामक ग्राममें ८ दिसम्बर, १८९७ ई० को। वैष्णव माता-पिताके साथ बाल्यावस्थामें कुछ दिनों 'नाथद्वारा'में रहनेके बाद वे शिक्षा-दीक्षाके लिए शाजापुर आ गये थे। शाजापुरसे अंग्रेजी मिडिल पास करके वे उज्जैनके माधव कालेजमें प्रविष्ट हुए। राजनीतिक वातावरणने उन्हें शीघ्र ही आकृष्ट किया और इसीसे वे सन् १९१६ ई०के लखनऊ कांग्रेस अधिवेशनको देखनेके लिए चले आये। इसी अधिवेशनमें संयोगवश उनकी भेंट माखनलाल चतुर्वेदी, मैथिलीशरण गुप्त एवं गणेशशंकर विद्यार्थीसे हुई। सन् १९१७ ई०में हाई स्कूलकी परीक्षा उत्तीर्ण करके बालकृष्ण शर्मा गणेशशंकर विद्यार्थीके आश्रयमें कानपुर आकर क्राइस्ट चर्च कालेजमें पढने लगे। सन् १९२० ई०में, जब वे बी० ए० फाइनलमें पढ रहे थे, गान्धीजीके सत्याग्रह आन्दोलनके आह्वानपर वे कालेज छोड़कर व्यावहारिक राजनीतिके क्षेत्रमें आ गये। २९ अप्रैल, १९६० ई०को अपने मृत्युपर्य्यन्त वे देशकी व्यावहारिक राजनीतिमे बराबर सक्रिय रूपसे सम्बद्ध रहे। उत्तर-प्रदेशके वे वरिष्ठ नेताओंमें एक एवं कानपुरके एकछत्र अगुआ थे। भारतीय संविधान-निर्मात्री परिषद्‌के सदस्यके रूपमें हिन्दीको राजभाषाके रूपमें स्वीकार करानेमें उनका बडा योग रहा है १९५२ ई०से लेकर अपनी मृत्युतक वे भारतीय संसद्‌के सदस्य भी रहे हैं। सन् १९५५ ई०में स्थापित राजभाषा-आयोगके सदस्यके रूपमें उनका महत्त्वपूर्ण कार्य रहा है। स्वभावसे 'नवीन'जी अत्यन्त उदार, फक्कड, आवेशी किन्तु मस्त तबियतके आदमी थे। अभिमान और छलसे वे बहुत दूर थे। बचपनके वैष्णव संस्कार उनमें यावज्जीवन बने रहे।

जहाँ तक उनके लेखक-कवि व्यक्तित्वका प्रश्न है; लेखनकी ओर उनकी रुचि इन्दौरमे ही थी परन्तु व्यवस्थित लेखन १९१७ ई०में गणेशशंकर विद्यार्थीके सम्पर्कमे आनेके बाद प्रारम्भ हुआ। इस सम्पर्कका सहज परिणाम था कि वे उस समयके महत्त्वपूर्ण पत्र 'प्रताप'से सम्बद्ध हो गये थे। 'प्रताप' परिवारमे उनका सम्बन्ध अन्त तक बना रहा। १९३१ ई० मे गणेशशंकर विद्यार्थीकी मृत्युके पश्चात् कई वर्षोंतक वे 'प्रताप'के प्रधान सम्पादकके रूपमें भी कार्य करते रहे। हिन्दीकी राष्ट्रीय काव्य-धाराको आगे बढानेवाली पत्रिका 'प्रभा'का सम्पादन भी उन्होंने १९२१-२३ ई०में किया था। इन पत्रोंमें लिखी गयी उनकी सम्पादकीय टिप्पणियाँ अपनी निर्भीकता, खरेपन और कठोर शैलीके लिये स्मरणीय है। 'नवीन' अत्यन्त प्रभावशाली और ओजस्वी वक्ता भी थे एवं उनकी लेखन शैली (गद्य-पद्य दोनो ही) पर उनकी अपनी भाषण-कलाका बहुत स्पष्ट प्रभाव है। सब मिलाकर राजनीतिक कार्यकर्ता के समान ही पत्रकारके रूपमे भी उन्होंने सारे जीवन कार्य किया।

राजनीतिज्ञ एवं पत्रकारके समानान्तर ही उनके व्यक्तित्व का तीसरा भास्वर पक्ष था कविका। उनके कविका मूल स्वर रोमाण्टिक था, जिसे वैष्णव संस्कारोंकी आध्यात्मिकता एवं राष्ट्रीय जीवनका विद्रोही कण्ठ बराबर अनुकूलित करता रहा। उन्होंने जब लिखना प्रारम्भ किया तब द्विवेदीयुग समाप्त हो रहा था एवं राष्ट्रीयताके नये आयाम की छायामें स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन काव्यमें मुखर होने लगा था। परिणामस्वरूप दोनों ही युगोंकी प्रवृत्तियाँ हमें 'नवीन'में मिल जाती है। महावीरप्रसाद द्विवेदीकी प्रेरणाने ही कवियोंकी चिर-उपेक्षिता 'उर्मिला'का लेखन उनसे १९२१ ई०मे प्रारम्भ कराया, जो पूरा सन् १९३४ ई०में हुआ एवं प्रकाशित सन् १९५७ ई०में। इस काव्यमें द्विवेदी युगकी इतिवृत्तात्मकता, स्थूल नैतिकता या प्रायोजन (जैसे रामवन गमनकी आर्य संस्कृतिका प्रसार मानना)

स्पष्ट देखे जा सकते हैं परन्तु मूलतः स्वच्छन्दतावादी गीतितत्त्वप्रधान 'नवीन'का यह प्रयास प्रबन्धत्वकी दृष्टिसे बहुत सफल नहीं कहा जा सकता। छः सर्गों वाले इस महाकाय ग्रन्थमें उर्मिलाके जन्मसे लेकर लक्ष्मणसे पुनर्मिलन तककी कथा कही अवश्य गयी है पर वर्णन-प्रधान कथाके मार्मिक स्थलोंकी न तो उन्हें पहचान है और न राम-सीताके विराट् व्यक्तित्वके आगे लक्ष्मण-उर्मिला बहुत उभर ही सके हैं। उर्मिलाका विरह अवश्य कविकी प्रकृतिके अनुकूल था और कलाकी दृष्टिसे सबसे सरस एवं प्रौढ़ अंश वही है। यों अत्यन्त विलम्बसे प्रकाशित होनेके कारण सम्यक् ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्यमें इस ग्रन्थका मूल्यांकन नहीं हो सका है।

यह विलम्ब उनकी सभी कृतियोंके प्रकाशनमें हुआ है। सन् १९३० ई०तक वे यद्यपि कवि रूपमें यशस्वी हो चुके थे परन्तु पहला कविता-संग्रह 'कुंकुम' १९३६ ई० में प्रकाशित हुआ है। इस गीत-संग्रहका मूल स्वर यौवनके पहले उद्दाम प्रणयावेग एवं प्रखर राष्ट्रीयता का है। यत्र-तत्र रहस्यात्मक संकेत भी हैं परन्तु उन्हें तत्कालीन वातावरणका फैशन-प्रभाव ही मानना चाहिए। "कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ" तथा "आज खड्गकी धार कुण्ठिता है" जैसी प्रसिद्ध कविताएँ 'कुंकुम'में संगृहीत हैं।

फिर स्वातन्त्र्य-संग्रामका सबसे कठिन एवं व्यस्त समय आ जानेके कारण 'नवीन' बराबर उसीमें उलझे रहे। कविताएँ उन्होंने बराबर लिखीं परन्तु उनको संकलित कर प्रकाशित करानेकी ओर ध्यान नहीं रहा। स्वतन्त्रताकी प्राप्तिके बाद भी वे संविधान-निर्माण जैसे कार्योंमें लगे रहे। इस प्रकार एक लम्बे अन्तरालके पश्चात् १९५१ ई० में 'रश्मि रेखा' तथा 'अपलक', १९५२ ई० में 'क्वासि' संग्रह और प्रकाशित हुआ। विनोबा और भूदानपर लिखी उनकी कतिपय प्रशस्तियों एवं उद्बोधनोंका एक संग्रह 'विनोबा स्तवन' सन् १९५५ ई० में प्रकाशित हुआ। इस प्रकाशित सामग्रीके अतिरिक्त कुंकुम-क्वासि काल (१९३०-१९४९) की अनेक कविताएँ तथा 'प्राणार्पण' नामसे गणेशशंकर विद्यार्थीके बलिदानपर लिखा गया खण्ड-काव्य अभी अप्रकाशित ही है। १९४९ ई०के बाद भी वे बराबर लिखते एवं पत्रोंमें प्रकाशित कराते रहे हैं। "यह शूल युक्त यह अहि आलिंगित जीवन" जैसी श्रेष्ठ आत्मपरक कविताएँ इसी अन्तिम अवस्थामें लिखी गयी हैं। पर ये सब भी असंगृहीत हैं। 'नवीन' राष्ट्रीय वीर काव्य के प्रणेताओंमें मुख्य रहे हैं परन्तु उनके प्रकाशित संग्रहों में ये कविताएँ बहुत कम आ सकी हैं। उनका गद्य-लेखन भी असंकलित रूपमें यत्र-तत्र बिखरा हुआ है।

अब तक प्रकाशित संग्रहोंमें प्रणयके कवि 'नवीन'का संवेदना और शिल्पकी समग्रताकी दृष्टिसे श्रेष्ठतम एवं प्रतिनिधि संग्रह 'रश्मिरेखा' है। इसमें 'नवीन'की मौजी एवं प्रेमिल अभिव्यक्तियाँ प्रचुर मात्रामें हैं। "हम अनिकेतन हम अनिकेतन"में अत्यन्त निर्लिप्त आत्मस्वीकरणके भावसे वे कह उठते हैं, "अब तक इतनी यों ही काटी, अब क्या सीखें नव परिपाटी? कौन बनाये आज घरौंदा, हाथों चुन-चुन कंकड़ माटी। ठाट फकीराना है अपना बाघम्बर सोहे अपने तन" ('रश्मिरेखा' पृ० ११७)। प्रणय एवं विरहकी कितनी ही मादक स्मृतियाँ, कितने ही मनोरम चित्र, कितनी ही व्याकुल बेसुध पुकारें एवं विवशताकी कितनी ही चीत्कारें 'रश्मि रेखा'में संगृहीत हैं। यह प्रणयी अनिकेतन अत्यन्त उद्दाम भावसे कहता है, "कूजे दो कूजे में बुझने वाली प्यास नहीं, बार-बार 'ला! ला!' कहनेका समय नहीं, अभ्यास नहीं।" वस्तुतः हिन्दीमें हालावादके आदि प्रवर्त्तक 'नवीन' ही हैं तथा भगवती चरण वर्मा एवं 'बच्चन'ने उनकी ऐसी कविताओंके प्रभावके तले लिखा है। 'बच्चन'ने स्वयं इस बातको स्वीकार किया है (दे० साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान', १ जुलाई, १९६०, पृ० ३५)।

'अपलक' और 'क्वासि'में संकलित कविताओंमें यद्यपि कविताओंका रचनाकाल वही है, जो 'रश्मिरेखा'की कविताओंका है। पर इनमें जो कविताएँ संकलित हैं, उनमें प्रणयका वेगदर्शन एवं भक्ति-भावनासे प्रतिहत होता लगता है। 'आध्यात्मिकता'का स्वर छायावादके बहुतसे आलोचकोंको भी भ्रम और विवादमें डालता रहा है, परन्तु शिल्पके जिस लाक्षणिक वैचित्र्यके माध्यमसे वह स्वर व्यक्त हुआ है, उसने उन कविताओंको अनगढ़ नहीं होने दिया परन्तु 'नवीन'का छायावादकालमें ही लिखा गया यह अध्यात्म-निवेदन बहुत-कुछ स्थूल एवं इतिवृत्तात्मक पदावलीमें व्यक्त हुआ है। छायावादके शिल्पको वे मनसे नहीं स्वीकार करते पर रहस्य या अध्यात्मकी पदावली उनपर हावी प्रतीत होती है परन्तु इन संकलनोंमें जहाँ उनका मस्त एवं प्रणयी व्यक्तित्व सहज ही व्यक्त हुआ, वहाँ काव्य नितान्त रसनिर्भर हो सका है। 'हम हैं मस्त फकीर' ('अपलक') 'तुम युग-युग की पहचानी सी' ('क्वासि'), 'मान छोड़ो' (क्वासि), 'सुन लो प्रिय मधुर गान' ('अपलक') ऐसी ही कविताएँ हैं। आध्यात्मिक अन्योक्तिकी दृष्टिसे 'डोलेवालों' ('क्वासि') उनकी श्रेष्ठतम कविता है।

ब्रजभाषा 'नवीन'की मातृभाषा थी। उनके प्रत्येक ग्रन्थ-ब्रजभाषाके भी कतिपय गीत या छन्द मिलते हैं। ब्रजभाषामें 'नवीन' भाव-संवेदनाकी अभिव्यक्तिका प्रयास कर उन्होंने ब्रजभाषाके आधुनिक साहित्यको समृद्ध किया है। उर्मिलाका एक सम्पूर्ण सर्ग ही ब्रजभाषामें है परन्तु उनका ब्रजभाषा-मोह जब खड़ीबोलीके परिनिष्ठित प्रयोगोंके मध्य आ प्रकट होता है तब पाठकके लिए रसभंगकी स्थिति पैदा हो जाती है। ब्रजभाषाके क्रियापदों या शब्दों (जानूँ हूँ, सोचूँ हूँ, नेक, लागी, नचीं, उमड़ाय दिया आदि) का निखरी तत्सम प्रधान खड़ीबोलीमें प्रयोग अत्यन्त अकुशल ढंगसे हुआ है। वस्त्रके लिए 'बस्तर' ('क्वासि', पृष्ठ ९) जैसे प्रयोग भी बहुधा खटकते हैं। वस्तुतः आधुनिक कालके श्रेष्ठ कवियोंमें 'नवीन'से अधिक भाषाके भ्रष्ट प्रयोग मिल ही नहीं सकते। लगता है यह भी उनकी भाषणकलाका ही प्रभाव था। सम्भवतः राजनीतिक व्यस्तता भी इस परिष्कारहीनताके मूलमें थी। संस्कृतके भारी भरकम अप्रचलित एवं दुरुह शब्दोंको लानेकी प्रवृत्ति उनकी बराबर बढ़ती गयी है। सन् १९५०-

५१ ई०के बादकी कविताओंमें अध्यात्म मोहके साथ-साथ दुरूह अकाव्यात्मक शब्दावली (शब्द और अर्थके वक्र कविव्यापारशाली सहभावसे विच्छिन्न) का उनका आग्रह उनके काव्यके रसास्वादनका बराबर बाधक बनता गया है। लगता है शैली जीतती गयी है और वे हारते गये हैं।

द्विवेदी युगके पश्चात् हिन्दी काव्य-धाराकी जो परिणति छायावादमें हुई है, 'नवीन' उनके अन्तर्गत नहीं आते। राजनीतिके कठोर यथार्थमे उनके लिए शायद यह सम्भव नहीं था कि वैसी भावुकता, तरलता, अतीन्द्रियता एवं कल्पनाके पंख वे बाँधते परन्तु इस बातको याद रखना होगा कि उनका काव्य भी स्वच्छन्दतावादी (रोमान्टिक) आन्दोलनका ही प्रकाश है। 'नवीन', मैथिलीशरण गुप्त, भगवतीचरण वर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी, सियारामशरण गुप्त आदिका काव्य छायावादके समानान्तर संचरण करता हुआ आगे चलकर 'बच्चन', 'अंचल', नरेन्द्र शर्मा, 'दिनकर' आदिके काव्यमें परिणत होता है। काव्यधाराके इस प्रवाहकी ओर हिन्दी आलोचकोंने अभीतक उपेक्षाका ही भाव रखा है। अस्तु 'नवीन'के काव्यमे एक ओर राष्ट्रीय संग्रामकी कठोर जीवनानुभूतियाँ एवं जागरणके स्वर व्यंजित हुए हैं और दूसरे सहज मानवीय स्तर (योद्धासे अलग) पर प्रेम-विरहकी राग-सवेदनाएँ प्रकाश पा सकी है। इसी क्रममे हालावादी काव्यकी भी सृष्टि हुई है। इस प्रकार छायावादके समानान्तर बहनेवाली वीर-शृंगार धाराके वे अग्रणी कवि रहे हैं। कविके अतिरिक्त गद्यलेखकके रूपमें भी 'प्रताप' जैसे पत्रके माध्यमसे उन्होने ओज-गुणप्रधान एक शैलीके निर्माणमें अपना योग दिया है। —दे० शं० अ०

बालगंगाधर तिलक–जन्म २३ जुलाई, १८५६ ई० को पूनामे और मृत्यु १ अगस्त, १९२० ई०में।

भारतके राजनीतिक और सांस्कृतिक विकासक्रममे तिलक एक आवश्यक लडी है। उन्हे प्रायः भारतीय प्रजातन्त्रका पिता कहा जाता है। देशकी दो विचारधाराओंको—गान्धीजीसे पूर्व (१९१७ तक) और उनके द्वारा कांग्रेसका नेतृत्व ग्रहण करनेके बाद—मिलानेका कार्य तिलकने किया। यद्यपि यह कार्य अधिकतर राजनीतिसे सम्बन्ध रखता है किन्तु तिलककी सार्वजनिक सेवाओका प्रभाव साहित्यके क्षेत्र पर भी पडा और हिन्दी उससे अछूती नहीं रही। वास्तवमे जिन परिस्थितियों और प्रयत्नोंको हिन्दीके उन्नयन का श्रेय दिया जाता है, उनके निर्माणमे लोकमान्य तिलकका बहुत बड़ा हाथ है। अध्ययन, अध्यापन तथा लेखन उनके जीवनका विशेष व्यसन था। राजनीतिसे बाहर उन्होंने जो कार्य किया, उसे तीन रूपोमे बाँटा जा सकता है—तिलक लेखकके रूपमें, पत्रकारके रूपमें और शिक्षकके रूप में।

अधिकांश लोग तिलकको 'गीता रहस्य'के लेखक और प्राचीन भारतके इतिहासवेत्ताके रूपमें जानते हैं। संस्कृत और ज्योतिषशास्त्रके विद्वान् होनेके नाते और पाश्चात्य विद्याके गहन अध्ययनके कारण उन्होंने जो कुछ लिखा, उसे प्रामाणिक माना गया। इतिहास, भारतीयविज्ञान (इण्डोलोजी) और पुरातत्त्व विज्ञान आदि पर उन्होंने जो

टीकाएँ लिखीं, उन्हींके आधार पर वह अपने समयके प्रथम श्रेणीके लेखकोंमें गिने जानेके अधिकारी हैं। मराठी और अंग्रेजीमें लिखे हुए ग्रन्थ अपने आप उनके स्थायी स्मारक है। अनूदित रचनाओंसे हिन्दीको भी तिलक-साहित्यका लाभ मिला है। तिलक लेखक पहले थे और राजनीतिज्ञ बाद में। राजनीतिक क्षेत्रमें रहनेके कारण आपको ग्रन्थ निर्माण करनेका समय नहीं मिला। जेल-जीवनसे अवकाश मिलनेपर लोकमान्य तिलकने तीन महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा। इनमें प्रथम ग्रन्थ है 'गीता रहस्य', दूसरा ग्रन्थ है 'ओरायन' (मृगशीर्ष) और तीसरे ग्रन्थका नाम है 'आर्कटिक होम इन दि वेदाज' (आर्योंका मूल वासस्थान)। 'गीता रहस्य'का हिन्दी अनुवाद पूज्य ग्रन्थोंमें है। शेष दोनों ग्रन्थ अंग्रेजीमे छपे हैं। आपकी कई पुस्तकें मराठीमें है।

तिलक जैसे देशभक्तके लिए यह असम्भव था कि शिक्षा-सम्बन्धी समस्याओ पर विचार करनेके पश्चात् वे राष्ट्र-भाषाके प्रश्न पर ध्यान न देते। तिलककी बौद्धिक प्रतिभा उदात्त और तर्कसंगत थी। इसलिए उनका चिन्तन उन्हें इस निष्कर्ष पर ले गया कि हिन्दी ही समस्त देशकी भाषा हो सकती है। परिणामतः अपनी व्यस्तताके बावजूद हिन्दी-प्रचारके लिए वे यथासम्भव प्रयत्न करते थे। सार्वजनिक भाषणोंमे हिन्दीके महत्त्वपर जोर देते थे। तिलकके हिन्दी-प्रेमका आधार राष्ट्रकी एकताकी आकांक्षा और स्वराज्यकी कल्पना थी। किसी भी राष्ट्रव्यापी आन्दोलनके आयोजनको वह राष्ट्रभाषा अर्थात् हिन्दीके माध्यमका उपयोग किये बिना सम्भव न मानते थे। राष्ट्रभाषाके सम्बन्धमे तिलकके विचार स्पष्ट और दृढ थे। उन्होने एक बार लिखा था—"राष्ट्रीय भाषाकी आवश्यकता सर्वत्र समझी जाने लगी है। राष्ट्रके संघटनके लिए एक ऐसी भाषाकी आवश्यकता है' जिसे सर्वत्र समझा जा सके। लोगोंमें अपने विचारोंका अच्छी तरह प्रचार करनेके लिए भगवान् बुद्धने भी एक भाषाको प्रधानता देकर कार्य किया था। हिन्दी भाषा राष्ट्रभाषा बन सकती है। राष्ट्रभाषा सर्वसाधारणके लिए जरूरी होनी चाहिये। मनुष्य हृदय एक दूसरेसे विचार-परिवर्तन करना चाहता है, इसलिए राष्ट्रभाषाकी बहुत जरूरत है। विद्यालयोंमें हिन्दीकी पुस्तकोका प्रचार होना चाहिये। इस प्रकार यह कुछ ही वर्षमे राष्ट्रभाषा बन सकती है।" लखनऊकी एक भाषा और एक लिपि प्रचार परिषद् (सन् १९१६) मे तिलकने देवनागरी लिपि और हिन्दीको राष्ट्रभाषाके रूपमें अपनाये जानेका प्रस्ताव प्रस्तुत किया था। —शा० द०

बालदत्त पाण्डेय–जन्म १८९२ ई०। मृत्यु १९५१ ई० में कानपुरमे हुई। आपकी शिक्षा कलकत्तामे हुई थी। आपने केवल एक उपन्यास 'वनदेवी' सन् १९२१ ई०मे लिखा था, जिसके कई संस्करण कुछ ही दिनोंमें बिके थे। पत्र-पत्रिकाओंने इस उपन्यासका अच्छा स्वागत किया था। 'सरस्वती', 'मर्यादा' आदि प्रतिष्ठित पत्रिकाओंमें आपके बहुतसे महत्त्वपूर्ण लेख प्रकाशित हुए हैं। पाण्डेयजी बड़े ही मिलनसार, स्पष्टवादी और निर्भीक स्वभावके थे। —सं०

बालमुकुंद गुप्त–बालमुकुन्द गुप्तका हिन्दी गद्य-साहित्यके उन्नायकोंमें विशिष्ट स्थान है। आप भारतेन्दु और द्विवेदी-

युगको जोड़नेवाली महत्त्वपूर्ण कड़ी है। आपका जन्म हरियाना प्रान्तके रोहतक जिलेमें गुड़ियाना ग्राममें सन् १८६५ ई० में हुआ था। मृत्यु दिल्लीमें १८ सितम्बर, सन् १९०७ ई० में हुई। बचपनमें अपने गाँवके मदरसेमें ही आपने उर्दू माध्यमसे पढ़ना आरम्भ किया। प्रारम्भसे ही आपकी प्रतिभा, लगन और अध्यवसायका परिचय मिलने लगा था। चौदह वर्षकी अवस्थामें ही आपको पितृ-वियोग सहन करना पड़ा। सन् १८८६ ई० में आपने मिडिलकी परीक्षा पास की। इस अवधिमें फारसीके विद्वान् मुंशी वजीर मुहम्मदकी कृपासे आपने उर्दू लिखनेका अच्छा अभ्यास कर लिया था। वह नवीन जीवन-चेतनाके उदयका युग था। अंग्रेजी शिक्षाके प्रभावस्वरूप भारतीय जन-मानसमें उल्लसित होनेवाली नवीन चेतना पत्र-पत्रिकाओंके माध्यम-से स्फुटित हो रही थी। उन दिनों रोहतक जिलेमें दीन-दयालु शर्मा प्रतिष्ठित पत्रकार थे। उनकी प्रेरणासे बाल-मुकुन्द गुप्तने 'मथुरा अखबार' में लिखना आरम्भ किया। सन् १८८६ ई० में आप 'अखबारे चुनार' के सम्पादक नियुक्त हुए। यहींसे आपके पत्रकार-जीवनका आरम्भ होता है। जीवन-पर्यन्त (१९०७ ई० तक) आप पत्रकार ही रहे। सन् १८८६ ई० से सन् १९०७ ई० तक आपने दो उर्दू—'अखबारे चुनार' (१८८६-८८ ई०), 'कोहनूर' (१८८८-८९ ई०) और तीन हिन्दी—'हिन्दोस्थान' (१८८९-९१ ई०), 'हिन्दी बंगवासी' (१८९३-९८ ई०), 'भारत-मित्र' (१८९९-१९०७ ई०) पत्रोंका सम्पादन किया। इनके अतिरिक्त आपका सम्बन्ध 'भारत प्रताप', 'अवध पंच' और 'नया जमाना' आदि पत्रोंसे भी था, जिनमें आप बराबर लिखते रहते थे।

पत्रकारके साथ ही आप एक सफल अनुवादक और श्रेष्ठ कवि भी थे। 'भारत मित्र' के सम्पादन कालमें ही आपकी प्रायः सभी प्रसिद्ध कृतियाँ प्रकाशित हुई थीं। आपकी सर्वाधिक लोकप्रिय कृतियाँ दो हैं—'शिवशम्भुके चिट्ठे' तथा 'चिट्ठे और खत'। ये दोनों रचनाएँ १९०५ ई० में भारत मित्र प्रेस, कलकत्तासे प्रकाशित हुई थीं। लगभग इसी समय आपके प्रमुख लेखों और निबन्धोंका एक संग्रह 'गुप्त निबन्धावली' नामसे प्रकाशित हुआ था। इसके पहले ही आपकी दो अनूदित कृतियाँ—'मडेल भगिनी' (१८९१ ई०—बंगला उपन्यासका अनुवाद) और 'रत्नावली' (१८९८ ई०—हर्षकृत संस्कृत नाटिकाका अनुवाद) प्रकाशमें आ चुकी थीं। १९०५ ई० में आपकी कविताओंका एक संग्रह 'स्फुट कविता' शीर्षकसे भारतमित्र प्रेस, कलकत्तासे प्रकाशित हुआ था। सन् १८९६ ई० में आपकी एक अन्य कृति 'हरिदास' नामसे बंगवासी प्रेस, कलकत्तासे छपकर निकली थी। 'खिलौना', 'खेल-तमाशा' और 'सर्पाघात चिकित्सा' आपकी इन तीन अन्य कृतियोंका उल्लेख भी मिलता है। इससे प्रकट है कि साहित्यके अतिरिक्त अन्य उपयोगी और सामान्य विषयोंके प्रति भी आपकी रुचि थी। यह सब कुछ होते हुए भी साहित्य-क्षेत्रमें आपकी ख्याति 'चिट्ठों और खतों' के कारण ही हुई। आपका ओजस्वी व्यक्तित्व इन्हींमें अन्तर्निहित है।

हिन्दी-गद्य-साहित्यमें बालमुकुन्द गुप्तका महत्त्व कई दृष्टियोंसे आँका जा सकता है। वे एक निर्भीक, ओजस्वी, कर्तव्यनिष्ठ, देशप्रेमी और लोक-हितैषी पत्रकार थे। उन्होंने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और प्रतापनारायण मिश्रके साहित्यिक आदर्शोंकी रक्षा करते हुए उनकी परम्पराको आगे बढाया। हिन्दी गद्य-शैलीको व्यावहारिक, चुस्त, चुटीली, ओजस्वी, हास्य-व्यंग्य-गर्भित, प्राणवान् और प्रवाहमयी बनानेमें आपको सर्वाधिक सफलता प्राप्त हुई। हिन्दी-गद्यके परिमार्जनमें आपका बहुत बड़ा योग है। शब्दोंकी आत्माकी अद्भुत परख आपको थी। महावीर प्रसाद द्विवेदीसे 'अनस्थिरता' शब्दको लेकर और 'वेंकटेश्वर समाचार'के सम्पादक लज्जाराम मेहतासे 'शेष' शब्दको लेकर आपने जो विवाद किया था, भाषा-परिमार्जनकी दृष्टिसे उसका स्थायी महत्त्व है। उर्दू और हिन्दीके विवादमें आपने सदैव हिन्दीका समर्थन किया। आप उर्दूकी दुर्बलताओंसे भलीभाँति परिचित थे। इसलिए आपके तर्क अकाट्य होते थे। साहित्यिक आलोचनाके क्षेत्रमें लोक-कल्याणकी भावनाको कृतिकी उत्कृष्टताकी कसौटी स्वीकार करके आपने युगानुकूल नवीन मूल्यकी स्थापना की। साहित्यकारोंका समीक्षात्मक परिचय लिखनेका सूत्र-पात आपने ही किया। तुलनात्मक समीक्षाका बीज भी आपकी आलोचनात्मक रचनाओंमें मिल जाता है। अनुवादकके रूपमें भी आपकी सफलता सन्दिग्ध नहीं है। 'रत्नावली' और 'मडेल भगिनी'का अनुवाद प्रस्तुत करते हुए आपने अभिव्यक्तिकी प्रांजलता, मूलभावके संरक्षण और संवादोंके प्रवाहको बनाये रखनेका भरपूर प्रयत्न किया है। निबन्धकारके रूपमें आपने सदैव अन्यायको चुनौती दी है। चाहे लार्ड कर्जन हो, चाहे 'सरस्वती' सम्पादक महावीरप्रसाद द्विवेदी, यदि बालमुकुन्द गुप्तको उनके कार्योंमें अनौचित्यकी गन्ध भी मिली तो उन्होंने मुक्तस्वरसे उसका विरोध किया। 'भारत मित्र'के सम्पादकने मौन रहना सीखा ही नहीं था। आपके व्यक्तित्वकी सबसे बड़ी विशेषता थी—निर्भीकता। दृढ़ता, ओजस्विता, न्याय-निष्ठता, सरलता और विनोदप्रियताके सम्मिलित तत्त्वोंने आपको एक ईमानदार पत्रकार और सहृदय देशभक्तकी प्रतिष्ठा दी थी। आपकी शैली चुटीली और व्यंग्य-प्रधान होते हुए भी आत्मीयता और विश्वास उत्पन्न करनेवाली है। —रा० च० ति०

बालि—रामकथा काव्योंमें बालिकी कथा मिलती है। बालि किष्किन्धाका एक वानर अधिपति था। इसकी स्त्रीका नाम तारा, भाईका नाम सुग्रीव और पुत्रका नाम अंगद था। बालि और सुग्रीवके जन्मके सम्बन्धमें ऐसी प्रसिद्धि है कि एक किसी सुन्दर स्त्रीपर सूर्य और चन्द्र मोहित हो गये। उनका वीर्य क्रमशः उस स्त्रीके मस्तक और गर्दनपर गिरा। मस्तकसे बालि और गर्दनसे सुग्रीव जन्मे। इस प्रकार सूर्य बालिके पिता थे। बालिने अपने अनुजकी स्त्री रूमाको छीन लिया था और उसे निष्कासित कर दिया था। बालि बड़ा पराक्रमी था। उसने एक बार रावणको अपनी काँखमें दबा लिया था। राम जब वनमें सीताकी खोज कर रहे थे तो सुग्रीवने उनकी सहायता की (दे० सुग्रीव)। रामने उसके बदले बालिका वध करके उसकी पत्नीको मुक्त

कराया था। बालिके अनन्तर अंगद किष्किन्धाका राजा हुआ। —रा० कु०

बिंबसार–प्रसादकृत नाटक 'अजातशत्रु'का पात्र। बिम्बसार मगधका वृद्ध सम्राट् और अजातशत्रुका पिता है। इतिहास के द्वारा इसके राज्यारोहणकी तिथि ५४४ ई० पू० सिद्ध होती है। सिंहली इतिहासोंके साक्ष्यपर इसने ५२ वर्ष राज्य किया। बिम्बसारके विन्ध्यमेन और श्रेणिक नाम भी मिलते हैं। इसने अपना राजनीतिक प्रभाव अधिकांशतः वैवाहिक सम्बन्धोंसे बढाया। सम्राट्की प्रमुख रानियोंमें प्रसेनजित्की भगिनी कोशल देवी (वासवी), लिच्छवी-वंशके राजा चेटककी पुत्री चल्हना (छलना) और मद्र (मध्य-पंजाब)की राजकुमारी क्षेमा थी। इन विवाहोंसे मगध राजकुलकी प्रतिष्ठा बढ गयी। कोशलदेवीके यौतुकमे ही काशीकी एक लक्षकी आय मगधके राजकोषमें प्रतिवर्ष आने लगी। अजातशत्रुने पिताको बन्दीगृहमे डाल दिया। उसके इस आचरणसे क्रुद्ध होकर प्रसेनजित्ने मगधको काशीकी आय देनी बन्द कर दी, फलतः दोनों राज्योमे युद्ध छिड़ गया। बिम्बसार हमारे समक्ष नाटकमे सर्व प्रथम जीवनकी क्षणभंगुरता और नियतिपर गम्भीर चिन्तन करनेवाले दार्शनिकके रूपमें आता है। उसने अपनी छोटी रानी छलना और पुत्र अजातशत्रुके विद्रोहकी आशंकासे जीतेजी ही राज्यभार पुत्रको सौंपकर अनमनस्यकतासे वानप्रस्थ आश्रम स्वीकार कर लिया है। ऐसा त्याग उसने गौतमकी प्रेरणा और वासवीकी अनुमतिसे किया है क्योंकि राज्य-सुखोंके प्रति उसका मन पूर्ण अनासक्त नहीं है। इसीलिए काशीके राजस्व-प्राप्तिके लिए वासवीको प्रयत्नशील होना पडता है। अजातशत्रुके क्रूर व्यवहार एवं छलनाके दम्भपूर्ण आचरणमे बिम्बसार निराशावादी दार्शनिक बन जाता है। उसके मनमे प्रायः राग-विरागका द्वन्द्व छिडा रहता है। धीरे-धीरे नियति के प्रति विश्वासकी भावना दृढ होनेपर वह शान्तिप्रिय, सहनशील और अन्तर्मुखी वृत्तिवाला अकर्मण्यशील बन जाता है। वासवी द्वारा काशीकी आयको हाथमे लेनेका प्रस्ताव करनेपर बिम्बसार निःस्पृहतामे उत्तर देता है: "मुझे फिर उन्ही झगडोंमें पडना होगा देवि! जिन्हे अभी छोड आया।" जीवक द्वारा कोशल और कौशाम्बी तक मगधका समाचार पहुँचानेके प्रस्तावका समर्थन न करते हुए यही कहता है: "नहीं जीवक! मुझे किसीकी सहायताकी आवश्यकता नहीं, अब वह राष्ट्रीय झगडा मुझे नहीं रुचता।" वह "सम्राट् न होकर किसी विनम्र लता के झुरमुटमें एक अधखिला फूल" बनकर चू जानेकी कामना करता है। गृह कलह, राज्य-विद्रोह, संघर्ष, हत्या अभियोग, षड्यन्त्र आदि भीषण दृश्योंको देखकर उसकी विरक्ति क्रमशः दृढ होती जाती है।

बिम्बसारके जीवनका अन्त प्रसादजी द्वारा परिस्थितियो के आकस्मिक परिवर्तन और सुखानुभूतिकी अतिरंजना द्वारा चित्रित किया गया है। जब अजात और छलना अपने कुकृत्योंकी क्षमा माँगनेके लिए उसके पास जाते हैं और पद्मावती पौत्र-जन्मका शुभ समाचार सुनानेके लिए पहुँचती है तब उसका नैराश्यपूर्ण विषाद वात्सल्यमें परिणत हो जाता है और सुखातिरेकसे उसका क्षीण हृदय इतना सुख एक साथ न सम्हाल सकनेके कारण बैठ जाता है। —के० प्र० चौ०

बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना–बिहार राज्यकी विधान सभाने ११ अप्रैल, १९४७ ई० के दिन इस परिषद्की स्थापनाका संकल्प ग्रहण किया था। भारत-पाक विभाजन सम्बन्धी असुविधाओंके कारण परिषद्का कार्य १९५० ई० में प्रारम्भ हो सका, जब शिवपूजन सहाय इसके मंत्री नियुक्त हुए। परिषद्का उद्घाटन ११ मार्च, १९५१ ई०के दिन हुआ। तबसे यह विभिन्न क्षेत्रोंमें द्रुतगतिसे कार्यशील है। उद्देश्योंकी सफलताके लिए श्रेष्ठ साहित्यके संकलन और प्रकाशनकी व्यवस्था की गयी। प्रारम्भिक एवं वरिष्ठ ग्रन्थ-प्रणेताओं एवं नवोदित साहित्यकारोंको पुरस्कार देने की योजना बनी और सोचा गया कि उपयोगी साहित्यका सम्पादन करनेवालोंको आर्थिक सहायता प्रदान की जाय। विशिष्ट विद्वानोंके सारगर्भित भाषणोंका प्रबन्ध हुआ और हस्तलिखित एवं दुर्लभ साहित्यकी खोजका काम हाथमें लिया गया तथा भोजपुरी, मैथिली एवं मराठी आदि लोकभाषाओंके शब्द-कोश प्रस्तुत करनेकी दिशामे प्रयत्न प्रारम्भ हुए। इस कार्यक्रमके अनुसार अब परिषद्के प्राप्त हस्तलिखित एवं दुर्लभ ग्रन्थोंका विशाल संग्रह एकत्र हो गया है। उसके द्वारा साहित्यिक एवं अन्य विषयोंसे सम्बद्ध प्रायः ७० ग्रन्थ अबतक प्रकाशित हुए हैं, जो अपने क्षेत्रकी मानक कृतियाँ हैं। परिषद्का वार्षिकोत्सव प्रतिवर्ष भव्य समारोहके साथ सम्पन्न होता है। योग्य विद्वानोंके भाषणोंकी व्यवस्था उसी अवसरपर होती है। परिषद्की ओरसे त्रैमासिक 'परिषद् पत्रिका'का भी प्रकाशन होता है, जिसमें अधिकतर शोध-रचनाएँ रहती हैं। —सं०

बिहार हिंदी साहित्य सम्मेलन, पटना–स्थापना सन् १९१९ ई०; कार्य एवं विभाग—(१) बदरीनाथ सर्वभाषा महाविद्यालय—इसकी स्थापना आचार्य बदरीनाथ वर्माके सम्मानमे हुई। उद्घाटन-समारोह तत्कालीन राज्यपाल र० रा० दिवाकर द्वारा ९ मई, १९५६ ई० को सम्पन्न हुआ था। विद्यालयमें विभिन्न देशी तथा विदेशी भाषाओंके अध्ययनका समुचित प्रबन्ध है, जिनमे मुख्य हैं—जर्मन, फ्रेंच, रूसी, तेलुगु और हिन्दी (अहिन्दी भाषिओंके लिए)। (२) बच्चनदेवी साहित्य गोष्ठी—इसकी स्थापना ४ जुलाई १९५४ ई० को आचार्य शिवपूजन सहायकी दिवंगता पत्नी श्रीमती बच्चनदेवीकी पुण्य स्मृतिमे हुई। उद्घाटन राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डनने किया। देशके प्रमुख साहित्य-चिन्तक समय-समय पर इस गोष्ठीके मुख्य अतिथि पदको सुशोभित कर चुके है। (३)प्रकाशन—शोध-समीक्षा प्रधान त्रैमासिक 'साहित्य' प्रकाशित होता है। इसके अतिरिक्त, 'साहित्य-सम्मेलनका इतिहास', 'बिहारकी साहित्यिक प्रगति', 'उर्दू शायरी और बिहार', 'हिन्दी-फ्रांसीसी स्वयं शिक्षक' आदि महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। (४) अनुशीलन—इस विभागमें अध्ययन-अनुसन्धानका कार्य होता है। (५)पुस्तकालय और वाचनालय—पुस्तकालयमें ११६३१ पुस्तकें हैं। वाचनालयमें ७ दैनिक, ३ पाक्षिक,

२३ साप्ताहिक, २७ मासिक, ३ त्रैमासिक पत्र-पत्रिकाएँ आती हैं। (६) कलाकेन्द्र—इसमें ३० से अधिक छात्राएँ कण्ठ-संगीत, वाद्य-संगीत तथा विविध नृत्योंका प्रशिक्षण प्राप्त कर रही हैं। विष्णु दिगम्बर संगीत-समिति (प्रयाग) की विविध परीक्षाओंमें २५ छात्राएँ १९५९ ई० में उत्तीर्ण हुईं। बिहार प्रान्तमें एक ही स्थान पर शास्त्रीय नृत्य, गायन और वादन तथा नाट्यकलाकी शिक्षा सुलभ करनेका श्रेय कलाकेन्द्रको ही है। (७) प्रचार विभाग—हिन्दी-दिवस तथा अन्य साहित्यिक समारोहोंका प्रान्तव्यापी आयोजन किया जाता है। हिन्दीको राजभाषा एवं राष्ट्रभाषाके पदपर व्यावहारिक रूपमें प्रतिष्ठित करनेके लिए सम्मेलन सचेष्ट है। जिला सम्मेलनोंका सुदृढ संगठन बनाया जा रहा है। शाहाबाद, सारन, पूर्णिया, दरभंगा, हजारीबाग, धनबाद, सिंहभूमि, मुंगेर, चम्पारन, सहरसा और भागलपुरमें ये संगठन स्थापित हैं। —प्रे० ना० ट०

बिहारी, बिहारीलाल—बिहारी हिन्दी रीति-कालके अन्तर्गत उसकी भाव-धाराको आत्मसात् करके भी प्रत्यक्षतः आचार्यत्व न स्वीकार करनेवाले मुक्त कवि हैं। इनका जन्म १५९५ ई० में (संवत् १६५२ वि०) ग्वालियरमें हुआ था। इनके पिताका नाम केशवराय था। इनके एक भाई और एक बहिन थी। इनका विवाह मथुराके किसी माथुर ब्राह्मण की कन्यामें हुआ था। इनके कोई सन्तान न थी, इसलिए इन्होंने अपने भतीजे निरंजनको गोद ले लिया। ये धौम्य-गोत्री सोती घरबारी चौबे थे।

कहा जाता है केशवराय इनके जन्मके ७-८ वर्ष बाद ग्वालियर छोड़कर ओरछा चले गये। वहीं इन्होंने हिन्दीके सुप्रसिद्ध कवि आचार्य केशवदाससे काव्यशिक्षा ग्रहण की। ओरछामें रहकर इन्होंने काव्यग्रन्थों और संस्कृत, प्राकृत आदिका अध्ययन किया। आगरा जाकर इन्होंने उर्दू-फारसीका अध्ययन किया और प्रसिद्ध कवि अब्दुर्रहीम खानखानाके सम्पर्कमें आये। जनश्रुति है कि इन्होंने खानखानाकी प्रशंसामें कुछ दोहे कहे, जिससे प्रसन्न होकर उन्होंने इन्हें पर्याप्त पुरस्कार दिया।

ये शाहजहाँके कृपा-पात्र थे तथा जोधपुर, बूँदी आदि अनेक रियासतोंसे इन्हें वृत्ति मिलती थी। इन्होंने अपनी काव्यप्रतिभासे जयपुराधीश महाराज जयसिंह तथा उनकी पटरानी अनन्तकुमारीको विशेष प्रभावित किया, जिनसे इन्हें पर्याप्त पुरस्कार और ग्राम मिला तथा ये दरबारके राजकवि भी हो गये। जयपुरके राजकुमार रामसिंहका विद्यारम्भ संस्कार इन्होंने कराया था।

ये रसिक जीव थे, पर इनकी रसिकता नागरिक जीवनकी रसिकता थी। इनका स्वभाव विनोदी और व्यंग्यप्रिय था। ये १६६३ ई० (संवत् १७२० वि०) के आसपास परलोकवासी हुए।

इनकी एक ही रचना 'सतसैया' मिलती है, जिसमें इनके बनाये ७१३ मुक्तक दोहे तथा सोरठे संगृहीत हैं। इसके अतिरिक्त इनके तीन कवित्त भी उपलब्ध हैं। हिन्दीमें समास-पद्धतिकी शक्तिका परिचय सबसे अधिक बिहारीने दिया है। सांग रूपकोंका निर्वाह, पर्याय-व्यापारोंके समाहार और विविध चेष्टाओंके एक साथ संयोजनकी बहार बिहारीके चुस्त दोहोंमें देखी जा सकती है।

काव्यके लिए अपेक्षित सभी विषयोंका सामान्य परिचय इन्हें था। पर इन्हें उन सभी विषयोंका विशेषज्ञ नहीं कह सकते। इनकी रचनामें ज्योतिषकी कुछ बातें ऐसी अवश्य हैं, जो असाधारण हैं। सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक बातें भी अप्रस्तुत रूपमें आयी हैं। इनसे इनके लोकज्ञान का परिचय भर मिलता है। अप्रस्तुत रूपमें बहुत सामान्य बातें लेकर इन्होंने अपनी काव्य-मर्मज्ञता भी दिखाई है।

लोकज्ञान और शास्त्रज्ञानके साथ ही साथ इन्हें काव्य-ज्ञान भी अच्छा था। रीतिका इन्हें परिपक्व ज्ञान था। इन्होंने अधिक वर्ण्य सामग्री शृंगारके क्षेत्रसे ली है। प्रेमके संयोग पक्षमें इन्होंने नखशिखका वर्णन अधिक किया है, पर ऋतुओंका नाम मात्रका।

विभाव-पक्षके विधानमें इन्होंने रूप-वर्णनपर अधिक ध्यान दिया, हृदयपर पड़े प्रभावपर उतना नहीं। नखशिखके भीतर इन्होंने अधिक रचना नेत्रोंपर की और उसके अनेक व्यापार दिखाये हैं—उनका संचार, बेधकता, चंचलता, विशालता आदि-आदि। कहीं सीधा वर्णन है, कहीं रूपक, उत्प्रेक्षा, उपमा, श्लेष आदि की लपेटमें है। शृंगारके संयोग-पक्षमें सौन्दर्य, दीप्ति, कोमलता आदिकी वस्तु व्यंजना बिहारीमें काव्योपयुक्त है।

बिहारीने पूर्वानुरागका वर्णन अधिक किया है, पर प्रवासका अधिकतर। मानको भी दूर तक नहीं घसीटा है, मान-विरहके कारण नदी तालाब नहीं सुखाये हैं। इनकी रचनामें विप्रलम्भके ये दो ही रूप पाये जाते हैं। विरह तो ऊहात्मक ही है, पर पत्रिकाके वर्णनमें प्रेमका विस्तार है। विरह-वर्णनमें कहीं-कहीं तो स्वाभाविक उक्ति कही गयी है, पर कहीं-कहीं वह खिलवाड़-सी लगती है। उन्होंने विरहकी व्यंजनामें मध्यममार्गका ही अवलम्बन किया है।

इनकी कविता शृंगार-रस की है इसलिए नायक या नायिकाकी वे चेष्टाएँ, जिन्हें हिन्दीवाले 'हाव' कहते हैं, इनमें पर्याप्त मात्रामें मिलती हैं। अनुभावोंकी सम्यक् योजना इनकी बहुत बड़ी विशेषता है। कुछ ऐसी चेष्टाओं का भी इन्होंने वर्णन किया है, जो शास्त्रीय परिभाषाके अनुसार 'हाव'के अन्तर्गत नहीं आतीं। वे रूप-चित्रणकी दृष्टिसे वर्णित हैं। हिन्दीके रीतिबद्ध कवियोंसे ये इसलिए स्पष्ट पृथक् दिखाई पड़ते हैं।

'सतसैया'में अन्य रसोंके भी कुछ उदाहरण मिलते हैं, जैसे मिर्जा राजा जयशाहकी प्रशंसाके छन्द वीररसके माने जा सकते हैं। हास्य-रसमें 'पारावाले वैद्य' और 'मारक-जारज-योगवाले' ज्योतिषीसम्बन्धी दोहे रखे जा सकते हैं। 'परतिय दोष' कहनेवाले पौराणिकजी भी हँसीके आलम्बन हैं।

इन्होंने भक्तिके उद्‌गार उक्ति-स्वारस्यके लिए समय-समयपर प्रकट किये हैं। ये निम्बार्क-सम्प्रदायमें दीक्षित थे पर काव्यकी सर्वसामान्य भूमिपर पहुँचकर निर्गुण और सगुणमें या राम और कृष्णमें कोई भेद नहीं मानते थे। कोरी भक्तिकी कथनी इनमें नहीं है, काव्यकी रसीली उक्तियाँ अवश्य हैं।

बिहारीने अलंकारके उदाहरणोंके रूपमें रचना नहीं की है पर अलंकारकी काव्योपयोगितापर बराबर दृष्टि रखी है। चमत्कारको ही काव्यका उद्देश्य समझनेवालों और भावमें मग्न होनेवालों, दोनोंको दृष्टिमें रखकर कविताका निर्माण किया है। इनके दोहोंमें अनुप्रास, यमक, वीप्सा कई शब्दालंकार उलझे पडे हैं, पर कहींसे भी उनका रूप नहीं बिगडा, उलटे सौन्दर्य आ गया। केशवके प्रभावसे समझिये या चमत्कारकी रुचिके कारण इनकी रचनामें कहीं-कहीं ऐसा अप्रस्तुत-विधान भी है, जो केवल शास्त्रकथित रूप-रंगको लेकर है, उसमे रूपग्रहण कराने और रमणीयता उत्पन्न करनेपर अधिक ध्यान नहीं दिया गया है। परम्परासिद्ध उपमानोंके अतिरिक्त इन्होने सामान्य जगत्‌से भी उपमानोंका विधान करनेका प्रयत्न किया है। ये प्रतिभासम्पन्न थे, पर प्रतिभाका उपयोग इन्होंने चमत्कार और अनुभूति दोनोंके लिए किया। कहीं चमत्कार ही चमत्कार है, कही अनुभूति और चमत्कार समान है। सर्वत्र चमत्कारपर ही दृष्टि न रखनेके कारण अन्य मुक्तककारोंसे इनका पार्थक्य निश्चित है। इनकी रचनाके मानका कारण चमत्कार नहीं, हृदय और कला दोनों पक्षोंका समयोग है, जो उनके समानधर्माओंमे नहीं था। इन्होने केवल शुष्क कथन द्वारा नीतिकी उक्ति नही बाँधी। बराबर किसी ऐसे दृष्टान्त या युक्तिसे काम लिया है, जो उस तथ्यकी सार्थकता प्रमाणित करनेमे सहायक हो। इस युक्तिके कारण 'सतसैया' मे सूक्तियाँ तो पाई जाती है, पर कोरे नीतिकथन नहीं। इनकी अन्य मुक्तक रचयिताओंसे यह भी एक विशेषता है।

बिहारी प्रसंगोंकी ऊहा करनेमें अति प्रवीण थे। प्रेमके विस्तृत क्षेत्रमे बहुत दूर तक धावा मारनेका उद्योग इन्होने किया, कुछ बँधे प्रसंगोंके भीतर ही अपनी कला दिखायी और इनके भीतर सरस सन्दर्भोंको ग्रहण किया है। इसी कारण इनकी रचना लोगोंको बहुत दिनोंसे रसमग्न करती आ रही है। यद्यपि रीतिशास्त्रकी लकीर पीटनेवाले कवियो-की भाँति इन्होंने बंधकर अपनी रचना नहीं की, मुक्तककी पुरानी परम्परा पर ही स्वच्छन्द रूपसे अपनेको उडने दिया, तथापि समयका प्रभाव इनपर पड़ा ही, क्योंकि रीतिशास्त्रकी लकीरमे सटकर चलते हुए ये बराबर लक्षित होते हैं। रसखानि, ठाकुर, घनआनन्द आदिने प्रेमकी वेदना और आधिक्यको लेकर जैसा उसका विस्तार दिखाया, वैसा 'सतसैया'में थोड़ा बहुत बराबर मिलता है, पर साथ ही रीतिके कवियोंसे भी होड़ लेनेवाली कृति उसमे बहुत है।

बिहारीकी भाषा बहुत कुछ शुद्ध ब्रजी है, पर है वह साहित्यिक। इनकी भाषामे पूर्वी प्रयोग भी मिलते हैं। खड़ीबोलीके कृदन्त और क्रियापद अनुप्रासके आग्रहसे रखे गये हैं। बुन्देलखण्डमें अधिक दिनो तक रहनेके कारण बुन्देलखण्डी शब्दों और प्रयोगोंका मिलना स्वाभाविक है। लिंग-विपर्यय भी इनमें बहुत है। एक ही शब्द कहीं पुलिंग और कहीं स्त्रीलिंग है पर इन्होंने पूर्वी अर्थमें किसी शब्दका व्यवहार नहीं किया। पूर्व और पश्चिममें अर्थभेद से प्रयुक्त होनेवाले शब्दको पश्चिमी अर्थमें ही प्रयुक्त किया है, जैसे 'सुधर' शब्द। इन्होंने कुछ शब्द पुराने भी रखे हैं, जैसे—'लोयन', 'बिय' आदि। पर ऐसे शब्द अधिक नहीं हैं। भाषाका आलंकारिक गुण देखा जाय तो इन्होंने अनुप्रासकी योजना बहुत सावधानीसे की है। कहीं-कहीं प्रसंगानुकूल झंकृति भी है। इनकी कविता पर मुसलमानी लाक्षणिकताका भी कुछ प्रभाव है पर अधिकतर वह ब्रजी-के अनुरूप ही है। भाषामें तोड़-मरोड अति अल्प है। जहाँ ऐसा है, वहाँ छन्दानुरोधसे ही।

बिहारीकी भाषा व्याकरणमे गठी हुई है, मुहावरोंके प्रयोग, सांकेतिक शब्दावली और सुष्ठु पदावलीसे संयुक्त है। भाषा प्रौढ और प्रांजल है। वह विषयके अनुरूप अपना रूप बदलती है। भाषा भाव-विचारके अनुरूप और चुस्त है। उसमें साहित्यिक दोषोंको ढूँढ निकालना श्रमसाध्य है। विन्यास सम्मत, प्रयोग व्यवस्थित और शैली परिमार्जित है।

बिहारीका प्रभाव हिन्दी-साहित्यपर जबर्दस्त पड़ा। इन्होंने 'सतसैया'की रचना करके कितने ही कवियोंमें सत-सई लिखनेकी चाट उत्पन्न कर दी। इनके बाद शृंगारकी कितनी ही सतसइयाँ रची गयी—'मतिराम सतसई', 'शृंगार-सतसई', 'विक्रम-सतसई' आदि। 'नौसई' और 'ग्यारहसई' भी लिखी गयी। किसी-किसीने 'हजारा' भी लिखा, जैसे 'रतन हजारा' पर सतसई नाममे कुछ ऐसा अद्भुत आकर्षण हो गया और उसके लिए दोहा छन्द ऐसा निश्चित हो गया कि अब भी लोग बराबर सतसई-ग्रन्थ लिखते चले जा रहे है। ब्रज-भाषामें ही नहीं, लोग खड़ीबोलीमें भी सतसई लिख रहे हैं और वही दोहा छन्द चला आ रहा है।

'सतसैया'का काव्य-जगत्‌मे इतना प्रचार और आदर हुआ कि बिना पढे कोई पूरा साहित्यिक ही नहीं समझा जाता था। बिहारीके बाद होनेवाले प्रसिद्धसे प्रसिद्ध कवियों तकने उसपर टीकाएँ लिखी। प्रत्येक दशकके बाद नये रग-ढगसे 'सतसैया'की टीका मिलती है। आधुनिक समयमे भी हिन्दीके तीन महारथियोंने उसकी अपने-अपने ढंगकी टीकाएँ लिखी हैं। कुछ लोग और कुछ न कर सके तो दोहोंपर कुंडलियाँ ही बाँधने लगे। जिस ग्रन्थका इतना अधिक पठन-पाठन और अनुशीलन हुआ हो, उसका प्रभाव काव्य-जगत्‌पर पडे बिना नहीं रह सकता। तुलसीदासके 'रामचरितमानम'को छोड़कर हिन्दीमे ऐसा कोई दूसरा काव्य-ग्रन्थ नहीं दिखाई पड़ता, जिसका इतना अधिक मथन हुआ हो। 'रामचरितमानस'पर भक्त-सम्प्र-दाय और व्यास-सम्प्रदायका धावा हुआ तो 'सतसैया' पर रसिक-सम्प्रदाय और कवि-सम्प्रदायका। जिस प्रकार 'मानस'के अनोखे अर्थ किये गये उसी प्रकार 'सतसैया' के भी।

परवर्ती कवियोंकी कवितापर उनके भाव और भाषाका पर्याप्त प्रभाव पडा। बिहारीकी-सी जबाँदानी प्राप्त करने या दिखानेका बहुतोंका हौसला हुआ, इनके भावोंपर कुछ कहने-सुननेकी कइयोंको लालसा हुई। उनकी भाषाकी शब्दावलीका प्रयोग, उनके बँधे हुए पदोंका व्यवहार अपनी भाषामे सजीवता लानेके लिए वे बराबर करते

दिखाई देते हैं। भाषा और भाव ही नहीं, उनकी शैली भी बहुतोंने ग्रहण की। 'मतिराम-सतसई'के अनेक दोहे 'सतसैया'के दोहोंसे मिलते हैं। भाषाकी कसावट, भावोंकी उठान, पद्धति सब कुछ बिहारीके ढंगकी हैं। 'शृंगार-सतसई'के अनेक दोहोंमें 'बिहारी-सतसई'के भाव और भाषा दोनोंकी नकल की गयी है। 'रतन-हजारा'के पचासों दोहे 'सतसैया'के भावमे हेरफेर करके बने हैं। 'रस-निधि' पर बिहारीका अधिक रंग चढ़ गया था। सतसइयोंको छोड़कर जिन अन्य कवियोंने उनका अनुगमन किया और उनकी शैली पकड़ी उनमें तीन प्रमुख हैं—रसलीन, पद्माकर और 'रत्नाकर'। रसलीनमें चमत्कार और उक्ति-वैचित्र्य बिहारीके ही ढंगका है। पद्माकरमें चित्रणकी विशेषता बिहारीके ढंगकी है। अनुभावोंका विधान तथा चित्रणका वैशिष्ट्य बिहारीके बाद दो ही कवियोंमें विशेष पाया जाता है—एक पद्माकरमें, दूसरे रत्नाकरमे। बिहारीकी कविताका सेवन करते-करते रत्नाकरजी भाव, भाषा और शैली तीनों ही बातोंमें बिहारीके अनुगामी हो गये। बिहारीका ऐसा प्रभाव उनकी कविताकी उन विशेषताओंकी महत्ता प्रतिपादित करता है, जो लोगोंके हृदयको बेधनेवाली है। इसी हृदय-वेधकताको लक्ष्य करके 'सतसैया'के दोहोंको 'नावकके तीर' कहा गया है।

बिहारीके समान इतनी कम रचना करके इतना अधिक सम्मान प्राप्त करने वाला हिन्दीका कोई दूसरा कवि नहीं नहीं है। इनको जो सम्मान मिला, वह इसलिए नहीं कि ये कविताके उस क्षेत्रमें अकेले है, बल्कि इसलिए कि इन्होने रचनाके लिए शृंगारका जो क्षेत्र चुना, उसमे उसी ढंगकी मुक्तक-रचना करनेवाला कवि जनता और काव्य-मर्मज्ञोकी दृष्टिमें इनसे बढ़कर नहीं। मुक्तक-रचनामे जितनी भी विशेषताएँ सम्भाव्य हैं, इनकी रचनामें सब पाई जाती है और वे अपने चरम उत्कर्षको पहुँची हुई है।

'सतसैया' सम्बन्धी वाङ्मय इतना विस्तृत है कि उसे कुछ पंक्तियोंमें समेटना सम्भव नहीं है। इसमें उसकी बहुत सी टीकाएँ है, उसके अन्य भाषाओमे पद्यात्मक भाषांन्तर है। कुण्डलियाँ, कवित्त एवं सवैयेमे पल्लवित रूप हैं। तुलनात्मक आलोचनाएँ और फुटकल लेख है। इधर हिन्दी गद्यमें खड़ी बोलीके गृहीत हो जाने पर जो टीकाएं लिखी गयीं, उनमेंसे अधिकाशमें भूमिका है और बहुतोंमे बहुत बड़ी। सबमें बिहारीकी जीवनी, उनकी काव्यप्रतिभा एवं टीकाओ आदिका उल्लेख है। राधाचरण गोस्वामीने 'भारतेन्दु' पत्रमें एक लेख छपवाया था, जिसमें बिहारीकी प्रशंसाके अतिरिक्त उनकी जाति आदिका भी निर्णय करनेका प्रयत्न किया था। महेशदत्तने 'भाषा काव्यसंग्रह'में बिहारीको कान्यकुब्ज ब्राह्मण लिखा है। राधाकृष्ण दासने भी एक निबन्ध लिखा, जिसमें प्रसिद्ध कवि केशव और बिहारीकी कविताका मिलान करके यह सिद्ध करनेका प्रयास किया कि बिहारी केशवके पुत्र थे। मिश्रबन्धुओंने 'हिन्दी नवरत्न'मे किसी पुराने कवित्तके आधारपर कवि देवदत्तको बिहारीसे पहले स्थान दिया। यह बात बहुतोंको खटकी। महावीरप्रसाद द्विवेदीने 'सरस्वती'मे इसकी कड़ी टीका की। पद्मसिंह शर्माने 'सतसई-संहार'के नामसे ज्वालाप्रसाद मिश्रकी 'भावार्थ-प्रकाशिका टीका'की आलोचना 'सरस्वती' में छपवाई। उन्होंने 'संजीवन-भाष्य' लिखना आरम्भ किया, जिसमे संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, उर्दूके कवियोंकी रचनामे बिहारीकी कविताकी तुलना करके यह दिखलाया गया है कि बिहारीने जो कुछ कहा, वह सबसे बढ़कर है। कृष्णबिहारी मिश्रने 'देव और बिहारी' पुस्तक प्रकाशित करवायी· जिसमें दोनों कवियोंकी कविताकी बहुत विचारपूर्वक संयत ढंगसे आलोचना की गयी है। लाला भगवानदीनने जबलपुरकी 'श्रीशारदा'में इसकी और साथ ही 'हिन्दी नवरत्न'मे बिहारीके सम्बन्धमे प्रकट किये गये विचारोंकी कड़ी आलोचना की। इसे 'बिहारी और देव'के नामसे अलग पुस्तकाकार भी छपवा दिया। बिहारीके सम्बन्धमें सबसे महत्त्वपूर्ण लेखमाला 'रत्नाकरजी'ने 'नागरीप्रचारिणी पत्रिका'मे छपवायी। उनके ये लेख वस्तुतः उनके 'बिहारी-रत्नाकर'की भूमिकाके अंश है। बिहारीकी आलोचनाके रूपमे उन्होंने जो कुछ लिखा था, वह अब 'कविवर बिहारी' नामसे पुस्तकाकार प्रकाशित कर दिया गया है। इसके अतिरिक्त बिहारी पर कितने ही लेख पत्र-पत्रिकाओमे समय-समय पर निकलते रहे है। अधिकांशमे या तो किसी दोहेकी गुत्थी सुलझाई अथवा उलझाई गयी है या मुग्ध भावसे बिहारीकी गुणावली गाई गयी है। 'जागरण'के एक लेखमे बिहारीके 'ग्राम्य-वर्णन' पर कुछ अच्छा विचार किया गया है। बिहारीकी बहुत संक्षिप्त, पर प्रौढ एवं तात्त्विक आलोचना रामचन्द्र शुक्लके 'हिन्दी साहित्यके इतिहास'में मिलती है। विश्वनाथप्रसाद मिश्रने आधुनिक विवेचना-सरणि पर 'बिहारीकी वाग्विभूति' और 'बिहारी' नामक दो आलोचनाएँ प्रकाशित करायीं। 'बिहारी'मे उस युगकी विचारधाराका विस्तृत उल्लेख है और नये रूपमे 'सतसैया' की समीक्षा है। अन्तमे पूरी 'सतसैया' भी टिप्पणी सहित अकारादि क्रमसे दी गयी है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० न०; देव और बिहारी : कृष्ण बिहारी मिश्र, बिहारी और देव, भगवानदीन; बिहारी-रत्नाकर (भूमिका) : सं० रत्नाकर; बिहारीकी वाग्विभूति और बिहारी : विश्वनाथ प्रसाद मिश्र।] —वि० प्र० मि०

बिहारीलाल चौबे–जन्म १८४८ ई० में काशीके निकट माधुरपुर गाँव में। ये पटना कालेजमे संस्कृतके प्राध्यापक थे। हिन्दी गद्यकी प्रगति और विकासमें इनका योग उल्लेखनीय माना जाता है। विभिन्न विषयोंपर लिखी हुई आपकी पुस्तकें बिहार प्रान्तकी शिक्षा योजनामे विशेष रूपमे उपयोगी सिद्ध हुई। आपकी लिखी हुई पुस्तकोंके नाम इस प्रकार है—१. 'भाषा बोध', २. 'पत्रबोध', ३. 'बिहारितुलसीभूषण', ४. 'वर्णनाबोध', ५. 'पदकाम्य बोध', ६. 'प्रबोध', ७. 'बालोपहार', ८. 'चालचलन बोध', ९. 'दशावतार', १०. 'तुलसी सतसईकी टीका', ११. 'बंगभाषाकी सीताका अनुवाद', १२. 'लैम्बस् टेल्सका अनुवाद', १३. 'दशकुमार चरितका अनुवाद', १४. 'शिक्षा प्रणाली', १५. 'वेंकटबिहारितुलसीभूषणबोध'। आपकी मृत्यु १९१५ ई० के आसपास हुई। —प्र० ना० टं०

बिहारीलाल भट्ट–इनका जन्म बुन्देलखण्डके अन्तर्गत

बिजावरमें आश्विन शुक्ला विजयादशमी सं० १९४६ वि०, (१८८९ ई०) को हुआ था। इनका वंश कविके नाते प्राचीनकालसे प्रसिद्ध रहा है। इनकी बाल्यावस्था पितामहकी देखरेखमें व्यतीत हुई। हनुमत प्रसाद इनके काव्य-गुरु थे। सवाई महाराजा सावन्तसिंहने इनकी काव्य-प्रतिभासे प्रभावित होकर इन्हे अपना दरबारी कवि नियुक्त किया और इनकी जीविकाका समुचित प्रबन्ध कर दिया। कई नरेशोंने इनका सम्मान किया था। बिजावर नरेशने इन्हे 'साहित्य सागर' नामक ग्रन्थ लिखनेके लिए आज्ञा दी थी और उनकी प्रेरणासे इन्होने तीन वर्ष लगातार परिश्रमके उपरान्त इस ग्रन्थको लिखा, जिसका प्रकाशन १९३७ ई० मे हुआ।

बिहारीलाल भट्ट मुख्यतः कवि थे, फलतः अपना काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ इन्होने काव्यमें ही लिखा। रीतिकालीन आचार्य कवियोकी परम्परामे बिहारीलाल भट्ट एक महत्त्व-पूर्ण कडी है और इसलिए काव्य विषयसम्बन्धी नवीनता और अभिव्यक्तिसम्बन्धी आधुनिक विशिष्टताओंको इनमे न ढूँढकर परम्परागत कवि-पण्डितकी श्रेणीमे इन्हे रखना उचित है। इन्होंने नायिका भेदका वास्तविक तत्त्व अध्यात्मके रूपमें समझा और इसी रूपमे इसका विवेचन किया है। —नि० ति०

बिहुला–बिहुलाकी लोकगाथा करुण रससे परिपूर्ण है। उत्तर प्रदेशके अतिरिक्त बिहार तथा बंगालमे भी इसका प्रचार पाया जाता है। सक्षेपमे इसकी कथा निम्नांकित है—

"चन्दू साहू नामक एक सुप्रसिद्ध सौदागर था। इसके लडकेका नाम बाला लखन्दर था। यह रूप-यौवनमे सम्पन्न तथा सुन्दर युवक था। अवस्था प्राप्त होनेपर इसका विवाह-सम्बन्ध बिहुला नामक एक परम सुन्दरी कन्यासे किया गया। चन्दू साहूके ६ लडके विवाहके अवसर-पर कोहबरमे साँपके काटनेसे मर चुके थे। अतः बाला लखन्दरके विवाहके समय इस बातका विशेष ध्यान रखा गया कि पूर्व दुर्घटनाकी पुनरावृत्ति न होने पाये। इस विचारसे ऐसा मकान बनानेका निश्चय हुआ, जिसमे कही भी छिद्र न हो। विषहरी नामक ब्राह्मण, जो चन्दू सौदागर-से द्वेष रखता था, बडी ही दुष्ट प्रकृतिका व्यक्ति था। उसने मकान बनानेवाले कारीगरोको घूस देकर उसमे सर्पके प्रवेश करने योग्य एक छिद्र बनवा दिया। बिहुला भी इस दुर्घटनाको रोकनेके लिए बडी सचेष्ट थी। उसने अपने मायकेसे पहरेदार भी चौकसी रखनेके लिए बुलवाये थे। विवाहके पश्चात् जब वह बाला लखन्दरके शयनकक्षमे गयी तो देखा कि वह अचेत सो रहा है। सर्पदंशसे रक्षा-के लिए उसने उसकी चारपाइयोंके चारो पायोंमे कुत्ता, बिल्ली, नेवला तथा गरुडको बाँध दिया और स्वयं चौकसी करती हुई लखन्दरके सिरहाने बैठ गयी। जिस कमरेमे बाला सो रहा था, उसमे प्रकाशके लिए नौ मन तेलका अखण्ड दीप जल रहा था।

दुर्भाग्यसे कुछ देर बाद बिहुलाको भी नींद लगने लगी और लखन्दरके पास ही वह सो गयी। इसी बीचमें विषहरी ब्राह्मणके द्वारा भेजी गयी एक नागिन आयी और उसने लखन्दरको डँस लिया। जब प्रातःकाल बिहुलाकी नींद खुली तो वह कन्या देखती है कि उसका पति मरा पड़ा है। उसकी लाशको देखकर उसने बड़ा करुण क्रन्दन किया और अपने भाग्यपर पश्चात्ताप करने लगी।

अन्तमें वह नेतिया नामक धोबिनके पास गयी और उसकी सलाहके अनुसार काम करके उसने बड़ी युक्तिसे अपने पति तथा चन्दू साहूके ६ पुत्रोंको जीवित कर लिया।

बिहुलाकी गाथा बड़ी कारुणिक है। बिहुलाके विलापका वर्णन करता हुआ लोककवि कहता है कि 'ए राम स्वामी स्वामी हाय स्वामी कहे रे दइया छाती पीटी रोदनिया करे ए राम। ए राम कोहबरमे रोवे सती बिहुला रे दइया दइया सुनि लोगके छाती फाटे ए राम॥"

करुण रससे ओत-प्रोत बिहुलाकी उक्त कथाको सुनकर पाषाण हृदयका भी चित्त द्रवित हो उठता है। यही कारण है कि इस लोक गाथाका इतना व्यापक प्रचार हो सका है। इस गाथाको लेकर अनेक छोटी-छोटी पुस्तकोंकी रचना भोजपुरीमे हुई है, जिनमेंसे 'बिहुला विषहरी' और 'बिहुला-गीत' नामक पुस्तकें प्रसिद्ध हैं।

बंगालमें बिहुलाकी कथाका बड़ा प्रचार है, जो वहाँ 'मनसा मंगल'के नामसे प्रसिद्ध है। बगालमें 'मनसा' सर्पोंकी अधिष्ठात्री देवी मानी जाती है। अतः इसकी पूजा के अवसरपर ये गीत गाये जाते हैं। 'मनसा मंगल'के गीतोका कथानक कुछ थोडेसे परिवर्तनके साथ वही है, जो 'बिहुला'का है। बगला भाषाके अनेक कवियोंने 'मनसा मंगल'की रचना की है, जिनका प्रकाशन कलकत्ता विश्व-विद्यालय तथा 'बगीय साहित्य परिषद्' द्वारा हुआ है।

वंग प्रान्तमे 'मनसा' देवीकी पूजा बड़े प्रेम से की जाती है। इस अवसरपर इस कथाको नाटकीय रूप देकर अभिनय भी किया जाता है। इस उल्लेखसे पता चलता है कि बिहुलाकी कथा कितनी लोकप्रिय और व्यापक है। —कृ० दे० उ०

बीजक–यह कबीर वाणीका प्रामाणिक ग्रन्थ कहा जाता है। यह कबीर द्वारा ही लिखा गया है, इसमें सन्देह है। कबीरने जिस भाषा और शैलीमे अपनी वाणी कही है, वह उनके साहित्यिक एव शास्त्रीय निष्ठाका प्रमाण नही देती। कबीरकी एक साखी यह कहती है—"कबीर ससा दूर करु, पुस्तक देई बहाय।" और जनश्रुति यह कहती है कि "मसि कागद छूयो नहीं, कलम गही नहिं हाथ।" तब उन्होने बीजक ग्रन्थ 'लिखा' होगा, इसमें बहुत सन्देह होता है। कबीरने तो अपने सिद्धान्त और उपदेश मौखिक रूपसे ही दिये। उन्होंने सदैव "कहै कबीर सुनो भाई सन्तो" ही कहा, "लिखै कबीर पढो भाई सन्तो" जैसी पंक्ति कभी नही लिखी। अतः जो 'वाणी' उन्होंने कही, वह मौखिक रूपसे ही प्रचारित हुई। यह बात अवश्य कही जा सकती है कि जो कुछ भी उन्होंने कहा, उसे उनके शिष्योंने लिखा और उसे कबीरके नामसे प्रचारित किया। यह भी सम्भव है कि शिष्योकी बहुत सी वाणी कबीरके नामसे ही प्रचारित हुई हो। यही कारण है कि आज कबीरके नामसे लगभग ६१ ग्रन्थ मिलते हैं, जिनमेसे काफी संख्या ऐसे ग्रन्थोंकी है, जो कबीरके बाद लिखे गये और

जिनमें उन सिद्धान्तोंकी चर्चा है, जिनमें बाह्याचार और कर्मकाण्डका निरूपण विशेष रूपसे हुआ। कबीरने बाह्याचार और कर्मकाण्डकी सदैव ही निन्दा की। अतः वे ग्रन्थ कबीर द्वारा निर्मित नहीं हो सकते।

कबीरपन्थियों तथा सामान्य पाठकोंमे 'बीजक' कबीर साहबके सिद्धान्तोंका मूल ग्रन्थ माना जाता है। कहा जाता है कि कबीरकी चोरीसे उनका एक भक्त भगवानदास 'बीजक'की प्रतिको ले भागा। कहते हैं बीजक लेकर भागनेके कारण ही यह भगवानदास 'भग्गू'के नामसे निन्दित हुआ। 'बीजक'की टीका लिखनेवाले विश्वनाथ सिंह जूदेवने कबीर साहबके द्वारा कही गयी बीजकके सम्बन्धमे कुछ चौपाइयोंका निर्देश किया है—

"भग्गूदासकी खबरि जनाई। ले चरनामृत साधु पियाई॥ कोऊ आप कह कालिंजर गयऊ। बीजक ग्रन्थ चोराइ ले गयऊ॥ सतगुरु कह वह निगुरा पन्थी। काह भयौ ले बीजक ग्रन्थी॥ चोरी करि वह चोर कहाई। काह भयो बड़ भक्त कहाई॥ बीजमूल हम प्रगट चिन्हाई। बीज न चीन्हो दुर्मति लाई॥"

कबीरपन्थी महात्मा पूरन साहेबने 'कबीर साहबके मुख्य ग्रन्थ मूल बीजक'की जो टीका लिखी है, उसके अनुसार 'बीजक'के निम्नलिखित ग्यारह अंगोंका निर्देश और विस्तार निम्न प्रकारसे दिया है :—(१) रमैनी—८४, (२) शब्द ११५, (३) ज्ञान चौंतीसा ३४, (४) विप्रमतीसी १, (५) कहरा १२, (६) वसन्त १२, (७) चाचर २, (८) बेलि २, (९) बिरहुली १, (१०) हिंडोला ३, (११) साखी ३५३। इस भाँति बीजकमें छन्दोंकी कुल संख्या ६१९ है।

'बीजक' शब्द तान्त्रिक उपासनासे सम्बद्ध ज्ञात होता है। बौद्ध तन्त्रमें जिन मन्त्रोंमे रहस्यमय तत्वकी उपलब्धि होती थी, उन्हें 'बीज मन्त्र' या 'बीजाक्षर'का नाम दिया गया। इसी 'बीजाक्षर'में मन्त्रोंकी सृष्टि मानी गयी। इस भाँति बीजाक्षरसे शब्द तत्वका भी बोध हुआ। बौद्ध धर्मकी वज्रयानी परम्परासे कालान्तरमे सन्त सम्प्रदायके स्रोत मिलते है। इस सन्त सम्प्रदायमे शब्दका बहुत महत्त्व है। सन्त सम्प्रदायके काव्यमें 'शब्द' और 'साखी'का विशिष्ट अर्थ और महत्त्व समझा जाता है। इसी 'बीजक' ग्रन्थमे 'रमैनी' (३७) मे 'बीजक'के सम्बन्धमे विवेचन किया गया है—

"एक सयान सयान न होई। दूसर सयान न जाने कोई॥ तीसर सयान सयान दिखाई। चौथे सयान तहाँ ले जाई॥ पचयें सयान न जाने कोई। छठये मा सब गैल बिगोई॥ सतयाँ सयान जो जानहु भाई। लोक वेद मों देउ देखाई॥" साखी—"बीजक वित्त बतावै। जो वित्त गुप्ता होय। ऐसे शब्द बतावै जीवको। बूझे बिरला कोय॥"

उपर्युक्त उद्धरणमें 'बीजक'का सम्बन्ध 'शब्द'से ही जोड़ा गया है। 'सयान'की मीमांसा निम्न प्रकारसे समझी जा सकती है—एक सयान—ब्रह्म, दूसर सयान—माया, तीसर सयान—त्रिगुण—(भक्ति, ज्ञान और योग), चौथे सयान—चारों वेद, पचयें सयान—पाँचों तत्त्व (आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी), छठयें सयान—मनके दोष(काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर), सतयाँ सयान—शब्द।

इस भाँति 'बीजक' वास्तविक तत्त्वका बोधक है। यह तत्त्व संसारमे गुप्त रहता है। 'बीजक'के द्वारा ही ब्रह्मके वास्तविक तत्त्व (शब्द)का बोध होता है, जिससे समस्त सृष्टिका निर्माण हुआ है। —रा० कु०

बीजगुप्त—महाप्रभु रत्नाम्बर बीजगुप्तका परिचय देते हुए भगवती चरण वर्माकृत 'चित्रलेखा' उपन्यासके आरम्भिक अंशमे कहते है, "बीजगुप्त भोगी है,…वैभव और उल्लासकी तरंगोंमे वह केलि करता है…। उसमे सौन्दर्य है, और उसके हृदयमें संसारकी समस्त वासनाओंका निवास।…आमोद और प्रमोद ही उसके जीवनका साधन है तथा लक्ष्य भी है।" भूत और भविष्य उसके लिए "कल्पना की चीजें हैं", जिनसे उसका "कोई प्रयोजन नहीं", वर्तमानके प्रति ही उसकी निष्ठा प्रतीत होती है।

बीजगुप्तका चरित्र उपन्यासमे चित्रित कम, सकेतित अधिक है। वह उपन्यासकारकी दार्शनिक दृष्टिको प्रतिबिम्बित करता है। मनुष्यको परिस्थति या नियतिका दास माननेका दर्शन सबसे पहले वही प्रतिपादित करता है, बादको चित्रलेखा भी इसी दर्शनको स्वीकार करती है और उपसहारमे रत्नाम्बरने इसी दर्शनके आधारपर पाप की व्याख्या करनी चाही है। उसकी बौद्धिक दृष्टिकी प्रखरता बहुधा उभरती है। प्रेमकी नित्यता और अमरताके सम्बन्धमे उसका गहरा विश्वास है। वस्तुओको नये परिप्रेक्ष्य एवं नये अर्थों द्वारा व्याख्यात करने की उसकी शक्ति यशोधरापर बड़ा प्रभाव डालती है। वह उसे विद्वान् मानने लगती है।

बीजगुप्तमे समस्याओंके आरपार देख लेनेकी प्रबल शक्ति है। चित्रलेखा एवं कुमारगिरि के परिचयके बाद ही उसे आभास हो गया था कि दोनों एक दूसरेके प्रति आकृष्ट हो गये है और यह दोनोंके लिए अनिष्टकर सिद्ध होगा। इसी प्रकार चित्रलेखा, मृत्युंजय, यशोधरा, श्वेतांक आदिकी मुख-मुद्राओं या संकेतों द्वारा ही उनके भावों और विचारोंको उसने समझा है।

उपन्यासके अन्तिम अंशमे वह सबसे अधिक उभरता है। उस समय उसकी ज्योतिके आगे शेष सभी प्रभ हीन हो जाते हैं। एक ओर वह प्रेमका आदर्श अपनाकर यशोधराके साथ विवाहका प्रिय प्रस्ताव ठुकराता है, दूसरी ओर स्वाभिमानकी रक्षा करते हुए चित्रलेखासे बिना कुछ कहे तीर्थयात्राके लिए चला जाता है। बीचमे एक बार मानवसुलभ मानसिक द्वन्द्व उसे मथता है और उस समय वह यशोधरासे विवाह करनेकी सोचता है। यह द्वन्द्व अत्यधिक नाटकीय शैलीमे चित्रित हुआ है। पर तत्काल ही श्वेतांकका यह निवेदन कि वह यशोधरासे विवाह करना चाहता है, बीजगुप्तको पुनः सचेत कर देता है और तब उसकी मानवता अपने सर्वोत्तम रूपमें सम्मुख आती है। श्वेतांकको अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति एवं पदवी दान करके वह भिखारीके रूपमें निकल पड़ता है। पर उसका यह रूप इतना प्रभविष्णु है कि भारतका सम्राट् भी उसके समक्ष अपना शीश झुकाता है तथा उसे इस स्थिति तक पहुँचानेवाली चित्रलेखा जब आकर क्षमा माँगती है तब वह उसे क्षमा ही नहीं कर देता, साथ ले

चलनेके लिए भी प्रस्तुत हो जाता है। इस प्रकार बीजगुप्त प्रारम्भमें चित्रलेखाका पूरक प्रतीत होता है पर अन्तमें श्वेतांकका यह कथन सार्थक प्रतीत होता है कि "बीजगुप्त देवता है।" —दे० शं० अ०

वीर–दिल्लीनिवासी श्रीवास्तव कायस्थ। भाव, रस और नायिका भेदपर लिखा हुआ इनका ग्रन्थ 'कृष्ण-चन्द्रिका' नामसे उल्लिखित है। इसका रचनाकाल शुक्लजीने सन् १७२२ ई० माना है। 'कृष्ण-चन्द्रिका' साधारण ग्रन्थ है। इसका महत्त्व कुछ अधिक नही है। इनकी काव्य-प्रतिभा भी उच्चकोटिकी नहीं थी।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० इ०।] —ह० मो० श्री०

वीरचरित्र, वीरसिंहदेव चरित्र–यह केशवदासकी वीर-काव्यात्मक रचना है। इसकी रचना १६०७ ई० में हुई। इसके मुद्रित संस्करणोंमें— १. 'वीरसिंह चरित्र'—सं० रामनेत तैलंग, ओरछा दरबार, भारतजीवन प्रेस, काशीसे सन् १९०४ ई० में मुद्रित। २. 'वीरसिंहदेव चरित्र'—सं० रामचन्द्र शुक्ल, काशी नागरी प्रचारिणी सभामे प्रकाशित।

'वीरचरित्र' तैतीस अध्यायोमे प्रस्तुत हुआ है। छन्द-संख्या १६८४ है। इसकी कथाका उत्थापन लोभ और दानके संवाद रूपमे हुआ है। दोनोंमे विवाद होता है। प्रत्येक अपनेको दूसरेसे श्रेष्ठ कहता है। अन्तमे दोनों विन्ध्यवासिनी देवीके निकट जाते है। उन्होंने बताया कि वीरसिंहके निकट जाकर निर्णय करा लो। तब लोभने जिज्ञासा की कि एक ही राजाके रामशाह और वीरसिंह दोनों ही पुत्र है, क्या कारण है कि एक ही घरमे दो राजा हुए। वीरसिंहकी कुलदेवी विन्ध्यवासिनीने उनका चरित्र उन्हें विस्तारसे सुनाया। रामशाह और अकबरमे मित्रता थी। वीरसिहदेवने मुगल-राज्यके बहुतसे स्थान अपने पिता मधुकर शाह द्वारा दी हुई बडौन स्थानकी बैठकमे रहते हुए ले लिये। इसपर अकबरकी ओरसे रामशाहको अपने भाईसे युद्ध करना पड़ा। जहाँगीरकी साठ-गाँठसे वीरसिंहने अबुलफजलका वध कर डाला था। जहाँगीर वीरसिंहके अनुकूल था। कथा समाप्तिपर लोभ-दान दोनों वीरसिहके दरबारमें गये। उन्होंने निर्णय किया कि "सन्तत सदा समान तुम"।

इस प्रशस्तिकाव्यमें वीरसिंहके चरित्र तथा उनके विविध युद्धोंका वर्णन विस्तारसे किया गया है। इसका ऐतिहासिक महत्त्व बहुत अधिक है। इसमे ऐसी-ऐसी घटनाओका उल्लेख है, जिनमे उस समयके शासकोंके पास लिखे अथवा उनके द्वारा लिखवाये गये इतिहासोंसे मिलान करनेपर पता चलता है कि किसी विशेष घटनाको किस प्रकार दूसरा रंग दे दिया गया है। अनेकत्र अतिशयोक्तिपूर्ण कथन इसमें मिलते हैं फिर भी उनकी उपयोगिताकी स्वीकृति अस्वीकृत नहीं की जा सकती। केशवके ग्रन्थोंमे जो ऐतिहासिक सामग्री मिलती है, उसमे वीरचरित्रका विशेष महत्त्व है, जिसमें सबसे अधिक ऐतिहासिक घटनाओंका विस्तारसे उल्लेख है।

इसमें प्रमुख छन्द चौपई और दोहा है। अवधमें जैसे चौपाई-दोहेका प्रचलन है, वैसे ही पछाहँमे अधिक चलन चौपई-दोहेका है। अपभ्रंशमें भी चौपई (पज्झटिका)का कथा कहनेके लिए विशेष व्यवहार होता था। केशवने उसी प्रवाहको इसमें रक्षित रखा है। इसकी भाषा ब्रजी है, जिसमें बुँदेलीके अतिरिक्त कहीं-कही अवधीके भी शब्द आ गये है। —वि० प्र० मि०

बीरबल–अकबरके नवरत्नोंमें बीरबलका नाम लोक-प्रसिद्धिकी दृष्टिमे अग्रगण्य है। व्यंग्य और विनोदके लिए इनका नाम इतना अधिक प्रसिद्ध हो गया है कि इनके नामसे अनगिनत कहानियाँ रची जाती रही हैं। हिन्दी साहित्यमें ये ब्रह्म कविके नामसे प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि ये त्रिविक्रमपुर अर्थात् तिकवांपुर, जिला कानपुरके एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण गंगादासके पुत्र थे। वहींपर इनका बसाया हुआ एक गाँव अब भी बताया जाता है। बीरबलका असली नाम महेशदास था। प्रयागके अशोक स्तम्भमें इनकी प्रयाग यात्राका उल्लेख इस प्रकार मिलता है—"सं० १६३२ शाके…बदी ५ सोमवार गंगादास सुत बीरबल श्री तीर्थराज प्रयागकी यात्रा सुफल लिखितम्"। बीरबलका जन्म १५२८ ई० (सं० १५८५ वि०) और देहान्त १५८३ ई० (सं० १६४० वि०) माना गया है। 'सुदामा चरित' नामक इनकी रचनाका उल्लेख मिलता है परन्तु वह प्राप्त नहीं है। इनके कुछ फुटकर छन्द ही संग्रह-ग्रन्थोमे प्राप्त होते है। बीरबलका साहित्यिक जीवन भी अकबरी दरबार तक ही सीमित था। अतः उनकी काव्य रचनाका उद्देश्य भी राजसभाका मनोरंजन ही था। उनके कवित्त और सवैया शृंगार रसकी सरसतासे ओत-प्रोत हैं तथा उनमे प्रायः मार्मिक काव्योक्तियोंके सुन्दर उदाहरण मिल जाते है। यह भी अनुमान होता है कि बीरबलके छन्द कदाचित् समस्यापूर्तियोके रूपमें रचे गये थे। मिश्रबन्धुओने इनकी समस्यापूर्तिकी प्रवृत्तिकी बहुत प्रशंसा की है।

[सहायक ग्रन्थ—मिश्रबन्धु विनोद भाग १ : मिश्रबन्धु; हिन्दी साहित्यका इतिहास : प० रामचन्द्र शुक्ल; हिन्दी साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास : डा० रामकुमार वर्मा; दिग्विजय भूषण।] —यो० प्र० सिं०

बीसलदेव रासो–यह प्राचीन पश्चिमी राजस्थानीमे लिखा गया शृंगार रसका एक गेय काव्य है। इसका रचयिता नरपति नाल्ह नामका कवि है, जिसके बारेमे हमे कुछ भी ज्ञात नहीं है (दे० 'नरपति नाल्ह')। यह रचना केदारा रागमे गाये जानेके लिए एक भिन्न मात्रिक छन्दमें लिखी गयी है, जिसमे प्रायः छः चरण आये है। इसके दो संस्करण प्राप्त हैं—एक सत्यनवीन वर्मा द्वारा सपादित और काशी नागरी प्रचारिणी सभासे प्रकाशित तथा दूसरा प्रस्तुत लेखक द्वारा सम्पादित और हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालयसे प्रकाशित। वर्माजीका सस्करण रचनाकी एक शाखाके पाठपर आधारित है, जो किसीके द्वारा बहुत परिवर्द्धित की गयी है। रचनाके पाठकी शेष समस्त शाखाओंमें यह कथा वृद्धि नहीं है, केवल कुछ सामान्य विस्तारोंके सम्बन्धमें अन्तर है। प्रस्तुत लेखक द्वारा सम्पादित पाठ रचनाकी समस्त शाखाओंकी प्रतियोंकी सहायता से पाठालोचनके सिद्धान्तोंके आधारपर निर्धारित किया गया है। इस पाठमें केवल १२८ छन्दोंको प्रामाणिक

माना गया है। इसके अनुसार कथा यह है—बीसलदेवका विवाह राजा भोजकी कन्या राजमतीसे होता है, जिसमें बीसलदेवको दायजके स्वरूप अनेक प्रदेश और प्रचुर रत्नराशि मिलती है। इसपर बीसलदेवको अभिमान होता है कि उसके समान अन्य राजा नहीं है। यह अभिमान संयोगसे एक दिन वह अपनी स्त्री राजमतीके सामने व्यक्त कर बैठता है, जिसपर राजमती कह पड़ती है कि उसे इस प्रकारका अभिमान न करना चाहिए क्योंकि पृथ्वीतलपर अनेक राजा उसके समान है—एक तो उड़ीसाका ही राजा है, जिसके राज्यमें उसी प्रकार खानोंमें हीरे निकलते हैं, जिस प्रकार सांभरकी झीलमें नमक निकलता है। यह बात बीसलदेवको लग जाती है और वह प्रतिज्ञा करता है कि बारह वर्षोंके लिए उड़ीसा जायेगा और वहाँसे हीरेकी खानें लेकर लौटेगा। वह तदनन्तर उड़ीसा चला जाता है और वहाँके राजाकी नौकरी करने लगता है। बारह वर्ष बीत जाते हैं। राजमती बहुत व्यथित होती है। अवधि पूरी होनेपर वह एक ब्राह्मणको भेजकर उसे बुलवाती है। उड़ीसाके राजाको जब यह बात ज्ञात होती है कि यह अजमेरका चौहान शासक बीसलदेव है तो वह इसको बहुत सी रत्नराशि देकर विदा करता है। बीसलदेव घर आता है और राजमतीसे मिलता है। यहींपर कथा समाप्त होती है।

कथामें ऐतिहासिकताकी दृष्टि बिलकुल नहीं है। बीसलदेव (विग्रह राज) नामके चार शासक अजमेरके हुए हैं। बीसलदेव तृतीयकी रानीका नाम राजदेवी था। असम्भव नहीं कि उस कालके नायक-नायिका बीसलदेव और राजमती विग्रहराज (तृतीय) तथा यह राजदेवी ही हो। इनका समय १०९३ ई० (सं० ११५०) के लगभग पड़ता है, जब कि भोजका समय सन् १०५५ ई० (सं० १११२) के लगभग पड़ता है किन्तु राजदेवी भोजकी कन्या थी, इस विषयमें कोई अन्य साक्ष्य हमें प्राप्त नहीं है। बीसलदेव तृतीय कभी पूर्वकी ओर गया हो, इस बातके भी प्रमाण नहीं मिलते है। वह अपने समयका एक प्रतापी शासक था। वह उड़ीसाके राजाके यहाँ बारह वर्षों तक नौकरी करता पड़ा रह सकता था, इतिहासकी दृष्टि वाले किसी लेखकके लिए यह कल्पना करनी भी असम्भव ज्ञात होती है। ऐसी दशामें यह मानना पड़ेगा कि कथाके पात्र मात्र ऐतिहासिक व्यक्ति हैं, कथा ऐतिहासिक नहीं है और न उसमें ऐतिहासिकताका कोई दृष्टिकोण है।

रचनाकी तिथि भी उसमें नहीं दी हुई है, और न ऐसे कोई विशिष्ट उल्लेख आते हैं, जिनसे उसकी कोई तिथि निश्चित की जा सकती हो। प्रायः विद्वान् इसे बीसलदेवके आश्रित किसी कविकी रचना मानते रहे हैं किन्तु बीसलदेवने उड़ीसाके राजाके यहाँ बारह वर्ष तक नौकरी की हो, इस प्रकारकी कथाका काव्य न वह स्वयं लिख सकता था और न उसका कोई वंशज ही। रचनाकी सबसे प्राचीन तिथियुक्त प्राप्त प्रति सन् १५७६ ई० (सं० १६३३) की है। इसके कुछ ही बादकी सन् १६१२ ई० (सं० १६६९) की एक प्रति है किन्तु दोनों प्रतियाँ सर्वथा भिन्न-भिन्न पाठ-परम्पराओं की है। इसी प्रकारका अन्तर और भी प्रतियोंमें मिलता है, जिनमेंसे अनेक इसी समयकी होंगी, केवल उनकी प्रतिलिपि तिथियाँ नहीं दी हुई हैं। ऐसी दशामें प्रस्तुत लेखकका अनुमान है कि रचनाका मूलरूप सन् १३४३ ई० (सं० १४००) के आस-पासका होना चाहिए। रचनाकी भाषा-शैली भी इस परिणामका समर्थन करती है।

यह रचना अन्य कुछ दृष्टियोंसे भी बड़े महत्त्वकी है। यह रास-परम्पराकी कृति होते हुए भी छन्द-वैविध्यसे रहित है, केवल प्रयुक्त छन्द मात्र तीन प्रकारकी कड़ियोंसे बना है, जब कि प्रायः समस्त रास-रचनाएँ छन्द-वैविध्यपरक है। सारी रचना गेय है, जब कि अन्य रचनाएँ प्रायः पाठ्य हैं, केवल बीच-बीचमें कुछ गान आ जाते हैं। प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी और गुजराती रास-परम्पराकी अभी तक प्राप्त समस्त रचनाएँ जैन कवियोंकी कृतियाँ हैं, जब कि यह न जैन-धर्मसे सम्बन्धित है और न निश्चित रूपसे किसी जैन कविकी कृति है। काव्यकी दृष्टिसे लोक-काव्यके तत्त्व इसमें प्रचुर परिमाणमें पाये जाते है। रचना शृंगार-रसकी है, जिसमें विरहका पक्ष अधिक विकसित हुआ है। बीसलदेवके वियोगमें राजमतीका जो बारहमासा है, वह ललित है किन्तु प्रवासके अनन्तर जो दोनोंका मिलन कविने वर्णित किया है, वह भी बहुत सरस है। रचनाका सन्देश यह है कि कोई स्त्री लाख गुणवती हो किन्तु यदि वह पतिसे कोई बात बिना भलीभाँति सोचे-समझे करती है, तो उसमें उसका सब कुछ बिगड़ सकता है। इसलिए रचना शृंगारपरक होते हुए भी नीतिपरक है। —मा० प्र० गु०

बुद्ध—कपिलवस्तुके राजा शुद्धोधनके पुत्र, जिनका आरम्भिक नाम सिद्धार्थ था। इन्हे प्रायः शाक्यसिंह, गौतम, महाश्रमण आदि नामोंसे पुकारा गया है। बुद्ध प्रायः सम्यक बोधिके अनन्तरका नाम है। इनका परिनिर्वाण कुशीनगरमें हुआ था। हिन्दू पौराणिक साहित्यमें बुद्धको वैष्णव अवतार रूपमें प्रायः रखा गया है। यद्यपि बुद्ध नास्तिक थे और पौराणिक धार्मिक परम्पराओंके कट्टर विरोधी थे किन्तु उनका प्रभावशाली व्यक्तित्व प्रायः अवतारके रूपमें कल्पित कर लिया गया। जयदेवने गीत-गोविन्दमें केशव (कृष्ण) को बुद्ध रूपमें अवतरित होनेकी बात कही है। भागवतके अवतारोंमें अजन-सुत बुद्धका नाम कलिके उद्धारकोंमें आता है। विष्णु महिम्न स्तोत्रमें भी विष्णुके रूपमें बुद्धके अवतरित होनेकी चर्चा की गयी है। ये विष्णुके नवें अवतार कहे गये हैं। भागवतके ही आधारपर सूरदासने पद सं० ४९३३ ई० में बुद्धके अवतारकी चर्चा की है। तुलसी भी इन्हे इसी रूपमें मानते हैं।

आधुनिक युगमें हिन्दी साहित्य बुद्धके जीवन चरित, उनकी दार्शनिक विचारधारा आदर्शों आदिसे प्रभावित मिलता है। इस श्रेणीकी काव्य-रचनाओंमें पं० रामचन्द्र शुक्ल द्वारा अनूदित 'बुद्धचरित', अनूप शर्माकृत 'सिद्धार्थ' और मैथिलीशरण गुप्तकृत 'यशोधरा' विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं। प्रसादके नाटकोंपर बौद्ध-दर्शनका प्रभाव भी इस दिशामें महत्त्वपूर्ण है। —यो० प्र० सिं०

बुद्धि रासो—जल्हकी कृति 'बुद्धि रासो'का रचनाकाल अनिश्चित है। कृतिकी हस्तलिखित प्रति सन् १६४७ ई०

(सं० १७०४)की लिखी हुई मिलती है। 'बुद्धि रासो' एक प्रेमकथा है, जिसमें चम्पावती नगरीके राजकुमार और जलधितरंगिनी नामक सुन्दरीके प्रेम वियोग और पुनर्मिलनकी सरस कथा है। हिन्दीकी मैनासत जैसी प्रेमकथाओंके समान ही कथाकी रूपरेखा है। कृतिके जो उद्धरण प्रकाशित हुए हैं, उनके आधारपर कृतिकी भाषा पृथ्वीराज रासो जैसे ग्रन्थोंमें प्राप्त भाषासे बहुत भिन्न नहीं लगती किन्तु 'पृथ्वीराज रासो'की भाषाकी कृत्रिमता उसमें नहीं मिलती। दोहा, छप्पय, गाहा, पाघड़ी, मोतीदाय, मुडिल्ल आदि छन्दोंका प्रयोग कृतिमे हुआ है। कृतिमें १४० छन्द हैं। कथा और काव्यकी दृष्टिसे कृतिका जितना महत्त्व है, उससे अधिक भाषाकी दृष्टिसे है। अपभ्रंशके चिह्नोंसे मुक्त उसे राजस्थानी ब्रजभाषा कहा जा सकता है।

[सहायक ग्रन्थ—राजस्थानका पिंगल साहित्य : मोतीलाल मेनारिया, बम्बई, १९५८ ई० राजस्थानमें हस्तलिखित ग्रन्थोंकी खोज, भाग १, भारतीय हिन्दी परिषद्, प्रयाग; हिन्दी साहित्यका इतिहास, भाग २, प्रयाग १९५९ ई०।] —रा० ति०

बृहस्पति—वैदिक साहित्यमें 'बृहस्पति' सम्पन्नता एवं समृद्धिके देवता माने गये है। आगे चलकर इनकी मान्यता देवपुरोहितके रूपमें हुई। ये अंगिरसके पुत्र कहे जाते हैं। इनकी पत्नीका नाम तारा था। इनकी तुलना प्रायः व्यास एवं सरस्वतीके साथकी जाती है। पौराणिक कथाओंमें इन्होंने अनेक बार अपने बुद्धिकौशलसे देवताओंकी रक्षा की थी। ठीक इनके विपरीत दैत्यों या असुरोंके गुरु शुक्राचार्यसे इनकी प्रतिद्वन्द्विता रहती थी किन्तु वेदमे इनका चरित्र इस पौराणिक रूपसे प्रायः भिन्न है। वहाँ ये सोमरक्षक ऋषि भी कहे गये है। इन्हे अनेक बार इन्द्रका सखा कहा गया है। इन्होंने अनेक बार इन्द्रके साथ ही यज्ञ-फल धारण किया था। ऋग्वेदमें इन्द्रके साथ इनकी भी स्तुति मिलती है।

बृहस्पतिकी गणना नक्षत्रोंमें भी की जाती है। कृष्णभक्त कवियोने बृहस्पति (गुरु)को उपमान रूपमें प्रयोग किया है। "लोचन लोल कपोल ललित अति नासिकको मुक्ता रद-छदपर। यह उपमा कहि कापे आवै कछुक कहौं सकुचत हौं हिय पर। नूतन चन्द्र रेख मधि राजति सुर गुरु सुक्र उदोत परस्पर" (दि० सू० सा० प० १०७०९)। —यो० प्र० सिं०

बेनी प्रवीन—नायक-नायिका-भेदसम्बन्धी काव्य-ग्रन्थ लिखनेवाले रीतिकवियोंकी परम्परामे बेनी प्रवीनका स्थान मतिराम, देव और दासके परवर्ती तथा पद्माकरके समकालीन कविके रूपमे निश्चित है। बेनी प्रवीनका वास्तविक नाम बेनीदीन बाजपेयी था। 'प्रवीन' सम्भवतः कविकी उपाधि थी, जो उन्हे बेनी नामक भड़ौआ रचनेवाले अन्य कविके सत्परामर्शसे प्राप्त हुई थी। इससे दोनों नामोंका पृथक्करण भी हो गया। एक सम्भावना यह भी हो सकती है कि यह शब्द उन्होंने अपने आश्रयदाता 'ललनजी' अथवा 'नवलकृष्ण परबीन'की कृपासे प्रशंसा रूपसे उपलब्ध किया हो और दोनों एक-दूसरेकी प्रवीणतापर मुग्ध रहते हों। कविने अपनी सुप्रसिद्ध कृति 'नवरस तरंग'के आरम्भमें अपने विषयमे पर्याप्त परिचय दिया है। इससे ज्ञात होता है कि उनके आश्रयदाता नवलकृष्ण लखनऊनिवासी थे और अवधके नवाब गाजीउद्दीन हैदरके दीवान राजा दयाकृष्णके पुत्र थे। धार्मिक दृष्टिसे वे राधावल्लभीय सम्प्रदायमें दीक्षित थे। श्री हितहरिवंशके वंशज वंशीलाल (हि० सा० बृ० इ०, भाग ६ में इन्हें वल्लभसम्प्रदायी कहा है) बेनी प्रवीनके भी गुरु थे और उन्हींके माध्यमसे दोनोंका सम्बन्ध स्थापित हुआ—"बंसीलाल प्रसन्न है यह दीन्हौं उपदेश। 'ललन' हमारे भक्त हैं सेवौ तिन्हैं हमेस ॥८॥"

कवि द्वारा दिये गये आत्मचरितपरक अंशसे ही ज्ञात होता है कि 'नवरस तरंग'की रचना उसने नवलकृष्णकी प्रशंसाके निमित्त १८१७ ई०में की थी (छन्द संख्या २७-२८)। ललनजीके आश्रयके पश्चात् उन्हें कुछ समयके लिए बिठूरनिवासी पेशवा नानारावके आश्रयमें रहना पड़ा, जहाँ उसने अपने अन्य ग्रन्थ 'नानाराव प्रकास'की रचना की। यह एक अलंकार ग्रन्थ है। 'शृंगार भूषण' नामक उनका तीसरा ग्रन्थ सम्भवतः प्रारम्भिक रचना है। सन्तानहीन होनेके कारण कविका अन्तिम जीवन सुखसे नहीं बीत सका और वह तीर्थाटनकी ओर प्रवृत्त हो गया। कुछ लोगोंके अनुसार बेनी प्रवीनकी मृत्यु आबूमें हुई और कुछके अनुसार बदरीनाथकी यात्रामे।

'शिवसिंह सरोज'के चतुर्थ संस्करणमे बेनी प्रवीनके विषयमें लिखा गया था कि वे लखनऊके निवासी थे और १८१६ ई० (सं० १८७३)में उत्पन्न हुए थे। यहाँ सरोजकारने जन्म संवत् भ्रामक रूपमे दिया है क्योंकि संवत् १८७४ तो 'नवरस तरंग'का रचनाकाल ही है। ग्रियर्सनने इसी मतको बिना विचार किये स्वीकार कर लिया। इसी प्रकार 'कविकीर्ति कलानिधि' नामक पुस्तकमें उनका संवत् १८७६ (१८१६ ई०) माना गया है, जिसका अभिप्राय स्पष्ट नही होता। यह विभेद "समय देखि दिग दीपयुत सिद्धि चन्द्र बल पाइ"के विभिन्न अथवा अशुद्ध अर्थसे ही सम्भवतः उद्भूत है, जिसे किसी प्रकार कविका जन्मकाल नहीं माना जा सकता। उनके जन्म और मरणकी तिथियाँ ज्ञात नही है।

'बेनी प्रवीन'का शास्त्रकार, लक्षणकारकी अपेक्षा कविके रूपमें अधिक महत्त्व है। इनके काव्यका लालित्य अनेक स्थलोंपर देव और मतिरामके समतुल्य है। कवित्वकी दृष्टिसे ही इनके ग्रन्थ 'नवरस तरंग'की प्रसिद्धि है। इनमें भावोंका सरस प्रवाह और गहरी भावुकता मिलती है। चित्रांकनकी मार्मिकता भी इनके काव्यकी विशेषता है। इनके प्रकृति-चित्रण अपेक्षाकृत संश्लिष्ट और प्रभावपूर्ण है। भावपूर्ण, सजीव तथा मार्मिक काव्यकी दृष्टिसे इस कविको रीतिकालके सरस कवियोंमे गिना जा सकता है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० का० शा० इ०; हि० सा० बृ० इ० (भाग ६); हि० सा० इ०; मि० वि०।] —ज० गु०

बेनी बंदीजन—ये बेती (जिला रायबरेली) के निवासी और अवधके प्रसिद्ध वजीर महाराज टिकैतरायके दरबारी कवि थे। कहा जाता है कि एक बार सन् १८१७ ई० में इनसे

और लखनऊके प्रसिद्ध कवि बेनी वाजपेयीमें टक्कर हो गयी, जिसमें इन्होंने वाजपेयीके महत्त्वको स्वीकारा और उन्हें 'प्रवीन' की उपाधिसे विभूषित किया। 'शिवसिंह सरोज' के अनुसार ये काफी वृद्ध होकर सन् १८३५ ई० में मरे। इन्होंने 'टिकैनराय प्रकाश' (या 'अलकार शिरोमणि'), 'रस-विलास' तथा अनेक भँडौवोंकी रचना की। इनके अतिरिक्त हालकी खोजमें कविकी 'यश लहरी' (यह नाम हस्तलिखित प्रतिके मालिकका दिया है—कविका नहीं) का पता चला है। 'टिकैनराय प्रकाश' एक अलकार ग्रन्थ है। इसकी रचनाएँ उत्कृष्ट नहीं कही जा सकतीं किन्तु इनका साधारण महत्त्व है। यह ग्रन्थ सन् १७९२ ई० में रचा गया। दूसरे ग्रन्थ 'रस-विलास' का निर्माण-काल 'मिश्रबन्धु विनोद' तथा खोज विवरण (त्रै० १२) के आधार पर सन् १८१७ ई० (हि० का० इ० तथा हि० सा० बृ० इ० में सं० रचना-काल १८४९ वि० दिया गया है) हुआ। इसमें रस-भेद तथा भाव-भेदके साथ-साथ नायक-नायिका एवं नौ रसोंका वर्णन भी बड़े ही विस्तारसे किया गया है। आकारमें यह ग्रन्थ पद्माकरकृत 'जगद्विनोद' के बराबर है। शास्त्रीय और कवित्व दोनों ही दृष्टियोंसे यह सुन्दर रीति-ग्रन्थ है। इसकी रचना लछिमनदासके नामसे हुई थी। भँडौवोंकी रचना कविके समस्त कृतित्वमें एक अनोखे स्थानका अधिकारी है। इनसे उसको जितना यश मिला है, उतना उसकी अन्य रचनाओंसे नहीं। उसके ३६ भँडौवे हस्तलिखित रूपमें और शेष 'भँडौवा-संग्रह', जो भारत जीवन प्रेस काशीसे बहुत दिनों पहले प्रकाशित हो चुका है, में पाये जाते है। 'यश लहरी' में विभिन्न देवी-देवताओं की स्तुतियोंके बहाने उनके यशका गान किया गया है। इस कारण उसका 'यश लहरी' नाम उचित ही है।

कवित्वकी दृष्टिसे उसके भँडौवोंका स्थान महत्त्वका है। चूँकि इससे पूर्व भँडौवा-शैलीकी रचनाओंकी कोई स्थिति नहीं थी, इस कारण मौलिकताके विचारसे भी ऐसी रचनाओंका कम महत्त्व नहीं आंका जा सकता। भँडौवा बड़ी ही मनोरजनात्मक शैलीमें उपहासकी सृष्टि करता है। इस तरहकी कवितामें अक्सर किसी वस्तु, व्यक्ति आदिकी निन्दाको प्रधानता दी जाती है (वैसे इसके माध्यमसे प्रशंसा भी की जा सकती है)। इसी नाते इसे व्यग-काव्य कहा जाय तो उचित होगा। इसीको उर्दूमें 'हजो' तथा अंग्रेजीमें 'सटायर' कहते है। इस शैलीमें दयारामके आमों, लखनऊके ललकदास और किसीसे पाई हुई रजाईकी अच्छी खिल्ली उड़ाई गयी है। ये प्रसग इतने रोचक बन पड़े है कि लगभग सभी प्राचीन काव्य-रसिकोंकी जबानपर देखे जाते है। यमक और अनुप्रासका भी ध्यान रखा गया है। कलात्मक चारुता और सुकुमार भाव-व्यंजनाकी भी कमी नहीं है। मिश्रबन्धुओंने इन्हें पद्माकर-श्रेणीका कवि माना है।

[सहायक ग्रन्थ—खो० वि० (त्रै० १, २, १२); शि० स०; दि० भू०; हि० सा० इ०।] —रा० त्रि०

बेनीमाधवदास—बेनीमाधवदासका महत्त्व उनकी रचना 'मूलगोसाईं चरित'के कारण है। 'गोसाईं चरित्र'के सम्बन्धमें शिवसिंह सेंगरने 'सरोज'में प्रथम सूचना दी थी। इस ग्रन्थके अनुसार बेनीमाधवदास पसका ग्राम (गोंडा जिला) के निवासी थे। ये तुलसीदासके साथ पर्याप्त काल तक रहे। इनको सं० १६५५ वि० (सन् १५९८ ई०) में उपस्थित कहा गया है। इन्हे तुलसीदासका शिष्य भी कहा जाता है। 'सरोज'में इनकी मृत्यु तिथि सन् १६४२ ई० दी हुई है।

बेनीमाधवदासके 'मूलगोसाईं चरित्र'में तुलसीदासका विस्तृत जीवन-वृत्त मिलता है। यह ग्रन्थ अधिकांशतः हस्तलिखित रूपमें मिलता है। सन् १९३४ ई० में गीता प्रेसने इसे प्रकाशित किया। इसकी हस्तलिखित प्रति सर्वप्रथम भरुव, जिला गया (बिहार) निवासी रामानन्द तिवारीके यहाँ मिली थी। इसकी पुष्पिका इस प्रकार है—"इति श्री वेणीमाधवदासकृत मूल गोसाईं चरित समाप्तम्। श्री शाण्डिल्य गोत्रोत्पन्न पंक्तिपावन त्रिपाठी रामरक्षमणि रामदासेन तदात्मजेन च लिखितम्। मिति विजयादशमी सं० १८४८ भृगुवासरे ॥"

इस ग्रन्थमें हड़ताल द्वारा संशोधन भी किया गया है। प्रस्तुत लेखकके पास भी इसकी एक हस्तलिखित प्रति है, जो अयोध्याके एक महात्मा द्वारा उसे प्राप्त हुई है। इस ग्रन्थकी तिथियोंकी विस्तृत जाँच कर डाक्टर माताप्रसाद गुप्तने इसे एक अप्रामाणिक रचना सिद्ध किया है। —ब० ना० श्री०

बेताल—ये जातिके बन्दीजन कहे जाते हैं। इनके कालके सम्बन्धमें निश्चित रूपसे कुछ कहना बहुत कठिन है। सरोजकारके अनुसार इनका जन्म सन् १६७७ ई० मे हुआ था किन्तु इन्होंने अपने अधिकांश छन्दोंमे "बेताल कहे विक्रम सुनौ" लिखा है, इस आधारपर कुछ लोगोंने इन्हे चरखारीके राजा विक्रमका दरबारी कवि माना है। इसी आधारपर रामचन्द्र शुक्लने सन् १८७२ ई० और सन् १८२९ ई० के बीचमे इनका काल माना है। हजारी प्रसाद द्विवेदी इस सम्बन्धमे एक दूसरी ही बात कहते हैं। उनका कहना है कि "पुराने राजा विक्रमादित्य और उनके बैतालकी निजन्धरी कथाके आधारपर किसी कविने यह रचना की है" यह मान लेनेपर कविके कालका निर्णय और भी कठिन हो जाता है। कविके जीवनके सम्बन्ध मे भी कुछ ज्ञात नहीं है। बेतालने नीति और व्यवहारके बड़े मार्मिक छप्पय लिखे है, जो हिन्दी-क्षेत्रकी जनतामें बहुत लोकप्रिय है। इनके प्रमुख विषय दुर्जन, सज्जन, ज्ञान, धन, बुद्धि, पुत्र, राजा, स्त्री आदि हैं। रहीम, वृन्द या दीनदयाल गिरिकी तरह बेतालने नीति-काव्योचित अलंकारों द्वारा अपने छन्दोमे प्रभविष्णुता लानेका प्रयास नहीं किया है फिर भी वे कम आकर्षक नही हैं। इनके आकर्षणके आधार हैं, इनकी सटीक बातें तथा शब्दोंकी आवृत्ति द्वारा एक नवीन शैली। इनके प्रायः सभी छन्दों मे किसी न किसी शब्दकी (जैसे जीभ, चुप्प, मरे आदि) आवृत्ति की गयी है। इन्होंने छप्पय तथा दोहा छन्दका प्रयोग किया है। इनका लिखा कोई ग्रन्थ नहीं मिलता, केवल फुटकल छन्द ही मिलते हैं। इनके प्राप्त छन्दोंकी संख्या तीससे अधिक नहीं है। लगता है कि इनकी अधिकाश रचना खो गयी। रामचन्द्र शुक्ल तथा 'रसाल' जीने इनको कुण्डलियोंका रचयिता माना है किन्तु अभी

तक इनकी कोई भी कुण्डलियाँ देखनेमें नहीं आतीं। 'गोरा बेवा', फ्री स्कूल स्ट्रीट कलकत्तासे १८८९ ई० में प्रकाशित गिरिधरके एक 'कुण्डलियाँ' शीर्षक ग्रन्थमें इनके कुछ छप्पय प्रकाशित हो चुके हैं।

[सहायक ग्रन्थ—हिन्दी नीति काव्य-संग्रह : भोलानाथ तिवारी।] —भो० ना० ति०

बैताल पचीसी–संस्कृतकी प्रसिद्ध कथाकृति 'वेताल पचविंशतिका' अत्यन्त लोकप्रिय रही है। संस्कृतमें इसके गद्य और पद्य दोनों रूप आ जाते हैं। शिवदासने इसकी रचना गद्य और पद्य दोनोंमें तथा जम्भलदत्तने केवल गद्यमें की थी। संस्कृत 'वेताल पंचविंशतिका'की रचना अनुमानतः १२ वीं शताब्दीमें हुई थी। हिन्दीमें इस रचनाके 'बैताल पचीसी'के नामसे पाँच अनुवाद प्रसिद्ध हैं। १७ वीं शताब्दीके हरनारायण और सूरति मिश्रके अनुवाद हैं तथा १९ वीं शताब्दीके लल्लूलाल, राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' तथा देवीदत्त द्वारा किये हुए अनुवाद। हरनारायणकी बैताल पचीसीके अतिरिक्त सभी अनुवाद गद्य अथवा गद्य और पद्य दोनोंमे हैं। हरनारायणका अनुवाद पूर्णतया पद्यबद्ध है।

हरनारायण हिन्दीके रीतिकालीन साहित्यके एक प्रसिद्ध कवि कहे जा सकते हैं। इस रचनामें उन्होने दोहा, चौपाई, सवैया और कवित्त छन्दोंका प्रयोग किया है। कुछ छन्दोंमें काव्यका लालित्य और कलाका सौन्दर्य भी देखा जा सकता है। कविकी रसिकताका भी यत्र-तत्र दर्शन हो जाता है। 'बैताल पचीसी'में मूलकृतिके आधारपर राजा विक्रमादित्य और बैतालके वार्तालापके रूपमे पचीस उपदेशपूर्ण कहानियाँ दी गयी हैं। हरनारायणकी यह कृति 'वेताल पचविंशतिका'के अनुवादोंमें उत्कृष्ट कही जा सकती है।

[सहायक ग्रन्थ—हिन्दी साहित्यका इतिहास : पं० रामचन्द्र शुक्ल; हिन्दी साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास : डा० रामकुमार वर्मा।] —यो० प्र० सिं०

बैरीसाल–मिश्रबन्धुओने इस कविका जन्म अनुमानसे सन् १७१९ ई० बताया है। ये असनी (जिला फतहपुर)के निवासी और जातिके ब्रह्मभट्ट ब्राह्मण थे। अब भी वहाँ कविकी पक्की हवेली और उसके वंशज वर्तमान हैं। कवि स्वभावसे इतना अधिक विनम्र और विनयशील था कि अपने नाम तकको बतानेमे उसे बड़े संकोचका अनुभव होता था। 'भाषा-भरण' उसकी एकमात्र रचना है, जिसका रचना काल सन् १७६८ ई० है। इस ग्रन्थके निर्माणका आधार संस्कृतका प्रसिद्ध आलंकारिक ग्रन्थ 'कुवलयानन्द' है। इस ग्रन्थकी हस्तलिखित प्रति कृष्ण बिहारी मिश्र पुस्तकालय, गन्धौलीमें प्राप्त है। 'भाषा-भरण' ४७५ छन्दोंका अलंकार ग्रन्थ है, जिसमे दोहोंकी संख्या सर्वाधिक है, घनाक्षरी तो दो-एक ही हैं। कवि पूर्ण लुप्तोपमा (जहाँ उपमाके चारों अंगोंका अभाव हो)को भी अलकार मान बैठा है, जो ठीक नहीं, क्योंकि उपमाके सर्वांगोंके अभावमें उसकी स्थितिका बना रहना सम्भव नहीं। इसके अतिरिक्त बैरीसालने रसवत्, उर्जस्वित्, भावसन्धि और भावशबलता आदिका भी समाहार अलंकारोंमें ही कर लिया है। वैसे कविको अपने विषयका सम्यक बोध है और उसकी अलंकार-विवेचनशैली स्पष्ट और पुष्ट है। उदाहरण कवित्वपूर्ण, सरस और भाव-तरलतासे ओत-प्रोत हैं, जिसके कारण उसके दोहे बिहारीके उत्कृष्ट दोहोंसे टक्कर लेते दिखाई पड़ते हैं। इस प्रकार अलंकारी आचार्य और कवि दोनों ही की हैसियतसे ये अच्छे आचार्य कवि सिद्ध होते हैं, इसी नाते मिश्रबन्धुओंने इन्हे पद्माकर-श्रेणीका कवि बताया है। पद्माकरने अपने 'पद्माभरण'में 'भाषा-भरण' का आधार विशेष रूपसे ग्रहण किया है।

[सहायक ग्रन्थ—खो० वि० (त्रै० १, २, १२); मि० वि०; हि० का० शा० इ०।] —रा० त्रि०

बृकोदर–दे० 'भीम'। —रा० कु०

ब्रजकिशोर चतुर्वेदी–जन्म १९०४ ई० में कलकत्तामें हुआ। शिक्षा कलकत्ता, अलीगढ़, आगरा तथा लन्दनके विश्वविद्यालयोंमें हुई। मध्यभारत हाईकोर्टके न्यायाधीश रहे। १९५८ ई० मे देहान्त हुआ। रचनाएँ 'श्रीमती बनाम श्रीमता' (१९४८ ई०), 'आधुनिक कविताकी भाषा' (१९५१ ई०) आदि। —सं०

ब्रजनंदन सहाय–ब्रजनन्दन सहायका जन्म १८७४ ई०में हुआ। इन्होने बी० ए०तक शिक्षा प्राप्त की थी। उपन्यासोंके प्रति आकर्षण आरम्भसे ही था। काव्यकोटिमे आनेवाले भाव-प्रधान उपन्यास, जिनमे भावों या मनोविकारोकी प्रगल्भ और वेगवती व्यंजनाका लक्ष्य प्रधान हो—चरित्रचित्रण या घटना वैचित्र्यका लक्ष्य नहीं—हिन्दीमे न देख और बंगभाषामें काफी देख बाबू ब्रजनन्दन सहाय बी० ए० ने दो उपन्यास इस ढंगके प्रस्तुत किये—'सौन्दर्योपासक' और 'राधाकान्त' ('हि० सा० इ०' : रामचन्द्र शुक्ल, छठाँ संस्करण ५०१)। इनके उपन्यासो पर बंगलाके 'उद्भ्रान्त प्रेम' जैसे उपन्यासोंका प्रभाव स्पष्टतया परिलक्षित होता है। अलंकृत गद्यमें कथा या आख्यायिका कहनेका प्रचलन इस देशमें प्राचीन कालसे चला आरहा है। कादम्बरी इसका ज्वलन्त उदाहरण है। इस परिपाटीको हिन्दीमे जगमोहन सिंहने 'श्यामास्वप्न'में निभानेकी कोशिश की किन्तु यह पद्धति बहुत दूर तक चल न सकी। बंगलामें भावाकुल ललित गद्यमें उपन्यास लिखनेका प्रचलन बहुत पहले हो चुका था। हिन्दी पर उसका प्रभाव भी पड़ने लगा था। गद्यकाव्यका आधुनिक रूप भी हिन्दीमे बंगलाकी ही देन है। ब्रजनन्दन सहायने इस शैलीको अपना कर कई उपन्यास लिखे। इनमे सर्वश्रेष्ठ उपन्यास 'सौन्दर्योपासक' है, जिसने हिन्दी उपन्यासमें एक नये अध्यायका श्रीगणेश किया। हिन्दीमें अब तक घटना-बहुल, चमत्कारिक तथा चरित्र-वैशिष्ट्यको उपस्थित करने वाले उपन्यास लिखे जाते थे। इनमे विभिन्न प्रकारकी भावनाओं और अनुभूतियोंका न तो विश्लेषण हो पाता था, न प्रेमके विभिन्न पक्षोंका आधुनिक ढंगसे आकलन ही किया जाता था। 'श्यामास्वप्न'में यद्यपि भावप्रधान शैली अवश्य अपनाई गयी, पर भावोंके चित्रणमें वहाँ परम्पराका अन्ध अनुकरण ही दिखाई पड़ता है। 'सौन्दर्योपासक' इस दृष्टिसे हिन्दीका एक महत्त्वपूर्ण उपन्यास कहा जायेगा। इस उपन्यासका

नायक अपने विवाहके समय अपनी सालीके रूप-सौन्दर्यसे आकृष्ट होकर उससे प्रेम करने लगा। यह प्रेम सफल न हुआ। साली, जो अपने बहनोईको प्रेम करती थी अन्य व्यक्तिको व्याह दी गयी। विषम-प्रेमकी इस दारुण व्यथामें दोनों प्रेमी घुलते रहे। प्रेमकी व्यथा धीरे-धीरे सालीके शरीर और मनको जर्जर बना देती है और वह यक्ष्माके रोगका शिकार हो जाती है। सौन्दर्योपासककी पत्नी इस भेदसे अपरिचित न रही और पति तथा छोटी बहनके प्रेमके इस अन्तसे वह निरन्तर दुःखी रहने लगी और एक दिन वह भी यह संसार छोड़ कर चल बसी। पत्नी और प्रियतमाके वियोगके इस दुहरे शोकको सौन्दर्योपासक आजन्म ढोता रहा। इसी दुःखान्त कथा पर 'सौन्दर्योपासक' आधारित है, जिसमें यथावसर लेखकने मिलन और विरहकी विभिन्न अवस्थाओंका बड़ा सूक्ष्म और करुणापूर्ण वर्णन किया है। ब्रजनन्दन सहायने और भी कई उपन्यास लिखे हैं। इसी ढंग पर उन्होंने एक दूसरा उपन्यास 'राजेन्द्र मालती' लिखा। उनका 'लालचीन' एक ऐतिहासिक उपन्यास है। —शि० प्र० सिं०

ब्रजपति भट्ट–इनके 'रंगभाव माधुरी' नामक रस पर लिखे गये ग्रन्थका उल्लेख किया गया है। इसका रचना-काल १६२३ ई० माना गया है, इससे इनकी उपस्थितिका अनुमान लगाया जा सकता है। —स०

ब्रजप्रेमानंद सागर–यह ग्रन्थ अपनी विशालता, विविध रसपूर्णता, महाकाव्यानुरूपता और वर्ण्य-विषयकी विविधताके कारण बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। बहुत समय तक यह ग्रन्थ हस्तलिखित बना रहा, अतः हिन्दी साहित्यके इतिहास लेखकोंने इसका कहीं उल्लेख नहीं किया किन्तु अब यह मुद्रित होकर प्रकाशमें आ गया है और इसकी महत्ता सामने आने लगी है। यह काव्य-ग्रन्थ आख्यान-काव्यकी शैलीपर दोहा-चौपाई छन्द मे राधाकृष्णके शैशवसे विवाह पर्यन्त कथाओंके आधारपर लिखा गया है। चाचा वृन्दावनदास इसके लेखक हैं।

ब्रज प्रेमानन्दका विभाजन लहरियोंमें किया गया है। ६८ लहरियोंका यह विशाल सागर ६१४७ छन्दों (दोहा-चौपाई) मे समाप्त हुआ है। वर्णनमें सहजता होनेपर भी भाव गाम्भीर्य का इस ग्रन्थमें अभाव है। सरसतासे आप्लावित होनेके कारण शान्त-स्निग्ध पयस्विनीकी निर्मल जल-धाराके समान पाठकके मनको आनन्द और उल्लासके सागरमे निमज्जित करनेकी शक्ति इसमें है।

इस ग्रन्थमें ब्रजके सामाजिक जीवनकी झाँकी बड़े जीवन्त रूपमें प्रस्तुत की गयी है। विशेष रूपमे गृहस्थ जीवनका इतना सजीव और सटीक वर्णन बहुत कम काव्योंमें देखनेमें आता है। रसकी दृष्टिसे यह ग्रन्थ वात्सल्य और शृंगारका ही सागर है किन्तु हास्य और करुणकी उर्मियाँ भी इसमें लहराती हैं। ग्रन्थकी भाषा ब्रज है किन्तु दोहा-चौपाईकी शैली स्वीकार करनेके कारण कहीं-कहीं 'रामचरितमानस'की शैलीपर अवधीकी पदावली भी इसमें समाविष्ट हो गयी है। 'रामचरितमानस'के पारायण का यह अलक्षित प्रभाव हो सकता है। नखशिख और ऋतु-वर्णन आदिमे परम्परायुक्त आलंकारिक शैलीका पूरी तरह निर्वाह किया गया है। चाचा वृन्दावनदासकी व्यापक काव्य शैली और प्रबन्धात्मकताका इस ग्रन्थ द्वारा अच्छा परिचय मिलता है। यह ग्रन्थ संवत् १८३० (सन् १७७३ ई०) के आस-पासका लिखा प्रतीत होता है। —वि० स्ना०

ब्रजरत्नदास–जन्म काशीमें सन् १८९०ई०में हुआ। भारतेन्दु हरिश्चन्द्रकी पुत्री विद्यावतीके सुपुत्र। पिता बलदेवदास। प्रारम्भमें घरपर ही हिन्दी, उर्दू, फारसी तथा अंग्रेजीका अध्ययन। सन् १९२६ ई०में प्रयाग विश्वविद्यालयसे बी० ए० और सन् १९२९ ई० में काशी हिन्दू विश्वविद्यालयसे एल-एल० बी०। फिर वकालत करने लगे। साहित्य निर्माणकी प्रेरणा अपने छोटे मातुल ब्रजचन्द और केदारनाथ पाठकसे ग्रहण की। प्रथम रचना एक लेख 'चितौड़का अन्तिम शाका' 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका'में प्रकाशित हुई। आप सन् १९२० से १९२३ ई०तक नागरी प्रचारिणी सभाके उप-मंत्री, सन् १९२४ ई०मे मन्त्री और सन् १९३८ से १९४० ई० तक अर्थमन्त्री रहे। प्रबन्ध-समितिके सदस्य प्रायः बराबर रहे हैं।

आपने प्रारम्भमें ऐतिहासिक विषयोंपर ग्रन्थ लिखे—'सर हेनरी लारेंस', 'बादशाह हुमायूँ', 'यशवत सिंह', 'स्वातन्त्र्य युद्ध', 'भारतकी नारियाँ' तथा 'शाहजहाँ'। इसके बाद उनका ध्यान साहित्यके ऐतिहासिक अनुशीलनकी ओर गया—'खड़ीबोली हिन्दी साहित्यका इतिहास', 'उर्दू साहित्यका इतिहास', 'हिन्दी साहित्यका इतिहास', 'हिन्दी नाट्य-साहित्य' और 'हिन्दी उपन्यास साहित्य'। हिन्दुस्तानी अकादमी, इलाहाबादके आमन्त्रणपर आपने भारतेन्दु हरिश्चन्द्रकी विस्तृत जीवन-कथा लिखी। यह ग्रन्थ भारतेन्दुजीके जीवन वृत्तको ही नहीं, उनके युगकी सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक हलचलोंको भी साकार कर देता है। भारतेन्दु युगके सम्यक् अनुशीलनके लिए इस ग्रन्थ की विशेष उपयोगिता है।

इन्होंने अन्य भाषाओंसे अनेक ग्रन्थोंके अनुवाद भी प्रस्तुत किये है। फारसीमें गुलबदन बेगमका 'हुमायूँ नामा' और अब्दुल रज्जाकके 'मआसिरुलउमरा' (दो भाग) का अनुवाद किया। सस्कृतसे दण्डीके 'काव्यादर्श' और भासके कई छोटे नाटक 'भास नाटकावली' संज्ञा देकर प्रकाशित किये। आपके सम्पादित ग्रन्थोंकी संख्या भी पर्याप्त है: 'खुसरोकी हिन्दी कविता', 'प्रेम सागर', 'रहिमन विलास', 'सक्षिप्त रामस्वयवर', 'मुद्राराक्षस', 'नन्ददासकृत भँवरगीत', 'भूषण ग्रन्थावली', 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'भारतेन्दु ग्रन्थावली' (द्वितीय भाग), 'भारतेन्दु नाटकावली' (दो भाग), 'भाषाभूषण', 'भारतेन्दु सुधा' तथा 'इंशा–उनका काव्य और कहानी'। आपने प्रारम्भमें काव्य-रचनाका भी प्रयास किया था—कभी हिन्दी और कभी उर्दूमे, बादको भी लिखते रहे किन्तु ये सभी काव्य रचनाएँ अभी अप्रकाशित हैं। भारतेन्दुजीके पिता बाबू गोपालचन्द्रके 'जरासन्ध वध महाकाव्य'के अन्तिम भागको आपने ही पूरा करके प्रकाशित कराया है।

ब्रजरत्नदासके पास संस्कृत, हिन्दी-फारसी और उर्दूके लगभग ३०० हस्तलिखित ग्रन्थ हैं। भारतेन्दु युगकी

पत्र-पत्रिकाओं एवं साहित्यका भी उनके पास अच्छा संग्रह है। —वि० मि०

ब्रजवासीदास–ब्रजभाषाके विशाल प्रबन्ध काव्य 'ब्रज-विलास' के लेखक ब्रजवासीदासका जन्म वृन्दावनमें सन् १७३३ ई० के आसपास हुआ था। इनकी सुप्रसिद्ध कृति 'ब्रजविलास'में रचनाकाल वि० संवत् १८२७ (सन् १७७० ई०) दिया हुआ है। यह प्रौढ आयुकी रचना प्रतीत होती है, इसीके आधारपर इनके जन्मकालका निर्णय किया गया है। प्रसिद्ध है कि ये वल्लभ सम्प्रदायके भक्त थे और मोहन गुसाईंके शिष्य थे। 'ब्रजविलास' की रचना इन्होंने तुलसीदासकृत 'रामचरितमानस'की प्रेरणासे की थी। उसीके अनुकरणपर कृष्ण-चरितको प्रबन्धात्मक शैलीसे लिखनेका यह प्रयत्न है। श्रीकृष्ण चरितकी प्रमुख लीलाओंको पूरे विवरणके साथ उपन्यस्त करनेका प्रयास ही 'ब्रजविलास'के प्रणयनका मूल कारण है। 'ब्रजविलास'में ८८९ दोहे-सोरठे, १०६००० चौपाइयाँ और १०६ अन्य छन्द हैं। इसकी भाषा ब्रज है किन्तु 'राम-चरितमानस'की शैलीके कारण कहीं-कहीं शब्दोंका द्वित्वा-त्मक रूप अवश्य देखनेमें आता है। अधिकांश लीलाओंका आधार 'सूरसागर' ही है। स्वयं ब्रजवासीदासने कहा है—"यामें कछुक बुद्धि नहिं मेरी, उक्ति युक्ति सब सूरहि केरी।" ब्रजवासीदासकी सफलता केवल इसमें है कि उन्होंने सीधी-सादी सरल भाषामे साधारण पढ़े-लिखे व्यक्तियोंके लिए कृष्ण-कथाके रोचक लीला प्रसंग प्रबन्धात्मक शैलीसे जुटा दिये हैं। यही कारण है कि इस ग्रन्थका साधारण जनतामें खूब प्रचार रहा है और यह अनेक स्थानोंसे अनेक बार प्रकाशित हो चुका है। जीवनकी सर्वांगीणता और मर्म-स्पर्शिताका इसमें अभाव ही है।

• ब्रजवासीदासने संस्कृतके 'प्रबन्ध चन्द्रोदय' नाटकका भी विविध छन्दोंमें ब्रजभाषामे अनुवाद किया था।—वि० स्ना०

ब्रजलीला–दे० 'मलूकदास'।

ब्रज साहित्य मंडल, मथुरा–स्थापना २ अक्तूबर, १९४० ई०। उद्देश्य—बृहत्तर ब्रजक्षेत्रकी भाषा, कला, साहित्य, संस्कृति, इतिहासकी रक्षा और अनुसन्धान। कार्य और विभाग : (१) साहित्य—७ सदस्योंकी एक समितिके द्वारा संचालन। 'ब्रज-भारती' त्रैमासिक पत्रिकाका प्रकाशन। ग्राम-साहित्यके संकलनका महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न हुआ है। हस्तलिखित ग्रन्थोंकी खोज की जाती है। (२) प्रचार—ब्रज-क्षेत्रमें अनेक केन्द्र खोले गये हैं। वार्षिक सम्मेलन, कवि सम्मेलन तथा अन्य प्रचारात्मक योजनाएँ क्रियान्वित की जाती हैं। 'भारतेन्दु कलश', 'ताम्रपत्र' तथा 'श्रीनिवास पुरस्कार' दिये जाते हैं। (३) ब्रज-विद्यापीठ—इसके तीन उप-विभाग हैं—संग्रह, शोध, परीक्षा। ब्रजभाषा-व्याकरण तैयार किया जा चुका है। 'सूर सागर'के वैज्ञानिक सम्पादनकी योजना बनायी गयी है। —प्रे० ना० ट०

ब्रह्मदत्त–ब्रह्म या ब्रह्मदत्त जातिके ब्राह्मण थे और काशी-नरेश महाराज उदितनारायण सिंहके आश्रममें रहते थे। इनकी दो पुस्तकें 'विद्वद्विलास' (१८०४ ई०) तथा 'दीप-प्रकाश' (१८११ ई०) हैं। 'दीपप्रकाश' भारत जीवन प्रेस, काशीसे 'रत्नाकर'जीके सम्पादनमें प्रकाशित हुआ था, जिसमें इसका लिपिकाल सन् १८११ ई० (सं० १८६७ ई०) माना गया है और रामचन्द्र शुक्लने इसका रचनाकाल सन् १८०९ (सं० १८६५ ई०) माना है किन्तु ग्रन्थ-पंक्ति "मुनि रस बसु ससि बरस नभ मास चतुर्थी स्वेत"के आधारपर सन् १८११ ई० ही रचनाकाल मानना उचित है। इस ग्रन्थकी रचना आश्रयदाता दीपनारायण सिंहके नामपर तथा उन्हींकी आज्ञासे हुई है।

४९ पृष्ठकी छोटीसी रचना 'दीप प्रकाश' ७ प्रकाशों में विभक्त है। प्रथम प्रकाशमें १५ दोहोंमें परिचय, दूसरे प्रकाशमें ४७ दोहोंमें नायक-नायिका-भेद, तृतीय प्रकाशमें भावादि तथा शब्दालंकार और चतुर्थ प्रकाशमें अर्था-लंकारोंका वर्णन किया गया है। शेष तीन प्रकाश अन्य काव्यांगवर्णनके लिए हैं। वस्तुतः यह अलकारविषयका ही ग्रन्थ है, फिर भी इसमें श्रव्य-काव्यके समस्त अंगोंका थोड़ा-बहुत विवेचन कर दिया गया है। विषय-विवेचन सामान्य-सा है, तथापि स्पष्ट है। विमल और सरल शृंगार रसके उदाहरण प्रस्तुत करनेके लिए इस रचनाकार की प्रशंसाकी जानी चाहिए। समस्त रचना दोहोंमे ही रची गयी है और एक ही दोहेमे लक्षण तथा उदाहरण देनेकी शैली अपनाई गयी है। लक्षणोंपर 'चन्द्रालोक'का प्रभाव है। सम्भवतः अन्य काव्यांगोंका वर्णन करनेके कारण ही 'रत्नाकर'ने इसे 'भाषाभूषण'से उत्तम माना है।

[सहायक ग्रन्थ— हि० सा० इ० (शुक्ल तथा रसाल); हि० अ० सा०; हि० सा० बृ० इ० (भा० ६)।] —आ० प्र० दी०

ब्रह्मा–ऋग्वेदमें ब्रह्माका उल्लेख चार ऋत्विजोंके साथ मिलता है किन्तु आधुनिक या पौराणिक अर्थमें प्रयुक्त ब्रह्मा शब्द वस्तुतः ब्रह्म शब्दसे ही निष्पन्न हुआ है। ब्रह्माकी उत्पत्तिके सन्दर्भमें कई मतवाद हैं। मनुस्मृतिके अनुसार स्वर्णके अण्डेमे ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई। रामायणके अनुसार ब्रह्माकी उत्पत्ति अन्तरिक्षसे हुई, जिससे काश्यप नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। मनु इन काश्यपके प्रपौत्र थे किन्तु पौराणिक परम्पराएँ ठीक इसके प्रतिकूल ब्रह्माकी उत्पत्ति विष्णु-नाभिसे उत्पन्न कमलसे मानती हैं। ब्रह्मा को पंचानन भी कहा जाता है। शंकरने अपने तृतीय नेत्रसे इनका एक मुख नष्ट कर दिया, तबसे ये चतुरानन हो गये। ब्रह्मा सप्तदेव समूहके लिए भी प्रयुक्त होते हैं ये क्रमशः मरीचि, अत्रि, आंगिरस्, पुलह, क्रतु, पुलस्त्य एवं वशिष्ठ हैं। स्पष्ट है ये समस्त ऋषि ही हैं। इनकी पूजाका विधान हिन्दू-परम्परासे लुप्त हो गया है। इसका कारण इनके मानस पुत्र नारदका शाप कहा जाता है। हिन्दी साहित्यमें त्रिदेवोंके साथ इनका वर्णन कवियों ने प्रायः किया है। —यो० प्र० सिं०

ब्राह्मण–यह मासिक १८८३ ई० में प्रतापनारायण मिश्रकी प्रेरणासे प्रकाशित हुआ। बारह पृष्ठके इस पत्रका वार्षिक मूल्य एक रुपया था।

हिन्दी साहित्य मण्डलीमें 'ब्राह्मण' बहुत ही प्रिय पत्र था। इसने हिन्दी गद्य-साहित्यको विकसित करनेमे बड़ा योग दिया। हिन्दी सेवाके अतिरिक्त देशभक्ति और समाज-

सुधारकी दृष्टिसे भी इसका महत्त्व है। पूरी निर्भीकता और ईमानदारीके साथ कभी-कभी बड़ी-बड़ी समस्याओं पर भी इसमें विचार किया गया।

कविता, सरस निबन्ध, उपन्यास, नाटक और आलोचना सभी कुछ इसमें प्रकाशित होता था। प्रतापनारायण मिश्रकी टिप्पणियाँ स्फूर्तिप्रद और साहसप्रदायिनी हुआ करती थीं। यह पत्र १८९४ ई० तक चलता रहा। —ह० दे० बा०

ब्यालीस लीला–ध्रुवदास रचित ग्रन्थोंके संकलित रूप को 'ब्यालीस लीला' नामसे व्यवहृत किया जाता है। यथार्थमें 'ब्यालीस लीला' किसी ग्रन्थ विशेषका नाम न होकर संकलित रूपका ही नाम है। इसकी सभी लीलाओं को 'लीला' नामसे अभिहित करना भी समीचीन नहीं है। न तो ये सब प्रकीर्ण रचनाएं ग्रन्थ कोटिमें आती हैं और न विषयको देखते हुए सभी लीला पद वाच्य होने योग्य हैं। कोई-कोई लीला तो केवल आठ दोहोंमें लिखी गयी है, अतः वह न तो ग्रन्थकी मर्यादाके अनुकूल है और न वर्ण्यकी दृष्टिसे लीला ही है। इनके साथ लीला शब्दका प्रयोग रस-पद्धतिके प्रचलित प्रयोगके कारण किया गया है। अतः इनमें किसी लीला विशेषका सन्धान नहीं करना चाहिए।

राधावल्लभ सम्प्रदायके धर्मप्रेमी व्यक्तियोंकी ओरसे अब तक तीन बार 'ब्यालीस लीला' ग्रन्थका प्रकाशन हो चुका है। यह ग्रन्थ अभी तक साम्प्रदायिक जगत्में ही पढ़ा जाता रहा। ध्रुवदासने हित हरिवंश गोस्वामीके साम्प्रदायिक मन्तव्योंको इस ग्रन्थ द्वारा बड़े विशद रूपमें सबसे पहली बार स्पष्ट करनेका प्रयत्न किया था। यथार्थमे 'ब्यालीस लीला'में संकलित अनेक ग्रन्थ हित हरिवंशके सिद्धान्तोंका उद्घाटन करनेके लिए ही लिखे गये थे। राधावल्लभ सम्प्रदायका तात्त्विक विवेचन करनेवाला इस कोटिका दूसरा ग्रन्थ सम्प्रदायमे नहीं है। एक ओर इसमे सैद्धान्तिक विवेचन है, तो दूसरी ओर व्यापक व्यावहारिक जीवन-दृष्टिका भी विस्तार है। एक ओर दान-लीला, मान-लीला वन-लीला आदि वर्णित हुई है तो दूसरी ओर प्रेमकी स्थिति, प्रेममे नेम और कामका स्थान, शृंगार और भक्ति का तारतम्य, शृंगार और माधुर्यका समन्वय आदि भी बड़ी विवेकपूर्ण शैलीमे कहा गया है।

'ब्रज माधुरी सार' और हिन्दी साहित्यके इतिहासमे पहले इन ग्रन्थोंकी संख्यामें कुछ मतभेद था किन्तु सम्प्रदाय मे इन्हें ४२ ही माना जाता है। ग्रन्थोंके नाम इस प्रकार हैं—'जीवदशा लीला, 'वैद्यकज्ञान लीला','मनशिक्षा लीला', 'वृन्दावनसत लीला', 'ख्याल हुलास लीला', 'भक्तनामावली लीला', 'बृहद्‌बावन पुराण की भाषा लीला', 'सिद्धान्त विचार लीला' (गद्यवार्ता), 'प्रीति चौवनी लीला', 'आनन्दाष्टक लीला', 'भजनाष्टक लीला', 'भजन कुण्डलिया लीला', 'भजन सत लीला', 'भजन शृंगार सत लीला', 'हित शृंगार लीला', 'सभा मण्डल लीला', 'रसमुक्तावली लीला', 'रस हीरावली लीला', 'रस रत्नावली लीला', 'प्रेमावली लीला', 'प्रियाजी नामावली लीला', 'रहस्य मंजरी लीला', 'सुख मंजरी लीला', 'रति मंजरी लीला', 'नेह मंजरी लीला','वन विहार लीला', 'रंग विहार लीला', 'रस विहार लीला', 'रंग विनोद लीला', 'आनन्द विनोद लीला', 'रहस्यलता लीला', 'आनन्द लता लीला', 'अनुराग लता लीला', 'प्रेम दशा लीला', 'रसानन्द लीला', 'ब्रज लीला', 'जुगल ध्यान लीला', 'नृत्य विलास लीला', 'मान लीला', 'दान लीला'। —वि० स्ना०

भँवरगीत–दे० 'नन्ददास'।

भक्तनामावली–ध्रुवदास रचित 'भक्तनामावली' ग्रन्थ भक्तोंका परिचय कराने वाला 'भक्तमाल' कोटिका लघु-ग्रन्थ है। इस नामावलीमे कुल १२४ भक्तोंका परिगणन किया गया है और अति सक्षेपमें भक्तके शील-स्वभावका संकेत है। जीवन वृत्त लिखनेकी ओर लेखकने ध्यान नहीं दिया। छन्दोबद्ध होनेके कारण संक्षिप्तताकी ओर ही लेखकका ध्यान रहा है। भक्तोंकी अपरिमेयताको ध्यानमे रखकर ध्रुवदासने प्रारम्भमे ही कहा है—"रसिक भक्त भूतल घनें, लघुमति क्यों कहि जाहिं। बुधि प्रमान गाये कछू जो आये उर माहिं॥" कुछ ऐसे भक्त भी इस नामावलीमे है, जो शुद्ध रसिकमार्गी नहीं है। ग्रन्थमें कुल ११४ दोहे हैं।

राधाकृष्णदासने भक्तनामावलीका सम्पादन करके काशी नागरी प्रचारिणी सभाकी ओरसे इण्डियन प्रेस, प्रयाग द्वारा सन् १९२८ ई० में प्रकाशित किया था। सम्पादन करनेमें भक्तोंका यथास्थान विवरण भी दिया गया है। ध्रुवदासजीने 'भक्तनामावली'मे कालक्रमका ध्यान रखकर भक्तोंका वर्णन नहीं किया है। पौराणिक, ऐतिहासिक और समसामयिक भक्तोंके चरित आगे पीछे करके लिखे गये हैं। जयदेव और कृष्ण चैतन्यके सम्बन्धमे लिखे हुए दो दोहे नीचे उद्धृत किये जाते हैं, जिससे ध्रुवदासकी शैलीका अनुमान किया जा सकता है—"प्रकट भयौ जयदेव मुख अद्भुत गीत गुविन्द। कह्यौ महा सिंगार रस सहित प्रेम मकरंद॥ गौड़ देस सब उद्धर्‌यौ प्रकटै कृष्ण चैतन्य। तैसेहि नित्यानन्द हू रसमय भये अनन्य॥" —वि० स्ना०

भक्तमाल–नाभादासकृत 'भक्तमाल' मध्ययुगके भक्त कवियोंका सामान्य रूपसे और रामानन्द-सम्प्रदायके भक्तोंका विशेष रूपसे परिचय उपस्थित करता है। 'भक्तमाल' मध्ययुगकी एक प्रामाणिक रचना है। समस्त वैष्णव-सम्प्रदायोंमे इसको मान्यता प्राप्त है। कहा जाता है कि इसका प्रणयन अग्रदासके आदेशसे हुआ था। नाभादासने 'भक्तमाल'के प्रारम्भमे ही अग्रदासकी इस आज्ञाका उल्लेख किया है। 'भक्तमाल' की रचना किस सन्‌मे हुई, इसका कोई संकेत नाभादासने नहीं दिया है। प्रियादासने इसकी टीका नाभादासकी इच्छासे सन् १७१२ ई० (सं० १७६९ फाल्गुन बदी ७) में की। यह टीका नाभाजीके जीवन-कालमें न हुई होगी, क्योंकि नाभाजी अग्रदास (सं० १६१२ वि०) के शिष्य तथा तुलसीके समकालीन थे। तुलसीके जीवनकालमें ही उनकी गणना प्रौढ भक्तोंमें की जाने लगी थी, अतः सन् १७१२ ई० तक जीवित रहनेके लिए उन्हें लगभग १५० वर्षकी आयु चाहिये। फिर स्वयं प्रियादासने उनके मनमे छा जानेकी प्रार्थना की है (कवित्त ६३३)। 'भक्तमाल' में सन् १६४३ ई० तकके भक्तोंका चरित्र लिखा गया है, अतः कुछ विद्वानोंका अनुमान है कि सन् १६५८ ई० के लगभग इस ग्रन्थकी

रचना हुई। इस सम्बन्धमें महावीर सिंह गहलोतने 'सम्मेलन पत्रिका'में विशेष विस्तारसे विचार किया है।

'भक्तमाल' भक्तोंके बीच इतना लोकप्रिय रहा कि उसकी अनेक टीकाएँ की गयीं, साथ ही 'भक्तमाल' की एक परम्परा भी बन गयी। इसकी टीकाओं या इस शैलीमें लिखी गयी कुछ रचनाओंके नाम इस प्रकार हैं : १. 'भक्ति रसबोधिनी टीका' (प्रियादास, सन् १७१२ ई०), २. 'भक्त उरवशी' (लाल चन्द्रदास सन् १७४३ ई०), ३. 'भक्तमाल टिप्पणी' (वैष्णवदास, १७४३ ई०), ४. 'फारसी भक्तमाल' (मुं० गुमानीलाल, सन् १८४१ ई०), ५. 'गुरुमुखी भक्तमाल' (कीर्तिसिंह, सन् १८४१ ई०), ६. 'भक्ति प्रदीप उर्दू' (तुलसीराम, १८५४ ई०), ७. 'भक्त कल्पद्रुम' (प्रतापसिंह, १९०१ ई०), ८. 'रामरसिकावली' (रघुराज सिंह, १८६४ ई०), ९. 'रसिक प्रकाश भक्तमाल' (जीवाराम, १८६८ ई०), १०. 'भक्तमाल छप्पय' (भारतेन्दु, १८८३ ई०), ११. 'रमूजे महोवफा' (तपस्वीराम, १८८७ ई०), १२. 'हरिभक्ति प्रकाशिका' (ज्वालाप्रसाद मिश्र, १८९८ ई०), १३. 'भक्तनामावली ध्रुवदास' (प्रणाधाकृष्णदास, १९०१ ई०), १४. 'अंग्रेजी भक्तमाल' (भानुप्रताप तिवारी, १९०८ ई०), १५. 'ग्लीनिग्स' (ग्रियर्सन, १९०९ ई०)। सन् १९०९ ई० में 'रूपकला'की टीका प्रकाशित हुई। सन् १९५१ ई० मे इसका तृतीय संस्करण नवलकिशोर प्रेस, लखनऊसे निकला। यह 'भक्तमाल' की सबसे सुन्दर टीका है।

'भक्तमाल'के दो भाग हैं। पूर्वार्द्धमे कलियुगके पूर्वके भक्तोंका वर्णन किया गया है। एक वर्णन एक-एक भक्तका अलग-अलग ढंगपर नहीं है, बल्कि विभिन्न निष्ठाके भक्तोंका एक साथ ही एक छप्पयमे वर्णन किया गया है। इतिहासकी दृष्टिसे उत्तरार्द्ध अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसमे चारों भक्तिसम्प्रदायोंका विस्तृत वर्णन किया गया है, साथ ही अन्य ऐसे भी भक्त, जिनका कोई सम्प्रदाय नहीं था, इस खण्डमे आ गये है। 'भक्तमाल'में रामानन्द-सम्प्रदायका पूरा-पूरा विवरण मिलता है। स्वयं नाभा भी इसी सम्प्रदायके एक भक्त थे, अतः इस सम्प्रदायके प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण मध्ययुगीन भक्तोंके नाम उन्होने गिना दिये हैं किन्तु उनकी प्रमुख-प्रमुख विशेषताओंका ही वर्णन किया गया है।

'भक्तमाल'की भाषा ब्रज है। इसमे छप्पय, दोहा आदि छन्दोंका प्रयोग किया गया है। शैली बड़ी प्रौढ़ एवं परिमार्जित है।

मध्यकालीन भक्ति-साहित्यसे सम्बद्ध विचारधारा तथा उसके प्रवर्तकों एवं अनुयायियोंकी विशिष्टताओको समझनेके लिए 'भक्तमाल'का अध्ययन आवश्यक है। 'भक्तमाल' एवं 'रसिक प्रकाश भक्तमाल' रामानन्द सम्प्रदायका पूरा इतिवृत्त प्रस्तुत करते हैं।

[सहायक ग्रन्थ—भक्तमाल-रूपकला।]—ब० ना० श्री०

भक्तवच्छावली–दे० 'मलूकदास'।

भक्ति-विवेक–दे० 'मलूकदास'।

भगवंतराय खींची–महाराज भगवन्तसिंह या भगवन्तराय खींची असोथर (जिला फतेहपुर)के निवासी थे। ये बड़े गुणाग्राही और अनेक सुकवियोंके आश्रयदाता थे। कवियोंने इनका गुण-गान वैसा ही किया, जैसा 'भूषण'ने छत्रपति शिवाजी और महाराज छत्रसालका। ये सन् १७३६ ई० में अवधके प्रथम नवाब वजीर सआदत खाँ बुहीन-उल-मुल्कसे युद्ध करते हुए वीरगतिको प्राप्त हुए। इनकी कुल दो रचनाएँ बतायी गयी है—'रामायण' और 'हनुमत-पचीसी'। 'रामायण'के सभी काण्डोंकी रचना कवित्त छन्दमें ही की गयी है। 'हनुमत पचीसी'में हनुमान्‌के शौर्य-पराक्रम एवं यशको लेकर पचीस ओजस्वी छन्द लिखे गये है। इनके अतिरिक्त 'हनुपत-पचासा' भी पाया गया है, जिसमें कुल ५२ छन्द हैं। हो सकता है, यह 'रामायण'का ही कोई न कोई अंश हो। प्राचीन संग्रह-ग्रन्थोंमें इनके शृगारके छन्द भी यहाँ-वहाँ दिखाई पड़ जाते हैं। इनकी कविता अनुप्रासमयी, ओजस्विनी एवं उत्साहपूर्ण है।

[सहायक ग्रन्थ—खो० वि० (भा० १३); शि० स०; दि० भू०; हि० सा० इ०; मि० वि०।] —रा० त्रि०

भगवत रसिक–विरक्त साधु भगवत रसिकके पूर्व आश्रम तथा जन्म स्थान, जाति, वश आदिका विवरण कहीं प्राप्त नहीं होता। ये स्वामी ललित मोहिनीदासके शिष्य बताये जाते हैं। ललित मोहिनीदास संवत् १८२३ से १८५८ तक टट्टी सस्थानकी गद्दीपर आसीन रहे, अतः इस कालमें भगवत रसिक भी जीवित थे। हिन्दी साहित्यके इतिहास ग्रन्थों तथा निम्बार्क सम्प्रदायके ग्रन्थोंमें इसी आधारपर इनका जन्म सन् १७३८ ई०में (संवत् १७९५) स्थिर किया गया है।

भगवत रसिक बहुत निर्भीक, निस्पृह, सत्यवादी और त्यागी स्वभावके महात्मा थे। ललित मोहिनीदासके निधनके उपरान्त गद्दीका अधिकार भी आपने स्वीकार नहीं किया और एकान्तमे रहकर भजनमें लीन रहते थे। इनके काव्यको पढकर दो तथ्य बड़े स्पष्ट रूपसे सामने आते हैं। एक तो इनकी वाणीमें सत्य कथनकी प्रबल शक्ति है। पाखण्ड और दम्भसे इन्हें बहुत ही चिढ थी। ये अपने साथियोको भी फटकारने और उनकी कमजोरियोंको छुड़ाने के लिए कठोर वचन कहनेमें नहीं चूकते थे। रामचन्द्र शुक्लने इन्हें सच्चा प्रेमयोगी महात्मा लिखा है। यथार्थमें इनका काव्य इसका पूरा-पूरा प्रमाण है। इनके काव्यकी दूसरी उल्लेख्य विशेषता है कला समन्वित होना। साधुओंकी वाणी प्रायः कलाविहीन और सीधा-सादी ही पायी जाती है किन्तु भगवत रसिककी वाणीमे कलाके अनुरूप अलंकार, लक्षण, व्यंजना, माधुर्य, ओज, व्यंग्य आदि सभी उपकरण प्रचुर मात्रामें उपलब्ध होते हैं। ऐसा प्रतीत होता है आपने संस्कृत काव्य-शास्त्रका विधिवत् अध्ययन करके हिन्दी-काव्य क्षेत्रमें प्रवेश किया था।

इनका एक ग्रन्थ 'अनन्य निश्चयात्मक ग्रन्थ' संवत् १९७१ में लखनऊसे प्रकाशित हुआ था। इनके १२५ पद, छप्पय, कवित्त, ८३ कुण्डलियाँ, ५२ दोहे और एक ध्यान मंजरी अभी तक उपलब्ध हुई है।

इनके पदोंमें प्रेमलक्षणा भक्तिके साथ व्यावहारिक दृष्टिसे जीवन-निर्माणके उपाय भी मिलते हैं। अर्थसंचयमे लीन लोभी मनुष्योंको सामने रखकर इन्होंने कहा है कि

"जगतमें पैसन ही की माँड़। पैसन बिना गुरुको चेला, खसमै छाँड़े राँड़।" एक कुण्डलियोंमें भी भगवत रसिकने इसका बड़ी सुन्दरताके साथ वर्णन किया है : "परमेस्वर परतीति नहिं पैमनकी परतीति।"

भगवत रसिकने साम्प्रदायिक दृष्टिसे भी बड़ी निःस्पृहता का रुख स्वीकार किया है। वे चतुःसम्प्रदायकी सीमाओंमें अपनेको बाँधना नहीं चाहते थे। उन्होंने कहा है— "आचारज ललिता सखी, रसिक हमारी छाप, नित्य किशोर उपासना, जुगल मन्त्र कौ जाप॥ नाहीं द्वैता द्वैत हरि, नहीं विशिष्टा द्वैत, बँधे नहीं मतवादमें, ईश्वर इच्छा द्वैत॥" —वि० स्ना०

भगवतशरण उपाध्याय–जन्म सन् १९१० ई० बलिया जिलेमें। संस्कृत साहित्यके कुशल अध्येता हैं। पुरातत्त्व, अनुसन्धानोंमें विशेष रुचि है। भारतके प्राचीन इतिहास का गहन अध्ययन है। प्राचीन भारतके ऐतिहासिक तथ्यों एवं भारतीय संस्कृतिपर विशेष दृष्टिकोणसे अध्ययन किया है। कुछ दिनों तक काशी हिन्दू विश्वविद्यालयकी शोध पत्रिकाके सम्पादक रहे। पुरातत्त्व विभाग, प्रयाग संग्रहालयके अध्यक्ष रहकर काफी काम किया। फिर लखनऊ संग्रहालयके भी अध्यक्ष रहे। तत्पश्चात पिलानीमें बिड़ला कालेजके प्राध्यापकके पदपर काम किया। इस समय काशी नागरी प्रचारिणी सभाके तत्त्वावधानमें प्रकाशित होनेवाले 'हिन्दी विश्वकोश'के सम्पादक मण्डलके सदस्य हैं और काशी ही में रह रहे हैं। कई बार यूरोप और अमेरिकाका भ्रमण कर चुके हैं। एशियाके देशोंमें चीनका भ्रमण किया है। संस्कृति और साहित्यके व्याख्याकारके रूपमें प्रसिद्ध हैं। आपकी १०० से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हैं।

आपने मौलिक साहित्यिक कृतित्वके रूपमें कुछ संस्करण, कुछ फीचर और कुछ निबन्धोंकी रचना की है। आपकी ख्यातिका मुख्य आधार अंग्रेजीमें लिखी पुस्तक 'इण्डिया इन कालिदास' है। कालिदासके कालके सम्बन्धमें आपका विशेष अध्ययन है।

एशिया और भारतीय संस्कृतिके व्याख्याकार और विचारकके रूपमें आप एक मान्य व्यक्ति हैं। भारतके प्राचीन इतिहास और पुरातत्त्वमें आपकी इतनी दिलचस्पी रही है कि समय-समयपर आपके स्वतन्त्र और मौलिक विचारोंसे इतिहास और संस्कृतिके सम्बन्धोंपर अच्छा प्रकाश पड़ता है। आपका गद्य भावुकतापूर्ण और आलंकारिक होता है। कहीं-कहीं यह शैली रोचक लगती है किन्तु कहीं-कहीं यह हल्कापन भी ला देती है।

आपके प्रकाशित ग्रन्थोंकी सूची इस प्रकार है :—

अंग्रेजी—'विमेन इन ऋग्वेद' (१९४१ ई०), 'इण्डिया इन कालिदास' (१९४७), 'दि एन्शेण्ट वर्ल्ड' (१९५४)। हिन्दी—'नूरजहाँ' (१९५०), 'कसौटीपर' (१९५५), 'साहित्य और कला' (१९६०), 'विश्व साहित्यकी रूपरेखा' (१९५७-५९), 'सवेरा' (१९४०), 'संघर्ष' (१९४७) 'गर्जन' (१९४०), 'विलासिनी' (१९४२), 'लाशपर' (१९४४), 'खूनके छींटे इतिहासके पन्नोंपर' (१९४९), 'बुर्जियोंके पीछे' (१९५०), 'मैंने देखा' (१९५०), 'वह दुनिया' (१९५२), 'लालचीन' (१९५३), 'कलकत्तेसे पीकिंग' (१९५४), 'सागरकी लहरोंपर' (१९५९), 'कालिदासके सुभाषित' (१९५९), 'कुछ फीचर कुछ एकांकी' (१९५९), 'इतिहास साक्षी है' (१९५९), 'कालिदासका भारत'—भाग १ और २ (१९५४), 'सांस्कृतिक निबन्ध' (१९५९), 'ठूँठा आम' (१९५९), 'कालिदास' (१९५५), 'कालिदास और उनका युग' (१९५६), 'प्राचीन भारतका इतिहास' (१९४८), 'साम्राज्योंका उत्थान-पतन' (१९५१), 'सभ्य मानवका इतिहास' (१९५१), 'भारतीय इतिहासके आलोक-स्तम्भ' (भाग १ और भाग २, १९५९), 'भारतीय समाजका ऐतिहासिक विश्लेषण' (१९५०), इतिहासके रत्न' (१९४२), 'विजयी भारत' (१९४२), 'बाल इतिहास'—भाग १ और २ (१९४२), 'सांस्कृतिक भारत' (१९५५), 'भारतकी कहानी' (१९५५), 'भारतीय संस्कृतिकी कहानी' (१९५५), 'भारतीय संस्कृतिके विस्तारकी कहानी' (१९५५), 'भारतीय चित्रकलाकी कहानी' (१९५५), 'भारतीय मूर्तिकलाकी कहानी' (१९५५), 'भारतीय नगरोंकी कहानी' (१९५७), 'भारतीय नदियोंकी कहानी' (१९५७), 'भारतीय साहित्यों की कहानी' (१९५७), 'भारतीय संगीतकी कहानी' (१९५७), 'भारतीय भवनोंकी कहानी' (१९५७), 'हमारे पड़ोसी' (१९५७), 'कितना सुन्दर देश हमारा' (१९५७), 'अंग्रेजी साहित्यका इतिहास' (१९५६), 'इतिहासके पन्ने'—भाग १ और २ (१९४८), 'मिट्टीका महत्व' (१९५६), 'गंगा गोदावरी' (१९५६), 'हमारे पहाड़' (१९५६), 'तीन द्वार सिन्धु घहराय' (१९५६), 'प्राचीन भारतके निर्माता' (१९४९), 'चन्द्रगुप्त और चाणक्य' (१९५७), 'बुद्ध वैभव' (१९५९), 'मूरत और चित्र' (१९५९), 'संगीत और नृत्य' (१९५९), 'मन्दिर और भवन' (१९५९), 'हमारे संस्कृत कवि' (१९५९), 'यह सोनेका देश' (१९५९), विश्वको एशियाकी देन' (१९५९), 'इंग्लैंडका इतिहास' (१९४५), 'कादम्बरी' (१९५४), 'भासके नाटक' (१९५४), 'मेघदूत' (१९६० ई०)। —ल० कां० व०

भगवतीचरण वर्मा–जन्म १९०३ ई०। शिक्षा बी० ए०, एल-एल० बी० तक प्रयाग विश्वविद्यालयमें। लेखन तथा पत्रकारिताके क्षेत्रमें ही प्रमुख रूपसे कार्य किया। बीच-बीचमें फिल्म तथा आकाशवाणीसे भी सम्बद्ध रहे। सम्प्रति स्वतन्त्र लेखनकी वृत्ति अपनाकर लखनऊमें रह रहे हैं।

आपने कुछ वर्ष हुए अपने सम्बन्धमें कहा था : "मैं मुख्य रूपमें उपन्यासकार हूँ, कवि नहीं—आज मेरा उपन्यासकार ही सजग रह गया है, कवितासे लगाव छूट गया है"। कोई उनसे सहमत हो या न हो, यह माने या न माने कि वे मुख्यतया उपन्यासकार हैं और कवितासे उनका लगाव छूट गया है, यह तो मानना ही पड़ेगा कि वे हिन्दीके जाने-माने उपन्यासकार हैं और यह भी कि कवितासे किसी समय उनका इतना जबरदस्त लगाव रहा होगा, तभी तो छूट गया है। उनके अधिकांश भावक यह स्वीकार न करेंगे कि सचमुच ही कवितासे वर्माजीका सम्बन्ध विच्छिन्न हो गया है, या हो सकता है। उनकी आत्माका सहज स्वर कविताका है, उनका व्यक्तित्व शायराना

अल्हड़पन, रंगीनी और मस्तीका सुथरा-सँवारा हुआ रूप है। वे किसी 'वाद' विशेषकी परिधिमें बहुत दिनोंतक गिरफ्तार नहीं रहे। यों एक-एक करके प्रायः प्रत्येक 'वाद'को उन्होंने टटोला है, देखा है, समझने-अपनानेकी चेष्टा की है पर उनकी सहज स्वातन्त्र्यप्रियता, रूमानी बैचैनी, अल्हड़पन और मस्ती, हर बार उन्हें 'वादों'की दीवारें तोड़कर बाहर निकल आनेके लिए प्रेरणा देती रही और प्रेरणाके साथ-साथ उसे कार्यान्वित करनेकी क्षमता और शक्ति भी। यही अल्हड़पन और रूमानी मस्ती आपके कृतित्वमें—वह किसी भी विधाके अन्तर्गत क्यों न हो—जहाँ एक ओर प्राण फूँक देती है, वहीं दूसरी ओर उसके शिल्प-पक्षकी ओरसे उन्हें कुछ-कुछ लापरवाह भी बना देती है। वे छन्दोबद्ध कविताके हामी हैं, उसीको कविता मानते हैं—पर यह उनकी सहज स्वातन्त्र्यप्रियताके प्रति नियतिका हल्का, मीठा-सा परिहास ही है।

भगवतीचरण वर्मा उपदेशक नहीं हैं, न विचारकके आसनपर बैठनेकी आकांक्षा ही कभी उनके मनमें उठी। वे जीवनभर सहजताके प्रति आस्थावान् रहे, जो छायावादोत्तर हिन्दी-साहित्यकी एक प्रमुख विशेषता रही। एकके बाद एक 'वाद'को ठोंक-बजाकर देखनेके बाद ज्योंही उन्हें विश्वास हुआ कि उसके साथ उनका सहज सम्बन्ध नहीं हो सकता, उसे छोड़कर गाते-झूमते, हँसते-हँसाते आगे बढ़े अपने प्रति, अपने 'अह'के प्रति उनका सहज अनुराग अक्षुण्ण बना रहा। अनेक टेढ़े-मेढ़े रास्तोंसे घुमाता हुआ उनका 'अह' उन्हें अपने सहजधर्म और सहजकर्मकी खोजमें जाने कहाँ-कहाँ ले गया। उनका साहित्यिक जीवन कवितासे—सो भी छायावादी कवितासे—आरम्भ हुआ, पर न तो वे छायावादी काव्यानुभूतिके अशरीरी आधारोंके प्रति आकर्षित हुए, न उसकी अतिशय मृदुलताको ही कभी अपना सके। इसी प्रकार अन्य 'वादो'में भी कभी पूरी तरह और चिरकालके लिए अपनेको बाँध नहीं पाये। अपने 'अह'के प्रति इतने ईमानदार सदैव रहे कि जबरन बँधनेकी कभी कोशिश नहीं की। किसी दूसरेकी मान्यताओंको बिना स्वयं उनपर विश्वास किये अपनी मान्यताएँ नहीं समझा। कहींसे विचार या दर्शन उन्होंने उधार नहीं लिया। जो थे, उससे भिन्न देखनेकी चेष्टा कभी नहीं की।

कविके रूपमें भगवतीचरण वर्माके रेडियो-रूपक 'महाकाल', 'कर्ण' और 'द्रौपदी'—जो १९५६ई०में 'त्रिपथगा'के नामसे एक संकलनके आकारमें प्रकाशित हुए हैं, उनकी विशिष्ट कृतियाँ हैं, यद्यपि उनकी प्रसिद्ध कविता 'भैंसागाड़ी'का आधुनिक हिन्दी कविताके इतिहासमे एक अपना महत्त्व है। मानववादी दृष्टिकोणके वे तत्त्व, जिनके आधार पर प्रगतिवादी काव्यधारा जानी-पहचानी जाने लगी, 'भैंसागाड़ी'मे भलीभाँति उभर कर सामने आये थे।

उनका पहला कविता-संग्रह 'मधुकण'के नामसे १९३१ ई० में प्रकाशित हुआ। तदनन्तर दो और काव्य-संग्रह 'प्रेम-संगीत' और 'मानव' निकले। इन्हें किसी 'वाद' विशेषके अन्तर्गत मानना गलत है। यों रूमानी मस्ती, नियतिवाद, प्रगतिवाद, अन्ततः मानववाद इनकी विशिष्टता है ही, पर वर्माजीका संगीत वीणा या सितारका नहीं, हार्मोनियमका संगीत है, उससे गमककी माँग करना ज्यादती है।

पर भगवतीचरण वर्मा मुख्यतया उपन्यासकार हों या कवि, नाम उनका उपन्यासकारके रूपमें ही अधिक हुआ है—सो भी विशेषतया 'चित्रलेखा'के कारण। 'तीन वर्ष' नयी सभ्यताकी चकाचौंधसे पथभ्रष्ट युवककी मानसिक व्यथाकी कहानी है। इसमें और 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' आदि बादके उपन्यासोंमें, इनका प्रकृतवादी और मानववादी रूप उभरकर आगे आता है। 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' में राजनीतिक और सामाजिक पृष्ठभूमिमे प्रायः यन्त्रवत् परिचालित पात्रोंके माध्यमसे लेखक यह दिखानेकी चेष्टा करता है कि समाजकी दृष्टिमें ऊँची और उदात्त जान पड़नेवाली भावनाओंके पीछे जो प्रेरणाएँ हैं, वे और कुछ नहीं केवल अत्यन्त सामान्य स्वार्थपरता और लोभकी अधम मनोवृत्तियोंकी ही देन है। 'आखिरी दाँव' एक जुआरीके असफल प्रेमकी कथा है और 'अपने खिलौने' (१९५७ ई०) नयी दिल्लीकी 'मॉडर्न सोसायटी' पर व्यंग्य-शरवर्षण है। इनका बृहत्तम और सर्वाधिक सफल उपन्यास 'भूले-बिसरे चित्र' है, जिसमें अनुभूति और संवेदनाकी कलात्मक सत्यताके साथ उन्होंने तीन पीढ़ियोंका, भारतके स्वातन्त्र्य-आन्दोलनके तीन युगोंकी पृष्ठभूमिमे मार्मिक चित्रण किया है।

भगवती चरण वर्माकी अन्य कृतियोंमे उल्लेखनीय हैं: 'इन्स्टालमेण्ट', 'दो बाँके' तथा 'राख और चिनगारी' (कहानी-संग्रह, १९५३ ई०), 'रुपया तुम्हे खा गया' (नाटक, १९५५ ई०), 'वासवदत्ता' (सिनारियो) आदि। —बा० कृ० रा०

भगवतीप्रसाद वाजपेयी—जन्म कानपुर जिलेके मंगलपुर ग्राममे सन् १८९९ ई० में। नियमित शिक्षा उन्हें मिडिल स्कूल तक ही मिल सकी। उसके पश्चात माता-पिता आदि की मृत्यु हो जानेके कारण परिवारका बोझ आपके सरपर आ गया। अमृतलाल नागरके शब्दोंमें "आवश्यकतावश घरकी गाय, भैंस, बकरियाँ चरायी, खलिहानोंमे दायँ और उडनईका काम किया, पैसोंकी थैली लादकर गाँवकी साहूकारी की, उसके बाद गाँवके प्राइमरी स्कूलकी अध्यापकी की, शहरकी लाइब्रेरीमें पन्द्रह रुपये मासिकपर लाइब्रेरियन रहे, किताबोंका गठ्ठर कन्धेपर लादकर बेचा, बीबीके गहने बेचकर दूकानदार बने, चोरी हो गयी, बैंक की खजांचीगीरीके अप्रेन्टिस हुए; कम्पाउण्डर बने; प्रूफरीडर बने; सहकारी सम्पादक हुए; फिर सम्पादक बने ..." (भ० प्र० बाजपेयी अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० २६)। बाजपेयीजी फिल्मोंकी दुनियामें भी अपना जोर आजमा चुके हैं तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी साहित्यपरिषद्के सभापति भी रहे हैं।

वाजपेयीजीका लेखनकार्य सन् १९२० ई० के आस-पाससे प्रारम्भ होता है। प्रारम्भमें उन्होंने कविताएँ लिखीं थीं। १९२२ ई० में जबलपुरकी 'श्रीशारदा' नामक पत्रिकामें उनकी पहली कहानी 'यमुना' प्रकाशित हुई थी। तबसे उनका मुख्य प्रदेय कथा-साहित्यके क्षेत्रमें रहा है, यद्यपि

अन्य विधाओंमें भी वे बराबर लिखते रहे। कहानीसंग्रहों और उपन्यासोंके अतिरिक्त उनके काव्य-संग्रह और नाटक भी प्रकाशित हो चुके हैं। उनके २७ उपन्यासों, ११ कहानी संग्रहों, दो नाटकों एवं एक कवितासंग्रहकी सूची इस प्रकार है—उपन्यास : 'प्रेमपथ', 'मीठी चुटकी', 'अनाथ पत्नी', 'त्यागमयी', 'नियतिन' (प्रेम निर्वाह), 'लालिमा'; 'पतिताकी साधना', 'पिपासा', 'दो बहनें' (१९४० ई०), 'निमन्त्रण', 'एकदा' (गुप्तधनका परिवर्द्धित रूप), 'चलते-चलते' (१९५१ ई०), 'पतवार' (१९५२ ई०), 'मनुष्य और देवता', 'धरतीकी साँस', 'भूदान' (१९५४ ई०), 'यथार्थसे आगे', 'विश्वासका बल' (१९५५ ई०), 'सूनी राह' (१९५६ ई०), 'रात और प्रभात', 'उनसे न कहना', 'चन्दन पानी', 'निरन्तर गोमतीके तट पर', 'सावन बीता जाय', 'हिरनीकी आँखें', 'पाषाणकी लोच', 'उनसे कह देना'। इनमेंसे 'मीठी चुटकी'को उन्होंने शम्भूदयाल सक्सेना एवं विजय वर्माके साथ तथा 'लालिमा'को प्रफुल्लचन्द्र ओझाके साथ सयुक्त रूपसे लिखा है। कहानीसंग्रह : 'मधुपर्क', 'हिलोर', 'पुष्करिणी', 'दीपमालिका', 'मेरे सपने', 'उपहार', 'उतार चढाव', 'खाली बोतल', 'आदान प्रदान', 'अगारे', 'स्नेह', 'बाती और लौ'। नाटक : 'छलना', और 'राय पिथौरा'। कविता सग्रह : 'ओसकी बूँदें'। इनके अतिरिक्त वाजपेयीजी द्वारा सम्पादित निम्न संकलन भी प्रकाशित हुए हैं : 'हिन्दीकी प्रतिनिधि कहानियाँ', 'नव कथा युगारम्भ' और 'नवीन पद्य-संग्रह'। 'उर्म्मि', 'आरती' आदि पत्रिकाओंका सम्पादन भी उन्होंने किया है तथा उनकी बालोपयोगी ८ पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं।

सयोगों एवं घटनाओंका अपेक्षाकृत अधिक सहारा लेनेवाली उनकी प्रारम्भिक कहानियोंमे एकसूत्रता एवं इतिवृत्तात्मकता अधिक है। आगे चलकर सन् १९३०-'३२ई०के आसपासमे उनकी कहानियोंमें इतिवृत्तात्मकताके स्थानपर विश्लेषण एवं आकलनपर अधिक ध्यान दिया गया है। इस कारण कथासूत्रका निर्माण अधिक चामत्कारिक होने लगा। सन् '४० के लगभग उनकी कहानियोंमे शिल्पका एक नया विकास प्राप्त होता है। अब इतिवृत्तात्मकताको एकदम छोड़कर छोटे-छोटे घटनाखण्डों, चिन्तन एव स्मृति-अंशोंके बीचमे कथा-सूत्रको नियोजित करनेका प्रयास प्राप्त होता है। शैलीकी दृष्टिसे उन्होंने वर्णनात्मक, स्वगत कथन, पत्रात्मक एवं डायरी शैली आदि अनेक विधियोंका प्रयोग किया है। कहानियोंका ही समवर्ती विकास उनके उपन्यासोंमे भी देखा जा जा सकता है।

प्रेमचन्दके बाद उभरकर आनेवाली पीढ़ीके मुक्त कथाकार हैं। इस पीढ़ीने प्रेमचन्दके व्यापक सामाजिक चित्रोंके स्थानपर व्यक्ति (मध्यवर्गीय) मनके गहन चित्रणपर अधिक बल दिया था। वाजपेयीजीने सामाजिक उद्देश्योंकी अपेक्षा मध्यवर्गीय मनके विविध ऊहापोह उपस्थित किये हैं। वे हमारे प्रारम्भिक मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासकारोंमेंसे हैं। इस सम्बन्धमें यह भी ध्यान देने योग्य है कि उनका मनोविश्लेषण अकादमी कम, व्यावहारिक अधिक है। इस युगमें नारी कुछ शिक्षित होकर स्वतन्त्र हो चली थी—ऐसी स्थितिमे प्रेम, विवाह एवं यौन-नैतिकताके अनेक प्रश्न समाजको क्षुब्ध करने लगे थे। मध्यवर्गकी इन आकांक्षाओं एवं कुण्ठाओंके चित्रणमें वाजपेयीजी अत्यधिक तटस्थ रह सके हैं, यह उनकी कलागत शक्तिका प्रमाण है परन्तु इस चित्रणका जो परिप्रेक्ष्य है, वह शरतचन्द्रीय आदर्शवाद है—इसी कारण निराश-प्रेमकी वेदनाको वे अत्यधिक स्फीत करके उपस्थित कर सके हैं।

उनके प्रौढ उपन्यासों एवं कहानियोंमें घटना, चरित्र या दृश्यको कुछ ही रेखाओंमें चित्रित कर देनेकी शक्ति प्राप्त होती है। उनमें उनकी भाषा अत्यधिक प्रासंगिक एवं सहजप्रवाहमयी है। धीरे-धीरे वार्द्धक्यके साथ ही वाजपेयीजीमें रोमाण्टिक वृत्तिका मोह अतिरिक्त रूपसे सघन होता दिखाई देता है। 'चलते-चलते'के प्रकाशन (सन् १९५१ ई०) के बाद यह मोह उनके कृतित्वको आच्छन्न करता प्रतीत होता है। इसके बादके उपन्यासोंमें प्रेमका वही शाश्वत त्रिकोण एवं लगातार अति काव्यात्मकताकी ओर बढती भाषा इन्हे शिथिल बनाती है। वे प्रेमके प्रश्नोंको नये सन्दर्भमें प्रतिष्ठित नहीं कर सके। नाटक एवं कविताओंमे भी उनके कथासाहित्यकी ही हलकी अनुगूँज है पर उन क्षेत्रोंमे वे बहुत सफल नहीं हुए। वास्तवमें सन् १९३० से १९५० ई० के बीच लिखा उनका कथा-साहित्य ही उनकी प्रसिद्धिका आधार है। मनोवैज्ञानिक कथाकारके रूपमें मध्यवर्गीय जीवनकी मनःस्थितियाँ इस युगके उपन्यासोंमे चित्रित कर उन्होंने हिन्दी कथा-साहित्यको निश्चित रूपमे आगे बढ़ाया है। —दे० शं० अ०

भगवान्दास (डाक्टर)—जन्म उत्तर प्रदेशके वाराणसी नगरमें १२ जनवरी १८६९ ई०। देहान्त भी उसी तीर्थस्थानमे १७ सितम्बर, १९५८ ई०। उनका कार्यक्षेत्र सदा काशी ही रहा। आपका जन्म बड़े ही सम्पन्न और प्रतिष्ठित घरमे हुआ था। एम० ए० अठारह वर्षकी अवस्थामें पास हुए थे। कुछ दिनोंतक डिप्टी कलेक्टर भी रहे। उनके अध्ययन और लेखनकी परिधि बडी व्यापक थी। समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, वैदिक तथा पौराणिक वाङ्मयपर इनके ग्रन्थोंने साहित्यमें मौलिक चिन्तनका स्तर ऊँचा किया है। आरम्भसे ही इनका सम्बन्ध थियोसाफिकल सोसायटीसे रहा और श्रीमती एनी बेसेण्टके वर्षोंतक वे निजी सचिव रहे। इस सोसाइटीके सिद्धान्तोंमें, जिनका मूलाधार समन्वयवाद है, उनकी गहरी आस्था हो गयी। विचारोंकी इसी आस्था, मनन और चिन्तनका परिष्कृत रूप हमें उनके 'समन्वय' नामक ग्रन्थमें मिलता है। भगवान्दासजी सारे विश्वमें समन्वय देखते थे और इस भावनाको सभी पदार्थों तथा प्राणियोंमें व्याप्त समझते थे। समन्वय प्राप्त करनेके मुख्य उपायकी चर्चा करते हुए उन्होंने कहा है : "विचारके विषयमे यह प्रसिद्ध है कि सब प्रकारके आस्तिक दर्शन और सब प्रकारके नास्तिक दर्शन इस वेद-वेदांग-वेदोपांग-वेदान्त-रूपी ज्ञानसागरमें भरे हैं। जब यह सिद्धान्त है कि सर्वव्यापक परमात्मा की, परमेश्वर की, चेतनामें, उसीकी इच्छासे, सब कुछ है, तो इन विविध विचारोंको भी उसीने जगत्में स्थान दिया है, यह भी निश्चयेन होगा।"

डा० भगवान्दास जीवन भर विद्यार्थी, अनुसन्धान-कर्ता और लेखक रहे किन्तु राजनीतिसे भी पृथक् नहीं रह सके। कांग्रेसके असहयोग आन्दोलनमें उन्होंने सक्रिय भाग लिया। कई वर्षतक केन्द्रीय विधानसभाके सदस्य रहे। हिन्दीके प्रति अनुराग होनेके कारण साहित्यिक संस्थाओंको भी पूरा सहयोग देते रहे। काशी विद्यापीठ, काशी नागरी प्रचारिणी सभा और हिन्दी साहित्य सम्मेलन-से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। सन् १९२० ई० में सम्मेलनके कलकत्ता अधिवेशनके सभापति भी रहे। भारतीय हरिजन सम्मेलन और भारतीय संस्कृति सम्मेलनके भी अध्यक्ष हुए थे। संस्कृत, अरबी, फारसी, अंग्रेजी और हिन्दीके विद्वान् थे अतः उनके साहित्यमे सभी भाषाओंके ज्ञानका समन्वय हुआ है और विषय-सामग्रीकी बहुलताने उसे समग्रता प्रदान की है। राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक विषयोंपर वे जो कुछ लिखते थे, उसपर उन क्षेत्रोंके नेताओंका ध्यान आकर्षित होता था और उन विषयोंका सुलझा हुआ निदान भी सुलभ हो जाता था। शास्त्रीय विवेचनोंसे भरे उनके लेख और भाषण भी बड़े सुबोध होते थे। 'जन्मना-कर्मणा-ब्राह्मण' विषयपर 'आज' में उन्होंने वर्णाश्रमधर्मसम्बन्धी कई लेख लिखे थे, जो बड़े-बड़े पण्डितोंको भी चकित करनेवाले थे। अंग्रेजीमे तो उनका बृहत् दार्शनिक ग्रन्थ प्रसिद्ध ही है, हिन्दीमें भी 'दर्शनका प्रयोजन' अपने ढंगका अकेला है। 'समन्वय' उनकी सबसे प्रथम कृति है। आपका लिखा हुआ 'पुरुषार्थ' बहुत ही लोकप्रिय ग्रन्थ है।

आपकी शैली विचारप्रधान है। आपके विचारोंका सहज प्रवाह दार्शनिकताकी ओर है। आपकी रचनाओंके कारण हिन्दीका क्षेत्र व्यापक हुआ है और भाषाको दार्शनिक तथा तात्त्विक विषयोंके चिन्तन तथा विवेचनकी क्षमता मिली है। —ज्ञा० द०

भगवानदीन (लाला)—उपनाम 'दीन'। जन्म अगस्त, १८६६ ई०, बरबट, जिला फतेहपुरमे। मृत्यु जुलाई, १९३० ई०। वे ग्यारह वर्ष तक अपनी जन्मभूमिमे ही रहकर उर्दू और फारसी पढ़ते रहे। बादमें फारसीका विशेष अध्ययन किया। हिन्दीका अध्ययन घर पर ही किया। फतेहपुरमें कुल सात वर्ष पढ़े। २४ वर्षकी अवस्थामें एन्ट्रेन्स-की परीक्षा उत्तीर्ण की। बादमे कायस्थ पाठशाला, प्रयाग और म्योर सेन्ट्रल कॉलेजमें भी शिक्षा ग्रहण की किन्तु बी० ए० न कर सके।

इसके बाद छतरपुरमें अध्यापक हुए और उक्त पद पर सन् १८९४ से १९०७ ई० तक रहे। फिर काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमें अध्यापक हुए। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', रामचन्द्र शुक्ल, श्यामसुन्दरदास उनके सहयोगी थे। वे नागरी प्रचारिणी सभाके शब्द-कोश विभागमे भी कई वर्ष तक रहे।

छतरपुरमें रहते हुए 'कविसमाज' और 'काव्यलता' नाम की दो संस्थाएँ स्थापित कीं। इसके साथ ही साथ भारती-भवन नामक पुस्तकालय खोला। १९०५ ई० में 'लक्ष्मी उपदेश लहरी'के सम्पादक भी रहे।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमें वे केशवदास और बिहारीके मुख्य अध्यापक थे। इन्हींके अध्यापनमें उन्हें आनन्द भी आता था। आपने कविताओं और निबन्धके अतिरिक्त वीरोंके चरित्र भी लिखे। 'रामचन्द्रिका', 'कविप्रिया', 'रसिकप्रिया', 'कवितावली' और 'बिहारी सतसई'पर विद्वत्ता एवं भावुकता-पूर्ण टीकाएँ लिखीं। 'दीन'जीके कई काव्य-संग्रह प्रकाशित है, जिनके नाम हैं—'नवीन बीन', 'नदीमें दीन'(नदीम-ए-दीन)। इनके सवैये बड़े ही मोहक हैं। 'वीरपंचरत्न' पद्यग्रन्थ वीर-रसकी सुन्दर पुस्तक है। ये खड़ीबोली और ब्रजभाषा दोनोंमें लिखते थे। कभी-कभी उर्दू छन्दोंका भी प्रयोग करते थे।

छायावादकी रूमानी भावधाराको वे इतना हेय समझते थे कि मजाक-मजाकमें वे उसे 'छोकरावाद' कहते थे। उन्होंने आलोचनाके लिए व्याख्यात्मक समीक्षाकी प्राचीन पद्धति अपनायी।

लालाजीने एक अलंकारग्रन्थ तथा एक शब्दशक्तिसम्बन्धी ग्रन्थका भी प्रणयन किया है। अलंकारग्रन्थ है—'अलंकार मंजूषा'। इसमें १० शब्दालंकारों और १०८ अर्थालंकारोंका अत्यन्त सरल एवं सुगम शैलीमे विवेचन किया गया है। प्रत्येक अलंकारके कई उदाहरण दिये गये हैं और कहीं-कहीं आवश्यकता पड़ने पर विशद व्याख्या भी की गयी है। उर्दू-फारसीके भी उदाहरण दिये गये हैं। यह भी बताने का प्रयत्न किया गया है कि किस अलंकारका अधिक और सफल प्रयोग किस कविने किया है। शब्दशक्तिसम्बन्धी ग्रन्थ है—'व्यंग्यार्थमंजूषा'। इसमें शब्दशक्तियोंका अपनी दृष्टिसे अच्छा विवेचन किया गया है। —ह०दे० बा०

भगवानदास केला—जन्म १८९० ई०में हुआ। हिन्दी माध्यमसे विभिन्न उपयोगी विषयोंपर लिखने वालोंमे आप का नाम प्रमुख है। अर्थशास्त्र और राजनीतिके क्षेत्रमें आपने विशेष रूपसे कार्य किया। कुल मिलाकर आपकी ७३ पुस्तकें हैं। १९५७ ई० में आपका देहान्त हुआ। प्रमुख कृतियाँ—'भारतीय शासन' (१९१५ई०), 'भारतीय चिन्तन' (१९२३ ई०), 'भारतीय अर्थशास्त्र' (१९२४ ई०), 'अपराध चिकित्सा' (१९३६ ई०), 'सर्वोदय अर्थशास्त्र' (१९५२ ई०), 'मानव संस्कृति' (१९५६ ई०)। —सं०

भगीरथ—सूर्यवंशी राजा अंशुमान्के पौत्र तथा दिलीपके पुत्र भगीरथ अपने साठ सहस्र पूर्वजोंको तारनेके उद्देश्यसे अल्पायुमे ही तपस्या करनेके लिए निकल गये थे। एक हजार वर्षतक तपस्या करनेके उपरान्त ब्रह्माने इनसे प्रसन्न होकर वर मांगनेको कहा। फलस्वरूप भगीरथने दो वर-दान मांगे। प्रथम तो यह कि कपिलके शापसे भस्म हमारे पूर्वज गंगाकी धारसे तरें और द्वितीय मेरा वंश चले। गंगाकी तीव्र धाराको पृथ्वीपर लानेके लिए उसे पहले मन्दगति करना था, अन्यथा पृथ्वी जलमग्न हो जाती। अतएव धाराको रोकनेके लिए शिवकी तपस्या करके उन्हें प्रसन्न किया। अन्तमें वे अपने सतत यत्नोंसे गंगाको पृथ्वी पर लानेमे समर्थ हुए (द्र० 'गंगावतरण': जगन्नाथदास 'रत्नाकर')। शंकर गंगाके गर्वको चूर्ण करनेके लिए एक हजार वर्षों तक उन्हें अपनी जटाओंमें बन्द किये रहे। अन्तमें भगीरथकी प्रार्थनापर उन्हें जटासे निकाला। गंगा तीव्र धार होकर बहीं। राजा भगीरथ दिव्य रथमे

सवार हो आगे-आगे पथ-प्रदर्शनका कार्य कर रहे थे। इसीलिए गंगाको भागीरथी कहा जाता है। भगीरथकी एकाग्रता और लगनको दृष्टिमें रखकर 'भगीरथ यत्न' नामक मुहावरा भी प्रचलित है। —रा० कु०

भगीरथ मिश्र–जन्म १९१४ ई०में सैंठा (जिला-कानपुर) में। शिक्षा (एम० ए०, पी-एच० डी०) लखनऊमें। कुछ वर्षों तक वहाँ अध्यापन करनेके बाद अब आप पूना विश्वविद्यालयमें हिन्दी विभागके अध्यक्ष हैं। हिन्दी रीतिकाल तथा काव्य-शास्त्रके विशेषज्ञोंमें आपका नाम प्रमुख है। इस क्षेत्रमें 'हिन्दी काव्य-शास्त्रका इतिहास' (१९४५ ई०) आपकी उल्लेखनीय रचना है। —सं०

भदंत आनंद कोसल्यायन–बौद्ध भिक्षु। जन्म १९०५ ई०में हुआ। हिन्दी साहित्य सम्मेलन तथा हिन्दी भाषा और साहित्यके प्रचारकार्यसे घनिष्ठ रूपमें सम्बद्ध रहे। दो संस्मरण ग्रन्थ भी प्रकाशित किये हैं—'जो न भूल सका' (१९४५ ई०) तथा 'रेलका टिकट'। —सं०

भरत–रामकथाके पात्रोंमें भरतका स्थान महत्त्वपूर्ण है। उनकी चारित्रिक एकनिष्ठता ही उनके महत्त्वका कारण है। यही आदर्श-निष्ठा सम्पूर्ण राम-कथाको दुःखान्त होनेसे बचा लेती है। इस प्रकार वाल्मीकि-रामायणसे लेकर 'साकेत सन्त' तक उनका चरित्र निरन्तर उज्ज्वल मिलता है।

साधारणतया रामकथाके अन्य पात्रोंकी भाँति भरतका सर्वप्रथम उल्लेख वाल्मीकिरामायण एवं महाभारतमें प्राप्त होता है। रामायणके दाक्षिणात्य पाठके अनुसार वे लक्ष्मणके अनुज थे। इस प्रकारके संकेत अन्यत्र भी उपलब्ध हो जाते हैं, जैसे—'उत्तर पुराण', भासकृत 'प्रतिभा नाटक' तथा 'दशरथ जातकके अनुसार इस परम्पराका अनुमोदन होता है किन्तु वाल्मीकीय रामायणके शेष दो पाठों, उससे सम्बद्ध परम्पराओं, पुराणों, संस्कृतके ललित-काव्योंके अनुसार भरत ही अग्रज ठहरते हैं।

अवतारवादकी प्रतिष्ठा हो जानेपर भरतके विषयमें ब्रह्माके अंशांशिभावकी कल्पना कर ली गयी। सर्वप्रथम 'उदार राघव'में भरतको विष्णुके सुदर्शन चक्रका अवतार कहा गया। 'अद्‌भुत रामायण'में विष्णुकी दाहिनी बाँहको भरत एवं बाईंको शत्रुघ्न कहकर पुकारा गया। 'नारद पुराण'में भरतके 'प्रद्युम्न'के अवताररूपमें प्रकट होनेकी कथा मिलती है। निष्कर्षतः रामावतारके साथ परवर्ती काव्य एवं पुराण—साहित्यमें उनके अन्य भ्राताओंके अवतारकी भी चर्चा चल पड़ी। ठीक यही परम्परा 'रामचरित मानस'तक आती है।

भरतका चरित्र वाल्मीकि-रामायणमें अपनी गरिमाके लिए प्रसिद्ध रहा है। निश्चय ही दशरथ द्वारा राज्यके अधिकारीके रूपमें मनोनीत होनेपर भरत मर्यादा, आदर्श एवं भ्रातृप्रेमके वशीभूत होकर न केवल उसका तिरस्कार ही करते हैं, अपितु ऐसी वांछा करनेवाली अपनी माँ कैकेयीको धिक्कारते भी हैं। इस दृष्टिसे वाल्मीकि-रामायणमें उनकी राज्य एवं रामसम्बन्धी मनोवृत्तियाँ स्पष्ट रूपसे चित्रित की गयी हैं। संस्कृतके ललित साहित्यमें भरतका चरित्र पूर्णतः वाल्मीकि-रामायण द्वारा ही अनुमोदित है। प्राप्य सूचनाओंके अनुसार तत्कालीन ललित साहित्यमें भरतके चरित्रको निर्दिष्ट कर लिखी गयी किसी स्वतन्त्र कृतिका उल्लेख नहीं मिलता।

हिन्दी साहित्यमें सर्वप्रथम 'पउम-चरिउ' (स्वयंभू)में भरतके वाल्मीकि द्वारा निर्दिष्ट चरित्रका स्पष्ट ललित वर्णन प्राप्त होता है किन्तु स्वतन्त्र रूपसे वह ईश्वरदास-कृत 'भरत मिलाप'में उपलब्ध हो सका है। भरतके चरित्र का करुण पक्ष इस लघु-काव्यका वर्ण्य-विषय है। इस दिशामें तुलसीदासप्रणीत 'भरत मिलाप' कृतिका भी स्वतन्त्र रूपसे उल्लेख मिलता है। 'मानस' एवं 'गीतावली'में निर्दिष्ट तुलसीदास द्वारा भरतके जिस निर्मल चरित्रकी उद्भावना की गयी है, उसमे भरतके प्रति कविकी सहानुभूतिका स्पष्ट संकेत मिल जाता है। तुलसीदास भरतके चरित्रके साथ इतना अधिक एकात्म्य स्थापित कर लेते हैं कि स्वतः भरतकी प्रेम-निष्ठा कविकी आत्मकथा बन जाती है। भरतकी आदर्श-भक्ति मानसकारको सदा प्रिय रही है। अस्तु 'चातक वृत्ति' को 'भरतवृत्ति' एवं 'भरतवृत्ति'को वह 'तुलसी वृत्ति'की संज्ञा अनेक स्थानोंपर देता है। इसके साथ-साथ नैतिकता, आदर्श, भ्रातृप्रेम, उनके व्यक्तित्वके मुख्य अंश हैं किन्तु 'मानस'में उनके चरित्रका सर्वप्रमुख अंग भक्ति ही है।

आधुनिक युगमें भरतके चरित्रको निर्मलतम बनानेके लिए अनेकानेक प्रयत्न किये गये हैं। सर्वप्रथम साकेतकार युगानुकूल जनवाणी देनेके लिए भरत एवं रामका चित्रकूट-संवाद प्रस्तुत करता है। भरतकी तार्किक वाणीसे राम उनके हृदयकी निर्मलता स्वीकार कर किंचित् पश्चात्ताप प्रकट करते हैं। इस प्रकार भरतका चरित्र सम्पूर्ण 'साकेत'मे भ्रातृप्रेमकी निष्ठापूर्ण गरिमासे मण्डित है। उनके साधु-चरित्रको अधिकाधिक विकसित करनेका प्रयत्न पं० बलदेवप्रसाद मिश्रने 'साकेत सन्त'के माध्यमसे किया है। तुलसीदास द्वारा संकेतित विषयक्रमोंको नवीन सन्दर्भ देकर मिश्रजीने भरतको भारतीय संस्कृतिका आदर्श प्रतीक बना दिया है। निश्चय ही इसमें कविको अधिकाधिक सफलता मिली है।

[सहायक ग्रन्थ—रामकथा : डा० कामिल बुल्के, हिन्दी परिषद्, विश्वविद्यालय इलाहाबाद; तुलसीदास : डा० माताप्रसाद गुप्त, हिन्दी परिषद्, विश्वविद्यालय इलाहाबाद।] —यो० प्र० सिं०

भरथरी–राजा भरथरीकी लोकगाथा सारंगी बजाकर भिक्षाकी याचना करनेवाले जोगियों द्वारा बड़े प्रेमसे गायी जाती है। ये जोगी इस गाथाको गाकर किसीको पूरा नही लिखाते। उनका विश्वास है कि इस सम्पूर्ण गाथाको लिखने तथा लिखानेवाले दोनों व्यक्तियोंका सर्वनाश हो जाता है। संस्कृतके सुप्रसिद्ध कवि राजा भर्तृहरिको कौन नहीं जानता, जिन्होंने शृंगार, नीति तथा वैराग्य-शतकोंकी रचना कर अमरता प्राप्त की है। लोकगीतोंमे वर्णित भरथरी तथा राजा भर्तृहरि, दोनो एक ही व्यक्ति है, यह कहना कठिन है परन्तु दोनोंके कथानकोंमें बहुत कुछ साम्य है। भरथरीकी कथा संक्षेपमें इस प्रकार है—

उज्जैनमें राजा इन्द्रसेन राज्य करते थे, जिनके लड़के

का नाम चन्द्रसेन था। भरथरी इन्हींके पुत्र थे। इनकी माताका नाम रूपदेई और स्त्रीका नाम सामदेई था, जो सिंहल द्वीपकी राजकुमारी थी। विवाहके पश्चात् जब भरथरी शयनकक्षमें गये, तब उन्होंने अपनी खाटको टूटा पाया तथा इसका कारण अपनी स्त्रीसे पूछा, जिसका सन्तोषजनक उत्तर वह न दे सकी।...संसारकी झंझटोंसे ऊबकर भरथरी गुरु गोरखनाथके चेला बन जाते हैं, परन्तु सन्यास धर्ममें दीक्षित होनेके पहले अपनी स्त्रीसे भिक्षा माँगकर लाना उनके लिए आवश्यक था। वे भिक्षाकी याचना करनेके लिए अपने घर गये। सामदेईने यह पहचानकर कि भिक्षुक अन्य कोई व्यक्ति नहीं, बल्कि मेरा पति ही है, भिक्षा देना पहले अस्वीकार कर दिया, परन्तु बहुत अनुनय-विनयके पश्चात् इस प्रार्थनाको स्वीकार कर लिया।

भरथरीने गोरखनाथसे दीक्षा ग्रहणकर कामरूप (आसाम) देशकी यात्रा की। इस प्रकार वे अन्त तक भ्रमण करते हुए यति-धर्मका पालन करते रहे।

भरथरीकी लोकगाथा भी कुछ कम प्रचलित नही है। उत्तरप्रदेशके पूर्वी जिलोंमे नागपन्थी जोगी, जिन्हे 'साईं' भी कहते हैं, सारंगी बजाकर इस गीतको गाते फिरते है। भरथरीकी गाथामें गोपीचन्दके समसामयिक होनेका उल्लेख पाया जाता है परन्तु ऐतिहासिक दृष्टिसे दोनोंके समयमें बड़ा ही अन्तर है। लोकगाथाओंमे गोपीचन्द तथा भरथरी, दोनों ही गोरखनाथके शिष्य बतलाये गये हैं। सम्भवतः इसीके आधारपर दोनोंके समसामायिक होनेकी कल्पना की गयी हो।

भरथरीकी गाथामे श्रृंगार तथा करुण दोनों रसोंका पुट पाया जाता है। जब राजा भरथरी अपनी स्त्रीसे भिक्षा माँग रहे हैं, उस समयका दृश्य बडा मनमोहक है। कहीं-कहीं शान्त रसकी छटा भी देखनेको मिलती है। लोकगाथा साहित्यमे इस गाथाका विशेष स्थान है। —कृ० दे० उ०

भरमी–इनके विषयमे निश्चित कुछ भी ज्ञात नही है। शिवसिंहने इनके एक नीति-विषयक छप्पयको 'सरोज'मे स्थान दिया है, इससे ज्ञात होता है कि ये नीतिके कवि रहे है। शिवसिंहने इनका उपस्थिति-काल १६४९ ई० माना है। ग्रियर्सन इसे उपस्थिति-काल और मिश्रबन्धु रचना-काल मानते हैं। 'कालिदास हजारा'में इनके छन्द संकलित है, इससे इनको १७ वीं शताब्दीके उत्तरार्द्धका कवि मानना चाहिए। 'दि० भू०' में गोकुल कविने इनके नख-शिखसम्बन्धी चार छन्द उदाहृत किये है। इस प्रकार भरमी रीतिकालीन परम्पराके श्रृंगारी कवि ही जान पड़ते हैं।

[सहायक ग्रन्थ—शि० स०; दि० भू०।] —सं०

भर्तृहरि–प्रायः अनुमान है कि छठी शताब्दीके नीति, वैराग्य और श्रृंगारशतकोंके प्रणेता महाराज भर्तृहरि ही सिद्ध भर्तृहरि थे, परन्तु सिद्धोंकी परम्परा पर विचार करते भर्तृहरिका समय ११ वीं शताब्दीके पूर्व नहीं पहुँचता। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदीका अनुमान है कि महाराज भर्तृहरिने अपने शतकत्रयके अतिरिक्त लोकभाषामे भी कुछ पद लिखे थे, वही कालान्तरमें बदलते हुए सिद्धोंकी बानियों-में सम्मिलित हो गये। 'नाथ सिद्धोंकी बानियाँ'में वैराग्य-शतकके कई श्लोकोंका भ्रष्ट रूपान्तर भी पाया जाता है। विक्रम और उनके मन्त्रीसे भर्तृहरिकी वार्तासे भी उनकी प्राचीनताका संकेत मिलता है। दूसरी ओर भर्तृहरिके पदों-में गोरखनाथका गुरुके रूपमें स्पष्ट उल्लेख है। पेशावरके रतननाथका भर्तृहरिके शिष्यके रूपमें उल्लेख हुआ है। इससे अनुमान होता है कि भर्तृहरिका काल १३ वीं शताब्दी के आस-पास मानना उचित है। 'वर्णरत्नाकर'की सूचीमें इनका नाम लगभग अन्तमें आता है। ऐसा जान पड़ता है कि छठीं शताब्दीके महाराज भर्तृहरिसे सम्बद्ध लोक-कथाओं तथा लोकगीतोमें वर्णित उनका चमत्कारपूर्ण व्यक्तित्व १३ वीं शताब्दीके सिद्ध भर्तृहरिके व्यक्तित्वमें घुल-मिल गया, जिससे दोनोंको अलग कर सकना प्रायः असम्भव हो गया। भर्तृहरिके पद श्लोक और संवाद 'नाथ सिद्धोंकी बानियाँ'मे ही संकलित मिलते है। उनकी वाणीका मुख्य भाव वैराग्य है। उन्होंने संसारकी नश्वरता, भोग-विलासपूर्ण जीवनके प्रति उपेक्षाभाव तथा धार्मिक जीवनके प्रति सहज अनुरागका वर्णन किया है। कहीं-कहीं नाथ सिद्धोंकी रहस्यमयी भाषाके प्रयोगसे उनकी उक्तियाँ बड़ी मार्मिक हो गयी है। भर्तृहरिने एक पदमें हरि पदकी चर्चा की है, जिससे उनमें सिद्धोंकी तुलनामें एक नवीन विशेषता-का दर्शन होता है। उन्होने कहा है—"भनत भरथरी हरिपद परस्या, सहज भया अविनासी"। हरिपद और अविनासी शब्दोंके प्रयोगसे विदित होता है कि भरथरी ११ वीं-१२ वी शताब्दीसे पहले नहीं हुए होंगे क्योंकि नाथोंकी परम्परामें इन शब्दोंको स्थान नहीं मिला। भरथरी को हम नाथ-सम्प्रदाय और हिन्दीके सन्त-कवियोंको जोड़ने-वाली कड़ीके रूपमें मान सकते है।

[सहायक ग्रन्थ—पुरातत्त्व निबन्धावली : महापण्डित राहुल सांकृत्यायन; हिन्दी काव्यधारा : महापण्डित राहुल सांकृत्यायन; नाथ सम्प्रदाय : डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी; नाथ सिद्धोंकी बानियाँ : डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी; योग-प्रवाह : डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल।] —यो० प्र० सिं०

भवानीप्रसाद तिवारी–जन्म १९१२ ई० में सागरमें हुआ। शिक्षा एम० ए० तक नागपुर विश्वविद्यालयसे हुई। सामाजिक तथा राजनीतिक क्षेत्रोंके कार्यमें रुचि रही। कई वर्षोंतक जबलपुरके मेयर रहे। हिन्दी-कविताके क्षेत्रमें वादों-से अलग आपका स्वतन्त्र स्थान है। कविताके अतिरिक्त कहानियाँ, निबन्ध और नाटक लिखे हैं। कविताकी दृष्टिसे गीतात्मक तत्व आपकी रचनाओंका प्राण तत्त्व है। कृतियाँ-'प्राण पूजा' (कविताएँ १९५३ ई०), 'कथा वार्ता' (निबन्ध तथा कहानियाँ १९५६ ई०), 'गीतांजलि' (१९४८ ई०), 'कीचक वध' (नाटक)। —सं०

भवानीविलास–'भावविलास' और 'अष्टयाम'के पश्चात् यह रीतिकालके सुप्रसिद्ध कवि देवकी तीसरी रचना मानी जाती है, जिसको उन्होंने अपने आश्रयदाता भवानीदत्तको अर्पित किया था। अन्तर्बाह्य किसी भी प्रकारके साक्ष्यसे इसका रचनाकाल ज्ञात नहीं होता। अनुमानतः इसका निर्माण १६९३-९८ ई० (सं० १७५०-५५)के लगभग हुआ होगा। नगेन्द्रका यही अनुमान है 'देव और उनकी

कविता' पृ० ४२-४३)। ग्रन्थकी सम्पूर्ण छन्द संख्या २८४ है। इसका प्रकाशन भारत जीवन प्रेस, बनारससे सन् १८९३ ई०में हुआ है तथा हस्तलिखित प्रतियाँ गन्धौली, सूर्यपुरा, टीकमगढ़ और लखनऊमें उपलब्ध हैं।

इसमें 'भावविलास'के अनेक छन्द उद्धृत मिलते हैं अतः इसकी प्रामाणिकता असंदिग्ध है। यह रसग्रन्थ है, जिसमें प्रायः आद्योपान्त शृंगार-रसकी प्रधानता है। प्रथम सात विलासोंमें शृंगार-रस तथा उसके अंगोपांगोंका विस्तार है। आठवें विलासमें शेष आठों रस भेद-प्रभेदके साथ वर्णित हुए हैं। शृंगारका रस-राजत्व पूर्णतया प्रतिष्ठित किया गया है—"भूलि कहत नवरस सुकवि सकल मूल सिंगार। तेहिउछाह निर्वेद ले वीर सान्त सचार ॥१०॥" "भाव सहित सिंगारमें नवरस झलक अजत्न। ज्यों कंकन मनि कनकको ताहीमें नवरत्न ॥१२॥"

देवने शृंगार-रसको आकाशकी तरह अन्तहीन बताया है, जिसमें अन्य रस पक्षीकी तरह उड़ते-फिरते हैं। उसमें आयु, वंश, अनुरागकी अवस्था तथा सत्त्व आदि अनेक आधार लेकर नायिकाभेदका वर्णन किया गया है। अन्तिम विलासमें किये गये रस-भेद उल्लेखनीय हैं। वीर-रसके प्रसिद्ध चार भेदोंमें धर्मवीरको न मानकर केवल तीन ही भेद किये गये हैं। शान्त रसके शरण्य और शुद्ध नामसे पहले दो भेद किये गये है फिर शरण्यके प्रेम-भक्ति, शुद्ध-भक्ति और शुद्ध-प्रेम ये तीन प्रभेद बताये गये हैं। हास्य-के उत्तम, मध्यम, अधम तथा करुणके अति, महा, लघु और सुखको मिलाकर पाँच भेद किये गये है। इसमे लक्षण दोहोंमे और उदाहरण कवित्त-सवैयोंमे मिलते है, जैसा रीतिकालमें प्रचलित था।

[सहायक ग्रन्थ—शि० स०; मि० वि०; हि० का० शा० इ०; री० भू० तथा दे० क०; देवके लक्षण-ग्रन्थोंका पाठ और पाठ समस्याएँ (अ०) : लक्ष्मीधर मालवीय।] —ज० गु०

भस्मासुर–पुराणोंके अनुसार एक प्रसिद्ध दैत्य था, जिसका यथार्थ नाम वृकासुर था। यह शिव भक्त था। शिवने उसे वर दिया कि तुम जिसके सिरपर हाथ रखोगे, वह भस्म हो जायेगा। वरके बाद यह पार्वतीपर मोहित हुआ। अतः शिवको जलानेके लिए उनके सिरपर हाथ रखने चला। वर मिल चुका था अत. शिव लाचार होकर भागे। अन्तमे विष्णुने शिवका संकट देख मोहिनी-रूप धारण किया, जिसपर आकर्षित होकर भस्मासुरने नाचनेकी मुद्रामे एक हाथ अपनी कटिपर और एक हाथ अपने सिरपर रखा। इस प्रक्रियामें वह स्वयं जल गया। एक अन्य मतसे कृष्णने बटुका रूप धरकर छलसे उसका हाथ उसके सरपर रख दिया, जिससे वह भस्म हो गया। 'स्कन्दपुराण'के अनुसार वह कश्यप और दितिका पुत्र था (हि० सू० सा० प० ४९२५)। —रा० कु०

भाग्यवती–पंजाबके प्रसिद्ध और लोकप्रिय धार्मिक नेता, सामाजिक कार्यकर्ता, व्याख्यानदाता तथा साहित्य-सेवी श्रद्धाराम फुल्लौरी लिखित एक सामाजिक उपन्यास, जिसकी रचना सन् १८७७ ई० में हुई थी। इस उपन्यास-को पर्याप्त प्रशंसा मिली। हिन्दी उपन्यास-साहित्यके विकासमें इसका ऐतिहासिक महत्त्व है। कुछ विद्वानों द्वारा इसे हिन्दीका सर्वप्रथम मौलिक उपन्यास कहलाये जानेका श्रेय प्राप्त है। —प्र० ना० ट०

भान कवि–सम्भवतः 'भान' कविका उपनाम था। उसका पूरा नाम क्या था, ज्ञात नहीं। कवि राजा जोरावर सिंह-का पुत्र और राजा रनजोर सिंह बुन्देलाके यहाँ रहनेवाला था। 'नरेन्द्र-भूषन' कविकी एकमात्र रचना है, जिसका रचना-काल सन् १७८८ ई० है। यह अलंकार-ग्रन्थ है, जिसमें शृंगार रसके अतिरिक्त वीर, भयानक, रौद्र आदि अन्य रसोंको भी उदाहरण रूपमें पर्याप्त मात्रामें दिया गया है, जो अन्य अलंकार-ग्रन्थोंकी अपेक्षा काफी नवीनता लिये हुए हैं। भावोंकी सानुभूतिक अभिव्यंजना और तदनुसार भाषापर कविका अच्छा अधिकार था। अलंकारों-के लक्षण-उदाहरण, साफ सहज और बोधगम्य हैं।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० इ०।] —रा० त्रि०

भारतदुर्दशा–(प्र० १८८० ई०) 'भारतदुर्दशा'से भारतेन्दु हरिश्चन्द्रकी देशभक्तिपर बड़ा सुन्दर प्रकाश पड़ता है। उन्होंने अपनी इस रचनाको नाट्य-रासक (या लास्यरूपक) कहा है। उसके छः अंकोंमे भारतके प्राचीन गौरव और समकालीन दुरवस्थाका वर्णन हुआ है। दो पदवाले मंगला-चरणके पश्चात् प्रथम अंकमे भारतके प्राचीन गौरव और विदेशी आक्रमणकारियोंके आक्रमणोंके फलस्वरूप देशकी दीन-हीन दशाका वर्णन है। द्वितीय अंकमें भारत अपनी दीनहीन दशाकी गाथा सुनाते-सुनाते मूर्च्छित हो जाता है किन्तु आशा उसके प्राण बचाती है। तीसरे अंकमे नाटक-कारने उन शक्तियोंका उल्लेख किया है, जिनके द्वारा भारत-का सर्वनाश हुआ, जैसे फूट, सन्तोष, अपव्यय, स्वार्थपरता, हठ आदि। इन शक्तियोंके कारण देश धन, बल और विद्या तीनों दृष्टियोंसे पतनके गर्तमें डूब जाता है। चौथे अंकमें भारत-दुर्दैव उसके निश्चित नाशका उपक्रम करता है। पाँचवें अंकमें एक सभापति, एक बंगाली, एक महाराष्ट्रीय, एक सम्पादक, एक कवि और दो देशी महाशय नामक सात सभ्य देशको बचानेके उपाय सोचते हैं किन्तु डिसलायल्टी उन्हें 'इंगलिश पालिसी' नामक ऐक्टके हाकिमेच्छा नामक दफासे पकड़ ले जाती है। अन्तिम अंकमें भारत-भाग्य अचेत पड़े हुए भारतको जगानेकी चेष्टा करता है किन्तु उसके उठनेकी आशा न देखकर अपनी छातीमें कटारका आघात कर लेता है। यद्यपि रचनामें आशाकी ध्वनि भी विद्यमान है तो भी ऐसा प्रतीत होता है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने निराश होकर 'भारतदुर्दशा'की रचना की। रचना-पद्धतिकी दृष्टिसे उसमे नाट्य-रासकके सभी शास्त्रीय लक्षण नही मिलते। —ल० सा० वा०

भारतभारती–'भारतभारती' मैथिलीशरण गुप्तकी सर्वा-धिक प्रचारित कृति है। यह सर्वप्रथम संवत् १९६९ में प्रकाशित हुई थी और अबतक इसके बीसों संस्करण निकल चुके है। एक समय था जब 'भारतभारती'के पद्य प्रत्येक हिन्दी-भाषीके कण्ठपर थे। गुप्तजीका प्रिय हरिगीतिका छन्द इस कृतिमे प्रयुक्त हुआ है। भारतीयोंमें राष्ट्रीय चेतना-की जागृतिमे इस पुस्तकका बहुत हाथ रहा है। यह काव्य तीन खण्डोंमें विभक्त है : (१) 'अतीत' खण्ड, (२) 'वर्त-

मान' खण्ड (३) 'भविष्यत्' खण्ड। 'अतीत' खण्डमें भारत वर्षके प्राचीन गौरवका बड़े मनोयोगसे बखान किया गया है। भारतीयोंकी वीरता, आदर्श, विद्या-बुद्धि, कला-कौशल, सभ्यता-संस्कृति, साहित्य-दर्शन, स्त्री-पुरुषों आदिका गुण-गान किया गया है। 'वर्तमान' खण्डमें भारतकी वर्तमान अधोगतिका चित्रण है। इस खण्डमें कविने साहित्य, संगीत, धर्म, दर्शन आदिके क्षेत्रमें होनेवाली अवनति, रईसों और उनके सपूतोंके कारनामे, तीर्थ और मन्दिरोंकी दुर्गति तथा स्त्रियोंकी दुर्दशा आदिका अंकन किया है। 'भविष्यत्' खण्ड-में भारतीयोंको उद्बोधित किया गया है तथा देशके मंगलकी कामना की गयी है।

काव्यकी दृष्टिसे 'भारतभारती' उच्चकोटिकी कृति नहीं है परन्तु रमणीयताका एकदम अभाव भी नहीं है—भारतीयोंकी अवनति एवं हीनताका करुण-चित्रण अत्यधिक प्रभावक्षम है। लाक्षणिक प्रयोग यद्यपि कम हैं, प्रायः अभिधाका ही आश्रय लिया गया है किन्तु शैलीका प्रवाह एवं भाषागत ओज प्रस्तुत काव्यको दीप्ति प्रदान करते हैं और भावनाओंको उद्वेलित करनेकी अद्‌भुत शक्ति तो इसमें है ही। इसीलिए स्वतन्त्रताके पुजारी देश-सेवक इसका गान करते हुए सत्याग्रह-आन्दोलनोंमे भाग लेते थे। विद्वान् नेताओंने राष्ट्रीय आन्दोलनोंमे इस काव्यके योग-दानको कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार किया है। —उ० का० गो०

भारतीभूषण १–भारतेन्दुके पिता गिरिधरदासने १८३३ ई० (सं० १८९०) में 'भारतीभूषण' नामक अलंकार-ग्रन्थकी रचना की। इसमें ३६ पृष्ठ तथा ३७८ छन्द हैं। 'कुवलयानन्द'के आधारपर इस पुस्तकमें केवल दोहा छन्दमें अलंकार-वर्णन है। लक्षणोंमे विशेष कसावट नहीं, परन्तु स्पष्टता है। उदाहरण सरल एव सरस है। इसका प्रकाशन नवलकिशोर प्रेस, लखनऊसे १८८१ ई० में हुआ था।

'भारतीभूषण'में प्रथम अर्थालंकार, तदनन्तर दो शब्दालंकारों—अनुप्रास तथा यमक—का विवेचन है। अलकारोंका क्रम, लक्षण तथा भेद सामान्यतः 'कुवलयानन्द' के ही अनुसार हैं। कविपर संस्कृत तथा हिन्दीके अनेक पूर्ववर्ती कवियोंका प्रभाव लक्षित होता है। उदाहरणोंमें माधुर्य और सरसता है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० अ० सा० ; हि० सा० इ० ; हि० सा० बृ० इ० (भा० ६)।] —ओ० प्र०

भारतीभूषण २–अर्जुनदास केडिया लिखित अलकार ग्रन्थ 'भारतीभूषण'का प्रकाशन १९३० ई० में भारतीभूषण कार्यालय, बनारससे हुआ। विकसित और परिष्कृत हिन्दी गद्यमे अलंकारोंका सम्यक् विवेचन न होना लेखकके लिए प्रस्तुत कृतिकी प्रधान प्रेरणा रही है। विषयकी मौलिक-विवेचनाके प्रयत्नने पुस्तकको गम्भीरता प्रदान की है। यद्यपि यह अवश्य है कि इसकी विवेचना-शैली प्राचीन परिपाटीकी लीक नहीं छोड पायी है। जिन अलकारोंके कई भेद हैं, उनके मूल लक्षण इस प्रकार दिये गये हैं कि वे सब पर घटित हो सकें। प्रस्तुत पुस्तकमें लेखकने बड़े परिश्रम-से अलकारोंके उदाहरण या तो स्वरचित दिये हैं या अत्यन्त परिश्रमसे प्राचीन पुस्तकोंसे खोज करके रखे हैं। लेखकने उदाहरणके लिए किसी संस्कृत पुस्तकसे अनुवाद नहीं किया है। एक-एक अलंकारके कई-कई उदाहरण दिये गये है। ७५० उदाहरणोंमें से ३७५ स्वयं लेखक द्वारा रचित हैं, अन्य उदाहरण १२५ अन्य कवियोंके लिये गये हैं।

८ शब्दालंकारों (लेखकने वेणसगाईको भी सम्मिलित किया है) और १०० अर्थालंकारोंका विवेचन किया गया है। केडियाजीने सूचना और टिप्पणियोंके रूपमें बीच-बीच-में अलंकारोंके सम्बन्धमें अपनी मौलिक उद्भावनाएँ दी हैं, जिससे ग्रन्थकी गम्भीरता प्रमाणित होती है। अनेक प्राचीन अलंकारशास्त्रियोंके (जयदेव, केशव, उत्तमचन्द भण्डारी, जगन्नाथ आदि) विवेचनका प्रभाव तो पुस्तकमें स्पष्ट है ही, किन्तु प्रस्तुत कृतिकी विशेषता परिष्कृत गद्य शैली, मौलिक उदाहरण और कहीं-कहीं स्वतन्त्र रूपसे अलंकार-चिन्तनमें अधिक है। —नि० ति०

भारतीय हिंदी परिषद्–स्थापना प्रयाग विश्वविद्यालयके तत्कालीन हिन्दी विभागाध्यक्ष डाक्टर धीरेन्द्र वर्माकी प्रेरणा और प्रयत्नसे ३ अप्रैल, सन् १९४२ ई०को प्रयागमें हुई। हिन्दीके समस्त अंगों, भाषा, साहित्य तथा संस्कृतिके अध्ययन तथा खोजको प्रोत्साहन देना और उसकी प्रगति-का विशेष रूपसे निरीक्षण करना इसका उद्देश्य है।

भारतीय विश्वविद्यालयोंके प्राध्यापक, हिन्दी तथा हिन्दी प्रेमी एवं हिन्दीके उच्च अध्ययन, अध्यापन और अनु-सन्धानमें रुचि रखने वाले व्यक्ति इस संस्थाके सदस्य हैं।

मुख्यतः विश्वविद्यालयीय अध्यापकों एवं अनुसन्धान-कर्ताओंकी संस्था होनेके नाते परिषद् अपने सामान्य उद्देश्यके अन्तर्गत उच्चतर हिन्दी अध्यापन और अनुसन्धानके नियोजन एवं संगठन तथा उच्चतर शिक्षाके सन्दर्भमे हिन्दी भाषा और साहित्यके विकास, उन्नयन, प्रचार एवं प्रसारपर विशेष बल देती है। इसके निमित्त परिषद् जिन साधनोंका उपयोग करती है, वे ये हैं—

वार्षिक अधिवेशन—भारतीय साइंस कांग्रेस तथा अन्य विषयोंकी परिषदोंकी भांति भारतीय हिन्दी परिषद्के भी वार्षिक सम्मेलन किसी विश्वविद्यालयके तत्त्वावधानमें आयोजित होते हैं। अब तक परिषद्के वार्षिक अधिवेशन प्रयाग, लखनऊ, आगरा, पटना, जयपुर, नागपुर, बनारस, रायगढ (सागर), दिल्ली, वल्लभ विद्यानगर (आनन्द, गुजरात) तथा कलकत्तामे हो चुके हैं। इन अधिवेशनोंमें महत्त्वपूर्ण अभिभाषणोंके अतिरिक्त हिन्दी भाषा, साहित्य और संस्कृतिसम्बन्धी विविध विषयोंपर (अ) विशेष गोष्ठियां होती हैं, (आ) सममायिक तथा स्थायी महत्त्वके प्रस्ताव स्वीकृत होते हैं, (इ) शोध-निबन्धोंका पाठ एवं उनपर विचार-विमर्श होता है, (ई) तथा साहित्यिक योजनाएँ बनायी जाती हैं।

अब तक हिन्दी भाषा और लिपिके विकास, प्रचार एवं प्रसारसे सम्बन्धित, राजभाषा हिन्दीसे सम्बद्ध, हिन्दी अध्यापन एवं पाठ्यक्रमसे सम्बन्धित एवं साहित्यक तथा शोधसम्बन्धी विषयोंपर विचार-गोष्ठियाँ हो चुकी हैं। विश्वविद्यालयोंमे पाठ्यक्रमके लिए आवश्यक साहित्य-निर्माणके लिए तथा परीक्षाओंके हिन्दी माध्यमको कार्य-रूपमें परिणत करनेके लिए इसने प्रयत्न किया है। यह

परिषद् हिन्दीके दिवंगत प्रसिद्ध कवियों और लेखकोंकी स्मृति- रक्षाकी ओर ध्यान आकर्षित करती रही है और समुचित रूपसे स्मारकस्थापनकी प्रेरणा भी देती रही है।

परिषद् एक त्रैमासिक पत्र 'हिन्दी अनुशीलन'का प्रकाशन करती है, जो अपने उच्चस्तरीय शोध-निबन्धोंके कारण विद्वानोंमें अद्वितीय ख्याति प्राप्त कर चुकी है। इसके दो महत्त्वपूर्ण विशेषांक भी निकल चुके हैं: (१) भाषाअंक, (२) धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक। —सं०

भारतेंदु हरिश्चंद्र–(१८५०-१८८५ ई०)। आधुनिक हिन्दी साहित्यके जन्मदाता और भारतीय नवोत्थानके प्रतीक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र १८-१९ वीं शताब्दीके जगत्-सेठोंके एक प्रसिद्ध परिवारके वंशज थे। उनके पूर्वज सेठ अमीचन्द (मृत्यु १७५८ ई०) का उत्कर्ष भारतमें अंग्रेजी राज्यकी स्थापनाके समय हुआ था। नवाब सिराजुद्दौलाके दरबारमें उनका मान था। सिराजुद्दौलाके साथ सघर्ष होनेपर सेठ अमीचन्दने अंग्रेजोंकी सहायता की, किन्तु इतने पर भी अंग्रेजोंने उनके साथ नीचतापूर्ण व्यवहार किया। उन्हींके प्रपौत्र गोपालचन्द उपनाम गिरिधरदास (जन्म १८३३ ई०)के ज्येष्ठ पुत्र भारतेन्दु हरिश्चन्द्र थे। भारतेन्दुका जन्म सन् १८५० ई० में उनके ननिहालमें हुआ था। जब वे पाँच वर्षके थे तब उनकी माता पार्वतीदेवीका तथा जब वे दस वर्षके थे तब पिताका देहान्त हो गया। विमाता मोहन बीबीका उनपर विशेष प्रेम नहीं था। इसलिए उनके पालन-पोषणका भार कालीकदमा दाई और तिलकधारी नौकरपर रहा। पिताकी असामयिक मृत्यु हो जानेके कारण उनकी शिक्षा-दीक्षाका समुचित प्रबन्ध न हो सका। पिताकी मृत्युके बाद क्वीन कालेज, बनारसमें पढने जाने लगे किन्तु वे स्वतन्त्र प्रकृतिके व्यक्ति थे, उनका स्वभाव चंचल और उद्धत था अतएव पढ़ने-लिखनेमें मन नहीं लगता था। फिर भी तीन-चार वर्षतक वे कालेज जाते रहे। यद्यपि पढ़नेमें उनका जी बहुत न लगता था तो भी ऐसा कभी न हुआ कि वे परीक्षाओंमें उत्तीर्ण न हुए हों। वे कुशाग्र बुद्धि और तीव्र स्मरणशक्ति वाले थे। उस जमानेके काशीके रईसोंमें केवल राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' ही एक ऐसे व्यक्ति थे, जो अंग्रेजी पढे-लिखे थे। इसलिए भारतेन्दु हरिश्चन्द्र अंग्रेजी पढनेके लिऐ उनके यहाँ भी जाया करते थे और उन्हें गुरु-तुल्य मानते थे। कालेज छोड़नेके बाद भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने स्वाध्याय द्वारा ज्ञान प्राप्त किया। हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजीके अतिरिक्त मराठी, बंगला, गुजराती, मारवाड़ी, पंजाबी, उर्दू आदि भारतीय भाषाएँ भी उन्होंने स्वयं अपनी प्रतिभाके बलपर सीख ली थी। बाल्यावस्थासे ही उनमे काव्य-रुचि थी। रसिक होनेके कारण प्रारम्भमें उनका झुकाव शृंगार-रसकी ओर अधिक था।

तेरह वर्षकी अवस्थामें उनका विवाह काशीके रईस लाला गुलाबरायकी पुत्री मन्नादेवीसे सम्पन्न हुआ। पन्द्रह वर्षकी अवस्थामें घरकी स्त्रियोंके आग्रहके कारण उन्हें सकुटुम्ब जगन्नाथ-यात्रा करनी पड़ी। यह यात्रा जहाँ एक ओर उनकी शिक्षामें बाधक सिद्ध हुई, वहाँ दूसरी ओर उससे उन्हें अनेक प्रकारके अनुभव और नवीन भावों एव विचारोंसे परिचित होनेके अवसर भी प्राप्त हुए। इसी समयसे उनको ऋण लेनेकी आदत भी पड़ी। जगन्नाथजीकी यात्रासे लौटकर वे बुलन्दशहर, कचेसर, कानपुर, लखनऊ, सहारनपुर, मसूरी, हरिद्वार, लाहौर, अमृतसर, दिल्ली, ब्रज, आगरा, पुष्कर, अजमेर, प्रयाग, पटना, डुमराँव, हरिहर क्षेत्र, कलकत्ता, बस्ती, गोरखपुर, बलिया, वैद्यनाथ, उदयपुर आदि अनेक स्थानोंकी यात्रा करने गये। यात्रा करनेके साथ-साथ वे प्रत्येक स्थानके जीवनक्रम और वहाँकी साहित्यिक गतिविधियोंका अध्ययन करते और अपने देश-प्रेमपूर्ण तथा मातृभाषोद्धारकी भावनासे पूर्ण भाषण देते थे। १८८० ई०में पण्डित रघुनाथ, पं० सुधाकर द्विवेदी पं० रामेश्वरदत्त व्यास आदिके प्रस्तावानुसार हरिश्चन्द्रको 'भारतेन्दु'की पदवीसे विभूषित किया गया।

१८८४ ई० की उनकी बलिया-यात्रा एक प्रकारसे उनकी अन्तिम यात्रा थी। कुछ-कुछ तो वे पहलेसे ही अस्वस्थ थे किन्तु बलियासे लौटनेके अनन्तर कार्य-भार और कौटुम्बिक तथा अन्य सांसारिक चिन्ताओंके कारण उनका जर्जर शरीर और अधिक भार सहन न कर सका। ६ जनवरी, १८८५ ई० को चौतीस वर्ष चार महीनेकी अवस्थामें उनका देहान्त हो गया। इस थोड़ी-सी आयुमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने देश और हिन्दी भाषा तथा साहित्यकी जो सेवा की, वह चिरस्मरणीय रहेगी। उनके दो पुत्र और एक पुत्री हुई थी किन्तु पुत्रोंका बाल्यावस्थामे ही देहान्त हो गया। उनकी पुत्रीका नाम विद्यावती था। वे सुशिक्षिता थीं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्रकी धर्मपत्नी मन्नादेवीने बयालीस वर्ष वैधव्य भोगकर १९२६ ई० में प्राण विसर्जन किये। उनमें अनेक गुण थे, जिनकी लोग भूरि-भूरि प्रशसा करते हैं।

भारतेन्दुकी चौमुखी प्रतिभा और उनके हृदयके गुणों की सभी प्रशंसा करते थे, यद्यपि उनके विलासी, अपव्ययी और समाजकी रूढिग्रस्त नैतिकताके विरोधी होनेसे लोग उन्हे भला-बुरा भी कहते थे किन्तु सच बात तो यह है कि उनके जीवनके किसी भी पक्षको हम लें, एक बात जो स्पष्ट रूपमे दृष्टिगोचर होती है वह यह है कि वे प्रेमी जीव थे। वे संवेदनशील, परदुःखकातर और कोमल-हृदय थे, अपने इन्हीं गुणोंके कारण उन्होंने जीवन भर आधिक कष्ट सहन किया। लोग उन्हें 'अजातशत्रु' कहते थे। उनका साहित्यानुराग देश-विदेश सभी जगह प्रसिद्ध था। उन्होंने आजीवन समाजको कुछ-न-कुछ दिया ही, बदलेकी आकांक्षा कभी न की। वे हास्य और विनोदप्रिय थे। उनकी लेखनशक्ति और आशुकवित्वपर सभी गुणीजन मुग्ध रहा करते थे। एक शिक्षित धनिक वर्गमें जन्म लेने तथा वंशगत कुछ विशेषताएँ लिए होनेके कारण पुरातनके प्रति कुछ मोह होने पर भी वे प्रगतिपूर्ण विचारोंसे सम्पन्न व्यक्ति थे। वे अपने देश-प्रेम, भाषा और साहित्य-प्रेम और ईश्वर-प्रेमके लिए प्रसिद्ध थे। उन्होंने जो कुछ किया कालगति पहिचान कर। वे काल-द्रष्टा थे। भारतके अतीतके प्रति तो उन्हें असीम श्रद्धा थी ही किन्तु साथ ही वे यह भी अच्छी तरह समझते थे कि यद्यपि अंग्रेजोंने भारतकी स्वाधीनताका अपहरण और आर्थिक शोषण किया है तो भी भविष्यमें उन्नति करने और जीवन

में सुधार उपस्थित करनेके लिए भारतवासियोंको अंग्रेजोंसे बहुत-सी बातें सीखनी हैं—विशेषतः ज्ञान-विज्ञानके क्षेत्रमें। 'निज भाषा उन्नति'की दृष्टिसे उन्होंने १८६८ ई०, १८७३- और १८७४ ई० में क्रमशः 'कविवचन सुधा', 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' (जो आठ मास बाद 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' और १८८४ ई० में 'नवोदिता'के नामसे प्रकाशित हुआ) और स्त्रियोंके उपकारार्थ 'बाला-बोधिनी' नामक पत्र प्रकाशित किये और अनेक साहित्यिक संस्थाएँ स्थापित कीं। १८७३ ई० में भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने वैष्णव धर्म और ईश-भक्तिके प्रचारार्थ 'तदीय समाज'की स्थापना की, जिसमें गो-रक्षा प्रचार और मदिरा-मांस-सेवन रोकनेका प्रयत्न भी किया जाता था। इस समाजसे 'भगवद्भक्ति तोषिणी' नामक पत्रिका भी प्रकाशित होती थी, जो कुछ दिनों बाद बन्द हो गयी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र अपने सार्वजनिक जीवनमें स्पष्टवादी थे और देशहित उनका प्रधान उद्देश्य था। यही कारण है कि राजभक्ति प्रकट करते हुए भी उन्हें भारतीय सरकारका कोपभाजन बनना पड़ा।

(भारतेन्दु हरिश्चन्द्र दो ऐतिहासिक युगोंके सन्धि-स्थल पर खड़े थे, इसलिए उनका ध्यान प्राचीन और नवीन दोनोंकी ओर गया। उन्होंने न तो प्राचीन की उपेक्षा की और न उसके मोहमें बँधे। साथ ही उन्होंने न तो नवीनका अन्धानुकरण किया और न उससे सशंकित ही रहे। उन्होंने जो कुछ देखा आँखें खोलकर देखा और उनकी साहित्यिक प्रतिभाने मणि-कांचन योग उपस्थित किया।)

भारतेन्दु हरिश्चन्द्रकी अल्पायुको देखते हुए उनका महान् साहित्यिक कार्य दैवी शक्तिसे प्रेरित ही कहा जायेगा। स्वर्गीय बाबू राधाकृष्ण दासने नाटक, आख्यायिका उपन्यास, काव्य, स्तोत्र, अनुवाद या टीका, परिहास, धर्मसम्बन्धी इतिहास तथा चिह्नादि वर्णन, माहात्म्य, ऐतिहासिक, राज-भक्ति सूचक, अस्फुट ग्रन्थ, लेख तथा व्याख्यान आदि, और सम्पादित, संगृहीत या उत्साह देकर बनवाये—इन बारह शीर्षकोंके अन्तर्गत क्रमशः बीस, आठ, अट्ठाईस, सात, आठ, अठारह, सात, नौ, सताईस, तेरह, अठारह और पचहत्तर ग्रन्थों, लेखों आदिके हिसाबसे हिन्दी गद्य और पद्य, साथ ही कुछ संस्कृतमें उनकी दो सौ अड़तालीस रचनाओंका उल्लेख किया है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्रकी रचनाओंके अनेक संग्रह भी प्रकाशित हो गये हैं, जिनमें प्राचीनतम खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पटना द्वारा प्रकाशित है, जो 'भारतेन्दु कला' के नामसे ६ भागोंमें (१८८७-१९०१ ई०) उपलब्ध है। राधाकृष्णदासकी सूचीके अनुसार उनकी अनेक रचनाएँ या तो अपूर्ण और अप्रकाशित अथवा अप्राप्य हैं। शेष पूर्ण, प्रकाशित और प्राप्य रचनाओंमेंसे बहुत-सी ऐसी हैं, जिनका विशेष महत्त्व नहीं। अस्तु, यहाँ उनकी केवल उन्हीं रचनाओंका उल्लेख किया जा सकेगा, जो साहित्यिक सौन्दर्य, भाषा-शैली और विचारोंकी दृष्टिसे अपना विशेष स्थान रखती हैं।

गद्य-क्षेत्रमें भारतेन्दुका ध्यान सर्वप्रथम नाटकोंकी ओर गया। उनकी नाटकीय रचनाएँ तीन भागोंमें विभक्त की जा सकती हैं—अनूदित, मौलिक और अपूर्ण और जो विषयकी दृष्टिसे सामाजिक, धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक और राष्ट्रीय एवं राजनीतिक हैं। उनके अनूदित नाटक शब्दशः अनुवाद न होकर रूपान्तर अधिक हैं। उनमें वे अपनी थोड़ी-बहुत मौलिकता लाये बिना न रह सके। यहाँतक कि नान्दी, प्रस्तावना, काव्यांश, भरत-वाक्य आदि अनेक बातें उन्होंने अपनी ओरसे अपनी रुचिके अनुसार रखी हैं किन्तु इतनेपर भी उनकी इन रचनाओंको 'मौलिक' नामसे अभिहित करना उचित न होगा। अनूदित (रूपान्तरित) नाट्य-रचनाएँ—'विद्या-सुन्दर' (१८६८ ई०, संस्कृत 'चौरपंचाशिका' का बंगला संस्करण), 'पाखण्ड विडम्बन' (१८७२ ई०, कृष्ण मिश्र-कृत 'प्रबोधचन्द्रोदय' का तृतीय अंक), 'धनंजय-विजय' (१८७३ ई०, मूल रचना कांचन कविकृत 'व्यायोग'), 'कर्पूर-मंजरी' (१८७५ ई०, ब्रजरत्नदासने १८७६ ई० रचना-तिथि दी है, राजशेखर कविकृत शुद्ध प्राकृतमें 'सट्टक'), 'भारत जननी' (१८७७ ई०, नाट्य-गीत) 'मुद्रा-राक्षस' (१८७८ ई०, विशाखदत्त कृत 'मुद्राराक्षस') और 'दुर्लभ बन्धु' (१८८० ई० में प्रथम दृश्य 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' और 'मोहन चन्द्रिका'में प्रकाशित हुआ। अपूर्ण रह जानेपर बादको रामशंकर व्यास और राधाकृष्णदासने उसे पूर्ण किया। शेक्सपियरकृत 'मर्चेण्ट ऑव वेनिस' के आधारपर)। मौलिक नाट्य-रचनाएँ—'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' (१८७३ ई०, प्रहसन), 'सत्य हरिश्चन्द्र' (१८७५ ई०), 'श्री चन्द्रावली' (१८७६ ई०, नाटिका), 'विषस्य विषमौषधम्' (१८७६ ई०, भाण), 'भारतदुर्दशा' (१८८० ई०, ब्रजरत्नदासके अनुसार १८७६ ई०, नाट्य-रासक), 'नीलदेवी' (१८८१ ई०, गीति-रूपक) और 'अन्धेर नगरी' (१८८१ ई०, प्रहसन)। मौलिक अपूर्ण रचनाएँ—'प्रेमजोगिनी' (१८७५ ई०, प्रथम अंकके केवल चार दृश्य या गर्भांक, नाटिका) और 'सती प्रताप' (१८८३ ई०, केवल चार अंक, गीतिरूपक)।

उपन्यास—'पूर्ण प्रकाश' और 'चन्द्रप्रभा' (१८८९ ई०में प्रकाशित हो चुका था, मराठी उपन्यासके आधारपर सामाजिक उपन्यास)। भाषासम्बन्धी—'हिन्दी भाषा' (१८९० ई० में यह पुस्तक खड्ग-विलास प्रेस, बाँकीपुरसे प्रकाशित हुई)। नाट्य-शास्त्र—'नाटक' (१८८३ ई०)। इतिहास और पुरातत्त्व—'कश्मीर कुसुम', 'महाराष्ट्र देशका इतिहास', 'रामायणका समय', 'अग्रवालोंकी उत्पत्ति' (१८७१ ई०), 'खत्रियोंकी उत्पत्ति' (१८७३ ई०), 'बादशाह दर्पण' (१८८४ ई०), 'बूँदीका राजवंश', 'उदय पुरोदय', 'पुरावृत्त संग्रह', 'चरितावली', 'पंच पवित्रात्मा', 'दिल्ली दरबारदर्पण' और 'कालचक्र'। पत्र-पत्रिकाएँ—'कविवचन सुधा' (१८६८ ई०), 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' (१८७३ ई०, यही पत्र १८७४ ई०के जून माससे 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका'के नामसे प्रकाशित हुआ), और 'बाला बोधिनी' (१८७४ ई०)।

इस समय भारतेन्दु हरिश्चन्द्रकी उनहत्तर छोटी-बड़ी रचनाएँ और अनेक स्फुट कविताएँ उपलब्ध हैं। उनमें मौलिक, सम्पादित और संगृहीत सभी प्रकारकी रचनाएँ सम्मिलित हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्दकी रचनाओंसे ज्ञात

होता है कि उन्होंने हिन्दी काव्य-साहित्यको विविधतापूर्ण और नवीन एवं व्यापक रूप प्रदान किया। काव्य-रचनाकी दृष्टिसे भारतेन्दु हरिचन्द्र एक महान् साहित्यिक सगमकी भाँति है, जहाँ लगभग सभी साहित्य-धाराएँ मिलकर एक नवीन धाराको जन्म देती हैं, जो फैलते-फैलते जीवनके प्रत्येक कोनेको स्पर्श करने लगती है। उनकी रचनाएँ परम्परानुरूप और नवीन दोनों प्रकारकी है। परम्परानुरूप काव्य-रचनाओंमें शृंगार, भक्ति, दिव्य प्रेम आदिसे सम्बन्धित रचनाएँ मिलती हैं। इन रचनाओंमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने मध्ययुगीन शैलियोंका अनुसरण किया है। नवीन रचनाओंमें राजभक्ति, देशभक्ति, भाषोन्नति तथा अन्य अनेक सुधारसम्बन्धी विचार प्रकट किये गये हैं। उनमें नवोत्थानयुगीन भावनाओं और आकांक्षाओंकी अभिव्यक्ति हुई है। उनके मुख्य-मुख्य काव्य-ग्रन्थ इस प्रकार हैं—परम्परानुरूप साम्प्रदायिक पुष्टिमार्गीय रचनाएँ : 'भक्ति सर्वस्व' (१८७० ई०), 'कार्तिक स्नान' (१८७२ ई०), 'वैशाख माहात्म्य' (१८७२ ई०), 'देवी छद्म लीला' (१८७३ ई०), 'प्रातःस्मरण मंगल पाठ' (१८७३ ई०), 'तन्मय लीला' (१८७४ ई०), 'दान लीला' (१८७४ ई०), 'रानीछद्मलीला' (१८७४ ई०), 'प्रबोधिनी' (१८७४ ई०), 'स्वरूप चिन्तन' (१८७४ ई०), 'श्रीपंचमी' (१८७५ ई०), 'श्रीनाथ स्तुति' (१८७७ ई०), 'अपवर्गदाष्टक' (१८७७ ई०), 'अपवर्ग पंचक' (१८७७ ई०), 'प्रातः स्मरण स्तोत्र' (१८७७ ई०), 'वैष्णव सर्वस्व', 'वल्लभीय सर्वस्व', 'तदीय सर्वस्व' (१८७४ ई०), 'भक्ति सूत्र वैजयन्ती' आदि। भक्ति तथा दिव्य-प्रेमसम्बन्धी—'प्रेम मालिका' (१८७१ ई०), 'प्रेम सरोवर' (१८७३ ई०), 'प्रेमाश्रु-वर्षण' (१८७३ ई०), 'प्रेम माधुरी' (१८७५ ई०), 'प्रेम-तरंग' (१८७७ ई०), 'प्रेम-प्रलाप' (१८७७ ई०), 'होली' (१८७९ ई०), 'मधुमुकुल', 'वर्षा विनोद' (१८८० ई०), 'विनय प्रेम-पचासा' (१८८० ई०), 'फूलोंका गुच्छा' (१८८२ ई०), 'प्रेम फुलवारी (१८८३ ई०) और 'कृष्ण-चरित्र' (१८८३ ई०)। अन्य अनेक छोटी-छोटी रचनाओंमे 'जैन कुतूहल' (१८७३ ई०) एक महत्त्वपूर्ण रचना है। इन सभी रचनाओंमे भारतेन्दु हरिश्चन्द्रका व्यक्तित्व अत्यन्त सुन्दर रूपमें व्यक्त हुआ है। अपनी परम्परागत रचनाओंमे 'उत्तरार्द्ध भक्तमाल' (१८७६-७७ ई०), 'गीत गोविन्दानन्द' (१८७७-७८ ई०) और 'सतसई-शृंगार' (१८७५-७८ ई०)के नाम भी उल्लेखनीय हैं। नवीन रचनाएँ—'स्वर्गवासी श्रीअलवरत वर्णन अन्तर्लापिका' (१८६१ ई०), 'श्रीराजकुमार-सुस्वागत पत्र' (१८६९ ई०), 'सुमनोऽञ्जलिः'' 'श्रीमान् प्रिंस आफ वेल्सके पीड़ित होनेपर कविता' (१८७१ ई०), 'मुँह-दिखावनी' (१८७४ ई०), 'श्रीराजकुमार-शुभागमन-वर्णन' (१८७५ ई०), 'भारत भिक्षा' (१८७५ ई०), 'मानसोपायन' (१८७५ ई०, संग्रह), 'हिन्दीकी उन्नतिपर व्याख्यान' (१८७७ ई०), 'मनोमुकुल-माला' (१८७७ ई०), 'भारत वीरत्व' (१८७८ ई०), 'विजय वल्लरी' (१८८१ ई०), 'विजयिनी-विजय-पताका या वैजयन्ती' (१८८२ ई०), 'नये जमानेकी मुकरी' (१८८४ ई०), 'जातीय संगीत' (१८८४ई०), 'रिपनाष्टक' (१८८४ ई०) आदि।

उपर्युक्त रचनाओंके अतिरिक्त भारतेन्दु हरिश्चन्द्रकृत भक्ति, प्रेम, शृंगार और नवीन विषयसम्बन्धी अनेक स्फुट दोहे कवित्त, सवैया, पद, गजल (उर्दूमें वे 'रसा' नामसे कविता करते थे) आदि उपलब्ध हैं। व्यंग्य और हास्यकी दृष्टिसे उर्दूका 'स्यापा' (१८७४ ई०) और 'बन्दर सभा' (१८७९ ई०) उल्लेखनीय हैं। 'बकरी विलाप' (१८७४ ई०) धर्म और स्वर्गके नामपर हिंसात्मक बकरा-बलिपर बकरीका विलाप है। 'बसन्त होली' (१८७४ ई०) के १६ दोहोंमें मनपर पड़े ऋतुराजके प्रभाव और 'प्रात-समीरन' (१८७४ ई०)के २१ पयार छन्दोंमें प्रातःकालीन वायुके दिव्य प्रभावका वर्णन है। 'श्री जीवनजी महाराज' (१८७२ ई०), 'चतुरंग' (१८७२ ई०) और 'मूक प्रश्न' (१८७७ ई०) जैसी रचनाएँ केवल मनोरंजनकी दृष्टिसे लिखी गयी हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने 'सुन्दरी तिलक' (१८६९ ई०मे प्रकाशित) और 'पावस-कवित्त-संग्रह' नामक काव्य-संग्रह ग्रन्थ भी प्रकाशित किये, जिनमें परम्परानुसार शृंगारपूर्ण कविताओंकी प्रधानता है। दूसरे संग्रहके सम्बन्धमें तो कोई मतभेद नहीं। 'सुन्दरी तिलक'का बाँकीपुर संस्करण भारतेन्दुकृत कहा गया है किन्तु कुछ विद्वानोंका मत है कि इस ग्रन्थका सम्पादन भारतेन्दुके कहनेसे 'द्विज' कवि मन्नालालने किया था। राधाकृष्णदासने इसे "सम्पादित, संगृहीत और उत्साह देकर बनवाए" ग्रन्थोंके अन्तर्गत रखा है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने स्वयं सम्पादन किया या किसी दूसरेसे सम्पादित कराया, यह बात यहाँ स्पष्ट नहीं होती। अन्यत्र राधाकृष्णदासने लिखा है—"उसी समय (१८७२ ई०से पहले) 'सुन्दरी तिलक' नामक सवैयोंका एक छोटा-सा संग्रह छपा। तबतक ऐसे ग्रन्थोंका प्रचार बहुत कम था। इस ग्रन्थका बड़ा प्रचार हुआ, इसके कितने ही संस्करण हुए, बिना इनकी आज्ञाके लोगोंने छापना और बेचना आरम्भ किया, यहाँतक कि इनका नामतक टाइटिलपरसे छोड़ दिया। परन्तु इसका उन्हे कुछ ध्यान न था। अब एक संस्करण खड्ग विलास प्रेसमे हुआ है, जिसमे चौदह सौके लगभग सवैया है परन्तु इन सवैयोका चुनाव भारतेन्दुजीकी रुचिके अनुसार हुआ या नहीं, यह उनकी आत्मा ही जानती होगी।"

भारतेन्दु हरिश्चन्द्रका जिस समय आविर्भाव हुआ, उस समय भारतवर्ष मध्ययुगीन पौराणिक जीवनमें लिप्त तथा पतित था। नवीन ऐतिहासिक कारणोंसे विशेषतः नवीन शिक्षा और वैज्ञानिक आविष्कारोंके फलस्वरूप हिन्दी-प्रदेश में नवयुगकी अवतारणा हुई और लेखकोंमे विचारस्वातन्त्र्य का जन्म हुआ। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र नवयुगके अग्रदूत और हिन्दी साहित्यमे आधुनिकताके जन्मदाता थे। उनकी रचनाएँ देश-प्रेमसे ओतप्रोत हैं। उन्होंने तत्कालीन भारतीय समाजकी सर्वतोमुखी अधोगतिका हृदय-विदारक चित्र अंकित किया और उनके भावी उज्ज्वल भविष्यका स्वर्णिम स्वप्न देखा। भारतवासियोंकी परस्पर फूट, वैमनस्य और अभारतीयता उन्हें बहुत खटकती थी। अंग्रेजी राज्यमें प्राप्त धार्मिक स्वतन्त्रता और विविध प्रकार-के अत्याचारों और दिन-रातकी अशान्तिसे छुटकारा पाकर

उन्होंने परमसुख और शान्तिका अनुभव किया और इसलिए अंग्रेजी राज्यका गुणगान भी किया। सुख-शान्ति-के साथ-साथ वैज्ञानिक साधनोंके सुखोपभोग, वैध शासन, सुन्दर न्याय-पद्धति आदिके फलस्वरूप भारतेन्दु हरिश्चन्द्र-ने "बृटिश सुशासित भूमिमे आनन्द उमगे जात" कहकर अपने भाव प्रकट किये। उन्होंने अंग्रेजोंकी प्रशंसा तो की किन्तु उन्होंने अपनी आत्मा और अपने व्यक्तित्वका हनन नहीं कर लिया था। देशका हित ही उनके लिए सर्वोपरि था। इसीलिए उन्होंने अंग्रेजी राज्यमे बरती गयी अनीतियों का भली-भाँति विरोध भी किया और अंग्रेजों द्वारा आर्थिक शोषण, काले-गोरेके भेद-भाव, अंग्रेज कर्मचारियोंके दुर्व्यवहार आदिपर क्षोभ प्रकट किया। वे स्वतन्त्रताके जबरदस्त पक्षपाती थे किन्तु तत्कालीन परिस्थितिके अनुकूल औपनिवेशिक प्रतिनिधि शासन प्राप्त करना चाहते थे। उनका विरोध 'हिज मैजेस्टीज अपोजीशन' वाला विरोध था। भारतवासियोंका पाश्चात्य सभ्यताका अन्धानुकरण और निज भाषाके प्रति उदासीनता भी उन्हे बहुत अखरती थी। भारतीय जीवनकी समस्त बुरा-इयोंकी उन्होने निन्दाकर उसे स्वस्थ एवं प्रशस्त बनानेकी चेष्टा की। धार्मिक दृष्टिसे यद्यपि वे स्वयं वल्लभ सम्प्रदाय के वैष्णव और पुष्टिमार्गीय थे, तो भी उनमे धार्मिक संकीर्णता बिल्कुल नही थी। हिन्दी नवोत्थान आन्दोलनके धर्म और साहित्य-सम्बन्धी दो प्रमुख पक्षोंपर भारतेन्दु अपने व्यक्तित्वकी अमिट छाप छोड गये है। वास्तवमें हिन्दी-प्रदेश या भारतवर्षके ही नही, वरन् समस्त पूर्वी संसारके अलसाये जीवनमे नवीन चेतना और स्फूर्ति उत्पन्न करनेमें उन्होने अपना पूर्ण योग दिया।

[सहायक ग्रन्थ—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र : ब्रजरत्नदास; भारतेन्दु हरिश्चन्द्र : लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय; भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि : किशोरीलाल गुप्त।]—ल० सा० वा०

भावविलास–यह रीतिकालके प्रख्यात कवि देवकी सर्वप्रथम रचना है। इसका रचनाकाल इसीकी कुछ हस्तलिखित प्रतियोंके अन्तमे प्राप्त निम्नलिखित दोहेके आधार पर स० १७४६ ई० (सन् १६८९ ई०) निर्धारित किया जाता है, जब कविकी आयु १६ वर्षकी थी—"शुभ संवतसे छयालिस, चढत सोरहीं बर्ष। कढी देव मुख देवता, भावविलास सहर्ष॥" इस ग्रन्थका प्रकाशन तरुण भारत ग्रन्थावली, दारागंज, प्रयागमे हुआ है। 'अष्टयाम' युक्त इस ग्रन्थकी सराहना औरंगजेबके पुत्र आजमशाहने की थी इसकी भी सूचना इसी स्थल पर कविने स्वयं एक अन्य दोहेमे दी है तथा अपनी जाति एवं जन्मस्थान आदिका भी पृथक् दोहेमे उल्लेख किया है (दे० 'देव')।

'भावविलास' कुल पाँच विलासोंमें पूर्ण हुआ है तथा इसमें दोहा, सवैया, कवित्त और छप्पय छन्द प्रयुक्त हुए हैं। प्रथम और द्वितीय विलासमे रसांगोंका वर्णन है। तीसरेमें रस तथा हावोंका। चतुर्थमे नायिका भेद तथा पंचममे अलंकार वर्णित हैं। इस ग्रन्थमें देवने केवल ३९ अलंकारोंको समाविष्ट किया है, जिनमें रसवत्, ऊर्ज्जस्वित् और प्रेम भी है। इसकी रचनामें कविने अपने पूर्ववर्ती केशवदास तथा भानुदत्तके ग्रन्थोंके आधारको लिया है। उदाहरणोंमें यथेष्ट मौलिकता लक्षित होती है। इसकी विषय-वस्तुका कविने स्वयं निर्देश किया है—"कवि देवदत्त शृंगार रस सकल भाव संयुत संच्यो। सब नायिकादि नायक सहित अलंकार वर्णन रच्यो॥"

[सहायक ग्रन्थ—शि० स०; मि० वि०; हि० का० शा० इ०; री० भू० तथा दे० क०; देवके लक्षण-ग्रन्थोंका पाठ और पाठ-समस्याएँ (अ०) : लक्ष्मीधर मालवीय।] —ज० गु०

भाषाभूषण–इसके लेखक महाराज जसवन्तसिंह जोधपुर वाले हैं और इसका रचनाकाल सन् १६४४ ई० है। इसके कई सम्पादित संस्करण प्रकाशित हो चुके है। इसका सम्पादन ब्रजरत्नदास तथा गुलाबरायने किया है। इसके मुख्य संस्करण मन्नालाल, बनारस (१८८६ ई०), वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई (१८९४ ई०) तथा रामचन्द्र पाठक, बनारस (१९२५ ई०)ने निकाले हैं। यह संस्कृत-ग्रन्थ 'चन्द्रालोक'-की शैली पर एक ही दोहेमे लक्षणोदाहरण प्रस्तुत करते हुए अप्पय दीक्षितके 'कुवलयानन्द'से प्रभावित होकर लिखा गया है। हिन्दीमें अलंकार विषयको इतनी सरलता, सुगमता और सक्षिप्तताके साथ प्रस्तुत करनेवाला यह सर्व-श्रेष्ठ ग्रन्थ है, जिसे सहज ही कण्ठस्थ किया जा सकता है। गोपाकृत 'अलंकार चन्द्रिका' इसकी पूर्ववर्त्ती रचना होकर भी इतनी प्रभावपूर्ण सिद्ध नहीं हुई। यह ग्रन्थ ऐसे व्यक्तिके लिए रचा गया है, जो 'भाषा'का पण्डित और काव्यरसिक हो। प्रौढ आचार्य तो संस्कृत ग्रन्थोंसे लाभ उठा ही लेते हैं, इसकी रचना तो शिक्षार्थियोंके लाभार्थ हुई है। सम्भवतः इसी कारण लेखकने इस रचनाको 'नवीन' कहा है। "ताही नरके हेतु यह कीन्हों ग्रन्थ नवीन। जो पण्डित भाषा—निपुन, कविता—विषै प्रवीन" (२१०)। इससे पूर्व-प्रचलित ग्रन्थ-परम्पराका संकेत भी ग्रहण किया जा सकता है।

ग्रन्थकी रचना ५ प्रकाशोंमें हुई है। प्रथम प्रकाशमें ५ दोहोंमे मंगलाचरण, द्वितीयमे ९७ दोहोंमे नायिकाभेद, तृतीयमें १९ दोहोंमे हावभाव निरूपण, चतुर्थमें १५६ दोहों-में अर्थालंकार तथा पाँचवेंमे १० दोहोंमे शब्दालंकारोंका वर्णन है। अन्तमे ५ दोहोंमें ग्रन्थ-प्रयोजन दिया गया है। लेखककी शब्दालंकारोंके प्रति विशेष रुचि नहीं है, अनुप्रास-का वर्णन भी यथेष्ट समझा गया है। केवल ३६ दोहोंमें अन्य काव्यांगोंका संकेत कर दिया गया है। अलंकार-प्राधान्यके कारण ही इसे 'भाषाभूषण' नाम दिया गया है। लेखकका विचार है कि विविध ग्रन्थोंके अध्ययनोपरान्त लिखित इस ग्रन्थके १०८ अलंकारोंका ज्ञान प्राप्त कर लेनेपर व्यक्तिको साहित्यके विविधार्थ तथा रस सुगम हो जायेंगे।

अलंकारोंके लक्षणोंमें स्वतन्त्रतासे भी काम लिया गया है और कहीं-कही छायानुवादभी रखा गया है। छायानुवाद अधिक सरस, मधुर और आकर्षक हैं। अलंकार भेदोंके निरूपणके अवसरपर पहले एक साथ विशेष अलंकारके भेदोंका लक्षण देकर तदुपरान्त एक साथ उदाहरण दिये गये हैं अन्यथा दोहेकी एक पंक्तिमे लक्षण तथा दूसरीमे उदाहरण देनेकी शैली अपनायी गयी है। लक्षणोंमें कसा-

वट और उदाहरणोंकी उपयुक्तता प्रशंसनीय है। "'कुवलयानन्द'की आत्मा ही मानो भाषामें अवतरित हो गयी है।" अलंकार-भेद, उनके क्रम तथा उनकी संख्या 'कुवलयानन्द'के ही अनुकूल है तथा रसवत् अलंकार तथा भावोदयादि जैसे 'कुवलयानन्द'में परमतके रूपमें उपस्थित हैं, वैसे ही 'भाषाभूषण'में भी उनकी उपेक्षा है। उपमा, रूपक, निदर्शनादि कुछ अलंकारोंके लक्षणोंके सम्बन्धमे लेखक मौन है। लक्षणोंमे संस्कृत-शब्दावलीके कारण यत्र-तत्र कुछ क्लिष्टता आ गयी है। शब्दालकारोंके लिए लेखक मम्मट, विश्वनाथ तथा दण्डीका आभारी है।

इस ग्रन्थकी प्राचीन टीकाओंमें वंशीधर, रणधीर सिंह, प्रतापसाहि, गुलाब कवि तथा हरिचरणदासकी टीका प्राप्य है तथा दलपतिराय वंशीधरका सन् १७३६ ई०का 'अलकार रत्नाकर' नामक तिलक महत्त्वपूर्ण है। आधुनिक टीकाओंमें गुलाबरायकृत (साहित्य रत्न भण्डार, आगरा द्वारा प्रकाशित) टीका प्रसिद्ध है तथा ब्रजरत्नदास, रामचन्द्र पाठक (बनारस), हिन्दी साहित्य कुटीर (बनारस), वेंकटेश्वर प्रेस (बम्बई), मन्नालाल (बनारस)की टीकाएँ भी प्रकाशित हुई हैं। प्राचीन लेखकोंमें रामसिंहके 'अलंकार दर्पण'के लक्षण इसीसे प्रभावित होकर लिखे गये हैं। सोमनाथकृत 'रसपीयूषनिधि'मे इसके समान अर्थालकारोंका वर्णन किया गया है तथा श्रीधर ओझाने तो 'भाषाभूषण' नामक इसके समान एक ग्रन्थकी रचना ही कर डाली।

[सहायक ग्रन्थ—हि० अ० सा०; हि० का० शा० इ०; हि० सा० बृ० इ० (भाग ६)।] —आ० प्र० दी०

भीखा साहब–भीखा साहब (भीखानन्द चौबे) बावरी पन्थ की भुरकुडा, गाजीपुर शाखाके प्रसिद्ध सन्त गुलाल साहबके शिष्य थे। आपका जन्म आजमगढ जिलेके खानपुर बोहना गाँवमें हुआ था। बचपनमें ही साधु-महात्माओंके प्रति आपकी विशेष रुचि थी। बारह वर्ष की अवस्थामें विरक्त होकर आप घरसे निकल पड़े। गाजीपुर जिलेके सैदपुर भीतरी परगनाके अमुआरा गाँवमे गुलाल साहबके एक पदका गान सुनकर इतने प्रभावित हुए कि सीधे भुरकुडा जाकर उनके शिष्य हो गये। भीखा साहब एक तेजस्वी महात्मा थे। सन् १७६० ई० मे गुलाल साहबकी मृत्युके बाद आप भुरकुडा गद्दीके महन्त हुए। आपके दो प्रमुख शिष्य हुए—गोविन्द साहब और चतुर्भुजदास। गोविन्द साहबने फैजाबादमें अपनी पृथक् गद्दी चलायी। चतुर्भुजदास भुरकुडामें ही रहे।

भीखा साहबकी छः कृतियाँ प्रसिद्ध हैं–'राम कुण्डलिया', 'राम सहस्रनाम', 'रामसबद', 'रामराग', 'राम कवित्त' और 'भगतवच्छावली'। इन रचनाओंका प्रमुख अंश बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबादसे प्रकाशित 'भीखा साहबकी बानी' और भुरकुडा गद्दीसे प्रकाशित 'महात्माओंकी बानी'मे आ गया है। 'राम सबद' सबसे बड़ी रचना है, जिसमें भीखा साहबके अतिरिक्त अन्य सन्तोंके समान भाव-धाराके छन्द भी सगृहीत हैं। आपकी कृतियोंमे संसारकी असारता, चंचल मनका निग्रह, शब्द ब्रह्मकी अद्वैतता और पूर्णता, शब्द-योग, नाम-स्मरण, दैन्य, प्रेम-निरूपण, गुरुकी महत्ता, आत्माकी सर्वव्यापकता और संसारी जीवोंका उद्‌बोधन वर्णित है। पीताम्बरदत्त बड़थ्वालने आपकी विचारधाराको अद्वैत-वेदान्त-दर्शनके निकट स्वीकार किया है। आपने पद, कवित्त, रेखतां, कुण्डलिया और दोहा (साखी) आदि कई छन्दोंका प्रयोग किया है। आपने गेय पदोंकी भाषा भोजपुरीके और रेखताकी भाषा अरबी-फारसीसे युक्त खड़ीबोलीके अधिक निकट है। सन् १७९१ ई० मे आपने अपनी इहलीला समाप्त की। आप अपनी रचना-शैलीकी सुबोधता, पदोंके लालित्य और विचारोंकी स्पष्टताके लिए प्रसिद्ध है।

[सहायक ग्रन्थ—उत्तरी भारतकी सन्त परम्परा : परशुराम चतुर्वेदी; सन्तकाव्य : परशुराम चतुर्वेदी; सन्तबानी संग्रह, भाग पहिला, बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग।] —रा० चं० ति०

भीम–महाभारतमे भीम अपने ओजस्वी एवं विराट व्यक्तित्वके लिए प्रसिद्ध है। ये कुन्ती एव पवनके संसर्गसे उत्पन्न पाण्डुके पुत्र कहे जाते है। इनका सर्वप्रथम उल्लेख महाभारत, तदनन्तर भारतसे सम्बन्धित एव उसपर आधारित अन्य कथाओंमे प्रायः पाण्डु-पुत्रोंके साथ मिलता है। इन्हे वज्रांग भी सम्भवतः इनके अमानुषिक पराक्रमके कारण कहा जाता है। भीमका व्यक्तित्व सर्वत्र उद्धत योद्धा, क्रोधी नायकके रूपमें मिलता है। महाभारतमे हिडिम्बा नामक एक राक्षसीसे इनके व्याहका उल्लेख मिलता है। उससे उत्पन्न घटोत्कच नामक पुत्र भी कहा जाता है। दुर्योधनका वध इन्हींकी गदाके आघातसे हुआ था। भीमका शरीर अत्यन्त विशाल और भारी था। इसीसे 'भीमकाय' शब्दका प्रयोग चला है। उनका पेट भी बडा था तथा उनकी क्षुधा असाधारण थी। अतः उन्हे वृकोदर भी कहा जाता है। हिन्दी साहित्यमें भीमका उल्लेख 'जयद्रथ वध' (मैथिलीशरण गुप्त), 'रश्मिरथी' (रामधारी सिंह 'दिनकर'), 'कृष्णायन' (द्वारकाप्रसाद मिश्र), 'हिडिम्बा' (मैथिलीशरण गुप्त) आदि काव्योंमें हुआ है। —यो० प्र० सिं०

भीमसेन शर्मा–जन्म १८५४ ई० मे हुआ। ये आरम्भमे आर्यसमाजके प्रचारक और स्वामी दयानन्दके सच्चे सहयोगी थे। हिन्दी-गद्यके विकासमे आर्यसमाजके धार्मिक सांस्कृतिक आन्दोलनका बड़ा हाथ रहा है। आर्यसमाजके प्रचारकोंने अपने व्याख्यानो द्वारा हिन्दी-गद्यको प्रोत्साहित किया है और उसे विषय-संस्थापन तथा वाद-विवादकी एक निश्चित शैली दी है। पण्डित भीमसेन शर्मा मात्र प्रचारक अथवा व्याख्याता ही नहीं थे। इन्होने १८८३-८५ ई० के आसपास हिन्दीमे कई पुस्तकें लिखीं और संस्कृत ग्रन्थोंके कई अनुवाद-भाष्य प्रस्तुत किये थे। आर्यसमाजकी सेवाके लिए इन्होंने 'आर्य सिद्धान्त' नामक एक मासिक पत्र निकाला था, जिसमें हिन्दीकी भी सेवा हुई थी। भीमसेन शर्मा हिन्दीके तत्सम रूपके प्रबल समर्थकोंमे थे। 'संस्कृत भाषाकी अद्‌भुत शक्ति' पर इन्हे बड़ा विश्वास था, इसी शीर्षकसे इन्होंने एक लेख भी लिखा था और प्रचलित अरबी-फारसी शब्दोको संस्कृतमय बना डालनेकी अपील की थी। 'शिकायत' को 'शिक्षायत्न', 'सिफारिश' को 'क्षिप्राशिष' और 'दुश्मन' को 'दुःशमन' कर डालना

इनकी नीतिमें जायज था।

बादमें आर्यसमाजसे ये अलग हो गये। १९१२ ई० में कलकत्ता विश्वविद्यालयमें वेदके अध्यापक नियुक्त हुए। —र० अ०

भीषनजी–सन्त कवि भीषनजीकी जीवनीके सम्बन्धमें बहुत कम प्रामाणिक उल्लेख प्राप्त हैं। भारतीय धर्म साधनाके इतिहासमें दो भीषनका उल्लेख मिलता है, इनमें से प्रथम वे हैं, जिनकी रचनाएँ ग्रन्थ साहिबमे संकलित हैं और द्वितीय सूफी सन्त और विचारक हैं। लोगोने इन दोनोके चरित्र, चरित और व्यक्तित्वको एक दूसरेसे ऐसा मिला दिया है कि उन्हें पृथक् करना असम्भव हो गया है।

सन्त भीषनजीका जन्म एवं निवास स्थान लखनऊके निकटस्थ काकोरी ग्राम था। इतिहासकार बदायूनीने भी उन्हें लखनऊ सरकारके काकोरी नगरका निवासी माना है (दे० 'दि सिक्ख रिलीजन', भाग ६ : मेकालिफ)। प० परशुराम चतुर्वेदीका विचार है कि इन्हें वर्तमान उत्तर प्रदेशके ही किसी भागका निवासी मानना उचित जान पड़ता है (दे० 'उत्तरी भारतकी सन्त परम्परा')। भीषनजी के काव्यके विषय और भाव-भूमिका रैदास, कमाल और धन्नाके काव्य-विषयसे साम्य देखकर चतुर्वेदीजी उक्त निष्कर्ष पर पहुंचे है। परीक्षण करनेसे यह स्पष्ट हो जाता है कि भीषन उत्तर प्रदेशके ही निवासी थे और इसीलिए इतिहास-कार मेकालिफ एव बदायूनीके कथन सत्य प्रतीत होते है कि ये काकोरीके निवासी थे। सन्त भीषनका समय निश्चित रूपमे ज्ञात नही है। बदायूनीका मत है कि उनका स्वर्गवास हि० सन् ९२१ (सन् १५७३ ई०) मे हुआ। भीषनजीकी रचनाएँ सिखोके आदि ग्रन्थमें सगृहीत हैं, अतः यह निश्चय है कि उनका समय अथवा उत्कर्ष-काल सोलहवीं शताब्दी ईस्वी मानना चाहिए।

भीषन साहबकी न तो बाल्यावस्थाका कोई विवरण मिलता है, न उसकी शिक्षा-दीक्षा का। बदायूनीके मतानुसार वे गृहस्थाश्रममे रहकर साधनामे तत्पर रहते थे और उनकी कई सन्तानें थीं, जो ज्ञान, विद्या और विवेकसे सम्पन्न थीं। भीषनजी स्वतः बड़े विद्वान् तथा धर्म-शास्त्रके महान् पण्डित थे। वे बडे दयालु और लोकसेवक थे।

भीषन साहबके दो पद गुरु अर्जुन सिंह द्वारा सम्पादित 'गुरु ग्रन्थ साहिब'मे संगृहीत है (दे० श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, पृष्ठ ६५८)। इन पदोमे राम और रामनामकी महिमाका गान किया गया है। प्रथम पदमे कविने कहा है, वृद्धावस्थामे जब शरीर शिथिल हो जाता है, नेत्रोंसे जल बहने लगता है और बाल दुग्धवत् श्वेत हो जाते है, कण्ठ अवरुद्ध हो जाता है और शब्दोंका उच्चारण करना भी कठिन हो जाता है, उस समय हे राम यदि तुम्ही वैद्य बन कर पहुँचो तो भक्तोके कष्ट दूर हो सकते हैं। जब मस्तकमे पीड़ा उत्पन्न हो जाती है और शरीर दैहिक, दैविक तथा भौतिक तापोंमे दग्ध एवं संतप्त हो उठता है और जब कलेजेमें व्यथा उत्पन्न हो जाती हैं तो हरिनामके अतिरिक्त इन कष्टोंसे मुक्ति पानेके लिए कोई ओषधि नहीं है। यह हरिनामरूपी अमृत जल सतगुरुके प्रसादसे ही प्राप्त होता है। द्वितीय पदमें कविने राम-नामकी महत्ता और शक्तिमत्ताका वर्णन किया है।

इन दोनों पदोंके वर्ण्य-विषयसे स्पष्ट है कि कबीर, दादू, नानक, मलूकदास आदिकी भाँति उनके हृदयमें भी राम और नामके प्रति अगाध प्रेम था। इन पदोंके रचयिता भीषनजी, सूफी नहीं थे, यह वर्ण्य-विषयसे स्वय प्रकट है। मैकालिफके मतसे साम्य रखते हुए पं० परशुराम चतुर्वेदीने लिखा है कि मेकालिफका कहना है कि जिस किसीने भी आदि ग्रन्थमें संगृहीत पदोंको लिखा होगा, वह एक धार्मिक पुरुष अवश्य रहा होगा और शेख फरीद सानीकी ही भाँति उस समयकी सुधारसम्बन्धी बातोंसे प्रभावित भी रहा होगा। ऐसा अनुमान कर लेना सम्भव है कि वह भीषन कबीरका ही अनुयायी रहा होगा।

भीषनजीके दोनों पदोंका अध्ययन करनेसे स्पष्ट हो जाता है कि वे काव्य-प्रतिभासम्पन्न समर्थ कवि थे। उनके वर्णन भावपूर्ण और अभिव्यंजनाशैली प्रभावशाली है। इनकी काव्य-भाषा हिन्दी थी। मुहावरेदार भाषा लिखनेमे ये कुशल थे।

[सहायक ग्रन्थ—उत्तरी भारतकी सन्त परम्परा : परशुराम चतुर्वेदी।] —त्रि० ना० दी०

भीष्म, भीष्मक–१. महाभारतके प्रसिद्ध पात्रके रूपमें विख्यात भीष्म शान्तनुके ज्येष्ठ पुत्र थे, जो गंगाके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। अष्टवसुओंमें आठवें वसुके ये अवतार थे। शान्तनुकी प्रार्थनासे गंगाने इन्हे पृथ्वीपर छोड़ दिया। इनका नाम पहले गागेय या देवव्रत था। भीष्म नाम पडनेका कारण यह बताया जाता है कि इन्होंने भीष्म-प्रतिज्ञा की थी। इनके पिताने सत्यवती नामक स्त्रीसे विवाह करनेकी इच्छा प्रकट की परन्तु उस स्त्रीने शर्त रखी कि उसके गर्भसे उत्पन्न पुत्र राज्याधिकारी हो। पिताको प्रसन्न रखनेके लिए भीष्मने आजन्म ब्रह्मचर्य पालन किया। कालान्तरमें सत्यवतीके दो पुत्रों—विचित्रवीर्य और चित्रांगदके विवाहके लिए काशिराजकी दो कन्याओंका इन्होने अपहरण किया। सबसे ज्येष्ठा अम्बाने इन्हींके साथ विवाह करनेका आग्रह किया। लेकिन अपनी प्रतिज्ञाके कारण इन्होंने उसे अस्वीकार कर दिया। अम्बाने इसका बदला लेनेके लिए घोर तपस्या की और महाभारतकालमें 'शिखण्डी' होकर जन्म लिया। शिखण्डीको भीष्म जानते थे, इसीलिए उन्होंने उसपर प्रहार नहीं किया तथा शिखण्ड के पीछेसे वाणोंकी वर्षा करके अर्जुनने इन्हे धराशायी किया। महाभारतके युद्धमे प्रारम्भिक दस दिनों तक भीष्मने कौरव सेनाका सेनापतित्व किया। ब्रह्मचारी होनेके कारण मृत्यु इन्हे बिना इच्छाके नहीं ले जा सकती थी। धराशायी होते समय शुभ घडी नहीं थी, इसलिए बहुत दिनों तक वाणोंकी शैयामे सोते रहे। उस समय पाण्डवोको इन्होंने उपदेश दिया, जो महाभारतके 'शान्तिपर्व'में उल्लिखित है। भीष्म हिन्दू जातिमात्रके पितामह कहे जाते हैं। रामधारी सिंह 'दिनकर'के 'कुरुक्षेत्र'में भीष्मका चरित्र आदर्श पुरुषके रूपमे वर्णित हुआ है।

२. कुण्डनपुरके भीष्मक नामक राजाको भी भीष्म कहा जाता है, जो रुक्मिणीके पिता थे। —रा० कु०

भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'–जन्म १२ फरवरी, सन्

१९११ ई०को शाहाबाद जिलान्तर्गत बिहिया थानाके मिसरौली गाँवमें। आपने काशी हिन्दू विश्वविद्यालयसे हिन्दी एवं अंग्रेजीमें एम० ए० की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं तथा सन् १९५९ ई०में बिहार विश्वविद्यालयसे पी० एच-डी० की उपाधि प्राप्त की। आपके अनुसन्धानका विषय था 'रामभक्ति साहित्यमें मधुरोपासना'। इसका प्रकाशन बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्‌मे हुआ है।

आपने सन् १९३१ ई०मे लेकर १९४२ ई०तक पत्रकार के रूपमें हिन्दीकी सेवा की और १९३१ ई०में ही क्रमशः प्रयागमे प्रकाशित 'भविष्य' और 'चाँद' तथा काशीमे प्रकाशित 'सनातन धर्म'का सम्पादन किया। सन् १९३२से १९४२ ई०तक गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित 'कल्याण' एवं 'कल्याण-कल्पतरु' का सम्पादन किया।

आपकी रचनाएँ हैं—'महाप्रबन्ध', 'धूप-दीप', 'जीवन', 'पूजाके फूल', 'सन्त-साहित्य', 'मीराकी प्रेम-साधना', 'श्री अरविन्द चरितामृत' तथा 'दि फिलासफी ऑव वल्लभाचार्य।' —ह० दे० बा०

भुवनेश्वर-जन्म १९१० ई०में शाहजहाँपुरमें। शिक्षा भी वहीं हुई। लेखककी रचनाओंके अनुशीलनसे यही धारणा बनती है कि पश्चिमके आधुनिक साहित्यका उन्होंने अच्छा अध्ययन किया है। इब्सन, शा, डी० एच० लारेन्स तथा फ्रायडके प्रति वे विशेष अनुरक्त प्रतीत होते हैं। जिन्दगीको उन्होंने कड़वाहट, तीखेपन, विकृति और विद्रूपतामें ही देखा था। सम्भवतः इसी कारण उनमे समाज के प्रति तीव्र वितृष्णा, प्रबल आक्रोश और उग्र विद्रोह-का भाव प्रकट हुआ है। जीवनकी इस कटु अनुभूतिने ही उन्हें फक्कड़, निर्द्वन्द्व और संयमहीन बना दिया था।

भुवनेश्वरने हिन्दीमें पाश्चात्त्य शैलीके एकांकीकी परम्परा चलायी। उनकी प्रथम रचना 'श्यामा—एक वैवाहिक विडम्बना' 'हंस'के दिसम्बर, १९३३ ई० के अकमे प्रकाशित हुई। इसके बाद अन्य एकांकी रचनाएँ 'शैतान' (१९३४ ई०), 'एक साम्यहीन साम्यवादी' ('हंस' मार्च, १९३४ ई०) 'प्रतिभाका विवाह' (१९३३ ई०), 'रहस्य रोमांच' (१९३५ ई०), 'लाटरी' (१९३५ ई०) प्रकाशित हुई। इन्हें संगृहीत करके उन्होने सन् १९३६ ई० मे 'कारवाँ' संज्ञा देकर प्रकाशित किया। इन सभी एकांकियों पर पश्चिमकी एकांकी-शैलीकी छाप है। विषय-वस्तु और समस्याके विश्लेषणमे पश्चिमके बुद्धिवादी नाटककारो इब्सन और शाका प्रभाव है। परिशिष्टमे लेखकने अपने नवीन जीवन-दर्शनको उपस्थित करनेवाले जो सूत्र-वाक्य दिये है, वे शाके व्यंग्य और फ्रायडकी यौन-प्रधान विचार-धार का स्मरण दिलाते हैं।

भुवनेश्वरके और भी एकांकी प्रकाशित होते रहे—'मृत्यु' ('हंस' १९३६ ई०), 'हम अकेले नही है' तथा 'सवा आठ बजे' ('भारत'), 'स्ट्राइक' और 'ऊसर' ('हंस' १९३८ई०)। इन रचनाओंमें उनकी दृष्टिका विस्तार देखनेको मिलता है। यौन-समस्या तथा प्रेमके त्रिकोणसे ऊपर उठकर वे समाजके दुःख-दर्दको भी देखने लगे। सन् १९३८ ई० मे सुमित्रानन्दन पन्त द्वारा सम्पादित 'रूपाभ' पत्रिकामें उन्होंने एक बड़े नाटक 'आदमखोर'का पहला अंक प्रकाशित कराया। इसमें उन्होंने जीवनकी कटु वास्तविकताओंके उद्‌घाटनका घोर यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाया है। सन् १९४० ई० में उन्होंने गोगोलके प्रसिद्ध नाटक 'इन्सपेक्टर जनरल'को लगभग पौन घण्टेके एकांकीका रूप दिया। सन् १९४१ ई०में 'विश्ववाणी'में 'रोशनी और आग' शीर्षक एक प्रयोग उपस्थित किया, जिसमें ग्रीक नाटकों जैसा पूर्वालाप (कोरस) था। 'कठपुतलियाँ' (१९४२ ई०) में उन्होंने प्रतीकवादी शैली अपनायी।

इन प्रयोगात्मक रचनाओंके अनन्तर भुवनेश्वरकी नाट्य-कला परिपक्व रूपमे देखनेको मिली। 'फोटोग्राफरके सामने' (१९४५ ई०) 'ताँबेके कीड़े' (१९४६ ई०) में मनुष्यकी बढ़ती हुई अर्थलोलुपताका उद्‌घाटन है। सन् १९४८ ई० में उन्होंने 'इतिहासकी केंचुल' एकांकी लिखा और इसके अनन्तर उनके कई ऐतिहासिक एकांकी प्रकाशित हुए—'आजादीकी नींव' (१९४९ ई०) 'जेरुसलम' (१९४९ ई०) 'सिकन्दर' (१९४९ ई०), 'अकबर' (१९५० ई०) तथा 'चंगेज खाँ' (१९५० ई०)। इन रचनाओंमे राष्ट्रीयताका स्वर भी उभरा है। अन्तिम कृति 'सींकोंकी गाड़ी' (१९५० ई०) है।

भुवनेश्वरकी एकांकी रचनाएँ बड़ी सशक्त है। उनका सबसे पहला आकर्षण उनके काव्यात्मक, व्यंजनापूर्ण, मर्मस्पर्शी और कभी-कभी चुभती शैलीमे लिखित रंग निर्देश हैं। इन रंगसंकेतो द्वारा उन्होंने रंगमंचकी व्यवस्था, वातावरणके निर्माण, पात्रोकी रूप-योजना, उनकी चरित्र-गत विशेषताओंके उद्‌घाटनके साथ ही, अपने मूल मन्तव्य-नाटकीय प्रभावको भी स्पष्ट कर दिया है। संवाद प्रारम्भ होते ही संघर्षका स्वरूप स्पष्ट होने लगता है, घटना क्रम के घात प्रतिघातोंके साथ वह तीव्र होता जाता है और चरम सीमापर पहुँचते ही यवनिका पतन होता है। चरित्र चित्रणमें उन्होने एक दो बातोमे ही अभिष्ट प्रभाव उत्पन्न कर दिया है। आजके अभिजात वर्गकी दुर्बलताओं, विकृतियों और कुरूपताओंको उन्होंने कुरेद-कुरेद कर नग्न कर दिया है। आदर्शके घटाटोपके नीचे कितना कलुष है, कितनी गन्दगी है, उनकी रचनाएँ इसे प्रकट कर देती हैं। उन्होंने समस्याओंको उभार भर दिया है, उत्तर उन्हे सोचना है, जो स्वय रोग-ग्रस्त हैं। भुवनेश्वर अगर अपनी निरंकुशता, कुण्ठाओं और सन्देहशील वृत्तिसे अपनेको किसी प्रकार मुक्त कर पाते तो उनकी रचनाओमे केवल किसी अस्पताल जैसी चीख पुकार रोदन-कराह ही नहीं, वरन् किसी भव्य उपवनका मोहक वातावरण भी होता। उन्होंने कभी-कभी अंग्रेजीमे कविताएँ भी लिखी थीं, जिनमेंसे कुछ उनके मित्र शमशेर बहादुर सिंहके पास संगृहीत है। —वि० मि०

भूतनाथ-देवकीनन्दन खत्री और उनके पुत्र दुर्गाप्रसाद खत्रीकी सम्मिलित रचना है। देवकीनन्दन खत्री केवल दो खण्ड लिख पाये थे। शेष पाँच खण्डोंको दुर्गाप्रसाद खत्रीने १९१६ ई०से लेकर १९३४ ई०तक १८ वर्षोंमे पूरा किया। इसका कथानायक भूतनाथ 'चन्द्रकान्ता सन्तति' का ही एक पात्र है। इसमे आनेवाले अन्य पात्रोंका उल्लेख भी 'सन्तति' में हो चुका है। गिरधर सिंह जमानियाँके राजा

है। शंकर सिंह (भैया राजा) उनके छोटे भाई और गोपालसिंह उनके पुत्र हैं। उनका दारोगा यदुनाथ शर्मा दुष्ट, धूर्त और क्रूर बुद्धिवाला व्यक्ति है। वह किसी प्रकार जमानियोंकी राजसत्ता हड़पना चाहता है। शंकर सिंह उसका विरोध करते हैं। लोभवश भूतनाथ उसका साथ देता है। भूतनाथ असाधारण बुद्धि, किन्तु अस्थिर चित्तका व्यक्ति है। उसकी जिन्दगीमें एक भेद है। वस्तुतः वह अपने शत्रु राजसिंहके भतीजेको मार डालता है किन्तु समझता यह है कि उसने अपने मित्र दयारामकी हत्या कर दी है। इस कलंकको छिपानेके लिए अन्य कुकर्म करता है। दारोगाके गुरुभाई इन्द्रदेव बड़े ही वीर सज्जन और न्यायनिष्ठ व्यक्ति हैं। वे भूतनाथका भला चाहते हैं। उनका विश्वास है कि भूतनाथकी सद्वृत्तियाँ जगायी जा सकती हैं। अन्ततः यही होता है। भूतनाथ सुधर जाता है। गोपालसिंह और वीरेन्द्रसिंहका साथ देता है। उसके पापोंका परिमार्जन हो जाता है। यह 'सन्तति'की ही शैलीपर लिखा गया है। इसका प्रेरक भाव एक यथार्थजीवी व्यक्तिका जीवनवृत्त है। इसके अबतक तेरह संस्करण निकल चुके है, जो इसकी लोकप्रियताके प्रमाण है। —रा० चं० ति०

भूदेव मुखर्जी–स्वतन्त्रताप्राप्तिके पूर्व जिन अहिन्दी भाषा-भाषियोंने हिन्दीको राष्ट्रभाषाके रूपमें प्रस्तावित और समर्थित किया था, उनमेंसे भूदेव मुखर्जीका नाम अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। भूदेव मुखर्जी १८७६-७७ ई० मे बिहारके शिक्षा विभागके प्रधान अधिकारी थे। हिन्दीके राष्ट्रीय रूपमें उनकी दृढ आस्था थी। इस प्रसंगमे कई बार उन्होंने अपना मत अत्यन्त स्पष्टरूपसे व्यक्त किया था और हिन्दीके प्रचार-प्रसारके लिए कई प्रकारसे यत्न किये थे। —स०

भूपति–अमेठीके राजा, इनका पूरा नाम गुरुदत्त सिंह है। इन पर सरस्वती और लक्ष्मीकी कृपा तो थी ही, साथ ही साथ तलवारके भी धनी थे। स्वयं कवि, कवियोंके आश्रयदाता और काव्यमर्मज्ञ थे। उदयनाथ कवीन्द्र इनके आश्रित कवि थे। इनकी एक कवितासे भूपतिकी उस वीरताका पता चलता है, जब अवधके नवाब सआदत खाँने इनसे रुष्ट होकर इनके किलेको घेर लिया था। ये नवाबके सामने ही उसके सैनिकोको मारते-काटते जगलकी ओर निकल गये थे। इनका रचना-काल सन् १७३५ ई० का माना जाता है क्योंकि शृंगारपरक दोहोंकी 'सतसई' (१७३४ ई० के लगभग)की रचना उसी समय की थी। कहा जाता है कि 'सतसई'के अतिरिक्त 'कण्ठाभूषण' और 'रसरत्नाकर' नामके दो रीति-ग्रन्थोंकी भी रचना इन्होने की थी, पर उनका पता नहीं चलता।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० इ०।] —ह० मो० श्री०

भूरिश्रवा–महाभारतमें भूरिश्रवाके पराक्रमका उल्लेख मिलता है। यह अतिशय यशस्वी, कीर्तिमान, चन्द्रवंशीय राजा सोमदत्तका पुत्र था। यह महाभारतमे कौरवोंकी ओरसे युद्ध किया करता था। महाभारत युद्धमे सर्वप्रथम अर्जुनने अपने प्रखर बाणोंसे इसकी भुजाओंको काट डाले थे। तदनन्तर सात्यकिने तलवारसे इसका मस्तक भी काट डाला। इसका उल्लेख 'जयद्रथ-वध'में मिलता है। —यो० प्र० सिं०

भूषण–भूषण हिन्दी रीति-कालके अन्तर्गत, उसकी परम्पराका अनुसरण करते हुए वीर-काव्य तथा वीर-रसकी रचना करनेवाले प्रसिद्ध कवि हैं। इन्होंने 'शिवराज-भूषण'में अपना परिचय देते हुए लिखा है कि ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनका गोत्र कश्यप था। ये रत्नाकर त्रिपाठीके पुत्र थे तथा यमुनाके किनारे त्रिविक्रमपुर (तिकवाँपुर) में रहते थे, जहाँ बीरबलका जन्म हुआ था और जहाँ विश्वेश्वरके तुल्य देव-बिहारीश्वर महादेव है। चित्रकूटपति हृदयरामके पुत्र रुद्र सुलंकीने इन्हे 'भूषण'की उपाधिसे विभूषित किया था (छन्द २५-२८)। तिकवाँपुर कानपुर जिलेकी घाटमपुर तहसीलमे यमुनाके बाएँ किनारे पर अवस्थित है।

कहा जाता है कि वे चार भाई थे—चिन्तामणि, भूषण, मतिराम और नीलकण्ठ (उपनाम जटाशंकर)। भूषणके भ्रातृत्वके सम्बन्धमें विद्वानोमे बहुत मतभेद है। कुछ विद्वानोंने इनके वास्तविक नाम पतिराम अथवा मनिराम होनेकी कल्पना की है पर यह कोरा अनुमान ही प्रतीत होता है।

भूषणके प्रमुख आश्रयदाता महाराजा शिवाजी (६ अप्रैल, १६२७—३ अप्रैल, १६८० ई०) तथा छत्रसाल बुन्देला (१६४९-१७३१ ई०) थे। इनके नामसे कुछ ऐसे फुटकर छन्द मिलते है, जिनमे साहूजी, बाजीराव, सुलंकी, महाराज जयसिंह, महाराज रानसिंह, अनिरुद्ध, राव बुद्ध, कुमाऊँ-नरेश, गढवार-नरेश, औरंगजेब, दाराशाह (दाराशुकोह) आदिकी प्रशंसा की गयी है। ये सभी छन्द भूषण-रचित है, इसका कोई पुष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं है। ऐसी परिस्थितिमे उक्त सभी राजाओंको भूषणका आश्रयदाता नहीं माना जा सकता। मिश्रबन्धुओं तथा रामचन्द्र शुक्लने भूषणका समय १६१३-१७१५ ई० माना है। शिवसिंह सेंगरने भूषणका जन्म १६८१ ई० और ग्रियर्सनने १६०३ ई० लिखा है। कुछ विद्वानोंके मतानुसार भूषण शिवाजीके पौत्र साहूके दरबारी कवि थे। कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि उन विद्वानोंका यह मत भ्रान्तिपूर्ण है। वस्तुतः भूषण शिवाजी के ही समकालीन एवं आश्रित थे।

भूषणरचित छः ग्रन्थ बतलाये जाते है। इनमेंसे ये तीन ग्रन्थ—१. 'भूषणहजारा', २. 'भूषणउल्लास' और ३. 'दूषणउल्लास' अभी तक देखनेमे नही आये है। इनके शेष ग्रन्थोंका परिचय इस प्रकार है : १. 'शिवराजभूषण'—भूषणने अपनी इस कृतिकी रचना-तिथि ज्येष्ठ बदी १३, रविवार, सं० १७३० (२९ अप्रैल, १६७३ ई० रविवार) दी है (छन्द ३८२)। 'शिवराज-भूषण'में उल्लिखित शिवाजी विषयक ऐतिहासिक घटनाएँ १६७३ ई० तक घटित हो चुकी थीं। इससे भी इस ग्रन्थका उक्त रचनाकाल ठीक ठहरता है। साथ ही शिवाजी और भूषणकी समसामयिकता भी सिद्ध हो जाती है। 'शिवराज-भूषण'मे ३८४ छन्द हैं। दोहोंमे अलंकारोंकी परिभाषा दी गयी है तथा कवित्त एवं सवैया छन्दोमें उदाहरण दिये गये हैं, जिनमें शिवाजीके कार्य-कलापोंका वर्णन किया गया है। २. 'शिवाबावनी'में ५२ छन्दोंमें शिवाजीकी कीर्ति और ३. 'छत्रसालदशक'में दस छन्दोंमे छत्रसाल बुन्देलाका यशोगान किया गया है।

भूषणके नामसे प्राप्त फुटकर पद्योंमें विविध व्यक्तियोंके सम्बन्धमें कहे गये तथा कुछ शृंगारात्मक पद्य संगृहीत हैं।

भूषणकी सारी रचनाएं मुक्तक-पद्धतिमें लिखी गयी हैं। इन्होंने अपने चरित्र-नायकोंके विशिष्ट चारित्र्य-गुणों और कार्य-कलापोंको ही अपने काव्यका विषय बनाया है। इनकी कविता वीररस-प्रधान है। इसमें चारों प्रकारके वीर-युद्धवीर, दयावीर, दानवीर और धर्मवीर—के वर्णन प्रचुर मात्रामें मिलते हैं, पर प्रधानता युद्धवीरकी ही है। इन्होने युद्धवीरके प्रसगमें चतुरग चमू, वीरोंकी गर्वोक्तियाँ, योद्धाओं के पौरुष-पूर्ण कार्य तथा शस्त्रास्त्र आदिका सजीव चित्रण किया है। इसके अतिरिक्त रौद्र, भयानक, वीभत्स आदि प्रायः समस्त रसोंके वर्णन इनकी रचनामें मिलते है पर उनमें रसराजकता वीररसकी ही है। वीर-रसके साथ रौद्र तथा भयानक रसका संयोग इनके काव्यमें बहुत अच्छा बन पड़ा है।

रीतिकारके रूपमें भूषणको अधिक सफलता नहीं मिली है पर शुद्ध कवित्वकी दृष्टिसे इनका प्रमुख स्थान है। इन्होंने प्रकृति-वर्णन उद्दीपन एव अलंकार-पद्धतिपर किया हैं। 'शिवराजभूषण' मे रायगढ़के प्रसगमे राजसी ठाठ-बाट, वृक्षों, लताओं तथा पक्षियोंके नाम गिनानेवाली परिपाटीका अनुकरण किया गया है।

सामान्यतः भूषणकी शैली विवेचनात्मक एवं संश्लिष्ट है। इन्होंने विवरणात्मक-प्रणालीका बहुत कम प्रयोग किया है। इन्होने युद्धके बाहरी साधनोंका ही वर्णन करके सन्तोष नही कर लिया है, वरन् मानव-हृदयमें उमंग भरनेवाली भावनाओंकी ओर उनका सदैव लक्ष्य रहा है। शब्दों और भावोंका सामंजस्य भूषणकी रचनाका विशेष गुण है।

भूषणने अपने समयमे प्रचलित साहित्यकी सामान्य काव्य-भाषा ब्रजका प्रयोग किया है। इन्होने विदेशी शब्दोंका अधिक प्रयोग मुसलमानोंके ही प्रसंगमे किया है। दरबारके प्रसंगमे भाषाका खड़ा रूप भी दिखाई पड़ता है। इन्होंने अरबी, फारसी और तुर्कीके शब्द अधिक प्रयुक्त किये है, बुन्देलखण्डी, बैसवाडी एव अन्तर्वेदी शब्दोंका भी कहीं-कहीं प्रयोग किया गया है। इस प्रकार भूषणकी भाषाका रूप साहित्यिक दृष्टिसे बहुत परिष्कृत और ग्राह्य तो नहीं है पर व्यावहारिक दृष्टिसे बुरा भी नहीं कहा जा सकता। इनकी कवितामें ओज पर्याप्त मात्रामें है। प्रसादका भी अभाव नहीं है। 'शिवराजभूषण' के आरम्भके वर्णन और शृंगारके छन्दोंमे माधुर्यकी प्रधानता है।

आचार्यत्वकी दृष्टिसे भूषणको विशिष्ट स्थान नहीं प्रदान किया जा सकता पर कवित्वके विचारसे उनका एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनकी कविता कवि-कीर्तिसम्बन्धी एक अविचल सत्यका दृष्टान्त है। वे तत्कालीन स्वातन्त्र्य-संग्रामके प्रतिनिधि कवि है। भूषण वीरकाव्य-धाराके जगमगाते रत्न है। भूषणकी रचनाओके अनेक संस्करण प्रकाशित हो चुके है (दे० 'शिवराज-भूषण')।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० इ०; हि० वी०; हि० सा०; भूषण ग्रन्थावलियोंकी भूमिकाएँ।] —दी० तो०

भृगु—एक ऋषि थे, जो शिवके पुत्र माने गये हैं। इनके साथ ही ब्रह्माके कवि और अग्निके अंगिरा माने गये हैं। एक बार यह निर्णय करनेके लिए कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनोंमे कौन बड़ा है, इन्होंने तीनोंका अपमान किया। ब्रह्मा और महेश क्रुद्ध हो गये। फिर क्षीरशायी विष्णुके सोते समय जाकर उनकी छातीपर इन्होंने एक लात मारी किन्तु जागनेपर क्रोध करनेके बजाय विष्णुने पूछा कि आपके पैरमें चोट तो नहीं लगी। इसपर भृगु विष्णुकी महानता मान गये। भृगुके ही कुलमे ऋचीक, जमदग्नि और राम हुए। अन्य पुराणोंके अनुसार भृगु ब्रह्माके मानस पुत्र तथा दक्ष प्रजापतियोंमेंसे एक थे। दक्ष कन्या ख्याति इनकी स्त्री थी। भृगु धनुर्वेद विद्याके प्रवर्तक थे। भृगुने एक बार शिवको भी शाप दिया था। नन्दीने इन्हे भीतर जानेसे मना कर दिया था क्योंकि शिव पार्वतीके साथ सम्भोगमें रत थे। इनके ही शापसे कलियुगमें लिंग और योनिकी पूजा होती है और इनका प्रसाद द्विजातियोंको ग्राह्य नही है। वस्तुतः भृगुवंशके गौरव तथा भृगुके पदचिह्नके विष्णुके वक्षपर चिह्नित होनेके कारण इनका काव्यमे अनेक रूपोंमें वर्णन मिलता है—"कहा रहीम हरिको घट्यो जो भृगु मारी लात।" —रा० कु०

भोगीलाल—ये कूर्म नरेश बख्तावर सिंहके आश्रित कवि महाकवि देवके प्रपौत्र थे। इन्होने 'बखत विलास' नामक नायिका-भेदविषयक ग्रन्थ अपने आश्रयदाताके नामपर १७९९ ई० मे लिखा। —सं०

भोज—१. राजा भोज नामके अत्यन्त प्रसिद्ध राजा हुए हैं। वैसे भोज नामक कई राजा हुए, जिनमे धारा नगरीके राजा भोज ही अधिक कीर्तिमान् हुए। इनके नामपर आज भी अनेक कथाएं हिन्दी-जगत्मे प्रसिद्ध है। ये साहित्य और अनेक ललित कलाओंके मर्मज्ञ थे और उनके विकासमें प्रयत्नशील रहते थे।

२. भोज नामक एक यदुवंशी राजा। इनकी नगरी मृतकवती थी, जो मालवाके निकट ही है।

३. एक ब्रजवासी, कृष्णभक्त गोप। श्रीकृष्णके बाल-सखा और भक्तोंमे पूज्य।

४. एक जंगली जातिका नाम, जो विन्ध्य क्षेत्रमे रहती थी। —मो० अ०

भौमासुर—भौमासुर एक असुर था। इसके लिए नरकासुर नामका भी उल्लेख मिलता है। भौमासुरकी उत्पत्ति वाराह अवतारके साथ विष्णुके धरतीसे संभोगके परिणामस्वरूप हुई थी। अन्य देवताओंको जब यह ज्ञात हुआ कि एक असुर पृथ्वीके गर्भमे आ गया है तो उन्होने इसकी उत्पत्ति को ही अवरुद्ध कर दिया। इसपर विष्णुने पृथ्वीसे इसकी उत्पत्तिका निवेदन किया था तथा विष्णुने यह भी वरदान दिया था कि त्रेतामे रावणके निधनके अनन्तर इसकी उत्पत्ति होगी। अतः रावण-वधके बाद सीताके जन्मवाले स्थानमे इसकी उत्पत्ति हुई। इसीलिए इसका नाम 'भौमासुर' पड़ा। १६ वर्षोंतक राजा जनकने इसका पालन-पोषण किया। इसके उपरान्त पृथ्वी आकर इसे अपने साथ ले गयी। पृथ्वीने अपना उसकी माता रूपमे ज्ञान करानेके उद्देश्यसे उसे उसकी उत्पत्तिका रहस्य बताया। उन्होंने विष्णुका स्मरण किया और वे प्रकट हुए। विष्णुने नरकको

ले जाकर 'नागज्योतिपुर'में प्रतिष्ठित किया। उसी समय विदर्भ राजकन्या मायासे इसका विवाह हो गया। चलते समय विष्णुने भौमासुरको उपदेश दिया कि तुम ब्राह्मणों और देवताओंके साथ किसी प्रकारका विरोध मत करना। साथमें उन्होने इसको एक दुर्भेद्य रथ भी प्रदान किया। पिताकी आज्ञानुसार कुछ समय तक उसने उचित रीतिसे राज्यसंचालन भी किया किन्तु बाणासुरके संसर्गसे इसमे राक्षसी प्रवृत्तियोका उदय एवं विकास आरम्भ हो गया। एक बार ऋषि वशिष्ठ कामाख्या देवीके दर्शनार्थ गये पर भौमासुरने वशिष्ठको नगरमें प्रविष्ट भी नहीं होने दिया। अतः कुपित होकर ऋषिने इसे पिता द्वारा वधित होनेका शाप दिया। इसी शापके फलस्वरूप कृष्णने प्राग्ज्योतिषपुरमे भौमासुरका वध किया। भौमासुरसे भगदत्त, मदवान, महाशीर्ष तथा सुमाली आदि पुत्र भी उत्पन्न हुए थे। ऐसी प्रसिद्धि है कि भौमासुर कुबेरसे भी धनी था। यह कल्पवृक्ष रूपमे कृष्णको भौमासुरकी मृत्युके अनन्तर प्राप्त हुई थी। कृष्णकी असुरसंहारक लीलाओंके अन्तर्गत भौमासुरके वधकी कथा मिलती है (दे० सूर सा० प० ४८१२)। —रा० कु०

मंगलसूत्र—अपने अन्तिम दिनोंमे प्रेमचन्द 'मंगलसूत्र' (१९३६ ई०) उपन्यास लिख रहे थे किन्तु वे उसे पूर्ण न कर सके। इस उपन्यासका अन्तिम रूप क्या होता, यह तो कहना कठिन है तो भी ऐसा प्रतीत होता है कि वे इसकी रचना आत्मकथात्मक रूपमे करना चाहते थे।

'मंगलसूत्र'मे एक साहित्यिकके जीवनकी समस्या उठाई गयी है। इस दृष्टिसे यह उपन्यास प्रेमचन्दके अन्य उपन्यासोंसे भिन्न है। इसके चार अध्यायोमे देवकुमार साहित्य-साधनामें अपना जीवन व्यतीत करते हैं। उन्हें कुछ व्यसन भी लगे हुए है। इन दोनो कारणोसे उनका भौतिक जीवन तो सुखी नही होता। हाँ, उन्हे ख्याति अवश्य प्राप्त होती है। उनके दो पुत्र, वकील सन्तकुमार और साधुकुमार है। ज्येष्ठ पुत्र सन्तकुमार जीवनमे सुख और ऐश्वर्य चाहता है और पिताके जीवनादर्शका समर्थन नहीं करता। छोटा पुत्र उनके विचारों और आदर्शसे सहमत है। वह भी पिताकी भाँति आदर्शवादी है। प्रेमचन्दने देवकुमारको जीवनके संघर्षोंके फलस्वरूप स्वनिर्धारित आदर्शसे विचलित होता हुआ-सा चित्रित किया है। भविष्यमें क्या होता, इसका अनुमान मात्र प्रेमचन्दकी पिछली कृतियोंके आधारपर किया जा सकता है। देवकुमारकी एक पुत्री पंकजा भी है, जिसका विवाह हो जाता है। —ल० सा० वा०

मंचित—बुन्देलखण्डके मऊ स्थानके निवासी मंचित कवि अपनी 'कृष्णायन' नामक कृतिके कारण विख्यात है। इनका जन्मकाल अनिर्णीत है किन्तु रचनाओंमे दिये सवत्से पता चलता है कि वे सन् १७७९ ई० (सं० १८३६)मे विद्यमान थे। उनकी दो रचनाएँ कृष्ण-चरित्रसम्बधी प्राप्त हैं—'सुरभीदानलीला' और 'कृष्णायन'। 'सुरभीदानलीला' सार छन्दमें कृष्ण-चरितकी सुप्रसिद्ध लीलाओंका वर्णन है। 'कृष्णायन' गोस्वामी तुलसीदासके अनुकरण पर दोहों-चौपाइयोंमें लिखा हुआ प्रबन्ध-काव्य है। गोस्वामीजीकी पदावलीका भी स्थान-स्थानपर अनुकरण देखनेमें आता है। मंचितकी भाषा ब्रज होनेके कारण 'रामचरितमानस' जैसा अवधीका प्रवाह इस ग्रन्थमें नहीं है फिर भी संस्कृतकी पदावलीके कारण कहीं-कहीं पद रचना अच्छी है। 'कृष्णायन'का कथानक लेखक पूरी तरह निभा नहीं सका है। लीला वर्णनके प्रसंग 'सुरभीदानलीला'में सरस बन पड़े हैं। इनकी रचना पढ़नेसे इतना अवश्य लगता है कि अठारहवी शताब्दीमें भाषा तथा भाव दोनों क्षेत्रमें ब्रजका साम्राज्य होनेपर भी तुलसीदासकृत 'रामचरितमानस'के अनुकरणका प्रयास जारी था। —वि० स्ना०

मंझन—मंझन हिन्दीके एक प्रसिद्ध सूफी कवि थे। इनके जीवनके सम्बन्धमे बहुत ही कम जानकारी प्राप्त है। अभीतक इनकी एकमात्र रचना 'मधुमालती' का ही पता चला है। यह कहना कठिन है कि इनकी और कोई अन्य रचना है या नहीं। हालमें मधुमालतीकी एक अखण्डित प्रति (सम्पादक—डा० शिवगोपाल मिश्र, वाराणसी, नवम्बर १९५७ ई०) मिली है, जिसके आधारपर मंझनकी जीवनसम्बन्धी कुछ बातोंका पता चल जाता है। 'मधुमालती' मे मंझनने अपने सम्बन्धमें थोड़ा-बहुत संकेत किया है। 'मधुमालती' की रचना सन् १५४५ ई० (हिजरी सन् ९५२) में हुई। इससे इतना अनुमान लगाया जा सकता है कि ईस्वी सन्‌की सोलहवीं शताब्दीके मध्यमें वे वर्तमान थे। यह काल शेरशाहके उत्तराधिकारी सलीमशाहका था। वह सन् १५४५ ई० गद्दीपर बैठा। मझनने लिखा है: "साह सलेम जगत चातिहारी"।

लगता है, जैसे मझन अपना निवास-स्थान छोड दूसरी जगह रहने लगे थे। 'मधुमालती' (उपर्युक्त संस्करण) में अपने सम्बन्धमे लिखते हुए मंझनने कहा है—"तब हम भो दोसर बासा, जब रे पितै छोडा कबिलासा"। मंझनने अपने गुरुका नाम शेख महम्मद या गौस महम्मद बतलाया है लेकिन इससे अधिक अपने गुरुके सम्बन्धमे कुछ नहीं कहा है और न अपनी गुरु-परम्पराका ही जिक्र किया है। वैसे अपने गुरुके सम्बन्धमे उन्होने इतना अवश्य कहा है कि वे सिद्ध पुरुष थे तथा उन्हींकी कृपासे उन्हे ज्ञानकी प्राप्ति हुई और वे आध्यात्मिक-जीवनकी ओर प्रवृत्त हुए।

मंझनके काल आदिको लेकर विद्वानोंमें काफी मतभेद रहा है। उनके धर्म, उनके वास-स्थान आदिके सम्बन्धमे नाना प्रकारके मत उपस्थित किये गये हैं। किसीने मंझनको मुसलमान कहा है और किसीने हिन्दू। इस मतभेदका कारण यह भी रहा है कि अभीतक 'मधुमालती' की खण्डित प्रतियाँ ही उपलब्ध रही है। ऊपर जिस अखण्डित प्रतिका उल्लेख किया गया है, वह डा० शिवगोपाल मिश्रको एकडलामे मिली थी। इस अखण्डित प्रतिसे कई बातोंकी जानकारी प्राप्त हो जाती है। सबसे पहले तो इस बातका निश्चय हो जाता है कि मंझन मुसलमान थे। एकडलावाली प्रतिकी पुष्पिकामें मझनका पूरा नाम गुफ्तार मियाँ मंझन बतलाया गया है। इसके अलावा 'मधुमालती' के प्रारम्भमे मंझनने परमात्माको स्मरण करते हुए चार प्रथम खलीफाओं—अबू बक्र, उमर, उस्मान और अली—के प्रति अपनी श्रद्धा निवेदित की है। हजरत मुहम्मदके सम्बन्धमे भी मंझनने जो कुछ लिखा है, उससे उनकी

इस्लाम धर्मसम्बन्धी मान्यताओंकी पूरी जानकारीका पता चल जाता है।

उनके निवास स्थानके सम्बन्धमें दो प्रकारके मत प्रकट किये गये हैं। 'मधुमालती' (उपर्युक्त संस्करण)की एक पंक्ति "गढ़ अनूप बस नग्र चर्नाढ़ी, कलयुग भो लंका जो गढ़ी" के आधार पर मंझनके वास-स्थानका अनुमान लगाया गया है। रामपुर रियासतके राजकीय पुस्तकालयमें परशुराम चतुर्वेदीको 'मधुमालती'की एक हस्तलिखित प्रति देखनेको मिली है (दे० 'सूफी काव्य संग्रह', प्रकाशक, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, सन् १९५१ ई०), जिसमें उपर्युक्त पंक्तिका खण्डित पद मिला है, जो इस प्रकार है—"गढ़ अनूप बस नागर…ढ़ी"। चतुर्वेदीजीका अनुमान है कि या तो अनूपगढ़ मंझनका निवासस्थान होगा या "ढ़ी"में अन्त होने वाला नगर। एकडलावाली प्रतिके आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इस नगरका नाम चर्नाढ़ी था लेकिन डा० शिवगोपाल मिश्र इससे सहमत नहीं। उनके अनुसार चर्नाढ़ी 'मधुमालती' काव्यके नायक मनोहरके पिता सूरजभानकी राजधानी थी किन्तु अन्य साक्ष्योंसे चतुर्वेदीजीका मत ही ठीक जान पड़ता है।

मंझन सूफी कवि थे अतएव उन्होंने सूफियोंकी प्रेम-पद्धतिको ही अपनाया है। सूफियोंका विश्वास है कि प्रेमके द्वारा ही परमात्माको पाया जा सकता है। मंझनने 'मधुमालती'में प्रेमका वर्णन सूफी-सिद्धान्तोंको ध्यानमें रखकर किया है। 'मधुमालती'में मंझनने आध्यात्मिक तत्त्वोंका समावेश स्थान-स्थान पर अवश्य किया है, लेकिन उनका ध्यान कहानी कहनेकी ओर ही अधिक रहा है। 'मधुमालती'का कथानक जटिल है। कविके लिए सब समय कथा-निर्वाहकी ओर ध्यान रखना सम्भव नहीं हो सका है। चरित्र-चित्रणकी दृष्टिसे भी मंझनने बहुत कुछ अपनी कुशलताका परिचय नहीं दिया है। 'मधुमालती'में बारहमासेका वर्णन केवल परम्परा-पालन मात्र है। कहानीको अगर ध्यानमें रखा जाय तो 'मधुमालती'के बारहमासेका कोई औचित्य नहीं। साधारणतः हिन्दीके सूफी कवियोंने अपनी कहानीको दुःखान्त बनाया है लेकिन मंझनने अपनी कहानीका अन्त नायक-नायिकाके सुखद मिलनमें किया है। कविने जानबूझकर ऐसा किया है। मंझनने कहा है : "उतपति जग जेती चलि आई, पुरुखमारि जग सती कराई। मैं छोहन्ह येहि मारिन पारेउं, सही मरिहि जे कलि ओतारेउ।" 'मधुमालती'में कविकी प्रतिभा तथा आध्यात्मिक तत्त्वोंकी उसकी जानकारीका पता चलता है।

[सहायक ग्रन्थ—मधुमालती : डा० शिवगोपाल मिश्र (सम्पादक), नवम्बर, १९५७ ई०, वाराणसी; सूफी काव्य संग्रह : परशुराम चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सन् १९५१ ई०; हिन्दी सूफी काव्यकी भूमिका : रामपूजन तिवारी, ग्रन्थ वितान, पटना—१, सन् १९६० ई०।] —रा० पू० ति०

मंथरा–१. यह दशरथकी रानी कैकयीकी प्रिय दासी थी। 'रामचरितमानस'के अनुसार इसीके कहनेपर रामके राज्याभिषेक होनेके अवसरपर कैकयीकी मति फिर गयी थी और उसने राजा दशरथसे दो वरदान माँगे थे—एक भरतको राज्यपद और दूसरा रामको १४ वर्षका वनवास। अनुश्रुति है कि पूर्वजन्ममें मन्थरा, दुन्दुभि नामकी एक गन्धर्वी थी।

२. विरोचन दैत्यकी कन्या। इसके अत्याचार करनेपर इन्द्रने इसका वध किया। —मो० अ०

मंडन–ये जैतपुर (बुन्देलखण्ड) के निवासी तथा वहाँके राजा मंगद सिंहके आश्रयमें थे। शिवसिंहके आधारपर अन्य इतिहासकारोंने भी इनका उपस्थितिकाल १६५९ ई० माना है। मिश्रबन्धु इनको तुलसीका समसामयिक मानते हैं, इनके रहीमकी प्रशंसामें लिखे गये एक छन्दसे यह सिद्ध भी होता है। कुछ लोगोंने भ्रमवश इन्हें मतिराम या भूषणका भाई माना है।

इनके नाममें आठ ग्रन्थोंकी सूचना मिलती है—'जनक पचीसा', 'रस रत्नाकर', 'पुरन्दर माया', 'जानकी जू को ब्याह', 'शृंगार कवित्त', 'बारामासी', 'नयन पचासा' और 'रस-विलास'। इनमें द्वितीय तथा अन्तिम ग्रन्थ रसविषय पर हैं। ये रस और नायिका-भेदके ग्रन्थ है पर इनमें शास्त्रीय विवेचन नहीं है। 'रस रत्नावली' ग्रन्थ अपूर्ण प्राप्त हुआ है। इनकी भाषा सरल और शैली प्रमाद गुणसे युक्त है। उदाहरण भागसे इनकी काव्य-प्रतिभाका परिचय मिलता है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० इ० ; हि० सा० बृ० इ० (भा० ६); हि० का० शा० इ०; दि० भू० (भूमिका)।]—सं०

मंदोदरी–पौराणिक स्रोतोंमें मन्दोदरीके दो सन्दर्भ मिलते हैं—

१. मन्दोदरी पंचकन्याओंमेंसे एक थी। इसके पिताका नाम मयासुर था तथा माता रम्भा नामक अप्सरा थी। मन्दोदरीका विवाह रावणसे हुआ था तथा इससे रावणके इन्द्रजित नामक पुत्र भी उत्पन्न हुआ था। रामकथा-काव्योंमें मन्दोदरीका चरित्र वर्णित हुआ है।

२. मन्दोदरीका दूसरा उल्लेख सिंहल द्वीपके राजा चन्द्रसेन तथा रानी गुणवतीकी कन्याके रूपमें मिलता है। —रा० कु०

मछंदरनाथ–दे० 'मत्स्येन्द्रनाथ'।

मतिराम १–मिश्रबन्धुओंके द्वारा हिन्दी कविताके नवरत्नोंमें परिगणित मतिराम अत्यन्त प्रतिभासम्पन्न एवं ब्रजभाषाके उत्कृष्ट रीतिकालीन कवि है। मतिरामके जीवनवृत्त एवं उनके ग्रन्थों और कवित्वकी सूचना प्रायः हिन्दी-साहित्यके समस्त इतिहासग्रन्थोंमें मिलेगी परन्तु मतिराम-सम्बन्धी उल्लेख भिखारीदासकृत 'काव्य-निर्णय', गोकुलकृत 'दिग्विजयभूषण' जैसे काव्य-ग्रंथोंमें भी मिलते हैं। हिन्दी साहित्यके इतिहासकारों—शिवसिंह सेंगर, गार्सां द तासी, जार्ज ग्रियर्सन, मिश्रबन्धु, रामचन्द्र शुक्ल, श्यामसुन्दरदास आदि ने जो सूचना उनके जीवनवृत्त और रचनाओंके सम्बन्धमें दी है, वह परम्परा-प्रसिद्ध एवं ग्रन्थोंके उल्लेखोंके आधारपर है। जिस ग्रन्थमें लगभग समस्त सामग्रीका उपयोग पहले-पहल भली रीतिसे किया गया, वह है कृष्णबिहारी मिश्रकृत 'मतिराम-ग्रन्थावली'। सबसे पहले विस्तृत जीवनचरित देनेवाला ग्रन्थ 'हिन्दी नवरत्न' है, जिसका मुख्य आधार 'शिवसिंह सरोज' है परन्तु अब

मतिरामकी जीवनी और साहित्यको लेकर दो शोध-प्रबन्ध भी लिखे जा चुके हैं—एक महेन्द्रकुमारका 'मतिराम—कवि और आचार्य' और दूसरा त्रिभुवनसिंहका 'महाकवि मतिराम'। इन दोनों ग्रन्थोंमें लगभग समस्त उपलब्ध सामग्रीका विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है परन्तु अनेक प्रमाण होते हुए भी इनमें मतिरामके नामपर मिलनेवाले समस्त ग्रन्थोंका रचयिता एक ही प्रसिद्ध कवि मतिराम माना गया है।

इस सम्बन्धमें भगीरथ मिश्र मतिराम नामके दो कवियोंको स्वीकार करते है। इन ग्रन्थों अर्थात् 'फूलमंजरी', 'रसराज', 'ललितललाम', 'सतसई', 'अलंकार-पंचाशिका', 'छन्दसार (पिंगल) संग्रह' या 'वृत्तकौमुदी', 'साहित्यसार' और 'लक्षणश्रृंगार' के रचयिता दो मतिराम थे, इस बातकी पुष्टिके लिए निम्नलिखित प्रमाण दिये जा सकते हैं— (१) मतिरामका जन्म समय १६०३ ई० (स० १६६०) के लगभग आता है और 'कौमुदी'की रचना उन्होंने १७०१ ई० (सं० १७५८) में की और कुछ लोगोंका विचार है कि 'साहित्यसार' आदिकी रचना और भी बादमे हुई। एक ही व्यक्तिके सभी ग्रन्थ माननेपर 'वृत्तकौमुदी'की रचना ९८ वर्षकी आयुमें और अन्य ग्रन्थोंकी रचना उसके भी बाद ठहरती है। इस अवस्थामें मतिरामका श्रीनगर (गढ़वाल)के राजा स्वरूप साहि बुन्देलाके आश्रयमे जाना और 'छन्दसार-संग्रह' या 'वृत्तकौमुदी'की रचना करना अधिक संगत नहीं जान पडता। (२) दोनों मतिरामोंके वंश परिचय भिन्न-भिन्न है और दोनोका सम्बन्ध भिन्न गोत्रोंके भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंमे है (महाकवि मतिराम, पृ० १०६)। (३) दोनों मतिरामोके समयोंमे थोडी भिन्नता ही नही, वरन् दोनोंका कार्यक्षेत्र भी भिन्न-भिन्न रहा है। मतिरामका आगरा, बूँदी आदि तथा दूसरे मतिरामका पहाडी क्षेत्र कुमायूँ, गढवाल आदि था। (४) दोनोंकी भाषा-शैलीमे भी भिन्नता परिलक्षित होती है। जहाँ 'रसराज' और 'ललितललाम'के रचयिता मतिरामकी भाषा समर्थ, विदग्ध, अलकार एवं भावव्यंजनाकी अद्भुत क्षमतासे सम्पन्न, ऐतिहासिक सन्दर्भ-संयुक्त तथा छन्द प्रवाहपूर्ण, सुन्दर, मोहक और गतिवाले हैं, वहाँ वृत्तकौमुदीकारकी भाषा सामान्य, छन्द शिथिल तथा शैली अभिधात्मक है। (५) 'रसराज'के प्रणेता मतिरामने कहीं किसी ग्रन्थमे न अपना परिचय दिया है और न रचनाकाल ही, क्योंकि वे स्वयं ही अति प्रसिद्ध कवि थे और उनके ग्रन्थ भी अति विख्यात थे। किसी भी दरबारमे मतिराम जैसे कविका जाना उसकी परम शोभा ही थी। अतः उन्हे अपने परिचयकी आवश्यकता नहीं पडी परन्तु वृत्तकौमुदीकारकी शैली ऐसी है, जिसमें रचनाकाल भी दिया हुआ है। अतः दोनो व्यक्तियोंकी भिन्न पद्धतियाँ है। (६) यदि 'अलंकारपंचाशिका' और 'वृत्तकौमुदी' या 'छन्दसार संग्रह' ग्रन्थ बादमें प्रसिद्ध मतिराम द्वारा अधिक परिपक्वावस्थामें लिखे गये होते, तो वह निश्चय ही वैचारिक और भाषा-सम्बन्धी अधिक प्रौढताका द्योतन करते। यह हो सकता है कि उनमे कवित्वकी मात्रा कम होती परन्तु उनमें अधिक सन्दर्भ-गर्भता होनी चहिए थी, परन्तु ऐसा नहीं है। उपर्युक्त कारणोंसे दोनों मतिराम भिन्न-भिन्न है, यह मानना उचित है। ऊपर लिखे हुए प्रथम चार ग्रन्थोंके प्रणेता प्रसिद्ध कवि मतिराम हैं और दूसरे चार ग्रन्थोंके रचयिता दूसरे मतिराम हैं।

प्रथम प्रसिद्ध मतिराम उत्तरप्रदेशके कानपुर जिलेमें स्थित टिकमापुर (त्रिविक्रमपुर)के निवासी और प्रसिद्ध आचार्य और कवि चिन्तामणि त्रिपाठी और भूषणके भाई थे। इसका उल्लेख 'वंशभास्कर' एवं 'तजकिरये सर्व आजाद हिन्दी'में हुआ है। भूषणने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'शिवराज भूषण'में अपना परिचय इस प्रकार दिया है—"दुज कनौज कुल कस्यपी, रतनाकर सुत धीर। बसत त्रिविक्रम पुर सदा, तरनि तनूजा तीर" ॥२६॥ इससे स्पष्ट होता है कि भूषण रत्नाकरके पुत्र और कश्यपगोत्रीय कान्यकुब्ज त्रिपाठी ब्राह्मण थे। इस बातकी पुष्टि मतिरामके प्रपौत्र तथा चरखारी नरेश महाराज विक्रमादित्यके राजकवि बिहारीलालकृत 'विक्रम सतसई'की टीका 'रसचन्द्रिका'के अन्तर्गत होती है। इसमें अपना परिचय देते हुए बिहारीलालने जो लिखा है, उससे स्पष्ट होता है कि भूषण और बिहारीलाल एक ही गोत्रके थे और निश्चित रूपसे मतिराम और भूषणका सम्बन्ध भाई-भाईका था। नाती और पन्ती शब्दोंसे कुछ लोग दौहित्र (पुत्रीपुत्र) और प्रदौहित्रका अर्थ लगानेके पक्षमें है और इस प्रकार वे मतिरामको वत्सगोत्री परम्परामें डालकर उपर्युक्त वर्णन मतिरामकी पुत्रीके वंशकी परम्परामें रखना चाहते हैं पर यह तर्कसंगत नही। पहली बात तो यह है कि वे कश्यप गोत्र षट्कुलोंमे से हैं और षट्कुलोंमे परस्पर विवाहकी ही प्रथा प्रचलित रही है। वत्सगोत्रीय सम्बन्ध उनमे नही होते। दूसरी बात यह है कि यदि ऐसा कुछ होता तो चिन्तामणि या भूषणसे बिहारीलालका अधिक सीधा सम्बन्ध होता, क्योकि यदि मतिराम वत्सगोत्री होते और बिहारीलालके परनाना होते तो या तो बिहारीलाल अपने परबाबा (प्रपितामह)का नाम देते और यदि वे भूषण या चिन्तामणि ही होते, तो अपनेको इनका प्रपौत्र कहनेमें भी गर्वका अनुभव करते परन्तु ऐसा उन्होंने नहीं किया। उन्होने पितासे पहले अपने बाबा (पितामह)के रूपमे जगन्नाथका और परबाबा (प्रपितामह)के रूपमे ही मतिरामका स्मरण किया है। अतः पन्ती और नाती शब्द, प्रपौत्र और पौत्रके लिए ही आये है। ये शब्द इस क्षेत्रमे इन अर्थोंमें ही प्रचलित है (लेखकका जन्मस्थान टिकमापुरसे दस-बारह मील दूर ही है और उसने स्वयं वहाँ जाकर इसकी पुष्टि की है। अब भी वहाँ 'कबिनके घर'के रूपमें घरोंके खण्डहर विद्यमान हैं)। अतः मतिराम और भूषण दोनों ही कश्यपवंशीय त्रिपाठी तथा परम्परा-प्रसिद्धिके अनुसार सहोदर भाई थे। वत्सगोत्रीय वनपुर निवासी मतिराम दूसरे थे।

इसके अतिरिक्त 'ललितललाम' ग्रन्थमें मतिरामने जो लक्षण दिये हैं, लगभग वही लक्षण भूषणने अपने ग्रन्थ 'शिवराजभूषण' में भी स्वीकार किये हैं। 'ललितललाम' पहले बना है, अतः निःसंकोच लक्षणोंको ले लेनेके कारण भी दोनों ही का सगे भाई होना प्रमाणित हो जाता है, जिसमें मतिराम बड़े और भूषण छोटे थे, यह भी स्पष्ट होता है। किंवदन्तीमें भी भूषणका अपनी बड़ी भौजाईके ताना

मारनेपर घरसे निकल जानेकी ख्याति है। हो सकता है कि वे भौजाई मतिरामकी भी ही हों। इनके पति राजदरबारोंमें प्रसिद्धि और सम्पत्ति प्राप्त कर चुके थे। अतः चिन्तामणि, मतिराम और भूषण ये सगे भाई थे और इनके पिताका नाम रत्नाकर त्रिपाठी था।

मतिरामने किसी भी ग्रन्थमें अपना कोई परिचय नहीं दिया। अतः इनके जन्म समयके सम्बन्धमें भी कुछ कहना कठिन है। 'फूलमंजरी' के आधारपर इनका जन्म समय कृष्णबिहारी मिश्रके अनुसार १६०३ ई० (स० १६६० वि०) के लगभग आता है। 'फूलमंजरी' इनकी सर्वप्रथम रचना है, जो जहाँगीरकी आज्ञासे आगरेमें लिखी गयी। जहाँगीर अपने राज्यारोहणका १६ वाँ जलूसी वर्ष आगरेमे मना रहा था, उसी समयके आसपास इसकी रचना हो सकती है। वह समय १०३० हिजरी या स० १६७८ वि० था। मतिरामकी यह किशोरावस्थाकी रचना माननेसे उनकी अवस्था उस समय १८ वर्षकी रही होगी। अतः मतिरामका जन्म १६०३ ई० (सं० १६६० वि०) ठहरता है।

मतिरामका अधिकांश समय बूंदी दरबारमें व्यतीत हुआ था और वहाँके हाडा राजाओंकी वीरता और चारित्र्यका वर्णन इन्होंने अपने अलंकार ग्रन्थ 'ललितललाम' मे किया है। जिन राजाओका वर्णन उसमे आया है, वे राव सुरजन, रावराजा भोज, राव रतनसिंह, महाराज छत्रसाल और दीवान भावसिंह हैं। 'फूलमजरी' इन्होंने जहाँगीरके लिए बनायी। सम्भव है, बूंदी दरबारसे इनका सम्बन्ध उस समय भी रहा हो और बूंदी नरेशके साथ ही ये आगरे गये हों। 'ललितललाम' ग्रन्थ दीवान भावसिंहके आश्रयमे लिखा गया और इसके अनेक छन्द उनकी वीरता एवं दानकी प्रशंसामें है। इसके अतिरिक्त 'मतिराम सतसई' किन्हीं राजा भोगनाथके लिए लिखी गयी, जिनका ठीक इतिहास अभी ज्ञात नहीं है। ये भी राजस्थान या मध्यप्रदेशके कोई राजा या धनीमानी, किन्तु रसिक व्यक्ति ज्ञात होते है।

प्रसिद्ध मतिरामकी केवल चार रचनाएँ ही प्रामाणिक मानी जानी चाहिए, जो रचना-क्रमके विचारसे है— 'फूलमजरी', 'रसराज', 'ललितललाम' और 'सतसई'। 'फूलमजरी' की सबसे प्राचीन प्रति १७९३ ई० (सं० १८५०) की प्राप्त होती है। 'फूलमजरी' के प्रत्येक दोहेमें एक फूलका नाम है, जिसके श्लेषार्थमें नायिकाका संकेत मिलता है। इस ग्रन्थकी भाषा सरल एवं सहज प्रवाहयुक्त है। किशोर भावोंको अभिव्यक्ति देनेवाली इस रचनामें मतिरामकी रसिकता प्रकट होती है। इस रचनाका सबसे बडा महत्त्व यही है कि इससे मतिरामकी जन्मतिथिका अनुमान लगता है।

मतिरामकी प्रसिद्धिका मुख्य आधार 'रसराज' है। यह शृंगार-रस और नायिका-भेदपर लिखा ग्रन्थ है। बिहारीकी 'सतसई' के समान ही रीतिकालीन ग्रन्थोंमे 'रसराज' प्रसिद्ध रहा है। 'रसराज' का रचनाकाल १६३३ ई० और १६४३ ई० के बीच ठहरता है। यह मतिरामकी युवावस्था में लिखा गया ग्रन्थ है और 'ललितललाम'के पूर्वकी रचना है, क्योंकि यह अधिक प्रौढ़ है। 'रसराज' किसीके आश्रयमें न लिखा जाकर स्वतन्त्र ग्रन्थ है। इस ग्रन्थमें शृंगारके आलम्बन नायिका-नायक तथा उनके भेदोंका और उसके पश्चात् भावों, हावों एवं शृंगार रसके अंगोंका रोचक वर्णन प्रस्तुत किया गया है। इस ग्रन्थकी प्रमुख विशेषता सहज भावोंका स्वाभाविक चित्रण है। बिहारीके समान इसमे हाव-भावका चटकीला आकर्षण एवं मुखर रूप न होकर सहज किशोर एवं सुकुमार भावनाओंका मूक चित्रण है। अपने मौन रूपमे ही चित्रणकी विशेषताके कारण समस्त आन्तरिक भावभंगिमा छन्दोंमे मुखरित हो जाती है। 'रसराज'के नायक-नायिका, अधिक चतुर और क्रिया-विदग्ध न होकर अल्हड, शिष्ट, सुकुमार एवं भावुक व्यक्ति है, जिनकी भावनाओंमे प्रभावशीलता तथा सहानुभूति जाग्रत् करनेकी विशेषता है। वे सीधे-सच्चे सरल भावोंवाले नायिका-नायक है। 'रसराज'को मतिरामने भाव-सम्पत्तिसे सम्पन्न किया है। इसमे जिन भावोका वर्णन है, वे प्रधानतया किशोर एवं युवावस्थासे सम्बन्ध रखते है। 'रसराज'मे मतिरामकी प्रतिभा अलंकरण एवं अप्रस्तुत कल्पनाकी उतनी नही, जितनी विविध प्रसंग-कल्पना की, अतएव अनेक छन्दोंमे घटना-वर्णन एवं प्रबन्ध वक्रताकी-सी रोचकता निहित है। इन्हीं विशेषताओंके कारण 'रसराज' रसिक-जनोका कण्ठहार रहा है। इसकी अनेक टीकाएँ भी हुई हैं।

'ललितललाम' बूंदी नरेश दीवान भावसिंहके आश्रय मे लिखा गया अलकारोका रीति ग्रन्थ है। इसका रचनाकाल १६६३ ई०के आसपास माना जाता है। 'रसराज'की भाँति 'ललितललाम'की भी टीकाएँ हुई हैं और यह भी रीतिकालका एक अति प्रसिद्ध ग्रन्थ है। राजवंश प्रशसाके उपरान्त 'ललितललाम' ग्रन्थमे अलंकारोंके लक्षण और उदाहरण दिये गये है। लक्षण तो 'चन्द्रालोक' एवं 'कुवलयानन्द'के आधारपर है परन्तु उदाहरण मतिरामके निजी है और ये अधिकाश राव भावसिंह या उनके पिता, पितामहकी वीरता या दानका वर्णन करनेवाले हैं। 'ललितललाम'मे 'रसराज'के भी कुछ छन्द उदाहरणस्वरूप आये है और 'सतसई'के भी परन्तु 'ललितललाम'के छन्दोकी विशेषता उनकी प्रौढता एव ऐतिहासिक सन्दर्भ-गर्भतामें देखी जा सकती है। इसमे मतिरामकी सहज निश्छल भावुकताके स्थानपर सूक्ष्म एवं उच्च कल्पनाशीलता प्रकट हुई है।

मतिरामकृत 'सतसई' भी उनकी एक ललित एवं सुन्दर रचना है। इसके दोहोंकी रचना यद्यपि पहले भी होती रही होगी, परन्तु इसका संकलन १६८३ ई० के आसपास 'बिहारी सतसई' की प्रेरणापर किया गया। यह 'सतसई' किन्हीं भूप भोगनाथके लिए की गयी, जो एक धनी एवं रसिक जीव थे और सम्भवतः ब्रज, राजस्थान या बुन्देलखण्डके निवासी थे। 'सतसई' की भाषा सरस एवं ललित ब्रजभाषा है। इसका वर्ण्य-विषय मुख्यतया शृंगार है फिर भी कुछ दोहे सामान्य नीतिसम्बन्धी है। इस ग्रन्थमें प्रेम, नायिका-भेद, रूप-सौन्दर्य, चेष्टा, विरह आदिपर स्मरणीय दोहे है। इनके अन्तर्गत शब्द-लालित्यके साथ-साथ भावभंगिमा एवं नव्य-कल्पनाका भी वैभव है।

मतिरामके उपर्युक्त ग्रन्थोंमें सभी महत्त्वपूर्ण हैं फिर भी इनकी विशिष्ट ख्यातिके आधार रूप 'रसराज' एवं 'ललितललाम' ही हैं। मतिरामका रीतिकालीन कवियों के बीच अत्यन्त उत्कृष्ट स्थान है और हिन्दी साहित्यके अन्तर्गत वे उच्च प्रतिभासम्पन्न कवियोंमें परिगणित होते हैं। ब्रजभाषापर इनका सहज अधिकार, कल्पनाका अपार वैभव एवं सूक्ष्म भावोंकी सरस, मधुर तथा अविस्मरणीय अभिव्यक्ति मतिरामके काव्यके विशिष्ट गुण हैं। रूप-सौन्दर्य, भाव-भंगिमा, चेष्टा एवं प्रेमकी सूक्ष्मानुभूतियोंका जैसा सजीव चित्रण मतिराम कर सके है, वह साहित्यमे चिरस्थायी निधिके रूपमें गृहीत है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० न०; मि० वि०; हि० सा० इ०; मतिराम ग्रन्थावली : सं० कृष्णबिहारी मिश्र; मतिराम—कवि और आचार्य : महेन्द्रकुमार; महाकवि मतिराम : त्रिभुवन सिंह।] —भ० मि०

मतिराम २–भगीरथ मिश्रने महाकवि मतिराममे भिन्न एक अन्य मतिरामको माना है। इन द्वितीय मतिरामका परिचय केवल 'वृत्तकौमुदी'के आधारपर ही प्राप्त होना है। इस 'वृत्तकौमुदी'का विवरण भगीरथप्रसाद दीक्षितने अपने लेख तथा 'भूषण विमर्श' नामक ग्रन्थमे दिया है। इसके अनुसार मतिरामके पिताका नाम विश्वनाथ था, पितामह का बलभद्र, प्रपितामहका गिरिधर। ये वत्सगोत्रीय त्रिपाठी थे और इनका निवास-स्थान वनपुर था। ये प्रसिद्ध मतिराममे भिन्न थे, जिनका परिचय बिहारीलालकी 'रसचन्द्रिका'मे और विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा ढूँढे गये मथुराके चौबेके यहाँ प्राप्त वंशवृक्षमें मिलता है। इसके अनुसार मतिरामके पिता रतिनाथ और पुत्र जगन्नाथ, पौत्र शीतल तथा प्रपौत्र बिहारीलाल थे। अतः यह कल्पना भी सही नहीं उतरती कि मतिरामकी पुत्रीकी वंश-परम्परा में बिहारीलाल थे और इस कारण गोत्र भिन्नता है। इसलिए दोनों मतिराम भिन्न-भिन्न थे और 'वृत्तकौमुदी'के रचयिता वत्सगोत्रीय द्वितीय मतिराम थे और वे 'रसराज'के रचयिता कश्यपगोत्रीय मतिरामसे भिन्न थे। वत्सगोत्रीय, वनपुरनिवासी मतिराम द्वितीयका परिचय और अधिक प्राप्त नहीं होता। यों टिकमापुरके निकट ही जिला फतेहपुरमे बनपुरा नामक ग्राम है और हो सकता है कि यही मतिराम द्वितीयका स्थान वनपुर हो।

इन मतिरामकी लिखी हुई रचनाएँ है—'अलंकार पंचाशिका', 'साहित्यसार', 'लक्षण-शृंगार' और 'छन्दसार संग्रह' या 'वृत्तकौमुदी'। ये समस्त ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित हैं। 'अलंकार पंचाशिका' जैसा कि नामसे ही विदित है, अलंकारोंपर लिखा गया ग्रन्थ है। इसका रचनाकाल १६९० ई० (सं० १७४७) है। इसके अनेक छन्दोंमे मतिरामकी छाप है, अतएव यह मतिराम-कृत ग्रन्थ है, इसमे सन्देह नहीं। इसके प्रारम्भिक छन्दों से पता चलता है कि यह संस्कृतके ग्रन्थोंके आधारपर कुमायूँ नरेश उदोतचन्द्रके पुत्र ज्ञानचन्दके लिए लिखा गया। इसमें दोहा, सवैया, कवित्त आदि छन्दोंमे लक्षण और उदाहरण दिये गये हैं। इसके भीतर ४८ अलंकारोंका भेद-प्रभेदोंके साथ वर्णन किया गया है। छन्दोंमे ज्ञानचन्द के दान और वीरताका वर्णन आया है। 'पंचाशिका'के छन्द ओजगुण प्रधान तथा सरल हैं। भाषा साफ है परन्तु छन्दकी गति एवं कल्पनाकी नव्यता प्रसिद्ध मतिराम के ग्रन्थोंकी सी नहीं है।

'साहित्यसार' १० पृष्ठोंका नायिका भेदपर लिखा द्वितीय मतिरामका ही जान पड़ता है। यह किसी समय दतिया राज पुस्तकालयमें था पर अब प्राप्य नहीं है। इसका प्रतिलिपिकाल १७८० ई० (सं १८३७) तथा रचनाकाल कृष्णबिहारी मिश्रके अनुसार १६८३ ई० (सं० १७४०) ठहरता है। यह सामान्य महत्त्वका ग्रन्थ है। 'लक्षण शृंगार' ग्रन्थ भी मतिराम द्वितीय द्वारा रचित शृंगार रसके भावों और विभावोंका वर्णन करनेवाला ग्रन्थ है। खोज रिपोर्टके अनुसार इसकी १७६५ ई० (सं० १८२२) की हस्तलिखित प्रति बिजावर राज्यमे थी। कृष्णबिहारी मिश्रके अनुसार इसका रचनाकाल १६८८ ई० (सं० १७४५) मानना चाहिए। यह भी सामान्य महत्त्वका ही ग्रन्थ जान पड़ता है। 'छन्दसार संग्रह' या 'वृत्तकौमुदी' मतिरामके नामपर 'छन्दसार पिंगल'के रूपमे प्रसिद्ध है। इसका यह नाम 'शिवसिंह सरोज'से चालू हुआ। वास्तव में इसका नाम 'छन्दसार संग्रह' (पिंगल) होना चाहिए था। मतिराम द्वितीयके ग्रन्थ 'वृत्तकौमुदी'में अधिकांश स्थलोंपर 'छन्दसार सग्रह' ही ग्रन्थका नाम आया है। यह ग्रन्थ गढ़वाल श्रीनगरके राजा फतेहसाहि बुन्देलाके पुत्र स्वरूप साहि बुन्देलाके आश्रयमें लिखा गया था। 'छन्द-सार संग्रह' और 'वृत्तकौमुदी' एक ही ग्रन्थ हैं, जिसका रचनाकाल १७०१ ई० (सं० १७५८) है। यह पाँच प्रकाशोंमे है। प्रथम प्रकाशमे गणेश, सरस्वतीकी वन्दना के पश्चात् आश्रयदाता स्वरूप साहि बुन्देलाकी दान-वीरता की प्रशंसा है। इसके बादसे इसमे तथा अन्य प्रकाशोंमें छन्दसम्बन्धी विविध सूचनाएँ है। यह छन्दका विस्तृत विवेचन करनेवाला ग्रन्थ है। लक्षण और उदाहरण दोनों ही स्पष्ट हैं, अतः यह छन्दशास्त्रका एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।

इस प्रकार द्वितीय मतिराम यद्यपि मतिरामकी भाँति उत्कृष्ट प्रतिभाके कवि नहीं थे फिर भी रीतिकालीन आचार्य कवियोंमें उनका एक महत्त्वपूर्ण स्थान है और उनका राजाओंके दरबारमे समुचित सम्मान हुआ था, यह उनके वर्णनोंसे स्पष्ट हो जाता है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० न०; मतिराम ग्रन्थावली : सं० कृष्णबिहारी मिश्र; मतिराम—कवि और आचार्य : महेन्द्र-कुमार; महाकवि मतिराम : त्रिभुवन सिंह।] —भ० मि०

मतिराम सतसई–इसकी खोज तीन हस्तलिखित प्रतियों—प्रथम हुसेनगंज (फतेहपुर) निवासी शिवदुलारे दुबेकी प्रति, जो गंगा पुस्तक मालाके मालिक दुलारेलालको दे दी गयी थी, द्वितीय भवानी शंकर याज्ञिकके पास खण्डित प्रति और तृतीय भगीरथप्रसाद दीक्षित (ग्राम मई, बटेश्वर, जिला आगरा)के पास उपलब्ध प्रतिके आधारपर हुई है। सर्वप्रथम यह ग्रन्थ 'मतिराम ग्रन्थावली' (सं० कृष्णबिहारी मिश्र)मे प्रकाशित हुआ है। इसके दोहे 'रसराज' और 'ललितललाम'में भी मिलते हैं। समस्त दोहोंपर दृष्टिपात

करनेसे ऐसा जान पड़ता है कि इस ग्रन्थका अधिकांश उनकी युवावस्थामें निर्मित हुआ और 'ललितललाम'के पूर्व बना। सतसईके रूपमें इसका संग्रह 'बिहारी सतसई' की ख्यातिके पश्चात् हुआ। 'रत्नाकर'के कथनानुसार 'बिहारी सतसई'की सर्वप्रथम प्रतिलिपि १८६२ ई०में बिहारीके किसी शिष्य द्वारा की गयी थी। यद्यपि 'बिहारी सतसई'को १६६२ ई०में समाप्ति मानी जाती है पर १६८२ ई०के पूर्व उसकी प्रतिलिपिका उल्लेख नहीं मिलता। ऐसी दशामें मतिरामकी 'सतसई'का संग्रह-काल १८६३ ई०के आसपास मानना चाहिए। 'सतसई'में एक दोहा शिवाजी की प्रशंसामें भी लिखा है—"सुरस ओज सों साह सुत, सिवा सूर सिरदार। सरद चन्द आतम कियो, सुचि आपत इक बार ॥३२४॥" यह छन्द शिवाजीकी मृत्युके बाद लिखा जान पड़ता है अतः यह रचना १६३८ ई० के बाद ही संगृहीत हुई।

हम कह सकते हैं कि मतिरामने अनेक दोहे अपने काव्यके प्रारम्भिक एवं मध्यकालमें बनाये होंगे और 'बिहारी सतसई'के प्रख्यात होनेपर उन्होंने उसका संग्रह सतसईके रूपमें १६८३ ई०के आसपास उसीके समान किया होगा। 'बिहारी सतसई'के दोहोंकी छाया 'मतिराम सतसई'के दोहोंमें देखी जा सकती है—"मो मन तम तोमहिं हरौ, राधाको मुखचन्द। बढ़ै जासु लखि सिन्धु लौ, नन्दनन्दन आनन्द ॥ तेरी औरै भाँतिकी दीपसिखा सी देह। ज्यों ज्यों दीपति जगमगै, त्यों त्यों बाढ़त नेह ॥ औरै कछु चितवनि चवनि, औरै मृदु मुसकानि। औरे कुछ सुख देत हैं, सके न बैन बखानि ॥ नैन जोरि मुख मोरि हँसि, नेसुक नेह जनाइ। आगि लेन आई हिये, मेरे गयी लगाइ ॥"

जिस प्रकार बिहारीने अन्तमें दोहेमें जयसाहका यश-वर्णन और आशीर्वाद किया है, उसी प्रकार मतिरामने भी सतसईके अन्तमें किन्हीं राजा भोगनाथके रूप, गुण, यौवन, दान और रसिकताकी प्रशंसामें १८ दोहे लिखे हैं। इसके आधारपर हम अनुमान लगा सकते हैं कि सम्भवतः भूप भोगनाथने 'बिहारी सतसई'को देखकर मतिराम से भी सतसई लिखनेका अनुरोध किया हो और उनको इसके लिए धन-मान दिया हो, अतः मतिराम ने उनको नायक रूपमें प्रस्तुत करते हुए अपने दोहोंके संग्रहको सतसई रूपमें प्रस्तुत कर दिया होगा। भोगनाथ सम्भवतः राजस्थान या मध्यप्रदेशके छोटे राजा या धनी व्यक्ति थे।

'सतसई' काव्य-वैभवकी दृष्टिसे उत्कृष्ट रचना है और इसमें सन्देह नहीं कि बिहारीकी 'सतसई'से भी कहीं-कहीं टक्कर लेती है और कुछ दोहे तो अपने कल्पना वैभव और शब्द-माधुर्यमें बिहारीके दोहोंसे भी बढ़कर हैं—"लचकौ हीं सो लंक उर उचकौहीं सो ऐन। बिहँसौहें-से बदनमें लसत नचौहे नैन ॥ श्रम जलकन झलकन लगे, अलकनि कलित कपोल। पलकनि रस छलकन लगे, ललकन लोचन लोल ॥ अरुन बरन बरनि न परे, अमल अधर दल साँझ। कैधों फूली दुपहरी, कैधों फूली साँझ ॥ दिन दिन दुगुन बढ़े न क्यों, लैगनि अगिनिकी झार। उने उने दग दुहुनके, बरसत नेह अपार ॥"

'सतसई'का वर्ण्य-विषय अधिकांश अलंकार और नायिका-भेद है और इनके सुन्दर उदाहरण इसमें प्रस्तुत हुए हैं। हिन्दी-साहित्यकी सतसई-परम्परामें 'मतिराम सतसई'का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

[सहायक ग्रन्थ—मतिराम ग्रन्थावली : सं० कृष्णबिहारी मिश्र; मतिराम—कवि और आचार्य : महेन्द्रकुमार; महाकवि मतिराम : त्रिभुवन सिंह।] —भ० मि०

मत्स्य–भगवान् विष्णुका प्रथम अवतार मत्स्यावतार माना जाता है। प्रलयकाल उपस्थित होनेपर जब त्रिलोक जल-मग्न हुआ तब महासमुद्रमें सोए हुए ब्रह्माके मुखसे चार वेदोंकी उत्पत्ति हुई। उन्हें हयग्रीवने चुरा लिया। इन्हींके उद्धारके लिए विष्णुने मत्स्यका अवतार लिया। भागवतमें इसकी कथा सविस्तार वर्णित हुई है। कहा जाता है कि महामत्स्यके रूपमें भगवान्‌ने राजा सत्यव्रतको बताया था कि आजके सातवें दिन प्रलय होगा। उस समय समस्त विश्व जलमग्न होगा, पर तुम्हारे उद्धारके लिए एक विराट् नौका बनाऊँगा। उसमें समस्त औषधियों, प्राणियों तथा सप्तर्षियों सहित तुम चढ़ आना। महासर्पकी रज्जु बनाकर मेरी सींगमें उसे बाँध देना। ब्रह्माकी रात्रि जबतक न व्यतीत होगी तबतक मैं उस नावकी रक्षा करूँगा। ऐसा ही सातवें दिन हुआ। मत्स्यने हिमालयकी चोटीपर उस नावको बाँधा था। उसीके आधारपर आज भी एक चोटी नौका बन्धन चोटीके नाममें प्रसिद्ध है। सत्यव्रत ही आगे चलकर वैवस्वत मनु कहलाये। 'मत्स्यावतार' की कथामें सृष्टिके आदि विकासपर प्रकाश पड़ता है। वैज्ञानिक मान्यताओंके आधारपर सृष्टिका प्रथम जीव एक प्रकारसे मत्स्य ही है। सूरसागरमें मत्स्यावतारकी कथा वर्णित है (दे० सूर० सा० स्कन्ध ८ प० १६)। —रा० कु०

मत्स्येंद्रनाथ–इनके अन्य नामोंमें मीनपाल, मीननाथ, मीनानाथ, मच्छेन्द्रपा, मच्छन्दरनाथ आदि प्रसिद्ध हैं। नामके आधारपर इन्हें जातिका मछुआ कहा जाता है। यह कामरूपके निवासी थे, जो पूर्वी भारत (असम)के लौहित्यनदके तटपर स्थित है और जो तन्त्राचारके लिए प्रसिद्ध रहा है। किंवदन्ती है कि अपने मछली मारनेके व्यवसायमें व्यस्त एक बार उन्हें एक मछली निगल गयी और १२ वर्षोंतक अपने उदरमें रखे रही। उसी रूपमें घूमते-घूमते वे चर्पटीनाथके पास पहुंचे और दोनोंने एक साथ दीक्षा ली। मछलीके उदरमें लालन-पालन, शिक्षा-दीक्षा होनेके कारण उनका नाम मीननाथ, मत्स्येन्द्रनाथ पड़ा। यह भी प्रसिद्ध है कि मत्स्येन्द्रनाथ अपनी साधनाकी अवस्थामें एक बार कामरूपकी सुन्दरियोंके विलासमें पड़ गये थे किन्तु बादमें उनके शिष्य गोरखनाथने उनका उद्धार किया। राहुल सांकृत्यायनने तिब्बती परम्पराके अनुसार उनके पिताका नाम मीनपा या मीनानाथ बताया है परन्तु वास्तवमें मीनपा स्वयं मत्स्येन्द्रनाथ ही थे। 'गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह'के अनुसार सिद्ध-साधनाका प्रवर्तन उन्होंने किया था। 'वर्ण-रत्नाकर', 'ज्ञानदेव तथा गोरखनाथ'के आधारपर सिद्धोंकी जो सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं, उनमें मीननाथ, मत्स्येन्द्रनाथ अथवा मीनपाका नाम एक ही बार दिया गया है। 'पुरा-

तत्त्व निबन्धावली'में दी गयी सिद्धोंकी सूचीमें भी मीनपा, मीननाथ अथवा मत्स्येन्द्रनाथ एक ही व्यक्तिके नाम आये हैं। अभिनव गुप्तके 'तन्त्रालोक'में मत्स्येन्द्रनाथकी श्रद्धा-पूर्वक वन्दना की गयी है। इससे विदित होता है कि उनका जीवनकाल अभिनव गुप्तके काल अर्थात् १० वीं शती ईस्वीके पूर्व होना चाहिए। राहुलजीके अनुसार मीनपा राजा देवपालके समसायिक थे अतः उनका समय नवीं शताब्दी ईस्वीका उत्तरार्द्ध अनुमान किया जा सकता है। मत्स्येन्द्रनाथ गोरखनाथके गुरु थे। इसका समर्थन अन्तः और वाह्य दोनों साक्ष्योंसे होता है। इस आधारपर भी मत्स्येन्द्रनाथका समय नवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध सिद्ध होता है।

विद्वानोंने अनुमान किया है कि नाथ सम्प्रदायके आदि प्रवर्तकोंमे मत्स्येन्द्रनाथ अन्यतम है। 'वर्ण रत्नाकर'की सूची-में पहला नाम मत्स्येन्द्रनाथका ही है। ज्ञानेश्वरकी सूचीमे सर्वप्रथम आदिनाथका उल्लेख हुआ है तदुपरान्त मत्स्येन्द्र-नाथका। आदिनाथ तो भगवान् शिवको ही माना जाता है अतः मत्स्येन्द्रनाथ ही नाथपन्थके प्रथम आचार्य सिद्ध होते है। कुछ परम्पराओमे आदिनाथका सम्बोधन जलन्धर-नाथके लिए मिलता है। राहुलजीने भी नाथ पन्थके आदि आचार्यका नाम लुईपा बताया है किन्तु साथ ही अपनी टिप्पणीमें यह स्पष्ट करनेका प्रयत्न किया है कि आदि आचार्य जलन्धरपाद ही थे। 'गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह'मे जिन नौ सिद्धोंका उल्लेख हुआ है, उनमे सत्यनाथ, चर्पटनाथ और गोरक्षनाथ जैसे परवर्ती सिद्ध भी गिनाये गये है अतः यह सूची विश्वसनीय नहीं है। ज्ञानेश्वरकी परम्पराको ही प्रामाणिक मानकर मत्स्येन्द्रनाथ नाथपन्थके आदि प्रवर्तक कहे जा सकते हैं।

मत्स्येन्द्रनाथकी संस्कृतमें लिखी चार पुस्तकें डाक्टर प्रबोधचन्द्र बागची द्वारा सम्पदित होकर प्रकाशित हुई है। वे इस प्रकार हैं—'कौल ज्ञान निर्णय', 'अकुलवीरतन्त्र', 'कुलानन्द' और 'ज्ञानकारिका'। हिन्दीके उनके कुछ पदोंका संकलन डाक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदीने 'नाथ सिद्धोंकी बानियों'मे किया है। डाक्टर बडथ्वालने भी अपने 'योग-प्रवाह' नामक ग्रन्थमें इनके कुछ पदोंका संकेत किया है। मत्स्येन्द्रनाथकी कृतियोंका वर्ण्य-विषय शैव-परम्पराके अन्तर्गत आता है। उन्होंने शून्य, निरजन, सिद्धोंके आचार-विचार तथा कौलाचार आदिका संकेत अपनी संस्कृत और देशी मिश्रित भाषाकी टिप्पणियोंमें किया है। इस प्रकार मत्स्येन्द्रनाथका महत्व एक कौलाचारी तथा सिद्ध-परम्पराके आदि आचार्यके रूपमे ही है। उनकी रचनामें साहित्यिक गुण नहीं प्राप्त होते।

[सहायक ग्रन्थ—पुरातत्व निबन्धावली : महापण्डित राहुल सांकृत्यायन; हिन्दी काव्यधारा : महापण्डित राहुल सांकृत्यायन; नाथ सम्प्रदाय : डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी; नाथ सिद्धोंकी बानियाँ : डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी; योग-प्रवाह : डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल।] —यो० प्र० सि०

मथुरानाथ शुक्ल-हिन्दी-गद्यके विकास-क्रममें मथुरानाथ शुक्ल, रामप्रसाद 'निरंजनी' और दौलत रामकी परम्परामें आते हैं। सन् १८०० ई०मे इन्होंने 'पंचांग दर्शन' नामक ज्योतिष-ग्रन्थकी रचना की थी। इसकी भाषा ब्रज-मिश्रित खड़ीबोली है। ग्रन्थका आरम्भ पद्यमें किया गया है। इनका गद्य साधु और व्यवस्थित नहीं है। उसमें पंडिता-ऊपन अधिक है। 'में'के स्थानपर 'मो'का प्रयोग—"प्रथम विवाह मो कन्याको बृहस्पतिका बल विचार लेना"—'से'के स्थानपर 'सो'का प्रयोग—"उसी रीत 'सो' कन्याको विचा-रना"—'से'के लिए 'ते'का प्रयोग—"जन्म राश 'ते' तृतीय षष्ट दशम एकादश उत्तम है"—और इसी प्रकार 'का'के लिए 'को'का प्रयोग—"पुत्रको सूर्यका बल विचार लेना"—इनकी भाषामें बराबर हुआ है। शब्द भी तत्सम रूपमें प्रयुक्त नहीं हुए हैं। 'रीति'के लिए 'रीत', 'राशि'के लिए 'राश' और 'शुद्ध'के लिए 'शुद्द' शब्दोंका प्रयोग किया गया है। मथुरानाथ शुक्लका विशेष महत्त्व इसलिए है कि इन्होंने फारसी-अरबी रहित खडीबोली हिन्दी-गद्यमें—जिसकी एक स्वतन्त्र परम्परा फोर्ट विलियम कालेजकी स्थापनाके पहलेसे चली आ रही थी—ज्योतिष जैसे उपयोगी और व्यावहारिक विषयपर ग्रन्थ रचना की है। इससे प्रकट है कि खडीबोली गद्यके इस रूपका व्यवहार सभी प्रकारके विषयोंपर लिखनेके लिए किया जाता था। —रा० चं० ति०

मदन गोपाल-ये फतुहाबाद (जिला लखनऊ)के निवासी और महाराज दिग्विजय सिंहके पिता अर्जुन सिंहके आश्रित कवि थे। इन्होंने अपने आश्रयदाताके नामपर 'अर्जुन विलास' नामक ग्रन्थ १८१९ ई०मे लिखा है। इसका प्रकाशन गोकुल कविकी भूमिकाके सहित बलराम-पुरके जगबहादुरी यन्त्रालयसे १८६१ ई०में हुआ था।

[सहायक ग्रन्थ—दि० भू० (भूमिका)।] —सं०

मदनमोहन-लाला श्रीनिवासदासकृत'परीक्षा गुरु'का पात्र। अंग्रेजी सभ्यताके चाकचिक्य और फैशनके चक्करमें पड़ा हुआ एक चाटुकारिताप्रिय निर्णयभीरु व्यक्ति है। मिथ्या प्रतिष्ठा और बडप्पनका प्रदर्शन उसकी सबसे बडी दुर्बलता है, जिसका अनुचित फायदा उठाकर कोई भी उसे धोखा दे सकता है। वह इतना सीधा और दूसरोंके प्रति इतना विश्वासपूर्ण है कि वह बेईमान और सच्चे व्यक्तियोंमे फर्क नही कर पाता। एक क्षणके लिए अपने सच्चे मित्र ब्रज-किशोरकी चेतावनीमे वह विचलित होता है पर खुशामदी मित्रोंके बीच आते ही वह ब्रजकिशोरकी चेतावनीको अन-धिकार हस्तक्षेप मानकर उसकी खिल्ली उड़ाने और चाटुकारोंकी वाह-वाहीका मजा लूटनेमे तल्लीन हो जाता है। विपत्तिके समय उसकी सारी प्रतिष्ठा, मान-सम्मान, अंग्रेजी सभ्यताकी फैशन-परस्ती सब कुछ हवा हो जाती है और हवालातमे अपनी मूर्खता पर विसूरता रहता है। ठोकर खाकर उसे अक्ल आती है और वह फिर सही रास्ते पर आ जाता है। —शि० प्र० सिं०

मदनमोहन मालवीय-जन्म २५ दिसम्बर १८६१ ई० प्रयागमे। महामना मालवीयजीने सन् १८८४ में उच्च शिक्षा समाप्त की। शिक्षा समाप्त करते ही उन्होंने अध्यापन का कार्य शुरु किया पर जब कभी अवसर मिलता वे किसी पत्र इत्यादिके लिये लेखादि लिखते। बालकृष्ण भट्टके 'हिन्दी प्रदीप'में हिन्दीके विषयमें उन्होंने उन दिनों बहुत

कुछ लिखा। सन् १८८६ ई०में कांग्रेसके दूसरे अधिवेशन-के अवसर पर कालाकांकरके राजा रामपाल सिंहसे उनका परिचय हुआ तथा मालवीयजीके भाषणसे प्रभावित होकर राजा साहबने उन्हें दैनिक 'हिन्दुस्तान'का सम्पादक बनने पर राजी कर लिया। मालवीयजीके लिए यह एक यशस्वी जीवनका शुभ श्रीगणेश सिद्ध हुआ।

सन् १९०५ ई० मे मालवीयजीकी हिन्दू विश्वविद्यालयकी योजना प्रत्यक्ष रूप धारण कर चुकी थी। इसीके प्रचार की दृष्टिसे उन्होंने सन् १९०७ ई०में 'अभ्युदय'की स्थापना की। मालवीयजीने दो वर्ष तक इसका सम्पादन किया। प्रारम्भमे यह पत्र साप्ताहिक रहा, फिर सन् १९१५ ई० से दैनिक हो गया। 'लीडर' और 'हिन्दुस्तान टाइम्स'की स्थापनाका श्रेय भी मालवीयजीको ही है। 'लीडर'के हिन्दी संस्करण 'भारत'का आरम्भ सन् १९२९ में हुआ और 'हिन्दुस्तान टाइम्स'का हिन्दी सस्करण 'हिन्दुस्तान' भी वर्षोंसे निकल रहा है। इनकी मूल प्रेरणामे मालवीयजी ही थे। 'लीडर'-के एक वर्ष बाद ही मालवीयजीने 'मर्यादा' नामक पत्र निकलवानेका प्रबन्ध किया था। इस पत्रमें भी वे बहुत दिनों तक राजनीतिक समस्याओं पर निबन्ध लिखते रहे। यह पत्रिका कुछ दिनोंतक ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसीसे प्रकाशित होती रही। २० जुलाई, १९३३ ई०को मालवीय-जीकी संरक्षतामे 'सनातन धर्म' नामक पत्र निकला। अन्य पत्रोंकी भी मालवीयजी सदा सहायता करते रहे। वे पत्रों द्वारा जनतामें प्रचार करनेमें बहुत विश्वास रखते थे और स्वयं वर्षों तक कई पत्रोके सम्पादक रहे। पत्रकारिताके अतिरिक्त वे विविध सम्मेलनों, सार्वजनिक सभाओं आदिमे भी भाग लेते थे। कई साहित्यिक और धार्मिक संस्थाओंसे उनका सम्पर्क हुआ तथा उनका सम्बन्ध आजीवन बना रहा। सन् १९०६ ई०में प्रयागके कुम्भके अवसरपर उन्होंने 'सनातन धर्म'का विराट् अधिवेशन कराया, जिसमे उन्होंने 'सनातन धर्म संग्रह' नामक एक बृहत् ग्रन्थ तैयार कराकर महासभामें उपस्थित किया। कई वर्ष तक उस 'सनातन धर्म सभा'के बड़े-बड़े अधिवेशन मालवीयजीने कराये। अगले कुम्भमे त्रिवेणीके सगम पर इनका 'सनातन धर्म सम्मेलन' भी इस सभामें मिल गया। सनातन धर्म सभा के सिद्धान्तोके प्रचारार्थ काशीमे 'सनातन धर्म' नामक साप्ताहिक भी प्रकाशित होने लगा और लाहौरसे 'विश्वबन्धु' निकला। यह सब मालवीयजीके प्रयत्नोका ही फल था।

मालवीयजी प्राचीन संस्कृतिके घोर समर्थक थे। सार्व-जनिक जीवनमे उनका पदार्पण विशेषकर दो घटनाओके कारण हुआ—(१) अंग्रेजी और उर्दूके बढते हुए प्रभावके कारण हिन्दी भाषाको क्षति न पहुँचे, इसके लिये जनमत संग्रह करना और (२) भारतीय सभ्यता और संस्कृतिके मूल तत्त्वोंको प्रोत्साहन देना। आर्य समाजके प्रवर्तक तथा अन्य कार्यकर्ताओंने हिन्दीकी जो सेवा की थी, मालवीयजी उसकी कद्र करते थे किन्तु धार्मिक और सामाजिक विषयोंपर वे आर्यसमाजके कट्टर विरोधी थे। समस्त कर्मकाण्ड, रीतिरिवाज, मूर्तिपूजन आदिको वे हिन्दू-धर्मका मौलिक अंग मानते थे। इसलिए धार्मिक मचपर आर्य-समाजकी विचारधाराका विरोध करनेके लिए उन्होंने जनमत संगठित करना आरम्भ किया। इन्हीं प्रयत्नोंके फलस्वरूप पहले 'भारतधर्म महामण्डल' और पीछे 'अखिल भारतीय सनातन धर्म सभा' की नींव पड़ी। धार्मिक विचारोंको लेकर दोनों सम्प्रदायोंमें चाहे जितना मतभेद रहा हो किन्तु हिन्दीके प्रश्नपर दोनोंका मतैक्य था। शिक्षा और प्रचारके क्षेत्रमें सनातन धर्म सभाने हिन्दीको उन्नत करनेके लिए जो कुछ किया, उसका श्रेय मालवीय जीको ही है। मालवीयजी एक सफल पत्रकार थे और हिन्दी-पत्रकारितासे ही उन्होंने जीवनके कर्म-क्षेत्रमें पदार्पण किया। वास्तवमे मालवीयजीने उस समय पत्रोंको अपने हिन्दी-प्रचारका प्रमुख साधन बना लिया था और हिन्दी भाषाके स्तरको ऊँचा किया था।

धीरे-धीरे उनका क्षेत्र विस्तृत होने लगा—पत्र-सम्पादन से धार्मिक संस्थाएँ और इनसे सार्वजनिक सभाएँ विशेषकर हिन्दीके समर्थनार्थ और यहाँसे राजनीतिकी ओर। इस क्रमने उनमे सम्पादन-कार्य छुडवा दिया और वे विभिन्न संस्थाओके सदस्य, संस्थापक अथवा संरक्षकके रूपमें सामने आने लगे। पत्रकारके रूपमें उनकी हिन्दी-सेवाकी यही सीमा है, यद्यपि लेखककी हैसियतसे वे भाषा और साहित्यकी उन्नतिके लिए सदा प्रयत्नशील रहे। हिन्दीके विकासमें उनके योगदानका तब दूसरा अध्याय आरम्भ हुआ।

हिन्दीकी सबसे बडी सेवा मालवीयजीने यह की कि उन्होंने उत्तरप्रदेशकी अदालतो और दफ्तरोंमें हिन्दीको व्यवहार-योग्य भाषाके रूपमे स्वीकृत कराया। इससे पहले केवल उर्दू ही सरकारी दफ्तरो और अदालतोकी भाषा थी। यह आन्दोलन उन्होंने सन् १८९० ई० मे आरम्भ किया था। तर्क तथा आँकड़ोंके आधारपर शासकों को उन्होने जो आवेदन पत्र भेजा, उसमे लिखा कि—"पश्चिमोत्तर प्रदेश तथा अवधकी प्रजामे शिक्षाका फैलना इस समय सबसे आवश्यक कार्य है और गुरुतर प्रमाणोंसे यह सिद्ध किया जा चुका है कि इस कार्यमे सफलता तभी प्राप्त होगी, जब कचहरियो और सरकारी दफ्तरोंमें नागरी अक्षर जारी किये जायेंगे। अतएव अब इस शुभ कार्यमे जरा-सा भी विलम्ब न होना चाहिये।" सन् १९०० ई०मे गवर्नरने उनका आवेदनपत्र स्वीकार किया और इस प्रकार हिन्दीको सरकारी कामकाजमें स्थान मिला। काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके कुलपतिकी स्थितिमे उपाधिवितरणोत्सवोंपर प्रायः वे हिन्दीमे ही भाषण करते थे। उन्होने 'हिन्दी प्रकाशन मण्डल' द्वारा उच्च शिक्षाके लिए हिन्दीमें पुस्तकोके प्रकाशनकी व्यवस्था की।

सन् १८९३ ई० मे मालवीयजीने काशी नागरी प्रचारिणी सभाकी स्थापनामे पूर्ण योग दिया। वे सभाके प्रवर्तकोंमें थे और आरम्भसे ही सभाको उनकी सहायताका सम्बल रहा। सभाके प्रकाशन, शोध और हिन्दी प्रसार-कार्यमें मालवीयजीकी रुचि बराबर बनी रही और अन्तिम दिन तक वे उसका मार्गदर्शन करते रहे।

हिन्दी-आन्दोलनके सर्वप्रथम नेता होनेके कारण माल-वीयजीपर हिन्दी-साहित्यकी अभिवृद्धिका दायित्व भी आ गया। इन्हीं उद्देश्योंकी पूर्तिके हेतु सन् १९१० ई०में उनकी

सहायतासे प्रयागमें 'अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन'की स्थापना हुई। उसी वर्ष अक्तूबरमें सम्मेलनका प्रथम अधिवेशन काशीमें हुआ,जिसके सभापति मालवीयजी थे। मालवीयजी विशुद्ध हिन्दीके पक्षमें थे और हिन्दी, हिन्दुस्तानीको एक नहीं मानते थे। शिक्षाके क्षेत्रमे उन्होंने जो अद्वितीय कार्य किया है, उसका भी एक आवश्यक अंग साहित्यिक है। आपने सन् १९१६ ई०में काशी हिन्दूविश्वविद्यालयकी स्थापना की और कालान्तरमें यह एशियाका सबसे बड़ा विश्वविद्यालय बन गया। वास्तवमें यह एक ऐतिहासिक कार्य ही उनकी शिक्षा और साहित्य-सेवा का अमिट शिलालेख है। इसके अतिरिक्त 'सनातन धर्म सभा' के नेता होनेके कारण देशके विभिन्न भागोंमें जितने भी सनातन धर्म कालेजोंकी स्थापना हुई, वह मालवीयजीकी सहायतासे ही हुई। इनमे कानपुर, लाहौर, अलीगढ आदि स्थानोंके सनातनधर्म कालेज उल्लेखनीय हैं। शिक्षाके माध्यमके विषयमे मालवीयजीके विचार बडे स्पष्ट थे। अपने एक भाषणमे उन्होंने कहा था कि "भारतीय विद्यार्थियोंके मार्गमे आनेवाली वर्तमान कठिनाइयोंका कोई अन्त नही है। सबसे बडी कठिनता यह है कि शिक्षाका माध्यम हमारी मातृभाषा न होकर एक अत्यन्त दुरूह विदेशी भाषा है। सभ्य संसारके किसी भी अन्य भागमें जन-समुदायकी शिक्षाका माध्यम विदेशी भाषा नहीं है।"

'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' जैसी साहित्यिक संस्थाओंकी स्थापना द्वारा, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय तथा अन्य शिक्षण केन्द्रोंके निर्माण द्वारा और सार्वजनिक रूपसे हिन्दी-आन्दोलनका नेतृत्व कर उसे सरकारी दफ्तरोंमे स्वीकृत कराके मालवीयजीने हिन्दीकी जो सेवा की है, उसे साधारण नहीं कहा जा सकता। उनके प्रयत्नोंसे हिन्दीको यश, विस्तार और उच्च पद मिला किन्तु इस बातपर कुछ आश्चर्य होता है कि ऐसी शिक्षा-दीक्षा पाकर और विरासत में हिन्दी तथा संस्कृतका ज्ञान प्राप्त करके मालवीयजीने एक भी स्वतन्त्र रचना नही की। उनके अग्रलेखों, भाषणों तथा धार्मिक प्रवचनोंके सग्रह ही उनकी शैली और ओजपूर्ण अभिव्यक्तिके परिचायकके रूपमे उपलब्ध है। इसमें कोई सन्देह नही कि वे उच्च कोटिके विद्वान्, वक्ता और लेखक थे। सम्भव है बहुधन्धी होनेके कारण उन्हे कोई पुस्तक लिखनेका समय नहीं मिला। अपने जीवनकालमें उन्होंने जो कुछ हिन्दी भाषा और साहित्यके लिए किया, सभी हिन्दी-प्रेमियोंके लिए पर्याप्त है किन्तु उनकी निजी रचनाओंका अभाव खटकता है। उनके भाषणों और फुटकर लेखोंका भी कोई अच्छा संग्रह आज उपलब्ध नही है। केवल एक संग्रह उनके जीवनकालमें ही सीताराम चतुर्वेदीने प्रकाशित किया था, वह भी पुराने ढंगका है और इतना उपयोगी नहीं, जितना होना चाहिए। लोकमान्य तिलक, राजेन्द्र बाबू और जवाहरलाल नेहरूके मौलिक या अनूदित साहित्यकी तरह मालवीयजीकी रचनाओंसे हिन्दीकी साहित्य-निधि भरित नही हुई। इसलिए उनके सम्पूर्ण कृतित्वको आकते हुए यह मानना होगा कि हिन्दी-भाषा और साहित्यके विकासमें मालवीयजीका योगदान क्रियात्मक अधिक है, रचनात्मक साहित्यकारके रूपमें कम। महामना मालवीयजी अपने युगके प्रधान नेताओंमें थे, जिन्होंने 'हिन्दी, हिन्दू और हिन्दुस्थान'को सर्वोच्च स्थानपर प्रस्थापित कराया। —ज्ञा० द०

मधुमालती–यह हिन्दीका एक प्रसिद्ध सूफी प्रेमाख्यानक काव्य है। इसके रचयिता मंझन थे। इस ग्रन्थका रचनाकाल सन् ९५२ हिजरी (सन् १५४५ ई०) है। 'मधुमालती' नामक और भी रचनाओंका पता चलता है लेकिन मंझनलिखित 'मधुमालती' जायसीके 'पद्मावत'के पाँच वर्षों बादकी रचना है।

इसकी कथाका आधार लोक-प्रचलित कहानी रही है। इसमे ऐतिहासिक अथवा अर्ध-ऐतिहासिक व्यक्तियों या घटनाओंका योग नहीं है। इसकी कथा पूर्ण रूपसे काल्पनिक है। अभी तक इसकी खण्डित प्रतियाँ ही मिली थी लेकिन हालमें डा० शिवगोपाल मिश्रको एकडलासे इसकी एक अखण्डित प्रति मिल गयी है। वैसे अभी तक वैज्ञानिक ढंगसे इसका सम्पादन नही हुआ है।

'मधुमालती'की कहानी अत्यन्त रोचक है। कहानी संक्षेपमे इस प्रकार है—मनोहर कनैगढ़ (कनेसर) के राजा सूरजभानका पुत्र है। १२ वर्षकी उम्रमे राजा सूरजभान उसे गद्दीपर बिठाता है। मनोहरको नृत्य-गीतादिसे बहुत प्रेम था। नृत्य देखकर एक दिन आधी रातको जब मनोहर सो जाता है तब अप्सराएँ उसे देखती हैं और महारस नगरकी राजकुमारी मधुमालतीके उपयुक्त समझ उसे उसकी चित्रसारीमे पहुँचा देती है। जगनेपर दोनों एक दूसरेको देख मोहित हो जाते हैं। दोनो एक दूसरे पर अपना प्रेम प्रकट करते है। दोनों अपना-अपना परिचय देते हैं। मधुमालती बतलाती है कि महारस नगरके राजा विक्रमरायकी वह पुत्री है। दोनों बातें करते-करते एक ही सेजपर सो जाते हैं। अप्सराएँ फिर मनोहरको उसके घर पहुँचा देती है। इधर सखियाँ जब भोरमें मधुमालतीको देखती है तो सब कुछ समझ जाती हैं। मधुमालती भी उनसे कुछ छिपाती नही। मनोहर और मधुमालती एक दूसरेके वियोगसे व्याकुल हो जाते हैं। मनोहर अपनी धाय सहजासे अपने प्रेमकी बात बतलाता है। बादमे सबकी बात अनसुनीकर मनोहर जोगीके वेशमें मधुमालतीकी खोजमे निकल जाता है। वह नौकापर समुद्र यात्रा करता है। तूफानसे उसकी नौका टूट जाती है और उसके साथके सभी साथी इधर-उधर बह जाते हैं। एक लकडीके तख्तेपर राजकुमार बहता हुआ एक जनशून्य जंगलमे जा लगता है। जगलमे सेजपर सोई हुई उसे एक सुन्दरी मिलती है। राजकुमारके पूछनेपर वह अपना नाम प्रेमा बतलाती है। चितविश्रामपुरके राजा चित्रसेन की वह लड़की है। वह बतलाती है कि सखियोंके साथ खेलते समय उसे एक राक्षसने पकड़ लिया और उसे जंगलमें पहुँचा दिया। जंगलमे अकेली वह एक वर्षसे है। इस बीच उसने किसी भी मनुष्यको नहीं देखा। प्रेमा अपनी कहानी बतलाती है, जिससे मनोहरको पता चलता है कि मधुमालती बचपनसे उसकी सखी है। प्रेमाके दिये हुए अस्त्रसे मनोहर राक्षसको मारता है और

प्रेमाको लेकर उसे चितविश्रामपुर पहुँच जाता है। उसके पिता मनोहरका स्वागत करते हैं। एक विशेष तिथिको मधुमालती अपनी माँके साथ प्रेमाके घर आया करती थी। इस बार जब वह आयी तो प्रेमाके प्रयत्नसे वह मनोहरसे मिलती है। मधुमालतीकी माँ रूपमंजरी को जब यह पता चलता है तो वह मधुमालतीको बुरा-भला कहती है और उसे शाप देती है। शापवश मधुमालती पक्षी बनकर उड़ जाती है। पक्षीके रूपमें उड़ती हुई मधुमालती मानगढ़के कुँवर ताराचन्दको देखती है। वह उसे पकड़ लेता है। ताराचन्दको वह अपनी कहानी बतलाती है। ताराचन्द प्रतिज्ञा करता है कि मनोहरसे वह उसका मिलन करायेगा। पिंजड़ेमें लेकर उसे ताराचन्द अपने साथियों सहित महारस नगर पहुँचता है। मधुमालती के माता-पिताको यह पता चलता है और उसकी माँ उसे शापमुक्त करती है। ताराचन्दसे विवाहका प्रस्ताव करने पर वह कहता है कि मधुमालती उसकी बहन जैसी है। मधुमालतीकी माँ सब हाल लिखकर प्रेमाके पास भेजती है। अपनी माँसे छिपाकर मधुमालती भी पक्षी के रूपमें बिताये हुए अपने एक वर्षकी विरह दशाका वर्णन लिखकर प्रेमाके पास भेजती है। यह वर्णन बारहमासेके रूप में है। संयोगवश मनोहर उसी समय जोगीके वेशमें प्रेमाके नगरमें पहुँचता है। प्रेमा और मनोहरका पत्र पा मधुमालतीके पिता सदल बल प्रेमाके नगरमें पहुँचते हैं। मनोहर और मधुमालतीका व्याह होता है। ताराचन्द प्रेमाको देखकर मुग्ध होता है और दोनोंका भी विवाह हो जाता है। कुछ दिनों वहाँ रहकर मनोहर तथा ताराचन्द अपनी पत्नियोंका लेकर अपने-अपने नगरको चले जाते हैं।

मंझनने बड़े रोचक ढंगसे कहानी कही है। कहानी कहनेमें मझनने भारतीय कथानक तथा काव्य-रूढ़ियोंका पूर्ण रूपसे प्रयोग किया है। मझनने अपने गुरुको बड़ी भक्तिके साथ स्मरण किया है। अन्य सूफी कवियोंकी भाँति मझनने भी कुछ स्थलों पर 'मधुमालती'मे आध्यात्मिक तत्त्वोंका समावेश किया है। मधुमालतीका वर्णन कई जगहों पर परोक्ष सत्ताके रूपमे किया गया है। एक जगह मनोहर, मधुमालतीके स्वरूपका वर्णन करते हुए कहता है कि वही सब कुछ है। समस्त सृष्टि, शिव, त्रिभुवनके प्राणी, राजा, रंक सभीमें वही रूप अभिव्यक्त हो रहा है (डा० शिवगोपाल मिश्र द्वारा सम्पादित 'मधुमालती', पृ० ३८)। बहुत जगहों पर मंझनने अपने सूफी दर्शनकी पूर्ण जानकारीका परिचय दिया है ('मधुमालती' पृ० ४, ५, ११, ३७, ३८ आदि) अन्य सूफी कवियोंकी तरह मझनने भी प्रेमको ही सब कुछ माना है ('मधुमालती' पृ० ११)। मंझन हिन्दू विचारधारासे भी प्रभावित थे। पूर्वजन्म, कर्मफल, पिण्डदान आदिकी चर्चा 'मधुमालती'में की गयी है। मध्ययुगीन सन्तोंके समान मंझनने भी स्त्रियोंकी निन्दा की है। उन्हे पापका घर कहा है तथा उनसे बचनेकी चेतावनी दी है।

'मधुमालती'में पाँच चौपाइयोंके बाद दोहेका प्रयोग है। 'मधुमालती'की उपमान-योजनामे भारतीय परम्पराको ध्यानमें रखा गया है। मंझनने एक जगह शृंगारको रसराज कहा है ('मधुमालती' पृ० १५)। काव्यकी अन्य विशेषताएँ भी 'मधुमालती'में देखनेको मिलती हैं लेकिन मनोहरके चरित्र-चित्रणमें मंझन अत्यन्त असफल रहे। मनोहरका चरित्र कहीं-कहीं हास्यकर हो उठा है। जायसीसे अगर तुलना करें तो मंझनको साधारण कवि ही कहना पड़ेगा।

[सहायक ग्रन्थ—मधुमालती : सम्पादक डा० शिवगोपाल मिश्र, वाराणसी, नवम्बर, १९५७; जायसीके परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य, सं० २०१३ वि०।] —रा० पू० ति०

मधुशाला—'बच्चन'की प्रसिद्ध काव्य-कृति, जो १९३५ ई०मे प्रकाशित हुई। अकेले इस एक ग्रन्थने जिस प्रकार 'बच्चन'को इतना लोकप्रिय बनाया, वैसे उदाहरण इतिहासमे विरल ही मिलेंगे। 'मधुशाला' लिखनेके पूर्व 'बच्चन' 'खैयामकी मधुशाला' नामसे 'रुबाइयात'का अनुवाद प्रस्तुत कर चुके थे। यह मानो 'मधुशाला' लिखनेकी तैयारी थी। इस कृतिमे कुछ गिने-चुने प्रतीकोंको लेकर कविने अपनी भाव-धाराको व्यक्त किया है, जो जीवनको भोगनेकी हामी है। 'मधुशाला'में यौवनका आवेग है तो दार्शनिक चिन्तनकी मुद्रा भी है। सामान्य बोलचालकी भाषामे होनेके कारण 'मधुशाला'के मुक्तक असंख्य पाठकों और श्रोताओंके निकट अत्यन्त प्रिय हो गये। कवि-सम्मेलनोंमे 'मधुशाला'का पाठ घण्टों चला करता और श्रोताओंको तृप्ति न होती। 'बच्चन' और हालावादमे सम्बन्ध स्थापित करनेमे 'मधुशाला'का ही सर्वाधिक योग रहा है।

मधुसूदनदास—यह इटावानिवासी माथुर चौबे और रामानुज सम्प्रदायके वैष्णव थे। इनकी एकमात्र उपलब्ध रचना 'रामाश्वमेध' है, जिसका निर्माण सन् १७८२ ई० (आषाढ़ शुक्ल २, गुरुवार, सं० १८३९) को गोविन्ददास नामक किसी व्यक्तिकी प्रेरणासे हुआ था। यह ग्रन्थ 'पद्म-पुराण'के पातालखण्डमे वर्णित रामाश्वमेधके कथानकपर आधारित है। इसके अन्तर्गत लंका-विजयके पश्चात् अयोध्या लौटते हुए रामकी भरतसे नन्दिग्राममे भेंट, अयोध्या आगमन, राज्याभिषेक, अश्वमेध यज्ञका उपक्रम, शत्रुघ्नका यज्ञाश्वके साथ दिग्विजयके लिए प्रस्थान, वीरमणि द्वारा हयग्रहण, शत्रुघ्न मूर्च्छा, हयमोक्ष, सुरथ द्वारा यज्ञाश्व बन्धन, राम सुरथ संवाद, लव-कुश उत्पत्ति, लव द्वारा भरतकी पराजय, हनुमान् मूर्च्छा, लव-कुश विजय, युद्ध निवारण, सीताराम समागम, यज्ञपूर्ति आदि प्रसंगोंका विस्तृत एव रोचक वर्णन 'रामचरितमानस'की शैलीपर हुआ है। इसकी भाषा अवधी है किन्तु ब्रजप्रदेशमे निर्मित होनेसे स्थानीय भाषाकी भी छाप पड़ी है। काव्य-सौष्ठव एव प्रबन्ध-कुशलताकी दृष्टिसे मधुसूदनदासकी यह कृति 'रामचरितमानस'से इतनी मिलती-जुलती है कि इसे निस्संकोच उसका परिशिष्ट बनाया जा सकता है। इस प्रसंगपर मधुसूदनदासके पहले और बादको अनेक ग्रन्थ लिखे गये किन्तु भाषाका जैसा लालित्य और काव्यकी जैसी छटा इस ग्रन्थमें दिखाई पड़ती है, उसकी छाँह भी अन्य कवि नहीं छू सके।

[सहायक ग्रन्थ—हिन्दी साहित्यका इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल; खोज रिपोर्ट : नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।] —भ० प्र० सिं०

मनसाराम-ये टेढ़ा गाँव (जिला उन्नाव)के निवासी थे। इनका एक संकलन 'मनसारामके कवित्त' नामसे उपलब्ध है। इसमें कृष्णलीला, नायिका-भेद तथा शृंगारविषयक छन्द हैं। 'दि० भू०'में भी इनके विरह तथा नायिका-भेद प्रसंगपर दो कवित्त हैं। —सं०

मनिकंठ-ये आजमपुरके रईस निरतनलाल अग्रवाल और नगरा (जिला गाजीपुर)के राजा फकीर सिंहके आश्रयमें रहे। खोज विवरण (१९४४ ई०)मे इनको मिश्र कहा गया है, पर 'कवीन्द्र चन्द्रिका'के साक्ष्यपर इनको त्रिपाठी माना जा सकता है। इनका समय १७ वीं शताब्दीका मध्य माना गया है। इनके रीति-परम्पराके शृंगारिक तथा आलंकारिक छन्द कुमारिमणिके 'रसिक रसाल' तथा गोकुल कविके 'दिग्विजय भूषण'मे उदाहृत हैं। इनकी एक रचना 'बैताल पचीसी' मानी गयी है।

[सहायक ग्रन्थ—दि० भू० (भूमिका)।] —सं०

मनियार सिंह-जन्म १७५० ई० के लगभग काशीमे। इनके पिता श्यामसिंह यहींके मूल निवासी थे। 'हनुमत पचीसी' से यह विदित होता है कि इन्होंने कुछ दिन बलियामे भी बिताये थे। इनके काव्य-गुरु कृष्णलाल कवि थे और मुख्य आश्रयदाता रामचन्द्र पण्डित। अपनी रचनाओंमे कहीं कहीं इन्होंने 'यार' उपनामका प्रयोग छन्दानुरोधसे किया है। इनके लिखे चार ग्रन्थ उपलब्ध हुए है—'सौन्दर्य लहरी' (१७८६ ई०), 'महिम्न भाषा' अथवा 'भावार्थ चन्द्रिका'(१७९४ ई०),'हनुमत पचीसी'और 'सुन्दर काण्ड रामायण'। इनमेंसे प्रथम दो क्रमशः शिव-पार्वती और अन्तिम दो हनुमान् तथा रामके भक्ति-विषयक है। 'महिम्न भाषा' पुष्पदत्तके 'महिम्न स्तोत्र'का भावानुवाद हैं, शेष तीन स्वतन्त्र कृतियाँ हैं। ये रचनाएँ इनकी अखण्ड शिव एवं रामभक्ति सिद्ध करती है। रामभक्ति-साधनामे शिवोपासना एक अनिवार्य तत्त्व माना जाता रहा है अतः मनियार सिंहकी शिवसम्बन्धी रचनाएँ वैष्णव भावापन्न ही मानी जायेंगी। इनकी भाषा संस्कृतमिश्रित ब्रज है। अनुप्रासकी छटासे अलकृत होनेके साथ ही वह अत्यन्त प्रवाहपूर्ण है। परवर्ती भक्तिकाव्यमे ऐसी ओजपूर्ण शब्दावली इने-गिने कवियोंकी ही रचनाओमे मिलती है।

[सहायक ग्रन्थ—हिन्दी साहित्यका इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल; खोज रिपोर्ट : नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।] —भ० प्र० सिं०

मनीराम मिश्र-'शिवसिंह सरोज'के अनुसार कविका समय सन् १७८२ ई० है। ये कन्नौजके निवासी इच्छाराम मिश्रके पुत्र कान्यकुब्ज कात्यायनगोत्रीय ब्राह्मण अनिरुद्धके शिष्य थे। इन्होने 'आनन्दमंगल' और 'छन्द छप्पनी' नामक दो रचनाएँ कीं। दोनोंका रचना-काल सन् १७७२ ई० है। 'आनन्दमंगल', 'श्रीमद्भागवत'के दशम स्कन्धका पद्यानुवाद है। 'छन्द छप्पनी'के केवल ५६ छन्दोंमे कविने पिंगलके समग्र विषय-विस्तारको बडी सफाईसे समझा दिया है। इस दृष्टिसे इसे छन्द-शास्त्रका सूत्र-ग्रन्थ कहा जा सकता है। इसके अन्तर्गत गण-भेद, गण-फलाफल तथा देवता, गुरु-लघु-लक्षण, गुरु-लघु संज्ञा, छन्दोभंग, वर्णवृत्त और मात्रावृत्त पर संक्षिप्त किन्तु सम्यक् विचार किया गया है। कविका विषय-विवेचन बड़ा साफ और स्पष्ट है, जिसके कारण यह रचना बहुत अनूठी बन पडी है किन्तु सब कुछ होते हुए भी कविकी भाषा गम्भीर विषय-प्रतिपादनमें सक्षम नहीं दिखाई पड़ती। हिन्दी पिंगलके इतिहासमें मनीरामका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

[सहायक ग्रन्थ—खो० वि० (त्रै० ३, १२); मि० वि०; शि० स०; दि० भू०।] —रा० त्रि०

मनु-भारतीय वाङ्मयमे सृष्टिके आदि पुरुषके रूपमें परिकल्पित। प्रसादकृत 'कामायनी'के प्रमुख पात्र।

महाभारतमे ८ मनुओंका उल्लेख है। इनमेसे विवस्वान् के पुत्र वैवस्वत मनुका सम्बन्ध 'कामायनी'के नायकसे जोड़ा जा सकता है। यों प्रसादकी कथाका मूल स्रोत 'शतपथ ब्राह्मण' है, जिसमे मनुको श्रद्धादेव कहकर अभिहित किया गया है। भागवतमें भी इन्ही वैवस्वत मनु और श्रद्धासे मानवीय सृष्टिका प्रारम्भ माना गया है।

'कामायनी'मे मनुका चित्रण देवताओंसे इतर मानवीय सृष्टिके व्यवस्थापकके रूपमे विशेषतः किया गया है। देव-सृष्टिके संहारके बाद वे चिन्ता-मग्न बैठे हुए हैं। श्रद्धा की प्रेरणासे वे जीवनमे फिरसे रुचि लेते है पर कुछ कालके बाद श्रद्धासे असन्तुष्ट होकर उसे छोडकर वे चले जाते है। अपने भ्रमणमे वे सारस्वत प्रदेश जा पहुँचते हैं, जहाँकी अधिष्ठात्री इड़ा थी। इडाके साथ वे एक नयी वैज्ञानिक सभ्यताका नियोजन करते हैं पर उनके मनकी मूल अधिकार-लिप्सा अभी गयी नहीं है। वे इड़ापर भी अपना समूचा अधिकार चाहते हैं। फलस्वरूप प्रजाविद्रोह करती है, जिसमे मनु घायल होकर मूर्च्छित हो जाते हैं। श्रद्धा अपने पुत्र मानवको लिए हुए मनुकी खोजमें सारस्वत प्रदेश तक आ जाती है, जहाँ दोनोंका मिलन होता है। मनु अपनी पिछली भूलोके लिए पश्चात्ताप करते हैं। श्रद्धा मानवको इड़ाके संरक्षणमे छोडकर, मनुको लेकर हिमालयकी उपत्यकामे चली जाती है, जहाँ श्रद्धाकी सहायतासे मनु आनन्दकी स्थितिको प्राप्त करते है। इस प्रकार प्रसादने मनुके दोनो पक्षो—श्रद्धा और इड़ाके सामंजस्यको प्रतिपादित किया है। —सं०

मन्नन द्विवेदी (गजपुरी)-जन्म १८८४ ई० में, गजपुर ग्राम, जिला गोरखपुरमें; मृत्यु १९२१ ई०। शिक्षा क्रमशः जुबली स्कूल, गोरखपुर, क्वीस कालेज, काशी और म्योर कालेज प्रयागमे हुई। सरकारी नौकरीके सिलसिलेमे आपने तहसीलदार आदि कई पदोंपर कार्य किया। आप बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न साहित्यकार थे। गद्यऔर पद्य दोनों विधाओंमे आपकी समान गति थी। आप द्विवेदी युगके उन विशिष्ट गद्यलेखकोंमें अग्रणी है, जिनकी भाषाशैली नवीनतामें अपने युगसे कहीं आगे थी। सूफी सन्त मंसूरके सम्बन्धमें लिखा आपका निबन्ध इसका उदाहरण प्रस्तुत करता है। आपके इस तरहके निबन्धोंमे, छोटे-छोटे चुस्त वाक्योंमें वक्रता और मुहावरेदानीके साथ-साथ ओज और शक्तिका दुर्लभ समन्वय हुआ है। आपकी कविताओंमें भी प्रकृति-प्रेम और देश-प्रेमकी अभिव्यक्ति जिस शैलीमें हुई है, वह अपने युगकी सीमाओंका अतिक्रमण कर जाती है। 'सरस्वती', 'मर्यादा', 'इन्दु', 'प्रताप' 'स्वदेश' आदि पत्र-

पत्रिकाओंमें आपकी अनेक कविताएँ प्रकाशित हुई हैं, जिनका अभीतक संकलन नहीं हुआ है।

कृतियाँ—'प्रेम' (खण्डकाव्य), 'विनोद' (बालोपयोगी काव्यकृति); उपन्यास : 'रामलाल' और 'कल्याणी','मुसलमानी राज्यका इतिहास' (दो खण्ड, प्र० मनोरंजन पुस्तक माला); गद्यरचना : 'भीषण ह्रास','आर्य-ललना','जमशेदजी नौसेरवानजी ताताका जीवन-चरित्र'। —श्री० शु०

मन्मथनाथ गुप्त—जन्म १९०८ ई०में वाराणसीमें। क्रान्तिकारी आन्दोलनके एक क्रियाशील सदस्य रहे, जिन दिनोंकी चर्चा बादमें उन्होंने अपनी पुस्तक 'क्रान्तियुगके संस्मरण' (१९३७ ई०) में की है। ये संस्मरण इतिहासके कुछ सामान्यतः अज्ञात पृष्ठोंपर प्रकाश डालनेके साथ-साथ अकाल्पनिक गद्य-शैलीके अच्छे नमूने भी हैं। आपने क्रान्तिकारी आन्दोलनका एक विधिवत् इतिहास भी प्रस्तुत किया है—'भारतमें सशस्त्र क्रान्तिकारी चेष्टाका इतिहास' (१९३९ ई०)।

इन्होंने साहित्यकी विभिन्न विधाओंमें लिखा है। आपके प्रकाशित ग्रन्थोंकी सख्या ८० के लगभग है। कथा साहित्य और समीक्षाके क्षेत्रमें आपका कार्य विशेष महत्त्व का है। 'बहता पानी' (१९५५ ई०) उपन्यास क्रान्तिकारी चरित्रोंको लेकर चलता है। समीक्षाकृतियोंमें 'कथाकार प्रेमचन्द' (१९४६ ई०), 'प्रगतिवादकी रूपरेखा' (१९५३ ई०) तथा 'साहित्य, कला, समीक्षा' (१९५४ ई०) अधिक ख्यात हुई हैं। मनोविश्लेषणमें आपकी काफी रुचि रही है। आपके कथा-साहित्य और समीक्षा दोनोंमें ही मनोविश्लेषणके सिद्धान्तोंका आधार ग्रहण किया गया है। काममे सम्बन्धित आपकी कई कृतियाँ भी हैं, जिनमेंसे 'सेक्सका प्रभाव' (१९४६ ई०) विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। सम्प्रति आप केन्द्रीय सरकारके प्रकाशन विभागसे सम्बद्ध हैं। —स०

मलिक मुहम्मद जायसी—हिन्दीके प्रसिद्ध सूफी कवि, जिनके लिए केवल 'जायसी' शब्दका प्रयोग भी, उनके उपनामकी भाँति, किया जाता है। यह इस बातको भी सूचित करता है कि वे जायस नगरके निवासी थे। इस सम्बन्धमें उनका स्वयं भी कहना है, "जायस नगर मोर अस्थानू। नगरक नाँव आदि उदभानू। तहाँ देवस दस पहुने आएऊँ। भा वैराग बहुत सुख पाएऊँ॥" ('आखिरी कलाम' १०)। इसमे यह भी पता चलता है कि उस नगर का प्राचीन नाम 'उदमान' था, वहाँ वे एक 'पहुने' जैसे दस दिनोंके लिए आये थे, अर्थात् उन्होंने अपना नश्वर जीवन प्रारम्भ किया था अथवा जन्म लिया था और फिर वैराग्य हो जानेपर वहाँ उन्हें बहुत सुख मिला था। जायस नामका एक नगर उत्तर प्रदेशके रायबरेली जिलेमें आज भी वर्तमान है, जिसका एक पुराना नाम 'उद्याननगर' 'उद्यानगर' या 'उज्जालिक नगर' बतलाया जाता है तथा उसके 'कचाना खुर्द' नामक मुहल्लेमे मलिक मुहम्मद-जायसीका जन्म-स्थान होना भी कहा जाता है। कुछ लोगोंकी धारणा है कि जायसीकी जन्म-भूमि गाजीपुरमे कहीं हो सकती है किन्तु इसके लिए कोई प्रमाण नहीं मिलता। जायसके विषयमें कविने अन्यत्र भी कहा है, "जायस नगर धरम अस्थानू। तहवाँ यह कवि कीन्ह बखानू" ('पद्मावत' २३)। इससे जान पड़ता है कि वह उस नगरको 'धर्मका स्थान' समझता था और वहाँ रहकर उसने अपने काव्य 'पद्मावत' की रचना की थी। यहाँपर नगरका 'धर्म स्थान' होना कदाचित् यह भी सूचित करता है कि जनश्रुतिके अनुसार वहाँ उपनिषद्कालीन उद्दालक मुनिका कोई आश्रम था। गार्सां द तासी नामक फ्रेंच लेखकका तो यह भी कहना है कि जायसीको प्रायः 'जायसीदास' के नामसे अभिहित किया जाता रहा है।

जायसीकी किसी उपलब्ध रचनाके अन्तर्गत उसकी निश्चित जन्म-तिथि अथवा जन्म-संवत्का कोई स्पष्ट उल्लेख नही पाया जाता। एक स्थलपर वे कहते है, "भा अवतार मोर नौ सदी। तीस बरिख ऊपर कवि बदी" ('आखिरी कलाम' ४)। जिसके आधारपर केवल इतना ही अनुमान किया जा सकता है कि उनका जन्म सम्भवतः ८०० हि० एवं ९०० हि० के मध्य, अर्थात् सन् १३९७ ई० और १४९४ ई० के बीच किसी समय हुआ होगा तथा तीस वर्षकी अवस्था पा चुकनेपर उन्होंने काव्य-रचनाका प्रारम्भ किया होगा। 'पद्मावत' का रचना-काल उन्होंने सन् ९४७ हि० ("सन् नौसे सैतालीस अहै"—'पद्मावत' २४)। अर्थात् १५४० ई० बतलाया है। 'पद्मावत' के अन्तिम अंश (६५३) के आधारपर यह भी कहा जा सकता है कि उसे लिखते समयतक वे वृद्ध हो चुके थे, "उनका शरीर क्षीण हो गया था, उनकी दृष्टि मन्द पड गयी थी, उनके दाँत जाते रहे थे, उनके कानोंमे सुननेकी शक्ति नही रह गयी थी, शिर झुक गया था, केश श्वेत हो चले थे तथा विचार करनेतककी शक्ति क्षीण हो चली थी" किन्तु इसका कोई सकेत नहीं है कि इस समय वे कितने वर्षकी अवस्था तक पहुँच चुके थे। जायसीने 'आखिरी कलाम'का रचनाकाल देते समय भी केवल इतना ही कहा है, "नौ से बरस छतीस जो भए। तब यह कविता आखर कहे' ('आ० क०' १३), अर्थात् सन् ९३६ हि० अथवा सन् १५२९ ई० के आ जाने पर मैंने इस काव्यका निर्माण किया। 'पद्मावत' ('पद्मावत' १३-१७)मे उन्होंने सुलतान शेरशाह सूर (सन् १५४०-४५ ई०) तथा 'आखिरी कलाम' ('आ० क०' ८)में मुगल बादशाह बाबर (सन् १५२६-३० ई०)के नाम शाहे वक्तके रूपमे अवश्य लिये हैं और उनकी न्यूनाधिक प्रशंसा भी की है, जिससे सूचित होता है कि वे उनके समकालीन थे।

मनेरशरीफ (जिला पटना, बिहार) वाले खानकाहके पुस्तकालयमे फारसी अक्षरोंमें लिखित पुरानी प्रतियोंका एक संग्रह मिला है, जिसमें जायसीकी 'अखरावट'की भी एक प्रति मिली है। उसमे उसका लिपिकाल जुमा ८ जुल्काद सन् ९११ हि०, अर्थात् सन् १५०५ ई० दिया गया जान पडता है, जो प्रत्यक्षतः पुराना समय है। प्रोफेसर सैयद हसन अस्करीका अनुमान है कि यह वस्तुतः 'अखरावट'का रचनाकाल होगा, जो प्रतिलिपि करते समय मूल प्रतिसे ज्योंका त्यों उद्धृत कर लिया होगा। तदनुसार उनका कहना है कि यदि वह जायसीकी सर्वप्रथम रचना सिद्ध की जा सके तो उनके जन्म-संवत्का पता लगा लेना हमारे

लिए असम्भव नहीं रह जाता। सन् ९११ हि०, अर्थात् सन् १५०५ ई० में उपर्युक्त ३० वर्षका समय घटाकर सन् ८८१ हि० अर्थात् सन् १४७५ ई० लाया जा सकता है और यह सरलतापूर्वक बतलाया जा सकता है कि जायसीका जन्म इसके आस-पास हुआ होगा। इस प्रसंगमें सन् ९१०-११ हि० के उस प्रचण्ड भूकम्पका भी उल्लेख किया गया है, जिसकी चर्चा अब्दुल्लाहकी 'तारीख दाऊदी' तथा बदायूनीकी 'मुन्तखबुत्तारीख' जैसे इतिहास-ग्रन्थोंमें की गयी है और उसके साथ जायसी द्वारा 'आखिरी कलाम' (४)में वर्णित भूकम्पकी समानता दिखलाकर उपर्युक्त अनुमानकी पुष्टिका प्रयत्न भी किया गया है परन्तु यहाँ उपर्युक्त "तीस बरिस ऊपर कवि बदी"के अनन्तर आये हुए "आवत उधतभार बड़हाना"के 'आवत' शब्दकी ओर कदाचित् यथेष्ट ध्यान नहीं दिया गया है। यदि इसका अभिप्राय 'जन्म लेते समय' माना जाये तो उससे ग्रन्थ-रचनाके समयका अर्थ नहीं लिया जा सकता। अतः जब तक अन्य स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध न हों, जन्मसम्बन्धी उपर्युक्त धारणा सन्दिग्ध बनी रहती है। इसी प्रकार सैयद आले मुहम्मद मेहर जायसीने किसी काजी सैयद हुसेनकी अपनी नोटबुकमें दी गयी जिस तारीख '५ रज्जब ९४९ हि०' (सन् १५४२ ई०) का मलिक मुहम्मद जायसीकी मृत्यु-तिथिके रूपमे उल्लेख किया है (ना० प्र० पत्रिका, वर्ष ४५ पृ० ५८), उसे भी तब तक स्वीकार नहीं किया जा सकता, जब तक उसका कहीं से समर्थन न हो जाय।

जायसीके नामके पहले 'मलिक' उपाधि लगी रहनेके कारण कहा जाता है कि उनके पूर्वज ईरानसे आये थे और वहींसे उनके नामोंके साथ यह जमींदार सूचक पदवी लगी आ रही थी किन्तु उनके पूर्वपुरुषोंके नामोंकी कोई तालिका अभी तक प्राप्त नहीं हो सकी है। उनके पिताका नाम मलिक राजे अशरफ बताया जाता है और कहा जाता है कि वे मामूली जमींदार थे और खेती करते थे। स्वयं जायसीका भी खेती करके जीविका-निर्वाह करना प्रसिद्ध है। कुछ लोगोंका अनुमान करना कि 'मलिक' शब्दका प्रयोग उनके किसी निकट सम्बन्धीके 'बारह हजारका रिसालदार' होनेके कारण, किया जाता होगा अथवा यह कि सम्भवतः स्वयं भी उन्होंने कुछ समय तक किसी सेनामें काम किया होगा, प्रमाणोंके अभावमें सन्दिग्ध ही रह जाता है। सैयद आलेका मत है कि वे "मोहल्ला गौरियानाके निगलामी मलिक खानदानसे थे" और "उनके पुरानी सम्बन्धी मुहल्ला कंचानामें बसे थे" (ना० प्र० पत्रिका, वर्ष ४५, पृ० ४९)। उन्होंने यह बतलाया है कि जायसीका मलिक कबीर नामका एक पुत्र भी था। जायसीने 'पद्मावत' (२२) मे अपने चार मित्रोंकी चर्चा की है, जिनमेसे युसुफ मलिकको 'पण्डित और ज्ञानी' कहा है, सालार एवं मियां सलोनेकी युद्ध-प्रियता एवं वीरताका उल्लेख किया है तथा बड़े शेखको भारी सिद्ध कहकर स्मरण किया है और कहा है कि ये चारों मित्र उनसे मिलकर एकचिह्न हो गये थे परन्तु उनके पूर्वजों एवं वंशजोंकी भाँति इन लोगोंका भी कोई प्रामाणिक परिचय उपलब्ध नहीं है।

जायसीने अपनी कुछ रचनाओंमें अपनी गुरु-परम्पराका भी उल्लेख किया है। उनका कहना है, "सैयद अशरफ, जो एक प्रिय सन्त थे मेरे लिए उज्जवल पन्थके प्रदर्शक बने और उन्होंने प्रेमका दीपक जलाकर मेरा हृदय निर्मल कर दिया। उनका चेला बन जाने पर मैं अपने पापके खारे समुद्री जलको उन्हींकी नाव द्वारा पार कर गया और मुझे उनकी सहायतासे घाट मिल गया, वे जहाँगीर चिश्ती चाँद जैसे निष्कलंक थे, संसारके मखदूम (स्वामी) थे और मै उन्हींके घरका सेवक हूँ" (पद्मावत १८)। "सैयद अशरफ जहाँगीर चिश्तीके वंशमें निर्मल रत्न जैसे शेख हाजी हुए तथा उनके अनन्तर शेख मुबारक और शेख कमाल हुए" (वही १९)। अपनी 'आखिरी कलाम' नामक रचनामे भी उन्होंने सैयद अशरफका नाम लगभग इसी प्रकार लिया है तथा अपनेको उनके 'घरका मुरीद' बतलाया है (दे० 'आ० क०' ९)। 'अखरावट' (२६)से भी सूचित होता है कि इन्हीं गुरुके द्वारा निर्दिष्ट 'शरीअत'की शिक्षा ग्रहण कर वे "नाव पर चढ़े थे" परन्तु सैयद अशरफ जहाँगीर चिश्ती, जो 'शिमनानी' नामसे भी प्रसिद्ध हैं और जिनका निवास-स्थान कछोछा (जिला फैजाबाद) बताया जाता है, सम्भवतः सन् १४०१ ई० में ही मर चुके थे। अतः उनके द्वारा जायसीका 'चेला' बनाया जाना ("लीन्ह कइ चेला") सम्भव नहीं जान पड़ता। अधिक सम्भव यह है कि जायसीको उनके वंशज या प्रशिष्य शेख मुबारकसे प्रत्यक्ष प्रेरणा मिली होगी। इन्हें शेख मुबारक बोदला भी कहा जाता है। इस आधार पर इनके "हौं उन्हके घर बांद" ('पद्मावत' १८) एवं "तिनघर हौं मुरीद सो पीरु" ('आ० क०' ९) कथन सार्थक हो जाते हैं। हालमे उपलब्ध 'चित्ररेखा' नामक रचनामें भी, जो जायसी द्वारा रचित कही जाती है, सैयद अशरफके सम्बन्धमें केवल "हौं मुरीद सेवौं तिन बारा" कहा गया है तथा शेख मुबारकको "करिआ" (कर्णधार) तथा शेख जमालको "खेवट" (नाव खेनेवाला) कहा गया है। ये शेख जमाल शेख कमाल ही है।

जायसीने अपने 'मोहदी' या महदी गुरु शेख बुरहानका भी उल्लेख किया है और कहा है कि उनका स्थान कालपी नगर था। उनका कहना है, "मैंने खेनेवाले महदी की सेवा की है, जिनका सेवक वेगके साथ चला करता है।" शेख बुरहानने पथ-प्रदर्शन कर ज्ञान प्रदान किया, उनके गुरु अलहदाद थे, जो सैदद मुहम्मदके शिष्य थे तथा उनके पास सिद्ध पुरुष रहा करते थे। सैयद मुहम्मदके गुरु दानियाल थे, जिनपर प्रसन्न होकर ख्वाजा खिज्रने उन्हें सैयद-राजेसे मिला दिया था। उन गुरुके द्वारा कर्मकी योग्यता पाते ही मेरी वाणी खुल गयी और मैं प्रेमका वर्णन करने लग गया। उन्हीं की कृपासे मैं परमात्माके दर्शन पा सकूँगा ('पद्मावत' १८)। उन्होंने अन्यत्र कहा है, "मैंने 'मीठा' महदी गुरु पा लिया, जिसका प्रिय नाम शेख बुरहान है और जिसका गुरु-स्थान कालपी नगर है। उन्होंने गोसाईं (परमात्मा) के दर्शन पा लिये हैं और उन्हें अलहदाद गुरुने पन्थ लखाया था। अलहदाद 'नवेला' सिद्ध थे और

वे सैयद मुहम्मदके शिष्य थे, जिन्हें अमर ख्वाजा खिज्रसे सहायता पानेवाले दानियालने दीक्षित किया था" आदि ('अखरावट' २७)। इस परिचयका एक और भी अधिक स्पष्ट समर्थन 'चित्ररेखा' (पृ० ७४) की उन पंक्तियोंसे हो जाता है, जहाँ कहा गया है, "शेख बुरहान महदी गुरु हैं जिनका स्थान कालपी है, जिन्होंने चार बार मक्केकी यात्रा की है तथा जो किसीको भी स्पर्श करके उसके पाप दूर कर देते हैं। वे ही मेरे गुरु हैं और मैं उनका चेला हूँ तथा उन्होंने अपना हाथ मेरे सिरपर रखकर मेरा पाप धो दिया है और प्रेमके प्यालेको स्वयं चखकर उसकी बूँद मुझे भी चखा दी है।" सूफियोंकी परम्पराके इतिहाससे पता चलता है कि उसकी चिश्तिया शाखाकी 'अलाई' नामक उपशाखा मानिकपुरमें स्थापित हुई थी, उसके प्रमुख प्रचारक शेख हिशामुद्दीन थे, जिनका देहान्त सन् ८५३ हि० (१४४९ ई०) में हुआ था और जिनके शिष्य सैयद राजे हामिद शाह (मृ० १४९५ ई०) थे। सैयद राजेके ही शिष्य दानियालके विषयमें कहा जाता है कि अमर ख्वाजासे उनकी भेंट हुई थी। ये जौनपुरके सुल्तान हुसेनशाह शर्की (सन् १४५७-७८ ई०) के समकालीन थे और इन्हींके शिष्योंमें सैयद मुहम्मद जौनपुरी (मृ० सन् ९११ हि०-१५०५ ई०) थे, जिन्होंने सन् ९०६ हि० अर्थात् सन् १५०० ई० में 'महदवी' आन्दोलन चलाया था तथा उसीके कारण सम्भवतः उनके अनुयायियोंको भी 'महदी' कहा जाने लगा। सैयद मुहम्मदके शिष्य शेख अल्हदाद (मृ० सन् १५१७ ई०) हुए, जिनके शिष्य प्रसिद्ध शेख इब्राहीम दरवेश बुरहान 'कालपी वाले' (सन् ८७० हि०-९७० हि०-सन् १४६५-१५६३ ई०) थे और जान पड़ता है कि इन्हींको जायसीने अपना प्रत्यक्ष 'महदी गुरु' कहकर इनकी पूरी गुरु-परम्परा भी दे दी। इस प्रकार हो सकता है कि जायसीका मूल सम्बन्ध यद्यपि सैयद अशरफ जहाँगीर चिश्तीके घरानेसे रहा हो, वे महदी शेख बुरहान द्वारा विशेष प्रभावित थे, जैसा उनकी रचनाओंसे भी प्रमाणित हो जाता है तथा इसी कारण उन्होंने दोनों परम्पराओंका परिचय भी दो भिन्न-भिन्न शैलियोंमें दिया है। कुछ लोगों ने 'पद्मावत' एवं 'अखरावट'के 'महदी गुरु'को किसी विशिष्ट व्यक्ति शेख मुहीउद्दीनके रूपमें शेख बुरहानसे पृथक् मान लेनेकी भूल की थी, जिसका निराकरण 'चित्ररेखा'के "महदी गुरु शेख बुरहानू" कथन द्वारा होता है और 'महदी' शब्द केवल पदवी मात्र सिद्ध होता है।

'पद्मावत' (३६७) के दोहेसे पता चलता है कि जबसे जायसीका अपना प्रियतम उनके दाहिने होकर प्रत्यक्ष हुआ, तबसे उन्होंने बाईं दिशाकी ओरसे सुनना तथा उस ओर देखना भी छोड़ दिया, जिसका एक अभिप्राय यह भी हो सकता है कि उनके बायें नेत्र और कान शक्तिहीन थे। इस बातका समर्थन फिर उसी काव्य-ग्रन्थके २१वें अंशसे भी हो जाता है, जहाँ उन्होंने स्पष्ट कह दिया है कि "एक आँखका होनेपर भी कवि मुहम्मदने काव्य गुना है" तथा कुरूप होनेपर भी "लोग उसका मुँह जोहते हैं" (२३)। कहते हैं कि जब ये केवल सात वर्ष के थे, इन्हें चेचक निकली थी और इनकी माँने मनकपुरकी मनौती माननेका निश्चय किया था। अतएव हो सकता है कि अच्छे हो जानेपर भी इनकी एक आँख जाती रही हो और ये कुरूप हो गये हों। इनके एक ओरके हाथ पैर बेकार हो जाने तथा उनके टुकड़ेतक बन जानेके विषयमें प्रसिद्ध है और कहा जाता है कि जब ये अकबर बादशाह (सन् १५५६-१६०५ ई०) के दरबारमें गये तो वह इनके 'बद-शक्ल और बदकवी' होनेपर हँस पड़ा, जिसकी चर्चा मीर-हसनके 'रिमुजुल आरिज' नामकी मसनवीमें की गयी जान पड़ती है परन्तु आश्चर्य है कि इस घटनाका सुलतान शेरशाहके भी दरबारमें होना बतलाया जाता है और कहा जाता है कि उसके उत्तरमें इन्होंने "मटियहिं हँसेसि कि कोंहरहिं" कहकर हँसनेवालोंको लज्जित कर दिया था (ना० प्र० पत्रिका, भाग १४, पृ० ३९०)। जायसीके लिए प्रसिद्ध है कि बचपनमें इन्हें कुछ दिनोंके लिए अपने ननिहालमें रहना पड़ा था और यह भी कहते हैं कि ये कुछ दिनोंतक ससुरालमें रहकर भी लिखते-पढ़ते रहे किन्तु इसके लिए हमें अभीतक कोई निश्चित प्रमाण उपलब्ध नहीं है। इनका स्वभाव नम्र एवं साधुवत् था तथा इनमें दानशीलता तथा एकान्तप्रियताके गुण पर्याप्त मात्रामें विद्यमान थे। इनका अमेठी राज्य (जिला लखनऊ) के दरबारमें एक उच्चकोटिके फकीरके रूपमें प्रतिष्ठा पाना भी प्रसिद्ध है। अपने जीवनके अन्तिम दिनोंमें ये अमेठीके ही निकट किसी मँगरा नामके घने जंगलमें रहकर अपनी साधना किया करते थे और कहा जाता है कि वहीं रहते समय इन्हें किसीने शेरकी आवाजके धोखेमें आकर गोली मार दी और इस प्रकार इनका देहान्त हो गया।

जायसीकी प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार है-(१) 'पद्मावत', (२) 'अखरावट', (३) 'आखिरी कलाम', (४) 'महरी बाईसी', (५) 'चित्रावत' और (६) 'मोस्तीनामा'। इनमेंसे प्रथम तीन पहले प्रकाशित हो चुकी थीं, चौथी कदाचित् 'महरीनामा' या 'मोराईनामा'की जगह प्रकाशित हुई है अथवा वह 'कहरनामा'से अभिन्न है (ना० प्र० पत्रिका, वर्ष ५८, अंक ४, पृ० ४७५-७८) तथा पाँचवीं भी 'चित्ररेखा'के नामसे निकल चुकी है और छठी इधर 'मसालनामा'के रूपमें मिली है। इसके अतिरिक्त 'मसदा', 'कहरानामा', 'मुकहरानामा' वा 'मुखरानामा', 'मुहरानामा' या 'होलीनामा', 'खुर्वा-नामा', 'संकरानामा', 'चम्पावत', 'मटकावत', 'इतरावत', 'लखरावत', 'मखरावत' या 'सुखरावत', 'लहरावत', 'नैनावत', 'घनावत', 'परमार्थ जयजी' और 'पुसीनामा' रचनाएँ भी जायसीकी बतायी जाती हैं किन्तु इनके विषयमें कुछ ज्ञात नहीं है। 'पद्मावत' एक उत्कृष्ट प्रेम-काव्य है, जिसे जायसीकी रचनाओंमें सदा सर्वोच्च स्थान दिया जाता है तथा कदाचित् अन्य सूफी प्रेम-काव्योंमें यह सर्वश्रेष्ठ है। 'चित्ररेखा'के अन्तर्गत चन्द्रपुरके राजा चन्द्रभानुकी पुत्री चित्ररेखा और कन्नौजके राजा कल्याण सिंहके पुत्र प्रीतमकुँवरकी कथा आती है, जिसमें बतलाया गया है कि किस प्रकार वह राजकुमार राजकुमारीके लिए निश्चित किसी कुबड़े वरका स्वभाव ग्रहण कर उससे विवाह कर लेता है और अन्तमें न केवल उसे ही पा लेता है, अपितु संयोगवश अल्पायुसे दीर्घायुतक

बन जाता है। कहते हैं कि यह रचना किसी लोक-गाथापर आधृत है। काव्य-कौशलकी दृष्टिसे इसे एक साधारण स्थान दिया जाता है। 'अखरावट' में कतिपय सूफी सिद्धान्तोंका वर्णन पाया जाता है और 'आखिरी कलाम' द्वारा उस पुनरुत्थानके समयका एक चित्रण प्रस्तुत करनेकी चेष्टा की गयी है, जो इस्लाम धर्मकी मान्यताओंके अनुसार सृष्टिके अन्तमें होनेवाला है तथा जिसे ध्यानमें रखना आवश्यक है। इसी प्रकार 'महरी बाईसी' के अन्तर्गत चेतावनी और उपदेश आते हैं तथा अप्रकाशित रचनाओंमेंसे 'पोस्तीनामा' में 'अफीमचियोंका खाका खींचा' कहा जाता है।

यद्यपि जायसीकी उपर्युक्त सभी रचनाएँ अभी उपलब्ध नहीं है तथा उनमेसे कईके नामोंके आधारपर ही यह अनुमान किया जा सकता है कि वे साधारण होंगी, इसमे सन्देह नहीं कि केवल अपने 'पद्मावत' नामके प्रेमाख्यानके कारण ही वे एक श्रेष्ठ कवि कहे जाते हैं। उनके समयतक इस प्रकारके काव्य-साहित्यका पूर्ण विकास नहीं हो पाया था और इसके आदर्श केवल इने-गिने ही थे। जायसीने इस रचना शैलीकी नवीन धाराको अपनाकर बहुत बड़ी सफलता दिखलायी और एक ऐसी सुन्दर कृति प्रस्तुत की, जो आगेके लिए नमूना बन गयी परन्तु जायसी केवल एक हिन्दी कवि ही नहीं, प्रत्युत एक सूफी सन्त भी हैं और इसी कारण उनकी रचनाओंका मूल्यांकन करते समय हमारा ध्यान सम्भवतः उनकी उस विचारधाराकी ओर जाता है, जिसे उन्होंने अपना धार्मिक कर्तव्य समझ कर प्रकट किया था। ये बातें उनकी अन्य उपलब्ध रचनाओंमें भी पायी जाती हैं और उन सभीको संगृहीत करके अध्ययन कर लेनेपर यह स्पष्ट होनेमें देर नहीं लगती कि उन्हें इस्लाम धर्मकी ऐकान्तिक महत्ताके प्रति घोर निष्ठा है तथा इस दृष्टिसे विचार करनेपर उनके शुद्ध सूफी सिद्धान्त कुछ मर्यादित भी हो जाते हैं और हमें ऐसा लगता है कि उनके ऊपर महदवी आन्दोलनका प्रभाव भी कुछ-न-कुछ अवश्य पडा होगा। जायसीका वास्तविक महत्त्व उनके द्वारा प्रेमतत्त्वके व्यापक रूपका सफल चित्रण करनेमें ही देखा जा सकता है। उन्होंने इसे भारतीय जीवनकी पृष्ठभूमिपर बड़े मार्मिक ढंगसे अंकित किया है तथा ऐसा करते समय उन्होंने अल्हड अवधीको सशक्त तथा समृद्ध बना दिया है, जिसके लिए हम उनके चिरऋणी रहेंगे।

[सहायक ग्रन्थ—जायसी ग्रन्थावली : सं० माताप्रसाद गुप्त, हिन्दुस्तानी अकादमी, उ० प्र०, इलाहाबाद, सन् १९५२-५३ ई०; चित्ररेखा : सं० शिवसहाय पाठक, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, सन् १९५९ ई०; नागरी प्रचारिणी पत्रिका, काशी, भाग १४, संवत् १९९० और वर्ष ४५, सं० १९९७; जर्नल आफ दि बिहार रिसर्च सोसायटी, पटना, भाग ३९, खण्ड १-२, सन् १९५३ ई०; हिन्दी अनुशीलन—भारतीय हिन्दी परिषद् प्रयाग, जुलाई, सितम्बर, सन् १९५८ ई०; जर्नल आफ दि हिस्टारिकल रिसर्च—बिहार यूनिवर्सिटी, राँची कालेज, राँची, अगस्त सन् १९५९ ई०; हिन्दुई साहित्यका इतिहास : सं० और अनु० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय।] —प० च०

मलूकदास—ये प्रयागसे लगभग ३६ मील उत्तर-पश्चिम गंगाके दाहिने किनारेपर बसे हुए कड़ा नामक कस्बेमें उत्पन्न हुए थे। उत्तरी-पूर्वी भारतके उन कतिपय स्थानोंमेंसे कड़ा एक महत्त्वपूर्ण स्थान है, जिनका मध्ययुगके इतिहासमें विशेष राजनीतिक महत्त्व समझा जाता था। मथुरादास-लिखित 'परिचई'के अनुसार मलूकदासका जन्म सन् १५७४ ई० (बैसाख कृष्ण पंचमी, संवत् १६३१ वि०) को हुआ था। उनके पिताका नाम कृष्ण बलदेव वर्माके अनुसार बाबा श्यामसुन्दरदास, गणेशप्रसाद द्विवेदीके मतानुसार लाला सुन्दरलाल परन्तु परिचई लेखक मथुरादासके अनुसार सुन्दरदास था।

संसारसे विरक्तिका जो भाव मलूकदासके हृदयमें आगे चलकर पल्लवित और पुष्पित हुआ, उसका बीजारोपण उनकी बाल्यावस्थामें ही हो गया था। जीवनकी अत्यन्त कोमल अवस्थासे ही इनके मनमें दया, धर्म, उदारता आदि मानवीय गुण विद्यमान थे और वे भगवत-भजनमें मन लगाते थे। अवस्थाके साथ उनकी भक्ति-भावना बढ़ती गयी। उनकी दमनकी प्रवृत्ति देखकर उनके माता-पिता अत्यन्त चिन्तित होते थे। वे सोचते थे कि यह बालक कुलको नष्ट करनेके लिए पैदा हुआ है। इनकी इस प्रवृत्तिको रोकनेके लिए उन्होंने कुछ उपाय करनेका निश्चय किया। उनके यहाँ कम्बल बेचनेका व्यापार होता था। सुन्दरदासने अपने पुत्रको उस व्यापारमें लगानेका प्रयत्न किया किन्तु इससे उन्हे दान देनेके लिए और भी सरल साधन प्राप्त हो गया। वे कुछ कम्बल बेंचते और कुछ भिखमंगोंको बाँट देते थे।

इनकी शिक्षा-दीक्षाके विषयमें कोई अन्तःसाक्ष्य उपलब्ध नहीं है। 'परिचई' भी इस विषयमें मौन है। किंवदन्ती है कि पाँच वर्षकी अवस्था होनेपर सुन्दरदासने अपने पुत्रको ग्राम पाठशालामें भेजा था। गुरुने जब उनकी पाटीपर वर्णमाला लिखकर उसका अभ्यास करनेका उन्हें आदेश दिया तो बालक मलूकदासने वर्णमालाके प्रत्येक अक्षरपर एक साखी लिख डाली। गुरुको बालककी इस ईश्वर-प्रदत्त प्रतिभाको देखकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ। मलूकदासके गुरुके सम्बन्धमें बहुत मतभेद है। आचार्य क्षितिमोहन सेन, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' तथा 'सन्त बानी संग्रह'के सम्पादकके अनुसार उनके गुरु द्रविड़ देशके महात्मा विट्ठलदास थे। इससे भिन्न 'भारतवर्षका धार्मिक इतिहास'के लेखक शिवशंकर मिश्रका मत है कि वे कीलके शिष्य थे। डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वालने लिखा है कि इन्होंने देवनाथजीसे नाम मात्रके लिए शिक्षा ग्रहण की थी, उन्हें आध्यात्मिक जीवनमे वस्तुतः दीक्षित करनेवाले गुरु मुरार स्वामी थे। 'सन्त बानी संग्रह'में उनके गुरुका नाम विट्ठल द्राविड़ दिया हुआ हुआ है परन्तु यह अशुद्ध है। परिचईके लेखक मथुरादासके अनुसार इन्होंने सर्वप्रथम देवनाथके पुत्र पुरुषोत्तमसे दीक्षा ली थी, विट्ठल द्राविड़से नहीं। विट्ठल द्राविड़ तो देवनाथके गुरु भाऊनाथके गुरु थे।

'परिचई'कारने मलूकदासके वैवाहिक जीवन पर कोई प्रकाश नहीं डाला। मलूकदासी सम्प्रदायके वर्तमान महन्त

तथा उसके अनुयायियोंको भी इसका कोई ज्ञान नहीं है। जनश्रुति भी इस विषयमें मौन है। अनुमान है कि इनका विवाह कुलकी रीतिके अनुसार हुआ था परन्तु उनका मन गार्हस्थ्य जीवनमें कभी भी अनुरक्त नहीं हुआ। विवाहके कुछ समय बाद एक कन्याका जन्म हुआ परन्तु जन्म होते ही माताके सहित उसका देहान्त हो गया। परिचईसे ज्ञात होता है कि यद्यपि मलूकदास अपने परिवारमें रहते हुए उसके साधारण कर्तव्योंका पालन करते रहे परन्तु उनका विरक्त मन उसकी मायासे सदैव निलिप्त रहा। अपने पैतृक व्यवसाय—कम्बलके व्यापारमे भी उनका मन नहीं लगा।

इनके पर्यटन तथा भ्रमणपर कोई अन्तःसाक्ष्य उपलब्ध नहीं है परन्तु परिचई द्वारा इस विषय पर यथेष्ट प्रकाश पड़ता है। उन्होंने जगन्नाथजी, पुरुषोत्तम क्षेत्र, कालपी तथा दिल्ली जैसे सुदूर स्थानोंकी भी समय-समय पर यात्रा की थी। उनकी दिल्ली-यात्राका उद्देश्य औरंगजेबसे भेंट करना था।

मलूकदासने सन् १६८२ ई० (बैसाख कृष्ण चतुर्दशी बुधवार, सं० १७३९) में मिह लगन बिताकर सबको समाधान करते हुए और नाना रूप दिखाते हुए परमधामको प्रयाण किया।

मलूकदासकी प्रामाणिक कृतियाँ ये है—'ज्ञानबोध', 'रतनखान', 'भक्त वच्छावली', 'भक्ति-विवेक','ज्ञानपरोछि', 'बारहखड़ी', 'रामावतारलीला', 'ब्रजलीला', 'ध्रुवचरित', 'विभयविभूति' तथा 'सुखसागर'।

'ज्ञानबोध' इनका सर्वमान्य प्रामाणिक ग्रन्थ है। इस ग्रन्थके प्रथम विश्राममे ब्रह्मकी भक्त-वत्सलताका वर्णन उनके अन्य ग्रन्थ 'भक्तवच्छावली'मे बहुत कुछ मिलता-जुलता है, कहीं-कहीं दोनोंमे समान पंक्तियाँ प्राप्त होती हैं। 'ज्ञानबोध'-में तीर्थ-यात्रा, भेष-धारण, आश्रमत्याग आदि बाह्याचरणको व्यर्थ बताया गया है। मलूकदासने ब्रह्मके अद्वैत, सर्वव्यापकता और सर्वशक्तिमत्ताका प्रतिपादन करते हुए ज्ञान, भक्ति और वैराग्यके समन्वयका वर्णन किया है। ज्ञानबोध-की प्रामाणिक हस्तलिखित प्रति महन्त कुटुम्बके पुरुषोत्तम दास कक्कड़के यहाँ प्राप्त हुई है। इसकी प्रतिलिपि मलूकदासके अनन्य भक्त और शिष्य प्रयागनिवासी दयालदास कायस्थने (सन् १७२७ ई०) सं० १७८४ वि० में की थी। इस ग्रन्थकी एक अन्य प्रति मलूकदासकी गद्दी कड़ामे सुरक्षित है और वर्तमान महन्त बाबा मथुरादासके अधिकारमे है। गद्दीपर इस ग्रन्थकी नित्य पूजा की जाती है।

'रतनखान'में इन्होंने अपने दार्शनिक विचारोंको प्रकट किया है। 'ज्ञानबोध'की भाँति इस ग्रन्थमे भी वैराग्य, संसारकी असारता, मोक्ष आदिके भाव व्यक्त किये गये है। अपने कथनोंको इन्होंने उदाहरणों द्वारा पुष्ट किया है। 'रतनखान'की एक हस्तलिखित प्रति पुरुषोत्तमदास कक्कड़के पास है। इसके प्रतिलिपिकर्ता भी दयालदास कायस्थ थे।

डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वालके शब्दोंमें इनका सर्वोत्तम ग्रन्थ 'भक्तवच्छावली' माना जाता है। इसमे ब्रह्मकी भक्त-वत्सलताका वर्णन है। यद्यपि इन्होंने अपनी सभी कृतियोंमें भगवद्भक्तिका गुणगान किया है, परन्तु 'भक्ति-विवेक'में भक्तिका वर्णन एक स्वतन्त्र विषयके रूपमें हुआ है। 'रतनखान'की भाँति इस ग्रन्थकी रचना भी दोहा-चौपाईमें हुई है। इसकी भाषा अवधी है और इसमें भी खड़ीबोलीका वह प्रारम्भिक रूप मिलता है, जो इनकी अन्य प्रामाणिक कृतियोंमें पाया जाता है। अपने विषयके समर्थनके लिए इन्होंने कथाओंका प्रचुर प्रयोग किया है। 'भक्तिविवेक'की एक हस्तलिखित प्रति बाबा मथुराप्रसादके पास सुरक्षित है और इसकी भी नित्य पूजा की जाती है।

'ज्ञानपरोछि'में मलूकदासने वैराग्य, आत्माके नित्यता, सृष्टि-उत्पत्ति, अष्टांगयोग, प्राणायाम, ब्रह्मके अद्वैत आदि विषयोंपर विचार प्रकट किये हैं। वैराग्यकी परिभाषा तथा उसके आवश्यक तत्त्व 'भक्ति-विवेक'से साम्य रखते हैं। कुछ विषयोंमे 'ज्ञानबोध'से भी साम्य पाया जाता है। इस ग्रन्थकी रचना भी दोहा-चौपाईमे हुई है और भाषा भी अवधी है।

मलूकदासद्वारा लिखित 'बारहखड़ी' मलूकदासी सम्प्रदायके बालकोंको अक्षर ज्ञान करानेके पहले कण्ठाग्र करा दी जाती है। इस प्रकार मलूकदासकी इस कृतिका विशेष महत्त्व हो गया है। इसमे भी ब्रह्मकी सर्वव्यापकता, सत्य, अहिंसा, क्षमा, दया, वैराग्य आदि विषयोंका वर्णन हुआ है। इसकी भाषा अवधी तथा इसका छन्द दोहा है।

'रामावतारलीला', 'ब्रजलीला' तथा 'ध्रुवचरित्र'—इन तीन रचनाओंमे क्रमशः राम, कृष्ण तथा ध्रुवके चरित्रका वर्णन है। इन रचनाओंसे सूचना मिलती है कि मलूकदास अपने प्रारम्भिक जीवनमें अवतारवादमें विश्वास करते थे। मलूकदासके मकानके निकट एक ठाकुरद्वारेका भग्नावशेष भी उनकी सगुण उपासनाका संकेत देता है। मलूकदासकी इन कृतियोंकी शैली अपरिपक्व है, इससे यह सिद्ध होता है कि इनकी रचना उन्होने जीवनके प्रारम्भिककालमें की होगी। 'रामावतारलीला' तथा 'ध्रुवचरित'की रचना भी अवधी भाषा और दोहा-चौपाई छन्दोंमे हुई है। 'रामावतार लीला' कड़ाके निकटवर्ती गाँवमे बहुत लोकप्रिय है। 'ध्रुवचरित'की उपलब्ध प्रतिके प्रतिलिपिकर्ता भी दयालदास कायस्थ थे।

'विभयविभूति'से मलूकदासके दार्शनिक विचारोका परिचय मिलता है। ब्रह्मकी महत्ता, उसको प्राप्त करनेके विविध उपाय, प्राणायाम और उसके साधनकी विधि, अष्टांग योग तथा योग-साधनके फल और प्रभाव आदि अनेक विषयोंपर इसमे विचार प्रकट किये गये है। इसमें भी अवधी भाषा और दोहा—चौपाई छन्दोंका प्रयोग हुआ है।

'सुखसागर'में मलूकदासने ब्रह्मके विभिन्न अवतारोंका वर्णन किया है। यह भी उनकी प्रारम्भिक कृति जान पड़ती है। इसकी भाषा भी अवधी तथा छन्द दोहा-चौपाई है। इस रचनाकी हस्तलिखित प्रति भी दयालदास द्वारा प्रस्तुतकी हुई मिली है।

इनकी रचनाओके उपर्युक्त परिचयसे स्पष्ट होता है कि वे एक सन्त महात्मा थे। काव्य-रचना उनका उद्देश्य नहीं

था। उनकी रचनाओंसे तत्कालीन धार्मिक विचारों तथा आदर्शोंका परिचय अवश्य मिलता है। निर्गुण विचारधाराके आधार पर मलूकदासने धार्मिक समन्वयके सिद्धान्तका प्रतिपादन किया था, जिससे उनके विचारोंकी उदारता प्रकट होती है। इन्होंने अधिकतर अवधी भाषाका प्रयोग किया है यद्यपि उससे खड़ीबोलीका प्रभाव परिलक्षित होता है। भाषाके अध्ययनकी दृष्टिसे उनकी रचनाओंका महत्त्व है। उनके द्वारा प्रयुक्त दोहा-चौपाई छन्द 'रामचरितमानस'की लोकप्रियताका संकेत देते हैं।

[सहायक ग्रन्थ—हिन्दी काव्यमें निर्गुण सम्प्रदाय : डा० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल; उत्तरी भारतकी सन्त परम्परा : पं० परशुराम चतुर्वेदी; मलूकदास : डा० त्रिलोकीनारायण दीक्षित।] —त्रि० ना० दी०

महात्मा गांधी—पूरा नाम मोहनदास करमचन्द गान्धी। जन्म २ अक्तूबर १८६९ ई० को राजकोट (गुजरात)में तथा मृत्यु ३० जनवरी १९४८ ई० दिल्लीमें। अपने कृतित्वसे वह महात्मा गान्धी कहलाये। गान्धीजीका सम्पूर्ण जीवन एक खुली पुस्तकके समान था। उनका सर्वतोमुखी व्यक्तित्व विराट् था। उतना ही व्यापक प्रभाव उनका हिन्दी साहित्यपर भी पड़ा है। भाषाकी समस्यापर उनके विचार बडे स्पष्ट थे। शिक्षित वर्ग उनसे परिचित हुआ और हिन्दी साहित्य सम्मेलनका ध्यान उस ओर आकर्षित हुआ। सन् १९१८ ई० मे वह सम्मेलनके सभापति बने। उन्होंने दक्षिणमें हिन्दीप्रचारकी योजना बनायी। सम्मेलनने प्रचारका दायित्व सँभाला। उसी वर्ष उन्होंने शिक्षकोंके प्रथम दलके साथ अपने पुत्र देवदास गान्धीको हिन्दी प्रचारार्थ दक्षिण भारत भेजा। दक्षिणमे हिन्दी प्रचारकाका कार्य सन् १९१८ ई० से १९२७ ई० तक हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी ओरसे गान्धीजीके संरक्षणमे होता रहा। १९२७ ई० मे 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा'की स्थापना की और यह कार्य उसके सुपुर्द हुआ। इस समस्त कार्यकी देखरेखके लिए अलगसे हिन्दी प्रचार समितिकी स्थापना हुई, जिसका नाम १९३७ ई० में 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' रखा गया। गान्धीजीके कार्यक्रममें हिन्दी प्रसारका यह सबसे बडा सफल प्रयास था। उन्होंने हिन्दीको सदा राष्ट्रीय एकताका प्रतीक माना। गान्धीजीने स्वदेशाभिमानका आधार भी स्वभाषाको ही माना। वे हमेशा कहते रहे कि "स्वदेशाभिमानको स्थिर रखनेके लिए हमें हिन्दी सीखना आवश्यक है।"

दक्षिण अफ्रीकाके प्रवास-कालमें ही गान्धीजीकी यह धारणा बन चुकी थी कि हिन्दी राष्ट्रभाषाका स्थान ले सकती है। सन् १९०९ ई० मे उन्होंने 'हिन्द स्वराज्य'में लिखा था—"हर एक पढ़े लिखे हिन्दुस्तानीको अपनी भाषाका, हिन्दूको संस्कृत का, मुसलमानको अरबीका, पारसीको पर्शियनका और सबको हिन्दीका ज्ञान होना चाहिये।" अपनी आत्मकथामें उन्होंने लिखा—"मैं यह मानता हूँ कि भारतवर्षके उच्च शिक्षणक्रममें मातृभाषा के उपरान्त राष्ट्रभाषा हिन्दीके लिए भी स्थान होना चाहिये।"

गान्धीजी स्वयं अहिन्दी-भाषी थे। उन्होंने हिन्दी सीखी और धीरे-धीरे हिन्दीभाषी लोगोंसे हिन्दीमें पत्रव्यवहार आरम्भ किया। फिर सार्वजनिक सभाओं और कांग्रेस की परिषदोंमें भी वे हिन्दीके महत्त्वपर जोर देते थे। उन्होंने 'यंग इण्डिया'के बाद 'हरिजन' नामक साप्ताहिक प्रकाशित करना आरम्भ किया। गान्धीजीके कारण अनेक व्यक्तियोंने हिन्दी सीखी। उनकी संकलित रचनाओंकी संख्या बहुत बडी है किन्तु उनकी सबसे बडी देन वास्तव में यह थी कि उन्होंने राजनीति, शिक्षा और समाजको हिन्दीके अनुकूल बनाया और हिन्दीको राष्ट्रभाषाके उच्च पदपर आसीन किया। १९३५ ई० में जब वे दुबारा अखिल भारतीय साहित्य सम्मेलनके इन्दौर अधिवेशनके सभापति बने, तब उन्होंने कहा "हिन्दीको हम राष्ट्रभाषा मानते हैं। वह राष्ट्रीय भाषा होनेके लायक है। वही भाषा राष्ट्रीय बन सकती है, जिसे अधिकसंख्यक लोग जानते-बोलते हों और जो बोलनेमें सुगम हो। ऐसी भाषा हिन्दी ही है...अन्य प्रान्तोंने भी स्वीकार कर लिया है।" गान्धीजीने इस विचारका भारतीय राजनीति तथा राष्ट्रीयताकी नवीन परिभाषा द्वारा व्यापक प्रचार किया। यह धारणा और हिन्दीको विशुद्ध साहित्यकी परिधिसे निकालकर राजनीतिके मंचपर स्थापित करना गान्धीयुग का प्रथम लक्षण है।

गान्धीजीका कार्य बडा विस्तृत था। विचारोंको मूर्तरूप देनेके लिए उन्होंने स्वाधीनतासे पहले ही अनेक संस्थाओंकी स्थापना की जैसे—गान्धी सेवा संघ, ग्रामोद्योग संघ, चर्खा संघ, हरिजन सेवक संघ, गोसेवा संघ, आदिम जाति सेवक संघ, तालिमी संघ, राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा इत्यादि। इनका अधिकतर कार्य हिन्दीमें होता था। इन गतिविधियोंका सर्वाधिक प्रभाव हिन्दीके प्रचारके कार्यपर पडा और हिन्दीको देशव्यापी भाषा बननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ।

महात्मा गान्धीने जो कहा, वह अब हिन्दीका बहुमूल्य साहित्य है। उनका लिखित साहित्य तीन भागोंमें विभक्त है (१) पत्र-पत्रिकाओंमे उनके सम्पादकीय तथा अन्य लेख, (२) उनके पत्र तथा रचनाएँ और (३) उनका प्रवचन साहित्य। अनेक राष्ट्रीय महत्त्वके प्रश्नोंपर उन्होंने हिन्दीमें अपने विचार व्यक्त किये।

साधनको साध्यके समकक्ष आदर्श बनाकर जो समन्वय और समीकरण उन्होंने उदात्त मर्यादित मानव-जीवनके लिए उपस्थित किया, वही गान्धी-दर्शनका प्राण है और समस्त पीड़ित मानवताके लिए आशाका दीपक है। अगणित साहित्यकारों, कलाकारों, दार्शनिकों, राजनीतिविशारदों, सुधारकोंको उन्होने प्रतिभावान युगप्रवर्तक बनाया।

गान्धीजी सत्यके पुजारी थे। इसी कारण जीवनके गूढ़तम सत्यको भी वे सूत्ररूपमें कहनेमें समर्थ और सफल हुए। सत्यकी व्याख्या उन्होंने एक ही वाक्यमें इस प्रकार की है—"सत्य सर्वदा स्वावलम्बी होता है और बल तो उसके स्वभावमें ही होता है।" उन्होंने साहित्यपर लिखा है—"मै ऐसी कला और साहित्य चाहता हूँ, जो लाखोंसे बोल सके।" सन्तकाव्य और बाईबल गान्धीजीकी भाषाके

आदर्श रहे हैं। गान्धीयुगकी विचारधारा द्वारा हिन्दी भाषा और साहित्यको जो प्रोत्साहन मिला, हिन्दीके इतिहासमें वह सर्वथा अपूर्व है। गान्धी-विचारधाराने राष्ट्रीय जीवनके प्रत्येक पक्षको प्रभावित किया, इसलिए जिस किसी साहित्यिकने देशके जीवनका विस्तृत चित्रण किया अथवा भारतीय जीवनके किसी भी पहलूको लेकर उसे अपनी रचनाका आधार बनाया, वह इस विचार-धारासे प्रभावित हुए बिना न रहा। हिन्दी उपन्यास, गल्प, नाटक और काव्य-साहित्यके इन सभी अंगोंपर गान्धी-युगकी विचारधाराका प्रभाव प्रत्यक्ष है।

गान्धीजी राम, कृष्ण, बुद्ध, ईसा और मुहम्मदकी परम्परामें थे। उनकी वाणीसे निर्विकार सत्य सन्तोंके वचनामृतकी भाँति ही निःसृत होता था। यह अमृत-वाणी शाश्वत साहित्य और कलाकी परम आत्मा है, जिससे प्रेरित होकर ही सर्वजनहिताय साहित्यकी सृष्टि होती है। —शा० द०

महादेव–रुद्र, शिव, महेश अथवा शंकरके ही पर्यायवाची शब्दके रूपमें इस शब्दका प्रयोग होता है किन्तु अपनी विशिष्ट अवस्थामें यह शब्द इन सबसे भिन्न है। महादेव वस्तुतः विनाशके प्रतीक न होकर पोषणके प्रतीक समझे जाते हैं। महादेव अपने शिवत्वके कारण शिव हैं और शिव तत्त्वका निर्माण अग्निसे न होकर सोममें हुआ है। शिवकी अष्टमूर्तियाँ प्रसिद्ध हैं। इन मूर्तियोंमें अन्तिम आठवीं मूर्ति ही शिव हैं। इनका निवास संकल्प रूपसे चन्द्रमामें कहा जाता है। अभिनवगुप्तके अनुसार शिवका यह महादेव रूप पंचतन्मात्राओंमें पृथ्वीका प्रतीक है। हिन्दी साहित्यमें शिव एवं शंकरके पर्याय रूपमें यह नाम प्रयुक्त होता है। —यो० प्र० सिं०

महादेवी वर्मा–छायावादी कवियोंकी बृहच्चतुष्टयीमें एक महादेवी वर्मा हैं। इनका जन्म १९०७ ई० में फर्रुखाबाद (उत्तर प्रदेश) में एक सुसम्पन्न परिवारमें हुआ था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा इन्दौरमें हुई। फिर प्रयाग विश्वविद्यालय-से इन्होंने बी० ए० और बादमें संस्कृतसे एम० ए० किया। उसी समय ये प्रयाग महिला विद्यापीठकी प्रधानाचार्या नियुक्त हो गयीं। तबसे इसी पदपर कार्य कर रही हैं। पाठशालामें हिन्दी-अध्यापकसे प्रभावित होकर ब्रजभाषामें समस्या-पूर्ति भी करने लगीं। फिर तत्कालीन खड़ीबोलीकी कवितासे प्रभावित होकर खड़ीबोलीमें रोला और हरिगीतिका छन्दोंमें काव्य लिखना प्रारम्भ किया। उसी समय माँसे सुनी एक करुण कथाको लेकर सौ छन्दोंमें एक खण्डकाव्य भी लिख डाला। कुछ दिनों बाद उनकी रचनाएँ तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित होने लगीं। विद्यार्थी-जीवनमें वे प्रायः राष्ट्रीय और सामाजिक जागर्तिसम्बन्धी कविताएँ लिखती रहीं, जो लेखिकाके ही कथनानुसार "विद्यालयके वातावरणमें ही खो जानेके लिए लिखी गयी थीं। उनकी समाप्तिके साथ ही मेरी कविताका शैशव भी समाप्त हो गया" ('आधुनिक कवि—महादेवी'-भूमिका, पृष्ठ ३०)। मैट्रिककी परीक्षा उत्तीर्ण करनेके पूर्व ही उन्होंने ऐसी कवि-ताएँ लिखना शुरू कर दिया था, जिनमें व्यष्टिमें समष्टि और स्थूलमें सूक्ष्म चेतनाके आभासकी अनुभूति अभिव्यक्त हुई है। उनके प्रथम काव्य-संग्रह 'नीहार' की अधिकांश कविताएँ उसी समयकी हैं। इनके कुल पाँच काव्य-संग्रह—'नीहार' (सन् १९३० ई०), 'रश्मि' (१९३२ ई०), नीरजा (१९३४ ई०) 'सान्ध्यगीत' (१९३६ ई०) और 'दीपशिखा' (१९४० ई०)—प्रकाशित हो चुके हैं। 'यामा' में उनके प्रथम चार काव्य-संग्रहोंकी कविताओंका एक साथ संकलन हुआ है। 'आधुनिक कवि—महादेवी' में उनके समस्त काव्यसे उन्हीं द्वारा चुनी हुई कविताएँ संकलित हैं। कविके अतिरिक्त वे गद्य-लेखिकाके रूपमें भी पर्याप्त ख्याति अर्जित कर चुकी हैं। 'स्मृतिकी रेखाएँ' (१९४३ ई०) और 'अतीत-के चलचित्र' (१९४१ ई०) उनकी संस्मरणात्मक गद्य-रचनाओंके संग्रह हैं। 'शृंखलाकी कड़ियाँ' (१९५०) में सामाजिक समस्याओं, विशेष कर अभिशप्त नारी-जीवनके जलते प्रश्नोंके सम्बन्धमें लिखे उनके विचारात्मक निबन्ध संकलित हैं। रचनात्मक गद्यके अतिरिक्त 'महादेवीका विवेचनात्मक गद्य' में तथा 'दीपशिखा', 'यामा' और 'आधुनिक कवि—महादेवी' की भूमिकाओंमें उनकी आलो-चनात्मक प्रतिभाका भी पूर्ण प्रस्फुटन हुआ है।

महादेवी छायावादके कवियोंमें औरोंसे भिन्न अपना एक विशिष्ट और निराला स्थान रखती हैं। इस विशिष्टता-के दो कारण हैं: एक तो उनका कोमलहृदया नारी होना और दूसरा अंग्रेजी और बंगलाके रोमाण्टिक और रहस्य-वादी काव्यसे प्रभावित होना। इन दोनों कारणोंसे एक ओर तो उन्हें अपने आध्यात्मिक प्रियतमको पुरुष मानकर स्वाभाविक रूपमें अपने स्त्री-जनोचित प्रणया-नुभूतियोंको निवेदित करनेकी सुविधा मिली, दूसरी ओर प्राचीन भारतीय साहित्य और दर्शन तथा सन्त-युगके रहस्यवादी काव्यके अध्ययन और अपने पूर्ववर्ती तथा समकालीन छायावादी कवियोंके काव्यसे निकटका परिचय होनेके फलस्वरूप उनकी काव्याभिव्यंजना और बौद्धिक चेतना शत-प्रतिशत भारतीय परम्पराके अनुरूप बनी रही। इस तरह उनके काव्यमें जहाँ कृष्णभक्ति-काव्यकी विरह-भावना गोपियोंके माध्यमसे नहीं, सीधे अपनी आध्यात्मिक अनुभूतिकी अभिव्यक्तिके रूपमें प्रकाशित हुई है, वहीं सूफी पुरुष कवियोंकी भाँति उन्हें परमात्माको नारीके प्रतीकमें प्रतिष्ठित करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ी।

महादेवीका समस्त काव्य वेदनामय है। यह वेदना लौकिक वेदनासे भिन्न आध्यात्मिक जगत्‌की है, जो उसीके लिए सहज संवेद्य हो सकती है, जिसने उस अनुभूति-क्षेत्रमें प्रवेश किया है। वैसे महादेवी इस वेदनाको उस दुःख की भी संज्ञा देती हैं, "जो सारे संसारको एक सूत्रमें बाँधे रखनेकी क्षमता रखता है ('रश्मि'—भूमिका, पृष्ठ ७) किन्तु विश्वको एक सूत्रमें बाँधने वाला दुःख सामान्यतया लौकिक दुःख ही होता है, जो भारतीय साहित्यकी परम्परा में करुण रसका स्थायी भाव होता है। महादेवीने इस दुःखको नहीं अपनाया है। कहती तो हैं कि "मुझे दुःख के दोनों ही रूप प्रिय हैं, एक वह, जो मनुष्यके संवेदन-शील हृदयको सारे संसारसे एक अविच्छिन्न बन्धनोंमें बाँध देता है और दूसरा वह, जो काल और सीमाके बन्धनमें पड़े हुए असीम चेतनका क्रन्दन है" ('रश्मि'—भूमिका,

पृष्ठ ७) किन्तु उनके काव्यमें पहले प्रकारका नहीं, दूसरे-प्रकारका 'क्रन्दन' ही अभिव्यक्त हुआ है। यह वेदना सामान्य लोक-हृदयकी वस्तु नहीं है। सम्भवतः इसीलिए रामचन्द्र शुक्लने उसकी सच्चाईमें ही सन्देह व्यक्त करते हुए लिखा है, "इस वेदनाको लेकर उन्होंने हृदयकी ऐसी अनुभूतियाँ सामने रखीं, जो लोकोत्तर हैं। कहाँतक वे वास्तविक अनुभूतियाँ हैं और कहाँतक अनुभूतियोंकी रमणीय कल्पना, यह नहीं कहा जा सकता" ('हिन्दी साहित्यका इतिहास', पृ० ७१९)।

इसी आध्यात्मिक वेदनाकी दिशामें प्रारम्भसे अन्ततक महादेवीके काव्यकी सूक्ष्म और विवृत भावानुभूतियोंका विकास और प्रसार दिखाई पड़ता है। प्रारम्भिक कृति 'नीहार'में उनकी कुतूहलमिश्रित वेदनाकी स्वाभाविक अभिव्यक्ति हुई है। 'रश्मि'में अनुभूतिकी अपेक्षा दार्शनिक चिन्तन और विवेचनकी अधिकता है। 'नीरजा'में कवयित्री उस सामंजस्यपूर्ण भावभूमिमे पहुँच गयी है, जहाँ दुःख-सुख एकाकार हो जाते हैं और वेदनाका मधुर रस ही उसकी समरसताका आधार बन जाता है। 'सान्ध्यगीत'में यह सामरस्य-भावना और भी परिपक्व और निर्मल बनकर साधिकाको प्रियके इतना निकट पहुँचा देती है कि वह अपने और प्रियके बीचकी दूरीको ही मिलन समझने लगती है। 'दीपशिखा' महादेवीकी सिद्धावस्थाका काव्य है, जिसमें साधिकाकी आत्माकी दीपशिखा अकम्पित और अचंचल होकर आराध्यकी अखण्ड ज्योतिमें विलीन हो गयी है। इन पाँचों काव्य-संग्रहोंके नाम कालानुवर्ती और प्रतीकात्मक हैं। 'नीहार' जीवनके उषाकालकी रचना है, जिसमे सत्य कुहाजालमें छिपा रह कर भी मोहक और कुतूहलपूर्ण प्रतीत होता है। 'रश्मि' युवावस्थाके प्रारम्भिक दिनोंकी रचना है। जब सत्यकी किरणें आत्मामें ज्ञानकी ज्वाला जगा देती है। 'नीरजा' कवयित्रीकी प्रौढ मानसिक स्थिति-की कृति है, जिसमें दिनके उज्ज्वल प्रकाशमें कमलिनीकी तरह वह अपने साधना-मार्गपर अपना सौरभ बिखरा देती है। 'सान्ध्यगीत'मे जीवनके सन्ध्याकालकी करुणार्द्रता और वैराग्य-भावनाके साथ-साथ आत्माकी अपने आध्यात्मिक घरको लौट चलनेकी प्रवृत्ति वर्तमान है। 'दीपशिखा'मे रातके शान्त, स्निग्ध और शून्य वातावरणमें आराध्यके सम्मुख जीवन-दीपके जलते रहनेकी भावना प्रमुख है। इस प्रकार उन्होंने अपने जीवनके अहोरात्रको इन पाँच प्रतीकात्मक शीर्षकोंमें विभक्त कर अपनी जीवन-साधनाका मर्म स्पष्ट कर दिया है।

वेदनाकी इस एकान्त-साधनाके फलस्वरूप महादेवीकी कवितामें विषयोंका वैविध्य बहुत कम है। उनकी कुछ ही कविताएँ ऐसी हैं, जिनमें राष्ट्रीय और सांस्कृतिक उद्बोधन अथवा प्रकृतिका स्वतन्त्र चित्रण हुआ है। शेष सभी कविताओंमें विषयवस्तु और दृष्टिकोण एक ही होनेके कारण उनकी काव्यभूमि विस्तृत नहीं हो सकी है। इससे उनके काव्यको हानि और लाभ दोनों हुआ है। हानि यह हुई है कि विषय-परिवर्तन न होनेसे उनके समस्त काव्यमें एकरसता और भावावृत्ति बहुत अधिक है। लाभ यह हुआ है कि सीमित क्षेत्रके भीतर ही कवयित्रीने अनुभूतियोंके अनेकानेक आयामोंको अनेक दृष्टिकोणोंसे देख-परखकर उनके सूक्ष्मातिसूक्ष्म भेद-प्रभेदोंको बिम्बरूपमें सामने रखते हुए चित्रित किया है। इस तरह उनके काव्यमें विस्तारगत विशालता और दर्शनगत गुरुत्व भले ही न मिले, पर उनकी भावनाओंकी गम्भीरता, अनुभूतियोंकी सूक्ष्मता, बिम्बोंकी स्पष्टता और कल्पनाकी कमनीयताके फलस्वरूप गाम्भीर्य और महत्ता अवश्य है। इस तरह उनका काव्य विस्तारका नहीं, गहराईका काव्य है।

महादेवीका काव्य वर्णनात्मक और इतिवृत्तात्मक नहीं है। आन्तरिक सूक्ष्म अनुभूतियोंकी अभिव्यक्ति उन्होंने सहज भावोच्छ्वासके रूपमें की है। इस कारण उनकी अभिव्यंजना-पद्धतिमें लाक्षणिकता और व्यंजकताका बाहुल्य है। रूपकात्मक बिम्बों और प्रतीकोंके सहारे उन्होंने जो मोहक चित्र उपस्थित किये हैं, वे उनकी सूक्ष्म दृष्टि और रंगमयी कल्पनाकी शक्तिमत्ताका परिचय देते हैं। ये चित्र उन्होंने अपने परिपार्श्व, विशेषकर प्राकृतिक परिवेशसे लिये हैं पर प्रकृतिको उन्होंने आलम्बन रूपमें बहुत कम ग्रहण किया। प्रकृति उनके काव्यमें सदैव उद्दीपन, अलंकार, प्रतीक और संकेतके रूपमें ही चित्रित हुई है। इसी कारण प्रकृतिके अति परिचित और सर्वजन-सुलभ दृश्यों या वस्तुओंको ही उन्होंने अपने काव्यका उपादान बनाया है। उसके असाधारण और अल्पपरिचित दृश्योंकी ओर उनका ध्यान नहीं गया है फिर भी सीमित प्राकृतिक उपादानोंके द्वारा उन्होंने जो पूर्ण या आंशिक बिम्ब चित्रित किये हैं, उनसे उनकी चित्रविधायिनी कल्पनाका पूरा परिचय मिल जाता है। इसी कल्पनाके दर्शन उनके उन चित्रोंमें भी होते हैं, जो उन्होंने शब्दोंसे नहीं, रंगों और तूलिकाके माध्यमसे निर्मित किये हैं। उनके ये चित्र 'दीपशिखा' और 'यामा'में कविताओंके साथ प्रकाशित हुए हैं। —शं० ना० सिं०

महाभारत–रामायण एवं महाभारत संस्कृत साहित्यके 'उपजीव्य' ग्रन्थ हैं और हमारे जातीय इतिहास हैं। 'छान्दोग्य उपनिषद्' मे इतिहास-पुराणको पंचम वेद कहा है—"इतिहासपुराणं पचम वेदाना वदम्।" 'महाभारत'-के रचयिता महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यास हैं। परम्पराके अनुसार 'महाभारत'मे एक लाख अनुष्टुप छन्द हैं। इसीलिए इसे शतसाहस्री संहिता कहते हैं। 'महाभारत'के ही शब्दोंमें—"धर्मे ह्यर्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ। यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्॥" अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्षके सम्बन्धमें जो कुछ 'महाभारत'मे है, वही अन्यत्र है, जो इसमें नहीं है, वह कहीं नहीं है। हिन्दीमें महाभारतके अनेक पद्यात्मक एवं गद्यात्मक अनुवाद हुए हैं—

१. 'महाभारत दर्पण'—काशिराज श्री उदितनारायण सिंहकी आज्ञासे रघुनाथ कवीश्वरात्मज गोकुलनाथ, इनके पुत्र गोपीनाथ तथा इनके शिष्य मणिदेवने सम्पूर्ण महाभारत और हरिवंशका साररूपमें अनुवाद किया, जो विविध छन्दों—अनुष्टुप, भुजगप्रयात, रोला, हरिगीतिका आदिमें लगभग दो हजार पृष्ठोंमें है। 'महाभारत दर्पण'का

अधिकांश भाग गोकुलनाथ तथा इनके पुत्र गोपीनाथ द्वारा निर्मित हुआ है। सर्वप्रथम इसका प्रकाशन पण्डित लक्ष्मीनारायण द्वारा शुद्ध कराकर संवत् १८६६ (१८२९ ई०) में कलकत्ताके शास्त्र प्रकाश मुद्रायन्त्रसे हुआ तथा इसका दूसरा संस्करण वाजपेयी रामरतनसे शुद्ध कराकर नवल प्रेस, लखनऊसे सन् १८८३ ई०में प्रकाशित हुआ। नवल किशोर प्रेसमें ही इसकी तृतीय आवृत्ति सन् १८९१ ई० में हुई। यह वर्णमात्रावृत्तमें सुन्दर रचना है। यह अनुवाद भावोंकी अभिव्यंजना, शब्दचयन, प्रवाह एवं ओजपूर्ण शैली, भाषा सौष्ठव और पदलालित्य तथा अन्य साहित्यिक शिल्पकी दृष्टिमें मूल रचना—'महाभारत'के कितना निकट पहुँच सका है, इसका सहज अनुमान नीचे दी हुई पंक्तिसे लगाया जा सकता है। उर्वशी अर्जुनको मोहित करने जा रही है, इस प्रसगके श्लोकको कविने इन शब्दोंमें रूपान्तरित किया है—"सूक्ष्म ओढ़ें उत्तरीय सो चलति मेचक रंग, मनहु राकाको सुधाधर छिन्न जलधर संग।"

२. 'महाभारत दर्पण'—अनुवादक कालीचरण, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ (१८८९ ई०)।

३. 'महाभारत भाषा'—अनुवादक महेशदत्त सुकुल, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ (१९१३ ई०)।

४. 'महाभारत'—अनुवादक महावीरप्रसाद द्विवेदी, इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद (१९३० ई०)।

दशम संस्करण—१९४५ ई०। द्विवेदीजीने सुरेन्द्रनाथ ठाकुरके बंगलाके मूल आख्यानका हिन्दी रूपान्तर किया है। बंगलाके इस मूल आख्यानमें महाभारतका कोई भी महत्त्वपूर्ण अंश छूटने नहीं पाया है। समस्त प्रधान घटनाओंका समावेश कर लिया गया है तथा अप्रधान घटनाओंका विस्तार कम कर दिया गया है। साथ ही अनावश्यक अवान्तर बातोंको बिलकुल छोड़ दिया गया है। इस पुस्तकका बंगलामें बड़ा आदर है। द्विवेदीजीने स्वच्छन्दतापूर्वक हिन्दीमें अनुवाद किया है। उसमें बोल-चालकी सीधी-सादी भाषाका प्रयोग किया है।

५. 'हिन्दी महाभारत'—अनुवादक चतुर्वेदी द्वारका प्रसाद शर्मा, प्रकाशक—रामनारायण लाल, इलाहाबाद, सन १९३० ई०।

६. 'भाषा महाभारत'—जो मुंशी देवीप्रसादके मतानुसार राव लोगों द्वारा काशीमें रची गयी।

७. 'महाभारत'—योग्य पण्डितों द्वारा अनूदित और कलकत्तासे शरच्चन्द्र सोम द्वारा तीन खण्डोंमें प्रकाशित, जिसकी द्वितीयावृत्ति सन् १९०७ ई०में हुई। सरल भाषामें अनुवाद।

८. 'विजय मुक्तावली'—छन्दोंमें वर्णित प्रबन्ध-काव्यके रूपमें महाभारतकी कथा। रचयिता—छत्रसिंह कायस्थ। रचनाकाल—संवत् १७५७। कथा अनेक छन्दोंमें वर्णित तथा काव्यके गुणोंसे युक्त। कहीं-कहीं ओजगुणसे पूर्ण। उदाहरणार्थ—"कवच कुण्डल इन्द्र लीने, बाण कुन्ती लै गयी। भई बैरिन मेदिनी चित, कर्णके चिन्ता भई॥"

कवि परिचय—छत्रसिंह श्रीवास्तव कायस्थ थे। ये बटेश्वर क्षेत्रके अटेर ग्रामके निवासी थे। इनके आश्रयदाता अमरावतीके कल्याणसिंह थे।

९. 'महाभारत'— रचयिता : सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'। महाभारतकी कथाओंका सारांश। प्रकाशक—दुलारेलाल भार्गव, गंगा पुस्तक माला, लखनऊ, संवत् १९९६ वि०। जन साधारणकी भाषाका प्रयोग। जैसे गंगा शब्द जनसाधारण द्वारा नदीके अर्थमें प्रयुक्त होता है। 'निराला'जीने इसी प्रयोगमें पृष्ठ ११ पर 'गंगा पार ले जाती थी' वाक्यमें गंगा शब्द प्रयुक्त किया है। 'निराला'जीके ही शब्दोंमें—"भाषा सरल है। भावके ग्रहणमें अड़चन न होगी। पुस्तक लिखते समय मैंने कई छोटी-बड़ी पुस्तकोंका आधार लिया है—संस्कृत, बंगला और हिन्दी।"

१०. 'महाभारत'—कथा (दो खण्ड) चक्रवर्ती राजगोपालाचार्यके तामिल ग्रन्थ 'व्यासर विरुन्दु'का हिन्दी अनुवाद। अनुवादक—पण्डित सोमसुन्दरम्। प्रकाशक—सस्ता साहित्य मण्डल, नयी दिल्ली—तृतीयावृत्ति सन् १९४९ ई०। अनुवादमें यत्र-तत्र उर्दू, फारसी आदिके शब्दोंका प्रयोग हुआ है जैसे मौज, जहरीला, शुरू इत्यादि।

११. 'हिन्दी महाभारत'—सचित्र, १० खण्ड। सरल भाषामें गद्यात्मक अनुवाद। प्रकाशक—इण्डियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग। साथमें महाभारतकालीन देश, नगर, नदी, पर्वत आदि सम्बन्धी साहित्यिक अनुक्रमणिका।

१२. 'महाभारत'—मूलसहित गद्यात्मक अनुवाद। ३६ खण्डोंमें प्रकाशित, जिनमें १—३३ खण्डोंमें सम्पूर्ण महाभारतका अनुवाद है। अलगसे ६ खण्डोंमें भी प्रकाशित। प्रकाशक—गीता प्रेस, गोरखपुर। अनुवादक—रामनारायण दत्त शास्त्री पाण्डेय 'राम'। प्रथम खण्ड नवम्बर सन् १९५५ ई० में तथा ३३ वाँ खण्ड, जुलाई १९५८ई० में प्रकाशित। यह अनुवाद महाभारतके विख्यात टीकाकार नीलकण्ठ पण्डितकी उत्तर भारतमें प्रचलित तथा प्रायः सर्वमान्य टीकाकी प्राचीन प्रामाणिक प्रतिसे किया गया है और उसी अर्थको प्रधानता दी गयी है किन्तु इसमें दाक्षिणात्य पाठके उपयोगी अंशोंको भी सम्मिलित कर लिया गया है। साथ ही महाभारतके पूर्व प्रकाशित तथा भण्डारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूनाके संस्करणसे भी पाठ निर्णयमें सहायता ली गयी है। अनुवादमें शब्दार्थकी अपेक्षा भावार्थको प्रधानता दी गयी है। कहीं-कहींपर संस्कृतके डेढ़ श्लोक अथवा उससे अधिकका भाव हिन्दीमें एक वाक्यमें ही दे दिया गया है तथा कहीं एक श्लोक का अर्थ अनेक वाक्योंमें दिया गया है। इसी कारण श्लोकोंकी संख्या एक, दो, तीनके क्रमसे नहीं, वरन् दस-दसके अन्तरपर दी गयी है। अनुवादकी भाषा सरल एवं सुबोध है किन्तु कहीं-कहींपर धार्मिक रहस्योंके उद्घाटनमें उच्च कोटिकी भाषाका प्रयोग हो गया है।

१३. 'महाभारत गाथा'—रचयिता : रामनाथ। रचनाकाल—सन् १८४३ ई० के लगभग। कवि परिचय—ये पटियालाके महाराज नरेशके समकालीन थे।

सबलसिंह चौहानने दोहों और चौपाइयोंमें सम्पूर्ण महाभारतकी कथाका वर्णन किया है। इसका रचनाकाल संवत् १७१८ और संवत् १७८१ के मध्य माना जाता है।

इसका प्रकाशन दो स्थानोंसे हुआ—

१. नवलकिशोर प्रेस, लखनऊसे सन् १८८१ ई० में प्रकाशित हुआ किन्तु यह अधूरा है।

२. लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, कल्याण, बम्बईसे प्रकाशित हुआ, जिसकी सप्तमावृत्ति संवत् १९७६-७७ में हुई। इसमें १८ पर्व हैं। इसका प्रकाशन फतेहराम माथुरजीके द्वारा प्राप्त एक प्राचीन पुस्तकके आधारपर गंगा विष्णु श्रीकृष्णदास द्वारा यथायोग्य शुद्ध कराके किया गया।

कवि परिचय—सबलसिंह चौहानका निवास-स्थान अनिश्चित है। उन्होंने स्वयं औरंगजेबके दरबारके राजा मित्रसेनसे अपना सम्बन्ध बतलाया है। कुछ विद्वान् उन्हे चन्दागढका राजा और कुछ सबलगढ़का राजा बतलाते हैं। शिवसिंहके मतानुसार ये इटावेके किसी गाँवके जमींदार थे।

भाषा—काव्यकी भाषा अवधी है। कविने दोहा, चौपाई तथा सोरठामे वर्णनात्मक शैलीको अपनाया है। उदाहरणार्थ—"राजा सुनौ जु कुन्ती अहई। पॉच पुत्र यहि ऐसे कहई॥ तुम्हरे पिता केर यह राजू। कर्म्म दोष ते भयो अकाजू॥"

कविने व्यास द्वारा वर्णित कथाका ही आधार लिया है, जैसा वे स्वयं स्वर्गारोहण पर्वके अन्तमे कहते हैं—"सबलसिंह मतिहीन, व्यास कहत तस कहेउ हम॥" —शि० शे० मि०

महाराणाप्रताप सिंह–बाप्पारावलके प्रसिद्ध कुलमें उत्पन्न, चित्तौड़के अधिपति महाराणा उदयसिंहके पुत्र एवं भारतीयो द्वारा 'हिन्दुओंके सूर्य' उपाधिमे विभूषित प्रताप सिंहके चरित्रका यशोगान अनेक कवियोंने किया है। इन्होंने देश और धर्मरक्षाके लिए जो कष्ट सहे थे, इससे इनका नाम इतिहासप्रसिद्ध हो गया है। अम्बरके कुमार एवं अकबरके कृपापात्र मानसिंहके विरोधके कारण इन्हे आजीवन विपत्तियोंका सामना करना पड़ा। हल्दीघाटीका अकबर और प्रतापके बीच हुआ युद्ध आज भी भारतीयोंका स्मृति-चिह्न बना हुआ है। इनके इस चरित्रको लेकर पण्डित श्यामनारायण पाण्डेयने 'हल्दीघाटी' नामक महाकाव्यकी रचना की है। यही नहीं, इनके चरित्रके विभिन्न सन्दर्भोंको लेकर अनेक नाटकोकी भी रचना हुई है। प्रसादजीने 'महाराणाका महत्त्व' नामक काव्य लिखकर उनके धैर्यकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। —यो० प्र० सिं०

महावीर–वर्धमान महावीर अन्तिम जैन तीर्थंकर थे। इनका जन्म ५९९ ई० पू० माना जाता है। ३० वर्षकी अवस्थामे ये परिव्राजक हो गये थे। इनके गुरु पार्श्वनाथ कहे जाते हैं। इनके नामके पश्चात् 'वीर' शब्दके कारण इनका सम्बन्ध कुछ विद्वान् यक्षोंसे भी जोडते हैं किन्तु वह अधिक समीचीन नहीं है। सिद्धिप्राप्तिके पश्चात् 'निर्ग्रन्थ' नामक साधुओके नेता बने और उनका एक सम्प्रदाय भी चलाया। इनके ९ प्रसिद्ध शिष्य थे, जिन्हें 'गणधर'के नामसे अभिहित किया जाता है। इनके शिष्यों की परम्परा बिना किसी अवरोधके २ शती ईसा पूर्वतक चली थी। ७२ वर्षकी अवस्थामे पाराके राजगृहमें ५·७ ई० पू०में इनका परिनिर्वाण हुआ था। जैनधर्मके प्रचारमें इनका अन्यतम योगदान रहा है। —यो० प्र० सिं०

महावीरप्रसाद द्विवेदी–महावीरप्रसाद द्विवेदी हिन्दी गद्य-साहित्यके युगविधायक हैं। आपका जन्म सन् १८६४ ई०में उत्तर प्रदेशके रायबरेली जिलेके दौलतपुर गाँवमें हुआ था। आपके पिताका नाम रामसहाय द्विवेदी था। कहा जाता है कि उन्हे महावीरका इष्ट था, इसीलिए उन्होंने पुत्रका नाम महावीर सहाय रखा। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँवकी पाठशालामें ही हुई। प्रधानाध्यापकने भूलसे आपका नाम महावीरप्रसाद लिख दिया था, हिन्दी-साहित्यमें यह भूल स्थायी बन गयी। तेरह वर्षकी अवस्थामें अंग्रेजी पढ़ने के लिए आप रायबरेलीके जिला स्कूलमें भर्ती हुए। यहाँ संस्कृतके अभावमे आपको वैकल्पिक विषय फारसी लेना पड़ा। इस स्कूलमें ज्यों-त्यों एक वर्ष कटा। तदुपरान्त कुछ दिनों तक उन्नाव जिलेके रनजीत पुरवा स्कूलमें और कुछ दिनों तक फतेहपुरमें पढ़नेके बाद अन्ततोगत्वा आप पिताके पास बम्बई चले गये। बम्बईमें आपने संस्कृत, गुजराती, मराठी और अंग्रेजीका अभ्यास किया। आपकी उत्कट ज्ञान-पिपासा कभी तृप्त न हुई किन्तु जीविकाके लिए आपने रेलवेमे नौकरी कर ली। कुछ दिनों तक नागपुर और अजमेरमे कार्य करनेके बाद आप पुनः बम्बई लौट आये। यहाँ आपने तार देनेकी विधि सीखी और रेलवेमें सिग्नलर हो गये। रेलवेमे विभिन्न पदोंपर कार्य करनेके बाद अन्ततः आप झाँसीमे डिस्ट्रिक्ट ट्रैफिक सुपरिण्टेण्डेण्टके आफिसमे चीफ क्लर्क हो गये। पॉच वर्ष बाद उच्चाधिकारीसे न पटनेके कारण आपने नौकरीसे इस्तीफा दे दिया। आपकी साहित्य-साधनाका क्रम सरकारी नौकरीके नीरस वातावरणमें भी चल रहा था और इस अवधिमे आपके संस्कृत ग्रन्थोंके कई अनुवाद और कुछ आलोचनाएँ प्रकाशमें आ चुकी थीं।

सन् १९०३ ई०मे आपने 'सरस्वती'का सम्पादन-स्वीकार किया। 'सरस्वती' सम्पादकके रूपमे आपने हिन्दी के उत्थानके लिए जो कुछ किया, उसपर कोई भी साहित्य गर्व कर सकता है। १९२० ई० तक यह गुरुतर दायित्व आपने निष्ठापूर्वक निभाया। 'सरस्वती'से अलग होनेपर जीवनके अन्तिम अठारह वर्ष आपने गाँवके नीरव वातावरणमे व्यतीत किया। ये वर्ष बड़ी कठिनाईमें बीते। २१ दिसम्बर सन् १९३८ ई०को रायबरेलीमें आपका स्वर्गवास हो गया। हिन्दी-साहित्यका आचार्य पीठ अनिश्चित कालके लिए सूना हो गया।

महावीरप्रसाद द्विवेदीकी साहित्यिक देन कम नहीं है। मौलिक और अनूदित पद्य और गद्य ग्रन्थोंकी कुल संख्या अस्सीसे ऊपर है। अकेले गद्यमें आपकी १४ अनूदित और ५० मौलिक कृतियाँ प्राप्त हैं। कविताकी ओर आपकी विशेष प्रवृत्ति नहीं थी। इस क्षेत्रमे आपकी अनूदित कृतियाँ, जिनकी संख्या आठ है, अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। मौलिक कृतियाँ कुल ९ हैं, जिन्हे आपने स्वयं तुकबन्दी कहा है। आपकी समस्त कृतियोंका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित रूपमे उपस्थित किया जा सकता है—

पद्य : (अनूदित) 'विनय विनोद' (१८८९ ई०—भर्तृहरिके 'वैराग्य शतक'का दोहोंमें अनुवाद), 'विहार

वाटिका' (१८९० ई०—गीत गोविन्दका भावानुवाद), 'स्नेह माला' (१८९० ई०—भर्तृहरिके 'शृंगार शतक'का दोहोंमें अनुवाद), 'श्री महिम्न स्तोत्र' (१८९१ ई०—संस्कृतके 'महिम्न स्तोत्र'का संस्कृत वृत्तोंमें अनुवाद), 'गंगा लहरी' (१८९१ ई०—पण्डितराज जगन्नाथकी 'गंगा लहरी'का सवैयोंमें अनुवाद), 'ऋतुतरंगिणी' (१८९१ ई०—कालिदासके 'ऋतुसंहार'का छायानुवाद), 'सोहागरात' (अप्रकाशित—बाइरनके 'ब्राइडल नाइट'का छायानुवाद), 'कुमार सम्भवसार' (१९०२ ई०—कालिदासके 'कुमार-सम्भवम्'के प्रथम पाँच सर्गोंका सारांश)। मौलिक—'देवी-स्तुति-शतक' (१८९२ ई०), 'कान्यकुब्जावलीव्रतम्' (१८९८ ई०), 'समाचार पत्र सम्पादक स्तवः' (१८९८ ई०), 'नागरी' (१९०० ई०), 'कान्यकुब्ज-अबला-विलाप' (१९०७ ई०), 'काव्य मंजूषा' (१९०३ ई०), 'सुमन' (१९२३ ई०), 'द्विवेदी काव्य-माला' (१९४० ई०), 'कविता कलाप' (१९०९ ई०)।

गद्य : (अनूदित) 'भामिनी-विलास' (१८९१ ई०—पण्डितराज जगन्नाथके 'भामिनी विलास'का अनुवाद), 'अमृत लहरी'(१८९६ ई०—पण्डितराज जगन्नाथके 'यमुना स्तोत्र'का भावानुवाद), 'बेकन-विचार-रत्नावली' (१९०१ ई०—बेकनके प्रसिद्ध निबन्धोंका अनुवाद),'शिक्षा' (१९०६ ई०—हर्बर्ट स्पेंसरके 'एज्यूकेशन'का अनुवाद), 'स्वाधीनता' (१९०७ ई०—जॉन स्टुअर्ट मिलके 'ऑन लिबर्टी'का अनुवाद), 'जल चिकित्सा' (१९०७ ई०—जर्मन लेखक लुई कोनेकी जर्मन पुस्तकके अंग्रेजी अनुवादका अनुवाद), 'हिन्दी महाभारत' (१९०८ ई०—'महाभारत'की कथाका हिन्दी रूपान्तर), 'रघुवंश' (१९१२ ई०—'रघुवंश' महाकाव्यका भाषानुवाद), 'वेणी-संहार' (१९१३ ई०—संस्कृत कवि भट्टनारायणके 'वेणीसंहार' नाटकका अनुवाद), 'कुमार सम्भव' (१९१५ ई०—कालिदासके 'कुमार सम्भवम्' का अनुवाद), 'मेघदूत' (१९१७ ई०—कालिदासके 'मेघदूत'का अनुवाद), 'किरातार्जुनीय' (१९१७ ई०—भारविके 'किरातार्जुनीयम्'का अनुवाद), 'प्राचीन पण्डित और कवि' (१९१८ ई०—अन्य भाषाओंके लेखोंके आधारपर प्राचीन कवियों और पण्डितोंका परिचय), 'आख्यायिका सप्तक' (१९२७ ई०—अन्य भाषाओंकी चुनी हुई सात आख्यायिकाओंका छायानुवाद)। मौलिक—'तरुणोपदेश' (अप्रकाशित), 'हिन्दी शिक्षावली तृतीय भागकी समालोचना' (१८९९ ई०), 'नैषधचरित चर्चा' (१९०० ई०), 'हिन्दी कालिदासकी समालोचना' (१९०१ ई०), 'वैज्ञानिक कोश' (१९०१ ई०), 'नाट्यशास्त्र' (१९१० ई०), 'विक्रमांकदेव चरितचर्चा' (१९०७ ई०), 'हिन्दी भाषाकी उत्पत्ति' (१९०७ ई०), 'सम्पत्तिशास्त्र' (१९०७ ई०), 'कौटिल्य कुठार' (१९०७ ई०), 'कालिदासकी निरंकुशता' (१९११ ई०) 'वनिता-विलाप' (१९१८ ई०), 'औद्योगिकी' (१९२० ई०), 'रसज्ञ रंजन' (१९२० ई०), 'कालिदास और उनकी कविता' (१९२० ई०), 'सुकवि संकीर्तन' (१९२२ ई०), 'अतीत स्मृति' (१९२४ ई०), 'साहित्य सन्दर्भ' (१९२४ ई०), 'अद्भुत आलाप' (१९२४ ई०), 'महिलामोद' (१९२५ ई०), 'आध्यात्मिकी' (१९२६ ई०), 'वैचित्र्य चित्रण' (१९२६ ई०), 'साहित्यलाप' (१९२६ ई०), 'विज्ञ विनोद' (१९२६ ई०), 'कोविद कीर्तन' (१९२७ ई०), 'विदेशी-विद्वान्' (१९२७ ई०), 'प्राचीन चिह्न' (१९२७ ई०), 'चरित चर्या' (१९२७ ई०), 'पुरावृत्त' (१९२७ ई०), 'दृश्य-दर्शन' (१९२८ ई०), 'आलोचनांजलि' (१९२८ ई०), 'समालोचनासमुच्चय' (१९२८ ई०), 'लेखांजलि' (१९२८ ई०), 'चरित्र चित्रण' (१९२९ ई०) 'पुरातत्त्व प्रसंग' (१९२९ ई०), 'साहित्य सीकर' (१९२९ ई०), 'विज्ञान वार्ता' (१९३० ई०) 'वाग्विलास' (१९३० ई०), 'संकलन' (१९३१ ई०), 'विचार-विमर्श' (१९३१ ई०)।

उपर्युक्त कृतियोंके अतिरिक्त तेरहवें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन (१९२३ ई०) काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा किये गये अभिनन्दनके (१९३३ ई० और प्रयागमें आयोजित द्विवेदी मेला, १९३३ ई०) अवसरपर आपने जो भाषण दिये थे, उन्हें भी पुस्तकाकार प्रकाशित किया गया है। आपकी बनायी हुई छः बालोपयोगी स्कूली रीडरें भी प्रकाशित हैं।

हिन्दी-साहित्यमें महावीरप्रसाद द्विवेदीका मूल्यांकन तत्कालीन परिस्थितियोंके सन्दर्भमें ही किया जा सकता है। वह समय हिन्दीके कलात्मक विकासका नहीं, हिन्दीके अभावोंकी पूर्तिका था। आपने ज्ञानके विविध क्षेत्रों—इतिहास, अर्थशास्त्र, विज्ञान, पुरातत्त्व, चिकित्सा, राजनीति, जीवनी आदिसे—सामग्री लेकर हिन्दीके अभावोंकी पूर्ति की। हिन्दी-गद्यको माँजने-सँवारने और परिष्कृत करनेमें आप आजीवन संलग्न रहे। यहाँतक कि आपने अपना भी परिष्कार किया। हिन्दी-गद्य और पद्यकी भाषा एक करनेके लिए (खडीबोलीके प्रचार-प्रसारके लिए) प्रबल आन्दोलन किया। हिन्दी-गद्यकी अनेक विधाओंको समुन्नत किया। इसके लिए आपको अंगरेजी, मराठी, गुजराती और बंगला आदि भाषाओंमें प्रकाशित श्रेष्ठ कृतियोंका बराबर अनुशीलन करना पड़ता था। निबन्धकार, आलोचक, अनुवादक और सम्पादकके रूपमें आपने अपना पथ स्वयं प्रशस्त किया था। निबन्धकार द्विवेदीके सामने सदैव पाठकोंके ज्ञान-वर्द्धनका दृष्टिकोण प्रधान रहा, इसलिए विषय-वैविध्य, सरलता और उपदेशात्मकता उनके निबन्धोंकी प्रमुख विशेषताएँ बन गयीं। आलोचकके रूपमें 'रीति' के स्थानपर आपने उपादेयता, लोक-हित, उद्देश्यकी गम्भीरता, शैलीकी नवीनता और निर्दोषिताको काव्योत्कृष्टताकी कसौटीके रूपमें प्रतिष्ठित किया। आपकी आलोचनाओंमें लोक-रुचिका परिष्कार हुआ। नूतन काव्य-विवेक जागृत हुआ। सम्पादकके रूपमें आपने निरन्तर पाठकोंका हित-चिन्तन किया। नवीन लेखकों और कवियोंको प्रोत्साहन दिया। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त उन्हें अपना गुरु मानते हैं। गुप्तजीका कहना है कि "मेरी उलटी-सीधी प्रारम्भिक रचनाओंका पूर्ण शोधन करके उन्हें 'सरस्वती'में प्रकाशित करना और पत्र द्वारा मेरे उत्साहको बढ़ाना द्विवेदी महाराजका ही काम था।" पत्रिकाको निर्दोष, पूर्ण, सरस, उपयोगी और नियमित बनाया। अनुवादकके रूपमें आपने भाषाकी प्रांजलता और मूल-

भावोंकी रक्षाको सर्वाधिक महत्त्व दिया ।

महावीरप्रसाद द्विवेदीके कृतित्वसे अधिक महिमामय उनका व्यक्तित्व है। आस्तिकता, कर्तव्यपरायणता, न्याय-निष्ठा, आत्मसंयम, परहित-कातरता और लोक-संग्रह भारतीय नैतिकताके शाश्वत विधान हैं। आप इस नैतिकताके मूर्तिमान् प्रतीक थे। आपके विचारों और कथनोंके पीछे आपके व्यक्तित्वकी गरिमा भी कार्य करती थी। वह युग ही नैतिक मूल्योंके आग्रहका था। साहित्यके क्षेत्रमें सुधारवादी प्रवृत्तियोंका प्रवेश नैतिक दृष्टिकोणकी प्रधानताके कारण ही हो रहा था। भाषा-परिमार्जनके मूलमें भी यही दृष्टिकोण कार्य कर रहा था। आपका कृतित्व श्लाघ्य है तो आपका व्यक्तित्व पूज्य। प्राचीनताकी उपेक्षा न करते हुए भी आपने नवीनताको प्रश्रय दिया था। 'भारत-भारती' के प्रकाशनपर आपने लिखा था—"यह काव्य वर्त्तमान हिन्दी-साहित्यमें युगान्तर उत्पन्न करनेवाला है।" कहना न होगा कि इस युगान्तरके मूलमें आपका ही व्यक्तित्व कार्य कर रहा था। आपने अनन्त आकाश और अनन्त पृथ्वीके सभी उपकरणोंको काव्य-विषय घोषित करके इसी युगान्तरकी सूचना दी थी। आप नवयुगके विधायक आचार्य थे। उस युगका बडासे बडा साहित्यकार आपके 'प्रसाद' की ही कामना करता था। सन् १९०३ ई० से १९२५ ई० तक (लगभग २२ वर्षोंकी अवधिमें) आपने हिन्दी-साहित्यका नेतृत्व किया।

[सहायक ग्रन्थ—महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग : उदयभानु सिंह ।] —रा० चं० ति०

महिषासुर—एक अत्याचारी दैत्य। देवी दुर्गा द्वारा इसका वध किया गया, इसीलिए दुर्गाको 'महिषासुरमर्दिनी' भी कहा जाता है। दुर्गा पाठके अन्तर्गत महिषासुरका उल्लेख आता है, जिसमे देवी अत्याचारी दैत्यका वध करके पृथ्वीपर शान्ति स्थापित करती हैं। —मो० अ०

महेश्वर भूषण—गंगाधर उपनाम 'द्विजगंग'ने सन् १८९५ में अपने आश्रयदाता महेश्वर बक्स सिंहकी आज्ञासे 'महेश्वरभूषण' नामक अलंकार-ग्रन्थकी रचना की। इसमें ११४ पृष्ठ तथा ५ उल्लास है। प्रथममे राजवंश वर्णन, द्वितीयमे कवि-वंश वर्णन, तृतीयमें अलकार-निर्णय, चतुर्थमे श्रीराधिकाजीका नख-शिख वर्णन और पंचममे दान-वर्णनके अनन्तर चित्र-काव्य-वर्णन है। अलकारोके लक्षण दोहेमें और उदाहरण कवित्त-सवैयेमे है। स्थान-स्थानपर तिलककी भी योजना है। अर्थालकारोके अनन्तर शब्दके ५ अलकार दिये गये हैं। मम्मट, कैयट तथा जयदेव, अप्पय दीक्षितका कविपर प्रभाव है। 'महेश्वर भूषण' १८९६ ई०में पूर्ण हुआ और १८९७ ई०मे भारत-जीवन प्रेस, काशीमे इसका प्रकाशन हुआ।

[सहायक ग्रन्थ—हि० अ० सा०।] —ओं० प्र०

माखन कवि—रतनपुर (बिलासपुर)के रहने वाले थे। यहाँ के राजा राजसिंह (राज्यकाल १५९९ ई०—१६१९ ई०)के दरबारमें ये और इनके पिता गोपाल दोनों राजकवि थे। पिता-पुत्रने मिलकर कई ग्रन्थोंकी रचना की है। इनके सात ग्रन्थोंकी चर्चा की गयी है—'भक्त चिन्तामणि', 'रामप्रताप', 'जैमिनी अश्वमेध', 'खूब तमाशा', 'सुदामा चरित', 'छन्दविलास' तथा 'विनोद शतक'। इनमें प्रथम पाँच ग्रन्थ भक्तिपरक हैं और अन्तिम दो शास्त्रीय तथा शृंगारपरक हैं।

इनका प्रमुख ग्रन्थ 'छन्दविलास' है, जिसे 'श्रीनाग-पिंगल' (कहीं-कहीं 'श्रीनाथ पिंगल') कहा गया है। इसकी रचना कविने पिताकी आज्ञासे रायपुरमें की थी। इसमें प्रकरण न देकर शीर्षकोंमें विभाजन किया गया है। माखनने पुस्तकका उद्देश्य प्रारम्भिक छात्रोंको शिक्षा देना स्वीकार किया है। इसमें कुछ नवीन छन्द भी हैं। इसकी भाषा बहुत सरल है और उदाहरणमें कृष्ण-लीलाके प्रसंग लिये गये हैं। शैली आलंकारिक और परिमार्जित है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० बृ० इ० (भा० ६)।]—सं०

माखनलाल चतुर्वेदी—जन्म ४ अप्रैल, १८८९ ई० बावई, मध्यप्रदेशमें। ये बचपनमें काफी रुग्ण और बीमार रहा करते थे। चतुर्वेदीजीके जीवनीकार बरुआका कहना है कि "दैन्य और दारिद्र्यकी जो भी काली परछाई चतुर्वेदियोंके परिवारपर जिस रूपमे भी रही हो, माखन लाल पौरुषवान् सौभाग्यका लाक्षणिक शकुन ही बनता गया"('शैशव और कैशोर' : मा०ला० चतुर्वेदी, पृष्ठ ५८)। परिवार राधावल्लभ सम्प्रदायका अनुयायी था, इसलिए स्वभावतः चतुर्वेदीके व्यक्तित्वमें वैष्णव-भावनाका प्रभाव है। इसी कारण इन्हे बचपनसे ही अनेक वैष्णव पद कण्ठस्थ हो गये। प्राथमिक शिक्षाकी समाप्तिके बाद ये घरपर ही संस्कृतका अध्ययन करने लगे। पन्द्रह वर्षकी अवस्थामे विवाह हुआ और उसके एक वर्ष बाद आठ रुपये मासिक वेतनपर अध्यापकी शुरू की। १९१३ ई०में इन्होने 'प्रभा' पत्रिकाका सम्पादन आरम्भ किया, जो पहले चित्रशाला प्रेस, पूनासे और बादमे प्रताप प्रेस, कानपुरसे छपती रही। 'प्रभा'के सम्पादनकालमे इनका परिचय गणेशशंकर विद्यार्थीसे हुआ, जिनके देश-प्रेम और सेवाव्रत का इनके ऊपर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। १९१८ ई०में 'कृष्णार्जुन युद्ध' नामक नाटककी रचना की और १९१९ ई०मे जबलपुरसे 'कर्मवीर'का प्रकाशन किया। १२ मई, १९२१ को राजद्रोहमें गिरफ्तार हुए। १९२२ई० में कारागारसे मुक्ति मिली। १९२४ ई० में गणेशशंकर विद्यार्थीकी गिरफ्तारीके बाद 'प्रताप'का सम्पादकीय कार्य-भार सँभाला। १९२७ ई० मे भरतपुरमें सम्पादक सम्मेलनके अध्यक्ष बने। १९४३ ई०में हिन्दी साहित्य सम्मेलनके अध्यक्ष हुए। इसके एक वर्ष पूर्व ही इनका 'हिमकिरीटिनी' और 'साहित्य देवता' प्रकाशमे आये। १९४८ ई०में 'हिम तरंगिनी' और १९५२ ई०मे 'माता' काव्यग्रन्थ प्रकाशित हुए।

हिन्दी काव्यके विद्यार्थीको माखनलालजीकी कविताएँ पढकर सहसा आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है। कहीं ज्वालामुखीकी तरह धधकता हुआ अन्तर्मन, जो विषमता की समूची अग्नि सीनेमें दबाये फूटनेके लिए मचल रहा है, कहीं विराट् पौरुषकी हुँकार, कहीं करुणाकी अजीब दर्द भरी मनुहार। वे जब आक्रोशसे उद्दीप्त होते हैं तो प्रलयंकरका रूप धारण कर लेते हैं किन्तु दूसरे ही क्षण वे अपनी कातरतासे विह्वल होकर मनमोहनकी टेर लगाने

लगते हैं।

चतुर्वेदीजीके व्यक्तित्वमें संक्रमणकालीन भारतीय समाजकी सारी विरोधी अथवा विरोधी जैसी प्रतीत होनेवाली विशिष्टताओंका सम्पुंजन दिखाई पड़ता है।

आपकी रचनाओंको प्रकाशनकी दृष्टिसे इस क्रममें रखा जा सकता है—'कृष्णार्जुन युद्ध' (१९१८ ई०), 'हिमकिरीटिनी' (१९४२ ई०), 'साहित्य देवता' (१९४२ ई०), 'हिमतरगिनी' (१९४९ ई०—साहित्य अकादमी पुरस्कारसे पुरस्कृत), 'माता' (१९५२ ई०)। 'युगचरण', 'समर्पण' और 'वेणु लो गूँजे धरा' उनके अन्य काव्य-संग्रह हैं। 'कलाका अनुवाद' उनकी कहानियोंका सग्रह है। परवर्ती निबन्धोंका एक सग्रह 'अमीर इरादे, गरीब इरादे' नामसे छपा है।

कविके क्रमिक विकासको दृष्टिमें रखकर हम माखनलाल चतुर्वेदीकी रचनाओंको दो श्रेणीमे रख सकते हैं। आरम्भिक काव्य, यानी १९२० ई० के पहलेकी रचनाएँ और परिणति काव्य, यानी १९२०ई०से आजतककी काव्य-सृष्टि। उनकी रचनाओंकी प्रवृत्तियाँ प्रायः स्पष्ट और निश्चित हैं। राष्ट्रीयता उनके काव्यका कलेवर है तो भक्ति और रहस्यात्मक-प्रेम उनकी रचनाओंकी आत्मा। आरम्भिक रचनाओंमें भी ये प्रवृत्तियाँ स्पष्टतया परिलक्षित होती हैं। 'प्रभा'के प्रवेशांकमें प्रकाशित उनकी कविता'नीति-निवेदन' शायद उनके मनकी तात्कालिक स्थितिका पूरा परिचय देती है। कवि "श्रेष्ठता सोपानगामी उदार छात्रवृन्द" से एक आत्म-निवेदन करता है। उन्हे पूर्वजोंका स्मरण दिलाकर रत्नगर्भा मातृभूमिकी रंकतापर तरस खानेको कहता है। उसी प्रकार 'प्रभा' भाग १, सख्या ६मे प्रकाशित 'प्रेम' शीर्षक कविताओंसे सबमें सात्विक प्रेम व्याप्त हो, इसके लिए सन्देश दिया है क्योंकि इस प्रेमके बिना "बेड़ा पार" होनेवाला नही है। माखनलालजीकी राष्ट्रीय कविताओंमें आदर्शकी थोथी उडानें भर नही है। उन्होंने खुद राष्ट्रीय सग्राममें अपना सब कुछ बलिदान किया है, इसी कारण उनके स्वरोंमे 'बलिपन्थी'की सच्चाई, निर्भीकता और कष्टोंके झेलनेकी अदम्य लालसाकी झकार है। यह सच है कि उनकी रचनाओंमे कहीं-कहीं 'हिन्दू राष्ट्रीयता' का स्वर ज्यादा प्रबल हो उठा है किन्तु हम इसे साम्प्रदायिकता नहीं कह सकते क्योंकि दूसरे सम्प्रदायके अहितकी आकाक्षा इनमे रंचमात्र भी दिखाई न पड़ेगी। 'विजयदशमी' और 'प्रवासी भारतीय वृन्द' ('प्रभा', भाग २, संख्या ७) अथवा 'हिन्दुओंका रणगीत', 'मंजु माधवी वृत्त' (भाग २, सं० ८) ऐसी ही रचनाएँ है। उन्होंने सामयिक राजनीतिक विषयोंको भी दृष्टिमे रखकर लिखा और ऐसे जलते प्रश्नोंको काव्यका विषय बनाया।

आरम्भिक रचनाओंमें भक्तिपरक अथवा आध्यात्मिक विचारप्रेरित कविताओंका भी काफी महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह सही है कि इन रचनाओंमे इस तररहकी सूक्ष्मता अथवा आध्यात्मिक रहस्यका अतीन्द्रिय स्पर्श नहीं है, जैसा छायावादी कवियोंमें है अथवा कविकी परिणत काव्यश्रेणीगत आनेवाली कुछेक रचनाओंमें है। भक्तिका रूप यहाँ काफी स्वस्थ है किन्तु साथ ही स्थूल भी। कारण शायद यह रहा है कि इनमें कविकी निजी व्यक्तिगत अनुभूतियोंका उतना योग नहीं है, जितना एक व्यापक नैतिक धरातलका, जिसे हम 'समूह-प्रार्थना कोटि' का काव्य कह सकते है। इसमें स्तुति या स्तोत्र शैलीकी झलक भी मिल जाती है। जैसा पहले ही कहा गया, कविके ऊपर वैष्णव परम्पराका घना प्रभाव दिखाई पड़ता है। भक्तिपरक कविताओंको किसी विशेष सम्प्रदायके अन्तर्गत रखकर देखना ठीक न होगा, क्योंकि इन कविताओंमें किसी सम्प्रदायगत मान्यताका निर्वाह नहीं किया गया है। इनमें वैष्णव, निर्गुण, सूफी सभी तरहकी विचारधाराओंका समन्वय-सा दिखाई पडता है। कहीं प्रणय-निवेदन है, कहीं समर्पण, कहीं उलाहना और कहीं देश-प्रेमके तकाजेके कारण स्वाधीनता-प्राप्तिका वरदान भी माँगा गया है। 'रामनवमी' जैसी रचनाओंमे देश-प्रेम और भगवत्प्रेमको समान धरातलपर उतारनेका प्रयत्न स्पष्ट है।

परिणत काव्य-सृष्टिमे उपर्युक्त मुख्य प्रवृत्तियोंका और भी अधिक विकास दिखाई पड़ता है। क्षोभ, उच्छ्वासके स्थानपर पीडाको सहने और उसे एक मार्मिक अभिव्यक्ति देनेका प्रयत्न दिखाई पड़ता है। 'कैदी और कोकिला' के पीछे जो राष्ट्रीयताका रूप है, वह आरम्भिक अभिधात्मक काव्य-कृतियोंसे स्पष्ट ही भिन्न है। उसी प्रकार 'झरना' और 'आँसू'में भावोंकी गहराई और अनुभूतियोकी योग्यताका स्वर प्रबल है किन्तु इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि इस दौरानमे उन्होंने उद्बोधन-काव्य लिखा ही नहीं। 'युग तरुणसे', 'प्रवेश,' 'सेनानी' आदि रचनाएँ उद्बोधन काव्यके अन्तर्गत ही रखी जायेंगी। उन्होने राजनीतिक घटनाओंको दृष्टिमें रखकर श्रद्धांजलिमूलक काव्य भी लिखा। 'सन्तोष', 'नटोरियस वीर', 'बन्धन सुख' आदिमे गणेशशंकर विद्यार्थीकी मधुर स्मृतियाँ है तो राष्ट्रीय झण्डेकी भेंटमे हरदेवनारायण सिंहके प्रति श्रद्धाका निवेदन।

परवर्ती काव्यमे आध्यात्मिक रहस्यकी धारा स्तुति और प्रार्थनाके आध्यात्मिक धरातलसे उतर कर सूक्ष्म रहस्य और भक्तिकी अपेक्षाकृत अधिक स्वाभाविक भूमिपर बहती दिखाई पड़ती है। छायावादी व्यक्तित्वमे विराट्की भावनाका परिपाक है तो आध्यात्मिक रहस्यकी धारामें किसी अज्ञात असीम प्रियतमके साथ ससीम आत्माका प्रणय-निवेदन। प्रकृति और आध्यात्मिक रहस्यका यह नया आलोक छायावादी कविकी जीवन दृष्टिका आधार है। माखनलालजीकी रचनाओंमें भी यह आलोक है किन्तु इसका रूप थोड़ा भिन्न है। भिन्न इस अर्थमें कि वे 'श्याम' या 'कृष्ण'की जिस रूपमाधुरीसे आकृष्ट थे, उसको सुरक्षित रखते हुए रहस्यके इस क्षेत्रमें प्रवेश करना चाहते हैं। अव्यक्त लोकमें भी उन्हें 'बाँसुरी' भूल नहीं पाती। इसी कारण माखनलालकी कविताओंमे छायावादी रहस्य-भावनाका सगुण मधुरा भक्तिके साथ एक अजीब समन्वय दिखाई पड़ता है। उनका ईश्वर (निराकार) इतना निराकार नहीं है कि उसे वे नाना नाम-रूप देकर उपलब्ध न कर सकें।

"वे खुदीको मिटाकर खुदा देखते हैं", इसी कारण उनकी रचनाओंमें छायावादी वैयक्तिकताका ऐकान्तिक स्वर तीव्र नहीं सुनाई पड़ता। रवीन्द्रनाथकी रहस्यवादी भावनाका प्रभाव उनपर स्पष्ट है—"चला तू अपने नभको छोड़, पा गया मुझेमें तव आकार।" अथवा "अरे अशेष शेषकी गोदी, या मेरे 'मैं' हीमें तो उदार तेरी अपनी है छुपी हार" आदि कृतियोंमें अज्ञातके प्रति निवेदनका स्वर स्पष्ट है किन्तु राधाके मुरलीधरको अपना नटवर कहने में वे कभी नहीं हिचकते। उनका मन जैसे सगुण रूपमें ज्यादा रमा है अथवा छायावादी शैली अपनानेपर भी वे आनन्दको व्यक्त करते समय 'नटवर'के प्रेम-आतंकसे अपनेको मुक्त न कर सके।

छायावादी काव्यमें प्रकृति एक अभिनव जीवन्त रूपमें चित्रित की गयी। माखनलालजीकी कविताओंमें प्रकृति-चित्रणका भी एक विशेष महत्त्व है। मध्यप्रदेशकी धरतीका उनके मनमें एक विशेष आकर्षण है। यह सही है कि कविको प्रकृतिके रूप आकृष्ट करते हैं किन्तु उसका मन दूसरी समस्याओंमे इतना उलझा है कि उन्हें प्रकृतिमें रमनेका अवकाश नहीं है। इस कारण प्रकृति उनके काव्यमें उद्दीपन बनकर ही रह गयी है, चाहे राष्ट्रीय अधः पतनसे उत्पन्न ग्लानिमें शस्य श्यामला भूमिकी दुरवस्था को सोचते समय, चाहे बन्दीखानेके सीकचोंसे जन्मभूमिको याद करते समय। छायावादी कवियोंकी तरह प्रकृतिमें सब कुछ खोजनेका इन्हें अवकाश ही न था।

भाषा और शैलीकी दृष्टिसे माखनलालपर यह आरोप किया जाता है कि उनकी भाषा बडी बेडौल है। उसमे कहीं-कहीं व्याकरणकी अवहेलना की गयी है। कहीं अर्थ निकालनेके लिए दूरान्वय करना पडता है, कहीं भाषामें कठोर संस्कृत शब्द हैं तो कहीं बुन्देलखण्डीके ग्राम्य प्रयोग किन्तु भाषा-शैलीके ये सारे दोष सिर्फ एक बातकी सूचना देते हैं कि कविने अपनी अभिव्यक्तिको इतना महत्त्वपूर्ण समझा है कि उसे नियमोंमें हमेशा आबद्ध रखना उन्हे स्वीकार नहीं हुआ है। भाषा-शिल्पके प्रति माखनलालजी बहुत सचेष्ट रहे हैं। उनके प्रयोग सामान्य स्वीकरण भले ही न पायें, उनकी मौलिकतामें सन्देह नही किया जा सकता।

गद्य रचनाओंमें 'कृष्णार्जुन युद्ध' और 'साहित्य देवता'-का विशेष महत्त्व है। 'कृष्णार्जुन युद्ध' अपने समय-की बहुत लोकप्रिय रचना रही है। पारसी नाटक कम्पनियोंने जिस ढंगसे हमारी संस्कृतिको विकृत करनेका प्रयत्न किया, वह किसी प्रबुद्ध पाठकसे छिपा नहीं है। 'कृष्णार्जुन युद्ध' शायद ऐसे नाट्यप्रदर्शनोंका मुहतोड जवाब था। गन्धर्व चित्रसेन अपने प्रमादजन्य कुकृत्यके कारण कृष्णके क्रोधका पात्र बना। कृष्णने दूसरी सन्ध्या तक क्षमा न माँगनेपर उसके वधकी प्रतिज्ञाकी। नारदको चित्रसेनका अपराध छोटा लगा, दण्ड भारी। उन्होंने प्रयत्नपूर्वक सुभद्राके माध्यमसे अर्जुन द्वारा चित्रसेनकी रक्षाका प्रण करा लिया। अर्जुन और कृष्णके युद्धसे सृष्टि का विनाश निकट आया जान ब्रह्मा आदिने दौड़-धूप करके शान्तिकी स्थापना की। इस पौराणिक नाटकको भारतीय नाट्य परम्पराके अनुसार उपस्थित किया गया है। यह अभिनेयताकी दृष्टिसे काफी सुलझी हुई रचना कही जा सकती है। 'साहित्य देवता' माखनलालजीके भावात्मक निबन्धोंका संग्रह है।

[सहायक ग्रन्थ—माखनलाल चतुर्वेदी—एक अध्ययन : रामाधार शर्मा, सरस्वती मन्दिर, जतनबर, काशी; माखनलाल चतुर्वेदी (जीवनी) : ऋषि जैमिनी कौशिक बरुआ, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, १९६० ई०।] —शि० प्र० सिं०

माताप्रसाद गुप्त—जन्म १९०९ ई० में मूँगरा बादशाहपुर (जिला जौनपुर)में हुआ। शिक्षा (एम० ए०, एल-एल० बी०, डी० लिट्०) प्रयाग विश्वविद्यालयमें, जहाँ अनेक वर्षोंतक सहायक प्रोफेसर थे। आजकल आप राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुरमे हिन्दी विभागके अध्यक्ष हैं। हिन्दी जगत्मे तुलसी-काव्यके विशेषज्ञ तथा पाठालोचन शास्त्रके प्रमुख पुरस्कर्त्ताके रूपमे आपकी विशेष ख्याति है। मध्य-कालीन कवियोंकी प्रसिद्ध रचनाओंका संशोधित-सम्पादित पाठ आपने बड़ी सूझ-बूझके साथ प्रस्तुत किया है। 'रामचरितमानस'का पाठ (१९५० ई०), 'जायसी ग्रन्थावली' (१९५३ ई०), 'बीसलदेव रासो'का पाठ, 'छिताई वार्ता'का पाठ और 'पृथ्वीराज रासो'का पाठ आपकी प्रख्यात कृतियाँ हैं। —सं०

माधवप्रसाद मिश्र—माधवप्रसाद मिश्र बड़े ओजस्वी लेखक थे। आपका जन्म पंजाब प्रान्तके हिसार जिलेमें भिवानीके पास कूँगड नामक ग्राममें सन् १८७१ ई०में हुआ था। आप संस्कृत और हिन्दी दोनोंके अच्छे विद्वान् थे। राष्ट्रके प्रति आपकी अटूट निष्ठा थी। आप प्रायः प्रेरित होनेपर ही लिखते थे, इसलिए चन्द्रधरशर्मा गुलेरी आपको छेड़ते रहते थे। पत्र-पत्रिकाओंमें आपके जोशीले लेख प्रकाशित होते रहते थे। कुछ दिनोंतक आपने 'वैश्योपकारक' पत्रका सम्पादन किया था। सन् १९०० ई० में काशीके देवकीनन्दन खत्रीने आपको 'सुदर्शन'का सम्पादक नियुक्त किया। यह पत्र सवा दो वर्ष चलकर बन्द हो गया। इसमें आपके विविध विषयों—पर्व, त्योहार, तीर्थ-स्थान, जीवनी, यात्रा, राजनीति आदिपर लिखे गये निबन्ध प्रकाशित हुए थे। आपके निबन्ध भावात्मक और आत्मव्यंजक होते थे। भाषामें प्रवाहमयता और शैलीमें प्रभावात्मकता थी। शब्दावली तत्समप्रधान होती थी। पद-पदपर उद्धरण देना आपको प्रिय था। स्वयं देवकीनन्दन खत्रीके शब्दोंमें "सुदर्शनकी लेख-प्रणालीको हिन्दीके धुरन्धर लेखकों और विद्वानोंने प्रशंसाके योग्य" ठहराया था। निबन्धोंके अतिरिक्त आपने संस्कृतके पण्डितों और सनातनधर्मके समर्थक सेठ-साहूकारोंकी जीवनियाँ भी लिखी हैं। 'स्वामी विशुद्धानन्दका जीवन-चरित्र' (१९०३ ई०, लहरी प्रेस, बनारससे प्रकाशित) आपकी प्रसिद्ध कृति है। सन् १९०७ ई०में आपका अपने गाँवमें ही देहान्त हो गया। हिन्दी-साहित्यमें एक ओजस्वी लेखक, सफल सम्पादक, आत्मव्यंजक और भावात्मक निबन्धकार तथा तत्सम पदावलीयुक्त प्रवाहमयी शैलीकार-के रूपमें आप सदैव स्मरणीय रहेंगे। —रा० चं० ति०

माधव-विनोद–कविवर सोमनाथ माथुरने १७५२ ई०में ("ठारहसे अठनव वरष संवत आश्विन मास। शुक्ल त्रयोदशी भृगु दिना भयो ग्रन्थ परकास") 'माधव विनोद' नामक काव्य-ग्रन्थका प्रणयन किया। सोमनाथका पर्याय एवं उपनाम 'ससिनाथ' भी नाटकमें प्रयुक्त है ("माधव अरुमालतिके प्रेम कथा रसाल, वरनतु सो ससिनाथ कवि हुकुम पाइ के हाल ॥२१॥")। भरतपुर नरेश बदनसिंहके पौत्र और प्रतापसिंहके पुत्र बहादुर सिंह की आज्ञासे कविने इस काव्य-नाटककी रचना की। प्रताप सिंहने एक दिन कविसे कहा कि संस्कृतके नाटक 'मालती माधव' को ब्रजभाषामें लिख डालो ("कही बहादुर सिंह ने एक दिना सुख पाय, सोमनाथ या ग्रन्थकी भाषा देहु बनाय ॥२०॥")। माधव विनोद सस्कृत नाटकका शुद्ध अनुवाद नहीं है, क्योंकि दोनोंमें समानता होते हुए भी पर्याप्त अन्तर है।

दोनोंमें अंक संख्या दस है। भाषा, नाटकमें कथा, कथा-क्रम, पात्र, . पात्रोंका चरित्र, संवाद-विष्कम्भक-प्रवेशक वे ही हैं, जो सस्कृत नाटक मे हैं। 'माधव विनोद'की प्रस्तावना मूल नाटकसे भिन्न है—(१) मूल नाटककी प्रस्तावना शिव, गणेश एवं सूर्य की स्तुतियोंसे आरम्भ होती है। 'माधव विनोद'में गणेश एव कृष्णकी वन्दनाएँ हैं। मूल नाटकका सूत्रधार महाकालकी यात्रामे आये हुए श्रेष्ठ दर्शकोंके सामने अभिनय करनेकी घोषणा करता है किन्तु 'माधव विनोद'में कुँवर बहादुर सिंहकी सभामें अभिनय करनेका प्रस्ताव है (प्रस्तावना छन्द १२)। (२) मूल नाटकमें अंकोंका नामकरण नहीं किया गया है। अंकके अन्तमें लिखा मिलता है—प्रथमोऽङ्कः या द्वितीयोऽङ्कः। भाषा नाटकमें अंकोंका नाम रखा गया है। प्रथम अंकका नाम है 'बकुल बीथी' तो दूसरे अंककी सज्ञा है 'धवल गृह'। इसी प्रकार तीसरे अंकको 'शोक गृह' कहा गया है। (३) मूल नाटकके छन्दोंका अनुवाद भी हुआ है एवं अनुवादमें घटाने और बढानेका काम भी किया गया है। (४) 'माधव विनोद'मे गद्यका प्रयोग नहीं हुआ है, यहाँ केवल पद्य ही पद्य है। (५) मूल नाटकमें पात्र-प्रवेशके समय पात्रोंकी वेष-भूषाका वर्णन नहीं है। भाषा-नाटकमे जब पात्र प्रवेश करता है तब कवि उसकी वेष-भूषाका कथन करता है। (६) कविवर सोमनाथने 'माधव-विनोद'मे मूल नाटकसे भिन्न जन-नाट्य शैलीको अपनाया है। जन-नाट्य शैलीसम्बन्धी अनेक महत्त्वपूर्ण संकेत इस नाटकमे प्राप्त होते हैं। इस दृष्टिसे इस नाटकका विशेष स्थान है। उदाहरणार्थ (१) सूत्रधारको रंगाचार कहा जाता था। यह शब्द आज तक स्वांगोंमे बहुत प्रयुक्त होता रहा है—"सभा निवासी नरन सो उचर्‍यो रंगाचार, मौन भए कौतिक लखौ हौ तुम सबै उदार।"... "यौं जब रंगाचारने कह्यो वचन समझाई, बहुरि पारसिक नै हरषि उत्तर दियौ बनाई।" (२) स्त्रियोंका अभिनय पुरुष ही करते थे—"कामंदिकको रूप धरि आयो बाहिर आप। अरु बनिके अवलोकिता नट आयो अनताप" ॥१-१९॥ (३) जब कोई पात्र रंगमंचपर प्रवेश करता था तो 'रंगाचार' या सूत्रधार उसकी वेष-भूषाका वर्णन करता था—"आयी पुनि अवलोकिता ताकी शिष्यिनी संग, कटि तट लौं लटकति जटा भसम लपेटे अंग। भसम लपेटे अंग हत्थ पुस्तक और माला। वंदन बिन्दी भाल कमल दल नैन बिसाला॥ बेर बेर हित सहित करति ससिनाथ बड़ाई, इहि विधि सब जगरूप मनो सो लूटि ले आई" ॥१-२१॥ (४) जबतक सूत्रधार पात्रका परिचय देता था एवं पात्रकी वेषभूषा बताता था तबतक पात्र मंचपर नृत्य करता था या घूमता था। कुछ आलोचकोंका मत है कि इन ब्रजभाषा नाटकारोंने संस्कृत नाटकोंके नटपतिका अनुवाद प्रमादवश "नाचता है या नाचती है" किया है। ऐसी बात नहीं है। ब्रजभाषा नाटककार जब लिखते हैं कि अभिनेता नाचता है या अभिनेत्री नाचती है तो वे ऐसा जानबूझ कर लिख रहे हैं। ये नाटककार तत्कालीन जन-नाट्य शैलीमें अपने नाटक लिख रहे थे अथवा अनुवाद कर रहे थे। इस जन-नाट्य शैलीमें नृत्यकी अत्यन्त प्रधानता थी। प्रायः सभी पात्र नाचते थे। अभिनेत्रियाँ तो अधिकांशतः नृत्य करती ही थीं। कुछ पुरुष पात्र भी नाचते थे, हाँ कुछ पुरुष-पात्र नाचनेके स्थानपर घूमते थे। स्वांग या नौटंकीमें आजतक यह परम्परा प्रचलित है। माधव विनोद नाटक इस पद्धतिपर पर्याप्त प्रकाश प्रक्षिप्त करता है—(क) नृत्य—"कामदकि अवलोकिता इहि बिधि बाहर आइ, नृत्य कियो दोउन मिलि लीनी सभा रिझाइ" ॥१-२२॥ (ख) "आई ओसर धारि रंग भूमिमे चाइ सों, नची सभा मझारि मालती सहित लवंगिय" ॥२-१८॥ (ग) "पुनि समाजमे नाचिके बुद्धिरक्षिता आप" ॥३-३॥ नृत्य करना या घूमना—(घ) "फिरि नाचि बहुविधि एठि कै। छिति मे गयो पुनि बैठ के" ॥१-२७॥ (ङ) "वचन सुनत मकरदको माधव इत उत डोलि" ॥१-१८॥ (च) "यो कहि परिक्रमा सभामद्धि"—अंक (ङ, छ), "यों उचरि परिक्रमा करि अलि", अंक ८, (ज) "कामंदकी पट उघारि फिर्‍यो सुआई, घुम्मति माधव गड़े अति मोद छाई" ॥अंक ४॥ (५) पर्दा पद्धतिके भी अनेक संकेत प्राप्त होते है। ऐसा प्रतीत होता है कि एक 'पट या पर्दा' टाँग दिया जाता था, जिसके पीछेसे पात्र सभामे या रंगमंचपर आते थे-(क) "परदा तें बाहिर तहाँ आयो जन कलहंस" ॥१-१॥ (ख) "फेरि रंगपट टारि द्विज आयो मकरद तहाँ" ॥१-८॥ (ग) "आई मंदारिका दासीपटको टारि" ॥१-९॥ (घ) "पुनि परदाको टारि तहँ आई चेरि दोइ" ॥२-१॥ (ङ) "इतनेमें पट टारि मालती और लवंगिका" ॥२-१८॥ (च) "इतनेमे बुद्धिरक्षिता आई अंबर टारि" ॥३-१॥ —गो० ना० ति०

माधवराव सप्रे–जन्म १८७१ ई०। मृत्यु सन् १९३१ ई०। पथरिया गाँव जिला दमोह (मध्य प्रदेश)के निवासी माधवराव सप्रेकी शिक्षा क्रमशः बिलासपुर और जबलपुरमें हुई। आप पहले पी० डब्लू० डी० में ठेकेदारीका काम करते थे। फिर लश्कर (ग्वालियर) तथा नागपुरमें पढ़ना शुरू किया। सन् १९०० ई० मे पेण्डरासे 'छत्तीसगढ मित्र' निकाला। यह पत्र केवल तीन वर्ष चलनेके बाद बन्द हो गया। फिर १९०२ ई०मे 'हिन्दी ग्रन्थमाला' (नागपुर)का प्रकाशन किया। तदनन्तर राजनीति और शिक्षापर पुस्तकें

लिखीं। फिर बाल गंगाधर तिलकके 'केसरी' पत्रसे प्रेरित होकर 'हिन्दी केसरी' पत्र निकाला। फलस्वरूप अनेक यन्त्रणाएँ सहनी पड़ीं। आपकी मातृभाषा मराठी थी। आपका हिन्दी-प्रेम सराहनीय है। आपने मराठी ग्रन्थोंका हिन्दीमें अनुवाद किया। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलकके मराठी ग्रन्थ 'गीतारहस्य'का आपने ही हिन्दीमें अनुवाद किया है।

आप देहरादूनमे हिन्दी साहित्य सम्मेलनके सभापति थे। 'छत्तीसगढ़', 'मित्र', 'हिन्दी केसरी' और 'हिन्दी ग्रन्थमाला'के संचालन, सम्पादन तथा प्रकाशनमे आपने कुछ भी नहीं छोड़ा। आप सरल, तपस्वी, साधु एवं अत्यन्त परिश्रमी व्यक्ति थे। मध्यप्रदेशके अधिकांश लेखकोंको आपके प्रोत्साहनसे साहित्यिक क्षेत्रमे सफलता मिली। —ह० दे० बा०

माधव शुक्ल–माधव शुक्ल राष्ट्रीय कविताओंके जन्मदाता अच्छे गायक, नाटककार और कुशल अभिनेता थे। ये प्रयागनिवासी मालवीय ब्राह्मण थे। इनके लिखे हुए नाटक ये हैं—'सीय स्वयंवर' (१८९८ ई०), 'महाभारत पूर्वार्द्ध (१९१६ ई०) और 'भामाशाहकी राजभक्ति'। 'सीय स्वयंवर','भामाशाहकी राजभक्ति' ये दोनों नाटक अप्रकाशित रह गये। 'महाभारत पूर्वार्द्ध'से इन्हें अच्छी ख्याति मिली। नाटक-साहित्यकी उन्नतिके लिए इन्होंने अथक प्रयत्न किया। इन्होंने कलकत्तामे हिन्दी नाट्य परिषद् तथा लखनऊ और जौनपुरमे नाटक-मण्डलियोंकी स्थापना की थी। आपके लिखे हुए 'महाभारत' और 'भामाशाहकी राजभक्ति' ये दोनों नाटक कलकत्ता और इलाहाबादमें कई बार खेले गये। इन्हे दर्शकोंने बहुत पसन्द किया था। इनके नाटक पौराणिक है किन्तु उनमे सामयिक परिस्थितियोकी खासी झलक मिलती है। 'सीय स्वयंवर' मे शिवके धनुषकी उपमा ब्रिटिश कूटनीतिमे देकर उसपर व्यंग्य किया गया है। इन्होंने प्रयागमे 'श्री रामलीला नाटक-मण्डली'का सघटन करनेमे बहुत उत्साह दिखाया था। रंगमंचीय नाटकोंके रचयिताओं और उनके प्रचारके लिए सतत सक्रिय रहनेवाले कलाकारोंमे माधव शुक्ल सदैव स्मरण किये जाते रहेगे। आपकी राष्ट्रीय कविताओका संग्रह 'भारत गीतांजलि' तथा 'राष्ट्रीयगान' नाममे प्रकाशित हुए थे, जिनके कई संस्करण छपे थे। भारत-चीन युद्ध छिडनेके बाद आपकी जोशीली कविताओंका सग्रह 'उठो हिन्द सन्तान' नामसे प्रकाशित हुआ। ये कविताएँ लगभग ४०-५० वर्ष पहलेकी लिखी हुई हैं पर वे आज भी बिलकुल नयी हैं। शुक्लजीकी रचनाएँ सदा अमर रहेगी। आप राष्ट्रीय आन्दोलनमे कई बार जेल गये। —रा० चं० ति०

माधवानल कामकंदला–मध्यकालीन प्रेमाख्यानोंकी परम्परामें माधवानलकी कथा बहुत लोकप्रिय रही है। यही कारण है कि उसे अनेक कवियोंने अपना वर्ण्य-विषय बनाया। राजस्थानी साहित्यकी प्रेमाख्यानक परम्परामें गणपतिकृत 'माधवानल प्रबन्ध दोग्धक', कुशलाभकृत 'माधवानल कामकन्दला चरित्र' और किसी अन्य कवि की 'माधवानल कामकन्दला चौपाई' प्रसिद्ध है। इनके अतिरिक्त अवधीमें रचित आलमकृत 'माधवानल भाषा' अधिक प्रसिद्ध हुई है। आलमके पश्चात् बोधा कविने भी सुभान नामक वेश्याको सम्बोधित करके खेतसिंहके मनोरंजनार्थ एक अन्य 'माधवानल कामकन्दला'की रचना की थी। सन् १८१२ ई०में हरनारायण नामक कवि द्वारा भी 'माधवानल कामकन्दला'के प्रणयनका उल्लेख मिलता है। इन समस्त रचनाओंमें आलमकृत 'माधवानल भाषा' सर्वोत्तम कही जा सकती है।

'माधवानल भाषा'के कवि आलम उन आलमसे अभिन्न ज्ञात होते है, जिनकी प्रसिद्धि उनकी प्रेयसी शेखके साथ हिन्दी साहित्यमें अमर हो गयी है। 'माधवानल भाषा'में आलमने शाहंशाह जलालुद्दीन अकबरका उल्लेख किया है, जिससे ज्ञात होता है कि यह अकबरके समकालीन थे। कुछ लोग इन्हे अकबरका राज्याश्रित कवि मानते हैं। 'माधवानल भाषा'का रचनाकाल सं० १६४० वि० (सन् १५८३ ई०) है। 'माधवानल कामकन्दला'के आख्यानका मूल आधार 'सिंहासन बत्तीसी', 'बैताल पचीसी' आदि नहीं है, जैसा कि इस आख्यान-काव्यके लेखकोंने भ्रमवश संकेत किया है। वस्तुतः यह कथा मध्ययुगकी उन अनेकानेक काल्पनिक प्रेम-कथाओंमेसे एक है, जो लोक प्रचलित थीं और जिन्हे कवियोंने इसी कारण काव्यका विषय बनाया था। माधवानलकी कथा पूर्णतया स्वच्छन्द प्रेमकी एक रोमांचित कथा है। इसमें माधवानल नामक ब्राह्मण और कामकंदला नामक वेश्यामे अद्वितीय प्रेमकी कहानी एक अत्यन्त अनुरंजित वातावरणमें कही गयी है। जहाँ एक ओर इसमे विलासपूर्ण जीवनके रंगीन चित्र हैं, वहाँ दूसरी ओर 'इश्क हकीकी' (ईश्वरीय प्रेम)के संकेत भी हैं। कामकंदला कामावती नदीके राजा कामसेनकी वेश्या है। वीणा-वादनमे प्रवीण माधवानल अपनी विविध चमत्कारपूर्ण वादन कलाओंसे उसे मुग्ध कर लेता है किन्तु राजाके द्वारा निष्कासित होनेके कारण उसे कामकंदलाका वियोग सहना पड़ता है। अन्तमे उज्जैन नगरीके सम्राट् विक्रमादित्यकी सहायतासे वह कामकंदला को पुनः प्राप्त करनेमे सफल होता है। इसके उपरान्त वह अपनी पूर्व प्रेयसी लीलावतीको भी प्राप्त कर लेता है और अपना शेष जीवन आनन्दपूर्वक व्यतीत करता है।

यद्यपि लौकिक प्रेमाख्यानोंका काव्यके रूपमें प्रयोग सूफी कवियोंने अधिक किया है परन्तु ऐसी काव्य-कृतियोंकी भी संख्या कम नहीं है, जिनमे एकान्ततः लौकिक प्रेमका ही रसमय वर्णन हुआ है और जो सूफी प्रेमवादके धार्मिक और दार्शनिक तत्त्वोसे सर्वथा रहित है। आलमकी 'माधवानल भाषा' इसी प्रकारकी एक रचना है।

"माधवानल भाषा'की भाषा, शैली और छन्द वही हैं, जो प्रेमाख्यानकोंमे सामान्यतः प्रयुक्त हुए हैं। दोहा-चौपाई छन्दों तथा वर्णनात्मक शैलीमें कही गयी इस प्रेम कथाकी भाषामे अवधीका अत्यन्त ललित और हृदयग्राही रूप उभरा है। शैलीका माधुर्य तथा कथाकी सरसता सहज ही पाठकोंके हृदयको तल्लीन कर लेती है।

[सहायक ग्रन्थ—आलमकेलि: सं० लाला भगवानदीन; माधवानल भाषा : आलम; माधवानल कामकंदला : बोधा।] —यो० प्र० सिं०

माधुरी–'माधुरी'का प्रकाशन अगस्त १९२१ ई०में लखनऊसे हुआ। इसके संस्थापक विष्णुनारायण भार्गव थे। प्रारम्भ में कई वर्ष तक इसके सम्पादक दुलारेलाल भार्गव और रूपनारायण पाण्डेय थे। बादमें प्रेमचन्द और कृष्णबिहारी मिश्रने इसका सम्पादन किया। इसके अतिरिक्त कुछ समय तक इसका सम्पादन जगन्नाथदास 'रत्नाकर' और ब्रजरत्नदास भी करते रहे।

इस पत्रकी प्रमुख विशेषताओंमें इसकी स्तम्भ-प्रणाली थी। इसमें स्वस्थ साहित्यिक सामग्री प्रमुख रूपसे कलात्मक रूपसे प्रकाशित होती रहती थी। हिन्दीकी प्रारम्भिक साहित्यिक पत्रिकाओंमें 'सरस्वती'के साथ ही 'माधुरी'की गणना होती है। —ह० दे० बा०

माधोविलास–रघुराम नामक गुजराती कविके 'सभासार' और कृपाराम कवि द्वारा पद्म पुराणमें संगृहीत 'योगसार' नामक ग्रन्थोंका सार लेकर लल्लूलालने 'माधव विलास' ('माधो विलास') नामसे इस ग्रन्थको १८१७ ई०में प्रकाशित किया था। इसकी भाषा ब्रजभाषा है, जिसमें गद्य और पद्य दोनोंका समावेश है। इसका कथा-प्रसंग इस प्रकार है—"तालध्वज नाम नगर तामें चार वर्ण ब्राह्मण क्षत्री वैश्य शूद्र और छत्तीस जात रहै॥ राजपूत जात गूजर गौरए अहीर तेली तम्बोली धोबी नाई कोली चमार चूहरे हैं खटीक कुंजड़े लुहार ठठेरे कसेरे चुरहेरे लखेरे सुनार छीपी सूजी झीमर खाती कुनबी बढ़ई कहार धुनियें धानक काछी कुम्मार भठियारे बरियारे बारी माली अरु मल्लाह ॥ अपने अपने धर्म कर्ममें अति सावधान बरत कोऊ कोऊ उनमें चौदह विधातिधान हो॥ तहाँ विक्रम नाम राजा सो कुलवान अति रूप निधान महाजान सब गुण खान राजनीतिमें निपुण प्रजापालक यशस्वी तेजस्वी हरिभक्त गौ ब्राह्मणको हितकारी परोपकारी और सब शास्त्रको जानन हारो हो।"

इस ग्रन्थमें तत्कालीन सामाजिक स्थितिका अच्छा वर्णन है। इसमे शास्त्र-सम्मत मर्यादाओंका उल्लेख करके सामाजिक गुण-दोषोंको स्पष्ट किया गया है। इसमे रघुरामके 'सभासार'के कुछ पद्य ज्योंके त्यों, केवल क्रममे किंचित् हेर-फेरके साथ मिलते हैं। 'सभासार'के तद्भव शब्दोंको इसमें तत्सम रूप देनेकी पद्धति दिखाई पड़ती है, जैसे निराधारके लिए निधार, पच्छीके लिए पक्षी।

उदाहरण:—"पुन्यसील, प्रजापाल न्याउ प्रतिपच्छिन कोई। कर सौंपे अधिकार, आप सम जानें कोई। रस भाषा रस निपुनि सत्र उरमें नित साले। जो जिहि लायक होइ, ताहि तैसी विधि पाले॥ सुख-करन भयरु सागर सरसि रत्न-ग्राह लीयें रहे। लछन अनन्त महिपालके, सुबुद्धि प्रमान कविबर कहे (छप्पय, सभासार नाटक, पूर्व-भारतेन्दु नाटक साहित्य, पृष्ठ १३८ : डा० सोमनाथ गुप्त)। "पुन्यशील प्रजापाल, न्याव प्रतिपक्ष न कोई॥ कर सौंपे अधिकार, आप सम जाने सोई॥ रसभाषा रण निपुण, शत्रु उरमें हित सालै। जो जहिं लायक होय, ताहि तैसी विधि पालै॥ सुख करन भयद सागर सरम, रतनग्राह लीने रहे। लक्षण अनन्त महिपाल केसु, बुधि प्रमाण कवि रघु कहे" ॥१६॥ (माधव विलास, लल्लूलाल, सन् १८९८ ई०, पृष्ठ १०)।

[सहायक ग्रन्थ—माधव विलास, कलकत्ता, १८१७ ई० और इसकी दूसरी प्रति, कलकत्ता, १८६८; माधव विलास : सम्पादक उत्तमसिंह वर्मा, श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, सन् १८९८ ई०।] —वि० ना० प्र०

मान–१. इनकी जन्मभूमि बैसवाड़ा (जिला रायबरेली) है। ये कम्पिलानिवासी सुखदेव मिश्रके काव्य-गुरु थे और हरिहरपुर (जिला बहराइच) के राजा रूपसिंहके आश्रित कवि थे। इनकी रचनाका नाम 'कृष्ण कल्लोल' है, जो शृंगारपरक रचना है। इनका समय १८ वीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें माना जा सकता है। इनके शृंगारपरक छन्द संकलनोंमें प्राप्त होते हैं। 'दिग्विजय भूषण'मे उदाहृत छन्द उपर्युक्त ग्रन्थसे लिये ज्ञात होते हैं।

२. खुमान। —सं०

मान कवि–मान कविका जीवन-वृत्त अभी तक अन्धकारके के गर्तमे निहित है। कुछ विद्वान इन्हे भाट और कुछ जैन यति बतलाते हैं। ये मेवाडके महाराणा राजसिंह (जन्म १६२९ ई०, राज्याभिषेक १६५२ ई०, मृत्यु २२ अक्तूबर, १६८० ई०) के राजकवि थे। मानने अपने ग्रन्थ 'राजविलास' की रचना सं० १७३४, आषाढ शुक्ला सप्तमी बुधवार (२६ जून, १६७७ ई०) को प्रारम्भ की थी (छन्द ३८, पृ० ८)। यह ग्रन्थ १६८० ई० में समाप्त हुआ था। अतएव यह कवि १६७७-१६८० ई० में वर्त्तमान थे।

शिवसिंह सेंगरने मान कविका समय १६९९ ई० (संवत् १७५६ वि०) और इनके ग्रन्थका नाम 'राजदेव विलास' माना है। ग्रियर्सनके मतानुसार इनका रचनाकाल १६६० ई० तथा मिश्रबन्धुओंके अनुसार १६६३ ई० (सं० १७१७ वि०) था। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इन सभी विद्वानों द्वारा दी हुई तिथियाँ अशुद्ध हैं।

'राजविलास'की निम्नलिखित पंक्तियोंके आधारपर कुछ विद्वानोंने मानके मुख्य नाम 'मण्डान' होनेकी कल्पना की है :—"तिन चोस मात त्रिपुरा सुतवि कीनों ग्रन्थ मण्डान कवि। श्री राजसिंह महाराण कौ रचि यह जस जौ चन्द रवि"(छन्द ३८, पृ० ८)। मानने 'राजविलास'मे 'मण्डान' शब्दका प्रयोग अन्यत्र नहीं किया है। अतः अन्य साक्ष्यके अभावमें मानके नामसम्बन्धी इस अनुमानको ठीक नहीं माना जा सकता।

'राजविलास'मे महाराणा राजसिंहके पूर्वजोंसे लेकर उनके जीवनके अन्ततककी घटनाओंका वर्णन किया गया है। मानने इसमे युद्ध, वीरता, भय, आतंक और प्रतापका अच्छा चित्रण किया है। इनकी शैली वर्णनात्मक है। इन्होंने वीररसके अतिरिक्त शृंगार और शान्तरसका भी चित्रण किया है। अनुप्रास, रूपक, उत्प्रेक्षा अतिशयोक्ति आदि अलंकारोंका प्रयोग वर्ण्य-विषयकी सजीवता एवं भाव-व्यंजनाको बढ़ानेमें सहायक हुआ है। मानकी शैलीमें रीतिकालीन दरबारी कवियोंकी सारी विशेषताएँ विद्यमान हैं। इनकी भाषा ब्रज है, जिसमें राजस्थानीके शब्दोंकी भरमार है। इनकी रचना, कवित्व-शक्ति, भाषा-सौष्ठव, ओज तथा स्वाभाविकतासे ओत-प्रोत है। मान वीरकाव्य-धाराके एक सफल तथा उच्च कोटिके कवि हैं।

मान कविकृत 'राजविलास' भगवानदीन द्वारा सम्पादित तथा नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा १९१२ ई० में प्रकाशित हो चुका है।

[सहायक ग्रन्थ—हिन्दी वीरकाव्य (१६००-१८००ई०) : टीकमसिंह तोमर, हिन्दुस्तानी अकादमी, उत्तरप्रदेश, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, १९५४ ई०; हिन्दी साहित्य, द्वितीय खण्ड, सम्पादक, धीरेन्द्र वर्मा (प्रधान), ब्रजेश्वर वर्मा (सहकारी), भारतीय हिन्दी परिषद्, प्रयाग, प्रथम संस्करण, मार्च, १९५९ ई०,।] —टी० सिं० तो०

मानसिंह १—ये अकबरके समसामयिक थे। अम्बरके राजा भगवानदासके भतीजा एवं जगत सिंहके पुत्र थे। भगवानदासने सन्तानके अभावमें इन्हें अपना दत्तक पुत्र बनाया और उनकी मृत्युके पश्चात् ये वहाँके राजा हुए। इन्होंने अपनी फूफीकी शादी अकबर एवं बहिनकी सलीमसे की। फलस्वरूप इन्हें राज्यका उच्च पद मिला। ये एक कुशल राजनीतिज्ञ एवं सेनापति कहे जाते हैं। इन्होंने पठानोंसे बंगाल छीन लिया था। शोलापुरके युद्धसे लौटते समय ये राणाप्रतापसे रास्तेमें मिले किन्तु वहाँ अपमानित हुए। इसी मानहानिके ही फलस्वरूप हल्दाघाटीका युद्ध हुआ था। श्यामनारायण पाण्डेयकृत 'हल्दीघाटी' नामक काव्यके द्वितीय एवं पंचम सर्गमे यह वर्णन प्राप्य है। —यो० प्र० सिं०

मानसिंह २—दे० 'द्विजदेव'।

मानमंजरी नाममाला—दे० 'नन्ददास'।

मांधाता—ये एक सूर्यवंशीय चक्रवर्ती राजा थे। इनके पिता प्रसिद्ध राजा युवनाश्व थे। इनके जन्मके सम्बन्धमे कथा है कि युवनाश्वके कोई पुत्र नही था अतएव उन्होंने यज्ञ करवाया। मन्त्राभिसिक्त जलको इन्होंने स्वयं पी लिया, फलस्वरूप इन्हें गर्भ रह गया और अन्तमें पेट चीरनेपर मांधाताका जन्म हुआ। पालन-पोषणके विषयमे राजाके चिन्तित होनेपर इन्द्रने पालनका भार लिया और अपनी अँगुली पिलाकर बालकको एक दिनमे बडा भी कर दिया। मांधाता आगे चलकर बहुत प्रसिद्ध राजा घोषित हुए। इनका विवाह विन्दुमतीसे हुआ, जो शशिविन्दुकी कन्या थी। विन्दुमतीसे ५० कन्याएँ उत्पन्न हुई और तीन पुत्र पुरुकुत्स, अम्बरीष तथा मुचुकुन्द। —मो० अ०

मारीच—यह लंकाके राजा रावणका मामा, सुण्ड एवं ताडकाका पुत्र तथा सुबाहुका भाई था। सुबाहु-वधके अवसरपर रामने उसे अपने बाणसे लका पहुँचा दिया था। सीताहरणके अवसरपर रावणने मारीचकी मायावी बुद्धिकी सहायता ली। मारीच कंचनका मृग बनकर सीताहरणका कारण बना। इसी अवसरपर रामने उसे अपने बाणसे मारा था। राम-रावण युद्धका सामान्यतः यह भी एक कारण समझा जाता है। "तेहि बन निकट दसानन गयऊ। तब मारीच कपट मृग भयऊ" ('रामचरितमानस')। —यो० प्र० सिं०

मिलन—रामनरेश त्रिपाठीकी यह काव्यकृति सन् १९१७ ई० में प्रकाशित हुई। १९५३ ई० तक हिन्दी-मन्दिर, प्रयागसे इसके नौ संस्करण निकल चुके है। यह एक प्रेमाख्यानक खण्ड-काव्य है, जिसमें कवि द्वारा निर्मित एक सूक्ष्म कथातन्तुके माध्यमसे दाम्पत्य-प्रेम, प्रकृति तथा देशभक्तिकी भावनाओंका बडा सरस वर्णन किया गया है। इसकी भाषा सरल प्रवाहयुक्त खडीबोली है तथा कविताकी दृष्टिसे इसमें स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियोंका समावेश हुआ है। खडीबोलीके काव्यात्मक विकासके लिए रामनरेश त्रिपाठीकी यह प्रारम्भिक कृति अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई है। —र० भ०

मिश्रबंधु—दो अलग-अलग व्यक्ति एक साथ किसी पुस्तककी रचना तो करते हैं पर ऐसे उदाहरण शायद ही अन्यत्र कहीं मिलें, जब दो या तीन व्यक्तियोंका व्यक्तित्व एक ही बन कर रचनामे प्रवृत्त हो। वास्तवमें इसके लिए अत्यधिक वस्तुनिष्ठ होनेकी आवश्यकता है तथा यदि समीक्षाके क्षेत्रमे यह प्रयास होना है तो नितान्त बाह्य मानदण्डोंका प्रयोग करनेके लिए बाध्य होना पड़ेगा। हिन्दीमें मिश्रबन्धुओंका व्यक्तित्व ऐसा ही है। वे सगे चार भाई थे पर लेखनकार्यमे तीन प्रवृत्त हुए : गणेश बिहारी मिश्र, श्याम बिहारी मिश्र और शुकदेव बिहारी मिश्र। इनमे भी मुख्य कार्य अन्तिम दोने ही किया है। श्याम बिहारी एवं शुकदेव बिहारीका जन्म क्रमशः सन् १८७३ ई० एवं १८७८ ई०में लखनऊ जिलेके इटौंजा ग्राममें प्रतिष्ठित और सम्पन्न कान्यकुब्ज परिवारमे हुआ था। इन दोनों बन्धुओंकी मृत्यु क्रमशः १९ फरवरी १९४७ ई० तथा १९ मई १९५१ ई०को हुई। दोनों भाइयोने पहले कैनिंग कालेज, लखनऊमें शिक्षा प्राप्त की, फिर इनमेंसे श्यामबिहारी मिश्रने इलाहाबादसे अंगरेजीमें एम० ए० पास किया तथा बादको १९३७ ई०मे इलाहाबाद विश्वविद्यालयने उन्हें डी० लिट्की आनरेरी उपाधि भी दी। १८९७ ई० में वे डिप्टी-कलेक्टर नियुक्त हुए, उसके बाद अनेक ऊँचे सरकारी पदों पर वे आसीन हुए। सन् १९२४ ई० से १९२८ ई० तक वे काउंसिल ऑफ स्टेटके सम्मानित सदस्य भी रहे। सरकारसे उन्हें रायबहादुर तथा ओरछा दरबारसे 'रावराजा'की उपाधियाँ भी मिली थीं। वे कई विश्वविद्यालयोंसे सम्बन्धित थे। शुकदेव बिहारी मिश्रने १९०१ ई०मे वकालत पास करके ५ वर्षतक वकालत की, पर उसे छोडकर मुंसिफ हो गये, बादमें भरतपुरमें दीवान रहे तथा कुछ दिनों सब-जज भी रहे। १९३० ई० में वे योरप भी गये थे तथा १९२७ ई० में ब्रिटिश शासनसे उन्हें भी रायबहादुरकी उपाधि मिली थी। प्रयाग एवं लखनऊ विश्वविद्यालयोंसे वे भी बराबर सम्बद्ध रहे हैं। शुकदेव बिहारीने १९३० ई० में पटना विश्वविद्यालयकी 'रामदीन सिंह रीडरशिप' व्याख्यान मालाके अन्तर्गत 'भारतीय इतिहास पर हिन्दीका प्रभाव' शीर्षकसे कुछ भाषण भी दिये थे, जो पुस्तकाकार प्रकाशित हैं। मिश्रबन्धुओंने साहित्यमे शौकिया दिलचस्पी लेनी प्रारम्भ की थी, पर बादको वह उनके जीवनका मिशन बन गया।

मिश्रबन्धुओंका महत्त्व मुख्यतः उनके समीक्षक एवं साहित्यिक-इतिहास लेखक व्यक्तित्वमें है परन्तु सर्जनात्मक साहित्यके क्षेत्रमें भी उन्होंने प्रभूत लेखन किया है। आचार्य चतुरसेन शास्त्रीके अनुसार "इन्होंने…एक हजार पृष्ठमें ब्रजभाषा और खडीबोलीमें काव्यरचना की है।

इनकी पद्यरचनामें विचारों और भावनाओंका समावेश इन्हें तत्कालीन अन्य सभी कवियोंसे पृथक् करता है।"

मिश्रबन्धुओंके अध्ययनका एक मुख्य विषय इतिहास भी रहा है। इस ज्ञानका उपयोग उन्होंने साहित्यके क्षेत्रमें ऐतिहासिक उपन्यासोंके सृजनमें किया है। उनके 'उदयन', 'चन्द्रगुप्त मौर्य', 'पुष्यमित्र', 'विक्रमादित्य', 'चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य', 'वीरमणि' और 'स्वतन्त्रभारत' नामक सात ऐतिहासिक उपन्यास प्रकाशित हुए हैं। मिश्रबन्धुओंके पूर्व जो ऐतिहासिक उपन्यास प्रकाशित हुए, उनमे इतिहास नाम मात्रको ही रहता था। इन्होंने पहली बार इतिहासके तथ्यों, घटनाओं एवं चरित्रोंको प्रामाणिकताके साथ उपस्थित किया। पर इन स्थूल तथ्योंके साथ प्रत्येक युगकी एक आन्तरिक गति और चेतना होती है, उसे मिश्रबन्धु नहीं पकड़ सके। उनके समय तकके ऐतिहासिक दृष्टिकोणकी ही वस्तुतः यह सीमा थी। इसके अतिरिक्त देशकाल-सम्बन्धी कतिपय दोष भी उनमे प्राप्त होते हैं। उनके उपन्यासोंका दूसरा दोष यह है कि बहुधा विवरणों या संवादोंके माध्यमसे घटनाएं उपस्थित तो की गयी हैं पर कथा-संघटनमें उस वक्रता या कुशलताका अभाव है, जो उपन्यासके लिए आवश्यक होता है। इसी कारण उनके उपन्यासोंमे सरसताका अभाव बराबर खटकता रहता है।

मिश्रबन्धुओंका लिखा हुआ नाटक 'नेत्रोन्मीलन' (प्र० १९१५ ई०) भी प्राप्त होता है। इस नाटकमें बड़े ही प्रभावोत्पादक एवं रोचक ढंगसे उस समयकी कचहरियोंके वातावरणपर प्रकाश डाला गया है। 'शिवाजी' नामक उनका ऐतिहासिक नाटक भी प्रकाशित हुआ है।

१९१०-११ ई०में प्रकाशित 'हिन्दी नवरत्न' मिश्रबन्धुओंका प्रथम आलोचनात्मक ग्रन्थ है। इसमे हिन्दीके श्रेष्ठतम ९ कवियोंको चुन कर उनकी विस्तृत समीक्षा की गयी है। इन नौ कवियोंको भी बृहत्त्रयी, मध्यत्रयी तथा लघुत्रयीकी तीन श्रेणियोंमे विभाजित किया गया है। सन् १९१३ ई०मे मिश्रबन्धुओंका बहुत बड़ा कवि-वृत्त-संग्रह 'मिश्र-बन्धु विनोद'के नामसे तीन खण्डोंमे प्रकाशित हुआ तथा १९३४ ई०में आधुनिककालके कवियोंपर इसका चौथा खण्ड भी छपा। इसमे हिन्दीके लगभग ५००० कवियोंके जीवन का वृत्त एवं काव्यका संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

'हिन्दी नवरत्न'के बारेमे श्यामसुन्दरदासका कथन है: "'हिन्दी नवरत्न'में कवियोंकी समालोचनाका सूत्रपात हुआ" ('हिन्दी भाषा और साहित्य', सं० १९८७, पृ० ५००)। रामचन्द्र शुक्लने अपने 'हिन्दी साहित्यका इतिहास' (ग्यारहवाँ संस्करण, पृ० ४८५-६)मे उनपर अपना आरोप लगाते हुए उनके महत्त्वको घटाना चाहा है। उन्होंने मिश्रबन्धुओंकी कमियोंकी ओर ही इंगित किया है, जब कि तथ्य यह है कि महावीरप्रसाद द्विवेदीके बाद हिन्दी-समीक्षा एवं साहित्यिक इतिहास दर्शनको आगे बढ़ानेमें उनका प्रमुख हाथ रहा है। जिस समय मिश्रबन्धुओंने अपनी आलोचनाएँ लिखीं, उस समय आलोचनाके क्षेत्रमें एक ओर तो बालकृष्ण भट्ट, प्रेमघन, महावीरप्रसाद द्विवेदी आदि द्वारा प्रवर्तित और विकसित दोष दिखाने वाली (और वे भी मुख्यतः भाषाके) परिचयात्मक प्रणाली चल रही थी तथा उसके साथ ही रायल एशियाटिक सोसायटी एवं पाश्चात्य पण्डितोंके अध्ययनों द्वारा प्रारम्भ होने वाली ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक परीक्षावाली शैली भी 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' आदिमें प्रारम्भ हो चुकी थी। मिश्रबन्धुओंने उन दोनों ही प्रणालियों या पद्धतियोंको ग्रहण करनेकी चेष्टा की है—यद्यपि यह ग्रहण समन्वय तक नही पहुँच सका और अलग-अलग कवियोंमें पृथक्-पृथक् मानदण्ड प्रयुक्त हुए हैं। द्विवेदीजीकी पद्धति मुख्यतः 'बुक रिव्यू'के लिए थी, मिश्रबन्धुओंने प्रौढ़ कवियोंकी आलोचनाके कार्यको सम्पादित कर हिन्दी आलोचनाको बहुत आगे बढाया। द्विवेदीजीकी प्रणालीमें दूर तक प्रभाव डालनेवाला शोध नहीं था। मिश्रबन्धुओंने यह भी किया कि दोष-दर्शनको छोड़कर आलोचनाको सराहना और अभिशंसाके पथपर आगे बढ़ाया। आलोचनाके सम्यक् विकासके लिए आवश्यक था कि 'आलोचना'के अर्थका विस्तार किया जाय और यह ऐतिहासिक कार्य मिश्रबन्धुओं द्वारा सम्पादित हुआ। उन्होंने अपनी आलोचनामें कविकी कला, भावसंवेदना, विचारधारा तथा जीवन-सन्देशपर भी यत्र-तत्र विचार किया। उन्होंने यह बात पहली बार स्वीकार की कि समालोचकको रस, ध्वनि गुण, अलंकार आदिके अतिरिक्त "अन्य बहुत सी बातों"का भी विचार करना पड़ता है। स्पष्ट है कि ये अन्य बहुत सी बातें ही आधुनिक आलोचनाकी विशेषता है। अभिव्यक्तिका सर्वांगीण सौष्ठव, जीवन-परिस्थिति, विचार-सम्पदा आदिका इसी कारण वे विवेचन कर सके थे।

हिन्दी-आलोचनाके क्षेत्रमे निर्णयात्मक समालोचनाका पहला व्यवस्थित प्रयोग भी मिश्रबन्धुओंने किया है। यद्यपि रामचन्द्र शुक्ल तथा अन्य बहुतसे समीक्षकोंने आलोचकके जज बननेपर आपत्ति प्रकट की है परन्तु जहाँ भी आकलनकी चेष्टा होगी, वहाँ निर्णय अवश्य करने होंगे। यह निर्णयात्मक समीक्षा-प्रणाली उनके 'नवरत्न' के मूलमे विद्यमान है। तमाम कवियोंमेसे ९ को चुनना मूल्यांकनपरक निर्णय ही है तथा उनमे भी तीन श्रेणियोंमें उनका जो विभाजन है—उसे संगत भले ही न माना जाय पर महत्त्वपूर्ण अवश्य स्वीकार किया जाना चाहिए। 'विनोद'मे प्रत्येक श्रेणीके प्रतिनिधि काव्यगुणोका निर्देश कर देनेके उपरान्त उन्होंने उस श्रेणीके शेष कवियोंको उसीके अन्तर्गत रख दिया है, फिर अलगसे विशेषताएँ बतानेसे इस प्रकार बच गये है। इस प्रकार कथा-प्रसंगवाले कवि लाल, छत्र और मधुसूदनकी श्रेणियोंमे तथा मुक्तकपरम्परावाले सेनापति, दास, पद्माकर, तोष, साधारण आदि श्रेणियोंमें रख दिये गये। इसके लिए उन्होंने आलोच्य कवियोंकी कृतियोंका निरीक्षण-परीक्षण किया तथा जिसका कृतित्व उन्हे श्रेष्ठ लगा, उसे ऊँची श्रेणीमे रख दिया। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है यह एक प्रकारसे निर्वाचन और परीक्षण प्रणाली है। इस पद्धतिके दोष अत्यन्त स्पष्ट है। प्रथमतः इसके लिए अत्यन्त तटस्थ दृष्टिकी आवश्यकता चाहिए, दूसरे परीक्षण का एकदम सुनिश्चित मानदण्ड चाहिए, तीसरे सभी कवियोंके पीछे एक ही सामाजिक-मानसिक पृष्ठभूमि

चाहिए। कहना न होगा कि उस समय ही नहीं, आज भी साहित्य-समीक्षाके क्षेत्रमें ये बातें सम्भव नहीं हो सकी हैं। स्वयं मिश्रबन्धुओंने माना है कि बहुधा वे इन कोटियों या उत्कर्षापकर्षके निर्णयमें हिचकिचाहटमें पड़े हैं तथा उन्होंने अपने मन्तव्य बदले हैं। वस्तुतः इन निर्णयोंके साथ ही एक प्रकारकी प्रभावात्मक समीक्षा भी साथ चलती रही है। इसी प्रभाववादी समीक्षाके कारण वे देवको बृहत्त्रयीमें स्थान दे सके थे। इस आलोचनाप्रणालीमें एक अन्य तत्त्व अनिवार्यतः तुलनात्मक समालोचनाका लगा हुआ था। श्रेणी विभाजन एवं कोटि निर्धारणमें उन्हें कवियोंकी पारस्परिक तुलना करनी पड़ी है। अपनी तुलनामें बहुधा उन्होंने यूरोपीय कवियोंसे भी तुलनाएँ की हैं, यद्यपि तुलनीय कवि बहुधा उचित ढंगसे नहीं चुने गये थे, फिर भी तुलसी और शेक्सपियरकी तुलना पर्याप्त गम्भीर एवं रोचक है।

मिश्रबन्धुओंने अपने निर्णयोंका आधार काव्योत्कर्ष माना है तथा काव्योत्कर्षके लिए उन्होंने भारतीय साहित्य-शास्त्रके सिद्धान्तों का प्रयोग किया है। भगवत स्वरूप मिश्रका यह कथन द्रष्टव्य है कि "मिश्रबन्धुओंकी आलोचना विशुद्ध शास्त्रीय समीक्षाका प्रौढतर उदाहरण मानी जा सकती है" ('हिन्दी आलोचना—उद्भव और विकास', पृ० २८६)। अस्तु इस शास्त्रीय दृष्टिसे उन्होंने 'नवरत्न' तथा 'विनोद'में कतिपय कवियोंकी अत्यन्त विशद एवं मार्मिक व्याख्याएँ की हैं। व्याख्यापरक जिस समीक्षा-पद्धतिकी रामचन्द्र शुक्लने प्रशंसा की है, उसका भी एक अच्छा स्वरूप इन अंशोंमें दिखायी पड़ता है। 'विनोद'की भूमिकामें तुलसी, बिहारी और देवके कतिपय छन्दोंकी आन्तरिक छानबीन और व्याख्या मार्मिक ढंगसे हो सकी है। कवियोंके अलंकारादि प्रयोगकी सामान्य प्रवृत्तिकी ओर भी उनका ध्यान गया है। मिश्रबन्धुओंने भाषाकी व्याकरणसम्बन्धी अशुद्धियोंकी ओर संकेत करनेके बजाय कवि विशेषकी भाषाकी साहित्यिक सामर्थ्य या भाषा-गुणका उद्घाटन अधिक करना चाहा है। मिश्रबन्धुओंकी आलोचना-पद्धतिमें पूर्व और पश्चिमकी पद्धतियोंके समन्वयकी वह झलक मिलने लगती है, जिसे आगे रामचन्द्र शुक्लने अधिक विकसित ही नहीं किया, प्रौढ भी बनाया।

मिश्रबन्धुओंका 'मिश्रबन्धु विनोद' प्रारम्भसे आधुनिक कालतकके कवियोंका वृत्त-संग्रह है, जिन्हें कुछ युगों, कुछ श्रेणियोंमें विभाजित करके कुछकी साहित्यिक आलोचना की गयी है। इस सम्बन्धमें ध्यान देने योग्य बात यह है कि मिश्रबन्धुओंने अपने 'विनोद' को हिन्दी-साहित्यका इतिहास कहनेकी गलती स्वयं नहीं की। यह भूल उनके परवर्ती आलोचकोंने ही की है। मिश्रबन्धु साहित्यिक इतिहास लिखना तो चाहते थे पर उसकी कठिनाइयोंको भी समझ रहे थे। "···विनोद साहित्यिक इतिहास क्यों नहीं है, यह वे समझ पा सके हैं" ('साहित्यका इतिहास दर्शन': नलिन विलोचन शर्मा, पृ० ८६) तथा उन्होंने 'विनोद'को इतिहास नहीं कहा, इस सम्बन्धमें नलिन-विलोचनजीकी सम्मति है कि यह "उनके विवेक, अन्तर्दृष्टि और अपनी सीमाएँ समझनेकी शक्तिका परिचायक है" (वही, पृ० ८६)।

अस्तु 'विनोद' इतिहास नहीं है, पर भीतर-भीतर इतिहास निर्माणकी रुचि बनी रही है, इसी कारण उन्होंने प्रारम्भमें ही 'संक्षिप्त इतिहास प्रकरण' में हिन्दी-साहित्यके इतिहासोंकी चर्चा करते हुए सामाजिक परिस्थितियों एवं पृष्ठभूमिकी भी विवेचना की है। उन्होंने हिन्दी-साहित्यको पूर्व, मध्य और उत्तर तीन युगोंमें (इनके भी दो-दो भाग) बाँटा। कहना न होगा कि यद्यपि रामचन्द्र शुक्लने उनपर कटु व्यंग्य किये हैं पर स्वयं अपने काल-विभाजनमें वे ग्रियर्सन और मिश्रबन्धुओं, दोनोंके ऋणी हैं। यही नहीं, आधुनिक कालके प्रसिद्ध साहित्यिक इतिहासकार और विचारक हजारीप्रसाद द्विवेदीने भी हिन्दीके प्रारम्भिक विवादास्पद युगके लिए जो नाम (आदिकाल) दिया है, वह भी मिश्रबन्धुओंका ही है। कवियोंके परिचय एवं जीवनवृत्त देनेमें रामचन्द्र शुक्ल और हजारीप्रसाद द्विवेदी, दोनोंने मिश्रबन्धुओंके इस 'विनोद' से सहायता ली है। परिचय ही नहीं, रीतिकालके कवियोंकी आलोचनामें भी रामचन्द्र शुक्लको मिश्रबन्धुकी सहायता मिली है। इस प्रकार हिन्दी-साहित्यके 'विधेयवादी' इतिहास लेखनके क्षेत्रमें वे ग्रियर्सनके बाद दूसरे स्थानके अधिकारी सिद्ध होते हैं। हिन्दी-समीक्षा एवं साहित्यिक-इतिहास-लेखनके क्षेत्रमें उनके महत्त्वका मूल्यांकन उन्हें श्रेष्ठ स्थानका अधिकारी सिद्ध करता है। —दे० शं० अ०

मीरन—इनके विषयमें कुछ भी ज्ञात नहीं है। 'शिवसिंह सरोज' तथा 'दिग्विजयभूषण' जैसे ग्रन्थोंमें इनके छन्द उद्धृत हैं। ग्रियर्सनने सरदार कविके ग्रन्थ 'शृंगार संग्रह' में इनके छन्द संकलित कहे हैं और इनकी एक रचना 'नखशिख'का भी उल्लेख किया है। —सं०

मीराँबाई—मध्ययुगीन भक्ति-आन्दोलनकी आध्यात्मिक प्रेरणाने जिन महान् कवियोंको जन्म दिया, उनमें राजस्थानकी मीराँबाईका विशिष्ट स्थान है। इनके पद गुजरात राजस्थान, पंजाब, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, बिहार और बंगाल तक प्रचलित हैं और ये हिन्दी तथा गुजरातीकी सर्वश्रेष्ठ कवयित्री मानी जाती हैं। नाभादास, प्रियादास, ध्रुवदास, मलूकदास, हरीराम व्यास आदि भक्तों और सन्तोंने इनका गुणगान किया है। इनके सम्बन्धमें पर्याप्त छानबीन की जा चुकी है किन्तु अभी तक इनका प्रामाणिक और विश्वसनीय जीवनवृत्त प्रस्तुत नहीं हो सका है। सबसे पहले कर्नल टाडने (ऐनल्स् एण्ड् एण्टीक्वीटीज ऑव राजस्थान) मीराँकी जीवनीपर ऐतिहासिक दृष्टिसे विचार करते हुए सिद्ध किया कि वे मेड़ताके राठौरकी पुत्री और मेवाड़के राणा कुम्भ (१४३३-६८ ई०)की पत्नी थीं। टाडसे प्रभावित होकर गोवर्धन माधोराम त्रिपाठीने (क्लासिकल पोयट्स ऑफ गुजरात) मीराँका समय ईसाकी पन्द्रहवीं शताब्दीमें निर्धारित किया और कृष्णलाल मोहनलाल झावेरीने (माइल स्टोन्स इन गुजराती लिट्रेचर) उनका जन्म सन् १४०३ ई० और मृत्यु १४७० ई०में स्थिर किया। टाडके ही साक्ष्यपर ग्रियर्सनने मीराँको सन् १४२० ई०में उपस्थित माना और राजा कुम्भकर्णको उनका पति बताया। शिवसिंह सेंगरने भी टाडके

आधारपर ही सन् १४१३ ई० में मीराँबाईका व्याह राणा कुम्भकर्णसे होना निश्चित किया। टाडका मत बड़ी सरलतासे भ्रान्त सिद्ध किया जा सकता था। टाडने मीराँको मेड़तानी माना था और मेड़ता पर सबसे पहले जोधपुरके राव जोधाजीके चतुर्थ पुत्र दूदाजीने सन् १४६१ ई०में अधिकार किया था। अतः १४६१ ई०के पूर्व मीराँका अस्तित्व नहीं माना जा सकता था। जोधपुरके देवीप्रसाद मुंसिफने टाडके मतका खण्डन करके मीराँके सम्बन्धमें बताया कि "मीरांबाई मेड़तिया राठौर रतनसिंहकी बेटी, मेड़तेके राव दूदाजीकी पोती और जोधपुरके बसाने वाले राव जोधाजीकी प्रपौत्री थीं। इनका जन्म गाँव चोकड़ी (कुड़की)में हुआ था, जो इनके पिताकी जागीर में था। ये सन् १५१६ ई०में मेवाड़के मशहूर महराणा सांगाके कुँवर भोजराजको व्याही गयी थीं।" टाडकी भ्रान्तिका निराकरण हरविलास सारदा ('महाराणा सांगा', अजमेर, १९१८) और गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ('उदयपुर राज्यका इतिहास')ने भी किया। इन विद्वानोंने मीराँका जन्म सन् १४९८ ई०के आस-पास निश्चित किया। अब यही मत साहित्य-जगत्में मान्य सा हो गया है और विद्वानोंने यत्किंचित परिवर्तनके साथ इसे ही स्वीकार किया है। परशुराम चतुर्वेदी और रामकुमार वर्माको यह मत मान्य है। मिश्रबन्धुओंने भ्रमवश विवाहकाल (१५१६ ई०)को जन्मकाल मान लिया है और रामचन्द्र शुक्लने इसी भ्रमको दुहरा दिया है। मेकालिफने मीराँका जन्म १५०४ ई०, कन्हैयालाल मुंशी और वियोगी हरिने १५०० ई०, तनसुख राम मनसुख राम त्रिवेदी (बृहत् काव्य-दोहन, भाग ७) ने १४९३ ई० और १५०३ के बीच, धीरेन्द्र वर्माने १५०३ ई० और श्रीकृष्णलालने १५०२ ई० और १५०३ ई० के बीच माना है। सन् १४९८ ई० के बाद जन्मकाल मानने वालोंका तर्क यह है कि १४९८ ई० जन्मकाल मानने पर विवाहके समय मीरांकी अवस्था १८ वर्ष हो जाती है, जो तत्कालीन परिस्थितियोंको देखते हुए अधिक है।

मीराँका जीवन दुःखोंकी छायामें ही व्यतीत हुआ था। बाल्यावस्थामें ही उनकी माताका देहान्त हो गया था। उनकी देख-रेख पितामह दूदाने की थी। वे परम वैष्णव थे। उनकी भावनाओंका प्रभाव मीरां पर भी पड़ा। दूदाकी मृत्यु होने पर उनके ज्येष्ठ पुत्र वीरमदेवने मीराँका व्याह किया। विवाहके कुछ ही वर्षों बाद सम्भवतः सन् १५२३ ई० में मीराँके पति भोजराजकी मृत्यु हो गयी। सन् १५२७ ई० में उनके पिता रतनसिंह भी खानवाके युद्धमें मारे गये। इसीके आस-पास उनके श्वसुर राणा-सांगाका भी देहान्त हुआ। सन् १५३१ ई० मे भोजराजके छोटे भाई रत्नसिंहकी भी मृत्यु हो गयी और मेवाड़का शासन उनके सौतेले भाई विक्रमादित्यके हाथमें आया। भौतिक जीवनसे निराश मीराँकी एकान्तनिष्ठा गिरधर गोपालके प्रति बढ़ती गयी। उनके दिन सन्तों और भक्तोंके स्वागतमें व्यतीत होने लगे। राणाको यह सब असह्य हो गया और उन्होंने अनेक प्रकारसे मीराँको पीड़ित करना आरम्भ किया। राणाके विषके प्यालेको मीराँने अमृत मानकर पी लिया—"राणे भेज्या जहर पियाला, इमरित कर पी जाणा"। साँपको हारके रूपमें स्वीकार किया—"साँप पिटारो राणाजी भेज्यो, थो मेड़तणी गलडार। हँस-हँस मीराँ कण्ठ लगायो, यो तो म्हारे नौसर हार" और सूलीकी सेजको पुष्प शय्या मानकर सो गयीं—"सूल सेज राणाने भेजी, दीज्यो मीराँ सुलाय। साँझ भई मीराँ सोवण लागी मानो फूल बिछाय"। मीराँके नामसे प्रचलित अनेक पदोंमें इन कष्टोंके उल्लेखसे लगता है कि राणाने कठोरताका व्यवहार अवश्य किया था। मीराँके चाचा वीरमदेव और चचेरे भाई जयमल इन्हें आदरकी दृष्टिसे देखते थे। सन् १५३३ ई० के आस-पास मेवाड़से वे मेड़ता आ गयीं। १५३८ ई० में जोधपुरके राव मालदेवने वीरमदेवसे मेड़ता छीन लिया। इसी समय मीराँके हृदयमें वैराग्य-भाव चरम सीमा पर रहा होगा और वे सब कुछ त्यागकर बृन्दावन चली गयी होंगी। सन् १५४३ ई० के आस-पास वे द्वारिका चली आयीं और जीवनके अन्त तक वहीं रणछोड़जीके मन्दिरमे रहीं। प्रियादासने 'भक्तमाल'की टीकामें अकबर और तानसेनका मीराँबाईसे मिलना लिखा है। तानसेन अकबरके दरबारमे १५६२ ई० मे आये थे। अतः अकबर और तानसेनके मिलनेकी बात मान लेने पर मीराँका १५६२ ई० तक जीवित होना प्रमाणित होता है। इसी आधारपर भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने मीराँबाईका शरीर त्याग १५६३ ई० और १५७३ ई० के बीच माना था। यह तिथि अविश्वसनीय नहीं है किन्तु अकबर और मीराँकी भेंटका कोई ऐतिहासिक साक्ष्य नहीं है।

मीराँके दीक्षा-गुरुके सम्बन्धमें कई मत प्रचलित हैं। रैदास-पंथी सन्त रैदासको इनका गुरु बताते है। वल्लभ सम्प्रदायके लोग उनका गोसाईं विट्ठलनाथसे दीक्षित होना सिद्ध करते है। बाबा वेणीमाधवदास पत्र-व्यवहार द्वारा तुलसीदासमे उनके दीक्षा-ग्रहण करनेकी बात कहते हैं। वियोगीहरि उन्हें जीव गोस्वामीकी शिष्या मानते हैं। मीराँके पदोंमें रैदासको गुरु प्रमाणित करनेवाले पद अधिक हैं किन्तु रैदास और मीराँके समयमे पर्याप्त अन्तर है। विट्ठलनाथकी शिष्या होनेकी बात 'चौरासी वैष्णवनकी वार्ता' से ही कट जाती है। वेणीमाधवदासका 'गोसाईं चरित' अप्रामाणिक सिद्ध हो चुका है। जीव गोस्वामीसे मिलनेकी बातका उल्लेख भी प्रियादासकी टीकामें ही हुआ है किन्तु उसमे शिष्या होना प्रामाणित नहीं होता। गौड़ीय वैष्णवोंमे मीराँके रूप गोस्वामीसे मिलनेकी बात प्रचलित है। अतः जीव गोस्वामीसे तो मीराँका मिलना ही सन्दिग्ध है। सम्भवतः मीराँकी भक्ति-भावना आत्मोद्भूत थी। उन्होंने मुक्त-भावसे सभी भक्ति-सम्प्रदायोंसे प्रभाव ग्रहण किया था। किसी व्यक्ति विशेषसे उनका गुरु-शिष्य सम्बन्ध नहीं था।

मीराँबाईके नामसे कुल सात-आठ कृतियोंका उल्लेख मिलता है—'नरसीजी रो माहेरो', 'गीत गोविन्दकी टीका', 'राग गोविन्द', 'सोरठके पद', 'मीराँबाईका मलार', 'गर्वागीत', 'राग विहाग' और 'फुटकर पद'। प्रथम तीन कृतियोंका उल्लेख मुंशी देवीप्रसादने किया है किन्तु उनके देखनेमें केवल 'नरसीजी रो माहेरो' ही आया था। इसमें गुजरातके प्रसिद्ध भक्त नरसी मेहताकी प्रशंसा की गयी

है । इसका विशेष साहित्यिक महत्त्व नहीं है । 'मीराँबाईका मलार'का उल्लेख गौरीशंकर हीराचन्द ओझाने किया है। 'सोरठके पद'का उल्लेख नागरी प्रचारिणी सभा, काशीकी खोज रिपोर्ट (१९०२ ई०)में किया गया है। 'गर्वागीत'का उल्लेख कृष्णलाल मोहनलाल झावेरीने और 'राग विहाग' का स्वामी आनन्द स्वरूपने किया है। लगता है कि इनमें कोई भी स्वतन्त्र कृति नहीं है। मीराँके 'फुटकर पदों' में उपर्युक्त सभी रागोंके पद मिलते है। मीराँके भक्तोंने अपनी-अपनी रुचिसे विभिन्न रागोंके पद संगृहीत किये होंगे, कालान्तरमें इन्हीं संग्रहोंको स्वतन्त्र रचना मान लिया गया होगा। मीराँबाईकी एकमात्र प्रामाणिक और महत्त्वपूर्ण कृति उनकी 'पदावली' है। इसके अनेक संस्करण निकल चुके हैं। इनमें 'मीराँबाईके भजन' (नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, १८९८ ई०), 'मीराँबाईकी शब्दावली' (बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९१० ई०), 'मीराँबाईकी पदावली' (साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १९३२ ई०), 'मीराँबाईकी प्रेम साधना'(अजन्ता प्रेस, पटना,१९४७ ई०), 'मीराँ स्मृति ग्रन्थ'(बंगीय परिषद्, कलकत्ता, १९५० ई०), 'मीराँ बृहत् पद संग्रह' (लोक सेवक प्रकाशन, काशी, १९५२ ई०), 'मीरा माधुरी' (हिन्दी साहित्य कुटीर, काशी १९५६ ई०) और 'मीराँ सुधा सिन्धु' (मीराँ प्रकाशन समिति, भीलवाड़ा, राजस्थान, १९५७ ई०) प्रमुख हैं। मीराँके पदोंमें अन्य भक्तों और सन्तोंके गीत भी मिल गये हैं। अतः प्रामाणिक पदोंकी निश्चित सख्याका निर्णय आसान नही हैं।

मीराँबाईकी भक्ति दैन्य और माधुर्यभावकी है। इनपर योगियों, सन्तों और वैष्णव भक्तोंका सम्मिलित प्रभाव पड़ा है। इनके आराध्य कहीं निर्गुण निराकार ब्रह्म, कहीं सगुण साकार गोपीवल्लभ श्रीकृष्ण और कही निर्मोही परदेशी जोगीके रूपमें कल्पित किये गये हैं। मीराँके विरहाकुलतापूर्ण माधुर्य-भावके पदोमे विशेष तन्मयता है। इनका काव्य इनके जीवनकी सहज अभिव्यक्ति है। भौतिक सुख-स्वप्नोंके टूटनेपर मीराँकी भावनाएँ अध्यात्मोन्मुख हुई। वे गिरधर गोपालके अनन्य और एकनिष्ठ प्रेमसे अभिभूत हो उठीं। तन्मयताके चरम क्षणोंमे उन्होने निर्गुण निराकारके रहस्यमय सौन्दर्यका साक्षात् किया और अन्ततः संसारकी असारताका संकेत करती हुई परमशांतिका आलिंगन कर सकीं।

मीराँके पदोंकी भाषामें राजस्थानी, ब्रजी और गुजरातीका मिश्रण पाया जाता है। कहीं पंजाबी, खड़ीबोली और पूरबीके प्रयोग भी मिल जाते हैं। इनकी भाषाका मूल रूप राजस्थानी रहा होगा। ब्रजी और गुजरातीका मिश्रण अस्वाभाविक नहीं है किन्तु अन्य भाषाओंका सम्मिश्रण उनके पदोंके व्यापक प्रचार और दीर्घकालीन मौखिक परम्पराके कारण हुआ है।

मीराँके पद गेय हैं। वे विभिन्न रागोंमें विभाजित हैं। परशुराम चतुर्वेदीने इनमें सार, सरानी, विष्णुपद, दोहा, उपमान, समान सवैया, शोभन, ताटंक, कुण्डल और चान्द्रायन छन्दोंको ढूँढ निकाला है। इन छन्दोंमें गायनकी सुविधाके लिए यत्किंचित् परिवर्तन कर दिया गया है। इन पदोंमें विभिन्न अलंकारोंकी योजना भी देखी जा सकती है किन्तु इस आधारपर मीराँको काव्यरीतिकी पण्डिता नहीं कहा जा सकता है। उनकी भावाकुलता और तन्मयताने उन्हें कवयित्री बना दिया।

मीराँको चाहे फारसीके 'मीर'से सम्बद्ध किया जाय, चाहे संस्कृतके 'मिहिर'से, उन्हें 'बीराँ' से व्युत्पन्न बताया जाय, चाहे 'मि+इरा'से या 'मही+इरा' से। सत्य तो यह है कि उनका व्यक्तित्व आत्म-गरिमासे मण्डित है। 'मीराँ'को आरोपित महत्त्वकी आवश्यकता नहीं है। मध्ययुगीन राजस्थानी और हिन्दी साहित्यमें उनका काव्य अनुपम है।

[सहायक ग्रन्थ—मीराँबाईकी पदावली : परशुराम चतुर्वेदी; मीराँबाई : श्रीकृष्णलाल; मीराँ एक अध्ययन : पद्मावती शबनम; मीराँ स्मृति ग्रन्थ—बंगीय हिन्दी परिषद्, कलकत्ता; राजस्थानी भाषा और साहित्य : डा० हीरालाल माहेश्वरी।] —रा० चं० ति०

मीराँ पदावली–मीराँबाईकी प्रसिद्धिका आधार उनकी पदावली है। यही उनकी सर्वमान्य प्रामाणिक रचना है। उनके पदोंमे अन्य भक्तों और सन्तोंके पद भी सम्मिलित हो गये हैं, अतः उनके प्रामाणिक पदोंकी वास्तविक संख्याका निर्णय करना कठिन हो गया है। अब तक सब मिलाकर मीराँके पदोके लगभग दो दर्जन सग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इससे उनकी पदावलीकी लोकप्रियताका अनुमान लगाया जा सकता है।

मीराँके पदोंका संग्रह प्रकाशित करनेका क्रम उन्नीसवीं शताब्दीमें बंगालके कृष्णानन्द देव व्यास द्वारा संगृहीत 'राग कल्पद्रुम'से प्रारम्भ होता है। यह संग्रह संगीत शास्त्रकी दृष्टिसे किया गया है। इसमे ४५ पद मीराँके भी है। सन् १९१३ ई० मे 'बृहत् काव्य दोहन' नामसे गुजराती काव्यका एक विशाल संग्रह प्रकाशित हुआ। इसमे मीराँके ११३ पद संगृहीत हैं। हिन्दीमें मीराँके पदोंका पहला संग्रह 'मीराँबाईके भजन' नामसे नवलकिशोर प्रेस, लखनऊसे १८९८ ई० में प्रकाशित हुआ। इसमें कुल २० पद संगृहीत है। इससे मीराँकी अनेक पदावलियाँ प्रकाशमे आयीं। इनमे 'महिला मृदुवाणी' (सं० मुंशी देवी प्रसाद, ना० प्र० स०, काशी, पद २५), 'मीराँ शब्दावली' (बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, १९१० ई० पद १६७), 'मीराँ मन्दाकिनी' (सं० नरोत्तम स्वामी, युनीवर्सिटी बुक डिपो, आगरा, १९३० ई०), 'मीराँबाईकी पदावली' (सं० परशुराम चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, १९३२ ई०, पद २०१), 'मीराँबाईका काव्य' (सं० मुरलीधर श्रीवास्तव, सा० भवन लि० प्रयाग, १९३४ ई०), 'मीराँकी प्रेम साधना' (सं० भुवनेश्वर मिश्र, वाणी मन्दिर प्रेस, छपरा, १९३४ ई०), 'मीराँकी पदावली'(सं० सदानन्द भारती, एम० एस० मेहता एण्ड ब्रदर्स, बनारस, १९३५ ई०), 'मीराँ' (सन्त कार्यालय, प्रयाग, १९३६ ई०), 'मीराँ स्मृति ग्रन्थ' (बंगीय परिषद्, कलकत्ता, १९५० ई०, पद १०३), 'मीराँ बृहत् पद संग्रह' (सं० पद्मावती शबनम, लोक सेवक प्रकाशन, काशी १९५२ ई०, पद ५९०), 'मीराँ माधुरी' (सं० ब्रजरत्नदास, हिन्दी साहित्य कुटीर, काशी,

१९५६ ई०, पद ४६९), 'मीरॉं सुधा सिन्धु' (सं० स्वामी आनन्द स्वरूप, मीरॉं प्रकाशन समिति, भीलवाड़ा, १९५७ ई०, पद १३१२) उल्लेखनीय हैं। इन संग्रहोंके अतिरिक्त 'मीरॉं पदावली' (सं० विष्णु कुमारी मंजु, हिन्दी भवन, लाहौर), 'मीरॉंकी प्रेम वाणी' (स० रामलोचन शर्मा, बम्बई पुस्तक भण्डार, कलकत्ता), 'मीरॉं और उनकी प्रेम-वाणी' (सं० ज्ञानचन्द जैन), 'मीरॉं जीवनी और काव्य' (सं० महावीर सिंह गहलोत), 'सांग्स ऑव मीरॉंबाई' (सं० रामचन्द्र टण्डन, हिन्दी मन्दिर, इलाहाबाद) आदि अन्य छोटे-मोटे संग्रह भी प्रकाशित हुए हैं। कुछ पद विभिन्न काव्य-संग्रहों और खोज रिपोर्टोंके माध्यमसे भी प्रकाशमे आये हैं। इनमे उदयसिंह भटनागर द्वारा 'राजस्थानमे हिन्दीके हस्तलिखित ग्रन्थोंकी खोज' भाग ३ मे प्रकाशित ५५ पद महत्त्वपूर्ण हैं। उपर्युक्त समस्त संग्रहोंमे 'मीरॉं मन्दाकिनी', 'मीरॉं स्मृति ग्रन्थ' और उदयसिंह भटनागर द्वारा उद्धृत पद ही हस्तलिखित ग्रन्थोंके आधार पर संगृहीत हैं। 'मीरॉं मन्दाकिनी'का सम्पादन उन्नीसवीं शती-की किसी हस्तलिखित पोथीके आधार पर हुआ है। 'मीरॉं स्मृति ग्रन्थ'के सम्पादनमें सन् १५८१ ई० की डाकोरकी प्रति और १६७० ई० की काशीकी प्रतिका आधार लिया गया है। अतः प्राचीनताकी दृष्टिसे 'मीरॉं स्मृति ग्रन्थ'का पाठ प्रामाणिक और सर्वोत्तम होना चाहिए किन्तु इसकी परीक्षा करके मोतीलाल मेनारियाने कहा है—"मालूम पड़ता है राजस्थानी भाषासे अनभिज्ञ किसी व्यक्तिने यह सारा जाल रचा है।" उदयसिंह भटनागर द्वारा उद्धृत पद प्रायः सभी प्रमुख संग्रहोंमे पाये जाते है। अतः उन्हे प्रामाणिक माना जा सकता है। उपलब्ध पदावलियोंमे 'मीरॉं मन्दाकिनी' (नरोत्तम स्वामी) और 'मीरॉंबाईकी पदावली' (परशुराम चतुर्वेदी) विश्वसनीय मानी जाती है। इस प्रकार अभी 'मीरॉं पदावली'के पाठ-शोधकी समस्या बनी हुई है।

'मीरा पदावली'की मूलभाषाका प्रश्न भी विवादास्पद है। सुनीति कुमार चटर्जी और झवेरचन्द मेघाणीके अनुसार मीरॉंकी भाषा शुद्ध राजस्थानी थी। लोक प्रचलित होने पर उसका रूप धीरे-धीरे परिवर्तित होता गया। मोतीलाल मेनारिया और नरोत्तम स्वामी उसमे राजस्थानीके साथ ब्रजी और गुजरातीका सम्मिश्रण भी स्वीकार करते है। मीरॉंके जो पद-संग्रह आज उपलब्ध हैं, उनमे तो—राजस्थानी, ब्रजी, गुजराती, पंजाबी, खड़ीबोली, पूरबी आदि कई भाषाओंका मिश्रण है। मीरॉंका राजस्थानके अतिरिक्त गुजरातमे भी निवास करना प्रमाणित होता है। सम्भव है वे कुछ दिन वृन्दावनमें भी रही हों। अतः उनकी रचनाओंमे राजस्थानी, गुजराती और ब्रजीका मिश्रण तो स्वाभाविक जान पड़ता है किन्तु अन्य भाषाओंमे प्राप्त पदोंकी प्रामाणिकता सन्दिग्ध है।

पद-रचना-परम्परा मीरासे पर्याप्त पहले प्रारम्भ हो चुकी थी। बौद्ध-सिद्धों और नाथ-पन्थी योगियोंकी चर्यागीति-परम्परासे विकसित निर्गुण सन्तोंकी पद-रचना-पद्धति, वैष्णव भक्तोंकी टेकयुक्त और रागव्यवस्थित सगुण लीला-पद-गान-परम्परा तथा लोक-गीति-परम्परा तीनोंका सम्मिलित प्रभाव मीरॉंके पदोंपर पड़ा है। टेक, रागानुसार वर्गीकरण, दो या अधिक छन्दोंका मिश्रण और इष्टदेवके नाम, रूप, गुण, लीला, धामका वर्णन वैष्णव-पद-रचना परम्पराकी प्रमुख विशेषता रही है। मीरॉंके अधिकांश पद इसी परम्पराके निकट हैं। उनके कुछ पद कबीर, रैदास आदि निर्गुण सन्तोंकी शब्दी जैसे हैं। थोड़ेसे पद मारवाड़ी लोक-गीतोंमें घुले-मिले हैं। सम्भव है ये पद जनता द्वारा रचे जाकर उनके नामसे प्रचलित हो गये हों। मीरॉंकी पदावलीमें ढूँढनेपर सार, सारसी, विष्णुपद, उपमान, दोहा, समान सवैया, शोभन, ताटंक, कुण्डल, चान्द्रायण आदि कई छन्द मिल जाते है। प्रायः दो या अधिक छन्दोंके योगसे पद-रचना की गयी हैं। कोई भी छन्द अपनी शुद्ध शास्त्रीय स्थितिमें नहीं है। गायनकी सुविधाके लिए अन्तमे मात्राएँ घटा बढा दी गयी हैं। इन पदोंका महत्त्व इनकी संगीतात्मकता, भावमयता, मधुरता, सहजता और रचयिताकी एकान्त तन्मयताके कारण है।

'मीरॉं पदावली'का वर्ण्य-विषय सीमित ही कहा जायेगा। यदि मीरॉंके व्यक्तिगत जीवनकी ओर संकेत करने वाले पदोंको—जिनमे उनके नाम, जन्मस्थान, कुल, पति, गुरु, स्वजनोंसे मतभेद आदिका उल्लेख है—अलग कर दिया जाय तो शेष पदोंमे आराध्यकी स्तुति और विनय, सौन्दर्य-कल्पना, प्रणयानुभूति, विरहोद्गार, लीला-गान, आत्म-समर्पण, अव्यक्तकी अनुभूति और रागात्मक भावका ही प्राधान्य है। वस्तुतः उनके काव्यका केन्द्रीय भाव प्रेम है। भौतिक प्रेम असफल होकर अध्यात्मोन्मुख हुआ है और क्रमशः रूपमय आराध्यसे अरूपके प्रति अग्रसर होता हुआ विरहगर्भित होकर शान्तिके वातावरण में विलीन हो गया है।

मीरॉंकी पदावली गेयत्वकी दृष्टिसे हिन्दी साहित्यकी अन्यतम कलाकृति है। कलाविहीनता ही उसकी कलात्मकता है, सहजता ही उसका सौन्दर्य है। वह भक्तों, संगीतज्ञों और काव्य-रसिकोंमे समान रूपसे आदृत है। अनेक संस्करणोंके उपलब्ध होनेपर भी उसके वैज्ञानिक सम्पादन और वर्गीकरणकी आवश्यकता आज भी बनी हुई है। मीरॉं सच्ची प्रेम पुजारिन थीं। 'प्रेम-सौख्य-वेदना-विकल' इस गीत पुजारिनके पदोंका उद्धार ही उसकी सबसे बड़ी सेवा होगी। —रा० चं० ति०

मुंशीराम शर्मा 'सोम'–जन्म १९०१ ई० मे ओखरा (जिला कानपुर) मे हुआ। शिक्षा—एम० ए०, डी० लिट्०। सूर-काव्यके विशेषज्ञोंमे आपका नाम प्रमुख है। सम्प्रति डी० ए० वी० कालेज, कानपुरमे हिन्दी विभागके अध्यक्ष हैं। —सं०

मुकुटधर पांडेय–जन्म सन् १८९५ ई०मे बालपुर, बिलासपुरमे हुआ। लोचनप्रसाद पाण्डेय आपके अग्रज थे। रायगढ़के नटवर हाई स्कूलसे प्रयाग विश्वविद्यालयकी प्रवेशिका परीक्षा उत्तीर्ण की। बादमें कई कारणोंसे इन्हें प्रयागके एक महाविद्यालयमे पढाई छोड़ देनी पड़ी। अपने पूज्याग्रज स्वर्गीय लोचनप्रसाद पाण्डेयकी प्रेरणासे सन् १९०९ ई० मे लेख एवं कविताएँ लिखना प्रारम्भ किया। 'सरस्वती' आदि सभी प्रमुख पत्रिकाओंमें आपकी रचनाएँ

प्रकाशित होती थीं।

सन् १९१६ ई० में ब्रह्म प्रेस, इटावासे अग्रज मुरलीधर पाण्डेयके साथ इनका प्रथम काव्य-संकलन 'पूजा फूल' नामसे प्रकाशित हुआ। रचनाएँ छायावादी और कुछ एक रहस्य-पुटसे भी युक्त हैं। इनका 'कानन-कुसुम' सन् १९१३ ई०में प्रकाशित हुआ। मुकुटधर पाण्डेयने बादमें अपनी रचनाओंमें "वाद-विहीन उदार धर्म" एवं "समता पूर्ण मानव धर्म" में ईश्वरकी झाँकी देखी है। इनमें धर्मके संकीर्ण साम्प्रदायिक रूपका अभाव है। इन्होंने उच्च मानवीय मूल्योंपर बल देते हुए उपदेशके स्थानपर आन्तरिक संवेदना जगाने और इतिवृत्तात्मकताके स्थानपर भावात्मकताको प्रधानता दी है। परमोच्चके प्रति आकुलताके दर्शन भी होते हैं। इनकी रचनाओंको छायावादका पूर्वाभास कह सकते हैं क्योंकि पिछली रचनाओंकी अपेक्षा उनमें आत्माभिव्यंजना, आध्यात्मिकता, लाक्षणिकता एवं व्यंजनात्मकताका बीज स्पष्ट है। इनकी कविताएँ अधिकांशतः प्रगीत-मुक्तककी श्रेणीमें आती हैं। 'शैल बाला', 'समाज कण्टक', 'लच्छमा', 'परिश्रम' एवं 'हृदय-दान' नामक पुस्तकें भी उल्लिखित हुई हैं। 'शैल बाला', 'लच्छमा' एवं 'परिश्रम' नामक रचनाएँ हरिदास एण्ड कं०, कलकत्तासे सन् १९१७ ई० में, 'समाज कण्टक' वाहिती एण्ड कम्पनी, कलकत्ता द्वारा १९१८ ई० एवं 'हृदय-दान' हिन्दी गल्पमाला प्रेस, काशीसे सन् १९१९ ई० में प्रकाशित हुई हैं। 'मिश्रबन्धुओं' ने इनकी 'कार्तिक महात्म्य' एवं 'इटालीय युवक' नामक पुस्तकोंका भी उल्लेख किया है। खड़ीबोलीकी कल्पना-नूतनता और अन्तर्भाव-व्यंजनामें मैथिलीशरण गुप्त एवं बदरीनाथ भट्टके साथ इनका भी नाम संस्मरणीय है। शीर्षकोंके अनाख्यापन, स्वानुभूतिपूर्ण वर्णन एवं चित्रात्मकताके प्रदर्शनकी प्रवृत्तियाँ १९१३ ई० से ही इनके द्वारा सम्पन्न हो रही थीं। मुकुटधरजीमें कविताको जीवन-विस्तारमें प्रतिष्ठित करनेकी आकुलता स्पष्ट थी। रामचन्द्र शुक्लने अपने इतिहासके परिवर्धित संशोधित संस्करणके पृष्ठ ७२४ पर इन्हें प्रकृतिके सामान्य रूपपर प्रेम-दृष्टि डालकर रहस्यके सहज संकेतोंको उभाड़ने तथा भाषाको मार्मिक रूप देकर कविताके अकृत्रिम एवं स्वच्छन्द मार्ग निकालनेके कारण 'नयी धारा' (छायावाद) का प्रवर्त्तक माना है। इनके 'श्री शारदा' में निकले तत्कालीन छायावादसम्बन्धी लेख छायावादके विकास-इतिहासके ढूँढनेमें मीलके पत्थरका कार्य करेंगे। —श्री० सिं० क्षे०

मुबारक–इनका पूरा नाम सैयद मुबारक अली बिलग्रामी है। इनका जन्म १५८३ ई० (सं० १६४० वि०) और कविता-काल १६३३ ई० (सं० १६९० वि०) है। ये फारसी, संस्कृत और अरबीके अच्छे ज्ञाता थे। हिन्दीमें इन्होने 'ममारख' छापमें भी रचना की है। ये मुख्यतः शृंगारी कवि हैं। रामचन्द्र शुक्ल, मिश्रबन्धु आदि इतिहासकारोंको इनके 'अलक शतक' और 'तिल शतक' ग्रन्थ ही उपलब्ध हुए हैं। इनका रचना-काल १६०३ ई०के आस-पास माना जाता है। इन दोनों ग्रन्थोंका प्रकाशन भारत जीवन प्रेस, बनारससे १८९१ ई०में हुआ है। पहले ग्रन्थमें नायिकाकी 'अलकों' तथा दूसरे ग्रन्थमें उसके 'तिल'पर दोहे संगृहीत हैं। इनके सम्बन्धमें ख्यात है कि इन्होंने नायिकाके "दस अंगोंको लेकर प्रत्येक पर सौ-सौ दोहे" लिखे थे। रामचन्द्र शुक्लके अनुसार संस्कृत, फारसी और अरबीके पण्डित थे और हिन्दीके सहृदय कवि। इन्होंने उत्प्रेक्षाओंके प्रयोगमें कल्पनाकी उड़ानसे काम लिया है, 'अलक'पर उत्प्रेक्षा है—"परी मुबारक तिय-बदन अलक ओप अति होय। मनो चन्दकी गोदमें रही निसा सी सोय।" इसी प्रकार 'तिल'पर उक्ति है—"चिबुक कूप रसरी अलक, तिलसु चरस दृग बैल। बारी बैस सिंगारको, संचित मनमथ-छैल।" दूरकी कौड़ी लानेमें मुबारक अपने सम-सामयिकोंसे कम नहीं थे।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० इ०; मि० वि०; हि० सा०; दि० भू० (भूमिका)।] —वि० मो० श०

मुरलीधर मिश्र–इनका नाम मुरली भी है। ये आगराके भारद्वाज गोत्रीय माथुर ब्राह्मण थे। इनके पूर्वजोंका गंगा-यमुनाके दोआबमें स्थित गंभीर नामक स्थान था। इनके पूर्वज परमानन्द मिश्रका अकबरके दरबारमें बहुत मान था। इनके पौत्र पुरुषोत्तम शाहजहाँके आश्रित कवि थे। मुरलीधरके पिता दिनमणि मुहम्मदशाह रंगीलेके दरबारमें कवि थे। नादिरशाहका आक्रमण मुरलीधरके सामने हुआ था, इससे इनकी शृंगारी वृत्तिमें परिवर्तन हुआ और ये रामभक्त हो गये थे। इनके ये छः ग्रन्थ कहे जाते हैं—'शृंगारसार', 'नखशिख', 'नलोपाख्यान', 'पिंगल-पीयूष' (१७६४ ई०), 'रस-सरोवर' (१६६२ ई०) तथा 'राम-चरित्र'। इनमें तीन ग्रन्थ काव्यशास्त्रसे सम्बद्ध, एक पिंगलका और शेष दो कथात्मक हैं। अन्तिम रामभक्तिसे प्रेरित काव्य-ग्रन्थ है।

[सहायक ग्रन्थ—दि० भू० (भूमिका)।] —सं०

मुहम्मद (हजरत मुहम्मद)–मुहम्मद हजरत इस्लाम धर्मके प्रवर्तक थे। उन्हें ईश्वरका दूत 'पैगम्बर' कहा जाता है। मुहम्मद साहबका जन्म ५७० ई० में मक्काके एक पुजारी वंशमें हुआ था। अतः मुहम्मद साहबका लालन-पालन उनके दादा और चाचापर पड़ा। अपने चाचा अबूतालिबके संसर्गमें रहकर वे बाल्यकालसे ही व्यापारमें दक्षता प्राप्त करने लगे। व्यापारके सिलसिलेमें भ्रमणके अनुभवके साथ उन्हें अरबके मूर्तिपूजक रूढ़िवादी धर्मके प्रति अविश्वास होता जा रहा था। इसके विपरीत ईसाई साधुओंके मठोंकी शान्ति, बौद्धिक वातावरण तथा यहूदियोंकी मूर्तिरहित एक ईश्वर भक्ति इन्हें प्रभावित करती जा रही थी। यहूदी और ईसाई धर्मकी पुस्तकोंका इन्होंने गम्भीरता पूर्वक अध्ययन किया था। ४० वर्षकी अवस्थामें इन्होंने अपनेको अल्लाहका रसूल घोषित किया। सर्वप्रथम मुहम्मदके धर्मको उनकी स्त्री खदीजाने स्वीकार किया। मक्काके पुजारी कुरेश मोहम्मदके क्रान्तिकारी विचारोंके फलस्वरूप इनकी जानके ग्राहक बन गये और मक्का छोड़कर सन् ६१४ ई० में इन्हें मदीना 'हिजरत' पर जाना पड़ा। इसीकी स्मृतिपर मोहम्मदने हिजरी संवत् भी चलाया। 'मदीना' के नामकरणका कारण 'मदीनत उलनबी' (नबीका नगर) बताया जाता है। मक्कातक

मुहम्मद साहब एक धर्मके प्रचारक मात्र थे किन्तु मदीनामें ये अपने अनुयायियोंके आर्थिक-सामाजिक विचारक, व्यवस्थापक और सैनिक नेता भी बन गये। मुहम्मद साहबकी मृत्यु सन् ६१२ ई० में हुई। उस समय भी कितने लोगोंने इस्लाम धर्म स्वीकार नहीं किया। मलिक मुहम्मद जायसी तथा हिन्दीके श्रव्य-सूफी कवियोंने ग्रन्थारम्भमें मुहम्मद साहबकी स्तुति की है। मैथिलीशरण गुप्तने 'काबा-कर्बला' मे मुहम्मद साहबका ससम्मान चरित्र-चित्रण किया है। इसके अतिरिक्त सुमित्रानन्दन पन्तने अपनी एक कवितामें हजरत और उनके एक शिष्यका स्वतन्त्रताके प्रश्नोत्तरके सन्दर्भमें नाम लिया है। —रा० कु०

मृगावती–अभी तकके हिन्दीके उपलब्ध सूफी प्रेमाख्यानक काव्योंमें 'मृगावती'का स्थान प्रथम है। इसके रचयिता कुतबन है। इसकी रचना हिजरी सन् ९०९ (अर्थात् सन् १५०३ ई०) में हुई। इसकी खण्डित प्रति ही प्राप्त हो सकी है। कुतबनने बतलाया है कि पहलेसे आती हुई कहानीके आधार पर ही उन्होंने इस ग्रन्थकी रचना की है। कुतबनके पहले 'मृगावती' जैसी अन्य किसी रचनाका पता नहीं चलता लेकिन इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस प्रकार की प्रेम-कथाएँ इसके पहले भी लिखी गयी हैं। इसके दो सौ वर्ष पहलेकी लिखी मुल्ला दाऊदकी रचना 'चन्दावन'-का उल्लेख बदायूनीने 'मुन्तखबुत्तवारीख'में किया है और उसके सम्बन्धमें कहा है कि हिन्दीमें लिखी वह एक मसनवी है, जिसमें लरक और चान्दाके प्रेमकी कथा कही गयी है। 'मृगावती'की कहानी संक्षेपमे इस प्रकार है—चन्द्रगिरिके राजा गणपति देवका पुत्र मृगावती पर मुग्ध होता है और उसे पानेके लिए नाना प्रकारके कष्ट भोगता है। बहुत सी विघ्न-बाधाओंको पारकर राजकुमार मृगावतीके पास पहुँचता है। मृगावती उड़नेकी विद्या जानती है और एक दिन राजकुमारको धोखा देकर उड़ जाती है। राजकुमार जोगी होकर उसकी खोजमें निकल पड़ता है। उसे खोजते हुए वह समुद्रमे घिरी एक पहाडी पर पहुँचता है। उस पहाडी पर वह रुक्मिनी नामक एक सुन्दरीका एक राक्षसके हाथसे उद्धार करता है। रुक्मिनीका पिता प्रसन्न होकर उसे राजकुमारको सौंप देता है। दोनोका विवाह हो जाता है। मृगावतीके पिताकी मृत्यु होती है और उसके स्थान पर मृगावती राज्यका शासनभार ग्रहण करती है। राजकुमार मृगावतीके नगरमे बारह वर्षों तक रहता है। बादमें उसके पिताको उसका समाचार मिलता है और पिताका सन्देश पाकर राजकुमार मृगावतीको लेकर चल पड़ता है। रास्तेमें वह रुक्मिनीको भी ले लेता है। दोनों पत्नियोंके साथ वह अपने घर पहुँचता और आनन्दपूर्वक जीवन बिताता है। शिकार करते हुए एक दिन वह हाथीसे गिर जाता है और उसकी मृत्यु हो जाती है और दोनो रानियाँ सती हो जाती हैं।

'मृगावती'में जिन कथानक रूढ़ियों और काव्य-रूढ़ियोंका प्रयोग किया गया है, वे सम्पूर्ण रूपसे भारतीय हैं। 'मृगावती'की कहानी, भारतीय कहानियोंकी परम्परासे बाहर नहीं है। वैसे हजारीप्रसाद द्विवेदीने एक-दो कथानक-रूढ़ियोंको विदेशी कहा है (हिन्दी साहित्य, पृ० २६५)। उनका कहना है कि नायकका ऐकान्तिक प्रेम और नायिकाकी प्राप्तिके लिए कठिन साधना इस देशकी कथा-परम्पराके लिए नयी वस्तु है। उनका यह भी कहना है कि नायिकाका धोखा देकर उड़ जाना और दूसरे देशमें राज्य करना एक ऐसी कथानक-रूढ़ि है, जो इस देशके लिए अपरिचित है, लेकिन इस मतसे सहमत होना कठिन है। प्राकृत और अपभ्रंश काव्योंके अध्येताके लिए ये कथानक-रूढ़ियाँ बिलकुल ही अपरिचित नहीं हैं। मुनि कनकामरका 'करकण्डु चरिउ' ईस्वी सन्की ग्यारहवीं शताब्दीकी रचना है। इसमें करकण्डुके पत्नी-वियोग, उसकी व्याकुलता तथा उसकी खोजमें नाना कष्टों और विपत्तियोंका सामना करते हुए उसके सिंहलद्वीप पहुँचनेका वर्णन है। इसी प्रकार ईस्वी सन्की पन्द्रहवीं शताब्दीकी रचना 'रमणसेहरी कहा'-में भी राजा रत्नशेखरके सिंहलद्वीपकी राजकुमारी रत्नवती-के रूपका वर्णन सुनकर सिंहल-यात्रा करनेका वर्णन आया है।

वैसे 'मृगावती'में राजकुमारके प्रेम तथा वियोगका जैसा वर्णन है, वह अवश्य ही भारतीय साहित्यमे देखनेको नहीं मिलता। इस प्रकारके वर्णनोंमे कुतबनने बीच-बीचमें परोक्ष-सत्ताकी ओर संकेत किया है। सूफीमार्गकी सात मंजिलोंका भी 'मृगावती'में संकेत मिलता है। सूफीमतसे कुतबनका अवश्य ही परिचय था और बादके हिन्दीके सूफी कवियों-की रचनाओंमे भी यह बात देखनेको मिलती है। 'मृगावती'में हिन्दीके विभिन्न छन्दोंका उपयोग किया गया है। अलंकारों तथा उपमान योजनाओंमे भी कवि भारतीय साहित्य और वातावरणसे ही प्रभावित है। न छन्दोंकी दृष्टिसे और न उपमान-योजनाओंकी दृष्टिसे 'मृगावती' को फारसीकी मसनवियोंसे प्रभावित माना जा सकता है। —रा० पू० ति०

मृणाल–दे० जैनेन्द्रकुमार।

मेहता–प्रेमचन्दकृत उपन्यास 'गोदान'का पात्र मेहता यूनीवर्सिटीमे दर्शन-शास्त्रका अध्यापक है। वह जीवनको सम्पूर्ण बनाना चाहता है। जीवनके विविध पक्षोंके सम्बन्धमें उसके अपने विचार हैं। स्त्रीको वह वफा और त्यागकी मूर्ति समझता है, जो अपने-आपको मिटाकर सबको अपना बना लेती है। उसे इस बातमें विश्वास नहीं है कि स्त्री-पुरुषके क्षेत्रमे पदार्पण करे। वह प्रकृतिका पुजारी है और मनुष्यको इसके प्राकृतिक रूपमें देखना चाहता है। दुःख और सुखका दमन करना वह कमजोरी समझता है। उसकी दृष्टिमें जीवन आनन्दमय क्रीडा है, सरल, स्वच्छन्द है, जहाँ कुत्सा, ईर्ष्या और जलनके लिए कोई स्थान नही। वह भूतकी चिन्ता नहीं करता, भविष्यकी परवाह नहीं करता। उसके लिए वर्तमान ही सब कुछ है। वह सारी शक्ति मानव-धर्मको पूरा करनेमें लगाना चाहता है। ईश्वर और मोक्षके चक्करपर उसे हँसी आती है। जहाँ जीवन है, प्रेम है, वहीं ईश्वर है। मानवताको पीस डालनेवाला ज्ञान, उसकी दृष्टिमे ज्ञान नहीं है। नारीके लिए वह मातृत्वको सबसे बड़ी साधना, सबसे बड़ी तपस्या, सबसे बड़ा त्याग और सबसे महान् विजय समझता है। नारीका

जीवन क्षय है, जीवनका, व्यक्तित्वका और नारीत्वका भी। इसीलिए वह सेवा-मार्गकी ओर झुकता है और इस क्षेत्रमें वह जब मालतीका 'मधुमक्खी'वाला रूप देखता है तो उसे कर्मण्य मानवताका रूप समझकर मुग्ध हो जाता है। —ल० सा० वा०

मैत्रेय–भागवतमें मैत्रेय एक ऋषि विशेषके रूपमें वर्णित है। विदुर और मैत्रेयकी परस्पर मित्रता रहा करती थी। विदुरकी भाँति मैत्रेयको भी कृष्णने ज्ञानोपदेश दिया था। यह ज्ञानोपदेश उन्होंने व्याससे सुना था। 'सूरसागर' तृतीय स्कन्धके ३८५वें पदमें मैत्रेयका उल्लेख विदुरके साथ हुआ है। —यो० प्र० सिं०

मैथिलीशरण गुप्त–जन्म-१८८६ ई०, स्थान चिरगाँव, झाँसी, उत्तर प्रदेश। वर्तमान कालके सर्वाधिक लोकप्रिय कवि हैं। गत अर्द्ध-शताब्दीसे ये अनवरत साहित्य-सेवा कर रहे हैं। अब तक इनकी चालीस मौलिक तथा छः अनूदित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। गुप्तजीकी आरम्भिक रचनाएँ कलकत्तासे निकलने वाले 'वैश्योपकारक'मे प्रकाशित हुई। बादमें इनका परिचय आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदीसे हुआ और इनकी कविताएँ 'सरस्वती'में प्रकाशित होने लगीं। द्विवेदीजीके आदेश और उपदेश तथा स्नेहमय प्रोत्साहनके परिणामस्वरूप मैथिलीशरणजी की काव्य-कलामे निखार आया। इनकी प्रथम पुस्तक 'रंगमें भंग'का प्रकाशन संवत् १९६६ मे हुआ। संवत् १९६९ में 'भारतभारती' निकली। इसी पुस्तकने सबसे पहले हिन्दी-प्रेमियोंको गुप्तजीकी ओर आकृष्ट किया। 'भारतभारती'ने हिन्दी-भाषियोंमें अपनी जाति और देशके प्रति गर्व और गौरवकी भावनाएँ प्रबुद्ध कीं और तभीसे ये राष्ट्रकविके रूपमें विख्यात हैं। इनकी अन्य प्रसिद्ध रचनाओंमे 'साकेत' (१९३२ ई०), 'यशोधरा' (१९३२ ई०), 'द्वापर', 'जयभारत' (१९५२ ई०) और 'विष्णुप्रिया' आदि विशेषतः उल्लेखनीय हैं।

गुप्तजी रामभक्त कवि हैं। रामका कीर्तिगान इनकी चिरसंचित अभिलाषा रही है, साथ ही इन्होंने भारतीय जीवनको समग्रतामे समझने और प्रस्तुत करनेका भी प्रयास किया है। अतः इनका काव्य रामकाव्य है और प्रबन्धकाव्य है। 'मानस'के पश्चात् हिन्दीमें रामकाव्यका दूसरा स्तम्भ मैथिलीशरणकृत 'साकेत' ही है और आधुनिक युगमें प्रबन्धकी तो विलोपमान परम्पराके संरक्षक गुप्तजी ही हैं। इन्होंने दो महाकाव्यों और उन्नीस खण्डकाव्योंका प्रणयन किया है परन्तु इस विपुलतामे पिष्टपेषण नहीं है, वरन् आधारभूत पृष्ठभूमिका समयोचित विस्तार है, अर्थात् इनके कार्योंमें जीवनका अनन्त वैविध्य और विस्तार समाहित है। यह वैविध्य-विस्तार देशगत भी है और कालगत भी। इन्होंने जहाँ इस देशकी तथा आधुनिककालकी कथाको अपने प्रबन्धोंका विषय बनाया है, वहाँ विदेशसम्बन्धी एवं प्रागैतिहासिक सामग्रीको भी वस्तु-रूपमें ग्रहण किया है। अज्ञात एवं अख्यात व्यक्तियों से लेकर महामहिम महीप तक इनके काव्योंके पात्र हैं। निस्सन्देह गुप्तजीकी काव्य-सामग्रीका यह बार्हत्य और क्षेत्र-विस्तार अद्भुत है। इसके अतिरिक्त ये विश्वके श्रेष्ठ प्रबन्धकवियोंके समान अमर चरित्रोंके स्रष्टा या पुनर्निर्माता भी हैं। उर्मिला, यशोधरा और विष्णुप्रिया आदि इनकी अपूर्व और अभूतपूर्व चरित्र-सृष्टियाँ हैं। इनके चरित्रकी परिकल्पना मैथिलीशरणजीकी सृजन-प्रतिभाकी परिचायक है। उधर माण्डवीका पूर्वरामायणोंसे अधिक चित्रण, कैकेयीके चरित्रमें परिवर्तन, हिडिम्बा, नहुष, दुर्योधन आदिके चरित्रोंका पुनस्स्पर्श कविकी पुनर्निर्माण-कलाके जीवन्त प्रमाण हैं।

गुप्तजीने तीन नाटक, प्रायः सभी प्रकारके प्रगीत और मुक्तक भी लिखे हैं किन्तु नाटकों, प्रगीतों और मुक्तकोंमें ये वैसी भाव-सृष्टि नहीं कर पाये, जैसा कि प्रबन्ध-काव्योंमें। ये मूलतः प्रबन्धकार हैं—अन्य साहित्य-रूपोंमें इनकी प्रतिभाका पूर्ण विकास नहीं मिलता। प्रबन्धकारमें नाटक, उपन्यास और कहानीकारकी एकत्रित शक्ति आवश्यक मानी गयी है, उसे इस सभी विधाओंके प्रणयनकी समंजित शक्ति लेकर साहित्य-क्षेत्रमें पदार्पण करना पड़ता है। अपने क्षेत्रमें मैथिलीशरणको यह दुर्लभ वरदान प्राप्त है।

खड़ीबोलीके स्वरूप-निर्धारण और विकासमें गुप्तजीका योगदान अन्यतम है। खड़ीबोलीको उसकी प्रकृतिके भीतर ही सुन्दर-सुघड़ रूप देकर काव्योपयुक्त रूप प्रदान करनेका इन्होंने सफल प्रयत्न किया है। आज जिस सम्पन्न भाषाके हम अनायास उत्तराधिकारी हैं, उसे काव्य-भाषाके पदपर प्रतिष्ठित करने वाले यही प्रथम कवि हैं। इन्होंने खड़ीबोलीको प्रयोगार्ह ही नहीं बनाया, जनरुचि भी उस ओर मोड़ दी। 'जयद्रथ वध' (१९१० ई०) तथा 'भारतभारती'का प्रचार एवं लोकप्रियता मानों खड़ीबोलीकी विजय-दुन्दुभी थी। काव्य-क्षेत्रमे मैथिलीशरणके पदार्पणके समय खड़ीबोली काव्यमें व्यवहार्य छन्दोंके विषयमें भी कोई स्थिर नीति नहीं थी। खड़ीबोली पद्यमे या तो संस्कृत के वर्ण-वृत्तोंका प्रयोग होता था या फिर उर्दू बहरोंका। इनके काव्यमे पहली बार उसके लिए उपयुक्त छन्दोंका सशक्त और साधिकार प्रयोग हुआ है। वैविध्यकी दृष्टिसे भी इन्होंने जितने प्रकारके छोटे-बड़े छन्दोंका प्रयोग किया है, वर्तमान युगमे कदाचित् उतने किसीने भी नहीं लिखे। छन्द-प्रयोगमे प्रसंगानुकूलताका ध्यान सर्वत्र रखा गया है। प्रस्तुत कवि अन्त्यानुप्रासका भी स्वामी है। यद्यपि कहीं-कहीं उसका अतिरिक्त प्रयोग अरुचिकर भी सिद्ध हुआ है—किन्तु सुष्ठु प्रयोगोंकी तुलनामे वे स्थल नगण्य हैं और अन्त्यानुप्रासका यह प्राचुर्य भाषापर कविके प्रभुत्वका द्योतक तो है ही।

मैथिलीशरणजी भारतीय संस्कृतिके अनन्य प्रस्तोता हैं किन्तु ये अधुनातन सांस्कृतिक चेतनाका प्रतिनिधित्व नहीं करते। मूलतः ये उस भारतीय संस्कृतिके प्रवक्ता हैं, जिसे हम हिन्दू संस्कृति कहेगे या यों कहिये कि जिसका मूलाधार हिन्दुत्व है। इनके काव्यके सांस्कृतिक पृष्ठाधारका अनुशीलन करनेपर यह परिलक्षित होता है कि ये मानव-जीवनका लक्ष्य संन्यासको नहीं, पुरुषार्थको मानते हैं। अन्तिम क्षणतक कर्त्तव्यपालन ही सबसे बड़ा पुरुषार्थ है। धार्मिक दृष्टिसे राममें इनकी अनन्य भक्ति है, अन्य

कोई देवता इनके हृदयको प्रतोचित नहीं कर पाता किन्तु साम्प्रदायिकतामे मैथिलीशरण गुप्त एकदम मुक्त हैं—ये धार्मिक संकीर्णतामुक्त उदार वैष्णव है। राजनीतिक क्षेत्रमें जन्मजात सस्कारोंके कारण राजतन्त्रके प्रति इन्हें अनुराग है परन्तु युगधर्मको इन्होंने सचेष्ट अपनाया है, अतः प्रजातन्त्रसे भी ये पराङ्मुख नहीं हैं। राजतन्त्रके ही प्रजातन्त्रीकरण द्वारा इन्होंने युगधर्म और मज्जातन्तुगत सस्कारोंकी एक साथ रक्षा की है।

समाजकी सुव्यवस्थाका मेरुदण्ड ये मर्यादाको मानते हैं और सभी मर्यादाप्रेमी कवियोंके समान गुप्तजीने भी सम्मिलित परिवारमें आस्था प्रकट की है। साथ ही वर्णाश्रम-धर्ममें भी इनका दृढ विश्वास है किन्तु तत्सम्बन्धी मध्य-कालीन विकार इन्हे स्वीकार्य नहीं है। नारीके प्रति इनका दृष्टिकोण बहुत आदरपूर्ण रहा है। इनके अनुसार नारी विलासका निर्जीव उपकरण मात्र न होकर पुरुषके कार्योंमे समभाग लेनेवाली अर्द्धांगिनी है, जिसके सहयोग बिना पुरुषके सभी कार्य अधूरे है। लौकिक जीवनको ये विगर्हणीय नहीं समझते, परन्तु उसे मर्यादित अवश्य देखना चाहते है। मानवीय मनकी वृत्तियोंकी उन्मुक्त विवृति इन्हें सह्य नहीं। कम-से-कम लोभ और कामका नियन्त्रण तो होना ही चाहिये, तभी पारंपरिक स्नेह और सौहार्दका प्रसार सम्भव है। इनका जीवन-दर्शन प्रगतिशील होनेके साथ साथ सर्वथा भारतीय है—भारतकी परम्पराएँ और परम्परागत विश्वास इनके काव्यमे सर्वत्र प्रोद्भासित है, जो देशकी रीति-नीति और संस्कारिक विधियोंके प्रति इनकी निष्ठाके सूचक हैं।

भारतीय संस्कृतिके प्रवक्ताके साथ ही मैथिलीशरणजी प्रसिद्ध राष्ट्रीय कवि भी है। इनकी प्रायः सभी रचनाएँ राष्ट्रीयतासे ओत-प्रोत हैं। उत्तर भारतमे राष्ट्रीयताके प्रचार और प्रसारमें 'भारतभारती'के योगदानको विस्मृत नहीं किया जा सकता। परवर्ती रचनाएँ भी असन्दिग्ध रूपमे राष्ट्र-भावनासे परिपूर्ण है, हाँ कवित्वमे अभिनिवेशित उनकी राष्ट्रीयता रस-क्षीण आरम्भिक रचनाओंके समान मुखर नहीं है। अपनी कालानुसरण-क्षमताके कारण गुप्तजी इस युगके प्रतिनिधि कवि है। ये आधुनिककालमें प्रचलित काव्यकी सभी शैलियों और भावनाओंको ग्रहण करनेमे समर्थ है। इनके काव्यमे हिन्दी कविताके पिछले पचास-पचपन वर्षोंका इतिहास सुरक्षित है—काव्य-क्षेत्रके सभी आन्दोलन प्रतिबिम्बित है।

अपने विपुल-परिमाण साहित्य, अद्भुत प्रबन्ध-कौशल, भाषाके निर्माण और विकास तथा जीवनको समग्रतामें ग्रहण करनेकी क्षमताके कारण उत्तर भारतकी तीन पीढ़ियोंकी युगचेतनाको प्रभावित करनेवाला भारतीय संस्कृतिका अनन्य प्रस्तोता यह कवि निस्सन्देह ही महाकवि है। —उ० का० गो०

मैना–'रुद्र संहिता' तृतीय खण्डमें मैनाकी उत्पत्ति-कथा ब्रह्मा नारदसे कहते है। ब्रह्माके पुत्र दक्षकी स्वधा नामक कन्याको, जिसका विवाह उन्होंने देव-पितरसे किया था, ज्येष्ठ पुत्रीका नाम मैना कहा गया है। यह मानसी होनेके कारण अयोनिजा कही गयी है। सनत्कुमारके शापवश मैना श्वेत द्वीपसे पृथ्वीपर आकर हिमालयकी पत्नी बनी। मैनाक नामक नाग-पर्वत मैनाका ही पुत्र था। कालिदासने 'कुमार-सम्भवम्' नामक महाकाव्यमें शिव-पुराणके आधारपर सम्भवतः मैना और उनकी पुत्री पार्वती-के परस्पर स्नेहका मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है। तुलसीदासजीने 'रामचरितमानस' तथा 'पार्वती मंगल'में ठीक कालिदासके ही अनुरूप पार्वती-परिणयके प्रसंगमें इसका उल्लेख किया है। यद्यपि तुलसीदासकी मैनामें मानव-सुलभ वह आग्रह न आ सका, जिसका समावेश कालिदासने किया है। तुलसीदासने धर्म और भक्तिके आवरणमें मैनाके मातृत्वकी उपेक्षाकर शिव-भक्तिका बाना साग्रह आरोपित-सा कर दिया है। —यो० प्र० सिं०

मैनासत–साधनकृत 'मैनासत'के दो संस्करण प्रकाशित हुए है। एक अगरचन्द नाहटा द्वारा हिन्दी विद्यापीठ ग्रन्थ वीथिका (हिन्दी विद्यापीठ, आगरा १९५६) और दूसरा पुस्तकाकार हरिहरनिवास द्विवेदी द्वारा सम्पादित 'साधनाकृत मैनासत' (ग्वालियर, १९५९ ई०), जिसमें ४१८ पद्य है। 'मैनासत' (सती मयनाके पतिव्रत आदर्शकी कथा) बहुत लोकप्रिय रही है। बंगलाके कवि दौलतकाजी (सत्रहवीं शती) तथा अलाओल (१६५९ ई०), ने 'सती मयना ओ लोर चन्द्राणी' शान्तिनिकेतन, १९५८ ई०की रचना साधनकी रचनाके आधारपर की। सती मयनाकी कथाका अभिप्राय लोकप्रचलित अन्य प्रेम-कथाओंमे सम्मत है। सुन्दरी मैनाका पति लालन व्यापार के लिए परदेश चला जाता है। वियोगिनी नायिकाको रतना कुट्टी पथभ्रष्ट करनेका प्रयास करती है किन्तु सती मयना दृढतापूर्वक पतिपरायणा बनी रहती है। पतिके लौटनेपर कुट्टिनीको यथोचित दण्ड मिलता है। वियोगिनी नायिकाके प्रसगमे कृतिमें 'बारहमासा'का सुन्दर सरल वर्णन मिलता है। दोहा, चौपाई, सोरठा छन्दोंका कृतिमें प्रयोग हुआ है। कृतिकी भाषा व्रजभाषा है। साधनको कुछ लोग मुसलमान कहते है किन्तु उनकी कृतिमें ऐसा कोई उल्लेख नहीं मिलता, जिससे उन्हे हिन्दू न कहा जा सके। कुछ प्रतियोंमे प्रारम्भमे सरस्वतीकी वन्दना मिलती है। वे हिन्दू थे। 'मैनासत'की सबसे प्राचीन प्रति १५०४ ई०की मिलती है, अतः 'मैनासत'का रचनाकाल इससे पूर्व माना जा सकता है।

[सहायक ग्रन्थ—मैनासत : हरिहरनिवास द्विवेदी, ग्वालियर, १९५९ ई०।] —रा० सिं० तो०

मोतीचंद–जन्म १९०९ ई० में वाराणसीमें हुआ। शिक्षा वाराणसी तथा लन्दनमे हुई। आप भारतेन्दु हरिश्चन्द्रके भ्रातुष्पौत्र है तथा बम्बईके प्रिंस ऑव वेल्स म्यूजियमके डाइरेक्टर तथा हिन्दी जगत्के भारतीय पुरातत्त्वके अधिकारी विद्वान् हैं।

मोतीचन्द एक प्रतिभासम्पन्न लेखक हैं। उन्होंने गम्भीर अध्ययन एवं मनन किया है। वे गवेषणापूर्ण उपयोगी एवं गहरे तत्त्वोंसे युक्त रचनाओंके लेखक हैं। भारतीय संस्कृति एवं पुरातत्त्वके व प्रतिष्ठित विद्वान् हैं। भारतीय पुरातत्त्व एवं कलाके विविध अंगोंको लेकर आपने पुस्तकें लिखी हैं। आपकी पुस्तकें निम्नांकित हैं—'प्राचीन भारतीय वेष-भूषा'

(१९५० ई०), 'सार्थवाह' (१९५३ ई०), 'शृंगार हाट' (यह पुस्तक आपने डाक्टर वासुदेवशरण अग्रवालके सहयोगसे लिखी है) तथा 'काशीका इतिहास'।

'प्राचीन भारतीय वेष-भूषा'में आपने प्रागैतिहासिक कालसे लेकर सातवीं सदी तकके भारतीय साहित्य, कला, पुरातत्त्व तथा इतिहासके परिशीलनसे भारतीयोंकी वेष-भूषा एवं उसके विकास-क्रमका सूक्ष्म दृष्टिसे अवलोकन किया है। प्राचीन मूर्तियों, शिल्पकृतियों, चित्रों तथा मुद्राओंसे नख-शिख तकके केश एवं परिधान, विभिन्न वस्त्रों, उनके प्रकार तथा ढंगके रेखाचित्र प्रस्तुत करते हुए आपने तत्कालीन वेष-भूषा पर अच्छा प्रकाश डाला है। वेष-भूषा-की नामावली भी वेदों, पुराणों एवं संस्कृत और प्राकृत साहित्यसे खोज कर प्रस्तुत की है।

'सार्थवाह' पथ-पद्धति, प्राचीन भारतीय व्यापारियोंके विषयमे जानकारी, उनकी यात्राएँ, क्रय-विक्रयकी वस्तुएँ तथा व्यापारके नियम एवं राजनीतिक परिस्थितियोंके विवेचनकी दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पुस्तक है।—ह० दे० बा०

मोहनलाल गुप्त–जन्म काशी, ज्येष्ठ कृष्ण २, सं० १९७१ वि०। प्रारम्भिक शिक्षा क्वीस कालेज, काशी। १९३९ ई० में एम० ए० (हिन्दी) प्रयाग विश्वविद्यालयसे। १९४३ ई०से ही पत्रकार जीवन अपनाया। आजकल 'आज'के साहित्य-सम्पादक हैं। भारतेन्दु द्वारा प्रवर्तित हास्य-व्यंग धारामें वस्तु विन्यास, भाव-भाषा, शैली, शब्द-चयन आदि सभी दृष्टियोंसे 'आधुनिकता'का समावेश करनेवाले लेखकोंमे आपका विशिष्ट स्थान है। राजनीतिक, सामाजिक चेतनासे उद्वेलित होकर आपकी हास्य कृतियाँ भी प्रायः व्यंग्यप्रधान हो जाया करती हैं। अपनी हास्य कृतियोंमे भी नैतिक मर्यादाओंका उल्लंघन नहीं किया है। गद्य और पद्य दोनों विधाओंका प्रयोग समान सफलतासे किया है। आरम्भमें गम्भीर कहानियाँ भी लिखते रहे, जिनमें यौवनोचित स्वप्नप्रियताका ही प्राधान्य है। गद्य शैलीमे परिमार्जित उर्दू गद्यकी रवानी, वक्रता और स्वच्छता मिलती है। साप्ताहिक 'आज'के 'अरबी न फारसी' स्तम्भमें आपकी लिखी व्यंग्यात्मक टिप्पणियाँ काफी लोकप्रिय हुई हैं।

कृतियाँ—कहानी (गम्भीर) : 'दो काली काली आँखें', 'अनदेखे चित्र अनबोले चेहरे'; कहानी (हास्य) : 'मखमली जूती', 'चिरकुमारी सभा'; कविता (हास्य) : 'रामझरोखा', व्यंग्यप्रधान गद्य : 'अरबी न फारसी', 'बनारसी रईस'; बाल साहित्य : 'बच्चोकी सरकार' (एकांकी); 'देश हमारा' (राष्ट्रीय गीत)। —श्री० शु०

मोहनलाल महतो 'वियोगी'–जन्म बिहार राज्यके उपरिडीह, गयामें सन् १८९९ ई०। हिन्दी, संस्कृत, बंगला और अंग्रेजीका इन्होंने अच्छा ज्ञान प्राप्त किया है। इनकी लगभग ४५ से ऊपर रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। सामयिक एवं राष्ट्रीय समस्याओं पर लिखित 'अछूत' नामक कविता-संग्रह (१९२५ ई०), छायावादी-रहस्यवादी रचनाओंका स्फुट संग्रह 'निर्माल्य' नामसे (१९२६ ई०), एक संग्रह 'एक तारा' नामसे, 'रेखा' अभिधानसे छायावादी शैलीमें लिखित कहानी-संग्रह (१९२९ ई०), युवाकालीन संस्मृतियोंके आधार पर प्रणीत 'धुँधले चित्र' नामक कविता संकलन (१९३० ई०), 'कल्पना' नामक कविता-संकलन (१९३५ ई०), 'कलाका विवेचन' (सम्पादन—१९३६ ई०), 'आरतीके दीप', (१९४० ई०), 'विचार धारा' (निबन्ध-संग्रह—१९४१ ई०), तथा प्रसिद्ध प्रबन्ध-काव्य 'आर्यावर्त' (१९४३ ई०) प्रकाशित हुए। 'आर्यावर्त' एक ऐतिहासिक महाकाव्य कहा गया है। प्रथम सर्गमें पूर्व-पीठिकारूपमें औदात्स्यपूर्ण सान्ध्य-वर्णनके साथ देवी-मण्डपमें महाकवि चन्द और राणा समरसी प्रस्तुत हुए हैं। क्लान्तमना कवि महाराज पृथ्वीराजकी खोजमे युद्ध-स्थल पर जाता है। द्वितीय सर्गमें जयचन्द गोरीके दरबारमें जाते हैं। पृथ्वीराज उन्हें फटकारते हैं। युद्ध होता है और बन्दी पृथ्वीराजकी आँखें भारत-भाग्यके साथ ही फोड़ दी जाती है। तीसरे खण्डमें चन्द फिर देवी-मण्डपमें आते हैं, समरसी मृत मिलते है। चन्द उनकी चिता सजाते हैं। चौथे सर्गमे, सभामे वृद्ध चारण दुःस्वप्नका वर्णन करता है। जयचन्द विषण्ण-भावसे रात भर उपवनमें घूमते हैं। अन्तमे निश्चय करते हैं कि "धोऊँगा कलंक रक्त देकर शरीरका।" पाँचवें-छठवें सर्गमें कवि चन्द 'रासो'की पूर्ति-का भार पुत्र जल्हको सौंपकर नाश-लीलामें संलग्न होते हैं। कवि रानी देवी-मण्डपमें महारानीको शोक-समाचार सुनाती हैं। हताश जनता स्वतन्त्रताकी चिन्तासे विदग्ध होती है। भारतेश्वरी संयोगिताके आर्य-ध्वजके नीचे देश-देशके राजा एकत्र हुए। जयचन्दने भी पश्चात्तापग्रस्त हो देशकी बेड़ियाँ काटनेकी प्रतिज्ञा की। गोरीने भी महारानी-के पराक्रमकी प्रशंसा की। भयानक युद्ध हुआ। गोरीसे डटकर लड़ते हुए जयचन्द बाण-विद्ध हुए। आर्य सेनाने गोरीकी सेनाको छिन्न-भिन्न कर दिया। दशम सर्गमें छावनीके सामने उल्काओंके प्रकाशमे आत्मग्लानिपूर्ण जयचन्द दिवंगत हुए। गोरी भगा, पर पृथ्वीराज न मिले। चन्दने देवी-ध्यानसे ढूँढनेका पथ प्राप्त किया। चन्द फकीर बनकर गोरीके यहाँ गये। वही सुलतानसे पूजित हो वे कारागारमें पृथ्वीराजसे मिले। वहीं शब्द-वेधी बाण द्वारा तवा तोड़नेकी व्यवस्था हुई तथा अन्तिम तेरहवें सर्गमें पृथ्वीराजने गोरीका वध किया। चन्द और पृथ्वीराज दोनों आपसमें कट मरे। महारानी और कविरानीने अपने पतियोंके प्रसन्न वदन भारत माताकी गोदमे देखे तथा जल्हने 'रासो'की अन्तिम पंक्ति समाप्त की। सारा प्रबन्ध तत्सम-शब्दप्रधान, प्रवाहपूर्ण भाषा तथा अतुकान्त आन्तरिक लययुक्त छन्दमे प्रभाव-रसपूर्ण शैली सहित कौशलके साथ लिखा गया है। जयचन्दकी मृत्युका दृश्य बड़ा प्रभाव-पूर्ण है। 'वियोगी'जीको वातावरण चित्रणकी सशक्त भाषा-शैली प्राप्त है। काव्य 'पृथ्वी सूक्त' और 'साम गान'की गुंजारमे अनुरंजित है। देशभक्ति और आर्य-गौरवके भाव पूर्णरूपसे उभरे हैं। पुस्तकका प्रारम्भ जनवरी, १९४२ ई० में हुआ और १५-१६ मासके भीतर धारावाहिक रूपमें सावेश लिखकर समाप्त की गयी। इसके अलावा 'सलिला' (कहानी-संग्रह), 'आरपार', 'शेषदान', आदमखोर' (उपन्यास), 'रजकण' (कहानी), 'धोखा', 'तथास्तु' (नाटक), 'उसपार' (आत्मकथा), 'साहित्य-समन्वय', (निबन्ध) तथा 'सात सुमन' (संस्मरण) नामक पुस्तकोंके

भी नामोल्लेख हुए हैं। एक अन्य महाकाव्य और ऋग्वेद पर एक विशाल ग्रन्थ लिखनेमें संलग्न होनेकी सूचना मिली है। इन्होंने गीतोंसे भी मधुर सवैये लिखे हैं।

'वियोगीजी'का छायावादी-रहस्यवादी काव्यके उत्थानमें एक विशिष्ट योग है। अजटिल भावों, सहज कल्पनाओं और आन्तरिक उन्मेषोंसे पूर्ण उनकी रचनाएँ एवं प्रेम-विषयक गीत भावमय एवं हृदयस्पर्शी रहे हैं। भाषा सुपरिष्कृत एवं सुसंगठित होती है। वे 'कला, कलाके लिए'-के अनुयायी शुद्ध कला-साधक हैं। आत्मनिष्ठ भाव गीतों-के अतिरिक्त दलितोंके प्रति सहानुभूति एवं देशके प्रति गौरवके भाव भी उनके अनुभूति-कोषके समुज्ज्वल रत्न हैं। स्फुट कविता एवं प्रबन्ध लेखनमें उन्हे समान अभ्यास है। गोरीके चरित्र-चित्रणमें साम्प्रदायिकता लेशमात्र नहीं है। सारा 'आर्यावर्त' क्षुद्र जातिवाद और संकीर्ण साम्प्र-दायिकतासे परे शुद्ध राष्ट्रीयताका पवित्र प्रवाह है। कविने अनार्योंके प्रति डी० एल० राय आदिकी भाँति द्वेष या घृणाके भाव व्यक्त नहीं किये हैं। मानव एवं बाह्य, दोनों ही प्रकृतियोंके चित्रणमें 'वियोगी'जी सफल हैं। उनकी रचनाओंमें आवेशका ज्वार लहराता दिखाई पड़ता है। स्वभावोक्ति एवं वक्रोक्ति दोनों अलंकारशैलियोंमे 'वियोगी'जी सिद्धहस्त हैं। पृथ्वीराजका चित्रण उनकी लेखनीका अमृत पुष्प है। 'लौं' (तक) जैसे ब्रजभाषाके विभक्ति चिह्न भी कहीं-कहीं माधुर्य-प्रवाहकी अक्षुण्णताके लिए आ गये हैं पर इनकी भाषा सर्वत्र रसानुकूल एवं स्रोतस्विनी है। ये गीतकारसे अच्छे प्रबन्ध-कार हैं। —श्री० सिं० क्षे०

मोहनलाल मिश्र—इतिहास-ग्रन्थोंमें इनका केवल इतना ही परिचय उपलब्ध होता है कि इन्होंने नन्ददासके बाद और कृपारामके पूर्व सन् १५८९ ई०में 'शृंगारसागर' नामक रस तथा नायिकाभेद निरूपक किसी ग्रन्थकी रचना की थी किन्तु यह रचना अब कहीं उपलब्ध नहीं है। रामचन्द्र शुक्लने इनको चरखारीका कहा है। —आ० प्र० दी०

मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या—जन्म १९०७ वि० में हुआ। भारतेन्दु हरिश्चन्द्रके साथ हिन्दीकी उन्नतिमें योग देनेवालोंमें इनका नाम उल्लेखनीय है। ये आधुनिक प्रकारकी हिन्दी समीक्षाके आरम्भिक लेखकोंमे आते हैं। इन्होंने कुछ दिनोंतक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा निकाली गयी 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका'को 'मोहनचन्द्रिका'के नामसे सम्पादित किया था। वस्तुतः ये 'पृथ्वीराज रासो'के संरक्षक और उसे असली सिद्ध करनेवाले इतिसास-विद्के रूपमें प्रसिद्ध हुए। इन्होंने 'रासो-सरक्षा' नामक एक पुस्तक लिखकर उसे जाली ग्रन्थ बतानेवाले विद्वानोंका खण्डन किया था। 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका'मे इनके इस आशयके कुछ पाण्डित्यपूर्ण लेख प्रकाशित हुए थे। बादमे ये काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा 'पृथ्वीराज रासो'के सम्पादन कार्यके लिए उपयुक्त व्यक्ति समझे गये। इनके सहकारी सम्पादकोंमें (बाबू) श्यामसुन्दरदास और कृष्णदास भी थे। यह कार्य उक्त सभा द्वारा बाइस खण्डोंमें प्रकाशित है। 'रासो'का ऐतिहासिक अध्ययन और उसका सम्पादन इनकी कीर्तिको बनाये रखनेके लिए पर्याप्त है। आपकी मृत्यु ४ दिसम्बर, १९१२ ई०को मथुरामें हुई। —र० अ०

मोहनसिंह सेंगर—जन्म जोधपुरमें १२ सितम्बर, १९१४ ई०। 'भग्नदूत', 'राजनीतिका एक विद्यार्थी' आदिके नामोंसे आप हिन्दी पत्रकारितामें आये। 'विशाल भारत'के सम्पादनके साथ-साथ आपने कहानी और निबन्ध भी लिखे हैं। आपकी लगभग ८ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। आजकल आकाशवाणीमें सहायक निर्देशकके रूपमें कार्य कर रहे हैं।

सम्पादकके रूपमें मोहनसिंह सेंगर पत्रकारिताके उस कालमें आये, जब छायावादका आन्दोलन स्थिर हो चुका था, राष्ट्रीय स्तरपर हमारा आन्दोलन दृढ़ता प्राप्त कर चुका था, दिशाएँ और स्थितियाँ स्पष्ट थीं। इसीलिए सेंगरके सम्पादनकालमें और उनकी शैलीमें हमें ओजकी अपेक्षा विवेचन अधिक मिलता है। चाहे वह 'विशाल भारत' की टिप्पणी हो या आपके निबन्ध, दोनोंमें हमें समान रूप से यही दीखता है।

कहानीकारके रूपमें सेंगरके पूर्व जैनेन्द्र, अज्ञेय और यशपालकी शैलियाँ स्थापित हो चुकी थीं। इन लोगोंने प्रेमचन्दकी शैली और उनकी समस्याओं एवं दृष्टिसे पृथक् मानवीय स्तरपर मानव-कुण्ठाओं, वेदनाओं और भाव-स्थितियोंको देखना शुरू किया था। सेंगर ऐसी स्थितिमें कहानीके क्षेत्रमें अपनी कोई निश्चित शैली का प्रतिपादन नहीं कर पाये। यथार्थको आभास रूपमें और रोमाण्टिक प्रवृत्तिको अधिक निकटसे ग्रहण करके सेंगरके शिल्पमे कुछ नया और कुछ पुराना मिल-जुलकर प्रस्तुत हुआ है।

सेंगरके निबन्धोंमें आत्मपरक शैली अधिक व्यक्त हुई है। 'भग्नदूत' और 'राजनीतिके विद्यार्थी'के उपनामोंसे आपने जो वैयक्तिक अथवा सांस्कृतिक निबन्ध लिखे हैं, उनमे विस्तृत क्षेत्र अधिक है, गहराई अपेक्षाकृत कम।

भाषाकी दृष्टिसे सेंगर अधिक आधुनिक हैं। राजनीतिक निबन्धोंमें तो खुले रूप मे सहज और बोधगम्य शब्दोंका चयन आपकी निजी विशेषता है। इसलिए सांस्कृतिक और साहित्यिक निबन्धोंमें भी उस प्रकारका आभिजात्य तो है किन्तु मौलिकता नहीं है।

सेंगरकी शैलीमें आधुनिकताका पुट हमें स्पष्ट दीख पड़ता है। विषय, तथ्य और कथ्यकेपारस्परिक सम्बन्धोंमें सेंगरमें तटस्थताका परिचय हमें मिलता है किन्तु मात्र इतना ही अपेक्षित नहीं था।

कृतियाँ— कहानी संग्रह : 'चिताकी चिनगारियाँ' (१९३७ ई०), 'खूनके धब्बे' (१९४२ ई०), 'नये युगकी नारी' १९४७ ई०), 'नर्कका न्याय' (१९५२ ई०), 'मुर्देकी मौत'(१९५४ ई०), 'डूबता सूरज' (१९५७ ई०)। निबन्ध संग्रह : 'जीवनका सत्य' (१९४७ ई०)। —ल० कां० व०

यक्ष—एक अर्द्ध दैविक योनि। विश्वा और कश्यपकी सन्तान और रुद्रके अनुचर। इनके अधिपति कुबेर हैं। इनका वर्णन महावीरप्रसाद द्विवेदी द्वारा अनूदित 'कुमार सम्भव' के प्रथम सर्गमे मिलता है। —मो० अ०

यक्षेश्वर—कुबेर। युद्धमे शिवके अनुगामी, जिन्होंने बामदेव

शिवकी सोमके विरुद्ध युद्धमें सहायता की। —मो० अ०

यज्ञ पुरुष–समष्टि रूपसे स्थूल जगत्‌की प्रतिकृति ही यज्ञ-पुरुषके रूपमें ऋग्वेदके ऋषियोंने कल्पित की थी। चन्द्रमा उसका मन था, सूर्य आँख, वायु कर्ण और प्राण तथा अग्नि मुख था। इस प्रकार वैदिक यज्ञ-पुरुष यज्ञदेवके प्रतीक थे और यज्ञ-फलमें उनका प्रमुख भाग था। यज्ञ-पुरुष अपनी महत्ताके कारण आगे चलकर एक स्वतन्त्र दैवी सत्ताके सूचक बन गये तथा भागवत पुराणमें इनका अवतार-रूपमें वर्णन किया गया। सूरदासने इसीके आधार-पर 'सूरसागर'में पद संख्या ३९८-४०० में उनका वर्णन किया है। —यो० प्र० सिं०

यदु–ययाति और देवयानीके ज्येष्ठ पुत्र, यादव-वंशके संस्थापक। सहस्रजीत तथा अन्य पुत्रोंके पिता। इन्हींके कुलमें आगे चलकर भगवान् श्रीकृष्ण हुए। यदुने अपने पिताको यौवन-दान करनेसे इनकार कर दिया, जिससे उन्हे शापभागी बनना पड़ा था। —मो० अ०

यदुवंश–अनेक कुटुम्बोंका, जिसमें लगभग १०१ मान्य हैं, समष्टिगत एक नाम। इसके राजा उग्रसेन थे। कंससे पीडित ये लोग कुरु, पांचाल आदि प्रदेशोंको चले गये। इनके पुरोहित गर्ग ऋषि थे। —मो० अ०

यम–मृत्युके देवता माने गये हैं। ये दक्षिण दिशाके दिग्पाल हैं। ये सूर्यके पुत्र हैं तथा इनका वाहन महिष है। —रा० कु०

यमलार्जुन–दे० जमलार्जुन।

यमुना–हिमालयसे प्रवाहित एक पवित्र नदी। यह सूर्यकी पुत्री, यमकी बहन कही गयी है। एक बार द्वारिकासे मथुरा लौटकर बलरामने उसे जलक्रीड़ार्थ आमन्त्रित किया था किन्तु यमुनाको कुछ देर हो गयी। क्रुद्ध बलरामने अपने हलसे कर्षणकर यमुनाकी धाराको वृन्दावनके बीच कर दिया। कहा जाता है, तभीसे यमुनाका मार्ग बदल गया है (दे० सूर० पद ४८१८-४८२३)। —मो० अ०

ययाति–नहुष और विरजाके पुत्र। एक बार मृगयाको जाते समय इन्हें कुएँके भीतरसे किसी बालाकी चीख सुनाई पड़ी। वहाँ जाकर उन्होंने नग्नावस्थामे खड़ी उस बालिकाको वस्त्र देकर ऊपर निकाला। यह शुक्रकी पुत्री देवयानी थी, जो बादमें उनकी स्त्री हुई। देवयानीके साथ दासी रूपमें शर्मिष्ठा भी ययातिके यहाँ गयी। शुक्रने देवयानीको देते हुए ययातिसे यह प्रतिज्ञा करा ली थी कि वह शर्मिष्ठासे सह-वास न करेंगे। एक दिन ययातिसे वह प्रतिज्ञा टूट गयी। फलतः देवयानी वापस चली गयी। ययाति भी उसके पीछे-पीछे गये। अतः शुक्रने उन्हें वृद्ध हो जानेका शाप दिया किन्तु यह कहा कि यदि कोई पुत्र उन्हें अपना यौवनदान कर देगा तो उतने दिनोंके लिए वह फिर युवा हो जायेंगे। ययातिकी याचनापर केवल पुरुने ही अपना यौवन देना स्वीकार किया। कुछ काल यौवनानन्द लूटकर अन्तमे ययाति पुरुको राज्य जेकर भगवद्भजन हेतु वनको चले गये (दे० 'देवयानी', 'शर्मिष्ठा')। —मो० अ०

यशपाल–यशपाल हिन्दीके यशस्वी कथाकार और निबन्ध-लेखक है। उनका जन्म ३ दिसम्बर, सन् १९०३ ई०में फिरोजपुरी छावनीमें हुआ था। उनके पूर्वज कांगड़ा जिलेके निवासी थे और उनके पिताको विरासतके रूपमें दो-चार सौ गज तथा एक कच्चे मकानके अतिरिक्त और कुछ नहीं प्राप्त हुआ था। उनकी माँने उन्हें आर्य-समाजका तेजस्वी प्रचारक बनानेकी दृष्टिसे शिक्षार्थ गुरुकुल कांगड़ी भेज दिया। गुरुकुलके राष्ट्रीय वातावरणमें बालक यशपालके मनमें विदेशी शासनके प्रति विरोधकी भावना भर गयी।

लाहौरके नेशनल कालेजमें भर्ती हो जानेपर उनका परिचय भगतसिंह और सुखदेव से हो गया। वे भी क्रान्तिकारी आन्दोलनकी ओर आकृष्ट हुए। सन् १९२१ ई० के बाद तो ये सशस्त्र क्रान्तिके आन्दोलनमें सक्रिय भाग लेने लगे। उसी वर्ष वाइसरायकी गाड़ीके नीचे बम रखनेके लिए घटनास्थलपर उनको भी जाना पड़ा। बादमें कुछ गलतफहमीके कारण वे अपने दलकी ही गोलीके शिकार होते-होते बचे। चन्द्रशेखर आजादके शहीद हो जानेपर वे हिन्दुस्तानी समाजवादी प्रजातन्त्रके कमाण्डर नियुक्त हुए। इसी समय दिल्ली और लाहौरमें दिल्ली तथा लाहौर षड्यन्त्रके मुकदमे चलते रहे, यशपाल इन मुकदमोंके प्रधान अभियुक्तोंमें थे। पर ये फरार थे और पुलिसके हाथमें आ नही पाये थे। १९३२ ई०में पुलिससे मुठभेड़ हो जानेपर, गोलियोंका भरपूर आदान-प्रदान करनेके अनन्तर, ये गिरफ्तार हो गये। उन्हें चौदह वर्षकी सख्त सजा हुई। सन् १९३८ ई० में उत्तर प्रदेशमें जब कांग्रेस मन्त्रिमण्डल बना तो अन्य राजनीतिक बन्दियोंके साथ उनको भी मुक्त कर दिया गया।

जेलसे मुक्त होनेपर इन्होंने 'विप्लव' मासिक निकाला, जो थोड़े ही दिनोंमे काफी लोकप्रिय हो गया। १९४१ ई०में उनके गिरफ्तार हो जाने पर 'विप्लव' बन्द हो गया किन्तु अपनी विचारधाराके प्रचारमें इन्होंने 'विप्लव'का खासा अच्छा उपयोग किया। विभिन्न जेलोंमें उन्हें पढ़ने-लिखनेका जो अवकाश मिला था, उसमें उन्होंने देश-विदेशके बहुतसे लेखकोंका मनोयोगपूर्ण अध्ययन किया। 'पिंजरेकी उड़ान' और 'वो दुनियाँ'की कहानियाँ प्रायः जेलमें ही लिखी गयीं। आजकल वे लखनऊमें रहकर स्वतन्त्र रूपमें लेखन-कार्य कर रहे हैं।

यों यशपालमें लिखनेकी प्रवृत्ति विद्यार्थी कालसे ही पायी जाती है, पर उनके क्रान्तिकारी जीवनने उन्हें अनुभव सम्बद्ध किया, अनेकानेक संघर्षोंसे जूझनेका बल दिया। राजनीतिक तथा साहित्यिक, दोनों क्षेत्रोंमें वे क्रान्तिकारी हैं, उनके लिए राजनीति तथा साहित्य दोनों साधन हैं और एक ही लक्ष्यकी पूर्तिमें सहायक हैं। साहित्यके माध्यमसे उन्होंने वैचारिक क्रान्तिकी भूमिका तैयार करनेका प्रयास किया है। विचारोंसे वे काफी दूरतक मार्क्सवादी हैं, पर कट्टरतासे मुक्त होनेके कारण इससे उनकी साहित्यिकताको प्रायः क्षति नहीं पहुँची है, उससे वे लाभान्वित ही हुए हैं।

यशपाल पहले-पहल कहानीकारके रूपमें हिन्दी-जगत्‌में आये। अबतक उनके लगभग एक दर्जन कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। यशपाल मुख्यतः मध्यवर्गीय जीवनके कलाकार है और इस वर्गसे सम्बद्ध उनकी कहानियाँ बहुत ही मार्मिक बन पड़ी हैं। मध्यवर्गकी असंगतियों,

कमजोरियों, विरोधाभासों, रूढ़ियों आदिपर इतना प्रबल कशाघात करनेवाला कोई दूसरा कहानीकार नहीं है। दो विरोधी परिस्थितियों का वैषम्य प्रदर्शित कर व्यंग्यकी सर्जना उनकी एक प्रमुख विशेषता है। यथार्थ जीवनको नवीन प्रसंगोद्भावना द्वारा वे अपनी कहानियोंको और भी प्रभावशाली बना देते हैं।

मध्यवर्ग अपनी ही रूढ़ियोंमे जकड़ा हुआ कितना दयनीय हो जाता है, इसका अच्छा खास उदाहरण 'चार आने' है। झूठी और कृत्रिम प्रतिष्ठाके बोझको ढोते-ढोते यह वर्ग अपने दैन्य और विवशतामे उजागर हो उठा है। 'गवाही' और 'सोमाका साहस'मे समाजके गलीज, नकाब और कृत्रिमताकी तस्वीरे खींची गयी हैं। इस वर्गके वैषम्यमे निम्न वर्गको रखकर उसके अहंकार और अमानवीय व्यवहारको बहुत ही मार्मिक ढगसे अभिव्यक्त करनेमे यशपाल खूब कुशल है। 'एक राज' में मालकिन और नौकरकी मनोवृत्तियोंकी विषमताओंको इस तरह उभारा गया है कि पाठक नौकरकी सहानुभूतिमें तिलमिला उठता है। 'गुडबाई दर्द दिल' मे रिक्शेवालेके प्रति की गयी अमानुषिकता पाठकोंके मनमे गहरी कचोट पैदा करती है। इस प्रकारकी विषमताको अंकित करनेके लिए यशपालने प्रायः उच्च मध्यवर्गीय व्यक्तियों को सामने रखा है क्योंकि सामान्य मध्यवर्गीय व्यक्ति तो अपनी उलझनोंसे ही खाली नही हो पाता।

यशपालके व्यंग्यका तीखा रूप '८०/१००', 'ज्ञानदान'आदिमे देखा जा सकता है। सामान्यतः कहा जाता है कि उन्होंने अपनी कथाके लिए रोटी और सेक्सकी समस्याएँ चुनी है। यशपालकी कहानियोमे कोई न कोई जीवन्त समस्या है पर वे पूर्णतः कलात्मक आवरणमें व्यक्त हुई हैं। जहाँ उनकी समस्यावो कलात्मक आच्छादन नहीं मिल सका, वहाँ कहानीका कहानीपन सन्दिग्ध हो गया है।

उपन्यासोंमे यशपालका दृष्टिकोण और भी अधिक अच्छी तरह उभर सका है। उनका पहला उपन्यास 'दादा कामरेड' क्रान्तिकारी जीवनका चित्रण करते हुए मजदूरोंके संघटनको राष्ट्रोद्धारका अधिक संगत उपाय बतलाता है। 'देश द्रोही' कलाकी दृष्टिमे 'दादा कामरेड'से कई कदम आगे है। इस उपन्यासमे गान्धीवाद तथा कांग्रेसकी तीव्र आलोचना करते हुए लेखकने समाजवादी व्यवस्थाका आग्रह किया है पर 'दिव्या' यशपालके श्रेष्ठ उपन्यासोमे एक है। इस उपन्यासमे युग-युगकी उस दलित-पीडित नारीकी करुण कथा है, जो अनेकानेक संघर्षोंसे गुजरती हुई अपना स्वस्थ मार्ग पहचान लेती है। 'मनुष्यके रूप' मे परिस्थितियोके घात-प्रतिघातमे मनुष्यके बदलते हुए रूपोंको प्रभावशाली ढंगसे चित्रित किया गया है।'अमिता' उपन्यास 'दिव्या'-की भाँति ऐतिहासिक है।

अभी हालमे यशपालका अत्यन्त विशिष्ट उपन्यास 'झूठ-सच' प्रकाशित हुआ है। विभाजनके समय देशमें जो भीषण रक्तपात और अव्यवस्था उत्पन्न हुई, उसके व्यापक फलकपर झूठ-सचका प्रभविष्णु तथा रंगीन चित्र खींचा गया है। इसके दो भाग हैं—वतन और देश तथा देशका भविष्य। प्रथम भागमें विभाजनके फलस्वरूप लोगोंके वतन छूटने और द्वितीय भागमें बहुत-सी समस्याओंके समाधानका चित्रण हुआ है। देशके समसामयिक वातावरणको यथासम्भव ऐतिहासिक यथार्थके रूपमें रखा गया है। विविध समस्याओंके साथ-साथ इस उपन्यासमें जिन नये नैतिक मूल्योंकी प्रतिष्ठा की गयी है, वे रूढिग्रस्त विचारोंको प्रबल झटका देते हैं।

एक सफल कथाकार होनेके साथ-साथ यशपाल अच्छे व्यक्तित्व-व्यंजक निबन्धकार भी हैं। वे अपने दृष्टिकोणके आधारपर सड़ी-गली रूढियों, ह्रासोन्मुखी प्रवृत्तियोंपर जमकर प्रहार करते हैं। उन्होंने सरस तथा व्यंग्य-विनोदगर्भ संस्मरण और रेखाचित्र भी लिखे हैं। 'न्यायका संघर्ष', 'देखा, सोचा, समझा', 'सिंहावलोकन' (दो भाग) आदिमें उनके निबन्ध, संस्मरण और रेखाचित्र संगृहीत हैं।

यशपाल हिन्दीके अतिशय शक्तिशाली तथा प्राणवान् कलाकार हैं। अपने दृष्टिकोणको व्यक्त करनेके लिए ही उन्होंने साहित्यका माध्यम अपनाया है पर उनका साहित्य-शिल्प इतना जोरदार है कि विचारोंकी अभिव्यक्ति मे उनकी साहित्यिकता कहींपर भी क्षीण नहीं हो पायी है।

कृतियाँ : कहानी-संग्रह—'ज्ञानदान' (१९४३ ई०), 'अभिशप्त' (१९४३ ई०), 'तर्कका तूफान' (१९४४ ई०), 'भस्मावृत चिनगारी' (१९४६ ई०), 'वो दुनिया' (१९४८ ई०), 'फूलोका कुर्त्ता' (१९४९ ई०), 'धर्मयुद्ध' (१९५० ई०), 'उत्तराधिकारी' (१९५१ ई०), 'चित्रका शीर्षक' (१९५१ ई०)। उपन्यास—'दादा कामरेड' (१९४१ ई०), 'देशद्रोही' (१९४३ ई०), 'पार्टी कामरेड' (१९४७ ई०), 'दिव्या' (१९५४ ई०), 'मनुष्यके रूप' (१९४९ ई०), 'अमिता' (१९५६ ई०), 'झूठ-सच' (१९६० ई०)। निबन्ध आदि—'न्यायका संघर्ष' (१९४० ई०), 'चक्कर क्लब' (१९४३ ई०), 'बात-बातमें बात' (१९५० ई०), 'देखा, सोचा, समझा' (१९५१ ई०), 'सिंहावलोकन' (१९५२ ई०) 'गान्धीवादकी शव-परीक्षा' (१९४२ ई०)। —ब० सि०

यशवंत सिंह—दे० 'जसवन्तसिंह द्वितीय'।

यशोदा—नन्दकी भांति यशोदाका नाम भी कृष्ण-कथाके प्राचीन सन्दर्भोंमे अपेक्षाकृत बादमें सम्मिलित हुआ जान पड़ता है (दे० 'नन्द')। 'बौद्ध घत जातक'मे कृष्णको पालने वाली कंसकी दासीका नाम नन्द गोपा बताया गया है। पुराणोंमें वर्णित कृष्णकी बाल-लीलामे अवश्य यशोदा बराबर कृष्णकी वात्सल्यमयी माताके रूपमे चित्रित हुई हैं। इस सम्बन्धमें भागवत पुराणमें ही सबसे अधिक विस्तार पाया जाता है। भागवतमे सूत्र लेकर सूरदासने यशोदाके वात्सल्यका विशद चित्रण किया है। मन, वचन और कर्मसे यशोदाका बाह्याभ्यन्तर उनके स्नेहशील, सरल मातृत्वकी सूचना देता है। वह इतनी सरल थीं कि सबपर विश्वास करती थी। पूतनाके कपटाचरणपर भी उन्हें आशंका नहीं हुई। उनके वात्सल्यकी तीव्रता और अखण्डता का सबसे बडा प्रमाण यह है कि न तो कृष्णके द्वारा किये गये विस्मयजनक अलौकिक कृत्योंसे प्रभावित होकर वे उनके प्रति दैन्यपूर्ण भक्ति भाव प्रकट करती हैं और न कृष्णके गोपियोंके प्रति किशोरसुलभ प्रेमाचरणके प्रमाण

और उपालम्भ पाकर अपने भावमें परिवर्तन आने देती है। कृष्णपर बड़ेसे बड़े संकट आते हैं, जिनका वे विस्मय-जनक ढंगसे क्षणमात्रमें निवारण कर देते हैं। कभी-कभी यशोदा इसे देखकर चकित अवश्य हो जाती हैं परन्तु अन्तमें उनका मातृ-हृदय कृष्णके कुशल-क्षेमके लिए चिंतित, आशंकित और अधीर होता हुआ ही चित्रित किया गया है। सूरदासने यशोदाके स्वभावमें चतुरता और विनोदप्रियताका भी सन्निवेश किया है। कभी-कभी वे श्याम और बलरामको यह कहकर चिढाती है कि मैंने तुम्हें गायें चरानेके लिए मोल लिया है, इसीलिए मैं रात दिन तुमसे टहल कराती रहती हूँ। गोपियोंके उपालम्भ सुनकर यशोदा अत्यन्त क्रुद्ध होती हैं और क्रोधके वशीभूत होकर कृष्णको बाँध देती है परन्तु अन्तमे उन्हे अपने इस क्रूर कृत्यपर पछताना पड़ता है। राधाके प्रति उनका ममतापूर्ण स्नेहभाव हैं। पहली भेंटमें ही वे राधाको कृष्णकी भावी पत्नीके रूपमे कल्पित करके मन ही मन प्रसन्न होती हैं और इसे कृष्णके साथ खेलनेके लिए प्रोत्साहित करती हैं। सूरदासने यशोदाके मातृ-व्यक्तित्वके चित्रणमें अनेकानेक भावोंका आश्रय लिया है और उन समस्त भावोंके द्वारा वात्सल्यकी व्यंजना की है। इस भाव चित्रणमे सबसे अधिक मर्मस्पर्शी चित्र विरहावस्थाके हैं। अक्रूरके साथ जिस समय कृष्ण-बलराम मथुरा जाने लगते हैं, उस समय यशोदा अत्यन्त दीन होकर अक्रूरसे जो विनय करती हैं, उससे प्रकट होता है कि उनके व्यक्तित्वमे ब्रजके प्रमुखकी पत्नी होनेके नाते जो भी गौरव-गरिमा थी, वह एकमात्र कृष्ण पर ही आश्रित थी। विदाके समय यशोदाका स्नेहविह्वल हृदय अत्यन्त कातर हो जाता है और वे सभीसे प्रार्थना करती हैं कि कृष्णको रोकनेका कोई उपाय किया जाय। इसके बाद यशोदाका वात्सल्य दैन्य, आत्मग्लानि, पश्चात्ताप और आत्मत्याग-पूर्ण मंगल-कामनाओंके रूपमें ही प्रकट हुआ है। उनके व्यक्तित्वमें वात्सल्यके अतिरिक्त कोई अन्य भाव नही है, इसका प्रबल प्रमाण उस समय मिलता है, जब नन्दके मथुरासे लौटने पर वे उन्हें अत्यन्त कठोर शब्दोंमें धिक्कारती हैं और कहती हैं कि तुम श्यामको छोड़कर जीवित कैसे लौटे, दशरथकी भाँति वहीं प्राण क्यों नहीं गँवा दिये। कृष्णके वियोगमें यशोदाकी दीनताकी पराकाष्ठा उस समय दिखाई देती है, जब वे पन्थीके द्वारा देवकीके पास अपना करुण सन्देश भेजती हैं और इच्छा प्रकट करती है कि कृष्णकी धायके रूपमें ही उनका स्थान सुरक्षित माना जाय। वियोगमें यशोदाका पुत्र-प्रेम प्रेमकी उस उत्कृष्ट स्थितिका आदर्श उपस्थित करता है, जिसमे प्रेम-पात्रके कुशल-क्षेमके अतिरिक्त और कोई आकांक्षा नही रह जाती।

सूरदासके बाद कृष्ण-काव्यमे वात्सल्यका चित्रण प्रायः नहीं हुआ। इसलिए यशोदाका नामोल्लेख भी यत्र-तत्र माधुर्य-भक्ति और शृंगार-रसके प्रसंगोंमें ही आया है। इस नामोल्लेखमें सूर द्वारा चित्रित यशोदाके चरित्रका ही संकेत मिलता है। आधुनिककालके भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, जगन्नाथदास 'रत्नाकर' तथा अन्य ब्रजभाषाके कवियोंने भी यशोदाका कहीं-कहीं संकेत मात्र किया है। 'रत्नाकर' के 'उद्धव-शतक'की यशोदा उद्धवके हाथ कृष्णके लिए नवनीत भेजकर अपना वात्सल्य प्रकट करती चित्रित हुई हैं। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'के 'प्रियप्रवास'में एक सम्पूर्ण सर्ग यशोदाके मातृ-सुलभ कृष्ण-प्रेमके चित्रणके लिए लिखा गया है। 'प्रियप्रवास'की यशोदाके चरित्रकी मौलिक विशेषता यह है कि वे अपने पुत्रके प्रवास पर शोकाकुल होते हुए भी उत्साह प्रकट करती हैं क्योंकि उन्हें विश्वास है कि उनका पुत्र बाहर जाकर लोक-रक्षा और समाज-सेवाके कार्य करेगा। मैथिलीशरण गुप्तने 'द्वापर'में यशोदाका चरित्र-चित्रण बहुत कुछ सूर द्वारा वर्णित यशोदाके आधार पर ही किया है। वस्तुतः यशोदाके चरित्र-चित्रणमें सूरके बाद किसी कविने उल्लेखनीय मौलिकताका परिचय नहीं दिया।

[सहायक ग्रन्थ—सूरदास : ब्रजेश्वर वर्मा, हिन्दी परिषद् विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।] —ब्र० व०

यशोदानंदन—'शिवसिंह सरोज'में लिखित इनके उपस्थिति-काल १८२६ ई० (सं० १८८२) के अतिरिक्त और कोई परिचय नहीं मिलता। शुक्लजीने इसे इनका जन्म-काल मान लिया है। रहीमके समान इनकी भी एक छोटी सी 'बरवै-नायिका-भेद' (सन् १८१५ ई०) नामक रचना बतायी जाती है, जिसे शुक्लजीने रहीमकी रचनासे अच्छी नहीं तो उसके टकरकी तो माना ही है। इसमें ९ बरवै संस्कृतमें तथा ५३ ठेठ अवधी में हैं, जिससे इनके संस्कृत-ज्ञान तथा ठेठ-भाषामे सुन्दर, सरस और कोमल पद-विन्यासके साथ रचना करनेका सामर्थ्य और इनकी मौलिकताका भी परिचय मिलता है। स्वाभाविकता तथा भावुकतामें यह रचना उच्चकोटिकी रचनाओंसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। ठेठ-भाषाको साहित्यिक रूपमे ढालनेका सुन्दर प्रयत्न है। यथास्थान केवल प्रचलित फारसी शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं।

[सहायक ग्रन्थ—शि० सिं० स०; हि० सा० इ०; हि० सा० बृ० इ० (भा० ६)।] —आ० प्र० दी०

यशोदानंदन अखौरी-(रचनाकाल—१९०४ ई०)। अखौरीजी यदा-कदा लिखनेवाले लेखकोंमे थे। आप पटना निवासी थे। आपने 'पाटलिपुत्र' तथा 'भारतमित्र' के सम्पादकीय विभागमें कार्य किया था। ये द्विवेदी युगके निबन्धलेखक थे तथा कृष्णलालने 'इत्यादिकी आत्म कहानी' नामक इनके एक निबन्धकी चर्चा की है ('आधुनिक हिन्दी साहित्यका विकास' पृ० ३४)। यह निबन्ध १९०४ ई० में 'सरस्वती' में प्रकाशित हुआ था। —दे० शं० अ०

यशोधरा १—इसका प्रकाशन सन् १९३२ ई०में हुआ। अपने छोटे भाई सियारामशरण गुप्तके अनुरोधपर मैथिलीशरण गुप्तने यह पुस्तक लिखी थी। 'यशोधरा'का उद्देश्य है पति-परित्यक्ता यशोधराके हार्दिक दुःखकी व्यंजना तथा वैष्णव सिद्धान्तोंकी स्थापना। अमिताभकी आभासे चकित भक्तोंको अदृश्य यशोधराकी पीड़ाका, मानवीय सम्बन्धोंके अमर गायक, मानव-सुलभ सहानुभूतिके प्रतिष्ठापक मैथिलीशरणकी अन्तःप्रवेशिनी दृष्टिने ही सर्वप्रथम साक्षात्कार किया। साथ ही "यशोधरा'के

माध्यमसे संन्यासपर गृहस्थ-प्रधान वैष्णव धर्मकी गौरव-प्रतिष्ठा की है। प्रस्तुत काव्यका कथारंभ गौतमके वैराग्य चिन्तन से होता है। जरा, रोग, मृत्यु आदिके दृश्योंसे वे भयभीत हो उठते हैं। अमृत तत्त्वकी खोजके लिए गौतम पत्नी और पुत्रको सोते हुए छोड़कर 'महाभिनिष्क्रमण' करते हैं। यशोधराका निरवधि विरह अत्यन्त कारुणिक है। विरहकी दारुणतासे भी अधिक उसको खलता है प्रिय का "चोरी चोरी जाना"। इस अपमानित और कष्टपूर्ण जीवनकी अपेक्षा यशोधरा मरणको श्रेष्ठतर समझती है परन्तु उसे मरणका भी अधिकार नहीं है, क्योंकि उसपर राहुलके पालन-पोषणका दायित्व है। फलतः "आँचलमें दूध" और "आँखोंमें पानी" लिए वह जीवनयापन करती है। सिद्धि प्राप्त होनेपर बुद्ध लौटते हैं, सब लोग उनका स्वागत करते हैं परन्तु मानिनी यशोधरा अपने कक्षमें ही रहती है। अन्ततः स्वयं भगवान् उसके द्वार पहुँचते हैं और भीख माँगते हैं। यशोधरा उन्हें अपनी अमूल्य निधि राहुलको दे देती है तथा स्वयं भी उनका अनुसरण करती है। इस कथाका पूर्वार्द्ध चिरविश्रुत एवं इतिहास-प्रसिद्ध है पर उत्तरार्द्ध कविकी अपनी उर्वर कल्पनाकी सृष्टि है।

यशोधराका विरह अत्यन्त दारुण है और सिद्धि-मार्गकी बाधा समझी जानेके कारण तो उसके आत्म-गौरवको बड़ी ठेस लगती है परन्तु वह नारीत्वको किसी भी अंशमें हीन माननेको प्रस्तुत नहीं है। वह भारतीय पत्नी है, उसका अर्धांगी-भाव सर्वत्र मुखर है—"उसमें मेरा भी कुछ होगा जो कुछ तुम पाओगे।" सब मिलाकर यशोधरा आदर्श पत्नी, श्रेष्ठ माता और आत्मगौरवसम्पन्न नारी है परन्तु गुप्तजीने यथासम्भव गौतमके परम्परागत उदात्त चरित्रकी रक्षा की है। यद्यपि कविने उनके विश्वासों एवं सिद्धान्तोंको अमान्य ठहराया है तथापि उनके चिर-प्रसिद्ध रूपकी रक्षाके लिए अन्तमें यशोधरा और राहुलको उनका अनुगामी बना दिया है। प्रस्तुत काव्यमें वस्तुके संघटन और विकासमें राहुलका समधिक महत्त्व है। यदि राहुल-सा लाल गोदमें न होता तो कदाचित् यशोधरा मरणका ही वरण कर लेती और तब इस 'यशोधरा'का प्रणयन ही क्यों होता। 'यशोधरा' काव्यमें राहुलका मनो-विकास अंकित है। उसकी बालसुलभ चेष्टाओंमें अद्भुत आकर्षण है। समयके साथ-साथ उसकी बुद्धिका विकास भी होता है, जो उसकी उक्तियोंमें स्पष्ट है परन्तु यह सब एकदम स्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। कहीं-कहीं तो राहुल प्रौढ़ोंके समान तर्क, युक्तिपूर्वक वार्तालाप करता है, जो जन्मजात प्रतिभासम्पन्न बालकके प्रसंगमें भी निश्चय ही अतिरंजना है।

'यशोधरा'का प्रमुख रस शृंगार है—शृंगारमें भी केवल विप्रलम्भ। संयोगका तो एकान्ताभाव है। शृंगारके अतिरिक्त इसमें करुण, शान्त एवं वात्सल्य भी यथास्थान उपलब्ध हैं। प्रस्तुत काव्यमें छायावादी शिल्पका आभास है। उक्तिको अद्भुत कौशलसे चमत्कृत एवं सप्रभाव बनाया गया है। यशोधराकी भाषा शुद्ध खड़ीबोली है—प्रौढ़ता, कान्तिमयता और गीतिकाव्यके उपयुक्त मृदुलता और मसृणता उसके विशेष गुण हैं, इस प्रकार यशोधरा एक उत्कृष्ट रचना सिद्ध होती है। केवल शिल्पकी दृष्टिसे तो वह 'साकेत'से भी सुन्दर है। काव्य-रूपकी दृष्टिसे भी 'यशोधरा' गुप्तजीके प्रबन्ध-कौशलका परिचायक है। यह प्रबन्ध-काव्य है—लेकिन समाख्यानात्मक नहीं। चरित्रोद्घाटनपर कविकी दृष्टि केन्द्रित रहनेके कारण यह नाट्य-प्रबन्ध है और एक भावनामयी नारीका चरित्रो-द्घाटन होनेसे इसमें प्रगीतात्मकताका प्राधान्य है। अतः 'यशोधरा'को प्रगीतात्मक नाट्य-प्रबन्ध कहना चाहिए, जो एक सर्वथा एवं एकदम परम्परामुक्त काव्य-रूप है। —उ० का० गो०

यशोधरा २—भगवतीचरण वर्माकृत उपन्यास 'चित्रलेखा'में विरागी सामन्त मृत्युंजयकी कन्या यशोधरा चित्रलेखाको भी चमत्कृत कर सकी थी। यों चित्रलेखाके सौन्दर्यमें उन्माद था और यशोधराका सौन्दर्य शान्तिका प्रतीक था। "उसके पास बैठकर मनुष्य पवित्रताको देख सकता था, पवित्रताका अनुभव कर सकता था और पवित्र हो सकता था।" "उसकी अभेद्य गम्भीरतामें जीवनकी एक मौन पहेली छिपी थी।" उसकी सरलतामें भी एक गम्भीरता थी। श्वेतांकके उतावलेपनपर उसने उसे अनेक बार अत्यन्त कोमलतासे संयत करनेका प्रयास किया था। उसने श्वेतांकसे कहा था, "मनुष्यका कर्तव्य है, दूसरेकी कमजोरियोंपर सहानुभूति प्रकट करना" तथा उसके अनुसार "मनुष्य वही श्रेष्ठ है, जो अपनी कमजोरियोंको जानकर उन्हें दूर करनेका प्रयत्न कर सके।"

प्रणयकी कोई गहरी पिपासा या आकुलता हमें यशोधरा में प्राप्त नहीं होती। पिताके प्रस्तावके अनुसार ही वह पहले बीजगुप्तसे विवाह करना चाहती है पर बीजगुप्तके अस्वीकार करनेपर वह व्यथित भी नहीं होती। श्वेतांक के प्रेम-प्रस्तावपर उसे तनिक आश्चर्य अवश्य होता है पर उसका प्रत्याख्यान वह नहीं करती। सरलता एवं सहजताके साथ वह जीवन बितानेमें विश्वास करती है। बीजगुप्तकी प्रकृतिकी अपूर्णतावाली बातें या अन्य विचार उसे चकित करते हैं, वह उसके प्रति श्रद्धाका अनुभव अपने मनमें करने लगती है पर यह श्रद्धा प्रणयधर्मा नहीं है। अन्तमें उसका विवाह सामन्त श्वेतांकके साथ हो जाता है। सब मिलाकर उसका उपयोग उपन्यासमें बीजगुप्तका मनोद्वन्द्व उभारने भरको ही हुआ है। इससे अधिक उसकी उपयोगिता नहीं है। —दे० शं० अ०

याकूब खाँ-इनके विषयमें विशेष कुछ ज्ञात नहीं है। इनका लिखा हुआ 'रामभूषण' नामक ग्रन्थ उपलब्ध है। इसकी हस्तलिखित प्रति दतिया राज पुस्तकालयमें सुरक्षित है। मिश्रबन्धुओंने इसका रचनाकाल १७१८ ई० माना है। इस ग्रन्थमें रस, अर्थात् नायिका-भेद और अलंकारका विषय एक साथ चलता है—"अलंकार संयुक्त कहौं नायिका भेद पुनि। बरनौं क्रम निजु उक्ति लक्षन और उदाहरनि॥" कविका कहना है कि अलंकारके बिना नायिका शोभित नहीं होती। बीच-बीचमें ब्रजभाषा गद्यमें टीका भी है। सर्वत्र दोहा तथा सोरठा छन्दका प्रयोग हुआ है। इस कृतिमें इस विषयपर भी प्रकाश पड़ा है कि कौन-कौन अलंकार किस रसमें अधिक उपयुक्त होता है

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० बृ० इ० (भा० ६), हि० का० शा० इ० ।] —सं०

याज्ञवल्क्य–व्यासकी चौथी पीढ़ीमें याज्ञवल्क्यका जन्म बताया जाता है। इनका दूसरा नाम वाजसनेय था। 'शुक्ल यजुर्वेद', 'शतपथ ब्राह्मण' तथा 'बृहदारण्यक उपनिषद्'के विशेष अधिकारी विद्वान् समझे जाते रहे हैं, इसीलिए यह भ्रम हो गया कि ये सब इन्हींके द्वारा लिखे गये हैं किन्तु इतना तो माना जा सकता है कि इनमेंसे अधिकांश मन्त्रोंके प्रणयनमें इनका हाथ रहा है। इनके द्वारा लिखी हुई 'याज्ञवल्क्य स्मृति' निश्चित ही अपनी दिशामें न्यायकी उच्चतम कृति कही जा सकती है। विज्ञानेश्वरकी मिताक्षरा टीका इसकी अन्य टीकाओंमें अधिक प्रचलित है। इसके अतिरिक्त योगपर इनकी एक पुस्तक 'याज्ञवल्क्य गीता' प्रसिद्ध है। 'रामचरितमानस'में याज्ञवल्क्य रामकथाके वक्ता तथा भारद्वाज मुनि उनके श्रोता रहे हैं। —यो० प्र० सिं०

यारी साहब–यारी साहब बावरी पंथके प्रसिद्ध सन्त बीरू साहबके शिष्य थे। बावरीपन्थके दो केन्द्र थे—उत्तर प्रदेशका गाजीपुर जिला और दिल्ली प्रदेश। यारी साहबका सम्बन्ध दिल्ली केन्द्रसे था। इनका वास्तविक नाम यार मुहम्मद था। कहा जाता है कि इनका सम्बन्ध किसी शाही घरानेसे था और इन्होंने ऐश्वर्यमय जीवन त्याग कर सन्त-जीवन स्वीकार किया था। इनकी जन्म और मृत्यु-तिथियोंके विषयमें निश्चित रूपसे कुछ भी नहीं कहा जा सकता। डाक्टर बड़थ्वाल इन्हें सन् १६८६ ई० से सन् १७२३ ई० तक विद्यमान मानते हैं। 'रत्नावली'के सम्पादकके अनुसार यह अवधि सन् १६६८ ई० और सन् १७२३ ई०के बीच होनी चाहिए। परशुराम चतुर्वेदी इन्हें मलूकदासका समकालीन मानते हैं। इनके पाँच शिष्य प्रसिद्ध हैं—केशवदास, सूफीशाह, शेखन शाह, हसनमुहम्मद और बूला साहब। प्रथम चार शिष्योंका सम्बन्ध दिल्ली केन्द्रसे था। पाँचवें शिष्य बूला साहबने इनके पन्थकी एक गद्दी भुरकुड़ा, जिला गाजीपुरमे स्थापित की, जो आज तक चल रही है। आपकी रचनाओंका एक संग्रह 'रत्नावली' नामसे बेलवेडियर प्रेस, प्रयागसे प्रकाशित हुआ है। आपने प्रेमको साधनाका केन्द्र-बिन्दु माना है। आपकी विचारधारा पर सूफी सन्तोंका पर्याप्त प्रभाव लक्षित होता है। आपने "अन्दर यकीन बिना" "इल्म"को व्यर्थ माना है। संसारको मिथ्या बताया है। एक ईश्वरमें आस्था व्यक्त की है। सत्यको हृदयस्थ स्वीकार किया है और दरिया साहब (बिहार वाले)की भाँति योग-मार्गको "विहंगम मत" कहा है। आपकी कविता अनलंकृत होने पर भी रमणीय है। मिलन और विरहके आध्यात्मिक चित्र अतीव भव्य हैं। आपकी भाषामें अरबी-फारसीके शब्द अधिक प्रयुक्त हुए हैं। आपने कवित्त, सवैया, साखी (दोहा), पद, झूलना आदि कई छन्दोंका प्रयोग किया है। आपकी वाणी, तन्मयता और निर्द्वन्द्वताकी मनःस्थितिमें निःसृत हृदयका सहजोद्गार प्रतीत होती है।

[सहायक ग्रन्थ—उत्तरी भारतकी सन्त परम्परा और सन्त काव्य : परशुराम चतुर्वेदी; सन्त बानी संग्रह, भाग पहिला, बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग; हिन्दी काव्यमें निर्गुण सम्प्रदाय : पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल।] —रा० चं० ति०

युगपथ–(प्र० १९४८ ई०) सुमित्रानन्दन पन्तका नवाँ काव्य-संकलन। इसका पहला भाग 'युगान्त'का नवीन और परिवर्द्धित संस्करण है। दूसरे भागका नाम 'युगान्तर' रखा गया है, जिसमें कविकी नवीन रचनाएँ संकलित हैं। अधिकांश रचनाएँ गान्धीजीके निधनपर उनकी पुण्य-स्मृतिके प्रति श्रद्धांजलियाँ हैं। शेष रचनाओंमें कवीन्द्र रवीन्द्र, अवनीन्द्रनाथ ठाकुर और अरविन्द घोषके प्रति लिखी गयी प्रशस्तियाँ भी मिलती हैं। अनेक रचनाओंपर कविके अरविन्द-साहित्यके अध्ययनकी छाप स्पष्ट है। अन्तिम रचना 'त्रिवेणी' ध्वनि-रूपक है, जिसमें गंगा, यमुना और सरस्वतीको तीन विचारधाराओंका प्रतिनिधि मानकर उनके संगममें मानव-मात्रके कल्याणकी कल्पना की गयी है।

'युगपथ' का सबसे बड़ा आकर्षण 'श्रद्धाके फूल' शीर्षक सोलह रचनाएँ है, जिनमें कविने बापूके मरणमें अभिनव जीवनकल्पकी कल्पना की है और उन्हें अपराजित अहिंसाकी ज्योतिर्मयी प्रतिमाके रूपमें अंकित किया है। गान्धीजीके महान् व्यक्तित्व और कृतित्वको सोलह रचनाओंमें समेट लेना कठिन है और 'युगान्त' तथा 'युगवाणी' में कविने उनके व्यक्तित्व तथा उनकी विचाराधाराको कवि-हृदयकी अपार सहानुभूति देकर चित्रित किया है परन्तु इन सोलह रचनाओंमे बापूको श्रद्धांजलि देते हुए कवि काव्य, कला और संवेदनाके उच्चतम शिखरपर पहुँच जाता है। गान्धीजीके बलिदानपर प्रारम्भमे कवि स्तब्ध रह जाता है फिर शोक-भावनासे अभिभूत, परन्तु अन्तमें वह उनकी मृत्युको 'प्रथम अहिंसक मानव' के बलिदानके रूपमें चित्रित कर उनकी महामानवताकी विजय घोषित करता है। वह शुभ्र पुरुष (स्वर्ण पुरुष) के रूपमे बापूका अभिनन्दन करता और उन्हे भारतकी आत्मा मानकर देशको दिव्य जागरणके लिए आहूत करता है। यह सोलह प्रशस्ति-गीतियाँ कविकी 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' साधनाकी प्रतिनिधि हैं।

संकलनकी कुछ अन्य रचनाएँ भारतकी स्वतन्त्रता-प्राप्तिपर उद्बोधन अथवा जय-गीतके रूपमें सामने आती हैं। कवि भारतको विश्वकी स्वाधीन चेतनाका प्रतीक मानता है और उसके स्वातन्त्र्यमें युग-परिवर्तनकी कल्पना करता है।

राष्ट्रोन्नतिका पर्व उसके लिए 'दीपपर्व' बन जाता है और 'दीपलोक' एवं 'दीपश्री' प्रभृति रचनाओंमे वह मृण्मय दीपोंमें भू-चेतनाकी निष्कम्प शिखा जलती देखता है।

गान्धीजीकी पुण्यस्मृतिमे लिखी रचनाओंके बाद इस संकलनकी सबसे सशक्त रचना 'कवीन्द्र रवीन्द्रके प्रति' है। कविता काफी लम्बी है परन्तु कवि अन्त तक भावना और विचारणाकी उच्च भूमिपर स्थित रह सका है।

परन्तु रचनाके अन्तमें कवि अन्तर्मनकी सूक्ष्म संगठनकी दुहाई देता हुआ भारतकी सांस्कृतिक मेधाके प्रति अपनी आस्था प्रकट करता है और कवीन्द्रके आशीर्वादका आकांक्षी बनता है। —रा० र० भ०

युगलकिशोर शुक्ल—कानपुरनिवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इन्होंने कलकत्तामें कुछ समयतक सदर दीवानी अदालतमें प्रोसीडिंग रीडरका कार्य किया तथा बादमें वकालत भी की। यह हिन्दी पत्रकार-कलाके जन्मदाता माने जाते है क्योंकि इन्होंने १६ फरवरी, सन् १८२६ ई० को सरकारसे लाइसेंस लेकर ३० मई, सन् १८२६ ई० को 'उदन्त मार्तण्ड' नामक समाचार पत्रकी पहली संख्या प्रकाशित की। इससे पहले हिन्दीमें कोई पत्र नहीं प्रकाशित हुआ था। पत्र साप्ताहिक था और प्रत्येक मंगलवारको प्रकाशित होता था। इसका मुख्य उद्देश्य हिन्दी भाषाभाषियोंमें विविध विषयोंका ज्ञान प्रचारित करना था। इस पत्रमें सरकारी अफसरोंकी नियुक्ति और स्थानान्तरणकी सूचनाएँ, यात्रा-वर्णन, व्यापारिक तथा कानूनी सूचनाएँ, जहाजोंकी समय-सारिणी, विदेश-चर्चा, साहित्यिक सूचनाएँ, सार्वजनिक नोटिस आदि प्रकाशित होते थे। यह पत्र दिसम्बर सन् १८२७ ई०को ग्राहकोंकी कमीके कारण बन्द हो गया। 'उदन्त मार्तण्ड'के अवतरणोंको देखनेसे यह प्रतीत होता है कि युगलकिशोर शुक्लको कई भाषाओंका ज्ञान था क्योंकि उनकी भाषामें संस्कृत, फारसी तथा अंग्रेजीके साथ ब्रजभाषा और खड़ीबोलीकी परिमार्जित शैली मिलती है। 'उदन्त मार्तण्ड' जैसे सुसम्पादित पत्रके बन्द हो जानेपर इन्होंने सन् १८५० ई०मे 'सामदण्ड मार्तण्ड'का प्रकाशन किया। यह पत्र भी जल्दी ही बन्द हो गया। इस प्रकारसे उन्नीसवीं शताब्दीके प्रथम चतुर्थांशमें जो लोग हिन्दी गद्यके विकासकी दिशामें प्रयत्नशील थे, उनमें युगलकिशोर शुक्लका नाम एक सफल पत्रकार तथा हिन्दी पत्रकार-कलाके जन्मदाताके रूपमें उल्लेख्य है। —प्र० ना० टं०

युगल शतक—श्रीभट्टरचित 'युगल शतक' निम्बार्क सम्प्रदायके आचार्योंमे ब्रजभाषाकी प्रथम रचना है। सम्प्रदायमें यह आदिवाणीके नामसे भी विख्यात है। वाणीके नामसे ही स्पष्ट है कि इसमें शतक अर्थात् सौ दोहे हैं। दोहोंके अर्थके विशदीकरणके लिए विभिन्न रागोमें ग्रथित उतने ही पद हैं। ग्रन्थका विभाजन 'सुख' शीर्षकसे किया गया है। कुल ६ प्रकारके सुखोंका वर्णन है—सिद्धान्त सुख, ब्रजलीला सुख, सेवासुख, सहज सुख, सुरत सुख और उत्साह सुख। इस कृतिके अध्ययनसे निम्बार्कीय सिद्धान्त तथा उपासना पद्धतिका तात्त्विक पक्ष सामने आता है। श्रीभट्टकी यह वाणी उनके आभ्यन्तर रसका द्योतन करनेवाली है। वृन्दावनके वैष्णव सम्प्रदायोंमें युगल मूर्तिकी उपासनाका विशेष विधान है। श्रीभट्टजीने इसी युगल मूर्ति राधाकृष्णकी दैनिक-लीलाओंका सरस एवं ललित पदावलीमें वर्णन किया है। वर्णनमें चित्रात्मकता है। जिन सुन्दर दृश्योंकी अवतारणा कविने दोहेमे की है, वह इतनी सर्वांगपूर्ण एवं सटीक है कि पाठकके नेत्रोंके सामने वही दृश्य खड़ा हो जाता है। बिम्ब-विधानकी दृष्टिसे भी यह रचना बहुत सुन्दर है।

भाषाकी दृष्टिसे इस रचनामें पूर्ण प्रासादिकता है। वाक्यावली लघु, अनुप्रासमयी और ललित है। 'युगल शतक'की भाषाको देखकर यह स्पष्ट लक्षित होता है कि ब्रजभाषाका पूर्ण परिष्कार और प्रसार हो जानेके बाद यह काव्य लिखा गया होगा। प्रवाह और प्रांजलताकी दृष्टिसे इसके दोहे सूरसे भी अधिक परिष्कृत हैं। साथ ही यह भी विदित होता है कि जिस भक्त कविकी यह रचना है, उसने और भी बहुतसे पद ब्रजभाषामें अवश्य लिखे होंगे। यह कृति पहली नहीं मालूम होती। दोहेके नीचे भाव विशदीकरणके पदोंमें गेयताकी मात्रा उत्कृष्ट कोटिकी है। कहते हैं श्रीभट्टजी इन पदोंके गानके समय आत्मविभोर हो जाते थे और उन क्षणोंमें उन्हे भगवान्‌के युगलरूपके प्रत्यक्ष दर्शन हो जाते थे।

'युगलशतक'के रचनाकालके सम्बन्धमें विद्वानोंमें बहुत मतभेद है। निम्बार्क सम्प्रदायके अनुसार यह ग्रंथ संवत् १३५२ मे लिखा गया किन्तु अन्य विद्वान् इसे संवत् १६५२ की रचना मानते हैं। इस विवादका कारण 'युगलशतक'के अन्तमें दिया हुआ दोहा है। दोहेमें 'नयन बान पुनिराग शशि'को लेकर विवाद है। राम पाठ माननेसे १३५२ और राग पाठ माननेसे १६५२ संवत् बनता है। कुछ विद्वान् इस दोहेको भी प्रक्षिप्त ठहराते हैं किन्तु भाषा आदिके आधारपर यह रचना सं० १६५२ (१५९५ ई०) संवत्‌की ही प्रतीत होती है। —वि० स्ना०

युगलानन्य शरण—इनका आविर्भाव पटना जिलेके इस्लामपुर गाँवमे सन् १८१८ ई० (कार्तिक शुक्ल ७, सं० १८७८) को हुआ था। पन्द्रह वर्षकी अवस्थामें सारनके श्रृंगारी रामोपासक युगलप्रियाके शिष्य होकर विरक्त वेष धारण कर लिया। कुछ दिन काशीमें रहकर ये अयोध्या चले आये। यही इनकी प्रधान साधना-भूमि बनी। अयोध्यामे लक्ष्मण किला पर इनकी गद्दी अब तक स्थापित है। रीवाँ नरेश विश्वनाथ सिंह और रघुराजसिंहने इनकी प्रेरणासे चित्रकूटमे भव्य राम मन्दिर और सन्त निवास निर्मित कराये। परवर्ती रसिक सन्तोंमे इनकी शिष्य-परम्परा सर्वाधिक विस्तृत एवं प्रख्यात हुई। इनकी रचनाओंकी संख्या ८४ बताई जाती है। उनमेसे निम्नांकित ७५ लक्ष्मण किलाके 'सरस्वती भण्डार'में सुरक्षित हैं—'सीताराम स्नेहसागर', 'रघुबरगुण दर्पण', 'मधुर मंजुमाला', 'सीताराम नाम प्रताप प्रकाश', 'प्रेम परत्व प्रभा दोहावली', 'विनय विहार', 'प्रेम प्रकाश', 'नाम प्रेम', 'प्रवर्द्धिनी', 'सत्संग सतसई', 'भक्त नामावली', 'प्रेम उमंग', 'सुमति प्रकाशिका', 'हृदय हुलासिनी', 'अभ्यास प्रकाश', 'उपदेश नीति शतक', 'उज्जवल उत्कण्ठा विलास', 'मंजु मोद चौंतीसी', 'वर्णविहार', 'मनबोध शतक', 'विरतिशतक', 'वर्णबोध', 'बीसामन्त्र', 'पंचदशी मन्त्र', 'चौंतीसा मन्त्र', 'हर्ष प्रकाश', 'अनन्य प्रमोद', 'नवलनाम चिन्तामणि', 'सन्तवचन विलासिका', 'वर्णउमंग', 'रूप रहस्य पदावली', 'रूपरहस्यानुभव', 'सन्त सुख प्रकाशिका', 'अवधवासी परत्व', 'रामनाम परत्व पदावली', 'सीताराम उत्सव प्रकाशिका', 'अवध विहार', 'सुखसीमा दोहावली', 'उज्जवल उपदेश मन्त्रिका', 'नाममय एकाक्षर कोश', 'योग सिन्धु तरंग', 'युगलवर्ण विलास', 'प्रबोध दीपिका दोहावली', 'दिव्यदृष्टांत प्रकाशिका', 'प्रमोददायिका दोहावली', 'वर्णविहार मोद चौंतीसी', 'उदरचरित्र प्रश्नोत्तरी', 'अष्टादश-

रहस्य', 'जानकी स्नेहहुलास शतक', 'नाम परत्व पंचाशिका', 'वर्णविहार दोहा', 'सन्तविनय शतक', 'विरक्ति शतक', 'विशदवस्तु बोधावली', 'तत्त्वउपदेशत्रयम्', 'बारहराशि सातवार', 'मणिमाल', 'अर्थपंचक', 'मन नसीहत', 'फारसीहुरूफ तहज्जीवार झूलना', 'शिव-शिव अगस्त्यसुतीक्ष्ण संवाद', 'वैष्णवीययोगिनिर्णय', 'पंचायुध स्तोत्र', 'झूलन फारसीहुरूफ', 'झूलन हिन्दी वर्ण', 'नींद बत्तीसी', 'पन्द्रा यंत्र', 'अष्टयाम ककहरा', 'अनन्य प्रमोद', 'प्रीतिपंचासिका', 'नाम विनोद बरसववन बरवै', 'नाम नवरत्न', 'गुरुमहिमा', 'सन्त वचनावली', 'पारस भाग' और 'विनोद विलास'।

युगलानन्यशरण संस्कृत और हिन्दीके तो अधिकारी विद्वान् थे ही, अरबी और फारसी साहित्यमें भी उनकी गहरी पैठ थी। उनकी रचनाओंमें सूफी प्रभाव पर्याप्त मात्रामें पाया जाता है। इनकी अधिकांश कृतियोंकी भाषा अवधी है किन्तु उनमें खड़ीबोलीके भी शब्द बहुतायतसे मिलते हैं। शब्दालंकारोंमें अनुप्रास पर उनका विशेष ध्यान रहता था। यह प्रवृत्ति कहीं-कहीं भावाभिव्यक्तिमें बाधक हुई है। —भ० प्र० सिं०

युगवाणी–(प्र० १९३९ ई०) सुमित्रानन्दन पन्तका पाँचवाँ काव्य-संकलन है। कविने उसे 'गीत-गद्य' कहा है और 'विज्ञापन' में स्पष्ट कर दिया है—"मैंने युगके गद्यको वाणी देनेका प्रयत्न किया है। यदि युगकी मनोवृत्तिका किंचिन्मात्र आभास इनमे मिल सका तो मैं अपने प्रयास को विफल नहीं समझूँगा।" 'दृष्टिपात' (भूमिका) में कवि ने इस संकलनकी रचनाओंपर भी सक्षेपमे प्रकाश डाला है। उसके अनुसार प्राकृतिक रचनाओंको छोड़ कर, इस संकलनमें मुख्यतः पाँच प्रकारकी विचारधाराएँ मिलती हैं : "(१) भूतवाद और अध्यात्मवादका समन्वय, जिससे मनुष्यकी चेतनाका पथ प्रशस्त बन सके। (२) समाजमे प्रचलित जीवनकी मान्यताओंका पर्यावलोचन एवं नवीन संस्कृतिके उपकरणोंका संग्रह। (३) पिछले युगोंके उन मृत आदर्शों और जीर्ण रूढ़ि रीतियोंकी तीव्र भर्त्सना, जो आज मानवताके विकासमें बाधक बन रही हैं। (४) मार्क्सवाद तथा फ्रायडके प्राणिशास्त्रीय मनोदर्शनका युगकी विचारधारापर प्रभाव—जन-समाजका पुनः संगठन एवं दलित लोक समुदायका जीर्णोद्धार। (५) बहिर्जीवनके साथ अन्तर्जीवनके संगठनकी आवश्यकता—राग भावना का विकास और नारी-जागरण।"

इन सूत्रोंके सहारे हम 'युगवाणी' के विचार-पक्षका स्वतन्त्र रूपसे अध्ययन कर सकते हैं। वास्तविकता यह है कि 'युगवाणी' पन्तके जीवन और काव्यके एक निश्चित मोड़की सूचना देती है, जो उसके आलोचकोंके लिए वाद-विवाद तथा स्वीकार-अस्वीकारका प्रश्न रहा है। 'युगवाणी' में कवि गान्धीवादी विचारधाराके साथ (और कुछ अंशोमे उसे छोड़कर भी) मार्क्सकी द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी विचारधाराको अपनाता है और जनशक्तिकी नवीन कल्पनाके साथ समाज-चेतनाका अग्रदूत बनकर उपस्थित होता है। उसकी रचनाओंपर बौद्धिकता और अध्ययनकी छाप गहन होती जाती है और काव्यके तत्त्वोंका ह्रास होता है। जिन लोगोंने पन्तको भावुक और कल्पनाप्रवण कविके रूपमें सौन्दर्य, प्रेम, प्रकृति और मानवके गीत गाते देखा था, वे इस अप्रत्याशित परिवर्तनके लिए तैयार नहीं थे। संक्षेपमें 'युगवाणी' कविकी उस नयी भावभूमिकी उपज है, जो प्रगतिवादी काव्य-धाराके रूपमें विकसित हुई है।

संकलनमें ७७ प्रगीत-मुक्तक हैं। इनमें अनेक विचाराक्रान्त गद्यात्मक रचनाएँ हैं, जिनमें कवि मार्क्सवादकी व्याख्या प्रस्तुत करता है या गान्धीवाद-मार्क्सवादकी तुलनात्मक भूमिका सामने लाता है। 'मार्क्सके प्रति', 'भूतदर्शन', 'साम्राज्यवाद', 'समाजवाद-गान्धीवाद', 'धनपति', 'मध्य-वर्ग', 'कृषक', 'श्रमजीवी' प्रभृति एक दर्जन रचनाएँ कविकी बुद्धिवादी विश्लेषणात्मक प्रवृत्तिकी देन हैं। इनपर उसके समाजवादी अध्ययन और नयी दीक्षाकी छाप है। इनमें हमें मार्क्सवादी जीवनदर्शनकी ऊहात्मक अभिव्यक्ति तथ्य-कथनके रूपमें मिलेगी परन्तु ऐसी रचनाएँ अधिक नहीं है और उनके आधारपर पन्तके परवर्त्ती काव्यको काव्यगुणोंसे एकदम हीन नहीं कहा जा सकता। दूसरी कोटिकी रचनाएँ इस विचारणाका भावपक्ष कही जा सकती हैं, जिनमें कवि जन-जीवन, धरतीके जीवन, नर-नारीके नये मान तथा नवजागरणके बौद्धिक पक्षको अपनी कविताका विषय बनाता है। उसकी नयी कर्मजिज्ञासा 'चींटी' और 'घननाद' जैसी रचनाओंमें मिलती हैं, जो साम्यपर आधारित जीवन-तन्त्र और श्रमको नये मूल्यके रूपमें उपस्थित करती है।

'मानव', 'युग-उपकरण' और 'नवसंस्कृति' रचनाओंमें कविकी नयी जीवनदृष्टि पल्लवित हुई है। मार्क्सवाद, भौतिकवाद और श्रम पर आधारित नये वस्तु-दर्शनको कवि नये भू-दर्शनका रूप देता है। 'पुण्यप्रसू' शीर्षक कवितामें वह आदर्शोन्मुखी जीवन-चेतनाको धरतीकी ओर लौटनेका निमन्त्रण देता है।

छोटे-छोटे अनेक प्रगीतोंमें कवि दलित-पतित मानवताको नये जीवनके प्रति उन्मुख करता है और उसके भावपूर्ण उद्‌बोधन नवनिर्माणके मन्त्रसे अभिषिक्त दिखलाई देते हैं। कवि मार्क्सके अर्थशास्त्रसे ही प्रभावित नहीं है, वह फ्रायडके कामदर्शनको भी मान्यता देता है और उसे भी अपने नवतन्त्रका अंग बनाता है। अतीन्द्रिय प्रेमके प्रति दुराग्रह और कामवर्जनाको वह अतिवाद मानता है। इसीलिए नर-नारीके यौनसम्बन्धकी नैसर्गिकता एवं अनिवार्यता पर उसकी दृष्टि जाती है। 'मानव-पशु', 'नारी' और 'नरकी छाया' रचनाएँ नारी-मुक्ति और काममुक्तिके नये सन्देश से ओतप्रोत हैं। कहनेका तात्पर्य यह है कि संकलनको 'बापू' रचनासे आरम्भ करता हुआ भी कवि गान्धीदर्शनसे धीरे-धीरे दूर हटता जाता है और वस्तु-जगत् ही उसकी चिन्तना एवं भावनाका विषय बन जाता है।

कुछ रचनाओं जैसे 'पलाश', 'पलाशके प्रति' और 'मधुके स्वप्न' में कविने रक्तपलाशको अपनी नयी क्रान्ति-चेतनाका प्रतीक मान कर भावपूर्ण प्रकृति-काव्य प्रस्तुत किया है। धरतीके प्रति कविका आकर्षण 'हरीतिमा' शीर्षक कवितामें मिलता है, जहाँ कवि हरितवसना धराके प्रति हमारी सृजन-शक्तियोंको प्रेरित करता है परन्तु प्रकृतिके

प्रति उसका दृष्टिकोण मार्क्सवादी ही है क्योंकि उनके विचार में निरुपम मानवकी रचना कर प्रकृति हार गयी है और अपनी इस नवीन कृतिमें उसने पूर्णता प्राप्त कर ली है। फलतः प्रकृति मानवके लिए है, मानव प्रकृतिके लिए नहीं। यह स्पष्ट है कि यह नया जीवन-दर्शन कविके स्वर में नया मार्दव भरता है और उसमें यौवनोचित दृढ़ता तथा गम्भीरताका प्रसार करता है। तरुण जीवनकी कर्मण्यता, साहस तथा नवनिर्माणकी आकांक्षा द्वन्द्वात्मक जीवन-बोध के माध्यमसे 'युगवाणी'की रचनाओंमे स्पष्ट रूपमें अभिव्यंजना पा सकी है। —रा० र० भ०

युगांत–(प्र० १९३६) सुमित्रानन्दन पन्तका चौथा काव्य-संकलन है, जिसमें १९३४ ई० से लेकर १९३६ ई० तककी उनकी तैंतीस छोटी-बड़ी रचनाएँ संकलित है। इस रचना की भूमिकामें कविने अपनी काव्यकलाके नये मोड़को अपने शब्दोंमें ही सूचना दी है। वे कहते है "'युगान्त'मे 'पल्लव'की कोमलकान्त कलाका अभाव है। इसमें मैंने जिस नवीन क्षेत्रको अपनानेकी चेष्टा की है, मुझे विश्वास है, भविष्यमें उसे मै अधिक परिपूर्णरूपमे ग्रहण एवं प्रदान कर सकूँगा।" एक प्रकारसे हम इसे सन्धिकालीन रचना कह सकते है, जिसमे गान्धीवादी विचारधाराको स्पष्ट रूपसे आधार बनाया गया है। बादमे यह रचना 'युगपथ' (१९४८)के प्रथम भागके रूपमे प्रकाशित हुई। इस नये संस्करणमे 'युगान्त' वाले अंशमे कुछ नवीन कविताएँ भी सम्मिलित कर दी गयीं।

१९३४-३६ ई०का यह सन्धि-काल कविके लिए हृदय-मन्थनका समय है। इसमे महात्मा गान्धीके नेतृत्वमें देशने निर्माण-क्षेत्रमें नये प्रयोग किये। स्वयं गान्धीजी देशकी जन-शक्तिके प्रतीक बने। सत्याग्रह-संग्रामकी विफलताने भी उनके महामानवीय व्यक्तित्वको नयी तेजस्विता दी। इसीलिए इस संकलनकी सर्वश्रेष्ठ रचना 'बापूके प्रति'मे कविने उन्हें अपनी शतशः प्रणति दी। यह रचना गान्धी-दर्शनकी जाज्वल्यमान मणि है। संकलनकी अधिकांश रचनाएँ कविके मानव-प्रेम और प्रकृति-प्रेमसे ओतप्रोत है और स्वयं गान्धीजीमे वह मानवकी परिपूर्णताके ही दर्शन करता है।

संकलनमे प्रकृतिसम्बन्धी अनेक रचनाएँ है, जो कविके ऐश्वर्यशील कल्पनापूर्ण मनोयोगकी उपज है परन्तु उनमे अभिव्यंजनाका नया स्वरूप दिखलाई देता है। इन रचनाओंमें हम 'गुंजन'की प्रकृति-चेतनाका ही प्रसार देखते हैं, परन्तु यह स्पष्ट है कि कविपर चिन्तनकी छाया बढ़ती जा रही है और उसकी सौन्दर्य-सृष्टि मानवके प्रति करुणासे सचालित तथा मंगल-भावनासे निष्पन्न है। 'ताज' शीर्षक रचनामे कवि ताजमहलके अपार्थिव सौन्दर्यमे बह नहीं जाता क्योंकि ताजके निर्माणमे मृत्युका पूजन है, जीवनका शृंगार नहीं। ताज उसके लिए गत युगके मृत आदर्शोंका प्रतीक बन गया है, जो मानवके मोहान्ध हृदयमे घर किये हुए है। तात्पर्य यह है कि 'युगान्त'की यह रचना प्रकृति और सौन्दर्यके प्रति कविकी नयी मानववादी दृष्टिकी देन है। —रा० र० भ०

यूसुफ-जुलेखा–सूफी प्रेमाख्यानोंमे यूसुफ जुलेखाकी कथाका अत्यन्त महत्त्व है। यूसुफ नबी याकूबके बारह पुत्रोंमेंसे सबसे छोटे थे और उनके अत्यन्त प्रिय पात्र थे। यूसुफ इतने अधिक रूपवान् थे कि उनके अन्य भाई उनसे ईर्ष्या करते थे। सबने मिलकर यूसुफको एक बार कुएँमें ढकेलकर यह प्रचारितकर दिया कि उन्हें भेड़िया खा गया। इसपर यूसुफके पिता नबी याकूब अत्यन्त दुखित हुए। कहा जाता है कि वे अन्धे तक हो गये। यूसुफको कुछ व्यापारियोंने कुएँसे निकाला किन्तु उनके भाइयोंने उन्हें अपना गुलाम घोषित करके व्यापारियोंसे कुछ द्रव्य भी ले लिया। कहा जाता है कि पश्चिम देशके तैमूस नामक एक सुल्तानकी रूपवती पुत्री जुलेखाका स्वप्न-दर्शनसे ही यूसुफसे प्रेम हो गया। इसी बीच जुलेखाकी धायने उसके पितासे कहकर उसका विवाह मिस्र देशके वजीरके साथ निश्चित कराया। जुलेखाने समझा कि यूसुफ ही इस पदपर होंगे परन्तु उसे झूठ पाकर जुलेखा को पुनः यूसुफका विरह भोगना पड़ा।

सौदागर यूसुफको मिस्रके बाजारमें दासके रूपमें बेचने के लिए पहुँचे। यूसुफके रूपकी प्रशंसा धीरे-धीरे फैलने लगी। जुलेखाने जब यूसुफको देखा तो उसे पहिचान लिया। जुलेखाने अपने पतिसे निवेदन करके यूसुफको खरिदवा लिया। जुलेखा इससे अत्यधिक प्रसन्न हुई, परन्तु यूसुफ उदासीन रहता था। एक दिन प्रेमावेशमें उसने जुलेखाका आलिंगन करना चाहा लेकिन अपने पिताकी स्मृति आते ही उसने ऐसा करना अनुचित समझा। वह भागने लगा तो जुलेखाने उसे रोकनेके लिए उसके कुरतेको पकड लिया लेकिन कुरता फट गया और जुलेखाके हाथ में फटा हुआ पल्ला आ गया। यूसुफ इसी अपराधमें पुनः बन्दी बना लिया गया। एक दिन यूसुफने एक सवारके द्वारा अपने पिताके पास सन्देश भेजा। जुलेखा की इस घटनाके आधारपर निन्दा होने लगी, जिसके परिणाम-स्वरूप वजीरने उसका परित्याग कर दिया। आगे चलकर यूसुफसे प्रसन्न होकर मिस्रके सुल्तानने उसे बन्दीगृहसे मुक्त कर दिया। उसने यूसुफको अपना मन्त्री बना लिया। मन्त्रिपद पर रहते हुए उसकी पितासे भेंट भी हुई और वह मिस्रका शासक भी बन गया। इधर जुलेखा यूसुफके विरहमें दृष्टिविहीन हो गयी। सुल्तान यूसुफने एक बार राजकीय प्रयाणके समय मार्गमें खड़ी हुई स्त्रियोंमें जुलेखाको पहिचान लिया। यूसुफके पिताने आशीर्वचनके द्वारा जुलेखाको युवती बना दिया तथा यूसुफका जुलेखाके साथ विवाह हो गया। याकूबकी मृत्युके अनन्तर यूसुफ नबीके पदपर आसीन हुए। जुलेखाने यूसुफका अन्तिम समय तक साथ दिया।

यूसुफ-जुलेखाकी प्रेमगाथामें भारतीय तत्त्वोंकी प्रधानता है। इस विषयको लेकर फारसी, हिन्दी, उर्दू और बंगलाके अनेक प्रेमाख्यानोंकी रचना हुई। फारसीके निजामी कविकी सन् १४८३ ई० की 'युसुक-जुलेखा' इस कथाकी आदर्श रचना है। निजामीने यह रचना फारसीके हजाज छन्दमें लिखी है। काव्यरूपकी दृष्टिसे मसनवी है तथा इसमें जीवनकी सम्पूर्णता सामने लाई गयी है। हिन्दीके निसार कविने 'यूसुफ जुलेखाकी कथा' नामक रचना प्रस्तुत

की। इस विषयको लेकर उर्दूमें काव्यरचना करने वालोंमें बीजापुरके हाशिमी कविका उल्लेख आवश्यक है। इन्होंने यूसुफ-जुलेखाके प्रेमाख्यानकको लेकर एक मसनवीकी रचना की थी। बंगलामें यूसुफ-जुलेखाके प्रेमाख्यानको लेकर काव्य-रचना करनेवालोंमें गरीबुल्लाह, फकीर मोहम्मद अब्दुल हकीमका भी नाम उल्लेखनीय है।

कवियोंने यूसुफ-जुलेखाकी प्रेमकथाके माध्यमसे सूफी साधनाके सिद्धान्तोंकी अभिव्यक्ति की है। यही कारण है कि यूसुफकी प्राप्तिके बाद जुलेखाका हृदय 'मजाज'की सीमाका अतिक्रमण करके 'हकीकत'की ओर मुड़ जाता है। सामान्य रूपसे यही आदर्श रूप सूफी काव्यधारामें पल्लवित होता दिखाई पड़ता है। यूसुफ और जुलेखाके प्रेममें उदात्तता दिखलाई पड़ती है। जुलेखाकी यूसुफसे भेंट तभी हो पाती है, जब उसकी समस्त वासनाएँ तिरोहित हो जाती हैं। इस सम्बन्धमें यह स्मरणीय है कि यूसुफके प्रेममें जुलेखाका विरहोत्पीडन इस कथाकी अपनी विशेषता है। सूफी प्रेम-काव्योंमें सामान्यतया नायक ही यत्नशील दिखाई पड़ते हैं। कुछ लोगोंका अनुमान है कि इस कथाका मूलाधार कुरानकी कथा है। अतः उसमें परिवर्तनके लिए अवकाश नहीं था।

[सहायक ग्रन्थ—भारतीय प्रेमाख्यानकी परम्परा : परशुराम चतुर्वेदी; हिन्दी प्रेमाख्यान : कमल कुल श्रेष्ठ; मध्ययुगीन प्रेमाख्यान : श्याममनोहर पाण्डेय।]—रा०कु०

रंग खाँ—इनके विषयमें कुछ ज्ञात नहीं है, केवल इनके 'नायिकाभेद' नामक ग्रन्थका उल्लेख हुआ है, जिसका रचनाकाल १७८३ ई० के लगभग माना गया है। नामसे स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ नायिका-भेद विषय पर है। —सं०

रंग-तरंग—इस ग्रन्थके लेखक वृन्दावननिवासी नवीन कवि हैं। यह ग्रन्थ नाभानरेश जसवन्तसिंहके पुत्र मालवेन्द्र सिंहकी आज्ञासे सन् १८३२ ई० में लिखा गया। इसका प्रकाशन इण्डिया लिटरेचर सोसायटी, मुरादाबादसे सन् १८३३ ई०में हुआ है। कविके अनुसार अपने आश्रयदाताकी आज्ञासे उसने इसमें नवरसका रंगीन वर्णन किया है। उसने प्रारम्भमें राजाकी प्रशंसाके साथ उसके वैभव, दरबार, नगर तथा प्रभुत्व आदिका वर्णन भी किया है। इसमें रचनाकालका स्पष्ट निर्देश है,"अठारहसे निन्यानबे"। इस ग्रन्थमें पाँच तरंग हैं। पहलीमें नायिका-भेदका विस्तार है, जो प्रायः भानुदत्तकी 'रसमंजरी' पर आधारित है, जिसका प्रभाव अनेकानेक हिन्दीके नायिका-भेदसम्बन्धी ग्रन्थोंपर पड़ चुका था। इसको उन्होंने आलम्बन विभावके अन्तर्गत रखा है। दूसरी तरंगमें उद्दीपन विभावका विस्तार है, जिसमें षड्ऋतु वर्णन महत्त्वपूर्ण है। तीसरी तरंगमें अनुभाव, चौथीमें सात्त्विक भावों तथा दुःखोंका वर्णन है और पाँचवींमें रस-वर्णन है। शृंगारके अतिरिक्त कविने वीर रसका अच्छा निर्वाह किया है। इस ग्रन्थमें काव्यगत आकर्षण तथा मार्मिकता भी पर्याप्त मात्रामें है। —सं०

रंगनाथ रामचंद्र दिवाकर—जन्म ३० सितम्बर, १८९४ ई० को धारवार (कर्नाटक) में। बेलगाँव, हुबली, पूना और बम्बईमें शिक्षा प्राप्त की। १९१६ ई० से १९२३ ई० तक दिवाकरजीने धारवार और कोल्हापुरके स्कूल तथा कालेजमें अध्यापन कार्य किया। इस बीच आपने अंग्रेजी और संस्कृतका विशेष अध्ययन किया।

संस्कृतके अध्ययनके कारण हिन्दी भाषाका ज्ञान प्राप्त करना भी सरल बन गया। साहित्यमें पहलेसे ही रुचि थी, अतः राजनीतिके साथ-साथ साहित्य-सेवा भी बराबर चलती रही। १९२१ ई० में 'कर्मवीर' नामक कन्नड साप्ताहिक निकाला और १९२३ ई० से १९३४ ई० तक एक अंग्रेजी साप्ताहिकका सम्पादन किया। स्वाधीनता-आन्दोलनमें कारावासकी अवधिका उपयोग उन्होंने अध्ययन तथा लेखन कार्यमें किया।

सन् १९३५ ई० में दिवाकरजीने हुबलीमें 'नेशनल लिटरेचर पब्लिकेशन ट्रस्ट' स्थापित किया। पीपुल्स एज्युकेशन ट्रस्टके ट्रस्टीके नाते 'संयुक्त कर्नाटक' (कन्नड़ दैनिक) पत्र निकाल रहे हैं। ये 'कन्नड़ साहित्य सम्मेलन' के आजीवन सदस्य हैं।

सन् १९४८ ई० में दिवाकरजी भारत सरकारके सूचना एवं प्रसार मन्त्री रह चुके हैं। इस पदपर रहते हुए उन्होंने हिन्दीकी बड़ी सेवा की है और हिन्दीके प्रसारमें योग दिया है। आजकल 'गान्धी स्मारक निधि'के अध्यक्ष पदसे भी हिन्दी-साहित्य, विशेषकर गान्धी वाङ्मयमें बड़ी रुचि लेते हैं। 'कर्नाटक राष्ट्रभाषा प्रचार सभा'के अध्यक्षपदपर रहकर इन्होंने क्रियात्मक और रचनात्मक, दोनों ही प्रकारसे हिन्दीकी बड़ी सेवा की है।

धर्म, दर्शन और गान्धी-साहित्यमें दिवाकरजीकी विशेष रुचि है और इन विषयोंपर कन्नड़ तथा अंग्रेजीमें कई पुस्तकें लिखी हैं, जिनके कुछ अनुवाद हिन्दीमें हुए हैं और हो रहे हैं। इनके अतिरिक्त हिन्दीमे भी उन्होंने कई पुस्तकें लिखी हैं, जिनके नाम है—'सत्याग्रह और विश्वशान्ति', 'गान्धीजी—जैसा मैने देखा', 'सत्याग्रह मीमांसा', 'उपनिषदोंकी कहानियाँ' और 'कर्मयोग'।

इन पुस्तकोंकी भाषा बडी सरल और सुबोध होते हुए भी इनमे विचारोंकी गहराई, ज्ञानकी गरिमा तथा दर्शनशास्त्रकी महिमा है। इसमे अविचल विश्वासके दर्शन होते हैं। 'उपनिषदोंकी कहानियाँ' पढ़ते हुए अनुभव नहीं होता कि हम उपनिषद्‌के गम्भीर विषयको पढ़ रहे हैं। कन्नड़-भाषी होते हुए भी ऐसी सुन्दर और मनोरंजक शैलीमे इतने गम्भीर विषयोंको चित्रित करनेकी निपुणतामें उनकी लेखनीकी कला उद्भासित हो जाती है। इसमें सन्देह नहीं कि उनके शब्द-चित्रोंमें प्रादेशिक भाषाके रंगका किंचित् सम्मिश्रण हम पाते हैं किन्तु वह संस्कृतके जलमे धुला है, अतः हिन्दी-भाषाका चित्र उससे निखरा ही है। लेखकके रूपमें दिवाकरजीने निस्सन्देह हिन्दीको सात्विक रूप प्रदान किया है और उसकी साहित्य-सम्पत्तिको समृद्ध बनाया है। —ज्ञा० द०

रंगभूमि—प्रेमचन्दकृत 'रंगभूमि' उपन्यास (प्र० १९२४-२५ ई०)। एक ओर तो काशीके कुँवर भरतसिंह और रानी जाह्नवी, जॉन सेवक और मिसेज सेवक, राजा महेन्द्रसिंह और इन्दु नामक परिवारों और ताहिर अली और कुल्सुमके परिवारकी समाज और राजनीतिसापेक्ष कहानी है तो दूसरी ओर काशीके निकट पाँडेपुरके सूरदास, जगधर,

बजरंगी, नायकराम पण्डा, ठाकुरदीन, भैरो और उसकी पत्नी सुभागीकी कहानी है। प्रेमचन्दने दोनों कथा-सूत्रोंका समन्वय उपस्थित किया है। नौकरशाही और पूँजीवाद तथा देशी राज्योंके साथ जनवादका संघर्ष चित्रित करना उपन्यासका मुख्य उद्देश्य है। प्रेमचन्दकी सहानुभूति किधर हो सकती है, इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है। कुँवर भरतसिंहकी पुत्री इन्दु और पुत्र विनय है। जॉन सेवककी पुत्री सोफिया और पुत्र प्रभु सेवक है। इन्दु राजा महेन्द्रसिंहकी पत्नी है। ताहिर अलीकी दो विमाताएँ हैं—जैनब और रकिया। ताहिर अली अपने सौतेले भाई माहिर अलीकी शिक्षा और परिवार-पालनके लिए आर्थिक कष्ट सहन करते-करते अन्तमें गबन करता है और उसका मालिक जॉन सेवक उसकी सजा करा देता है। 'रंगभूमि'के कथानकमें ताहिर अली और उसके परिवारकी कथा एक प्रकारसे स्वतन्त्र कथा है। शेष कथामें सेवा-समितिकी देश-सेवाओं, जसवंत नगरके माध्यम द्वारा देशी रियासतोंकी शोचनीय दशा, पाँडेपुरमें पूँजीवाद-के भयंकर परिणामों, सूरदासकी जमीन, झोंपड़ी और अन्त-में पाँडेपुरका जॉन सेवक द्वारा अपने कारखानेके लिए हथिया लिया जाना, विनय और सोफीके प्रेमके माध्यम द्वारा धार्मिक स्वतन्त्रता, मिसेज सेवकके अभारतीय दृष्टिकोण द्वारा धार्मिक संकीर्णता, कुँवर भरतसिंहका जायदाद-प्रेम, जॉन सेवककी धन-लोलुपता, इन्दु और राजा महेन्द्रसिंहका संघर्ष और अन्तमें राजा साहबका सूरदासकी मूर्तिके नीचे दबकर मरना, सूरदासकी सत्यनिष्ठा और अन्तमें गोली खाकर मृत्युको प्राप्त होना और ग्रामीण जीवनसे सम्बन्धित पात्रों द्वारा ग्रामीण जीवनकी अनेक समस्याओं (मद्य-पान, निराश्रिता स्त्री आदिका)का वर्णन हुआ है।

किन्तु उपर्युक्त सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और आर्थिक समस्याएँ तो माध्यम मात्र हैं। प्रेमचन्दका दृष्टिकोण तो वास्तवमें राष्ट्रीयतासे ओत-प्रोत और व्यापक जीवनसे सम्बन्धित है। प्रेमचन्दका राष्ट्रीय दृष्टिकोण तत्कालीन परिस्थितिके अनुसार ही है। वे चाहते हैं कि भारतवासी सभी व्यक्तिगत कामनाओं और आकांक्षाओंसे ऊपर उठकर निःस्वार्थ भावसे देश-सेवा करें। उस समय देशको सब प्रकारसे जगानेकी आवश्यकता थी। देशकी नवीन आवश्यकताओं, आशाओं और आकांक्षाओं-की प्रतिमूर्ति विनयकी माता रानी जाह्नवी है। प्रेमचन्दको स्वदेशानुरागी सन्यासियोंकी आवश्यकता थी। गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करते हुए भी यह सन्यास ग्रहण किया जा सकता था। शर्त केवल इतनी थी कि गार्हस्थ्य जीवन संकीर्णता और वासनापर आधारित न होकर निरन्तर प्रसारोन्मुख हो। जीवन केवल 'स्व'में लिप्त न हो। विनय और सोफीके प्रेमको रानी जाह्नवी उस समय तक शंकाकी दृष्टिसे देखती रहीं, जब तक उसे यह विश्वास न हो गया कि उनका प्रेम वासनापर आधारित नहीं हैं और वह प्रेम विनयके स्वदेशानुरागमें बाधक न बनेगा।

'रंगभूमि'में जीवनके प्रति प्रेमचन्दका दृष्टिकोण अत्यन्त उदात्त है। उपन्यासके नाममें ही उनका दृष्टिकोण छिपा हुआ है। जीवन क्रीडा-क्षेत्र है, रंगभूमि है। यहाँ हर एक व्यक्ति खेल खेलने आया है किन्तु खेल खेलते समय "क्यों धरम-नीतिको तोड़े?" संसारमें प्रायः लोग खेल खेल की तरह नहीं खेलते, धाँधली करते हैं। प्रेमचन्दका कहना है कि भले ही दृष्टि जीत पर रहे, पर हारसे कोई घबराये नहीं, ईमान न छोड़े। यही सत्पथ है, कीर्तिका मार्ग है। सूरदास और जॉन सेवक दोनोंने अपना-अपना खेल खेला। सूरदासने सच्चे अर्थमें जीवनको रंगभूमि समझा। भौतिक दृष्टिसे हारकर भी वह आत्मिक दृष्टिसे सुखी था। उसके मनमें कभी मैल न आया। जीता तो प्रसन्न, हारा तो प्रसन्न। खेलमें सदैव नीतिका पालन किया। प्रतिद्वन्द्वीपर कभी छिपकर चोट नहीं की। सूरदास दीनहीन था किन्तु उसमें आत्मबल था, हृदय धैर्य, क्षमा, सत्य और साहसका अगाध भाण्डार था। देह पर माँस न था पर हृदयमें विनय, शील और सहानु-भूति भरी हुई थी। इसके विपरीत जॉन सेवकने जीवन को, संसारको संग्राम क्षेत्र समझा, समर-भूमि समझा और इसीलिए छल, कपट, गुप्त आघात आदि सभी साधनोंका आश्रय ग्रहण किया। भौतिक दृष्टिसे विजयी होनेपर भी वह आत्म-ग्लानिसे पीड़ित रहा। 'रंगभूमि'में निहित प्रेम-चन्दके दृष्टिकोणपर गान्धीजीका प्रभाव स्पष्ट रूपसे लक्षित है। मनुष्य यदि अपने कर्त्तव्यका पालन करते हुए, सत्यका अवलम्बन ग्रहण करते हुए, आत्म-सम्मानको दृष्टि-पथमें रखते हुए, निष्काम कर्ममें प्रवृत्त हो तो वह दुःखी कैसे रह सकता है। आत्म-बलकी पशु-बलपर विजय होनी ही चाहिए। सूरदासकी मृत्युने जनसत्तावादियोंमें एक नयी संगठन-शक्ति उत्पन्न कर दी। तत्कालीन परिस्थिति में क्या यह विजय कम थी? —ल० सा० वा०

रंभा—प्रसिद्ध अप्सरा रम्भाकी उत्पत्ति देवासुरके समुद्र मन्थनसे मानी जाती है। रम्भा सौन्दर्यके एक प्रतीकके रूपमें प्रसिद्ध है। इन्द्रने देवताओंसे इसे अपनी राजसभाके लिए प्राप्त किया था। एक बार इन्होंने इसे विश्वामित्रकी तपस्याको भंग करनेके लिए भेजा था किन्तु महर्षिने इससे प्रभावित होकर इसे एक सहस्र वर्ष तक पाषाणके रूपमें रहनेका शाप दिया। कहा जाता है कि एक बार जब यह कुबेरपुत्र नलकूबरके यहाँ जा रही थी तो कैलासकी ओर जाते हुए रावणने मार्गमें रोककर उसके साथ बलात्कार किया था। —रा० कु०

रघु—सूर्यवंशीय दिलीपके पुत्र, श्रीरामचन्द्रजीके प्रपितामह। 'रघुवंश'में इस नामकी निरुक्ति दिलीपके एक कथनसे सम्बद्ध है। दिलीपने अपने पुत्रके जन्मपर कहा था कि यह बालक सब शास्त्रोंमें पारंगत एवं युद्धकालमें शत्रुओंको फाड़ता हुआ गमन करने वाला होगा। अस्तु, गमनार्थक 'रघ्' धातुके आधारपर 'रघु' नाम रखा गया। रघुके पुत्र अज और अजके दशरथ हुए। रघुकी दिग्विजय प्रसिद्ध है। इनकी किंचित् चर्चा 'मानस', 'साकेत', 'साकेत-सन्त' आदिमें आती है। —मो० अ०

रघुनंदन—१. श्रीरामचन्द्रजीका एक नाम, जो उनके रघु-वंशमें उत्पन्न होनेकी ओर संकेत करता है।

२. श्री चैतन्य महाप्रभुके एक अनुचर भक्त। श्री

गौरांगने इन्हें अपनी गोदमें बिठाकर बड़े आदरसे सुमन-माल पहनायी थी और पुत्र कहकर सम्बोधित किया था। इनका लिखा हुआ 'गौरनामामृतस्तोत्र' अत्यन्त सुन्दर, सरल संस्कृतमें है। —मो० अ०

रघुनाथ–अब तककी उपलब्ध सूचनाओंसे रघुनाथ नामके चार कवियोंका पता लगता है। इनमें प्रथम हैं रघुनाथ प्राचीन। मिश्रबन्धुओंके अनुसार इनका जन्म-काल सन् १८५३ ई० और काव्य-काल सन् १८६३ ई० है। ये प्रसिद्ध कवि गंगके शिष्य सम्राट् जहाँगीरके समसामयिक थे। इनकी एकमात्र रचना है 'रघुनाथ विलास', जो संस्कृत-रस-ग्रन्थ 'रसमंजरी'का भाषानुवाद है। अपनी कविताओंसे ये साधारण श्रेणीके कवि लगते हैं।

दूसरे रघुनाथ रसूलाबादी थे। इनका वास्तविक नाम था शिवदीन किन्तु 'रघुनाथ' सम्भवतः उनका काव्य-नाम था। सन् १८७३ ई० में इन्हें विद्यमान बताया गया है। इनकी कई छोटी छोटी रचनाओंमें 'भाषा महिम्न' नामक केवल एक ही रचना हाथ लगी है। कविताके विचारसे इन्हे भी विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं कहा जा सकता।

तीसरे रघुनाथ संडीला गाँव (जिला सीतापुर) के निवासी थे, जिनकी केवल एक रचना 'कृष्ण ग्वालनीका झगड़ा' प्राप्त हुई है। इनका रचना-काल है सन् १८२७ ई०। इनकी भी कविता बहुत साधारण कोटि की है।

चौथे और सर्वाधिक प्रसिद्ध कवि हैं रघुनाथ बन्दीजन। ये काशिराज महाराज बरिबण्डसिंह (१७४०-७० ई०) के दरबारी कवि थे और काशीके ही रहनेवाले भी थे। काशीके राजाने इन्हे चौरा नामक गाँव दिया था, जिसमे ये रहते थे। इनके पुत्र गोकुलनाथ और पौत्र गोपीनाथ भी अपने समयके सुकवि थे। अब तककी सूचनाओंने इनकी कुल चार रचनाओका पता चला है—(१) 'रसिक मोहन', (२) 'काव्य-कलाधर',(३)'जगत मोहन'और(४)'इश्क महोत्सव'। इनके अतिरिक्त भी उक्त कविकी एक सतसईकी टीका कही जाती है किन्तु वह उपलब्ध नहीं हो पायी है। इनमें एक ग्रन्थ 'रसिक मोहन' सन् १८९० ई० में मुंशी नवलकिशोर प्रेसमे प्रकाशित हुआ था किन्तु अन्योंके विषयमे ऐसी कोई सूचना नही है। इस ग्रन्थका रचना-काल सन् १७३९ ई० है। यह अलकार-ग्रन्थ है। इसमे कुल ३२३ छन्द है। 'काव्य कलाधार'की रचना सन् १७४५ ई० मे हुई। इसका वर्ण्य-विषय है थोड़ा भाव-भेद तथा रस-भेद और अधिक नायिका तथा नायक भेद। इसके पश्चात सन् १७५० ई० मे 'जगत मोहन'की रचना हुई। वैसे देखनेमे तो यह काफी बड़ा ग्रन्थ है किन्तु इसके अन्तर्गत श्रीकृष्णकी बारह घण्टेकी दिनचर्याका ही वर्णन किया गया है। इस ग्रन्थके वर्ण्य-विषयसे केवल कविकी बहुज्ञता मात्र प्रगट होती है और कुछ नहीं। 'इश्क-महोत्सव' भी एक शृंगार-प्रधान रचना है किन्तु इसकी भाषा अन्य कृतियों से भिन्न ब्रजभाषाके बजाय खड़ीबोली है।

आचार्यत्वकी दृष्टिमे कविके अलंकारोंके उदाहरण तथा लक्षण बड़े साफ और स्पष्ट हैं। अलंकार-वर्णनके लिए कविने जिन विषयोंको अपनाया है, उनमें अन्य शृंगारी कवियोंकी भांति केवल शृंगार रस की ही प्रधानता नहीं है, वरन् अन्य रसोंके द्वारा भी अलंकारोंको स्पष्ट करनेका प्रयत्न किया गया है, यह विशेषता उसके 'रसिक मोहन'में सर्वाधिक पाई जाती है। दूसरी प्रमुख विशेषता यह है कि कविने जिन पद्योंको अलंकार-निर्देशनार्थ अपनाया है, उनके चारों चरणोंमें एक ही अलंकारकी स्थिति होती है। 'काव्य कलाधर'में कविने भाव-भेद और रस-भेदको बहुत थोड़ेमें समाप्तकर नायिका और नायक-भेदको बड़े विस्तारके साथ प्रस्तुत किया है परन्तु उसका अधिकांश परम्परामुक्त होनेके कारण उसके विवेचनमें कोई नव्यता अथवा मौलिकता नहीं दिखाई पड़ती। नायक-भेदको जरूरतसे ज्यादा बढाया गया है। इस कारण आचार्यत्वकी दृष्टिसे कवि अलंकार विवेचकके रूपमे ही अधिक कृतकार्य हो पाया हैं, अन्योंमें उतना नहीं। आचार्यत्वकी अपेक्षा उसका कवित्व अधिक सबल और पुष्ट जान पड़ता है। कविकी भाव-व्यंजनाएँ सहज-सरल होनेके साथ-साथ बड़ी चुटीली, चमत्कारिणी और मार्मिक हैं। अपनी अद्भुत कल्पना-शक्तिके सहारे दृश्य-चित्रणमे वह कभी-कभी कमाल कर दिखाता है। भाषा भी भावोंका अच्छा सम्प्रेषण करती है, ऐसे काव्य-गुणपूर्ण छन्द अधिकतर अलंकार अथवा किन्हीं काव्यशास्त्रीय लक्षणों के उदाहरणोंके रूपमे आये हैं। इस प्रकार कविका काव्य-शास्त्र और कवित्व, दोनों हिन्दी साहित्यमे एक विशिष्ट स्थान रखते हैं।

[सहायक ग्रन्थ—खो० वि० (भा० १, १३); मि० वि०; शि० स०; दि०भू०; रा०ह०खो०(भा० ३०)।] —रा० श्रि०

रघुबरदास महात्मा–महात्मा रघुबरदासका परिचय सन् १९१२ ई० (ज्येष्ठ सं० १९६९ ई०)की 'मर्यादा' पत्रिकामें इन्द्रदेवनारायणके एक संक्षिप्त लेखके द्वारा हिन्दी साहित्य सेवियोंको हुआ है। उन्हे किसी 'तुलसी चरित' ग्रन्थका लेखक कहा गया है। उनके जीवन-वृत्त आदि पर विद्वान् लेखकने कोई प्रकाश नही डाला और न तो उनके ग्रन्थका ही पूरा परिचय दिया। उसकी कुछ पंक्तियाँ मात्र उन्होंने प्रकाशित कर दी। उन पंक्तियोका अध्ययन करनेसे स्पष्ट हो जाता है कि यह ग्रन्थ आत्मचरित शैलीमे लिखा गया है।

इस ग्रन्थके अनुसार तुलसीकी वंश-परम्परा इस प्रकार है— परशुराम-शंकर-रुद्रनाथ-मुरारी-तुलसी-गणपति-महेश-मंगल। तुलसीका ही दूसरा नाम तुलाराम था। इनके तीन विवाह हुए थे। तीसरा कंचनपुर हुआ और विवाहके कारण उन्हे गृहत्याग भी करना पड़ा। परशुराम मिश्रको सखार-मे मझौलीसे तेईस कोस दूर पर कसाया ग्रामका निवासी कहा गया है। ये तीर्थाटनके लिए चित्रकूट गये और फिर राजापुरमे बस गये। इसमे तुलसीकी जन्म-तिथि सन् १४९७ ई० दी हुई है। उन्हे सरयूपारीय ब्राह्मण भी कहा गया है।

'तुलसी चरित' अभी प्रकाशित नहीं हुआ है। अतः उसकी प्रामाणिकताकी जाँच सम्भव नहीं है। रघुबरदासका जो थोड़ा-बहुत महत्त्व है, वह इसी ग्रन्थके कारण है।

[सहायक ग्रन्थ— तुलसीदास : डा० माताप्रसाद गुप्त।] —ब्र० ना० श्री०

रघुराज सिंह–रीवाँ-नरेश रघुराज सिंहका जन्म सन् १८२३ ई० तथा मृत्यु १८७९ ई० में हुई। इनके पूर्वज महाराज व्याघ्रदेवने गुजरातसे आकर बघेलखण्डको जीता और उसपर अपना अधिकार जमाया। रघुराज सिंहके पिता महाराज विश्वनाथ सिंह जू देव बान्धवेश (ज० १७८९ ई० और मृ० १८५४ ई०) और पितामह महाराज जयसिंह (ज० १७६४ ई० और मृ० १८३४ ई०) बड़े कवि तथा अनेक उत्तमोत्तम संस्कृत तथा भाषा-काव्यके रचयिता थे और अनेक सुकवियोंके आश्रयदाता भी। इस प्रकार कवित्व-प्रतिभा उक्त कविको पैतृक सम्पत्तिके रूपमे प्राप्त हुई थी। सन् १८५४ ई०मे अपने पिता महाराज विश्वनाथ सिंहकी मृत्युके पश्चात् रघुराज सिंह गद्दीपर बैठे। रघुराज सिंहने बारह विवाह किये। ये हिन्दी तथा संस्कृतके पण्डित और सुकवि थे। मृगयाका उन्हे व्यसन था। उन्होंने ९२ शेर, एक हाथी, १६ चीते तथा हजारो हरिण एवं पशुओंका शिकार किया था। वे स्वभावसे बडे उदार, दानी और रामभक्त थे। वे नित्य २०,००० विष्णुनाम जप किया करते थे। इस प्रकार उनका अधिकांश समय यों ही बीत जाता था। राज्य-प्रबन्धके लिए वे बहुत कम समय दे पाते थे। वे बड़े काव्यरसिक और कवि-कल्पवृक्ष थे। अनेक विद्वान् और सुकवि उनके दरबारमे रहते थे। मृत्युमे पाँच वर्ष पूर्व ही रघुराज सिंहने राज-काज छोड दिया।

कविने अनेक रचनाएँ की है, जिनके नाम हैं—'सुन्दर-शतक' (सन् १८४७ ई०), 'पत्रिका' (१८५० ई०), 'रुक्मिणी-परिणय' (१८४९ ई०), आनन्दाम्बुनिधि (१८५३ ई०), 'श्रीमद्भागवत माहात्म्य' (१८५४ ई०), 'भक्ति-विलास' (१८६९ ई०), 'रहस्य पचाध्यायी', 'भक्तमाल', 'रामस्वयवर' (१८६९ ई०), 'यदुराज विलास' (१८७४ ई०), 'विनयमाला', 'रामरसिकावली' (इसका रचनारम्भ १८४३ ई० मे हो गया था किन्तु पूर्ति १८६४ ई० में हुई), 'गद्यशतक', 'चित्रकूट माहात्म्य', 'मृगयाशतक', 'पदावली', 'रघुराज विलास', 'विनयप्रकाश', 'राम-अष्टयाम', 'रघुपति शतक', 'गंगाशतक', 'धर्मविलास', 'शम्भु-शतक', 'राजरजन', 'हनुमान्चरित्र', 'भ्रमर गीत', 'परम-प्रबोध' और 'जगन्नाथशतक'। इनमे 'रामस्वयंवर', 'आनन्दाम्बुनिधि', 'रुक्मिणी परिणय' और 'राम-अष्टयाम' ग्रन्थ बहुत ही प्रसिद्ध है। इन ग्रन्थोंमे 'रामस्वयवर' का प्रकाशन जगन्नाथप्रसाद द्वारा बनारसमे १८७९ ई० में और वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बईमे १८९८ ई० में हुआ। 'रुक्मिणी परिणय'का प्रकाशन भारत माता प्रेस, रीवाँसे १८८९ ई० में हुआ। 'भक्तमाल', 'रामरसिकावली', 'जगन्नाथ-शतकम्', 'पदावली' तथा 'रघुराजविलास'का प्रकाशन वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बईसे १८८९ ई० तथा १८९४ ई० मे हुआ तथा 'रघुराज पचासा'का रामरत्न वाजपेयी द्वारा लखनऊसे १८९६ ई० में प्रकाशन हुआ।

कविने मुख्य रूपसे इन रचनाओंमें भक्ति और शृंगार रसका ही वर्णन किया है, वैसे प्रबन्ध-काव्यों तथा मुक्तक रचनाओमें अन्य रसोंको भी स्थान दिया गया है। वह प्रबन्ध तथा मुक्तक, दोनों ही प्रकारकी रचना करनेमें कुशल था। वर्णनोंके लिए उसे अपूर्व कौशल प्राप्त था। युद्ध, मृगया, नख-शिख, राजसी ठाठ-बाट, हाथी-घोड़े तथा रास आदिके उसने बहुत सुन्दर और सजीव वर्णन किये है। उसकी भक्तिपरक रचनाओं पर सूर-तुलसी आदिका प्रभाव स्पष्ट है। सरलता, रमणीयता, और प्रसादात्मकता आदि उसकी कविताके कतिपय गुण हैं।

[सहायक ग्रन्थ—मि० वि० (भा० २); खो० वि० (वा० १९०० ई०, १९०१ ई०, १९०३ ई० तथा १९०४ ई०); हि० सा० इ०।] —रा० त्रि०

रघुवंशलाल गुप्त–अलीगढमें जन्म, म्योर सेन्ट्रल कालेज, इलाहाबादमे शिक्षा। आई० सी० एस० के लिए चुने गये। भारत सरकारके वाणिज्य सचिव रहे। साहित्यमें प्रारम्भसे ही रुचि रही। आपका 'उमर खैयाम'का अनुवाद अत्यन्त श्रेष्ठ माना गया। 'रवि बाबूके कुछ गीत' आपकी पद्यबद्ध अनूदित रचना है। —सं०

रघुवीर सिंह (महाराजकुमार)–सीतामऊ (मालवा)में महाराजकुमार रघुवीर सिंह भावात्मक गद्य-लेखकके रूपमें प्रसिद्ध हैं। जन्म १९०८ ई०में हुआ। आपकी शिक्षा-दीक्षा बडौदा और इन्दौरमें हुई। आगरा विश्वविद्यालयसे आपको डी० लिट्०की उपाधि मिल चुकी है। आपकी चार प्रकाशित कृतियाँ उल्लेख्य है—'बिखरे फूल', 'जीवन कण', 'जीवन धूलि' और 'शेष स्मृतियाँ' (१९३९ ई०)। 'शेष स्मृतियाँ'का गुजराती और मलयालममें अनुवाद हो चुका है और रघुवीर सिंहकी प्रसिद्धिका वास्तविक आधार उनकी यही पुस्तक है। उनकी उपर्युक्त चारों पुस्तकें वस्तुतः गद्य-गीतोंके सग्रह है। छायावाद युगमें गद्य-काव्यकी जिस श्रेष्ठ विधाको प्रश्रय और प्रोत्साहन मिला था, रघुवीर सिंह उसके प्रमुख शैलीकारोंमे हैं। 'शेष स्मृतियों'के अन्तर्गत सकलित रचनाएँ, जिनमें मुगल साम्राज्यके वैभव, विलास एवं उत्थान-पतनकी बडी मार्मिकता तथा सहृदयता के साथ अकित किया गया है, गद्य-काव्यके श्रेष्ठतम उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। रघुवीर सिंह कोशकारके रूपमें भी आते हैं। इन्होंने हिन्दीके 'पारिभाषिक शब्द कोश'का निर्माण किया है। इनकी अन्त कृतियाँ, जिनमे कुछ अंग्रेजी में लिखी हुई है, इतिहास तथा राजनीतिसे सम्बन्ध रखती हैं। —र० भ्र०

रजक–रजक कंसका धोबी था। ऐसी प्रसिद्धि है कि देवकी की सात सन्तानको वह पाटेपर रखकर मार चुका था। अतएव कृष्णका उपहास किया करता था। एक दिन कृष्ण ग्वाल सखाओंके साथ रजकके पास गये तथा उसको शिला-पर रखकर आकाशकी ओर उडा दिया। रजकको मारकर कृष्णने कंसके कपड़े धोबियोंमे लुटा दिये। कंसको इससे बहुत चिन्ता हुई। सूरने बाल मनोविज्ञानका रंग भरते हुए रजक वध-लीलाका अत्यन्त मनोरंजक वर्णन किया है (दि० सू० सा० प० ३६५५-३६६५)। —रा० कु०

रणधीर सिंह–'मिश्रबन्धु विनोद'के अनुसार ये सिगरामऊ (जिला जौनपुर)के जमींदार थे। जन्म सन् १८२० ई०। खोज विवरण (प्रथम त्रैवार्षिक) के अनुसार इनका जन्म-काल १८४० ई० है, जो भ्रामक है क्योंकि इनके ग्रन्थ 'काव्य रत्नाकर'का रचनाकाल ही १८४० ई० दिया हुआ है। इस ग्रन्थकी प्रति सवाई महेन्द्र पुस्तकालय, टीकमगढ़में

उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त इनके चार ग्रन्थ और माने जाते हैं—'भूषण कौमुदी', 'पिंगल', 'नामार्णव' और 'रस रत्नाकर'। 'भूषण कौमुदी'में अलंकार, 'पिंगल'में छन्दशास्त्र, 'नामार्णव'में कोश और 'रस रत्नाकर'में रसके विषयका विवेचन है। 'काव्य रत्नाकर'में काव्यशास्त्रके विविध अंगोंको एक साथ लिया गया है।

[सहायक ग्रन्थ—मि० वि०; हि० का० शा० इ०; हि० सा० बृ० इ० (भा० ६)।] —सं०

रणमल्ल-छंद–रणमल्ल-छन्दकी रचना श्रीधरने की थी। यह कवि ईडरके राजा रणमल्ल राठौरके आश्रित थे। श्रीधरकी जाति 'व्यास' बतलायी गयी है। 'रणमल्ल-छन्द'में केवल ७० छन्द हैं। इसमें पाटणके सूबेदार जफर खाँ और रणमल्लके युद्धका वर्णन है। रणमल्लने वीरतापूर्वक युद्ध करके अपने प्रतिद्वन्द्वीको पराजित किया था। यह घटना १३९७ ई० की है। अतएव इसी तिथिके आस-पास श्रीधरने इस काव्यकी रचना की थी।

रणमल्ल-छन्दमें वीर-रसका उत्कृष्ट रूप देखनेको मिलता है। यह अत्यन्त ओजपूर्ण ग्रन्थ है। कविका भाषा पर पर्याप्त अधिकार जान पड़ता है। श्रीधरने ऐसी शब्द-योजना की है, जो ध्वनिकी दृष्टिसे वीर-रसके उपयुक्त होती है। इसमें आर्या, चुप्पई, दुहु(दुहा) सिंहविलोकित, पंचचामर, ह्यंटकी, दुमिला, भुजंगप्रयात तथा छप्पय छन्द प्रयुक्त हुए हैं।

इस प्रकार श्रीधरकृत 'रणमल्ल-छन्द' चारणी-साहित्यकी परम्परामें विरचित शुद्ध डिंगलका एक उत्तम काव्य है। इसमे ऐतिहासिक घटनाओंकी पूर्ण रक्षा हुई है। साथ ही साहित्यिक दृष्टिसे भी यह काव्य-ग्रन्थ एक अत्यन्त सफल रचना है। —टी० सिं० तो०

रतन कवि–अत्यन्त संक्षेपमें 'शिवसिंह सरोज'मे इस नामके तीन कवियोंकी स्थिति बतायी गयी है। काल-क्रमके विचारसे उनमें प्रथम हैं प्रसिद्ध संस्कृत रस-ग्रन्थ 'रसमजरी'का भाषामे उल्था करनेवाले पन्नाके राजा सभासिंह (शासन-काल सन् १७३९-१७५२ ई०)के आश्रित रतन, जिनका जन्मकाल था सन् १८६१ ई०, जिसकी पुष्टि ग्रियर्सनने भी की है। दूसरे रतन श्रीनगरके राजा फतेहशाह बुन्देला के आश्रित 'फतेहशाह भूषण' और 'फतेहप्रकाश'के रचयिता है, जिनका जन्म समय सन् १७६१ ई० है। इसी प्रकार तीसरे रतन जातिके ब्राह्मण और बनारसके वासी थे। इनका जन्म-काल था सन् १८४८ ई०। ये 'प्रेमरतन' नामक भक्ति-भावपूर्ण ग्रन्थके रचयिता भी कहे गये हैं।

इनमे दूसरे रतन सर्वाधिक प्रसिद्ध और महत्त्वपूर्ण हैं। ये श्रीनगर(गढ़वाल)के राजा मेदिनीशाहके पुत्र फतेहशाहके (शासन-काल सन् १६८४-१७१६ ई०) दरबारी कवि थे। रामचन्द्र शुक्लने इनका काव्यकाल सन् १७७३ ई०के आस-पास माना है, जो आश्रयदाताके समयको देखते हुए ठीक नहीं ज्ञात होता। इस कविकी तीन कृतियाँ बतायी गयी हैं—'फतेहभूषण','फतेहप्रकाश' और 'अलंकार दर्पण'। 'अलंकार-दर्पण' दतिया राजपुस्तकालय, दतियासे प्राप्त है। 'फतेहभूषण' एक उत्कृष्ट रीति-ग्रन्थ है, जिसके अन्तर्गत शब्द-शक्ति, काव्य-भेद, ध्वनि, रस, दोष आदिका सुविस्तृत वर्णन किया गया है। उदाहरणोंके रूपमें शृंगारिक छन्दोंको न रखकर कविने अपने आश्रयदाताकी प्रशंसासे सम्बद्ध छन्दोंको ही अधिक रखा है। 'फतेहप्रकाश' भी ठीक इसी प्रकारका ग्रन्थ है। 'अलंकार-दर्पण'का रचनाकाल सन् १७७० ई० है। इसमें अलंकारोंका बड़ा विशद निरूपण किया गया है। इनके अतिरिक्त भी खोज-विवरणोंमें 'बुध चातुरी विचार', 'चूक विवेक', 'विष्णुपद' नामक रचनाएँ भी रतन कविकृत ही कही गयी हैं किन्तु उनके रचना-कालकी जानकारीके अभावमें यह निश्चय कर पाना कठिन है कि कौन किस रतनकी रचनाएँ हैं। कवित्व तथा आचार्यत्व, दोनों ही दृष्टियोंसे दूसरे रतन कविकी तीनों रचनाएँ गौरवपूर्ण स्थानकी अधिकारिणी हैं। लक्षण बड़े साफ और स्पष्ट हैं। काव्य-कौशल काफी प्रगाढ और भाव-व्यंजना पर्याप्त पुष्ट तथा स्वानुभूतिपूर्ण है। भाषा मधुर और विषयानुकूल स्फुरित होनेवाली है।

[सहायक ग्रन्थ—खो० वि० (वा० १९०४ ई०, त्रै० १, २, १२); मि० वि०; दि० भू०; शि० भू०; हि० का० शा० इ०।] —रा० त्रि०

रतनखान–दे० 'मलूकदास'।

रतनबावनी–यह कवि केशवदासकी प्रथम रचना है। रचनाकाल अनुमानतः सन् १६०१ और १६०७ के बीच माना जा सकता है। इसका प्रकाशन प्रताप प्रभाकर प्रेस, टीकमगढ़से सन् १९१७ ई०मे हुआ था।

'रतनबावनी' में मधुकर शाहके पुत्र रत्नसेनके वीरोत्साहका वर्णन ५२ छन्दोंमे किया गया है। गणपति-वन्दनाका एक छन्द तथा 'युद्धको कारण' विषयक चार छन्द सहित ग्रन्थमे कुल ५७ छन्द हैं। युद्धका कारण यह बताया गया है कि जब मधुकर शाह अकबरके दरबारमें गये तो उसने इनका जामा देखकर पूछा कि आपका जामा ऊँचा क्यों है। उन्होंने उत्तर दिया कि हमारा देश काँटोंसे भरा है, इसीसे जामा ऊँचा रखते है। 'काँटोंसे भरा' का व्यंग्यार्थ अकबरने 'किसीके द्वारा अजेय' लगाया। उसने कुपित होकर कहा कि मैं आपका देश देखूँगा। मधुकर शाहने इसका अभिप्राय जान लिया। उन्होने अपने पुत्र रत्नसेनको पत्र लिख भेजा कि युद्धके लिए प्रस्तुत रहना, बादशाहकी सेना ही आक्रमण करनेवाली है। 'रतनबावनी' में इसी चढाई और रत्नसेनकृत प्रतिरोधका वीरोल्लासपूर्ण वर्णन है। ब्राह्मण, स्वयं राम तथा साथियोंके मना करनेपर भी वह युद्धसे विरत नहीं होता। युद्धमे साथियोंके वीरगति प्राप्त करनेपर वह अकेला रक्तरंजित युद्ध करता हुआ होली खेलनेवाले कन्हैयाकी शोभाको प्राप्त होता है। वह सारी सेनाको मार डालता है और स्वयं भी युद्धसे बचकर नहीं जाता।

इस युद्धका उल्लेख इतिहास-ग्रन्थोंमे नहीं मिलता। केशवने 'वीरचरित्र' में रत्नसेनके अकबर द्वारा सम्मानित होनेकी चर्चा की है और साथ ही यह भी लिखा है कि इसने गौर देश जीतकर अकबरको दिया और उस युद्धमें मारा गया। पर इतिहास-ग्रन्थोंमें यह वर्णन भी नहीं मिलता। दोनों कथानकोंमें विरोध स्पष्ट है। अतः यही मानना पड़ता है कि 'रतनबावनी' का कथानक काव्यगत

सत्य है, इतिहासगत नहीं।

'रतनबावनी' छोटा-सा संवादात्मक निबन्ध-काव्य है और युद्धादिके पारम्परिक वर्णन जिस प्रकार होते थे, उनका खासा नमूना है। संवादोंके द्वारा उत्साहकी अभिव्यक्ति बहुत ही मार्मिक हुई है। रत्नसेनका चारित्र्यगत वैशिष्ट्य एवं उसके शौर्यका वर्णन करना कविको अभिप्रेत था जिसमें वह पूर्णतः सफल हुआ है।

इस ग्रन्थकी रचना व्यजनोंको द्वित्व करने एवं शब्दोंको अन्त्यानुप्रासयुक्त रखनेवाली वीरगाथाओंकी पुरानी शैलीमें है और उस युगमें प्रचलित प्रसिद्ध दोहा और छप्पय छन्दोंमें की गयी है। इसकी भाषामें पुरानापन अधिक है। —वि० प्र० मि०

रतनसेन—राजा रतनसेन 'पद्मावत'की प्रेमगाथाका नायक है, जिसे जायसीने 'चितउरगढ़राजा चित्रसेन'का पुत्र होना बताया है (६-१) और कहा है कि उसका स्वर्गवास हो जानेपर यही उसका उत्तराधिकारी हुआ (७६)। परन्तु इतिहास हमें किसी भी ऐसे रतनसेनका परिचय नहीं देता, प्रत्युत उससे यह पता चलता है कि वास्तवमें यह रावल समरसी (समरसिंह) चित्तौड़नरेशका पुत्र था तथा यह "निश्चित है कि समरसिंहकी मृत्यु और रत्नसिंहका राज्याभिषेक सन् १३०१-२ वि० सं० १३५८ माघ सुदी १० और वि० सं० १३५९ माघ सुदी ५के बीच किसी समय होना चाहिए" ('ना० प्र० पत्रिका' भा० ११, पृ० १५), जिससे इसका सुल्तान अलाउद्दीनका सन् १२९६-१३१६ ई० (सं० १३५३-७३), समकालीन होना भी सिद्ध हो जाता है तथा इस बातमें कोई सन्देह नहीं रह जाता कि यह एक ऐतिहासिक पुरुष था। जायसीने इसका परिचय ठीक नहीं दिया है और न इसके सुल्तानके साथ होने वाले युद्धकी अवधिका ही सही पता दिया है। इतिहासके अनुसार सुल्तानने सन् १३०२ ई० (सं० १३५९ माघ सुदी ९) को चित्तौड़के लिए प्रस्थान किया, छः महीनेके करीब लड़ाई होती रही, जिसमें रत्नसिंह मारा गया और "सन् १३०३ (वि० सं० १३६० भाद्रपद सुदी १४)को अलाउद्दीन का चित्तौड़पर अधिकार हो गया। यह समय सात महीनेसे कुछ ही अधिकका होता है परन्तु जायसीका कहना है "आठ बरस तक गढ़ घिरा रहा"(४३-१८) और तदन्तर परस्पर मेलकी बातें चलीं तथा घनघोर युद्ध भी हुआ। अतएव जायसीने अपने वर्णनमें सम्भवतः कल्पनासे काम लिया है और अन्य कई बातोंकी भाँति इसे भी इतिहास विरुद्ध रूप दे दिया है। इतिहास द्वारा अभी तक हमें उक्त राजा रतनसेन या रत्नसिंहके व्यक्तिगत जीवनका कोई विवरण उपलब्ध नहीं हो सका है, जिसके आधारपर हम उसे एक आदर्श प्रेमी कह सकें अथवा इस दशामें, उसकी सिंहल-यात्राका ही कोई अनुमान कर सकें। अपने ऐतिहासिक रूपमें वह "लगभग एक वर्ष ही चित्तौड़का राजा रहा; उसमें भी अन्तिम छः मास तो अलाउद्दीनके साथ लड़ता रहा", जहाँ जायसीके अनुसार "बारह मास तो उसकी रानी नागमतीने उसके वियोगमें रो रोकर बिता दिए" (३०-१७) और उसकी दशाका पता पाकर सिंहलमें वह अनेक प्रकारके कष्ट झेलकर किसी प्रकार चित्तौड़ गढ़ वापस आ गया।

जायसीका राजा रतनसेन अत्यन्त भावुक है और वह सुएके मुखसे पदुमावतीका नख-शिख वर्णन सुनते ही मूर्च्छित हो जाता है, मानो इसे सूर्यकी लहर आ गयी हो (११-१) और वह फिर उसकी प्राप्तिके लिए विषम यात्रा तक स्वीकार कर लेता है। वह एकांतनिष्ठ प्रेमी है और उसका कहना है, "उसका द्वार छोड़कर मैं दूसरा नहीं जानता। जिस दिन वह मिलेगी उस दिन यात्रा पूरी होगी" (२४-८) तथा इसी प्रकार अप्सरा बनकर आयी हुई पार्वतीसे स्पष्ट कह देता है, "मैं स्वर्ग लेकर क्या करूँगा, मेरे लिए यही स्वर्ग है कि मैं उसके लिए प्राण दे दूँ। मेरा निश्चय है कि उसके द्वारपर जीवन वार दूँगा और सिर उतारकर न्योछावर कर डालूँगा" (२२-४)। वह अपनी प्रेयसीकी प्राप्तिके प्रयत्नमें कभी-कभी अधीर हो उठता है, सेंध लगाता है और झूठ भी बोलता है परन्तु इसके साहस और आशावादिताका परिचय इसकी सिंहल-यात्राके प्रत्येक पगपर मिलता जान पड़ता है। जायसीके इस राजा रतनसेनमें किसी प्रकारके छल-कपटका लक्षण नहीं पाया जाता और अलाउद्दीन जैसे शत्रुकी चालोंके विरुद्ध अपने हितैषियों द्वारा सचेत किये जानेपर भी वह भुलावेमें आकर अनेक भूलें कर बैठता है, जो इसकी अदूरदर्शिताका भी परिचायक है। एक सच्चे राजपूतकी भाँति वह अपनी आनकी रक्षाके लिए मर-मिटनेके लिए तैयार होना भी जानता है। वह अलाउद्दीन के प्रस्तावको ठुकराते समय सगर्व कथन करता है और देवपालके षड्यन्त्रका पता पाकर अमर्षमें भी आ जाता है। इस दूसरे अवसरपर वह सहसा कह उठता है, "जब तुर्क चित्तौड़ गढ़ आकर पहुँचे, उससे पहले ही मैं उसे (देवपाल को) पकड़ लाऊँ तो मैं राजा रतनसेन हूँ" (५५-१) और "अपने शत्रु द्वारा आहत होकर भी वह उसे दो टुकड़े कर देनेमें नहीं चूकता" (५५-२)। जायसीका राजा रतनसेन एक धीरोदात्त नायक होनेके साथ ही, एक सच्चा प्रेमी भी है और सूफी साधकोंका आदर्श होने योग्य है। —प० च०

रति—रतिका उल्लेख प्राचीनकालसे ही वेद, 'शतपथ ब्राह्मण' एवं उपनिषदोंमें होता चला आ रहा है। इन परम्पराओंमें इसे सौन्दर्यकी अधिष्ठात्री देवी एवं उषा आदिके समकक्ष कहा गया है। पौराणिक परम्परामें दक्षकी पुत्री एवं 'शतपथ ब्राह्मण'के अनुसार गन्धर्व कन्याके रूपमें इनका उल्लेख मिलता है। दक्ष एवं गन्धर्व वस्तुतः विलासी जातियाँ रही हैं, अस्तु रतिका इनसे सम्बन्ध स्थापित करनेका कारण वासनात्मक प्रवृत्ति ही है। इसके अन्य नामोंमें 'मायावती' नाम भी प्रायः उसके वासनात्मक रूपकी ओर ही इंगित करता है। कामके मूर्तीकरणके अनन्तर 'रति'को उसकी पत्नी कहा गया है एवं कामदेवसम्बन्धी अनेकानेक कथाओंमें इसे सहचारिणी भी बताया गया। शिवके मदन-दहन प्रसंगमें उषा या मायावतीके रूपमें शोणितपुरके दैत्यराज बाणासुर एवं कोटरा नामक दैत्यानीसे इसका जन्म कहा गया है। अपनी सखी 'चित्रलेखा'के योगबलकी सहायतासे कृष्णके पौत्र एवं प्रद्युम्नके पुत्र अनिरुद्धसे विवाह करती है, जो कामदेवके दूसरे अवतार कहे जाते

है। महाभारतमें यह भी उल्लेख मिलता है कि इनसे 'वज्र' नामक पुत्र भी पैदा हुआ था। हिन्दी-साहित्यमें रति सम्बन्धी उल्लेख तुलसी, नन्ददास, प्रसाद आदि कवियोंके काव्यमें प्राप्त हैं। —यो० प्र० सिं०

रत्नसिंह–मेवाड़का एक वीर योद्धा रत्नसिंह राणा प्रतापका समसामयिक था। राणा प्रतापको हल्दीघाटीके युद्धमें संकट-ग्रस्त जानकर इसने उनका मुकुट पहनकर उनके प्राणोंकी रक्षा की थी। मुगल सैनिकोंने इसीको राणाप्रताप समझकर मार डाला। श्यामनारायण पाण्डेयने 'हल्दीघाटी' नामक महाकाव्यमें इसके कौशल एवं वीरताका सजीव वर्णन किया है। —यो० प्र० सिं०

रत्नांबर–महाप्रभु रत्नाम्बरके दर्शन 'चित्रलेखा' उपन्यास-के प्रारम्भमें होते हैं और अन्तमे, बीच-बीचमें कभी-कभी बीज गुप्तके भी गुरुरूपमे उनका उल्लेख आ जाता है पर उसमे कोई चरित्रसम्बन्धी रूपरेखा नही बनती। जितनी देरके लिए वे सामने आते हैं, उसमे ज्ञात होता है कि वे आकाशधर्मा गुरु थे। वे स्पष्ट रूपसे, शिष्यके प्रश्नके उत्तरमें, स्वीकार करते है कि उन्हें स्वयं नही ज्ञात कि पाप क्या है? उनका विश्वास था कि जो बात अध्ययन से नहीं जानी जा सकती, उसे अनुभवमे जाना जा सकता है पर वे अपने शिष्योंको सावधान कर देते है कि अनु-भवके प्रवाहमे "स्वयं न बह जाना।" अन्यत्र वे श्वेतांकसे अच्छी वस्तुकी कसौटी बताते हुए कहते हैं, "अच्छी वस्तु वही है, जो तुम्हारे वास्ते अच्छी होनेके साथ ही दूसरोंके वास्ते भी अच्छी हो।" उनके विचारोंके सम्बन्धमे कुमार-गिरिकी टिप्पणी है कि वे "नास्तिकताकी ओर झुके हुए है।" उपन्यासके अन्तमें अपने दोनों शिष्योंके विचारोंको जाननेके पश्चात् वे अपना मत उपस्थित करते हुए कहते हैं, "संसारमे पाप कुछ नही है, वह केवल मनुष्यके दृष्टि-कोणकी विषमताका दूसरा नाम है।···मनुष्य अपना स्वामी नहीं, परिस्थितियोंका दास है।···हम न पाप करते हैं और न पुण्य करते हैं, हम केवल वह करते है, जो हमे करना पडता है।" पर इस मतको भी स्वीकार करनेके लिए अपने शिष्योंको वे बाध्य नहीं करते।—दे० शं० अ०

रत्नाकर–दे० जगन्नाथदास 'रत्नाकर'।

रत्नावली–१. किंवदन्तीके अनुसार तुलसीदासकी भारद्वाज गोत्रीया पत्नीका नाम रत्नावली था। आसक्तिवश जब वे वर्षाकी रात्रिमे सर्पको रस्सी समझकर उसके सहारे रत्नावलीके पास पहुँचे तो उसने कहा—"लाज न लागत आपको दौरे आयहु साथ। धिक-धिक ऐसे प्रेमको कहा कहौं मैं नाथ॥ अस्थिचर्ममय देह मम तामे जैसी प्रीति। तैसी जो श्रीराम महँ होति न तौ भवभीति॥" इसे सुनकर तुलसीदासको सचमुच विरक्ति हो गयी। प्रियादासने 'भक्तमाल'की अपनी टीकामें इसे लिखा है। 'तुलसी-चरित्र' और 'गोसाईं-चरित्र'मे भी इसकी चर्चा है।

२. रत्नावली नामकी एक अनन्य हरिभक्त महिला भी थी। ये आमेरके राजा मानसिंहकी भ्रातृवधू थीं। इनके पतिका नाम माधवसिंह था। —मो० अ०

रमाकांत त्रिपाठी–जन्म १९०० ई०, में कानपुरमें हुआ। शिक्षा प्रयाग विश्वविद्यालयमें हुई। जोधपुरके एक कॉलेज-में अंग्रेजी विभागके अध्यक्ष तथा प्रधानाचार्य रहे। अंग्रेजी तथा हिन्दी, दोनों माध्यमोंसे आपने लिखा है। आपकी सर्वाधिक प्रसिद्ध समीक्षा-कृति 'हिन्दी गद्य मीमांसा' (१९२६ ई०) है। अन्य कृतियोंमें 'प्रताप पीयूष' उल्लेख-नीय है। —सं०

रमानाथ–प्रेमचन्दकृत 'गबन' का पात्र। रमानाथ दयानाथका पुत्र है। उसका पालन-पोषण बड़े लाड़-प्यारसे हुआ है किन्तु जबतक वह प्रयागमें रहा अपनेको धोखा देनेके साथ-साथ दूसरोंको भी धोखा देता रहा। वह अपनी वास्तविक स्थितिसे बढ-चढकर बात करता है और झूठी शान मारता है। विवाहके पश्चात् अपनी शौकीनी और पत्नीकी आभूषणोंकी इच्छा पूर्ण करनेके लिए हैसियतसे बाहर काम करता है और अन्तमे गबन कर बैठता है, जिसके फलस्वरूप उसके सामने बडी विषम परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है। इसपर भी वह अपने मनकी बात हृदयमे ही रखता है। वह स्पष्ट बात करनेवाला होता तो कभी कठिनाईमें न पडता। इसके अतिरिक्त उसमे दृढ़ता और साहसका अभाव है। वह पत्नीके जेवर चुराता है, माता-पितासे झूठ बोलता है, रतनको धोखेमें रखता है और अपनी पत्नी जालपाके सामने सच बात कहनेका साहस भी नहीं रखता। उसमे जबरदस्त प्रलोभन है और वह दुर्बल मनोवृत्तिका पात्र है। गबन करनेके बाद वह कलकत्ता चला जाता है। रमानाथका कलकत्तेका चरित्र उसके प्रयागवाले चरित्रका ही विकसित रूप है। वह पुलिसके प्रलोभनोंमें पडकर झूठी गवाही देता है। अन्तमें पत्नीकी मध्यस्थता द्वारा उसमे सुधार होता है। रमानाथ मध्यम वर्गका सच्चा प्रतिनिधि है और वर्गगत सारी दुर्बलताएँ और सबलताएँ लिये हुए है। उसका दृष्टिकोण व्यक्तिवादी है। —ल० सा० वा०

रमेश–भगवतीचरण वर्माकृत 'तीन वर्ष' उपन्यासका नायक रमेश सासारिक वैभवसे नितान्त अनजान, गरीब लेकिन मेधावी युवक है। एक विचित्र सयोगसे वह एकदम वैभवशाली वर्गके प्रतिनिधि अजित कुमार सिंहका मित्र बन इस नये लोकमे अभिभूत होकर जिस जीवनकी कल्पना करता है, उसमे उसकी सहपाठिनी 'प्रभा अध्यक्ष'-का महत्त्वपूर्ण स्थान है। रोमाण्टिक आदर्शवादसे भरा हुआ यह मध्यवर्गीय युवक अपनी स्वर्गीय प्रेमकी कल्पनाको शीघ्र ही ध्वस्त होता देखता है, जब प्रभा उसके विवाह प्रस्तावको अस्वीकार कर देती है। अस्वीकरणका मुख्य आधार धनकी असमानता है। उच्चवर्गसे दुत्कारे जाने पर वह अनुभव करता है कि "प्रभाके लिए प्रेम ढोंग है और उसके लिए अभिशाप"। हताशासे आक्रान्त रमेश अपने सबसे बड़े मित्र, उपकारक एवं उच्चवर्गमे प्रवेश करानेके बाद भी उस वर्गकी प्रवृत्तिके प्रति चेतावनी देते रहने वाले अजितकी हत्याका असफल प्रयास करता है एवं इसी निराशा एव फ्रस्ट्रेशनमे वह पढना भी छोडता है, शराब पीना शुरू करता है और कुछ-कुछ दार्शनिक किस्मका वेश्यागामी भी हो जाता है। वास्तवमें इसी स्थल पर आकर उसका व्यक्तित्व सजग होता है और वह दूसरों पर अपनी छाप लगाने लगता है, अन्यथा उपन्यासके प्रारम्भिक भागमें तो

वह अजितके व्यक्तित्वके समक्ष एकदम दबा रहता है। सरोज वेश्या उसके प्रेमपाशमें बँध जाती है। पर रमेश अपने जिस अतीतको भुलाना चाहता है, वह उसकी चेतनाको इतना आच्छन्न किये है कि इस प्रेमकी सचाईका अनुभव उसे मरोजकी मरणशैयामें ही होता है। प्रेमके इस पवित्र निर्मल रूपने उसकी आत्माको पुनः मुक्त किया। वह सरोजको दिये गये वचनके अनुसार शराब छोड़कर पुनः विश्वविद्यालयमें आ जाता है। 'प्रभा अध्यक्ष' सरोजके उत्तराधिकारमें प्राप्त रमेशके धनको देखकर विवाहमें कोई अड़चन नहीं देखती, पर रमेशके लिए उच्चवर्गकी यह नैतिकता शुद्ध रूपमें वेश्यावृत्ति प्रतीत होती है। सम्पूर्ण उपन्यासमें उसका चारित्रिक विकास कथाकी विशिष्ट गतिके अनुकूल है, बल्कि कहा यों जाय कि लेखकके अभीष्ट विचारके अनुकूल है। यह विचारानुकूलता विविध परिस्थितियोंके मध्य उसके स्वाभाविक विकासको अवरुद्ध नहीं करती। —दे० रा० अ०

रमैनी–कबीर पन्थके प्रामाणिक ग्रन्थ 'बीजक' में 'रमैनी' का समावेश किया गया है। इनकी सख्या चौरासी है। इन रमैनियोंमें कबीरने मायाका निरूपण ही अनेक प्रकारसे किया है। मायाके निरूपणमें जीव ही प्रधान रूपसे वर्णित है क्योंकि वही मायामें रमण करता है। इस प्रकार मायामें रमण करनेवाले जीवको ही कबीरके 'बीजक'में 'रमैनी'का रूप दिया गया है।

मध्य प्रदेशान्तर्गत रायगढ जिलेमें खरसियाके एक सन्तका कथन है कि मायाका तिरस्कारकर ईश्वर (राम) के पहिचान करानेवाले पदोंको ही कबीरने 'रमैनी' कहा है। 'रमैनी' में रामको पहिचानने एवं उनकी ओर आकृष्ट होनेका भाव अनेक बार आया है। कुल चौरासी रमैनियोंमें रामका नाम पचीस बार आया है और सबमें यही भाव है: "कबीर और जाने नहीं राम नामकी आस" (रमैनी ३)।

'रमैनी' मायाके अनेक अंग तथा उसके वास्तविक रूपको जानकर उससे बचनेके लिए ही कही गयी है। पहली रमैनीमें "अन्तर्जोति"के वर्णन करनेके बाद दूसरी रमैनीमें ही मायाका निरूपण किया गया है: "बाप पूतकी एकै नारी। एकै माय बियाय। ऐसा पूत सपूत न देखा। जो बापहि चीन्है धाय"॥

अन्तिम रमैनीमें भी मायापर ही विचार किया गया है: "माया मोह बँधा सब कोई। अन्तै लाभ मूल गा खोई॥" यह चौपाई लिखनेके बाद यह साखी है: "आपु आपु चेतै नही, कहौं तो रुसवा होय। कहहि कबीर जो आपु न जागै निरस्ति आस्तिक न होय॥"

स्वयं कबीरने रमैनीको मायामें रमण करनेके अर्थमें लिखा है: "कनै कै कै जग बौराया। सक्त भक्ति कै बाँधिन माया॥ अद्भुत रूप जातिकी बानी। उपजी प्रीति 'रमैनी' ठानी॥" (रमैनी ४)।

अतएव 'रमैनी'का अर्थ जीवकी उस दशाका वर्णन है, जिसमें वह मायाके रूपसे मोहित होकर तथा उसके वशीभूत होकर उसमें लीन हो जाता है, अथवा उसमें रमण करने लगता है।

मायाजनित "आकर चार लाख चौरासी"की दृष्टिसे ही सम्भवतः रमैनियोंकी संख्या ८४ ही रखी गयी है। —रा० कु० व०

रविशंकर शुक्ल–जन्म २ अगस्त, १८७७ ई० को सागर जिलेमें हुआ। १८९७ई०में स्वयंसेवककी हैसियतसे कांग्रेसमें प्रवेश किया और मध्यप्रदेशके मुख्यमन्त्री पदपर रहते हुए ही ३१ दिसम्बर, १९५६ ई०में निधन हुआ। १९०६ ई०में रायपुरमें वकालत शुरू की थी। सन् १९१४ से १९२३ ई० तक वहाँकी नगरपालिकाके सदस्य रहे। सन् १९१५ ई०में राजनीतिक परिषद्में स्वर्गीय गोखलेके अनिवार्य शिक्षा बिल का समर्थन किया। हिन्दी साहित्य सम्मेलनके जबलपुर अधिवेशनमें उत्साहपूर्वक भाग लिया और वर्षों तक 'कान्यकुब्ज' नामक पत्रका सम्पादन किया। १९२० ई०के असहयोग आन्दोलनमें भाग लिया और १९२२ ई०में प्रान्तीय धारासभाके सदस्य बने। १९३७ ई०मे मध्यप्रदेशके शिक्षा मन्त्री, १९३७-१९४६ ई० और फिर १९५२ ई०में तीसरी बार मुख्यमन्त्री-पदका गौरव प्राप्त किया। इस प्रकार जीवन भर शुक्लजी देशसेवामें रत रहे।

अपने पचास वर्षसे अधिकके सार्वजनिक जीवनमें पं० रविशंकर शुक्लने जो कुछ राजनीतिके क्षेत्रमें और प्रत्यक्ष अथवा परोक्षरूपसे सामाजिक तथा शिक्षाके क्षेत्रमें कार्य किया, उसमें हिन्दी भाषा और साहित्यको पर्याप्त बल मिला। वे स्वयं हिन्दीके विद्वान् थे और उनकी वक्तृता तथा लेखनशैलीमें वही सूझबूझ और सरलता थी, जो सदा उनके विचारोंकी विशेषता रही। साहित्य-सृजनके लिए विशेष रूपमें बैठने और साहित्यके किसी विभागकी आराधना करनेका न उन्हे कभी अवकाश मिला और न शायद इस ओर उनकी अभिरुचि थी किन्तु अपने दीर्घ जीवनकालमें उन्होंने साहित्यकी जो ठोस सेवा की, वह सदा स्मरणीय रहेगी।

शुक्लजी लगभग १८ वर्ष तक मध्यप्रदेशके मुख्यमन्त्री रहे। उस समय मध्यप्रदेश द्विभाषी राज्य था, जहाँ हिन्दी और मराठी भाषाएँ बोली जाती थी। जहाँ जहाँ भी उस समय ऐसी स्थिति थी, भाषाके प्रश्नको लेकर काफी मनमुटाव और वैमनस्य तक देखनेमें आता था। यदि कहीं यह समस्या पूर्णरूपसे, सर्वसम्मतिसे सुलझाई जा सकी, तो केवल वह मध्यप्रदेशमें। इसका कारण शुक्लजीकी सूझबूझ और विलक्षणता थी। उन्होंने दोनों भाषाओंको समान स्थान दिया, किन्तु वास्तवमें उनकी नीतिका परिणाम यह हुआ कि मराठीभाषी सन्तुष्ट रहे और विदर्भमें हिन्दीके व्यापक प्रचारको प्रोत्साहन मिला। अपनी भाषा-नीतिमें उन्होंने मराठीका अहित किये बिना मध्यप्रदेशमें हिन्दीकी स्थितिको दृढ बनाया। —श्या० द०

रस-कलस–अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'की काव्य-शास्त्रीय काव्य कृति है। हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारससे १९५१ ई०में इसका तृतीय संस्करण निकल चुका है। इसमें 'हरिऔध'की प्राचीन पद्धतिकी प्रारम्भिक कविताएँ संकलित हैं। इनकी भाषा ब्रजभाषा है तथा इनके माध्यमसे नायिका-भेद वर्णन, शृंगार-वर्णन एवं काव्य-सिद्धान्त निरूपणकी चेष्टा की गयी है। 'हरिऔध'के काव्य-रचनाके

दृष्टिकोण तथा सिद्धान्तोंको समझनेके लिए इस पुस्तककी विस्तृत 'भूमिका' महत्त्वपूर्ण है। —र० भ०

रश्मि—'रश्मि' महादेवी वर्माका दूसरा काव्य-संकलन है। इसका प्रथम प्रकाशन १९३२ई०में साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग द्वारा हुआ था। इसमें कुल ३५ कविताएँ संकलित हैं। इस संग्रहकी कविताओंमें 'नीहार'की अपेक्षा अधिक प्रौढ़ता है। कुछ कविताओंमें, जो सम्भवतः पहलेकी लिखी हैं और जिन्हें भूमिकामें लेखिकाने स्वयं पुरानी कहा है, अनुभूतियोंकी कृत्रिमता और विचारोंकी अपरिपक्वता है जैसे 'अलिसे' (पृ० ४५), 'पपीहेके प्रति' (८२) आदि। समग्र प्रभावकी दृष्टिसे इस संग्रहकी कविताओंमें महादेवीके व्यक्तित्वका वैशिष्ट्य निखरकर सामने आया है। इनमें कवयित्रीने अपना निजी दार्शनिक और आध्यात्मिक व्यक्तित्व निर्मित कर लिया है।

महादेवी वर्माने अपने दुःखवादी-दर्शनके सम्बन्धमें अपनी कई कविताओंमें स्पष्ट किया है। ऐसी कविताएँ दो प्रकारकी हैं, दार्शनिक चिन्तन प्रधान और आध्यात्मिक अनुभूतिपर आधारित। 'दुःख', 'रहस्य', 'विनिमय' आदि कविताएँ दार्शनिक हैं, जिनमे दुःखका महत्त्व, सृष्टिका विकास और ब्रह्म और जीवके सम्बन्धकी काव्यात्मक व्याख्या की गयी है। सृष्टिके विकासका सिद्धान्त महादेवीने सांख्य दर्शनसे लिया है। ब्रह्म और जीवका सम्बन्ध उन्होंने शांकर अद्वैतके आधारपर निरूपित किया है। आध्यात्मिक अनुभूतियुक्त कविताओंमे उन्होने ब्रह्मके लिए जीवकी व्याकुलता और विरह-वेदनाकी स्वानुभूत भावनाओंकी अभिव्यक्ति की है। 'स्मृति', 'आह्वान', 'वे दिन', 'मेरा पता', 'पहिचान', 'निभृत मिलन' आदि ऐसी ही कविताएँ हैं, जिनमे महादेवीकी वेदनामूलक रहस्यवादी अनुभूतियाँ अभिव्यक्त हुई हैं।

रहस्यात्मक अनुभूतियोंके अतिरिक्त इस संग्रहकी अनेक कविताओंमे छायावादकी सामान्य प्रवृत्ति—विराट् विश्वके प्रति जिज्ञासामूलक दृष्टि—वर्तमान है। विश्व-जीवन, उसके मूल स्रोत, विकास और नाश, जगत्का सौन्दर्य और और वैचित्र्य, सभी उसके कुतूहलपूर्ण प्रश्नोंके विषय है। इस जिज्ञासा वृत्तिके फलस्वरूप वह अपने और अपने अज्ञात प्रियके तात्त्विक रूपको पहचानेमे सफल होती है। इस तरह उनकी विरह-वेदना ही उनकी व्यक्ति-सत्ताका समष्टि सत्तासे तादात्म्य स्थापित कराती है। 'रश्मि'का प्रकाश उसी ज्वलन्त वेदनाका प्रकाश है।

इस संग्रहमे विषयोका वैविध्य कम है फिर भी 'नीहार' की अपेक्षा इसमें कुछ अधिक विषयोंका समावेश हुआ है। प्रकृतिके सौन्दर्य-दर्शनके साथ-साथ 'समाधि', 'दुविधा', 'अन्त' और 'मृत्युसे' शीर्षक कविताओंमे कवयित्रीने भौतिक जगत्की वस्तुओं और समस्याओंपर भी दृष्टि डाली है। —शं० ना० सिं०

रसखान—कृष्ण-भक्त कवियोंमें रसखानका बड़ा मान है। ये मुसलमान होते हुए भी वैष्णव-भावमे सराबोर रहे। ये दिल्लीके पठान सरदार कहे जाते है। मिश्रबन्धु इनका जन्मकाल १५४८ ई० (१६१५ वि०) के लगभग और मरणकाल १६२८ ई० (सं० १६८५ ई०) के लगभग मानते हैं। इनके जीवनके सम्बन्धमें किंवदन्तियाँ ही अधिक प्रसिद्ध हैं। 'दो सौ बावन वैष्णवनकी वार्ता'में लिखा है कि ये पहले एक बनियेके लड़के पर आसक्त थे, सदा उसीके पीछे-पीछे फिरा करते और उसका जूठा खाया करते थे। एक बार इन्होंने दो व्यक्तियोंको आपसमें यह कहते सुना कि ईश्वरमें ऐसा ध्यान लगाना चाहिए जैसा कि रसखानने साहूकारके लड़केमें लगाया। इसके बाद ही रसखान चौंक गये और श्रीनाथजीके दर्शनोंके लिए गोकुल पहुँचे, जहाँ गोस्वामी विट्ठलनाथसे दीक्षा ग्रहण की। इनकी भक्तिकी प्रबलताके कारण इन्हें गोस्वामीके २२५ मुख्य शिष्योंमें स्थान प्राप्त हुआ। दूसरी आख्यायिका यह है कि इनकी प्रेमिका बड़ी मानिनी थी और इनका तिरस्कार किया करती थी। "एक दिन जब ये श्रीमद्भागवतका फारसी अनुवाद पढ रहे थे तब उसमें गोपियोंका कृष्णके प्रति प्रेम देखकर इनके मनमें आया कि क्यों न उसी कृष्णपर लौ लगाई जाय, जिस पर इतनी गोपियाँ उत्सर्ग हो रही थीं"। इसीसे ये वृन्दावन गये।

इन्होंने 'प्रेम वाटिका'मे अपने सम्बन्धमे लिखा है—'देखि गदर हित साहिबी, दिल्ली नगर मसान। छिनहिं बादसा वंशकी, ठसक छोरि रसखान। प्रेम निकेतन श्री वनहि, आइ गोवर्धन धाम। लह्यो सरन चित चाहिके, जुगल सरूप ललाम। तोरि मानिनी ते हियो, फोरि मानिनी मान। प्रेम देवकी छविहिं लखि, भए मियाँ रसखान"। उपर्युक्त पक्तियोंमे "तोरि मानिनी ते हियो"से बनियेके लडकेके प्रति आसक्तिकी बातका समर्थन नहीं होता। ये अपनेको पठान नही "बादसा वश"के कहते हैं। उसीकी ठसक उन्होने छोडी थी। 'प्रेम वाटिका'के रचना-कालके सम्बन्धमे उनका दोहा है—"विधु सागर रस इन्दु सम, बरस बरस रसखान। प्रेम वाटिका रचि रुचिर, चिर हिय हरख बखानि"। इससे सिद्ध होता है कि उसकी रचना १६१४ ई० (स० १६७१ ई०) मे हुई है। यह मुगल बादशाह जहाँगीरका समय है। हो सकता है, रसखान मुगल बादशाहके ही वंशज हों।

मिश्रबन्धु और रामचन्द्र शुक्ल इन्हें विट्ठलनाथका शिष्य बतलाते है, परन्तु चन्द्रबली पाण्डे इस मतका समर्थन नहीं करते। उनका कहना है कि "श्रीनाथजीके जिस बाल-रूपकी वल्लभ सम्प्रदायमे इतनी प्रतिष्ठा है, रसखानकी रचनामे उसका सर्वथा अभाव है। स्वय रसखानने भी कहीं इसका उल्लेख नहीं किया"। भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने 'उत्तर भक्तमाल'मे इनकी कीर्ति गायी है और राधाचरण गोस्वामी ने भी 'नव भक्तमाल'मे इनकी स्तुति की है और उसमें इन्हे 'बादसा-वश-विभाकर' कहा है और 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता'के अनुसार श्रीनाथजीका भक्त बतलाया है।

इनके 'प्रेम वाटिका' और 'सुजान रसखान' नामक दो ग्रन्थ किशोरीलाल गोस्वामी द्वारा वृन्दावनसे १८६७ ई० मे तथा भारत जीवन प्रेस, बनारससे १८९२ ई० में प्रकाशित हो चुके है। इनकी ब्रजभाषा टकसाली सरस और सरल है, शब्दाडम्बर जरा भी नही है। उन्होंने दोहा, कवित्त और सवैया छन्दोंका ही अधिक प्रयोग किया है। उनके निम्न दो सवैये तो प्रत्येक हिन्दी-प्रेमीकी जिह्वा पर नाचते रहते

है—"मानुष हौं तो वही रसखान बसौं संग गोकुल गाँवके ग्वारन"। तथा "या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहुँ पुरको तजि डारौं"। 'वार्ता'में लिखा है कि इन्होंने अनेक 'कीर्तनों'की भी रचना की है पर वे उपलब्ध नहीं हैं। 'सुजान रसखान'में १२९ छन्द हैं, जिनमें सवैया और घनाक्षरीकी प्रचुरता है। इनकी रचनाओंमे प्रेमका अत्यन्त मनोहारी चित्रण हुआ है। यह कवि अपनी प्रेमकी तन्मयता, भाव-विह्वलता और आसक्तिके उल्लासके लिए उतना ही प्रसिद्ध है, जितना अपनी भाषाकी मार्मिकता, शब्द-चयन तथा व्यंजक शैलीके लिए। रसखानने अपनी रस-सिक्त रचनाओंसे अपना नाम सार्थक कर दिया है।

[सहायक ग्रन्थ—मि० वि०; हि० सा० इ०; हि० सा०; रसखान और घनानन्द : सं० अमीरसिंह।] —वि०मो०श०

रसतरंगिणी–इसके रचयिता शम्भुनाथ मिश्र हैं। रचनाकाल लेखकने स्वयं इस प्रकार दिया है—"रस वसु समिधर बरस में पाय कविन को पंथ। फागुन बदि एकादसी पूरन कीनौ ग्रथ॥ ४४४॥" इतिहासकार इस ग्रन्थके बारेमे या तो प्रायः मौन है या उन्होंने भ्रमपूर्ण सूचनाएँ उपस्थित की हैं। प्रायः इसका रचनाकाल सन् १७४९ ई० (सं० १८०६) माना गया है। 'हि० सा० बृ० इ०', षष्ठ भागमें दो स्थानपर यही संवत् मानकर भी पृष्ठ ४०२ पर इसका समय स० १८२० के लगभग बताया गया है और नागरी प्रचारिणी सभाकी किसी खण्डित प्रतिके आधारपर सर्वथा किसी अन्य ग्रन्थका परिचय दे डाला गया है। हिन्दी साहित्य सम्मेलनमे सुरक्षित सम्पूर्ण प्रति हमारे देखनेमे आयी है और उसमें आरम्भ तथा अन्तमे कविके गुरुका नाम सुखदेव बताया गया है तथा प्रारम्भमे लेखकका नाम शम्भुनाथ तथा अन्तमे समाप्तिपर शम्भुनाथ मिश्र स्पष्ट दिया गया है। ग्रन्थका विषय रस-निरूपण तथा नायिका भेद मात्र है। सम्पूर्ण ग्रन्थ भानुदत्त मिश्रकी 'रसतरंगिणी' का भाषानुवाद मात्र है, केवल उदाहरणोंमें लेखकने अपनी रचनाएं प्रस्तुत की है। ग्रन्थमे कुल ४४५ छन्द हैं। लक्षण उदाहरण दोहोंमे दिये गये हैं। नवीनता केवल रसदृष्टिके कुछ नामोंमें है, यथा—कुणिताके स्थानपर कुत्सिता नाम दिया गया है, अर्द्धविकसिता, अर्द्धविवर्तिता तथा शून्या छोड़ दिये गये हैं तथा आवर्त्तिता, धर्मवर्त्तिता और अर्द्धवर्त्तिता नये रखे गये हैं। अनुवाद स्पष्ट और उदाहरण साधारण हैं। इस ग्रन्थके देखते हुए हि० सा० बृ० इ० मे दिया गया परिचय (पृ० ४०२-४०३) अग्राह्य है, जो नागरीप्रचारिणी सभाकी किसी अन्य खण्डित प्रतिके आधारपर दिया गया प्रतीत होता है। यह ग्रन्थ अभीतक प्रकाशित नहीं हुआ है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० इ०; हि० सा० बृ० इ० भा० ६।] —आ० प्र० दी०

रसनिधि–इनका असली नाम पृथ्वीसिंह था और ये दतिया के एक जमींदार थे। ये १६६० ई० (स० १७१७) तक वर्तमान थे। इनका रचनाकाल १६०३ ई० से १६४० ई० (सं० १६६० से १७१७) तक माना जाता है। इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रतन हजारा' है। इसके अतिरिक्त इनके अनेक फुटकर दोहे मिलते हैं। 'रतन हजारा' 'बिहारी सतसई'के अनुकरणपर दोहा-छन्दमें लिखा गया है। स्थल-स्थलपर बिहारीके भावोंकी झलक मिलती है। बिहारीके अतिरिक्त फारसी काव्यका भी यत्र-तत्र प्रभाव परिलक्षित होता है, जिससे रामचन्द्र शुक्लके शब्दोंमें "सुरुचि और साहित्यिक शिष्टताको आघात" पहुँचता है। 'रतन हजारा' के अतिरिक्त खोजमें इनके 'विष्णुपद कीर्तन', 'कवित्त', 'बारहमासी', 'रसनिधि सागर', 'गीति संग्रह', 'अरिल्ला हिंडोला' आदि ग्रन्थ भी उपलब्ध हुए हैं। इनका एक अति प्रसिद्ध दोहा है : "लेहु न मजनू गोर ढिग, कोऊ लैला नाम। दरदवन्तको नेकु तौ लेन देहु बिसराम"॥ रसनिधिको बिहारी-परम्पराका कवि माना गया है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० इ०; मि० वि०; हि० सा०।] —वि० मो० श०

रसपीयूषनिधि–'रसपीयूषनिधि' सोमनाथ मिश्रका भिखारीदासके 'काव्य निर्णय'से भी बड़ा काव्यके विविध अंगोका विवेचन प्रस्तुत करने वाला ग्रन्थ है। इसकी हस्तलिखित प्रति याज्ञिक संग्रहालयमे प्राप्त है। इसका रचनाकाल सन् १७३७ई० है। इसमे प्रायः २२ तरंगें और ११२७ पद्य हैं। इसकी रचना सोमनाथने महाराज बदनसिंहके कनिष्ठ पुत्र प्रतापसिंहके विशेष आग्रहपर सं० १७९४ के ज्येष्ठ मास १०, कृष्णपक्षमें की थी। इसमे पिंगल, काव्य-लक्षण, प्रयोजन, भेद, शब्द-शक्ति, ध्वनि, भाव, रस, रीति, गुण, दोष आदि विषयोंका निरूपण किया गया है। इसमे प्रथम तथा द्वितीय तरंगमे वन्दना तथा परिचय आदि, तीसरी से पाँचवीं तरंग तक छन्द वर्णन, छठवीं तरंगमे कविताकी परिभाषा, उसका प्रयोजन तथा गुण और दोषकी व्याख्या करते हैं। सातवींमे ध्वनि और भावकी मौलिक विवेचना, संचारी भावोंके लक्षण, स्थायी भावोंके लक्षण, रस, तत्पश्चात् विभाव, रस स्वामी, रस देवताका वर्णन है। आठवींमें शृंगार-रसके संयोग और वियोग पक्षोका विवेचन तथा नायिका भेद है। ९ वींमे परकीया, दसवींमे मान और मानमोचनी, ११ वी और १२ वींमे नायिकाभेद, सखी दूत तथा १३ वींमे नायक, सखा, दर्शन, अनुराग, चेष्टा आदि और १४ वींमे हावो तथा १५ वीं और १६ वी तरंगमे वियोग-शृंगार तथा पूर्वानुरागकी दस अवस्थाओका वर्णन है। सत्रहवींमे अन्य रसो और रसांगो, १८ वींमे भाव-ध्वनि और रस-ध्वनिके साथ १२ प्रकारकी अर्थ ध्वनि और शब्दार्थ-ध्वनिका वर्णन कर ध्वनि या उत्तम काव्यके १८ प्रकारोका वर्णन है। १९ वींमे गुणीभूत व्यंग्य, २० वीं मे दोषोंके लक्षण और उदाहरण, २१ वींमे गुण तथा २२ वींमें शब्दालंकार, चित्रालंकार और अर्थालंकारका विस्तृत वर्णन है।

इस ग्रन्थके निर्माणमे सोमनाथने संस्कृत तथा हिन्दीके कतिपय आचार्योंके शास्त्र-ग्रन्थोंका आधार ग्रहण किया है। रस-प्रकरण भानु मिश्रकी 'रसतरंगिणी'पर आधारित है, अन्य स्थलोंपर मम्मट तथा विश्वनाथका आश्रय लिया गया है। अलंकार-प्रकरणमे शब्दालंकारोंके लिए कुलपति के 'रस-रहस्य'का और अर्थालंकारोंके लिए जसवन्तसिंहका आश्रय लिया गया है। नायक-नायिका-भेदके प्रकरणमें भानुदत्तकी 'रसमंजरी'का आधार है पर अधिकांशतः

मम्मटके 'काव्यप्रकाश'का अनुसरण किया गया है। इन्होंने विषयको अधिक सरल बनानेकी दृष्टिसे सामग्रीको संक्षेप रूपमें और कभी-कभी अपूर्ण रूपमें प्रस्तुत किया है। सोमनाथने प्रस्तुत ग्रन्थमें लक्षण दोहेमें और उदाहरण अन्य छन्दोंमें दिये हैं। इसमें लेखकने यथास्थान अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय देकर इसे काव्यशास्त्रका एक उत्कृष्ट ग्रन्थ बना दिया है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० इ०; हि० का० शा० इ०; हि० सा० बृ० इ० (भा० ६); क० कौ० (प्र भा०)।] —ह० मो० श्री०

रसप्रबोध–बिलग्रामके रसलीनका रसके अन्तर्गत नायिका-भेदप्रधान ग्रन्थ है। इसकी रचनाकाल सन् १७४१ ई० है (सं० १७९८ की चैत्र शुक्ल ६, बुधवार)। जान पड़ता है कि इस ग्रन्थकी रचना कहींसे आकर (फौजसे छुट्टी लेकर) की गयी है। इसका प्रकाशन भारत जीवन प्रेस, काशी तथा नवलकिशोर प्रेस, लखनऊसे हुआ है। सिद्धान्तकी दृष्टिसे इसमे रसका वर्णन है। मुख्य रूपमे शृगार-रस और उसके अन्तर्गत नायिका-भेदका विशेष विस्तार है, अन्य रसोका तो अन्तमें संक्षिप्त वर्णन दे दिया गया है। इनका सिद्ध छन्द दोहा है, समस्त ग्रन्थ इसी छन्दमे है, लक्षण हों या उदाहरण।

विभाव, अनुभाव तथा संचारीकी पूर्ण व्याप्तिको इसमें रस माना गया है। रसलीनके अनुसार चित्तकी भूमिपर स्थायी रूप बीज आलम्बन-उद्दीपन विभावरूपी जलके पड़नेपर अनुभावरूपी वृक्ष और संचारी भावरूपी फलोंमे व्यक्त हो जाता है और इन सबके संयोगसे मकरन्दके समान रसकी उत्पत्ति होती है। यह काव्यात्मक व्याख्या ही अधिक है। रसलीनने सात्त्विकोंको तन-संचारी माना है। शृंगारको रसराज इस कारण माना है कि इसके अन्तर्गत सभी स्थायी संचारीके रूपमे आ जाते हैं। इनका नायिका-भेद प्रकरण 'रसमंजरी' पर मुख्यतः आधारित है पर कुछ नवीनता भी है। इसमें सामान्य ग्रन्थोंकी अपेक्षा विस्तार भी अधिक है। नायिका-भेदके बाद इसमें सखी, दूती, सखा तथा ऋतुसम्बन्धी विवेचन भी हैं।

इस समस्त विवेचनके अन्तर्गत कविकी भावुक तथा कोमल दृष्टि सदा व्यक्त होती रहती है। विशेषकर चेष्टाओं, हाव-भावों तथा संचारियोंका बहुत चित्रात्मक तथा व्यंजक वर्णन हुआ है। वस्तुतः इस ग्रन्थमें सिद्ध हो जाता है कि रसलीन शास्त्रीय सीमाओंमे भी अपनी उक्तिकी मार्मिकता तथा भावात्मक कोमलताका निर्वाह कर सके हैं।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० बृ० इ० (भा० ६); हि० का० इ०।] —सं०

रसमंजरी १–दे० 'नन्ददास'।

रसमंजरी २–कन्हैयालाल पोद्दार द्वारा रचित 'काव्यकल्पद्रुम' के प्रथम भागका नाम 'रसमंजरी' है, जिसका प्रकाशन सन् १९३४ ई० में हुआ था। प्रस्तुत ग्रन्थका विवेच्य विषय रस है। रस, भाव, अभिधा, लक्षणा, व्यंजना इत्यादिका विवेचन रसके अध्ययनके लिए लेखकने आवश्यक समझा है। यह ग्रन्थ सात स्तवकोंमें समाप्त होता है। प्रथममें काव्यका लक्षण, भेद, ध्वनि, गुणीभूत-व्यंग, द्वितीयमें शब्द और अर्थ, अभिधा लक्षणाके विभिन्न भेद, तृतीयमें व्यंजनाके भेदोपभेद, चतुर्थ स्तवकके प्रथम पुष्पमें ध्वनि, द्वितीय पुष्पमें रस, तृतीय पुष्पमें भाव, चतुर्थ पुष्पमें संलक्ष्यक्रम व्यंग ध्वनि, अलंकार और अलंकार्य, ध्वनियोंकी संसृष्टि, पंचम पुष्पमें व्यंजना शक्तिका प्रतिपादन और महिम भट्टके मतका खण्डन आदि किया गया है। पंचम स्तवकमें गुणीभूत व्यंग, अगूढ़ अपरांग, वाच्यसिद्ध इत्यादि विभिन्न व्यंगोंका विवेचन है। षष्ठ स्तवकमें गुण और उसका सामान्य लक्षण और सप्तममें दोषका सामान्य लक्षण और उनका परिहार-विषय समझाया गया है।

इस विषयपर लिखी गयी पुस्तकोंमें 'रसमंजरी' असन्दिग्ध रूपसे महत्त्वकी पुस्तक है। लेखकका विवेचन अत्यन्त पाण्डित्यपूर्ण तथा विषयके विभिन्न पक्षोंको ध्यानमें रखकर अपेक्षया अधिक सन्तुलित ढंगसे विश्लेषण और व्याख्या की गयी है। उदाहरण स्वरचित, संस्कृतसे अनुवादित तथा हिन्दीके अन्य प्रतिष्ठित कवियोंके काव्यसे लिये गये हैं। भूमिकामें लेखकने काव्यावनतिके कारण, काव्यसे लाभ, साहित्य-शास्त्रपर संक्षेपमें विचार प्रस्तुत किया है। विषयका विवेचन सुलझा हुआ होनेसे पुस्तककी प्रौढता और उपयोगिता बढ गयी है। —नि० ति०

रसरंग–यह ग्वाल कविका रसविषयक ग्रन्थ है। इसका रचनाकाल सन् १८४७ ई० है—"सं० वेद रव निधि ससी माधव सित पख संग" अर्थात् सं० १९०४ वि०। हस्तलिखित प्रतियाँ सेठ कन्हैयालाल पोद्दारके निजी पुस्तकालय तथा याज्ञिक पुस्तकालयमे प्राप्त हैं। इस ग्रन्थमें नौ रसों तथा रसांगोंका विवेचन है। इसके आठ अध्यायोंको उमंग कहा गया है। पहलेमे स्थायी भावों, अनुभावों, सात्त्विक भावों और संचारियोंका, दूसरे, तीसरे, चौथेमे नायिका-भेदका विषय, पाँचवेंमें सखी तथा दूतीका वर्णन, छठें और सातवेंमे हाव, प्रवास, पूर्वानुराग, मान, वियोगकी दस दशाओंका वर्णन तथा अन्तिम उमंगमे शेष रसोंका संक्षिप्त विवेचन किया गया है। इसका आधार मुख्यतः भानुदत्तकी 'रसमंजरी' और 'रसतरगिणी' है। ग्वालने प्रत्येक रसके अनेक अनुभावोंका वर्णन किया है। देवकी भाँति ग्वालने अनुभावोंके अन्तर्गत सात्त्विक भावोंको न स्वीकार कर संचारियोंको माना है। उन्होने इसके तनज भेदको सात्त्विक और मनजको संचारी कहा है। अपने रसको छोड़कर अन्य रसोंमें जानेके कारण संचारीको व्यभिचारी कहनेमें विशिष्टता है। उन्होंने प्रत्येक इन्द्रियसे सात्त्विक भावोंके प्रकट होनेको स्वीकार कर चालीस सात्त्विक माने हैं परन्तु भगीरथ मिश्रके अनुसार इसमें "नवीनता अधिक और तथ्य कम जान पड़ता है, क्योंकि प्रत्येक इन्द्रिय आठ सात्त्विकको प्रकट नहीं कर सकती।" ('हि० का० शा० इ०, पृ० १८६, प्र० सं० २००५ वि०)।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० बृ० इ० (भा० ६); हि० का० शा० इ०; ब्रजभारती : मीतलजीका लेख (९।४)।] —सं०

रस-रहस्य–इस ग्रन्थके लेखक कुलपति मिश्र हैं और इसका रचनाकाल सन् १६७० ई० (सं० १७२७, कार्तिक

बदी एकादशी) है। ग्रन्थकी रचना आश्रयदाता रामसिंहकी आज्ञासे उनके विजयमहलमें की गयी है। इसका प्रकाशन बलदेव प्रसाद मिश्रके सम्पादनमें इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद से सन् १९४० ई० में हुआ। रस-विवेचनको प्रधानता देते हुए भी इस ग्रन्थमें आठ वृत्तान्तोंमें ६५२ पद्योंमें शास्त्रीय सिद्धान्तोंको दोहा-सोरठामें तथा उदाहरणोंको कवित्त-सवैयामें रखते हुए 'काव्यप्रकाश' तथा 'साहित्य-दर्पण'के आधारपर अन्य विषयोंका भी निरूपण किया गया है।

मंगलाचरणके पश्चात् राज-वर्णन, सभा-वर्णन, काव्य-वर्णन, काव्य-प्रयोजन, काव्य-हेतु, काव्य-भेद, रस-लक्षण, दोष, गुण तथा अलकारका निरूपण करके इस ग्रन्थको सर्वांग निरूपक बनानेकी चेष्टा की गयी है। मुख्य अलंकारों के अतिरिक्त अन्य अलंकारों तथा अलंकार दोष एवं संकर तथा संसृष्टि अलंकारोंके वर्णनकी ओर ध्यान नहीं दिया गया है। विवेचन-शैलीपर 'काव्यप्रकाश' का इतना अधिक प्रभाव है कि इसे कुछ विद्वानोंने उसका छायानुवाद मान लिया है। रस-विवेचनमें स्वयं लेखकने अभिनवगुप्त का नाम लिया है और रस तथा अलंकार प्रकरणमें 'साहित्यदर्पण' तथा 'रसिकप्रिया'का भी प्रभाव दिखाई पड़ता है। लक्षण मम्मटकी अपेक्षा सरल तथा व्यावहारिक है और यत्र-तत्र इनकी मौलिक-सूझका भी संकेत मिलता है। गद्य-वार्तिक द्वारा विषयको स्पष्ट बनानेकी चेष्टा की गयी है किन्तु भाषा अपरिमार्जित, अस्पष्ट और वाक्य-विन्यास दुरूह हो गया है। लक्षण-उदाहरणका समुचित समन्वय अवश्य प्रशंसनीय है। उदाहरण लेखकके स्वरचित हैं। भामह, रुद्रट और विश्वनाथके काव्य-लक्षणोंके आधारपर लोकोत्तर चमत्कारयुक्त शब्दार्थको काव्यकी संज्ञा देकर इन्होंने समन्वय-बुद्धि और प्रौढ़ताका परिचय दिया है।

शान्त रसके नाटकमें प्रयोग न किये जानेके कारणकी खोजमें इनकी मौलिक सूझ है कि नाटक बहुविषयी होता है, अतः शान्तरसप्रधान व्यक्ति भी अन्य बातोंसे बचनेके लिए उसे नहीं देखेगा। इसी प्रकार काव्य-प्रयोजन निर्धारण में तथा काव्य-लक्षणोंमें विश्वनाथका खण्डन प्रस्तुत करने में भी इनकी मौलिकता देखी जा सकती है। दोष-दृष्टिसे वाचक शब्द, व्यंजना-शक्ति, तात्पर्यार्थ-वृत्ति, भाव-लक्षण और उसके भेदोंका निरूपण, उद्दीपन विभावका स्वरूप-वर्णन दोषपूर्ण है तथा दोष एवं गुण प्रकरण अपूर्ण है। ग्रन्थमें नायक-नायिका भेदका निरूपण सम्भवतः इसलिए नहीं हुआ कि इन्होंने 'नखशिख' नामक एक अलग ही रचना प्रस्तुत की है। अलकारप्रसगमें भूषण-शैलीका अनुकरण करनेपर भी आश्रयदाताकी प्रशसा ही अधिक रह गयी है। सोमनाथने 'रसपीयूषनिधि'के शब्दालंकार विवेचन में तथा प्रतापसाहिने 'काव्यविलास'में अधिकांशतः इनसे प्रभाव ग्रहण किया है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० बृ० इ० (भा० ६); हि०सा० इ०; हि० अ० सा०; हि० का० शा० इ०।]—आ० प्र० दी०

रसराज—यह मतिराम द्वारा रचित शृंगार रस और नायिका भेदपर अत्यन्त प्रख्यात कृति है। शायद ही कोई हिन्दी हस्तलिखित ग्रन्थोंका प्राचीन पुस्तक संग्रह या पुस्तकालय हो, जिसमें मतिरामकृत 'रसराज' न मिलता हो। यह कहना एक तथ्य है कि जिस प्रकार बिहारीके कवि रूपकी ख्यातिका आधार उनकी 'सतसई' है, उसी प्रकार मतिराम के कवियशका आधार 'रसराज' है। काशी नागरी प्रचारिणी सभाके पुस्तकालयमें ही इसकी कई प्रतियाँ हैं। सबसे प्राचीन उपलब्ध प्रति १७२३ ई० (सं० १७८० वि०) की लिखी हुई है। केशवकी 'रसिकप्रिया', 'बिहारी सतसई' और 'रसराज'—ये तीन ग्रन्थ पहलेके समयमें साहित्य-प्रेमियोंके संग्रहोंमें अवश्य मिलते थे। अतः मतिरामकृत 'रसराज'की अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ यत्र-तत्र मिलती हैं। 'रसराज'का प्रथम मुद्रित प्रकाशन सन् १८६८ ई० (सं० १९२५) में लाइट छापाखाना, काशी द्वारा किया गया। इसके पश्चात् नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, भारत जीवन प्रेस, काशी, राजस्थान यन्त्रालय, अजमेरमें भी 'रसराज'का प्रकाशन हुआ। सबमें प्रामाणिक संस्करण कृष्णबिहारी मिश्र द्वारा सम्पादित मतिराम ग्रन्थावलीमें प्रस्तुत 'रसराज'का है, जो उपर्युक्त सामग्रीके आधारपर प्रस्तुत की गयी।

'रसराज'की रचना-तिथिपर विद्वानोंमें मतभेद है। मिश्रबन्धुओंके विचारसे यह मतिरामके अलंकारग्रन्थ 'ललित ललाम'के बादकी रचना है और उनके अनुसार इसका रचनाकाल १७१० ई० (स० १७६७ वि०)के लगभग है, जब बूँदीके नरेशोंसे इनका सम्बन्ध छूट गया था। 'शिवसिंह सरोज'में भी 'रसराज'का नाम 'ललितललाम'के बाद आता है परन्तु कृष्णबिहारीका मत इससे भिन्न है। वे इसका रचनाकाल १६३३ ई० और १६४३ ई०के बीच मानते हैं, जब कि मतिरामकी अवस्था ३०, ३५ वर्षकी रही होगी। यदि मिश्रबन्धुओंका समय मानें तो 'रसराज' की रचनाके समय इनकी अवस्था १०० वर्षसे ऊपर बैठती है। मिश्रबन्धुओंने मतिरामका जन्म १६३९ ई०के लगभग माना है और उस दृष्टिसे भी मतिरामकी अवस्था 'रसराज'-की रचनाके समय ७० वर्षके लगभग होती है। इतनी वृद्धावस्थामें 'रसराज'में व्यक्त किशोरावस्थाके भावोंका लालित्य और सुकुमारता सम्भव नहीं। अतः कृष्णबिहारी-का मत मानना चाहिए। त्रिभुवन सिंहने अपने ग्रन्थ 'महाकवि मतिराम'में भी इसी मतकी पुष्टि की है। इस प्रकार 'रसराज', 'ललित ललाम'से पहले रचा गया और इसका रचनाकाल १६४३ ई०के आसपास है।

'रसराज' शृंगाररस और नायिकाभेदपर एक ललित ग्रन्थ है। शृगार नायक-नायिकाका आलम्बन प्राप्त करके विकसित होता है, अतः ग्रन्थमें नायक-नायिका भेद वर्णन प्रथम और उसके पश्चात् भावों, हावों एवं शृंगार के अंगोंका वर्णन किया गया है। नायिकाभेदके प्रसंगोंमें ये वर्णन प्रमुख हैं—स्वकीयता, परकीयता, गणिका तथा इनके भेद-प्रभेद, अवस्थाके विचारसे नायिकाभेद। इनके लक्षण सामान्य पर उदाहरण बड़े लक्षित हैं। मतिरामका यह नायिकाभेद एवं शृंगारवर्णन 'रसमंजरी'की परम्परामें है। इसपर केशवकी 'रसिकप्रिया' एवं चिन्तामणिकी 'शृंगारमंजरी'का भी प्रभाव है।

'रसराज'की महिमा उसमें निहित काव्य-सौष्ठव और भावसम्पत्तिके कारण है। इस ग्रन्थकी रचनामें कविकी तन्मय अनुभूति इतनी सहज एवं सच्ची है कि भाव और उसकी अभिव्यंजनाको अलग-अलग देखना कठिन हो जाता है। सर्वरूपेण किशोरावस्था एवं युवावस्थाके भावोंका सजीव वर्णन इस ग्रन्थमे हुआ है। नायिकाके रूप, गुण, मनोभाव, चेष्टा आदि जैसे मतिरामकी तूलिकासे अपने समस्त सहज आकर्षणको सहेजकर चित्रित हुई हैं। उक्ति वैचित्र्यके वैलक्षण्यमे भटकना नही पड़ता, फिर भी रूप-सौन्दर्य एवं भाव चित्रणकी उक्तियाँ स्वतः अविस्मरणीय रूपमें हमारे मनमें प्रवेश करती जाती हैं और ऐसा लगता है कि मतिरामके छन्द उनके सहज संस्कारी हृदयकी निष्प्रयास अभिव्यक्ति है। नायिकाके सहज गुणोंके दाक्षिण्यका प्रभाव वर्णन करनेवाला मतिरामके निम्नांकित दोहेसे बढकर छन्द मिलना कठिन है—"जानति सोति अनीति है, जानति सखी सुनीति। गुरुजन जानत लाज है, पीतम जानत प्रीति॥" 'रसराज'मे विशेष रूपसे किशोरा-वस्थाके वर्णन अधिक सुकुमार एवं उत्कृष्ट है और समग्र रचनाको पढनेपर लगता है कि यह मतिरामकी युवावस्था में लिखा गया ग्रन्थ है। इसीसे चढती युवावस्थाके चित्रण अति सरस हैं। इस प्रकार 'रसराज' मतिरामकी सुकुमार भावचेष्टाओंका वर्णन करनेवाली सरस रचना है।

[सहायक ग्रन्थ— मतिराम—कवि और आचार्य: महेन्द्रकुमार; महाकवि मतिराम : त्रिभुवनसिंह; मतिराम ग्रन्थावली : सं० कृष्णविहारी मिश्र।] —भ० मि०

रसरूप–ग्रियर्सनके अनुसार इस कविका जन्म सन् १७३१ ई० में हुआ और वह लगभग सन् १७५८ ई० तक वर्तमान रहा। खोजमे कविकी तीन कृतियाँ उपलब्ध हुई हैं—(१) 'तुलसीभूषण',(२)'नखशिख' और (३) 'उपालम्भ शतक'। 'तुलसीभूषण' अलकार और छन्द-ग्रन्थ है। इसका रचना-काल सन् १७५४ ई० है। इसके अन्तर्गत कविने 'काव्य-प्रकाश', 'कुवलयानन्द' और 'चन्द्रालोक'के आधार पर तुलसीदासके 'रामचरितमानस'मे प्राप्त होने वाले अलकारों-का निर्देश किया है। दूसरे 'नखशिख' नामक ग्रन्थमे कवि-ने राधाके अंग-सौन्दर्यका वर्णन किया है, जिसकी शैली रूढ़ और परम्पराभुक्त है। फलस्वरूप उसके द्वारा कोई मार्मिक अनुभूति नहीं जगती। कवि काव्यगत शास्त्रीयता पर जितना ध्यान देता है, भावपक्ष पर उतना नहीं। 'उपालम्भ शतक'मे उद्धव और गोपियोंका संवाद दिखाया गया है। इस ग्रन्थकी एक प्रति कालाकांकर राज्य पुस्त-कालयमें मिली है, जिसका लिपिकाल सन् १८३२ ई० है। इस रचनाका बहुप्रयुक्त छन्द कवित्त ही है।

इसके अतिरिक्त 'श्यामविलास' और 'विनय रसामृत' संज्ञक कविकी दो और रचनाओंका उल्लेख 'मिश्रबन्धु-विनोद', भाग ३ में किया गया है। किन्हीं विशिष्ट गुणोंके अभावमें कविका कवित्व साधारण कोटिका है।

[सहायक ग्रन्थ—खो० रि० (सं० ११, ७६, २६९); मि० वि०; शि० स०।] —रा० त्रि०

रसलीन–रसलीन, सैयद गुलाम नबीका उपनाम है। इनके पिताका नाम सैयद मुहम्मद बाकर था और ये हुसैनी परम्पराके थे। ये हरदोई जिलाके प्रसिद्ध कस्बा बिलग्रामके रहने वाले थे। इनके मामा मीर अब्दुल जलीम 'बिलग्रामी' भी हिन्दीके कवि थे और उनके दोहे रहीमके समकक्ष रखे जा सकते हैं। इन्हींसे रसलीनको हिन्दी काव्य-रचनाकी प्रेरणा प्राप्त हुई। रामनरेश त्रिपाठी ने अनुमान द्वारा इनका जन्म सन् १६८९ ई० माना है।

रसलीन केवल कवि नहीं थे, वरन् एक सुयोग्य सैनिक, तीरन्दाज और घुड़सवारीमें निपुण व्यक्ति थे। ये नवाब सफदरगंजकी सेवामें थे और उनकी सेनाके साथ पठानोंके विरुद्ध युद्ध करते हुए आगराके समीप सन् १७५० ई०में मारे गये। शिवसिंहने इनको अरबी-फारसीका आलिम फाजिल और भाषा-कवितामें अत्यन्त निपुण बताया है। एक प्रसिद्ध दोहा—"अमिय, हलाहल, मद भरे, सेत, स्याम, रतनार। जियत, मरत, झुकि झुकि परत, जेहि चितवत इक बार॥" जिसे बहुधा लोग बिहारी-का समझा करते हैं रसलीनका ही है। इनकी रचना दोहोंमे ही है, जिससे जहाँ चमत्कार और उक्ति-वैचित्र्यका आनन्द पाठकको मिलता है, वहीं छन्दकी सूक्ष्मताके कारण नाद-सौन्दर्यका लाभ कम हो जाता है। इनके लिखे दो ग्रन्थ अत्यन्त प्रसिद्ध हैं—'अंगदर्पण', जिसकी रचना सन् १७३७ ई०में हुई और जिसमें १८० दोहे हैं, दूसरा 'रस प्रबोध', जिसमे ११२७ दोहे हैं और जिसकी रचना सन् १७४१ ई०मे हुई है। 'अगदर्पण' नखशिखसम्बन्धी ग्रन्थ है और 'रस प्रबोध' रस, भाव, नायिकाभेद, षट्-ऋतु, बारहमासा आदि प्रसगोंसे युक्त अपने ढगका अच्छासा ग्रन्थ है। उदाहरण सभी बड़े रस-पूर्ण है पर शास्त्रीय विवेचनाका अभाव इसमें अवश्य है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० बृ० इ० (भा० ६); हि० सा० इ०; हि० का० शा० इ०।] —ह० मो० श्री०

रसविलास–यह रीतिकालके प्रसिद्ध कवि देवका शृंगार रस एव नायिका-भेदविषयक एक प्रमुख लक्षण-ग्रन्थ है। इसका रचनाकाल कविने स्वय ग्रन्थके एक संस्मरणमे, जो भोगीलालको समर्पित किया गया तथा जिसमें पहलेसे लगभग १०० छन्द अधिक हैं, विजयादशमी सं० १७८३ (१७२६ ई०) दिया है। पहले संस्करणमें यह उपलब्ध नहीं होता। नगेन्द्रके मतसे "वास्तवमे 'रस-विलास' को 'जातिविलास' का संशोधित और परिवर्धित संस्करण कहना चाहिए।" लक्ष्मीधर मालवीयने पाठ-विज्ञानकी पद्धतिसे यह निष्कर्ष निकाला कि 'जातिविलास' कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ न होकर 'रसविलास'की ही एक खण्डित प्रतिका भ्रमवश दिया हुआ नाम है, अतएव 'रसविलास' को 'जातिविलास' का संशोधित—परिवर्धित संस्करण कहना भी भ्रामक है। इस भ्रमका कारण निम्नलिखित दोहा है—"देवल रावल राजपुर नागरि तरुनि निवास। तिनके लच्छन भेद सब बरनत जाहि विलास॥७॥" 'रसविलास' के इस दोहेमे 'जातिविलास' शब्द ग्रन्थवाची न होकर केवल विषय-बोधक है। भ्रमका मूल कारण 'विलास' शब्दका विचित्र प्रयोग है, जो प्रायः उस कालके ग्रन्थ-नामोंमें प्रयुक्त मिलता है। डा० नगेन्द्रने 'जाति-

विलास' की दो प्रतियोंका उल्लेख किया है, एक मिश्र-बन्धुओंकी अपूर्ण प्रति और दूसरी गोकुलचन्द्र दीक्षितकी पूर्ण प्रति। उन्होंने पूर्णता-अपूर्णताका निश्चय सम्भवतः प्रारम्भसे न करके अन्तमे किया है। 'रसविलास' आठ विलासोंमें समाप्त हुआ है, जब कि 'जातिविलास' नामक उसकी खण्डित प्रतिमें पाँच विलास ही हैं। खण्डित अंशमें मूलसे १६ प्रक्षिप्त छन्दोंके अतिरिक्त और कोई भेद नही है। विलासोंके अन्तमे कहीं 'जातिविलास' शब्दका प्रयोग नहीं हुआ है, सर्वत्र "इति श्री रसविलासे कवि देवदत्त कृते···" आदि मिलता है। 'जातिविलास' को स्वतन्त्र ग्रन्थ न माननेका लक्ष्मीधरके अनुसार यह अकाट्य आधार प्रतीत होता है।

'रसविलास' का एक संस्करण सन् १९०० ई० में भारत जीवन यन्त्रालय, काशीमे प्रकाशित हुआ, जिसका सम्पादन बाबू रामकृष्ण वर्माने किया। "यह ग्रन्थ सीहोरनिवासी कबि गोविन्द गीला भाईकी सहायतासे हमको प्राप्त हुआ है।" यह वाक्य सम्पादकने मुख पृष्ठपर छापकर ग्रन्थ प्राप्तिके स्रोतका उल्लेख कर दिया है।

'रसविलास'के प्रथम विलासमें नायिकाओंके देवल, रावल, नागरी एवं सखी इत्यादि भेद तथा उनके विविध कर्मोंका वर्णन है, द्वितीयमें जौहरनीसे लेकर गणिका तक नगर-नागरियों का, तृतीयमे पुर, ग्राम तथा पथकी वधुओ का, चतुर्थमे नायिकाके अष्टाग, पचममे जाति, कर्म, गुणके पश्चात् देश-भेदके अनुसार वर्णन है, जो देवकी निजी मनोवृत्तिका द्योतक है तथा ब्रजभाषाके नायिकाभेद साहित्यमे विशेषतः चर्चित हुआ है। इसीके आधारपर उन्हें यायावरीय वृत्तिमे सम्पन्न माना जाता है। छठे विलासमें अवस्था, वय, प्रकृति तथा सत्त्वके आधारपर नायिकाओंका संक्षिप्त वर्णन है और इसी प्रकार सातवें विलासमे दस हावो तथा दस काम-दशाओ का। इस विलासमे कविने हावों तथा भावोके परस्पर सयोगसे अनेक भेदोपभेदोंकी उद्भावना की है। अष्टम विलासमे, जो द्वितीय संस्करणको रूप देनेमे की गयी आकारवृद्धिका परिणाम है, नायिकाओके मुग्धा-मध्या आदि परम्परागत विभेद वर्णित हैं। आठ विलासोमे कुल ४६६ छन्द मिलते हैं।

[सहायक ग्रन्थ—मि० वि० ; शि० स० ; हि० का० शा० इ० ; रो० भू० तथा दे० का० ; देवके लक्षण-ग्रन्थोका पाठ और पाठ-समस्याएँ (अ०) लक्ष्मीधर मालवीय।] —ज० गु०

रससारांश–'रस सारांश'मे दासने रसोकी विवेचना अत्यन्त विस्तारके साथ की है। इसका रचनाकाल शुक्लजीने सं० १७९९ ई० (सन् १७४३) दिया है, वह ठीक नही लगता क्योंकि ग्रन्थमें ही एक दोहा प्राप्त होता है—"सत्रहसे इक्यानवे, नभ, सुदि छठि बुधवार। अरवर देस प्रतापगढ़ ग्रन्थ अवतार॥" जिसके अनुसार सं० १७९१ ई० अर्थात् सन् १७३५ ई० में प्रतापगढ़के अरवर प्रदेशमे षष्ठी सुदी बुधवारके दिन इसकी रचना हुई थी। ग्रन्थकारने इसका संक्षिप्त रूप भी प्रस्तुत किया है, मूल सस्करणमे लक्षण तथा उदाहरण और संक्षेपमें मात्र लक्षण है, इनमें क्रमशः ५८६ तथा १५८ पद्य हैं। इसकी हस्तलिखित प्रति प्रतापगढ़ नरेशके पुस्तकालयमें है और इसका प्रकाशन गुलशन-ए-अहमदी प्रेस, प्रतापगढ़से (१९३४ ई०) हुआ है।

इसमें अन्य आचार्यों द्वारा विवेचित रस-ग्रन्थोंकी अपेक्षा कुछ विशेषताएँ हैं, जैसे जहाँ अन्य कवियोंने दस हावोंका वर्णन किया है, दासने इनके साथ बोधन, तपन, चकित, हासित, कुतूहल, उद्दीपक, केलि, विक्षिप्त, मद और हेला दस हावोंको और माना है किन्तु शुक्लजीने इसे कोई विशेषता नहीं मानी है। वस्तुतः संस्कृतमें इन हावभावादिककी चर्चा सात्त्विक अलकारोंमें होती रही है। दूसरी विशेषता इनकी सुरुचिकी परिचायिका है। देवने निम्नवर्गीय स्त्रियों यथा—धाय, सखी, नटिन, सोनारिन, चुड़िहारिन, संन्यासिनी, धोबिन, कुम्हारिन, गन्धिन, मालिन आदिका वर्णन जहाँ नायिकाके रूपमें किया है, वहीं दासने चतुराईके साथ दूती रूपमे इनका वर्णन किया है। साथ ही साथ परकीयीमे साध्या परकीयाका भी वर्णन है। शृंगार सम्बन्धी सामग्रीके संचयनको आचार्यने 'शृंगार-नियम-कथन'का नाम दिया है। प्रस्तुत ग्रन्थ उतना प्रसिद्ध नहीं है, जितना कि 'शृंगार निर्णय' और 'काव्य निर्णय' हैं, न इसमें वर्णन ही उत्कृष्ट कोटिके कहे जा सकते है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० का० शा० इ०; हि० सा० इ०; हि० सा० बृ० इ० (भा० ६)।] —ह० मो० श्री०

रसिक गोविंद–ये जयपुरनिवासी नटाणी जातिके वैश्य थे। इनका वास्तविक नाम गोविन्द था। रामचन्द्र शुक्लके अनुसार इनका रचनाकाल १७९३ ई० से १८३३ ई० तक माना जा सकता है। 'रसिक' उपाधि इन्हें कृष्ण-भक्ति मे दीक्षित होनेके अनन्तर प्राप्त हुई थी। इनके पिताका नाम सालिग्राम और माताका नाम गुमाना था। रसिक गोविन्दने अपने चाचा मोतीराम और बडे भाई बालमुकुन्द का भी स्मरण बडी श्रद्धाके साथ किया है। बालमुकुन्दके ही पुत्र नारायणके लिए इन्होंने 'रसिक गोविन्दानन्द घन' की रचना की थी। परिवारकी आर्थिक विपन्नतासे इनके हृदयमे तीव्र विरक्ति उत्पन्न हुई। फलतः सबको छोडकर वे वृन्दावन चले आये। यहाँ इन्होंने निम्बार्क सम्प्रदाय के तत्कालीन आचार्य सर्वेश्वरशरण देवसे मन्त्र-दीक्षा ले ली। इसके पश्चात् इनका सारा जीवन ब्रजभूमिमें आराध्य की लीला तथा शास्त्रीय विषयोंपर काव्य-रचना करते हुए बीता।

अब तक रसिक गोविन्दके नौ ग्रन्थ प्रकाशमें आये हैं—'अष्टदेश भाषा', 'पिंगल', 'समय प्रबन्ध', 'रामायण सूचनिका' अथवा 'ककहरा रामायण', 'रसिक गोविन्दानन्द घन', 'युगल-रस-माधुरी', 'लछिमन चन्द्रिका', 'कलिजुग रासो' और 'रसिक गोविन्द'। 'अष्टदेश भाषा' के अन्तर्गत पंजाबी, खड़ीबोली, पूरबी, रेख्ता आदि आठ भाषाओंमें राधा-कृष्णकी लीला वर्णित है। इससे रचयिताकी बहुभाषा-विज्ञताका पता चलता है। 'पिंगल' छन्दशास्त्रविषयक रीतिशैलीमें लिखी गयी एक छोटी सी रचना है। 'समय प्रबन्ध'का प्रतिपाद्य विषय है राधा-कृष्णकी विभिन्न ऋतुओं में शृंगारचर्या। 'रामायण सूचनिका'में सम्पूर्ण राम-कथा ककारादि क्रमसे ३३ दोहोंमें वर्णित है। इसके कई छन्द

'रसिक गोविन्दानन्द घन'में भी संकलित है। इससे विदित होता है कि इसकी रचना १८०१ ई० के पूर्व हो चुकी थी। 'रसिक गोविन्दानन्द घन' काव्य-शास्त्रपर लिखी गयी इनकी सर्वोत्कृष्ट कृति है। इसकी रचना १८०१ ई० में हुई थी। 'युगल रस माधुरी'में राधा-कृष्णकी वृन्दावन लीलाका वर्णन अत्यन्त भावपूर्ण शैलीमें किया गया है। १९१५ ई० में निम्बार्क पुस्तकालय नानपारा (जिला बहराइच) के व्यवस्थापक पं० माधवदास ब्रह्मचारीने इसे प्रकाशित किया था। 'कलिजुग रासो'के १६ कवित्तोंमें कलि प्रभावका वर्णन करते हुए रचयिताने उसके अत्याचारों से त्राण पानेके लिए श्रीकृष्णसे प्रार्थना की है। इसका निर्माण १८०८ ई० मे हुआ था। 'लछिमन चन्द्रिका'की रचनाका उद्देश्य था 'रसिक गोविन्दानन्द घन'के विषय-तत्वको जिज्ञासुओंके लिए संक्षेपमें प्रस्तुत करना। यह ग्रन्थ काशीनिवासी जगन्नाथ कान्यकुब्जके पुत्र लक्ष्मण के प्रीत्यर्थ १८२९ ई० में लिखा गया था। 'रसिक गोविन्द' एक अलंकार ग्रन्थ है। पूर्वरचित 'रसिक गोविन्दानन्द घन'से इसकी भिन्नता केवल इतनी है कि प्रथममे लक्षण गद्यमे दिये गये है और उदाहरण कवित्त सवैयों में किन्तु इसमें लक्षण और उदाहरण दोनों पद्यबद्ध हैं। इसका रचनाकाल १८३३ ई० है। 'रसिक गोविन्द'की यह अन्तिम कृति है। इस प्रकार इनका कविताकाल १७९७ ई०मे १८३३ ई० तक माना जा सकता है। इनकी रचनाएं आचार्यत्व एवं कवित्व, दोनों दृष्टियोंसे महत्त्वपूर्ण है। आचार्यत्व इनकी काव्यशास्त्रकी मर्मज्ञता और कवित्व कृष्णभक्तिका प्रसाद था।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० इ० ; खो० वि० ; काव्यानुशीलन : बलदेव उपाध्याय।] —भ० प्र० सिं०

रसिक गोविंदानंदघन—रसिक गोविन्दकी यह सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना है। इसकी रचना उन्होने अपने मित्र आनन्दघन चौबेके नामपर १८०१ ई० की वसन्तपचमीको की थी। इसकी हस्तलिखित प्रति नागरी प्रचारिणी सभा, काशीमे कुछ दिन पूर्व उपलब्ध थी। जयपुरके पुस्तकालयमे एक प्रति बतलाई जाती है। लक्षणा-व्यंजनाको छोड़कर इसके अन्तर्गत दशाग काव्यका वर्णन बड़ो विद्वत्ताके साथ हुआ है। यह चार प्रबन्धोमें विभाजित है, जिनमे क्रमशः रस, नायिका, नायक-भेद, काव्य-दोष, गुण और अलकार का निरूपण किया गया है। इसकी प्रमुख विशेषता है लक्षणोंका गद्यमे दिया जाना। अन्य रीतिकालीन आचार्योंने प्रायः लक्षण पद्यबद्ध ही रखे हैं। उदाहरण परम्परानुसार इन्होंने भी दोहा, कवित्त, सवैया आदि छन्दोमे ही दिये हैं। वे स्वरचित भी हैं और प्राचीन कवियोंकी रचनाओंसे सगृहीत भी। इस ग्रन्थकी रचनामें रसिक गोविन्दने पूर्ववर्ती आचार्यों—भरत, अभिनवगुप्त, मम्मट, विश्वनाथ आदिका अनुसरण करते हुए भी अनेक स्थलोंपर स्वतन्त्र चिन्तन एवं मौलिक उद्भावनाका परिचय दिया है। हिन्दीके रीति-साहित्यमे इसका विशिष्ट स्थान है।

[सहायक ग्रन्थ— हि० सा० इ०; हि० सा० बृ० इ०(भा० ६); खो० वि०; काव्यानुशीलन : बलदेव उपाध्याय।] —भ० प्र० सिं०

रसिकप्रिया—इसके लेखक केशवदास हैं। रचनाकाल १५८९ ई० (सं० १६४८)। 'रसिकप्रिया'का मूल लीथोमें लाइट प्रेस, बनारससे मुद्रित हुआ था। इस पर सरदार कविकी टीका वहींसे १८६६ ई० में, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊसे १९११ ई० में तथा वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बईसे १९१४ ई० में प्रकाशित हुई। नकछेदकृत टीका डुमराँव, शाहाबादसे १८३४ ई० में, लक्ष्मीनिधि चतुर्वेदीकी टीका मातृभाषा मन्दिर, प्रयागसे सन् १९५४ ई० में तथा विश्वनाथ प्रसाद मिश्रकी टीका कल्याणदास एण्ड ब्रदर्स, वाराणसी द्वारा १९५८ ई० में निकली।

'रसिकप्रिया'में नायिकाभेद और रसका निरूपण है। पूरे ग्रन्थमें १६ प्रभावोंके अन्तर्गत ५३० छन्द हैं। इस ग्रन्थकी रचना केशवने अपने आश्रयदाता ओरछानरेश इन्द्रजीत सिंहके लिए की थी। इसका प्रयोजन रसिकोंका मनोरंजन है। इसीलिए इसका नाम 'रसिकप्रिया' रखा गया। इसके आधारभूत ग्रन्थ 'नाट्यशास्त्र', 'कामसूत्र' तो हैं ही, रुद्रभट्टके 'शृंगारतिलक'का इसमे पूरा आधार ग्रहण किया गया है। इन्होंने संस्कृतकी ही सारी सामग्री ली है। 'शृंगार तिलक'में सामान्याका विस्तार पर्याप्त है, जिसे इसमें नहीं रखा गया है। यह ध्यान देने योग्य है कि इन्द्रजीत सिंहकी पातुरोंके शिक्षक और शृंगारी बहिरंग प्रवृत्तिके लिए कुख्यात केशवने वेश्याओंके वर्णनको परित्यक्त कर दिया। आधार-ग्रन्थके अनुसार इसमें शृंगारके दो भेद 'प्रकाश' और 'प्रच्छन्न' किये गये है।

यद्यपि प्रधानता इसमें शृंगार-रसवर्णनकी ही है तथापि इस ग्रन्थमें रस, वृत्ति और अनरस (रस-दोष)का सामान्य निरूपण है। शृंगारके अन्तर्गत सब रसोका समावेश करनेका भी उद्योग किया गया है। प्रत्येक प्रकाशमें दोहोंमें लक्षण देकर प्रायः कवित्त या सवैयेमे उदाहरण दिये गये हैं। छप्पय छन्दोंका उपयोग यत्र-तत्र ही है। रसका आस्वाद लेनेवालोंके लिए इसका निर्माण हुआ, इसलिए उदाहरणों पर अधिक दृष्टि है।

केशवमे परम्पराका आग्रह चिरंतन प्रवाहके कारण है, उसमें भी वे परिष्कारपूर्वक प्रवृत्त होते रहे हैं। शृंगारी उदाहरण लक्षणमें समन्वयके कारण प्रस्तुत हुए हैं। केशवने 'रसिकप्रिया'के अधिकांश छन्दोमे नायक-नायिकाके प्रेम तथा विविध अवस्थाओं और परिस्थितियोंकी एवं प्रेमी तथा प्रेमिकाके भावोंकी राधाकृष्ण या गोपीकृष्णको आलम्बन मानकर अत्यन्त ही सुन्दर एवं मार्मिक व्यंजना की है। इसमें अलंकार-योजना स्वाभाविक तथा भावनिरूपणमें सहायक सिद्ध हुई है, कम स्थलों पर ही अस्वाभाविक हो पायी हैं।

'रसिकप्रिया'की भाषा बुंदेलीरंजित ब्रज है। इसमें मुहावरे तथा लोकोक्तियोंकी अच्छी बहार है। प्रायः ये वाक्यका सहज अंग बनकर ही प्रयुक्त हैं। इसमें केशवने हिन्दी काव्य-प्रवाहके अनुरूप सशक्त, समर्थ और प्रांजल भाषा रखी है। उनकी अन्य रचनाओंसे यह सबसे अधिक वाग्योगपूर्ण है। काव्यत्वकी दृष्टिसे भी 'रसिकप्रिया' उनकी सम्पूर्ण कृतियोंसे सर्वश्रेष्ठ है। इसमे ब्रज-भाषाका पूर्ण वैभव दिखाई देता है। यदि केशवने इसी प्रकारकी भाषाका प्रयोग

अपनी अन्य रचनाओंमें भी किया होता तो उनका इस क्षेत्र में विरोध न होता। —वि० प्र० मि०

रसिक बिहारी–इनका मूल नाम जानकीप्रसाद था। ये झाँसीनिवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण श्रीधरके पुत्र थे। इनका आविर्भाव १८४४ ई०मे हुआ था। अपनी असाधारण प्रतिभासे थोड़ी ही आयुमे ये पन्ना नरेशके कृपापात्र हो गये और राज्यके दीवान बना दिये गये। अयोध्यामे कनक भवनके महन्त प्यारेरामजी इनके गुरु थे। उनके देहावसानके बाद राजसेवा त्यागकर ये कनक भवनके महन्त हो गये।

इनकी २६ रचनाओका उल्लेख मिलता है—'काव्यसुधाकर' (१८६३ ई०), 'मानस प्रश्न' (१८६५ ई०), 'नामपचीसी' (१८६५ ई०), 'सुमति पचीसी' (१८६७ ई०), 'आनन्दबेलि', 'पावसविनोद' (१८६७ ई०), 'सुयश कदम्ब' (१८६८ ई०), 'ऋतुरग' (१८६८ ई०), 'नेहसुन्दरी' (१८७० ई०), 'रस कौमुदी' (१८७० ई०), 'विपरीत विलास' (१८७१ ई०), 'इश्क अजायब' (१८७१ ई०), 'बजरग बत्तीसी' (१८७३ ई०), 'विरह दिवाकर' (१८७४ ई०), 'ग्रन्थ प्रभाकर' (१८७४ ई०), 'कानून स्टाम्प' (१८७७ ई०), 'कानून जाब्ते अंग्रेजी' (१८७८ ई०), 'सतरजविनोद' (१८७८ ई०), 'नवलचरित्र' (१८७९ ई०), 'षड्ऋतु विभाग' (१८७९ ई०) 'रागचन्द्रावली' (१८८० ई०), 'मोदमुकुर' (१८८० ई०), 'कल्पतरु कवित्त' (१८८१ ई०), 'दरिद्र मोचन' (१८८१ ई०), 'रामरसायन' (१८८२ ई०) और 'कवित्त वर्णविलास'। यह सूची ही रसिक बिहारीके जीवनके राजनीतिक तथा आध्यात्मिक, दोनों पक्ष प्रत्यक्ष कर देती है। इनकी सर्वोत्कृष्ट कृति 'राम रसायन' नामक प्रबन्धकाव्य है। रामकी शृगारी लीलाओंके वर्णनमे सतुलन न रख सकनेके कारण इसके कथा-प्रवाहमे शिथिलता आ गयी है। इनकी भाषामे रीतिकालीन कवि ठाकुर और पद्माकरकी-सी चमत्कारप्रियता के दर्शन होते हैं।

[सहायक ग्रन्थ—रामभक्तिमे रसिक सम्प्रदाय : भगवतीप्रसाद सिंह।] —भ० प्र० सिं०

रसिक मोहन–यह बन्दीजन रघुनाथ द्वारा रचित अलकार ग्रन्थ है। इसका रचनाकाल सन् १७३९ ई० है। यह 'हिन्दी काव्यशास्त्रका इतिहास'के अनुसार भारत जीवन प्रेस, काशीसे और 'हिन्दी साहित्यका बृहत् इतिहास'के अनुसार नवलकिशोर प्रेस, लखनऊसे प्रकाशित हुआ है। इसमे अलकारोका उदाहरण देते समय लेखकने केवल शृंगार-रसका ही नहीं, अपितु वीर आदि अन्य रसोंके भी पर्याप्त उदाहरण दिये हैं। लक्ष्य करनेकी बात यह है कि किसी अलंकारका उदाहरण देते समय इनके कवित्त या सवैयाका पूरा कलेवर उस अलंकारका प्रतिनिधि बन जाता है, जबकि अन्यान्य आचार्य केवल एक ही चरणमे काम चला लेते है। इसमे ४८२ छन्द है, लक्षणके लिए दोहा और उदाहरणके लिए कवित्त तथा सवैयाका प्रयोग है। प्रारम्भमे विवेच्य अलकारोंकी सूची दे दी गयी है। सामान्यतः 'कुवलयानन्द'का लक्षणोमे प्रभाव है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० बृ० इ० (भा० ६); हि० अ० सा०; क० कौ० (प्र० भा०)।] —ह० मो० श्री०

रसिक सुमति–मथुरिया टोला, आगराके ईश्वरदास उपाध्यायके पुत्र, काश्यपवंशीय ब्राह्मण। इनका समय १८ वी शताब्दीका प्रारम्भिक दशक माना जा सकता है। इस समय तक कुलपति अपने ग्रन्थोंकी रचना कर चुके थे और वह इन्हीके टोलेमें ६० वर्ष पहले रह चुके थे। द्वितीय त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट (सन् १९०९-१९११ ई०)से इनकी एकमात्र रचना 'अलंकार चन्द्रोदय'का पता चला है। इसमे कविने अपनेको ईश्वरदासका पुत्र कहा है, जैसा कि ग्रन्थके नामसे स्पष्ट है यह अलंकार-ग्रन्थ है।

'अलंकार चन्द्रोदय'के रचनाकालके विषयमें कविने कहा है—"सर (५) वसु (८) रिषि (७) ससि (१) लिखि लखौ सम्वत सावन मास। पुष्प भौम तेरसि असित कीन्हों ग्रन्थप्रकाश॥" अर्थात् उक्त ग्रन्थकी रचना श्रावण कृष्ण पक्ष त्रयोदशी, संवत् १७८५ (सन् १७२८ई०)मे हुई किन्तु रामचन्द्र शुक्लने अपने 'हिन्दी साहित्यका इतिहास'में उक्त कविकी इस कृतिका रचनाकाल संवत्की जगह भ्रमसे सन् १७८५ ई० दे दिया है। इसके कुल छन्दोंकी संख्या २४० है। इस ग्रन्थमें कविने संस्कृत अलंकार-ग्रन्थ 'कुवलयानन्द'के आधारपर अलंकारके लक्षणों और उदाहरणोंको एक ही दोहेमे बाँधकर अलग-अलग दिखलाया है—"रसिक कुवलयानन्द लखि अलि मन हरष बढ़ाय। अलंकार चन्द्रोदयहिं बरनत हित हुलसाय॥" कहीं-कहीं लक्षण और उदाहरण एकमे मिलकर उलझ गये है। परिणामस्वरूप उसमे अस्पष्टता आ गयी है। वैसे साधारणतः कहीं-कहीं दोहे अच्छे बन पड़े है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० का० शा० इ०; हि० सा० इ०; खो० वि०।] —रा० त्रि०

रहीम–अब्दुर्रहीम खाँ खानखाना मध्ययुगीन दरबारी संस्कृतिके प्रतिनिधि कवि है। अकबरी दरबारके हिन्दी कवियोंमे इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये स्वय भी कवियों के आश्रयदाता थे। केशव, आसकरन, मण्डन, नरहरि और गग जैसे कवियोंने इनकी प्रशसा की है। ये अकबरके अभिभावक बैरम खाँके पुत्र थे। इनका जन्म माघ कृष्ण पक्ष गुरुवार, सन् १५५६ ई० मे हुआ था। जब ये कुल ५ वर्षके ही थे, गुजरातके पाटन नगरमे (१५६१ ई०) इनके पिताकी हत्या कर दी गयी। इनका पालन-पोषण स्वय अकबरकी देख-रेखमे हुआ। इनकी कार्यक्षमतासे प्रभावित होकर अकबरने १५७२ ई० मे गुजरातकी चढाईके अवसरपर इन्हें पाटनकी जागीर प्रदान की। अकबरके शासनकालमे इनकी निरन्तर पदोन्नति होती रही। १५७६ ई० मे गुजरात विजयके बाद इन्हे गुजरातकी सूबेदारी मिली। १५७९ ई० में इन्हे 'मीर अर्ज'का पद प्रदान किया गया। १५८३ ई० मे इन्होंने बड़ी योग्यतासे गुजरातके उपद्रवका दमन किया। प्रसन्न होकर अकबरने १५८४ ई० में इन्हे 'खानखाना' की उपाधि और पंचहजारीका मनसब प्रदान किया। १५८९ ई० मे इन्हे 'वकील' की पदवीसे सम्मानित किया गया। १६०४ ई० मे शाहजादा दानियालकी मृत्यु और अबुलफजलकी हत्याके बाद इन्हे दक्षिणका पूरा अधिकार मिल

गया। जहाँगीरके शासनके प्रारम्भिक दिनोंमें इन्हें पूर्ववत् सम्मान मिलता रहा। १६२३ ई० में शाहजहाँके विद्रोही होनेपर इन्होंने जहाँगीरके विरुद्ध उनका साथ दिया। १६२५ ई० में इन्होंने क्षमायाचना कर ली और पुनः 'खानखाना' की उपाधि मिली। १६२६ ई० में ७० वर्षकी अवस्थामें इनकी मृत्यु हो गयी।

रहीमका पारिवारिक जीवन सुखमय नहीं था। बचपनमें ही इन्हें पिताके स्नेहसे वंचित होना पड़ा। ४२ वर्षकी अवस्थामें इनकी पत्नीकी मृत्यु हो गयी। इनकी पुत्री विधवा हो गयी थी। इनके तीन पुत्र असमयमें ही कालकवलित हो गये थे। आश्रयदाता और गुणग्राहक अकबरकी मृत्यु भी इनके सामने ही हुई। इन्होंने यह सब कुछ शान्तभावसे सहन किया। इनके नीतिके दोहोंमें कहीं कहीं जीवनकी दुःखद अनुभूतियाँ मार्मिक उद्गार बनकर व्यक्त हुई हैं।

रहीम अरबी, तुर्की, फारसी, संस्कृत और हिन्दीके अच्छे जानकार थे। हिन्दू-संस्कृतिसे ये भलीभाँति परिचित थे। इनकी नीतिपरक उक्तियोंपर संस्कृत कवियोंकी स्पष्ट छाप परिलक्षित होती है। कुल मिलाकर इनकी ११ रचनाएँ प्रसिद्ध है। इनके प्रायः ३०० दोहे 'दोहावली' नामसे संगृहीत हैं। मायाशंकर याज्ञिकका अनुमान था कि इन्होने सतसई लिखी होगी किन्तु वह अभीतक प्राप्त नहीं हो सकी है। दोहोंमें ही रचित इनकी एक स्वतन्त्र कृति 'नगर शोभा' है। इसमें १४२ दोहे हैं। इसमें विभिन्न जातियोंकी स्त्रियोंका शृंगारिक वर्णन है। रहीम अपने बरवै छन्दके लिए प्रसिद्ध हैं। इनका 'बरवै नायिका भेद' अवधी भाषा मे नायिका-भेदका सर्वोत्तम ग्रन्थ है। इसमें भिन्न-भिन्न नायिकाओंके केवल उदाहरण दिये गये हैं। मायाशंकर याज्ञिकने काशीराज पुस्तकालय और कृष्णविहारी मिश्र पुस्तकालयकी हस्तलिखित प्रतियोंके आधारपर इसका सम्पादन किया है। रहीमने बरवै छन्दोंमे गोपी-विरह वर्णन भी किया है। मेवातसे इनकी एक रचना 'बरवै' नामकी इसी विषयपर रचित प्राप्त हुई है। यह एक स्वतन्त्र कृति है और इसमें १०१ बरवै छन्द है। रहीमके शृंगार रसके ६ सोरठे प्राप्त हुए हैं। इनके 'शृंगार सोरठ' ग्रन्थका उल्लेख मिलता है किन्तु अभी यह प्राप्त नहीं हो सका है। रहीमकी एक कृति संस्कृत और हिन्दी खड़ीबोलीकी मिश्रित शैलीमें रचित 'मदनाष्टक' नामसे मिलती है। इसका वर्ण्य-विषय कृष्णकी रास-लीला है और इसमें मालिनी छन्दका प्रयोग किया गया है। इसके कई पाठ प्रकाशित हुए हैं। 'सम्मेलन पत्रिका' में प्रकाशित पाठ अधिक प्रामाणिक माना जाता है। इनके कुछ भक्तिविषयक स्फुट संस्कृत श्लोक 'रहीम काव्य' या 'संस्कृत काव्य' नामसे प्रसिद्ध हैं। कविने संस्कृत श्लोकोंका भाव छप्पय और दोहामें भी अनूदित कर दिया है। कुछ श्लोकोंमें संस्कृतके साथ हिन्दी भाषाका प्रयोग हुआ है। रहीम बहुज्ञ थे। इन्हें ज्योतिषका भी ज्ञान था। इनका संस्कृत, फारसी और हिन्दी मिश्रित भाषामें 'खेट कौतुक जातकम्' नामक एक ज्योतिष ग्रन्थ भी मिलता है। रहीम लिखित 'रासपंचाध्यायी'का उल्लेख भी मिलता है किन्तु यह रचना प्राप्त नहीं हो सकी है। 'भक्तमाल'में इस विषयके इनके दो पद उद्धृत हैं। विद्वानोंका अनुमान है कि ये पद 'रासपंचाध्यायी'के अंश हो सकते हैं। रहीम ने 'वाकेआत बाबरी' नामसे बाबरलिखित आत्मचरितका तुर्कीसे फारसीमें भी अनुवाद किया था। इनका एक 'फारसी दीवान' भी मिलता है।

रहीमके काव्यका मुख्य विषय शृंगार, नीति और भक्ति है। इनकी विष्णु और गंगासम्बन्धी भक्ति-भावमयी रचनाएँ वैष्णव-भक्ति आन्दोलनसे प्रभावित होकर लिखी गयी हैं। नीति और शृंगारपरक रचनाएँ दरबारी वातावरणके अनुकूल हैं। रहीमकी ख्याति इन्हीं रचनाओंके कारण है। बिहारी और मतिराम जैसे समर्थ कवियोंने भी रहीमकी शृंगारिक उक्तियोंसे प्रभाव ग्रहण किया है। व्यास, वृन्द और रसनिधि आदि कवियोंके नीतिविषयक दोहे रहीमसे प्रभावित होकर लिखे गये हैं। रहीम का ब्रज और अवधी दोनोंपर समान अधिकार था। उनके बरवै अत्यन्त मोहक है। प्रसिद्ध कि है तुलसीको 'बरवै रामायण' लिखनेकी प्रेरणा रहीमसे ही मिली थी। 'बरवै' के अतिरिक्त इन्होंने दोहा, सोरठा, कवित्त, सवैया, मालिनी आदि कई छन्दोंका प्रयोग किया है। इनका काव्य इनके सहज उद्गारोंकी अभिव्यक्ति है। इन उद्गारोंमे इनका दीर्घकालीन अनुभव निहित है। ये सच्चे और संवेदनशील हृदयके व्यक्ति थे। जीवनमें आनेवाली कटु-मधुर परिस्थितियोंने इनके हृदय-पटपर जो बहुविध अनुभूतिरेखाएँ अंकित कर दी थी, उन्हींके अकृत्रिम अंकनसे इनके काव्यकी रमणीयताका रहस्य निहित है। इनके 'बरवै नायिका भेद'में काव्यरीतिका पालन ही नहीं हुआ है, वरन् उसके माध्यमसे भारतीय गार्हस्थ्य-जीवनके लुभावने चित्र भी सामने आये हैं। मार्मिक होनेके कारण ही इनकी उक्तियाँ सर्वसाधारणमें विशेष रूपसे प्रचलित हैं।

रहीम-काव्यके कई संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें 'रहीम रत्नावली' (सं० मायाशंकर याज्ञिक—१९२८ ई०) और 'रहीम विलास' (सं० ब्रजरत्नदास—१९४८ ई०, द्वितीयावृत्ति) प्रामाणिक और विश्वसनीय हैं। इनके अतिरिक्त 'रहिमन विनोद' (हि० सा० सम्मे०), 'रहीम कवितावली' (सुरेन्द्रनाथ तिवारी), 'रहीम' (रामनरेश त्रिपाठी), 'रहिमन चंद्रिका' (रामनाथ सुमन), 'रहिमन शतक' (लाला भगवानदीन) आदि संग्रह भी उपयोगी है।

रहीम एक सहृदय स्वाभिमानी, उदार, विनम्र, दानशील, विवेकी, वीर और व्युत्पन्न व्यक्ति थे। ये गुणियोंका आदर करते थे। इनकी दानशीलताकी अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। इनके व्यक्तित्वसे अकबरी दरबार गौरवान्वित हुआ था और इनके काव्यसे हिन्दी समृद्ध हुई है।

[सहायक ग्रन्थ—अकबरी दरबारके हिन्दी कवि : डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल; रहिमन विलास : ब्रजरत्नदास; रहीम रत्नावली : मायाशंकर याज्ञिक।] —रा० चं० ति०

राउ जैतसी रो छंद-बीठू शाखाके चारण कवि सूजाजीने सन् १५४३ ई० के आसपास 'राउ जैतसी रो छन्द'की रचनाकी। कृतिमे बीकानेरके महाराज राव जैतसी (१५२६-१५४१ ई०) और बाबरके द्वितीय पुत्र कामराँके युद्धका

वर्णन है। कामरान इस युद्धमें पराजित होकर लौट गया था। मुसलमान इतिहास लेखकोंने इस युद्धके विषयमें कुछ नहीं लिखा है, अतः ऐतिहासिक दृष्टिसे कृतिका बहुत महत्त्व है। कृतिमें ४०१ पद्य है—पद्धड़िया, दोहा, कवित्त छन्दों-का प्रयोग हुआ है। कृतिकी भाषा डिंगल है। कृति अप्रकाशित है।

[सहायक ग्रन्थ—राजस्थानी भाषा और साहित्य : मेनारिया।] —रा० तो०

राउ जैतसी रो रासो–डिंगलमें लिखित 'राउ जेतसी रो रासो'के रचयिताके विषयमें कुछ भी ज्ञात नहीं है। उसका विषय 'राउ जैतसी रो छन्द'के समान है, जिसमें बीकानेर नरेश राव जैतसी (१५२६-१५४१ ई०) और बाबरके पुत्र कामरानके युद्धका वर्णन है। कामरान पराजित होकर भाग गया था। वीर-रसप्रधान इस कृतिकी भाषा डिंगल है तथा दोहा, मोतीदाम और छप्पय छन्दोंका प्रयोग हुआ है। कृति प्रकाशित हो गयी है।

[सहायक ग्रन्थ—हिन्दी साहित्य खण्ड २, भारतीय हिन्दी परिषद्, इलाहाबाद, १९५९ ई०।] —रा० तो०

राक्षस–प्रसादकृत नाटक 'चन्द्रगुप्त'का एक पात्र। बौद्ध अमात्य वक्रनासके कुलमें उत्पन्न ब्राह्मण राक्षस मगध-सम्राट् नन्दका स्वामिभक्त सचिव एवं अनेक कलाओंमे पारंगत एक कुशल राजनीतिज्ञ तथा सौन्दर्यपारखी संवेदन-शील प्रणयी है। विशाखदत्तके 'मुद्राराक्षस' नाटकमें प्रधान पात्रके रूपमें उसका चित्रण किया गया है। राक्षस और चाणक्यके बीचमें चलने वाले विविध राजनीतिक घात-प्रतिघातोंको उभारते हुए विशाखदत्तने उसे चाणक्यके प्रधान प्रतिद्वन्द्वीके रूपमें चित्रित किया है, साथ ही राक्षस की कूटबुद्धि एवं स्वामिभक्तिका निदर्शन करते हुए उसके व्यक्तित्वको प्रतिष्ठा प्रदान की है। उसकी पराजयका कारण उसकी स्वभावोचित हीनता नहीं, वरन् परिस्थितियोंकी विडम्बना बतायी गयी है, किन्तु प्रसादके 'राक्षस'में न तो वह गरिमा आ पायी है और न कूटबुद्धि एवं स्वामिभक्ति का ही चित्रण किया गया है उन्होंने उसके चरित्रको बहुत ही हल्का कर दिया है। चाणक्यकी प्रखर राजनीतिके समक्ष राक्षसका व्यक्तित्व धूमिल पड़ गया है। राजनीति का कुशल खिलाड़ी 'चन्द्रगुप्त'में सुवासिनीका रसिक प्रणयी बनकर रह जाता है। उसमें नन्दके प्रति स्वामिभक्तिका भी अपेक्षाकृत अभाव है। इसका कारण विलासी नन्द द्वारा उसकी प्रेमिका सुवासिनीके प्रति अनुचित आकर्षणको माना जा सकता है। सुवासिनी राक्षसके समस्त कार्यकलापों एवं विचारोंकी केन्द्रबिन्दु बन गयी है।

राजनीतिकी दृष्टिसे राक्षसका चरित्र स्वार्थपूर्ण एवं निष्प्रभ है। वह व्यक्तिगत हितोंसे प्रेरित होकर राष्ट्रके शत्रु सिकन्दरके विरुद्ध पोरसको प्रत्यक्ष सहायता देना अस्वीकार करता है तथा नन्दवंशके विरोधी चन्द्रगुप्तका हाथ पकड़कर उसे सिंहासनपर बैठाता है। यही नहीं, नन्दके हत्यारे शकटारके सहयोगमें मन्त्रिपरिषद् के कार्य सम्पादनकी स्वीकृति भी प्रदान करता है। राक्षस अपने वैयक्तिक स्वार्थ-पूर्तिके लिए विदेशी सिल्यूकससे मिलकर सारी भेदकी बातें बताकर उसे आक्रमण करनेके लिए उत्साहित करता है। कार्नेलिया उसके इस विश्वास-घात एवं देशद्रोहपर लक्ष्य करती हुई कहती है: "मेरे यहाँ ऐसे ही लोगोंको देशद्रोही कहते हैं। वह पापकी मलीन छाया है।" उसमें बुद्धि-बलका भी अभाव है। चाणक्यके अंगुलिनिर्देशमे वह नाचता है। उसकी कूटनीतिके चक्कर मे आकर अपनी अंगुलीय मुद्रा तक उसे अर्पित कर देता है। इस प्रकार कूटनीतियुक्त बुद्धिबलके अभावमें वह चाणक्यका उपयुक्त प्रतिद्वन्द्वी नहीं प्रतीत होता। नाटकके अन्तमे राक्षसके स्वभावमें परिवर्तन आता है। चाणक्य के प्रभावसे वह देशभक्त बन जाता है तथा देशभक्तिकी भावनासे प्रभावित होकर अपने पूर्व सहायतापेक्षी सिल्यू-कससे युद्ध करता हुआ उसे घायल करता है और स्वयं मारा जाता है। —के० प्र० चौ०

राघवचेतन–'पदमावत'के अन्तर्गत राघवचेतन एक अत्यन्त निपुण पण्डितके रूपमे आता दीख पड़ता है। इसे वहाँ पर सहदेव जैसा पण्डित और "वररुचिके समान अपने चित्तमे वेदका रहस्य चिन्तन कर चुकने वाला तथा वैसी ही बुद्धि वाला" भी बतलाया गया है। राजा रतनसेन-के दरबारमें आकर वह सिंहल द्वीपसम्बन्धी कोई ऐसी काव्यमयी कथा सुनाता है, जिसमे "समस्त पिंगल मथकर उसका सार भर दिया गया" जान पड़ता है और जिसे सुनकर वहाँके कवि तक सिर धुनने लग जाते हैं और समझते हैं, जैसे वेदका नाद सुन रहे हों (३८-१)। तदनु-सार जब एक दिन 'अमावस' रहती है और राजाके पूछने पर कि 'दोयज कब होगी' राघवके मुखसे 'आज है' निकल जाता है और अन्य पण्डित इसके प्रतिवादमे 'कल है' कहते है और इस प्रकार दोनो दलोंकी परीक्षाका अवसर आ जाता है तथा दोनों ही शपथ ले लेते हैं तो यह अपनी इष्ट यक्षिणीके बलसे अपने कथनकी पुष्टि कर दिखलाता है जो बात पीछे वास्तविक 'दोयज'के आ जाने पर असिद्ध ठहर जाती है और सभी अन्य पण्डित ईर्ष्यावश इसके पीछे पड़ जाते हैं (३८-२)। फलतः राजा भी इसपर क्रुद्ध होकर इसे देश निकालनेकी आज्ञा दे देते है और यह बात सुनकर तथा इसके पाण्डित्यके प्रति श्रद्धा भाव रहनेके कारण पदुमावती इसे उपहारस्वरूप अपना कंगन उतारकर दे देती है (३८-६) तथा यह उसके रूप द्वारा अत्यन्त प्रभावित होकर दिल्लीके सुल्तान अलाउद्दीनकी ओर चलना चाहता है (३८-११) और इस प्रकार अन्तमे उन सारे अनर्थोंका कारण बन जाता है, जो भीषण युद्ध एवं चित्तौड़ पतन जैसे रूपोमे आगे प्रतिफलित होते दीख पड़ते हैं।

ऐसे किसी राघवचेतनका पता हमें अपना इतिहास देता हुआ नहीं पाया जाता। अगरचन्द नाहटाका कहना है कि "राघव चैतन्य निश्चित रूपसे एक ऐतिहासिक विद्वान् और मुहम्मद तुगलकके समयके सिद्ध होते हैं" तथा "अलाउद्दीन खिलजी और मुहम्मद तुगलकके समयमे राघव चैतन्य एक विद्वान् संन्यासी एवं प्रभावशाली व्यक्ति अवश्य हो गये है' ('ना० प्र० पत्रिका', वर्ष ६४, पृ० ६६) परन्तु केवल इतना कह देने मात्रसे ही हम वैसे महापुरुष एवं 'पदमावत'के राघवचेतन, इन दोनोंको एक और अभिन्न ठहरानेका कोई प्रत्यक्ष कारण नहीं देखते। प्रत्युत उपलब्ध

सामग्रीके आधार पर, अनुमान कर सकते हैं कि राघव चैतन्य नामके कोई पुरुष, जिन्हें 'मुनि', 'ब्रह्मवादी' अथवा 'परमहंस परिव्राजकाचार्य' जैसी उपाधियाँ भी दी जा सकती थीं, सुल्तान अलाउद्दीनके समसामयिक रहे होंगे तथा जायसीने उनके नामका उपयोग, अपने प्रेमाख्यानके उस पात्रके लिए भी कर दिया होगा, जिसका स्वभाव वस्तुतः किसी साधारणसे भले आदमीकी दृष्टिसे भी नितान्त विपरीत सिद्ध होता है। यहाँ पर यह भी उल्लेखनीय है कि जायसीके अनन्तर 'पद्मिनी चरित्र' नामक पुस्तकके रचयिता लालचन्द या लब्धोदयने राघवचेतनको चित्तौड़का रहनेवाला कोई व्यास (कथावाचक पण्डित) कहा है, जिसका राजा रतनसेनके यहाँ बहुत सम्मान था तथा जिसे किसी एक दिन राजा एवं पद्मिनीके एकान्तमे क्रीड़ा करते समय राजमहलमे बिना सूचना दिये जानेके कारण प्रवेश कर जानेसे वहाँसे निकाल दिया गया था। यह राघवचेतन भी अलाउद्दीनके यहाँ चला जाता है और उसे राजा रतनसेनके विरुद्ध उभाड़ता है ('ना० प्र० पत्रिका' भा० १५ पृ० १९३-४)। 'गोरा बादलकी कथा' के रचयिता जटमलने राघवचेतनका पदुमावतीके साथ 'सिंघल' से ही आना लिखा है (छप्पय २७) और यह भी बतलाया है कि मृगयाके समय एक बार रतनसेनके कहनेपर उसने पदमावतीका एक हूबहू चित्र बना दिया और उसकी जाँघ-की एक तिलतकका उसमें समावेश कर दिया, जिससे उसके ऊपर सन्देह करके राजाने उसे अपने यहाँसे निकाल दिया (छप्पय ३१)। 'फुतूहु सनलातीन' ग्रन्थ (सन् १३५० ई०) के रचयिता एसामीका कहना है कि जिस समय सुल्तान अलाउद्दीनने झिल्लमका 'षड्यन्त्र' नष्ट कर देनेके लिए मलिक नायबको भेजा, उस समय "झिल्लम, राघव तथा रामदेव शाही सेना देखकर बड़े घबड़ाये" (खि० का० भारत पृ० २०१) और 'छिताई वार्ता' (नारायणदास) द्वारा पता चलता है कि रामदेवके विरुद्ध परामर्श करनेके लिए सुल्तानने राघवचेतनको बुलवाया था (पद्य ३१८) तथा उससे यह भी कहा था कि यदि कोई युक्ति अभी नहीं बतलाते हो तो कल सवेरे खाल खिचवा लूँगा (पद्य ३२६) परन्तु वैसी दशामे भी ऐसे राघव वा राघवचेतनके साथ 'पदमावत' के पात्रकी अभिन्नताका सिद्ध कर सकना सरल नहीं जान पड़ता।

'पदमावत' का राघवचेतन एक गुणी व्यक्ति है किन्तु इसके साथ ही वह क्रूर प्रकृतिका व्यक्ति है और प्रतिहिंसा-परायण भी है। अपनी प्रतिशोधमयी प्रवृत्तिके कारण वह राजवंशके नष्ट हो जाने तथा विधर्मियोकी शक्तिमें वृद्धि आ जानेकी ओर तक ध्यान नहीं देता। वह अपने उद्देश्य की सिद्धिके लिए इतना तुला है कि सुल्तानके साथ चित्तौड़ गढ़वाले स्वागतमे बराबर रहता है, उसे पद्मावती-के धोखेमे उसकी सुन्दरी दासियोंके फेरमे न पड़ जानेकी सलाह देता है (४६-९) तथा सुल्तानके दर्पणमें रानीका प्रतिबिम्ब देखकर, बेसुध हो पड़नेको छिपानेके लिए उसे सुपारीका लगना बतलाता है (४६-१८)। राघवचेतन तथा सुल्तानके बीच ऐसे अवसरपर होनेवाली बातचीतसे जान पड़ता है कि ये दोनों कुछ कालके लिए 'अभिन्नहृदय मित्र' से भी हो गये हैं (४६-१९-२२)। यह पदुमावतीके सौन्दर्य की भूरि-भूरि प्रशंसा करता रहता है और चाहता है कि उस सुन्दरी रमणीके प्रति सुल्तानकी लिप्सामें किसी भी प्रकार कमी न आने पावे। यदि यह राजा रतनसेनके दरबारमें सचमुच कुछ दिनोंसे रहता आया था और वहाँसे उचित सम्मान भी पा चुका था, उस दशामें इसका अपने आश्रयदाताके विरुद्ध असाधारण षड्यन्त्रकी रचना करना इसकी घोर कृतघ्नताका ही परिचायक कहा जायेगा। हो सकता है, इसे लोभवृत्तिने भी उत्तेजित किया हो किन्तु उस दशामे इस खल-पात्रकी नीचता और भी स्पष्ट हो जाती है। —प० च०

राजनाथ पांडेय—जन्म १९१० ई०में वाराणसी जिलेमें हुआ। शिक्षा एम० ए०, डी० फिल० प्रयाग विश्वविद्यालय मे हुई। सागर विश्वविद्यालयके हिन्दी विभागमें प्राध्यापक है। साहित्यके विभिन्न माध्यमोंमे आपने प्रयोग किये है। कृतियाँ—'लंकादहन' (नाटक—१९४० ई०), 'वीर नाविक महाजनक' (कविता-१९४२ ई०), 'रत्नमंजरी' (कहानियाँ—१९५१ ई०), 'पुरुरवाकी शपथ' (उपन्यास—१९५७ ई०)। —सं०

राजनीति—सन् १८०९ ई०मे लल्लूलाल द्वारा ब्रजभाषामें 'हितोपदेश'का अनुवाद है, जिसे लल्लूलालने जान गिलक्राइस्टके आदेशसे तैयार किया था।

इस ग्रन्थका क्रम हितोपदेशके अनुसार ही है—(१) मित्रलाभ, (२) सुहृद भेद, (३) विग्रह, (४) संधि, (५) लब्धप्रणाश। परन्तु यह क्रम पचतन्त्रका है। आजकल हितोपदेशकी जो प्रतियाँ मिलती है, उनमें चार ही परिच्छेद पाये जाते हैं। लल्लूलालने इसका क्रम यों रखा है—"याहि तें पाँच प्रकारकी कथा करि कहत हौं। पहली मित्रलाभ कहै प्रीति करायबेकी रीति। दूजी सुहृद्भेद कहैं स्नेह छुरायबेकी रीति। तीजी विग्रह कहैं युद्ध करायबेकी चालि। चौथी सन्धि कहै मिलाप करायबे की युक्ति सग्राम तें पहिले होय कै पाछै। पाँचवीं लब्ध-प्रनाश कहे एक वस्तु पायकरि हिराय देनी।"

लल्लूलालके बाद इसका एक सस्करण इलाहाबादसे सन् १८५४ ई०मे सशोधित रूपमे प्रकाशित हुआ, जिसमें सात पृष्ठोंकी भूमिका तथा दस पृष्ठोंमे टिप्पणीयाँ और चौदह पृष्ठोंमे शब्दानुक्रमणी दी गयी है। सबके अन्तमे दो पृष्ठोंमें शुद्धिपत्र भी है। इसी संस्करणका एक शुद्ध शाब्दिक अनुवाद सी० डब्ल्यू० बोडलर बेलके द्वारा किया गया और कलकत्तेकी थैकर स्पिंक कम्पनीसे सन् १८६९ ई०में प्रकाशित हुआ।

इस ग्रन्थकी भाषाका नमूना यह है—"इतनौ कहि पुनि राजा बोल्यौ कि मेरे पुत्र गुनवान होय तौ भलौं। यह सुनि कोऊ राजसभामे तै बोल्यो कि महाराज आयु कर्म वित्त विद्या अरु मरन ये पाँच बात देहधारी कौं गर्भ हीमें सिरजी है। ताते भावी में है सो बिना भये नाहीं रहति जैसें श्री महादेव जू कौं नग्नता अरु श्री भगवान कौं सर्प सय्या। तासौं चिन्ता मति करौं। जौ तिहारे पुत्रनि कै कर्ममें विद्या लिखी है तौ विद्यावान होंयगे। पुनि राजा कहि यह तौ साँच है पर मनुष कौं परमेश्वरने

हाथ अरु ज्ञान दयो है।"

[सहायक ग्रन्थ—राजनीति, संस्करण, इलाहाबाद, १८५४ ई०; राजनीति : सी० डब्ल्यू० वोडलर वेल द्वारा ब्रजभाषासे अंग्रेजीमें अनुवाद, कलकत्ता, सन् १८६९ ई०।] —वि० ना० प्र०

राजपति दीक्षित–जन्म वाराणसी जिलान्तर्गत १९१५ ई०। काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके हिन्दी विभागमे प्राध्यापक है। आपका शोध-प्रबन्ध 'तुलसीदास और उनका युग' (१९५२ई०)तुलसी-समीक्षाका एक प्रमुख ग्रन्थ है, जिसमें समकालीन परिस्थितियोंकी पृष्ठभूमिमे तुलसीके सामाजिक, धार्मिक और दार्शनिक विचारोंका विवेचन है। —स०

राजबली पांडेय–जन्म १९०७ ई०। करौंज जिला देवरिया में। शिक्षा (एम० ए०, डी० लिट्०) काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमें हुई। अनेक वर्षों तक वहीं कालेज आफ इण्डोलाजीके प्रिंसिपल रहे। अब जबलपुर विश्वविद्यालयमे पुरातत्त्व विभागके अध्यक्ष है। कई वर्षोंतक नागरी प्रचारिणी सभाके प्रधान मन्त्रीके रूपमे बडा महत्त्वपूर्ण कार्य किया। 'हिन्दी साहित्यका बृहत् इतिहास' तथा 'हिन्दी विश्व कोश'की योजनाके प्रमुख पुरस्कर्ताओंमे से आप रहे हैं।

आपकी निम्नांकित रचनाऐं है—'इण्डियन पेलियोग्राफी' (१९५२ ई०), 'प्राचीन भारत—हिन्दू काल' (१९५४ ई०), 'विक्रमादित्य' (१९५९ ई०), 'हिन्दीमे उत्तर साहित्य' (१९५७ ई०), 'हिन्दी साहित्यका बृहत् इतिहास'—१ भाग (सम्पादित १९५७ ई०), 'हिन्दू संस्कार' (१९४९ ई०)।

पुस्तकोंके अध्ययनसे उनके ज्ञान वैविध्य एवं ऐतिहासिक दृष्टिकी क्षमताका परिज्ञान होता है। इतिहासके प्रति आपका अपना एक दृष्टिकोण है। हिन्दू संस्कारों एवं लिपि विज्ञान पर भी आपके विचार द्रष्टव्य है। लिपि-विज्ञानके आप अद्वितीय ज्ञाता है। विषयको स्पष्ट करनेके लिए आप सहज प्रांजल भाषाका प्रयोग करते है। —श्री० व०

राजवल्लभ सहाय–जन्म, सन् १८९० ई० मे बिहारके सारन जिलान्तर्गत मोंझी ग्राममे। मृत्यु २७ जनवरी, सन् १९६३ ई०। प्रारम्भिक शिक्षा ग्राम विद्यालयमे। अंग्रेजी, हिन्दी, फारसीका अध्ययन। कालेजमे आप बहुत अच्छे छात्र समझे जाते थे। सन् १९२१ ई० मे असहयोग आन्दोलनमे भाग लिया तथा जेल भी गये। बादमे भी राष्ट्रीय आन्दोलनोंमे भाग लिया। सफल अध्यापक, सम्पादक तथा कोशकार। प्रारम्भमे देशभक्तिमूलक कविताएँ भी कीं। दैनिक 'आज' के सम्पादकीय विभागके भूतपूर्व अन्यतम सदस्य, साप्ताहिक 'आज' तथा 'समाज' के भूतपूर्व सम्पादक। सौर चैत्र, १९७७ ई० मे ज्ञानमण्डल प्रकाशन विभागमे सहायक सम्पादक होकर आये। प्रकाशन-विभागके काशी विद्यापीठ जानेपर वहाँ गये, जहाँ आपने पुस्तकसम्पादनके साथ-साथ अध्यापनका भी कार्य किया। सौर १९९५ ई० से साप्ताहिक 'आज' के सहायक सम्पादक, बादमें उसके सम्पादक हुए। उसीके 'समाज' रूपमे निकलनेपर सम्पादक बने। सौर २००४ के उत्तरार्धमे दैनिक 'आज' का भी सम्पादनकार्य मुख्यरूपमे सँभाला। अनन्तर आप ज्ञानमण्डलसे प्रकाशित 'बृहत् हिन्दी कोश'के सम्पादन कार्यमें लगे, जहाँसे आपने संवत् २०१० में अवकाश ग्रहण किया। अनेक वर्षोतक आपने 'आरोग्य' मासिक पत्रके सम्पादनमें भी योग दिया। आप प्रचारसे दूर रहकर जीवन भर हिन्दी भाषा एवं साहित्यकी एकान्त साधना करनेवाले साहित्यकार थे। भाषाके संस्कार तथा उसके साधु एवं सुन्दर प्रयोगोके प्रचलनमें आपका योगदान स्मरणीय रहेगा। ज्ञानमण्डलसे प्रकाशित 'बृहत् हिन्दी कोश'के सम्पादकोंमे आप प्रमुख रहे है। मौलिक साहित्यकी रचनाके साथ ही आपने सफल अनुवाद भी किये हैं। नाट्यशास्त्रसम्बन्धी मौलिक ग्रन्थका भी प्रणयन आपने किया है, जो अभी अप्रकाशित है। भारतीय सन्त-साहित्यकी परम्परामे धरनीदासके सम्बन्धमे विद्वानोंका ध्यान आकृष्ट कर तत्सम्बन्धी अनुसन्धानके प्रेरक बने।

कृतियाँ—'ग्रीस-रोमके महापुरुष', 'ट्राटस्कीकी जीवनी', 'महासमरकी झाँकी', 'पश्चिमी यूरोप (दूसरा भाग)', 'बृहत् हिन्दी कोश' (सम्पादक), डाक्टर राजेन्द्रप्रसादकी 'डिवाइडेड इण्डिया'के अधिकांश अंशका अनुवाद। प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी साहित्यका अनुवाद। —ल० शं० व्या०

राजविलास–'राजविलास'की रचना मान कविने आषाढ शुक्ल सप्तमी, बुधवार, सं० १७३४ वि० (२६ जून, १६७७ ई०)को प्रारम्भ की थी (छ० ३८, पृ० ८)। इसमे महाराणा राजसिंहविषयक १६८० ई० तककी घटनाओंका वर्णन है। अतः 'राजविलास'की समाप्ति १६८० ई०मे हुई थी।

'राजविलास'मे १८ विलास है। विलास १ मे सरस्वती विनय, मोरी-वंशज चित्रांगदका १८ प्रान्तोंपर शासन करना, बापा रावलकी उत्पत्ति तथा उनका चित्रांगदको पराजित करके चित्तौडपर अधिकार करना वर्णित है। द्वितीय विलासमे बापा रावलकी वंशावली, उदयपुर नगर तथा राजसिंहका ११ वर्ष तककी आयुका वर्णन है। तृतीय विलासमे बूंदीनरेश छत्रसाल हाडाकी पुत्रीके साथ राजसिंहके विवाह और चतुर्थ विलासमे 'ऋतु-विलास' उपवनका चित्रण है। पंचम विलाससे सप्तम विलास तक महाराणा राजसिंहके राज्याभिषेक तथा रूपनगरकी राजकुमारी रूपकुमारी (चारुमती)के साथ विवाहका वर्णन है। अष्टम विलासमे सात वर्षीय अकाल, 'राजसर', विष्णु-मन्दिरका निर्माण तथा महाराणाके तुलादानका उल्लेख है। नवम विलासमे औरंगजेबके उत्तराधिकार-युद्ध, आतंक, जोधपुरपर अधिकार, महाराजा अजीतसिंहका महाराणा राजसिंहके पास जाने आदिका वर्णन है। दशमसे अष्टादश विलास तक महाराणा राजसिंहकी मृत्युपर्यन्त (२२ अक्तूबर, १६८० ई०) तकके औरंगजेबके साथ युद्धोंका चित्रण है। इसमे वीर-रसका सुन्दर परिपाक हुआ है। दोहा, गीतामालती, कवित्त (छप्पय), पद्धरी आदि विभिन्न छन्दोंका प्रयोग हुआ है। राजस्थानीमिश्रित साहित्यिक ब्रजभाषा प्रयुक्त हुई है। इस प्रकार 'राजविलास' ऐतिहासिक एवं साहित्यिक दोनों दृष्टियोंसे एक अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ है। इस ग्रन्थका सम्पादन लाला भगवानदीनने और प्रकाशन

नागरी प्रचारिणी सभा, काशीने सन् १९१२ ई०में किया है। —टी० सिं० तो०

राजा शिवप्रसाद (सितारे हिंद)–जिस समय देवनागरी अक्षरोंमें "टूटी-फूटी चालपर" लिखी जानेवाली हिन्दी संकटकालसे गुजर रही थी, राजा शिवप्रसाद उसके समर्थन और उत्थानका व्रत लेकर साहित्य-क्षेत्रमे आये। आप परमारवंशीय क्षत्रिय थे। आपके पितामह, नवाब कासिमअली खाँके अत्याचारोंसे ऊबकर मुर्शिदाबादसे काशी चले आये थे। आपका जन्म काशीमे ही सन् १८२३ ई० मे हुआ था। आपने हिन्दी, उर्दू, फारसी, संस्कृत, अंग्रेजी और बंगला आदि कई भाषाओंका अच्छा ज्ञान प्राप्त किया था। सबसे पहले आपने भरतपुर दरबार-में नौकरी की और राज्यके हितमें बड़े-बड़े कार्य किये। सन् १८४५ ई० मे आप सरकारी नौकरीमें आये। तृतीय सिख युद्धमे अंग्रेजोंकी जी खोलकर सहायता की और शीघ्र ही सरकारी स्कूलोंके इन्सपेक्टर हो गये। प्रारम्भसे ही साहित्यके प्रति आपकी विशेष रुचि थी। शिक्षा-विभागमे रहकर आपने अनेक रचनाएँ प्रस्तुत की।

'मानवधर्मसार', 'योगवाशिष्ठके कुछ चुने हुए श्लोक', 'उपनिषद्सार', 'भूगोलहस्तामलक', 'छोटा भूगोल हस्तामलक', 'स्वयंबोध उर्दू', 'वामामनरंजन', 'आलसियोंका कोडा', 'विद्यांकुर', 'राजा भोजका सपना', 'वर्णमाला', 'हिन्दुस्तानके पुराने राजाओंका हाल', 'इतिहास तिमिर-नाशक' (भाग १, २, ३) 'सिखोंका उदय और अस्त', 'गुटका' (भाग १, २, ३), 'नया गुटका' (भाग १, २) 'हिन्दी-व्याकरण', 'कुछ बयान अपनी जुबानका', 'बाल-बोध', 'सैण्डफोर्ड और मारटनकी कहानी', 'अंग्रेजी अक्षरोंके सीखनेका उपाय', 'बच्चोंका इनाम', 'लड़कोंकी कहानी', 'बीरसिंहका वृत्तान्त', 'गीत गोविन्दादर्श', 'कबीर टीका' आदि आपकी प्रसिद्ध कृतियाँ है। इन कृतियोंमेसे अधिकांश विद्यार्थियोंको दृष्टिमें रखकर लिखी गयी है। विषयकी दृष्टिमे विविधतापूर्ण होते हुए भी ये रचनाएँ महत्त्वपूर्ण नही कही जा सकतीं। इनका महत्त्व भाषाकी दृष्टिमे अधिक है। वह समय हिन्दी-प्रदेशीय जनताकी भावनाओंका आदर करते हुए और हिन्दी-भाषाकी जातीय प्रवृत्तिको लक्ष्यमे रखकर हिन्दी-गद्यको सर्वमान्य रूप देनेका था। इसके लिए निर्णयात्मक कदम उठानेके पूर्व पर्याप्त सोच-विचारकी आवश्यकता थी। राजा शिवप्रसादने सोच-विचारकर संस्कृत, अरबी, फारसी, अंग्रेजी और ठेठ हिन्दी सभीको मिलाकर एक सर्वमान्य भाषा बनानेकी चेष्टा की। उन्होंने 'भूगोल हस्तामलक', 'वामामनरंजन' 'राजा भोजका सपना' आदि कृतियोंमे ऐसी ही भाषाका प्रयोग भी किया। उनकी दृष्टिमे यह 'आमफहम' और 'खासपसन्द' भाषा थी। 'वामामनरंजन' की भाषाका एक नमूना इस प्रकारका है—"विदर्भ नगरके राजा भीमसेनकी कन्या भुवनमोहिनी दमयन्तीका रूप और गुण सारे भारतवर्षमे प्रख्यात हो गया था। निषध देशके राजा वीरसेनके पुत्र सर्वगुण विशिष्ट अति सुशील धार्मिक नलसे स्वयंवरमें उसने जयमाल डेकर विवाह किया।" यद्यपि सर्वत्र ऐसी भाषाका प्रयोग इस ग्रन्थमें भी नहीं है और उर्दूके पर्याप्त शब्दोंका प्रयोग प्रायः किया गया है किन्तु सब मिलाकर इस ग्रन्थकी भाषा 'आमफहम' कही जा सकती है। कठिनाई आगे चलकर हुई। 'इतिहास तिमिर नाशक', 'सिखोंका उदय और अस्त' तथा 'कुछ बयान अपनी जुबानका' आदि कृतियोंमे 'आमफहम' के नामपर अरबी-फारसीगर्भित शुद्ध उर्दूका प्रयोग किया गया है। 'सिखोंका उदय और अस्त' की भाषाका नमूना प्रमाणस्वरूप उद्धृत किया जा सकता है—"गरज लाहौरके राजकी खुदसरी व खुदमुख्त्यारी जो रंजीतसिंहने इस मिहनतसे काइम की थी अब हमेशाके वास्ते नेस्त-नाबूद हुई और पंजाब भी मिसल और छोटे रजवाड़ोंके सरकारका मुतीअ और फर्माबर्दार हो गया।"

राजा शिवप्रसादकी भाषा-नीतिके इस उत्तरोत्तर परिवर्तन का कारण है, उनका सरकारी नीतिका निरन्तर समर्थन करते चलना। अंग्रेजी सरकारकी प्रसन्नता उनकी प्रसन्नता थी। स्वभावसे भी वे संस्कृत-गर्भित या ब्रजभाषा-प्रभावित हिन्दीके समर्थक न थे। वे हिन्दीका गँवारपन दूर करना चाहते थे। उसे शिष्ट बनाना चाहते थे। अदालती भाषा को वे आदर्श मानते थे। उनकी दृष्टिमें सदैव शिक्षित समुदाय रहता था, भारतका कोटि-कोटि जन समुदाय नहीं। लिपिके प्रश्नपर वे सदैव 'देवनागरी'के समर्थक रहे। यदि कहीं उन्होंने उर्दू-लिपिका समर्थन किया होता तो उन्हें हिन्दी-हितैषी माननेमें भी संकोच होता। उनकी प्रेरणासे प्रकाशित 'बनारस अखबार'की भाषा भी उर्दू ही थी। यह नहीं कहा जा सकता कि उन्हे संस्कृत-मिश्रित हिन्दी लिखनेका अभ्यास नहीं था। 'मानवधर्मसार', 'योग वाशिष्ठ' और 'उपनिषदसार' की भाषा भारतीय सांस्कृतिक जीवनके सर्वथा अनुकूल है। सरकार बहादुर की प्रेरणा या दबावसे ही वे "सरकार दरबार और हाट बाजार में" बोली जाने वाली हिन्दीके हिमायती बने और क्रमशः उर्दूके रंगमे रंगते चले गये। फिर भी, उन्होंने जो कुछ किया, उसका महत्त्व और मूल्य कम नहीं है। मैकालेकी शिक्षा-योजनाके प्रभावस्वरूप उस समय ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी थी कि हिन्दीका अस्तित्व ही खतरे मे पड गया था। सरकारी दफ्तरोंकी भाषा तो 'उर्दू' हो ही गयी थी, सर्वसाधारणकी शिक्षाके लिए स्थापित किये जानेवाले मदरसोंमे भी हिन्दी-शिक्षाकी व्यवस्थाका विरोध हो रहा था। ऐसी परिस्थितिमे शिक्षा-विभागमे हिन्दीको स्थान दिलाना और उसकी रक्षा करना, उसमें विभिन्न विषयोंपर पाठ्यक्रमानुकूल छात्रोपयोगी पुस्तकें लिखना, नागरी लिपिका समर्थन करना और अपनेको हिन्दी-हितैषी कहना ही अपने आपमें बहुत बडी बात थी।

सन् १८७२ ई० मे आपकी सेवाओंसे प्रसन्न होकर अंग्रेजी सरकारने आपको 'सी० एस० आई०' की उपाधि दी। सन् १८८७ ई० मे आपको 'राजा'की सम्मानित उपाधि मिली। २३ मई सन् १८९५ ई० मे काशीमें आपका स्वर्गवास हो गया। यदि आपने थोड़ी सतर्कता और दृढ़ता से काम लिया होता तो हिन्दी-गद्यके उस व्यावहारिक स्वरूपके जनक हुए होते, जिसका विकास आगे चलकर देवीप्रसाद मुंसिफ और देवकीनन्दन खत्रीकी कृतियोंमें

हुआ। —रा० चं० ति०

राजेंद्रप्रसाद–स्वतन्त्र भारतके प्रथम राष्ट्रपति। जन्म ३ दिसम्बर, १८८४ ई०को उत्तर बिहारके जीरादेई नामक छोटेसे गाँवमें हुआ। स्कूलमें दाखिल होने से पहले उन्होंने घर पर मौलवी साहबसे फारसी पढ़ी। प्राइमरी पाठशाला में पहले-पहल हिन्दी पढ़ना शुरू किया और वहीं कुछ दिनोंके बाद हिन्दीके बदले संस्कृत पढ़ी। पर चौथे दर्जेमें पहुँचते-पहुँचते हिन्दी, संस्कृत दोनोंको छोड़कर उर्दू और फारसी ले ली, क्योंकि उस समय समझा जाता था कि वकालतके पेशेमें उससे कुछ मदद मिलेगी। पिताकी इसी आशाके कारण हिन्दीसे सम्पर्क टूट गया। एण्ट्रेंस और एफ० ए० तक फारसी पढ़ी। बी० ए० में ऐच्छिक विषयके रूपमें राजेन्द्र बाबूने हिन्दीमें लेख लिखा और पास हुए।

कलकत्तामें 'हिन्दी भाषा परिषद्' नामकी एक संस्था थी और बिहारियोंका एक 'बिहारी क्लब' था, इन दोनों जगहोंपर हिन्दीकी चर्चा होती, लेख पढ़े जाते और भाषण दिये जाते थे। इन संस्थाओंमें राजेन्द्रबाबू नियमित रूपसे भाग लिया करते थे। वहाँ हिन्दीके कई प्रसिद्ध विद्वान् साहित्यकारोंसे उनका परिचय हुआ और इन सबके सम्पर्कने राजेन्द्र बाबू में सहज ही हिन्दीके प्रति अनुराग पैदा कर दिया। उन्हीं दिनों कुछ लोगोंका विचार हुआ कि 'बंगीय साहित्य परिषद्'की तरह हिन्दी साहित्यकारोंका भी सम्मेलन हुआ करे तो अच्छा हो और इसी विचारसे कई व्यक्तियोंके साथ राजेन्द्र बाबूने भी अखबारमें एक पत्र लिखा। सन् १९१० ई०में हिन्दी साहित्य सम्मेलनका प्रथम अधिवेशन काशीमें हुआ, जिसमें राजेन्द्र बाबू शरीक हुए और वहाँ पुरुषोत्तमदास टण्डनसे उनका प्रथम परिचय हुआ। कलकत्तामें रहते हुए पद्मसिंह शर्मासे उनका परिचय हुआ, जिसके फलस्वरूप हिन्दी लेखनकी ओर इनकी सहज प्रवृत्ति हो गयी और अब राजेन्द्र बाबूने लेख लिखना आरम्भ किया। 'भारतोदय'में सन् १९१० में उनका प्रथम लेख 'समाज-संशोधन' प्रकाशित हुआ। इस पत्रिकाके सम्पादक पद्मसिंह शर्मा थे और उन्हींकी प्रेरणासे राजेन्द्र बाबूने हिन्दीमें यह लेख लिखा। यह उनके लिए बड़ी बात थी क्योंकि उनकी सारी शिक्षा-दीक्षा अंग्रेजीमें हो रही थी। यह लेख उनके हिन्दी प्रेमका द्योतक है।

जब कलकत्तामें हिन्दी साहित्य सम्मेलनका अधिवेशन हुआ तो स्वागत समितिके अध्यक्ष प० छोटेलाल मिश्र और मन्त्री राजेन्द्रबाबू बने। उसके बाद सम्मेलनसे उनका सम्बन्ध बराबर बना रहा। जब १९२० ई०में पटनामें सम्मेलनका अधिवेशन हुआ तो वह फिर स्वागत समितिके पदाधिकारी बने और १९२६ ई०में नागपुर सम्मेलनके अध्यक्ष चुने गये।

जब १९२८ ई०में राजेन्द्र बाबू इंग्लैण्ड गये। वहाँसे उन्होंने अपने अनुभव कुछ लेखोंके रूपमें लिख भेजे। 'मेरी यूरोप यात्रा' शीर्षक लेख पटनासे 'देश' नामक साप्ताहिकमें प्रकाशित हुए। इस पत्रके वे सम्पादक भी रहे। इस कार्यकालमें आपका हिन्दी लेखकों और पत्रकारोंसे सम्पर्क बना रहा।

जब महात्मा गान्धीने चम्पारनमें रहते समय हिन्दी प्रचारका काम दक्षिण भारतमें आरम्भ किया, राजेन्द्र बाबू ने भी उसमें पूरी रुचि ली और कई प्रचारकोंको बिहारसे दक्षिण भारत भेजा। जब नियमित रूपसे सन् १९१८ ई० में 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा'की स्थापना हुई तबसे वे महात्मा गान्धीके आदेशानुसार उसके उच्च पदाधिकारी रहे हैं। इसी प्रकार गान्धीजीकी प्रेरणासे वे 'हिन्दुस्तानी प्रचार सभा'से भी शुरूसे ही सम्बद्ध रहे, 'नागरी प्रचारिणी सभा'के साथ भी सम्बन्ध बना और उसके प्रकाशनोंमें उनकी सदा रुचि रही। 'हिन्दी साहित्यका बृहत् इतिहास' के निर्माणको प्रेरित किया और उसकी भूमिका भी लिखी।

राजेन्द्र बाबूकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने अपनी सब रचनाएँ मौलिक रूपसे हिन्दीमें लिखीं। इसका एकमात्र अपवाद 'इण्डिया डिवाइडेड'—'खण्डित भारत' है। सन् १९४० ई०में उन्होंने अपनी 'आत्मकथा' हिन्दीमें लिखी। यह बृहत् ग्रन्थ हिन्दीपर उनके पूर्ण अधिकारका प्रमाण है। 'आत्मकथा'की भाषा परिष्कृत है, शैली सरल तथा प्राजल है। इसीपर नागरी प्रचारिणी सभाने उन्हें 'मंगला प्रसाद पारितोषिक' दिया और बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्ने इन्हे दो पुरस्कार दिये—एक, सर्वप्रथम वयोवृद्ध हिन्दी सेवी होनेके नाते और दूसरा, गान्धी साहित्यपर सर्वोत्तम रचना ('बापूके कदमोंमें') के लिए। उनकी प्रत्येक कृतिका अपना उद्देश्य है और अपना व्यक्तित्व। 'मेरे यूरोपके अनुभव', 'संस्कृतका अध्ययन' और 'चम्पारनमें महात्मा गान्धी' ये पुस्तकें १९३७ ई०से पहले लिखी गयी थीं। 'यूरोपके अनुभव' १९२८ ई०में राजेन्द्र बाबूकी विदेशयात्राके सम्बन्धमें लिखे गये अनुभवोंका संग्रह है। 'संस्कृतका अध्ययन'में भारतीय संस्कृतिका सुन्दर विवेचन है। 'चम्पारनमें महात्मा गान्धी'की रचनाका आधार लेखककी व्यक्तिगत जानकारी और महात्मा गान्धीने चम्पारन (बिहार)में जो सत्याग्रह किया, उसके निजी क्रियात्मक सम्पर्क और दर्शनपर है। इसमें उन्होंने चम्पारनकी भौगोलिक और सामाजिक स्थितिका भी पूरा चित्रण किया है। प्रायः सौ वर्षोंकी नीलकी कोठियोंकी श्रमिक जनताकी समस्याओंका निदर्शन और महात्मा गान्धीके सत्याग्रहसे उनका समूल उन्मूलन तथा जनजीवनकी क्रान्तिका चित्रमय वर्णन है। इस पुस्तकके जन्मका आधार यही क्रान्तिपूर्ण कहानी है।

आगे 'आत्मकथा' और 'इण्डिया डिवाइडेड' (हिन्दी अनुवाद 'खण्डित भारत') जिसे ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसीने प्रकाशित किया था, उन्होंने ये दो पुस्तकें लिखीं। 'खण्डित भारत' नामकी पुस्तक पहली बार १९४५ ई०में प्रकाशित हुई। 'आत्मकथा'में राजेन्द्र बाबूके सरल और सात्विक व्यक्तित्वके अतिरिक्त देशके इतिहासमें विगत ४० महत्त्वपूर्ण वर्षोंमें जो घटनाएँ घटीं, लेखकने उनमें क्या भाग लिया, भारतकी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विचारधाराकी प्रगति—इन सब बातोंकी अच्छी झाँकी मिलती है। पूर्वार्द्ध कथाका स्तर देहाती जीवन, साधारण पारिवारिक परिस्थितियाँ, हिन्दू-समाजके रीति-रिवाज आदिसे ऊपर नहीं उठता। उत्तरार्द्ध पुस्तकका स्तर इतना ऊँचा है कि वह विशुद्ध आदर्शवाद, देशभक्ति, त्याग,

निःस्वार्थ सेवा और उच्च बौद्धिक विकास—इन सभीसे ओत-प्रोत है। सबसे बढ़कर 'आत्मकथा'के पन्नोंमें हमें एक सौम्य, सच्चे, विलक्षण और न्यायोन्मुख व्यक्तित्वके सम्पूर्ण दर्शन होते हैं।

'खण्डित भारत' मूलतः अंग्रेजीमें लिखा गया था पर शीघ्र ही उसका हिन्दी संस्करण भी प्रकाशित हो गया। सन् १९४० ई०में मुस्लिम लीगने पाकिस्तानसम्बन्धी प्रस्ताव पास किया और तब उस विषयपर लोगोंका ध्यान गया। जेलमें रहते-रहते उन्होंने इस विषयपर अनेक पुस्तकोंका अध्ययन किया, जिसके मन्थनस्वरूप इस पुस्तकका जन्म हुआ। इसका उद्देश्य यह था कि हिन्दू-मुसलमान दोनों इस विषयका तटस्थता-पूर्वक अध्ययन करें और समझें कि मुसलमानोंको क्या लाभ या नुकसान हो सकता है और जिन आधारोंपर यह दावा पेश है, उनमें क्या तथ्य है। यह भी दिखलाया गया कि यदि मुस्लिम लीगके प्रस्तावके अनुसार बँटवारा हुआ भी तो पाकिस्तानको क्या मिल सकता है।

परिपक्व लेख शैली, सुलझे हुए विचार, सफलताकी छायामें द्विगुणित श्रद्धा—ये 'बापूके कदमोंमें' नामक पुस्तककी विशेषताएँ हैं। साहित्यकी दृष्टिसे इस पुस्तकको 'आत्मकथा'की अपेक्षा अधिक विकसित कहा जा सकता है। विषय सीमित है और अभिव्यंजना भावनाओंके सहारे शरद्कालीन सरिताकी तरह स्वच्छ रूपमें मन्द गतिसे प्रवाहित होती दीखती है। महात्मा गान्धीके प्रति लेखक की असीम श्रद्धा और उनके सिद्धान्तोंमें लेखककी आस्था की गहराईका आभास गान्धीजीके व्यक्तित्वपर ही प्रकाश नहीं डालता, वरन् स्वयं लेखकके व्यक्तित्वको भी मानो उभारकर रख देता है। इस पुस्तकमें भावनाओंकी अभि-व्यंजना, भक्तिपूर्ण श्रद्धांजलि और राजनीतिक आदर्शवाद को परिमार्जित साहित्यिक शैलीमें व्यक्त किया गया है।

'संस्कृतका अध्ययन'के अतिरिक्त राजेन्द्र बाबूकी अन्य कृतियाँ 'साहित्य, शिक्षा और संस्कृति', 'भारतीय शिक्षा', 'गान्धी जीकी देन' इत्यादि उनके अमूल्य अभिभाषणोंके संग्रह हैं, जिनमें विविध विषयोंपर उनके मौलिक विचारों का प्रवाह प्रवाहित हुआ है। इनकी भाषा बहुत ही प्रांजल और सुन्दर है। —शा० द०

राजेश्वरप्रसाद नारायण सिंह–बिहारनिवासी। संप्रति संसद-सदस्य। विविध विषयोंपर आपने पुस्तकें लिखी हैं। भारतीय जीव-जन्तुओं और पक्षिओंके सम्बन्धमें आपका विशिष्ट अध्ययन है। कृतियाँ—'भारतके पक्षी', 'भारतके वन्य जन्तु' आदि हैं। —सं०

राजेश्वरप्रसाद सिंह–जन्म २६ फरवरी, सन् १९०३ ई० प्रयागमें। प्रयागमें ही शिक्षा एवं अध्ययनके उपरान्त आपने हिन्दी पत्रकारितामें विशेष रुचिके साथ प्रवेश किया। साथ ही साहित्यिक रचनाओंकी ओर भी ध्यान दिया। अबतक आपके ८ उपन्यास और ७ कहानी-संग्रह प्रकाशमें आ चुके हैं। इनमेंसे अधिकांश सामाजिक हैं किन्तु कुछ वैज्ञानिक तथ्योंपर आधारित उपन्यास और लघु-कथाएँ भी हैं। रहस्य-रोमांचमें भी आपकी रुचि रही है और समय-समयपर आपने इस प्रकारकी रचनाएँ भी लिखी हैं। आप कवि भी हैं और खड़ीबोलीमें विशेषकर सामाजिक यथार्थ और रोमानी सत्यको लेकर आपने अच्छी रचनाएँ की हैं।

उपन्यासोंमें आपकी भाषा बहुत कुछ प्रेमचन्दकी भाषा जैसी सरल एवं सहज होती है। गद्य-शैलीकी दृष्टिसे आपमें वर्णनात्मक शैली ही प्रधान है। कथानकोंमें आपकी विशेष रुचि शिल्पकी ओर रही है, जिसके कारण कहीं-कहीं शिल्प का चमत्कार तो मिलता है किन्तु कथाकी गहराई छूट जाती है। जिस युगके राजेश्वर बाबू लेखक हैं, उस युगमें वैज्ञानिक कथाओं और उनकी कल्पनाओंको उनके वैज्ञानिक उपन्यासोंमें देखकर आश्चर्य होता है किन्तु मात्र शिल्पसे उपन्यासोंकी आत्मा उठानेमें आपको पूर्ण सफलता नहीं मिली।

आपकी कहानियोंमें भी यही होता है। इतिवृत्तात्मक शैलीके समर्थक होनेके नाते आपकी कहानियाँ जीवनके यथार्थ स्तर तक नहीं पहुँच पातीं। कथानकको शिल्पकी दृष्टिसे इतना पूर्णकर देते हैं कि उसका ससपेन्स नहीं रह जाता।

आप 'माया' और 'मनोहर कहानियों'का सम्पादन पिछले दो दशकोंसे कर रहे हैं।

आपके प्रकाशित ग्रन्थोंकी सूची इस प्रकार है: 'आदमी और जिन्दगी', 'अभिनय', 'सुलगती आग', 'खेल', 'रहस्य-मयी', 'मृत्यु किरण', 'साथी' और 'इन्सपेक्टर बोस'विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। कहानी संग्रहोंमें—'सोनेका जाल', 'दीपदान,' 'कलंक,' 'फिर मिलेंगे', 'गल्पसंसार' प्रसिद्ध हैं। —ल० कां० व०

राज्यश्री–'राज्यश्री' प्रसादका प्रथम ऐतिहासिक रूपक है। राज्यश्री इसकी प्रमुख पात्र है। इस नाटककी घटनाएँ मुख्यतया बाणके 'हर्षचरित' तथा ह्वेनसांगके भ्रमण-वृत्तान्तसे ली गयी हैं। 'राज्यश्री' में कल्पनाकी अपेक्षा इतिहासकी मात्रा अधिक है। यह घटनाप्रधान नाटक है, अतः घटना-बाहुल्यके कारण पात्रोंके अन्तर्जगत्तक पहुँचने-का और उनकी मानसिक गुत्थियोंको सुलझानेका अवसर नाटककारको नहीं मिलता। घटनाओंके प्रबल झंझावातमें पात्रोंका व्यक्तित्व मानो उड़ता फिरता है। "पात्रोंके शील वैचित्र्यको पूर्णतया स्फुट बनानेके लिए स्थितियोंमें जिस उतार-चढ़ावकी आवश्यकता होती है, उसका इस रूपकमें प्रायः अभाव-सा है।" प्रस्तुत नाटकमें विकट-घोष और सुरमाकी अवान्तर-कथा प्रसादकी अपनी कल्पना है, यद्यपि इसके समावेशसे नाटकीय वस्तु या पात्रोंके चरित्रपरि-वर्द्धनमें कोई सहायता नहीं मिलती। इस नाटकके समस्त घटनाचक्रके केन्द्रमें राज्यश्री वर्तमान है, सबके मूलमें राज्यश्रीका सात्विक व्यक्तित्व छाया हुआ है। 'राज्यश्री' के प्राक्कथनमें प्रसादने कहा है कि वह एक आदर्श राज-कुमारी थी, उसने अपना वैधव्य सात्विकतामें बिताया। अनेक अवसरोंपर वह हर्षके लौह हृदयको कोमल करनेमें कृत-कार्य हुई।

आदर्श आर्यनारी राज्यश्री कन्नौजके नरेश गृहवर्माकी पतिपरायणा सती पत्नी है। दानशीलता, आत्मगौरव, उदारता आदि अनुपम गुणोंके कारण सहज हीमें वह सबकी श्रद्धाका केन्द्र बन जाती है। नाटककी नायिका

राज्यश्रीका सर्वप्रथम अवतरण एक सती साध्वी आर्य ललनाके रूपमें होता है। वह अपने शंकाकुल पतिको सान्त्वना देती हुई कहती है : "नाथ, आप जैसे धीर पुरुषों-को—जिनका हृदय हिमालयके समान अचल और शान्त है—क्या मानसिक व्याधियाँ हिला या गला सकती है ?" गृहवर्मा जब सीमान्तके वनोंमें आखेटके लिए चले जाते है, तब वह देवार्चन एवं दानादि मांगलिक कार्योंके द्वारा पतिकी मंगल-कामना करती है। मन्त्री द्वारा सीमान्तपर युद्ध छिड़नेका समाचार सुनकर अधीर न होते हुए एक वीरांगनाकी भाँति घोषणा करती है : "क्षत्राणीके लिए इससे बढकर शुभ समाचार कौन होगा ! आप प्रबन्ध कीजिये, मैं निर्भय हूँ।" इस प्रकार राज्यश्रीके चरित्रमे क्षत्रियोचित साहस एवं आत्मसम्मानकी प्रबल भावना व्याप्त है। आन्तरिक गुणोंसे परिपूर्ण होते हुए वह बाह्या-कर्षणमें भी अद्वितीय है। वह एक रूपशिखाके समान है, जिसपर समस्त विलासी शलभ गिरकर भस्म हो जाते है। देवगुप्तकी दृष्टिमे यह अनुपम सौन्दर्यकी राशि "विश्व-राज्यश्री" है। मालवराज भी इस दुर्लभ मृगतृष्णाके पीछे पड़ा हुआ अनेक अनर्थ करता है। राज्यश्री साहस एव निर्भीकताकी सजीव मूर्ति है। देवगुप्तके सामने आते ही उसपर वीरतासे शस्त्र-चालन करती है, उसके अधीन होकर भी उसके ऐश्वर्य-सुखको ठुकराकर अपने सतीत्वकी रक्षा करती है। प्रवंचक देवगुप्तको अपने सतीत्वकी तेजस्वितासे हतप्रभ बनाते हुए कहती है : "तुम देवगुप्त ? मुझसे बात करनेके अधिकारी नही हो—मै तुम्हारी दासी नहीं हूँ। एक निर्लज्ज प्रवंचकका इतना साहस।" उसका वध करनेमे असमर्थ होनेपर आत्मगौरवकी रक्षामें सतर्क एक खुली चुनौतीके रूपमें देवगुप्तसे कहती है : "मै तुम्हारा वध न कर सकी तो क्या अपना प्राण भी नहीं दे सकती।" आत्मगर्विता महिलाके रूपमे विपत्तिग्रसित स्थितिमे वह दिवाकर मित्रको अपना परिचय देनेमे संकोच करती है : "जब विपत्ति हो, जब दुर्दिनकी मलिन छाया पड रही हो, तब अपने उज्ज्वल कुलका नाम बताना, उसका अप-कार करना है।" राज्यश्रीका सम्पूर्ण चरित्र आपत्तियो एवं कष्टोंकी एक करुण गाथा है। पतिको खोकर वह देव-गुप्तके बन्दीगृहमें अपमानित होकर दारुण यन्त्रणा सहती है। राज्यवर्द्धन उसके उद्धारके प्रयासमे छलपूर्वक मारा जाता है। पति और भाईको खोकर अनाथिनीकी भाँति जगह-जगह घूमती है। जीवन-लतापर गिरे इन अनभ्र वज्रपातोंसे ऊबकर कभी तो वह प्राणविसर्जनके लिए भी तत्पर दिखाई पडती है : "सखी ! औषधि न देकर यदि तू विष देती तो कितना उपकार करती।" इसी प्रकार अन्यत्र एक स्थलपर दिवाकर मित्रसे भी कहती है : "दुखो-को छोडकर और कोई न मुझसे मिला मेरा चिर सहचर। आर्य मुझे आज्ञा दीजिये। स्त्रियोंका पवित्र कर्त्तव्य पालन करती हुई इस क्षणभंगुर संसारसे विदाई लूँ—नित्यकी ज्वालासे यह चिताकी ज्वाला प्राण बचावे।" हर्षकी आकस्मिक उपस्थितिसे राज्यश्रीकी प्राण-रक्षा होती है। एक दीर्घ दारुण दुःख रात्रिके बीतनेपर राज्यश्री पुनः खोये वैभवको प्राप्त करती है। वह क्षमाकी मूर्तिमान् देवी है। उसके व्रत-दान एवं उदारताकी कोई सीमा नहीं है। अपने भाईके हत्यारे नरेन्द्र एवं विकटघोष जैसे नर-पिशाचको वह हर्षवर्धनसे क्षमा करा देती है : "आज हमलोगोंने सर्वस्व दान दिया है, ...क्या यही एक दान रह जाय—इसे प्राणदान दो भाई।" भारतीय नारीके एक अत्यन्त सात्त्विक, महामहिम चित्रकी कल्पना राज्यश्रीके रूपमें साकार हुई है। वह हिमालयकी सी शुभ्रता एवं उच्चता तथा महासागरकी सी अगाध गम्भीरता अपने विराट व्यक्तित्वमें सँजोये हुए है। प्रवंचना, प्रतारणा, छल, विद्रोह एव हत्याके भीषण झंझावातमे भी वह शान्त बनी रहती है। उसीके सहज करुण पावन संस्पर्शमें प्रति-हिंसासे प्रेरित होकर लाखोंका संहार करनेवाला हर्ष राजा होकर भी कगाल बननेका अभ्यास करता है। विदेशी यात्री सुएनच्वांग (हेनसांग) उसके गुणोंकी भूरि-भूरि प्रशंसा करता है एवं कहता है : "सर्वस्व दान करनेवाली देवी ! मैं तुम्हे कुछ दूँ—यह मेरा भाग्य। तुम्ही मुझे वर-दान दो कि भारतसे जो मैने सीखा है वह जाकर अपने देशमें सुनाऊँ।" राज्यश्रीके व्यक्तित्वसे प्रभावित होकर विलासकी मृगतृष्णामे प्रवचित सुरमा प्रायश्चित स्वरूप-काषाय ग्रहण करती है। इस प्रकार बड़े कौशल और सतर्कताके साथ प्रसादने राज्यश्रीका चरित्रांकन किया है। अपनी चारित्रिक उत्कृष्टतामें वह अलौकिक प्रतीत होती है। उसके पूर्ण नारीत्वमे भारतीय आदर्श नारीका चित्र अंकित किया गया है। —के० प्र० चौ०

राणा रासो (दयालदास)—'पृथ्वीराज रासो'के समान शैली में लिखित दयालदासकी कृति 'राणा रासो' है। मेवाड़के राजवंशका इस कृतिमे छन्दबद्ध इतिहास प्रस्तुत किया गया है। इस अप्रकाशित रचनाकी प्रतियोंमें सन् १६१८ ई० की लिखी प्रतिका उल्लेख मिलता है किन्तु 'राणा रासो'में अनेक परवर्ती राजाओंका भी वर्णन मिलता है, अतः कृतिका यह अश प्रक्षिप्त हैं या कृति पीछेकी रचना है। महाराज जयसिंहका समय सन् १६२७तक रहा, अतः कृतिकी रचना इसके बाद हुई होगी। 'राणा रासो'मे ८७५ छन्द है। ब्रह्मसे प्रारम्भ करके महाराणा जयसिंह तककी वंशावलीमें अनेक कल्पित नाम होगे। इतिहासके ग्रन्थकी दृष्टिसे 'राणा रासो'-का कोई महत्त्व नही है। रसावला, विराज, साटक आदि विविध छन्दोका कृतिमे प्रयोग हुआ है। कृतिकी भाषा राजस्थानी मिश्रित 'पिंगल' (ब्रज) कही जा सकती है।

[सहायक ग्रन्थ—राजस्थानका पिंगल साहित्य : डा० मोतीलाल मेनारिया, बम्बई, १९५८ ई०।] —रा० ति०

राधा—कृष्णकाव्यमें राधा-कृष्णप्रेमका आख्यान जितनी व्यापकता और लोकप्रियताके साथ प्रचलित है, उसे देखते हुए यह आश्चर्य होता है कि कृष्णकी भाँति राधाके सम्बन्धमे प्राचीन उल्लेख नहीं प्राप्त होते परन्तु यह अनुमान होता है कि सात्वत या आभीर जातिमे प्रचलित गोपियोके साथ गोपाल-कृष्णकी लीलाएँ गीतोंके रूपमें उसी समयसे प्रचलित रही हैं, जबसे कि सात्वतोंकी वासुदेवो-पासनाके प्रमाण मिलते है। कृष्णकी प्रेयसी एवं प्रेमिका गोपियोंमें निश्चय ही एक विशेष गोपीका उल्लेख होता रहा है, यही गोपी आगे राधाके नामसे प्रसिद्ध हुई जान

पकती है। राधासम्बन्धी प्राचीन संकेतोंमें हम तमिल प्रदेश-में प्रचलित आलवार सन्तोंके गीतोंका स्मरण कर सकते हैं। इन गीतोंमें जहाँ गोपी-कृष्णकी प्रेम-लीलाओंका वर्णन हुआ है, वहाँ कृष्णकी एक प्रियतमा गोपीका 'नापिन्नाय' नामसे उल्लेख मिलता है। कृष्णकी यह प्रियतमा गोपी अत्यन्त सुन्दरी और लक्ष्मीका अवतार है। कदाचित् दाक्षिणात्य कृष्णभक्तिकी यह नापिन्नाय गोपी उत्तर भारतकी राधा ही है।

प्राचीन साहित्यमें राधाका प्रथम उल्लेख हालसातवाहन द्वारा संगृहीत 'गाहासत्तसई'में मिलता है। इस संग्रहका समय पहली शताब्दी ईस्वी अनुमान किया गया है परन्तु कुछ विद्वान् इसे ७ वीं शताब्दीका मानते है। जो हो, 'गाहासत्तसई'में प्राप्त राधासम्बन्धी उल्लेख यह प्रमाणित करते हैं कि राधा-कृष्णके प्रेमकी कथाएँ ७ वीं शताब्दी से पहले अवश्य प्रचलित थी। सत्तसईकी जिन गाथाओंमें गोपी-कृष्ण अथवा राधा-कृष्णकी प्रेम-क्रीडाओंके सन्दर्भ मिलते है उनकी प्रकृति पूर्णतया रोमाण्टिक है। उनके द्वारा राधाके जिस व्यक्तित्वका परिचय मिलता है उसकी दो विशेषताएँ अत्यन्त स्पष्ट है—उनका अप्रतिम सौन्दर्य और दूसरी उनकी प्रेम-प्रवणता। कृष्णकी वे प्रियतमा हैं, इस कारण उनके चरित्रमे असामान्य चातुर्य, विदग्धता और प्रगल्भता पायी जाती है। पुरातत्त्वमें राधाका सबसे प्रथम प्रमाण बंगालके पहाड़पुर नामक स्थानमें प्राप्त एक मूर्तिमे प्राप्त होता है, जिसमे प्रसिद्ध मुद्रामें खडे हुए कृष्ण के साथ एक स्त्रीकी मूर्ति दिखाई गयी है। अनेक विद्वानोंका अनुमान है कि मूर्ति राधाकी ही है। पहाडपुरकी यह मूर्ति छठी शताब्दीकी अनुमान की गयी है। यद्यपि संस्कृत-साहित्यमे राधा-कृष्णकी कथाको लेकर किसी स्वतन्त्र और सम्पूर्ण काव्यकी रचनाका प्रमाण १२ वीं शताब्दीके पहले नहीं मिलता, तथापि इसके प्रभूत प्रमाण दिये जा सकते है कि यह कथा आठवीं शताब्दी ईस्वी के पहलेसे लोक प्रचलित थी। इन प्रमाणोमे आठवीं शताब्दीके पहलेके कवि भट्ट नारायणकृत 'वेणी संहार' नाटकके नान्दी श्लोक, ९ वी शताब्दीके आनन्दवर्धनकृत 'ध्वन्यालोक'में उद्धृत दो श्लोक, दसवीं शताब्दीमे लिखित त्रिविक्रम भट्टकृत 'नलचम्पू'के एक श्लेषगर्भित श्लोक, दसवीं शताब्दीके ही सोमदेवसूरिकृत 'यशस्तिलकचम्पू'के एक श्लोक तथा ११ वीं शताब्दीके वाक्पतिराजके एक अभिलेखमे एक श्लोकका उल्लेख किया जा सकता है। इन सभीमे राधा और कृष्णके अनन्य प्रेम-सम्बन्धका उल्लेख हुआ है और सभीमे कृष्णके विष्णु अथवा नारायण एवं राधाके लक्ष्मी होनेका संकेत मिलता है। यहाँ यह द्रष्टव्य है कि 'गाहासत्तसई'में इस प्रकारका कोई संकेत नहीं पाया जाता। वहाँ राधा और कृष्ण लोक-सामान्य प्रेमियोंके रूपमें ही चित्रित हैं। इन प्रमाणोंके अतिरिक्त 'कवीन्द्र वचन समुच्चय' नामक दसवीं शताब्दी ईस्वीका एक कविता-संकलन विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। इसमें राधा-कृष्णविषयक ४ पद्य मिलते है, जिनसे राधाके अनन्य सौन्दर्य, कृष्णके प्रति उनके तीव्र अनुराग, उनके वाग्वैदग्ध्य तथा अन्य गोपियोंसे अनुरक्त होते हुए भी उनके प्रति कृष्णकी विशेष प्रीतिका परिचय मिलता है। उक्त ४ पद्योंके अतिरिक्त इस संग्रहमें कृष्णकी प्रेम-क्रीडाओंसे सम्बन्धित कुछ अन्य पद्य भी हैं, जिनमें यद्यपि राधाका नामोल्लेख नहीं हुआ है फिर भी वर्णनसे यह सूचित होता है कि पद्योंमें वर्णित नारी कृष्णके विशेष प्रेमकी भाजन राधा ही हैं।

११ वीं शताब्दीसे राधा-कृष्णकी कथाका प्रयोग काव्यमें अपेक्षाकृत अधिकतासे होता दिखाई देने लगता है। १२ वीं शताब्दीके राधासम्बन्धी स्फुट सन्दर्भोंमें हेमचन्द्रके 'काव्यानुशासन'में उद्धृत श्लोक, रामचन्द्र गुणचन्द्र द्वारा लिखित 'नाट्य-दर्पण'मे निर्दिष्ट 'राधा विप्रलम्भ' नामक नाटक, जिसका रचयिता भेज्जल नामका अनुमानतः १० वीं शताब्दीका कोई कवि था, शारदातनयके 'भावप्रकाश'मे निर्दिष्ट 'राम-राधा' नामक नाटक, जिसके एक श्लोकका कुछ अंश 'भावप्रकाश'में उद्धृत है तथा कवि कर्णपूरके 'अलंकार कौस्तुभ'में राधा सम्बन्धी 'कन्दर्पमंजरी' नामक नाटकका उल्लेख किया जा सकता है। १३ वीं शताब्दीके सागर नन्दी द्वारा रचित 'नाटक लक्षण-रत्नकोश' नामक ग्रन्थमे 'राधा' शीर्षक एक 'वीथि'का भी उल्लेख हुआ है। 'प्राकृत पिंगल'में भी राधा-कृष्णकी प्रेम-क्रीडासे सम्बन्धित दो पद्य मिलते हैं। यद्यपि लक्षण-ग्रन्थोमे निर्दिष्ट उपर्युक्त रचनाएँ प्राप्त नहीं है परन्तु इतना तो सिद्ध ही है कि १२ वीं शताब्दी तक राधा-कृष्ण-विषयक स्वतन्त्र ग्रन्थोंकी रचना होने लगी थी, जिनमें राधाके सौन्दर्य, प्रेम और चातुर्यसे पूर्ण व्यक्तित्वका विशद चित्रण हुआ था। १२ वी शताब्दीके एक संकलन ग्रन्थ 'सदुक्तिकर्णामृत'का उल्लेख इस सन्दर्भमे विशेष महत्त्वपूर्ण है। इस संग्रहमे राधा-कृष्णसम्बन्धी साठ श्लोक बारह शीर्षकोंमें विभक्त करके दिये गये हैं। कुछ श्लोक बहुत प्राचीन जान पडते हैं क्योंकि वे पूर्वोल्लिखित 'कवीन्द्र वचन समुच्चय'में भी पाये जाते हैं। राधाके चरित्र-चित्रणकी दृष्टिसे महाकवि जयदेवका 'गीत-गोविन्द' संस्कृत-साहित्यमे सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण रचना है। उसमें राधा-कृष्णकी निकुंज-लीलाका विस्तृत वर्णन है। कविने वसन्तके मनोरम वातावरणमें विरह-व्यथित राधाको गोपी-वल्लभ कृष्णकी मुग्धमाधुरीके ध्यानमे तल्लीन चित्रित किया है। कृष्ण संयोगके प्रयत्नोंमें सखियोंके माध्यमसे सन्देश-विनिमयका वर्णन करते हुए कवि विप्रलब्धा राधाके क्रमशः वासकसज्जा, खण्डिता, कलहान्तरिता, मानिनी और अभिसारिका रूपके मनोहारी चित्रण करता है और अन्तमे राधा-कृष्ण मिलन और उनके केलि-विलासका वर्णन करता है। परवर्ती भाषा काव्योंमें राधाके चरित्र-विकासका सूत्र बहुत कुछ 'गीतगोविन्द'में प्राप्त हो जाता है। 'गीतगोविन्द'के द्वारा एक और महत्त्वपूर्ण तथ्यकी व्यंजना होती है। वह यह कि राधा-कृष्णका प्रेमाख्यान भक्तों और काव्य-रसिकों, दोनोके लिए समान रूपसे आह्लादकारी है। वस्तुतः राधाके व्यक्तित्वमे सौन्दर्य और प्रेमका ऐसा उदात्तीकरण है कि उसमे सहज ही अलौकिकताकी व्यंजना हो जाती है।

राधाकी अलौकिकता लक्ष्मीके अवतारके अतिरिक्त ब्रह्मकी शक्ति अथवा प्रकृतिके रूपमें भी चित्रित हुई है। कृष्ण और राधाके रूपमे पुरुष और प्रकृतिकी कल्पना सांख्य

दर्शनसे प्रभावित है, जिसका वैष्णव भक्ति-दर्शन पर व्यापक प्रभाव देखा जा सकता है। शक्तिके रूपमें राधाकी प्रतिष्ठा बंगालकी शक्ति-पूजा, अर्थात् तान्त्रिक विचारधाराका प्रभाव प्रमाणित करती है। इस विषयमे 'ब्रह्मवैवर्त पुराण'की साक्षी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अनेक स्थलों पर इस पुराणमे राधा का वर्णन, चित्रण और स्तवन दुर्गाके रूपमे हुआ है। परन्तु इस पुराणमे राधा-कृष्णके प्रथम मिलन, विवाह और सम्भोगका जैसा नग्न और अश्लील वर्णन हुआ है, उस पर तान्त्रिक वाममार्गका स्पष्ट प्रभाव दिखलाई देता है। इसी प्रभावके अन्तर्गत वैष्णव सहजिया मतमे राधा कृष्णके रूपमें युगल तत्त्वकी कल्पना हुई है। सहजिया मतके अनुसार नित्य वृन्दावनके 'गुप्तचन्द्र पुर'मे राधा-कृष्णके भीतरसे सहज रसका जो निरन्तर प्रवाह होता है, उसीकी अभिव्यक्ति ससारके सभी नर-नारियोके हृदयमे प्रवाहित प्रेम-रस-धाराके रूपमे होती है। यही नहीं, सहजिया मतमे प्रत्येक पुरुष रूपमें कृष्णका विग्रह और प्रत्येक नारी रूपमे राधाका विग्रह माना जाता है। जिस प्रकार तान्त्रिक विश्वासमे प्रत्येक जीवके भीतर अर्धनारीश्वर तत्त्व विराजमान समझा जाता है, उसी प्रकार सहजिया मतमे भी प्रत्येक जीवमें राधा-कृष्णका निवास माना जाता है। कहीं कहीं दाहिनी ऑखमें कृष्ण और बाई ऑखमे राधिकाका निवास कहा गया है। यही दाहिना नेत्र साधकका श्याम-कुण्ड है और बायॉ नेत्र राधाकुण्ड है। इसी विश्वासके आधार पर चण्डीदासने सौन्दर्य-माधुरीकी प्रतीक प्रेमस्वरूपणी नारीमें राधा-तत्त्वके आस्वादनका उदाहरण प्रस्तुत किया है। उनकी सहज साधनामे गृहीत परकीया नायिका राधिकास्वरूपा है। राधाके चरित्र-चित्रणमे परकीयावादका प्रभाव कदाचित् सहजिया वैष्णवोंकी ही देन है।

हिन्दीका वैष्णव काव्य मुख्यतया श्रीमद्भागवतपर आधारित है परन्तु यह विलक्षण बात है कि श्रीमद्भागवत में राधाका नामोल्लेख भी नहीं हुआ है। परन्तु भागवत के मध्ययुगीन वैष्णव व्याख्याताओंने भागवतकी भाषाको समाधि-भाषा कहकर उसमे राधाका संकेत ढूंढ निकाला है। भागवतके दशम स्कन्धमें वर्णित रास-लीलामें कृष्णके अन्तर्धान होनेका जो वर्णन हुआ है, उसमे कृष्णकी उस प्रियतमा गोपीको, जिसे लेकर वे प्रारम्भमे अन्तर्धान हुए, राधा ही माना गया है। उस गोपीको लक्ष्य करके अन्य विरह-व्याकुल गोपियोने कहा था—"अनया राधितो नून भगवान् हरिरीश्वरः। यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद्रहः॥ (१०।३०।२४)। इस श्लोकके 'अनया राधितः' शब्दमे राधाका सकेत माना गया है। परन्तु वास्तविकता यह जान पड़ती है कि पुराणोंमे गोपाल-कृष्णकी लोक प्रचलित प्रेम-कथाओंको प्रारम्भमे पूर्णतया ग्रहण नहीं किया गया था। राधा-कृष्णसम्बन्धी प्रेम-कथाएँ परवर्ती पुराणोंमें ही सम्मिलित हुईं। 'पद्मपुराण'में राधाका अनेक स्थलों पर उल्लेख हुआ है। 'पद्मपुराण'के उत्तर खण्डमे गोलोकका वर्णन करते हुए पुराणकारने राधा द्वारा नन्द गृहेश्वरीके आराधित होनेका उल्लेख किया है। यह पुराण भी राधा को आदि प्रकृति मानता है और उन्हें माहेश्वरी, रमा, आद्याशक्ति तथा इच्छा, ज्ञान, क्रिया, शक्ति कहकर वन्दित करता है। एक स्थलपर स्वयं कृष्ण अपनेको पुरुषरूप राधा देवी कहते हैं। अन्य पुराणोंमेंसे मत्स्य, वायु, वराह, नारदीय आदि पुराणोंमें एकआध श्लोक राधासम्बन्धी मिलते हैं। गौडीय वैष्णव सम्प्रदायके विद्वानोंमें राधाकी प्राचीनता प्रमाणित करनेके लिए 'गोपालोत्तरतापनी' नामक उपनिषद्,'नारदपांचरात्र','बृहद्गौतमीयतन्त्र','ब्रह्मसंहिता', 'देवी भागवत', 'महाभागवत'—उपपुराण आदि अनेक ग्रन्थोकी साक्षी दी है परन्तु राधासम्बन्धी पुराणोंके उल्लेख अथवा अन्य ग्रन्थोंके सन्दर्भ, सभी अपेक्षाकृत अर्वाचीन है। वस्तुतः मध्ययुगकी राधा-कृष्ण-भक्ति उनपर आधारित न होकर स्वयं उनका आधार है।

राधाकी प्राचीनताके सम्बन्धमें जो भी निष्कर्ष हो, हिन्दी कृष्ण-काव्य, विशेषरूपसे सूरदासके काव्यमें राधाका चरित्र अत्यन्त उज्ज्वल प्रेम और सौन्दर्यकी साक्षात् मूर्तिके रूपमे चित्रित हुआ है। सूरदासके चित्रणमें राधा कृष्णसे अभिन्न उनकी मायारूपिणी आह्लादिनी शक्ति के रूपमे मान्य होते हुए भी अत्यन्त स्वाभाविक मानवीय रूपमें चित्रित हुई है। राधा-कृष्णके प्रेम-भावके बाल्यावस्थासे ही सहज आकर्षणके रूपमें उदय होनेका वर्णन उन्होने 'भौरा चक डोरी'के अत्यन्त रोमाण्टिक प्रसंगकी उद्भावना करके किया है। सूरदास जहाँ एक ओर राधा को कृष्णसे अभिन्न कहते है, वहाँ दूसरी ओर मानव-लीला के रूपमे उनके प्रेमका अत्यन्त मनोविज्ञानसम्मत विकास चित्रित करनेके लिए अनेक प्रसगोंकी मौलिक कल्पना करते जाते हैं। कृष्णके प्रेमको अधिकाधिक प्राप्त करनेमे प्रयत्नशील राधाकी प्रेमविकलता और व्यवहारकुशलता उनके चरित्रको अत्यन्त प्रभावशाली और आकर्षक बना देती है। बाल्यावस्थाका आकर्षण पारिवारिक और सामाजिक बाधाओंका ज्यों-त्यो अतिक्रमण करते हुए उस स्थितिको पहुंच जाता है, जब राधा अत्यन्त प्रेम-विवश, अधीर और कातर हो जाती है। फिर भी कृष्णके आदेशसे उन्हे अपना प्रेम गुप्त रखना पड़ता है, जिसके कारण उनके आचरणमें अत्यन्त गूढ़ता और रहस्यमयताका समावेश हो जाता है। राधाकी प्रेम-विकलता उस समय और भी मार्मिक हो जाती है, जब वे मिलनमे भी विरहका अनुभव करती है। अन्तमें वियोगकी अग्निमे तपकर जब उनके अहंभावका सर्वथा परिहार हो जाता है और वे सर्वभावेन आत्मसमर्पण कर देती है, तभी उन्हें श्रीकृष्णका संयोगसुख प्राप्त होता है। सूरदासने रास-क्रीडाके अन्तर्गत वनभूमिके स्वच्छन्द वातावरणमे राधा-कृष्णके विवाहका भी वर्णन किया है। उसीके बाद राधा और कृष्ण दाम्पत्यभावसे प्रेम करते हुए चित्रित किये गये है। प्रेमकी परिपूर्णताकी स्थितिमें राधाकी महत्ता इतनी अधिक हो जाती है कि स्वयं श्रीकृष्ण उनके विरहमे व्याकुल, उनके प्रेमकी याचना करते हुए चित्रित किये गये हैं। संयोगके समय राधाका शरीर और मन सौन्दर्य, शोभा और हर्षोत्साहका आगार है। स्वभावसे वे अत्यन्त चंचल, चतुर और विनोदमयी हैं। उनके मनोभाव, उनके चपल अनियारे नयनोंसे अत्यन्त आकर्षक रूपमें व्यंजित होते हैं परन्तु कृष्णसे वियुक्त हो जानेपर उनके शरीरकी कान्ति अत्यन्त मलिन हो जाती है और

उनका मन खिन्नता और आत्मग्लानिसे परिपूर्ण हो जाता है। उनकी वाणी मूक हो जाती है और उनका प्रेम गूढ़से गूढ़तर बन जाता है। उनके स्वभावकी चंचलता समाप्त हो जाती है और वे अत्यन्त गम्भीर बन जाती हैं। राधाके प्रेमकी महत्ता और कृष्णसे उनकी अभिन्नता प्रमाणित करने के लिए सूरदासने सूर्यग्रहणके अवसरपर कुरुक्षेत्रमे उनके मिलनका वर्णन करके पुनः अपनी मौलिक उद्भावना-शक्ति का परिचय दिया है। यहाँपर राधा और रुक्मिणीका तुलनात्मक चित्रण करते हुए सूरदासने राधा और कृष्णकी कीट-भृंगकी भाँति एकाकार होते हुए प्रदर्शित किया है। सूरदास द्वारा राधाका चरित्र-चित्रण पूर्ण मानवीय स्वाभाविकताके साथ हुआ है किन्तु साथ ही उसमे ऐसे सूक्ष्म रहस्यमय और अनुपेक्षणीय संकेत किये गये हैं, जिससे असन्दिग्ध रूपमे उनके व्यक्तित्वकी अलौकिकता व्यंजित होती है। यद्यपि सूरके समसामयिक तथा परवर्ती सभी कृष्णभक्त कवियोने सामान्यतया राधाके चरित्रका निर्माण बहुत कुछ सूरके चरित्र-चित्रणकी भाँति किया है, परन्तु किसीने न तो मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रणके लिए उस प्रकारके प्रसगोकी उद्भावना की और न चरित्र-चित्रण में वैसी गूढ़ता और रहस्यमयताकी व्यंजना की। उन्होंने अधिकतर सूर द्वारा चित्रित राधा-कृष्णके प्रेमाख्यानको ही अपनी मानसिक पृष्ठभूमिमे रखकर उनके प्रेम-विलास के ही चित्र दिये हैं। यद्यपि इस प्रकारके चित्रणोंमे प्रेम-प्रगल्भा नायिकाके अनेकानेक रूप और मनोभाव प्राप्त होते है, परन्तु है यह चित्रण अत्यन्त सीमित और संकुचित। राधा प्रेम-भावकी एक प्रतीक मात्र रह जाती हैं, इसके अतिरिक्त उनका कोई अन्य रूप नही मिलता।

कृष्ण-भक्ति सम्प्रदायोंमे राधाका महत्त्व सबसे अधिक राधावल्लभीय सम्प्रदायमे मिलता है। गोस्वामी हित हरिवंश इस सम्प्रदायके प्रवर्तक थे। यद्यपि वे सूरदासके समकालीन थे परन्तु उनका रचनाकाल सूरदासके बाद पडता है। उन्होने अपने 'हितचौरासी'में 'तत्सुखिभाव'के प्रेम-सिद्धान्त तथा राधा-कृष्णकी अद्वैतका निरूपण करते हुए केवल उनके नित्य-विहार, सुरति, शृंगार, मान, रास आदिका ही स्फुट वर्णन किया है। अष्टछापके कवियोंने अपनी स्फुट पद-रचनामे राधाके स्वरूपकी जो परिकल्पना की है, उसकी पृष्ठभूमिमे निश्चित रूपसे 'सूरसागर'की भूमिका ही विद्यमान है। इन कवियोंमे नन्ददास अपनी रचनाओंमे भागवतके अधिक निकट रहे हैं। अतः उन्होने राधाकी अपेक्षा सामूहिक रूपमे गोपियोंको अधिक महत्त्व दिया है। राधावल्लभीय हरिदासी निम्बार्क तथा गौडीय सम्प्रदायोंके कवियोंने अपने-अपने सिद्धान्तानुसार युगल रूप, संयोग सुख, स्वकीया प्रेम अथवा परकीया प्रेमका चित्रण करते हुए राधाको अधिक महत्ता अवश्य दी है परन्तु उनके चित्रण अपूर्ण और एकांगी हैं। हित वृन्दावनदासने 'लाड़-सागर' और 'व्रजप्रेमानन्दसागर'में राधाके चरित्रके एक नवीन रूपका परिचय दिया है, जिसमें वे वात्सल्य-स्नेह-संवलित स्वकीया नवोढाके रूपमे प्रकट होती है परन्तु यह चित्रण अत्यन्त सीधा और सरल है तथा उसमें कोई कलात्मक सौन्दर्य नहीं मिलता।

आधुनिककालमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने भक्ति और रीति-परम्पराओंका सुन्दर समन्वय करते हुए अपने रीति पदों और स्फुट छन्दोंमे राधाका जो चित्र अंकित किया है, वह सूर द्वारा स्थापित परम्पराका ही अवशेष कहा जा सकता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्रकी राधिका श्रीकृष्णकी प्रियतमा तथा उनकी आराधिका 'स्वामिनीजी' हैं। भारतेन्दुजीने अपनी 'चन्द्रावली नाटिका'में उन्हें श्रीकृष्णकी प्रधान नायिकाके रूपमे प्रस्तुत किया है। प्राचीन परम्पराके अन्तिम महत्त्वपूर्ण आधुनिक कवि जगन्नाथदास 'रत्नाकर' हैं, जिन्होंने अपने 'उद्धव-शतक'मे कृष्णके प्रति राधाकी तथा राधाके प्रति कृष्णकी तीव्र आसक्तिका वर्णन करते हुए भक्ति-काव्यकी परम्पराके अनुसार दोनोंकी अभिन्नता व्यक्त की है। कृष्णकी भाँति राधाके चरित्र-चित्रणमें आधुनिक युगका प्रभाव अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'कृत 'प्रियप्रवास'में मिलता है। 'हरिऔध'ने राधाके परम्परामुक्त विरह-व्याकुल व्यक्तित्वमें वेदनाका लोकव्यापी उदात्तीकरण चित्रित करते हुए लोक-मगलकी तीव्र आकांक्षाका सन्निवेश किया है। 'प्रियप्रवास'की राधिका पवन-दूतके माध्यमसे अपने प्रियतम कृष्णके लिए जो विरह-सन्देश भेजती है, उसमे उनकी व्यक्तिगत प्रेमासक्ति, पूर्ण विरह-व्यथा, लोक जीवनके कल्याणकी पावन कामनाके रूपमें परिणत हो जाती है। यहाँ राधिकाका चरित्र निश्चय ही आधुनिक युगकी लोक-सेविकाका चरित्र बन गया है। 'हरिऔध'के इस प्रयत्नका कई कवियोने अनुकरण किया, जिनमे तुलसीराम शर्मा 'दिनेश'का नामोल्लेख किया जा सकता है परन्तु 'दिनेश'के चरित्र-चित्रणमे अनुकरण और कृत्रिमताके कारण काव्य-सौष्ठवका अभाव है। मैथिलीशरण गुप्तने 'द्वापर'मे राधाका चरित्र-चित्रण अनन्य प्रेमिकाके रूपमें करते हुए श्रीकृष्णके लिए सर्व कर्म त्यागके आदर्शकी प्रतिष्ठा की है। मैथिलीशरण गुप्तकी राधिका सर्वात्मसमर्पण-पूर्ण त्यागमयी प्रेमिका नारीका आदर्श उपस्थित करती है। यद्यपि छायावादी कवियोने यत्र-तत्र प्रसगवश राधाके अनन्य प्रेमका उल्लेख किया है परन्तु उनकी वैयक्तिक प्रेमानुभूतिमे उनके चरित्र-चित्रणको कोई स्थान नही मिल सका। वर्तमानकालके नवरचनाके प्रयोगोमे धर्मवीर भारतीने अपनी 'कनुप्रिया' नामक कृतिमें राधाका चरित्र नवीन रूपमे प्रस्तुत करनेका यत्न किया है। इस काव्य-कृतिकी राधिका एक ओर चण्डीदासकी प्रेम-विह्वल, कम्पित-हृदय, वेदनामयी राधिकाका स्मरण दिलाती है, तो दूसरी ओर आधुनिककालकी तर्कमयी, वाचाल अधिकार भावना-से प्रेरित नारीका प्रतिनिधित्व करती जान पड़ती हैं। 'भारती'की राधिका अत्यन्त दर्दभरी, उपालम्भमयी नारी है, जो अपने प्रियतम कनु (कृष्ण)की मार्मिक आलोचना करती है।

इस प्रकार हिन्दी-साहित्यमे राधाका चरित्र प्रेमके आदर्श प्रतीकके रूपमे आज तक चित्रित होता आया है। विशेषके लिए द्रष्टव्य 'कृष्ण'।

[सहायक ग्रन्थ—श्री राधाका क्रम विकास : शशिभूषणदास गुप्त, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी; हिन्दी साहित्य खण्ड २ : भारतीय हिन्दी परिषद, प्रयाग;

सूरदास : ब्रजेश्वर वर्मा, हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय ।] —ब्र० व०

राधाकृष्ण–जन्म १९१२ ई० । राँची । 'घोस-बोम-बनर्जी-चटर्जी'के नामसे भी लिखते रहे हैं । हिन्दीके शिष्ट तथा उच्चस्तरीय हास्य लेखकोंमें आप प्रथम पांक्तेय हैं । रचनाएँ-'सजला' (१९३६), 'फुटपाथ' (१९४१), 'भारत छोड़ो' (नाटक १९४७) 'बोगस' (१९५३), 'सनसनाते सपने' (१९५७) । —सं०

राधाकृष्ण दास–राधाकृष्ण दास भारतेन्दु हरिश्चन्द्रके फुफेरे भाई थे और आयुमें उनसे पन्द्रह वर्ष छोटे थे । आपका जन्म सन् १८६५ ई०में हुआ था । उन्नीसवीं शताब्दी ई०के उत्तरार्धकी हिन्दीका इतिहास आपकी साहित्य-सेवा भावनासे भली प्रकार परिचित है । आपकी प्रतिभा बहुमुखी थी । कवि, नाटककार, उपन्यास लेखक, जीवनी लेखक, निबन्धकार तथा पत्रकारके रूपमें आपने हिन्दीके भाण्डारकी अभिवृद्धि की । बयालीस वर्षकी अल्पायु में ही सन् १९०७ ई०में आपकी मृत्यु हुई थी ।

राधाकृष्ण दासकी प्रमुख कृतियोंका संकलन और सम्पादन श्यामसुन्दर दास (बाबू)ने 'राधाकृष्ण ग्रन्थावली' (भाग १, प्रयाग १९३०)के अन्तर्गत किया है । विषयानुरूप इस ग्रन्थके चार खण्ड किये गये हैं—(१) कविता : इसमें 'विजयिनी विलाप', 'पृथ्वीराज प्रयाण', 'देश दशा', 'प्रताप विसर्जन' प्रभृति ब्रजभाषाकी १३ छोटी-बड़ी कविताएँ सगृहीत हैं । (२) लेख : 'पुरातत्त्व', 'मुसलमानी दफ्तरोंमें हिन्दी' आदि गम्भीर विषयोंपर लिखे गये खोजपूर्ण निबन्ध सगृहीत हैं । (३) इस खण्डके अन्तर्गत जीवन-चरितविषयक लेख आते हैं—इनमें 'सूरदास', 'नागरीदासका जीवन चरित्र', 'भारतेन्दुका जीवन चरित्र' प्रमुख हैं । (४) चौथा खण्ड नाटकोंका है—इसमें 'दुःखिनी बाला','महारानी पद्मावती', 'धर्मालाप', 'महाराणा प्रताप सिंह' और 'सती प्रताप' नामक पाँच नाट्य कृतियाँ संकलित हैं ।

राधाकृष्ण दासकी ख्याति मूलतः नाटककारके रूपमें हुई । 'दुःखिनी बाला' इनकी प्रथम नाट्यकृति है । इसमें बालविवाह तथा विवाहसम्बन्धी अन्य सामाजिक कुरीतियोंका उद्घाटन किया गया है और उनके दुष्परिणाम दिखाये गये हैं । इनकी दूसरी प्रसिद्ध नाट्य रचना 'महारानी पद्मावती' अथवा 'मेवाड़ कमलिनी' है । इसका विषयाधार ऐतिहासिक है । चित्तौड़ गढ़पर अलाउद्दीनके आक्रमण और पद्मावतीके जौहरकी लोक-प्रसिद्ध घटनाको लेकर इसमें राष्ट्रीय जीवनके एक विगत उज्जल पक्षको बिम्बित करनेकी सफल चेष्टा की गयी है । इनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध नाट्यकृति 'महाराणा प्रताप' अथवा 'राजस्थान केसरी' है । इसकी रचना सन् १८९७ ई०में हुई थी ।

राधाकृष्णदासकृत 'महाराणा प्रताप' नाटकको भारतेन्दु युगकी सर्वश्रेष्ठ नाट्य रचनाके रूपमें स्वीकार किया जा सकता है । इसमें पौर्वात्य तथा पाश्चात्य नाट्यशैलियोंका बड़ा सुन्दर सामंजस्य उपस्थित किया गया है और इस रूप में इस नवीन शैलीमें लिखा गया हिन्दीका प्रथम नाटक कहा जाना चाहिये । कथावस्तुकी दृष्टिसे इस नाटकमें एक दुहरे दायित्वका निर्वाह किया गया है । इतिहास और लोक-वृत्त, तथ्य और कल्पना एवं वीरत्व और रोमांसके सानुपातिक संस्थापनमें लेखकको अपूर्व सफलता प्राप्त हुई है । इसका परिणाम यह हुआ है कि इस वीर-रसप्रधान ऐतिहासिक नाटकमें शृंगारकी एक लौकिक-धारा भी तरंगायित होती रही है । इस नाटककी लोकप्रियताका यही रहस्य है । चरित्रकी दृष्टिसे महाराणाका अंकन श्रेष्ठ धीरोदात्त नायकके रूपमें किया गया है । नाटककी भाषा-शैली सहज है । हिन्दू पात्र शुद्ध हिन्दी बोलते हैं । मुसलमान पात्र उर्दू शब्दोंका व्यवहार करते हैं । रंगमंचकी दृष्टिसे भी नाटक बहुत सफल सिद्ध हुआ है ।

राधाकृष्ण दासने 'निःसहाय हिन्दू' नामसे एक छोटा सा उपन्यास भी लिखा है । इसकी कथावस्तु गोरक्षा आन्दोलन है और इसी माध्यमसे हिन्दू-मुस्लिम समाज की विभिन्न अच्छाइयों तथा बुराइयोंपर प्रकाश डाला गया है । इस पुस्तकमें विषय-निर्धारण, देश-काल तथा पात्र चित्रणकी दृष्टिसे आधुनिक यथार्थवादकी आरम्भिक झलक दिखलाई पड़ती है । इसके आधारपर कहा जा सकता है कि राधाकृष्ण दासमें एक समर्थ उपन्यास लेखककी प्रतिभा थी किन्तु उन्हें उसे विकसित करनेका समुचित अवसर नहीं मिल पाया ।

उपर्युक्त कृतित्वके अतिरिक्त राधाकृष्ण दासने भारतेन्दु के अधूरे छोड़े हुए नाटक 'सती प्रताप'को पूरा किया था । इन्होंने बंगलासे 'स्वर्णलता', 'मरता क्या न करता' नामक कुछ उपन्यासोंके सफल अनुवाद भी किये थे । 'हिन्दी भाषाके सामयिक पत्रोंका इतिहास' नामसे इनकी एक लघु पुस्तक उपलब्ध होती है, जिसे काशीकी नागरी प्रचारिणी सभाका प्रथम प्रकाशन होनेका गौरव प्राप्त है ।

राधाकृष्ण दास अपने समयके सुप्रसिद्ध साहित्योद्धारक और साहित्यसेवी माने जाते हैं । आप हिन्दी, उर्दू, फारसी, बंगला, गुजराती आदि कई भाषाओंके अच्छे जानकार थे । राष्ट्रीयता और समाज सुधारकी भावनासे प्रेरित होकर लिखनेवाले भारतेन्दुयुगीन साहित्यकारोंमें आपका नाम अग्रगण्य है । आपकी कृतियोंमें समाज सेवा और देश सेवाकी भावना आद्यन्त परिलक्षित होती है । आपकी कुछ फुटकर रचनाएँ, खासतौरसे लेख, गम्भीर विचारणा और शोधपूर्ण अध्ययनके व्यापक परिणामके द्योतक हैं । आपके नाटकोंकी भाषा-शैली सहज, बोधगम्य और मनोरंजक है । निबन्ध विवेचनापूर्ण गम्भीर भाषा-शैलीमें लिखे गये हैं ।

राधाकृष्ण दास आजीवन 'निजभाषा उन्नति'के मन्त्रसे चालित रहे । काशीकी नागरी प्रचारिणी सभाके अन्यतम सहायक और प्रथम सभापति एवं 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' के ग्यारहवें वर्ष—१९०६ ई० में उसके सुयोग्य सम्पादक के रूपमें आपकी हिन्दीके प्रति की गयी सेवाएँ चिरस्मरणीय हैं । —र० भ्र०

राधाचरण गोस्वामी–जन्म तिथि २५ फरवरी, १८५९ ई० । निधन १९२५ ई० । गोस्वामीजी ब्रजभाषाके बहुत बड़े समर्थक ही नहीं, खड़ीबोलीके विरोधियोंमें से थे । जिस समय खड़ीबोलीका आन्दोलन चला था, गोस्वामीजीने उसमें प्रमुख भाग लिया और हर प्रकारसे खड़ीबोलीको

साहित्यके अयोग्य बताते हुए ब्रजभाषाकी प्रमुखता दिखानेकी चेष्टा की थी। ये ब्रजनिवासी थे। ये संस्कृतके प्रकाण्ड पण्डित होनेके साथ ही साथ समाज-सुधारक, देशप्रेमी, साहित्यिक और रसिक व्यक्ति थे और इनपर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा सम्पादित 'हरिश्चन्द्र मैगजीन'का काफी प्रभाव पडा था और उससे प्रेरणा पाकर इन्होंने वृन्दावनसे कुछ दिनों तक 'भारतेन्दु' नामक एक पत्र भी निकाला था। इनकी साहित्यिक प्रतिभाने हिन्दी साहित्यको कुछ मौलिक नाटक, यथा—'सुदामा नाटक', 'सती चन्द्रावली', 'अमर सिंह राठौर' तथा 'तन मन-धन श्री गोसाईजीके अर्पण' और कुछ बगला उपन्यासोंके अनुवाद, जैसे—'बिरजा', 'जाविजी' तथा 'मृणमयी' दिये थे किन्तु गोस्वामीजीकी साहित्यिक प्रसिद्धिका मुख्य कारण खडीबोलीके पद्यका विरोध ही था। उन्होने सर्व प्रथम ११ नवम्बर, १८८७ ई०में 'हिन्दुस्तान'मे खडीबोलीके विरोधमे निम्नलिखित तर्क उपस्थित किये थे—

१. खडीबोली हिन्दी ब्रजभाषासे भिन्न कोई स्वतन्त्र भाषा नही है, बल्कि ब्रजभाषा, कान्यकुब्जी और शौरसेनी आदि कई भाषाओंके मिश्रणसे बनी है। खडीबोली और ब्रजभाषामे केवल क्रियाका अन्तर है।

२. खडीबोलीमें कवित्त, सवैया आदि हिन्दीके उत्तम छन्दोका निर्वाह नही हो सकता। इसमे केवल उर्दूके शेर, गजल आदिका ही प्रयोग सम्भव है।

३. खडीबोलीमें उत्तम कविता नहीं है। दयानन्दी, ईसाई और मिशनरी संस्थाओंने जिस पद्यका प्रारम्भ इस भाषामे किया है, वह पूर्णतया काव्य गुणसे वंचित है और रसिक समाज उसे 'डाकिनी' समझता है।

गोस्वामीजीके इन तर्कोंका उत्तर श्रीधर पाठकने २० दिसम्बर, १८८७ ई० के 'हिन्दुस्तान'में खडीबोलीका समर्थन करते हुए दिया। इस तरहके अनेक आरोप-प्रत्यारोप उस समय हुए। गोस्वामीजीने कई स्थानो पर श्रीधर पाठक तथा अयोध्या प्रसाद खत्रीके ऊपर खडीबोलीका समर्थन करनेके कारण व्यक्तिगत आरोप तक किये थे। वास्तवमे उन्हे भय इस बातका था कि कहीं खडीबोलीके स्थान पर थोड़े दिनोंमे उर्दूका ही प्रचार न हो जाय क्योंकि सरकारी पुस्तकोमे फारसीका प्रभाव गद्य पर तो पड ही रहा था, पद्य पर भी पड़ा तो हिन्दीकी और हानि होगी किन्तु उनकी यह आशका निर्मूल सिद्ध हुई। —ह० मो० श्री०

राधामोहन गोकुलजी—अनेक हिन्दी पत्रोका सम्पादन किया था। नागपुरका प्रसिद्ध 'प्रणवीर' आपके सम्पादनमे ही निकलता था। 'विप्लव' नामसे आपके लेखोका सग्रह प्रकाशित है। आपने 'नीतिशास्त्र' आदि तीन-चार पुस्तकें लिखी थीं। कलकत्तामे आप बहुत दिनोतक रहे। वहाँ 'मारवाडी सुधार' नामक मासिक पत्रका सम्पादन भी आपने कुछ दिनोंतक किया था। १९३५ ई० में आपकी मृत्यु हुई। —सं०

राधा सुधानिधि—गोस्वामी हित हरिवंश रचित 'राधा सुधानिधि' संस्कृत भाषाका राधास्तुतिविषयक स्तोत्र ग्रन्थ है। इसमें २७० श्लोक हैं। राधाकी वन्दना, उपासना, प्रशस्ति, सेवा-पूजा, सौन्दर्य, रूपमाधुरी आदि विविध विषयोंका सांगोपांग वर्णन करके गोस्वामी हरिवंश ने अपनी आराध्या इष्टदेवीका सर्वोत्कर्ष सिद्ध किया है।

इस ग्रन्थका साम्प्रदायिक भावनाकी दृष्टिसे अत्यधिक महत्त्व है। माधुर्यभक्तिको स्वीकार करनेवाले सम्प्रदायोंमें राधाका परमोत्कर्ष इसी ग्रन्थके आधारपर सिद्ध किया जाता है। अतः जिन-जिन सम्प्रदायोंमें माधुर्यभक्तिकी प्रतिष्ठा है, उनमे इस ग्रन्थको लेकर विवाद होना स्वाभाविक है। चैतन्य मतानुयायी भक्तोंका प्रारम्भमें ऐसा आग्रह था कि यह ग्रन्थ प्रबोधानन्द सरस्वती द्वारा रचा गया है। भक्तिप्रभा आफिस, हुगलीमे यह ग्रन्थ दो भागोंमें प्रकाशित किया गया था और उसमे चैतन्यके गौड़ीय मतके अनुसार प्रारम्भमें चैतन्य महाप्रभुकी वन्दनाका एक श्लोक भी जोड दिया गया था किन्तु बादमें विद्वानोंका ध्यान इसकी ओर आकृष्ट हुआ और सत्यानुसन्धान किया गया। इण्डिया आफिसके हस्तलिखित ग्रन्थोंकी सूचीमे इसका उल्लेख पाया गया और वहाँ देखा गया कि इसके प्रणेताका नाम स्पष्ट शब्दोंमे हित हरिवंश लिखा है।

'राधा सुधानिधि'के अन्तःसाक्ष्यके आधारपर भी यह प्रमाणित होता है कि यह ग्रन्थ गोस्वामी हित हरिवंश द्वारा रचा गया है। राधाको गुरु और इष्टाराध्या स्वीकार करनेवाले हित हरिवंश गोस्वामी ही हैं तथा राधाकी उपासना, सेवा-पूजा, अर्चा आदिके जो रूप इसमें वर्णित हुए है, वे सब राधावल्लभीय पद्धतिके अनुकूल है। राधाके बिना कृष्णकी आराधनाका निषेध राधावल्लभ सम्प्रदायमें ही किया गया है। इसके अतिरिक्त राधावल्लभीय भक्तोंके द्वारा इस ग्रन्थकी एक दर्जन टीकाएँ सत्रहवी शताब्दीसे ही मिलनी प्रारम्भ होती है और आजतक उनकी परम्परा चल रही है।

इस ग्रन्थका मूल प्रतिपाद्य निम्न शीर्षकोंमें विभक्त किया जा सकता है—राधा नाम महिमा, राधाका शृंगारमण्डन, कृष्णका राधाके प्रति उत्कट प्रेम, कृष्णका कैंकर्य भाव, राधा-कृष्णकी निकुंज लीला, राधा-कृष्णके प्रेममे सूक्ष्म मान-विरह, राधा-कृष्णका रासोत्सव, राधाका नखशिख वर्णन, वृन्दावन धाम वर्णन, यमुना वर्णन, नित्य-विहार वर्णन।

इस स्तोत्र-काव्यके अनुसार राधा अनेक प्रकारकी शक्तियोंसे समन्वित होकर भक्तजनकी आह्लाददात्री ही नहीं, वरन् सर्वसुखकल्याणकारिणी भी बनती हैं। वे ईश्वररूप कृष्णकी शची तथा परम सुख रूप वपुधारिणी परा और स्वतन्त्र शक्ति हैं। वे श्यामसुन्दरके रति-प्रवाहकी लहरियोंकी बीजरूपिणी है। श्रीकृष्ण भी राधाके चरण-कमलका मकरन्द पाकर अपनेको शक्ति-सम्पन्न अनुभव करते हैं। 'राधा सुधानिधि'मे राधा-भक्तिके जिस भास्वर रूपको प्रस्तुत किया गया है, उसमें बाह्याडम्बर या शास्त्रीय विधि-निषेध मर्यादाके लिए कोई स्थान नहीं है। लौकिक-वैदिक क्रियाओका सर्वथा परित्याग करनेका इसमे स्पष्ट उल्लेख है।

ग्रन्थकी भाषा स्तोत्र-काव्यके सर्वथा उपयुक्त है। समास

विरल, सरस पद रचना और भावानुकूल शब्द-विधान इसकी विशेषता है। भाषामें चित्रात्मकता है। भावोंकी पुनरावृत्ति अधिक है। अलंकारोंकी दृष्टिसे उपमा और अनुप्रासकी सुन्दर छटा सर्वत्र दृष्टिगत होती है। प्रसाद गुणसे ओत-प्रोत यह ग्रन्थ भक्ति-सागरमें निमज्जित करानेवाला है।

[सहायक ग्रन्थ—राधा सुधानिधि : बाबा हितदास द्वारा सम्पादित, वृन्दावन; अर्ली हिस्ट्री आफ दि वैष्णव फेथ एण्ड मूवमेण्ट इन बंगाल : डा० एस० के० डे ; साहित्य रत्नावली : किशोरीशरण अलि, वृन्दावन; राधावल्लभ सम्प्रदाय—सिद्धान्त और साहित्य : डा० विजयेन्द्र स्नातक।] —वि० स्ना०

राधिकारमण प्रसाद सिंह–सूर्यपुरा, शाहाबाद, बिहारके एक सम्भ्रान्त कुलमे राधिकारमण प्रसाद सिंहका जन्म सन् १८९१ ई० में हुआ। आपने उच्च शिक्षा प्राप्त करते हुए एम० ए० की उपाधि ग्रहण की। हिन्दीके मंचपर आप कहानी लेखकके रूपमे १९१३ ई० के आस-पास आये। उसी साल आपकी एक कहानी 'कानोमे कँगना' काशीकी 'इन्दु' नामक पत्रिकामे प्रकाशित हुई थी। यह एक अत्यन्त भावुकतापूर्ण, सरस रचना थी और इसने साहित्य-रसिकों का ध्यान आकर्षित किया था। राधिकारमण प्रसाद सिंहकी कहानियोका स्वर प्रायः आदर्शवादी रहा है। आपके दो कहानी संग्रह 'कुसुमांजलि' तथा 'गान्धीटोपी' क्रमशः १९१४ ई० तथा १९३८ ई० मे प्रकाशित हुए हैं। राधिकारमण प्रसाद सिंहकी अतिशय भावुकताने कभी-कभी काव्य-पथका भी अनुसरण किया है। 'नवजीवन' या 'प्रेम लहरी' आपके गद्य-काव्योका संग्रह है। यह १९१६ ई० मे प्रकाशित हुआ था। राधिकारमण प्रसाद सिंह एक सफल उपन्यास-लेखक भी रहे हैं। आपके चार उपन्यास उल्लेखनीय हैं—(१) 'राम-रहीम' (१९३६ ई०), (२) 'पुरुष और नारी' (१९३९ ई०), (३) 'संस्कार' (१९४२ ई०), (४) 'चुम्बन और चाटा' (१९५६ ई०)। इन उपन्यासोमे देशकी सामाजिक-राजनीतिक गतिविधियोंको अंकित करनेकी चेष्टा की गयी है। इनके पात्र समाज और सभ्यताके विभिन्न वर्गोंसे लिये गये हैं और अपने-अपने स्तरका प्रतिनिधित्व करते है। इन उपन्यासोंकी भाषा-शैली भी बहुत लोकगम्य तथा रोचक है। राधिकारमण प्रसाद सिंहने जीवन और समाजके अनेक मनोरम मर्मस्पर्शी संस्मरणात्मक चित्र भी प्रस्तुत किये है। आपके द्वारा लिखे गये अधिकाश संस्मरण बहुत कलात्मक तथा प्रभावपूर्ण हैं। ये संग्रह रूपमें प्रकाशित होते रहे है—(१) 'सावनी समाँ' (१९३८ ई०), (२) 'टूटा तारा'(१९४० ई०), (३) 'सूरदास'(१९४० ई०)। इनमेसे 'सूरदास' नामक कृति अन्धोंकी दुनियाँकी करुणापूर्ण झाँकी प्रस्तुत करती है। राधिकारमण प्रसाद सिंहकी दो नाट्य कृतियाँ भी हैं—(१) 'अपना-पराया' (१९५४ ई०), (२) धर्मकी धुरी (१९५५ ई०)। इन नाटकोंकी सामाजिक विषय-सामग्री तथा ललित भाषा शैली उल्लेख्य है, वैसे आधुनिक नाट्य कलाकी दृष्टिसे ये कृतियाँ मद्धिम है।

उपर्युक्त विवरणसे स्पष्ट है कि राधिकारमण प्रसाद सिंहने गद्य-साहित्यकी विभिन्न विधाओंको अंगीकृत किया है। कहानी, गद्य-काव्य, उपन्यास, संस्मरण, नाटक आदि सभी क्षेत्रोंमें आपने एकाधिक प्रयोग किये हैं। आपकी सफलताका रहस्य आपकी मनोरम भाषा-शैली है। आप हिन्दीके आधुनिक गद्यकारोंमें एक विशेष प्रकारकी भावुकता-प्रधान, काव्यात्मक, लच्छेदार तथा मुहावरेदार भाषा-शैलीके कारण प्रसिद्ध है। तत्सम सामासिक शब्द-योजना तथा तुकपूर्ण पदावलीके कारण आपके लेखनमे बंगला गद्य-शैलीकी झलक पाई जाती है। उपर्युक्त रचनाओंके अतिरिक्त आपकी कुछ अन्य गद्य-कृतियाँ ये हैं—'नारी क्या एक पहेली' (१९५० ई०), 'पूरब और पच्छिम' (१९५१ ई०), 'हवेली और झोंपडी' (१९५२ ई०), 'देव और दानव' (१९५३ ई०), 'वे और हम'(१९५६ ई०), 'धर्म और मर्म' (१९५९ ई०), 'तब और अब' (१९५९ ई०)।

राधिकारमण प्रसाद सिंहने विगत ५० वर्षोंमें अविराम भावसे हिन्दीकी अमूल्य सेवाएँ की है। हिन्दी गद्य-साहित्यके उत्थानमे आपका योगदान निश्चितरूपसे महत्त्वपूर्ण है। आप आरा (शाहाबाद)की नागरी प्रचारिणी सभा तथा बिहार प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनके द्वितीय अधिवेशन (बेतिया-चम्पारन)के सभापति रह चुके है।

[सहायक ग्रन्थ—राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह—व्यक्तित्व और कृतित्व : कमलेश।] —र० भ्र०

राधेश्याम कथावाचक–जन्म १८९० ई०मे बरेलीमें हुआ। अल्फ्रेड कम्पनीके नाटककारकी हैसियतसे 'वीर अभिमन्यु', 'भक्त प्रह्लाद', 'श्रीकृष्णावतार' आदि नाटक लिखे। पर सामान्य जनतामें इनकी ख्याति इनके द्वारा लिखित रामायणकी कथाको लेकर फैली। लोक-नाट्यकी शैलीको आधार बनाकर खडीबोलीमे इन्होंने रामायण कथाको कई खण्डोंमें पद्यबद्ध किया, जिसका प्रचार पिछले दशकोंमें बहुत हुआ। कई अंशोके ग्रामोफोन रिकार्ड बने। इनकी यह रचना 'राधेश्याम रामायण'के नामसे सर्वसाधारणमे विख्यात है। —सं०

रानी केतकीकी कहानी–यह इंशा अल्ला खाँकी विख्यात गद्यकृति है। इसकी रचना लखनऊके नवाब सआदत अली खाँके आश्रयमे (१८००-१८०८ के बीच) हुई थी। इसमे राजा सूरजभानके पुत्र उदय भान और राजा जगत प्रकाशकी बेटी केतकीकी प्रेम-कहानी वर्णित है। एक आखेट-यात्रामे कुँअर उदयभान केतकीको एक अमराईमें अनेक सुन्दरियोंके बीचमे देखता है और उसे प्राप्त करनेके लिए व्याकुल हो उठता है। राजा सूरजभान पुत्रकी चिन्ता दूर करनेके लिए जगत प्रकाशपर आक्रमण कर देता है। जगत प्रकाशका गुरु योगी महेन्द्र गिरि सूरजभानके पूरे परिवारको हिरण-हिरणी बना देता है। बादमें केतकीके अविचल प्रेमके सामने सभीको झुकना पडता है और उसका ब्याह उदयभानसे हो जाता है। कहानी भौतिक प्रेमका आदर्श उपस्थित करती है और मनोरंजनके लिए लिखी गयी है। लेखकने अलौकिक घटनाओंके समावेशसे कुतूहल उत्पन्न किया है। इसकी शैली बड़ी ही चुलबुली तथा भाषा बडी प्यारी, घरेलू और ठेठ है। लेखककी दृष्टिमें इसमें "हिन्दवी छुट और किसी बोलीका पुट" नहीं है। यह

ऐंग्लो ओरिएण्टल प्रेस, लखनऊ, (१९०५ ई०) और नागरी प्रचारिणी सभा, काशी (१९२८ ई०)से प्रकाशित हो चुकी है। —रा० चं० ति०

राम–ऋग्वेदमें रामका उल्लेख पाँच रूपोंमें हुआ है। कहीं वे प्रतापी यजमानोंके रूपमें उल्लिखित हैं और कहीं मार्ग वेय (वनवासी ?) के रूपमे। भाष्य-साहित्यमे राम शब्द रमणीय पुत्रके अर्थमें उल्लिखित है (सायण और कैय्यट)। ऋग्वेदमें रघुवंशकी परम्परामें 'इक्ष्वाकु शब्द'का भी एक बार प्रयोग हुआ है। दशरथका नाम भी अनेक बार प्रतापी वीरोंके साथ आया है। ऋग्वेदके दशरथ दानशील यजमानोंमे अत्यधिक कीर्तिलब्ध क्षत्रिय जान पडते हैं। परन्तु ऋग्वेदमें ऐसा कोई संकेत नहीं मिलता, जिससे सूचित होता हो कि राम इन्हीं दशरथके पुत्र थे। कालिदासने 'रघुवंश'में रामकी जो वंशावली दी है, उसमे दिलीप-अज-रघु-दशरथ-रामका क्रम मिलता है परन्तु पुराणोंमें रामके पिता दशरथके पूर्व कई पीढियाँ दी गयी हैं और तब रघु-अज आदि आते हैं। डाक्टर ए० बी० कीथने पीढियोंकी परम्पराके आधारपर अनुमान किया है कि रामका समय आठवीं शती ईस्वी पूर्व माना जा सकता है।

विद्वानोंने अनुमान किया है कि 'वाल्मीकि-रामायण'की रामकथा चारणों द्वारा गाथा-गीतिके रूपमें लोक-प्रचलित थी। यह चारण 'लवकुश' जातिके थे। वाल्मीकिने इसी लोक-प्रचलित वीराख्यानको प्रबन्धका रूप देकर 'रामायण' महाकाव्यकी रचना की। रामकथा और रामकाव्यके नायक रामके व्यक्तित्वमें कितनी ऐतिहासिकता और कितनी कवि-कल्पना है, यह कहना सम्भव नहीं है। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि रामका व्यक्तित्व पूर्णतया काल्पनिक नहीं है, उसमे किसी अंशमे ऐतिहासिकता अवश्य है।

रामके चरित्रमे जो गौरव और महत्ता लोक-प्रसिद्ध है, उसका श्रेय महाकवि वाल्मीकिको ही है। 'वाल्मीकि-रामायण'के प्रारम्भमे ही वाल्मीकिके प्रश्न करनेपर नारद रामका जो वर्णन करते हैं, उससे उनके व्यक्तित्वका अत्यन्त प्रभावशाली परिचय मिलता है। वे विष्णुके समान वीर्यवान् हैं, पीनवाहु, उरु क्रम, उदार, धीर, गम्भीर और ओजस्वी हैं। वे असुरोंके संहारकर्ता और प्रजा के रक्षक हैं। उनके चरित्रमे नितिक्षाका गुण विशेष रूप में पाया जाता है। वाल्मीकिने अपने रामके चरित्र-चित्रण में इन्हीं गुणोंके आधारपर एक महामानवकी सृष्टि की है। वाल्मीकिने राम द्वारा सर्वत्र मानवोचित व्यवहार प्रायः कराया है किन्तु उनके कार्योंमें जिस गरिमा और महत्ता का समावेश किया गया है, उसमे दिव्यता और अलौकिकता की व्यंजना सहज जान पड़ती है। आगे चलकर इसी व्यंजना के आधारपर रामके चरित्रमे नारायणत्वका समावेश हो गया और रामका व्यक्तित्व अलौकिकतासे समन्वित हो गया।

'महाभारत'के रामोपाख्यानमें रामकथाका वही रूप पाया जाता है, जो 'वाल्मीकि-रामायण'मे वर्णित है। यद्यपि कहा यह जाता है कि 'महाभारत'की रचना रामायणसे पूर्व हुई थी तथापि जहाँ तक रामकी कथाका सम्बन्ध है, यह स्पष्ट सूचित होता है कि महाभारतके रामोपाख्यान का आधार 'वाल्मीकि-रामायण' ही है। रामोपाख्यानमें नारदके द्वारा रामके विष्णु होनेका अनेक बार उल्लेख हुआ है। रामके व्यक्तित्वके दैवीकरणकी जो प्रवृत्ति 'वाल्मीकि-रामायण'के बाद विकसित हुई वह रामोपाख्यानका प्रथम प्रमाण प्रस्तुत करती है।

बौद्ध-साहित्यके 'दशरथ जातक'के राम गम्भीर, एक-निष्ठ, शान्त, स्थिरमति और पण्डितके रूपमें प्रस्तुत किये गये हैं। इसमें रामके एकाकी वनमे रहने तथा वनसे लौट-कर अपनी अनुजा सीतासे विवाह कर लेनेका उल्लेख हुआ है। इस कथामें रामके व्यक्तित्वकी अलौकिकताके भी कुछ संकेत मिलते हैं, यथा—अनुचित निर्णय होनेपर पादुकाओं का परस्पर आघात, रामका स्वर्गारोहण आदि। कुछ अन्य जातक कथाओंमें भी रामका विभिन्न रूपोंमें उल्लेख हुआ है किन्तु इन कथाओंके रामके व्यक्तित्वमें कोई संगति और एकरूपता नहीं है। कथाओंका उद्देश्य रोचकताकी सृष्टि करना ही जान पडता है।

जैन-साहित्यमे रामकथासम्बन्धी अनेक रचनाएँ उप-लब्ध होती हैं। सर्वप्रथम तीर्थंकरोंकी जीवनीसे सम्बन्धित 'त्रिषष्ठि लक्षण महापुराण'मे राम, रावण और लक्ष्मणको अनेक पूर्व जन्मोंसे एक दूसरेके शत्रुके रूपमें चित्रित किया गया है। विमलसेन सूरिने अपने 'पउमचरिउ'मे इसीका आधार लेकर रामकथाका वर्णन किया। इसके अनुसार रामका जन्म रावण वधके लिए ही होता है क्योंकि दोनों जन्म-जन्मान्तरमे एक दूसरेके शत्रु हैं। 'पउमचरिउ'की कथा 'वाल्मीकि-रामायण'का अनुसरण करती है। विमलसेन सूरिके बाद रविषेण, हेमचन्द्र, सोमसेन आदि जैनाचार्योंने अपनी रामकथासम्बन्धी रचनाओंमे रामके चरित्रमें मर्यादावाद और निष्ठापूर्ण शील-सौजन्यपर विशेष बल दिया है। जैन-साहित्यमें रामके चरित्रमें अलौकिकताके संकेत बराबर किये गये हैं। सिद्ध जिनोंकी भाँति राम भी अलौकिक पुरुष हैं किन्तु मानव योनिमे जन्म लेनेके कारण वे लौकिक मर्यादाओंका पालन करते हैं। १९ वी शताब्दीतक जैन-साहित्यमे रामके इसी व्यक्तित्वकी प्रतिष्ठा होती रही है। काव्योंमे रामका चरित्र सर्वप्रथम कालिदासके 'रघुवंश'महाकाव्यमे प्राप्त होता है। यद्यपि यह महाकाव्य रघुकुलकी कीर्तिका वर्णन करता है किन्तु रामका चरित्र इसमे विशेष रूपमे चित्रित किया गया है। महाकविने रामके व्यक्तित्वमे पौराणिक तत्त्वोंको प्रभावशाली रूपमे चित्रित किया है। चरित्र-चित्रणमे कालिदासने वाल्मीकिका ही अनुसरण किया है। कालिदासके अनन्तर अभिनन्दने अपने 'रावण वध'मे रामके पराक्रम और पौरुष-पूर्ण चरित्रको उसी परम्पराके अनुसार चित्रित किया है। साकल्य मल्लकृत 'उदार-राघव', क्षेमेन्द्रकृत 'रामायण मंजरी' आदि महाकाव्योमे भी रामका चरित्र वाल्मीकिकी परम्परा-अनुसार ही चित्रित हुआ है।

संस्कृत नाट्य-साहित्यमे भासकृत 'प्रतिमा' और 'अभिषेक' नाटकोंमे रामके शौर्य और पराक्रमका गुण-गान है। रामके जीवनके उत्तरार्द्धको लेकर सबसे पहले भवभूतिने 'उत्तर रामचरित'की रचना की। भवभूतिके राम अत्यन्त करुण-

हृदय चित्रित किये गये हैं। कर्त्तव्यवश सीताका निष्कासन उनके लिए घोर आत्मग्लानिका कारण बनता है। रामके चरित्रके विकासमें भवभूतिका अन्यतम स्थान है। 'उत्तर रामचरित'के बाद 'कुन्दमाला' (दिङ्नाग), 'अनर्घराघव' (कवि मुरारि), 'राघव पाण्डवीय' (धनंजय), 'राघव-नैषधीय' (हरिदत्तसूरि), 'जानकी-परिणय'(रामभद्र दीक्षित) 'उन्मत्त-राघव' (भास्करभट्ट) और 'प्रसन्न राघव' (जयदेव) आदि नाट्य और काव्य-कृतियोंमें रामके चरित्र-चित्रणमें कोई उल्लेखनीय विशेषता नहीं पाई जाती। दामोदरमिश्र-कृत 'हनुमन्नाटक'में रामके चरित्रका किंचित् मौलिक रूपमे चित्रण मिलता है परन्तु यह मौलिकता विशेष सराहनीय नहीं कही जा सकती। नाटकके दूसरे अंकमे सीता-विवाहके अनन्तर रामके सभोगका वर्णन रामचरित्रकी मर्यादाके विपरीत है। रामकथासम्बन्धी कुछ ऐसे काव्योंकी भी रचना हुई, जिनमें कालिदासके 'मेघदूत' और जयदेवके 'गीतगोविन्द'का अनुकरण पाया जाता है। ऐसे काव्योमे रामके विरही रूपसे सम्बन्धित उनके चरित्रके ऐसे अशोको उभारा गया है, जो गीतिकाव्यके अनुकूल है।

उपर्युक्त सम्पूर्ण काव्य और नाट्य साहित्यमे यद्यपि रामके अवतारी रूपके यदा-कदा संकेत मिल जाते हैं किन्तु उनके प्रति पूजा-उपासनाकी भावना स्पष्ट रूपमे नहीं पायी जाती। रामके प्रति पूजा-उपासनाकी भावना अवतारवादसे सम्बद्ध है और अवतारवाद वैष्णव भक्ति-भावनाका मुख्य आधार है। सम्भवतः अवतारवाद और भक्ति-भावनाका विकास प्रारम्भमे दक्षिण भारतमे हुआ। यद्यपि 'रामोत्तरतापनीय' और 'रामपूर्वतापनीय उपनिषद्' उत्तर भारतमे रचे गये किन्तु उनकी मान्यता रामानुजीय सम्प्रदाय द्वारा ही प्रतिष्ठित हुई। कदाचित् सबसे पहले'विष्णु पुराण'में रामको विष्णुका अवतार सिद्ध किया गया। 'विष्णु पुराण'की रचना चौथी शताब्दी ईस्वीमे मानी जा सकती है। उसके बाद सभी पुराण रामको विष्णुके अवतारके रूप-में वर्णित करते गये, फलस्वरूप कालान्तरमे राम और विष्णुमें एक प्रकारसे कोई भेद नहीं रह गया। राम-कथा सम्बन्धी अन्य पात्रोंको भी दैवी रूप दिया जाने लगा। विष्णुके रूपमे रामभक्तिके अनेक सम्प्रदायोंमे इष्टदेवके रूपमें पूजे जाने लगे। यही नहीं, बौद्ध और जैन-मतोंमे भी रामको बुद्ध और जिनकी संज्ञा देकर उनके प्रति पूज्य-भावना प्रकट की गयी। यद्यपि शैवमतमे रामको शिवके व्यक्तित्वके साथ एकाकार करनेका प्रयत्न नहीं हुआ किन्तु रामकी शिव-भक्तिकी सराहना अवश्य की गयी। साथ ही शिवको भी रामका अनन्य प्रेमी चित्रित किया गया। इस दिशामें 'अध्यात्म-रामायण'का विशिष्ट स्थान है। 'अध्यात्म रामायण'में रामकी कथा शिवके द्वारा पार्वतीसे कही जाती है। इस कथाका हेतु मायामय ससारसे आत्यन्तिक निवृत्ति प्राप्त करना ही है। रामके रूपमें विष्णुका अवतार सन्तों-की रक्षाके लिए होता है। सीता उनकी 'प्रकृति-अमल माया' हैं, उनके भाई तथा वानर आदि पार्षद और सहायक उन्हींके अंश हैं। 'अध्यात्म रामायण'में रामके चरित्रमे जो दैवीकरण हुआ, उसीकी पुनरावृत्ति 'आनन्द रामायण' आदि राम-कथासम्बन्धी परवर्ती ग्रन्थोंमें होती गयी। रामके इस दैवीकरणकी एक बड़ी विशेषता यह है कि इसमें राम और शिवमें परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करनेका प्रयत्न किया गया है। 'अध्यात्म रामायण'के बाद रामके चरित्रका उल्लेखनीय विकास तुलसीके साहित्य विशेष रूपसे 'रामचरित-मानस'मे मिलता है। यद्यपि तुलसीके पहले सूरदासने राम-कथासम्बन्धी कुछ मार्मिक स्थलोंको लेकर रामके चरित्र की जिन विशेषताओंका उद्घाटन किया था, उनमें उनके अत्यन्त द्रवणशील, करुणा-कातर, पराक्रमपूर्ण, ओजस्वी और मर्यादावादी व्यक्तित्वकी झलक मिलती है किन्तु सूरका यह चित्रण उनकी भक्ति-भावना और उनकी काव्य-रचनाका मुख्य विषय नहीं था। तुलसीदासने रामके प्रति अनन्य भक्ति प्रकट करते हुए उनके चरित्रका जो निर्माण किया, वह रामके चरित्र-विकासका चरम कहा जा सकता है। रामके व्यक्तित्वके दैवीकरणके क्रममें रामको उन्होंने विष्णु-स्वरूप मानते हुए भी त्रिदेव—ब्रह्मा, विष्णु, महेश-से परे, साक्षात् परात्परब्रह्मके रूपमे प्रस्तुत किया। दूसरी ओर उनमे तुलसीने महापुरुषकी जिस मर्यादाकी प्रतिष्ठा-की, वह उन्हें सहज ही अभूतपूर्व महामानवके रूपमे उपस्थित करती है। पर-ब्रह्मके रूपमे तुलसीके राम अज, अद्वैत, निर्गुण और चिदानन्दघन हैं। विष्णुके रूपमे वे करुणाके सागर, भक्त-वत्सल और भक्तोंके उद्धारके लिए निरन्तर आतुर हैं। विष्णु-स्वरूप राम-का यही गुण तुलसीदासके महामानव रामको अत्यन्त सहृदय और मानवीय बना देता है। इसी महामानव रूपमे वे मर्यादाके रक्षक और धर्मके प्रतिष्ठापक हैं। तुलसी-ने रामके रूपमे जिस पूर्ण मानवकी सृष्टि की, वह गीताके स्थितप्रज्ञ मनुष्यका जीवित उदाहरण कहा जा सकता है। विशेषता यह है कि तुलसीके राममे हृदयकी सरसता, कोमलता और मधुरता उन्हें अनुकरणीय आदर्शके साथ-साथ सहज, स्वाभाविक प्रियता भी प्रदान करता है। तुलसीके राम व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक जीवनमे आदर्शकी स्थापना करते हुए लोकमनकी गह-राइयोंमे जो स्थायी रूपमे प्रतिष्ठित हो गये हैं, उसका कारण उनके चरित्रकी प्रेम-प्रवणता ही है। प्रेम और मर्यादाका ऐसा समन्वय करके तुलसीने अपने युगकी एक बहुत बडी मागको पूरा किया था। उस युगमे प्रेमभक्तिका ऐसा अबाध प्रवाह हो रहा था कि जिसमे इष्टदेवके प्रति प्रपत्ति-सर्वात्मसमर्पणकी भावनाके अन्तर्गत जीवनकी सभी मर्यादाओका अतिक्रमण अनिवार्य सा माना जाने लगा था। न केवल कृष्ण-भक्तिमे, वरन् राम-भक्तिमे भी प्रेमकी इस ऐकान्तिक भावनाकी प्रतिष्ठा हो गयी थी। तुलसीदास-के पहले स्वामी अग्रदासने इसी भावनाके प्रभावके कारण रामके मर्यादावतारको न लेकर उनके लीलावतारका ही अपने 'रामाष्टयाम', 'रामध्यानमजरी' और 'रामज्योनार'मे चित्रण किया। तुलसीदासने रामचरितके लीलापक्षको उनके मर्यादा रूपमे ही घुला-मिला दिया और उनके लोक-नायकत्वकी प्रतिष्ठा की परन्तु तुलसीदासका यह प्रयत्न लोक-मंगलकारी और लोक-भावनाको प्रभावित करनेवाला होते हुए भी रामभक्तिके सम्प्रदायोंमे अधिक दिनोंतक मान्य नहीं रह सका। १७ वीं शताब्दीके अन्त होते-होते ही

रामके मधुर-क्रीड़ा विलासके चित्रण होने लगे। सरयूके तटपर कुंज-भवनोंकी स्थापना होने लगी तथा राम और सीताकी रसकेलिकी विविध सामग्री जुटाई जाने लगी। रामको हिंडोल-लीला, फाग-क्रीड़ा और रासविलासमें मग्न चित्रित करते हुए रामके व्यक्तित्वमें तुलसीदासने जिस मर्यादाकी प्रतिष्ठा की थी, उसे पूर्णतया विस्मृत कर दिया गया परन्तु जनककिशोरी शरण, जनकलाड़ली शरण, परमेश्वरीदास, प्रेमसखी आदि जिन कवियोंकी रचनाओंमें रामके व्यक्तित्वको इस प्रकार विकृत किया गया है, उनमें किसी प्रकारकी काव्यगत सुन्दरता नहीं पाई जाती। वे कृष्णभक्ति-काव्यकी असफल और भद्दी नकल मात्र हैं।

मध्यकालमें राम-कथासम्बन्धी कुछ ऐसी काव्यरचना भी हुई, जिसमें भक्ति-भावनाका तीव्र उन्मेष नहीं है, अपितु अलंकरणकी प्रधानता है। केशवकी 'रामचन्द्रिका' इसका सबसे प्रमुख उदाहरण है। सेनापतिने भी रामसम्बन्धी कुछ छन्दोंकी रचना की तथा उत्तर मध्यकालके कुछ अन्य कवियोंने भी रामसम्बन्धी स्फुट छन्द रचे परन्तु इस समस्त काव्यमे रामको अवतार रूपमे ही ग्रहण किया गया है तथा उनके प्रति सामान्य भक्ति-भावना सुरक्षित रखी गयी है। १९वीं शताब्दीमे 'राम रत्नावली', 'आनन्द रघुनन्दन', 'राम-मन्त्र-रहस्य' (रघुबरशरण), 'परशुराम कथामृत' (गिरिधरदास) आदि रचनाओंके द्वारा राम-काव्यकी-परम्परा चलती रही। यद्यपि इन रचनाओंमे रामके चरित्र-चित्रणमें किसी महत्त्वपूर्ण विकासका परिचय नहीं मिलता, फिर भी उसमें यत्र-तत्र युगका प्रभाव और रचनाकारकी अभिरुचिकी झलक मिल जाती है।

आधुनिक युगमें रामके चरित्रको नवीन मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे चित्रित करनेके अनेक प्रयास हुए हैं। भक्ति-भावना के स्थानपर यथार्थ और स्वाभाविकताका आग्रह बढ़ा। अयोध्यासिंह उपाध्याय'हरिऔध'ने 'वैदेही वनवास'मे यद्यपि रामके मानवीय रूपपर ही विशेष बल दिया परन्तु उनका चरित्र-चित्रण भक्ति-भावनासे विरहित नहीं हो सका। सीता रामके परमभक्त मैथिलीशरण गुप्तने यद्यपि रामके प्रति भक्ति-भावना अक्षुण्य रखी तथा उनके अवतारी रूपका भी निश्चित संकेत किया फिर भी उन्होंने अपने 'साकेत'के रामको आधुनिक युगकी भावनाके अनुरूप मानवकी सहजतामे समन्वित करके ही चित्रित किया। साकेतकारने वाल्मीकिके मर्यादा पुरुषोत्तम तथा तुलसीके महामानव रामकी भूमिकामे रामके जिस चरित्रका निरूपण किया, उससे राम हमारे जीवनके आदर्श होते हुए भी हमारे अधिक निकट आ गये। 'साकेत'मे रामकथाका जो पारिवारिक परिवेश निर्मित हुआ है, राम उसके नायक हैं। मैथिलीशरणके रामके चरित्र-चित्रण सबसे बड़ी विशेषता मनोवैज्ञानिक स्वाभाविकता है। 'साकेत'के अतिरिक्त 'रामचरित चिन्तामणि' (रामचरित उपाध्याय), 'रामचन्द्रोदय' (रामनाथ ज्योतिषी), 'कौशलकिशोर' और 'साकेत सन्त' (बलदेव मिश्र) तथा 'रावण महाकाव्य' (हरदयाल सिंह) आदि राम-कथासम्बन्धी अनेक रचनाएँ आधुनिककालमें हुईं किन्तु उनमें रामके चरित्र-चित्रणमे किसी उल्लेखनीय विशेषता और मौलिकता दर्शन नहीं होता। 'साकेत सन्त' भरतके चारित्रिक गौरवका चित्रण करता है तथा 'रावण-महाकाव्य'में रावणके पराक्रमका वर्णन है। रामका चरित्र इनमें गौण हो गया है।

छायावादी काव्य-धाराके उन्मेषमें पौराणिक आख्यान काव्यके उपजीव्य नहीं रहे। फलतः छायावादी कवियोंने राम-कथासम्बन्धी रचनाएँ नहीं कीं, परन्तु सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'की 'रामकी शक्ति पूजा' इसका अपवाद है। इसकी रचना कदाचित् माइकेल मधुसूदनदत्तके 'मेघनाद-वध'में वर्णित लक्ष्मणकी शक्ति पूजासे प्रेरित होकर की गयी है। रावणके परम पराक्रमसे आतंकित और भयभीत होकर रामको अपनी विजयमें सन्देह होने लगता है। कवि उनके मनका अत्यन्त कुशलताके साथ मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करता हुआ उनमे मानवोचित दुर्बलताका आभास देता है। अपने अभीष्टकी सिद्धिके लिए वे शक्ति-पूजाकी ओर अग्रसर होते हैं। परम शक्ति उनमे प्रवेश करती है और उनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व शक्तिका प्रतीक बन जाता है। युग-युगमे पूजित रामके चरित्रमे 'निराला'जी द्वारा दिया गया यह नया मोड़ उनकी मौलिकताका प्रमाण है और साथ ही पाठकोंके कौतूहलका विषय भी।

रामके व्यक्तित्वने अनेकानेक कवियोंको प्रेरणा दी है, परन्तु उनके चरित्र-चित्रणमे सर्वप्रथम वाल्मीकि और उनके बाद तुलसीदासने जिस गौरव, उच्चता, भव्यता और दिव्यताका सन्निवेश किया, वही वस्तुतः उनके चरित्र-चित्रणके स्थायी प्रतिमानोंके रूपमें समय-समय पर गृहीत होता रहा। अन्य कवियोंकी मौलिक उद्भावनाएँ अपने आपमे सराहनीय हो सकती हैं परन्तु उनके द्वारा वाल्मीकि अथवा तुलसीके रामके व्यक्तित्वमे कोई ऐसा नया योगदान नहीं हो सका, जिसके द्वारा लोक-मानस पर कोई उल्लेखनीय प्रभाव पड़ता।

[सहायक ग्रन्थ—रामकथा : डा० कामिल बुल्के; तुलसीदास : डा० माताप्रसाद गुप्त; कल्याणका मानस विशेषांक, गीता प्रेस, गोरखपुर; तुलसीदास और उनका युग : राजपति दीक्षित।] —यो० प्र० सिं०

रामइकबाल सिंह 'राकेश'—जन्म २४ दिसम्बर, सन् १९१३ ई०में मुजफ्फरपुर जिला (बिहार)के भदई नामक ग्राममें हुआ। जी० बी० बी० कालेज, मुजफ्फरपुरसे इण्टरमीडियेट करनेके बाद कुछ कारणोंसे पाठशालाकी शिक्षा तो रुक गयी, पर जीवनकी अनुभव-पाठशालाके छात्रके रूपमे 'राकेश' जी बराबर पढते और लिखते रहे। सन् १९३७ ई०में दैनिक 'सैनिक' आगराके सम्पादकीय विभाग में कार्य करते रहे। सन् १९३८ ई०मे ग्रन्थमाला कार्यालय, पटनामें अनुवादका कार्य करते रहे, किन्तु जीवनके रूप-रंग और धरतीकी गन्ध उन्हे बराबर बुलाती रही। अन्तमें मैथिल भूमिके इस आह्वानको ये नहीं टाल सके और फिर ७-८ वर्षोंतक मिथिलाकी अमराइयाँ और बिहारकी गीत-गर्भा वसुन्धराके सीनोंमे शताब्दियोंसे गाते-तड़फते उन लोक-गीतोंको चुनते रहे, जिसमें मिथिलाकी जन-परम्परा रोती-गाती आयी है।

'राकेश'जीकी प्रथम प्रकाशित रचना 'स्तालिन' है, जो ग्रन्थमाला कार्यालय, बॉकीपुरसे सन् १९३८ ई०में

प्रकाशमें आयी। सन् १९४२ ई० में हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयागके प्रकाशकत्वमें उनका मैथिल-गीतोंका सुप्रसिद्ध एवं सामान्य-संग्रह 'मैथिली लोक- गीत' नामसे अमरनाथ झाकी गम्भीर भूमिकाके साथ प्रकाशित हुआ। मैथिली लोकगीतोंके संग्रह-विवेचनकी दिशामें कदाचित् यह सर्वप्रथम सुव्यवस्थित एवं वैज्ञानिक प्रयास है। लोक-साहित्यमें इसे यथेष्ट सम्मान-समादर प्राप्त हुआ। पुस्तककी काया ४४२ पृष्ठोंमें विन्यस्त है। ८ वीं शताब्दीसे प्रवाहित मैथिल लोकगीतोंकी परम्परित-धारा 'नचारी', 'समदाउनि' 'सोहर', 'झूमर', 'सम्मारि', 'लग्नगीत', 'फाग', 'चैतावर', 'मलार', 'जट-जटिन' एवं 'बारहमासा' आदि रूपोंमें आज भी मैथिल कण्ठोंमें मुखरित होती आ रही है। शिव भक्तिसम्बन्धी 'नचारी' गीत मिथिलाके विशेष लोकगीत है। 'समदाउनि' अत्यन्त करुण लोकगीत होता है। इन पक्तियोंकी करुण-विह्वलता उदाहरण-स्वरूप आस्वाद्य है—"आम मजरि महु तूअल। तै ओने पहुँ मोरा मूरल॥ दीप जरिय बाती जरल। तै ओने पहुँ मोरा ऑचल॥" इसमें सन्देह नहीं कि तिरहुतके जिस जीवनानुरागमें मस्त होकर कोकटीके वस्त्र और शाक-भोजनको भी विलास-जीवनपर वरीयता दी गयी है, 'राकेश'जी उसमें घुले-मिले और हंस-बस है। सन् १९४६ ई०में 'चट्टान', १९४९ ई०में 'गाण्डीव' एवं १९६० ई०में 'मेघ दुन्दुभि' नामक कविता-संग्रह प्रकाशमें आये।

'राकेश'जी साहित्यमें प्रगतिशील विचारोंके समर्थक हैं, किन्तु उन्होंने कलाके परिधानकी कभी उपेक्षा नहीं की। उनकी प्रगितिशील कविताओंके पीछे सास्कृतिक एव दार्शनिक अध्ययनकी एक पीठिका सदैव प्रतिष्ठित मिलेगी। जीवनको सँवारने-बनानेका एक उत्सर्गमय उत्साह एव द्रवित भाव-बोध उनमें सर्वत्र मिलेगा। इन्होंने वस्तु-सत्यके अकनको ही वास्तविक वाणी शृंगार माना है, तभी तो जीवनके पथरीलेपनपर हरियाली लहरानेके लिए कवियोंको जीवनकी हल्दीघाटीपर बुलाया है। 'राकेश'जीकी प्रगतिशीलता देशकी सास्कृतिक पृष्ठभूमिकी विद्रोहिणी नहीं, वह तो अगस्त्य, यम और नचिकेता आदिके औपनिषदिक एवं पौराणिक प्रसंगोंमें नवीन सन्दर्भ देकर उनमें वर्तमान-परक नूतन-प्रेरणा-स्रोत निकालती है। 'हिमालय अभियान' नामक रचनामें हिमालयका मानवीकरण बड़ा सजीव और ओजस्वी है। —श्री० सि० क्षे०

राम करुणाकर एवं हनुमान नाटक–निर्माणकाल १८४० ई०से पूर्व। ब्रजभाषा नाटककालमें जितने भी नाटक बने, वे बृहत् रूपक या अनेकांकी थे, कमसे कम चार अकवाले। किन्तु 'उदय' कविने दो लघुरूपक लिखे, जिनके नाम हैं—'राम करुणाकर' एवं 'हनुमान नाटक'। ये एक अकवाले लघुरूपक हैं। दोनों रामके जीवनसे सम्बन्धित हैं और 'रामचरितमानस'के आधारपर रचे गये हैं। उदय कविने इन लघुकाव्य नाटकोंका निर्माण करते समय कथा तो 'मानस' से ली है और शैली नन्ददासमें। प्रत्येक छन्दके अन्तमें एक टेक है। 'राम करुणाकर'की टेक है 'राम करुणा करें' और 'हनुमान नाटक'में टेक है 'रजाइस राम की'। 'राम करुणाकर' में ५७ छन्द हैं एवं 'हनुमान नाटक' में ७०। ये नाटक गानेके लिए बने थे। 'राम करुणाकर' के अन्तमें कवि कहता है—"जो याकु सीखै सुनै उदय होय उर ज्ञान, जाकी सदा सहाय कुँआय करै हनुमान—राम करुणा करें।" इसी प्रकार 'हनुमान नाटक' के अन्तमें कहा गया है—"यह नाटक हनुमान कहै सुनै नर कोइ, ज्ञान ध्यान बलवान बुधि भकति उदै उर होइ रजाइस राम की"। शैलीको देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि एक या कई मनुष्य इसे गाते थे और टेकको कई कण्ठ समवेत स्वरमें पढ़ते थे।

इन दोनों नाटकोंमें कहीं भी निर्माणकाल नहीं मिलता है। इन नाटकोंके साथ उदयकृत दो लीलाएँ—'अहिरावन लीला'और'जोग लीला' भी मिली है(काशी नागरी प्रचारिणी सभा पुस्तकालय)। 'अहिरावन लीला' की अन्तिम पुष्पिका में संवत् १९१७ दिया हुआ है। यह प्रतिलिपिकाल या लेखन काल ज्ञात होता है। इससे इतना तो स्पष्ट ही है कि उदय कविने इन चारोंका निर्माण १८४० ई० से पूर्व किया था।

एक प्रश्न स्वाभवतः उठता है—उदय कविने 'राम करुणाकर' एवं 'हनुमान नाटक' को नाटककी सज्ञा दी है, जब कि 'अहिरावन लीला' एवं 'जोग लीला' को लीला कहा है। शैलीकी दृष्टिसे चारोंमें कोई भेद नहीं है। भेद इतना ही प्रतीत होता है कि नाटकोंमें रसकी प्रधानता है, अतः वहाँ काव्य अधिक मुखर है, जब कि लीलाओंमें चमत्कारकी प्रधानता है। 'अहिरावन लीला' मे हनुमान् वेश बदलकर राम-लक्ष्मणका उद्धार करते हैं तो 'जोग लीला' में कृष्ण जोगीका वेश बनाकर राधासे मिलते हैं। इन चारोंमेंसे अंकोंमें कोई भी विभाजित नहीं है क्योंकि प्रत्येक लघुरूपक है।

'राम करुणाकर'मे लक्ष्मणके मूर्च्छित हो जानेपर रामका करुण-विलाप है। काव्य-नाटकमें करुण रसका सुन्दर प्रवाह है एव रामकी उक्तियाँ अत्यन्त हृदय-द्रावक हैं। राम कहते है—"उठि अब पीवहु दूध माता टेरत तोहिं भाई। चलि करि वाग-विहार वीर सरजूमे न्हाई। भरत वीर बोलत तुमैं रिपुसूदन सग लाई। टेरत हैं तुमको चलौ पेलत बनमे आई—राम करुणा करें।" सभी छन्द इसी सरल और गेय शैलीके हैं। 'हनुमान नाटक' में सीताकी खोज होती हैं और हनुमान्‌जी लका दहन करते है। दोनों काव्य-नाटकोंपर तुलसीका बड़ा प्रभाव मिलता है और अनेक उक्तियाँ तुलसीकी प्राप्त होती हैं। —गो० ना० ति०

रामकुमार वर्मा–जन्म मध्यप्रदेशके सागर जिलेमे १५ नवम्बर, सन् १९०५ ई० मे हुआ। इनके पिता लक्ष्मी प्रसाद वर्मा डिप्टी कलक्टर थे। वर्माजीकी प्रारम्भिक शिक्षा इनकी माता श्रीमती राजरानी देवीने अपने घर पर ही दी, जो उस समयकी हिन्दी कवयित्रियोंमे विशेष स्थान रखती थीं। बचपनमे इन्हे 'कुमार'के नामसे पुकारा जाता था। कुमारमें प्रारम्भसे ही प्रतिभाके स्पष्ट चिह्न दिखाई देते थे। ये सदैव अपनी कक्षामें प्रथम आया करते थे। पठन-पाठनकी प्रतिभाके साथ ही साथ आप शालाके अन्य कार्योंमें भी काफी सहयोग देते थे। अभिनेता बननेकी आपकी बड़ी प्रबल इच्छा थी। अतएव आपने अपने विद्यार्थी

जीवनमें कई नाटकोंमें एक सफल अभिनेताका कार्य किया है। आप सन् १९२२ ई० में दसवीं कक्षामें पहुँचे। इसी समय प्रबल वेगसे असहयोगकी आँधी उठी और आप राष्ट्र सेवामें हाथ बँटाने लगे तथा एक राष्ट्रीय कार्यकर्ताके रूपमें जनताके सम्मुख आये। इसके बाद वर्माजीने पुनः अध्ययन प्रारम्भ किया और सब परीक्षाओंमें सफलता प्राप्त करते हुए प्रयाग विश्वविद्यालयसे हिन्दी विषयमें एम० ए० में सार्वप्रथम आये। आपको नागपुर विश्वविद्यालयकी ओरसे 'हिन्दी साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास' पर डाक्टरेट दी गयी। सम्प्रति आप प्रयाग विश्वविद्यालयके हिन्दी विभागके अध्यक्ष हैं।

आप आधुनिक हिन्दी साहित्यके सुप्रसिद्ध कवि, एकांकी नाटक-लेखक और आलोचक हैं। 'चित्ररेखा' काव्य-संग्रह पर आपको हिन्दीका सर्वश्रेष्ठ 'देव पुरस्कार' मिला है। साथ ही 'सप्त किरण' एकांकी संग्रहपर 'अखिल भारतीय साहित्य सम्मेलन पुरस्कार' और मध्यप्रदेश शासन परिषद्से 'विजयपर्व' नाटक पर प्रथम पुरस्कार मिला है।

आप रूसी सरकारके विशेष आमन्त्रण पर मास्को विश्वविद्यालयके अन्तर्गत प्रायः एक वर्ष तक शिक्षा कार्य कर चुके है।

पुस्तक रूपमे आपकी रचनाएँ सन् १९२२ ई०से प्रारम्भ हुई। आपकी कृतियाँ इस प्रकार हैं: 'वीर हमीर' (काव्य—सन् १९२२ ई०), 'चित्तौड़की चिता' (काव्य—सन् १९२९ ई०), 'साहित्य समालोचना' (सन् १९२९ ई०), 'अजलि' (काव्य—सन् १९३० ई०), 'कबीरका रहस्यवाद' (आलोचना—सन् १९३० ई०), 'अभिशाप' (कविता—सन् (१९३१ ई०), 'हिन्दी गीतिकाव्य' (सग्रह—सन् १९३१ ई०), 'निशीथ' (कविता—सन् १९३५ ई०), 'हिमहास' (गद्यगीत—सन् १९३५ ई०), 'चित्ररेखा' (कविता—सन् १९३६ ई०), 'पृथ्वीराजकी आँखे' (एकांकी सग्रह—सन् १९३८ ई०), 'कबीर पदावली' (सग्रह सम्पादन—सन् १९३८ ई०), 'हिन्दी साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास' (सन् १९३९ ई०), 'आधुनिक हिन्दी काव्य' (संग्रह सम्पादन—सन् १९३९ ई०), 'जौहर' (कविता संग्रह—१९४१ ई०), 'रेशमी टाई' (एकाकी संग्रह—सन् १९४१ ई०), 'शिवाजी' (सन् १९४३ ई०), 'चार ऐतिहासिक एकांकी' (संग्रह—सन् १९५० ई०), 'रूपरंग' (एकांकी संग्रह—सन् १९५१ ई०), 'कौमुदी महोत्सव' आदि।

डॉ० वर्माका कवि-व्यक्तित्व द्विवेदीयुगीन प्रवृत्तियोंसे उदित होकर छायावाद क्षेत्रमें मूल्यवान् उपलब्धि सिद्ध हुआ। इनकी काव्यगत विशेषताओंमे कल्पनावृत्ति, संगीतात्मकता, रहस्यमय सौन्दर्य-दृष्टि (रहस्यवाद)का स्थान अनन्य है। छायावादकालकी कविताएँ इनकी कवि प्रतिभाका सुन्दर प्रतिनिधित्व करती हैं।

हिन्दी रहस्यवाद क्षेत्रमे इनकी अपनी विशेष देन है। अपनी रहस्यवादी कृतियोंमें इन्होंने प्रकृति और मानवीय हृदयके सूक्ष्म तत्त्वो, जिनमे अलौकिक सत्ताका अबाध प्रकाश है, बहुत बड़ा सहारा लिया है। इन्होने प्रकृतिकी विराट् सत्तामे सर्वत्र ईश्वरीय संकेतकी अनुभूति की है। इस प्रकार जहाँ इन्होंने अपने इस धरातलके काव्य-जगत्मे एक ओर मानव आत्माकी सफल प्रेममय प्रवृत्तियोंकी थाह ली है, वहाँ उन्होंने प्रकृतिके रहस्योंका भी सफल अन्वेषण किया है। सर्वत्र भावना क्षेत्रमें तद्विषयक अभिव्यक्तिके लिए प्रायः रूपकोंका सहारा लिया है, जिनमें एक ओर आध्यात्मिक संकेत हैं और दूसरी ओर एक अलौकिक व्यंजना।

नाटककार रामकुमार वर्माका व्यक्तित्व कवि-व्यक्तित्वसे अधिक शक्तिशाली और लोकप्रिय सिद्ध हुआ है। नाटककार धरातलसे उनका 'एकांकीकार' स्वरूप ही उनकी विशेष महत्ता है और इस दिशामें वे आधुनिक हिन्दी एकांकीके 'जनक' कहे जाते है, जो निर्विवाद सत्य है। प्रारम्भिक प्रभावकी दृष्टिसे इन पर शा, इब्सन, मैटरलिंक, चेखब आदिका विशेष प्रभाव पड़ा है किन्तु यह सत्य है कि डा० वर्मा इस क्षेत्रमें, विशेषकर मनोवेगोंकी अभिव्यक्ति और अपने दृष्टिकोणमे सदा मौलिक और भारतीय रहे हैं। 'बादलकी मृत्यु' इनका सर्वप्रथम एकांकी नाटक था, जो १९३० ई० में 'विश्वमित्र'में प्रकाशित हुआ था। इसके बाद डॉ० वर्माने क्रमशः 'दस मिनट', 'नहीं का रहस्य' 'पृथ्वीराजकी आँखें', 'चम्पक' और 'एक्ट्रेस' आदि नाटकों (एकांकी)की रचना की तथा इस उदयके बाद इनका एकांकीकार-व्यक्तित्व आधुनिक हिन्दी नाट्यसाहित्यका प्रकाश-स्तम्भ हो गया।

'रेशमीटाई'के उपरान्त डॉ० वर्माके कृतित्वमें एक विशेष धारा ऐतिहासिक एकाकियोंकी विकसित हुई, जिसमे डा० रामकुमार एक ऐसे आदर्शवादी कलाकारके रूपमे हिन्दी नाट्य जगत्के सामने आये, जिनमे उनके सांस्कृतिक और साहित्यिक मान्यताओंका सुन्दरतम समन्वय स्थापित हुआ है। "वे कलुषके भीतरसे पवित्रता, दैन्यके भीतरसे शालीनता, वासनाके भीतरसे आत्मसंयम एवं क्षुद्रतासे महानताका अन्वेषण करनेमे समर्थ हुए हैं—और यह सब उन्होंने पात्रो और परिस्थितियोंके संघर्षसे स्वाभाविक रूपमे प्रस्तुत किया है।"

आलोचनाके क्षेत्रमे रामकुमार वर्माकी कबीरविषयक खोज और उनके पदोका प्रथम शुद्ध पाठ तथा कबीरके रहस्यवाद और योगसाधनाकी पद्धतिकी समालोचना विशेष उपलब्धि है। हिन्दी साहित्यके इतिहास लेखन क्षेत्रमे उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ 'हिन्दी साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास' (१९३८ ई०)का विशेष महत्त्व है। सामाजिक तथा धार्मिक शक्तियोके अध्ययनके परिप्रेक्ष्यमें हिन्दी साहित्यके आदि युग और मध्य युगको समग्र रूपमें देखनेका यह पहला सफल प्रयास है। इसके अतिरिक्त काव्य, कला और साहित्यके विभिन्न अंगों तथा माध्यमों-पर ललित लेख डॉ० वर्माके निबन्धकार व्यक्तित्वके सुन्दरतम उदाहरण हैं। —ल० ना० ला०

रामकृष्ण रघुनाथ खाडिलकर—जन्म सन् १९१४ ई० काशीमें। मृत्यु १९६०ई० लखनऊमें। बी-एस० सी० पास करनेके बाद आप दैनिक 'आज'के सम्पादकीय विभागमें काम करने लगे। बीचमे कुछ दिनोंतक आप दैनिक 'संसार' के सहकारी सम्पादक रहे, उसके बाद आप फिर 'आज'के सहकारी सम्पादक हो गये। सन् १९५६ ई०से जून १९५९

ई०तक 'आज'के प्रधान सम्पादक रहे। ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसीके बोर्ड ऑव डाइरेक्टर्सके चेयरमैन भी आप थे। आपने एक बार इंग्लैण्ड और दूसरी बार रूसकी विदेश-यात्रा की थी। आपकी रचनाएँ ये हैं—'परमाणुबम', 'हाइड्रोजन बम', 'आधुनिक पत्रकार कला', 'इंग्लैण्डमें पचीस दिन', 'कलकी दुनिया', 'दो सिपाही','गान्धी हत्याकाण्ड', 'रेडियो', 'बदलते रूसमें' तथा 'गणित चमत्कार'। इनमें 'आधुनिक पत्रकार कला'पर आपको बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्से एक हजार रुपयेका पुरस्कार मिला था। खाडिलकरजी बड़े ही सरल स्वभावके थे। आपमें अपने विचारोंकी पूर्ण दृढ़ता थी। उत्तर प्रदेशकी सरकारने आपको विज्ञान-सम्बन्धी पुस्तकोंके सम्पादनका भार सौंपा था। —स०

रामकृष्ण वर्मा—उन्नीसवीं शताब्दीके उत्तरार्धके हिन्दी-सेवियोंमें रामकृष्ण वर्माका नाम आदरपूर्वक लिया जाना चाहिये। ये भारतेन्दु-मण्डलके प्रमुख सदस्य रहे हैं और कवि, लेखक तथा पत्रकारके रूपमें प्रसिद्ध हैं। इनका जन्म सन् १८५९ ई० में हुआ था। काशी इनकी साधना-भूमि थी। १९०६ ई० में सैंतालीस वर्षकी अल्पायुमें ही इनकी मृत्यु हो गयी, फिर भी इनकी साहित्य सेवाएँ स्मरणीय हैं।

रामकृष्ण वर्मा सुकवि थे। 'बलवीर' अथवा 'बीर कवि' के उपनामसे ब्रजभाषामें बड़ी सरस काव्य-रचना करते थे। काशीका तत्कालीन 'कवि समाज' इनसे गौरवान्वित था। ये उसके 'सेक्रेटरी' भी थे। उक्त 'समाज' की ओरसे प्रकाशित 'समस्यापूर्ति प्रकाश' की विभिन्न जिल्दोंमें इनकी बहुत-सी फुटकर रचनाएँ सुरक्षित हैं। श्यामसुन्दर-दासने इनकी 'बलबीर-पचासा' नामक एक काव्य-पुस्तकका भी उल्लेख किया है ('हिन्दीके निर्माता', भाग १, पृ० ७७)। रामचन्द्र शुक्लने इनकी गणना उस कोटिके साहित्य-सेवियोंमें की है, "जिन्होंने एक ओर तो हिन्दी-साहित्यकी नवीन गतिके प्रवर्त्तनमें योग दिया, दूसरी ओर पुरानी परिपाटीकी कविताके साथ भी अपना पूरा सम्बन्ध बनाये रखा" (हिन्दी-साहित्यका इतिहास, पृ० ५८०)। इनके द्वारा की गयी 'अरुन उदैकी कजकली-सी लसति है' विषयक समस्याकी एक पूर्ति निम्नांकित है—

"राधिका नवेली वृषभानकी किशोरी गोरी अंग-अंग जाकी आभा कुन्द-सी दिपति है। थोरी बैसवारी जरतारी कोरदार श्याम सारी मध्य जाकी प्रभा फूटि बिकसति है॥ अंगकी निकाई बिधनाने यों बनाई जाकी शुभ्र स्वच्छताई मनभाई सरसति है। देखिये बिहारी चलि रसिक रसीले लाल अरुण उदैकी कज कली-सी लसति है॥" ('समस्यापूर्ति प्रकाश', प्रथम भाग, काशी १८९४ ई०, पृ० २४)।

रामकृष्ण वर्मा हिन्दीके अतिरिक्त उर्दू और बंगला भाषाओंके भी बहुत अच्छे जानकार थे। इन्होंने इन दोनों ही भाषाओंके कतिपय लोकप्रिय उपन्यासों एवं श्रेष्ठ नाटकोंके अनुवाद सहज भाषा एवं रोचक शैलीमें किये हैं। इनके द्वारा उर्दूसे हिन्दीमें अनूदित उपन्यास निम्नलिखित हैं—

(१) 'ठग वृत्तान्त माला' (१८८९ ई०), (२) 'पुलिस वृत्तान्त माला' (१८९० ई०), (३) 'अमला वृत्तान्त माला' (१८८४ ई०), (४) 'संसार दर्पण' (१८८५ ई०)। बंगलासे इन्होंने द्वारकानाथ गांगुलीकृत 'वीरनारी', माइकेल मधुसूदनकृत 'कृष्णाकुमारी' और राजकिशोरदेकृत 'पद्मावती' नामक नाट्य-कृतियोंके अनुवाद किये थे। इन्होंने बँगलासे 'चित्तौर चातकी' नामक एक उपन्यासका भी अनुवाद किया था। इनके अनुवादकार्योंमें सर्वाधिक महत्त्व 'कथासरित्सागर' के भाषानुवादको दिया जाता है। इसे इन्होंने केवल दस भागोंतक ही किया है।

रामकृष्ण वर्मा काशीकी नागरी प्रचारिणी सभाके संस्थापकोंमें गिने जाते हैं। ये आजीवन उक्त सभाके सक्रिय सहायक और उन्नायक रहे। हिन्दी पत्रकारिताके इतिहासमें भी इनकी सेवाएँ अमूल्य मानी जाती हैं। सन् १८८४ ई० में इन्होंने काशीमें भारतजीवन प्रेसकी स्थापना की थी और 'भारत जीवन' नामसे सुप्रसिद्ध हिन्दी पत्र निकाला था। ये स्वयं ही उक्त प्रेसके अध्यक्ष और इस पत्रके सम्पादक थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने इसका नामकरण किया था। —र० अ०

रामकृष्ण 'शिलीमुख'—हिन्दी आलोचनाके विकास-कालके लेखकोंमें रामकृष्ण 'शिलीमुख'का नाम उल्लेखनीय है। आप अनेक वर्षों तक महाराजा कॉलेज, जयपुरमें हिन्दीके प्राध्यापक रहे। आपकी समीक्षा-शैली रामचन्द्र शुक्लके प्रभाव-क्षेत्रमें विकसित हुई जान पड़ती है। 'सुकवि समीक्षा' आपके आलोचनात्मक अध्ययनोंका संकलन है। —सं०

रामखेलावन पांडे—जन्म १९१३ ई०, शाहाबादमें। शिक्षा एम०ए०; डी० लिट्०। पहले पटना विश्वविद्यालयके हिन्दी विभागमें प्राध्यापक थे। आजकल आप राँची विश्वविद्यालयमें हिन्दी विभागाध्यक्ष हैं। सैद्धांतिक समीक्षाके क्षेत्रमें आपका कार्य उल्लेखनीय है। यों, सन्त-साहित्य पर विशेष अध्ययन किया है। कृतियाँ—'गीति काव्य' (१९४७ ई०), 'हमारी सांस्कृतिक चेतना' (१९५२ ई०), 'काव्य और कल्पना' (१९५२ ई०), 'कविता काननमें' (१९५३ ई०), 'मध्यकालीन सन्त साहित्य'। —सं०

रामगुप्त—समुद्रगुप्तका पुत्र रामगुप्त (मृत्यु ३७५ ई०) प्रसादकृत 'ध्रुवस्वामिनी' नाटकका खल-पात्र है। वह निर्वीर्य, क्लीव, शंकालु, कपटाचारी एवं प्रवंचक है। इसी छल-प्रवचनाके बलपर वह गुप्तकुलके राजसिंहासनपर आसीन हो जाता है और चन्द्रगुप्तकी वाग्दत्ता पत्नी एवं श्रेष्ठ सुन्दरी ध्रुवस्वामिनीपर भी अधिकार पा जाता है। यद्यपि ध्रुवस्वामिनीकी दृष्टिमें वह अनार्य, निर्लज्ज, मद्यप, क्लीवसे अधिक नहीं है। उसमें न तो सम्राट्का कोई आदर्श है और न क्षत्रियोचित गरिमा। वह अपने चारों ओर कुबड़े, बौने, हिजड़े और गूँगे जैसे विकलांग पुरुषोंको रखता है और शिखर स्वामी जैसे चाटुकारोंसे घिरा हुआ राजकुलकी परम्परागत मर्यादाको कलंकित करता है। उसका समस्त कार्यव्यापार विलासिता, छल-छद्म, कायरता एवं क्रूरताकी कलंकित पृष्ठभूमि है। शासनसम्बन्धी गम्भीरसे गम्भीर बातोंको भी वह अपनी विलासजनित दुर्बुद्धिके कारण हँसीके रूपमें ग्रहण करता है, यहाँतक कि उसके खोखले व्यक्तित्वपर हँसी आये बिना नहीं रहती। प्रतिहारी द्वारा यह कहनेपर कि शकोंने हमें दोनों ओरसे घेर लिया है—उसका यह कहना कितना हास्यास्पद है: "दोनों ओरसे

घिरा रहनेमें शिविर और भी सुरक्षित है।" वह शत्रुके निन्द्य प्रस्ताव—ध्रुवस्वामिनीके समर्पणको भी—अपनी प्राणरक्षाके लिए स्वीकार कर लेता है और शत्रुके शिविरमें चन्द्रगुप्त तथा ध्रुवस्वामिनीको भेजकर अपने राजनीतिक चातुर्यपर प्रसन्न है। मन्दाकिनी उसके पौरुषके सामने प्रश्न चिह्न लगाते हुए ठीक ही कहती है: "वीरता जब भागती है, तब उसके पैरोंसे राजनीतिक छल-छद्मकी धूलि उड़ती है।" चन्द्रगुप्त जैसे साधुचरित भाईके प्रति रामगुप्तका व्यवहार बड़ा कृतघ्नतापूर्ण है। जिस भाईने पिता द्वारा प्रदत्त साम्राज्यको प्रसन्नताके साथ उसे सौंप दिया, उसीके प्रति उसका इस प्रकारका षड्यन्त्र सर्वथा अक्षम्य है। शकराजके शिविरमें ध्रुवस्वामिनीके साथ जानेकी आज्ञा देता हुआ रामगुप्त कहता है: "सामन्त कुमारोंके साथ जानेको प्रस्तुत हो जाओ।" वह अपने कलुषित स्वभावके कारण चन्द्रगुप्तको सदैव शंकाकी दृष्टिसे देखता है और ध्रुवस्वामिनीके हृदयमें स्थित चन्द्रगुप्तकी स्मृतिजन्य प्रीतिको नष्ट कर देना चाहता है। रामगुप्तकी क्रूरताकी चरम परिणति निरीह मिहिरदेव और कोमा जैसी भोली बालिकाकी निर्मम हत्या करनेपर होती है। उसके इन दुराचारोंके कारण राज्यके विश्वासी अनुचर सामन्त कुमार भी उससे विद्रोह कर बैठते हैं। पुरोहित उसके पुंस्त्वहीन दुराचारोंकी कथा सुनकर उसे "गौरवसे नष्ट, आचरणसे पतित और कर्मोंसे राजकिल्विषी क्लीव" घोषित करते हैं। उसके कुकृत्योंका सम्यक् निरीक्षण कर परिषद्को यह निर्णय देना पड़ता है—"अनार्य, पतित और क्लीव रामगुप्त गुप्त-साम्राज्यके पवित्र राज-सिंहासनपर बैठनेका अधिकारी नहीं।"

अन्तमें सभी ओरसे अपराधी और निंदनीय घोषित किये जानेपर भी कृतघ्नी रामगुप्तकी प्रतिशोध-भावना चन्द्रगुप्तकी हत्या करनेको उत्तेजित करती है तथा अपराध और लांछनाकी भावनासे भरकर वह कायरकी भाँति असतर्क चन्द्रगुप्तपर पीछेसे प्रहार करनेकी चेष्टा करता है एवं अपनी इस दुश्चेष्टाके परिणामस्वरूप एक सामन्त-कुमार द्वारा मार डाला जाता है। उसका जीवन आदिसे अन्ततक कायरता, कृतघ्नता एवं प्रवचनासे परिपूर्ण है। अपने दुर्गुणोंके चरम उत्कर्षपर पहुँचकर नाटकीयताके साथ उसका अन्त आदर्शके पूर्ण अनुकूल है। एक खल पात्रके रूपमें उसके चरित्रमें समस्त दुर्गुणोंका चरम उत्कर्ष निहित है। प्रसादने रामगुप्तके प्रति ध्रुवस्वामिनी एवं सामन्तोंका विरोध चित्रित किया है। परिषद् धर्मानुसार ध्रुवस्वामिनीको रामगुप्तसे मोक्षका अधिकार दे देती है और उसे राजकिल्विषके कारण सिंहासनसे च्युत कर दिया जाता है और अन्तमें एक सामन्त पुत्र द्वारा उसका वध कर दिया जाता है। यह सम्पूर्ण घटना काल्पनिक है और ज्ञात इतिहासके निष्कर्षोंसे इसका कोई सम्बन्ध नहीं। कथाके इस काल्पनिक मोड़का कारण यह है कि प्रसाद अपने नाटकको एक समस्यामूलक नाटक बनाना चाहते थे। हाँ, रामगुप्तका वध ऐतिहासिक घटनासे समन्वित है क्योंकि महाराजा चन्द्रगुप्त और महादेवी ध्रुवस्वामिनीकी जयसे नाटक समाप्त होता है (दे० 'प्रसादके ऐतिहासिक नाटक': जगदीशचन्द्र जोशी, पृ० १३८)। —के० प्र० चौ०

रामगुलाम द्विवेदी—रामगुलाम द्विवेदीका जन्म मीरजापुरके असनी ग्राममें हुआ था। कहा जाता है कि बाल्यावस्थामें ही ये पितृविहीन हो गये थे और गृहस्थीका सारा भार इन्हीं पर आ पड़ा था। मीरजापुरमें पल्लेदारीका काम करके ये जीविकोपार्जन करने लगे। किसी समय इन्होंने बरसाती नदीको पार करके हनुमान्‌जीका दर्शन किया था और कहा जाता है कि हनुमान्‌जीने इन्हें मानसका अन्तर्दर्शन कराया था। आगे चलकर रामगुलामजीने पल्लेदारी छोड़ दी और मानसकी कथा द्वारा वे जीविकोपार्जन करने लगे। रामगुलामजी अयोध्या (जानकीघाट)के प्रसिद्ध महात्मा रामप्रसादके (ये पहले जफराबादमें रहते थे, बादको जानकी घाट आ गये) शिष्य थे। 'रसिक प्रकाश भक्तमाल' में इन्हे एक प्रसिद्ध रामायणी कहा गया है। एक किंवदन्तीके अनुसार ये जानकी घाटके महंत रामचरणदासके भी निकट सम्पर्कमें आये थे और उनके साथ ही साकेतयात्राका भी व्रत ले लिया था। मृत्युके तीन दिन पूर्व इन्होंने रामचरणदासको साकेत-यात्राका स्मरण दिलाया था, फलतः रामचरणदासने माघ शुक्ल ९, सं० १८८८ (सन् १८३१ ई०) को शरीरत्याग किया। अतः इस जनश्रुतिके अनुसार रामगुलाम द्विवेदीकी भी यही मृत्यु तिथि हुई।

इनकी रचनाओंके नाम ये है: 'कवित्त प्रबन्ध', 'रामगीतावली', 'ललित नामावली', 'विनय नवपंचक', 'दोहावली रामायण', 'हनुमानाष्टक', 'रामकृष्ण सप्तक', 'श्रीकृष्ण पंचरत्न पंचक', 'श्रीरामाष्टक', 'रामविनय', 'रामस्तव राज', 'बरखा',।

इनमेंसे कुछ रचनाएँ हस्तलिखित रूपमें काशीके पं० सीताराम चतुर्वेदीके यहाँ सुरक्षित हैं। विषय इनके नामोंसे ही स्पष्ट है। रामगुलामजीका विशेष महत्त्व उनके एक प्रमुख मनास-व्याख्याकार होनेके नाते है। —ब०ना०श्री०

रामचंद्रचंद्रिका (रामचंद्रिका)—यह केशवदासकी प्रसिद्ध कृति है, जो सामान्यतः 'रामचन्द्रिका' कहलाती है। इसका रचनाकाल सन् १६०१ ई० है। इसका मूल लीथोमें कन्हैयालाल राधेलाल, लखनऊके द्वारा तथा इसकी जानकी प्रसादकृत टीका वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बईसे सन् १९०७ ई० मे और नवलकिशोर प्रेस, लखनऊसे सन् १९१५ ई०में प्रकाशित हुई। लाला भगवानदीनकी टीकाका पूर्वार्द्ध साहित्य सेवासदन, बनारससे तथा उत्तरार्द्ध साहित्य भूषण कार्यालय, बनारससे १९२३ ई०में निकला। लालाजीकी टीकाकी पुनरावृत्तियाँ सन् १९२९ ई०से रामनारायण लाल बुकसेलर, प्रयाग द्वारा प्रकाशित हो रही हैं।

यह ग्रन्थ ३९ प्रकाशोंमें कथासूची सहित १७१७ छन्दोंमें पूरा हुआ है। यद्यपि इसमें सुप्रसिद्ध रामकथा वर्णित है तथापि यह काव्यका ग्रन्थ है, भक्तिका नहीं। केशव निम्बार्क सम्प्रदायमें दीक्षित होनेके नाते राधाकृष्णके उपासक थे, रामके नहीं। 'रसिकप्रिया' और 'कविप्रिया'में शृंगार रसका आलम्बन राधाकृष्णको मानकर रचनाएँ की हैं। 'रामचन्द्रचन्द्रिका'में केशव शृंगार-रससे वीर-रसकी ओर मुड़े हैं। इसमें आये वाल्मीकिके दर्शन-प्रसंगसे इतना तो

स्पष्ट है कि इसका निर्माण आदिकवि वाल्मीकिके 'रामायण' के आधारपर हुआ है, जो काव्यका ग्रन्थ है। यह और बात है कि उन्होंने रामको 'औतारी, औतारमनि' माना है और भगवत्तामे उनका किसी प्रकार विच्छेद नहीं होने दिया है। भक्तिपक्षपर भी चले आनेका परिणाम यह हुआ है कि उन्होंने स्थान-स्थानपर रामचन्द्र द्वारा उपदेश दिलाये हैं। अतः 'रामचरितमानस'की भाँति 'रामचन्द्र चन्द्रिका'में उपदेशात्मक अंश अधिक हो गया है, जिससे काव्यत्वको क्षति पहुँचती है। अधिकाधिक वर्णनोंके नियोजन एवं उपदेशात्मक प्रवचन और नीतिकथनमे केशव इतने उलझ गये है कि कथाकी अपेक्षित बद्धता नहीं रह गयी है। 'रामचन्द्रचन्द्रिका'को क्षति पहुँचानेवाले और भी कई तत्त्व हैं। छन्दोंकी झटितिपरिवृत्ति भी एक हेतु है और भाषा तथा वर्णिक छन्दोंका अधिक व्यवहार भी क्षतिकारक है। अतः प्रवन्धकाव्यकी दृष्टिसे 'रामचन्द्रचन्द्रिका' समर्थ रचना नहीं दिखाई देती। वह मुक्तक उक्तियोंका संग्रह ग्रन्थ जान पड़ती है।

'रामचन्द्रचन्द्रिका'के प्रणयनमे तुलसीदासकी भाँति केशवदासका भी लक्ष्य श्रव्य-दृश्य, दोनों रूपोंमे उसका उपयोग जान पडता है। इन्होने उन्हीकी भाँति बहुतसे रामाख्यानक संस्कृत नाटकोंसे सहायता ली है। इसमे संस्कृतके 'प्रसन्नराघव', 'हनुमन्नाटक', 'कादम्बरी' आदि कई ग्रन्थोंकी विभिन्न स्थानोंपर छाया है। कई अंशोंका तो अनुवाद ही रख दिया है। नाटकोका आधार लेनेसे और कथा भाग छोड़ देनेसे सवादके वक्ताओके नाम इन्हे पद्यसे पृथक् रखने पड़े हैं। संवाद-योजना नाटकीय ढगसे की गयी है, इसलिए दृश्य-काव्यके रूपमे इसका उपयोग विशेष सरलतासे हो सकता है। सम्प्रति जहाँ कहीं रामलीला होती है, इसके संवादोका प्रायः उपयोग होता है। 'रामचरितमानस'की रामलीला इतनी व्यापक हो गयी कि 'रामचन्द्रचन्द्रिका'की रामलीलाकी स्वतन्त्रता न रह सकी। यह सहायक रूपमे ही रह गयी। बहुतसे स्थानोंपर 'मानस'की रामलीलामे जैसे सुलोचना सतीका क्षेपक दिखाया जाता है, वैसे ही 'रामचन्द्रचन्द्रिका'का रामाश्वमेध भी। सवादोका उपयुक्त विधान इसका बहुत बड़ा गुण है। राजनीतिक प्रसगके संवाद तो विशेष उल्लेखनीय है। इसमे केशवने कुछ पात्रोंका चरित्र भी विशेष रूपसे लक्षित कराया है। लवकुशकी कथामे केशवने अपनी विज्ञताका पूर्ण परिचय दिया है। इसके युद्ध-वर्णन 'मानस'मे अधिक प्रभावपूर्ण है।

शैलीकी दृष्टिसे देखते है तो इसमे विविध प्रकारके छन्दोंके उदाहरण प्रस्तुत करनेकी ही प्रवृत्ति है। जान पडता है कि ये किसीको पिंगलकी पद्धति सिखा रहे हैं। एक वर्ण के छन्दसे क्रमशः कई वर्णोंके छन्दों तक वर्णन चला चलता है। आगे चलकर भी वर्णवृत्तोका कम विस्तार नहीं है। केशवने इतने अधिक और ऐसे वर्णवृत्तोका प्रयोग किया है, जो पिंगल-प्रस्तारसे ही जाने जा सकते हैं।

'रामचन्द्रचन्द्रिका'की भाषा संस्कृतरंजित ब्रजी है। इसकी भाषामे संस्कृतकी अधिक लपेट होनेका कारण है संस्कृत वर्णवृत्तोका ग्रहण। संस्कृत शब्दोंके अत्यधिक प्रयोग तथा अलंकारके चमत्कारके चक्करमें पड़ जानेसे रचना बोझिल और क्लिष्ट हो गयी है। उत्प्रेक्षा, श्लेष, विरोधाभास, परिसंख्या आदि अलंकारोंकी वैसी ही भरमार इसमें है, जैसी इसके आधार ग्रन्थ 'कादम्बरी'मे। अन्तर केवल इतना ही है कि बाणने वर्ण्य-विषयोंके साथ तादात्म्य की प्रतीति खोई नहीं, पर केशव चमत्कारके फेरमें उनकी ओर अपेक्षित दृष्टि न रख सके। केशवकी पाण्डित्य-प्रदर्शन-की प्रवृत्ति तथा शास्त्र-सम्पादनकी इच्छा 'रामचन्द्रचन्द्रिका' मे स्थान-स्थान पर लक्षित होती है। निस्सन्देह यह केशवके महान् पाण्डित्य एवं आचार्यत्वको पूर्ण-रूपसे अभिव्यक्त करती है। प्राचीन हिन्दी साहित्यका मर्मज्ञ होनेके लिए 'रामचन्द्रचन्द्रिका'का अध्ययन निर्विवाद रूपसे अनिवार्य है। हिन्दी-साहित्यमे इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसके कटु आलोचक भी इसके पठन-पाठन पर बल देते आये हैं।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० इ०; हि० का० शा० इ० (भा० ६); केशवकी काव्य कला : कृष्ण शंकर शुक्ल; केशवदास : चन्द्रबली पाण्डेय; आचार्य केशवदास : हीरालाल दीक्षित।] —वि० प्र० मि०

रामचंद्रिका—दे० 'रामचन्द्रचन्द्रिका'।

रामचंद्र भूषण—लछिराम द्वारा रचा हुआ अलंकार ग्रन्थ। इसका रचनाकाल सन् १८९० ई० है और इसका प्रकाशन भारत जीवन प्रेस, बनारससे सन् १८९० ई० मे हुआ। इस ग्रन्थकी रचना अलकारविषयको समझानेके लिए राम-भक्तिके उदाहरणो द्वारा की गयी है—"श्री सीतावट चरितमय, अलंकार शुभ रीति" (८)। इसमे लक्षण दोहों मे और उदाहरण छप्पय, कवित्त, सवैया, कुण्डलिया आदि छन्दोंमे है। कविने गुण-कीर्तनके लिए इस ग्रन्थकी रचना की है और उदाहरण जुटानेमे कविका मन विशेष रूपसे लगा है। प्रत्येक अलकारके एकसे अधिक उदाहरण भी है, काव्य-लिंगके अनन्तर नियमपूर्वक उदाहरणके रूप मे एक छप्पय और जोड़ा गया है।

इस ग्रन्थमे स्वय कविका लिखा हुआ सरल गद्यमें अलकारके अन्तग तिलक मिलता है। अनेक अलकारोंके बाद तिलक दिया गया है, जिसमे विवेचनकी विशेष प्रवृत्ति नहीं है पर लक्षण-उदाहरणकी संगतिपर विचार किया गया है। लछिराम इस ग्रन्थमे शब्द (पद) तथा अर्थ द्वारा काव्यकी शोभा बढानेवाला अलकारको मानते है और भूषणके समान इसे बाह्य स्वीकार करते है। इसमे एक शब्दालकार और ९८ अर्थालकारोंका विवेचन है। इसमे गुणोके आधारपर श्लेषके तीन भेद—माधुर्य-गुण-सक्रमित श्लेष, ओजगुण-सक्रमित श्लेष तथा प्रसाद-गुण-सक्रमित श्लेष माने गये है। यह सामान्य कोटिका ग्रन्थ है। आचार्यत्वके साथ कवित्व भी बहुत कम है। इसकी भाषा अवश्य सरल है और लक्षण समझना आसान हो गया है। तिलकमे इसकी स्पष्टता और बढ गयी है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० का० शा० इ०; हि० सा० इ०; मि० वि०।] —सं०

रामचंद्र वर्मा—जन्म ८ जनवरी, १८९० ई० काशीमें। सन् १९०५ ई० मे 'भारत जीवन' मे लिखने लगे। सन् १९०७ ई० से 'हिन्दी केसरी' के सम्पादक हुए। यह पत्र

नागपुरसे निकलता था। बादमें 'बिहार बन्धु', बाँकीपुर और 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' के भी सम्पादक रहे। सन् १९१० ई० में अपनी विद्वत्ताके कारण 'हिन्दी शब्द सागर' के सम्पादकीय विभागमें ले लिये गये और थोड़े ही दिनों बाद उसके सहायक सम्पादक हो गये। सहायक सम्पादकके रूपमें सन् १९२९ ई० तक इन्होंने कार्य किया, फिर 'संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर' का सम्पादन किया।

इनके द्वारा अनूदित निबन्ध एवं पुस्तकें अत्यन्त उपादेय सिद्ध हुई है। बंगला, मराठी, गुजराती, उर्दू तथा फारसी भाषाओंपर अच्छा अधिकार होनेके कारण आपके इन सभी भाषाओंके अनुवाद सराहनीय हैं। आपने 'हिन्दू पॉलिटी' नामक पुस्तकका हिन्दी अनुवाद 'हिन्दू राज्यतन्त्र' नामसे किया था, जिसे देखकर काशीप्रसाद जायसवाल जैसे उत्कट विद्वानने कहा था कि शायद इतना अच्छा अनुवाद मैं भी न कर पाता। अनुवादककी दृष्टिसे आपके कार्यका महत्त्व है। इनका किया हुआ 'ज्ञानेश्वरी' का अनुवाद श्रेष्ठ अनुवादोंमे परिगणित होनेके कारण भारत सरकार द्वारा पुरस्कृत हुआ था पर विशेष रूपसे आपका भाषा-सम्बन्धी कार्य महत्त्वपूर्ण है। भाषा-सम्बन्धी पुस्तकें हैं— 'शिक्षा और देशी भाषाएँ', 'उर्दू हिन्दी कोश' (१९३६), 'अच्छी हिन्दी', 'हिन्दी प्रयोग', 'प्रामाणिक हिन्दी कोश' (१९५०), 'हिन्दी कोश रचना' (१९५५)। कोश-कार्य एव हिन्दीके व्याकरणिक एवं शुद्ध रूपपर आपके विचार आधिकारिक रूपमे द्रष्टव्य है।

अनुवादों, संकलनों, जीवनियों, कोशों और स्वतन्त्र रचनाओंसे हिन्दीके भण्डारकी श्रीवृद्धि करनेमे वर्माजीका नाम अग्रगण्योंमे है। भाषाकी शुद्धता और सुन्दरतापर आपने सदैव ध्यान दिया है। आपकी हिन्दी सेवाओंको ध्यानमे रखकर भारत सरकारने आपको 'पद्म श्री' की उपाधिसे विभूषित किया है। इधर सात वर्षोंसे आप हिन्दीके लिए सर्वश्रेष्ठ कोश सम्पादित करनेके कार्यमे लगे थे, जो अब पूरा हो गया है। वह 'मानक हिन्दी कोश' के नामसे हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा प्रकाशित हो रहा है और अब आप उसके परिवर्तन, परिवर्धन, संशोधन आदिके कार्यमें लगे है। —ह० दे० बा०

रामचंद्र शुक्ल—जन्म बस्ती जिलेके अगोना नामक गाँवमे सन् १८८४ ई०में हुआ था। सन् १८८८ ई०मे वे अपने पिताके साथ राठ जिला हमीरपुर गये तथा वहीपर विद्याध्ययन प्रारम्भ किया। सन् १८९२ ई०मे उनके पिताकी नियुक्ति मीरजापुरमे सदर कानूनगोके रूपमे हो गयी और वे पिताके साथ मीरजापुर आ गये। अध्ययनके क्षेत्रमे पिताने इनपर उर्दू और अंग्रेजी पढनेके लिए जोर दिया तथा पिताकी आँख बचाकर वे हिन्दी भी पढते रहे। सन् १९०१ ई०में उन्होंने मिशन स्कूलसे स्कूल फाइनलकी परीक्षा उत्तीर्ण की तथा प्रयागके कायस्थ पाठशाला इण्टर कालेजमे एफ० ए० पढनेके लिए आये। गणितमें कमजोर होनेके कारण शीघ्र ही उसे छोड़ कर 'प्लीडरशिप'की परीक्षा पास करनी चाही, उसमे भी वे असफल रहे परन्तु इन परीक्षाओंकी सफलता या असफलतासे अलग वे बराबर साहित्य, मनोविज्ञान, इतिहास आदिके अध्ययनमें लगे रहे। मीरजापुरके पं० केदारनाथ पाठक, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'के सम्पर्कमें आकर उनके अध्ययन-अध्यवसायको और बल मिला। यहींपर उन्होंने हिन्दी, उर्दू, संस्कृत एवं अंग्रेजीके साहित्यका वह गहन अनुशीलन प्रारम्भ कर दिया था, जिसका उपयोग वे आगे चल कर अपने लेखनमें जमकर कर सके।

मीरजापुरके तत्कालीन कलक्टरने उन्हें एक कार्यालयमें नौकरी भी दी थी, पर हेड क्लर्कसे उनके स्वाभिमानी स्वभावकी पटी नहीं। उसे उन्होने छोड़ दिया। फिर कुछ दिनों मीरजापुरके मिशन स्कूलमें ड्राइंगके अध्यापक रहे। सन् १९०९-१० ई० के लगभग वे 'हिन्दी शब्द सागर'के सम्पादनमे वैतनिक सहायकके रूपमें काशी आ गये—यहीं पर काशी नागरी प्रचारिणी सभाके विभिन्न कार्योंको करते हुए उनकी प्रतिभा चमकी। 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका'का सम्पादन भी उन्होने कुछ दिन किया था। कोशका कार्य समाप्त हो जानेके बाद शुक्लजीकी नियुक्ति हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारसमे हिन्दीके अध्यापकके रूपमे हो गयी। वहाँसे एक महीनेके लिए वे अलवर राज्यमे भी नौकरीके लिए गये, पर रुचिका काम न होनेसे पुनः विश्वविद्यालय लौट आये। सन् १९३७ ई०मे वे बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभागाध्यक्ष नियुक्त हुए एवं इस पदपर रहते हुए ही सन् १९४० ई०में उनकी श्वासके दौरेमे हृदय गति बन्द हो जानेमे मृत्यु हो गयी।

शुक्लजीका साहित्यिक व्यक्तित्व विविध पक्षोंवाला है। उन्होने अपने साहित्यिक जीवनके प्रारम्भमें लेख लिखे हैं और फिर गम्भीर निबन्धोका प्रणयन किया है जो 'चिन्तामणि' (दो भाग)मे संकलित हैं। उन्होंने ब्रजभाषा और खडीबोलीमे फुटकर कविताएँ लिखीं तथा एडविन आर्नल्ड के 'लाइट आफ एशिया'का ब्रजभाषामे पद्यानुवाद किया, 'बुद्ध चरित'के नामसे। मनोविज्ञान, इतिहास, संस्कृति, शिक्षा एवं व्यवहारसम्बन्धी लेखो एवं पत्रिकाओंके भी अनुवाद किये है तथा जोसेफ एडिसनके 'प्लेजर्स ऑफ इमेजिनेशन'का 'कल्पनाका आनन्द' नामसे एवं राखाल दास वन्द्योपाध्यायके 'शशाक' उपन्यासका भी हिन्दीमें रोचक अनुवाद किया। उन्होंने सैद्धान्तिक समीक्षापर लिखा, जो उनकी मृत्युके पश्चात् संकलित होकर 'रस मीमासा' नामकी पुस्तकमे विद्यमान है तथा तुलसी, जायसीकी ग्रन्थावलियों एव 'भ्रमर गीतसार'की भूमिकामें लम्बी व्यावहारिक समीक्षाएँ लिखी, जिनमेसे दो 'गोस्वामी तुलसीदास' तथा 'महाकवि सूरदास' अलगसे पुस्तक रूपमें भी उपलब्ध है। शुक्लजीने 'हिन्दी-साहित्यका इतिहास' लिखा, जिसमे काव्य-प्रवृत्तियो एव कवियोंका परिचय भी है और उनकी समीक्षा भी। दर्शनके क्षेत्रमे भी उनकी 'विश्व प्रपंच' पुस्तक उपलब्ध है। पुस्तक यों तो 'रिडल ऑफ दि यूनीवर्स'का अनुवाद है पर उसकी लम्बी भूमिका शुक्लजी द्वारा किया गया मौलिक प्रयास है। इस प्रकार शुक्लजी ने साहित्य एवं विचारोके क्षेत्रमे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। इस सम्पूर्ण लेखनमे भी उनका सबसे महत्त्वपूर्ण एवं कालजयी रूप समीक्षक, निबन्ध-लेखक एवं साहित्यिक इतिहासकारके रूपमे प्रकट हुआ है।

नलिनविलोचन शर्माने अपनी पुस्तक 'साहित्यका इतिहास दर्शन'में कहा है कि शुक्लजीसे बड़ा समीक्षक सम्भवतः उस युगमें किसी भी भारतीय भाषामें नहीं था। यह बात विचार करनेपर सत्य प्रतीत होती है, बल्कि ऐसा लगता है कि समीक्षकके रूपमें शुक्लजी अब भी अपराजेय हैं। अपनी समस्त सीमाओंके बावजूद उनका पैनापन, उनकी गम्भीरता एवं उनके बहुतसे निष्कर्ष एवं स्थापनाएँ किसी भी भाषाके समीक्षा-साहित्यके लिए गर्वका विषय बन सकती हैं।

अपने 'हिन्दी साहित्यका इतिहास'मे स्वयं रामचन्द्र शुक्लने कहा है, "इस तृतीय उत्थान (सन् १९१८ ई० से) में समालोचनाका आदर्श भी बदला। गुण-दोषके कथनके आगे बढ़कर कवियोंकी विशेषताओं और उनकी अन्तःप्रवृत्तिकी छानबीनकी ओर भी ध्यान दिया गया" (पृ० ५१६, ग्यारहवाँ संस्करण)। कहना न होगा कि कवियोंकी विशेषताओं एव उनकी अन्तःप्रवृत्तिकी छानबीनकी ओर ध्यान, सबसे पहले शुक्ल जीने ही दिया है। इस प्रकार हिन्दी-समीक्षाको अपेक्षित धरातल देनेमे सबसे बड़ा हाथ उनका ही रहा है। समीक्षकके रूपमे शुक्लजी पर विचार करते ही एक तथ्य सामने आ जाता है कि उन्होने अपनी पद्धतिको युगानुकूल नवीन बनाया था। रस और अलकार आदिका प्रयोग अपने समीक्षात्मक प्रयासोमें शुक्लजीसे पहलेके लोगोंने भी किया था पर उन्होने इन सिद्धान्तोंकी, मनोविज्ञानके आलोकमें एवं पाश्चात्त्य शैली पर, कुछ ऐसी अभिनव व्याख्या दी कि ये सिद्धान्त समीक्षामे बहिष्कृत न होकर पूरी तरह स्वीकार कर लिये गये। इस प्रकार जहाँ उन्होंने एक ओर अपनी आलोचनाओंका ढाँचा भारतीय रहने दिया है, वहीं पर उसका बाह्य रूप एव रचना-विधान पश्चिमसे लिया है। कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि यह निर्णय करना कठिन है कि उनकी समीक्षामे देशी और विदेशी तत्त्वोका मिश्रण किस अनुपात मे हुआ है। इस सम्बन्धमे यह भी ध्यानमे रखना चाहिए कि इस पद्धतिका प्रयोग उन्होने तुलसी, सूर या जायसी जैसे श्रेष्ठ कवियोंकी समीक्षाओमे ही नहीं, अपने इतिहासमे छोटे कवियोंपर भी, उतनी ही सफलतासे किया है।

रामचन्द्र शुक्लके समीक्षक-व्यक्तित्वकी दूसरी विशेषता या महानता है कि उन्होने मानदण्ड-निर्धारण और उनका प्रयोग दोनो कार्य एक साथ किये हैं तथा इस दोहरे कार्यमे कथनी और करनीका अन्तराल कहीं भी उपलब्ध नहीं होता, बल्कि यों कहे कि अपने मनोविकारोंवाले निबन्धोंमें जीवन, साहित्य और भावोंके मध्य जो सम्बन्ध देखा था, उसीके आधारपर उन्होंने अपनी समीक्षाके मानदण्ड निर्धारित किये एव इन सिद्धान्तोंका व्यावहारिक उपयोग उन्होंने फिर किया। सिद्धान्त एव व्यवहारके के मध्य ऐसी सगति श्रेष्ठतम आलोचकोंमे ही प्राप्त होती है।

उनकी एक अन्य महत्त्वपूर्ण विशेषता समसामयिक काव्य-चिन्तनसम्बन्धी जागरूकता है। उन्होंने जिन साहित्यमीमांसको एवं रचनाकारोको उद्धृत किया है, उनमेंसे अधिकांशको आज भी हिन्दीके तमाम आचार्य और स्वनामधन्य आलोचक नहीं पढ़ते। सम्भवतः रामचन्द्र शुक्ल उन प्रारम्भिक व्यक्तियोंमें होंगे, जिन्होंने इलियट और कमिंग्ज जैसे रचनाकारोंका भारतवर्षमें पहली बार उल्लेख किया है। १९३५ ई०में इन्दौरके हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी साहित्य परिषद्के अध्यक्ष पदसे दिया गया भाषण 'काव्यमे अभिव्यंजनावाद' (चिन्तामणि द्वितीय भाग पृ० २४८)में इस जागरुकताके सबसे अधिक दर्शन होते हैं। उन्होंने जे० एस० फ्लिण्ट की चर्चा की है तथा हेराल्ड मुनरोकी तारीफ की है तथा कैलिफोर्निया यूनीवर्सिटीके अध्यापकों द्वारा लिखित सद्यःप्रकाशित आलोचनात्मक निबन्धोंके संग्रहकी उद्धरणी दी है।

इस प्रसंगमे यह उल्लेखनीय है कि पहली बार हिन्दीमें शुक्लजीने सामाजिक-मनोवैज्ञानिक आधारपर किसी कविकी विवेचना करके आलोचनाको एक 'व्यक्तिता' प्रदान की, उसे जड़से गतिशील किया। एक ओर उन्होंने सामाजिक सन्दर्भको महत्त्व प्रदान किया एवं दूसरी ओर रचनाकारकी व्यक्तिगत मनःस्थितिका हवाला दिया।

शुक्लजीके व्यक्तित्वका एक गुण यह भी है कि वे श्रुति नहीं, मुनि-मार्गके अनुयायी थे। किसी भी मत, विचार या सिद्धान्तको उन्होंने बिना अपने विवेककी कसौटीपर कसे स्वीकार नहीं किया। यदि उनकी बुद्धिको वह ठीक नहीं जँचा, तो उसके प्रत्याख्यानमें तनिक भी मोह नहीं दिखाया। इसी विश्वासके कारण वे क्रोचे, रवीन्द्र, कुन्तक, ब्लेक या स्पिन्गार्नकी तीखी समीक्षा कर सके थे।

आलोचनाके क्षेत्रमे उन्होंने सदैव लोक-संग्रहकी भूमिका पर काव्यको परखना चाहा है तथा लोकसंग्रहसम्बन्धी धारणामे उनकी मध्यवर्गीय तथा कुछ मध्ययुगीन नैतिकता एव स्थूल आदर्शवादका भी मिश्रण था। इस कारण उनकी आलोचना यत्र-तत्र स्खलित भी हुई है।

शुक्लजीने अपने समीक्षादर्शमें 'एककी अनुभूतिको दूसरेतक पहुँचाना' काव्यका लक्ष्य माना है तथा इस प्रेषणाके द्वारा मनुष्यकी 'सजीवता'के प्रमाण मनोविकारोंको परिष्कृत करके उनके उपयुक्त आलम्बन लानेमें उसकी सार्थकता और सिद्धि देखी है। कविकी अनुभूतिको सम्पूर्ण विश्वमें व्याप्त समझनेके कारण उन्होने कविकर्मके लिए यह महत्त्वपूर्ण माना कि "वह प्रत्येक मानव स्थितिमें अपने को डालकर उसके अनुरूप भावका अनुभव करे"। इस कसौटीकी ही अगली परिणति है कि ऐसी भावदशाओंके लिए अधिक अवकाश होनेके कारण उन्होने महाकाव्यको खण्ड-काव्य या मुक्तक-काव्यकी अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण स्वीकार किया। कुछ इसी कारण 'रोमाण्टिक', 'रहस्यात्मक' या 'लिरिकल' संवेदना वाले काव्यको वे उतनी सहानुभूति नहीं दे सके हैं।

शुक्लजी असाधारण वस्तु-योजना अथवा ज्ञानातीत दशाओंके चित्रणके पक्षपाती भी इसीलिए नहीं थे कि उनसे प्रेषणीयतामें बाधा पहुँचती है। इस सिद्धान्तके स्वीकरणके फलस्वरूप साधारणीकरणके सम्बन्धमे कुछ नयी व्याख्या देते हुए उन्होंने 'आलम्बनत्व धर्मका साधारणीकरण' माना। यह उनके स्वतन्त्र काव्य-चिन्तन तथा अपने अध्ययन (विशेष रूपसे तुलसीके अध्ययन)के द्वारा प्राप्त निष्कर्षका

परिचायक भी है। अपनी क्लासिकल रस-दृष्टिके कारण ही उन्होंने काव्यमें कल्पनाको अधिक महत्त्व नहीं दिया। अनुभूति-प्रसूत भावुकता उन्हें स्वीकार्य थी, कल्पना-प्रसूत नही। इस धारणाके कारण ही वे छायावाद जैसे काव्यान्दोलनोंको उचित मूल्य नहीं दे सके। इसी कारण शुद्ध चमत्कार एवं अलंकार वैचित्र्यको भी उन्होंने निम्न कोटि प्रदान की। अलंकारको उन्होंने वर्णन-प्रणाली मात्र माना। उनके अनुसार अलंकारका काम "वस्तु-निर्देश" नहीं है। इसी प्रसंगमें यह भी उल्लेखनीय है कि उन्होंने लाक्षणिकता, औपचारिकता आदिको अलंकारसे भिन्न शैलीतत्त्वके अन्तर्गत माना है। काव्य-शैलीके क्षेत्रमे उनकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थापना 'बिम्ब ग्रहण'को श्रेष्ठ मानने सम्बन्धी है, वैसे ही जैसे कि काव्य-वस्तुके क्षेत्रमे प्रकृति-चित्रणसम्बन्धी विशेष आग्रह उनकी अपनी देन है।

शुक्लजीने काव्यको कर्मयोग एवं ज्ञानयोगके समकक्ष रखते हुए "भावयोग" कहा, जो मनुष्यके हृदयको मुक्तावस्थामें पहुँचाता है। काव्यको "मनोरंजन"के हल्के-फुल्के उद्देश्यसे हटा कर इस गम्भीर दायित्वको सौंपनेमे उनकी मौलिक एवं आचार्य-दृष्टि द्रष्टव्य है। वे "कविताको शेष सृष्टिके साथ रागात्मक सम्बन्ध" स्थापित करने वाला साधन मानते हैं, वस्तुतः काव्यको व्यक्तिके शील-विकासका महत्त्वपूर्ण एव श्रेष्ठतम साधन उन्होने माना।

नवीन साहित्यरूपों एवं चरित्रविधानकी नयी परिपाटिओके कारण उन्होने अपने रस-सिद्धान्तमे केवल साधारणीकरणका ही नये सिरेसे विवेचन नहीं किया, साथ ही "रसात्मक बोधके विविध रूपो"की चर्चा करते हुए अपेक्षाकृत हीनतर रस-दशाओं या 'शील-वैचित्र्य' बोधका भी विचार किया है। वर्ण्य-विषयकी दृष्टिसे भी उन्होंने "सिद्धावस्था" और "साधनावस्था"की दृष्टिसे विभाजन कया है। काव्यके अतिरिक्त उन्होंने अपने इतिहासमें निबन्ध, नाटक, कहानी, उपन्यास आदि साहित्यरूपोके स्वरूप पर भी संक्षिप्त, पर महत्त्वपूर्ण सर्वांगीण विचार प्रकट किये है।

शुक्लजीकी समीक्षाका मूलस्वर यद्यपि व्याख्यात्मक है, पर आवश्यकता पड़ने पर उन्होंने आकलनसम्बन्धी निर्णय लेनेमें साहसकी कमी नही दिखायी। इसका सबसे बडा प्रमाण उनके 'इतिहास'का आधुनिककालसे सम्बन्धित अंश है। यह अवश्य है कि इन निर्णयों या व्याख्याओमे उनके वैयक्तिक एवं वर्गगत आग्रह तथा उस युग तककी इतिहास-दृष्टिकी सीमाएँ थीं। वस्तुतः शुक्लजी समीक्षाके प्रथम उठानके चरम विकास थे और आगे जिन लोगोने उनका अनुगमन किया, वे प्रभावशाली नहीं बन सके। जिन्होंने उस परम्पराको छोडा, वही महत्त्वपूर्ण हुए। शुक्लजीकी समीक्षा-दृष्टिकी सम्भावनाएँ बहुत विकासशील नहीं थी।

रामचन्द्र शुक्ल हिन्दीके प्रथम साहित्यिक इतिहास-लेखक हैं, जिन्होने मात्र कवि-वृत्त-संग्रहसे आगे बढ़कर, "शिक्षित जनताकी जिन-जिन प्रवृत्तियोंके अनुसार हमारे साहित्यके स्वरूपमें जो-जो परिवर्तन होते आये हैं, जिन-जिन प्रभावोंकी प्रेरणासे काव्यधाराकी भिन्न-भिन्न शाखाएँ फूटती रही हैं, उन सबके सम्यक निरूपण तथा उनकी दृष्टिसे किये हुए सुसंगठित काल-विभाग" की ओर ध्यान दिया ('हिन्दी साहित्यका इतिहास': रामचन्द्र शुक्ल, भूमिका, पृ० १)। इस प्रकार उन्होंने साहित्यको "शिक्षित जनता"के साथ सम्बद्ध किया और उनका इतिहास केवल कवि-जीवनी या "ढीले सूत्रमें गुँथी आलोचनाओं" से आगे बढ़कर सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियोंसे संकलित हो उठा। उनके 'कवि' मात्र व्यक्ति न रहकर, परिस्थितियोंके साथ आबद्ध होकर जातिके कार्य-कलापको भी सूचित करने लगे। इसके अतिरिक्त उन्होने सामान्य प्रवृत्तियोंके आधारपर कालविभाजन और उन युगोंका नामकरण किया। इस प्रवृत्ति-साम्य एवं युगके अनुसार कवियोंको समुदायोंमे रखकर उन्होंने "सामूहिक प्रभाव"की ओर भी ध्यान आकर्षित किया। वस्तुतः उनका समीक्षक रूप यहाँपर भी उभर आया है और उनकी रसिक दृष्टि कवियोंके काव्य-सामर्थ्यके उद्घाटनमें अधिक प्रवृत्त हुई है, तथ्योंकी खोज-बीनकी ओर कम। यों साहित्यिक प्रवाहके उत्थान-पतनका निर्धारण उन्होंने अपनी लोक-संग्रहवाली कसौटीपर करना चाहा है, पर उनकी इतिहास-दृष्टि निर्मल नहीं थी। यह उस समयतककी प्रबुद्ध वर्गकी इतिहाससम्बन्धी चेतना की सीमा भी थी। शीघ्र ही युग और कवियोंके कार्य-कारण सम्बन्धकी असंगतियाँ सामने आने लगी, जैसे कि भक्तिकालके उद्भवसम्बन्धी उनकी धारणा बहुत शीघ्र अयथार्थ सिद्ध हुई। वस्तुतः साहित्यको शिक्षित जन नहीं, सामान्य जन-चेतनाके साथ सम्बद्ध करनेकी आवश्यकता थी। उनका औसतवादका सिद्धान्त भी अवैज्ञानिक है। इस अवैज्ञानिक सिद्धान्तके कारण ही उन्हे कवियोंका एक फुटकल खाता भी खोलना पडा था। यदि वे युगोंके विविध अन्तर्विरोधोंको प्रभावित कर सके होते तो ऐसी असंगतियाँ न आती।

रामचन्द्र शुक्लका तीसरा महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व निबन्धकारका है। उनके निबन्धोंके सम्बन्धमें बहुधा यह प्रश्न उठाया गया है कि वे विषयप्रधान निबन्धकार हैं या व्यक्तिप्रधान। वस्तुतः उनके निबन्ध आत्मव्यंजक या भावात्मक तो किसी प्रकार भी नहीं कहे जा सकते—हाँ, इतना अवश्य है कि बीच-बीचमे आत्मपरक अंश आ गये है। पर ऐसे अंश इतने कम हैं कि उनको प्रमाण नहीं माना जा सकता। उनके निबन्ध अत्यन्त गहरे रूपमे बौद्धिक एव विषयनिष्ठ हैं। उन्हे हम ललित निबन्धकी कोटिमें नही रख सकते। पर इन निबन्धोंमें जो गम्भीरता, विवेचनमे जो पाण्डित्य एवं तार्किकता तथा शैलीमें जो कसाव मिलता है, वह इन्हे अभूतपूर्व दीप्ति दे देता है। वास्तवमे निबन्धोंके क्षेत्रमे शुक्लजीकी परम्परा हिन्दीमे बराबर चलती जा रही है। इसे यों भी कहा जा सकता है कि उनके निबन्धोंके आलोकपुंजके समक्ष कुछ दिनोंके लिए ललित भावात्मक निबन्धोका प्रणयन एकदम विरल हो गया। उनके महत्त्वपूर्ण निबन्धोंको मनोविकारसम्बन्धी, सैद्धान्तिकसमीक्षासम्बन्धी एवं व्यावहारिक समीक्षासम्बन्धी तीन भागोंमें बाँटा जा सकता है—यद्यपि इनमे आन्तरिक सम्बन्ध सूत्र बना रहता है। इनमें भी प्रथम प्रकारके निबन्ध शुक्लजीके महत्तम

लेखन के अन्तर्गत परिगणनीय हैं।

रामचन्द्र शुक्लने 'जायसी ग्रन्थावली' तथा 'बुद्धचरित'-की भूमिकामें क्रमशः अवधी तथा ब्रजभाषाका भाषा-शास्त्रीय विवेचन करते हुए उनका स्वरूप भी स्पष्ट किया है। अनुवादक रूपमें उन्होंने 'शशांक' जैसे श्रेष्ठ उपन्यास तथा 'बुद्धचरित' जैसे काव्यका अनुवाद किया है। अनुवादके रूपमें उनकी शक्ति या निर्बलता यह थी कि उन्होंने अपनी प्रतिभा या अध्ययनके बलपर उनमें अपेक्षित परिवर्तन कर लिये है। 'शशांक' मूल बगलामे दुःखान्त है, पर उन्होंने उसे सुखान्त बना दिया है। अनुवादककी इस प्रवृत्तिको आदर्श भले ही न माना जाय पर उसके व्यक्तित्व की शक्ति एवं जीवनका प्रतीक अवश्य माना जा सकता है।

साहित्यिक इतिहास लेखकके रूपमे उनका स्थान हिन्दी में अत्यन्त गौरवपूर्ण है, निबन्धकारके रूपमे वे किसी भी भाषाके लिए गर्वके विषय हो सकते है तथा समीक्षकके रूपमें तो वे हिन्दीमे अप्रतिम हैं अभी तक।

[सहायक ग्रन्थ—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : शिवनाथ; आलोचक रामचन्द्र शुक्ल : सं० गुलाबराय एव विजयेन्द्र स्नातक।] —दे० शं० अ०

रामचरणदास–इनका जन्म १७६० ई० के लगभग प्रतापगढ जिलेमें एक कान्यकुब्ज ब्राह्मणके घरमें हुआ था। कुछ दिनोंतक उसी प्रदेशमें किसी राजाके यहाँ नौकरी करनेके पश्चात् ये विरक्त होकर अयोध्या चले आये और महात्मा रामप्रसाद विन्दुकाचार्यके साधक शिष्य हो गये। अयोध्या-से गुरुके साथ इन्होने चित्रकूट और मिथिलाकी यात्राएँ की। शृंगारी साधनाके रहस्योंका ज्ञानप्राप्त करनेके उद्देश्यसे ये रैवासा (जयपुर) गये। वहा 'अग्रसागर' पढने-के लिए इन्हे अपना तिलक परिवर्तित करना पडा। पर्यटन समाप्त करके ये स्थायी रूपमें अयोध्यामें जानकी घाटपर रहने लगे। इनकी सिद्धियो और सन्त-सेवामें प्रभावित होकर तत्कालीन अवधके नवाबने जानकी घाटकी समस्त भूमि तथा कई गाँव भेंट रूपमे अर्पित किये। शृंगारी रामोपासनाके व्यापक प्रचारका श्रेय इन्हीं महाराजको है। इस कार्यमें इन्हे अपने योग्य शिष्यों—युगलप्रिया तथा रसिकअलीसे विशेष सहायता मिली। इनकी दिव्यधाम यात्रा अयोध्यामें ही माघशुक्ल ९, १८३५ ई०को हुई।

रामचरणदास द्वारा विरचित ग्रन्थोकी सख्या २५ है। इनके नाम ये है—'अमृतखण्ड', 'शतपचाशिका', 'रसमालिका', 'रामपदावली', 'सियाराम रस मजरी', 'सेवाविधि', 'छप्पेरामायण', 'जयमाल सग्रह', 'चरणचिह्न', 'कवितावली', 'दृष्टांतबोधिका', 'तीर्थयात्रा', 'विरह शतक', 'वैराग्य शतक', 'नामशतक', 'उपासना शतक', 'विवेक शतक', 'पिंगल', 'काव्य शृंगार', 'झूलन', 'कोशलेन्द्र रहस्य', 'राम नवरत्नसार सग्रह', 'रामचरितमानसकी टीका', 'अष्टयाम सेवाविधि' और 'रामानन्द लहरी'। साम्प्रदायिक आचार्य होनेसे इनकी कृतियोंमें सैद्धान्तिक विवेचन और साधना-पद्धतियोंकी व्याख्यासम्बन्धी प्रसगोंकी ही चर्चा अधिक है। इनका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य 'रामचरितमानस'की प्रथम टीकाका प्रणयन है। इनके द्वारा 'मानस'के सिद्धान्तोंका भक्तोंमे व्यापक प्रचार हुआ।

[सहायक ग्रन्थ—रामभक्तिमें रसिक सम्प्रदाय : भगवतीप्रसाद सिंह।] —भ० प्र० सिं०

रामचरित उपाध्याय–रामचरित उपाध्यायका नाम द्विवेदी-युगके साहित्य-सेवियोंमें आता है। इनका जन्म सन् १८७२ ई० में जिला गाजीपुरमें हुआ था। इनकी आरम्भिक शिक्षा संस्कृतमें हुई। बादमें इन्होंने ब्रजभाषा और खडीबोलीपर भी समान अधिकार प्राप्त कर लिया। मातृभाषाकी सेवाके क्षेत्रमें ये आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदीका प्रभाव और प्रोत्साहन लेकर आये तथा द्विवेदी द्वारा सम्पादित 'सरस्वती'के मंचपर खडीबोलीके कविके रूपमे अवतरित हुए। इनकी 'देवदूत', 'देवसभा', 'विचित्र विवाह', 'राष्ट्रभारती', 'भारत भक्ति', 'भव्य भारत' आदि छोटी-बडी फुटकर कविताएँ या तो 'सरस्वती' या कतिपय अन्य तत्कालीन पत्रिकाओंमें प्रकाशित हैं। ये सभी रचनाएँ खडीबोलीमें लिखी गयी हैं और इनके माध्यमसे या तो किसी सामाजिक कुरीतिका ज्ञापन किया गया है या राष्ट्रीय विचारधाराका पोषण। फुटकर कविताओंके अतिरिक्त इन्होने 'रामचरित चिन्तामणि' नामक एक प्रबन्ध-काव्यकी भी सृष्टि की थी। इसमे परम्पराप्रथित राम-कथाको एक नूतन परिवेश देनेकी चेष्टा की गयी है। कथानकको राजनीतिक दृष्टिकोणमे प्रस्तुत किया गया है और अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध'कृत 'प्रियप्रवास'के नायक श्रीकृष्णकी भाति रामको यथासम्भव मानव रूपमें चित्रित किया गया है। रामचरित उपाध्याय अपने समय के अकेले सूक्तिकार माने जाते है। इन्होंने सूक्तियों और नीतिके पद्य बहुत अधिक मात्रामें लिखे थे। उनकी इस प्रकारकी रचनाएँ 'सूक्तिमुक्तावली'में संगृहीत है। इन रचनाओंमें कवित्वकी मात्रा कम तथा तुकबन्दीका प्रयास अधिक है। इन्होने 'देवी द्रौपदी' (१९२० ई०) नामक एक उपन्यास भी लिखा था। यह कृति 'महाभारत'के एक कथाशपर आधारित तथा महिलोपयोगी है। रामचरित उपाध्यायके उपर्युक्त कृतित्वका समग्र मूल्यांकन करते हुए यह कहा जा सकता है कि इन्होंने मातृभाषाकी सेवाका जो व्रत लिया था, उसमे इन्हे सफलता मिली। हिन्दी खडीबोली के विकास तथा राष्ट्रीयताके जागरणमें इनके योगदानको अनुल्लेखनीय नहीं मानना चाहिए। उपाध्याय जीकी मृत्यु १९३८ ई० मे हुई। —र० भ०

रामचरितमानस–'रामचरितमानस' तुलसीदासकी सबसे प्रमुख कृति है। इसकी रचना सं० १६३१ ई०की रामनवमीको अयोध्यामे प्रारम्भ हुई थी किन्तु इसका कुछ अंश काशी (वर्तमान वाराणसी)मे भी निर्मित हुआ था, यह ध्वनि इसके किष्किन्धा काण्डके प्रारम्भमे आने वाले एक सोरठेमे निकलती है, उसमे काशीसेवनका उल्लेख किया गया है। इसकी समाप्ति-तिथि निश्चित रूपसे ज्ञात नही है। तुलसीदासके एक चरितलेखक बेनीमाधवदासके अनुसार इसकी समाप्ति सं० १६३३ ई०की मार्गशीर्ष शुक्ला ५, रविवारको हुई थी किन्तु उक्त तिथि गणनासे शुद्ध नहीं ठहरती, इसलिए विश्वसनीय नहीं कही जा सकती। यह रचना अवधी बोलीमे लिखी गयी है। इसके मुख्य छन्द चौपाई और दोहा हैं, यद्यपि बीच-बीचमे कुछ अन्य प्रकारके

भी छन्दोंका प्रयोग हुआ है। प्रायः ८ या अधिक अर्द्धालियोंके बाद दोहा होता है और इन दोहोंके साथ कड़वक संख्या दी गयी है। इस प्रकारके समस्त कड़वकोंकी संख्या १०७४ है। सम्पूर्ण रचना सात काण्डोंमे विभक्त है, जिस प्रकार 'वाल्मीकि-रामायण' अथवा 'अध्यात्म रामायण' है।

'रामचरितमानस' एक चरित-काव्य है, जिसमे रामका सम्पूर्ण जीवन वर्णित हुआ है। इसमे 'चरित' और 'काव्य' दोनोंके गुण समान रूपसे मिलते हैं। इस काव्यके चरितनायक कविके आराध्य भी है, इसलिए वह 'चरित' और 'काव्य' होनेके साथ-साथ कविकी भक्तिका प्रतीक भी है। रचनाके इन तीनों रूपोंमें नीचे उसका संक्षिप्त विवेचन किया जा रहा है।

'रामचरितमानस'की कथा संक्षेपमें इस प्रकार है—दक्षोंमे लंकाको जीतकर राक्षमराज रावण वहाँ राज्य करने लगा। उसके अनाचारों-अत्याचारोंसे पृथ्वी त्रस्त हो गयी और वह देवताओंकी शरणमे गयी। इन सबने मिलकर हरिकी स्तुति की, जिसके उत्तरमे आकाशवाणी हुई कि हरि दशरथ-कौसल्याके पुत्रके रूपमे अयोध्यामे अवतार ग्रहण करेंगे और राक्षसोका नाशकर भूमि-भार हरण करेंगे। इस आश्वासनके अनुसार चैत्रके शुक्ल पक्षकी नवमीको हरिने कौसल्याके पुत्रके रूपमे अवतार धारण किया। दशरथकी दो रानियाँ और थीं—कैकेयी और सुमित्रा। उनसे दशरथके तीन और पुत्रों—भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नने जन्म ग्रहण किया।

इस समय राक्षसोंका अत्याचार उत्तर भारतमे भी कुछ क्षेत्रोंमे प्रारम्भ हो गया था, जिसके कारण मुनि विश्वामित्र यज्ञ नहीं कर पा रहे थे। उन्हे जब यह ज्ञात हुआ कि दशरथके पुत्रके रूपमे हरि अवतरित हुए है, वे अयोध्या आये और जब राम बालक ही थे, उन्होने राक्षसोके दमन के लिए दशरथसे रामकी याचना की। राम तथा लक्ष्मणकी सहायतासे उन्होने अपना यज्ञ पूरा किया। इन उपद्रवकारी राक्षसोंमेसे एक सुबाहु था, जो मारा गया और दूसरा मारीच था, जो रामके बाणोंसे आहत होकर सौ योजनके दूरीपर समुद्र पार चला गया।

जिस समय राम-लक्ष्मण विश्वामित्रके आश्रममे रह रहे थे, मिथिलामे धनुर्यज्ञकी आयोजना की गयी थी, जिसके लिए मुनिको निमन्त्रण प्राप्त हुआ था। अतः मुनि राम-लक्ष्मणको लिवाकर मिथिला गये। यहाँपर शिवके एक विशाल धनुषको तोड़नेके लिए मिथिलाके राजा जनकने देश-विदेशके समस्त राजाओंको अपनी पुत्री सीताके स्वयंवर हेतु आमन्त्रित किया था। रावण और बाणासुर जैसे बलशाली राक्षस नरेश भी इस आमन्त्रणपर वहाँ गये थे किन्तु अपनेको इस कार्यके लिए असमर्थ मानकर लौट चुके थे। दूसरे राजाओंने सम्मिलित होकर भी इसे तोड़नेका प्रयत्न किया, किन्तु वे अकृतकार्य रहे। रामने इसे सहजमे ही तोड़ दिया और सीताका वरण किया। विवाहके अवसरपर अयोध्या निमन्त्रण भेजा गया। दशरथ अपने शेष पुत्रोंके साथ बारात लेकर मिथिला आये और विवाहके अनन्तर अपने चारों पुत्रोंको लेकर अयोध्या लौटे।

दशरथकी अवस्था धीरे-धीरे ढलने लगी थी, इसलिए उन्होंने रामको अपना युवराज पद देना चाहा। संयोगसे इस समय कैकेयी-पुत्र भरत सुमित्रा-पुत्र शत्रुघ्नके साथ ननिहाल गये हुए थे। कैकेयीकी एक दासी मन्थराको जब यह समाचार ज्ञात हुआ, उसने कैकेयीको सुनाया। पहले तो कैकेयीने यह कहकर इसका अनुमोदन किया कि पिताके अनेक पुत्रोंमे से ज्येष्ठ पुत्र ही राज्यका अधिकारी होता है, यह उसके राजकुलकी परम्परा है किन्तु मन्थराके यह सुझाने पर कि भरतकी अनुपस्थितिमें जो यह आयोजन किया जा रहा है, उसमें कोई दुरभिसन्धि है, कैकेयीने उस आयोजनको विफल बनानेका निश्चय किया और कोप-भवनमें चली गयी। तदनन्तर उसने दशरथसे, उनके मनाने पर, दो वर देनेके लिए वचन लेकर एकमे रामके लिए १४ वर्षोंका बनवास और दूसरेसे भरतके लिए युवराज पद माँग लिये। इनमेंसे प्रथम वचनके अनुसार रामने वनके लिए प्रस्थान किया तो उनके साथ सीता और लक्ष्मण भी हो लगे।

कुछ ही दिनों बाद जब दशरथने रामके विरहमें शरीर त्याग दिया, भरत ननिहालसे बुलाये गये और उन्हे अयोध्याका सिंहासन दिया गया, किन्तु भरतने उसे स्वीकार नहीं किया और वे रामको वापस लानेके लिए चित्रकूट जा पहुँचे, जहाँ उस समय राम निवास कर रहे थे किन्तु रामने लौटना स्वीकार न किया। भरतके अनुरोध पर उन्होने अपनी चरण-पादुकाएँ उन्हें दे दीं, जिन्हें अयोध्या लाकर भरतने सिंहासन पर रखा और वे राज्यका कार्य देखने लगे।

चित्रकूटसे चलकर राम दक्षिणके जंगलोंकी ओर बढ़े। जब वे पंचवटीमें निवास कर रहे थे रावणकी एक भगिनी शूर्पणखा एक मनोहर रूप धारण कर वहाँ आयी और रामके सौन्दर्यपर मुग्ध होकर उनसे विवाहका प्रस्ताव किया। रामने जब इसे अस्वीकार किया तो उसने अपना भयंकर रूप प्रकट किया। यह देखकर रामके सकेतोंसे लक्ष्मणने उसके नाक-कान काट लिये। इस प्रकार कुरूपकी हुई शूर्पणखा अपने भाइयों—खर और दूषणके पास गयी, और उन्हे रामसे युद्ध करनेको प्रेरित किया। खर-दूषणने अपनी सेना लेकर राम पर आक्रमण कर दिया किन्तु वे अपनी समस्त सेनाके साथ युद्धमे मारे गये। तदनन्तर शूर्पणखा रावणके पास गयी और उसने उसे सारी घटना सुनायी। रावणने उस मारीचकी सहायतासे, जिसे विश्वामित्रके आश्रममे रामने युद्धमे आहत किया था, सीताका हरण किया, जिसके परिणामस्वरुप रामको रावणसे युद्ध करना पडा।

इस परिस्थितिमे रामने किष्किन्धाके वानरोंकी सहायता ली और रावण पर आक्रमण कर दिया। इस आक्रमणके साथ रावणका भाई विभीषण भी आकर रामके साथ हो गया। रामने अंगद नामके वानरको रावणके पास दूतके रूपमें अन्तिम बार सावधान करनेके लिए भेजा कि वह सीताको लौटा दे, किन्तु रावणने अपने अभिमानके बलसे इसे स्वीकार नहीं किया और राम तथा रावणके दलोंमें युद्ध छिड़ गया।

उस महायुद्धमें रावण तथा उसके बन्धु-बान्धव मारे गये। तदनन्तर लंकाका राज्य उसके भाई विभीषणको देकर सीताको साथ लेकर राम और लक्ष्मण अयोध्या वापस आये। रामका राज्याभिषेक किया गया और दीर्घकाल तक उन्होंने प्रजारंजन करते हुए शासन किया।

इस मूल कथाके पूर्व 'रामचरितमानस'मे रावणके कुछ पूर्वभवोंकी तथा रामके कुछ पूर्ववर्ती अवतारोंकी कथाएँ हैं, जो संक्षेपमें दी गयी हैं। कथाके अन्तमें गरुड और काग भुशुण्डिका एक विस्तृत संवाद है, जिसमें अनेक प्रकार के आध्यात्मिक विषयोंका विवेचन हुआ है। कथाके प्रारम्भ होनेके पूर्व शिव-चरित्र, शिव-पार्वती संवाद, याज्ञवल्क्य-भारद्वाज संवाद तथा कागभुशुण्डि-गरुड सवादके रूपमे कथाकी भूमिकाएँ हैं और इनके भी पूर्व कविकी भूमिका और प्रस्तावना है।

'चरित' की दृष्टिसे यह रचना पर्याप्त सफल हुई है। इसमें रामके जीवनकी समस्त घटनाएँ आवश्यक विस्तारके साथ एक सुसम्बद्ध रूपमे कही गयी हैं। रावणके पूर्वभव तथा रामके पूर्वाकारकी कथाओंसे लेकर रामके राज्य-वर्णन तक कविने कोई भी प्रासंगिक कथा रचनामें नहीं आने दी है। इस सम्बन्धमें यदि वाल्मीकीय तथा अन्य अधिकतर राम-कथा ग्रन्थोंसे 'रामचरितमानस' की तुलना की जाय तो तुलसीदासकी विशेषता प्रमाणित होगी। अन्य राम-कथा ग्रन्थोंमें बीच-बीचमें कुछ प्रासंगिक कथाएँ देखकर अनेक क्षेपककारोंने 'रामचरितमानस' मे प्रक्षिप्त प्रसंग रखे और कथाएँ मिलायीं, किन्तु राम-कथाके पाठकोंने उन्हें स्वीकार नहीं किया और वे रचनाको मूल रूपमें ही पढ़ते और उसका पारायण करते हैं। चरित-काव्योंकी एक बडी विशेषता उनकी सहज और प्रयासहीन शैली मानी गयी है, और इस दृष्टिसे 'मानस' एक अत्यन्त सफल चरित है। रचना भरमें तुलसीदासने कहीं भी अपना काव्य-कौशल, अपना पाण्डित्य, अपनी बहुज्ञता आदिके प्रदर्शन का कोई प्रयास नहीं किया है। सर्वत्र वे अपने वर्ण्य-विषयमें इतने तन्मय रहे हैं कि उन्हें अपना ध्यान नहीं रहा। रचनाको पढ़कर ऐसा लगता है कि रामके चरितने ही उन्हें वह वाणी प्रदान की है, जिसके द्वारा वे सुन्दर कृतिका निर्माण कर सके।

'काव्य' की दृष्टिसे 'रामचरितमानस' एक अति उत्कृष्ट महाकाव्य है। भारतीय साहित्य-शास्त्रमें 'महाकाव्य' के जितने लक्षण दिये गये हैं, वे उसमें पूर्ण रूपसे पाये जाते हैं। कथा-प्रबन्धका सर्गबद्ध होना, उच्चकुलसम्भूत धीरोदात्त नायकका होना, शृंगार, शान्त और वीर रसोंमेंसे किसी एकका अंगी और शेष रसोंका अंगभावमें आना, उपयुक्त स्थलोंपर सुन्दर वर्णन-योजनाका होना, धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षमेंसे किसी एकका उसका लक्ष्य होना आदि सभी लक्षण उसमें मिलते हैं। पाश्चात्य साहित्यालोचनमें 'इपिक' की जो विभिन्न आवश्यकताएँ बतलायी गयी हैं, यथा—उसकी कथाका किसी गौरवपूर्ण अतीतसे सम्बद्ध होना, अतिप्राकृत शक्तियोंका उसकी कथामें भाग लेना, कथाके अन्तमें किन्हीं आदर्शोंकी विजयका चित्रित होना आदि, सभी 'रामचरितमानस' मे पाई जाती हैं। इस प्रकार किसी भी दृष्टिसे देखा जाय तो 'रामचरितमानस' एक अत्यन्त उत्कृष्ट महाकाव्य ठहरता है। मुख्यतः यही कारण है कि संसारकी महान् कृतियोंमें इसे भी स्थान मिला है।

तुलसीदासकी भक्तिकी अभिव्यक्ति भी इसमें अत्यन्त विशद रूपमें हुई है। अपने आराध्यके सम्बन्धमें उन्होंने 'रामचरितमानस' और 'विनय-पत्रिका' में अनेक बार कहा है कि उनके रामका चरित्र ही ऐसा है कि जो एक बार उसे सुन लेता है, वह अनायास उनका भक्त हो जाता है। वास्तवमें तुलसीदासने अपने आराध्यके चरित्रकी ऐसी ही कल्पना की है। यही कारण है कि इसने समस्त उत्तरी भारतपर सदियोंसे अपना अद्भुत प्रभाव डाल रखा है और यहाँके आध्यात्मिक जीवनका निर्माण किया है। घर-घरमें 'रामचरितमानस' का पाठ पिछली साढ़े तीन शताब्दियोंमें बराबर होता आ रहा है और इसे एक धर्म-ग्रन्थके रूपमें देखा जाता है। इसके आधारपर गाँव-गाँवमें प्रतिवर्ष रामलीलाओंका भी आयोजन किया जाता है। फलतः जैसा विदेशी विद्वानोंने भी स्वीकार किया है, उत्तरी भारतका यह सबसे लोकप्रिय ग्रन्थ है और इसने जीवनके समस्त क्षेत्रोंमें उच्चाशयता लानेमें सफलता प्राप्त की है।

यहाँपर स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि तुलसीदासने राम तथा उनके भक्तोंके चरित्रमें ऐसी कौन-सी विलक्षणता उपस्थित की है, जिससे उनकी इस कृतिको इतनी अधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई है। तुलसीदासकी इस रचनामें अनेक दुर्लभ गुण हैं किन्तु कदाचित् अपने जिस महान् गुणके कारण इसने यह असाधारण सम्मान प्राप्त किया है, वह है ऐसी मानवताकी कल्पना, जिसमें उदारता, क्षमा, त्याग, निर्वैरता, धैर्य और सहनशीलता आदि सामाजिक शिवत्वके गुण अपनी पराकाष्ठाके साथ मिलते हों और फिर भी जो अव्यावहारिक न हो। 'रामचरितमानस'के सर्वप्रमुख चरित्र—राम, भरत, सीता आदि इसी प्रकारके हैं। उदाहरणके लिए राम और कौशल्याके चरित्रोंको लीजिये।

'वाल्मीकि रामायण'मे राम जब वनवासका दुःसंवाद सुनाने कौशल्याके पास आते हैं, वे कहते हैं: "देवि, आप जानती नहीं हैं, आपके लिए, सीताके लिए और लक्ष्मणके लिए बडा भय आया है, इससे आप लोग दुःखी होंगे। अब मैं दण्डकारण्य जा रहा हूँ, भोजनके निमित्त बैठनेके लिए रखे गये इस आसनसे मुझे क्या करना है? अब मेरे लिए कुशासन चाहिये, आसन नहीं। निर्जन वन में चौदह वर्षोंतक निवास करूँगा। मांस, खाना छोड़कर कन्द मूल फलसे जीविका चलाऊँगा। महाराज युवराजका पद भरतको दे रहे हैं और तपस्वी वेशमें मुझे अरण्य भेज रहे हैं" (२-२०-२५-३०)।

'अध्यात्म रामायण'मे रामने इस प्रसंगमें कहा है, "माता मुझे भोजन करनेका समय नहीं है, क्योंकि आज मेरे लिए यह समय शीघ्र ही दण्डकारण्य जानेके लिए निश्चित किया गया है। मेरे सत्य-प्रतिज्ञ पिताने माता कैकेयीको वर देकर भरतको राज्य और मुझे अति उत्तम

वनवास दिया है। वहाँ मुनि वेशमें चौदह वर्ष रहकर मैं शीघ्र ही लौट आऊँगा, आप किसी प्रकारकी चिन्ता न करें।" (२-४-४-६)।

'रामचरितमानस'में यह प्रसंग इस प्रकार है—"मातु वचन सुनि अति अनुकूला। जनु सनेह सुरतरुके फूला॥ सुख मकरन्द भरे श्रिय मूला। निरखि राम मन भंवरु न भूला॥ धरम धुरीन धरम गति जानी। कहेउ मातु सन अमृत बानी। पिता दीन्ह मोहिं कानन राजू। जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू॥ आयसु देहि मुदित मन माता। जेहिं मुद मंगल कानन जाता॥ जनि सनेह बस डरपसि मोरे। आवहुँ अम्ब अनुग्रह तोरे॥" (२-५३-३-८)।

यहाँपर दर्शनीय यह है कि तुलसीदासने 'वाल्मीकि-'रामायण'के रामको ग्रहण न कर 'अध्यात्म रामायण'के रामको ग्रहण किया है। वाल्मीकिके राममें भरतकी ओरसे अपने स्नेही स्वजनोंके सम्बन्धमे जो अनिष्टकी आशंका है, वह 'अध्यात्म रामायण'के राममे नही रह गयी है और तुलसीदासके राममें भी नही आने पायी है किन्तु इसी प्रसंगमे पिताकी आज्ञाके प्रति लक्ष्मणके विद्रोहके शब्दोंको सुनकर रामने ससारकी अनित्यता और देहादिसे आत्माकी भिन्नताका एक लम्बा उपदेश दिया है (२-४-१७-४४), जिसपर उन्होने मातासे नित्य विचार करनेके लिए अनुरोध किया है, "हे मातः! तुम भी मेरे इस कथनपर नित्य विचार करना और मेरे फिर मिलनेकी प्रतीक्षा करती रहना। तुम्हे अधिक कालतक दुःख न होगा। कर्म-बन्धनमें बँधे हुए जीवोंका सदा एक ही साथ रहना-सहना नहीं हुआ करता, जैसे नदीके प्रवाहमे पडकर बहती हुई डोंगियाँ सदा साथ-साथ ही नहीं चलती" (२।४।४४-४६)।

तुलसीदास इस अध्यात्मवादकी दुहाई न देकर अपने आदर्शवादको अव्यावहारिक होनेसे बचा लेते है। वे रामको एक धर्मनिष्ठ नायकके रूपमे ही चित्रित करते हैं, जो पिता की आज्ञाका पालन करना अपना एक परम पुनीत कर्तव्य समझता है, इसीलिए उन्होने कहा है: "धरम धुरीन धरम गतिजानी। कहेउ मातु सन अति मृदु बानी॥"

एक दूसरा प्रसग लीजिये। वनवासके इस दुःख संवादको जब राम सीताको सुनाने जाते हैं, 'वाल्मीकीय रामायण' में वे कहते हैं: "मै निर्जन वनमे जानेके लिए प्रस्तुत हुआ हूँ और तुमसे मिलनेके लिए यहाँ आया हूँ। तुम भरतके सामने मेरी प्रशंसा न करना, क्योकि समृद्धिवान् लोग दूसरोंकी स्तुति नहीं सह सकते, इसलिए भरतके सामने तुम मेरे गुणोंका वर्णन न करना। भरतके आनेपर तुम मुझे श्रेष्ठ न बतलाना, ऐसा करना भरतका प्रतिकूलाचरण कहा जायेगा और अनुकूल रहकर ही भरतके पास रहना सम्भव हो सकता है। परम्परागत राज्य राजाने भरतको ही दिया है; तुमको चाहिये कि तुम उसे प्रसन्न रखो, क्योंकि वह राजा है" (२।२५।२४-२७)।

'अध्यात्म रामायण'में इस प्रसंगमे रामने इतना ही कहा है, "हे शुभे! पिताजीने मुझे दण्डकारण्यका सम्पूर्ण राज्य दिया है, अतः हे भामिनि! मै शीघ्र ही उसका प्रबन्ध करनेके लिए वहाँ जाऊँगा। मैं आज ही वनको जा रहा हूँ। तुम अपनी सासुके पास जाकर उनकी सेवा-शुश्रूषामें रहो। मैं झूठ नहीं बोलता।... हे अनघे! महाराजने प्रसन्नतापूर्वक कैकेयीको वर देकर भरतको राज्य और मुझे वनवास दिया है। देवी कैकेयीने मेरे लिए चौदह वर्ष तक वनमें रहना माँगा था, सो सत्यवादी दयालु महाराजने देना स्वीकार कर लिया है। अतः हे भामिनि! मैं वहाँ शीघ्र ही जाऊँगा, तुम इसमें किसी प्रकारका विघ्न न खड़ा करना (२. ४-५७-६२)।

'रामचरितमानस'में इस प्रकार सीतासे विदा लेने गये हुए राम नही दिखलाये जाते है, इसमें सीता स्वयं कौशल्याके पास उस समय वनवासका समाचार सुनकर आ जाती है, जब राम कौशल्यासे वनगमनकी आज्ञा लेनेके लिए आते हैं और सीताकी रामके साथ वन जानेकी इच्छा समझकर कौशल्या ही रामसे उनकी इच्छाका निवेदन करती है। 'अध्यात्म रामायण'मे ही भरतके प्रति किसी प्रकारकी आशंका और सन्देहके भाव रामके मनमे नही चित्रित किये गये, 'रामचरितमानस'मे भी रामके उसी उदार व्यक्तित्वको अंकित किया गया है।

किन्तु इतना ही नही तुलसीदास रामके चरित्रमें भरत-प्रेमका एक अद्भुत विकास करते है, जो अन्य राम-कथा ग्रन्थोमे नहीं मिलता। उदाहरणार्थ—(१) चित्रकूटमें रामके रहन-सहनका वर्णन करते हुए वे कहते हैं—"जब-जब राम अवध सुधि करही। तब तब बारि बिलोचन भरही। सुमिरि मातु पितु परिजन भाई। भरत सनेह सील सेवकाई। कृपासिन्धु प्रभु होहिं दुखारी। धीरज धरहिं कुसमय बिचारी" (२.१४१. ३-५); (२) भरतके आगमनका समाचार सुनकर लक्ष्मण जब रामके अनिष्टकी आशकासे उनके विरुद्ध उत्तेजित हो उठते है, राम कहते है—"कही तात तुम्ह नीति सुनाई। सबते कठिन राजमद भाई॥ जो अँचवत मातहिं नृपतेई। नाहिन साधु समाजिहिं सेई॥ सुनहु लषन भल भरत सरीखा। बिधि प्रपच महँ सुना न दीषा॥ भरतहि होइ न राज मद, विधि हरिहर पद पाइ। कबहुँ कि कांजी सीकरनि छीर सिन्धु बिनसाइ॥ तिमिर तरुन तरिनिहि मकु गिलई। गगन मगन मकु मेघहि मिलई॥ गोपद जल बूडति घट जोनी। सहज क्षमा बरु छाडइ छोनी॥ मसक फूँक मकु मेरु उड़ाई। होइ न नृप मद भरतहि भाई॥ लषन तुम्हार सपथ पितु आना। सुचि सुबन्धु नहि भरत समाना॥ सगुन क्षीर अवगुन जल ताता। मिलइ रचइ परपंच विधाता॥ भरत हंस रवि वंस तडागा। जनमि लीन्ह गुन दोष विभागा॥ गहि गुन पय तजि अवगुन बारी। निज जस जगत कीन्ह उजियारी॥ कहत भरत गुन सील सुभाऊ। प्रेम पयोधि मगन रघुराऊ॥" (२, २३१, ६ से २, २३२, ८ तक); (३) चित्रकूटमे भरतकी विनय सुननेके लिए किये गये वशिष्ठके कथनपर राम कह उठते है—"गुरु अनुराग भरतपर देखी। राम हृदय आनन्द विसेषी॥ भरतहि धरम धुरन्धर जानी॥ निज सेवक तन मानस बानी॥ बोले गुरु आयसु अनुकूला। बचन मजु मृदु मंगल मूला॥ नाथ सपथ पितु चरन दोहाई। भयउ न भुवन भरत सन भाई॥ जो गुरु पद अंबुज अनुरागी। ते लोकहुँ वेदहुँ बड़ भागी॥ राउर जापर अस अनुरागू। को कहि सकइ भरत कर भागू॥

लखि लघु बन्धु बुद्धि सकुचाई। करत बदन पर भरत बड़ाई॥ भरत कहहिं सोइ किये भलाई। अस कहि राम रहे अरगाई॥" (२, २५९, १-८)।

ये तीनों विस्तार मौलिक हैं और 'रामचरितमानस'के पूर्व किसी राम-कथा ग्रन्थमें नहीं मिलते। भरतके प्रति रामके प्रेमका यह विकास तुलसीदासकी विशेषता है और पूरे 'रामचरितमानस'में उन्होंने इसका निर्वाह भलीभाँति किया है। भरत ननिहालसे लौटते हैं तो कौशल्या उनसे मिलनेके लिए दौड़ पड़ती हैं और उनके स्तनोंसे दूधकी धारा बहने लगती है—"भरतहि देखि मातु उठि धाई। मुरछित अवनि परी झइँ आई॥ सरल सुभाय माय हिय लाये। अति हित मनहुँ राम फिर आये॥ भेटेउ बहुरि लषन लघु भाई। सोक सनेह न हृदय समाई॥ देखि सुभाउ कहत सब कोई। राम मातु अस काहे न होई॥" (२, १६४, १-२. १६५, ३)। राम-माताका यह चित्र 'अध्यात्म रामायण'में भी नहीं है, यद्यपि उसमें भरतके प्रति कौसल्याकी वह संकीर्ण-हृदयता भी नहीं है, जो 'वाल्मीकि-रामायण'में पायी जाती है। 'वाल्मीकि-रामायण'में तो कौसल्या भरतसे कहती है, "यह शत्रुहीन राज्य तुमको मिला, तुमने राज्य चाहा और वह तुम्हें मिला। कैकेयीने बड़े ही निन्दित कर्मके द्वारा इस राज्यको राजासे पाया है" धन धान्यसे युक्त हाथी घोड़े और रथोंसे पूर्ण यह विशाल राज्य कैकेयीने राजासे लेकर तुमको दे दिया है।" इस प्रकार अनेक कठोर वचनोंसे कौसल्याने भरतका तिरस्कार किया, जिनसे वे घावमें सुई छेदनेके समान पीड़ासे दुखी हुए (२, ७५, १०-१७)।

इसी प्रकार भरत, सीता, कैकेयी और कथाके अन्य प्रमुख पात्रोंमें भी तुलसीदासने ऐसे सुधार किये हैं कि वे सर्वथा तुलसीदासके हो गये हैं। इन चरित्रोंमें मानवताका जो निष्कलुष किन्तु व्यावहारिक रूप प्रस्तुत किया गया है, वह न केवल तत्कालीन साहित्यमें नहीं आया, तुलसीके पूर्व राम-साहित्यमें भी नहीं दिखाई पड़ा। कदाचित् इसीलिए तुलसीदासके 'रामचरितमानस'ने वह लोकप्रियता प्राप्त की, जो तबसे आज तक किसी अन्य कृतिको नहीं प्राप्त हो सकी। भविष्यमें भी इसकी लोकप्रियतामें अधिक अन्तर न आयेगा, दृढतापूर्वक यह कहना तो किसीके लिए भी असम्भव होगा किन्तु जिस समय तक मानव जाति आदर्शों और जीवन-मूल्योंमें विश्वास रखेगी, 'रामचरित-मानस'को सम्मानपूर्वक स्मरण किया जाता रहेगा, यह कहनेके लिए कदाचित् किसी भविष्यत्-वक्ताकी आवश्यकता नहीं है। —मा० प्र० गु०

रामदहिन मिश्र—आधुनिक काव्यशास्त्रियोंमें अग्रणी रामदहिन मिश्रका जन्म चैत्र-पूर्णिमा, स० १९४३ वि० (सन् १८९६ ई०)में ग्राम पथार, जिला आरा (बिहार) में एक शाकद्विपीय परिवारमें हुआ था। इनका परिवार प्राचीन-कालसे अपनी विद्वत्ताके लिए प्रसिद्ध रहा है। मिश्रजीके पिता सिद्धेश्वर मिश्र डुमराँव राज्यके ज्योतिषी थे। मिश्रजीकी प्रारम्भिक शिक्षा घरपर ही हुई। डुमराँवमें साहित्य और संस्कृत-व्याकरणका अध्ययन किया तथा टेकरीकी संस्कृत पाठशालासे उपाधि परीक्षा उत्तीर्ण की। बादमें काशी जाकर व्याकरण, न्याय, वेदान्त और अंग्रेजी का अध्ययन किया।

'बिहार बन्धु'में प्रथम लेखके प्रकाशन (१९०७ ई०) से इनका साहित्यिक जीवन प्रारम्भ हुआ। इन्होंने सन् १९१३ ई० में अपने प्रकाशन ग्रन्थमाला कार्यालयकी स्थापना की। १९२८ ई० तक सरकारी नौकरी (अध्यापन) और प्रकाशन व्यवसाय साथ-साथ चलाते रहे, किन्तु उसके बाद नौकरी छोड़कर अपना सारा समय प्रकाशन व्यवसाय को देने लगे। १९३२ ई० मे बनारसमें हिन्दुस्तानी प्रेस की स्थापना की। १९३७ ई०से 'किशोर'का सम्पादन और प्रकाशन प्रारम्भ किया। १९४३ ई० से प्रकाशन-भार अपने पुत्रपर छोड़कर एकान्त-रूपसे साहित्य साधनामें प्रवृत्त हुए। १ दिसम्बर १९५२ ई० को बनारसस्थित अपने मकानमें इनका स्वर्गवास हुआ।

इनके प्रमुख ग्रन्थ निम्नलिखित हैं: १. 'काव्यालोक' (द्वितीय उद्योत, १९४४ ई०) २. 'काव्य-दर्पण' (१९४७ ई०), ३. 'काव्यमें अप्रस्तुत योजना' (१९५० ई०), ४. 'काव्य विमर्श' (१९५१ ई०)। इन सबका प्रकाशन ग्रन्थमाला कार्यालय, पटनासे हुआ है। उनका 'काव्य-दर्पण', 'काव्य प्रकाश' और 'साहित्य दर्पण'की तरहकी पुस्तक है, जिसमें शक्ति, रस, ध्वनि, गुण, दोष, रीति, अलंकार इत्यादिका विवेचन किया गया है और आधुनिक काव्यसे परिश्रम-पूर्वक उनके उचित उदाहरण दिये गये हैं। 'काव्यालोक' मे लक्षणा, व्यंजना, ध्वनि आदिके भेदोपभेदोंकी सूक्ष्म व्याख्याकी गयी है। 'काव्य-विमर्श'में साहित्य, काव्य, कवि, प्राचीनवाद, नवीनवादका विवेचन है। इस प्रकार मिश्रजीने काव्य-शास्त्रके सभी अंगोंकी पूर्ण और सूक्ष्म विवेचना करनेका प्रयत्न किया है। १९५१ ई० मे बिहार सरकारने ताम्रपत्र और १५०० रुपयेका पुरस्कार देकर इनका सम्मान किया।

रामदहिन मिश्रका साहित्यिक व्यक्तित्व उनके काव्य-शास्त्रीय अध्ययन-अनुशीलनमें ही परिलक्षित होता है। मिश्रजीके पूर्वसे ही हिन्दी-गद्यमें काव्यशास्त्रीय विषयोंपर पुस्तकें लिखनेका कार्य चल रहा था। लाला भगवानदीन, अर्जुनदास केडिया, कन्हैयालाल पोद्दार, जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' आदिने इस दिशामें काफी कार्य किया था। लेकिन आधुनिक युगके साहित्यको ध्यानमें रखते हुए काव्यशास्त्र पर पुनः नये ढंगसे (पाश्चात्य काव्यशास्त्रको भी ध्यान में रखकर) विचार करनेका प्रयत्न अपेक्षाकृत गम्भीर रूपमें मिश्रजीने ही प्रारम्भ किया। यह बात दूसरी है कि सम्पूर्ण पाश्चात्य काव्य-चिन्तनकी समीक्षा करते हुए उसे प्राचीन भारतीय रसवादमें ही मिश्रजीने जोड़ दिया है। इनका पाश्चात्य और पौर्वात्य साहित्य चिन्तनका तुलनात्मक अध्ययन अपने आपमें महत्त्वपूर्ण है क्योंकि आधुनिक जीवनपर पड़नेवाले विविध दबाओंके फलस्वरूप जीवन की नवीन पद्धति और दिशाको ध्यानमें रखते हुए नवीन साहित्य-चिन्तनका हिन्दीमें उस समय बीज ही पड़ा था। अतः मिश्रजीसे अधिक आशा करना न तो न्यायसंगत था और न वाछनीय।

[सहायक ग्रन्थ—किशोर—श्रद्धांक, अंक ४-५ सन् १९५३

ई०), 'नारी जीवन' (१९४६ ई०), 'नारी' (१९४६ ई०), 'कन्या' (१९४३ ई०), 'आनन्दनिकेतन' (१९४१ ई०), 'घरकी रानी' (१९४१ ई०), 'नारी : गृहलक्ष्मी और कल्याणी', 'नारी जीवन—कुछ समस्याएँ' प्रमुख हैं। 'गान्धी वाणी' (१९४२ ई०) 'गान्धीकी राह' (१९६१ ई०) 'युगाधार गान्धी' (१९४८ ई०) उनके गान्धीवादी दृष्टिकोण की परिचायक पुस्तकें हैं। 'योगके चमत्कार' (१९३८ ई०) उनके योगसम्बन्धी विश्वासको बल देती हैं। 'फोर्मेज एण्ड पर्मनेलिटीज इन ब्रिटिश पॉलिटिक्स', उनकी अंग्रेजी रचना है।

रामनाथ 'सुमन' किसी भी कथा, जीवनी अथवा निबन्ध को भावुकताका, कवित्वका, रसमयताका एक पुट देते हैं। विचार और चिन्तनके क्षणोंमें भी उनके गद्यमें काव्य-स्फूर्ति बनी रहती है। सहज, प्रांजल एवं ललित भाषाके वे धनी हैं। —ह० दे० बा०

रामनारायण मिश्र—इन्होंने स्वयं अपनी जन्मतिथिके विषय में जो विवरण दिया है, उसके अनुसार इनका जन्म सन् १८७६ ई० में दिल्लीमें हुआ। मृत्यु सन् १९५३ ई० काशीमें हुई। इनके पूर्वज अमृतसरमें रहते थे। इनके मामा (डा०) धन्नूलाल इन्हें इनके माता-पिता सहित काशी ले आये (इन्हीं डा० धन्नूलालके नामसे नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा विज्ञानकी सर्वोत्तम पुस्तकपर पुरस्कार दिया जाता है)। काशी आनेके बादसे ये वहीं रहने लगे। क्वींस कालेजमें इनकी शिक्षा-दीक्षा हुई। विद्यार्थी जीवन समाप्त करनेके बाद ये शिक्षा-विभागमें सब-डिप्टी-इंस्पेक्टर हो गये। फिर इन्होंने प्रधान शिक्षा संचालक, डिप्टी-इंस्पेक्टर, हेडमास्टर और प्रिंसिपल आदि पदोंपर कार्य किया और असाधारण प्रबन्धपटुताका परिचय दिया। सामाजिक, सांस्कृतिक और शिक्षासम्बन्धी कार्य ये जीवन भर रुचिसे करते रहे। इन्होंने अनेक कृतियोंकी रचना की, जिनमें 'महादेव गोविन्द रानाडे', 'यूरोपमें छः मास', 'बालोपदेश' तथा 'भारतीय शिष्टाचार' आदि विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं। ये नागरी प्रचारिणी सभा, काशीके संस्थापक-त्रय—श्यामसुन्दर दास, शिवकुमार सिंह तथा रामनारायण मिश्र—मे एक थे। अपने पदसे अवकाश ग्रहण करनेके बाद भी ये सभाके किसी-न-किसी पदाधिकारीके रूपमें उससे जीवन भर सम्बद्ध रहे। इस प्रकारसे हिन्दी-भाषाके प्रचार-प्रसारका मार्ग प्रशस्त करनेमें इनका महत्त्वपूर्ण योग है। सन् १९१९ ई० मे इन्होंने विदेश यात्रा की तथा यूरोपके अनेक देशोंमे भ्रमण करके वहाँकी शिक्षा-पद्धतियोंका अध्ययन किया। स्त्री-शिक्षाके प्रचारमे भी इन्होंने सक्रिय सहयोग दिया। इन्हें दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सम्मेलन (मद्रास) द्वारा सन् १९३२ ई० मे, अखिल भारतीय आर्यकुमार सम्मेलन (मुरादाबाद) द्वारा १९४४ ई० में तथा राष्ट्रभाषा सम्मेलन (लाहौर) द्वारा १९४६ ई० में सम्मानित किया गया। १९४८ ई० में इन्हें हिन्दी साहित्य सम्मेलन (प्रयाग) ने 'साहित्य वाचस्पति' की उपाधि प्रदान की। 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका'ने इनकी पुण्य स्मृतिमें 'हीरक जयन्ती अंक' प्रकाशित किया। आपकी कृतियाँ नागरिकता, स्वदेशभक्ति तथा चरित्र निर्माणकी प्रेरणा देती है और सहज सात्त्विकताकी भावना भरती हैं। हिन्दीको राष्ट्रभाषाका स्थान दिलाने तथा उसके स्वरूप-विकास एवं प्रचार-प्रसारमें आपका विशिष्ट योग है। —प्र० ना० टं०

रामपूजन तिवारी—जन्म १९१४ ई० में जिला शाहाबाद-में। अनेक वर्षोंसे हिन्दी भवन, शान्तिनिकेतनमें हैं। सूफी मतके सम्बन्धमें आपका कार्य विशेष महत्त्वपूर्ण है। इस क्षेत्रमें 'सूफी मत : साधना और साहित्य' एक प्रमाणिक कृति मानी जाती है। इधर ब्रजबुलिसे सम्बद्ध एक अध्ययन और प्रकाशित किया है। —सं०

रामप्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी'—जन्म २८ जनवरी, १९१३ ई० गढ़वाल (उत्तरप्रदेश) मे। शिक्षाके बाद ही आपने हिन्दी पत्रकारिताके क्षेत्रमे प्रवेश किया। लगभग २० पुस्तकोंके आप लेखक है। इस समय हिन्दी साहित्य सम्मेलनके परीक्षा विभागमें सहायक रजिस्ट्रार हैं। प्रारम्भमें तो आप विशुद्ध मांसल सौन्दर्यकी पार्थिव अपीलवाले कहानी लेखक थे किन्तु बादमें कुछ प्रगतिवादी विचारधारासे प्रभावित होनेके कारण आपके विचारोमें मोड़ आया। फिर आपने कुछ सामाजिक यथार्थ पर आधारित कहानियाँ और उपन्यास भी लिखे। कुछ दिनों आपने अखिल भारतीय ब्वॉय स्काउटकी मुखपत्रिका 'सेवा'का भी सम्पादन किया था।

'पहाडी'के उपन्यासोंका शिल्प और कथ्य बहुत कुछ एक अच्छे उपन्यासकी प्राथमिक सामग्री होकर रह गया है। यद्यपि 'पहाडी'के उपन्यासोंमे हमे यथार्थके प्रति जागरूकता दीख पडती है किन्तु उस यथार्थका गलत मोह और गलत आग्रह हमें उनके उपन्यासोंमें बराबर मिलता रहा है। यही कारण है कि 'पहाडी'की लेखनी भी इधर कुछ वर्षोंसे शान्त और मौन है। मोहका भ्रम जब टूटता है तो दृष्टि भी पथरा जाती है। वही दशा हमे 'पहाडी'की कृतियोंमें भी मिलती है। उपन्यास इन्हीं कारणोंसे सुन्दर और रोचक कृति होनेसे वंचित रह गये है। कही-कही तो ऐसा भी लगता है कि लेखकने एक बड़े चरित्रको उठाकर एकदम तोड-मोड कर रख दिया है, जैसे 'सराय'की रेखा।

कहानियाँ—विशेषकर 'हिरनकी आँखें' जैसी कहानियाँ मांसलताकी गतिशील जीवन्त दृष्टि न होनेके कारण केवल उत्तेजनावर्धक कहानियाँ बनकर रह गयी हैं। मांसलता अपनेमें बुरी चीज नही है किन्तु प्रश्न यहाँ आकर टिकता है कि उस मांसल सौन्दर्यको कौन वहन कर रहा है।

'पहाडी'की भाषा भी इसी प्रकार उखडी-उखडी सी है। उसमे शक्ति नहीं लगती। लगता है 'पहाड़ी' जिस भाषाका आधार लेकर कहानियाँ लिख रहे है, उसमें जीवनके तत्त्वों-को समेटनेकी क्षमता नही है। आपके प्रकाशित ग्रन्थोंकी सूची इस प्रकार है—'हिरनकी आँखें' (१९३९), 'चलचित्र' (उपन्यास—१९४९), 'छायामें' (कहानियाँ—१०४३), 'निर्देशक' (उपन्यास—१९४६), 'तूफानके बाद' (कहानी संग्रह—१९५३), 'मालवती' (कहानी संग्रह—१९५८), 'सराय' (उपन्यास—१९४६)। —ल० कां० व०

रामप्रसाद 'निरंजनी'—हिन्दी खड़ीबोली-गद्यके इतिहासमें

रामप्रसाद 'निरंजनी' एक बहुत बड़े सत्यके साक्षी-रूपमें उपस्थित हैं। ग्रियर्सन और उनके अनुयायियोंकी यह मान्यता कि हिन्दी खड़ीबोली-गद्यका आरम्भ फोर्ट विलियम कालेजकी छायामें लल्लू लालके 'प्रेम सागर'से हुआ, उपहासास्पद प्रतीत होती है, जब हम रामप्रसाद 'निरंजनी'के गद्यपर विचार करते हैं। रामप्रसाद 'निरंजनी' पटियाला दरबारके आश्रित थे और महारानीको कथा बाँचकर सुनाया करते थे। इन्होंने सन् १७४१ ई० में 'भाषा योग वासिष्ठ'की रचना की। फोर्ट विलियम कालेजमें हिन्दुस्तानी विभागकी स्थापना सन् १८०३ ई० मे हुई थी। इस प्रकार लल्लू लालसे ६२ वर्ष पूर्व ही इन्होंने उनसे अधिक व्यवस्थित और प्रौढ़ गद्यका उदाहरण प्रस्तुत किया था। इनका झुकाव संस्कृतकी तत्समपदावलीकी ओर है। इनकी भाषामें उर्दू-फारसीका कदाचित् ही कोई शब्द दिखाई पड़े। 'भाषा योग वासिष्ठ'का विषय आध्यात्मिक है; इसलिए उसमें एक प्रकारकी पारिभाषिकता भी है किन्तु गद्य-विधान कहीं भी शिथिल नहीं होने पाया है। भाषामें थोड़ा-बहुत पण्डिताऊपन अवश्य है। "आप सब तत्त्वों और सब शास्त्रोंके जाननहारे हौ", "समझायके कहौ", इस प्रकारके प्रयोग मिल जाते हैं किन्तु आजसे २२० वर्ष पूर्व पूर्ण परिमार्जित गद्यको सम्भावना नहीं की जा सकती। अब तककी प्राप्त सामग्रीके साक्ष्य पर यह निर्विवाद रूपसे कहा जा सकता है कि 'भाषा योग वासिष्ठ' परिमार्जित खड़ीबोली गद्यकी प्रथम पुस्तक है और रामप्रसाद 'निरंजनी' हिन्दीके प्रथम प्रौढ़ गद्य-लेखक हैं। आपकी भाषा 'शृंखलाबद्ध साधु और व्यवस्थित है। इस दृष्टिसे हिन्दी गद्यके विकासमें आपका स्थान अन्यतम है। —रा० च० ति०

रामप्रसाद त्रिपाठी—प्रसिद्ध भारतीय इतिहासविद्। जन्म १८९० ई०में। प्रयाग विश्वविद्यालयके इतिहास-विभागके अध्यक्ष रहे, फिर सागर विश्वविद्यालयके उपकुलपति। हिन्दी साहित्यमें प्रारम्भसे ही अनुराग रहा है। ब्रजभाषा मे काव्य रचना करते रहे। ब्रज-साहित्य मण्डलके मैनपुरी अधिवेशनके अध्यक्ष थे। सागर विश्वविद्यालयसे अवकाश ग्रहण करनेके उपरान्त कई वर्षों तक उत्तर प्रदेशकी हिन्दी समितिके अध्यक्ष रूपमें विविध विषयोंपर प्रामाणिक पुस्तकें लिखवाने और प्रकाशित करनेकी योजना बनायी और उसे कार्य रूपमें परिणत किया। सम्प्रति आप नागरी प्रचारिणी सभा, काशीके तत्वावधानमें प्रकाशित होने वाले 'हिन्दी विश्व कोश'के प्रधान सम्पादक हैं। —सं०

रामप्रसाद—उन्नीसवीं शताब्दीमें अयोध्याके एक पहुँचे हुए रामभक्त साधु थे। इनकी स्फुट रचनाएँ अयोध्यामें बहुत प्रचलित हैं। सीधी-सादी भाषामें मनोभाव व्यक्त कर देते थे। जैसेः—"धनि धनि केसवा कटत कलेसवा सेवत जाहि महेसवा रे। राम प्रसाद प्रहलदवा कारन रघवा होइगा बघवा रे॥" —स०

रामप्रिया शरण—ये मिथिलानिवासी रसिक रामभक्त थे। इनकी कुटी उक्त प्रदेशके माधोपुर ग्राममें बताई जाती है। इनके दीक्षा-गुरु नेह कली नामक कोई सखी भावोपासक भक्त थे, जो मिथिलाके ही रहने वाले थे। ये अपनेको भाव से सीताजीकी बहन मानते थे। इस सम्बन्धका निर्वाह इन्होंने अयोध्यामें कुछ दिनों रहकर किया था। इन्होंने रामायणके आदर्शपर 'सीतायन'की रचना १७०३ ई०में की थी। इसके अतिरिक्त इनके कुछ फुटकर छन्द भी प्राप्त हुए हैं। शृंगारी रामोपासकोंकी परम्परामें 'सीतायन'की बाल एवं कैशोर लीलाओंके ही ध्यान तथा गानका विधान है। इनकी कृतियोंमें इस नियमका पालन साम्प्रदायिक निष्ठाके साथ हुआ है। इनकी रचनाओंमें केवल 'सीतायन' का मधुरमाल काण्ड ही १८९७ ई०में लखनऊ प्रिंटिंग प्रेस से प्रकाशित हुआ था। —भ० प्र० सिं०

रामरखसिंह सहगल—जन्म १८९६ ई०में लाहौरके पास रखटेढा नामक गाँवमें। मुख्य कार्यक्षेत्र प्रयाग रहा। १९२२ ई०में अपना प्रथम पत्र 'चाँद' बिना किसी आर्थिक सहायताके निकाला। इसके बाद 'चाँद'का उर्दू संस्करण तथा 'भविष्य' नामक साप्ताहिक और दैनिक दोनों निकाले। इसके पश्चात् 'कर्मयोगी' मासिक निकाला। 'चाँद' कार्यालय क्रान्तिकारी विचारों और व्यक्तियोंका केन्द्र बन गया, जिसके कारण आप कई बार सरकारी कोपके भाजन बने। १९५२ ई०में आपका देहान्त हो गया। —सं०

राम-रहीम—राधिकारमण प्रसाद सिंह (१८९१ ई०) की प्रथम औपन्यासिक रचना है। इसका प्रथम संस्करण १९३५ ई० में प्रकाशित हुआ था। आमुख—दो शब्द—के अनुसार लेखकके शब्दोंमें इस उपन्यासमें रोजमर्रेकी एक दिलचस्प कहानीकी टेक लेकर धर्म और समाजके तमाम कच्चे चिट्ठे खोलकर रख देनेकी कोशिश की गयी हैं। इसमें इस युगके आचार-विचार और पुकारको दो जीती-जागती स्त्रियों (बेला और बिजली) के जीवन पटपर प्रस्फुटित करनेका प्रयास किया गया है। कलाकी दृष्टिसे 'राम-रहीम' एक सतर्क कृति है। कथानक-संघटन तथा चरित्रांकनमें लेखकको सफलता मिली है। इस कृतिका मूल उद्देश्य सामाजिक तथा सुधारवादी है। इसमें वर्त्तमान भौतिकता तथा हिन्दू समाजमें व्याप्त धार्मिक अन्धविश्वासोंकी आलोचना की गयी है। भाषा-शैली व्यावहारिक तथा प्रवाहयुक्त है। कुछ भावुकताप्रधान अंश, संवाद तथा वर्णन, इतने विस्तृत हो गये है कि यत्र-तत्र कथा-रसमें बाधा पडने लगती है। लेखकके अन्य उपन्यासोंकी तुलनामें यह रचना अधिक लोकप्रिय हुई है। —र० भ०

रामलला नहछू—यह रचना गोस्वामी तुलसीदास की है। इस रचनाके दो पाठ प्राप्त हुए हैं:—एक वह, जो प्रकाशित मिलता है, जिसमें ४० द्विपदियाँ है, और दूसरा उससे छोटा जिसकी अभी तक एक ही प्रति मिली है और जिसमें केवल २६ द्विपदियाँ हैं और दोनोंमें समान द्विपदियाँ केवल १२ है। यह रचना सोहर छन्दोंमें है और रामके विवाहके अवसरके नहछूका वर्णन करती है। नहछू नख काटनेकी एक रीति है, जो अवधी क्षेत्रोंमे विवाह और यज्ञोपवीतके पूर्व की जाती है। यह विशेष रूपसे नाई या नाइनके नेग-चारसे सम्बन्धित होती है। नख काटनेपर उसे नेग-चार दिया जाता है। यह रचना अवधीमें है और सरल स्त्री-लोकोपयोगी शैलीमें प्रस्तुत की गयी है।

इसमें जिस नहछूका वर्णन हुआ है, वह अवधपुरमें

होता है : "आजु अवधपुर आनन्द नहछु राम कहो" (छन्द १२); "कोटिन्ह बाजन बाजहिं दसरथके गृह हो" (छन्द २), किन्तु रामविवाहसे पूर्व ही विश्वामित्रके साथ चले गये थे, जहाँ उनका विवाह हुआ, इसलिए इस रचनाके सम्बन्धमें एक मत यह भी रहा है कि इसमें यज्ञोपवीतके अवसरका नहछू वर्णित हुआ है किन्तु इसमें रामके लिए 'वर' और 'दूलह' शब्द प्रयुक्त हुए हैं (छन्द ९, १०, १९) और इसमे मायन (मातृका पूजन) का भी वर्णन हुआ है, जो विवाहके अवसरपर होता है (छन्द १९)। मायनमें पावनी जातियोंके स्त्री-पुरुष अपने उपहार लेकर आते हैं और यथोचित पुरस्कार पाते है। इस रचनामे भी लोहारिन बरायन, अहीरिन दहेडी, तंबोलिन बीडा, दरजिन दूल्हेके लिए जोड़ा-जामा, मोचिन पनही और मालिन मौर लाती है (छन्द ५-८)। इसलिए इसमें सन्देह तनिक भी नहीं है कि मुद्रित पाठमे वर्णित नहछू विवाहसे सम्बन्धित है। मुद्रित पाठमे इन पावनी जातियोंकी स्त्रियोंके हाव-भाव-कटाक्षादिका भी वर्णन किया गया है और दशरथ आगत अहीरिनके यौवनपर मुग्ध दिखाये गये हैं (छन्द ५-८)। पुनः इसमे कौसल्या की किसी जेठीका भी उल्लेख किया गया है, जिसके अनुशासनमें वे नहछू कराती हैं (छन्द ९)।

जो छोटा पाठ प्राप्त हुआ है, उसमे न मायन है और न यह हाव-भाव कटाक्षादिका वर्णन, दशरथका चरित्र-शैथिल्य और कौसल्याका किसी जेठीसे अनुमति प्राप्त करना भी नहीं है, शेष उपर्युक्त वर्णन—अयोध्यामे नहछूका होना, और उसके प्रसंगमे नाइनके द्वारा रामका नख काटा जाना उसमे भी है। उसमें कहा गया है कि जनक और कौसल्या को लगाकर गाली भी गाई जाती है। अतः यह प्रकट है कि इस पाठके अनुसार भी नहछू अयोध्यामें होता है और वह विवाहके पूर्व का है।

इन तथ्योंपर विचार करनेपर मुद्रित पाठ तुलसीदासका ज्ञात नहीं होता, अमुद्रित छोटा पाठ ही उनका हो सकता है किन्तु यह छोटा पाठ भी कदाचित् उस समयका होना चाहिए, जब उन्हे कथाके सुजन समाजमे प्रचलित रूपको अक्षुण्य रखनेके लिए कोई ध्यान न रहा होगा। उन्होने रामके विवाहका वर्णन अपनी राम-कथाविषयक शेष सभी रचनाओंमे किया है किन्तु अवधपुरमे रामके नहछू होने का उल्लेख किसी भी अन्य रचनामे नहीं किया है। इसलिए यह रचना अपने छोटे पाठमे भी उनकी प्रारम्भिक रचनाओंमे से ही हो सकती है। उनकी ज्ञात तिथिवाली रचनाएँ 'रामचरितमानस' (सं० १६३१) तथा 'रामाज्ञा प्रश्न' (सं० १६२१) है, अतः इसे यदि हम 'रामाज्ञा प्रश्न'से भी कमसे कम पाँच वर्ष सं० १६१६ के लगभग की रचना मानें, तो सम्भव है हमारा अनुमान वास्तविकता के निकट हो। रचनाकी शिथिल और अपरिपक्व शैली भी इसे तुलसीदासकी अन्य स्वीकृत रचनाओंसे पूर्वका बताती हैं। —मा० प्र० गु०

रामलोचन शरण–जन्म मुजफ्फरपुर (बिहार)के राधापुर गाँवमें १८८९ ई० मे हुआ था। वे बिहार प्रदेशके लेखक ही नहीं, प्रमुख प्रकाशक तथा साक्षरता आन्दोलनके प्रचारक भी हैं। वस्तुतः सन् १९२० ई० से लेकर सन् १९४० ई०तक बिहार प्रदेशमें हिन्दीकी साहित्यिक गतिविधियोंमें उनकी गहरी दिलचस्पी रही है। वे अपने आपमें एक व्यक्ति नहीं, संस्था रहे हैं। उनका वास्तविक महत्त्व उनके लेखनमें न होकर सक्रिय साहित्यिक कार्यकर्ता और संयोजक होनेमें है। 'पुस्तक भण्डार' लहेरिया सराय, पटना नामक प्रसिद्ध प्रकाशन संस्थाके वे स्वामी है। इस प्रकाशन संस्थाका प्रारम्भ उन्होंने १९१६ ई० में किया था, जब कि वे गया जिला स्कूलमें हिन्दीके शिक्षक थे। तबसे इस संस्थाके माध्यमसे हिन्दीके प्रचार-प्रसारसे लेकर उच्च कोटिके साहित्य-प्रकाशन तकका प्रभूत काम हुआ है। रामलोचन शरणजीने इस भण्डारकी ओरसे ही हिन्दीका प्रसिद्ध बाल मासिक 'बालक' निकाला, जिसने कि बाल-साहित्यके क्षेत्रमें ऐतिहासिक महत्त्वका कार्य किया। रामलोचनजी स्वयं इसका सम्पादन करते थे। प्रारम्भमें उन्होंने बिहारमे हिन्दीमें भाषागत शुद्धता लानेकी वैसी ही चेष्टाकी थी जैसी कि महावीरप्रसाद द्विवेदीने एक व्यापक क्षेत्रमे की थी। उन्होंने बाल-साहित्यसे सम्बन्धित बहुत सी पुस्तकें लिखी है। उनकी सेवाओंके उपलक्ष्यमें १९४२ ई० में उन्हें एक अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंट किया गया था। रामलोचनजीने दो सौसे उपर पुस्तकें लिखी या सम्पादित की हैं—इनमें अधिकांशतः शिक्षाप्रद या बाल-साहित्यसम्बन्धी हैं। तुलसीदासकी 'विनयपत्रिका' उन्होने सम्पादित करके प्रकाशित की तथा 'रामचरितमानस'का मैथिली एवं नेपालीमें अनुवाद किया। 'गान्धीजीके पदचिह्नो पर' तथा 'योग और नयी प्रवृत्तियाँ' संख्यामालामे उनकी अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। —दे० शं० अ०

रामविलास शर्मा–जन्म १९१२ ई० मे। हिन्दीमें प्रगतिवादी समीक्षा-पद्धतिके एक प्रमुख स्तम्भ। अनेक वर्षोंसे आगराके एक कॉलेजमे अंग्रेजी विभागमे प्राध्यापक हैं। अपने उग्र और उत्तेजनापूर्ण निबन्धोंसे आपने हिन्दी समीक्षाको एक गति प्रदान की है। सम्पूर्ण साहित्य—नये और पुरानेको मार्क्सवादी दृष्टिकोणसे देखने-परखनेका प्रस्ताव आपने बड़ी क्षमताके साथ किया है। सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनो समीक्षा-पद्धतियोंसे अपने विचारोंको पुष्ट करनेका यत्न किया और कर रहे हैं। 'समालोचक' नामक एक पत्र भी आपके सम्पादकत्वमे प्रकाशित हुआ। आपकी समीक्षा-कृतियोमे विशेष उल्लेखनीय है—'प्रेमचन्द और उनका युग', 'निराला' (१९४८ ई०), 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र', 'प्रगति और परम्परा', 'भाषा, साहित्य और संस्कृति' (१९५४ ई०), 'भाषा और समाज' (१९६१ ई०)।

रामविलास शर्माने यद्यपि कविताएँ अधिक नहीं लिखीं, पर हिन्दीके प्रयोगवादी काव्य-आन्दोलनके साथ वे घनिष्ठ रूपसे सम्बद्ध रहे हैं। 'अज्ञेय' द्वारा सम्पादित 'तारसप्तक' (१९४३ ई०) के एक कवि-रूपमे आपकी रचनाएँ काफी चर्चित हुई हैं। —स०

रामवृक्ष बेनीपुरी–जन्म–जनवरी १९०२ ई०। जन्मस्थान–ग्राम बेनीपुर, जिला मुजफ्फरपुर (बिहार)। शिक्षा–साहित्य सम्मेलनसे विशारद, १९२० ई० मे मैट्रिक पास करनेसे पूर्व असहयोग आन्दोलनमे भाग लेनेके कारण स्कूली शिक्षाकी परिसमाप्ति। 'रामचरितमानस' जैसे धार्मिक-

साहित्यिक ग्रन्थोंके पठन-पाठन द्वारा साहित्य तथा काव्यके प्रति अभिरुचि उत्पन्न हुई। साहित्य-सेवाके क्षेत्रमें पत्रकारिताके माध्यमसे आये। अब तक कोई एक दर्जन साप्ताहिक, मासिक एवं दैनिक पत्र-पत्रिकाओंका सम्पादन कर चुके हैं। सम्पादनके काल-क्रमके अनुसार कुछ पत्रिकाओंके नाम इस प्रकार हैं—'तरुण भारत' (साप्ताहिक, १९२१ ई०), 'किसान मित्र', (साप्ताहिक, १९२२ ई०), 'बालक' (मासिक, १९२६ ई०), 'युवक' (मासिक, १९२९ ई०), 'लोक संग्रह' और 'कर्मवीर' (१९३४ ई०), 'योगी' (साप्ताहिक,१९३५ ई०), 'जनता'(साप्ताहिक, १९३७ ई०), 'हिमालय', (मासिक, १९४६ ई०), 'नई धारा'(मासिक) तथा 'चुन्नू-मुन्नू' (बालोपयोगी मासिक, १९५० ई०)। 'नई धारा'का सम्पादन अब भी चल रहा है।

रामवृक्ष बेनीपुरी बहुमुखी प्रतिभावाले लेखक हैं। इन्होंने गद्यकी विभिन्न विधाओंको अपनाकर विपुल मात्रामें साहित्य सृष्टि की है। इनकी रचनाओंमें कहानी, उपन्यास, नाटक, रेखाचित्र, संस्मरण, जीवनी, यात्रा-वृत्तान्त, ललित लेख आदिके अच्छे उदाहरण उपलब्ध हो जाते हैं। इनके लेखनका एक भाग बाल-साहित्यके अन्तर्गत आता है। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओंमें सम्पादककी हैसियतसे लिखी गयी इनकी टिप्पणियों तथा अग्रलेखोंकी संख्या भी कम नहीं है। इन कार्योंके अतिरिक्त इन्होंने कतिपय ग्रन्थोंका सम्पादन किया है तथा कुछ टीकाएँ भी लिखी हैं।

रामवृक्ष बेनीपुरकी प्रकाशित तथा अप्रकाशित कृतियोंकी संख्या साठसे अधिक है। 'बेनीपुरी प्रकाशन'के तत्त्वावधानमें इनके समस्त कृतित्वको 'बेनीपुरी ग्रन्थावली'की दस जिल्दोंके अन्तर्गत प्रकाशित करनेकी एक योजना चल रही है। ग्रन्थावलीके प्रथम खण्डके अन्तर्गत इनके शब्दचित्र, कहानियाँ तथा उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं—'माटीकी मूरतें'(१९४१-४५ ई०),'पतितोंके देशमें'(१९३०-३२ ई०), 'लालतारा' (१९३७-३९ ई०), 'चिताके फूल' (१९३०-३२ ई०), 'कैदीकी पत्नी' (१९४० ई०), 'गेहूँ और गुलाब' (१९४८-५० ई०)। ग्रन्थावलीका दूसरा खण्ड नाटकावलीके रूपमें प्रकाशित है। इसमें कुल छोटी-बड़ी बारह नाट्य कृतियाँ हैं—'अम्बपाली' (१९४१-४५ ई०), 'सीताकी माँ' (१९४८-५० ई०), 'संघमित्रा' (१९४८-५० ई०), 'अमर ज्योति' (१९५१ ई०), 'तथागत', 'सिंहल विजय', 'शकुन्तला', 'रामराज्य', 'नेत्रदान' (१९४८-५० ई०), 'गाँवके देवता', 'नया समाज', तथा 'विजेता' (१९५३ ई०)। बेनीपुरीकी अन्य प्रकाशित कृतियोंमें 'विद्यापतिकी पदावली' (सम्पादित), 'बिहारी सतसईकी सुबोध टीका', 'जयप्रकाश' (जीवनी) और 'वन्दे वाणी विनायकौ' (ललितगद्य, १९५३-५४ ई०) विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं।

एक विशिष्ट प्रकारकी अलंकृत भाषा तथा भावुकता-प्रधान शैलीके कारण हिन्दी गद्यके इतिहासमें रामवृक्ष बेनीपुरीका अपना स्थान है। इस प्रकारको भाषा-शैली संस्मरण तथा रेखाचित्रोंके लिए अधिक उपयुक्त होती है और इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि इस दिशामें बेनीपुरी को पर्याप्त सफलता मिली है। इनकी 'माटीकी मूरतें' नामक कृति बहुत प्रसिद्ध है। इसमें संकलित विभिन्न रेखाचित्र (शब्दचित्र) प्रतिदिनके सामाजिक जीवन तथा व्यक्तियोंकी सहज-सरस अनुकृति हैं। इन व्यक्ति-चित्रोंके अंकनमें बेनीपुरीके हृदयने उनका साथ दिया है तथा उनकी "चपल खंजन सी फुदकती भाषा"ने उक्त चित्रोंको अत्यन्त सजीव बना दिया है किन्तु इसी प्रकारकी भाषा-शैलीके कारण उन्हें विचारोंकी गम्भीर अभिव्यक्ति तथा चिंतनके क्षेत्रमें कठिनाई हुई है। उक्त प्रकार की ओजपूर्ण अलंकृत भाषा-शैलीको वे कहीं छोड़ नहीं पाये हैं क्योंकि वह उनके लेखनकी अनिवार्य विवशता है। उनकी शैली कहीं-कहीं उद्बोधन तथा भाषण-शैलीके अनुरूप हो जाती है और उसमें उपदेशात्मकताकी भी प्रवृत्ति पाई जाती है। अस्तु, जब वे विचारों, तर्कों तथा स्थापनाओंके जगत्‌में उतरना चाहते हैं तो अनावश्यक रूपसे भावुकतामें उलझने लगते हैं।

रामवृक्ष बेनीपुरीकी नाट्यकृतियाँ प्रायः ऐतिहासिक कथानकोंपर आश्रित हैं। 'अम्बपाली', 'तथागत' तथा 'विजेता'की कथावस्तु ऐतिहासिक ही है। इन नाटकोंकी रचनामें बेनीपुरीने रंगमंच तथा अभिनयकी सुविधाओंका विशेष ध्यान रखा है। वे नाटकसम्बन्धी 'युगकी माँग'से परिचित हैं कि "नाटक छोटे हों, जो दो ढाई घण्टेमें खेल लिये जा सकें। उतने ही दृश्य हों कि इण्टरवलके समय फिट कर लिये जायें। पात्र-पात्रियोंकी संख्या ऐसी हो कि कुछेक प्रतिभाशील व्यक्तियोंको ही लेकर अभिनय करा लिया जा सके" ('विजेता'की भूमिका)। इस प्रकारके रंगमंचीय दृष्टिकोणके निर्वहनमें बेनीपुरीको पर्याप्त सफलता मिली है किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि भाषा तथा कथोपकथनोंकी दृष्टिसे उन्होंने युगकी माँगपर ध्यान नहीं दिया है। भाषा क्लिष्ट और अव्यावहारिक है एवं कथोपकथन लम्बे हैं और उनमें एक बातके लिए एक भाषण दे डालने की प्रवृत्ति विद्यमान है।

रामवृक्ष बेनीपुरीने अपने संगठनात्मक तथा प्रचारात्मक कार्यों द्वारा भी हिन्दीकी बड़ी सेवा की है। इनका नाम बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलनके संस्थापकोंमें लिया जाता है। ये सन् १९४६ ई० से १९५० ई० तक उसके प्रधान-मन्त्री तथा १९५१ ई० में सभापति रहे हैं। १९२९ ई०में इन्होंने अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनके प्रचार मन्त्रीका भी कार्य किया था। भारतीय स्वाधीनताकी लड़ाईमें इनका योगदान महत्त्वपूर्ण है। १९३० से '४२ ई० तक इनके जीवनका महत्त्वपूर्ण समय जेल-यात्रा करते बीता है।

[सहायक ग्रन्थ—बेनीपुरी ग्रन्थावली, पहला-दूसरा खण्ड।] —र० भ०

रामशंकर व्यास–जन्म सन् १८६० ई० में। इन्होंने कई स्थानोंपर नौकरी की थी और एक रियासतमें मैनेजर भी रहे थे। इन्होंने 'खगोल दर्पण', 'वाक्य पंचाशिका', 'नैपोलियनकी जीवनी', 'बातकी करामात', 'वेनिसका बाँका', 'चन्द्रास्त', 'नूतन पाठ' और 'राय दुर्गाप्रसादका जीवन-चरित्र' नामक पुस्तकोंकी रचना की थी। इन पुस्तकोंके अतिरिक्त इन्होंने बंगलासे सन् १८८६ ई० में 'मधुमालती'

तथा 'मधुमती' का अनुवाद भी किया था। ये 'कविवचन सुधा' तथा 'आर्यमित्र' के सम्पादक भी रहे थे। ये भारतेन्दु हरिश्चन्द्रके अत्यन्त घनिष्ठ मित्रोंमें थे और उन्हें यह उपाधि इन्होंने ही सबसे पहले प्रदान की थी। ये गद्यके बहुत सफल लेखकोंमे थे। इनका देहावसान सन् १९१६ ई० में हुआ। —प्र० ना० टं०

रामशंकर शुक्ल 'रसाल'–जन्म बाँदा जिलेके मऊ ग्राम, १८९९ ई० में। १९२७ ई० मे एम० ए० पास कर आप कान्यकुब्ज कालेज, लखनऊमे अध्यापक हुए। १९३६ ई० में प्रयाग विश्वविद्यालयमे डी० लिट्० की उपाधि प्राप्त की। प्रयाग, सागर और गोरखपुर विश्वविद्यालयोंके हिन्दी विभागमे क्रमशः लेक्चरर, रीडर और प्रोफेसरके रूपमें काम करनेके बाद १९६० ई० मे आपने अवकाश ग्रहण किया। कृतियाँ हैं—'रसालमंजरी', 'उद्धव-शतक' (अप्रकाशित), 'अजसमोचन' (ब्रजभाषा काव्य), 'काव्यपुरुष', 'भोजराज', 'गुरुदक्षिणा' (खड़ीबोलीका काव्य); 'अलंकार-पीयूष' भाग २, 'अलंकार कौमुदी' (काव्यशास्त्र), 'नाट्य-निर्णय' (नाट्यशास्त्र), 'सूर समीक्षा', 'आलोचनादर्श', 'गद्य-काव्यालोक' (आलोचना), 'भाषा शब्द कोश', 'हिन्दी साहित्यका इतिहास', 'साहित्य प्रकाश', 'साहित्य परिचय' (इतिहास), 'रचना-विकास', 'गद्य कुसुमांजली' (निबन्ध), 'आधुनिक ब्रजभाषा काव्य', 'मीरामाधुरी','नूतन ब्रजभाषा-काव्य मंजरी' (संग्रह), 'आगमन और निगमन शास्त्र' भाग २। आप एक सफल अध्यापक, ब्रजभाषा-साहित्यके मर्मज्ञ, काव्यशास्त्रके विशेषज्ञ और प्रतिभासम्पन्न कवि-आचार्य है। आपका 'काव्यादर्श' बहुत कुछ रीतिकालीन कवियों जैसा है। कविताओमे शाब्दिक चमत्कारकी प्रधानता है। शास्त्रीय दृष्टिसे आपने कुछ नवीन अलंकारोंकी उद्भावना भी की है। कोशकारके रूपमे आपकी विशेष उपलब्धि शब्दोंको काव्यपक्तियोंमें उदाहृत करनेकी है। —स० ना० त्रि०

रामसखे–ये १८ वी शतीके उत्तरार्द्धमे जयपुरके एक कुलीन ब्राह्मण कुटुम्बमे उत्पन्न हुए थे। बाल्यकालमे ही इनके हृदयमे रामभक्तिके अंकुर प्रस्फुटित हुए। बडे होनेपर गृह त्यागकर पर्यटन करते हुए ये उडुपी पहुंचे और माध्व सम्प्रदायके तत्कालीन आचार्य वशिष्ठ तीर्थके शिष्य हो गये। उडुपीसे अयोध्या आकर इन्होने कुछ समयतक भजन किया। यहाँसे चित्रकूट गये और बारह वर्ष पर्यन्त अनुष्ठानपूर्वक 'रामनाम'का जप किया। पन्ना नरेश हिन्दूपतिसे इनकी भेंट यही हुई। इसके बाद १७७४ ई०मे ये मैहर चले गये और फिर आजन्म वही रहे। मैहरके महाराज दुर्जनसिंह इनके शिष्य हो गये। इन्होने रामसखेकी प्रधान गद्दी मैहर में स्थापित करायी और अयोध्यामे 'नृत्यराघव कुंज' नामक मन्दिर निर्मित करके इन्हे समर्पित किया। इन दोनो स्थानोंपर इनकी शिष्य-परम्परा अबतक वर्तमान है।

रामसखेकी निम्नलिखित कृतियाँ खोजमें मिली है—'द्वैतभूषण', 'पदावली', 'रूपरसामृत सिन्धु', 'नृत्य राघव-मिलन दोहावली', 'नृत्य राघव मिलन कवितावली', 'रास-पद्धति', 'दानलीला', 'बानी', 'मंगल शतक' और 'राग-माला'। इनकी रचना-शैली प्रौढ और काव्यगुणयुक्त है। कवि होनेके साथ ही ये संगीतशास्त्रके भी पारगत विद्वान् थे।

[सहायक ग्रन्थ—रामभक्तिमें रसिक सम्प्रदाय: भगवतीप्रसाद सिंह।] —भ० प्र० सिं०

रामसतसई–इसके रचयिता रामसहाय दास है। 'शृंगार सतसई', 'रामसप्तसतिका' नामोसे भी यह रचना ख्यात है। यह बिहारीके अनुकरण पर रची गयी है। सन् १८७७ ई०की इसकी प्रतिलिपि उपलब्ध होती है, जिसके आधारपर भारत जीवन प्रेस, काशीमे इसका प्रकाशन हुआ था। श्यामसुन्दर दासने 'सतसई सप्तक' ग्रन्थमें इसे भी प्रकाशित किया है। मिश्रबन्धुओंने इसे 'परमोत्तम शृंगार ग्रन्थ' मानते हुए बताया है कि "इस सरस कविने बिहारीके पैरोंपर पैर रखे हैं" तथा यह रचना बिहारीकी रचनामे मिश्रित होने योग्य है। यह बहुत ही मधुर ग्रन्थ है। रामनरेश त्रिपाठी भी इसके ७०० दोहोंको बिहारी की टक्करका मानते है। श्यामसुन्दर दास इसे मतिराम की रचनाके सदृश सरस तथा स्वाभाविक मानते हैं और इसमे माधुर्य तथा प्रसाद गुणकी प्रचुरता स्वीकार करते हैं। यद्यपि इसमे सर्वत्र सुरुचि नहीं है, तथापि इसकी रसवत्ता असन्दिग्ध है। इसमे भी सन्देह नहीं कि भाव तथा भाषा दोनों ही दृष्टियोंमें ये बिहारीकी रचनासे पर्याप्त रूपमे प्रभावित भी है। शुक्लजीको भी यह स्वीकार है कि "इसके बहुतसे दोहे सरस उद्भावनामे बिहारीके दोहों के पास तक पहुँचते है" किन्तु उनका मत है कि "यह कहना कि ये दोहे बिहारीके दोहोमे मिलाये जा सकते हैं, रसज्ञता और भावुकतासे ही पुरानी दुश्मनी निकालना नही, बिहारीको भी कुछ नीचे गिरानेका प्रयत्न समझा जायेगा।" शब्दोंकी कारीगरी तथा वाग्वैदग्ध्यका अनुकरण करनेपर भी हावोंका सुन्दर विधान, चेष्टाओंका मनोहर चित्रण, भाषाका सौष्ठव, संचारियोंकी व्यंजना—इसमें बिहारीकी रचना जैसी नही है।

[सहायक ग्रन्थ—सतसई सप्तक; क० कौ० (भाग १); हि० सा० इ०; मि० वि०।] —आ० प्र० दी०

रामसहाय दास–ये अस्थाना कायस्थ थे और चौबेपुर, बनारस (उत्तरप्रदेश)के रहनेवाले थे। इनकी रचनाओंसे पता चलता है कि इनके पिताका नाम भवानीदास तथा गुरुका नाम चिन्तामणि था। ये स्वयं महाराज उदित-नारायण सिंह गहरवार, काशी नरेशके आश्रित थे। 'शिवसिंह सरोज'मे सन् १८४५ ई० (सं० १९०१ वि०) मे इनकी उपस्थितिका पता चलता है किन्तु जन्मकालके सम्बन्धमें कहीं कोई उल्लेख नही मिलता। इतिहास-लेखकोंने आपका कविता-काल सन् १८०३ से १८२३ ई०तक माना है। ये स्वभावके बडे विनम्र तथा भक्तहृदय व्यक्ति थे। यही कारण है कि इनकी 'भगत' नामसे प्रसिद्धि हो गयी थी और ये स्वयं भी 'भगत' छापसे रचनाएँ किया करते थे।

'सरोज'में आश्रयदाता तथा उपस्थिति-कालके अतिरिक्त केवल यह और बतलाया गया है कि इन्होंने 'वृत्ततरंगिणी सतसई' नामक पिंगलका बहुत सुन्दर ग्रन्थ बनाया है किन्तु 'मिश्रबन्धु विनोद' मे 'रामसतसई' मात्रका उल्लेख हुआ है और रामनरेश त्रिपाठीने 'कविता कौमुदी' भाग १ में

'शृंगार सतसई'के सिवाय 'वृत्ततरंगिनी', 'ककहरा', 'रामसप्तसतिका' और 'वाणीभूषण'के इनके द्वारा रचे जानेका उल्लेख किया है। इन ग्रन्थोंमेंसे 'रामसतसई' तथा 'शृंगार सतसई' एवं 'रामसप्तसतिका' तीनों एक ही पुस्तकके नाम जान पड़ते हैं और प्रायः लेखकोंने ऐसा स्वीकार भी किया है। 'वाणीभूषण' जैसा नामसे प्रतीत होता है, अलंकारका ग्रन्थ रहा होगा परन्तु अब 'ककहरा'के समान ही अनुपलब्ध है। 'ककहरा' जायसीके 'अखरावट'के समान छोटी-सी पुस्तक मानी गयी है और शुक्लजी इसे इनकी अन्तिम रचना मानते हैं क्योंकि उसमें धर्म और नीतिके उपदेश हैं। 'वृत्ततरंगिनी' नागरी प्रचारिणी सभा, काशीमें अब उपलब्ध है। यह छन्द वर्णनका ग्रन्थ है।

रचनाओंके विषय-विभाजनकी दृष्टिसे रामसहाय दास लक्षणग्रन्थ लेखकके साथ ही लक्ष्यग्रन्थकार ठहरते हैं। विशेषतः इनकी प्रसिद्धि 'रामसतसई'के कारण ही हुई है, अतएव इन्हें मुख्यतः लक्ष्यकारोंमें रखना ही इतिहासकारोंको प्रिय रहा है। शृंगारसम्बन्धी इनकी इस मुक्तक रचनाके आधारपर इन्हें रीतिमुक्त बोधा, असनी तथा बुन्देलखण्डके ठाकुर, द्विजदेव, पजनेस तथा सेवकके साथ रखा जाता है। रीतिकालीन कवियोंमें प्राचीन आधारपर नवीन छन्दोंकी रचना करनेवाले केशवदास, मतिराम, माखन तथा दशरथके साथ रामसहाय दासका नाम ससम्मान लिया जायगा। इनकी यह भी विशेषता स्मरण करने योग्य है कि छन्द-विचारकोंमें केवल इन्होंने ही व्याख्याके लिए सम्पूर्ण ग्रन्थमें वार्ता नामसे गद्यका सहारा लिया है।

[सहायक ग्रन्थ—शि० स०; क० कौ० (भा० १) हि० सा० इ०; हि० सा० बृ० इ० (भाग ६)।] —आ० प्र० दी०

रामसिंह (महाराज)–ये नरवरगढ़ (ग्वालियर) के नरेश और कूर्मवंशी राजा छत्रसिंहके पुत्र थे: "कूरम कुल नरवर नृपति छत्रसिंह परबीन। रामसिंह तिहि तनय यह बरन्यो ग्रन्थ नवीन॥" खोजमें इनकी चार रचनाएँ प्राप्त हुई हैं: (१) 'अलंकार-दर्पण', (२) 'रस-शिरोमणि', (३) 'रस-निवास' और (४) 'रस-विनोद'। पहिली रचनामें अलंकारों और शेष अन्य तीन रचनाओंमें रस—विशेषकर शृंगार-रसका वर्णन किया गया है। रीति-प्रवृत्ति अथवा परम्पराके अनुकूल ही इन रस-ग्रन्थोंमें अन्य रसोंको उतना विस्तारसे स्थान नहीं मिल पाया है, जितना शृंगार-रस और उसके अन्तर्भूत नायिका-भेद को। क्रमसे अन्तिम तीन रसपरक रचनाओंके रचना-काल हैं: सन् १७७३ ई०, १७८२ ई० और १८०३ ई० और अलंकार ग्रन्थ 'अलंकार-दर्पण'का रचना-काल सन् १७७८ ई० है। 'रस-विलास' तथा 'अलंकार-दर्पण'की हस्तलिखित प्रति दतिया-राजके पुस्तकालयमें है। 'अलंकार-दर्पण'का प्रकाशन भी भारत जीवन प्रेस, बनारससे १८९९ ई० में हुआ था। इस ग्रन्थके ३८३ छन्दोंमें केवल अर्थालंकारोंका वर्णन है। रामसिंह अलंकारको काव्यका सहायक तत्त्व मानते हैं। इन्होंने प्रायः 'कुवलयानन्द' का अनुसरण किया है। 'रस-शिरोमणि' २३२ छन्दोंका ग्रन्थ है। इसमें रस-श्रेष्ठ शृंगारका वर्णन बड़े विस्तारसे किया गया है, इसी कारण इसका नाम 'रस-शिरोमणि' रखा गया है। संस्कृतकी रचना 'रसमंजरी'के आधार पर ही इसमें नायिका-भेदका वर्णन किया गया है और शृंगारेतर रसोंको केवल गिना भर दिया गया है।

'रस-निवास' कविका सर्वश्रेष्ठ रस-ग्रन्थ है। इसमें भाव, विभाव, स्थायीभाव, अनुभाव, सात्त्विक एवं संचारी भाव आदि वर्णनोंके साथ और रस और नायिका-भेदका सुन्दर वर्णन किया गया है। यही ग्रन्थ कविके मौलिक चिन्तनका प्रतीक है। कविके द्वारा प्रदत्त लक्षण-उदाहरण बड़े साफ और स्पष्ट है। देव आदि कवियोंकी भाँति ही उसने रसके लौकिक-अलौकिक संज्ञक भेद माने हैं। उसमें लौकिक रसको ही काव्यकी संज्ञा दी गयी है। इसके अतिरिक्त भी कविने स्वनिष्ठ और परनिष्ठ नामसे रसके दो भेद किये हैं। उसके अनुसार रसानुभूतिका आत्मस्थ रूप स्वनिष्ठ और परानुभूत रूप परनिष्ठ रस कहलाता है। रस-वर्णन-प्रसंगमें शान्तरस-वर्णनके पूर्व उसने माया-रसका वर्णन किया है, जिसकी स्थिति अन्यत्र कहीं भी देखने को नहीं मिलती। वास्तवमें उसका समाहार शृंगारादि अन्य लौकिक रसोंमें हो जाता है, इसलिए अलगसे माया-रसकी स्थितिको स्वीकार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। इनके अतिरिक्त कविने रस-दृष्टि, रस-भावका सम्बन्ध, रस-विरोध और अलंकारोंका रस तथा भावोंसे सम्बन्धका सुन्दर और साफ वर्णन किया है। कविके अनुसार रसका निरूपण तीन तरहसे होता है—अभिमुख, विमुख और परमुख। जहाँ रस विभावानुभाव-सपोषित होकर आता है, वहाँ अभिमुख, जहाँ इनमें किसी प्रकारका कोई अभाव होता है, वहाँ विमुख और जहाँ भाव या अलंकारकी प्रधानता होती है, वहाँ परमुख होता है। इस प्रकार कई ऐसी मान्यताएँ हैं, जिनके कारण कविमें मौलिक काव्य-चिन्तनकी दृष्टि माननी पड़ती है। कवित्वकी दृष्टिसे भी इनका काव्य काफी पुष्ट और रमणीय है।

[सहायक ग्रन्थ—मि० वि०; खो० वि० (त्रै० १३); हि० का० शा० इ०; हि० अ० सा०।] —रा० त्रि०

रामाज्ञा द्विवेदी 'समीर'–जन्म २१ नवम्बर, १९०२ ई० को अमिलिया, जिला फैजाबाद (उत्तर प्रदेश)में। आप प्रारम्भसे ही एक प्रतिभासम्पन्न छात्र थे। इन्होंने मुख्यतः शैक्षणिक संस्थाओंमें कार्य किया है। ये अंग्रेजी एवं हिन्दी-भाषा तथा साहित्यके अधिकारी विद्वान् हैं। इन्होंने हिन्दी और अंग्रेजी, दोनों भाषाओंमें पुस्तकें लिखी हैं—'हिन्दी सौरभ' (काव्य—१९२५ ई०), 'अवधी कोश' (१९५५ ई०), 'दूजका चाँद' (अनुवाद—१९२८ ई०)। आपके अनुवाद विशेष सफल हैं। 'अवधी कोश' आपकी आजीवन साधनाका फल और हिन्दी-साहित्यके लिए महती देन है। —स० ना० त्रि०

रामाज्ञा प्रश्न–गोस्वामी तुलसीदासकी यह एक ऐसी रचना है, जो शुभाशुभ फल विचारके लिए रची गयी है किन्तु यह फल-विचार तुलसीदासने राम-कथाकी सहायतासे प्रस्तुत किया है। यह सारी रचना दोहोंमें है, जो सात-सात सप्तकोंके सात सर्गोंमें विभक्त है और प्रत्येक सप्तक सात दोहोंका है। फल-विचारके लिए पुस्तक खोलने पर

जो दोहा मिलता है, उसके पूर्वार्द्धमें राम-कथाका कोई प्रसंग आता है और उत्तरार्द्धमें शुभाशुभ फल। रचना अवधीमें है और तुलसीदासकी प्रारम्भिक कृतियोंमें है। रचना-तिथि इसके निम्नलिखित दोहेमें आती है—"सगुन सत्य ससि नयन गुन अवधि अधिक नय बान। होइ सुफल सुभ जासु जस प्रीति प्रतीति प्रमान ॥" शशि = १, नयन = २, गुण = ६, नय = ४ तथा बाण = ५ और दोनोंका आधिक्य (अन्तर) = १। इस प्रकार रचनाकी तिथि सं० १६२१ है। इसमें स्वभावतः वह परिपक्वता नहीं है, जो 'मानस' अथवा अन्य परवर्ती रचनाओंमें है। प्रबन्ध-निर्वाहमें तो त्रुटि प्रकट है। तीसरे सर्ग तक कथा रामजन्मसे सुन्दर-काण्डके वानर-सम्पाती-मिलन तक आकर लौट पड़ती है और आगेके तीन सर्गोंमें पुनः रामजन्मसे प्रारम्भ होकर सीता-अवनि प्रवेश तक चलती है। सातवाँ सर्ग बहुत स्फुट ढंग पर लिखा गया है, उसके छठे सप्तकमें रामके वनगमनकी कथा आती है किन्तु शेष छः सप्तकोंमें कथा न देकर रामभक्ति मात्रका सहारा लिया गया है।

कथाकी दृष्टिसे यह 'मानस'से कुछ विस्तारोंमें भिन्न है। जैसे इसमें विवाहके पूर्वका राम-सीताका पुष्प-वाटिका प्रसंग नहीं है। धनुर्भंगके बाद राम-विवाहका निमन्त्रण लेकर जनककी ओरसे दशरथके पास शतानन्द जाते हैं। परशुराम-राम-मिलन स्वयंवर-भूमिमें न होकर बारातके लौटते समय मार्गमें होता है। वनवासमें रामका प्रथम पड़ाव तमसा तट पर न होकर सुरसरि तट पर होता है। चित्रकूटमें जनकका आगमन नहीं होता। सीताकी खोजमें जानेपर विभीषणसे हनुमान्‌की भेंट नहीं होती। सेतुबन्धके अवसर पर शिवलिंगकी स्थापनाका उल्लेख नहीं है। अंगदको रावणके पास दूतत्वके लिए नहीं भेजा जाता है। साथ ही, इसमें सीता-रामके अयोध्या लौटने पर सीताके अवनि-प्रवेश तकके कुछ ऐसे कथा-प्रसंग आते हैं, जो 'मानस'में नहीं हैं। जैसे मृत ब्राह्मण बालकको जीवन-दान (६-५१-६), बक-उलूक तथा यती-श्वान विवादोंका समाधान (६-६-१-३), सीता-त्याग और लव-कुश जन्म (६-६-४-६) तथा (७-४) और सीताका अवनि-प्रवेश (६-७-६)। इन अन्तरों पर विचार करनेसे ज्ञात होता है कि कवि पर 'रामाज्ञा-प्रश्न'की रचना तक 'प्रसन्न राघव नाटक', 'हनुमन्नाटक' तथा 'अध्यात्म रामायण'का उतना प्रभाव नहीं था, जितना बादको 'मानस'की रचनाके समय हुआ। 'रामाज्ञा-प्रश्न' पर 'वाल्मीकि-रामायण' तथा 'रघुवंश'का अपेक्षाकृत अधिक प्रभाव ज्ञात होता है।

रचनाकी तिथि निश्चित होनेसे यह ज्ञात होता है कि 'मानस'के पूर्व राम-कथाका कौन सा रूप कविके मानसमें था, इसलिए इसकी सहायता तुलसीदासकी ऐसी रचनाओंके काल-निर्णयमें सहायक हो सकी है, जिनमें रचना-तिथि नहीं आती है। —मा० प्र० गु०

रामानुजलाल श्रीवास्तव—ऊँट उपनाम। जन्म १८९७ ई० में सिहोरा जबलपुर (मध्यप्रदेश) में। आजकल स्वतन्त्र रूपसे जबलपुरमें प्रकाशन-व्यवसाय कर रहे हैं। हिन्दीमें हल्का-फुलका गद्य, मनोरंजन साहित्य एवं हास्य-विनोदके लेखकके रूपमें आपने विशेष योगदान दिया है। जिस समय विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक'का हास्य-प्रधान साहित्य 'माधुरी'में प्रकाशित हो रहा था और टटोलू रामजी टलाकी तथा दुबेजीकी चिट्ठी आदि स्तम्भोंमें स्वर्गीय शर्माजी हिन्दीका नया हास्य शिल्प प्रस्तुत कर रहे थे, उस समय अकबर इलाहाबादी, अजीम बेग चुगताई, रतननाथ सरकार और इसी प्रकारके अन्य हास्य रसके लेखकोंका गम्भीर प्रभाव हमें रामानुजलाल श्रीवास्तवकी कृतियोंमें मिलता है। हास्यमें अधिक हमें उस समयकी मानसिक चेतनाकी झलक मिलती है, जो विनोदप्रियता, व्यंग्य और हास्यमें व्याप्त प्रवृत्तियोंसे बिल्कुल पृथक् थी।

रामानुजलाल श्रीवास्तवकी शैली नितान्त सरल और मुहावरेदार भाषामें बात पैदा करनेकी है। आपके हास्यमें इसीलिए 'बेढब' या 'बेधड़क' जैसी अभिधात्मकता नहीं मिलती। व्यंजनार्थ ही आपकी शैलीका विशेष गुण है। दूसरी विशेषता यह है कि आप सस्ते प्रकारका हास्य न लिखकर सन्दर्भोंके आधारपर हास्य उत्पन्न करनेकी चेष्टा करते हैं। कहानियों या स्केचोंके अतिरिक्त आपने कविताएँ भी लिखी हैं—कुछ छायावादी ढंगकी और कुछ हास्य-विनोदपूर्ण।

आपकी प्रकाशित पुस्तकें इस प्रकार हैं—'उनींदी रातें' (काव्य-संग्रह १९५४ ई०), 'जज्बाते ऊँट' (हास्य-काव्य १९५६ ई०), 'हम इश्कके बन्दे हैं' (कहानियाँ १९६०)। —ल० का० वा०

रामायण महानाटक—प्राणचन्द चौहानने १६१० ई० में इस ग्रन्थकी रचना की। इसमें दस अंक हैं। दस अंक या अधिक अंकोंवाले नाटकको महानाटक या परम नाटक कहा जा सकता है (दे० 'भावप्रकाश', अष्टम अधिकार, पृ० २३७, पंक्ति ५ तथा 'संस्कृत ड्रामा' : कीथ, पृ० २३२)। दस अंकोंवाला संस्कृत नाटक 'बाल रामायण' भी महानाटक कहा जाता है। फलतः कविने अपने नाटकको महानाटक कहा है। यह महानाटक गोस्वामी तुलसीदासके महाकाव्य 'रामचरितमानस'की दोहे-चौपाईवाली शैलीमें लिखा गया है। इसमें प्रायः १० अर्धालियों या ५ चौपाइयोंके बाद एक दोहा रखा गया है। कहीं-कहीं भिन्नता भी दिखाई देती है क्योंकि अनेक स्थलोंपर ११ या ९ अर्धालियोंके बाद भी दोहा मिलता है। महानाटककी भाषा मधुर एवं सरस है।

'रामायण महानाटक'पर 'रामचरितमानस' का भरपूर प्रभाव है। दोनों ग्रन्थोंकी कुछ समानताएँ ये हैं—(१) रामको ब्रह्म और भगवान् माना गया है, (२) सेतुबन्धका वर्णन एक समान ही है, नलके हस्त-स्पर्शसे पाषाण तैरने लगते हैं, (३) लंकादहन वर्णनमें भी बहुत समानता है, यहाँतक कि प्राणचन्दने तुलसीदासकी उत्प्रेक्षाएँतक ग्रहण कर ली हैं, उदाहरणार्थ—"कै बडवानल कै परगासा, कै जनु बीजु घटा घनवासा ॥ बारह कला भये रवि लाला। कैंदहुँ प्रलय अगिनि सम काला ॥" लंकादहनके समय लंकावासियोंकी दुर्दशाका वर्णन भी 'मानस' जैसा ही है, यथा—"जरत अगिनि निकरीं सब रानी। कवल सुखान कहत मृदुबानी ॥ भजहिं पुरुष छाँड़ि कई नारी। बालक जरत तजहिं महतारी ॥ भाजहिं राकस करहिं पुकारा।

गिरे पाग सब सीस उघारा ॥ निकट नीर दह सींचु कर, सब मिलि आवहु जाइ। दमहु दिसा भए भाषई, पानि-पानि गोहराइ ॥ कंचन औटि भए सब पानी। बाढे नीर धर्म अकुलानी ॥ भागति नारि न चीर सँभारा। पीटहिं छाती ठोंकि कपारा ॥ रोवहिं राकस उठहि पुकारी। बालक जरत तजहिं महतारी ॥" (४) रामने जब विभीषणको लंकाका राज्य दे दिया तो 'मानम' की भाँति 'महानाटक' में भी कहा गया है—"लंका दीन्ह विभीषण काजा। बालि मार सुग्रीव नेवाजा ॥ रावन पजे सीस लगाई। सेवन कीन चरन चित लाई ॥ दस सिर रावन देइ करि, पायेउ लंका क राज। पाउँ छुअत सो पायेउ, राम गरीब नेवाज ॥" (अंक ६)। 'वाल्मीकि-रामायण'का भी प्रभाव महानाटकपर दिखाई देता है। उदाहरणार्थ—(१) जयन्त सीताके स्तनोंमें चोंच मारता है, (२) रावण सीताके रम्य रूप और सुघड अगोंकी प्रशंसा करता है ताकि सीता उसकी ओर आकर्षित हों और (३) हनुमान् लंकामें जाकर सीता-को रनिवासमें खोजते हैं।

यह हिन्दीका प्रथम काव्य-नाटक है। ऐसा प्रतीत होता है कि 'रामचरितमानस' को अभिनीत होते देखकर प्राण-चन्द चौहानको प्रेरणा मिली और उन्होंने इस नाटककी रचना की। इस नाटकसे अनुमान होता है कि उस समय तक रामलीलाका प्रचार हो चला था। नाटककारका ध्यान अभिनयकी ओर विशेष है। इसी कारण उसने रामकथाके पात्रोंकी संख्या कम कर दी है। 'रामायण महानाटक'में हनुमान्‌जी सीताजीकी खोजमें अकेले ही जाते हैं। अभि-नयको दृष्टिमें रखकर नाटककारने चूलिका-चमत्कारोंका प्रयोग किया है। अशोक वाटिकामें जब रावण सीताके पैरोंपर गिरता है, तो नेपथ्यसे हसनेका शब्द सुनाई देता देता है। यह हनुमान्‌जीकी हँसी थी। रावण यह न जान सका कि यह हँसी कहाँसे आयी है। रामने समुद्र सोखने-के लिए बाण उठाया, उसी समय नेपथ्यमें यह शब्द हुआ कि ये विषबुझे बाण हैं। रावणने राम-लक्ष्मणके कृत्रिम सिर लाकर सीताको दिखाये और कहा मैंने राम-लक्ष्मणको मार डाला है। सीताजी मूर्च्छित हो गयीं। उसी समय नेपथ्यमें देववाणी होती है "सीते! विश्वास न कर, ये माया-निर्मित सिर हैं।" नाटककारने नेपथ्य शब्द-का प्रयोग नहीं किया, बल्कि उसके स्थानपर स्वयं कथनका प्रयोग किया है।

नाटककारने स्वगत कथन भी कराये हैं। हनुमान् सीता-की खोजके समय समुद्रका भयंकर रूप देखकर डर जाते हैं। वे सोचने लगते हैं, "क्या करूँ? क्या लौट जाऊँ?" हनुमान्‌के इस अन्तर्द्वन्द्वका चित्र है—"कहाँ अवध कहाँ दशरथ राजा। कहाँ कैकई कीन्ह अकाजा ॥ ओ का कीन्ह राम बन आई। केहि कारन कहँ त्रिया गँवाई ॥ रावन कवन कीन्ह एह काजा। भयेउ चोर लंकाका राजा ॥ हम समुद्र कर मरम न जाना। राम क पान लीन्ह अज्ञाना ॥ तब एह पंथ हमहिं नहीं सूझा। अब बिस्माद करे नहीं बूझा ॥" इसी प्रकार राक्षसी सेनाका नाश देखकर इन्द्रजीत मनमें कहता है—देवगति कैसी विचित्र है? देवराजको जीतनेवाला बल कहाँ गया? रावणका गुप्तचर जब रामकी सेनाकी सूचना देता है तो रावण मनमें कहता है—मैंने सुमेरु उखाड़ लिया है, कुबेर एवं इन्द्रको दण्डित किया है, त्रिभुवन मेरे संकेतसे काँप उठता है। मुझको ये दो तपस्वी, बानर-भालुओंके साथ डराने आये हैं। —गो० ना० ति०

रामानंद-रामभक्तिके प्रथम आचार्य स्वामी रामानन्दकी जन्म-तिथिके सम्बन्धमें पर्याप्त मतभेद है। डा० फर्कुहर उनका जीवन-काल १४०० ई० से १४७० ई० के बीच मानते हैं। पं० रामचन्द्र शुक्लने ईसा की १५वीं शतीके पूर्वार्द्ध तथा १६वी शतीके प्रारम्भके मध्यकालमें उनका उपस्थित होना कहा है। 'अगस्त्य संहिता' तथा साम्प्रदा-यिक ग्रन्थोंके अनुसार रामानन्दका जन्म सन् १२९९ ई० में हुआ था। डा० फर्कुहरके मतका आधार है कबीर तथा रैदास एवं पीपाकी जन्मसम्बन्धी किंवदन्तियाँ। पं० रामचन्द्र शुक्लने रामानन्द, तकी तथा सिकन्दर लोदीको समकालीन माना है और उन्होंने रामार्चन पद्धति तथा रघुराजसिंहके साक्ष्यको भी स्वीकार किया है किन्तु ये सभी आधार निस्सन्दिग्ध नहीं हैं। इस कारण विद्वानोंका अधिकांश वर्ग 'अगस्त्य संहिता'तथा साम्प्रदायिक मतको ही स्वीकार करता है। इस सम्बन्धमें भक्तकाल तथा रामानन्दी मठोंकी प्राप्त गुरु-परम्परा भी 'अगस्त्य संहिता'के मतका ही समर्थन करती है। रामानन्दके जन्म-स्थानके सम्बन्धमें भी उत्तर-दक्षिणका अन्तर है। फर्कुहर तथा मैकालिफ उन्हें दाक्षिणात्य मानते हैं, मैकालिफने मेलकोटा (मैसूर) को उनका जन्म-स्थान बतलाया है। 'अगस्त्य संहिता' तथा साम्प्रदायिक विद्वान् प्रयागको इनका जन्म-स्थान बतलाते हैं। प्रथम मतके पक्षमें प्रमाणोंका अभाव है, दूसरे मतको सम्प्रदायकी आस्था एवं विश्वासका बल प्राप्त है, अतः इसको ही सही माना जाना चाहिये। 'अगस्त्य संहिता' में रामानन्दके पिताका नाम पुण्यसदन माँका नाम सुशीला कहा गया है। 'भविष्य पुराण' में पुण्यसदनके स्थानपर देवल और 'प्रसंग पारिजात' में सुशीलाके स्थानपर सुरबी नाम मिलते हैं किन्तु रामानन्द सम्प्रदायमें 'अगस्त्य संहिता'का मत ही मान्य है। मैकालिफ रामानन्दको गौड ब्राह्मण मानते हैं किन्तु 'अगस्त्य संहिता'में उन्हें कान्य-कुब्ज कहा गया है। रामानन्दके पूर्व नामके सम्बन्धमें भी अनेक मत प्रचलित हैं। 'रसिक प्रकाश भक्तमाल'के टीका-कार जानकी रसिक शरणने उनका पूर्व नाम रामदत्त दिया है। 'वैष्णव धर्म रत्नाकर'में उन्हें राममारती कहा गया है, किन्तु 'अगस्त्य संहिता' तथा 'भविष्य पुराण'में उनका नाम रामानन्द ही मिलता है। यही मत साम्प्रदायिक विद्वानोंको भी मान्य है। किंवदन्ती है कि रामानन्दके गुरु पहले कोई दण्डी सन्यासी थे, बादमें राघवानन्द स्वामी हुए। 'भविष्य पुराण', 'अगस्त्य संहिता' तथा 'भक्तमाल'-के अनुसार राघवानन्द ही रामानन्दके गुरु थे। अपनी उदार विचारधाराके कारण रामानन्दने स्वतन्त्र सम्प्रदाय स्थापित किया। उनका केन्द्र मठ काशीके पंच गंगाघाट पर था, फिर भी उन्होंने भारतके प्रमुख तीर्थोंकी यात्राएँ की थीं और अपने मतका प्रचार किया था। एक किंवदन्तीके अनुसार छुआछूत मतभेदके कारण गुरु राघवानन्दने उन्हें नया सम्प्रदाय चलानेकी अनुमति दी थी। दूसरा वर्ग एक

प्राचीन रामावत-सम्प्रदायकी कल्पना करता है और रामानन्दको उसका एक प्रमुख आचार्य मानता है। डा० फर्कुहरके अनुसार यह रामावत-सम्प्रदाय दक्षिण भारतमें था और उसके प्रमुख ग्रन्थ 'वाल्मीकि-रामायण' तथा 'अध्यात्म रामायण' थे। साम्प्रदायिक मतके अनुसार एक मूल 'श्री सम्प्रदाय'की आगे चलकर दो शाखाएँ हुई—एकमे लक्ष्मीनारायणकी उपासना की गयी, दूसरीमें सीताराम की। कालान्तरमें पहली शाखाने दूसरीको दबा लिया, रामनन्दने दूसरी शाखाको पुर्नजीवित किया। रामानन्दके प्रमुख-शिष्य अनन्तानन्द, कबीर, सुखानन्द, सुरसुरानन्द, पद्मावती, नरहर्यानन्द, पीपा, भावानन्द, रैदास, धना, सेन और सुरसुरी आदि थे। रामानन्दकी मृत्यु तिथि भी उनकी जन्म-तिथिके अनुसार ही अनिश्चित है। 'अगस्त्य संहिता'में सन् १४१० ई० को उनकी मृत्यु-तिथि कहा गया है। सन् १२९९ ई० को उनकी जन्म-तिथि मान लेने पर यही तिथि अधिक उपयुक्त जान पड़ती है। इससे स्वामीजीकी आयु १११ वर्ष ठहरती है, जो नाभाकृत 'भक्तमाल'के साक्ष्य "बहुत काल वपु धारि कै प्रणत जननको पार दियो" पर असंगत नहीं है।

रामानन्द द्वारा लिखी गयी कही जानेवाली इस समय निम्नलिखित रचनाएँ मिलती हैं—'श्रीवैष्णव मताब्जभास्कर', 'श्रीरामार्चन पद्धति', 'गीताभाष्य', 'उपनिषद् भाष्य', 'आनन्दभाष्य', 'सिद्धान्त पटल', 'रामरक्षास्तोत्र', 'योग चिन्तामणि', 'रामाराधनम्', 'वेदान्त विचार', 'रामानन्दादेश', 'ज्ञान तिलक', 'ग्यान लीला', 'आत्मबोध राम मन्त्र जोग ग्रन्थ', कुछ फुटकल हिन्दी पद तथा 'अध्यात्म रामायण'। इन समस्त ग्रन्थोंमें 'श्रीवैष्णवमताब्ज भास्कर' तथा 'श्री रामार्चन पद्धति'को ही रामानन्दकृत कहा जा सकता है। पं० रामटहल दासने इनका सम्पादन कर इन्हें प्रकाशित कराया है। इन ग्रन्थोंकी हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध नहीं है। 'श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर'में स्वामीजीने सुरसुरानन्द द्वारा किये गये नौ प्रश्नों—तत्त्व क्या हैं, श्री वैष्णवोंका जाप्य मन्त्र क्या है, वैष्णवोंके इष्टका स्वरूप, मुक्तिके सुलभ साधन, श्रेष्ठ धर्म, वैष्णवोंके भेद, उनके निवास स्थान, वैष्णवोंका कालक्षेप आदिके उत्तर दिये हैं। दर्शनकी दृष्टिसे इसमें विशिष्टाद्वैतका ही प्रवर्तन किया गया है। 'श्रीरामार्चनपद्धति'में रामकी सांग तथा षोडशोपचार पूजाका विवरण दिया गया है। राम टहलदास द्वारा सम्पादित दोनों ग्रन्थ संवत् १९८४(सन् १९२७ ई०)में सरयूभवन (अयोध्या)के वासुदेव दास (नयाघाट) द्वारा प्रकाशित किये गये। भगवदाचार्यने संवत् २००२ (सन् १९४५ ई०)में श्री रामानन्द साहित्य मन्दिर, अट्टा (अलवर) से 'श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर'को प्रकाशित किया। शेष ग्रन्थोंमें 'गीता भाष्य' और 'उपनिषद् भाष्य'की न तो कोई प्रकाशित प्रति ही मिलती है और न हस्तलिखित प्रति ही प्राप्त है। यही स्थिति 'वेदान्त विचार', 'रामाराधनम्' तथा 'रामानन्दादेश'की भी है। 'आनन्दभाष्य' स्वामी रामप्रसाद जीकृत 'जानकी भाष्य'का सारांश एवं आधुनिक रचना है। 'सिद्धान्त पटल', 'राम रक्षास्तोत्र' तथा 'योगचिन्तामणि' तपसी-शाखा द्वारा प्रचलित किये गये ग्रन्थ हैं। इसी प्रकार 'आत्मबोध' तथा 'ग्यान तिलक' तथा अन्य निर्गुण परक फुटकल पद कबीर-पन्थमें अधिक प्रचलित हैं और उनकी प्रामाणिकता अत्यन्त ही सन्दिग्ध है। नागरीप्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित 'रामानन्दकी हिन्दी रचनाएँ' पुस्तकमें संगृहीत फुटकल समस्त पदोंमें 'हनुमान् की आरती' को छोड़कर शेष सभी पद निर्गुण मतकी प्रतिष्ठा करते हैं। लगता है निर्गुण पन्थियोंने रामानन्दके नामपर इन रचनाओंको प्रचलित कर दिया है। इनका कोई प्रचार रामानन्द-सम्प्रदायमे नहीं है। 'भजन रत्नावली' (डाकोर) में रामानन्दके नामसे चार हिन्दी पद मिलते हैं, एकमें अवधविहारी रामका वर्णन है, दूसरेमें सखाओंके साथ खेलते हुए रामका, तीसरेमें रामकी आरतीका वर्णन है और चौथेमें रघुवंशी रामके मनमें बस जानेका वर्णन है। इन पदोंका प्राचीन हस्तलिखित रूप नहीं मिलता, इनकी भाषा भी नवीन है। अतः ये प्रामाणिक नहीं कही जा सकतीं। इस सम्बन्धमें केवल इतना ही कहा जा सकता है कि जिन रचनाओंका सम्प्रदायमें कोई प्रचार न हो और न जिनकी हस्तलिखित पोथियाँ ही साम्प्रदायिक पुस्तकालयोंमें उपलब्ध हो, उनकी प्रामाणिकता नितान्त ही सन्दिग्ध होती है। सम्प्रदायोंके इतिहासमें भी यह बात देखनेमें आयी है कि समय-समयपर उनमे नयी विचारधाराएँ आती गयी हैं और उन्हे प्रामाणिकताकी छाप देनेके लिए मूल प्रवर्त्तकके नामपर ही उन विचारोंका प्रवर्त्तन करनेवाली रचनाएँ गढ ली जाती हैं। कभी-कभी नयी रचनाएँ न गढ़कर लोग नये ढंगसे मान्य एवं प्राचीन ग्रन्थोंकी व्याख्या ही कर बैठते हैं। इन सभी दृष्टियोंसे 'श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर' तथा 'श्री रामार्चनपद्धति'को ही रामानन्दकी प्रामाणिक रचनाएँ मानना उचित होगा। 'आनन्द भाष्य' का प्रकाशन रघुवरदास वेदान्तीने अहमदाबादसे १९२९ ई० तथा शेष हिन्दी रचनाओंका प्रकाशन काशी नागरीप्रचारिणी सभाने १९५२ ई० में किया।

रामानन्दका महत्त्व अनेक दृष्टियोंसे हैं। वे रामभक्तिको साम्प्रदायिक रूप देनेवाले सर्वप्रथम आचार्य थे। उन्हींकी प्रेरणासे मध्ययुग तथा उसके अनन्तर प्रचुर रामभक्ति साहित्यकी रचना हुई। कबीर और तुलसी, दोनोंका श्रेय रामानन्दको ही है। रामानन्दने भक्तिका द्वार स्त्री और शूद्रके लिए भी खोल दिया, फलतः मध्ययुगमें एक बड़ी सबल उदार विचारधाराका जन्म हुआ। सन्त-साहित्यकी अधिकांश उदार चेतना रामानन्दके ही कारण है। यही नहीं, रामानन्दकी इस उदार भावनाने हिन्दू और मुसलमानोंको भी समीप लानेकी भूमिका तैयार कर दी। हिन्दीके अधिकांश सन्त कवि, जो रामानन्दको ही अपने मूल प्रेरणा-स्रोत मानते हैं, मुसलमान ही थे। रामानन्दकी यह उदार विचारधारा प्रायः समूचे भारतवर्षमे फैल गयी थी और हिन्दीके अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाओंका मध्ययुगीन रामभक्ति-साहित्य रामानन्दकी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रेरणासे लिखा गया।

[सहायक ग्रन्थ—रामानन्द सम्प्रदाय—बदरीनारायण श्रीवास्तव।] —ब० ना० श्री०

रामावतारलीला–दे० 'मलूकदास'।

रामावतार शर्मा (पाण्डेय)—जन्म सन् १८७७ ई० छपरा (बिहार) में। मृत्यु ५२ वर्षकी अवस्थामें सन् १९२९ ई०में पटनामें। वे सरयूपारीण ब्राह्मण थे। पिता पण्डित देवनारायण शर्मा संस्कृतके विद्वान् तथा प्रेमी थे। इन्होंने रामावतार शर्माको ५ वर्षकी अवस्थामें ही पढ़ाना प्रारम्भ कर दिया था। १२ वर्षकी अवस्थामें उन्होंने प्रथमा परीक्षा प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण की। संस्कृतके साथ उन्होंने अंग्रेजीका भी अध्ययन प्रारम्भ किया।

उन्होंने महामहोपाध्याय गंगाधर शास्त्री सी० आई०ई० के पास पढ़कर साहित्याचार्यकी परीक्षा उत्तीर्ण की। एम० ए०भी किया। इसके बाद हिन्दू कालेज, काशीमें कुछ दिन अध्यापन करनेके बाद २९ वर्षकी अवस्थामें पटना कालेजमें संस्कृताध्यापक नियुक्त हुए। बीचमें २-३ वर्षतक हिन्दू विश्वविद्यालयमें संस्कृत विभागके प्रधानका कार्य किया।

शर्माजी संस्कृतके ऐसे प्रथम विद्वान् थे, जिन्होंने अंग्रेजीमें प्राप्त विपुल ज्ञानको संस्कृतज्ञोंतक पहुँचाया। अपनी विद्वत्ताके कारण वे भारत-विख्यात थे। वे परम तार्किक थे। काशीप्रसाद जायसवालके शब्दोंमें वे वस्तुतः कपिल और कणादकी श्रेणीके विचारक थे। साहित्य, ज्योतिष, विज्ञान आदि विषयोंपर उनका समान अधिकार था। वे संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच, लैटिन आदि कई भाषाओंके ज्ञाता थे। भारतीय भाषाओंमें तो शायद ही कोई भाषा उनसे अछूती रही हो। गम्भीरतम विषयोंका प्रतिपादन वे अत्यन्त सरलतासे करते थे। उनके निबन्ध दर्शन, काव्य, साहित्य, व्याकरण, इतिहास, पुराण, पुरातत्त्व, नृतत्त्व, शिक्षा, धर्म, सभ्यता, संस्कृति, भाषा-विज्ञान, खगोल, भूगोल एवं ज्योतिष विषयोंपर उपलब्ध हैं। उनमें हिन्दीनिष्ठाके साथ-साथ शब्द-सर्जनकी भी प्रवृत्ति थी।

वे कवि भी थे। उनकी कविता द्विवेदीकालीन थी। 'भारतोत्कर्ष' नामक कविता द्रष्टव्य है। महामहोपाध्याय पाण्डेय रामावतार शर्मा सरस्वतीके वरद पुत्र थे। अद्भुत प्रतिभा लेकर अवतीर्ण हुए थे। इन्होंने श्लोकबद्ध संस्कृत कोश बनाया है, जो अभीतक अप्रकाशित है। इसका नाम है 'विश्वविद्या' अथवा 'वाङ्मयार्णव'। यह एक अद्भुत कोश है। यह कोश ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसीसे प्रकाशित होने जा रहा है।

उनकी पुस्तकें निम्नांकित हैं—'धर्म प्रबोध' (१९२९ ई० 'भारतका इतिहास' (साहित्य रत्नमाला, बनारस, १९२७ ई०), 'व्याकरण संजीवन' (१९३५ ई०, साहित्य निकेतन, पटना), 'भारतीय ईश्वरवाद', 'भारतेन्दु चन्द्रिका' (सं० १९३४ वि०, सुन्दर साहित्य सदन, पटना), 'यूरोपीय दर्शन' (काशी ना० प्र० स०), 'आत्म-बोध-तरंगिनी' (१९२९ ई०, सम्पादन रामकुटीर शिवपुर, बनारस) एवं 'रामावतार शर्मा निबन्धावली' (पटना, बिहार राज्य-भाषा परिषद्, १९५३ ई०)। —श्री० व०

रामाष्टयाम—दे० 'अष्ट याम'।

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'—जन्म सन् १९१५ ई०। जन्म स्थान—ग्राम किशनपुर, जिला फतेहपुर (उ० प्र०)। १९३५ ई०में बी० ए० तथा १९४२ ई०में एम० ए०की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। १९४५ ई० में राबर्टसन कालेज, जबलपुरमें हिन्दीके प्राध्यापक नियुक्त हुए। १९५८ ई०में जबलपुर विश्वविद्यालयमें हिन्दी विभागके अध्यक्ष थे। आजकल आप शासकीय महाविद्यालय रायगढ़में प्रिंसिपल हैं। साहित्य-साधनाका श्रीगणेश सत्रह वर्षकी वयमें १९३२ ई०के आस-पास किया था। साहित्य सृजनकी प्रेरणा पैतृक सम्पत्तिके रूपमें मिली थी। इनके पिता पं० मातादीन शुक्ल (मृ० १९५४ ई०) खड़ीबोली और ब्रजभाषाके अच्छे कवि थे। उन्होंने 'छात्र सहोदर', 'तिलक', 'कर्मवीर', तथा 'माधुरी' आदि कई साप्ताहिक तथा मासिक पत्रोंका सम्पादन भी किया था। 'अंचल'की पहली कविता 'उस क्षण' 'माधुरी' हीमें छपी थी और उसके तत्कालीन सम्पादक रामसेवक त्रिपाठीने उनकी उस रचनाको मुख पृष्ठपर स्थान दिया था।

'अंचल'की पहली पुस्तक 'तारे' १९३७ ई०में प्रकाशमें आयी। इसमें उनकी प्रारम्भिक कहानियाँ संकलित हैं। दूसरा कहानी संग्रह 'ये वे बहुतेरे' १९४१ ई०में प्रकाशित हुआ किन्तु कहानी लेखनके क्षेत्रमें उन्हें उतनी ख्याति नहीं मिल सकी, जितनी कि कविताके क्षेत्रमें। उनकी कविताओंके संग्रह ये हैं—'मधूलिका' (१९३८ ई०), 'अपराजिता' (१९३९ ई०), 'किरण वेला' (१९४१ ई०), 'करील' (१९४२ ई०), 'लाल चूनर' (१९४२ ई०), 'वर्षान्तके बादल' (१९५४ ई०) और 'विरामचिह्न' (१९५७ ई०)।

'अंचल' छायावाद युगके उत्तरार्द्धके कवि हैं। 'मधूलिका' तथा 'अपराजिता' उसी कालकी कृतियाँ हैं किन्तु उन्हें छायावादी नहीं कहा जा सकता। यह सच है कि आरम्भ में उनकी काव्य-कलाका विकास छायावादकी पृष्ठभूमिमें हुआ है और वे पन्त, 'निराला' तथा महादेवीसे प्रभावित हुए हैं किन्तु बादमें विषय परिवर्त्तन तथा अनुभूतियोंकी कालयापित गहराईके साथ-साथ उनके छायायुगीन स्वर में काफी परिवर्त्तन हुआ है। उनकी अनुभूतिगत ईमानदारी ने उन्हें आरम्भमें ही छायावादी कवियोंसे भिन्न कोटिमें स्थान दिया है। उन्होंने कल्पनाके अतिरेकको कभी प्रश्रय नहीं दिया और वे स्वानुभूत जीवन-सत्योंके आधारपर मांसल-प्रेमकी सहज अभिव्यक्तियोंके प्रति निष्ठावान् रहे। छायावादी काव्यके अतिशय कल्पनाप्रधान अशरीरी सौन्दर्य लोकने उन्हें कभी आकर्षित नहीं किया और वे बराबर अपनी तीक्ष्ण अनुभूतियोंके कारण धरतीकी चेतना के निकट आते गये। अपनी आरम्भिक कृतियोंमें वे उन्मुक्त प्रेमके गायक तथा सहज मानवीय सौन्दर्यके चितेरे हैं। परवर्त्ती कृतियोंमें भी उनकी प्रेम-तृषा कभी कम नहीं हुई है और वे सौन्दर्यकी साक्षात् प्रतिमा नारी-प्रेयसीसे सदैव आन्दोलित होते रहे हैं।

'अंचल'का कवि विकसनशील रहा है। किसी एक मंजिल पर पहुँच कर उन्होंने अपनी यात्राको विराम नहीं दिया है, वरन् नयी दिशा ग्रहण करनेकी चेष्टा की है। उन्होंने अपनी कविताका आरम्भ रस और रोमांससे किया तथा एक लम्बे अर्से तक छायावादके प्रभावमें रहे। फिर मार्क्सवादी विचारधाराके सम्पर्कमें आये और प्रगतिशीलताकी

ओर उन्मुख हुए। उनका लगभग दस वर्षों तकका कवि-जीवन मार्क्सके द्वन्द्वात्मक भौतिकवादको आत्मसात् करते बीता है। यहाँ यह उल्लेख्य है कि 'अंचल'ने मार्क्सके सिद्धान्तोंको ज्योंका त्यों आँख मूँदकर नहीं स्वीकार किया है। उन्होंने प्रगतिवादी कविताओंकी सृष्टि भारतीय सन्दर्भोंमें की है। उनकी जनवादी चेतना इस देशके परम्पराप्रथित रूढ़ तथा खोखले संस्कारों एवं जड़-जीवन-मूल्योंके विरुद्ध मुखरित हुई है। उनकी प्रेरणाका मूल केन्द्र समसामयिक मानव जीवन रहा है और उन्होंने उसीके सामूहिक कल्याणके लिए क्रान्तिका आह्वान किया है तथा विद्रोहके गीत गाये हैं। 'किरण वेला'तथा 'करील' की रचनाएँ उनकी क्रान्ति-दृष्टि तथा प्रगतिशीलताका प्रतिनिधित्व करती हैं।

'अंचल'के काव्यात्मक विकासकी तीसरी नवीन दिशा उन्हें अरविन्दके अध्यात्मवादकी ओर ले जाती है। अब उनकी दृष्टि स्थूलकी अपेक्षा सूक्ष्मकी ओर गयी है और जिस 'समन्वयात्मक व्यापकता'के प्रति उनके भीतर एक 'तीव्र अन्वेषण'की भावना पहलेसे ही थी,उसकी सर्वाधिक उपलब्धि उन्हें अरविन्दके जीवन-दर्शनमें हुई है। 'अंचल'के नवीनतम संग्रह 'विराम चिह्न'की रचनाएँ एक प्रकारके दार्शनिक गाम्भीर्यकी परिचायिका हैं। यहाँ पहुँच कर 'मधूलिका'का उन्मुक्त प्रेमी तथा 'करील'का क्रान्तिद्रष्टा कवि जीवनकी प्रौढ़तर भूमिकामे प्रविष्ट होता है और उसकी भाव-दृष्टि सूक्ष्म तथा अन्तर्मुखी हो जाती है।

शैली-शिल्पकी दृष्टिसे 'अंचल'मे निरन्तर निखार आया है। कविताओंकी भाषा बोलचालके निकट रही है और शब्दोंके प्रयोगमें कोई आग्रह नहीं जान पड़ता। अरबी-फारसी, संस्कृत तथा हिन्दी (तद्भव एवं ग्रामीण) सभी प्रकारके शब्द विषय तथा भावोंके अनुरूप व्यवहृत हुए हैं। उन्होने नये विशेषणों तथा नवीन उपमानोंकी खोज करके नूतन कल्पनाओंका सिंगार किया है। उनके छन्दोंमे सम्यक् गति-प्रवाह है और गीतोंमें सहज सांगीतिक लयात्मकता।

'अंचल'ने उपन्यास भी लिखे है। चार प्रकाशित हैं— 'चढ़ती धूप' (१९४५ ई०), 'नयी इमारत' (१९४६ ई०), 'उल्का' (१९४७ ई०) और 'मरुप्रदीप' (१९५१ ई०)। इनमें भारतीय जीवनके कुछ पक्षोंका उद्घाटन किया गया है तथा सांस्कृतिक-सामाजिक संघर्षोंकी समवेत अवतारणा-की गयी है। इस दिशामे ये उपन्यास सफल माने जाते हैं किन्तु कल्पनाकी अतिशयताके कारण कथात्मक परिवेश और उसमें उभरने वाले चरित्र यथार्थकी दुनियासे कुछ दूर रह गये हैं। इन उपन्यासोंकी भाषा 'अंचल'के कवि-व्यक्तित्वके अनुरूप है।

'अंचल'की अन्य कृतियोंमें दो निबन्ध-संग्रह 'समाज और साहित्य' (१९४४ ई०) तथा 'रेखा-लेखा' (१९५७ ई०) और एक आलोचनात्मक ग्रन्थ 'हिन्दी साहित्य अनुशीलन' (१९५२ ई०) उल्लेखनीय हैं। इन ग्रन्थों द्वारा 'अंचल' एक विचारक तथा साहित्यके सुलझे हुए अध्येताके रूपमें प्रतिष्ठित होते हैं। —र० भ०

रामेश्वरी गोयल–जन्मतिथि—१९१० ई०, मृत्यु—१९३५ ई०। रामेश्वरी गोयल छायावादी युगकी उन सशक्त कवयित्रियोंमेंसे हैं, जिनका कवि-व्यक्तित्व और सौन्दर्यदृष्टि उस युगके अधिकांश कवियोंकी अपेक्षा अधिक स्पष्ट और संयमित और संवेदनपूर्ण रही है। रामेश्वरी गोयलके गीतों में व्याप्त करुणा और एक मर्मान्तक वेदना हमें उसी कोटि और उतनी ही हृदयग्राह्य रूपमें मिलती है जितनी कि अंग्रेजीके कवि कीट्सकी कविताओंमें मिलती है। अनुभूतिकी गहराईके साथ-साथ बिम्बों और अनुभूतियोंके मानवीय वैयक्तिक स्वरको जो संवेदना हमें गोयलकी कविताओंमें मिलती है, वह इस बातकी सूचक थी कि वे आगे चलकर हिन्दीके गीत-साहित्यको नया स्वर और नयी भावभूमि प्रदान करतीं। लेकिन जैसा कि होना था, उनकी मृत्यु इतने अल्पकालमें हो गयी कि उनकी प्रतिभाका पूर्ण योग-दान हिन्दीकी गीत-शैलीको नहीं मिल सका।

भावनाओंके अनुकूल संयत भाषा और अभिव्यक्तिमें स्पष्ट होते हुए भावस्थितिकी कलात्मक व्यंजना रामेश्वरी गोयलकी विशेषता थी। गीतोंमें जो दर्द और वेदना व्याप्त थी, वह कुछ ऐसे स्वरकी थी कि यदि उसके साथ शिल्पकी सोपानमर्यादा न निभाई जाती तो वह केवल शब्दमात्र रह जाती। छायावाद कालका यह वह समय था, जब उसको नयी संवेदनाके अनुकूल सर्वथा नया शब्द-भाण्डार तो मिल गया था, लेकिन उन शब्दोंका मर्म और उनकी पहचान उस समयके अधिकांश कवियोंमे उस शक्तिके साथ नहीं थी, जिस शक्तिके साथ होनी चाहिये थी।

शैलीकी दृष्टिसे भी रामेश्वरीजीके गीतोंमें हमें जिस व्यक्तित्वका परिचय मिलता है, वह सजग, जागरूक शिल्पी के साथ-साथ धड़कता हुआ मानव हृदय है, जो सभी संवेद-नाओंके प्रति मुक्त है, पर जो अभिव्यक्तिमें वाचाल न होकर मार्मिक होने की, गहरे उतरनेकी शक्ति रखता है। अनुभूतिकी सच्चाईके साथ-साथ रामेश्वरी गोयलके गीतोंमें हमें यह विशेषता भी मिलती है।

भाषाकी दृष्टिसे रामेश्वरी गोयलके गीत यद्यपि छायावाद द्वारा अन्वेषित शब्द-भाण्डारको स्वीकार करते हैं फिर भी उन शब्दोंको लेकर उनके विभिन्न आयामोंका कुशल प्रयोग कवयित्रीने किया है। अनुभूतिको नितान्त सही बनानेमें जिस चुनावकी आवश्यकता होती है, उसकी दक्षता हमें रामेश्वरी गोयलके गीतोंमे मिलती है।

कृति—'जीवनका सपना' (कविताओं और गद्य-गीतों-का संकलन, १९३६ ई०)। —ल० कां० व०

रामेश्वरी देवी मिश्र 'चकोरी'–जन्म १९१६ ई०मे केत्थर ग्राम, जिला उन्नाव (उत्तरप्रदेश) में। आपके पिताका नाम पं० उमाचरण शुक्ल था। इनके पिता तहसीलदार होते हुए भी काव्यमे रुचि लेते थे। उन्होने कई धार्मिक पुस्तकें लिखीं। पिताकी मृत्युके बाद माताकी देख-रेखमें इनका लालन-पालन हुआ। अपने मामा जनार्दन मिश्र, बड़ी बहिन इन्देश्वरी देवी तथा चाचा बालकृष्ण शुक्ल (उन्नावके वकील) से इन्हे बहुत प्रेरणा मिली। फलतः इनकी रचनाएँ उस समयकी प्रमुख पत्रि-काओं—'माधुरी', 'सरोज', 'सुकवि' आदिमें सम्मानपूर्वक प्रकाशित होने लगीं। कवि-सम्मेलनोंमें भी इन्हे बहुत

सम्मान मिला। 'सुधा'के प्रकाशनने इन्हें प्रमुख कवयित्रियोंमें स्थान दिला दिया। 'विशाल भारत,' 'विश्वमित्र' आदि पत्रोंने पुरस्कृत भी किया। सन् १९२९ ई०में इनका विवाह कवि-कथाकार लक्ष्मीशंकर मिश्र 'अरुण'से लखनऊमें हुआ और कुछ ही दिनों बाद 'प्लूरिसी' रोगके असाध्य हो जानेके कारण इनकी अकाल मृत्यु सन् १९३५ ई०में हो गयी। इतनी कम उम्रमें ही इनका इतना विकास इनकी प्रतिभाका अन्यतम उदाहरण है।

आपकी निम्नांकित रचनाएँ हैं—'उषा गीत' (अवध पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ), 'किंजल्क', (१९३३ ई०), 'धूप छाँह तथा अन्य कहानियाँ' (१९६० ई०), 'मकरन्द' (१९३९ ई०)।

इनमें 'उषा गीत', 'किंजल्क' तथा 'मकरन्द' इनके गीतों तथा कविताओंके संग्रह हैं। 'धूप छाँह तथा अन्य कहानियाँ' इनकी कहानियोंका संग्रह है। इनकी कविताओंमें गम्भीर कल्पना, सुष्ठु विचार एवं प्रसाद गुण तथा प्रवाहमयता पाई जाती है। इनकी कविताओंमें कल्पना एक सहज प्रवाह बनकर आयी है, चमत्कार बनकर नहीं। वह विषयके साथ उद्भूत होती हैं वस्तुको रूपायित करती हुई। उनकी कविताओंके विषय तत्कालीन समाजसे जन्म लेते हैं। छायावादियोंकी भांति वे केवल 'अलंकृत संगीत' गाकर नहीं रह जातीं। उनके स्वरोंमें कभी-कभी क्रान्ति और उत्साह भी हिलोरें लेता है। उनके प्रमुख छन्द आँसू, अरिल, कवित्त, सवैया है। उन्होंने उर्दू छन्दोंमें भी बहुत सुन्दर रचनाएँ की हैं। जीवनके प्रति रहस्यवादी भावना केवल तात्कालिक प्रभाव एवं शिल्प बनकर ही आयी है। इनके गीतोंमें अद्वितीय एकान्विति है। गेय तत्त्वोंकी दृष्टिसे इनके गीत बहुत सुन्दर हैं। इनमें जीवनके एक पक्षका ही अंकन नहीं है। १९ वर्षकी कवयित्रीसे इससे अधिक आशा की भी नहीं जा सकती। इनकी भाषामें अद्वितीय प्रवाह और सादगी है। कृत्रिमता एवं आरोप कहीं नहीं है। ये स्वच्छन्द धाराकी निश्छल एवं एक अर्थमें यथार्थका अंकन करने वाली प्रथम कलाकार हैं।

'चकोरी'की कहानियोंमें प्रेमकी अभिव्यंजना आदर्शके भावुक पक्षको विस्तार देते हुए की गयी है। इनके कथोपकथन अत्यन्त संक्षिप्त, मार्मिक एवं पात्रानुकूल हैं। —श्री० रा० व०

राय कमलानंद—प्रेमचन्दने 'प्रेमाश्रम'में राय कमलानन्दका चित्रण एक आत्मदर्शीकी भाँति किया है। वैसे तो वह एक सम्पन्न जमींदार है और जीवनमें आनन्दका भोग करना उसका लक्ष्य है। उसे घोर सांसारिक अनुभव है, जिसके आधार पर वह ज्ञानशंकरके वास्तविक स्वरूपको पहचान लेता है। उसमें साहसपूर्ण और मनोवैज्ञानिक ढंगसे बात-चीत करनेकी अद्भुत क्षमता है। ज्ञानशंकर भले ही गायत्रीकी जायदाद पर अधिकार कर ले, उसकी दृष्टिमें उसका सतीत्व अधिक मूल्यवान् है। सम्पूर्ण सांसारिकताके रहते हुए भी उसमें आश्चर्यजनक योग-शक्ति है, जिसके बल पर वह ज्ञानशंकरके दिये हुए विषतकको पचा जाता है। अन्तमें वह साधुवेष धारण कर चित्रकूटमें निवास करने लगता है। गायत्रीने उसीके साधुवेषकी प्रसिद्धि सुनी थी और उसीके दर्शनोंके लिए वह चित्रकूट गयी थी, जहाँ उसका अन्त हो जाता है। —ल० सा० वा०

राय कृष्णदास—उपनाम 'नेही'। जन्म सन् १८९२ ई० वाराणसीमें। प्रेमचन्दके समकालीन कहानीकार, गद्यगीत लेखक। चित्रकला, मूर्तिकला, एवं पुरातत्त्वमें विशेष रुचि। सदस्य ललित कला अकादमी। बनारसके मान्य परिवारके हैं। प्रसादजीके घनिष्ठ मित्रोंमें से। संस्थापक भारती भण्डार (साहित्य प्रकाशन संस्थान)। संस्थापक 'भारतीय कला भवन।'

राय कृष्णदासकी कहानियोंमें भारतीय जीवनके सामाजिक व्यंग एवं सरसता, दोनों समान रूपसे वर्तमान है। भावुक लेखक होनेके नाते शिल्पमें कथ्य और कलात्मक रचनाकी अपेक्षा आदर्श और यथार्थके संघर्षकी अच्छी झाँकियाँ वर्तमान है। भाषा प्रांजल और अनुभूति नितान्त रागात्मक, दृष्टि मूलतः आदर्शवादी है।

गद्य-गीतोंमें इसीलिए भावुकता इनकी शैलीकी एक सजीव एवं सप्राण प्रतीक बन गयी है। छायावादी रागात्मकता इनके गद्य-गीतोंकी जान है। मानवीय भावनाओंका भावुक एवं कोमल पक्ष आपकी रचनाओंमें विशेष रूपसे चित्रित हुआ है। गद्य-गीतकारोंमें माखनलाल चतुर्वेदी और रायकी साथ यदि किसीका भी नाम लिया जा सकता है तो वह है राय कृष्णदास का।

इन साहित्यिक रुचियोंके अतिरिक्त शोधपरक कार्योंके लिए मूल रचनाओंकी प्रामाणिक हस्त प्रतियाँ प्राप्त करना, नये लेखकोंकी मूल पाण्डुलिपियोंका संग्रह करना, प्राचीन चित्र और मूर्तियोंको संचित करना, पुरानी विभिन्न भारतीय शैलियोंके चित्रोंको संगृहीत करना—राय साहबकी विशेष रुचि है। 'भारतकी चित्रकला' (१९३९ ई०), 'भारतीय मूर्तिकला' (१९३९ ई०) आपके मौलिक ग्रन्थोंमेंसे हैं। राय कृष्णदासके इस अध्ययन और योजनाके कारण आज 'भारतीय कला भवन'का एक ऐतिहासिक महत्त्व है। शायद यही कारण है कि इधर राय साहब साहित्यिक रचनाओंकी अपेक्षा भारतीय चित्रों और मूर्तियोंको पहचानने, काल निर्धारित करनेमें अधिक समय देने लगे हैं।

आपकी महत्त्वपूर्ण रचनाओंमेंसे 'साधना' कहानी संग्रह (१९१९ ई०), 'आख्यान' (१९२७ ई०) 'सुधांशु' (१९२२ ई०) मुख्य हैं। 'प्रवाल' गद्य-गीतोंका संग्रह है, जो १९२८ ई०में प्रकाशित हुआ। भारतीय चित्रकला और मूर्तिकलापर वैसे तो पाश्चात्य विद्वानोंने बहुत लिखा है किन्तु हिन्दीमें विशेष अभिरुचि और विश्लेषणके साथ राय कृष्णदासकी पुस्तकोंने हिन्दी साहित्यको सर्वांगपूर्ण और सम्पन्न बनानेमें सहायता दी है। —ल० कां० व०

राय देवीप्रसाद 'पूर्ण'—जन्म—जबलपुरमें (मध्यप्रदेश) १८६८ ई० में। इनके पिता राय वंशीधर वकील थे। चार वर्ष की अवस्थामें पिताकी मृत्यु हो गयी। फलतः पालन-पोषणका भार चाचा राय लीलाधरपर पड़ा। ये बड़े ही कुशाग्र बुद्धि और प्रतिभासम्पन्न विद्यार्थी थे। मिडिलसे लेकर बी० ए०, और वकालत तककी परीक्षाएँ उत्तम श्रेणीमें पास कीं। ये कानपुरके प्रसिद्ध वकील और अनेक

संस्थाओंके पदाधिकारी थे। आप 'धर्मकुसुमाकर' मासिक-पत्रके सम्पादक, थियोसाफिकल सोसायटी तथा रायल एशियाटिक सोसायटी, लन्दनके सदस्य और कानपुरकी जनताके प्रिय नेता थे। इनको वेदान्त, गीता, शंकराचार्यके दार्शनिक ग्रन्थों और संस्कृतका अच्छा ज्ञान था। ये कुशल वक्ता संगीत-मर्मज्ञ और अभिनयपटु थे। कट्टर सनातनी, आर्यसमाजके प्रबल विरोधी, ईश्वर, राजा तथा देशके भक्त थे। राजनीतिक विचार 'नरम-दल' के थे।

कृतियोंके नाम हैं—'धाराधर-धावन, (मेघदूतका पद्यानुवाद—१९०२ ई०), 'मृत्युंजय (मृत्यु और ज्ञान पर ९१ अतुकान्त छन्द—१९०४ ई०), 'प्रदर्शनी-स्वागत' (सामाजिक अवस्थासे संबंधित खड़ीबोलीके २०६ छप्पय—१९०६ ई०), 'राम रावण विरोध' (चम्पूकाव्य—१९०६ ई०), 'स्वदेशी-कुण्डल' (देशभक्तिविषयक ५२ कुंडलिया—१९१० ई०), 'राजदर्शन' (अंग्रजी-हिन्दीमिश्रित काव्य—१९११ ई०), 'वसन्त वियोग' (खड़ीबोलीका काव्य—१९१२ ई०), 'रम्भा-शुक सवाद' (सस्कृतके इसी नामके ग्रन्थका अनुवाद), 'तत्त्व-तरंगिणी' (शंकराचार्यके तत्त्वबोधका पद्यानुवाद) और 'चन्द्रकला-भानुकुमार नाटक' (कल्पित कथानकपर आधारित सुखान्त नाटक)।

'पूर्ण' नैसर्गिक प्रतिभाके आशुकवि थे। इनकी अधिकांश कविताएँ ब्रजभाषामें है किन्तु कुछ कविताओंकी भाषा उर्दू मिश्रित खड़ीबोली भी है। खड़ीबोलीकी कविताएँ प्रायः प्रचारात्मक और सामयिक है। रचनाओंके मुख्य विषय—वेदान्त, सामाजिक अवस्था, धार्मिक आन्दोलन, राजभक्ति, देशभक्ति और प्रकृति-सौन्दर्य हैं। छन्दोंमे कुण्डलिया, छप्पय सवैया, कवित्त, रोला आदि प्रमुख रूपसे प्रयुक्त हुए हैं। अनुवादोंके अतिरिक्त उन्होने नाटक, चम्पू, मुक्तक और प्रबन्धमुक्तक लिखे है। पद्यकी भाषा गद्यसे भिन्न है और उसकी बहुत बड़ी विशेषता स्वच्छन्दता है। छन्दोंमे तुकोंका प्रयोग अनिवार्य न होकर छन्दके आग्रह पर है। 'पूर्ण' अपने समाजके यथार्थ चित्रकार और ब्रजभाषाके परम्परावादी कवि होते हुए भी नवीनताके पोषक थे। उनके काव्यमे राजभक्ति एवं देशभक्ति तथा प्राचीन एवं नवीन विचारधाराओंका समन्वय है। उनका देहावसान ३० जून, सन् १९१५ ई० को हुआ था। —स० ना० त्रि०

रावण—रामकथाके प्रतिपक्षी नायकके रूपमें ही रावणके व्यक्तित्वकी उद्भावना हुई है, अतः रावणकी कल्पना रामकथाके प्रबन्धात्मक रूपके साथ ही जुड़ी हुई है। स्वतन्त्र रूपमे रावणसम्बन्धी कोई उल्लेख भारतीय वाङ्मयमे नहीं पाये जाते है। डा० याकूबीने अनुमान किया है कि राम रावण-युद्धकी कल्पना इन्द्र और वृत्रासुरके संग्रामके आधार पर की गयी। बौद्ध-साहित्यमे रावणसम्बन्धी जो उल्लेख मिलते है, उनका आधार सम्भवतः 'वाल्मीकि-रामायण' तथा लोकप्रचलित रामकथा ही है। दिनेशचन्द्र सेनका यह अनुमान कि 'दशरथ जातक' रामकथाका आदिस्रोत है तथा रावण और वानरोंसे सम्बन्धित आख्यान रामकथाके प्रचलित होनेसे पूर्व प्रसिद्ध थे, प्रमाणपुष्ट और विश्वसनीय नहीं जान पड़ता। श्री सेन्नने बुद्ध और रावणके 'लंकावतार सूत्र'में वर्णित धर्म-युद्धविषयक आख्यानका उल्लेख करके यह सिद्ध करना चाहा है कि यही आख्यान राम-रावण युद्धका मूलाधार है परन्तु वास्तवमें राम-रावण-युद्ध ही बुद्ध-रावण धार्मिक-विवादका आधार कहा जा सकता है। 'लंकावतारसूत्र'के चीनी रूपमें इस विवादका कोई संकेत नहीं मिलता। इससे इसकी अप्रामाणिकता सिद्ध हो जाती है। 'राक्षस' शब्द मनुष्यके शत्रुके अर्थमें प्रयुक्त होता रहा है। रामायण-कालतक यह शब्द अशुभसूचक बन गया था। अनुमान है कि वाल्मीकिने द्रविड़ दस्युओंके नामोंको राक्षसोंकी काल्पनिक कथामे मूर्त कर दिया।

रावण शब्दका शाब्दिक अर्थ है 'भयंकार रवकारी'। उसकी विशेषताओंमे उसके दशमुख होनेका भी अनेक बार उल्लेख हुआ है परन्तु यह उल्लेख आलकारिक जान पड़ता है। रावण इतना अधिक शब्द करता है कि दशमुखोंसे निकले स्वर भी उसकी समानता नहीं कर सकते। कदाचित् ऐसी कल्पना करते हुए ही उसे दशमुखकी संज्ञा दी गयी और एक बार दशमुखके रूपमे माना जाकर रावण स्वभावतः बीसबाहु बन गया। इस अनुमानका असन्दिग्ध प्रमाण यह है कि रामायणके अनेक स्थलोंपर रावणके एक मुख होनेका उल्लेख स्पष्ट रूपमे किया गया है।

रावणके पिताका नाम कहीं-कहीं पुलस्त्य और कहीं-कहीं पुलस्त्य-पुत्र वैश्रवण और वैश्रवा तथा माताका नाम सुमाली मिलता है। परवर्ती साहित्यमे पुलस्त्य रावणके पितामहके रूपमे ही प्रसिद्ध हुए। रावणकी वंशावलीका उल्लेख 'रामायण', 'महाभारत', 'कूर्मपुराण', 'आनन्द-रामायण', 'दशावतारचरितम्' (क्षेमेन्द्र) आदिमें प्राप्त होता है। 'पद्मपुराण'के अनुसार हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु दूसरे जन्म मे रावण और कुम्भकरणके रूपमे उत्पन्न हुए थे। 'देवी भागवत'के अनुसार विष्णुके पार्षद जय-विजय यथाक्रम असुर-योनिमे उत्पन्न होते हुए रावण और कुम्भकरणके रूपमें अवतरित हुए थे। रावणसम्बन्धी यह कल्पना प्रायः सभी पुराणों और बादके काव्योंमे पाई जाती है। निश्चय ही इसका आधार रामकथाका दैवीकरण और उसमे भक्ति-भावनाका संयोग ही है।

राम-कथाकी सार्थकता रावण-वधसे ही सिद्ध होती है। इसीलिए राम और रावणसे सम्बद्ध अनेकानेक रचनाएँ समय-समय पर होती रही। 'वाल्मीकि रामायण'से प्रारम्भ होकर रावणका चरित्र उत्तरोत्तर अधिक धीरोद्धत्त होता गया। प्राकृतके 'रावण वहो' अथवा 'सेतुबन्ध' नामक महाकाव्यमे 'वाल्मीकि-रामायण'के युद्ध-काण्डका प्रसंग अत्यन्त ओजस्वी और प्रभावशाली रूपमे विस्तारसे वर्णित है। इसमें रावणके शौर्य और पराक्रमका तो चित्रण है ही, इसके कामिनी-केलि नामक अध्यायमे उसके भोग-विलास-का भी विस्तृत वर्णन है। 'भट्टि काव्य' अथवा 'रावण-वध' नामक रचनामे रावणका चरित्र 'वाल्मीकि-रामायण'पर ही आधारित है। 'महानाटक'के रावण प्रपंच अंकमें रावणकी ऐन्द्रजालिक क्रियाओंका अद्भुत वर्णन हुआ है। 'आश्चर्य चूडामणि' नामक रचनामे बताया गया है कि रावण, राम-का वेष धारण कर सीता हरण करता है। दसवीं शताब्दी-में 'कृत्यारावण' और 'स्वप्न-दशानन' नामक दो रचनाएँ

हुई, जिनमें रावणके चरित्रको प्रमुख रूपमें चित्रित किया गया। हिन्दीमें सर्वप्रथम तुलसीदासके 'रामचरितमानस'में रावणका चरित्र विस्तृत रूपमें मिलता है किन्तु तुलसीदासने अपनी अनन्य रामभक्तिके कारण उसके पराक्रम और शौर्यका वैसा वर्णन नहीं किया, जैसा कि एक महाकाव्यके प्रतिनायकके लिए आवश्यक था। उन्होंने रावणकी दुष्टता, क्रूरता, लम्पटता और अहं भावना पर ही विशेष बल दिया है। साथ ही उन्होंने रावणके चरित्रके एक अन्य पक्ष पर भी विशेष ध्यान दिया है, जो उनके सभी पात्रोंके चरित्र-चित्रणमें अनिवार्यतः पाया जाता है। वह पक्ष है, उसकी अनन्य भावकी रामभक्तिका। वह निरन्तर रामका ही ध्यान करता रहता है, अन्तर केवल इतना है कि उसका ध्यान 'कुभाय' अर्थात् वैरभावका है—रावणका जन्म ही रामके द्वारा वध पाकर मुक्त होनेके लिए हुआ था। मृत्युके अवसर पर रामका नाम लेनेके कारण वह सद्गतिका भागी बनता है। उसका सम्पूर्ण तेज राममे समा जाता है। केशवने अपनी 'रामचन्द्रिका'में रावणके ऐश्वर्य और वैभवका किंचित् परिचय दिया है तथा उसकी विद्वत्ताका भी उल्लेख किया है परन्तु 'रामचन्द्रिका'मे पात्रोंका चरित्र-चित्रण सम्यकरूपमे नहीं हो सका। केशवके काव्यका यह पक्ष प्रबल नहीं है।

राम-काव्यकी माधुरी और रसिकता व्यंजक कृतियोंमे रावणका चरित्र-चित्रण सर्वथा अप्राप्य है और यह स्वाभाविक ही है। आधुनिक युगके 'रामचन्द्रोदय', 'साकेत' आदि काव्योंमे रावणके चरित्रका कोई उल्लेखनीय चित्रण नहीं पाया जाता। रावणके चरित्रको प्रमुखता देते हुए उसे नवीन दृष्टिकोणमे प्रस्तुत करनेका एक उल्लेखनीय प्रयास हरदयाल सिंह द्वारा रचित 'रावण महाकाव्य'मे अवश्य पाया जाता है। इसमे रावणके चरित्रके उज्वल पक्षका उद्घाटन किया गया है। इसके अनुसार रावण महान् पण्डित, कुशल राजनीतिज्ञ और अत्यन्त पराक्रमी योद्धा था। इस प्रकार कविने रावणके चरित्रमे यथा सम्भव श्रेष्ठ और उदात्त गुणोंका समन्वय करनेका यत्न किया है। 'रावण महाकाव्य'की रचना निश्चय ही माइकेल मधुसूदन दत्तके 'मेघनाद-वध'की प्रेरणासे हुई जान पड़ती है।

राम-कथाके सन्दर्भमे वर्णित और चित्रित रावणके लोकप्रसिद्ध व्यक्तित्वके अतिरिक्त रावणके पाण्डित्यको भी पर्याप्त प्रसिद्धि मिली है। 'ऋग्वेद भाष्य', 'प्राकृत लंकेश्वर' तथा अन्य अनेक रचनाएँ रावणकृत कही जाती है, जिससे उसकी विद्वत्ताकी सूचना मिलती है। ये रचनाएँ निश्चय ही अपेक्षाकृत अर्वाचीन हैं और यह नहीं कहा जा सकता कि इनके रचयिता रावण और राम-कथाके रावण अभिन्न है।

[सहायक ग्रन्थ—रामकथाः डा० कामिल बुल्के; तुलसीदास : डा० माताप्रसाद गुप्त; कल्याणका मानस विशेषांक, गीता प्रेस, गोरखपुर; तुलसीदास और उनका युग : राजपति दीक्षित।] —यो० प्र० सि०

रावी–जन्म १९११ ई०। पूरा नाम रामप्रसाद विद्यार्थी है। रावीके नामसे हिन्दी जगत्में प्रसिद्ध हैं। आगराके रहनेवाले हैं। नाटक, कहानी-संग्रह, लघुकथाओं और निबन्धोंके अतिरिक्त एक उपन्यास भी लिखा है। आपकी प्रसिद्धि मौलिक लघु-कथाओंके लेखकके रूपमें अधिक है।

रावी मुख्यतः भावुकताप्रधान शैलीके लेखक हैं। घटनाएँ अत्यन्त भावनाप्रधान, समस्याएँ जीवनके नितान्त निकट की, भाषा ओजमयी और तथ्य विशुद्ध साहित्यिक—यही आपकी विशेषता रही है। विडम्बनाओं और विरोधी स्थितियोंके भावनात्मक निराकरणोंमे आपका अधिक विश्वास है।

लघु-कथाओंमें आपकी शैली अधिक निखरकर आयी है। छोटी-छोटी कहानियोमे जीवनकी विविध अनुभूतियोंकी मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। 'मेरे कथा गुरुका कहना है...' (१९५८ ई०) आपकी बड़ी ही सफल कृति मानी जाती है। यद्यपि आपकी सम्पूर्ण कृतियोपर छायावादी भावबोधका गहरा प्रभाव पड़ा है किन्तु आपकी लघु-कथाओंमे उस तथ्यका बिलकुल भिन्न प्रभाव देखनेमे आता है। रागात्मक अनुभूतियों और जीवनके निकटतम सत्योंका एक सर्वथा नया पुट आपकी कथाओमे मिलता है।

नाटकोंमे यही शैली बाधाएँ उत्पन्न कर देती हैं क्योंकि पात्रोंकी रचना, उनकी स्थिति और उनकी सम्पूर्ण नाटकीय परिस्थिति इसीलिए भावुक अधिक और नाटकीय कम लगती है। 'नये नगरकी कहानी' (१९५३ ई०) नामक उपन्यासमे भी आपको सफलता अंशतः ही मिल पायी है। विभिन्न विधाओंका अतिक्रमण भी एक दूसरेमें हुआ है। कुछ लघु-कथाएँ नितान्त नाटकीय है, कुछ एकाकी कहानी के रूपमे प्रस्तुत किये गये है। उपन्यासकी भी यही दशा हुई है।

पत्रकार होनेके नाते आपने कुछ निबन्ध जैसे 'क्या मैं अन्दर आ सकता हूं' (१९५६ ई०) भी लिखे है। निबन्धो मे भी भावनाप्रधान शैली होनेके नाते कहीं-कहीं गद्य गीत जैसा लगता है लेकिन यह सब होते हुए भी आपकी रचनाओंमे आधुनिक स्वरोंकी झलक भी दीख पड़ती है।

आपके उल्लेखनीय ग्रन्थ इस प्रकार है—'पूजा' (एकांकी नाटक सग्रह, १९३७), 'पूर्व पश्चिम' (एकांकी नाटकोंका संग्रह, १९५०), 'नये नगरकी कहानी'(उपन्यास १९५३ ई०) 'पहला कहानीकार' (छोटी कहानियोंका संग्रह, १९५४), 'क्या मैं अन्दर आ सकता हूं' (निबन्ध), 'वीरभद्रकी गोष्ठी' (समाजशास्त्रसम्बन्धी पुस्तक, १९५६ ई०)। —ल० का० व०

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, नयी दिल्ली–कार्य और विभाग—(१) अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन—९ और १० फरवरी, १९६०को नयी दिल्लीमे इस सम्मेलनका आयोजन समितिके इतिहासका गौरवपूर्ण अध्याय है। देशके विभिन्न भागोंसे इसमे १५०० से अधिक प्रतिनिधियोंने भाग लिया। सम्मेलनके स्वागताध्यक्ष गोपाल रेड्डी, अध्यक्ष अनन्तशयनम आयंगार, उद्घाटनकर्त्ता—प० जवाहरलाल नेहरू, प्रमाण-पत्रवितरक सरदार हुकुमसिंह, दीक्षान्त भाषणकर्ता वियोगी हरि, राष्ट्रभाषा प्रदर्शनीके उद्घाटनकर्ता के० एल० श्रीमाली थे। इस अवसर पर महात्मा गांधी पुरस्कार आचार्य काका कालेलकरको समर्पित किया गया और राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडनकी सेवामें

२५००१ रुपये की निधि पंजाबके तत्कालीन राज्यपाल न० वी० गाडगिलके हाथ समर्पित की गयी, जिसे उन्होंने वर्धा-समितिको राष्ट्रभाषाके प्रचारार्थ वापस कर दिया। सम्मेलनमें लगभग २०००० रुपये व्यय हुए, जिसमें ९००० रुपये भारत सरकार और ५००० रुपये वर्धा समिति-केद्वारा अनुदानस्वरूप मिला। (२) हिन्दी-दिवस—हिन्दी दिवसके अवसरपर साप्ताहिक कार्यक्रम बनाया जाता है। (३) परीक्षा—गृहमंत्रालय द्वारा संचालित परीक्षाओंमें ५००० परीक्षार्थी प्रतिवर्ष शामिल होते हैं। शिक्षण-व्यवस्थाके लिए समितिके कार्यालय ३६, केनिंग लेनमें, नयी दिल्ली महाविद्यालय चल रहा है। (४) शिक्षा—रेलवे कर्मचारियोंको हिन्दी सिखानेका दायित्व वर्धा-समित-को दिलानेके लिए प्रयत्नशील है। —प्रे० ना० टं०

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा–हिन्दी नगर, वर्धा; स्थापना सन् १९३६ ई०; संस्थापक महात्मा गान्धी; विवरण—हिन्दी साहित्य सम्मेलनके नागपुर अधिवेशनमें, जिसके सभापति डा० राजेन्द्रप्रसाद थे, हिन्दीतर प्रदेशोंमे राष्ट्रभाषाके व्यापक प्रचारके लिए इस समितिका निर्माण हुआ। समितिके प्रथम सदस्य थे—सर्वश्री महात्मा गान्धी, डा० राजेन्द्र प्रसाद, सुभाषचन्द्र बोस, जवाहरलाल नेहरू, पुरुषोत्तमदास टण्डन, जमनालाल बजाज, आचार्य नरेन्द्र देव, काका कालेलकर, बाबा राघवदास, शंकर राव, माखनलाल चतुर्वेदी, वियोगीहरि, हरिहर शर्मा, ब्रजलाल बियाणी, नर्मदा सिंह, श्रीनाथ सिंह, लोक सुन्दरी रमन आदि। संस्थाका मूलमन्त्र है, 'एक हृदय हो भारत जननी'। भारतके समस्त प्रदेशोंके अतिरिक्त लंका, बर्मा, अफ्रीका, श्याम, जावा, सुमात्रा, मारीशस, अदन, सूडान तथा इंगलैण्डमे भी समितिके केन्द्र है।

कार्य और विभाग—(१) राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी परीक्षाओंके देश-विदेशमें २३९३ परीक्षा केन्द्र, ९३० शिक्षण केन्द्र, २७ राष्ट्रभाषाविद्यालय और महाविद्यालय, ६१७५ प्रमाणित प्रचारक है। अब तक विभिन्न परीक्षाओंमें २१ लाख, ८८ हजार, १३६ परीक्षार्थी सम्मिलित हो चुके है। (२) संगठन—३५ सदस्योंकी कार्यसमिति है, जिसमे १९ सदस्य हिन्दीतर प्रदेशोंके प्रतिनिधि है। (३) प्रान्तीय समितियाँ—गुजरात, महाराष्ट्र, विदर्भ-नागपुर, मध्यप्रदेश, सिन्धु, राजस्थान, आसाम, बंगाल, मणिपुर, उत्कल, मराठवाडा, दिल्ली, कर्नाटक, हैदराबादमें समितिकी स्थायी समितियाँ है। प्रत्येक समितिका एक-एक स्थायी संचालक नियुक्त किया गया है। (४) राष्ट्रभाषा महाविद्यालय—गत ८ वर्षोंसे वर्धामे एक महाविद्यालय संचालित है, जिसमे अहिन्दी भाषा-भाषियोंके अध्ययनकी विशेष सुविधा है। (५) राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन—प्रतिवर्ष यह सम्मेलन भिन्न-भिन्न प्रान्तोंमें होता है। अब तक वर्धा, अहमदाबाद, पूना, बम्बई, नागपुर, पुरी, जयपुर, भोपाल तथा दिल्लीमें ये सम्मेलन सम्पन्न हो चुके है। (६) महात्मा गान्धी पुरस्कार—राष्ट्रभाषाके प्रति की गयी सेवाओंके सम्मानस्वरूप १५०१ रुपये का यह पुरस्कार प्रदान किया जाता है। अबतक आचार्य क्षितिमोहन सेन, श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, आचार्य विनोबा भावे, प्रज्ञाचक्षु पं० सुखलाल संघवी, सन्तराम बी० ए० और आचार्य काका कालेलकरको समर्पित किया जा चुका है। (७) 'राष्ट्रभाषा' तथा 'राष्ट्रभारती'—समितिकी ओरसे ये दो मासिक पत्रिकाएं प्रकाशित की जाती हैं। (८) प्रकाशन—पाठ्यपुस्तकोंके रूपमे अब तक ५२ पुस्तकोंकी ६५ लाख प्रतियाँ प्रकाशित की जा चुकी हैं। समितिके पास अपना प्रेस है। विभिन्न विभागोंमे १५० कार्यकर्त्ता लगे हुए हैं। (९) पुस्तकालय—लगभग ८,००० पुस्तकें हैं। —प्रे० ना० टं०

रासपंचाध्यायी–'भागवत पुराण'के दशम स्कन्धके उन्तीसवें अध्यायमे तैंतीसवें अध्याय तक पाँच अध्यायोंको 'रासपंचा-ध्यायी' कहते है। इन पाँच अध्यायोंको 'भागवत पुराण'का प्राण कहा जाता है। 'रासपचाध्यायी'में रास प्रारम्भ करने के लिए श्रीकृष्णकी अन्तःप्रेरणाका तथा शारदीय पूर्णिमाकी ज्योत्स्नाधवल विभावरीका बहुत ही सरस एवं काव्यमयी भाषामे वर्णन किया गया है। ज्यो ही श्रीकृष्णके मनमें रासलीला करनेका विचार आया, समस्त वनप्रान्त अनुराग की लालिमामे अनुरंजित हो उठा। कृष्णने अपनी प्रिय वंशी उठायी और उसकी तान छेडना प्रारम्भ किया। वंशीरव सुनते ही ब्रजकी गोपियाँ अपने तन मनकी सुधि भूल, काम-काजको बीचमे छोड भाग खडी हुई और कृष्णके पास वन-वीथियोंमें जा पहुँची। श्रीकृष्णने सहज भावसे उन्हे अपने कर्तव्यका बोध कराया और वापस अपने घरोंको लौट जानेका अनुरोध किया किन्तु गोपियोंने किसी मर्यादाको स्वीकार नहीं किया और अपनी टेकपर दृढ बनी रहीं। तब कृष्णने आनन्दपुलकित हो उनके साथ मण्डलाकार स्थित होकर रास रचाया। वैष्णव भक्तोंने इस रासलीलाको ज्ञान, कर्म, योग और भक्ति मार्गकी सरणि माना है। इस लीलाका उपास्य काम-विजयी है, इसीलिए इसके द्वारा काम-विजयरूप फलप्राप्ति मानी जाती है।

'भागवत पुराण'के इन पाँच अध्यायोंके आधारपर हिन्दीके अनेक कवियोंने 'रासपचाध्यायी' काव्य लिखे हैं। सूरदासने इस प्रसंगका बडे विस्तारसे मौलिकतापूर्ण वर्णन किया है। स्वतन्त्र रूपमे 'रासपचाध्यायी' लिखनेवालोंमें नन्ददास, रहीम खानखाना, हरिराम व्यास, नवल सिंह कायस्थ प्रसिद्ध है। नन्ददासकी 'रासपंचाध्यायी' (दे० नन्ददास) रोला छन्द मे है, भाषा सानुप्रास और साहित्यिक ब्रज है। हरिराम व्यास (दे० हरिराम व्यास) रचित 'रासपंचाध्यायी' त्रिपदी छन्दमे ग्रथित है। कुल १२० त्रिपदी छन्दोंमें शारदीय रात्रिकी रासलीलामे प्रारम्भ करके अन्तमे रासलीला श्रमसे परिक्लान्त राधाका वर्णन किया गया है। व्यासजीकी 'रासपंचाध्यायी'मे माधुर्य-भक्तिका प्रभाव है। रहीमकी 'रासपंचाध्यायी' अप्राप्य है। 'भक्तमाल'मे रहीमके 'रास-पंचाध्यायी' सम्बन्धी दो पद मिले हैं। कदाचित् उन्हींके आधारपर अनुमान कर लिया गया है कि रहीमने 'रास-पंचाध्यायी'की रचना की थी। नवलसिंह (दे०) की 'रास-पंचाध्यायी' भी सामान्य स्तर की है। —वि० स्ना०

राहुल–मैथिलीशरणकृत 'यशोधरा' काव्यके मुख्य पात्रोंमेंसे एक है। 'यशोधरा' काव्यके वस्तु-संगठन और विकासमे उसका समधिक महत्त्व है। यदि राहुल-सा लाल गोदमें

न होता तो कदाचित् यशोधरा मरणका ही वरण कर लेती। —और तब इस यशोगाथाका प्रणयन ही क्यों होता? 'यशोधरा'में राहुलका मनोविकास अंकित है। उसकी बाल-सुलभ चेष्टाओंमें अद्भुत आकर्षण है। समयके साथ-साथ उसकी बुद्धिका विकास भी होता है, जो उसकी उक्तियोंसे स्पष्ट है परन्तु कहीं-कहीं राहुल बड़ोंके समान तर्क, युक्तिपूर्वक वार्तालाप करता है, जो जन्मजात प्रतिभासम्पन्न बालकके प्रसंगमें भी अतिरंजित प्रतीत होता है। —उ० का० गो०

राहुल सांकृत्यायन–महापण्डित राहुल सांकृत्यायनकी जन्मतिथि है रविवार ९ अप्रैल, १८९३ ई० और मृत्युतिथि १४ अप्रैल, १९६३ ई०। जन्म स्थान है, उनका ननिहाल पन्दहा ग्राम, जिला आजमगढ (उत्तर प्रदेश)। राहुलजीकी अपनी भूमि थी पन्दहासे दस मील दूर कनैला ग्राम। पिताका नाम था गोवर्धन पाण्डे और माताका नाम था कुलवन्ती। कुल चार भाई और एक बहन, परन्तु बहनका देहान्त बाल्यावस्थामे ही हो गया। भाइयोंमे ज्येष्ठ राहुलजी थे। पितृकुलसे मिला हुआ उनका नाम था केदारनाथ पाण्डे। 'राहुल' नाम तो बादमें पडा, जब वे बौद्ध हुए—सन् १९३० ई०में जब राहुलजी लंकामे थे। बौद्ध होनेके पूर्व राहुलजी 'रामोदर स्वामी' के नामसे भी पुकारे जाते थे। 'राहुल' नामके आगे 'सांकृत्यायन' इसलिए लगा कि पितृकुल सांकृत्य गोत्रीय है।

राहुलजीका बाल्यजीवन ननिहाल अर्थात् पन्दहा ग्राममे व्यतीत हुआ। राहुलजीके नानाका नाम था पण्डित रामशरण पाठक, जो अपनी युवावस्थामें फौजमे नौकरी कर चुके थे। नानाके मुखसे सुनी हुई फौजी जीवनकी कहानियाँ, शिकारके अद्भुत वृत्तान्त, देशके विभिन्न प्रदेशोंका रोचक वर्णन, अजन्ता-एलोराकी किंवदन्तियाँ तथा नदियों, झरनोंके वर्णन आदिने राहुलजीकी आगामी जीवनकी भूमिका तैयार कर दी। इसके अतिरिक्त दर्जा ३ की उर्दू किताबमें पढा हुआ 'नवाजिन्दा-बाजिन्दा' का शेर "सैर कर दुनियाँकी गाफिल फिर कहाँ, जिन्दगी गर कुछ रही तो नौजवानी फिर कहाँ"—राहुलजीको दूर देश जानेके लिए प्रेरित करने लगा। कुछ काल पश्चात् घर छोडनेका संयोग यों उपस्थित हुआ कि घीकी मटकी सम्हली नहीं और दो सेर घी जमीनपर बह गया। अब नानाकी डाटका भय, नवाजिन्दा-बाजिन्दाका वह शेर और नानाके ही मुखसे सुनी कहानियाँ—इन सबने मिलकर केदारनाथ पाण्डे (राहुलजी) को घरसे बाहर निकाल दिया।

संक्षेपमे राहुलकी जीवन-यात्राके अध्याय इस प्रकार है: पहली उडान वाराणसी तक, दूसरी उडान कलकत्ता तक, तीसरी उड़ान पुनः कलकत्ता तक, पुनः वापस आने पर हिमालयकी यात्रा, सन् १९१० ई० से १९१४ ई० तक वैराग्यका भूत और हिमालय, वाराणसीमे संस्कृतका अध्ययन, परसाके महन्थका साहचर्य, परसासे पलायन, दक्षिण भारतकी यात्रा। 'नव प्रकाश' (१९१५-२२)—आर्य मुसाफिर विद्यालय, आगरामें पढाई, लाहौरमे मिशनरी, पुनः घुमक्कड़ीका भूत, कुर्गमें चार मास। राजनीतिमे प्रवेश (१९२१-२७)—छपराके लिए प्रस्थान, बाढ-पीडितों की सेवा, सत्याग्रहकी तैयारी, बक्सर जेलमें छः मास, जिला कांग्रेसके मन्त्री, नेपालमें डेढ मास, हजारीबाग जेलमें, राजनीतिक शिथिलता, पुनः हिमालय, कौंसिलका चुनाव। लंकाके लिए प्रस्थान (१९२७)—लंकामें १९ मास, नेपालमे अज्ञात वास, तिब्बतमें सवा बरस, लंकामें दूसरी बार, सत्याग्रहके लिए भारतमे, लंकाके लिए तीसरी बार। यूरोप-यात्रा (१९३२-३३)—इग्लैण्ड और यूरोपमें, द्वितीय लद्दाख यात्रा, द्वितीय तिब्बत यात्रा, जापान कोरिया, मचूरिया, सोवियत भूमिकी प्रथम झाँकी (१९३५ ई०), ईरानमे पहली बार, तिब्बतमें तीसरी बार (१९३६ ई०) सोवियत भूमिमे दूसरी बार (१९३७ ई०) तिब्बतमे चौथी बार (१९३८ ई०), किसान मजदूरोंके लिए आन्दोलन (१९३८-४४), किसान संघर्ष (१९३९), सत्याग्रह भूख हडताल, सजा, जेल और एक नये जीवनका प्रारम्भ—कम्युनिस्ट पार्टीके मेम्बर। पुनः जेलमे २९ मास (१९४०-४२ ई०), इसके बाद सोवियत रूसके लिए पुनः प्रस्थान। रूससे लौटनेके बाद राहुलजी भारतमे रहे और कुछ समय पश्चात् चीन चले गये, फिर लंका।

राहुलजीकी प्रारम्भिक यात्राओंने दो दिशाएँ दी। एक तो प्राचीन एवं अर्वाचीन विषयोंका अध्ययन तथा दूसरे देश-देशान्तरोंकी अधिकसे अधिक प्रत्यक्ष जानकारी प्राप्त करना। इन दो प्रवृत्तियोंसे अभिभूत होकर राहुलजी महान् पर्यटक और महान् अध्येता बने। कट्टर सनातनी ब्राह्मण कुलमे जन्म लेकर भी सनातन धर्मकी रूढियोंको राहुलजीने अपने ऊपरसे उतार फेंका और जो भी तर्कवादी धर्म या तर्कवादी समाजशास्त्र उनके सामने आते गये, उसे ग्रहण करते गये और शनैः शनैः उन धर्मों एवं शास्त्रोंके भी मूल तत्वोंको अपनाते हुए उनके बाह्य ढाचोंको छोडते गये। सनातन धर्मसे आर्य समाज, आर्य समाजसे बौद्ध धर्म और बौद्धधर्मसे मानव धर्म—यह राहुलजीके धार्मिक विकासका क्रम है। इसी प्रकार काश्तकारीसे जमींदारी, जमींदारीसे महंथी, महंथीसे कांग्रेस, कांग्रेससे किसान आन्दोलन और किसान आन्दोलनसे साम्यवाद—राहुलजीके सामाजिक चिन्तनका क्रम है। राहुलजी किसी धर्म या विचारधाराके दायरेमे बँध नहीं सके। 'मज्झिम निकाय'के सूत्रका हवाला देते हुए राहुलजीने अपनी 'जीवन यात्रा'मे इस तथ्यका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है, "बेडेकी भाँति मैंने तुम्हें उपदेश दिया है, वह पार उतरनेके लिए हैं, शिर पर ढोये-ढोये फिरनेके लिए नहीं—तो मालूम हुआ कि जिस चीजको मैं इतने दिनोंसे ढूँढता रहा हूँ, वह मिल गयी।"

यद्यपि राहुलजीके जीवनमे पर्यटक-वृत्ति सदैव प्रधान रही परन्तु उनका पर्यटन केवल पर्यटनके लिए नहीं रहा। पर्यटनके मूलमे अध्ययनकी प्रवृत्ति सर्वोपरि रही। अनेक धार्मिक एव राजनीतिक वलयोंमें रहनेके बाद भी उनके अध्ययन एवं चिन्तनमे कभी जड़ता नहीं आने पायी। राहुलजी बाल्यकालसे ही मेधावी थे। समूचे दर्जेमे अव्वल होना उनके लिए साधारण बात थी। परिस्थितियोंके अनुसार जिस विषयके सम्पर्कमे वे आये, उसकी पूरी जानकारी प्राप्त करना उनका व्यक्तिगत धर्म बन गया।

वाराणसीमें जब संस्कृतमे अनुराग हुआ तो सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य एवं दर्शनादिको पढ़ लिया। कलकत्तामें अंग्रेजीसे पाला पड़ा तो कुछ समयमें अंग्रेजीके ज्ञाता बन गये। आर्य समाजका जब प्रभाव पड़ा तो वेदोंको मथ डाला। बौद्धधर्म की ओर जब झुकाव हुआ तो पाली, प्राकृत, अपभ्रंश, तिब्बती, चीनी, जापानी, एवं सिंहली भाषाओंकी जानकारी लेते हुए सम्पर्ण बौद्ध-ग्रन्थोंका मनन किया और सर्वश्रेष्ठ उपाधि 'त्रिपिटकाचार्य'की पदवी पायी। साम्यवादके क्रोडमें जब राहुलजी गये तो कार्ल मार्क्स, लेनिन तथा स्तालिनके दर्शनसे पूर्ण परिचित हुए। प्रकारान्तरसे राहुलजी इतिहास, पुरातत्व, स्थापत्य, भाषा-शास्त्र एवं राजनीति-शास्त्रके अच्छे ज्ञाता थे।

अपनी 'जीवन यात्रा'मे राहुलजीने स्वीकार किया है कि उनका साहित्यिक जीवन सन् १९२७ ई०से प्रारम्भ होता है। वास्तविक बात तो यह है कि राहुलजीने किशोरावस्था पार करनेके बाद ही लिखना शुरू कर दिया था। जिस प्रकार उनके पाँव नहीं रुके, उसी प्रकार उनके हाथकी लेखनी भी कभी नहीं रुकी। उनकी लेखनीकी अजस्रधारासे विभिन्न विषयोंपर प्रायः १५० से अधिक ग्रन्थ प्रणीत हुए हैं। प्रकाशित ग्रन्थोंकी संख्या सम्भवतः १२९ है। लेखों, निबन्धों एव वक्तृताओंकी संख्या हजारोंमे है। राहुलजीकी प्रकाशित कृतियोंका क्रम इस प्रकार है—

कृतियाँ—हिन्दी : १. उपन्यास-कहानी (क) मौलिक—'सतमीके बच्चे' (कहानी, १९३५ ई०), 'जीनेके लिए' (१९४० ई०), 'सिंह सेनापति' (१९४४), 'जय यौधेय' (१९४४), 'बोल्गामे गगा' (कहानी, १९४४), 'मधुर स्वप्न' (१९४९), 'बहुरगी मधुपुरी' (कहानी १९५३), 'विस्मृत यात्री' (१९५४), 'कनैलाकी कथा' (कहानी १९५५-५६), 'सप्तसिन्धु'। (ख) अनुवाद—'शैतानकी आँख' (१९२३), 'विस्मृतिके गर्भमे' (१९२३), 'जादूका मुल्क' (१९२३), 'सोनेकी ढाल' (१९२३), 'दाखुन्दा' (१९४७), 'जो दास थे' (१९४७), 'अनाथ' (१९४८), 'अदीना' (१९५१), 'सूदखोरकी मौत' (१९५१), 'शादी' (१९५२)। २. कोश—'शासन शब्द कोश' (१९४८), 'राष्ट्रभाषा कोश' (१९५१)। ३. जीवनी—'मेरी जीवन यात्रा' (दो भागमें १९४४), 'सरदार पृथिवीसिंह' (१९४४), 'नये भारतके नये नेता' (१९४४), 'राजस्थानी रनिवास' (१९५३), 'बचपनकी स्मृतियाँ' (१९५३), 'अतीतसे वर्त्तमान' (१९५३), 'स्तालिन' (१९५४), 'कार्ल मार्क्स' (१९५४), 'लेनिन' (१९५४), 'माओत्से तुंग' (१९५४), 'घुमक्कड़ स्वामी' (१९५६), 'असहयोगके मेरे साथी' (१९५६), 'जिनका मैं कृतज्ञ' (१९५६), 'वीर चन्द्र सिंह गढवाली' (१९५७)। ४. दर्शन—'वैज्ञानिक भौतिकवाद' (१९४२), 'दर्शन दिग्दर्शन' (१९४२), 'बौद्ध दर्शन' (१९४२)। ५. देश दर्शन—'सोवियत भूमि' (दो भागमे १९३८), 'सोवियत मध्य एशिया' (१९४७), 'किन्नर देश' (१९४८), 'दार्जिलिंग परिचय' (१९५०), 'कुमाऊँ' (१९५१), 'गढ़वाल' (१९५२), 'नैपाल' (१९५३), 'हिमालय प्रदेश' (१९५४), 'जौनसार देहरादून' (१९५५), 'आजमगढ़ पुरातत्त्व' (१९५५), ६. बौद्ध धर्म—'बुद्धचर्या' (१९३० ई०), 'धम्मपद' (१९३३), 'मज्झिमनिकाय' (१९३३), 'विनय-पिटक' (१९३४), 'दीर्घनिकाय' (१९३५), 'महामानव बुद्ध' (१९५६)। ७. भोजपुरी (नाटक)—'तीन नाटक' (१९४४), 'पाँच नाटक' (१९४४)। ८. यात्रा—'मेरी लद्दाख यात्रा' (१९२६) ई०, 'लंका यात्रावलि' (१९२७-२८), 'तिब्बतमें सवा वर्ष' (१९३९), 'मेरी यूरोप यात्रा' (१९३२), 'मेरी तिब्बत यात्रा' (१९३४), 'यात्राके पन्ने' (१९३४-३६), 'जापान' (१९३५), 'ईरान' (१९३५-३७) 'रूसमें पच्चीस मास' (१९४४-४७), 'घुमक्कड शास्त्र' (१९४९), 'एशियाके दुर्गम खण्डोंमें' (१९५६)। ९. राजनीति-साम्यवाद—'बाईसवीं सदी' (१९२३ ई०), 'साम्यवाद ही क्यों' (१९३४), 'दिमागी गुलामी' (१९३७), 'क्या करें' (१९३७), 'तुम्हारी क्षय' (१९४७), 'सोवियत न्याय' (१९३९), 'राहुलजीका अपराध' (१९३९), 'सोवियत कम्युनिस्ट पार्टीका इतिहास' (१९३९), 'मानव समाज' (१९४२), 'आजकी समस्याएँ' (१९४४), 'आजकी राजनीति' (१९४९), 'भागो नहीं बदलो' (१९४४), 'कम्युनिस्ट क्या चाहते है ?' (१९५३)। १०. विज्ञान—'विश्वकी रूपरेखा' (१९४२ ई०)। ११ साहित्य और इतिहास—'इस्लाम धर्मकी रूपरेखा' (१९२३ ई०), 'तिब्बतमें बौद्ध धर्म' (१९३५), 'पुरातत्व निबन्धावलि' (१९३६), 'हिन्दी काव्यधारा (अपभ्रंश, १९४४), 'बौद्ध संस्कृति' (१९४९), 'साहित्य निबन्धावलि' (१९४९), 'आदि हिन्दीकी कहानियाँ' (१९५०), 'दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा' (१९५२), 'मध्य एशियाका इतिहास' १,२ (१९५२), 'सरह दोहा कोश' (१९५४), 'ऋग्वेदिक आर्य' (१९५६), 'अकबर' (१९५६), 'भारतमें अंग्रेजी राज्यके संस्थापक' (१९५७), 'तुलसी रामायण सक्षेप' (१९५७)। १२. संस्कृत : (टीका, अनुवाद)—'संस्कृत पाठमाला' (१९२८ ई०), 'अभिधर्म कोश' (टीका, १९३०) 'विज्ञप्तिमात्रता सिद्ध' (१९३४), 'प्रमाणवार्त्तिक स्ववृत्ति' (१९३७), 'हेतुविन्दु' (१९४४), 'सम्बन्ध परीक्षा' (१९४४), 'निदान सूत्र' (१९५१), 'महापरिनिर्वाण सूत्र' (१९५१), 'सस्कृत काव्यधारा' (१९५५), 'प्रमाणवार्त्तिक' (अंग्रेजी)। १३. तिब्बती : (भाषा, व्याकरण)—'तिब्बती बालशिक्षा' (१९३३ ई०), 'पाठावली (१९३३ ई०), 'तिब्बती व्याकरण' (१९३३)। १४. संस्कृत तालपोथी (सम्पादन) दर्शन, धर्म : 'वादन्याय' (१९३५ ई०), 'प्रमाणवार्त्तिक' (१९३५), 'अध्यर्द्धशतक' (१९३५), 'विग्रहव्यावर्त्तनी' (१९३५), 'प्रमाणवार्त्तिक-भाष्य' (१९३५-३६), 'प्रमाणवार्त्तिकवृत्ति' (१९३६), 'प्र० बा० स्ववृत्ति टीका' (१९३७), 'विनयसूत्र' (१९४३)।

ऊपरकी सूचीसे स्पष्ट है कि राहुलजीने हिन्दी साहित्य के अतिरिक्त धर्म, दर्शन, लोक साहित्य, यात्रा साहित्य, जीवनी, राजनीति, इतिहास, संस्कृत ग्रन्थोंकी टीका और अनुवाद, कोश, तिब्बती भाषा एवं तालपोथी सम्पादन आदि विषयोंपर अधिकारके साथ लिखा है। वस्तुतः यह उनकी बहुमुखी प्रतिभाका परिचायक है। हिन्दी भाषा और साहित्यके क्षेत्रमें राहुलजीने 'अपभ्रंश काव्य साहित्य', 'दक्खिनी हिन्दी साहित्य', 'आदि हिन्दीकी कहानियाँ' प्रस्तुत कर लुप्तप्राय निधिका उद्धार किया है। राहुलजीकी

मौलिक कहानियाँ एवं उपन्यास एक नये दृष्टिकोणको सामने रखती हैं। साहित्यसे सम्बन्धित राहुलजीकी रचनाओंमें एक और विशिष्ट बात यह रही है कि उन्होंने प्राचीन इतिहास अथवा वर्तमान जीवनके उन अछूते अंगों को स्पर्श किया है, जिसपर साधारणतया लोगोंकी दृष्टि नहीं गयी थी। उन रचनाओंमें जहाँ एक ओर प्राचीनके प्रति मोह, इतिहासका गौरव आदि है तो दूसरी ओर उनकी अनेक रचनाएँ स्थानीय रंगतको लेकर मोहक चित्र उपस्थित करती हैं। 'सतमीके बच्चे' और 'कनैलाकी कथा' इस तथ्यकी पुष्टि करते हैं। राहुलजीने प्राचीनके खण्डहरो से गणतन्त्रीय प्रणाली खोज निकाली। धार्मिक आन्दोलनके मूलमें जाकर सर्वहाराके धर्मको पकड़ लिया। इतिहासके पृष्ठोंमें असाधारणके स्थानपर साधारणको अधिक प्रश्रय दिया और इस प्रकार जनता, जनताका राज्य, मेहनतकश मजदूर—यह सब उनकी रचनाओके मूलाधार बने। साहित्यिक भाषा, काव्यात्मकता अथवा व्यंजनाओका सहारा न लेते हुए राहुलजीने सीधी, सरल शैलीका सहारा लिया। इसीलिए राहुलजीकी रचनाएँ साधारण पाठकोंके लिए भी मनोरंजक एवं बोधगम्य हैं। —म० प्र० सि०

रुक्मिणी—रुक्मिणीकी कथाके आधार 'भागवत' (दशम स्कन्ध, उत्तरार्द्ध, अ० ५२-५३-५४-६०), 'हरिवंश' (५९-४३), 'विष्णु' (१०-६५-६७) आदि पुराण हैं। भक्तियुगके कृष्ण भक्त कवियोंमें सूरदास और नन्ददासने रुक्मिणी-परिणयके प्रसंगमें उसका चरित्र-चित्रण किया है। रुक्मिणी कुण्डनपुर के विष्णुभक्त राजा भीष्मककी पुत्री थी। वह आरम्भसे ही कृष्णानुरागिणी थी। रुक्मिणीके पिता उसका विवाह यदुराईसे करना चाहते थे किन्तु उसके भाईने उसका विवाह चन्देरीके राजा शिशुपालके साथ करना चाहा। रुक्मिणीने कृष्णके पास अपना भावनापूर्ण मर्मस्पर्शी सन्देश भेजा। कृष्णने यथासमय रुक्मिणीकी सहायता करके उसका वरण किया (सू० सा० प० ४७८४-४८०३)। रुक्मिणी कमलाका अवतार कही गयी है, फिर भी भक्त कवियोंने उसके व्यक्तित्वसे भक्ति-भावकी ही व्यंजना करायी है। कृष्ण द्वारा ली गयी भक्तिकी परीक्षामें वह खरी उतरती है (सू० सा० प० ४८१३)। रुक्मिणीका प्रेम दैन्यपरक है। उसे न तो कृष्णके ऐश्वर्यका ही ज्ञान है और न उसका प्रेम ही ज्ञानजनित है। रुक्मिणीका स्वभाव सरल एवं उदार है। वह राधाके प्रति भी स्नेहभाव रखती है (सू० सा० प० ४८८९)। परोक्ष रूपमें रुक्मिणीका चरित्र राधाके अगाध प्रेमकी कसौटी है। कृष्णके ऐश्वर्य-पूर्ण व्यक्तित्वकी कल्पना रुक्मिणीके बिना अधूरी ही मानी जायेगी।

माधुर्य भावके परिपोषक होनेके कारण रुक्मिणीकी सम्पूर्ण कथामें उसके परिणयके प्रसंगके प्रति ही मध्ययुगीन कवियोंका विशेष अनुराग दिखाई पड़ता है। नन्ददासने तो भागवतकी मान्यतासे भिन्न रुक्मिणीके कृष्णके प्रति अनुरागका कारण नारदको बतलाकर "जब ते तुम्हारे गुनगन मुनिजन नारद गाए" नये प्रसंगकी उद्भावना की है किन्तु यह स्मरणीय है कि कृष्ण भक्ति-काव्यमें राधा और गोपियोंकी समकक्षतामें रुक्मिणीका चरित्र विशेष समादृत न हो सका। केवल वल्लभ सम्प्रदायको छोड़कर निम्बार्क, चैतन्य, राधावल्लभ और हरिदासी सम्प्रदायोंमें तो वह लगभग पूर्णतया उपेक्षित सा ही रहा है।

रीतियुगमें रुक्मिणीका चरित्र एवं उसके परिणयकी कथा सम्प्रदायमुक्त शृंगारी कवियोंके लिए विशेष आकर्षक सिद्ध हुई। इसका कारण रुक्मिणी-परिणयके प्रसंगकी शृंगारी प्रकृतिका सामन्ती जीवनसे तादात्म्य ज्ञात होता है। प्रस्तुत प्रसगको लेकर १९ वी शती तक रचे गये कथा-काव्योमे नवलसिंहकृत 'रुक्मिणी मंगल', रघुराज सिंह-कृत 'रुक्मिणी परिणय', रामलालकृत 'रुक्मिणी मंगल', मिहिरचन्द्रकृत 'रुक्मिणी मंगल', पद्मभगतकृत 'रुक्मिणी मंगल', विष्णुदासकृत 'रुक्मिणी मंगल', इसके प्रमाण हैं। इन रचनाओमे रुक्मिणी परिणयकी कथा एवं उसके चरित्र को सामन्ती रंगमे रँगनेके यत्न स्पष्ट दिखलाई पडते हैं। रघुराज सिंहकृत 'रुक्मिणी परिणय'मे तो एतद्विषयक सम्पूर्ण कथाके सन्निवेशके फलस्वरूप भी रुक्मिणी कृष्ण-प्रियाके स्थान पर सामन्ती पटरानियोंकी प्रतिच्छाया-सी मालूम पडती है।

आधुनिक युगमे जनतान्त्रिक चेतना एवं सुधारवादी भावनाके फलस्वरूप सामन्ती जीवनके प्रेरक तत्त्वोके परिपोषक होनेके कारण रुक्मिणीका चरित्र कृष्ण कथा-काव्योंमें स्थान न पा सका। द्वारिकाप्रसाद मिश्रका 'कृष्णायन' इसका अपवाद है किन्तु उसकी रचनाकी प्रेरणा भक्ति न होकर, कृष्ण-चरितकी पूर्णताका निदर्शन एव भक्त कवियो द्वारा उपेक्षित पक्षका उद्‌घाटन है। —रा० कु०

रुक्मिणी मंगल—मंगल काव्योंमे किसी देवी अथवा देवता-का माहात्म्य वर्णित रहता है। उनके अन्तर्गत जिस देवी अथवा देवताका माहात्म्य प्रदर्शित किया जाता है, उसमें अपने भक्तको सभी प्रकारकी आपत्तियोंमे बचाने तथा अपने अत्याचारियो और विरोधियोंको समाप्त करनेकी सामर्थ्य रहती है। फलस्वरूप उनमे शक्ति, वैभव एव चमत्कारका कुछ-न-कुछ अंश समाविष्ट रहता है। मूलतः मंगल काव्योंकी रचना प्रेरणामे किसी देवी अथवा देवताकी पूजा भावनाको उत्कर्ष देनेकी प्रवृत्ति दिखाई पडती है किन्तु भक्ति-साहित्यमे मंगल-काव्योंका सम्बन्ध चैतन्य, अद्वैत आदि साम्प्रदायिक आचार्योंसे ही दिखाई पड़ता है, जिसके फलस्वरूप उनमे जीवनी-साहित्यकी तथ्यात्मकता समाविष्ट होती गयी। कृष्णपरक कवियोने रुक्मिणी और कृष्णके विवाहप्रसगको मंगलकी भावनासे अनुप्राणित करके रुक्मिणी मंगलोंकी रचना की। इस प्रसंगपर आधारित जो रचनाएँ प्राप्त है, उनके 'रुक्मिणी मंगल', 'रुक्मिणी परिणय', 'रुक्मिणी हरण', 'रुक्मिणी स्वयवर', 'रुक्मिणी विवाह लो', 'रुक्मिणी विलास' आदि विविध नाम प्राप्त होते हैं।

कृष्ण और रुक्मिणीकी कथा 'भागवत' (१०।५२-५४), 'विष्णु' (२६।८), 'हरिवंश' (५९।६०) आदि पुराणोंमे कतिपय अन्तरके साथ प्राप्त है परन्तु सामान्य रूपसे इस कथाके प्रस्तुत अंश है—कुण्डनपुरके राजा भीष्मककी कन्या रुक्मिणीका विवाह शिशुपालसे निश्चित होना, नारदका हस्तक्षेप, रुक्मिणीका कृष्णको पत्र लिखना, विवाहका आयो-

जन, कृष्णका विवाहोत्सवके अवसरपर रुक्मिणीका हरण और शिशुपालका वध करना। रुक्मिणी मंगलकारोंने प्रस्तुत कथाके विविध अंशोंको अपनी कल्पनासे अनुरंजित करके वातावरणविषयक अनेक परिवर्तन भी किये हैं। हिन्दीके अतिरिक्त तेलुगु, आसामी, मराठी, गुजराती आदि भारतीय भाषाओंमें भी एतद्विषयक रचनाओंकी एक पुष्ट-परम्परा प्राप्त होती है, विशेषकर मराठी और गुजराती कृष्ण भक्ति काव्यमें कृष्णके ऐश्वर्यपरक व्यक्तित्वकी उपासनाके प्रचलनके कारण रुक्मिणी परिणयविषयक रचनाओंको विशेष प्रेरणा प्राप्त हुई।

हिन्दीमें रुक्मिणी-परिणयके प्रसंगसे सम्बन्धित अनेक रचनाएँ प्राप्त होती है परन्तु भक्तिकाव्यके अन्तर्गत यह प्रसंग अधिक समादृत नहीं हो सका। इसका कारण ब्रज-प्रदेशके कृष्णभक्ति सम्प्रदायो द्वारा पोषित राधा-कृष्णकी मधुर उपासना ज्ञात होती है। 'सूरसागर', 'भागवत'के भाषानुवादोंमे प्राप्त रुक्मिणी-परिणयका प्रसग तथा नन्द-दासकृत 'रुक्मिणी मंगल' जैसी रचनाएँ इस तथ्यके अपवाद ही कहे जायेंगे। निम्बार्क, चैतन्य, राधावल्लभ और हरि-दासी सम्प्रदायके किसी भी कविकी रुक्मिणी-परिणयविषयक रचना प्राप्त नही है।

इस परम्पराकी सर्वप्रथम प्राप्त किन्तु अप्रकाशित रचना विष्णुदासकृत 'रुक्मिणी मंगल' है। डा० शिवप्रसाद सिंहके अनुसार विष्णुदास सूरदासके परवर्ती थे। विष्णुदासके 'रुक्मिणी मंगल'की भाषा तद्भव शब्दावलीप्रधान ब्रजभाषा है। कविने लोकसंस्कृतिका चित्रण करनेका प्रयत्न किया है। पद शैली एवं शास्त्रीय संगीतके प्रयोगके कारण भाषामे प्रवाहमयता लक्षित होती है। इसके अनन्तर सूरसागरके दशम स्कंध उत्तरार्द्ध (प० ४१६७-४१८८) मे रुक्मिणी परिणय प्रसंग प्राप्त है, जो 'भागवत'से प्रभावित ज्ञात होता है परन्तु कृष्णकी ब्रजलीलाओके समान यह प्रसंग सूरदास-की भक्ति-भावनाका प्रकाशन नही कर सका है। नन्ददास-कृत 'रुक्मिणी मंगल' भक्त कवि द्वारा रचित सर्व प्रथम स्वतन्त्र रचना है। यह रोला छन्दमें रची गयी है तथा २६५ पक्तियोमे समाप्त हुई है। कथा सगठनकी दृष्टिसे इसे खण्डकाव्य कहा जा सकता है। भावाभिव्यजना एव काव्य गुणोंकी दृष्टिसे रचना श्रेष्ठ कोटिकी है। नन्ददासके 'रुक्मिणी मंगल'के उपरान्त राजस्थानके प्रसिद्ध कवि पृथ्वीराजकृत 'वेलि क्रसन रुक्मिणी री' (सं० १६३७ ई०) इस परम्पराकी अत्यन्त महत्वपूर्ण रचना है। इसमें 'भागवत'के आख्यानको काव्यात्मक रूप दिया गया है। इसकी रचना राजस्थानीके 'वेलियोगीत' नामक छन्दके अन्तर्गत हुई है। 'वेलिक्रसन रुक्मिणी री' की सबसे बड़ी विशेषता भक्ति और शृंगारका समन्वय है। वेलिकी कथाका आधार भागवत है किन्तु यह आधार केवल कथानकका ही है। काव्य-सौन्दर्य और घटनाओंके प्रवाहमे लेखककी मौलिकता है। वेलिके अनन्तर रुक्मिणी मंगलोंकी परम्परामे प्राप्त रचनाओंकी सृजन-प्रेरणा सर्वथा लौकिक है। इनमे अकबरी दरबारके नरहरि बन्दीजनकृत 'रुक्मिणी मंगल' (सं० १५६२-१६८५ वि०), समथा राज्यके आश्रित नवलसिंह (सं०१८७२-१९२७ वि०)-कृत 'रुक्मिणी मंगल' तथा रीवाँ नरेश महाराज रघुराज-सिंह (सं० १८८०-१९३६ वि०) कृत 'रुक्मिणी-परिणय' उल्लेखनीय है। नरहरि बन्दीजनका 'रुक्मिणी मंगल' एक छोटी सी प्रबन्ध रचना है। इसकी हस्तलिखित प्रति काशि-राज पुस्तकालयमें सुरक्षित है। इसका सम्पादित संस्करण प्रकाशित नहीं है। इसमें मंगल और हरिगीतिका छन्दोंका प्रयोग हुआ है। काव्य-सौष्ठवकी दृष्टिसे रचना सामान्य कोटिकी है। नवलसिंहका 'रुक्मिणी मंगल' ३०७ रोला छन्दोंमे समाप्त हुआ है। काव्य-सौष्ठवकी दृष्टिसे यह भी सामान्य कोटिकी रचना है। रघुराजसिंहके 'रुक्मिणी परिणय'का वैशिष्ट्य उसमे निरूपित राजकीय वातावरणकी अभिव्यक्तिमे है। विलासके प्रसंगमे कक्षोंकी साज-सज्जा सामन्ती रंग-महलोंके समान है। पाठक कथानकके प्रवाह-को भूलकर वातावरणके वर्णनकी ओर ही प्रमुख रूपसे आकृष्ट रहता है। इस परम्पराकी अन्य रचनाओंमें कृष्ण दासकृत 'रुक्मिणी विवाह लो' (लि० का० सं० १६९२), हरिनारायणकृत 'रुक्मिणी मंगल' (लि० का सं० १९५२), ठाकुरदासकृत 'रुक्मिणी मगल' (सं० १८९४), मानदास उपनाम कृष्ण चौबे (सं० १८०७ के लगभग) कृत 'रुक्मिणी मंगल', रामललाकृत 'रुक्मिणी मंगल' (रचनाकाल लि० का० सं० १८६२ लगभग), हरचन्द द्विजदासकृत 'रुक्मिणी मंगल', पदुम भगतकृत 'रुक्मिणीजी को ब्याह लो' आदि का नाम लिया जा सकता है। इनकी कथाका संगठन 'भागवत'की कथाके सर्वथा अनुकरण पर नही हुआ है, वरन् कवियोंने कथाके विविध अशोके आधारपर अपनी रुचिके अनुरूपमें परिवर्धन एवं परिवर्तन भी किये हैं। इन रचनाओंका स्वरूप भी सर्वथा लौकिक कहा जायेगा।

रुक्मिणी मंगलोंकी रचना प्रायः प्रबन्धोंके रूपमें ही हुई है। इसका कारण यह ज्ञात होता है कि रुक्मिणी-परिणयके प्रसंगमे कृष्णके राजन्यरूप एवं नायकत्वकी अभिव्यंजना स्फुट पदो और मुक्तकोंकी अपेक्षा प्रबन्धकाव्यके अन्तर्गत ही अधिक सम्भव थी। केवल सूरदासको छोड़कर प्रायः अन्य सभी कवियोंने इस प्रसगकी उद्भावना रोला, दोहा, चौपाई, हरिगीतिका आदि वर्णनात्मक छन्दोंके अन्तर्गत की है। रुक्मिणी मंगलोंके रचनापरिमाणकी दृष्टिसे १८ वीं १९ वी शती महत्त्वपूर्ण है।

[सहायक ग्रन्थ—हिन्दी साहित्य भाग २ तथा अन्य साहित्य ग्रन्थ; ना० प्र० स० की खोज रिपोर्टें—१९०५, १९०६-८, १९१२-१४, १९३२-३४, १९३८-४० आदि।] —रा० कु०

रुद्र–वेद, तन्त्र, पुराणों आदिमे 'रुद्र' शब्दकी निरुक्ति कई प्रकारसे की गयी है। यास्क और देवराजने रुदन करते हुए दौड़नेके कारण इन्हे रुद्र कहा है। 'पाशुपतसूत्रम्'के अनुसार भयको पिघलाकर बहा देना ही 'रुद्र'की रुद्रता है। 'गरुड़ पुराण'मे क्षोभयुक्त होनेके कारण इन्हे 'रुद्र'के नामसे पुकारा गया है। वैदिक साहित्यमे 'रुद्र' भय एवं त्रासके देवता कहे गये है। सम्भवतः भारतीय अनार्य देव शंकरसे अत्यधिक समानताके कारण इनका पर्यवसान उसी रूपमे हो गया। तन्त्रकालमें ये रुद्र स्वतः शिव एवं शून्य के पर्याय हो गये। 'तन्त्रालोक', 'लिंगपुराण', 'तन्त्रराजतन्त्र' आदिमें इनकी प्रतिमा और पूजनकी अनिवार्यता प्रकट की

गयी है। निष्कर्षतः रुद्र शिवकी भयंकर प्रतिकृतिके लिए ही प्रयुक्त हुए है। सामान्यतः रुद्रकी संख्या एकादश बताई जाती है। सामवेदी 'जैमिनीय ब्राह्मण'के अनुसार वैदिक छन्दसे सम्बन्धित होनेके कारण इनकी संख्या ४४ है। 'काठक संहिता'में इनकी संख्या १० मानी गयी है किन्तु 'कपिष्ठल संहिता'के अनुसार उनकी संख्या १०० मानकर 'रुद्रशती' नामक स्तोत लिखा गया। पौराणिक परम्पराके हिन्दी साहित्यमे ये शंकर या शिवके पर्यायवाची रूपमें प्रयुक्त होकर प्रलय या विनाशके देवता समझे जाते है। —यो० प्र० सिं०

रूपनारायण पांडेय-जन्म—सन् १८८४ ई० रानीकटरा, लखनऊ (उत्तरप्रदेश) मे; मृत्यु सन् १९५९ ई०। समस्त शिक्षा-दीक्षा लखनऊमे ही सम्पन्न हुई। 'निगमागम चन्द्रिका', 'नागरी-प्रचारक' एव जयशंकर प्रसाद द्वारा संस्थापित 'इन्दु' नामक मासिक पत्रिकाके भी सम्पादक रहे। 'माधुरी'के आरम्भिक ५ वर्षोंमे उसका सम्पादन किया। लगभग १९३५ ई० से लेकर 'माधुरी'के अस्त-काल तक फिर उसके सम्पादक रहे। पहले ब्रजभाषामें कविताएँ करते थे पर 'द्विवेदी-युग'के प्रवाहमे खडीबोलीमे रचनाएँ लिखने लगे। वे नवीन काव्य-प्रवृत्ति और छायावादके सहानुभूति-कर्ताओंमे थे। स्वच्छन्दतावादी मनोवृत्तिके रूपमे इनकी रचनाएँ छायावादका पूर्वाभास देती है। जब रामचन्द्र शुक्लने छायावाद एवं रहस्यवादके विरोधमे लिखा था कि "काव्यमे रहस्य कोई वाद ही नहीं है, जिसे लेकर 'निराला' कोई पन्थ ही खडा करें", तो पाण्डेय जीने काव्यमे ही इसका सशक्त प्रत्युत्तर दिया था, जिसकी तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओ—'माधुरी,' 'सरस्वती' आदिमे पर्याप्त चर्चा हुई थी।

छायावादी-रहस्यवादी रचनाओंका संकलन 'पराग' सन् १९२४ ई० में प्रकाशित हुआ। इस पुस्तकके द्वारा कविने द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मक औपदेशिकतासे आगे बढकर भावुकतापूर्ण विषय-चयन द्वारा आन्तरिक अनुभूतियो और विषयी-निष्ठ तत्त्वोंकी अभिव्यक्तिका मार्ग अभिनन्दित किया। 'वन-वैभव' प्रगीत-मुक्तकोंका संग्रह नवीन काव्यानुभूतिका समर्थनकारी संकलन है। 'वन विहगम', 'आश्वासन', 'दलित कुसुम' आदि इनकी सुप्रसिद्ध एव लोकप्रिय रचनाएँ रही है। पाण्डेयजीका कृतित्व अत्यन्त विस्तृत एवं बहुमुखी रहा है। इनका अनुवाद-कार्य भी बडा विस्तृत है। रामचन्द्र शुक्लने अपने इतिहासमे इनके अनुवादों की प्रांजलताको मुक्त रूपमे स्वीकार किया है।

इनकी ब्रजभाषा और खडीबोलीकी रचनाएँ सरस एवं सहृदयतापूर्ण हैं। उपदेश एव उपयोगितावादकी पार्थिव परिधिसे आगे बढ़कर उन्होंने नरेतर जगत् एवं पशु-पक्षियो तक अपनी कवि-सहानुभूति प्रस्तुत की थी। 'वन-विहगम' कविता ('कवि भारती', पृ० १३०) सवैया छन्दमे एक हृदयपूर्ण रचना है, जो कपोत-कपोतीके प्रेमोत्सर्गको लेकर लिखी गयी है। इसमें तद्युगीन उपदेश-रूक्षताको मानवीय संवेदनाकी हार्दिकता मिली है और सुधारवादको मानवतावादी भूमि प्रदानकी गयी है। नाटकोंमे नाटकीयताका और उपन्यासोंमें चारित्रिकताका अभाव संलक्ष्य है पर ये समयकी प्रगतिके साथ रहे है। 'सम्राट् अशोक' नाटकमें ऐतिहासिक शृंगार एवं वीरताके विलाससे आगे बढ़कर वातावरण निर्माणका प्रयास हुआ है। भाषा तत्सम-प्रचुर और भावानुसारिणी है पर ब्रजभाषाके आदिम संस्कारोंके कारण 'समुदाय के', 'धाय के' आदि प्रयोग भी बिखरे हुए हैं। इन्होंने बंगलासे कई पुस्तकोंका अनुवाद किया था। —श्री० सिं० क्षे०

रूपमंजरी-दे० 'नन्ददास'।

रूपसाहि-ये जातिके गुनियरवार कायस्थ और बागमहल पन्ना (बुन्देल खण्ट) के निवासी थे। कमलनैन इनके पिता, शिवराम पितामह और नरायनदास प्रपितामह थे। पन्ना-निवासी छत्रसालवंशीय बुन्देला क्षत्रीय महाराज हिन्दूपति (१७५८ ई०—१७७७ ई०) इनके आश्रयदाता थे। इन्हींके आश्रयमें कविने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रूप विलास'की रचना-की, जिसकी समाप्ति ४ सितम्बर, सन् १७५६ ई० में हुई। इसकी हस्तलिखित प्रति काशी नागरी प्रचारिणी सभाके याज्ञिक संग्रहमे है। यह पूरा ग्रन्थ १४ विलासोंमें विभक्त है, जिसमे कुल ९०० दोहे ही हैं। इसमे प्रायः काव्यके सर्वांगोंपर—काव्य-लक्षण, छन्द (पिंगल), नायक-नायिका, नौ-रस, अलंकार तथा षट्-ऋतु—विचार किया गया है। अलंकार-वर्णनमे कविने 'भाषा-भूषण'की पद्धतिका अवलम्बन ग्रहण कर एक ही दोहेमे लक्षण और उदाहरण दोनों दिये है। इसके अतिरिक्त उसने काव्य वृत्तियोंको विभिन्न रसों-का समवाय माना है, यथा—कैशिकी करुण, हास्य तथा शृंगारकी भारती हास्य, वीर तथा अद्भुतकी, आरभटी भयानक, वीभत्स तथा रौद्रकी और सात्वती शान्त, अद्भुत तथा वीर रसकी समवाय है। इस प्रकार काव्यके समस्त अंगोको (शब्द-शक्ति आदिको छोडकर) आचार्य-कविने अत्यन्त ही संक्षेपमे बडी सफाई और स्पष्टतासे समझा दिया है किन्तु कवित्वकी दृष्टिसे उसका काव्य सामान्य कोटि का ही है।

[सहायक ग्रन्थ—खो० वि० (वा० १९०५; त्रै० १,११); हि०का०शा०इ०; मि०वि०भा० २; शि०स०।]—रा०त्रि०

रेवती-यह राजा रैवतकी पुत्री थी और बलरामकी पत्नी। —रा० कु०

रेशमी टाई-आधुनिक एकांकी-साहित्यमें रामकुमार वर्मा-कृत 'रेशमीटाई' (१९४१ ई०) का महत्त्व कई दृष्टियोंसे है। वस्तुतः विशुद्ध सामाजिक अनुभूतियों तथा जीवनगत चरित्रोंको यथार्थवादी ढगसे ग्रहण कर उन्हे इस भाँति स्पष्ट निश्चित रगमंचपर उतारनेका यह पहला चरण है। दूसरे, हिन्दी एकांकीमे समस्यामूलक संवेदनाओंकी यह रग स्थापना भी अपूर्व है फिर इसके एकांकियोंके अभिनय तत्त्व, रग अनुष्ठानकी शक्ति—इसकी सबसे बडी विशेषता है।

इसमे पाच एकांकी सगृहीत हैं : 'परीक्षा' (१९४०), 'रूपकी बीमारी' (१९४० ई०), '१८ जुलाईकी शाम' (१९३७ ई०), एक तोले अफीमकी कीमत' (१९३९ ई०) और 'रेशमी टाई' (१९३८ ई०)।

पाँचो एकांकी सामाजिक संवेदनाके हैं—जीवनके साक्षात् प्रतिनिधि। इनकी भावधाराकी प्रमुख विशेषता

है, इनका समस्यापरक होना, समाजनिष्ठ होना। समस्यापरक नाटकोंकी मुख्य प्रवृत्ति है—रूढ़ियों, कमजोरियों तथा वैयक्तिक कुण्ठाओंपर प्रबल कुठाराघात और उनपर निर्मम व्यंग। ये समस्त एकांकी इसी स्वरके हैं। इन सबमें किन्हीं-न-किन्हीं स्तर तथा प्रसंगसे रूप, यौवन और प्रेमके प्रश्न उठाये गये हैं। इनकी भी दो कोटियाँ हैं: प्रथम, पति-पत्नीकी प्रेमपरक स्थितियोंके चित्र और उसके बीचसे गृहस्थीजन्य समस्याओंके एकांकी, जैसे 'परीक्षा' और 'रेशमी टाई'। दूसरी कोटिमें वे एकांकी आते है, जो दाम्पत्य जीवन और घर-गृहस्थीकी सीमासे बाहर उन्मुक्त प्रेम या 'सेक्स'की स्थितियोंको लेकर आते हैं। दाम्पत्य-जीवन अथवा पति-पत्नीके सम्बन्धोंके बीचसे उठनेवाली स्थितियोंमें डॉ० वर्माने सदा पत्नीत्वको बहुत ऊँचा स्थान दिया दिया है—सर्वथा भारतीय आदर्शोंके अनुरूप।

'रेशमीटाई' एकांकीकी पत्नी ललिता अपने गैर जिम्मेदार पतिकी सम्मान रक्षामे क्या नहीं करती। इसी तरह '१८ जुलाईकी शाम'की पत्नी शिक्षित उषा किन्हीं भावुक क्षणोंमे एक रंगीन तबियतके पुरुषके प्रति पतित होते-होते रह जाती है क्योंकि उसे सहसा पतिकी सुधी हो आती है और पत्नित्वके गौरवसे वह अभिभूत हो उठती है।

शिल्पसंगठनकी दिशामे 'रेशमीटाई' एकाकीके कथानक का रूप तब हमारे सामने आता है, जब आधीसे अधिक घटना बीत चुकी होती है। इसलिए उसके प्रारम्भिक अनुक्रममे, बल्कि कथोपकथनोमे ही कौतूहल और जिज्ञासाकी अपरिमित शक्ति भरी रहती है। बीती हुई घटनाओंका आकर्षण प्रायः समस्त एकाकियोंके स्वरूपमे अति शक्तिदायक सिद्ध हुआ है। 'रेशमी टाई'का निर्माण और नाट्य संगठन बहुत स्पष्ट और निश्चित रेखाओंमें उजागर है। प्रवेश कौतूहलकी वक्रगतिमे होता है। घटनाओंकी व्यजना उत्सुकतासे लम्बी हो जाती है फिर गति और कौतूहलमें पर्यवसित होती है।

'रेशमीटाई'के एकांकियोंकी भाषा-शैली बहुत ही सशक्त है। स्वाभाविक, पात्रानुकूल भाषा और उसके पीछे अभिनयात्मक दृष्टिकोण। रंगमंचकी दृष्टिसे 'रेशमीटाई'के प्रायः समस्त एकांकी 'ड्राइंगरूम' एकांकी है—यथार्थवादी मंच विन्यासके एकाकी। कुर्सी, टेबुल, आलमारी और सोफासेटके बीच प्रायः सब एकांकियोंका विकास होता है। नाट्यस्थिति सयोजन, चरित्रोंमें स्वाभाविकता और मंच अनुष्ठानकी व्यावहारिकता—एकांकीके ये प्रधानगुण 'रेशमीटाई'के सब एकांकियोंमे प्रायः समान रूपसे मिलते हैं। —ल० ना० ला०

रैदास—मध्ययुगीन सन्तोंमें रैदासका महत्त्वपूर्ण स्थान है। सन्त रैदास कबीरके समसामयिक कहे जाते है। अतः इनका समय सन् १३८८ से १५१८ ई० (सं० १४४५ से १५७५ ई०)के आस-पासका रहा होगा। अन्तःसाक्ष्यके आधार पर रैदासका चमार जातिका होना सिद्ध होता है—"नीचेसे प्रभु ऑच कियो है कह रैदास चमारा" आदि। सन्त रविदास काशीके रहने वाले थे। इन्हें रामानन्दका शिष्य माना जाता है परन्तु अन्तःसाक्ष्यके किसी भी स्रोतसे रैदासका रामानन्दका शिष्य होना सिद्ध नहीं होता। इनके अतिरिक्त रैदासकी कबीरसे भी भेंटकी अनेक कथाएँ प्रसिद्ध हैं परन्तु उनकी प्रामाणिकता सन्दिग्ध है। नाभादासकृत 'भक्तमाल' (पृ० ४५२) में रैदासके स्वभाव और उनकी चारित्रिक उच्चताका प्रतिपादन मिलता है। प्रियादासकृत 'भक्तमाल'की टीकाके अनुसार चित्तौड़ झालारानी उनकी शिष्या थीं, जो महाराणा सांगाकी पत्नी थीं। इस दृष्टिसे रैदासका समय सन् १४८२-१५२७ ई० (सं० १५३९-१५८४ वि०) अर्थात् विक्रमकी सोलवीं शतीके अन्त तक चला जाता है। कुछ लोगोंका अनुमान है कि यह चित्तौडकी रानी मीरॉबाई ही थीं और उन्होंने रैदासका शिष्यत्व ग्रहण किया था। मीरॉने अपने अनेक पदोंमें रैदासका गुरु रूपमें स्मरण किया है—"गुरु रैदास मिले मोहि पूरे, धुरसे कलम भिडी। सत गुरु सैन दई जब आके, जोत रली"। रैदासने अपने पूर्ववर्ती और समसामयिक भक्तोंके सम्बन्धमें लिखा है। उनके निर्देशसे ज्ञात होता है कि कबीरकी मृत्यु उनके सामने ही हो गयी थी। रैदासकी अवस्था १२० वर्षकी मानी जाती है।

रैदास अनपढ कहे जाते हैं। सन्त-मतके विभिन्न संग्रहों मे उनकी रचनाएँ सकलित मिलती है। राजस्थानमे हस्तलिखित ग्रन्थोंके रूपमे भी उनकी रचनाएँ मिलती हैं। रैदासकी रचनाओंका एक संग्रह बेलवेडियर प्रेस, प्रयागसे प्रकाशित हो चुका है। इसके अतिरिक्त इनके बहुतसे पद 'गुरु ग्रन्थ साहिब'मे भी संकलित मिलते हैं। यद्यपि दोनों प्रकारके पदोंकी भाषामें बहुत अन्तर है तथापि प्राचीनताके कारण 'गुरु ग्रन्थ साहब'मे सगृहीत पदोको प्रमाणिक माननेमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। रैदासके कुछ पदों पर अरबी और फारसीका प्रभाव भी परिलक्षित होता है। रैदासके अनपढ़ और विदेशी भाषाओंसे अनभिज्ञ होनेके कारण ऐसे पदोकी प्रामाणिकतामे सन्देह होने लगता है। अतः रैदासके पदों पर अरबी-फारसीके प्रभावका अधिक सभाव्य कारण उनका लोकप्रचलित होना ही प्रतीत होता है।

रैदासकी विचारधारा और सिद्धान्तोंको सन्त-मतकी परम्पराके अनुरूप ही पाते है। उनका सत्यपूर्ण ज्ञानमें विश्वास था। उन्होने भक्तिके लिए परम वैराग्य अनिवार्य माना है। परम तत्त्व सत्य है, जो अनिवर्चनीय है—"जस हरि कहिए तस हरि नाहीं। है अस जस कछु तैसा।" यह परमतत्त्व एकरस है तथा जड़ और चेतनम समान रूपसे अनुस्यूत है। वह अक्षर और अविनश्वर है और जीवात्माके रूपमे प्रत्येक जीवमे अवस्थित है। सन्त रैदासकी साधनापद्धतिका क्रमिक विवेचन नही मिलता। जहाँ-तहाँ प्रसंगवश संकेतोके रूपमे वह प्राप्त होती है। विवेचकोंने रैदासकी साधनामे 'अष्टाग' योग आदिकी खोज निकाला है।

सन्त रैदास अपने समयके प्रसिद्ध महात्मा थे। कबीरने 'सन्तनिमें रविदास सन्त' कहकर उनका महत्त्व स्वीकार किया है। इसके अतिरिक्त नाभादास, प्रियादास, मीराँबाई आदिने भी रैदासका ससम्मान स्मरण किया है। सन्त रैदासने एक पंथ भी चलाया, जो रैदासी पंथके नामसे प्रसिद्ध है। इस मतके अनुयायी पंजाब, गुजरात, उत्तर

प्रदेश आदिमें पाये जाते हैं। आजकल रैदासी शब्द चमार नामक जातिके लिए रूढ़ हो गया है। —रा० कु०

रोहिणी–वसुदेवकी अर्द्धांगिनी तथा बलरामकी माताका नाम रोहिणी था। इन्होंने देवकीके सातवें गर्भको दैवी विधानसे ग्रहण कर लिया था और उसीसे बलरामकी उत्पत्ति हुई थी। यदुवंशका नाश होनेपर जब वसुदेवने द्वारिकामें शरीर त्यागा तो रोहिणी भी उनके साथ सती हुई थीं। वसुदेव देवकीके साथ जिस समय कारागृहमें बन्दी थे, उस समय ये नन्दके यहाँ थीं और वहीं इन्होंने बलराम-को जन्म दिया।

कृष्णभक्ति-काव्यमें वात्सल्यकी दृष्टिसे रोहिणीका चरित्र यशोदाके चरित्रकी छाया मात्र है। अतः उसका स्थान गौण ही कहा जायेगा। कृष्ण और बलरामकी परिचर्यामें ही उसका दो एक बार उल्लेख आया है। बलरामका यह कथन कि रोहिणी यशोदाके समान प्रेम नहीं कर सकतीं, कदाचित् देवकीके सम्बन्धमें ही प्रतीत होता है क्योंकि मथुरामें बलराम द्वारा रोहिणीकी आलोचनामें विशेष संगति नहीं है (दे० सू० सा० प० ४०५२)। —रा० कु०

रौरव–एक भयानक नरक (दे० 'नरक')।

लंका–मय दानव किन्तु दूसरी परम्पराके अनुसार विश्व-कर्मा द्वारा निर्मित, चित्रकूट पर्वतके बीच समुद्रोंसे घिरी कुबेरकी स्वर्ग नगरी, जिसे बादमें रावणने अपने पराक्रमसे छीन लिया था। यद्यपि आधुनिक लंकामें इसका किंचित् मात्र भी उल्लेख नहीं प्राप्त होता किन्तु राम-कथाके प्रसंगमें 'वाल्मीकि रामायण'से लेकर आजतक लिखे गये समस्त राम-काव्योंमें इसका प्रयोग मिलता है। इस प्रदेशका ऐतिहासिक व्यक्तित्व सिंहल द्वीप आदिके रूपमें सर्वथा काल्पनिक है। —यो० प्र० सिं०

लक्ष्मण–लक्ष्मणका सर्वप्रथम उल्लेख 'वाल्मीकि-रामायण'में ही मिलता है। यद्यपि वे राम एवं भरतके अनुजके रूपमें सर्वत्र ख्यात रहे हैं किन्तु अनेक स्थलोंपर ऐसे भी उल्लेख मिलते हैं, जहाँ वे भरतके ज्येष्ठ भ्राता कहे गये हैं। 'वाल्मीकि-रामायण'के दाक्षिणात्य पाठमें भी उनके अग्रज होनेका उल्लेख हुआ है किन्तु शेष दो उत्तरी और पूर्वी पाठोंमें भरतको ही अग्रज कहा गया है। इन पाठोंके इस प्रसंगको लेकर काफी विवाद चल चुका है किन्तु किसी उल्लेखनीय निर्णीत तथ्यका उद्‌घाटन नहीं हो सका। 'दशरथ जातक'में भी यह स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि लक्ष्मण ज्येष्ठ एवं भरत कनिष्ठ हैं। भासकृत 'प्रतिमा नाटक'में भी भरतकी कनिष्ठताका स्पष्ट उल्लेख है। इन उल्लेखोंका कारण कदाचित् राम और लक्ष्मणकी परस्पर प्रीति एवं प्रवास-सहवास ही है। इसीलिए कदाचित् 'सेरीराम' खोतानी रामायणमें लक्ष्मणको रामका भाई नहीं, सखा कहा गया है। इन उल्लेखोंमें राम और लक्ष्मणके प्रेमकी अनन्यता निश्चित रूपसे सूचित होती है।

अवतारवादकी प्रतिष्ठा हो जानेपर लक्ष्मणके भी पृथ्वी लोकमें अवतार लेनेकी कल्पना की गयी। सर्वप्रथम उनके अवतार धारण करनेकी सूचना 'उदार राघव'में मिलती है। इसी प्रकार पुराणोंमें भी उनके अवतार धारण करनेका स्पष्ट उल्लेख हुआ है। पांचरात्र सिद्धान्तके चतुर्व्यूहमें 'संकर्षण'के लक्ष्मण रूपमें अवतार लेनेकी बात कही गयी है। इसके अनन्तर कदाचित् उनके उग्र व्यक्तित्वके कारण 'अध्यात्म रामायण'में उन्हें शेषका अवतार कहा गया है। परवर्ती भक्ति-साहित्यमें उनका यही व्यक्तित्व निरन्तर स्वीकृत रहा।

सम्पूर्ण राम-साहित्यमें लक्ष्मणका व्यक्तित्व प्रायः एक प्रकारका ही पाया जाता है। वे रामके अनुज, पराक्रमी योद्धाके रूपमें 'वाल्मीकि-रामायण'में चित्रित किये गये हैं। क्रोध उनके व्यक्तित्वका विशेष अंग है। जीवन भर वे रामके साथ छायाकी भाँति रहते हैं। अस्तु, रामके प्रति उनकी अगाध-निष्ठा और अनन्य-प्रेमके कारण आगे चलकर भक्तिके आदर्शके रूपमें गृहीत हुए हैं।

संस्कृतके ललित-साहित्यमें लक्ष्मणको 'वाल्मीकि-रामायण' की भाँति एक कुशल योद्धा ही चित्रित किया गया है। वे प्रत्येक कार्यमें रामके समभागी तथा सदैव रामके आज्ञा-नुवर्ती हैं। 'रघुवंश' तथा 'उत्तर रामचरित' आदिके अनुसार वे रामकी आज्ञासे सीताको एकान्त वनमें छोड़ आते हैं। पुराणोंमें लक्ष्मणकी इस एकनिष्ठताको ही उनकी मृत्युका कारण कहा गया है। 'अध्यात्म रामायण'में उनके अवतार-वादके साथ-साथ उनके भक्त होनेका भी उल्लेख हुआ है।

लक्ष्मणके चरित्रकी सम्पूर्ण परिचित विशिष्टताएँ वस्तुतः तुलसीकृत 'रामचरितमानस'में उपलब्ध होती हैं। एक ओर उनकी चारित्रिक मर्यादा दया, विवेक, गम्भीरता, संकोच आदि गुणोंसे मण्डित है तो दूसरी ओर पराक्रम, सहज क्रोध, स्पष्टवादिता आदि गुण भी उनमें मिलते हैं। मानसकार द्वारा प्रस्तुत परशुराम और लक्ष्मणसंवाद जहाँ उनकी स्पष्टवादिताका प्रमाण प्रस्तुत करता है, वहाँ निषादके संवादमें उनकी विचारशीलता और दार्शनिक चिन्तनका परिचय मिलता है। 'अरण्यकाण्ड'के राम और लक्ष्मणकी परस्पर वार्ताको मानस-मर्मज्ञोंने 'लक्ष्मण-गीता' नामसे सम्बोधित किया है। इस प्रकार मानसकारने वाल्मीकीय लक्ष्मणके पराक्रम, धैर्य, उदारता, विवेक-शीलता, गम्भीरता आदि गुणोंको तो लिया ही है, साथ ही उन्हें भक्त और दार्शनिक विचारकका भी बाना पहना दिया है। यही नहीं, संयम और मर्यादाके तो वे साक्षात् अवतार कहे जाते हैं। इस प्रकार लक्ष्मणका चरित्र सर्वथा गरिमामय बन गया है। तुलसीके अतिरिक्त केशवदासने भी लक्ष्मणके चरित्रको उभारनेका प्रयत्न किया है किन्तु 'रामचन्द्रिका'में चरित्र-चित्रणविषयक मौलिकताके लक्षण स्पष्ट नहीं हो पाते।

आधुनिक युगमें लक्ष्मणके चरित्रको उर्मिलाके पार्श्वमें पुनः आंकनेका प्रयत्न किया गया है। इस दिशामें सर्व प्रथम साकेतकार मैथिलीशरण गुप्त ही कृतकार्य हुए। यद्यपि गुप्तजी 'पंचवटी'में लक्ष्मणके साहस, पराक्रम, संयम एवं मर्यादा आदिका उल्लेख कर चुके थे किन्तु उनका एक विशिष्ट रूप अभी तक सम्पूर्णतः वाङ्मयमें नहीं आ सका था। वह रूप था प्रणयीका। साकेतकार 'साकेत'के आरम्भमें उर्मिला एवं लक्ष्मणके परस्पर संवादके द्वारा उनके प्रीतिजनित सुखका वर्णन और उसके बाद चित्रकूटकी 'राम-कुटी'में वियोगके अन्तर्गत क्षणिक संयोग-सुखका

मार्मिक चित्र उपस्थित कर लक्ष्मणके इस व्यक्तित्वको स्पष्ट करता है किन्तु इस दिशामें और अधिक सफलता बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'को उनके खण्डकाव्य 'उर्मिला'के माध्यमसे प्राप्त हुई। इसमें लक्ष्मणके चरित्रकी ललित स्वभावशीलता स्पष्ट प्रकट हो जाती है। निष्कर्षतः आज तक लक्ष्मणका चरित्र अनेक दिशाओंमे मोड़ ले चुका है। यद्यपि उन्हें नायकत्वके पदसे च्युत करनेके लिए माइकेल मधुसूदन दत्तने अपने बंगला काव्य 'मेघनाद-वध'मे प्रयास किया था किन्तु उनके चरित्र-चित्रणकी एकरूपता ने उन्हें इस दिशामे कृतकार्य नहीं होने दिया।

[सहायक ग्रन्थ—रामकथा: डा० कामिल बुल्के, हिन्दी परिषद्, विश्वविद्यालय, इलाहाबाद; तुलसीदास: डा० माताप्रसाद गुप्त; हिन्दी परिषद्, विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।] —यो० प्र० सिं०

लक्ष्मणनारायण गर्दे—जन्म सन् १८८९ई० काशीमे। मृत्यु सन् १९६० ई० मे। इनकी शिक्षा काशी और झाँसीमें हुई। एण्ट्रेंसकी परीक्षामें उत्तीर्ण होकर आपने एफ० ए० मे भी नौ मासतक अध्ययन किया किन्तु बादमे पढ़ना स्थगित कर दिया। ये संस्कृत, मराठी, बंगला, गुजराती एवं अंग्रेजीके विद्वान् थे। आप 'बंगवासी', 'भारतमित्र' तथा 'नव जीवन'के सम्पादक रहे। कुछ दिनोंतक आप 'श्रीकृष्ण सन्देश' नामक साप्ताहिकके भी सम्पादक थे। यह पत्र बहुत ही थोडे दिनोतक निकलकर बन्द हो गया। 'सन्मार्ग' (काशी) के सम्पादकीय विभागमे भी आपने कुछ दिनोंतक काम किया था। 'कल्याण' के अनेक विशेषांकोंका सम्पादन इन्होंने ही किया था। काशीमे इन्होंने अध्यापन कार्य भी किया था। अध्यापकके रूपमे आपकी सफलता कम नहीं थी। आपने 'नवनीत' नामक पत्र भी निकाला था।

आप केवल एक महान् सम्पादक ही नहीं, बल्कि गीता-के प्रकाण्ड विद्वान् तथा सफल लेखक भी थे। हिन्दी पत्र-कारिताकी बृहत्त्रयीमे आपकी गणना होती है। 'भारत-मित्र' में प्रकाशित आपके अग्रलेखोंकी ख्याति सारे देशमे फैल गयी थी। आपके इन अग्रलेखोंका अनुवाद मद्रासके अंग्रेजी पत्रोंमे छपता था और उसके उद्धरण देशके तत्कालीन सभी प्रमुख पत्रोमे प्रकाशित होते थे। गूढ़से गूढ़ विषयोंको सरल शब्दोंमें बोधगम्य शैलीमे प्रस्तुत करना आपकी प्रमुख विशेषता रही है। भारतीय संस्कृति तथा दार्शनिक विचारधाराकी पृष्ठभूमिमे आधुनिक समस्याओके आपके समाधान मननीय एवं महत्त्वपूर्ण है। आपने महात्मा गान्धी तथा देशके प्रसिद्ध नेताओंके संस्मरण बडी ही सजीव एवं प्रभावपूर्ण शैलीमे लिखे हैं। गर्देजी अरविन्द-दर्शनके अन्यतम व्याख्याकार थे। आपने अरविन्द लिखित 'दि मदर' तथा अन्य कृतियोका सफल अनुवाद किया है। उपन्यासकारके रूपमे आपकी ख्याति उतनी नहीं है, लेकिन आपके दो उपन्यास उपलब्ध है—'नकली प्रोफेसर', 'मियाँकी करतूत'। ये उपन्यास जीवनके मर्मका बड़े ही अच्छे ढंगसे उद्घाटन करते हैं। आपकी अन्य कृतियोंमें 'महाराष्ट्र रहस्य', 'सरल गीता', 'श्रीकृष्ण-चरित्र', 'एशियाका जागरण' आदि उल्लेख्य है। 'जापानकी राजनीतिक प्रगति'का अनुवाद इन्हींका किया हुआ था। —ह० दे० बा०

लक्ष्मण सिंह, राजा—राजा लक्ष्मण सिंह पूर्व हरिश्चन्द्र-युगकी हिन्दी गद्य-शैलीके प्रमुख विधायक हैं। आपका जन्म आगराके वजीरपुरा नामक स्थानमें ९ अक्तूबर सन् १८२६ ई० में हुआ तथा मृत्यु १४ जुलाई १८९६ ई० में हुई। १३ वर्ष की अवस्था तक आप घर पर ही संस्कृत और उर्दूकी शिक्षा ग्रहण करते रहे। सन् १८३९ ई० में आपने अंग्रेजी पढनेके लिए आगरा कालेजमें नाम लिखाया। कालेजकी शिक्षा समाप्त करते ही आप पश्चि-मोत्तर प्रदेशके लेफ्टिनेंट गवर्नरके कार्यालयमें अनुवादकके पदपर नियुक्त हुए। आपने बड़ी योग्यतापूर्वक कार्य किया और १८५५ ई० में इटावाके तहसीलदार नियुक्त हुए। सन् १८५७ ई० के विद्रोहमें आपने अंग्रेजों-की भरपूर सहायता की और पुरस्कारस्वरूप आपको डिप्टी कलेक्टरी मिली। १८७० ई० में राजभक्त लक्ष्मण सिंहको 'राजा'की उपाधि मिली। सरकारकी सेवामे रत रहते हुए भी आपका साहित्यानुराग जीवित रहा। सन् १८६१ ई० में आपने आगरासे 'प्रजाहितैषी' नामक पत्र निकाला। १८६३ ई० मे महाकवि कालिदासकी विश्व-प्रसिद्ध रचना 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्'का 'शकुन्तला नाटक' नामसे अनुवाद प्रकाशित कराया। इसमे 'असली हिन्दीका नमूना' देखकर लोगोकी आँखें खुल गयी। राजा शिवप्रसादने इसे अपनी 'गुटका'में स्थान दिया। १८७५ ई० मे प्रसिद्ध हिन्दी-प्रेमी फ्रेडरिक पिनकाटने इसे इंग्लैंडमे प्रकाशित कराया। इस कृतिसे लक्ष्मण सिंहको पर्याप्त ख्याति मिली और इसे इण्डियन सिविल सर्विसकी परीक्षामें पाठ्य-पुस्तक रूपमें स्वीकार किया गया। १८७७ ई० में आपने 'रघुवंश' महाकाव्यका अनुवाद किया और इसकी भूमिकामें अपनी भाषासम्बन्धी नीति स्पष्ट करते हुए हिन्दीको उर्दूसे न्यारी, केवल हिन्दुओंकी बोली घोषित किया और उसमेसे सतर्कता-पूर्वक अरबी-फारसीके चिर-प्रचलित तथा सर्वग्राह्य शब्दोंको भी अलग कर दिया। सन् १८८१ ई०मे आपने 'मेघदूत'के पूर्वार्द्धका और १८८३ ई०मे उत्तरार्द्धका पद्यानुवाद—चौपाई, दोहा, सोरठा, शिखरिणी, सवैया, छप्पय, कुण्डलिया और घनाक्षरी छन्दोंमे—प्रकाशित कराया। इसमें अवधी और ब्रज, दोनो भाषाओंका प्रयोग किया गया है।

राजा लक्ष्मण सिंहको अपने जीवन-कालमें पर्याप्त सम्मान प्राप्त हुआ। आप कलकत्ता विश्वविद्यालयके 'फेलो' और 'रायल एशियाटिक सोसाइटी'के सदस्य थे। सरकारके कृपा-पात्र और प्रजाके स्नेह भाजन, दोनों ही थे। सन् १८८८ ई० मे सरकारकी सेवासे मुक्त होनेपर आप आगराकी चुंगी के वाइस चेयरमैन हुए और आजीवन इस पदपर बने रहे।

हिन्दी-गद्यके आविर्भाव-कालमे जब राजा शिवप्रसाद "हिन्दुस्तानी"के नामपर हिन्दीका "गॅवरपन" दूर करनेके बहाने खालिस 'उर्दू' लिख रहे थे और दयानन्द सरस्वती संस्कृतके पाण्डित्यको तत्समप्रधान हिन्दी भाषामें सर्वजन-सुलभ कर रहे थे, राजा लक्ष्मण सिंहने सरल, सरस और सुबोध हिन्दीका आदर्श उपस्थित करके एक बहुत बड़े जन-समुदायको उल्लसित कर दिया। कठिनाई केवल यह हुई कि राजा शिवप्रसादकी भाषाकी प्रतिक्रियामें ये दूसरे

सीमान्तपर पहुँच गये। अरबी-फारसीके सहज-स्वीकृत शब्दोंको भी अलग करके हिन्दीको शुद्ध करनेका दृष्टिकोण न तो वैज्ञानिक है और न व्यावहारिक। इसीलिए आपक भाषा ज्ञान-विज्ञानके विविध विषयोंको व्यक्त करनेमें असमर्थ है। ऐसा नहीं था कि आप जन-भावनासे परिचित न हों। आपने स्वयं स्वीकार किया है कि 'गवाह', 'अदालत', 'कलेक्टर' जैसे शब्दोंको लोग इनके संस्कृत-उल्थासे अधिक समझते हैं फिर भी 'हिन्दी' को 'उर्दू'से न्यारी सिद्ध करने के लिए आपने अरबी-फारसी-शब्दावलीयुक्त भाषाको हिन्दी माननेसे इन्कार कर दिया।

अनुवादकके रूपमें आपको पर्याप्त सफलता मिली थी। आप शब्द-प्रति-शब्द अनुवादको उचित समझते थे। यहाँ तक कि विभक्ति-प्रयोग और पद-विन्यास भी संस्कृतकी पद्धतिपर ही करते थे। "वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रत्तिपत्तये। जगतः पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ"का अनुवाद आपने किया था: "वाणी और अर्थकी सिद्धिके निमित्त मैं वन्दना करता हूँ। वाणी और अर्थकी नाईं मिले हुए जगत्के माता-पिता शिव-पार्वती को।" कहना न होगा कि यह वाक्य हिन्दीकी वैयक्तिक प्रवृत्ति और परम्पराके अनुकूल नहीं है। आपके अनुवादोंकी सफलताका रहस्य भाषाकी सरलता और भाव-व्यंजनाकी स्पष्टता है।

आपका गद्य परिमार्जित नहीं है। उसमें ब्रजभाषापन बना हुआ है। आपने 'कण्व'के स्थानपर 'कन्व', 'आश्चर्य' के स्थानपर 'अचरज', 'गुण'के स्थानपर 'गुन' और 'पश्चात्ताप'के स्थानपर 'पछताव' शब्दोंका प्रयोग किया है। इसी प्रकार 'पर'के स्थान पर 'पै' विभक्ति-चिह्नका प्रयोग किया है और 'पूछा चाहती हूँ', 'काम कीजो', 'जाना कहा है' आदि क्रिया-पदोंका प्रयोग क्रमशः 'पूछना चाहती हूँ', 'काम करना', 'जानेको कहा है' आदि पदोंके लिए किया है। ऐसा ब्रज-भाषाके प्रभाव स्वरूप ही हुआ है। उर्दूरहित होते हुए भी आपका गद्य संस्कृतनिष्ठ नहीं है और उसमें 'गगरी', 'गण्टा', 'डिब्बा', 'ढीठ', 'रॉड़', 'उन्हार', 'आरबल', 'टहलुआ' जैसे ठेठ बोल-चालके शब्दोंका प्रचुरप्रयोग किया गया है। यही कारण है कि सब मिलाकर आपकी भाषा जनताके अधिक निकट है। भारतेन्दुको अपना पथ-प्रशस्त करनेमें राजा शिव प्रसादकी अपेक्षा राजा लक्ष्मण सिंहसे अधिक प्रेरणा मिली होगी। हिन्दी गद्य-शैलीके उन्नायकोंमे आपका ऐतिहासिक महत्त्व है। —रा० चं० ति०

लक्ष्मणसेन पद्मावती कथा–यह रचना एक प्रेमाख्यान है, जिसके रचयिताने इसे 'वीर कथा' नाम भी दिया है। उस दामो कविके जन्मस्थान, जीवन-काल तथा जीवन-वृत्तके विषयमें अभी तक प्रायः कुछ भी ज्ञात नहीं है। रचनाके अन्तर्गत कदाचित् "कासमीर हुती नीसरइ"(खण्ड १, पद्य-२) आ जानेके कारण उसके पूर्व-पुरुषोंका कश्मीरनिवासी होना अनुमान किया जाता है तथा इसकी भाषाके आधार पर उसे राजस्थान अथवा गुजरातका रहने वाला भी मान लिया जाता है किन्तु इस प्रकारकी कल्पनाओंको पुष्ट प्रमाणोंके अभावमें विशेष महत्त्व नहीं दिया जा सकता। काशी नागरी प्रचारिणी सभाकी खोज रिपोर्ट (पहला भाग, पृ० १४९ ई०)में इस रचनाकी एक हस्तलिखित प्रतिका लिपिकाल सन् १६१२ ई० (सं० १६६९ वि०) दिया हुआ है तथा अगरचन्द नाहटा (बीकानेर)के यहाँ सुरक्षित प्रतिमें भी यही समय मिलता है। रचना-कालके विषयमें इसमें "संवतु पनरह सोलोत्तरामझारि। ज्येष्ठ वदि नवमी बुधवार" (खण्ड १, पृ० ४) कहा गया है, जिससे विदित होता है कि उस समय सन् १४५९ ई० (सं० १५१६ ई०)में दिल्ली-का शासन-सूत्र सुल्तान बहलोल लोदी (मृ० सन् १४८८ ई०) हाथोंमें रहा होगा और इस प्रकार यह प्रेमाख्यान अब तककी उपलब्ध ऐसी रचनाओंमें सर्वप्रथम ठहरता है। सुकुमार सेनने उक्त सं० १५१६ का सं० १५७० (सन् १५१३ ई०) होना भी लिखा है किन्तु इसके लिए उन्होंने कोई करण नहीं दिया है। प्रकाशित रूपमें यह रचना केवल साधारण ३४ पृष्ठोंमे ही आ गयी है किन्तु इसमे दो खण्ड है, जो विस्तारमें एक दूसरेके बराबर नहीं हैं। इसके दूसरे खण्डके एक स्थल (पद्य ८१)से तो यह भी जान पड़ता है कि तीसरा खण्ड हो गया, अब चौथा आरम्भ होने जा रहा है। इसकी भाषामे राजस्थानी, गुजराती आदिका सम्मिश्रण दीख पड़ता है और इसके कुछ पद्य विकृत संस्कृत एवं प्राकृतके भी उदाहरण उपस्थित करते हैं। इसके छन्दोंके नाम 'वस्तु', 'चउपही', 'दूहा' एवं 'नराच छन्द' जैसे मिलते है, जिनमेंसे कदाचित् किसीमे भी सभी नियमोका पूरा पालन किया गया नहीं जान पड़ता।

कथाका सारांश इस प्रकार है: सर्वत्र विचरण करने वाला सिधनाथ नामका जोगी एक बार आकाश मार्गसे गढ़ सामोर पहुँचा, जहाँका राजा हँसराय था और यह वहाँ उसकी कन्या पद्मावतीके सौन्दय पर मोहित हो गया। राजकुमारीने जब इसके यह पूछने पर कि वह विवाहिता है या नहीं, यह बतलाया कि मै १०१ राजाओंका वध करने वालेको वरण करूँगी तो यह उसके लिए उपाय भी सोचने लगा। इसने किसी कुएँसे लेकर गढ सामौर तक एक सुरंग बनायी और उसमें क्रमशः चन्द्रपाल, चन्द्रसेन आदि ९९ राजाओंको लाकर डाल दिया। फिर अन्य दो राजाओंको भी लानेके प्रयत्नमे यह विजौरा नींबू हाथमे लेकर लखनौतीके राजा लखन सेनके द्वार पर पहुँचा और वहाँ पर छोंक लगा कर आकाशमें उड़ गया। प्रतिहारके द्वारा इस बातका पता चलनेपर जब इसे लखमसेनने खोजकर बुलवाया तो यह उसे विजौरा देकर चला गया, जिसके चमत्कारसे प्रभावित होकर वह इससे मिलनेके लिए और भी व्यग्र हो उठा और अपना राजपाट छोडकर वनमें चला गया। वहाँ जोगीसे भेंट हो जानेपर जब राजाको प्यास लगी तो वह उसे कुएँकी पालपर ले गया और वहाँ इसने उसे करवेसे पानी भरते समय नीचे ढकेल दिया। लखमसेनको जब कुएँमें जानेपर वहाँ पड़े हुए राजाओं द्वारा जोगीके छलका ज्ञान हो गया तो उसने उन सभीको धीरे-धीरे बाहर निकाल दिया और वह स्वयं वहाँ अकेला रह गया, इस बातका पता चल जानेपर वह वहाँ फिर जा पहुँचा और इसने कुँएके ऊपर एक बावन हाथकी शिला रख दी,

जिससे भीतर अन्धेरा हो गया। इस दशासे खिन्न होकर लखमसेन आत्महत्या करनेको उद्यत हो गया और वह इसके लिए कुँएकी ईंटें उखाड़ने लगा। इस प्रकार उसे कुछ प्रकाश दीख पड़ा और वह क्रमशः उसकी ओरसे मार्ग बनाकर किसी एक सुन्दर सरोवरके पास जा निकला। फिर वहाँके सुन्दर दृश्योंको देखता हुआ वह निकटवर्ती नगरमे भी जा पहुँचा और वहाँपर अपनेको लखनौतीके लखमसेनका पुरोहित बताकर किसी ब्राह्मणके घर रहने लगा। वह ब्राह्मण उसे किसी दिन दरबारमे भी ले गया और उसने उसे पुरोहितका पद दिला दिया किन्तु एक बार वहाँ रहते समय उसकी वहाँकी राजकुमारी पद्मावतीके साथ चार आँखें हो गयीं। पद्मावती उस समय विवाह योग्य हो चली थी, इस कारण स्वयवर रचा गया, जिसमे अनेक राजाओंके बीच लखमसेन भी ब्राह्मण वेषमे उपस्थित हो गया। राजकुमारीने अन्य सभीको छोड़कर इसीके गले मे वरमाला डाल दी, जिससे सभी बिगड खड़े हुए और इसे अपनी वीरताकी परीक्षा देनी पडी तथा कनकावतीके राजा वीरपालके साथ इसे वहाँपर घोर युद्ध करना पडा। अन्तमे जब इस प्रकार वास्तविक परिचय मिल गया तो इसके साथ पद्मावतीका विवाह विधिवत् सम्पन्न कर दिया गया।

उधर लखमसेनकी इस सफलताके कारण द्वेषभावमे आकार सिधनाथने इसे स्वप्न दिया और कहा कि मुझे पानी पिला नहीं तो शाप दूंगा, जिससे भयभीत हो वह अपनी आँख खुलते ही पद्मावतीसे कहकर छागलीमें पानी लेकर उसके पास पहुँचा परन्तु जोगीने इसके इस प्रतिज्ञा कर लेनेपर ही जल ग्रहण किया कि आप जो कुछ आज्ञा देंगे, उसका पालन करूँगा और तदनुसार पद्मावतीके गर्भसे पुत्र होनेपर यह उसे उसके पास ले गया तथा इसने उसके आदेशानुसार उस शिशुके चार टुकडे भी कर डाले। फलतः उनमेसे प्रथम टुकडेमे एक धनुष बाण निकला, दूसरेसे एक तलवार निकली, तीसरेसे उसी प्रकार एक धोती निकली और चौथेसे एक सुन्दरी निकल पडी। राजा इस घटनाके कारण अत्यन्त मर्माहत हो गया और उसने फिर एक बार अपना घर-बार त्यागकर जंगलकी राह ली तथा वहाँसे दूर निकल गया। वह इस प्रकार उपर्युक्त धोती पहनकर आकाशमे उडा और कपूरधारा नगरमें पहुँचा, जहाँका राजा चन्द्रसेन था तथा जहाँ हरिया सेठके पुत्रको उसने जलमें डूबनेसे बचा लिया। तदनुसार वह उस सेठके यहाँ रहने लगा और संयोगवश जब उसकी राजकुमारी चन्द्रावतीसे देखादेखी हो गयी तो दोनो आपसमे एक दूसरे पर आसक्त हो गये। वे दोनों चुपके-चुपके मिलने भी लगे, जिसका पता चल जानेपर चन्द्रसेन बहुत क्रुद्ध हुआ और उसने लखमसेनको मरवा डालनेके अनेक प्रयत्न किये परन्तु वह सदा असफल रहा और उसे जब इसका वास्तविक परिचय मिल गया तो उसने दोनोंका विवाह भी कर दिया। उधर पद्मावती लखमसेनके विरहमें अत्यन्त व्याकुल थी और वह किसी भी प्रकार इसे फिर एक बार देख लेना चाहती थी। इस कारण वह विविध प्रकारके प्रयत्न कर रही थी, जिनके सम्बन्धमें ही कभी सिधनाथ एवं लखमसेनकी आपसमें मुठभेड़ हो गयी, दोनों लड़ गये तथा अन्तमें राजा द्वारा जोगी मार डाला गया। फिर न केवल पद्मावती एवं लखमसेन ही एक दूसरेसे मिले, अपितु पद्मावतीकी भेंट चन्द्रावतीसे भी हो गयी। लखमसेन अपनी इन दोनों पत्नियोंको साथ लेकर प्रसन्नतापूर्वक हंसरायके यहाँ आया और फिर वहाँसे कुएँके मार्ग द्वारा लखनौती भी आ पहुँचा, जहाँ सभी एक साथ रहकर जीवन व्यतीत करने लगे।

इस कथाके मूल स्रोतका पता नहीं लगता और न यही कहा जा सकता है कि यह नितान्त काल्पनिक मात्र है। इसकी रचना-शैलीकी दो-चार बातें उल्लेखनीय हैं। इस रचनाके प्रथम पद्यमे ही कहानीके वर्ण्य-विषयका उल्लेख सूत्र रूपमे कर दिया गया है और फिर आगे इसे 'वीर कथा' भी कहा गया है। इसमे साहस एवं वीरताको महत्त्व प्रदान किया गया है किन्तु इसके साथ ही कई स्थलोंपर "करमगति"की प्रधानता भी स्पष्ट कर दी गयी है। इसके दोनों खण्डोके आरम्भमे सरस्वती एवं गणेश अथवा भैरवानन्दकी वन्दना की गयी है, बीच-बीचमें प्रसंगवश कतिपय नैतिक आदर्शोंकी दुहाई दी गयी है तथा दोनोके ही अन्तमे फलश्रुतिकी भी चर्चा कर दी गयी है और यह भी कह दिया है कि इसे श्रवण करनेवालेको "एक घडीका भी वियोग नहीं हो सकता" प्रत्युत वह "सर्वव्यापक हरिके पास बैकुण्ठमें निवास कर सकता है" (खण्ड २ प० १३०-१)। इसके अतिरिक्त कथा-प्रवाहके अन्तर्गत कभी-कभी "सुणो कथा आगलि जो हुँत" (खण्ड १ प० १४८) तथा "इहकथा इण थलक रही, बाहुडि कथा पद्मावती गई" (खण्ड २ प० ८०) जैसे कथन भी कर दिये गये मिलते हैं, जिनसे और इसमे की गयी दो प्रेम-पात्रियोंकी सृष्टिसे भी हमे ऐसा लगता है कि इसकी मूल कथा कोई लोकगाथा ही रही होगी। इस प्रेमाख्यानका नायक लखमसेन लखनौतीका राजा है, जिस कारण वह प्रत्यक्षतः गौडराज लक्ष्मणसेन (मृ० सन् १३७१ ई०) जैसा ऐतिहासिक व्यक्ति जान पड़ता है किन्तु उसकी प्रेमपात्री पदमावती अथवा चन्द्रावतीमेसे किसीका भी कोई पता हमे इतिहास नहीं देता। इसी प्रकार इस कथाके अनेक अन्य पात्रोंके नाम भी ऐतिहासिक प्रतीत होते हैं किन्तु केवल इसी कारण इसमे आयी विविध घटनाओंका भी वास्तविक होना सिद्ध नहीं है। इसका जितना अश उनके आकस्मिक संयोग एवं चमत्कारसे प्रभावित है, उतना प्रेम व्यापारविषयक बातोंमे भी नहीं है। कहानीकी एक विशेषता यह भी है कि इसका पात्र सिधनाथ 'जोगी' होता हुआ भी सुन्दरी पदमावतीके प्रति अनुरक्त हो जाता है। यह उसे प्राप्तकर लेनेके लिए अनेक प्रकारके प्रयत्न करने लगता है और अन्तमें वह उस लखमसेन द्वारा ही मार डाला जाता है, जिसने कभी इसकी आज्ञाओंका अन्धभक्तवत् पालन किया था। सिधनाथ नामक एक जोगीकी चर्चा फिर शेखनबीके 'ज्ञानदीपक'मे भी की गयी मिलती है किन्तु यहाँपर वह उसके नायक ज्ञानदीपको विरक्तिका उपदेश देता तथा उसे सन्मार्गकी ओर ले जाता और उसकी समयपर सहायता करता हुआ दीख पड़ता है।

[सहायक ग्रन्थ—लखमसेन पद्मावती कथा : सम्पादक

नर्मदेश्वर चतुर्वेदी, परिमल प्रकाशन, प्रयाग, सन् १९५९ ई० ; इसलामि बंगला साहित्य : सुकुमार सेन, वर्द्धमान साहित्य सभा, बंगाल, १३५८ ई० ; भारतीय प्रेमाख्यानकी परम्परा : परशुराम चतुर्वेदी, राजकाल प्रकाशन, दिल्ली, सन् १९५६ ई० ; त्रिपथगा, त्रैमासिक, लखनऊ, जुलाई, १९५६ ई०।] —प० च०

लक्ष्मी–लक्ष्मी विष्णुकी पत्नीके रूपमें ख्यात हैं। समुद्र मंथनसे प्राप्त चौदह रत्नोंमेंसे एक थीं। 'लक्ष्मी' शब्द 'ऋग्वेद'में प्रयुक्त हुआ है, जिसका अर्थ है सौभाग्यवती। 'अथर्ववेद'में लक्ष्मी सौभाग्य एवं दुर्भाग्यके अर्थमें भी प्रयुक्त हुआ है। 'तैत्तिरीय ब्राह्मण'में लक्ष्मी और श्रीको आदित्यकी पत्नी कहा गया है। 'शतपथ ब्राह्मण'के अनुसार प्रजापतिने श्रीको जन्म दिया था। पौराणिक-साहित्यमें लक्ष्मीकी उत्पत्तिकी अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। लक्ष्मी धनकी अधिष्ठात्री देवी हैं। लक्ष्मीका वाहन उल्लू है। सीता और रुक्मिणी लक्ष्मीकी ही अवतार कही गयी हैं। विष्णुसे इनका सम्बन्ध नित्य है (सू० सा० प० ४९३४)। —रा० कु०

लक्ष्मीचंद्र जैन–जन्म १९०९ ई० में नौगाँवमें हुआ। अंग्रेजी तथा संस्कृतमें एम० ए० किया। कुछ दिनोंतक लाहौरके रेडियो केन्द्रसे सम्बद्ध रहे। सम्प्रति साहू जैन औद्योगिक प्रतिष्ठानमें हैं और भारतीय ज्ञानपीठ, काशीके प्रकाशनोंके सम्पादक तथा नियोजक हैं। ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित 'ज्ञानोदय' मासिक पत्रका सम्पादन भी कर रहे हैं। हिन्दीके नये साहित्यके प्रकाशन तथा प्रसारमें आपका योगदान महत्त्वपूर्ण है।

हिन्दीके नये ढंगके गद्य-लेखकोंमें आपका नाम विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। कई नये प्रकारके गद्य माध्यमोंका भी आपने प्रयोग किया है। 'ज्ञानोदय' के अंकोंमें प्रकाशित 'जो वे स्वयं न कह पायें' इसी प्रकारकी रचनाएँ हैं। विभिन्न लेखकोंके सहयोगसे प्रस्तुत धारावाही उपन्यास 'ग्यारह सपनोंका देश' की नियोजना आपने की। स्फुट विषयोंपर लिखे गये निबन्धोंका सकलन 'कागजकी किश्तियाँ'(१९५८ ई०) शीर्षकसे प्रकाशित हुआ है।—सं०

लक्ष्मीधर वाजपेयी–जन्म १८८७ ई०। मैथा, जिला-कानपुर (उत्तर प्रदेश) में। मृत्यु सन् १९५३ ई०। पाठशालाकी शिक्षा चौदह वर्षकी अवस्थातक प्राप्त की। साहित्य और कविताका प्रेम प्रारम्भसे ही था। १९०५ ई० में पण्डित माधवराव सप्रेसे परिचय हुआ। नागपुरसे प्रकाशित 'हिन्दी ग्रन्थ-माला' नामक मासिकपत्रके सम्पादनमें सप्रेजीने इन्हें बुला लिया। पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदीसे भी बराबर सम्पर्क रहा। रचनाएँ विविध प्रकार की हैं—काव्य, समीक्षा, जीवनी, धर्मशास्त्र आदि। —सं०

लक्ष्मीनारायण मिश्र–जन्म सन् १९०३ ई०। आजमगढ जिलेके बस्ती नामक ग्राममें। सेण्ट्रल हिन्दू कालेज, काशीसे १९२८ ई० में बी० ए० किया। १८ वर्षकी अवस्थामें आप साहित्य-सृजनकी ओर उन्मुख हुए। आपकी 'अन्तर्जगत्' (१९२१-२२ ई०) नामक काव्य-रचना उसी समयकी है इसके उपरान्त आपकी नाटकीय प्रतिभाका उदय होता है। 'अशोक' पहला नाटक है।

मिश्रजीकी साहित्यिक कृतियोंकी, जिनमें मुख्यस्थान नाट्य कृतियोंका है, कालक्रमानुसार सूची इस प्रकार है: 'अन्तर्जगत्' (कविता संग्रह १९२५ ई०), 'अशोक' (नाटक १९२६ ई०), 'संन्यासी' (नाटक, १९३० ई०), 'राक्षसका मन्दिर' (नाटक, १९३१ ई०), 'मुक्तिका रहस्य' (नाटक १९३२ ई०), 'राजयोग' (१९३३ ई०), 'सिन्दूरकी होली' (१९३३ ई०), 'आधी रात' (१९३६ ई०), 'गरुड़ध्वज' (१९४५ ई०), 'नारदकी वीणा' (१९४६ ई०), 'वत्सराज' (१९५० ई०), 'दशाश्वमेध' (१९५० ई०), 'अशोक वन' (एकाकी संग्रह, १९५० ई०), 'वितस्ताकी लहरें' (१९५३ ई०), 'जगद्गुरु' एवं 'मृत्युंजय', 'चक्रव्यूह' (नाटक १९५५ ई०)। 'सेनापतिकर्ण' नामक महाकाव्य, जिसका आरम्भ १९३५ ई० में हुआ था, अब भी अपूर्ण स्थितिमें है। इब्सनके दो प्रसिद्ध नाटक 'पिलर ऑफ द सोसाइटी' और 'डाल्स हाउस'का अनुवाद आपने क्रमशः 'समाजके स्तम्भ' और 'गुड़ियाका घर' नामसे किया है।

आपके नाटकोंकी शिल्पविधि और मुख्यतः रंग-स्वरूप पर इब्सन और शा का स्पष्ट प्रभाव मिलता है, अर्थात् आपके नाटकोंमें भावुकता और कल्पनाके स्थान पर यथार्थ और वास्तविक जीवनके चित्र आये हैं। हिन्दीमें समस्यानाटकोंके आप निश्चय ही प्रथम अधिष्ठाता हैं।

आपके समस्त नाट्यसाहित्यके दो वर्ग हैं (अ) सांस्कृतिक अथवा ऐतिहासिक, (आ) सामाजिक आधारभूत सत्यकी दृष्टिसे आपके समूचे नाट्य-साहित्यमें भारतीय संस्कृतिके आदर्शों और मान्यताओंका प्रभाव है। सब नाटकोंकी शिल्पविधि और रूपगठन आधुनिक (पाश्चात्य) है पर नाटक अपनी आन्तरिक प्रकृतिमें प्रायः भारतीय हैं किन्तु उस अर्थमें भारतीय (प्राचीन) और पाश्चात्य नाट्य-तत्त्वोंका समन्वय नहीं, जैसा कि प्रसादके नाटकोंमें है। दूसरे ही स्तरपर मिश्रजीके नाटक अपने बहिरंगमें पाश्चात्य (आधुनिक) नाट्य-शिल्पके अनुरूप हैं और आन्तरिकतामें विशुद्ध भारतीय हैं। यह सत्य वस्तुतः दृष्टिकोण और भावधाराके स्तरपर प्रतिष्ठित है। जहाँ तक शिल्प गठनका प्रश्न है, आपके नाटकोंका विकास और निर्माण गीतों, स्वगत कथनों और भावुकतापूर्ण कवित्व-वर्णनोंके माध्यमसे न होकर, बिल्कुल नये ढंगसे होता है। ऐतिहासिक नाटकोंमें निश्चय ही तात्त्विक विवेचनों और सैद्धान्तिक विचार विनिमयके गहन तत्त्व हैं।

यों दृष्टिकोणमें आप प्रायः यथार्थवादी हैं—प्रगतिशील स्तरपर नहीं, भारतीय स्तरपर। इनका यथार्थ अपनी ही तरहका है। 'मुक्तिका रहस्य' नामक नाटकमें आपने अपने दृष्टिकोण और विचारधाराके विषयमें स्पष्ट रूपसे कहा है : "जो यथार्थ नहीं है, वह आदर्श नहीं हो सकता। कल्पनाकी रंगीनी और असंगति साहित्य और कलाका मानदण्ड नहीं बन सकती। जीवनकी पाठशालामें बैठकर साहित्यकार अपनी कला सीखता है। अतः जीवनके अनुभवसे परे उसे कहीं कुछ भी नहीं ढूँढ़ना चाहिए।"

आपके ऐतिहासिक और पौराणिक नाटक प्रायः एक विशेष काल—हिन्दू संस्कृतिके एक विशेष अध्याय

और ज्वलंत चरित्र पर आधारित है और उनसे उस विशेष काल, अध्याय और चरित्रके बहाने प्रायः समूची वस्तुस्थिति पर ऐसा प्रकाश पड़ता है कि सब अपने अर्थोंमें उजागर हो जाता है । इस दृष्टिसे 'गरुड़ध्वज' 'दशाश्वमेध' और 'नारदकी वीणा' आपके प्रतिनिधि नाटक हैं। 'गरुडध्वज' नाटकका कथानक उस युगका है, जिसकी अधिक सामग्री हमें इतिहास आदिसे नहीं प्राप्त होती। नाटककारने अपनी कल्पना शक्तिसे शुंग वंशके पृष्ठ पर सुन्दर प्रकाश डाला है । 'गरुड़ध्वज'में शुंगके वंशज अग्निमित्रकी कथा है ।

'वत्सराज' मिश्रजीका प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटक है—उदयनकी जीवन-घटनाओंसे सम्बद्ध । 'दशाश्वमेध' नाटक नागोंके इतिहासपर आधारित हैं । 'नारदकी वीणा' आर्य और आर्येतर संस्कृतियोंके पारस्परिक संघर्ष और तदुपरान्त समन्वयकी कहानी है ।

'संन्यासी', 'राक्षसका मन्दिर', 'मुक्तिका रहस्य', 'राजयोग' तथा 'सिन्दूरकी होली' इनके प्रसिद्ध समस्या नाटक (सामाजिक) हैं । व्यक्ति और समाजके जिस उत्तरोत्तर संघर्षमे हमारा जीवन पल-पल बढ़ रहा है, उसके किसी-न-किसी महत्त्वपूर्ण पहलूका आधार इन सामाजिक नाटकोंमे विद्यमान है। 'मुक्तिका रहस्य' और 'सिन्दूरकी होली' नाटककारके शिल्प और विचार, दोनों दृष्टियोंसे प्रतिनिधि नाटक हैं। 'मुक्तिका रहस्य'में स्त्री-पुरुषकी सनातन काम-वासनाका चित्रण है।

'प्रलयके पंखपर' और 'अशोक वन' मिश्रजीके दो एकांकी संग्रह है। 'प्रलयके पंखपर' नामक एकांकी संग्रहमें लेखकके छः एकांकी संगृहीत है। प्रायः समस्त एकाकी समस्याप्रधान हैं। अधिकांश एकांकी विशुद्धतः नारी-समस्याको आधार बनाकर लिखे गये हैं। दो-एक एकांकी ग्रामीण भावभूमि तथा वहाँके जन-जीवनसे उत्पन्न समस्याओंपर लिखे गये हैं। इन दो संग्रहोंके अतिरिक्त 'भगवान् मनु तथा अन्य एकांकी' भी एक संग्रह है। इसके सभी एकांकी पौराणिक और ऐतिहासिक हैं। 'भगवान् मनु', 'विधायक पराशर', 'याज्ञवल्क्य', 'कौटिल्य', 'आचार्य शंकर'—एकांकीके ये नाम ही हिन्दुत्व और भारतीय संस्कृतिके ऐसे उज्ज्वल उदाहरण लगते हैं कि हिन्दू मन इनसे सर्वथा अभिभूत हो जाता है।

इन एकांकियोंकी शिल्पविधिपर रेडियो एकांकी कला और उसके शिल्प संगठनका प्रभाव स्पष्ट है। ये एकांकी 'प्रसाद'के नाटकोंकी भाँति ही पठन-पाठनकी सुन्दर सामग्री उपस्थित करते हैं पर इनका रंगमचीय पक्ष उतना ही निर्बल और जटिल है।

नाटककार मिश्रजीकी शक्ति इनकी मौलिक विचारधारा है, वह चाहे ऐतिहासिक स्तरपर हो, चाहे पौराणक अथवा सामाजिक स्तरपर । साथ ही चरित्रप्रतिष्ठा और उसके भीतरसे 'ब्राह्मणत्व'का अनुपम आलोक और भारतीय संस्कृतिका उदार स्वर्णिम चित्र इनके नाट्य-साहित्यकी सबसे बड़ी देन है। —ल० ना० ला०

लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु'–१८ जनवरी, १९०८ ई० को जिला पूर्णिया (बिहार)के रूपसपुर नामक गाँवमें जन्म हुआ। काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके एम० ए० हैं। साहित्यके अतिरिक्त राजनीतिक क्षेत्रके भी मुख्य कार्यकर्ता हैं। बिहार विधान परिषद्‌के अध्यक्ष हैं। साहित्यिक पत्रकारिताके क्षेत्रमें वे पटनाकी 'अवन्तिका' नामक मासिक पत्रिकाका सम्पादन कर चुके है। साहित्यके क्षेत्रमें उनकी प्रसिद्धिका मुख्य आधार आलोचना हैं। 'काव्यमें अभिव्यंजनावाद' (१९३८ ई०) तथा 'जीवनके तत्त्व और काव्य के सिद्धान्त' (१९४२ ई०) उनके प्रमुख समीक्षा-ग्रन्थ हैं पर साथ ही कृति-साहित्यके क्षेत्रमे भी उन्होंने कार्य किया है। 'भ्रातृप्रेम' (१९२६ ई०) उनका उपन्यास है तथा 'गुलाबकी कलियाँ' (१९२८), 'रसरंग' (१९२९) कहानियोंके संग्रह । 'वियोग' शीर्षक उनका निबन्ध-संग्रह भी प्रकाशित हो चुका है।

'सुधांशु'की प्रतिभा समीक्षाके सैद्धान्तिक निरूपणमे है और इसके लिए उन्होंने मनोविज्ञान, सौन्दर्यशास्त्र एवं प्राचीन भारतीय काव्यशास्त्रके गहन अध्ययन द्वारा समुचित तैयारी की है। छायावादकी छाया तले पलने वाले इस समीक्षकपर रोमाण्टिक काव्य-शास्त्रका प्रभाव यथेष्ट है तथा उन्होने रामचन्द्र शुक्लकी शास्त्रीयताकी कड़ियोंको ढीला करनेका प्रयास किया है।

रामचन्द्र शुक्लने क्रोचेके अभिव्यंजनावादको कोरा कलावाद कहते हुए उसे भारतीय वक्रोक्तिवादका ही विलायती उत्थान कह दिया था। 'सुधांशु'ने अभिव्यंजनावादके अन्तर्गत भाव सत्ताका स्पष्ट प्रमाण देते हुए वक्रोक्तिवादसे उसका प्रामाणिक अन्तर प्रतिपादित किया। यह कार्य अत्यन्त सन्तुलित ढगपर 'काव्यमे अभिव्यंजनावाद' नामक ग्रन्थमे 'सुधांशु'ने किया। इस भ्रमके निराकरण के अतिरिक्त इस ग्रन्थमे अभिव्यंजनावादकी शब्दावलीकी ऐतिहासिक रूपरेखा भी दी है तथा काव्यमें अलकारोंके औचित्य, प्रभाव, प्रतीक और उपमान, अमूर्त और मूर्त-विधान आदि अभिव्यंजनाकी विशेष प्रवृत्तियोका अध्ययन भी उपस्थित किया गया है।

'जीवनके तत्त्व और काव्यके सिद्धान्त' नामक पुस्तकमें लेखकने अपने समीक्षासम्बन्धी विचारोंको अधिक व्यापक धरातलपर प्रतिष्ठित करना चाहा है। इस पुस्तकमें दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक आधारभूमिपर काव्य-सिद्धान्तोंको परखनेकी चेष्टा की गयी है। रोमाण्टिक काव्य-शास्त्रकी धारणाओंके अनुरूप उन्होंने आत्मभावकी अभिव्यक्तिको ही कलाका मुख्य उद्देश्य माना है।

काव्यानन्दकी प्रक्रियाका मनोवैज्ञानिक विवेचन करके उन्होंने प्राच्य और पाश्चात्य दृष्टिकोणोंको एक साथ समेटने की चेष्टा की है। संसारके समस्त व्यापारोंके मूलमें मनका ओज स्वीकार करके वे काव्यानन्दको भी मनके अतिरिक्त ओजपर ही निर्धारित मान लेते है। काव्यके सृजन एवं आस्वादनसे सम्बन्धित समस्याओंके अतिरिक्त लेखकने इस कृतिमें लय और छन्द, ग्रामगीतकी प्रकृति, कलागीतकी प्रवृत्तियो आदिपर भी विचार किया है तथा अन्तमें आधुनिक नौ कवियोकी प्रवृत्तिमूलक समीक्षा भी की है। परन्तु यह पुस्तक जिस संकल्पको लेकर जिस व्यापक परिप्रेक्ष्यसे प्रारम्भ की गयी थी, उसका निर्वाह नहीं हो सका।

पूरी पुस्तकमें न तो जीवनके तत्त्वोंका ही गहन विश्लेषण हो सका है और न उन तत्त्वोंके आधारपर काव्य-सिद्धान्तों की ही सम्यक् व्याख्या बन पड़ी है। पुस्तकका अन्तिम अंश और विशेषतः व्यावहारिक समीक्षावाला भाग दलीय हो गया है। —दे० शं० अ०

लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय–जन्म १९१४ ई० अलीगढ़में। शिक्षा एम० ए०, डी० फिल०, डी० लिट्० प्रयागमें हुई, जहाँ हिन्दी विभागमें प्राध्यापक हैं। हिन्दी गद्यके विकास और उसके विभिन्न रूपोंके सम्बन्धमें आपका विशेष कार्य है। हिन्दी साहित्यकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमिके सम्बन्धमें भी आपने गवेषणा की है। आपकी प्रकाशित कृतियाँ हैं—'आधुनिक हिन्दी साहित्य' (१९४१), 'फोर्ट विलियम कॉलेज' (१९४७), 'भारतेन्दुकी विचारधारा' (१९४८), 'आधुनिक हिन्दी साहित्यकी भूमिका' (१९५२)। —सं०

लक्ष्मीशंकर व्यास–जन्म ३ जुलाई, सन् १९२० ई०, काशीमें। पत्रकार हैं। काशी हिन्दू विश्वविद्यालयसे एम० ए० (इतिहास)। सन् १९३८ ई०से ही साप्ताहिक 'आज', 'माधुरी', 'विश्वमित्र' में साहित्य एवं राजनीतिविषयक लेख प्रकाशित होने लगे। सन् १९४३ ई० में दैनिक 'आज'के सम्पादकीय विभागमें सहायक सम्पादक होकर आये। सन् १९५२ई०में आपकी 'चौलुक्य कुमारपाल तथा उसका युग' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई, जो उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत हुई है।

कृतियाँ—'चौलुक्य कुमारपाल तथा उसका युग' (१९५४ ई०) तथा 'पराड़करजी और पत्रकारिता' (१९६० ई०)। —सं०

लछिराम–विभिन्न स्रोतोंसे अब तक इस नामके कुल सात कवियोंका उल्लेख मिलता है किन्तु ध्यान देने पर ज्ञात होगा कि इन सबमें अधिक प्रख्यात और बहुज्ञात कवि १९ वीं शतीके अयोध्या अथवा अमोढ़ा (जिला बस्ती) वाले लछिराम ही हैं। कविका जन्म सन् १८४१ ई० में बस्ती जिलेके अमोढ़ा नामक बाजारके समीप स्थित शेखपुरा नामक गाँवमें हुआ। इनके पिताका नाम पलटन था। ये लोग जातिके ब्रह्मभट्ट थे। लछिरामके पितामह एक अच्छे कवि थे। कुछ समय तक तो कविकी प्रारम्भिक शिक्षा घरपर ही हुई, तत्पश्चात् वह सुल्तानपुरके उस समयके प्रसिद्ध कवि 'ईश'से काव्य-शास्त्र पढ़ने चला गया। १६ वर्षकी आयुमें उसने राजा मानसिंह (अयोध्यानरेश) प्रसिद्ध कवि 'द्विज देव'से भेंट की। इसके पश्चात् कवि स्थायी रूपसे उन्हींके दरबारमें रहने लगा। द्विजदेवके घने सम्पर्कमें रहनेके कारण तत्कालीन अन्य बड़े राजाओंमें भी लछिरामका परिचय बढ़ा। सभी परिचित राजाओंके नामपर कविने एक-एक रचना की और उनको उन्हें समर्पित कर उनसे यथेष्ट द्रव्यादि प्राप्त किया। बताया गया है कि लछिरामके कवित्त पढ़नेका ढंग बड़ा ही प्रभावोत्पादक था। ६३ वर्षकी अवस्थामें सन् १९४० ई०में अयोध्यामें उनका देहान्त हो गया।

कविकी कुल रचनाएँ, जिनमें छोटी-बड़ी सभी शामिल हैं—२२ हैं किन्तु उनमें प्रमुख हैं—'प्रेमरत्नाकर' (राजा बस्तीके नामपर), 'महेश्वर विलास' (राजा रामपुर-मथुरा जिला सीतापुरके नामपर), 'रावणेश्वर कल्पतरु' (गिद्धौरके राजा रावणेश्वरप्रसाद सिंहके नामपर), 'मुनीश्वर-कल्पतरु' (मल्लापुर नरेशके नामपर), 'महेन्द्र भूषण' (ओरछा-टीकमगढ़के राजा महेन्द्र सिंहके नामपर), 'रघुवीर-विलास' (गुरुप्रसाद सिंह, गिद्धौरके नामपर), 'कमलानन्द-कल्पतरु' (श्रीनगर पुर्नियाके राजा कमलानन्दसिंहके नामपर), 'लक्ष्मीश्वर रत्नाकर' (दरभंगा नरेशके नामपर), 'प्रताप रत्नाकर' (प्रतापनारायण सिंह अयोध्या नरेशके नामपर), 'रामचन्द्रभूषण' (भगवान रामचन्द्रजीके नामपर), 'हनुमन्त शतक' और 'सरजू लहरी'। कविकी उपर्युक्त सभी कृतियाँ सन् १८७६ ई०के पश्चात् ही उसके अन्तिम समयतक रची गयीं। इनके अतिरिक्त भी लछिरामके 'राम रत्नाकर', 'मानसिंहाष्टक' और 'प्रताप रस भूषण' नामक ग्रन्थ और बताये जाते हैं परन्तु इनकी कहींपर कोई प्रति अबतक देखी नहीं गयी है। इन समग्र ग्रन्थोंका वर्ण्य-विषय दो प्रकारका है: एक, जिसमें रस तथा उनके भेदोंका वर्णन किया गया है और दूसरे, जिनमें अलंकारों, शब्द-शक्तियों एवं काव्य-प्रयोजन आदिका वर्णन किया गया है। प्रथम कोटिमें 'प्रेम-रत्नाकर', 'महेश्वर विलास', 'लक्ष्मीश्वर रत्नाकर' आयेंगे और शेषमें 'प्रताप रत्नाकर'को छोड़कर सभी ग्रन्थ हैं। 'प्रताप-रत्नाकर'में राधा-कृष्णके अष्टयामका वर्णन किया गया है। लछिरामके उपर्युक्त ग्रन्थ प्रायः भारत जीवन प्रेस, काशी और नवलकिशोर प्रेस, लखनऊसे प्रकाशित हो चुके हैं। इन कृतियोंमें विवेचित रस अथवा अलंकार अपने व्याख्याताके पुष्ट विषय-बोध और गम्भीर ज्ञानके परिचायक हैं।

आचार्यत्वकी दृष्टिसे लछिरामने किसी नवीन काव्य-सिद्धान्तकी स्थापना नहीं की और न कोई नवीन उद्भावना ही की परन्तु मुक्तप्रवेशी, अपह्नुति और गुणोंके आधार पर श्लेष (अर्थालंकार) के तीन भेद—माधुर्य गुण-संक्रमित श्लेष, ओज गुण-संक्रमित श्लेष और प्रसाद गुण-संक्रमित श्लेष आदि नवीन अलंकारोंकी स्थापना की है। वैसे शेष अन्य काव्यशास्त्रीय विवेचन बड़े साफ और स्पष्ट हैं।

कविकी भाव-व्यंजनाके मूलमें शृंगारिकता बैठी हुई थी, जो तद्युगीन व्यापक प्रवृत्ति एवं परम्पराका परिणाम थी। उसमें दृश्य-चित्रणकी क्षमता अद्भुत थी। लक्षणोंके उदाहरणके रूपमें आये कवित्त एवं सवैया छन्द बड़े मार्मिक, सजीव एवं सरस हैं। अन्तिम दिनोंकी कविताएँ थके रागसे उद्भूत शान्त रसोत्पादक हैं। ब्रजभाषापर उसका व्यापक अधिकार था, जो उसके समग्र काव्यकी भाषा थी। इस प्रकार आचार्यत्व और कवित्त्व, दोनों ही दृष्टियोंसे हिन्दी साहित्य में उनका अपूर्व योग है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० का० शा० इ० ; हि० सा० इ० ; मि० वि०।] —रा० त्रि०

लज्जाराम शर्मा–जन्म सन् १८६३ (चैत्र कृष्ण दूज संवत् १९२०) बूंदीमें। मृत्यु सन् १९३१ ई० बूंदीमें। विख्यात नाम महता लज्जाराम शर्मा है। इनके पूर्वज बड़नगरसे आकर राजस्थानमें बस गये थे। १८ मास तक

माँके उदरमें रहकर इनका जन्म हुआ ('राजस्थानी भाषा और साहित्य': मेनारिया पृ० २८३), जिसके कारण बहुत-सी बीमारियाँ इनकी जीवनसंगिनी बनकर आजन्म इनका साथ देती रहीं। ६८ वर्षकी आयुमें इनका देहान्त हुआ। खाँसी, बवासीर और अनेक हृदय-रोगोंसे ये पीड़ित रहे। बादमें नींद लानेके लिए अफीम भी खाने लगे थे। स्कूली शिक्षा बहुत कम मिली थी पर इन्होंने स्वाध्यायसे अंग्रेजी, संस्कृत, हिन्दी, मराठी, गुजराती आदि भाषाओं का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। सन् १८८१ ई० में पिताकी मृत्युके बाद एक कपड़ेकी दूकानपर पिताकी जगह पर १२ रुपये माहवारपर नौकरी करने लगे। बादमें एक सरकारी स्कूलमें नौकरी की। वहाँ भी बहुत दिन न रह सके और उन्होंने श्री 'वेंकटेश्वर समाचार' के सहकारी सम्पादकका कार्यभार सँभाला। बादमें प्रधान सम्पादक भी हो गये। सन् १९०३ ई० में बम्बईसे पुनः बूंदी वापस आये और महाराव राजा रघुवीर सिंहके यहाँ नौकरी करने लगे।

ये कट्टर सनातनी और आदर्शवादी थे। इन्होंने कुल २३ ग्रन्थ लिखे, जिनमे १३ उपन्यास और बाकी ऐतिहासिक तथा संग्रह-ग्रन्थ है—'कपटी मित्र', 'छूत चरित्र', 'शराबीकी खराबी', 'विचित्र स्त्री चरित्र', 'बीरबल विनोद', 'हिन्दू गृहस्थ', 'धूर्त रसिकलाल', 'स्वतन्त्र रम्भा और परतन्त्र लक्ष्मी', 'विक्टोरिया चरित्र', 'अमीर अबर्दुरहमान', 'आदर्श दम्पती', 'भारतकी कारीगरी', 'सुशीला विधवा', 'बिगड़ेका सुधार', 'विपत्तिकी कसौटी', 'उम्मेद सिंह चरित्र', 'पराक्रमी हाडाराव', 'जुझार तेजा', 'आदर्श हिन्दू', 'पं० गंगादासका चरित्र', 'आपबीती, 'पन्द्रह लाखपर पानी।'

इनमे 'स्वतन्त्र रम्भा और परतन्त्र लक्ष्मी', 'धूर्त रसिक लाल' ये दो उपन्यास काफी चर्चित हुए। 'धूर्त रसिकलाल' को लेखकने "एक परम बोधजनक सामाजिक उपन्यास" घोषित किया है जिसमे "अनेक शिक्षाजनक बातोंका एक हीमे वर्णन है।" धूर्त रसिकलाल अपने मित्र सोहन-लालको शराबखोरी, वेश्यागमन, तथा अन्य प्रकारके दुर्व्यसनोंमे फँसाकर उसका सर्वनाश कर देता है। उसकी साध्वी पत्नीपर व्यभिचारका झूठा आरोप लगाकर उसे घरमे निकलवा देता है। नाना प्रकारके व्यसनोमे फँसकर सोहनलाल मरणासन्न हो जाता है और उसे तुरन्त समाप्तकर उसकी धन-सम्पत्तिको हड़पनेके लिए रसिकलाल विष देनेका प्रयत्न करते हुए पकड़ा जाता है। बादमें पति-पत्नी दोनोका मिलन होता है। 'स्वतन्त्र रम्भा और परतन्त्र लक्ष्मी'मे पाश्चात्य ढंगकी शिक्षाके वातावरणमे पली रम्भाके स्वच्छन्द आचरण तथा उसी की बहन लक्ष्मीके भारतीय संस्कार, सदाचरण आदिका अन्तर दिखाया गया है।

मेहता लज्जारामके उपन्यास शैली-शिल्पकी दृष्टिसे कोई खास महत्त्व नहीं रखते। इनके उपन्यास कुल मिलाकर साधारण कोटिके ही कहे जा सकते हैं। रामचन्द्र शुक्लने ठीक ही लिखा है कि "ये उपन्यासकार नहीं, अखबारनवीस थे' ('हि० सा० इ०', छठाँ संस्करण, पृष्ठ ५०१)। —शि० प्र० सिं०

ललकदास–ललकदास लखनऊनिवासी रामानन्दीय सम्प्रदायके गद्दीधारी वैष्णव सन्त थे। ये शृंगारी भावके रामोपासक थे और अपनी विशाल शिष्य-मण्डलीके साथ प्रायः पर्यटन किया करते थे। जान पड़ता है कि इनकी माधुर्य-भक्ति अध्यात्म क्षेत्रतक ही सीमित न थी, लौकिक जीवनमें भी वह किसी-न-किसी रूपमें प्रतिबिम्बित होती रहती थी। बेनी कवि (रायबरेलीवाले) द्वारा इनके सम्बन्ध में लिखे गये तीन भड़ौवोंमे इसकी पुष्टि हो जाती है। भक्तिके अतिरिक्त काव्य-शास्त्रके भी ये अच्छे जानकार थे, जिसमे आये दिन इनका कवियोंसे विवाद होता रहता था। कदाचित् इसी प्रकारके किसी विवादसे चिढ़कर बेनी कविने भड़ौवोंके द्वारा इनकी खबर ली थी।

इनके दो ग्रन्थ मिले है—'सत्योपाख्यान' (१७६८ ई०) और 'भाषा कोशल खण्ड' (१७९३ ई०)। ये दोनों रचनाएँ उसी नामके संस्कृत ग्रन्थोंके पद्यबद्ध अनुवाद हैं। इनका प्रतिपाद्य विषय है—रामकी विलास क्रीड़ाओंका वर्णन। 'भाषा कोशल खण्ड'में यह प्रवृत्ति पराकाष्ठाको पहुँच गयी है। यह ग्रन्थ पुराण-शैलीमे सूत-शौनक संवादके रूपमें दोहा-चौपाई छन्दोंमें लिखा गया है।

[सहायक ग्रन्थ—हिन्दी साहित्यका इतिहास: रामचन्द्र शुक्ल; खोज रिपोर्ट: नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।] —भ० प्र० सिं०

ललित ललाम–प्रसिद्ध कवि मतिराम द्वारा रचित यह अलंकार पर लिखी गयी एक प्रौढ़ रचना है। 'ललित ललाम'मे प्रस्तुत अनेक लक्षणोंकी छाया भूषण रचित 'शिवराज भूषण' ग्रन्थके लक्षणों पर पड़ी जान पड़ती है। अतः इसकी रचना 'शिवराज भूषण'मे पहले अर्थात् १६७३ ई० (सं० १७३०) से पूर्व मानी जानी चाहिए। 'ललित लालम' ग्रन्थ बूंदीनरेश राव भाऊसिंहके आश्रयमें लिखा गया, जिनका राजत्वकाल १६५८ ई०से १६७९ ई० तक था। राव भाऊसिंहको 'ललित ललाम'मे 'बूँदीपति'के रूप-मे प्रकट किया गया है और अन्तिम छन्दमें उनको आशी-र्वाद भी दिया गया है। अतः निश्चय ही यह रचना उनके राजत्वकालके प्रारम्भिक समयमे हुई थी। जैसा ऊपर कहा जा चुका है यह १६७३ ई० के भी पूर्वकी रचना होनी चाहिए, अतः मतिरामकृत 'ललित ललाम'का रचनाकाल १६६३ ई० के आस-पास माना जा सकता है।

'रसराज'के समान ही 'ललित ललाम'की भी अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती हैं। इसकी टीकाएँ भी हुई हैं परन्तु 'रसराज'की प्रतियाँ और टीकाएँ अधिक है। इसका मुद्रण भारत जीवन प्रेस, काशीमे हुआ। उसके बाद 'मति-राम ग्रन्थावली'में ही इसका प्रामाणिक संस्करण मिलता है। 'ललित ललाम'की 'ललित कौमुदी' नामकी गुलाब कविकी टीका प्रसिद्ध है।

'ललित ललाम' अलंकार ग्रन्थ है। मंगलाचरणके पश्चात् इसमें राजवंशका वर्णन किया गया है। इसमे बूँदी नरेशों राऊ सुरजन, भोज, रतन, गोपीनाथ, छत्रसाल और भाऊसिंहकी प्रशंसा है। इन्हीं भाऊसिंहको प्रसन्न करनेके लिए मतिरामने 'ललित ललाम'की रचना की थी।

आगे चलकर भूषणने 'ललित ललाम'के नमूने पर ही 'शिवराज भूषण' ग्रन्थ लिखा, जिसमें भी उसी प्रकार मंगलाचरण, नृपवंश वर्णन, नगर वर्णन और फिर अलंकार वर्णन किया गया। 'ललित ललाम'का आधार 'चन्द्रालोक' है। इसमें वर्णित अलंकार क्रमशः भेद-प्रभेद सहित निम्न-लिखित हैं—उपमा, अनन्वय, प्रतीप, रूपक, परिणाम, उल्लेख, स्मृति, भ्रम, सन्देह, अपह्नुति, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, तुल्ययोगिता, दीपक, प्रतिवस्तूपमा, दृष्टान्त, निदर्शना, व्यतिरेक, सहोक्ति, विनोक्ति, समासोक्ति, परिकर, परिकरांकुर, श्लेष, प्रस्तुतांकुर, पर्यायोक्ति, व्याजस्तुति, व्याजनिन्दा, आक्षेप, विरोधाभास, विभावना, विशेषोक्ति, असम्भव, असगति, विषम, सम, विचित्र, अधिक, अल्प, परस्पर, विशेष, व्याघात, हेतुमाला, एकावली, मालादीपक, यथासख्य, सार, पर्याय, परिवृत्ति, परिसंख्या, विकल्प, समुच्चय, कारक दीपक, समाधि, प्रत्यनीक, काव्यार्थापत्ति, अर्थान्तरन्यास, विकस्वर, प्रौढोक्ति, सम्भावना, मिथ्याध्यवसित, ललित, प्रहर्षण, विषाद, उल्लास, अवज्ञा, अनुज्ञा, लेश, मुद्रा, रत्नावली, तद्गुण, पूर्वरूप, अनुगुण, मीलित, सामान्य, उन्मीलित, गूढोत्तर, चित्र, सूक्ष्म, पिहित, व्याजोक्ति, गूढोक्ति, विवृतोक्ति, युक्ति, लोकोक्ति, वक्रोक्ति, जाति, भाविक, उदात्त, अत्युक्ति, निरुक्ति, प्रतिषेध, विधि और हेतु। ग्रन्थ भाऊसिंहको आशीर्वाद देकर समाप्त हुआ है।

निश्चय ही यह अधिक प्रौढावस्थाका ग्रन्थ है, जिसमें कवि भाऊसिंहको आशीर्वाद दे सका है और अनेक ऐतिहासिक उल्लेखोंके साथ उनकी वीरता और दानकी उसने प्रशंसा की है। भाऊसिंह दिल्लीपतिके सहायक रूपमें चित्रित किये गये हैं। एक छन्दमें भाऊसिंहके शिवाजीके दिल्ली पर किये गये आक्रमणके रोकनेका भी वर्णन किया गया है (छ० १३१)।

'ललित ललाम'के उदाहरणोंमे प्रौढ कवित्व देखनेको मिलता है। अलकारोंके कुछ उदाहरण तो 'रसराज'के ही है। 'ललित ललाम'मे प्रस्तुत दीवान भाऊसिंह बूँदी नरेशकी प्रशंसामे लिखे गये छन्द ऐसे है, जो कि भूषणको 'शिवराज भूषण' लिखने और महाराज छत्रपति शिवाजीकी वीरतामें छन्द लिखनेकी प्रेरणा देने वाले कहे जा सकते हैं (छं० १२९)। 'ललित ललाम'मे ऊँची कल्पना और प्रौढ भाषा देखनेको मिलती है। उदाहरण राव भाऊसिंहके यशवर्णनवाले तो है ही, साथ ही साथ राधाकृष्ण तथा नायिकाओंके रूप-छवि-चेष्टा-सौन्दर्यका चित्रण करनेवाले हैं। यह साहित्यका एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है।

[सहायक ग्रन्थ—मतिराम—कवि और आचार्य : महेन्द्रकुमार; महाकवि मतिराम : त्रिभुवन सिंह; मतिराम ग्रन्थावली : स० कृष्णबिहारी मिश्र।] —भ० मि०

ललिता—कृष्ण भक्तिके निम्बार्क, वल्लभ, चैतन्य, राधावल्लभ और हरिदासी सम्प्रदायोंके ब्रजभाषा-काव्यमें ललिता, राधाकी अभिन्न एव प्रधान सखीके रूपमें वर्णित हुई है। कृष्ण-कथाके क्रममें गोवर्धन पूजाके प्रसगमे उसका सर्वप्रथम उल्लेख मिलता है (सू० सा० प० १४५५)। दानलीलामें चन्द्रावलीके साथ उसके नामका उल्लेख मात्र हुआ है (सू० सा० प० ४०७९-४०८५)। वह राधाकी सबसे प्रिय सखी है। कृष्णको बुलानेमें वह राधाकी सहायता करती है (सू० सा० प० २५९९)। राधाकी वियोगावस्थामे कृष्णके पास जाती है (सू० सा० प० २७४५)। ललिताके कुशलतापूर्ण यत्नोंसे राधा-कृष्ण मिलन सम्भव होता है। राधाकी सहचरीके अतिरिक्त ललिताका खण्डिता नायिकाके रूपमे भी चित्रण मिलता है। कृष्ण उसे रात्रिमें मिलनेका आश्वासन देकर अपने स्वभावानुसार एक अन्य गोपी शीलाके पास रतिक्रीडा हेतु चले जाते है। ललिता रात्रि भर वासकसज्जा बनी बैठी रहती है (सू० सा० प० ३०९५-३१०८)। प्रातःकाल मिलनेपर ललिता कृष्ण को खरी-खोटी सुनाती है किन्तु अन्तमे वह कृष्ण-कृपासे उनके प्रेमकी भागी बनती है। ललितामे सफल दूतीके अनुरूप मान, रूप, तीक्ष्ण बुद्धि, वाक्चातुर्य, नायक-नायिकाके प्रति सहानुभूति, आत्मीयता तथा नायकको रिझानेके लिए व्यक्तिगत सौन्दर्य है। नित्य बिहारी राधा कृष्णकी वह अभिन्न सहचरी है। सखी भावकी उपासनामे उसके व्यक्तित्वको आदर्श रूपमे स्वीकार किया गया है। —रा० कु०

लल्लीप्रसाद पांडेय—जन्म १८८६ ई० मे सानोदा (सागर) मे। आप 'हिन्दी केसरी', 'कलकत्ता समाचार'के सम्पादन-विभागमे रह चुके है। नवलकिशोर प्रेस तथा इडियन प्रेसमे भी सम्बद्ध रहे है। आजकल 'बालसखा'के सम्पादक हैं। बगलासे किये हुए आपके अनुवाद पर्याप्त रूपसे प्रशंसित हुए हैं। —स०

लल्लूलाल—आगरानिवासी गुजराती सहस्र औदीच्य ब्राह्मण। जन्म सन् १७६३ ई०मे आगराके गोकुलपुर मुहल्लेमे। मृत्यु १८३५ ई० कलकत्तामे। इनके पिताका नाम चैनसुख था। ये पौरोहित्य करते थे। जीविकावश घूमते-फिरते वे सन् १७८६ ई० मे मुर्शिदाबाद पहुँचे। वहाँ कृपासखीके शिष्य गोस्वामी गोपालदाससे लल्लूलालका सत्संग होता था। उन्हींके द्वारा नवाब मुबारकउद्दौलासे इनका परिचय हुआ। नवाबके द्वारा इनके भरण-पोषणकी व्यवस्था होती रही। सात वर्षों तक ये मुर्शिदाबादमे रहे। गोपालदासका देहान्त होने पर तथा उनके भाईके अन्यत्र चले जानेपर लल्लूलालने भी उदास होकर नवाबसे विदा ले ली और कलकत्ता चले गये। वहाँ प्रसिद्ध रानी भवानीके पुत्र राजा रामकृष्णके आश्रयमे वे रहने लगे। राजा रामकृष्णका राज्य जब उन्हे मिला तो ये भी उनके साथ नाटोर गये। थोड़े समयके बाद राज्यमे उपद्रव हो जानेके कारण राजा रामकृष्णको कैद करके सरकारने मुर्शिदाबाद भेज दिया। तब लल्लूलाल भी फिर कलकत्ता लौट गये। वहाँ जीविकाके लिए वे इधर-उधर भटकते रहे पर कोई जुगाड न बैठा। इस बीच उन्होंने जगन्नाथपुरीकी यात्रा की। वहाँ नागपुरके राजा मनियाँ बाबूसे इनकी भेंट हुई। वे इनके गुणोपर रीझकर इन्हे अपने साथ नागपुर ले जाना चाहते थे पर किसी कारणवश ये उनके साथ नहीं गये और कलकत्ता वापस चले गये।

लल्लूलाल तैरना अच्छा जानते थे। आगराके गोकुलपुर मुहल्लेमे वह तालाब अब भी है, जिसमे लल्लूलाल तैरा

करते थे। उनकी तैराकीकी बदौलत कलकत्तेमें गंगामें डूबते हुए एक अंग्रेजकी जान बची। वह जब डूब रहा था तो लल्लूलालकी दृष्टि उस पर पड़ी और वे तुरन्त गंगामें कूदकर उसे किनारे निकाल गये। बादमें उस कृतज्ञ अंग्रेज ने इनकी बड़ी सहायता की। इनके लिए उसने एक प्रेस खुलवा दिया। यहीं इनसे पादरी बुरनसे परिचय हुआ और रसेल तथा डाक्टर गिलक्राइस्टके सम्पर्कमें आये, जिसके फलस्वरूप सन् १८०० ई०में इनकी नियुक्ति फोर्ट विलियम कालेजमें हिन्दी गद्य-ग्रन्थोंकी रचना करनेके लिए की गयी। इस कालमे इनकी सहायताके लिए काजम अली 'जवाँ' और मजहरअली 'विला' ये दो सहायक भी नियुक्त किये गये। फोर्ट विलियम कालेजमे इन्होंने निम्नलिखित ग्रन्थोंकी रचना की। इनके प्रथम संस्करणका संकेत भी यहाँ कर दिया गया है।

'सिंहासन बत्तीसी' (सुन्दरदास कविकृत ब्रजभाषा ग्रन्थका खड़ी बोलीमे अनुवाद, सन् १७९९ ई०), 'बैताल पचीसी' (शिवदास् कविकृत संस्कृत 'बेताल पंचविंशतिका'-का सुरति मिश्रने ब्रजभाषामें अनुवाद किया था। उसीका लल्लूलालने खड़ीबोलीमें रूपान्तर किया, सन् १७९९ ई०), 'शकुन्तला नाटक' (सन् १८०२ ई०), 'माधोनल' (मोतीराम कविकी ब्रजभाषा पुस्तकका खड़ीबोलीमे अनुवाद सन् १७९८ ई०), 'प्रेमसागर' (सन् १५१० ई० में चतुर्भुजदासने ब्रजभाषामें दोहा-चौपाइयोंमें 'भागवत' दशम स्कन्धका अनुवाद किया था। उसीके आधारपर लल्लूलाल-ने 'प्रेमसागर'की रचना की (सन् १८०२ ई०), 'राजनीति' (सन् १८०९ ई०), 'भाषा कायदा'—इस ग्रन्थका अब कोई पता नही चलता। 'बिहारी बिहार' की भूमिकामें पण्डित अम्बिकादत्त व्यासने लिखा है कि इसकी एक कापी बंगाल एशियाटिक सोसाइटीके पुस्तकालयमें अबतक है। इसी बातको श्यामसुन्दर दासजीने भी दुहराया है। पर वहाँपर बहुत खोज-बीन करनेपर भी इसका कुछ पता नहीं चला और न भारत या विदेशके ही किसी अन्य सग्रहालयमें अबतक इसके अस्तित्वका पता चल सका है। इतना अवश्य है कि यह पुस्तक छपी थी और इसकी विज्ञप्ति भी निकली थी, जैसा कि लल्लूलालके प्रेससे छपी हुई कुछ पुस्तकों—'सभाविलास' (सन् १८१३ ई०), 'माधवविलास' (१८१७ ई०), 'सभाविलास' तथा सुरति मिश्रके सरस रसके अन्तमे विज्ञापनके लिए दी हुई पुस्तक सूचीसे विदित होता है—'माधवविलास' (सन् १८७५ ई०), 'सभा विलास' (सन् १८१५ ई०), 'लतायफे हिन्दी या नकलयाते हिन्दी' (सन् १८१०), 'लाल चन्द्रिका' (सन् १८१८), 'ब्रजभाषा व्याकरण' (सन् १८११ ई०)। —वि० ना० प्र०

ललिताप्रसाद सुकुल–जन्म १८०४ ई०, अमरावतीमें। मृत्यु १९५९ ई०मे। प्रयाग विश्वविद्यालयके हिन्दी विभाग-के प्रारम्भिक छात्रोंमे थे। एम० ए० की उपाधि लेकर आप कलकत्ता विश्वविद्यालयमे हिन्दीके प्राध्यापक नियुक्त हुए। कलकत्तामें हिन्दी प्रचारके सम्बन्धमे आपका कार्य विशेष महत्त्वका है। वहाँकी बंगीय हिन्दी परिषद्के प्रेरणा स्रोत आप ही रहे। आपकी रचनाएँ अधिकतर समीक्षात्मक है—'काव्य चर्चा', 'साहित्य जिज्ञासा', 'साहित्य चर्चा', 'नव कथा'। —सं०

लहर–'लहर'में जयशंकर प्रसादकी प्रौढ़ताके दर्शन होते है। इसका प्रकाशन १९३३ ई० में हुआ। 'लहर'की समस्त कविताओंको दो भागोंमें विभाजित किया जा सकता है। एक तो स्फुट कविताएँ हैं, जिनकी मुख्य भूमिका गीतात्मक है। संग्रहके अन्तमें 'अशोककी चिन्ता', 'शेरसिंहका शस्त्रसमर्पण', 'प्रलयकी छाया' आदि अपेक्षाकृत कुछ लम्बी कविताएँ हैं, जिनमें इतिहासकी भूमिका कार्य करती है। 'लहर'मे प्रसादकी कुछ सर्वोत्तम कविताएँ संकलित है। उनमें कविकी आन्तरिक अनुभूति अनगढ रूपमें प्रकाशित नहीं होती। उसे उसने चिन्तनका बल प्रदान किया है। उसमें कविके व्यक्तित्वका जो विस्तार प्राप्त हुआ है, उसे कतिपय कविताओंमे सहज ही देखा जा सकता है। गीतोंके लिए जिस घनीभूत भावना, संग्रथित अभिव्यक्ति, मार्मिक नियोजनकी अपेक्षा होती है, वह 'लहर'के गीतोंमे मिलती है। गीतिकाव्यकी दृष्टिसे प्रसादका यह संग्रह अत्यन्त समृद्ध है। 'ले चल मुझे भुलावा देकर', 'बीती विभावरी जागरी', 'मेरी आँखोंकी पुतलीमे' आदि श्रेष्ठ गीत इसमे संकलित हैं। 'लहर'में सकलित 'मधुप गुन-गुनाकर कह जाता कौन कहानी यह अपनी' प्रसादके व्यक्तिगत जीवनपर सांकेतिक प्रकाश डालती है। प्रेमचन्द जीके अनुरोधपर प्रसादने यह कविता 'हंस'के आत्मकथांक के लिए लिखी थी। इसमें उनके जीवनमें आनेवाले किसी व्यक्तिका आभास मिल जाता है, जिसकी प्रेरणासे 'आँसू' की सृष्टि हुई। लम्बी कविताओंमे 'अशोककी चिन्ता' पर बौद्ध दर्शनकी छाया है। 'शेरसिंहका शस्त्रसमर्पण' 'जलियानवाला बाग'मे सम्बद्ध है। दोनोमें राष्ट्रीय भावना सन्निहित है। 'प्रलयकी छाया' 'लहर'की विशिष्ट रचना है और इसे प्रसादकी सर्वोत्तम गीतसृष्टि कहा जा सकता है। यद्यपि गुर्जरकी रानी कमला ऐतिहासिक पात्र है पर उसके माध्यमसे कविने नारीके आन्तरिक द्वन्द्वको अंकित किया है। पराजित सौन्दर्य कविताके अन्त में पश्चात्तापकी भूमिकापर प्रतिष्ठित है। चित्राकन इस कविताका महत्त्वपूर्ण अंश है। प्रसादका शिल्प इस कविता मे अपने सर्वोत्तम रूपमे आया है। 'झरना' यदि गीत-सृष्टिकी दृष्टिसे प्रयोगशाला है तो 'लहर' उसका उत्कर्ष। यह प्रौढ़ताके बिन्दुपर पहुँचे हुए कविका प्रतिनिधि काव्य-संकलन है जिससे उसके निश्चित भविष्यका परिचय मिलता है। —प्रे० शं०

लाक्षागृह–महाभारतमें ऐसा उल्लेख मिलता है कि एक बार पाण्डव अपनी माता कुन्तीके साथ वारणावत नगरमें महादेवका मेला देखने गये। दुर्योधनने इसकी पूर्व सूचना प्राप्त करके अपने एक मन्त्री पुरोचनको वहाँ भेजकर एक लाक्षागृह तैयार कराया। पुरोचन पाण्डवको जलानेकी प्रतीक्षा करने लगा। योजनाके अनुसार पाण्डव लाक्षागृह में रहने लगे। घरको देखनेसे तथा विदुरके कुछ संकेतोंसे पाण्डवोंको घरका रहस्य ज्ञात हो गया। विदुरके एक व्यक्तिने उसमें गुप्त सुरंग बनायी, जिसके द्वारा आग लगने-की स्थितिमे निकल सकना सम्भव था। जिस दिन पुरोचन-ने आग प्रज्वलित करनेकी योजना की थी, उसी दिन

पाण्डवोंने नगरके ब्राह्मणोंको भोजके लिए आमन्त्रित किया। साथमें अनेक निर्धन खाने आये। सब लोग खा-पीकर चले गये पर एक भीलनी अपने पाँच पुत्रोंके साथ वहीं सो रही। रातमें पुरोचनके सोनेपर भीमने उसके कमरेमें आग लगायी। धीरे-धीरे आग चारों ओर लग गयी। वह माता भाइयोंके साथ सुरगमे बाहर निकल गया। प्रातःकाल भीलनीको उसके पाँच पुत्रोंसहित मृत अवस्थामें पाकर लोगोंको पाण्डवोंके कुन्तीके साथ जल मरनेका भ्रम हुआ। इससे दुर्योधन बहुत प्रसन्न हुआ किन्तु यथार्थताका ज्ञान होनेपर उसे बहुत दुःख हुआ ('शिवराजभूषण', १४८)। लक्षागृह इलाहाबादसे पूरब गंगा तटपर है। सन् १९२२ ई० तक उसकी कुछ कोठरियाँ विद्यमान थीं पर अब वे गंगाकी धारामे कट कर गिर गयीं। कुछ अश अभी भी शेष है। उसकी मिट्टी भी विचित्र तरहकी लाखकी-सी ही है। —रा० कु०

लाड़सागर–चाचा हित वृन्दावनदासरचित 'लाड़सागर', आराध्या राधाके शैशवसे लेकर किशोरावस्थातक श्रीकृष्णके प्रति व्यक्त किये गये प्रेमका अगाध सागर है। शैशवावस्थाकी चपल क्रीडाओंका स्वाभाविक वर्णन करते हुए कविने अपनी भावना द्वारा राधाका जैसा मोहक चित्र अंकित किया है, वैसा इस विषयको लेकर किसी अन्य कविने नहीं किया। 'लाड़सागर' दस प्रकरणोंमें विभक्त है। इनमें राधाकी बाल-लीलाएँ, श्रीकृष्णकी लीलाएँ और विवाह, उत्कण्ठा, कृष्ण-सगाई, विवाह-मगल, गौनाचार आदि प्रसिद्ध विषय हैं। कृष्ण-चरित्रके एक अश—बाल तथा किशोर चरित्रको आधार बनाकर उसीपर क्षीण कथापटका ताना-बाना बुना गया है। राधा-कृष्णके बाल-जीवनकी कहानीका इस ग्रन्थमें आभास मिल जाता है। वात्सल्य और शृगार रसका इसमें गहरा पुट है। 'लाड़सागर'का शृंगार विवाह-संस्कारसे परिमार्जित शृगार है—स्वकीया रूपमें राधाको चित्रित किया गया है। पूर्वानुराग, स्वप्न दर्शन, प्रत्यक्ष दर्शन और श्रवण दर्शन आदि सभी स्थितियोंका मनोहारी वर्णन किया गया है। लाड अर्थात् वात्सल्य प्रेमकी व्यजनाओंका इसमें सर्वांगीण रूप दृष्टिगत होता है।

'लाड़सागर'की भाषा व्यावहारिक बोलचालकी ब्रजभाषा है। इसे हम ब्रजवासियोंकी घरेलू बोली कह सकते हैं। ब्रजके रीति-रिवाजों, त्यौहार-पर्वों और धार्मिक-सामाजिक कृत्योंके वर्णनसे परिपूर्ण होनेके कारण शायद जान-बूझकर चाचा वृन्दावनदासजीने इसे साहित्यिक अभिव्यक्तिसे बचाया है। संवाद-शैलीकी दृष्टिसे इसकी भाषामें प्रवाह है। लोकोक्तियों और मुहावरोंका भी प्रचुर मात्रामें प्रयोग किया गया है। "जल वसि कै वैर मगर सो किन छाती जु सिराई", "घर बैठे ही गाल बजायौ देरको परन निकेत है" आदि प्रचलित लोकोक्तियाँ इसमें खूब पाई जाती हैं।

'लाड़सागर' गेय पदोंमें लिखा गया है किन्तु दोहा, अरिल्ल, सोरठा, कवित्त, छप्पय आदि छन्दोंका भी प्रयोग मिलता है। सम्पूर्ण 'लाड़सागर'में चालीस रागोंका प्रयोग हुआ है। शास्त्रीय संगीतका ज्ञान इनसे स्पष्ट परिलक्षित होता है। 'लाड़सागर' संवत् १८०४ से १८३५ (सन् १७४७से १७७८ ई०) तककी रचना है। लेखकने प्रत्येक प्रकरणके अन्तमें रचनाकाल स्वयं दे दिया है। रीतिकालीन प्रबन्ध-काव्योंमें 'लाड़सागर'का भक्ति-प्रबन्ध काव्यकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण स्थान है। —वि० स्ना०

लालकवि–लाल कवि उपनाम गोरेलालके पूर्वज आन्ध्र देशके निवासी थे। रानी दुर्गावती (१४७८ ई०) के समयमें इनके पूर्वज बुन्देलखण्डमें जाकर बस गये थे। १६५८ ई० में लाल कविका जन्म हुआ था। छत्रसाल बुन्देलाने लाल कविको बढई, पठारा, अमानगज, सगेरा और दुग्घा नामक पाँच गाँव दिये थे। ये दुग्घामे रहने लगे थे और अब भी उनके वंशज वहीं रहते हैं। 'छत्रप्रकाश'की प्राप्त प्रतिमें वर्णित अन्तिम घटना लोहागढ विजय है, जिसे छत्रसालने १६ दिसम्बर, १७१० ई० को जीता था। अतः यदि 'छत्रप्रकाश'की वर्तमान प्रतिको पूर्ण माना जाय तो लाल कविकी मृत्यु इसी तिथिके आसपास हुई होगी। मिश्रबन्धु तथा रामचन्द्र शुक्लने इनकी मरण-तिथि १७०७ ई० मानी है, जो अशुद्ध है। इनके लिखे हुए ये ग्रन्थ बतलाये जाते हैं:–

'छत्रप्रशस्ति', 'छत्रछाया', 'छत्रकीर्ति', 'छत्रछन्द', 'छत्रसालशतक', 'छत्रहजारा', 'छत्रदण्ड', 'राजविनोद', 'बरवै', 'छत्रप्रकाश'। 'छत्रप्रकाश'के अतिरिक्त इनके अन्य सभी ग्रन्थ अप्राप्य हैं। इन्होंने छत्रप्रकाशकी रचना छत्रसालकी आज्ञासे की थी। इसमें बुन्देल-वंशोत्पत्ति, चम्पति-विजय एवं पराक्रम, छत्रसाल द्वारा अपने राज्यका उद्धार, फिर क्रमशः विजय पर विजय प्राप्त करते हुए मुगलोंसे अविरल रूपमें युद्ध करते रहना आदि १६ दिसम्बर, १७१० ई० तककी घटनाओंका वर्णन किया गया है। 'छत्रप्रकाश'में दोहा तथा चौपाई छन्द प्रयुक्त हुए हैं। इसमें ब्रजभाषाके प्रचलित साहित्यिक रूपका प्रयोग हुआ है। साहित्य और इतिहास दोनों दृष्टियोंसे लाल कवि 'छत्रप्रकाश'में पूर्ण रूपसे सफल हुए हैं। 'छत्रप्रकाश' श्यामसुन्दरदास द्वारा सम्पादित और नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा १९१६ ई० में प्रकाशित हो चुका है।

[सहायक-ग्रन्थ—हिन्दी वीरकाव्य (१६००-१८००): टीकमसिंह तोमर, हिन्दुस्तानी अकादमी, उ० प्र०, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, १९५४ ई०, पृ० २७-३०, ४४-४६, ६६-६८, ८७-८८, १०९-१११, १६६-१६७, २६७-२८७।] —टी० सिं० तो०

लालचंद्रिका–लल्लूलालने सन् १८१९ ई० में 'बिहारी सतसई'की कुछ प्राचीन टीकाओंकी सहायतासे महाकवि बिहारीलालकी प्रसिद्ध कृति 'सतसई'की खड़ीबोली गद्यमें टीका लिखी। उन टीका-ग्रन्थोंके नाम ये हैं—'अनवर चन्द्रिका' (शुभकर्ण), 'अमर चन्द्रिका' (सुरति मिश्र), 'हरिप्रकाश' (हरिचरण दास), 'कुण्डलिया' (राजगढ़के नवाब मुलतान पठान)।

इनके अतिरिक्त किसी अज्ञात कविकी एक संस्कृत टीकाकी भी सहायता उन्होंने ली थी। लल्लूलालके इस टीका-ग्रन्थमें नायिका-भेद और अलंकारोंका निर्देश भी किया गया है तथा दोहोंका क्रम आजमशाही पाठके अनुसार रखा है। इसे उन्होंने अपने ही संस्कृत प्रेसमें (कलकत्ता) सन्

१८१९ ई० में छपवाया। फिर सन् १८६४ ई०में पण्डित दुर्गादत्त (दत्त कवि)ने "बहुत श्रमसे शोधिके" बाबू अविनाशी लाल और मुंशी हरवंशलालजीके आदेशानुसार इसे गोपीनाथ पाठक द्वारा बनारसके लाइट प्रेसमे छपवाया। सन् १८९६ ई० में जी० ए० ग्रियर्सनने इसका एक दूसरा संस्करण विशद भूमिकाके साथ गवर्नमेंट प्रेस, कलकत्तासे प्रकाशित कराया। इस समय लल्लूलाल द्वारा प्रकाशित प्रथम संस्करण तो देखनेमें नहीं आता पर लाइट प्रेसवाला संस्करण और ग्रियर्सनका संस्करण उपलब्ध है। लाइट प्रेस वाले संस्करणमे छपाई लीथोकी हुई थी। उसे नाथूराम भोजकने पत्थर पर खोदा था। उस संस्करणके ३५४ पृष्ठमे इस टीकाकी रचनाका विवरण इस प्रकार दिया हुआ है—

"औ कविने नायका भेदके क्रमसे ग्रन्थ नहीं बनाया जिसके हाथ जिस भाँति दोहे आये उसने उस भाँति लिखे इस कारण इस ग्रन्थके दोहोका क्रम बराबर नहीं मिलता टीकाकारोंने अपनी-अपनी बुद्धि प्रमाण दोहोंकी मिसल लगाली पर हमने किसी टीकाकी मिसलबन्दी पर लालचन्द्रिकाकी मिसल नही रखी आजमशाही सतसईकी मिसलबन्दीके क्रम पर दोहोंका क्रम रखा है क्योंकि आजमशाहने बहुत कवियोको बुलवाय बिहारी सतसईको शृंगारके और ग्रन्थोंके क्रमसे क्रम मिलाय लिखवाया इसीमे आजमशाही सतसई नाम हुआ और सतसईमें नृपस्तुतिके दोहे छोड जो दोहे सात सौसे अधिक औ कवियोंके बनाये जो मिले हैं तिनमेसे जिसका ठिकाना टीकाकारोंके ग्रन्थमे पाया तिसे पीछे रहने दिया और जिसका प्रमाण कहीं न पाया तिसे निकाल बाहर किया और अधिक दोहे और कवियोंके रहने दिये इसलिये कि वे ऐसे मिल गये है कि हर किसीको मालूम नहीं सिवाय प्राचीन सतसई देखने वालेके और जो अधिक दोहे इस ग्रन्थमें न रखते तौ लोग कहते कि सतसई में से दोहे निकाल डाले औ यह कोइ न समझता कि वे सतसईके दोहे न थे इसलिये दो टीकाकारोंका प्रमाण ले अधिक दोहे रहने दिये।" इस अंशको ग्रियर्सनने भी अपनी भूमिकामें उद्धृत किया है।

लालचन्द्रिकाकी टीकाका नमूना यह है :—"मोर मुकुटकी चन्द्रिकन यो राजत नन्द नन्द, मनु शशि शेखर की अकस किये शेखर शतचन्द ॥३॥ टी०—यह श्रीकृष्ण के मुकुट की शोभा सखीकी उक्ति नायकासे भक्तका बचन कै कविकी युक्ति है मोरपंखके मुकुटकी चन्द्रिका कहें चन्द्राकार जो मोरके पंखमे होता है तिनसे नन्द नन्द कहें नन्दरायजीके पुत्र श्रीकृष्ण चन्द्र यों राजत कहे यों शोभायमान है मानो शशि शेखर कहैं शिवजी तिनके मनकी अकस कहें द्वेस निज मनमें विचार अपने शेखर कहे सिर पै सौ चन्द्रमा किये हैं श्रीकृष्णजीनें कृष्ण ब्रज विलासमे शिवजी और कृष्णजीसे विरुद्ध पुराणके मत कही नहीं है यह शास्त्र विरुद्ध अकस शब्द कविने दोहेमें क्यों धरा उत्तर—शिव जो जरायौ कामसे उपजाओ नन्द नन्द प्रद्युम्न। कामका अवतार हौ तात्पर्य यह है कि अपना प्रभाव दिखाया कि जो तुम एक कामको जलाओगे तो हम सौ काम उपजावेंगे असिद्धास्पदहेतूत्प्रेक्षालंकार। दो०—तर्क मोरचन्द्रिकानिमे शशि उत्प्रेक्षा जान हेतु अकस असिधास्पद अकस असिध पदमान॥"

[सहायक ग्रन्थ—लालचन्द्रिका, लाइट प्रेस-संस्करण १८६९ ई०; लालचन्द्रिका, ग्रियर्सन-संस्करण १८९६ ई०; बिहारी विहार : अम्बिकादत्त व्यास, १८९७ ई०।] —वि० ना० मि०

लाजपतराय, लाला—जन्म २८ जनवरी, १८६५ ई०, पंजाबमे ढाढकी नामक ग्राममे। मृत्यु साइमन कमीशनके विरोधमें जलूसका नेतृत्व करते हुए पुलिसकी पाशविक लाठीमारके कारण लाहौरमे १७ नवम्बर, १९२८ ई०। लाला लाजपतराय राष्ट्रीय संग्रामके अमर शहीद बने।

यों लाजपतराय हिन्दीके विशेष ज्ञाता नहीं थे और उन्होंने अपने सभी मूल ग्रन्थ अंग्रेजी अथवा उर्दूमें ही लिखे किन्तु सार्वजनिक जीवनमे उन्होने हिन्दीको सदा महत्त्व दिया। पंजाबमें हिन्दी-आन्दोलनको आगे बढानेमें उनका जो सक्रिय योगदान रहा, वह आर्यसमाजको दृढ़ करने, 'तिलक स्कूल ऑफ पलिटिक्स' और 'राष्ट्रीय विद्यापीठ'की (१९२१) स्थापना करने और 'लोक सेवक मण्डल' नामक अखिल भारतीय संस्थाको संगठित करने में है। आर्यसमाज की हिन्दीसमर्थक नीति और व्यावहारिक प्रचार-कार्य को लाजपतरायका समर्थन सदा प्राप्त रहा। 'तिलक स्कूल' और 'राष्ट्रीय विद्यापीठ'मे अंग्रेजी और उर्दूके साथ-साथ उच्च शिक्षाके लिए हिन्दीका भी प्रयोग किया गया। 'लोक सेवक मण्डल'के कार्यक्रममे हिन्दी-प्रचार भी सम्मिलित है, जिसके प्रधान गत तीस वर्षोंसे पुरुषोत्तमदास टण्डन थे। मण्डलके प्रकाशन विभागने अधिकांश पुस्तकें हिन्दीमे ही प्रकाशित की हैं और उनकी मासिक पत्रिका 'लोक सेवक' अंग्रेजी, उर्दू, सिंधी इत्यादि भाषाओंके साथ हिन्दीमें भी प्रकाशित होती है। लाला लाजपतरायकी सम्पूर्ण अनूदित पुस्तकें लोक सेवक मण्डल द्वारा प्रकाशित की गयी हैं। इस प्रकार परोक्ष रूपसे और रचनात्मक कार्यों द्वारा उन्होने हिन्दीकी सेवा की है। —शा० द०

लाला भगवानदीन—दे० भगवानदीन।

लीलाधर—ये जोधपुर महाराज गजसिंहके आश्रित कवि थे। इनका 'नखशिख' नामक ग्रन्थ कहा जाता है। इसका रचनाकाल १६२० ई० से १६३८ ई० तक माना जाता है। सूदन तथा भिखारीदासने अपनी कवि-सूचियोंमें इनको सम्मिलित किया है। इनके फुटकर छन्द 'दिग्विजयभूषण' जैसे ग्रन्थोंमे उदाहृत तथा संकलित हैं। —सं०

लीलाधर गुप्त—जन्म जिला बुलन्दशहरके करोरा नामक ग्राममे २ मई, १८९६ ई०। मृत्यु प्रयागमे सन् १९५९ ई० में। अंग्रेजी साहित्यमे वे एम० ए० थे तथा प्रयाग विश्वविद्यालयमें अंग्रेजीके अध्यापक थे।

यों तो पाश्चात्य समीक्षा-शास्त्र एवं काल-चिन्तनका प्रभाव हिन्दी पर भारतेन्दु-युगसे ही पड़ने लगा था पर सामान्य पाठकके लिए पाश्चात्य समीक्षा-शास्त्रका व्यवस्थित परिचय देनेवालोंमे लीलाधर गुप्तका नाम प्रमुख है। 'पाश्चात्य नाटकोंमे चरित्र-चित्रण' (१९४६ ई०) नामक उनकी पुस्तक प्रकाशित हुई थी। उनकी दूसरी प्रसिद्ध पुस्तक 'पाश्चात्य साहित्यालोचन' (सन् १९५२ ई०) हिन्दुस्तानी अकादमी,

प्रयागकी ओरसे प्रकाशित की गयी। इस पुस्तकमें यद्यपि विश्लेषणात्मक एवं मूल्यांकनपरक दृष्टिकोणका अभाव है तथा तुलनात्मक या ऐतिहासिक स्तर पर विवेचनाका स्वरूप भी उपलब्ध नहीं होता परन्तु फिर भी कुछ प्रमुख पाश्चात्य समीक्षा-सिद्धान्तोंका प्रामाणिक विवरण इस पुस्तकमें दिया गया है। —दे० शं० अ०

लेखराज–ये 'गंगाभरण' (१८७८ ई०) के लेखक नन्दकिशोर मिश्र हैं। ये गन्धौली ग्रामके रहनेवाले थे। 'मति राम ग्रन्थावली'के सम्पादक, प्रसिद्ध आलोचक कृष्णबिहारी मिश्रके ये पिता थे। नन्दकिशोर मिश्रने 'लेखराज' उपनाम से कविता लिखी है। ये भारतेन्दु-युगके पुरानी परिपाटीके कवि हैं। 'गंगाभरण' अलकारकी पुस्तक है, उदाहरणोंमे गंगा-महिमाके छन्द हैं। —ओ० प्र०

लैला–लैला एक अभारतीय प्रेमाख्यानकी अत्यन्त प्रसिद्ध नायिका है। सूफी प्रेमाख्यानोंमे लैलाके चरित्रका अत्यन्त विस्तृत और रोचक वर्णन मिलता है। लैला और मजनूके प्रेम सम्बन्धोंको लेकर कवियोंने समय-समयपर नवीन सन्दर्भोंपर आधारित काव्योंकी भी रचना की है। लोक-प्रसिद्धिके अनुसार लैला श्यामवर्णकी थी। अरबीमे लैलाका अर्थ अर्धरात्रि है। इसीके अनुकरणपर लैला (श्यामवर्ण-वाली) शब्दका निर्माण हुआ है। लैलाके साथ उसपर आसक्त मजनूकी भी चर्चा अनिवार्य रूपसे आ जाती है। संक्षेपमें लैला और मजनूकी अनेक स्रोतोंपर आधारित कथाका समन्वयात्मक रूप इस प्रकार है—

अरब देशके एक बादशाहके अनेक यत्नोंके बाद एक पुत्र हुआ, जिसका नाम कैस रखा गया। उसे दस वर्षोंके बाद मकतबमें भर्ती किया गया। उसी दिन उस मकतबमे एक व्यापारीकी पुत्री लैला भी आयी। लैला और मजनू एक दूसरेपर आसक्त हो गये। धीरे-धीरे उनके सम्बन्धोंकी चर्चा लोकमें प्रसिद्ध हो गयी। लैलाकी माँने सामाजिक मर्यादाके भयसे उसे मकतबसे हटा लिया। फलस्वरूप दोनोको एक दूसरेका विरह सताने लगा। मजनू भिखारी-का रूप धारण करके लैलाके द्वारपर जाने लगा और लैला भी भीख देनेके बहाने उसके निकट आने लगी। लैलाकी माँको यह रहस्य भी मालूम हो गया। अतः उसने मजनू-को वहाँसे निकलवा दिया। मजनू वनमें भटकने लगा। मजनूका पिता उसे खोजता हुआ वनमें पहुँचा। वहाँ वह लैला, लैला कहकर अपनी प्रियतमाका नाम जप रहा था। बादशाहने किसी दरवेशसे मजनूका पागलपन दूर करनेकी तदबीर की। इससे उसका पागलपन तो दूर हो गया पर उसकी लैलासे आसक्ति नहीं छूटी। इसपर बादशाहने अपने पुत्रकी शादीका पैगाम लैलाके सौदागर पिताके पास भेजा किन्तु लैलाके द्वारपर पहुँचनेपर मजनू उसके एक कुत्तेको देखकर उससे लिपट गया। इसपर लैलाके पिताको मजनूके पगालपनपर सन्देह हो गया। मजनूके पिताने उसे फिर दरवेशको दिखाया परन्तु कोई लाभ न हुआ और मजनू वनमे जाकर पशुओंके साथ रहने लगा। इधर लैलाके पिताने उसका विवाह सालाम नामक बादशाहके साथ तय कर दिया परन्तु लैला और मजनूमें पत्र-व्यवहार चलता रहा। एक दिन बादशाहकी मजनूसे भेंट हो गयी। उसने मजनूके प्रेमसे प्रभावित होकर लैलाके पिताको उसका मजनूके साथ विवाह कर देनेको लिखा। लैलाके पिताने इसे अस्वीकार कर दिया। इसपर बादशाहने सौदागरपर चढ़ाई करके लैलाको बुला मँगवाया और दोनों प्रेमियोंकी भेंट हो गयी। लैला-मजनूके विवाहके उपलक्षमें बादशाहने शर्बत पिलानेके लिए लोगों-को आमन्त्रित किया। मजनूके प्यालेमें विष घोल दिया गया, जिसे भ्रमसे बादशाह पीकर मर गया। उस समयसे लैला और मजनू एक दूसरेके निवास-स्थानोंसे परिचित हुए बिना वनमे रहने लगे। लैलाके पिताने चाहा कि उसे घर वापस ले जाये किन्तु मार्गमे लैलाका ऊँट मजनूके ऊँटसे किसी प्रकार मिल गया। पहले तो लैलाने मजनूको नहीं पहचाना परन्तु जब पहचान लिया तो वह उसकी दशा देखकर मूर्छित हो गयी। सचेत होनेपर लैलाने मजनूसे अपनी विरह-कथा कही तो मजनूने सिर नीचा कर लिया। इसपर लैला सौदागरके घर पहुँचा दी गयी। वहाँ उसने विरहाग्निमे संतप्त होकर अपने प्राण त्याग दिये। लैलाकी माताने तब उस घटनाका पता वनमे जाकर मजनूको दिया तो सुनते ही वह धूलमें लोटने लगा। उसकी मृत्युसे पशुवर्ग तक प्रभावित हुआ।

यद्यपि लैला और मजनूकी कथा अभारतीय है फिर भी भारतीय साहित्यमें इस कथानकपर आधारित अनेक ग्रन्थों की रचना हुई। फारसीमें लैला-मजनूके प्रेम कथानकपर आधारित जिन प्रेम गाथाओंकी रचना हुई, उनमें निजामी-कृत 'लैला मजनू' (११८९ ई०) अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। निजामीके अनन्तर उनका प्रभाव ग्रहण करके अमीर खुसरो ने 'लैला मजनू' (१९१८ ई०)की रचना की। निजामीकृत 'लैला मजनू' सूफी विचारधाराके प्रेमादर्शका निरूपक प्रौढ काव्य है। उसने लैला और मजनूके माध्यमसे हकीकी प्रेमकी व्यजना की है। लैला और मजनूकी प्रेम-कथा इस प्रकार प्रतीकात्मक रूप धारण कर लेती है। लैला श्यामवर्णकी अवश्य थी पर उसे खुदा का नूर (ईश्वरीय ज्योति) प्राप्त था। मजनूके प्रेममे साधक के प्रेमकी एकनिष्ठता थी। लैलाके नूरको केवल मजनू ही देख सका। वह मजनूके लिए अत्यन्त रूपवती और दिव्य प्रतिभासम्पन्न थी। वस्तुतः मजनूका प्रेम लौकिक न होकर अलौकिक था। इस कथामे यह व्यंजना होती है कि मृत्युके उपरान्त ही सच्चा प्रेम प्राप्त किया जा सकता है। इसीलिए निजामीने मृत्युको 'बाग' और 'बोस्ता' कहा है। लैला और मजनू प्रेमके अशरीरी रूपके कारण उन्मत्त होकर एक दूसरेका आलिंगन नही करते।

भारतीय भाषाओंमे बंगलामें लैला-मजनूकी प्रेमगाथाको लेकर कई ग्रन्थोंकी रचना हुई। इनमे चटगावके बहराम कविकी 'लयलि मजनू' और मोहम्मद खातिरकी 'लयला मजनू' अधिक प्रसिद्ध है। हिन्दीमे लैला-मजनूके प्रेम कथानकपर आधारित कोई प्रसिद्ध प्रेमगाथा नहीं मिलती। पं० परशुराम चतुर्वेदीने मोहम्मद खातिरकी 'लयला मजनू' नामक रचनापर मिलने वाले हिन्दी प्रभावकी चर्चा की है। इसके अतिरिक्त इस कथानकपर आधारित हिन्दीमे जान कविकृत 'लैला मजनू' और रामराय कविकृत 'लैला मजनू'

नामक दो अन्य रचनाएँ भी प्राप्य हैं परन्तु ये दोनों अप्रकाशित हैं। जान कविकृत 'लैला मजनू'की हस्तलिखित प्रति हिन्दुस्तानी अकादमी, प्रयाग संग्रहालयमें सुलभ है तथा रामरायकृत 'लैला मजनू'की एक हस्तलिखित प्रति दतियाराज्य पुस्तकालयमें सुरक्षित है। वस्तुतः लैला-मजनूका कथानक लोकमें इतना अधिक प्रचलित हुआ कि समय-समयपर उसमे नये संदर्भ जुड़ते गये। सूफी कवियोंकी कल्पना एवं दार्शनिक मान्यताओंने लैला और मजनूके व्यक्ति-तत्वोंको जो प्रतीकात्मकता प्रदान की, उसका उनकी साधनाके अन्तर्गत विशिष्ट स्वरूप एवं महत्त्व है।

[सहायक ग्रन्थ—भारतीय प्रेमाख्यान : पं० परशुराम चतुर्वेदी; मध्ययुगीन प्रेमाख्यान : डा० श्याम मनोहर पाण्डेय; हिन्दी प्रेमाख्यान : डा० कमल कुल श्रेष्ठ; ना० प्र० स० खो० रि० १९०६-१९०८।] —रा० कु०

लोचनप्रसाद पांडेय–जन्म सन् १८८६ ई०मे मध्यप्रदेशके बिलासपुर जिलेके बालापुर नामक स्थानमें। मृत्यु १८५९ ई० मे। बादको रायगढमें रहने लगे थे। इनको 'काव्य-विनोद' एवं 'साहित्य-वाचस्पति'की उपाधियाँ प्राप्त हुईं। ये 'भारतेन्दु-साहित्य समिति'के एक सम्मानित सदस्य थे। स्वभाव सरल, निश्छल एवं आत्मीयतापूर्ण था। मध्यप्रदेशमें इनके प्रति बड़ा आदर, सम्मान एवं प्रतिष्ठाका भाव है। हिन्दी, उड़िया, अंग्रेजी एवं संस्कृतके उद्भट विद्वान् थे।

'दो मित्र' उद्देश्यप्रधान सामाजिक उपन्यास मैत्री-आदर्श, समाज-सुधार, स्त्री-चरित्रसे प्रेरित एवं पाश्चात्य सभ्यताकी प्रतिक्रिया पर लिखित १९०६ ई० मे प्रकाशित प्रथम कृति है। १९०७ ई० मे मध्यप्रदेशसे ही प्रकाशित 'प्रवासी' नामक काव्य-संग्रहमे छायावादी, रहस्यमयी संकलनोंकी भाँति कल्पनागत, मूर्तिमत्ता एवं ईषत् लाक्षणिकताका प्रयास दिखाई पड़ता है। १९१० ई०मे इण्डियन प्रेस, प्रयागसे 'कविता कुसुम माला', बालोपयोगी काव्य-संकलन एवं १९१४ ई० मे 'नीति कविता' धर्मविषयक संग्रह निकले। १९१४ ई० मे 'साहित्य-सेवा' नामक प्रहसन प्रकाशित हुआ, जिसमे व्यंग्य-विनोदके लिए हास्योत्पादनकी अतिनाटकीय घटना-चरित्र-संयोजन-शैलीका प्रयोग हुआ है। 'मेवाड़ गाथा' ऐतिहासिक खण्ड-काव्य सन् १९१४ ई० मे ही प्रकाशित हुआ। सन् १९१५ ई० मे 'पद्य पुष्पांजलि' नामक दो काव्य-संग्रह भी प्रकाशित हुए। सन् १९१५ ई० मे ही उनके सामाजिक एवं राष्ट्रीय नाटक 'छात्र दुर्दशा' एवं अतिनाटकीयतायुक्त व्यंग्य-विनोदपरक 'ग्राम्य विवाह विधान' नाटक निकले। सन् १९१४ मे ही समाज-सुधारमूलक 'प्रेम प्रशंसा वा गृहस्थ-दशा दर्पण' नाट्य-कृति प्रकाशित हुई।

लोचनप्रसाद पाण्डेयका साहित्यिक-कृतित्व चरित्रोत्थान, नीति-पोषण, उपदेश-दान, वास्तविक-चित्रण एव लोक-कल्याणके लिए ही परिसृष्ट हुआ है। इनके काव्यका वस्तुगत रूपाधार अभिधामूलक, निश्चित एवं असांकेतिक है। ये कथा एवं घटनाका आधार लेकर वृत्तात्मक कविताएँ लिखा करते थे। सन् १९०५ ई० से ये 'सरस्वती'मे कविताएँ लिखने लगे थे। भारतेन्दुका जागरण-सूर्य बुझ चुका था। द्विवेदी-युगके शक्ति-संचयकालमें लोचनप्रसाद पाण्डेयका अभ्यागमन हुआ। इसी समय सहृदय सामयिकता, ओज, सन्तुलित पद-योजना एवं तत्सम पदावली-से पूर्ण इनकी कविताने सांकेतिकता एवं ध्वन्यात्मकताके अभावमें भी हृदय-सम्पृक्त इतिवृत्तके कारण लोगोंका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। स्फुट एवं प्रबन्ध, दोनों ही प्रकारकी कविताओं द्वारा लोचनप्रसादजीने सुधार-भावको प्रतिष्ठापित किया। 'मृगी दुःखमोचन' नामक कवितामें वृक्ष-पशु आदिके प्रति भी इनकी सहृदयता सुन्दर रूपमें व्यक्त हुई है। ये मध्यप्रदेशके अग्रगण्य साहित्यनेता रहे हैं। —श्री० सिं० क्षे०

लोरिक–लोरिक वस्तुतः उस प्रेम-कथाका नायक है, जो 'लोरिक और चन्दा'के नामसे उत्तर प्रदेश तथा छत्तीसगढ (म० प्र०) क्षेत्रमे प्रचलित है। कहीं-कहीं यह गीत-कथा 'चन्दायिनी' कहलाती है। 'आर्क्योलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट' (पृ० ७९, खण्ड ८) के अन्तर्गत गयामें लिपिबद्ध की गयी सामग्रीके अनुसार लोरिक आभीर या रावत जातिका व्यक्ति था। उसी जातिकी 'चन्दा' अथवा 'चन्दायिनी' थी। लोरिकको छत्तीसगढ-क्षेत्रमे 'लोरी' भी कहा गया है। कहानीकी मोटी रूप-रेखा इस प्रकार है—

चन्दावीर बावनकी पत्नी थी। एक बार जब वह पतिके घरसे निकलकर अपने नैहर जा रही थी मार्गमे वीर भटुआ नामक चमारने उसका सतीत्व हरण करना चाहा। लोरिक इस अवसरपर वीर भटुआको हरा देता है। व्याहता चन्दा लोरिकके शौर्यसे प्रभावित हो उसके प्रति प्रेम करने लगती है। अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित होती है। एक दिन अपने प्रयासमे चन्दा सफल होती है। कहानीके इस स्वरूपमे स्थानानुसार थोड़ा बहुत अन्तर लक्षित किया गया है। लोरिकका चरित्र कहीं-कहीं उत्कृष्ट रूपमे उभरा है तो कहीं चन्दाका पति वीर बावन अधिक प्रभावी सिद्ध हुआ है। कुछ स्थानोंमे लोरिककी पूर्व पत्नी मजरीया भी गीतका एक पात्र बनी है। शाहाबादमे लिपिबद्ध किये गये कथाशोंमें चन्दायिनीका पति वीर बावन न होकर सेवधर है। कहते है, पार्वतीके अभिशापवश वह अपनी पत्नीसे वंचित हुआ। जब वह लोरिक अथवा लोरीसे युद्ध करने जाता है तो पराजित होता है। लोरिकके साथ भागी हुई चन्दा अथवा चन्दायिनीको मार्गमे बाधाएँ प्राप्त होती है। महापतिया नामक चोर और जुआरीसे लोरिक हार जाता है पर चन्दाकी चतुराईसे विजित होकर आगे बढता है। ढोला-मारूकी राजस्थानी गीत-कथाका प्रभाव भी 'लोरिक' पर पड़ा है। शाहाबादके कथानुसार लोरिकका विवाह बचपनमे 'सतमनाइन'से हो गया था। चन्दाइनको लेकर जब वह आगे बढ़ा तो हरदुईके राजासे युद्ध ठन गया। कलिंगका का राजा हरदुई पहुँचा। लोरिक पकड़ा गया पर दुर्गाके वरदानसे मुक्त हुआ। इस बीच सतमनाइन बड़ी हो गयी थी। प्रचलित लोककथा-परम्पराके ढंगपर उसके सतीत्व की परीक्षा करनेपर लोरिकने उसे अपना लिया। क्रूकने मीरजापुरमे लोरिककी एक कथाको लिपिबद्ध किया है।

उसमें कहीं भी चन्दाइनका उल्लेख नहीं है। 'मंजनी' नामक लोरिककी पत्नी प्रेमिकाके रूपमें आती है। कथा स्वरूप यों है—सोन नदीके तीरपर अगोरीके किलेमें एक राजा राज्य करता था। उसके यहाँ चरवाहेकी लड़की 'मंजनी' लोरिक नामक चरवाहेसे प्रेम करती थी। एक दिन दोनों वहाँसे भाग गये। राजाने अपने जंगली हाथी पर बैठकर पीछा किया। भयानक युद्ध हुआ और वीर लोरिक अन्तमें विजयी होकर मंजनीके साथ चैनसे रहने लगा। वेरियर एलविनने बिलासपुरमें इस कथाका एक सुघड़ रूप उपलब्ध किया है। अतः कथाके भिन्न-भिन्न अंश प्रान्तीय वैशिष्ट्यसे प्रभावित होकर भी एकरूप नहीं है। —श्या० प०

लोरिक चंदा–दे० 'चंदायन'।

वंशीधर विद्यालंकार–जन्म १९०० ई०, डेरा गाजी खाँ में। १९२२ ई० में गुरुकुल कांगड़ीके स्नातक। रचनाएँ—'मेरे फूल', 'साहित्य', 'देव वन'। हैदराबाद (दक्षिण)में रहकर राष्ट्रभाषाके प्रचार-कार्यमें सम्बद्ध रहे। —सं०

वचनेश मिश्र—ब्रजभाषाके कवि। राष्ट्रीय भावधारा और शृंगार रसमें अनुप्राणित रचनाएँ लिखीं। आपकी कृतियों-में 'शबरी'का विशेष महत्त्व है। आपके ब्रजभाषाके सवैये रीतिकालीन कवियोंकी तुलनामें रखे जा सकते हैं। कई वर्ष पूर्व आपका देहान्त हो गया। —सं०

वत्सासुर–'भागवत'में वत्सासुरका उल्लेख मिलता है। यह कंसका अनुचर एक राक्षस था, जो वत्सका रूप धारण करके कृष्ण-वधके उद्देश्यसे आया था। कृष्णने बछड़ोंके मध्य इसे पहिचानकर इसका वध कर डाला। सूरके वत्सा-सुर-वधमें एक नवीनता यह है कि एक बार उसे बलराम और दुबारा कृष्ण द्वारा उसे मृत्यु प्राप्त हुई (दे० सू० सा० प० १०२८)। —रा० कु०

वनिताभूषण–बूंदीनरेश रघुवीरसिंहके आश्रयमें कवि गुलाब सिंहने 'वनिताभूषण'की रचना १८९८ ई० (सं० १९४९) में की थी। इसकी मुख्य विशेषता नायिका-भेद तथा अलं कार-विषयका एकत्र विवेचन है। कविने नायिकाको आधार माना है और उसके भेदोंका वर्णन करते हुए वह अलकार का विवेचन करता गया है। उत्तरार्द्धमें अलंकार मुख्य हैं और नायिका-भेद गौण। दोहरे विवेचनकी दृष्टिसे यह पुस्तक अपूर्व है। लक्षण-उदाहरण के बाद सरल ब्रज-भाषा-गद्यमें टीका भी है। गुलाबसिंहका अध्ययन विशाल था, जो उनकी रचनामें स्पष्ट झलकता है। दूसरी रचनाओंसे उदाहरण देकर कविने उदारताका परिचय दिया है। 'वनिताभूषण'में आचार्यत्वकी अपेक्षा कवित्वका चमत्कार अधिक है। —ओ० प्र०

वरदान–अपने इस प्रारम्भिक उपन्यास (प्र० १९०२ ई० के लगभग)में प्रेमचन्दने प्रेम और पवित्रता, संयम, त्याग, स्वदेश-सेवा और बलिदानकी कथा प्रस्तुत की है। इसकी रचना उस समय हुई, जब कि विश्व आर्थिक सकट-के दौरसे गुजर रहा था, जापानने रूसपर विजय प्राप्त की थी, बंग-भंग आन्दोलनने देशमे राष्ट्रीयताकी लहर फैला दी थी, एशियाई देशोंमे पश्चिमकी साम्राज्यवादी नीति फल-फूल रही थी और देशके राजनीतिक रंगमच पर लोकमान्य तिलकका प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगा था।

इस उपन्यासमें न केवल "कर्त्तव्यकी कठोर साधनामें रत रहने वाले पुरुषकी प्रेमार्द्रता और अभावसे पूर्ण नारी-हृदयकी वेदना" ही व्यक्त हुई है, वरन् उसमें अनेक पारि-वारिक और सामाजिक समस्याओं पर भी प्रकाश डाला गया है। प्रेमचन्दने बनारसके तीन परिवारोंको केन्द्र मान कर कथाका विकास किया है। एक परिवार तो सुवामा और मुंशी शालिग्रामका है, दूसरा परिवार संजीवन लाल और सुशीलाका है और तीसरा परिवार डिप्टी श्यामाचरण और प्रेमवतीका है। इन तीनों परिवारोंकी क्रमशः तीन सन्तान है:—प्रतापचन्द्र, विरजन या बृजरानी और कमलाचरण। देवीके वरदानके फलस्वरूप सुवामाको प्रतापचन्द्र पुत्र मिला था। उसने "देशका उपकार" करनेवाला पुत्र माँगा था। वह उसे मिल गया। प्रतापके पिता एक बार प्रयागके कुम्भ मेलेमें स्नान करने गये तो फिर वापिस लौट कर न आये। सुवामाने अपनी जायदाद और फालतू सामान बेचकर संजीवन लालके परिवारको अपने मकानका एक हिस्सा किराये पर देकर अपनी आजीविकाकी व्यवस्था करली। यहाँ प्रताप और विरजनमें प्रगाढ़ता स्थापित हो जाती है किन्तु विरजन-का विवाह डिप्टी श्यामाचरणके आवारा और अशिक्षित पुत्र कमलाचरणसे हो जाता है। इससे प्रतापको ईर्ष्या भी हुई और घृणा भी। वह कमलाचरणके दुराचरणका बखान कर विरजनको प्रायः चिढ़ाया करता था। कमलाचरणकी दुष्टताओंके कारण संजीवनलाल दुःखी रहने लगे और सुशीला तो मर ही गयी। विरजनके आने पर कमलाचरण उसके प्रेमके वशीभूत तो हो गया किन्तु शिक्षाकी ओर ध्यान न दिया। सयोगसे प्रताप और कमलाचरण दोनों ही प्रयाग पढ़ने जाते है। वहाँ बोर्डिंगमें लगे हुए एक बागके मालीकी लड़की सरयूसे अनुचित सम्बन्ध स्थापित करने और पकड़े जानेके फलस्वरूप कमलाचरणने चलती ट्रेनसे कूदकर अपने प्राण त्याग दिए। विरजन विधवा हो गयी और उसके सास-ससुर भी मृत्युको प्राप्त हुए।

कमलाचरणकी मृत्युके बाद प्रतापके हृदयमें फिर विरजनके प्रति प्रेम जाग्रत् हुआ। वह चोरीसे बनारस पहुँचा किन्तु दरवाजेकी दरारसे विरजनका सात्त्विक रूप देखकर प्रतापको अपने व्यवहारपर आत्म-ग्लानि हुई और उसने बालाजी नामसे संन्यास धारण कर देश-सेवाका व्रत लिया। थोड़े ही दिनोंमें उसकी ख्याति देशमें फैल गयी।

उधर विरजनने काव्य-क्षेत्रमें पदार्पण कर कीर्ति प्राप्त की। वह प्रायः अपनी सखी माधवीसे बालाजीके गुणोंका बखान किया करती थी, जिसके फलस्वरूप माधवीके हृदयमें बालाजीके प्रति प्रेम उत्पन्न हो गया और वह उनके दर्शनोंके लिए उत्सुक रहने लगी। बारह वर्ष बाद जब बालाजी एक सार्वजनिक समारोहमें भाग लेनेके लिए बनारस आये तो विरजनने युक्तिपूर्वक बालाजी और माधवीका सम्मिलन करा दिया। अन्तमें उनका विवाह हो गया किन्तु माधवीने भी देश-सेवाका व्रत लिया और योगिन बनकर पतिके साथ रहने लगी। उसको किसीने

कभी हँसते या रोते नहीं देखा। जिसके मनमें कामनाएँ न रह गयी हों वह क्या हँसे और क्या रोवे?

प्रारम्भिक उपन्यास होनेके कारण 'वरदान' में प्रेमचन्द की वास्तविक कलाके दर्शन नहीं होते। उर्दूमें इसका नाम 'जलवा-इ इसार' है। —ल० सा० वा०

वराह–विष्णुके अवतारोंमें दूसरा अवतार वराहावतार माना जाता है। 'भागवत' (३।१३) और 'विष्णु' (१।१४) पुराणोंमें वराह-अवतारकी कथा सविस्तार वर्णित हुई है। एक बार ब्रह्माने स्वायम्भुव मनुसे अपनी भार्या शतरूपासे अपने ही समान गुणवती सन्तति उत्पन्न करके पृथ्वीका पालन और श्री हरिकी आराधनाका आदेश दिया। मनुने ब्रह्माको उत्तर दिया कि मेरी सन्ततिके रहनेके लिए स्थान बतलाइये क्योंकि समस्त पृथ्वी जलमें डूबी हुई है। मनुका उत्तर सुनकर ब्रह्मा सोचते रहे कि पृथ्वीको कैसे निकालूँ। तभी उनकी नाकसे अकस्मात् अँगूठेके बराबर आकारका एक वाराह शिशु निकला। धीरे-धीरे वह हाथीके आकार-का हो गया। तब वराह भगवान् अपने बाणके समान पैने खुरोंसे जलको चीरते हुए उस अपार जलराशिके उस पार पहुँचे। फिर वे जलमें डूबी हुई पृथ्वीको अपनी दाढ़ों-पर लेकर रसातलसे ऊपर आये और अपने खुरोंसे जलको स्तम्भित कर उस पृथ्वीको स्थापित किया। तदनन्तर वराह भगवान् अन्तर्धान हो गये। हिन्दी कृष्णभक्त कवियोंमें सूरदासने (दे० सू० सा० प० ३९१) विष्णुके इस अवतार-का वर्णन किया है। —रा० कु०

वरुण–एक वैदिक देवता कहे जाते है, जो जल अधिपति है। पुराणोंमें इन्हे कश्यप पुत्र तथा दिग्पाल कहा गया है। ये पश्चिम दिशाके दिग्पाल हैं। साहित्यमे ये करुण रसके देवता कहे गये हैं।

कंससे बचानेके लिए जब नन्द कृष्णको ले जा रहे थे, तब कालिन्दीका जल बढने लगा था। उस समय कृष्ण-रूप विष्णु भगवान्के चरणोंको वरुणने बड़े प्रेमसे स्पर्श किया था। वरुणका वर्णन सूरसागरके अतिरिक्त अन्य स्थलोंपर भी आया है (सू० सा० पद १०६२-१०६५)। —रा० कु०

वर्धमान–'वर्धमान' महाकाव्यकी उपाधिसे प्रकाशित अनूप शर्माका यह महाप्रबन्ध जुलाई, १९५१ ई० मे प्रकाशित हुआ। कविके शब्दोंमे यह ग्रन्थ दिगम्बर एवं श्वेताम्बर दोनों ही जैन-आम्नायोंका समन्वय-काव्य है। यह महाप्रबन्ध ५८५ पृष्ठों, १९९७ चतुष्पद छन्दो एवं १७ सर्गोंमे विन्यस्त है। ग्रन्थमें वंशस्थ छन्द ही प्रधान है पर यत्र-तत्र मालिनी, द्रुतविलम्बित एवं शार्दूलविक्री-डित भी प्रयुक्त हुए है। ग्रन्थान्त शिखरिणी छन्दसे हुआ है।

कथा जैनोंके चौबीसवें एवं अन्तिम तीर्थंकर एवं 'वीर', 'अतिवीर', 'महावीर', 'सन्मति' तथा 'वर्धमान' नामोंसे अभिहित महावीर स्वामीके जीवनाध्यात्मको लेकर निर्मित हुई है। इसमें ऐतिहासिक निरूपण या जीवनी-लेखनका प्रयास न कर कविने जैन-मतका निरूपण करते हुए एक अवान्तर सामंजस्य देनेका प्रयत्न किया है और जीवन-कथा एक सहायक तथा गौण भूमिका-रूपमे गृहीत हुई है। कवि-कल्पना द्वारा अध्यात्म-निरूपणकी चेष्टा ही प्रमुख है। भगवान् बुद्धके जीवनको प्रबन्धात्मक रूप देनेके प्रयास तो कई हो चुके हैं पर महावीर स्वामीके जीवनके साथ हिन्दीमें यह प्रथम प्रयास ही कहा जायगा। प्रबन्धमें जीवन-वैविध्य, कथ्य-विस्तार एवं सर्वरस-समावेशकी आवश्यकता होती है। महावीर स्वामीके जीवनमें इसका अभाव है। इतिहास-लेखकों द्वारा उनकी निर्वाण-भूमि पावा तथा जन्मभूमि कुण्डनपुर भी संदिग्ध कर दी गयी है। श्वेताम्बर एव दिगम्बर आम्नायोंमे ही महावीर स्वामी के विवाह, प्रथम उपदेश आदि घटनाओंपर विकट मतभेद है। कविने दोनोंके बीच सहमति एवं समन्वयका मध्यम-मार्गीय प्रयास किया है। संस्कृत-प्राकृतके महावीर-जीवन पर लिखे काव्योंमे 'मार'को प्रतिनायक बनाकर शृंगार एवं जीवनकी कोमल-वृत्तियोंकी अपेक्षाकी पूर्ति की गयी है। प्रकृत कविने भी महावीर स्वामीकी माता त्रिशलाके शृंगार-वर्णन एवं प्रकृति-चित्रणके ऋतु-वर्णनोंसे उसकी पूर्ति की है।

उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, अत्युक्ति, निदर्शना, श्लेष, यमक आदि सभी प्रमुख अलंकारोंकी पूर्ण सजग सज्जा है। त्रिशलाकी उँगली महाभारतकी कथा बन गयी है—"नलोपमा, अक्षवती, स-उर्मिका, मनोहरा सुन्दर पर्व-संकुला। नरेन्द्र-जाया-कर-अँगुली लसी, कथा महाभारतके समान थी॥" (पृ० ६०, छं० सं० १०२, 'वर्धमान')। भाषा तत्सम-शब्दाकीर्ण और समास-बहुला है। इसे भक्ति-वैराग्यप्रधान महाकाव्यकी अभिधा दी गयी है। शास्त्रीय विधानोंकी सम्पूर्ति होनेपर भी इसमें महाकाव्यापेक्षित महाप्राणता एव जीवन-गाम्भीर्य नहीं है। कवि 'सिद्धार्थ'से बहुत आगे भी नहीं बढ़ सका है। —श्री० सिं० क्षे०

वसुदेव–'भागवत' तथा अन्य पुराणोंके अनुसार वसुदेव कृष्णके वास्तविक पिता, देवकीके पति और कंसके बहनोई थे। जिस प्रकार यशोदाकी तुलनामे देवकीका चरित्र भक्त कवियोंको आकर्षित नहीं कर सका, उसी प्रकार नन्द की तुलनामे वसुदेवका चरित्र भी गौण ही रहा। कृष्ण जन्मपर कंसके वधके भयसे आक्रान्त वसुदेवकी चिन्ता, सोच और कार्यशीलतामे उनके पुत्र-स्नेहकी सूचना मिलती है। यद्यपि उन्हे कृष्णके अलौकिक व्यक्तित्वका ज्ञान है फिर भी उनकी पितृसुलभ व्याकुलता स्वाभाविक ही है। (सू० सा० प० ६२०-६३०)। मथुरामे पुनर्मिलनके पूर्व ही वसुदेवको स्वप्नमे उसका आभास मिल जाता है। वे अपनी दुःखी पत्नी देवकीसे इस शुभ अवसरकी आशामें प्रसन्न रहनेके लिए कहते है (सू० सा० प० ३०७-३०९)।

वसुदेवका चरित्र भागवत-भाषाकारोंके अतिरिक्त सूरके समसामयिक एव परवर्ती प्रायः सभी कवियोंकी दृष्टिमें उपेक्षित ही रहा। आधुनिक युगमे केवल 'कृष्णायन' (१।२) के अन्तर्गत उसे परम्परागत रूपमे ही स्थान मिल सका है। —रा० कु०

वाचस्पति पाठक–जन्म ५ सितम्बर, १९०५को काशी में। प्रसाद, प्रेमचन्द और रायकृष्णदासके साथ अपने

समयके साहित्यिक आन्दोलनमें बराबर भाग लेते रहे। अपनी पीढ़ीके कहानीकारोंमें आपका एक विशिष्ट स्थान रहा। जिस समय प्रसाद अपनी भावुकतापूर्ण कहानियोंमें इतिहास और भारतीय गरिमाका चित्रण कर रहे थे और प्रेमचन्द आदर्शवादी कथानकोंके माध्यमसे वर्तमान यथार्थके चित्रणमे लगे थे, उस समय पाठकजी की कहानियोंमे विशुद्ध अनुभूतियोंपर आधारित मानवीय संवेदनाओंमें हमें एक मनोवैज्ञानिक पुट मिलता है, जो उस समयके नये लेखकोंमे वेगसे आ रहा था। पाठकजी की 'कागजकी टोपी' कहानी बहुत प्रसिद्ध और मर्मपूर्ण है। आपके दो कहानी-संग्रह 'द्वादशी' और 'प्रदीप'के नामसे प्रकाशित हुए हैं। कई संग्रह भी आपने किये हैं, जैसे १९३६ मे 'इक्कीस कहानियाँ'। १९५२ ई०मे आपने एकांकी नाटकोंका एक संग्रह 'नये एकांकी'के नामसे प्रकाशित किया। इक्कीस कहानियोका सकलन अपने समयका प्रतिनिधि कहानी-संग्रह है। एकांकी नाटकोंके संग्रहमें भी आपने प्रतिनिधि नाटककारोंकी कृतियोको एक साथ प्रस्तुत करनेकी चेष्टाकी है। प्रारम्भसे ही हिन्दीकी प्रसिद्ध प्रकाशन-संस्था 'भारती भण्डार'(इलाहाबाद)मे व्यवस्थापक तथा नियोजकके रूपमें सम्बद्ध हैं। छायावादी काव्योंके उन्मेषको बडी सूझ-बूझके साथ आपने सहयोग दिया और छायावाद-युगके प्रायः सभी प्रमुखोंकी रचनाएँ अपने यहाँसे प्रकाशित कीं। समकालीन साहित्यकारोंके निकटतम सम्पर्क और उनके रोचक संस्मरणोको आप अभी तक सुरक्षित रखे है। आप हिन्दी जगत्मे एक व्यापक व्यक्ति है। हिन्दीकी सेवा ही आपका व्रत है। नये लेखकोंकी उत्तम रचनाओको अच्छे प्रकाशकोंके यहाँसे प्रकाशित करा कर तथा नये प्रकाशकोंको अच्छी रचनाएँ प्रकाशनार्थ दिलवाकर आप लेखकों और प्रकाशकोंका सदा हित करते रहते हैं और उनका उत्साह बढाते रहते हैं। आप कलाके बड़े प्रेमी है। आपके पास चित्रोंका अच्छा संग्रह है। —ल० कां० व०

वामन—वामन विष्णुके अवतार माने जाते है। एक बार बलवान् दैत्योंने माता अदितिको बहुत कष्ट दिया। उन्होंने अदितिका सर्वस्व हर लिया। तब अदितिने भगवान् कृष्णकी आराधना की। भगवान्ने उनके सामने प्रकट होकर अंश रूपमे अवतार लेकर उनकी सन्तानकी रक्षाका आश्वासन दिया। अपने वचनानुसार भगवान्ने विजया द्वादशीको अभिजित मुहूर्तमे जन्म लिया। ये चतुर्भुजधारी थे, जिनमे शख, चक्र, गदा, पद्म थे। भगवान्ने अदिति और कश्यपको देखते-देखते वामन ब्रह्मचारीका रूप धारण कर लिया। उसी समय दैत्यो के राजा बलि नर्मदाके तटपर भृगुकच्छ नामक स्थानपर यज्ञका अनुष्ठान कर रहे थे। वामन भगवान् वहाँ पहुँच गये। बलिके अनुनयपर उन्होंने केवल तीन पग भूमि उनसे माँगी। शुक्राचार्यने बलिसे वामनको यह दान देनेके लिए मना किया पर बलिने अपना वचन नहीं तोड़ा। इसपर शुक्राचार्यने बलिको समस्त सम्पत्ति खो देनेका शाप दे दिया फिर भी बलिने अपना वचन नहीं बदला। वामनने अपने त्रिगुणात्मक शरीरका विस्तार करके एक डगसे बलिकी सारी पृथ्वी, शरीरसे आकाश और भुजाओंसे दिशाएँ घेरकर दूसरे डगसे स्वर्गको नाप लिया। तीसरा डग रखनेको स्थान ही नहीं रहा। यह देखकर दैत्योंने बलिपर आक्रमण कर दिया पर भगवान्के पार्षदोंने उन्हें हरा दिया। इसके बाद भगवान्की आज्ञासे पक्षिराज गरुडने बलिको आबद्ध कर लिया। नरकमें जानेके भयसे बलिने तीनों पग पूरा करनेके लिए तीसरा पग अपने शीशपर रखनेको कहा। इसपर भगवान्ने प्रसन्न होकर उसे सावर्णि मन्वन्तरमे इन्द्र होने तथा विश्वकर्मा-निर्मित सुतल लोकमें रहनेका वरदान दिया।

हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियोंमें सूरदासने वामन अवतार की कथा वर्णित की है (दे० सू० सा० प० ४३९-४४२)। वामन अवतारकी कथा 'वामन पुराण'में स्फुट रूपमें आयी है। अन्य कवियोंने भी प्रसंगवश बलिकी सत्यनिष्ठा आदिका उल्लेख किया है। —रा० कु०

वासवी—प्रसादकृत नाटक 'अजातशत्रु'की पात्र। वासवी मगध-सम्राट विम्बसारकी बडी रानी पद्मावतीकी माँ और कोशलराज प्रसेनजित्की बहिन है। इतिहासमें मगधकी महादेवीका नाम कोशलकुमारी मिलता है। उसके विवाहके अवसरपर काशी कोशलदेवीको यौतुकके रूपमें दी गयी थी। भगिनीकी अकाल मृत्युसे भांजेपर क्रुद्ध होकर प्रसेनजित्ने काशीनगरीकी आय लौटा ली। इसपर मगधने कोशलके विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया किन्तु 'अजातशत्रु' नाटकमे वासवीकी मृत्यु नहीं दिखाई जाती। वे काशीकी आयको मगधकी राजकीय आय न मानकर अपनी व्यक्तिगत आय मानती हैं और उसे राज्यसे विरक्त बिम्बसारके लिए उपयोगमें लानेकी चेष्टा करती है। एक आदर्श पत्नी होनेके साथ-साथ वासवीमें स्त्री-सुलभ कोमलता, सहिष्णुता एव स्निग्धताकी भावनाका प्राचुर्य है। पातिव्रतकी तो वे मानो मूर्तिमान् प्रतीक हैं। वे सुख-दुःखकी प्रत्येक विपरीत परिस्थितिमे अपने पतिकी चिरसंगिनी बनकर जीवनयापन करती हैं। वासवी ऐसी सन्तोषशीला धर्मपत्नीका ससर्ग बिम्बसारके लिए विशेष कल्याणकारी सिद्ध होता है। सपत्नी-पुत्र अजातशत्रुके प्रति वासवीकी वात्सल्य-भावना अपने औरस पुत्रकी भाँति है: "छलना! बहिन! यह क्या कह रही हो? मेरा वत्स कुणीक! प्यारा कुणीक! हा भगवन्! मै उसे देखने न पाऊँगी।" राज्यसुख और अधिकार लिप्सा उसे तनिक भी कर्त्तव्यविमुख नहीं बना पाती और न छलनाकी कटूक्तियाँ उसकी शान्ति-भावनाको विचलित कर पाती है। वासवी अपनी शान्त और स्निग्ध वाणीसे बिम्बसारके उत्तेजित हृदयको शान्त बनाती हुई बुद्धसे कहती है—"भगवन्! हम लोगोको तो एक छोटा-सा उपवन पर्याप्त है। मै वहीं नाथके साथ रहकर सेवा कर सकूँगी।" बिम्बसारकी इच्छा देखकर वह अपना रत्नजटित स्वर्ण कंकणतक भिक्षुओंको हर्षपूर्वक दे देती है। यद्यपि उसकी सपत्नी छलना और अजातशत्रु पग-पगपर उसे अपमानित करते हैं और उसका अनिष्ट करते है किन्तु शान्तहृदया, क्षमाशीला वासवी अपकारका बदला उपकारसे देती है। छलनाके लिए निर्विकार हृदयसे ईश्वरसे सद्बुद्धिकी प्रार्थना करती है और घायल बन्दी अजातशत्रुको अपने भाई प्रसेन-

उसमें कविता भी करते थे। इन्होंने अपने चार और अपने पिता श्री वल्लभाचार्यके चार भक्त कवियोंको मिलाकर 'अष्टछाप'की स्थापना की। 'अष्टसखा' द्वारा रचित पद श्रीनाथजीकी सेवाके समय गाये जानेकी प्रथा प्रचलित की। अष्टसखाके सम्बन्धमें एक दोहा प्रचलित है: "कृष्ण जु कुम्भनदास है, सूर ही परमानन्द। नन्द चतुर्भुज दास जु, छीत स्वामि गोविन्द ॥" गुसाईंजी वर्णाश्रम धर्मके प्रतिष्ठापक होते हुए भी भक्ति-पथमें जाति-पाँतिका विचार नहीं करते थे। तानसेन, रसखान और अछूत मोहनको इनके द्वारा उपदेश प्राप्त होनेकी किंवदन्ती है। ये चित्रकलाके भी प्रेमी थे और स्वयं चित्र बनाते थे। इनके द्वारा बनाया गया बालकृष्णका चित्र आज भी विद्यमान है। सं० १६४२ में इनके लीला-प्रवेशकी कथा में कहा गया है कि अपने जीवनका कर्तव्य समाप्तकर गुसाईंजी सम्प्रदायके सात सेव्य (श्री सुरेश जी, श्री विट्ठलनाथ जी, श्री द्वारिकाधीश जी, श्री गोकुलनाथ जी, श्री गोकुलचन्द्रमा जी, श्री बालकृष्ण जी और श्री मदनमोहन जी, जिनके स्थान क्रमशः कोटा, नाथद्वारा, एंकरोली, गोकुल, कामवन, सूरत और कामवन हैं) और सम्पत्ति अपने सात पुत्रोंको सौंपकर श्रीनाथके राजभोग कर मध्याह्नमे गिरिराजकी एक गुहाके द्वारपर पधारे। यहाँ उन्होंने अपने कण्ठकी माला गोकुलनाथके गलेमे पहनायी और स्वयं कन्दराके भीतर पधारे। जब ज्येष्ठ पुत्र गिरिधरजीने इनके नित्य-लीलामे पधारनेका समाचार सुना तो वे दौड़े हुए आये और उन्होंने गुसाईंजीका उत्तरीय वस्त्र खींचा। अपने उत्तरीय वस्त्र द्वारा ही अपने उत्तर क्रिया करनेका आदेश देकर गुसाईंजी सर्वदाके लिए भगवान्के नित्य-लीला विहारस्थल गिरिराजमे सदेह लीन हो गये।

इन्होंने ब्रजभाषा काव्यके अतिरिक्त गद्यकी भी अपूर्व सेवा की है। इनके तीन प्रसिद्ध गद्य-ग्रन्थ हैं: 'शृंगाररसमण्डल', 'यमुनाष्टक' और 'नवरत्नसटीक'। इनके अतिरिक्त इनके ब्रह्मसूत्रोंका अणुभाष्य, 'श्रीमद्भागवत'की टीका और 'श्री सुबोधिनी' ग्रन्थ भी सम्प्रदायमान्य हैं। 'भक्तमाल'मे इनके सम्बन्धमे कहा गया है: "राजभोग नित विविध रहत परिचर्या तत्पर। सज्या भूषण वसन रुचिर रचना अपने कर ॥ वह गोकुल, वह नन्दसदन दीच्छित कौ सो है। प्रगट विभौ जहाँ घोष देखि सुरपति मन मोहै ॥ वल्लभसुत बल भजनके कलिजुगमे द्वापर कियौ। विट्ठलनाथ ब्रजराज ज्यों लाल लड़ाय कै सुख लियौ।"

[सहायक ग्रन्थ—कांकरोलीका इतिहास; हिन्दी साहित्य—द्वितीय खण्ड, हिन्दी परिषद्, प्रयाग); अष्टछाप परिचय: मीतल।] —वि० मो० श०

विदा—'विजय', 'विकास', 'विसर्जन' आदि उपन्यासोंके लेखक प्रतापनारायण श्रीवास्तवका प्रथम उपन्यास 'विदा' १९२८ ई० में प्रकाशित हुआ था। यह बहुत लोकप्रिय हुआ और इसके कई संस्करण निकले। इस उपन्यासमें 'सिविल लाइन्स'के बंगलोंमें रहनेवाले नागरिक जीवनकी कहानी कही गयी है। क्लब, पार्टी, खेलके मैदान, सिनेमा-गृह तथा पार्क आदिमें होनेवाली चहल-पहलका और उसके भीतर व्याप्त राग-द्वेष एवं संतोष-असंतोषकी भावनाओंका मार्मिक चित्रण किया गया है। इस प्रकारकी विषय-भूमिकी दृष्टिसे यह उपन्यास अपने प्रकाशन-कालके समय एकदम नया था। सर्वत्र इसका स्वागत हुआ। उपन्यास कला, कथानक संघटन तथा चरित्र-चित्रण आदिकी दृष्टिसे भी यह एक सफल कृति है। इस उपन्यासकी बड़ी भारी विशेषता यह है कि इसमें लेखकने यूरोपीय सभ्यताके साँचेमें ढले हुए नागरिक-जीवनके चित्रणके बावजूद विभिन्न पात्रोंकी आन्तरिक प्रवृत्तियोंमें भारतीयताको सुरक्षित रखा है। उपन्यासकी भाषा-शैली सरस तथा रोचक है। —र० भ्र०

विदुर—परम्परासे विदुर एक नीतिज्ञके रूपमें विख्यात हैं। अम्बिका और अम्बालिकाको नियोग कराते देखकर उनकी एक दासीकी भी इच्छा हुई कि वह भी नियोग कराये। उसने व्याससे नियोग कराया, जिसके फलस्वरूप विदुरकी उत्पत्ति हुई। विदुर धृतराष्ट्रके मन्त्री किन्तु न्यायप्रियताके कारण पाण्डवोंके हितैषी थे। विदुरके ही यत्नोंसे पाण्डव लाक्षागृहमे जलनेसे बचे थे। विदुरको उनके पूर्व जन्मका धर्मराज कहा जाता है। महाभारत-युद्धको रोकनेके लिए विदुरने यत्न किये पर अन्ततः असफल रहे। इनकी प्रसिद्ध रचना 'विदुर नीति'के अन्तर्गत नीति सिद्धान्तोंका सुन्दर निरूपण हुआ है। युद्धके अनन्तर विदुर पाण्डवोंके भी मन्त्री हुए। जीवनके अन्तिम क्षणोंमे इन्होंने वनवास ग्रहण कर लिया तथा वनमे ही इनकी मृत्यु हुई। हिन्दी नीति काव्य पर विदुरके कथनों एवं सिद्धान्तोंका पर्याप्त प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। —रा० कु०

विद्याधर—नर योनिसे भिन्न विद्याधर नामक एक योनि विशेषका एक प्रसिद्ध व्यक्ति विद्याधर नामसे विख्यात हुआ है, जिसे अंगिरा ऋषिने क्रोधवश शाप दिया और वह नाग हो गया। एक रातको जब नन्द आदि शयन कर रहे थे तो वह नन्दके पाँवोंमें लिपट गया। नन्दने घबराकर कृष्णको पुकारा। उन्होंने नन्दके पाँव छुए ही थे कि नाग पुनः विद्याधर हो गया और उनकी प्रार्थना करने लगा (दि० सू० सा० प० १८०२)। —रा० कु०

विद्यापति—विद्यापतिके जन्म-काल आदिके विषयमें प्रामाणिक सामग्रीका प्रायः अभाव है। यद्यपि उनका सम्बन्ध कई विशिष्ट राजपुरुषोंके साथ था फिर भी उनके विषयमें इस प्रकारकी ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त नहीं हो सकी है, जिसपर लोगोंमें मतैक्य हो। विद्यापतिके पिता गणपति ठाकुर राजा गणेश्वरके सभासद थे और ऐसा माना जाता है कि कवि विद्यापति अपने पिताके साथ राज-दरबारमे कई बार गये थे। 'कीर्तिलता'से मालूम होता है कि राजा गणेश्वर लक्ष्मण संवत् २५२ में असलान द्वारा मारे गये। विद्यापति यदि उस समय दस वर्षके रहे हों तो यह कल्पना की जा सकती है कि विद्यापतिका जन्म लक्ष्मण संवत् २४२ मे हुआ। सबसे पहले नगेन्द्रनाथ गुप्तने 'विद्यापति पदावली' (बंगला संस्करण १३१६, बंगाब्द) में लिखा कि २४३ संवत्को राजा शिवसिंहका जन्म-संवत् मान लेने पर हम यह कह सकते हैं कि विद्यापतिका जन्म ल० सं० २४१ के आस-पास हुआ क्योंकि ऐसी किम्वदन्ती है कि

शिवसिंह पचास वर्षकी अवस्थामें गद्दीपर बैठे और विद्यापति उनसे दो साल बड़े थे। शिवसिंहका राज्यारोहण काल निश्चित है, यानी वे लक्ष्मण संवत् २९३ तदनुसार १३२४ शकके चैत मासकी कृष्ण षष्ठी ज्येष्ठा नक्षत्र बृहस्पतिवारको गद्दीपर बैठे। लक्ष्मण संवत्के विषयमें भी विद्वानोंमें मतैक्य नहीं है। कीलहार्नने ('इण्डियन ऐण्टिक्वेटी भाग १९, सन् १८२० ई०) बड़े परिश्रमसे इस विषयमें खोज-बीन की और यह निष्कर्ष निकाला कि लक्ष्मणसंवत्को १०४१ शाके या १११९ ई०में सर्वप्रथम प्रचलित माननेमें मिथिलाकी पुरानी पाण्डुलिपियोंकी तिथियोंमें गडबडी नहीं होती। पश्चात् श्री जायसवालने 'दि जर्नल आव बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी, भाग १३' में प्रकाशित अपने एक लेखमें लिखा कि १३५० ई०के पहलेकी पाण्डुलिपियोंमें लक्ष्मण संवत्में १११९ जोडनेसे और बादकी तिथियोंमें ११०९ जोड़नेसे निश्चित तिथिका ठीक पता चल सकेगा। इन सभी अनुसन्धानोंके बाद विद्यापतिके जीवनके सम्बन्धमें निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले गये हैं। सन् १३८० ई०के आस-पास कविका जन्म हुआ। १३९५-९६ ई०के बीच पद लिखकर उन्होंने गियासुद्दीन और नसरत शाहको समर्पित किया। १३९६-९७ ई०के बाद जौनपुरके प्रथम सुल्तानने तिरहुत जीता। १४०० ई० के आसपास नैमिषारण्यनिवासी देव सिंहके आदेशसे 'भूपरिक्रमा'की रचना की। १४०२-१४०४ ई०के बीच इब्राहिमशाह द्वारा कीर्ति सिंहको मिथिलाका सिंहासन प्रदान किया जाना और उसी समय 'कीर्तिलता'की रचना। १४१० ई०में उन्होंने 'पुरुष परीक्षा'की रचना की और देवीसिंहकी मृत्युके पहले अथवा पश्चात् उन्होंने 'कीर्ति पताका' लिखी। १४१०-१४१४ ई०के बीच शिवसिंहके राज्यकालमें दो सौ पदोंकी रचना की, जो अपनी मौलिकता और मार्मिकताके लिए अत्यन्त प्रसिद्ध हुए। १४१८ई०मे द्रोणवारके अधिपति पुरादित्यके आश्रयमें राजबनोलीमें 'लिखनावली'की रचना की, जिससे कविके जीवनके अर्थ-सकट का सहज अनुमान किया जा सकता है। १४२८ ई० मे राजबनोलीमें भागवतकी अनुलिपि की। १४४०-६० ई० के बीच 'विभागसागर', 'दान वाक्यावली' और 'दुर्गाभक्ति तरंगिणी'की रचना पूरी की। १४६० ई०में स्मृतिके अध्यापकके रूपमें ब्राह्मण-सर्वस्वका अध्यापन किया। इसीके आसपास मृत्यु हुई।

विद्यापतिका व्यक्तित्व नाना प्रकारकी परस्परविरोधी विचारधाराओंका स्तवक है। वे दरबारी होते हुए भी जन कवि हैं, शृंगारिक होते हुए भी भक्त हैं, शैव या शाक्त या वैष्णव कुछ भी होते हुए भी वे धर्म-निरपेक्ष हैं, संस्कारी ब्राह्मण वंशमें पैदा होते हुए भी वे मर्यादावादी या रूढ़िसंत्रस्त नहीं हैं। वे तर्क कर्कश न्यायके ग्रन्थिल पथ और युवतियोंके प्रमेगीतोंके पिच्छल मार्ग पर समान रूपसे बिना सन्तुलन खोये चल सकनेके अभ्यस्त हैं। 'पुरुष परीक्षा'से पता चलता है कि वे दण्डनीति-शास्त्रके प्रकाण्ड पण्डित थे और'कीर्तिलता'उनके तत्कालीन परिपाटी विहित काव्य-ज्ञानका सूचक है। 'पदावली' देखनेसे पता चलता है कि कविके ऊपर जयदेवका घना प्रभाव था। वे श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराण, प्रमाण विद्या, समय-विद्या और राज्य-सिद्धान्त ग्रंथोंके विशेषज्ञ थे। कामशास्त्रका भी उन्होंने व्यापक अध्ययन किया था। सौन्दर्यचित्रण तथा नख-शिख वर्णनमें कामशास्त्र और सामुद्रिकके लक्षणोंको ज्योंका त्यों अपना लिया गया है। बाला, नवोढा, मुग्धा, प्रौढ़ा आदिके वर्णनमें कामशास्त्रके लक्षण काव्यके नियम बन गये। कन्या विश्रम्भण कामशास्त्रका प्रमुख प्रकरण है। दूतीके द्वारा नायिकाको नायककी ओर आसक्त करानेके प्रयत्नोंमें कन्याविश्रम्भणकी कामशास्त्रीय रूढियोंका प्रचुर प्रभाव दिखाई पडता है।

विद्यापतिकी रचनाओंके नाम उनके काल-निर्णयके सिलसिलेमें प्रस्तुत किये गये है। इसमें 'कीर्तिलता' परवर्ती अपभ्रंश या अवहट्ठमें लिखी हुई राजप्रशस्ति-काव्य है, जिसमें कीर्ति सिंहके राज्यप्राप्तिके प्रयत्नोंका वर्णन किया गया है। भाषा और आख्यानक काव्योंकी शैलीके अध्ययन मे इस ग्रन्थका महत्त्व निर्विवाद है (दे० 'कीर्तिलता')। 'कीर्तिलता' भी अवहट्ठकी ही रचना है और उसके कतिपय आरम्भिक पन्नोंसे मालूम होता है कि यह कीर्ति सिंहकी प्रेम-गाथा पर आधारित है। पुस्तक अब तक अप्राप्य है और जब तक इसका प्रकाशन नहीं हो जाता, इसके बारेमें कोई निश्चित मत व्यक्त कर सकना सम्भव नहीं है। 'भूपरिक्रमा' शिवसिंहकी आज्ञासे लिखित भूगोल-सम्बन्धी ग्रन्थ है। 'पुरुष परीक्षा'में कविने दण्डनीतिका विश्लेषण किया है। 'लिखनावली'में चिट्ठी-पत्री लिखनेका निर्देशन है और 'शैवसिद्धान्तसार' नामके अनुरूप ही शैव दर्शनके स्पष्टीकरणका प्रयत्न है। 'गंगा वाक्यावली', 'विभाग सार', 'दान वाक्यावली', 'दुर्गाभक्ति तरंगिणी' आदि साधारण महत्त्वकी कृतियाँ हैं। इन रचनाओंको देखनेमें इतना तो स्पष्ट हो ही जाता है कि विद्यापतिने अपने समयमें प्रचलित प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण काव्यरूपोंमें रचना करनेका प्रयत्न किया किन्तु जिन रचनाओंके कारण वे उत्तर भारतके एक प्रसिद्ध कवि और समारप्रसिद्ध गीतकार माने जाते हैं, वे उनके पद या गीत हैं, जिन्हें देखकर जार्ज अब्राहम ग्रियर्सनने कहा था "हिन्दू धर्मका सूर्य अस्त हो सकता है, वह समय भी आ सकता है जब कृष्णमें विश्वास और श्रद्धाका अभाव हो जाय, कृष्ण-प्रेमकी स्तुतियोंके प्रति जो भवसागरके रोगकी दवा है, विश्वास जाता रहे, तो भी विद्यापतिके गीतोंके प्रति, जिनमें राधा और कृष्णके प्रेमका वर्णन है, लोगोंकी आस्था और श्रद्धा कभी कम न होगी" (एन इण्ट्रोडक्शन टु द मैथिली लैंग्वेज १८८१-८२)। 'पदावली'में संगृहीत पदोंकी प्रामाणिकता, संख्या तथा पाठके बारेमें काफी विवाद है (दे० 'विद्यापति-पदावली')।

विद्यापतिके पदोंके संग्रहका प्रयत्न सर्वप्रथम सम्भवतः शारदाचरण मित्रने किया था और बादमें १८८१-८२ ई० मे जार्ज अब्राहम ग्रियर्सनने लोगोंके मुखसे सुनकर उनके ८२ पद एकत्र किये थे। तबसे लेकर आज तक विद्यापतिके जन्म-काल, धार्मिक मान्यताएँ तथा काव्य-गुणों के विषयमें काफी ऊहापोह हुआ है। आरम्भमें विवादका विषय यह था कि विद्यापति हिन्दी कवि हैं अथवा बंगाली।

विद्यापतिके प्रति जिज्ञासा और श्रद्धाका उद्रेक पहले बंगाली सहृदय जनोंमें दिखाई पड़ा, इसमें सन्देह नहीं और उन लोगोंने कविकी रचनाओंसे मुग्ध होकर उन्हें अपना बतानेका दावा भी पेश किया। विद्यापति मैथिली-भाषाके कवि थे और स्वाभावतः मैथिली लोगोंके दावेको स्वीकार करना पड़ा। विद्यापतिके विषयमे दूसरा विवाद यह था कि थे शैव हैं, वैष्णव हैं या शृंगारिक कवि हैं। इस विवादके पीछे भी कुछ निराधार किस्मके पूर्वाग्रह कार्य करते रहे। शिवनन्दन ठाकुर उन्हे शैव मानते हैं ('महाकवि विद्यापति', लहरियासराय, पटना), उमेश मिश्र मात्र शृंगारिक ('विद्यापति ठाकुर', हिन्दुस्तानी अकादमी, इलाहाबाद, १९३७ ई० पृ० ८९-९०), रामचन्द्र शुक्लने लिखा है कि 'विद्यापति शैव थे, इन्होंने इन पदोंकी रचना शृंगार काव्यकी दृष्टिसे ही की है, भक्तके रूपमे नहीं, विद्यापतिको कृष्ण-भक्तोंकी परम्परामे नहीं समझना चाहिये" ('हि० सा० इ०', छठाँ सस्करण, सं० २००७, काशी, पृ० ५७-५८)। इन तर्कोंकी एकांगिता स्पष्ट है क्योंकि विद्यापतिके समयकी धार्मिक पृष्ठभूमि भुलाकर उन्हे कुछ निश्चित खानोंमे फिट करनेका अनुचित प्रयत्न किया गया है। यह मान लेना कि कोई शैव भक्तिपरक शृंगारिक गीत नहीं लिख सकता, वस्तुस्थितिको नकारना है। शिव सिद्धि-दाता थे और विष्णु भक्तिके आश्रय। गाहडवार नरेश अपनेको माहेश्वर कहते थे और विष्णुकी स्तुति गाते थे। विद्यापतिने भी शिव और विष्णुकी समवेत स्तुति की है: "भल हर भल हरि भल तुव कला, दवन पीत वसन खनहि बघछला"। शृंगार भक्तिका विरोधी है, यह परम्परा भी भारतीय भक्तिको न समझनेके कारण उत्पन्न होती है। विद्यापतिपर रहस्यवादी होनेका भी आरोप किया गया है। ग्रियर्सन, कुमारस्वामी और जनार्दन मिश्र विद्यापतिको रहस्यवादी मानते हैं। रहस्यवादी माननेवालोंको विनयकुमार सरकारने ('लव इन हिन्दू लिटरेचर', १९१६, पृ० २०-२१) उचित उत्तर दिया है। उन्होंने भक्ति और शृंगारका सूक्ष्म विश्लेषण करते हुए कहा कि "ऐन्द्रिय भावनाका मानवीय सम्बन्धोंके बीच इतना सुन्दर सम्मिश्रण और इतने ऊँचे स्तरका चित्रण भारतीय साहित्यमें विद्यापतिके अलावा और किसीने प्रस्तुत नही किया"। वस्तुतः विद्यापति शुद्ध मानवधर्मी कवि थे, जिनके सामने धार्मिक मान्यताओंके घेरे कोई महत्त्व नही रखते।

विद्यापति सौन्दर्यके कवि हैं। सौन्दर्य उनका दर्शन है, सौन्दर्यकी उनकी जीवनदृष्टि है। इस रूपको वे "जनम-जनम" निहारते रहे और "नयन न तिरिपत भेल"। इसे वह "अपरूप" कहते हैं। सौन्दर्यके वे स्रष्टा थे और उसके उपभोक्ता भी। उनमे उपभुक्तिकी लीनता है और द्रष्टाकी तटस्थता भी। इसीलिए वे त्रिभुवनविजयी सौन्दर्यके अव्याज चारण हैं। सौन्दर्यको एक जीवित वस्तुके रूपमें देखते हुए भी वे युगधर्मसे इतने बँधे थे कि उन्होंने रूप-चित्रणमे नख-शिख वर्णनकी परिपाटीका परित्याग नहीं किया। पुराने उपमानों और रूढ़ अप्रस्तुतोंके वर्णनकी अतिशयतासे वे बच न सके। रूपके चित्रणमें कभी-कभी वे स्थूल ऐन्द्रिय विवृति और नग्न-चित्रणके दोषके शिकार भी हो गये हैं। उपमाके प्रयोगमें वे बेमिशाल हैं और दिनेशचन्द्र सेनका यह कहना उचित है कि "कालिदासके बाद किसी द्वितीय व्यक्तिका नाम लेना हो तो विद्यापतिके नामपर किसीको आपत्ति नहीं होनी चाहिये" ('बंग भाषा ओ साहित्य', पृ० २२४)।

[सहायक ग्रन्थ—विद्यापति : खगेन्द्रनाथ मित्र तथा विमान बिहारी मजूमदार, हिन्दी संस्करण, पटना, १९५३ ई०; विद्यापति : शिवप्रसाद सिंह, हिन्दी प्रचारक पुस्त-कालय, काशी, १९५७ ई०।] —शि० प्र० सिं०

विद्यापति पदावली—विद्यापति चौदहवीं शतीके कवि थे और निर्विवाद रूपमे उनका यश सोलहवीं शतीके अन्त तक समस्त पूर्वी भारतमें व्याप्त हो चुका था। उनके पदों-के अनुकरण पर गीत लिखनेवाले अनेकानेक कवि उत्पन्न हुए और उन्होने रचनाओंमे यदा-कदा विद्यापतिका अतीव आदरके साथ स्मरण भी किया पर आश्चर्य यह है कि बीसवीं शताब्दीके पूर्व कविके समस्त पदोंको एकत्र उपस्थित करनेवाला कोई संग्रह या संकलन-ग्रन्थ प्राप्त नही होता। पदावलीकी प्राप्त विभिन्न पाण्डुलिपियोंको देखनेसे प्रतीत होता है कि ये तीन वर्गोंमे विभाजित की जा सकती है:—(१) नेपालसे प्राप्त पाण्डुलिपि, (२) मिथिलाकी पोथियाँ—रागतरंगिणी, रामभद्रपुरकी पोथी और तरौणीकी तालपत्र-की पोथी तथा (३) बगालमे सकलित 'क्षणदागीत चिन्ता-मणि', 'पदामृत समुद्र', 'पदकल्पतरु', 'संकीर्तनामृत' और 'कीर्तनानन्द'। नेपालकी पोथी पुरातन मैथिली लिपिमें लिखी गयी है। काशीप्रसाद जायसवाल और अनन्त प्रसाद बन्धोपाध्यायके उद्योगसे मूल प्रतिकी फोटो कापी प्राप्त की गयी, जिसका एक खण्ड कालेज लाइब्रेरीमें और दूसरा पटना विश्वविद्यालय लाइब्रेरीमें सुरक्षित है। सब मिलाकर इसमे २८७पद है। 'रागतरगिणी' सत्रहवीं शताब्दीमें महीनाथ ठाकुरके राजत्व-कालमे लोचन कविने लिखी, जिसमे कवि विद्यापतिके ५१ पद सकलित है। इन ५१ पदोंमें तीन पद ऐसे हैं, जिनमे कवि भणिताके रूपमे विद्यापतिका नाम नही आता किन्तु इनके नीचे लोचन कविने "इति विद्यापतेः" लिखा है, जिससे मालूम होता है कि ये पद भी विद्यापतिके ही हैं। रामभद्रपुरकी पोथी मूलतः विष्णु-लाल झा को मिली थी, जिन्होने शिवनन्दन ठाकुरको इसकी सूचना दी। ठाकुरने इन पदोको उतारकर 'विद्यापति विशुद्ध पदावली' शीर्षकसे अपनी पुस्तक 'महाकवि विद्या-पति'में प्रकाशित कराया। उपलब्ध पदोंकी सख्या ९६ है किन्तु शिवनन्दन ठाकुरने ८६ पद ही प्रकाशित किये थे। तरौणीकी तालपत्र-पोथी आज उपलब्ध नही है। इसके विवरणके लिए नगेन्द्रनाथ गुप्तकी सूचनाओ पर ही अव-लम्बित होना पडता है। इसमे ३५० पद थे, जिन्हे उन्होंने अपने द्वारा सम्पादित 'विद्यापति पदावली'में प्रकाशित कराया। बंगालमें विद्यापतिके पद बहुत लोकप्रिय रहे हैं। गौड़ीय वैष्णव भक्तोने इन पदोको बड़ी सावधानीसे सुरक्षित रखा। सबसे प्राचीन पोथी 'क्षणदागीत चिन्तामणि' है, जिसे विश्वनाथ चक्रवर्तीने ईस्वी १७०५ में प्रस्तुत किया। 'पदामृत समुद्र'के संकलयिता राधामोहन. ठाकुर हैं,

जिन्होंने अनुमानतः अट्ठारहवीं शताब्दीमें यह संग्रह उपस्थित किया। इस संकलनके पदों पर बंगला प्रभावकी अतिशयता है। मैथिल प्रयोगोंके स्थान पर बंगला प्रयोगोंकी भरमार है। अट्ठारहवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें गोकुलानन्द सेन अर्थात् वैष्णवदासने 'पद कल्पतरु'का संग्रह किया। यह बहुत वृहत् संकलन है। इसमें १३०१ पद हैं। विद्यापतिके १६१ पद हैं। देशबन्धु चितरंजन दासके पास उपलब्ध 'संकीर्तनामृत'की पोथीमें विद्यापति रचे केवल १० पद ही प्राप्त होते हैं।

विद्यापतिके पदोंके संकलनका कार्य सबसे पहले शारदाचरण मित्रने किया। १८८१ ई० में जार्ज अब्राहम ग्रियर्सनने गायकोंके मुखसे सुनकर ८२ पद एकत्र किये। बादमें बंगालके नगेन्द्रनाथ गुप्तने १३१६ बंगाब्दमें 'विद्यापति पदावली'का सम्पादन किया। 'विद्यापति पदावली' नामसे एक संग्रह अमूल्य विद्याभूषण और खगेन्द्रनाथ मित्रने किया। बंगाली संस्करणोंमें नगेन्द्रनाथ गुप्त का संकलन ज्यादा महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इन्होंने काफी सन्तुलित और परीक्षणात्मक ढंगसे काम लिया किन्तु इनके संकलनका आधार सिर्फ नेपालकी पोथी ही नहीं थी, उन्होंने 'पदकल्पतरु' आदिसे भी सहायता ली। फलस्वरूप उनके संकलनके बहुतसे पद विद्यापतिके पदोंकी आत्मा और भाषासे काफी दूर जा पड़ते हैं। रामवृक्ष बेनीपुरीके सम्पादनमें पुस्तक भण्डार, लेहरियासरायसे 'विद्यापति पदावली' प्रकाशित हुई (प्रकाशन-तिथि नहीं दी गयी है)। यह संकलन मुख्यतः नगेन्द्रनाथ गुप्तकी 'विद्यापति पदावली' पर आधारित है। इन सभी प्रकाशित और अप्रकाशित सामग्रियोंके आधारपर खगेन्द्रनाथ मित्र और विमानबिहारी मजूमदारने 'विद्यापति' नामसे एक बृहत् संकलन और तैयार किया। इसमें मजूमदारने एक विद्वत्तापूर्ण भूमिका भी लिखी है। इसका हिन्दी अनुवाद संवत् २०१० में पटनासे छपा। १९५४ ई० में सुभद्र झाने काशीसे 'द सांग्स ओव विद्यापति' नामसे एक नया संकलन छपवाया।

विषयकी दृष्टिसे विद्यापतिके पद कई श्रेणियोंमें विभाजित किये जा सकते हैं। अधिकांश पद राधा और कृष्णके प्रेमके विभिन्न पक्षोंका उद्घाटन करते हैं। कुछ पद शुद्ध प्रकृतिसम्बन्धी हैं, इनमें प्रकृति ही वर्ण्य है, वही काव्यका आलम्बन है। कुछ पद विभिन्न देवताओंकी स्तुतिमें लिखे गये हैं। स्तुति-पदोंमें सबसे अधिक पद शिव और उमाके सम्बन्धमें हैं। इसमें कई केवल शंकरकी स्तुति के हैं। उमा-शिव विवाह वाले पदोंमें शिवमें ईश्वरत्वबुद्धि और तज्जन्य श्रद्धाका समावेश है, किन्तु इनमें सामान्य-जीवन, हास-परिहास तथा व्यंग्य-विनोदका भी पुट कम नहीं है: "हम नहिं आज रहब यहि आँगन जे माइ" (पदावली बेनीपुरी' पद संख्या २३५), "नाहि करब वर हर निरमोहिया" (२३६) "एत जप तप हम किय लगि कैलहु" (२४२) आदि पदोंमें दुकुलावेष्टित सुन्दरी गौरी और गजाजिनवेष्टित भूतभावन शंकरके बेमेल विवाहपर व्यंग्य और अन्तमें कन्याके अक्षय सौभाग्यकी सदिच्छा व्यक्त की गयी है। इस तरहके गीत आज भी पूर्वी प्रदेशोंमें विवाहके अवसरपर गाये जाते हैं। प्रार्थना या नचारी वर्गके पदोंमें दुर्गा, जानकी गंगा आदिकी भी स्तुति की गयी है। कुछ पदोंमें कवि अपने दैन्यकी अतिशयताका कारुणिक चित्रण करके स्तुत्य देवतासे कृपाकी याचना करता है। यह भक्तिकालके कवियोंकी एक रूढ परिपाटी है। करुणोद्रेकके लिए अपनी हीनताका वर्णन भक्तिका आवश्यक अंग माना जाता था। ऐसे पदोंको देखकर यह कहना कि शुरूमें विद्यापति शृंगारिक थे, बादमें भक्त हो गये, अनुचित है।

पदावलीके जिस वर्गके पदोंके लिए विद्यापतिकी प्रसिद्धि है, वह है राधा-कृष्ण प्रेम। इस वर्गके कुछ पदोंमें राधाका नख-शिख वर्णन, रूपमाधुरीका चित्रण, आकर्षण और नायक या कृष्णके हृदयमें प्रेम-वैचित्र्यका उदय दिखाया गया है। राधाके ऐन्द्रजालिक कुसुमशायक सदृश रूपसे घायल कृष्ण यमुना तटपर बैठकर बार-बार उसकी याद करते हैं। राधा-कृष्णके रूपको 'अपरूप' कहती है, जिसका वर्णन सुनकर लोगोंको सहसा विश्वास न होगा। उसे देखते हुए राधा लज्जा और आकर्षणकी द्विधामें काँटोंमें गिर पड़ी: "उलटि हेरइत उलट परलौ चरन चीरल काँट"। दूतियाँ राधा और कृष्ण, दोनोंकी वैचित्र्यावस्थाका वर्णन एक दूसरेको सुनाती हैं। इस प्रकार प्रणय, स्नेह, मान, राग, अनुराग, भाव और महाभावकी क्रमिक अवस्थाओंका चित्रण किया गया है। यह ध्यान रखना चाहिये कि भक्तिके पक्षमें उपर्युक्त भाव-विकासका जो रूप है, वही सांसारिक प्रेममें भी। इसी कारण नख-शिख, प्रेम-प्रसंग, दूती, नोक-झोंक (मान), सखी-शिक्षा, मिलन, अभिसार, छलना, मान, विदग्ध विलास (महाभाव या एकात्म्य) आदि शीर्षकोंमें विभाजित पदोंमें यथासम्भव क्रम निर्धारण कर लेना चाहिये। ये वर्गीकरण कृत्रिम और सुविधाके लिए बनाये हुए हैं। विद्यापतिकी सबसे बड़ी विशेषता है, इन रूढियोंका निर्वाह करते हुए भी उनके भीतरसे राधा और कृष्णके प्रेमका ऐसा चित्रण करना, जो अपनी तमाम परिस्थितियों, सुख-दुःखकी भावनाओं, उल्लासपूर्ण मिलन और अश्रुसिक्त विरहकी अवस्थाओंमें पलकर एक जीवन्त वस्तु प्रतीत हो। राधा और कृष्णके इस प्रेमके परिपार्श्वमें उनकी सारी दिनचर्या, समाज, परिवार, अनुशासन, लज्जा, संकोच—सभी कुछ एक यथार्थ जीवनका अंग बनकर उपस्थित होते हैं। विद्यापति क्लैसिक साहित्यके प्रकाण्ड पण्डित थे, उन्होंने काव्य-कौशलको सारी सम्पदाके साथ अपने अध्यवसाय और अभ्याससे अर्जित किया था किन्तु वे लौकिक जीवनसे भी इस तरह सम्पृक्त थे कि उनकी रचनाओंमें लोकतत्त्व, लोकोक्ति, मुहावरे, अन्धविश्वास, रीति-रिवाज, प्रथाएँ आदिका भी बड़ा सुन्दर समावेश हो गया है। उनके कृष्ण नन्दराजाके पुत्र नहीं, सामान्य ग्वाल हैं, इसलिए प्रेम-प्रसंगोंमें गोपियाँ उन्हें अपने सामाजिक स्तरपर उतारकर अच्छी तरह बनाती हैं। सूरदासकी गोपियोंकी इस बातके लिए प्रशंसा की गयी है कि उन्होंने उद्धवके तर्कोंका उत्तर अपने-अपने आसपासकी वस्तुओं—सीकर, दही, दूध, झोली, कनूकी, भूसी आदिके उदाहरणके माध्यमसे देती हैं किन्तु इसके

लिए प्रशंसा करनी ही है तो विद्यापतिकी होनी चाहिये क्योंकि 'कान्ह गोवार'से बातचीत करनेमें इस शैलीका प्रयोग विद्यापतिकी गोपियाँ कम नहीं करतीं।

प्रकृतिका चित्रण विद्यापतिने अधिकांशतः अलंकरणके रूपोंमें ही किया है। कुछ पद ऐसे अवश्य हैं, जिनमें प्रकृति आलम्बनके रूपमें चित्रित हुई है। राधा और कृष्णके प्रेम-प्रसंगोंकी लीला-भूमिके रूपमें प्रकृति नाना रूप रंगमे उपस्थित हुई है। नवलकिशोर और नवलकिशोरीकी सहचरीके रूपमें प्रकृतिने भी नवल आभा धारण किया है : "नव वृन्दावन नव नव तरुगन नव नव विकसित फूल", इसी क्षण-क्षण नूतन प्रतीत होने वाली प्रकृतिके सूचक हैं। वसन्त तो जैसे कविका प्रिय सहचर है। उसकी सुन्दरता, मोहकता और मादकता कविको अनेक परिस्थितियोंमें आकृष्ट करती है। माघ मास की श्रीपंचमीको प्रकृतिके गर्भमें जन्म धारण करने वाले वसन्त-शिशुके स्वागतमे नागकेशरके पुष्पोंकी शंखध्वनि करता है और उसके युवक होने तकके हर अवसरपर अपनी स्नेहिल श्रद्धाका दान करता है। विद्यापति रूढि परिपालनके लिए बारहमासाका भी प्रयोग करते है। षड्ऋतुका वर्णन प्राचीन साहित्यमें प्रायः संयोग-शृंगारमे और बारहमासाका विरहमे किया जाता था। यह सच है कि सर्वथा इस नियमका कड़ाईसे ही पालन नही हुआ है। विद्यापतिने बारहमासाका प्रयोग विरहमे ही किया है और परिपाटीके अनुसार आषाढ माससे आरम्भ भी किया है : "मास असाढ उनत नव मेघ, पिया विसलेस रहओ निरथेध" आदि।

विद्यापतिके गीत अपनी रागात्मकता और मार्मिकताके लिए काफी प्रसिद्ध है। विद्यापतिके पहले परवर्ती संस्कृत साहित्यमें क्षेमेन्द्र और जयदेवने मात्रिक गीत लिखनेका प्रयत्न किया था किन्तु वे गीत पूर्णतया लोक-चेतनासे प्रभावित न थे। विद्यापतिने गीतोंको लोक-जीवनके अत्यन्त निकट ला खड़ा किया। बहुत बार तो उन्होंने लोकधुन और रागों तकको सीधे अपना लिया है। इन गीतोंमे गेयता है, इसका पता तो इनके आरम्भमे दिये हुए राग-रागनियोंके उल्लेखसे ही चल जाता है। कवि स्वयं इन्हे गाते प्रतीत होते है। इसीसे बार-बार कवि भणितामे "विद्यापति कवि गाओल" की पुनरावृत्ति होती है। विद्यापतिके गीतोंकी दूसरी विशेषता है—सहजता और स्वाभाविकता। इस दृष्टिसे वे गीतोंकी आत्माके पारखी थे। उनके गीत ग्वालियर-घरानेके संगीतकारोंसे प्रभावित कवियों सूरदासादिसे भिन्न कोटिके हैं।

पदावलीकी भाषा प्राचीन मैथिली है, जिसमें ब्रजभाषा का भी प्रभाव है। इसे हम चाहे तो शिथिल अर्थमें ब्रजबुलिका प्राचीन रूप कह सकते हैं।

[सहायक ग्रन्थ—विद्यापति ठाकुर : उमेश मिश्र, हिन्दुस्तानी अकादमी, इलाहाबाद, १९३७ ई०; विद्यापति : खगेन्द्रनाथ मित्र और विमानबिहारी मजूमदार, पटना, संवत् २०१०; विद्यापति : शिवप्रसाद सिंह, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, काशी, १९५७ ई०; सांग्स आव विद्यापति : सुभद्र झा, काशी, १९५४ ई०।] —शि० प्र० सि०

विद्यावती 'कोकिल'—जन्म २६ जुलाई, सन् १९१४ ई०, हसनपुर, मुरादाबाद (उत्तरप्रदेश)में। आपके जीवनका बृहदंश प्रयागमें ही बीता है। इनका परिवार पुराना आर्यसमाजी तथा देश-भक्त रहा है। स्कूल-कालेज-कालसे ही काव्य-साधनाका प्रारम्भ हो जाता है। अखिल भारतके काव्य-मंचों एवं आकाशवाणी केन्द्रोंमे फैलती हुई इनकी सहज-मधुर काव्य-स्वरलहरी इनके 'कोकिल' उपनामको सार्थक करती रही है। भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राममें ये कारा-यात्रा भी कर चुकी है और अनेक सेवा-संस्थाएँ तथा जनायोजन इनके सहयोगसे सम्पन्न होते रहे है। आजकल आप पाण्डीचेरीके अरविन्द आश्रममे रह रही है और अरविन्द-दर्शनकी कवि-सहज अनुभूतियोंका मर्म दे रही है।

सन् १९४० ई०मे आपकी प्रारम्भिक रचनाओंका प्रथम काव्य-सकलन प्रणय, प्रगति एवं जीवनानुभूतिके हृदयग्राही गीतोंके सग्रह-रूपमे प्रकाशित हुआ। सन् १९४२ ई०मे 'माँ' नामसे आपका द्वितीय काव्य-संग्रह सामने आया। सम्पूर्ण विश्वको प्रजननकी एक महाक्रिया मानकर मातृत्वकी विकासोन्मुख अभिव्यक्ति एवं लोरियोंके माध्यमद्वारा 'माँ'मे जीवके एक सतत विकासकी कथाका द्योतन इस रचनाका लक्ष्य है। सन् १९५२ ई०मे 'सुहागिन' नामकी तृतीय कृति प्रकाशमे आयी। इस संकलनके 'अब घर नहीं रहा, मन्दिर है' और 'तुझे देश-परदेश भला क्या ?' आदि गीत जहाँ एक ओर सुहागका एक विशद एवं महान् रूप उपस्थित करते है, वही स्वरके आलोकमें परम-तत्त्वके साथ तादात्म्य और अन्तर्मिलनका मर्मस्पर्शी स्वरूप भी उद्घाटित करते है। इस कृतिने 'कोकिल'जीके गीतकारको महिमान्वित किया है। गीतोंकी विभोरता, तन्मयता एवं सहज अनुभूतिशीलता आजके नारी-मनोविज्ञान, सामाजिक यथार्थ एवं मानवीय आकांक्षाको भजनोंकी पावनता प्रदान करती दिखाई देती है। शब्द, स्वर एवं प्रभाव जल और लहरकी तरह अभिन्न हो चुके है। भाषा अत्यन्त सरल, सहज देशज प्रभावोंसे मधुर और प्रवाहपूर्ण होती है। इन गीतोंमे धरतीके यथार्थ और आकाशके आदर्शका मणि-कांचन संयोग उपस्थित हुआ है, इसीलिए विद्वानोंने 'सुहागिन'में जीवनके तत्त्वोंकी गहन परीक्षा, सत्यकी खोज, साम्यकी अन्वेषणा एवं वेदना की मधुरताके साथ विकासकी स्वस्थ आकांक्षा और जीवन-जागरूकताका भी दर्शन किया है। 'सुहाग गीत' (लोकगीत सग्रह) सन् १९५३ ई०मे प्रकाशित हुआ। 'पुनर्मिलन' सन् १९५४ ई०में सामने आया। इन गीतोंमे रचयित्रीने उस प्रियतमके साक्षात् मिलनका स्पर्श प्राप्त किया है, जिसकी छायाके पीछे वह जीवन भर भागी है। नवम्बर, सन् १९५७ ई०मे प्रकाशित 'प्रेम बिना तस्वीर' नामक नाटक एक सत्यान्वेषी इंगलिश कुमारीका नाट्याख्यान है, जिसका घटनास्थल इंग्लैण्ड है। इसका नायक मचपर सामने न आनेवाला एक भारतीय मनीषी है। नाटकका उद्देश्य पश्चिमपर पूर्वके प्रभावका संकेत एवं पूर्व-पश्चिम-सम्मिलनके परिणामस्वरूप सम्भाव्य विचार, श्रद्धा, ज्ञान तथा अध्यात्म्यका सामंजस्य है। 'सप्तक' एक विस्तृत भूमिकाके साथ अरविन्दकी सात कविताओंका मूल

युक्त हिन्दी अनुवाद है, जो सन् १९५९ई०में सामने आया है। 'अमर ज्योति' नामक महाकाव्य अभी अप्रकाशित है। इस ग्रन्थमें श्री और ओऽम् इन दो चरित्रों द्वारा ज्योति-स्वरूप-ज्ञान एवं उसे छूकर ज्योति-रूप-परिणत जीवका काव्यात्मक निरूपण हुआ है। 'कोकिल'जी महर्षि अरविन्दके 'सावित्री' महाकाव्यका हिन्दी-काव्य-रूपान्तर भी कर रही हैं।

'कोकिल'जी मूलतः एक गीतकार हैं। गीति-तत्त्वकी सहज तरलता उनकी कविताओंकी आन्तरिक विशेषता है। उनके स्वरमें अन्तरके बोलकी झंकार एवं वेदना-की एक कोमल लहर होती है, जो पाठक श्रोताके मनको सिक्त कर अन्तर्लोकके द्वारकी झाँकी कराने लगती है। अरविन्दके लोक-परलोक एवं भूत-अध्यात्मके समन्वयवादी अद्वैतसे वे विशेष प्रभावित हैं। इनके काव्यमें अरविन्द-दर्शनको नारी-हृदयकी अनुभूतिका कोमल परिधान मिला है। —श्री० मि० क्षे०

विद्या-विभाग, कांकरोली (मेवाड़)–स्थापना—संवत् १९८५ वि०; कार्य एवं विभाग—(१) पाठशाला विभाग—इसके अन्तर्गत ९ पाठशालाएँ कार्य कर रही हैं। (२) पुस्तकालय विभाग—विभिन्न स्थानों पर ८ पुस्तकालय हैं, जिनमें ३६०० ग्रन्थ हैं जिनकी लागत लगभग ५५०० रुपये है। (३) सरस्वती भण्डार—यह हस्तलिखित पुस्तकों-का विशाल संग्रहालय है, जिसमें सं० ११०० से लेकर सं० १९९० तक के हस्तलिखित ग्रन्थ विद्यमान हैं, जिनकी संख्या लगभग ७००० है। (४) स्वयंसेवक मण्डल—इसकी ९ शाखाओंमें २०० स्वयंसेवक हैं जो विद्या-विभागके कार्यक्रमोंको मूर्तरूप प्रदान करते हैं। (५) श्री द्वारिकेश कवि मण्डल—इसे अभीतक लगभग १०० कवियों और ४-५ कवि-मण्डलोंका सहयोग प्राप्त हो चुका है। कवियों-की रचनाओंकी एक संग्रह 'कविता कुसुमाकर' दो भागोंमें प्रकाशित हो चुका है। कविवर कुमारमणिका 'रसिक-रसाल' तथा मंगलमणि-मालाके अन्तर्गत १४ गुच्छ भी प्रकाशित हो चुके हैं। (६) श्री द्वारिकेश चित्रावली—इसमें लगभग ५००० साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं कलात्मक चित्र संगृहीत हैं। (७) ज्ञान मन्दिर—इसके अन्तर्गत एक पुस्तकालय है, जिसमें लगभग ५२० पुस्तकें हैं। (८) इनके अतिरिक्त विद्वत्परिषद् और व्यायामशाला भी विद्या-विभाग-के अन्तर्गत कार्य कर रही हैं। (१०) सम्मानोपाधि-वितरण—उपाधियोंका वितरण किया जाता है। अब तक ६० विद्वान् उपाधियोंसे विभूषित किये जा चुके हैं। (११) परीक्षा-विभाग—इसके द्वारा विभिन्न प्रकारकी परीक्षाएँ संचालित की जाती हैं। वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, व्रजमण्डल यूनिवर्सिटी, मथुरा और भारतीय विद्वत् परिषद्, अजमेरके परीक्षा-केन्द्र भी हैं। अब तक २२१ परीक्षार्थियों-में से १९९ उत्तीर्ण हो चुके हैं। (१२) अन्वेषण विभाग—साहित्यिक तथा ऐतिहासिक अन्वेषण इस विभागका प्रमुख कार्य है। अब तक लगभग ५० प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों-का अन्वेषण किया जा चुका है। (१३) ग्रन्थ-प्रकाशन—लगभग डेढ़ दर्जन ग्रन्थ प्रकाशित किये जा चुके हैं। (१४) विद्या-विभागने चैत्रशुक्ल १ सं० १९९४ वि०में अपना 'दशाब्दी महोत्सव' बड़े समारोहके साथ मनाया। (१५) आगामी प्रकाशन—हिन्दी तथा संस्कृतके प्राचीन कवियों-का सचित्र प्रामाणिक जीवनचरित्र, प्राचीन वार्ता-साहित्य एवं कांकरोली-दिग्दर्शन। —प्रे० ना० टं०

विनयपत्रिका–यह तुलसीदासके २७९ स्तोत्रों-गीतोंका संग्रह है। प्रारम्भके ६३ स्तोत्रों और गीतोंमें गणेश, शिव, पार्वती, गंगा, यमुना, काशी, चित्रकूट, हनुमान्, सीता और विष्णुके एक विग्रह बिन्दु माधवके गुणगानके साथ रामकी स्तुतियाँ हैं। इस अंशमें जितने भी देवी-देवताओंके सम्बन्धके स्तोत्र और पद आते हैं, सभीमें उनका गुणगान करके उनसे रामकी भक्तिकी याचना की गयी है। इससे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि तुलसीदास भले ही इन देवी-देवताओंमें विश्वास रखते रहे हों किन्तु इनकी उपयोगिता केवल तभी तक मानते थे, जब तक इनसे रामभक्तिकी प्राप्तिमें सहयोग मिल सके। विनयके ही एक प्रसिद्ध पदमें उन्होंने कहा है : "तुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य प्रान ते प्यारो। जासों होय सनेह राम पद एतो मतो हमारो॥" इन स्तोत्रों और पदोंमें यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि वह कोरा उपदेश नहीं था, वरन् अपने जीवनमें उन्होंने इसको चरितार्थ भी किया है।

इस अंशके अनन्तर तुलसीदासके रामभक्ति और रामसे आत्मनिवेदनके सम्बन्धके पद आते हैं। अन्तके तीन पदोंमें वे रामके समक्ष अपनी विनयपत्रिका (आवेदन-पत्र) प्रस्तुत करके हनुमान्, शत्रुघ्न, भरत और लक्ष्मणसे अनुरोध करते हैं कि वे रामसे उनके अनन्य प्रेमका अनुमोदन करें और इनके अनुमोदन करनेपर राम तुलसीदासकी विनय-पत्रिका स्वीकृत करते हैं।

'विनयपत्रिका'का एक अपेक्षाकृत छोटा रूप मिला है, जिसकी केवल एक प्रति प्राप्त हुई है किन्तु यह एक प्रति इतनी मूल्यवान् और महत्त्वपूर्ण है, जितनी कविकी रचनाओंकी कोई भी अन्य प्रति नहीं है, कारण यह है कि यह कविके जीवन-कालकी सं० १६६६ की है। इस प्रतिके हाशियेमें रा० गी० संकेत लिखे हुए हैं और अन्तमें एक श्लोकमें रचनाका नाम 'राम गीतावली' दिया हुआ है, इसलिए यह निश्चित है कि 'विनय पत्रिका'के इस रूपका नाम 'राम गीतावली' था। यह पाठ केवल १७६ गीतोंका है, जिनमेंसे कुछ पद प्रतिके खण्डित होनेके कारण अप्राप्य भी हो गये हैं, जितने पद पूर्ण या आंशिक रूपमें प्राप्त हैं, उनमेंसे भी पाँच पद ऐसे हैं, जो रचनाके 'विनय पत्रिका' रूपमें न मिलकर वर्तमान 'गीतावली'में मिलते हैं और 'गीतावली'के प्रसंगमें अन्यत्र उसकी 'पदावली रामायण' पाठकी जिस प्रतिका उल्लेख किया गया है, उसमें नहीं मिलते हैं। इससे ज्ञात होता है कि 'राम गीतावली' पाठमें वर्तमान 'विनय पत्रिका'के अधिकसे अधिक १७१ पद थे, १०८ या अधिक पद बादमें उसमें मिलाकर उसका 'विनय पत्रिका' रूप निर्मित किया गया, और उस समय इन पाँच या अधिक पदोंको, जो अब 'गीतावली'में हैं, गीतावलीके लिए अधिक उपयुक्त समझ कर उसमें रख दिया गया।

'पदावली रामायण' के इस रूपमें रचनाके वर्तमान 'विनय पत्रिका' रूपके अन्तिम तीन पद नहीं हैं, जिनमें रामके दरबारमें विनय-पत्रिका (आवेदन पत्रिका) प्रस्तुत की जाती और स्वीकृत होती है। उसके अन्तमें वर्तमान 'विनय पत्रिका'के स्तोत्र ३९ तथा ४० आते हैं, जो भरत और शत्रुघ्नकी स्तुतियोंके हैं। इससे यह प्रकट है कि इस गीत-संग्रहको 'विनय पत्रिका'का रूप देनेकी कल्पना भी बादकी है और कदाचित् उसी समय रामके दरबारमें विनय-पत्रिकाके प्रस्तुत किये जाने और उसके स्वीकृत होनेके सम्बन्धके पद उसमें रचकर रख दिये गये।

'विनय पत्रिका'के उपर्युक्त प्रथम ६३ तथा अन्तिम ३ स्तोत्रों-पदोंके अतिरिक्त शेषमे कोई स्पष्ट क्रम नहीं लक्षित होता है और इसीलिए किन्हीं भी शीर्षकोंमें वे विभाजित नहीं मिलते है। उनकी रचना किस क्रममें हुई होगी, यह कहना एक प्रकारसे असम्भव ही है। हम इतना ही निश्चयके साथ कह सकते हैं कि 'राम गीतावली' पाठमे संकलित स्तोत्र और पद पहलेके हैं और उनकी रचना सं० १६६६ के पूर्व हो गयी थी, शेष पद कदाचित् उन स्तोत्रों-पदोंके बादके है। इतना ही और भी निश्चित रूपमे कहा जा सकता है कि 'विनय पत्रिका' रूप भी कविका दिया हुआ है, जिस प्रकार 'राम गीतावली' रूप उसका दिया हुआ था क्योंकि 'विनय पत्रिका'की दर्जनों प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं और उनमेसे एक भी ऐसी नहीं है, जिनमें कोई भी स्तोत्र या पद भिन्न हों अथवा उनका क्रम भी भिन्न हो। फिर 'राम गीतावली'के कुछ पद 'रामचरितमानस'के भी पूर्व रचे गये होंगे, यह इससे ज्ञात होता है कि उसके एक पदमे, जो अब 'गीतावली'के अन्तमे रख दिया गया है, परशुराम और रामका मिलन मिथिलासे सीताके साथ अयोध्याकी ओर प्रस्थान करनेके अनन्तर होता है और कथाका यह रूप कविकी 'रामचरितमानस'के पूर्व की रचनाओंमे ही मिलता है। इसलिए यह निश्चयके साथ कहा जा सकता है कि 'विनय पत्रिका'के स्तोत्रों-पदोंकी रचना एक बहुत विस्तृत अवधिमे हुई है और इसलिए वह कविके आध्यात्मिक जीवनके एक बहुत बड़े भागका परिचय प्रस्तुत करती है।

आत्म-निवेदनपरक गीति-साहित्यमे 'विनय पत्रिका'की समताकी दूसरी रचना हिन्दी साहित्यमे नहीं है और कुछ आलोचकोंने कहा है कि इसकी गणना संसारके सर्वश्रेष्ठ आत्म-निवेदनपरक गीति-साहित्यमें भी होनी चाहिए। इसके पदोंमें मनको जगत्‌की ओर से खींचकर प्रभुके चरणोंमें अपनेको लगानेके लिए उद्‌बोधन है, इसलिए यहाँ एक ओर ससारकी असारता और उसके मिथ्यात्वका प्रतिपादन किया गया है, दूसरी ओर यह भी समझाया गया है कि रामसे बढ़कर दूसरा स्वामी नहीं है। इन प्रसंगोंमें रामके शील-स्वभावका विस्तृत गुण-गान किया गया है और उनके नाम स्मरणको उनके स्नेहकी प्राप्तिका सर्वोत्कृष्ट साधन बताते हुए मनको प्रायः नामानुरागका उपदेश दिया गया है। कुछ पदोंमे स्वामी की सेवामें करुणतम शब्दोंमे अपनी दीनताका निवेदन किया गया है। स्वामीके सम्मुख अपनेको सभी प्रकारसे हीन, मलिन और निराश्रय कहा गया है, जिससे वे करुणासागर द्रवित होकर दासको अपने चरणोंकी शरणमें रख लें और उसके जन्म-जन्मान्तरकी साध पूरी हो। साथ ही स्वामीकी उदारताका उन्हें स्मरण करानेके लिए उनकी अशरण-शरण विरुदावली भी उनके सम्मुख प्रायः प्रस्तुत की गयी है। कभी-कभी याचक माँगते-माँगते थक जाता है, जब वह स्वामीकी ओरसे उपेक्षाका भाव देखता है किन्तु अपनेमें ही कमीका अनुभव करता हुआ आशा खोता नहीं है। कुछ पदोंमे जीवनके पश्चात्तापके बड़े ही प्रभावशाली चित्र प्रस्तुत किये गये हैं, मनकी कुटिलता और इन्द्रियपरताकी भरपूर भर्त्सना की गयी है किन्तु फिर-फिर उसको प्रभुके प्रेमके मार्गमे लगानेके लिए यत्न किया गया है। अन्तमे भक्त अपने प्रयासोंमें सफल होता है और उसके स्वामी राम उसकी प्रार्थनाको स्वीकार करते है। इस प्रकार इन पदोंमे वैराग्यके प्रथम सोपानसे लेकर प्रभु-कृपा प्राप्तिके अनेकानेक सोपानोंको तय करनेका एक बहुत कुछ पूर्ण इतिवृत्त आता है। कमी इतनी ही है कि इन पदोंका रचना-क्रम निश्चित नहीं है और न हमे यह ज्ञात है कि कौन-सा पद किन परिस्थितियोंमें रचा गया है। फिर भी ये जिस रूपमें हमे प्राप्त हैं, उस रूपमे भी ये तुलसीदासकी साधनाका अत्यन्त प्रमाणिक यथातथ्य और विशद परिचय देते हैं और इसलिए ये सामूहिक रूपसे उनकी रचनाओंमे प्रायः उतने ही महत्त्वके अधिकारी हैं, जितना उनकी और कोई रचना है। —मा० प्र० गु०

विनयमोहन शर्मा—जन्म ३ नवम्बर, १९०५ ई० करकबेल (म० प्र०)। वास्तविक नाम शुकदेव प्रसाद तिवारी है। यों 'वीरात्मा' उपनामसे उन्होंने कुछ कविताएँ इत्यादि भी लिखी है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से एम० ए० एवं नागपुर विश्वविद्यालयसे उन्हे डी० लिट्०की उपाधि प्राप्त हुई। नागपुर विश्वविद्यालयमे वे हिन्दीके प्राध्यापक थे तथा रायगढ़के छत्तीस गढ कालेजके प्रिंसिपलके पदसे उन्होंने १९६० ई०मे अवकाश ग्रहण किया। आजकल आप कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालयमें हिन्दी विभागके अध्यक्ष हैं।

आपकी दस पुस्तके अब तक प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमेसे मुख्य ये है—'भूले गीत' (१९४४), 'कवि प्रसादः आँसू तथा अन्य कृतियाँ' (१९४५), 'हिन्दी गीत गोविन्द' (१९४५ ई०), 'दृष्टिकोण' (१९५० ई०), 'साहित्यावलोकन' (१९५३ ई०), 'हिन्दीको मराठी सन्तोकी देन' (१९५७ई०) 'साहित्य, शोध, समीक्षा' (१९५८ ई०) आदि। इनमेसे प्रथम कविता संग्रह है एवं तृतीय जयदेवके प्रसिद्ध काव्य ग्रंथका हिन्दी अनुवाद। 'हिन्दीको मराठी-सन्तोका योग-दान' उनका शोध-ग्रन्थ है तथा शेष पुस्तकें निबन्धोंके संकलन है। इन निबन्धोंमें कतिपय अनुसन्धानपरक हैं एवं कुछमे स्वतंत्र समीक्षात्मक प्रयास है। कुछ निबन्ध या समीक्षाएँ या तो छात्रोपयोगी हैं या फिर परिचयात्मक टिप्पणियाँ मात्र। उनकी पुस्तकोंमे संस्मरण भी मिल जाते हैं तथा 'कवि प्रसाद : आँसू तथा अन्य कृतियाँ' में उन्होंने आँसूके कुछ दुरूह स्थलोंकी टीका भी की है। अपने शोध-ग्रन्थ एवं कुछ निबन्धोंमे उन्होंने अन्तरप्रान्तीय साहित्यों

(हिन्दी और मराठी) के तुलनात्मक अध्ययनको उपस्थित करनेका महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

विनयमोहन शर्माकी आलोचनाओंका मूल स्वर वस्तुतः 'अकादमिक' है। वे मुख्यतः अध्यापक रहे हैं और अध्यापकका स्वर उनमें सर्वत्र प्रमुख है। भरसक उन्होंने चेष्टा की है कि किसी भी 'वादी' दृष्टि में न बँधकर तटस्थ एवं वैज्ञानिक समीक्षाएँ लिखी जायँ। अपने दृष्टिकोणको 'साहित्यावलोकन' के 'दृष्टिक्षेप' मे उपस्थित करते हुए उन्होंने लिखा है, "एक बातका यत्न मैंने अवश्य किया है कि साहित्यके अवलोकनमें अपनी दृष्टिको वादग्रस्त होनेसे बचाया है। अनुभूतिके सहज प्रकाशको साहित्यकी कसौटी मान कर उसका रसास्वादन मेरा ध्येय रहा है।" पर इस रसवादी दृष्टिकोणमें भी एक बात व्याख्या-सापेक्ष है और वह है 'अनुभूतिका प्रकाश'। विनयमोहनजीने इसके लिए बहुधा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा प्रवर्तित शास्त्रीय दृष्टिकोणको अपनाया है पर शुक्लजीके पूर्वाग्रहो से उन्होंने अपनेको बचाकर 'सन्तसाहित्य' एव 'छायावाद' को अपनी सहृदयता दी है। आधुनिक कालके दो प्रभावशाली मतवादो 'फ्रायडवाद' और 'मार्क्सवाद' को उन्होंने एकांगी माना है ('दृष्टिकोण' पृ० २, १९ और २५)। फ्रायडका तो उन्होने बहुत विरोध किया है और मनोविश्लेषण-शास्त्रके आधारपर रचित साहित्यको सामाजिक स्वास्थ्यके लिए वे अनुचित मानते हैं। प्रगतिवादी साहित्यके बारेमे उनकी धारणा है कि उसमे "प्रेरणा नहीं प्रयास" होता है, इसीसे उसके "स्थायित्वमें सन्देह है" उन्हे। उनकी समीक्षा दृष्टिके मूलमे "नैतिक आचार" और "समाज-स्वास्थ्य"की धारणा भी बराबर बनी रहती है। यह अवश्य है कि भौतिक प्रतिमानोको वे शाश्वत नहीं मानते पर उनकी परिवर्त्तमान सत्तापर शर्माजीका विश्वास है। आदर्शवाद और यथार्थवादके समन्वयपर भी उन्होंने बल दिया है। शर्माजीकी भाषा शैलीमे भी एक अध्यापककी सरलता एवं स्पष्टता है। —दे० श० अ०

विनायक दामोदर सावरकर–इनका जन्म नासिक (महाराष्ट्र)के निकट भगूर नामक स्थानमे २८ मई, १८८३ई०को चित पावन ब्राह्मणपरिवारमे हुआ था। सावरकरजीका जीवन क्रान्तिकारी घटनाओंसे परिपूर्ण है और राष्ट्र-भक्ति एव हिन्दुत्व उनके सार्वजनिक जीवनका मूलाधार है। बंग-भंग आन्दोलनसे सम्बन्धित जो प्रतिक्रियाएँ इस शताब्दीके आरम्भमे देशभरमें हुई, उनसे उन्हे प्रेरणा मिली। उनके जीवनकी घटनाएँ रोमांचकारी हैं और किसी उपन्यासके घटनाक्रमसे कम रोचक नही। उत्साह, साहस तथा वीरता जैसे मानवोचित गुणोके अतिरिक्त सावरकरने जन्मजात बौद्धिक प्रतिभाका भी परिचय दिया है। ४० वर्ष हुए जब उन्होंने मराठीमे लिखना आरम्भ किया। उनके लेखोंके कारण मराठी साहित्यिक क्षेत्रोमे काफी हलचल मची, क्योकि वे भाषाकी विशुद्धता और शैलीकी गरिमाके कट्टर समर्थक थे। सावरकरका दृष्टिकोण अखिल भारतीय था, इसलिए आरम्भसे ही जो प्रयत्न उन्होंने मराठीको उन्नत करनेके लिए किये, वही हिन्दीकी प्रगतिके हेतु भी किये। 'राष्ट्रभाषा हिन्दीका नया स्वरूप' शीर्षक लेखमें उन्होने लिखा है कि "संस्कृतनिष्ठ हिन्दी-कोही हर हालतमें राष्ट्रभाषा बनाना चाहिए। मुसलमान लोगोंको प्रसन्न करनेके लिए हिन्दीको विकृत करनेकी आवश्यकता नहीं। हिन्दीसे संस्कृत शब्दोंका बहिष्कार उचित नहीं।" इससे भाषा तथा लिपिके सम्बन्धमें सावरकरजीके विचार स्पष्ट हो जाते है। उनकी शैली इसी विचारके अनुरूप है और हिन्दीके लिए भी, जिसे उन्होंने सदा राष्ट्रभाषा स्वीकार किया है, इसी मतका अवलम्बन किया है। सन् १९३७ में हुए अखिल भारतीय हिन्दू महासभाके रत्नागिरि अधिवेशनमे सावरकरके प्रयत्नसे अखिल भारतीय भाषाके सम्बन्धमे जो प्रस्ताव पारित हुआ, उसके अनुसार देवनागरी लिपिको राष्ट्रलिपि और संस्कृतगर्भित हिन्दीको राष्ट्रभाषा स्वीकृत किया गया। इस अवसर पर सावरकरने अपने भाषणमे समस्त देशके साहित्यिकोंसे अनुरोध किया कि वे सभी भाषाओको देवनागरी लिपिमे लिखना आरम्भ करें। स्वयं सावरकरने हिन्दी-भाषी क्षेत्रोमे हिन्दीमे भाषण देनेकी परिपाटीको अपनाया। उन्होने संस्कृतको देवभाषा और हिन्दीको राष्ट्रभाषाका पद दिया था। उन्होने अपने एक लेखमे लिखा है कि "हिन्दीको राष्ट्रीय भाषा स्वीकार करनेमे अन्य प्रान्तकी भाषाके सम्बन्धमे कोई अपमानकी भावना या ईर्ष्यालु भावना नही है। हमे अपनी प्रान्तीय भाषाओंसे भी उतना ही प्रेम है, जितना कि हिन्दी से। ये सब भाषाएँ अपने-अपने क्षेत्रमे उन्नत होती रहेगी। वास्तवमे कुछ प्रान्तीय भाषाएँ हिन्दी भाषाकी अपेक्षा अधिक सम्पन्न है परन्तु फिर भी हिन्दी अखिल हिन्दुत्वकी राष्ट्रभाषा होनेके लिए सब प्रकारसे सर्वश्रेष्ठ है।" —श्या० द०

विनोदशंकर व्यास–जन्म १९०३ ई० वाराणसी मे। शैलीकारके रूपमे व्यास हिन्दीके मान्य लेखकोंमे से हैं। विविध प्रकारकी रचनाएं लिखी है। आलोचनात्मक ग्रन्थोंमे 'कहानी कला' (१९३५ ई०) और 'उपन्यास कला' (१९३२) मुख्य है। आपकी 'प्रसाद और उनका साहित्य' नामक आलोचना पुस्तक गम्भीर और महत्त्वपूर्ण है। यह पुस्तक सर्वप्रथम १९३९ ई०मे प्रकाशित हुई। १९५२ ई० मे पाश्चात्य साहित्यकारोकी जीवनीपर एक पुस्तक लिखी। इसी सिलसिलेमे १९५५ ई०मे यूरोपीय साहित्यपर एक आलोचनात्मक ग्रन्थ भी लिखा। अच्छे कहानी लेखक होनेके नाते व्यासजीकी कहानियोका भी विशेष महत्त्व है। १९५८ ई०मे आपकी कहानियोका एक संग्रह 'मेरी कहानी'के नामसे प्रकाशित हुआ।

व्यासजीकी शैली इतनी विशिष्ट है कि हिन्दीके साहित्यकारोंपर आपके लिखित कुछ संस्मरण अपने युगका चित्र खींच देते है। कहानियोमे भी कला पक्षका पूर्ण निर्वाह शैलीकी प्राजलताके साथ-साथ हुआ है। 'कहानी कला' पर आपकी पुस्तकमे रूढिग्रस्त नियमो और उनकी उपलब्धियों पर अच्छी चर्चा की गयी है। उपन्यास कलापर भी आपने केवल 'कला' पक्षके स्वीकृत सिद्धान्तोका प्रतिपादन किया है। व्यक्तिगत व्याख्या या दृष्टिकोण उसमे कम है। यूरोपीय साहित्यकारोपर लिखी गयी पुस्तक हिन्दीके पाठकोंको प्राथमिक ज्ञान प्रदान करनेमें बडी सहायक हुई है। इस समय आप कुछ हिन्दी साहित्यकारोसे सम्बन्धित संस्मरण

लिख रहे हैं। आपने 'मधुकरी' नामसे एक कहानी संग्रह प्रकाशित कराया है। —ल० कां० व०

विनोबा भावे—जन्म ११ सितम्बर १८९५ ई०, महाराष्ट्रमें कुलाबा जिलेके गागोदा ग्राममें। विनोबा भावे देशकी सनातन परम्पराकी लडी है। एक समय था जब सिद्ध, साधु-सन्त और परिव्राजक देशका भ्रमण करते थे और उनके परिव्रजनके कारण 'अवहट्ठ' अथवा एक देशव्यापी अपभ्रंश की उत्पत्ति हुई। विनोबाकी यात्राएं, उनके दैनिक प्रवचन, सुलझे हुए विचार और सरल हिन्दीमें उनके उपदेश—ये सब उसी क्रम की लडियाँ है। भाषाके विस्तार और विचारोंके प्रसारका आजके वैज्ञानिक युगमें भी भ्रमणसे बढकर प्रभावपूर्ण माध्यम दूसरा कोई नहीं और जब यह यात्रा पैदल की जाती हो तो यह माध्यम और भी प्रभावोत्पादक और शक्तिशाली बन जाता है। हिन्दी देशके अधिकांश भागमें बोली और समझी जाती है—इस कथनको विनोबा प्रतिदिन व्यवहारकी कसौटी पर कसकर सत्यरूप दे रहे हैं। देश और कालसे मुक्त हिमालयसे निःसृत गंगाकी धाराकी तरह विनोबाकी वाणी देश-प्रदेशकी भौगोलिक सीमाओंका विचार किये बिना निरन्तर बहती चलती है।

मराठीभाषी विनोबाका हिन्दीसे सम्बन्ध उनके सार्वजनिक जीवनसे भी पुराना है। संस्कृतमें उनका अनुराग बाल्यावस्थामें ही हो गया था। संस्कृतसे अन्य भारतीय भाषाओं, विशेषकर हिन्दी तक पहुँचनेमें उन्हें देर नहीं लगी। वे बराबर हिन्दीको राष्ट्रभाषा मानकर अधिकतर उसी मे बोलते और लिखते रहे हैं। देहातोंमें घूमते समय सत्याग्रह आन्दोलनके समय और कारावास-दण्ड की अवधिमें उन्होंने विचाराभिव्यक्तिके लिए प्रवचन-प्रणाली अपनायी। गीतापर उनके पहले क्रमबद्ध प्रवचन मराठीमें हुए, जिनका हिन्दी रूपान्तर मराठीसे भी अधिक लोकप्रिय हुआ। असहयोग आन्दोलन और सर्वोदय संचालनमें भी इसी प्रणालीका अनुसरण किया, जिसके फलस्वरूप बहुमूल्य निबन्धसंग्रह पाठकोंको मिले। सन् १९३६-३७ ई०से विनोबाके प्रवचनोंका एकमात्र माध्यम हिन्दी हो गयी और अब हिन्दीके विकास और विस्तारमें भूदान-यात्राका सबसे बड़ा सहयोग है।

विनोबा बहुभाषाविद् है, अतः उनके विचारोंका प्रसार और विस्तार अबाध बढता जाता है। इसके अतिरिक्त गान्धीजीके सिद्धान्तों और आदर्शोंके अनुरूप भारतके चित्रको बदलनेके लिए सतत प्रयत्नशील है। सर्वोदय और भूदान उनके सार्वजनिक कार्यक्रमके अंग है ही, राष्ट्रभाषाके प्रश्न पर भी उन्होंने गहरा मनन किया है। विनोबा की दृढ धारणा है कि ज्ञानका प्रसार निजी भाषा द्वारा ही हो सकता है।

राष्ट्रभाषाका प्रश्न विनोबाके लिए न पेचीदा है और न विषम। वे समझते है कि सारी बात सीधी-सादी है। बहुभाषाविद् विनोबा, जो भाषाओंके गुणों तथा व्यापकताके पारखी हैं, हिन्दीको राष्ट्रभाषा तभी कहते है, जब उसे अधिकांश भागमें प्रचलित पाते है और इसमे जन-जीवनकी अविरल धारा प्रवाहित होते देखते है।

विनोबाके विलक्षण विचार और मौलिक सूझने एक नवीन शैलीको जन्म दिया है। उनकी भाषा-शैली सूत्रमय होते हुए भी सरल है। उनकी भाषापर प्राचीन परम्परागत सन्तोंकी वाणीका प्रभाव है। विचारोंको सुग्राह्य बनानेके लिए वे दृष्टान्तका सहारा लेते हैं। ये दृष्टान्त भी दैनिक जीवन और चिन्तनकी परिधिसे बाहर नहीं होते। विनोबा का शब्द-भाण्डार बहुत विस्तृत है, जिसका कारण उनका विशद अध्ययन और पाण्डित्य है। एक और आधारभूत बात यह है कि वे शब्द-विन्यास अथवा भाषा-कलेवरकी अपेक्षा विचारोंके प्रचारको अधिक महत्त्व देते हैं। रमते योगीकी तरह जन-जनकी वाणीमें हिन्दीका साक्षात्कार करते है और स्वयं हिन्दी द्वारा अपने विचारोंको संचारित करते हैं। उनकी भाषामें एक उन्मुक्त निर्लिप्तता है, जो कबीरकी वाणीकी याद दिलाती है। उनकी वाणीमें वही सरलता है, जो हमको रामकृष्ण परमहंस और गान्धीवचनामृतमे मिलती है। वही सरलता, वही गहनता, वही पैठ, वही अनुभूति। कबीरने एक स्थानपर कहा है—"तू कहता है कागद लेखी, मै कहता हूँ आँखिन देखी"—सो सन्त विनोबा 'आँखिन देखी' कहते हैं, 'कागद-लेखी' नहीं। उनका पुस्तक-पाण्डित्य निस्सन्देह अगाध है पर वे जो कुछ कहते है, वह अनुभूत तत्त्व होता है, केवल पोथी-ज्ञान नही। विनोबा-वाणीसे हिन्दीकी अभिनव श्री सुन्दर और समृद्ध बनी है। अनेक पुस्तक-रत्न उसे विनोबासे भेंट मिले हैं, जिनके कुछ नाम हैं—'गीता-प्रवचन' (इसकी अबतक लाखों प्रतियाँ छप चुकी है), 'ईशावास्यवृत्ति', 'ईशावास्योपनिषद्', 'स्थितप्रज्ञ दर्शन', 'उपनिषदोंका अध्ययन', 'विनोबाके विचार', 'शान्ति-यात्रा', 'गान्धीजीको श्रद्धांजलि', 'सर्वोदय विचार', 'जीवन और शिक्षण', 'शिक्षण विचार', 'आत्मज्ञान और विज्ञान', 'साहित्यिकोंसे', 'भूदान गंगा', 'शान्ति सेना', 'सर्वोदय सन्देश', 'त्रिवेणी', 'हिंसाका मुकाबला', 'कार्यकर्त्ता वर्ग', 'भूदानयज्ञ', 'गॉव-गॉवमें स्वराज्य', 'स्वराज्य शास्त्र', 'भगवान्‌के दरबारमें', 'सर्वोदयका घोषणापत्र', 'जमानेकी मॉग', 'राजघाटकी सन्निधिमें', 'गॉव सुखी हम सुखी', 'सर्वोदय यात्रा' इत्यादि। —ज्ञा० द०

विभयविभूति—दे० 'मलूकदास'।

विभीषण—रामकथाके पात्रोंमे विभीषणका महत्त्व रावणके बाद ही माना जा सकता है। कुछ सन्दर्भोंके अनुसार विभीषण रावणका सहोदर भाई नही ज्ञात होता। एक किंवदन्तीके अनुसार अग्नि द्वारा दशरथको दिया गया पायस एक काक काकषी नामक एक राक्षसी विशेषको दे देता है, जिससे विभीषणकी उत्पत्ति होती है। रामकथामें विभीषणका महत्त्व रामके साथ उसका मैत्रीभाव ही है। यह अवश्य द्रष्टव्य है कि वाल्मीकिने राम और विभीषणकी मैत्रीको विशेष महत्त्व नहीं दिया है। 'रामचरित मानस'में तुलसीदासने उसे एक परम भक्तके रूपमें चित्रित करके रामकथाके पात्रोंमे उसका स्थान सम्माननीय बना दिया है। विभीषणके रूपमे तुलसीदासने एक ऐसे भक्तका चरित्र-चित्रण किया है, जो चारों ओरसे विपरीत परिस्थितियोंमे घिरा रहकर रामभक्तिमे अटल रहता है। रावणके बन्दीगृहमे सीताको देखकर विभीषण अत्यन्त व्यथित होता है, वह रावणको सत्पथपर लानेका यत्न

करता है और अन्तमें रावणके द्वारा तिरस्कृत और अपमानित होकर राम द्वारा लंका विजयकी प्रतीक्षा करते हुए रामभक्तिमे लीन हो जाता है। लकाविजयमे रामको विभीषणसे बहुमूल्य सहायता प्राप्त होता है। लक्ष्मणके शक्ति लगने पर वह रामके दुःखमें दुःखी होता है और लक्ष्मणको पुनर्जीवित करनेका उपाय बतलाता है। इस अवसरपर राम अपनी व्यथा और निराशाको प्रकट करते हुए लक्ष्मण, सीता और स्वयं अपनेसे भी अधिक विभीषणके लिए चिन्तित होते है। तुलसीदासने केवल 'रामचरितमानस' में ही नहीं, वरन् अपने अन्य ग्रन्थोंमे भी जहाँ कहीं उन्हें अवसर मिला है, रामकी इस भावनाको अवश्य व्यक्त किया है। यद्यपि इसमे प्रमुख रूपमे रामके शील-सौजन्यकी ही प्रशंसा है कि वे सबसे अधिक इस बातके लिए चिन्तित है कि रावणके द्वारा विजित हो जाने पर विभीषणकी क्या गति होगी। विभीषण उनका शरणागत है, शरणागतकी रक्षा करना परम धर्म है। वे अपने इस धर्मका किस प्रकार निर्वाह कर सकेंगे परन्तु इससे विभीषणके चरित्रकी महत्ता भी प्रमाणित होती है। राक्षस-कुलमे जन्म लेकर भी जिस व्यक्तिको रामका इतना विश्वासप्राप्त हुआ, वह निश्चय ही सराहनीय है। परन्तु भक्तिकी दृष्टिसे विभीषण की सराहना करते हुए भी लोक-मानसमें विभीषणके प्रति किंचित् घृणाका भाव भी रहा है क्योकि उसने अपने भाई और अपने देशके प्रति द्रोह करके वैरीका साथ दिया था। तुलसीदासके बाद राम-कथासम्बन्धी काव्योमे विभीषणका चरित्र बहुत कुछ 'मानस'के आधारपर ही चित्रित हुआ है, यद्यपि आधुनिक कालके काव्योंमे युगकी भावनासे प्रभावित होकर जहाँ रावणको सहानुभूति दी गयी है, वहाँ विभीषणकी भी निन्दा हुई है (दे०—रावण)। 		—यो० प्र० सि०

वियोगी हरि—पूरा नाम हरिप्रसाद द्विवेदी। जन्म सन् १८९६ ई०, छतरपुर राज्य, कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवारमे। बचपनमेही पिताकी मृत्यु हो जानेके कारण इनका पालन-पोषण ननिहालमे हुआ। हिन्दी और संस्कृतकी प्रारम्भिक शिक्षा घर पर हुई। मैट्रिकुलेशनकी परीक्षा इन्होंने १९१५ ई०में छतरपुरके हाईस्कूलसे पास की। किशोरावस्थामे ही दर्शन-शास्त्रमे विशेष अभिरुचि होने से ये अद्वैतवादी हो गये किन्तु आगे चलकर माध्व सम्प्रदायकी कृष्णभक्त छतरपुरकी महारानी कमलाकुमारी 'युगलप्रिया' के स्नेह-स्निग्ध सम्पर्क से ये द्वैतवादी कृष्णभक्त हुए। महारानीके साथ कई बार भारतके प्रसिद्ध तीर्थोंका इन्होंने भ्रमण किया है। इन्होंने अनेक ग्रन्थोंका सम्पादन, प्राचीन कविताओं-का संग्रह तथा सन्तों एव योगियोंकी वाणियोंका संकलन किया है। कविता, नाटक, गद्यगीत, निबन्ध आदिके अति-रिक्त बालोपयोगी पुस्तकें और महापुरुषोंकी जीवनियाँ लिखी हैं। १९३४ ई० से साहित्यसाधनासे विरत होकर हरिजन सेवक संघ, गांधी सेवा संघ, दिल्ली, हरिजन बस्ती, गांधी स्मारक निधि, भूदान आन्दोलन और भारत सेवक-समाजका कार्य कर रहे है।

धर्म, दर्शन, भक्ति, अछूतोद्धार, सामाजिक सुधार, बाल-शिक्षा तथा अनेक साहित्यिक विषयोंको लेकर वियोगी हरिने लगभग ४०-४५ पुस्तकें लिखी हैं—'साहित्य विहार' (१९२२ ई०), 'छद्मयोगिनी नाटिका' (१९२२ ई०), 'ब्रज-माधुरी सार'(१९२३ ई०), 'कवि कीर्तन'(१९२३ ई०), 'सूर-दासकी विनयपत्रिका'(१९२४ ई०), 'अन्तर्नाद'(१९२६ई०), 'भावना'(१९२८ ई०),' प्रार्थना' (१९२९ ई०), 'तुलसीदास-कृत विनय-पत्रिकाकी टीका' (१९२३ ई०), 'वीर-सतसई' (१९२७ ई०), 'विश्वधर्म' (१९३० ई०), 'योगी अरविन्दकी दिव्यवाणी', 'छत्रसाल ग्रन्थावली', 'मन्दिर प्रवेश', 'प्रबुद्ध यामुन' अथवा 'यामुनाचार्य-चरित' (१९२९ ई०), 'अनुराग-वाटिका', 'वीर हरदौल', 'मेवाड़ केशरी', 'चरखा स्तोत्र', 'चरखेकी गूँज', 'गान्धीजीका आदर्श', 'प्रेमशतक', 'प्रेम-पथिक', 'प्रेमाजलि', 'प्रेमपरिषद्', 'वीर वाणी', 'गुरु पुष्पां-जलि', 'सन्तवाणी', 'सन्त-सुधासार', 'बुद्ध वाणी', 'यो भी तो देखिये', 'श्रद्धाकण', 'पावभर आटा', 'जपुजी', 'संक्षिप्त सूरसागर', 'सन्त काव्यधारा', 'दादू', 'शुकदेव खण्ड-काव्य', 'तरगिणी', 'मेरा जीवन प्रवाह' आदि। इनमे 'वीर सतसई' अत्यधिक प्रसिद्ध कृति है।

वियोगी हरिका अध्यात्म-चिन्तन सर्वेश्वरवादी है। उनकी प्रेमलक्षणा भक्ति, ज्ञान एवं कर्मकी अविरोधिनी है। उस पर सूर, तुलसी, कबीर तथा सूफी कवियोकी विचार-धाराका प्रभाव पड़ा है। उनका धर्म समन्वयवादी विश्व-धर्म है, जिसका आदर्श बहुत कुछ गान्धीवाद और आधार ईश्वरवाद है। सामाजिक विचार सुधारवादी और कबीर आदि सन्तोकी भाँति खण्डनात्मक है। उनकी रचनाओंमे मुख्यतः वीर और शान्त भावनाकी व्यंजना हुई है। उनके गद्य-गीत चिन्तनप्रधान एवं व्यंग्यात्मक है। गद्य-भाषा अलंकृत, काव्यात्मक, लाक्षणिक तथा काव्य-भाषा सरल और मिश्रित है। वियोगी हरि आधुनिक ब्रजभाषा-के प्रमुख कवि, हिन्दीके सफल गद्यकार और देशके समाजसेवी सन्त है।

वियोगीहरि गत ४० वर्षोंमे हिन्दी-साहित्यकी सक्रिय सेवा कर रहे हैं। सन् १९१७ ई० मे पुरुषोत्तमदास टण्डनसे इनका परिचय हुआ और इन्हींसे उन्हें लेखन और साहित्य-सेवाकी सबसे पहले प्रेरणा मिली। इनकी प्रवृत्ति अस्पृश्यतानिवारणके निमित्त हरिजन सेवाकी ओर थी और इस सम्बन्धमे उन्होने १९२० ई० में कानपुरके 'प्रताप'मे एक लेखमाला लिखी। गान्धीजीके सम्पर्कने इन्हें इस कार्यसे और अधिक बाँध दिया और यह कार्य ही उनके जीवनका मानो एक उद्देश्य बन गया। गान्धीजी द्वारा प्रणीत 'हरिजन सेवक' (हिन्दी संस्करण) के सम्पादनका कार्य भी इन्होंने सँभाल लिया। तभीसे आज तक हरिजन सेवक संघसे इनका घनिष्ठ सम्बन्ध बना है।

इन्होने १९२५ ई०में टण्डनजीके साथ प्रयागमे हिन्दी विद्यापीठकी स्थापना की। सन् १९२८ ई० में 'वीर सतसई' पर मंगलाप्रसाद पारितोषक भी पाया। 'वीर सतसई' वीर-रससे पूर्ण कविताओंका सुन्दर संकलन है, जिसमें कवियोंका परिचय और वीर-रसके काव्यकी साहित्यिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत की गयी है।

यह ऐसे साहित्यिक हैं, जिनकी रुचि खोज और अनु-

सन्धानके कार्यमें सदा रही है। हरिजन-कार्यमें जैसे नये-नये प्रयोग और खोज करते रहे, उसी प्रकार साहित्यमें भी नये विचार और नयी खोज सदा करते रहे हैं। इसीलिए इनके गद्यमें एक विशेष गहराई है तथा इनके निबन्धों, लेखों, कहानियों और नाटकों आदिकी पृष्ठभूमि साहित्यिक और ऐतिहासिक है।

आपने 'पतित बन्धु' (पन्ना स्टेट) का सम्पादन १९३०-३१ ई०में किया। आज कई वर्षोंसे हरिजन सेवक संघके मुखपत्र 'हरिजन-सेवा'का सम्पादन कर रहे हैं।

साहित्य-सेवाके लिए इन्हें १९४९ ई० में हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी ओरसे 'साहित्य-वाचस्पति'की उपाधि मिली। —स० ना० त्रि० और शा० द०

विरंची–(ब्रह्मा) वैष्णव धर्मके त्रिदेवोंमें विरंची प्रायः विश्व-रचना विधायकके रूपमें प्रसिद्ध रहे हैं। इनके अन्य नामोंमें प्रजापति, ब्रह्मा, चतुरानन आदिके उल्लेख प्राप्त होते हैं। वेदमें अनेक प्रजापतियोंका उल्लेख मिलता है। विष्णु एवं शिव की परम्परामें ये परवर्ती धार्मिक-साहित्यमें मिलते अवश्य हैं किन्तु उतने पूज्य नहीं हैं। इसका कारण वस्तुतः नारदका शाप कहा जाता है। इनके १० पुत्रोंका उल्लेख मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, क्रतु, प्रचेता, वशिष्ठ आदिके रूपमें प्राप्त होता है। नारद इनके अन्तिम पुत्र कहे गये हैं। इनकी एक पुत्री सरस्वतीका उल्लेख प्रायः समस्त पुराणोंमें मिल जाता है। यह भी परम्परा प्रचलित है कि ये इनकी प्रथम कृति थीं और इनके रूप-दर्शनके लिए लालायित विरंचिको स्वतः चतुर्भुज बनना पड़ा और अन्तमें इन्होंने सरस्वतीसे विवाह भी कर लिया। विरंचिकी पूजाका विधान अब हिन्दू धर्ममें पूर्णतः लुप्त हो गया है। —यो० प्र० सिं०

विरहमंजरी–दे० 'नन्ददास'।

विराटाकी पद्मिनी–लेखक—वृन्दावनलाल वर्मा, रचना-काल—१९३३ ई०, प्रकाशन—सन् १९३६ ई०। पालर नामक स्थानमें एक दांगीके घर कुमुद नामकी एक अत्यन्त लावण्यमयी कन्या थी, जो अपने गुणोंके कारण दुर्गाका अवतार समझी जाती थी। दिलीपनगरके विलासी राजा नायक सिंहने उसकी ख्याति सुनकर पालरके झीलके पास डेरा डाला। राजाका दासीपुत्र कुंजर सिंह भी देवीके दर्शन करने पालर गया और कुमुदको देखकर उसपर मुग्ध हो गया, कुमुद भी उसकी ओर आकर्षित हुई। देवीके दर्शनसे लौटते समय सेनापति लोचन सिंह और कालपीके नवाब अली मर्दानके सैनिकोंमें झगड़ा हो गया और दोनों राज्योंके बीच संघर्षका सूत्रपात हुआ। इस संघर्षमें देवीसिंह नामक एक बुन्देली युवकने, जो पालरके गोमती नामक लड़कीसे ब्याह करने जा रहा था, राजाकी रक्षा की। राजाकी मृत्युके पश्चात् नीतिज्ञ मन्त्री जनार्दन शर्माने कुंजर सिंहको राजा न बनाकर देवीको राजा बनाया। कुंजर सिंह विद्रोही होकर घूमने लगा। युद्धके भयसे कुमुदका पिता उसे लेकर विराटाकी गढ़ीमें चला गया। गोमती भी अब कुमुदके पास रहने लगी। धीरे-धीरे कुंजर और कुमुदका प्रेम विकसित होने लगा। परिस्थितिवश अली मर्दानने विराटापर आक्रमण किया। विराटाके दांगियोंने जौहर किया और भयंकर युद्ध प्रारम्भ हो गया। युद्धमें कुंजर सिंह सूखे फूलोंकी माला पहने हुए, जिसे कुमुदने क्षणभर पूर्व पहनाया था, वीरताके साथ लड़ता रहा पर अन्तमें मारा गया। देवीका अवतार समझी जानेवाली कुमुद छमछम करती हुई बेतवाकी धारामें आत्मोत्सर्ग कर विलीन हो गयी।

इस उपन्यासके सभी पात्रोंमें कुछ-न-कुछ अपनी व्यक्तिगत विशेषताएँ हैं। राजा नायक सिंहका व्यक्तित्व कुछ विचित्र है—क्षणमें ही क्रोधित और क्षणमें प्रसन्न। राजाका मन्त्री जनार्दन शर्मा कुटिल नीतिज्ञ है। सेनापति लोचन सिंह वीर, उतावले स्वभावका तथा आनपर मर मिटनेवाला है। राजाका नौकर रामदयाल अत्यन्त ही कपटी, नीच और अवसरवादी है। छोटी रानी चतुर, वीर, नीतिज्ञ किन्तु निस्सहाय रमणी हैं।

कुंजर और कुमुद इस कथाके आदर्श पात्र हैं। कुंजर, कुमुदके रक्षार्थ अपना सब कुछ खो देता है और कुमुद कुंजरके लिए बेतवामें विलीन हो जाती है।

इस उपन्यासमें जीवनके प्रति एक निश्चित दृष्टिकोण है और वह यह है कि प्रेमकी अनुभूति मानवताका आग्रह है। वास्तविक प्रेममें त्यागकी भावना प्रधान होती है, भोगकी नहीं।

शैली 'गढ़ कुण्डार'की तरह ही मुख्यतया वर्णनात्मक है। कहीं-कहीं भावात्मकताका दर्शन होता है, विशेषतः प्रेम और रूप वर्णनके प्रसंगोंमें। उसमें बुन्देली संस्कार स्पष्टतया झलकता है। —ज० गु०

विरुद्धक–प्रसादकृत नाटक 'अजातशत्रु' का पात्र विरुद्धक कोशलनरेश प्रसेनजित्का पुत्र और कोशलका राजकुमार है। 'अंगुत्तर निकाय'में इसका नाम विडुड्डभ और इसकी माताका नाम वासभाखत्तिया बताया गया है। नाटकमें उसका विचित्र व्यक्तित्व अजातशत्रुसे भी अधिक वैचित्र्य-पूर्ण चित्रित किया गया है। उसकी माता शक्तिमती दासी-पुत्री है, अतः वह राजपदसे वंचित कर दिया जाता है। विरुद्धक निर्भीक, साहसी, कार्यकुशल योद्धा है। अधिकारच्युत किये जाने पर उसमें विरोधमूलक दृढ़ता उत्पन्न हो जाती है। मातासे प्रोत्साहन पाकर वह प्रतिशोध लेनेके लिए राष्ट्रद्रोही बन जाता है। विरुद्धकसम्बन्धी कथानकका आधार 'धम्मपद अट्ठकथा', 'अंगुत्तर निकाय', 'संयुत्त निकाय', 'महावंश', 'जातकग्रन्थ' आदि बौद्ध ग्रन्थ हैं। वंचित प्रणयकी पीड़ासे निरुत्साहित विरुद्धकको शक्तिमती उत्साहित कर "महत्त्वाकांक्षाके प्रदीप्त अग्निकुण्डमें कूदनेको प्रस्तुत करती है।" कोशलकी सीमासे निकलकर वह साहसिक बन जाता है और शैलेन्द्र नामधारी डाकू बनकर काशीकी जनतामें आतंक फैलाता है। हत्या और लूटके द्वारा शक्ति संचित करता है। लोभमें पड़कर वह कोशल-सेनापति बन्धुलकी छलपूर्वक हत्या कर देता है। श्यामाके आलस्यपूर्ण सौन्दर्यकी तृष्णासे अतृप्त रहते हुए भी उसे "भावी कार्यक्रममें विघ्नस्वरूप" मानकर उसका गला घोटनेके लिए प्रस्तुत होता है। इस प्रकार अपने अभीप्सित उद्देश्यकी पूर्ति करनेमें कर्मपथके कोमल और मनोहर कंटकोंको निर्दयतापूर्वक हटा देता है। अपनी कार्यसिद्धिके

लिए उचित-अनुचित साधनोंका कुछ भी विवेक नहीं करता। श्यामाके प्रति उसका प्रेम वासनामय, मलिन और दोषपूर्ण है। वह प्रेममें विश्वासघात करके उसे मार डालनेका असफल प्रयत्न करते हुए उसके आभूषण उतार लेता है। साध्वी मल्लिका द्वारा सेवा पाकर अपनी कलुषित दृष्टिसे उसे प्रेम पात्री समझने लगता है। अतमें मल्लिकाके द्वारा सन्मार्गमें आकर और उसीकी कृपासे प्रसेनजित् द्वारा पुनः स्वीकार किया जाता है।

साहसिकके रूपमें वह निर्भीक, पराक्रमी और व्यवहार कुशल योद्धा है। पर्याप्त साधनोंके अभावमें एवं अजातशत्रुकी दुर्बलताओंके कारण ही वह असफल रहता है। उसमें आत्म-सम्मानकी प्रबल भावना है। वह बंधुलसे स्पष्ट कहता है : "मैं दयासे दिया हुआ दान नहीं चाहता। मुझेतो अधिकार चाहिये, स्वत्व चाहिये।" मैं बाहुबलसे उपार्जन करूँगा। मृगया करूँगा, क्षत्रिय कुमार हूँ, चिन्ता क्या है?" विरुद्धकके चरित्रगत दोष परिस्थिति-सापेक्ष हैं। परिस्थितियोंके कारण ही वह राष्ट्र-द्रोह करता है। मल्लिकाने प्रसेनजित्से उसके उज्ज्वल पक्षकी ओर सकेत करते हुए कहा है : "राजन्! विद्रोही बनानेका कारण भी आपही है। बनानेपर विरुद्धक राष्ट्रका एक सच्चा शुभ चिन्तक हो सकता था।" अन्तमें मल्लिकादेवी द्वारा सद्बुद्धि प्राप्त होने पर वह अपने पितासे क्षमा माँगता है और उसे पुनः पिताका स्नेह, युवराज-पद और राजोचित सम्मान प्राप्त होता है।

विरुद्धकसम्बन्धी घटनाका वर्णन 'अवदान कल्पलता'में भी मिलता है। बिम्बसार और प्रसेन दोनोंके पुत्र विद्रोही थे और तत्कालीन धर्मके उलट-फेरमें गौतमके विरोधी थे। इसीलिए उनका क्रूरतापूर्ण अनिरंजित चित्र बौद्ध-इतिहासमें मिलता है। उस कालके राष्ट्रोंके उलट-फेरमें धर्मके दुराग्रहने भी संभवतः बहुत-सा भाग लिया था। विरुद्धकने कपिलवस्तुका जनसंहार इसलिए चिढ़कर किया था कि शाक्योंने धोखा देकर प्रसेनजित्से शाक्यकुमारीके बदले एक दासी-कुमारीका ब्याह कर दिया था, जिससे दासी-संतान होनेके कारण विरुद्धकको अपने पिताके द्वारा अपदस्थ होना पड़ा था। शाक्योंके संहारके कारण बौद्धोंने इसे 'क्रूरताका अवतार' कहा है। —के० प्र० चौ०

विरोचन–बलिका पिता तथा प्रह्लादका पुत्र एक प्रसिद्ध असुरराज। वह प्रायः असुरोंकी सहायताके लिए अनेक प्रकारके प्रयत्न करता रहता था। इसने गायरूपी पृथ्वीका दुग्ध निकालनेके लिए असुरोंके सहायतार्थ वत्सका रूप धारण कर लिया था। इसका नाम सूरदास आदिने वैरोचन भी लिखा है। इसका उल्लेख 'सूरसागर'के प्रथम स्कन्धके १०४ थे पदमें हुआ है। —यो० प्र० सिं०

विशाख–'विशाख' नामक नाटककी कथाका आधार कल्हण की 'राजतरंगिणी'का आरम्भिक अंश है। किंचित् परिवर्तनके साथ प्रसादने उस इतिवृत्तको स्वीकार कर लिया है। प्रस्तुत नाटकका कथा-काल नाटककार द्वारा ईसाकी पहली शताब्दी के आस-पास स्वीकार किया गया है। मुख्य पात्रके अनुरूप प्रेमानन्द और महापिंगल जैसे काल्पनिक पात्रोंकी अवतारणा भी की गयी है। नाटकका नायक विशाख तक्षशिला विश्वविद्यालयका नया-नया निकला हुआ सांसारिकतासे शून्य एक ब्राह्मण युवक है, जिसमें सहानुभूति, संवेदनशीलता, गुरु-भक्ति एवं कर्त्तव्यपालनकी भावनाका प्राचुर्य है। "उन्नतिके लिए पहली दौड़ लगानेके" पूर्व वह यह समझ लेता है कि यौवनको सुखका संदेशवाहक समझना भारी भ्रम है। आशाप्रद भावी सुखोंके लिए इसे कठोर कर्मों का संकलन ही समझना उचित होगा। इस उद्देश्यसे परिचालित होकर वह अनागत जीवनमें आयी विघ्न-बाधाओं को बड़ी दृढ़ताके साथ निबटाता हुआ उन्नति पथपर अग्रसर होता है। परदुःखकातरता एवं सेवा-भावका संस्कार उसे अपने गुरु प्रेमानन्दकी सत्-शिक्षासे प्राप्त हुआ है। अपने इसी वैयक्तिक स्वभावके कारण वह दारिद्र्य-पीड़ित इरावती और चन्द्रलेखाकी पग-पगपर सहायता करता है और चन्द्रलेखाको बौद्ध महन्त कुशील सत्यशील के बन्धनसे मुक्त कराता है। उसीके प्रयत्नसे सुश्रुवा नाग को अपनी अपहृत भूमि पुनः प्राप्त होती है। विशाखमें निष्कपट हृदयसे प्रेरित निर्भीकताकी मात्रा यथेष्ट है। राजदरबारके कृत्रिम नियमोंके कारण कभी-कभी इस अक्खड़पनके कारण उसे डाँट भी सहनी पड़ती है किन्तु अन्तमें इसी गुणके कारण उसे सफलता मिलती है। आत्मबलसे प्रेरित इसी निर्भीकताके बलपर वह दुराचारी सत्यशीलके अन्यायपूर्ण कुकृत्योंको राजा नरदेवके समक्ष उद्घाटित करता है। यही नहीं, वह न्यायासनपर आसीन राजा नरदेवपर भी आक्षेप करता हुआ तृतीय अंकके चतुर्थ दृश्यमें कहता है : "नहीं जानता हूँ कि उस समय क्या उत्तर दिया जाय, जब कि अभियोग ही उल्टा हो और जो अभियुक्त हो—वही न्यायाधीश हो।" विशाखमें स्वाभिमानकी भी कमी नहीं है। इसीलिए वह चन्द्रलेखाको नरदेवके हवाले करनेका घृणित प्रस्ताव करनेवाले महापिंगलका मस्तक तलवारसे काट डालता है। नरदेवको घायल देखकर भी उसके विरुद्ध उसकी प्रतिहिंसा जाग उठती है। विशाखके चरित्रका कोमलतम पक्ष चन्द्रलेखा के प्रति प्रेमकी भावना है। इसीसे परिचालित होकर वह पुरुषार्थ करता है और अन्यायोंका प्रतिकार करता है। वह स्वयं स्वीकार करता है कि "चन्द्रलेखाको यदि न देखता तो सम्भव है कि यह धर्मभाव न जागता।" उसका सारा जीवन चन्द्रलेखाके प्रेमसे अनुप्राणित है। इस दृष्टिसे विविध कार्य व्यापारोंमें उसकी सलग्नता स्वार्थप्रेरित प्रतीत होते हुए भी सात्त्विक मानी जा सकती है।

विशाखदत्त अपने आचार्य प्रेमानन्दका सुयोग्य शिष्य एवं गुरुभक्त है। वह उनके प्रत्येक आदेशको ग्रहणकर उनका अक्षरशः पालन करता है। उन्हींकी आज्ञासे भिक्षु और नरदेवकी हत्या करनेके लिए उत्तेजित होता हुआ भी रुक जाता है। इस प्रकार विशाखदत्त नायकोचित गुणोंसे परिपूर्ण है। नाटकका नामकरण भी उसीके नामसे हुआ है। वह पुरुषार्थी, परोपकारी, विनम्र एवं संवेदनशील है। नाटककी सभी प्रमुख घटनाओंसे उसका सम्बन्ध है, नायिका की प्राप्ति भी उसीको होती है। प्रसादकी यह प्रारम्भिक नाट्यकृति होनेके कारण नायकके रूपमें जैसी उसकी सुव्यवस्था, विकास क्रमकी सुस्पष्टता एवं उत्कर्षपूर्ण चरित्र-

चित्रण होना चाहिए, वैसा नहीं हो सका, यह तो स्पष्ट रूपसे स्वीकार किया जा सकता है। —के० प्र० चौ०

विशाल भारत–'विशाल भारत' सन् १९२८ ई०में कलकत्तासे प्रकाशित हुआ। इसके संस्थापक थे रामानन्द चटर्जी। बनारसीदास चतुर्वेदी इसके प्रथम सम्पादक हुए और वे सन् १९२८ से १९३७ ई०तक सम्पादन कार्य करते रहे। 'विशाल भारत'को उसका वास्तविक रूपाकार चतुर्वेदीजीने ही प्रदान किया। इसके बाद सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय', मोहनसिंह सेंगर तथा श्रीराम शर्मा इस प्रमुख पत्रका सम्पादन करते रहे।

'विशाल भारत', 'सरस्वती'के बाद सबसे अधिक ख्यातिप्राप्त पत्र रहा है। इसी पत्रमें प्रथम बार जनपदीय साहित्य की ओर ध्यान दिया गया। संस्मरण और पत्र-संग्रहकी दृष्टिसे भी इस पत्रका बहुत अधिक महत्व है। इसके कई विशिष्ट अंक निकले थे, जैसे रवीन्द्र अंक, एण्ड्रूज अंक, पद्मसिंह शर्मा अंक, कला अंक और राष्ट्रीय अंक।

प्रवासी भारतीयोंके प्रसंगमें जो आन्दोलन प्रारम्भ हुआ था, उसका प्रमुख माध्यम 'विशाल भारत' ही था। इसके लेखकोंमें डा० राजेन्द्र प्रसाद, हजारीप्रसाद द्विवेदी, स्वर्गीय रामानन्द चटर्जी, कालिदास नाग प्रभृति थे। सामग्री-चयन और कलात्मक-मुद्रण, दोनों ही दृष्टियोंसे 'विशाल भारत'के प्रारम्भिक स्वरूपमें हिन्दी पत्रकारिताके श्रेष्ठतम रूपका दर्शन होता है। —ह० दे० बा०

विशाल सिंह–प्रेमचन्दकृत उपन्यास 'कायाकल्प' का पात्र माया-मोहका उपासक विशाल सिंह बहु-विवाह और सन्तान-लालसासे पीडित रहनेवाला व्यक्ति है। जमींदारके रूपमें जब तक रानी देवप्रियाकी जायदाद उसके हाथ न लगी, तब तक वह जनवादी विचार प्रकट करता रहता है किन्तु ठाकुर हरिसेवक सिंह और मुंशी वज्रधरके चक्रमें पडकर वह ऐश्वर्य भावनासे उद्दीप्त होकर प्रजापर अत्याचार करनेमें नहीं चूकता। यश-लिप्सा और टेक पर वह अपनी प्रजा-वत्सलताका बलिदान कर देता है। मनोरमाके प्रति आत्मसमर्पण करनेपर उसमें सन्तान-लालसा तीव्र हो उठती है। लेकिन जब वह अपनी सुखदा और उसके पुत्र शंखधरको पा जाता है तो उसके जीवनमें आनन्दका सागर उमडता है। उसे जैसे जीवनका सर्वस्व मिल गया। कालान्तरमें रोहिणीकी मृत्युसे खिन्न होकर मनोरमा भी उसकी नजरोंसे उतर जाती है और जब शंखधर अपने पिता चक्रधरको खोजने चला जाता है तो उसकी हिंसा-वृत्ति फिर जाग उठती है और रियासतमें अन्धेर मच जाता है किन्तु अहिल्या, शंखधर और उसकी बहूको पाकर फिर प्रसन्न हो उठता है। सन्तानकी ओरसे निराश होकर उसका धर्मानुराग भी शिथिल पड़ जाता जाता है। शंखधर और कमलाको पूर्वजन्मके क्रमशः महेन्द्र और देवप्रिया समझकर वह फिर अनिष्टकी आशंकासे पीडित रहता है क्योंकि वह समझता है कि देवप्रिया सधवा नहीं रह सकती। शंखधरकी मृत्युसे वह भी मृत्युको प्राप्त होता है—जैसे सतानमें ही प्राण उसके अटके हों। विशाल सिंह स्वभावसे कृपण, अधिकार, ऐश्वर्य और शासनको महत्त्व देनेवाला व्यक्ति है। उसे कभी वास्तविक शान्ति न मिल पायी—कारणके रूपमें उसकी तृष्णा थी। —ल० सा० वा०

विश्वंभरनाथ जिज्जा–जन्म १९०५ ई०में वाराणसीमें। प्रसाद युगके साहित्यकारोंमें, विशेषकर पत्रकारों और कहानीकारोंमें जिज्जाजीका एक महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। प्रसादके नाटकों और कहानियोंमें सर्वथा नये शिल्प और प्राचीन ऐतिहासिकताको लेकर जब पुराने आलोचकोंने एक ओरसे कटु आलोचनाएँ की थीं तो विश्वम्भरनाथ जिज्जा, नन्ददुलारे वाजपेयी एवं शान्तिप्रिय द्विवेदी जैसे आलोचकों और लेखकोंने उन आलोचनाओंका खण्डन और नयी संवेदनाका समर्थन सशक्त ढंगसे प्रस्तुत किया था।

आपके कहानी-संग्रह 'घूंघटवाली'की कई कहानियोंसे उस समयके भावबोधका पूर्ण परिचय मिलता है। जिज्जाजीकी कहानियोंमें हमें विशिष्ट रोमानी तत्त्वोंकी अपेक्षा कुछ साधारण स्तरके अतिशय 'कामन प्लेस' तत्त्व अधिक मिलते हैं।

भाषाकी दृष्टिसे जिज्जा प्रायः बोधगम्य और शब्दवैभवकी दृष्टिसे काफी मुक्त लेखकोंमेंसे कहे जा सकते हैं। शिल्पकी दृष्टिसे यदि जिज्जाकी रचनाओंका विश्लेषण किया जाय तो उनका विशेष महत्त्व नहीं जान पडता। केवल एक ऐतिहासिक क्रमसे सर्वथा प्रचलित परम्परासे थोडा आगे बढ़कर लिख सकनेके साहसके कारण ही आपका महत्त्व हो जाता है। शैली साधारण और विचार भावुकतापूर्ण है, इसीलिए उसके बीच शिल्पकी नवीनता छिप जाती है।

हमें जिज्जाजीकी कहानियां केवल कल्पनाके आधार पर विचित्र मनःस्थितियोंका परिचय दिलाती हैं। उनको मार्मिक स्तर तक पहुँचानेमें वे प्रायः असमर्थ सिद्ध होती हैं। जिज्जाने अपने युवाकालमें ही ये कृतियाँ लिखी हैं, इसलिए उनमें दृष्टिकी वह प्रौढता नहीं है, जो किसी भी कुशल साहित्यकारसे अपेक्षित है। आजकल आप प्रयागके 'भारत'में सहायक सम्पादक हैं।

आपकी प्रकाशित रचनाओंमेंसे निम्नलिखित मुख्य हैं—'स्त्रियोंकी स्वाधीनता' (१९२० ई०), 'पत्रकारिताका परिचायक', 'रूसमें युगान्तर' (१९२३ ई०), 'तुर्क तरुणी' (उपन्यास १९२७ ई०), 'प्रेमकी पूर्णिमा (उपन्यास १९३० ई०), 'घूंघटवाली' (कहानी संग्रह १९४६ ई०)। —ल० कां० व०

विश्वंभर 'मानव'–जन्म सन् १९१२ ई०, ग्राम डिबाई, जिला बुलन्दशहर (उत्तर प्रदेश)। मुख्यतः आलोचक किन्तु साहित्यको अन्य विधाओंमें भी मौलिक कृतियाँ लिखी हैं। कवि, आलोचक, नाट्यकार एवं उपन्यासकारके रूपमें हिन्दीके लेखकों और विचारकोंमें आपका एक निश्चित स्थान है। अबतक लगभग १६ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। पहले अध्यापक रहे, फिर आकाशवाणी से सम्बद्ध। आजकल केवल लेखनका व्यवसाय है। स्वतन्त्र लेखन और पत्रकारिताके साथ नयी कृतियोंके सृजनमें व्यस्त हैं।

'मानव' का मुख्य स्थान आलोचकका है—विशेषकर छायावाद, रहस्यवाद और गीत-साहित्यपर आपने अपने बहुमूल्य विचार दिये हैं। साहित्यके क्षेत्रमें आप भाव-

पक्षके समर्थक रहे हैं और प्रेषणीयताके लिए साहित्यकी दुरूहताको श्रेयस्कर नहीं मानते। 'मानव'जी की आलोचना-शैलीको—विशेषकर 'नयी कविता' और 'खडीबोलीके गौरव ग्रन्थ' मे—हम प्रभाववादी ही कह सकते हैं किन्तु यह सब होते हुए भी 'मानव'जीकी प्रभाववादी शैलीमें निर्भीकता और विचारविश्लेषण महत्त्वपूर्ण हैं। प्रभाववादी आलोचक होनेके नाते ही हमे 'मानव'जीकी आलोचनामें कविताके माध्यममें व्यक्तित्व और व्यक्तित्वके माध्यमसे साहित्यको समझनेकी प्रक्रिया मिलती है।

'मानव'जीकी सबमे अधिक उपयोगी पुस्तके 'कामायनी : एक टीका', 'प्रेमचन्द' एवं 'खडीबोलीके गौरव ग्रन्थ' हैं।

नाटककारके रूपमे 'मानव'जीका नाट्यसग्रह 'लहर और चट्टान' रेडियो नाटकोका सग्रह है। नाटकोमे कुछ प्रेम और वियोग जैसी स्थितियोंके साथ-साथ काल-चक्र और कुछ जीवनकी विवशताओ और अनिश्चित सम्भावनाओके आधारपर रचे गये है। नाटकोमे 'मानव'जीको वह सफलता नहीं मिली, जो आलोचना मे।

उपन्यासकारके रूपमे 'मानव'जी अधिकतर परिकल्पनावादी हैं, विशेषतः आपके उपन्यास 'प्रेमिकाएँ' मे हमे यह स्पष्ट लगता है कि लेखक सामाजिक तथा तात्त्विक यथार्थकी अपेक्षा परिकल्पनाको अधिक सबल माध्यम मानता है। यह दोष प्रायः प्रत्येक भावुकतावादी लेखकमे आ जाता है।

कविके रूपमे 'मानव'जीकी कविताएँ उत्तर छायावादी प्रवृत्तियोंकी पोषक रही है। आपने प्रायः गीत लिखे है। सम्पूर्ण व्यक्तित्वमे जैसे कविकी आत्मा सो रही है। अद्वितीय अनुभवकी स्थिति और उसकी व्यजना भावुकताकी तरलतामे कलात्मक तटस्थताको नष्ट कर देती है, इसीलिए कविता हल्की पड जाती है।

'मानव'जीके प्रकाशित ग्रन्थोमे निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण है—'खड़ी बोलीके गौरव ग्रन्थ' (१९४३ ई०), 'महादेवीकी रहस्य साधना' (१९४४ ई०), 'अवसाद' (काव्य-संकलन, १९४४), 'सुमित्रानन्दन पन्त' (आलोचना, १९५१ ई०), 'लहर और चट्टान' (नाट्य-सग्रह, १९५२ ई०), 'नयी कविता' (१९५७ ई०), 'प्रेमचन्द' (आलोचना, १९६१ ई०), 'प्रेमिकाएँ' (१९६० ई०)। —ल० कां० व०

विश्वनाथ प्रसाद–जन्म १९०५ ई०, जिला शाहाबाद (बिहार)मे। शिक्षा एम० ए०, पी० एच० डी० पटना तथा लन्दन विश्वविद्यालयोंमे हुई। अनेक वर्षोतक पटना विश्वविद्यालयमे हिन्दी विभागके अध्यक्ष रहे। वहाँ बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्के महत्त्वपूर्ण कार्यको अधिकतर आपने ही नियोजित किया। पटनाके बाद आप आगराके भाषा-विज्ञान तथा हिन्दी विद्यापीठके प्रथम संचालक नियुक्त हुए। उस विद्यापीठके रूपको भलीभाँति संगठित करनेके बाद सम्प्रति आप शिक्षा विभागके केन्द्रीय हिन्दी निदेशालयमें निदेशक पदपर कार्य कर रहे हैं।

डॉ० विश्वनाथ प्रसादका नाम हिन्दीके भाषावैज्ञानिकों में अग्रणी है। अपने शोधके साथ उन्होंने भाषा-विज्ञानके कार्यको नियोजित भी किया है। भोजपुरी ध्वनियोंके सम्बन्धमें किया गया आपका कार्य विशेष महत्त्वका है। भाषा-विज्ञानके अतिरिक्त साहित्यके क्षेत्रमें भी आपकी रचनाएँ है—'मोतीके दाने' (१९३२ ई०), 'गुप्तकालीन कुछ प्राचीन उपाधियाँ' (१९३४ ई०), 'वेदोंकी प्रामाणिकताका रहस्य' (१९३४-३५ ई०), 'अनेकतामें एकता' (१९४५ ई०), 'राष्ट्रभाषामे पारिभाषिक शब्दोंकी समस्या' (१९५१ ई०)। इधर आपने लल्लूलालकी रचनाओंका प्रामाणिक और सुसम्पादित संस्करण प्रस्तुत किया है। —सं०

विश्वनाथ प्रसाद मिश्र–जन्म १९०६ ई०, काशीमें। पिताके एकमात्र पुत्र। इनकी तीन वर्षकी अवस्थामें ही पिताका देहान्त हो गया। काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके हिन्दी-विभागमे प्राध्यापक रहे। सन् १९६२ ई० मे मगध विश्वविद्यालय, गयामे हिन्दी-विभागके अध्यक्ष हुए। बहुत दिनोंतक काशी नागरी प्रचारिणी सभाके अनेक पदोंका दायित्व सँभालते रहे। स्वभावसे आप अध्यवसायी, स्पष्टवादी और स्वाभिमानी पुरुष है। अनुसन्धानमें आपकी मुख्य रुचि है। आप मध्ययुगीन हिन्दी काव्यके मर्मज्ञ, रीतिकालीन स्वच्छन्द-कविताके विशेषज्ञ और काव्य-शास्त्रके पण्डित हैं। आपका कृतित्व बहुमुखी है। सम्पादन, आलोचना, अन्वेषणके अतिरिक्त अनेक दुरूह काव्य-ग्रन्थोंकी आपने प्रामाणिक टीकाएँ लिखी है। श्यामसुन्दर दासकी सम्पादन-कला, रामचन्द्र शुक्लकी समीक्षा-पद्धति और लाला भगवानदीनकी टीका-परम्पराको बड़ी सफलताके साथ अग्रसर किया है। कुछ दिनोतक 'सनातनधर्म' और 'वर्णाश्रम-धर्म' नामक पत्रोका सम्पादन भी किया है। आपके लिखे ग्रन्थ है—'हिन्दी साहित्यका अतीत', 'हिन्दीका सामयिक साहित्य', 'वाङ्मय विमर्श', 'हिन्दी नाट्य-साहित्यका विकास', 'बिहारीकी वाग्विभूति', 'काव्यांग कौमुदी'। सम्पादित ग्रन्थ और टीकाएँ ये है—'रसखानि', 'घनानन्द-ग्रन्थावली', 'घनानन्द कवित्त', 'पद्माकर-ग्रन्थावली', 'रसिकप्रिया', 'कवितावली', 'बिहारी', 'केशवदास', 'केशवदास ग्रन्थावली', 'भिखारीदास ग्रन्थावली', 'रामचरितमानस'(काशिराज संस्करण), 'भूषण ग्रन्थावली', 'जगद्विनोद', 'पद्माभरण', 'सुदामाचरित', 'सत्यहरिश्चन्द्र नाटक', 'हम्मीर हठ'। मिश्रजीका चिन्तन परम्परामे प्रेरित होते हुए भी नवीन है। रूढियोंके आप कतई कायल नहीं हैं। प्रगतिशीलताको आप स्वीकार करते हैं किन्तु प्रतिक्रिया या विरोधके रूपमे नहीं, अपितु परम्पराके सहज विकासकी दृष्टिसे। आपकी आलोचनाका मूलाधार रस-सिद्धान्त है किन्तु रसके अलौकिकत्वमे आपको विश्वास नहीं। "रस-प्रक्रियामे सामाजिकता प्रमुख है"—ऐसी धारणा आपकी है। इसीलिए यह रस-सिद्धान्त जितना प्राचीन काव्योंके लिए सत्य है, उतना ही आधुनिक समाजवादी कृतियोंके सम्बन्धमें भी। यही कारण है कि आपकी छायावाद, प्रगतिवाद जैसी अधुनातन काव्य-प्रवृत्तियोंकी सैद्धान्तिक समीक्षाओंमे भी पर्याप्त औचित्य है। आपकी समीक्षा-पद्धति विवेचनात्मक है। तथ्योंका सम्यक् शोध एवं विश्लेषण कर निष्कर्ष रूपमें सत्यको उद्घाटित किया गया है। भाषामें विषयको स्पष्ट करनेकी पूर्ण सामर्थ्य है। मिश्रजी हिन्दीके सुधी सम्पादक और समर्थ साहित्यकार हैं।

'वाङ्मय विमर्श' पुस्तकको सन् १९४४ ई० में हिन्दीकी

सर्वश्रेष्ठ कृति मानकर काशी नागरी प्रचारिणी सभाने इस पुस्तकपर 'आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी स्वर्णपदक' प्रदान किया था। —स० ना० त्रि०

विश्वनाथ सिंह, महाराज–जन्म १७८९ ई०। मृत्यु १८५४ ई०। महाराज विश्वनाथ सिंह जू देवका जन्म रीवाँके ऐतिहासिक राजवंशमें हुआ था। इनके पिता महाराज जयसिंह कवि होनेके साथ ही अनन्य साहित्यानुरागी भी थे। इनकी मृत्युके बाद १८३३ ई० में ये गद्दीपर बैठे और २१ वर्ष तक शासन किया।

विश्वनाथ सिंह शृंगारी-रामभक्तिके प्रमुख स्तम्भ माने जाते हैं। इन्होंने रसिक भावकी साधना प्रियादाससे सीखी थी। कुछ साम्प्रदायिक विद्वानोंने इनकी शृंगारी रामभक्तिको अयोध्याके महात्मा रामचरण दासका प्रसाद बताया है। इनके पुत्र महाराज रघुराजसिंहने 'राम बिहारी'मे इनकी राममे निष्ठा और सखी भावमे आस्थाका उल्लेखकर इन तथ्योंकी पुष्टि की है। इनकी रामभक्ति सगुणोपासना तक ही सीमित न रही, निर्गुण क्षेत्र भी उसकी दिव्य आभामे आलोकित हुआ। 'कबीर बीजक'की 'पाखण्ड खण्डिनी' टीकामें निर्गुण वाणीको सगुण रामपर घटाकर इन्होंने अपने अगाध पाण्डित्यका परिचय दिया है।

इनके लिखे हुए जिन ४६ ग्रन्थोंका पता चला है, वे ये हैं: 'रामगीता टीका', 'राधावल्लभी भाष्य', 'सर्वसिद्धान्त रामरहस्य टीका', 'विनयपत्रिका टीका', 'वैष्णव सिद्धान्त टीका', 'धनुर्विद्या', 'रामचन्द्राह्निक तिलक', 'राग सागराह्निक', 'संगीत रघुनन्दन', 'भुक्ति मुक्ति सदानन्द सन्दोह', 'दीक्षा निर्णय', 'व्यग्यार्थ चन्द्रिका', 'भागवत एकादश स्कन्ध टीका', 'सुमार्गकी ज्योत्स्ना टीका', 'रामपरत्व', 'व्यग प्रकाश', 'विश्वनाथ प्रकाश', 'आह्निक अष्टयाम', 'धर्मशास्त्र त्रिंशश्लोकी परम-धर्म निर्णय', 'शान्तिशतक', 'विश्वनाथ चरित', 'ध्रुवाष्टक', 'मृगया शतक', 'परमतत्त्व', 'उत्तम काव्य प्रकाश', 'गीता-रघुनन्दन शतिका', 'आनन्द रामायण', 'गीता रघुनन्दन प्रामाणिक', 'सर्वसग्रह', 'रामचन्द्र जू की सवारी', 'भजन-माला', 'आनन्द रघुनन्दन नाटक', 'वेदान्त पचशतिका', 'उत्तम नीति चन्द्रिका', 'अबाध नीति', 'ध्यान मंजरी', 'आदि मंगल', 'साखी', 'वसन्त चौंतीसी', 'चौरासी रमैनी', 'कहरा' और 'शब्द'। इनमेंसे कुछ रचनाएँ दरबारी कवियों द्वारा इनके नामसे लिखी गयी प्रतीत होती हैं। विश्वनाथ सिंहके काव्यमे वर्णनात्मकता तथा उपदेशात्मकता अधिक मिलती है। परवर्ती राम-साहित्यको इनकी महत्त्वपूर्ण देन है 'आनन्द रघुनन्दन नाटक'। भारतेन्दुजीने इसे हिन्दीका प्रथम दृश्य-काव्य माना है।

[सहायक ग्रन्थ—रामभक्तिमें 'रसिक सम्प्रदाय : भगवती प्रसाद सिंह; मिश्रबन्धु विनोद : मिश्रबन्धु।] —भ० प्र० सिं०

विश्वामित्र–एक ऋषि तथा ऋग्वेदके अनेक मन्त्रोंके निर्माता के रूपमें प्रसिद्ध हैं। ऋग्वेदके अनुसार कुश वंशके राजा कुशिक वंशके थे किन्तु परवर्ती साहित्यमे महाराजा गाधिके पुत्र माने गये हैं। विश्वामित्रकी जन्मकी कथा बड़ी रोचक है। सर्वप्रथम गाधिके एक सत्यवती नामक कन्या उत्पन्न हुई थी, जिसे उन्होंने ऋषि ऋचीकको समर्पित कर दिया। ऋचीकने सत्यवतीको एक बार दो चरु लाकर दिये तथा उनमेंसे एक चरुको खा लेनेको कहा, जिससे ब्राह्मण गुणसम्पन्न पुत्र होगा। दूसरा चरु उन्होंने सत्यवतीसे अपनी माताके पास भेज देनेके लिए कहा। ऋषिके जाते ही गाधि स्त्रीसहित उनके आश्रममे उपस्थित हुए। आदर-सत्कारके अनन्तर सत्यवतीने अपनी माताको दोनों चरु लाकर दिये। सत्यवतीकी माताने श्रेष्ठ लाभकी सम्भावनासे ऋचीककी पत्नी (सत्यवती) का चरु खा लिया। इस चरुके ही खानेसे उनके विश्वरथ नामक ब्राह्मण गुणसम्पन्न पुत्र जन्मा, जो आगे चलकर ब्रह्मतेजके कारण विश्वामित्रके नामसे विख्यात हुआ। सत्यवतीके दूसरे चरु खानेसे यम-दग्नि नामक एक पुत्र हुआ।

विश्वामित्रके व्यक्तित्वसे सम्बन्धित कथाओंमें उनकी ब्रह्मर्षि वशिष्ठसे प्रतिद्वन्द्विता ज्ञात होती है। इसके कुछ उल्लेख ऋग्वेदमे भी प्राप्त होते हैं। दोनों वेदोंकी ऋचाओंके रचनाकार थे। गायत्री मन्त्र विश्वामित्रका ही रचा हुआ कहा जाता है। उनकी अधिकांश ऋचाएँ ऋग्वेद के तृतीय मण्डलमें मिलती हैं। वशिष्ठ सप्तम मण्डलकी ऋचाओंके रचनाकार थे। विश्वामित्र और वशिष्ठ दोनों ही महाराज सुदासके महा राजपण्डित थे। वशिष्ठ विश्वामित्रको क्षत्रीय कुलोद्भव होनेके कारण हेय दृष्टिसे देखते थे किन्तु विश्वामित्र स्वयंको वशिष्ठके मुखसे ब्रह्मर्षि कहलाना चाहते थे तथा इसके लिए उन्होंने वशिष्ठपर बलका भी प्रयोग किया। उन्होंने उनके सौ पुत्रोंका वध कर डाला। प्रतिशोध स्वरूप वशिष्ठने भी विश्वामित्रके पुत्रका बध कर डाला। 'महाभारत'मे ऐसा उल्लेख मिलता है कि एक बार विश्वामित्रने गगासे भी वशिष्ठको लानेके लिए कहा था किन्तु जब गगा वशिष्ठको उनके पास नहीं लायी वरन् उनकी पहुंचके बाहर एक सुरक्षित स्थानपर पहुँचा आयी तो उन्होंने गंगाकी धारा रक्तरजित कर दी। 'रामायण'मे विश्वामित्र और वशिष्ठकी प्रतिद्वन्द्विताकी कथा आयी है। महाराजके रूपमे ये प्रायः वशिष्ठके आश्रममे आया करते थे। एक बार इन्होने वशिष्ठकी कामधेनुको बलपूर्वक खोलकर अपने यहाँ ले आनेका यत्न किया किन्तु कामधेनु अपनी अर्गला तुड़ाकर भाग गयी। विश्वामित्रने उसे सयत्न ले जानेकी चेष्टा की, लेकिन वशिष्ठके पुत्रोंने उनका मार्ग रोक लिया। विश्वामित्रने वशिष्ठके १०० पुत्रोंको मार डाला। अन्तमें स्वय वशिष्ठने उन्हे पराजित किया। अपमानित होकर विश्वामित्रने तपस्या द्वारा अपनेको ब्राह्मण वर्णमें परिवर्तित करनेका यत्न किया। विश्वामित्रकी तपस्यामे ताड़का राक्षसी तथा उसके पुत्रोंने अनेक व्याघात उत्पन्न किये। फलस्वरूप विश्वामित्र, राम-लक्ष्मणको दश-रथसे माँग कर ले आये। मार्गमे ही उन्होंने ताड़का वध किया। जनकके धनुष यज्ञमें विश्वामित्र राम और लक्ष्मण को ले गये थे। रामने धनुष तोड़कर सीतासे विवाह कर लिया। विश्वामित्रने वशिष्ठकी प्रतिद्वन्द्वितासे प्रेरित होकर एक बार त्रिशंकुको वशिष्ठके अस्वीकार करनेपर भी सदेह स्वर्ग भेज दिया था। इनकी घोर तपस्याको देखकर एक

बार इन्द्र भी विचलित हो गये थे। उन्होंने अपने ऐश्वर्यके छीने जानेकी सम्भावनासे मेनकाको विश्वामित्रकी तपस्याको भंग करनेके लिए भेजा था। इन्द्रको अपनी योजनामें सफलता मिली। विश्वामित्र मेनकाके सौन्दर्यमे प्रभावित हुए तथा उसके संसर्गसे शकुन्तलाका जन्म हुआ किन्तु इस दुष्कर्ममे उत्पन्न ग्लानिके फलस्वरूप वे हिमालयमे तपस्या करने चले गये। अन्तमे वशिष्ठने विश्वामित्रको ब्रह्मर्षि मान लिया तथा इस प्रकार इनका हठधर्म सफल सिद्ध हुआ। रामकथामे विश्वामित्रका महत्त्वपूर्ण स्थान है। —रा० कु०

विष्णु प्रभाकर–जन्म २१ जून, १९१२ ई०, मीरनपुर ग्राम, जिला मुजफ्फरनगर (उत्तर प्रदेश)मे। पंजाबसे बी० ए० तककी शिक्षा प्राप्त करनेके बाद आपने हिन्दी लेखनके क्षेत्रमें प्रवेश किया। लगभग दो दर्जन पुस्तकोंके लेखक हैं। साहित्यकी विभिन्न विधाओंमें आपने एक साथ प्रयोग किये हैं—कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, स्केच और रिपोर्ताज इत्यादिमें आपको विभिन्न रचनाएँ हमे सर्वथा नयी भावभूमिसे परिचित कराती हैं। यह भावभूमि यथार्थ, आदर्श और स्वाभाविकताकी टकराहटमे उपजी हुई लगती है। विष्णुजी की कृतियाँ इसीलिए महत्त्वपूर्ण भी है क्योंकि इन तीनों प्रवृत्तियोकी सीमाएँ एक छोर पर आकर मिलती हुई-सी प्रतीत होती है।

कहानियोंमे हमे कोमल क्षणोंकी मार्मिक संवेदना मिलती है, कहीं-कहीं दुरूहता भी किन्तु अभी तक केवल अच्छी झलकियाँ मात्र मिलती है, उनकी विवश अनिवार्यता इनकी कृतियोंमे नही दीख पड़ती। इसलिए यह आसानीके साथ कहा जा सकता है कि विष्णुजीकी कहानियाँ रोचक होनेके साथ-साथ संवेदनशील भी है। चरित्र-चित्रणमे कहीं-कहीं आदर्शवादी वृत्ति खटकती अवश्य है, लेकिन कहानीके प्रवाहको वह रोकती नहीं। इसीलिए वह बाधा न पहुँचाकर जहाँ संघर्षको तीव्र बनाती है, वही सफल भी हुई है।

उपन्यासोंमेसे 'ढलती रात' या 'स्वप्नमयी', दोनोंमें रोमानी तत्त्व और कुछ मिथ्या आदर्शवादी तत्त्व मिलकर एक अच्छी कथावस्तुको उसकी संभावनाओके विकसित होनेसे रोकते है। विष्णुजीके उपन्यासोंको पढनेमे ऐसा लगता है कि जैसे उनका शिल्पी कम और कवि-मन अधिक जागरूक है। इसीलिए उपन्यास अच्छे होते हुए भी मार्ग-चिह्न नही बन सके। वे कुछ अधूरे सत्य और अधपके चरित्रों की सीमा ही तक सीमित रह गये है।

एकांकी नाटकोंमें हमें विष्णुजीके कुशल कहानी लेखक और नाटक लेखकके समान दर्शन होते हैं। कहानीकी मार्मिकता नाटकोंमें उभरकर आ जाती है। सम्पूर्ण नाटककी व्यापक त्रुटियोंकी अपेक्षा एकांकी नाटकोंमें वे त्रुटियाँ हमे कम दीख पडती हैं क्योंकि तत्परता और तात्कालिकताकी अनिवार्यता विष्णुजीको भावुक होनेसे रोकनेमें समर्थ सिद्ध होती है। एकांकी नाटकोंमे विष्णुजीके कुछ नाटकतो बड़े ही सफल हैं और कुछ उतने ही असफल, लेकिन इन दोनोंके बीच विष्णुजी जिस सत्यके अन्वेषणमें तत्पर रहते हैं, वह मानवीय अनुभूति।

स्केच और संस्मरणमें विष्णुजीकी सफलता यह है कि किसी भी व्यक्तित्वके भीतर उसकी व्यापक बाह्य विरूद्धता के बावजूद जो कोमल है, मानवीय है, उसको पकड़नेकी चेष्टा बराबर बिना किसी आरोपके मिलती है। 'जाने अनजाने'के नामसे लिखे गये संग्रहमे जिन विभिन्न स्तरोंपर हमें उनके इस गुणके दर्शन होते हैं, उससे यह स्पष्ट पता चलता है कि इनकी शैली और इनकी भाव-व्यंजनामें यह गुण इनकी मूल प्रकृतिमे स्रोतस्विनीकी भाँति फूटती है—उसमें न तो भावुकता ही अधिक है और न कटुता। जीवनके साधारण स्तरोंपर व्यवहृत अनुभूतियोंके मार्मिक क्षणोंको इस प्रकार साबित करके सुरक्षित रखना विष्णुजीकी शैलीकी एक प्रमुख विशेषता है।

रिपोर्ताजकी शैलीमे यदा-कदा जो विवरण आदि मिले है, उनको पढनेसे ऐसा लगता है कि विष्णुजीके पास वह तटस्थ दृष्टि है, जो एकदम निरपेक्ष भावसे किसी वस्तुको देखकर उसे अक्षरोंमें लिपिबद्ध कर सके। साथ ही छोटी-छोटी झलकियोंमे वातावरणके मार्मिक परिप्रेक्ष्यको भी व्यक्त करनेकी बड़ी क्षमता है। फोटोग्रैफिक यथार्थ और अर्थ-अन्वेषणकी दृष्टिमे निरपेक्षता—ये तत्त्व आपकी कृतियोंको जीवन और शक्ति प्रदान करते हैं। रिपोर्ताजकी शैलीमे यद्यपि आपने बहुत नहीं लिखा है किन्तु जितना भी है, वह मार्मिक और सुन्दर होते हुए सफल और विवेचनात्मक है।

आपके प्रकाशित ग्रन्थोंकी सूची इस प्रकार है—'आदि और अन्त' (१९४५ ई०), 'संघर्षके बाद' (कहानी संग्रह १९५३ ई०), 'ढलती रात' (१९५१ ई०), 'स्वप्नमयी' (उपन्यास १९५६ ई०,), 'नव प्रभात' (सम्पूर्ण नाटक), 'डाक्टर' (१९५८ ई०), 'प्रकाश और परछाइयाँ' (एकाकी नाटकोका संग्रह १९५५ ई०), 'जाने अनजाने' स्केच और संस्मरण (१९६०)। —ल० का० व०

वीणा १–(प्र० १९२७ ई०) सुमित्रानन्दन पन्तका कालक्रमानुसार तीसरा प्रकाशित ग्रन्थ और पहला काव्य-संकलन है। संकलनमे ६३ स्फुट प्रगीत हैं। विज्ञापनके अनुसार इस संग्रहमे दो-एकको छोडकर अधिकांश सब रचनाएँ सन् १९१८-१९ ई० की लिखी हुई हैं। ग्रन्थके लिए लिखी हुई भूमिका उसके साथ प्रकाशित नहीं हो सकी और अब 'गद्य पथ'में देखी जा सकती है। उससे कविके दृष्टिकोणको समझनेमे पर्याप्त सहायता मिलती है। 'साठ वर्ष—एक रेखांकन'मे पन्तने लिखा है कि उन्होंने 'वीणा'के प्रगीत हाई स्कूलकी परीक्षा समाप्त होनेपर छुट्टियोंमें कौसानीमें लिखे और इनकी शैली तथा भावभूमिमें बनारसमें संचित अपने काव्य-संस्कारोंको अपनी किशोर-क्षमताके अनुरूप वाणी देनेकी चेष्टा की। उन्होंने इन रचनाओंपर सरोजिनी नायडू, कवीन्द्र रवीन्द्र, कालिदास और अंग्रेजीके रोमाण्टिक कवियोंके प्रभावकी चर्चा की है परन्तु उनका आग्रह है कि इनमें पर्याप्त मात्रामें कुछ ऐसा भी है, जो केवल उनका है। इसमे सन्देह नहीं कि इन प्रगीत-रचनाओंमें काव्य सृजनके नैसर्गिक संस्कार स्पष्ट रूपसे दिखाई देते हैं।

'वीणा'में हमें पन्तका बाल-कंठ मिलता है, जो अत्यन्त आकर्षक है। छन्दोंकी नयी छटाके साथ नयी भाव-भंगिमा

और नूतन काव्य-भाषाके भी हमें दर्शन होते हैं। बुदबुदके रूपमें ही सही, यहाँ हमें नवीन काव्य-धाराका स्वप्न-भंग स्पष्ट रूपसे सुनाई पड़ता है। 'वीणा'में कविकी बाल-सुलभ उत्सुकता, जिज्ञासा और भोलेपनका सजीव चित्र मिलता है। सबसे आकर्षक बात कविकी अपनी बालिकाके रूपमें कल्पना है। प्रकृति, वाणी अथवा पराशक्तिको मातृ-रूपमें सम्बोधित करते हुए कविने अपने अस्फुट, तोतले बोलोंमें बाल-चिन्तन अथवा कोमल कल्पनाका जो मधु भरा है, वह उसके प्रौढ़-काव्यमें भी उपलब्ध नहीं है।

'वीणा' की विषय-भूमि बड़ी विस्तृत है। उसमें विचारों तथा भावनाओंके अनेक स्फुलिंग हैं, जो अपने क्षण-जीवनमें ही चमत्कारक हैं। 'वीणा'के प्रगीतोंमें बाल-कविका आत्म-संस्कारी संकल्प अत्यन्त मुखर है और यही स्वर उसके उत्तर काव्यको 'वीणा-पल्लव'कालकी रचनाओंमें अलग करता है। 'वीणा'में पन्तकी जीवनव्यापी प्रवृत्तियों और साधना-दिशाओंका स्पष्ट आभास मिलता है और उसे हम उनके काव्यका पूर्वरंग कह सकते हैं। वह नितान्त आत्मिक है क्योंकि उसमें युगबोध भी व्यक्तिगत रसोद्रेक और आत्मसंस्कारकी भूमिकापर ही गृहीत हुआ है। —रा० र० भ०

वीणा २–यह मासिक पत्रिका इन्दौरमें १९२६ ई०में प्रकाशित हुई थी। मध्य-भारतीय हिन्दी-साहित्य समितिने इसके प्रकाशनमें योग दिया था।

इसके सम्पादक क्रमशः कालिका प्रसाद दीक्षित 'कुसुमाकर', अम्बिकादत्त त्रिपाठी, रामभरोसे तिवारी, शान्तिप्रिय द्विवेदी, प्रयागनारायण, चन्द्रारानी एवं गोपीवल्लभ उपाध्याय रहे हैं।

सम्प्रति कमलाशंकर इसका सम्पादन कर रहे हैं। —ह० दे० बा०

वीर चरित–दे० 'वीरसिंहदेव चरित'।

वीरसिंहदेव-चरित–केशवदासकृत 'वीरसिंहदेव-चरित'की रचना सन् १६०७ ई० (सं० १६६४ ई०) के प्रारम्भमें वसन्त ऋतुके शुक्ल पक्षकी अष्टमी बुधवारको प्रारम्भ हुई थी (प्रथम-प्रकाश, छं० ४-५, पृ० १)। इसकी समाप्ति सन् १६०८ ई० के लगभग हुई होगी क्योंकि इसमें सन् १६०८ ई० तककी ऐतिहासिक घटनाओंका उल्लेख है। कतिपय विद्वान् इसका रचनाकाल सन् १६०७ ई० (सं० १६६४ वि०) मानते हैं, जो अशुद्ध है।

'वीरसिंहदेव-चरित' १४ प्रकाशोंमें विभक्त है। लोभ और दानके संवादसे ग्रन्थका प्रारम्भ हुआ है, जो दूसरे प्रकाश तक चला है। आगे चलकर बुन्देल-वंशोत्पत्ति, वीरसिंहदेवकी प्रारम्भिक विजय, मुरादकी मृत्यु, अकबरकी दक्षिण-यात्रा, सलीमका मेवाड़से आगरे लौटकर विद्रोह, वीरसिंह और सलीमकी भेंट और अबुलफजलकी हत्याके साथ ५ वां प्रकाश समाप्त हुआ है। तदनन्तर वीरसिंहदेव और अकबरके विविध युद्धों, अकबरकी मृत्यु, जहाँगीरका राज्याभिषेक तथा उसके द्वारा वीरसिंहदेवके सम्मानित किये जानेका चित्रण है। अन्तमें शाहजादा खुसरोका विद्रोह, अब्दुल्लाहका ओरछापर आक्रमण तथा वीरसिंहदेवके बुन्देलखण्डमें पुनः लौटनेका वर्णन है। इसी घटनाके साथ 'वीरसिंहदेव-चरित' समाप्त होता है। इसमें बुन्देलखण्डसम्बन्धी तत्कालीन ऐतिहासिक घटनाओंका जितना सूक्ष्म विवेचन मिलता है, उतना अन्यत्र मिलना दुर्लभ है।

'वीरसिंहदेव-चरित'में वर्णनात्मक शैलीकी प्रधानता है। इसमें प्रमुख रूपसे वीर-रस और प्रासंगिक रूप से रौद्र, करुण, वीभत्स एवं शृंगार रसोंका चित्रण हुआ है। केशवने इसमें अनुप्रास, श्लेष, उपमा, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति आदि विविध अलंकारोंका प्रचुरता से प्रयोग किया है। इस रचनामें चौपई, दोहा, छप्पय, कवित्त, सवैया आदि १५ प्रकारके छन्दोंका प्रयोग किया गया है। इसमें संवादोंकी प्रधानता है। इन्होंने वीर-काव्यकी परम्परागत सूची गिनानेकी पद्धतिका बहिष्कार किया है पर ऐतिहासिक इतिवृत्तात्मकताका प्राधान्य है। इसकी भाषा ब्रजभाषा है, जिस पर बुन्देलखण्डीका अधिक प्रभाव है।

इस प्रकार साहित्यिक एवं ऐतिहासिक, दोनों दृष्टियोंसे 'वीरसिंहदेव-चरित' अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित है।

[सहायक ग्रन्थ—हिन्दी वीरकाव्य (१६००-१८०० ई०): टीकमसिंह तोमर, हिन्दुस्तानी अकादमी, उ० प्र०, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, १९५४ ई०।] —टी० सिं० तो०

वीरेंद्र केशव साहित्य परिषद्, टीकमगढ़–स्थापना—सन् १९३० ई० (मध्य प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलनसे सम्बद्ध); संस्थापक—स्वर्गीय महाराज वीरेन्द्र जू देव ओरछानरेश; कार्य एवं विभाग—आचार्य केशवदासकी स्मृतिमें स्थापित इस संस्था द्वारा बुन्देलखण्डमें हिन्दी-प्रचारका विशेष प्रयत्न होता रहा है। २००० रुपयेका प्रसिद्ध 'देव पुरस्कार' एक वर्ष खड़ीबोली और दूसरे वर्ष ब्रजभाषाके सर्वश्रेष्ठ काव्यपर दिया जाता है। 'मधुकर' मासिक पत्रका प्रकाशन संस्थाके इतिहासमें महत्त्वपूर्ण है। परिषद्के द्वारा पाक्षिक गोष्ठी, साहित्यकारोंकी जयन्तियाँ तथा अन्य साहित्यिक गोष्ठियोंका आयोजन किया जाता है। जनपदीय साहित्यके शोधके लिए विद्वानोंकी गोष्ठियाँ भी आयोजित की जाती है। —प्रे० ना० ट०

वृंद–नीति-साहित्यके यशस्वी प्रणेता वृन्दका वास्तविक नाम वृन्दावन दास था। वृन्द जातिके सेवक अथवा भोजक थे। वृन्दके पूर्वज बीकानेरके रहनेवाले थे परन्तु इनके पिता रूपजी जोधपुर राज्यान्तर्गत मेड़तेमें जा बसे थे। वहीं सन् १६४३ (संवत् १७००) में वृन्दका जन्म हुआ था। वृन्दकी माताका नाम कौशल्या और पत्नीका नाम नवरंगदे था। दस वर्षकी अवस्थामें ये अध्ययनार्थ काशी आये और ताराजी नामक एक पण्डितके पास रहकर वृन्दने साहित्य, दर्शन आदि विविध विषयोंका ज्ञान प्राप्त किया। मेड़ते वापस आनेपर जसवन्त सिंहने कुछ दान देकर इनका सम्मान किया। जसवन्त सिंहके यत्नोंसे औरंगजेबके कृपापात्र नवाब मोहम्मद खाँके माध्यमसे वृन्दका प्रवेश शाही दरबारमें हो गया। दरबारमें "पयोनिधि पर्यो चाहे मिसरीकी पुतरी" नामक समस्याकी पूर्ति करके इन्होंने औरंगजेबको प्रसन्न कर दिया। उसने वृन्दको अपने पौत्र अजी मुशशानका अध्यापक नियुक्त कर दिया। जब अजी मुशशान बंगालका शासक हुआ तो वृन्द उसके साथ चले

गये। सन् १७०७ (सं० १७६४) में किशनगढ़के राजा राजसिंहने वृन्दको अजी मुशशानसे माँग लिया। किशनगढ़में ही सं० १७८० में वृन्दका देहावसान हुआ।

वृन्दकी ग्यारह रचनाएँ प्राप्त हैं—'समेत शिखर छन्द', 'भाव पंचाशिका', 'शृंगार शिक्षा', 'पवन पचीसी', 'हितोपदेश सन्धि', 'वृन्द सतसई', 'वचनिका', 'सत्य स्वरूप', 'यमक सतसई', 'हितोपदेशाष्टक' और 'भारत कथा'। 'समेत शिखर छन्द' वृन्दकी सर्वप्रथम रचना है। इसका रचनाकाल सं० १७२५ है। ८ छप्पय छन्दोंके अन्तर्गत जैन सम्प्रदायके प्रसिद्ध तीर्थ 'समेत सिखर' का इसमें माहात्म्य वर्णित हुआ है। 'भाव पचाशिका'का रचनाकाल सं० १७४३ है। इसमें २२ दोहे और २५ सवैये हैं, जिनके अन्तर्गत शृंगार-रसकी सामग्री विवेचित हुई है। इस ग्रन्थकी रचना औरंगजेबके दरबारमें हुई थी। माधोरामकृत 'शक्ति भक्ति प्रकाश' के अनुसार वृन्दने इस ग्रन्थकी रचना केवल एक रात्रिमें की थी। 'शृंगार शिक्षा'की रचना सं० १७४२ में औरंगजेबके वजीर नवाब मोहम्मद खाँके पुत्र मिर्जा कादरीकी कन्याको पातिव्रत-धर्मकी शिक्षा देनेके प्रयोजनसे की थी। यह नायिका-भेदविषयक ग्रन्थ है। 'पवन पचीसी' शृंगार-रसप्रधान रचनामें पवनसम्बन्धी २५ छप्पय छन्द हैं। इसका रचनाकाल सं० १७४८ है। 'हितोपदेश सन्धि'का रचनाकाल सं० १७५९ है। यह संस्कृत ग्रन्थ 'हितोपदेश'की चौथी कथाका पद्यानुवाद है। 'वृन्द सतसई' वृन्दकी सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना है। यह सं० १७६१ में ढाकामें औरंगजेबके पौत्र अजी मुशशानकी प्रेरणासे रची गयी थी। वृन्दकी सतसई नीति-साहित्यका शृंगार है। 'वचनिका'का रचनाकाल सं० १७६२ है। यह रचना किशनगढ़के राजा रूपसिंहकी युद्धवीरतासे सम्बद्ध है। 'सत्य स्वरूप'का रचनाकाल सं० १७६४ है। इसमें औरंगजेबके पुत्रोंका राज्यसिंहासनसे सम्बद्ध युद्ध वर्णित है, जिसमें राजसिंहने दाराकी ओरसे लड़कर अपनी युद्ध-वीरताका परिचय दिया था। 'यमक सतसई' सात सौ दोहोंकी रचना है, जिसमें अधिकांश दोहे शृंगारविषयक हैं। 'हितोपदेशाष्टक' आठ घनाक्षरियोंकी शान्त-रसप्रधान रचना है। इसका रचनाकाल अज्ञात है। 'भारत कथा' महाभारतके एक प्रसंगपर आधारित रचना है। यक्षके प्रश्नोंका उत्तर देनेके पूर्व नकुल, सहदेव, अर्जुन और भीम जब सरोवरसे पानी पीते हैं और फलस्वरूप मृत्युको प्राप्त हो जाते हैं, तब युधिष्ठिर आकर उनके प्रश्नोंका उत्तर देते हैं। यही प्रसंग इस रचनाका वर्ण्य-विषय है।

मिश्रबन्धुओंने वृन्दकी एक अन्य रचना 'प्रताप विलास' का उल्लेख किया है परन्तु डा० मोतीलाल मेनारियाके अनुसार यह वृन्दकी प्रामाणिक रचना नहीं है। वृन्दकी रचनाओंका ऐतिहासिक पक्ष महत्त्वपूर्ण है। नीति-साहित्यमें तो उनकी रचनाएँ मूर्धन्य स्थानकी अधिकारिणी हैं। युगकी शृंगारी मनोभावना भी उनकी रचनाओंमें अभिव्यक्त हुई है। सम्मिलित रूपसे वृन्दका उत्तर मध्यकालीन कवियोंमें महत्त्वपूर्ण स्थान है।

[सहायक ग्रन्थ—राजस्थानका पिंगल साहित्य, राजस्थानी भाषा और साहित्य : डा० मोतीलाल मेनारिया।] —रा० कु०

वृंदावन—ब्रजमण्डलमें १२ वन और २४ उपवन माने गये हैं। वनोंके नाम—मधुवन, तालवन, कुमुदवन, बहुलावन, कामवन, खदिरवन, वृन्दावन, भद्रवन, माण्डीरवन, बेलवन, लोहवन और महावन हैं। उपवनोंके नाम—गोकुल, गोवर्धन, बरसाना, नन्दगाँव, संकेत, परमाद्र, अड़ीग, शेषसाई, मांट, ऊँचागाँव, खेलवन, श्रीकुण्ड, गन्धर्ववन, पारसोली, बिलछू, बच्छवन, आदिबदरी, करहला, अडनोख, पिसाया, कोकिलावन, दधिगाँव, कोठवन और रावल हैं। वृन्दावन इनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और प्रसिद्ध है।

वृन्दवनकी उत्पत्तिविषयक अनेक प्राचीन सन्दर्भ मिलते हैं। वृन्दावनके साधारणतया तीन अर्थ मिलते हैं—तुलसीका पौदा, राधा और जालन्धरकी पत्नी। लोकप्रसिद्धिके अनुसार यहाँ कभी तुलसीका वन था, इसलिए इन स्थानका नाम वृन्दावन पड़ा। राधाके सोलह नामोंमेंसे एक नाम वृन्दा है। राधाका रम्य क्रीडा वन होनेके कारण इसका नाम वृन्दावन पड़ा ('ब्रह्मवैवर्त' १७।१३)। वृन्दावनके ही आधारपर उनकी संज्ञा वृन्दावनी हुई। 'ब्रह्म वैवर्त' (१४।१९१।२०९) में यह भी वर्णित है कि केदार नामके राजाकी पुत्री वृन्दा द्वारा इस स्थान पर तप किये जानेके कारण यह वृन्दावन कहलाया। केदार राजाकी इस कन्याका विवाह जालन्धरसे हुआ था। यह कथानक अपेक्षाकृत परवर्ती है क्योंकि 'हरिवंश', 'भागवत', 'मत्स्य', 'विष्णु' आदि प्राचीन पुराणोंमें वृन्दावनसम्बन्धी विवरणोंमें ऐसा कोई उल्लेख नहीं मिलता। रूप सनातनके 'श्रीराधाकृष्ण गणोद्देश दीपिका'के अनुसार वृन्दा राधाकी अत्यन्त रूपवती एवं अन्तरंग सखीका नाम है। उसके पिताका नाम चन्द्रभान तथा माताका नाम फुल्लरा है। महीपाल वृन्दाका पति है और मंजरी उसकी भगिनी है ('राधाकृष्ण गणोद्देशदीपिका', श्लोक ८४-९७)। पं० कृष्णदत्त वाजपेयीके अनुसार गिलगिटसे प्राप्त संस्कृत बौद्ध-ग्रन्थोंमें एक यक्षी वृन्दा अथवा वेदाका नाम मथुराकी अन्य यक्षियों अलिका, सवा और निमिसका के साथ आया है। ये यक्षियाँ अत्यन्त शक्तिशालीनी थीं। तिमिसका ५०० परिवारवाली थी। जब महात्मा बुद्ध मथुरामें आये, तब उन्होंने गर्दभ नामक दुर्दांत यक्षका दमन करके चारोंको सन्मार्गोन्मुख किया था। अतः सम्भव है कि चारोंमेंसे वृन्दा अथवा वेदाका सम्बन्ध वृन्दावनसे रहा हो ('सर्वेश्वर वृन्दावनांक' पृ० १६५)। इसके अतिरिक्त ऐसी भी मान्यता है कि वृन्दावनमें वृन्दादेवीका मन्दिर गोविन्ददेवके मन्दिरके पास था। उसीके नामपर इसका नाम वृन्दावन पड़ा।

वृन्दावन भगवान् कृष्णकी रासस्थली और कृष्णभक्ति सम्प्रदायोंका प्रमुख केन्द्र रहा है। संस्कृत-साहित्य और भक्ति-काव्यमें वृन्दावनका माहात्म्य प्रचुरताके साथ वर्णित हुआ है। 'भागवत' (१०।४१), 'पद्मपुराण'के पाताल खण्ड, 'स्कन्द पुराण'के वैष्णव खण्ड, 'नारद पांचरात्र'के श्रुति-विद्या संवाद, 'बृहत् ब्रह्म संहिता', अध्याय २, 'प्रबोध रघुवंश' (सर्ग ६-४५-५१), प्रबोधानन्द सरस्वतीकृत 'वृन्दावन महिमामृतम्' आदि प्राचीन ग्रन्थोंमें वृन्दावनका माहात्म्य प्रतिपादित हुआ है। वृन्दावनमें ही निम्बार्क,

वल्लभ, चैतन्य, राधावल्लभ और हरिदासी कृष्ण भक्ति सम्प्रदायोंके प्रवर्तक आचार्यों एवं भक्त कवियोंने अपनी भक्ति और काव्यकी निर्झरिणी प्रवाहित की। वृन्दावन ब्रजकी संस्कृतिके समग्र रूपका स्वयं प्रतिनिधि है। इसके अतिरिक्त स्थापत्य, चित्र, संगीत आदि कलाओंका भी प्रमुख केन्द्र रहा है।

कृष्ण-कथामें लीलावतारी कृष्णकी वृन्दावन-लीलाओंका विपुल विस्तार एवं स्वरूप विशेष महत्त्व रखता है। कृष्णकी वृन्दावन लीलाओंके दो भेद किये जा सकते हैं—अलौकिक वृन्दावन-लीलाएँ और लौकिक वृन्दावन-लीलाएँ। अलौकिक वृन्दावन लीलाओंमें वृंदावनगमन, वत्सासुर, बकासुर, अघासुर, धेनुकासुर आदिके वध, कालियदमन, दावानल पान, गोवर्धन धारण आदि सम्मिलित हैं। लौकिक वृन्दावन लीलाओंमें गोचारण, राधासे मिलन, स्त्री रूप धारण, वैदक लीला, पनघट लीला, वसन्त क्रीडा, दान लीला, मान लीला, रासलीला आदि आती हैं। अलौकिक वृन्दावन लीलाओंका वर्णन अधिकतर वल्लभ सम्प्रदायके कवि सूर आदि कवियोंकी रचनाओंमे तथा 'भागवत'के भाषानुवादोंमे मिलता है। लौकिक लीलाओंमे राधाप्रधान कृष्ण-लीलाएं माधुर्यभावकी पोषक हैं, अतः उनकी स्वीकृति सभी कृष्ण भक्ति सम्प्रदायोंमे है। वृन्दावन-लीलाएँ कृष्ण-लीलाओंकी सर्वाधिक आकर्षक एवं अनुरंजनकारिणी लीलाएँ हैं।

भक्त कवियोंने वृन्दावनको आराध्य युगलका पुनीत लीलाधाम होनेके कारण प्रतीकात्मकता प्रदान करते हुए उसका प्रकट और अप्रकट रूपोंमे रसात्मक चित्रण किया है। प्रकट रूप उनकी लीलाका परिकर है और अप्रकट रूप भक्त अपनी अन्तश्चेतनाके द्वारा अनुभूत करता है। भक्तकी वृन्दावनोपासना उसके ध्येय रूपके अभावमे अपूर्ण रहती है। भौतिक वृन्दावन अपनी लताओ, कुंजोसे वेष्टित होकर श्रीकृष्ण और राधाकी रमस्थली बनता है। वृन्दावन आराध्य-युगलके नित्य विहारका आधार है। लीलाधाम होनेके कारण भौतिक होते हुए भी वह शाश्वत बन जाता है। भक्त अपनी जीवनलीला समाप्त करनेके लिए वृन्दावनको ही परम पुनीत धाम मानकर चलता है: "माधो मोहि करो वृन्दावन रेनु। जिहि चरननि डोलत नन्दनन्दन दिन-दिन प्रतिदिन चारत धेनु"—सूर। वृन्दावन भगवान् कृष्णके लिए स्वयं अत्यन्त प्रिय है: "वृन्दावन मोकों अति भावत। कामधेनु सुर तरु सुख जितने रमा सहित बैकुण्ठ भुलावत" आदि—सूर। इसी प्रकार अन्य कवियोंने भी वृन्दावनका माहात्म्य और उसके प्रति अपना अनुराग वर्णित किया है। एतद्विषयक कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं—"मोहि वृन्दावन रज सो काज"—व्यासजी। "वृन्दावनमे प्रेमकी नदी बहे चहुँ ओर"—ध्रुवदास। "वृन्दावन बसि कष्ट जौ होइ। कोटि मुक्ति सुख भुगते सोइ"—रसिकदास। "वृन्दावन चन्द जू महाप्रेम सुखदानि, अपनो ही गुन देत है ललित रंगीली बानि"—ललित किशोरी देव। "विष ले खाय आगमें जरों, श्री जमुनामे बूड़ हौं मरों। वृन्दावन छाडों नहीं"—अनन्य अलि।

कृष्ण भक्तके अतिरिक्त राम और निर्गुण भक्त कवियोंकी रचनाओंमें भी वृन्दावनका महत्त्व एवं स्वरूप विवेचित हुआ है। तुलसीदासने 'कृष्ण गीतावली'में "नहिं तुम ब्रज-बसि नन्दनन्दनको बाल विनोद निहारो। नाहिन रास रसिक रस चाख्यो, ताते डेल सो डारो" कहकर वृन्दावनका माहात्म्य निरूपित किया है। 'गुरु ग्रन्थ साहिब'के अन्तर्गत रागु गउड़ीके ६६वें पदमें कबीरने वृन्दावनका शून्य मण्डलके प्रमुख अंशके रूपमें वर्णन किया है। सन्त चरणदासने अपने 'ब्रजचरित्र'मे वृन्दावनके प्रकट एवं अप्रकट रूपोंका विवेचन किया है, यथा—"पुरुषोत्तम प्रभु लीलाधारी। वृन्दावनमें सदा विहारी॥ निज धामाकी कहियत शोभा। वृन्दावनमें रहे अलोभा॥ दिव्य दृष्टि बिनु दृष्टि न आवे। सकल पुराण वेद यो गावै॥" आदि। इसी प्रकार बुला साहब, भूषणदास, यारी साहब, रज्जब, सुन्दरदास, गुलाब साहब, जगजीवन दास, शिवनारायण आदि सन्तोंकी वाणियोंमे भी वृन्दावन और ब्रजभूमिका स्वरूप विवेचित हुआ है। वस्तुतः मध्ययुगमे कृष्ण भक्तिकी मधुर उपासना इतनी अधिक लोकप्रिय हुई कि उसके प्रभावसे निर्गुणोपासक भक्त भी अछूते न बचे।

[सहायक ग्रन्थ—सर्वेश्वर वृन्दावनांक, राधावल्लभ सम्प्रदाय—सिद्धान्त और साहित्य : विजयेन्द्र स्नातक; ब्रज और ब्रजयात्रा : सेठ गोविंददास; मथुरा परिचय : कृष्णदत्त वाजपेयी।] —रा० कु०

वृंदावनलाल वर्मा–जन्म ९ जनवरी, १८८९ ई० में मऊ-रानीपुर, झाँसी (उत्तरप्रदेश) मे हुआ था। पिताका नाम अयोध्या प्रसाद था। इनके विद्या-गुरु स्वर्गीय पं० विद्याधर दीक्षित थे। पौराणिक तथा ऐतिहासिक कथाओंके प्रति बचपनमे ही इनकी रुचि थी। प्रारम्भिक शिक्षा भिन्न-भिन्न स्थानोंपर हुई। बी० ए० करनेके पश्चात् इन्होंने कानूनकी परीक्षा पास की और झाँसीमे वकालत करने लगे। इनमें लेखनकी प्रवृत्ति आरम्भमे ही रही है। जब नवी श्रेणीमे थे, तभी इन्होंने ३ छोटे-छोटे नाटक लिखकर इण्डियन प्रेस, प्रयागको भेजे और पुरस्कारस्वरूप ५० रुपये प्राप्त किये थे। 'महात्मा बुद्धका जीवन-चरित' नामक मौलिक ग्रन्थ तथा शेक्सपीयरके 'टेम्पेस्ट'का अनुवाद भी इन्होंने प्रस्तुत किया था।

१९०९ ई०में 'सेनापति ऊदल' नामक नाटक छपा, जिसे सरकारने जब्त कर लिया। १९२० ई०तक छोटी-छोटी कहानियाँ लिखते रहे। १९२१ से निबन्ध लिखना प्रारम्भ किया। स्काटके उपन्यासोंका इन्होंने स्वेच्छापूर्वक अध्ययन किया और उससे ये प्रभावित हुए। ऐतिहासिक उपन्यास लिखनेकी प्रेरणा इन्हे स्काटसे ही मिली। देशी-विदेशी अन्य उपन्यास-साहित्यका भी इन्होंने यथेष्ट अध्ययन किया।

सन् १९२७ई०में 'गढ कुण्डार' दो महीनेमे लिखा। उसी वर्ष 'लगन', 'संगम', 'प्रत्यागत', 'कुण्डलीचक्र', 'प्रेमकी भेंट' तथा 'हृदयकी हिलोर' भी लिखा। १९३० ई०में 'विराटाकी पद्मिनी' लिखनेके पश्चात् कई वर्षों तक लेखन स्थगित रहा। १९३९ ई०में धीरे-धीरे व्यंग तथा १९४२-४४ ई०में 'कभी न कभी', 'मुसाहिब जू' उपन्यास लिखा गया। १९४६ ई० में इनका प्रसिद्ध उपन्यास 'झाँसीकी रानी लक्ष्मीबाई' प्रकाशित

हुआ। तबसे इनकी कलम अबाध रूपसे चल रही है। 'झाँसीकी रानी'के बाद इन्होंने 'कचनार', 'मृगनयनी', 'टूटे काँटे', 'अहिल्याबाई', 'भुवन विक्रम', 'अचल मेरा कोई' आदि उपन्यासों और 'हंसमयूर', 'पूर्वकी ओर', 'ललित-विक्रम, 'राखीकी लाज' आदि नाटकोंका प्रणयन किया। 'दबे पाँव', 'शरणागत', 'कलाकारका दण्ड' आदि कहानी-संग्रह भी इस बीच प्रकाशित हो चुके है।

भारत सरकार, राज्य सरकार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश राज्यके साहित्य पुरस्कार तथा डालमिया साहित्यकार संसद, हिन्दुस्तानी अकादमी, प्रयाग (उ० प्र०) और ना० प्र० स० काशीके सर्वोत्तम पुरस्कारोंसे सम्मानित किये गये है।

अपनी साहित्यिक सेवाओंके लिए वृन्दावनलाल वर्मा आगरा विश्वविद्यालय द्वारा डी० लिट्० की उपाधिसे सम्मानित किये गये। इनकी अनेक रचनाओंको केन्द्रीय एवं प्रान्तीय राज्योंने पुरस्कृत किया है।

इतिहास, कला, पुरातत्त्व, मनोविज्ञान, साहित्य, चित्र-कला एवं मूर्तिकलामें इनकी विशेष रुचि है।

कृतियाँ: उपन्यास—'गढ कुण्डार' (१९२९ ई०), 'लगन' (१९२९), 'संगम' (१९२८), 'प्रत्यागत' (१९२९), 'कुण्डलीचक्र' (१९३२), 'प्रेमकी भेंट' (१९३९), 'विराटाकी पद्मिनी' (१९३६), 'मुसाहिब जू' (१९४६), 'कभी न कभी' (१९४५), 'झाँसीकी रानी' (१९४६), 'कचनार' (१९४७), 'अचल मेरा कोई'(१९४८), 'माधवजी सिन्धिया' (१९५७), 'टूटे काँटे' (१९५४), 'मृगनयनी' (१९५०), 'सोना' (१९५२), 'अमरबेल' (१९५३), 'भुवन विक्रम' (१९५७), 'अहिल्याबाई'। नाटक—'धीरे-धीरे', 'राखीकी-लाज', 'सगुन', 'जहाँदारशाह', 'फूलोंकी बोली', 'बाँसकी-फाँस', 'काश्मीरका काँटा', 'हंसमयूर', 'रानी लक्ष्मीबाई' 'बीरबल', 'खिलौनेकी खोज', 'पूर्वकीओर', 'कनेर', 'पीले हाथ', 'नीलकण्ठ', 'केवट', 'ललित विक्रम', 'निस्तार', 'मगलसूत्र', 'लो भाई पचों लो', 'देखादेखी'। कहानी संग्रह—'दबे पाँव', 'मेढकीका ब्याह', 'अम्बपुरके अमर वीर', 'ऐतिहासिक कहानियाँ', 'अँगूठीका दान', 'शरणागत', 'कलाकारका दण्ड', 'तोषी'। निबन्ध—'हृदयकी हिलोर',।

'कचनार' उपन्यास इतिहास और परम्परापर आधारित है। पृष्ठभूमि ऐतिहासिक है, घटनाएँ भी सत्य हैं किन्तु समय और स्थानमें ऐतिहासिकताका आग्रह नहीं है। इसमें एक साधारण नारी कचनारके सतत सघर्षशील तथा संयमित जीवनका चित्रण है। साथ ही दुर्व्यसनग्रस्त गुसाइयोंकी हीन दशाका भी चित्र प्रस्तुत किया गया है। कथानकका केन्द्र धमोनी है, जो एक समय राजगोंडोंकी रियासत थी। कचनारकी कहानी कहनेके साथ ही राज-गोंडोंकी कहानी कहना भी लेखकका उद्देश्य है। 'मृगनयनी' लेखककी सर्वश्रेष्ठ रचना मानी जाती है। इसमे १५ वीं शतीके अन्तके ग्वालियर राज्यके मानसिंह तोमर तथा उनकी रानी मृगनयनीकी कथा है। अन्य उपकथाएँ भी साथ मे हैं, जैसे लाखी और अटल की कथा। इसमें कथानक, चरित्र-चित्रण, देश-काल एवं वातावरणका चित्रण सब कुछ एक सजग कलात्मकतासे सम्पन्न हुआ है, साथ ही १५वीं शतीकी राजनीतिक परिस्थितिका चित्रण भी कुशलतासे किया गया है। 'टूटे काँटे'में एक साधारण जाट मोहन लाल तथा उसकी पारिवारिक स्थितिके चित्रण के साथ प्रसिद्ध नर्तकी नूरबाईके उत्थान-पतनमय जीवन का भी चित्रण किया गया है। मोहनलाल तथा नूरबाईके जीवनके परिपार्श्वमें ही १८वीं शतीके राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक जीवनका दिग्दर्शन इस उपन्यासमें कराया गया है। 'अहिल्याबाई' मराठा जीवनसे सम्बन्धित ऐतिहासिक उपन्यास है, जिसमें एक आदर्श हिन्दू नारी अहिल्याबाईकी जीवन-कथाका समावेश है। 'भुवन विक्रम' मे उत्तर वैदिककालकी कथा-वस्तुको कल्पना और ऐतिहासिक अन्वेषणके योगसे पर्याप्त जीवन्त रूपमे उपस्थित किया गया है। कथाकी केन्द्र-भूमि अयोध्या है। अयोध्या के राजा रोमक, रानी ममता तथा राजकुमार भुवन इसके मुख्य पात्र है। इसमे वैदिक संयम, अनुशासन, आचार-विचार, सभ्यता, संस्कृति आदिका यथेष्ट संयोजन है। 'माधवजी सिंधिया' जटिल घटनायुक्त ऐतिहासिक उपन्यास है, जिसमे १८वी शतीके पेशवा पटेल माधवजी सिन्धिया का महान् जीवन चित्रित है। इस उपन्यासके द्वारा १८ वी शतीके भारतका सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन प्रत्यक्ष हो जाता है। 'गढ कुण्डार', 'झांसीकी रानी', 'विराटाकी पद्मिनी'के सम्बन्धमे विवरण यथास्थान द्रष्टव्य है।

सामाजिक उपन्यास—'लगन', 'संगम', 'प्रत्यागत', 'प्रेम की भेंट', 'कुण्डलीचक्र', 'कभी न कभी', 'अचल मेरा कोई', 'सोना', तथा 'अमरबेल' है। 'लगन'में प्रेमकथाके साथ बुन्देलखण्डके भरे-पूरे घरके दो किसानोंकी आनबान और मानव-संघर्षका चित्रण है। 'संगम' और 'प्रत्यागत' का सम्बन्ध ऊँच-नीचकी रूढिगत भावना से है। इन उपन्यासोंमे तत्कालीन जाति-पाँतिकी कठोरता, रूढ़िग्रस्तता, धर्मान्धता आदिका तथा उससे उत्पन्न अराजकता और पतनका सजीव चित्रण है। 'प्रेमकी भेंट' प्रेमके त्रिकोणकी एक छोटी-सी कहानी है। 'कुण्डलीचक्र'की पृष्ठभूमिमें किसानों और जमींदारोंका संघर्ष दिखाया गया है। 'कभी न कभी' मजदूरोंसे सम्बन्धित है। 'अचल मेरा कोई'मे उच्च मध्यम वर्ग और उच्च वर्गका चित्रण है। 'सोना' उपन्यास एक लोककथाके आधार पर लिखा गया है। 'अमरबेल' में सहकारिता तथा श्रमदानके महत्त्वको दिखाया गया है।

ऐतिहासिक नाटक—'झाँसीकी रानी', 'हंसमयूर', 'पूर्वकी ओर', 'बीरबल', 'ललित विक्रम' और 'जहाँदारशाह', हैं। 'झाँसीकी रानी'मे इसी नामकी औपन्यासिक कृतिको नाटक रूपमें प्रस्तुत किया गया है। 'फूलोंकी बोली'में स्वर्ण रसायन द्वारा स्वर्ण प्राप्त करनेवालोंकी मूर्खता पर व्यंग किया गया है। 'हंसमयूर'का आधार 'प्रभाकर चरित' नामक जैन ग्रन्थ है। 'पूर्वकी ओर' पूर्वीय द्वीपोंमे भारतीय सस्कृतिके प्रचारकी कथाका नाटकीय रूप है। 'बीरबल'मे अकबरके दरबारी बीरबलके उन प्रयत्नोंका चित्रण किया गया है, जिन्होंने अकबरको महान्

बनानेमें योग दिया। 'ललित विक्रम'की कथावस्तु 'भुवन विक्रम' उपन्याससे ही गृहीत है। 'जहाँदारशाह'में जहाँदारशाहके संघर्षमय राजनीतिक जीवनका चित्रण किया गया है।

सामाजिक नाटक—'धीरे-धीरे' कांग्रेस सरकारके सन् १९३७ ई० के मन्त्रिमण्डलकी स्थितिसे सम्बन्ध रखता है। 'राखीकी लाज'में राखीकी श्रेष्ठ प्रथाको हिन्दू समाजमें बनाये रखनेकी भावना पर आग्रह व्यक्त किया गया है। 'बाँसकी फाँस' कॉलेजके प्रेमसम्बन्धी हल्की मनोवृत्तिसे सम्बद्ध है। 'पीले हाथ'मे ऐसे सुधारकोंका चित्र है, जो बारातकी पुरानी प्रथाओंके दास हैं। 'सगुन'में चोरबाजारीका पर्दाफाश किया गया है। 'नीलकण्ठ'में वैज्ञानिक तथा आध्यात्मिक, दोनों दृष्टिकोणोंके समन्वय पर बल दिया गया है। 'केवट' राजनीतिक दलबन्दीसे सम्बद्ध है। 'मंगलसूत्र'में एक शिक्षित लड़कीके साथ एक अयोग्य लड़केके विवाहकी कहानी है। 'खिलौनेकी खोज'में मनोबल द्वारा अनेक समस्याओंके सुलझानेका सुझाव है। 'निस्तार'का सम्बन्ध हरिजन सुधारसे है। 'देखादेखी'में दूसरोंकी देखा-देखीमें सामाजिक पर्वों पर सीमासे अधिक खर्च करनेकी वृत्ति पर व्यंग है।

कहानियाँ—'शरणागत', 'कलाकारका दण्ड' आदि ७ कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें लेखककी विविध समयमें रचित विभिन्न प्रकारकी कहानियाँ संगृहीत हैं।

वृन्दावनलाल वर्माकी विचारधारा उनके उपन्यासोंमें स्पष्ट ज्ञात हो जाती है। इनकी दृष्टि सर्वदा राष्ट्रके पुनः-निर्माणकी ओर रही है। भारतके पतनके मूल कारण रूढ़ि-जर्जर समाजको इन्होंने अपनी सभी प्रकारकी रचनाओंमें प्रयोगशाला बनाया है तथा सामाजिक कुरीतियोंकी ओर इंगित किया है। ये श्रमके महत्त्वके प्रबल पोषक हैं। वर्माजी मानव-जीवनके लिए प्रेमको एक आवश्यक तत्त्व मानते हैं। यही नहीं, उनके विचारमें प्रेम एक साधना है, जो साधकको सामान्य भूमिसे उठाकर उच्चता की ओर ले जाती है। जीवनके प्रति इनका दृष्टिकोण प्रायः वही है, जिसका प्रतिपादन प्राचीन भारतीय संस्कृति करती है। इनके विचारमें मनुष्य केवल कर्म करनेका अधिकारी है, फलका नहीं।

मुख्यतया इनकी शैली वर्णनात्मक है, जिसमें रोचकता तथा धाराप्रवाहिता, दोनों गुण वर्तमान हैं। ये पात्रोंके चरित्र-विश्लेषणमें तटस्थ रहते हैं। पात्र अपने चरित्रका परिचय घटनाओं, परिस्थितियों एवं कथोपकथनसे स्वयं दे देते हैं। इनके उपन्यासोंकी लोकप्रियताका यह एक प्रमुख कारण है। अधिकतर भाषा पात्रानुकूल होती है। इनकी भाषामें बुन्देलखण्डीका पुट रहता है, जो उपन्यासोंकी क्षेत्रीयताका परिचायक है। वर्णन जहाँ भावप्रधान होता है, वहाँ भी इनकी शैली अधिक अलंकारमय न होकर मुख्यतया उपयुक्त उपमा-विधान से संयुक्त दिखाई देती है।

ऐतिहासिक उपन्यासकारके रूपमें ही वृन्दावनलाल वर्माका कृतित्व विशेष महत्त्व रखता है। इनसे पूर्व हिन्दी साहित्यमें ऐसा कोई उपन्यासकार नहीं हुआ, जिसने इतनी व्यापक भावभूमिपर इतिहासको प्रतिष्ठित करके उसके पीछे निहित कथा-तत्त्वको शक्तिमंलग्नता और अन्तर्दृष्टिके साथ सूत्रबद्ध किया हो। वर्माजीके अनेक उपन्यासोंमें वास्तविक इतिहास रसकी उपलब्धि होती है। इस दृष्टिसे ये हिन्दीके अन्यतम उपन्यासकार हैं।

[सहायक ग्रन्थ—वृन्दावनलाल—उपन्यास और कला : शिवकुमार मिश्र; वृन्दावनलाल वर्मा—व्यक्तित्व और कृतित्व : पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'; वृन्दावनलाल वर्मा— साहित्य और समीक्षा : सियारामशरण प्रसाद।] —ज० गु०

वृत्त-तरंगिनी—इसके लेखक रामसहाय दास हैं। इसकी रचना अन्तःसाक्ष्यके आधारपर सन् १८१७ ई० (सं० १८७३) में हुई। इसी रचनासे लेखकके गुरुके नामका पता चलता है। नागरी प्रचारिणी सभा, काशीकी हस्तलिखित प्रतिमें केवल चार ही तरंग हैं, शेष तरंगोंका पता नहीं चलता। विवेचन वैज्ञानिक तथा विशिष्ट है और सहज ही इसे हिन्दीका सर्वोत्तम पिंगल-ग्रन्थ माना जा सकता है। विधिवत् वर्णन तथा विस्तृत प्रतिपादनको देखते हुए इन्हें आचार्य श्रेणीमें स्थान देना भी उपयुक्त होगा। अपने द्वारा रचित उदाहरणोंके अतिरिक्त इन्होंने अन्य कवियोंके विशेषतः सूरदासके उदाहरण भी लिये हैं। संस्कृत वृत्तोंके लक्षणके उपरान्त उनके उदाहरण भी संस्कृतके श्रेष्ठ ग्रन्थोंसे दिये गये हैं। दोहेमें लक्षणोदाहरण देनेकी परम्परा अपनानेके अतिरिक्त इन्होंने सूत्रपद्धतिमें लक्षण और छन्दोंके भेद दिये हैं। मात्राओंकी संख्याके लिए कूटशैलीका सहारा लिया है और उदाहरणोंमें गुरु-लघु चिह्न लगाते चले हैं। कूटोंकी स्पष्टताके लिए शब्दोंके ऊपर अंक भी लिख दिये गये हैं। उदाहरण बड़े ही सरस हैं तथा कविके स्वरचित उदाहरण कृष्ण-लीलासे ही सम्बन्ध रखते हैं। शास्त्रीयताके साथ सुस्पष्टता, सरसता तथा विस्तारका ऐसा अनूठा मेल आचार्य तथा कविका ऐसा एकत्र सम्मिलन सभी लेखकोंमें नहीं मिल सकता।

रामसहाय दासकी मौलिकता इस बातमें भी है कि इन्होंने मात्रिक छन्दोंमें १२ मात्राके माधुर्य, कलकण्ठ, १३ मात्राके इन्दिरा तथा १५ मात्राके नागर नामक नये छन्द विवेचित किये हैं और वार्णिक छन्दोंमें इन्होंने ६ वर्णके कलिन्दजा, पंचवर्ण, मृगाक्षी, ७ वर्णका ललित ललाम, ९ वर्णके नवल, जमाल, मैत, धृति तथा सुखकन्द, १० वर्णके नागरी, मधु, मानिनी, कम्पटी, १३ वर्णके दीप्ति, मेनका, रति तथा १४ वर्णके रम्भामाला, केदार, दामिनी तथा तार नामक नये छन्द बताये। विवेचन क्रमके अनुसार प्रथम तरंगमें लघु, गुरु, गण, गण देवता, गण-योग, उनके प्रभाव तथा प्रत्ययका विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है। दूसरी तरंगमें मात्रिक छन्द बताये गये हैं। सभी जातिके छन्दोंकी सूची देनेके अतिरिक्त १ से ३२ मात्राके छन्दोंकी रचना की गयी है। मात्राके आधारपर सम, अर्द्धसम, विषम और मात्रा दण्डक नामक चार भेद किये गये हैं। तीसरी तरंगमें वार्णिक वृत्तोंका वर्णन है। चतुर्थ तरंगमें तुकका भेदों सहित वर्णन किया गया है।

[सहायक ग्रन्थ—सतसई सप्तक; शि० स०; क० कौ० (भा० १); हि० सा० इ०; हि० सा० बृ० इ० (भा० ६)।] —आ० प्र० दी०

वृषभानु–राधाके पिता तथा ब्रजके एक प्रतिष्ठित गोपके रूपमें प्रसिद्ध हैं। वृषभानुकी पुत्री होनेके कारण राधाका नाम वृषभानुकुमारी पडा। कृष्णभक्ति-काव्यमे वृषभानु के चरित्रका गौण स्थान है। कृष्णभक्तिके सभी सम्प्रदायोंके काव्यमे वृषभानुकुमारीके नामके साथ ही वे जाने जाते रहे हैं। राधावल्लभीय भक्त कवियोने राधाकी शैशव लीलाओंके प्रसंगमे वृषभानुके राधाके प्रति वात्सल्य भावका निरूपण किया है (दे० चाचा वृन्दावनदासकृत 'ब्रज-प्रेमानन्द सागर', 'राधा लाडसागर')। प्रकारान्तरसे वृषभानु भक्त हैं। वल्लभ सम्प्रदायकी वात्सल्य उपासना पद्धतिमे जो स्थान नन्द का है, राधावल्लभ सम्प्रदायमे वही स्थान वृषभानुका कहा जा सकता है। —रा० कु०

वृषभानु पत्नी–राधाकी माता कीर्तिके लिए 'वृषभानु पत्नी' शब्दका प्रयोग किया जाता है। कृष्णकी माता यशोदाकी तुलनामें उसका स्नेह संकुचित धरातलपर व्यक्त हुआ है। उसका आवास स्थान बरसाना है। कृष्ण भक्ति-काव्य में राधाकी शैशव लीलाओके अन्तर्गत उसके व्यक्तित्वकी सरलता एवं स्नेहकी व्यजना हुई है (दे० सू० सा० प० १२९५-९६)। उसे सामाजिक मर्यादाका भय है, इसीलिए वह राधाको असमय भ्रमणमे रोकती है और उसपर क्रोध दिखाती है किन्तु अन्ततः वृषभानु पत्नीका क्रोध प्रेममे समा जाता है (दे० सू० सा० प० १३१६-१३१७)। गारुडी प्रसंगमे प्रकारान्तरसे उसकी कृष्णभक्ति व्यजित हुई है। वह कृष्णसे राधाका विवाह कर देना चाहती है (दे० सू० सा० प० १२१९)।

कृष्ण-काव्यमे कीर्तिका उल्लेख राधाकी शैशव एवं किशोरी लीलाओंमें ही मिलता है। यशोदाकी तुलनामे उसका चरित्र संकुचित परिप्रेक्ष्यमे प्रस्तुत हुआ है। उसके चरित्रमें राधावल्लभीय भक्त कवियोने (दे० चाचा वृन्दावन दास, सेवकजी, चतुर्भुजदास, ध्रुवदास आदि कवियोंके पद तथा 'ब्रजप्रेमानन्द सागर', 'राधा लाडसागर') मातृत्वके चित्रणमे वात्सल्यकी उसी व्यंजनाका यत्न किया है, जो अष्टछापी कवियोने यशोदाके चरित्रके द्वारा की है। राधा-वल्लभीय भक्तोंने जिस रूपमे वृषभानुपत्नीका राधाके माध्यमसे कृष्णके प्रति अनुराग व्यक्त किया है, लगभग उसी रूपमें वल्लभसम्प्रदायी कवियोने यशोदाका कृष्णके माध्यमसे राधाके प्रति स्नेह दर्शाया है किन्तु इसे सर्वथा साम्प्रदायिक वैशिष्ट्यके रूपमे स्वीकार करना भूल होगी। —रा० कु०

वृषभासुर–कृष्णको मारनेके उद्देश्य से यह असुर एक दिन गायोंके बीच वृषभका रूप धारण करके आया था। उसके देखते ही गाएँ भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगीं। कृष्णने उसे पहिचान लिया। वृषभासुर कृष्णको भी मारने-के लिए दौड़ा। लेकिन कृष्णने उसे पैर पकड़कर मार डाला। इसे अरिष्टासुर भी कहा गया है (दे० सू० सा० प० २००४)। —रा० कु०

वेंकटेशनारायण तिवारी–जन्म १८९० ई० में कानपुरमें हुआ। उत्तर प्रदेशके हिन्दी पत्रकारोंमें आपका नाम अग्र-गण्य रहा है। हिन्दी भाषाके स्वरूपके सम्बन्धमें आपने महत्त्वपूर्ण विचार व्यक्त किये हैं। —सं०

वेलि क्रिसन रुकमणी री–डिंगल भाषाके उत्कृष्ट खण्ड-काव्य 'वेलि क्रिसन रुकमणी री'की रचना राठौड़राज पृथ्वीराजने १५८० ई०में की थी। इस रचनामें डिंगलके छन्द वेलियो गीतका प्रयोग हुआ है। सम्पूर्ण कृति ३०५ पद्योंमे समाप्त हुई है। कृष्ण और रुक्मिणीके विवाहकी कथा कृतिका विषय है। कविने विषय-वस्तुकी प्रेरणाके लिए अपनेको 'श्रीमद्भागवत'का आभारी माना है—"वल्ली तसु बीच भागवत वायो"। 'श्रीमद्भागवत'के दशम स्कन्ध उत्त-रार्धके चार अध्यायों (५२-५५)मे कृष्ण-रुक्मिणीकी परिणय-कथा है किन्तु पृथ्वीराजने कथाकी रूपरेखाको सामने रखकर मौलिक काव्य ग्रन्थकी रचना की है। रुक्मिणीका नखशिख-वर्णन, षट्-ऋतु वर्णन, युद्ध-वर्णन जैसे प्रसंगोंमें कविकी मौलिकताके दर्शन होते हैं। ब्राह्मणके द्वारा पत्र द्वारा सन्देश भेजना तथा रुक्मिणीके भाई रुक्मके सिरपर कृष्णके हाथ फेरनेसे फिर केशोंके उग आनेके प्रसंग कवि-कल्पित हैं। कृतिमें शृंगार और वीर-रस प्रधान है। अलंकारोंके प्रयोगकी दृष्टिसे भी कृति महत्त्वपूर्ण है। शब्दा-लंकारोंमे डिंगलके वयण सगाई अलंकारका प्रयोग बहुत ही सफल हुआ है। अर्थालंकारोंमे उपमा, रूपकका प्रयोग विशेष आकर्षक है। ऋतु-वर्णनमे राजस्थानकी स्वाभाविक स्थानीय प्रकृतिका आकर्षक वर्णन मिलता है। कविने साहित्यिक डिंगल भाषाका कृतिमे प्रयोग किया है। काव्य, युद्धनीति, ज्योतिष, वैद्यक आदि अनेक विषयोंके जैसे संकेत कृतिमे मिलते हैं, उनसे पृथ्वीराजकी बहुज्ञताका परिचय मिलता है।

राजस्थानमे 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' अत्यन्त प्रिय रही रही है। उसकी प्रशंसामे अनेक पद्य राजस्थानमें प्रचलित है। पृथ्वीराजके समकालीन आढाजी दुरसा चारण कविने 'वेलि क्रिसन रुकमणी री'को 'पाँचवाँ वेद' तथा 'उन्नीसवाँ पुराण' कहा था। उसपर ढूढाडी, मारवाड़ी तथा संस्कृतमें टीकाएँ भी लिखी गयीं, जो पर्याप्त प्राचीन है। इस युगमे 'वेलि क्रिसन रुकमणी री'के साहित्यिक सौन्दर्यकी ओर ध्यान आकर्षित करनेका श्रेय इतालवी विद्वान् एल० पी० तेस्सी तोरीको मिलना चाहिए। तेस्सी तोरीका सुसम्पादित संस्करण रायल एशियाटिक सोसायटी बगालसे १९१७ ई०में निकला। कृतिका दूसरा महत्त्वपूर्ण संस्करण हिन्दुस्तानी अकादमी, प्रयागसे १९३१ ई०मे निकला। इधर और भी सस्ते संस्करण निकले हैं, जिनमें कोई विशेषता नहीं है। अकादमीका संस्करण पुराना होते हुए भी महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत करता है।

[सहायक ग्रन्थ—राजस्थानी भाषा और साहित्य—मेनारिया : वेलि क्रिसन रुकमणी री; हिन्दुस्तानी अकादमी, इलाहाबाद १९३१ ई०।] —रा० तो०

वैदेही–दे० 'सीता'।

वैदेही वनवास–यह 'प्रियप्रवास'के ख्याति-लब्ध कवि अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' (१८६५-१९४१ ई०)की दूसरी प्रबन्धात्मक काव्य-कृति है। इसका प्रकाशन 'प्रिय

प्रवास'के प्रकाशनके कोई २६ वर्ष बाद १९४० ई०में हुआ। अबतक इसके चार संस्करण निकल चुके हैं। 'हरिऔध' कृत खड़ीबोलीके इस दूसरे प्रबन्ध काव्यमें रामकथाके वैदेही बनवास प्रसंगको आधार बनाया गया है और करुण रसकी निष्पत्ति कराई गयी है किन्तु इसमें 'प्रियप्रवास' जैसी दृष्टिकोणगत मौलिकताका अभाव है और इसे 'प्रियप्रवास' की तुलनामें बहुत कम लोकप्रियता मिल पायी है। यद्यपि इस कृतिमें कविने यथासाध्य सरल तथा बोलचालकी भाषा अपनायी है। —र० भ०

वैराग्यसंदीपिनी–इसे प्रायः तुलसीदासकी रचना माना जाता रहा है। यह चौपाई-दोहोंमें रची हुई है। दोहे और सोरठे ४८ तथा चौपाईकी चतुष्पदियाँ १४ हैं। इसका विषय नामके अनुसार वैराग्योपदेश है। इसकी शैली और विचारधारा तुलसीदासकी ज्ञात रचनाओंसे भिन्न है। उदाहरणार्थ, 'निकेत' (दो० ३) का प्रयोग 'शरीर'के अर्थमे हुआ है किन्तु वह 'तुलसी ग्रन्थावली'में सर्वत्र घरके लिए आता है। दोहा ६ में 'तवा'के 'शान्त' होनेकी उक्ति आती है, इसका 'शीतल' होना ही बुद्धि-सम्मत है। दोहा ८ मे एकवचन 'ताहि'का प्रयोग 'संतजन'के लिए किया गया है, जो अशुद्ध है। दोहा १४ मे 'अति अनन्य गति'का 'अति' अनावश्यक है। उसीमें 'जानी' पूर्वकालिक क्रिया रूप असंगत लगता है। होना चाहिए था 'जानई' किन्तु परवर्ती चरणके 'पहिचानी'के तुक पर उसे 'जानी' कर दिया गया। पुनः इसमें सन्त-लक्षण-निरूपण करते हुए शान्ति-पदका माहात्म्य प्रतिपादित किया गया है। शान्ति पद-का प्रतिपादन अधिकतर तुलसीदासके रामभक्तिसम्बन्धी विचारधारासे भिन्न प्रतीत होता है। शान्तिपदके सुखका प्रतिपादन न कर उन्होंने अन्यत्र सर्वत्र भक्ति-सुखका उपदेश दिया है। —मा० प्र० गु०

वैशालीकी नगरवधू–चतुरसेन (शास्त्री, आचार्य, १८९१-१९६० ई०) की सर्वश्रेष्ठ औपन्यासिक रचना है। यह उपन्यास दो भागोंमें है, जिसके प्रथम संस्करण दिल्लीसे क्रमशः १९४८ तथा १९४९ ई० मे प्रकाशित हुए। इस उपन्यासका कथात्मक परिवेश ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक है। इसकी कहानी बौद्ध-काल से सम्बद्ध है और इसमे तत्कालीन लिच्छिवि-संघकी राजधानी वैशालीकी पुरवधू 'आम्रपाली' को प्रधान चरित्रके रूपमे अवतरित करते हुए उस युगके ह्रास-विलासपूर्ण सांस्कृतिक वातावरणको अंकित करनेका प्रयास किया गया है। उपन्याससे घटनाओंकी प्रधानता है किन्तु उनका संघटन सतर्कतापूर्वक किया गया है और बौद्धकालीन समग्री के विभिन्न स्रोतोंका उपयोग करते हुए उन्हे एक हदतक प्रामाणिक एवं प्रभावोत्पादक बनानेकी चेष्टा की गयी है। उपन्यासकी भाषामे ऐतिहासिक वातावरणका निर्माण करनेके लिए बहुतसे पुराकालीन शब्दोंका उपयोग किया गया है। कुल मिलाकर चतुरसेनकी यह कृति हिन्दीके ऐतिहासिक उपन्यासोंमें उल्लेखनीय है। —र० भ०

व्यंगार्थ कौमुदी–यह प्रतापसाहि द्वारा सन् १८३६ ई०मे रची गयी। दतिया राजपुस्तकालयमे इसकी हस्तलिपि सुरक्षित है। यह ग्रन्थ भारत जीवन प्रेस, काशी तथा वाराणसी संस्कृत यन्त्रालय, काशीसे मुद्रित हुआ। यह व्यंग्यार्थ-निरूपक शास्त्रीय ग्रन्थ है, जिसमें मूल तथा वृत्ति दो भाग किये गये हैं और मूल भागमें केवल १३० पद्य हैं। आरम्भिक १४ पद्योंमें गणेश वन्दना, शब्द-शक्ति विवेचन, अलंकार-स्वरूपनिरूपण और व्यग्यार्थके महत्त्व-निरूपणके पश्चात् शेष १११ पद्योंमें भानुदत्त मिश्र के आधारपर नायिका-भेदके लक्षणोदाहरण दिये गये हैं। यदि वृत्तिभागको अलग कर दें तो यह एक लक्ष्य-ग्रन्थ ही रह जाता है। वृत्तिभागमें उदाहरणों से सम्बद्ध नायक-नायिका-भेद, शब्दशक्ति, अलंकारभेदका गद्य-निर्देश करते हुए पद्य-बद्ध लक्षण भी दिये गये हैं।

विषय-विस्तारकी दृष्टि से यह ग्रन्थ अपने नामकी अवहेलना करता हुआ नायिका-भेदका ही ग्रन्थ सिद्ध होता है। व्यंजना तथा नायिका-भेदके एक साथ वर्णनका यह सुन्दर नमूना है। गद्यमे वृत्ति-भागकी योजना इसकी नवीन ही है। नवीनताकी दृष्टिमे गणिकाके स्वतन्त्रा, अनन्याधीना तथा नियमिता और वासकसज्जाके ऋतुकालस्नानोपरान्ता तथा प्रवासी-पतिकी प्रतिक्षारत वासकसज्जा नामक भेद उल्लेख्य है। गणिकाके उक्त भेद कुमारमणिके 'रसिकरसाल' तथा अकबरसाहिकी 'शृंगारमंजरी' मे भी उपलब्ध होते हैं। वासकसज्जाका प्रथम भेद प्रतापसाहिका स्वकल्पित हो सकता है और दूसरेको जिसे लेखक स्वयं आगतपतिका भी कहता है, श्रीधरदासकृत 'सदुक्तिकर्णामृत' मे देखा जा सकता है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० का० शा० इ०; हि० सा० बृ० इ० (भा० ६); भ० सा० ना०] —आ० प्र० दी०

व्यास–'महाभारत'के रचनाकारके रूपमें व्यासकी प्रसिद्धि है। व्यासकी माता सत्यवती और पिता चेदिराज उपरिचर थे। ये पाराशरके औरस पुत्र कहे जाते है। 'भागवत'-मे व्यास विष्णुके अवतार माने गये है। व्यासके अनेक नामोंका उल्लेख मिलता है। यमुनाके किसी द्वीपमें जन्मने के कारण ये द्वैपायन कहलाये। श्यामवर्ण होनेके कारण इन्हें 'कृष्ण मुनि' भी कहा जाता है। वेदव्यास नामका कारण यह बताया जाता है कि वेदोंको चार सहिताओंमें विभाजित करनेके कारण इनका यह नाम पड़ा। धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर व्यासके आत्मज थे। महाभारत-युद्धमें व्यासने कौरवो तथा पाण्डवोंके मध्य समझौता करानेका यत्न किया था। तीन वर्षोंके भीतर व्यासने 'महाभारत' जैसे विशाल ऐतिहासिक ग्रन्थकी रचना कर डाली। 'महाभारत'मे एक लाख श्लोक मिलते है। इसीलिए इसे 'शत सहस्री सहिता' भी कहते हैं। 'महाभारत'का वर्तमान प्राप्त रूप डेढ हजार वर्ष प्राचीन है क्योंकि गुप्तकालके एक शिलालेखमे 'शत सहस्री संहिता'का उल्लेख मिलता है। व्यासका रचा हुआ 'महाभारत' अनेक प्रक्षेपोंके कारण बदलता रहा है। बहुत समय तक उसकी परम्परा मौखिक रही है। 'महाभारत'का प्रामाणिक सम्पादन श्री सुकन्याकरने सतत साधनाके अनन्तर प्रस्तुत किया है। 'महाभारत' १८ खण्डोंमें विभाजित है। इन्हे पर्व कहते हैं : १. आदि २. सभा ३. वन ४. विराट ५. उद्योग ६. भीष्म ७. द्रोण ८. कर्ण ९. शल्य १०. सौप्तिक ११. स्त्री १२. शान्ति १३.

अनुशासन १४. अश्वमेध १५. आश्रमवासी १६. मौसल १७. महाप्रस्थानिक १८. स्वर्गारोहण। 'हरिवंश पुराण'को कुछ लोग महाभारतका ही अंश मानते हैं। इसके अतिरिक्त 'महाभारत'में दुष्यन्त-शकुन्तला, मत्स्यावतारकी कथा, रामोपाख्यान, शिवकी कथा, सावित्री उपाख्यान तथा नल और दमयन्तीकी कथाएँ भी सम्मिलित हैं। भारतीय संस्कृतिके अध्ययनमें व्यासकृत 'महाभारत'का अपूर्व स्थान है। —रा० कु०

व्यास, हरिराम—ओरछाधीश मधुकरशाहके राजगुरु श्री हरिराम व्यास ब्रजमण्डलके प्रसिद्ध रसिक भक्तोंमे है। वृन्दावनमें हरित्रयी नामसे जो तीन महात्मा विख्यात है, उनमेंसे एक हरिराम व्यास भी हैं। व्यासजीके सम्बन्धमे नाभादासकृत 'भक्तमाल'मे तथा भगवत मुदितकृत 'रसिक अनन्यमाल'मे पर्याप्त वर्णन मिलता है। 'भक्तमाल'के वार्तिक तिलकमे अनेक जनश्रुतियोंका वर्णन है। उत्तमदासने भी अपने 'रसिकमाल'मे बडे विस्तारसे व्यासजीका चरित्र लिखा है। इन तीनो चरित्रोके आधारपर यह सिद्ध होता है कि हरिराम व्यास संस्कृत साहित्य और दर्शन-शास्त्रके पूर्ण पारगत विद्वान् थे। शास्त्रार्थप्रेमी होनेके कारण काशी आदि स्थानोंमे भ्रमण करनेके बाद ये वृन्दावन आये थे। वृन्दावन आनेपर उनका श्री हित हरिवंशसे साक्षात्कार हुआ और उनसे शास्त्र-चर्चाके बाद उन्हे हरिवंशका मत सर्वश्रेष्ठ लगा और उनसे विधिवत् दीक्षा लेकर उन्होंने राधा-वल्लभीय मार्ग स्वीकार कर लिया।

व्यासजीका जन्म टीकमगढ-ओरछाराज्यमे बेतवा नदीके किनारे सं० १५५० के आसपास (सन् १४९२ ई०) ठहरता है। वे सं० १५९१ (सन् १५३४ ई०) मे पहली बार वृन्दावन आये थे व्यासजीके पिताका नाम समोखन शुक्ल था। व्यास शब्द हरिरामजीके नामके साथ पाण्डित्य-सूचक उपाधिके रूपमे प्रारम्भमे प्रयुक्त हुआ था किन्तु बादमे यह जातिवाचक शब्द समझा जाने लगा। व्यासजीका विवाह आदि सद्गृहस्थोंके रूपमे हुआ था। उनके तीन पुत्र और एक पुत्री थी। व्यासजीने अपनी 'वाणी'मे लिखा है कि समस्त शास्त्रोंका अध्ययन करनेके बाद भी जब शक्ति न मिली, तब रसिकोंके बतानेपर हित हरिवंशजीसे मिला और उनसे अपनी समस्त शकाओंका सच्चा समाधान पाया : "उपदेस्यो रसिकन प्रथम, तब पाये हरिवंश। जब हरिवश कृपा करी, मिटै व्यासके सस॥ मोह मयाके फन्द बहु, व्यासहि लीनौ घेरि, श्री हरिवश कृपा करी, लीनो मोंको टेरि॥" आगे वे अपने इष्टदेव और गुरुके विषयमें कहते हैं—"राधावल्लभ व्यासको इष्टमित्र गुरुदेव। श्री हरिवश प्रकट कियौ कुंज महल रसभेव॥"

कतिपय विद्वानोने व्यासजीको माध्व या निम्बार्कमतानुयायी सिद्ध करनेका प्रयास किया है किन्तु समस्त 'व्यास वाणी'के पारायण करनेपर कहीं भी माध्व या निम्बार्क विचारधाराका समर्थन प्राप्त नहीं होता। राधावल्लभीय उपासनाका सार नित्य विहार-दर्शन है। 'व्यास वाणी' इसी नित्य विहार भावनासे ओत-प्रोत है। व्यासजी कहते हैं—"व्यास भक्तिको फल लह्यौ श्री वृन्दावन धूरि। हित हरिवंश प्रताप तें पाई जीवन मूरि॥" व्यासजीको वैष्णव सम्प्रदायोंमें विशाखा सखीका अवतार माना जाता है। विशाखा सखी राधा-माधव मिलनमें सहायक होती है और राधाका अनुगमन करती है। विशाखाका स्वभाव प्रेम, ममता, वात्सल्य और दयासे परिपूर्ण माना गया है। व्यासजीके चरित्रमें भी ये सभी गुण विद्यमान थे। व्यासजीके इष्ट ही "भक्त जन" हैं, भक्तोंको आदर-सत्कारपूर्वक व्यासजी नमस्य मानते हैं। व्यासजी अपने अतिथि-सत्कारके लिए प्रसिद्ध हैं। अतिथिको देवताके समान पूज्य मानकर उसका सत्कार करना ईश्वराधनके समान है। वे अपनी प्रसादनिष्ठा के लिए भी विख्यात हैं। वे निर्भीक, सत्यवादी, धर्मपरायण, साधुसेवी और प्रेमी स्वभावके महात्मा थे। उनका निधन संवत् विवादास्पद है। वासुदेव गोस्वामीने अपने ग्रन्थ 'भक्तकवि व्यासजी' मे इनकी निधन तिथि सं० १६७५से पूर्व लिखी हैं। संवत् १६७५से पूर्व कहनेसे किसी निश्चित सवत् पर पहुँचना कठिन है। रचनाओंके आधारपर इनकी मृत्यु संवत् १६५५ (सन् १५९८ ई०) के आसपास स्थिर होती है।

व्यासजीके दो ग्रन्थ हिन्दीमें और एक संस्कृतमें हैं। हिन्दीके ग्रन्थोमे 'व्यास वाणी' सुप्रसिद्ध है और तीन बार प्रकाशित हो चुकी है। 'रागमाला' सगीतशास्त्रका ग्रन्थ है, जिसमे ६०४ दोहे है। संस्कृतका ग्रन्थ 'नवरत्न' एवं 'स्वधर्म पद्धति' अप्राप्य हैं। व्यासजीको कवि और भक्तके रूपमे ख्याति प्रदान करनेवाला ग्रन्थ 'व्यास वाणी' ही है। 'व्यास वाणी'के प्रकाशकोंने अपनी रुचिके अनुसार ग्रन्थका विभाजन कर लिया है। राधाकिशोर गोस्वामीने 'व्यास वाणी'को दो भागोमे विभक्त किया है—सिद्धान्त रस विषय तथा श्रृंगार रस विषय। राधावल्लभीय वैष्णव सभा द्वारा प्रकाशित 'वाणी'का पूर्वार्द्ध सिद्धान्त रस तथा उत्तरार्द्ध श्रृंगार रस विहार भागोंमे विभक्त है। 'भक्त कवि व्यासजी'में बिना विभागके ७५७ पद तथा 'रास पंचाध्यायी'के ३० पद संकलित हैं। साखी शीर्षकमे १४८ दोहे पृथक् हैं।

'व्यास वाणी'का प्रतिपाद्य विषय माधुर्य भक्ति और राधा-कृष्णकी निकुंज-लीलाका वर्णन हैं। इस मुख्य विषयकी स्थापनाके लिए भक्तिके अन्तराय, भक्तिके साधक अंग, भक्ति-पथके आकर्षण-विकर्षण, भक्तकी मनःस्थिति, राधा-कृष्ण के नित्य विहार, वृन्दावनके वैभव आदिका भी वर्णन है। माधुर्य भक्तिके लिए राधा-कृष्णकी कैशोर लीलाओंका ही वर्णन स्वीकार किया गया है। राधाका वर्णन स्वकीया-परकीया-भेद-विवर्जित रूपमें ही हुआ है। वियोगपक्षको सीठा बताया गया है। श्रृगारकी लीलाओंमे पनघट लीला, दान लीला, मान लीला, फाग लीला आदिका बहुत ही सुन्दर वर्णन है। रास-लीलाके पदों की संख्या भी लगभग ५० है।

व्यासजी बहुत उदार और व्यापक दृष्टिसे सम्पन्न जागरूक कोटिके व्यक्ति थे। भक्तिक्षेत्रके आडम्बरों और प्रपंचोंका उन्हें ज्ञान था। उन्होने अपनी 'वाणी'में सामाजिक तथा धार्मिक ढोंग-दम्भका खूब तिरस्कार किया है। धर्मके नामपर जीविकोपार्जन करने वाले ब्राह्मणोंकी बड़े कठोर शब्दोंमे आलोचना की है। उनकी वाणीमें कबीरके समान समाजसुधारकका प्रखर स्वर सुनाई देता है।

उनके साखी-संकलनमें कबीरके समान समाजको सचेत करनेवाले दोहोंकी बहुत बड़ी संख्या देखकर उनके ओजस्वी तथा निर्भीक स्वभावका अच्छा परिचय मिलता है।

मूलतः 'व्यास वाणी' भक्ति-भावनाका उन्मेष करनेवाली प्रौढ़ रचना है। अन्तरकी भावनाओंमें उद्दाम आवेग आने पर भक्तकी ओजस्वी वाणीसे जो अभिव्यक्ति होती है, वही भक्ति साहित्य बनती है, इसका ज्वलन्त प्रमाण 'व्यास वाणी' है। सूरदासके समान व्यासजीने अधिकांशतः पदरचना ही की है। ब्रजभाषाके मार्दवको ध्यानमें रखते हुए उन्होंने अपने पदोंमें संगीतका पूरा-पूरा निर्वाह किया है। संगीतका उन्हें शास्त्रीय ज्ञान था, अतः उसका समावेश उनके पदोंमें नैसर्गिक रूपसे हो गया है। शृंगार-रसका अजस्र प्रवाह सर्वत्र विद्यमान है। इसके अतिरिक्त वैराग्यभावनामें शान्त रस, पाखण्डविडम्बनमें रौद्र रस, कलियुग वर्णनमें बीभत्स रस आदिका भी अच्छा समावेश है। व्यासजी पर कबीर, नन्ददास और हित हरिवंशकी रचना शैलीका गहरा प्रभाव पड़ा था। स्वामी हरिदासके संगीतका प्रभाव भी उनके पदोंपर दिखाई देता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि व्यासजी अपने युगके समर्थ विद्वान् पण्डित होते हुए भी भक्तके रूपमें ही अधिक विख्यात हैं। संगीत और संस्कृत-ज्ञानका उपयोग उन्होंने ग्रन्थ-रचनामें अवश्य किया किन्तु उनके जीवनकी साधना भक्तके रूपमें ही सफल हुई है।

[सहायक ग्रन्थ—भक्त कवि व्यासजी : वासुदेव गोस्वामी; राधावल्लभ सम्प्रदाय—सिद्धान्त और साहित्य : डा० विजयेन्द्र स्नातक; ब्रज माधुरीसार : श्री वियोगी हरि; व्यास वाणी : गोस्वामी राधाकिशोर वृन्दावन; हिन्दी साहित्यका इतिहास : पं० रामचन्द्र शुक्ल।]—वि० स्ना०

व्योमासुर–व्योमासुर कंसका अनुचर एक राक्षस था जो कृष्ण और उनके ग्वाल सखाओंके मध्य एक गोप शिशुका रूप धारण कर कृष्ण-वधके प्रयोजनसे आया था। कृष्ण ने उसकी गर्दन पकड़कर उसे मार डाला (दे० सू० सा० पद० २०१५)। —रा० कु०

व्रजेश्वर वर्मा–जन्म १९१३ ई० में नसीरगंजमें हुआ। शिक्षा (एम० ए०, डी० फिल०) प्रयाग विश्वविद्यालयमें हुई, जहाँ सम्प्रति आप सहायक अध्यापक हैं। प्रारम्भमें आपके दो उपन्यास प्रकाशित हुए—'समरकन्दकी सुन्दरी' (१९४० ई०) तथा 'आखिरी सलाम' (१९४१ ई०), पर उसके बादमें हिन्दी समीक्षा तथा शोध आपका प्रमुख कार्य-क्षेत्र रहा है। 'सूरदास' (१९४६ ई०)आपका प्रसिद्ध शोध-ग्रन्थ है। इसके अतिरिक्त सूर-साहित्यकी समीक्षाके रूपमें 'सूर मीमांसा' (१९५३ ई०) प्रकाशित हुई। 'हिन्दी अनुशीलन' तथा 'आलोचना' (त्रैमासिक) का सम्पादन किया। भारतीय हिन्दी परिषद् द्वारा आयोजित इतिहास-ग्रन्थ 'हिन्दी साहित्य'के भी सम्पादक हैं। —सं०

शंकर १–दे० महादेव।

शंकर २–दे० नाथूराम शर्मा 'शंकर'।

शंकरसहाय अग्निहोत्री–जन्म सन् १८३५ ई० और मृत्यु १९१० ई०। ये दरियाबाद, जिला बाराबंकी (उत्तर प्रदेश)के निवासी और कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनके केवल दो पुत्रियाँ थीं। इन्होंने प्रारम्भमें सोलह वर्ष तक अध्यापन कार्य किया और फिर बाईस वर्षतक रामशंकर बली तालुकेदारके यहाँ जिलेदारी की। इनका लिखा हुआ एक अलंकार-ग्रन्थ 'कविता मण्डन' माना जाता है। इसमें तीन सौ अठहत्तर छन्द हैं, जिनमें सवैया अधिक हैं, घनाक्षरी कम। यह ग्रन्थ अप्रकाशित है। इन्होंने स्फुट छन्द भी लिखे हैं। इनमें काव्य-प्रतिभाके साथ-साथ समीक्षककी योग्यता भी थी। कविताप्रेमी होते हुए भी ये स्वतन्त्र विचारक और कठोर आलोचक थे। इनकी कविताकी भाषा सुन्दर है। "क्रोधमें आकर इस कविने बहुतसे भँड़ौवा भी बनाये हैं" (मिश्रबन्धु)। ये समाज-सुधारके कार्यमें भी रुचि रखते थे। —प्र० ना० टं०

शंखचूड़–'भागवत'में शंखचूड असुरका उल्लेख मिलता है। यह छद्मवेष धारण कर गोपियोंके कृष्णसम्बन्धी प्रेमको एकान्त भंग करने आया था। गोपियाँ उसे देखकर अत्यन्त भयभीत हो गयी और आर्त स्वरमें कृष्णको पुकारने लगीं। कृष्णने शीघ्र ही आकर मुष्टिकप्रहार द्वारा उसका वध कर डाला (दे० सूर० पद संख्या १८२६)। —यो० प्र० सिं०

शंखधर–प्रेमचन्दकृत उपन्यास 'कायाकल्प'का पात्र। चक्रधरका पुत्र शंखधर प्रारम्भसे धार्मिकवृत्तिवाला और पितृ-भक्त है। पिताके बिना उसे आराम और भोजन आदि कुछ अच्छा नहीं लगता। उसमें चरित्रकी दृढ़ता है। जो बात मनमें ठान लेता है, उसे पूरा करके छोड़ता है। पिता को ढूँढनेके लिए उसने जो व्रत लिया, उसे सब प्रकारके कष्ट सहन करते हुए भी पूर्ण किया। सुख और विलासकी वस्तुओंके प्रति तो वह पहलेसे ही उदासीन है। संगीतसे भी उसे थोड़ा-बहुत प्रेम है। वास्तवमें पिताके पाससे लौटनेपर उसकी जीवन-धारा दूसरा मोड़ लेती है। उसकी पूर्व-स्मृतियाँ जाग्रत् हो उठती हैं। वह अपनेको महेन्द्र और अपनी पत्नी कमलावतीको देवप्रिया समझता है किन्तु राजकुमार होते हुए भी शंखधर तपस्वी है। विलासकी किसी वस्तुमें उसे प्रेम नहीं। वह कमलासे भी दूर ही दूर रहता है। एक दिन देवप्रिया (कमला)की वासनामें विभोर हो जानेसे वह मृत्युको प्राप्त होता है। —ल० सा० वा०

शंभुनाथ मिश्र–ये सन् १७३३ ई० के लगभग उपस्थित थे तथा असोथर (फतेहपुर) के राजा भगवन्तराय खीचीके यहाँ रह रहे थे। शिवसिंह सेंगरने इन्हें १७४६ ई०के आस-पास विद्यमान माना है। रामचन्द्र शुक्लने इनका कविता-काल १७४९ ई० स्वीकार किया है। इनके ग्रन्थ 'रसतरंगिणी'की हस्तलिखित प्रति देखनेसे पता चलता है कि सुखदेव कवि इनके गुरु थे (दे० 'रसतरंगिणी')। ये सुखदेव कवि सम्भवतः कम्पिला (जिला फर्रुखाबाद) के निवासी सुखदेव मिश्र जान पड़ते हैं, जिन्हें 'कविराज'की उपाधि भी दी गयी थी। ये स्वयं अनेक राजाओंके आश्रय में रहनेके अतिरिक्त राजा असोथरके यहाँ भी रहे थे। सम्भवतः वहीं शम्भुनाथने इनको अपना गुरु बनाया होगा। शम्भुनाथ मिश्रको देवतहा (जिला गोंडा) के शिव कवि अपना गुरु मानते हैं। 'दिग्विजयभूषण' ग्रन्थमें इनके छन्द संगृहीत हैं। इनके तीन ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं— 'रसतरंगिणी', 'रसकल्लोल' तथा 'अलंकार दीपक' (सन्

१७५१ ई०के लगभग)। प्रथम दो ग्रन्थ रसविषयक हैं और अन्तिम अलंकार-विवेचनसम्बन्धी। प्रथम ग्रन्थ भानुदत्त की इसी नामकी रचना का, लक्षणोंके विचार से, भाषानुवाद मात्र है। 'अलंकार दीपक'मे अधिकतर दोहे हैं, कवित्त, सवैयाका कम उपयोग किया गया है। शृंगारकी अपेक्षा आश्रयदाता भगवन्तराय खीचीका यश और प्रतापका वर्णन विशेष है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० इ०; हि० का० शा० इ०।] —आ० प्र० दी०

शंभुनाथ 'शेष'–जन्म १९१५ ई०। शिक्षा बी० ए० तक। कार्य क्षेत्र प्रधानतः दिल्ली। गीत शैलीमें आपकी रचनाएँ विशिष्ट स्थान रखती हैं। रचनाएँ—'उन्मीलिका', 'सुवेला'। कई वर्ष पूर्व कविका असामयिक देहान्त हो गया। 'शेष'के कवि व्यक्तित्वमें छायावादोत्तर गीत-काव्यकी नयी सम्भावनाओंका परिचय मिलता है। —स०

शकट–दे० 'शकटासुर।'

शकटासुर–कृष्णकी अलौकिक बाल-लीलाओंमे शकट (बैलगाडी) को एक असुरका रूप दिया गया है। यह असुर दूध-दहीसे भरी हुई गाडीके रूपमे आया था परन्तु कृष्णके चरण-कमलके पटकने मात्रसे यह भग्न हो गया।

'शकटासुर वध' का प्रसग 'भागवत' (१०-७) में वर्णित है। 'भागवतमे' पूतनावधके अनन्तर कृष्णकी इस लीलाका समावेश हुआ है परन्तु 'भागवत'मे शकटासुरका कससे कोई सम्बन्ध चित्रित नही हुआ है। सूरदास और नन्ददास-के काव्यमे इस प्रसंगमे घटनागत वैविध्य मिलता है। सूरने शकटको कंस द्वारा प्रेरित लिखा है। शकटासुरके मुखसे कृष्णके संहार अथवा उनके जीवित लानेके आश्वासनको सुनकर कस प्रसन्न होता है। नन्ददासने शकटका असुर रूप विवेचित करते हुए भी उसे कस से सम्बद्ध नही किया है। वस्तुतः शकटासुरभजनके प्रसंगके समावेशका प्रयोजन कृष्णके अलौकिकत्वका प्रतिपादन है (दे० सू० सा० प० २८२-२८६)। —रा० कु०

शकुंतला नाटक १–कविवर नेवाजकृत शकुन्तला काव्य-नाटक एक सरस एव प्रौढ कृति है। नेवाजने अपने आश्रयदाता शहजादा आजमशाह (१६५३-१७०७) की आज्ञा पाकर संस्कृतसे शकुन्तला-दुष्यन्तकी कथा लेकर 'शकुन्तला नाटक'का भाषामे निर्माण किया। कविकी स्वीकारोक्ति है—"आजिमखान निवाजको दीनी यह फुरमाइ। शकुन्तला नाटक हमे भाषा देहु बनाइ" (१-७)। "आजमखाँके हुकुमतें सुकवि नेवाज विचारि। कथा संस्कृतकी सकल भाषा लई उतारि" (१-८)। इससे सिद्ध है कि नेवाज कविने सस्कृतसे कथा ली और ब्रज-भाषामें 'शकुन्तला नाटक' लिखा। नेवाजकृत 'शकुन्तला नाटक'के अन्य नाम भी प्राप्त होते हैं। एक हस्तलेखमे इसका नाम 'शकुन्तला नाटक कथा' है (काशिराज, रामनगरके पुस्तकालयका १८४१ संख्यक हस्तलेख)। मुद्रित पुस्तकोंमें 'शकुन्तला' और 'शकुन्तला उपाख्यान' नाम भी मिलते है। 'शकुन्तला नाटक' ४ अंकोंमें विभाजित है। अंकके स्थानपर एक हस्तलेखमें 'तरंग' नाम भी मिला है (काशिराज रामनगरके पुस्तकालयका १८११ संख्यक हस्तलेख)। 'शकुन्तला नाटक'के अन्तमें कवि कहता है—"ये इतनी है चुकी कहानी" सम्भवतः इसी आधारपर नाटकको कथा या उपाख्यान कहा गया है किन्तु ऊपर के दोहे (१-७)मे सिद्ध है कि कवि 'शकुन्तला नाटक' रचने बैठा था। भिन्न-भिन्न पुस्तकोंमें छन्द संख्या भी भिन्न है।

कविके सम्मुख महाकविकालिदासप्रणीत 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' अवश्य था और कथा भी उसने वहींसे उठाई है किन्तु उसने शैली वही नहीं अपनायी, वरन् उस कालमें प्रचलित जन-नाट्य शैलीको ग्रहण किया। इसे हम संस्कृत नाटकका अनुवाद नहीं कह सकते, छायानुवाद भले ही कह लें। दोनोंमे बहुत विषमता है—(१) संस्कृत नाटकमें सात अक हैं, जब कि भाषा नाटकमे ४। (२) संस्कृत नाटककी प्रस्तावना एव उसके अर्थोपक्षेपक (विष्कंभक-प्रवेशक) भाषा नाटकमे नहीं है। (३) सस्कृत नाटकका आरम्भ दुष्यन्तकी मृगयासे होता है। ब्रजभाषा नाटकका प्रारम्भ होता है विश्वामित्रकी तपस्यासे, जिसे मेनका आकर खण्डित कर देती है और शकुन्तलाका जन्म होता है। मूल नाटकमे मेनकाप्रसंग कथोपकथनके बीच सूच्य है और आधे पृष्ठका है। यही प्रसंग भाषा नाटकमे चार पृष्ठ घेर लेता है और कथांश बन जाता है। (४) संस्कृत नाटकमे शकुन्तला युवती रूपमे रगमचपर आती है। भाषा नाटकमे उसकी कथा जन्मसे वर्णित है। (५) सबसे बड़ा अन्तर है शैलीका। नेवाजने पुस्तक निर्माणमे मूल संस्कृत नाटककी शैली नहीं अपनायी है, वरन् उस कालमे प्रचलित जन नाट्य शैलीको पकडा है।

कविवर नेवाजने मूल सस्कृत छन्दोंका भी अनुवाद किया है (छन्द संख्या १-२९ एव १-४४)। अनुवादमें प्रायः कविने घटाया-बढाया भी है (१-२३ एव १-५२)। प्रथम अंकके अन्तमे गजके उत्पातसे घबडाकर शकुन्तला राजाके पास जाती है। वह कुछ बहाना करके रुकती है, राजाकी ओर देखती है और फिर आगे बढ़ जाती है। महाकवि कालिदास कहते हैं—"शकुन्तला राजानमवलोकयन्ती सव्याज विलम्ब्य सह सखीभ्या निष्क्रान्ता।" महाकवि कालिदासने बहानोंको स्पष्ट नहीं किया है, वरन् अभिनेत्री एवं सूत्रधारकी बुद्धिपर छोड़ दिया है किन्तु कविवर नेवाज उनका वर्णन करते हुए कहते हैं—"उरझोई द्रुमन दुकूल सुरझाने लागि, काढ़नि लगति कटंक बहु पगनि सों। कबहूँ नेवाज खुले केसक कसनमे, कबहूँ अंगिरान लागति अंगनि सो॥ ऐसे छिल छिद्र कै-कै ठाढी हे रहति, शकुन्तला निपट भई व्याकुल लगनि सों। सखियनकी नजरि निवारि नारि फेरि फेरि, फेर महिपालहिं देखे दृगनि सों॥" (१-५८)। मौलिक कल्पनाओंसे भरे छन्दोंकी तो भाषा नाटकमें कमी है ही नहीं।

एक प्रश्न उठता है, जब संस्कृत नाटक सामने था, तब उसी शैलीपर अनुवाद क्यों नहीं किया? इसका कारण है, उस कालमें प्रचलित जन-नाट्य शैली। ये नाटककार संस्कृत नाटकोंका अनुवाद करने नहीं बैठे थे, वरन् प्रचलित जन-नाट्य शैलीपर नाटकोंका निर्माण कर रहे थे, चाहे वे खेले जांय, चाहे सुने जांय। भाषा नाटकमें एक दोहा

मिलता है—"जो देखा सोई लिखा मोर दोष जिनि देव। मात्रा अक्षर दोहरा बुध विचार करि लेव॥" एक सज्जन ने इस दोहेके आधारपर निष्कर्ष निकाला है कि नेवाज-कृत 'शकुन्तला नाटक' मूल संस्कृत नाटकका शुद्ध अनुवाद है क्योंकि कवि स्वयं कहता है—मैंने संस्कृत नाटकोंमें जो कुछ पढा है, वही लिखा। मुझे कोई दोष न देना। क्या 'देखा'का अर्थ है—'पढा'? हम ऊपर दिखा आये हैं कि यह शुद्ध अनुवाद नहीं है। जब अनुवाद नहीं है और मूल नाटकसे अत्यन्त भिन्न है, तो लोग दोष देंगे ही। फिर कवि यह क्यों कहता है कि मुझे दोष न देना, मैंने जो कुछ 'देखा' सोई लिख दिया। यह भी विचारणीय है कि दूसरी पंक्तिकी संगति क्या है? इसका समाधान है कि नेवाजने नाटक बनाकर खेलनेके लिए दे दिया। फिर अभिनय रूपमें जो कुछ देखा, उसी रूपमें नाटक यहाँ प्रस्तुत है। अतः परिवर्तनके लिए मुझे दोष न देना। दूसरे शब्दोंमें नाटककार कहता है कि मैंने जो संस्कृत नाटकका रूप बदला है, उसके पीछे कारण है—आजकलकी अभिनय शैली। मेरा दोष कुछ नहीं है। यह शैली है छन्दबद्ध नाटकोंकी। फलतः बुद्धिमान् लोग इस नाटकमें प्रयुक्त छन्दोंका विचार कर लें। छन्द विचारणीय हैं और मैं विचार करनेकी स्वतन्त्रता देता हूँ। नाटककारने अभिनीत नाटकके छन्दोंमें परिवर्तन किया है, इसका विचार बुद्धिमानों द्वारा किया जा सकता है। —गो० ना० ति०

शकुंतला नाटक २–धौंकलराम मिश्रने १७९९ ई० ("ठारेसे छप्पन बरस संवत् आश्विन मास। सित तेरस रविवारको ग्रंथ भयो उज्जास")में जन-नाट्य शैलीमें 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्'का पद्यात्मक अनुवाद किया और इस काव्य नाटकका नाम रखा 'शकुन्तला'। धौंकल मिश्र महाराज महीपसिंहके पुत्र तेजसिंहके आश्रित कवि थे, जिनकी आज्ञासे उन्होंने इस काव्य-नाटकका प्रणयन किया (इति श्री मन्महाराजा श्री महीपसिंह सुतै तेजसिंह आज्ञा मिश्र धौंकल राम विरचिते शकुन्तला नाटके प्रथमोंकः)। सवा सौ वर्ष पूर्व कविवर नेवाज 'शकुन्तला' नामक काव्य-नाटककी रचना कर चुके थे। यह इस नामका दूसरा काव्य नाटक है और नेवाजकृत 'शकुन्तला नाटक'से बढकर है। यद्यपि यह नाटक 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्'का अक्षरशः अनुवाद नहीं है, तब भी अनुवाद माना जा सकता है। अनुवाद अत्यन्त सरस एवं प्रांजल है। मूल नाटकके समान भाषा नाटकमें सात अंक हैं। सातों अंकोंमें कथा-क्रम, पात्र-क्रम और संवाद-क्रम भी वही है, जो मूल नाटक में है। अनुवादमें मूलका सौन्दर्य प्रतिबिम्बित है। एक उदाहरण—"सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं, मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मी तनोति। इयमधिक मनोज्ञा वल्केनापि तन्वी, किमिव हि मधुराणां मण्डन नाकृतीनाम्"('अभिज्ञान शाकुन्तलम्' १-२०)। धौंकलराम मिश्रने इसका अनुवाद इस प्रकार किया है—"सोभा कहा अरविन्दनकी घटि होत जु आनि दबावत काई, इन्दु कलंक समेत तऊ नित चाँदिनी होत सबै सुखदाई। सुन्दर रूप मनोहर वाम लगै इह बलकल सो छवि छाई, जो मधुरी छविवन्त तिहूँ सब ही कछु भूषन मंडनै दाई" (१-१४८)। कविने किस कौशलसे मूलकी रक्षा की है, यह द्रष्टव्य है।

महाकवि कालिदासके 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्'में शकुन्तला विदा अत्यन्त करुण एवं मार्मिक प्रसंग है, जिसे पढ-सुनकर पत्थरोंका दिल भी पसीज उठता है। प्रसन्नताकी बात है कि धौंकल मिश्रने इस प्रसंगका अनुवाद मामूली हेर-फेरके साथ बहुत ही सुन्दर सरस और करुणापूर्ण किया है। भाषा नाटकमें धौंकल मिश्रने वर्णनोंका विस्तार किया है।

इस 'शकुन्तला नाटक'में भी जन-नाट्य शैलीके निम्न-लिखित संकेत प्राप्त होते हैं—(क) एक वस्त्र निर्मित पर्दा टांगा जाता था। इसके पीछे नेपथ्य था। इसी नेपथ्यसे पर्दा उघाडकर पात्र बाहर आते थे एवं अन्दर जाते थे—१. "पट उघारि नेपथ्य को"(१-८१)। २. "इतने परदा खोलि वैखानस आयौ चल्यौ" (१-८४)। ३. "जब परदाकी ओटमें सखिन सहित सो नारि, दुरी अचानक जाइ कै प्रेम रंग विस्तारि"(१-२२०)। ४. "परदाके पट टारि कै लस्यौ विदूषक आनि"(२-२)। ५. "परदा पटहिं उघारि द्वारपालक तब आयौ" (२-३८)। ६. लिये कर पात्र तब प्रतिहारि। भई परवेस सुअंबर टारि" (६-५२)। (ख) अभिनय स्थान होता था—राज-सभा अथवा नरसमुदाय। लोग नीचे बिछावनपर बैठते थे। दर्शकोंके सामने पर्दा होता था—१. "सभा विलासी नरनके मन आनन्द बढाय" (१-२२५)। २. "रंग सभाके मनुज रहे सुष धारि कै" (१-१४८)। ३. "सभा निवासी तब्ब निरमत मौन सरब्ब" (३-१०९)। ४. "सभा माँझ दुहु थिन भए करि विचार मजबूत" (४-१)। (ग) पात्र सभाके सामने आकर नृत्य करते थे। प्रायः स्त्रियाँ तो नाचती ही थीं—१. "आई सषी पट उघारि दुहूँ सभा मे, नाची अनूप लहि कै गति अंग भामै" (४-१)। २. "इतनो कहि कै उनरी सभा नाची गति बहु मन्द" (६-३७)। (घ) पुरुष पात्र घूमते थे, प्रदक्षिणा करते थे—१. "करि प्रदछिना प्रथम ही फिरि सबको अवलोकि, आश्रम द्वार प्रवेश तब करिहैं मनको रोकि" (१-१२०)। २. "चल्यो कछू इक देख द्वार आश्रम चित रह्यौ, कियो नही परवस देखि प्रदछिन कही करी" (१-११८)। —गो० ना० ति०

सकुनि–'महाभारत'में शकुनि सुबलराजके पुत्र, गान्धारीके भाई और कौरवोंके मामाके रूपमें चित्रित हुआ है। शकुनि प्रकृतिसे अत्यन्त दुष्ट था। दुर्योधनने शकुनिको अपना मन्त्री नियुक्त कर लिया था। पाण्डवोंको शकुनिने अनेक कष्ट दिये। अन्तमें सहदेवने इसका इसके पुत्रसहित वध कर दिया। हास्यकारक प्रसिद्धि है कि भीम जो कुछ खायेंगे, उसका पाखाना शकुनिको होना पडेगा। अतः भीमने इसे अनेक अवसरोंपर परेशान किया। इसीके आधारपर एक लोकोक्ति है 'खाँय भीम पाखान हो शकुनि' (दे० सू० सा०)। —रा० कु०

शक्तिसिंह–ये राणा प्रतापके अनुज थे। राणा प्रतापसे रुष्ट होकर दिल्लीके तत्कालीन मुगल सम्राट् अकबरके यहाँ जाकर सेनापति हो गये थे। इन्होंने राजपूतोंका सारा भेद अकबरको बता दिया था। कहा जाता है कि राणा-प्रतापके ऊपर आक्रमण करवानेमें इनका भी हाथ रहा

है। पं० श्यामनारायण पाण्डेयकृत 'हल्दीघाटी' में इनके विद्रोह एवं पश्चात्तापका सुन्दर चित्रण मिलता है। राणाप्रतापकी पराजय एवं राजपूतोंकी मृत्युने शक्तिसिंहके हृदयको बदल दिया। राणा अपने घोड़े चेतककी मृत्युके अनन्तर इन्हींके घोडेकी सहायतासे अपने प्राणोंकी रक्षा करते हैं। इनके इस हृदय परिवर्तनको लेकर कई कहानियाँ भी लिखी गयी हैं। —यो० प्र० सिं०

शतधन्वा-'महाभारत' और 'भागवत'मे इसका उल्लेख मिलता है। यह अत्यन्त पराक्रमी और लोभी राक्षस था। यह सत्राजितके पास रखी मणिको चोरीसे उठा ले जाना चाहता था। सत्राजितने इस रहस्यको कृष्णसे बता दिया। कृष्णने भागते हुए शतधन्वाको मिथिलामे ले जाकर मार डाला (दे० सूर० पद० ४८०९)। —यो० प्र० सिं०

शत्रुघ्न-'वाल्मीकि-रामायण'से ही शत्रुघ्नके लिए रिपुदमन, रिपुसूदन आदि पर्यायवाची नामोंका उल्लेख मिलने लगता है। अवतारवादकी प्रतिष्ठाके अनन्तर इन्हे विष्णुकी बायी भुजाका अवतार कहा गया है। दूसरी परम्पराके अनुसार उन्हें शंखका अवतार कहा गया है। वस्तुतः रामकथाके विकासमे इनके पृथक् व्यक्तित्वका कोई महत्त्व नहीं है। 'वाल्मीकि-रामायण'मे भरतके अभिन्न साथीके ही रूपमें उनका वर्णन हुआ है क्योकि वे लक्ष्मणके सहोदर थे, अतः उनके चरित्रमे तीक्ष्णता और दर्पके किंचित् लक्षण यत्र-तत्र समाविष्ट किये गये है। परन्तु सम्पूर्ण रामकथामे उनके द्वारा केवल तीन कार्य सम्पन्न कराये जाते है—मन्थराको उसके कुकृत्यके लिए दण्डित करना, भरतकी नन्दिग्राम-तपस्याके समय अयोध्याका संरक्षण तथा उत्तर रामचरितमे रामकी दिग्विजयमे सहायता पहुँचाना। 'वाल्मीकि-रामायण'के अनन्तर रामकथाकी ललितकाव्य-सम्बन्धी परम्परामे शत्रुघ्नका यही रूप दृष्टिगत होता है। तुलसीदासने यद्यपि 'रामचरितमानस'में रामके अश्वमेध यज्ञका वर्णन न करनेके कारण शत्रुघ्नका कार्यक्षेत्र सीमित कर दिया है परन्तु ऐसा नहीं है कि इससे रामकथामे परम्परासे प्राप्त उनका महत्त्व कम हो गया हो। तुलसी उनके व्यक्तित्वमें प्रायः विनीत, उदार एव यथावसर उग्र स्वभावके वीर योद्धाका सकेत करते है। आधुनिक युगमे मैथिलीशरण गुप्तने उनके पराक्रमसम्बन्धी सन्दर्भोंको 'साकेत'में सुगठित करनेका प्रयत्न किया है। यद्यपि मनोविज्ञानसम्मत स्वाभाविक चरित्र-चित्रणके अनुरोधसे उनके उद्धत स्वभावको कैकेयी और मन्थराके सन्दर्भमें किंचित् मर्यादाच्युत कर दिया है। भरतके अभिन्न साथी होनेके नाते 'साकेत सन्त' (बलदेवप्रसाद मिश्र) मे उनके चरित्रमे कुछ अधिक प्रमुखता मिल जाती है, यद्यपि अन्ततः उनका व्यक्तित्व एक पूरक पात्रके रूपमे रहता है।

[सहायक ग्रन्थ—रामकथा : डा० कामिल बुल्के, हिन्दी परिषद्, विश्वविद्यालय, इलाहाबाद; तुलसीदास : डा० माताप्रसाद गुप्त, हिन्दी परिषद्, विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।] —यो० प्र० सिं०

शब्दरसायन-दे० 'काव्यरसायन'।

शमशेर बहादुर सिंह-जन्म १९११ ई०। बी० ए० तक शिक्षा प्राप्त की। 'दूसरा सप्तक' (१९५१) के कवि। कविताओंके समान ही चित्रोंमें भी प्रयोग किये हैं। आधुनिक कवितामें 'अज्ञेय' और शमशेरका कृतित्व दो भिन्न दिशाओंका परिचायक है—'अज्ञेय'की कवितामें वस्तु और रूपाकार दोनोंके बीच संतुलन स्थापित रखनेकी प्रवृत्ति परिलक्षित होती है, शमशेरमे शिल्प-कौशलके प्रति अतिरिक्त जागरूकता है। इस दृष्टिसे शमशेर और 'अज्ञेय' क्रमशः दो आधुनिक अंग्रेज कवियों एजरा पाउण्ड और इलियटके अधिक निकट हैं। आधुनिक अंग्रेजी-काव्यमें शिल्पको प्राधान्य देनेका श्रेय एजरा पाउण्डको प्राप्त है। वस्तुकी अपेक्षा रूपविधानके प्रति उनमे अधिक सजगता दृष्टिगोचर होती है। आधुनिक अंग्रेजी-काव्यमें काव्य-शैलीके नये प्रयोग एजरा पाउण्डसे प्रारम्भ होते हैं। शमशेर बहादुर सिंह ने अपने वक्तव्यमे एजरा पाउण्डके प्रभावको मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है—"टेकनीकमे एजरा पाउण्ड शायद मेरा सबसे बडा आदर्श बन गया।"

शमशेर बहादुर सिंहमे अपने बिम्बो, उपमानों और संगीतध्वनियों द्वारा चमत्कार और वैचित्र्यपूर्ण आघात उत्पन्न करनेकी चेष्टा अवश्य उपलब्ध होती है पर किसी केन्द्रगामी विचार-तत्त्वका उनमें प्रायः अभाव-सा है। अभिव्यक्तिकी वक्रता द्वारा वर्ण-विग्रह और वर्ण-सन्धिके आधार पर नयी शब्द-योजनाके प्रयोगसे चामत्कारिक आघात देनेकी प्रवृत्ति इनमे किसी ठोस विचार तत्त्वकी अपेक्षा अधिक महत्त्व रखती है। शमशेर बहादुर सिंहमे मुक्त साहचर्य और असम्बद्धताजन्य दुरूहताके तत्त्व साफ नजर आते है। उनकी अभिव्यक्तिम अधूरापन परिलक्षित होता है। हम कह सकते है कि शमशेरकी कवितामें उलझनभरी संवेदनशीलता अधिक है। उनमे शब्द-मोह, शब्द-खिलवाडके प्रति अधिक जागरूकता है और शब्द-योजनाके माध्यम से सगीत-ध्वनि उत्पन्न करनेकी प्रवृत्ति देखी जा सकती है।

शमशेरकी कविताएँ आधुनिक काव्य-बोधके अधिक निकट है, जहाँ पाठक अथवा श्रोताके सहयोगकी स्थितिको स्वीकार किया जाता है। उनका बिम्बविधान एकदम जकडा हुआ 'रेडीमेड' नहीं है। वह 'सामाजिक'के आस्वादनको पूरी छूट देता है। इस दृष्टि से उनमें अमूर्तनकी प्रवृत्ति अपने काफी शुद्ध रूपमे दिखाई देती है। उर्दूकी गजल से प्रभावित होनेपर भी उन्होने काव्य-शिल्पके नवीनतम रूपोको अपनाया है। प्रयोगवाद और नयी कविताके पुरस्तकर्ताओंमें वे अग्रणी हैं। उनकी रचना-प्रकृति हिन्दीमें अप्रतिम है और अनेक सम्भावनाओं मे युक्त है। हिन्दीके नये कवियोमे उनका नाम प्रथम पांक्तेय है। 'अज्ञेय'के साथ शमशेरने हिन्दी-कवितामें रचना-पद्धतिकी नयी दिशाओंको उद्घाटित किया है और छायावादोत्तर काव्यको एक गति प्रदान की है।

कृतियाँ—'दोआब' (निबन्ध), 'प्लाटका मोर्चा', (कहानियाँ-स्केच), 'कामिनी', 'हुश्शू और पी कहाँ' (सरशारके अनुवाद), 'कुछ कविताएँ' (काव्य-संग्रह १९५९)। —श० ना० च०

शबरी-शबरी भिल्लनीका स्थान प्रमुख रामभक्तोंमें है। वनवासके समय राम-लक्ष्मणने शबरीके यहाँ जूठे बेर खाये

थे। राम उसके सद्व्यवहार और निष्ठासे बहुत प्रसन्न हुए तथा उसे परमधाम जानेका वरदान दिया। जनश्रुति है कि द्वापरमें शबरी ही मथुरामें कुब्जा नामक दासीके रूपमें जन्मी थी। शबरीकी कथा 'रामायण', 'भागवत', 'रामचरितमानस', 'सूरसागर', 'साकेत सन्त' आदि ग्रन्थोंमें मिलती है। भक्त कवियोंने स्फुट रूपमें शबरीकी भक्ति-निष्ठाका उल्लेख किया है। —रा० कु०

शर्मिष्ठा–वृषपर्वाकी पुत्री, देवयानीकी सखी। एक बार क्रोधमें उसने देवयानीको पीटा और कुएँमें डाल दिया। देवयानीको ययातिने कुएँसे बाहर निकाला। ययातिके चले जानेपर देवयानी उसी स्थानपर खड़ी रहीं। पुत्रीको खोजते हुए शुक्राचार्य वहाँ आये किन्तु देवयानी शर्मिष्ठा द्वारा किये गये अपमानके कारण जानेको राजी न हुई। दुःखी शुक्राचार्य भी नगर छोड़नेको तैयार हो गये। जब वृषपर्वाको ज्ञात हुआ तो उसने बहुत अनुनय-विनय की। अन्तमे शुक्राचार्य इस बातपर रुके कि शर्मिष्ठा देवयानीके विवाहमें दासी-रूपमें भेंट की जायगी। वृषपर्वा सहमत हो गया और शर्मिष्ठा ययातिके यहाँ दासी बनकर गयी। शर्मिष्ठासे ययातिको तीन पुत्र हुए (दे० 'देवयानी', 'ययाति')। —मो० अ०

शांतनु–भीष्म पितामहके पिता शान्तनुकी वीरतापर मुग्ध होकर गंगाने उनका पत्नीत्व स्वीकार किया था। परन्तु शर्त यह थी कि जो संतान होगी, उसे तुरन्त जलसमाधि दे दी जायगी। सात सन्तानें जलमग्न कर दी गयीं। केवल आठवीं सन्तान देवव्रत भीष्म ही शेष रहे। ये आगे पूर्व जन्मके वसु थे, इन्हे शापके कारण पृथ्वीमे अवतार लेना पड़ा। महाराज शान्तनुने एक बार सत्यवती नामक धीवर कन्यापर मुग्ध होकर उससे विवाह करना चाहा किन्तु उसने शर्त रखी कि मुझसे जो सन्तान हो, वही राज्यपद प्राप्त करे। शान्तनुने यह अस्वीकार कर दिया पर भीष्मने आजीवन ब्रह्मचारी रहनेकी प्रतिज्ञा करके पिताके मनकी बात पूरी की। सत्यवतीसे विचित्रवीर्य और चित्रांगद दो सन्तानें हुईं, इन्हींसे कौरव और पांडव वंश चले। —रा० कु०

शांतिप्रिय द्विवेदी–जन्म १९०६ ई०। हिन्दीके आधुनिक आलोचकों एवं निबन्धलेखकोंमें आपका नाम विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। आप आरम्भमे साहित्यके क्षेत्रमे कवि रूपमें आये। आपकी एक गद्य-काव्यात्मक कृति 'क्षमायाचना' 'प्रभा' नामक पत्रिकामें जनवरी, १९२५ ई० मे प्रकाशित हुई। आपने 'निराला'जीके अनुकरणमें मुक्त छन्दमे भी कुछ कविताएँ लिखीं किन्तु काव्य रचनाकी दिशामें आपका मन ठीक तरहसे न रम सका और शीघ्र ही आपने गद्य पथका अनुसरण किया। आपकी प्रथम आलोचनात्मक कृति, जिसने विद्वज्जनोंको आकर्षित किया, 'हमारे साहित्य निर्माता' नामसे प्रकाशित हुई। इसमे हिन्दीके कुछ वर्त्तमान कवियों और लेखकोंकी प्रवृत्तियोका अच्छा विवेचन किया गया है। आपकी दो अन्य आलोचना-प्रधान पुस्तकें 'साहित्यिकी' तथा 'कवि और काव्य' बहुत लोकप्रिय हुईं। आप आधुनिक साहित्यके इतिहास लेखकके रूपमें भी आते हैं। आपकी 'सामयिकी', 'संचारिणी' तथा 'युग और साहित्य' नामक पुस्तकें आधुनिक साहित्यकी विकासात्मक गतिविधियोंका परिचय कराती हैं। अपनी 'ज्योतिविहग' नामक कृतिमें आपने छायावादके प्रतिनिधि कवि सुमित्रानन्दन पन्तका व्यक्तिपरक मूल्यांकन प्रस्तुत किया है। छायावादके समीक्षकोंमें शान्तिप्रिय दिवेदीका नाम अग्रणी है।

'वृन्त और विकास', 'परिव्राजककी प्रजा' तथा 'धरातल' आपके महत्त्वपूर्ण निबन्धसंग्रह हैं। इन पुस्तकोंमें विविध विषयों पर लिखे गये रचनात्मक कोटिके निबन्ध संकलित हैं। आपकी दो अन्य उल्लेख्य पुस्तकोंमें 'पथचिह्न' एक संस्मरणप्रधान रचना है तथा 'दिगम्बर' (१९५४ ई०) एक औपन्यासिक रेखांकन। शुक्लोत्तर समीक्षाके आत्मव्यंजनाप्रधान आलोचकोंमे आपका नाम विशेष रूपसे लिया जाता है। आप प्रकृतिमे कवि तथा दार्शनिक हैं और प्रवृत्तिसे आलोचक तथा निबन्धकार। कवियों अथवा काव्य-कृतियोंकी आलोचना करते समय आपने अपनी व्यक्तिगत प्रतिक्रियाओंका अंकन अधिक किया है। आपकी भाषा-शैली प्रांजल, परिमार्जित तथा प्रभावोत्पादक है।

कृतियाँ—'जीवन यात्रा' (१९२८ ई०) 'नीरव' (१९२९ ई०), 'हिमानी' (१९३४ ई०) 'हमारे साहित्य निर्माता' (१९३४ ई०), 'कवि और काव्य' (१९३६ ई०), 'साहित्यिकी' (१९३८ ई०), 'संचारिणी' (१९३९ ई०), 'युग और साहित्य' (१९४१ ई०), 'सामयिकी' (१९४४ ई०), 'पथचिह्न' (१९४६ ई०), 'ज्योतिविहग' (१९५१ ई०), 'परिव्राजककी प्रजा' (१९५२ ई०), 'दिगम्बर' (१९५४ ई०), 'संकल्प' (१९५५ ई०), 'आधान' (१९५७ ई०), 'चारिका' (१९५८ ई०), 'वृंत और विकास' (१९५९ ई०), 'समवेत' (१९६० ई०)। —र० भ्र०

शारदाचरण मित्र–जन्म १८४८ ई०। १८७०मे बी० एल० परीक्षा पास करके आप हाई कोर्टके वकील बन गये। वकालतके साथ ही साथ आप 'हावड़ा हितकारी' तथा अन्य कई पत्रोंके सम्पादक भी थे। आप देवनागरी लिपिके बड़े पक्षपाती थे। आप चाहते थे कि समस्त भारतवर्षमे उसीका प्रचार हो। इसी उद्देश्यसे आपके सभापतित्वमे 'एक लिपि विस्तार परिषद्' नामक सभा स्थापित हुई थी। उक्त परिषद् द्वारा आपने 'देवनागर' नामक एक मासिक पत्र निकलवाया था, जिसमे भारतकी भिन्न-भिन्न भाषाओंके लेख देवनागरी लिपिमे निकला करते थे। —सं०

शिखंडी–भीष्म द्वारा अपहृता काशिराजकी ज्येष्ठ पुत्री अम्बाका दूसरा अवतार शिखण्डीके रूपमे हुआ था। प्रतिशोधकी भावनासे उसने शंकरकी तपस्याके अनन्तर वरदान पाकर महाराज द्रुपदके यहाँ जन्म लिया। भीष्म और शिखण्डीसम्बन्धी यह कथा वस्तुतः 'महाभारत'मे विस्तार से वर्णित है। भीष्मका शौर्य और ब्रह्मचर्य इस दिशामें एक प्रमाण बन गया है तथा शिखण्डी वस्तुतः उस प्रमाण की पुष्टिका एक उदाहरण। शिखण्डीसम्बन्धी यह कथानक वस्तुतः आगे चलकर भीष्मके शौर्य और उनकी दृढ़-प्रतिज्ञताके सम्मुख समाप्तप्राय हो गया। भीष्मसम्बन्धी उल्लेख अनेक काव्योंमें हुए हैं किन्तु शिखण्डीका नाम मात्र ही लिया जाता है। —यो० प्र० सिं०

शिव कवि १—ये देवतहाके (जिला गोंडा) निवासी असेलाके बन्दीजन थे। असोथर (जिला फतेहपुर) के शम्भु कवि इनके काव्य-गुरु थे। देवतहाके तालुकेदार जगतसिंहके ये काव्य-शास्त्रके शिक्षक रहे। इसके अतिरिक्त शिव कवि बाँदाके जुल्फकार अली खाँ और ग्वालियरके दौलतराव सिंधियाके आश्रयमें रहे। शिव कविने पहलेके आश्रयमें 'पिंगल छन्दोवद्ध' की रचना की और दूसरेके आश्रयमें 'वाग्विलास' की। इनको अपने जीवनमें बहुत कटु अनुभव हुआ था और इन्होंने रीतिकालके कवियोंकी दयनीय स्थितिका वर्णन भी किया है—"काहूके न धन्धनके निज पेट धन्धनके, दौलती मदन्धनके, किंग जाइवे परे।" इनका समय १८ वीं शताब्दीके अन्त तथा १९वीं शताब्दीके आरम्भमें मानना चाहिये। —स०

शिव कवि २—'मिश्रबन्धु विनोद' में एक शिव कविकी चर्चा है, जिन्होंने १९४३ ई० के आसपास 'रसिक विलास' तथा 'अलंकार भूषण'की रचना की थी। यहींसे अन्य इतिहास ग्रन्थोंमें इस कविका परिचय दिया गया है। इससे अधिक किसीने इस कविपर प्रकाश नहीं डाला है। —स०

शिवकुमार सिंह (ठाकुर)—जन्म सन् १८७८ ई०। काशीके निवासी थे। आप डिप्टी इंस्पेक्टर आफ स्कूल्स थे। आपने सन् १९०६ ई० के लगभग हिन्दीमें कई ग्रन्थोंकी रचना की। ये बहुत उत्साही लेखक थे। सन् १८९५ ई०में, जब यह छात्रावस्थामें ही थे, इन्होंने श्यामसुन्दर दास आदिके सहयोगसे काशी नगरी प्रचारिणी सभाकी स्थापना की थी। इस सभाके जन्मदाताके रूपमें इनका महत्त्व है। इनके समयमें हिन्दी भाषा और लिपिका प्रचार बहुत कम था और उसके प्रसारके लिए आन्दोलन हो रहे थे। इन्होंने उस आन्दोलनमें योग दिया और सभा-स्थापनाकी योजना बनाकर उसे कार्यान्वित किया। —प्र० ना० ट०

शिवनंदन सहाय—जन्म १८६० ई० आरा (बिहार) के निकट। प्रारम्भिक शिक्षा फारसीकी हुई। बादमें बाँकीपुर जाकर अंग्रेजीका अध्ययन किया। फिर वहीं जजीमें क्लर्क और अनुवादकका कार्य करने लगे। साहित्य-सृजनकी प्रेरणा प्रधानतः अम्बिकादत्त व्याससे मिली। गद्य और पद्यमें अनेक पुस्तकें लिखीं, जिनमें 'दयानन्दमतमूलोच्छेद', 'विचित्र संग्रह', 'सुदामा नाटक', 'कविता कुसुम', 'कृष्ण और सुदामा' विशेष उल्लेखनीय है। इनके पुत्र ब्रजनन्दन सहाय भी अच्छे लेखक हुए। —स०

शिवनाथ—ये बुन्देलखण्डमें १७०३ ई०के आसपास हुए हैं। इनको छत्रसालके पुत्र जगतसिंह बुन्देलाका आश्रय प्राप्त था। 'रसरंजन' नामक इनका एक ग्रन्थ रसविषयपर मिलता है। 'दिग्विजय भूषण'में आश्रयदाताकी प्रशंसामें इनका एक छन्द मिलता है। —सं०

शिवनाथ (द्विवेदी)—ये कुरसी गाँव (जिला बाराबंकी)के रहने वाले थे। पवायाँ (जिला शाहजहाँपुर)के राजा कुशलसिंहके आश्रयमें इन्होंने रस-नायिका-भेदविषयक 'रसवृष्टि' नामक ग्रन्थ लिखा था। कुशलसिंहकी मृत्यु १७७४ ई० हुई, अतः इसका रचनाकाल मिश्रबन्धुओंने १७७१ ई०के लगभग माना है। यह ग्रन्थ सोलह रहस्योंमें विभक्त है। प्रथममें तो केवल मंगलाचरण, कवि तथा आश्रयदाताका वंश परिचय है। दूसरेमें नायक-भेद और तीसरेसे पाँचवें तक नायिका-भेद, छठेमें मान, सातवेंमें मानमोचन, आठवेंमें सखी-भेद तथा सोलह शृंगार, नवेंमें दर्शन, दसवेंमें मिलन, ग्यारहवेंमें पुनः अष्ट-नायिका-भेद, बारहवेंमें विप्रलम्भ शृंगार, तेरहवेंमें हाव, चौदहवेंमें नख-शिख, पन्द्रहवेंमें वस्त्राभूषण और सोलहवेंमें नव-रसोंका वर्णन किया गया है। इस ग्रन्थमें 'रसिक प्रिया' और 'रस प्रबोध'का अनुसरण है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० बृ० इ० (भा० ६)।]—सं०

शिवनारायण—जन्म चँदवार गाँव (जिला बलिया)। रचनाकाल सन् १७०० से १७८० ई०के बीच। शिवनारायणी सम्प्रदायके प्रवर्तक और दुःखहरन दासके शिष्य थे। सम्प्रदायके लोग दुःखहरनको दुःखहर्ता भगवान् मानते हैं और उनकी भौतिक सत्ता स्वीकार नहीं करते। निर्गुण-सन्त-परम्परामें मलूकदासके शिष्य 'पुहुपावती'के रचयिता गाजीपुरनिवासी दुःखहरनका उल्लेख मिलता है। सम्भवतः यही दुःखहरन शिवनारायण साहबके गुरु थे। इनकी जन्म और मृत्यु तिथियाँ निश्चित नहीं हैं। इनकी दो कृतियों—'गुरुन्यास' और 'सन्त सुन्दर'—की रचना क्रमशः सन् १७३४ ई० (संवत् १७९१) और सन् १७५४ ई० में हुई थी। ये जातिके नरौनी राजपूत थे। इन्होंने अपनी कृतियोंमें मुहम्मदशाह और अहमदशाहका उल्लेख किया है। प्रसिद्ध है कि मुहम्मदशाह इनसे प्रभावित था और उसकी आज्ञा लेकर इन्होंने सम्प्रदाय प्रवर्तन किया था। रामनाथ, सदाशिव, लखनराम, लेखराज और जीवराज इनके प्रसिद्ध शिष्य हैं।

शिवनारायण साहबके नामसे अनेक रचनाएँ प्रसिद्ध हैं, जिनमें 'गुरुन्यास', 'सन्त उपदेश', 'सन्त आखरी', 'सन्त सुन्दर', 'सन्त बेलास', 'सन्त परवाना' और 'शब्दावली' प्रधान और प्रामाणिक कृतियाँ हैं। इनमें 'सन्त उपदेश' और 'सन्तपरवाना'के अतिरिक्त शेष सभी प्रकाशित हो चुकी हैं। इनकी कृतियोंमें ज्ञान, योग, भक्ति और सामान्य नैतिक उपदेशोंका प्रतिपादन किया गया है। इनकी मान्यताएँ शास्त्रीय नहीं हैं और सामान्य जनताको दृष्टिमें रखकर अत्यन्त सरल शब्दावलीमें व्यक्त की गयी हैं। अवतारवादकी ओर इनका झुकाव स्पष्ट लक्षित होता है। इन्होंने भौतिक संसारको काल-कर्मके बन्धनसे युक्त माना है और 'सन्तदेश'के रूपमें दिव्य और सूक्ष्म लोककी कल्पना की है। 'सन्तदेश'की भावना मनकी निर्विकल्प अवस्थासे प्रारम्भ होकर क्रमशः स्थूल होती हुई 'स्वर्ग'का पर्याय बन गयी है और आजकल तो इस सम्प्रदायके लोग सन्तोंकी समाधि-भूमिको 'सन्तदेश' कहते हैं।

इनकी 'शब्दावली', जो गेय पदोंका संग्रह है, भोजपुरीमें लिखी गयी है और दोहे-चौपाईमें रचित अन्य कृतियाँ अवधी में हैं। काव्य-दृष्टिसे इनकी रचनाएँ साधारण हैं। गेय पदोंमें रचित और लोक-भावनासे भावित होनेके कारण एक मात्र 'शब्दावली' ही सरस हो सकी है। इनका महत्त्व सरल और बोधगम्य भाषामें उच्च नैतिक विचारोंको जन-जीवनमें प्रचारित करनेमें है।

[सहायक ग्रन्थ—शिवनारायणी सम्प्रदाय और उसका

हिन्दी काव्य : रामचन्द्र तिवारी(अप्रकाशित); उत्तरी भारतकी सन्त परम्परा : परशुराम चतुर्वेदी ।] —रा० चं० ति०

शिवनारायण मिश्र–जीवन-काल सन् १८९२ से १९२२ ई० के बीच। आप कानपुरनिवासी प्रतिष्ठित वैद्य थे। मिश्रजी गणेश शंकर विद्यार्थीके अभिन्न मित्र थे। आप हीके सहयोगसे 'प्रताप' अखबार निकाला गया था। आप राष्ट्रके हितके लिए कई बार जेल गये। हिन्दी और देश सेवामें समूचा जीवन लगा दिया। प्रकाश पुस्तकालयके नामसे देश हितके लिए राष्ट्रीय पुस्तकें प्रकाशित करते थे। यह पुस्तकालय 'प्रताप' कार्यालयके ही अन्तर्गत था, बादमें पुस्तकालयको अलग कर दिया गया। मिश्रजी बड़े ही विनम्र और कार्यकुशल नेता थे। आपने हिन्दीकी बहुत बड़ी सेवा की है। —स०

शिवपूजनसहाय–जन्म १८९३ ई० में। ग्राम उनवास, सब डिवीजन बक्सर, जिला शाहाबाद (बिहार)। मृत्यु १९६३ ई० में। १९१२ ई० में आरा नगरके एक हाईस्कूलसे मैट्रिककी परीक्षा उत्तीर्ण की। सामाजिक जीवनका शुभारम्भ हिन्दी शिक्षकके रूपमें किया और साहित्य क्षेत्रमें पत्र-पत्रिकाओंके माध्यमसे आये। आपके आरम्भिक लेख तथा कहानियाँ 'शिक्षा', 'लक्ष्मी', 'मनोरंजन' तथा 'पाटलिपुत्र' आदि पत्रिकाओंमे प्रकाशित हैं।

आपकी सेवाएँ हिन्दी पत्रकारिताके क्षेत्रमें उल्लेख्य हैं। १९२१-२२ ई० के आसपास आपने आरासे निकलनेवाले 'मारवाड़ी सुधार' नामक मासिकका सम्पादन किया। १९२३ ई० मे कलकत्ता के 'मतवाला मण्डल' के सदस्य हुए और कुछ समय के लिए 'आदर्श', 'उपन्यास तरंग', तथा 'समन्वय' आदि पत्रोंमें सम्पादन कार्य किया। १९२५ ई० में कुछ मासके लिए 'माधुरी' के सम्पादकीय विभागको अपनी सेवाएँ अर्पित कीं। १९३० ई० में सुलतानगंज-भागलपुरमे प्रकाशित होनेवाली 'गंगा' नामक मासिक पत्रिकाके सम्पादक-मण्डलके सदस्य हुए। एक वर्ष के उपरान्त काशीमें रहकर साहित्यिक पाक्षिक 'जागरण' का सम्पादन किया। आप काशीमे कई वर्ष तक रहे। १९३४ ई० मे लहेरियासराय (दरभंगा) जाकर मासिकपत्र 'बालक' का सम्पादन किया। स्वतंत्रताके बाद आप बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्के सचालक तथा बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी ओरसे प्रकाशित 'साहित्य' नामक शोध-समीक्षाप्रधान त्रैमासिक पत्रके सम्पादक थे।

आपकी लिखी हुई पुस्तकें विभिन्न विषयों से सम्बद्ध हैं तथा उनकी विधाएँ भी भिन्न भिन्न हैं। 'बिहारका बिहार' बिहार प्रान्तका भौगोलिक एवं ऐतिहासिक वर्णन प्रस्तुत करती है। 'विभूति' में कहानियाँ संकलित हैं। 'देहाती दुनिया' (१९२५ ई०) प्रयोगात्मक चरित्रप्रधान औपन्यासिक कृति है। इसकी पहली पाण्डुलिपि लखनऊके हिन्दू-मुसलिम दंगेमें नष्ट हो गयी थी। इसका शिवनपूज सहायजीको बहुत दुःख था। उन्होंने दुबारा वही पुस्तक फिर लिखकर प्रकाशित करायी किन्तु उससे आपको पूरा संतोष नहीं हुआ। आप कहा करते थे कि पहलेकी लिखी हुई चीज कुछ और ही थी। 'ग्राम सुधार' तथा 'अन्नपूर्णाके मन्दिरमें' नामक दो पुस्तकें ग्रामोद्धारसम्बन्धी लेखोंके संग्रह हैं। इनके अतिरिक्त 'दो घड़ी' एक हास्यरसात्मक कृति है, 'माँ के सपूत' बालोपयगी तथा 'अर्जुन' और 'भीष्म'नामक दो पुस्तकें 'महाभारत'के दो पात्रोंकी जीवनी के रूपमें लिखी गयी है। शिवपूजन सहायने अनेक पुस्तकोंका सम्पादन भी किया है, जिनमें 'राजेन्द्र अभिनन्दन ग्रन्थ' विशेष रूप से उल्लेख्य है। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् (पटना) ने इनकी विभिन्न रचनाओंको अब तक चार खंडोंमें 'शिवपूजन रचनावली'के नामसे प्रकाशित किया है।

शिवपूजन सहायका हिन्दीके गद्य साहित्यमें एक विशिष्ट स्थान है। इनकी भाषा बड़ी सहज रही है। इन्होंने उर्दू शब्दोंका प्रयोग धड़ल्ले से किया है और प्रचलित मुहावरोंके सन्तुलित उपयोग द्वारा लोकरुचिका स्पर्श करनेकी चेष्टा की है। कहीं-कहीं अलंकारणप्रधान अनुप्रासबहुला भाषा का भी व्यवहार किया है और गद्यमें पद्यकी सी छटा उत्पन्न करनेकी चेष्टा की है। भाषाके इस पद्यात्मक स्वरूपके बावजूद इनके गद्य लेखन में गाम्भीर्यका अभाव नहीं है। शैली ओज-गुण सम्पन्न है और यत्र-तत्र उसमें वक्तृत्व कलाकी विशेषताएँ उपलब्ध होती हैं।

शिवपूजन सहायका समस्त जीवन हिन्दी-सेवाकी कहानी है। इन्होंने अपने जीवनका अधिकांश भाग हिन्दी-भाषा की उन्नति एवं उसके प्रचार-प्रसारमे व्यतीत किया है। विहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन तथा बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद् नामक हिन्दीकी दो प्रसिद्ध संस्थाएँ इनकी कीर्ति-कथाके अमूल्य स्मारकके रूपमे हैं। इनके संस्मरणमें बिहार-मे 'स्मृति ग्रन्थ' भी प्रकाशित हुआ है।

[सहायक ग्रन्थ—शिवपूजन रचनावली(चार खण्डों में), बि० रा० भा० परिषद्, पटना।] —र० भ०

शिवप्रसाद–ये दनिया (जिला सुल्तानपुर) के रहनेवाले थे। इन्होंने 'रसभूषण' नामक ग्रन्थ १८११ ई०में लिखा। इन्होंने याकूब खाँकी इसी नामकी पुस्तककी शैलीका अनुकरण कर रस तथा अलंकारका वर्णन एक साथ किया है। लक्षणकी दृष्टिसे इनका ग्रन्थ साधारण है पर उदाहरणके छन्द भावपूर्ण हैं।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० बृ० इ० (भा० ६)।]—सं०

शिवप्रसाद (सितारे हिंद)–दे० 'राजा शिवप्रसाद (सितारे हिन्द)'।

शिवप्रसाद गुप्त–जन्म सन् १८८३ ई० (आषाढ कृष्ण ८, सं० १९४० वि०) काशीमें। मृत्यु सन् १९४४ ई० (वैशाख शुक्ल ?, सं० २००१ वि०) काशीमें। गुप्तजीने अपने जीवन वृत्तान्तमे लिखा है कि "मेरे जन्मके पूर्व मेरे माता-पिताकी कई सन्तानें छीज चुकी थी। मेरे पूज्यपाद पिताजी की अवस्था भी ३८ वर्ष की हो चुकी थी। अपने कई पुत्र पुत्रियों की अकाल मृत्युके कारण पूजनीया माताजी घर छोड़कर स्थानीय चौकाघाटपर राजा शिवलाल दूबेजीके बगीचेमे वहाँके प्रबन्धककी फूसकी कुटियामे जा बसीं थीं। उसी कुटियामें मेरा जन्म हुआ था। जिलानेके लिए मुझे एक नाल काटने वाली चमारिनके हाथ ७ कौड़ीमें बेचा गया था और फिर उसे धन देकर मै खरीदा गया। यह कार्य उस समयके ख्यालके मुताबिक किया गया था। मुझे

जिलाने तथा स्वस्थ रखनेके लिए मेरे माता पिताने नाना प्रकारके कष्ट उठाये व वन-वनकी खाक छान डाली।"

स्वनामधन्य श्री शिवप्रसाद गुप्तका जन्म बहुत बड़े धनाढ्य घरमे हुआ था। आप हिन्दीके बड़े भक्त थे और अपनी राजनीतिक मान्यताओके अनुसार आपने हिन्दीको उन्नत करनेमे अपना प्रचुर धन व्यय किया—प्रचुर भौतिक साधनोंका भरपूर उपयोग किया। आपने बी० ए० तक शिक्षा प्राप्त की थी किन्तु अस्वस्थताके कारण परीक्षा नहीं दे सके थे। आपने ३० अप्रैल, १९१४को विदेश की पहली यात्रा की थी। उस यात्रामे घरवालोने प० सुरेन्द्र नारायण शर्मा और विनयकुमार सरकारको आपके साथ कर दिया था। आपका इरादा ६ माससे पृथ्वी प्रदक्षिणा करके घर वापस लौट आनेका था किन्तु २१ मासमे वापस लौटे। मिस्र, इग्लैण्ड, आयरलैण्ड, अमेरिका, जापान, कोरिया, चीन, सिगापुर आदि स्थानोका भ्रमण करके लौटे थे। इस यात्रामे आपको बड़ी-बड़ी कठिनाइयोका सामना करना पड़ा था और सिगापुरमे जेलमे भी रहना पड़ा था। आपने 'पृथ्वी प्रदक्षिणा'मे इसका वर्णन भी किया है क्योकि आपके इंग्लेण्ड पहुचनेके तीन महीने बाद ही प्रथम जर्मन युद्ध प्रारम्भ हो गया था, इसलिए जापान, सिगापुर आदि देशोमे भारतीयोकी भारी दुर्गति की जा रही थी।

जिस समय महामना प० मदनमोहन मालवीयने हिन्दू विश्वविद्यालयकी स्थापनाका उपक्रम किया, उस समय गुप्तजीने मालवीयजीके काममे पूरा हाथ बंटाया और मालवीयजीके साथ बगाल, विहार, सयुक्तप्रान्त, पजाब, राजपूतानेका भ्रमण किया। इस उपक्रमके तीन मुख्य उद्देश्य थे—(१) हर प्रकारकी ऊची-से-ऊची शिक्षा मातृभाषा द्वारा देना। (२) साधारण शिक्षाके साथ-साथ कला-कौशल तथा उद्योगकी शिक्षा देना। (३) सरकारी सहायतासे बचे रहना। गुप्तजीको ये उद्देश्य बहुत पसन्द आये, इसलिए उन्होंने इस कार्यमे पूरा योग दिया। आपने दूसरी बार सन् १९२९मे फिर विदेश यात्रा की थी। एक बार आप पृथ्वी प्रदक्षिणा कर आये थे, इसलिए इस बार की यात्रामे केवल इग्लैण्ड आदि एक-दो जगहोमे गये थे। पहली विदेश यात्राके बाद भारत लौटनेपर आपने सन् १९१६ ई०मे हिन्दी लेखकोके प्रोत्साहनार्थ और हिन्दीसाहित्यकी अभिवृद्धिके लिए उत्तमोत्तम ग्रन्थोको प्रकाशित करनेके अभिप्रायसे ज्ञानमण्ल की स्थापना की और ज्ञानमण्डल द्वारा प्रकाशन तथा मुद्रणका काम सन् १९१९ ई० मे प्रारम्भ हो गया। समारम्भमे ही आपने यह अनुभव किया था कि हिन्दीमे अनेक विषयोके उच्चकोटिके ग्रन्थोका सर्वथा अभाव है, इसलिए उसकी पूर्ति करनेके निमित्त एक प्रकाशनसंस्था खोलना नितान्त आवश्यक है।

गुप्तजी हिन्दीके कट्टर हिमायती तो थे ही, राजनीतिक आन्दोलनोमे भी काफी दिलचस्पी लेते थे। वह पहली बार सन् १९०४ ई० मे बम्बईवाली कांग्रेसमे प्रतिनिधि बनकर सम्मिलित हुए थे। सन् १९०५ ई० में काशीमे कांग्रेसका वार्षिक अधिवेशन हुआ, जिसमे पजाबकेशरी लाला लाजपतराय, लोकमान्य बालगंगाधर तिलक तथा विपिनचन्द्र पाल आदि गण्यमान्य नेता आये थे। इन लोगोंके राजनीतिक विचारोंका प्रभाव गुप्तजी पर बहुत गहरा पड़ा और वह दिन-दिन दृढ़ होता गया। कांग्रेसमें पदार्पण करनेके कुछ ही दिन बाद महात्मा गान्धीसे इनका परिचय हुआ। कांग्रेसकी अनुकूल नीति तथा समर्थनके लिए सन् १९२० ई० मे आपने ज्ञानमण्डलसे दैनिक 'आज' निकलवाना शुरू किया। पर्याप्त व्यय करके इसके लिए अमेरिका आदिसे सीधे समाचार मंगानेका प्रयत्न किया गया, जिसके परिणामस्वरूप हिन्दी दैनिक 'आज' मे अंग्रेजी समाचार पत्रोमे भी पहले समाचार छपने लगे। उस समय हिन्दी पाठक 'आज'की विशेषताओंको नहीं समझ सके, इसलिए ग्राहक संख्या पर्याप्त न होनेके कारण 'आज'में प्रति वर्ष लाखो रुपयेकी हानि होने लगी और आप उसकी सहर्ष पूर्ति करने लगे। 'आज'के प्रधान सम्पादक पं० बाबूराव विष्णु पराड़कर जैसे प्रकाण्ड पण्डित हुए और श्रीप्रकाशजी प्रधान व्यवस्थापक। भाषासौष्ठव और निर्भीक राष्ट्रीय नीतिके प्रतिपादनके कारण 'आज'की प्रतिष्ठा उत्तरोत्तर बढ़ती गयी। ज्ञानमण्डलका स्थान भी कार्य इसके उच्च कोटिके प्रकाशनके कारण हिन्दीसेवी संस्थाओमे बहुत ऊंचा है।

राष्ट्रीय आन्दोलनके समय जब अंग्रेजी सरकारने कुपित होकर सन् १९३० ई० मे भारतके सभी राष्ट्रीय विचारवाले समाचारपत्रोको बन्द कर दिया, तब ज्ञानमण्डलने साइक्लोस्टाइल पर 'रणभेरी' निकलवाना शुरू किया। कांग्रेस आन्दोलनके समाचार 'रणभेरी'मे प्रकाशित होने लगे और उसका अक हिन्दी भाषी क्षेत्रोमे एक छोरसे दूसरे छोर तक पहुचाने का प्रबन्ध किया गया। आचार्य नरेन्द्रदेव जैसे उद्भट विद्वान् और देशभक्त भी 'आज' परिवारके स्तम्भ थे। 'रणभेरी' निकालनेमे ज्ञानमण्डलको काफी क्षति उठानी पड़ी और अनेक तरहकी आपदाओका सामना करना पड़ा। आगे चलकर ३० जुलाई, सन् १९३१ ई० से ज्ञानमण्डलने 'टु डे' नामक अंग्रेजी दैनिक डाक्टर सम्पूर्णानन्दके सम्पादकत्वमे निकालना शुरू किया किन्तु अंग्रेजी पत्रके लिए काशी उपयुक्त स्थान न होनेके कारण २१ अक्टूबर, सन् १९३१ ई० के बाद 'टु डे'का प्रकाशन बन्द हो गया। ज्ञानमण्डलने 'मर्यादा' और 'स्वार्थ' नामक दो उच्च कोटिके मासिक पत्र निकाले थे, जिनका प्रकाशन कुछ दिनों बाद बन्द कर देना पड़ा। यहाँसे १८ जुलाई, सन् १९३८ ई० से साप्ताहिक 'आज' निकाला गया, जिसका नाम १९ जुलाई, १९४६ ई०मे 'समाज' रखा गया। इस 'समाज'का सम्पादन आचार्य नरेन्द्र देवजी करते थे। कुछ दिनो बाद कई अनिवार्य कारणोंसे इसका प्रकाशन ज्ञानमण्डलको बन्द कर देना पड़ा।

गुप्तजीकी एक बहुत बड़ी देन काशी विद्यापीठ है। उन्होने १० लाख रुपयेके दानसे सन् १९२१ ई० मे काशी विद्यपीठकी स्थापना की। गुप्तजीने अपने स्वर्गीय छोटे भाई श्रीहरप्रसादके नामसे हरप्रसाद शिक्षा निधिकी स्थापना करके काशी विद्यापीठका खर्च उस निधिके जिम्मे कर दिया। उन्होने अपने इस कार्यसे अपने छोटे भाईको अमर कर दिया। जब गान्धीजीने अंग्रेजी स्कूलों और कालेजोंके बहिष्कारकी आवाज उठायी तथा स्वदेशी शिक्षा पर बल

दिया, उस समय गुप्तजीके दान, प्रयास और साधनसे इस विद्यापीठकी स्थापना हुई। इस संस्थाका हिन्दी प्रगति और राष्ट्रीय आन्दोलनमें बहुत बडा हाथ रहा है और अनेक नेता तथा अच्छे प्रशासक इस संस्थाने देशको दिये हैं। काशी विद्यापीठ आज भी उत्तरोत्तर वृद्धिपर है और विश्वविद्यालय बन चुका है। राष्ट्रीय आन्दोलनमें इस संस्थाकी सेवाएँ सदा स्मरणीय रहेंगी।

गुप्तजी बड़े ही स्वतन्त्र और निर्भीक विचारके थे। आप हर विषयमें बिलकुल अनोखी और नयी बात सोचा करते थे। उसीके परिणामस्वरूप आपने भारत माता मन्दिर की भी कल्पना की। उन्होंने सन् १९३६ ई० मे इसकी स्थापना की। यह मन्दिर काशीका ही नहीं, समूचे भारतका एक अलौकिक दर्शनीय स्थान है। यह गुप्तजीको अनूठी सूझकी देन है। यह मन्दिर तीस-पैंतीस वर्षोंमे बनकर तैयार हुआ था।

गुप्तजी देशभक्त और हिन्दी-प्रेमी तो थे ही, हिन्दीके उच्च कोटिके लेखक और अच्छे वक्ता भी थे। उनकी भाषा प्रांजल और सौष्ठवपूर्ण थी। 'आज' मे वर्षोंतक उनके फुटकल लेख राजनीतिक तथा सामाजिक विषयोंपर छपते रहते थे। आपने 'पृथ्वी प्रदक्षिणा' (१९२४) नामक एक बृहत् ग्रन्थ लिखा है। इस ग्रन्थका हिन्दीके यात्रा साहित्यमें बहुत ऊंचा स्थान है। कहा जा सकता है कि यात्रा-सम्बन्धी ऐसा महाग्रन्थ हिन्दीमे न तो पहले ही कोई निकला था और न उसके बाद ही। इसमें बहुतसे रंगीन चित्र तथा सैकडों सादे चित्र दिये गये हैं।

एक बार गुप्तजीने अपनी मोटरपर हिन्दी अंकोमे नम्बर लगवाया और यह कहा कि भारतमे मोटरोंपर हिन्दीमे नम्बर रहना चाहिये, अंग्रेजीमें नहीं। परिणामस्वरूप अंग्रेज क्रुद्ध हो उठे। आपपर जोरदार मुकदमा चला। काफी रुपये खर्च हुए पर आप हिन्दी-प्रेमपर अडिग रहे। गुप्तजी कांग्रेसके प्रमुख नेता थे। कई वर्षोंतक आप कांग्रेसके कोषाध्यक्ष भी थे। अनेक बार जेल गये। आप देश-सेवा, दीन-दुखियोंके पालन और विद्यार्थियोंकी सहायताके दृढव्रती थे। क्यों न हो, राजमहलमे रहनेवाली माताने इन्हे फूसकी कुटियामे उत्पन्न किया था। उसीका यह फल था कि आपको झोपडियोंमे रहनेवाले लाल बहुत प्रिय थे। दीनोंको अन्नदान, छात्रोंको छात्रवृत्ति, विद्वानोंको आर्थिक सहायता देनेमे आप सदा तत्पर रहते थे। वह सदा गुप्त-दान किया करते थे। वे नहीं चाहते थे कि कहीं भी दानके लिए उनका नाम प्रकाशित हो। इससे उन्हें बहुत बड़ी चिढ़ थी। जीवनमें उन्होने बहुत दान किये पर एक भी जगह अपना नाम प्रकाशित नहीं होने दिया। हिन्दी-साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय आदि अनेक संस्थाओंको आपने पर्याप्त धन दिया किन्तु किसी प्रकार अपना नाम प्रकाशित नहीं होने दिया।

गुप्तजीने बहुतसे प्रमुख विद्वानोंको आर्थिक सहायता देकर निःस्वार्थ भावसे ऐसे ग्रन्थ लिखवाये, जिनका हिन्दी में बहुत ऊँचा स्थान है। अन्नदान, वस्त्रदान, द्रव्यदान गुप्तजीका नित्यका काम था। आप अपने जीवन-कालमें दानवीरके नामसे विख्यात थे। हिन्दीके इतिहासमें आपकी सेवाएँ चिरस्मरणीय रहेंगी। गुप्तजी देशके बेजोड़ रत्न थे। इसीसे देशकी जनताने आपको 'राष्ट्ररत्न' की उपाधिसे विभूषित किया था।

गुप्तजीके विद्यानुरागका ही यह परिणाम था कि उन्होंने माया-मोह छोडकर अपने उत्तराधिकारी लाडले दौहित्र सत्येन्द्रकुमार गुप्तको विद्याध्ययनके लिए सन् १९३६ ई० मे इंग्लैण्ड भेज दिया था। सत्येन्द्रकुमारजी विदेशसे सन् १९३९ ई० में भारत लौटे थे। गुप्तजीने शिक्षा दिलानेके लिए इतने लम्बे अरसेतक नातीको अपनेसे पृथक् रखकर वियोगका कष्ट सहन किया, पर अपने कर्त्तव्य-पालनमें किसी तरहकी त्रुटि नहीं होने दी। —श्या० द०

शिवरत्न शुक्ल 'सिरस'–जन्म सन् १८७९ ई०, बछरावाँ, जिला रायबरेली (उत्तर प्रदेश) मे। ये राम काव्य-परम्परा के कवि हैं। ब्रजभाषा, अवधी तथा खड़ीबोलीमे आपने कविताएं लिखी हैं। आपकी कृतियाँ हैं—'श्री रामावतार,' 'आर्य-सनातनी संवाद', 'प्रभुचरित्र' (१९०९ ई०), 'परिहास प्रमोद' (१९३० ई०), 'भरतभक्ति महाकाव्य' (१९३२ ई०), 'सिरस नीति सतसई' (१९३६ ई०), 'श्री रामतिलकोत्सव महाकाव्य' (१९५१ ई०)। शैली प्रसादगुण-सम्पन्न है। स्पष्ट भाषामे सामाजिक विरूपतापर मार्मिक व्यंग्य इन्होंने किये हैं। रामचरित्र जैसे बहुचर्चित विषयमें भी आपने नूतन उद्भावनाएँ की हैं। नीति सतसई जीवनके नये सत्योंसे भरी पड़ी है। आधुनिक अवधी काव्यके आप एक समर्थ कवि हैं। —स० ना० त्रि०

शिवराज-भूषण–'शिवराज भूषण'के रचयिता भूषण (सन् १६१३-१७१५ ई०) हैं। इन्होंने इसका रचनाकाल २९ अप्रैल, १६७३ ई० (सं० १७३०, ज्येष्ठ बदी १३ रविवार) दिया है (छन्द ३८२)। गणनाके द्वारा खरी उतरनेके कारण यह तिथि ठीक ठहरती है। पाठान्तरके आधारपर मिश्रबन्धुओंने इसकी रचना-तिथि सन् १६६३ ई० (कार्तिक सुदी १३ बुधवार, सं० १७२०—छन्द ३८०) मानी है और लाहौरवाली 'भूषण-ग्रन्थावली'में श्रावण सुदी १३ बुधवार, सं० १७३० मानी गयी है। (छन्द ३८२)। ये दोनों तिथियाँ गणनाकी कसौटी पर खरी नहीं उतरतीं। भूषण ने 'शिवराज-भूषण'की रचनाके विषयमे लिखा है : "सिव-चरित्र लखि यों भयो, कवि भूषनके चित्त। भाँति-भाँति भूषननि सों, भूषित करौं कवित्त॥ सुकविन हूँ की कछु कृपा, समुझि कविनको पन्थ। भूषन भूषनमय करत, सिवभूषन सुभ ग्रन्थ॥" (छन्द २९-३०)। इन पंक्तियोंसे स्पष्ट है कि भूषणने शिवाजीके चरित्र तथा सुकवियोंकी कृपासे यह अलंकार-ग्रन्थ लिखनेकी प्रेरणा प्राप्त की थी। इसमे मंगलाचरण, राजवंश, रायगढ तथा कवि-वंश-वर्णनके अनन्तर अलंकारोंके लक्षण और उदाहरण दिये हैं।

'शिवराज-भूषण'का प्रकाशन 'भूषण-ग्रन्थावली'मे कई स्थानोंसे हो चुका है, जिनमेसे प्रमुख ये हैं—सम्पादक-विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, साहित्य-सेवक-कार्यालय, काशी, द्वितीयावृत्ति, १९३६ ई०, सम्पादक-श्यामबिहारी मिश्र और शुकदेव बिहारी मिश्र, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पंचम संशोधित संस्करण, १९३९ ई०, सम्पादक-राजना-

रायण शर्मा, हिन्दी-भवन, लाहौर, सम्पादक-ब्रजरत्नदास, रामनारायणलाल, इलाहाबाद, प्रथम बार, १९३० ई०।

इस ग्रन्थमें अर्थालंकारके अनन्तर शब्दालंकार हैं और उसके बाद संकरकी चर्चा है। कुल मिलाकर १०५ अलंकारोंकी संख्या दी गयी है पर इसमें अलंकारोंके भेद भी गिना दिये गये हैं। कविके अनुसार ९९ अर्थालंकार हैं, ४ शब्दालंकार तथा १ चित्र और १ संकर। अलंकारो की नामावली इस ग्रन्थका सबसे कमजोर अंश है। भूषण ने अलंकारोंमें उपमाको उत्तम मानकर सर्व प्रथम उसकी चर्चा की है। संस्कृत आचार्योंने भी प्रायः इसी अलंकारसे अर्थालंकारकी चर्चा की है। भूषणने स्वभावोक्ति तथा जाति, दोनों नामोंको स्वभावोक्तिके लिए स्वीकार कर लिया है। मतिरामके लक्षणोका भूषणपर अत्यधिक प्रभाव है, कुछ लक्षण तो ज्योंके त्यों ले लिये गये है।

इनके अधिकांश अलंकारोंके लक्षण और उदाहरण अस्पष्ट हैं, कहीं-कहीं दोषपूर्ण भी हैं। संस्कृत ग्रन्थोंमें जयदेवके 'चन्द्रालोक'का भूषणपर सर्वाधिक प्रभाव माना जा सकता है। 'चन्द्रालोक'के प्रतीपोपमा, ललितोपमा और भाविक-छवि जैसे अलंकारोंकी 'शिवराज-भूषण'मे स्थितिसे यह व्यक्त होता है क्योंकि अन्य समसामयिक ग्रन्थोंमे ये इस रूपमे नहीं हैं। अनुप्रासके दो भेद छेक तथा लाटको लेकर यमक और पुनरुक्तवदाभासके साथ ४ शब्दालंकारकी चर्चा की गयी है। चित्रका लक्षण न देकर केवल कामधेनुका उदाहरण दिया गया है। भूषणने संकरका ठीक स्वरूप नहीं समझा है—"भूषण एक कवित्तमे भूषण होत अनेक।" उदाहरण उन्होने संसृष्टिका दिया है और दोनोका अन्तर भी नहीं समझाया गया है। अर्थालंकारोंको 'शिवराज-भूषण'में 'चन्द्रालोक'के आधारपर लिया गया है, इसी कारण समसामयिक ग्रन्थोंमें पाये जाने वाले ये ११ अलंकार—अल्प, कारकदीपक, गूढोक्ति, प्रतिषेध, मुद्रा, युक्ति, रत्नावली, ललित, विधि, विवृतोक्ति तथा प्रस्तुतांकुर—'चन्द्रालोक'मे न होनेके कारण इसमें भी नहो है।

रीति-ग्रन्थकी दृष्टिसे 'शिवराज भूषण' भले ही साधारण रचना हो पर उसमें अलंकारोके उदाहरणके लिए शिवाजी के जीवनके १६५५ ई०से लेकर २९ अप्रैल, १६७३ ई० तककी प्रमुख घटनाओं, युद्धों एवं शौर्यपूर्ण कार्य-कलापोंकी झाँकी मिल जाती है। यह वीर-रसप्रधान ग्रन्थ है। इसमे युद्धवीर, दयावीर, दानवीर तथा धर्मवीर चारों प्रकारके वीरोंके वर्णन मिलते हैं पर प्रधानता युद्धवीरकी ही है। युद्ध-सामग्रीका भी सुन्दर चित्रण हुआ है। रौद्र, वीभत्स आदि रसोंका भी सफल परिपाक हुआ है। भूषणने गीतिका, दोहा, अमृतध्वनि, छप्पय, मालती, अरसात, किरीट, दुर्मिल, कवित्त, हरिगीतिका आदि छन्दोंका प्रयोग किया है। दोहोंमें अलंकारोंके लक्षण और अन्य छन्दोंमे उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं।

इसमें साहित्यक ब्रजभाषाके प्रचलित रूपका प्रयोग हुआ है। फारसी, अरबी, तुर्की, बुन्देलखण्डी, अन्तर्वेदी आदि भाषाओंके प्रचलित शब्दोंका भी स्वतन्त्रतापूर्वक उपयोग किया गया है। इस प्रकार आचार्यत्वकी दृष्टिसे भूषण 'शिवराज भूषण'में विशेष सफलता नहीं प्राप्त कर सके है पर वीर-रसके चित्रणमें उन्होंने अपनी असाधारण प्रतिभा और काव्य-कौशलका परिचय दिया है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० वी०; हि० अ० सा०; हि० सा०; भूषण-विमर्श: भगीरथ प्रसाद दीक्षित; भूषण-ग्रन्थावलियों की भूमिकाएँ।] —टी० सि० तो०

शिवलाल—रीति परम्पराके शिवलाल डौडिया खेरा (बैसवाडा)के रहने वाले थे। शिवसिंहने इनका समय १७८२ ई०के आसपास माना है। इनकी रचनाएँ नखशिख, षड्ऋतु, नीतिके कवित्त और हास्य रसके छन्द हैं। —सं०

शिव शंभुका चिट्ठा—हिन्दी गद्य-साहित्यमे शिव शम्भु शर्माके चिट्ठोंका ऐतिहासिक महत्त्व है। ये चिट्ठे लार्ड कर्जन (सन् १८९९-१९०५ ई०) के निरंकुश और स्वेच्छाचारितापूर्ण शासनके विरोधमे लिखे गये थे। राष्ट्रकी राजनीतिक चेतनाके सजग प्रहरीके रूपमे 'भारत मित्र' सम्पादक (बालमुकुन्द गुप्त) ने 'शिव शम्भु शर्मा'के कल्पित नाममे लार्ड कर्जनके अहकार पर उग्र, व्यंग्यपूर्ण और सांकेतिक प्रहार करते हुए आठ—'बनाम लार्ड कर्जन', 'श्रीमान्‌का स्वागत', 'वैसरायके कर्तव्य', 'पीछे मत फेकिये', 'आशाका अन्त', 'एक दुराशा', 'विदाई सम्भाषण', 'बंग-विच्छेद'—खुली चिट्ठियाँ लिखी थीं। ये चिट्ठियाँ पूरे एक वर्ष तक (सन् १९०४-१९०५ ई०) 'भारत मित्र' और 'जमाना'मे प्रकाशित होती रहीं। इन्हें हिन्दी-प्रेमी जनता 'शिव शम्भुका चिट्ठा'के रूपमे जानती है। इन चिट्ठोंका देशव्यापी प्रभाव पडा था। बालमुकुन्द गुप्तके मित्र ज्योतीन्द्र नाथ बैनर्जीने इनका अंग्रेजी भाषामें पुस्तकाकार अनुवाद प्रकाशित किया था, जो हाथोहाथ बिक गया। तत्कालीन राजनीतिक चेतनाके सजीव इतिहासके रूपमें, व्यंग्यपूर्ण चुटीली चुस्त और चलती हुई शैलीमे लिखे गये ये चिट्ठे हिन्दी-साहित्यमे सदैव अमर रहेंगे।—रा० चं० ति०

शिवसहाय—इनका पूरा नाम शिवसहाय दास था। इनकी जन्म-तिथि, जन्म-स्थान या जीवनके विषयमें निश्चित रूप से कुछ ज्ञात नहीं। रामचन्द्र शुक्लने इन्हे जयपुरका निवासी माना है। इनका रचनाकाल १८वीं सदीका मध्य था। इनके लिखे दो ग्रन्थ कहे जाते है—'शिव चौपाई' और 'लोकोक्तिरस कौमुदी', जिनका रचनाकाल शुक्लजीने १७४८ ई० माना है। इनका दूसरा ग्रन्थ ही अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण है। जैसा कि नामसे स्पष्ट है, इसमे लोकोक्तियाँ हैं किन्तु उनका प्रयोग नायिका-भेदके साथ किया गया है। कविने नाममें 'रस' शब्दका प्रयोग नायिका-भेदके लिए ही किया है। एक उदाहरणसे इसका रूप स्पष्ट हो जायगा—"बोले निठुर पिया बिनु दोस। आपुहि तिय बैठी गहि रोस। कहै पखानो जेहि गहि मौन। बैल न कूद्यौ, कूदी गौन।" स्पष्ट है कि रचयिता ने प्रथम दो पंक्तियोंमें नायिकाभेद रखा है और अन्तिम पंक्तिमे लोकोक्ति या परवाना। पूरी रचना इसी प्रकार की है। कविता अत्यन्त सामान्य कोटि की है और कहीं-कहीं तो तुकबन्दी मात्र है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० इ०; नीति छन्दावली: अज्ञात कविका हस्तलिखित ग्रन्थ।] —मो० ना० ति०

शिवसिंह सरोज–हिन्दी साहित्यके इतिहासोंमें प्रथम प्रयास शिवसिंहकृत 'सरोज' नामक वृत्त-संग्रह माना जाता रहा है। इसका प्रकाशन रामचन्द्र शुक्लके अनुसार १८८३ ई०में हुआ। लक्ष्मीसागर वार्ष्णेयने इसकी तिथि १८७७ ई० मानी है ('आधुनिक हिन्दी साहित्य' पृ० १७६)। मातात्रसाद गुप्त 'हिन्दी पुस्तक साहित्य'में १८७८ ई० बताते हैं। इस संकलनमें एक सहस्र कवियोंका संक्षिप्त परिचय तथा उनकी रचनाओंके उदाहरण हैं। कुल मिलाकर 'सरोज'का महत्त्व प्राचीनता तथा परिमाण दोनों दृष्टियोंसे है। नलिन विलोचन शर्माके अनुसार "जहाँतक साहित्य इतिहासके रूपमें 'सरोज'के महत्त्वका प्रश्न है, यह ग्रन्थ सही अर्थ में सर्व-वृत्त संग्रह भी नहीं कहा जा सकता, साहित्यिक इतिहास तो दूर की बात है क्योंकि कवियोंका जन्मकाल आदिके सम्बन्धमे जो विवरण है, वे भी अत्यन्त संक्षिप्त और बहुधा अनुमानपर आश्रित हैं फिर भी इससे इनकार नही किया जा सकता कि ग्रियर्सनने 'माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑव नादर्न हिन्दुस्तान'में 'सरोज'को ही आधार बनाया है और इसके अभावमें मिश्रबन्धुओंको 'विनोद' तैयार करनेमें काफी कठिनाई होती" ('साहित्यका इतिहास-दर्शन', पृ० ७७)। —सं०

शिवसिंह सेंगर–कौथानिवासी शिवसिंह सेंगर (१८३३-१८७८ ई०) द्वारा सम्पादित 'शिवसिंह सरोज' हिन्दी साहित्यके प्रथम इतिहासके रूपमें स्मरण किया जाता है। आगेके इतिहास लेखकोंने भी इस कवि-वृत्त-संग्रहसे पर्याप्त सहायता ली है। —सं०

शिवसागर पांडेय–जन्म १८८८ ई० बुलन्दशहर (उत्तर प्रदेश)में। प्रयाग विश्वविद्यालयके अंग्रेजी विभागके भूतपूर्व अध्यक्ष। हिन्दी समीक्षामें बराबर रुचि रखी। छायावादी-काव्यके समर्थकोंमेंसे प्रमुख। सुमित्रानन्दन पन्तकी रचनाओंपर विशेष रूपसे लिखा। इनकी दो पुस्तिकाएँ 'समर्पण' और 'पदार्पण' प्रकाशित हुई। कविताएँ भी लिखी हैं पर मूलतः इनका महत्त्व छायावादके प्रारम्भिक समीक्षकके रूपमें है। अब प्रयागमे स्थायी रूपसे रहते हैं। सुमित्रानन्दन पंतने अपनी षष्टिपूर्तिके अवसरपर लिखे गये संस्मरणोंमें पाण्डेयजी की समीक्षाओं की चर्चा की है। —सं०

शिवा-बावनी–'शिवा-बावनी' के रचयिता भूषण हैं। इसमे कुल ५२ छन्द हैं। कवित्त और छप्पयमें रचित यह एक मुक्तक रचना है। 'शिवा-बावनी'में शिवाजी (१६२७-१६८० ई०) के प्रताप, रण-प्रस्थान, युद्ध, तलवार, नगाड़ा, आतंक, तेज, पराक्रम तथा विजयका वर्णन है। इनमें आश्रयदाताके प्रताप और आतंकके चित्रण बड़े विशद हैं। इसमें शिवाजीविषयक १६५५ ई०से १६७७-७९ ई० तककी प्रमुख घटनाओंका उल्लेख है। अतएव 'शिवा-बावनी'की रचना १६७७-७९ ई० के लगभग हुई होगी। 'शिवा-बावनी'का प्रकाशन कई संग्रहोंमें हो चुका है (दे० 'शिवराज-भूषण')।

इस ग्रन्थमें वीर, रौद्र तथा भयानक रसोंका सुन्दर परिपाक हुआ है। भूषणने 'शिवा-बावनी' में शिवाजीके शत्रुओंकी दुर्दशाका सजीव अंकन किया है। इसमें मालोपमा, रूपक, अत्युक्ति, अप्रस्तुत-प्रशंसा, भाविक, अतिशयोक्ति, अपह्नुति, तुल्ययोगिता, उपमा, विषम, विधि, काव्यलिंग, सम्भावना, अनुप्रास, यमक आदि अलंकारोंकी अनुपम छटा द्रष्टव्य है। 'शिवा-बावनी'की भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा है। इसमें फारसी, राजस्थानी, बुन्देलखण्डी आदि भाषाओंके प्रचलित प्रयोग भी मिलते हैं। यह रचना साहित्यिक एवं ऐतिहासिक दोनों दृष्टियोंसे वीर-काव्यधाराकी एक अक्षुण्ण एवं स्थायी निधि है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० इ०; हि० वी०; हि० सा०; भूषण ग्रन्थावलियोंकी भूमिकाएँ।] —टी० सिं० तो०

शीलमणि–परमहंस शीलमणिका मूलनाम हर्षपन्त था। ये कुमायूँ प्रदेशके बीहड ग्रामवासी सुधीपन्त और सुभद्रादेवीकी एकमात्र सन्तान थे। इनका जन्म १८२० ई० में हुआ था। दुर्भाग्यसे बाल्यकालमे ही पिताका देहान्त हो गया। माता पतिके साथ सती हो गयीं। अनाथावस्थामें ये किसी साधुके साथ घूमते-घूमते अयोध्या पहुँचे और पयहारीजीके शिष्य हो गये। गुरु आज्ञासे इन्होंने महात्मा रामानुजदाससे सख्यरसका सम्बन्ध ग्रहण किया। शीलमणि नाम इसी समय पड़ा। रसिकाचार्य रामचरणदास और युगलानन्यशरणके सम्पर्कसे इन्होने सख्यके साथ ही शृंगारी साधनाका भी ज्ञान प्राप्त किया। अयोध्यामें कनक भवनके द्वार पर 'लाल साहेबका दरबार'में इनकी गद्दी अब तक स्थापित है। इसी स्थान पर वैशाख शुक्ला एकादशी, १८७८ ई० को लोकयात्रा समाप्त कर ये दिव्यसखाके सहवासी हुए।

शीलमणिकी १९ रचनाओंका पता लगा है—'कनक भवन माहात्म्य', 'सम्बन्ध प्रकाश', 'अवधप्रकाश', 'पदावली संग्रह', 'पावस वर्णन', 'पंचीकरण', 'विनय पत्रिका', 'रसमेल दोहावली', 'रत्नमंजरी', 'रामकरमुद्रिका', 'सख्य रस दोहा', 'सख्यरसदर्पण', 'सियावर नाम मणिमाला', 'केदार कल्पवेदिक', 'कवितावली', 'होरी', 'ज्ञानभूमिका', 'सियावर मुद्रिका' और 'विवेक गुच्छा'। इनमें अन्तिम दो प्रकाशित हो चुकी हैं, शेषकी हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती हैं। इनका अधिकांश साहित्य ब्रज तथा अवधीमे निर्मित है। कहीं-कहीं उनमे खड़ी बोलीकी भी छटा दिखाई देती है।

[सहायक ग्रन्थ—रामभक्तिमें रसिक सम्प्रदाय : भगवती प्रसाद सिंह।] —भ० प्र० सिं०

शुंभ–शुम्भका एक राक्षसके रूपमें उल्लेख मिलता है। इसके भाईका नाम निशुम्भ था। शुम्भ दुर्गाके हाथोंसे मारा गया था ('शिवराज भूषण'—२२) और (दे० 'निशुम्भ')। —रा० कु०

शुकदेव–शुकदेव महर्षि द्वैपायन (व्यास) के पुत्र थे। ये प्रकाण्ड पण्डित थे। 'भागवत पुराण'के वक्ता यही कहे जाते हैं। इसे इन्होंने राजा परीक्षितको कथा रूपमे सुनाया था। इनके जन्मके सम्बन्धमें एक रोचक कथा प्रचलित है। एक बार महादेव पार्वतीको ज्ञानकी बातें सिखा रहे थे। पास ही खोडरमें बैठा एक सुग्गेका अण्डा भी उसे सुन रहा था। धीरे-धीरे अण्डा फूटा और बच्चा निकला, जो शुकपुत्र होनेके कारण शुकदेवके नामसे विख्यात हुआ। यह चुप-

चाप ज्ञान-चर्चा सुनता रहा। इसी बीच पार्वती सो गयीं और वह पार्वतीके बदले हूँ-हूँ करता रहा। इस प्रकार शंकरको भ्रमित करके ज्ञानकी सारी बातें उसने सुन लीं। अन्तमें शंकरको इस रहस्यका ज्ञान हुआ, तब उन्होंने कुपित होकर शुकके पीछे त्रिशूल छोड़ा। शुक बचावके लिए भागे-भागे घूमे। इसी समय इन्हें व्यासकी स्त्रीका पूजाके हेतु मुख खुला हुआ दिखाई पड़ा। यह उस मुख-द्वारसे उनके पेटमें चले गये। कहा जाता है कि बारह वर्षोंतक वे उनके पेटमें रहे, त्रिशूल घूमता रहा क्योंकि उसे स्त्री-वध निषेध था। व्यासकी प्रार्थनापर शंकरने उसे लौटा लिया। व्यासकी स्त्रीके पेटसे निकलकर उसने जंगलकी ओर प्रयाण किया। व्यास उसे अपना पुत्र मानकर लौटानेके लिए दौड़े पर उसने इन्हें उपदेश देकर लौटा दिया और स्वयं जंगलमें चला गया। 'भागवत'के भाषानुवादों तथा 'सूरसागर' (दे० प० २२६) आदिमें शुकका उल्लेख आया है। —रा० कु०

शुक्राचार्य–शुक्राचार्य दैत्योंके आचार्यके रूपमें प्रसिद्ध हैं। महर्षि भृगु शुक्रके पिता थे। एक समय जब बलि वामनको समस्त भूमण्डल दान कर रहे थे तो शुक्राचार्य बलिको सचेत करनेके उद्देश्यसे जलपात्रकी टोंटीमें बैठ गये। जलमें कोई व्याघात समझ कर उसे सींकसे खोदकर निकालनेके यत्नमें इनकी आँख फूट गयी। फिर आजीवन वे काने ही बने रहे। शुक्राचार्यकी कन्याका नाम देवयानी तथा पुत्रका नाम शंद और अमर्क था। बृहस्पतिके पुत्र कचने इनसे संजीवनी विद्या सीखी थी ('कबीर ग्रन्थावली', ३८७)। —रा० कु०

शूर्पणखा–लंकाके राजा रावणकी बहन शूर्पणखा पंचवटीमें रामको देखकर मुग्ध हो गयी और उसने रामसे विवाहका प्रस्ताव किया। रामने उसे अपने भाई लक्ष्मणसे सम्बन्ध स्थापित करनेका परामर्श दिया। वह लक्ष्मणके पास गयी और लक्ष्मणने क्रुद्ध होकर उसके नाक-कान काट लिये। शूर्पणखा अत्यन्त कुपित और अपमानित होकर रावणके पास गयी। फलतः सीताहरण और राम-रावण युद्धकी घटनाएँ घटित हुईं। 'रामायण', 'रामचरितमानस', 'रामचन्द्रिका', 'साकेत', 'साकेत सन्त', 'पंचवटी' आदि रामकथा-सम्बन्धी काव्य-ग्रन्थोंमें शूर्पणखाका प्रसंग वर्णित हुआ है। —रा० कु०

शृंगारनिर्णय–भिखारीदासने 'शृंगारनिर्णय'की रचना सन् १७५१ ई०में अरबर(प्रतापगढ़)में की थी। इसकी हस्तलिखित प्रति प्रतापगढ़ नरेशके पुस्तकालयमें है और इसका प्रकाशन गुलशन-ए-अहमदी प्रेस, प्रतापगढ़ (१९३४ई०), भारत जीवन प्रेस, बनारस (१९३८ई०) तथा बिहार बन्धु प्रेस, बाँकीपुर (१९३९ई०)में हुआ है। जैसा कि नामसे ही प्रकट है, यह शृंगारप्रमुख ग्रन्थ है, जिसमें नायक-नायिका भेद तथा संयोग-वियोग आदिका वर्णन है। इसमें ३२८ पद्य हैं।

लेखकने मतिरामके 'रसराज'के आधारपर इस ग्रन्थकी रचना की है। वैसे इसमें दासजीकी न तो वह विद्वत्ता, जो 'काव्य-निर्णय'में दीख पड़ती है, कहीं प्रकट होती है, न ही किसी गम्भीर अध्ययनकी झलक दिखाई देती है। फिर भी काव्यमें नायक-नायिकाके वर्णनकी आवश्यकता तथा पतिकी अनुकूल स्थितिकी उपयोगिताकी उन्होंने अच्छी विवेचना की है। दूसरे, उन्होंने नख-शिखका वर्णन न करके नायिकाके सौन्दर्य वर्णन द्वारा ही व्याजसे नख-शिखका वर्णन कर दिया है। इसी प्रकार परकीया नायिकाका विभाजन उन्होंने कई आधारोंपर किया है, किन्तु स्वकीयाके भेद जैसे औरोंने किये हैं, वैसे ही हैं। इन सबका आलम्बन विभावके अन्तर्गत वर्णन करते हुए उन्होंने विरहीके भेदोंका विश्लेषण किया है। संयोगशृंगारकी चर्चा करते हुए उन्होंने उद्दीपन विभावके अन्तर्गत सखी, स्थायी आदिके नाम मात्र गिनाकर उदाहरण दे दिये हैं, हावोंका भी चलता सा वर्णन कर दिया है। इसी प्रकार वियोगवर्णनमें पूर्वानुराग, दर्शन, स्वप्न, छाया, माया, चित्र, श्रुति, विरह, मान और प्रवास तथा इन सभीमें विरहकी दस दशा मानते हैं। इसके अनुसार निराशाकी अन्तिम परिणति ही मृत्युका कारण होती है।

सम्पूर्ण ग्रन्थ काव्यशास्त्रकी विवेचनाकी दृष्टिसे उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है, जितना कि 'काव्य-निर्णय'। हाँ, उदाहरण इसमें इतने पर्याप्त हैं, कि कहीं-कहीं लक्षण न देकर केवल उदाहरण ही से काम चला लिया गया है। कविताकी दृष्टिसे इस ग्रन्थका रीतिकालीन ग्रन्थोंमें प्रमुख स्थान है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० इ०; हि० का० शा० इ०; हि० सा० बृ० इ० (भा० ६)।] —ह० मो० श्री०

शेख–ब्रजभाषा साहित्यमें आलमकी स्त्री तथा स्वयं एक श्रेष्ठ कवयित्रीके रूपमें शेखकी पर्याप्त मान्यता रही है। आलमके कवित्त-संग्रह 'आलमकेलि'में कतिपय छन्द 'शेख' छापके भी उपलब्ध होते हैं, जिनकी रचनाका श्रेय हिन्दीके अनेक इतिहासकारों द्वारा इन्हींको दिया गया है। परन्तु 'पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ'में 'आलम और रसखान' शीर्षकसे प्रकाशित भवानीशंकर याज्ञिकके लेखमें यह मन्तव्य साधार व्यक्त किया गया है कि 'शेख' आलम नामके पूर्व प्रयुक्त होने वाला जातिसूचक शब्द मात्र है तथा 'शेख' वाले सभी छन्द आलमके ही रचे हुए हैं। उनके मतसे शेखको प्रचलित किंवदन्तियोंके आधार पर आलमकी स्त्री मानना सर्वथा भ्रामक है। शेखको स्वतन्त्र व्यक्ति माननेकी परम्परा रामचन्द्र शुक्लके इतिहास और उसके आगे तक चली आती है। प्राचीन ग्रन्थोंमें सूदन कविकी सूचीमें शेखका नाम मिलता है तथा कालिदासके 'हजारा'में भी शेखके छन्द संगृहीत हैं। नवीन नामक एक कविकी 'कवि नामवद्ध दानलीला'के २१२ कवियोंमें शेखका नाम सम्मिलित है। शुक्लजीने आलमका परिचय देते हुए शेखके विषयमें लिखा है—"ये जातिके ब्राह्मण थे पर शेख नामकी रंगरेजिनके प्रेममें फँसकर पीछेसे मुसलमान हो गये और उसके साथ विवाह करके रहने लगे। आलमको शेखसे जहान नामक एक पुत्र भी हुआ। शेख रंगरेजिन भी अच्छी कविता करती थी।" इसके पश्चात् उन्होंने निम्नलिखित दोहेसे सम्बद्ध किंवदन्ती देते हुए बताया है कि इसका उत्तरार्द्ध शेख द्वारा विरचित है और पूर्वार्द्ध आलमकृत है—"कैनक छरी सी कामिनी काहेको कटि

छीन। कटि कंचनको काटि विधि कुचन मध्य धरि दीन ॥"

'शिवसिंह सरोज'के अनुसार आलमको औरंगजेबके दूसरे बेटे मुअज्जम शाहका समकालीन मानते हुए विकसित होने वाली एक अन्य किंवदन्ती भी शुक्लजी द्वारा दी गयी है—"शेख बहुत ही चतुर और हाजिर जवाब स्त्री थी। एक बार शाहजादा मुअज्जमने हँसीसे शेखसे पूछा—'क्या आलमकी औरत आप ही है?' शेखने चट उत्तर दिया कि "हाँ, जहाँपनाह! जहानकी माँ मैं ही हूँ।"

इन किंवदन्तियोंसे शेखकी काव्य-क्षमता तथा प्रत्युत्पन्नमतिका जो परिचय मिलता है, उसके द्वारा एक सजीव प्रतिभासम्पन्न व्यक्तित्वका आभास मिलता है। ब्रजभाषा काव्य-प्रेमियोंने 'आलमकेलि'के नेत्रविषयक "लोहूके पियासे कहूँ पानी ते अघात है", जैसी चमत्कारिक पंक्तियों वाले अनेक सशक्त कवित्तोंकी रचनाका श्रेय ही शेखको नहीं दिया, वरन् 'आलम' छाप वाले कवित्तोंमे भी कौन-कौन सी पंक्ति शेखकी जोड़ी हुई है, इसका लेखा-जोखा भी प्रस्तुत किया है। उदाहरणार्थ "प्रेम रंग पगे जगमगे"-से आरम्भ होनेवाले कवित्तका अन्तिम चरण "चाहत हैं उड़िबे को, देखत मयंक मुख, जानत है रैनि ताते ताहिमें रहत हैं" शेखकृत बताया जाता है। शुक्लजीने इसका भी उल्लेख किया है।

शेखके अस्तित्वसम्बन्धी विश्वासकी इस विकसित एवं परिपक्व स्थितिमें याज्ञिकका पूर्वोक्त मन्तव्य सहसा एक अविश्वसनीय विडम्बना जैसा प्रतीत होता है परन्तु उनके द्वारा दिये गये तर्कोंपर ध्यानपूर्वक विचार करनेसे यही धारणा बनती है कि कदाचित् शेखविषयक समस्त प्रचलित विवरण निराधार हैं और वास्तवमें शेख नामक कोई कवयित्री ऐसी नहीं हुई, जिसका आलमसे पृथक् अस्तित्व प्रमाणित किया जा सके। उनके द्वारा तीन प्रमुख कारण दिये गये हैं—१. शेख नाम किसी स्त्रीका होना असंगत जान पड़ता है। २. शेख शब्द मुसलमानोंके एक समुदायविशेषका द्योतक है। ३. 'आलमकेलि'की प्राचीन हस्तप्रतियोंके आदि अन्तमें "शेख आलमकृत" शब्दोंका स्पष्ट प्रयोग।

एक हस्तप्रतिके आरम्भमें 'कवित्त सेखसाई' भी लिखा मिलता है, जिससे सर्वथा यह स्पष्ट हो जाता है कि शेख शब्द आलमके लिए ही प्रयुक्त हुआ है। निष्कर्ष रूपमें याज्ञिकका कथन इस प्रकार है कि "शेख और आलम एक ही व्यक्तिके दो नाम हैं। शेख तथा आलम छापयुक्त छन्द सभी प्रतियोंमे ऐसे घुले-मिले हैं और उनके भाव, भाषा आदि इतना अधिक साम्य रखते हैं कि दोनों प्रकार के छन्दोंमें कोई विशेष अन्तर नहीं प्रतीत होता।···कुछ ऐसे छन्द भी हैं, जो आलम अथवा शेख दोनोंके नामसे भिन्न-भिन्न प्रतियोंमें मिलते हैं। यदि एक प्रतिमे आलम छाप है तो दूसरीमें वही छन्द कुछ पाठ-भेदसे शेखके नामसे मिलता है। ये प्रतियाँ प्रामाणिक हैं।" लेखकने ऐसे अनेक कवियोंके नाम भी गिनाये हैं, जिन्होंने एकसे अधिक छाप देकर काव्य-रचना की है, अतएव शेख और आलमको एक ही मानना युक्तिसंगत प्रतीत होता है (दे० 'आलम')।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० इ०; आलम और रसखान : भवानीशंकर याज्ञिक (पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ)।]
—ज० गु०

शेख तकी–कबीरपन्थी मुसलमानोंके अनुसार कबीरने विख्यात मुसलमान फकीर शेख तकीसे दीक्षा ली थी, लेकिन इसमें संशय है। यह अवश्य है कि शेख तकीके सत्संगमे इन्होंने लाभ उठाया था। "घट-घट है अविनासी सुनहु तकी तुम सेखा"से शेख तकीकी गुरुता नहीं टपकती, समानता अवश्य प्रकट होती है (दे० 'कबीर')।—मो० अ०

शेखर–दे० 'शेखर : एक जीवनी'।

शेखर : एक जीवनी–लेखक—सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'। यह उपन्यास "घनीभूत वेदनाकी केवल एक रातमें देखे हुए 'विजन'को शब्दबद्ध करनेका प्रयत्न है।" लेखकके शब्दोंमे "शेखर निस्सन्देह एक व्यक्तिका अभिन्नतम निजी दस्तावेज है···यद्यपि वह साथ ही उस व्यक्तिके युग-संघर्षका प्रतिबिम्ब भी है।" पृष्ठभूमि में राष्ट्रीय नवजागरणका वह युग है, जो ब्रिटिश सत्ताके विरुद्ध सिर उठा चुका था—कहीं क्रान्तिकारियोंके खुले विद्रोहके रूपमें, कहीं गान्धीके अहिंसात्मक आन्दोलनके रूपमें। शेखरका विकास एक क्रान्तिकारीका विकास दिखाया गया है, जो घरकी अनुचित रूढ़ियोंके विरुद्ध विद्रोहसे आरम्भ करता है और विदेशी शासनको चुनौती देनेके अभियोगमे मृत्युदण्ड तककी सम्भावनाको जीता है। सम्भावित मृत्युकी उस भयानक रातमें जब वह बन्दी बनाकर लाया जाता है, वह अपने सारे अतीतको कल्पना मे पुनः जीता है। शेखर मानसिक यातनाके जिन कातर क्षणोंमें अपने पिछले जीवनको विचारता है, उसकी उदास छाया बराबर कथानकपर पड़ती रहती है। उपन्यासमें चित्रित घटनाएँ असाधारण नहीं, असाधारण है शेखरकी वह पीड़ित मनःस्थिति, जो उसके अनायास नष्ट हो जाते जीवनको कोई विशेष अर्थ देनेका प्रयत्न करती है।

शेखर, भाग १—(१९४० ई०) मे शेखरका बचपनसे लेकर कालेज तकका विद्यार्थी जीवन चित्रित है। शेखरका विकास मुख्यतः चरित्रोंके आधारपर होता है—घटनाओंके आधारपर कम, इसीलिए शायद उपन्यासमे घटनाओंकी अपेक्षा चरित्र ही अधिक महत्त्वपूर्ण हैं, विशेषकर स्त्री-पात्र। शेखरके पिताको छोड़कर और कोई पुरुष-पात्र इतना सशक्त नहीं, जो उसके चरित्रको विशेष प्रभावित कर सके। स्त्री-पात्रोंमें उसकी मौसीकी लड़की शशि, उसकी माँ, बहन सरस्वती तथा घरके दायरेसे बाहर शारदा—कुछ ऐसी प्रेरणाएँ हैं, जो शेखरको अपना सही व्यक्तित्व खोजनेमें प्रोत्साहित करती हैं। छोटी-छोटी तमाम घटनाओं द्वारा शेखरकी उस विद्रोह-प्रधान प्रवृत्तिका विकास दिखाया गया है, जो क्रमशः उसे निर्भयता और आत्मविश्वासकी ओर ले जाती है। बचपनमे जहाँ उस पर माँका प्रभाव मुख्यतः ध्वंसात्मक है, वहाँ सरस्वतीका प्रभाव अधिक सान्त्वनामय। इसी प्रकार माता और पिताके प्रभावोंका विश्लेषण करते हुए लेखक एक स्थान पर कहता है : "पिता आवेशमे आततायी थे, माँ आवेशकी कमीके कारण निर्दय। पिताका क्रोध जब बरस जाता था, तब शेखर

जानता था कि हम फिर सखा हैं; माँ जब कुछ नहीं कहती थी तब उसे लगता था कि वह मीठी आँच पर पकाया जा रहा है।" शारदा शेखरके वयःसन्धिकालकी सबसे महत्त्वपूर्ण घटना है, जो उसमे प्रेम और विरहकी पहली वेदनाको जगाती है। मद्रासमें उसका होस्टल-जीवन मुख्यतः कुमार, सदाशिव, राघवन् आदिके सम्पर्कमें बीतता है पर वे शेखरमें कोई बड़ा परिवर्तन नहीं ला पाते और हम उपन्यासके अन्तमें एक उतने ही अकेले और क्षुब्ध किन्तु अधिक प्रौढ़ शेखरको मद्राससे घर लौटते देखते हैं।

शेखर भाग २—(१९४४ ई०) मे कथाकी मूल प्रेरणा शशि है—शेखरकी मौसीकी लड़की। कांग्रेसी वालण्टियर शेखरकी गिरफ्तारी तथा जेलमे आजीवन बन्दी बाबा मदन सिंह, उद्दण्ड मोहसिन तथा निडर हत्यारा रामजी—कुछ ऐसे असाधारण व्यक्तित्व हैं, जिनका सम्पर्क शेखरके विचारोंको गहराईसे आन्दोलित करता है। शशिका रामेश्वरसे विवाह तथा शेखरको लेकर रामेश्वरका शशिपर सन्देह और उसका परित्याग आगेकी कथाकी मूल घटनाएँ हैं, जो शेखर और शशिके बीच एक नये सम्बन्धको जन्म देती है—ऐसा सम्बन्ध, जिसका आधार एक दूसरेपर अधिकार नहीं, एक दूसरेके लिए अपनेको उत्सर्ग कर देना है।

'अज्ञेय'की कृतियोमें 'शेखर—एक जीवनी'का महत्त्वपूर्ण स्थान है क्योकि वह न केवल 'अज्ञेय'को एक प्रमुख उपन्यासकारके रूपमे स्थापित करती है, बल्कि आत्मकथात्मक शैली तथा मनोविश्लेषणात्मक पद्धति—दो ऐसी प्रवृत्तियाँ सामने लाती है, जो हिन्दीमें नयी थीं। पिछले उपन्यासोंसे 'शेखर' इस अर्थमे भी भिन्न है कि उसमें व्यक्तिको भी उतनी ही बड़ी विचारणीय समस्या माना गया है, जितना प्रेमचन्द-युगमे समाजको।

लेकिन ऐतिहासिक दृष्टिसे गण्य तथा काफी प्रसिद्ध होते हुए भी 'शेखर' शायद क्लासिक्सके स्तरतक नहीं पहुँचता। लगता है कि 'शेखर' के निर्माणके पीछे सच्ची प्रेरणा और उत्साह तो है पर उसमे आवश्यक परिपक्वताकी कमी है। उपन्यासके निर्वाहमें भावुकताका एक तेज रोमाण्टिक बहाव है, वह स्थिर गहराई नहीं, जो एक प्रथम कोटिकी कृतिमें होना चाहिये। जगह-जगह सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक स्थल तथा तीक्ष्ण अनुभूतियाँ हैं, जो आकर्षित करते है, लेकिन वे ऐसी सजीव परिस्थितियों या चरित्रोंके संघर्षसे उत्पन्न नहीं जान पड़ते कि मनपर कोई स्थायी प्रभाव छोड़ सकें—कथानकके हल्के ताने-बाने पर ऊपरसे टँके हुए लगते हैं। शेखरका आत्म-चिन्तन इतना आत्म-केन्द्रित है कि उसके अतिरिक्त उपन्यासमें अन्य कोई चरित्र विकसित नहीं हो पाता। अन्य चरित्र शेखरकी स्मृतिमें घटनाओंकी ही तरह घटित होते है, जीवित नहीं हो पाते। वह अपनी सारी संवेदनशीलतासे अपनेको देखता है, अपनेसे बाहर नहीं—मानो सारा बाह्य जगत् केवल उसकी अपेक्षा है, उसके बावजूद नहीं। यह कहना कि 'शेखर' मुख्यतः "एक व्यक्तिका अभिन्नतम निजी दस्तावेज है" इस दायित्वकी अवहेलना नहीं कर सकता कि वह उपन्यास भी है—शायद सबसे पहले उपन्यास ही है—और उसकी सफलता या असफलता उन तत्त्वोंपर भी निर्भर है, जिनके आधारपर इस ढंगके उपन्यासोंका मूल्यांकन होता है। 'शेखर' की विशिष्टता मूलतः उस दृष्टिकोणके सशक्त चित्रणमें है, जिसका सम्बन्ध मनुष्यके आत्म-विश्वास तथा उसकी निडर जिज्ञासासे है। —कुँ० ना०

शैव्या–शैव्या राजा हरिश्चन्द्रकी स्त्री और रोहिताश्वकी माता थीं। इन्हें अपने एक पुत्रके साथ ब्राह्मणके घर बिकना पड़ा था। वहाँ एक सर्पने इनके पुत्रको काट लिया। शैव्या अपने पुत्रका शव लेकर उसी श्मशानपर पहुँची, जब हरिश्चन्द्र डोमका काम कर रहे थे। उन्होंने शैव्यासे कफन माँगा किन्तु कफन न होनेके कारण उन्होंने अपनी साड़ी फाड़कर दी। मतान्तरसे हरिश्चन्द्र मारने जारहे थे, तबतक विश्वामित्र और इन्द्रने आकर पुत्रको जीवित कर और पुनः उन्हें राजा बनाकर पूर्ववत् कर दिया। हरिश्चन्द्रकी सत्यनिष्ठाकी यह कथा उनके आदर्श व्यक्तित्वकी प्रमाण है। —रा० कु०

शोभा कवि–ये भरतपुरके महाराज नवलसिंहके आश्रित कवि थे। इनका समय १७५९ई०के आसपास ठहरता है। इनका 'नवल रस चन्द्रिका' नामक रस विषयपर लिखा हुआ ग्रन्थ प्राप्त है। नागरी प्रचारिणी सभा, काशीके याज्ञिक संग्रहमे इसकी एक हस्तलिखित प्रति सुरक्षित है। —सं०

शौनक–यह एक ऋषि थे। व्यास द्वारा कही गई कथाको इन्होंने भी सुना था। सूतसे इस कथाको सुनकर ये अत्यन्त अभिभूत हुए थे और कृष्णके प्रति इनका हृदय भक्तिसे आप्लावित हो उठा था। अट्ठासी हजार शौनकोंमें यह सबसे प्रसिद्ध कहे जाते है (सू० सा० पद २२८)। —रा० कु०

श्यामनारायण पांडेय–जन्म तिथि १९१० ई०, ग्राम डुमरॉव, मऊ, आजमगढ़ (उ० प्र०)। आरम्भिक शिक्षाके बाद आप संस्कृत अध्ययनके लिए काशी आये। साहित्याचार्यकी परीक्षामें उत्तीर्ण हुए। स्वभावसे सात्त्विक, हृदयसे विनोदी और आत्मासे परम निर्भीक स्वभाव वाले पाण्डेयजीके स्वस्थ्य-पुष्ट व्यक्तित्वमें शौर्य, सत्त्व और सरलताका अनूठा मिश्रण है। संस्कार द्विवेदीयुगीन, दृष्टिकोण उपयोगितावादी और भाव-विस्तार मर्यादावादी है। लगभग दो दशकोंसे ऊपर वे हिन्दी कवि-सम्मेलनोंके मंचपर अत्यन्त लोकप्रिय एवं समादृत रहे हैं। इन्होंने आधुनिक-युगमें वीर-काव्यकी परम्पराको खड़ीबोलीमें प्रतिष्ठित किया है।

'हल्दी घाटी' (१९३७-३९ ई०), 'जौहर' (१९३९-४४ ई०), 'तुमुल' (१९४४-४५ ई०), 'रूपान्तर' (१९४४-४५ ई०), 'आरती' (१९४५-४६ ई०) और 'जय पराजय' (१९५८-५९ ई०)—उनकी प्रमुख प्रकाशित काव्य-पुस्तकें हैं। 'माधव', 'रिमझिम', 'आँसूके कण' और 'गोरा वध' उनकी प्रारम्भिक लघु-कृतियाँ हैं। 'तुमुल' नामक पुस्तक 'त्रेताके दो वीर' नामक खण्ड-काव्यका ही परिवर्धित संस्करण है। 'शिवाजी' और 'परशुराम' उनके अप्रकाशित काव्य हैं तथा 'वीर सुभाष' रचनाधीन ग्रन्थ है। उनके संस्कृतमें लिखे कुछ काव्य-ग्रन्थ भी अप्रकाशित ही हैं। 'हल्दी घाटी' महाराणा प्रताप और अकबरके बीच हुए प्रसिद्ध ऐतिहासिक युद्धपर लिखा गया महाकाव्य प्रबन्ध है। प्रतापके इतिहास-प्रसिद्ध शौर्य, त्याग, आत्म-

बलिदान, स्वातन्त्र्य-प्रेम एवं जातीय-गौरव भावको प्रेरक आधार बनाते हुए कविने मध्यकालीन राजपूती मूल्योंको अत्यन्त श्रद्धा, सम्मान, सहानुभूति और पूजाके छन्द-पुष्प अर्पित किये हैं। वीर-पूजा इस काव्यकी सत्प्रेरणा और जातीय गौरवका उद्बोधन इसका लक्ष्य है। भाषा-नादसे आगे बढ़कर भावोत्साहकी दृष्टिसे कविने रचनाको रसमय बनाया है। यहाँ भाषा-नाद और आन्तर भावका सामंजस्य कवि-कलाकी नूतनताका प्रमाण है। बीच-बीचमें सुन्दर प्रकृति-वर्णनोंकी उत्फुल्ल योजना हुई है। भाषा तत्समप्रधान होकर भी प्रवाहमय और बोलचालमें उर्दू शब्दोंको अपनाती चली है। तलवार, घोड़ा, बर्छे आदिके फड़का देने वाले वर्णन अत्यन्त लोकप्रिय हुए हैं। ग्रन्थमें कुल १७ सर्ग हैं। इस रचनापर 'देव पुरस्कार' भी मिला है। 'जौहर' पाण्डेयजीका द्वितीय महाकाव्य है। कुल २१ चिनगारियोंका यह प्रबन्ध चित्तौडकी महारानी पद्मिनी को कथाधार बनाकर रचा गया है। इस ग्रन्थमें वीर-रस के साथ करुणाका भी गम्भीर पुट है। 'जौहर' की कहानी राजस्थानके इतिहासके लोमहर्षक आत्म-बलिदानकी ज्वलन्त कथा है। उत्साह और करुणा, शौर्य और विवशता, रूप और नश्वरता, भोग और आत्म-सम्मानके भावोंके प्रवाह काव्यको हर्ष और विषादकी अनोखी गहनता प्रदान करते हैं। 'जौहर'मे पाण्डेयजीने एक मौलिक वीर-रस-शैलीका उद्घाटन किया है। छन्दोंमे 'हल्दी घाटी'से अधिक वेग एव भावानुकूल गति है। होलेका वर्णन एवं चिता-वर्णनकी चिनगारियाँ अत्यन्त प्रभावपूर्ण एवं मर्मस्पर्शी हैं। लोक-छन्दोंके सहारे नवीन लयों एवं गतियोंका पकड़नेका सफल प्रयास स्तुत्य है। —श्री० सिं० क्षे०

श्यामलाल 'पार्षद'–जन्म सन् १८९६ ई० (भाद्र कृष्ण ४, संवत् १९५३ वि०)। प्रसिद्ध राष्ट्रगान 'झण्डा ऊँचा रहे हमारा'के लेखक। यह राष्ट्रगान १९२४ ई०में लिखा गया। १९२५ई०में कानपुर कांग्रेसके समय ध्वजोत्तोलनपर यह प्रथम बार गाया गया। तबसे १९४७ई०तक प्रायः यही राष्ट्रगानके रूपमें प्रमुख राष्ट्रीय उत्सवोंपर गाया जाता रहा। अपने मूल रूपमें गान काफी लम्बा था, जिसे राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डनने काट-छाँट कर सम्पादित किया। —सं०

श्यामसुंदर दास–जन्म सन् १८७५ ई०, काशीमें। मृत्यु सन् १९४५ ई०। इनके पूर्वज लाहौरनिवासी थे और पिता काशीमें कपड़ेका व्यापार करते थे। इन्होंने १८९७ ई० में बी० ए० पास किया था। १८९९ ई० मे हिन्दू स्कूलमें कुछ दिनों तक अध्यापक थे। उसके बाद लखनऊ के कालीचरन स्कूलमें बहुत दिनों तक हेडमास्टर रहे। सन् १९२१ ई० में काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके हिन्दी-विभागके अध्यक्ष पद पर नियुक्त हुए।

प्रारम्भमे ही हिन्दीके प्रति आपकी अनन्य निष्ठा थी। नागरी प्रचारिणी सभाकी स्थापना (१६ जुलाई, सन् १८९३ ई०) आपने विद्यार्थी-कालमें ही अपने दो सहयोगियोंकी—रामनारायण मिश्र और ठाकुर शिवकुमार सिंह—सहायतासे की थी। काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमें आनेके पूर्व आपने हिन्दी-साहित्यकी सर्वतोमुखी समृद्धिके लिए—न्यायालयोंमें हिन्दी-प्रवेशका आन्दोलन (१९०० ई०), हस्तलिखित ग्रन्थोंकी खोज (१८९९ ई०), 'हिन्दी शब्द सागर'का सम्पादन (१९०७ ई०), आर्य भाषा पुस्तकालय-की स्थापना (१९०३ ई०), प्राचीन महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोंका सम्पादन, सभा-भवनका निर्माण (१९०२ ई०), 'सरस्वती' पत्रिकाका सम्पादन (१९०० ई०) तथा शिक्षास्तरके अनुरूप पाठ्य-पुस्तकोंका निर्माण-कार्य आरम्भ कर दिया था। निश्चित योजना और अदम्य उत्साहके अभावमें अनेक दिशाओंमें एक साथ सफलतापूर्वक कार्य आरम्भ करना सम्भव नहीं था।

ये आजीवन एक गतिसे साहित्य-सेवामें रत रहे। इनकी साहित्य-कृतियाँ हैं—

मौलिक कृतियाँ : 'नागरी वर्णमाला' (१८९६ ई०), 'हिन्दी हस्तलिखित ग्रन्थोंका वार्षिक खोज विवरण' (१९००-१९०५ ई०), 'हिन्दी हस्तलिखित ग्रन्थोंकी खोज' (१९०६-१९०८ ई०) का प्रथम त्रैवार्षिक विवरण' (१९१२ ई०) 'हिन्दी कोविद रत्नमाला' भाग १, २ (१९०९ ई०), 'साहित्यालोचन' (१९२२ ई०), 'भाषा विज्ञान' (१९२३ ई०), 'हिन्दी भाषाका विकास' (१९२४ ई०), 'हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थोंका सक्षिप्त विवरण' (१९२३), 'गद्य कुसुमावली' (१९२५), 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' (१९२७ ई०), 'हिन्दी भाषा और साहित्य' (१९३० ई०), 'गोस्वामी तुलसीदास' (१९३१), 'रूपक रहस्य' (१९३१ ई०), 'भाषा रहस्य' भाग १ (१९३५ ई०), 'हिन्दी गद्यके निर्माता' भाग १, २ (१९४० ई०), 'मेरी आत्म कहानी' (१९४१ ई०)।

सम्पादित ग्रन्थ—'चन्द्रावली' अथवा 'नासिकेतोपाख्यान'(१९०१ ई०), 'छत्र प्रकाश' (१९०३ ई०), 'रामचरितमानस' (१९०४ ई०), 'पृथ्वीराज रासो' (१९०४ ई०), 'हिन्दी वैज्ञानिक कोश' (१९०६ ई०), 'वनिता विनोद' (१९०६), 'इन्द्रावती' भाग १ (१९०६), 'हम्मीर रासो' (१९०८), 'शकुन्तला नाटक' (१९०८), 'प्रथम हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी लेखावली' (१९११), 'बाल विनोद' (१९१३), 'हिन्दी शब्द सागर' खण्ड १-४ (१९१६), 'मेघदूत' (१९२०), 'दीनदयाल गिरि ग्रन्थावली' (१९२१), 'परमाल रासो' (१९२१), 'अशोककी धर्मलिपियाँ' (१९२३), 'रानी केतकीकी कहानी' (१९२५), 'भारतेन्दु नाटकावली' (१९२७), 'कबीर ग्रन्थावली' (१९२८), 'राधाकृष्ण ग्रन्थावली' (१९३०), 'सतसई सप्तक' (१९३३), 'द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ' (१९३३), 'रत्नाकर' (१९३३), 'बाल शब्द सागर' (१९३५), 'त्रिधारा' (१९४५), 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' (१-१८ भाग), 'मनोरंजन पुस्तक माला' (१-५० संख्या), 'सरस्वती' (१९०० ई० तक)।

संकलित ग्रन्थ—'मानस सूक्तावली' (१९२०), 'संक्षिप्त रामायण' (१९२०), 'हिन्दी निबन्ध माला' (भाग १-२, (१९२२ ई०), 'संक्षिप्त पद्मावत' (१९२७), 'हिन्दी निबन्ध रत्नावली' भाग १ (१९४१)।

पाठ्य पुस्तकें (संग्रह)—'भाषा सार संग्रह' भा० १ (१९०२ ई०), 'भाषा पत्र बोध' (१९०२ ई०), 'प्राचीन

लेख मणिमाला' (१९०३ ई०), 'आलोक चित्रण' (१९०२ ई०), 'हिन्दी पत्र लेखन' (१९०४ ई०), 'हिन्दी प्राइमर' (१९०५ ई०), 'हिन्दीकी पहली पुस्तक' (१९०५ ई०), 'हिन्दी ग्रामर' (१९०६), 'गवर्नमेंट ऑव इण्डिया' (१९०८), 'हिन्दी संग्रह' (१९०८), 'बालक विनोद' (१९०८), 'सरल संग्रह' (१९१९), 'नूतन संग्रह' (१९१९), 'अनुलेख माला' (१९१९), 'नयी हिन्दी रीडर' भाग६, ७ (१९२३), 'हिन्दी संग्रह' भाग १, २ (१९२५), 'हिन्दी कुसुम संग्रह' भाग १, २ (१९२५), 'हिन्दी कुसुमावली' (१९२७), 'हिन्दी प्रोज सेलेक्शन' (१९२७), 'साहित्य सुमन' भाग १-४ (१९२८), 'गद्य रत्नावली' (१९३१), 'साहित्य प्रदीप' (१९३२), 'हिन्दी गद्य कुसुमावली' भाग १, २ (१९३६), 'हिन्दी प्रवेशिका पद्यावली' (१९३९), 'हिन्दी गद्य संग्रह' (१९४५), 'साहित्यिक लेख' (१९४५ ई०)।

उपर्युक्त कृतियोंके अतिरिक्त आपके विभिन्न विषयोंपर लिखे गये स्फुट निबन्धों और विभिन्न सम्मेलनोंके अवसरपर दी गयी वक्तृताओंकी सम्मिलित सख्या ४१ है। इस विस्तृत सामग्रीका अनुशीलन करनेसे स्पष्ट है कि आपकी सतर्क दृष्टि हिन्दीके समस्त अभावोंको लक्ष्य कर रही थी और आप पूरी निष्ठासे उन्हें दूर करनेमे प्रयत्नशील थे। वस्तुतः आप बहुत अच्छे प्रबन्धक थे। आपने विविध क्षेत्रोंमें हिन्दीके अभावोंकी पूर्तिके लिए आवश्यक सामग्री प्रस्तुत कर देनेकी चेष्टा की है। इसीलिए आप पूरी शक्तिका प्रयोग किसी एक क्षेत्रमे नहीं कर सके हैं। इसलिए लेखक के रूपमे, आलोचकके रूपमे, सम्पादकके रूपमे, काव्य-कृतियो और सिद्धान्तोंके व्याख्याताके रूपमे या भाषा-तत्त्व-वेत्ताके रूपमें, चाहे जिस रूपमें देखा जाय, सर्वत्र यही स्थिति है किन्तु इससे आपका महत्त्व या मूल्य कम नहीं होता है। कृतिका मूल्य बहुत कुछ उसमें निहित रचना-विवेक और दृष्टिकोणपर आधृत होता है। "हिन्दी आलोचनाका सैद्धान्तिक आधार संस्कृत और अंग्रेजी दोनोंकी काव्य-शास्त्रीय मान्यताओंके समन्वयसे प्रस्तुत होना चाहिए; हिन्दी साहित्यके इतिहास-निर्माणमें कवियोंके इतिवृत्तके साथ युगानुकूल ऐतिहासिक परिस्थितियोंका विवेचन तथा काव्य और कलामें तात्त्विक एकता होनेके कारण, काव्य-विकासके साथ कला-विकासका अध्ययन भी प्रस्तुत किया जाना चाहिए; सम्पादनमें कृतियोंकी प्राचीनतम प्रतिको प्रामाणित मानकर चलना चाहिए; हिन्दी-भाषाके विद्यार्थीको अन्य भाषाओंका सामान्य परिचय और हिन्दीके ऐतिहासिक विकासका ज्ञान होना चाहिये।" —रचना और अध्ययनका यह विवेक श्यामसुन्दरदास-की बहुत बड़ी देन है। अभावोंकी शीघ्रातिशीघ्र पूर्तिको लक्ष्यमें रखकर नियोजित ढंगसे होनेवाले निर्माण-कार्यमें व्यापकता, वैविध्य और स्थूल उपयोगिताका दृष्टिकोण ही प्रधान होता है। आपके सामने भी यही दृष्टिकोण था, इसीलिए आपमें मौलिकता और गहराईका अपेक्षाकृत अभाव है। व्यक्तिका मूल्य युगकी सापेक्षतामें ही आँका जाना चाहिये। आपकी बुद्धि विमल, दृष्टि साफ, हृदय उदार और दृष्टिकोण समन्वयवादी था। क्या साहित्य और क्या भाषा, सभीके संघटनमें आपने औचित्य और सामंजस्यका ध्यान रखा है। हिन्दी भाषाके संघटनके सम्बन्धमें विचार करते हुए आपने हिन्दीके अतिरिक्त संस्कृत और अरबी-फारसीके शब्दोंको भी ग्रहण करनेकी बात कही है किन्तु वरीयताके क्रमसे पहला स्थान शुद्ध हिन्दी-शब्दोंको, दूसरा संस्कृतके सुगम शब्दोंको और तीसरा फारसी आदि विदेशी भाषाओंके साधारण और प्रचलित शब्दोंको दिया है। भाषासम्बन्धी यह दृष्टिकोण सभी विवेकशील व्यक्तियोंको मान्य है। व्यावहारिक आलोचनाके क्षेत्रमे भी आप सामंजस्यको लेकर चले हैं। इसीलिए आपकी आलोचना पद्धतिमें ऐतिहासिक व्याख्या, विवेचना, तुलना, निष्कर्ष, निर्णय आदि अनेक तत्त्व सन्निहित हैं। विदेशी साहित्यके प्रभावसे आक्रान्त हिन्दी जनताको आप जैसे उदार, विवेक-शील, सतर्क, कर्मठ, स्वाभिमानी और समन्वयवादी नेताके कुशल नेतृत्वकी ही आवश्यकता थी।

अपने जीवनके पचास वर्षोंमें अनवरत रूपसे हिन्दीकी सेवा करते हुए आपने उसे कोश, इतिहास, काव्यशास्त्र, भाषा विज्ञान, शोधकार्य, उपयोगी साहित्य, पाठ्य-पुस्तक और सम्पादित ग्रन्थ आदिसे समृद्ध किया, उसके महत्त्वकी प्रतिष्ठा की, उसकी आवाजको जन-जनतक पहुँचाया, उसे खण्डहरोसे उठाकर विश्वविद्यालयोंके भव्य-भवनोंमें प्रतिष्ठित किया। वह अन्य भाषाओंके समकक्ष बैठनेकी अधिकारिणी हुई। हिन्दी साहित्य सम्मेलनने आपको 'साहित्य वाचस्पति' और काशी हिन्दू विश्वविद्यालयने 'डी० लिट्०' की उपाधि देकर आपकी सेवाओंका महत्त्व स्वीकार किया। —रा० चं० ति०

श्रद्धा–प्रसादकृत 'कामायनी' की प्रधान पात्र। काम गोत्रकी होनेके कारण उसका नाम कामायनी भी है, जिसके आधार पर प्रसादकी रचनाका नामकरण हुआ है।

बुद्धिवादकी अतियोंसे ग्रस्त और विक्षुब्ध आधुनिक संसारको सन्देश देनेके लिए श्रद्धाके माध्यमसे प्रसादने मनकी सकल्पात्मक वृत्तिका महत्त्व प्रतिपादित करना चाहा है। बुद्धि या तर्ककी विचारात्मक वृत्ति मनुष्यके लिए अधूरी है, जबतक कि उसे श्रद्धाका निर्देशन नहीं मिलता।

श्रद्धाकी प्रतीकात्मक स्थितिके अतिरिक्त उसका अपना चरित्र-चित्रण प्रसादकी कलाकी अनुपम उपलब्धि है। श्रद्धाके माध्यमसे प्रसादने भारतीय नारीकी मौलिक वृत्तियोंको रूपाकार प्रदान किया है। मनु द्वारा प्रवंचित और तिरस्कृत होने पर भी वह अपनी क्षमा और त्यागकी वृत्तियोंको नहीं छोड़ती। श्रद्धा मूलतः माँ है, जब कि इड़ाको प्रेयसीके रूपमें चित्रित किया गया है। भारतीय व्यवस्थामे माँ के गौरवके समक्ष प्रेयसीका आकर्षक व्यक्तित्व कहीं नहीं ठहरता। श्रद्धा और इड़ाके सौन्दर्य-वर्णनमें भी कविने इस अन्तरको बराबर ध्यानमें रखा है। श्रद्धाका रूप-सौन्दर्य मनुके दुःखी और चिन्तित मनको शान्ति प्रदान करता है। इड़ाके व्यक्तित्वका आकर्षण मनु-को उत्तेजित और आन्दोलित कर देता है। यहीं पर मन-की संकल्पात्मक और विकल्पात्मक वृत्तियोंका अन्तर भी स्पष्ट हो जाता है, श्रद्धा और इड़ा क्रमशः जिनकी प्रतीक हैं। —सं०

श्रद्धानंद स्वामी–जन्म सन् १८५६ ई०, जालन्धर (पंजाब) में। इनका पहला नाम मुंशीराम था। जीवनके आरम्भमें स्वामी दयानन्दके प्रभावमें आये और उनके कार्यक्रमको अपनाया। कांग्रेसमें सम्मिलित होकर नेतृत्व किया। जीवनके उत्तर-कालमें शुद्धि-आन्दोलनमें जी-जानसे लग गये और इसी कारण धर्मांध मुसलमान उनसे चिढ़ गये। २३ दिसम्बर, १९२६ ई०को अब्दुल रशीद नामक एक उत्तेजित मुस्लिम युवकने स्वामीजी पर, जब वे डबल निमोनियासे बीमार शैय्यापर लेटे थे, तीन बार गोली चलाकर उनके भौतिक जीवनका अन्त कर दिया।

स्वामी श्रद्धानन्दने पंजाब और दिल्लीमें शिक्षा तथा हिन्दी-प्रचारका महत्त्वपूर्ण कार्य किया। वे अंग्रेजीके पठन-पाठन और पाश्चात्य शिक्षा प्रणालीके विरोधी थे। स्त्री-शिक्षाके समर्थक होनेके कारण १८९१ ई०में जालन्धर कन्या महाविद्यालयकी स्थापना की।

स्वामी श्रद्धानन्द पहले वकील थे। इन्हें उर्दूका अच्छा ज्ञान था और इस भाषाके वे प्रभावशाली लेखक थे किन्तु सार्वजनिक जीवनमें पदार्पण करने पर उन्होंने हिन्दीमें बोलना और लिखना आरम्भ कर दिया, उर्दूका उपयोग केवल वकालतके काम तकही सीमित रखा। उर्दूमें निकलनेवाला 'सद्धर्म प्रचारक' हिन्दीमें प्रकाशित होने लगा। अपने साप्ताहिक उपदेश तथा शिक्षा और राजनीति सम्बन्धी लेख भी हिन्दीमें लिखने लगे। जो ओज और प्रभाव उर्दूमें था, उसीका दर्शन उनके हिन्दी लेखों और भाषणोंमें भी हुआ। उन्होंने हिन्दी भाषा जनताके लिए सीखी और जन-मानसतक पहुँचनेके लिए स्वतन्त्रतापूर्वक उसका उपयोग किया। संस्कृतके अध्ययन और अंग्रेजीके ज्ञानके साथ-साथ पंजाबी मातृभाषा होनेके कारण उनकी भाषामें तीनों भाषाओंके शब्दोंका प्रयोग हुआ। स्वामीजीके संरक्षणमें 'विजया' नामक हिन्दी दैनिकभी निकला, जिसके सम्पाक उनके सुपुत्र इन्द्रजीत थे। आपने 'कल्याण मार्गका पथिक' नामसे अपनी कहानी लिखी थी, जो सन् १९२४ ई०में ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसीसे प्रकाशित हुई थी। —शा० द०

श्रद्धाराम फुल्लौरी–सन् १८६३ ई० से इनका नाम एक व्याख्यानदाता और कथाकारके रूपमें प्रसिद्ध हुआ। इनके व्याख्यान बहुत विद्वत्तापूर्ण और प्रभावशाली होते थे। पंजाबी तथा उर्दूमें कुछ पुस्तकोंकी रचना करनेके अतिरिक्त इन्होंने हिन्दीमे अपना सिद्धान्त ग्रन्थ 'सत्यामृत प्रवाह' लिखा। सन् १८६७ ई० में इन्होंने 'आत्म चिकित्सा' नामक एक आध्यात्मिक पुस्तक लिखी और उसे सन् १८७१ ई० में हिन्दीमें अनूदित करके प्रकाशित किया। इनके अतिरिक्त 'तत्त्व दीपक', 'धर्म रक्षा', 'उपदेश संग्रह (व्याख्यान संग्रह), 'शतोपदेश' (दोहे) तथा अपना एक बड़ा जीवन-चरित भी लगभग १४०० पृष्ठोंमें लिखा। सन् १८७७ ई० में इन्होंने 'भाग्यवती' नामक एक सामाजिक उपन्यास भी लिखा था, जो हिन्दीका पहला मौलिक उपन्यास होनेके कारण ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। पंजाबके हिन्दू इन्हें धार्मिक नेताके रूपमें मानते थे। इन्होंने अनेक आन्दोलनोंका संचालन किया था। एक बार इन्हें सूचना मिली कि जालन्धरके एक पादरी गोकुलनाथने कपूरथलाके नरेशके हृदयमें ईसाई मतके प्रति झुकाव ला दिया है। यह जानते ही वे तुरन्त कपूरथला गये और नरेशकी सभी शंकाओंका विद्वत्तापूर्ण समाधान करके उन्हें वर्णाश्रम धर्मकी दीक्षा दी। ये पंजाबके विविध स्थलोंमें भ्रमण करते रहते और रामायण तथा महाभारत आदिकी कथाएँ लोगोंको सुनाते। इनकी कथा सुननेके लिए हजारों आदमी जमा होते थे। इन्होंने अनेक धर्म-सभाओंकी स्थापना भी की थी। —प्र० ना० टं०

श्रवणकुमार–ये मातृ-पितृ भक्तके रूपमें विख्यात हैं। ये अंधक मुनिके पुत्र थे। अपने अन्धे माता-पिताको बहँगीपर बिठाकर ढोया करते थे। एक बार वनमें अपने माता-पिताके लिए जल लेने गये। उसी समय महाराजा दशरथ उस वनमें शिकार कर रहे थे। श्रवण कुमारके घड़े भरने की आवाज सुनकर दशरथने बाण छोड़ा, जिससे श्रवण आहत होकर गिर पड़े। दशरथने देखा तो वह श्रवण निकले। श्रवणने दशरथसे अन्तिम समय माता-पिताको जल पिलाने की बात कही। दशरथने अंधक और उनकी पत्नीको अपने अपराधकी कथा सुनायी। उन्होंने जल पीनेसे इन्कार कर दिया तथा दशरथको शाप दिया कि तुम्हें भी मेरे समान पुत्र-शोकमें प्राण त्यागना पड़ेगा। इसीके फलस्वरूप दशरथको राम वन गमनपर शोकवश अपना प्राण त्यागना पड़ा था। श्रवणका चरित्र उनकी मातृ-पितृ भक्तिका आदर्श है। —रा० कु०

श्रीकृष्ण भट्ट 'काव्यकलानिधि'–जन्म १६६८ ई०। ये तैलंग ब्राह्मण थे। प्रारम्भमे श्रीकृष्ण बूंदीके महाराव राजा बुद्धसिंह (१६९५-१७३९ ई०)के आश्रयमे रहे। कालान्तरमें ये जयपुराधीश सवाई जयसिंह (१६९९-१७४३ ई०) के दरबारमें रहने लगे। महाराजाने इन्हें 'काव्यकलानिधि' की उपाधिसे विभूषित किया था। ये मन्त्र-शास्त्रके ज्ञाता तथा संस्कृत एवं भाषाके अद्वितीय विद्वान् थे। श्रीकृष्ण भट्टने संस्कृत और ब्रजभाषामे कई ग्रन्थों की रचना की है। वीर-काव्यसम्बन्धी उनकी कृतियाँ विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं।

'सांभर युद्ध' (लगभग १७३४ ई०)—इस काव्यमें जयपुरके महाराज सवाई जयसिंह और दिल्लीके सैयद भाइयोंके युद्धका वर्णन है। इसमें सवाई जयसिंहकी वीरताका अच्छा चित्रण हुआ है। 'जाजव युद्ध', 'बहादुर विजय', 'जयसिंह गुणसरिता'मे महाराजा जयसिंहका यशोगान किया गया है। इस प्रकार श्रीकृष्ण भट्ट की रचनाएँ साहित्य और इतिहासकी दृष्टिसे अत्यन्त उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण हैं।

[सहायक ग्रन्थ—मिश्रबन्धु विनोद, द्वितीय भाग (१९२७ ई०), हिन्दी साहित्य, द्वितीय खण्ड, (१९०२ ई०) : धीरेन्द्र वर्मा (प्रधान) और व्रजेश्वर वर्मा (सहकारी)।] —टी० सिं० तो०

श्रीकृष्णलाल–जन्म १९१२ ई० मीरजापुरमें। शिक्षा एम० ए०, डी० फिल० प्रयागसे हुई। काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके हिन्दी विभागमें प्राध्यापक हैं। 'आधुनिक हिन्दी साहित्यका विकास-१९००-१९२५' (१९४२ ई०)

आपका महत्त्वपूर्ण शोधग्रन्थ है, जिससे आपकी इतिहास-दृष्टिका अच्छा परिचय मिलता है। लाला श्रीनिवासदासके ग्रन्थोंका संपादन करके 'श्री निवास ग्रन्थावली'के नामसे प्रकाशित कराया है। कई अन्य प्राचीन ग्रन्थोंके सम्पादित संस्करण भी प्रस्तुत किये हैं। —सं०

श्रीधर–१. ये एक प्रसिद्ध वैष्णव भक्त थे। इन्होंने 'भागवत'की एक विस्तृत टीका लिखी है।

२. एक ब्राह्मण था, जो कर्मसे कसाई था। वह कंसकी प्रेरणासे कृष्णको मारनेके लिए आया था। श्रीधर कृष्णके यहाँ गोकुल पहुँचा। कृष्णने उसके रहस्यको पहचान लिया परन्तु ब्राह्मण होनेके कारण उसके प्राण न लेकर केवल जीभ ही मरोड़ दी। फलतः वह कुछ कर न सका (दि० सूर० सा० प० ६७५-६७६)। —रा० कु०

श्रीधर ओझा–रामचन्द्र शुक्लने इनका जन्म १६८० ई० में माना है। इनका नाम मुरलीधर भी है। ये प्रयागके रहनेवाले ब्राह्मण थे। इनके 'जंगनामा' नामक ग्रन्थमें फर्रुखशियर तथा जहाँदारके युद्धका वर्णन है। यह ग्रन्थ नागरी प्रचारिणी सभा, काशीसे १९०४ ई० मे प्रकाशित हुआ था। इनके अन्य ग्रन्थोंमें 'नायिका भेद' तथा 'चित्र-काव्य' आदिका भी उल्लेख हुआ है परन्तु इधर इनके एक ग्रन्थ 'भाषा भूषण'की हस्तलिखित प्रति नागरी प्रचारिणी सभा काशीसे प्राप्त हुई है। इसकी रचना नबाब मुसल्लेह खाँके आश्रयमे १७१० ई० मे हुई। इस पर जसवन्तसिंहके 'भाषा भूषण'का प्रभाव है। दोनोंकी योजनामे विशेष अन्तर नहीं है। १५० दोहोंमें अर्थालंकारोंके लक्षण-उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। दोनो मुख्य आधार 'चन्द्रालोक' तथा 'कुवलयानन्द' है पर इस ग्रन्थके अन्तमे ४२ दोहोंमे नायिका-भेद तथा रस आदिका वर्णन संक्षेपमें किया गया है। इस भागका नाम 'काव्य प्रकाश' दे दिया गया है। इस कविको लक्षण देने तथा उदाहरण प्रस्तुत करनेमें सामान्य सफलता ही मिली है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० इ०; हि० सा० बृ० इ० (भा० ६)।] —सं०

श्रीधर पाठक–जन्म सन् १८५९ ई०, जिला आगरा (उत्तर प्रदेश)के जोंधरी नामक ग्राममे, मृत्यु सन् १९२८ ई० मे। इनके समस्त कृतित्वको दो भागोंमे विभाजित किया जा सकता है। एकके अन्तर्गत इनके अनुवाद कार्य आते है और दूसरेके अन्तर्गत इनकी मौलिक रचनाएँ। अनुवादोंमे गोल्डस्मिथकी तीन पुस्तकोंके काव्यानुवाद उल्लेखनीय है। सबसे पहले इन्होंने 'हरमिट'का अनुवाद सन् १८८६ ई० में 'एकान्तवासी योगी'के रूपमें प्रस्तुत किया। यह पुस्तक एक भावुक प्रेमाख्यान है। अनुवादकी भाषा हिन्दी—खड़ीबोली है और छन्द लावनी पद्धति के हैं। इसके उपरान्त आपने गोल्डस्मिथकी एक दूसरी पुस्तक 'ट्रैवेलर'का अनुवाद 'श्रान्त पथिक'के नामसे किया। यह अनुवाद भी खड़ीबोलीमें ही है और इसमे रोला छन्दका व्यवहार किया गया है। पाठकजी द्वारा प्रस्तुत ये दोनों काव्यानुवाद कविताकी दृष्टिसे बहुत उच्च कोटिके नहीं है। इनका वास्तविक मूल्यांकन खड़ीबोलीके परवर्ती प्रबन्ध काव्योंकी पूर्वपीठिकाके रूपमें किया जा सकता है। आपने दो अन्य काव्यानुवाद ब्रजभाषामें प्रस्तुत किये। इनमेंसे एक पुस्तक 'ऊजड़ ग्राम' गोल्डस्मिथके 'डेजर्टेड विलेज' पर आधारित है और दूसरी पुस्तक कालिदास-कृत 'ऋतु संहार' है, जिसे बहुत ही सरस एवं सुन्दर सवैया छन्दोंमें प्रस्तुत किया गया है।

आपकी मौलिक काव्यकृतियोंमें सर्वप्रथम 'जगत सचाई सार' उल्लेख्य है। इसकी भावभूमि किंचित् दार्शनिक है। रचनाका माध्यम खड़ीबोली है और छन्द सधुक्कड़ी धुनके हैं। इसका प्रकाशन सन् १८८७ ई० में हुआ था। दूसरी प्रसिद्ध काव्यकृति 'कश्मीर सुषमा' १९०४ ई० में प्रकाशित हुई। यह पुस्तक आकारकी दृष्टिसे बहुत बड़ी नहीं है। इसका महत्त्व इस बात में है कि इसमें प्रकृतिको देखनेकी एक नूतन दृष्टिका परिचय मिलता है। कविने प्रकृतिको आलम्बन रूपमे ग्रहण करते हुए परम्परागत रूढ़ प्रकारके वर्णनोंसे आगे बढ़कर प्राकृतिक छटाका उन्मुक्त चित्रण किया है और प्रकृतिजन्य आनन्दकी मार्मिक अभिव्यक्ति की है। तीसरी महत्त्वपूर्ण कृति 'भारत गीत' १९१८ ई० में प्रकाशित हुई। यह पुस्तक लोकप्रचलित धुनोंमें गाये जाने योग्य फुटकर गीतोंका संग्रह है। इसमे 'नौमिभारतम्', 'भारत स्तव' आदि राष्ट्रीय कविताएँ संकलित हैं, जिनसे कविके उत्कट राष्ट्र-प्रेमका पता चलता है।

इनकी कुछ अन्य रचनाएँ इस प्रकार हैं—'मनोविनोद' भाग १, २, ३, (क्रमशः १८८२, १९०५ और १९१२ ई० मे प्रकाशित), 'धन विनय' (१९०० ई०), 'गुनवन्त हेमन्त' (१९०० ई०), 'वनाष्टक' (१९१२ ई०), 'देहरादून' (१९१५ ई०), 'गोखले गुणाष्टक' और 'गोखले प्रशस्ति' (१९१५ ई०), 'गोपिकागीत' (१९१६ ई०), 'स्वर्गीय वीणा' और 'तिलस्माती सुन्दरी'।

पाठकजी प्राकृतिक सौन्दर्य, स्वदेश-प्रेम तथा समाज-सुधारकी भावनाओंके कवि थे। छायावादी काव्यका पूर्व-रूप इनकी रचनाओंमें देखा जा सकता है। प्रकृति-वर्णनमें इन्होंने एक निश्चित प्रकारकी स्वच्छन्द प्रतिभाका परिचय दिया, जिसे रोमाण्टिक परम्पराके अन्तर्गत रखा जा सकता है। इनसे पूर्व भारतेन्दु और उनके सहयोगियोंने भी प्रकृति-वर्णन किया था किन्तु उनके वर्णन परम्परागत रूढ़ियोंसे आगे न बढ़ पाये और उनके काव्योंमें प्रकृति या तो अलंकरणकी वस्तु बनी रही या उद्दीपनकी पृष्ठभूमि। श्रीधर पाठकने प्रकृतिको उसके समग्र-सुन्दर रूपमे वर्णनका मुख्य विषय बनाकर प्रस्तुत किया—"प्रकृति यहाँ एकान्त बैठि निज रूप सँवारति। पल-पल पलटति भेस छनिक छवि छिन छिन धारति॥ विमल अम्बु-सर मुकुरन महँ मुख बिम्ब निहारति। अपनी छवि पै मोहि आप ही तन मन वारति॥" (कश्मीर सुषमा')। इस प्रकारके मनोरम प्राकृतिक चित्र उनकी रचनाओंमे पर्याप्त मात्रामें उपलब्ध होते हैं। प्रकृतिके स्वच्छन्दतावादी चित्रणके अतिरिक्त उन्होंने अपनी कवितामें राष्ट्रवादिताका परिचय दिया। एक ओर तो उन्होंने भारतकी आरती उतारी, स्वदेशके गौरवका गान किया और दूसरी ओर विधवाओंकी व्यथा एवं शिक्षा-प्रसार जैसे सामाजिक विषय भी उनकी लेखनीसे

अछूते न रहे।

आपने काव्य-रचनाके लिए ब्रजभाषा और खड़ीबोली दोनोंको अंगीकृत किया था। यह सच है कि उनकी ब्रजभाषाकी कविताएँ अधिक सरस तथा सुन्दर होती थीं किन्तु उनकी खड़ीबोलीकी कविताएँ ऐतिहासिक महत्त्वकी वस्तु हैं, उन कविताओंसे आधुनिक हिन्दी कविताका शुभारम्भ मानना चाहिये। भारतेन्दु तथा उनके मण्डलके अन्य कवियोंने खड़ीबोलीको मुख्यतः गद्यकी भाषाके रूपमें ग्रहण किया था। पद्य रचना अधिकतर वे ब्रजभाषा ही में करते थे। आपने काव्य-भाषाके लिए खड़ीबोलीका प्रयोग शायद पहली बार मुक्त रूपमे किया।

इनके सम्पूर्ण कृतित्वका मूल्यांकन करते हुए यह कहा जा सकता है कि इन्होंने अपनी कृतियों—अनूदित तथा मौलिक—द्वारा हिन्दी (खड़ीबोली) कविताका पथ निर्मित और प्रशस्त किया। स्वच्छन्दतावादके दर्शन उनकी रचनाओंमें पहली बार हुए और खड़ीबोली काव्यके साथ-साथ उन्होंने परवर्ती छायावादके लिए भी एक जमीन तैयार की। —र० भ्र०

श्रीधर (मुरलीधर)—श्रीधर प्रयागनिवासी ब्राह्मण थे। मुरलीधर इनका उपनाम था, यथा—"श्रीधर मुरलीधर उरुफ, द्विजवर बसत प्रयाग" ('जंगनामा', पंक्ति ५)। ग्रियर्सनके मतानुसार श्रीधर १६८३ ई०में वर्त्तमान थे परन्तु 'जंगनामा'में वर्णित घटना जनवरी, १७१३ ई०की है, अतः यह इसी तिथिके आसपास अवश्य वर्त्तमान रहे होंगे। इन्होंने कई ग्रन्थोंकी रचना की थी। इनका एक ग्रन्थ रागरागिनियोंका, एक नायिका-भेदका, एक जैनियोंके मुनियोंके वर्णनका, श्रीकृष्ण-चरितकी स्फुट कविता, कुछ चित्र-काव्य, फर्रुखसियरका जगनामा और उस समयके अमीर कर्मचारियों और राजाओंकी प्रशंसाकी कविता है। शिव सिंह तथा ग्रियर्सनने इनके बनाये हुए 'कवि विनोद' नामक ग्रन्थका उल्लेख किया है। इनकी प्रमुख रचना 'जगनामा' है। इसमें १६३० पंक्तियाँ है। 'जगनामा'मे फर्रुखसियर और जहाँदारशाहके युद्धका वर्णन है, जो जनवरी, १७१३ ई०में हुआ था। इसमें वीर-रसात्मक काव्य-शैलीको अपनाया गया है। इसकी भाषा परिष्कृत तथा व्याकरण-सम्मत ब्रज है पर उसमें डिंगल, बुन्देली तथा अवधी आदिके प्रयोग भी मिलते हैं। ऐतिहासिक तथा साहित्यिक दोनों दृष्टियोंसे श्रीधर वीर-काव्यधारामे एक उत्कृष्ट स्थान रखते हैं। 'जगनामा'का सम्पादन श्रीराधाकृष्ण और श्री किशोरीलाल गोस्वामीने और प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभा काशीने १९०४ ई० किया था।

[सहायक ग्रन्थ—हिन्दी वीरकाव्यः टीकमसिंह तोमर, हिन्दुस्तानी अकादमी, इलाहाबाद।] —टी० सिं० तो०

श्रीनाथ सिंह—जन्म १९०१ ई० मानपुर, जिला इलाहाबादमें। द्विवेदी-युगके साहित्यकार है, जो अब भी कुछ न कुछ लिखते आ रहे हैं। आपका 'सती पद्मिनी' नामक काव्य-ग्रन्थ १९१५ ई० में प्रकाशित हुआ था। अबतक आपकी कई रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी है। 'उलझन' (१९२२ ई०), 'क्षमा' (१९२५ ई०), 'एकाकिनी' या 'अकेली स्त्री' (१९२७) 'प्रेम परीक्षा' (१९२७), 'जागरण' (१९३७) 'प्रजामण्डल' (१९४८ ई०), 'एक और अनेक' (१९५१), 'अपहृता' (१९५२ ई०) आदि आपकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं। आपने बहुतसे निबन्ध महिलाओंके उपयोगके लिए लिखे हैं। कुछ समय तक 'सरस्वती'का सम्पादन किया। प्रयागसे निकलने वाली 'दीदी' पत्रिकाका सम्पादन भी करते रहे है। आपके साहित्यका बहुत बड़ा अंश स्त्रियोंके हितकी भावनासे प्रेरित है। बालोपयोगी रचनाएँ भी आपने बहुत सी लिखी है। —रा० चं० ति०

श्रीनारायण चतुर्वेदी—जन्म १८९५ ई०, जिला इटावा (उत्तरप्रदेश) में। उपनाम 'श्रीधर'। इन्होंने क्रमशः प्रयाग तथा लन्दन विश्वविद्यालयोंसे इतिहास और शिक्षण पद्धतिमें एम० ए० की उपाधि प्राप्त की। साहित्यके क्षेत्रमें आपकी ख्याति 'विश्व भारती'के सम्पादकके रूपमें हुई। यह आकर ग्रन्थ विविध विषयोंकी सूचना देनेकी दृष्टिसे बहुत महत्त्वपूर्ण है। आपने 'श्रीधर'का उपनाम धारण करते हुए ब्रजभाषा तथा खड़ीबोलीमे कविताएँ भी की हैं। इनकी स्फुट कविताओंके दो संग्रह 'रत्नदीप' तथा 'जीवन कण' नामसे प्रकाशित हो चुके हैं। इनकी अन्य पुस्तकोंमें अंग्रेजीसे किये गये दो अनुवाद—'विश्वका इतिहास' तथा 'शासक' उल्लेखनीय हैं। उपर्युक्त साहित्यिक कार्योंके अतिरिक्त शिक्षा प्रसारके क्षेत्रमें भी आपने महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। इन्होंने १९२६ ई० से १९३० ई० तक लीग ऑव नेशन्स, जेनेवाकी शिक्षा समितिमे भारतका प्रतिनिधित्व किया है तथा संयुक्त प्रान्त (वर्तमान उत्तर प्रदेश) मे शिक्षा प्रसार विभागके अध्यक्ष पद पर बहुत दिनों तक कार्य किया है। इधर काफी अर्सेसे सुप्रसिद्ध हिन्दी-पत्रिका 'सरस्वती'का सम्पादन कर रहे हैं। —र० भ्र०

श्रीनिवास दास, लाला—जन्म सन् १८५० ई० और मृत्यु १८८७ ई०। हिन्दी गद्यके आरम्भिक निर्माता-लेखकोंमें लाला श्रीनिवास दासका प्रमुख स्थान है। ये भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समकालीन थे। वे मथुरानिवासी माहेश्वरी वैश्य थे। अपने अत्यल्प जीवनमें इन्होने कुल पाँच रचनाएँ लिखीं—चार नाटक और एक उपन्यास। इनका पहला नाटक 'प्रह्लाद चरित्र' ११ दृश्योंका एक बड़ा सा नाटक है, जो कई दृष्टियोंसे असफल कृति कहा जा सकता है। उनकी मृत्युके बाद यह रचना सन् १८९५ ई० मे छपी। दूसरा नाटक 'तप्ता संवरण' 'हरिश्चन्द्र मैगजीन'के १४ फरवरी १८७४ ई० तथा १५ मार्च १८७४ ई० के अंकोंमें क्रमशः प्रकाशित हुआ। बादमे १८८३ ई० में पुस्तकाकार भी छपा। तीसरा नाटक 'रणधीर और प्रेममोहिनी' है, जो १८७८ ई०में लिखा गया और उसी वर्ष सदादर्श सम्मिलित कवि वचनसुधाके पाठकोंको बिना मूल्य वितरित किया गया। चौथा नाटक 'संयोगिता स्वयंवर', 'पृथ्वीराज रासो'-की कथा पर आधारित एक ऐतिहासिक रोमानी कृति है, जो १८८५ ई० में प्रकाशित हुआ।

१८८२ ई० में लाला श्रीनिवास दासका महत्त्वपूर्ण उपन्यास 'परीक्षागुरु' प्रकाशित हुआ, जो अब तक हिन्दी-का प्रथम उपन्यास कहा जाता है। अम्बिकादत्त व्यासने 'गद्य-काव्य मीमांसा'मे ७६ उपन्यासोंके नाम और उनकी प्रकाशनतिथि आदिका जो ब्यौरा दिया है, उससे 'परीक्षा

गुरु' ही हिन्दीका प्रथम उपन्यास प्रतीत होता है किन्तु 'परीक्षा गुरु'के पहलेके लिखे दो अन्य उपन्यासोंका उल्लेख भी मिलता है। हरिश्चन्द्रकृत 'पूर्णप्रभा चन्द्रप्रकाश'को गुजरातीका अनुवाद मान कर छोड़ दें तो भी श्रद्धाराम फुल्लौरीके उपन्यास 'भाग्यवती'को किसी भी प्रकार भुलाया नहीं जा सकता।

श्रीनिवास दास प्रतिभाशाली और मेधावी लेखक थे। रामचन्द्र शुक्लने लिखा है कि "चारों लेखकोंमें (हरिश्चन्द्र, प्रताप नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, बदरीनारायण चौधरी) प्रतिभाशालियोंका मनमौजीपन था पर लाला श्रीनिवास दास व्यवहारमें दक्ष और संसारका ऊँचा-नीचा समझने वाले पुरुष थे, अतः उनकी भाषा संयत और साफ सुथरी तथा रचना बहुत कुछ सोद्देश्य होती थी" ('हिन्दी साहित्यका इतिहास', संशोधित छठा संस्करण, पृष्ठ ४७३)।

'प्रह्लाद चरित्र'के सम्बन्धमें रामचन्द्र शुक्लने ठीक ही लिखा है कि "इस नाटकके संवाद आदि अच्छे नहीं, भाषा भी अच्छी नहीं" ('हिन्दी साहित्यका इतिहास', छठाँ संस्करण, पृ० ४७३)। 'तप्ता संवरण' प्राचीन पौराणिक प्रेम-कथापर आधारित है। संवरणने तप्ताके रूपमें असक्त होनेके कारण गौतम मुनिको न प्रणाम किया न उनका आदर-सत्कार किया। इसपर मुनिने उसे शाप दे दिया कि जिसके ध्यानमें तू इतना मग्न है, वह तुझे भूल जायेगा। संवरणकी ग्लानि पर दयार्द्र होकर उन्होंने शापका परिहार भी किया और बताया कि अगरपर्श होते ही उसे तुम्हारा स्मरण हो जायेगा। लेखकने इस नाटककी भूमिकामें लिखा है कि "इसमें कुछ लोकोपकारी विषय नहीं पाया जाता। यह केवल शृंगारविषयक एक पुरानी चालका नाटक है। परन्तु सज्जनोंने इसका यहाँ तक आदर किया कि गुजराती भाषामें इसका अनुवाद होकर मुम्बईके 'बुद्धिवर्धक' नामक प्रसिद्ध मासिक पत्रमें प्रकाशित हुआ।" श्रीनिवास दास साहित्यका सोद्देश्य होना मुख्य गुण मानते थे, इस कारण इस रचनाके प्रति भी उनके मनमें बहुत सन्तोष न था। इसपर संस्कृतके प्राचीन प्रेम कथामूलक नाटकोंकी शैलीका प्रभाव पड़ा है। 'तप्ता संवरण' पर 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' का प्रभाव स्पष्ट झलकता भी है। न केवल शैलीमें, बल्कि कथा-संयोजनमें भी। गौतमके शाप और उसके परिहारके प्रसंग किंचित् हेर-फेरके साथ 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्'के दुर्वासाके शाप और शाप-शमनवाले प्रसंगोंसे मिलते-जुलते हैं। 'नाटक अथवा दृश्य काव्य' नामक पुस्तिकामें भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने हिन्दीके आरम्भिक नाटकोंका जो क्रम निर्धारित किया है, उसमें उन्होंने पहला स्थान 'नहुष' को, दूसरा लक्ष्मणसिंहके 'शकुन्तला' को, तीसरा 'विद्यासुन्दर'को और चौथा 'तप्ता संवरण' को दिया है। उपर्युक्त नाटकोंको दृष्टिमें रखकर यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि 'तप्ता संवरण' हिन्दीका पहला मौलिक नाटक है क्योंकि 'विद्यासुन्दर' और 'शकुन्तला' अनुवाद हैं और 'नहुष'का कोई विशेष महत्त्व नहीं है।

श्रीनिवास दास न केवल उच्चकोटिके प्रतिभासम्पन्न विचारवान् लेखक थे, जिन्होंने निश्चित उद्देश्य और प्रयोजनको दृष्टिमें रख कर सम्पन्न भावानुभूतिके बलपर नाना प्रकार की परिस्थितियों और चरित्रोंकी सृष्टि की, बल्कि वे अच्छे शैलीकार और सुलझे हुए भाषा-प्रयोक्ता भी थे। उनके समयमें खड़ीबोलीका जो रूप प्रचलित था, वह बहुत कुछ अव्यवस्थित और अनिश्चित था। भिन्न-भिन्न लेखक अपने-अपने व्यक्तिगत परिवेशके स्थानीय भाषिक प्रयोगोंको खड़ीबोलीके कलेवरमें मिश्रित कर रहे थे। स्थान-स्थानके विभिन्न प्रकारके उच्चारणोंके आधारपर लिखी गयी खड़ीबोलीमें एकरूपताका पूरा अभाव था। लालाजीने दिल्लीके आसपासकी भाषाको स्टैंडर्ड मानकर उसीमें अपनी रचनाएँ प्रस्तुत कीं। उन्होंने खड़ीबोलीकी तत्कालीन सीमाओंको पहचान कर स्थानीय प्रयोगोंसे बचनेकी बहुत कोशिश की पर उनकी भाषा विकृत पंछाहीं उच्चारणके आधारपर लिखे शब्द और प्रयोगोंसे पूर्णतया बच न सकी। उन्होंने लिखा है: "संस्कृत अथवा फारसी-अरबीके कठिन शब्दोंकी बनायी हुई भाषाके बदले दिल्लीके रहनेवालोंकी साधारण बोलचालपर ज्यादः दृष्टि रखी गयी है। अलबत्ता जहाँ कुछ 'विद्याका विषय आ गया है, वहाँ विवश होकर कुछ शब्द संस्कृत आदिके लेने पड़े हैं" ('परीक्षा गुरु' निवेदन, 'श्रीनिवास ग्रन्थावली' पृष्ठ १५५)।

[सहायक ग्रन्थ—श्रीनिवास दास ग्रन्थावली, सम्पादक: श्रीकृष्णलाल।] —शि० प्र० सि०

श्रीप्रकाश—जन्म १८८७ ई०, काशीमें। पिताका नाम डाक्टर भगवान् दास। आप भूतपूर्व केन्द्रीय मन्त्री, भारतके पाकिस्तानमें उच्चायुक्त तथा महाराष्ट्र आदि कई प्रान्तोंके राज्यपाल रह चुके हैं। सार्वजनिक कार्यके साथ हिन्दी-साहित्यकी सेवामें बराबर दिलचस्पी लेते रहे हैं। इनकी चार हिन्दी पुस्तकें अभी तक प्रकाशित हो चुकी हैं: (१) 'भारतके समाज और इतिहास पर स्फुट विचार', (२) 'गृहस्थ गीता', (३) 'हमारी आन्तरिक गाथा' और (४) 'नागरिक शास्त्र'। इनकी शैलीकी विशेषता सरलता और भावोंकी सहज गति है। अंग्रेजीका प्रभाव इनके वाक्य विन्यास और विचारधारापर एकदम स्पष्ट है। विचारोंकी अभिव्यक्ति इनका सर्वप्रथम ध्येय होता है, शब्दोंका चयन और परम्पराका निभाव इनके लिए गौण है। इनकी कसौटी व्यावहारिकता है, अर्थात् भाषाका वही रूप वे सर्वोत्तम मानते हैं, जिसे अधिकसे अधिक लोग समझ सकें और जिसके द्वारा बाह्य जगत्के वर्णनके साथ मनुष्यकी भावनाओं तथा विचारोंको व्यक्त किया जा सके।

कुशल लेखककी तरह ही श्रीप्रकाश सफल पत्रकार भी रहे हैं। आप बहुत दिनोंतक दैनिक 'आज' ज्ञानमण्डल लिमिटेड, काशीके प्रधान व्यवस्थापक थे। समय-समयपर आप अग्रलेख और टिप्पणी भी लिखा करते थे। 'लीडर', 'इण्डिपेण्डेण्ट', 'नेशनल हेराल्ड', 'संसार' आदि पत्रोंसे भी आपका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। इनमें निरन्तर लेख लिखते रहे। राजनीतिमें व्यस्त रहते हुए भी वे अब भी कुछ न कुछ लिखकर हिन्दी साहित्यकी सेवा करते रहते हैं।

श्रीप्रकाशजी बड़े ही विनम्र, मिष्टभाषी और परोपकारी हैं। आपके विचार गम्भीर हैं। आजकल आप हिन्दी

साहित्य सम्मेलन, प्रयागके अधिशासी परिषद्के अध्यक्ष हैं। —शा० द०

श्रीभट्ट–निम्बार्क सम्प्रदायके सुप्रसिद्ध भक्त श्रीभट्टका जन्म-काल 'हिन्दी साहित्यका इतिहास'में आचार्य रामचन्द्र शुक्लने तथा 'ब्रज माधुरी सार'में वियोगी हरिने संवत् १५९५ (सन् १५३८ ई०) स्थिर किया है। साम्प्रदायिक परम्परामें श्रीभट्टजीको केशव कश्मीरीका शिष्य स्वीकार किया जाता है। प्राचीन भक्त मालोंमें केवल कश्मीरी और कृष्ण चैतन्य महाप्रभुकी भेंटका विवरण उपलब्ध होता है। प्रियादासने 'भक्तमाल'की टीकामें भी इसका उल्लेख किया है। अतः यह स्पष्ट है कि केशव कश्मीरी चैतन्यके समसामयिक थे। चैतन्य महाप्रभुका समय संवत् १५४२ से १५९० (सन् १४८५ से १५३३ ई०) तक है। इसके आधारपर श्रीभट्टका जन्म संवत् १५९५ (सन् १५३८ ई०) ही मानना उचित है। निम्बार्क सम्प्रदाय द्वारा प्रकाशित 'जुगल सतक'में रचनाकालको व्यक्त करने वाला एक दोहा लिखा है : "नैन, बान, पुनिराम, ससि गिनो अंकगति वाम। श्रीभट्ट प्रकटजु जुगलसत यह संवत अभिराम ॥" इसी दोहेके आधारपर 'जुगल सतक'का रचनाकाल संवत् १३५२ (सन् १२९५ ई०) सिद्ध होता है किन्तु प्राचीन पोथियोंमें यह दोहा 'नैन बान पुनिराग' पाठमें भी मिलता है। रागका अर्थ छः है, अतः १६५२ (सन् १५९५ ई०) संवत् ही इसका रचनाकाल मानना चाहिए। भाषाकी दृष्टिसे भी इसका समय चौदहवी शती कदापि नहीं हो सकता।

श्रीभट्टजी अपनी भावनाके लिए विख्यात हैं। ध्यानकी तन्मयतामें श्याम-श्यामाका प्रत्यक्ष दर्शन पद गायनके माध्यमसे ही आप कर लेते थे, ऐसी इनकी प्रसिद्धि है। ये बड़े उच्चकोटिके महात्मा थे। 'जुगल सतक'को इन्होंने अपनी भक्ति भावनाके अनुरूप सौ दोहोंमें सीधी, सरल शैलीमें लिखा है। इनको श्रीहितू सखीका अवतार माना जाता है। 'जुगल सतक'में दोहोंके साथ पद भी दिये हुए हैं। दोहोंमें प्रौढ़ता है। इनकी भाषा परिष्कृत और छन्दानुकूल है। तत्सम पदावलीका प्राधान्य है। राधा-कृष्णके सौन्दर्यवर्णनमें पदावली ललित और माधुर्यगुणपूर्ण है : "चरन नरनपर लकुट कर धरे कक्ष तर रंग। मुकुट चटक छवि लटक लखि बने जु ललित त्रिभंग"। इसी प्रकारके अनेक सहज स्वाभाविक वर्णन आपकी रचनामें उपलब्ध हैं। —वि० स्ना०

श्रीमन्नारायण अग्रवाल–जन्म १९१२ ई० में इटावामें हुआ। शिक्षा कलकत्ता तथा प्रयाग विश्वविद्यालयमें। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके महामन्त्री रहे। गान्धीवादी आर्थिक सिद्धान्तोंके विशेषज्ञ। सम्प्रति योजना आयोगके सदस्य। साहित्यके प्रति प्रारम्भसे ही अनुराग रहा। 'रोटीका राग' (१९३६ ई०) तथा 'मानव' (१९३८ ई०) दो काव्य-संकलन हैं। —सं०

श्रीराम शर्मा–उत्तरप्रदेशके मैनपुरी जिलामें २३ मार्च, १९९२ ई० को जन्म हुआ। प्रयाग विश्वविद्यालयमें शिक्षा प्राप्त की। हिन्दी पत्रकारितामें आपका विशेष स्थान है। शिकार-साहित्यके लेखकोंमें श्रीराम शर्माका नाम अग्रगण्य है। हिन्दीमें शिकार और जंगलके साहसात्मक साहित्यका अब भी अभाव है किन्तु इस दिशामें शर्माजीने जो कार्य किया है, वह सदैव सम्मानकी दृष्टिसे देखा जायगा।

आपकी पत्रकारितामें सम्पादन कार्य और संस्मरणात्मक निबन्धोंका भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'विशाल भारत'का सम्पादन और उसके साथ-साथ शिकार-साहित्यका सृजन आपने किया है। आपकी शिकारसम्बन्धी मनोरंजक कहानियोंके दो संग्रह हिन्दीके सम्मानित ग्रन्थ हैं।

'सन् बयालीसके संस्मरण' और 'सेवाग्रामकी डायरी' आपने आत्मकथा शैलीमें लिखी है। यद्यपि ये आत्मकथा शैलीका पूर्ण प्रतिनिधित्व नहीं करतीं, फिर भी अपने ढंगकी ये निराली पुस्तकें हैं। शर्माजीने जिन छोटीसे छोटी और बडीसे बडी घटनाओंको लिखा है, उनमें शैलीगत स्पष्टताके अतिरिक्त प्रामाणिक घटनाओंका उल्लेख बडे मार्मिक ढंगसे हुआ है।

शर्माजीने अंग्रेजीमें नेताजी सुभाष बोसकी जीवनी भी लिखी है। जीवनीमें एक घटना-चक्रमें लिपटा हुआ नेताजीका जीवन सम्पूर्ण राष्ट्रीय संवेदनाको वहन करते हुए उसके मूर्धन्य तत्त्वोंको मानवीय दृष्टिकोणसे सम्बद्ध करता है।

शर्माजीकी शैली स्पष्ट और वर्णनात्मक है। स्थान-स्थानपर स्थितियोंका विवेचन मार्मिक और संवेदनशील होता है। शिकार-साहित्यमें जिस भाषाका प्रयोग शर्माजीने किया है, वह उसके वृत्तवर्णन, विस्तार और पशु मनोविज्ञानका साफ परिचय देता है। इस प्रकारके साहित्यके लिए जिस असम्पृक्त निर्वैयक्तिक शैलीकी आवश्यकता होती है, उसमें आपको सफलता मिली है।

शर्माजीकी भाषा सरल किन्तु भावानुकूल है। छायावाद कालके साहित्यकार होनेके बावजूद भाषामें आप प्रेमचन्दके अधिक निकट हैं। प्रेमचन्दमें जो सम्प्रेषणीयता है, उसका दूसरा रूप हमें शर्माजीकी भाषामें मिलता है। तद्भव और तत्सम दोनों प्रकारके शब्दोंका प्रयोग अपने औचित्यके साथ हुआ है।

शर्माजीका जीवनके प्रति दृष्टिकोण मुख्यतः युगकी राष्ट्रीयतामें ओत-प्रोत है। 'सन् बयालीसके संस्मरण' या 'सेवा ग्रामकी डायरी' या अंग्रेजीमें नेताजी सुभाष बोसकी जीवनी उनके इसी पक्षका परिचय देते हैं। राष्ट्रीय आन्दोलनोंमें सक्रिय भाग लेते रहनेसे उनकी झाँकियाँ आपकी रचनाओंमें दीख पडती हैं।

प्रकाशित ग्रन्थोंमें आपकी लगभग २२ रचनाएँ हैं, जिनमेंसे मुख्य हैं—'प्राणोंका सौदा', 'शिकार', (१९३६ ई०), 'बोलती प्रतिमा' (१९३७ ई०), 'जंगलके जीव' (१९४६ ई०)—सभी कहानी संग्रह और 'सेवा-ग्रामकी डायरी' (१९३६ ई०), 'सन् बयालीसके संस्मरण' (१९३८ ई०), 'नेताजी' (अंग्रेजीमें जीवनी)। —ल० कां० व०

श्रुतकीर्ति—रामके भाई शत्रुघ्नकी पत्नी थीं। वे राजा जनकके भाई कुशध्वजकी कन्या थीं। इनके सुबाहु और श्रुतघाती नामके दो पुत्र थे। 'रामायण', 'रामचरितमानस', 'साकेत' आदि रामकथाविषयक मान्य ग्रन्थोंमें इनकी चर्चा मिलती है। —रा० कु०

श्यामसुंदर खत्री–आपका जन्म सन् १८९६ ई० में कलकत्तामें हुआ था। आपने अंग्रेजी, बंगला तथा हिन्दी

साहित्यका अच्छा अध्ययन किया है। उक्त तीनों भाषाओं पर आपका अच्छा अधिकार है। कविताके गुण-दोषका अच्छा ज्ञान रखते हैं। लगभग १८ वर्षकी अवस्थामें ही कविताएँ लिखने लगे थे। वे पत्र-पत्रिकाओंमें छपती रहीं। आपकी रचनाओंमें भाषासौष्ठव है। सभी रचनाएँ ओजपूर्ण हैं। भाव गाम्भीर्य तो है ही। समय-समय पर लिखी गयी आपकी अधिकांश कविताओंका संग्रह 'वेणु' नामसे १९६२ ई० में प्रकाशित हुआ। आपने कवीन्द्र रवीन्द्रके 'चित्रांगदा', 'लक्ष्मीकी परीक्षा', 'परिशोध', 'सामान्य क्षति' और 'पुजारिनी' काव्योंका बहुत ही सफल पद्यानुवाद किया है। यूस्टेस चेस्टर लिखित अंग्रेजी पुस्तक 'ग्रो अप ऐण्ड लिव'का भी आपने सुन्दर अनुवाद किया है। यह पुस्तक हिन्दीमें 'जियो जागो' नामसे १९५० ई०में छपी थी। —स०

श्वेतांक–भगवतीचरण वर्माकृत उपन्यास'चित्रलेखा'में महाप्रभु रत्नाम्बरका वह शिष्य है, जिसने पूछा था, "पाप क्या है?" गुरु उसे पापका पता लगानेके लिए भोगी बीजगुप्तके सांसारिक जीवनमें प्रविष्ट करा देते हैं। श्वेतांक, जो नारी, रूप और यौवनसे अनभिज्ञ था, एकदमसे इन्हींके आलोकमें चकाचौंध हो उठा। वह चित्रलेखाके प्रति अपने मनमें अनुराग जगा बैठा पर शीघ्र ही उसे अपना भ्रम ज्ञात हो गया। उसने एक ईमानदार आदमीकी भाँति बीजगुप्तसे अपना अपराध कह दिया।

वास्तवमें श्वेतांक उपन्यासका मुख्य अभिनेता नहीं है, वह जोड़ने वाली कड़ीके समान है। एक ओर वह बीजगुप्त को विश्वास देता है और दूसरी ओर चित्रलेखा भी उसे अपने प्रति प्रतिश्रुत करा लेती है। यशोधराप्रसंगमें वह अभिनयकी मुख्य भूमिकाओंके निकट आता है पर सर्वत्र एक उतावलापन और अविवेक उसमें प्राप्त होता है। अवसरका बिना विचार किये हुए वह अपने स्वामी बीजगुप्तके प्रति भी अपमानसूचक शब्द आवेशमें कह जाता है, यों बादको उसे पश्चात्ताप भी होता है। दुबारा वह यशोधराकी ओर उन्मुख होता है, उसमें अपना प्रेम निवेदित भी कर बैठता है पर प्रतिदानमें प्रोत्साहन उसे नहीं मिलता। इसी उतावलेपनमें ही वह बीजगुप्तसे अपना विवाह प्रस्तावित करनेका भी अनुरोध करता है। अन्तमें अपने गुणों नहीं, बल्कि बीजगुप्तकी महत्ता, त्यागवृत्ति एवं प्रेमादर्शने उसे धनसम्पन्न और पदवीसम्पन्न ही नहीं बनाया, उसे यशोधरा जैसी सुन्दरी पत्नी भी दिलायी। अपने प्रश्नका उत्तर पानेके लिए जिस तटस्थता एवं गम्भीरताकी आवश्यकता थी, उसका हमें श्वेतांकमें अभाव मिलता है। वह वास्तवमें अनुभवमें बहने लगता है—गुरुकी चेतावनीके विपरीत। —दे० शं० अ०

संगम १–इनका नाम संगमलाल था और ये टेढ़ाविगहपुर (जिला उन्नाव)के सुवंश शुक्लके वंशजोंमें थे। इनके आश्रय दाता कोई राजसिंह थे। शिवसिंहने इन्हें १७६७ ई०में उपस्थित माना है। इनका रचनाकाल १८०४ ई० से १८२७ ई० तक स्वीकार किया जा सकता है। ऐसी स्थितिमें भगवतीप्रसाद सिंहने 'दिग्विजयभूषण'की भूमिका में इन्हें सीतामऊके राजसिंहके दरबारमें बताया है। इनके दो ग्रन्थ कहे जाते हैं—'कवित्त' और 'श्रीकृष्ण ग्वालिनको झगरा'। इनके मुक्तक छन्द शृंगारपरक, नायिका-भेद सम्बन्धी और रीति परम्पराके हैं। दूसरे ग्रन्थका विषय दान-लीला है।

[सहायक ग्रन्थ—दि० भू० (भूमिका)।] —सं०

संगम २–जून १९४२ ई०में इलाहाबादसे साप्ताहिक रूपमें प्रकाशित हुआ। इसके सम्पादक थे इलाचन्द्र जोशी। इनके सम्पादकत्व-कालमें 'संगम' साहित्यिक एवं वैचारिक दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पत्र बन गया था।

इलाचन्द्र जोशीके बाद कुछ दिनों तक कृष्णानन्द गुप्त इसके सम्पादक रहे। लेकिन जोशी पुनः इस कार्यके लिए आ गये और 'संगम'की उन्नतिमें योग देने लगे।

गान्धीजीकी मृत्युके अवसरपर इसका एक विशिष्ट अंक निकला था। वह अंक चिरस्मरणीय रहेगा। इसी प्रकार 'सुभाष अंक' भी महत्त्वपूर्ण था।

कुछ समय बाद ही (१९५३ ई०) 'संगम'का प्रकाशन स्थगित हो गया। पर 'संगम'ने हिन्दी लेखकोंका जो वृत्त तैयार किया, वह महावीरप्रसाद द्विवेदीके सम्पादन-काल की 'सरस्वती'के लेखक-वृत्तका स्मरण दिलाती है। छायावाद तथा छायावादोत्तरकालीन सभी प्रमुख लेखकोंकी रचनाएँ 'संगम'में प्रकाशित होती रहीं। —ह० दे० बा०

संतराम–जन्म १८८६ ई०में होशियारपुरमें हुआ। हिन्दी गद्यके विकास-कालमें विभिन्न विषयोंपर निबन्ध तथा पुस्तकें लिखीं। आपकी प्रकाशित रचनाओंकी संख्या लगभग ५० है। —सं०

संपूर्णानंद–जन्म १ जनवरी, १८९० ई० में काशी (उत्तर प्रदेश) में हुआ। बाल्यकालमें ही वे साहित्य-साधनामें लग गये। संस्कृत, फारसी, अंग्रेजी और बंगला-साहित्यका अध्ययन किया। विज्ञानके स्नातक होते हुए भी आरम्भसे ही लेखन और अध्ययनमें गहरी दिलचस्पी रही। गोखलेकी मृत्युपर उनके उमड़ते हुए भावोंने कविताका रूप लिया। सम्भवतः यह उनकी पहली कविता थी, जो फरवरी, १९१५ ई० के 'नवनीत' में प्रकाशित हुई। उदाहरणार्थ—

"देशभक्त देहावसान, स्वार्थ त्यागि अनन्य कीन्हों जातिके हितकाज, ईशके संग सम्पूर्ण आनन्द परि करहि स्वराज।"

यह आश्चर्यकी ही बात है कि साहित्यके क्षेत्रमें पहले-पहल वे कविके रूपमें अवतरित हुए। उनकी कविताओंका विषय प्रायः देशभक्ति और भक्तिभाव ही होता किन्तु बादमें सम्पूर्णानन्दजीने अधिकतर गद्य-साहित्यकी रचना की है। उनके अथक परिश्रम और लगनके आगे गहनसे गहन विषय सहज बन गये। वेद-वेदान्तोंसे लेकर इतिहास, विज्ञान आदि सभीको उनकी प्रतिभाने समेट लिया। एक बार कारावासमें पातंजलके योगसूत्रोंको वे डेढ़ सौ बार पढ़ गये। उन्होंने छोटे-बड़े बहुत विषयके ऐतिहासिक, वेदसम्बन्धी, गणेशादि देवताविषयक, सामाजशास्त्र, दर्शनादि विषयोंपर अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। १९१८ ई० में इन्दौरके हिन्दी साहित्य सम्मेलन अधिवेशनमें साहित्य विभागके सभापति बने थे। ज्ञानमण्डल, वाराणसीके प्रकाशन काममें उन्होंने सदा सहयोग दिया। काशी विद्यापीठसे उनका वर्षोंसे सम्बन्ध बना हुआ है और उसे वह सार्वजनिक

कार्यका ही एक अंग मानते हैं। वे पत्रकार भी रह चुके हैं। १९३५ ई० में काशीसे समाजवादी दलके एक हिन्दी-साप्ताहिकका सम्पादन करते थे। पराड़करजीके जेल जानेपर 'आज' का भी सम्पादन किया। काशीके 'जागरण' और 'मर्यादा' का भी सम्पादन किया है। वे राजनीतिक और साहित्यिक दोनों हैं। उनका बौद्धिक धरातल बहुत ऊँचा है, इसलिए गम्भीर विषयोंके वे अद्वितीय लेखक और चिन्तक हैं। उनकी लेखन-शैली गम्भीर विचारप्रधान और पाण्डित्यपूर्ण होते हुए भी सुगम है। उनकी शैलीकी दृढ़ता और तार्किक प्रवाहका आभास किसी भी रचनामे लग सकता है।

राजनीतिमें प्रवेश करते ही सम्पूर्णानन्दजी समाजवादी विचारधारासे प्रभावित हुए थे। तभी उन्होंने 'समाजवाद' नामक पुस्तक लिखी। इसपर 'मंगलाप्रसाद पारितोषक' भी पाया। भाषा और विषय-वस्तुकी दृष्टिसे इसकी गणना उच्चकोटिके राजनीतिक-साहित्यमें होती है। स्पष्टोक्ति और विचारप्रधान लेखनके लिए उनकी ख्यातिका आधार यही पुस्तक थी। अपने मनकी बात कहनेमें यदि उसकी सचाईपर विश्वास है तो उन्हें कभी क्लेश अथवा आपत्ति नहीं होती। इसका सबसे बड़ा प्रमाण 'ब्राह्मण सावधान है'। इसमें उन्होंने तार्किक ढगसे किन्तु अपूर्व निर्भीकतासे ब्राह्मण समाजको चेतावनी दी है और वर्ण व्यवस्थाकी आलोचनाकी है। इस आलोचनाका आधार सदाशयता और देश-प्रेम ही है। भारतीय बुद्धिजीवी वर्गके बारेमे उन्होंने 'भारतीय बुद्धिजीवी वर्गकी कुण्ठा' नामक एक लेख लिखा है, जो गम्भीर मनन और चिन्तन का द्योतक है।

लेखक और विचारकके रूपमे सम्पूर्णानन्दजीकी प्रतिभा निस्सन्देह चतुर्मुखी है। गम्भीर विषयोंपर ही उन्होंने नहीं लिखा, वे लेखनको मनोरंजनका साधन भी मानते हैं। 'कर्मवीर गान्धी' और 'महाराज छत्रसाल' मनोरंजनके लिए लेख नहीं हैं किन्तु इनकी शैली कथा-साहित्यके अनुरूप है। इसी प्रकार जीवनियाँ लिखनेकी ओर भी वे प्रवृत्त होते रहे। उसी प्रवृत्तिका फल 'हर्षवर्धन' और 'सम्राट अशोक' हैं। उनके अपने संस्मरण भी कम रोचक नहीं। इन संस्मरणात्मक लेखोंमें उनकी भाषा बहुत निखरी है। इधर-उधर हास्यके पुटका भी समावेश है, 'जेल संस्मरण'में बन्दियोंकी 'निकडम्'-पर सम्पूर्णानन्दजीका लेख इसका उत्तम उदाहरण है। सम्पूर्णानन्दको आजकल वैज्ञानिक उपन्यास पढ़ने और भूमिहीन खेती करनेमें बहुत रुचि है। उनके वैज्ञानिक और साहित्यिक व्यक्तित्वका यह संगम हो रहा है। 'पृथ्वीसे सप्तर्षि मण्डल' और 'अन्तरिक्ष यात्रा' जैसी रचनाएँ इस आकाश और धरतीके संगमका प्रमाण है। उनका विज्ञान कलाका एक अंग है। इसीसे उनके बौद्धिक समन्वयका परिचय होता है। कलाओंमें भी जो विचार सौन्दर्यानुभूति पर व्यक्त किये हैं, वे आत्मानुभूतिका ही फल हो सकते हैं। उन्होंने लिखा है—"इसीलिए सौन्दर्यका सच्चा अनुभव योगीको ही हो सकता है।...अविद्याके क्षय होने पर भेदबुद्धि नष्ट हो जाती है और एक अद्वय अखण्ड चित्सत्ता अपनी लीलाका संवरण करने अपने आपका साक्षात्कार करती है। उसका स्वरूप परमानन्द है। योगी पर निरन्तर सोमकी वर्षा होती है"। उनके व्यक्तित्वके इस पहलू और उनके ज्ञानकी व्यापकताने सभीको प्रभावित किया है।

कृतियाँ—'कर्मवीर गान्धी', 'महाराज छत्रसाल', 'भौतिक विज्ञान', 'ज्योति विनोद', 'भारतीय सृष्टिक्रम विचार', 'भारतके देशी राष्ट्र', 'चेतसिंह और काशीका विद्रोह', 'सम्राट् हर्षवर्धन', 'महादाजी सिन्धिया', 'चीनकी राज्यक्रान्ति', 'मिस्रकी स्वाधीनता', 'सम्राट् अशोक', 'अन्ताराष्ट्रिय विधान', 'समाजवाद', 'व्यक्ति और राज', 'आर्योंका आदि देश', 'दर्शन और जीवन', 'ब्राह्मण सावधान', 'चिद्विलास', 'गणेश', 'भाषाकी शक्ति', 'पुरुष सूक्त', 'पृथ्वीसे सप्तर्षि मण्डल', 'हिन्दू विवाहमें कन्यादान का स्थान', 'व्रात्यकाण्ड', 'भारतीय बुद्धिजीवी', 'समाजवाद', 'अन्तरिक्ष यात्रा', 'स्फुट विचार', 'अलकनन्दा मन्दाकिनीके दो तीर्थ', 'चेतसिंह', 'देशबन्धु चित्तरजन दास'। —शा० द०

सगर–अयोध्याके प्रतापी सूर्यवंशीय राजा थे। सगरकी दो पत्नियाँ थीं— विदर्भ-राजकी कन्या केशिनी तथा कश्यप-कन्या सुमति। इनके तपसे प्रसन्न हो भृगुने इन्हें साठ सहस्र और एक सौ पुत्रोंका पिता होनेका वर दिया। यथासमय केशिनीसे 'असमंजस' नामक पुत्र हुआ, जो बड़ा अत्याचारी निकला। दूसरी स्त्री सुमतिसे साठ सहस्र पुत्र उत्पन्न हुए। एक बार सगरके अश्वमेध यज्ञका घोड़ा चुराकर इन्द्रने कपिल मुनिके समीप बाँध दिया। घोड़ा खोजते जब ६० हजार पुत्र यहाँ पहुँचे तो उन्होंने कपिल मुनिको चोर जानकर उनका अपमान किया, जिससे रुष्ट होकर ऋषिने इन्हें भस्म कर दिया। बहुत दिन बीत गये पर असमंजसके पुत्र अंशुमानने खोजकर इनका पता लगाया और फिर गगाको पृथ्वी पर लानेके लिए उन्होने भी तप किया पर सफल नहीं हुए। आगे उनके वंशज भगीरथने इस कार्यमें सफलता प्राप्त की (दे० 'भगीरथ', दे० 'रत्नाकर'कृत 'गगावतरण')। —रा० कु०

सतसई १–'सतसई' तुलसीदासकी रचना मानी जाती है। इसमें अलग-अलग विषयोंके ७०० के लगभग दोहे हैं। इसकी प्रतियाँ प्रायः एक पाठकी मिलती हैं। 'सतसई'का एक प्रमुख अंश 'दोहावली'में भी मिलता है (जिसके विषयमें अन्यत्र विचार किया गया है)। 'सतसई'के शेष अंश शब्द-रूप, शैली तथा विचारधाराकी दृष्टियोंसे उस अंशसे इतने भिन्न हैं कि वे अधिकतर प्रक्षिप्त ज्ञात होते हैं। उदाहरणके लिए उसके प्रारम्भके ही निम्नलिखित दोहोंको देखा जा सकता है—"नमो नमो नारायण परमातम नरधाम। जेहि सुमिरन सिधि होत है तुलसी जन मन काम॥ परम पुरुष परधाम बर जापर अपर न आन। तुलसी सो समुझत सुनत राम सोइ निरबान॥ सकल सुखद गुन जासु सो राम कामना हीन। सकल कामप्रद सर्वहित तुलसी कहहिं प्रवीन॥ जाके रोमे रोम प्रति अमित अमित ब्रह्मण्ड। सो देखत तुलसी प्रकट अमल सुअचल अखण्ड॥" उपर्युक्त पृथक दोहेका 'नमो नमो'

तुलसी ग्रन्थावलीमें अन्यत्र नहीं मिलता है, यद्यपि "नम"के "नमाम", "नमामि" आदि रूप मिलते हैं। व्याकरणकी दृष्टिसे "सिधि" नित्य है, "जन मन काम" और "सिधि"में से एक ही "होत है" क्रियाका कर्ता हो सकता है। दूसरे दोहेमें "परमधाम"के साथ "बर" अनावश्यक ही नहीं, निरा भरतीका है। समानार्थियों "अपर" और "आन"में से एक ही होना चाहिए था, "सनुझत" और "सुनत" प्रसंगमे अनावश्यक ही नहीं, असंगत लगते है। तीसरे दोहेमे "सकल"की पुनरुक्ति चित्य है। "सो" असंगत लगता है, "जो" कदाचित् अधिक संगत होता। चौथे दोहेका "रोम रोम", "रोमावलि" आदि रूप तो 'तुलसी ग्रन्थावली'में मिलते है, "रोमे रोम" रूप कही नहीं मिलता है।

पुनः इसकी रचना-तिथि जो निम्नलिखित दोहेमे दी हुई है, वह भी गणनामे ठीक नहीं आती है—"अति रसना धन धेनु रस गनपति द्विज गुरुवार। माधव सित सिय जनम तिथि सतसैया अवतार॥" इस दोहेके अनुसार तिथि सं० १६४२ वैशाख शु० ९ (सीताकी जन्मतिथि) होती है किन्तु गणनामे इस तिथिको गुरुवार न पड़ करके बुधवार पड़ता है। अतः 'सतसई' अपने सतसई रूपमें तुलसीदासकी रचना नहीं है, उसका एक अंश ही, जो 'दोहावली'में पाया जाता है, तुलसीदासकी रचना मानी जा सकती है। —मा० प्र० गु०

सतसई २ (बिहारी)–दे० 'सतसैया'।

सतसैया–यह संस्कृत, प्राकृत तथा हिन्दीमे सात सौ छन्दों ('सप्तशती', 'सत्तसई', 'सतसई') के संकलनोंकी परम्परामे बिहारीकी प्रसिद्ध रचना है (दे० 'सतसई', 'साहित्य कोश' प्रथम भाग)। इसका रचनाकाल सत्रहवीं शताब्दीका पूर्वार्द्ध माना जा सकता है। 'सतसैया' ७१३ मुक्तक दोहों तथा सोरठोंका संग्रह है। हिन्दीमे 'सतसैया'पर इतना अधिक विचार हुआ और उसका मन्थन किया गया कि उसे लेकर पृथक् वाङ्मय ही खड़ा हो गया। उसकी बहुत-सी टीकाएँ हुई तथा उसके दोहोंका विभिन्न क्रम बाँधा गया।

'सतसैया'की सबसे पहली गद्य-टीका कृष्णलाल की है। अन्तमें उद्धृत दोहेके अनुसार उक्त टीका (१६६२ ई०) में बनी थी। यह टीका जयपुरी मिश्रित ब्रजीमें लिखी गयी है। इसमें वक्ता-बोद्धव्यका उल्लेख है तथा साधारण अर्थ दिया गया है। इसकी प्रतिलिपि (१७६३ ई०) की लिखी मिलती है। दूसरी टीका मानसिंहकी लिखी मिलती है, जिसका निर्माणकाल १६८० ई० के लगभग अनुमित है। इसकी एक प्रतिलिपि १७१५ ई० की मिलती है। इसमें नायिका-भेदका सामान्य उल्लेख तथा अर्थ है। तीसरी मुख्य टीका किसी अनवर खाँके लिए लिखी गयी 'अनवर-चन्द्रिका' है। इसकी रचना १७१४ ई० में शुभकरण और कमलयन नामक दो कवियोंने मिलकर की है। टीकामें अर्थ न देकर काव्यांगकी बातोंपर ही विचार किया गया है यथा वक्ता-बोद्धव्य, अलंकार, ध्वनि आदिका। ध्वनिकी चर्चा साहित्यिक दृष्टिसे बड़े महत्त्व की है। इस टीकामें अर्थकी जो कमी थी, उसे पन्नाके कर्ण कविने पूर्ण करके 'साहित्य चन्द्रिका' नामकी स्वतन्त्र टीका १७३७ ई०में लिखी। ध्वनिका विचार इसमें 'अनवर चन्द्रिका' की ही पद्धतिपर किन्तु स्वच्छन्द किया गया है। जयपुराधीशके मन्त्री भण्डारी नाहटा अमरचन्द्रके अनुरोधसे १७३७ ई०में सूरतमिश्रने इसपर 'अमर चन्द्रिका' नामकी टीका लिखी। इसमें अलंकारोंका निरूपण पाण्डित्यपूर्ण है। इसका मत 'अनवर चन्द्रिका'से भिन्न है। सारी टीका दोहोंमें है। काशिराज महाराज बरिबण्ड सिंहके सभाकवि रघुनाथ बन्दीजनने भी एक टीका १७४५ ई०में लिखी थी, जो नहीं मिलती। १७५२ ई०में ईसवी खाँने 'रस चन्द्रिका' नामक टीका लिखी। इसमें नायिका, वक्ता-बोद्धव्य, अर्थ और अलंकार दिये गये हैं। अलंकारोंका वर्णन औरोंसे भिन्न है। १७७७ ई०में हरिचरणदासने 'हरिप्रकाश' नामक प्रसिद्ध टीका लिखी। यह भारतजीवन प्रेस, काशीसे छपी थी। इसमें सरल भाषामें शब्दार्थ और भावार्थ अच्छे ढंगसे समझाये गये हैं तथा अलंकार-निर्देश भी है। कहीं-कहीं शब्दोंके टुकड़े-टुकड़े कर डाले गये हैं और खींचतानसे अर्थ किया गया है। मनिरामने 'प्रताप चन्द्रिका' नामक तिलक किया, जो सम्भवतः जयपुराधीश प्रतापसिंहके आश्रित थे। इन्होंने टीका कुछ नहीं की। ये 'अनवर-चन्द्रिका' और 'अमर चन्द्रिका'के अलंकारोंकी छानबीन ही करते रहे और नये अलंकारों तथा काव्यांगोंकी विधि मिलाते रहे। १७०४ ई०में ठाकुर कविने देवकीनन्दन सिंहके प्रीत्यर्थ 'सतसैयावर्णार्थ' टीका लिखी, जिसका नाम 'देवकीनन्दन टीका' भी है। इसमे अर्थ बड़े विस्तारसे किया गया है तथा गूढ़ार्थ खोलनेमे कविने बड़ा परिश्रम किया है। गुजरात प्रान्तके रणछोड़ दीवानने १८०३ई०-१८१३ई०(सं० १८६०-७०)के लगभग इसकी टीका लिखी। इसमे शब्दार्थ-भावार्थके साथ अलंकारोंका भी निर्णय है और काव्यका तारतम्य भी दिखाया गया है। लल्लूलालकी लिखी प्रसिद्ध टीका 'लाल चन्द्रिका' उत्तम तो नहीं है पर ग्रियर्सन साहबने परिश्रमपूर्वक सम्पादित करके उसे प्रकाशित कराया। इसकी भाषामे खड़ीबोली और ब्रज भाषाका मिश्रण है। इसका पहला संस्करण सन् १८११ ई०मे कलकत्ताके संस्कृत प्रेससे, दूसरा काशीके लाइट प्रेससे, तथा तीसरा ग्रियर्सनका १८९६ ई० में कलकत्ता-के गवर्नमेंट प्रेससे छपा था। नवलकिशोर प्रेसका संस्करण बहुत भ्रष्ट छपा है। प्रसिद्ध कवि सरदारने भी 'सतसैया'पर टीका लिखी थी, जो उपलब्ध नहीं है। प्रभुदयाल पाण्डेकी आधुनिक खड़ीबोलीमें लिखी टीका १८९६ ई० मे कलकत्ताके बंगबासी आफिससे निकली थी। इसमें अन्वय, सरलार्थ और शब्दोंकी व्युत्पत्ति दी गयी है। ज्वालाप्रसाद मिश्रकी 'भावार्थ प्रकाशिका टीका' १८९७ई०मे समाप्त हुई। इस टीकामें पण्डिताईका प्रदर्शन करते हुए विचित्र पाठ एवं अर्थ दिये गये हैं तथा अलंकारोंका भी निर्देश है। पद्मसिंह शर्माका 'संजीवनभाष्य' उनके स्वर्गवाससे अपूर्ण रह गया। इसका पहला भाग १९२८ई०में निकला, जिसमें बिहारीकी आलोचना और अन्य कवियोंके साथ उनकी तुलना की गयी है। दूसरे भाग-का केवल प्रथम खण्ड ही निकल पाया, जिसमें १२६ दोहों-की टीका २८४ पृष्ठोंमें की गयी है। लाला भगवानदीनकी

'बिहारी बोधनी' वस्तुतः बहुत ही सुबोध है और इसका अत्यधिक प्रचार भी है। जगन्नाथदास 'रत्नाकर' का 'बिहारी रत्नाकर' १९२६ ई० में प्रकाशित हुआ। लगभग २२ वर्ष तक अथक परिश्रम करके अनेकानेक प्राचीन हस्त-लिखित प्रतियोंकी सहायता से इसे सम्पादित किया गया है। 'सतसैया' पर यह सबसे अधिक प्रामाणिक ग्रन्थ माना गया है।

हिन्दीमें ही नहीं, अन्य भाषाओंमें भी इसकी टीकाएँ लिखी गयीं। संस्कृतकी एक टीकाका उल्लेख अम्बिकादत्त व्यासने अपने 'बिहारी बिहार' में किया है पर उसके लेखकका पता नहीं चलता। संस्कृतकी दूसरी टीकाका उल्लेख 'रत्नाकर'जीने किया है। यह 'देवकीनन्दन टीका'-का संस्कृत उल्था जान पड़ती है। इसकी गुजराती टीकाका नाम है 'भावार्थ प्रकाशिका' और रचयिता हैं सविता-नारायण कवि। इसका निर्माणकाल है १९३९ ई०। हिजरी सन् १२१४में (सन् १८१५ के लगभग) श्री जोशी आनन्दी-लाल शर्मा ने 'सफरंगे सतसई' नामक टीका फारसीमें लिखी।

'सतसैया'का पद्योंमे भी पल्लवन-अनुवदन हुआ है। पल्लवन कवित्त, सवैया, कुण्डलिया आदि बड़े छन्दोंमें है और पद्यानुवाद संस्कृत और उर्दूमें। कुण्डलियोंमें पल्लवन १७०४ ई० के आसपास सबसे प्रथम पठान सुल-तानका मिलता है पर पूरा नहीं। कुण्डलिया बाँधनेवाले दूसरे शख्स हैं नवाब जुल्फिकार अली। ग्रन्थके अन्तमें १८४६ ई० समय उल्लिखित है। तीसरे सज्जन हैं ईश्वरी-प्रसाद कायस्थ। इनका ग्रन्थ नहीं मिलता। चौथे व्यक्ति हैं सुप्रसिद्ध अम्बिकादत्त व्यास। इनके ग्रन्थमें बिहारी-सम्बन्धी वाङ्मयकी पर्याप्त सामग्री एकत्र है। बिहारीके समय, वंश तथा कवित्वकी विस्तृत आलोचनासे इसके महत्त्वमें पर्याप्त वृद्धि हुई है। कुण्डलियोंमें विस्तार करने-वाले पटनाके सिख-संगतके महन्त साहबजादे बाबा सुमेर सिंह भी हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और पण्डा जोखूरामने भी 'सतसैया' के कुछ दोहोंपर कुण्डलियाँ लगायी थीं। कवित्त-सवैयोंवाली सबसे पहली टीका कृष्ण कविकी है, जिन्होंने १७२५ ई० में ग्रन्थ समाप्त किया। दूसरी 'रस-कौमुदी' नामकी टीका जानकीप्रसाद उपनाम 'रसिक-बिहारी' या 'रसिकेश' ने १८७० ई० में लिखी। दोहेको सवैया करनेवाले ईश्वर कवि नामके एक सज्जन और हैं, जिनकी रचनाका समय १९०४ ई० है। संस्कृतमें इसके दो पद्यान्तर हुए, एक 'आर्यागुम्फ' और दूसरा 'शृंगार-सप्त-शती'। 'आर्यागुम्फ'की रचना काशिराज चेतसिंहके दरबारी पण्डित और प्रधान कवि हरिप्रसादने १७८० ई० में की थी। 'शृंगार सप्तशती' १८६८ ई० में पद्यान्तरके साथ साथ संस्कृतमें ही विस्तृत टीका पं० परमानन्दने की थी और उसे भारतेन्दु और उनके मित्र रघुनाथ पण्डितके प्रीत्यर्थ बनाकर उन्हें समर्पित किया था। मुंशी देवीप्रसाद 'प्रीतम' ने उर्दूमें 'गुलदस्तए बिहारी' नामसे दोहोंको शेरोंमें बड़ी इस्मियतसे ढाला है।

'सतसैया' पर दिमागी कसरतके जौहर भी दिखाये गये। सुना जाता है कि छोटूराम नामके किसी व्यक्तिने दोहोंको वैद्यकपर घटाया था। लाला भगवानदीनने बिहारी को शान्त करते हुए 'शान्त बिहारी' नामसे दोहोंका अर्थ अपनी सम्पादित 'श्री विद्या' में निकाला था।

संक्षेपमें 'सतसैया'के प्रमुख क्रम इस प्रकार हैं। इसके दोहोंका पहले कोई क्रम न था। इसका पता विभिन्न टीकाओं और क्रम बाँधनेवालोंकी भूमिकाओंसे चलता है। यों तो १३-१४ क्रमोंका पता चलता है पर उनमेंसे प्रमुख और महत्त्वपूर्ण क्रम ५-६ ही हैं। सबसे प्राचीन पोथियोंके आधार पर निश्चित किये गये क्रमकी स्पष्ट विशेषता यह है कि १०-१० दोहोंके अनन्तर दोहा नीति-सम्बन्धी या ईश्वर-विनयका रखा गया है। बीचके दोहोंमें और कोई विशेष क्रम नहीं है। कहा जाता है कि जिस क्रमसे 'सतसैया'के दोहोंका निर्माण हुआ, उसी क्रमसे इसमें दोहे पाये जाते हैं। इस क्रम पर कृष्णलालकी गद्य टीका, मानसिंह विजय-गढ़-वालेकी टीका, फारसीवाली टीका और 'बिहारी रत्नाकर' हैं। दूसरों द्वारा बाँधे गये क्रमोंमें सबसे पहला कोविद कविका क्रम है (१६८५ ई०), जिसमें विषय-क्रमके अनुसार पुराना क्रम तोड़ दिया गया है। यह कोई महत्त्वपूर्ण और अच्छा साहित्यिक क्रम नहीं है। प्रसिद्ध क्रमोंमें सबसे पहला पुरुषोत्तम दासका बाँधा है (१६८८ ई० के आसपास)। इसकी विशेषता यह है कि पहले नायिका-भेद और नखशिख-के दोहे रखे गये हैं और अन्तमें नीति एवं भक्ति के। इसी क्रमपर 'अमर चन्द्रिका', हरिप्रकाश टीका, जुल्फिकारकी कुण्डलियाँ, 'बिहारी बोधिनी' और 'गुलदस्तए बिहारी' हैं। सबसे अच्छा क्रम 'अनवर चन्द्रिका'का है (१७१४ ई०)। यह क्रम रसनिरूपणके अनुसार है। इसमें सोलह प्रकाश हैं। पहलेमें कविने अपने प्रभुके वंशका वर्णन किया है। उसके आगे तेरह प्रकाश तक नख-शिख, नायिका-भेद, वियोग दशा, सात्त्विक एवं हावादिके दोहे हैं और अन्तमें नवरस, षड्ऋतु और अन्योक्ति के। इस क्रमपर 'साहित्य चन्द्रिका', 'प्रताप चन्द्रिका' और रणछोड़ दीवान-की टीका है। आजमशाही क्रम (१७२४ ई०) आजमगढ़के तत्कालीन अधिकारी आजम खाँ के अनुरोधसे जौनपुरके हरिजू कविने लगाया था। यह भी नायिका-भेदको ही लेकर चला है। इसका ग्रहण 'लाल चन्द्रिका', 'भावार्थ प्रकाशिका', 'बिहारी बिहार', 'संजीवन भाष्य' और 'शृंगार सप्तशती'-में किया गया गया है। कृष्णादत्तवाली 'कवित्त बँध टीका'में भी स्वतन्त्र क्रम है, जो विषयके अनुसार है। इस क्रम पर प्रभुदयाल पाण्डेकी और गुजरातीवाली टीका है। ईसवी खाँ ने दोहोंको अकारादि क्रमसे रखा है। सम्भव है इन क्रमोंके अतिरिक्त भी और क्रम हों क्योंकि एतत्सम्बन्धी बहुत सा वाङ्मय अप्राप्त है।

हिन्दी साहित्यकी विशिष्ट रचनाओंमें 'सतसैया'को बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त है। इसकी साहित्यिक विशेषताओं एवं बिहारीसम्बन्धी वाङ्मयके लिए देखिये 'बिहारीलाल'। —वि० प्र० मि०

सत्यनारायण (मोटरू)—जन्म २ फरवरी, १९०२ ई०को आन्ध्र प्रदेशके कृष्णा जिलेमें दोंडपाडु ग्राममें हुआ। गत ४० वर्षोंसे दक्षिण भारतमें हिन्दी-प्रचारके आन्दोलन का नेतृत्व किया है। कांग्रेसके सदस्य वे अवश्य रहे

किन्तु इसके अतिरिक्त हिन्दी प्रचार सभाको छोड़ उन्होंने किसी भी राजनीतिक अथवा सामाजिक सभा सोसायटीको नहीं अपनाया। उनके व्यक्तित्वके दो विशेष गुण हैं—हिन्दी प्रचारके लिए उनकी तल्लीनता और इस उद्देश्यको प्राप्त करनेके लिए उनका अथक परिश्रम।

सन् १९२१ ई०में गान्धीजीके निमन्त्रणपर हिन्दी प्रचार आन्दोलनमें भाग लिया। हिन्दी अध्यापनके साथ साथ स्वयं पढ़नेका अध्यवसाय भी बराबर करते रहे। हिन्दी-साहित्यका गहन अध्ययन किया और दक्षिण भारतीय साथियों तथा विद्यार्थियोंको अनुप्राणित किया। अपने व्यवस्थाकौशलसे हिन्दी-परीक्षाओंके प्रबन्धमें सुधार किये। सन् १९३६ से १९३८ तक वर्धाकी राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की ओरसे सिन्ध, गुजरात, महाराष्ट्र, उत्कल, बंगाल और आसाममें हिन्दी प्रचारका संगठन किया। दक्षिणमें हिन्दी प्रचारका कार्य चार शाखाओंमें विभाजित किया। १९३८ से १९६० ई० तक दक्षिण प्रचार सभाके प्रधान मन्त्री रहे। वास्तवमें तो सत्यनारायणजी और हिन्दी प्रचार सभाकी प्रगति पर्यायवाची हो गये हैं।

सत्यनारायणजीने जो हिन्दीकी सेवाकी है, वह प्रचार और साहित्य-सृजन दोनोंकी दृष्टिसे स्तुत्य है। उनके प्रयत्नोंके फलस्वरूप दक्षिणमें हिन्दी प्रचारका कार्य सुव्यस्थित ढंगसे चलता रहा है। इस कार्यके महत्त्वका अनुमान इसी बातसे लगता है कि आजकल दक्षिणसे प्रायः दो लाख छात्र और छात्राएँ प्रतिवर्ष हिन्दी परीक्षाएँ देती हैं। आज हिन्दीका प्रचार दक्षिणमें इतना आगे बढ़ चुका है कि नयी पीढ़ीके प्रायः सभी लोग हिन्दी बोलने अथवा कम से कम समझने लगे हैं। इस बातका श्रेय दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा और सत्यनारायणजी जैसे उसके कर्मठ तथा त्यागशील कार्यकर्त्ताओंको ही है। हिन्दीके अतिरिक्त ये तेलुगु, तमिल, संस्कृत, मराठी, बंगला, उर्दू और अंग्रेजी भाषाओंका अच्छा ज्ञान रखते हैं। —शा० द०

सत्यनारायण कविरत्न—जन्म सराय नामक ग्राममें २४ फरवरी, १८८० ई० को और मृत्यु १६ अप्रैल, १९१८ ई० को हुई थी। इनका पालन-पोषण ताजगंज (आगरा)के बाबा रघुबरदासके यहाँ हुआ था। दिसम्बर, १८९६ ई० मे मिढाकुरके टाउन स्कूलसे मिडिल स्कूल, जनवरी, १९०० ई०में मुफीदाम स्कूलसे एन्ट्रेन्स और अप्रैल, १९०८ ई० मे सेन्टपीटर्स कालेजसे एफ० ए० की परीक्षाएँ इन्होने पास कीं। सेन्टजान्स कालेज, आगरामे १९१० ई० मे बी० ए० की परीक्षा दी किन्तु उत्तीर्ण न हो सके। इनका विवाह 'मेरी शारदा-सदन'के अधिष्ठाता पं० मुकुन्दरामकी ज्येष्ठ कन्या सावित्रीसे हुआ था। दोनोंके रहन-सहन, आचार-विचार और शील-स्वभावमें काफी अन्तर होनेके कारण इनका गार्हस्थ्य जीवन एकदम असफल रहा। कविका जीवन दरिद्रता, अशान्ति, असन्तोष और संघर्षका पर्याय था। चरित्र निष्कपट और स्वभाव सरल, मिलनसार एवं हँसोड़ था। वे धर्मसे सनातनी और जातिसे सनाढ्य ब्राह्मण थे। उनपर स्वामी रामतीर्थके विचारों और तत्कालीन धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक वातावरण-का विशेष प्रभाव पड़ा था। वे सभी प्रकारके आन्दोलनोंमें सक्रिय भाग लेते थे। सभाओंमें स्वागत-गान तथा अभिनन्दन-पत्रसम्बन्धी कविता लिखकर पढ़ते थे और आवश्यकता पड़ने पर प्रभावशाली व्याख्यान भी दे लेते थे।

कविरत्नकी कवित्व-शक्तिका स्फुरण विद्यार्थी-जीवनमें ही हो गया था। प्राचीन ढंगके विनय-पद, शृंगारिक समस्या-पूर्तियों और अन्य कवियोंके शृंगारपरक दोहोंके भावोंका टीका रूपमें कवित्वमय पल्लवन उनके प्रारम्भिक प्रयोग हैं। १९०४ ई० के बाद उनकी प्रौढ़ रचनाओंके मुख्य विषय भक्ति, राष्ट्रीय भावना, देश-प्रेम और महापुरुषोंके स्तवन हो गये। 'वन्देमातरम्' और 'करुणा-क्रन्दन' आदि कविताओंमे भारतकी दयनीय अवस्थाका करुण चित्र उपस्थित किया गया है। १९१७ ई० मे कुली-प्रथाके विरोध मे लिखी गयी कविता 'दुखियोंकी पुकार' भी इसी क्रमकी है। उनका करुणापूरित हृदय काफी उदार था। उन्होंने जहाँ अपनी माताकी मृत्यु पर 'विलाप' किया, वहाँ राजमाता विक्टोरियाके निधन पर शोक गीत भी लिखा। 'श्री तिलक-वन्दना', 'श्री सरोजनी नायडू-षटपदी', 'रवीन्द्र-वन्दना', 'श्री रामतीर्थाष्टक' और 'गान्धी-स्तव' आदि कविताओं द्वारा उनकी वाणी अनेक महापुरुषोंका स्तवन करती रही है। वे हिन्दीके अनन्य प्रेमी थे। उन्होंने रवीन्द्रनाथ ठाकुरके अतिरिक्त रेवरेण्ड जोन्स और सी० ए० डाब्सन आदि विदेशियोंसे भी हिन्दीके अभ्युदयके लिए निवेदन किया है। इस दृष्टिसे 'श्री ब्रजभाषा' शीर्षक कविता अत्यन्त उत्कृष्ट है। इस प्रकारकी फुटकर कविताएँ 'हृदय तरंग' नामके संग्रहमें संकलित हैं, जिसका सम्पादन बनारसीदास चतुर्वेदीने किया है। इस संग्रहकी दो अत्यन्त प्रसिद्ध कविताएँ 'भ्रमर दूत' और 'प्रेमकली' हैं। 'भ्रमरदूत' का कथानक प्राचीन है और शैली नन्ददासके 'भ्रमरगीत' की किन्तु चरित्र और भाव नये हैं। गोपियोंका स्थान माता यशोदाने ले लिया है। विप्रलम्भ शृंगारके स्थान पर वियोग-वात्सल्य और राष्ट्रीय भावनाकी व्यंजना हुई है। 'प्रेमकली'में प्रेमकी गोपनीयता और अलौकिकत्व प्रतिपादित है। 'हृदय-तरंग'की इन स्वतन्त्र कविताओंके अतिरिक्त कविने कई अंग्रेजी कविताओं, रवीन्द्रनाथके कुछ पदों, भवभूतिके दो नाटकों—'उत्तररामचरित' और 'मालती-माधव' तथा लॉर्ड मैकॉलेकी एक पुस्तिकाका ('होरेशस' नामसे) अनुवाद भी किया है। इन अनुवादोंमे कविकी सबसे बड़ी सफलता मूल भावोंकी रक्षा करते हुये इन्हे स्वतन्त्र कृतिका रूप प्रदान करनेकी है। भवभूतिके नाटकों का गद्यांश खड़ीबोली गद्य और पद्यांश ब्रजभाषामें अनूदित है। राजा लक्ष्मणसिंह द्वारा अनूदित कालिदासकृत 'शकुन्तला नाटक'का संशोधन और 'स्वदेश बान्धव' पत्र (आगरा) के पद्य-विभागका सम्पादन इन्होंने किया है। ब्रजभाषाके अतिरिक्त खड़ी बोलीकी कविताएँ भी लिखी हैं।

कविरत्न एक देशप्रेमी भक्त कवि हैं। उनके आराध्य भारतमाता और 'भूभार उतारन' 'रंगीलो साँवरो' हैं। प्रेमका आदर्श पतंग-प्रेम है, जिसमें प्रेमीका आत्मोत्सर्ग अनिवार्य है। आत्मनिवेदन उपालम्भके रूपमें है और दैन्य निजी न होकर देशपरक है। राष्ट्रीयता अखण्ड

भारतीयता है। उसमें हिन्दू, सनातनी, आर्यसमाजी, ईसाई, मुसलमान अलग-अलग नहीं, अपितु एक जाति एक धर्म और एक राष्ट्रके हैं। अपने सामाजिक विचारोंमें कवि सर्वांगीण अभ्युदयका अभिलाषी है। उसकी दृष्टिमें 'भारत वसुन्धरा'के गिरते हुए गौरवकी रक्षाके लिए संकुचित भावना और सभी प्रकारकी संकीर्णताओंका त्याग आवश्यक है। कविरत्नको प्रकृति प्रिय है और मानवको स्वतन्त्र रहनेकी प्रेरणा देती है क्योंकि वह स्वयं स्वच्छन्द है। वे एक समन्वयवादी कलाकार हैं। रसिया, पद, छप्पय, कुण्डलिया, अष्टक, षट्पदी, दोहावली, अन्योक्ति, स्तवन, गजल, शोक-गीत आदि प्राचीन-नवीन और देशी-विदेशी शैलियोंका प्रयोग उनके काव्यमें हुआ है। विषयों और विचारोंमें भी यह समन्वय-प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। उनकी भाषा परिनिष्ठित किताबी ब्रजभाषा न होकर बोलचालकी जीवन्त भाषा है, जिसकी बहुत बड़ी विशेषता ग्रामीण सरलता एवं मधुरता है। कुल मिलाकर कविरत्नने मध्ययुगीन भक्ति एवं शृंगार-परम्पराओंको नवीन भावनाओंसे समृद्ध किया है। युग-चेतना और सामयिक विचारधारासे ब्रज-भाषा काव्यका अभिनव शृंगार किया है। ब्रजभाषा उनकी सहज ग्राम-भाषाकी संजीवनीसे अनुप्राणित होकर सजीव एवं सशक्त हुई है। सत्यनारायण हिन्दीके राष्ट्रीय गायक और आधुनिक ब्रजभाषा काव्यकी 'बृहत्त्रयी' (हरिश्चन्द्र, रत्नाकर, सत्यनारायण कविरत्न)के कवि हैं।

[सहायक ग्रन्थ—हृदय तरंग : सम्पादक–बनारसीदास चतुर्वेदी; कविरत्न सत्यनारायणजीकी जीवनी : बनारसीदास चतुर्वेदी।] —स० ना० त्रि०

सत्यप्रकाश–जन्म १९०५ई०में हुआ। हिन्दी माध्यमसे वैज्ञानिक विषयोंपर लिखनेवालोंमें अग्रणी। शिक्षा प्रयाग विश्वविद्यालयमें हुई, जहाँ अब रसायन विभागमें प्राध्यापक हैं। अंग्रेजी-हिन्दी पारिभाषिक कोशोंका भी निर्माण किया। 'विज्ञान परिषद्'के प्रमुख संचालकोंमें हैं। कृतियोंमें प्रमुख हैं—'अंग्रेजी हिन्दी वैज्ञानिक कोश' (१९५०), 'वैज्ञानिक विकासकी भारतीय परम्परा' (१९५४ ई०), 'सामान्य रसायन शास्त्र'। —सं०

सत्यभामा–यह कृष्णकी विवाहिता एवं जामवन्तकी कन्या थी। जामवन्तसे युद्ध होनेपर जब अन्तमें जामवन्तने उन्हे पहचाना, तब उन्होंने अपने बेटी जाँमवन्तीका विवाह उनसे कर दिया। इस प्रकार सत्यभामा कृष्णकी अनुकम्पापात्री रूपमें वर्णित हुई हैं (सू० सा० पद ४८०८)। —रा० कु०

सत्यवती मल्लिक–१९०७ ई० में श्रीनगरमें जन्म हुआ। प्रारम्भ से ही हिन्दीसाहित्यमें विशेष रुचि थी। रचनात्मक साहित्यकी गद्यशैलियोंमें सत्यवती मल्लिककी शैलीका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। श्रीमती मल्लिकने केवल दो विधाओंमें ही साहित्यिक रचनाएँकी हैं—पहली विधा तो कहानी और स्केचकी है और दूसरी विधा व्यक्तिगत निबन्धोंकी है। कहानीके लगभग तीन संग्रह, जीवनीकी एक पुस्तक और स्केचका एक संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

श्रीमती मल्लिककी कहानियोंमें दो प्रवृत्तियाँ मुख्य रूप से पाई जाती हैं। पहली तो सहज रोमानी मूडमें स्वप्निल दुनियाकी झलकियाँ और दूसरे आदर्शवादी नायककी कल्पनाको प्रतिष्ठित करनेकी भावना। यथार्थ और आदर्शकी कटु परीक्षाकी घड़ियोंमें उदात्तकी रोमानी प्रतिष्ठा आपकी रचनाओंमें समान रूप से मिलती हैं। श्रीमती मल्लिककी कहानियोंकी अन्य विशेषता यह है कि वह यथार्थकी मानवीय अनिवार्यताके साथ आदर्शकी प्रतिष्ठा स्थापित करना चाहती हैं। प्रायः इन दोनोंके संघर्षमें पात्रोंकी स्वाभाविकताको कुछ धक्का पहुँचता है किन्तु शायद जिस युगमें श्रीमती मल्लिकने अपनी कहानियाँ लिखी हैं, वह युग ही इन विरोधी संघर्षोंका था। फिर श्रीमती मल्लिक अपने समयकी जागर्तिके प्रति भी जागरूक थीं, इसलिए कुछ कहानियाँ तो नितान्त प्रतिनिधिके रूपमें महत्त्वपूर्ण हैं।

उद्देश्यपूर्ण अन्तको दृष्टिगत रखनेके नाते आपकी जीवनी 'मानव रत्न' की भी प्रेषणीयता सीमित रह जाती है। यही कमी आपके रेखाचित्रों 'अमिट रेखाएँ' में भी खटकती है। या तो चरित्रोंके प्रति अतिरंजित दृष्टि अपना ली है या उसमें इतनी भावुकता भर दी है कि वह नाटकीय हो गये हैं। रंगविहीन वस्तुपरकता उतनी सफलता नहीं प्राप्त कर सकी है।

निबन्धमें इसी आत्मपरक शैलीका महत्त्व निखर सकता था, लेकिन अति परिचित निबन्धोंकी अपेक्षा वे फिर भावनात्मक होकर रह गये हैं।

आपकी प्रकाशित कृतियाँ इस प्रकार हैं—'दो फूल' (कहानी संग्रह १९४८), 'मानव रत्न' (जीवनी १९४९), 'बैसाखकी रात' (कहानी संग्रह १९५१), 'अमित रेखायें' (रेखाचित्र १९५१), 'अमर पथ' (निबन्ध १९५४), 'दिन रात' (कहानीसंग्रह १९५५)। —ल० कां० व०

सत्य हरिश्चंद्र–भारतेन्दु हरिश्चन्द्रकी अत्यन्त प्रसिद्ध रचना है। कथा पौराणिक और क्षेमेश्वरकृत 'चण्डकौशिक' पर आधारित किन्तु विधानमें मौलिक है। सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्रकी कथा भारतके घर-घरमें प्रचलित है। उसे भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने चार अंकोंमें विभाजित कर प्रस्तुत किया है। पहले अंकमें नारदसे हरिश्चन्द्रकी प्रशंसा सुनकर विश्वामित्र उन्हे तेजोभ्रष्ट करनेका दृढ निश्चय करते हैं। दूसरे अंकमें महारानी शैव्याका दुःस्वप्न है और हरिश्चन्द्र क्रोधी विश्वामित्रको राज-दान कर दक्षिणाके लिए एक मासकी अवधि माँगकर देह, दारा, सुअन बेचनेके लिए महल छोड़कर चल देते हैं। तीसरे अंकके अंकावतारमें भैरव हरिश्चन्द्रके अंगरक्षक नियुक्त होते हैं। तीसरे अंकमें हरिश्चन्द्र अपनेको चाण्डालके हाथ बेचकर विश्वामित्रका ऋण पूरा करते हैं और मसानपर कफनका दान लेनेमें प्रवृत्त हो जाते हैं। इस अंकके आरम्भमें काशी और गंगाका अच्छा वर्णन हुआ है। चौथे अंकमें हरिश्चन्द्र अपनी परीक्षामें उत्तीर्ण होते हैं। उन्हे सत्यपर अडिग पाकर महादेव, पार्वती, भैरव, धर्म, सत्य, इन्द्र और विश्वामित्र प्रकट हो जाते हैं। विश्वामित्र क्षमा-याचना करते हैं और महादेव, पार्वती और भैरव हरिश्चन्द्रको आशीर्वाद तथा वरदान देते हैं। इस अंकमें श्मशानके वर्णन और वीभत्स, भयानक तथा

करुण रसोंकी सुन्दर अवतारणा हुई है। सम्पूर्ण नाटकमें वीर (सत्यवीर और दानवीर) रसकी निष्पत्ति पाई जाती है। उसमें रूपक-रचनाके लगभग सभी प्रमुख लक्षण पाये जाते हैं। —ल० सा० वा०

सत्येंद्र–जन्म सन् १९०७ ई०में हुआ। साहित्यके प्रति रुचि पिताके कारण जागरित हुई। आप हिन्दी साहित्य परिषद्, मथुरा, सुहृद् साहित्य गोष्ठी तथा ब्रज साहित्य मण्डलके संस्थापकोंमेंसे है। लोक-साहित्यके परम मर्मज्ञ हैं। 'उद्धारक', 'ज्योति', 'साधना', 'ब्रजभारती' और 'आर्य मित्र'के सम्पादक रहे हैं।

प्रकाशित पुस्तकें निम्नांकित है—'साहित्यकी झाँकी', 'गुप्तजीकी कला', 'हिन्दी एकांकी', 'प्रेमचन्द और उनकी कहानी कला', 'कुणाल', 'प्रायश्चित', 'मुक्ति यज्ञ', 'बलिदान', 'स्वतन्त्रताके अर्थ', 'नागरिक कहानियाँ', 'विज्ञानकी करामात', 'ब्रजलोक साहित्यका अध्ययन', 'कला, कल्पना और साहित्य', 'हिन्दी साहित्यमें आधुनिक प्रवृत्तियाँ', 'मध्यकालीन साहित्यका लोक-तात्त्विक अध्ययन'।

'साहित्यकी झाँकी' उनकी प्रथम साहित्यिक रचना है, जो क्रमशः 'वीणा'मे प्रकाशित हुई थी। 'ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन' पी० एच० डी० के लिए लिखा गया प्रबन्ध है। 'कुणाल', 'प्रायश्चित' और 'मुक्ति यज्ञ' उनके नाटक हैं। 'बलिदान' और 'स्वतन्त्रताका अर्थ' उनके एकांकी नाटक है। 'नागरिक कहानिया' और 'विज्ञानकी करामात' पाठ्य-पुस्तकें है। 'कला, कल्पना और साहित्य' एवं 'हिन्दी साहित्यमे आधुनिक प्रवृत्तियाँ' इनके साहित्यिक निबन्धों-का संग्रह हैं। 'मध्यकालीन साहित्यका लोक-तात्त्विक अध्ययन' डी० लिट्० की थीसिस पर आधारित है।

सत्येन्द्र अपनी आलोचनामे शब्दों और प्रवृत्तियोंके ऐतिहासिक विवेचनके कारण अन्य आलोचकोंसे सर्वथा पृथक् लगते हैं। उनकी आलोचना-पद्धति अंग्रेजी ढगकी है। दर्शन, मनोविज्ञान, तर्कशास्त्र और सौन्दर्यशास्त्रके आधारके साथ प्रभाववादी आलोचनाके भी कुछ तत्त्व उनमे मिलते हैं। पर सत्येन्द्रका मुख्य कार्य-क्षेत्र लोक साहित्यका अध्ययन ही माना जायगा। —ह० दे० बा०

सदल मिश्र–विहार प्रान्तके शाहाबाद जिलेके धवडीहा गावके रहनेवाले शाकद्वीपीय ब्राह्मण थे। इनके पिताका नाम नन्दमणि मिश्र था। इनका जन्म अनुमानतः सन् १७६७-६८ ई० मे और मृत्यु सन् १८४७-४८ ई०मे हुई थी। ये कलकत्ताके फोर्ट विलियम कालेजके हिन्दुस्तानी विभागमे अध्यापक थे। सम्भवतः ये सदैव अस्थायी अध्यापकके रूपमे ही कार्य करते रहे क्योकि कालेजके स्थायी अध्यापकोकी सूचीमे इनका नाम नही मिलता। इनकी दो गद्य-कृतियाँ प्रसिद्ध है—१. 'नासिकेतोपाख्यान' या 'चन्द्रावती' (१८०३ ई०) और २. 'रामचरित' (१८०६ ई०)। 'नासिकेतोपाख्यान', 'यजुर्वेद', 'कठोपनिषद्' और पुराणोंमे वर्णित है। सदल मिश्रने इसे स्वतन्त्र रूपमे खडीबोली गद्यमे प्रस्तुत करके सर्वजन सुलभ बना दिया। इसकी वर्णनशैली मनोरंजक और काव्यात्मक है। यह नागरी प्रचारिणी सभा, काशीसे प्रकाशित हो चुकी है। 'रामचरित' 'अध्यात्म रामायण'का हिन्दी रूपान्तर है। इसकी रचना गिल क्राइस्टके आग्रहपर अरबी और फारसीके शब्दोंसे रहित शुद्ध खडीबोलीमें की गयी है। इधर बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्ने 'सदलमिश्र ग्रन्थावली'के अन्तर्गत उपर्युक्त दोनों कृतियों—'नासिकेतोपाख्यान', 'रामचरित'—का सुन्दर संस्करण (१९६० ई०) प्रकाशित किया है।

प्रारम्भिक खड़ीबोली गद्य-लेखकोंमें सदल मिश्रका विशेष महत्त्व है। रामचन्द्र शुक्लके अनुसार "इन्होंने व्यवहारोपयोगी भाषा लिखनेका प्रयत्न किया है"। श्यामसुन्दर दासने तत्कालीन गद्य-लेखकोंमे इंशाके बाद इनका दूसरा स्थान स्वीकार किया है। यह होनेपर भी इनकी भाषा परिमार्जित नही कही जा सकती। शब्द-संघटन और वाक्य-विन्यास दोनोंमे ही ब्रजभाषा, पूरबी बोली और बंगला इन तीनोंका प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। 'फूलन्हके बिछौने', 'सोननके थम्भ', 'चहुँदिसि', आदि प्रयोग ब्रज भाषाके है। 'बरते थे', 'बाजने लगा', 'मतारी', 'जौन' आदि प्रयोग पूरबी बोलीके है। इसी प्रकार 'कांदती है' (रोनेके अर्थमे), 'गाँछों' (वृक्षके अर्थमे) आदि कई शब्द बंगलासे आ गये है। कहीं-कहीं खडीबोलीके आग्रह और ब्रजभाषाके संस्कारके कारण शब्दोंका एक नया रूप ढल गया है। 'आवते', 'जावते', 'पुरावते' आदि शब्द इसी प्रकारके है। इन्होने 'और'के लिए प्रायः 'वो' का प्रयोग किया है। इनमे व्याकरणकी त्रुटियाँ भी है और पण्डिताऊपनके प्रभावमे उत्पन्न होनेवाली शिथिलता भी। समस्त दुर्बलताओंके बावजूद आपकी भाषामें आधुनिक "हिन्दी-गद्यके मान्य स्वरूपका पूरा-पूरा आभास मिल जाता है। आपकी भाषा तत्सम तद्भव शब्द-राशिका अधिकाधिक भार वहन करनेकी शक्तिका परिचायक है और ईषत् परिष्कारसे परिमार्जित आधुनिक हिन्दीका रूप ग्रहण कर सकती है।" इस दृष्टिसे हिन्दी-गद्यके विकासमे आपका ऐतिहासिक महत्त्व है।

[सहायक ग्रन्थ—सदल मिश्र ग्रन्थावली, विहार राष्ट्र-भाषा परिषद्, पटना।] —रा० चं० ति०

सदासुख लाल–हिन्दीके प्रारम्भिक गद्य लेखकोंमे सदासुख लाल 'नियाज'का अन्यतम स्थान है। इन्होंने तत्कालीन हिन्दी खडीबोली गद्यका उर्दूसे स्वतन्त्र निजी स्वरूप प्रस्तुत किया है। इनका जन्म दिल्लीमे सन् १७४६ ई०में हुआ था। ये फारसी और उर्दूके अच्छे लेखक और शायर थे। सन् १७९३ ई०के लगभग ये कम्पनी सरकारकी सेवामें चुनारमें तहसीलदारके पदपर प्रतिष्ठित थे। आप स्वतन्त्र विचारोंवाले सज्जन और भक्त-हृदय व्यक्ति थे। सन् १८१८ ई०मे आपने 'मुंतखबुत्तवारीख' लिखी, जिसमे अपने जीवनका सक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत किया। ६५ वर्षकी अवस्था (सन् १८११ ई०) मे आपने नौकरी छोड़ दी। शेष जीवन आपने प्रयागमें रहकर भगवद्भजन करते हुए व्यतीत किया। 'विष्णु पुराण'के कुछ उपदेशात्मक और नैतिक प्रसंगोंको चुनकर आपने 'सुखसागर' नामक पुस्तक लिखी। यह कृति अधूरी प्राप्त हुई है। खास दिल्लीके निवासी होते हुए भी, पौराणिक प्रसंगोंको लेकर पुस्तक-

रचना करते समय, आपने हिन्दी खड़ीबोलीगद्यके उस रूपको स्वीकार किया, जो समस्त हिन्दी-प्रदेशके शिष्ट हिन्दुओं, कथावाचकों, पण्डितों और साधु-सन्तोंमें प्रचलित था। आपके गद्यमें संस्कृत भाषाके तत्सम शब्दोंका समावेश अधिक है। हिन्दी गद्यकी यह परम्परा अंग्रेजोंके प्रभाव-क्षेत्रसे अलग रामप्रसाद 'निरंजनी' और दौलतराम द्वारा पहलेसे ही प्रतिष्ठित चली आ रही थी। आपने उसे अधिक स्वच्छ, सरल और सुबोध रूपमें प्रस्तुत किया। पण्डिताऊ-पन आपके गद्यमें भी है। "निजस्वरूपमें लय हूजिए", "तोता है सो नारायणका नाम लेता है", "इसमें जाना गया", "स्वभाव करके वे दैत्य कहलाए", "उन्हीं लोगोंसे बन आवे है" आदि प्रयोग पण्डिताऊपनके ही सूचक हैं। भाषाके संस्कृतमिश्रित रूपके प्रति आपके मनमें विशेष मोह था क्योंकि 'भाखा' नाममें यह रूप परम्परासे चला आ रहा था। इस स्थानपर फारसी बहुल उर्दू गद्यकी प्रतिष्ठा होते देख आपने कहा था—"रस्मोरिवाज भाखाका दुनियासे उठ गया"। आपकी मृत्यु ७८ वर्षकी अवस्थामें सन् १८२४ई०में हुई।

[सहायक ग्रन्थ—हिन्दी साहित्यका इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल; आधुनिक हिन्दी साहित्यकी भूमिका : लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय।] —रा० चं० ति०

सद्‌गुरुशरण अवस्थी—जन्म १९०१ ई० मे हुई। एम० ए० तककी शिक्षा कानपुर तथा आगरामे हुई। कानपुरके बी० एन० एस० डी० कालेजके प्रिंसिपल रहे। 'तुलसीके चार दल' तुलसी-साहित्यकी समीक्षा है। प्रारम्भमें कुछ एकांकी नाटक भी लिखे। —स०

सनक-सनंदन—ऋषि सनक और सनंदन दोनों ब्रह्माके मानस पुत्र थे। इन दोके अतिरिक्त ब्रह्माके दो पुत्र और थे—सनातन और सनत्कुमार। इन लोगोंके सम्बन्धमें कहा जाता है कि ब्रह्माने इन्हे प्रजापति बनाना चाहा था पर सभी भाई ईश्वरोपासनामें लीन हो गये और इन्होने प्रजापति होनेमें इन्कार कर दिया। विवश होकर ब्रह्माने अन्य पुत्र उत्पन्न किये।

इन ऋषियोंका उल्लेख 'भागवत' आदि सभी पुराणों तथा हिन्दी भक्ति-काव्यमे मिलता है। —मो० अ०

सनेही—दे० गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'।

सप्तपुरी—अयोध्या, मथुरा, हरिद्वार, काशी, कांची, उज्जयिनी और द्वारिकाके सात पवित्र नगर अथवा तीर्थ, जो मोक्ष देनेवाले कहे गये हैं। —रा० कु०

सप्तर्षि—'शतपथ ब्राह्मण'के अनुसार गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र, यमदग्नि, वशिष्ठ, कश्यप और अत्रि तथा 'महाभारत'के अनुसार मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलह, क्रतु, पुलस्त्य और वशिष्ठ सप्तर्षि माने गये हैं। इसके अतिरिक्त सप्तऋषिसे उन सात तारोंका भी बोध होता है, जो ध्रुवताराकी परिक्रमा करते हैं। —रा० कु०

सप्तसिंधु—पुराण और इतिहासमे सप्तसिन्धुके सम्बन्धमें दो धारणाएँ प्रचलित है। पौराणिक परम्पराके अनुसार समस्त भूमण्डल सप्त-सिन्धुओं द्वारा घिरा है। ये सिन्धु क्रमशः लवण, इक्षु, दधि, क्षीर, मधु, मदिरा एवं घृतके हैं किन्तु ऐतिहासिक परम्परा भारतके पंजाब तथा उत्तर प्रदेशके बीच गंगा-यमुना एवं पंजाबकी पाँच नदियोंसे घिरे हुए प्रदेशके रूपमें निर्देशित करती है। इसका सर्वप्रथम उल्लेख ऋग्वेदमें अनेक स्थलोंपर प्राप्त होता है। इसीके आधारपर विद्वानोंने यह धारणा निश्चित की है कि आर्य इसी प्रदेशके मूल निवासी है। प्राचीन भारतीय परम्पराओंमे सप्त-सिन्धु या सप्तसिंधु प्रदेशका अनेक बार उल्लेख हुआ है। हिन्दी साहित्यमे प्रसादजीने 'भारतवर्ष' शीर्षक कवितामें इसी प्रदेशके लिए 'सप्तसिन्धु' शब्दका प्रयोग किया है। —यो० प्र० सिं०

सफीया—मोहम्मद साहबकी बुआ (पिताकी बहन) थीं। इनके पिताका नाम अब्दुल मुत्तल्लिब था (दे० काबा-कर्बला)। —रा० कु०

सभासार नाटक—अहमदाबादनिवासी रघुराम नागरने १७०० ई० मे 'सभासार नाटक'की रचना की ("सत्रै सै सत्तवना, चैत्र तीज गुरुवार। या उज्वल उज्वल सुमति। कवि किय ग्रन्थ विचार॥" ('पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ', पृ० ४२१)। बनारसीदासकृत 'समयसार नाटक'के समान यह पद्य-पुस्तक भी नाटक नहीं है। सम्भवतः कविके सम्मुख बनारसीदास जैनकृत 'समयसार नाटक' था। इसी कारण उसने नाम रखा 'सभासार' और शैली भी वही, रखी जो 'समयसार नाटक'मे प्रयुक्त थी। 'समयसार नाटक'मे जैन-धर्मसम्बन्धी कुछ आध्यात्मिक विषयोंपर मुक्तक छन्द है तो इसमें राजसभासे सम्बद्ध व्यक्तियोंके गुण-दोषोंका कथन मुक्तक छन्दोंमें है। कवि कहता है—"सभा समुद्र अपार गुन पय ओगुन नीर जिम। राजा हस विचारि करे सु देखे काढि कै॥" कवि अपने ग्रन्थके निर्माणका लक्ष्य बताता है—"ज्यो सब सगति जानिये, प्रभु सो कहो पुकार। सकल सभा वर्णन कहूँ, नृपति आदि निरधार॥" ऐसा प्रतीत होता है कि रघुराम नागरका सम्बन्ध किसी राजसभा से था। फलतः उसे राजसभा से सम्बद्ध व्यक्तियोंका गहरा अनुभव था। उसी अनुभवके बलपर इस पुस्तकमें स्वामी, गमखाइक, सभा चतुर, सभा बिगार, वार्ता बिगार, हस्त चाटक, बात-सुभ, मुतफन्नी, मुनसी, मसखरा, कोटवाल, चुगल, खुशामदी, गरजू, कुकवि, सुकवि, कायर, धीरज, अधीर, धर्म ठक, दुष्ट, महादुष्ट, दगाबाज, निर्लज्ज, मूरख इत्यादिके लक्षण छन्दबद्ध हैं। —गो० ना० ति०

सम्मन—ये जातिके ब्राह्मण थे और इनका जन्म हरदोई जिलेके मल्लावां नामक स्थानमें सन् १७७७ ई० मे हुआ था। इनके जीवनके सम्बन्धमें कुछ अधिक ज्ञात नहीं है। इनके लिखे दो ग्रन्थ कहे जाते हैं। 'पिंगल काव्य भूषण' छन्द अलंकार आदिका एक रीति ग्रन्थ है, जिसकी रचना सन् १८२२ ई० मे हुई थी। यह ग्रन्थ सामान्य कोटिका है, इसीलिए प्रसिद्धि न पा सका। दूसरा ग्रन्थ 'सम्मनके दोहे' है। इसमें व्यवहार और समाजनीतिके फुटकर दोहे हैं। सम्मनकी प्रसिद्धि उनके इन नीतिके दोहोंके कारण ही है। इनमें विशेष काव्यत्व तो नहीं है किन्तु सीधी-सादी भाषामें इन्होंने रहीम और वृन्दकी तरह ही नीतिकी बडी अनुभव-पूर्ण बातें कही है। इनके मर्मस्पर्शी दोहे मौखिक रूपमें ही सुने जाते हैं, उनका कोई बड़ा संग्रह अभी तक नहीं

मिला। अपने दोहोंमें इन्होंने सर्वत्र अपना नाम रखा है। जो थोड़े-बहुत इनके दोहे मिलते हैं, उनके आधार पर भी इनको नीति-काव्यका उच्चकोटिका रचयिता माना जा सकता है। इनकी कोई भी रचना प्रकाशित नहीं है। 'कविता कौमुदी', भाग १, बम्बई, १९५४ ई० तथा इसी प्रकारके अन्य संग्रहोंमें इनके कुछ दोहे मिलते हैं।

[सहायक ग्रन्थ—हिन्दी नीति काव्य संग्रह : भोलानाथ तिवारी।] —भो० ना० ति०

समनेस—ये रीवाँनिवासी कायस्थ थे और रीवाँनरेश जयसिंहके बख्शी थे। इनके तीन ग्रन्थोंका उल्लेख मिलता है—अलंकारके विषय पर 'काव्य भूषण', रसके विषय पर 'रसिक विलास' और छन्द पर 'पिंगल' नामक ग्रन्थ। 'रसिक विलास'की हस्तलिखित प्रति दतिया राज पुस्तकालयमें उपलब्ध है। इसका रचनाकाल इस दोहेके आधार पर १७७० ई० तथा १७९० ई० (सं० १८२७ ई० तथा सं० १८४७ वि०) लगाया गया है—"संवत रिषि जुग वसु ससी कुल पून्यो नभ मास।" यहाँ 'जुग'का अर्थ रामचन्द्र शुक्लने चार (युगने) लिया है और भगीरथ मिश्रने दो लिया है। इसका रचनाकाल १८२२ ई० तक स्वीकार किया जा सकता है। इस ग्रन्थमें नौ रसों, नायिका-भेद, दूती-कर्म और रसके अंगोंका विवेचन है। लक्षण तथा उदाहरण दोनों ही दृष्टियोंसे यह ग्रन्थ साधारण स्तरका है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० का० शा० इ०; हि० सा० बृ० इ० (भा० ६)।] —भ०

समयसार नाटक—बनारसीदास जैनने १६३६ ई०में 'समयसार नाटक'का प्रणयन किया ("सोरहसे तिरानवें बीते। असू मास सित पक्ष बिनीते॥ तिथि तेरस रविवार प्रवीना। तादिन ग्रन्थ समापति कीना॥"—७०७)। ये कवि गोस्वामी तुलसीदासके समकालीन थे। 'समयसार नाटक'में दोहा, सोरठा, सवैया, चौपाई, छप्पय, कवित्त, अरिल, कुण्डलिया जैसे सरल छन्दोंका प्रयोग हुआ है, जिसकी संख्या ७२७ है। जैनियोंमें कुन्दकुन्दाचार्य मुनि प्रणीत 'समय पाहुड' नामक ग्रन्थका समादर है। यह नाटक नहीं है, वरन् धार्मिक पद्य-ग्रन्थ है, जिसमें मुक्त जीव, बद्ध जीव, पाप, पुण्य, मोक्ष, वैराग्य, ज्ञान, सत्य व्यवहार, उत्तम, मध्यम, अधम पुरुष, मूढ़ पुरुष, क्रिया-कर्ता, कर्म, पुद्गल देह, जगत्, अहं बुद्धि इत्यादि आध्यात्मिक विषयोंपर मुक्तक गाथाएँ अथवा छन्द हैं। इस ग्रन्थकी कई टीकाएँ हुईं। मुनि अमृतचन्द्रकृत 'आत्मख्याति संस्कृत टीका', जयसेनाचार्यकी 'तात्पर्य-वृत्ति संस्कृत टीका', जयचन्दकी 'भाषा टीका' एवं पाण्डे राजमल्ल जैनकी 'भाषा टीका' प्रसिद्ध है। इनमें मुनि अमृतचन्द्रकी टीका सबसे पहली है और नाटकाकार है। मुनि अमृतचन्दने 'समय पाहुड' के जीव, अजीव इत्यादिको पात्र बनाया एवं पूरी टीका नाटक रूपमें लिखी। यह टीका हुई 'समयसार नाटक'। बनारसीदास जैन ने मूल ग्रन्थ 'समय पाहुड' एवं राजमल्लकी टीकाको सामने रखकर अनुवाद किया है, अमृतचन्द मुनिका नाटकाकार रूप ग्रहण नहीं किया है। फलतः बनारसीदास जैनकृत 'समयसार नाटक' में जीव, अजीव इत्यादि पात्र रूपमें प्रवेश नहीं करते हैं, वरन् 'समय पाहुड'के समान भिन्न-भिन्न छन्द हैं। हाँ, कविने अमृतचन्दके अनुकरणपर अपने पद्य ग्रन्थका नाम रख दिया है—'समयसार नाटक'। कवि ग्रन्थ निर्माणके सम्बन्धमें कहता है—"कुन्द-कुन्द मुनि मूल उधरता। अमृतचन्द टीकाके करता॥ समेसार नाटक सुखदानी। टीका सहित संस्कृत बानी॥ पण्डित पढ़ि दिढमती बूझै। अलपमतीको अरथ न सूझै॥ या मैं राजमल्ल जिन धर्मी। समेसार नाटकके मर्मी॥ तिन्ह गिरन्थकी टीका कीनी। बाला बोध सुगम करि दीनी॥ इहि विधि बोध बचनकी फैली। समो पार अध्यातम शैली॥ प्रगटेउ जगत माहि जिन बानी। घरि घरि नाटक कथा बखानी॥"

बनारसीदास जैनकृत 'समयसार नाटक' पद्य-ग्रन्थ किसी भी प्रकार से नाटक नहीं है। न इसमें साहित्यिक नाटकीय शैली है और न जन-नाटकों की। 'रामायण महानाटक', 'हनुमान् नाटक', 'शकुन्तला नाटक', 'आनन्द रघुनन्दन' इत्यादि अन्य पद्यात्मक ब्रजभाषा नाटक अंकोंमें विभाजित हैं, पात्रोंका प्रवेश और निष्क्रमण रखते हैं एवं वर्णनात्मक शैलीके साथ ही साथ पात्रों में कथोपकथन कराते हैं। 'समयसार नाटक' अंकोंमें विभाजित नहीं है, इसमें पात्र है ही नहीं एवं शिष्यके प्रश्न करनेके अतिरिक्त संवादात्मक शैलीमें और कुछ भी नहीं है। यह 'योग वाशिष्ठ' या 'गीता' जैसा ग्रन्थ है, जिनके बीचमें कभी-कभी प्रश्न होता है। कविने इस ग्रन्थका निर्माण भी पढ़ने या सुननेके लिए किया है। वह कहता है—"सुनौ भाविक धरि प्रेम" (१६५), "सुनो भाविक धरि कान" (१६६)। 'वर्ननम्', 'कथनम्' शब्द भी यही बात कहते हैं कि कवि दूसरोंको सुनानेके लिए कुछ आध्यात्मिक प्रसंगोंका कथन कर रहा है। —गो० ना० ति

सरजूराम पंडित—सरजूराम अवधनिवासी ब्राह्मण थे। इसके अतिरिक्त इनके विषयमें और कुछ ज्ञात नहीं। इनकी एकमात्र प्राप्त रचना 'जैमुनि पुराण' है, जो जैमिनी विरचित 'महाभारत'के अश्वमेध पर्वकी कथापर आधारित है। इसका रचनाकाल १७४८ई० है। साढ़े सात हजारके लगभग छन्दोंका यह विशाल ग्रन्थ ३६ भागोंमें विभक्त है। इसके अन्तर्गत संक्षिप्त रूपमें रामकथा भी आ गयी है। सारा ग्रन्थ युद्धवर्णनोंमें भरा है। इसकी भाषा परिष्कृत अवधी है। वस्तु-विन्यास तथा काव्य-सौष्ठवके विचारसे यह हिन्दीका एक उत्कृष्ट प्रबन्ध-काव्य है।

[सहायक ग्रन्थ—खोज रिपोर्ट, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी; हिन्दी साहित्यका उद्भव और विकास : रामबहोरी शुक्ल, भगीरथ मिश्र।] —भ० प्र० सिं०

सरदार कवि—ये काशिराज ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंहके दरबारी कवि थे। इनका रचनाकाल १८५०ई०से १८८३ई० तक माना गया है। ये ललितपुर (झाँसी) निवासी हरिजनके पुत्र थे और इनके काव्य-गुरु चरखारीके कवि प्रतापसाहि थे। इनका अधिक जीवन काशीमें बीता। ये काशीके भदैनी मुहल्लेमें रहते थे। इनका देहान्त १८८५ई०में हुआ। ये अच्छे टीकाकार हुए हैं। 'कविप्रिया', 'रसिकप्रिया', 'सूरके दृष्टिकूट' और 'बिहारी सतसई'की इन्होंने

टीकाएँ लिखी हैं। इसके अतिरिक्त इनके ग्रन्थोंमें प्रमुख हैं—'साहित्य सरसी', 'वाग्विलास', 'षट्-ऋतु', 'हनुमत भूषण', 'तुलसी भूषण', 'शृंगार संग्रह', 'रामरत्नाकर', 'साहित्य सुधाकर' और 'रामलीला प्रकाश' आदि। इनके 'शृंगार संग्रह'में १२५ प्राचीन कवियोंकी रचनाएँ उद्धृत हैं। इनका टीकाकारके रूपमें महत्त्वपूर्ण स्थान है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० इ०; हि० का० शा० इ०; दि० भू० (भूमिका)।] —सं०

सरस्वती १–प्राचीन साहित्यमें 'सरस्वती' की भावना विकासशील रही हैं। सरस्वती सरिता और विद्याकी देवीके रूपमें विख्यात हैं। वैदिक साहित्यमें सरस्वतीके सरिता रूपमें उल्लेख मिलते हैं। आर्यसंस्कृतिमे सरस्वतीकी पूजाका आदिकालसे विधान है। यह ब्रह्मावर्त प्रदेशकी सीमापर थीं। वैदिक मन्त्रोंमें इडा और भारतीके साथ सरस्वतीका नामोल्लेख मिलता है। वह यज्ञदेवीके रूपमें प्रतिष्ठित थीं। इन्होंने वाचादेवीके द्वारा इन्द्रको शक्ति दी थी। वैदिक साहित्यके अनन्तर ब्राह्मण ग्रन्थों तथा पुराण साहित्यमे भी सरस्वतीकी प्रतिष्ठाके अनेक सन्दर्भ मिलते है। इनके अन्तर्गत वह वाणीकी देवीके रूपमें प्रतिष्ठित है। ब्राह्मण ग्रन्थों आदि द्वारा प्रतिपादित सरस्वतीका विद्या देवीका ही रूप आज अधिक प्रख्यात है। इसके अतिरिक्त सरस्वतीका ब्रह्मापुत्री और पत्नीके रूपमें भी उल्लेख मिलता है। 'महाभारत'में ये दक्षकन्या कही गयी हैं। बगाली वैष्णवोके बीच सरस्वती एवं लक्ष्मीके सम्बन्धोंको लेकर एक रोचक कथा प्रचलित है। पहले सरस्वती विष्णु पत्नी थीं किन्तु लक्ष्मीसे सपत्नीक वैमनस्यके कारण उन्होंने इन्हें ब्रह्माको दे दिया। तभीसे ये ब्रह्मापत्नीके रूपमें प्रसिद्ध हैं।

सरिताके रूपमें सरस्वतीका आज नामोल्लेख मात्र मिलता है। प्रयागके संगममें इनकी धाराके प्रच्छन्न अस्तित्वका विश्वास लोक प्रख्यात है। —रा० कु०

सरस्वती २–इस मासिक पत्रिकाका प्रकाशन इलाहाबादमे सन् १९०० ई० के जनवरी मासमे हुआ था। ३२ पृष्ठकी क्राउन आकारकी इस पत्रिकाका मूल्य चार आने मात्र था। इसके सम्पादक थे जगन्नाथदास, श्यामसुन्दर दास, राधाकृष्ण दास, कार्तिकप्रसाद, किशोरीलाल। दूसरे वर्ष केवल श्यामसुन्दर दास ही इसके सम्पादक रहे। १९०३ ई०में महावीरप्रसाद द्विवेदी इसके सम्पादक हुए और १९२० ई० तक रहे। इसका प्रकाशन पहले झाँसी और फिर कानपुरसे होने लगा था। महावीरप्रसाद द्विवेदीके बाद पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, देवीदत्त शुक्ल, ठाकुर श्रीनाथ सिंह, पुनः पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, देवीदयाल चतुर्वेदी और (आज-कल) श्री नारायण चतुर्वेदी, सम्पादक हुए। १९०५ ई० में काशी नागरी प्रचारिणी सभाका नाम मुख पृष्ठसे हट गया।

'सरस्वती' हिन्दीकी पहली रूपगुणसम्पन्न प्रतिनिधि पत्रिका रही है। व्याकरण और भाषाकी समस्याओं पर इसमें टिप्पणियाँ छपती रही हैं। महावीरप्रसाद द्विवेदीने इसमें प्रकाशित सम्पूर्ण साहित्य विधाको व्याकरण और भाषाकी दृष्टिसे सन्तुलित किया और काव्य तथा गद्यमें इतिवृत्तात्मकताको प्रश्रय दिया। उनके द्वारा कई साहित्यकारों को प्रोत्साहन मिला। इस पत्रिकाके माध्यमसे अबके कई प्रसिद्ध कवि और लेखक सामने आये। मैथिलीशरण गुप्त, राय देवीप्रसाद 'पूर्ण', लक्ष्मीधर वाजपेयी, स्वामी सत्यदेव, काशी प्रसाद जायसवाल, ठाकुर गदाधर सिंह, ठाकुर गोपालशरण सिंह, पं० रामचन्द्र शुक्ल, विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', रायकृष्णदास 'सनेही', रूपनारायण पाण्डेय, सियाराम शरण गुप्त, गणेशशंकर विद्यार्थी, रामचरित उपाध्याय, प्रेमचन्द, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, वृन्दावनलाल वर्मा, सुमित्रानन्दन पंत, ज्वालादत्त शर्मा आदि इसके प्रमुख लेखक एवं कवि थे।

'सरस्वती'मे हिन्दीकी प्रथम मौलिक कहानी 'दुलाई वाली' १९०७ ई० में छपी थी (भाग ८ सं० ५)। किशोरीलाल गोस्वामीकी कहानी तो प्रथम अंकमें ही छपी थी।

संस्कृति, साहित्य और साहित्यकार और विदेशी साहित्य का परिचय इसी पत्रिका द्वारा कराया गया। इस दृष्टिसे इसका ऐतिहासिक महत्त्व है। द्विवेदी युगका इसमें पूरा लेखा-जोखा है। इस अकेली पत्रिकाने हिन्दी भाषा और साहित्यकी उन्नतिके लिए जितना कार्य किया वह फिर बादमें पत्रिकाओं द्वारा न हो सका।

'सरस्वती'के लिए द्विवेदीजी द्वारा संशोधित लेखोंकी पाण्डुलिपियाँ काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके भारत कला भवनमे अब भी सुरक्षित हैं। १९६२ ई०के जनवरी मासमे 'सरस्वती'की हीरक जयन्ती मनाई गयी। —ह० दे० बा०

सर्वदमन–यह शकुन्तला और पुरुवंशी सम्राट् दुष्यन्तका पुत्र था जो बादमे चक्रवर्ती भरतके नामसे विख्यात हुआ। सर्वदमनका सर्वप्रथम उल्लेख 'महाभारत'के उद्योग-पर्वमें शकुन्तलाख्यानके रूपमे कृष्ण सात्यकिसे करते हैं। ठीक यही कथा 'पद्मपुराण'में भी प्राप्त होती है। कालिदास अपने 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटकमे सर्वदमनकी उत्पत्तिके विषयमे प्रायः 'पद्म पुराण'की परम्पराका समर्थन करते हैं। विद्वानोका अनुमान है कि शकुन्तला और दुष्यन्तकी प्रेमकथा पहले लोक आख्यानकके रूपमे विख्यात रही होगी किन्तु जहाँ तक उनके प्रसूत सर्वदमनका प्रश्न है, उसका उल्लेख एक निश्चित क्रममें प्राप्त होता है। हिन्दीमें कालिदासकृत 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्'का अनुवाद सर्वप्रथम लक्ष्मणसिंहने किया था। इसके बाद इसके कई अनुवाद निकले। 'शकुन्तला' नामक एक खण्डकाव्य लिखकर मैथिलीशरण गुप्तने सर्वदमनका उल्लेख ठीक उसी रूपमे किया है। —यो० प्र० सिं०

सविता–सविता सूर्यके लिए प्रयुक्त होता है। 'ऋग्वेद'मे सविता शब्द आया है। इसके अतिरिक्त अन्य ग्रन्थोंमें सविताका सूर्यके अर्थमे ही उल्लेख मिलता है। 'कामायनी'मे सविता शब्दका प्रयोग हुआ है—"विश्वदेव, सविता या पूषा। सोम, मरुत, चंचल पवमान"। सविता तेजका रूप माना गया है। बहुत प्राचीन कालसे इसका अपना विशिष्ट महत्त्व है। वैदिक कालके त्रिदेवोंमें इन्द्र और अग्निके साथ इनका भी नाम आता है। ये प्रकाश पुंजरूपमें स्वीकृत हैं। एक स्थानपर उषा इनकी स्त्रीके रूपमें आती हैं किन्तु वेदके दूसरे मन्त्रमे ये उषाके पुत्र भी कहे गये हैं। आधुनिक कालमें सूर्यका सविता नाम अधिक प्रचलित

नहीं रहा। —रा० कु०

सहजोबाई–प्रसिद्ध सन्त चरणदासकी शिष्या थीं। इनका जन्म मेवात (राजपूताना)के डेहरा नामक स्थानमें एक ढूँसर वैश्य कुलमें हुआ था। इनका जीवनकाल सन् १६८३ ई०से सन् १७६३ ई०तक माना जाता है। ये आजीवन ब्रह्मचारिणी रहीं। इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सहज प्रकाश' सन् १७४३ ई०में लिखा गया था। यह बेलवेडियर प्रेस, प्रयागसे प्रकाशित हो चुका है। 'शब्द' और 'सोलह तत्त्व निर्णय' इनकी दो अन्य रचनाएँ बताई जाती हैं। अपने गुरुके साथ ही दिल्ली आकर इन्होंने भी सन्त जीवन यापन किया था। गुरुकी महत्ता, नाम माहात्म्य, अजपाजाप, ससारका मिथ्यात्व और उसके प्रपचोंसे दूर रहनेकी चेतावनी, काम-क्रोध-लोभ-मोह-मान आदिका त्याग, कर्मफलपर विश्वास, प्रेमतत्त्वका विधि-निषेध-निरपेक्ष-स्थितिबोध और ब्रह्मतत्त्वकी निर्गुण-सगुणनिरपेक्ष अनिर्वचनीय स्थितिका अनुभूतिपरक वर्णन इनकी वाणियोंके प्रमुख विषय हैं। दोहा, चौपाई और कुण्डलिया छन्दोका प्रयोग इन्होंने अधिक किया है। मीराँकी भाँति इनकी पदावलियोंमे भी आराध्यके प्रति प्रेम-प्रदर्शनमे सगुण कृष्ण-भक्तोंकी शैलीका प्रयोग हुआ है।

[सहायक ग्रन्थ—उत्तरी भारतकी सन्त परम्परा : परशुराम चतुर्वेदी ; सहज प्रकाश, बेलवडियर प्रेस, प्रयाग; सन्तबानी संग्रह, बेलवडियर प्रेस, प्रयाग।] —रा० च० ति०

सहदेव–युधिष्ठरके सबसे छोटे भाई सहदेव ज्योतिषकला विशारदके रूपमें 'महाभारत'मे प्रसिद्ध हैं। ये माद्री एव पाण्डुके पुत्र थे। इनके विषयका कोई आख्यान महत्त्व-पूर्ण नहीं है। हिन्दी साहित्यमें इनका उल्लेख मात्र मिलता है। —यो० प्र० सिं०

सहस्रार्जुन–महिष्मती राजधानीके राजा तथा कृतवीर्यके पुत्र कहे जाते हैं। दत्तात्रेयकी उपासनासे इन्हे सहस्र भुजाएँ मिली थीं। नर्मदा नदीके तटपर जब रावण तप कर रहा था, उस समय इन्होने अपनी रानियोंके साथ केलि-क्रीडामे अपनी सहस्र भुजाओंसे जलका प्रवाह रोक लिया था। इसपर रावणसे इनका युद्ध हुआ किन्तु रावण परास्त हो गया। परशुरामसे इनका युद्ध हुआ था। ये परशुरामके पिता जमदग्निकी गाय हठात् हंकवा रहे थे। परशुरामने इनकी भुजाएँ काटकर इनका वध कर डाला था। पौराणिक राजाओंमे इनका नाम प्रसिद्ध है। —यो० प्र० सिं०

स० ही० वात्स्यायन–दे० 'अज्ञेय'।

सांध्यगीत–'सान्ध्यगीत' महादेवी वर्माका चौथा काव्य-संग्रह है। इसका प्रथम संस्करण सचित्र था, जो सन् १९३६ ई० मे प्रकाशित हुआ था। इसमे कवयित्रीके ४५ गीतोंका सकलन किया गया है। इनमें ऐसी वैराग्य-भावना मिलती है, जो साधककी दुःख-सुख दोनोमे समरस बनाती है। 'नीरजा' की भाँति 'सान्ध्यगीत' मे भी महादेवीके आदर्श दीपक और बादल हैं। वह अपनेको ऐसा दीपक मानती है, जिसे उसके परोक्ष प्रियतमने जीवनकी ज्वाला देकर जलाया था और तबसे वह जगत्के अन्धकारमें अकेला घुल-घुलकर जल रहा है पर मृत्युकी झंझा इसे बुझा नहीं पायेगी क्योंकि यह आवागमनके रूपमें बार-बार जलेगा, बुझेगा।

इस संग्रहमे प्रकृतिचित्रणकी अपेक्षाकृत अधिकता है। इसमें उषा, सन्ध्या, रात्रि, वर्षा, वसन्त और हिमालयके सम्बन्धमें कुछ स्वतन्त्र गीत हैं पर उनमें भी महादेवी अपनेको भुला नहीं सकी हैं। उसी तरह सन्ध्यावर्णन करते समय आधी कवितामें विशुद्ध प्रकृति-चित्रण है और आधीमें कवयित्री अपने तथा अपने प्रियके बारेमें चिन्तन करने लगती है। ऐसा ही अन्य गीतोंमे भी हुआ है किन्तु इस संग्रहकी प्रकृतिचित्रणवाली कविताओमें एक बहुत बड़ी विशेषता यह है कि उनमें चित्रात्मक बिम्ब-योजना हुई है और उन बिम्बोंकी रंग-रेखा और गति-स्वरका बहुत ही सूक्ष्म अकन किया गया है। सम्भवतः चित्रकर्त्री और कवयित्री महादेवीने एकात्म होकर ऐसी कविताओंका सर्जन किया है। —शं० ना० सिं०

सांब–कृष्णके पुत्र माने जाते हैं। सांबकी माताका नाम जाम्बवती था। बलाधिक्यके कारण ये दूसरे बलदेव भी कहे जाते हैं। बलदेवने सांबको अस्त्र-शस्त्रकी शिक्षा भी दी थी। सांब रूपवान् थे किन्तु इन्हे अपने रूपवान् होने-का इतना गर्व था कि एक बार इन्होने दुर्वासाकी कुरूपता-का उपहास किया था। दुर्वासाने रुष्ट होकर सांबको कोढी होनेका शाप दिया। इसी बीच कृष्णकी रानियां सांबके रूप-पर मोहित हो गयी, जिससे इनका वीर्य स्खलित हो गया। परिणामस्वरूप कृष्णने भी इन्हे रुष्ट होकर कोढी होनेका अभिशाप दिया। फलस्वरूप सांब कोढी हो गये किन्तु सूर्य की उपासनासे ये फिर स्वस्थ हो गये। सांबने महाभारत-युद्धमे भी योग दिया था। भारतीय परम्परामे जादूगरीके आविष्कारकके रूपमे विख्यात है। 'महाभारत'मे ऐसा उल्लेख है कि एक बार सांबने दुर्योधनकी पुत्रीका हरण किया था किन्तु कर्णके यत्नोंसे पकड़े गये। बलदेवने युद्ध करके सांबको बन्धनसे मुक्त दिलायी। 'सूरसागर'मे 'भागवत'के अनुकरण पर सांबकी कथा वर्णित हुई है (दे० सू० सा० प० ४८२७)। —रा० कु०

साकेत—(प्र० १९३२ ई०) आधुनिक युगके श्रेष्ठ महा-काव्योमे परिगणित मैथिलीशरण गुप्तकी अमर कृति है। कवीन्द्र रवीन्द्र से प्रेरणा प्राप्तकर आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदीने अपने एक लेखमे कवियो द्वारा उर्मिलाकी उपेक्षा-पर खेद प्रकट किया था। फलतः उनके प्रिय शिष्य मैथिलीशरण गुप्तने इस क्षतिपूर्णका निश्चय किया—'साकेत'में यह संकल्प ही प्रतिफलित हुआ है। वैसे तो इसके प्रकाशनके पूर्व ही उर्मिला काव्यकी रचना हो चुकी थी पर कवि हृदय से रामभक्त है, इसलिए बहुत दिन तक उसमे परिवर्तन-परिवर्द्धन होता रहा और अन्तमे उसे वर्त-मान 'साकेत'का रूप देकर ही सवत् १९८८ में प्रकाशित किया गया।

'साकेत' का कथानक भारतकी चिरविश्रुत रामकथा है। गुप्तजीने पूर्ववर्ती राम-साहित्य मे बहुत कुछ ग्रहण करते हुए भी इसे नवीन रूपमें उपस्थित किया है। प्रस्तुत काव्य का आरम्भ लक्ष्मण-उर्मिलाके प्रेमालापसे होता है, जिसके अन्तमे रामके राज्याभिषेककी सूचना दे दी जाती है।

भरत ननिहाल गये हुए हैं। उनकी अनुपस्थितिमें राम-अभिषेकको एक षड्यन्त्र बताकर दासी मंथरा कैकेयीको भड़काती है। यहाँ 'गई गिरा मति फेर'का आश्रय न लेकर मनोवैज्ञानिक कारण उपस्थित किया गया है। मंथराके शब्द—"भरतसे सुत पर भी सन्देह, बुलाया तक न उसे जो गेह"—कैकेयीके कानोंमें गूँजते रहते हैं। तब उसका क्षुब्ध मातृ-हृदय राम-वनवास और भरत-अभिषेककी याचना करता है। इसके पश्चात् राम और उनके साथ सीता एवं लक्ष्मण वनको प्रस्थान करते है। उर्मिला भी सीताकी तरह पतिके साथ वन-गमनका हठ कर सकती थीं—परन्तु तब लक्ष्मण आराध्ययुग्मकी सेवा न कर सकते। अतः वह साथ जानेका प्रस्ताव न कर दारुण विरहका वरण करती है। रघुकुलकी इस सर्वाधिक दुःखिनी वधूका गौरव-गान ही 'साकेत'के कविका मुख्य लक्ष्य रहा है। अतः आगेकी सब घटनाओंका वर्णन उसने 'साकेत'मे रहकर ही किया है—उर्मिलाको छोडकर वह नहीं जा सका। एक बार चित्रकूट गया भी तो सम्पूर्ण साकेत-समाज (जिसमें उर्मिला भी सम्मिलित है)को लेकर। राम-लक्ष्मण-सीताके वन-गमनके बाद दशरथ-मरण और उर्मिलाकी मूर्च्छा आदिका वर्णन है। भरत एवं शत्रुघ्न ननिहालमे बुला लिये जाते हैं। वस्तुस्थितिसे अनभिज्ञ हो वे बडे दुःखी होते हैं, रामको लौटानेके लिए चित्रकूट जाते हैं। चित्रकूट-की सभामें कैकेयी भी अपनी सफाई पेश करती है। वाल्मीकि और तुलसी दुष्कर्मा कैकेयीको अपनी बात कहनेका, पश्चात्ताप करनेका अवसर नहीं देते। गुप्तजी सर्वप्रथम यह अवसर प्रदान करते हैं। इस प्रकार उन्होंने कैकेयीके दोष-परिहार-का सफल प्रयत्न किया है। इन सब प्रयत्नोंके पश्चात् भी राम नहीं लौटते। यह अष्टम सर्ग तककी कथा है। नवम सर्गमें उर्मिला-विरह है। दशम सर्गमे भी उर्मिलाका विरह-वर्णन ही है, जिसमे कि रामायणके बालकाण्डकी कथा उर्मिला-स्मृतिके रूपमे आयी है। पहलेकी चिरपरिचित कथा का वर्णन आगे किया गया है, जिससे निश्चय ही रोचकता और औत्सुक्यकी वृद्धि हुई है। एकादश और द्वादश सर्गों-में शूर्पणखा-प्रसग, खरदूषण-वध, सीता-हरण, लक्ष्मण-शक्ति प्रसंग आदि कथित अथवा प्रदर्शित हैं। शूर्पणखाके विकलांग होने तथा खर-दूषणके वधकी बात शत्रुघ्न सुनाते हैं, जिन्हें कि एक व्यवसायीसे इसका पता लगता है। इससे आगे लक्ष्मण-शक्ति तककी कथा संजीवनी बूटीके निमित्त आये हुए हनुमान् सुनाते हैं। हनुमान् द्वारा लक्ष्मणके मूर्च्छित होनेका समाचार मिलते ही अयोध्याकी सेना लंका-प्रस्थानको तैयार हो जाती है। इतनेमें महामुनि वशिष्ठ आ जाते हैं और सेना-प्रयाणको रोकते हैं। शेष युद्ध वे सबको अपनी योग-दृष्टि द्वारा साकेतमे ही दिखा देते हैं। इस प्रकार गुप्तजीने चिरपरिचित आख्यानको अधिक विश्वसनीय, रोचक एवं मौलिक बनानेके लिए अनेक नूतन उद्भावनाएँ की हैं, जैसे—उर्मिलाविषयक सम्पूर्ण वृत्त, कैकेयीके विक्षोभका मनोवैज्ञानिक कारण, चित्रकूटकी सभामें कैकेयीका सफाई पेश करना, पहलेकी घटनाका बाद में वर्णन, लक्ष्मणको शक्ति लगनेकी बात सुनते ही अयोध्यावासियोंकी शस्त्र-सज्जा आदि।

मैथिलीशरणजी भारतीय संस्कृतिके व्याख्याता एवं पोषक हैं। यही उनकी सबसे बड़ी विशेषता है। 'साकेत' का सांस्कृतिक पृष्ठाधार अत्यन्त पुष्ट है—क्योंकि एक तो यह प्रबन्धकाव्य है, दूसरे इसके चरितनायक ही भगवान् राम हैं, जो भारतीय संस्कृतिके गौरवशाली संस्थापक हैं। वस्तुतः 'साकेत'में राम-रावणका युद्ध दो राजाओंका युद्ध न रहकर आर्य और कोणप—दो संस्कृतियोंका युद्ध बन जाता है और रामकी विजयको कवि आर्य संस्कृतिकी विजय मानता है—"आर्य-सभ्यता हुई प्रतिष्ठित, आर्य-धर्म आश्वस्त हुआ।"

प्रस्तुत काव्यमें सीता भी रामकी भार्या-रूपमें नहीं, वरन् आर्य अथवा भारत-लक्ष्मीके रूपमें आयी है—"भारत—लक्ष्मी पडी राक्षसोंके बन्धनमें।"

अतः उनका उद्धार राम-पत्नीका उद्धार न होकर, भारतीय संस्कृतिका उद्धार है। तात्पर्य यह है कि आर्यत्व अथवा भारतीय संस्कृतिकी प्रतिष्ठा ही 'साकेत'का सांस्कृतिक उद्देश्य है।

'साकेत'का काव्य-वैभव अत्यन्त समृद्ध एवं श्लाघ्य है। इसमे शास्त्रविहित नवरसोंमें से न्यूनाधिक मात्रामें सभी उपलब्ध हैं। शृंगार अंगी-रूपमे तथा अन्य रस अग-रूपमें आये हैं। शिल्पकी दृष्टिसे भी 'साकेत' श्रेष्ठ काव्य है। इसमे अनेक स्थिर तथा गतिमय, रम्य एवं आकर्षक, कलात्मक और भावपूर्ण चित्र अनायास ही उपलब्ध हैं। मुद्राओंका सफल अकन प्रचुर मात्रामें हुआ है। इस काव्य-की अप्रस्तुत-योजना भी स्तुत्य है—सादृश्य, साधर्म्य एव प्रभावसाम्यके अनेक उदाहरणोंसे यह पुस्तक आद्यंत आपूर्ण है। 'साकेत'की भाषा प्रौढ एव प्रांजल खडीबोली है। गुप्तजीने सस्कृत शब्दकोशको आधारस्वरूप ग्रहण किया है किन्तु इसकी भाषा 'हरिऔध'जीके 'प्रियप्रवास'के समान क्लिष्ट एव संस्कृतप्राय नहीं है। शैलीको प्रभावपूर्ण बनाने-के लिए कविने अन्योक्ति-समासोक्तिके अतिरिक्त और भी अनेक युक्तियोंका प्रयोग बडी कुशलतासे किया है। उच्चकोटिके शिल्पके साथ ही 'साकेत'मे कविके जीवनव्यापी अनुभवोंका सार तथा उसका जीवन-दर्शन भी सहज लभ्य है। उसके व्यक्तित्वकी भारतीयता और हिन्दू संस्कृतिके प्रति अतिशय अनुरागका परिचय हमें स्थान-स्थान पर मिलता है। 'साकेत'मे दोषोंका भी एकान्ताभाव नहीं है—इतने बडे काव्यमे वैसा होना सम्भव भी नहीं, तथापि वे उसके विपुल काव्य-वैभवके समक्ष उपेक्षणीय हैं। सर्वांशेन दृष्टिपात करनेपर 'साकेत' गुप्तजीकी सर्वश्रेष्ठ रचना है। —उ० कां० गो०

साखी—सन्तसम्प्रदायका अधिकांश साहित्य 'साखी'में ही लिखा गया है। 'साखी' वस्तुतः दोहा छन्द ही है, जिसका लक्षण है १३ और ११के विश्रामसे २४ मात्रा, अन्तमें जगण (।ऽ।) किन्तु सन्त साहित्यमे शास्त्रीय परम्पराकी उपेक्षा होनेके कारण कभी-कभी यह साखी (दोहा छन्द) मनमाने ढंगसे लिखा गया है, जैसे "निहकामी पतिव्रता कौ अंग"मे तीसरी साखी है :—"मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कुछ है सो तेरा। तेरा तुझको सौंपता, क्या लागे मेरा॥"

प्रथम पंक्तिमें यदि एक मात्रा बढ़ गयी है तो दूसरी पंक्तिमें एक मात्रा कम हो गयी है। यह दोहा अपभ्रंश कालसे प्रयुक्त होता चला आ रहा है और नीति उपदेशमें इससे अच्छा कोई छन्द सिद्ध नहीं हो सका। प्राचीन छन्द होनेके कारण सन्त सम्प्रदायने इसमें मनमाना उलट फेर कर दिया है।

नीति और ज्ञानोपदेशके लिए सबसे अधिक उपयुक्त इस छन्दको 'साखी'का नाम दिया गया। 'साखी' साक्षीका ही विकृत रूप है। यह साक्षी किसकी है, किसके सामने है? इसका क्या रूप है?

इस सम्बन्धमें 'बीजक'की अन्तिम साखी देखिये, जिसमें 'साखी'का ही परिचय दिया गया है :—"साखी आँखी ज्ञान की, समुझि देखु मनु मांहि। बिनु साखी संसार का, झगरा छूटत नाहिं॥"

इसकी गुरुमुख टीका करते हुए महात्मा पूरन साहेब कहते हैं :—"साखी कहिये साक्षी सो साक्षी बिना ज्ञान अन्धा है याके वास्ते ज्ञानकी आँखी साक्षीमे गुरु कहते हैं कि अपने मनमें विचार करके देखता नहीं कि बिना साखीसे संसारका झगरा छूटता नहीं।"

इसके आधारपर साखीका अर्थ होता है 'प्रत्यक्ष ज्ञान'। यह प्रत्यक्ष ज्ञान गुरु शिष्यको प्रदान करता है। सन्त सम्प्रदायमे अनुभव ज्ञानकी ही महत्ता है, शास्त्रीय ज्ञानकी नहीं। इस प्रकार सत्यकी साक्षी देता हुआ ही गुरु जीवनके तत्त्व-ज्ञानकी शिक्षा शिष्यको देता है। संक्षेपमे तत्त्व ज्ञानकी शिक्षा जितनी प्रभावपूर्ण होती है, उतनी ही स्मरणीय भी। इसी कारण सन्त सम्प्रदायमे 'साखी' इतनी अधिक मात्रामें है।

'बीजक'मे साखियोंकी संख्या ३५३ है। काशी नागरी प्रचारिणी सभासे प्रकाशित 'कबीर ग्रन्थावली'मे यह सख्या ८०९ है। ये ८०९ साखियाँ ५९ अंगोमे विभाजित की गयी हैं। ये अंग हैं—गुरुदेव कौ अंग, सुमिरण कौ अंग, विरह कौ अंग, ज्ञान विरह कौ अंग, परचा कौ अग आदि। सबसे अधिक साखियाँ चितावणी कौ अगमे है। इसमे ६२ साखियाँ है। —रा० कु०

सात्यकि—यादववंशीय कृष्णके सखा एवं सारथीके रूपमें सात्यकिका उल्लेख मिलता है। पाण्डवोंकी अनेक गुप्त मन्त्रणाओंमे ये अनेक बार सम्मिलित हुए थे तथा इन्हे अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य सौंपे गये थे। कृष्ण कथासम्बन्धी काव्योंमें इनका उल्लेख मात्र हुआ है। —यो० प्र० सिं०

सारंगा सदाबृज—उत्तर भारतका यह कथा-गीत गुजरातमे 'सदेवत (सदयवत्स) सावलिंगा', छत्तीसगढके गोंडोंमें 'सदाबिरज सारगा' तथा मालवा और राजस्थानमे 'सुदबुद सारंगा' नामसे प्रचलित है। जायसीने इस प्रेम-कथाका उल्लेख किया है। अब्दुल रहमान रचित 'सन्देश रासक' में इसका उल्लेख आया है। छत्तीसगढमें प्रचलित कथा उत्तर भारतीय रूपसे तनिक भिन्न है। उसमे सारंगाका नवलखा हार कहीं खो जाता है। सदाविरज अनेक कठिनाइयोका सामना कर उसे खोज लाता है और सारंगाको प्रदान करता है। वस्तुतः कहानी बहुत पुरानी है। राजस्थानी और मालवीमें इसके आधारपर अनेक 'ख्याल' और 'माच' (लोकनाट्य) की रचना हुई है। —श्या० प०

सारंगधर—'सारंग' (शार्ङ्ग) लगभग ३६ पर्यायवाची शब्दोंके रूपमें उल्लिखित मिलता है किन्तु सारंगधर—शार्ङ्ग धनुष धारण करनेवाले विष्णु और उनके अवतार कृष्णके लिए रूढ हो गया है। यह शब्द 'भागवत'में अनेक स्थलोंपर कृष्णके लिए प्रयुक्त मिलता है। —यो० प्र० सिं०

सारंधा—बुन्देल राजपूत अनिरुद्ध सिंहकी बहन एवं ओरछा नरेश चम्पतरायकी पत्नी सारन्धा बुन्देलखण्डके इतिहासमें प्रसिद्ध है। इसके पुत्रका नाम छत्रसाल सिंह था, जिसका यशोगान भूषणने अपने 'छत्रसाल दशक' में किया है। इतिहासमें सारन्धाका स्पष्ट इतिहास कम मिलता है किन्तु जितना वर्णन प्राप्त है, उसके आधारपर यह एक स्वाभिमानिनी, स्वदेश प्रेमकी भावनासे मण्डित आदर्श राजपूत रमणी थी। चम्पतराय और शाहजहाँके पुत्र दाराशिकोहके बीच युद्ध भी हुआ था। इसी युद्धमें चम्पतराय काम आये थे। सारन्धाकी कथा लेकर प्रेमचन्दने 'रानी सारन्धा' शीर्षक कहानी लिखी है। इस कहानीमें सारन्धाकी वीरता, स्वाभिमान एवं स्वदेश प्रेमकी सच्ची झलक मिलती है (दे० सारन्धा : मानसरोवर भाग ६)। —यो० प्र० सिं०

सारस्वत—एक देश विशेष, ब्राह्मणोंकी एक जाति विशेष एवं सरस्वती नदीके अन्तर्वर्ती प्रदेशके लिए भी प्रयुक्त मिलता है। सरस्वती नदी एवं प्रदेशके रूपमें इसका उल्लेख 'ऋग्वेद', 'शतपथ ब्राह्मण', 'बृहदारण्यक उपनिषद्' एवं पुराणोंमे प्राप्त होता है। 'शतपथ ब्राह्मण'पर आधारित-सारस्वत प्रदेशसम्बन्धी घटनाओं एवं उसके वैदिक उल्लेखोंके आधारपर प्रसादजीने 'कामायनी' की पृष्ठभूमि निर्मित की है। सारस्वत प्रदेशकी यथार्थ सीमा आज लुप्त हो चुकी है। इस प्रदेशसे सम्बन्धित सरस्वती नदीका भी आज पता नहीं चलता। इसके सांकेतिक अर्थके लिए मस्तिष्कका भावनात्मक अन्तःप्रदेश संकेतित किया जा सकता है। —यो० प्र० सिं०

साहित्य देवता—कवि माखनलाल चतुर्वेदीके साहित्यिक भावप्रधान और व्याख्यात्मक निबन्धोंका संकलन, जो १९४३ ई०में प्रकाशित हुआ। 'साहित्य देवता'में कविके दो प्रकारके निबन्ध संकलित है। एक वे, जो काव्योन्मुखी है यानी गद्यकाव्यकी श्रेणीमे आते हैं, दूसरे वे, जो विचारप्रधान या विवेचनात्मक है। 'गीतांजलि'के प्रचारके साथ ही साथ गद्य-काव्य लिखनेकी भी प्रेरणा उठी। हिन्दी में रायकृष्ण दास और वियोगीहरि जैसे गद्य-काव्य लेखकोंकी कोटिमें हम माखनलालजीको भी आसानीसे स्थान दे सकते है। गद्य-काव्य दो प्रकारके होते है। रामचन्द्र शुक्लने 'शेष स्मृतियाँ'की भूमिकामें इन्हें तरंग-शैली और धारा-शैली कहना पसन्द किया है। धारा-शैलीके निबन्ध पूर्णतः भावात्मक होते है और लेखक उनमें शुरूसे अन्त तक अपनी भावनाओंको काव्यात्मक मंजुलताके माध्यमसे व्यक्त करता है, जबकि तरंग-शैलीमें विचार सरणिके बीच-बीचमे उच्छ्वसित काव्यात्मक गद्य-खण्डोंका समावेश होता है, ऐसे स्थलोंपर कविकी रचनामें बुद्धिके स्थानपर हृदयके संवेगोंकी प्रधानता होती है। इन दोनों शैलियोंमें भावपक्ष

की प्रधानता है, अभिव्यक्तिमें काव्यात्मक कलातत्त्वकी। 'साहित्य देवता'में 'असहाय', 'आशिक', 'तुम आनेवाले हो', 'श्यामघन', 'साहित्य देवता', 'मुक्तिभरत जहँ पानी', 'जलना', 'शाखक्रिया' आदि निबन्ध इसी कोटिमें रखे जा सकते हैं, जबकि 'अंगुलियोंकी गिनतीकी पीढी', 'बैठे-बैठेका पागलपन', 'संवाददाता' आदि निबन्ध वैचारिक कोटिमें परिगृहीत किये जा सकते हैं।

माखनलालकी गद्य-शैली काफी प्रौढ और अभिव्यंजनात्मक है। चित्रमयतापूर्ण अथवा बिम्ब प्रस्तुत करनेवाली भाषा उनकी अपनी निर्मिति है; यथा—"मेरा और मेरे विश्वके हरियालेपनका उतना ही सम्बन्ध होता है, जितना नर्मदाके तटपर हरसिंगारकी वृक्षराशिमें लगे हुए टेलीग्राफके खम्भेका" (सा०दे० पृ० ६)। लेखककी गद्यशैलीकी दूसरी विशेषता गद्यमें अन्तरतुकान्तकी है। अन्तरतुकान्तका प्रयोग आरम्भिक गद्योंमें बहुत मिलता है। उदाहरणके लिए प्राचीन गुजराती गद्यों, ब्रजभाषाकी वचनिकाओं और खड़ीबोलीकी आरम्भिक रचनाओं—'रानी केतकीकी कहानी' आदिमें यह शैली स्पष्टतः परिलक्षित होती है। इसके मूलमें कुछ विद्वान् फारसी शैलीका प्रभाव ढूँढते हैं। उर्दूकी मुहावरेदानी, लाक्षणिकता, व्यंग्योक्तियाँ और मनोरम सूक्तियोंके सटीक प्रयोगोंके कारण माखनलालकी भाषा अत्यन्त स्फूर्तिमय और जीवन्त दिखाई पड़ती है। नये फैशनके प्रति व्यंग्य-आक्रोश व्यक्त करते समय उनकी भाषा बहुत पैनी हो जाती है। देशी शब्दों और कहावतोंका प्रयोग तो माखनलालकी अपनी विशेषता है ही। ये प्रयोग धरतीकी सोंधी गन्धसे ओत-प्रोत हैं और इनके कारण भाषामें एक अद्भुत प्राणवत्ता दिखाई पड़ती है। —शि० प्र० सिं०

साहित्य लहरी—सूरदासकी तथाकथित रचनाओंमें 'साहित्य लहरी'की भी चर्चा की जाती है परन्तु इसकी प्रामाणिकतामें सन्देह है। इसकी कोई पूर्ण हस्तलिखित प्रति नहीं मिली। जो भी इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ कही जाती हैं, वे सूरदासके दृष्टिकूट पदोंके छिन्न पत्रोंपर किये गये हस्त-लेख मात्र हैं। 'साहित्य लहरी'के मुद्रित रूपोंमें सबसे प्राचीन रूप जो प्रभुदयाल मीतलको मिला है, बनारसके लाइट प्रेसमें छपा हुआ सन् १८६९का संस्करण है। इसके बाद सन् १८९०ई०में नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ द्वारा इसका पहला संस्करण प्रकाशित किया गया। तीसरा रूप खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुरका है, जो सबसे पहले सन् १८९२ ई० में प्रकाशित हुआ। चौथा रूप लहेरिया-सरायके पुस्तक भण्डारसे सर्वप्रथम सन् १९३१ ई० में प्रकाशित हुआ। 'साहित्य लहरी'की प्रतियाँ काशी नरेश महाराजा ईश्वरीनारायण सिंहके आश्रित सरदार कविकी टीका सहित हैं। यह टीका सरदार कविने सं० १९०४ ई० (सन् १८४७ ई०)में की थी। लखनऊवाली प्रतिमें उसका उल्लेख हुआ है। खड्गविलास प्रेसवाली प्रतिमें सरदार कविकी टीकाके अतिरिक्त भारतेन्दु हरिश्चन्द्रकी टिप्पणी भी कुछ पदोंपर मिलती है। अनुमान होता है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने इस प्रतिके तैयार करानेमें सरदार कविकी टीका-वाली प्रतिके अतिरिक्त किसी अन्य प्रतिकी भी सहायता ली होगी। उन्होंने इसे खड्गविलास प्रेसके स्वामी बाबू रामदीन सिंहको प्रकाशनार्थ दिया था और बाबू रामदीन सिंहने ही कदाचित् उसका सम्पादन किया तथा उसमें 'उपसंहार (ग)' शीर्षकसे कुछ और पद सम्मिलित किये। इस प्रकार 'साहित्य लहरी'की दो प्रकारकी सटीक प्रतियाँ उपलब्ध होती हैं—एक केवल सरदार कविकी टीका सहित और दूसरी भारतेन्दुकी टिप्पणी सहित। दोनोंमें पदोंके क्रम तथा उनके पाठोंमें किंचित् अन्तर दिखलाई देता है। 'साहित्य लहरी'के सभी पदोंमें सूर, सूरदास, सूरज आदि कवि छापें प्रयुक्त हुई हैं, जिससे यह समझा गया कि यह रचना प्रसिद्ध कवि सूरदासकी ही है। इसके एक पदमें (संख्या ११८ अथवा संख्या ११५)में कविने अपना परिचय देते हुए अपनी लम्बी वंशावली दी है। इस पदमें कविने अपना वास्तविक नाम सूरजचन्द्र बताया है तथा अपने पूर्वजोंमें चन्दबरदाईका उल्लेख किया है। कुछ विद्वानों ने 'साहित्य लहरी'को प्रमाणित मानते हुए भी इस पदको अप्रामाणिक ठहराया है, क्योंकि इसमें अन्य अविश्वसनीय बातोंके अतिरिक्त उनके मतानुसार यह भी अविश्वसनीय है कि सूरदास चन्दबरदाईके वंशज ब्रह्मभट्ट थे। जो हो, 'साहित्य लहरी' प्रसिद्ध कवि सूरदासकी प्रामाणिक कृति नहीं जान पड़ती। 'साहित्य लहरी'के वर्ण्य-विषय, उसके दृष्टिकोण, उसकी भाषा-शैली आदिके आधारपर भी यह निष्कर्ष निकलता है कि यह रचना किसी अन्य सूर कविकी है, जिसका वास्तविक नाम कदाचित् सूरजचन्द था। इसका रचनाकाल १८ वीं शताब्दीके पहले नहीं माना जा सकता।

'साहित्य लहरी'का वर्ण्य-विषय नायिका-भेद, अलंकार अथवा किसी-न-किसी काव्यांगका लक्षण और उदाहरण हैं। इस तथ्यका उल्लेख लगभग प्रत्येक पदमें हुआ है। इस प्रकार 'साहित्य लहरी'के कविका मूल दृष्टिकोण भक्ति-समन्वित न होकर, साहित्यिक है। यदि उसमें भक्ति-भाव माना जा सकता है तो उसी रूपमें, जिस रूपमें कि वह रीति-कवियोंमें पाया जाता है। परन्तु रीति और अलंकार ग्रन्थ होते हुए भी इस कोटिकी रचनाओंमें 'साहित्य लहरी'-को कोई उल्लेखनीय स्थान नहीं प्राप्त हो सकता क्योंकि न तो लक्षणों और उदाहरणोंकी दृष्टिसे उसका कोई महत्त्व है और न भाषा-शैली और काव्य-कलाकी दृष्टिसे। उसमें 'सूरसागर'के दृष्टिकूट पदोंकी शैलीके अनुकरणका प्रयत्न अवश्य किया गया है परन्तु 'सूरसागर'के दृष्टिकूट पदोंमें जिस उच्च भावात्मकता और उत्कृष्ट काव्य-कलाके दर्शन होते हैं, उसकी तुलनामें 'साहित्य लहरी'के पद अत्यन्त निम्न कोटिके सिद्ध होते हैं।

साहित्य जगत्‌में 'साहित्य लहरी'की चर्चा केवल उसके उन दो पदोंके कारण होती रही, जिनमेंसे एकमें उसके रचनाकालका संकेत है और दूसरेमें उसके रचयिताका परिचय दिया गया है। पहला पद "मुनि पुनि रसनके रस लेख"से प्रारम्भ होता है। विद्वानोंने इस पदके आधारपर प्रारम्भमें स० १६०७ निकाला था। इसी संवत्‌को 'सूरसागर-सारावली'का भी रचनाकाल अनुमान करके तथा उसके १००२ संख्यक छन्दमें आये हुए "सरसठ बरस प्रवीन" शब्दोंका यह अर्थ समझकर कि 'सारावली'की रचना

सूरदासने ६७ वर्षकी अवस्थामें की होगी, यह अनुमान किया गया था कि सूरदासका जन्म सं० १५४० वि० में हुआ होगा परन्तु सूरसम्बन्धी खोजोंके फलस्वरूप अब न तो यह माना जाता है कि सूरदासका जन्म सं० १५४० वि० में हुआ होगा और न यह कि 'सारावली'की रचना उन्होंने ६७ वर्षकी अवस्थामें की होगी। 'साहित्य लहरी'के उपर्युक्त पदसे क्या संख्या निकलती है, इस विषयमें भी मतभेद है। डा० दीनदयाल गुप्तके मतानुसार उससे सं० १६०७ नहीं, बल्कि सं० १६१७ तथा डा० मुंशीराम शर्माके मतानुसार सं० १६२७ निकलता है। इनके अतिरिक्त सं० १६७७ भी निकाला जा सकता है। दूसरा पद 'प्रथम ही प्रथ जागते' से प्रारम्भ होता है। इसके सम्बन्धमें पहले ही संकेत किया जा चुका है।

प्रसिद्ध कवि सूरदाससे सम्बद्ध हो जानेके कारण 'साहित्य लहरी' साहित्यिक शोधका विषय बन गयी है और यह आवश्यक है कि उसके रचनाकार और रचनाकालके सम्बन्धमें खोज करके निश्चित निर्णय किया जाय तथा उसका यथासम्भव पाठ-संशोधनके आधारपर अच्छा संस्करण प्रस्तुत किया जाय। प्रभुदयाल मीतलने १९६१ ई०मे साहित्य संस्थान, मथुरासे एक संस्करण प्रकाशित कराया है, जिसकी भूमिकामे उन्होंने इसके सम्बन्धमें महत्त्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किये हैं। डा० मनमोहन गौतमने एक अन्य सटीक संस्करण प्रकाशित कराया है। अतः अब इस रचनाका अध्ययन सुलभ हो गया है।

[सहायक ग्रन्थ—अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय : डा० दीनदयाल गुप्त, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग; सूरदास : डा० ब्रजेश्वर वर्मा, हिन्दी परिषद्, विश्वविद्यालय, इलाहाबाद; सूरनिर्णय : प्रभुदयाल मीतल तथा द्वारकादास पारीख, साहित्य संस्थान, मथुरा; सूरसौरभ : डा० मुंशीराम शर्मा; साहित्य लहरी : प्रभुदयाल मीतल, साहित्य संस्थान, मथुरा; साहित्य लहरी : डा० मनमोहन गौतम, नयी सड़क, दिल्ली।] —व्र० व०

साहित्य सागर–बिजावरके राजकवि बिहारीलाल भट्टने 'साहित्य सागर'की रचना की, जिसका प्रकाशन सन् १९३७ ई०मे गंगा ग्रन्थागार, लखनऊ से हुआ। 'साहित्य-सागर' की रचना दो भागोमे हुई है। प्रथम भागकी ६ तरंगोंमे—प्रथममें राजवंश वर्णन, द्वितीयमे साहित्य, तृतीयमे छन्द-वर्णन, चतुर्थमे गणागण प्रकरण, पचममें शब्दार्थ निर्णय तथा षष्ठमे शृंगार वर्णनका विवेचन हुआ है। दूसरे भागकी सातवीं तरगमे नायकवर्णन, अष्टममे षड्ऋतु-वर्णन, नवममे शृंगार-भेद वर्णन, दशममे अलंकार वर्णन, एकादशमें अर्थालंकार वर्णन (पूर्वार्द्ध) और द्वादशमें उसीका उत्तरार्द्ध तथा त्रयोदशमें आध्यात्मिक नायिकाभेद, चतुर्दशमें निर्वाणनिरूपण और परिशिष्टांशमे दानका विवेचन किया गया है।

लगभग ६०० पृष्ठोंका यह विशाल रीति-ग्रन्थ २०००-छन्दोंमें पूर्ण हुआ है। प्रस्तुत कृतिकी लक्षण आदिकी विवेचनाओंका माध्यम पद्य है और इस दृष्टि से यह ग्रन्थ रीतिकालीन परम्पराका अवशेष कहा जा सकता है। बिहारीलाल भट्ट मूलतः कवि थे और इसलिए विषय-प्रतिपादन से अधिक महत्त्व काव्यत्वको मिल गया है। लक्षणोंमें मौलिकताका प्रायः अभाव है। कहीं-कहीं तो केशव आदि कवियोंकी छाया इतनी प्रगाढ़ हो गयी है कि थोड़े हेर-फेर से शब्द भी प्रायः वही रख दिये गये हैं। इस ग्रन्थकी विशेषताओंमें नायिका-भेदका आध्यात्मिक रूप ही प्रधान है। दान प्रकरणका कोई विशेष महत्त्व नहीं है। अपने आश्रयदाताकी प्रशंसा और पाण्डित्यप्रदर्शन मूलतः यह दो बातें ही प्रस्तुत ग्रंथ के निर्माण का कारण कही जा सकती है। विषय प्रतिपादन में नवीनता न होने से प्राचीन परिपाटी में एक और ग्रन्थ जुड़ जाने के अतिरिक्त इसका महत्त्व सन्दिग्ध है। —नि० ति०

साहित्यसार—मतिराम (२) रचित यह ग्रन्थ अब प्राप्य नहीं है। सभाकी खोज रिपोर्ट और 'मतिराम ग्रन्थावली'के विवरणके आधारपर ही इसका परिचय देना सम्भव है। यह १० पृष्ठोंकी नायिका भेदपर लिखी गयी पुस्तिका है, जिसमें ३३ छन्द हैं। यह किसी समय दतिया राज पुस्तकालयमें थी, पर अब वहाँ नहीं है। १ फरवरी, सन् १९५६ ई० में विन्ध्य प्रदेशके सूचना विभाग द्वारा प्रकाशित दतिया पुस्तकालयकी हस्तलिखित ग्रन्थोंकी सूचीमें भी इसका नामोल्लेख नहीं है। इसका प्रतिलिपिकाल १७८० ई० (संवत् १८३७) का है। पं० कृष्णबिहारी मिश्र इसे १६८३ ई० (संवत् १७४०) की रचना मानते हैं। यह 'रसराज' आदिके बादकी रचना है और प्रसिद्ध मतिरामके द्वारा इसके लिखे जानेका कोई तुक नहीं जान पड़ता है। अतः यह पुस्तिका भी सामान्य होनेके नाते वनपुरनिवासी द्वितीय मतिराम द्वारा रचित मानी जा सकती है, जिनके अन्य ग्रन्थ 'अलंकार पंचाशिका' और 'छन्दसार संग्रह' या 'वृत्तकौमुदी' है। 'छन्दसार'की भाँति उन्होंने 'साहित्य-सार'की भी रचना की हो तो इसमे कोई आश्चर्यकी बात नहीं, वरन् उचित ही है। अतः इसे बनपुरनिवासी वत्सगोत्रीय मतिरामकी रचना माननी चाहिए, 'रसराज'के रचयिता प्रसिद्ध मतिराम की नहीं।

[सहायक ग्रन्थ—मतिराम ग्रन्थावली : कृष्णबिहारी मिश्र; महाकवि मतिराम : त्रिभुवन सिंह; मतिराम—कवि और आचार्य : महेन्द्रकुमार।] —भ० मि०

साहित्यसार २–दे० 'कवि कल्पद्रुम'।

साहित्य सुधानिधि–यह जगतसिंहकी प्रमुख रचना है, जिसके रचनाकालके विषयमें पाठ-भेदके कारण मतभेद है। 'हि० का० शा० इ०' में—"संवत वसु शर बसु शशि अरु गुरुवार"के आधार पर सं० १८५८ वि० (१८०१ ई०) माना गया है और 'हि० सा० बृ० इ०' भा० ६ में "रग रस वसु ससि सवत अनु गुरुवार"के आधार पर सं० १८९२ वि० (१८३५ ई०) माना गया है। इसकी हस्तलिखित प्रति काशी ना० प्र० स० के आर्य भाषा पुस्तकालयमें प्राप्त है। इसका प्रमुख आधार 'चन्द्रालोक' है पर कविने अन्य आचार्यों—भरत, भोज, मम्मट, विश्वनाथ, गोविन्द-भट्ट अप्पय दीक्षित तथा भानुदत्तका प्रभाव भी स्वीकार किया है।

इसमें १० तरंगे और ६३६ बरवै हैं। पहली तरंगमें काव्य-प्रयोजन, काव्य-हेतु और काव्य-भेद पर मम्मटके

आधार पर विचार किया गया है। दूसरी तरंगमें शब्द-स्वरूपनिरूपण है, जो 'चन्द्रालोक' पर आधारित है। अगली तीन तरंगोंमें व्यंजना, लक्षणा, अभिधा और गम्भीरा (व्यंजना)के अन्तर्गत गुणीभूत व्यंग्यका निरूपण हुआ है। छठी तरंगमें अलंकारोंका निरूपण हुआ है। सातवीं तरंगमें गुणोंका विवेचन है। आठवीं तरंगमें नौ रसोंकी चर्चा है। नवीं तरंगमें रीतियोंकी अत्यन्त संक्षेपमें चर्चा है और दसवीं तरंगमें दोष-निरूपण है।

शास्त्रीय दृष्टिसे यह ग्रन्थ साधारण है पर इसकी यह विशेषता है कि इसमें सभी अंगोंको साथ प्रस्तुत किया गया है और समस्त विषयोंको संक्षेपमें लिया गया है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० का० शा० इ०; हि० सा० बृ० इ० (भा० ६)।] —सं०

साहित्यालोचन–श्यामसुन्दर दासकी यह कृति सर्वप्रथम सन् १९२२ ई० में एम० ए० कक्षाके विद्यार्थियोंको आधुनिक आलोचनाके तत्वोंका आरम्भिक ज्ञान करानेके लिए पाठ्यक्रममें निर्दिष्ट ग्रन्थोंसे संकलित सामग्रीके आधारपर लिखी गयी थी। इसमें सात अध्यायोंमें क्रमशः कला, साहित्य, काव्य, कविता, गद्य-काव्य, रस और शैली, तथा साहित्यकी आलोचनाका विवेचन किया गया है। कलाका विवेचन वर्सफोल्डकी लोकप्रिय रचना 'जजमेन्ट इन लिटरेचर'के प्रथम अध्यायके आधारपर और साहित्य, काव्य, कविता, गद्य-काव्य, नाटक, उपन्यास, आख्यायिका, निबन्ध, आलोचना तथा शैलीका विवेचन विलियम हेनरी हडसनके 'ऐन इण्ट्रोडक्शन टू दी स्टडी ऑफ लिटरेचर'के अनुकरणपर किया गया है। 'कविता', 'रूपक' (नाटक), रस' और 'शैली' तथा 'साहित्यकी आलोचना'का विवेचन करते समय यथास्थान भारतीय सिद्धान्तोंको भी उपस्थित किया गया है। इस प्रकार इस ग्रन्थमें लेखकका समन्वयात्मक दृष्टिकोण स्पष्ट है। अब तक इसके बारह संस्करण हो चुके हैं। नूतन संस्करणोंमे उत्तरोत्तर भाषा-शैली और शिल्पका परिमार्जन होता आया है। पुस्तकका साहित्यिक महत्त्व अब भी अक्षुण्ण है। —रा० चं० ति०

सिंहरण–प्रसादकृत 'चन्द्रगुप्त' नाटकका पात्र। मालव गणतन्त्रके राष्ट्रपतिका पुत्र सिंहरण एक वीर सेनानी और निर्भीक वक्ता है। स्पष्टवादिता और निर्भीकताके अतिरिक्त उसमें वंशोचित विनम्रता भी है। तक्षशिलाकी शिक्षाके प्रभावसे स्वतन्त्रताके प्रति सहज आकर्षण एवं देश-भक्तिकी अटूट भावना उसमें विद्यमान है। सिंहरणको इस बातका ज्ञान भलिभाँति हो गया है कि उत्तर खण्डके जो खण्ड राज्य द्वेषसे जर्जर है, उनमें भयानक विस्फोट होनेमें अब बहुत विलम्ब नहीं है। वह चाणक्य द्वारा प्रचारित राष्ट्रभावना को भी अपने हृदयमें धारण कर चुका है, इसीलिए वह मालव या गान्धार तक ही अपनी देश-भक्तिको सीमित न कर समग्र आर्यावर्तका कल्याण चाहता है तथा अपनी सारी शक्तिको केन्द्रित कर यवनोंके आक्रमणोंसे राष्ट्रभूमिकी रक्षाके लिए सचेष्ट होता है। पंचनदमे पर्वतेश्वरकी यथेष्ट सहायता करके यवन-आक्रमणका स्वयं प्रतिरोध करते हुए घायल होता है। पर्वतेश्वरकी पराजय होनेपर भी सिंहरण निराश नहीं होता, अपितु मालवमें चाणक्य और चन्द्रगुप्त की सहायतासे सेनाका संग्रह करके सिकन्दरकी विश्व-विजयकी कल्पनाको चूर-चूर कर देता है। सिंहरण एक निश्छल हृदय उन्मुक्त वीर सेनानी है। उसके इस कथनमें निश्चिन्त उन्मुक्तताके साथ-साथ कर्त्तव्यकी दृढ़ताका परिचय मिलता है : "अतीत सुखोंके लिए सोच क्यों; अनागत भविष्यके लिए भय क्यों और वर्तमानको मैं अपने अनुकूल बना ही लूँगा।" चाणक्यके प्रति उसकी अटूट आस्था है। वह उन्हींके आदेशोंसे अपने कर्त्तव्यकी सीमा निर्धारित करता है। चन्द्रगुप्तका अनन्य सुहृद् होनेपर भी वह दोनों में अनबन हो जानेपर चाणक्यका ही साथ देता है। वैसे तो वह चन्द्रगुप्तके लिए अपने प्राण विसर्जन करनेके लिए सदा प्रस्तुत रहता है। फिलिप्स और चन्द्रगुप्तके द्वन्द्व-युद्धके समय सिंहरण सेनाके सहित सहायताके लिए तैयार ही था किन्तु मगधकी राज्य-क्रान्तिमें वह सक्रिय भाग लेनेका अवसर न पा सका। फिर भी वह चन्द्रगुप्तसे यही निवेदन करता है : "हाँ सम्राट्! और समय चाहे मालव न मिलें, पर प्राण देनेका महोत्सव पर्व वे नहीं छोड़ सकते।"

सिंहरणके जीवनका मधुरिम पक्ष भी उसके ओजस्वी स्वभावकी भाँति कम आकर्षक नहीं है। गुरुकुलमें ही वह गान्धारकी राजकुमारी अलकाके प्रणय-पाशमें बँध जाता है। स्वभाव-साम्यके कारण दोनोंकी मैत्री और प्रेम उत्तरोत्तर गहरे होते जाते हैं। समान स्थिति एवं एक ही भावना से परिचालित होनेके कारण दोनों अनन्य भावसे एक दूसरेके निकट आते जाते हैं तथा अन्तमें वैवाहिक बन्धनमें बँध जाते हैं। चाणक्य अपनी दूरदर्शी कूटनीतिसे पश्चिमोत्तर द्वारको सुदृढ बनानेके लिए सिंहरणको पंचनन्द प्रदेशका शासक बना देता है। —के० प्र० चौ०

सिंहल–बौद्ध-साहित्यकी जातक परम्पराओं द्वारा सिंहल-द्वीपका प्रयोग लंकाके पर्याय रूपसे मिलता है। ऐतिहासिकताके विषयमें अनेक विवाद हैं। अतः मतैक्यका निश्चय नहीं हो सका है। किसीका विचार है कि लंकासे सलग्न अनेक छोटे-छोटे द्वीप, जो नष्ट हो चुके हैं, उन्हें सिंहल द्वीप कहा जाता था। जायसीके 'पद्मावत'में वर्णित सिंहल द्वीप पूर्णतः काल्पनिक स्थान है। मात्र अपनी प्रतीकात्मकताके कारण वह मानवके हृदयप्रदेशका प्रतिनिधित्व करता है (दे० लंका)। —रा० कु०

सिंहासन बत्तीसी–संस्कृतसाहित्यके लोकप्रचलित आख्यानकोंमें 'सिंहासन द्वात्रिंशिका', 'द्वात्रिंशत्पुत्तलिका', 'विक्रम चरित' आदि नामोंसे प्रसिद्ध रचना गद्य और पद्य दोनों रूपोंमें पाई जाती है। हिन्दीमे भी इसके दोनों रूप मिलते हैं। 'सिंहासन बत्तीसी'का सर्वप्रथम पद्यमय अनुवाद सं० १६९० (सन् १६३३ ई०) के लगभग रायसुन्दरने ब्रजभाषामे किया था। रायसुन्दर महाकवि कहे जाते थे। इसके उपरान्त सं० १८०७ वि० (सन् १७५० ई०)में सोमनाथ उपनाम 'ससिनाथ'ने 'सुजान विलास' नामसे इसका पद्यबद्ध अनुवाद सुन्दर साहित्यिक ब्रजभाषामें प्रस्तुत किया। आगे चलकर हिन्दी गद्यके प्रारम्भिक कालमें, लल्लूलालने 'सिंहासन बत्तीसी'का गद्यानुवाद किया। यही तीन अनुवाद हिन्दीमें प्रसिद्ध हैं। इनमें

सुन्दरकविकृत अनुवाद अपने ढंगकी महत्त्वपूर्ण कृति कही जा सकती है। दोहे, चौपाई, कवित्त और सवैयाका प्रयोग करके कविने इसे एक स्वतन्त्र रचनाका रूप दे दिया है। —यो० प्र० सिं०

सिकंदर–प्रसादकृत नाटक 'चन्द्रगुप्त' का पात्र। ग्रीक-सम्राट् सिकन्दर साहसी, पराक्रमशील, धीर-गम्भीर कार्य-कुशल एवं नीति-पटु विजेताके रूपमें प्रस्तुत किया गया है। उसने ३२६ ई० पूर्वमें भारत पर आक्रमण किया। गान्धारनरेश आंभी (आंभीक) उससे मिल गया। पुरु (पोरस)ने विरोध किया; पर वह हार गया। उसकी वीरता-से प्रभावित होकर सिकन्दरने पुनः उसे व्यास और झेलम-के दोआबका क्षत्रप नियुक्त किया। मालव और क्षुद्रकोने मिलकर सिकन्दरको बुरी तरह घायल किया। वह मकदूनिया लौट गया और ३२३ ई० पूर्वमें उसका देहान्त हो गया। वह अपनी अजेय वीरतासे समस्त पश्चिमी एशिया खण्डको पादाक्रान्तकर भारतमें विजयकी इच्छासे पदार्पण करता है एवं गान्धार नरेश आंभीकको अपनी ओर मिलाकर पंचनद पर आक्रमण करता है एवं पर्वतेश्वरको पराजित करके भी उसके साथ नृपोचित व्यवहार करता है। रण-कुशल योद्धा होनेके अतिरिक्त सिकन्दर कूटनीतिमे भी पारंगत है। वह चन्द्रगुप्तको भी आंभीककी भाँति अपनी ओर मिलाकर मगध पर आक्रमण करनेकी चेष्टा करता है पर इसमें उसको सफलता नही मिलती। वह "अपनी कूटनीतिसे प्रत्यावर्तनमे भी विजय चाहता है। अपनी विद्रोही सेनाको स्थल मार्गसे लौटनेकी आज्ञा देकर नौबलके द्वारा वह स्वयं सिन्धु-सगम तकके प्रदेश विजय करना चाहता है" किन्तु दुर्भाग्यवश उसे मालवके युद्धमे पराजित होना पड़ता है। सिकन्दर केवल सेनाओंको आज्ञा देने वाला वाक्शूर ही नहीं, वरन् आगे बढकर प्राणोंको हथेलीमें लेकर युद्ध करने वाला साहसी योद्धा है। मालवके युद्धमें वह सिंहलके हाथो इसी कारण घायल होता है। सिकन्दर वीर एवं पराक्रमी होनेके साथ-साथ आन्तरिक गुणोंसे भी युक्त है। वह महात्मा एवं गुणी पुरुषोके प्रति श्रद्धाकी भावना रखता है और उन्हे सम्मानित करता है। दाण्ड्यायनके आश्रममे स्वय जाकर उसके प्रति अपनी श्रद्धा निवेदित करता है। चाणक्यके प्रति भी उसके हृदयमें विशेष सौहार्दका भाव विद्यमान है। वह भारतीय संस्कृति के आचार-विचार, यहांके निवासियोके शील-सौजन्य एवं शौर्यसे प्रभावित होकर भारतका अभिनन्दन करता है। वह मुक्तकण्ठसे स्वीकार करता है कि "मैने भारतमे हरक्यू-लिस, एचिलिसकी आत्माओंको भी देखा और देखा डिमारथनीज को। सम्भवतः प्लेटो और अरस्तू भी होंगे। मै भारतका अभिनन्दन करता हूँ।" प्रसादने अपनी अति-रजित राष्ट्रीयताके आग्रहसे सिकन्दर पर आरोप लगाया है कि "इस नृशंसने निरीह जनताका अकारण वध किया है।" सम्भवतः ऐसा न करनेपर चन्द्रगुप्तके चरित्रको वह उत्कर्ष न प्राप्त होता, जो नाटककारको अभीष्ट था। इतिहासकारोंने सिकन्दरकी विजय-यात्राओंकी मुक्त कण्ठसे प्रशंसा की है। चन्द्रगुप्तका प्रतिपक्षी होनेके कारण ही प्रसादने कदाचित् उस पर नृशंसता, लोभ और क्रूरताका आरोप लगाया है। अभारतीय आदर्श वीरोंके प्रति प्रसादकी इस प्रकारकी मनोवृत्ति न्यायोचित नहीं कही जा सकती। —के० प्र० चौ०

सिद्धांतपंचाध्यायी–दे० 'नन्ददास'।

सियारामशरण गुप्त–जन्म सन् १८९५ ई० में झाँसी जिले-के चिरगाँव नामक स्थानमें हुआ। ये राष्ट्रकवि मैथिलीशरण-गुप्तके छोटे भाई थे। कवि, कथाकार और निबन्ध लेखकके रूपमें उन्होंने अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है। उनकी रचनाओंमें उनके व्यक्तित्व की सरलता, विनयशीलता, सात्विकता और करुणा सर्वत्र प्रतिफलित हुई है।

गुप्तजीका रुग्णजीवन, पत्नी तथा अन्य आत्मीयोंका असामायिक निधन तथा साहित्यिक जगत् की उपेक्षा आदि कुछ ऐसे कारण है, जिन्होंने उनके व्यक्तित्वको करुणा और व्यथासे भर दिया है। व्यक्तिगत जीवन की ये करुण अनु-भूतियाँ साहित्यके विभिन्न रूपोंमें अभिव्यक्त हो उठी है। जहाँ तक राजनीतिक जीवनका सम्बन्ध है, ये गांधी जीवन-दर्शनके आन्तरिक पक्षसे अत्यधिक प्रभावित हैं। राष्ट्रीय आन्दोलनकी विफलताओंने उन्हें और भी विषादपूर्ण बना दिया था।

'मौर्य विजय' (संवत् १९७१) उनका प्रारम्भिक काव्य है। 'अनाथ' (सवत् १९७४)मे ग्रामीण जीवनका एक करुण चित्र उभारा गया है। 'दूर्वादल' (संवत् १९७२-'८१ तक रचनाओंका संकलन)मे कविका आत्मपीडन अपनी सीमाओंको अतिक्रमित कर नवीन तथा स्वस्थतर मार्गोंकी ओर उन्मुख होता दीख पडता है। सिया-रामशरण गुप्तके काव्य-विकासमे इस संग्रहका विशिष्ट स्थान है। पर 'विषाद' (संवत् १९८२) की रचनाओंमे वह वैयक्तिक करुणाके धरातलसे ऊपर नही उठ पाया है। 'आर्द्रा' (संवत् १९८४)मे उसकी करुणा समष्टिगत हो जाती है, वह सामाजिक असंगतियोंको देखकर क्षुब्ध हो उठता है। 'एक फूल की चाह'मे अस्पृश्यता पर कवि जो मार्मिक चोट करता है, वह पाठकोंको विचलित कर देता है। 'खादी की चादर' भी इस सग्रहकी दूसरी विशिष्ट रचना है। फिर तो यह करुणा सामाजिक स्तरसे आगे बढ़कर बुद्ध की सार्वजनीन करुणा हो जाती है। 'आत्मोत्सर्ग' (संवत् १९८८) अमरशहीद गणेशशंकर विद्यार्थी की आत्मबलिसे सम्बद्ध काव्य है। 'पाथेय' (संवत् १९९०) की रचनाओंमें सात्विक चिन्ता तो है पर काव्यानन्द की कमी है। 'मृण्मयी' (संवत् १९९२)मे शान्तिदायिनी सात्विकतासे संव-लित धरतीके गीत हैं, जिनमे एक सुनिश्चित जीवन-दर्शन भी अनुस्यूत है। 'बापू' (संवत् १९९४)में बापूके प्रति अनुभूतिमयी श्रद्धांजलियाँ समर्पित है। 'उन्मुक्त' (संवत् १९९७) एक गीति-नाट्य है, जिसमे गांधीवादी आदर्शोंके आधारपर नये सामाजिक-निर्माणका संकेत किया गया है। 'दैनिकी' (संवत् १९९९)में सन् १९४५ ई०की युद्ध-विभी-षिकाकी दैनिक कठिनाइयोंका वर्णन किया गया है। 'नकुल' (संवत् २००३) 'महाभारत'के वन-पर्वकी एक कथाके आधारपर लिखा गया एक खण्ड-काव्य है। 'नोआ-खाली' (संवत् २००३) और 'जयहिन्द' (संवत् २००५) की विषय-वस्तु सामयिक जीवनसे सम्बद्ध है। 'गीता-संवाद'

(संवत् २००१) 'गीता'का समश्लोकी अनुवाद है।

हिन्दी-उपन्यासलेखकोंमें गुप्तजीका विशिष्ट स्थान है। जिस प्रकार एक विशेष सात्त्विकतासे उनका काव्य अपना अलग स्थान रखता है, उसी तरह उनके उपन्यासोंमें भी हृदयकी सरलता, निष्कपटता और विनयशीलता मिलती है। उनके तीनों उपन्यासों—'गोद' (सन् १९३२ ई०), 'अन्तिम आकांक्षा' (१९३४ ई०) और 'नारी'(१९३७ ई०)मे हृदयकी इन्हीं दशाओंके चित्र अंकित हुए हैं।

इन तीनों उपन्यासोंमे उन रूढ़ियों और निराधार लांछनोंपर आघात किये गये हैं, जो निरपराध व्यक्तियोंके जीवनको अत्यधिक संकटग्रस्त बना देते हैं। 'गोद'की किशोरी और 'अन्तिम आकांक्षा'के रामलालपर इस तरहके लांछन लगाये जाते हैं। 'गोद'का शोभाराम किशोरीका उद्धार कर लेता है और अन्तमें उसके भाई और भाभीका हृदयपरिवर्तन हो जाता है, जो गान्धीवादी सिद्धान्तोंके मेल में है। 'अन्तिम आकांक्षा'के घरेलू नौकरमें मानवीय मूल्य अभी पूर्णतः सुरक्षित है, जब कि मध्यवर्ग इस तरहके श्रेष्ठतर मूल्योंमे च्युत हो गया है। 'नारी' उनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है, जिसमे विभिन्न पात्रोंकी सहनशीलता और छलनाओंका बहुत ही प्रभावोत्पादक उद्घाटन हुआ है। इस उपन्यासकी नारीमें पुराने-नये मूल्योंका जो समन्वय किया गया है, वह उसे महिमामयी बना देता है। इस उपन्यासके पात्रोंपर भी गान्धी-दर्शनका पूर्ण प्रभाव है। प्रेमचन्दके उपन्यास मुख्यतः गान्धी दर्शनकी बाह्य हलचलोंको लेकर चलते हैं, वहाँ सियारामशरणके उपन्यास उनके अन्तर्दर्शनको।

साहित्यके अन्य रचना-प्रकारोंमे अपनी आत्माभिव्यक्ति को पूर्णतः प्रतिफलित न होते देखकर गुप्तजीने निर्बन्ध-निबन्धोंका आश्रय ग्रहण किया। यों तो प्रत्येक साहित्य-विधामे रचयिताका व्यक्तित्व अभिव्यक्त होना ही है पर निर्बन्ध-निबन्धोंमे वह अपेक्षाकृत अधिक अच्छी तरह व्यक्त होता है। दूसरे शब्दोंमे यह भी कहा जा सकता है कि निर्बन्ध-निबन्धोंका मूलाधार रचयिताका व्यक्तित्व ही है। उनके 'झूठ-सच' (संवत् १९९६) निबन्ध-संग्रहमे इसी तरह के निबन्ध संगृहीत हैं। कुछ निबन्धोंमे चिन्तनका विशेष योग दिखाई देता है पर वे भी लेखककी वैयक्तिकतामे बँधे हुए है। किसी निबन्धमे बाल्यकालकी मधुर स्मृतियाँ हैं तो किसीमे स्नेहियोंके संस्मरण। कभी वे हिमालयकी भावात्मक झलक प्रस्तुत करनेमे संलग्न दीख पड़ते हैं तो कभी कवि-चर्चामें निमग्न हो जाते हैं। कभी वे जीवनके विभिन्न स्तरोंका विनोदपूर्ण उद्घाटन करते हैं तो कभी अपूर्णका पूर्णताका आस्वाद कराते हैं। खुले व्यक्तित्वकी संहति, लेखक-पाठकके तादात्म्य, व्यंग्यविनोदके सन्निवेश आदिके कारण उनके निबन्ध हिन्दी-साहित्यके निर्बन्ध-निबन्धोंकी परम्परामें एक महत्त्वपूर्ण कड़ीके रूपमे परिगणित होते हैं।

गुप्तजीने कहानियाँ भी लिखी हैं, जिनका संग्रह 'मानुषी'मे हुआ है। इसमें सन् १९२३ ई० से १९३० ई० तककी लिखी गयी कहानियाँ हैं। उनकी कहानियोंको भी सात्त्विक उज्ज्वलताका वरदान प्राप्त है। इस संग्रहकी प्रायः सभी कहानियाँ गान्धीवादी दर्शनसे पूर्णतः प्रभावित हैं। कहानियोंके कथानक स्वच्छ तथा भाषा-शैली अकृत्रिम है। उन्होंने 'पुराणपर्व' (संवत् १९८९) एक नाटक भी लिखा है, जिसकी परिधि अहिंसा केन्द्रके चतुर्दिक घूमती है पर इसमें नाटकीय गति, बल और उतार-चढ़ावका अभाव है। सम्भवतः इसीलिए उन्होंने एकसे अधिक नाटक नहीं लिखा।

वास्तवमें गुप्तजी मानवीय संस्कृतिके साहित्यकार हैं। उनमें न कल्पनाका उद्वेग है और न भावोंका आवेग। उनकी रचनाएँ सर्वत्र एक प्रकारके चिन्तन, आस्था-विश्वासों से भरी है, जो उनकी अपनी साधना और गान्धीजीके साध्य-साधनकी पवित्रताकी गूँजसे अभिमंडित है। लेखकके सरल व्यक्तित्त्वकी तरह ही रचनाओंकी वस्तु और शैली सरल है—कहींपर भी वक्रता नहीं, बाँकपन नहीं। जिनको सरल और निष्कपट व्यक्तित्त्वके प्रति आस्था है, उनको उनकी रचनाएं विशेष प्रिय होंगी।

[सहायक ग्रन्थ— सियारामशरण गुप्त : सम्पादक-नगेन्द्र।] —ब० सिं०

सियालालशरण 'प्रेमलता'—इनका जन्म ग्वालियर राज्य के पनियार गाँवमे १८७१ ई०में हुआ है। ये सनाढ्य ब्राह्मण थे। पिताका नाम मौजीराम था। नामसंस्कारके समय इनका नाम बालाराम रखा गया। आठ वर्षकी अवस्थामें पिताका देहान्त हो गया। १८७६ ई०मे माता भी परलोकवासिनी हुई। इन आपत्तियोंसे उद्विग्न हो ये चित्रकूट चले गये। वहाँ कुछ काल निवास करके अयोध्या आये और महात्मा रामवल्लभाशरणका शिष्यत्व ग्रहण किया। बीस वर्षतक अखण्ड अवध वासकर १९३० ई०मे ये सीतामढी गये। वहाँसे लौटते हुए उसी वर्ष काशीमे श्रावणकी अमावस्याको स्थूल शरीर त्यागकर इन्होंने आराध्य युगलका सान्निध्य प्राप्त किया।

'प्रेमलता'की ३३ कृतियाँ बतायी जाती है—'बृहत् उपासना रहस्य', 'प्रेमलता पदावली', 'चैतन्य चालीसा', 'सीताराम रहस्य दर्पण', 'नाम रहस्यत्रयी', 'नाम तत्त्व सिद्धान्त', 'जानकी स्तुति', 'षड्ऋतु विमल विहार', 'सीताराम नाम-रूप वर्णन', 'सीताराम नाम जापक माहात्म्य', 'ज्ञान पचासा', 'मिथिला विभूति प्रकाशिका', 'वैराग्य प्रबोधक बहत्तरी', 'हितोपदेश शतक', 'प्रेमलता बारहखड़ी', 'नाम सम्बन्ध बहत्तरी', 'नाम वैभव प्रकाश चालीसा', 'जानकी विनय', 'नाम दृष्टान्तावली', 'सतगुरु पदार्थ प्रबोधिका', 'सन्त प्रसादी माहात्म्य', 'अनन्य शतक' 'निजात्मबोध दर्पण', 'अपेल सिद्धान्त', 'षोडश-भक्ति', 'सन्त महिमा', 'उपदेश पेटिका', 'पंच संस्कार', 'अष्टयाम', 'जानकी बधाई', 'सार सिद्धान्त प्रकाश', 'नित्य प्रार्थना' और 'विश्वविलास बीसिका'।

इन ग्रन्थोंके अनुशीलनसे यह विदित होता है कि साधक होनेके साथ ही ये श्रृंगारी-साहित्यके मर्मवेत्ता भी थे। इनका यह सिद्धान्तज्ञान रसात्मकताके समावेशमें एक सीमातक बाधक हुआ है।

[सहायक ग्रन्थ—रामभक्तिमें रसिक सम्प्रदाय : भगवतीप्रसाद सिंह।] —भ० प्र० सिं०

सींगाजी—इनका जन्म वैशाख सुदी ११, सं० १५७६ (सन् १५१९ ई०) को मध्यभारतकी रियासत बड़वानीके खजूर गाँव या खजूरीमें ग्वाल जातिके भीमागौलीकी पत्नी गौरबाईके गर्भसे हुआ था। जब ये पाँच-छः वर्षके थे तो इनके पिता अपनी समस्त चल सम्पत्ति और तीन सौ भैंसोंको लेकर खजूरीसे हरसूद नामक ग्रामको चले गये और वहाँ बस गये। हरसूद ग्राममें रहकर इनके पिताने अपने पुत्र-पुत्रियोंके विवाह आदि संस्कार किये। ये सं० १५९८ (सन् १५४१ ई०) में २१ वर्षकी अवस्थामें रावसाहब भामगढ निमाड़के यहाँ चिट्ठी-पत्री पहुँचानेके कार्यमें एक रुपया मासिक वेतनपर नौकर हो गये। कालान्तरमें नौकरीसे जब उन्होंने अवकाश ग्रहण किया, उस समय इनका वेतन तीन रुपया मासिक था। कहा जाता है कि उनकी ईमानदारी तथा सचाईके कारण रावसाहब उनसे बहुत प्रसन्न रहते थे।

बाल्यावस्थामे ही सींगाजी संसारसे विरक्त रहा करते थे। एक बार हरसूदसे भामगढ़के मार्गपर ये घोड़ेपर सवार अपनी ड्यूटीपर जा रहे थे। मार्गमें मैंर्गांवा ग्रामके महाराज ब्रह्मगीरके शिष्य मनरंगीरको उन्होंने भजन गाते हुए सुना। भजनने सींगाजीके मर्मको आहत कर दिया। भजनमें आये हुए—'अन्त न कोई अपणा' शब्दोंने संसारकी निस्सारता मानो प्रत्यक्ष रूपसे उनके हृदयमें अंकित कर दी। वे उसी समय घोड़ेसे उतर पड़े और मनरंगीरके चरणोंमें गिरकर आत्मसमर्पण कर दिया और उन्हें अपना आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक स्वीकार कर लिया। तदनन्तर भामगढ आकर उन्होंने राज्यकी नौकरीसे त्यागपत्र दे दिया और पिपल्याके जंगलोंकी ओर चले गये। पिपल्याके जंगलोंके एकान्त वातावरणमें रहकर इन्होंने निर्गुण ब्रह्मकी साधना बड़ी तत्परता और एकाग्रताके साथ की। यहीं इन्होंने योगकी साधना करते हुए अनहद नादसे सम्बन्धित प्रायः आठ सौ भजनोंकी रचना की।

सींगाजी परम साधक और उच्चकोटिके विचारक थे। उनके पदों और भजनोंसे स्पष्ट हो जाता है कि वे अन्तस्साधनाको ही सच्ची साधना समझते थे। परमतत्त्वको कहीं बाहर खोजनेके लिए मन्दिर, मसजिद और तीर्थोंमें जानेकी आवश्यकता नहीं है। उसके दर्शन गंगा, यमुना और त्रिवेणी आदि सरिताओंमें स्नान करनेसे नहीं होते। ब्रह्म निर्गुण निराकार रूपमें हमारे हृदयमें विद्यमान है—"जल बिच कमल, कमल बिच कलियाँ, जहं वासुदेव अविनाशी। घटमें गंगा, घटमें जमुना, नही द्वारिका कासी॥ घर वस्तू बाहर क्यों ढूंढो, बन बन फिरा उदासी, कहे जन सिंगा, सुनो भाई साधो, अमरपुरेके वासी॥" सींगाजीकी निर्गुणब्रह्मविषयक धारणा सन्त कबीरकी निराकार, निर्विकार, अव्यय और अनादिविषयक ब्रह्म कल्पनासे बहुत कुछ साम्य रखती है। सन्त सींगाका निर्गुण ब्रह्म रूप-रेखा, कुल, गोत्र आदिसे परे है: "रूप नाही रेखा नहा, नाही है कुलगोत रे। बिन देहीको साहब मेरा, झिलमिल देखूँ जोत रे॥"

सींगाजीकी विनयभावना और अहंहीनता बड़ी प्रभावशाली और मार्मिक है। उनके कथनों और उक्तियोंमे अप्रस्तुत योजना बड़ी यथार्थ और स्वाभाविक है। एक पदमें वे कहते हैं कि ज्ञानका प्रकाश मिलनेके पूर्व मैं तो जानता था कि वह (ब्रह्म) दूर है परन्तु वह कितना निकट है। तुम्हारा हाथ मेरी पीठपर है। इसीलिए तेरी सी रहनी रहकर मुझे अत्यधिक सामर्थ्य और शक्ति मिल गयी है। तुम सोना हो और मैं गहना हूँ। मुझमें माया और सांसारिकताका टांका लगा है। तुम निराकार, निर्विकार हो फिर भी विविध प्रकारके शब्द उत्पन्न करते हो और मैं देहधारी होकर सांसारिक भाषामें बोलता हूँ। तुम दरियाव और मैं मछली हूँ। मेरे जीवनके आधार तुम ही हो। तुम्हारा विश्वास ही हमारे जीवनका आधार है। जिस दिन यह शरीर पंचत्वको प्राप्त होगा, उसी दिन मैं तुझमें समा जाऊँगा। तुम वृक्ष हो तो मैं वह लतिका हूँ जो, तुम्हारे चरणों (मूल)में लपटा है।

सन्त सींगाके रूपक सामान्य ग्रामीण जीवनसे लिये गये अत्यन्त मार्मिक हैं। हरिनामकी खेतीका वर्णन करते हुए उन्होंने कहा है—"श्वास प्रश्वास रूपी दो बैल हैं। उनमें सुरतिकी रस्सी लगा लो। तदनन्तर अनन्य प्रेमकी लम्बी लकड़ी ग्रहण करके उसमें ज्ञानकी नोकदार काटी बैठा लो। फिर उन दोनो बैलोंको लेकर हरिनामकी खेती करते रहो"। इसी प्रकार वे अनुभवके विषयमें कहते हैं—"चौ दिशासे नाला आया, तब दरियाव कहाया रे। गंगा जल की मोटी महिमा, देसन देस बिकाया रे॥"

सन्त सींगाजीकी रचनाएँ आत्मानुभूतिकी अभिव्यंजनासे ओत-प्रोत हैं। उनके काव्यका माधुर्य साधारणसे साधारण पाठक या श्रोताका मन अपनी ओर खींच लेता है। एक गीतमें वे कहते हैं—"मेरे स्वामीकी अटारीपर दो दीपक जगमग प्रकाश कर रहे हैं। वहाँपर अखण्ड स्मृतिका पहरा है। अपने झुके हुए मस्तकका फल लेकर मैं उसके द्वार पर चढ़ाने जाता हूँ। पर भीतरसे कोई कह देता है, 'ठहरो'। अब ठहरो सुनते सुनते बड़ा विलम्ब हो गया है। तुम्हारी आज्ञाकी अपेक्षा तुम्हारा रोकना ही अधिक कोमल और मधुर प्रतीत होता है"। इन पंक्तियोंसे कविकी अनुभूतिकी भावुकता और कल्पनाकी कोमलता प्रमाणित है।

सींगाजी द्वारा विरचित पदोंकी संख्या ८०० बताई जाती है। इनकी भाषा निमाडी है। कुछ दिन पूर्व इनके काव्यका संग्रह 'सन्त सींगाजी' शीर्षकसे सींगाजी साहित्य शोधक मण्डल, खण्डवासे प्रकाशित हुआ है। इस ग्रन्थके प्रारम्भमें सींगाजीकी जीवनी भी दी गयी है।

सींगाजी निमाडी क्षेत्रमे बड़े लोकप्रिय और पूज्य हैं। वहाँकी जनता आज भी उनके भजनों और पदोंका गान बड़े प्रेम और श्रद्धाके साथ करती है। प्रसिद्ध है—"सिंगा बड़ा अवलिया पीर है जिसको सुमिरै राव अमीर॥" तथा "म्हारा सिर पर सिंगा जबरा। गुरु मैं सदा करत हूँ मुजरा॥"

सींगाजीने किसी पंथ या सम्प्रदायकी स्थापना नहीं की परन्तु सत्यानुभूति एवं माधुर्यसे पूर्ण उनके गीत एवं पद निमाड़ प्रदेशकी जनताके हृदयपर स्थायी प्रभाव स्थापित किये हुए हैं। सींगाजीके श्रद्धालु भक्तोंकी संख्या हजारोंमें

है। निमाड़ क्षेत्रकी जनता आज भी सींगाजीकी समाधि पर श्रद्धांजलि अर्पित करके उनके यश और कीर्तिको अमर बनाये हुए है। उनकी समाधिके स्थानका चिह्न किंकड़ी नदीके तट पर विद्यमान है। आश्विन मासमें प्रतिवर्ष वहाँ बड़ा भारी मेला लगता है। सींगाजीने श्रावण शुक्ल ९, सं० १६१६ ई० (सन् १५५९ ई०) को किंकण नदीके तट पर समाधि ली। इस प्रकार उन्होंने केवल ४० वर्षोंका पवित्र और निष्कलंक जीवन व्यतीत किया।

[सहायक ग्रन्थ—सन्त सींगाजी, सींगाजी साहित्य शोधक मण्डल, खण्डवा।] —त्रि० ना० दी०

सीता–'ऋग्वेद'में 'सीता'का अर्थ पृथ्वीपर हलसे जोती हुई रेखाके लिए हुआ है। इसीके आधारपर सीताको कृषि की अधिष्ठात्री देवी तथा भूमिजा की संज्ञा दी गयी। सीताके पिता जनक एक वैदिक ऋषि और मिथिला नरेश दोनों रूपोंमें प्रसिद्ध रहे हैं। 'बृहदारण्यक', 'छांदोग्य' आदि उपनिषदोंमें जनकके सम्बन्धमें तो कथाएँ मिलती हैं किन्तु सीताका उल्लेख नहीं मिलता। सीताका सर्वप्रथम उल्लेख 'रामायण' और 'महाभारत'-में हुआ है। 'वाल्मीकि रामायण'में उन्हें 'जनकानां कुले जाता' कहा गया है परन्तु इससे यह स्पष्ट नहीं होता कि सीता जनक की पुत्री थीं। 'वायु' और 'पद्म पुराण'में सीताके पिताका नाम 'सीरध्वज' बताया गया है। 'उत्तर रामचरित'में भवभूतिने सीरध्वज शब्दका प्रयोग जनकके पर्यायके रूपमें किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि उस समय तक सीता जनकपुत्रीके रूपमें प्रसिद्ध हो गयी थीं।

'वाल्मीकि-रामायण'में सीताका चरित्रांकन महाकाव्यकी नायिका तथा नायकके गौरवके अनुरूप हुआ है। उनके चरित्र की गरिमाके ही कारण कदाचित् अनेक स्थलोंपर लक्ष्मीके साथ उनका साम्य दिखाया गया है। कालान्तरमें ज्यों ज्यों रामके व्यक्तित्वका दैवीकरण होता गया और वे विष्णुके अवतारके रूपमें प्रसिद्ध होते गये, त्यों-त्यों सीताको भी विष्णुपत्नी लक्ष्मीसे अभिन्न समझा जाने लगा। 'वाल्मीकि-रामायण'के प्रक्षिप्त अंशोंमें लक्ष्मी और सीतामें कोई भिन्नता नहीं रह गयी। पुराणोंमें तो असंदिग्ध रूपमें उन्हें साक्षात् लक्ष्मीका अवतार माना गया है। 'रघुवंश' महाकाव्यमें भी उनके दैवी रूप की ही प्रतिष्ठा है। राम और सीताके व्यक्तित्वके दैवीकरणका एक अन्य रूप उनमें प्रकृति और पुरुष की कल्पनाका भी है। कदाचित् सबसे पहले 'राम तापनीय उपनिषद्'में सीता और अमल प्रकृतिको अभिन्न बताया गया है। 'अध्यात्म रामायण'में सीताको मूल प्रकृति की संज्ञा दी गयी है। 'स्कन्द पुराण'में ब्रह्म विद्याका साक्षात् अवतार बताया गया है। बौद्ध और जैन साहित्यमें सीता-सम्बन्धी अनेक उल्लेख मिलते हैं। 'दशरथ जातक'के अनुसार वे राम की छोटी बहन हैं, जिनके साथ राम प्रवास-कालके बाद वाराणसी लौटकर विवाह कर लेते हैं। विदेशमें प्रचलित राम-कथाओंमें भी सीतासम्बन्धी इसी प्रकार की विकृत कल्पनाएँ मिलती हैं। कहीं उन्हें मन्दोदरीपुत्री, कहीं राम की बहन और कहीं माता बताया गया है। संस्कृत काव्योंमें सीताके चरित्र की अनेक विशेषताएँ चित्रित हुई हैं। कालिदासने 'रघुवंश'में सीताको राम [illegible] आदर्श पत्नीके रूपमें प्रस्तुत किया है। कालिदासने उ[illegible] अयोनिजा तो बताया है किन्तु उनके चरित्रमें उ[illegible] अनेक कल्पनाओं का समावेश नहीं किया, [illegible] पुराण-साहित्यमें विकसित हो गयीं। आठवीं शताब्दी रचित कुमारदासकृत 'जानकी-हरण काव्य' में सर्वप्रथ[म] उनके चरित्रके करुण पक्षका चित्रण हुआ है। इस[के] बाद अभिनन्दनकृत 'रामचरित', क्षेमेन्द्रकृत 'रामाय[ण] मंजरी', साकल्य मल्लकृत 'उदार राघव' आदि काव्यों[में] सीताका चरित्र-चित्रण पौराणिक परम्पराके अनुरूप हु[आ] है। सीताके व्यक्तित्वमें पातिव्रत धर्मके साथ-साथ उन[में] लक्ष्मीके अवतारकी कल्पना बद्धमूल होती गयी, जिस[से] सभी परवर्ती काव्य अनिवार्य रूपमें प्रभावित हुए। १७[वीं] शताब्दीके चक्रकविकृत 'जानकी-परिणय'में भी उन्हें अन[न्य] सौन्दर्यशालिनी महालक्ष्मी स्वरूपमें चित्रित किया गया है।

संस्कृत नाट्य-साहित्यमें भी रामके साथ सीता[के] व्यक्तित्वमें उत्तरोत्तर गौरव-गरिमाकी वृद्धि और दैव[ी] स्वरूपकी प्रतिष्ठा होती गयी। भासकृत 'प्रतिमा' और 'अभि[]षेक' नाटकोंमें सीताको साक्षात् लक्ष्मी कहा गया है। अग्नि-परीक्षाके समय स्वयं अग्नि देवता प्रकट होक[र] सीताको "इमां भगवतीं लक्ष्मीं" कहकर सम्बोधित कर[ते] हैं। सीताके करुण व्यक्तित्वका सबसे अधिक प्रभावशा[ली] चित्र भवभूतिकृत 'उत्तर रामचरित'में मिलता है। स[ाथ] ही भवभूतिने उनके अनन्य प्रभावका वर्णन करते हु[ए] उनमें दैवी शक्तिकी प्रतिष्ठा की है। उनकी शपथ त[था] उनका विलाप सुनकर पृथ्वी माता प्रकट हो जाती है त[था] रामके आगमनपर वे अदृश्य रूपमें वार्तालाप करती हैं। 'हनुमन्नाटक'में सीतास्वयंवर, राम-सीता विवाह त[था] सीताहरणके चित्रणोंमें सीताके अप्रतिम सौन्दर्य, उनके र[ति] विलास तथा उनकी विरह व्याकुलताके सरस चित्रण मिल[ते] हैं। सीतासम्बन्धी इन्हीं निर्देशों और चित्रणोंके आधार[पर] हिन्दीके महाकवि तुलसीदासने उनके व्यक्तित्वका पर[ि]विकसित रूप अपने 'रामचरितमानस'में प्रस्तुत किया।

'रामचरितमानस'की सीता अपने दैवत रूपमें ब्रह्म रा[म] की माया शक्ति अथवा आदिपुरुष रामकी मूल प्रकृति हैं। लौकिक-लीलाके रूपमें वे रामकी अनन्यधर्मा और प[ति]व्रता भार्या हैं। इस रूपमें वे परम साध्वी, पतिपरायण सतीका उत्कृष्ट आदर्श प्रस्तुत करती हैं। रावणके बन्धन[में] रहते हुए वे भय अथवा प्रलोभन किसी उपायसे उस[की] ओर आँख उठाकर भी नहीं देखतीं। अपने पातिव्रत[की] मर्यादाको अक्षुण्ण रखनेके लिए वे रावणसे तृणकी [ओट] लेकर बात करती हैं। पतिके साहचर्य और उनकी सेवा[के] उद्देश्यसे ही उन्होंने राजभवनोंके समस्त सुखोंको त्यागक[र] आग्रहके साथ वनवास स्वीकार किया था। रामसे वियु[क्त] होकर भी वे रामका स्मरण करते हुए रावणकी बन्दिनी रूपमें घोर कष्ट सहन करती हैं और उन्हें इस बातका क[भी] पश्चात्ताप नहीं होता कि उन्होंने रामके साथ वन जाने[का] आग्रह क्यों किया था? तुलसीदासकी सीता उस लज्जाशी[ल,] विनयशील और संस्कृत रमणीका आदर्श रूप हैं, जिस[के] लिए पति ही सर्वस्व है, पतिकी आज्ञाका पालन तथा उस

की आराधना-पूजा जिसका एकमात्र धर्म है। तुलसीदासने सीताके चरित्र-चित्रणमें आदर्श पत्नीका रूप प्रस्तुत करते हुए उन्हें वात्सल्यमयी माताके गुणोंसे भी समन्वित किया है। वे सीताको माता, अम्बा, जगज्जननी आदि संबोधनों से विभूषित करते हुए नहीं थकते। तुलसीदासने रामकथाका उत्तर खण्ड अपनी काव्य-रचनामें नहीं सम्मिलित किया। अपने इष्टदेव रामके सम्बन्धमें किसी प्रकारकी ऐसी कल्पना करना उन्हें धर्मविरुद्ध लगता था, जिससे रामके चरित्रपर किंचिन्मात्र भी लाछन आये। इसके अतिरिक्त उत्तर-चरितकी उपेक्षाका एक कारण यह भी माना जा सकता है कि तुलसीदास अपनी सीता माताके चरित्रके विषयमें किसी प्रकारके कलंककी कल्पना करना पाप समझते थे, भले ही वह कलंक सर्वथा निराधार हो। तुलसीदासकी सीतासम्बन्धी जगज्जननीकी कल्पनासे आगे चलकर केशवदास और सेनापति जैसे दरबारी वातावरणके कवियोंने जगरानी, सियरानी और सम्राज्ञीकी कल्पना सम्मिलित कर दी। युगके प्रभावकी दृष्टिसे यह स्वाभाविक ही था।

रामभक्तिमें माधुर्य और रसिकताके समावेश होने पर सीताके व्यक्तित्वमें रामसे भी अधिक महत्ताका संकेत किया जाने लगा। रसिक सम्प्रदायके अनुसार जगत् मूलतः जानकीमें ही समाहित है। जानकीकी मधुर उपासनासे राम विष्णुलोकके अधिकारी भक्तोंको आश्रय देते है। यह भक्त रामके सखा और पार्षद हैं तथा सीतारामकी मधुर लीलाके परिकर हैं। रसिक सम्प्रदायके भक्तोंने राम और सीताके केलि-विलासका वर्णन करनेके लिए उसी प्रकारकी लीलाओंकी कल्पना कर डाली, जैसी कि राधा-कृष्ण और गोपी-कृष्णसम्बन्धी कृष्णकी लीलाओंमें वर्णित है। नाभादासके 'अष्टयाम', बालकृष्ण नायक 'बाल अलि'की 'राम ध्यान मंजरी', रामप्रियशरणके 'सीतायन', यमुनादासके 'गीत रघुनन्दन', प्रेमसखीके 'सीताराम', जानकी रसिकशरणके 'अवधी सागर', लालदासके 'अवध विलास' आदि ग्रन्थोंमें सीताके जिस विलासपूर्ण चरित्रका वर्णन हुआ है, उससे न केवल उनकी माता सदृश लोकपावनताको आघात पहुँचता है, वरन् उनका सतीत्वकी मर्यादासे मण्डित गरिमापूर्ण व्यक्तित्व भोग-विलासकी कालिमासे कलंकित हो जाता है परन्तु संख्यामें प्रचुर होते हुए भी रसिक सम्प्रदायकी रचनाओंका कोई व्यापक प्रभाव नहीं पड़ा। ये रचनाएँ काव्य-गुणोंसे भी सर्वथा हीन हैं तथा उनमें चरित्र-चित्रणकी कोई सम्यक् और युक्तियुक्त कल्पना नहीं पाई जाती। यही कारण है कि लोकमानसपर उनका कोई प्रभाव नहीं है और सीता असन्दिग्ध रूपमें तुलसी द्वारा प्रतिष्ठित अपने जगज्जननी और आदर्श पतिव्रता स्त्रीके रूपमें ही पूज्य है।

आधुनिककालमें सीताके चरित्र-चित्रणमें उनके व्यक्तित्वके करुण पक्षकी ओर कुछ अधिक ध्यान दिया गया। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'ने अपने 'वैदेही वनवास' में इसी पक्षको विशेष रूपसे उभारा। 'वैदेही वनवास'में सीताके चरित्रांकनमें यद्यपि मनोवैज्ञानिकताका आश्रय लिया गया है, तथापि उसमें अलौकिक तत्त्वोंका अभाव नहीं है किन्तु 'साकेत सन्त' (बलदेवप्रसाद मिश्र) तथा 'साकेत' (मैथिलीशरण गुप्त) आदि काव्योंमें चरित्रांकनकी पद्धति अधिक मनोवैज्ञानिक है तथा सीताके चरित्रमें मानवीयताकी अधिकाधिक प्रतिष्ठा करनेका प्रयास देखा जाता है।

सीताका व्यक्तित्व पूर्णतया रामके व्यक्तित्वपर निर्भर है, अतः चरित्र-चित्रणमें दोनों चरित्रोंमें समान रूपसे विकास हुआ है। सम्पूर्ण रामकाव्यकी सीताका चरित्र एक आदर्श भारतीय स्त्रीका चरित्र है (दे० राम)।

[सहायक ग्रन्थ—रामकथा : डा० कामिल बुल्के; तुलसीदास: डा० माताप्रसाद गुप्त; कल्याणका मानस विशेषांक, गीता प्रेस, गोरखपुर; तुलसी और उनका युग : राजपति दीक्षित।] —यो० प्र० सिं०

सीतायन–इस ग्रन्थकी रचना मिथिलानिवासी शृंगारी रामोपासक रामप्रिया शरणने १७०३ ई०मे की थी। सीता-चरितको लेकर लिखा गया यह हिन्दीका एक मात्र प्रबन्ध काव्य है। 'रामचरितमानस'की भाँति यह भी सात खण्डोंमे विभक्त है—बालकाण्ड, मधुरमाल काण्ड, जयमाल काण्ड, रसमाल काण्ड, सुखमाल काण्ड, रसाल काण्ड और चन्द्रिका काण्ड। इसके अन्तर्गत सीताकी वात्सल्य तथा माधुर्यपरक लीलाएँ वर्णित है। साम्प्रदायिक मान्यताके अनुसार सीता-रामका संयोग नित्य है। वे कभी एक दूसरे से वियुक्त नहीं होते। अतः सीताहरण तथा तत्सम्बन्धी कथानक इसमें स्थान नहीं पा सका है। इसकी रचना 'रामचरितमानस'की शैलीपर अवधीके दोहा-चौपाई छन्दोंमें हुई है किन्तु इसमें न तो वैसा भाषसौष्ठव है और न रोचकता। इतिवृत्तात्मकता और सम्बन्धनिर्वाहमें शिथिलताके कारण यह रचना आकर्षणहीन हो गयी है। ग्रन्थकर्त्ताने कथानिर्माणमें 'सुन्दरी तन्त्र' ऐसे शाक्ततन्त्रोंसे भी सहायता ली है, जिससे यह स्पष्ट हो जाता कि है रसिक साधनापर वैष्णवेतर आध्यात्मिक साहित्यका भी पर्याप्त प्रभाव रहा है। —भ० प्र० सिं०

सीताराम (लाला)–लाला सीताराम 'भूप'का जन्म कृष्णशंकर शुक्लके अनुसार सन् १८५८ ई० (संवत् १९१५) में ('आधुनिक हिन्दी साहित्यका इतिहास' प्रथम संस्करण, १९३४, पृष्ठ ७७) तथा आचार्य चतुरसेनके अनुसार सन् १८५३ ई०मे ('हिन्दी भाषा और साहित्यका इतिहास' १९४६, पृष्ठ ४५९) अयोध्यामें हुआ था। हिन्दी, संस्कृत और फारसीके अतिरिक्त आधुनिक ढंगकी शिक्षा प्राप्त करके उन्होने १८७९ ई० मे बी० ए० की उपाधि प्राप्त की थी। वकालतकी परीक्षा भी सीतारामने पास की थी। बादको कुछ दिनों 'अवध अखबार'का सम्पादन किया। इसके पश्चात् क्वीन्स कालेजके स्कूल विभागमें अध्यापन किया, वहींसे वे प्रधानाध्यापक होकर सीतापुर चले गये। सन् १८९५ ई० में वे डिप्टी कलेक्टर हो गये थे। शिक्षाके क्षेत्रसे उनका सम्बन्ध सदैव बना रहा। उन्हें रायबहादुरकी उपाधि भी प्राप्त हुई थी। २ जनवरी, १९३७ ई० को उनकी मृत्यु प्रयाग में हुई।

लाला सीतारामने संस्कृत और अँगरेजी काव्यों तथा नाटकोंका प्रामाणिक अनुवाद किया था। कवितामें उनका

उपनाम 'भूप' था। कालिदासके 'मेघदूत'का अनुवाद १८८३ ई० में उन्होंने प्रकाशित कराया। इसके अनन्तर १८८४ ई० में 'कुमारसम्भवम्', १८८५ ई०में 'रघुवंश'के सर्ग ९ से १५, १८८६ ई० में 'रघुवंश'के सर्ग १ से ८ तथा १८९२ ई० में सम्पूर्ण 'रघुवंश'का अनुवाद प्रकाशित हुआ। इसी बीच १८७७ ई० में 'नागानन्द'का भी उन्होंने अनुवाद छपवा दिया था। कालिदासके 'ऋतुसंहार'का अनुवाद १८९३ ई० में प्रकाशित हुआ। इन अनुवादोंके अनन्तर उन्होंने संस्कृतके ही 'मृच्छकटिक', 'उत्तर रामचरित','मालती माधव', 'महावीर चरित्र', 'मालविकाग्निमित्र'के भी अनुवाद कर डाले। उनके इन अनुवादोंके सम्बन्धमें रामचन्द्र शुक्लका मत है कि "यद्यपि पद्यभागके अनुवादमें लाला साहबको वैसी सफलता नहीं हुई पर उनकी हिन्दी बहुत सीधी-सादी, सरल और आडम्बरशून्य है। संस्कृतका भाव उसमें इस ढंगसे लाया गया है कि कहीं संस्कृतपन या जटिलता नहीं आने पायी है" ('हिन्दी साहित्यका इतिहास', पृ० ४५४)।

पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीने १८९८ ई० मे उनके कालिदाससम्बन्धी अनुवादोंकी भाषा तथा भावसम्बन्धी त्रुटियोंकी कटु समीक्षा 'हिन्दी कालिदासकी आलोचना'के नामसे की थी।

संस्कृतके उपर्युक्त अनुवादोंके अतिरिक्त लाला सीताराम ने शेक्सपियरके नाटकोंके भी हिन्दी अनुवाद किये, एवं 'हितोपदेश' तथा 'प्रजाकर्तव्य' दो ग्रन्थ और लिखे थे पर उनका मुख्य प्रदेय संस्कृतानुवादसम्बन्धी ही है। —दे० शा० अ०

सीताराम चतुर्वेदी–जन्म १९०७ ई०मे वाराणसीमे हुआ। एम० ए० तक शिक्षा हुई। काव्यशास्त्र तथा नाट्यशास्त्र पर विशेष रूपसे कार्य किया। रचनाएँ-'महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय' (जीवन-वृत्त - १९३७), 'अभिनव, नाट्यशास्त्र' (१९५०), 'समीक्षा शास्त्र' (१९५४), 'कालिदास ग्रन्थावली'। —सं०

सुंद उपसुंद–निसुन्द नामक असुरके दो पुत्रोंमे बड़ेका नाम सुन्द और छोटेका नाम उपसुन्द था। एक बार इन दोनों भाइयोने विन्ध्याचल पर्वतपर घोर तप किया, जिससे प्रसन्न होकर ब्रह्माने उन्हें वर दिया कि तुम लोग आपसमे ही लड़कर मर सकते हो परन्तु अन्य कोई तुमको नहीं मार सकता है। धीरे-धीरे सुन्द और उपसुन्द दोनो अत्याचार करने लगे तो देवताओं ने उनके अपकर्षका उपाय सोचा। उन्होने तिलोत्तमा नामक एक अपूर्व सुन्दरी अप्सरा उत्पन्न की। सुन्द उपसुन्द दोनों उसपर मोहित हुए और आपसमें लड़कर समाप्त हो गये। 'सूरसागर'में सुन्द उपसुन्दकी कथा वर्णित है— "देखिके नारि मोहित जो होते। आपको मल या विधि सो खोते॥" (दे० सू० सा० प० ४३८)। —रा० कु०

सुंदर–सुन्दर ग्वालियरनिवासी ब्राह्मण थे। इनके जन्म-मरणकी तिथियाँ उपलब्ध नहीं हैं। ये मुगल बादशाह शाहजहाँके दरबारी कवि थे, १६३१ ई०मे वर्तमान थे। इन्हें शाहजहाँसे प्रचुर सम्पत्ति एवं सम्मानके अतिरिक्त 'महाकविराय'की उपाधि भी प्राप्त हुई थी। हैदराबादके सन्त अकबरशाहने अपने नायिकाभेदविषयक तेलुगू ग्रन्थ 'शृंगार मंजरी' (रचनाकाल १६७० ई०के लगभग)में इनके 'सुन्दर शृंगार'का उल्लेख किया है। 'सुन्दर शृंगार' शृंगार रस, नायिका-भेद एवं नख-शिखपर इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसकी रचना १६३१ ई०में हुई थी। वाराणसीके भारत जीवन प्रेससे यह ग्रन्थ १८९० ई०में प्रकाशित हो चुका है। काशी नागरी प्रचारिणी सभाकी खोज रिपोर्टोंमें इनके दो अन्य ग्रन्थोंका उल्लेख है-: (१) 'बारहमासी' (१९०६-०८ की रिपोर्ट, क्रम संख्या २४१ बी), (२) 'ध्रुवलीला' (१९२६-२८ की रिपोर्ट, क्रम संख्या ४६९ ए)। इसके अतिरिक्त रामचन्द्र शुक्ल (हि० सा० इ०, १९५० ई०, पृ० २२९) तथा रामशंकर शुक्ल (हि० सा० इ०, १९३१ ई०, पृ० ४२४)ने इनके 'सिंहासन बत्तीसी' नामक एक ग्रन्थका उल्लेख किया है किन्तु ये तीनों ग्रन्थ अप्रकाशित हैं तथा अभी तक इनकी प्रामाणिकताकी परीक्षा नहीं की गयी है।

'सुन्दर शृंगार'में इन्होंने व्यवस्थित और शुद्ध ब्रजभाषाका प्रयोग किया है। अनुप्रास और यमकादि शब्दालंकारोंके प्रचुर प्रयोगसे इन्होने अपनी रचनाको चमत्कारपूर्ण बनाने का सफल प्रयास किया है। इन्होंने लक्षणोंके लिए दोहा तथा हरिपद छन्दोंका तथा उदाहरणोंके लिए कवित्त अथवा सवैया छन्दका उपयोग किया है। इनके लक्षण स्पष्ट हैं तथा उदाहरण कवित्वपूर्ण हैं। उदाहरणोंमे इन्होंने कहीं तो कृष्णको नायक बनाया है और कहीं शाहजहाँको। इस ग्रन्थमें हाव, सात्त्विक भाव, उद्दीपन विभाव, आलम्बन विभाव (नायक-नायिका भेद), विरहकी दशाएँ आदि शृंगार-रससम्बन्धित सभी विषयोका समावेश किया है। केवल संचारी भाव छोड़ दिये गये है। इन्होंने मुख्य रूपसे तो भानुदत्तकी 'शृंगार मंजरी'का अनुकरण किया है किन्तु यत्र-तत्र अपनी मौलिक उद्भावनाएँ भी ग्रथित की हैं। नायिका-भेद लेखकके रूपमें इन्होने पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त की थी। अनेक परवर्ती लेखकोंने इनका उल्लेख भी किया है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० इ०; हि० का० शा० इ०; ब्र० सा० ना०; हि० सा० बृ० इ० (भा० ६)।] —रा० गु०

सुंदरदास–सुन्दरदास प्रसिद्ध सन्त दादूदयालके शिष्य थे। निर्गुण सन्त कवियोंमे ये सर्वाधिक व्युत्पन्न व्यक्ति थे। इनका जन्म सन् १५९६ ई० में जयपुर राज्यकी प्राचीन राजधानी द्यौसा नगरमे एक खण्डेलवाल वैश्य परिवारमें हुआ था। दादूदयालने ही इनसे रूपसे प्रभावित होकर इनका नाम 'सुन्दर' रखा था। दादूके एक अन्य शिष्य का नाम भी सुन्दर था, इसलिए इन्हें छोटे सुन्दरदास कहा जाने लगा। कहते है कि ६वर्ष की अवस्थामे ही इन्होंने शिष्यत्व ग्रहण कर लिया था। ११वर्षकी अवस्थामें ये अध्ययनके लिये काशी आये और १८वर्ष तक वेदान्त, साहित्य और व्याकरण का अध्ययन करते रहे। अध्ययनके उपरान्त फतेहपुर (शेखावटी) लौटकर इन्होंने १२वर्ष तक निरन्तर योगाभ्यास किया। फतेहपुर रहते हुए इनकी मैत्री वहाँके नवाब अलिफखाँसे हो गयी थी। अलिफखाँ स्वयं भी काव्य-प्रेमी था। इन्होंने देशाटन भी खूब किया था, विशेषतः

पंजाब और राजस्थानके सभी स्थानोंमें ये रम चुके थे। इनकी मृत्यु सांगानेरमें सन् १६८९ ई०में हुई।

सुन्दरदास की छोटी-बडी कुल४२ रचनाएँ प्रसिद्ध हैं। इनमें 'ज्ञानसमुद्र', 'सुन्दर विलास', 'सर्वांगयोग प्रदीपिका,' 'पंचेन्द्रिय-चरित्र,' 'सुख समाधि,' 'अद्भुत उपदेश,' 'स्वप्न प्रबोध,' 'वेद विचार,' 'उक्त-अनूप,' 'पच प्रभाव' और 'ज्ञान झूलना' आदि प्रमुख हैं। इन कृतियों का एक अच्छा संस्करण पुरोहित हरिनारायण शर्मा द्वारा सम्पादित होकर 'सुन्दर ग्रन्थावली' नाम से दो भागो मे राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्तामे सन् १९३६ ई०मे प्रकाशित हो चुका है।

सुन्दरदास ने भारतीय तत्त्वज्ञानके सभी रूपोंको शास्त्रीय ढग मे हिन्दी-भाषामे प्रस्तुत कर दिया है किन्तु यह समझना भूल होगी कि ये षट्-दर्शनोके शास्त्रनिर्णीत मतवादों मे एक पंडित जैसी आस्था रखते थे। इन्होंने शास्त्रीय तत्त्वज्ञानसे अधिक महत्त्व अनुभव-ज्ञानको देते हुए कहा है—"जाके अनुभव-ज्ञान वाद में न बह्यो है।" इनका जीवनके प्रति सामान्य दृष्टिकोण वही था, जो अन्य सन्तोंका। ये योग मार्गके समर्थक और अद्वैत वेदान्तपर पूर्ण आस्था रखने वाले थे। व्युत्पन्न होनेके कारण इनकी रचनाएँ छन्द-तुक आदिकी दृष्टिसे निर्दोष अवश्य है किन्तु उनका स्वतन्त्रभावोन्मेष रीत्यर्थानताके कारण दब-सा गया। इनकी भाषा व्याकरणसम्मत है और इन्होने अलकारादिका प्रयोग भी सफलतापूर्वक किया है। रीति-कवियोका अनुसरण करते हुए इन्होंने चित्र-काव्यकी रचना भी की है। वस्तुतः सुन्दरदासजीकी रचनाएँ सन्तकाव्यके शास्त्रीय सस्करणके रूपमे मान्य हो सकती है।

[सहायक ग्रन्थ—सुन्दर ग्रन्थावली : (सम्पादक) पुरोहित हरिनारायण शर्मा; उत्तरी भारतकी सन्त परम्परा : परशुराम चतुर्वेदी; सुन्दर-दर्शन : त्रिलोकी नारायण दीक्षित; हिन्दी काव्यमे निर्गुण सम्प्रदाय : पीताम्बर दत्त बडथ्वाल।] —रा० चं० ति०

सुकरात–यूनानके आदिकालीन चिन्तकोंमे सुकरातका नाम अत्यन्त आदरके साथ लिया जाता है। सुकरातका समय ४७०-३९९ ई० पू० माना जाता है। उनका जन्म एथेन्सके एक निर्धन परिवारमे हुआ था। उनकी माता एक सेविका और पिता मूर्तिकार था। पैतृक कार्य सीखकर उन्होने दर्शनका अध्ययन किया। नागरिकके रूपमे उसने विभिन्न पदोंको ग्रहण करके उनकी सेवा की। सुकरातने कोई ग्रन्थ नहीं लिखा। भगवान् बुद्धके सदृश उसके उपदेशोंको उसके शिष्योंने कण्ठस्थ करके लोकमे प्रचारित भी नहीं किया। इसी कारण उसके जीवन-दर्शनकी व्याख्या भिन्न-भिन्न प्रकारसे की जाती है। कैण्टोके शब्दोंमे वह एक स्वार्थी व्यक्ति था। उसके शिष्य अरस्तूने उसे उच्च कोटिका दार्शनिक माना है। जेनोफनका सुकरात उसीके समान एक सदाचारी व्यक्ति था। अरिस्टोफेनीडाकी दृष्टिमे सुकरात एक ऐसा तार्किक था, जो किसीका आदर न करता था। वह अपने विचित्र विचारोंमे केन्द्रित एक ऐसे विद्यापीठका संचालक था, जिसका यूनानके जीवनपर कुप्रभाव पड़ा।

सुकरातकी दार्शनिक चिन्ताधारामें परम्परा एवं सामयिक मान्यताओंका प्रतिरोध मिलता है। वह कार्य-कारणके ज्ञान-सम्बन्धोंका समर्थक था। उसने ज्ञानार्जनकी एक नयी पद्धति चलायी, जो प्रश्नोत्तरकी पद्धति थी। उसने ज्ञानार्जनके दो रूप निर्धारित किये। प्रथम तो बाह्य ज्ञान, जो लोक व्यवहार पर आधारित था और द्वितीय वास्तविक, जो उसकी दृष्टिमें कार्य-कारणमूलक ज्ञान था। सुकरातके लिए ज्ञानोपलब्धिके क्षेत्रमें महत्त्वकी बात यह थी कि एक व्यक्ति किस प्रकार ज्ञानार्जन करता है? वह ज्ञानके परिमाण पर विशेष बल नहीं देता था। सुकरातने ज्ञान और सदाचारमे कोई अन्तर नहीं माना है। उसके विचारमें सद्गुण आत्माकी सामान्य सामर्थ्यशक्तिका ही प्रतिरूप है, जिसके द्वारा सब कार्योंमे सन्तुलन और एकस्वरता आ जाती है। सद्गुणोके भी उसने दो रूप निर्धारित किये। प्रथम तो साधारण, जो मत और स्वभाव आचरण पर निर्भर करता है और द्वितीय दार्शनिक, जो विवेक और अन्तर्ज्ञानका परिणाम है। वह मात्र बुद्धिवादी नहीं कहा जा सकता क्योंकि वह प्रत्येक विचारकी व्यावहारिकताका भी मूल्यांकन करता था।

सुकरात अपने समयकी लोकतन्त्रवादी विचारधाराका विरोधी था। उसके अनुसार शासन कार्यका संचालन एक अद्भुत कला है, जो विशेषज्ञोके ही द्वारा संचालित होनी चाहिए। उसके क्रान्तिकारी विचारोके ही फलस्वरूप उसपर आरोप लगाये गये। अन्ततः उसे प्राणदण्ड दिया गया। उसके अन्तिम वाक्य अत्यन्त प्रसिद्ध है, जो इस प्रकार है "यह सत्य है कि कानूनने मुझे क्षति पहुँचाई है पर मैं केवल एक व्यक्ति हूँ और इसलिए अनुचित दण्डका प्रभाव केवल मुझ पर ही पड़ा है। यदि मैं कारागारसे भागूँगा तो कानून और एथेन्स दोनोंको क्षति पहुँचाऊँगा। यह अक्षम्य अपराध होगा।"

सुकरातके व्यक्तित्वमें उत्तम व्यक्ति और नागरिकके गुणोका अद्भुत समन्वय था। जब तक एथेन्सके लोकतन्त्रकी चर्चा चलेगी, तब तक यह भी अनिवार्य रूपसे प्रसिद्ध रहेगा कि उसी व्यवस्थाने सन्देहके कारण ७१ वर्षके सुकरातको मृत्यु दण्ड दिया। विचारकोंके अनुसार सुकरातको प्राणदण्ड देनेके कारण एथेन्सके इतिहास पर जो कालिमा लगी है, उसे वहाँका २५०० वर्षोंका इतिहास भी धोनेमे असमर्थ है। सुकरातका उल्लेख प्रसादजीने 'चन्द्रगुप्त' नाटकमे किया है। —रा० कु०

सुखदा–प्रेमचन्दकृत उपन्यास 'कर्मभूमि'का पात्र। सुखदा अमरकान्तकी पत्नी है। वह बड़े घरानेकी और लाड़-प्यारसे पालित-पोषित युवती है। उसके स्वभावमे आराम और ऐश्वर्यके प्रति आकर्षण है। इसीलिए आरम्भमें उसमे और अमरकान्तमे विचार-साम्य स्थापित नहीं हो पाता किन्तु वह जन-जागरणमे भाग लेती है, क्रियाशीलता और कर्मठता प्रकट करती है। अछूतोद्धार और गरीबोंके लिए मकानोंकी योजनाके सम्बन्धमे आन्दोलन छेड़ती है। वह निराश होना नहीं जानती। साथ ही अमरकान्तकी भाँति सहिष्णु भी नहीं है। उसके चरित्रमें दृढ़ता और विचारोंमें हठ है। वह व्यक्तिका आदर करना जानती है

और देश-सेविका है। —ल० सा० वा०

सुखदेव मिश्र–ये कम्पिला (जिला फर्रुखाबाद) के रहनेवाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। मिश्रबन्धुओंके अनुसार इनका काल सन् १६३३ से १७०३ ई०तक है। काशीके प्रसिद्ध विद्वान् कवीन्द्राचार्य सरस्वती इनके काव्यगुरु थे। इन्होंने काशीमे साहित्य तथा तन्त्रका अध्ययन किया था। कई राजाओंके आश्रयमें रहकर इन्होंने काव्य-रचना की है। असोथरके राजा भगवन्तराय खीची, डौण्डिया खेरेके राव मर्दनसिंह, औरंगजेबके मन्त्री फाजिलअली शाह तथा अमेठीके राजा हिम्मत सिंहसे इन्हे विशेष सम्मान प्राप्त हुआ। इनका अन्तिम समय मुरारमऊके राजा देवी सिंहके यहाँ बीता, जिनसे इन्हें दौलतपुर नामक गाँव वृत्त रूपमें प्राप्त हुआ था। इस गाँवमें इनके वंशज अब भी विद्यमान हैं। इनको 'कविराज' की उपाधि राजा राजसिंह गौड़से प्राप्त हुई थी (हि० सा० बृ० इ० मे अलहयार खाँ द्वारा प्रदान बतलाई गयी है)।

इनके अधिकांश ग्रन्थ छन्दों पर हैं। 'अध्यात्म प्रकाश' (सन् १६९८), 'फाजिल अली प्रकाश' (सन् १६७८), 'नख-शिख', 'मर्दान रसार्णव' (सन् १६७०), 'ज्ञान प्रकाश' (सन् १६९८), 'रस रत्नाकर', 'पिंगल छन्द विचार', 'पिंगल वृत्त विचार' (सन् १६७१) और 'छन्द निवास सार'—ये नौ ग्रन्थ इनके बतलाये जाते है। इनमेंसे 'पिंगल वृत्त विचार' और 'फाजिल अली प्रकाश'का प्रकाशन क्रमशः गोपीनाथ पाठक, बनारससे १८६९ ई० मे तथा जैन प्रेस, लखनऊसे १८९८ ई० में हुआ। भगीरथ मिश्रने 'रसार्णव'के प्रकाशित संस्करणकी भी चर्चा की है। 'रस रत्नाकर'की एक प्रति नागरी प्रचारिणी सभामें सुरक्षित है। इस ग्रन्थमे भानुदत्त-कृत 'रस मंजरी'के आधारपर नायिका-भेदका विषय लिया गया है। दूसरे ग्रन्थ 'रसार्णव'मे नव रसोंके साथ नायिका-भेदका प्रसंग लिया गया है और यह ग्रन्थ डौण्डिया खेरेके राव मर्दनसिंहकी आज्ञासे रचा गया है। इनका 'पिंगल वृत्त विचार' नामक ग्रन्थ हिन्दीके पिंगल ग्रन्थोमे महत्त्वपूर्ण है। इस ग्रन्थकी चार हस्तलिखित प्रतियाँ नागरी प्रचारिणी सभामे उपलब्ध हैं। इस ग्रन्थके चार परिच्छेदोंमें से प्रथममे कवित्त और छप्पय है तथा मंगलाचरणके साथ कवि और आश्रयदाता राजसिंहका वर्णन है। द्वितीय परिच्छेदमें छन्दसम्बन्धी सामान्य नियमोका विवेचन है। तृतीयमे वर्णिक वृत्तोंको लिया गया है और चतुर्थ परिच्छेदमें मात्रिक छन्दों को। इस ग्रन्थकी विवेचन-शैली रोचक है। सुखदेव मिश्रका काव्य सरस और ओजगुणसे युक्त है। आलंकारिक प्रयोगोमे वे रीतिकालके अच्छे कवियोंमे गिने जा सकते हैं।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० इ०; हि० सा० बृ० इ०; भा० ६; दि० भू०।] —सं०

सुखसंपत्तिराय भंडारी–जन्म १८९५ ई० मे हुआ। कई पत्रो—'वेंकटेश्वर समाचार', 'सद्धर्म प्रचारक', 'पाटलिपुत्र' आदि का सम्पादन किया। सात भागोंमे प्रकाशित इनके 'अंग्रेजी-हिन्दी कोश'की पर्याप्त सराहना हुई। विविध विषयोंपर लिखी इनकी १८ पुस्तकें है। —सं०

सुखसागर–दे० 'मलूकदास'।

सुखसागर तरंग–रीतिकाव्यके सुप्रसिद्ध कवि देवका यह सम्भवतः अन्तिम ग्रन्थ है, जो उन्होंने १६६७ ई० के लगभग ९४-९५ वर्षकी नितान्त वृद्धावस्थामें पिहानीके अधिपति अकबरअली खाँको समर्पित किया था। देवने स्वयं इसे 'संग्रह' कहा है—"…श्री खान साहबअली अकबर खान कारिते देवदत्त कवि रचिते शृंगार सुखसागर तरंग संग्रह…"। लक्ष्मीधर मालवीयको इसी नामकी एक अपेक्षाकृत संक्षिप्त प्रति ऐसी मिली है, जो महाराज जसवन्त सिंहको समर्पित है। इससे अनुमान होता है कि इसके भी कविने दो संस्करण किये थे। 'सुखसागर' के बड़े संस्करणमें लगभग ९०० कवित्त-सवैये हैं, जिनमेंसे अधिकतर देवके अन्यान्य ग्रन्थोमें निर्दिष्ट किये जा सकते हैं। लगभग दो सौ छन्द ऐसे है, जो कहाँसे संगृहीत है, यह ज्ञात नहीं होता, जिसके कारण कुछ अनुपलब्ध ग्रन्थोंकी कल्पना भी की गयी है। लक्ष्मीधर मालवीयकी यह धारणा है कि देवने प्रारम्भसे ही अपने पास स्वरचित एक छन्द संग्रह ऐसा रखा था, जिससे छन्द लेकर वे नये ग्रन्थोंमें समाविष्ट कर लेते थे तथा उसमे नये-नये छन्द समय-समयपर जोड़ते भी जाते थे। सम्भव है 'सुखसागर तरंग' इसी प्रकारके संग्रहका परिवर्धित रूप हो परन्तु यह धारणा अभी सिद्ध नहीं मानी जा सकती। 'सुखसागर तरंग' की हस्तलिखित प्रतियाँ गन्धौलीके ब्रजराज पुस्तकालयमे तथा मिश्रबन्धुओंके पास मिली है। १८९३ ई० (सं० १९५४) मे अयोध्यासे बालदत्तने इसे सम्पादित करके प्रकाशित भी किया था। यह संस्करण अब अप्राप्य है।

इसमें बारह अध्याय हैं। स्वरूप इसका लक्षण-ग्रन्थ जैसा है परन्तु लक्षणके दोहे नही दिये गये है। शृंगार रस और नायिका-भेदका इसमे आद्योपान्त इतना परिविस्तार है कि इसके प्रति 'नायिका-भेदके विश्वकोश' की भावना उत्पन्न होने लगती है, जैसा नगेन्द्रने इसके विषयमें कहा भी है। प्रथम अध्यायका मुख्य विषय श्री पंचमी महोत्सव का चित्रण है। दूसरे अध्यायमे पूर्वराग आदिका वर्णन आरम्भ हो जाता है फिर षड्ऋतु और अष्टयाम भी वर्णित किये जाते है, जिनकी समाप्ति तीसरे अध्यायमें होती है। इसीमे नख-शिख आदि भी समाविष्ट हैं। चौथेसे लेकर अन्तिम अध्यायतक नायिका-भेदका ही विविध प्रकारसे परिविस्तार मिलता है।

[सहायक ग्रन्थ—शि० स०; मि० वि०; हि० का० शा० इ०; री० भू० तथा दे० का०; देवके लक्षण-ग्रन्थोंका पाठ और पाठ-समस्याएँ (अप्र०): लक्ष्मीधर मालवीय।] —ज० गु०

सुग्रीव–सुग्रीवके चरित्रमे एक साथ अनेक विशेषताओंका समावेश मिलता है। वे सूर्य-पुत्र प्रसिद्ध वानर, वीर बलिके अनुज, किष्किन्धाके राजा तथा रामके मित्र एवं भक्त थे। सीताहरणके पश्चात् रामकी सुग्रीवसे मित्रता हुई। उन्होने बलिका वध किया तथा तारा सुग्रीवकी पत्नी हुई। राम-रावण युद्धमे सुग्रीवने रामकी सहायता की थी। रामकथा काव्योंके अतिरिक्त भी सुग्रीवके भक्तरूपकी चर्चा अन्य ग्रन्थोंमें भी मिलती है (दे० सू० सा० प०४७७; 'स्कन्दगुप्त' १।२५)। —रा० कु०

सुजान-चरित—सूदन कविने अपने आश्रयदाता सुजान-सिंह (सूरजमल)के आश्रयमें 'सुजान-चरित' ग्रन्थकी रचना की है। इस पुस्तकमें सुजान सिंहके जीवनकी १७४५ ई०से १७५३ ई० तककी घटनाओंका वर्णन है। अतः इस काव्यकी रचना १७५३ ई० के आसपास हुई होगी। 'सुजान-चरित्र' राधाकृष्ण दास द्वारा सम्पादित नागरी प्रचारिणी सभा काशीसे १९२३ ई० मे प्रकाशित हुआ है।

'सुजान-चरित्र'के प्रारम्भमें सूदनने १७५ कवियोंके नामो का उल्लेख किया है। इसके पश्चात् सूरजमलके वंशका वर्णन, उनके द्वारा लड़ी गयी सात लड़ाइयोंका विस्तृत वर्णन किया है। इस ग्रन्थमें सुजान सिंहके सम्पूर्ण जीवनका विवरण प्राप्य है। युद्धकी तैयारी, सैन्य-प्रयाण आदिका सूक्ष्मातिसूक्ष्म चित्रण इस काव्यमें मिलता है। कविने वीररसका अत्यन्त सजीव चित्रण किया है। साथ ही इसमें शृंगार, बीभत्स आदि रसोंका भी सफल अंकन हुआ है। चरित्र-चित्रणमें चरित्र-नायकके ऐश्वर्य, वैभव और गुणोंका सुन्दर वर्णन करनेके साथ ही प्रतिपक्षियोंका भी उतना ही उत्तम चित्रण किया है। सूदनने 'सुजान-चरित'में १०३ प्रकारके छन्दोंका प्रयोग किया है। छन्दोंके रूप और नाम-परिवर्तन करनेकी प्रवृत्ति द्वारा सूदनने अपने पाण्डित्य एवं आचार्यत्वका परिचय दिया है। छन्दोंमें शीघ्र परिवर्तन द्वारा इस कविने अपनी रचनाको रोचक बनानेकी सफल चेष्टा की है। विविध वस्तुओं, नामों आदिकी लम्बी सूचियों, संयुक्ताक्षर तथा नादात्मकताका जिन स्थलोंपर प्रयोग हुआ है, वे अंश नीरस हो गये हैं। सूदनकी भाषा शुद्ध साहित्यिक ब्रजभाषा है पर उसमें पंजाबी, मारवाड़ी, बैसवाड़ी, पूर्वी तथा फारसीका प्रयोग प्रचुर मात्रा में है। साहित्यिक एवं ऐतिहासिक, दोनों दृष्टियोंसे इसका एक प्रमुख स्थान है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० वी० ; हि० सा० इ० ; हि० सा० (भा० २); मि० वि०।] —टी० तो०

सुदर्शन—सुदर्शन (१८९६ ई०) हिन्दीके प्रसिद्ध कहानीकार हैं, यद्यपि इन्होंने उपन्यास और नाटक भी लिखे हैं। वास्तविक नाम बदरीनाथ है। जन्म पंजाबके सियालकोट नामक स्थानमें हुआ था। बी० ए० तक शिक्षा प्राप्त की। प्रेमचन्दकी भाँति सुदर्शनका साहित्यिक जीवन भी उर्दूमें प्रारम्भ हुआ। उर्दूसे ही वे हिन्दीमें आये और शीघ्र ही ख्याति प्राप्त कर ली। १९२० ई०की 'सरस्वती'में उनकी सर्वप्रथम कहानी प्रकाशित हुई। उनकी रचनाएँ इस प्रकार हैं—'रामकुटिया' (१९१७ ई०), 'पुष्पलता'(कहानी १९१९ ई०), 'सुप्रभात' (कहानी १९२३ ई०), 'अंजना' (नाटक, १९२३ ई०), 'परिवर्तन' (कहानी १९२६ ई०), 'सुदर्शन सुधा' (कहानी १९२६ ई०), 'तीर्थयात्रा' (कहानी, १९२७ ई०), 'फूलवती' (कहानी १९२७ ई०), 'सुहराब और रुस्तम' (१९२९ ई०), 'आनरेरी मजिस्ट्रेट' (प्रहसन, १९२७ ई०), 'सात कहानियाँ' (१९३२ ई०), 'विज्ञान वाटिका' (१९३३ ई०), 'सुदर्शन सुमन' (कहानी १९३४ ई०), 'गल्प-मंजरी' (१९३४ ई०), 'चार कहानियाँ' १९३८ ई०), 'पनघट' (कहानी, १९३९ ई०), 'राजकुमार सागर' (१९३९ ई०), 'अँगूठीका मुकदमा' (कहानी, १९४०), 'झंकार' (१९३९ ई०) और 'भागवन्ती' (उपन्यास)। 'प्रमोद', 'नगीने' और 'खटपट लाल' भी उनके कहानी-संग्रह बताये जाते हैं।

जिस समय सुदर्शनने कहानियोंकी रचना प्रारम्भ की, उस समय या तो "सादे ढंगसे केवल कुछ अत्यन्त व्यंजक घटनाएँ और थोड़ी बातचीत सामने लाकर क्षिप्र गतिसे किसी एक गम्भीर संवेदना या मनोभावमें पर्य्यवसित" होनेवाली कहानियोंका प्रचार था या "परिस्थितियोंके विशद और मार्मिक—कभी-कभी रमणीय और अलंकृत—वर्णनों और व्याख्याओंके साथ मन्द मधुर गतिसे चलकर किसी एक मार्मिक परिस्थितिमें पर्य्यवसित" होनेवाली कहानियोंका प्रचार था। प्रेमचन्दकी भाँति सुदर्शनने इन दोनों पद्धतियोंके बीचकी पद्धति ग्रहण की और घटनाओंके चित्रणके साथ-साथ अपनी ओरसे भी व्याख्या प्रस्तुत की। उनकी कहानियोंके कथानक सामाजिक जीवनसे लिये गये हैं और उनमें उनकी सुन्दर वर्णनात्मक शक्तिका परिचय प्राप्त होता है। यद्यपि वे आर्यसमाज आन्दोलनसे प्रभावित थे तो भी उनमें संकीर्णता नहीं थी। उन्होंने कहानियोंके कथानक भारतवर्षके जीवनसे ही नहीं, वरन् विदेशोंके जीवनसे भी ग्रहण किये। कथा-संगठनमें उत्सुकतापूर्ण स्थल रखकर वे उसमें सौन्दर्य उत्पन्न करते और पाठकका मन रमाये रहते हैं। शान्त और गम्भीर रूपसे प्रवाहित होती हुई कथा किसी स्थलपर एक दम परिवर्तित होकर आश्चर्यकी सृष्टि करती है। कथोपकथन और चरित्र-चित्रणकी दृष्टिसे भी उनकी कहानियाँ सफल हैं। वे स्वयं तो व्याख्या करते ही हैं किन्तु साथ ही अपने पात्रोंको भी आत्म-विश्लेषणका अवसर प्रदान करते हैं। सुदर्शनकी कहानियोंकी भाषा स्वाभाविक और लालित्यपूर्ण है। उनकी रचना-शैलीमें एक विशिष्टता है, जो तुरन्त पहचानी जा सकती है।

सुदर्शनका नाटक 'अंजना' यद्यपि पौराणिक कथानकपर आधारित है तो भी उसमें वर्तमानपर सुन्दर प्रकाश पड़ता है किन्तु वस्तु-संघटन और चरित्र-चित्रणकी दृष्टिसे नाटकमें शिथिलता है। 'आनरेरी मजिस्ट्रेट' में दो मूर्ख देहातियोंको मजिस्ट्रेटके रूपमें चित्रित किया गया है। मूर्खों और सरकारी पिट्ठुओं द्वारा न्यायका गला किस प्रकार घोंटा जाता है और पदका दुरुपयोग किया जाता है, इस स्थितिका सुदर्शनने अच्छा मजाक बनाया है। उन्होंने एक'चन्द्रगुप्त' नामक एकांकी भी लिखा है। सुदर्शन कुछ दिन फिल्मी दुनियामें भी काम कर चुके हैं। —ल० सा० वा०

सुदामा—कृष्ण-काव्यमें सुदामाका उल्लेख कृष्णके बाल सखा और सहपाठीके रूपमें प्राप्त होता है किन्तु काव्यमें सन्दीपन ऋषिके शिष्य एवं कृष्णके सहपाठी सुदामाका ही चरित्र स्वीकृत हो सका। सुदामा, कृष्णके ऐसे मित्र-भक्त हैं, जिन्हें द्वारिकाधीश कृष्णके प्रेम, औदार्य और भक्तवत्सलताका उत्कृष्ट रूपमें लाभ होता है (सू० सा० प० ४८४२-४८६३)। दैन्यभावकी परिपोषक होनेके कारण सुदामा दारिद्र्य-भंजनकी कथा पर्याप्त लोकप्रिय हो गयी। सूरदास और नन्ददासके पश्चात् अप्रत्याशित कृपासे विस्मयविमुग्ध सुदामाका चरित्र हृदयकी निकटताके

अभावमें साम्प्रदायिक भक्त कवियोंके बीच अधिक लोकप्रिय न हो सका। आलम, नरोत्तम, गोपाल, कालीराम, महाराज दास, वीर, राखन, आनन्ददास आदि सम्प्रदायमुक्त-कवियोंके ही द्वारा यह प्रसंग वर्णित हुआ है। प्रस्तुत प्रसंगपर काव्य-रचना करनेवाले सभी कवियोंने सुदामाके दारिद्र्यकी अतिरंजना और कृष्णकी मैत्रीके आदर्शीकरणके अतिरिक्त किसी अन्य तथ्यका समावेश नहीं किया है।

बीसवीं शतीमें मैथिलीशरण गुप्तके 'द्वापर' पृ० २०५-२२२ के अन्तर्गत सुदामाके चरित्रमें भक्तिभावनाके साथ ही स्वाभिमान और समाजवादी विचारोंकी आंशिक रूपमे व्यंजना हुई है। कदाचित् इसीलिए कविने सुदामाको द्वारिका गमनके लिए उद्यत मात्र दिखाया है, उसका कृष्णसे साक्षात्कार नहीं होता। —रा० कु०

सुदामाचरित–सुदामादारिद्र्यभंजनकी कथा 'भागवत दशम स्कन्ध'के अध्याय ८१।८२ मे वर्णित है। सुदामा संदीपन गुरुके आश्रममें कृष्णके सहपाठी सखा थे। वे अत्यन्त दीन, दरिद्र और दुर्बल ब्राह्मण थे। कृष्ण जब द्वारिकामे शासन करने लगे तो उनकी पत्नी सुशीलाने उनसे आग्रह किया कि वे अपने ऐश्वर्यसम्पन्न सखा कृष्णके पास जाकर अपने दारिद्र्यका परिहार करे। पत्नीके अत्यन्त आग्रहपर भगवान्‌को भेंट देनेके लिए तण्डुल लेकर वे उनके पास गये। भगवान् कृष्णने सुदामाको सब प्रकारसे सन्तुष्ट करके उनके दारिद्र्यको दूर कर दिया। सुदामा और कृष्णकी मैत्रीके इस आख्यानके आधारपर भारतीय भाषाओंम अनेक रचनाएँ हुईं। अष्टछापके कवियों मे सूरदासने 'सूरसागर'के दशम स्कन्ध (पद सं० ४२२४-४२४४) मे सुदामाकी कथा वर्णित की है। इसके अतिरिक्त पद संख्या ४२४४ में उन्होंने सम्पूर्ण सुदामा चरित्र को ग्रन्थित कर दिया है। अष्टछापके एक अन्य कवि नन्ददासकृत 'सुदामा चरित'का भी उल्लेख मिलता है। डा० दीनदयालु गुप्तका अनुमान है कि यह रचना नन्ददासकृत 'सम्पूर्ण भाषा भागवत'का, जो अब अप्राप्य है, अंश है (दे० 'अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय' भाग १ पृ० ३४७)। इस रचनामें दोहा और चौपाई छन्दोंका प्रयोग हुआ है। नन्ददासके समसामयिक कवि नरोत्तम (सवत् १६०२)कृत 'सुदामा चरित' इस परम्पराकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रचना है। यह एक संक्षिप्त खण्ड-काव्य है, जो दोहा, कवित्त और सवैया छन्दोंमे रचा गया है। कथासगठन, नाटकीय विधान, भाव, भाषा, छन्द आदि सभी दृष्टियोंसे नरोत्तमकृत 'सुदामा चरित' श्रेष्ठ रचना है तथा परवर्ती सुदामा-चरित-सम्बन्धी रचनाओंको इससे प्रचुर प्रेरणा मिली। बहादुरशाह के समकालीन आलम कवि (सवत् १६८३ के लगभग) ने खड़ीबोलीमे एक 'सुदामा चरित'की रचना की। यह ६० पद्योंकी छोटी सी रचना है, जो रेख्ता भाषामे लिखी गयी है। कृष्ण और सुदामाविषयक अभिव्यक्तियोंमें साम्प्रदायिकताका आभास नहीं मिलता है। इसी शतीमें कालीराम (संवत् १७३१) द्वारा ब्रजभाषामे रचित 'सुदामा चरित' भी प्राप्त हुआ है। सुदामाचरितोंकी रचनाकी दृष्टिसे अठारहवीं और उन्नीसवी शताब्दी विशेष महत्त्वपूर्ण है। अठारहवीं शतीकी एतद्विषयक रचनाओंमे माखन कविकृत 'सुदामा चरित', खण्डन कविकृत 'सुदामा चरित' (संवत् १७९९), वीरकृत 'सुदामा चरित' उल्लेखनीय है। १९वीं शतीके सुदामाचरितोंमें गोपाल कविकृत 'सुदामा चरित' (संवत् १८५३), प्राणनाथकृत 'सुदामा चरित' (संवत् १८१३) और बालकदास फकीरकृत 'सुदामा चरित' (सवत् १८९०) महत्त्वपूर्ण हैं। २०वीं शतीमें भी सुदामा चरितोंकी रचना होती रही। इस शतीकी रचनाओंमें विहारक हलधर कविकृत 'सुदामा चरित' (संवत् १९००), महाराज दासकृत 'सुदामा चरित'(संवत् १९१९) और कैथी लिपिमे भूधरकृत 'सुदामा चरित' प्राप्त हैं।

सुदामा दारिद्र्य-भजनकी कथा साम्प्रदायिक कृष्ण साहित्यमे समादृत न हो सकी। सूरदास और नन्ददासकृत 'सुदामा चरित' अवश्य इस तथ्यके अपवाद कहे जा सकते हैं। वस्तुतः वल्लभ, निम्बार्क, चैतन्य, राधावल्लभ और हरिदासी सम्प्रदायोंकी उपासनापद्धतिमें उत्तरोत्तर ब्रज-लीलाओं और माधुर्यभावकी अभिवृद्धिके कारण द्वारिकावासी कृष्णकी ऐश्वर्यपूर्ण लीलाएँ साम्प्रदायिक साहित्यमें स्वीकृत नहीं हो सकी तथा लोकमे सम्प्रदायमुक्त कवियों द्वारा ही अधिक प्रचारित हुई। उल्लिखित-सुदामाचरितोंकी विषयवस्तुके केवल दो प्रयोजन दृष्टिगत होते हैं। प्रथम तो सुदामाके दारिद्र्यके अतिरेकका निरूपण तथा दूसरे कृष्णकी मैत्रीका आदर्शीकरण। मूलतः भक्तिप्रसूत होते हुए भी रीति-युगके राजकीय ऐश्वर्य एवं लोकके दारिद्र्यकी युगपत् अभिव्यक्ति कदाचित् इस प्रसगके द्वारा सबमे अधिक मात्रा मे सम्भव थी। इसीलिए उस युगमे सुदामाचरितोंकी रचना को प्रेरणा मिली।

सुदामाचरितोंकी भाषा प्रायः ब्रजभाषा ही रही परन्तु आलम और गोपाल कविकी रचनाओंकी भाषा खड़ीबोली मे प्रचुर मात्रामें प्रभावित है। सुदामाचरितोंके अन्तर्गत दोहा, चौपाई, सवैया, अरिल्ल आदि छन्दोंका प्रयोग हुआ है। पद-शैलीमे इस प्रसंगकी उद्भावनाका श्रेय केवल सूरदासको ही प्राप्त है।

[सहायक ग्रन्थ—हिन्दी साहित्य भाग २; ना० प्र० स० की खोज रिपोर्टें १९०५, १२-१४, २५-३०, ३२-३४, ३८-४०, २९-३०; बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्की खोज रिपोर्ट; इतिहास एवं अन्य सन्दर्भ ग्रन्थ।] —रा० कु०

सुधांशु–दे० लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु'।

सुधाकर द्विवेदी–जन्म सन् १८६० ई० में काशीके समीप खजुरी ग्राममे हुआ था। आठ वर्षकी अवस्था तक आपकी शिक्षाका कोई समुचित प्रबन्ध न हो सका था। आप अद्भुत प्रतिभाके बालक थे। देरसे शिक्षा आरम्भ होने पर भी आपने शीघ्र ही संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजीमे अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। गणित और जोतिषमें आपकी विशेष गति थी। 'सुधाकर शर्मा गणिते बृहस्पतिसमः' कहा गया है। अपने जीवन-कालमे आपको विभिन्न पदोंपर कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ था। सन् १८८३ ई० में काशीके प्रसिद्ध संस्कृत कालेजमें पुस्तकालयाध्यक्ष नियुक्त हुए। सन् १८८९ ई० मे बापूदेव शास्त्रीके अवकाश ग्रहण करने पर आपकी नियुक्ति संस्कृत कालेजके गणित-अध्यापकके पद पर हुई। १६ फरवरी, सन् १८८७ ई० में महारानी

विक्टोरियाके जुबली-महोत्सवमें आपको 'महामहोपाध्याय' की उपाधि प्राप्त हो चुकी थी। क्वीन्स कालेजके गणितके अध्यापक एम० एन० दत्तके इन्सपेक्टर नियुक्त होनेपर आप क्वीन्स कालेजमें भी गणितका अध्यापन करने लगे। सार्वजनिक कार्योंमें आप सक्रिय सहयोग देते थे। इसीलिए हिन्दू कालेजकी प्रबन्ध-समिति, प्रान्तीय पाठ्य-पुस्तक-निर्धारिणी-समिति, ना० प्रचारिणी-सभा तथा हिन्दी साहित्य-सम्मेलनके आप सम्मानित सदस्य थे। तुलसी स्मारक सभाके तो आप सभापति थे।

संस्कृतके प्रकाण्ड पण्डित होनेपर भी आप हिन्दीके प्रति पूर्ण निष्ठा रखते थे। संस्कृत भाषामें गणित, ज्योतिष और आध्यात्मिक विषयोंपर लिखे गये आपके ग्रन्थोंकी कुल संख्या २९ से अधिक है। हिन्दीमें भी आपने कम नहीं लिखा है। 'चलन कलन' (१८८६ ई०), 'चलराशि कलन' (१८८६ ई०), 'समीकरण मीमांसा' (भाग १, २), 'गति विद्या' आपकी प्रसिद्ध गणितकी पुस्तकें हैं। 'तुलसी सुधाकर' (तुलसी सतसई पर कुण्डलिया), 'पद्मावति' १-५ खण्ड (ग्रियर्सनके साथ सम्पादित) 'दादू दयाल शब्द' (सम्पादित), महाराज रुद्र प्रताप सिंहकृत 'रामायण'का मुद्रण, 'हिन्दी वैज्ञानिक कोश', 'हिन्दी भाषाका व्याकरण', 'भाषा बोध' (भाग १, २) 'राधाकृष्ण-दानलीला', 'रामकहानी' आदि आपकी हिन्दीमें रचित और सम्पादित साहित्य-कृतियाँ हैं। तुलसीदासकी 'विनयपत्रिका' और 'मानस'के बालकाण्ड'का आपने संस्कृतमें अनुवाद भी किया था। कुछ दिनोंतक आपने 'मानस पत्रिका' नामक एक पत्रिका-का सम्पादन भी किया था, जिसमें 'रामचरित-मानस'के सम्बन्धमें उठाई जानेवाली शंकाओंका समाधान किया जाता था।

आप विचारोंसे उदार और सुधारवादी थे। आप जन्म नहीं, कर्मके आधारपर वर्ण-निर्णयके पक्षमें थे। विलायतसे लौटनेवाले लोगोंको जातिसे बहिष्कृत होते देखकर आपको ग्लानि होती थी। ३० अगस्त, १९१० ई० को आपके सभापतित्वमें काशीमें एक विराट् सभा हुई थी, जिसमें आपने ओजस्वी स्वरमें मात्र विलायत-गमनके कारण जाति-च्युत लोगोंको पुनः जातिमें लेनेके लिए अपील की थी। १९१० ई०में काशीमें आपका स्वर्गवास हो गया।

आप सरल और सुबोध हिन्दीके पक्षपाती थे। आपका गद्य परिमार्जित, प्रसन्न और प्रवाहमय है। हिन्दीका सौभाग्य था कि उसे उसके विकासके प्रारम्भिक युगमें ही वैज्ञानिक विषयोंपर हिन्दीमें सोचने और लिखनेमें पूर्ण समर्थ सुधाकर द्विवेदीके रूपमें एक प्रकाण्ड पण्डित उपलब्ध हुआ था।

—रा० च० ति०

सुधानिधि–आचार्य और कवि तोषजीका लिखा हुआ यह रसभेद, भावभेदसम्बन्धी ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ भारत जीवन प्रेससे सन् १८९२में रामकृष्ण वर्मा द्वारा सम्पादित होकर प्रकाशित हुआ है। इसमें १८३ पृष्ठ और ५६० छन्द हैं। इसके रचनाकालके सम्बन्धमें शुक्लजीने संवत् १७९१ अर्थात् सन् १७३५ ई० लिखा है किन्तु अयोध्यानरेशके पुस्तकालयसे प्राप्त प्रतिके अनुसार मिश्रबन्धुओंने एक दोहे—"संवत् सोरहसे बरस गो इकानबे बीति। गुरु आषाढ़ की पूर्णिमा रच्यो ग्रन्थ करि प्रीति ॥५५५॥"—के आधारपर सन् १६३५ निश्चित किया है। इस तरहसे इनके रचनाकालमें सौ वर्षका अन्तर पड़ जाता है पर मिश्रबन्धुओं द्वारा निश्चित काल ही ठीक प्रतीत होता है। 'सुधानिधि' रस विवेचनका एक अच्छा ग्रन्थ है। इसमें नव रसों, भावों, भावोदय, भावशान्ति, भावशबलता, रसाभास, रसदोष, वृत्ति तथा नायिकाभेदका वर्णन किया गया है। सखा-सखी भेद, हाववर्णन तथा वियोग दशाओंके मनोहारी वर्णन हैं। शृंगारेतर रसों तथा संचारियोंके विवेचन कम हैं पर उदाहरण अच्छे हैं। दोहा छन्दका प्रयोग प्रायः लक्षण देनेके लिए और कवित्त, सवैया, छप्पय, दोहा आदि छन्दोंका प्रयोग लेखकने उदाहरणके लिए किया है। इस ग्रन्थमें रससे सम्बद्ध किसी भी बातको लेखकने छोड़ा नहीं है और उदाहरणों की मार्मिकताके कारण आचार्यत्व कुछ दबा-दबा-सा लगता है।

[सहायक ग्रन्थ— हि० का० इ०; हि० सा० इ०।]

—ह० मो० श्री०

सुनीता–जैनेन्द्र कुमार की प्रमुख औपन्यासिक कृतियोंमें एक, जिसका प्रकाशन सन् १९३५में हुआ। जैनेन्द्र की उपन्यास कलाका प्रौढ़तम रूप इसी उपन्यासमें मिलता है। इस उपन्यासमें तीन चरित्रों—सुनीता, हरि प्रसन्न तथा श्रीकान्त की प्रमुखता है। उपन्यास की कथाका आधार इन्हीं पात्र-पात्रियोंके त्रिकोणात्मक चरित्रों की पृष्ठभूमि है। उपन्यासमें कथानकके विकासके सामानान्तर ही दार्शनिक तत्त्वोंका समावेश तथा उनका आग्रह भी क्रमशः बढ़ता जाता है। कुछ स्थलोंपर वातावरणकी प्रधानता होनेके कारण उनका महत्त्व अवश्य है। परिणाम यह हुआ है कि न केवल यह उपन्यास ही घटनाप्रधान नहीं रह गया है, वरन् इसमें उनका अभाव भी है। पात्रोंका व्यक्तित्व उन्हीं तत्त्वोंके माध्यमसे विकसित होता है, जो कथा-विकास का भी आधार है। 'सुनीता'की प्रस्तावनामें जैनेन्द्रने लिखा है—"पुस्तकमें मैंने कहानी कोई लम्बी चौड़ी नहीं कही है। कहानी सुनाना मेरा उद्देश्य भी नहीं है। अतः तीन चार-व्यक्तियोंमें ही मेरा काम चल गया है। इस विश्वके छोटे से छोटे खण्डको लेकर हम अपना चित्र बना सकते हैं और उसमें सत्यके दर्शन पा सकते हैं। उसके द्वारा हम सत्यके दर्शन करा भी सकते हैं। जो ब्रह्माण्डमें है, वही पिण्डमें भी है। इसलिए अपने चित्रके लिए बड़े कन्वास की जरूरत मुझे नहीं लगी। थोड़ेमें समग्रता क्यों न दिखाई जा सके ?"

'सुनीता'की कथाका आरम्भ एक ऐसे दम्पत्तिकी परिस्थितिके उपस्थितिकरणसे होता है, जिनके चरित्र रहस्यात्मक सूत्रोंसे निर्दिष्ट होते हैं। सुनीता और श्रीकान्तके विवाहको सम्पन्न हुए तीन वर्ष व्यतीत हो चुके हैं परन्तु वे अभीतक निःसन्तान हैं। उनके जीवनमें कभी-कभी नीरसताकी प्रतीतिका यही कारण है। श्रीकान्त बहुधा अपने मित्र हरिप्रसन्नका स्मरण और चर्चा करता है। वह उसे पुराने पतेपर पत्र भी लिखता है, जो लौट आता है। एक बार वह उसे प्रयागमें देखता भी है परन्तु भीड़के कारण भेंट नहीं कर पाता। बादमें बड़े नाटकीय

रूपसे भेंट हरिप्रसन्नसे दिल्लीमें हो जाती है। वह उसे घर ले आता है। हरिप्रसन्न सुनीतासे परिचित होता है और पति-पत्नीका चित्र भी बनाता है। श्रीकान्त उसे बाँधकर रखना चाहता है और सुनीताको भी अपना उद्देश्य बता देता है। एक बार श्रीकान्तके बाहर जानेपर हरिप्रसन्न सुनीताके पास आता है और अपने दलके क्रान्तिकारी युवकोंका नेतृत्व करनेकी प्रार्थना करता है। वह आधी रातके समय उसके साथ निर्जन वनमें मीटिंगमें जाती है। वहाँ गुप्त संकेतोंसे पता चलता है कि पुलिसको सूचना हो जानेके कारण मीटिंग नहीं हुई। हरिप्रसन्न वहीं प्राण देनेपर उतारू हो जाता है। उसके मुँहसे यह सुनकर कि वह उसे चाहता है, सुनीता उसके सामने निरावरण हो जाती है। हरिप्रसन्न लज्जित होता है और दोनों लौट आते हैं। श्रीकान्तको भी इन दोनोंके रातको जानेकी बात मालूम हो जाती है। सुनीता उसे हरिके मनकी डॉवाडोल स्थितिके विषयमें बताती है। वे दोनों ऐसा अनुभव करते है, जैसे इस घटनाके कारण वे परस्पर अधिक निकट आ गये हैं। इस प्रकारसे इस प्रभावशाली उपन्यासकी कथा समाप्त होती है। —प्र० ना० टं०

सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या–जन्म १८९० ई०मे शिवपुर (जिला-हवडा)मे हुआ। शिक्षा (एम० ए०, डी० लिट्०) कलकत्ता, लन्दन तथा पेरिसके विश्वविद्यालयोंमे हुई। भारतवर्षके भाषा-वैज्ञानिकोंमे आपका नाम शीर्षस्थ रखा जाता है। हिन्दीको राष्ट्रभाषा माननेवाले हिन्दीतर विद्वानोंमे आप प्रमुख रहे है। हिन्दीमे आपकी दो रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं—'ऋतम्भरा' (निबन्ध संकलन) तथा 'राजस्थानी भाषा'। —स०

सुभद्रा कुमारी (चौहान)–जन्म सन् १९०४ ई० (संवत् १९६१ वि०) मे प्रयागके निहालपुर मुहल्लेमे हुआ था। आपका विद्यार्थी-जीवन प्रयागमे ही बीता। क्रास्थवेट गर्ल्स कालेजमें आपने शिक्षा प्राप्त की और शिक्षा समाप्त करनेके बाद नवलपुरके सुप्रसिद्ध वकील ठा० लक्ष्मण सिंहके साथ आपका विवाह हो गया। बाल्यकालसे ही साहित्यमे रुचि थी। प्रथम काव्य रचना आपने १५ वर्षकी आयुमे ही लिखी थी। राष्ट्रीय आन्दोलनमें बराबर सक्रिय भाग लेती रहीं। कई बार जेल गयीं। काफी दिनो तक मध्य प्रान्त असेम्बलीकी कांग्रेस सदस्या रहीं और साहित्य एवं राजनीतिक जीवनमें समान रूपसे भाग लेकर अन्त तक देश की एक जागरूक नारीके रूपमें अपना कर्तव्य निभाती रहीं। १९४८ ई० मे अप्रैलके महीनेमे आपका स्वर्गवास हो गया।

श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान मुख्यतः कवयित्री थी। उनकी कविताओंमे दो प्रवृत्तियाँ विशेष रूपसे महत्त्व की हैं—पहली तो राष्ट्रीय भावनाकी और दूसरी घरेलू जीवन की। आपकी राष्ट्रीय कविताओंमे समसामयिक देश-प्रेम और भारतीय इतिहास एवं संस्कृतिकी गहरी छाप है। सुभद्राजीने अपनी राष्ट्रीय रचनाओंमें जिस प्रतिभाके साथ सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और राष्ट्रीय भावनाओंको समसामयिक राजनीतिक जीवनके तात्कालिक सन्दर्भोंसे जोड़ा था, उससे उनकी प्रतिभाका विशेष परिचय मिलता है। सुभद्राजीकी काव्य-शैलीकी विशेषता यह थी कि वह किसी भी जटिलसे जटिल भावको सम्पूर्ण सरलताके साथ रखती थीं। भाव और अभिव्यक्ति, दोनोंको एक दूसरेमें ऐसा पिरोकर रखती थी कि कहीं भी उनकी शैलीमें राष्ट्रीय भावना आरोपके समान नहीं लगता। बुन्देलखण्डमे लोक-शैलीमें गाये जानेवाले छन्दको लेकर उसीमें झाँसीकी रानी जैसी रोमांचक कथा लिखना—उनकी प्रतिभा और दृष्टि दोनोंका परिचय देता है। यही कारण था कि राष्ट्रीय आन्दोलनके दिनोंमें यद्यपि 'झाँसीकी रानी' काव्यको अंग्रेजी सरकारने जब्त कर लिया था फिर भी वह हिन्दी भाषाभाषी जनताको कण्ठाग्र हो गया था। "बुन्देले हरबोलोंके मुँह हमने सुनी कहानी थी, खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी"—'झाँसीकी रानी' काव्यकी इन पंक्तियोंने देशमें राष्ट्रीयताका जागरण किया और युवकोंको काफी प्रेरणा दी। यह सरलता उनके घरेलू या सहज जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाली रचनाओंमे भी मिलती है। "वीणा बज सी पड़ी खुल गये नेत्र और कुछ आया ध्यान, मुड़ने की थी देर मिल गया, उत्सवका प्यारा सामान" या "मैं बचपनको बुला रही थी बोल उठी बिटिया मेरी"— या "शैशवके सुन्दर प्रभातका मैंने नव विकास देखा, यौवनकी मादक लालीमें यौवनका हुलास देखा"—आदि कविताओंमे हमे यह स्पष्ट पता चलता है कि सुभद्राजी मे गम्भीरसे गम्भीर विषयको भी सरल रूपमें प्रस्तुत करने की अदम्य क्षमता थी। लेकिन इस सरलतामे सुभद्राजी की रचनाएँ अपनी सरसता नहीं खोतीं। भावव्यंजक, सरलता और हृदयस्पर्शी सरसता दोनोंके योगसे वह अपनी रचनाओंको बडा मधुर बना देती थीं। उनकी कविताओंके संकलन 'त्रिधारा' और 'मुकुल' शीर्षकसे प्रकाशित हुए है।

काव्यके अतिरिक्त श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहानकी दूसरी साहित्यिक विधा कहानी थी। कहानियोंमे भी वही सरल शैली और जीवनके मधुरतम भावुक क्षणोंका मानवीय चित्रण इनकी विशेषता थी। राष्ट्रीय भावनाएँ और आदर्श और यथार्थके मर्मस्पर्शी संघर्षोंपर आधारित कहानियाँ समसामयिक राष्ट्रकी मानसिक स्थितिका पूर्ण परिचय देती हैं। सुभद्राजीकी कविताओं और कहानियोंमे उस युगकी छायावादी प्रवृत्तिकी बड़ी निर्मल झाँकी देखनेको मिलती है। वही स्वप्नलोक, वही आदर्शवाद, वही उदात्त भाव आधारभूत रूपमें आपकी रचनाओमे वैसे ही वर्तमान है किन्तु उनका सह-सम्बन्ध सुभद्राजी ने राष्ट्रीय और सहज जीवनके पक्षोंमे स्थापित किया है। उस छायावादी वातावरणमे समसामयिक ऐतिहासिक दायित्वके लिए इतना भी निकाल लेना सुभद्राजीकी प्रतिभा और सतर्क बुद्धिका परिचायक है। कहानियोंको पढनेसे यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है। आपकी कहानियों पर हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी ओर से दो बार 'सेक्सरिया' पुरस्कार, मिला था। आपकी कहानियोके संग्रहोंका नाम है—'बिखरे मोती' और 'उन्मादिनी'।

कहानियोंके अतिरिक्त सुभद्राजीने अच्छे निबन्ध भी लिखे है। निबन्धोंमें भी आपने व्यक्तिगत शैलीमें ही अनेक प्रश्नोंपर प्रकाश डालनेकी चेष्टा की है। वस्तुतः सुभद्राजी

का व्यक्तित्त्व इतना व्यक्तिगत था कि उसकी छाप जैसे उनके काव्य पर है, कहानियोंपर है, ठीक उसी प्रकार निबन्धोंपर भी है। निबन्धोंका वैसे कोई स्वतन्त्र महत्त्व नहीं है किन्तु उनकी समस्त कृतियोंकी सापेक्षतामे उनकी संगति है। उन निबन्धोंको पढ़नेसे उनकी रचना-प्रक्रिया और सोचनेके ढंगका परिचय मिलता है, साथ ही उनकी मौलिक वृत्तियोंको समझनेका परिप्रेक्ष्य स्पष्ट हो जाता है।

शैलीकारके रूपमें सुभद्राजीकी शैलीमे सरलता विशेष गुण है। भाषा भी रोजके बोलचालकी और उसके साथ उनका शिल्प भी अत्यन्त सहज और सुलभ पक्षोंका समर्थन करता हुआ चलता है। नारी हृदयकी कोमलता और उसके मार्मिक भाव-पक्षोंको नितान्त स्वाभाविक रूपमे प्रस्तुत करना सुभद्राजीकी शैलीका मुख्य आधार है। शिल्पके लिए इनकी रचनाओंमें आरोपित आग्रह कहीं भी नहीं मिलता। गद्य भी इसी प्रकार सरल और आसानीसे समझा जाने-वाला है। —ल० का० व०

सुमन–प्रेमचन्दकृत उपन्यास 'सेवासदन'की पात्र। सुन्दर, चंचल, लाड-प्यारसे पालित-पोषित, अभिमानिनी, सबसे बढ़चढ़ कर रहनेकी इच्छा रखने वाली सुमन दारोगा कृष्णचन्द्रकी बड़ी लड़की है। पिताकी आर्थिक कठिनाइयोंके कारण गजाधरके साथ उसका अनमेल विवाह हो जाता है। गजाधरका जीवन दरिद्रता और कठिनाइयोंसे पूर्ण जीवन है। सुमनने जीवन सुखसे काटना सीखा है। उसने इन्द्रियोंके आनन्दभोगकी शिक्षा पायी है, न कि कुशल गृहिणी बननेकी। यही कारण है कि वह धनाभावके कारण अपनी इन्द्रियोंको तृप्त न कर पाती थी। अपने सौन्दर्य और उच्चकुलके कारण वह दूसरोंपर आधिपत्य जमाना चाहती है किन्तु पतिकी दरिद्रताके कारण उसे इन्द्रिय सुख प्राप्त करनेका अवसर प्राप्त नहीं हो पाता। भोलीके कुसंग, पतिकी कठोरता और पद्मसिंहकी अदूरदर्शिताके कारण वह वेश्या-जीवन व्यतीत करनेके लिए मजबूर हो जाती है। वह समझती है मान-मर्यादा धनसे होती है, धर्म या कर्त्तव्य-पालनसे नहीं। यह उसकी गलत शिक्षाका परिणाम है। वेश्या बनकर भी उसने अपना शरीर नहीं बेचा। सदनसिंहके प्रति उसके हृदयमें निःस्वार्थ प्रेम उत्पन्न होता है। अभी तक उसकी आत्माका पूर्ण संहार नहीं हुआ। वह अपनी कुचेष्टाओंके कारण आगमें कूद पड़ी थी, यह सोच-सोच कर उसमे आत्म-परिष्कारकी भावना उत्पन्न होती है। वेश्या-जीवन छोड़ते समय उसका पुनर्जन्म होता है और उस समय उसके चरित्रमे संयम और त्यागकी झलक दृष्टिगोचर होती है। प्रेमचन्दने उसके भीतरका मनुष्य मरने नहीं दिया। थोड़े समयके बाद उसके मुखपर शुद्धान्तःकरणकी विमल आभा छा गयी। वह समाजका शृंगार प्रतीत होने लगी। अब वह आत्मिक स्वास्थ्य-लाभकी ओर झुकती है। वह अपने पतिको क्षमा कर देती है। सेवा-मार्गको वह अपने जीवनका लक्ष्य बनाती है। वह प्रेम और पवित्रताकी साक्षात् मूर्ति बन जाती है। 'सेवा सदन'की स्थापनासे उसके जीवनका प्रभात प्रारम्भ होता है। —ल० सा० वा

सुमित्रा–लक्ष्मण की माताके रूपमें प्रसिद्ध होते हुए भी सुमित्रा राम-कथा की प्रायः मूक पात्र हैं। उनके चरित्रका कथा-विकासमें विशेष महत्त्व नहीं है और न उसमें चारित्रिक जटिलताओं की कोई सम्भावनाएँ हैं। यही कारण है कि राम-कथासम्बन्धी अनेक प्रकरणोंमें उनका नामोल्लेख तक नहीं मिलता। लक्ष्मण और शत्रुघ्न की माताके रूपमें सुमित्रा की प्रसिद्धिके अतिरिक्त राम-वन-गमनके अवसरपर सपत्नीके पुत्रके साथ अपने पुत्रको सहर्ष भेज देना उनकी चारित्रिक उदारताका प्रमाण है। वाल्मीकिने कहा है कि वे कौशल्या और कैकयी दोनोंको प्रिय थीं। यद्यपि उन्हें अपने पति दशरथ की उपेक्षाओं एवं तिरस्कारोंके मौन संकेतोंका सामना करना पड़ा है फिर भी वे अन्त तक उनकी शुभेच्छु बनी रहीं। वाल्मीकिके उपरान्त सुमित्राके चरित्रमें राम-कथाके कवियोंने कोई उल्लेखनीय विकास नहीं दिखाया। 'रामचरितमानस'मे उनके चरित्रमे परम्परागत औदार्यके अतिरिक्त कुछ अन्य विशेषताओंका भी कथन किया गया है, यद्यपि मानसकार भी उन्हें अधिक मुखर पात्र नहीं बना सके। मानसकार लक्ष्मणके प्रवास की अनुमति मांगनेपर उनके पुत्र-प्रेमके साथ उनके साहसका भी परिचय देता है। यही नहीं, राम-कथाके अन्य अनुकूल पात्रों की भाँति तुलसीदास की सुमित्रा भी राम की भक्त हैं। वन-गमनके अवसरपर वे लक्ष्मणको राम की सेवा-भक्ति का जो उपदेश देती हैं, उसमें उनके आध्यात्मिक-चिन्तनका भी प्रमाण मिलता है। वस्तुतः सुमित्राके चरित्रके बहाने तुलसीदासने दिखाया है कि मनुष्य जीवन की सार्थकता राम-भक्तिमे ही है तथा जिस माताने राम-भक्त पुत्र पैदा न किया, उसका जीवन पशु-तुल्य है। इसीलिए अपने पुत्रको रामके साथ वन भेजनेमें वे गर्वका अनुभव करती हैं। 'मानस' की अपेक्षा 'गीतावली'मे सुमित्राके चरित्रमें मातृ-सुलभ वात्सल्य की अभिव्यञ्जना अधिक हुई है। विश्वामित्रके साथ वन जानेके अवसरपर वे राम-लक्ष्मणके कुशल क्षेमके लिए अत्यन्त चिन्तित होती हैं। दूसरी ओर जब उन्हें लक्ष्मणके शक्ति लगनेका समाचार मिलता है, तब वे शत्रुघ्नको रण-क्षेत्रमें जानेको प्रोत्साहित करते हुए एक वीरमाताके दर्प और गौरवको प्रकट करती हैं। आधुनिक युगमे मैथिलीशरण गुप्तने साकेतमें सुमित्राके चरित्रमें इसी दर्पका चित्रण करते हुए उन्हें लक्ष्मण और शत्रुघ्न की माताके सच्चे रूपमें प्रस्तुत किया है। परन्तु साकेतकार उनके चारित्रिक विकास की उन सम्भावनाओंका निर्देश नहीं कर सका है, जिन्हें उसने कैकयीके चरित्रमें दिखाया है, इसी कारण कुछ आलोचकोंको उसकी उर्मिलाविषयक कल्पनामें अपरिपक्वताके दर्शन होते हैं। बालकृष्णशर्मा 'नवीन'ने 'उर्मिला' नामक खण्डकाव्यमें सुमित्राके चरित्र-चित्रणकी ओर यथेष्ट ध्यान नहीं दिया।

[सहायक ग्रन्थ–रामकथा : डा० कामिल बुल्के, हिन्दी परिषद्, विश्वविद्यालय, इलाहाबाद; तुलसीदास : डा० माताप्रसाद गुप्त, हिन्दी परिषद्, विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।] —यो० प्र० सिं०

सुमित्राकुमारी सिनहा–सुमित्राकुमारी सिनहाका जन्म फैजाबादमे सन् १९१५ ई०में एक सुशिक्षित एवं कला-प्रेमी परिवारमें हुआ। उनके पिता विभिन्न देशोंका भ्रमण

कर चुके थे और अपनी कन्याको भी उन्होंने शिक्षा देनेका प्रयास किया था। हिन्दी, संस्कृत तथा अंग्रेजीकी प्रारम्भिक शिक्षा घरसे प्रारम्भ हुई और फिर कुछ समय तक उन्होंने स्कूली शिक्षा भी प्राप्त की। इस बीच उन्नावके चौधरी राजेन्द्रशंकरसे उनका विवाह हो गया। विवाहके बाद अकादमिक शिक्षा तो उन्हें नहीं मिल सकी पर पतिने उनके अध्ययन एवं लेखनको सदैव प्रोत्साहित किया।

यों तो कहानियाँ आदि लिखनेकी ओर उन्होंने सन् १९२७-२८ ई० के आसपास ही प्रवृत्ति दिखायी थी पर विधिवत् साहित्यके क्षेत्रमें उनका पदार्पण सन् १९३५ ई० के आसपास होता है—जब वे कविताएँ लिखने लगीं। सुमित्राकुमारी सिनहाके अबतक पाँच कविता-संग्रह, दो कहानी-संग्रह एवं तीन बच्चोंके लिए कहानी, कविता एवं रूपक-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, जो इस प्रकार है—कविता-संग्रह : (१) 'विहाग', (२) 'आशापर्व' (प्र० १९४२), (३) 'पंथिनी', (४) 'बोलोंके देवता', (१९५४), (५) 'प्रमारिका' (१९५५)। कहानी-संग्रह : 'अचल सुहाग' तथा 'वर्षगाँठ'। बाल-साहित्यके शीर्षक हैं:—'कथाकुंज', 'आँगनके फूल' एवं 'दादीका मटका', जो क्रमशः कहानी, कविता एवं रूपक-संग्रह है।

सुमित्राजीने लिखना उस समय शुरू किया था, जब छायावाद अपनी अन्तिम श्रेष्ठतम परिणतियोंपर पहुँच रहा था और दूसरी ओर उसके प्रति असन्तोषका अंकुर उभरने लगा था। इस सन्धिकालका स्वर एक साथ जिन कवियोंमे उभरा था, उनमें इनका भी प्रमुख स्थान है। इनके प्रथम संग्रह 'विहाग' में छायावादी-प्रवृत्तियोंका स्पष्ट प्रभाव है। वैसी ही भाषा एवं कुछ-कुछ वैसा ही रहस्यात्मक स्वर है। उस वैभवमे मुक्ति पाना इतना सरल भी नहीं था पर 'विहाग' में ही यत्र-तत्र सहज मानवीय-आकांक्षाओंका स्वर छायावादी कुहासेमे उभरता प्रतीत होता है। 'पंथिनी' से आधुनिक नारीका अधिक दृप्त स्वर उपलब्ध होता है। प्रेम, काम आदिको मानवीय जीवनकी सहज कामनाओंके रूपमें एक स्त्री द्वारा स्वीकार करनेका साहस भी उन्होंने इन कविताओंमे दिखाया है। छायावादी नैराश्यके स्थान-पर आशाकी आस्था भी उनमें अधिक तीव्र है। प्रेमकी ऐसी सहज अकुण्ठ अभिव्यक्तियाँ उनमें प्रचुर हैः—"मैं सूनी सन्ध्या बेलामें, दीप जला बैठी रहती हूँ। आँखोंकी बरुनीमें पथके काँटे चुन उरमें रखती हूँ। कितने दिवस मास बीते, अब कब लौटोगे हे परदेशी।" 'बोलोंके देवता' उनका सबसे प्रौढ़ संग्रह है, जिसमें भाषा भी अधिक स्वाभाविक हो जाती है एवं भावनाओंका रूप अधिक परिष्कृत, प्रौढ़ एवं विचारपुष्ट हो जाता है। सुमित्राजीकी काव्य-शैली-का बढाव बराबर लोकजीवनकी ओर हुआ है तथा गेयताका गुण उनमें प्रचुर मात्रामें है—प्रारम्भिक संग्रहोंमें आत्म-परकताका जो आधिक्य था, वह भी बादमें कम हो गया है।

सुमित्राजीकी कहानियोंमें उनका प्रगतिशील रूप अधिक स्पष्ट हुआ है। इन कहानियोंमें पति, संयुक्त परिवार, सामाजिक आचार-संहिता आदिके नीचे सदियोंसे पिसती नारीका क्रन्दन भी है और उसके विद्रोहकी क्षुब्ध वाणी भी। कुल मिलाकर सुमित्राजी हिन्दीकी श्रेष्ठतम लेखिकाओंमेंसे हैं, जो अब भी बराबर लिख रही हैं। —दे० शं० अ०

सुमित्रानंदन पंत—जन्म २० मई, १९०० ई० को कुर्मांचल प्रदेशके कौसानी ग्राममें हुआ। कवि बचपनसे ही मातृहीन हो गया और पिता तथा दादीके वात्सल्यकी गम्भीर छायामें उसका प्रारम्भिक लालन-पालन हुआ। दोनोंकी मधुर स्मृतियाँ कविके मनमें बराबर संचित रही हैं। 'आत्मिका' 'वाणी' संकलनकी एक प्रमुख कविता और 'साठ वर्ष—एक रेखांकन' मे कविने अपने बाल-जीवनके प्राकृतिक और मानवीय वातावरणका बड़ा सुन्दर और रोचक चित्र उपस्थित किया है। सात वर्षकी आयुमें चौथी कक्षामें पढ़ते हुए ही कविको छन्द-रचनाकी स्फूर्ति बनी है और १९०७ ई० से १९१८ ई० कालको उसने अपने कवि-जीवनका प्रथम चरण माना है। उसने इन बारह वर्षोंमे प्रकृतिके अंचलमें रह कर ही काव्य-रचना की है। बडे भाईके 'मेघदूत'के सस्वर पाठ, घरके धार्मिक वातावरण और 'अल्मोड़ा अखबार', 'सरस्वती', 'वेंकटेश्वर समाचार' प्रभृति पत्रोंने कविके मनमें काव्यके प्रति जो अभिरुचि प्राप्त की, वह धीरे-धीरे संस्कारके रूपमें परिणत होकर प्रथम रचनाओंके लिए बुदबुद बनी। मैथिलीशरण गुप्त और अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'की रचनाओंसे कविको छन्द-योजनामे पर्याप्त सहा-यता मिली। कविने भी इन अग्रजोंका बड़े सम्मान और प्रेम से उल्लेख किया है। उच्च कक्षामे पढनेके लिए अल्मोड़ा जाकर कविको पहली बार नागरिक जीवनका परिचय हुआ और यहीं उसने अपना नाम गुसाईं दत्तसे बदलकर सुमित्रानन्दन रख लिया।

१९१८ ई० में कवि अपने मँझले भाईके साथ बनारस चला आया और क्वीन्स कालेजमे शिक्षा प्राप्त करने लगा। यहींसे उसका वास्तविक कवि-कर्म आरम्भ होता है। १९१८ ई० कविके जीवनका महत्त्वपूर्ण वर्ष है, जैसा उस वर्षकी प्रचुर रचनासे स्पष्ट है। ये प्रारम्भिक रचनाएँ 'वीणा' (१९२७)मे संकलित हैं। काशीमे कवि सरोजिनी नायडू, कवीन्द्र रवीन्द्र और अंग्रेजी रोमाण्टिक कवियोंकी रचनासे भी परिचित हुआ और यहीं उसने पहली बार काव्य-प्रतियोगितामे भाग लेकर प्रशंसा प्राप्त की। काशी-प्रवासमे कवीन्द्र रविन्द्रके साक्षात्कार तथा उनकी लोकमान्यताका कविपर गम्भीर प्रभाव पड़ा और वह अन्तःसंकल्पित होकर काव्य-रचनाकी ओर दत्तचित्त हुआ। काशीसे लौटकर गर्मियोंकी छुट्टियोंमें कविने 'उच्छ्वास' और 'ग्रन्थि'की रचना की, जो उसके वयःसधिक अतीन्द्रिय प्रेम-भाव और अस्पष्ट आन्तरिक आकुलताको वाणी देती है। १९१९ ई० की जुलाईमे कवि म्योर कालेज (प्रयाग) मे भरती हुआ और शीघ्र ही 'छाया' और 'स्वप्न' प्रभृति रचनाओं द्वारा उसने काव्य-मर्मज्ञोंमें अपनी धाक जमा दी। 'सरस्वती' मे प्रकाशित होनेपर इन रचनाओंने उदीयमान कविको युगप्रवर्त्तनका श्रेय दिया। १९२२ ई० में 'उच्छ्वास' और १९२८ ई० में 'पल्लव'के प्रकाशनने नयी काव्यधाराके किशोर कण्ठ फूटने की स्पष्ट सूचना दी। इस काव्यकालको 'वीणा-पल्लव काल' कहा जा सकता है। सन् १९२१ ई० में कविने

अपने मँझले भाईके कहनेपर कालेज छोड़ दिया परन्तु अपनी कोमल प्रकृतिके कारण वह सक्रिय रूपसे सत्याग्रह आन्दोलनमें भाग नहीं ले सका। अपने नये जीवनमें एकान्त चिन्तन और गम्भीर अध्ययनके द्वारा उसने शिक्षा की कमीको पूरा करनेका प्रयत्न किया परन्तु भीतर और बाहरका अकेलापन उसकी 'गुंजन'की कविताओंमें फिर भी स्पष्ट रूपसे मुखरित होता है। १९३२ ई० मे 'गुंजन'के प्रकाशन के साथ कविकी काव्य साधनाका नया पक्ष उद्घाटित होता है, जो प्रकृति और मानव-सौन्दर्यके प्रति नवीन उन्मेषके साथ मानवके प्रति उसकी मंगल कामना और नवीन कला-चेतनाकी सूचना देता है। सन् १९३१ ई० में कवि कालाकांकर चला गया और वहाँ उसकी युवावस्थाके सर्वश्रेष्ठ वर्ष (सन् ३० से सन् ४० तक) वानप्रस्थ स्थितिमे ज्ञान-साधनामे पशु-पक्षियोंके साथ व्यतीत हुए। यहीं उसने 'ज्योत्स्ना' जैसे मनःकल्पकी सृष्टि की, जो उसकी केन्द्रीय रचना मानी जा सकती है। गान्धीवादी और मार्क्सवादी विचारधाराको लेकर नवीन जीवन-तन्त्रके सम्बन्धमे कविका अन्तःसंघर्ष भी इन्हीं दिनोंकी चीज है। 'युगान्त'से 'ग्राम्या' तक इस संघर्षकी गूंज स्पष्ट सुनायी देती है। अपने कालाकाकर-निवासके समयमे कवि प्रयाग और लखनऊके साहित्यिक जीवनमे निकट सम्पर्क बना सका था और राजनीतिक-सामाजिक क्षेत्रोंकी नवीनतम प्रवृत्तियोंकी उसे व्यापक रूपसे जानकारी थी। सन् ४० में कवि पन्त कालाकांकरके स्वप्न-नीडसे बाहर आये। सन् ४१ में प्रायः एक वर्ष उन्हे अल्मोड़ामे रहना पड़ा और १९४२ ई० में 'भारत छोड़ो' आन्दोलनके सन्त्रस्त वातावरणमें उन्होंने 'लोकायन' नामके एक व्यापक संस्कृति-पीठकी योजना बनायी। इस योजनाको कार्यान्वित करनेकी आकांक्षासे कविने अल्मोड़ाके उदयशंकर संस्कृति-केन्द्रसे सम्पर्क स्थापित किया और १९४३ ई० मे उदयशंकर की टोलीके साथ दो-तीन महीने भारत-भ्रमण भी किया। सन् ४४ ई० मे कविने उदयशंकरके 'कल्पना' चित्रके लिए गीत भी लिखे और इसी मद्रास-प्रवासमे वह पहली बार योगी अरविन्द और उनकी दार्शनिक एवं साधनात्मक प्रवृत्तियों-से परिचित हुआ। कविने सन् १९४५ से सन् १९५९ ई०तक के अपने जीवन-कालको 'नवमानवताका स्वप्न-काल' कहा है। 'स्वर्णधूलि'से 'उत्तरा' तकके स्फुट काव्यमें कवि की अरविन्दवादी (चेतनावादी) काव्यभूमिके विशद दर्शन होते हैं। सन् १९४६ ई०में प्रयाग लौटकर कवि एक बार फिर नयी सांस्कृतिक प्रवृत्तियोंके उन्नयन की दिशामें प्रयत्नशील हुआ और उसने 'लोकायन' की योजनाको मूर्त्त करना चाहा परन्तु साहित्यिक क्षेत्रकी गुटबन्दियोंके कारण कविको इस प्रयत्नमें सफलता प्राप्त नहीं हुई। सन् १९५० ई०मे वह आल इण्डिया रेडियोके परामर्शदाताके पदपर नियुक्त हो गया और सन् १९५७ ई० की अप्रैलतक वह रेडियोसे प्रत्यक्ष रूपसे सम्बद्ध रहा। इस कार्यकालमे 'रजत शिखर', 'शिल्पी', 'सौवर्ण' और 'अतिमा'के नामस उसके काव्य-रूपक तथा संग्रह प्रकाशित हुए। इनमें कुल मिला कर १३ काव्यरूपक हैं। 'अतिमा'में रूपकोंके अतिरिक्त सन् १९५४ ई०की स्फुट रचनाएँ भी संकलित हैं। कविका नवीनतम संग्रह 'कला और बूढ़ा चाँद' सन् '५८ की रचनाओंका संग्रह है, जिसे '६१में 'अकादमी पुरस्कार' दिया गया। इन रचनाओंका रूपविधान पिछली समस्त रचनाओंसे भिन्न है।

पंत की प्रकाशित रचनाएँ इस प्रकार हैं:—काव्य—'उच्छ्वास' (१९२० ई०), 'ग्रन्थि' (१९२०), 'वीणा' (१९२७), 'पल्लव' (१९२८), 'गुंजन' (१९३२), 'युगान्त' (१९३६), 'युगवाणी' (१९३९), 'ग्राम्या' (१९४०), 'स्वर्ण-किरण' (१९४७), 'स्वर्णधूलि' (१९४७), 'युगपथ' (१९४८), 'उत्तरा' (१९४९), 'रजत शिखर' (रूपक १९५१), 'शिल्पी' (रूपक, १९५२), 'अतिमा' (१९५५), 'वाणी' (१९५७), 'सौवर्ण' (रूपक, १९५७), 'कला और बूढ़ा चाँद' (१९५९), नाटक—'ज्योत्स्ना' (१९३४), कहानी—'पाँच कहानियाँ' (१९३६), समीक्षात्मक गद्य—'गद्यपथ' (१९४९), आत्मकथा—'साठ वर्ष–एक रेखांकन' (१९६०), संचयन—'आधुनिक कवि' (१९४१), 'पल्लविनी' (१९१०), 'रश्मि-बन्ध' (१९५८), 'चिदम्बरा' (१९५९), अनुवाद—'मधुज्वाल' (१९३८)।

पन्तका सम्पूर्ण कृतित्व हिन्दी साहित्यकी आधुनिक-चेतनाका प्रतीक है, जो इहलौकिक जीवनमूल्योंके निर्माण-की ओर अग्रसर है और जिसने पारलौकिक चिन्ता और आध्यात्मिक साधनाको ही एकमात्र लक्ष्य नहीं समझा है। यह श्रेयकी बात है कि युगधर्मके भौतिक, सामाजिक और नैतिक पहलुओंके साथ पन्तका काव्य आध्यात्मिक-चेतनाके सूत्र भी समानान्तर लेकर चलता है और इस प्रकार उनका जीवन-चिन्तन एकांगी न रहकर सन्तुलित और परिपूर्ण बन जाता है। उन्होंने प्रकृति, नारी, सौन्दर्य और मानव-जीवनकी ओर देखनेकी मध्यवर्गीय जीवनदृष्टि को अपरिमित परिष्कार दिया है और राष्ट्र-जाति-रंगभेदसे ऊपर उठकर अखिल मानवकी कल्याण कामनाको उसी तरह मुखरित किया है, जिस तरह हिन्दीके मध्ययुगीन सन्तों और भक्तोंने मानवकी महनीयताकी मुक्त कण्ठसे घोषणा की थी। उत्तर रचनाओंमे कवि परात्पर सत्ताके आरोहण-अवरोहणके आध्यात्मिक सन्दर्भोको काव्यका बाना पहनाकर नयी आध्यात्मिकतामें निर्माणकी ओर भी अग्रसर हुआ है परन्तु इस चेतानावादी भूमिको छोड़ भी दें तो भी पन्तका भू-वाद अन्तर्राष्ट्रीय चेतनासे सम्पन्न सार्वभौम मानवताका मंगलघोष है। यह कहा जा सकता है कि मध्ययुग की सामान्य काव्यचेतनाको विषयवस्तु और भावाभिव्यक्ति दोनों दृष्टियोंसे कहीं अधिक प्रशस्त और ठोस जीवन-भूमि पन्तके भविष्य-कल्पमें प्राप्त हुई है। आधुनिक हिन्दी काव्यको व्यक्तिमत्ता, भाषा-सामर्थ्य तथा नयी छन्द-दृष्टि प्रदान कर उन्होंने खड़ीबोलीकी काव्यशक्ति का जो संवर्द्धन और परिष्कार किया है, वह स्वयं अपनेमें एक सुन्दर महत्त्वपूर्ण देन कही जा सकती है। यही नहीं, उनकी गद्य-रचनाएँ भी अनाविल आत्मिक चिन्तन और श्रेष्ठ अभिव्यंजनासे पुष्ट हैं। काव्यके अतिरिक्त गद्य-क्षेत्रमें पन्त-का योगदान नाटककार, कहानीकार, समीक्षक, निबन्धकार और उपन्यासकारके रूपमें रहेगा। उनका 'ज्योत्स्ना'। (१९३४) रूपक श्रेष्ठ प्रतीक-नाटक है, जिसमें कवि-कल्पना

रंग-बिरंगे कुतूहली पात्रोंमें मूर्तिमान् हुई है। 'पाँच कहानियाँ' नामसे उनका एक कहानी-संकलन भी प्रकाशित हो चुका है। 'साठ वर्ष—एक रेखांकन' में उन्होंने अपनी जीवन-कथाको भी मार्मिक ढंगसे प्रस्तुत किया है। पन्तकी काव्यकृतियोंके परिचय यथास्थान द्रष्टव्य हैं। समीक्षात्मक निबन्धों और भूमिकाओंका संकलन 'गद्य पथ' के नामसे प्रकाशित है और इस श्रेणीकी अनेक रचनाएँ आकाशवाणी-वार्त्ताओं और स्फुट विवरणोंके रूपमें बिखरी हैं। साहित्यकी अनेक दिशाओंको छूनेका प्रयास पन्तके मूलगत कवि-व्यक्तित्वका ही प्रसार है क्योंकि काव्य ही उनके अन्तस्की सबसे प्रौढ़ अभिव्यक्ति है। —रा० र० भ०

सुमेरसिंह (बाबा)–निजामाबादके निवासी थे। वहाँ ये सिखसम्प्रदायके महन्त थे। ये गद्यके अच्छे लेखक थे। कहा जाता है कि इन्होंने कुछ कवित्त भी रचे है, जो 'सुन्दरी तिलक' में संगृहीत हैं। समाज-सुधारके कार्यमें ये विशेष रुचि लेते थे। कवितासे इन्हे बहुत प्रेम था। इनके स्थानपर बहुधा कवि-गोष्ठियाँ हुआ करती थीं, जिनमें अनेक कवि भाग लेते थे। इन कवियोंमें अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' आदि भी थे। ये इस गोष्ठीमे कविता सुनाते और समस्यापूर्तियाँ पढते थे। इस प्रकारसे अनेक नये कवियोंने इनसे प्रेरणा ग्रहण की और प्रोत्साहन पाया। —प्र० ना० टं०

सुरति मिश्र–ये आगराके रहनेवाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनका जन्मकाल १६८३ ई० माना जाता है। इनके पिताका नाम सिंहमनि और काव्य-गुरुका नाम 'गंगेस' था। ये दिल्लीके बादशाह मुहम्मदशाह, जोधपुरके दीवान अमर सिंह, बीकानेरके राजा जोरावर सिंह तथा नसरुल्ला खाँके आश्रयमें रहे। इनके शिष्योंमे जयपुरके शिवदास और अलीमुहिम खाँ 'प्रीतम' ('खटमल बाईसी'के लेखक) महत्त्वपूर्ण हैं।

सुरति मिश्रके निम्नलिखित ग्रन्थ कहे जाते हैं—'काव्य सिद्धान्त', 'अलंकार-माला', 'रस माला', 'सरस रस', 'रसग्राहक चन्द्रिका', 'रस रत्नाकर', 'श्रृगारसार', 'रसरत्न-माल', 'नख-शिख', 'प्रबोधचन्द्रोदय नाटक', 'भक्त-विनोद' 'बैताल पचीसी', 'रासलीला', 'दानलीला'। इनमे 'काव्य-सिद्धान्त' महत्त्वपूर्ण रचना है। इसकी हस्तलिखित प्रति सवाई महेन्द्र पुस्तकालय ओरछा, टीकमगढ़मे उपलब्ध है। इसमें काव्य-शास्त्रके सभी अंगोंपर विचार किया गया है। साथ ही कवि-शिक्षाका विषय भी इसमे आ गया है। अन्य ग्रन्थोंमे अलंकार, रस, शृंगार तथा नख-शिख आदि विविध रीतिकालीन विषयोंका स्वतन्त्र रूपसे भी विवेचन किया गया है। कुछ ग्रन्थ भक्तिपरक हैं और इनके 'भक्त-माल' नामक ग्रन्थके आधारपर इन्हे वल्लभसम्प्रदायमें भी माना जा सकता है।

ये टीकाकारके रूपमें भी प्रतिष्ठित हैं। इन्होंने 'बिहारी सतसई' की 'अमरचन्द्रिका' नामक टीका और 'कविप्रिया' तथा 'रसिकप्रिया' की टीकाएँ लिखी हैं। इन टीकाओंसे इनके काव्यशास्त्रके व्यापक ज्ञान तथा इनकी मार्मिक दृष्टिका परिचय मिलता है। 'अलंकार माला' का रचनाकाल १७०९ ई० तथा 'अमरचन्द्रिका' का १७२७ ई० दिया गया है। इसके आधारपर इनका समय १८ वीं शताब्दीका उत्तरार्द्ध माना जा सकता है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० इ०; हि० का० शा० इ०; हि० सा० बृ० इ०(भा० ६); दि० भू०(भूमिका)।] —सं०

सूत–पुराणवक्ताके अर्थमें सूतका प्रयोग हुआ है। इस रूपमें सूत पुराणवक्ताओंकी परम्पराकी भी सम्मिलित संज्ञा मानी जा सकती है किन्तु सूतोंमें लोमहर्ष सबसे अधिक प्रसिद्ध हुए। लोमहर्ष महर्षि व्यासके शिष्य कहे जाते हैं। परम्परासे ऐसी प्रसिद्धि है कि महर्षि सूतने नैमिषारण्यमें ऋषियोंको समस्त पुराण सुनाये थे (हि० सू० सा० प० २२७)। —रा० कु०

सूदन–सूदनने 'सुजान-चरित्र'में अपना परिचय इस प्रकार दिया है—"मथुरा पुर सुभ-धाम, माथुर कुल उतपत्ति वर। पिता बसन्त सुनाम, सूदन जानहु सकल कवि॥" (छ०-१०, पृ० ३), अर्थात् सूदन मथुरानिवासी माथुर चौबे थे। इनके पिताका नाम बसन्त था। भरतपुराधीश बदनसिंहके पुत्र महाराज सुजानसिंह (सूरजमल) इनके आश्रयदाता थे। सूदनने सूरजमलकी प्रशंसामें 'सुजान-चरित' (दे०) ग्रन्थकी रचना की है। इसमें सुजानसिंहके जीवनकी १७४५ ई०से १७५३ ई० तककी घटनाओंका वर्णन है, अतः इसके आधारपर सूदनके विद्यमान होने और रचनाकालका अनुमान लगाया जा सकता है। अपनी इस रचनाके आधारपर सूदन वीर-काव्य-धाराके प्रमुख कवियोंमें माने जाते हैं और इनकी रचनाका साहित्यिक तथा ऐतिहासिक दोनो दृष्टियोंसे महत्त्व स्वीकार किया जाता है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० वी०; हि० सा०; हि० सा० इ०।] —टी० तो०

सूरदास १–धर्म, साहित्य और संगीतके सन्दर्भमें महाकवि सूरदासका स्थान न केवल हिन्दी-भाषी क्षेत्र, बल्कि सम्पूर्ण भारतमें मध्ययुगकी महान् विभूतियोंमे अग्रगण्य है। यह सूरदासकी लोकप्रियता और महत्ताका ही प्रमाण है कि 'सूरदास' नाम किसी भी अन्धे भक्त गायकके लिए रूढ़ सा हो गया है। मध्ययुगमें इस नामके कई भक्त कवि और गायक हो गये हैं। अपने विषयमें मध्ययुगके ये भक्त कवि इतने उदासीन थे कि उनका जीवन-वृत्त निश्चित रूपसे पुनर्निर्मित करना असम्भवप्राय है परन्तु इतना कहा जा सकता है कि 'सूरसागर'के रचयिता सूरदास इस नामके व्यक्तियोंमें सर्वाधिक प्रसिद्ध और महान् थे और उन्हींके कारण कदाचित् यह नाम उपर्युक्त विशिष्ट अर्थके द्योतक सामान्य अभिधानके रूपमे प्रयुक्त होने लगा। ये सूरदास विट्ठलनाथ द्वारा स्थापित अष्टछापके अग्रणी भक्त कवि थे और पुष्टिमार्गमें उनकी वाणीका आदर बहुत-कुछ सिद्धान्त वाक्यके रूपमे होता है।

सूरदासका जन्म कब हुआ, इस विषयमें पहले उनकी तथाकथित रचनाओं, 'साहित्य लहरी' (दे०)और 'सूरसागर सारावली' (दे०)के आधारपर अनुमान लगाया गया था और अनेक वर्षों तक यह दोहराया जाता रहा कि उनका जन्म संवत् १५४० वि० (सन् १४८३ ई०) में हुआ था

परन्तु विद्वानोंने इस अनुमानके आधारको पूर्ण रूपमें अप्रामाणिक सिद्ध कर दिया तथा पुष्टि-मार्गमें प्रचलित इस अनुश्रुतिके आधारपर कि सूरदास श्रीमद्वल्लभाचार्यसे १० दिन छोटे थे, यह निश्चित किया कि सूरदासका जन्म वैशाख शुक्ल ५, संवत् १५३५ वि० (सन् १४७८ ई०) को हुआ था। इस साम्प्रदायिक अनुश्रुतिको प्रकाशमें लाने तथा उसे अन्य प्रमाणोंसे पुष्ट करनेका श्रेय डा० दीनदयाल गुप्तको (दे० 'अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय') है। जब तक इस विषयमें कोई अन्यथा प्रमाण न मिले, हम सूरदासकी जन्म-तिथिको यही मान सकते हैं।

सूरदासके विषयमें आज जो भी ज्ञात है, उसका आधार मुख्यतया 'चौरासी वैष्णवनकी वार्ता' ही है। उसके अतिरिक्त पुष्टिमार्गमें प्रचलित अनुश्रुतियाँ जो गोस्वामी हरिराय द्वारा किये गये उपर्युक्त वार्ता के परिवर्द्धनों तथा उसपर लिखी गयी 'भावप्रकाश' नामकी टीका और गोस्वामी यदुनाथ द्वारा लिखित 'वल्लभ दिग्विजय'के रूपमें प्राप्त होती हैं—सूरदासके जीवनवृत्तकी कुछ घटनाओंकी सूचना देती हैं। नाभादासके 'भक्तमाल'पर लिखित प्रियादासकी टीका, कवि मियाँसिंहके 'भक्त विनोद', ध्रुवदासकी 'भक्तनामावली' तथा नागरीदासकी 'पदप्रसंगमाला'में भी सूरदाससम्बन्धी अनेक रोचक अनुश्रुतियाँ प्राप्त होती हैं परन्तु विद्वानोंने उन्हें विश्वसनीय नहीं माना है। 'चौरासी वैष्णवनकी वार्ता'से ज्ञात होता है कि प्रसिद्ध मुगल सम्राट् अकबरने सूरदाससे भेंट की थी परन्तु यह आश्चर्यकी बात है कि उस समयके किसी फारसी इतिहासकारने 'सूरसागर'के रचयिता महान् भक्त कवि सूरदासका कोई उल्लेख नहीं किया। इसी युगके अन्य महान् भक्त कवि तुलसीदासका भी मुगलकालीन इतिहासकारोंने उल्लेख नहीं किया। अकबरकालीन प्रसिद्ध इतिहासग्रन्थों—'आईने अकबरी', 'मुंशिआते-अबुलफज्ल' और 'मुन्तखबुत्तवारीख'मे सूरदास नामके दो व्यक्तियोंका उल्लेख हुआ है परन्तु ये दोनों प्रसिद्ध भक्त कवि सूरदास से भिन्न हैं। 'आईने अकबरी' और 'मुन्तखबुत्तवारीख'मे अकबरी दरबारके रामदास नामक गवैयाके पुत्र सूरदासका उल्लेख है। ये सूरदास अपने पिताके साथ अकबरके दरबार में जाया करते थे। 'मुंशिआते-अबुलफज्ल'में जिन सूरदासका उल्लेख है, वे काशीमें रहते थे, अबुलफज्लने उनके नाम एक पत्र लिखकर उन्हें आश्वासन दिया था कि काशीके उस करोडीके स्थानपर जो उन्हे क्लेश देता है, नया करोडी उन्हीं की आज्ञासे नियुक्त किया जायगा। कदाचित् ये सूरदास मदनमोहन नामके एक अन्य भक्त थे।

गोस्वामी हरिरायके 'भावप्रकाश'के अनुसार सूरदासका जन्म दिल्लीके पास सीही नामके गाँवमें एक अत्यन्त निर्धन सारस्वत ब्राह्मण परिवारमें हुआ था। उनके तीन बड़े भाई थे। सूरदास जन्मसे ही अन्धे थे किन्तु सगुन बताने की उनमें अद्भुत शक्ति थी। ६ वर्ष की अवस्थामें ही उन्होंने अपनी सगुन बताने की विद्यासे माता-पिताको चकित कर दिया था किन्तु इसीके बाद वे घर छोडकर चार कोस दूर एक गाँवमें तालाब के किनारे रहने लगे थे। सगुन बताने की विद्याके कारण शीघ्र ही उनकी ख्याति हो गयी। गानविद्यामें भी वे प्रारम्भसे ही प्रवीण थे। शीघ्र ही उनके अनेक सेवक हो गये और वे 'स्वामी'के रूपमें पूजे जाने लगे। १८ वर्ष की अवस्थामें उन्हें पुनः विरक्ति हो गयी और वे यह स्थान छोडकर मथुराके विश्राम घाटपर चले गये किन्तु मथुरामें वे नहीं ठहरे, क्योंकि उन्हें डर था कि उनका माहात्म्य बढ़ जानेके कारण मथुराके चौबे लोगोंकी हानि पहुँचेगी। अतः वे आगरा और मथुराके बीच यमुनाके किनारे गऊघाटपर आकर रहने लगे।

'चौरासी वैष्णवनकी वार्ता'में सूरका जीवनवृत्त गऊघाटपर हुई वल्लभाचार्यसे उनकी भेंटके साथ प्रारम्भ होता है। गऊघाटपर भी उनके अनेक सेवक उनके साथ रहते थे तथा 'स्वामी'के रूपमें उनकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गयी थी। कदाचित् इसी कारण एक बार अरैलसे जाते समय वल्लभाचार्यने उनसे भेंट की और उन्हें पुष्टिमार्गमें दीक्षित किया। 'वार्ता'में वल्लभाचार्य और सूरदासके प्रथम भेंटका जो रोचक वर्णन दिया गया है, उससे व्यंजित होता है कि सूरदास उस समय तक कृष्णकी आनन्दमय ब्रजलीलासे परिचित नहीं थे और वे वैराग्य-भावनासे प्रेरित होकर पतितपावन हरिकी दैन्यपूर्ण दास्य-भावकी भक्तिमें अनुरक्त थे और इसी भावके विनयपूर्ण पद रचकर गाते थे। वल्लभाचार्यने उनका "घिघियाना" (दैन्य प्रकट करना) छुड़ाया और उन्हे भगवद्-लीलासे परिचित कराया। इस विवरणके आधारपर कभी-कभी यह कहा जाता है कि सूरदासने विनयके पदोंकी रचना वल्लभाचार्यसे भेंट होनेके पहले ही कर ली होगी परन्तु यह विचार भ्रमपूर्ण है (दे० 'सूरसागर')। वल्लभाचार्य द्वारा 'श्रीमद्भागवत'मे वर्णित कृष्णकी लीलाका ज्ञान प्राप्त करनेके उपरान्त सूरदासने अपने पदोंमे उसका वर्णन करना प्रारम्भ कर दिया। 'वार्ता'में कहा गया है कि उन्होंने 'भागवत'के द्वादश स्कन्धोंपर पद-रचना की। उन्होंने 'सहस्रावधि' पद रचे, जो 'सागर' कहलाये। वल्लभाचार्यके संसर्गसे सूरदासको "माहात्म्यज्ञानपूर्वक प्रेमभक्ति" पूर्णरूपमें सिद्ध हो गयी। वल्लभाचार्यने उन्हे गोकुलमें श्रीनाथजीके मन्दिरपर कीर्तनकारके रूपमें नियुक्त किया और वे आजन्म वहीं रहे।

सूरदासकी पद-रचना और गान-विद्याकी ख्याति सुनकर देशाधिपति अकबरने उनसे मिलनेकी इच्छा की। गोस्वामी हरिरायके अनुसार प्रसिद्ध संगीतकार तानसेनके माध्यमसे अकबर और सूरदासकी भेंट मथुरामें हुई। सूरदासका भक्तिपूर्ण पद-गायन सुनकर अकबर बहुत प्रसन्न हुए किन्तु उन्होंने सूरदाससे प्रार्थना की कि वे उनका यशगान करें परन्तु सूरदासने "नाहिंन रह्यो मनमे ठौर" से प्रारम्भ होनेवाला पद गाकर यह सूचित कर दिया कि वे केवल कृष्णके यशका वर्णन कर सकते हैं, किसी अन्यका नहीं। इसी प्रसंगमे 'वार्ता'में पहली बार बताया गया है कि सूरदास अन्धे थे। उपर्युक्त पदके अन्तमें "सूर ऐसे दर्श को ए मरत लोचन प्यास" शब्द सुनकर अकबरने पूछा था कि तुम्हारे लोचनतो दिखाई नहीं देते, प्यासे कैसे मरते हैं। हरिरायने लिखा है कि अकबरने सूरदासको दो-चार गाँव तथा बहुत सा द्रव्य देना चाहा परन्तु उन्होंने अस्वीकार

कर दिया और केवल यह माँगा कि मुझसे फिर कभी मिलनेका प्रयत्न न करना। हरिरायने आगे लिखा है कि अकबर ने आगरा जाकर सूरदास के पदोंको तलाश की और उन्हें फारसीमें लिखाकर बाँचा। द्रव्यके लालच से अनेक कवीश्वर सूरदासकी छाप लगाकर अकबरके पास पद लाने लगे। सूरदासके प्रामाणिक पदोंकी जाँच प्राप्त पदोंको पानीमें डालकर की गयी। जो पद सूरदासके थे, वे पानीमें डालनेपर भी सूखे बने रहे। 'वार्ता'में सूरदासके जीवनकी किसी अन्य घटनाका उल्लेख नहीं है, केवल इतना बताया गया है कि वे भगवद्भक्तोंको अपने पदोंके द्वारा भक्तिका भावपूर्ण सन्देश देते रहते थे। कभी-कभी वे श्रीनाथजीके मन्दिरसे नवनीतप्रियजीके मन्दिर भी चले जाते थे किन्तु हरिरायने कुछ अन्य चमत्कारपूर्ण रोचक प्रसंगोंका उल्लेख किया है, जिनसे केवल यह प्रकट होता है कि सूरदास परम भगवदीय थे और उनके समसामयिक भक्त कुम्भनदास, परमानन्ददास आदि उनका बहुत आदर करते थे। 'वार्ता'मे सूरदासके गोलोकवासका प्रसंग अत्यन्त रोचक है। श्रीनाथजीकी बहुत दिनों तक सेवा करनेके उपरान्त जब सूरदासको ज्ञात हुआ कि भगवान्‌की इच्छा उन्हें उठा लेनेकी है तो वे श्रीनाथजीके मन्दिरसे परासौलीके चन्द्र सरोवरपर आकर लेट गये और दूरसे सामने ही फहराने वाली श्रीनाथजीकी ध्वजाका ध्यान करने लगे। परासौली वह स्थान है, जहाँपर कहा जाता है कि श्रीकृष्णने रास-लीला की थी। इस समय सूरदासको आचार्य वल्लभ, श्रीनाथजी और गोसाईं विट्ठलनाथका एक साथ स्मरण हो आया। उधर गोसाईं विट्ठलनाथने श्रीनाथजीकी आरती करते समय सूरदासको अनुपस्थित पाकर जान लिया कि सूरदासका अन्त समय निकट आ गया है। उन्होंने अपने सेवकोंसे कहा कि, "पुष्टिमार्गका जहाज" जा रहा है, जिसे जो लेना हो ले ले। आरतीके उपरान्त गोसाईंजी रामदास, कुम्भनदास, गोविन्दस्वामी और चतुर्भुजदासके साथ सूरदासके निकट पहुँचे और सूरदासको, जो अचेत पड़े हुए थे, चैतन्य होते हुए देखा। सूरदासने गोसाईंजीका साक्षात् भगवान्‌के रूपमे अभिनन्दन किया और उनकी भक्तवत्सलताकी प्रशंसा की। चतुर्भुजदासने इस समय शंकाकी कि सूरदासने भगवद्यश तो बहुत गाया, परन्तु आचार्य वल्लभका यशगान क्यों नहीं किया। सूरदासने बताया कि उनके निकट आचार्यजी और भगवान्‌में कोई अन्तर नहीं है—जो भगवद्यश है, वही आचार्यजीका भी यश है। गुरुके प्रति अपना भाव उन्होंने "भरोसो दृढ़ इन चरनन केरो" वाला पद गाकर प्रकट किया। इसी पदमें सूरदासने अपनेको "द्विविध आन्धरो" भी बताया। गोसाईं विट्ठलनाथने पहले उनके 'चित्तकी वृत्ति' और फिर 'नेत्रकी वृत्ति'के सम्बन्धमें प्रश्न किया तो उन्होंने क्रमशः "बलि बलि बलि हौं कुमरि राधिका नन्द सुवन जासों रति मानी" तथा "खंजन नैन रूप रस माते" वाले दो पद गाकर सूचित किया कि उनका मन और आत्मा पूर्णरूपमें राधाभावमें लीन है। इसके बाद सूरदासने शरीर त्याग दिया।

सूरदासकी जन्म-तिथि तथा उनके जीवनकी कुछ अन्य मुख्य घटनाओंके काल-निर्णयका भी प्रयत्न किया गया है। इस आधारपर कि गऊघाटपर भेंट होनेके समय वल्लभाचार्य गद्दीपर विराजमान थे, यह अनुमान किया गया है कि उनका विवाह हो चुका था क्योंकि ब्रह्मचारीका गद्दीपर बैठना वर्जित है। वल्लभाचार्यका विवाह संवत् १५६०-६१ (सन् १५०३-१५०४ ई०)में हुआ था, अतः यह घटना इसके बादकी है। 'वल्लभ दिग्विजय'के अनुसार यह घटना संवत् १५६७ वि०के (सन् १५१० ई०) आसपासकी है। इस प्रकार सूरदास ३०-३२ वर्षकी अवस्थामें पुष्टिमार्गमें दीक्षित हुए होंगे। 'चौरासी वैष्णवनकी वार्ता'से सूचित होता है कि सूरदासको गोसाईं विट्ठलनाथका यथेष्ट सत्संग प्राप्त हुआ था। गोसाईंजी स० १३२८ वि०में (सन् १५७१ ई०) स्थायी रूपसे गोकुलमें रहने लगे थे। उनका देहावसान सं० १६४२ वि० (सन् १५८५ ई०) में हुआ। 'वार्ता'से सूचित होता है कि सूरदासका देहावसान गोसाईंजीके सामने ही हो गया था। सूरदासने गोसाइंजीके सत्सगका एकाध स्थलपर संकेत करते हुए ब्रजके जिस वैभवपूर्ण जीवनका वर्णन किया है, उससे विदित होता है कि गोसाईंजीको सूरदासके जीवनकालमें ही सम्राट् अकबरकी ओरसे वह सुविधा और सहायता प्राप्त हो चुकी थी, जिसका उल्लेख सं० १६३४ (सन् १५७७ ई०) तथा सं० १६३८ वि० के (सन् १५८१ ई०) शाही फरमानोंमे हुआ है। अतः यह अनुमान किया जा सकता है कि सूरदास सं० १६३८ (सन् १५८१ ई०) या कमसे कम सं० १६३४ वि० के (सन् १५७७ ई०) बाद तक जीवित रहे होंगे। मोटे तौरपर कहा जा सकता है कि वे सं० १६४० वि० अथवा सन् १५८२-८३ ई० के आसपास गोलोकवासी हुए होंगे। इन तिथियोंके आधारपर भी उनका जन्म स० १५३५ वि० के (सन् १४७८ ई०) आसपास पड़ता है क्योंकि वे ३०-३२ वर्षकी अवस्थामें पुष्टिमार्गमें दीक्षित हुए थे। 'चौरासी वैष्णवनकी वार्ता'मे अकबर और सूरदासको भेंटका वर्णन हुआ है। गोसाईं हरिरायके अनुसार यह भेंट तानसेनने करायी थी। तानसेन सं० १६२१ (सन् १५६४ ई०) में अकबरके दरबारमे आये थे। अकबरके राज्यकालकी राजनीतिक घटनाओपर विचार करते हुए यह अनुमान किया जा सकता है कि वे सं० १६३२-३३ (सन् १५७५-७६ ई०)के पहले सूरदाससे भेंट नहीं कर पाये होंगे क्योंकि सं० १६३२मे (सन् १७७५ ई०) उन्होंने फतेहपुर सीकरीमे इबादतखाना बनवाया था तथा सं० १६३३ (सन् १५७६ ई०) तक वे उत्तरी भारतके साम्राज्यको पूर्ण रूपमें अपने अधीन कर उसे संगठित करनेमें व्यस्त रहे थे। गोसाईं विट्ठलनाथसे भी अकबरने इसी समयके आसपास भेंट की थी।

सूरदासकी जीवनीके सम्बन्धमें कुछ बातोंपर काफी विवाद और मतभेद है। सबसे पहली बात उनके नामके सम्बन्धमें है। 'सूरसागर'में जिस नामका सर्वाधिक प्रयोग मिलता है, वह सूरदास अथवा उसका संक्षिप्त रूप सूर ही है। सूर और सूरदासके साथ अनेक पदोमें स्याम, प्रभु और स्वामीका प्रयोग भी हुआ है परन्तु सूर-स्याम, सूरदास-स्वामी, सूर-प्रभु अथवा सूरदास-प्रभुको कविकी छाप न

मानकर सूर या सूरदास छापके साथ स्याम, प्रभु या स्वामी का समास समझना चाहिये। कुछ पदोंमें सूरज और सूरजदास नामोंका भी प्रयोग मिलता है परन्तु ऐसे पदोंके सम्बन्धमें निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वे सूरदासके प्रामाणिक पद हैं अथवा नहीं। 'साहित्य लहरी'के जिस पदमें उसके रचयिताने अपनी वंशावली दी है, उसमें उसने अपना असली नाम सूरजचन्द बताया है परन्तु उस रचना अथवा कमसे कम उस पदकी प्रामाणिकता स्वीकार नहीं की जाती। निष्कर्षतः 'सूरसागर'के रचयिताका वास्तविक नाम सूरदास ही माना जा सकता है।

सूरदासकी जातिके सम्बन्धमें भी बहुत वाद-विवाद हुआ है। 'साहित्य लहरी'के उपर्युक्त पदके अनुसार कुछ समयतक सूरदासको भट्ट या ब्रह्मभट्ट माना जाता रहा। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रने इस विषयमें प्रसन्नता प्रकट की थी कि सूरदास महाकवि चन्दबरदाईके वंशज थे किन्तु बादमें अधिकतर पुष्टिमार्गीय स्रोतोंके आधारपर यह प्रसिद्ध हुआ कि वे सारस्वत ब्राह्मण थे। बहुत कुछ इसी आधारपर 'साहित्य लहरी'का वंशावलीवाला पद अप्रामाणिक माना गया। 'चौरासी वैष्णवनकी वार्ता'में मूलतः सूरदासकी जातिके विषयमें कोई उल्लेख नहीं था परन्तु गोसाईं हरिराय द्वारा बढ़ाये गये 'वार्ता'के अंशमें उन्हें सारस्वत ब्राह्मण कहा गया है। उनके सारस्वत ब्राह्मण होनेके प्रमाण पुष्टिमार्गके अन्य वार्ता साहित्यमें भी दिये गये हैं। अतः अधिकतर यही माना जाने लगा है कि सूरदास सारस्वत ब्राह्मण थे, यद्यपि कुछ विद्वानोंको इस विषयमें अब भी सन्देह है। डा० मुंशीराम शर्माने यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है कि सूरदास ब्रह्मभट्ट ही थे। यह सम्भव है कि ब्रह्मभट्ट होनेके नाते जो वे परम्परागत कवि-गायकोंके वंशज होनेके कारण सरस्वती पुत्र और सारस्वत नामसे विख्यात हो गये हों। अन्तःसाक्ष्यमें सूरदासके ब्राह्मण होनेका कोई संकेत नहीं मिलता बल्कि इसके विपरीत अनेक पदोंमें उन्होंने ब्राह्मणोंकी हीनताका उल्लेख किया है। इस विषयमें श्रीधर ब्राह्मणके अंग-भंग तथा महरानेके पाँडेवाले प्रसंग द्रष्टव्य है। ये दोनों प्रसंग 'भागवत'से स्वतन्त्र सूरदास द्वारा कल्पित हुए जान पड़ते हैं। इनमें सूरदासने बड़ी निर्ममतापूर्वक ब्राह्मणत्वके प्रति निरादरका भाव प्रकट किया है। अजामिल तथा सुदामाके प्रसंगोंमें भी उनकी उच्च जातिका उल्लेख करते हुए सूरने ब्राह्मणत्वके साथ कोई ममता नहीं प्रकट की। इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण 'सूरसागर'में ऐसा कोई संकेत नहीं मिलता, जिससे इसका किंचित् भी आभास मिल सके कि सूर ब्राह्मण जातिके सम्बन्धमें कोई आत्मीयताका भाव रखते थे। वस्तुतः जातिके सम्बन्धमें वे पूर्ण रूपसे उदासीन थे। दानलीलाके एक पदमें उन्होंने स्पष्ट रूपमें कहा है कि कृष्णभक्तिके लिए उन्होंने अपनी जाति ही छोड़ दी थी। वे सच्चे अर्थोंमें हरिभक्तोंकी जातिके थे, किसी अन्य जातिसे उनका कोई सम्बन्ध नहीं था।

तीसरा मतभेदका विषय सूरदासकी अन्धतासे सम्बन्धित है। सामान्य रूपमें यह प्रसिद्ध रहा है कि सूरदास जन्मान्ध थे और उन्होंने भगवान्‌की कृपासे दिव्य-दृष्टि पायी थी, जिसके आधारपर उन्होंने कृष्ण-लीलाका आँखों देखा जैसा वर्णन किया। गोसाईं हरिरायने भी सूरदासको जन्मान्ध बताया है परन्तु उनके जन्मान्ध होनेका कोई स्पष्ट उल्लेख उनके पदोंमें नहीं मिलता। 'चौरासी वार्ता'के मूल रूपमें भी इसका कोई संकेत नहीं। जैसा पीछे कहा जा चुका है, उनके अन्धे होनेका उल्लेख केवल अकबरकी भेंटके प्रसंगमें हुआ है। 'सूरसागर'के लगभग ७-८ पदोंमें कभी प्रत्यक्ष रूपसे और कभी प्रकारान्तरसे सूरने अपनी हीनता और तुच्छताका वर्णन करते हुए अपनेको अन्धा कहा है। सूरदासके सम्बन्धमें जो भी किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं, उन सबमें उनके अन्धे होनेका उल्लेख हुआ है। उनके कुएँमें गिरने और स्वयं कृष्णके द्वारा उद्धार पाने एवं दृष्टि प्राप्त करने तथा पुनः कृष्णसे अन्धे होनेका वरदान माँगनेकी घटना लोकविश्रुत है। बिल्वमंगल सूरदासके विषयमें भी यह चमत्कारपूर्ण घटना कही-सुनी जाती है। इसके अतिरिक्त कवि मियाँसिंहने तथा महाराज रघुराजसिंहने भी कुछ चमत्कारपूर्ण घटनाओंका उल्लेख किया है, जिससे उनकी दिव्य दृष्टि सम्पन्नताकी सूचना मिलती है। नाभादासने भी अपने 'भक्तमाल'में उन्हें दिव्य-दृष्टिसम्पन्न बताया है। निश्चय ही सूरदास एक महान् कवि और भक्त होनेके नाते असाधारण दृष्टि रखते थे किन्तु उन्होंने अपने काव्यमें बाह्य जगत्‌के जैसे नाना रूपों, रंगों और व्यापारोंका वर्णन किया है, उससे प्रमाणित होता है कि उन्होंने अवश्य ही कभी अपने चर्म-चक्षुओंसे उन्हें देखा होगा। उनका काव्य उनकी निरीक्षण-शक्तिकी असाधारण सूक्ष्मता प्रकट करता है क्योंकि लोकमत उनके माहात्म्यके प्रति इतना श्रद्धालु रहा है कि वह उन्हें जन्मान्ध माननेमें ही उनका गौरव समझता है, इसलिए इस सम्बन्धमें कोई साक्षी नहीं मिलती कि वे किस परिस्थितिमें दृष्टिविहीन हो गये थे। हो सकता है कि वे वृद्धावस्थाके निकट दृष्टि-विहीन हो गये हों परन्तु इसकी कोई स्पष्ट सूचना उनके पदोंमें नहीं मिलती। विनयके पदोंमें वृद्धावस्थाकी दुर्दशाके वर्णनके अन्तर्गत चक्षु-विहीन होनेका जो उल्लेख हुआ है, उसे आत्मकथन नहीं माना जा सकता, वह तो सामान्य जीवनके एक तथ्यके रूपमें कहा गया है।

सूरदासकी सर्वसम्मत प्रामाणिक रचना 'सूरसागर' है। एक प्रकारसे 'सूरसागर', जैसा कि उसके नामसे सूचित होता है, उनकी सम्पूर्ण रचनाओंका सकलन कहा जा सकता है (दे० 'सूरसागर')। 'सूरसागर'के अतिरिक्त 'साहित्य लहरी' और 'सूरसागर सारावली' को भी कुछ विद्वान् उनकी प्रामाणिक रचनाएँ मानते हैं परन्तु इनकी प्रामाणिकता सन्दिग्ध है (दे० 'सूरसागर सारावली' और 'साहित्य लहरी')। सूरदासके नामसे कुछ अन्य तथाकथित रचनाएँ भी प्रसिद्ध हुई हैं परन्तु वे या तो 'सूरसागर'के ही अंश हैं अथवा अन्य कवियोंकी रचनाएँ हैं। 'सूरसागर'के अध्ययनसे विदित होता है कि कृष्णकी अनेक लीलाओंका वर्णन जिस रूपमें हुआ है, उसे सहज ही खण्ड-काव्य जैसे स्वतन्त्र रूपमें रचा हुआ भी माना जा सकता है। प्रायः ऐसी लीलाओंको पृथक् रूपमें प्रसिद्धि भी मिल गयी है। इनमेंसे कुछ हस्तलिखित रूपमें तथा कुछ मुद्रित रूपमें प्राप्त होती

है। उदाहरणके लिए 'नागलीला', जिसमें कालियदमनका वर्णन हुआ है, 'गोवर्धन लीला', जिसमें गोवर्धनधारण और इन्द्रके शरणागमनका वर्णन है, 'प्राण प्यारी', जिसमें राधा-कृष्णके विवाहका वर्णन है और 'सूर पच्चीसी', जिसमें प्रेमके उच्चादर्शका पच्चीस दोहोंमें वर्णन हुआ है, मुद्रित रूपमें प्राप्त हैं। हस्तलिखित रूपमें 'व्याहलो' के नामसे राधा-कृष्ण विवाहसम्बन्धी प्रसंग, 'सूरसागर सार' नामसे रामकथा और रामभक्तिसम्बन्धी प्रसंग तथा 'सूरदासजीके दृष्टिकूट' नामसे कूट-शैलीके पद पृथक् ग्रन्थोंमें मिले हैं। इसके अतिरिक्त 'पद संग्रह', 'दशम स्कन्ध', 'भागवत', 'सूरसाठी', 'सूरदासजीके पद' आदि नामोंसे 'सूरसागर'के पदोंके विविध संग्रह पृथक् रूपमें प्राप्त हुए हैं। ये सभी 'सूरसागरके' अंश हैं। वस्तुतः 'सूरसागर'के छोटे-बड़े हस्तलिखित रूपोंके अतिरिक्त उनके प्रेमी भक्तजन समय-समयपर अपनी-अपनी रुचिके अनुसार 'सूरसागर'के अंशोंको पृथक् रूपमें लिखते-लिखाते रहे हैं। 'सूरसागर'का वैज्ञानिक रीतिसे सम्पादित प्रामाणिक संस्करण निकल जानेके बाद ही कहा जा सकता है कि उनके नामसे प्रचलित संग्रह और तथाकथित ग्रन्थ कहाँतक प्रमाणित हैं।

सूरदासके काव्यसे उनके बहुश्रुत, अनुभवसम्पन्न, विवेकशील और चिन्तनशील व्यक्तित्वका परिचय मिलता है। उनका हृदय गोप बालकोंकी भाँति सरल और निष्पाप, ब्रज गोपियोंकी भाँति सहज संवेदनशील, प्रेम-प्रवण और माधुर्यपूर्ण तथा नन्द और यशोदाकी भाँति सरल-विश्वासी, स्नेह-कातर और आत्म-बलिदानकी भावनासे अनुप्राणित था। साथ ही उनमें कृष्ण जैसी गम्भीरता और विदग्धता तथा राधा जैसी वचन-चातुरी और आत्मोत्सर्गपूर्ण प्रेम-विवशता भी थी। काव्यमें प्रयुक्त पात्रोंके विविध भावोंसे पूर्ण चरित्रोंका निर्माण करते हुए वस्तुतः उन्होंने अपने महान् व्यक्तित्वकी ही अभिव्यक्ति की है। उनकी प्रेम-भक्तिके सख्य, वात्सल्य और माधुर्य भावोंका चित्रण जिन असंख्य संचारी भावों, अनगिनत घटना-प्रसंगों बाह्य जगत्—प्राकृतिक और सामाजिक—के अनन्त सौन्दर्य चित्रोंके आश्रयसे हुआ है, उनके अन्तरालमें उनकी गम्भीर वैराग्य-वृत्ति तथा अत्यन्त दीनतापूर्ण आत्म-निवेदात्मक भक्ति-भावनाकी अन्तर्धारा सतत प्रवहमान रही है परन्तु उनकी स्वाभाविक विनोदवृत्ति तथा हास्य-प्रियताके कारण उनका वैराग्य और दैन्य उनके चित्तको अधिक ग्लानियुक्त और मलिन नहीं बना सका। आत्म-हीनताकी चरम अनुभूतिके बीच भी वे उल्लास व्यक्त कर सके। उनकी गोपियाँ विरहकी हृदयविदारक वेदनाको भी हास-परिहासके नीचे दबा सकीं। करुण और हासका जैसा एकरस रूप सूरके काव्यमें मिलता है, अन्यत्र दुर्लभ है। सूरने मानवीय मनोभावों और चित्तवृत्तियोंको, लगता है, निःशेष कर दिया है। यह तो उनकी विशेषता है ही परन्तु उनकी सबसे बड़ी विशेषता कदाचित् यह है कि मानवीय भावोंको वे सहज रूपमें उस स्तरपर उठा सके, जहाँ उनमें लोकोत्तरताका संकेत मिलते हुए भी उनकी स्वाभाविक रमणीयता अक्षुण्ण ही नहीं बनी रहती, बल्कि विलक्षण आनन्दकी व्यंजना करती है। सूरका काव्य एक साथ ही लोक और परलोकको प्रतिबिम्बित करता है।

सूरकी रचना परिमाण और गुण दोनोंमें महान् कवियोंके बीच अतुलनीय है। आत्माभिव्यंजनके रूपमें इतने विशाल काव्यका सर्जन सूर ही कर सकते थे क्योंकि उनके स्वात्ममें सम्पूर्ण युगजीवनकी आत्मा समाई हुई थी। उनके स्वानुभूतिमूलक गीतिपदोंकी शैलीके कारण प्रायः यह समझ लिया गया है कि वे अपने चारों ओरके सामाजिक जीवनके प्रति पूर्ण रूपमें सजग नहीं थे परन्तु प्रचारित पूर्वाग्रहोंसे मुक्त होकर यदि देखा जाय तो स्वीकार किया जायगा कि सूरके काव्यमें युगजीवनकी प्रबुद्ध आत्माका जैसा स्पन्दन मिलता है, वैसा किसी दूसरे कविमें नहीं मिलेगा। यह अवश्य है कि उन्होंने उपदेश अधिक नहीं दिये, सिद्धान्तोंका प्रतिपादन पण्डितोंकी भाषामें नहीं किया, व्यावहारिक अर्थात् सांसारिक जीवनके आदर्शोंका प्रचार करनेवाले सुधारकका बाना नहीं धारण किया परन्तु मनुष्यकी भावात्मक सत्ताका आदर्शीकृत रूप गढ़नेमें उन्होंने जिस व्यवहारबुद्धिका प्रयोग किया है, उससे प्रमाणित होता है कि वे किसी मनीषीसे पीछे नहीं थे। उनका प्रभाव सच्चे कान्ता-सम्मित उपदेशकी भाँति सीधे हृदयपर पड़ता है। वे निरे भक्त नहीं थे, सच्चे कवि थे—ऐसे द्रष्टा कवि, जो सौन्दर्यके ही माध्यमसे सत्यका अन्वेषण कर उसे मूर्त रूप देनेमें समर्थ होते हैं। युगजीवनका प्रतिबिम्ब देते हुए उसमें लोकोत्तर सत्यके सौन्दर्यका आभास देनेकी शक्ति महाकविमें ही होती है, निरे भक्त, उपदेशक और समाज सुधारकमें नहीं।

[सहायक ग्रन्थ—सूरदास : डा० ब्रजेश्वर वर्मा, हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय; सूर साहित्य : डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी; सूर और उनका साहित्य : डा० हरिवंशलाल शर्मा; भारतीय साधना और सूरदास : डा० मुंशीराम शर्मा।]

—ब्र० व०

सूरदास २–प्रेमचन्दकृत 'रंगभूमि' उपन्यासका खिलाडी सूरदास इन्सान नहीं, फरिश्ता है। निर्भीक, धुनका पक्का, सत्यनिष्ठ, न्यायप्रिय, निःस्पृह, शान्त, सेवा-त्याग-परोपकार-रत सूरदास की बाह्य दृष्टि बन्द थी किन्तु अन्तर्दृष्टि खुली हुई थी। वह क्षीणकाय और मानवोचित दुर्बलताओंसे समन्वित होते हुए भी अनुरागपूर्ण हृदयवाला और सच्चे अर्थोंमें वैरागी है, सत्य, अहिंसा, अस्तेय और अपरिग्रहका साक्षात् रूप है। वह अशरण-शरण, दीन-दुःखियोंकी सहायता करनेवाला, शत्रु-मित्र सभीको एक दृष्टिसे देखने वाला और 'गीता'के निष्काम कर्म और स्थित-प्रज्ञका व्यावहारिक रूप है। इसीलिए उसके शत्रु-मित्र सभी उसकी साधुता और दार्शनिकताके कायल हैं। समझदारके लिए उसका एक-एक शब्द विद्वानोंके ग्रन्थोंसे भी भारी है। उसमें प्रतिशोधकी भावना नहीं, वैमनस्य नहीं। वह खेल खेलने आया था, सच्चे और पवित्र हृदयसे खेल खेलकर चला गया। उसकी झोपड़ी पत्र-पुष्पोंका स्थान बन गयी। उसकी मृत्युपर क्लार्क तकको अफसोस हुआ—यद्यपि वह एक सज्जन साम्राज्यवादीका अफसोस था। वास्तवमें सूरदासकी भौतिक

हारमें भी आत्मिक विजयका गौरव था और सबसे बड़ी विजय तो यह थी कि उसकी मृत्युके फलस्वरूप जनसत्तावादियोंकी शक्ति अनुदिन संघटित होती गयी। —ल० सा० वा०

सूरसागर–सूरदासकी सर्वमान्य प्रामाणिक कृति 'सूरसागर' ही है, परन्तु यह खेदका विषय है कि 'सूरसागर'का कोई सुसम्पादित प्रामाणिक संस्करण अभीतक नहीं निकल सका है। सबसे पहले उसकी लीथोमें छपी हुई प्रतियाँ आगरा, मथुरा और दिल्लीसे १९वीं शताब्दीमें प्रकाशित हुई थीं। संवत् १८९८ वि० (सन् १८४१ ई०)में कलकत्तामें प्रकाशित 'रागकल्पद्रुम'में भी 'सूरसागर'का प्रकाशन हुआ था। इसीका पुनर्मुद्रण 'सूरसागर रागकल्पद्रुम'के नामसे नवलकिशोर प्रेस, लखनऊमें हुआ। नवलकिशोर प्रेसका पहला संस्करण संवत् १९२० वि०में (सन् १८६३) लीथोमें मुद्रित होकर प्रकाशित हुआ था। वही संवत् १९३१ वि० (सन् १८७४ ई०)में ढले हुए टाइपमें प्रकाशित किया गया। संवत् १९५३ वि०में (सन् १८९६ ई०) श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बईसे 'सूरसागर'का पहला संस्करण प्रकाशित हुआ—शीर्षक था "सूरदास रचित श्रीमद्भागवत बारहों स्कन्धोंका ललित राग-रागनियोंमें अनुवाद।" उपर्युक्त मुद्रित प्रतियोंमें 'सूरसागर'के दो रूप प्राप्त होते हैं—एक लीला क्रमवाला रूप है, जिसमें मंगलाचरणके बाद प्रारम्भसे ही श्रीकृष्णकी लीलाओंका वर्णन किया गया है तथा अन्तमें रामकथा तथा विनयसम्बन्धी पद संकलित किये गये हैं। नवलकिशोर प्रेस द्वारा प्रकाशित 'सूरसागर' लीलाक्रमवाले रूपका है। दूसरा रूप द्वादश स्कन्धी क्रमका है, जिसमें प्रारम्भमें विनयके पद देकर 'श्रीमद्भागवत'के द्वादश स्कन्धोंके आधारपर पदोंका विभाजन किया गया है। इसमें दशम स्कन्ध—पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्धमें श्रीकृष्णकी लीलासम्बन्धी पदावली दी गयी है। 'सूरसागर'की हस्तलिखित प्रतियोंमें भी उपर्युक्त दो रूप प्राप्त होते हैं। उपलब्ध प्रतियोंके आधारपर कहा जा सकता है कि लीलाक्रमवाली प्रतियाँ कदाचित् अधिक प्राचीन हैं। जयपुरके पोथीखानामें प्राप्त संवत् १६३० वि०की (सन् १५७३ ई०) प्रति अद्यावधि प्राचीनतम कही जा सकती है। मथुरा, नाथद्वारा, कोटा, झलरापाटन, कुचामन, बूंदी, बीकानेर, उदयपुर आदि अनेक स्थानोंमें प्राप्त प्रतियाँ १७ वीं या १८ वीं शताब्दीकी हैं और ये लीला-क्रमका रूप उपस्थित करती हैं। द्वादशस्कन्धी क्रमकी प्रतियाँ इनकी तुलनामें बादकी हैं। इनमें काशीकी प्रति संवत् १७५३ (सन् १६९६ ई०)की प्राचीनतम कही जा सकती है। पेरिस और लन्दनमें प्राप्त प्रतियाँ १८ वीं शताब्दीकी हैं तथा लखनऊ, महावन (मथुरा), कोसवाँ (अलीगढ़) तथा कलकत्तामें प्राप्त प्रतियाँ १९ वीं शताब्दीकी हैं। इस प्रकार प्राचीनता तथा संख्याकी दृष्टिसे लीला क्रमवाली प्रतियोंको अधिक विश्वसनीय माना जा सकता है परन्तु 'सूरसागर'का प्रचलित रूप द्वादशस्कन्धी ही रहा है क्योंकि नवलकिशोर प्रेसवाला संस्करण १९ वीं शताब्दीके बाद प्रकाशित नहीं हुआ, केवल वेंकटेश्वर प्रेसवाले संस्करणका ही पुनर्मुद्रण होता रहा। वेंकटेश्वर प्रेसवाला संस्करण 'सूरसागर'की किस हस्तलिखित प्रति अथवा किन हस्तलिखित प्रतियोंके आधारपर तैयार किया गया था, इसकी कोई सूचना नहीं मिलती। वेंकटेश्वर प्रेसका संस्करण भी गत बीसों वर्षोंसे दुर्लभ हो रहा था क्योंकि उसका पुनर्मुद्रण रुक गया था। स्वर्गीय जगन्नाथदास 'रत्नाकर'ने 'सूरसागर'के सम्पादन और प्रकाशनका स्तुत्य प्रयत्न वर्तमान शताब्दीके तृतीय दशकमें प्रारम्भ किया था। उन्होंने 'सूरसागर'की अनेक हस्तलिखित प्रतियोंको एकत्र किया और उनके आधारपर सूरदासके नामसे प्रचलित अधिकाधिक पदोंका संकलन करना प्रारम्भ किया। सं० १९९० वि०में (सन् १९३३ ई०) 'रत्नाकर'जीके प्रधान सम्पादकत्वमें नागरी प्रचारिणी सभा, काशीसे 'सूरसागर'का प्रकाशन छोटे-छोटे खण्डोंके रूपमें प्रारम्भ हुआ। इस रूपमें प्रकाशित पदोंके पाठान्तर भी पाद-टिप्पणियोंमें दिये जा रहे थे परन्तु १४३२ पदोंके प्रकाशनके बाद यह कार्य रुक गया। 'रत्नाकर'जीका देहावसान हो गया था, अतः अनेक वर्षोंतक उनके द्वारा संकलित की हुई सामग्री नागरी प्रचारिणी सभामें अप्रयुक्त पड़ी रही। कई वर्ष बाद उस सामग्रीका उपयोग कर नन्ददुलारे वाजपेयीके सम्पादकत्वमें 'सूरसागर' दो खण्डोंमें प्रकाशित किया गया। पहला खण्ड सं० २००५ वि० (सन् १९४८ ई०) तथा दूसरा खण्ड सं० २००७ वि० (सन् १९५० ई०) में प्रकाशित हुआ। इस संस्करणमें पाठान्तर नहीं दिये गये। 'रत्नाकर'जीका उद्देश्य 'सूरसागर'के पदोंकी संख्यामें अधिकाधिक वृद्धि करना था क्योंकि यह समझा जाता था कि भले ही सूरदास द्वारा रचित सवा लाख पदोंकी किंवदन्तीमें अतिशयोक्ति हो, उनके पदोंकी संख्या प्राप्त पदोंसे कहीं अधिक होनी चाहिये। स्पष्ट ही इसमें पाठालोचनके सिद्धान्तोंका कोई विचार नहीं किया गया था। वाजपेयीजी द्वारा सम्पादित 'सूरसागर'की भी यही स्थिति है। इसका रूप द्वादशस्कन्धी है क्योंकि इसमें पदोंकी प्रामाणिकतापर वैज्ञानिक ढंगसे कोई विचार नहीं किया गया है, इसमें अनेक पद अन्य कवियोंके सम्मिलित हो गये हैं। कुछ पद सूरदास, मदनमोहन, परमानन्ददास, कुम्भनदास, हितहरिवंश और हरिराम व्यासके स्पष्ट रूपमें इंगित किये गये हैं। यह भी सम्भव है कि सूरदासद्वारा रचित अनेक पद, जो पुष्टिमार्गीय कीर्तनसंग्रहोंमें उपलब्ध होते हैं, सभाके संस्करणमें सम्मिलित न हो सके हों। इसके सम्पादनमें कीर्तनसंग्रहोंका उपयोग नहीं हुआ किन्तु अनेक त्रुटियाँ होते हुये भी 'सूरसागर'का यही संस्करण इस समय उपलब्ध है और इसीके आधारपर सूरकी रचनापर विचार किया जा सकता है।

'सूरसागर'नामसे सूचित होता है कि यह सूरकी सम्पूर्ण रचनाका संकलन है। 'चौरासी वैष्णवनकी वार्ता'में सूरदासकी वार्ताके प्रसंग ३ के अनुसार "सूरदासजीने सहस्त्रावधि पद किये है ताको सागर है यह सो सब जगतमें प्रसिद्ध भये" अर्थात् सूरदासने हजार (हजारों) की संख्यामें पद रचे थे, उन्हींको 'सूरसागर'में संकलित किया गया है। वार्ता प्रसंग १ में उल्लेख है कि "तब सूरदासजीको सम्पूर्ण भागवत स्फूर्तना भई पाछे जो पद किये सो भागवतप्रथम

स्कन्ध तें द्वादश स्कन्ध पर्यंत (ताईं) किये"। इससे यह सूचित होता है कि सूरदासने अपनी रचना 'भागवत'के आधारपर की थी। इसी उल्लेखके कारण 'सूरसागर'को 'भागवत'का अनुवाद कहा जाने लगा। इस सम्बन्धमें 'सूरसागर'के अध्येता अब भी पूर्णरूपसे इस स्पष्ट निश्चय पर नहीं पहुँच सके हैं कि 'सूरसागर'का वास्तविक स्वरूप क्या है। कभी सूरदासको स्फुट पदोंका रचयिता मानकर 'सूरसागर' उनके पदोंका संकलन कह दिया जाता है, कभी उसे श्रीनाथजीके कीर्तनोंका संग्रह कहा जाता है, क्योंकि सूरदासके विषयमें प्रसिद्ध है कि वे श्रीनाथजीके मन्दिरमे कीर्तनकी सेवामें नियुक्त हुए थे। 'सूरसागर'का उपलब्ध संस्करण द्वादशस्कन्धी रूपका है, अतः यह भ्रम अब भी किसी न किसी रूपसे चलता है कि 'सूरसागर', 'श्रीमद्भागवत'का भावानुवाद या छायानुवाद है परन्तु 'सूरसागर' का निष्पक्ष भावसे सूक्ष्म अध्ययन करनेसे यह स्पष्ट होता है कि 'सूरसागर'का मुख्य वर्ण्य-विषय ब्रजवल्लभ श्रीकृष्ण की लीलाका गायन है और यह गायन श्रीकृष्णके जन्मसे प्रारम्भ होकर उनके ब्रजवासकी विविध क्रीडाओंका वर्णन करते हुए उनके मथुरा-गमन तथा द्वारका-गमन और फिर कुरुक्षेत्रमे ब्रजवासियोंसे भेंट करने तक ही समस्त घटनाओं का क्रमबद्ध वर्णन करता है। गेय पदोंकी शैलीमे रचे जानेके कारण विविध प्रसंगोमे पदोंकी वृद्धि होनेकी निश्चय ही इसमें अनेक सम्भावनाएँ रही हैं और इसी कारण उसका आकार बढ़ता रहा है तथा विविध लीलाओंकी पुनरावृत्तियाँ भी होती रही है। 'सूरसागर'के द्वादशस्कन्धी रूपमें भी श्रीकृष्णकी लीला ही, जो दशम स्कन्धमे दी गयी है, 'सूरसागर'का मुख्य अंश प्रमाणित होती है। इसके अतिरिक्त विनयके पद भी 'सूरसागर'का एक प्रमुख अंग है, जिनकी संख्या सभाके संस्करणमें २२३ है। सूरकी रचनाका तीसरा मुख्य अंग राम-कथासम्बन्धी पदों का है। इसमें सभाके संस्करणमें १५६ पद मिलते हैं। 'सूरसागर' के शेष अंशमें, जिसकी पद संख्या अत्यन्त न्यून है, 'भागवत'के विविध स्कन्धोंमे प्राप्त भक्ति भावसम्बन्धी कथाओंका वर्णन हुआ है।

इस प्रकार 'सूरसागर'को सूरदासकी रचनाका संकलन कहा जा सकता है। श्रीकृष्णकी लीलाके गायनमें भी अनेक ऐसे प्रसंग आये हैं, जो कथाकी दृष्टिसे अपनेमें परिपूर्ण और स्वतन्त्र रूपमें पढ़े जा सकते हैं। ये प्रसंग सम्बन्धित लीला के नामसे पृथक् रूपमें पुस्तकाकार प्रकाशित भी होते रहे हैं परन्तु ध्यानसे देखनेपर यह असंदिग्ध रूपमे प्रमाणित हो जाता है कि ये प्रसंग भी वस्तुतः श्रीकृष्णकी सम्पूर्ण लीलाके अभिन्न अंग ही हैं। उनका पूर्ण रसास्वादन पूर्वापर क्रमके आधारपर ही किया जा सकता है। इसके साथ यह भी समझ लेना आवश्यक है कि सूरदासने कृष्ण-लीलाका गायन यद्यपि 'श्रीमद्भागवत'मे वर्णित कृष्ण-लीलाके आधार-पर किया परन्तु यह आधार उन्होने केवल सूत्र रूपमे ही ग्रहण किया। विविध प्रसंगोंके विवरणोंमें उनकी मौलिक कल्पना स्पष्ट प्रकट हो जाती है, साथ ही उन्होंने ऐसे अनेक नवीन प्रसंगोंकी उद्भावना की, जिनका 'भागवत'मे संकेत भी नहीं मिलता। अतः 'सूरसागर'को किसी प्रकार भागवतका अनुवाद, छायानुवाद या भावानुवाद नहीं कहा जा सकता। श्रीकृष्णकी लीलामें ही नहीं, रामचरित-सम्बन्धी पदोंमें भी सूरदासकी मौलिकता असन्दिग्ध है। 'श्रीमद्भागवत'का अनुसरण कृष्ण और रामकी कथाओंके अतिरिक्त अन्य कथाओंके वर्णनमें अवश्य किया गया है परन्तु इन कथाओंके वर्णनमें न तो काव्यका सौष्ठव मिलता है और न भक्ति-भावनाकी वह उत्कृष्टता, जो कृष्ण-लीलाके गायनमें प्राप्त होती है।

'सूरसागर'के विनय-भावनासम्बन्धी पद द्वादशस्कन्धी क्रमवाली प्रतियोंमें प्रारम्भमें तथा लीलाक्रमवाली प्रतियोंमें अन्तमें पाये जाते हैं। सामान्यतया इन पदोंकी प्रामाणिकताके विषयमें सन्देह नहीं किया जा सकता। यह अवश्य है कि इनमें कुछ पद बादमें प्रक्षिप्त हुए होंगे। वेंकटेश्वर प्रेसके संस्करणमें इनकी संख्या ११२ थी किन्तु सभाके संस्करणमें वह २२३ है। इन पदोंके सम्बन्धमें प्रायः यह धारणा रही है कि इनकी रचना सूरदासने वल्लभाचार्य द्वारा पुष्टिमार्गमें दीक्षित होनेके पहलेकी थी। इस धारणाका आधार सूरदासकी 'वार्ता'का वह प्रसंग है, जिसमे वल्लभाचार्य द्वारा उनका "घिघियाना" (दैन्य) छुडानेका उल्लेख किया गया है परन्तु इन पदोंमे व्यक्त विचारोंकी प्रौढता, अनुभवकी गम्भीरता, स्थिर मनस्विता और सम्पूर्ण जीवनपर दार्शनिक जैसी दृष्टिसे विदित होता है कि इनकी रचना पर्याप्त वय और अनुभव प्राप्त व्यक्ति द्वारा ही होना सम्भव है। अतः यह अनुमान किया जा सकता है कि इन पदोंकी रचना सूरदासने कृष्ण-लीलाके वर्णन करते समय भी समय-समयपर स्फुट रूपमे की होगी। यद्यपि कृष्ण-लीलाके वर्णनमे उन्होने वात्सल्य, सख्य और माधुर्य भावोंमे ही अपनी तल्लीनता प्रकट की है परन्तु दैन्य भाव इन भावोंका विरोधी नहीं है। वस्तुतः दैन्य भक्तिका मूल भाव है, प्रत्येक भाव अनुभूति की चरम स्थितिमे दैन्य समन्वित हो जाता है, जैसा कि सूरके सभी भावोंके विरहसम्बन्धी पदोंसे स्पष्ट सूचित होता है। प्रपत्ति अर्थात् आत्मसमर्पणकी भावना दैन्य-प्रधान विनयके पदोंमें अत्यन्त प्रत्यक्ष और अपने शुद्ध रूपमे प्राप्त होती है। अतः ये पद सूरदासकी वैयक्तिक भक्ति-भावनाके मूलाधारका परिचय देते हैं। इन पदोंमे संसारकी असारताका अनुभूतिपूर्ण वर्णन करते हुए वैराग्य की भावना दृढ़ की गयी है तथा भक्तिकी अनिवार्य आवश्यकता प्रमाणित की गयी है। भक्तिकी आवश्यकताको प्रमाणित करनेके लिए भगवानकी असीम कृपालुता और भक्तवत्सलताका सोदाहरण वर्णन हुआ है और मनको भक्तिमे दृढ़ रहनेके लिए उद्बोधन दिया गया है। इसी उद्देश्यसे सत्सगकी महिमा तथा हरिविमुखोंकी निन्दा की गयी है। भक्तिके लक्षणोंका भी यत्र-तत्र उल्लेख है, जिनमें नाम-स्मरण सर्वप्रमुख है परन्तु वस्तुतः भक्तिका मूल लक्षण प्रेमभाव है, जो इन पदोंमे दैन्यसमन्वित होकर दास्य रतिके रूपमें प्रकट हुआ है। यद्यपि विनयके पदोंकी शैली व्यक्ति प्रधान आत्मगत शैली है, जिससे लगता है कि कवि संसारके सभी दोषोंका आरोप अपने ऊपर कर रहा है परन्तु वास्तवमें उसकी दृष्टिमें समष्टिगत

व्यापकता है। उसने सामान्य जीवनपर तीव्र आलोचनात्मक दृष्टि डालते हुए उसके सुधारका दिशा-निर्देश किया है। कभी-कभी लोक-संग्रहकी भावना इन पदोंमें इतनी अधिक मुखर हो गयी है कि कविका दृष्टिकोण भक्तिके प्रचारकका दृष्टिकोण हो गया है। इन पदोंके आधारपर हम सूरदासके समयके मध्यम श्रेणीके समाजकी स्थिति और उसके जीवनादर्शका यथार्थ परिचय प्राप्त कर सकते हैं। विनयके पदोंमें वस्तुतः उस युगके लोकचित्तका ही प्रतिबिम्ब दिया गया है। उस लोकचित्तको मूर्त रूप देनेके लिए जो विवरण दिये गये हैं, वे अधिकतर सामान्य लोक-जीवनके ही विवरण हैं। शैलीके कारण कभी-कभी उन्हें सूरदासके आत्मकथनोंके रूपमें मान लेनेकी भूल की गयी है परन्तु इस विषयमें अत्यन्त सावधानीकी आवश्यकता है। प्रसंगवश कुछ कथन ऐसे अवश्य हो गये हैं, जिनमें सूरदासके व्यक्तिगत जीवनकी कुछ सूचनाएँ मिल जाती हैं। शैलीकी दृष्टिसे ये पद आत्माभिव्यक्तिपूर्ण गीति रचनाका श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। कुछ पदोंमें उपदेशात्मकता अवश्य आ गयी है परन्तु अधिकांश पदोंमें गीति-काव्यके उपयुक्त तीव्र भावात्मकता सुरक्षित मिलती है। पद-शैलीमें रचे होनेके कारण संगीतका तत्त्व तो मिलता ही है, प्रत्येक पदमें किसी एक ही भावका अनुभूतिपूर्ण चित्रण होनेके कारण भाव-सकलन भी सुरक्षित है। कुछ पदोंमें शान्त रसका श्रम स्थायी भाव देखा जा सकता है परन्तु अधिकांश पद दैन्यप्रधान हैं। सचारी रूपमें कहीं कहीं सम्पूर्ण पदमें ओजकी प्रमुखता दिखाई दे जाती है परन्तु वास्तवमें उसके द्वारा भी व्यजना दैन्यकी ही होती है। दैन्यभाव संकोचनशील भाव है, उसमें भावविस्तारको स्थान नहीं मिल पाता। अतः ऐसा लगता है कि कविके ऊपर संसारके समस्त पापोंका एक भारी बोझ लदा हुआ है और वह घोर आत्मग्लानिसे ग्रस्त है, जैसे उमंग और उत्साह उसके मनमें रह ही न गया हो। भगवान्‌की कृपाका विश्वास उसे अवश्य है परन्तु वह उनके सम्मुख एक याचकके रूपमें ही खड़ा है। इन पदोंकी भाषा-शैली प्रौढ है, भाषामें तत्सम, तद्भव शब्दोंका मिश्रण अधिक है तथा धार्मिक शब्दावलीकी प्रधानता है। जहाँ भावकी तीव्र अनुभूति और घनिष्ठ आत्मीयता प्रकट की गयी है, भाषा अधिक सरल और ठेठ शब्दावलीसे परिपूर्ण है। काव्य-सौष्ठवकी ओर कविका कोई प्रयास नहीं दिखाई देता। अलकारोंका प्रयोग सहज रूपमें भावोंके स्पष्टीकरणके लिए हुआ है।

'सूरसागर'के स्फुट पदोंमें राम-कथासम्बन्धी पद भी महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें राम-जन्म, बाल-केलि, धनुर्भंग, केवट-प्रसंग, पुरवधू-प्रश्न, भरत-भक्ति, सीता-हरणपर राम-विलाप, हनुमान् द्वारा सीताकी खोज, हनुमान्-सीता संवाद, रावण-मन्दोदरी संवाद, लक्ष्मणके शक्ति लगनेपर राम-विलाप, हनुमान्‌का संजीवनी लाना, सीताकी अग्नि परीक्षा और रामका अयोध्या प्रवेश—ये मार्मिक स्थल हैं, जिनपर सूरदासका ध्यान गया है। लंका-काण्डसम्बन्धी प्रसंगोंके पद अपेक्षाकृत सबसे अधिक हैं। इनमें रावण-मन्दोदरी संवाद, लक्ष्मणके शक्ति लगनेपर राम-विलाप तथा हनुमान्‌के संजीवनी लाने और मार्गमें अयोध्यावासियोंसे भेंट करनेके सम्बन्धमें सबसे अधिक विस्तार किया गया है। मन्दोदरी और रावणके संवादमें सीताके उद्धार पर सूरदासने अधिक ध्यान केन्द्रित किया है। सीता-उद्धारपर विशेष ध्यान देनेके कारण ही लंका-काण्डके बाद सुन्दर-काण्डका विस्तार सबसे अधिक है। हनुमान् और सीताकी भेंटके प्रसंगमें करुण भावोंको व्यक्त करनेमें सूरदासने अधिक तन्मयता दिखायी है। राम-कथासम्बन्धी पद-रचनामें भी सूरदासकी रुचि करुण, कोमल भावोंके प्रति ही अधिक दिखाई देती है। उन्होंने रामके शौर्य, पौरुष, धैर्य और पराक्रमका उतनी तन्मयतासे वर्णन नहीं किया, जितनी तन्मयता और आत्मीयताके साथ सीता और लक्ष्मणके सम्बन्धमें उनकी वेदना, व्याकुलता और व्यग्रताका चित्रण किया है फिर भी सूरदासके राम मर्यादाका सदैव पालन करते हैं। अन्य पात्रोंके चरित्र-सम्बन्धी सकेतोंमें सूरदासने मानवीय स्वाभाविकताके चित्रणपर विशेष बल दिया है किन्तु उनका कोई पात्र आदर्शसे गिरने नहीं पाया है। राम-कथासम्बन्धी पदोंकी भाव-धारा सामान्यतया विनयके पदोंके समान है। उसमें दैन्यकी ही प्रधानता है।

'सूरसागर'की कृष्ण-लीला विभिन्न प्रसंगोंसे सम्बद्ध स्फुट-पदसमूह तथा विशिष्ट लीलाओंके रूपमें रचे गये खण्ड-काव्य जैसे अंशोंमें निर्मित हुई है। स्फुटपद और पदसमूह कृष्णके शैशव, बाल्य और कैशोर कालकी विविध दिन-चर्यासे सम्बद्ध हैं। इनके द्वारा कृष्ण-लीलाकी सामान्य रूपरेखाका निर्माण होता है, जिसके अन्तर्गत उनकी विशेष क्रीडाएँ वर्णित हैं। चन्द्र-प्रस्ताव, माखन-चोरी, ग्रीष्मलीला, यमुना-विहार, जल-क्रीडा, निकुंज-क्रीड़ा, अनुराग-समय, खण्डिता-समय, अखियाँ-समय, नैनन-समय, फाग, होली, हिण्डोल आदि विशेष प्रसंग संश्लिष्ट पदसमूहके रूपमें वर्णित हैं। इसी प्रकार पूतना, कागासुर, शकटासुर, वत्सासुर, वकासुर, धेनुक, शंखचूड, वृषभ, केशी, भौमासुर आदिके संहारसम्बन्धी पद भी पदसमूहके रूपमें प्राप्त होते हैं। ये पदसमूह पृथक रूपमें भी आस्वाद्य हैं परन्तु उनका वास्तविक महत्त्व सम्पूर्ण कृष्ण-लीलाके संदर्भमें ही प्रकट होता है। जिन प्रसंगोंको खण्डकाव्य जैसी एकात्मकता प्राप्त हुई है, उनमें उलूखल बन्धन और यमलार्जुन उद्धार, अघासुर वध, वील-वत्स-हरण लीला, राधा-कृष्णका प्रथम मिलन, कालीदमन लीला, राधाका पुनरागमन, चीरहरण, पनघट प्रस्ताव, यज्ञ-पत्नी लीला, गोवर्धन-लीला, दान लीला, रास लीला, मान लीला तथा दम्पति विहार, मध्यम मान लीला, बडी मान लीला, खण्डिता समय, हिण्डोल लीला, वसन्त लीला, उद्धव-ब्रज-आगमन और भ्रमरगीत तथा कुरुक्षेत्र मिलन 'सूरसागर'में वर्णित कृष्ण-लीलाके बृहत् गीति-प्रबन्धकी शृंखलाकी वे कड़ियाँ हैं, जिनके द्वारा कृष्ण-लीलाका वर्णन एक सम्यक् प्रबन्धका रूप प्राप्त करता है। कृष्ण-लीलाका यह प्रबन्ध मंगलाचरण और कृष्णावतारके हेतुका संक्षेपमें वर्णन करते हुए कृष्ण-जन्मके आनन्दोल्लासके चित्रणसे विधिवत् प्रारम्भ होता है।

मुख्य रूपमें कृष्ण-लीलाकी दो धाराएँ प्रवाहित होती

देखी जाती है—एकमें कृष्णके उन विस्मयकारी संहार-कार्योंका वर्णन है, जिनका प्रारम्भ पूतना-वधसे और अन्त कंस और उसके सहयोगियोंके संहारमें होता है। इस धारामें कृष्णका चरित्र अतिलौकिकताका संकेत करता है किन्तु उसकी प्रतीति ब्रजवासियोंको एक विशेष ढंगसे करायी गयी है, जिससे उनके मनमें कृष्णके प्रति आतंक और गौरवकी भावना जाग्रत् होकर उनके मानवीय प्रेमसम्बन्धोंके सहज भावको न दबा सके। ब्रजमें कृष्णके संहार-कार्य लीला-कौतुकके रूपमें चित्रित किये गये हैं। मथुरा और द्वारिकाके प्रवासमें भी कृष्ण द्वारा सम्पन्न संहार-कार्योंका वर्णन भी हुआ है परन्तु उस वर्णनमें सूरदासने किसी प्रकारकी भाव-तन्मयता नहीं दिखायी क्योंकि ब्रजवासी उस ओरसे पूर्णतया उदासीन हैं। कृष्णकी संहार और उद्धारसम्बन्धी लीलाओंमें जो उनका अवतारी रूप प्रकट हुआ है, उसके द्वारा उनकी आनन्दक्रीडाओंको चमत्कार प्राप्त होता है और ब्रजवासियोंके प्रेमसम्बन्धमें रहस्यात्मकता और अलौकिकताकी व्यंजना होती है।

कृष्ण-लीलाकी दूसरी धारामें कृष्णके शुद्ध परमानन्द रूपकी अभिव्यक्ति हुई है। इसमें कृष्णकी वे सम्पूर्ण लीलाएँ आ जाती हैं, जिन्हें सुख-क्रीडाएँ कह सकते हैं और जो वस्तुतः 'सूरसागर'की उत्कृष्ट भाव-सम्पत्तिका निर्माण करती हैं। कृष्णकी इन क्रीडाओंका भावात्मक विकास प्रमुखतया तीन दिशाओंमें होता है: एक ओर उनके द्वारा यशोदा, नन्द तथा ब्रजके अन्य वयस्क नर-नारियोंके हृदयमें कृष्णके प्रति अनुकम्पारतिकी विकास-वृद्धि होती है, दूसरी ओर कृष्णके सखाओंके हृदयमें उनके प्रति प्रेम-रतिका उदय और विकास होता है तथा तीसरी ओर ब्रजकी कुमारी, किशोरी और नवोढ़ा गोपियोंके मनमें मधुर अथवा कान्ता रतिका उदय और उत्तरोत्तर विकास होता है। विविध लीलाओंके द्वारा सूरदासने कृष्णके प्रति प्रेमके इन तीनों भावोंका जो अत्यन्त स्वाभाविक और मनोहारी चित्रण किया है, वह जहाँ उनकी उच्च भक्ति-भावनाको प्रमाणित करता है, वहाँ उनके काव्य-कौशलका भी उससे असन्दिग्ध प्रमाण मिलता है। कृष्णके संयोग समयके क्रीडा-विनोद तथा वियोग समयके दारुण दुःख—दोनोंका चित्रण करनेमें सूरदासने असंख्य मौलिक प्रसंगोंकी उद्भावना कर तथा मानव मनमें उदय होनेवाले असंख्य मनोरागोंका बिम्बात्मक चित्रण कर अपनी काव्य-प्रतिभाका जो परिचय दिया है, उसमें उनके सम्बन्धमें 'न भूतो न भविष्यति' की उक्ति चरितार्थ होती है। यदि महाकाव्यकी शास्त्रीय परिभाषामें बताये गये उसके बाह्य लक्षणोंका विचार न किया जाय तो सूरदासके इस गीति-प्रबन्धको महाकाव्य कहा जा सकता है। इसमें नायक, नायिका, प्रतिनायक, सखा, सखी अनेक पात्र, प्रधान कथा तथा अनेक प्रासंगिक कथाएँ, कथाकी एकसूत्रता, कथानकका आरम्भ, विकास, मध्य, चरम सीमा और उसका निश्चित परिणाममें अन्त, बाह्य-प्रकृतिके चित्रण आदि प्रबन्ध-काव्यके लक्षण उसे महाकाव्यकी कोटितक पहुँचानेमें समर्थ हैं। इस काव्यकी विलक्षण विशेषता यह है कि इसमें कथावस्तुका निर्माण करनेवाले विभिन्न कथानक पृथक् व्यक्तित्व रखते हुए भी सम्पूर्ण काव्यके अभिन्न अंग हैं तथा एक दूसरेपर निर्भर हैं। इसकी एक अन्य विशेषता यह भी है कि गीति-शैलीमें रचे जानेके कारण इसमें गीति और प्रबन्धके परस्पर विरोधी लगनेवाले तत्त्व समन्वित होकर एकाकार हो गये हैं (दि० 'सूरदास': ब्रजेश्वर वर्मा)। —ब्र० व०

सूरसागर सारावली (सूर सारावली)—सूरदासकी कृतियोंकी प्रामाणिकताके विवेचनमें 'सूरसागर सारावली'की चर्चा सभी विद्वानोंने की है परन्तु इस सम्बन्धमें अब भी मतभेद है कि इस रचनाको 'सूरसागर'के रचयिता सूरदास की प्रामाणिक कृति माना जाय अथवा नहीं। इसकी प्रामाणिकतामें सन्देह होनेका सबसे पहला कारण यह है कि इसकी कोई हस्तलिखित पोथी आज तक नहीं मिली। सूर-साहित्यके प्रसिद्ध विद्वान् प्रभुदयाल मीतल इसे सूरकी प्रामाणिक रचना मानते हैं। उन्होंने पता लगाया है कि 'सारावली'की प्राचीनतम प्रति, जो मुद्रित रूपमें ही प्राप्त है, सं० १८८० वि० (सन् १८२३ ई०) के गुजराती अनुवादके रूपमें मिलती है। इससे विदित होता है कि 'सारावली'की परम्परा १९वीं शताब्दी ईस्वीके पूर्वार्द्ध तक जाती है। उसके पूर्व 'सारावली'का कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता। 'चौरासी वैष्णवनकी वार्ता'के अन्तर्गत सूरकी 'वार्ता'में भी इसका उल्लेख नहीं हुआ। वार्ताओंमें परिवर्द्धन और उनकी व्याख्या करनेवाले पुष्टिमार्गके प्रसिद्ध विद्वान् गोसाईं हरिरायने भी, जो सूरदासके लगभग १०० वर्ष बाद हुए थे, 'सारावली'का कोई उल्लेख नहीं किया। हिन्दीमें 'सारावली'का प्राचीनतम संस्करण सं० १८९८ वि० में (सन् १८४१ ई०) प्रकाशित 'रागकल्पद्रुम'में छपे 'सूरसागर'के साथ मिला है। इसीका पुनर्मुद्रित रूप सं० १९२० वि० में (सन् १८६३ ई०) प्रकाशित नवलकिशोर प्रेसके 'सूरसागर'के प्रथम संस्करणमें मिलता है। 'सारावली'का तीसरा मुद्रित रूप सं० १९५३ वि० में (सन् १८९६ ई०) श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बईसे प्रकाशित 'सूरसागर'के प्रथम संस्करणमें प्राप्त होता है। इसके अनन्तर श्री वेंकटेश्वर प्रेससे 'सूरसागर'के पुनर्मुद्रणोंके साथ 'सारावली'का प्रकाशन बराबर होता रहा। उपर्युक्त तीनों रूपोंमें 'सारावली'का पाठ मूलतः समान है, केवल परवर्ती संस्करणोंमें शब्दोंको तत्सम रूपमें करके शुद्धीकरणकी प्रवृत्ति बढ़ती हुई दिखाई देती है।

जैसा कि इसके शीर्षक तथा उसके नीचे दिये गये सवा लाख पदोंके सूचीपत्र एवं अन्तमें दिये गये "सूर सागरस्य सारावली समाप्तम्' आदिसे सूचित होता है, 'सारावली'का उद्देश्य 'सूरसागर'का सार देना ही रहा है। यह बात 'सारावली'में प्राप्त इस कथनसे भी प्रमाणित होती है—"श्री वल्लभ गुरु तत्त्व सुनायो लीला भेद बतायो (छन्द ११०२) ता दिन तें हरि लीला गाई एक लक्ष्य पद बन्द। ताको सार सूर सारावली गावत अति आनन्द" (छन्द ११०३)। हरि लीला-गायनकी सार-अवली होनेके कारण ही इसे 'सूरसागर'का सूचीपत्र कहा गया है। निश्चय ही 'सूरसारावली' 'सूरसागर'की सारावलीके रूपमें ही रची गयी। वह उसी पर आधारित है और उसके अनेक शब्दों और पंक्तियोंको 'सारावली'में ज्यों का त्यों प्रयुक्त किया गया है परन्तु ऐसी होते हुए भी 'सूरसागर'

और उसकी इस तथाकथित 'सारावली'में अनेक अन्तर है। प्रस्तुत लेखकने अपने 'सूरदास' नामक ग्रन्थमें कुछ अन्तरों-की ओर विशेष रूपसे ध्यान आकर्षित किया है और यह निष्कर्ष निकाला है कि "'सारावली', 'सूरसागर' के पदोंका सूचीपत्र नहीं है, यह एक स्वतन्त्र रचना है, जिसकी कथावस्तुमें 'सूरसागर'की कथा-वस्तुसे घनिष्ट साम्य होते हुए भी उसे सूरसागरका संक्षेप भी नहीं कह सकते"। 'सारावली'को प्रामाणिक माननेवाले विद्वान् मीतलजीने इस निष्कर्षको अक्षरशः स्वीकार किया है परन्तु उनका कथन है कि 'सारावली' वस्तुतः एक स्वतन्त्र रचना है। वह न तो 'सूरसागर'का सार है और न उसका सूचीपत्र, बल्कि उसकी रचना 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम'के आधारपर हुई है। "सूरदासने हरि-लीलाविषयक जिन कथात्मक और सेवात्मक पदोंका गायन किया, उन्हींके सैद्धान्तिक सार रूपमें उन्होंने 'सारावली'की रचना की"। अपनी इसी मान्यताके आधारपर मीतलजीने उसके प्रसिद्ध नाम 'सूरसागर सारावली'के स्थानपर उसे 'सूर सारावली' कहना अधिक उचित समझा है परन्तु सारावलीके नाम के संशोधन तथा उसके वर्ण्य-विषयके सम्बन्धमें मीतलजी की मौलिक मान्यताका समर्थन 'सारावली'के वर्तमान रूप से नहीं होता।

'सारावली'के प्रारम्भमें "बन्दौं श्री हरिपद सुखदाई"की टेक वाला 'सूरसागर'का प्रसिद्ध प्रारम्भिक पद दिया गया है। उसके बाद सार और सरसी नामके ११०७ छन्द हैं। प्रारम्भमें पूर्ण ब्रह्म प्रकट पुरुषोत्तमके नित्य विहारका उल्लेख करके सृष्टि विस्तारका संक्षेपमें कथन हुआ है। सृष्टि रचनाको कविने होली खेलनेके रूपमें प्रस्तुत किया है। २४ अवतारोंका संक्षेपमें वर्णन करते हुए रामावतार का विस्तारसे वर्णन किया गया है। रामावतारके उपरान्त अन्य अवतारोंका उल्लेख करके कृष्णावतारकी भूमिका देते हुए कृष्ण-लीलाका क्रमिक वर्णन हुआ है। कृष्ण-लीलाके वर्णनमें 'सूरसागर'की तुलनामें 'सारावली'में अनेक नवीन बातें पाई जाती है परन्तु उन सबमें सबसे अधिक रोचक यह है कि 'भागवत'में वर्णित दशम स्कन्ध पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्धकी सम्पूर्ण कथा कहनेके बाद राधा-कृष्णकी विहार-लीलाका पृथक् रूपमें वर्णन किया गया है। अन्तमें 'सारावली'के पठन-पाठनका महत्त्व बताते हुए कहा गया है कि जो इस 'सरस सवत्सर लीला'को गायेंगे और युगल-चरणको चित्तमें धारण करेंगे, वे "गर्भवास बन्दी खानेमें" फिर नहीं आयेंगे। इस अन्तिम कथन तथा ग्रन्थके अन्तमें दिये हुए "इति श्री सूरदासजी कृत संवत्सर लीला तथा सवा लाख पदोंका सूचीपत्र समाप्त" कथनसे सूचित होता है कि 'सूरसागर'का सार देनेके अतिरिक्त इस रचना-का उद्देश्य संवत्सर-लीलाका वर्णन करना भी है। पुष्टिमार्गीय मन्दिरोंमें श्री कृष्णके स्वरूपोंकी 'नित्य सेवा' तथा वर्ष भरके व्रतोत्सवोंकी 'सेवा' श्रीकृष्णकी लीलाओंके आधारपर निश्चित करके चलाई गयी थी। वार्षिक व्रतोत्सवोंकी सेवाको ही संवत्सर-लीलाकी सेवा कहा गया है। 'सूरसागर सारावली'की रचनाका उद्देश्य संवत्सरके व्रतोत्सवोंकी कृष्ण-लीलाके आधारपर सूची देना ही है।

भाषा और शैलीकी दृष्टिसे 'सारावली'का अधिक महत्त्व नहीं है। उसकी भाषा-शैली और 'सूरसागर'की भाषा-शैली-में पर्याप्त अन्तर है। दोनोंके दृष्टिकोणोंमें भी बहुत अन्तर है। काव्य गुणोंकी दृष्टिसे भी 'सारावली'का कोई महत्त्व नहीं परन्तु पुष्टिमार्गमें उसका साम्प्रदायिक महत्त्व असंदिग्ध है कदाचित् इसी कारण सूर-साहित्यके अनेक विद्वान् उसे सूरकी प्रामाणिक रचना माननेका लोभ नहीं छोड़ पाते। परन्तु इधर उसकी प्रामाणिकतामें विद्वानोंने किंचित् सन्देह प्रकट करना प्रारम्भ किया है। डा० प्रेमनारायण टण्डनने तो उसे पूर्ण रूपसे अप्रामाणिक सिद्ध करनेके लिए अनेक तर्क दिये हैं।

'सूरसागर'के नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित संस्करणके साथ 'सारावली' नहीं दी गयी है। श्री वेंकटेश्वर प्रेसके संस्करणका पुनर्मुद्रण रुक गया था, अतः 'सूरसागर सारावली', प्रायः दुर्लभ हो गयी थी परन्तु प्रभुदयाल मीतलने सं० २०१४ वि० (सन् १९५७ ई०)में 'सारावली'-का 'सूर सारावली' नामसे एक अच्छा सुसम्पादित संस्करण प्रकाशित कराया है, जिससे 'सारावली'का अध्ययन सुलभ हो गया है।

[सहायक ग्रन्थ—अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय : डा० दीनदयालु गुप्त, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग; सूरदास : व्रजेश्वर वर्मा, हिन्दी परिषद्, विश्वविद्यालय इलाहाबाद; सूर निर्णय : प्रभुदयाल मीतल और द्वारकादास पारीख, साहित्य संस्थान, मथुरा; सूर सारावली : प्रभुदयाल मीतल, साहित्य संस्थान, मथुरा।] —व्र० व०

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'–हिन्दीके छायावादी कवियोंमें सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला कई दृष्टियोंसे विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। उनका व्यक्तित्व अतिशय विद्रोही और क्रान्तिकारी तत्त्वोंसे निर्मित हुआ है। उसके कारण वे एक ओर जहाँ अनेक क्रान्तिकारी परिवर्तनोंके स्रष्टा हुए, वहाँ दूसरी ओर परम्पराभ्यासी हिन्दी-काव्य-प्रेमियों द्वारा अरसे तक सबसे अधिक गलत भी समझे गये। उनके विविध प्रयोगों—छन्द, भाषा, शैली, भावसम्बन्धी नव्यतर दृष्टियोंने नवीन काव्यको दिशा देनेमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योग दिया। इसलिए घिसी-पिटी परम्पराओंको छोड़कर नवीन शैलीके विधायक कविका पुरातनतापोषक पीढ़ी द्वारा स्वागतका न होना स्वाभाविक था। पर प्रतिभाका प्रकाश उपेक्षा और अज्ञानके कुहासेसे बहुत देर तक आच्छन्न नहीं रह सकता।

'निराला'का जन्म महिषादल स्टेट मेदनीपुर (बंगाल)में सन् १८९६ ई०की वसन्त पंचमीको हुआ था। यों इनका अपना घर उन्नाव जिलेके गढ़ाकोला गाँवमें है। बंगालमें बसनेका परिणाम यह हुआ कि बंगला एक तरहसे इनकी मातृभाषा हो गयी। मैट्रीकुलेशन कक्षामें पहुँचते-पहुँचते इनकी दार्शनिक रुचिका परिचय मिलने लगा। १६-१७की अवस्थासे ही इनके जीवनमें विपत्तियाँ आरम्भ हो गयीं पर अनेक प्रकारके दैवी, सामाजिक और साहित्यिक संघर्षोंको झेलते हुए भी इन्होंने कभी अपने लक्ष्यको नीचा नहीं किया। माँ पहले ही गत हो चुकी थीं, पिताका भी असामयिक निधन हो गया। इनफ्लुएँजाके विकराल प्रकोपमें घरके अन्य प्राणी भी चल बसे। पत्नीकी मृत्युसे तो

ये टूटने गये। पर कुटुम्बके पालन-पोषणका भार स्वयं झेलते हुए वे अपने मार्गसे विचलित नहीं हुए। इन विपत्तियोंसे त्राण पानेमें इनके दार्शनिकने अच्छी सहायता पहुँचायी।

सन् १९१६ई०में 'निराला'की अत्यधिक प्रसिद्ध और लोकप्रिय रचना 'जुहीकी कली' लिखी गयी। यह उनकी प्राप्त रचनाओंमें पहली रचना है। यह उस कविकी रचना है, जिसने 'सरस्वती' और 'मर्यादा'की फाइलोंसे हिन्दी सीखी, उन पत्रिकाओंके एक-एक वाक्यको संस्कृत, बंगला और अंग्रेजी-व्याकरणके सहारे समझनेका प्रयास किया। इस समय वे महिषादलमें ही थे। 'रवीन्द्र कविता कानन'के लिखनेका समय यही है। सन् १९१६मे इनका 'हिन्दी-बंगलाका तुलनात्मक व्याकरण' 'सरस्वती'मे प्रकाशित हुआ।

एक सामान्य विवादपर महिषादलकी नौकरी छोड़कर वे घर वापस चले आये। कलकत्तासे प्रकाशित होनेवाले रामकृष्ण मिशनके पत्र 'समन्वय'में वे सन् १९२२में चले गये। 'समन्वय'के सम्पादन-कालमे उनके दार्शनिक विचारोंके पुष्ट होनेका बहुत ही अच्छा अवसर मिला। इस कालमें जो दार्शनिक चेतना उनको प्राप्त हुई, उससे उनकी काव्यशक्ति और भी समृद्ध हुई। सन् १९२३-२४ ई०में महादेव बाबूने उन्हें 'मतवाला'के सम्पादक-मण्डलमे बुला लिया। फिर तो 'मतवाला'में उनकी रचनाएँ धड़ल्लेसे निकलने लगीं। उनकी काव्य-प्रतिभाको प्रकाशमें ले आनेका सर्वाधिक श्रेय 'मतवाला'को ही है। 'मतवाला'में भी ये २-३ वर्षों तक ही रह पाये। इस कालकी लिखी गयी अधिकांश कविताएँ 'परिमल'में संगृहीत हैं।

सन् १९२७-३० ई०तक वे बराबर अस्वस्थ रहे। फिर स्वेच्छासे गंगा-पुस्तक-मालाका सम्पादन तथा 'सुधा'में सम्पादकीयका लेखन करने लगे। सन् १९३० से '४२ तक उनका अधिकांश समय लखनऊमें ही बीता। यह समय उनके घोर आर्थिक संकटका काल था।

इस समय जीविकोपार्जनके लिए उन्हें जनताके लिए लिखना पड़ता था। सामान्य जनरुचि कथा-साहित्यके अधिक अनुकूल होती है। उनके कहानी-संग्रह 'लिली', 'चतुरी चमार', 'सुकुल की बीबी' (१९४१ ई०) और 'सखी'की कहानियाँ तथा 'अप्सरा', 'अलका', 'प्रभावती', (१९४६ ई०) 'निरुपमा' इत्यादि उपन्यास उनके अर्थ-संकटके फलस्वरूप प्रणीत हुए। वे समय-समयपर फुटकल लेख भी लिखते रहे। इन लेखोंका संग्रह 'प्रबन्ध पद्म'के नामसे इसी समय प्रकाशित हुआ।

इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वे जनरुचिके कारण अपने धरातलसे उतरकर सामान्य भूमिपर आ गये। उनके काव्यगत प्रयोग चलते रहे। सन् १९३६ ई० मे नये स्वर-ताल युक्त उनके गीतोंका संग्रह 'गीतिका' नामसे प्रकाशित हुआ। दो वर्ष बाद अर्थात् सन् १९३८ ई०में उनका 'अनामिका' काव्य-संग्रह प्रकाशमें आया। यह संग्रह सन् १९२२ ई०में प्रकाशित 'अनामिका' संग्रहसे बिलकुल भिन्न है। सन् १९३८ ई०में ही उनके अन्तर्मुखी प्रबन्ध-काव्य 'तुलसीदास'का भी प्रकाशन हुआ।

हिन्दीकाव्य-क्षेत्रमें 'निराला'का पदार्पण मुक्त वृत्तके साथ होता है। वे इस वृत्तके प्रथम पुरस्कर्त्ता हैं। वास्तवमें 'निराला'की उद्दाम भाव-धाराको छन्दके बन्धन बाँध नहीं सकते थे। गिनी-गिनाई मात्राओं और अन्त्यानुप्रासोंके बँधे घाटोंके बीच उनका भावोल्लास नहीं अँट सकता था। ऐसी स्थितिमें काव्याभिव्यक्तिके लिए मुक्त वृत्तकी अनिवार्यता स्वतः सिद्ध है। उन्होंने 'परिमल'की भूमिकामें लिखा है—"मनुष्योंकी मुक्तिकी तरह कविताकी भी मुक्ति होती है। मनुष्योंकी मुक्ति कर्मके बन्धनसे छुटकारा पाना है और कविताकी मुक्ति छन्दोंके शासनसे अलग हो जाना है। जिस तरह मुक्त मनुष्य कभी किसी तरह दूसरोंके प्रतिकूल आचरण नहीं करता, उसके तमाम कार्य औरोंको प्रसन्न करनेके लिए होते हैं फिर भी स्वतन्त्र। इसी तरह कविताका भी हाल है।"

'मेरे गीत और कला' शीर्षक निबन्धमें उन्होंने लिखा है—"भावोंकी मुक्ति छन्दोंकी भी मुक्ति चाहती है। यहाँ भाषा, भाव और छन्द तीनों स्वच्छन्द हैं।" रीतिकालकी कृत्रिम छन्दोबद्ध रचनाके विरुद्ध यह नवीन उन्मेषशील काव्यकी पहली विद्रोह-वाणी है।

भाव-व्यंजनाकी दृष्टिसे मुक्तछन्द कोमल और परुष दोनों प्रकारकी भावाभिव्यक्तिके लिए समान रूपसे समर्थ हैं, यद्यपि 'निराला'का कहना है कि, "यह कविता स्त्रीकी सुकुमारता नहीं, कवित्वका पुरुष गर्व है" किन्तु 'जुहीकी कली' जैसी उत्कृष्ट कोटिकी शृंगारिक रचना इसी वृत्तमें लिखी गयी है।

'निराला' द्वारा प्रस्तुत मुक्त छन्दका आधार कवित्त छन्द है। इसमे कविको भावानुकूल चरणोंके प्रसारकी खुली छूट है। भावकी पूर्णताके साथ वृत्त भी समाप्त हो जाता है। आज तो मुक्त वृत्त काव्य-रचनाका मुख्य छन्द हो गया है पर अपनी विशिष्ट नादयोजनाके कारण 'निराला'ने उसमे प्रभावपूर्ण संगीतात्मकता ला दी है। 'शेफालिका', 'जागो फिर एक बार', 'महाराज जयसिंहको शिवाजीका पत्र' आदि रचनाएँ इसी छन्दमे लिखी गयी हैं। 'पंचवटी प्रसंग'—गीति-नाट्यके लिए इससे अधिक उपयुक्त और कोई छन्द नहीं हो सकता था। ये समस्त रचनाएँ 'परिमल'के तृतीय खण्डमे संगृहीत हैं।

'परिमल' के द्वितीय खण्डकी रचनाएँ स्वच्छन्द छन्दमें लिखी गयी हैं, जिसे 'निराला' मुक्तगीत कहते हैं। इन गीतोंमे तुकका आग्रह तो है पर मात्राओंका नहीं। पन्तके 'आँसू', 'उच्छ्वास' और 'परिवर्तन' भी इसी छन्दमें लिखे गये हैं। 'परिमल'के प्रथम खण्डमे सममात्रिक तुकान्त कविताएँ हैं। मुक्त वृत्तात्मक कविताएँ आख्यानप्रधान है तो मुक्तगीत चित्रणप्रधान और मात्रिक छन्दमें लिखी गयी कविताओंमे भाव और कल्पनाकी प्रधानता देखी जा सकती है। उनकी बहु-वस्तुस्पर्शिनी प्रतिभाका परिचय प्रारम्भमे ही मिलने लगता है—विशेष रूपसे सड़ी-गली मान्यताओंके प्रति तीव्र विद्रोह तथा निम्नवर्गके प्रति गहरी सहानुभूति उनमें प्रारम्भसे दिखाई देती है।

छायावादी कवियोंने मुख्यतः प्रगीतोंकी रचना की। ये प्रगीत गेय तो होते हैं पर ये शास्त्रानुमोदित ढंगपर

नहीं गाये जा सकते। नाद-योजनाकी ओर अधिक झुकाव होनेके कारण 'निराला'ने नये स्वर-तालसे युक्त गीतोंकी सृष्टि की। अंग्रेजी स्वर-मैत्रीका प्रभाव बंगलाके गीतोंपर पड़ चुका था, उसके रंग-ढंगपर बंगला गीतोंकी स्वर-लिपियाँ भी तैयार की गयीं। हिन्दीके कवियोंमें 'निराला' इस दिशामें भी अग्रसर हुए। उन्हें हिन्दी संगीतकी शब्दावली और गानेके ढंग दोनों खटकते थे। इसके फलस्वरूप 'गीतिका'की रचना हुई।

इनके गीत गायकोंके गीतोंकी भाँति राग-रागिनियोंकी रूढ़ियोंसे बँधे हुए नहीं हैं। उच्चारणका नया आधार लिये हुए सभी गीत एक अलग भूमिपर प्रतिष्ठित हैं। इनके स्वर, ताल और लय अंग्रेजी गीतोंसे प्रभावित हैं। पियानोपर गाये जानेवाले धार्मिक गीतोंकी झलक इन गीतोंमें मिलती है। इसलिए इन गीतोंकी गायन-पद्धति और भाव-विन्यासमें पवित्रताका स्पष्ट संकेत मिलता है। यद्यपि 'गीतिका'की मूल भावना शृंगारिक है फिर भी बहुतसे गीतोंमें माधुर्य भावसे आत्मनिवेदन किया गया है। जगह-जगह मनोरम प्रकृति-वर्णन तथा उत्कृष्ट देश-प्रेमका चित्रण भी मिलता है। इस संग्रहकी एक बड़ी विशेषता यह भी है कि इसमें संगीतात्मकताके नामपर काव्य-पक्षको कहींपर भी विकृत नहीं होने दिया गया है। १९३५ ई० से १९३८ ई०तक 'निराला'की काव्य-रचनाको प्रौढ़-काल कहा जा सकता है। इस बीच लिखी हुई कविताएँ 'अनामिका'में संगृहीत हैं। 'अनामिका'का प्रकाशन १९३८ ई०में हुआ। 'अनामिका'में संगृहीत अधिकांश रचनाएँ 'निराला'की उत्कृष्ट भाव-व्यंजना तथा कलात्मक प्रौढ़ताकी द्योतक हैं। 'प्रेयसी', 'रेखा', 'सरोजस्मृति', 'रामकी शक्तिपूजा' आदि उनकी श्रेष्ठतम रचनाएँ हैं। 'सरोजस्मृति' हिन्दीका सर्वश्रेष्ठ शोक-गीत है तो 'रामकी शक्तिपूजा' अप्रतिम महाकाव्यात्मक कविता। 'सरोजस्मृति' में करुणाकी पृष्ठभूमिपर शृंगार, वात्सल्य, हास्य, व्यंग्य इत्यादि अनेक भावोंका काव्यात्मक सगुम्फन किया गया है। नाटकीय गुणोंसे ओत-प्रोत होनेके कारण वह और भी प्रभावपूर्ण हो उठी है। काव्यमें कर्त्ताके जिस निर्लिप्त व्यक्तित्वका महत्त्व टी० एस० ईलियटने स्थापित किया है, वह इस कवितामें अपनी चरम ऊँचाईपर पहुँचा हुआ है। 'रामकी शक्तिपूजा'में कविका पौरुष और ओज चरमोत्कर्षके साथ अभिव्यक्त हुआ है। महाकाव्यमें भावगत औदात्यके अनुकूल कलागत औदात्य आवश्यक है। इस कवितामें दोनों प्रकारकी उदात्तताओंका नीर-क्षीर सम्मिश्रण हुआ है।

'तुलसीदास'में कथाकी अपेक्षा चिन्तनका विस्तार अधिक है। इस प्रबन्धमें तुलसीके मानस पक्षका उद्घाटन करते हुए तत्कालीन परिवेशका पूरा सहारा लिया गया है। चित्रकूट काननकी अलौकिक छवि कविकी चिन्ताधाराका प्रथम प्रेरणा केन्द्र है। प्रकृतिका जो चित्र कविके सम्मुख प्रस्तुत हुआ है, उसके दो पक्ष हैं—प्रकृतिका स्वयंका पक्ष और तत्कालीन समाजका निरूपण। कविने इन दोनों पक्षोंका निर्वाह बहुत ही कुशलतापूर्वक किया है। भारतके सांस्कृतिक ह्रासके पुनरुद्धारकी प्रेरणा तुलसीको प्रकृतिके माध्यम से ही मिलती है। इसे देखकर उनकी अन्तर्वृत्तियाँ उन्मथित हो उठीं। इन्हीं अन्तर्वृत्तियोंका निरूपण पुस्तक की मूल चिन्ताधारा है। इस प्रबन्धमें भी उनके शिल्पीक रूप सहज ही भासित हो जाता है। छन्दोंकी बंदिश रूपकोंकी विशद योजना, नवीन शब्द-विन्यास आदि उनके अपने हैं। पर इस ग्रन्थमें ऐसे शब्दोंका व्यवहार भी हुआ है, जो अर्थकी दृष्टिसे इसे दुरूह बना देते हैं फिर भी जो लोग काव्यमें बुद्धि-तत्त्वकी अहमियत स्वीकार करेंगे, वे इसे निर्विवाद रूपसे एक श्रेष्ठ रचना मानेंगे।

प्रौढ़ कृतियोंकी सर्जनाके साथ ही 'निराला' व्यंग्य-विनोदपूर्ण कविताएँ भी लिखते रहे हैं, जिनमेंसे कुछ 'अनामिका'मे संगृहीत हैं पर इसके बाद बाह्य परिस्थितियोंके कारण, जिनमें उनके प्रति परम्परावादियोंका उग्र विरोध भी सम्मिलित है, उनमें विशेष परिवर्तन दिखाई पड़ने लगा। 'निराला' और पन्त मूलतः अनुभूतिवादी कवि हैं। ऐसे व्यक्तियोंको व्यक्तिगत और सामाजिक परिस्थितियाँ बहुत प्रभावित करती हैं। इसके फलस्वरूप उनकी कविताओंमें व्यंग्योक्तियोंके साथ-साथ निषेधात्मक जीवनकी गहरी अभिव्यक्ति होने लगी। 'कुकुरमुत्ता' तक पहुँचते-पहुँचते वह प्रगतिवादके विरोधमें तर्क उपस्थित करने लगता है। उपालम्भ और व्यंग्यके समाप्त होते-होते कविमें विषादात्मक शान्ति आ जाती है। अब उनके कथनमें दुनियाके लिए सन्देश भगवान्‌के प्रति आत्मनिवेदन है और है साहित्यिक-राजनीतिक महापुरुषोंके प्रशस्ति अंकनका प्रयास। 'अणिमा' जीवनके इन्हीं पक्षोंकी द्योतक है पर इसकी कुछ अनुभूतियोंकी तीव्रता मनको भीतरसे कुरेद देती है। 'बेला' और 'नये पत्ते'में कविकी मुख्य दृष्टि उर्दू और फारसीके बन्दोंको हिन्दीमें ढालनेकी ओर रही है। इसके बादके उनके दो गीत-संग्रहों—'अर्चना' और 'गीतगुंज' मे कहींपर गहरी आत्मानुभूतिकी झलक है तो कहीं व्यंग्योक्तियाँ। उनके व्यंग्यकी बानगी देखनेके लिए उनकी दो गद्यकी रचनाओं 'कुल्लीभाट' और 'बिल्लेसुर बकरिहा'को भूला नहीं जा सकता।

सब मिलाकर 'निराला' भारतीय संस्कृतिके द्रष्टा कवि हैं—वे गलित रूढ़ियोंके विरोधी तथा संस्कृतिके युगानुरूप पक्षोंके उद्घाटक और पोषक रहे हैं पर काव्य तथा जीवनमें निरन्तर रूढ़ियोंका मूलोच्छेद करते हुए इन्हें अनेक संघर्षोंका सामना करना पड़ा है। मध्यम श्रेणीमें उत्पन्न होकर परिस्थितियोंके घात-प्रतिघातसे मोर्चा लेता हुआ आदर्शके लिए सब कुछ उत्सर्ग करनेवाला महापुरुष जिस मानसिक स्थितिको पहुँचा, उसे बहुतसे लोग व्यक्तित्व की अपूर्णता कहते हैं पर जहाँ व्यक्तिके आदर्शों और सामाजिक हीनताओंमें निरन्तर संघर्ष हो, वहाँ व्यक्तिका ऐसी स्थितिमें पड़ना स्वाभाविक ही है। हिन्दीकी ओरसे 'निराला'को यह बलि देनी पड़ी। जाग्रत और उन्नतिशील साहित्यमें ही ऐसी बलियाँ सम्भव हुआ करती हैं—प्रतिगामी और उद्देश्यहीन साहित्यमें नहीं।

[सहायक ग्रन्थ—क्रान्तिकारी कवि 'निराला': बच्चन सिंह।] —ब० सिं०

सूर्यकांत शास्त्री—सरसवा जिला सहारनपुरमें १५ जुलाई,

१९०१ ई० को जन्म हुआ। पंजाब एवं आक्सफोर्ड विश्वविद्यालयोंमें उच्च शिक्षा प्राप्त की। पंजाब विश्वविद्यालयसे संस्कृतमें एम० ए०; डी० फिलकी उपाधि प्राप्त की तथा आक्सफोर्डसे डी० लिट्० की। आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमें संस्कृत-पाली विभागके अध्यक्ष रहे। अब तक हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत आदिमें मौलिक या अनूदित पचाससे अधिक पुस्तकें निकल चुकी हैं। 'साहित्य मीमांसा' (१९४३ ई०), 'हिन्दी साहित्यका विवेचनात्मक इतिहास' (१९३० ई०), 'महात्मा गान्धी : ए क्रिटिकल स्टडी' (१९५० ई०), 'दि फ्लड लीजेण्ड इन संस्कृत लिटरेचर' (१९५१ ई०) आदि उनकी प्रमुख पुस्तकें हैं। अंग्रेजी, फ्रेंच आदि भाषाओंसे उन्होंने कतिपय अनुवाद भी किये हैं। हिन्दी-साहित्यकी दृष्टिसे उनका महत्त्वपूर्ण कार्य 'हिन्दी साहित्यका विवेचनात्मक इतिहास' है। इसमें रामचन्द्र शुक्लके उपरान्त की गयी शोध-सामग्री का नियोजन तो हुआ ही है, साथ ही अंग्रेजी-साहित्यमे यत्र-तत्र तुलनाकी भी चेष्टा की गयी है। इस इतिहासमें भाषाका अलंकरण कभी कभी मूल कथ्यको आच्छादित करता प्रतीत होता है। 'साहित्य मीमांसा'मे काव्यशास्त्रीय समस्याओंको विद्यार्थियोंके लिए उपस्थित किया गया है। —दे० शं० अ०

सेनापति—इस कविकी जन्म-तिथि अथवा मृत्यु-तिथि दोनों ही अज्ञात हैं। इनकी कृति 'कवित्त रत्नाकर'का रचनाकाल संवत् १७०६ वि० (सन् १६४९ ई०) है। यह ग्रन्थ कवि की प्रौढ़ कृति है। इसके अनेक छन्दोंसे प्रतीत होता है कि कवि अपनी जीवन-यात्राके अन्तिम चरणमे था। अतः यदि इस रचनाकी समाप्तिके समय कविकी आयु ६०-६५ वर्ष मान ली जाय तो उनका जन्म-काल सन् १५८४-८८ ई० के आस-पास माना जा सकता है और मृत्यु भी सत्रहवीं शताब्दी ईस्वीके अन्तिम चरणके लगभग हुई होगी।

सेनापतिके जीवनके सम्बन्धमे बहुत ही कम जानकारी प्राप्त है। 'कवित्त रत्नाकर'की पहली तरंगके पाँचवे छन्दसे ज्ञात होता है कि इनके पितामहका नाम परशुराम दीक्षित था। यज्ञादिक करनेके कारण वे जन-जीवनमे प्रशंसापात्र बने थे। गंगाको धारण करनेवाले शिवजीके समान ही गंगाधर नामक इनके पिता भी लब्धप्रतिष्ठ व्यक्ति थे। पिता गंगाधरने गंगा तटपर बसी हुई 'अनूप' (नगरी) को पाया था—"गंगा तीर बसति अनूप जिनि पाई है"। इस पंक्तिके आधारपर यह कल्पना की जा सकती है कि अनूप नगरी (अनूपशहर ?) इनके पिताको किसी व्यक्तिसे प्राप्त हुई थी।

जनश्रुति अनूपशहर (जिला बुलन्दशहर) को सेनापति का निवासस्थान मानती आ रही है। इस प्रसिद्धिके प्रकाश में उपर्युक्त पंक्तिका अभिधेयार्थ ग्रहणकर यही मानना आकर्षक प्रतीत होता है कि किसी राजाने उनके पिताको अनूपशहर दिया होगा किन्तु इस प्रकारकी धारणा भ्रमपूर्ण है। बुलन्दशहर गजेटियर (पृ० १४८) से ज्ञात होता है कि सन् १६१० ई० में अनूपसिंह बड़गूजरने बड़ी वीरताके साथ एक चीतेका सामना करके मुगल सम्राट् जहाँगीरकी प्राण रक्षा की थी और फलस्वरूप 'अनीराय सिंह-दलन'की उपाधिके साथ ही अनूपशहरका परगना भी प्राप्त किया था। यह घटना 'कवित्त रत्नाकर'के रचना-कालसे ३९ वर्ष पूर्व की है। अतः कल्पना की जा सकती है कि अनूपसिंह बड़गूजरने जहाँगीरसे अनूपशहर प्राप्त करनेके कुछ समय बाद ही उसे सेनापतिके पिता गंगाधर-को दे दिया होगा, लेकिन यह कल्पना भी असंगत है। बुलन्दशहर गजेटियरके अनुसार अनूपसिंहकी सम्पत्ति उनसे पाँच पीढ़ी बाद, उनके वंशज अचलसिंहके तारासिंह तथा माधो सिंह नामके दो बेटोंमें विभक्त हुई थी और इस बटवारेमें तारासिंहको अनूपशहर मिला था। इस इतिवृत्तके प्रकाशमे यह मानना असंगत जान पड़ता है कि सेनापतिके पिताने किसीसे अनूपशहरकी आबादी दानस्वरूप प्राप्त की होगी।

अनूपशहर सेनापतिका जन्म-स्थान था। यदि यह जनश्रुति निराधार नहीं है तो "गंगा तीर बसति अनूप जिनि पाई है"का यही अर्थ लेना पड़ेगा कि गंगा तटपर बसनेवाले अनूपशहरको जिन्होंने अपने निवास-स्थानके रूपमें प्राप्त किया था। इसके विपरीत यदि उपर्युक्त जनश्रुति निर्मूल है, तब तो उक्त पंक्तिका यही अर्थ करना पड़ेगा कि जिसके पिता गंगाधरने गंगा-तटपर बसी हुई (किसी) अनुपम बस्ती को पाया था अथवा निवास-स्थानके रूपमे पाया था।

'कवित्त रत्नाकर'की पहली तरंगके छन्द ५६ की पहली पंक्ति है—"सूर बली बीर जसुमति कौ उज्यारौ लाल, चित्त कौ करत चैन बैनहिं सुनाई के"। 'सूर बली बीर'के पाठान्तरको देखते हुए इस पंक्तिमें सूर्यबली, बलबीर अथवा बीरबल नामक किसी राजाकी प्रशंसा मानी जायगी। हो सकता है कि इस प्रकार-का उनका कोई संरक्षक रहा हो। मिश्रबन्धुओंका अनुमान है कि सेनापतिका सम्बन्ध किसी मुसलमानी दरबारसे था। 'कवित्त रत्नाकर'की पाँचवी तरंगके छन्द ३३ की अन्तिम पंक्ति—"चारि बरदानि तजि पाई कम-लेच्छनके, पाइक मलेच्छनके काहे को कहाइए"—के आधारपर ही सम्भवतः इस प्रकारका अनुमान किया गया है पर ऐसे कथन व्यक्तिगत न होकरके सामान्य रूपसे अथवा किसी दूसरेको सम्बोधित करके भी कहे जा सकते है।

सेनापति प्रधानतया रामभक्त ही थे। 'कवित्त रत्नाकर' के तीन मंगलाचरणसम्बन्धी छन्दोंसे इस बातका संकेत मिलता है। इसकी चौथी तरंगमें राम-चरित वर्णित है। अन्यत्र भी रामका वर्णन कविने बड़े उत्साहके साथ किया है। कुछ स्थलोंपर कृष्ण तथा शिवपर लिखे गये छन्द भी मिलते है। 'शिवसिंह सरोज'के अनुसार सेनापतिने 'क्षेत्र संन्यास' ले लिया था और उसके बाद वे वृन्दावनमें ही रहते थे। पाँचवीं तरंगके छन्द २१ के आधारपर ही क्षेत्र संन्यासकी कल्पना की गयी जान पड़ती है—"सेनापति चाहत है सकल जनम भरि, वृन्दावन सीमा तें न बाहिर निकसिबो। राधा-मन-रंजन की सोभा नैनकंजन की, माल गरे गुंजन की कुंजन कौ बसिबौ।"

सेनापतिके स्वाभिमानी एवं उग्र व्यक्तित्वकी स्पष्ट

व्यंजना उनके काव्यमें यत्र-तत्र देखी जाती है। वे आत्म-सम्मानको ही विशेष महत्त्व देते थे—संकटापन्न होनेपर भी दुर्जनोंसे याचना करना उन्हें असह्य था। निरादृत करनेवाले व्यक्तिके प्रति वे काष्ठसे अधिक शुष्क बन सकते थे। सांसारिक आकर्षणोंके कारण धैर्य खो देना तथा उनकी प्राप्तिके लिए लालायित रहना—उनके स्वभावके प्रतिकूल था (दि० पाँचवीं तरंग, छन्द ४)। अपने श्लिष्ट काव्यकी महत्ता द्योतित करनेके लिए उन्होंने जगह-जगह गर्वोक्तियाँ की हैं। उनकी वाणीकी मर्यादा इसीमे है कि उससे विविध प्रकारके अर्थ बरबस निकलते चले आते हैं। भक्ति-भावनाके क्षेत्रमें भी यह स्वाभिमानी प्रकृति दबी न रह सकी। यदि कर्मानुसार ही संसारमे मोक्ष प्राप्ति सम्भव है और आराध्य देवकी कृपाका उससे कोई संबंध नही है, तब कवि अपनेको ही सृष्टिकर्ता क्यों न मान ले—"आपने करम करिहौं ही निबहौंगो, तौप हौ ही करतार, करतार तुम काहे के?" (तरंग ५, छन्द २९)।

सेनापतिका रचनाकाल भक्तिकाल तथा रीतिकालके संधिस्थलमें पडता है। फलस्वरूप भक्ति और रीति परम्पराओंकी झलक उनके काव्यमे प्रचुरतासे परिलक्षित होती है। भक्ति तथा वैराग्यसम्बन्धी रचनाओंको वे उसी उत्साहसे प्रस्तुत करते है, जिस उत्साहसे वे शृंगारिक रचनाओंका प्रणयन करते हैं, काव्यकी बाहरी साज-सज्जाका मोह दोनो प्रकारकी रचनाओंको प्रभावित करता है। वर्ण्य-विषयको देखते हुए उनकी लगभग आधी रचना भक्तिकी ओर तथा आधी रीतिकी ओर झुकती जान पडती है किन्तु उनकी अलंकारप्रियताकी अभिरुचि समस्त रचनामें साद्यन्त व्याप्त है। फलतः वे रीतिकालीन प्रवृत्तियोंके अधिक निकट जान पड़ते हैं। यह अवश्य है कि उन्होंने रीतिकालकी सुनिश्चित परम्पराके अनुरूप लक्षण-उदाहरणकी शैलीमें अपने छन्दोंको नहीं सजाया है।

काव्य-रूपकी दृष्टिसे भी सेनापति रीतिकालके अधिक निकट पडते हैं। उनका ग्रन्थ स्फुट छन्दोंका संग्रह है। चौथी तरंगमे यद्यपि रामचरितका विस्तार किया गया है किन्तु कविने प्रारम्भमे ही कथा-क्रमको प्रणाम कर लिया है और रामचरितके कुछ प्रमुख स्थलोंपर ही रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। रामचरितकी व्यापकतामे भी कविने प्रधान रूपसे रामके शौर्य और उनकी भक्त-वत्सलतापर ही विशेष ध्यान दिया है। सीता-स्वयंवर, परशुराम तेजोभंग, सीताहरण, राम-रावण युद्ध आदि असाधारण पराक्रमपूर्ण व्यापारोंका बहुत ही आवेगपूर्ण चित्रण तीसरी तरंगमे मिलता है। कविने 'उत्साह'की मार्मिक व्यंजना करानेके लिए उपर्युक्त स्थलोंको विशेष रूपसे चुना है। रामके प्रति असीम भक्ति-भावनाके होते हुए भी उसने प्रतिपक्षी रावणकी महत्ताको घटाया नही है। उसने रावणको भी एक महान् योद्धाके रूपमे चित्रित किया है। प्रतिपक्षीकी महानताकी समकक्षतामे नायकके शौर्यपूर्ण कृत्योंकी महत्ता और भी बढ जाती है। रसकी अभिव्यंजनामे इससे विशेष सहायता मिलती है। 'उत्साह'के अतिरिक्त भगवद्विषयक 'रति' तथा 'निर्वेद' भावका विशेष प्रभाव कविपर है। रामके प्रति प्रगाढ़ भक्ति-भावना तथा संसारकी नश्वरताके अनेकानेक मार्मिक चित्र कविकी कृतिमें बहुतायतसे मिलते है। शृंगार-रसकी दृष्टिसे लौकिक रतिभावसे भी कवि अत्यधिक प्रभावित है। उसकी दूसरी तरंग (शृंगार वर्णन) 'आलम्बन विभाव' तथा तीसरी तरंग (ऋतु-वर्णन) 'उद्दीपन विभाव'के अन्तर्गत रखी जा सकती है। आलम्बन-विभावमें स्वभावतः नायक-नायिका भेदका विस्तार सर्वाधिक है। यद्यपि छन्दोंके ऊपर विभिन्न शीर्षक नहीं दिये गये हैं, फिर भी उनसे स्पष्ट है कि कवि वयःसन्धि, खण्डिता तथा मुग्धा आदिके वर्णन प्रस्तुत कर रहा है। कविके भाव-जगत्की सीमाएँ बहुत अधिक व्यापक भले ही न हों, उसने जिस सीमित क्षेत्रको चुना, उसके सम्यक् निर्वाहके लिए सामान्य कवियोंसे अधिक प्रखर प्रतिभाका परिचय उसने दिया है। उसके भाव-चित्रणमें परम्परामुक्त प्रणालियोंका अन्धानुसरण नहीं है। साथ ही मौलिकताका भी ऐसा आग्रह नही है कि दूरारूढ़ कल्पनाओंमें कविकी भाव-धारा उलझ जाय। इसीलिए उसके संयोग और वियोगके वर्णनोंमे सरस प्रवाह और प्रासादिकता है, श्लेष तथा अनुप्रास आदिका अतिशय आग्रह उसे कुछ अंशोंमें कुण्ठित कर दे, यह बात तो दूसरी है।

सेनापतिकी मौलिकताका ज्वलन्त उदाहरण उनकी ऋतु-सम्बन्धी रचनाएँ है। इनका मुख्य सौन्दर्य प्रकृतिके विभिन्न व्यापारोंके सूक्ष्म निरीक्षणपर आधारित है। साहित्यिक ग्रन्थोंमे बार-बार दोहराई गयी पिटी-पिटाई बातोंके अनुकरणपर ही इनकी रचना नही की गयी है। भारतीय जलवायुमे जाड़ा, गरमी और बरसात ये ही प्रधान तीन ऋतुएँ है। कविने इन तीनोंका ही यथातथ्य चित्रण नहीं किया, वरन् इन तीनोंकी सन्धियोंकी ओर भी ध्यान दिया है, तभी उसकी रचनाओंमें एक अद्वितीय आकर्षण है।

ब्रजभाषाके प्रचलित साहित्यिक तथा मौखिक रूपोंसे सेनापतिका घनिष्ठ परिचय था, उनके श्लिष्ट छन्दोंके चमत्कारका बहुत बड़ा श्रेय कविके भाषाधिकारको है। ऐसे स्थलोंपर अन्य रीतिकारोंने प्रायः संस्कृतनिष्ठ शब्दावलीका अवलम्ब ग्रहण किया है किन्तु अप्रयुक्त संस्कृतनिष्ठ शब्दावलीके प्रयोगमे भाषाकी प्रासादिकता तथा गतिशीलताको क्षति पहुँचती है। सेनापतिके अभंग तथा सभंग श्लेष और यमक बहुत करके ब्रजभाषाकी व्याकरणगत विशेषताओंके आधारपर निर्मित है। इसीलिए न तो उनमें अधिक क्लिष्ट कल्पना करनी पडती है और न अर्थ जाननेके लिए संस्कृत कोशोंकी शरणमे जाना पड़ता है। कई बार शब्दोंके अभिधेयार्थ और लक्ष्यार्थके आधारपर ही शब्दोंमे दोहरे अर्थ निकाले गये हैं। लक्ष्यक प्रयोगोंमें व्यंग्यार्थ निहित रहता ही है। अतः कविके श्लेष व्यंग्य-गर्भित हो गये है। श्लिष्ट छन्दके दोनों अर्थ अभिधेयार्थ (प्रस्तुत) माने जाते हैं किन्तु कुछ स्थलोंपर ऐसी प्रगल्भ भाषाका प्रयोग किया गया है कि उससे मार्मिक व्यंजनाएँ भी होती है। राम तथा सूर्यका वर्णन करता हुआ कवि कहता है—"सब विधि पूरौ सुरवर सभा रूरौ, यह दिनकर सूरौ उतराय न चलत है"। रविवंशी राम, सब प्रकारसे समर्थ तथा देवसभामें मुकुटमणि होते हुए भी अहंभावी नहीं है, जब कि उत्तम किरणोंसे संयुक्त दिन करनेवाला

श्रेष्ठ सूर्य सब प्रकारसे पूर्ण होता हुआ भी ग्रीष्मऋतुमें उत्तरायण चला जाता है। यहाँपर राम प्रस्तुत (उपमेय) है तथा सूर्य अप्रस्तुत (उपमान) है। दोनोंकी तुलना करनेपर राम उपमेयमें सूर्य उपमानकी अपेक्षा उत्तरायण जानेका—लोगोंके लिए कष्टप्रद होनेका—दुर्गुण नहीं है। अतः उद्धृत पंक्तिमें अतिरेक ध्वनि है। भाषाकी व्यंजकताका ऐसा चमत्कार कुछ अन्य स्थलोंपर भी पाया जाता है।

[सहायक ग्रन्थ—कवित्तर रत्नाकर (भूमिका) : सं० उमाशंकर शुक्ल।] —उ० शं० शु०

सेल्यूकस–सिकन्दरका प्रमुख सेनापति था, जो उसके बाद गद्दीपर बैठा। महत्त्वाकांक्षावश उसने ३५० ई० पू० भारतपर आक्रमण किया था किन्तु उस समयके गुप्त शासक चन्द्रगुप्त ने उसे पराजित कर दिया। सेल्यूकस ने अन्तमें सन्धि कर ली तथा उसे बलूचिस्तान से लेकर हिरात तक का प्रदेश दे दिया। सेल्यूकस ने अपनी पुत्री हेलेनका चन्द्रगुप्तके साथ विवाह कर दिया (दे० स्कंदगुप्त)।

—रा० कु०

सेवक–ये ठाकुर असनीवालेके पौत्र थे और काशीके रईस हरिशंकरके आश्रयमें रहते थे। इनका जन्म १८१५ ई० में और मृत्यु १८८१ ई० में हुई। इन्होंने नायिका-भेद विषयपर एक 'वाग्विलास' नामक ग्रन्थ लिखा है। इनका बरवै छन्दमें 'नख-शिख' नामक एक छोटा ग्रन्थ भी है। इनके सवैया जनसाधारणमें प्रचलित है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० इ०] —सं०

सेवकजी (दामोदरदास)–सेवक (दामोदरदास) हित-हरिवंशकी वाणीका मर्मोद्घाटन करनेवाले परम भक्त कवि थे। इनका जन्मस्थान मध्यप्रदेशका गढ़ा नामक गाँव है, जहाँ संवत् १५७७ (सन् १५२० ई०)के आस-पास इनका जन्म हुआ। भगवत मुदित, उत्तमदास और प्रियादासने सेवकजीका चरित्र बड़े विस्तारसे लिखा है। भगवत मुदित ने लिखा है कि सेवकजी रसिक वृत्तिके भक्त थे और दैनिक कार्य-कलापसे अवकाश पाते ही हरिसेवामें लीन हो जाते थे। भगवद्भक्तिमें इन्हें गुरुका अभाव खटकता था। इनकी इच्छा ऐसे गुरुको प्राप्त करनेकी थी जो सच्चा मार्ग बता सके। संयोगसे ब्रजमण्डलके कुछ साधु-महात्मा भ्रमण करते गढ़ामे पहुँचे। उनके मुखसे हित हरिवंशका नाम सुनकर उन्हें इन्होंने अपना गुरु बनाना निश्चय किया। स्वप्नमें इन्हें हित हरिवंशके दर्शन हुए और उनसे ही उन्होंने दीक्षा मन्त्र ग्रहण किया।

सेवकजीकी वाणीको राधावल्लभीय सम्प्रदायमें बहुत बड़ा सम्मान प्राप्त है। उनकी वाणी हित चौरासीकी पूरक वाणी मानी जाती है। "चौरासी अरु सेवक वाणी, इक संग लिखन पढ़त सुखदानी"के अनुसार दोनोंको एक साथ ही लिखा और छापा जाता है। हित चौरासीके मर्मको समझनेके लिए 'सेवक वाणी' टीका, भाष्य, व्याख्या सब कुछ है। राधावल्लभ सम्प्रदायके तैंतीस महात्माओंने 'सेवक वाणी'का माहात्म्य लिखा है। सम्पूर्ण 'सेवक वाणी' सोलह प्रकरणोंमें विभाजित है। इन प्रकरणोंमें सैद्धान्तिक भावनाके साथ व्यावहारिक उपदेशके भी प्रकरण हैं। कलियुगके आचरणको देखकर काचे धर्मी और पक्के धर्मी प्रकरणोंमें अनेक उपयोगी बातें मिलती हैं।

हित धर्मके सच्चे अनुयायियोंमें सेवकजीका स्थान मूर्धन्य कोटिका है। परधर्मसे दूर रहकर "स्वधर्मे निधनं श्रेयः"का उपदेश सेवकजीने बारम्बार दिया है।

सेवकजी भक्त कोटिके वाणीकार थे। जिस उच्च धार्मिक और आध्यात्मिक धरातलपर अवस्थित होकर वे अपनी वाणी द्वारा भाव-व्यंजना करनेमें लीन हुए थे, वह काव्यका स्वाभाविक धरातल नहीं कहा जा सकता। फिर भी सहज आत्माभिव्यक्ति जब अपनी हार्दिकता और प्राणवत्ताके साथ बाहर आती है, तब अनेकानेक आलंकारिक उपकरण स्वयं एकत्र कर लेती है। उसे अनलंकृत कहनेका कोई साहस नहीं कर सकता। 'सेवक वाणी'की प्रभविष्णुताका कारण उसमें व्याप्त सहजता और प्रखरता ही है।

'सेवक वाणी'में ब्रजभाषाकी बुन्देलखण्डीमिश्रित धारा दृष्टिगत होती है। कहीं-कहीं अवधीका भी प्रभाव परिलक्षित होता है। गाथा छन्दमें सेवकजीने अपभ्रंशकी प्रकृतिका अनुसरण किया है। कहीं-कही संस्कृतके छन्दोंका हिन्दीमें उसी रूपसे प्रयोग किया है, जैसे रासोकारने किया है। 'सेवक वाणी' कलाकी दृष्टिसे भी अच्छी रचना है।

[सहायक ग्रन्थ—राधावल्लभ सम्प्रदाय—सिद्धान्त और साहित्य : डा० विजयेन्द्र स्नातक; गोस्वामी हितहरिवंश और उनका सम्प्रदाय : ललिताचरण गोस्वामी।] —वि० स्ना०

सेवादास–इस नामके कई कवियोंका पता लगा है। प्रथम और द्वितीय त्रैवार्षिक खोज-रिपोर्टोंसे एक ऐसे सेवादासकी सूचना मिलती है, जो मलूकदासके शिष्य थे और जिनका समय था १७ वीं शतीका उत्तरार्द्ध। इनमें इस कविकी तीन रचनाएँ बताई गयी हैं—(१) 'सेवादासकी बानी', (२) 'परामार्थ रमैनी' और (३) 'परब्रह्मकी बारामासी'। इसी प्रकार पंजाबके हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थोंकी खोज-रिपोर्ट (स० ९९) मे एक ऐसे सेवादासकी चर्चा की गयी है, जो निरंजन मतावलम्बी और दीदवाना (जोधपुर)के स्वामी हरिदासके शिष्य तथा सन् १५४० ई० के लगभग (१) 'गुरु मन्त्र योग', (२) 'कुण्डलिया', (३) 'नाम माहात्म्य योग', (४) 'पद' और (५) 'सेवादास ग्रन्थमाला' नामक ग्रन्थोंके रचयिता थे।

तृतीय त्रैवार्षिक खोज-रिपोर्टसे 'करुणा विरह प्रकाश' नामक ग्रन्थके रचनाकार एक ऐसे सेवादासका पता लगता है, जिन्होंने उक्त ग्रन्थकी रचना अयोध्यामे ही रहकर की थी। इस कृतिका रचनाकाल है सन् १७६४ ई०। 'सृष्टि-पुराण' सज्ञक एक गद्य-सिद्धान्त ग्रन्थके रचयिता भी कोई सेवादास कहे जाते हैं।

इसके अतिरिक्त हिन्दीके हस्तलिखित ग्रन्थोंके पन्द्रहवें खोज-विवरणसे एक अन्य सेवादासकी सूचना मिलती है, जिसका रचनाकाल सन् १७८३ ई० था और जिसने 'अलबेलेलाल जूके छप्पय,' 'रघुनाथ अलंकार', 'नख-शिख वर्णन' और 'रसदर्पण' जैसे रीति-काव्य ग्रन्थोंकी रचना भी की थी। ये अलबेलेलालके शिष्य थे। इनमें सभी ग्रन्थोंकी हस्तलिखित प्रतियाँ गोकुल (मथुरा)के मायाशंकर याज्ञिकके यहाँ सुरक्षित पाई गयी हैं। 'अलबेलेलाल जूके छप्पय' नामक ग्रन्थमें कविने श्रीकृष्णकी शोभा-माधुरीका बड़ा ही

मोहक और चटकदार वर्णन किया है। काव्यकी दृष्टिसे ये छप्पय बड़े ही उत्कृष्ट हैं। कविकी भक्ति-भावनामिश्रित भाव गरिमाकी सुन्दर अभिव्यंजना इन छप्पय छन्दोंमें हुई है। 'रघुनाथ अलंकार' (लगभग सन् १७८३) नामक रचनामें कविने उपमा-रूपकादि लगभग समस्त प्रमुख अलंकारोंका वर्णन बड़े ही सुन्दर उदाहरणों द्वारा किया है। इस ग्रन्थके उदाहरणोंको देखकर यह समझनेमें देर नहीं लगती कि कविका काव्य-कौशल कितना पुष्ट और प्रगाढ़ था। भाव-गरिमाके साथ-साथ कलागत वैशिष्ट्यकी पूरी-पूरी रक्षा की गयी है। कविकी सभी रचनाओंसे भक्ति भावनाकी अभिव्यक्ति होती है। भक्ति काव्य-सृजनकी प्रेरणाके रूपमें अधिक आयी है। 'नख शिख वर्णन'में भी कवि अलंकार अथवा रीतिवादी और भक्त दोनों ही रूपोंमें सामने आता है। कविका चौथा और महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है 'रसदर्पण' (रचनाकाल लगभग १७८३ ई०)। इसमें कविने नव रसों का सोदाहरण वर्णन किया है। कवित्व और आचार्यत्व दोनों ही दृष्टियोंसे उक्त कविका पूर्ववर्ती रीतिकालीन कवियों में विशेष स्थान है। कविने छप्पयके साथ कवित्त और सवैयाको भी अधिकाधिक अपनाया है।

[सहायक ग्रन्थ—मि० वि०; खो० वि० (त्रै० १, २, ३, १३, १५); हि० द० पं० खो० वि०।] —रा० त्रि०

सेवासदन—'सेवासदन' (१९१६ ई०) उपन्यासमें प्रेमचन्द्रने नारी-समस्या उठाई है। भारतीय नारीकी निस्सहायावस्था, पराधीनता और पशुओं जैसी स्थिति पर उन्होंने प्रकाश डाला है। साथ ही समाजके धर्माचार्यों, मठाधीशों, धनपतियों, सुधारकों आदिके आडम्बर, दम्भ और ढोंग तथा चरित्रहीनता, दहेज-प्रथा, अनमेल विवाह, पुलिसकी घूसखोरी, वेश्यागमन, हिन्दू समाजकी कथनी और करनीमें अन्तर और उसका खोखलापन, विवाहके समय धनका अपव्यय, हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता, म्युनिसिपैलिटीके कारनामे, अधिकार-भोग, भारतकी दरिद्रता आदिको भी उन्होंने अपना लक्ष्य बनाया है। यह एक समाज-सुधारवादी उपन्यास है और उसकी कथाको यदि प्रधानतः दारोगा कृष्णचन्द्रके परिवारकी कथा कहें तो अनुचित न होगा। उसका सम्बन्ध मध्यवर्गसे है। प्रेमचन्द्रने समाजके भग्न पहलुओं पर दृष्टिपात किया है। समस्याएं भावनात्मक दृष्टिकोणसे प्रस्तुत की गयी हैं। नारी-जीवनकी समस्या मूलतः आर्थिक है। प्रेमचन्दके इस उपन्यासमें निहित दृष्टिकोणके अनुसार स्त्रियोंको चतुर गृहिणी बनने और सुशिक्षा प्राप्त करनेकी ओर ध्यान देना चाहिए, न कि भोग-विलास, इच्छाओं और लालसाओंकी वृद्धिकी ओर। ईश्वर यदि स्त्रियोंको सुन्दरता दे तो धनसे वंचित न रखे क्योंकि धनहीन सुन्दर स्त्रीपर दुर्व्यसनका मन्त्र शीघ्र ही चल जाता है। इस मन्त्रसे रक्षा आत्मबल और सन्तोष द्वारा हो सकती है।

दारोगा कृष्णचन्द्र और उनकी पत्नी गंगाजलीकी सुमन और शान्ता नामक दो पुत्रियाँ हैं। दारोगा कृष्णचन्द्र ईमानदारीसे कार्य करते थे, कभी घूस न लेते थे। वे निःस्पृह भावसे कर्त्तव्य-पालन करते थे। वे निर्लोभ थे किन्तु बच्चों और पत्नीके आरामके लिए किफायतशारी न करते थे। उनकी बड़ी लड़की सुमनमें बचपनसे ही शृंगारप्रियता थी। वह सुन्दर, चंचल, अभिमानिनी और सबसे बढ़चढ़ कर रहनेकी इच्छा रखने वाली लड़की थी। जब कृष्णचन्द्रको उसके विवाहकी चिन्ता हुई तो दहेज एक बड़ी भारी बाधा सिद्ध हुई। उसे दूर करनेके लिए उन्होंने घूस लेनेकी ठानी। इसी समय श्री बाँकेबिहारी लालके महन्त, जागीरदार और साहूकार रामदासके मुस्टंडों द्वारा चेतू नामक असामीकी हत्याके मामलेको वे रिश्वत लेकर रफादफा कर देते हैं। रिश्वत लेनेकी आदत न होनेके कारण वे अपने मातहतोंको खुश न कर सके। फलतः भण्डाफोड़ हो गया और उन्हें पाँच सालका कारावास-दण्ड भुगतना पड़ा। उनकी पत्नी दोनों लड़कियोंको लेकर अपने भाई उमानाथके यहाँ जाकर रहने लगी। मामाने सुमनका विवाह पन्द्रह रुपया मासिक वेतन पाने वाले गजाधरके साथ कर दिया। यह विवाह सभी प्रकारसे बेमेल था—अवस्था, रुचि-अरुचि, स्वभाव आदिकी दृष्टिसे।

गजाधर और सुमनकी थोड़े दिनतक तो चैनसे कटी किन्तु एक ओर तो कृपणता थी, सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोणका अभाव था, दूसरी ओर अतृप्त आकांक्षाएँ थीं। फलतः संघर्ष होना अनिवार्य था। सामने रहनेवाली भोली वेश्याके ठाटबाट, आदर-सम्मान आदिने सुमनकी अतृप्त आकांक्षाओं और लालसाओंको उत्तेजित करनेकी दृष्टिसे आगमें घीका काम किया। भोली दुनिया देखे हुए थी। ताड़ गयी। उसने चारा डालना शुरू किया। कुछ प्रारम्भिक संकोचके बाद चिड़िया अड्डेपर जा बैठी। इससे पति-पत्नीमें और भी तनातनी रहने लगी। प्रेम और परिश्रमसे सुमनके हृदयपर विजय प्राप्त न कर सकनेके कारण गजाधर शासनाधिकार चाहता था। उसे सुमनपर विश्वास भी न रह गया था।

इसी बीचमें सुमनकी मित्रता पद्मसिंह वकीलकी पत्नी सुभद्रासे स्थापित हो गयी। वह उनके घर आया-जाया करती थी। पद्मसिंह बहुत ही सज्जन व्यक्ति थे किन्तु चुंगीके चुनावमें जीत जानेके उपलक्ष्यमें जब उन्होंने भी अपने घरमें भोलीका मुजरा कराया तो एक ओर तो सुमनपर उसका रंग और भी गहरा हो गया और दूसरी ओर जब वह घर देरसे पहुँची तो गजाधरने उसके चरित्रको अविश्वासकी दृष्टिसे देखकर उसे घरसे निकाल दिया। उसने अपनी सहेली सुभद्राके घर आश्रय लिया तो गजाधरने पद्मसिंहको बदनाम करना शुरू किया। परिणाम यह हुआ कि बदनामीके डरसे पद्मसिंहने उसके अपने घरमें रहने पर आपत्ति की। सुमनके लिए भोलीके यहाँ आश्रय लेनेके अतिरिक्त अब और कोई चारा न रह गया था। यहींसे उसका वेश्या-जीवन प्रारम्भ होता है। उसने दालमण्डीमें कोठा ले लिया। वास्तवमें उसका वेश्या-जीवन ग्रहण करना अपनी असहायावस्था और आर्थिक कष्टोंके फलस्वरूप था। उसने अपना शरीर नहीं बेचा था।

सुमनके वेश्या-जीवन ग्रहण कर लेनेका पता लगनेपर पद्मसिंह वकीलको अत्यन्त दुःख हुआ। उसके पतनका मूल कारण अपनेको ही समझकर वे आजन्म आत्म-ग्लानि से पीड़ित रहे। उन्होंने अपने मित्र विट्ठलदासकी सहायता

से उसका उद्धार करनेकी बात सोची। विट्ठलदासने इस बातकी कोशिशकी कि सुमनको कोई काम मिल जाय ताकि वह आर्थिक दृष्टिसे आत्मनिर्भर रहकर सम्मानके साथ अपना जीवन-यापन कर सके किन्तु इस दृष्टिसे उन्हें निराश होना पड़ा। पद्मसिंहने भी रमेशदत्त, प्रभाकर राव, भगतराम, रुस्तम भाई आदिकी सहायतासे वेश्याओंके उद्धारके लिए आन्दोलन चलाया। इसी बीचमें अपने बड़े भाई मदनसिंहकी फैशनरस्त, चंचल-चित्त और शिक्षा-विमुख पुत्र सदनसिंह यौवन-कालकी दुर्वासनाओंके वशीभूत हो सुमनके यहाँ पहुँचता है किन्तु सदनसिंहके प्रति उसके हृदयमें प्रेमकी कल्पनाएँ उमड़ने लगती हैं और वह उसका जीवन नष्ट करना नहीं चाहती। पद्मसिंह अपने भतीजेका जीवन सुधारनेके लिए वेश्यागमनकी प्रथा मिटानेके लिए और भी कटिबद्ध हो जाते हैं। कहीं सफलता प्राप्त होते न देखकर विट्ठलदास अपने साहसके बलपर सुमनको विधवाश्रममे ले जाता है।

उधर उमानाथने सुमनकी छोटी बहन शान्ताका विवाह मदन सिंहसे पक्का कर दिया। सदन सिंहका पिता रूढ़िवादी था। उसे जब पता चला कि शान्ताकी बहन सुमन वेश्या है तो वह बारात वापस ले आया। सुमन का पिता जब जेलसे लौटकर आया तो विक्षिप्तोंकी भाँति जीवन व्यतीत करने लगा। बारात लौट जानेपर जब उसे सुमनके वेश्या-जीवनका हाल मालूम हुआ तो जीवन और मृत्युके बीच सघर्ष करता हुआ वह अन्तमे गगामे डूबकर जीवन-लीला समाप्त कर देता है। सुमनके वेश्या बननेका उत्तरदायित्व अपनी असज्जनता और निर्दयतापर समझकर गजाधर गजानन्द नामसे साधु बनकर आत्म-परिष्कारकी चेष्टा करता है। एक बार जब सुमन गगामें डूबने जा रही थी तो उसने उसके चरणोपर गिरकर क्षमा-याचना की। वास्तवमे अब उसमे उच्च भावोका उदय हो गया था। पद्मसिंह और विट्ठलदास शान्ताको भी सुमनके साथ विधवाश्रममें ले आये, जिसपर प्रतिक्रियावादियोने बड़ा शोरगुल मचाया। यहाँ प्रेमचन्दने म्युनिसिपैलिटी पर भी व्यंग्य प्रहार किया है। सदन सिंह शान्ताके यहाँ से बारात वापस ले आनेका पहलेसे ही विरोधी था। अनेक व्याख्यान सुन और लेख पढ़नेके बाद वह वेश्यागमनका विरोधी भी हो गया था और उनका उद्धार भी करना चाहता था। उसमे भी शुद्ध-पवित्र भावोका उदय हुआ। शान्ताको लेकर सुमन जब आश्रम छोड़कर नावसे नदी पार कर रही थी तो उसने उन्हे रोककर शान्तासे विवाह कर लिया किन्तु थोड़े ही दिनोमे वे दोनो सुमन से उदासीन रहने लगे। मल्लाहोंको जब सुमनके वेश्या होनेकी बात मालूम हुई तो उन्होने सदनका बहिष्कार करना प्रारम्भ कर दिया। इन बातोंसे सुमनको मर्मान्तक पीड़ा होती थी। शान्ताके पुत्र होनेपर जब सदनके माता-पिता आये तो सुमनको सदनकी कुटी भी छोड़ देनी पड़ी।

कुटी छोड़कर जब उसे चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार दिखाई दे रहा था, उस समय ईश्वरने उसके हृदयको दृढ़ता प्रदान की। वह निर्भय हो गयी। इस संकटमें पड़ कर उसमें आत्म-विचार और सदिच्छा जाग्रत् हो गयी। वह अपने साधु पतिकी कुटीमें पहुँचकर सेवा-मार्ग ग्रहण करती है, जिससे वह अपना ही नहीं, समस्त पीड़ित स्त्री जातिका उद्धार कर सकती थी। यह उसके जीवनका प्रभात था—सुहावना, शान्तिमय और उत्साहपूर्ण। उसने सेवा सदन संचालित किया। एक बार पद्मसिंह अपनी पत्नी सुभद्रा सहित उधरसे निकले। सुभद्रा तो आश्रम देखने आयी किन्तु पद्मसिंह आत्मग्लानिके कारण न आ सके। सुमन नीचे गिरकर भी ऊपर उठी। उसके जीवनमें पवित्रताकी ज्योति जगमगाने लगी। —ल० सा० वा०

सोफिया—प्रेमचन्दकृत उपन्यास 'रंगभूमि'की पात्र। धार्मिक स्वच्छन्दता, देवोपम त्याग, उन्नत हृदय, सिद्धान्तप्रिय, आनपर जान देनेवाली, व्रतधारिणी, आदर्शवादिनी और विचारशीला सोफिया वास्तवमें प्रेम-योगिनी है। वह विनयके प्रेमको अपने जीवनका वरदान समझती है—जैसे उसे जीवनका लगर मिल गया हो। साथ ही वह विनयके कर्त्तव्य-पथमे बाधक बनना नहीं चाहती। सोफी प्रेमको बन्धनके रूपमे नहीं, आत्म-बलिदानकी आधार-शिलाके रूपमे देखती है। विनयके प्रेमके वशीभूत होकर ही वह क्लार्कके साथ प्रेमाभिनय और विडम्बनापूर्ण जीवन व्यतीत करती है। अपने अभिनयको वह बराबर नैतिक और मानसिक पतन समझती रही। इस दुस्सह मर्माघातको वह जाह्नवीके कारण सहन कर लेती है। सोफिया सदैव इस बातके लिए सचेष्ट रहती है कि वह जाह्नवीकी शंका को निर्मूल सिद्ध कर दे। अन्तमें उसकी आत्माकी पवित्रताने जाह्नवीको मुग्ध भी कर लिया। विनयके प्रति उसकी कठोरताने माताकी न्याय-भावना जाग्रत् कर दी। तब भी धर्म सम्भवतः दोनोके बीचमे खाई बना हुआ था। विनयकी मृत्युके बाद उसे ऐसा लगा, जैसे एक नर-रत्नको धर्मकी पैशाचिक क्रूरतापर बलिदान कर दिया गया हो। उसके बाद प्रेमानुरागकी स्मृति मात्र संजोये हुए वह गंगामे डूबकर प्राणान्त कर देती है। वास्तवमे विनयको खोकर उसे जीवनमे कोई रुचि न रह गयी थी। पिताकी व्यावसायिकता और माताकी साम्प्रदायिकताके प्रति तो उसे पहलेसे ही कोई आकर्षण नहीं था। —ल० सा० वा०

सोमनाथ—सोमनाथ मिश्र विलक्षण प्रतिभाके व्यक्ति थे। इनका दूसरा नाम शशिनाथ भी है। ये गंगाधर मिश्रके अनुज और नीलकण्ठ मिश्रके पुत्र थे। इनका वंश छिरोरा वंशके माथुर ब्राह्मण तथा प्रसिद्ध नरोत्तम मिश्रके परिवारमें हुआ था। कहा जाता है कि ये जयपुर नरेश महाराज रामसिंहके मन्त्र-गुरु थे। इनके जन्मस्थान और कालके विषयमें कुछ निश्चित रूपसे पता नहीं चलता किन्तु इनकी कृतियोंसे इनका कविताकाल सन् १७३३ से सन् १७५३ ई० ठहरता है। सोमनाथ भरतपुरके महाराज बदनसिंहके छोटे पुत्र प्रतापसिंहके आश्रित कवि थे और जैसा कि इस दोहे—"कही कुँवर परताप ने सभा मध्य सुखपाय। सोमनाथ हमको सरस पोथी देउ बनाय।"—से पता चलता है कि उन्हींके आग्रह पर इन्होंने अपने प्रसिद्ध रीतिग्रन्थ 'रसपीयूषनिधि' (दे०)की रचना सन् १७३७ ई० मे की। यह काव्यशास्त्र पर एक पूर्ण ग्रन्थ है। इस बृहत्

ग्रन्थमें छन्द, काव्य-प्रयोजन, ध्वनि, रस तथा अलंकार आदिका वर्णन है। दूसरे ग्रन्थ 'शृंगार विलास'में (हस्तलिखित प्रति याज्ञिक संग्रहालयमें) शृंगार रस तथा नायिका-भेदकी सामग्री है। इस ग्रन्थके अतिरिक्त इनके तीन और ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं—'कृष्णलीला पंचाध्यायी' (सन् १७४३ ई०), 'सुजान विलास' (सिंहासन बत्तीसी पद्य-प्रबन्ध सन् १७५० ई०), 'माधव विनोद नाटक' (प्रेम-प्रबन्ध—सन् १७५२ ई०)।

इन ग्रन्थोंको देखनेसे उनकी चतुर्विध प्रतिभाके दर्शन होते हैं। जहाँ 'रसपीयूषनिधि'मे उनका शास्त्रीय ज्ञान, उनकी विलक्षण विवेचना शक्तिका परिचय मिलता है, वहीं 'सुजान विलास' और 'माधव विनोद'मे वे हिन्दीके प्रबन्ध-कविके रूपमें अवतरित होते हैं।

सोमनाथका स्थान रीतिकालके कवियोंमें महत्त्वका है। कवित्वकी दृष्टिसे मतिराम तथा देवके समान भाव-व्यंजक कवि हैं। इनमें उक्ति-वैचित्र्यके स्थान पर सहृदयता अधिक है। ध्वनि-समन्वित शृंगार-रसकी अभिव्यक्तिमें विशेष सफलता मिली है। इनके काव्यमें मतिराम जैसा प्रसाद तथा उत्साह है और भूषण जैसी ओजस्विता भी पाई जाती है। कल्पना-वैभवकी दृष्टिसे ये किसी भी श्रेष्ठ रीतिकालके कविके समकक्ष हैं पर इनमे भावात्मक अभिव्यक्तिकी सरलता सर्वत्र बनी रही है। इसके बावजूद सोमनाथमें भाषाका संगीत तथा निखार अन्य प्रतिष्ठित कवियोंसे कम है। ये मुक्तक कविताओंमें भी अपनी मार्मिकता और प्रसाद-पूर्ण व्यंग्यके कारण प्रसिद्ध हैं। कविता ये 'ससिनाथ'के नामसे लिखते हैं। 'रसपीयूषनिधि'मे कहीं-कहीं व्याख्याके रूपमे इन्होंने ब्रजभाषा गद्यका प्रयोग भी किया है।

[सहायक ग्रन्थ- -हि० सा० इ०; हि० सा० बृ० इ०; (भा० ६) हि० का० इ०।] —ह० मो० श्री०

सोमनाथ गुप्त–जन्म १९०५ ई०मे अमरोहा (उत्तर प्रदेश) मे हुआ। शिक्षा प्रयाग तथा आगरा विश्वविद्यालयमें हुई। राजस्थानमें अनेक वर्षों तक हिन्दीके प्राध्यापक रहे। नाटकके सम्बन्धमें किया गया आपका कार्य उल्लेखनीय है, जो 'हिन्दी नाटकका इतिहास' नामसे १९५० ई०मे प्रकाशित हुआ। —सं०

सोरठी–सोरठीकी लोकगाथाको 'रोमाण्टिक बैलड' कहा जा सकता है। अन्य लोकगाथाओंसे इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें 'रोमांस'का पुट प्रचुर परिमाणमे पाया जाता है। सोरठीकी गाथाको सुनकर हृदयमे आश्चर्य एवं अद्भुत रसका संचार होता है। जादू टोनेका अलौकिक प्रभाव तथा विमान (उड़न खटोला) द्वारा अमरपुरीकी यात्राके इसमें अनेक दृश्य पाये जाते हैं।

सोरठपुर देशके राजा दक्ष सिंह थे, जिनकी रानीका नाम कमलावती था। इनकी पुत्री सोरठी थी, जो अपने अनुपम सौन्दर्यके कारण लोकप्रसिद्ध थी। जन्म लेते ही सोरठीमे अलौकिक गुण दिखाई पड़ने लगे परन्तु ज्योतिषियोंने राजाको बतलाया कि इसके जन्मके ग्रह ऐसे बुरे है कि आपका राज्य नष्ट हो जायगा। अतः राजाने काठके बक्सके अन्दर सोरठीको रखकर नदीमें प्रवाहित कर दिया। उसके अलौकिक रूपसौन्दर्यको देखकर दर्शक मुग्ध हो जाते थे। बेंका नामक कहारने बक्समें बहती हुई सोरठीको पकड़ लिया और बड़े लाड़-प्यारसे उसका पालन किया। सोरठी जब बड़ी हुई, तब दक्ष सिंहको इस घटनाका पता चला। वे सोरठीको घर ले आये और उसके विवाहके लिए स्वयंवर रचाया। इस समय दक्षिण देशमें राजा टोडरमल सिंह राज्य करते थे, जिनकी रानी सुनयना थीं। इन्हींका पुत्र बृजभान था, जो बड़ा ही रूपवान् युवक था। सुप्रसिद्ध मत्स्येन्द्रनाथ (मछन्दरनाथ)ने इसे अपना चेला बनाया। हेवन्तपुरके राजाका नाम हेवंचल था, जिसकी लड़की हेवन्ती बड़ी रूपवती थी। जब इसका स्वयंवर रचा गया, तब बृजभान मोढीका रूप धारण कर वहाँ पहुँचा। हेवन्तीने इसीके गलेमे जयमाल डाल दी। इस प्रकार हेवन्ती और बृजभानका विवाह हो गया। कोहबरमें जाते समय देव कन्या तथा सोरठीने यह प्रतिज्ञा करा ली कि बृजभान उनके यहाँ अवश्य पधारेंगे।

गुजरातका राजा खेखडमल बृजभानका मामा लगता था। बृजभानने बडे परिश्रमसे सोरठीका विवाह अपने मामासे कराना चाहा परन्तु उसके अस्वीकार करनेपर सोरठीको अपनी पत्नी बना लिया। सोरठीको प्राप्त करनेमें बृजभानको बडी तपस्या करनी पडी थी तथा अनेक संकटों को झेलना पडा था। एक बार तो इस प्रयासमें साँपके काटनेसे उसकी मृत्यु भी हो जाती है परन्तु फिर भी वह जी उठता है। अन्तमे वह सोरठीको प्राप्त कर सुखपूर्वक निवास करता है। बृजभान, हेवन्ती तथा सोरठीसे विवाह करनेके पश्चात् धवलागिरिपर निवास करनेवाली सुरिया और सुगेसरी नामक स्त्रियोंके प्रेमजालमें फँस जाता है तथा आनन्दपूर्वक जीवनयापन करता है।

सोरठीकी उपर्युक्त कथा रहस्य-रोमांचसे भरी हुई है। सोरठीको पानेमे बृजभानको अनेक कष्टोंको झेलना पडता है, जिसके द्वारा लोककविने आत्मा द्वारा परमात्माकी प्राप्तिकी ओर संकेत किया है। सोरठीकी गाथा निर्गुन गीतोंकी लयमे गाई गयी है परन्तु इसमें दूसरा छन्द भी पाया जाता है। दोनों नमूने इस प्रकार हैं—"झुन झुन बाजे चलत झुनकी खउऊँआ हो। झूमत झामत कुँवर जात नू रे की॥ एकि आये रामा सुनिलेहु राजा वचन हमार नू रे की। एकि आधे रामाको सोरठपुरमे सोरठी कन्या बा रे नू रे की॥" समस्त गाथामे धाराप्रवाह सी गति मिलती है। —कृ० दे० उ०

सोहनलाल द्विवेदी–जन्म सन् १९०५ ई० मे बिन्दकी जिला फतेहपुर। पिताका नाम पं० वृन्दावनप्रसाद द्विवेदी। एम० ए०, एल-एल० बी०तक शिक्षा प्राप्त करनेके अतिरिक्त इन्हें संस्कृतका भी अच्छा ज्ञान है। इनका लेखनकार्य सन् १९२१ ई० से प्रारम्भ हुआ। आपकी शिक्षा-दीक्षा मालवीयजीकी छायामें काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमे सम्पन्न हुई। देशकी प्राचीन संस्कृति एवं राष्ट्रीयताके प्रति इनमें जन्मजात स्वाभिमान एवं सम्मानका भाव है। खादीके लिए इनमें अपार स्नेह और देशके शिशुओंके प्रति अटूट स्नेह है। अपनी पौराणिक एवं राष्ट्रीय रचनाओंके लिए ये जनता, विद्वज्जनों एवं कवि-सम्मेलनोंमें सदैव सम्मानित होते आये हैं। १९३८

से १९४२ ई० तक दैनिक राष्ट्रीय पत्र 'अधिकार'का लखनऊसे सम्पादन करते रहे। इधर विगत २-४ वर्षोंसे 'बालसखा'के सम्पादनका अवैतनिक कार्य करते आ रहे हैं। ये साहित्य-सेवाको व्यवसाय नहीं मानते। जीवन-यापनार्थ जमींदारीके बाद 'बैंकिंग'का व्यवसाय अपनाया है।

सन् १९४१ ई०में आपकी प्रथम रचना 'भैरवी' प्रकाशित हुई, जिसमें स्वदेश प्रेमके भावोंकी प्रधानता और छन्दोंकी टेकोंमें पुनरुक्ति द्वारा प्रभाव पैदा करनेवाली शैलीकी शोभा है। 'भैरवी'के अभियानगीत भी प्रभावशाली हैं। सन् १९४२ ई०में 'वासवदत्ता' प्रकाशित हुई। इसमें भारतीय संस्कृतिके प्रति गौरव-भाव लक्षणीय है। 'वासवदत्ता'पर लिखित सुन्दर एवं नूतन कल्पनापूर्ण अप्रस्तुत विधानों वाली इसी नामकी कथात्मक कवितापर पुस्तकका नामकरण हुआ है। सन् १९४३ ई०में 'कुणाल' प्रबन्ध-काव्य प्रकाशमें आया, जिसमें ऐतिहासिक परिस्थितियों एवं तत्कालीन जीवन-रूपका अच्छा चित्रण हुआ है। भाषा सरस, सरल, मधुर, प्रवाहमयी एवं सुसंस्कृत है। अशोक और तिष्यरक्षिताके वर्णन प्रभावपूर्ण एवं मनोवैज्ञानिक हैं। आपकी राष्ट्रीय चेतनाप्रधान रचनाएँ हैं—'पूजा गीत' (१९४५ ई०), 'विषपान'(१९४५ ई०), 'युगाधार' (१९४४ ई०), 'वासन्ती' (१९४४ ई०), 'चित्रा' (१९४४ ई०) तथा 'पूजा-गीत'का एकत्र संग्रह, जो बापूके ७७वें जन्मदिवस पर उन्हे समर्पित किया गया था। प्रमुख भारतीय भाषाओंकी गान्धीसम्बन्धी सुन्दर रचनाओंको लेकर सन् १९४४ ई० में 'गान्धी अभिनन्दन ग्रन्थ'का सम्पादन किया। सन् १९५६ ई० में 'जय गान्धी' नामसे कविकी राष्ट्रीय रचनाओंका बृहत् प्रकाशन हुआ। इन्होंने बाल-साहित्यका भी सुन्दर एवं प्रभूत साहित्य लिखा है। सन् १९४४ ई०में 'बाँसुरी' और 'झरना' तथा 'बिगुल'का प्रकाशन हुआ। सन् १९४५ ई० मे 'सात कहानियाँ' निकली। सन् १९४९ ई० में 'बच्चोंके बापू' प्रकाशित हुई। इनके अतिरिक्त 'चेतना', 'दूध-बताशा', 'बाल भारती', 'शिशु भारती', 'हँसो हँसाओ', 'नेहरू चाचा', 'दूर्वा' एवं 'मोदक' नामक रचनाएँ भी प्रकाशित हुई हैं।

'पूजाके स्वर' द्वारा कविने जनतामें नवजागरणकी ध्वनि फूँकी है और युगकविका महनीय कार्य किया है। कवि गान्धीवादी विचारधाराका पूर्ण अनुयायी बनकर आया है। 'भैरवी'में उच्च देश-प्रेमकी पुकार है। द्विवेदीका कवि-मानस अव्यक्तिवादी, लोकमुखी, ग्रन्थिहीन एवं भावशाली है। उसमें भाव-विचारोंकी सहज तरंगें उठकर काव्यका सहज-सरल रूप ले लेती हैं। इनकी रचनाओंमें स्वस्थ मानसकी अभिव्यक्ति हुई है। विलासके स्थानपर सहज एवं शुद्ध उल्लासकी तरलता तथा प्रेमासक्तिके स्थान पर सेवा-भक्तिका सौरभ इनके काव्यकी विशिष्टता है। इनकी राष्ट्रीयता मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल एवं 'नवीन' से भिन्न है, जो अहिंसात्मक गान्धीवादी रक्तहीन क्रान्तिके मार्गपर संचरित होकर उनके काव्यको जन-साहित्यका मर्मस्पर्शी एवं मनोरम रूप प्रदान करती है। इनमें वर्तमान और अतीतके गौरवके प्रति समान दृष्टि है। इनमें वीर पूजाके रचनात्मक भाव लहराते रहे हैं। —श्री० सिं० क्षे०

सोहनी महिवाल–पंजाबकी लोकप्रचलित दुःखान्त गीत-कथा। सोहनी चिनाब किनारेके एक गाँवके कुम्हारकी लड़की थी। उसके रूपगुणपर रीझकर महिवाल नामक राजकुमार सोहनीको प्राप्त करनेके लिए चिनाबके दूसरे किनारेपर धूनी रमाकर बैठ गया। सोहनी प्रति दिन पक्के घड़ेकी सहायतासे चिनाब तैरकर राजकुमार महिवालके पास जाया करती थी। एक दिन उसकी भाभीने देख लिया। उसने चुपकेसे पक्का घड़ा उठाकर उसके स्थानपर मिट्टीका कच्चा घड़ा रख दिया। सोहनी प्रेमकी भावनामें डूबी हुई कच्चे घड़ेके सहारे चिनाब पार करने लगी। बीचमें घड़ा फूट गया और वह लहरोंमें समा गयी। 'महिवाल' का अर्थ है भैंसोंका चरवाहा। कहते हैं, सोहनी को प्राप्त करनेके लिए राजकुमारने भैंस भी चरायी थी, इसीलिए कथामें वह महिवाल हो गया। —श्या० प०

सौभरि–एक ऋषि। इनकी कथा शुकदेवने राजा परीक्षितको सुनाई थी। एक बार ऋषि यमुना नदीके तटपर गये, वहाँ मच्छको अपने परिवारसहित क्रीड़ा करते देख उनके मनमें भी गृहस्थ होनेकी भावना जगी। वे राजा मान्धाता के पास गये और कन्याकी माँग की। राजाने कहा कि वे अन्तःपुरमें जाकर स्वयं ही पचास पुत्रियोंमेंसे जिसको चाहे वर लें। मुनिने अपनी वृद्ध कायाको तपोबलसे सुन्दर रूपमें परिणत कर लिया और उन्होंने सभी कन्याओंसे विवाह कर लिया। उनसे उन्हे पाँच सौ पुत्र उत्पन्न हुए। बहुत कालतक सुखपूर्वक रहते हुए भी उनमें अतृप्तिकी भावना बाकी रही। उनके मनमे विचार आया कि विषयभोगसे वास्तविक तृप्ति नहीं मिल सकती। वे तपमें निरत हुए और तन त्याग दिया। उनकी पत्नियाँ भी उन्हींकी सहगामिनी हुई और सभीको मुक्ति मिली।

इस कथाके माध्यमसे सांसारिक भोगसे विरक्तिका उपदेश तथा भक्तिकी महत्ताका प्रतिपादन किया गया है (दि० सूर० पद ४५२)। —मो० अ०

स्कंदगुप्त १–जयशंकर प्रसादकृत नाटक, जो १९२८ ई० मे प्रकाशित हुआ। 'स्कन्दगुप्त' नाटककी रचना गुप्त युगकी ह्रासोन्मुख अवस्थाको लेकर हुई है। उस समय बाहरसे बर्बर हूणोंके आक्रमण हो रहे थे और इधर राजपरिवारमें पारस्परिक विद्वेष फैला हुआ था। मालवा पर संकटके मेघ छा गये थे। समस्त सौराष्ट्र म्लेच्छोंने पदाक्रान्त कर दिया था। पाँच अंकोंके इस नाटकमें मुख्य कथा स्कन्दगुप्तसे सम्बन्ध रखती है। अपनी महत्त्वाकांक्षामे पागल अनन्तदेवी पुरगुप्तके लिए राजसिंहासन चाहती है। वह प्रपंचबुद्धि और भट्टारकके साथ मिलकर अनेक षड्यन्त्र रचती हैं। नाटकमे अनेक उत्थान-पतन आते हैं पर अन्तमें स्कन्द हूणोंको परास्त कर देता है और गुप्त साम्राज्य अपने भाई पुरगुप्तके हाथों सौंप देता है। 'स्कन्दगुप्त'का मुख्य आकर्षण उसका द्वन्द्व है। यह द्वन्द्व और संघर्ष दो भूमियों पर चित्रित है। राजनीतिक संघर्षमें राजपरिवारका अपना आन्तरिक कलह है। शक, हूण, मंगोलोंके आक्रमण हैं। गुप्त साम्राज्य जैसे संकटोंसे घिर गया हो, सम्राट् कुमारगुप्त अपनी विलासितामें खोये हैं। ऐसे अवसर पर स्कन्द एक नक्षत्रकी भाँति उदित होता है और अन्तमें दस्युओंको

परास्त करता है। नाटकमें एक दूसरा द्वन्द्व भी है, जिससे पात्रोंके आन्तरिक जीवन पर प्रकाश पड़ता है। ऐतिहासिक पात्रोंमें इस प्रकारके अन्तर्द्वन्द्वकी नियोजना उन्हें निष्प्राण होनेसे बचा लेती है। वे एक मानवीय भूमिका पा जाते हैं। स्कन्द और देवसेनाकी प्रेमकथा इसी आन्तरिक द्वन्द्वसे सम्बन्धित है। नाटकके आरम्भमे ही स्कन्दमें एक निर्लिप्त भाव दिखाई देता है। वह कहता है—"अधिकार सुख कितना मादक और सारहीन है।" वह हूणो और शको पर विजय प्राप्त करके भी अपनी प्रियवस्तु देवसेनाको नहीं पाता। जैसे राजा होकर भी वह रिक्त है। पुरगुप्तके लिए राज्य सौंपकर वह वैराग्य भावनाका परिचय देता है। देवसेना प्रसादकी चरित्रसृष्टिमें भावनाकी दृष्टिसे सर्वोत्तम कही जा सकती है। प्रेमका जो आदर्श उसमें निहित है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। इन दो मुख्य द्वन्द्वोंके अतिरिक्त बौद्धों और ब्राह्मणोंके विभेद हैं। गुप्त युगमें सनातन धर्मको पुनर्जीवन प्राप्त हुआ। ब्राह्मणों, बौद्धोंकी संकुचित मनोवृत्ति नाटकमे प्रदर्शित है। अन्तर्द्वन्द्वमें विजयाका चरित्र अतिशय परिवर्तनशील है। प्रलोभनोंमे घिरी यह नारी अनेक बार प्रेम करती है।

'स्कन्दगुप्त'की रचनामे प्रसादके दो उद्देश्य सामने आते हैं। राष्ट्रीय, सांस्कृतिक भावनासे परिचालित होनेके कारण उन्होंने शक, हूणो पर स्कन्दकी विजय घोषित की है। यह एक प्रकारकी सांस्कृतिक विजय है, जो 'चन्द्रगुप्त' नाटकमें भी विद्यमान है। गुप्त साम्राज्य जब ह्रासोन्मुख अवस्थामे था, उस अवसर पर स्कन्दके रूपमें एक वीर नायकका प्रतिष्ठापन प्रसादकी राष्ट्रीय भावना पर आधारित है। 'स्कन्दगुप्त' नाटकका अन्तर्द्वन्द्व उसका प्रमुख आकर्षण है। देवसेना अपनी आदर्शवादितासे इस धरतीका पात्र नहीं प्रतीत होती। प्रेम और संगीत उसके जीवनके दो प्रमुख अंग हैं। प्रेममें जो त्याग वह करती है, उससे उसका गौरव बढ़ जाता है। 'स्कन्दगुप्त'के सभी चरित्र अपना एक व्यक्तित्व रखते हैं। उनका अपना विशिष्ट स्वरूप है—अच्छा या बुरा जो भी हो। शिल्पकी दिशामे प्रसादने सफलता प्राप्त की है क्योंकि उन्होने ऐतिहासिक, राजनीतिक घटनाओंको पारिवारिक और व्यक्तिगत घटनाओंसे सम्बद्ध कर दिया है। दोनोंका मेल हो गया है। समस्त वस्तु-विन्यास दो भूमियों पर चलता दिखाई देता है, जो चरित्रोंको आकर्षक बनाता है। 'स्कन्दगुप्त'मे घटनाव्यापार पर्याप्त गतिसे आगे बढ़ते दिखाई देते हैं। प्रश्न है कि यह नाटक सुखान्त है अथवा दुःखान्त। राजनीतिक जीवनमे पुरगुप्तके लिए एक निष्कण्टक राज्य छोड़कर भी नाटकका नायक स्कन्द व्यक्तिगत जीवनमे रिक्त है क्योंकि वह देवसेनाको नहीं पाता। 'स्कन्दगुप्त' नाटककी रचना जीवनकी स्वाभाविक गतिविधिको ध्यानमे रखकर की गयी है, इसलिए उसे किसी विशेष वर्गमे नहीं रखा जा सकता। —प्रे० शं०

स्कंदगुप्त २—प्रसादके नाटक 'स्कन्दगुप्त' (दे०) का नायक, गुप्तकाल (२७५ ई०-५४० ई० तक) अतीत भारतके चरम विकासका काल माना जाता है। उस समय तक आर्य-साम्राज्यका विकास मध्य एशियासे लेकर जावा-सुमात्रा आदि सुदूरपूर्वी द्वीपों तक हो चुका था। स्कन्दगुप्त इसी गुप्त वंशका देदीप्यमान नक्षत्र था किन्तु उसके राज्यारोहणके पूर्व ही साम्राज्यमें आन्तरिक कलह एवं विघटन होना प्रारम्भ हो गया था। स्कन्दगुप्त विक्रमादित्यका शासनकाल वस्तुतः निर्वाणोन्मुख दीपशिखाकी अन्तिम ज्योतिकी भाँति शक्तिशाली गुप्त साम्राज्यके पतनका काल है। स्कन्दगुप्त प्रसादके नाटकका धीरोदात्त नायक है। उसमें गम्भीरता, धैर्यशीलता, शक्ति-शील-सौन्दर्य एवं विनम्रताका स्पृहणीय सामंजस्य पाया जाता है। प्रसादने प्रस्तुत नाटकके कथाशिल्पके निर्माणके लिए कोसमके मूर्ति-लेख, इन्दौरके ताम्रपत्र, 'कथासरित्सागर' तथा 'राजतरंगिणी', 'गाथा सप्तशती', 'कालकाचार्यकी कथा', 'प्रबन्ध-कोष', 'स्मिथका इतिहास', जल्हणकी 'सूक्ति मुक्तावली' एवं कालिदासके ग्रन्थोंको आधार बनाया है। स्कन्दके विहार, भिटारी और जूनागढ़के लेखोंसे भी स्कन्दके चरित्र एवं उसके महत्त्वपूर्ण कार्योंका पता चलता है फिर भी इस नाटकके लिए जो ऐतिहासिक सामग्री ली गयी है, वह बहुत कम है। अतः इसे 'पूर्ण ऐतिहासिक' न मानकर 'अर्द्ध ऐतिहासिक' या 'स्वच्छन्द ऐतिहासिक' मानना अधिक समीचीन होगा। 'स्कन्दगुप्त' नाटककी कहानी उसके नायक स्कन्दगुप्तके अनासक्त कर्मठ व्यक्तित्वकी गौरव गाथा है, उसकी दुर्बलताओं, शक्ति प्रदर्शन, प्रेम, त्याग आदि अन्तर्द्वन्द्वोंके विकासकी कहानी है। स्कन्दगुप्तके चरित्रमे "नाटककारने पाश्चात्य व्यक्ति-वैचित्र्य और भारतीय साधारणीकरण का सुन्दर समन्वय किया है।"

स्कन्दगुप्त नाटकका सबसे अधिक शक्तिशाली पात्र है। वह अलौकिक प्रतिभासम्पन्न, सबकी आशाओंका ध्रुवतारा एवं उदात्त चरित्रसे सम्पन्न है। उसीके नामपर नाटकका नामकरण हुआ है। उसमे कुलशीलकी उत्तमताके साथ शान्त प्रकृति, दृढ़ संकल्प एवं गम्भीर भावनाओंका अद्भुत योग है। वह गुप्त-कुलका अभिमान एवं आर्य चन्द्रगुप्तकी अनुपम प्रतिकृति है। मालव-नरेश बन्धुवर्माकी दृष्टिमे "उदार वीर हृदय, देवोपम सौन्दर्य, इस आर्यावर्तका एक मात्र आशास्थल, इस युवराजका विशाल मस्तक कैसी वक्रलिपियोंसे अंकित है। अन्तःकरणमे तीव्र अभिमानके साथ विराग है। आँखोंमे एक जीवनपूर्ण ज्योति है।" प्रारम्भमे स्कन्दगुप्त विरक्त और विचारमग्न दिखाई देता है। अधिकार सुखको वह निस्सार और मादक समझता है। उसमें तितिक्षा और वैराग्यकी भावना प्रभूत मात्रामे है। विचारोंकी गम्भीरताके कारण वह शान्त प्रकृतिका है, गुप्त साम्राज्यके उत्तराधिकार-नियमोंसे भी उसमें चिन्ताका आविर्भाव होता है। अपने भावी जीवनमें उग्र परिस्थितियोंसे संघर्ष करनेके कारण जब वह अन्तमें प्रेमकी शीतल छायाका भी अभाव पाता है, तब उसकी विरक्ति और अधिक बढ़ जाती है। उसके जीवनकी इतनी अधिक विरक्ति-परक चिन्तना नाटकके नायक होनेमें एक प्रश्न चिह्न उपस्थित करती है। फिर भी स्कन्दगुप्तकी यह अतिरंजित विराग-भावना उसके व्यक्तित्वको शिवत्व प्रदान कर देवोपम बनानेमे सहायक सिद्ध होती है। स्कन्दका जीवन महत्त्वाकांक्षाओंसे प्रेरित न होकर अनासक्त कर्तव्य-

पालनके रूपमें गतिशील होता है। वह स्वयंको साम्राज्य का एक सैनिक समझता है। मालवमें राज्याभिषेकके अवसरपर गोविन्द गुप्तसे कहता है: "इस समय मैं एक सैनिक बन सकूँगा, सम्राट् नहीं।" उसके हृदयमें सदैव आदर्शों एवं यथार्थ जगत्के कार्य व्यापारोंके बीच संघर्ष छिड़ा रहता है फिर भी वह कभी आदर्शका साथ नहीं छोड़ता। जिस समय भटार्कके कुचक्रोंके कारण विदेशी आक्रमणकारी सफलता प्राप्त करते है और कुम्भाके रण-क्षेत्र में स्कन्दकी सेना पराजित होती है, उस समय स्कन्दगुप्त विक्षुब्ध होकर अनागतकी बात सोचने लगता है। उसे न तो अपने दुःखोंकी चिन्ता होती है और न संसारके आक्षेपों की ही वह परवाह करता है। उसे तो यही ग्लानि मारे डालती है कि "यह ठीकरा इसी सिरपर फूटने को था, आर्य साम्राज्यका नाश इन्हीं आँखोंसे देखना था।" "यह नीति और सदाचारोंका महान् आश्रय वृक्ष गुप्त साम्राज्य हरा-भरा रहे और कोई भी इसका उपयुक्त रक्षक हो।" स्कन्दगुप्तके इस कथनमे उसका उदार और अनासक्त राष्ट्र-प्रेम व्यक्त हुआ है। उसका निर्लिप्त राष्ट्र-प्रेम परमुखापेक्षी नहीं है अन्यथा अतुल पराक्रमसे अर्जित राज्यको वह अपने छोटे भाई पुरगुप्तको देनेकी कामना न करता। शुद्ध बुद्धिसे प्रेरित सच्चे कर्मयोगीकी भाँति वह न तो किसीसे शत्रुता रखता है और न उसकी कोई व्यक्तिगत लालसा है। देश-प्रेमसे सवलित कर्त्तव्यभावनासे प्रेरित होकर दृढ आत्म-विश्वासके साथ वह एक स्थलपर भटार्कसे कहता है: "भटार्क! यदि कोई साथी न मिला तो साम्राज्यके लिए नहीं, जन्म-भूमिके उद्धारके लिए मैं अकेला युद्ध करूँगा।" स्कन्दगुप्त यदि कोरा आदर्शवादी बनकर राष्ट्रकी समस्याओंको सुलझानेसे तटस्थ हो जाता तो वह अपने कर्मठ कर्त्तव्यनिष्ठ व्यक्तित्वमें एक प्रश्नचिह्न लगा लेता। स्कन्दगुप्तके आदर्श संघर्ष एवं समस्याओंकी तीव्र लपटोंमे न झुलसकर और अधिक भास्वर हो उठते है। वह शर्वनाग, भटार्क, अनन्त देवीके जघन्य कार्योंको माता देवकीकी आज्ञासे क्षमादान द्वारा दण्डित करता है। नाटककारने स्कन्दके चरित्रमें निर्लिप्त कर्त्तव्यनिष्ठाके अतिरिक्त प्रणय-भावके मधुर पक्षका चित्रण भी बड़ी कुशलताके साथ किया है। वह यौवनकी प्रारम्भिक वेला में विजयाके सौन्दर्यसे आकृष्ट होता है। उसका प्रणय सतही न होकर सागर की सी गम्भीरता एवं विशालता छिपाये हुए है। विजया द्वारा भटार्कको पति रूपमे वरण करनेके कथनको सुनकर वह क्षुब्ध हो उठता है और स्वाभाविक आवेगमे कह पड़ता है: "परन्तु विजया तुमने यह क्या किया!" इस स्वप्नके भंग हो जानेपर स्कन्दगुप्तके जीवनमें देवसेनाका प्रवेश होता है। श्मशानमें मृत्यु के मुखमें पड़ी देवसेना उसके शौर्य संवलित सौन्दर्यका ध्यान करती है और स्कन्द छिपा हुआ सुनता है। हूणोंके दमनकार्यमें रत हो जानेसे उसे एक दीर्घ समय तक देवसेनासे मिलनेका अवकाश नहीं मिलता। पुनर्मिलन होनेपर स्कन्दकी सात्त्विकके प्रणय-भावना इन शब्दोंमें मुखर हो उठती है: "जीवनके शेष दिन, कर्म के अवसादमें बचे हुए हम दुःखी लोग एक दूसरेका मुँह देखकर काट लेंगे। इस नन्दनकी वसन्त श्री, इस अमरावतीकी शची, इस स्वर्गकी लक्ष्मी तुम चली जाओ—ऐसा मैं किस मुँहसे कहूँ!" स्कन्दगुप्तके चरित्रकी विशेषताओंपर नाटकके अन्य पात्रों द्वारा प्रकाश पड़ता है। मातृगुप्त "प्रवीर उदारहृदय स्कन्दगुप्त कहाँ है" की करुणापरक वाणीमें उसका आवाहन करता है। रामा उसके लोकोत्तर चरित्रकी स्मृतिमें प्रलाप करती हुई कहती है: "वही स्कन्द, रमणियोंका रक्षक, बालकोंका विश्वास, वृद्धोंका आश्रय और आर्यावर्तकी छत्र छाया।" इस प्रकार लोकोत्तर उदात्त चरित्रसे सम्पन्न, कर्त्तव्यनिष्ठा एवं देश-प्रेमकी भावनासे मण्डित स्कन्दगुप्त सबकी आशाका केन्द्र प्रोज्ज्वलित ध्रुवतारा सिद्ध होता है। —के० प्र० चौ०

स्यामसगाई–दे० 'नन्ददास'।

स्वप्न–रामनरेश त्रिपाठीकृत तीसरा आख्यानक खण्ड-काव्य है। इसका प्रकाशन १९२९ई०में हुआ था। 'मिलन' (दे०) और 'पथिक' (दे०)की भाँति इसकी कहानी भी एक प्रेमकहानी है। इसका नायक 'वसन्त' प्रारम्भमे अपनी प्रियामें अत्यधिक अनुरक्त है। बादमें अपनी प्रिया द्वारा ही उद्बुद्ध किये जानेपर उसे अपने कर्त्तव्योंका बोध होता है और वह शत्रुओं द्वारा आक्रान्त स्वदेशकी रक्षा करनेके लिए निकल पड़ता है। इस काव्यमे भी समय-समयपर यथाप्रसंग प्रकृतिके कल्पना-रंजित मनोरम चित्रोंकी प्रदर्शनी सजाई गयी है। चरित्र-चित्रणकी दृष्टिसे नायक वसन्त का चरित्र प्रियतमा और राष्ट्र-प्रेमको लेकर चलनेवाले अन्तर्द्वन्द्वके कारण सजीव हो उठा है। —रा० श्र०

स्वर्णकिरण–(१९४७ ई०) सुमित्रानन्दन पन्तका आठवाँ काव्य संकलन है। इसमें ३८ रचनाएँ संगृहीत है। इन रचनाओंमें अन्तिम दो रचनाओं 'स्वर्णोदय' और 'अशोक-वन' का आधुनिक हिन्दी काव्यमें अपना निश्चित स्थान है। दोनो लम्बी रचनाएँ है। 'स्वर्णोदय' मानव-शिशुके जन्म, विकास, प्रौढत्व और अवसानकी सम्पूर्ण जीवन-गाथा है। इसे उत्तर रचनाओंमें वही स्थान प्राप्त होना चाहिये, जो किशोर रचनाओंमे 'परिवर्त्तन' को प्राप्त है। 'अशोकवन' मे १९ प्रगीत हैं, जिनमे अधिकांश सम्बोधि-गीत कहे जा सकते हैं। इन प्रगीतोंमे रामकथाके माध्यम से चेतनावादकी प्रतीकात्मक व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। शेष रचनाओंको हम कई वर्गोंमे रख सकते हैं। सच तो यह है कि यह संकलन उत्तर पन्तके व्यक्तित्वका अन्य संकलनोंकी अपेक्षा कहीं अधिक सुन्दर रूपमे प्रतिनिधित्व करता है। सुविधाकी दृष्टिसे संकलनकी रचनाओंको चेतनावादी (अरविन्दवादी), प्रकृतिवादी, प्रशस्तिमूलक और व्यंग्य रचनाओंके शीर्षक दे सकते हैं परन्तु सभी रचनाओंमें कविकी नूतन जीवन दृष्टि, उसका नया अध्यात्मवाद और नवीन जीवनोल्लास दृष्टिगत होता है। छन्दोंकी भूमि प्रयोगात्मक न होकर भी नयी भावाभिव्यंजनामें समर्थ है।

चेतनावादी रचनाओंकी शीर्षमणि 'श्री अरविन्द दर्शन' शीर्षक रचना है। इस रचनामें कवि योगी अरविन्दके साक्षात्कारसे उत्पन्न व्यक्तिगत प्रभावको ऊर्ध्व चेतनाका रूप दे देता है। उन्हें दिव्य जीवनका दूत मानकर कवि

तन, मन, प्राण, हृदय समर्पित करता है। उसके अनुसार युग-युगके पूजन-आराधन, जप-तप और शास्त्र अरविन्दकी साधना और वाणीसे कृतार्थ हो उठे हैं। वह उनमें अवतारी दैवत्वकी कल्पना करता है और उन्हें ब्रह्मविद्याका ज्योति-स्तम्भ मानकर उनकी प्रशस्ति गाता है।

संकलनकी दूसरी कोटि प्रकृतिवादी रचनाओंकी है, जहाँ कविकी प्रकृतिचेतना 'पल्लव', 'गुंजन' और 'ग्राम्या'की तीन संस्थानक भूमियोंको छोड़कर नयी आध्यात्मिक भूमि पर संचरण करती है। फलतः प्राकृतिक सौन्दर्य उसके लिए आत्मिक सौन्दर्यका प्रतिनिधि और भविष्यकल्पी समाजचेतना तथा जीवन-संस्कारका प्रतीक बन जाता है। इन रचनाओंमें न गहरे ऐन्द्रिक रंगोंकी चटुलता है, न मंगलाकांक्षी आत्माकी प्रसन्नचेतना मात्र, न विवरणात्मक वस्तुचित्रण, जो बौद्धिक चेतनाका प्रसार हो। इसके विपरीत इन प्राकृतिक रचनाओंमें आत्म और परकी सीमाएँ नष्ट हो गयी हैं और प्रकृति तथा मानव एक ही दैवी चेतनासे ओतप्रोत अधिमानसी भूमिका मात्र जान पड़ते हैं। इन रचनाओंकी शब्दावली और भाव-चयनपर कविके वैदिक अध्ययन, प्रमुखतः उषासम्बन्धी ऋचाओंका प्रभाव भी लक्षित है। कवि बार-बार 'पल्लव'की प्रचुर कल्पना और भावपूर्ण सौन्दर्य भूमिकी ओर लौटता है, जिससे वायवीय और आध्यात्मिक चेतनाका प्रतीक होनेपर भी इन रचनाओंमें पर्याप्त मांसलता आ गयी है। 'हिमाद्रि' शीर्षक रचना इस संकलनकी सर्वश्रेष्ठ प्रकृति-कविता कही जा सकती है क्योंकि उसमें हिमालयका वस्तु-सौन्दर्य कविकी चेतनाके भाव-सौन्दर्य और अतिमानवीय सजगताका प्रतिरूप बन गया है। 'पषण', 'चन्द्रोदय', 'मत्स्यगन्धाएँ' इत्यादि रचनाएँ प्राकृतिक सन्दर्भोंको लेकर एक नये अतीन्द्रिय भाव-जगत्‌की सृष्टि करती हैं, जहाँ सभी सुन्दर, आत्मिक तथा अतिमानसीय बनकर चमत्कारी हैं। प्रशस्तिमूलक रचनाएँ नोआखालीके महात्माजी और पण्डित जवाहर लाल नेहरूके प्रति हैं, जिन्हें कविने अपनी नवीन चेतनासे सम्बद्ध किया है। 'कौवेके प्रति' रचना कविके उस समरस-भावकी ओर संकेत करती है, जो निन्दनीयमें भी रसग्रहण कर सकता है। इस रचनामें कविने पक्षपातको कामनाका मूल कहा है, जो समस्त दुःखोंका कारण है और काकवण्ठमें सन्तुलन और समरसत्त्वका पाठ पढ़ा है।

'स्वर्णोदय'को कविने 'जीवन सौन्दर्य' उपशीर्षक दिया है। मानव-जीवनके विकासमान आयामोंमें चिरन्तन सौन्दर्य-की अभिव्यंजना पाना ही रचनामें कविका उद्देश्य है। इसीलिए कवि बालकके जन्मसे लेकर उसके पितामही जीवन तकका सारा मनस्तत्त्व बड़ी सूक्ष्म और पैनी दृष्टिसे पकड़ता है और वर्द्धमान जीवन चेतनाके उस धाराप्रवाहको रूपायित करता है, जो विविध जीवनस्थितियोंमें अन्तरंगी मणि-सूत्रकी तरह पिरोया हुआ है। यह अकेली रचना आधुनिक हिन्दी कविताकी प्रौढ़ताका प्रतिनिधित्व कर सकती है। पन्तकी रचनाओंमें इसका स्थान सर्वश्रेष्ठ रहेगा। प्रौढ़ जीवनानुभूति, सन्तुलित जीवनदर्शन और दार्शनिक ऊहा-की समर्थ, काव्यमय तथा व्यंजक अभिव्यक्ति इस रचनाको प्रथम पंक्ति देती है। बदलती हुई मनोवृत्तियोंका ऐसा छाया-प्रकाशमय विशद चित्र अन्यत्र दुर्लभ है। बीच-बीच में अवस्थानुरूप भावपरिवर्तनको प्राकृतिक ऋतु-परिवर्तनकी प्रतीक रचना द्वारा मूर्त्त किया गया है। रचनाके अन्तमें प्रौढ और वृद्धके मनः-प्रवाहमें आधुनिक जीवनके परिष्कारकी जो योजनाएँ और वितर्कनाएँ हैं, उनमें स्वयं कविकी प्रौढ़ विचारणा प्रतिध्वनित है। मानव-जीवनकी उद्दाम जिजीविषाको अध्यात्मोन्मुख कर अन्तमें कवि अमृत्यके मृत्य-पर्यटनकी सुन्दर झाँकी प्रस्तुत करता है। जीवनके चरम लक्ष्य और कृताशीः मानवकी हुताशनी चित्रवेलाका अपूर्व उद्‌गान इस रचनामें मिलेगा। —रा० र० भ०

स्वर्णधूलि—(१९४७ ई०) सुमित्रानन्दन पन्तका सातवाँ काव्य-संकलन है। संकलित रचनाओंकी संख्या ८० है। इनके अन्तर्गत 'आर्षवाणी' शीर्षकसे १४ रचनाएँ और कवि द्वारा १९३५ ई०में अनूदित 'संन्यासीका गीत' है और अन्तमें 'मानसी' रूपक। 'सन्यासीका गीत' स्वामी विवेकानन्दकृत 'सांग आव द संन्यासिन्'का रूपान्तर है।

'स्वर्णधूलि' कवि-मानसकी स्वर्ण चेतनाका प्रतीक है, जो जड़को चेतनके संस्पर्शसे मूल्यवान् बनाकर मानवके आरोहणके लिए मार्ग प्रशस्त करती है। स्वर्ण नयी जीवन-चेतनाकी दिव्यता और महार्घताको विज्ञापित करता है। अपनी इसी भावनाके अनुरूप कविने नये प्रतीक गढ़े हैं और अपनी भाषा-शैलीको भी मांसल तथा चित्रमय बनाना चाहा है परन्तु 'पल्लव'के कवि और इन रचनाओंके कविके बीचमें बौद्धिक साधना और प्रौढ़ वर्षोंका जो व्यवधान पड़ गया है, वह तिरोहित नहीं हो पाता। फिर भी जिस काव्य-भाषाका उपयोग इन उत्तर रचनाओं-में मिलता है, वह प्राणवान् और भावनामय है।

'स्वर्णधूलि'की रचनाओंको कई श्रेणियोंमें विभाजित कर सकते हैं। प्रथम तो वे कथात्मक या संवादात्मक रचनाएं हैं, जिनमें कविने सामाजिक और नैतिक मूल्योंकी सूक्ष्मता पर प्रकाश डाला है। 'पतिता'में बताया गया है कि नारी देहसे कलंकित नहीं होती, मनसे कलंकित होती है और प्रेम पतितको भी पावन करनेमें समर्थ है। कलंकित मालतीको उसका पति केशव इसी सत्यके अमृतसे जीवन-दान देता है। 'परकीया'में हृदयस्थ सत्यको ही अन्तिम वास्तविकता मान कर करुणाके परकीयत्वको लांछनासे बचानेका उपक्रम है। 'ग्रामीण'में कविने पश्चिमी रंगमें रंगे श्रीधरके अन्तस्‌में सोए हुए ग्रामीणको दिखा कर, जो सहज आन्तरिक श्रद्धा और सद्विश्वासों पर निर्भर है, उसे इस प्रवादसे उबारा है कि वह सूट-बूटधारी नागर मात्र है। 'सामंजस्य'में वह भावसत्य और वस्तुसत्यको आत्मसत्य-के ही दो चेहरे सिद्ध करता है। 'आजाद'में मनुष्यके कर्म-स्वातन्त्र्यको परिबद्ध बता कर दैवी शक्तिकी महत्ता स्थापित की गयी है और 'लोकसत्य'में माधव-यादवके संवादमें मनुष्यत्वकी क्षमताको जनबलसे भी बड़ा कहा गया है। इस प्रकारकी अन्य भी कई कथात्मक रचनाएँ इस संकलनकी शोभा हैं और उनसे कविने अपनी नयी आस्थाको दृढ़ करनेका काम लिया है।

संकलनकी रचनाओंमें दूसरी कोटि चेतनावादी रचनाओं-

की है यद्यपि उनकी संख्या अधिक नहीं है। 'ज्योतिसर', 'निर्झर', 'अन्तर्वाणी', 'अविच्छिन्न', 'कुण्ठित', 'आर्त्त', 'अन्तर्विकास' आदि रचनाएँ इसी कोटिकी हैं। इन रचनाओंमें सर्वश्रेष्ठ 'प्रणाम' और 'मातृचेतना' शीर्षक रचनाएँ हैं। पहली रचनासे कविके प्रेरणा-स्रोतका पता चलता है तो दूसरी रचना अरविन्द-दर्शनकी स्पर्शमणि मातृचेतनाको काव्योपम उपमानोंमें बाँधनेका प्रयत्न है। दोनों रचनाएँ कविकी नयी भाव-दिशाकी द्योतक हैं। तीसरी कोटिकी रचनाएँ प्रकृतिसम्बन्धी रचनाएँ हैं, जो कविकी प्रकृतिचेतनाका नया संस्करण प्रस्तुत करती हैं। अन्तस्सलिलाकी भाँति प्रकृति-प्रेम पन्तकी काव्यचेतनाका अभिन्न अंग रहा है। इस स्वर्णसूत्रमें उनका समस्त काव्य-विकास ग्रथित है। प्रत्येक नये मोड़के साथ उन्होंने प्रकृतिकी ओर नयी भावमुद्रासे देखा है और नये प्रतीकों तथा शब्दसूत्रोंमें उसे बाँधा है। अरविन्दवादी काव्यमें वसन्त और शरद, चाँदनी और मेघ नयी अध्यात्म चेतनाके प्रतीक बन गये हैं। 'सावन', 'क्रोटनकी टहनी' और 'तालकुल' जैसी नयी अभिव्यंजनाओंवाली रचनाएँ भी यहाँ मिलेंगी, जिनमें कवि दार्शनिक ऊहापोह और चिन्ताकी मुद्राको पीछे छोड़ कर एकदम प्रकृतस्थ हो जाता है और कलाकारकी भाँति नये परिपार्श्वसे प्रकृतिको छायाचित्र बना देता है। चौथी कोटिकी रचनाएँ सद्योपलब्ध स्वातन्त्र्यका अभिनन्दन अथवा ध्वजवंदन हैं। संकलनकी एक कविताका उल्लेख करना अनुचित नहीं होगा। यह कविता 'लक्ष्मण' शीर्षक है। कविके आत्मवृत्तमें लक्ष्मणके प्रति उसके सतत् जाग्रत प्रशंसा-भावका उल्लेख मिलता है और उनके सेवाधर्मको उन्होंने आदर्श माना है। इस रचनामें इसी ममत्वने वाणी पायी है। —रा० र० भ०

हंस–'हंस' का प्रकाशन सन् १९३० ई० में बनारससे हुआ। इसके संस्थापक प्रेमचन्द थे। उन्हींके सम्पादकत्वमे यह पत्रिका हिन्दीकी प्रगतिमे अत्यन्त सहायक सिद्ध हुई। सन् १९३३ ई० मे प्रेमचन्दने इसका 'काशी विशेषांक' बडे परिश्रमसे निकाला। वे सन् १९३० से सन् १९३६ ई० तक इसके सम्पादक रहे। उसके बाद जैनेन्द्र और शिवरानी देवीने इसका सम्पादन प्रारम्भ किया। इसके विशेषांकोमे 'प्रेमचन्द-स्मृति अंक', 'एकांकी नाटक अंक' (१९३८), 'रेखाचित्र अंक', 'कहानी अंक', 'प्रगति अंक' तथा 'शान्ति अंक' विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं। जैनेन्द्र और शिवरानी देवीके बाद इसके सम्पादक शिवदान सिंह चौहान और श्रीपत राय फिर अमृत राय और फिर नरोत्तम नागर रहे।

बहुत दिनों बाद सन् १९५९ ई० में उसका बृहत् संकलन रूप सामने आया, जिसमें बालकृष्णराव और अमृत रायके सम्पादकत्वमे आधुनिक साहित्य और उससे सम्बन्धित नवीन मूल्योंपर विचार किया गया। —इ० दे० बा०

हजारीप्रसाद द्विवेदी–डाक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दीके शीर्षस्थानीय साहित्यकारोंमें हैं। वे उच्चकोटिके निबन्धकार, उपन्यास लेखक, आलोचक, चिन्तक तथा शोधकर्त्ता हैं। साहित्यके इन सभी क्षेत्रोंमें अपनी प्रतिभा और विशिष्ट कर्त्तृत्वके कारण विशेष यशके भागी हुए हैं। उनका व्यक्तित्व गरिमामय, चित्तवृत्ति उदार और दृष्टिकोण व्यापक है। उनकी प्रत्येक रचनापर उनके इस व्यक्तित्वकी छाप देखी जा सकती है।

उनका जन्म सन् १९०७ ई० (श्रावण शुक्ल ११, सं० १९६४)में बलिया जिलेके 'दुबेका छपरा' गाँवके एक प्रतिष्ठित सरयूपारीण ब्राह्मण-कुलमें हुआ था। उनके प्रपितामहने काशीमें कई वर्षों तक रहकर ज्योतिषका गम्भीर अध्ययन किया था। द्विवेदीजीकी माता भी प्रसिद्ध पण्डित कुलकी कन्या थीं। इस तरह बालक द्विवेदीको संस्कृतके अध्ययनका संस्कार विरासतमें ही मिल गया था।

अपनी पारिवारिक परम्पराके अनुसार उन्होंने संस्कृत पढना आरम्भ किया और सन् १९३० ई०में काशी हिन्दू विश्वविद्यालयसे ज्योतिषाचार्य तथा इण्टरकी परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। उसी वर्ष वे प्राध्यापक होकर शान्ति निकेतन चले गये। सन् १९४० से १९५० ई० तक वे वहाँपर हिन्दी भवनके डाइरेक्टरके पदपर काम करते रहे। शान्ति निकेतनमे रवीन्द्रनाथ टैगोरके घनिष्ठ सम्पर्कमें आनेपर नये मानवतावादके प्रति उनके मनमे जिस आस्थाकी प्रतिष्ठा हुई, वह उनके भावी विकासमे बहुत सहायक बनी। क्षितिमोहन सेन, विधुशेखर भट्टाचार्य और बनारसीदास चतुर्वेदीकी सन्निकटतामे भी उनकी साहित्यिक गतिविधिमें अधिक सक्रियता आयी। शान्ति निकेतनमें द्विवेदीजीको अध्ययन-चिन्तनका निर्बाध अवकाश मिला। वास्तवमें वहाँके शान्त और अध्ययनपूर्ण वातावरणमे ही द्विवेदीजीके आस्था-विश्वास, जीवन-दर्शन आदिका निर्माण हुआ, जो उनके साहित्यमें सर्वत्र प्रतिफलित हुआ है।

सन् १९५० ई०मे काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके तत्कालीन कुलपतिके अनुरोध और आमन्त्रणपर वे हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष और प्रोफेसर होकर वहाँ चले गये। इसके एक वर्ष पूर्व सन् १९४९ ई०मे लखनऊ विश्वविद्यालयने उनकी हिन्दीकी महत्त्वपूर्ण सेवाओंके कारण उन्हे डि० लिट्०की सम्मानित उपाधि (ऑनरिस काजा) प्रदान की थी। सन् १९५५ ई०मे वे प्रथम 'आफिशियल लैंग्वेज कमीशन'के सदस्य चुने गये। सन् १९५७ ई०में भारत सरकारने उनकी विद्वत्ता और साहित्यिक सेवाओंको ध्यानमें रखते हुए उन्हे 'पद्मभूषण'की उपाधिसे अलंकृत किया। १९५८ ई०मे वे नेशनल बुक ट्रस्टके सदस्य बनाये गये। वे कई वर्षों तक काशी नागरी प्रचारिणी सभाके उपसभापति, खोज विभागके निर्देशक तथा 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका'के सम्पादक रहे हैं। सन् १९६० ई०मे पंजाब विश्वविद्यालय के कुलपतिके आमन्त्रणपर वे वहाँके हिन्दी विभागके अध्यक्ष और प्रोफेसर होकर चण्डीगढ़ चले गये। सम्प्रति वे इसी पदपर हैं।

यद्यपि मूलतः द्विवेदीजी आचार्य रामचन्द्र शुक्लकी परम्पराके आलोचक हैं फिर भी साहित्यको एक अविच्छिन्न विकास-परम्परामें, देखनेपर बल देकर द्विवेदीजीने हिन्दी समीक्षाको नयी दिशा दी। साहित्यके इस नैरन्तर्यका विशेष ध्यान रखते हुए भी वे लोक-चेतनाको कभी अपनी दृष्टिसे ओझल नहीं होने देते। वे मनुष्यकी श्रेष्ठताके

विश्वासी हैं और उच्चकोटिके साहित्यमें इसकी प्रतिष्ठाको वे अनिवार्य मानते हैं। संस्कारजन्य क्षुद्र सीमाओंमें बँधकर साहित्य ऊँचा नहीं उठ सकता। अपेक्षित ऊँचाई प्राप्त करनेके लिए उसे मनुष्यकी विराट् एकता और जिजीविषाको आयत्त करना होगा। द्विवेदीजीने चाहे काल विशेषके सम्बन्धमें लिखा हो, चाहे कवि विशेषके सम्बन्धमें, उन्होंने अपनी आलोचनाओंमें यह बराबर ध्यान रखा है कि आलोच्य युग या कविने किन श्रेयस्कर मानवीय मूल्योंकी सृष्टि की है। कोई चाहे तो उन्हें मूल्यान्वेषी आलोचक कह सकता है पर वे आप्त मूल्योंकी अडिगतामें विश्वास नहीं करते। उनकी दृष्टिमें मूल्य बराबर विकसनशील होता है, उसमें पूर्ववर्ती और पार्श्ववर्ती चिन्तनका मिश्रण होता है। संस्कृत, अपभ्रंश आदिके गम्भीर अध्येता होनेके कारण वे साहित्यकी सुदीर्घ परम्पराका आलोड़न करते हुए विकसनशील मूल्योंका सहज ही आकलन कर लेते हैं।

'हिन्दी साहित्यकी भूमिका' (दे०) उनके सिद्धान्तोंकी बुनियादी पुस्तक है, जिसमें साहित्यको एक अविच्छिन्न परम्परा तथा उसमें प्रतिफलित क्रिया-प्रतिक्रियाओंके रूपमें देखा गया है। नवीन दिशा-निर्देशकी दृष्टिसे इस पुस्तकका ऐतिहासिक महत्त्व है। अपने फक्कड़ व्यक्तित्व, घर फूँक मस्ती और क्रान्तिकारी विचारधाराके कारण कबीरने उन्हें विशेष आकृष्ट किया। 'कबीर' पुस्तकमें उन्होंने जिस सांस्कृतिक परम्परा, समसामयिक वातावरण और नवीन मूल्यानुचिन्तनका उद्घाटन किया है, वह उनकी उपरिलिखित आलोचनात्मक दृष्टिके सर्वथा मेलमें है। 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' में द्विवेदीजीने नवीन उपलब्ध सामग्रीके आधारपर जो शोधपरक विश्लेषण प्रस्तुत किया है, उससे हिन्दी-साहित्यके इतिहासके पुनःपरीक्षणकी आवश्यकता महसूस की जा रही है। 'नाथ सम्प्रदाय' में सिद्धों और नाथोंकी उपलब्धियोंपर गम्भीर विचार व्यक्त किये गये हैं। 'सूर-साहित्य' उनकी प्रारम्भिक आलोचनात्मक कृति है, जो आलोचनात्मक उतनी नहीं है, जितनी भावात्मक। इनके अतिरिक्त उनके अनेक मार्मिक समीक्षात्मक निबन्ध विभिन्न निबन्ध-संग्रहोंमें संगृहीत हैं, जो साहित्यके विभिन्न पक्षोंका गम्भीर उद्घाटन करते हैं।

द्विवेदीजी जहाँ विद्वत्तापरक अनुसन्धानात्मक निबन्ध लिख सकते हैं, वहाँ श्रेष्ठ निर्बन्ध-निबन्धोंकी सृष्टि भी कर सकते हैं। उनके निर्बन्ध-निबन्ध हिन्दी निबन्ध-साहित्यकी मूल्यवान् उपलब्धि हैं। द्विवेदीजीके व्यक्तित्वमें विद्वत्ता और सरसताका, पाण्डित्य और विदग्धताका, गम्भीरता और विनोदमयताका, प्राचीनता और नवीनताका जो अद्भुत संयोग मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। इन विरोधाभासी तत्त्वोंसे निर्मित उनका व्यक्तित्व ही उनके निर्बन्ध निबन्धोंमें प्रतिफलित हुआ है। अपने निबन्धोंमें वे बहुत ही सहज ढंगसे, अनौपचारिक रूपमें, 'नाखून क्यों बढ़ते हैं', 'आम फिर बौरा गये', 'अशोकके फूल', 'एक कुत्ता और एक मैना', 'कुटज' आदिकी चर्चा करते हैं, जिससे पाठकोंका आनुकूल्य प्राप्त करनेमें उन्हें कोई कठिनाई नहीं होती। परन्तु उनके निबन्धोंका पूर्ण रसास्वादन करनेके लिए जगह-जगह बिखरे हुए सांस्कृतिक-साहित्यिक सन्दर्भोंको जानना बहुत आवश्यक है। इन सन्दर्भोंमें उनकी ऐतिहासिक चेतनाको देखा जा सकता है किन्तु सम्पूर्ण निबन्ध पढ़नेके बाद पाठक नये मानवतावादी मूल्योंकी उपलब्धि भी करता चलता है। उनमें अतीतके मूल्योंके प्रति सहज ममत्व है किन्तु नवीनके प्रति कम उत्साह नहीं है।

'बाणभट्टकी आत्मकथा' द्विवेदीजीका अपने ढंगका असमानान्तर उपन्यास है, जो अपने कथ्य तथा शैलीके कारण सहृदयों द्वारा विशेष रूपसे समादृत हुआ है। यह हिन्दी उपन्यास साहित्यकी विशिष्ट उपलब्धि है। इस उपन्यासमें उनके विस्तृत और गम्भीर अध्ययन तथा कारयित्री प्रतिभाका अद्भुत मिश्रण हुआ है। इसके माध्यमसे अपने जीवन-दर्शनके विविध पक्षोंको उद्घाटित करते हुए उन्होंने इसे वैचारिक दृष्टिसे भी विशिष्ट ऊँचाई प्रदान की है। हर्षकालीन जिस विशाल फलकपर बाणभट्ट को चित्रित किया गया है, वह गहन अध्ययन तथा गत्यात्मक ऐतिहासिक चेतनाकी अपेक्षा रखता है। कहना न होगा कि द्विवेदीजीके व्यक्तित्वके निर्माणमें इस ऐतिहासिक चेतनाका बहुत महत्त्वपूर्ण योग रहा है। यही कारण है कि वे समाज और संस्कृतिके विविध आयामोंको, उसके सम्पूर्ण परिवेश को, एक आवयविक इकाई (आरगैनिक यूनिटी) में सफलतापूर्वक बाँधनेमें समर्थ हो सके हैं।

इस उपन्यासमें कुछ पात्र, घटनाएँ और प्रसंग इतिहासाश्रित हैं और कुछ काल्पनिक। बाण, हर्ष, कुमार कृष्ण, बाणका घुमक्कड़के रूपमें भटकते फिरना, हर्ष द्वारा तिरस्कृत और सम्मानित होना आदि इतिहास द्वारा अनुमोदित है। निपुणिका, भट्टिनी, सुचरिता, महामाया, अवधूतपाद तथा इनसे सम्बद्ध घटनाएँ कल्पना-प्रसूत हैं। इतिहास और कल्पनाके समुचित विनियोग द्वारा लेखकने उपन्यास को जो रूप-रंग दिया है, वह बहुत ही आकर्षक बन पड़ा है। इस ऐतिहासिक उपन्यासमें मानव-मूल्यकी—नये मानवतावादी मूल्यकी—प्रतिष्ठा करना भी लेखकका प्रमुख उद्देश्य रहा है। जिनको लोक 'बण्ड' या कुल भ्रष्टा समझता है, वे भीतरसे कितने महान् हैं इसे बाणभट्ट और निपुणिका (निउनिया) में देखा जा सकता है। लोकचेतना या लोक-शक्तिको अत्यन्त विश्वासमयी वाणीमें महामाया द्वारा जगाया गया है। यह लेखकका अपना भी विश्वास है। द्विवेदीजी प्रेमको सेक्ससे असम्पृक्त न करते हुए भी उसे जिस ऊँचाईपर प्रतिष्ठित करते हैं, वह सर्वथा मनोवैज्ञानिक है। प्रेमके उच्चतर सोपानपर पहुँचने के लिए अपना सब कुछ उत्सर्ग करना पड़ता है। निपुणिकाको नारीत्व प्राप्त हुआ तपस्याकी अग्निमें गलने पर। बाणभट्टकी प्रतिभाको चार चाँद लगा प्रेमका उन्नयनात्मक स्वरूप समझने पर। सुचरिताको अभीप्सितकी उपलब्धि हुई प्रेमके वासनात्मक स्वरूपकी निष्कृति पर। शैलीकी दृष्टिसे यह पारम्परिक स्वच्छन्दतावादी (क्लैसिकल रोमाण्टिक) रचना है। बाणभट्टकी शैलीको आधार मानने के कारण लेखकको वर्णनकी विस्तृत और संश्लिष्ट पद्धति

अपनानी पड़ी है पर बीच-बीचमें उसकी अपनी स्वच्छन्द प्रवृत्ति भी जागरूक रही है, जिससे लम्बी अलंकृति शैली-की दुरूहताका बहुत कुछ परिष्कार हो जाता है। उनका दूसरा उपन्यास 'चारुचन्द्रलेख' 'कल्पना' पत्रिकामें धारावाहिक प्रकाशित हो रहा है।

कृतियाँ—'सूर साहित्य' (१९३६ ई०) 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' (१९४० ई०), 'प्राचीन भारतमें कलात्मक विनोद' (१९४० ई०), 'कबीर' (१९४२ ई०) 'बाणभट्ट की आत्मकथा' (उपन्यास, १९४७ ई०), 'अशोकके फूल' (नि० १९४८ ई०), 'नाथ सम्प्रदाय' (१९५० ई०), 'कल्पलता' (नि० १९५१ ई०), 'हिन्दी साहित्य' (१९५२ ई०), 'नाथ सिद्धोंकी बानियाँ' (सम्पादित १९५७ ई०), 'विचार प्रवाह' (नि० १९५९ ई०) 'मेघदूत : एक पुरानी कहानी' (१९५७ ई०), 'सन्देशरासक' (संवत् १९६० ई०), 'विचार विमर्श' (नि०), 'पृथ्वीराज रासो' (सं०)। —ब० सिं०

हनुमन्नाटक १—संस्कृतका यह नाटक महानाटक नामसे प्रसिद्ध है। इसके दो संस्करण प्राप्त हुए हैं। प्रथम संस्करण के रचयिता दामोदर मिश्र हैं। सम्भवतः यही प्राचीनतर संस्करण है। इसमें अंकोंकी संख्या १४ है। इसका कथानक रामायणके आधारपर है। इस नाटककी अनेक विशेषताएँ हैं। प्रथम विशेषता यह है कि इसके आरम्भमे नाटककार ने कोई प्रस्तावना नहीं दी है। दूसरी विशेषता यह है कि नाटकमें कहीपर प्राकृतका प्रयोग नहीं किया गया है। तीसरी विशेषता यह है कि इसमे पद्यात्मक अंशोंका बाहुल्य तथा गद्यात्मक अंशोंकी न्यूनता है। चौथी विशेषता यह है कि इसमें पात्रोंकी संख्या बहुत है। अन्तिम विशेषता यह है कि इसमें विदूषकका अभाव है। इसके रचयिता दामोदर मिश्रके सम्बन्धमें कहा जाता है कि ये राजा भोजके यहाँ रहते थे। अतः इनका समय ईसाकी ग्यारहवीं शताब्दीका पूर्व भाग समझना चाहिए।

संस्कृतके 'हनुमन्नाटक'के द्वितीय संस्करणके रचयिता मधुसूदनदास हैं। इस संस्करणमे अंकोंकी संख्या ९ है।

हिन्दीमें रामभक्त हनुमान्‌की उपासनामे अनेक रचनाएँ हुई। स्वामी रामानन्दने हनुमान्‌जीकी स्तुति लिखी। गोस्वामी तुलसीदासजीने अनेक स्थलोंपर उनकी वन्दना की। 'हनुमानबाहुक' उन्होंने हनुमान्‌जीपर लिखा है। इसी प्रकार रायमल पाण्डेयने सवत् १६९६ में 'हनुमच्चरित्र' लिखा। रीतिकालीन कवि भगवन्तराय खीचीने 'हनुमत् पचीसी' तथा मनियारसिंहने 'हनुमत् छब्बीसी' नामक रचनाएँ कीं। साथ ही इसी कालके खुमान कविने 'हनुमान नखशिख पंचक' तथा 'हनुमान पचीसी' नामसे रचनाएँ कीं।

संस्कृतके 'हनुमन्नाटक'के हिन्दीमें दो अनुवाद हुए:—(१) हृदयरामकृत 'भाषा हनुमन्नाटक', (२) बलभद्र मिश्र-कृत 'हनुमन्नाटक',।

इन दो अनुवादोंके अतिरिक्त खोजमें एक और 'हनुमान-नाटक' रचना प्राप्त हुई है, जिसके रचयिता रीतिकालीन राम कवि कहे जाते हैं।

हृदयरामने 'भाषा हनुमन्नाटक'की रचना संवत् १६८० (१६२३ ई०)में की। इसकी भाषा परिमार्जित है। इस नाटकमें कविने कवित्त और सवैयोंमें संवादोंकी रचना की, जो अत्यन्त प्रभावशाली है। हृदयरामके पिताका नाम कृष्ण-दास था। ये पंजाबके निवासी थे। राम और हनुमान्‌के संवादका कितना अच्छा उदाहरण निम्नलिखित पंक्तियोंमें प्राप्त होता है:—"ऐहो हनू कह्यौ श्री रघुबीर कछू सुधि है सियकी छिति माँही। है प्रभु लंक कलंक बिना सुबसै तहूँ रावन बागकी छाँही॥ जीवति है? कहिवेईको नाथ, सु क्यों न मरी हम तें बिछुराही? प्रान बसै पदपंकजमें जम आवत है पर पावत नाहीं॥"

इसी प्रकार लक्ष्मणजीकी सीताजीके प्रति श्रद्धा और भक्ति निम्नलिखित पंक्तियोंमें झलकती है:—"जानकीको मुख न विलोक्यो ताते कुण्डल, न जानत हौं, वीर पाँय छुवै रघुराइके। हाथ जो निहारै नैन फूटियो हमारे, ताते कंकन न देखे, बोल कह्यो सतभाइके॥ पाँयनके परिबे कौ जाते दास लछमन, यातें पहिचानत है भूषन जे पाँय के। बिछुआ है एई, अरु झझार है एई जुग, नूपुर है तेई राम जानत जराइ के॥"

दूसरा अनुवाद बलभद्र मिश्रका है। ये कवि केशवदासके बड़े भाई थे। इनका जन्म संवत् १६०० (१५४३ ई०)के आस पास माना जाता है। ये ओरछाके सनाढ्य ब्राह्मण थे। इनके पिताका नाम पण्डित काशीनाथ था। इनकी प्रसिद्ध रचना 'नखशिख शृंगार' है। संवत् १८९१ (१८३४ ई०)में गोपालकविने इस ग्रन्थपर एक टीका लिखी। गोपाल कविने ही बलभद्र रचित तीन अन्य ग्रन्थोंकी सूचना दी है—'बलभद्री व्याकरण', 'हनुमन्नाटक' तथा 'गोवर्द्धन-सतसई टीका'। —शि० शे० मि०

हनुमन्नाटक २—हृदयराम पंजाबीने सन् १६२३ ई० में 'हनुमन्नाटक' नामक काव्य-नाटकका प्रणयन किया। नाटककारका पूरा नाम हृदयराम भल्ला था। मैंने पंजाब विश्वविद्यालय, लाहौरके पुस्तकालयमे इनका एक काव्य-ग्रन्थ 'सुदामाचरित' देखा था। इनका एक दूसरा काव्य-ग्रन्थ, जो खण्डित प्रतिके रूपमे था, डी० ए० वी० कालेज, लाहौरके अनुसन्धान विभागमे था। इसका नाम था 'रुक्मिणी मंगल'। कवितामे हृदयरामने अपना उपनाम 'राम' रखा है।

'हनुमन्नाटक' संस्कृत 'हनुमन्नाटक'का शुद्ध अनुवाद नहीं है, छायानुवाद हम भले ही कह लें। दोनोंमे साम्य इतना ही है कि स्थूल रूपसे अंक, कथा एवं पात्र एक ही हैं। नहीं तो वैषम्य बहुत है—१. हिन्दी 'हनुमन्नाटक'मे ११८३ छन्द हैं। इनमेंसे शुद्ध अनूदित छन्द केवल ३८ हैं ('हिन्दी नाटक-उद्भव और विकास' : डा० दशरथ ओझा, प्र० सं० पृ० १५४)। २. मूल नाटकमें परशुरामजी धनुष भंग होते ही आ जाते हैं किन्तु हिन्दी नाटकमे वे विवाहोपरान्त आते हैं। ३. संस्कृत नाटककारने कैकेयी वरदानप्राप्ति और राम वनगमन प्रसंगको कोई महत्त्व नहीं दिया है और पूरे प्रसंगको तीन श्लोकोंमें समाप्त कर दिया है ('हनु-मन्नाटक', मुम्बईमे मुद्रित, पं० सं० ३-३, ४, ५), हिन्दी नाटकमें इस प्रसंगका अत्यधिक विस्तार है और ८९ छन्दोंमें यह कथा कही गयी है ('हनुमन्नाटक' : हृदयराम, वेंकटेश्वर

प्रकाशन, अंक—२ के सभी छन्द)। ४. संस्कृत-नाटकमें राम-सीताकी सुहागरातका घोर शृंगारिक चित्रण है ('हनुमन्नाटक', संस्कृत, २-१० से ३० तक), जब कि हृदयरामने इस पूरे प्रसंगको छोड़ दिया है, केवल एक पक्तिमे इसकी सूचना भर दे दी है। वह पक्ति है—"राम समाज जुरो पुरमें, सिय राम मिले मन आनन्द भारी" (२-४)। ५. संस्कृत नाटकमें राम-भरतका चित्रकूटपर मिलन-प्रसंग नहीं है। हिन्दी नाटककारने इसको बहुत विस्तार दिया है ('हनुमन्नाटक' : हृदयराम, ३-१८ से ४९ तक)। यही नहीं, राम भरतको राजनीतिकी शिक्षा भी देते हैं ('हनुमन्नाटक' : हृदयराम, ३-४१ से ४३ तक)। ६. संस्कृत नाटककारने शूपर्णखा प्रसंग छोड दिया है। हृदयरामने इस प्रसंगको हृदयकी पूरी भावुकतासे संजोया है। फलतः यह पूरा प्रसंग नाटकके सुन्दरतम स्थलोंमेसे एक है। हृदयरामकी शूर्पणखा एक सुन्दर युवती है, जो वडी लम्पट है। रामके असाधारण सौन्दर्यको सुनकर वह दौड़ पडती है। उस समय उसकी कैसी दशा थी—"वैरी शिव जागो तकि तैसे पाछें लाग्यो, जैसे पारो जाय भाग्यो देख सुन्दर स्वरूपको। लाम्बी डग भरी ठौर ठौर गिर परी, राम देखे जिह धरि देख रही मुख रूपको॥" (३-६९)। नाटककारने राम-शूर्पणखा संवाद अत्यन्त स्वाभाविक एव मार्मिक बनाया है, जो अत्यन्त मौलिक भी है। ७ संस्कृत नाटकमे हनुमान्‌जी समुद्र लाँधकर तुरन्त सीताजीके पास पहुँच जाते हैं, इधर हिन्दी नाटकमे वाल्मीकिका अनुगमन किया गया है। हनुमान्‌जी पर्वत, सरिताओंमें खोजते हैं, अखाडे और घर-द्वार देखते हैं, रावण-रनिवासमे मन्दोदरीको देखकर उछल पडते हैं किन्तु निकट ही रावणको देखकर वे समझ जाते हैं कि यह सीता नहीं हो सकती। ८. संस्कृत नाटकमें प्रस्तावना है, हिन्दीमे नहीं है।

'रामायण महानाटक' एवं अन्य ब्रजभाषा नाटकोके समान इस नाटककी शैली प्रबन्धात्मक है। नाटकमे पात्र तो कथोपकथन करते ही हैं परन्तु साथ ही कवि भी उपस्थित है और कथा कहता है, वर्णन करता है एव पात्रोंका प्रवेश निष्क्रमण कराता है बहुतसे स्थानोंपर लिखा मिलता है "कविकी उक्ति" या "कविका वचन"। यही देखकर कुछ आलोचकोने घोषणा कर दी है कि यह एवं ऐसे अन्य ब्रजभाषा नाटक, नाटक नहीं है। उनका प्रधान तर्क है कि यह शैली प्रबन्धात्मक है, जिसमे कवि स्वय कथा कह रहा है किन्तु यह शैली हृदयरामको सस्कृत नाटकसे ही मिली है। मूल नाटकमे भी कवि स्वय कथा कहता है (१-५, ६, ७, सम्पूर्ण दूसरा अंक), वर्णन करता है (२-३ से १० तक) एवं पात्र प्रवेश कराता है (१-२८, २९, ३०, ३१)। हृदयरामने इसी शैलीको विस्तारसे अपना लिया है। प्रबन्धात्मक शैली अपनानेका दूसरा कारण है, तत्कालीन जन-नाट्य शैली, जो रामलीलाओंके माध्यमसे जनतामें प्रवेश कर रही थी। संस्कृत नाटकमें भी पद्यकी प्रधानता है। हृदयरामने गद्यको बहिष्कृत ही कर दिया है। यह भी जन-नाट्य शैलीका प्रभाव था। आगे आनेवाले ब्रजभाषा नाटककारोंने जहाँ एक ओर प्रचलित जन नाटकोंकी ओर ध्यान दिया, वहाँ उन्हें 'रामायण महानाटक' और 'हनुमन्नाटक'से भी प्रेरणा मिली। —गो॰ ना॰ ति॰

हनुमान्–रामकथाके उत्तरांशमें हनुमान्‌का महत्त्व शेष पात्रोंसे कहीं अधिक है। हनुमान्‌की उत्पत्ति-विषयक धारणाओंमें प्रायः विद्वानोंमें वैमत्य है। राम-कथाको कृषि-रूपकमें घटित करनेवाले पाश्चात्य विद्वान् डा॰ याकोबीका मत है कि हनुमान् वर्षाके देवता हैं। उन्होंने हनुमान् और इन्द्रको प्रायः पर्यायवाची सिद्ध करते हुए अपने मतकी पुष्टि की है। इन्द्रके एक वैदिक पर्याय 'शिप्रावत्'का उल्लेख करते हुए निरुक्तिके सूत्र 'शिप्रे हनु नाषिके वा'का संकेत किया गया है। यही नहीं, हनुमानके अन्य नामोंमें मारुति, मारुत सुत आदि नाम इन्द्रके मरुत-संघोंका स्मरण दिलाते हैं। इन्द्र एवं हनुमान्‌के परस्पर संघर्षका उल्लेख पौराणिक कथाओंमे भी हो जाता है—जहाँ इन्द्रके वज्रसे हनुमान्‌की हनु (ठुड्ढी)के टेढे होनेका उल्लेख मिलता है। दिनेशचन्द्र सेनका मत है कि 'वाल्मीकि-रामायण'के पूर्व हनुमान्‌के वीरतासम्बन्धी अनेक आख्यान प्रचलित रहे होंगे—वाल्मीकिने स्वेच्छया उनका प्रयोग किया होगा। डा॰ कामिल बुल्के इन सबके विपरीत अपना मत देते हैं कि हनुमान् द्रविड़ देवता 'आणमन्द' वर्षा-कपिःके रूपान्तरण हैं।

हनुमान् अपने पराक्रमके लिए 'वाल्मीकि-रामायण'के द्वारा प्रसिद्ध हुए हैं। उनकी वीरताका उल्लेख काल्पनिक योजनाओंसे सम्बद्ध करके वाल्मीकिने इतनी रमणीयतासे किया है कि वे दैवी-शक्तिसम्पन्न ज्ञात होने लगते हैं। वे स्वतः अपने पराक्रमसे रावणकी अहमन्यताओंपर अनेक बार प्रहार करते हैं। इसके अतिरिक्त 'महाभारत'में भी हनुमान्‌के पराक्रमका उल्लेख रामोपाख्यान तथा महाभारत युद्धमें हुआ है। पौराणिक काव्यमें वीरताके साथ-साथ उनमें कलात्मक सुरुचियोंको भी समाविष्ट करनेका प्रयत्न किया गया और 'हनुमान् संहिता'मे उनकी कवि-रूपमें स्तुति की गयी। यही कारण है कि संस्कृतके ललित साहित्यमें उनके द्वारा प्रणीत 'हनुमन्नाटक'का भी उल्लेख होता है किन्तु यह किंवदन्तीमात्र ही है। अवतारवादकी प्रतिष्ठा हो जानेपर हनुमान्‌को विष्णुके पार्षद-रूपमें चित्रित किया गया है। यही नहीं, 'हनुमान् संहिता', 'सौर रामायण' तथा 'चान्द्र रामायण'में क्रमशः सूर्य, चन्द्र, हनुमान्‌के परस्पर संवादसे उनके गौरवशाली व्यक्तित्वकी सूचना मिलती है।

हिन्दी-साहित्यमें राम-काव्यकी परम्परासे सम्बद्ध 'हनुमतगामीरास'का उल्लेख मिलता है। इसकी रचना १६ वीं शती विक्रमीके लगभग हुई थी। ठीक इसीके पश्चात् ब्रह्मरायमल्लकी 'हनुमंतगामी' कथाका उल्लेख मिलता है। इन्हींके समकालीन कवि सुन्दरदासने भी 'हनुमान् चरित' नामक एक लघु-काव्यकी रचना की। इन तीनों रचनाओंका वर्ण्य-विषय वस्तुतः हनुमान्‌की अलौकिक शक्तिका निरूपण करना ही है। अस्तु इनमें हनुमान्‌के चरित्रकी मौलिक विशेषता खोजना असमीचीन होगा।

ठीक इन्हीं रचनाओके समानान्तर हिन्दी-साहित्यमें भक्तिका आन्दोलन चल पड़ा। भक्ति-साहित्यमें वीरता एवं पराक्रमके साथ-साथ इनका व्यक्तित्व भक्त-शरण्यके रूपमें प्राप्त

हुआ। हिन्दीमें सूरदासने अपने राम-कथासम्बन्धी स्फुट पदोंमें हनुमान्के अतुलित बलकी सराहना करते हुए स्वयं रामके घोर संकटमें उनके एकमात्र समर्थ सहायक होनेका उल्लेख किया है। सीताहरण तथा लक्ष्मणके शक्ति लगनेपर वे रामकी जो सहायता करते हैं तथा उन्हें आश्वासन देते हैं, उसमें हनुमान्के प्रति व्यक्त किये गये इस लोक-विश्वासकी प्रथम अभिव्यक्ति हुई है कि वे सभीके संकटके साथी हैं। तुलसीदासने भी इसी रूपमें इनका चरित्र-चित्रण किया है।

तुलसीदासकी रचनाओंसे सूचित होता है कि हनुमान् उनके आदि इष्टदेव थे, जिनका उन्हें अपने प्रारम्भिक जीवनकी निःसहायतामें एकमात्र आश्रय मिला था। किसी हनुमान् मन्दिरमें रहकर कदाचित् तुलसीने भीख माँगकर अपनी बाल्यवस्था वितायी थी। 'हनुमान बाहुक'में तुलसीदासने अपने घोर शारीरिक कष्टके समय उनसे संकट निवारणकी प्रार्थना की थी। तुलसीके काव्यमें हनुमान् एक प्रमुख पात्र हैं तथा रामके सबसे निकटके सेवक होनेके नाते तुलसीके विश्वसनीय आश्रय हैं। अतः उन्हें केन्द्र बनाकर तुलसीने 'हनुमान बाहुक'के अतिरिक्त कहा जाता है 'हनुमान चालीसा', 'हनुमान स्तोत्र,' 'बजरंग बाण' रचनाएँ प्रस्तुत कीं। 'रामचरितमानस'में हनुमान्का चरित्र पुनः वाल्मीकिके समान ही महत्त्वपूर्ण बन गया। ये 'वाल्मीकि-रामायण'के समान मात्र साहस, पराक्रम, अनन्त शौर्यके लिए ही स्तुत्य नहीं हुए, अपितु रामके भक्त और सखाके रूपमें तुलसीने अनेक बार इनकी प्रशंसा की है। हनुमान्की वीरताका उल्लेख यद्यपि 'रामचन्द्रिका'में भी हुआ है किन्तु उसमें कृत्रिमताके अंश अधिक आ गये हैं। हनुमान्के इस ओजस्वी चरित्रका विकास आगे नहीं हो सका। आधुनिक कालमें हनुमान्के शौर्य एवं पराक्रमको लेकर केवल एक ही काव्य 'जय हनुमान्' श्यामनारायण पाण्डेय द्वारा लिखा गया है। प्रस्तुत काव्यमें हनुमान्-चरित्रके वे ही स्थल आ पाये हैं, जो स्वतन्त्र कथात्मकताको गति दे सकते हैं।

[सहायक ग्रन्थ—रामकथा : डा० कामिल बुल्के, हिन्दी परिषद्, विश्वविद्यालय, प्रयाग; तुलसीदास : डा० माताप्रसाद गुप्त, हिन्दी परिषद् विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।] —यो० प्र० सिं०

हनुमानप्रसाद पोद्दार—शिक्षा समाप्त करनेके बाद १९२२ ई०में आपने गोरखपुरमें 'कल्याण' नामक पत्रिकाका प्रकाशन प्रारम्भ किया और गीता प्रेस, गोरखपुरकी स्थापना की। पोद्दारजीका मुख्य उद्देश्य था हिन्दू धर्म-ग्रन्थोंको आधुनिक रूपमें प्रस्तुत करना और संस्कृतमें उपलब्ध साहित्य को खड़ीबोली हिन्दीमें अनूदित करके सामान्य जनतातक पहुँचाना। इसमें सन्देह नहीं कि आपके इस कठिन परिश्रमसे उत्तर भारतमें हमारे पौराणिक और धार्मिक ग्रन्थोंकी व्यापकता और उसका प्रसार अधिकाधिक रूपमें हुआ।

पोद्दारजीका कार्य कई प्रकारका है। आपने कुछ अनुवाद भी किये हैं और कुछ मौलिक ग्रन्थ भी लिखे हैं किन्तु इन सबसे बढ़कर आपका कार्य उस विशिष्ट प्रकारके सम्पादनको प्रस्तुत करना है, जो दर्शनकी भाषा और जनताके बोध दोनोंका निर्वाह कर सके। उपनिषदोंके अनुवादोंमें, जहाँ हमें एक प्रकारकी भाषा मिलती है, वहीं पुराणोंके प्रकारमें दूसरी विधाकी भाषा न मिलकर एकही स्तरकी भाषा मिलती है। पुराण और उपनिषदोंकी विवेचनामें इस साधारण स्तरको प्रयोगमें लाकर प्रेषणीयताको इतना व्यापक बनाना—यह आपके सम्पादन, निर्देशनकी सबसे बड़ी सफलता है।

अंग्रेजीमें भी आपने कई ग्रन्थ लिखे हैं और 'कल्याण-कल्पतरु'के नामसे एक मासिक पत्र भी निकालते रहे हैं, जिसमें हिन्दू धर्मके विभिन्न पक्षों पर विचार विनिमय एवं उसकी सूत्र व्याख्या होती है। —ल० कां० व०

हनुमान बाहुक—यह रचना तुलसीदासकी है। इसमें कुल मिलाकर ४४ छन्द है। प्रारम्भमें दो छप्पय तथा एक झूलना है, शेष सभी छन्द कवित्त (घनाक्षरी) अथवा सवैया (मत्तगयन्द) है। यह रचना भी 'कवितावली'के अन्तमें संकलित छन्दोंकी भाँति कविके जीवनकी एक विशेष घटनासे सम्बन्ध रखती है। जीवनके अन्तिम वर्षोंमें वह वात-व्याधिसे पीडित रहा करता था, सम्भवतः परिवर्धित होकर उसीने बाहु पीड़ा और तदनन्तर शरीरके प्रायः समस्त अंगोंकी पीडाका रूप धारण किया था। इसके बाद शरीर भरमें बरतोंके जैसे फोडे निकल आये थे, जिसकी वेदना असह्य हो गयी थी। इन्ही सबके शमनके लिए हनुमान् तथा तदनन्तर रामसे की गयी प्रार्थनाएँ 'बाहुक'के छन्दोंमें संगृहीत हैं।

रचनाके प्रारम्भके १९ छन्दों तक हनुमान्की विरुदावलीका गान किया गया है और तदनन्तर ३५ छन्दों तक उनसे बाहु-पीडाके शमनके लिए प्रार्थना की गयी है। ३६वें तथा ३७वें छन्दोंमें इसीके लिए रामसे प्रार्थना की गयी है। ३८ वें छन्दमें बाहु-पीडाके साथ-साथ पाद-पीड़ा, पेट-पीड़ा, मुख-पीड़ा तथा समस्त शरीरकी पीड़ाका उल्लेख किया गया है, जिनका शमन ३९ वें छन्दमें राम-लक्ष्मणके स्मरणसे बताया गया है। ४०-४२ वें छन्दोंमें बरतोरके फोडोंसे त्राण पानेके लिए रामसे प्रार्थना की गयी है। ४३ तथा ४४वें छन्दोंमें एक साथ राम, हनुमान् तथा शिवसे रोग सिन्धुको गोपद-जल कर डालनेके लिए अन्तिम बार प्रार्थना की गयी है किन्तु इस रोगके शमनका कोई उल्लेख 'बाहुक'के छन्दोंमें नहीं हुआ है।

इन छन्दोंमें हनुमान् और रामका स्मरण कविने जीवनके प्रारम्भसे ही अपने रक्षकके रूपमें किया है। हनुमान्के लिए उसने कहा है कि जब वह बचपनमें टुकड़ोंके लिए दर-दर फिरता था, हनुमान्ने ही उसका भार सँभाल तथा पालन किया (छन्द २९, ३४)। ४० वें छन्दमें उसने कहा है "बचपनमें वह राम नाम लेता हुआ टुकड़े माँगता खाता फिरता था किन्तु फिर लोकरीतिमें पड़कर वह रामकी पवित्र प्रीतिका सम्बन्ध मोहवश अचानक तोड़ बैठा। इस समय वह खोटे आचरणोंमें पड़ गया किन्तु हनुमान्ने उन आचरणोंसे उसका उद्धार किया और पुनः कविने रामके करोंकी छाया प्राप्तकी किन्तु तदनन्तर 'गुसाईं'हो जानेपर उसने पुनः कृतघ्नतावश रामको भुला दिया और

इसीका फल वह भुगत रहा है। इसी कारण बरतोरके बहाने रामका नमक उसके शरीरसे फूट-फूटकर निकल रहा है।'' ४१ वें छन्दमें उसने अपना यह अनुमान स्पष्ट व्यक्त किया है। इन छन्दोंमें पीड़ाकी एक सबल अभिव्यक्ति हुई है और इनके कविके जीवनके कुछ अन्धकारपूर्ण अंशोंपर आमूल प्रकाश पड़ा है, इसलिए 'बाहुक'के इन छन्दोंका कविकी रचनाओंमें एक अपना स्थान है। —मा० प्र० गु०

हम्मीर-हठ–'हम्मीर-हठ' काव्यके रचयिता चन्द्रशेखर वाजपेयी (१७९८-१८७५ ई०) हैं। इन्होने अपने आश्रय-दाता पटियाला नरेश नरेन्द्रसिंह (१८४५-६२ ई०)के आदेशसे इसकी रचना फाल्गुन कृष्णा ४, रविवार सं० १९०२ (१८४५ ई०)को की थी (छ० ३-५)। यह पुस्तक विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित लहरी बुकडिपो, बनारससे छप चुकी है (तृतीय संस्करण, १९३३ ई०)। इसमें ४०३ छन्दोंमें रणथम्भोरके राव हम्मीर और अलाउद्दीनके युद्धका वर्णन किया गया है। सेनाकी तैयारी, आतंक, युद्ध, जौहर आदिका वर्णन करनेमे चन्द्रशेखरको पर्याप्त मात्रामें सफलता मिली है। इस काव्यके नायक हम्मीर तथा उनकी माताका चरित्र-चित्रण करनेमे इन्हे पर्याप्त सफलता मिली है। प्रतिनायक अलाउद्दीनसे मूषकको मरवानेमे परम्परागत प्रसंगका अनुसरण किया गया है। फलतः उसके चरित्रका समुचित चित्रण नही हो सका है। इसमें वीर-रसकी प्रधानता है। प्रासंगिक रूप में शृंगार, रौद्र तथा वीभत्स रसोंका भी सुन्दर निर्वाह हुआ है। अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, सन्देह आदि अलंकारोके स्वाभाविक प्रयोगसे इस रचनामे काव्य-सौष्ठव का समावेश हो गया है। 'हम्मीर-हठ'में दोहा, सोरठा, चौपाई, सवैया, झूलना, कवित्त, त्रिभंगी, भुजगप्रयात, छप्पय, पद्धरी, त्रोटक तथा मोतीदाम छन्दोका प्रयोग हुआ है।

'हम्मीर-हठ'की शैलीपर तुलसीकृत 'रामचरितमानस' (छं० ९०-१०४, १२३-१२५, १९४-१९५, २६३), भूषण (छं० ११९) तथा जोधराजके 'हम्मीर रासो' (छं० ६२-६३, ३५९-३६१)की स्पष्ट छाप वर्तमान है। विषयानुसार भाषा का प्रयोग हुआ है। संस्कृतकी माधुर्य, ओज और प्रसाद-मयी पदावलीके अतिरिक्त इसमें हिन्दीके आरन्न (अरण्य) विरतन्त (वृतान्त), फारसीके अदाब (आदाब), दिमाक (दिमाग) आदि शब्दोंका प्रयोग हुआ है। नजर नचायके, सुख मोटनि लूटन लगे, जनु पाई निधि रंक आदि मुहावरो एवं कहावतोंके प्रयोगसे यह रचना अधिक सजीव हो गयी है। इस प्रकार 'हम्मीरहठ' साहित्य और इतिहास दोनों दृष्टियोंसे महत्त्वपूर्ण कृति है। वीर-काव्य-धारामें इसका एक अच्छा स्थान है।

[सहायक ग्रन्थ—मि० वि०; हि० सा० इ०; हि० वी० ।] —टी० तो०

हम्मीर रासो–हिन्दीमें अद्यावधि प्राप्त हम्मीरविषयक साहित्यमे प्राचीनतम कदाचित् 'प्राकृत पैंगलम्'मे सकलित हम्मीर-विषयक छन्द है। ये विविध वृत्तोके उदाहरणोंके रूपमें उसमें उद्धृत हुए है और संख्यामें सात है। ये समस्त छन्द एक ही भाषा और शैलीमें रचे हुए है और इनमेंसे कोई दो भी ऐसे नहीं है, जिनमें परस्पर किसी प्रकारकी पुनरावृत्ति मिलती हो। इसलिए ये समस्त छन्द किसी एक ही प्रबन्धात्मक रचनाके ज्ञात होते है। कलाकी दृष्टिसे भी ये किसी सुकविकी रचनाएँ प्रतीत होते है। असम्भव नहीं कि ये किसी 'हम्मीर रासो'के छन्द हों। उस युगमें रासो काव्योंका सर्वप्रमुख लक्षण छन्द-वैविध्य था, जिसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण अब्दुर्रहमानका 'सन्देश-रासक' है। 'प्राकृत पैंगलम्'में इस एक ही रचनासे सात विविध वृत्तोंके उदाहरण लिये गये हैं, इसलिए अवश्य ही उस रचनामें अन्य कुछ प्रकारके वृत्त अवश्य ही रहे होंगे। ऐसी दशामे यह हम्मीरविषयक रचना रासो-परम्पराकी ज्ञात होती है। एक प्राचीन 'हम्मीर रासो' शार्ङ्गधरका प्रसिद्ध रहा है। शार्ङ्गधरके पितामह राघवदेव हम्मीरके आश्रित थे। इसलिए शार्ङ्गधरका समय हम्मीरसे लगभग पचास वर्ष बाद माना जा सकता है। इन छन्दोंमें एक आध ऐसी बातें मिलती है, जो इतिहास-सम्मत नहीं हैं, यथा हम्मीरकी खुरासान विजय। इसलिए ये छन्द हम्मीरकी समकालीन किसी रचनाके नहीं माने जा सकते हैं। असम्भव नहीं कि हम्मीरके निधनके कुछ समय पीछे इस प्रकारके शौर्यपूर्ण कार्य उसके सम्बन्धमे प्रसिद्ध हो गये हों और शार्ङ्गधर या अन्य किसी कविने अपने समयमे प्रचलित किंवदन्तियोंका भी आधार लेते हुए इस अर्द्ध-ऐतिहासिक काव्यकी रचना-की हो। राहुल सांकृत्यायनने इन छन्दोंको जज्जलकी कृति माना है किन्तु जाज या जज्जल हम्मीरका एक सामन्त है, जो उसके साथ इन छन्दोंमे वर्णित कुछ युद्धोंमें सम्मिलित होता है। इस जाज या जज्जल और हम्मीरका संवाद एक छन्दमे आता है, जिसमे हम्मीरको सम्बोधन किया गया है। इसीसे यह भ्रांति हुई ज्ञात होती है।

हिन्दीकी दूसरी प्राचीन रचना, जिसमें हम्मीरकी कथा संक्षेपमें ही आती है, मंछका 'हम्मीरका कवित्त' है। यह पुरानी राजस्थानीमे केवल २१ छप्पयोंमें रचित है, 'कवित्त' शब्द 'छप्पय'का पर्याय है। यह अलाउद्दीन और हम्मीर-के युद्धका एक अति सक्षिप्त वृत्त प्रस्तुत करती है। इसमें कहा गया है कि महिमा (मुहम्मद) शाह मंगोल अला-उद्दीनकी सेनासे निष्कासित किये जाने पर हम्मीरकी शरणमें आता है। अलाउद्दीन हम्मीरके पास उसे अपने यहाँ न रखनेके लिए आदेश भेजता है, साथ ही वह हम्मीरसे उसकी कन्या भी इसके दण्डस्वरूप मांगता है। हम्मीर इसे अस्वीकार करता है और उसी प्रकार उससे उसकी मरहटी बेगमको भिजवानेके लिये कहलाता है। इस पर अलाउद्दीन आक्रमण कर देता है। इस युद्धमें जाजा नामक हम्मीरका एक सामंत उसकी ओरसे बड़ी वीरतासे युद्ध करता हुआ मारा जाता है। जब हम्मीरको जीतनेकी कोई आशा नहीं दिखाई पड़ती है तो जौहर होता है। महिमा मंगोल और हम्मीर भी लड़ते हुए मरते हैं। यह रचना भी काफी प्राचीन प्रतीत होती है। आगे जिस 'हम्मीर दे चउपई'का परिचय दिया जा रहा है, उसमें इसके तीन कवित्त उद्धृत हैं। इसलिए इसका रचनाकाल उसके पूर्वका होना चाहिए।

हम्मीरविषयक तीसरी प्राचीन हिन्दी रचना भाण-कृत 'हम्मीर दे चउपई' है। यह भी पुरानी राजस्थानीमें लिखी गयी है और संवत् १५३८ (१४८१ ई०) की कृति है। यह चउपई-दोहोंमें है, केवल कहीं-कहीं एक दो अन्य प्रकारके भी वृत्त आये हैं। इन्हींमें उपर्युक्त तीन कवित्त भी हैं, जो 'हम्मीरका कवित्त'में पाये जाते हैं। इसमें हम्मीर और अलाउद्दीनके बीच हुए युद्धोंका विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। इसमें कुल ३२१ चउपइयाँ हैं। यह विवरण प्रायः उतना ही विस्तृत है, जितना जयचन्द्र सूरिके प्रसिद्ध ग्रन्थ 'हम्मीर महाकाव्य'में मिलता है, जिसकी रचना संवत् १४६० (१४०३ ई०) के लगभग हुई मानी जाती है। इस रचनाके अनुसार हम्मीरके साथ प्रथम संघर्ष अलाउद्दीनके सेनापति उलुग खाँका होता है, जब हम्मीर उसके द्वारा अलाउद्दीनकी सेनासे निकाले गये दो अमीरों महिमा और गाभरूको शरण देता है। इस आक्रमणमें जब उलुग खाँ असफल रहता है, अलाउद्दीन स्वयं हम्मीरपर आक्रमण करता है, जिसमें हम्मीर मारा जाता है। इसमें गढके पतनका कारण रणमल और रायपाल नामक हम्मीरके दो प्रधानोंका अलाउद्दीनसे जा मिलना बताया गया है। जयचन्द्र सूरिके महाकाव्यमें हम्मीरके दो प्रधानों धर्म सिंह और भीमसिंहके जो इतिहासप्रसिद्ध झगडे हैं, वे इसमें नहीं आते हैं, इसलिए इसकी रचनामें 'हम्मीर महाकाव्य'का प्रभाव नहीं लक्षित होता है। जाजा इसमें भी हम्मीरकी ओरसे उसी प्रकार युद्ध करता हुआ मारा जाता है, जिस प्रकार वह 'हम्मीर-का कवित्त'में। इसमें हम्मीरका निधन ज्येष्ठ अष्टमी शनिवार संवत् १३७१ (१३१४ ई०)को बताया गया है, जो अवश्य अशुद्ध है।

हम्मीरविषयक हिन्दीकी चौथी प्राचीन कृति महेश रचित 'हम्मीर रासो' है। इसमें हम्मीर, अलाउद्दीनके युद्ध के अतिरिक्त हम्मीरके पूर्व-पुरुषोंकी भी कथाएँ संक्षेपमें आती हैं किन्तु वे 'हम्मीर महाकाव्य' तथा इतिहासोंमें मिलनेवाले विवरणोंसे प्रमाणित नहीं हैं। युद्धका कारण इसमें भी हम्मीरका महिमा मंगोलको शरण देना है, जो स्वयं अलाउद्दीनके द्वारा उसकी एक बेगमसे अनुचित सम्बन्धके कारण निष्कासित किया जाता है। इसमें हम्मीर के साथ युद्धमें उसका छाणगढका सामन्त रणधीर सम्मिलित होता है, इसलिए बादशाह छाणगढ पर भी आक्रमण करता है, जिसमें रणधीर मारा जाता है। तदनन्तर वह पुनः हम्मीरपर आक्रमण करता है। गढका पतन सुरजन नामक गढके कोठारीके बादशाहसे जा मिलनेके कारण होता है। गढ़में जौहर होता है और हम्मीर तथा महिमा मंगोल लड़ते हुए मारे जाते हैं। इस रचनामें अलाउद्दीन दक्षिण सेतुबंध तक जाकर और वहाँ शिव लिंगका स्पर्श कर समुद्रमें कूद पड़ता है और प्राण-विसर्जन करता है। प्रकट है कि यह रचना इतिहाससे बहुत दूर जा पड़ी है। इसका समय अनुमानसे विक्रमी अठारहीं शतीका मध्य माना जा सकता है।

हम्मीरविषयक पाँचवी हिन्दी रचना जोधराज की 'हम्मीर रासो' है। इसे कविने संवत् १७८५ में रचा था। यह पूर्णरूपेण महेशकी कृतिका अनुसरण करती है, यहाँ तक कि कहीं-कहीं उसीकी पंक्तियाँ तक ले ली गयी है। इसमें छाणगढ़के युद्धके अतिरिक्त अलाउद्दीन और हम्मीरके संघर्षके प्रसंगमें नल हारणोंका भी एक युद्ध वर्णित है। छन्द वैविध्य इस रचनामें यथेष्ट है, इसलिए महेशकी रचनाकी तुलनामें यह रासोकी छन्द-परम्पराका अधिक निर्वाह करती है।

हम्मीरविषयक छठी हिन्दी रचना ग्वालकृत 'हम्मीर हठ' है और इसीके बादकी एक रचना इसी नामकी चन्द्रशेखर वाजपेयी की है। इन रचनाओंमें पूर्ववर्ती कृतियोंका पूरा उपयोग किया गया है और कोई नवीनता नहीं है। हम्मीरकी ऊपर उल्लिखित रचनाओंमे, इस प्रकार, मंछ, तथा भाणकी कृतियाँ 'प्राकृत पैंगलम्'के छन्दोंके अतिरिक्त सबसे प्राचीन हैं और उनके एक सुसम्पादित संस्करण की आवश्यकता है। —मा० प्र० गु०

हयग्रीव—'भागवत'में हयग्रीव नामक एक असुरका उल्लेख मिलता है। यह अत्यन्त उपद्रवी था। प्रलयकाल उपस्थित होनेपर ब्रह्माके मुखसे वेदोंको चुरा ले गया। वेदोंका उद्धार करनेके लिए विष्णुने मच्छावतार धारण किया और इसका वध कर डाला। इस प्रकार हयग्रीवको भगवान्‌के हाथसे मारे जानेके कारण मोक्ष मिला। 'भागवत'में इसकी विस्तृत कथा प्रलयकालके उपस्थित होनेके प्रसंगमें मिलती है। —यो० प्र० सिं०

हरदयालु सिंह—जन्म महमूदाबाद, जिला सीतापुर (उत्तर प्रदेश) में १८९३ ई० में हुआ था। पिता मातादीन और माता महादेवी थी। १९१२ ई०में महमूदाबादसे हाईस्कूल पास करनेके बाद कानपुरमें दो वर्षोंतक इण्टरमीडिएटमें पढे। कानपुर, मथुरा, इण्डियन प्रेस, प्रयाग, सेण्ट्रल ट्रेनिंग स्कूल झाँसी और गोरखपुरमें नौकरी करनेके पश्चात् १९४८ ई०में महमूदाबाद लौट आये। प्रकाशित कृतियाँ ५२ और अप्रकाशित ४० हैं, जिनमें मुख्य है—टीकाएँ—'रघुवंश' (२, १३, १४ सर्ग), 'कुमारसम्भव' (५ सर्ग), 'दूतकाव्य'। सम्पादित एवं आलोचनात्मक—'देवदर्शन', 'मतिराम मकरन्द', 'भूषण-भारती', 'बिहारी विभव', 'पूर्ण सुधाकर', 'सीताराम संग्रह', 'सूरमुक्तावली'। पद्यानुवाद—'वेणीसंहार', 'नागानन्द', 'रघुवंश', भासके तीन नाटक, 'स्वप्नवासवदत्ता'। संस्कृत नाटकोंके संक्षिप्त रूपान्तर—'नाटक निचय', 'नाटक दर्शन', 'नाटक निरूपण', 'भासग्रन्थावली'। निबन्ध—'निबन्ध निरूपण', 'निबन्ध परिचय', 'निबन्ध निचय'। अलंकार-ग्रन्थ—'रीति रहस्य', 'रीति रत्न', 'रीति रत्नाकर'। मौलिक—'दैत्यवंश' (प्रकाशन-१९४० ई० दे०), 'रावण-महाकाव्य' (प्रकाशन १९५२ ई०)। 'दैत्यवंश' और 'रावण' १८ तथा १७ सर्गोंके शास्त्रीय लक्षणोंसे युक्त महाकाव्य हैं। दोनोंकी भाषा मिश्रित ब्रज और लक्ष्य दैत्योंका चरमोत्कर्ष है। कविने युगोंसे उपेक्षित दैत्यों एवं राक्षसोंको अपने काव्योंका चरितनायक बनाया है। आधुनिककालमें ब्रजभाषा महाकाव्यकी परम्पराको पुनर्जीवित तथा विकसित करनेका श्रेय हरदयालु सिंहको है। —स० ना० मि०

हरदेव बाहरी–जन्म १९०७ ई०में अटक जिलेमे हुआ। शिक्षा एम० ए०, एम० ओ० एल०, पी-एच० डी०, डी० लिट पंजाब तथा प्रयाग विश्वविद्यालयमे हुई। अनेक वर्षोंतक प्रयाग विश्वविद्यालयके हिन्दी विभागमें प्राध्यापक रहे। सम्प्रति कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालयमें हैं। डा० बाहरीका मुख्य कार्य-क्षेत्र भाषा-विज्ञान रहा है। हिन्दीके भाषा वैज्ञानिकोंमें आपका नाम प्रमुख रूपसे उल्लेखनीय है। आपके दो शोध-प्रबन्ध भाषा-विज्ञानके विषयोंसे सम्बद्ध हैं। इधर आपने कोश-कार्यमें भी रुचि दिखायी है। प्रकाशित कृतियाँ—'हिन्दीकी काव्य शैलियोंका विकास' (१९४७ ई०), 'प्राकृत और उसका साहित्य' (१९५२ ई०), 'प्रसाद साहित्य कोश' (१९५७ ई०), 'हिन्दी रोमाण्टिक्स' (अंग्रेजीमे)। —सं०

हरदोल–ओरछा राज्यके एक राजा हरदोलने बुन्देलखण्डके इतिहासमे प्रसिद्धि प्राप्त की है। इनके बड़े भाईका नाम जुझारसिंह था। एक बार लोदीसे युद्ध करनेके कारण शाहजहाँने इन्हे दक्षिणका राज्य दे दिया। परिणामस्वरूप ये वहाँ चले गये। हरदोल अत्यधिक न्यायी और जनप्रिय थे। जुझारसिंहने इनके दक्षिणमे लौटनेपर अपनी पत्नी और इनके सम्बन्धके बीच शंका प्रकट की और अपने हाथोंसे ही इन्हे विष दे दिया किन्तु हरदौलकी मृत्युके पश्चात् इन्हें वास्तविकता ज्ञात हुई और इसके लिए उन्हे बहुत पश्चात्ताप हुआ। रानी सारंधाकी भाँति प्रेमचन्दकी यह कहानी भी भी हरदौलकी चरित्रगत विशेषताओंपर आधारित है (दे० मानसरोवर भाग ६ : 'हरदौल')। —यो० प्र० सिं०

हरिऔध–दे० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'।

हरिकृष्ण जौहर-जन्म काशीमे १८८० ई०मे हुआ। बारह वर्षकी अवस्थामे पढना छोड़कर भारत जीवन प्रेसमे नौकरी की। प्रारम्भमें ऐयारी तथा रहस्य-रोमांचक उपन्यास लिखे, जिनमे 'कुसुमलता' उल्लेखनीय है। बादमे विभिन्न विषयों पर लिखा और अनुवाद कार्य भी किया। कृतियाँ—'जापान वृतान्त', 'अफगानिस्तानका इतिहास', 'भारतके देशी राज्य', 'रूस-जापान युद्ध', 'पलासीकी लड़ाई' 'सर्व सेटिलमेंट दर्पण'। —सं०

हरिकृष्ण 'प्रेमी'–जन्म सन् १९०८ ई० मे गुना, ग्वालियर में। परिवार राष्ट्रभक्त। बचपनसे ही राष्ट्रीयताके संस्कार। दो वर्षकी अवस्थामे माताकी मृत्यु। प्रेमकी अतृप्त तृष्णाने उन्हे स्वयं 'प्रेमी' बना दिया। बन्धु-बान्धवोंके प्रति स्नेहालु, मित्रोंके प्रति अनुरक्त, स्वदेशानुराग, मनुष्य मात्रके प्रति सौहार्द्य—यही उनके अन्तर मनका विकास है। पं० माखनलाल चतुर्वेदीके साथ 'त्यागभूमि'मे पत्रकारके रूपमें साहित्यिक जीवनका प्रारम्भ। फिर कविताएँ लिखने लगे और उसके बाद नाटक रचनाकी ओर प्रवृत्ति हुई। लाहौर मे पत्रकार और प्रकाशक रहे। सन् १९३३-३४ ई० मे साहित्यिक कार्य किया। स्वाधीनता आन्दोलनमे भी भाग लेते रहे। लाहौरसे 'भारती' पत्रिकाका प्रकाशन। सन् १९४६ में लाहौरमें और उसके बाद बम्बईमें फिल्म-क्षेत्रमे कार्य। उसके बाद आकाशवाणी जालंधरमे हिन्दी दिग्दर्शक रहे। आजकल फिर बम्बईमें फिल्म-क्षेत्रमें कार्य कर रहे हैं।

'प्रेमी'जी की सर्वप्रथम प्रकाशित रचना 'स्वर्ण विहान' (१९३० ई०) गीति-नाट्य है। उसमें प्रेम और राष्ट्रीयताकी भावनाओंकी बड़ी रसात्मक अभिव्यक्ति है। पहले ऐतिसिक नाटक 'रक्षा-बन्धन' (१९३४ ई०)में गुजरातके बहादुर शाहके आक्रमणके अवसरपर चित्तौड़की रक्षाके लिए रानी कर्मवती द्वारा मुगल सम्राट् हुमायूँको राखी भेजनेका प्रसंग है। इस रचनाका मूल उद्देश्य हिन्दू-मुस्लिम सामंजस्यकी भावना जागाना है। 'शिवा साधना'(१९३७ ई०)में शिवाजीको औरंगजेबकी साम्प्रदायिक एवं तानाशाही नीतिके विरोधी तथा धर्म निरपेक्षता और राष्ट्रीय भावनाके संस्थापकके रूपमें चित्रित किया गया है। 'प्रतिशोध' (१९३७ ई०)में छत्रसाल द्वारा बुन्देलखण्डकी शक्तियोंको एकत्र करके औरंगजेबमे टकर लेनेका प्रसंग है। 'आहुति' (१९४० ई०) मे रणथम्भौरके हम्मीरदेव द्वारा शरणागत रक्षाके लिए अलाउद्दीन खिलजीसे संघर्ष और आत्म बलिदानकी कथा है। 'स्वप्नभंग' (१९४० ई०) में दाराकी पराजयसे धर्म निरपेक्षताके आदर्शके खण्डित होनेका दुखन्द दृश्य है। 'मित्र' (१९४५ ई०), 'नवीन संज्ञा', 'शतरंजके खिलाड़ी'में युद्ध-क्षेत्रमे परस्पर एक दूसरेका विरोध करते हुए भी दो व्यक्तियोंके मित्रता निर्वाहका आख्यान है। 'विषपान' (१९४५ ई०) में मेवाड़की राजकुमारीका स्वदेश-रक्षाके लिए आत्मघातका प्रसंग है। 'उद्धार', 'भग्न प्राचीर', 'प्रकाशस्तम्भ', 'कीर्तिस्तम्भ', 'विदा' और 'साँपोंकी सृष्टि'में भी मध्यकालीन कथा-प्रसंग ही लिये गये है। 'शपथ' और 'संवत् प्रवर्तन' आदिमयुगीन इतिहास पर आधारित हैं। 'संरक्षक'का कथा-प्रसंग अंग्रेजी राज्यके प्रारम्भिक कालमे उसकी 'येन केन प्रकारेण' साम्राज्य विस्तारकी नीतिको स्पष्ट करनेके लिए लिया गया है। 'पाताल विजय' (१९३६ ई०) 'प्रेमी'जीका एकमात्र पौराणिक नाटक है।

'प्रेमी'जीने सामाजिक नाटक भी लिखे हैं। 'बन्धन' (१९४० ई०)में मजदूरों और पूँजीपतिके संघर्षका चित्रण है। समस्याका हल गान्धीजीकी हृदय-परिवर्तनकी नीति पर आधारित है। 'छाया' (१९४१ ई०) में एक साहित्यकारके आर्थिक संघर्षका चित्रण है। 'ममता'में दाम्पत्य जीवनकी समस्याओंका उद्घाटन है। 'प्रेमी'जीकी एकांकी रचना 'बेड़ियाँ'मे भी इसी समस्याको लिया गया है। 'प्रेमी' जीके दो एकांकी संग्रह 'मन्दिर' (१९४२ ई०) और 'बादलोंके पार' (१९५२ ई०) भी प्रकाशित हुए हैं। पहले संग्रहकी सभी रचनाएँ 'नयी सज्ञा' देकर नये संग्रहमें भी हैं। 'बादलोंके पार', 'घर या होटल', 'वाणी मन्दिर', 'नया समाज', 'यह मेरी जन्म भूमि है' और 'पश्चात्ताप' एकांकियोंमे आजकी सामाजिक समस्याओंका चित्रण है। 'यह भी एक खेल है', 'प्रेम अन्धा है', 'रूप शिखा', 'मातृभूमिका मान' और 'निठुर न्याय' ऐतिहासिक एकांकी हैं। इनमें प्रेमके आदर्शवादी और विद्रोही स्वरूपको प्रस्तुत किया गया है।

'प्रेमी'जीने इधर गीति-नाट्यकी शैलीके कई प्रयोग किये है। 'सोहनी महीवाल', 'सस्सी पुन्नू', 'मिर्जा साहिबाँ', 'हीर राँझा' और 'दुल्लाभट्टी'। ये सभी पंजाबमें प्रसिद्ध

प्रेम-गाथाओं पर आधारित रेडियोके लिए लिखित संगीत-रूपक हैं। प्रेमके एकनिष्ठ और विद्रोही रूपको इनमें भी उपस्थित किया गया है। 'देवदासी' संगीत-रूपकमें भी काल्पनिक कथाको लेकर प्रेमको मनुष्यका स्वाभाविक गुणधर्म दिखाया गया है। 'मीराँबाई'में व्यक्तिगत जीवनकी कठोरताओंसे प्रेरित होकर गिरिधर गोपालकी माधुरी उपासनामें आश्रय लेने वाली मीराँकी जीवन-कथा है।

'प्रेमी'जीका कविता-संग्रह 'आँखोंमें' (१९३० ई०) प्रेमके विरह-विदग्ध वेदनामय स्वरूपकी अभिव्यक्ति है। 'जादूगरनी' (१९३२ ई०) में कबीरकी 'माया महाठगिनी' के मोहक प्रभावका वर्णन एवं रहस्यात्मक अनुभूतियोंकी व्यंजना है। 'अनन्तके पथपर' (१९३२ ई०) रहस्यानुभूतिको और घनीभूत रूपमें उपस्थित करता है। 'अग्नि गान' (१९४० ई०) में कवि अनल वीणा लेकर राष्ट्रीय जागरणके गीत गा उठा है। 'रूप दर्शन' में गजल और गीति-शैलीके सम्मिलित विधानमें सौन्दर्यके मोहक प्रभावको वाणी मिली है। 'प्रतिभा' में प्रेमीका प्रणय-निवेदन बड़ा मुखर हो उठा है। 'वन्दनाके बोल' में गान्धीजी और उनके जीवन-दर्शनपर लिखित रचनाएँ हैं। 'रूप रेखा' में गजलके बन्दका सशक्त प्रयोग और 'प्रेमी' के हृदयकी आकुल पुकार है। 'प्रेमी'जीने मुक्त छन्दमें भी कुछ रचनाएँ की हैं। 'करना है संग्राम', 'बेटीकी विदा' और 'बहनका विवाह'—ये सभी संस्मरणात्मक हैं और इनमें 'प्रेमीजी'के विद्रोही दृष्टिकोण, नवीन मान्यताओं और नूतन आदर्शोंकी बड़ी प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति है।

'प्रेमी'जीका हिन्दी-नाटककारोंमें अपना विशिष्ट स्थान है। मध्यकालीन इतिहाससे कथा प्रसंगोंको लेकर उन्होंने हमें राष्ट्रीय जागरण, धर्मनिरपेक्षिता तथा विश्व-बन्धुत्वके महान् सन्देश दिये हैं।' उनके नाटकोंमें स्वच्छन्दतावादी शैलीका बड़ा संयमित और अनुशासनपूर्ण उपयोग है, इसीलिए उनके नाटक रंगमंचकी दृष्टिसे सफल हैं। उनके सामाजिक नाटकोंमें वर्तमान जीवनकी विषमताओंके प्रति तीव्र आक्रोश और विद्रोहका स्वर सुननेको मिलता है। किसी समस्याका चित्रण करते हुए वे उसका हल अवश्य देते हैं और इस सम्बन्धमें गान्धीजीके जीवन-दर्शनका उनपर विशेष प्रभाव है। —वि० मि०

हरिचरनदास–ये टीकाकार हैं। इन्होंने जसवन्त सिंहके 'भाषाभूषण' की तथा 'बिहारी सतसई' की टीकाएँ की हैं। 'सतसई' की 'हरिप्रकाश' नामक इनकी टीका १७७७ ई० की है। अतः इसीके आसपास इनका समय स्वीकार किया जा सकता है। —सं०

हरिदास स्वामी–वैष्णव भक्तिसम्प्रदायोंमें उच्चकोटिके विरक्त महात्मा तथा संगीतशास्त्रके आचार्यके रूपमें स्वामी हरिदासकी बहुत अधिक ख्याति है।' स्वामीके जन्म-स्थान, जन्म-संवत् और जातिके विषयमें निम्बार्क मतावलम्बियों तथा विष्णु स्वामी सम्प्रदायवालोंमें विरोध है। निम्बार्क सम्प्रदायवालोंका मत है कि हरिदासका जन्म वृन्दावनसे एक मील दूर राजपुर गाँवमें गंगाधर, सनाढ्य ब्राह्मणके घर सं० १५३७ ई० (सन् १४९० ई०)में हुआ। गंगाधरके गुरुका नाम आशुधीर स्वामी था। उन्हींसे स्वामी हरिदासने भी निम्बार्क सम्प्रदायकी दीक्षा ग्रहण की थी किन्तु विष्णु स्वामी सम्प्रदायके गोस्वामी स्वामी हरिदासको हरिदासपुर (अलीगढ़) गाँवका निवासी, सारस्वत ब्राह्मण और आशुधीरका पुत्र मानते हैं। 'निजमत सिद्धान्त' ग्रन्थके आधार पर स्वामी हरिदास तथा अष्टाचार्योंके सम्बन्धमें बहुत सी जानकारी उपलब्ध होती है किन्तु विष्णु स्वामी सम्प्रदायवाले इस ग्रन्थको जाली रचना ठहराते हैं। स्वामी हरिदास के पदोंके अनुशीलनसे यह स्पष्ट विदित होता है कि उनकी भक्ति माधुर्य भावकी है और 'जुगल उपासना'को उन्होंने स्वीकार किया है, विष्णु स्वामी सम्प्रदायकी बालभावकी उपासना उन्हें मान्य नहीं है। 'निकुंज लीला'के पद और राधाकृष्णका नित्य विहार वर्णन उन्होंने निम्बार्क और राधावल्लभीय विचारधाराके अनुकूल ही किया है। उन्हें ललिता सखीका अवतार माना जाता है। भगवत रसिकने अपनेको हरिदास स्वामीका शिष्य बतलाते हुए स्वतन्त्र सम्प्रदायका अनुयायी कहा है—"आचारज ललिता सखी, रसिक हमारी छाप। नित्य किशोर उपासना, जुगल मंत्रको जाप। नाहीं द्वैताद्वैत हरि, नहीं विशिष्टाद्वैत। बँधे नहीं मतवादमें, ईश्वर इच्छा द्वैत॥" स्वामी हरिदासकी भावना इन्ही दोहोंके अनुरूप थी। सखी भावकी उपासनाके कारण उनका सम्प्रदाय सखी सम्प्रदायके नामसे भी प्रसिद्ध हुआ है। बाँसकी जाफरी (टट्टी)से घिरा होनेके कारण इनकी शिष्य परम्पराका स्थान 'टट्टी संस्थान'के नामसे भी प्रसिद्ध है। कुछ विद्वान् उनके सम्प्रदायको हरिदासी सम्प्रदायके नामसे भी अभिहित करते हैं। इस प्रकार ये तीन नाम स्वामीजीके सम्प्रदायके प्रचलित हैं।

स्वामी हरिदासने युवावस्थामें गृहत्याग करके वृन्दावनमें लता-पत्रवेष्टित निधिवनको अपनी साधनास्थली बनाया था। संसारके समस्त सुख-वैभवके उपकरणोंका त्याग कर कामरी और करुआको अपनी सम्पत्ति मान लिया था। उनके इष्टदेवका विग्रह 'बाँके बिहारी'के नामसे विख्यात है। अपनी गान-विद्याके लिए वे अपने समयमें ही भारतवर्षमें विख्यात हो गये थे। तानसेन जैसा सुप्रसिद्ध गायक उनका शिष्य था। ध्रुपदकी रचना करके उन्होंने अपना स्थान अमर बना लिया था। सम्राट् अकबर भी उनकी संगीत विद्यासे प्रभावित था।

स्वामी हरिदासने अपने सिद्धान्तोंको स्वतन्त्र रूपसे नहीं लिखा। श्याम-श्यामाकी निकुंज-लीलावर्णनके लिए जो पद वे बनाते थे, उन्हींमें सिद्धान्तोंका भी समावेश है। उनकी रचनाओंका संकलन 'केलिमाल' नामक पुस्तक में कर दिया गया है। 'केलिमाल'मे १०८ पद हैं। १८ सिद्धान्तके पद अलगसे संकलित हैं।

स्वामी हरिदासकी वाणी बड़ी सरस और संगीतमय है। ब्रजभाषाका चलता रूप इनके पदोंमें देखा जाता है। राधा-कृष्णकी लीलाओंके वर्णनमें पुनरावृत्ति अधिक है। माधुर्यभक्तिका मन-मोहन रूप उनके पदोंमें सर्वत्र व्याप्त है। उनका निधन संवत् १६३२ (सन् १५७५ ई०) के समीप माना जाता है।

[सहायक ग्रन्थ—निम्बार्क माधुरी : बिहारी शरण;

सिद्धान्त रत्नाकर : विश्वेश्वर शरण; केलिमाल; हिन्दी साहित्यका इतिहास : पं० रामचन्द्र शुक्ल ।]—वि० स्ना०

हरिनाथ—इस नामके दो कवियोंका उल्लेख मिलता है। एक हरिनाथ महापात्र बन्दीजन असनीवाले और दूसरे हरिनाथ 'नाथ' गुजराती ब्राह्मण काशीवाले। 'शिवसिंह-सरोज'में प्रथम हरिनाथको सन् १६०७ ई०में विद्यमान बताया गया है। इन्हें नरहरिका पुत्र और बादशाह शाहजहाँका कृपापात्र भी कहा गया है। इसके अतिरिक्त भी इनका समादर तत्कालीन अनेक राजाओं-महाराजाओंने हाथी, घोड़े, रथ, पालकी, गाँव, लाखों नकदी और नाना प्रकारके वस्त्राभूषण आदि देकर किया था। ये सुकवि, गुणज्ञ और फक्कड़ थे। कहते हैं कि आमेरके राजा सवाई मानसिंहके यहाँसे २ लाखकी विदाई पाकर लौटते समय उन्होंने एक नागर-पुत्रको, प्रशंसामें एक दोहा सुनकर, सहज ही वह धन दान कर दिया था। इसी प्रकार ये जीवन भर अपनी और अपने पिताकी अपार अर्जित सम्पत्ति लुटाते रहे। इनके स्फुट छन्द ही मिलते हैं, किसी ग्रन्थ विशेषका उल्लेख नहीं मिलता। फुटकर छन्दोंको भी देखनेपर कविके अनूठे काव्य-कौशलका पता लगता है।

दूसरे हरिनाथ 'नाथ' नामसे काव्य-रचना करते थे। इन्होंने सन् १७६९ ई०में 'अलंकार दर्पण' नामक एक अलंकार-ग्रन्थकी रचना की। यद्यपि यह ग्रन्थ छोटा-सा ही है, पर इसमें आये हुए छन्दोंके एक-एक पदमें अनेक उदाहरणों की भरमार है। कवि पहले कई दोहोंमें लक्षणोंको बाँधकर फिर उन सबके उदाहरण घनाक्षरी (कवित्तों)में प्रस्तुत करता है। वैसे इनका कवित्व साधारण कोटिका ही है।

[सहायक ग्रन्थ—खो० वि० (त्रै० १); मि० वि०; शि० स० क०-कौ० भा० १।] —रा० त्रि०

हरिनारायण—इस नामके दो कवि हुए—हरिनारायण मिश्र और हरिनारायण। हरिनारायण बेरी, जिला मथुराके रहनेवाले थे। खोजमें इनकी दो रचनाएँ मिली हैं—'बारहमासी' और 'गोवर्धन-लीला'। प्रथम रचनामें कान्ता अपने पतिको प्रत्येक मासके विछोहसे होने वाले दुःखोंका वर्णन कर परदेश जानेसे रोकती है। 'गोवर्धन-लीला' एक प्रबन्धात्मक रचना है। इसमें श्रीकृष्ण इन्द्र-पूजाका निषेध कर नन्द-गोपादिकोंसे गोवर्धन पुजवाते हैं। कवित्वकी दृष्टिसे दोनों ही रचनाएँ साधारण हैं।

दूसरे हरिनारायण भी जातिके ब्राह्मण थे और कुम्हेर (भरतपुर) रियासतके निवासी थे। इन्होंने 'माधवानल-कामकन्दला', 'बैताल पचीसी' और 'रुक्मिणी मंगल' नामक तीन रचनाएँ कीं। इसमें 'माधवानलकामकन्दला' कथा-प्रबन्धात्मक रचना है, जिसका निर्माण सन् १७५५ ई०में हुआ। 'बैताल पचीसी'में भी कथात्मकताका ही प्राधान्य है। 'रुक्मिणी मंगल'में रुक्मिणीहरणका वर्णन किया गया है। प्रथमकी अपेक्षा इस कवि में काव्य-गरिमा अधिक है, वैसे यह भी साधारण श्रेणीका कवि है।

[सहायक ग्रन्थ—खो० वि० (वा० १९०५; त्रै० १५, १७); मि० वि०।] —रा० त्रि०

हरिभाऊ उपाध्याय—जन्म १८९२ ई० में (चैत्र कृष्णा सप्तमी सं० १९४९) उज्जैन जिलाके भौरीमा गाँवमें हुआ। हरिभाऊ उपाध्यायने हिन्दी-सेवासे सार्वजनिक जीवन आरम्भ किया और पहले पहल 'औदुम्बर' मासिक-पत्रके प्रकाशन द्वारा हिन्दी-पत्रकारिता जगत्में पदार्पण किया। सबसे पहले सन् १९११ ई० में वे 'औदुम्बर'के सम्पादक बने। पढ़ते-पढ़ते ही उन्होंने इसके सम्पादनका कार्य आरम्भ किया।

'औदुम्बर'मे अनेक विद्वानोंके विविध विषयोंसे सम्बद्ध पहली बार लेखमाला निकली, जिससे हिन्दी भाषाकी स्वाभाविक प्रगति हुई। इसका श्रेय हरिभाऊजीके उत्साह और लगनको ही है। सन् १९१५ ई०में वे महावीरप्रसाद द्विवेदीके सान्निध्यमे आये। हरिभाऊजी स्वयं लिखते हैं—"'औदुम्बर''की सेवाओंने मुझे आचार्य द्विवेदीजीकी सेवामें पहुँचाया।" द्विवेदीजीके साथ 'सरस्वती'में कार्य करनेके पश्चात् हरिभाऊजीने 'प्रताप', 'हिन्दी नवजीवन' (सन् १९२१ ई०), 'प्रभा'के सम्पादनमे योग दिया और स्वयं 'मालव मयूर' (सन् १९२२ ई०) नामक पत्र निकालनेकी योजना बनायी किन्तु यह पत्र अधिक दिन नहीं चला सका।

हरिभाऊ उपाध्यायकी हिन्दी-साहित्यको विशेष देन उनके द्वारा बहुमूल्य पुस्तकोंका रूपान्तरण है। कई मौलिक रचनाओंके अतिरिक्त उन्होंने जवाहरलालजीकी 'मेरी कहानी' और पट्टाभि सीतारमैय्या द्वारा लिखित 'कांग्रेसका इतिहास'का हिन्दीमें अनुवाद किया है। ऐसी महत्त्वपूर्ण पुस्तकका हिन्दी अनुवाद शायद ही और किसीने किया हो। हरिभाऊजीका प्रयास हमें भारतेन्दु-कालकी याद दिलाता है, जब प्रायः सभी हिन्दी लेखक बंगलासे हिन्दीमे अनुवाद करके साहित्यकी अभिवृद्धि करते थे। अनुवाद करनेमे भी उन्होने इस बातका सदा ध्यान रखा है कि पुस्तककी भाषा लेखककी भाषा और उसके व्यक्तित्वके अनुरूप हो। अनुवाद पढ़नेसे यह प्रतीत नही होता कि हम पुस्तकका अनुवाद पढ़ रहे हैं, यही अनुभव होता है मानो स्वयं मूल लेखककी ही वाणी और विचारधारा अविरल रूपसे उसी मूल स्रोतसे बह रही है। इस प्रकार हरिभाऊजी ने अपने साथी जननायकोंके ग्रन्थोंका अनुवाद करके हिन्दी साहित्यको व्यापकता प्रदान की है।

हरिभाऊजीकी अनेक पुस्तकें आज हिन्दी-साहित्य जगत्को प्राप्त हो चुकी हैं। उनके नाम ये हैं—'बापूके आश्रममे', 'स्वतन्त्रताकी ओर', 'सर्वोदयकी बुनियाद', 'श्रेयार्थी जमनालालजी', 'साधनाके पथपर', 'भागवत धर्म', 'मनन', 'विश्वकी विभूतियाँ,' 'पुण्य स्मरण', 'प्रियदर्शी अशोक', 'हिंसाका मुकाबला कैसे करें', 'दूर्वादल' (कविता-संग्रह), 'स्वामीजीका बलिदान' और 'हमारा कर्तव्य और युगधर्म'। इन रचनाओंसे हिन्दी साहित्य निश्चय ही समृद्ध हुआ है। हरिभाऊजीकी रचनाएँ भाव, भाषा और शैलीकी दृष्टिसे बड़ी आकर्षक हैं। इनमें रस है, मधुरता और उज्ज्वलता है, इनमें सत्य और अहिंसाकी शुभ्रता है, धर्मकी समन्वयबुद्धि है और लेखनीकी सतत साधना और प्रेरणा है। —ज्ञा० द०

हरिराम—दे० 'व्यास हरिराम'।

हरिराय—इनका जन्म भाद्रपद कृष्ण ५, विक्रम सं० १६४७ ई० और देहावसान सं० १७७२ ई०में हुआ। ये गोस्वामी विट्ठलनाथजीके पुत्र गोविन्दरायजीके पौत्र थे। इनके पिता-का नाम कल्याणराय था। इनकी ख्याति 'वार्ताओं'के सम्पादक और प्रचारकके रूपमें अधिक है। यद्यपि 'वार्ताओं' के लेखक गोकुलनाथजी कहे जाते हैं पर वास्तविकता यह है कि इन्होंने समय-समय पर प्रवचनोंके अवसर पर अपने सम्प्रदायके भक्तोंका परिचय देनेके लिए उनकी 'वार्ताएँ' कहीं हैं और उन्हें हरिरायजीने लिपिबद्ध किया है। वार्ताएँ दो भागोंमें विभाजित हैं—(१) 'चौरासी वैष्णवोंकी वार्ता', और (२) 'दो सौ बावन वैष्णवोंकी वार्ता'। इनकी संस्कृत, गुजराती और ब्रजभाषामें अच्छी गति थी। तीनों भाषाओं-में इनकी गद्य और पद्य-कृतियाँ प्राप्त होती हैं। ब्रजभाषा गद्यके तो ये प्रौढ़ लेखक थे, जिसका प्रमाण इनके द्वारा सम्पादित तथा रचित वार्ता-साहित्यमे मिलता है। हिन्दीमे टीका-साहित्यका प्रारम्भ इनकी टीकाकृति 'भाव प्रकाश'-से माना जाना चाहिए। इसमें गोस्वामी गोकुलनाथजी ने भक्तोंकी जो 'वार्ताएँ' कही थीं, उनके गूढ़ भावोंका पुष्ट ब्रजभाषा गद्यमें विशदीकरण किया गया है। सम्भवतः 'भाव प्रकाश'के ही अनुकरणपर प्रियादासने नाभाजीके 'भक्तमाल' पर पद्य-टीका लिखी है। हरिरायजीका रचना-काल सं० १६६७ से १७७२ ई० तक अनुमाना जाता है। 'भाव प्रकाश' इनकी अन्तिम कृति होनी चाहिए। इनके शिष्य विट्ठलनाथने स० १७२९ ई० मे 'सम्प्रदाय कल्पद्रुम' नामक ग्रन्थकी रचना की थी। उसमे 'भाव प्रकाश'का उल्लेख नहीं है। इससे भी यह अनुमान निकलता है कि उस समय तक इसकी रचना नहीं हो पायी थी। सम्प्रदाय-में इसकी सं० १७५२ ई० की पाण्डुलिपि उपलब्ध है। वार्ता-साहित्यके तृतीय संस्करणमे 'भाव प्रकाश'की टीका जोड़ी गयी है। इसमें नयी खोजके आधारपर वार्ताएँ बढ़ाई भी गयी हैं।

हरिरायजीने १२५ वर्षकी पूर्ण आयुका भोग किया और देशमें कई बार यात्राएँ कर पुष्टि-मार्गके प्रचारका पुण्य अर्जित किया। प्रारम्भमें ये गोकुलमें ही रहे परन्तु जब औरंगजेबकी हिन्दूविरोधी नीतिने उग्र रूप धारण किया, तब सं० १७२६ ई० मे श्रीनाथजीके 'स्वरूप'के साथ नाथ-द्वारा चले गये।

हरिरायजी हिन्दी-साहित्यमे प्रौढ़ ब्रजभाषा गद्यलेखक, सम्पादक एवं टीकाकारके रूपमें सदैव स्मरण किये जाते रहेंगे। उनके सम्बन्धमे विशेष जानकारी उपलब्ध न होने-से उनका हिन्दीके प्रसिद्ध इतिहास-ग्रन्थोंमे उल्लेख तक नहीं हो पाया। जिन एक दो ग्रन्थोंमें हुआ भी है, वहाँ बहुत कम।

[सहायक ग्रन्थ—अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय—डा० दीनदयाल गुप्त, अष्टछाप परिचय—प्रभुदयाल मीतल।] —वि० मो० श०

हरिवंश पुराण—हरिवंश वास्तवमें पुराण न होकर 'महा-भारत'का परिशिष्ट है। शैली और वर्ण्य-विषयकी दृष्टिसे इसे पुराण कहना अनुचित नहीं है। यदि यह वास्तवमें 'महाभारत'का परिशिष्ट माना जाय तो इसे सबसे प्राचीन पुराण कह सकते हैं। हिन्दीमें इसका अनुवाद 'महाभारत'के प्रसिद्ध अनुवादकर्ता कवित्रय गोकुलनाथ, गोपीनाथ और मणिदेवने काशी नरेश महाराज उदित-नारायणसिंहकी आज्ञासे सन् १७६८ ई० (सं० १८२५ वि०) के आसपास किया था। इसमें परिमार्जित ब्रजभाषा तथा दोहा, चौपाई, घनाक्षरी, कवित्त आदि छन्दोंका प्रयोग हुआ है। इसकी शैली ललित और काव्य-गुणोंसे युक्त है। अनु-वादकी दृष्टिसे तो यह सफल है ही, काव्यकी दृष्टिसे भी इसकी श्रेष्ठता असंदिग्ध है। इसीलिए विद्वानोंने इसे एक मौलिक काव्यकी भाँति आदर दिया है।

[सहायक ग्रन्थ—हिन्दी साहित्यका इतिहास : पं० रामचन्द्र शुक्ल।] —यो० प्र० सिं०

हरिवंश राय 'बच्चन'—जन्म १९०७ ई० में प्रयागमें हुआ। शिक्षा एम० ए०, पी० एच-डी० प्रयाग तथा कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयोंमें हुई। अनेक वर्षों तक प्रयाग विश्वविद्यालयके अंग्रेजी विभागमें प्राध्यापक रहे (१९४२-५२ ई०)। कुछ समयके लिए आकाशवाणीके साहित्यिक कार्यक्रमोंमे सम्बद्ध रहे। फिर विदेश मन्त्रालयमें हिन्दी विशेषज्ञ होकर दिल्ली चले गये (१९५५ ई०)। सम्प्रति उसी पदपर कार्य कर रहे हैं। विश्वविद्यालयके दिनोंमें कैम्ब्रिज जाकर (१९५२-५४ ई०) अंग्रेजी कवि यीट्सपर शोध-प्रबन्ध लिखा, जो काफी प्रशंसित हुआ।

'बच्चन'की कविताके साहित्यिक महत्त्वके बारेमें अनेक मत हो सकते हैं, और हैं, पर एक तथ्य ऐसा है, जिसे सभी स्वीकार करनेके लिए प्रस्तुत होंगे—और वह है 'बच्चन'के काव्यकी विलक्षण लोकप्रियता। इसमें सन्देह नहीं कि दस वर्ष पहले जो स्थिति थी, वह आज नहीं रही, 'बच्चन'की लोकप्रियता घट गयी है फिर भी यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि आज भी हिन्दीके ही नहीं, सारे भारतवर्षके सर्वाधिक लोकप्रिय कवियोंमे 'बच्चन' का स्थान सुरक्षित है। इतने विस्तृत और विराट् भावकवर्ग का विरले ही कवि दावा कर सकते हैं।

'बच्चन'की कविता इतनी सर्वग्राह्य और सर्वप्रिय क्यों हुई? क्योंकि उसमे हिन्दीके बहुसंख्यक पाठकों और श्रोताओंको, क्योंकि 'बच्चन'की लोकप्रियता मात्र पाठकोंके स्वीकरणपर ही आधारित नहीं थी—जो कुछ मिला वह उन्हें अत्यन्त रुचिकर जान पड़ा। वे छायावादके अतिशय सौकुमार्य और माधुर्य से, उसकी अतीन्द्रिय और अति-वैयक्तिक सूक्ष्मतासे, उसकी लक्षणात्मक अभिव्यंजना-शैली से उकता गये थे। उर्दूकी गजलोंमे चमक और लचक थी, दिलपर असर करनेकी ताकत थी, वह सहजता और संवेदना थी, जो पाठक या श्रोताके मुँहसे बरबस यह कहला सकती थी कि "मैंने पाया यह कि गोया वह भी मेरे दिल में है"। मगर हिन्दी कविता जन-मानस और जन-रुचिसे बहुत दूर थी। 'बच्चन'ने उस समय (१९३५-४० ई० के व्यापक खिन्नता और अवसादके युग में) मध्यवर्गके विक्षुब्ध, वेदनाग्रस्त मनको वाणीका वरदान दिया। उन्होंने सीधी, सादी, जीवन्त भाषा और सर्वग्राह्य, गेय शैलीमे, छायावादकी लाक्षणिक वक्रताकी जगह संवेदनासिक्त अभिधाके माध्यम से, अपनी बात कहना

आरम्भ किया—और हिन्दी काव्य-रसिक सहसा चौंक पड़ा क्योंकि उसने पाया यह कि गोया वह भी उसके दिल में है। 'बच्चन'ने लोकप्रियता प्राप्त करनेके उद्देश्यसे चेष्टा करके यह राह ढूँढ़ निकाली और अपनायी हो, यह बात नहीं है, वे अनायास ही इस राहपर आ गये। उन्होंने अनुभूतिसे प्रेरणा पायी थी, अनुभूतिको ही काव्यात्मक अभिव्यक्ति देना उन्होंने अपना ध्येय बनाया।

'बच्चन'की कविताकी लोकप्रियताका प्रधान कारण उसकी सहजता और संवेदनशील सरलता है और यह सहजता और सरल संवेदना उसकी अनुभूतिमूलक सत्यताके कारण उपलब्ध हो सकी। 'बच्चन'ने आगे चलकर जो भी किया हो, आरम्भमें उन्होंने केवल आत्मानुभूति, आत्म-साक्षात्कार और आत्माभिव्यक्तिके बलपर काव्यरचना की। कविके अहंकी स्फीति ही साधारणीकरण और व्यापकता बन गयी। समाजकी अभावग्रस्त व्यथा, परिवेशका चमकता हुआ खोखलापन, नियति और व्यवस्थाके आगे व्यक्तिकी असहायता और बेबसी—'बच्चन'के लिए ये सहज, व्यक्तिगत अनुभूति पर आधारित काव्य-विषय थे। उन्होंने साहस और सत्यताके साथ सीधी-सादी भाषा और शैलीमें सहज कल्पनाशीलता और सामान्य बिम्बोंसे सजा-सँवारकर अपने नये गीत हिन्दी जगत्‌को भेंट किये। हिन्दी जगत्‌ने उत्साहसे उनका स्वागत किया।

यों तो एक प्रकाशन 'तेरा हार' उससे पहले भी हो चुका था पर 'बच्चन'का पहला काव्य-संग्रह १९३५ ई०में प्रकाशित 'मधुशाला' (दि०) से ही मानना उचित होगा। इसके प्रकाशनके साथ ही एक बारगी 'बच्चन'का नाम एक गगनभेदी राकेटकी तरह तेजीसे उठकर साहित्य जगत्‌पर छा गया। 'मधुशाला', 'मधुबाला' और 'मधु-कलश'—एकके बाद एक, ये तीनों संग्रह शीघ्र ही सामने आ गये—हिन्दीमें जिसे 'हालावाद' कहा गया है, ये उस काव्य-पद्धतिके धर्मग्रन्थ हैं। उस काव्य-पद्धतिके संस्थापक ही उसके एकमात्र सफल साधक भी हुए—क्योंकि जहाँ 'बच्चन'की पैरोडी करना आसान है, वहाँ उनका सच्चे अर्थमें, अनुकरण असम्भव है। अपनी सारी सहज सार्व-जनीनताके बावजूद 'बच्चन'की कविता नितान्त वैयक्तिक, आत्म-स्फूर्त और आत्मकेन्द्रित है।

'बच्चन'ने इस 'हालावाद'के द्वारा व्यक्तिको जीवनकी सारी नीरसताओंको स्वीकार करते हुए भी उससे मुँह मोड़नेकी बजाय उसका उपयोग करनेकी, उसकी सारी बुराइयों और कमियोंके बावजूद जो कुछ मधुर और आनन्दप्रद होनेके कारण ग्राह्य है, उसे अपनानेकी प्रेरणा दी। उर्दू कवियोंने 'वाइज' और 'वज़ा', मस्जिद और मजहब, कयामत और उकबाकी पर्वाह न करके दुनियाये-रंगो-बूको निकटतासे, बार-बार देखने, उसका आस्वादन करनेका आमन्त्रण दिया है। खैयामने वर्तमान क्षणको जानने, मानने, अपनाने और भली प्रकार इस्तेमाल करनेकी सीख दी है—और 'बच्चन'के 'हालावाद'का जीवन-दर्शन भी यही है। यह पलायनवाद नहीं है क्योंकि इसमें वास्तविकका अस्वीकरण नहीं है, न उससे भागनेकी परिकल्पना है, प्रत्युत वास्तविकताकी शुष्कताको अपनी मस्तरंगसे सींचकर हरी-भरी बना देनेकी सशक्त प्रेरणा है। यह सत्य है कि 'बच्चन'की इन कविताओंमें रूमानियत और कसक है पर 'हालावाद' गम-गलत करनेका निमन्त्रण है, गमसे घबराकर खुदकुशी करनेका नहीं।

अपने जीवनकी इस मंजिलमें 'बच्चन' अपने युवाकालके आदर्शों और स्वप्नोंके भग्नावशेषोंके बीचसे गुजर रहे थे। पढ़ाई छोड़कर राष्ट्रीय आन्दोलनमें कूद पड़े थे। अब उस आन्दोलनकी विफलताकी कड़वी घूँट पी रहे थे। एक छोटेसे स्कूलमें अध्यापकी करते हुए वास्तविकता और आदर्शके बीचकी गहरी खाईमें डूब-उतरा रहे थे। इस अभावकी दशामें पत्नीके असाध्य रोगकी भयंकरता देख रहे थे, अनिवार्य विद्रोहके आतंकसे त्रस्त और व्यथित थे। परिणामतः 'बच्चन'का कवि अधिकाधिक अन्तर्मुखी होता गया। इस युग और इस 'मूड' की कविताओंके संग्रह 'निशा निमन्त्रण' (१९३८ ई०) तथा 'एकान्त संगीत' 'बच्चन'की सम्भवतः सर्वोत्कृष्ट काव्योपलब्धि हैं।

पर यह अँधेरा छँट गया और 'बच्चन'का कवि सारी व्यथा-वेदना झेलकर उनके ऊपर निकल आया। वैयक्तिक, व्यावहारिक जीवनमें सुधार हुआ। अच्छी नौकरी मिली, 'नीड़का निर्माण फिर' से करनेकी प्रेरणा और निमित्तकी प्राप्ति हुई। 'बच्चन'ने अपने जीवनके इस नये मोड़पर फिर आत्म-साक्षात्कार किया, मनको समझाते हुए पूछा: "जो बसे हैं वे उजड़ते हैं प्रकृतिके जड़ नियमसे, पर किसी उजड़े हुएको फिर बसाना कब मना है?"

परम निर्मल मनसे 'बच्चन'ने स्वीकार किया कि "है चिताकी राख करमें, माँगती सिन्दूर दुनिया"—व्यक्तिगत वेदनाका इतना सहज, सफल साधारणीकरण दुर्लभ है।

कविने नये, सुख और सम्पन्नताके युगमें प्रवेश किया। 'सतरंगिनी' (१९४५ ई०) और 'मिलन यामिनी' (१९५० ई०) में 'बच्चन' के नये, उल्लासभरे युगकी सुन्दर गीतोप-लब्धियाँ देखने-सुननेको मिलीं।

'बच्चन' एकान्त आत्मकेन्द्रित कवि हैं। इसी कारण उनकी वे रचनाएँ, जो सहज-स्फूर्त नहीं हैं—उदाहरणके लिए बंगालके काल और महात्मा गान्धीकी हत्यापर लिखी कविताएँ—केवल नीरस ही नहीं, सर्वथा कवित्व-रहित हो गयी हैं। स्वानुभूतिका कवि यदि अनुभूतिके बिना कविता लिखता है तो उसे सफलता तभी मिल सकती है, जबकि उसकी रचनाका विचार तत्त्व या शिल्प उसे सामान्य तुकबन्दीसे ऊपर उठा सके—और विचारतत्त्व और शिल्प 'बच्चन'के काव्यमें अपेक्षाकृत क्षीण और अशक्त हैं। प्रबल काव्यानुभूतिके क्षण विरल होते हैं और 'बच्चन'ने बहुत अधिक लिखा है। यह अनिवार्य था कि उनकी उत्तर-कालकी अधिकांश रचनाएँ अत्यन्त सामान्य कोटिकी पद्य-कृतियाँ होकर रह जातीं। उन्होंने काव्यके शिल्पमें अनेक प्रयोग किये हैं पर वे प्रयोग अधिकतर उर्दू कवियोंके तरह-तरहकी बहरोंमें तरह-तरहकी 'जमीन' पर नज्म कहनेकी चेष्टाओंसे अधिक महत्त्वके नहीं हो पाये। हाँ, सामान्य बोलचालकी भाषाको काव्य-भाषाकी गरिमा प्रदान करनेका श्रेय निश्चय ही सर्वाधिक 'बच्चन'का ही है। इसके अतिरिक्त उनकी लोकप्रियताका एक कारण उनका

काव्य-पाठ भी रहा है। हिन्दीमें कविसम्मेलनकी परम्पराको सुदृढ और जनप्रिय बनानेमें 'बच्चन'का असाधारण योग है। इस माध्यमसे वे अपने पाठकों-श्रोताओंके और निकट आ गये।

कविताके अतिरिक्त 'बच्चन'ने कुछ समीक्षात्मक निबन्ध भी लिखे हैं, जो गम्भीर अध्ययन और सुलझे हुए विचार-प्रतिपादनके लिए पठनीय हैं। उनके शेक्सपियरके नाटकोंके अनुवाद और 'जनगीता'के नामसे प्रकाशित दोहे-चौपाइयोंमें 'भगवद् गीता'का उल्था 'बच्चन'के साहित्यिक कृतित्वके विशेषतया उल्लेखनीय या स्मरणीय अंग माने जायेंगे या नहीं, इसमें संदेह है।

कृतियाँ—'तेरा हार' (१९३२ ई०), 'खैयामकी मधुशाला', 'मधुशाला' (१९३५ ई०), 'मधुशाला'का एक अंग्रेजी अनुवाद 'हाउस ऑव वाइन'के नामसे लन्दनसे प्रकाशित हुआ (रूपान्तरकार : मार्जरी बोल्टन तथा रामस्वरूप व्यास), 'मधुबाला', 'मधुकलश', 'निशा निमन्त्रण' (१९३८ ई०), 'एकान्त संगीत', 'आकुल अन्तर', 'विकल विश्व', 'सतरंगिनी' (१९४५ ई०), 'हलाहल', 'मिलन यामिनी'(१९५० ई०), 'प्रणय पत्रिका', 'बुद्ध और नाचघर', 'आरती और अंगारे' (१९५४ ई०), 'जनगीता' (अनुवाद), 'मैकबेथ' (अनुवाद), 'प्रारम्भिक रचनाएँ' भाग १, २, ३ (कहानियाँ)। —बा० कृ० रा०

हरिवंशलाल शर्मा–जन्म १९१५ ई०में मेरठ जिलेमें हुआ। शिक्षा एम० ए०, पी-एच० डी, डी० लिट्०। सम्प्रति अलीगढ विश्वविद्यालयके हिन्दी विभागमें हैं। सूर-साहित्यके विशेषज्ञ। प्रमुख कृतियाँ—'सूर और उनका साहित्य' (१९५४), 'सूर समीक्षा' (१९५५)। —सं०

हरिवंश सहस्रनाम–'हरिवंश सहस्रनाम' स्तोत्र-पद्धतिकी ब्रजभाषाकी रचना है। इसमें हितहरिवंश गोस्वामीके महत्त्वका वर्णन चाचा हितवृन्दावन दास. (दे०)ने इस शैलीसे किया है कि पाठक हित महाप्रभुकी जीवन झाँकी भी साथ ही साथ देखता चलता है। इस ग्रन्थकी उपादेयता केवल स्तोत्र ग्रन्थ होनेके कारण नहीं है, वरन् इसके द्वारा अनेक भक्तोंका नामोल्लेख भी प्राप्त होता है। साथ ही साथ राधावल्लभ सम्प्रदायकी सैद्धान्तिक विशेषताओंके इस ग्रन्थ से संकेत मिलते हैं। कुछ पद इतने गूढ सांकेतिक अर्थोंसे भरे हुए हैं कि उन्हें पढ़कर चाचा हितवृन्दावन दासकी विवेचन वर्णन-शैलीपर आश्चर्य होता है। हित हरिवंशकी नाम महिमाका पाठ करनेके बहाने सिद्धान्तोंका गहन तत्त्व भी इससे ज्ञात होता है, यही इसकी विशेषता है। कुछ विद्वानोंने इसके आधारपर भक्तोंकी सूची भी तैयार की है। एक प्रकारसे भक्तमालका भी यह काम देता है। —वि० स्ना०

हरिशंकर शर्मा–ये नाथूराम शंकर शर्माके आत्मज हैं। जन्मतिथि २१ अगस्त, १८९२ ई० है और जन्मस्थान हरदुआगंज, अलीगढ। बहुत दिनों तक इन्होंने 'आर्य-मित्र'का सम्पादन किया। पुस्तकें लगभग ५० हैं जिनमें मुख्य हैं—'रसरत्नाकर' (काव्यशास्त्र), 'उर्दू साहित्य परिचय', 'हिन्दी साहित्य परिचय', 'अंग्रेजी साहित्य परिचय' (इतिहास), 'घासपात', 'रामराज्य', 'कृष्ण सन्देश', 'महर्षि महिमा', 'वीरांगना वैभव' (काव्य), 'चिड़ियाघर', 'पिंजरापोल', 'मटकाराम मिश्र', 'गड़बड़ गोष्ठी', 'पाखण्ड-प्रदर्शनी' (हास्यव्यंग्य), 'हिन्दुस्तानी कोश'। हरिशंकरजी इतिहास लेखक, कोशनिर्माता, सफल व्यंग्यकार, हास्याचार्य, विख्यात पत्रकार, बहुभाषाविद् और छन्दशास्त्रके विशेषज्ञ हैं। भाषा सरल और शैली व्यंग्यात्मक है। कृतियोंमें परम्परा और प्रगतिका अद्भुत सामंजस्य है। आप 'देव पुरस्कार'से पुरस्कृत हैं और पिछले दिनों आगरा विश्वविद्यालयने डाक्टरेटकी आनरेरी उपाधिसे आपको सम्मानित किया है। —स० ना० त्रि०

हरिश्चंद्र १–सूर्यवंशके प्रतापी नरेशोंकी सूचीमें हरिश्चन्द्र नाम प्राप्त होता है। वस्तुतः हरिश्चन्द्र कालिदास द्वारा निर्दिष्ट दिलीपसे प्रसूत रघुवंशकी परम्पराके बहुत पूर्वके ज्ञात होते हैं और इनके साथ जुड़ा हुआ विश्वामित्रका कथानक बादका है। वेदादि वैदिक परम्पराके ग्रन्थोंमें इनके उल्लेखका अभाव मिलता है। इनका उल्लेख पुराणवादी परम्परासे ही प्राप्त होता है। वस्तुतः ये सत्यवादिता और दानवीरताके कारण प्रसिद्ध माने गये हैं। इनकी इस दानवीरताका उल्लेख संस्कृतमे 'चण्डकौशिक' नामक नाटकमें प्राप्त होता है। हिन्दी साहित्यमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने इसी विषयको लेकर स्वतन्त्र नाट्यकृतिकी रचना की। —यो० प्र० सिं०

हरिश्चंद्र २–दे० 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र'।

हरिश्चंद्र चंद्रिका–दे० 'हरिश्चन्द्र मैगजीन'।

हरिश्चंद्र देव वर्मा 'चातक'–जन्म १९०० ई०में अतरौली में हुआ। आधुनिक युगके ब्रजभाषा कवियोंमें आपका नाम उल्लेखनीय है। रचनाएँ—'वन्दना', 'चतुष्टय', 'वीणा', 'क्रान्तिदूत' आदि। —सं०

हरिश्चंद्र मैगजीन–इसका प्रकाशन बनारससे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा सन् १८७३ ई०मे हुआ। यह एक मासिक पत्रिका थी। इसके आठ अंक निकलनेके बाद इसका नाम 'हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका' रख दिया गया। यह पत्रिका बीस-तीस पृष्ठसे अधिककी न थी और इसका वार्षिक मूल्य ६) मात्र था। सुविधाके लिए इसे हिन्दी, अंग्रेजी दोनों भाषाओंमें प्रकाशित किया जाता था। इसके प्रेरक और संस्थापक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ही थे। वही उसके सम्पादक भी थे। इसका प्रथम संस्करण ५०० प्रतियोंका था।

इसमें साहित्यिक, वैज्ञानिक, राजनीतिक और धार्मिक विषयोंपर लेख प्रकाशित होते रहते थे तथा उपन्यास, नाटक, इतिहास एवं काव्यका भी प्रकाशन होता था। हिन्दी गद्यका परिष्कृत रूप प्रारम्भमें इसी पत्रिकामें प्रकट हुआ। स्वयं भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने अपनी 'कालचक्र' नामक पुस्तिकामें लिखा है—"हिन्दी नई चालमें ढली, सन् १८७३ ई०से"। 'चन्द्रिका'में भारतेन्दु स्वयं तो लिखते ही थे, बहुतसे लेखकोंको भी प्रेरित करते थे।

इस पत्रिकाकी मौलिकता प्रशंसनीय थी। इसमें प्रकाशित हरिश्चन्द्रका 'पैगम्बर', मुंशी बालाप्रसादका 'कलिराजकी सभा', बाबू सीतारामका 'अद्भुत अपूर्व स्वप्न', कार्तिक प्रसाद खत्रीका 'रेलका विकट खेल' आदि लेख बहुप्रशंसित रहे हैं। —हृ० दे० बा०

हरी घास पर क्षण भर–१९४९ ई० में प्रकाशित सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'का तीसरा काव्य-संग्रह, जो कविकी न केवल अत्यन्त प्रौढ़ कृतियोंमेंसे है, बल्कि जिसका छायावाद युगके बाद उभरनेवाली नयी काव्य-चेतनाके विकासमें ऐतिहासिक महत्त्व है। रचनाएँ १९४७-४९ ई०के बीचकी हैं। कवि भाषाको भारतीय संस्कृति तथा नवीनतम विचारोंके अनुकूल एक नया काव्योचित गठन दे सका है। कविताएँ इस बातकी सफल पुष्टि हैं कि कविता वास्तवमें छन्द, तुक आदिकी ऊपरी सजावटपर उतना निर्भर नहीं, जितना भाषाके अधिक बुनियादी तत्त्वोंपर, जैसे प्रतीक, शब्द, अर्थ, लय, बिम्ब आदिपर निर्भर है। कविताओंमें खोज एवं विशिष्टता है किन्तु टेकनीक और भाषाके सामर्थ्यको देखते हुए ऐसा लगता है कि विषयकी दृष्टिसे उनका क्षेत्र अपेक्षाकृत संकुचित है (दे० 'अज्ञेय' स० ही० वात्स्यायन)। —कुं० ना०

हर्षवर्धन–प्रसादकृत नाटक 'राज्यश्री' का पात्र। हर्षवर्धन (राज्यकाल ६०५-६४७ ई०) स्थाणीश्वरके प्रभाकरवर्धनका छोटा पुत्र और राज्यवर्धन और राज्यश्रीका छोटा भाई है। उसकी माताका नाम यशोमती था, जिसे कुछ लोग मालवनरेशकी दुहिता मान लेनेका प्रयास करते हैं। हर्षवर्धनने कामरूप, कश्मीर और वलभीके राज्य जीते थे ('राज्यश्री', प्राक्कथन)। हर्षवर्धन उदार, वीर, धार्मिक और कर्त्तव्यशील सम्राट्के रूपमें हमारे समक्ष आता है। वह विदेशी हूणोंको प्रताड़ित कर समस्त उत्तरापथपर अपना राज्य स्थापित कर लेता है। तत्पश्चात् दक्षिणकी ओर विजयकी लालसासे बढ़ता है किन्तु वीर चालुक्यसे उसे आंशिक पराजय मिलती है। चालुक्य नरेश पुलकेशिन से सन्धि करके वह प्रसन्नताके साथ कन्नौज लौट आता है। वह लूट-पाट, हत्या एवं नृशंसताके द्वारा अपने राज्यका विस्तार करनेके पक्षमें नहीं है। पुलकेशिनके सामने अपनी इस भावनाको व्यक्त करता हुआ हर्ष कहता है : "मुझे राज्यकी सीमा नहीं बढ़ानी है। यदि इतने ही मनुष्योंको सुखी कर सकूँ तो कृतकृत्य हो जाऊँगा।" इस प्रकार राज्यके अनावश्यक विस्तारकी अपेक्षा वह आदर्श शासन-व्यवस्थाको राज्यधर्मका अनिवार्य अंग मानता है। इस प्रकारकी भावना रखते हुए भी वह मगध सम्राटोंकी निर्वीर्यतासे अरक्षित उत्तरापथकी हूणोंसे रक्षा करते हुए कामरूपसे सौराष्ट्र और कश्मीरसे लेकर रेवातक एक सुव्यवस्थित राज्यकी स्थापना करके अपने प्रबल शौर्य एवं कुशल शासक होनेका परिचय देता है। शासककी अपेक्षा हर्षवर्धन एक सामान्य मनुष्यकी दृष्टिसे कहीं अधिक वरेण्य है। उसकी उदारता एवं सुजनता उसकी वीरतासे कहीं अधिक महत्त्व रखती हैं। राज्यश्रीके सम्पर्कमें आनेके बाद प्रतिहिंसासे प्रेरित होकर लक्ष-लक्ष प्राणियोंकी नृशंस हत्या करानेवाला हर्ष दयार्द्र बनकर "राजा होकर कंगाल बननेका अभ्यास" करने लगता है। वह अपनी बड़ी बहिनकी क्षमाशीलता, उदारता एवं परदुःखकातरतासे विशेष प्रभावित होता है और नतमस्तक होकर सच्चे हृदयसे अपनी विकृत राजन्य बुद्धिपर पश्चात्ताप करता है। इस प्रकारकी विरक्ति की भावनाका उसके चरित्रमें प्रवेश एकदम नाटकीय नहीं है। राज्यश्रीका छोटा भाई होनेके नाते सात्त्विक वृत्तिके बीज उसके हृदयमें संस्कार रूपमें पहलेसे ही वर्तमान थे, हाँ, राजनीतिके प्रखर तापसे वे झुलस गये थे। राज्यश्रीके शीतल सुखद आचरणकी छाया पाकर वे पुनः अंकुरित होकर लहलहा उठे। फलतः शौर्य एवं शस्त्र बलके द्वारा अर्जित समस्त राजकीय सम्पत्तिको वितरित करके हर्षवर्धन जन-जनके मानसका यशस्वी सम्राट् बन जाता है। उसके अपूर्व त्याग, उदारता एवं क्षमाशीलताकी प्रशंसा विदेशी यात्री सुएनच्वांगने मुक्त कण्ठसे की है : "यह भारतका देवदुर्लभ दृश्य देखकर सम्राट्! मुझे विश्वास हो गया कि यही अमिताभकी प्रसवभूमि हो सकती है"। हर्षवर्धनकी एक अन्य अप्रतिम विशेषता निष्काम कर्मयोगकी भावना है। राज्यसुखसे सर्वतोभावेन विरक्त हो जानेपर भी वह न्यायबुद्धि एवं लोकसेवाके भावको भुला नहीं देता। कुमारकी हत्याके षड्यन्त्रका समाचार पाते ही वह क्षत्रियोचित तेजमें भरकर तुरन्त आज्ञा देता है : "जाओ डौंडी पिटवा दो कि यदि महाश्रमणका एक रोम भी छू गया तो समस्त विरोधियोंको जीवित जलना पड़ेगा।" इसी प्रकार अपनी सारी सम्पत्तिका दान करनेके पश्चात् भी वह लोकसेवाकी भावनासे शासन कार्यको बड़ी कुशलतासे चलाता रहता है। —के० प्र० चौ०

हसन–इस्लामी स्रोतोंके अनुसार हसन अलीके छोटे भाई और मोहम्मद साहबके नाती थे। इन्हें इमाम हुसेन भी कहा जाता है। 'खिलाफत'के संघर्षमें इन्होंने अपने लघु भ्राता हुसेनको सहायता की थी। ऐसी प्रसिद्धि है कि जादाबिन अंशअसने हसनको जहर दे दिया था। उस समय ये ४७ वर्षके थे। मोहर्रमके अवसर पर आज भी मुसलमान 'हसन'का स्मरण करते हैं (दे० काबा-कर्बला)। —रा० कु०

हस्ती–दे० 'कुवलया पीड'।

हिंदी अनुशीलन–इस त्रैमासिक शोध-पत्रिकाका प्रकाशन भारतीय हिन्दी परिषद्, प्रयागकी ओरसे सन् १९४७ ई० के अप्रैल मासमें प्रयागसे हुआ। इसके प्रथम सम्पादक थे धीरेन्द्र वर्मा। 'हिन्दी अनुशीलन'का उद्देश्य है "हिन्दी तथा खोजके समस्त अंगों, भाषा, साहित्य तथा संस्कृतिके अध्ययनको प्रोत्साहित करना और उसकी गतिका विशेष रूपसे निरीक्षण प्रस्तुत करना"।

इस पत्रिकाके लेखक प्रायः हिन्दीके प्राध्यापक, शोध छात्र एवं इस क्षेत्रमें कार्य करने वाले अधिकारी विद्वान् ही हैं। इसके वर्तमान सम्पादक हैं रघुवंश, रामस्वरूप चतुर्वेदी तथा टीकमसिंह तोमर।

'हिन्दी अनुशीलन'के दो महत्त्वपूर्ण विशेषांक प्रकाशित हो चुके हैं—(१) 'भाषा अंक' और (२) 'धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक'। विषयकी नवीनता एवं शोधकी दृष्टिसे ये दोनों अंक अत्यन्त उपादेय एवं महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं। —श्री० व०

हिंदी प्रदीप–यह मासिक पत्र इलाहाबादसे ७ सितम्बर, १८७७ ई०को प्रथम बार प्रकाशित हुआ। इसके सम्पादक बालकृष्ण भट्ट थे और पृष्ठ संख्या १६ थी। इसमें लेखों के अतिरिक्त नाटक भी प्रकाशित होते थे। आचार्य राम-

चन्द्र शुक्लके अनुसार "'हिन्दी प्रदीप' गद्य-साहित्यका ढर्रा निकालनेके लिए ही" निकाला गया था।

इसमें प्रायः साहित्य, राजनीति और समाजके प्रति तिक्त मधुर लेख प्रकाशित होते थे। चूँकि इसका सम्बन्ध राजनीतिसे भी था, इसलिए इसपर प्रतिबन्ध लगा दिया गया और १९१० ई० तक बह बना रहा।

'कविवचन सुधा' के बाद 'हिन्दी प्रदीप' ही वह पत्र रह गया था, जो अपने पाठकोंमें राष्ट्रीय चेतना जागृत कर सका। सामाजिक और राष्ट्रीय समस्याओंपर स्वतन्त्र विचार प्रकाशनके कारण यह पत्र अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हो गया और 'कविवचन सुधा'के बाद इसे ही सबसे अधिक ख्याति मिली। —ह० दे० बा०

हिंदुस्तानी–इसका प्रकाशन सन् १९३१ ई०में धीरेन्द्र वर्मा के सम्पादकत्वमें हुआ। यह त्रैमासिक पत्रिका है। उत्तर प्रदेशीय हिन्दुस्तानी अकादमीका यह मुख-पत्र है। राजस्थानी, ब्रजभाषा तथा हिन्दीकी अन्यान्य बोलियोंपर इसमें काफी सामग्री प्रकाशित होती रही है। शोध-कार्य, समालोचना एवं वैचारिकताके प्रति 'हिन्दुस्तानी'का झुकाव प्रमुख रूपसे रहा है। सम्प्रति इसके सम्पादक माताप्रसाद गुप्त हैं। —ह० दे० बा०

हिंदी साहित्यका इतिहास–हिन्दीका सर्वप्रथम सुव्यवस्थित साहित्यिक इतिहास आचार्य रामचन्द्र शुक्लने 'हिन्दी शब्द सागर'की विशद भूमिकाके रूपमें प्रस्तुत किया। साहित्यिक इतिहासका उनका विभाजन इन पंक्तियोंमें बड़ी निश्चयात्मकताके साथ व्यक्त हुआ है—"जबकि प्रत्येक देशका साहित्य वहाँकी जनताकी चित्तवृत्तिका स्थायी प्रतिबिम्ब होता है, तब यह निश्चित है कि जनताकी चित्तवृत्तिके परिवर्तनके साथ-साथ साहित्यके स्वरूपमें भी परिवर्तन होता चलता है। आदिसे अन्त तक इन्हीं चित्तवृत्तियोंकी परम्पराको परखते हुए साहित्य-परम्पराके साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही 'साहित्यका इतिहास' कहलाता है। जनताकी चित्तवृत्ति बहुत राजनीतिक, सामाजिक, साम्प्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थितिके अनुसार होती है। अतः कारण-स्वरूप इन परिस्थियोंका किंचित् दिग्दर्शन भी साथ ही साथ आवश्यक होता है। इस दृष्टिसे हिन्दी साहित्यका विवेचन करनेमें यह बात ध्यानमें रखनी होगी कि किसी विशेष समयमें लोगोंमें रुचि-विशेषका संचार और पोषण किधरसे और किस प्रकार हुआ। उपर्युक्त व्यवस्थाके अनुसार हम हिन्दी साहित्यके ९०० वर्षोंके इतिहासको चार कालोंमें विभक्त कर सकते हैं—आदि काल (वीरगाथा काल, सं० १०५०-१३७५), पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल, सं० १३७५-१७००), उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल, सं० १७००-१९००), आधुनिक काल (गद्य काल, सं० १९००-१९५४)"।

'शब्दसागर'में लिखित 'हिन्दी साहित्यका विकास'को परिवर्तित तथा परिमार्जित कर उन्होंने १९२७ में 'हिन्दी साहित्यका इतिहास'के रूपमें प्रकाशित किया। अपने 'काल विभाग' शीर्षक प्रारम्भिक परिच्छेदमें उन्होंने उपर्युक्त सिद्धान्त और पद्धतिकी ही पुनरावृत्ति की है, जिसका निर्वाह करनेकी क्षमताका भी परिचय देनेमें वे समर्थ सिद्ध होते हैं। शुक्लजीने तत्कालीन पाश्चात्य वैदुष्यकी उपलब्धि को, विलक्षण सजगताका परिचय देते हुए, हिन्दी साहित्येतिहासके निर्माणके लिए अपना लिया है—कदाचित् किसी भी भारतीय भाषाके साहित्यके इतिहास-लेखकके पूर्व। उन्नीसवीं शताब्दीमें पश्चिममें साहित्येतिहासके क्षेत्रमें विधेयवाद प्रचलित था। शुक्लजीने इसी विधेयवादको, उस समयके लिए आश्चर्यजनक नव्यवादिताके साथ, अधिकृत और व्यवहृत किया—उन्हीं शुक्लजीने, जो काफी पुराने पड़ गये रोमाण्टिक कवियोंके हिन्दी अनुयायियों, छायावादियों,से कम ही सहानुभूति दिखाते हैं और 'किमाश्चर्यमतः परं', उनमेंसे कुछ पर तो कमिंग्ज जैसे अंग्रेजीके उन कवियोंके प्रभावका भी सन्देह करते हैं, जिनका नाम भी उन कवियोंने जाने कितने दिनों बाद सुना होगा किन्तु शुक्लजी रचनात्मक साहित्यमें जिस नवीनताके विरोधी हैं—उनके साथ न्याय किया जाय तो कहना पड़ेगा कि उनका अपना रचनात्मक साहित्य भी उनके आदर्शके अनुरूप अवश्य है। उसे साहित्येतिहास तथा साहित्यालोचनके क्षेत्रमें उनकी जैसी तत्परताके साथ अपनानेवाले आज भी हिन्दीके कुछेक विद्वान् ही मिलेंगे। रिचर्ड्स और क्रोचेके सिद्धान्तोंका उल्लेख ही नहीं, उनका खण्डन भी करनेवाला यह व्यक्ति भारत तो क्या, पश्चिमके भी समकालीन दो-चार ही विद्वानोंमें एक रहा होगा।

शुक्लजीके वैदुष्यकी यह भी एक विचित्रता है कि उन्हें जैसी मान्यता मार्क्सवादी-प्रगतिवादियोंसे मिली है, वैसी शायद ही किसी दूसरे हिन्दीके आचार्यको मिली होगी, यद्यपि इसका रहस्य स्पष्ट ही है। वह यह कि विधेयवाद अपने ढंगसे मार्क्सवादियोंको उतना ही ग्राह्य है, जितना शुक्लजीके समान विद्वानों को। दोनों ही साहित्य तथा पारिपार्श्विक परिस्थितियोंमें कार्य-कारण सम्बन्ध मानते हैं, अन्तर है तो दृष्टिकोण-मात्र का।

पं० रामचन्द्र शुक्लके साहित्येतिहासकी, इन विशेषताओं के बावजूद, जो त्रुटि है वह यह कि, अनुपातकी दृष्टिसे, उसका स्वल्पांश ही प्रवृत्ति-निरूपणपरक है, अधिकांश विवरण प्रधान ही है, और वे स्वयं स्वीकार करते हैं कि इसके लिए उनका मुख्य आधार वह 'विनोद' है, जिसके लेखक मिश्रबन्धुओंपर उन्होंने अनावश्यक रूपसे कटु व्यंग भी किये हैं। शुक्लजीके इतिहासका जो अकल्याणकारी प्रभाव बादके हिन्दी साहित्येतिहासकारोंपर पड़ा है, अवश्य इसके लिए वे दोषी नहीं हैं, इससे तो उनकी सशक्तता ही प्रमाणित होती है। —न० वि० श०

हिंदी साहित्यकी भूमिका–डाक्टर हजारी प्रसाद द्विवेदी का महत्त्वपूर्ण साहित्येतिहास ग्रन्थ है। द्विवेदीजीकी जिस ऐतिहासिक चेतनाका उल्लेख किया जाता है, उसके बुनियादी सिद्धान्त इसी ग्रन्थमें उल्लिखित हैं। पहली बार यह सन् १९४० ई० में प्रकाशित हुआ और अब तक इसके आधे दर्जनसे अधिक संस्करण छप चुके हैं। मूल पुस्तकमें दस अध्याय हैं—१. हिन्दी साहित्य—भारतीय चिन्ताका स्वाभाविक विकास, २. हिन्दी साहित्य—भारतीय चिन्ताका स्वाभाविक विकास, ३. संतमत, ४ भक्तोंकी परम्परा, ५. योगमार्ग और सन्तमत, ६. सगुण मतवाद, ७. मध्ययुगके सन्तोंका सामान्य विश्वास, ८.

भक्तिकालके प्रमुख कवियोंका व्यक्तित्व, ९. रीतिकाल, १०. उपसंहार। इसके साथ एक महत्त्वपूर्ण परिशिष्ट भी जुड़ा हुआ है। वास्तवमें इस पुस्तकमें साहित्य, संस्कृति, समाज, चिन्तन आदिको एक अविच्छिन्न परम्परामें देखनेका जो प्रयास किया गया है, वह साहित्यके अध्येताओं और इतिहासकारोंको नया दृष्टिकोण देता है। —व० सिं०

हिंदुस्तानी अकादमी, प्रयाग—स्थापना सन् १९२७ ई०; कार्य और विभाग—(१) आयोजन—साहित्यिक विषयोंपर विद्वानोंके भाषणोंका आयोजन किया जाता है। (२) मौलिक रचनाएँ पुरस्कृत की जाती हैं। (३) पुस्तकालय—एक व्यवस्थित पुस्तकालयका संचालन किया जाता है। (४) प्रकाशन—अब तक बहुतसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित किये जा चुके हैं। (५) पत्रिका—'हिन्दुस्तानी' नामक त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित होती है। —प्रे० ना० टं०

हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग—स्थापना सन् १९१० ई०, काशी नागरी प्रचारिणी सभाकी प्रेरणासे स्थापित; कार्य और विभाग—सम्मेलनका कार्य कई विभागोंमे बँटा हुआ है—(१) परीक्षा—सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इसकी परीक्षाओंमें लगभग १०,००० विद्यार्थी प्रति वर्ष बैठते हैं। अहिन्दी-भाषी दक्षिणी भारतमे उक्त परीक्षाओंका कार्य राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धाको सौंप दिया गया है। पंजाब और कश्मीरमें सभी परीक्षाओंकी व्यवस्था। सर्वोच्च-परीक्षा 'साहित्यरत्न'की है। ये परीक्षाएँ उत्तरप्रदेशीय बोर्ड तथा अन्य प्रान्तोंके विश्वविद्यालयों द्वारा मान्य है। केन्द्रोंकी संख्या ४०० से अधिक है। (२) प्रचार—प्रान्तीय एवं जनपदीय सम्मेलनोंका आयोजन होता है। पुस्तकालय और वाचनालय स्थापित किये जाते हैं। परीक्षा-केन्द्रोंकी व्यवस्था तथा कर्मचारियोंमें हिन्दीका प्रचार किया जाता है। (३) पुस्तकालय—इसमें १९५०० से अधिक पुस्तकें हैं, वाचनालयमें १५० से ऊपर पत्र-पत्रिकाएँ आती हैं। विभिन्न स्वर्गीय साहित्यिकोंके अलबम भी तैयार हैं। (४) प्रकाशन—खोज द्वारा प्राप्त प्राचीन ग्रन्थों और अनूदित कृतियोंके प्रकाशनका प्रबन्ध होता है। २०० से ऊपर ग्रन्थोंका प्रकाशन हो चुका है। पारिभाषिक शब्दावलीका भी निर्माण हो रहा है। त्रैमासिक 'सम्मेलन पत्रिका' प्रकाशित होती है। देशभरमे ६० से भी अधिक संस्थाएँ इससे सम्बद्ध हैं। (५) पुरस्कार—मंगलाप्रसाद पारितोषिक, सेकसरिया महिला पारितोषिक, मुरारका पारितोषिक, जैन पारितोषिक, राधामोहन गोकुलजी पारितोषिक, नारंग पुरस्कार (केवल पंजाबनिवासी हिन्दी कवियोंको), गोपाल पुरस्कार, रत्नकुमारी पुरस्कार—ये पुरस्कार अलग-अलग विषयों और नियमोंके अनुसार दिये जाते हैं। सम्मेलन हिन्दीकी विशेष संस्था है। इसे अनेक राष्ट्रीय नेताओं एवं प्रमुख साहित्यिकोंका सम्पर्क प्राप्त हो चुका है। राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन इसके प्रमुख प्रेरक व्यक्ति थे। —प्रे० ना० टं०

हिडिंबा—'महाभारत'में हिडिम्ब नामक एक राक्षसका उल्लेख मिलता है। इसका वध भीमने किया था। हिडिम्बा इसी हिडिम्ब नामक राक्षसकी बहन थी। हिडिम्बकी मृत्युके अनन्तर इसने एक सुन्दरीका रूप धारण कर भीमसे विवाह किया। हिडिम्बासे ही भीमके घटोत्कच नामक पुत्र उत्पन्न हुआ (दे० 'हिडिम्बा' : मैथिलीशरण गुप्त)। —रा० कु०

हित चौरासी—श्री हित हरिवंश गोस्वामीरचित ब्रजभाषा के चौरासी पदोंका संग्रह ग्रन्थ 'हित चौरासी' राधावल्लभ सम्प्रदायका आकर ग्रन्थ माना जाता है। इसी ग्रन्थके आधारपर राधावल्लभीय भक्ति-सिद्धान्तको हृदयंगम किया जा सकता है। इस ग्रन्थकी हस्तलिखित प्राचीनतम प्रति सत्रहवीं शतीकी उपलब्ध है। यह रसोपासनाके आधारभूत सिद्धान्तोंको हृदयंगम करके स्वतन्त्र रूपसे लिखे गये चौरासी पदोंका संकलन है। इस ग्रन्थको प्रेम-लक्षणा या माधुर्य भक्तिका प्रतिपादक भक्ति-ग्रन्थ कहा जा सकता है। कुछ विद्वानोंका ऐसा भी आग्रह है कि इसमें चौरासी पद रखनेमें हरिवंश गोस्वामीका आशय यह था कि एक-एक पदके मर्मको समझनेसे एक लाख योनियोंमें चक्कर काटनेसे जीव बच सकता है। इस प्रकार चौरासी लाख योनियोंका चक्कर मनुष्यमे छूट सकता है।

इस ग्रन्थके 'हरिवंश चौरासी', 'हित चौरासी धनी' 'चतुराशीजी' नाम भी प्रसिद्ध हैं किन्तु मूल ग्रन्थका नाम 'हित चौरासी' ही है। अन्य सब नाम अप्रामाणिक है। 'हित चौरासी' एक मुक्तक पद रचना है, जिसमें भाववस्तु या वर्ण्य वस्तुका कोई कोटिक्रम नहीं है। समय प्रबन्धकी दृष्टिसे कुछ विद्वानोंने इसमें पदोंका वर्गीकरण किया है किन्तु यह परवर्ती और साम्प्रदायिक दृष्टिसे किया गया है। मूल प्रणेताका इस प्रकार वर्गीकरण करनेका कोई आग्रह नहीं है।

'हित चौरासी'का वर्ण्य-विषय मुख्य रूपसे अन्तरंग भावनासे सम्बन्ध रखता है। शृंगार-रसकी पृष्ठभूमिपर उन विषयोंको हित हरिवंशने प्रस्तुत किया है, जो उनकी भक्तिपद्धतिके मेरुदण्ड हैं। राधाकृष्णका अनन्य प्रेम, नित्य विहार, रासलीला, मान, विरह, वृन्दावन, सहचरी आदि ही इस ग्रन्थके वर्ण्य-विषय हैं। सबसे पहले हित हरिवंशने राधावल्लभीय प्रेमपद्धतिका प्रतिपादन 'तत्सुखी' भावके प्रेमवर्णन द्वारा प्रथम पदमें ही प्रस्तुत किया है—"जोई जोई प्यारों करे सोई मोहि भावे, भावे मोहि जोई, सोई सोई करे प्यारे।" इस पदमें अद्वय भावकी सृष्टि के लिए प्रिया-प्रियतमका एक दूसरेमें लीन हो जाना ही प्रेमकी पराकाष्ठा है। इस प्रकारके अद्वैतको कुछ विद्वानोंने राधावल्लभीय 'सिद्धाद्वैत' कहनेकी चेष्टा की है। प्रेमका वर्णन करनेमें हित हरिवंशकी शैली स्वतन्त्र और उन्मुक्त है। उन्होंने बन्धनमय प्रेम प्रतीतिको स्वीकार नहीं किया। "प्रीति न काहूकी कानि बिचारे" कह कर प्रेमको स्वतन्त्र मार्ग कहा है। 'हित चौरासी'में राधाका रूप वर्णन बहुत ही मार्मिक और उदात्त कोटिका है। लगभग एक दर्जन पदोंमें राधाकी रूप-माधुरीका वर्णन है। नखशिखकी पूर्णताके लिए अवकाश न होनेपर भी लेखकने उसका परिपूर्ण आभास इन पदोंमें दे दिया है। रास वर्णन, वृन्दावन छवि वर्णन, नित्य विहार वर्णन और कृष्ण वर्णनके पद भी काव्य-

सौष्ठव तथा प्रांजल शैलीके सुन्दर निदर्शन हैं।

'हित चौरासी'पर अभी तक लगभग दो दर्जन टीकाएँ प्रस्तुत हो चुकी हैं। इन टीकाओंका क्रम सोलहवीं शताब्दी से ही दृष्टिगत होता है। दामोदर दास (सेवकजी)ने 'सेवक वाणी' लिखकर एक प्रकारसे 'हित चौरासी'के प्रतिपाद्यका ही वर्णन किया था। इसलिए 'हित चौरासी' और 'सेवक वाणी'को एक साथ पढने, छापने, लिखने और रखनेका विधान बन गया है। टीकाओंमें प्रेमदास, लोकनाथ, केलिदास, रसिकदास और गोस्वामी सुखलालकी टीकाएँ पर्याप्त प्रसिद्ध हैं।

'हित चौरासी' यद्यपि साम्प्रदायिक ग्रन्थ माना जाता है किन्तु उसके माध्यमसे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि गोस्वामी हरिवंशका ध्यान इस ग्रन्थके पदोंका प्रणयन करते समय किसी संकीर्ण भावनासे आवृत नहीं हुआ था। उन्होंने इन पदोंको रसमें निमज्जित होकर सहज स्फूर्त रूपमें ही प्रस्तुत किया है। हित हरिवंशके इन पदोंका मूलाधार रस ही है। इन पदोंका पाठ करते ही भक्तके मनमें ही नहीं, सामान्य साहित्यप्रेमीके हृदय में भी अनाविल राधाकृष्ण प्रेमका अपार पारावार लहराने लगता है। पदोंके लालित्य और माधुर्यको देखकर लगता है कि कदाचित् भक्तोंने इन पदोंके माधुर्यके कारण ही हरिवंशको वंशीका अवतार कहा होगा। ब्रजभाषाका ऐसा परिष्कृत और प्रांजल रूप सूरदास और नन्ददासके पदों में भी दृष्टिगत नहीं होता। तत्सम पदावलीके प्राचुर्यके साथ उनका उचित स्थानपर प्रयोग मणि-कांचन संयोगका स्मरण करानेवाला है। भाषाके चित्रधर्म और संगीतात्मकताको देखकर लगता है कि हित हरिवंशको ब्रजभाषाकी प्रकृतिका स्वाभाविक और सहज रूप विदित हो गया था। लाक्षणिक एवं ध्वन्यात्मक प्रयोगोंका भी 'हित चौरासी'में अभाव नहीं है। सक्षेपमें 'हित चौरासी' ब्रजभाषाका एक अनूठा भक्ति ग्रन्थ है, जिसे साहित्य, संगीत और कलामें समान रूपसे सम्मान प्राप्त हुआ है।

[सहायक ग्रन्थ—राधावल्लभ सम्प्रदाय-सिद्धान्त और साहित्य : डा० विजयेन्द्र स्नातक; गोस्वामी हित हरिवंश और उनका सम्प्रदाय : ललिताचरण गोस्वामी; हिन्दी साहित्यका इतिहास : पं० रामचन्द्र शुक्ल; हित चौरासी, प्रकाशक गोस्वामी रूपलालजी वृन्दावन; हित चौरासी, प्रकाशक गोस्वामी मोहनलालजी वृन्दावन; हितामृत सिन्धु, प्रकाशक हित गोवरधनदास जी।] —वि० स्ना०

हिततरंगिणी–कृपारामकी नायिका भेदविषयक रचना है। यह हिन्दी काव्यशास्त्रका प्राचीनतम उपलब्ध ग्रन्थ है। इसका रचनाकाल १५४१ ई० है। काशी नागरी प्रचारिणी सभाकी खोज रिपोर्टोंमें इस ग्रन्थकी दो हस्तलिखित प्रतियों की सूचना है (१९०६-०८ की रिपोर्टमें क्रम संख्या २८०पर तथा १९०९-११की रिपोर्टमें क्रमसंख्या १५७ पर)। १८९५ ई०में वाराणसीके भारत जीवन प्रेससे इसका प्रथम बार प्रकाशन हुआ (ग्रन्थ अप्राप्य है)। इसके एक सुसम्पादित संस्करणकी बड़ी आवश्यकता है।

ग्रन्थकारने ग्रन्थके रचनाकालका स्वयं स्पष्ट उल्लेख किया है। फिर भी हजारीप्रसाद द्विवेदी (हि० सा०,१९५२ ई०, पृ० २९५) आदि कतिपय विद्वानोंने इसके इतने प्राचीन होनेमें सन्देह किया है। इस ग्रन्थके भाषागत परिष्कारके कारण यह सन्देह हुआ है परन्तु नगेन्द्रने रचनातिथिके असंदिग्ध उल्लेखके आधारपर इसकी प्रामाणिकताको स्वीकार किया है। 'हिततरंगिणी'के कुछ दोहे बिहारीके दोहोंसे मिलते-जुलते हैं किन्तु इन दोहोंके सम्बन्धमें रामचन्द्र शुक्लका यह अनुमान ठीक प्रतीत होता है कि "या तो बिहारीने उन दोहोंको जानबूझकर लिया अथवा वे दोहे पीछेसे मिल गये"(हि० सा० इ०, १९५० ई०, पृ० १९९)। इसकी प्रामाणिकताके विषयमें सन्देह करनेका कोई कारण प्रतीत नहीं होता।

नायिका-भेदका प्रथम उपलब्ध ग्रन्थ होते हुए भी 'हिततरंगिणी'में इस विषयका विवेचन बड़े विस्तारसे किया गया है। इसके लक्षण एवं उदाहरण प्रायः स्पष्ट हैं। कवि ने इसका आधार भरतका 'नाट्यशास्त्र' माना है—"कृपाराम यों कहत हैं, भरत ग्रन्थ अनुमानि।" पर उसने मुख्य रूपमें भानुदत्तकी 'रसमंजरी'का ही अनुकरण किया है। इस ग्रन्थमें उसने यथास्थान अनेक मौलिक भेदोपभेदोंका भी समावेश किया है। उनमेंसे कुछ ये हैं : (१) प्रौढाके दो भेद रतिप्रिया और आनन्दमत्ता, (२) धीरा, अधीरा तथा धीराधीरा भेदोंका मानवतीके अन्तर्गत कथन, (३) स्वकीयाके ज्येष्ठा और कनिष्ठा भेदोंके साथ समहिता नामके एक नये भेदका कथन, (४) ऊढाके दो भेद—परप्रिया और परविवाहिता, (५) लक्षिताके तीन भेद—क्रियालक्षिता वचनलक्षिता, प्रत्यक्षलक्षिता।

'हिततरंगिणी'की रचना दोहा छन्दमें तथा प्रौढ़ एवं परिमार्जित ब्रजभाषामें हुई है। कविने स्वयं घोषित किया है कि उसके पूर्व शृंगार-रसका विवेचन (वर्णन) विस्तृत छन्दोंमें किया जाता था पर उसने स्वयं दोहोंमें वर्णन किया है। बिहारीकी 'सतसई'में इन दोनोंका खप जाना इस बातका प्रमाण है कि सरसता और काव्य-सौष्ठवकी दृष्टिसे ये 'सतसई'के दोहोंके लगभग समकक्ष ही हैं। हिन्दी काव्य-शास्त्रके प्रथम उपलब्ध ग्रन्थके नायिका-भेदके अनेक मौलिकताओंसे पूर्ण ग्रन्थके तथा सरस एवं श्रेष्ठ काव्यग्रन्थके रूपमें 'हिततरंगिणी'का महत्त्व निर्विवाद है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा० बृ० इ० (भा० ६); हि० का० शा० इ०; हि० सा० (भा० २)।] —रा० गु०

हित हरिवंश–'राधावल्लभ' नामक वैष्णवभक्तिसम्प्रदाय-के प्रवर्तक, राधाके अनन्य उपासक श्री हित हरिवंश गोस्वामीके पूर्वज उत्तरप्रदेशके सहारनपुर जिलेके देववन्द (प्राचीन देववन) नामक कस्बेके निवासी थे। इनके पूर्वजोंका वर्णन साम्प्रदायिक वाणी ग्रन्थोंमें बड़े विस्तारसे मिलता है, किन्तु उसका ऐतिहासिक आधार स्थिर करना कठिन है। हरिवंशके जन्मके सम्बन्धमें एक किंवदन्ती वाणीग्रन्थोंमें उपलब्ध होती है। कहते हैं कि धन-धान्य सम्पन्न होने पर भी व्यास मिश्र (हरिवंशके पिता)को पुत्रका अभाव था। पुत्रके अभावमें उनका मन खिन्न रहता था। उनके मनस्तापको देख कर एक दिन उनके अग्रज नृसिंहाश्रम (केशव मिश्र)ने भविष्यवाणी द्वारा यह सूचित किया कि निकट भविष्यमें व्यास मिश्रको पुत्रप्राप्तिका योग है।

व्यास मिश्र इस भविष्यवाणीको सुनते ही अपने भाग्योदय-के समाचारसे प्रमुदित होकर वसन्त पंचमीके दिन नौकर-चाकर तथा पत्नी सहित ब्रज-यात्राके लिए निकल पड़े। ब्रजभूमिकी यात्रा करते हुए जब वे मथुराके निकटवर्ती बादगाँवमें पहुँचे, तब उनकी पत्नीको प्रसव-पीड़ाका अनुभव हुआ। व्यास मिश्रने यात्राका कार्यक्रम स्थगित कर उसी स्थान पर पड़ाव डालनेका निर्णय किया। कुछ कालके उपरान्त इसी बादगाँवमें तारारानीके गर्भसे निरतिशय सौन्दर्ययुक्त बालकका जन्म हुआ। बालकका नाम हरिवंश रखा गया।

हरिवंशका जन्म वैशाख शुक्ल एकादशी, सोमवार विक्रम संवत् १५५९ ई० (सन् १५०२ ई०) को हुआ था। बादगाँवमें राधावल्लभीय भक्तोंने एक मन्दिर बनवाकर हरिवंश-की जन्मस्थलीको एक पूज्य स्थानके रूपमें सुरक्षित किया है। हरिवंशका शैशव सामान्य बालकोंसे भिन्न असाधारण घटनाओंसे ओत-प्रोत था। बचपनसे ही उनके हृदयमे भगवद्भक्तिकी प्रेरणा उत्कट रूपसे उत्पन्न हो गयी थी और उनके खेल-कूदके कार्योंमे भी राधाकृष्णकी लीलाओंका अनुकरण ही प्रायः रहता था। साम्प्रदायिक दृष्टिसे यह प्रसिद्ध है कि हरिवंशने किसी पुरुषको अपना गुरु नही बनाया, प्रत्युत राधाको अपनी इष्टदेवी तथा गुरु माना था। हरिवंशको साम्प्रदायिक दृष्टिसे कृष्णकी वंशीका अवतार कहा जाता है।

षोडश वर्षकी आयुमे हरिवंशका विवाह रुक्मिनी देवीके साथ सम्पन्न हुआ। गृहस्थाश्रममे प्रवेश करने पर भी उनकी धार्मिक निष्ठामें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। उनका दाम्पत्य-जीवन सुखी, सम्पन्न और आदर्श कोटिका था। रुक्मिनी देवीसे उनके एक पुत्री तथा तीन पुत्र उत्पन्न हुए। सोलह वर्ष तक गृहस्थ जीवन व्यतीत करनेके बाद उनके मनमें ब्रज-यात्राकी इच्छा जागरित हुई और उन्होंने सपत्नीक यात्राका निश्चय किया किन्तु छोटे बच्चोके कारण रुक्मिनी देवीने यात्रा करना उचित नही समझा, अतः वे एकाकी ही ब्रजभूमिके लिए चल पड़े। गृहस्थाश्रममे रहते हुए हरिवंशने यह अनुभव कर लिया था कि संसारका तिरस्कार कर वैराग्य धारण करनेका मार्ग ही ईश्वर-प्राप्ति-का एक मात्र उपाय नहीं है, प्रत्युत गृहस्थाश्रममे रह कर भी ईश्वराराधना की जा सकती है और सब प्रकारका आत्मसन्तोष प्राप्त किया जा सकता है। दाम्पत्य जीवनके अनुभवोंको प्रेमकी कसौटी बनाकर, उनमें पूर्ण पवित्रताका आरोप करके प्रत्येक विवेकशील व्यक्ति भगवत् प्रेमकी प्राप्ति कर सकता है। फलतः ब्रज-यात्राके समय उन्होंने मार्गमें चिरथावल गाँवके एक धर्म-परायण ब्राह्मणकी दो युवती कन्याओंसे उनके पिताके परम आग्रहपर विवाह कर लिया। इन कन्याओंके नाम कृष्णदासी और मनोहरी दासी थे। यात्रा करते हुए ये फाल्गुन एकादशी विक्रम सं० १५९० (सन् १५३३ ई०) को वृन्दावन पहुँचे। वृन्दावन पहुँचनेपर मदनटेर नामक स्थान पर उन्होंने विश्रामके लिये डेरा डाला। उनकी मधुर वाणी और दिव्यरूप पर मुग्ध हो कर दर्शक मण्डली एकत्र होने लगी और शीघ्र ही वृन्दावन में उनके आगमनका समाचार फैल गया। वृन्दावनमें स्थायी रूपसे बस जाने पर उन्होंने मानसरोवर, वंशीवट, सेवाकुंज और रास-मण्डल नामक चार सिद्ध केलिस्थलोंका प्राकट्य किया। ये चारों स्थल आज भी वृन्दावनमें विद्यमान हैं। मानसरोवर अब यमुनाके दूसरे किनारे पर जंगलमें एक स्थान है, जहाँ प्रति वर्ष एक मेला लगता है और राधावल्लभीय भक्तोंकी भीड़ होती है।

हित हरिवंशने अपनी उपासना पद्धतिको प्रचलित करनेके लिए सेवाकुंज नामक स्थानमें अपने उपास्य इष्ट-देवका विग्रह सर्वप्रथम स्थापित किया। सं० १५९१ में (सन् १५३४ ई०) प्रथम पाटोत्सव इसी सेवाकुंजमें सम्पन्न हुआ था। लगभग आधी शतीतक सेवाकुंजमें ही श्री राधा-वल्लभका विग्रह प्रतिष्ठित रहा। संवत् १६४१ (सन् १५९४ ई०) मे अब्दुर्रहीम खानखानाके साथी दीवान या खजांची दिल्लीनिवासी सुन्दरलाल भटनागर कायस्थने लाल पत्थरका मन्दिर बनवाया। लाल पत्थरका यह प्राचीन मन्दिर आज भी वृन्दावनमें स्थित है किन्तु इसमें प्राचीन विग्रह प्रतिष्ठित नही है। ब्रज-प्रदेशमें औरंगजेबके आक्रमणोंके समय मन्दिरसे विग्रहको उठाकर कामवन (भरतपुर) ले जाया गया। उसके बाद एक नया मन्दिर बनवाया गया और सं० १८४२ में (सन् १७८५ ई०) पुनः इसमें विग्रहकी प्रतिष्ठा हुई। अंग्रेज लेखक ग्राउसने इस मन्दिरका विस्तृत वर्णन अपनी 'मथुरा मैकायर्स' नामक पुस्तकमें किया है। मथुराके प्राचीन गजेटियरमे भी इसका विस्तारसे वर्णन मिलता है।

ईसाकी पन्द्रहवीं शताब्दीका उत्तरार्द्ध और सोलहवीं शताब्दीका पूर्वार्द्ध ब्रजकी भक्ति-साधनाके चरम उत्कर्षका काल है। इस कालमें कृष्ण-भक्तिकी जो अजस्र निर्झरिणी वृन्दावनकी कुज-गलियोंमे होकर प्रवाहित हुई, वह अद्यावधि किसी-न-किसी रूपमे विद्यमान है। हित हरिवंशके वृन्दा-वन आगमनके साथ ही स्वामी हरिदास, हरिराम व्यास, स्वामी प्रबोधानन्द सरस्वती आदि महान् भक्तोंका ब्रजभूमि में आगमन हुआ। हरित्रयीकी सरस पदावली और ऋजु भक्ति पद्धतिने माधुर्य भक्तिको सर्वजनसुलभ और सर्व-संवेद्य बनानेमें अमित योग दिया। कृष्ण-भक्तिके इस नवीन मार्गके प्रचारके लिए रासलीला अनुकरणकी आवश्यकता अनुभव हुई और रास-लीलाको अभिनेय बनानेके लिए रास-मण्डलका निर्माण हुआ। रास-लीला अनुकरणके पुनरु-ज्जीवनका बहुत कुछ श्रेय हित हरिवंशको प्राप्त है। राधा-वल्लभीय सेवा-पूजा विधिमें वैशिष्ट्य लानेके लिए 'खिचड़ी प्रथा' तथा 'ब्याहुलो' का प्रवर्तन भी हरिवंशने ही किया था।

हित हरिवंश गोस्वामीके विचार और सिद्धान्तोंमें इतनी नवीनता है कि उसे देखकर यह नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने माध्व या निम्बार्क सम्प्रदायकी दीक्षा ग्रहण करके यह महान् परिवर्तन किया होगा। यथार्थमें वे स्वयं सम्प्र-दाय प्रवर्तक आचार्यकी शक्ति लेकर आये थे और उनके सामने विष्णुभक्तिका नया रूप 'राधा-कृष्ण' भक्तिके माध्यमसे आया था। 'बंगला भक्तमाला' आदि ग्रन्थोंमें गोपाल भट्टको इनका गुरु सिद्ध करनेका जो प्रयत्न किया गया है, वह बहुत ही भ्रामक और पक्षपातपूर्ण है। यदि

हरिवंशकी विचारधाराका विधिवत् अनुशीलन किया जाय तो यह स्पष्ट प्रतीत होगा कि उन्होंने कहीं भी अनुगमन नहीं किया है। वे नूतन मार्गके अन्वेषक, पथ-प्रदर्शक और नेता बनकर ही अवतरित हुए थे।

हरिवंशने अपनी विचारधारा और नूतन उपासना पद्धतिको व्यवस्थित रूप देनेके लिए एक नवीन सम्प्रदायका प्रवर्तन किया, जिसका नाम 'राधावल्लभ सम्प्रदाय' है। यह सम्प्रदाय ब्रजके वैष्णव भक्ति-सम्प्रदायोंमें अपनी राधा-भक्तिके लिए अत्यधिक प्रसिद्ध है। माधुर्यभक्ति या प्रेम-लक्षणा भक्तिका स्वरूप यद्यपि हरिवंश गोस्वामीसे पहले ही प्रकट हो चुका था किन्तु ब्रजमण्डलमें उसका निखार और प्रचार हरिवंशके प्रयत्नोंसे ही मानना चाहिये। हरिवंशने अपने ग्रन्थोंमें प्रेमको परात्पर तत्त्वके रूपमें स्थिर करके "रसो वै सः" की कोटितक पहुँचाया। प्रेमकी गरिमा और प्रभुता स्थापित करनेके बाद उसे विलक्षण रूप देनेके लिए शाश्वत तत्त्व माना गया और संसारमें दिखायी देने-वाली संयोग-वियोग दशाओंसे सर्वथा रहित स्थिर किया गया। हरिवंशके मतानुसार प्रेम या "हित तत्त्व" ही समस्त चराचरमें व्याप्त है। यह प्रेम या हित ही जीवको आराध्य के प्रति उन्मुख करता है। इस प्रेमका पूर्ण परिपाक "जुगल प्रेम" में होता है। जुगल प्रेम (राधा-कृष्ण) को सांसारिक प्रेमसे सर्वथा पृथक् और स्वतन्त्र मानकर उसका बड़े विस्तारके साथ हरिवंशने कथन किया है। राधा-कृष्णके प्रेममें 'तत्सुखी' भावकी स्थापना कर उसे सांसारिक स्वार्थ या आत्मसुख कामनासे पृथक् करके अलौकिक रूप दिया गया है।

हित हरिवंश गोस्वामीने अपने सम्प्रदायकी उपासना पद्धतिको रसोपासना कहा है। रस-भक्ति या रसोपासना शास्त्रीय भक्तिसे सर्वथा नवीन शैलीकी है। शास्त्रीय मर्यादा का अंकुश इस रसभक्तिमें स्वीकार्य नहीं है। विधि-निषेधके प्रपंच भी प्रायः यहाँ नहीं माने जाते। बाह्य विधि-विधान का बड़े प्रबल शब्दोंमें हरिवंशने अपने 'राधा सुधानिधि' ग्रन्थमें खण्डन किया है। राधावल्लभ सम्प्रदायमें नित्य-विहारी राधाकृष्णकी स्वीकृति है। वस्तुतः निकुंज-लीला या नित्य-विहारका समर्थन ही हरिवंशकी वाणीका मूल स्वर है।

नित्य-विहारसे हरिवंशका आशय चारसे है—राधा, कृष्ण, वृन्दावन और सहचरी।' राधाको श्रीकृष्णसे भी उच्च स्थानपर प्रतिष्ठित करके हरिवंशने अपनी उपासना-पद्धतिमें मौलिकताका समावेश किया है। राधावल्लभ सम्प्रदायमें राधाको उस अनादि वस्तुका रूप स्वीकार किया गया है, जो इस ब्रह्माण्डमें व्यक्त होकर अपनी नित्य-क्रीडाके आनन्दकी अभिव्यक्ति करती रहती है। हरिवंशने राधाको रसरूप बताया है। श्रीकृष्णकी स्थिति उनके मतमें राधाके बाद अर्थात् गौण है। वृन्दावनका भौतिक रूप ही हरिवंशको स्वीकार्य है और इसीका विस्तारसे उन्होंने अपने ग्रन्थोंमें वर्णन किया है। सहचरी (सखी) अर्थात् जीवात्मा का ध्येय नित्य-विहारमें रत राधा-कृष्णकी निकुंज-लीलाओं का दर्शन-सुख पानेका अधिकारी बनना है।

हरिवंशगोस्वामीलिखित चार ग्रन्थ प्राप्त हैं। दो ग्रन्थ संस्कृतके हैं—'राधा सुधा निधि' और 'यमुनाष्टक' और दो हिन्दीके—'हितचौरासी' तथा 'स्फुट वाणी'। 'हितचौरासी' (दे०) उनकी सुप्रसिद्ध रचना है। इसमें ब्रजभाषाके चौरासी पद हैं। भाषामें लालित्य और माधुर्यका इतना समावेश अन्यत्र नहीं मिलता। 'स्फुट वाणी'में सिद्धान्त प्रतिपादक चौबीस पद हैं। ब्रजभाषाको समृद्ध बनानेमें उनके अनुयायियोंका योगदान अत्यधिक है।

हित हरिवंशका निधन विक्रम सं० १६०९ ई० में (सन् १५५२ ई०) वृन्दावनमें ही हुआ। वृन्दावनके जिस रसिक समाजकी हित हरिवंशने स्थापना की थी, वह उनके निकुंज गमनके बाद छिन्न-भिन्न हो गया और साम्प्रदायिक विद्वेषकी भावना फैलने लगी।

[सहायक ग्रन्थ—राधावल्लभ सम्प्रदाय—सिद्धान्त और साहित्य : विजयेन्द्र स्नातक; गोस्वामी हित हरिवंश और उनका सम्प्रदाय : ललिताचरण गोस्वामी; राधावल्लभ भक्तमाल : प्रियादास शुक्ल; हिन्दी साहित्यका इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल; भागवत सम्प्रदाय : बलदेव उपाध्याय; ब्रज माधुरी सार : वियोगी हरि; हिन्दी विश्व कोश : बंगला साहित्य समिति, कलकत्ता।] —वि० स्ना०

हितवृंदावन दास (चाचा)–राधा वल्लभ सम्प्रदायके कवियोंमें हितवृन्दावन दास (चाचाजी)का प्रमुख स्थान है। काव्य परिमाणकी विपुलता और शैलीकी विविधताकी दृष्टिसे जितना व्यापक विस्तार वृन्दावन दासका है, उतना किसी और कविका नहीं। हिन्दी साहित्यकी भक्ति एवं रीतिकालीन काव्य परिपाटीका जितनी समग्रताके साथ इन्होंने निर्वाह किया, गोस्वामी तुलसीदासको छोड़कर और कोई कवि नहीं कर सका। सरस्वतीका दिव्य वरदान लेकर वे अवतीर्ण हुए थे, इसीलिए काव्यमयी सरस वाणीका अजस्र निर्झर उनके कंठसे आजीवन प्रवाहित होता रहा।

वृन्दावनदासके जन्म संवत् और जन्म स्थानके विषयमें अभी तक प्रामाणिक रूपसे निर्णय नहीं हो सका है। उनकी कृतियोंमें उल्लिखित संवतोंको ध्यानमें रखते हुए सं० १७५० से १७६५ (सन् १६९५ से १७१० ई०)के बीच उनका जन्म तथा सं० १८५० (सन् १७९३ ई०)के आसपास इनका निधन काल स्थिर किया जाता है। 'हिन्दी साहित्यका इतिहास'में पण्डित रामचन्द्र शुक्लने इनका जन्म स्थान पुष्कर बताया है किन्तु इनकी रचनाओं द्वारा अथवा किसी ऐतिहासिक आधारपर इसकी पुष्टि नहीं होती। कृष्णगढ़के राजा बहादुर सिंहके साथ इनके सम्बन्ध-का वर्णन अवश्य मिलता है, सम्भव है उसीके आधारपर पुष्करको जन्म-स्थान लिखा गया हो। उनकी भाषाको देखकर तो ऐसा प्रतीत होता है कि वे ब्रजमण्डलके ही निवासी थे और युवावस्थामें विरक्त होकर वृन्दावनमें आ गये थे। बादमें मुगलोंके आक्रमणोंसे तंग आकर इधर-उधर अनेक स्थानोंमें भटकते रहे। 'हरिकला वेली' नामक रचना में यवनोंके आक्रमणोंका उन्होंने बड़े विस्तारसे वर्णन किया है।

वृन्दावन दासके साथ 'चाचाजी' शब्दका प्रयोग इस कारण होने लगा था कि तत्कालीन गोस्वामीजीके पिताके गुरु-भ्राता होनेके कारण गोस्वामीजीकी देखा-देखी और

लोग भी उन्हें चाचा कहकर पुकारने लगे और समस्त समाजमें वे चाचाजी नामसे विख्यात हो गये। वृन्दावन दासने अपने उपनाम या छापके रूपमें तीन शब्दोंका प्रयोग किया—वृन्दावन हितरूप, वृन्दावन हित, वृन्दावन।

वृन्दावनदासने सं० १७९५ के (सन् १७३८ ई०) आस-पास काव्य-रचना करना प्रारम्भ किया होगा। प्रथम रचनामें १८०० संवत्‌का उल्लेख मिलता है किन्तु कुछ कृतियोंमें संवत् नहीं है और वे पहलेकी रचनाएँ प्रतीत होती हैं। ऐसा प्रसिद्ध है कि वृन्दावन दास स्वयं अपने हाथसे नहीं लिखते थे, उनके साथ सदा एक लेखक रहता था और जब उनकी इच्छा होती, पद रचनामें लीन हो जाते थे। ब्रजभूमिसे बाहर रहनेपर भी उन्होंने काव्य-रचना नहीं छोड़ी थी। संवत् १८३१ से १८३६ तक उन्हें ब्रजसे बाहर रहनेको विवश होना पड़ा था किन्तु उस समय भी उन्होंने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'लाड़ सागर'का प्रणयन किया था। ब्रजके भक्ति-सम्प्रदायोंमें जितने कवि हुए हैं, चाचा वृन्दावन दासकी रचनाओंकी संख्या सबसे अधिक है। राधावल्लभीय ग्रन्थ सूची 'साहित्य रत्नावली'में इनकी ग्रन्थ संख्या १५८ लिखी है, वैसे सवा लाख पद-रचनाकी बात भी इनके विषयमें वृन्दावन में प्रसिद्ध है। केवल अष्टयाम-के सम्बन्धमें ही यह प्रसिद्ध है कि उन्होंने प्रत्येक दिवसके अनुसार ३६५अष्टयाम लिखे थे। रामचन्द्र शुक्लने बीस हजार पद-रचनाका संकेत अपने 'इतिहास'में किया है।

वृन्दावन दासके प्रमुख ग्रन्थोंमें कुछ प्रकाशित हो चुके हैं। इन ग्रन्थोंमें निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं—'लाड़ सागर', 'ब्रज प्रेमानन्द सागर','वृन्दावन जस प्रकाश वेली', 'विवेक पत्रिका वेली', 'कृपा अभिलाषा वेली', 'रसिक पथ चन्द्रिका', 'जुगल सनेह पत्रिका', 'हित हरिवंश सहस्र नाम', 'कलि चरित्र वेली', 'आर्त्त पत्रिका', 'छद्मलीला', 'स्फुट पद'।

उपर्युक्त प्रकाशित पुस्तकोंके अतिरिक्त लगभग ८० फुट-कर ग्रन्थ हस्तलिखित रूपमें उपलब्ध है। छतरपुर, भरत-पुर, कृष्णगढ़ और वृन्दावनमें उनके हस्तलिखित ग्रन्थ मिलते हैं। वेली-काव्यका सर्वाधिक साहित्य आपका ही रचा हुआ है। वृन्दावनदासके साहित्यमें राधावल्लभीय प्रेमभक्तिके इतिहासकी सामग्री भी उपलब्ध होती है। 'हरिवंश सहस्र नाम'में भक्तोंका सार रूपमें परिचय दिया गया है, जो 'भक्तमाल'की कोटिमें रखा जा सकता है। कलियुगके दुष्प्रभावका वर्णन उन्होंने अपने युगको दृष्टिमें रखकर ही किया है।

चाचाजीके काव्यकी भाषा व्यावहारिक बोलचालकी ब्रजभाषा है। इसे हम घरेलू ब्रजभाषा भी कह सकते हैं। कोमलकान्त तत्सम पदावलीका आग्रह उन्हें नहीं था। रीतिकालीन कवियोंके समसामयिक होनेपर भी सानुप्रासिक परिमार्जित भाषाको बचाकर घरेलू भाषाका प्रयोग उन्होंने जानबूझकर ही किया है। उनकी भाषामें संवादात्मकता अधिक है। 'लाड़ सागर' और 'ब्रज प्रेमानन्द सागर'के आख्यान-प्रसंगोंमें नाटकीयता लानेके लिए उन्होंने संवादोंको अधिक स्थान दिया है। मुहावरे और लोकोक्तियोंका प्रयोग भी प्रचुर मात्रामें मिलता है। अरबी, फारसी और तुर्की भाषाके शब्द भी उनकी रचनाओंमें मिलते हैं।

चाचाजीकी रचनाओंका मुख्य विषय यद्यपि भक्ति था फिर भी उन्होंने शृंगार, वात्सल्य, हास्य और करुण रसके अनुकूल अनेक प्रसंगोंकी अवतारणा अपनी रचनाओंमें की है। कलियुगके प्रसंगमें करुण रसका अच्छा वर्णन है। *शृंगार और वात्सल्य* उनके सर्वाधिक प्रिय विषय थे।

छन्द-विधानमें भी चाचाजीकी कुशलता सर्वत्र देखी जा सकती है। प्रबन्ध-काव्यके अनुकूल दोहा-चौपाईका प्रयोग भी पर्याप्त है किन्तु कवित्त, सवैया, सोरठा, अरिल्ल, छप्पय, मंगल, करखा आदि छन्दोंका विपुल प्रयोग है। लोकगीतोंका प्रयोग भी उन्होंने किया है। विवाह-वर्णन प्रसंगमें गाली गानेके गीत, बन्ना-बन्नीके गीत, घुड़चढ़ीके गीत बिलकुल लोकगीत और लोकगीतकी धुनपर आधारित हैं। रास-लीलामें आज भी उनके पदोंका प्रयोग होता है। रास-लीलाके लिए उन्होंने अनेक लीलाएँ संवादात्मक शैलीमें लिखी थीं।

वृन्दावनदासके विशाल साहित्य-सागरकी सीमाओंका अभी तक न तो पूर्ण रूपसे पता चला है और न ज्ञात साहित्यकी विधिवत अवगाहना ही हुई है। उनके साहित्य के परिमाणको देखकर कहा जा सकता है कि यदि ब्रज-भाषाके आदिकविके रूपमें सूरदास वाल्मीकि हैं तो ब्रजभाषाको विशद व्यापक विस्तार देनेका श्रेय महाकवि व्यासके रूपमें चाचा वृन्दावनदासको प्राप्त है। निश्चय ही वे ब्रजभाषा काव्यके व्यास हैं।

[सहायक ग्रन्थ—राधावल्लभ सम्प्रदाय—सिद्धान्त और साहित्य : डा० विजयेन्द्र स्नातक; हिन्दी साहित्यका इतिहास : पं० रामचन्द्र शुक्ल; ब्रज माधुरी सार : वियोगी हरि; लाड़ सागर भूमिका।] —वि० स्ना०

हितैषी–दे० जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी'।

हिमतरंगिनी–माखनलाल चतुर्वेदीकी सुप्रसिद्ध कविता-कृति। १९४७ ई० में प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ और और १९५२ ई० में भारती भण्डार, प्रयागसे दूसरा संस्करण। लेखकने पुस्तकके आरम्भमें 'दो शब्द'के अन्तर्गत लिखा है—"मेरे निकट तो ये (रचनाएँ) परम सत्य हैं। आज भी वे क्षण, वे उतार चढ़ाव, वे आँसू, वे उल्लास, वे जीवित चरण मेरे निकट खड़ेसे हैं। यही क्षण थे, जब मैं युगसे हाथ जोड़कर कहता था—कभी-कभी मुझे अपना भी रहने दो।" सच ही इस संग्रहमें लेखक कहीं युगके सामने खड़ा है तो कहीं अपनी अनुभूतियोंकी एकाग्रतामें पूरी तरह 'अपना बनकर' उपस्थित है—"इस संग्रहकी कविताओंके कविको अपने कृतित्व पर पूरा भरोसा है, इसीलिए आत्मप्रचारक कवियों द्वारा अधिकृत धर्मशालाके द्वारसे वह यह कह कर लौट जाना चाहता है 'इस धर्म-शालाके द्वार पर बिस्तरे पेटी लादे खड़े रहने वाले कवि मित्रों! इसमें जगह नहीं है। जो सूक्ष्मोंकी गंगा शिर पर लिए थे, वे लोकश्रद्धाके देवमन्दिरोंमें तो पहुँच गये किन्तु इस धर्मशालाके द्वार पर उन्हें उपेक्षित, प्रताड़ित और वायुभक्षी रहनेका ही वरदान मिला" ('दो शब्द', पृष्ठ ५) अपनी इन रचनाओंके बारेमें कवि कहता है, "पूजागीत

कहे जानेकी उम्मीदवार इन तुकबन्दियोंकी भी यही दुर्गति हुई है। ये गीत पूजा रहे नहीं, प्रेम बने नहीं, अतः यह निर्माल्य शिखरकी ऊँचाईसे भागते हुए 'निझगा' हो गये और 'हिमतरंगिनी' नाम पा गये" ('दो शब्द', पृष्ठ ६)।

इस संग्रहमें कविकी कुल पचपन कविताएँ संगृहीत हैं। 'जो न बन पाई तुम्हारे', 'बोल राजा स्वर अटूटे', 'हे प्रशान्त तूफान हियेमें', 'मैं नहीं बोली कि वे बोला किये' आदि गीत छायावादी रचना-प्रक्रियाकी अनमोल उपलब्धि हैं। इन गीतोंमें न सिर्फ कविके हृदयका ऐकान्तिक दर्द एक विश्वजनीन भूमि पर प्रस्तुत किया गया है, बल्कि उसमें छायावादी प्रतीकोंके माध्यमसे 'ससीम और असीम'के बीचके सम्पर्कोंको बड़ी सूक्ष्मताके साथ चित्रित भी किया गया है। ऐसे रहस्यधर्मी गीतोंमें भी माखनलाल चतुर्वेदीका कवि अपने अभिव्यक्ति-कौशल और सहज प्रणय-निवेदनमें छायावादी कवियोंसे स्पष्ट अलग खड़ा दिखाई पड़ता है। इस विशिष्ट व्यक्तित्वका कारण है दर्दकी वह वैयक्तिक अनुभूति और उसके बीचसे फूटने वाली रहस्यमयता, जो छायावादके किसी भी कविको प्राप्त नहीं है।

कुछ कविताएँ 'पूजाके गीत'के रूपमें लिखी गयी हैं, उनमें माखनलालके वंशीधर हैं, उनकी बाँसुरीकी माधुरी है और मनुहार है और कहीं-कहीं 'उर्दू इश्क'की शैलीमें निठुराई पर उलाहने हैं और कहीं समसामयिक सामाजिक स्थितिकी अभद्रताएँ हैं, जिनकी ओर 'मलिक' और 'राजा'(कृष्ण) का ध्यान आकृष्ट कराया गया है। जैसे, "जो गण सँभाले नहीं जाते" (गीत ७), "उड़ने दे घनश्याम गगनमें" (गीत १३), "जिस ओर देखूँ बस अड़ी हो तेरी सूरत सामने" (गीत १४), "तुही है बहकते हुओंका इशारा" (गीत ५३), "महलों पर कुटियोंको वारो" (गीत ३६), "तू ही क्या समदर्शी भगवान्" (गीत ३१) आदि। "जब तुमने यह धर्म पठाया" (गीत १५) प्रणय और मजहब (दिखावा)के तारतम्यको भली-भाँति व्यक्त करता है।

इन गीतोंमें कुछ एकदम वैयक्तिक भाव चेतनाके भी गीत हैं, जिन्हें हम चाहें तो शोकगीत कह सकते हैं। ऐसे गीतोंमें कविके हृदयकी घनीभूत पीड़ा निर्व्याज ढंगसे शब्दोंमें पिघल कर बरस उठी है। "भाई छेड़ो नहीं मुझे, खुलकर रोने दो···" गीत इस तरहके गीतोंका प्रतिनिधि है। दिसम्बर, १९१४ ई० में अपनी पत्नीके स्वर्गवास पर कविने यह गीत लिखा, जो हिन्दी के बहुत थोड़ेसे शोकगीतोंमें एक कहा जा सकता है। "···पूजाके पुष्प गिरे जाते हैं नीचे, यह आँसूका स्रोत आज किसके पद सींचे"। 'ये तुम्हारे बोल' शीर्षक कविता भी इसी तरहकी है।

इस संग्रहमें कविका न तो बलिपंथी वाला रूप सामने आता है और न तो राष्ट्रीय संघर्षके अग्रदूतवाला। कारण शायद यह है कि इस संग्रहकी अधिकांश कविताएँ वैयक्तिक मानसिक स्थितिको प्रकट करनेकी समानधर्मिताके कारण संकलित की गयी हैं। इन कविताओंमें सर्वत्र कोई अदृश्य निष्ठुर प्रिय अन्तर्हित है, इसीलिए कवि "मत उकसा मेरे मन मोहन कि मैं जगत हित कुछ लिख डालूँ, तू है मेरा जगत कि जगमें और कौन सा जग मैं पालूँ···" कहकर अपने प्रियकी सर्वत्र व्यापिनी अस्तिमयतामें अपनेको डुबो देना चाहता है। इस संग्रहमें निःसन्देह कविकी काव्य चेतना उद्बोधन गीतोंकी स्थूलतासे हटकर एक सूक्ष्म मानसिक धरातल पर आसीन प्रतीत होती है। —शि० प्र० सिं०

हिमालय–पुस्तक-पत्रिकाके रूपमें इसका प्रकाशन सन् १९४७ ई० में पटनासे हुआ। रामधारी सिंह 'दिनकर', रामवृक्ष बेनीपुरी तथा शिवपूजन सहाय इसके सम्पादक रहे। एक वर्षके बाद ही जगन्नाथप्रसाद मिश्र इसके सम्पादक बनाये गये। इसका 'गान्धी अंक' एक उत्कृष्ट अंक निकला था। —इ० दे० बा०

हिम्मतबहादुर-विरुदावली–पद्माकर (१७५३-१८३३ ई०) ने 'हिम्मतबहादुर-विरुदावली'की रचना १८ अप्रैल, १७९२ ई० के आसपास की थी। इन्होंने इसमें अपने एक आश्रयदाता अनूपगिरि उपनाम हिम्मतबहादुरके तीन युद्धोंका वर्णन किया है। प्रथम युद्धमें उसने गूजरवंशीय किसी शासकको पराजित किया था। दूसरे युद्धमें दतियाके राजा रामचन्द्रको गद्दीसे उतारकर मनमानी चौथ ली थी। इसके अनन्तर हिम्मतबहादुरने अजयगढ़के अल्पवयस्क राजाका राज्य छीनना चाहा। उक्त राजाके संरक्षक नोने अर्जुनसिंहने इसका सामना किया। नयागाँव (नौगाँव) और अजयगढ़के मध्य भयानक युद्ध हुआ, जिसमें अर्जुनसिंह नोने मारे गये और हिम्मतबहादुर विजयी हुआ (१८ अप्रैल, १७९२ ई०)। पद्माकरने अन्तिम युद्धका आँखों देखा विवरण दिया है। इसमें हिम्मतबहादुरका अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन है पर घटना ऐतिहासिक तथ्यपर आधारित है। पद्माकरने अर्जुनसिंह नोनेका भी सच्चा एवं तथ्यपूर्ण वृत्तान्त दिया है। पात्रों और अस्त्र-शस्त्रकी लम्बी सूची भी दी गयी है। इसमें २१२ छन्द हैं। हरिगीतिका, हाकल, त्रिभंगी, डिल्ला, भुजंगप्रयात तथा छप्पय छन्दोंका प्रयोग हुआ है। इसकी शैली वर्णनात्मक और भाषा ब्रज है। इसमें अरबी, फारसी, बुन्देलखण्डी, अन्तर्वेदी आदिके शब्द स्वतन्त्रतापूर्वक प्रयुक्त किये गये हैं। विषयप्रतिपादनकी दृष्टिसे पद्माकरको उतनी सफलता नहीं मिली, जितनी भाषाप्रयोगकी दृष्टि से। इस ग्रन्थका अधिकांश परम्परागत वर्णनोंसे भरा है, उदाहरणार्थ—राजपूतोंकी उपजातियाँ, वाद्य-यन्त्रों, हाथियों, घोड़ों, तोपों, बन्दूकों, तलवारों तथा अन्य हथियारोंके नामोंका विस्तृत वर्णन है। इनके कारण कथानक शिथिल और नीरस हो गया है। संयुक्ताक्षरों तथा नादात्मक शब्दोंके प्रयोग भी घटना-क्रममें बाधक हुए हैं। पात्रों द्वारा लम्बे कथनोंका प्रयोग किया गया है, प्रसंगानुकूल होते हुए भी जो बोझिल हो गये हैं। अलंकारोंकी प्रवृत्ति विशेष है पर सुन्दर प्रयोग कम ही स्थलोंपर हुआ है। सब मिलाकर इस ग्रन्थमें काव्यात्मक उपलब्धिके स्थानपर परम्परापालनका दृष्टिकोण प्रधान हो गया है। 'हिम्मतबहादुर विरुदावली'का प्रकाशन निम्नलिखित स्थानोंसे हो चुका है—१. हिम्मतबहादुर विरुदावली : सम्पादक लाला भगवानदीन, भारत जीवन प्रेससे मुद्रित होकर प्रकाशित; २. पद्माकर-पंचामृत : सम्पादक विश्वनाथ प्रसाद मिश्र,

श्रीरामरत्न पुस्तक भवन, काशी, प्रथम संस्करण, १९९२ वि०। इस संग्रहमें 'हिम्मतबहादुर-विरुदावली' सम्मिलित है।

[सहायक ग्रन्थ—हि० सा०; हि० वी०।] —टी० तो०

हिरण्यकशिपु–कश्यप और अदितिका पुत्र, जिसने तीनों लोकों और लोकपालोंको अपने अधिकारमें कर लिया था। अपने भाई हिरण्याक्षकी मृत्युसे दुःखी होकर उसमें विद्वेष की भावना उत्पन्न हो गयी थी। विष्णुके प्रति इसी विरोधके कारण वह अगले जन्मोंमें रावण और चैद्य हुआ। ब्रह्माकी घोर तपस्या करके उसने वर प्राप्त किया था कि न तो ब्रह्मा द्वारा उत्पन्न कोई प्राणी उसे मार सकेगा और न वह भीतर मरेगा, न बाहर, न दिनमें मरेगा, न रातमें, न पृथ्वीपर मरेगा, न आकाशमें, न किसी अस्त्र-शस्त्रसे मरेगा और न किसी आदमी, राक्षस, पशु या देवता द्वारा। इस प्रकार असीम शक्ति प्राप्त कर वह सबको पीड़ित करने लगा। अपने पुत्र प्रह्लादको उसने नाना प्रकारके कष्ट और दण्ड दिये क्योंकि वह हरिभक्त था। अन्तमें भगवान्‌ने नरसिंह रूप धारणाकर, घरकी देहलीपर, सन्ध्या समय, अपने नखोंसे उसको मार डाला, दे० 'नरसिंह', 'प्रह्लाद' (सूर० सा० प० ४२०-४२५)। —मो० अ०

हीड़–दीपावलीके उपलक्ष्यमें मालवा, राजस्थान, बुन्देलखण्ड और निमाणके गूजरोंमें 'हीड़' नामक प्रबन्ध गाया जाता है। अन्य गोपालक जातियाँ भी इसे गाती हैं। 'हीड़' का अर्थ है 'ज्योति' अथवा 'प्रकाश'। हीड़के दो प्रकार प्रचलित हैं—१. धोल्याकी हीड़ २. चालर हीड़। 'धोल्या' बैलका सूचक है। गूजरोंके सम्पर्कसे हीड़ने राजस्थान, मालवा, और निमाणके किसानोंको बहुत प्रभावित किया। 'धोल्याकी हीड़' वृषभपूजाका महत्त्वपूर्ण प्रबन्ध और स्तुति गान होकर किसानोंमे प्रचलित हो गयी। इसी हीड़का विकृत रूप निमाणके भीलोंमें भी प्रचलित है, जो उसे 'हीड़ा' या हीरा भी कहते हैं। 'चालर हीड़' बगड़ावत गूजरोंका लोक-काव्य है। भोजा रावतके वंशमे गूजरोंने देवनारायणको देवपुरूष माना है। देवनारायणकी माता साढू (सेढा) थी। बगड़ावतोंके पूर्वज बाघजीके पास असंख्य गाएँ और भैंसें थी। भोजारावत और चौबीस बगडावत इन्हींके पुत्र थे, जो 'घड़ावत' नामक ग्राम (मेवाड़) के आसपास बस गये थे। भोजरावत और मिताय ग्रामके राव बाघसिंहमें मित्रता थी। भोजाकी प्रशंसा की जानेपर बुवाल गढके ठाकुरने अपनी बेटी जॅमतीको राव बाघसिंहसे ब्याह दिया। जब भोजा और बाघसिंहमें किसी कारणवश बैर हो गया तो भोजा मितायपर आक्रमण करके जॅमतीको अपने यहाँ ले आया। भोजाकी दो और स्त्रियों थीं। दूसरी स्त्री सेढा (साढू माता) गूजरी थी। बाघसिंहने कुछ दिनोंके बाद बदला लिया। भोजा काम आ गया। चौबीस बगडावत मौतके घाट उतर गये। सेढा उस समय गर्भवती थी। उससे देवनारायणका जन्म हुआ। मारवाड़की जनगणनाके अनुसार देवजीका जन्म संवत् १३०० के लगभग हुआ था। देवनारायणने बड़े होकर अपने पिताका बदला लिया। हीड़में यह कथा लोकपरक विश्वासों और अभिप्रायोंसे विकसित हुई है। सम्भवतः इसका मूलरूप मारवाड़में ही ढला और बाद घुमन्तू गूजरोंके कारण दूर-दूरतक फैल गया। कथामें पशुधनकी महत्ताका भरपूर वर्णन उल्लेखनीय है। दीपावलीके पहलेसे ही इसका सामूहिक गान आरम्भ हो जाता है। 'गयी दीवाळी गाये हीड़' कहावतके अनुसार इसका गान उपयुक्त अवसरपर ही अभीष्ट माना गया है। —श्या० प०

हीर-राँझा–हीर-राँझा पंजाबकी लोकप्रचलित दुःखान्त प्रेम-कथा है। कथापर आधारित असंख्य गीतोंके अतिरिक्त इनके विषयमें अनेक स्वतन्त्र लोकगीतोंकी रचना भी हुई है। शृंगारपरक पंजाबी गीतोंमें हीर-राँझाका आदर्श परम्पराकी थाती बनकर उभरा है। हीर-राँझाका जन्म कब हुआ, इसका पता ठीक तरहसे नहीं लग पाया है। अनुमानतः यह कहानी बाबरके समयकी है। झंगमें हीरकी समाधि है, जहाँ प्रतिवर्ष मेला लगता है। क्षेत्रमें हीरको 'हीर माई'का गौरव प्राप्त है। यहाँसे कोई अस्सी मील दूर तख्त हजारेमें राँझाका जन्म हुआ था। यह स्थान चनाब अर्थात 'भुनां'के तीरपर है। इसलिए प्रस्तुत कथा गीत में स्थान-स्थानपर भुनांका उल्लेख आया है। दोनों प्रेमियों का जन्म जाट परिवारोंमें हुआ। राँझाका वास्तविक नाम 'धीदो' है और 'राँझा' जाति थी। हीर 'सयाल' जातिकी थी। लोक-प्रचलित कथा इस प्रकार है—

एक दिन बिना बापके बेटे राँझाको भावजोंने ताना मारा कि रसिया बने फिरते हो, न कोई काम न धाम। फिर काहेका यह बनाव सिंगार? छैला तो ऐसे बने हो मानो हीरसे विवाह करनेकी तैयारी है। राँझा तानेकी चोटसे घायल होकर रूपवती हीरकी खोजमें पहुँचा। झंगमें नदीके किनारे हीरके पिताने एक कुटिया बनवा रखी थी। राँझा जाकर उसमें सो गया और अपने मुँहपर चादर ओढ़ ली। जब हीर आयी तो चादर हटाते ही दोनोंकी आँखे मिलीं और प्रेमकी चिनगारी जल उठी। अपने पितासे कहकर हीरने राँझाको भैंस चरानेके लिये रख लिया। पहले तो हीरके पिताने राँझासे ही अपनी बेटी ब्याहनेका विचार किया था पर बादमें खेड़ा जातिके युवक सैदासे उसका विवाह रंगपुरमें कर दिया। राँझा गोरखपन्थी हो गया और रंगपुरकी ओर गया। हीर अपनी ननद सहती माँकी सहायतासे राँझा तक पहुँची। सहती अपने प्रेमी मुरादके लिए बावली हो रही थी। अतः तीनोंने एक दूसरेको सहायता देनेका वचन दिया। इसलिए एक दिन किसी बहाने सहती हीरको लेकर खेतमें पहुँची। वहाँ हीरने साँप डँस लिए जानेका अभिनय किया। विष उतारनेके लिए राँझा बुलाया गया, हीर अपने सतपर डटी हुई थी। सैदेने कहा 'हीर तो अपने तईं कुँआरी है।' सैदेका पिता राँझाको लानेमें सफल हुआ। बाहर एक कुटियामें कुँआरी सहतीकी परिचर्यामें हीरको रखा गया। इधर सहतीकी मुरादसे भेंट हो गयी और उधर मौका पाकर राँझा हीरको लेकर चल पड़ा। इस भेदका पता किसी तरह खेड़ाओंको लग गया और उन्होंने पीछा करके दोनोंको पकड़ लिया। राजाके सामने फैसला हुआ। सैदेके पक्षमें फैसला होते ही नगरमें आगकी ज्वालाएँ उठने लगीं। तुरन्त राजाने हीरका हाथ राँझाको सौंप दिया। राँझा अब अपने गाँव

लौटनेके बजाय झंग पहुँचा। हीरके पिताने कपटसे काम लिया। राँझा जब बारात लेकर आये, तभी हीरकी शादी होगी, यह कहकर राँझाको उसने तख्त हजारेकी ओर भेजा। इधर उसकी पीठ फिरी तो हीरको जहर दे दिया गया। यह खबर राँझाको लगी तो उसने भी अपने प्राण त्याग दिये।

इस कथाको पहले किसने सँवारा, यह कहना निश्चित रूपसे कठिन है। सूफी कवि बुल्ले शाहकी 'हीर'के अतिरिक्त वारिसशाह लिखित 'हीर वारिसशाह' सारे पंजाबमें लोकप्रिय कृति है। गुरु गोविन्द सिंहने हीरके समर्थनमें लिखा है "यारण दा सानूँ सथ्थर चंगरो, भट्ठखेड़ियाँ दा रहणाँ"। प्रियके यहाँ दुःखमय निवास भी भला है, पर भाड़में जाय 'खेड़ाओं'के रहना।

इस प्रकार सैकड़ों पंजाबी लोकगीतोंमें हीर-राँझाका उल्लेख प्रणय प्रसंगोंके सन्दर्भमें आया है। वस्तुतः यह कथा कृष्ण और राधाकी प्रणय-लीलाओंकी तरह पंजाबकी भूमिमें लोकजीवनके शृंगार-प्रसंगोंपर आरोपित हुई है।

वारिसशाह मुगल बादशाह मोहम्मदके जमानेमें हुआ था। मौलवी हाफिज गुलामसे प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त कर उसने मकदूम जहाँ मियाँसे आध्यात्मिक आदर्श पाया। कहते हैं कि वारिस शाह पंजाबीके रहस्यवादी कवि बुल्लेशाहका समकालीन था। इस दृष्टिसे दोनों मत एक-दूसरेसे पर्याप्त भिन्न सिद्ध होते हैं। तिथियोंका ठीक पता न लग पानेपर भी 'हीर-राँझा'का लोकप्रचलित एवं ऐतिहासिक अस्तित्व किसी भाँति भी सन्देहास्पद नहीं है। 'हीर वारिसशाह' के इस प्रमाणिकताके अभावमें भी यह पंजाबके कण्ठमें सहज भावसे बसी हुई प्रेम-कथा है।

'हीर-राँझा' किसी भी समय गाया जानेवाला प्रबन्ध है। लोकगीतोंमें आये हुए कथाप्रसंग अवसरकी प्रतीक्षा नहीं करते। —श्या० प०

हुमायूँ–(सन् १५३० से १५५६ ई० तक) मुगलवंशका दूसरा शासक था। वह १५३० ई० में सिंहासनारूढ़ हुआ था। उसे जीवनभर कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा था। अपने जीवनकालमें उसे गुजरातके बहादुर शाह, अफगान नेता शेर खाँ, लोदी वंशके सुल्तान महमूद आदिसे गुजरात, चुनार तथा जौनपुरमें लोहा लेना पड़ा। प्रारम्भमें तो उसकी विजय हुई, लेकिन विलासिताके कारण उसे आजीवन कठिनाइयाँ उठानी पड़ीं, यहाँ तक कि उसे भारत छोड़नेके लिए बाध्य होना पड़ा। सन् १५३९ ई० में चौसा तथा सन् १५४० ई० में अफगान नेता शेरशाहने उसे हराकर भारतसे भगा दिया था तथा स्वयं शासक बन बैठा। १५ वर्षोंके बाद सन् १५५५ ई० में उसने फिर भारतपर विजय पायी। सन् १५५६ ई० में अपने वाचनालयकी छतसे फिसलकर गिरनेसे उसकी मृत्यु हो गयी। उसके सम्बन्धमें प्रसिद्ध है कि वह कलकी बात नहीं सोचता था। हुमायूँ एक विद्वान् एवं सांस्कृतिक अभिरुचिका शासक था। —रा० कु०

हुसैन–मुसलमानोंमें आदर भावके कारण ये 'हजरत हुसैन अलैहिस्सलाम'के नामसे विख्यात हैं। हुसैन अलीके पुत्र तथा मोहम्मद साहबके नाती (नवासे) थे। मोहम्मद साहबके साथ 'कर्बला'में इन्हें भी वीरगति प्राप्त हुई थी। इनकी कर्बलाकी कठिनाइयोंको स्मरण करके मुसलमान 'मुहर्रम'के महीनेकी पहली तारीख से १०वीं तारीख तक शोकका उत्सव मनाते हैं। मुसलमानोंका विश्वास है कि मोहम्मद साहबका परिवार इन्हीं से है तथा प्रलय (कयामत) तक रहेगा। इनके वंशको 'खानदाने सादात' अर्थात् सैय्यदोंका वंश कहते हैं। इसी वंशसे कावामें उनके अन्तिम इमाम 'हजरत इमाम मेंहदी'का जन्म होगा (दे० 'कावा-कर्बला', पृ० १०१)। —रा० कु०

हृदयनारायण पांडेय 'हृदयेश'–जन्म १९०५ ई० पाली-शाहाबाद, जिला हरदोईमें। आपने साहित्यालंकार, दर्शनालंकार, मुंशी फाजिलकी उपाधि प्राप्त की है। खड़ीबोली के स्वतन्त्र वर्गके कवियों तथा गीतकारोंमें आपका विशिष्ट स्थान है। अधिकतर जीवनकी करुणा ही आपकी रचनाओंमें बड़े मार्मिक ढंगसे अभिव्यक्त हुई है। रचनाएँ 'संकीर्तन', 'शंखनाद' (काव्य, १९२४ ई०), 'मनोव्यथा' (गद्यकाव्य १९२५ ई०), 'प्रेमपत्र' (खण्ड काव्य, १९३२), 'इंग्लैण्डकी सैर' (१९३२ ई०), 'पत्र प्रबोध' (१९३२ ई०), 'कसक' (काव्य, १९३४ ई०), 'मधुरिमा' (काव्य, १९४८ ई०), 'प्रेम सन्देश' (खण्ड-काव्य, १९३८ ई०), 'करुणा' (खण्ड-काव्य, १९३८ ई०), 'सुषमा' (काव्य, १९४२ ई०), 'शैवालिनी' (काव्य, १९६१ ई०)। सम्पादित ग्रन्थ—'हिन्दी उर्दू कोश', 'वाणी विलास', 'साहित्य लहरी' आदि। आपकी कुछ नयी रचनाओंपर कई जगहसे पुरस्कार, पदक एवं उपाधियाँ मिली हैं। —सं०

हृदयराम–हृदयरामका जन्म पंजाबमें हुआ था। इनके पिताका नाम कृष्णदास था। हृदयरामने कवित्त, सवैया छन्दोंमें सन् १६२३ ई० मे 'हनुमान्नाटक'की रचना की, जिसका आधार संस्कृतका 'हनुमन्नाटक' है। हृदयरामकी भाषा बड़ी प्रौढ़ एवं परिमार्जित है। 'हनुमन्नाटक' यद्यपि नाटकीय शैलीमें लिखी गयी रचना है किन्तु इसे नाटक नहीं कहा जा सकता। यद्यपि यह सत्य है कि इसके संवाद बड़े मनोरम एवं उपयुक्त हैं, फिर भी नाटक होनेके लिए जिन गुणोंकी आवश्यकता है, उनका इसमे अभाव है। डा० गोपीनाथ तिवारीने बड़े श्रमसे यह सिद्ध करनेका प्रयास किया है कि इसमें केवल संवादप्रधान प्रबन्धात्मक शैली मात्र अपनायी गयी है, अन्यथा इसकी भाषा सरल है, पात्रोंका चरित्र-चित्रण किया गया है और जननाट्य-शैलीका अनुसरण किया गया है। 'हनुमान्नाटक'की प्रबन्धात्मक शैली आगे भी लोगोंने अपनायी। तुलसीदासने प्रायः सभी काव्य-शैलियोंको अपनाया था, केवल नाटकीय शैलीका उन्होंने कहीं उपयोग नहीं किया था, हृदयरामकी रचना द्वारा रामभक्तिसम्बन्धी रचनाओंमें यह शैली भी सुन्दर ढंगसे आ गयी है। अपने समयकी नाटकीय शैलीमें लिखी गयी सभी रचनाओंमें हृदयरामका विशेष महत्त्व भी इसी कारण है।

'हनुमन्नाटक'का प्रकाशन वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बईसे हुआ है। हृदयरामकी अन्य रचनाएँ हैं: 'सुदामाचरित्र' तथा 'रुक्मिणी मंगल'। —ब० ना० श्री०

हृषीकेश चतुर्वेदी–जन्म आगरा (उत्तरप्रदेश) में हुआ।

आपकी काव्यकृति 'विजयवाटिका' १९३६ ई०में प्रकाशित हुई और 'श्री रामकृष्ण काव्य' १९४३ ई०में जो विलोम काव्यका अच्छा उदाहरण है। हिन्दीके अतिरिक्त अन्य भाषाओंके साहित्यसे भी आपका अनुराग है। आपने १९२६ ई०में कालरिजके 'द राइम ऑव द एनसियेण्ट मैरिनर'का 'वृद्ध नाविक' और १९३३ ई० में संस्कृत कवि कालिदासके 'मेघदूत'का 'समश्लोकी मेघदूत' नामसे हिन्दी रूपान्तर किया। —स० ना० त्रि०

हेमचंद्र जोशी–जन्म १८९४ई०में नैनीतालमें हुआ। शिक्षा एम० ए०, डी० लिट्०। हिन्दीके प्रतिष्ठित विद्वान्, पत्रकार और कोशकार। अपने छोटे भाई इलाचंद्र जोशीके साथ कई पत्रोंका सम्पादन किया। विशेष उल्लेखनीय—'विश्व-मित्र' (कलकत्ता), 'धर्मयुग' (बम्बई)। अपने निर्भीक और स्वतन्त्र चिन्तनके लिए प्रसिद्ध। भाषा-शास्त्रके क्षेत्रमें पिशेलके प्राकृत व्याकरणका हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया। नागरी प्रचारिणी सभाके तत्त्वावधानमें हिन्दीके 'व्युत्पत्ति कोश'का कार्य कर रहे हैं। —सं०

हेमराज–ये प्रारम्भिक काव्य-शास्त्रके लेखकोंमे गिने जाते हैं। इनका ग्रन्थ 'फतेहप्रकाश' अलंकार-ग्रन्थ है, जिसका रचनाकाल इतिहासकारोंने प्रायः १६२८ई० माना है। कवि तथा उसके ग्रन्थके बारेमें कुछ भी ज्ञात नहीं है। —सं०

होमवती–जन्म २० नवम्बर, १९०२ ई०, निधन सन् ३ फरवरी, १९५१ ई०, वासस्थान मेरठ। होमवतीकी साहित्यिक अभिव्यक्तिके सामान्यतः दो ही माध्यम थे—कविता और कहानी। कविताके अन्तर्गत भी उन्होंने केवल प्रगीत-काव्यकी रचना की। जहाँतक ज्ञात है, सफल कहानीकार होनेपर भी उन्होंने कोई खण्ड-काव्य या पद्य-कथा नहीं लिखी। इन स्फुट कविताओंका प्रकाशन 'अर्घ्य' (१९३९ ई०) तथा प्रथम संग्रह 'उद्गार' (१९३६ ई०)के रूपमें हुआ है। कविके रूपमे होमवती का मूल संवेद्य है करुणा। अनेक दैविक विपत्तियोंसे आहत उनके जीवनमें करुणा सहज व्याप्त हो गयी थी। जीवनकी अनुभूतिका सहज विषय होनेके कारण यह करुणा काव्यकी अनुभूतिका भी विषय अनायास ही बन गयी। उसीको सीधी-सरल भाषाके माध्यमसे छायावादके हल्के छन्दोंमें अभिव्यक्त करना उनकी कविताकी विशेषता है। इस कवितामें कल्पनाका विलास नहीं है, इसलिए प्रतीक या बिम्ब-योजनाकी समृद्धि यहाँ नहीं मिलेगी। छायावाद-युगमें रची जानेपर भी रहस्य-भावना या अतीन्द्रिय अनुभूतियोंके चित्रणका प्रयत्न भी यहाँ नहीं है। यहाँ तो सीधी स्वाभिव्यक्ति है, जिसको प्रायः लक्षणा या व्यंजनाका भी चमत्कार नसीब नहीं होता।

कहानीके क्षेत्रमें होमवती अपेक्षाकृत अधिक सफल रही हैं। कविकी दृष्टिसे हिन्दी-काव्यका इतिहासकार उनकी गणना करे या न करे—इस विषयमें सन्देह हो सकता है किन्तु हिन्दी-कहानीके इतिहासमें उनका अपना स्थान निश्चित है और लेखिकाओंमें तो वे अग्रणी हैं। उनके चार संग्रह प्रकाशित हुए हैं। 'निसर्ग' (१९३९ ई०), 'धरोहर' (१९४६ ई०), 'स्वप्नभंग' (१९४८ ई०), 'अपना घर' (१९५० ई०)। यद्यपि उनकी कहानियोंके प्रतिपाद्य-पर विषादकी हल्की छाया प्रायः बनी ही रहती है फिर भी यहाँ अधिक वैविध्य है। मध्यवर्गीय जीवनके सुख-दुःख, हर्ष-विषाद रागात्मक संघर्षके चित्र इन कहानियोंमें अत्यन्त मार्मिक रूपसे अंकित हैं। वास्तवमें कविताके लिए भावुकताके साथ-साथ जिस वैदग्ध्यकी अपेक्षा होती है—होमवतीकी साहित्यिक चेतनामें उसका पर्याप्त समावेश नहीं है किन्तु कहानीके लिए रागपक्ष की समृद्धिके साथ-साथ जो अनुभव-प्रौढ़ जीवनदृष्टि चाहिए, उसका उनमें अत्यन्त सद्भाव था और यही उनकी सापेक्षिक सफलताका रहस्य भी था।

अपने जीवनके अन्तिम दशकमें, मृत्युसे दो-तीन वर्ष पूर्वतक, उनका साहित्यिक जीवन बड़ा सक्रिय रहा। उनमे संगठनकी विचित्र क्षमता थी। अत्यन्त अध्यवसाय-पूर्वक अनेक प्रकारकी सामाजिक बाधाओंका सामना कर कई वर्षोतक उन्होने मेरठके साहित्यिक जीवनका नेतृत्व और हिन्दी परिषद्का अखिल भारतीय स्तरपर संचालन किया।

[सहायक ग्रन्थ—होमवती स्मारक संकलन : सं० अज्ञेय।] —न०

होरी–प्रेमचन्दके प्रसिद्ध उपन्यास 'गोदान'का प्रमुख पात्र। होरी बेलारी गाँवका एक छोटा-सा आसामी है और परिश्रम द्वारा अपनी आजीविका पैदा करता है। वह भारतीय किसानका प्रतिनिधि और इसलिए दरिद्र है। ग्राम्य-जीवनकी आर्थिक व्यवस्थाके कारण वह बिंदेसरसाह, दुलारी सहुआइन, मँगरू, नोखेराम, दातादीन आदि सबका कर्जदार हो जाता है किन्तु वह व्यवहारकुशल और स्वार्थभीरु है। जमींदारसे मिलने जाते समय अथवा भोलासे गऊ लेते समय होरी अपनी चरित्रगत विशेषताओंको प्रकट करता है। दरिद्र होते हुए भी उसमें आत्म-सम्मान या सम्मान-लालसा विद्यमान है। इसी लालसाके वशीभूत होकर वह गाय रखकर अपने जीवनकी साध पूरी करना चाहता है। होरी उदार और विशालहृदय है। उसमें मानवमात्रके प्रति सहानुभूति है। वह कुल मर्यादाको प्राणोंसे भी अधिक मूल्यवान समझता है और सोभा तथा हीराके प्रति पितृवत् स्नेह रखता है। होरी का चरित्र सरल है। वह बालकी खाल निकालना नहीं जानता और न बेकार झगड़ा मोल लेना चाहता है। जहाँ तक हो सकता है स्वयं दब जाना अधिक पसन्द करता है। वह समाज और घरमें मर्यादा पालनकी ओर विशेष ध्यान रखता है। उसकी प्रकृतिमें मनोविनोदकी प्रवृत्ति भी है। होरी आदर्शवादी, धर्म, नीति और स्वार्थके बीच डूबने-उतरानेवाला पात्र है। भारतीय किसानकी सारी विशेषताएँ उसमें साकार हो उठी हैं। वह एक साधारण व्यक्ति है और अपना नेतृत्व स्वयं करता है। उसकी हारमें भी विजयका उल्लास है। जीवन-मार्गपर वह स्वयं अप्रतिहत गतिसे चलता रहता है। —ल० सा० वा०

परिशिष्ट

आज—वाराणसी (उत्तरप्रदेश) से प्रकाशित हिन्दीका प्रमुख दैनिक समाचार-पत्र। ५ सितम्बर, सन् १९२० ई० (सं० १९७७ की कृष्णाष्टमी)को प्रकाशन आरम्भ हुआ। राष्ट्ररत्न श्री शिवप्रसाद गुप्त (दे० 'शिवप्रसाद गुप्त') द्वारा संस्थापित एवं संचालित तथा श्री श्रीप्रकाश (दे० 'श्रीप्रकाश') एवं पण्डित बाबूराव विष्णु पराड़कर (दे० 'बाबूराव विष्णु पराड़कर') द्वारा सम्पादित। श्री गुप्तजीने संसार भ्रमणके बाद हिन्दीका आदर्श दैनिक समाचार पत्र निकालनेका संकल्प किया। फलस्वरूप आपने पराड़करजीको मई, सन् १९२० ई०में लोकमान्य तिलकसे 'आज'की नीतिके सम्बन्धमें परामर्श लेनेके लिए भेजा। 'आज'के प्रकाशनकी योजना पराड़करजीने बनायी और उसका अन्तिम स्वरूप लोकमान्य तिलक, डाक्टर भगवानदास, श्री शिवप्रसादजी गुप्त, श्री श्रीप्रकाशजी तथा पराड़करजीके विचार-विमर्शके अनन्तर स्थिर किया गया। 'आज' के प्रथम अग्रलेखमें सम्पादकीय नीतिका आधार एवं उद्देश्य इस प्रकार स्थिर किया गया है—"हमारा उद्देश्य अपने देशके लिए सर्वप्रकारसे स्वातन्त्र्य उपार्जन है। हम हर बातमें स्वतन्त्र होना चाहते हैं। हमारा लक्ष्य यह है कि हम अपने देशका गौरव बढावें, अपने देशवासियोंमें स्वाभिमानका संचय करें, उनको ऐसा बनावें कि भारतीय होनेका उन्हें अभिमान हो, संकोच न हो। यह स्वाभिमान स्वतन्त्रता देवीकी उपासना करनेसे मिलता है। जब हममें आत्म-गौरव होगा तब अन्य लोग भी हमको आदर और सम्मानकी दृष्टिसे देखेंगे। इसके लिए न द्रोहकी आवश्यकता है, न अनुचित प्रेमकी, न किसीसे सम्बन्ध त्यागकी आवश्यकता है, न बन्धन दृढ़ करनेकी। सबसे अधिक आवश्यकता आत्मपरिचय और आत्मगौरवकी है। अतः हम अपने देशका गौरव अपनी आँखों और दूसरोंकी आँखोंमें बढ़ाते हुए स्वतन्त्रता प्राप्त करनेका यथासाध्य प्रयत्न करेंगे। सामयिक राजनीतिक सुधार, नयी परिषदों आदिके सम्बन्धमें अपना मत तो हम देते ही रहेंगे पर मूलमन्त्र हमारा यही है कि हमारे देशका गौरव बढ़े, भारत और भारतीयताका नाम संसारमें आदरके साथ लिया जाय।"

इस प्रकार 'आज' लोकमान्य तिलकके निर्देशानुसार तथा महात्मा गान्धीकी प्रेरणासे राष्ट्रभाषा हिन्दीमें राष्ट्रीय जागरण तथा स्वाधीनता संग्रामका महान् अग्रदूत बना। विदेशी शासन, सरकारी कोप दृष्टि एवं दमन नीतिका सामना करता हुआ यह अपने कर्तव्य-पथपर अडिग रहा और स्वाधीनता आदिके लक्ष्यको कभी ओझल नहीं होने दिया। सन् १९३० ई० तथा '४२ ई० में सरकारी आज्ञाके कारण 'आज'का प्रकाशन बन्द कर देना पड़ा था। रंगूनसे प्रेषित राघवदासके अंग्रेजोंके अत्याचारसम्बन्धी समाचार प्रकाशनके लिए सन् १९२५ ई० में पराड़करजीको जेलकी सजा तथा दण्ड हुआ था। सन् १९३० ई० में 'आज' तथा ज्ञानमण्डल यन्त्रालयसे दो-दो हजारकी जमानत मांगी गयी, जिसे देना 'आज'ने स्वीकार नहीं किया। सन् '४२ ई० में हड़ताल आदि सम्बन्धी समाचारोंके प्रकाशनपर सरकारी प्रतिबन्धके विरोधमें 'आज' बन्द कर दिया गया। २९ अक्तूबर, १९३० ई० से ८ मार्च, १९३१ ई० तक सरकारी नीतिके विरोधमें सम्पादकीय स्तम्भ खाली रखा गया। उस स्थानपर केवल यह वाक्य होता था—"देशकी दरिद्रता, विदेश जानेवाली लक्ष्मी, सरपर बरसनेवाली लाठियाँ, देशभक्तोंसे भरनेवाले कारागार—इन सबको देखकर प्रत्येक देशभक्तके हृदयमें जो अहिंसामूलक विचार उत्पन्न हों, वही सम्पादकीय विचार हैं।" १९३२ ई० के आरम्भमें गान्धीजीकी गिरफ्तारी तथा सन् '४२ की अगस्त क्रान्तिके समय भी यही किया गया।

'आज' हिन्दीका सर्वप्रथम पत्र रहा है, जिसने देश-विदेशके ताजे समाचार देनेके लिए अपने कार्यालयमें 'टेलिप्रिण्टर' यन्त्र लगाया। इसके पूर्व आरम्भसे ही रायटर तथा असोशियेटेड प्रेसकी समाचार सेवा ली जाती थी। अब 'आज'की अपनी स्वतन्त्र टेलिप्रिण्टर लाइन राजधानी दिल्लीसे स्थापित हो गयी है, जिसमें नागरी लिपि तथा हिन्दी भाषामें देश-विदेशके महत्त्वपूर्ण समाचार शीघ्रसे शीघ्र प्राप्त करनेकी व्यवस्था है। लखनऊ, पटना, गोरखपुर आदिसे भी ऐसी ही टेलिप्रिण्टर लाइन स्थापित करनेकी योजना कार्यान्वित हो रही है। प्रारम्भसे ही 'आज'के देश-विदेश स्थित संवाददाताओं तथा विशेष प्रतिनिधियोंके द्वारा विशिष्ट एवं विशेष समाचार तथा चिट्ठियोंके प्रकाशनकी व्यवस्था थी। प्रेमचन्द, लक्ष्मणनारायण गर्दे, 'उग्र' आदि विशिष्ट लेखक 'आज'के नियमित स्तम्भ-लेखकोंमें रहे हैं। आरम्भमें प्रख्यात विद्वान् विनयकुमार सरकार 'आज'के यूरोप स्थित विशेष संवाददाता थे। राजा महेन्द्रप्रताप चीन तथा जापानसे विशेष चिट्ठियाँ भेजते थे। डाक्टर तारकनाथ दास अमेरिकासे विशेष सामग्री भेजते थे। अब भी उसी परम्पराकी रक्षा विदेशोंकी महत्त्वपूर्ण चिट्ठियोंके प्रकाशनसे हो रही है। राष्ट्रीय-अन्तरराष्ट्रीय महत्त्वपूर्ण अवसरोंपर विशेषांकोंकी योजनाएँ 'आज'की विशेषता है। प्रदेशकी राजधानियोंके अतिरिक्त 'आज'के सैकड़ों संवाददाताओंकी नियुक्ति सुदूर गाँवोंमें भी की गयी है। 'आज'के अग्रलेखोंका महत्त्व न केवल देशमें, अपितु विदेशोंकी राजधानियोंमें भी भारतकी वास्तविक स्थिति तथा जनमत जाननेके लिए स्वीकृत होता था। पश्चिमी तथा पूर्वी देशोंकी राजधानियोंमें समानरूपसे इसके मतोंको मान्यता दी जाती थी। इसके सम्पादकीय लेखोंका अंग्रेजी अनुवाद किया जाता था, जिससे ब्रिटेन तथा अन्य देशोंके प्रमुख राजनीतिज्ञ भारतीय जनताकी आकांक्षा तथा भावनाओंका वास्तविक परिचय प्राप्त करते थे।

'आज' देशका निष्पक्ष एवं निर्भीक राष्ट्रीय दैनिक पत्र

है। कांग्रेसकी नीतिका समर्थक होते हुए भी 'आज'ने स्वाधीनता संग्रामके दिनोंमें कांग्रेसी नेताओंकी रचनात्मक टीका कर उनका मार्ग निर्देशन किया। देशके स्वाधीनता संग्राम तथा राष्ट्रीय जागरणमें 'आज'का योगदान असाधारण और ऐतिहासिक है। इसीलिए प्रेस आयोगने अपने विवरणमें 'आज'को हिन्दी पत्रकारिताकी संस्थाकी संज्ञा दी है। स्वाधीनता प्राप्तिके बाद भी यह पत्र दलगत राजनीतिसे पृथक् रहकर देशमें लोकतन्त्रके रचनात्मक निर्माण तथा उसके स्वस्थ विकासके लिए सशक्त विरोधी दलके संघटनपर बल देता रहा है। सन् १९६२ ई०के अक्तूबर-नवम्बरमें चीनी आक्रमणके समय 'आज'ने देशकी जनताके मनोबलको बनाये रखने, त्याग-बलिदानकी भावना भरने तथा देशकी सुरक्षाके लिए सर्वस्व निछावर करनेकी भावना अपने सम्पादकीय लेखों, विशेष लेखों तथा राष्ट्रीय भावोंसे ओत-प्रोत रचनाओंके प्रकाशन द्वारा की। भारत, भारती और भारतीयताकी निरन्तर गौरववृद्धि आज भी 'आज' की सम्पादकीय नीतिका मूल आधार एवं लक्ष्य है।

समाचार पत्र जगत्में 'आज'के नेतृत्व एवं विशिष्ट योगदानका सहज अनुमान इसीसे किया जा सकता है कि इसने सन् १९२१ ई० में अपने दैनिक संस्करणके साथ उसका अर्ध साप्ताहिक संस्करण भी प्रकाशित किया। सन् १९२२ ई० में 'आज' का साप्ताहिक अंग्रेजी 'सप्लीमेण्ट' प्रकाशित हुआ। अंग्रेजीके समाचार पत्र प्रतिष्ठानोंसे तो अनेक बड़े हिन्दी दैनिक पत्रोंका प्रकाशन हुआ किन्तु 'आज'को देशमें इसका गौरव प्राप्त है कि उसने 'आज'का अंग्रेजी संस्करण 'टुडे' नामसे सन् १९३१ ई० में प्रकाशित किया, जिसके सम्पादक सम्पूर्णानन्दजी थे। १८ जुलाई १९३८ई० से 'आज का साप्ताहिक संस्करण प्रकाशित हुआ, जो अपने समयका सर्वश्रेष्ठ हिन्दी साप्ताहिक था। साप्ताहिक 'आज'के सम्पादक थे मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव (दे० 'मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव')। बादमें राजवल्लभ सहाय (दे० 'राजवल्लभ सहाय') इसके सम्पादक हुए। साप्ताहिक 'आज' के प्रत्येक अंकमें विविध विषयोंपर अधिकारी विद्वानोंके लेख रहा करते थे। इसके विभिन्न स्तम्भोंमें राष्ट्रीय तथा अन्तरराष्ट्रीय समस्याओंसम्बन्धी प्रामाणिक लेख सहज, सुबोध शैलीमें रहते थे। ग्रामीण समस्याओंपर लेख इसकी अपनी विशेषता है। साप्ताहिक 'आज'के अनेक विशेषांक स्थायी महत्त्वके निकले, जिनमें कांग्रेस स्वर्ण जयन्ती अंक, शिक्षा अंक, शिवप्रसाद गुप्त स्मृति अंक, होली विशेषांक आदि उल्लेख्य हैं। प्रति वर्ष कांग्रेस अधिवेशनके समय इसका विशेषांक प्रकाशित होता था, जो अपनी महत्त्वपूर्ण सामग्रीके कारण स्थायी महत्त्वका एवं संग्रहणीय रहता था। इसीमें देशके सभी शीर्षस्थ नेताओं, विद्वानों तथा लेखकोंके विशिष्ट सन्देश तथा हस्ताक्षर हिन्दी लिपिमें सर्वप्रथम प्रकाशित हुए थे। साप्ताहिक 'आज' बादमें 'समाज' बनकर निकला, जिसके सम्पादक मण्डलके अध्यक्ष आचार्य नरेन्द्र देवजी (दे० 'नरेंद्रदेव, आचार्य') थे।

सन् १९४४ ई० से 'आज'का सोमवार संस्करण प्रकाशित हुआ। अंग्रेजी पत्रोंके रविवार विशेषांकके रूपमें इसका प्रकाशन बड़े आकारके पृष्ठोंमें पहले किया गया। इसके पहले इंचार्ज सम्पादक हुए बलदेवप्रसाद मिश्र। बादमें सन् १९४५ ई० से '५० तक इसका सम्पादन लक्ष्मीशंकर व्यास (दे० 'लक्ष्मीशंकर व्यास') ने किया। सन् १९५० ई० के बादसे मोहनलाल गुप्त (दे० 'मोहनलाल गुप्त') साप्ताहिक विशेषांकका सम्पादन कर रहे हैं। अपनी विशिष्ट लेख सामग्रीके कारण 'आज'का सोमवार विशेषांक हिन्दी जगत्का सर्वश्रेष्ठ रविवासरीय साप्ताहिक बन गया। इसके सन् ४२ शहीद अंक, मालवीय श्राद्ध अंक, हिन्देशिया अंक, जयपुर कांग्रेस अंक, विधान सम्मेलनांक, आजाद हिन्द फौज अंक, साहित्य सम्मेलनांक, सन् ४७ स्वाधीनता विशेषांक उल्लेखनीय है। बादमें यही सोमवार विशेषांक 'आज'के साप्ताहिक विशेषांकके रूपमें निकलने लगा और आज देशका सर्वश्रेष्ठ रविवासरीय साप्ताहिक विशेषांक है। इसके वार्षिक साहित्य समीक्षा विशेषांकोंने नयी परम्परा स्थापित की है। इसके पराडकर स्मृति अंक, निराला श्रद्धांजलि अंक, मोतीलाल नेहरू शती तथा मालवीय शती विशेषांकोंने हिन्दी जगत् में नवीन कीर्तिमान् स्थापित किया है। राष्ट्रीय-अन्तरराष्ट्रीय राजनीतिक लेखोंके अतिरिक्त इसके साहित्य, समीक्षा, कहानी, निबन्ध, महिला, विज्ञान, कला, इतिहास, संस्कृति तथा बाल संसदके स्तम्भोंमें उच्चकोटि की सुरुचिपूर्ण, सचित्र एवं सुसम्पादित पाठ्य सामग्री प्रकाशित होती है। 'आज'का नगर विशेषांक भी अपनी विशिष्ट एवं विशेष ज्ञानवर्धक, मनोरंजक तथा शिक्षाप्रद पाठ्य-सामग्रीके लिए स्मरणीय रहेगा।

'आज'की सम्पादन परम्परा जिस प्रकार विशिष्ट है, उसी प्रकार उसके सम्पादकोंकी परम्परा भी। श्री श्रीप्रकाश इसके प्रथम सम्पादक थे। उनके बाद सम्पादकाचार्य पण्डित बाबूराव विष्णु पराडकर उसके प्रधान सम्पादक हुए। सर्वश्री कमलापति त्रिपाठी, विद्याभास्कर, श्रीकान्त ठाकुर तथा रामकृष्ण रघुनाथ खाडिलकर (स्वर्गीय) इसके भूतपूर्व सम्पादक रहे हैं। सम्प्रति राष्ट्ररत्न श्री शिवप्रसाद गुप्त के दौहित्र श्री सत्येन्द्र कुमार गुप्त 'आज' के सम्पादक हैं। इस समय सम्पादकीय विभागके वरिष्ठ सदस्योंमें सर्वश्री लक्ष्मीशंकर व्यास, मोहनलाल गुप्त, चन्द्रकुमार, ईश्वरचन्द्र सिन्हा आदि हैं। इसके विज्ञापन-व्यवस्थापक श्यामदास तथा मुद्रक एवं प्रकाशक ओम्प्रकाश कपूर हैं। ज्ञानमण्डल—जिसके अन्तर्गत 'आज' का प्रकाशन होता है—के सचिव तथा संचालक श्री विश्वनाथ प्रसाद हैं। 'आज' दैनिकका मूल्य १५ नये पैसे हैं और १६ पृष्ठोंके साप्ताहिक विशेषांक का २० नये पैसे। प्रतिदिन लगभग ३ लाख पाठक 'आज' पढ़ते हैं। यह १० प्वाइण्ट टाइपमें कम्पोज होता है, जिससे इसमें अन्य हिन्दी पत्रोंसे प्रायः १॥ गुनी अधिक पाठ्य-सामग्री रहती है। उत्तरप्रदेशके अंग्रेजी, हिन्दी, उर्दू सभी दैनिक समाचार पत्रोंमें इसकी प्रसार संख्या सर्वाधिक है। राष्ट्रीय सेवाओं तथा स्वाधीनता आन्दोलनमें अपने ऐतिहासिक योगके कारण यह देशके समाचार पत्रोंमें विशिष्ट स्थान एवं महत्त्व रखता है। —ल० शं० व्या०

उमेश मिश्र—जन्म बिनही जिला दरभंगामें १८९७ ई० में। शिक्षा एम० ए०; डी० लिट्, महामहोपाध्याय। आप

भारतीय दर्शनके मान्य विद्वानोंमें महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। आपकी अधिकांश कृतियाँ अंग्रेजीमें हैं किन्तु सन् १९५७ ई० में 'भारतीय दर्शन' नामसे एक उच्चकोटिकी रचना हिन्दीमें भी प्रकाशित हुई है। अपनी इस अकेली हिन्दी रचनासे ही हिन्दीमें दार्शनिक विषयोंपर लिखने वाले लेखकोंमें आपका विशिष्ट स्थान सुरक्षित हो जाता है। अबतक आपकी लगभग ३० पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमें कुछ ये हैं—अंग्रेजी : 'कान्सेप्शन ऑव मैटर एकार्डिंग टू नव्य-वैशेषिक फिलासफी' (१९३६ ई०), 'निम्बार्क स्कूल ऑव वेदान्त' (१९४० ई०), 'हिस्ट्री ऑव इण्डियन फिलासफी' (१९५७ ई०), संस्कृत : 'महादेव पुन्ताम्बेकरका न्याय कौस्तुभ' (१९३० ई०) तथा 'भारतीय दर्शन' (हिन्दी में)। —श्री० शु०

कालिका प्रसाद—जन्म मीरजापुर जिलेके सकरौडी ग्राममें। मृत्यु काशीमें। प्रारभिक शिक्षा स्कूलमें। बादमें घरपर ही अंग्रेजी तथा अन्य भाषाओंका अध्ययन। आपने 'हिन्दी केसरी' के संयुक्त सम्पादकके रूपमें साहित्य क्षेत्रमें प्रवेश किया, जहाँ आप प्रायः तीन वर्ष रहे। तदनन्तर काशी नागरीप्रचारिणी सभाके कोश विभागमें एक वर्षतक कार्य किया। आप 'आज' के जन्मकाल सन् १९२० ई० में ही सहायक सम्पादक होकर आये और जीवनके अन्तिम दिनोंतक ज्ञानमण्डलके कोश विभागमें सम्पादक पदपर कार्य करते रहे। 'आज' तथा ज्ञानमण्डलके सुदीर्घ सेवा-कालमें आपने 'आज'के साहित्य सम्पादक, प्रबन्ध सम्पादक तथा सम्पादकीय लेखक आदि विभिन्न पदोंपर कार्य किया। बादमें आप 'आज' के प्रधान सहायक सम्पादकके रूपमें सन् १९४४ ई० तक कार्य करते रहे। इसी समय आपके सम्पादकत्वमें 'मकरन्द' नामक हिन्दीका प्रथम डाइजेस्ट मासिक पत्र निकालनेकी योजना बनी और पूरी भी हो चुकी थी किन्तु सरकारी अनुमति न मिलनेसे स्थगित रही। पश्चात् आप कोश विभागमें सम्पादक होकर गये। हिन्दीके वरिष्ठ सम्पादक तथा कोशकारके रूपमें आपकी सेवाएँ स्मरणीय रहेंगी। आपकी प्रमुख विशेषता यह थी कि जो कुछ कार्य करते थे, उसमें कुछ विलम्ब अवश्य होता था किन्तु वह इतना श्रेष्ठ एवं उच्चकोटिका होता था कि उसमें कोई त्रुटि नहीं निकाली जा सकती थी। आपकी लेखन तथा भाषा शैली सरस, मुहावरेदार, प्रभावशाली और अत्यन्त सजीव थी।

आपने सन् १९४५ ई० में 'आज'के रजत जयन्ती विशेषांकका सम्पादन किया। इसके अतिरिक्त आपने राष्ट्रभाषा हिन्दीके बहुप्रशंसित 'बृहत् हिन्दी कोश'का सम्पादन किया, जिसमें अब १ लाख ३८ हजार शब्द हैं और जो हिन्दी जगत्में सर्वश्रेष्ठ शब्दकोशके रूपमें समादृत है। —ल० शं० व्या०

केदारनाथ पाठक—पण्डित केदारनाथ पाठक मूलतः मीरजापुरके रहनेवाले गौड़ ब्राह्मण थे। परन्तु इनकी ससुरालवालोंका एक मकान काशीमें था, जिसमें ये अपने विवाहके उपरान्त आकर रहने लगे थे। काशीमें ये नागरीप्रचारिणी सभाके पुस्तकालयके पुस्तकाध्यक्षके रूपमें लगभग पचीस वर्षोंतक काम करते रहे। ये बाल्यावस्थासे ही कानसे बहुत ऊँचा सुनते थे। इसीलिए पण्डित किशोरीलाल गोस्वामी इन्हें 'बहरे खुदा' (खुदाके लिए) कहा करते थे। ये हिन्दीके बहुत बड़े उपासक और प्रेमी थे। इसलिए एक अवसरपर स्वर्गीय पण्डित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदीने इन्हें 'हिन्दी गढ़का फाटक' कहा था। ये स्वयं तो कदाचित् ही कुछ लिखते थे क्योंकि इनके अक्षर बहुत ही बेढंगे होते थे पर ये ढूँढ़-ढूँढ़कर, पकड़-पकड़कर लोगोंको हिन्दी-सेवामें लगाते थे। आचार्य रामचन्द्र शुक्लको मीरजापुरसे काशी लाने और नागरीप्रचारिणी सभासे सम्बद्ध करानेमें ये प्रमुख कारण थे।

उस समयके समस्त हिन्दी-साहित्यके भाण्डारका इन्हें बहुत अच्छा ज्ञान था और किसी पुस्तकका नाम आते ही चट बतला देते थे कि यह किसकी लिखी हुई है, कब और कहाँ छपी थी इत्यादि। उस समयकी साहित्यिक चोरियाँ पकड़नेमें ये बहुत सिद्धहस्त थे और तुरन्त बतला देते थे कि यह तो बंगलाकी अमुक पुस्तककी चोरी है। ये बहुत ही सरल और शुद्ध स्वभावके तथा सज्जन थे। जरा-सी बातपर नाराज हो जाना और फिर दो-चार मीठी-मीठी बातें सुनते ही सारा रोष भूलकर गद्गद् होकर रोने लग जाना इनका स्वभाव-सा था। एक बार पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदीकी किसी बातमें चिढ़कर ये उनके घर जूही (कानपुर) जा पहुँचे और परम क्रुद्ध होकर द्विवेदीपर गरजने लगे थे। द्विवेदीजी उनकी योग्यतासे भी और इनके स्वभावसे भलीभाँति परिचित थे। अतः उन्होंने हाथ जोड़कर बहुत ही नम्र भावसे कहा—देवता ! आप पहले बैठकर जलपान कर लीजिये, ठण्डे हो लीजिये और तब मेरे इस डण्डेसे मेरा सिर फोड़ लीजियेगा। बस फिर क्या था कि पाठकजी उनके चरणोंपर गिरकर बहुत देरतक रोने और पश्चात्ताप करते रहे और द्विवेदीजीने उन्हें उठाकर गले लगा लिया।

इनका सारा जीवन आर्थिक दृष्टिसे बहुत ही साधारण रूपमें बीता था और इनके दोनों पुत्र इनके जीवनकाल हीमें चल बसे थे, जिससे इनके अन्तिम दिन बहुत ही कष्टमें बीते थे। नागरीप्रचारिणी सभाके पुस्तकालयमें अब भी हजारों पुस्तकें ऐसी होंगी, जो ये लोगोंसे बहुत ही दीनतापूर्वक गिड़गिड़ाकर और माँगकर लाये थे। इन्हें नागरीप्रचारिणी सभाके पुस्तकालयका मूल स्तम्भ ही समझना चाहिये क्योंकि ठाकुर गदाधर सिंहसे उनका 'आर्य भाषा पुस्तकालय' सभाको दिलवानेमें इन्होंने बहुत अधिक परिश्रम तथा प्रयत्न किया था। —रा० चं० वर्मा

गंगाशंकर मिश्र—जन्म सन् १८८७ ई०, स्थान भगवन्तनगर (जिला हरदोई)। आपने काशी हिन्दू विश्वविद्यालयसे सन् १९१७ ई० में एम० ए० पास किया। विश्वविद्यालयमें एम० ए० की वह प्रथम परीक्षा थी, जिसमें दो ही छात्र थे—उनमें एक मिश्रजी भी थे। सन् १९१९ ई० में महामना मालवीयजीने आपको विश्वविद्यालयके पुस्तकालयाध्यक्षके पदपर नियुक्त किया। १९४७ ई० तक आप उक्त पदपर काम करते रहे। काशीसे निकलनेवाली मासिक पत्रिका 'इन्दु'में आपका पहला लेख प्रकाशित हुआ था। तबसे आप बराबर पत्र-पत्रिकाओंमें महत्त्वपूर्ण लेख लिखते रहे। 'किताबी कीड़ा'के नामसे आप बहुत

दिनोंतक दैनिक 'आज'में अनेक तरहके खोजपूर्ण लेख लिखते रहे। उन दिनों आपके उन लेखोंकी विद्वानोंमें काफी चर्चा हुआ करती थी और लोग 'किताबी कीड़ा'के पाण्डित्यपर मुग्ध थे। आपकी लिखी दो पुस्तकें काफी प्रसिद्ध हुई हैं—'भारतवर्षका इतिहास' तथा 'भारतमें ब्रिटिश साम्राज्य'। मिश्रजीका अध्ययन बहुत ही गम्भीर है। सम्प्रति आप काशी और कलकत्तासे निकलनेवाले हिन्दी दैनिक 'सन्मार्ग'के सम्पादक हैं। —दे० द्वि०

गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी—जन्म २९ दिसम्बर, सन् १८८१ ई० जयपुरमें। शिक्षा—शास्त्री (पंजाब विश्वविद्यालय), व्याकरणाचार्य (जयपुर) तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके वाचस्पति। हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा साहित्य-वाचस्पति, भारत सरकार द्वारा महामहोपाध्यायकी उपाधिसे विभूषित तथा राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित। सन् १९०८ से १९१७ ई० तक ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम हरिद्वारके आचार्य। सन् १९१८ से १९२४ ई० तक सनातनधर्म संस्कृत कालेज, लाहौरके आचार्य। सन् १९२५ से १९४४ ई० तक जयपुरके महाराजा संस्कृत कालेजमें दर्शनके प्राध्यापक। सन् १९५० से १९५४ ई० तक काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमें संस्कृत अध्ययन एवं अनुशीलन मण्डलके अध्यक्ष। सम्प्रति सन् १९६० ई०से वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालयके सम्मानित प्राध्यापक। सन् १९५१-५२ ई० में भारत सरकारकी संविधान संस्कृतानुवाद समितिके सदस्य। सन् १९३० और १९४० ई० में हिन्दी साहित्य सम्मेलनके दर्शन-परिषद्के सभापति। वेद, दर्शन तथा संस्कृत साहित्यके प्रकाण्ड पण्डित, महान् व्याख्याता, समर्थ लेखक तथा अनेक पत्र-पत्रिकाओंके सम्पादक। आपने बहुतसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोंका सम्पादन किया है। आपकी संस्कृत तथा हिन्दीकी कृतियाँ इस प्रकार हैं—'महाकाव्य संग्रह', 'महर्षि कुलवैभव', 'ब्रह्म-सिद्धान्त', 'प्रमेयपारिजात', 'चातुर्वर्ण्य', 'पाणिनीय परिचय', 'स्मृति विरोध परिहार', 'गीता व्याख्यान', 'वेद विज्ञान विन्दु' (संस्कृत), 'वैदिक विज्ञान', 'भारतीय संस्कृति' तथा 'पुराण पारिजात'। 'गीता व्याख्यान' तथा 'पुराण पारिजात' आपकी नवीनतम कृतियाँ हैं। आपकी 'वैदिक विज्ञान' और 'भारतीय संस्कृति' पुस्तक उत्तरप्रदेश और राजस्थान सरकारों द्वारा पुरस्कृत हुई है। सन् १९६२ ई० में आपकी यह पुस्तक साहित्य अकादमी द्वारा भी पुरस्कृत हुई। इस पुस्तकका अंग्रेजी अनुवाद भी हो रहा है। वर्तमान युगकी बहुमुखी जिज्ञासाओं तथा प्रवृत्तियोंके सन्दर्भमें यह ग्रन्थ बहुत ही महत्त्वका है। महामहोपाध्याय पण्डित गिरिधर शर्मा चतुर्वेदीजीके उपर्युक्त १३ ग्रन्थोंके अतिरिक्त ७० छोटे-बड़े उल्लेखनीय निबन्ध प्रकाशित हैं। इनमें १८ संस्कृतके हैं और शेष हिन्दीके। इनमें भारतीय वैदिक तथा शास्त्रीय परम्पराओंके महत्त्वपर विचारके साथ ही उनका वैज्ञानिक एवं दार्शनिक विवेचन एवं विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। —ल० शं० व्या०

गोपीनाथ कविराज—महामहोपाध्याय डाक्टर गोपीनाथ कविराजजीका जन्म सन् १८८७ ई०में ढाका जिलेके धामराई नामक ग्राममें हुआ था। वहाँ इनके मातामह रहते थे। इनका परम्परागत पैतृक स्थान जिला मैमनसिंह टांगाइज सबडिवीजनके अन्तर्गत दान्या ग्राम था, जो कि अब पूर्वी पाकिस्तानमें है। आपके पिताका नाम गोकुलनाथ कविराज था। बाल्यावस्थामें ही माता-पिताका स्वर्गवास हो जानेके कारण आप जिला मैमनसिंहके अन्तर्गत कांटालिया ग्राममें अपने मामा कालाचांद सान्याल द्वारा लालित-पालित हुए। पैतृक घरमें कोई नहीं था। घर, जमीन, पोखरा, बाग-बगीचा आदि सब कुछ रहते हुए भी वहाँका सम्बन्ध टूट गया।

इनकी प्रारम्भिक शिक्षा धामराई हाईस्कूलमें हुई। तदुपरान्त ढाका जुबली हाई स्कूलमें प्रविष्ट हुए। ये एन्ट्रेन्स विशिष्ट सम्मानके साथ पास हुए। तदुपरान्त एक वर्षतक मलेरिया ज्वरसे आक्रान्त रहनेके कारण अध्ययन स्थगित रहा। उसके अनन्तर एक वर्ष बाद १९०७ ई०में एफ० ए० में पढनेके लिए कलकत्ता गये किन्तु यहाँसे ये जयपुर चले गये। उस समय संसारचन्द्र सेन जयपुर स्टेटके प्रधान मन्त्री थे। उनके यहाँ प्राइवेट ट्यूटरके रूपमें उनके पौत्र और छोटे पुत्रको पढ़ाने लगे। वहीं महाराज कालेजमें एफ० ए० कक्षामें प्रविष्ट हुए।

ढाकामें अध्ययन करते समय ये संस्कृत और अंग्रेजीके बहुतसे ग्रन्थोंका अध्ययन विशेष रूपसे कर चुके थे। जयपुरमें भी लगनके साथ उसीकी अनुवृत्ति यथापूर्व अक्षुण्ण रही। प्राचीन भारतीय संस्कृति और इतिहासकी ओर भी आपका ध्यान उसी समय आकृष्ट हुआ। जयपुरकी पब्लिक लाइब्रेरी अत्यन्त विशाल है। कालेज लाइब्रेरी तथा कान्तिचन्द्र मुखोपाध्याय, जो भूतपूर्व प्रधान मन्त्री थे, की भी फैमिली लाइब्रेरी बड़ी विशाल थी। इन सब पुस्तकालयोंमें कविराजजीका अप्रतिहत प्रवेश था। जब कविराजजी महाराज कालेजमें प्रविष्ट होनेके लिए गये तब वहाँ इन्हें वर्ड्सवर्थके एक सानेट (कविता) की व्याख्या करनेको दी गयी। व्याख्या इतनी सुन्दर हुई कि सब छात्रोंके सामने वहाँके प्रोफेसरने इसकी बड़ी प्रशंसा की और कहा कि इससे अच्छी व्याख्या मैं भी नहीं कर सकूँगा। उसी समयसे उन्होंने कविराजजीके लिए छात्रवृत्तिकी व्यवस्था कर दी, जो बराबर चलती रही।

सन् १९१० ई० में बी० ए० पास कर आपने जयपुर छोड़ दिया और घर वापस चले आये। वहाँसे आप काशी आये और क्वींस कालेजमें एम० ए० कक्षामें प्रविष्ट हुए। पंचम वर्षकी परीक्षा पास करनेके बाद ही आप बीमार पड़ गये। क्वींस कालेजके प्रिंसिपल डा० वेनिसकी सलाहसे पढ़ना छोड़कर चिकित्सार्थ कलकत्ता चले गये। कुछ स्वस्थ होनेपर वहाँसे वायु-परिवर्त्तनके निमित्त पुरी चले गये।

कविराजजी स्वस्थ होकर काशी लौटे और षष्ठ वर्षमें प्रविष्ट हुए। इसी समय आचार्य नरेन्द्रदेवजीसे आपका परिचय हुआ। सन् १९१३ ई० में आप एम० ए० में सर्वप्रथम आये। एम० ए० प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण होनेके बाद अजमेर तथा लाहौरसे कालेजमें अध्यापन कार्यके लिए आपके पास कई पत्र आये। किन्तु डा० वेनिस चाहते

थे कि जो छात्रवृत्ति इन्हें पहलेसे मिलती थी, उसमें वृद्धि कर दी जाय और ये काशी छोड़कर अन्यत्र न जाँय और अनुसन्धान कार्य करनेके लिए बनारसमें ही रहें। उस समय सरस्वती भवन लाइब्रेरीका भवन बन रहा था। डा० वेनिसकी इच्छा थी कि इस लाइब्रेरी भवनका उद्घाटन होनेपर सर्वप्रथम लाइब्रेरियन इन्हें ही बनाया जाय। कविराजजी प्रायः एक वर्षतक परिवर्द्धित छात्रवृत्ति लेकर अपने विषयमें गवेषणा करते रहे। क्वींस कालेज बोर्डिंग हाउसमें पहलेसे रहते ही थे। सरस्वती भवनका उद्घाटन होनेके थोड़े दिन बाद ही आप सरस्वती भवनमें प्रधान अध्यक्षके रूपमें अप्रैल, सन् १९१४ के प्रारम्भमें नियुक्त हो गये। इस लाइब्रेरीमें प्रारम्भमें क्वींस कालेजकी संस्कृत तथा जर्मन सेक्शनकी सभी पुस्तकें आ गयीं। आप अपना गवेषणाका कार्य करते रहे तथा अन्यत्रसे जो गवेषी आते थे, उनका भी पथप्रदर्शन करते रहे। कविराजजी प्रारम्भसे ही यू० पी० हिस्टोरिकल सोसायटीके जर्नलमें लिखते रहे।

कविराजजीने प्रस्ताव किया था कि सरस्वती भवनमें जो मूल्यवान संस्कृत आदिकी पुस्तकें हैं, उनकी गवेषणाके प्रकाशनके लिए एक जर्नल निकाला जाय। दूसरा प्रस्ताव यह किया कि विभिन्न विषयोंकी हस्तलिखित पुस्तकोंमें प्रकाशित करने योग्य अंशोंका सम्पादन किया जाना चाहिये। फलस्वरूप 'सरस्वती भवन स्टडी' और 'सरस्वती भवन टैक्स्ट'की स्थापना हुई। दोनोंके सम्पादक आप ही हुए। लगभग १९२४ ई० में कविराजजी क्वींस कालेजके प्रिंसिपल नियुक्त हुए। आपने बहुतसे विशिष्ट ग्रन्थोंका सम्पादन किया है।

आप संस्कृत कालेजके अध्यक्ष पदपर सन् १९३७ ई० तक रहे। आपके प्रकाण्ड पाण्डित्यसे प्रभावित होकर भारत सरकारने सन् १९३४ ई० में आपको महामहोपाध्यायकी उपाधिसे विभूषित किया। डा० वेनिसके समान ही आप भी गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेजके अध्यक्ष, संस्कृत परीक्षाओंके रजिस्ट्रार, सुपरिण्टेण्डेण्ट ऑव संस्कृत स्टडीज आदि पदोंका कार्यभार अकेले सँभालते रहे।

आपके गुरुदेव योगिसम्राट् परमहंस श्री विशुद्धानन्दजी थे, जो असाधारण योगी और विज्ञानवेत्ता थे। उन्होंने तिब्बतके एक आश्रममें कई वर्षोंतक रहकर योग तथा विज्ञानकी ऊँची शिक्षा प्राप्त की थी। सन् १९३७ ई० में उनका तिरोभाव होनेके बाद कविराजजीने अपने गुरुदेवके नामसे 'विशुद्धानन्द' नामक ग्रन्थ पाँच खण्डोंमें प्रकाशित किया था। आपने 'विशुद्धानन्द वाणी' नामसे सात खण्डोंमें एक और ग्रन्थकी रचना की थी। उनके विषयमें आपने 'सूर्य विज्ञान' नामसे एक लेख 'कल्याण'के योगांकमें प्रकाशित किया था, जिससे उनका कुछ परिचय मिल सकता है।

अवकाश ग्रहण करनेके बाद आप काशीमें एकान्त भावसे भारतीय प्राचीन ज्ञान-विज्ञान तथा आध्यात्मिक ज्ञानकी चर्चा करते हुए समय व्यतीत कर रहे हैं।

आपका एक ग्रन्थ 'अखण्ड महायोग' नामसे प्रकाशित हुआ है। 'भारतीय संस्कृति और साधना'का प्रथम खण्ड प्रकाशित हो गया है और द्वितीय खण्ड छप रहा है। 'तान्त्रिक वाङ्मयमें शाक्त दृष्टि' नामक आपका एक और ग्रन्थ भी प्रकाशित हो चुका है। उत्तर प्रदेशकी हिन्दी समितिकी ओरसे आपका एक ग्रन्थ 'तान्त्रिक साहित्य' (विवरणात्मक ग्रन्थ सूची) संकलित होकर छपनेके लिए तैयार है। 'काशीकी सारस्वत साधना' नामसे आपका एक ग्रन्थ 'राष्ट्रभाषा परिषद पत्रिका'में धारावाहिक रूपसे छपा है, जो बिहार राष्ट्रभाषा परिषदसे प्रकाशित होगा। डा० राधाकृष्णन्की अध्यक्षतामें जो 'हिस्ट्री ऑव फिलासफी—ईस्टर्न ऐण्ड वेस्टर्न शाक्त फिलासफी' तैयार हुई है, उसे आप हीने लिखी है।

हिन्दी, अंग्रेजी, बंगला और संस्कृतमें आपके दो-ढाई सौ महत्त्वपूर्ण लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओंमे प्रकाशित हो चुके हैं, जो अभीतक ग्रन्थाकार नहीं छपे हैं। —श्री० पं०

गोविंद कवि—जन्म सन् १९१२ ई०, मथुरामें। ये प्रसिद्ध कवि नवनीतजीके पुत्र हैं। इन्होंने आठ वर्षकी अवस्थामें कविता करना प्रारम्भ किया। इन्होने वैदिक, तान्त्रिक तथा काव्य दीक्षा अपने पिता नवनीतजीसे तथा संस्कृत शिक्षा श्रीवरजीसे ली। इनकी 'ब्रजवानी' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई थी, जो अब अप्राप्य है। 'ध्वनि विमर्श', 'ध्वन्यालोक'का ब्रजभाषामें सटीक अनुवाद आदि इनके कई ग्रन्थ अप्रकाशित पड़े हैं। आपने अपने परिचयमें लिखा है—"मृदु मंजुल माधुर मालतीको अध फूल्यो सुवासित फूल हौं मै। मनमोहिनी श्री मथुराको करील निकुंजन को इक सूल हौं मैं॥ नवनील दु को नवनीत गुविंद कुरीतिन तें प्रतिकूल हौं मै। गुनवाननकी पद-धूलि हौं मैं बिधिनाके विधानकी भूल हौं मै॥"—द्वे० द्वि०

गोविंद शास्त्री दुगवेकर—जन्म सन् १८८१ ई० सागरमें। निधन तिथि—२६ जून, सन् १९६१ ई० जबलपुरमें। संस्कृत, हिन्दी और मराठीके प्रकाण्ड विद्वान्। आप हिन्दी भाषा और साहित्यके अनन्य सेवक तथा बहुमुखी प्रतिभा-सम्पन्न कृतिकार थे। आप कुशल लेखक, समर्थ अनुवादक, प्रवीण पत्रकार, रससिद्ध कवि, सिद्धहस्त नाटककार तथा सफल अभिनेता थे। आपके नाटकों और अभिनयोंके महत्त्वकी चर्चा करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्लने 'हिन्दी साहित्यका इतिहास'में यह अभिमत प्रकट किया है—"गद्य साहित्यके प्रसारके द्वितीय उत्थानमें नाटककी गति बहुत मन्द रही। प्रयागमें पण्डित माधव शुक्लजी और काशीमें पण्डित दुगवेकरजी अपनी रचनाओं और अनूठे अभिनयो द्वारा बहुत दिनोंतक दृश्य-काव्यकी रुचि जगाये रहे।"

दुगवेकरजीने पौर्वात्य और पाश्चात्य नाट्य-शास्त्र एवं नाट्य-साहित्यका गहन अध्ययन किया था। 'भारतेन्दु नाटक मण्डली'के रूपमे शास्त्र शुद्ध हिन्दी-रंगमंचकी सर्वप्रथम स्थापनामें आपका प्रमुख हाथ था। उनके नाटकोंमें 'सुभद्राहरण' और 'हर-हर महादेव' बहुत ही प्रसिद्ध हैं और अनेक बार विभिन्न नाट्य संस्थाओं द्वारा अभिनीत भी हो चुके हैं। 'कालधर्म' नामक अधूरा नाटक अप्रकाशित है। महाकवि कालिदासकृत 'मालविकाग्नि मित्र' नाटकका गद्य-पद्यमय हिन्दीमें अनुवाद बहुत ही उत्कृष्ट अनुवादोंमें गिना जाता है। इसके पद्य भागका अनुवाद

ब्रजभाषामें मौलिक रूपसे किया गया है। दुगवेकरजीके नाट्यगुरु कालीप्रसन्न चटर्जी, प्रोफेसर उनवाल और बंगीय नाट्य सम्राट् गिरीशचन्द्र घोष थे।

आप सन् १९०१ ई० के आस-पास काशी चले आये थे और जीवनके शेष ६० वर्षोंमें अधिकांशतः काशीमें ही रह-कर साहित्य साधना की। पत्रकारके रूपमें आपने भारतधर्म महामण्डलसे प्रकाशित मराठी पत्रिकाका और हिन्दी 'आर्य महिला'का बहुत दिनोंतक सम्पादन किया था। इसके अतिरिक्त 'हिन्दी पंच', 'अरुणोदय' तथा 'गृहस्थ मासिक'के भी सम्पादक रहे। आप बहुत उच्चकोटिका हास्य-व्यंग्य भी लिखते थे। 'गृहस्थ मासिक'में प्रकाशित 'झब्बू शाही' लेखमालाके अन्तर्गत आपने बड़े विनोद-पूर्ण ढंगसे महन्तों और मठाधीशोंके कार्यकलापोंका उद्-घाटन किया था।

आप ब्रजभाषा तथा खड़ीबोलीमें बड़ी ही उत्कृष्ट कविता करते थे। बाल-साहित्यके अभावकी पूर्तिके लिए चित्र-कथाके रूपमें बहुत-सी कहानियाँ भी लिखी हैं।

ग्रन्थकारके रूपमें भारत धर्म महामण्डल द्वारा प्रस्तुत धर्मसम्बन्धी विभिन्न ग्रन्थोंके प्रणयनमें शास्त्रीजीका विशेष योग था। आप हिन्दीकी पत्र-पत्रिकाओंमें विविध विषयोंपर सामयिक और सुरुचिपूर्ण अनूठे लेख बराबर लिखा करते थे। तंत्र शास्त्र, फलित ज्योतिष और संगीत शास्त्रका भी आपने विशेष अध्ययन किया था। जीवनके ६० वर्षोंतक आपने हिन्दीकी अनन्य भावसे सेवा की तथा उसे राष्ट्र-भाषाके पदपर प्रतिष्ठित करानेके लिए भी प्रयत्नशील रहे। अन्य भाषाभाषी हिन्दी सेवकोंमें आप चिर-स्मरणीय रहेंगे। —न० कि० रा०

छबीलेलाल गोस्वामी—ये हिन्दीके सुप्रसिद्ध उपन्यास लेखक पण्डित किशोरीलाल गोस्वामीके एकमात्र पुत्र थे। इनकी बाल्यावस्था काशीमें बीती थी और यहीं इन्हें अंग्रेजी और हिन्दीकी साधारण शिक्षा भी मिली थी। वयस्क होनेपर ये भी अपने पिताके अनुकरणपर कहा-नियाँ, उपन्यास आदि लिखने लगे थे। परन्तु आगे चलकर देशमें असहयोग आन्दोलन शुरू होनेपर ये भी साहित्य-सेवा छोड़कर राजनीतिक कामोंमें लग गये और वृन्दावन जाकर वहीं आन्दोलनमें सम्मिलित हो गये। कुछ दिनों बाद ये वृन्दावन नगरपालिकाके अध्यक्ष भी हो गये थे और अनेक प्रकारसे लोक-सेवाके कामोंमें लगे रहते थे। परन्तु प्रौढावस्थामें इन्हें एक बहुत बड़ा दुःख देखना पड़ा। इनका एकमात्र पुत्र बी० ए० पास करनेके बाद पागल हो गया और कुछ दिनों बाद मर गया। उसी दुःखमें इनका शरीर दिन-पर-दिन जर्जर होने लगा और अन्तमें वृन्दावनमें इनका परलोकवास हो गया। —रा० चं० व०

जगन्मोहन वर्मा—ये बस्ती जिलेके रहनेवाले कायस्थ थे और बाल्यावस्थामें वहीं इन्हें अंग्रेजी, उर्दू और हिन्दी-की साधारण शिक्षा मिली थी परन्तु बड़े होनेपर इन्होंने संस्कृत, पालि और प्राकृतका भी कुछ अध्ययन किया था। कुछ दिनोंतक ये कालाकांकरमें सुप्रसिद्ध राजा रामपाल सिंहके यहाँ रहकर उस समयके एकमात्र दैनिक 'हिन्दुस्थान'-के सम्पादन विभागमें काम करते थे। राजा साहबकी मृत्युके उपरान्त इधर-उधर कई जगह होते हुए अन्तमें ये काशी आ गये थे और नागरीप्रचारिणी सभाके 'हिन्दी शब्द सागर'के सहायक सम्पादक नियुक्त हुए थे, जहाँ इन्होंने पालि और प्राकृत व्याकरणोंपर कई लेख लिखे थे। 'सरस्वती'में अंकोंके विकासपर धारावाहिक रूपसे कुछ लेख भी लिखे थे और सूर्यकुमारी पुस्तकमालाके लिए स्वामी विवेकानन्दके 'ज्ञानयोग' आदि कई ग्रन्थोंके अनुवाद भी किये थे। आरम्भिक जीवनमें पहले इनपर आर्यसमाजी विचारोंका बहुत कुछ प्रभाव पड़ा था पर आगे चलकर ये प्रायः नास्तिकसे हो गये थे। इनका हृदय बहुत शुद्ध था और तर्क-शक्ति भी बहुत प्रबल थी। हर चीज और हर बातकी हँसी उड़ाना इनका एक विशेष गुण था। अन्तमें काशीमें इनका स्वर्गवास हुआ। —रा० चं० व०

जयरामदास गुप्त—ये काशीके राजघाट मुहल्लेके रहनेवाले थे और इनकी आरम्भिक शिक्षा स्थानीय हरिश्चन्द्र स्कूलमें हुई थी, जहाँसे इन्होंने सन् १९०४ ई० में मिडिल पास किया था। उन दिनों काशीमें उपन्यासों और उपन्यास-मालाओंके प्रकाशनकी धूम थी, जिसका इनपर विशेष प्रभाव पड़ा था। और इन्होंने भी 'उपन्यास बहार' नामक एक औपन्यासिक मासिक पत्रिकाका प्रकाशन आरम्भ किया, जिसमें बंगला और अंग्रेजीके उपन्यासोंके अनुवाद और छायानुवाद प्रकाशित हुए। इनमेसे कुछके अनुवाद तो स्वयं इन्होंने किये थे और कुछके औरोंसे कराये थे। प्रकाशन कार्यमें इन्हें अच्छी सफलता प्राप्त हुई थी पर इन्हें आयु अधिक नहीं प्राप्त हुई और प्रौढावस्थातक पहुँचनेसे पहले ही काशीमें ही इनका स्वर्गवास हो गया था। —रा० चं० व०

तेग अली—ये भारतेन्दु हरिश्चन्द्रके समकालीन थे। १९ वीं शताब्दीके अन्तमें जब कि काशीमें लावनीबाजोंका बहुत जोर था और उनके अखाड़े तथा दल थे, उसी समय तेग अली भी एक प्रसिद्ध लावनीबाज हुए थे, जिनका अपना अखाड़ा अलग था। इन्हें कसरत और पहलवानीका भी बहुत शौक था और अच्छी कुश्ती लड़ते तथा शागिर्दोंको भी कुश्ती लड़ाया करते थे। उन दिनों काशीमें गुण्डोंका भी बहुत जोर था। तेग अलीने उन गुण्डोंके आचार-विचार, बोल-चाल और रहन-सहनका बहुत अच्छी तरह अध्ययन किया था और उनके अनुसार काशीकी ठेठ बोलीमें कविताएँ भी रची थीं। उन दिनों होलीकी रातमें १०-११ बजेके लगभग खमसे गानेवालोंके बड़े-बड़े दल नयी सड़ककी ओरसे चलकर दाल-मण्डीसे होते हुए चौक आते थे। बीचमें जगह-जगह लोग उन्हें घेरकर घण्टों उनके गाने सुनते थे और पान, इलायची आदिसे उनकी खातिर करते थे। ये खमसे सितार, ढोलक और मंजीरेपर बहुत ही सुरीलेपनसे गाये जाते थे, जिससे कि विलक्षण समाँ बँध जाता था। उन्हींमें एक प्रसिद्ध दल तेग अलीका भी होता था, जिसके खमसे बहुत अधिक लोकप्रिय हुए और इसीलिए जिन्हें भारत जीवन प्रेसके स्वर्गीय बाबू रामकृष्ण वर्माने 'बदमाश दर्पण' नामकी छोटी पुस्तिकाके रूपमें प्रकाशित किया था। गुण्डोंकी बोल-चाल और रंग-ढंगके परिचायक तेग अलीके कुछ पद्य इस प्रकार

है—"देके सारनके बहाको तू घरे चल आवऽ। आज न आ सकऽ तो कौनो बखत कल आवऽ"'संझाके आज आवे कऽ कैले करार बाय। राजन कऽ रजा राम-भै राजा हमार बाय।"

कहीं-कहीं तो इनके पद्य बहुत अलंकारपूर्ण और कबित्वके गुणोंसे युक्त भी होते थे। यथा—"सुरमा आँखीमें नाहीं, तू ह लगावत बाटऽ जहरके पानीमें तरुआर बुझावत बाटऽ"' भौं चूम लेइ ला कोई सुन्नर जे पाइला। हम ऊ हई जे ओंठे पै तरुआर खाई ला'''। हम फारे वाला बाटी, हजारनमें राम-भै। पर तुहँसे रजा बेंत मतिन थरथराई ला।" —रा० चं० वर्मा

दुःखभंजन कवि—जन्म काशीके प्रकाण्ड पण्डित श्री प्रताप शर्माके परिवारमें। आपके पिता श्री चूड़ामणि शुक्लका अनेक राज्य-परिवारोंमें सम्बन्ध था और वे कवि, साधक और प्रसिद्ध ज्योतिषी थे। दुःखभंजनजी साहित्य, संगीत, ज्योतिष, निगम-आगमके महान् ज्ञाता तथा जगदम्बाके अनन्य आराधक एवं सिद्ध कवि थे। आप अश्वशास्त्रके जानकार थे और तलवार चलाना भी जानते थे। षडंग दर्शन, अलंकार, अद्वैत सिद्धान्तके भी आप विशेषज्ञ थे। संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओंपर आपका समान रूपसे अधिकार था। व्याकरण शास्त्रका आपका पाण्डित्य अद्भुत एवं असाधारण था, जिसके कारण आप एक-एक श्लोकके सैकड़ों अर्थ किया करते थे। काशीके पण्डित समाजमें आपका यह पाण्डित्य देखते ही बनता था। एक बार प्रयागमें मकर स्नानके अवसरपर विद्वानोंकी सभामें किसीने कहा कि 'मुहूर्त-चिन्तामणि' (ज्योतिष ग्रन्थ) पर त्रिवेणी माहात्म्य सुनाइये। दुःखभंजनजीने पूछा, किस श्लोकसे कथा प्रारम्भ की जाय? प्रस्तावक विद्वान्ने एक श्लोक उनके सामने रख दिया। श्लोक था—"सिताऽसिताद्ये'''"। दुःखभंजनजीने उक्त श्लोकसे त्रिवेणी माहात्म्य प्रारम्भ कर दिया। "हे सिते, हे शुक्ल वर्णे गंगे! हे असिते, हे कृष्ण वर्णे यमुने!"—इस प्रकार वह 'मुहूर्त्त चिन्तामणि'-के श्लोकोंका अर्थ त्रिवेणी माहात्म्यपर करते चले गये। आपके समकालीन विद्वानों तथा मित्रोंमें महामहोपाध्याय गंगाधर शास्त्री प्रमुख थे। आप काशिराजकी राजसभाके सम्मानित पण्डित एवं कवि थे। संस्कृतमें आपके अनेक ग्रन्थ तथा विद्वत्तापूर्ण टीकाएँ हैं। हिन्दीमें 'गुरु गीता' आपकी प्रसिद्ध कृति है। आपकी हिन्दीकी स्फुट कविताएँ भी सैकड़ोंकी संख्यामें हैं, जो बेजोड़ हैं। —लं० शं० व्या०

देवीप्रसाद 'कविचक्रवर्ती'—जन्म काशीमें सन् १८८३ ई०-में तथा मृत्यु सन् १९३८ ई० में। आपने संस्कृतके भारत प्रसिद्ध प्रकाण्ड पण्डित गोस्वामी दामोदरलाल शास्त्रीसे विभिन्न शास्त्रोंका अध्ययन किया। अपने प्रसिद्ध और सिद्ध पिता दुःखभंजनजीका आपको आशीर्वाद प्राप्त था। इस प्रकार पिता तथा गुरुके आशीर्वादसे काशीके पण्डित समाजमें अल्पकालमें ही आपकी ख्याति फैल गयी। आपको ३० वर्षकी अवस्थामें महामहोपाध्यायकी उपाधि मिली। आपने काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमें संस्कृतके अध्यापनका कार्य भी किया। आपकी असाधारण प्रतिभाका समादर पण्डित समाजने आपको 'कविचक्रवर्ती'की उपाधि देकर किया। आपने संस्कृत समाजका संघटन करने तथा संस्कृत साहित्यके उन्नयनकी प्रेरणा दी। आपके प्रमुख शिष्योंमें श्री केदारनाथ शास्त्री 'सारस्वत' और हिन्दीके अमृतपुत्र श्री जयशंकर 'प्रसाद' भी थे।

कृतियाँ—'शारदा-पचीसी' (कवित्त), 'कवित्त सुधानिधि' (संस्कृत-हिन्दी छन्द)। इनके अतिरिक्त आपने १० महाविद्याओंसम्बन्धी अनेक शतक तथा अष्टक लिखे हैं। संस्कृत तथा ब्रजभाषाकी सैकड़ों स्फुट कविताएँ भी आपने लिखी हैं। —ल० शं० व्या०

नवनीत—पूरा नाम नवनीतलाल चौबे, उपनाम 'नवनीत'। जन्म सन् १८५८ ई०, मथुरामें। निधन सन् १९३२ ई० मथुरामें ही। ढाई वर्षकी अवस्थामें माताका तथा सोलह वर्षकी अवस्थामें पिताका देहान्त हो गया था। आपने सोलह वर्षकी अवस्थासे ही कविता करना प्रारम्भ कर दिया था। इनका जीवन-वृत्त स्वर्गीय पद्मसिंह शर्माने 'पद्मपराग'में दिया है। इन्होंने सर्वप्रथम गणपति वन्दनासे अपनी रचना प्रारम्भ की थी। इनकी पहली रचना इस प्रकार है—छप्पय: "वन्दौं श्री सिव सुवन प्रथम मंगल सरूप वर। लम्बोदर गज वदन सदन बुधि विमल वेषधर॥ भालचन्द भुज चारि पास अंकुस विचित्र कर। रक्त मयल सिंदूर अंग सोभित सु आखु पर॥ मुंज मुकुट कुटिल प्रभा सुभग सुंड मोदक लिये। प्रणत दीन नवनीत उर सो प्रकास कीजै हिये॥"

इन्होंने अष्टाध्यायीका अध्ययन बाल्यकालमें ही दण्डी स्वामी विरजानन्दजीसे किया था। पश्चात् पण्डित गंगादत्त-जीसे 'महाभाष्य', 'नवाह्निक', 'कुवलयानन्द', 'काव्य प्रकाश' पढ़ा। सौराष्ट्रके ब्रजभाषा कवि गीला भाईने इनसे पत्र द्वारा अपनी साहित्यिक जिज्ञासाओंका समाधान प्राप्त करके ज्ञानार्जन किया था। नवनीतजीकी ये रचनाएँ प्रकाशित हुई थीं—'प्रेमरत्न', 'गोपी प्रेम पियूष प्रवाह', 'मूर्ख शतक', 'रहिमन शतक', 'कुब्जा पचीसी', 'हरिहराष्टक' आदि। 'सनेहशतक', 'छन्द नवनीत', 'काव्य नवनीत', 'षट्ऋतु नवनीत', 'मनोर्थ मुक्तावली' तथा दो ढाई हजार मुक्तक छन्द अभी अप्रकाशित पड़े हैं। आपने 'गोपी प्रेम पियूष-प्रवाह'में अपना परिचय लिखा है—"श्री मथुरा हरिजन्म भुअ, तरनि तनूजा तीर। लगी रहत निसि दिन जहाँ, मुनि सिद्धन की भीर॥ तहाँ घाट वल्लभ विदित श्री हलधरकी पौर। ता पीछे मारू गली, उज्ज्वल सुन्दर ठौर। बसत जहाँ माथुर सबै, जग जस चारि हजार। विप्र वेदमें विदित जे, जानत सब संसार॥ ता कुल कोविद कृष्ण सुत, बूलचन्द सुपुनीत। तिन त्रयसुतमें एक लघु, कहत नाम नवनीत॥" इनकी उक्त पुस्तक कांकरौली विद्याविभागसे प्राप्य है। —दे० द्वि०

नारायण शास्त्री खिस्ते—जन्म सन् १८८५ ई० में काशीमें, मृत्यु १३ अप्रैल, सन् १९६१ ई० में। महामहोपाध्याय गंगाधर शास्त्रीसे संस्कृतका अध्ययन। आप सुदीर्घ कालतक वाराणसेय संस्कृत कालेजके सरस्वती भवनके अध्यक्ष रहे। बादमें उक्त कालेजके प्राचार्य भी नियुक्त हुए। सन् १९४६ ई०में महामहोपाध्यायकी उपाधिसे सम्मानित। संस्कृतके प्रकाण्ड पण्डित, पचासों दुर्लभ ग्रन्थोंका आपने

सम्पादन किया है। तन्त्रशास्त्रके देश प्रसिद्ध विशेषज्ञ। तारकेश्वर मन्दिरके मुकदमेमें तन्त्रसम्बन्धी मान्यता एवं सम्मतिके लिए कलकत्तासे न्यायिक आयोग काशी आया था और उसने ४० दिनोंतक आपकी साक्षी ली थी। संस्कृतके साथ ही आपने हिन्दीमें भी संस्कृत ग्रन्थोंकी टीकाएँ लिखी है। हिन्दीमें आपके सैकड़ों लेख प्रकाशित हुए हैं, जिनमें 'आज'में प्रकाशित प्राचीन भारतमें विज्ञान-शास्त्रविषयक लेखमाला उल्लेख्य है। कालिदास-साहित्यके सम्बन्धमें आपकी विशेष मान्यताएँ थीं। आपने वाराणसेय संस्कृत कालेजसे प्रकाशित संस्कृत पत्रिका 'अमर भारती'का दो वर्षों तक सम्पादन किया था। जीवनके उत्तरकालमें आपने हिन्दी भाषामें प्रचुर साहित्य लिखा। आपका डाक्टर वेनिससे घनिष्ठ सम्बन्ध था। विदेशमें आपके शिष्यों-में अमेरिकाके प्रोफेसर ब्राउन (पिनसेलवानिया विश्व-विद्यालय) तथा भाषा शास्त्रके पण्डित श्री एकजरटन (येल विश्वविद्यालय) उल्लेख्य है। आपने सरल संस्कृतमे मार्मिक कहानियाँ भी लिखी हैं।

संस्कृतमें आप द्वारा लिखित दर्जनों ग्रन्थ है तथा कालिदास-साहित्यकी अनेक हिन्दी टीकाएं प्रकाशित हैं। 'अभिज्ञान शकुन्तलम्' और 'स्वप्नवासवदत्ता'की टीकाएँ काफी प्रसिद्ध हैं। —लं० उा० व्या०

बटुकनाथ शर्मा–जन्म सन् १८९५ ई० तथा मृत्यु सन् १९४४ ई० काशीमे। शिक्षा एम० ए० संस्कृत (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय) तथा साहित्योपाध्याय। आपने लक्ष्मण-शास्त्री तैलंग, भालचन्द्र शास्त्री तैलंग, गोपीनाथ कविराज आदि विद्वानोंसे संस्कृतका उच्च अध्ययन किया। महा-महोपाध्याय पाण्डेय रामावतार शर्मासे भी आपका घनिष्ठ सम्पर्क था। आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके सेण्ट्रल हिन्दू कालेजके संस्कृत विभागके प्राध्यापक थे और कुछ वर्षोंतक संस्कृत विभागके अध्यक्ष भी रहे। आपने संस्कृत ग्रन्थों तथा कवियोंके सम्बन्धमें संस्कृत तथा हिन्दीमें प्रभूत साहित्य लिखा है। जीवनके उत्तरकालमें आपने हिन्दीमें अनेक कहानियाँ लिखीं, जो अप्रकाशित ही पडी है। संस्कृत साहित्यके अनेक कवियों तथा लुप्तप्राय उनकी कृतियोंको हिन्दीमें लानेका श्रेय आपको ही है। आपका पुस्तकालय विशाल तथा दुर्लभ ग्रन्थोंसे अलकृत था। आप पालि, अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच भाषाओंके भी ज्ञाता थे।

कृतियाँ—'भामह और उनका काव्यालंकार', 'पीयूष-वर्षी कवि जयदेव', 'रसिक गोविन्द और उनकी कविता' आदि। —ल० शं० व्या०

बलदेव उपाध्याय–जन्म सोनबरसा, जिला बलिया (उत्तर-प्रदेश) में सन् १८९९ ई० में। काशी हिन्दू विश्वविद्यालयसे एम० ए० साहित्याचार्यकी उपाधि प्राप्त की। वहीं संस्कृतके प्राध्यापक रहे। आपने दर्शन और सैद्धान्तिक साहित्य समीक्षाके क्षेत्रमें संस्कृत वाङ्मयमें उपलब्ध आकर साहित्य-का उपयोग कर हिन्दीको समृद्ध बनानेकी दिशामें बडे महत्त्वका कार्य किया है। आपके इस योगदानसे तथा गम्भीर लेखनकी दृष्टिसे हिन्दीकी आन्तरिक क्षमता व्यक्त हुई है। सन् १९५७ ई० में प्रकाशित आपकी 'भारतीय दर्शन' नामक पुस्तक हिन्दीमें अपने ढंगकी अद्वितीय कृति है। इसपर हिन्दी साहित्य सम्मेलनने 'मंगला प्रसाद पारितोषिक' दिया था।

कृतियाँ—'आचार्य शंकर' (जीवन चरित १९४८), 'भागवत सम्प्रदाय' (दर्शन १९५३ ई०), 'भारतीय साहित्य शास्त्र' (समीक्षा १९५५ ई०), 'वैदिक साहित्य और संस्कृति' (१९५५ ई०), 'बुद्ध दर्शन' (१९५५ ई०), 'भारतीय दर्शन' (१९५७ ई०)। —श्री० शु०

मंगलदेव शास्त्री–जन्म बदायूँमें सन् १८९० ई०में। पंजाब विश्वविद्यालयसे एम० ए०; एम० ओ० एल० की उपाधि प्राप्त की। आक्सफोर्ड विश्वविद्यालयसे डी० फिल० हुए। गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, वाराणसीके प्रिंसिपल रह चुके हैं। बादमें कालेज जब वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालयमें परिणत हुआ तो कुछ समयतक उसके उपकुलपति भी रहे। हिन्दीमें भाषा-विज्ञान विषयपर लिखनेवाले आरम्भिक लेखकोंमे आपका प्रमुख स्थान है। आपकी 'भाषा विज्ञान' पुस्तक सन् १९२६ ई० में ही प्रकाशित हुई। हिन्दी जब विश्वविद्यालयकी उच्चतर परीक्षाओंका स्वतन्त्र विषय बनी तो भाषा-विज्ञानके अध्ययनमें यह पुस्तक बडी उपयोगी सिद्ध हुई।

भाषा विज्ञानके अतिरिक्त हिन्दीमें भारतीय संस्कृति तथा वैदिक साहित्यके सम्बन्धमे समाजशास्त्रीय दृष्टिकोणसे गवेषणापूर्ण लेखनका आरम्भ करनेवालोंमे भी आपका विशिष्ट स्थान है। आपने इन विषयोंको लेकर जो साहित्य प्रस्तुत किया है, उसमे आर्य समाज द्वारा प्रवर्तित चिन्ता-धाराका प्रभाव सुस्पष्ट है। आपने वैदिक साहित्यमें स्थान-स्थानपर उदात्त मानवीय गुणोंके सम्बन्धमें प्राप्त होनेवाली सूक्तियोंका बडे अध्यवसायसे संकलन किया है। इधर आप वाराणसीमें एकान्त भावसे अपने वैदिक स्वाध्याय केन्द्रमें वेदानुशीलनके कर्ममे लगे हुए हैं।

अबतक आपकी लगभग तीस पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है, जिनमे मुख्य ये हैं— हिन्दी : 'भाषा विज्ञान', 'भारतीय संस्कृतिका विकास' (१९५६ ई०), संस्कृत (सम्पादित) : 'ऋग्वेद प्रातिशाख्य'—३ भाग (१९३१), 'रश्मि माला' (१९५४ ई०); 'अमृत मंथन' (१९५६, दोनों कविताएँ)। —श्री० शु०

मर्यादा–नवम्बर, सन् १९१० ई० मे कृष्णकान्त माल-वीयने 'अभ्युदय' कार्यालय, प्रयागसे इसे प्रकाशित किया। इसके प्रथम अंकका प्रथम लेख 'मर्यादा' शीर्षकसे श्री पुरुषोत्तमदास टण्डनने लिखा। इस मासिक पत्रिकाको प्रारम्भसे ही हिन्दीके तत्कालीन समस्त शीर्षस्थ विद्वानों, लेखकों एवं कवियोंका सहयोग मिला। प्रथम अंकमें सर्व-श्री मैथिलीशरण गुप्त, माधव शुक्ल, बालकृष्ण भट्ट, राय देवी प्रसादपूर्ण, श्रीधर पाठक, मिश्रबन्धु आदिकी रचनाएँ प्रकाशित हुई। प्रथमांकमें आचार्य पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदीकी 'एक उपमापर दो हजार अशर्फियाँ' शीर्षक टिप्पणी प्रकाशित है।

इसी पत्रिकामें पण्डित किशोरीलाल गोस्वामीका सत्य घटनामूलक उपन्यास 'नौलखा हार' धारावाहिक रूपसे प्रकाशित हुआ और राजा चेतसिंहसम्बन्धी चतुर्वेदी द्वारका प्रसादकी लेखमाला निकली। १० वर्षोंतक इस

पत्रिकाको प्रयागसे निकालनेके बाद कृष्णाकान्त मालवीयने इसका प्रकाशन ज्ञानमण्डल, काशीको सौंप दिया। सन् १९२१ ई० से श्री शिवप्रसाद गुप्तके संचालनमें और सम्पूर्णानन्दजीके सम्पादकत्वमें 'मर्यादा' ज्ञानमण्डलसे प्रकाशित हुई। असहयोग आन्दोलनमें उनके जेल चले जानेपर धनपतराय (प्रेमचन्द) स्थानापन्न सम्पादक हुए। पत्रिकाका वार्षिक मूल्य ५) तथा एक प्रतिका ।।) था। इसका आकार १०×७।। था। जब 'मर्यादा' सम्पूर्णानन्दजीके सम्पादकत्वमें ज्ञानमण्डलसे निकलने लगी तो उसका स्वरूप और भी निखर गया था। थी तो यह राजनीतिप्रधान पत्रिका पर इसमें विविध विषयोंपर अधिकारी विद्वानोंके उच्चस्तरके लेख प्रकाशित हुआ करते थे। प्रत्येक अंकमें रंगीन चित्रके अतिरिक्त साहित्य-सुमन-संचय, सामयिक प्रसंग, साहित्य-परिचय, सम्पादकीय, स्थायी स्तम्भोंके अन्तर्गत उच्चकोटिकी पाठ्य-सामग्री प्रकाशित होती थी। सम्पादकीय स्तम्भमें राष्ट्रीय-अन्तरराष्ट्रीय विषयोंपर सारगर्भित टिप्पणियाँ रहती थी।

'मर्यादा' अपने समयकी सर्वश्रेष्ठ मासिक पत्रिका थी। उसे तत्कालीन सभी प्रसिद्ध लेखकों, कवियों तथा विद्वानों का सहयोग प्राप्त था। सर्वश्री पद्म सिंह शर्मा, अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, प्रेमचन्द, 'हरिऔध', मैथिलीशरण गुप्त इन्द्र विद्यावाचस्पति, लाला भगवानदीन, भाई परमानन्द, हरिभाऊ उपाध्याय, राजा महेन्द्रप्रताप, 'उग्र', उदयशंकर भट्ट, भवानीदयाल सन्यासी आदि इसके स्थायी लेखकोंमें थे। प्रेमचन्द्रजीकी आरम्भिक कहानियाँ इसमे प्रकाशित हुई। सन् १९२३ ई० में यह पत्रिका अनिवार्य कारणोंसे बन्द हो गयी। इसका अन्तिम अंक प्रवासी विशेषांकके रूपमें बनारसीदास चतुर्वेदीके सम्पादनमें निकला, जो अपनी विशिष्ट लेख-सामग्रीके कारण ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। अन्तिम अकमें पाठकोंसे निवेदन करते हुए डाक्टर सम्पूर्णानन्दजीने लिखा : "इस अकके साथ 'मर्यादा' आपसे विदा होती है। कई मित्रोंने जो साहित्य-प्रेमी और देशकी वर्तमान राजनीतिक परिस्थितिके मर्मज्ञ है, यह विश्वास दिलानेकी कृपा की है कि 'मर्यादा'ने लोक तथा साहित्य-सेवाका जो कुछ प्रयत्न किया है, वह निष्फल नहीं गया है। हमको खेद है कि अनिवार्य कारण हमको इस सेवासे वंचित करते हैं।" —ल० शं० व्या०

मुकुंदीलाल श्रीवास्तव–जन्म 'रविवार, २५ अक्तूबर, सन् १८९६ ई०, सागर जिलेके गौरझाभर ग्राममें अपने मामाके यहाँ। आप जबलपुर (मध्य प्रदेश) के निवासी हैं और गत ३१ वर्षोंसे काशीमें ही रह रहे हैं। मैट्रिक तथा एफ० ए० में उत्तीर्ण छात्रोंमें सर्वप्रथम होनेके कारण राज्यकी ओरसे आप छात्रवृत्ति पाते रहे। इसके बाद बी० ए०में आपको सरकारी छात्रवृत्ति मिली। इनकी शिक्षा इनके मामाके यहाँ ही हुई। नवम्बर, १९१७ ई० में मामाकी मृत्यु हो जानेके कारण उनके परिवारके भरण-पोषणकी आवश्यकतावश आपने पढ़ाई छोड़कर स्टेट हाईस्कूलमें नौकरी कर ली। बादमें मामाके बड़े लड़केकी नौकरी लग जानेपर आप अपने घर जबलपुर चले आये और राबर्टसन कालेजसे सन् १९२० ई० में बी० ए० की परीक्षा पास की। दर्शनशास्त्रमें एम० ए० करनेके विचारसे आप नागपुर चले गये और वहाँके सरकारी महाविद्यालयमें प्रविष्ट हो गये। उसी वर्ष नागपुरमें राष्ट्रीय महासभाका अधिवेशन हुआ। उसमें स्वीकृत असहयोगके प्रस्तावसे प्रभावित होकर आपने एम० ए० प्रीवियसकी पढ़ाई समाप्त हो जानेपर कालेज छोड़ दिया।

आपके साहित्यिक जीवनका आरम्भ वस्तुतः उसी समय हो गया था, जब आप १५ वर्षके थे। आपकी पहली रचना जून, सन् १९१२ ई०के 'बाल हितैषी' (मेरठ) में प्रकाशित हुई थी। उसके बाद आपके कई लेख और कवितायें विभिन्न पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित हुई।

जब आप एफ० ए० में पढ़ते थे, तब 'अवनति क्यों हुई' शीर्षक ४० पृष्ठोंका एक निबन्ध लिखनेके कारण निबन्ध प्रतियोगितामें यवतमाल (बरार) के रामगोपाल कांजीरियाकी ओरसे आपको एक रजत पदक पुरस्कारमें दिया गया।

इसी तरह तृतीय वर्षकी शिक्षा प्राप्त करते समय भी आपने मध्य प्रदेशके तीनों कालेजोंकी एक बड़ी प्रतियोगिता में भाग लिया और उसमें भी विजयी हुए। आपने लगभग एक ही महीनेमें 'रणधीर पराक्रम' नामक नाटक लिख कर २७ जुलाई, सन् १९१९ ई० को तीन सौ रुपयेका नकद पुरस्कार प्राप्त किया। इस रकमसे आपको बड़ी सहायता मिली और आप चतुर्थ वर्षकी पढ़ाई समाप्त कर बी० ए० की परीक्षामें सफलता प्राप्त कर सके।

आपने काशीके दैनिक 'आज'के लिए 'नीतिशास्त्रकी उत्पत्ति' पर एक लेख भेजा, जो उसके तत्कालीन सम्पादक श्री श्रीप्रकाशजीको इतना पसन्द आया कि उन्होंने तुरन्त आपको अपने साथ काम करनेके लिए काशी बुला लिया।

फरवरी, १९२१ से जुलाई, १९२१ ई० तक आप दैनिक 'आज'के सहायक सम्पादक रहे और इस बीच आपने उसके लिए पचीसों अग्रलेख तथा कई टिप्पणियाँ लिखीं। इसके बाद आप श्री रामदास गौड़के हट जानेपर ज्ञानमण्डल प्रकाशन विभागके अध्यक्ष एवं प्रधान सम्पादक नियुक्त हुए। इसी समय आपको ज्ञानमण्डल ग्रन्थमालाके सम्पादनके साथ-साथ दो वर्षतक आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं ऐतिहासिक विषयोंके उच्चकोटिके मासिक पत्र 'स्वार्थ' का सम्पादन कार्य करना पड़ा। यह पत्र भी ज्ञानमण्डलसे ही प्रकाशित होता था।

ग्रन्थमालाके प्रकाशनका कार्य जब ज्ञानमण्डलमें बन्द कर काशी विद्यापीठके जिम्मे कर दिया गया तब आप भी विद्यापीठमें चले गये। वहाँ प्रकाशन कार्यके साथ-साथ आप हिन्दीके प्रधानाध्यापकका कार्य भी करते रहे। विद्यापीठमें आर्थिक कठिनाइयाँ उपस्थित हो जानेपर, लगभग दस वर्षों बाद, अन्य कई अध्यापकोंके साथ आपको भी वहाँसे हटना पड़ा। जुलाई, १९३८ ई० में आप पुनः 'आज' में साप्ताहिक संस्करणके सम्पादक बनकर आ गये। सन् १९४३ ई० के अक्तूबरमें आप 'आज' से पृथक् हो गये और शीघ्र ही 'संसार' साप्ताहिकके सम्पादक नियुक्त हुए। बादमें कोई डेढ़ वर्षतक आपको दैनिक 'संसार' का सम्पादन-भार भी सँभालना पड़ा और लगभग ढाई वर्षतक आप वहाँसे

प्रकाशित 'गुप्तधारा' मासिक पत्रिकाके भी सम्पादक रहे। इसके बाद आप पुनः ज्ञानमण्डलके प्रकाशन विभागमें आ गये।

ज्ञानमण्डल एवं काशी विद्यापीठमें रहकर लगभग २० पुस्तकोंका सम्पादन करनेके अतिरिक्त आपने 'ग्रीस और रोमके महापुरुष' एवं 'पश्चिमी यूरोप' के द्वितीय भागके अर्धांशका अनुवाद किया। इसमें (स्वर्गीय) श्रीराजवल्लभ सहायका भी सहयोग आपको प्राप्त था। इसके अतिरिक्त आपने तथा आपके सहयोगी श्रीराजवल्लभ सहायने कई वर्षोंके कठिन परिश्रमके बाद 'हिन्दी शब्द संग्रह' नामक एक बहुमूल्य कोश तैयार किया। इसमें आधुनिक हिन्दीके अतिरिक्त ब्रजभाषा, अवधी, बुन्देलखण्डी आदिके उन बहुसंख्यक शब्दोंका भी समावेश किया गया, जिनका प्रयोग हिन्दीके पुराने कवियों तथा लेखकोंकी रचनाओंमें हुआ है। विभिन्न प्रामाणिक पुस्तकोंसे इसमें कोई आठ हजार उदाहरण भी दिये गये हैं। जब यह कोश प्रकाशित हुआ था तब हिन्दीके अनेक विद्वानोंने मुक्त कण्ठसे इसकी प्रशंसा की थी।

इन रचनाओंके अतिरिक्त आपने 'साम्राज्यवाद' नामक एक और पुस्तक लिखी है। हिन्दीमें अन्तरराष्ट्रीयविषयक साहित्यकी यह एक अमूल्य निधि है। साम्राज्यवादका अध्ययन करनेवाले हिन्दीके पाठकोंके लिए यह पुस्तक बड़े कामकी चीज है। इसकी भूमिका जवाहरलाल नेहरूने लिखी थी। सन् १९५१-'५२ ई०में श्रीराजवल्लभ सहायके साथ मिलकर आपने ज्ञानमण्डल द्वारा प्रकाशित 'बृहत् हिन्दी कोश'का सम्पादन किया। सन् १९५५ ई० में आपने 'ज्ञान शब्द कोश', 'पारिभाषिक शब्द कोश' भी तैयार किये। फिर आपने अंग्रेजीसे अनुवाद कर 'भारतीय पत्रकार कला', 'मेरे बचपनकी कहानी' तथा 'कुछ स्मरणीय मुकदमे' प्रस्तुत किये। इसके बाद एक वर्षतक 'आज' में आपने 'प्रतिदिनकी समस्याएँ' नामक स्तम्भ चलाया, जो बहुत उपयोगी प्रमाणित हुआ। इस समय आप उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा सञ्चालित 'हिन्दी समिति'के प्रधान सम्पादक हैं। गत ७ वर्षोंमें यहाँसे ७५ ग्रन्थोंका सम्पादन कर आप प्रकाशित करा चुके हैं। आपके लिखे लेखोंकी संख्या बारह-तेरह सौसे कम न होगी।

अपने लेखोंमें आप यथासम्भव लघु वाक्योंका ही प्रयोग करते हैं और आपके पैराग्राफ भी प्रायः छोटे ही हुआ करते हैं। आपको अपनी जिम्मेदारीका हमेशा बड़ा ख्याल रहा है। आपको अक्सर यह कहते सुना गया है—"या तो कोई काम बिल्कुल ही करने योग्य नहीं या वह अच्छी तरह ही करने योग्य है।" अपने साहित्यिक कार्योंमें आप भरसक इसी सिद्धान्तका पालन करनेका प्रयत्न करते हैं और यही आपकी सफलताका प्रमुख कारण है।

पत्र सम्पादकके रूपमें आपने होनहार लेखकोंको बराबर प्रोत्साहन देकर और उनकी रचनाओंको प्रकाशित कर हिन्दीकी आधुनिक प्रगतिमें एक 'अज्ञात नामा' सेवक एवं अंशदाताका कार्य किया है। हिन्दीके हजारों पाठक तथा पचासों लेखक, जो आपकी सेवाओंसे लाभ उठा चुके हैं, सहर्ष यह बात स्वीकार करेंगे।

आप स्वभावके बहुत ही सीधे, दयालु एवं क्षमाशील हैं। आत्माभिमानी होते हुए भी दर्प या अहम्मन्यताका भाव आपमें बिलकुल नहीं है। पाखण्ड और छलनासे भरी हुई आजकी दुनियामें भी आप बराबर सात्विक जीवन बितानेका प्रयत्न करते हैं। स्वभावतः इसके कारण आपको कभी-कभी बड़ी परेशानी उठानी पड़ी है फिर भी ईश्वरपर भरोसा कर आप अपने पथपर अडिग बने रहे हैं। चिन्तनमें, वाणीमें और प्रत्येक कार्यमें सचाईका सहारा लेकर आगे बढ़ना ही आपको प्रिय रहा है। अपने छोटेसे दायरेके भीतर आप इसीके लिए सतत् प्रयत्नशील रहे हैं। —दे० द्वि०

रघुवीर, आचार्य—जन्म सन् १९०२ ई० रावलपिण्डी में, मृत्यु सन् १९६३ ई० में एक कार-दुर्घटनामें। शिक्षा पंजाब, लन्दन और यूट्रेक्ट विश्वविद्यालयोंमें। एम० ए०, पी० एच० डी०, डी० लिट्० की उपाधियाँ प्राप्त कीं। आप भारतकी राष्ट्रभाषा हिन्दी और भारतीय संस्कृतिके अनन्य उपासक और इन क्षेत्रोंमें कार्य करनेवाले मान्य विद्वानोंमें अग्रणी थे। आपने अपने अथक प्रयाससे ऐसे 'बृहत् पारिभाषिक अंग्रेजी हिन्दी कोश'का निर्माण कर दिया है, जिसकी सहायतासे ज्ञान-विज्ञानके किसी भी क्षेत्रकी उच्चतम रचनाओंका अविकल रूपान्तर हिन्दीमें प्रस्तुत किया जा सकता है और इन विषयोंकी उच्चतम शिक्षा हिन्दी माध्यम द्वारा दी जा सकती है। आपके अन्य कार्योंको छोड़ भी दिया जाय तो केवल यही एक कृति आपको अमरत्व प्रदान करनेमें पूर्ण समर्थ है। हिन्दी शब्द भाण्डारकी अभिवृद्धिमें आपने संस्कृतके मूल स्रोतकी महत्ताका पूर्ण आकलन एवं उपयोग किया है। आप संस्कृतनिष्ठ हिन्दीके ऐसे प्रबल समर्थक थे कि 'रघुवीरी हिन्दी' संस्कृतनिष्ठ हिन्दीके विरोधियों द्वारा उसके लिए व्यंग्यात्मक रूपमें प्रयुक्त एक मुहावरा ही बन गया है। 'रघुवीरी हिन्दी'का आज देशमें चाहे जितना भी विरोध किया जाय किन्तु विदेशोंसे हिन्दीमें आनेवाली प्रचार सामग्रीको सरसरी दृष्टिसे देखनेपर भी यह किसीसे छिपा न रहेगा कि हिन्दीकी मूल प्रकृति संस्कृतनिष्ठ ही है। इसे विदेशी भी समझ चुके हैं और संस्कृतनिष्ठ हिन्दी ही सारे देशमें सुगमतासे समझी जा सकती है। संस्कृत-निष्ठतासे ही हिन्दी पूर्णतः प्रतिमित एवं विज्ञानके प्रकाशन-में सक्षम हो सकती है।

डाक्टर रघुवीर हिन्दीके अप्रतिम कोशकार तो थे ही, वे देशके मूर्द्धन्य भाषाशास्त्री भी थे। संस्कृत, तिब्बती मंगोलियन, बालिनीज आदि भाषाओंका उन्होंने गम्भीर तुलनात्मक अध्ययन किया था। अपने इसी अध्ययनके बलपर उन्होंने मध्य एशियामें सुदूर अतीतमें फैली हुई गौरवपूर्ण भारतीय संस्कृतिका इस युगमें उद्घाटन किया और अपने पाण्डित्यसे उसपर नया प्रकाश डाला। भारतीय संस्कृतिके प्रचार, प्रसार अनुशीलन एवं अनुसन्धानकी दिशामें आपने अपना सारा जीवन लगा दिया था। इसी उद्देश्यसे आपने दिल्लीमें 'भारतीय संस्कृतिकी अन्तराष्ट्रीय अकादमी' की स्थापना की है। इस संस्थाके पास, मध्य एशियासे आप द्वारा लायी गयी लगभग २० हजार

प्राचीन दुर्लभ पाण्डुलिपियाँ और भारतीय संस्कृतिसे सम्बन्धित ग्रन्थ हैं, जिनका सम्पादन और प्रकाशन अकादमीका एक महत्त्वपूर्ण दायित्व है। अकादमीकी ओरसे अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोंका प्रकाशन हुआ है। सम्प्रति उनके पुत्र डाक्टर लोकेश उन ग्रन्थोंके प्रकाशनका कार्य कर रहे हैं।

आपकी कुछ विशिष्ट कृतियाँ ये हैं—अंग्रेजी (सम्पादित) 'अथर्ववेद ऑव द पैप्पलादाज़' (२० भागोंमें, १९३६-४०), 'अल्किलि-विजहरम्' (संस्कृत-तिब्बती-मंगोलियन १९४१), 'फान फान यू' (भारतीय भौगोलिक नामोंका चीनी शब्द कोश, १९४३), 'कम्प्रीहेंसिव इंगलिश-हिन्दी डिक्शनरी ऑव गवर्नमेण्टल ऐण्ड एजुकेशनल वर्ड्स ऐण्ड फ्रेजेज' (१९५५), 'मंगोलियन संस्कृत शब्द कोश' (१ भाग, १९५८), 'बृहत् पारिभाषिक अंग्रेजी हिन्दी कोश', 'स्वर व्यंजन' (कवि बालिनीज देवनागरी लिपि ग्रन्थ १९५५)। —श्री० शु०

रामअवध द्विवेदी–जन्म सन् १९०७ ई०, गोरखपुर जिलान्तर्गत गजपुर ग्राममें। इनके पिता पण्डित मातादीन द्विवेदी ब्रजभाषाके अच्छे कवि थे तथा इनके अग्रज पण्डित मन्नन द्विवेदीने कविता तथा गद्यलेखन दोनो क्षेत्रोमे प्रभूत ख्याति प्राप्त की। इस प्रकार द्विवेदीजीका जन्म एक साहित्यिक परिवारमें तथा पालन-पोषण साहित्यिक वातावरणमें हुआ।

दो-एक वर्षतक जुबली स्कूल, गोरखपुरमे प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करनेके बाद स्कूलकी शेष शिक्षा पूरी करनेके लिए आप कानपुर चले गये। वहाँ हाईस्कूल तथा बी० ए० की परीक्षा पास की। तदुपरान्त स्नातकोत्तर शिक्षाके लिए वे काशी हिन्दू विश्वविद्यालमें प्रविष्ट हुए, जहाँ १९३१ ई० में अंग्रेजी साहित्यमें एम० ए० तथा १९३२ ई० मे एल-एल० बी० की परीक्षा पास की। १९४६ ई० में आपने नाट्य-शास्त्रपर एक महत्त्वपूर्ण प्रबन्ध लिखकर अंग्रेजी साहित्यमे डी० लिट्० की उपाधि प्राप्त की। विशिष्ट अंग्रेज विद्वानोंने इस प्रबन्धकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है

सन् १९३२ ई०में द्विवेदीजीने काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमें अध्यापन कार्य शुरू किया। सन् १९५९ तक वे निरन्तर अंग्रेजी विभागमे प्राध्यापक पदपर कार्य करते रहे। इस दीर्घकालावधिमें उन्होंने अध्यापन और अनुसन्धानके क्षेत्रमें स्तुत्य कार्य किया और इस प्रकार व्यापक यश प्राप्त किया।

छात्रावस्थासे ही द्विवेदीजीकी हिन्दी-साहित्यमें अभिरुचि विकसित होने लगी और सन् १९२५ ई०से पत्र-पत्रिकाओमे उनके लेख और कविताएँ प्रकाशित होने लगी। १९२५ और १९३२ ई० के बीचमें उनकी रचनाएँ 'माधुरी', 'सुधा', 'मनोरमा', 'वीणा', 'प्रताप', 'स्वदेश' आदि पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित हुई। सन् १९५० के बाद उनके गम्भीर आलोचनात्मक निबन्ध 'आलोचना', 'समालोचक', 'अवन्तिका', 'आज' आदिमें प्रकाशित हुए।

द्विवेदीजीकी प्रकाशित पुस्तकोंमें निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं—'हिन्दी साहित्यके विकासकी रूप-रेखा'—इसमें हिन्दी साहित्यकी आधुनिक गतिविधिपर विशद प्रकाश डाला गया है। 'अंग्रेजी भाषा और साहित्य', 'साहित्य-रूप'—इस ग्रंथमें काव्य-रूपोंका तुलनात्मक अध्ययन है और इसमें भारतीय तथा पाश्चात्य आचार्योंके मतोंपर विचार किया गया है। 'साहित्य-सिद्धान्त'—इस ग्रन्थमे साहित्य सिद्धान्तोंका तुलनात्मक अध्ययन है और पाश्चात्य सिद्धान्तोंकी विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की गयी है।

द्विवेदीजी उन इने-गिने विद्वानोंमें हैं, जिनका हिन्दी और अंग्रेजी साहित्यपर समान अधिकार है। अतः हिन्दी साहित्यका नवीन मूल्यांकन प्रस्तुत करनेमें वे समर्थ हैं। नागरीप्रचारिणी सभामे प्रकाशित अंग्रेजी मासिक पत्रिका 'द हिन्दी रिव्यू'का उन्होंने पाँच वर्षोंतक योग्यतापूर्वक सम्पादन किया। इस पत्रिकाके माध्यमसे देशमें ही नहीं, वरन् विदेशोंमें भी हिन्दी-साहित्यकी जानकारी और लोकप्रियता बढ़ी। आपकी कई महत्त्वपूर्ण रचनाएँ अंग्रेजीमें भी प्रकाशित हुई हैं। —ज० उ०

सनातनधर्म–इस साप्ताहिक पत्रका प्रकाशन २० जुलाई, सन् १९३३ ई० को महामना मालवीयजीके संरक्षण तथा संचालनमें हुआ। यह पत्र हिन्दीका आदर्श साप्ताहिक पत्र था, जिसमें ज्ञान-विज्ञानके आधुनिकतम स्तम्भ थे और जिमे समकालीन अधिकारी विद्वानों, लेखकों तथा कवियोंका सहयोग प्राप्त था। मालवीयजी स्वयं भी इसमें प्रायः अग्रलेख तथा विशेष लेख लिखते थे।

'सनातनधर्म'के प्रथम अंकका अग्रलेख मालवीयजीका लिखा हुआ है और उसका शीर्षक है—'सनातनधर्मका स्वरूप'। इस लेखकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—"संसारमे जितने धर्म प्रचलित है, उनमे सबसे प्राचीन वह धर्म है, जो 'सनातन' धर्मके नामसे प्रसिद्ध है।" भगवान् मनु कहते हैं—"वेदोऽखिलो धर्ममूलम्।" इस पत्रका सिद्धान्त वाक्य था—"जो हठि राखे धर्मको, तेहि राखे करतार।"

'सनातनधर्म'के प्रथम सम्पादक थे श्री भुवनेश्वर नाथ मिश्र 'माधव'। उनके बाद यह साप्ताहिक पत्र श्री सीताराम चतुर्वेदीके सम्पादकत्वमे अपने जीवनके अन्तकाल (सन् १९४० ई०) तक निकलता रहा। इसके प्रथम अंकके स्तम्भोंसे ही इसके दृष्टिकोणकी व्यापकताका परिचय मिल जाता है।

कवि सम्राट 'हरिऔध', आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डाक्टर अलतेकर, पण्डित चन्द्रवली पाण्डेय, आचार्य ध्रुव आदि उच्च कोटिके विद्वान् इसमे नियमित रूपसे लिखा करते थे। 'सनातनधर्म'का वसन्त अंक, कृष्ण अंक, रामनवमीपर प्रकाशित विशेषांक, होली अंक आदिने हिन्दी पत्रकारितामें एक मानदण्ड स्थापित किया है। —ल० शं० व्या०

स्वार्थ–राष्ट्ररत्न श्री शिवप्रसाद गुप्तने हिन्दीमे विविध विषय विकसित उच्चकोटिके मासिक पत्रके अभावकी पूर्तिके लिए ज्ञानमण्डल, काशीसे सन् १९१९ ई०, कार्तिक धनतेरससे 'स्वार्थ' नामक पत्रिकाका प्रकाशन प्रारम्भ किया। यह अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, राजनीति तथा इतिहासविषयक मासिक पत्र था। इसके प्रथम सम्पादक थे जीवन शंकर याज्ञिक। बादमें नरसिंह दासने और अन्तमें प्रायः दो वर्षोंतक मुकुन्दीलाल श्रीवास्तवने इसका सम्पादन किया। पत्रिकाका वार्षिक मूल्य ४) था और प्रति अंकका

।।)। इसका आकार ९।।×६। था। विषयकी दृष्टिसे यह पत्र अद्वितीय था। ऐसे विषयपर हिन्दीमें इसके पूर्व कोई पत्र नहीं निकाला था। इसके प्रथम अंकके सम्पादकीयमे उसकी नीति तथा प्रकाशन लक्ष्यका परिचय मिल जाता है। इसमें कहा गया है—"हिन्दीमें 'स्वार्थ' अपने ढंगका पहिला ही पत्र है। जिन विचारोंके फैलानेकी यह चेष्टा करेगा, वे अवश्य ही महत्त्वके हैं। हमारे नेतागण देशोन्नतिके लिए यथाशक्ति उद्योग कर रहे हैं। भारत संसारके समस्त देशोंमें अपना उच्च स्थान प्राप्त करेगा। इस महान् कार्यमे 'स्वार्थ' भी कुछ सेवाका भार यथाशक्ति सिरपर उठाता है और आशा करता है कि सेवा-मार्गपर चलते हुए जिस उत्साह और सहायताकी आवश्यकता होगी, उसको अवश्य प्राप्त होगी।" इसके प्रथमांकके लेखकों और उनके लेखोंके शीर्षकोंसे ही सहज विदित हो जाता है कि 'स्वार्थ' अपने ढंगका अनोखा पत्र रहा है और आज भी उसके समान मासिक पत्रकी आवश्यकता बनी हुई है। प्रथम अंकके प्रमुख लेखकों तथा उनके लेखोंके शीर्षक इस प्रकार हैं—श्री प्रकाश : 'धनका बँटवारा', गंगाप्रसाद मेहता : 'भारतके आर्थिक इतिहासकी दिशा', बदरीनाथ भट्ट : 'शकरका व्यापार', मोहन सिंह मेहता : 'अंकशास्त्रकी प्रस्तावना', पीताम्बरदत्त पाण्डेय : 'प्रजावाद'। पुस्तकालोचन, सामयिक संग्रह तथा सम्पादकीय इसके स्थायी स्तम्भ थे। सामयिक संग्रह स्तम्भके अन्तर्गत ज्ञातव्य विषय, महत्त्वपूर्ण आर्थिक आँकड़े और तत्सम्बन्धी चार्ट प्रकाशित होते थे। 'स्वार्थ' में प्रकाशित संसारके व्यवसायकी इतिहाससम्बन्धी लेखमाला स्मरणीय रहेगी। इतने उच्चस्तर तथा श्रेष्ठ लेख सामग्रीसे युक्त मासिक पत्रका पाठकों तथा ग्राहकोंके प्रोत्साहनके अभावमें, ढाई-तीन वर्षों तक चलकर ही बन्द हो जाना, राष्ट्रभाषा हिन्दीके लिए अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण कहा जायगा। —रू० शं० व्या०
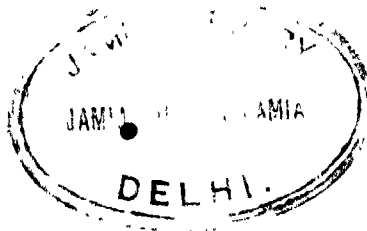
भूल सुधार

१. पृष्ठ २५२ कालम १ पंक्ति ३२ में द्वारकाप्रसाद मिश्रके स्थानपर द्वारिकाप्रसाद मिश्र छप गया है।

२. पृष्ठ २६८ पंक्ति ४७ तथा पृष्ठ २६९ पंक्ति १० मे 'अग्निशस्य'के स्थानपर 'अग्निशस्त्र' छप गया है।

३. पृष्ठ ३०७ से ३११ तक शब्दक्रम ठीक नहीं है, क्रम ठीक करके पढ़ें।

४. पृष्ठ ३१० कालम २ पंक्ति १९ में 'परशुराम चतुर्वेदी' छपा है। यह टिप्पणी पृ० ३०७ में पंक्ति ९ के बाद 'परिचई' शीर्षक टिप्पणीके पहले पढ़ें।

५. पृष्ठ ३५४ पंक्ति ४१ मे सी० वी० रावके स्थानपर भूलमे वी० सी० राव छप गया है।

६. पृष्ठ ४८८ कालम १ पंक्ति ४१-४२ में 'इनका निधन सन् १९८२ ई० में हुआ' भूलसे छप गया है। निधन सन् १९६२ ई० में हुआ था, जो कि इस टिप्पणीके प्रारम्भमें ही पृ० ४८७ में दे दिया गया है।

७. पृष्ठ ६१६ में सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'की निधन तिथि छूट गयी है। उनका निधन अक्टूबर, सन् १९६१ ई०, प्रयागमें हुआ था।